कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मवैवर्तपुराण

मूल तथा भाषानुवाद

द्वितीय भाग

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड)

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल

(श्री नाथ खण्डेलवाल)

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

२६५

****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मवैवर्तपुराण

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल

(श्री नाथ खण्डेलवाल)

द्वितीय भाग

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड)

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी

वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

अध्याय पृष्ठाङ्क

चतुर्थ श्रीकृष्णजन्मखण्ड

अध्याय पृष्ठाङ्क

❖❖❖

।। श्रीगणेशायनमः।।

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।

ॐ तत्सद्‌ब्रह्मणे नमः

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्र चतुर्थं श्रीकृष्णजन्मखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

देवर्षि नारद का नारायण ऋषि से कृष्ण सम्बन्धित प्रश्न करना, ऋषि द्वारा हरिकथा प्रसंग में विष्णु एवं वैष्णवों के गुण का वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥१॥

नारायण, नरोत्तम नर, देवी सरस्वती, वेदव्यास को प्रणाम करके, तब जय (पुराण) कहे।।१।।

नारद उवाच

श्रुतं प्रथमतो ब्रह्मन्ब्रह्मखण्डं मनोहरम्। ब्रह्मणो वदनाम्भोजात्परमाद्भुतमेव च॥२॥

ततस्तद्वचनात्तूर्णं समागत्य तवान्तिकम्। श्रुतं प्रकृतिखण्डं च सुधाखण्डात्परं वरम्॥३॥

ततो गणपतेः खण्डमखण्डभवखण्डनम्। न मे तृप्तं मनो लोलं विशिष्टं श्रोतुमिच्छति॥४॥

श्रीकृष्णजन्मखण्डं च जन्मादेः खण्डनं नृणाम्।
प्रदीपं सर्वतत्त्वानां कर्मघ्नं हरिभक्तिदम्॥५॥

सद्यो वैराग्यजननं भवरोगनिकृन्तनम्। कारणं मुक्तिबीजानां भवाब्धेस्तारणं परम्॥६॥

कर्मोपभोगरोगाणां खण्डने रसायनम्। श्रीकृष्णचरणाम्भोजप्राप्तिसोपानकारणम्॥७॥

जीवनं वैष्णवानां च जगतां पावनं परम्।
वद विस्तीर्य मां भक्तं शिष्यं च शरणागतम्[1]॥८॥

---

१. विस्तारं वद मां भक्तं शिष्यञ्चेति क्वचित् पाठः।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मैंने प्रथमतः अत्यन्त आश्चर्यमय मनोहर ब्रह्माण्ड ब्रह्मा के मुखकमल से सुना था। इसके अनन्तर आपके पास आकर अमृत से भी उत्कृष्ट तथा श्रेष्ठ प्रकृतिखण्ड सुनकर पुनर्जन्म निवारक गणपतिखण्ड श्रवण किया, तथापि मुझे तृप्ति नहीं मिली! मेरा चित्त और भी कुछ श्रवण करना चाहता है। अब आप जन्म-मृत्यु से छुटकारा देने वाला, समस्त ज्ञान को प्रदीप्त करने वाला, कर्मजाल का उच्छेदक हरिभक्तिप्रदायक भवसागर-पार उतारने में सक्षम, वैराग्यप्रद, कर्मोपभोग तथा रोगों के खण्डन करने वाला औषधिरूप श्रीकृष्ण के चरण-कमलों की प्राप्ति का सोपानरूप, वैष्णवों के जीवन एवं जगत् की उत्तम पावन वस्तु के समान कृष्ण जन्मखण्ड को इस शरणागत भक्तशिष्य से विस्तृत रूप से कहिये! आप शरणागत वत्सल हैं।।२-८।।

केन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम्। सर्वांशैरेक एवेशः परिपूर्णतमः स्वयम्।।९।।

युगे कुत्र कुतो हेतोः कुत्रवाऽऽविर्बभूव ह।
वसुदेवोऽस्य जनकः को वा का वा च देवकी।।१०।।

भगवान् कृष्ण पूर्णतम, एक तथा सबके ईश्वर हैं। वे प्रभु किसकी प्रार्थना के वशीभूत होकर अपने पूर्ण अंश के सहित इस धरती पर अवतीर्ण हो गये थे? उनका जन्म किस युग में, किस हेतु हुआ था? उनका आविर्भाव कहां हुआ था? उनके पिता वसुदेव कौन हैं? माता देवकी कौन हैं?।।९-१०।।

वद कस्य कुले जन्म मायया सुविडम्बनम्।
किं चकार समागत्य केन रूपेण वा हरिः।।११।।
जगाम गोकुलं कंसभयेन सूतिकागृहात्।
कथं कंसात्कीटतुल्याद्भयेशस्य[1] भयं मुने।।१२।।

हरिर्वा गोपवेषेण गोकुले किं चकार ह। [2]कुतो गोपाङ्गनासार्धं विजहार जगत्पतिः।।१३।।

उनका जन्म किस कुल में हुआ था? प्रभु कृष्ण ने किस कुल में अपनी माया के माध्यम से विडम्बना करते जन्म लिया तथा उन्होंने किस रूप में कौन-सा कार्य किया था? उन्होंने अपने सूतिका गृह से गोकुल में कंस के भय के कारण क्यों जाना उचित माना? उन अभयप्रद ने कीट के समान कंस से भय माना था? हरि ने गोपवेशधारी होकर गोकुल में क्या किया था? उन जगत्पति ने गोपसुन्दरियों के साथ कहां विहार किया था?।।११-१३।।

का वा गोपाङ्गना के वा गोपाला बालरूपिणः।
का वा यशोदा को नन्दः किं वा पुण्यं चकार ह।।१४।।

कथं राधा पुण्यवती देवी गोलोकवासिनी। व्रजे वा व्रजकन्या सा बभूव प्रेयसी हरेः।।१५।।

---

१. अभयस्य इति वा पाठः

२. क. कुत्र गो०।

ये गोपियां तथा बालकरूपी गोपगण कौन थे? यशोदा तथा नन्द ने क्या पुण्य किया था? ये यशोदा तथा नन्द कौन थे? हे मुनिवर! क्या कारण था कि गोलोक में रहने वाली पुण्यवती राधा व्रज में व्रजकन्या होकर श्रीहरि की प्रेयसी बन गई?।।१४-१५।।

कथं गोप्यो दुराराध्यं संप्रापुरीश्वरं परम्।
कथं ताश्च परित्यज्य जगाम मथुरां पुनः।।१६।।
भारावतरणं कृत्वा किं विधाय जगाम सः। कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्तन।।१७।।
सुदुर्लभां हरिकथां तरणिं भवसागरे[१]। निषेकभोगनिगडक्लेशच्छेदनकर्तनीम्।।१८।।
पापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखामिव।
पुंसां श्रुतवतां कोटिजन्मकिल्विषनाशिनीम्।।१९।।
मुक्तिं कर्णसुधारम्यां शोकसागरनाशिनीम्।
मह्यं भक्ताय शिष्याय ज्ञानं देहि कृपानिधे।।२०।।

इन गोपीगण ने अत्यन्त दुराराध्य कृष्ण को जो परमेश्वर जगत्पति हैं, किस प्रकार से प्राप्त किया था? तदनन्तंर वे उनका त्याग करके मथुरा क्यों चले गये? हे महाभाग! आप सदा पुण्य कथा श्रवण तथा कीर्त्तन करते रहते हैं। इस पृथिवी का भार उतार कर कृष्ण किस विधि से यहां से गये? हरिकथा तो अत्यन्त दुर्लभा तथा भवसागर से पार उतारने वाली नौका है। यह हरिकथा इन्द्रिय सुखभोगादि जनित क्लेश को काटने वाली कैंची है। पातकरूप काष्ठराशि का दहन करने वाली प्रज्वलित अग्नि ज्वालारूपा है। जो व्यक्ति इसका श्रवण करते हैं, उनके कोटिजन्मों के पातकों को यह नाश कर देती हैं। यह मुक्तिरूपा, कानों के लिये अमृततुल्य तथा शोकसागर का नाश करने वाली है। हे कृपानिधि! मुझ भक्त शिष्य को इसका ज्ञान प्रदान करिये।।१६-२०।।

तपोजपमहादानात्पृथिव्यां तीर्थदर्शनात्। श्रुतिपादादनशनाद्व्रताद्देवार्चनादपि।।२१।।
दीक्षायाः सर्वयज्ञेषु यत्फलं लभते नरः।
षोडशीं ज्ञानदानस्य कलां नार्हति तत्फलम्।।२२।।
पित्राऽहं प्रेषितो ज्ञानादानाय तव संनिधिम्।
सुधासमुद्रं संप्राप्य को वाऽन्यत्पातुमिच्छति।।२३।।

मनुष्यगण तप, जप, महादान, समस्त तीर्थदर्शन, देवपूजा, सभी यज्ञों में दीक्षा (यज्ञानुष्ठान), आदि से जो फल लाभ करते हैं, वह फल तो ज्ञानदान के सामने उसका सोलहवां भाग भी नहीं है। मैं ज्ञानोपार्जनार्थ पिता ब्रह्मा द्वारा आपके पास भेजा गया हूं। ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो अमृतसागर आकर उसका पान करने की इच्छा न करे?।।२१-२३।।

---

१. क. ०वतारणे०।

नारायण उवाच

मया ज्ञातोऽसि धन्यस्त्वं पुण्यराशिः सुमूर्तिमान्।
करोषि भ्रमणं लोकान्पावितुं कुलपावन॥२४॥
जनानां हृदयं सद्यः सुव्यक्तं वचनेन वै।
शिष्ये कलत्रे कन्यायां दौहित्रे बान्धवेऽपि च॥२५॥
पुत्रे पौत्रे च वचसि प्रतापे चाऽऽपदि स्त्रियाम्।
वृद्धौ वैरिणि विद्यायां ज्ञायते हृदयं नृणाम्॥२६॥
जीवन्मुक्तोऽसि पूतस्त्वं शुद्धभक्तो गदाभृतः।
पुनासि पादरजसा सर्वाधारां वसुंधराम्॥२७॥
पुनासि लोकान्सर्वांश्च स्वीयविग्रहदर्शनात्।
सुमङ्गलां हरिकथां तेन त्वं श्रोतुमिच्छसि॥२८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे कुलपावन! तुम धन्य तथा मूर्त्तिमान्, पुण्यराशिरूप हो। तुमने सभी लोकों का भ्रमण तो उनको पवित्र करने के लिये ही किया है। वाणी से (बातचीत से) ही मानव के हृदय में क्या निहित है, वह स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है। शिष्य, पत्नी, कन्या, दौहित्र, बन्धु, पुत्र, पौत्र, वाक्य, प्रताप, आपत्ति, बुद्धि, वैरी एवं विद्या से प्राणी के हृदय का अन्तर्निहित-भाव ज्ञात हो जाता है। तुम जीवन्मुक्त, पवित्र, गदाधर विष्णु के भक्त हो। तुम्हारे चरणरज से सबकी आधारभूता यह वसुन्धरा (धरती) पावन हो रही है। तुम तो स्वयं अपना दर्शन देकर सब लोकों को पवित्र करते हो। तभी तुम मंगलप्रदा हरिकथा सुनने के लिये आतुर रहते हो।।२४-२८।।

यत्र कृष्णकथाः सन्ति तत्रैव सर्वदेवताः। ऋषयो मुनयश्चैव तीर्थानि निखिलानि च॥२९॥
कथां श्रुत्वा कथान्ते ते यान्ति सन्तो निरापदम्।
भवन्ति तानि तीर्थानि येषु कृष्णकथाः शुभाः॥३०॥
सद्यः कृष्णकथावक्ता स्वस्य पुंसां शतं शतम्।
समुद्धृत्य श्रुतवतां पुनाति निखिलं कुलम्॥३१॥

जहां हरिकथा विद्यमान रहती है, वहां सभी देवता, ऋषि, मुनि, समस्त तीर्थ विराजमान रहते हैं। साधु प्रवृत्ति वाले मनुष्य हरिकथा सुनने के कारण अन्तकाल में विपदा रहित पद प्राप्त करते हैं। जहां यह शुभ हरिकथा होती है, वे सभी स्थान तीर्थतुल्य हो जाते हैं। हरिकथा कहने वाले वक्ता भी अपनी सैकड़ों पीढ़ी का उद्धार करके कथा के श्रोताओं का भी कुल पवित्र कर देते हैं।।२९-३१।।

प्रष्टा तु प्रश्नमात्रेण पुनाति कुलमात्मनः।
श्रोता श्रवणमात्रेण स्वकुलं स्वस्वबान्धवान्॥३२॥

शतजन्मतपःपूतो जन्मेदं भारते लभेत्। करोति जन्म सफलं श्रुत्वा हरिकथामृतम्॥३३॥

हरिकथा सम्बन्धित प्रश्न करने वाला प्रश्न करने मात्र से अपने कुल को पावन कर देता है। उस प्रश्न का उत्तर जो कोई सुनते हैं, वे अपने कुल को तथा अपने बन्धुवर्ग को पावन कर देते हैं। जो व्यक्ति सैकड़ों जन्म तप से पवित्र हो जाता है, वह भारत में जन्म लेता है। यहां उनको दुर्लभ हरिकथामृत का पान करके यह जन्म सफल करना चाहिये।।३२-३३।।

अर्चनं वन्दनं मन्त्रजपः सेवनमेव च। स्मरणं कीर्तनं शश्वद्गुणश्रवणमीप्सितम्॥३४॥
निवेदनं तस्य दास्यं नवधाभक्तिलक्षणम्। करोति जन्म सफलं कृत्वैतानि च नारद॥३५॥
न च विघ्नो भवेत्तस्य परमायुर्न नश्यति। न याति तत्पुरः कालो वैनतेयमिवोरगः॥३६॥

हरि की अर्चना, वन्दना, मन्त्रजप, सेवा, स्मरण, कीर्तन, निरन्तर उनके गुणों का श्रवण, हरि के प्रति आत्मनिवेदन तथा उनका दास्य, यह नौ भक्तिलक्षण कहे गये हैं। हे नारद! इस लोक में, भारत में इनका पालन करते हुये हरिकथा श्रवण करना चाहिये। इससे जन्म सफल होगा। ऐसे हरिभक्त को कहीं विघ्न नहीं होता तथा उसकी जो परमायु है, वह कदापि कम नहीं होती। जिस प्रकार गरुड़ के समक्ष सर्प कदापि नहीं आता, तदनुरूप काल ऐसे भक्त के समक्ष नहीं आता।।३४-३६।।

न जहाति समीपं च क्षणं तस्य हरिः स्वयम्। उपतिष्ठन्ति तूर्णं तमणिमादिकसिद्धयः॥३७॥

सुदर्शनं भ्रमत्येव तस्य पार्श्वे दिवानिशम्।
कृष्णाज्ञया च रक्षार्थं को वा किं कर्तुमीश्वरः॥३८॥
न यान्ति तत्समीपं च स्वप्नेऽपि यमकिंकराः।
ज्वलदग्निं यथा दृष्ट्वा शलभा न व्रजन्ति तम्॥३९॥
व्याधयो विपदः शोका विघ्नाश्च न प्रयान्ति तम्।
न याति तत्समीपं च मृत्युर्मृत्युभयान्मुने॥४०॥

उसका सामीप्य श्रीहरि कदापि त्याग नहीं करते। उस भक्त को अणिमादि सर्वसिद्धियां प्राप्त होती हैं। वे स्वयं शीघ्रता पूर्वक ऐसे भक्त के पास आ जाती हैं। हरि के आदेश से उनका सुदर्शन चक्र ऐसे भक्त के रक्षार्थ उसके बगल में निरन्तर चक्रमणरत रहता है। उसका अनिष्ट कोई भी नहीं कर सकता! जैसे पतंगे अग्नि से दूर रहते हैं, तदनुरूप यमदूतगण स्वप्न में भी ऐसे भक्त के निकट नहीं आते। ऐसे भक्त के पास रोग, विपदा, शोक, विघ्न आदि पहुंच ही नहीं पाते तथा मृत्यु भी भयभीत होकर उसके पास नहीं आती!।।३७-४०।।

ऋषयो मुनयः सिद्धाः संतुष्टाः[१] सर्वदेवताः।
स च सर्वत्र निशङ्कः सुखी कृष्णप्रसादतः॥४१॥

---

१. तं तुष्टा इत्यपिं पाठः।

तव कृष्णकथायां च रतिरात्यन्तिकी सदा।
जनकस्य स्वभावो हि जन्ये तिष्ठति निश्चितम्॥४२॥
विप्रेन्द्र का प्रशंसेयं जन्म जन्म ते ब्रह्ममानसे।
यस्य यत्र कुले जन्म तन्मतिस्तादृशी भवेत्॥४३॥
पिता विधाता जगतः कृष्णपादाब्जसेवया।
नित्यं करोति यः शश्वन्नवधाभक्तिलक्षणम्॥४४॥

ऋषि, मुनिगण, सिद्धमण्डली, सभी देवता उससे सन्तुष्ट रहते हैं। वह कृष्ण की कृपा से सर्वत्र निःशङ्क तथा सुखी रहता है। तुम सदा कृष्णकथा के प्रति अतीव अनुराग रखते हो। पिता (ब्रह्मा) का स्वभाव पुत्र पर (तुम्हारे ऊपर) निश्चित रहता है। हे विप्रेन्द्र! तुम्हारी प्रशंसा क्या करूं? तुम तो ब्रह्मा के मन से जन्मे हो। जैसे कुल में जो जन्म लेता है, उसकी मति तो तदनुरूप होती है। तुम्हारे पिता ब्रह्मा कृष्ण के चरणकमल की सेवा से जगत् के विधाता बने हैं। वे नित्य उन नौ भक्तिलक्षण का पालन करते हैं।।४१-४४।।

रतिः कृष्णकथायां च यस्याश्रुपुलकोद्गमः।
मनो निमग्नं तत्रैव स भक्तः कथितो बुधैः[1]॥४५॥
पुत्रदारादिकं सर्वं जानाति श्रीहरेरिति।
आत्मना मनसा वाचा स भक्तः कथितो बुधैः॥४६॥
निर्जने तीर्थसंपर्के निःसङ्गा ये मुदाऽन्विताः।
ध्यायन्ते चरणाम्भोजं श्रीहरेस्ते च वैष्णवाः॥४७॥
दयाऽस्ति सर्वजीवेषु सर्वं कृष्णमयं जगत्।
यो जानाति महाज्ञानी स भक्तो वैष्णवो मतः॥४८॥

जो कृष्ण कथा के प्रति रति रखते हुये कथा सुनते ही पुलकित हो जाता है, नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगते हैं तथा मन भी उसी कथा में निमग्न हो जाता है, वही बुद्धिमानों द्वारा भक्त कहा गया है। जो मनुष्य पुत्र, स्त्री प्रभृति सभी को मन-वाणी-काया से हरि का मानता है, उसे ही पण्डितगण भक्त कहते हैं। जिसके मन में समस्त प्राणीगण के प्रति दया की भावना रहती है, जो समस्त जगत् को कृष्णमय जान लेता है, वही महाज्ञानी भक्त तथा वैष्णव प्रवर हैं। जो ज़नशून्य एकान्त तीर्थ में आनन्दित होकर श्रीहरि के चरणकमल का ध्यान करते हैं, वे ही वैष्णव हैं।।४५-४८।।

शश्वद्ये नाम गायन्ति गुणं मन्त्रं जपन्ति च।
कुर्वन्ति श्रवणं गाथा वदन्ति तेऽतिवैष्णवाः॥४९॥

---

१. अयं श्लोकः क्वचित् पुस्तके नास्ति।

लब्धानीष्टानि वस्तूनि प्रदातुं हरये मुदा। तूर्णं यस्य मनो हृष्टं स भक्तो ज्ञानिनां वरः॥५०॥
यन्मनो हरिपादाब्जे स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम्।
पूर्वकर्मोपभोगं च बहिर्भुङ्क्ते स वैष्णवः॥५१॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशत्ययम्। तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः॥५२॥
पूर्वान्सप्त परान्सप्त सप्त मातामहादिकान्। सोदरानुद्धरेद्भक्तः स्वप्रसूं च प्रसूप्रसूम्॥५३॥
कलत्रं कन्यकां बन्धुं शिष्यं दौहित्रमात्मनः। किंकरान्किंकरीश्चैवमुद्धरेद्वैष्णवः सदा॥५४॥
सदा वाञ्छन्ति तीर्थानि वैष्णवस्पर्शदर्शने।
पापिदत्तानि पापानि तेषां नश्यन्ति सङ्गतः॥५५॥

जो सतत् कृष्ण का मन्त्र जप करते हैं तथा उनके नाम एवं गुण का कीर्त्तन करते रहते हैं, उनकी गाथा (कथा) का श्रवण करते हैं, वे ही वैष्णव हैं। गुरुमुख से निकला विष्णुमन्त्र जिनके कर्ण में प्रविष्ट हो गया है, उसे मनीषीगण महापवित्र वैष्णव कह गये हैं। जिसका मन वांछित वस्तु पाकर उसे श्रीहरि को अर्पित करने से तत्काल मुदित होता है, उसे ज्ञानीगण से भी श्रेष्ठ भक्त कहते हैं। जिसका मन रात-दिन हरि के चरण सतत् लगा रहता है तथा बाह्य पूर्वजन्मार्जित कर्मफल भोग अलिप्त भाव से भोग करते रहते हैं, इससे उनकी हरि चरणरति विचलित नहीं हो पाती, वे ही वैष्णव हैं। ऐसा वैष्णव अपने कुल की ७ पूर्व पीढ़ी, आगे की ७ पीढी, मातामह के कुल की सात पीढ़ी तथा अपने सहोदरों, माता, माता की माता का भी उद्धार कर देता है। वह अपनी स्त्री, पुत्री, बन्धु, शिष्य, दौहित्र, सेवक-सेविका का सदा के लिए उद्धार कर देता है। तीर्थ भी वैष्णव का स्पर्श करने तथा उसका दर्शन करने हेतु लालायित रहते हैं। इनके दर्शन-स्पर्श से उनके पास पापियों का जो पाप एकत्र हो जाता रहता है, वह नष्ट हो जाता है।।४९-५५।।

गोदोहनक्षणं यावद्यत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः। तत्र सर्वाणि तीर्थानि सन्ति तावन्महीतले॥५६॥
ध्रुवं तत्र मृतः पापी मुक्तो याति हरेः पदम्।
तथैव ज्ञानगङ्गायामन्ते कृष्णस्मतौ यथा॥५७॥
तुलसीकानने गोष्ठे श्रीकृष्णमन्दिरे पदे। वृन्दारण्ये हरिद्वारे तीर्थेष्वन्येषु वा यथा॥५८॥

जहां कहीं भी वैष्णव मात्र गौ दुहने में जितना समय लगता है, उतना भी रुक जाता है, उस भू-भाग में पृथिवी के सभी तीर्थों का आगमन हो जाता है। वहां मृत होने वाला भी तद्वत् मुक्ति पाकर भगवद्लोक गमन करता है, जिस प्रकार अन्त काल में कृष्ण स्मृति होने पर अथवा ज्ञानगंगा में निमग्न होने पर व्यक्ति परमपद लाभ करता है। यह भी वही स्थिति है। यह उसी प्रकार की स्थिति कही गयी है, जो वैष्णव के रुकने से उस स्थल को प्राप्त होती हैं, जहां वह रुका था। वहां पर व्यक्ति को वही उच्चस्थिति मिलेगी जो तुलसी वन, गौशाला, कृष्ण मन्दिर, वृन्दावन तथा हरिद्वार प्रभृति उत्तम तीर्थों में मरण द्वारा मिलती है।।५६-५८।।

पापानि पापिनां यान्ति तीर्थस्नानावगाहनात्।
तेषां पापानि नश्यन्ति वैष्णवस्पर्शवायुना॥५९॥
न हि स्थातुं शक्नुवन्ति पापान्येव कृतानि च।
ज्वलदग्नौ यथा क्षिप्रं शुष्काणि हि तृणानि च॥६०॥
भक्तं वर्त्मनि गच्छन्तं ये पश्यन्ति मानवाः।
सप्तजन्मार्जिताघानि तेषां नश्यन्ति निश्चितम्॥६१॥
ये निन्दन्ति हृषीकेशं तद्भक्तं पुण्यरूपिणम्।
शतजन्मार्जितं पुण्यं तेषां नश्यति निश्चितम्॥६२॥

तीर्थ में जो पातकी स्नान करते हैं, वहां उनके पातक धुल जाते हैं। तीर्थों के पाप वैष्णव के शरीर से स्पर्श हो गई वायु के स्पर्श से विलीन हो जाते हैं। उनके संचित (पापियों के संचित) पातक नष्ट हो जाते हैं। जैसे प्रज्वलित अग्नि शुष्क तृणों को तत्काल जला देती है, उसी प्रकार पापी लोगों के संचित पातक वहां वैष्णव को स्पर्श करके बहती वायु द्वारा नष्ट हो जाते हैं। जो भक्त को मार्ग में गृह जाते हुए भी देख लेता है, उसका सप्त जन्मार्जित पातक नष्ट हो जाता है। यह निश्चित ही है। जो हृषीकेश देव की तथा उनके भक्तगण की निन्दा करता है, उसके सौ जन्मों के अर्जित पुण्य तत्काल नष्ट हो जाते हैं।।५९-६२।।

ते पच्यन्ते महाघोरे कुम्भीपाके भयानके।
भक्षिताः कीटसंघेन यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥६३॥
तस्य दर्शनमात्रेण पुण्यं नश्यति निश्चितम्।
गङ्गां स्नात्वा रविं नत्वा तदा विद्वान्विशुध्यति॥६४॥

अन्ततः उसे महाघोर भयानक कुंभीपाक नरक में कीड़े तब तक काट कर खाते रहते हैं, जब तक जगत् में सूर्य-चन्द्र की स्थिति है। ऐसे व्यक्ति को धरती पर (जीवितावस्था में) जो देखता है, उसका अपना पुण्य भी नष्ट हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को देखने से होने वाला पातक सूर्य को प्रणाम करने से तथा गंगा स्नान से ही दूर होगा।।६३-६४।।

वैष्णवस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी।
तस्य पापानि हन्त्येव स्वान्तःस्थो मधुसूदनः॥६५॥
इत्येवं कथितो विप्र विष्णुवैष्णवयोर्गुणः। अधुना श्रीहरेर्जन्म निबोध कथयाम ते॥६६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड नारदनारायण विष्णुवैष्णवयोर्गुण-
प्रशंसाप्रस्ताववर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

—❧❧❧—

वैष्णव के दर्शन-स्पर्श से पातकी की मुक्ति होती है। मधुसूदन उसके आभ्यन्तर में स्थित सभी पातकों का नाश कर देते हैं। हे विप्र! मैंने इस प्रकार विष्णु तथा वैष्णवगण का गुण कहां। अब तुम श्रीहरि (कृष्ण) के जन्म प्रसंग को सुनो।।६५-६६।।

।।पहला अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीकृष्ण का विरजा के साथ विहार, राधिका के भय से कृष्ण का अन्तर्ध्यान होना तथा विरजा को नदीरूप की प्राप्ति का वर्णन

नारायण उवाच

येन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम्।
यं यं विधाय भूमौ स जगाम स्वालयं विभुः॥१॥

भारावतरणोपायं दुष्टानां च वधोद्यमम्। सर्वं ते कथयिष्यामि सुविचार्य विधानतः॥२॥
अधुना गोपवेषं च गोकुलागमनं हरेः। राधा गोपालिका येन निबोध कथयामि ते॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—श्रीकृष्ण का आगमन पृथिवी पर जिनकी प्रार्थना से हुआ था तथा उन ईश्वर ने जो-जो कार्य सम्पन्न करके अपने लोक प्रस्थान किया था, उस भूभारहरण के उपाय का तथा दुष्टों के वध का प्रसंग सम्यक् विचार द्वारा सविधि कहता हूं। अब मैं वह प्रंसग कह रहा हूं, जिसमें भगवान् का गोपवेश धारण, गोकुल आगमन तथा राधा का गोपी होकर अवतरित होना वर्णित है। इसे श्रवण करो।।१-३।।

शङ्खचूडवधं पूर्वं संक्षेपात्कथितं श्रुतम्। अधुना तत्सुविस्तार्य निबोध कथयामि ते॥४॥
श्रीदाम्नः कलहश्चैव बभूव राधया सह। श्रीदामा शङ्खचूडश्च शापात्तस्या बभूव ह॥५॥

राधां शशाप श्रीदामा याहि योनिं च मानवीम्।
व्रजे व्रजाङ्गना भूत्वा विचरस्व महीतले॥६॥

मैंने इससे पहले शङ्खचूड़ वध प्रसंग संक्षेप में तुमसे कहा था। अब उसे विस्तार से कहूंगा।

श्रवण करो। एक समय की बात है श्रीदामा का कलह राधा के साथ होने पर राधा के शाप के कारण श्रीदामा का जन्म शङ्खचूड़ राक्षस के रूप में हो गया। उसी समय श्रीदामा ने भी राधा को शाप दिया "तुम मनुष्य योनि जन्म लेकर वृन्दावन में स्त्रीरूपेण विचरण करोगी।"।।४-६।।

भीता श्रीदामशापात्सा श्रीकृष्णं समुवाच ह।
गोपीरूपा भविष्यामि श्रीदामा मां शशाप ह।।७।।

कमुपायं करिष्यामि वद मां भयभञ्जन। त्वया विना कथमहं धरिष्यामि स्वजीवनम्।।८।।
क्षणेन मे युगशतं कालं नाथ त्वया विना। चक्षुर्निमेषविरहाद्द्रवेद्दग्धं मनो मम।।९।।
शरत्पार्वणचन्द्राभं सुधापूर्णाननं तव। नाथ चक्षुश्चकोराभ्यां पिबाम्यहमहर्निशम्।।१०।।

त्वमात्मा मे मनः प्राणा देहमात्रं वहाम्यहम्।
दृष्टिशक्तिश्च चक्षुस्त्वं जीवनं परमं धनम्।।११।।
स्वप्ने ज्ञाने त्वयि मनः स्मरामि त्वत्पदाम्बुजम्।
तव दास्यं विना नाथ न जीवामि क्षणं विभो।।१२।।

राधा श्रीदामा के शाप से भयभीत हो गयीं। उन्होंने कृष्ण से कहा–"हे कृष्ण! श्रीदामा ने मुझे यह शाप दिया है। मैं गोपीवेश में रहूंगी। हे भयभञ्जन! क्या उपाय करूं वह कहिये। आपके विना मैं जीवनधारण किस प्रकार करूँगी? हे नाथ! आपके विना एकक्षण भी सौ युग प्रतीत हो रहा है। आपके अभाव में एक क्षण भी सैकड़ों युग की तरह लग रहा है। आपका विरह एक पल के लिये भी होने पर मेरा मन दग्ध हो जाता है। हे नाथ! शरद पूर्णिमा के चन्द्र की तरह आपका अमृतमय मुख मेरा नयन चकोर दिन-रात पान करता रहता है। आप मेरे प्राण, आत्मा, दृष्टि, शक्ति, नेत्र तथा परमधन हैं। आप ही मेरे जीवन हैं। मैं तो केवल देहमात्र हूं। हे नाथ! स्वप्न में तथा जागरण में जब तक बोध है, मेरा चित्त आप में ही लगा रहता है। मैं तब तक केवल आपके ही चरण-कमल का स्मरण करती रहती हूं! हे विभु! हे नाथ! आपके दास्य (सेवा) के अभाव में मैं क्षणमात्र भी जीवित नहीं रह सकती!।।७-१२।।

कृष्णस्वतद्वचनं श्रुत्वा बोधयामास सुन्दरीम्।
वक्षसि प्रेयसीं कृत्वा चकार निर्भयां च ताम्।।१३।।

महीतलं गमिष्यामि वाराहे च वरानने। त्वया सार्धं भूगमनं जन्म तेऽपि निरूपितम्।।१४।।

व्रजं गत्वा व्रजे देवि विहरिष्यामि कानने।
मम प्राणाधिकां त्वं च भयं किं ते मयि स्थिते।।१५।।

जब कृष्ण ने राधा का यह वचन सुना, उन्होंने अपनी प्रेयसी सुन्दरी राधा को अनेक प्रकार से समझाते हुये अपने वक्ष से लगा लिया। इस प्रकार से राधा का भय दूर किया। कृष्ण ने कहा–"हे वरानने! वराहकल्प में मैं पृथिवी पर जाऊंगा। मेरे साथ ही तुमको भी धरती पर जाकर जन्म लेना

होगा। हे देवी! मैं वज्र में जाकर व्रज के कानन में विहार करूंगा! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। मेरे रहते तुमको क्या भय?"।।१३-१५।।

तामित्युक्त्वा हरिस्तत्र विरराम जगत्पतिः। अतो हेतोर्जगन्नाथो जगाम नन्दगोकुलम्॥१६॥

किं वा तस्य भयं कंसाद्भयान्तकारकस्य च।
मायाभयच्छलेनैव जगाम राधिकान्तिकम्॥१७॥

विजहार तया सार्धं गोपवेषं विधाय सः। सह गोपाङ्गनाभिश्च प्रतिज्ञापालनाय च॥१८॥

ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णः समागत्य महीतलम्।
भारावतरणं कृत्वा जगाम स्वालयं विभुः॥१९॥

जगदीश्वर हरि यह कहकर मौन हो गये। यही कारण है कि जगन्नाथ नन्दगोकुल में गये थे। प्रभु तो स्वयं सभी प्रकार का भय नाश करने वाले हैं। उनको कंस से क्या भय? वे तो अपनी माया के कारण भय का छल करके राधिका के साथ तथा गोपियों के साथ वृन्दावन में इसी प्रतिज्ञापालनार्थ विहार करने आ गये। साथ ही ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उन्होंने धरती पर आकर यहां का भार उतारा। तदनन्तर अपने लोक वे प्रभु चले गये।।१६-१९।।

नारद उवाच

श्रीदाम्नः कलहश्चैव कथं वा राधया सह। संक्षेपात्कथितं पूर्वं संव्यस्य कथयाधुना॥२०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—आपने श्रीदामा तथा राधा के बीच के कलह का वर्णन संक्षेप में किया था। इसे सविस्तार कहिये।।२०।।

नारायण उवाच

एकदा राधया सार्धं गोलोके श्रीहरिः स्वयम्।
विजहार महारण्ये[1] निर्जने रासमण्डले॥२१॥
राधिका सुखसंभोगाद्बुबुधे न स्वकं परम्।
कृत्वा विहारं श्रीकृष्णस्तामपृष्ट्वा विहाय च॥२२॥

गोपिकां विरजामन्यां शृङ्गारार्थं जगाम ह। वृन्दारण्ये च विरजा सुभगा राधिकासमा॥२३॥

श्रीनारायण मुनि कहते हैं—एक बार गोलोकधाम में स्वयं विजनवन में श्रीहरि ने रासमण्डल में स्वयं विहार किया। राधा उस समय सुख सम्भोग में इतनी लीन हो गई कि उनको अपना तथा अन्य का भान ही नहीं रह गया। उनकी यह स्थिति देखकर कृष्ण ने विहार के उपरान्त उनसे बिना पूछे ही उनको वहीं छोड़ दिया। वे प्रभु एक अन्य गोपी विरजा के साथ शृङ्गार क्रीड़ार्थ चले गये। वे वृन्दावन में रहने वाली सुभगा विरजा के साथ क्रीड़ा करने लगे जो राधा के ही समान थी।।२१-२३।।

---

१. क. रम्ये।

तस्या वयस्याः सुन्दर्यो गोपीनां शतकोटयः।
कृष्णप्राणाधिका गोपी धन्या मान्या च योषिताम्॥२४॥

रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श हरिमन्तिके। ददर्श श्रीहरिस्तां च शरच्चन्द्रनिभाननाम्॥२५॥
मनोहरां सस्मितां च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा। सदा षोडशवर्षीयां प्रोद्भिन्ननवयौवनाम्॥२६॥

रत्नालङ्कारशोभाढ्यां भूषितां शुक्लवाससा।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गीं कामबाणप्रपीडिताम्॥२७॥

दृष्ट्वा तां श्रीहरिस्तूर्णं विजहार तया सह। पुष्पतल्पे महारण्ये निर्जने रत्नमण्डपे॥२८॥

उस समय सौ कोटि गोपी सुन्दरियां विरजा की सखी थीं। वे सभी वृन्दावन में रहती थीं। विरजा कृष्ण को प्राणों से अधिक प्रिय तथा स्त्रियों में धन्या, मान्या थीं। यह विरजा जब रत्नमय सिंहासनासीन थी, तब उसने देखा कि कृष्ण उसके निकट आ रहे हैं। विरजा का मुख शारदीय चन्द्रमा के समान प्रभावान था। वह मनोहर मुस्कान से युक्त वक्र चितवन से अपने नाथ कृष्ण को देख रही थीं। कृष्ण ने रत्नालङ्कारभूषिता नवयौवना सूक्ष्मवस्त्र पहने विरजा गोपी को देखा। वह सदा १६ वर्ष की ही रहती थी (गोलोक में काल प्रभाव नहीं होने के कारण सब एक ही अवस्था में रहते हैं)। कृष्ण विरजा को रोमांचित देह वाली, कामबाण से पीड़िता देखकर शीघ्र ही निर्जन महारण्य में स्थित रत्नमण्डलस्थ पुष्प शय्या पर उसके साथ विहाररत हो गये।।२४-२८।।

मूर्च्छामवाप विरजा कृष्णशृङ्गारकौतुकात्।
कृत्वा वक्षसि प्राणेशं कोटिकन्दर्पसंनिभम्॥२९॥
तया सक्तं श्रीहरिं च रत्नमण्डपसंस्थितम्।
दृष्ट्वा च राधिकाल्यश्च चक्रुस्तां च निवेदनम्॥३०॥

तासां च वचनं श्रुत्वा सुष्वाप च चुकोप ह। भृशं रुरोद सा देवी रक्तपङ्कजलोचना॥३१॥

विरजा ने करोड़ों काम के समान रूप वाली रत्नवेदिका पर स्थित शृङ्गार क्रीड़ा में आसक्त प्राणनाथ श्रीहरि को अपने वक्ष से लगा लिया, तब वह मूर्च्छित-सी हो गई, तथापि कृष्ण विरजा को वक्ष से लगाये वहीं स्थित थे। तभी राधा की सखियों ने श्रीकृष्ण को विरजा से विहाररत देखकर राधा से यह सब कह दिया। राधिका उनका कथन सुनकर क्रोध पूर्वक रुदन करने लगी। इस कारण उनके नेत्र रक्तकमल के समान वर्ण वाले हो गये।।२९-३१।।

ता उवाच महादेवी मां तं दर्शयितुं क्षमाः। यदि सत्यं ब्रूत यूयं मया सार्धं प्रयच्छत॥३२॥

करिष्यामि फलं गोप्याः कृष्णस्य च यथोचितम्।
को रक्षिताऽद्य तस्याश्च मयि शास्तिं प्रकुर्वति॥३३॥

तब महादेवी राधा ने कहा—"तुम लोग यदि सत्य बात कह रही हो, तब मेरे साथ वहां चलकर

दिखलाओ। मैं उस गोपी तथा कृष्ण को यथोचित फल (दण्ड) प्रदान करूंगी। देखती हूं कि मेरे शासन से कौन उनको बचा पायेगा?।।३२-३३।।

शीघ्रमानयताल्यश्च तया सार्धं हरिं प्रियम्[१]।
अन्तर्वक्रं सस्मितं च विषकुम्भं सुधामुखम्।।३४।।
मदाश्रयं समागन्तुं यूयं दासं न दास्यथ। तमेव मण्डपं रम्यं यात संरक्षतेश्वरम्।।३५।।

मेरी प्रिय सखियों शीघ्र मेरे पास विरजा सहित हरि को ले आओ। यह हरि मन्द मुस्कान से सदा सुशोभित रहते हैं जो मुंह में अमृत धारण किये हुये विषधर जैसे हैं। तथापि तुम सभी तो दासी हो, उसे ला नहीं सकोगी। अतः जाओ। जाकर उसकी (मुझसे) रक्षा करो!।।३४-३५।।

राधिकावचनं श्रुत्वा काश्चिद्गोप्यो भयान्विताः।
ताः सर्वाः संपुटाञ्जल्यो भक्तिनम्रात्मकंधराः।।३६।।
तामूचुः पुरतः स्थित्वा सर्वा एव प्रियां सतीम्।।३७।।

राधा का यह वचन सुनकर गोपियां भयान्वित हो गईं। वे सभी भक्ति से नत शिर होकर, हाथ जोड़ कर सती तथा प्रिय सखी राधा से कहने लगीं-।।३६-३७।।

आल्य ऊचुः

वयं तं दर्शयिष्यामो विरजासहितं विभुम्।
तासां च वचनं श्रुत्वा रथमारुह्य सुन्दरी। जगाम सार्धं गोपीभिस्त्रिषष्टिशतकोटिभिः।।३८।।

सखियां कहती हैं-"हम सब आपको विरजा सहित विभु कृष्ण को दिखला सकती हैं।" उनका कथन सुनकर सुन्दरी राधा रथारूढ़ होकर ६३०० करोड़ गोपीगण के साथ वहां से जाने लगीं।।३८।।

रत्नेन्द्रसाररचितं कोटिसूर्यसमप्रभम्। मणीन्द्रसाररचितं कलशानां त्रिकोटिभिः।।३९।।
राजितं चित्रराजीभिर्वैजयन्तीविराजितम्। लक्षचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम्।।४०।।
मणिसारविकारैश्च कोटिस्तम्भैः सुशोभितम्।
नानाचित्रविचित्रैश्च सहितैः सुमनोहरैः।।४१।।
सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यदेशे विभूषितैः। रत्नकृत्रिमसिंहैश्च रथचक्रोर्ध्वसंस्थितैः।।४२।।
चतुर्लक्षपरिमितैश्चित्रघण्टासमन्वितैः। चित्रपुत्तलिशोभाढ्यैर्विचित्रैश्च विराजितम्।।४३।।

राधा का वह रथ उत्तम इन्द्रसाररत्न से निर्मित, कोटिसूर्यसमप्रभ था। तीन कोटि कलश उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह नाना चित्रपङ्क्ति तथा पताका आदि से शोभित था। वह एक लाख पहिये से युक्त मन की गति से चलने वाला तथा मनोहर था। वह मनोहर मणियों के सारभाग से रचित करोड़ों स्तम्भों वाला रथ था। वह नाना विचित्र चित्रों से शोभायमान था। उसका मध्य भाग सिन्दूर जैसी मणियों से

१. क. प्रियाः।

भूषित था। रथ के चक्के के ऊपर रत्ननिर्मित कृत्रिम सिंह बने थे। वहां चार लाख चित्रघण्टा समन्वित चित्र पुत्तलिकायें शोभायमान थीं जो अत्यन्त विचित्र थीं।।३९-४३।।

रतिमन्दिरलक्षैश्च रत्नसारविनिर्मितैः। मणिसारकपाटैश्च शोभितैश्चित्रवाजिभिः।।४४।।
मणीन्द्रसारकलशैः शेखरोज्ज्वलितैर्युतम्। भोगद्रव्यसमायुक्तं वेषद्रव्यसमन्वितम्।।४५।।
शोभितं रत्नशय्याभी रत्नपात्रघटान्वितम्। हरिन्मणीनां वेदीनां समूहेन समन्वितम्।।४६।।

वहां कपाटयुक्त रत्ननिर्मित रति मन्दिर भी बने थे। वह रथ उज्ज्वल शिखरयुक्त कलश से युक्त था। वहां उनके उपयोगार्थ नानावस्तु एकत्रित थी। वेश रचना सामग्री, रत्नशय्या, रत्नपात्र, घट, हरे रंग के रत्नों की चौकी वहां विराजमान थीं।।४४-४६।।

कुङ्कुमाभमणीनां च सोपानकोटिभिर्युतम्।
स्यमन्तकैः कौस्तुभैश्च रुचकैः प्रवरैस्तथा।।४७।।
पद्मकृत्रिमकोटीनां शतकैश्च सुशोभितम्।
चित्रकाननवापीभिर्विशिष्टाभिर्विराजितम् ।।४८।।

रत्नेन्द्रसाररचितकलशोज्ज्वलशेखरम्। शतयोजनमूर्ध्वं च दशयोजनविस्तृतम्।।४९।।

वहां कुङ्कुम की आभा वाली मणियों से कोटिसंख्यक सीढ़िया बनी थी। कुङ्कुमवत् कान्तिपूर्ण मणियों के अतिरिक्त वहां मणियों के करोड़ों कमल बने थे। वहां चित्र-विचित्र वन, जो विशिष्ट थे, वे विराजित थे। उसका शिखरभाग रत्नों के सार से निर्मित कलशों से शोभायमान था। वह सौ योजन उच्च तथा १० योजन विस्तार वाला था।।४७-४९।।

पारिजातप्रसूनानां मालाकोटिविराजितम्।
कुन्दानां करवीराणां यूथिकानां तथैव च।।५०।।
सुचारुचम्पकानां च नागेशानां मनोहरैः।
मल्लिकानां मालतीनां माधवीनां सुगन्धिनाम्।।५१।।
कदम्बानां च मालानां कदम्बैश्च विराजितम्।
सहस्त्रदलपद्मानां मालाभिश्च विराजितम्।।५२।।

चित्रपुष्पोद्यानसरःकाननैश्च विभूषितम्। सर्वेषां स्यन्दनानां च श्रेष्ठं वायुवहं परम्।।५३।।

वहां पारिजात, कुन्द, कनेर, जूही पुष्पों की करोड़ों मालायें लगी थीं। सुन्दर चम्पा, नागकेशर, मल्लिका, मालती सुगन्धित माधवी, कदम्ब की शाखाओं से वह शोभित था। वहां सहस्त्रदल कमल की मालायें भी विराजित थीं। वह सभी रथों से अत्यन्त श्रेष्ठ तथा वायुवेग से चलने वाला था।।५०-५३।।

तत्सूक्ष्मवस्त्रसाराणां वराच्छादितं परम्। रत्नदर्पणलक्षाणां शतकैश्च समन्वितम्।।५४।।
श्वेतचामरकोटीभिर्वज्रमुष्टिभिरन्वितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितैः।।५५।।

पारिजातप्रसूनानां कोटितल्पविराजितम्। कोटिघण्टासमायुक्तं पताकाकोटिभिर्युतम्॥५६॥
रत्नशय्याकोटिभिश्च चित्रवज्रपरिच्छदैः। चन्दनाक्तैश्चम्पकानां कुङ्कुमैश्च विचित्रितैः॥५७॥
पुष्पोपधानसंयुक्तैः शृङ्गारार्हाभिरन्वितम्। अदृश्यैरश्रुतैर्द्रव्यैः सुन्दरैश्च विभूषितम्॥५८॥

वह रथ अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्रों से आच्छादित था। उसमें करोड़ों रत्नदर्पण लगे थे। वह सुन्दर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुङ्कुम से चर्चित, पारिजात पुष्प निर्मित कोटि शय्या, कोटि संख्यक घंटा, कोटि पताका समन्वित, पुष्पों की विचित्र तकिया से युक्त, शृङ्गार की उपयोगी वस्तुओं से पूर्ण था। जो आज तक देखे नहीं गये न सुने गये ऐसे सुन्दर द्रव्यों से वह विभूषित था।।५४-५८।।

एवंभूताद्रथात्तूर्णमवरुह्य हरिप्रिया। जगाम सहसा देवी तं रत्नमण्डपं मने॥५९॥
द्वारे नियुक्तं ददृशे द्वारपालं मनोहरम्। लक्षगोपैः परिवृतं स्मेराननसरोरुहम्॥६०॥
गोपं श्रीदामनामानं श्रीकृष्णप्रियकिंकरम्।
तमुवाच रुषा देवी रक्तपङ्कजलोचना॥६१॥
गच्छ दूरं गच्छ दूरं रतिलम्पटकिंकर। कीदृशीं मत्परां कान्तां द्रक्ष्यामि त्वत्प्रभोरहम्॥६२॥

हे मुनिवर! देवी राधा इस रथ द्वारा रत्नमण्डप के निकट आकर तत्काल रथ से नीचे उतरीं। वे हरिप्रिया राधा तदनन्तर सहसा रत्नमण्डप में आ गईं। उन्होंने वहां द्वार पर स्थित एक मनोहर द्वारपाल का देखा। वह एक लक्ष गोपों से घिरा था। वह मुस्कानयुक्त होकर वहां विराजमान था। वहां जब राधा ने कृष्ण के प्रिय सेवक श्रीदामा गोप को देखा, तब राधा ने जिनके नेत्र लालकमल जैसे वर्ण वाले थे उस श्रीदामा से कहा-हे रतिलम्पट (कृष्ण के किङ्कर) के किङ्कर! दूर चले जाओ। मैं तुम्हारे स्वामी की उस कान्ता (प्रेमिका) को देखूगीं कि वह क्या मुझसे अधिक है अथवा कैसी है?।।५९-६२।।

राधिकावचनं श्रुत्वा निःशङ्कः पुरतः स्थितः। तामेव न ददौ गन्तुं वेत्रपाणिर्महाबलः॥६३॥
तूर्णं च राधिकाल्यश्च श्रीदामानं सकिंकरम्।
बलेन प्रेरयामासुः कोपेन स्फुरिताधराः॥६४॥

यह सुनकर वह निःशङ्क होकर राधा के समक्ष आ गया। उसने राधिका को अन्दर नहीं जाने दिया। वह महाबली छड़ी लेकर वहीं स्थित रह गया। यह देखकर राधिका की सखियों ने बल पूर्वक किङ्करों के साथ श्रीदामा को शीघ्रता पूर्वक वहां से हटा दिया। उस समय क्रोध के कारण राधिका की सखियों के होंठ फड़क रहे थे।।६३-६४।।

श्रुत्वा कोलाहलं शब्दं गोपिकानां हरिः स्वयम्।
ज्ञात्वा च कोपितां राधामन्तर्धानं चकार ह॥६५॥
विरजा राधिकाशब्दादन्तर्धानं हरेरपि।
दृष्ट्वा राधां भयार्ता सा जहौ प्राणांश्च योगतः॥६६॥

वहां का कोलाहल सुनकर कृष्ण को विदित हो गया कि राधा क्रोधित हैं। उन्होंने राधा को जब क्रुद्ध जाना तब वे वहां से अन्तर्धान हो गये। उधर जब विरजा ने राधा के क्रोधपूर्ण शब्दों को सुना, वह अत्यन्त भयभीत हो गई। उसने वहीं अपना प्राण त्याग दिया।।६५-६६।।

सद्यस्तत्र सरिद्रूपं तच्छरीरं बभूव ह। व्याप्तं च वर्तुलाकारं तया गोलोकमेव च।।६७।।
कोटियोजनविस्तीर्णं प्रस्थेऽतिनिम्नमेव च। दैर्घ्ये दशगुणं चारु नानारत्नाकरं परम्।।६८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० विरजानदप्रस्तावनवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

—❀❀❀—
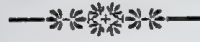
तदनन्तर उसका शरीर नदी रूप हो गया। वह वहां वर्त्तुलाकार होने के कारण नदी रूप हो गयी। उसने गोलोक को व्याप्त कर लिया (घेर लिया)। वह नदी दस कोटि योजन लम्बाई वाली तथा एक कोटियोजन चौड़ी थी। वह अत्यन्त गहरी, नानारत्नों की खान रूप में अत्यन्त सुन्दर नदी थी।।६७-६८।।

।।दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ तृतीयोऽध्यायः

राधा का कृष्ण को शाप देना, राधा तथा श्रीदामा का एक-दूसरे को शाप प्रदान करना

नारायण उवाच

राधा रतिगृहं गत्वा न ददर्श हरिं मुने। विरजां च सरिद्रूपां दृष्ट्वा गेहं जगाम सा।।१।।
श्रीकृष्णो विरजां दृष्ट्वा सरिद्रूपां प्रियां सतीम्। उच्चै रुरोद विरजातीरे नीरमनोहरे।।२।।
ममान्तिकं समागच्छ प्रेयसीनां परे वरे। त्वया विनाऽहं सुभगे कथं जीवामि सुन्दरि।।३।।
नद्यधिष्ठात्रि देवि त्वं भव मूर्तिमती सती। ममाऽऽशिषा रूपवती सुन्दरी योषितां वरा।।४।।
पूर्वरूपाच्च सौभाग्याददिदानीं सुभगा भव। पुरातनं शरीरं ते सरिद्रूपमभूत्सति।।५।।
जलादुत्थाय चाऽऽगच्छ विधाय तनुमुत्तमाम्।
अष्टौ सिद्धीर्मया दत्ताः सुरसुन्दरि सत्वरम्।।६।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! जब राधा ने रतिगृह में जाकर श्रीहरि को नहीं देखा तथा

विरजा को भी नदी रूप में देखा, तब वे अपने गृह वापस आ गईं। उधर जब श्रीकृष्ण ने साध्वी विरजा को नदी रूप देखा, वे उस उत्तम जलयुक्त विरजा के तट पर बैठकर उच्च स्वर से रुदन करने लगे। वे कह रहे थे "हे विरजा! हे श्रेष्ठ प्रियतमा! सुभगे! तुम्हारे अभाव में कैसे जीवन धारण करूँगा? तुम तो मूर्त्तिमती साध्वी हो। तुम मेरे आशीर्वाद से नदियों की अधिष्ठात्री देवता हो जाओ। तुम परमसुन्दरी रूपवती श्रेष्ठ नारी के रूप में प्रकट हो जाओ। यह तुम्हारा पुराना शरीर नदी रूप ही रहे। हे सती! जल से निकल कर अपने नव उत्तम देह के साथ आओ। हे सुरसुन्दरी! मैं तुमको अष्टसिद्धि प्रदान कर रहा हूं।।१-६।।

कृष्णाज्ञया च विरजा विधाय तनुमुत्तमाम्। आजगाम हरेरग्रे साक्षाद्राधेव सुन्दरी।।७।।
पीतवस्त्रपरीधाना स्मेराननसरोरुहा। पश्यन्तं प्राणनाथं च पश्यन्ती वक्रचक्षुषा।।८।।
नितम्बश्रोणिभारार्ता पीतोन्नतपयोधरा। मानिनी मानिनीनां च गजेन्द्रमन्दगामिनी।।९।।

कृष्ण की आज्ञा से विरजा ने परम उत्तम शरीर धारण किया तथा वे राधा के समान सुन्दर रूपवती होकर श्रीहरि के समक्ष आ गईं। उन्होंने पीतवर्ण वस्त्र धारण किया था। उनके मुखकमल पर मुस्कान छिटक रही थी। वे अपने प्राणनाथ को बांकी चितवन से देख रही थीं। वे स्थूल नितम्ब तथा श्रोणी के भार से अतिस्थूल उन्नत स्तनद्वय वाली मानिनी स्त्रियों में सबसे श्रेष्ठ मानिनी तथा गजराज के समान मन्द चाल से चलने वाली गजगामिनी थीं।।७-९।।

सुन्दरी सुन्दरीणां च धन्या मान्या च योषिताम्।
चारुचम्पकवर्णाभा पक्वबिम्बाधरा वरा।।१०।।
पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिमनोहरा। शरत्पार्वणचन्द्रास्या फुल्लेन्दीवरलोचना।।११।।
कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुभूषिता। चारुपत्रकशोभाढ्या सुचारुकबरीयुता।।१२।।

वे सुन्दरियों में प्रधान सुन्दरी लग रही थीं। उनकी कान्ति श्वेत चम्पा पुष्प जैसी थी। उनके अधरोष्ठ पके बिम्बफल के वर्ण के थे। उनकी दन्तपंक्ति पक्व अनार के दानों के समान मनोहर थी। उनका मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्र के समान था। नयन विकसित कमल के समान थे। उनके ललाट पर कस्तूरी की बिन्दी के साथ-साथ सिन्दूर की बिन्दी अंकित थी। वे उत्तम चारुपत्रों से अलंकृता अत्यन्त मनोहर केश-पाश से सज्जिता थीं।।१०-१२।।

रत्नकुण्डलगण्डस्था[१] भूषिता रत्नमालया। गजमौक्तिकनासाग्रा मुक्ताहारविराजिता।।१३।।
रत्नकंकणकेयूरचारुशङ्खकरोज्ज्वला। किंकिणीजालशब्दाढ्या रत्नमञ्जीररञ्जिता।।१४।।

उनका कपोल रत्नकुण्डलों से शोभायमान था। वे स्वयं रत्नमालाओं से भूषिता थीं। उनके नासाग्र में गजमुक्ता लटक रही थी। उनका कण्ठ मोतियों के हार से भूषित था। उनके हाथों में

---

१. रत्नमण्डलमध्यस्थेति च पाठः।

रत्नकङ्कण, रत्नकेयूर तथा सुन्दर शंख था। वे छोटी घंटियों से भूषित थीं, जिनसे रुन-झुन की आवाज हो रही थी। रत्नजटित नूपुर भी शब्दायमान हो रहे थे, जिनको विरजा ने धारण किया था।।१३-१४।।

तां च रूपवतीं दृष्ट्वा प्रेमीद्रेकाज्जगत्पतिः।
चकाराऽऽलिङ्गनं तूर्णं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः॥१५॥

नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं विभुः। रहसि प्रेयसीं प्राप्य चकार च पुनः पुनः॥१६॥
विरजा सा रजोयुक्ता धृत्वा वीर्यममोघकम्। सद्यो बभूव तत्रैव धन्या गर्भवती सती॥१७॥
दधार गर्भमीशस्य दिव्यं वर्षशतं च सा। ततः सुषाव तत्रैव पुत्रान्सप्त मनोहरान्॥१८॥

उन रूपवती विरजा को देखकर जगत्पति श्रीकृष्ण में प्रेम उमड़ पड़ा उन्होंने विरजा को आलिङ्गन में बांधकर उनका बारम्बार चुम्बन भी लिया। तदनन्तर श्रीकृष्ण प्रेयसी विरजा को एकान्त स्थल में ले गये, जहां उन प्रभु ने विरजा के साथ अनेक प्रकार की रति अपनी इस प्रेयसी को पाकर बारम्बार किया। कृष्ण का अमोघ वीर्य धारण करने से विरजा तत्काल गर्भवती हो गईं। उन धन्या विरजा ने ईश्वर के गर्भ को १०० दिव्य वर्षों तक (३६००० मानववर्ष) धारण किया और इसके पश्चात् उन्होंने कृष्ण के ७ मनोहर पुत्रों का जन्म दिया।।१५-१८।।

माता सा सप्तपुत्राणां श्रीकृष्णस्य प्रिया सती।
तस्थौ तत्र सुखासीना सार्धं पुत्रैश्च सप्तभिः॥१९॥

एकदा हरिणा सार्धं वृन्दारण्ये च निर्जने। विजहार पुनः साध्वी शृङ्गारासक्तमानसा॥२०॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र मातुः क्रोडं जगाम ह।
कनिष्ठपुत्रस्तस्याश्च भ्रातृभिः पीडितो भिया॥२१॥
भीतं स्वतनयं दृष्ट्वा तत्याज तां कृपानिधिः।
क्रोडे चकार बालं सा कृष्णो राधागृहं ययौ॥२२॥

अब कृष्णप्रिया विरजा सात पुत्रों की माता होकर अपने सात पुत्रों के साथ सुख से अवस्थान करने लगीं। एक बार ये साध्वी विरजा शृङ्गार क्रीड़ा से आसक्त हो गईं। वे पुनः श्रीहरि के साथ विहार करने लगीं। तभी विरजा का कनिष्ठ पुत्र अपने भाईयों द्वारा खेल में सताया जाकर भय पूर्वक माता की गोद में छिप गया। कृपामय हरि ने अपने पुत्र को भयभीत देखकर विरजा को तत्काल अपने आलिङ्गन से मुक्त कर दिया। विरजा ने उस पुत्र को अपनी गोद में ले लिया। उधर कृष्ण राधा के गृह में चले गये!।।१९-२२।।

प्रबोध्य बालं सा साध्वी न ददर्शान्तिके प्रियम्।
विललाप भृशं तत्र शृङ्गारातृप्तमानसा॥२३॥
शशाप स्वसुतं कोपाल्लवणोदो भविष्यसि।
कदाऽपि ते जलं केचिन्न खादिष्यन्ति जीविनः॥२४॥

शशाप बालान्सर्वांश्च यान्तु मूढा महीतलम्।
गच्छध्वं च महीं मूढ जम्बुद्वीपं मनोहरम्॥२५॥
स्थितिर्नैकत्र युष्माकं भविष्यति पृथक्पृथक्।
द्वीपे द्वीपे स्थितिं कृत्वा तिष्ठन्तु सुखिनः सदा॥२६॥
द्वीपस्थाभिर्नदीभिश्च सह क्रीडन्तु निर्जने। कनिष्ठो मातृशापाच्च लवणोदो बभूव ह॥२७॥

अपने बालक को प्रबोधित करके साध्वी विरजा ने देखा कि अब वहां प्रिय कृपानिधि कृष्ण नहीं है, तब वह श्रृङ्गार क्रीड़ा में अतृप्त रह जाने के कारण रुदन करने लगी। उसने उस पुत्र को शाप दे दिया कि तुम लवण समुद्र हो जाओ। कोई प्राणी तुम्हारा जलपान (स्थलचर तथा नभचर) नहीं कर सकेगा! तदनन्तर उसने अपने अन्य छह पुत्रों को भी शाप दिया "तुम सभी पृथिवी पर जाओ। जब मनोहर जम्बूद्वीप पहुंचोगे, तब तुम एकत्र-एक साथ नहीं रहोगे। तुम लोग विभिन्न द्वीपों में स्थित होकर सुख के साथ रहोगे। वहां-वहां के द्वीप की नदियों के साथ निर्जन में क्रीड़ा करोगे।" कनिष्ठ बालक माता के शाप से लवणसागर हो गया!।।२३-२७।।

कनिष्ठः कथयामास मातृशापं च बालकान्।
आजग्मुर्दुःखिताः सर्वे मातृस्थानं च बालकाः॥२८॥

उस कनिष्ठ पुत्र ने अन्य सभी भ्रातागण को माता का शाप सुनाया। इससे दुःखी होकर वे सभी बालक माता के पास आये।।२८।।

श्रुत्वा विवरणं सर्वे प्रजग्मुर्धरणीतलम्। प्रणम्य चरणं मातुर्भक्तिनम्रात्ममूर्तयः॥२९॥
सप्तद्वीपसमुद्राश्च सप्त तस्थुर्विभागशः। कनिष्ठाद्वृद्धपर्यन्तं द्विगुणं द्विगुणं मुने॥३०॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवाः। एतेषां च जलं पृथ्व्यां सस्यार्थं च भविष्यति॥३१॥

वहां समस्त विवरण से अवगत होकर उन्होंने माता के चरणों में विनय पूर्वक शिर नत करके प्रणाम किया। तदनन्तर वे भूतल पर चले गये। हे नारद! ये सातों भाई, सात द्वीपों में समुद्ररूपेण विभाग करके (अपना अलग-अलग स्थान बनाकर) रहने लगे। इनका आयतन क्रमशः अपने से छोटे से द्विगुण था। वे लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध तथा शुद्ध जल नामक सागर हो गये। इनका जल पृथिवी पर खेती हेतु उपयोगी होगा। (अर्थात् वाष्प बनकर वर्षा करके खेती हेतु अमृततुल्य होगा।)।।२९-३१।।

व्याप्ताः समुद्राः सप्तैव सप्तद्वीपां वसुन्धराम्।
रुरुदुर्बालकाः सर्वे मातृभ्रातृशुचाऽन्विताः॥३२॥

इन सात समुद्र ने सप्तद्वीपा पृथिवी को व्याप्त कर लिया। जब ये गोलोक से जा रहे थे तब इन्होंने परस्परतः भाईयों का विच्छेद होने के कारण तथा माता से दूर हो जाने के कारण रोना प्रारम्भ कर दिया!।।३२।।

रुरोद च भृशं साध्वी पुत्रविच्छेदकातरा। मूर्च्छामवाप शोकेन पुत्राणां भर्तुरेव च॥३३॥
तां शोकसागरे मग्नां विज्ञाय राधिकापतिः। आजगाम पुनस्तस्याः स्मेराननसरोरुहः॥३४॥

दृष्ट्वा हरिं सा तत्याज शोकं रोदनमेव च।
आनन्दसागरे मग्ना दृष्ट्वा कान्तं बभूव ह॥३५॥

चकार श्रीहरिं क्रोडे विजहार स्मरातुरा। तां च पुत्रपरित्यक्तां हरिस्तुष्टो बभूव ह॥३६॥

उधर पतिव्रता विरजा भी पुत्रों के वियोग से कातर होकर रुदन करने लगी तथा मूर्च्छाग्रस्त हो गईं। उनको शोकसागर में मग्न जानकर हरि वहां अपने कमल जैसे आनन से मुस्कराते हुये आ गये। हरि को वहां पर समागत देखकर विरजा ने रुदन तथा शोक त्याग दिया। वह अपने प्रिय को देखकर आनन्द-सागर में मग्न हो गयीं। वह विरजा कामपीड़ित थी। उसने कृष्ण को अपने आलिङ्गन में बद्ध कर लिया। उस पुत्र को त्याग देने वाली विरजा पर कृष्ण भी प्रसन्न थे।।३३-३६।।

वरं तस्यै ददौ प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः।
कान्ते नित्यं तव स्थानमागमिष्यामि निश्चितम्॥३७॥

विरजा को सान्त्वना देते हुए कृष्ण ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया। उस समय कृष्ण के मुख पर प्रसन्नता तथा प्रेमचिह्न द्योतित हो रहा था। कृष्ण ने कहा-"हे प्रिये! मैं नित्य तुम्हारे स्थान पर अब आता रहूंगा। यह निश्चित है।"।।३७।।

यथा राधा तत्समा त्वं भविष्यसि प्रिया मम।
पुत्रान्द्रक्ष्यसि नित्यं त्वं मद्वरस्य प्रसादतः॥३८॥

तुम राधा की ही तरह मेरी प्रियतमा होकर रहोगी। मेरे वर के प्रभाव से तुम अपने पुत्रों को नित्य देख सकोगी।।३८।।

इत्युक्तवन्तं श्रीकृष्णं वसन्तं विरजान्तिके।
दृष्ट्वा राधावयस्याश्च कथयामासुरीश्वरीम्॥३९॥
श्रुत्वा रुरोष सा देवी सुष्वाप क्रोधमन्दिरे।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो जगाम राधिकान्तिकम्॥४०॥

स तस्थौ राधिकाद्वारे श्रीदाम्ना सह नारद। रासेश्वरी हरिं दृष्ट्वा रुष्टोवाच[१] प्रियं पुरः॥४१॥

श्रीकृष्ण विरजा से यह कह ही रहे थे तभी राधा की सखियों ने सुरेश्वरी राधा से यह सब वृत्तान्त जाकर कह दिया! यह सुनकर देवी राधा क्रोधगृह में चली गईं। वे इस संवाद के कारण अत्यन्त क्रोधित थीं। तभी श्रीकृष्ण भी राधा के कोपभवन में आ गये। हे नारद! उस समय कृष्ण श्रीदामा के साथ राधा के कोपगृह के द्वार पर खड़े थे। जब राधा ने वहां अपने समक्ष कृष्ण को देखा, तब वे रुष्ट हो कर कहने लगीं-।।३९-४१।।

१. क. वाचाप्रियं पु०।

मत्तो बहुतराः कान्ता गोलोके सन्ति ते हरे।
याहि तासां संनिधानं मया ते किं प्रयोजनम्।।४२।।
विरजा प्रेयसी कान्ता सरिद्रूपा बभूव ह।
देहं त्यक्त्वा मम भयात्तथाऽपि याहि तां प्रति।।४३।।
तत्तीरे मन्दिरं कृत्वा तिष्ठ तिष्ठ च याहि ताम्।
नदी बभूव सा त्वं च नदो भवितुमर्हसि।।४४।।
नदस्य नद्या सार्धं च सङ्गमो गुणवान्भवेत्।
स्वजातौ परमा प्रीतिः शयने भोजने सुखात्।।४५।।

(राधा कहती हैं)–हे हरि! इस गोलोक में आपकी मुझसे बढ़कर अनेक प्रेयसी हैं। आप उनके पास जायें। आपको अब मुझसे क्या प्रयोजन? आपकी प्रेमिका विरजा पहले मेरे भय से शरीर त्याग कर नदी रूपा हो गई, तथापि वह आज भी आपको अत्यन्त प्रिय जो है। अब आप उसी नदी के तट पर गृह निर्माण करके निवास करिये। वह नदी हो गई, आप नद हो जायें। नदी-नद का पारस्परिक सङ्गम दोनों के लिये हितप्रद होगा। इसका कारण यह है कि सुख पूर्वक शयन, भोजनादि स्वजातीय के साथ करना ही प्रीति पूर्वक हो सकता है।।४२-४५।।

देवचूडामणेः क्रीडा नद्या सार्धमहो बत। महाजनः स्मेरमुखः श्रुत्वा सद्यो भविष्यति।।४६।।
ये त्वां वदन्ति सर्वेशं ते किं जानन्ति तत्त्वतः।
भगवान्सर्वभूतात्मा नदीं संभोक्तुमिच्छति।।४७।।

जब मैं लोगों से यह कहूंगी कि देव चूड़ामणि कृष्ण एक नदी के साथ विहार क्रीड़ा कर रहे हैं, तब महाजनगण यह सुनकर तत्काल हंसने लगेंगे। आपको जो सभी लोग सर्वेश्वर कहते हैं, वे आपके अन्तर्मन को क्या नहीं जानते? क्या आश्चर्य है? सर्व भूतपति तथा सर्वात्मा कृष्ण नदी के साथ रमण की इच्छा कर रहे हैं?।।४६-४७।।

इत्युक्त्वा राधिका देवी विरराम रुषाऽन्विता।
नोत्तस्थौ भूमिशयनाद्गोपीलक्षसमन्विता।।४८।।
काश्चिच्चामरहस्ताश्च काश्चित्सूक्ष्मांशुकाम्बराः।
काश्चित्ताम्बूलहस्ताश्च काश्चिन्मालाकरा वराः।।४९।।
वासितोदकराः काश्चित्काश्चित्पद्मकरावराः।
काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च पानहस्ताश्च काश्चन।।५०।।
रत्नालङ्कारहस्ताश्च काश्चित्कज्जलवाहिकाः।
वेणुवीणाकराःकाश्चित्काश्चित्कङ्कतिकाकराः ।।५१।।

काश्चिदावीरहस्ताश्च यन्त्रहस्ताश्च काश्चन। सुगन्धितैलहस्ताश्च काश्चन प्रमदोत्तमाः॥५२॥
करतालकराः काश्चिद्गेन्दुहस्ताश्च काश्चन। काश्चिन्मृदङ्गमुरजमुरलीतानकारिकाः॥५३॥

राधा देवी क्रोध पूर्वक यह कहकर मौन हो गईं। वे उसी प्रकार धरती पर पड़ी रह गईं। वे एक लाख गोपियों के अनुरोध करने पर भी नहीं उठीं। तब उनमें से कोई चामर व्यजन करने लगीं, कोई सूक्ष्म वस्त्र लिये खड़ी थीं। किसी ने हाथों में ताम्बूल, तो किसी ने उत्तम माला हाथों लिया था। कोई सुगन्धित जल लिये थीं, किसी के हाथों में कमल, किसी के हाथ में सिन्दूर था। किसी सेविका गोपी के हाथों में उत्तम पेय, किसी के हाथों में रत्नालङ्कार, किसी के हाथ में काजल था। अन्य गोपीगण ने क्रमशः बांसुरी, वीणा, कंघी, अबीर, यन्त्र लिया था तथा नाना सुन्दरी गोपियां क्रमशः सुगन्धित तैल, करताल, कन्दुक, मृदंग, ढोल तथा मुरली लिये थीं। वे इन वाद्यों पर तान छेड़ रही थीं।।४८-५३।।

सङ्गीतनिपुणाः काश्चित्काश्चिन्नर्तनतत्पराः। क्रीडावस्तुकराः काश्चिन्मधुहस्ताश्च काश्चन॥५४॥
सुधापात्रकराः काश्चिदङ्घ्रिपीठकराः पराः।
वेषवस्तुकराः काश्चित्काश्चिच्चरणसेविकाः॥५५॥
पुटाञ्जलिकराः काश्चित्काश्चित्स्तुतिपरा वराः।
एवं कतिविधाः सन्ति राधिकापुरतो मुने॥५६॥

इनमें से कोई संगीत में निपुण थीं, कोई नृत्य प्रवीण थीं। किसी ने खेल वाले उपकरण धारण किया था, किसी ने मधु, किसी ने सुधा पात्र, कोई चरण पीठिका लिये थीं। किसी गोपी ने वेष-भूषा वाली वस्तु हाथों में लिया था। कोई उनकी चरण सेवा कर रही थीं। हे मुनिवर! कोई वहां पर करवद्ध मुद्रा में खड़ी थीं, कोई उनकी उत्तम स्तुति कर रही थीं। इस प्रकार नाना प्रकार से कार्य करने वाली न जाने कितनी दासियां उस समय राधा के समक्ष खड़ी थीं।।५४-५६।।

बहिर्देशस्थिताः काश्चित्कोटिशः कोटिशः सदा।
काश्चिद्द्वारनियुक्ताश्च वयस्या वेत्रधारिकाः॥५७॥
कृष्णमभ्यन्तरं गन्तुं न ददुर्द्वारसंस्थिताः। पुरःस्थितं तं प्राणेशं राधा पुनरुवाच सा।
नानुरूपमत्यकथ्यमयोग्यमतिकर्कशम् ॥५८॥

कक्ष के बाहर कोटि-कोटि दासियां खड़ी थीं। वे सभी राधा की ही आयु वाली तथा हाथों में छड़ी लिये थीं। ये सभी राधा की द्वारपालक थीं। इन द्वारपालिकाओं ने कृष्ण को कोपभवन में भीतर जाने से रोक दिया। तदनन्तर प्राणेश्वर कृष्ण को बाहर खड़ा देखकर राधा ने समयानुरूप अकथनीय, अयोग्य तथा कर्कश वाक्य कहा-।।५७-५८।।

राधिकोवाच

हे कृष्ण विरजाकान्त गच्छ मत्पुरतो हरे। कथं दुनोषि मां लोल रतिचौरातिलम्पट॥५९॥

शीघ्रं पद्मावतीं गच्छ रत्नमालां मनोरमाम्। अथवा वनमालां वा रूपेणाप्रतिमां व्रज॥६०॥

हे नदीकान्त देवेश देवानां च गुरोर्गुरो।
मया ज्ञातोऽसि भद्रं ते गच्छ गच्छ ममाऽऽश्रमात्॥६१॥

श्रीराधिका कहती हैं—हे विरजा के पति कृष्ण! आप मेरे यहां से चले जायें। हे हरि! लोलुप! चंचल मन वाले! रतिचोर! आप मुझे दुःखी क्यों कर रहे हैं? आप यथाशीघ्र पद्मावती, वनमाला अथवा मनोरमा के यहां जायें। किंवा असामान्य रूपवती वनमाला के पास जाईये। हे विरजा नदी के पति! देवेश! आप तो देवगण के गुरु के भी गुरु हैं। यह सब मैं जानती हूं। आपका सदा मंगल हो। आप मेरे आश्रम से शीघ्र चले जाईये।।५९-६१।।

शश्वत्ते मानुषाणां च व्यवहारस्य लम्पट।
लभतां मानुषीं योनिं गोलोकादव्रज भारतम्॥६२॥
हे सुशीले शशिकले हे पद्मावति माधवि।
निवार्यतां च धूर्तोऽयं किमस्यात्र प्रयोजनम्॥६३॥

हे लम्पट! आप निरन्तर मानवों के संसर्ग में रहते हैं। अतएव आपको मनुष्य योनि मिले। आप गोलोक त्यागकर भारत वर्ष जायें! हे शशिकला! सुशीला! पद्मावती! माधवी! तुम लोग इन धूर्त को मेरे पास आने से रोक दो! यहां इनके आगमन का क्या प्रयोजन?।।६२-६३।।

राधिकावचनं श्रुत्वा तमूचुर्गोपिका हरिम्।
हितं तथ्यं च विनयं सारं यत्समयोचितम्॥६४॥

श्रीराधा का यह कथन सुनकर गोपियों ने कृष्ण से जो कहा—सबका कथन विनीत, साररूप, हितप्रद तथा समयानुकूल था।।६४।।

काश्चिदूचुरिति हरे गच्छ स्थानान्तरं क्षणम्।
राधाकोपापनयने ह्यागमिष्यामहे वयम्॥६५॥
काश्चिदूचुरिति प्रीत्या क्षणं गच्छ गृहान्तरम्।
त्वयैव वर्धिता राधा त्वं विना कं च वक्ष्यति॥६६॥

काश्चिदूचुरिति प्रेम्णा राधिकायां हरिं मुने। क्षणं वृन्दावनं गच्छ मानापनयनावधि॥६७॥

काश्चिदित्यूचुरीशं च परिहासपरं वचः।
मानापनयनं भक्त्या मानिन्याः कुरु कामुक॥६८॥

किसी गोपी ने कहा—"हे कृष्ण! कुछ क्षणों हेतु आप अन्यत्र चले जायें। राधिका का कोप शान्त होने पर मैं आपको पुनः यहां बुला लूंगी!" किसी गोपी ने प्रेम पूर्वक कहा—"हे कृष्ण! आप क्षणकालजन्य अन्यत्र किसी गृह में चले जायें। ये आप के ही कारण इतनी बढ़ गई हैं (जो आपको

भगा रही हैं), तथापि ये आपके अतिरिक्त अपनी व्यथा किससे कहेंगी (अर्थात् ये स्वयं आपको बुलायेंगी)।" हे मुनिवर! कतिपय दासियों ने कहा—"जब तक राधा का यह मान समाप्त नहीं होता, तब तक आप वृन्दावन से अन्यत्र चले जायें।" किसी-किसी गोपीका ने परिहास पूर्वक कृष्ण से कहा—"हे कामुक! आप भक्ति पूर्वक राधा की सेवा करके इनका मान दूर करें।"।।६५-६८।।

काश्चनोचुरितीशं तं याहि जायान्तरं तव।
लोलुपस्य कथं नाथ करिष्यामो यथोचितम्।।६९।।
काश्चनोचुरिति हरिं सस्मितं पुरतः स्थितम्। गत्वा समीपमुत्थाय मानापनयनं कुरु।।७०।।
काश्चनोचुरिति प्राणनाथं गोप्यो दुरक्षरम्।
कः क्षमः सांप्रतं द्रष्टुं राधिकामुखपंकजम्।।७१।।
काश्चनोचुरिति विभुं व्रज स्थानान्तरं हरे। कोपापनयने काले पुनरागमनं तव।।७२।।
काश्चनोचुरितीदं तं प्रगल्भाः प्रमदोत्तमाः।
वयं त्वां वारयिष्यामो न चेद्याहि गृहान्तरम्।।७३।।
काश्चिन्निवारयामासुर्माधवं प्रमदोत्तमाः। स्मितवक्त्रं च सर्वेशं स्वस्थक्रोधमीश्वरम्।।७४।।

किसी गोपी ने कृष्ण से कहा कि "आप अन्य स्त्री के पास जायें। हे प्रभो! आप ऐसे लोलुप की यथोचित सेवा हम कैसे कर सकती हैं?" किसी गोपी ने कृष्ण से मुस्कराते कहा—"आप राधा के पास जाकर उनको धरती पर से उठायें तथा उनका मान दूर करें।" किसी गोपी ने राधा के प्राणपति से कठोर शब्दों में कहा—"इस समय राधा का मुखकमल देखने की शक्ति किसमें है?" किसी गोपी ने प्रभु से कहा—"हे हरि! अभी आप अन्य स्थान पर जायें। तब राधा का कोप शान्त हो, तब आईयेगा।" कुछ मुंह लगी गोपियों ने कहा—"आप अन्य गृह में जायें। यहां हम आपको नहीं आने दे सकती!" कतिपय गोपीगण ने कृष्ण को प्रगल्भता पूर्वक वहां से हटाने का उपक्रम किया तथा कृष्ण को आगे नहीं आने दिया, तथापि सर्वेश्वर कृष्ण क्रोध रहित स्वस्थ तथा मुस्कराते हुये शान्त थे।।६९-७४।।

गोपीभिर्वार्यमाणे च जगत्कारणकारणे। सद्यश्चुकोप श्रीदामा हरौ गेहान्तरं गते।।७५।।
कोपादुवाच श्रीदामा राधिकां परमेश्वरीम्। रक्तपद्मेक्षणां रुष्टां रक्तपंकजलोचनाम्।।७६।।

गोपीगण के द्वारा रोके जाने पर जगत्कारण अन्य गृह में चले गये। यह देखकर श्रीदामा क्रोधित हो गया। उसने क्रोधित होकर उन परमेश्वरी राधिका से कहना प्रारम्भ किया, जिनके नेत्र कोप के कारण रक्तकमलवत् हो गये थे।।७५-७६।।

श्रीदामोवाच

कथं वदसि मातस्त्वं कटुवाक्यं मदीश्वरम्।
विचारणां विना देवि करोषि भर्त्सनं वृथा।।७७।।

ब्रह्मानन्तेशदेवेशं[१] जगत्कारणकारणम्। वाणीपद्मालयामायाप्रकृतीशं च निर्गुणम्।।७८।।

स्वात्मारामं पूर्णकामं करोषि त्वं विडम्बनम्।
देवीनां प्रवरा त्वं च निबोध यस्य सेवया।।७९।।

यस्य पादार्चनेनैव सर्वेषामीश्वरी परा। तत्र जानासि कल्याणि किमहं वक्तुमीश्वरः।।८०।।

श्रीदामा कहता है–हे माता! आप मेरे प्रभु को क्यों कटु वाक्य कह रही हैं? हे देवी! आप विचार किये विना क्यों व्यर्थ में मेरी भर्त्सना कर रही हैं? ये प्रभु ब्रह्मा–अनन्त–शंकर–धर्म इत्यादि के कारण के भी कारण हैं। ये सरस्वती, लक्ष्मी, माया तथा प्रकृति के ये प्रभु हैं। इन गुणातीत, आत्माराम, पूर्णब्रह्म, कृष्ण के प्रति आप इतना तिरस्कार क्यों कर रही हैं? आप जिनकी सेवा करके देवियों में प्रधान हो गई हैं, यदि आप ही उनको नहीं जान सकीं, तब मैं क्या कह सकता हूं।।७७-८०।।

भ्रूभङ्गलीलया कृष्णः स्रष्टुं शक्तश्च त्वद्विधाः।
कोटिशः कोटिशो देव्यस्तं न जानासि निर्गुणम्।।८१।।
वैकुण्ठे श्रीहरेरस्य चरणाम्बुजमार्जनम्।
करोति केशैः शश्वच्छ्रीः सेवनं भक्तिपूर्वकम्।।८२।।
सरस्वती च स्तवनैः कर्णपीयूषसुन्दरैः।
सततं स्तौति यं भक्त्या न जानासि तमीश्वरम्।।८३।।

ये प्रभु अपने भ्रूभङ्ग मात्र से (वक्रदृष्टि से) आप जैसी कोटि–कोटि देवीगण का सृजन करने में समर्थ हैं। क्या उन गुणातीत को आप नहीं जान सकीं? लक्ष्मी भी वैकुण्ठ लोक में इन प्रभु के चरणकमल की सेवा अपने केशों से अत्यन्त भक्ति के साथ सदैव करती हैं। इस प्रकार उनकी चरण–सेवा में तत्पर रहा करती हैं। सरस्वती भी इनकी स्तुति ऐसे स्तवों द्वारा भक्ति पूर्वक करती हैं, जो सुन्दर तथा कानों को अमृत जैसे लगते हैं। क्या आप ऐसे प्रभु को नहीं जानती?।।८१-८३।।

भीता च प्रकृतिर्माया सर्वेषां बीजरूपिणी।
सततं स्तौति यं भक्त्या तं न जानासि मानिनि।।८४।।
स्तुवन्ति सततं वेदा महिम्नः षोडशीं कलाम्।
कदाऽपि न विजानन्ति तं न जानासि भामिनि।।८५।।
वक्त्रैश्चतुर्भिर्यं ब्रह्मा वेदानां जनको विभुः।
स्तौति सेवां च कुरुते चरणाम्बुजमीश्वरि।।८६।।
शंकरः पञ्चभिर्वक्त्रैः स्तौति यं योगिनां गुरुः।
साश्रुपूर्णः सपुलकः सेवते चरणाम्बुजम्।।८७।।

१. क. ०शधर्मेशं।

सबकी बीजरूपा (कारणरूपा) माया भयभीत होकर जिनकी स्तुति भक्ति पूर्वक करती हैं, क्या आप उन कृष्ण को नहीं जानती? वेदगण भक्ति पूर्वक सतत् जिनकी महिमा की मात्र षोडशी कला की स्तुति कर पाते हैं, हे भामिनी! क्या आप उनको नहीं जानती? विभु तथा वेदों के जनक ब्रह्मा जिनके चरण-कमलों की सेवा तथा स्तुति करते रहते हैं, क्या आप उन ईश्वर को नहीं जानती?।।८४-८७।।

शेषः सहस्त्रवदनैः परमात्मानमीश्वरम्। सततं स्तौति यं भक्त्या सेवते चरणाम्बुजम्॥८८॥

धर्मः पाता च सर्वेषां साक्षी च जगतां पतिः।
भक्त्या च चरणाम्भोजं सेवते सततं मुदा॥८९॥
श्वेतद्वीपनिवासी यः पाता विष्णुः स्वयं विभुः।
तस्यांशश्च तथा यं यं धार्यतेऽप्यक्षरं परम्॥९०॥
सुरासुरमुनीन्द्राश्च मनवो मानवा बुधाः।
सेवन्ते न हि पश्यन्ति स्वप्नेऽपि चरणाम्बुजम्॥९१॥

क्षिप्रं रोषं परित्यज्य भज पादाम्बुजं हरेः। भ्रूभङ्गलीलामत्रेण सृष्टिसंहर्तुरेव च॥९२॥

जिन परमात्मा ईश्वर की स्तुति सतत् अपने एक हजार मुखों से शेषनाग करते हैं तथा भक्ति पूर्वक जिनके चरणों की सेवा करते हैं, योगीगण के गुरु शंकर अपने पांचों मुखों से साश्रुनेत्र एवं पुलकित होकर जिनके चरणकमल की सेवा में निरत रहते हैं, धर्म सबके रक्षक तथा जगत्स्वामी होकर भी मुदित मन से जिनके चरण-कमल की सेवा भक्ति पूर्वक करते रहते हैं, श्वेतद्वीपवासी सबके रक्षक विष्णु भी जिनके अंश से उत्पन्न हैं, वे भी जिनका प्रतिक्षण ध्यान करते रहते हैं, देवता, असुर, मुनीन्द्रगण, १४ मनु, मनुष्य, पण्डित लोग स्वप्न में भी जिनकी चरण-सेवा नहीं कर पाते आप तत्काल उनके प्रति क्रोध त्याग कर हरि चरणसेवा निरत हो जायें! उनकी गौओं तक का भ्रूभंगमात्र भी सृष्टि का संहारक हो जाता है।।८८-९२।।

निमेषमात्रादस्यैव ब्रह्मणः पतनं भवेत्। यस्यैकदिवसेऽप्यष्टाविंशतीन्द्राः पतन्त्यपि॥९३॥
एवमष्टोत्तरशतमायुर्यस्य जगद्विधेः। त्वं वा काऽन्याश्च वा राधे मदीश्वरवशेऽखिलम्॥९४॥

श्रीकृष्ण के एक बार पलक झपने मात्र का ही ब्रह्मा का जीवन है। ब्रह्मा के १ दिवस में ही २८ इन्द्रों का पतन हो जाता है। जिन ब्रह्मा की इस कालमान से १०८ वर्ष की आयु है, हे राधा! ऐसे ब्रह्मा तथा समस्त देवीगण और समस्त ब्रह्माण्ड उन प्रभु के ही अधीन रहते हैं।।९३-९४।।

श्रीदाम्नो वचनं श्रुत्वा केवलं[1] कटुमुज्ज्वलम्।
सद्यश्च कोप सा ब्रह्मन्नुत्थाय समुवास ह॥९५॥

रासेश्वरी बहिर्गत्वा तमुवाच ह निष्ठुरम्। स्फुरदोष्ठी मुक्तकेशी रक्ताम्भोरुहलोचनाः॥९६॥

---

१. ०मुल्वणम्।

हे ब्रह्मन्! श्रीदामा कथित इस कटु सत्य को सुनकर राधा अत्यन्त कुपित होकर उठी, उस समय राधा के ओंठ क्रोध से फड़क रहे थे। उनके केश बिखरे थे। उनके नेत्र क्रोध से रक्तकमल जैसे हो रहे थे। उन्होंने कोपभवन से बहिर्गत् होकर श्रीदामा से कहा–।।९५-९६।।

राधिकोवाच

रे रे जाल्म महामूढ शृणु लम्पटकिंकर।
त्वं च जानासि सर्वार्थं न जानामि त्वदीश्वरम्।।९७।।
त्वदीश्वरश्च श्रीकृष्णो न ह्यस्माकं व्रजाधम।
जानामि जनकं स्तौषि सदा निन्दसि मातरम्।।९८।।
यथाऽसुराश्च त्रिदशा नित्यं निन्दन्ति संततम्।
तथा निन्दसि मां मूढ तस्मात्त्वमसुरो भव।।९९।।
गोप व्रजाऽऽसुरीं योनिं गोलोकाच्च बहिर्भव।
मयाऽद्य शप्तो मूढस्त्वं कस्त्वां रक्षितुमीश्वरः।।१००।।

श्रीराधा कहती हैं–हे नीच! महामूढ! लम्पट कृष्ण के दास! सुनो! तुम अकेले सब कुछ जानते हो और (तुम्हारे कथनानुसार) मैं प्रभु कृष्ण को जान नहीं सकी! हे मूढ़! जैसे सतत् असुरगण देवताओं की निन्दा करते रहते हैं, उसी प्रकार तुमने मेरी निन्दा की है। अतः तुम असुर हो जाओ। हे गोप! तुम गोलोक से बाहर होकर आसुरी योनि प्राप्त करो। हे मूढ़! मैंने यह शाप आज तुमको दिया है, देखना है कि कौन तुम्हारी रक्षा करने में समर्थ होगा?।।९७-१००।।

रासेश्वरी तमित्युक्त्वा सुष्वाप विरराम च।
वयस्याः सेवयामासुश्चामरै रत्नमुष्टिभिः।।१०१।।
श्रुत्वा च वचनं तस्याः कोपेन स्फुरिताधरः।
शशाप तां च श्रीदामा व्रज योनिं च मानुषीम्।।१०२।।

रासेश्वरी यह कहकर मौन हो गईं। उनके शयनमुद्रा में होते ही सखियां रत्न की मूठ वाले चामरों को उन पर झलने लगीं। उधर राधा का शाप सुनकर श्रीदामा का ओंठ क्रोध से फड़कने लगा। उसने भी राधा को शाप दिया–"आप मानुषी योनि प्राप्त करें।"।।१०१-१०२।।

श्रीदामोवाच

मानुष्या इव कोपस्ते तस्मात्त्वं मानुषी भुवि।
भविष्यसि न संदेहो मया शप्ता त्वमम्बिके।।१०३।।
छायया कलया वाऽपि परशक्त्या[१] कलङ्किनी।
मूढा रायणपत्नीं त्वां वक्ष्यन्ति जगतीतले।।१०४।।

---

१. परग्रस्ता वा पाठः।

रायणः श्रीहरेरंशो वैश्यो वृन्दावने वने। भविष्यति महायोगी राधाशापेन गर्भजः।

गोकुले प्राप्य तं कृष्णं विहरिष्यसि कानने॥१०५॥

श्रीदामा कहता है–आप मानुषी की तरह क्रोधयुक्त हैं। अतः निःसन्देह पृथिवी पर आपको मानुषी होना है। यह मेरा शाप है। आप पराशक्ति की छाया से कलायुता होकर जगती तल में रायण वैश्य की पत्नी कही जायेंगी। रायण कृष्ण के अंश से (धरती वाले) वृन्दावन में उत्पन्न होगा। वह भी राधा के शाप से, गर्भ से ही महायोगी होगा। आप कुछ समय पश्चात् गोकुल में कृष्ण को पाकर वन में उनके साथ विहाररत रहेंगी।।१०३-१०५।।

भविता ते वर्षशतं विच्छेदो हरिणा सह।
पुनः प्राप्य तमीशं च गोलोकमागमिष्यसि॥१०६॥

तदनन्तर प्रभु कृष्ण से (उनके गमन के कारण) आपका १०० वर्ष व्यापी कृष्ण विच्छेद घटित होगा। तदनन्तर इस काल अवधि के व्यतीत होने पर आप पुनः उन ईश्वर को प्राप्त करके गोलोक गमन करेंगी।।१०६।।

तामित्युक्त्वा च नत्वा च स जगाम हरेः पुरः।
गत्वा प्रणम्य श्रीकृष्णं शापाख्यानमुवाच ह॥१०७॥
आनुपूर्व्यात्तु तत्सर्वं रुरोद च भृशं पुनः।
उवाच तं रुदन्तं च गच्छ त्वं धरणीतलम्॥१०८॥
न जेता ते त्रिभुवने ह्यसुरेन्द्रो भविष्यसि।
काले शंकरशूलेन देहं त्यक्त्वा ममान्तिकम्॥१०९॥

यह कहकर श्रीदामा ने राधा को प्रणाम किया तथा वह श्रीहरि (कृष्ण) के पास गया। उनको प्रणाम करने के अनन्तर समस्त शापजनित वृत्तान्त प्रभु से कहा। तदनन्तर वह बारम्बार रोने लगा। तभी श्रीकृष्ण ने श्रीदामा से कहा–"तुम धरती लोक जाओ। त्रैलोक्य में तुम अविजित राजा रहोगे। तुम असुरगण के नृपति होगे। कालक्रम से शंकर के त्रिशूल से तुम्हारी राक्षसी योनि का अन्त होगा। तुम देह त्यागकर पुनः मेरे निकट आओगे।।१०७-१०९।।

आगमिष्यसि पञ्चाशद्युगान्ते[1] तु ममाऽशिषा।
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा तमुवाच शुचाऽन्वितः॥११०॥
त्वद्भक्तिरहितं मां च कदाचिन्न करिष्यसि।
इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा जगाम स्वाश्रमाद्बहिः॥१११॥

५० युग वहां रहकर तुम वापस मेरे पास आओगे। यह मेरा आशीर्वाद है।" यह सुनकर

---

१. क. ०द्युगेऽतीते।

शोकग्रस्त श्रीदामा ने कहा–"जो आज्ञा! तथापि मैं कदापि आपकी भक्ति से रहित न रहूं।" यह कहकर उसने हरि को प्रणाम किया तथा कृष्ण के आश्रम (गृह) से बाहर आ गया।।११०-१११।।

पश्चाज्जगाम सा देवी रुरोद च पुनः पुनः।
क्व यासि वत्सेत्युच्चार्य विललाप भृशं सती॥११२॥
श्रीदामाऽपि च तां नत्वा रुरोद प्रेमविह्वलः।
स एव शङ्खचूडश्च बभूव तुलसीपतिः॥११३॥

उसे इस प्रकार गमनोद्यत देखकर सती राधा देवी रोते हुये तथा अत्यन्त विलाप करते, उसके पीछे यह कहते जाने लगीं–"हे पुत्र! कहां जा रहे हो?" श्रीदामा ने भी उनको प्रणाम किया तथा प्रेमविह्वलता के कारण रुदन करने लगा। अन्ततः वह शङ्खचूड़ असुर हो गया, जो तुलसी का पति था।।११२-११३।।

गते श्रीदाम्नि सा देवी जगामेश्वरसंनिधिम्। सर्वं निवेदयामास हरिः प्रत्युत्तरं ददौ॥११४॥

शोकातुरां च तां कृष्णो बोधयामास प्रेयसीम्।
शङ्खचूडश्च कालेन संप्राप पुनरीश्वरम्॥११५॥

श्रीदामा के चले जाने पर देवी राधिका ईश्वर के पास चली गईं। उन्होंने समस्त प्रसंग श्रीहरि से निवेदित किया, तब श्रीहरि ने भी उसका उत्तर राधा को दे दिया। श्रीकृष्ण ने शोकातुरा प्रेयसी राधा को सान्त्वना भी प्रदान किया। कालान्तर में शङ्खचूड़ ने पुनः गोलोक आकर ईश्वर का पार्षदत्व प्राप्त किया था।।११४-११५।।

राधा जगाम धरणीं वाराहे हरिणा सह। वृषभानुगृहे जन्म ललाभे गोकुले मुने॥११६॥

हे मुनिवर! वाराहकल्प में राधा ने हरि के साथ भूतल पर आगमन किया तथा राधा ने गोकुल निवासी वृषभानु के गृह में जन्म ग्रहण किया था।।११६।।

इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णाख्यानमङ्गलम्।
सर्वेषां वाञ्छितं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥११७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० सप्तसमुद्रजन्मराधाश्रीदामशापोद्भवो नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

—❋❋❋—

यह मैंने कृष्ण का मङ्गलात्मक आख्यान कह दिया। यह सभी के लिये वांछित सारतत्त्व रूप आख्यान है। अब तुम क्या श्रवण करना चाहते हो?।।११७।।

।।तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अपना भार उतरवाने हेतु पृथिवी का ब्रह्मलोक जाना, ब्रह्मा से इस सम्बन्ध में निवेदन करना तथा गोलोक का वर्णन

नारद उवाच

केन वा प्रार्थितः कृष्णो महीं च केन हेतुना। आजगाम जगन्नाथो वद वेदविदां वर॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे प्रभो! आप वेदज्ञों में श्रेष्ठ हैं। कृपया कहिये कि जगन्नाथ कृष्ण किसकी प्रार्थना द्वारा मर्त्यलोक में आये थे?॥१॥

नारायण उवाच

पुरा वाराहकल्पे सा भाराक्रान्ता वसुंधरा। भृशं बभूव शोकार्ता ब्रह्माणं शरणं ययौ॥२॥
सुरैश्चासुरसंतप्तैर्भृशमुद्विग्नमानसैः। सार्धं तैस्तां दुर्गमां च जगाम वेधसः सभाम्॥३॥
ददर्श तस्यां देवेशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सिद्धेन्द्रैः सेवितं मुदा॥४॥
अप्सरोगणनृत्यं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा। गन्धर्वाणां च सङ्गीतं श्रुतवन्तं मनोहरम्॥५॥
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्। भक्त्याऽऽनन्दाश्रुपूर्णं तं पुलकाङ्कितविग्रहम्॥६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं— पूर्वकालीन वाराहकल्प में वसुन्धरा अत्यन्त भार से आक्रान्त होकर अतिशय शोकार्त्ता हो गई थीं। उन्होंने ब्रह्मा की शरण ग्रहण किया। वे असुरगण से पीड़ित, अत्यन्त उद्विग्न मन वाली होकर देवताओं सहित दुर्गम्य ब्रह्मसभा में गई थीं। उन्होंने उस सभा में ऋषीन्द्रों, मुनीन्द्रों, सिद्धेन्द्रों से सानन्द सेवित ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान देवदेव ब्रह्मा को वहां देखा। वहां ब्रह्मा प्रसन्नमुद्रा में अप्सराओं का नृत्य देख रहे थे। साथ ही गन्धर्वों का मनोहर संगीत भी श्रवण कर रहे थे। उस समय ब्रह्मा 'कृष्ण' अक्षरद्वयात्मक परब्रह्म का जप कर रहे थे। भक्ति के आनन्द से उनके नेत्र अश्रु से भर आये थे। साथ ही उनका शरीर रोमांचित भी हो रहा था।।२-६।।

भक्त्या सा त्रिदशैः सार्धं प्रणम्य चतुराननम्। सर्वं निवेदनं चक्रे दैत्यभारादिकं मुने॥७॥
साश्रुपूर्णा सपुलका तुष्टाव च रुरोद च। तामुवाच जगद्धाता कथं स्तौषि च रोदिषि॥८॥
कथमागमनं भद्रे वद भद्रं भविष्यति। सुस्थिरा भव कल्याणि भयं किं ते मयि स्थिते॥९॥

हे मुनिवर! तदनन्तर भगवती वसुन्धरा ने देवगण सहित चतुरानन ब्रह्मदेव को प्रणाम करके दैत्यों के भार का भी वर्णन उनसे किया। वे अश्रु भरे नेत्रों तथा रोमांचित शरीर की स्थिति में ब्रह्मा की स्तुति रोते हुये करने लगीं। यह देखकर जगद्धाता ब्रह्मा ने वसुन्धरा से कहा—"तुम रुदन भी कर रही

हो,साथ ही स्तुति भी कर रही हो? तुम्हारा यहां आगमन किस कारण से हुआ है? स्थिर होकर कहो। मेरे रहते तुमको क्या भय?।।७-९।।

आश्वास्य पृथिवीं ब्रह्मा देवान्पप्रच्छ सादरम्।
कथमागमनं देवा युष्माकं मम संनिधिम्॥१०॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा देवा ऊचुः प्रजापतिम्।
भाराक्रान्ता च वसुधा दस्युग्रस्ता वयं प्रभो॥११॥
त्वमेव जगतां स्रष्टा शीघ्रं नो निष्कृतिं कुरु।
गतिस्त्वमस्या भो ब्रह्मन्निर्वृतिं कर्तुमर्हसि॥१२॥

पृथिवी को आश्वासन देने के अनन्तर ब्रह्मा ने सादर देवगण से प्रश्न किया–"तुम लोग मेरे पास किस कार्य से आये हो? उसे कहो!" ब्रह्मा का कथन सुनकर देवता उन प्रजापति से कहने लगे–"हे प्रभो! धरती भार से आक्रान्त है तथा हम दस्युओं से ग्रस्त हैं? आप जगत् के स्रष्टा हैं। शीघ्र कोई उपाय बतायें। हे ब्रह्मन्! आप ही हमारी एकमात्र गति हैं। कृपया इस संकट से त्राण दिलायें।।१०-१२।।

पीडिता येन भारेण पृथिवीयं पितामह। वयं तेनैव दुःखार्तास्तद्भारहरणं कुरु॥१३॥

हे पितामह! यह पृथिवी भी उन असुरों के भार से पीड़ित है, जिसके कारण हम दुःखार्त्त हैं। आप इस भार का हरण करें।।१३।।

देवानां वचनं श्रुत्वा पप्रच्छ तां जगद्विधिः।
दूरीकृत्य भयं वत्से सुखं तिष्ठ ममान्तिकम्॥१४॥

केषां भारमशक्ता त्वं सोढुं पंकजलोचने। अपनेष्यामि तं भद्रे भद्रं ते भविता ध्रुवम्॥१५॥

जगत्कर्त्ता ब्रह्मा ने देवतागण का यह वाक्य सुनकर उन्होंने पृथिवी से जिज्ञासा किया–"हे वत्से! तुम भय का त्याग करके मेरे पास सुख पूर्वक रहो। हे कमलनयनी! तुम किसके भारवहन से अशक्त हो गयी हो?यह भार मैं निश्चित रूप से समाप्त कर दूंगा। तुम्हारा मंगल हो।"।।१४-१५।।

तस्य सा वचनं श्रुत्वा तमुवाच स्वपीडनम्। पीडिता येन येनैवं प्रसन्नवदनेक्षणा॥१६॥

उनका कथन सुनकर वसुन्धरा ने प्रफुल्लमुख होकर यह बतलाया कि जिन-जिन लोगों ने उनको पीड़ित किया था तथा अपने पीड़न का प्रकार भी कहा था कि किस प्रकार से यह उत्पीड़न हुआ था।।१६।।

क्षितिरुवाच

श्रृणु तात प्रवक्ष्यामि स्वकीयां मानसीं व्यथाम्।
विना बन्धुं सविश्वासं नान्यं कथितुमर्हति॥१७॥

स्त्रीजातिरबला शश्वद्रक्षणीया स्वबन्धुभिः।
जनकस्वामिपुत्रैश्च गर्हिताऽन्यैश्च निश्चितम्॥१८॥

पृथिवी कहती है–हे तात! आप श्रवण करिये। मैं अपनी मनोव्यथा कहती हूं। यह अपने विश्वस्त बन्धु के अतिरिक्त अन्य से कथन योग्य विषय नहीं है। अबला स्त्रीजाति सदा अपने बन्धुवर्ग, पिता, पति, पुत्रों द्वारा सदा रक्षणीया है। अन्यथा निश्चित रूप से अन्य लोगों द्वारा उनकी रक्षा निन्दनीय कही गई है।।१७-१८।।

त्वया पृष्टा जगत्तात न लज्जा कथितुं मम।
येषां भारैः पीडिताऽहं श्रूयतां कथयामि ते॥१९॥

कृष्णभक्तिविहीना ये ये च तद्भक्तनिन्दकाः। तेषां महापातकिनामशक्ता भारवाहने॥२०॥
स्वधर्माचारहीना ये नित्यकृत्यविवर्जिताः। श्रद्धाहीनाश्च वेदेषु तेषां भारेण पीडिता॥२१॥

आपने जगत्पिता होकर मुझसे पूछा है। अतः मेरा उत्तर यह है कि मैं जिनके द्वारा पीड़ित हो रही हूं, जो कृष्णभक्तिविहीन हैं तथा जो कृष्णभक्तों के निन्दक हैं, ऐसे महापातकी लोगों का भार वहन कर सकने में मैं असमर्थ हूं। जो अपने धर्माचार से रहित हैं तथा सन्ध्या आदि नित्यकार्य रहित हैं और वेद के प्रति श्रद्धाहीन हैं, उनके भार से मैं पीड़ित हूं।।।१९-२१।।

पितुमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययोः। ये न कुर्वन्ति तेषां च न शक्ता भारवाहने॥२२॥

ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यविवर्जिताः।
निन्दका गुरुदेवानां तेषां भारेण पीडिता॥२३॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः।
विश्वासघ्नो न्यासहर्ता तेषां भारेण पीडिता॥२४॥

जो माता, गुरु, पिता, स्त्री, पुत्र तथा पोष्यवर्ग का पोषण नहीं करते, उनका भार वहन मैं नहीं कर सकती। हे तात! जो दया-धर्म रहित, मिथ्यावादी, गुरु तथा देवताओं के निन्दक हैं, मैं उनके भार से पीड़ित रहती हूं। जो लोग मित्रद्रोही, कृतघ्न, मिथ्या गवाही देने वाले, विश्वासघाती, अमानत में खयानत करने वाले हैं, मैं उनके भार से पीड़ित रहती हूं।।२२-२४।।

कल्याणसूक्तसामानि हरेर्नामैकमङ्गलम्। कुर्वन्ति विक्रयं ये वै तेषां भारेण पीडिता॥२५॥

जीवघाती गुरुद्रोही ग्रामयाजी च लुब्धकः।
शवदाही शूद्रभोजी तेषां भारेण पीडिता॥२६॥

जो कल्याणमय सामसूक्त तथा मङ्गलमय हरि नाम का विक्रय करते हैं, मैं उनके भार से पीड़ित रहती हूं। जो जीवों की हत्या करने वाले गुरुद्रोही, घूम-घूमकर ग्रामों में यज्ञ करने वाले, लुब्धक (व्याध), शूद्र के यहां भोजन करने वाले तथा शूद्रों का शवदाह करने वाले हैं, मैं उनके भार से पीड़ित हूं।।२५-२६।।

पूजायज्ञोपवासादिव्रतानि विविधानि[1] च। ये ये मूढा निहन्तारस्तेषां भारेण पीडिता॥२७॥
सदा द्विषन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान्। हरिं हरिकथां भक्तिं तेषां भारेण पीडिता॥२८॥

शङ्खदीनां च भारेण पीडिताऽहं यथा विधे।
ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेण परिपीडिता॥२९॥

जो मूढ़ पूजा, यज्ञ, उपवास, नाना व्रतों में विघ्न करके उनका नाश करते हैं, मैं उनके भार से पीड़ित हो जाती हूं। जो पापी व्यक्ति गौ, विप्र, देवता, वैष्णव, श्रीहरि, हरिकथा, हरिभक्ति के प्रति द्वेष रखते हैं, मैं उनके भार से पीड़ित हो जाती हूं। हे विधाता! हे प्रभो! जैसे मैं शंखासुर आदि के भार से त्रस्त रहती हूं, उससे अधिक दैत्यों के भार से पीड़ा का अनुभव करती हूं।।२७-२९।।

इत्येवं कथितं सर्वं मद्व्यथाया निवेदनम्।
त्वया यदि सुपाल्याऽहं प्रतीकारं कुरु प्रभो॥३०॥

"हे प्रभो! इस प्रकार आपसे मैंने अपना समस्त निवेदन कर दिया। मैं आपके ही कारण सनाथा हूं। अतः आप इस भार का प्रतिकार करिये।"।।३०।।

इत्येवमुक्त्वा वसुधा रुरोद च मुहुर्मुहुः। ब्रह्मा तद्रोदनं दृष्ट्वा तामुवाच कृपानिधिः॥३१॥
भारं तवापनेष्यामि दस्यूनामप्युपायतः। उपायतोऽपि कार्याणि सिद्ध्यन्त्येव वसुंधरे॥३२॥
कालेन भारहरणं करिष्यति मदीश्वरः। मन्त्रं मङ्गलकुम्भं च शिवलिङ्गं च कुङ्कुमम्॥३३॥

मधुकाष्ठं चन्दनं च कस्तूरीं तीर्थमृत्तिकाम्।
खड्गगण्डकखण्डं च स्फाटिकं पद्मरागकम्॥३४॥
इन्द्रनीलं सूर्यमणिं रुद्राक्षं कुशमूलकम्।
शालग्रामशिलां शङ्खं तुलसीं प्रतिमां जलम्॥३५॥
शङ्खं प्रदीपमालां च शिलामर्च्यां च घण्टिकाम्।
निर्माल्यं चैव नैवेद्यं हरिद्विर्णमणिं तथा॥३६॥

ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं दर्पणं श्वेतचामरम्। गोरोचनं च मुक्तां च शुक्तिं माणिक्यमेव च॥३७॥
पुराणसंहितां वह्निं कर्पूरं परशुं तथा। रजतं काञ्चनं चैव प्रवालं रत्नमेव च॥३८॥

ब्रह्मा से यह कहकर वसुन्धरा (पृथिवी) बारम्बार रुदन करने लगीं। कृपानिधि ब्रह्मा ने उनका यह रुदन देखकर उनसे कहा–"हे वसुन्धरे! उपाय से ही कार्य सिद्ध होता है। उपाय से तुम्हारे भार का हरण मेरे प्रभु करेंगे। उपाय से ही इन दस्युगण का भी भय दूरीभूत होगा। मन्त्र, मङ्गलकलश, शिवलिङ्ग, कुङ्कुम, मुलेठी, चन्दन, कस्तूरी, तीर्थ मृत्तिका, खड्ग, गैंड़े की सींग, स्फटिक, पद्मराग, इन्द्रनीलमणि, सूर्यकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि, रुद्राक्ष, कुश की जड़, शालग्रामशिला, शङ्ख, तुलसी,

१. क. नियमानि।

प्रतिमा, जल, प्रदीप, माला, शिलापूजन, घंटा, शङ्खजल, निर्माल्य, नैवेद्य, हरितवर्ण मणि, ग्रन्थियुक्त यज्ञसूत्र, दर्पण, श्वेतचामर, गोरोचन, सीपी, मुक्ता, माणिक्य, पुराणसंहिता, अग्नि, कपूर, परशु, रजत, स्वर्ण, प्रवाल, रत्न तथा।।३१-३८।।

कुशबीजं तीर्थतोयं गव्यं गोमूत्रगोमयम्।
त्वयि ये स्थापयिष्यन्ति मूढाश्चैतानि सुन्दरि॥३९॥
पच्यन्ते कालसूत्रे ते वर्षाणामयुतं ध्रुवम्॥४०॥

हे सुन्दरी! कुशबीज, तीर्थजल, गव्यपदार्थ, गोमूत्र, गोमय, हे देवी! जो कोई तुम्हारे ऊपर अर्पित करेगा, वह मूर्ख १०००० वर्ष पर्यन्त कालसूत्र नरक में निवास करेगा। (अर्थात् इन वस्तुओं को (सीधे पृथिवी पर न रखें–किसी आधार पर रखकर तब पृथिवी पर रखें)।।३९-४०।।

ब्रह्मा पृथ्वीं समाश्वास्य देवताभिस्तया सह।
जगाम जगतां धाता कैलासं शंकरालयम्॥४१॥

जगत् विधाता ब्रह्मा ने पृथिवी को इस प्रकार से आश्वस्त किया तथा वे देवगण और धरती के साथ वे कैलास पर्वत पर शिवगृह गये।।४१।।

गत्वा तमाश्रमं रम्यं ददर्श शंकरं विधिः। वसन्तमक्षयवटमूले स्वः सरितस्तटे॥४२॥
व्याघ्रचर्मपरीधानं दक्षकन्यास्थिभूषणम्। त्रिशूलपट्टिशधरं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥४३॥
नानासिद्धैः परिवृतं योगीन्द्रगणसेवितम्। परितोऽप्सरसां नृत्यं पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥४४॥
गन्धर्वाणां च सङ्गीतं श्रुतवन्तं कुतूहलात्।
पश्यन्तीं पार्वतीं प्रीत्या पश्यन्तं वक्रचक्षुषा॥४५॥
जपन्तं पञ्चवक्त्रेण हरेर्नामैकमङ्गलम्। मन्दाकिनीपद्मबीजमालया पुलकाङ्कितम्॥४६॥

विधाता उस रम्य आश्रम में गये तथा मन्दाकिनी तटस्थ अक्षय वटमूल पर बैठे शङ्कर को देखा। उनका परिधान था व्याघ्रचर्म तथा भूषण था दक्षपुत्री सती की अस्थि। वे त्रिशूल, पट्टिशधारी थे। वे पंचमुख तथा त्रिनयन अनेक सिद्धों से घिरे योगीन्द्रों से सेवित होकर हंसते हुये आनन्द पूर्वक अप्सराओं का नर्त्तन देख रहे थे। वे कुतूहल पूर्वक गन्धर्वों का गाया संगीत सुन रहे थे तथा पार्वती द्वारा सप्रेम देखे जा रहे थे। इधर शङ्कर भी अपने नेत्रों के कोण से देवी पार्वती की ओर देख रहे थे। प्रभु महेश्वर अपने पांचों मुखों से सतत् मङ्गलमय हरिनाम जप भी कर रहे थे। उनके अंग रोमांचित हो रहे थे। महेश्वर ने मंदाकिनी गंगा को तथा कमलबीज की माला धारण कर रखा था।।४२-४६।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तस्थावग्रे स धूर्जटेः। पृथिव्या सुरसंघैश्च सार्धं प्रणतकंधरैः॥४७॥
उत्तस्थौ शंकरः शीघ्रं भक्त्या दृष्ट्वा जगद्गुरुम्।
ननाम मूर्ध्ना संप्रीत्या लब्धवानाशिषं ततः॥४८॥

शङ्कर ने जब जगद्गुरु ब्रह्मा को वहां समागत देखा, वे तत्काल उठकर खड़े हो गये और उन्होंने नतशिर होकर उन प्रभु को प्रणाम भी किया। ब्रह्मदेव ने उस समय शिव को आशीर्वाद भी प्रदान किया था।।४७-४८।।

प्रणेमुर्देवताः सर्वे शंकरं चन्द्रशेखरम्। प्रणनाम धरा भक्त्या चाऽऽशिषं युयुजे हरः।।४९।।
वृत्तान्तं कथयामास पार्वतीशं प्रजापतिः। श्रुत्वा नतमुखस्तूर्णं शंकरो भक्तवत्सलः।।५०।।
भक्तापायं समाकर्ण्य पार्वतीपरमेश्वरौ। बभूवतुस्तौ दुःखार्तौ बोधयामास तौ विधिः।।५१।।

तदनन्तर सभी देवगण ने उस समय शशिशेखर महादेव को प्रणाम किया। तब पृथिवी ने भी भक्ति के साथ महेश्वर को नमस्कार किया था। महादेव ने भी उस समय इन सबको आशीर्वादात्मक वचन कहा। उस समय प्रजापति ब्रह्मा ने देवी पार्वती से समस्त वृत्तान्त का वर्णन कर दिया। पार्वती तथा परमेश्वर भक्तों पर आ पड़े इस क्लेश को सुनकर दुःखी हो गये और उन्होंने उन सबको सान्त्वना प्रदान किया। इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अनेक प्रकार से शङ्कर को इन सब घटना से अवगत कराया तथा उनको प्रबोधित भी किया।।४९-५१।।

ततो ब्रह्मा महेशश्च सुरसंघान्वसुंधराम्। गृहं प्रस्थापयामास समाश्वास्य प्रयत्नतः।।५२।।

इसके अनन्तर ब्रह्मा तथा शिव ने समागत देवताओं को और वसुन्धरा धरती को अनेक प्रकार का आश्वासन देकर उनको उनके स्थान पर वापस भेज दिया!।।५२।।

ततो देवेश्वरैस्तूर्णमागत्य धर्ममन्दिरम्। सह तेन समालोच्य प्रजग्मुर्भवनं हरेः।।५३।।
वैकुण्ठं परमं धाम जरामृत्युहरं परम्। वायुना धार्यमाणं च ब्रह्माण्डादूर्ध्वमुत्तमम्।।५४।।
कोटियोजनमूर्ध्वं च ब्रह्मलोकात्सनातनम्।
वर्णनीयं न कविभिर्विचित्रं रत्ननिर्मितम्।।५५।।

तत्पश्चात् ब्रह्मा तथा शिव शीघ्रता पूर्वक धर्मदेव के यहां गये तथा उन्होंने परस्परतः विचार-विमर्श किया और वे हरि के लोक वैकुण्ठ गये। वह परमधाम वैकुण्ठ-ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्व में वायुमण्डल से भी ऊर्ध्व स्थित उत्तम लोक है। वह परमधाम जरामृत्युहारी है। यह सनातन वैकुण्ठ ब्रह्माण्ड से भी एक कोटियोजन ऊर्ध्वस्थ है, जिसका वर्णन कर सकना दुष्कर है। वह चित्र-विचित्र रत्नों से निर्मित लोक है।।५३-५५।।

पद्मरागैरिन्द्रनीलै राजमार्गैर्विभूषितम्। ते मनोयायिनः सर्वे संप्रापुस्तं मनोहरम्।।५६।।
हरेरन्तः पुरं गत्वा ददृशुः श्रीहरिं सुराः। रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालङ्कारभूषितम्।।५७।।
रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरशोभितम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम्।।५८।।
पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम्। शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम्।।५९।।
कोटिकन्दर्पलीलाभं स्मितवक्त्रं चतुर्भुजम्। सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैरुपसेवितम्।।६०।।

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुरत्नमुकुटोज्ज्वलम्। परमानन्दरूपं च भक्तानुग्रहकारकम्॥६१॥

वहां के राजमार्ग पद्मराग तथा इन्द्रनील मणिभूषित हैं। देवगण मन की गति से जाकर उस लोक में पहुंचे। यह लोक अत्यन्त मनोहर था। वहां जाकर देवगण हरि के अन्तःपुर में जब गये, तब उन्होंने वहां पर पीतवस्त्रधारी, रत्नकेयूर-रत्नवलय-रत्ननूपुर आदि रत्नालङ्कार से भूषित, रत्नसिंहासनासीन श्रीहरि का दर्शन किया। उन्होंने गले में वनमाला धारण किया था। उनके कपोलों पर कानों से लटकते कुण्डलद्वय शोभायमान थे। शान्तमूर्त्ति सरस्वतीपति चतुर्भुज भगवान् नारायण हंसते हुए करोड़ों कामदेव की शोभा से शोभायमान हो रहे थे! भगवती कमला उनकी चरणसेवा में निरत थीं। उन प्रभु का सर्वाङ्ग चन्दन लिप्त था। उनके मस्तक पर रत्नमुकुट शोभित हो रहा था। वे सुनन्द, नन्द, कुमुद आदि पार्षदों से घिरे थे! वे प्रभु परमानन्दमय तथा भक्तों के प्रति कृपा करने वाले हैं।।५६-६१।।

तं प्रणेमुः सुरेन्द्राश्च भक्त्या ब्रह्मादयो मुने।
तुष्टुवुः परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकंधराः॥६२॥
परमानन्दभारार्ताः पुलकाञ्चितविग्रहाः॥६३॥

ब्रह्मादि देवगण ने ऐसे परमानन्दमय भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु तत्पर प्रभु का दर्शन पाकर उनको भक्ति पूर्वक हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और वे सभी परमानन्द से रोमाञ्चित होकर भक्तिभाव से प्रभु की स्तुति करने लगे।।६२-६३।।

ब्रह्मोवाच

नमामि कमलाकान्तं शान्तं सर्वेशमच्युतम्।
वयं यस्य कलाभेदा कलांशकलया सुराः॥६४॥
मनवश्च मुनीन्द्राश्च मानुषाश्च चराचराः। कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन॥६५॥

ब्रह्मा कहते हैं-हे कमलापति! सर्वेश्वर! अच्युत! शान्तमूर्ति! निरञ्जन! हम सभी आपके अंश से उत्पन्न हैं। ये देवता भी आपके कलांश की कला से जन्मे हैं। मनु, मुनीन्द्रवृन्द, मनुष्य प्रभृतियुक्त यह स्थावर-जङ्गमात्मक विश्व आपके ही अंशांश की अंशकला से प्रादुर्भूत हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।।६४-६५।।

शंकर उवाच

त्वामक्षयमक्षरं वा व्यक्तव्यक्तमीश्वरम्। अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम्॥६६॥
अणिमादिकसिद्धीनां कारणं सर्वकारणम्।
सिद्धिज्ञं सिद्धिदं सिद्धिरूपं कः स्तोतुमीश्वरः॥६७॥

श्रीशङ्कर कहते हैं-हे प्रभो! आप नित्य, अक्षय, आत्माभिराम, ईश्वर, अनादिनिधन, सबके आदि, आनन्दमय, सर्वरूप, अणिमादि सिद्धि के कारण; सबके कारण, सिद्धि को जानने वाले, सिद्धि देने वाले, सिद्धिस्वरूप हैं। आपका स्तव कर सकने में कोई भी समर्थ नहीं है।।६६-६७।।

धर्म उवाच

वेदे निरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः। वेदे निर्वचनीयं यत्तन्निर्वक्तुं च कः क्षमः॥६८॥
यस्य संभावनीयं यद्गुणरूपं निरञ्जनम्। तदतिरिक्तं स्तवनं किमहं स्तौमि निर्गुणम्॥६९॥

धर्मदेव कहते हैं–हे भगवान्! जो वस्तु वेदों में निरूपित है, पण्डितगण उसी का वर्णन करते हैं, तथापि वेद जिसका निरूपण नहीं कर सके, उसका वर्णन अन्य कौन कर सकेगा? आप निरंजन तथा निर्गुण हैं। आपका गुण तथा रूप अचिन्त्य है। आप गुणातीत देव का स्तव कर सकने में कौन समर्थ हो सकता है?॥६८-६९॥

ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं षट्श्लोकोक्तं महामुने।
पठित्वा मुच्यते दुर्गाद्वाञ्छितं च लभेन्नरः॥७०॥
देवानां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच हरिः स्वयम्।
गोलोकं यात यूयं च यामि पश्चाच्छ्रिया सह॥७१॥

हे मुनिप्रवर! ब्रह्मादि द्वारा कहे इन छह श्लोकों वाले स्तव का जो कोई व्यक्ति पाठ करता है, वह सङ्कट से युक्त हो जाता है। उसे वांछित फल की प्राप्ति होती है। श्रीहरि ने देवगण का यह स्तव सुनकर उनसे कहा–"हे देवगण! तुम लोग गोलोक जाओ। मैं भी लक्ष्मी सहित वहीं आ रहा हूं।"॥७०-७१॥

नरनारायणौ तौ द्वौ श्वेतद्वीपनिवासिनौ। एते यास्यन्ति गोलोकं तथा देवी सरस्वती॥७२॥
[1]अनन्ता मम माया च कार्तिकेयो गणाधिपः।
सावित्री वेदमाता च पश्चाद्यास्यन्ति निश्चितम्॥७३॥
तत्राऽहं द्विभुजः कृष्णो गोपीभी राधया सह।
अत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिभिरावृतः॥७४॥
नारायणश्च कृष्णोऽहं श्वेतद्वीपनिवासकृत्।
ममैवैताः कलाः सर्वे देवा ब्रह्मादयः स्मृताः॥७५॥
कलाकलांशकलया सुरासुरनरादयः। गोलोकं यात यूयं च कार्यसिद्धिर्भविष्यति॥७६॥
वयं पश्चाद्गमिष्यामः सर्वेषामिष्टसिद्धये।
इत्युक्त्वा वै सभामध्ये विरराम हरिः स्वयम्॥७७॥

"नर-नारायण, सरस्वती, अनन्त, मेरी-मायारूपा देवी, गणेश, कार्त्तिकेय, प्रसिद्धा वेदमाता सावित्री, ये भी निश्चित रूप से गोलोक जायेंगे। मैं गोलोक में राधा तथा गोपीगण के साथ द्विभुजधारी कृष्णरूपेण प्रकाशमान हूं। वहां मैं सुनन्द आदि सिद्धों से घिरा रहकर लक्ष्मी के साथ अवस्थित रहता

१. क. ०नन्तो म०।

हूं। श्वेतद्वीपवासी नारायण तथा कृष्ण मेरे ही स्वरूप हैं। ब्रह्मादि देवता, मेरे ही अंश से उत्पन्न हैं। ये सभी सुर-असुर मनुष्य आदि सब मेरे ही अंश से उत्पन्न होते हैं। अभी तुम लोग गोलोकधाम गमन करो। तुम लोगों का कार्य सिद्ध होगा। तुम सब लोगों के मनोरथ को पूर्ण करने हेतु हम लोग भी वहां आयेंगे।" यह कहकर उस सभा में श्रीहरि मौन हो गये।।७२-७७।।

प्रणम्य देवताः सर्वा जग्मुर्गोलोकमद्भुतम्। विचित्रं परमं धाम जरामृत्युहरं परम्।।७८।।
ऊर्ध्वं वैकुण्ठतोऽगम्यं पञ्चाशत्कोटियोजनम्।
वायुना धार्यमाणं च निर्मितं स्वेच्छया विभोः।।७९।।
तमनिर्वचनीयं च देवास्ते गमनोत्सुकाः[१]। ते मनोयायिनः सर्वे संप्रापुर्विरजातटम्।।८०।।
दृष्ट्वा देवाः सरित्तीरं विस्मयं परमं ययुः। शुद्धस्फटिकसंकाशं सुविस्तीर्णं मनोहरम्।।८१।।

इसके पश्चात् देवता भी हरि को प्रणाम करके जरा-मृत्यु रहित अद्भुत परम गोलोकधाम चले गये। यह अगम्य गोलोक धाम वैकुण्ठ के ५० करोड़ योजन ऊर्ध्व में अवस्थित है। वह हरि की इच्छा के अनुकूल निर्मित है। उसे वायु ने धारण किया है। वायु के आधार पर स्थित है। मनोवेग से चलने वाले वे देवता गोलोकधाम के लिये जाते-जाते क्रमशः विरजा नदी के तट पर पहुंच गये। वहां देवगण ने स्फटिकतुल्य विस्तीर्ण नदी तट को देखा, जिससे वे अत्यन्त विस्मित हो गये।।७८-८१।।

मुक्तामाणिक्यपरममणिरत्नाकरान्वितम्। कृष्णशुभ्रहरिद्रक्तमणिराजिविराजितम्।।८२।।
प्रवालाङ्कुरमुद्भूतं कुत्रचित्सुमनोहरम्। परमामूल्यसद्रत्नाकरराजिविभूषितम्।।८३।।
विधेरदृश्यमाश्चर्यं निधिश्रेष्ठाकरान्वितम्। पद्मरागेन्द्रनीलानामाकरं कुत्रचिन्मुने।।८४।।
कुत्रचिच्च मरकताकरश्रेणीसमन्वितम्। स्यमन्तकाकरं कुत्र कुत्रचिद्रुचकाकरम्।।८५।।
अमूल्यपीतवर्णाभं मणिश्रेण्याकरान्वितम्। रत्नाकरं कुत्रचिच्च कुत्रचित्कौस्तुभाकरम्।।८६।।
कुत्रानिर्वचनीयानां मणीनामाकरं परम्। कुत्रचित्कुत्रचिद्रम्यविहारस्थलमुत्तमम्।।८७।।

वहां का कोई-कोई स्थान मुक्ता, माणिक्य, पारसमणि तथा रत्नों की खान से घिरा था। वहां कृष्णवर्ण, श्वेतवर्ण, हरितवर्ण, रक्तवर्ण के रत्नसमूह शोभायमान हो रहे थे। कोई-कोई स्थल अतीव मनोहर प्रवालाङ्कुर से उद्भूत था। कोई-कोई स्थल अमूल्य मणियों द्वारा भूषित लग रहा था। हे नारद! कहां कोई स्थान ऐसा था, जो विधाता ब्रह्मा को भी दृष्टिगोचर नहीं हो सकता था। वह अत्याश्चर्य श्रेष्ठतम निधियों की खान था। वहां पद्मराग तथा नीलमणि की खानें थी। कहीं-कहीं स्यमन्तकमणि की, तो कहीं-कहीं रुचकमणि की, तो कहीं अमूल्य पीतवर्ण मणियों तथा रत्नों की खानें थीं। कहीं-कहीं तो कौस्तुभमणि की खानें भी थीं। कई स्थान पर तो अकथनीय मणियों की उत्कृष्टतम खानें विद्यमान थीं। कहीं-कहीं तो विहार योग्य उत्तम स्थल भी देवगण ने देखा।।८२-८७।।

---
१. क. ०नोन्मुखाः।

दृष्ट्वा तु परमाश्चर्यं जग्मुस्तत्पारमीश्वराः। ददृशुः पर्वतश्रेष्ठं शतशृङ्गं मनोरमम्॥८८॥
पारिजाततरूणां च वनराजिविराजितम्। कल्पवृक्षैः परिवृतं वेष्टितं कामधेनुभिः॥८९॥
कोटियोजनमूर्ध्वं च दैर्घ्यं दशगुणोत्तरम्। शैलप्रस्थपरिमितं पञ्चाशत्कोटियोजनम्॥९०॥
प्राकाराकारमस्यैव शिखरे रासमण्डलम्। दशयोजनविस्तीर्णां वर्तुलाकारमुत्तमम्॥९१॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना। संकुलेन मधुघ्राणां समूहेन समन्वितम्॥९२॥
सुरतद्रव्यसंयुक्तै राजितं रत्नमन्दिरैः। रत्नमण्डपकोटीनां सहस्रेण समन्वितम्॥९३॥
रत्नसोपानयुक्तेन सद्रत्नकलशेन च। हरिन्मणीनां स्तम्भेन शोभितेन च शोभितम्॥९४॥
सिंदूरवर्णमणिभिः परितः खचितेन च। इन्द्रनीलर्मध्यगतैर्मण्डितेन मनोहरैः॥९५॥
[१]रत्नप्राकारसंयुक्तमणिभेदैर्विराजितम्। द्वारैः कपाटसंयुक्तैश्चतुर्भिश्च विराजितम्॥९६॥

देवगण ने वहां जब इन अत्याश्चर्यप्रद सभी वस्तु को देखा, तब वे नदी के उस पार गये। वहां उन देवगण ने शतशृङ्ग नामक एक पर्वतश्रेष्ठ को देखा। वह पारिजात वृक्षों के वन से, कल्पवृक्ष समूह के वृक्षों से और कामधेनु गौओं से परिपूर्ण था। यह पर्वत उच्चता में कोटियोजन, विस्तार में १० गुना अधिक था। उसकी लम्बाई ५० करोड़ योजन थी। यह पर्वत गोलोक के चतुर्दिक् एक दीवार जैसा प्रतीत हो रहा था। इस पर्वत शिखर पर १० योजन विस्तीर्ण वर्तुलाकृति उत्तम रासमण्डल था। यह भ्रमरों से परिपूर्ण, सुगन्धित पुष्पित हजारों पुष्पोद्यानों से समन्वित, उत्तम रत्नयुक्त, रतिमन्दिरों के समूह से शोभायमान, उत्तम रत्नयुक्त सहस्रकोटि मण्डपों से युक्त था। वहां के सभी सोपान रत्न से जटित थे। वहां उत्तम रत्नों के पुष्पों से सजे सुशोभित हरितवर्ण मणियों से जड़े स्तम्भ बने थे। अनेक स्तम्भ तो चारों ओर सिन्दूरवर्णी मणिजटित थे। उनके मध्यभाग तो मनोहर इन्द्रनीलमणियों से सज्जित थे। वह रत्नमयी दीवारों से युक्त विशेष मणियों से बने कपाट वाले ४ द्वारों से शोभित स्थान था।।८८-९६।।

रज्जुग्रन्थिसमायुक्तं[२] रसालपल्लवान्वितैः। परितः कदलीस्तम्भसमूहैश्च समन्वितम्॥९७॥
[३]शुक्लधान्यपर्णजालफलदूर्वांकुरान्वितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम्॥९८॥
वेष्टितं गोपकन्यानां समूहैः कोटिशो मुने। रत्नालङ्कारसंयुक्तै रत्नमालाविराजितैः॥९९॥
रत्नकंकणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः॥१००॥

वहां चतुर्दिक् वज्रग्रन्थि वाले रसाल पल्लवों युक्त कदली स्ताम्भों के समूह विराजित थे। वहां श्वेत धान्य, पर्ण, लावा, फल, दूर्वाङ्कुर तथा चन्दन अगुरु, कस्तूरी एवं कुङ्कुम से चर्चित थे। वह स्थान कोटि-कोटि गोपकन्याओं से भरा था। वे सभी कन्यायें रत्नाभरण एवं रत्न मालाओं से सजी थीं। उन

१. क. ०त्नप्रकाशसं०।
२. क. युक्तै र।
३. क. र्णलाजाफ०।

कन्याओं ने रत्नकङ्कण तथा नूपुर धारण किया था। उनके कपोल कुण्डल की जोड़ी से शोभायमान हो रहे थे।।९७-१००।।

रत्नाङ्गुलीयललितैर्हस्ताङ्गुलिविराजितैः। रत्नपाशकवृन्दैश्च[1] विराजितपदाङ्गुलैः।।१०१।।
भूषितै रत्नभूषाभिः सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलैः। गजेन्द्रमुक्तालङ्कारैर्नासिकामध्यराजितैः।।१०२।।

उनकी रम्य उंगलियां रत्न की अंगूठियों से शोभित हो रही थी। उनके चरणों की उंगलिया रत्न के बिछुओं से तथा रत्नाभरण भूषित थीं। वे उत्तम रत्नों के मुकुटों की उज्वलता से प्रकाशमान थीं। उनकी नासिका में गजमुक्ता का अलंकार शोभायमान था।।१०१-१०२।।

सिन्दूरबिन्दुना सार्धमलकाधः स्थलोज्ज्वलैः। चारुचम्पकवर्णाभैश्चन्दनाद्रवचर्चितैः।।१०३।।
पीतवस्त्रपरीधानैर्बिम्बाधरमनोहरैः। शरत्पार्वणचन्द्राणां प्रभाजुष्टमुखोज्ज्वलैः।।१०४।।
शरत्प्रफुल्लपद्मानां शोभामोषणलोचनैः।
कस्तूरीपत्रिकायुक्तैः रेखाक्तकज्जलोज्ज्वलैः।।१०५।।

इनके ललाट के नीचे सिन्दूर की बिन्दी लगी थी, जिससे वह स्थान उज्वलता की चमक से युक्त प्रतीत हो रहा था। वे सभी उत्कृष्ट चम्पा के वर्ण वाली चन्दन से लिप्त थीं। उन सभी ने पीले रंग के वस्त्र पहने थे। उनका मुखमण्डल बिम्बफल में वर्ण वाले मनोरम अधरोष्ठ से अत्यन्त चित्ताकर्षक लग रहा था। उन सभी के नेत्र शारदीय कमल की भी शोभा को अपनी प्रभा से लज्जित करने वाले थे। उनका आनन कस्तूरी पत्रिकाकंन तथा काजल की रेखा से उज्वल था।।१०३-१०५।।

प्रफुल्लमालतीमालाजालैः कबरशोभितैः।
मधुलुब्धमधुध्राणां समूहैश्चापि संकुलैः।।१०६।।
चारुणा गमनेनैव गजखञ्जनगञ्जनैः।।१०७।।

वक्रभ्रूभङ्गसंयोगश्लक्ष्णस्मितसमन्वितैः। पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिविराजितैः।।१०८।।
खगेन्द्रचञ्चूशोभाढ्यनासिकोन्नतभूषितैः। गजेन्द्रगण्डयुग्माभस्तनभारनतैरिव।।१०९।।
नितम्बकठिनश्रोणीपीनभारभरानतैः। कन्दर्पशरचेष्टाभिर्जर्जरीभूतमानसैः।।११०।।
दर्पणैः पूर्णचन्द्रास्यसौन्दर्यदर्शनोत्सुकैः। राधिकाचरणाम्भोजसेवासक्तमनोरथैः।।१११।।

वे सभी गोपियां खिली मालती मालाओं को पहनने के कारण अत्यन्त शोभायमान हो रही थीं। उनका केशपाश ऐसा लग रहा था मानो वह मधुलोभी भ्रमरों का समूह हो। उनकी चाल गज तथा खंजन की चाल को भी उपहासास्पद बना रही थी। वे कटाक्षयुक्त मृदु हास्य कर रही थीं। उनकी दन्तपंक्ति पके अनार के फल के दोनों के समान प्रतीत हो रही थीं। उनकी नासिका गरुड़ आदि श्रेष्ठ पक्षीगण की चोंच जैसी उच्च एवं मनोहर थी। उनके स्तनयुगल गजराज के गण्डस्थल की तरह थे,

---

१. क. ०कषट्कैश्च।

जिनके नितम्बों एवं कठोर स्थूल जङ्घाओं के भार से वे झुकी जा रहीं थीं। उनका अन्तर्मन काम-बाण के कारण जर्जर एवं विद्ध हो गया था। वे अलग-अलग दर्पणों में अपने पूर्णचन्द्र ऐसे मुख का सौन्दर्य देखने में तत्पर थीं। वे सभी गोपकन्यायें राधिका के चरणकमल की सेवा में आसक्त थीं, ऐसा देवगण ने वहां देखा!।।१०६-१११।।

सुन्दरीणां समूहैश्च रक्षितं राधिकाज्ञया। क्रीडासरोवराणां च लक्षैश्च परिवेष्टितम्।।११२।।
श्वेतरक्तैर्लोहितैश्च वेष्टितैः पद्मराजितैः। सुकूजद्भिर्मधुधाणां समूहैः संकुलैः सदा।।११३।।

इन गोपकन्याओं के समूह से रासमण्डल शोभायमान हो रहा था। वे राधिका की आज्ञा से वहां रक्षा कार्य कर रही थीं। वह स्थल लाखों क्रीड़ा सरोवरों से घिरा था। वे सरोवर भी श्वेत, रक्त, लोहित वर्ण के कमल पुष्पों से घिरे थे। वहां पर पक्षीगण का कूंजन एवं भ्रमरगण का गुंजन सदा श्रुतिगोचर होता रहता था।।११२-११३।।

पुष्पोद्यानसहस्त्रेण पुष्पितेन समन्वितम्। कोटिकुञ्जकुटीरैश्च पुष्पशय्यासमन्वितैः।।११४।।

वहां पुष्पित पुष्पों से भरे सहस्त्रों उपवन थे। वहां के करोड़ों कुंज पुष्प शैय्या एवं कुटीरों से भरपूर रहते थे।।११४।।

भोगद्रव्यसकर्पूरताम्बूलवस्त्रसंयुतैः। रत्नप्रदीपैः परितः श्वेतचामरदर्पणैः।।११५।।
विचित्रपुष्पमालाभिः शोभितैः शोभितं मुने।
तं रासमण्डपं दृष्ट्वा जग्मुस्ते पर्वताद्बहिः।।११६।।

वे सभी कुंज, कुटीर विभिन्न भोग्यवस्तु, कर्पूर, ताम्बूल, वस्त्र, रत्नमय दीपक, श्वेत चामर, दर्पण तथा विभिन्न प्रकार की पुष्प मालाओं से सज्जित थे। हे मुनिवर! वे सभी देवगण इस राजमण्डल की शोभा को देखकर पर्वत के बाहर आये।।११५-११६।।

ततो विचक्षणं रम्यं ददृशुः सुन्दरं वनम्। वनं वृन्दावनं नाम राधामाधवयोः प्रियम्।।११७।।

तभी उन्होंने एक विलक्षण रम्य सुन्दर वन को देखा। यह राधामाधव का प्रिय वृन्दावन था!।।११७।।

क्रीडास्थानं तयोरेव कल्पवृक्षचयान्वितम्।
विरजातीरनीरात्तैः कम्पितं मन्दवायुभिः।।११८।।
कस्तूरीयुक्तपत्राब्जैः पुष्पौघैः सुरभीकृतम्। नवपल्लवसंसक्तपरपुष्टरुतैर्युतम्।।११९।।
कुत्र केलिकदम्बानां कदम्बैः कमनीयकम्।
मन्दाराणां चम्पकानां चन्दनानां तथैव च।।१२०।।
सुगन्धिकुसुमानां च गन्धेन सुरभीकृतम्।
आम्राणां[१] नागरङ्गाणां पनसानां तथैव च।।१२१।।

---
१. क. ०वङ्गरा०।

तालानां नारिकेलानां वन्दैर्वृन्दारकं वनम्।
जम्बूनां बदरीणां च खर्जूराणां विशेषतः॥१२२॥
गुवाकाभ्रातकानां च जम्बीराणां च नारद।
कदलीनां श्रीफलानां दाडिमानां मनोहरैः॥१२३॥
सुपक्वफलसंयुक्तैः समूहैश्च विराजितम्।
प्रियालीनां च शालानामश्वत्थानां तथैव च॥१२४॥
निम्बानां शाल्मलीनां च तित्तिडीनां च शोभनैः।
अन्येषां तरुभेदानां संकुलैः संकुलं सदा॥१२५॥
परितः कल्पवृक्षाणां वृन्दैर्वृन्दैर्विराजितम्।
मल्लिकामालतीकुन्दकेतकीमाधवीलताः॥१२६॥
एतासां च समूहैश्च यूथिकाभिः समन्वितम्।
चारुकुञ्जकुटीरैस्तैः पञ्चाशत्कोटिभिर्मुने॥१२७॥

यह वन फल-वृक्ष शोभित विरजा नदी के सुशीतल कणों को वहन करने वाला, कस्तूरीपत्र संस्पर्शी वायुयुक्त राधामाधव का क्रीड़ा स्थान था। हे नारद! इस वृन्दावन का कोई भाग मधुर शब्द करने वाले भ्रमरगण से युक्त, नवपल्लव शोभित, केलिकदम्ब समूह से कमनीय लग रहा था। कोई-कोई भाग चन्दन, मंदार, चम्पा प्रभृति वृक्ष के सुगन्धित पुष्पों की गन्ध से शोभायमान था। कहीं आम, नागरंग, पनस, ताल, नारियल, जम्बू, बेर, खर्जूर, गुवाक, आम्रातक, जम्बीर, कदली, श्रीफल, अनार, प्रभृति मनोहर सुपक्व फलयुक्त वृक्ष विराजमान थे तथा पियाल, साल, पीपल, नीम, सेमल, तिन्तिड़ी आदि शोभन वृक्षसमूह भी वहां मिल रहे थे। इनके अतिरिक्त अन्य वृक्षों से वह स्थान संकुल था। ऊपर से वहां चारों ओर कल्पवृक्ष भी विराजमान थे। ऐसे शोभित वन में अनेक प्रकार की मल्लिका, मालती, कुन्द, केतकी, माधवीलता, यूथिका के पुष्प समूह इस वन में शोभा सम्पादित कर रहे थे। यहां पर ५० करोड़ उत्तम कुंज-कुटीर निर्मित थे।।११८-१२७।।

रत्नप्रदीपदीपैश्च धूपेन सुरभीकृतैः। शृङ्गारद्रव्ययुक्तैश्च वासितैर्गन्धवायुभिः॥१२८॥
चन्दनाक्तैः पुष्पतल्पैर्मालाजालसमन्वितैः।
मधुलुब्धमधुघ्राणां कलशब्दैश्च शब्दितम्॥१२९॥
रत्नालङ्कारशोभाढ्यैर्गोपीवृन्दैश्च वेष्टितम्।
पञ्चाशत्कोटिगोपीभी रक्षितं राधिकाज्ञया॥१३०॥

हे नारद! देवगण ने देखा कि ये सभी कुटीर धूप एवं रत्नदीपकों, सुवासित उत्तम सुरभित वायु एवं उत्तम शृङ्गार द्रव्यों से पूर्ण थे। यहां के कुटीर मालाओं से सज्जित, चन्दन चर्चित मनोहर पुष्पशय्या से युक्त थे। वहां पर मधुलोभी मधुकर समूह का मधुरशब्द गुञ्जायमान रहता था। वहां पर रत्नालङ्कार

भूषिता गोपियां चारों ओर विराजित रहती थीं। राधा की आज्ञा से वह स्थल ५० कोटि गोपीगण से रक्षित था।।१२८-१३०।।

द्वात्रिंशत्काननं तत्र रम्यं रम्यं मनोहरम्।
वृन्दावनाभ्यन्तरितं निर्जनस्थानमुत्तमम्।।१३१।।

वहां पर रम्य ३२ मनोहर वन थे। यह वृन्दावन स्थल ऐसा था, जहां उत्तम प्रकार के ये वन अत्यन्त रमणीय तथा कतिपय निर्जन स्थल युक्त थे।।१३१।।

सुपक्वमधुरस्वादुफलैर्वृन्दारकं मुने। गोष्ठानां च गवां चैव समूहैश्च समन्वितम्।।१३२।।
पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना। मधुलुब्धमधुघ्राणां समूहेन समन्वितम्।।१३३।।
पञ्चाशत्कोटिगोपानां विलासैश्च विराजितम्।
श्रीकृष्णतुल्यरूपाणां सद्रत्नगुण्टितैर्वरैः।।१३४।।
दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं ययुर्गोलोकमीश्वराः।
परितो वर्तुलाकारं कोटियोजनविस्तृतम्।।१३५।।

हे नारद! इस वृन्दावन के अभ्यन्तर में एक सुन्दर निर्जन स्थान था। सुपक्व, मधुर, स्वादिष्ट फल के कारण यह वह अत्यन्त श्रेष्ठ था। यहां पर गोष्ठ समूह विचरता था। सुगन्धित पुष्पित पुष्पोद्यान हजारों-हजार भ्रमरमण्डली से युक्त था जहां श्रीकृष्ण के समान रूप वाले ५० करोड़ गोपजन अनुपम रत्न से बने सुन्दर निवास स्थलों में रहा करते थे। देवता ऐसे रम्य वृन्दावन का अवलोकन करते चतुर्दिक् वर्त्तुलाकार एक करोड़ योजन विस्तीर्ण गोलोकधाम में पहुंचे।।१३२-१३५।।

रत्नप्राकारसंयुक्तं चतुर्द्वारान्वितं मुने। गोपानां च समूहैश्च द्वारपालैः समन्वितम्।।१३६।।
आश्रमै रत्नखचितैर्नानाभोगसमन्वितैः।
गोपानां कृष्णभृत्यानां पञ्चाशत्कोटिभिर्युतम्।।१३७।।

हे मुनिप्रवर! यह स्थान रत्नों की चहारदिवारी से घिरा है। इसके ४ द्वार हैं। यहां द्वारपाल एवं गोपसमूह भी रहते हैं। यहां रत्नजटित तथा अनेक प्रकार की भोग्यवस्तु भरी रहती है। यहां श्रीकृष्ण के सेवकों के ५० करोड़ ऐसे निवास आश्रम बने हैं।।१३६-१३७।।

भक्तानां गोपवृन्दानामाश्रमैः शतकोटिभिः। ततोऽधिकसुविस्तीर्णैः सद्रत्नग्रथितैर्युतम्।।१३८।।
आश्रमैः पार्षदानां च ततोऽधिकविलक्षणैः।
अमूल्यरत्नरचितैः संयुक्तं शतकोटिभिः।।१३९।।
पार्षदप्रवराणां च श्रीकृष्णरूपधारिणाम्।
आश्रमैः कोटिभिर्युक्तं सद्रत्नेन विनिर्मितैः।।१४०।।
राधिकाशुद्धभक्तानां गोपीनामाश्रमैर्वरैः। सद्रत्नरचितैर्दिव्यैर्द्वात्रिंशत्कोटिभिर्युतम्।।१४१।।

तासां च किङ्करीणां च भवनैः सुमनोहरैः।
मणिरत्नादिरचितैः शोभितं दशकोटिभिः॥१४२॥

इन गोप भक्तवृन्द के आश्रम वहां सौ करोड़ संख्यक हैं। ये पहले कहे आश्रमों से अत्यधिक विस्तीर्ण एवं उत्तम रत्नों से ग्रथित हैं। कृष्ण पार्षदों के आश्रम इससे भी अधिक विलक्षण अमूल्य रत्नों से युक्त सौ करोड़ संख्यक हैं। जो प्रमुख पार्षद हैं, वे कृष्ण के जैसे रूप वाले हैं। उनके एक करोड़ आश्रम सद्रत्न खचित हैं। (खचित-रत्न जड़ें हैं)। राधा की शुद्ध भक्त श्रेष्ठ गोपीगण के ३२ कोटि दिव्य उत्तम आश्रम हैं। ये सभी श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित हैं। राधा की किङ्करियों के १० कोटि अत्यन्त मनोहर भवन मणिरत्नादि विनिर्मित हैं। वे अत्यन्त शोभित होते रहते हैं।।१३८-१४२।।

शतजन्मतपःपूता भक्ता ये भारते भुवि। हरिभक्तिपरा ये च कर्मनिर्वाणकारकाः॥१४३॥
स्वप्ने ज्ञाने हरेर्ध्याने निविष्टमानसा मुने।
राधाकृष्णोति कृष्णोति प्रजपन्तो दिवानिशम्॥१४४॥
तेषां श्रीकृष्णभक्तानां निवासैः सुमनोहरैः। सद्रत्नमणिनिर्माणैर्नानाभोगसमन्वितैः॥१४५॥
पुष्पशय्यापुष्पमालाश्वेतचामरशोभितैः। रत्नदर्पणशोभाढ्यैर्हरिन्मणिसमर्पितैः॥१४६॥
अमूल्यरत्नकलशसमूहान्वितशेखरैः। सूक्ष्मवस्त्राभ्यन्तरितैः संयुक्तं शतकोटिभिः॥१४७॥

हे मुनिवर! जो भक्तपुरुष सौ जन्मों तक भारतभूमि में तपःपूत होकर हरिभक्तिपरायण तथा कर्मबन्धन रहित होकर स्वप्न में अथवा जागते हुये, हरि ध्यान में चित्त लगाये रहते हैं तथा दिन-रात 'राधाकृष्ण'' यह नाम जप करते रहते हैं, ऐसे परम भक्तों हेतु नाना-भोग सामग्री से युक्त परम मनोहर सद्रत्न-मणियों से निर्मित अनेक निवास स्थल निर्मित हैं। वहां पुष्पमालाओं से सभी पुष्पशय्या, श्वेत चामर, रत्न के बने दर्पण, मरकतमणियों तथा अमूल्य रत्नकलश युक्त शिखर स्थित हैं। वे सभी कलश सूक्ष्म वस्त्रावरण से आच्छादित शतकोटि संख्या में वहां हैं।।१४३-१४७।।

देवास्तमद्भूतं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययुर्मुदा। तत्राक्षयवटं रम्यं ददृशुर्जगदीश्वराः॥१४८॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णमूर्ध्वं तद्द्विगुणं मुने। सहस्रस्कन्धसंयुक्तशाखासंस्थासमन्वितम्॥१४९॥
रक्तपक्वफलाकीर्णं शोभितं रत्नवेदिभिः। कृष्णस्वरूपांस्तन्मूले ददृशुर्वल्लभाञ्छिशून्॥१५०॥

जगत्प्रभु देवगण इस अद्भुत-गोलोकधाम का दर्शन करके आनन्द से कुछ दूर गये। उन्होंने वहां रमणीय अक्षय वटवृक्ष को देखा। यह अक्षयवट पाँच योजन विस्तीर्ण तथा दस योजन उन्नत था। यह सहस्र स्कन्धों वाला, असंख्य शाखायुक्त, रत्नमय वेदीमण्डल से शोभित तथा सुपक्व रत्नमय फलों से भरा था। तदनन्तर देवगण ने इस वटवृक्ष के नीचे पीतवस्त्रधारी क्रीड़ासक्त मधुमूर्ति रत्नभूषणभूषित तथा चन्दन से चर्चित अंग वाले कृष्ण स्वरूप गोप बालकों को देखा।।१४८-१५०।।

पीतवस्त्रपरीधानान्क्रीडासक्तमनोहरान्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गान्रत्नभूषणभूषितान्॥१५१॥
ददृशुस्तत्र देवेशाः पार्षदप्रवरान्हरेः। ततोऽविदूरे ददृशु राजमार्गं मनोहरम्॥१५२॥

सिन्दूराकारमणिभिः परितो रचितं मुने। इन्द्रनीलैः पद्मरागैर्हीरकै रुचकैस्तथा॥१५३॥
निर्मितैर्वेदिभिर्युक्तं परितो रत्नमण्डलम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम्॥१५४॥

वे सभी पीतवस्त्रधारी तथा मनोहर एवं क्रीड़ारत थे। उनका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित था। हे नारद! तदनन्तर देवताओं ने कृष्ण के श्रेष्ठ पार्षदों को देखा तथा अत्यन्त दूरी पर सिन्दूरवत्, रक्तवर्ण, पद्मरागमणि, इन्द्रनीलमणि,हीरा तथा रुचक से निर्मित अनेक वेदी से दोनों ओर सुशोभित मनोहर राजमार्ग को देखा। यह राजमार्ग अगुरु, चन्दन, कस्तूरी, कुङ्कुमरस से सिक्त था। उसके चारों ओर अपूर्व वेदिकायुक्त रत्नमण्डप विश्रामार्थ विराजित था। इस राजपथ में जगह-जगह कुङ्कुम लिप्त केले के खम्भे लगे थे। उसमें महीन धागे से ग्रथित श्रीखण्ड के पत्तों की माला विराजमान थी। (पत्तों की माला=बन्दनवार)। उस राजमार्ग पर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कङ्कुम के मिश्रित जल को छिड़का गया था॥१५१-१५४॥

दधिपर्णलाजफलपुष्पदूर्वाङ्कुरान्वितम्। सूक्ष्मसूत्रग्रन्थियुक्तश्रीखण्डपल्लवान्वितम्॥१५५॥
रम्भास्तम्भसमूहैश्च कुङ्कुमाक्तैर्विराजितम्। सद्रत्नमण्डलघटैः फलशाखासमन्वितैः॥१५६॥
सिन्दूरकुङ्कुमाक्तैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः। भूषितैः पुष्पमालाभिः पादपैः परिभूषितम्॥१५७॥

वहां दधि, पर्ण, लावा, फल, पुष्प, दूर्वाङ्कुर प्रभृति मंगल द्रव्य उसमें संलग्न थे। उन सभी बन्दनवार पर कुङ्कुम केसर का छिड़काव किया गया था, जो सभी गन्ध-चन्दन से लिप्त था। मार्ग में स्थान-स्थान पर पुष्पमाला विभूषित वृक्ष राजमार्ग को अत्यन्त शोभायमान कर रहे थे॥१५५-१५७॥

गोपिकानां समूहैश्च क्रीडासक्तैश्च वेष्टितम्।
बहुमूल्येन रत्नेन रत्नसोपाननिर्मितान्॥१५८॥
वह्निशौचांशुकै रम्यैः श्वेतचामरदर्पणैः। रत्नतल्पविचित्रैश्च पुष्पमाल्यैर्विराजितान्॥१५९॥
षोडशद्वारसंयुक्तान्द्वारपालैश्च रक्षितान्। परितः परिखायुक्तान्रत्नप्राकारवेष्टितान्॥१६०॥

यह राजपथ क्रीड़ासक्त गोपियों से चतुर्दिक् व्याप्त था। तदनन्तर आगे जाने के उत्सुक देवगण ने बहुमूल्य रत्नों से निर्मित सोपानों से शोभायमान, अग्नि से विशुद्धवस्त्र, श्वेत चामर, दर्पण, रत्नशय्या तथा पुष्पमाला से सज्जित, १६ द्वारों वाले, रत्नमय चहारदिवार से घिरे, परिखा युक्त (जल की खाई से चतुर्दिक् रक्षित), अगुरु, चन्दन, कुङ्कुम चर्चित तथा असंख्य द्वारपालों से घिरे तथा उनके द्वारा रक्षित मनोरम राजपुर को देखा। वह चतुर्दिक् जल की खाई एवं रक्तवर्ण दीवार से घिरा था॥१५८-१६०॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितान्। गृहान्मनोरमान्दृष्ट्वा ते देवा गमनोत्सुकाः॥१६१॥
जग्मुः शीघ्रं कियद्दूरं ददृशुः सुन्दरं ततः। आश्रमं राधिकायाश्च रासेश्वर्याश्च नारद॥१६२॥

हे नारद! उन देवताओं ने उस राजपुर को चन्दन अगुरु-कस्तूरी, कुङ्कुम से चर्चित देखा। वहां

मनोरम गृह को देखकर देवता उसकी ओर उत्सुकता के साथ शीघ्र जाने लगे। कुछ दूर जाकर उन्होंने रासेश्वरी राधिका का सुन्दर आश्रम देखा।।१६१-१६२।।

देवाधिदेव्या गोपीनां वरायाश्चारुनिर्मितम्।
प्राणाधिकायाः कृष्णस्य रम्यद्रव्यमनोहरम्।।१६३।।
सर्वानिर्वचनीयं च पण्डितैर्न निरूपितम्।
सुचारुवर्तुलाकारं षड्गव्यूतिप्रमाणकम्।।१६४।।
शतमन्दिरसंयुक्तं ज्वलितं रत्नतेजसा। अमूल्यरत्नसाराणां चयैर्विरचितं वरम्।।१६५।।

वे देवतागण की आदि देवी राधिका गोपियों में श्रेष्ठतम थी। उन श्रीकृष्ण प्राणाधिका राधा का आश्रय अत्यन्त मनोरम था। वे इतने रमणीय द्रव्य थे, जो अकथनीय थे। विद्वान् लोग भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। वह अनिर्वचनीय जो हैं। वह आश्रम उत्तम वत्तुलाकार तथा १२ क्रोश विस्तार वाला था। वहां १०० मन्दिर (गृह) बने थे। वह रत्नों के तेज से ज्वलन्त रहता है। अमूल्य रत्नों के सार से वह बन सका है।।१६३-१६५।।

दुर्लङ्घ्याभिर्गभीराभिः परिखाभिः सुशोभितम्।
कल्पवृक्षैः परिवृतं पुष्पोद्यानशतान्तरम्।।१६६।।
सुमूल्यरत्नखचितप्राकारैः परिवेष्टितम्। सद्रत्नवेदिकायुक्तैर्युक्तं द्वारैश्च सप्तभिः।।१६७।।
संयुक्तं रत्नचित्रैश्च विचित्रैर्वर्तुलं मुने। प्रधानसप्तद्वारेभ्यः क्रमशः क्रमशो मुने।।१६८।।
सर्वतोऽपि ततस्तत्र षोडशद्वारसंयुतम्। देवा दृष्ट्वा च प्राकारं सहस्रधनुरुच्छ्रितम्।।१६९।।

वह उत्तम रत्नों से जड़ी दीवार से घिरा तथा खाईयों से भी चतुर्दिक् परिवेष्टित हैं। वहां कल्पवृक्ष सभी दिशा से उस स्थल को घेरे स्थित रहते हैं। वहां उत्तमरत्न वेदिका वाले सात द्वार हैं। इन द्वार पर नाना प्रकार के रत्न जड़े हैं। उस पर विचित्र रत्नों के बने चित्र भी हैं। हे मुनि! क्रमशः इन सात प्रधान द्वार को पार करके वह आश्रम षोडश द्वार वाला है। वहां देवगण ने १००० धनुष उच्च उसकी चाहारदीवार को देखा।।१६६-१६९।।

सद्रत्नक्षुद्रकलशसमूहैः सुमनोहरैः। प्रदीप्तं तेजसा रम्यं परमं विस्मयं ययुः।।१७०।।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य कियद्दूरं ययुर्मुदा। पुरतो गच्छतां तेषां पश्चाद्धुतस्तदाश्रमः।।१७१।।
गोपानां गोपिकानां च ददृशुश्चाऽऽश्रमान्परान्। अमूल्यरत्नरचिताञ्छतकोटिमितान्मुने।।१७२।।
दर्शं दर्शं च परितो गोपानां सर्वमाश्रमम्।
गोपिकानां चापरं वा रम्यं रम्यं नवं नवम्।।१७३।।

इसके परकोटे को अत्यन्त छोटे आकार के उत्तम रत्न जड़ित रत्नकलश समूह अपनी दीप्ति से उद्भासित कर रहे थे। यह दृश्य देखकर देवता अतीव विस्मित हो गये। तदनन्तर वे इस आश्रम की

प्रदक्षिणा करने के उपरान्त अत्यन्त आनन्दित मन से कुछ आगे भी गये। अब यह आश्रम देवगण के पीछे छूट गया एवं देवगण आगे थे। हे नारद! इसके पश्चात् देवगण ने गोपालों एवं गोपिकाओं के अमूल्य रत्नमय सौ कोटि अत्युत्तम निवास को देखा। इसके अनन्तर देवगण ने चारों ओर श्रेष्ठ स्तर के गोपालों एवं गोपिकाओं के अन्य प्रकार के सुन्दर आश्रम देखना प्रारम्भ किया।।१७०-१७३।।

गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा पुलकाङ्गं ययुः सुराः।
तदेव वर्तुलाकारं रम्यं वृन्दावनं वनम्॥१७४॥

ददृशुः शतशृङ्गं च तद्बहिर्विरजानदीम्। विरजां तां ययुर्देवा ददृशुः शून्यमेव च॥१७५॥

देवता इस सम्पूर्ण गोलोक को देखकर रोमाञ्चित हो उठे। वे वर्तुलाकृति वृन्दावन का अवलोकन करके पावन गोलोक पहुंचे। वहां उन्होंने शतशृङ्ग पर्वत, विरजानदी आदि का दर्शन किया। इसके पशचात् देवगण ने और आगे आकर वायु के आधार वाले उत्तम रत्नमय अत्याश्चर्य गोलोक धाम को देखा। विरजा के उपरान्त देवगण से सब शून्यवत् स्थान को भी देखा था।१७४-१७५।।

वाय्वाधारं च गोलोकं सद्रत्नमयमद्भुतम्।
ईश्वरेच्छाविनिर्माणं राधिकाज्ञानुबन्धनात्॥१७६॥

यह गोलोक अद्भुत लोक है, जो वायु के आधार पर स्थित है। वह रत्नमय है। उसका निर्माण ईश्वरेच्छा से हुआ है। यहां ईश्वर ने राधा की आज्ञा के अनुसार इसका निर्माण किया है।।१७६।।

युक्तं सहस्रैः सरसां केवलं मङ्गलालयम्। नृत्यं च ददृशुस्तत्र देवाश्च सुमनोहरम्॥१७७॥
सुतानं चारुसङ्गीतं राधाकृष्णगुणान्वितम्। श्रुत्वैव गीतपीयूषं मूर्च्छामापुः सुरा मुने॥१७८॥

यह मङ्गलधाम गोलोक १००० सरोवर से युक्त है। यहां देवगण ने अत्यन्त मनोहर नृत्य देखा। वह उत्तम संगीत, उत्तम तान से तथा राधाकृष्ण के गुणों से युक्त था। हे मुनिवर! इस गीतरूप अमृत को पीकर देवता सुध-बुध खो बैठे।।१७७-१७८।।

क्षणेन चेतनां प्राप्य ते देवाः कृष्णमानसाः।
ददृशुः परमाश्चर्यं स्थाने स्थाने मनोहरम्॥१७९॥
ददृशुर्गोपिका सर्वा नानावेषविधायिकाः।
काश्चिन्मृदङ्गहस्ताश्च काश्चिद्वीणाकरा वराः॥१८०॥
काश्चिच्चामरहस्ताश्च करतालकराः पराः।
काश्चिद्यन्त्रवाद्यहस्ता रत्ननूपुरशोभिताः[1]॥१८१॥
सद्रत्नकिंकिणीजालशब्देन शब्दिता वराः।
काश्चिन्मस्तककुम्भाश्च नृत्यभेदमनोरथाः॥१८२॥

---
१. क. शब्दिताः।

पुंवेषनायिका काश्चित्काश्चित्तासां च नायिकाः।
कृष्णवेषधराः काश्चिद्राधावेषधराः पराः॥१८३॥
काश्चित्संयोगविरताः काश्चिदालिङ्गनेरताः।
क्रीडासक्ताश्च ता दृष्ट्वा सस्मिता जगदीश्वराः॥१८४॥

कुछ क्षण पश्चात् संज्ञा लाभ करने पर देवताओं ने वहां पर अत्यन्त मनोहर आश्चर्य देखा। उन्होंने नाना वेशधारी गोपीगण का यह वैचित्र्य देखा कि कोई गोपी मृदंगधारिणी थी। किसी ने वीणा धारण किया था। किसी ने हाथों में चामर धारण किया था। कोई गोपी करताल बजा रही थी। किसी-किसी के हाथ में वाद्ययन्त्र था। किसी का रत्न नूपुर शब्दायमान हो रहा था। किसी श्रेष्ठ गोपी कि रत्नमय किङ्किणी शब्दित हो रही थी। कोई-कोई शिर पर घट लेकर नृत्यविशेष के प्रति आसक्त हो रही थी। किसी गोपी ने पुरुषवेश धारण कर रखा था। अन्य गोपीगण राधावेश धारिणी थीं। कोई-कोई गोपी संयोग से, तो कोई गोपी आलिङ्गन से विरत हो रही थी। इन सबको क्रीड़ासक्त देखकर जगदीश्वर देवगण मुस्कराने लगे।।१७९-१८४।।

प्रगच्छन्तः कियद्दूरं ददृशुश्चाऽऽश्रमान्बहून्।
राधासखीनां गेहांश्च प्रधानानां च नारद॥१८५॥
रूपेणैव गुणेनैव वेषेण यौवनेन च। सौभाग्येनैव वयसा सदृशीनां च तत्र वै॥१८६॥
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याश्च राधिकायाश्च गोपिकाः।
वेषानिर्वचनीयाश्च तासां नामानि च शृणु॥१८७॥
सुशीला च शशिकला यमुना माधवी रती।
कदम्बमाला कुन्ती च जाह्नवी च स्वयंप्रभा॥१८८॥
चन्द्रमुखी[1] च सावित्री गायत्री सुमुखी सुखा।
पद्मालया पारिजाता गौरी च सर्वमङ्गला॥१८९॥
कालिका कमला दुर्गा भारती च सरस्वती।
गङ्गाऽम्बिका मधुमती चम्पापर्णा च सुन्दरी॥१९०॥
कृष्णप्रिया सती चैव नन्दिनी नन्दनेति च।
एताः समानाः सद्रत्नरचिता राधिकाप्रियाः॥१९१॥
एतासां समरूपाणां रत्नधातुविचित्रतान्। नानाप्रकारचित्रेण चित्रितान्सुमनोहरान्॥१९२॥
अमूल्यरत्नकलशसमूहैः शिखरोज्ज्वलान्। सद्रत्नरचिताञ्छुभ्रानाश्रमान्ददृशुस्तथा॥१९३॥

हे नारद! अब वे सभी देवता कुछ दूर गये तथा उन्होंने राधिका की सखियों के अनेक आश्रम

१. ०खी पद्ममुखा सावित्री सुमुखासु०।

तथा गृहों को देखा। वे रूप-गुण-वेश-यौवन-सौभाग्य तथा वयक्रम में समान थीं। देवताओं ने देखा कि अनिर्वचनीय वेशधारिणी राधिका की ही उम्र वाली ३३ प्रधान गोपियां वहां निवास कर रही हैं। उनके नामों को सुनो। यथा—सुशीला, शशिकला, यमुना, माधवी, रति, कदम्बमाला, कुन्ती, जाह्नवी, स्वयम्प्रभा, चन्द्रमुखी, पद्ममुखी, सावित्री, सुधामुखी, शुभा, पद्मा, पारिजाता, गौरी, सर्वमङ्गला, कालिका, कमला, दुर्गा, भारती, सरस्वती, गंगा, अम्बिका, मधुमती, चम्पा, अपर्णा, सुन्दरी, कृष्णप्रिया, सतानन्दिनी, नन्दना। ये सभी प्रधान गोपी हैं। इन समान रूप तथा गुण वाली गोपियों के आश्रम रत्न तथा धातु से शोभित हैं तथा अनेक चित्रों से चित्रित हैं। इनके शिखर पर अमूल्य रत्नघट विराजित रहते हैं। इससे ये सभी अत्यन्त मनोहर परिलक्षित होते हैं।।१८५-१९३।।

ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वं च नास्ति लोकस्तदूर्ध्वकः।
ऊर्ध्वं शून्यमयं सर्वं तदन्ता सृष्टिरेव च॥१९४॥
रसातलेभ्यः सप्तभ्यो नास्त्यधः सृष्टिरेव च।
तदधश्च जलं ध्वान्तमागन्तव्यमदृश्यकम्॥१९५॥
ब्रह्माण्डान्तं तद् बहिश्च सर्वं मत्तो निशामय॥१९६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोलोकवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।
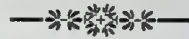
यह गोलोक ब्रह्माण्ड के बहिर्भाग में ऊर्ध्व में स्थित है। इसके ऊर्ध्व में अन्य कोई लोक नहीं है। इससे ऊर्ध्व में सब कुछ शून्य है। यह लोक विधाता की सृष्टि के अन्त में है। इसके अधोदेश में जल एवं अन्धकार है। यह लोक अगम्य अदृश्य है। ब्रह्माण्ड के अन्त के बहिर्भाग का यह विषय है। यह सब मुझसे श्रवण करो।।१९४-१९६।।

।।चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण का स्तवराज

नारायण उवाच

गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा देवास्ते हृष्टमानसाः। पुनराजग्मू राधायाः प्रधानद्वारमेव च॥१॥
सद्रत्नमणिनिर्माणं वेदिकायुग्मसंयुतम्। हरिद्राकारमणिना वज्रसंमिश्रितेन च॥२॥

अमूल्यरत्नरचितकपाटेन विभूषितम्। द्वारे नियुक्तं ददृशुर्वीरभानुमनुत्तमम्॥३॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नाभरणभूषितम्। पीतवस्त्रपरीधानं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्॥४॥
द्वारं चित्रविचित्रेण विचित्रं परमाद्भुतम्। सर्वं निवेदनं चक्रुर्देवा दौवारिकं मुदा॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–उन देवगण ने सम्पूर्ण गोलोक का अवलोकन करके आनन्द पूर्वक राधा के प्रधान द्वार पर आगमन किया। यह द्वार उत्तम रत्न तथा मणिनिर्मित दो वेदिका से युक्त था। वह द्वार हल्दी की आभा वाली मणियों तथा हीरा जैसे अमूल्य रत्नों से बने कपाट वाला था। देवताओं ने उस द्वार पर वीरभानु नाम वाले एक प्रधान गोप को नियुक्त देखा। उसने पीतवर्ण वस्त्र धारण किया था। वीरभानु रत्नसिंहासनासीन, रत्नभूषणभूषित तथा रत्नमुकुट युक्त था। देवता लोग नाना चित्र से चित्रित द्वार पर गये तथा उन्होंने मुदित मन से द्वारपाल से अपने वहां आगमन का कारण भी कहा–॥१-५॥

तानुवाच द्वारपालो निःशंकं त्रिदशेश्वरान्। नाहं विनाऽऽज्ञया गन्तुं दातुं सांप्रतमीश्वरः॥६॥
किंकरान्प्रेषयामास श्रीकृष्णस्थानमेव च। हरेरनुज्ञां संप्राप्य ददौ गन्तुं सुरान्मुने॥७॥
तं संभाष्य ययुर्देवा द्वितीयं द्वारमुत्तमम्। ततोऽधिकं विचित्रं च सुन्दरं सुमनोहरम्॥८॥

तब द्वारपाल ने निःशङ्क होकर देवगण ने कहा–"हे देवताओ! मैं स्वामी की आज्ञा के विना किसी को भी पुरी में प्रवेश करने नहीं दे सकूंगा।" हे नारद! तदनन्तर द्वारपाल ने सेवकों द्वारा कृष्ण के पास देवगण के आगमन का संवाद भेजा। तब कृष्ण द्वारा आज्ञा पाकर देवगण अधिक मनोरम चित्रित द्वितीय द्वार पर द्वारपाल द्वारा भेजे गये॥६-८॥

द्वारे नियुक्तं ददृशुश्चन्द्रभानुं च नारद। किशोरं श्यामलं चारुस्वर्णवेत्रधरं वरम्॥९॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। गोपानां च समूहेन पञ्चलक्षेण शोभितम्॥१०॥

हे नारद! इस द्वार पर स्वर्ण की सुन्दर वेंत लिये चन्द्रभानु द्वारपाल नियुक्त था। वह किशोर वयःवाला श्यामवर्ण, रत्नसिंहासनासीन, रत्नभूषणभूषित, पांच लाख गोपगण से घिरा गोप था॥९-१०॥

तं संभाष्य ययुर्देवास्तृतीयं द्वारमुत्तमम्। ततोऽतिसुन्दरं चित्रं ज्वलन्तं मणितेजसा॥११॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुः सूर्यभानुं च नारद। द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं श्यामसुन्दरम्॥१२॥
मणिकुण्डलयुग्मेन कपोलस्थलराजितम्।
रत्नदण्डकरं श्रेष्ठं प्रेष्यं राधेशयोः परम्॥१३॥
नवलक्षेण गोपानां वेष्टितं च नृपेन्द्रवत्। तं संभाष्य ययुर्देवाश्चतुर्थं द्वारमेव च॥१४॥

उस द्वारपाल से वार्त्ता (अनुमति पाकर) करके देवता अत्युत्तम तृतीय द्वार पर आये, जो दूसरे द्वार से भी उत्तम, चित्रित एवं मणितेज से दीप्त था। हे नारद! वहां देवगण ने सूर्यभानु द्वारपाल को देखा जो श्यामवर्ण, सुरूप, द्विभुज एवं मुरलीधारी था। कानों से लटकते रत्नमय कुण्डल के जोड़े के द्वारा उसका कपोल शोभायमान हो रहा था। वह राधा-कृष्ण का अत्यन्त प्रिय पात्र था। वह सदा ९ लाख

गोपों से घिरा राजा की तरह वहां अवस्थान कर रहा था। उससे वार्त्ता करके तथा उसकी अनुमति पाकर देवगण चतुर्थ द्वार पर गये।।११-१४।।

तेभ्यो विलक्षणं रम्यं सुदीप्तं मणितेजसा। अत्यद्भुतं विचित्रेण भूषितं सुमनोहरम्।।१५।।
द्वारे नियुक्तं ददृशुर्वसुभानुं व्रजेश्वरम्। किशोरं सुन्दरवरं मणिदण्डकरं परम्।।१६।।
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठं च सस्मितं सुमनोहरम्।।१७।।

यह चौथा द्वार उस तीसरे द्वार से भी कहीं विलक्षण, रम्य तथा मणियों के तेज से दीप्तिमान हो रहा था। वह द्वार अत्यन्त विचित्र चित्रों से भूषित तथा मनोहर भी था। देवगण ने वहां वसुभानु द्वारपाल को देखा, जो किशोरवय वाला अत्यन्त सुन्दर तथा परम शोभायमान मणिदण्डधारी था। वह रत्नसिंहासनस्थ, रत्नभूषणभूषित था। उसके ओष्ठ एवं अधर पक्व बिम्बफल जैसे थे। वह अत्यन्त मनोहर और मन्द मुस्कान युक्त था।।१५-१७।।

तं संभाष्य ययुर्देवाः पञ्चमं द्वारमेव च। वज्रभित्तिस्थितैश्चित्रविचित्रैर्ज्वलितं परम्।।१८।।
द्वारपालं च ददृशुर्देवभानुं च तत्र वै। चारुसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्।।१९।।
मयूरपिच्छचूडं च रत्नमालाविभूषितम्। कदम्बपुष्पसंसक्तसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलम्।।२०।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम्। नृपेन्द्रवरतुल्यं च दशलक्षणप्रजान्वितम्।।२१।।

उससे सम्भाषण करके देवगण पंचम द्वार पर आये। वहां की दीवार हीरे की थी। उस पर बने विचित्र चित्र मणिमय थे। वह द्वार इन सबके कारण अतीव उज्वल-सा लग रहा था। यहां देवगण ने देवभानु नामक द्वारपाल को देखा। वह उत्तम सिंहासन पर आसीन तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित था। वह उत्कृष्ट रत्नकुण्डलों से शोभायमान था। उसके अंग अगुरु-चन्दन-कस्तूरी तथा कुङ्कुम द्रव्य से लिप्त थे। वह दस लाख गोपगण से घिरा राजा के समान लग रहा था। उसका मुकुट मयूर पंख का था। वह रत्नमालाओं से भूषित, कदम्बपुष्प युक्त रत्नकुण्डलों की आभा से दीप्त लग रहा था।।१८-२१।।

तं वेत्रपाणिं संभाष्य ययुर्देवा मुदाऽन्विताः।
विलक्षणं द्वारषट्कं चित्रराजिविराजितम्।।२२।।
वज्रभित्तियुग्मयुक्ते पुष्पमाल्यविभूषिते। द्वारे नियुक्तं ददृशुः शुक्रभानुं व्रजेश्वरम्।।२३।।
नानालङ्कारशोभाढ्यं दशलक्षप्रजान्वितम्।
श्रीखण्डपल्लवासक्तकपोलं कुण्डलोज्ज्वलम्।।२४।।

उस वेंतधारी से अनुमति लेकर मुदित देवता अनेक चित्रों से शोभायमान विलक्षण षष्टम द्वार पर पहुंच गये। उस द्वार का उभयपार्श्व हीरक की दीवारों वाला तथा पुष्पमाला भूषित था। देवगण ने उस द्वार पर ब्रजाधीश्वर शुक्रभानु नामक द्वारपाल को देखा। वह नाना अलंकारों से शोभायमान दस लाख प्रजाओं से युक्त था। (१० लक्ष गोपों का स्वामी था) उसका समुज्वल कुण्डल चन्दन पल्लव वाला था।।२२-२४।।

तूर्णं सुरास्तं संभाष्य ययुर्द्वारं च सप्तमम्।
नानाप्रकार चित्रं च षड्भ्यश्चातिविलक्षणम्।।२५।।
द्वारे नियुक्तं ददृशु रत्नभानुं हरेः प्रियम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पुष्पमालाविभूषितम्।।२६।।
भूषितं भूषणै रम्यैर्मणिरत्नमनोहरैः।।२७।।

देवगण उससे शीघ्रता पूर्वक अनुमति लेकर सातवें द्वार पर आये। वह नाना प्रकार के चित्रों से युक्त था। वह पूर्व वाले छः द्वारों से अत्यन्त विलक्षण सातवां द्वार था। देवगण ने वहां कृष्ण को प्रिय रत्नभानु नामक द्वारपाल को देखा। उसके सभी अंग चन्दन चर्चित थे तथा कंठ पुष्पमाला भूषित था। उसने रम्य मणियों तथा रत्नों के मनोहर आभूषणों को धारण किया था।।२५-२७।।

गोपैर्द्वादशलक्षैश्च राजेन्द्रमिव राजितम्। रत्नसिंहासनस्थं च स्मेराननसरोरुहम्।।२८।।
तं वेत्रहस्तं संभाष्य जग्मुर्देवेश्वरा मुदा। विचित्रमष्टमं द्वारं सप्तभ्योऽपि विलक्षणम्।।२९।।
दौवारिकं ते ददृशुः सुपार्श्वं सुमनोहरम्। सस्मितं सुन्दरवरं श्रीखण्डतिलकोज्ज्वलम्।।३०।।
बन्धुजीवाधरोष्ठं च रत्नकुण्डलमण्डितम्। सर्वालङ्कारशोभाढ्यं रत्नदण्डवरं वरम्।।३१।।
गोपैर्द्वादशलक्षैश्च किशोरैश्च समन्वितम्। ततः शीघ्रं ययुर्देवा नवमं द्वारमीप्सितम्।।३२।।

वह सहास्य आनन वाला द्वारपाल रत्नभानु राजाओं की तरह शोभायमान हो रहा था। देवगण उससे अनुमति लेकर इस सप्तम द्वार से भी उत्कृष्ट अष्टम द्वार पर आये। वहां उन लोगों ने अतीव सुन्दर सुपार्श्व नामक द्वारपाल को देखा। वह मुस्कान युक्त मुखभङ्गिमा वाला द्वारपाल चन्दन तिलक से शोभित, बन्धुजीव पुष्प के वर्ण वाले अधरोष्ठ वाला, रत्नकुण्डल मंडित, सर्वालङ्कार शोभित तथा श्रेष्ठ रत्नदण्डधारी था। वह १२ लाख किशोर वय वाले गोपों से घिरा था। उसकी अनुमति लेकर देवता अनिर्वचनीय अन्य नवम द्वार पर आये।।२८-३२।।

वज्रसद्रत्नरचितं चतुर्वेदिसमन्वितम्। अपूर्वचित्ररचितं मालाजालैर्विराजितम्।।३३।।
द्वारपालं च ददृशुः[१] सुबलं ललिताकृत्रिम्। नानाभूषणशोभाढ्यं भूषणार्हं मनोहरम्।।३४।।
व्रज्रैर्द्वादशलक्षैश्च संयुक्तं सुमनोहरम्। तं दण्डहस्तं संभाष्य सुरा द्वारान्तरं ययुः।।३५।।

इस नवम द्वार को देखकर देवगण चकित हो उठे। यह हीरों तथा उत्तम रत्नों से रचित चार वेदी से शोभित था। इस पर अपूर्व चित्र बने थे तथा यह चित्र-विचित्र चित्रों से और मालाओं से सजा था। यहां देवगण ने ललितरूपधारी सुबल नामक द्वारपाल को देखा जो नाना भूषणभूषित मनोहर था। वह १२ लाख गोपगण से घिरा मनोहर था। देवगण उस दण्डधारी सुबल से आज्ञा लेकर आगे स्थित दशम द्वार पर्यन्त आये।।३३-३५।।

विशिष्टं दशमद्वारं दृष्ट्वा ते विस्मयं ययुः। सर्वानिर्वचनीयं चाप्यदृष्टमश्रुतं मुने।।३६।।

---

१. क. सुवर्णं।

ददृशुर्द्वारपालं च सुदामानं च सुन्दरम्। अनिर्वचनीयरूपं च कृष्णतुल्यं मनोहरम्॥३७॥
गोपविंशतिलक्षाणां समूहैः परिवारितम्। तं दण्डहस्तं दृष्ट्वैव जग्मुर्द्वारान्तरं सुराः॥३८॥
द्वारमेकादशाख्यं च सुचित्रं महदद्भुतम्। द्वारपालं च तत्रस्थं श्रीदामानं व्रजेश्वरम्॥३९॥

यह दशम द्वार अतीव विशिष्ट था, जिसे देखकर देवता विस्मित हो उठे। हे मुनि! यह अनिवर्चनीय द्वार था। न तो पहले इसके समान द्वार देखा गया था, न तो सुना ही गया था। यहां पर देवगण ने सुदामा नामक सुरूप द्वारपाल को देखा। वह अनिर्वचनीय रूपधारी एवं कृष्णवत् मनोहर था। वह २० लाख गोपगण से घिरा था। उस दण्डधारी द्वारपाल को देखकर देवगण ११वें द्वार तक आये। जो सुचित्रित एवं अतीव आश्चर्यमय था। वहां का द्वारपाल था व्रजेश्वर श्रीदामा।।३७-३९।।

राधिकापुत्रतुल्यं च पीतवस्त्रेण भूषितम्। अमूल्यरत्नरचितरम्यसिंहासनस्थितम्॥४०॥
अमूल्यरत्नभूषाभिर्भूषितं सुमनोहरम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम्॥४१॥

यह श्रीदामा राधिका के पुत्र के समान एवं पीले वस्त्रों से भूषित था। यह अमूल्य रत्नसिंहासन पर आसीन था। श्रीदामा अमूल्य रत्नभूषणों से भूषित तथा अत्यन्त मनोहर था। उसके अंग चन्दन-अगुरु-कस्तुरी-कुङ्कुमादि से लिप्त थे।।४०-४१।।

गण्डस्थलकपोलार्हसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलम्। सद्रत्नश्रेष्ठरचितविचित्रमुकुटोज्ज्वलम्॥४२॥
प्रफुल्लमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषितम्।
कोटिगोपैः परिवृतं राजेन्द्राधिकमुज्ज्वलम्॥४३॥

उसका गण्डस्थल तथा कपोल उत्तम रत्नकुण्डलों से भूषित था। वह उत्तम रत्न रचित श्रेष्ठ मुकुट से प्रकाशमान लग रहा था। उसका सर्वाङ्ग खिले मालती पुष्पों की माला से विभूषित था। वह एक करोड़ गोपों से घिरा राजेन्द्रगण से भी अधिक शोभित था।।४२-४३।।

तं संभाष्य ययुर्द्वारं द्वादशाख्यं सुरा मुदा। अमूल्यरत्नरचितवेदिकाभिः समन्वितम्॥४४॥
सर्वेषां दुर्लभं चित्रमदृश्यमश्रुतं मुने। वज्रभित्तिस्थितं चित्रं सुन्दरं सुमनोहरम्॥४५॥

उस द्वारपाल श्रीदामा की आज्ञा लेकर देवगण द्वादश द्वार पर आये। वह अमूल्य रत्नों से निर्मित वेदी से युक्त था। हे मुनिवर! वहां की दिवार हीरकों से बनी थी। उस पर मनोहर चित्र बने थे। वे सामान्यतः सभी के लिये दुर्लभ तथा अदृश्य एवं अश्रुत थे।।४४-४५।।

द्वारे नियुक्ता ददृशुर्देवा गोपाङ्गना वराः। नवयौवनसंपन्ना रत्नाभरणभूषिताः॥४६॥
पीतवस्त्रपरीधानाः कबरीभारभूषिताः। सुगन्धिमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषिताः॥४७॥
रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिताः। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताः॥४८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चिताः। पीनश्रोणीभरानम्रा नितम्बाभारपीडिताः॥४९॥

देवगण ने यहां इस द्वार पर उसके रक्षणार्थ स्थित श्रेष्ठ गोपीगण को देखा जो नवयौवना तथा

रत्नाभरण से भूषिता थीं । ये रत्नकङ्कण, केयूर, रत्ननूपुरधारी थीं। इनके कपोल रत्नकुण्डल की जोड़ी से सज्जित थे, जो कानों में लटक रहे थे। उन सबने पीतवस्त्र धारण किया था, वे सुन्दर केशसज्जा से भूषिता थीं। उनका सर्वाङ्ग सुगन्धित मालती माला से सज्जित था। वे सभी चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुङ्कुम प्रभृति द्रवों से लिप्त थीं। उनके स्तन स्थूल थे, जिनके भार से वे झुकी जा रही थीं। वे अपने नितम्बों के भार से पीड़ित हो रही थीं।।४६-४९।।

गोपीनां शतकोटीनां श्रेष्ठाः प्रेष्ठा हरेरपि।
गोपीश्च कोटिशो दृष्ट्वा सुरास्ते विस्मयं ययुः।।५०।।
संभाष्य ता मुदा युक्ता ययुर्द्वारान्तरं मुने। ततश्च क्रमशो विप्र त्रिषु द्वारेषु तत्र वै।।५१।।
गोपाङ्गनानां श्रेष्ठाश्च ददृशुः सुमनोहराः।
वराणां च वरा रम्या धन्या मान्याश्च शोभनाः।।५२।।

हे मुनिवर! ये करोड़ों गोपीगण कृष्ण की अत्यन्त प्रिय थीं। इन गोपीगण को देखकर देवगण विस्मित हो गये। अब देवगण ने इनसे अनुमति लेकर, आनन्दित होकर आगे वाले द्वार की ओर प्रस्थान किया। हे विप्रवर! अब देवगण ने क्रमशः तीन द्वारों को पार किया। वहां भी अत्यन्त श्रेष्ठ मनोहर गोपीगण विराजित थीं। वे श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतम, रम्य से भी रमणीय, धन्या, मान्या तथा शोभना थीं।।५०-५२।।

सर्वाः सौभाग्ययुक्ताश्च राधिकायाः प्रियाश्च ताः।
भूषिता भूषणै रम्यैः प्रोद्भिन्ननवयौवनाः।।५३।।

वे सभी सौभाग्य से युक्त थीं। वे सभी राधिका की परम प्रिय थीं। वे सभी भूषणों से भूषित थीं। उनमें नवयौवन उद्भूत हो रहा था।।५३।।

एवं द्वारत्रयं दृष्ट्वा स्वप्नज्ञानाद्भुताश्रुतम्। अदृश्यमतिरम्यं चाप्यनिरूप्यं विचक्षणैः।।५४।।
तास्ताः संभाष्य देवास्ते विस्मिता ययुरीश्वराः।
राधिकाभ्यन्तरं द्वारं षोडशाख्यं मनोहरम्।।५५।।
सर्वासां च प्रधानं च गोप्यं गोपाङ्गनागणैः। त्रयस्त्रिंशद्वयस्यानां निकरैर्वेष्टितं मुने।।५६।।
तेषामनिर्वचनीयैर्नानागुणसमन्वितैः। रूपयौवनसंपन्नै रत्नालङ्कारभूषितैः।।५७।।
रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः। सद्रत्नकिङ्किणीजालैर्मध्यदेशविभूषितैः।।५८।।
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः। प्रफुल्लमालतीमालाजलैर्वक्षःस्थलोज्ज्वलैः।।५९।।

इन अतीव रमणीय, विचक्षण जिनका वर्णन कर सकने में असमर्थ हैं, सर्वसामान्य के लिये अदृश्य, अद्भुत द्वारत्रय का अवलोकन करके वे देवता विस्मित हो गये। तदनन्तर उन्होंने वहां की गोपीगण प्रमुख से अनुमति लेकर राधिका के निवास के आभ्यन्तरीण षोडश द्वार तक जाकर देखा कि यह द्वार राधिका की तरह रूप-यौवन सम्पन्ना, रत्नालङ्कारभूषिता, नाना गुणसमन्विता, अनिर्वचनीय

वेषधारिणी ३३ समवयस्का सखियों से रक्षित हो रहा था। यह द्वार सभी द्वारों में प्रधान था। यह राधा का अन्तःपुर द्वार था। यहां पर स्थित गोपी जो राधा की सखी थी, वे उत्तम रत्नों के कंकण, केयूर, नूपुरादि से भूषित थीं। उनकी कमर उत्तम रत्न की बनी छोटी-छोटी घंटियों से सजी थीं। उनके कपोल पर कानों का दो कुण्डल लटक रहा था। उनका वक्षस्थल उत्तम खिले मालती पुष्पों की माला से सुशोभित था।।५४-५९।।

शरत्पार्वणपद्मानां प्रभां मुष्णन्मुखेन्दुभिः। पारिजातप्रसूनानां मालाजालेन वेष्टितैः।।६०।।
पक्वबिम्बाधरोष्ठैश्च स्मेराननसरोरुहैः। पक्वदाडिमबीजाभिः शोभितैर्दन्तपङ्क्तिभिः।।६१।।
चारुचम्पकवर्णाभिर्मध्यस्थलकृशैर्मुने। गजमौक्तिकयुक्ताभिर्नासिकाभिर्विराजितैः।।६२।।
खगेन्द्रचारुचञ्चूनां शोभामुष्णाभिरेव[1] च। गजेन्द्रगण्डकठिनस्तनभारभरानतैः।।६३।।
पीनश्रोणिभरार्तैश्च मुकुन्दपदमानसैः। निमेषरहिता देवा द्वारं च ददृशुश्च ताः।।६४।।

उनकी मुखच्छटा तो चन्द्र की शरत्पूर्णिमा की छवि को भी लज्जित कर रही थी। उनके केश का जूड़ा पारिजात वृक्ष के पुष्पों की माला से लिपटा था। उनके अधरोष्ठ पके विम्बफल के वर्ण के थे। उनका मुखकमल मन्द-मुस्कान से सुशोभित था। उनकी दन्तपक्ति पके अनार के बीज के समान शोभायमान थी। उन गोप बालागण का देह वर्ण उत्तम चम्पक पुष्प के समान था। हे मुनिवर! उनकी कमर भी अत्यन्त पतली थी। उनकी नासिका में गजमुक्ता की नथिया लटक रही थी। उस नासिका की शोभा गरुड़ की चोंच के समान अत्यन्त मनोहर थी। गजराज के मस्तक के उभार के समान अत्यन्त कठिन एवं उन्नत स्तनद्वय के भार से वे झुकी जा रही थीं। यह देखकर देवता निमेष (निष्पलक) रहित होकर यह सब देखते द्वार पर खड़े थे।।६०-६४।।

सद्रत्नमणिरत्नैश्च वेदिकायुग्मशोभितम्। हरिन्मणीनां स्तम्भानां समूहैः संयुतं सदा।।६५।।
सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यस्थलविराजितैः। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विभूषितम्।।६६।।
तत्संस्पर्शैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम्। दृष्ट्वा तत्परमाश्चर्यं राधिकाभ्यन्तरं सुराः।।६७।।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजदर्शनैकमनोरथाः। ताः संभाष्य ययुः शीघ्रं पुलकाञ्चितविग्रहाः।।६८।।
भक्त्युद्रेकादश्रुपूर्णाः किंचिन्नम्रात्मकंधराः। आरात्ते ददृशुर्देवा राधिकाभ्यन्तरं वरम्।।६९।।

इस प्रकार मणिरत्नमय वेदिका द्वय पर परिशोभित अत्याश्चर्यमय श्रीमती राधिका के आभ्यन्तरीण द्वार का अवलोकन देवगण ने किया। द्वार पर हरे रंग के मणिमय स्तम्भों के होने के कारण उनकी निराली छटा परिलक्षित हो रही थी। इसके मध्यभाग में सिन्दूराकार मणिमण्डल था तथा पारिजात कुसुमों से वह सुसज्जित था। इसके कारण इन पुष्पों का स्पर्श करके जो वायु बह रही थी, वह भी सुगन्धित हो जाती थी। देवगण श्रीराधा के ऐसे आभ्यन्तरीण द्वार को देखकर अब श्रीकृष्ण के चरणादर्शनार्थ उत्सुक हो उठे। देवगण का शरीर पुलकित हो उठा। भक्ति के उद्रेक से उनके नेत्र अश्रु

१. शोभामुष्टाभिरेव च इत्यपि क्वाचित्कः पाठः।

से भरे थे। तनिक झुककर आदर के साथ अब देवगण ने सखीगण से अनुमति लेकर यथाशीघ्र द्वार में प्रवेश किया तथा राधा का अन्तःपुर निकट से देखा।।६५-६९।।

मन्दिराणां च मध्यस्थं चतुःशालं मनोहरम्। अमूल्यरत्नसाराणां सारेण रचितं परम्।।७०।।
नानारत्नमणिस्तम्भैर्वज्रयुक्तैश्च भूषितम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम्।।७१।।
मुक्तासमूहैर्माणिक्यैः श्वेतचामरदर्पणैः। अमूल्यरत्नसाराणां कलशैर्भूषितं मुने।।७२।।
पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तश्रीखण्डपल्लवान्वितैः। मणिस्तम्भसमूहैश्च रम्यप्राङ्गणभूषितम्।।७३।।

वहां मन्दिरों के मध्य में एक मनोहर चतुःशाला देवताओं ने देखा। वह अमूल्य रत्नों के सारभाग से रचित थी। वह नाना रत्नों मणिस्तम्भों से भूषित थी। वह पारिजात पुष्पों की मालाओं से सुशोभित थी। हे मुनिवर! वहां अनेक रत्नों से युक्त मणिस्तम्भ थे, जो हीरों से भूषित थे। हे मुनिवर! मुक्ता, माणिक, श्वेतचामर, दर्पण, अमूल्य रत्नसमूह के सार से निर्मित कलशों से भूषित वह स्थान था। हे नारद! ये सभी कलश श्रीखण्ड के पत्तों (चन्दन वृक्ष के पत्तों) से शोभित थे। जिन पत्तों को सूत में गांठ लगाकर (वन्दनवार के रूप में) सजाया गया था। वहां का प्रांगण मणि स्तम्भों के समूह से भूषित था।।७०-७३।।

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम्। शुक्लधान्यशुक्लपुष्पप्रवालफलतण्डुलैः।।७४।।
पर्णदूर्वाक्षतैर्लाजैर्निर्मञ्छनविभूषितैः। फलयुक्तै रत्नकुम्भैः सिन्दूरकुङ्कुमान्वितैः।।७५।।
पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तैर्विराजितम्। प्रसूनावतैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम्।।७६।।
सर्वानिर्वचनीयं च यद्द्रव्यमनिरूपिणम्। ब्रह्माण्डे दुर्लभं यद्यद्वस्तुभिस्तैर्विराजितम्।।७७।।
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम्।
रत्नशय्यासु ललिताः सूक्ष्मवस्त्रपरिच्छदाः।।७८।।

वे कलश, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुङ्कुम द्रव्य से चर्चित, श्वेतधान्य, श्वेतपुष्प, मूंगा, फल, तण्डुल (अक्षत), दूर्वा तथा लावा के निर्मञ्छन (न्योछावर) से युक्त थे। ये रत्नकलश सिन्दूर तथा कुङ्कुमयुक्त पारिजात पुष्पों की माला से सज्जित वहां विराजमान थे। वायु द्वारा इन पुष्पों की सुगन्धि वहां व्याप्त थी। सबके लिये अविर्वाच्य, अनिरूपणीय ब्रह्माण्ड दुर्लभ जो-जो वस्तु होती है, वह यहां विराजमान थी। यहां की मनोहर रत्नशय्या सूक्ष्मवस्त्र की चादर तथा पारिजात मालाओं से सजी थी।।७४-७८।।

कोटिशो रत्नकुम्भाश्च रत्नपात्राणि नारद।
अमूल्यानि च चारूणि तैस्तैरैव विभूषितम्।।७९।।
नानाप्रकारवाद्यानां कलनादैर्निनादितम्। स्वरयन्त्रैश्च वीणाभिर्गोपीसङ्गीतसुश्रुतम्।।८०।।
मोहितं वाक्यशब्दैश्च मृदङ्गानां च नारद। गोपानां कृष्णतुल्यानां समूहैः परिवारितम्।।८१।।

राधासखीनां गोपीनां वृन्दैर्वृन्दैर्विराजितम्। राधाकृष्णगुणोद्रेकपदसङ्गीतसुश्रुतम्॥८२॥
एवमभ्यन्तरं दृष्ट्वा बभूवुर्विस्मिताः सुराः। शुश्रुवुर्मधुरं गीतं ददृशुर्नृत्यमुत्तमम्॥८३॥

हे नारद! करोड़ों रत्नकुंभ, अमूल्य रत्नपात्रों से यह भवन सजा था। यहां पर नाना प्रकार के वाद्यों की मधुर ध्वनि गूंज रही थी । यह स्थल वीणा के स्वर तथा गोपीगण के संगीत से परिपूर्ण था। यहां पर मृदंगों की ध्वनि भी वातावरण को मोहमय बना रही थी। यहां का राधाकृष्ण के गुण से युक्त मधुर संगीत सतत् श्रुतिगोचर होता रहता था। देवगण इस प्रकार के आभ्यन्तर दर्शन से परम विस्मयापन्न हो गये। वे यहां के मधुर गीतों को सुनते जा रहे थे तथा यहां के अत्युत्तम नृत्य को भी देख रहे थे।।७९-८३।।

तत्र तस्थुः सुराः सर्वे ध्यानैकतानमानसाः। रत्नसिंहासनं रम्यं ददृशुस्त्रिदशेश्वरः॥८४॥
धनुः शतप्रमाणं च परितो वर्तुलाकृत्रिम्। सद्रत्नक्षुद्रकलशसमूहैश्च समन्वितम्॥८५॥
चित्रपुत्तलिकापुष्पचित्रकाननभूषितम्। तत्र तेजः समूहं च सूर्यकोटिसमप्रभम्॥८६॥
प्रभया ज्वलितं ब्रह्मन्नाश्चर्यमहदद्भुतम्। सप्ततालप्रमाणं तद्व्याप्तमूर्ध्वं समन्ततः॥८७॥

वे इस प्रकार तद्गत् चित्त होकर ध्यान की स्थिति में हो गये। तभी देवगण ने वहां पर १०० धनुष माप वाला चारों ओर से मण्डलाकृति रत्न सिंहासन देखा जो अत्यन्त रम्य था। यह रत्नसिंहासन रत्नमय छोटे कलशों से युक्त, नाना प्रकार की पुतलियों के चित्रों से, चित्रमय कानन समूह से, विचित्र पुष्पों से भूषित था। हे ब्रह्मन् ! वहां पर देवताओं ने कोटिसूर्यसमप्रभ, अपने-अपने अत्यन्त अद्भुत रूप प्रभा से ज्वलन्त तेजपुंज को विराजमान देखा। यह तेजपुंज सातों तालवृक्ष इतना चतुर्दिक् एवं ऊर्ध्व में व्याप्त था।।८४-८७।।

तेजोमुषं च सर्वेषां [१]महाश्रमविवर्जितम्। सर्वव्यापि सर्वबीजं चक्षूरोधकरं परम्॥८८॥
दृष्ट्वा तेजः स्वरूपं च ते देवा ध्यानतत्पराः।
प्रणेमुः परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकंधराः॥८९॥
परमानन्दसंयोगादश्रुपूर्णविलोचनाः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गा वाञ्छापूर्णमनोरथाः॥९०॥
नत्वा तेजः स्वरूपं च तमीशं त्रिदशेश्वराः।
तत्रोत्थाय ध्यानयुक्ताः प्रतस्थुरस्तेजसः पुरः॥९१॥
ध्यात्वैवं जगतां धाता बभूव संपुटाञ्जलिः। दक्षिणे शंकरं कृत्वा वामे धर्मं च नारद॥९२॥
भक्त्युद्रेकात्प्रतुष्टाव ध्यानैकतानमानसः। परात्परं गुणातीतं परमात्मानमीश्वरम्॥९३॥

इस तेज ने तो सभी प्रकार के तेज को अपनी प्रभा से म्लान कर दिया था, ऐसा प्रतीत हो रहा था। यह उस आश्रम में व्याप्त था। देवगण ने ध्यानतत्पर होकर इस सर्वव्यापक सर्वबीज तथा नेत्रों को

१. क. व्यासाश्रमविराजितम्।

अवरुद्ध कर देने वाले तेज का जब दर्शन किया, तब वे भक्ति पूर्वक अवनत होकर तथा हाथ जोड़कर परमानन्द मग्न हो गये। उनके नेत्र भाव के कारण अश्रुजल से पूर्ण हो गये। उन्होंने अत्यन्त भक्तिभाव से इस तेज को प्रणाम किया। उनका सर्वाङ्ग रोमांचित हो उठा था। उनके मन की कामना पूर्ण हो गई थी। वे देवता इन तेजरूप प्रभु को नमस्कार करके खड़े हो गये। वे इस तेज के समीप ध्यानयोग में स्थित हो गये थे। हे नारद! जगद्विधाता ब्रह्मा ने अपने दाहिनी ओर महादेव को तथा बायीं ओर धर्म को खड़ा किया। तदनन्तर वे हाथों को जोड़कर ध्यान मग्न होकर परात्पर परमात्मा गुणातीत ईश्वर का स्तव करने लगे। वे इस समय भक्ति के उद्रेक के कारण यह स्तव कर रहे थे।।८८-९३।।

ब्रह्मोवाच

वरं वरेण्यं वरदं वरदानां च कारणम्। कारणं सर्वभूतानां तेजोरूपं नमाम्यहम्।।९४।।
मङ्गलं मङ्गलानां च मङ्गलं मङ्गलप्रदम्। समस्तमङ्गलाधारं तेजोरूपं नमाम्यहम्।।९५।।
स्थितं सर्वत्र निर्लिप्तमात्मरूपं परात्परम्। निरीहमवितर्क्यं च तेजोरूपं नमाम्यहम्।।९६।।

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे प्रभो! आप वर, वरेण्य, वरप्रद तथा वरप्रदाता लोगों के तथा सभी प्राणीगण के कारण हैं। आप तेजरूप को मैं प्रणाम करता हूं! आप मङ्गलों के भी मङ्गल, मङ्गल प्रदाता, सर्वमङ्गलाधार तेजरूप हैं। आप सर्वत्र स्थित, निर्लिप्त, आत्मरूप, परात्पर हैं। आप निरीह, तर्कादि से परे, तेजरूप हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूं!।।९४-९६।।

सगुणं निर्गुणं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम्। साकारं च निराकारं तेजोरूपं नमाम्यहम्।।९७।।
तमनिर्वचनीयं च व्यक्तमव्यक्तमेककम्। स्वेच्छामयं सर्वरूपं तेजोरूपं नमाम्यहम्।।९८।।
गुणत्रयविभागाय रूपत्रयधरं परम्। कलया ते[1] कृताः सर्वे किं जानन्ति श्रुतेः परम्।।९९।।

आप सगुण-निर्गुण ब्रह्म, ज्योतिरूप, सनातन, साकार, निराकार हैं। आप अनिर्वचनीय, व्यक्त-अव्यक्त, एकमात्र, स्वेच्छामय सर्वरूप हैं। आप तेजोमय को प्रणाम करता हूं! गुणत्रय के विभागार्थ आपने रूपत्रय धारण किया है। आपने अपनी कला से ही सब कुछ प्रकट (सृष्ट) किया है। आप श्रुति से भी परे हैं। आपको कौन जान सकने में समर्थ है?।।९७-९९।।

सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वबीजमबीजकम्। [2]सर्वान्तकमनन्तंञ्च तेजोरूपं नमाम्यहम्।।१००।।

लक्ष्यं षड्गुणरूपं च वर्णनीयं विचक्षणैः।
किं वर्णयामि लक्ष्यं च तेजोरूपं नमाम्यहम्।।१०१।।

आप सर्वाधार, सर्वरूप, सर्वबीज, निर्बीज भी हैं। आप सबका अन्त (संहार) करने वाले अनन्त तेजोरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप का सगुण रूप ही सबको लक्षित होता है। विद्वान्

---

१. क. सुराः।
२. सर्वान्तःकरणं तञ्चेति क्वचित् पाठः।

मात्र उसका ही वर्णन करते हैं, तथापि आपके अलक्षित रूप का वर्णन कैसे किया जा सकता है? आप तेजोरूप को मेरा प्रणाम!।।१००-१०१।।

अशरीरं विग्रहवदिन्द्रियं यदतीन्द्रियम्। यदसाक्षि सर्वसाक्षि तेजोरूपं नमाम्यहम्।।१०२।।
गमनार्हमपादं यदचक्षुः सर्वदर्शनम्। हस्तास्यहीनं यद्भोक्तृ तेजोरूपं नमाम्यहम्।।१०३।।

आप ही शरीर रहित होकर भी सशरीर हैं। आप इन्द्रियातीत होकर भी इन्द्रिय समन्वित हैं। आप सर्वसाक्षी होकर भी असाक्षीरूप हैं। आप तेजोरूप को प्रणाम करता हूं! आप पैरों से रहित होकर भी सर्वत्र गमन कर लेते हैं, नेत्र रहित होकर भी सबको देखते हैं। मुख, हाथों से रहित होकर भी भोजन कर लेते हैं। आप तेजोरूप को मेरा प्रणाम!।।१०२-१०३।।

वेदे निरूपितं वस्तु सन्तः शक्ताश्च वर्णितुम्।
वेदेऽनिरूपितं यत्तत्तेजोरूपं नमाम्यहम्।।१०४।।
सर्वेशं यदनीशं यत्सर्वादि यदनादि यत्। सर्वात्मकमनात्मं यत्तत्तेजोरूपं नमाम्यहम्।।१०५।।
अहं विधता जगतो वेदानां जनकः स्वयम्।
पाता धर्मो हरो हर्ता स्तोतुं शक्ता न केऽपि यत्।।१०६।।

विद्वान् लोग वेदनिरूपित विषयों का तो वर्णन कर पाते हैं, तथापि आपका जो स्वरूप वेद निरूपित नहीं कर सके, उस तेजोरूप को मेरा नमस्कार! आप सर्वेश हैं। आप का ईश्वर कोई नहीं है। आप अनादि हैं। आपका आदि अन्य है ही नहीं। आप सर्वात्मा हैं। आपकी आत्मा कोई भी नहीं है। ऐसे आप तेजोरूप को मैं प्रणाम करता हूं! मैं जगत् का विधाता तथा वेदों की सृष्टि करने वाला हूं। ये धर्म जगत् रक्षक हैं, शिव सर्व संहर्त्ता हैं, तथापि इनमें से कोई भी आपकी स्तुति कर सकने में समर्थ नहीं है।।१०४-१०६।।

सेवया तव धर्मोऽयं[1] पालने च निरूपितः।
तवाऽऽज्ञया च संहर्ता त्वया काले निरूपिते।।१०७।।
[2]निःशेषोत्पत्तिकर्ताऽहं त्वत्पदाम्भोजसेवया।
कर्मिणां फलदाता च त्वं भक्तानां च नः प्रभुः।।१०८।।

ये धर्म आपकी सेवा करने के फलस्वरूप पालनकर्त्ता (रक्षणकर्त्ता) हो सके। संहारकर्त्ता शिव आप द्वारा निरूपित समय आने पर आपकी आज्ञा से सब कुछ का संहार करते हैं। मैं आपके चरणों की सेवा करने के फलस्वरूप प्राणियों के ललाट पर अवश्य घटित होने वाला विवरण लिखता हूं। आपकी चरण-सेवा के बल से ही प्राणीगण को कर्मफल प्रदान करता हूं। आप हम सभी भक्तों के प्रभु हैं।।१०७-१०८।।

१. क. यं रक्षितारं च रक्षति।
२. क. निषेकलिपिक०।

ब्रह्माण्डे बिम्बसदृशो भूत्वा[१] विषयिणो वयम्।
एवं कतिविधाः सन्ति तेष्वनन्तेषु सेवकाः॥१०९॥
यथा न संख्या रेणूनां तथा तेषामणीयसाम्।
सर्वेषां जनकश्चेशो यस्तं स्तोतुं च के क्षमाः॥११०॥

मैं आपकी ही आज्ञा से इस डिम्ब (अण्डे) के समान ब्रह्माण्ड में सब विषयकार्य सम्पन्न करता हूं, तथापि अनन्त ब्रह्माण्डों में मेरे जैसे आपके न जाने कितने सेवक हैं। उनकी गिनती नहीं की जा सकती। जिस प्रकार धूलिकण तथा परमाणुओं की गिनती कोई नहीं कर सकता, उसी प्रकार (मेरे समान) आपके सेवकों की गणना नहीं हो सकती; क्योंकि जिसने समस्त संसार को जन्म दिया है, उनकी स्तुति कौन कर सकता है?॥१०९-११०॥

एकैकलोमविवरे ब्रह्माण्डमेकमेककम्।
यस्यैव महतो विष्णोः षोडशांशस्तवैव सः॥१११॥
ध्यायन्ते योगिनः सर्वे तवैतद्रूपमीप्सितम्।
तवद्भक्तदास्यनिरताः सेवन्ते चरणाम्बुजम्॥११२॥

जिनके एक-एक रोमछिद्र में एक-एक ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं, उन महाविष्णु की स्थिति आपके १/१६ भाग ही है। आपके इस ईप्सित रूप का योगीगण सतत् ध्यान करते हैं। आपकी दास्य भक्ति में निरत भक्त आपके चरणकमल की सेवा करते हैं॥१११-११२॥

किशोरं सुन्दरतरं यद्रूपं कमनीयकम्। मन्त्रध्यानानुरूपं च दर्शयास्माकमीश्वर॥११३॥
नवीनजलदश्यामं पीताम्बरधरं वरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम्॥११४॥
मयूरपिच्छचूडं च मालतीजालमण्डितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम्॥११५॥
अमूल्यरत्नसाराणां सारभूषणभूषितम्। अमूल्यरत्नरचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम्॥११६॥
शरत्प्रफुल्लपद्मानां प्रभामोष्यास्यचन्द्रकम्। पक्वबिम्बसमानेन ह्यधरोष्ठेन राजितम्॥११७॥

हे प्रभो! ध्यान हेतु जो आपका किशोरवय वाला मनोहर रूप वर्णित है, मुझे उस रूप का दर्शन देकर कृतार्थ करिये। वह रूप नव श्यामल मेघ की तरह श्याम वर्ण एवं पीताम्बरधारी है। वह रूप द्विभुज, मुरलीधारी, मुस्कानयुक्त मनोहर है। आपका यह रूप मयूर पुच्छ से शोभित केशपाश वाला, मालती मालाजाल से मण्डित, चन्दन-अगुरु-कस्तूरी तथा कुंकुम चर्चित, अमूल्य रत्नों के साररूप भूषणों से भूषित, अमूल्यरत्न निर्मित किरीट तथा मुकुट द्वारा उज्ज्वल शोभायुक्त है। आपका मुखचन्द्र शरत्कालीन खिले कमल की प्रभा के समान है। आपके अधरोष्ठ पके बिम्बफल के समान हैं॥११३-११७॥

---

१. क. भृत्या।

पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिमनोहरम्। केलीकदम्बमूले च स्थितं [1]रासरसोन्मुखम्।।११८।।
गोपीवक्त्रस्मिततनुं राधावक्षःस्थलस्थितम्। एवं वाञ्छितरूपं ते द्रष्टुं को वा न चोत्सुकः।।११९।।

आपकी दन्तपंक्ति अनार के बीजों के समान मनोरम है। आप केलिकदम्ब वृक्ष के नीचे सदा स्थित रहते हैं तथा सदा रास-क्रीड़ा के लिये उत्सुक रहते हैं। आप राधा के वक्षस्थल में सदा अवस्थान करते हैं। आप मुस्कराते हुये गोपीगण को अपने मुखकमल का दर्शन कराते रहते हैं। आपके ऐसे वांछित रूप का दर्शन करने हेतु कौन उत्सुक नहीं होगा?।।११८-११९।।

इत्येवमुक्त्वा विश्वसृट् प्रणनाम पुनः पुनः। एवं स्तोत्रेण तुष्टाव धर्मोऽपि शंकरः स्वयम्।।१२०।।

ननाम भूयो भूयश्च साश्रुपूर्णविलोचनः।
तिष्ठन्तोऽपि पुनः स्तोत्रं प्रचक्रुस्त्रिदशेश्वराः।।१२१।।
व्याप्तास्तत्राऽऽधमे सर्वे श्रीकृष्णतेजसा मुने।
स्तवराजमिमं नित्यं ब्रह्मेशधर्मभिः कृतम्।।१२२।।
पूजाकाले हरेरेवं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्।
सुदुर्लभां दृढां भक्तिं निश्चलां लभते हरेः।।१२३।।
सुरासुरमुनीन्द्राणां दुर्लभं दास्यमेव च।
अणिमादिकसिद्धिं च सालोक्यादिचतुष्टयम्।।१२४।।

यह कहने के अनन्तर विश्वस्रष्टा ब्रह्मा ने पुनः-पुनः परमेश्वर को प्रणाम किया। हे मुनिप्रवर! देवगण ने यहीं अवस्थित होकर कृष्ण तेज से व्याप्त होकर पुनः प्रभु का स्तव किया। ब्रह्मा, शिव तथा धर्मकृत यह श्रेष्ठतम स्तव है। जो व्यक्ति श्रीहरि के पूजनकाल में इसका पाठ करता है, वह हरि की निश्चल एवं दुर्लभ दृढ़तर भक्ति की प्राप्ति कर लेता है। वह व्यक्ति सुर-असुर तथा मुनीन्द्रों के लिये भी दुर्लभ हरि का दासत्व तथा अणिमादि सिद्धि, सालोक्यादि चतुर्विध मुक्ति लाभ करता है। इसमें सन्देह नहीं है।।१२०-१२४।।

इहैव विष्णुतुल्यश्च विख्यातः पूजितो ध्रुवम्।
वाक् सिद्धिर्मन्त्रसिद्धिश्च भवेत्तस्य सुनिश्चितम्।।१२५।।
सर्वसौभाग्यमारोग्यं यशसा पूरितं जगत्।
पुत्रश्च विद्या कविता निश्चला कमला तथा।।१२६।।
पत्नी पतिव्रता साध्वी सुशीला सुस्थिराः प्रजाः।
कीर्तिश्च चिरकालीनात्वन्ते कृष्णान्ति के गतिः।।१२७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोलोकवर्णने श्रीकृष्णस्तोत्रराजपठनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

---

१. क. ०सोत्सुकम्।

वह व्यक्ति संसार में विष्णुवत् विख्यात तथा पूज्य होता है। यह निश्चित हैं। उसे निश्चित रूप से वाक्-सिद्धि, मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। उसके यश से जगत् व्याप्त हो जाता है। वह सभी प्रकार के सौभाग्य तथा आरोग्य का लाभ करता है। उसे पुत्र, विद्या, कविता, निश्चला लक्ष्मी प्राप्त होती हैं। उसे पतिव्रता, साध्वी, सुशीला स्त्री, सुस्थिर प्रजा (संतति परम्परा) चिरकालीन स्थायी कीर्त्ति तथा सर्वान्त में श्रीकृष्ण के पास भी गति प्राप्त होती है।।१२५-१२७।।

।।पाँचवा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ षष्ठोऽध्यायः

महातेजमण्डल में देवगण द्वारा राधाकृष्ण दर्शन

नारायण उवाच

ध्यात्वा स्तुत्वा च तिष्ठन्तो देवास्ते तेजसः पुरः।
ददृशुस्तेजसो मध्ये शरीरं कमनीयकम्।।१।।
सजलाम्भोदवर्णाभं सस्मितं सुमनोहरम्। परमाह्लादकं रूपं त्रैलोक्यचित्तमोहनम्।।२।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–कृष्णतेज के समक्ष देवता लोग इस प्रकार का ध्यान एवं स्तव करके उस तेज के सामने खड़े हो गये। कुछ समय के उपरान्त उन्होंने उस महातेज के मध्य में मनोहर कमनीय शरीर देखा। वह शरीर जलपूर्ण मेघ के समान वर्ण वाला, मुस्कानयुक्त मनोहर मुखयुक्त था। वह परम आह्लाददायक रूप त्रैलोक्य के चित्त का मोहन करने वाला था।।१-२।।

गण्डस्थलकपोलाभ्यां ज्वलन्मकरकुण्डलम्।
सद्रत्ननूपुराभ्यां च चरणाम्भोजराजितम्।।३।।
वह्निशुद्धहरिद्राभामूल्यवस्त्रविराजितम्। मणिरत्नेन्द्रसाराणां स्वेच्छाकौतुकनिर्मितैः।।४।।
भूषितं भूषणै रम्यैस्तद्रूपेणैव भूषितैः। विनोदमुरलीयुक्तबिम्बाधरमनोहरम्।।५।।
प्रसन्नेक्षणपश्यन्तं भक्तानुग्रहकारकम्। सद्रत्नगुटिकायुक्तकवचोरःस्थलोज्ज्वलम्।।६।।

कानों से कपोल तक लटकते मकरांकृति कुण्डलद्वय कपोल की शोभा बढ़ा रहे थे। वे अत्यन्त उज्वलाकृति थे। उनके दोनों चरण रत्ननिर्मित नूपुरों से शोभायमान थे। उन्होंने अग्निशुद्ध हरितवर्ण के वस्त्रों को धारण किया था। वे मणियों के सारभाग से स्वेच्छानुरूप निर्मित रम्य भूषणों से भूषित थे। उनके बिम्बफल के वर्ण के अधरोष्ठ मुरली से युक्त होने के कारण अत्यन्त मनोहर लग रहे थे। वे प्रभु

भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये कातर थे तथा वे सभी को प्रसन्न दृष्टि से देखते जा रहे थे। उनका वक्षस्थल विशुद्ध स्वर्ण से बनी गुटिका से शोभायमान था मानो वह विशाल वक्षस्थल का कपाट हो।।३-६।।

कौस्तुभासक्तसद्रत्नप्रदीप्ततेजसोज्ज्वलम्। तत्र तेजसि चार्वङ्गीं ददृशु राधिकाभिधाम्।।७।।
पश्यन्तं सस्मितं कान्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा। मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिविराजिताम्।।८।।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्। शरत्पार्वणचन्द्राभाविनिन्दास्यमनोहराम्।।९।।
बन्धुजीवप्रभामुष्टाधरौष्ठरुचिराननाम्। रणन्मञ्जीरयुग्मेन पादाम्बुजविराजिताम्।।१०।।

उनका वक्षस्थल कौस्तुभ मणि से उद्भासित था। देवगण ने उस तेजराशि के अभ्यन्तर में उत्तम अङ्गों वाली राधा का दर्शन किया। वे मन्द मुस्कान के साथ तथा वक्र चितवन से अपने प्रियतम को देख रही थीं। उनकी दन्तपंक्ति तो मुक्ता पंक्ति की शोभा को लज्जित करती जा रही थी। उनका मुख मन्द मुस्कान युक्त था। उनके नेत्र शरत्कालीन कमल के समान थे। उनकी मुखकान्ति शरत्कालीन चन्द्रकान्ति को भी विनिन्दित कर रही थीं। उनके अधरोष्ठ ने तो बन्धुजीव के पुष्प की प्रभा को भी चुरा लिया था। उनके चरणकमल क्वणन करते नूपुरद्वय के विराजित होने के कारण अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे।।७-१०।।

मणीन्द्राणां प्रभामोषनखराजिविराजिताम्। कुङ्कुमाभासमाच्छाद्यपदाधोरागभूषिताम्।।११।।
अमूल्यरत्नसाराणां [१]रशनाश्रोणिभूषिताम्। हुताशनविशुद्धांशुकामूल्यज्वलितोज्ज्वलाम्।।१२।।

उनके नख ऐसे मनोहर थे मानो उन्होंने मणियों की प्रभा का अपहरण करके अपनी शोभा को बड़ा लिया! उनका तलवा कुंकुम की कान्ति से सुशोभित हो रहा था। उनका श्रोणीभाग अमूल्य रत्नों के सार से बनी करधनी से शोभान्वित था। देवी ने अग्निशुद्ध वस्त्र धारण किया था, उसके कारण वे दीप्त लग रही थीं।।११-१२।।

महामणीन्द्रसाराणां किङ्किणीमध्यसंयुताम्। सद्रत्नहारकेयूरकरकङ्कणभूषिताम्।।१३।।
रत्नेन्द्रसाररचितकपोलोज्ज्वलकुण्डलाम्। कर्णोपरि मणीन्द्राणां कर्णभूषणभूषिताम्।।१४।।

उन देवी का मध्यभाग महान् मणियों के साररूप किंकिणियों (छोटी घंटियों) से शोभायमान था। वे उत्तम रत्न हार-केयूर-कंकण से भूषित थीं। उत्तम रत्नों के सार से रचित कुण्डल उनके कपोलों पर विलम्बित था। उनके कर्णद्वय उत्तम मणियों से बने कर्णभूषण से शोभान्वित थो।१३-१४।।

खगेन्द्रचञ्चुनासाग्रगजेन्द्रमौक्तिकान्विताम्। मालतीमालया वक्रकबरीभारशोभिताम्।।१५।।

मालया कौस्तुभेन्द्राणां वक्षःस्थलसुशोभिताम्।
पारिजातप्रसूनानां मालाजालोज्ज्वलाम्बराम्।।१६।।

---
१. क. ०पाझकश्रो०।

देवी की नासिका पक्षीराज की चोंच के समान थी, जिसमें गजमुक्ता की नथ लटक रही थी। उनके घुंघराले केशपाश में मालती की माला गूंथी गई थी। देवी का वक्षस्थल उत्तम कौस्तुभ मणियों की माला से देदीप्यमान था। देवी ने पारिजात पुष्पों की माला कण्ठ में धारण किया था, जिसके कारण देवी का परिधान अत्यन्त उज्वल प्रतीत हो रहा था।।।१५-१६।।

रत्नाङ्गुलीयनिकरैः कराङ्गुलिविभूषिताम्। दिव्यशङ्खविकारैश्च चित्रारागविभूषितैः।।१७।।
सूक्ष्मसूत्राकृतै रम्यैर्भूषितां शङ्खभूषणैः। सद्रत्नसारगुटिकाराजिसूत्रसुशोभिताम्।।१८।।

देवी के हाथों की उंगलियां रत्नों की अंगूठी से भूषित थीं। देवी को दिव्य शंख से निर्मित विचित्र रागभूषित भूषण विभूषित कर रहे थे अर्थात् देवी ने विचित्र राग रंजित दिव्यशंखों के विकार द्वारा निर्मित आभूषणों को सूक्ष्मसूत्राकार गूंथ कर धारण किया था। वे सभी मनोहर शोभा का द्योतन करा रहे थे।।१७-१८।।

प्रतप्तस्वर्णवर्णाभामाच्छाद्य चारुविग्रहाम्।
नितम्बश्रोणिललितां पीनस्तननताम्बराम्।।१९।।
भूषितां भूषणैः सर्वैः सौन्दर्येण विभूषितैः।
विस्मितास्त्रिदशाः सर्वे दृष्ट्वा तामीश्वरीं वराम्।
तुष्टुवुस्ते सुराः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः।।२०।।

उन्होंने तप्त काञ्चनवर्णा रक्तसूत्र में ग्रथित रत्नसार से बनी गुटिका धारण किया था। वे अपने नितम्ब भाग तथा श्रोंणी द्वारा मनहरण कर रही थीं। वे अपने उन्नत स्थूल स्तनों के कारण झुकी-सी लग रही थीं। वे अपने सौन्दर्यराशि से भूषित भूषणों से विभूषिता थीं। देवताओं ने जब इस प्रकार श्रेष्ठ-ईश्वरी को देखा, तब वे अत्यन्त विस्मित हो गये। वे सभी देवता अब पूर्ण मनोरथ होकर उनका स्तव करने लगे।।१९-२०।।

ब्रह्मोवाच

तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे।
भुवनविभवभोगातापशान्त्यौषधाय सुदृढसुपरिपक्वां देहि भक्तिं च दास्यम्।।२१।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे ईश्वर! मेरा मनरूपी भृंग आपके चरणकमलों पर प्रेम तथा भक्ति के साथ सतत् गुञ्जन करता मडराता रहे। आप मुझे सुपरिपक्व तथा सुदृढ़ भक्ति एवं दासत्व प्रदान करके इस भुवन विभव के भोग से तप रहे मुझे शान्ति रूप औषधि प्रदान करें तथा मेरी रक्षा करें।।२१।।

शंकर उवाच

भवजलधिनिमग्नश्चित्तमीनो मदीयो भ्रमति सततमस्मिन्घोरसंसारकूपे।
विषयमतिविनिन्द्यं सृष्टिसंहाररूपमपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे।।२२।।

शङ्कर कहते हैं–हे प्रभो! मेरा चित्तरूपी मत्स्य भव जलधि से निमग्न है। वह इस संसार कूप में निरन्तर (जन्म-मरणरूप) भ्रमण कर रहा है। हे दयालु! आप कृपा करके इस सृष्टि-संहार रूप निन्दित विषयों से मुझे मुक्त करके अपने चरणकमलों के प्रति भक्ति प्रदान करिये।।२२।।

धर्म उवाच

तव निजजनसार्धं सङ्गमो मे मदीश भवतु विषयबन्धच्छेदने तीक्ष्णखड्गः।
तव चरणसरोजे स्थानदानैकहेतुर्जनुषि जनुषि भक्तिं देहि पादारविन्दे॥२३॥

धर्मदेव कहते हैं–हे जगदीश! आप भक्तों सहित मुझमें चिरकालीन निवास करें। आपका भक्तों सहित यह निवास विषयबन्धन छेदक तीक्ष्ण खड्गरूप है तथा आपके चरणकमल में स्थान प्राप्त करने का अद्वितीय कारण है। हे दयामय! जन्म-जन्म में आप अपने श्रीचरणों के प्रति भक्ति प्रदान करिये!।।२३।।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा परिपूर्णैकमानसाः। कामपूरस्य पुरतस्तिष्ठन्तो राधिकापतेः॥२४॥
सुराणां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच कृपानिधिः। हितं तथ्यं च वचनं स्मेराननसरोरुहः॥२५॥

देवगण ने राधिकारमण की स्तुति करके सम्पूर्ण मनोरथ को प्राप्त किया। तदनन्तर वे सभी राधिकापति के समक्ष खड़े हो गये। देवताओं का यह स्तवन सुनकर मुस्कान युक्त मुखकमल वाले कृपानिधि ने उन सबसे हितप्रद तथ्य वचन कहा–।।२४-२५।।

श्रीकृष्ण उवाच

तिष्ठताऽऽगच्छत सुरा मदीया नात्र संशयः।
शिवाश्रयाणां कुशलं प्रष्टुं युक्तं न साम्प्रतम्॥२६॥
निश्चिन्ता भवतात्रैव का चिन्ता वो मयि स्थिते।
स्थितोऽहं सर्वजीवेषु प्रत्यक्षोऽहं स्तवेन वै॥२७॥
युष्माकं यमभिप्रायं सर्वं जानामि निश्चितम्।
शुभाशुभं च यत्कर्म काले खलु भविष्यति॥२८॥
महत्क्षुद्रं च यत्कर्म सर्वं कालकृतं सुराः।
स्वे स्वे काले च तरवः फलिताः पुष्पिणः सदा॥२९॥
परिपक्वफलाः कालेऽकाले पक्वफलान्विताः।
सुखं दुःखं विपत्संपच्छोकचिन्ताशुभाशुभम्॥३०॥
स्वकर्मफलनिष्ठं च सर्वकालेऽप्युपस्थितम्।
न हि कस्य प्रियः को वा विप्रियो वा जगत्त्रये॥३१॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे देवताओं! तुम सब मेरी पुरी में विश्राम करो। जब तुम सब ने मंगलमय

आश्रय ग्रहण कर लिया है, तब तुम लोगों से कुशल प्रश्न करना उचित नहीं है। तुम सभी यहां निश्चिन्त होकर अवस्थान करो। मेरे रहते, मेरे भक्तगण को क्या चिन्ता? मैं सभी जीवों में लीन स्थिति में रहता हूं, तथापि स्तव द्वारा प्रत्यक्ष हो जाता हूं। मैंने तुम लोगों का समस्त अभिप्राय जान लिया है। काल ही महत् तथा क्षुद्रतर कार्य का विधान करता है। वृक्ष अपने-अपने निर्दिष्ट ऋतु के समय ही फल-पुष्प युक्त होते हैं। यथाकाल ही पके फल शोभायमान होकर प्राप्त होते हैं। कालक्रम से ही वृक्ष फल युक्त होता है। सुख-दुःख, विपद-सम्पदा, शोक-चिन्ता, शुभ-अशुभ सब कार्य अपने कर्मफल से कालक्रमेण घटित होता है। त्रैलोक्य में कोई भी न तो किसी को प्रिय है न अप्रिय ही है।।२६-३१।।

काले कार्यवशात्सर्वे भवन्त्येवाप्रियाः प्रियाः।
राजानो मनवः पृथ्व्यां दृष्टा युष्माभिरत्र वै।।३२।।

स्वकर्मफलपाकेन सर्वे कालवशं गताः। युष्माकमधुना चैव गोलोके यत्क्षणं गतम्।।३३।।
पृथिव्यां तत्क्षणेनैव सप्त मन्वन्तरं गतम्। इन्द्राः सप्त गतास्तत्र देवेन्द्रश्चाष्टमोऽधुना।।३४।।

केवल कालक्रमेण कार्यवशात् सभी प्रिय अथवा अप्रिय हो जाते हैं। पृथिवी पर जो सभी राजा अथवा मनु आदि परिलक्षित होते हैं, वे भी अपने कर्मफल के परिपाक द्वारा काल के वशीभूत हो जाते हैं। किम्बहुना, तुम सब ने गोलोक में जो एक क्षण व्यतीत किया है, उतने में पृथिवी पर सात मन्वन्तर विगत हो गये। इस एक क्षण में ही पृथिवी पर ७ इन्द्र का काल समाप्त हो गया। अब वहां अष्टम इन्द्र हैं।।३२-३४।।

कालचक्रं भ्रमत्येव मदीयं च दिवानिशम्।
इन्द्राश्च मानवा भूपाः सर्वे कालवशं गताः।।३५।।
कीर्तिः पृथ्व्यां पुण्यमद्य कथामात्रावशेषितम्।
अधुनाऽपि च राजानो दुष्टाश्च हरिनिन्दकाः।।३६।।

बभूवुर्बहवो भूमौ महाबलपराक्रमाः। सर्वे यास्यन्ति राजानः कालान्तरवशं ध्रुवम्।।३७।।

उपस्थितोऽपि कालोऽयं वातो वाति निरन्तरम्।
वह्निर्दहति सूर्यश्च तपत्येव ममाऽऽज्ञया।।३८।।

यह मेरा कालचक्र है। यह दिन-रात अनवरत घूर्णित होता रहता है। इन्द्र-मनु-राजा सभी काल के वश में हैं। इनकी कीर्त्ति तथा पुण्यकथा मात्र पृथिवी पर अवशिष्ट रह जाती है। अभी भी अनेक राजा दुष्ट प्रवृत्ति तथा हरिनिन्दक हैं। पृथिवी पर अनेक महाबली, पराक्रमी राजा हो गये हैं, तथापि सभी कालान्तर में कालक्रमेण काल के वश में हो जाने वाले हैं । यह काल मेरी ही आज्ञा से उपस्थित रहता है। मेरी ही आज्ञा से वायु सदा बहती है। अग्नि दहन करता है, सूर्य प्रखर तेज होकर अत्यन्त ताप प्रदान करना है। यह सब मेरी ही आज्ञा से होता है।।३५-३८।।

व्याधयः सन्ति देहेषु मृत्युश्चरति जन्तुषु। वर्षन्त्येते जलधराः सर्वे देवा ममाऽऽज्ञया।।३९।।

ब्राह्मण्यनिष्ठा विप्राश्च तपोनिष्ठास्तपोधनाः।
ब्रह्मर्षयो ब्रह्मनिष्ठा योगनिष्ठाश्च योगिनः॥४०॥
ते सर्वे मद्भयाद्भीताः स्वकर्मधर्मतत्पराः।
मद्भक्ताश्चैव निःशङ्काः कर्मनिर्मूलकारकाः॥४१॥

यह मेरी ही आज्ञा है, जो प्राणीगण का देह व्याधिग्रस्त होता रहता है। मेरी आज्ञा से ही प्रत्येक जीव देह में मृत्यु विचरती हैं तथा मेरी ही आज्ञा से जलद मेघ अनवरत जल वर्षण करते हैं। मेरी आज्ञा से ही ब्राह्मण ब्राह्मणत्व की निष्ठा का पालन करते हैं तथा तपोधन तपःश्चरण में निरत रहते हैं। मेरी आज्ञा से ही ब्रह्मर्षिगण ब्रह्मनिष्ठ हैं तथा योगीगण योगनिष्ठ हैं। ये सभी मेरे भय से भयभीत होकर स्वकर्म तथा स्वधर्म में तत्पर रहते हैं। मेरी ही आज्ञा से मेरे भक्त कर्म को निर्मूल करके निःशङ्कर हो जाते हैं।।३९-४१।।

देवाः कालस्य कालोऽहं विधाता धातुरेव च।
संहारकर्तृः संहर्ता पातुः पाता परात्परः॥४२॥
ममाऽऽज्ञयाऽयं संहर्ता नाम्ना तेन हरः स्मृतः।
त्वं विश्वसृट् सृष्टि हेतोः पाता धर्मश्च रक्षणात्॥४३॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वेषामहमीश्वरः। स्वकर्मफलदाताऽहं कर्मनिर्मूलकारकः॥४४॥
अहं यान्संहरिष्यापि कस्तेषामपि रक्षिता।
यानहं पालयिष्यामि तेषां हन्ता न कोऽपि वा॥४५॥

हे देवगण! मैं तो कालों का काल, विधाता का भी विधाता, संहारक का भी संहार करने वाला, पालनकर्त्ता का भी पालक तथा परात्पर रूप हूं। मेरी आज्ञा से ही हर ने संहार कार्य में नियुक्त होकर संहारकर्त्ता का नाम धारण किया है। आप ब्रह्मा सृजनकर्त्ता तथा धर्म रक्षाकर्त्ता नियुक्त किये गये हैं। आप रक्षाकर्त्ता कहलाये। यह सब मेरी ही आज्ञा से हो सका है। मैं ब्रह्मा से लगाकर तृण पर्यन्त का ईश्वर हूं। मैं ही सबको कर्मानुरूप फल प्रदान करता हूं तथा कर्म में नियुक्त कर देता हूं। मैं जिसका विनाश करता हूं, उसकी रक्षा कौन कर सकेगा? जिसे मैं पालता हूं, उसका हनन कौन कर सकेगा?।।४२-४५।।

सर्वेषामपि संहर्ता स्रष्टा पाताऽहमेव च। नाहं शक्तश्च भक्तानां संहारे नित्यदेहिनाम्॥४६॥
भक्ता ममानुगा नित्यमत्पादार्चनतत्परः। अहं भक्तान्तिके शश्वत्तेषां रक्षणहेतवे॥४७॥
सर्वे नश्यन्ति ब्रह्माण्डे प्रभवन्ति पुनः पुनः।
न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति निःशङ्काश्च निरापदः॥४८॥

मैं ही सबका स्रष्टा, पालनकर्त्ता तथा संहारक हूं, तथापि जो नित्यदेहधारी भक्त हैं, उनका संहार कर सकने की शक्ति मुझमें भी नहीं है। भक्तगण तो सतत् मेरे अनुगत हैं तथा मेरे चरणों की अर्चना में

ही लगे रहते हैं। मैं अपने भक्तों के रक्षणार्थ उनके निकट निरन्तर रहता हूं। इस ब्रह्माण्ड के सभी जीव पुनः-पुनः उत्पन्न होते तथा नष्ट होते रहते हैं, तथापि मेरे भक्त तो अविनाशी, निःशंक तथा निरापद रहते हैं। तभी पण्डितगण मेरे श्रेष्ठ दासत्व की सदा कामना करते हैं।।४६-४८।।

अतो विपश्चितः सर्वे दास्यं वाञ्छन्ति नो वरम्।
ये मां दास्यं प्रयाचन्ते धन्यास्तेऽन्ये च वञ्चिताः॥४९॥
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं च यमयातना।
अन्येषां कर्मिणामस्ति न भक्तानां च कर्हिचित्॥५०॥
भक्ता न लिप्ताः पापेषु पुण्येषु सर्वकर्मिणः।
अहं धुनोमि तेषां च कर्मभोगान्सुनिश्चितम्॥५१॥
अहं प्राणश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च।
ध्यायन्ते ते च मां नित्यं तान्स्मरामिदिवानिशम्॥५२॥

जो मेरे दासत्व की कामना करते हैं, वे धन्य हैं, तथापि अन्य लोग इससे वंचित रह जाते हैं। सभी कर्मनिरत जीवगण को जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-भय तथा यमयातना का भोग करना पड़ता है, तथापि मेरे भक्तगण को ये सभी स्पर्श भी नहीं कर सकते। मेरे भक्त कदापि किसी कर्म के पापपुण्य में लिप्त नहीं हैं। मैं भक्तों का प्राण हूं। भक्तगण तो मेरे प्राण रूप हैं। मैं भक्तों के कर्मभोग का नाश कर देता हूं। वे मेरा सदा ध्यान करते हैं। मैं उनका अहर्निश स्मरण करता रहता हूं।।४९-५२।।

चक्रं सुदर्शनं नाम षोडशारं सुतीक्ष्णकम्।
यत्तेजः षोडशांशोऽपि नास्ति सर्वेषु जीविषु॥५३॥
भक्तान्तिके तु तच्चक्रं दत्त्वा रक्षार्थमीप्सितम्।
न स्वास्थ्यं न च प्रीतिर्मे यामि तेषां च संनिधिम्॥५४॥
न मे स्वास्थ्यं च वैकुण्ठे गोलोके राधिकान्तिके।
यत्र तिष्ठन्ति भक्तास्ते तत्र तिष्ठाम्यहर्निशम्॥५५॥

मेरा यह षोडशार सुदर्शन चक्र अत्यन्त तीक्ष्ण है। इसमें जो तेज है, वैसे तेज का १/१६ अंश भी जीवों में नहीं है। उस सुदर्शन को भक्तों के रक्षार्थ उन भक्तों के समीप रखने पर भी मुझे सन्तोष नहीं होता। मैं उनके समीप स्वयं जाकर रहता हूं। गोलोक में राधा के पास अथवा वैकुण्ठ में कहीं भी स्वस्थ रूप से स्थिर नहीं रह पाता। इसी कारण जहां कहीं मेरे भक्त रहते हैं, मैं अहर्निश वहीं रहता हूं।।५३-५५।।

प्राणेभ्यः प्रेयसी राधा स्थितोरसि दिवानिशम्।
ययं प्राणाधिका लक्ष्मीर्न मे भक्तात्परा प्रिया॥५६॥

राधा मेरे वक्ष में सदा अवस्थान करती हैं। वे मेरे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। तुम सभी लोगों तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय लक्ष्मी अपने भक्तों से अधिक मुझे प्रिय नहीं है।।५६।।

भक्तदत्तं च यद्द्रव्यं भक्त्याऽश्नामि सुरेश्वराः।
अभक्तदत्तं नाश्नामि ध्रुवं भुङ्क्ते बलिः स्वयम्।।५७।।
स्त्रीपुत्रस्वजनांस्त्यक्त्वा ध्यायन्ते मामहर्निशम्।
युष्मान्विहाय तान्नित्यं स्मराम्यहमहर्निशम्।।५८।।
दुष्टा यदा मे भक्तानां ब्राह्मणानां गवामपि।
क्रतूनां देवतानां च हिंसा कुर्वन्ति निश्चितम्।।५९।।
तदाऽचिरं ते नश्यन्ति यथा वह्नौ तृणानि च।
न कोऽपि रक्षिता तेषां मयि हन्तर्युपस्थिते।।६०।।

हे सुरेश्वर! मैं तो भक्तगण द्वारा प्रदत्त वस्तु का भोजन मैं प्रेम पूर्वक कर लेता हूं, परन्तु अभक्तों द्वारा प्रदत्त वस्तु का भोजन मैं कदापि नहीं करता। भक्तगण तो अपने स्त्री-पुत्र तथा स्वजनों के प्रति मोहमयी चिन्ता का त्याग करके अहर्निश मेरा ही ध्यान करते रहते हैं। तभी मैं तुम लोगों की चिन्ता को छोड़कर भक्तों को ही अपनी स्मृति में रखता हूं। जो मेरे भक्तों से, ब्राह्मण तथा गौओं से द्वेष करता है, वह उसी प्रकार से शीघ्र विनष्ट हो जाता है, जैसे अग्नि में शुष्क तृण! मुझ जैसे उनका विनाश करने वाले के विद्यमान रहते उसकी रक्षा कोई भी नहीं कर सकता।।५७-६०।।

यास्यामि पृथिवीं देवा यात यूयं स्वमालयम्।
यूयं चैवांशरूपेण शीघ्रं गच्छत भूतलम्।।६१।।
इत्युक्त्वा जगतां नाथो गोपानाहूय गोपिकाः।
उवाच मधुरं वाक्यं सत्यं यत्समयोचितम्।।६२।।
गोपा गोप्यश्च शृणुत यात नन्दव्रजं परम्। वृषभानुगृहे क्षिप्रं गच्छ त्वमपि राधिके।।६३।।

"हे देवगण! मैं पृथिवी पर जाऊंगा (अवतार ग्रहण करूंगा)। अब तुम सभी लोग अपने-अपने घर जाओ। तुम सब भी अपने-अपने अंश से धरती पर अवतीर्ण हो जाना।" यह कहकर जगन्नाथ ने गोलोकस्थ गोपीगण-गोपों को बुलाया तथा उनसे मधुर सत्य तथा समयोचित वाक्य कहा कि "हे गोप-गोपियों! श्रवण करो। तुम सभी तत्काल परम भूमि ब्रज में जाओ, जहां नन्द रहते हैं। (अवतीर्ण हो जाओ)। हे राधिके! तुम भी शीघ्र वृषभानु के गृह जाओ (वहां जन्म लेना)।।६१-६३।।

वृषभानुप्रिया साध्वी नन्दगोपकलावती। सुबलस्य सुता सा च कमलांशसमुद्भवा।।६४।।
पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या च योषिताम्।
पुरा दुर्वाससः शापाज्जन्म तस्या व्रजे गृहे।।६५।।

तस्या गृहे जन्म लभ शीघ्रं नन्दव्रजं व्रज। त्वामहं बालरूपेण गृह्णामि कमलानने॥६६॥
त्वं मे प्राणाधिका राधे तव प्राणाधिकोऽप्यहम्।
न किंचिदावयोर्भिन्नमेकाङ्गं सर्वदैव हि॥६७॥

वहां वृषभानु प्रिया साध्वी गोपी कलावती हैं। वह लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न तथा दुर्वासा के शाप से धरती पर जन्मी हैं तथा सुबल की पुत्री हैं। वह पितृगण की मानसी पुत्री हैं। वह नारीगण में धन्या एवं मान्या हैं। हे कमलानना राधा! तुम शीघ्र ब्रज में जाकर कलावती के उदर से जन्म ग्रहण करो। मैं भी बालरूपधारी होकर वहां तुमको ग्रहण करूंगा। हे राधा! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। तुम भी मुझे प्राणाधिक मानती हो। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। हम दोनों सर्वदा एक हैं"॥६४-६७॥

श्रुत्वैवं राधिका तत्र रुरोद प्रेमविह्वला। पपौ चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं हरेर्मुने॥६८॥

कृष्ण का यह कथन सुनकर प्रेमविह्वला राधा रुदन करने लगीं। हे मुनिवर! राधा के नेत्र चकोर पक्षी की तरह कृष्ण के चन्द्ररूपी मुख की रश्मियों का पान करने लगे॥६८॥

जनुर्लभत गोपाश्च गोप्यश्च पृथिवीतले। गोपानामुत्तमानां च मन्दिरे मन्दिरे शुभे॥६९॥
एकस्मिन्नन्तरे सर्वे ददृशू रथमुत्तमम्। मणिरत्नेन्द्रसारेण हीरकेण विभूषितम्॥७०॥

तब कृष्ण ने कहा—"हे गोप एवं गोपीगण! तुम लोग पृथिवी पर उत्तम गृहों में शुभ-स्थानों में जन्म लो।" तभी सब ने एक अत्युत्तम रथ वहां देखा। वह रथ मणियों तथा रत्नों के सारभाग से निर्मित एवं हीरों से भूषित था॥६९-७०॥

श्वेतचामरलक्षेण शोभितं दर्पणायुतैः। सूक्ष्मकाषायवस्त्रेण वह्निशुद्धेन भूषितम्॥७१॥
सद्रत्नकलशानां च सहस्रेण सुशोभितम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजलैर्विराजितम्॥७२॥

वह रथ लाखों श्वेतचामरों, सहस्रों दर्पणों से युक्त था। वह रथ सूक्ष्म एवं अग्निशुद्ध काषाय वस्त्र से भूषित था। वह श्रेष्ठ रत्नमय हजारों कलशों से शोभित एवं पारिजात पुष्पों की वन्दनवार से सजा था॥७१-७२॥

पार्षदप्रवरैर्युक्तं शतकुम्भमयं शुभम्। तेजः स्वरूपमतुलं शतसूर्यसमप्रभम्॥७३॥
तत्रस्थं पुरुषं श्यामं सुन्दरं कमनीयकम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं वरम्॥७४॥
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम्॥७५॥
चतुर्भुजं स्मेरवक्त्रं भक्तानुग्रहकारकम्। मणिरत्नेन्द्रसाराणां सारभूषणभूषितम्॥७६॥

वह रथ श्रेष्ठ पार्षदगण से युक्त, स्वर्ण से मढ़ा, शुभ, अतुलित तेज तथा रूपयुक्त था। उसकी प्रभा सैकड़ों सूर्य की प्रभा के समान थी। उस रथ में एक श्यामवर्ण सुन्दर कमनीय शंख-चक्र-गदा-कमलधारी तथा पीताम्बर पहने एक पुरुष विराजमान था। उसने किरीट, कुण्डल धारण किया था। वह वनमाला से भूषित, चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम से चर्चित अंगों वाला, चतुर्भुज, मुस्कानयुक्त आनन

वाला था। उसने मणियों तथा रत्नों के सारभाग का आभूषण पहना था। वह भक्तों पर कृपा करने वाला प्रभु था।।७३-७६।।

देवीं तद्वामतो रम्यां शुक्लवर्णां मनोहराम्।
रत्नालङ्कारशोभाढ्यां शोभिनां पीतवाससा।।७७।।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च स्मेरयुक्तां मनोहराम्।।७८।।
वेणुवीणाग्रन्थहस्तां भक्तानुग्रहकारिकाम्।
विद्याधिष्ठातृदेवीं च ज्ञानरूपां सरस्वतीम्।।७९।।
अपरां दक्षिणे रम्यां शतचन्द्रसमप्रभाम्। प्रतप्तस्वर्णवर्णाभां सस्मितां सुमनोहराम्।।८०।।
सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च सुकपोलविराजिताम्। अमूल्यरत्नखचितामूल्यवस्त्रेण भूषिताम्।।८१।।
अमूल्यरत्नकेयूरकरकङ्कणशोभिताम्। सद्रत्नसारमञ्जीरकलशब्दसमन्विताम्।।८२।।

उस पुरुष के वामभाग में वेणु तथा वीणा हाथों में लिये, भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु कातर, शुक्लवर्ण मनोहर रम्य रूप वाली, ज्ञानरूपा विद्या की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती बैठी थीं। इन पुरुष नारायण के दक्षिण भाग में अन्य एक रमणी विराजमान थीं। ये भी अत्यन्त रमणीया, शरत्कालीन चन्द्र के समान प्रभाशालिनी तपे हुये, स्वर्ण के वर्ण वाली मृदुमुस्कानयुता मनोहारिणी लक्ष्मी थीं। कानों में लटकते कुण्डलद्वय से उनके कपोल द्युतिपूर्ण हो रहे थे। उन्होंने अमूल्य रत्नजड़ित वस्त्र पहना था। उनके चरणयुगल की शोभा रत्नसारनिर्मित पाजेब बढ़ा रही थी, जिसमें लगी छोटी-छोटी किंकिंणियों की ध्वनि भी शब्दायमान हो रही थी।।७७-८२।।

मणीन्द्रकिङ्किणीयुक्तमध्यदेशसमन्विताम्। पारिजातप्रसूनानां मालावक्षः स्थलोज्ज्वलाम्।।८३।।
प्रफुल्लमालतीमालासंयुक्तकबरीयुताम्। शरच्चन्द्रप्रभामुष्णन्मुखचारुविभूषिताम्।।८४।।
कस्तूरीबिन्दुसंयुक्तसिन्दूरतिलकान्विताम्। सुचारुकज्जलासक्तशरत्पङ्कजलोचनाम्।।८५।।

उन देवी का मध्यभाग मणियों की किंकिणी से युक्त था। पारिजात पुष्पमाला से उनका वक्षस्थल उज्वल हो रहा था। देवी के केशपाश में खिले हुये मालतीपुष्प की माला गुंथी थी। देवी का सुन्दर मुख शरत्कालीन चन्द्र की प्रभा को भी मानो अपनी प्रभा से म्लान कर रहा था। देवी का ललाट कस्तूरी की बिन्दी से युक्त था तथा उन्होंने सिन्दूर का तिलक लगा रखा था। उनके नयन शरत्कालीन खिले कमल के समान थे, जो मनोहर काजल से सजे थे।।८३-८५।।

सहस्रदलसंसक्तलीलाकमलसंयुताम्। नारायणं च पश्यन्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा।।८६।।
अवरुह्य रथात्तूर्णं सस्त्रीकः सहपार्षदः। जगाम च सभां रम्यां गोपगोपीसमन्विताम्।।८७।।

देवी के हाथों में लीला कमल था। वे देवी अपने कटाक्ष से नारायण की ओर देख रही थीं। अब नारायण देव अपनी पत्नियों तथा पार्षदों सहित रथ से शीघ्रता पूर्वक उतरे तथा वे गोप-गोपीगण युक्त रम्य सभा में पहुंच गये।।८६-८७।।

देवा गोप्यश्च गोपाश्च तस्थुः प्राञ्जलयो मुदा।
सामवेदोक्तस्तोत्रेण कृतेन च सुरर्षिभिः॥८८॥
गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे।
दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं ते सर्वे विस्मयं ययुः॥८९॥

भगवान् को वहां सभा में समागत देखकर गोपी-गोप समुदाय ने तथा देवगण ने करवद्ध होकर सहर्ष उनका स्वागत खड़े होकर किया। तब देवर्षिगण ने सामवेदोक्त स्तोत्र से भगवान् की स्तुति भी किया। तभी नारायणदेव वहां आकर कृष्ण के देह में लीन हो गये। यह दृश्य देखकर सभी परम विस्मित हो गये।।८८-८९।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शातकुम्भमयाद्रथात्।
अवरुह्य स्वयं विष्णुः पाता च जगतां पतिः॥९०॥
आजगाम चतुर्बाहुर्वनमालाविभूषितः। पीताम्बरधरः श्रीमान्सस्मितः सुमनोहरम्॥९१॥
सर्वालङ्कारशोभाढ्यः सूर्यकोटिसमप्रभः। उत्तस्थुस्ते च तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः प्रणता मुने॥९२॥
स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेशस्य विग्रहे। ते दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयं परमं ययुः॥९३॥

तभी वहां अपने-स्वर्णमय रथ द्वारा वहां चतुर्भुज वनमालाभूषित, पीताम्बरधारी, श्रीशोभायुक्त मनोहर रूप वाले, कोटिसूर्यसमप्रभ जगत्पति विष्णु वहां आये। वे रथ से उतरकर उस सभा में पहुंचे। हे मुनिवर! उनको देखते ही सभा में उपस्थित सभी लोगों ने उठकर उनको प्रणाम किया तथा उनका स्तवगान करने लगे। वे भी वहां आते ही राधिकेश्वर कृष्ण के शरीर में लीन हो गये! यह देखकर सभी समागत लोग और भी चकित हो उठे!।९०-९३।।

संविलीने हरेरङ्गे श्वेतद्वीपनिवासिनि। एतस्मिन्नन्तरे तूर्णमाजगाम त्वरान्वितः॥९४॥
शुद्धस्फटिकसंकाशो नाम्ना संकर्षणः स्मृतः। सहस्त्रशीर्षा पुरुषः शतसूर्यसमप्रभः॥९५॥
आगतं तुष्टुवुः सर्वे दृष्ट्वा तं विष्णुविग्रहम्।
सचाऽऽगत्य नतस्कन्धस्तुष्टाव राधिकेश्वरम्॥९६॥
सहस्त्रमूर्धा भक्त्या च प्रणनाम च नारद। आवां च धर्मपुत्रौ द्वौ नरनारायणाभिधौ॥९७॥
लीनोऽहं कृष्णपादाब्जे बभूव फाल्गुनो वरः। ब्रह्मेशशेषधर्माश्च तस्थुरेकत्र तत्र वै॥९८॥

श्वेतद्वीप निवासी विष्णु को कृष्ण के अंग में विलीन देखकर वहां अत्यन्त त्वरा के साथ शुद्ध स्फटिकसन्निभ संकर्षण नामक सहस्त्रशीर्ष वाले पुरुष आये। वे सैकड़ों सूर्य की प्रभा से युक्त थे। सभा के लोग इन आगत विष्णुमूर्त्ति का दर्शन करके उनका स्तवगान करने लगे। हे नारद! संकर्षण देव ने वहां आकर भक्तिभाव से नतशिर होकर राधिकापति का स्तव किया तथा इसके पश्चात् उन्होंने प्रभु को अपने एक हजार शिर से प्रणाम किया। तब हम दोनों धर्म के पुत्र नर-नारायण वहां आये। मैं वहां कृष्ण

के चरण-कमल में लीन हो गया, तथापि नर ऋषि ने अर्जुन के रूप में अवतार लिया। तदनन्तर कृष्ण के समक्ष ब्रह्मा, शिव, संकर्षण, शेष, धर्म स्थित हो गये।।९४-९८।।

एतस्मिन्नन्तरे देवा ददृशू रथमुत्तमम्। स्वर्णसारविकारं च नानारत्नपरिच्छदम्।।९९।।
मणीन्द्रसारसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम्। श्वेतचामरसंयुक्तं भूषितं दर्पणायुतैः।।१००।।
सद्रत्नसारकलशसमूहेन विराजितम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम्।।१०१।।
सहस्रचक्रसंयुक्तं मनोयायिमनोहरम्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामोषकरं वरम्।।१०२।।
मुक्तामाणिक्यवज्राणां समहेन समुज्ज्वलम्।
चित्रपुत्तलिकापुष्पसरः कानननचित्रितम्।।१०३।।
देवानां दानवानां च रथानां प्रवरं मुने। यत्नेन शंकरप्रीत्या निर्मितं विश्वकर्मणा।।१०४।।

तभी देवगण ने वहां एक उत्तम रथ देखा। वह स्वर्ण का बना रथ, नाना रत्न से निर्मित वस्तुओं से सजा था। वह मणियों के सारभाग से युक्त तथा अग्निशुद्ध वस्त्रों से युक्त था। वह श्वेतचामर तथा दर्पणों से भूषित था। उस पर उत्तम रत्ननिर्मित अनेक कलश स्थित थे। वह पारिजात पुष्पों की मालाओं से शोभायमान हो रहा था। वह रथ १००० पहियों वाला, मनोवेगशाली तथा अतीव मनोहर था। ग्रीष्म के मध्याह्नकाल के सूर्य की प्रभा का शोषण करने वाला श्रेष्ठ रथ मुक्ता-माणिक्य-हीरक से अत्यन्त उज्वल था। वह रथ नाना पुत्तलियों, पुष्पयुक्त सरोवरों काननादि से युक्त था। हे मुनिवर! वह रथ तत्कालीन देव-दानवों के रथ से कहीं अधिक उज्वल था। इसे विश्वकर्मा ने यत्न पूर्वक शंकर की प्रसन्नता हेतु निर्मित किया था।।९९-१०४।।

पञ्चाशद्योजनोर्ध्वं च चतुर्योजनविस्तृतम्।
[१]रतितुल्यवधूयुक्तैः शोभितं रतिमन्दिरैः।।१०५।।
तत्रस्थां ददृशुर्देवीं रत्नालङ्कारभूषिताम्। प्रदग्धस्वर्णसाराणां प्रभामोषकरद्युतिम्।।१०६।।
तेजः स्वरूपामतुलां मूलप्रकृतिमीश्वरीम्। सहस्रभुजसंयुक्तां नानायुधसमन्विताम्।।१०७।।

हे मुनिवर! वह देवता, दानवादि के रथों की तुलना में अत्यन्त बृहद् था। यह ५० योजन उच्च तथा ४ योजन चौड़ा रथ रति के तुल्य नारीगण से शोभित रतिमन्दिर जैसा था। वहां देवगण ने उस रथ में आसीन रत्नालङ्कार भूषिता, तप्त काञ्चन सार के वर्ण वाली कान्ति को भी म्लान कर देने वाली प्रभा से युक्त देवी को देखा। वे मूलप्रकृति ईश्वरी सहस्र भुजा वाली तेज तथा स्वरूप में अतुलनीय नाना आयुध समन्वित थीं।।१०५-१०७।।

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारकाम्। गण्डस्थलकपोलस्थसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलाम्।।१०८।।
रत्नेन्द्रसाररचितक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम्। मणीन्द्रमेखलायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम्।।१०९।।

१. क. रतितल्पसमायुक्तं शो०।

सद्रत्नसारकेयूरक[१]रकङ्कणभूषिताम्। मन्दारपुष्पमालाभिरुरःस्थलसमुज्ज्वलाम्॥११०॥

उनका मुख तनिक प्रसन्नतायुक्त था। वे भक्तों पर कृपा करने वाली थीं। उनका गण्डस्थल तथा कपोल उत्तम रत्नों के कुण्डलों से उज्वल था। उन देवी के चरणों के नूपुर रत्नों के सार से रचित थे तथा उनमें से क्वणन का शब्द निकल रहा था। उनकी मेखला (करधनी) उत्तम मणियों से अलंकृत थी तथा वह देवी के कमर की शोभा की वृद्धि कर रही थीं। देवी के हस्तद्वय में उत्तम रत्नों से निर्मित केयूर एवं कंकण शोभायमान थे। उनका वक्षस्थल मन्दार पुष्पों की माला से समुज्वल हो रहा था॥१०८-११०॥

नितम्बकठिनश्रोणीं पीनोन्नतकुचानताम्। शरत्सुधाकराभासविनिन्दाम्यमनोहराम्॥१११॥
कज्जलोज्ज्वलरेखात्कशरत्पङ्कजलोचनाम्। चन्दनागुरुकस्तूरीचित्रपत्रविभूषिताम्॥११२॥
नवीनबन्धुजीवाभामोष्ठाधरसुशोभिताम्। मुक्तापङ्क्तिप्रभामुष्टदन्तराजिविराजिताम्।
प्रफुल्लमालतीमालासंसक्तकबरीं वराम्॥११३॥

देवी का नितम्ब एवं श्रोणीभाग गठा हुआ एवं कठोर था। उनके स्तनद्वय उन्नत एवं स्थूल थे। देवी का आनन शरत्कालीन चन्द्रमा की कान्ति को भी लज्जित कर रहा था। देवी के नेत्र शरत्कालीन कमल की तरह प्रतीत हो रहे थे तथा कज्जल रेखायुक्त होने के कारण अत्यन्त मनोहारी थे। देवी के अंग चन्दन-अगुरु-कस्तूरी से रचित चित्र-पत्रक से भूषित थे। देवी के ओष्ठ एवं अधर नवीन बन्धुजीव पुष्प की आभा से शोभित थे। देवी की दन्तपंक्ति मानो मुक्तापंक्ति की शोभा का हरण कर रही थी। देवी की श्रेष्ठ वेणी में खिले हुए मालती पुष्प की मालायें लिपटी थीं॥१११-११३॥

पक्षीन्द्रचञ्चुनासाग्रगजेन्द्रमौक्तिकान्विताम्। वह्निशुद्धांशुकेनातिज्वलितेन समुज्ज्वलाम्॥११४॥
सिंहपृष्ठसमारूढां सुताभ्यां सहितां मुदा। अवरुह्य रथात्तूर्णं श्रीकृष्णं प्रणनाम च॥११५॥

देवी की नासिका पक्षिराज की चोंच के समान थी, जिसके अग्रभाग में गजमुक्ता लटक रही थी। देवी का शरीर अग्निशुद्ध वस्त्र से देदीप्यमान था। भगवती अपने पुत्रगण के साथ सिंह की पीठ पर मुदित मन से आसीन थी। उन्होंने शीघ्रता पूर्वक रथ से उतर कर श्रीकृष्ण को प्रणाम किया॥११४-११५॥

सुताभ्यां [२]सहिता देवी समुवास वरानना।
गणेशः कार्तिकेयश्च नत्वा कृष्णं परात्परम्॥११६॥

देवी अपने पुत्रद्वय गणेश एवं कार्त्तिकेय के साथ नीचे उतरीं तथा आसनासीन हो गई। उस समय गणेश एवं कार्त्तिकेय ने भी नतशिर होकर कृष्ण को प्रणाम किया, जो परात्पर प्रभु हैं॥११६॥

ननाम शंकरं धर्ममनन्तं कमलोद्भवम्। उत्तस्थुराराते देवा दृष्ट्वा तौ त्रिदशेश्वरौ॥११७॥

१. क. 'रभूषणभू'।
२. क. सहसा।

आशिषं च ददुर्देवा वासयामासुरन्तिके।
ताभ्यां सह सदालापं चक्रुर्देवा मुदान्विताः॥११८॥

उन्होंने तत्पश्चात् शंकर, धर्मदेव, अनन्तदेव एवं ब्रह्मा को भी प्रणति निवेदन किया। इन देवेश्वर गणपति तथा कार्त्तिकेय को देखकर सभी देवता उनके सम्मान में खड़े हो गये। सभी देवगण ने इन देवेश्वरों को आशीर्वाद देकर उनको अपने निकट आसनासीन किया और वे सभी देवता मुदित मन से गणपति तथा स्कन्द कार्त्तिकेय से वार्त्ता करने लगे।।११७-११८।।

तस्थुर्देवा सभामध्ये देवस्य पुरतो हरेः।
गोपा गोप्यश्च बहुशो बभूवुर्विस्मयाकुलाः॥११९॥
उवाच कमलां कृष्णः स्मेराननसरोरुहः।
त्वं गच्छ भीष्मकगृहं नानारत्नसमन्वितम्॥१२०॥
वैदर्भ्या उदरे जन्म लभ देवि सनातनि।
तव पाणिं ग्रहीष्यामि गत्वाऽहं कुण्डिनं सति॥१२१॥

उस सभा में कृष्ण के आगे देवता, देवी तथा मूल प्रकृति दुर्गा अवस्थित हो गयीं। यह दृश्य देखकर गोपगण एवं गोपियां सभी अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो गये। उस समय मधुर मुस्कान के साथ कृष्ण ने कमला से कहा–"तुम नानारत्न समाकीर्ण राजा भीष्मक के यहां धरती पर जाओ। (अर्थात् वहां जन्म ग्रहण करो)। रानी वैदर्भी के उदर से तुम्हारा जन्म होगा। हे सनातनी देवी! उस समय कुण्डनीपुर जाकर मैं तुमसे विवाह करूंगा।"।।११९-१२१।।

ता देव्यः पार्वतीं दृष्ट्वा समुत्थाय त्वरान्विताः।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम्॥१२२॥
विप्रेन्द्र पार्वतीलक्ष्मीवागधिष्ठातृदेवताः।
तस्थुरेकासने तत्र संभाष्य च यथोचितम्॥१२३॥
ताश्च संभाषयामासुः संप्रीत्या गोपकन्यकाः।
ऊचुर्गोपालिकाः काश्चिन्मुदा तासां च संनिधौ॥१२४॥

इसके पश्चात् सभा में स्थित देवियों ने पार्वती को देखकर उनको आदर के साथ रत्नसिंहासनासीन कराया। हे विप्रप्रवर! तब पार्वती, लक्ष्मी तथा सरस्वती एक आसन पर बैठकर अनेक वार्त्तालाप करने लगीं। इसी समय गोप-कन्याओं ने परम प्रीति के साथ उनका यथोचित सम्मान किया तथा किसी-किसी गोपी ने तो अत्यन्त आनन्द के साथ उनके पास में ही आसन ग्रहण कर लिया। वे सभी भी हर्ष पूर्वक कुछ वार्त्ता करने लगीं।।१२२-१२४।।

श्रीकृष्णः पार्वतीं तत्र समुवाच जगत्पतिः। देवि त्वमंशरूपेण व्रज नन्दव्रजे शुभे॥१२५॥

उदरे च यशोदयाः कल्याणी नन्दरेतसा। लभ जन्म महामाये सृष्टिसंहारकारिणि॥१२६॥

उस समय जगत्पति कृष्ण ने पार्वती से कहा—"हे देवी! आप भी अपने अंश से शुभ व्रज में नन्द के यहां जायें। आप वहां यशोदा के गर्भ से कल्याणमयी होकर जन्मग्रहण करिये। आप नन्द के वीर्य से यशोदा के उदर से जन्म लीजिये। आप सृष्टि का संहार करने वाली महामाया हैं।।१२५-१२६।।

ग्रामे ग्रामे च पूजां ते कारयिष्यामि भूतले।
कृत्स्ने महीतले भक्त्या नगरेषु वनेषु च॥१२७॥
तत्राधिष्ठातृदेवीं त्वां पूजयिष्यन्ति मानवाः।
द्रव्यैर्नानाविधैर्दिव्यैर्बलिभिश्च मुदाऽन्विताः॥१२८॥
त्वद्भूमिस्पर्शमात्रेण सूतिकामन्दिरे शिवे।
पिता मां तत्र संस्थाप्य त्वामादाय गमिष्यति॥१२९॥
कंसदर्शनमात्रेण गमिष्यसि शिवान्तिकम्।
भारावतरणं कृत्वाऽऽगमिष्यामि स्वमाश्रमम्॥१३०॥

लोग पृथिवी पर आपकी प्रत्येक ग्राम में पूजा करें, मैं ऐसा करूंगा। वहां सभी नगरों तथा वनों में भक्ति के साथ लोगों द्वारा अधिष्ठात्री देवी मानी जाकर नाना प्रकार की पूजा उनके द्वारा प्राप्त करेंगी। हे कल्याणी! आपका जन्म होते ही आपके पिता मुझे सूतिका गृह में रखकर आपको लेकर कंस के पास जायेंगे। कंस का अवलोकन करते ही आप शिव के यहां चली जायेंगीं। मैं पृथिवी का भार हरण करने के अनन्तर अपने लोक गमन करूंगा।।१२७-१३०।।

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णमुवाच च षडाननम्।
अंशरूपेण वत्स त्वं गमिष्यसि महीतलम्॥१३१॥
जाम्बवत्याश्च गर्भे च लभ जन्म सुरेश्वर।
अंशेन देवताः सर्वा गच्छन्तु धरणीतलम्॥१३२॥
भारहारं करिष्यामि वसुधायाश्च निश्चितम्।
इत्युक्त्वा राधिकानाथस्तस्थौ सिंहासने वरे॥१३३॥

यह कहकर कृष्ण ने तत्काल षडानन कार्त्तिकेय से कहा—"हे वत्स! सुरेश्वर! तुम अंशरूपेण धरती पर जाकर जाम्बवती के गर्भ से जन्म ग्रहण करो। सभी देवता अपने-अपने अंश से धरती पर जाकर जन्म ग्रहण करें। मैं निश्चित रूप से धरती का भार हरण करूंगा।" यह कहकर श्रीकृष्णदेव उत्तम सिंहासनासीन हो गये!।।१३१-१३३।।

तस्थुर्देवाश्च देव्यश्च गोपा गोप्यश्च नारद। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समुत्तस्थौ हरेः पुरः।
पुटाञ्जलिर्जगत्कान्तमुवाच विनयान्वितः॥१३४॥

तत्पश्चात् सभी देवगण, गोपीगण तथा नारद भी वहां बैठ गये। तदनन्तर ब्रह्मा भी कृष्ण के समक्ष खड़े हो गये। वे विनयावनत होकर, हाथ जोड़कर कहने लगे–।।१३४।।

ब्रह्मोवाच

अवधानं कुरु विभो किंकरस्य निवेदनम्।
आज्ञां कुरु महाभाग कस्य कुत्रं स्थलं भुवि।।१३५।।
भर्ता पातोद्धारकर्ता सेवकानां प्रभुः सदा।
स भृत्यः सर्वदा भक्त ईश्वराज्ञां करोति यः।।१३६।।
के देवाः केन रूपेण देव्यश्च कलया कया।
कुत्र कस्याभिधेयं च विषयं च महीतले।।१३७।।

ब्रह्मा कहते हैं–हे प्रभो! हम किङ्करों का निवेदन सुनिये। हे महाभाग! पृथिवी पर किसे कहां जन्म लेना है, वह आदेश करिये। स्वामी ही सदा सेवक के पोषक, उद्धारक तथा रक्षक होते हैं। जो व्यक्ति सदा ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है, वही तो भक्त है। हे देव! कौन देवता तथा कौन-सी देवी किस कला से (अंश से) धरती पर अवतीर्ण होकर किस नाम से कहां जन्म लें? उनका निवास कहां हो?।।१३५-१३७।।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जगत्पतिः।
यत्र यस्यावकाशं च कथयामि विधानतः।।१३८।।

ब्रह्मा का कथन सुनकर जगत्पति ने कहा कि कौन कहां अवतीर्ण होगा, उसे सविधि कहता हूं।।१३८।।

श्रीकृष्ण उवाच

कामदेवो रौक्मिणेयो रतिर्मायावती सती।
शम्बरस्य गृहे यावच्छायारूपेण संस्थिता।।१३९।।
त्वं तस्य पुत्रो भविता नाम्नाऽनिरुद्ध एव च।
भारती शोणितपुरे बाणपुत्री भविष्यति।।१४०।।
अनन्तो देवकीगर्भाद्रौहिणेयो जगत्पतिः।
मायया गर्भसंकर्षान्नाम्ना संकर्षणः प्रभुः।।१४१।।
कालिन्दी सूर्यत्तनया गङ्गांशेन महीतले।
अर्धांशेनैव तुलसी लक्ष्मणा राजकन्यका।।१४२।।
सावित्री वेदमाता च नाम्ना नाग्नजिती सती।
वसुंधरा सत्यभामा शैव्या देवी सरस्वती।।१४३।।

रोहिणी मित्रविन्दा च भविता राजकन्यका।
सूर्यपत्नी रत्नमाला कलया च [१]जगत्प्रभोः॥१४४॥
स्वाहांशेन सुशीला च रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो नव।
दुर्गांशार्धाज्जाम्बवतीं महिषीणां दश स्मृताः॥१४५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–कामदेव रुक्मिणी के पुत्र रूप में अवतीर्ण होंगे। काम पत्नी रति देवी शम्बर के गृह में अवतीर्ण होकर छाया रूप में अवस्थान करें। आप मायावती के गर्भ से उसके पुत्ररूपेण जन्म लेंगे। आपका नाम अनिरुद्ध होगा। भारती (सरस्वती) शोणितपुर में बाण की पुत्री होंगी। जगत्पति अनन्तदेव देवकी के गर्भ से पुनः रोहिणी के गर्भ में जाकर उत्पन्न होंगे। माया द्वारा देवी का गर्भ संकर्षित होने के कारण उनका नाम संकर्षण होगा। (बलराम होगा)। गंगा धरती पर अपने अंश से सूर्यतनया कालिन्दी रूप से अवतीर्ण होंगी। तुलसी अपने आधे अंश से राजपुत्री लक्ष्मणा के रूप में जन्म लेंगी। वेदमाता सावित्री का जन्म राजा नग्नजित् की पुत्री रूप से, वसुन्धरा सत्यभामा के रूप से तथा सरस्वती शैव्या रूप से जन्म ग्रहण करेंगी। रोहिणी राजकन्या मित्रवृंदा रूपेण, सूर्यपत्नी संज्ञा अपनी कला से रत्नमालारूपेण, स्वाहादेवी अपने अंश से सुशीलारूपेण जन्म लेंगी। यह मैंने रुक्मिणी आदि ९ स्त्रियों का वर्णन किया। दुर्गा अपने अर्द्धांश से जाम्बवती होगी। ये १० महिषीगण का वर्णन मैंने किया।।१३९-१४५।।

अर्धांशेन शैलपुत्री यातु जाम्बवतो गृहम्।
कैलासे शंकराज्ञा च बभूव पार्वतीं पुरा॥१४६॥
कैलासगामिनं विष्णुं श्वेतद्वीपनिवासिनम्।
आलिङ्गनं देहि कान्ते नास्ति दोषो ममाऽऽज्ञया॥१४७॥

इनमें से प्रत्येक के भावी जन्म का मैंने वर्णन कर दिया। पार्वती अपने अर्द्धांश से जाम्बवान् ऋक्षराज के यहां जन्म ग्रहण करें। पूर्वकाल में पार्वती को शङ्कर ने आज्ञा दिया था कि "हे कान्ते! तुम श्वेतद्वीप निवासी विष्णु से आलिंगित हो जाओ। इसमें तुमको कोई दोष नहीं होगा। यह मेरी आज्ञा है।।१४६-१४७।।

ब्रह्मोवाच

कथं शिवाज्ञा तां देवीं बभूव राधिकापते।
विष्णोः संभाषणे पूर्वं श्वेतद्वीपनिवासिनः॥१४८॥

ब्रह्मा कहते हैं–हे राधिकापति! शङ्कर ने देवी को पूर्वकाल में श्वेतद्वीपवासी विष्णु को आलिङ्गन प्रदान करने का आदेश क्यों दिया था? वह कहिये?।।१४८।।

---

१. क. ०गद्गुरोः।

श्रीभगवानुवाच

पुरा गणेशं द्रष्टुं च प्रजग्मुः सर्वदेवताः। श्वेतद्वीपात्स्वयं विष्णुर्जगाम शंकरालये॥१४९॥
दृष्ट्वा गणेशं मुदितः समुवास सुखासने। सुखेन ददृशुः सर्वे त्रैलोक्यमोहनं वपुः॥१५०॥
किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं वरम्। सुन्दरं श्यामरूपं च नवयौवनसंयुतम्॥१५१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम्। रत्नालङ्कारशोभाढ्यं स्मेराननसरोरुहम्॥१५२॥
रत्नसिंहासनस्थं च पार्षदैः परिवेष्टितम्।
वन्दितं च सुरैः सर्वैः शिवेन पूजितं स्तुतम्॥१५३॥

श्रीभगवान् कहते हैं– पूर्वकाल में गणेश के दर्शनार्थ सभी देवगण गये। श्वेतद्वीप से विष्णु भी शङ्कर के यहां इसी निमित्त गये थे। गणेश को देखकर सभी मुदित मन से वहां सुख पूर्वक आसनासीन हो गये। उन सबने इसी समय सुख पूर्वक विष्णु का यह त्रैलोक्य मोहक रूप देखा। वे किरीट, कुण्डल उत्तम पीताम्बरधारी, सुन्दर, श्यामवर्ण तथा नवयौवनसम्पन्न थे। वे चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुमादि द्रव्यों से चर्चित थे। वे रत्नालंकार से सुशोभित हो रहे थे। उनके मुखकमल पर मुस्कान बिखर रही थी। वे रत्नसिंहासनासीन थे तथा पार्षदों से घिरे थे। इन विष्णु की वन्दना सभी देवगण ने किया तथा शिव ने भी उनकी पूजा तथा स्तुति किया॥१४९-१५३॥

तं दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं प्रसन्नवदनेक्षणा।
मुखमाच्छादितं चक्रे वाससा व्रीडया सती॥१५४॥
अतीव सुन्दरं रूपं दर्शं दर्शं पुनः पुनः। ददर्श मुखमाच्छाद्य निमेषरहिता सती॥१५५॥

उस समय प्रसन्नवदना पार्वती ने विष्णु को देखकर अपने आंचल से अपना मुख ढांक लिया। वे लज्जित-सी हो गईं। सती पार्वती अपना मुखाच्छादन करके बारम्बार विष्णु के मनोहर रूप का दर्शन निर्निमेष स्थिति में करने लगीं॥१५४-१५५॥

परमाद्भुतवेषं च सस्मिता चक्रचक्षुषा। सुखसागरसंमग्ना बभूव पुलकाञ्चिता॥१५६॥
क्षणं ददर्श पञ्चास्यं शुभ्रवर्णं त्रिलोचनम्। [१]त्रिशूलपट्टिशधरं कन्दर्पकोटिसुन्दरम्॥१५७॥

सती पार्वती विष्णु के इस परम अद्भुत रूप का दर्शन कटाक्ष से करती तथा मुस्कराती अत्यानन्द सागर में निमज्जित-सी होकर रोमांचित-पुलकित हो उठीं। तदनन्तर अगले क्षण उन्होंने पंचमुख, शुभ्रवर्ण, त्रिलोचन, त्रिशूल-पट्टिशधारी तथा कोटि कामदेव के समान सुन्दर शिव की ओर देखा॥१५६-१५७॥

क्षणं ददर्श श्यामं तमेकास्यं च द्विलोचनम्।
चतुर्भुजं पीतवस्त्रं वनमालाविभूषितम्॥१५८॥

---

१. ख. 'परिघ'।

एकं ब्रह्म मूर्तिभेदमभेदं वा निरूपितम्।
दृष्ट्वा बभूव सा माया सकामा विष्णुमायया॥१५९॥

अगले ही क्षण उन्होंने श्यामवर्ण, एक मुख, द्विनेत्र, चतुर्भुज, पीतवस्त्रधारी वनमालाविभूषित विष्णु को देखकर चिन्तन किया कि एक ही ब्रह्म का यह मूर्त्तिभेद अथवा अभेद है। (शिव-विष्णु अभेदमय हैं भले ही उनमें मूर्ति (आकृति) का भेद है)। यह विचार करके वे विष्णुमाया के कारण कामभावना युक्त हो गईं!॥१५८-१५९॥

मदंशाश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
ताभ्यामौत्कर्षपाताच्च श्रेष्ठः सर्वगुणात्मकः॥१६०॥
दृष्ट्वा तं पार्वती भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहा।
मनसा पूजयामास परमात्मानमीश्वरम्॥१६१॥
दुर्गान्तराभिप्रायं च बुबुधे शंकरः स्वयम्।
सर्वान्तरात्मा भगवानन्तर्यामी जगत्पतिः॥१६२॥
दुर्गां निर्जनमाहूय तामुवाच हरः स्वयम्।
बोधयामास विविधं हितं तथ्यमखण्डितम्॥१६३॥

मेरे ही अंश से ये त्रिदेव ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर आविर्भूत हैं। फिर भी इनमें प्रधानता तथा उत्कर्ष सत्वगुणमय विष्णु का ही है। यह देखकर पार्वती का शरीर रोमांचित हो उठा। वे मन ही मन परमात्मा ईश्वर की पूजा करने लगीं। इस समय सर्वान्तर्यामी, सर्वान्तरात्मा, जगत्पति, भगवान् शङ्कर दुर्गा (पार्वती) का अभिप्राय जान गये। तब स्वयं शिव ने दुर्गा को निर्जन स्थान में बुलाकर हितप्रद अखण्डित तत्व उनसे कहा-॥१६०-१६३॥

शंकर उवाच

निवेदनं मदीयं च निबोध शैलकन्यके। शृङ्गारं देहि भद्रं ते हरये परमात्मने॥१६४॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च ब्रह्मैकं च सनातनम्।
देवको भेदरहितो विषयो मूर्तिभेदकः॥१६५॥
एका प्रकृतिः सर्वेषां माता त्वं सर्वरूपिणी।
स्वयंभूरसि वाणी त्वं लक्ष्मीर्नारायणोरसि॥१६६॥
मम वक्षसि दुर्गा त्वं निबोधाऽऽध्यात्मिकं सति।
शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच सुरेश्वरी॥१६७॥

श्रीशंकर कहते हैं-"हे शैलकन्या पार्वती! तुम मेरा एक निवेदन श्रवण करो। इन परमात्मा हरि को तुम अपना आलिङ्गन प्रदान करो। हे देवी! मैं ब्रह्मा-विष्णु सनातन ब्रह्म से अभिन्न हैं। एक ही हैं,

तथापि कार्य एवं विषय-भेद के कारण केवल मूर्त्तिभेद ही हममें हैं। तुम भी एकमात्र प्रकृति, सर्वरूपा तथा सबकी माता हो। तुम ही ब्रह्मा के साथ वाणीरूपा, नारायण के वक्ष पर स्थित लक्ष्मी रूप तथा मेरे वक्ष पर स्थित दुर्गा रूपा हो! हे सती! तुम यह आध्यात्मिक विषय से अब अवगत हो जाओ।" शिव का यह कथन सुनकर सुरेश्वर पार्वती ने कहा-।।१६४-१६७।।

पार्वत्युवाच

दीनबन्धो कृपासिन्धो तव मामकृपा कथम्।
सुचिरं तपसा लब्धो नाथस्त्वं जगतां मया।।१६८।।
मादृशीं किंकरीं नाथ न परित्यक्तुमर्हसि। अयोग्यमीदृशं वाक्यं मा मा वद महेश्वर।।१६९।।
तव वाक्यं महादेव करिष्याम्येव पालनम्।
देहान्तरे जन्म लब्ध्वा भजिष्यामि हरिं हर।।१७०।।

श्रीपार्वती कहती हैं-हे दीनबन्धु! कृपासिन्धु! मुझ पर आप यह कैसी अकृपा कर रहे हैं? मैंने चिरकाल तप द्वारा आप जगन्नाथ को पतिरूपेण प्राप्त किया है। हे नाथ! आप ऐसी दासी का कदापि त्याग नहीं कर सकते! हे परमेश्वर! आप मुझसे इस प्रकार का अयोग्य वाक्य न कहें। मैं आपकी आज्ञा का पालन अन्य जन्म में, अन्य देह धारण करके करूंगी, तब मैं विष्णु सेवा करूंगी।।१६८-१७०।।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा विरराम महेश्वरः। उच्चैर्जहासाभयदः पार्वत्यै चाभयं ददौ।।१७१।।
तत्प्रतिज्ञापालनाय पार्वती जाम्बवद्गृहे।
लभिष्यति जनुर्धातर्नाम्ना जाम्बवती सती।।१७२।।

यह श्रवण करके महेश्वर मौन हो गये। उन्होंने उच्च स्वर से हंसकर पार्वती को अभयदान दिया। हे ब्रह्मन् इसी प्रतिज्ञा के पालनार्थ पार्वती ने अपने अंश से ऋक्षराज जाम्बवान् के गृह में जाम्बवती नाम से जन्म ग्रहण करेंगी।।१७१-१७२।।

ब्रह्मोवाच

भूमौ कतिविधे भूपे संस्थिते पार्वती कथम्।
ललाभ भारते जन्म निन्दिते भल्लुके गृहे।।१७३।।

ब्रह्मदेव कहते हैं-हे प्रभो! पृथिवी पर तो अनेक राजकुलों के रहते पार्वती सामान्य ऋक्ष (भालू) जाम्बवान् के गृह में क्यों जन्म लेंगी?।।१७३।।

श्रीकृष्ण उवाच

रामावतारे त्रेतायां देवांशाश्च ययुर्महीम्।
हिमालयांशो भल्लूको जाम्बवान्नाम किंकरः।।१७४।।
रामस्य वरदानेन चिरञ्जीवी श्रिया युतः। कोटिसिंहबलाधानं विधत्ते च महाबलः।।१७५।।

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे ब्रह्मन्! त्रेतायुग में रामावतार के समय देवों का देवांश से वानररूप में जन्म हुआ। भालुओं के राजा जाम्बवान् के रूप में हिमालय के अंश से यह मेरा सेवक जन्मा था। राम के आशीर्वाद से यह चिरंजीवी, महाबली तथा करोड़ों सिंह जैसा बली था।।१७४-१७५।।

पितुरंशगृहे दुर्गा जगामांशेन भूतलम्।
पूर्वं[1] पूर्वस्य वृत्तान्तं कथितं शृणु मन्सुखात्॥१७६॥
सर्वेषा च सुराणां वै वंशा गच्छन्तु भूतलम्।
नृपपुत्रा मत्सहाया भविष्यन्ति रणे विधे[2]॥१७७॥
कमलाकलया सर्वा भवन्तु नृपकन्यकाः।
मन्महिष्यो भविष्यन्ति सहस्राणां च षोडश॥१७८॥
धर्मोऽयमंशरूपेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः।
वायोरंशाद्भीमसेनः स वज्री ह्यर्जुनः[3] स्वयम्॥१७९॥
नकुलः सहदेवश्च स्ववैद्यांशसमुद्भवौ। सूर्यांशः कर्णवीरश्च विदुरः स यमः स्वयम्॥१८०॥
दुर्योधनः कलेरंशः समुद्रांशश्च शंतनुः। अश्वत्थामा शंकरांशो द्रोणो वह्न्यंशसंभवतः॥१८१॥
हुताशनांशो भगवान्धृष्टद्युम्नो महाबलः।
चन्द्रांशोऽप्यभिमन्युश्च भीष्मश्चैव वसुद्भवः॥१८२॥
वसुदेवः कश्यपांशोऽप्यदित्यंशा च देवकी।
वस्वंशो नन्दगोपश्च यशोदा वसुकामिनी॥१८३॥

उस समय पार्वती ने अपने पिता हिमाचल के अंशरूप जाम्बवान् के गृह में जन्म लिया। यह पूर्व वृत्तान्त मैंने तुमसे कह दिया। सभी देवता अपने अंश से राजपुत्र रूप में धरती पर अवतीण होंगे। ये रण में तथा दुष्ट वध कार्य में मेरे सहायक रहेंगे। देवीगण लक्ष्मी के अंश से १६००० कन्या रूप में जन्म लेंगी। धर्मदेव के अंश से पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर अवतीर्ण होंगे। वायु अपने अंश से भीमरूपेण, इन्द्र अपने अंश से अर्जुनरूपेण अश्विनीकुमारद्वय अपने अंश से नकुल-सहदेव रूप में, सूर्य अपने अंश से कर्णरूप में, यम अपने अंश से विदुर रूप में, शिव अपने अंश से अश्वत्थामा रूप में, अग्नि अपने अंश से द्रोणरूप में, चन्द्र अपने अंश से अभिमन्यु रूप में, वसु अपने अंश से भीष्मरूप में जन्म लेंगे। कश्यप अपने अंश से वासुदेवरूप में, अदिति अपने अंश से देवकी रूप में, वसु अपने अंश से नन्दगोप रूप में, वसु की स्त्री अपने अंशरूप में यशोदा होगी। अग्नि के अंश से महाबली धृष्टद्युम्न जन्म लेंगे।।१७६-१८३।।

१. क. एवं पू॰
२. वने इति क्वचित् पाठः।
३. नरर्षिरर्जुने इति च पाठः।

द्रौपदी कमलांशा च यज्ञकुण्ठसमुद्भवा। सुभद्रा शतरूपांशा देवकीगर्भसंभवः॥१८४॥
देवा गच्छतु पृथिवीमंशेन मारहारकाः। कलया देवपत्न्यश्च गच्छन्तु पृथिवीतलम्॥१८५॥

लक्ष्मी के अंश से द्रौपदी का जन्म होगा। वे यज्ञकुण्ड से आविर्भूत होगी। देवी शतरूपा के अंश से सुभद्रा का जन्म होगा। इस प्रकार सभी देवी-देवता पृथिवी का भार उतारने हेतु पृथिवी पर अवतीर्ण हो जायें।।१८४-१८५।।

इत्येवमुक्त्वा भगवान्विरराम च नारद। सर्वं विवरणं श्रुत्वा तत्रोवास प्रजापतिः॥१८६॥

कृष्णस्य वामे वाग्देवी दक्षिणे कमलालया।
पुरतो देवताः सर्वाः पार्वती चापि नारद॥१८७॥
गोप्यो गोपाश्च परितो राधा वक्षःस्थलस्थिता।
एतस्मिन्नन्तरे सा च तमुवाच व्रजेश्वरी॥१८८॥

हे नारद! यह कहकर भगवान् मौन हो गये। यह सब प्रभु आदेश श्रवण करने के उपरान्त ब्रह्मा अपने स्थान पर बैठ गये। कृष्ण के वामभाग में वाग्देवी तथा दाहिने भाग में कमला बैठीं। प्रभु के सामने देवता तथा पार्वती बैठ गईं। हे नारद! वहां चतुर्दिक् गोप-गोपीगण विराजित थे। राधा तो प्रभु के वक्ष पर स्थित थीं। तदनन्तर ब्रजेश्वरी राधा ने कहा-।।१८६-१८८।।

राधिकोवाच

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि किंकरीवचनं प्रभो।
प्राणा दहन्ति सततमान्दोलयति मे मनः॥१८९॥
चक्षुर्निमीलनं कर्तुमशक्ता तव दर्शने।
त्वया विना कथं नाथ यास्यामि धरणीतलम्॥१९०॥

कियत्कालान्तरेणैव मेलनं मे त्वया सह। प्राणेश्वर ब्रूहि सत्यं भविष्यत्येव गोकुले॥१९१॥

निमेषं च युगशतं भविता मे त्वया विना।
कं द्रक्ष्यामि क्व यास्यामि को वा मां पालयिष्यति॥१९२॥
मातरं पितरं बन्धुं भ्रातरं भगिनीं सुतम्।
त्वया विनाऽहं प्राणेश चिन्तयामि न कंचन॥१९३॥

श्रीराधा कहती हैं-हे प्रभो! अब मैं कुछ कहना चाहती हूं। इस दासी का कथन सुनिये। मेरा हृदय अब सतत् दग्ध हो रहा है, मन निरन्तर आन्दोलित हो रहा है। हे नाथ! आपको देखते समय मैं पलक तक झपकाने में असमर्थ हो गई हूं। मैं आपके बिना धरती पर कैसे रह सकूंगी? हे प्राणेश! कितने समय पश्चात् गोकुल में मेरा आपसे मिलन हो सकेगा? आपके बिना एक निमेष काल भी मेरे लिये सौ युगों जैसा प्रतीत होगा। वहां मैं किसे देखूंगी? कहां जाऊंगी? कौन मेरा

पालन करेगा? हे प्राणेश्वर! मैं तो आपके बिना माता, पिता, बन्धु, भ्राता, बहन, पुत्रादि की भी चिन्ता नहीं करती!।।१८९-१९३।।

करोषि मायया छन्नां मां चेन्मायेश भूतले।
विस्मृतां विभवं दत्त्वा सत्यं मे शपथं कुरु।।१९४।।
अनुक्षणं मम मनोमधुपो मधुसूदन। करोतु भ्रमणं नित्यं समाध्वीक पदाम्बुज।।१९५।।
यत्र यत्र च यस्यां वा योनौ जन्म भवत्विदम्।
त्वं स्वस्य स्मरणं दास्यं मह्यं दास्यसि वाञ्छितम्।।१९६।।
कृष्णस्त्वं राधिकाऽहं च प्रेमसौभाग्यमावयोः।
न विस्मरामि भूमौ च देहि मह्यं वरं परम्।।१९७।।

हे मायापति! भूतल पर आप मुझे विभव आदि देकर मायायुक्त न करें, यह प्रण करिये। हे मधुसूदन! मेरा मन रूपी भ्रमर आपके चरणकमलों पर सदा मड़राता रहे। यह मेरी प्रार्थना है! हे नाथ! जहां कहीं जिस किसी भी योनि में मेरा जन्म क्यों न हो, वहां आपके दासत्व की स्मृति तथा आपका स्मरण सदा बना रहे। यह वर दीजिये। यही मेरी कामना है। मैं राधा हूं, आप कृष्ण हैं। मेरा जो आपका प्रदत्त यह प्रेमपूर्ण सौभाग्य है यह धरती पर जन्म लेने पर, कदापि विस्मृत न हो सके। यह वर दीजिये।।१९४-१९७।।

यथा तन्वा सह प्राणाः शरीरं छायया सह।
तथाऽऽवयोर्जन्म यातु देहि मह्यं वरं विभो।।१९८।।
चक्षुर्निमेषविच्छेदो भविता नाऽऽवयोर्भुवि।
तत्राऽऽगत्यापि कुत्रापि देहि मह्यं वरं प्रभो।।१९९।।
मम प्राणैस्तव तनुः केन वा करुणा हरे।
आत्मना मुरलीपादौ मनसा वा विनिर्मितौ।।२००।।

हे विभु! प्रत्येक शरीर के साथ प्राण की स्थिति रहती है। प्रत्येक शारीरिक छाया के साथ देह रहता है। इसी प्रकार मेरा तथा आपका जन्म साथ-साथ हो, यह वर दीजिये। हे प्रभो! भूतल पर भी एक पल-निमेष के लिये भी आपसे मेरा विच्छेद न हो यह वर भी मुझे दीजिये। हे हरि! मेरे ही प्राणों से आपका शरीर निर्मित है। मेरी आत्मा ही आपकी मुरली बनी है। मेरे मन से ही आपका चरण निर्मित है।।१९८-२००।।

स्त्रियः कतिविधाः सन्ति पुरुषा वा पुरुष्टुतः।
नासितकुत्रापिकान्ता वा कान्त्या शक्त्या च मादृशी।।२०१।।
तव देहार्धभागेन केन वाऽहं विनिर्मिता।
अयमेवाऽऽवयोर्भेदो नास्त्यतस्त्वयि मे मनः।।२०२।।

इस जगत् में न जाने कितने स्त्री तथा पुरुष हैं, वे सभी परस्परतः एक-दूसरे की प्रशंसा भले ही करते हैं, तथापि मेरे समान कान्ता तथा शक्तियुक्त उनमें से कोई भी नहीं है। आपके ही देहार्धभाग से किसी ने मेरा निर्माण किया है? अतः हम दोनों में कोई भेद ही नहीं है। तभी मेरा मन सतत् आपमें ही संलग्न रहता है।।२०१-२०२।।

ममाऽऽत्मा मानसं प्राणास्त्वयि संस्थापिता यथा।
तवाऽऽत्ममानसप्राणा मयि वा संस्थितास्तथा॥२०३॥

अतो निमेषविरहादात्मनोर्विक्लवं मनः। प्रदग्धं सततं प्राणा दहन्ति विरहश्रुतौ॥२०४॥

मेरी आत्मा, मन तथा प्राण आपमें ही स्थित रहते हैं। आपका भी मन-आत्मा तथा प्राण मुझमें ही स्थित रहता है। अतः आपसे निमेष मात्र के वियोग की आशंका होते ही मेरा प्राण आकुल हो उठता है।।२०३-२०४।।

इत्येवमुक्त्वा सा देवी तत्रैव सुरसंसदि।
भूयो भूयो रुरोदोच्चैर्धृत्वा तच्चरणाम्बुजम्॥२०५॥
क्रोडे कृत्वा तु तां कृष्णो मुखं संमृज्य वाससा।
बोधयामास विविधं सत्यं तथ्यं हितं वचः॥२०६॥

देव सभा में यह कहकर राधिका ने भगवान् का चरण-कमल पकड़ा तथा उच्च स्वर में वे रोने लगीं। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको अपनी गोद में बैठाया तथा कपड़े से उनका मुख पोछा। तत्पश्चात् वे विविध सत्यमय तथ्यपूर्ण तथा हितकर वचन कहकर उनको समझाने लगे।।२०५-२०६।।

आध्यात्मिक परं योग शोकच्छेदन कारकम्[१]।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगीन्द्राणां च दुर्लभम्॥२०७॥
आधाराधेययोः सर्वं ब्रह्माण्डं पश्य सुन्दरि।
आधारव्यतिरेकेण नास्त्याधेयस्य संभवः॥२०८॥
फलाधारं च पुष्पं च पुष्पाधारं च पल्लवम्।
स्कन्धश्च पल्लवाधारः स्कन्धाधारस्तरुः स्वयम्॥२०९॥
वृक्षाधारोऽप्यङ्कुरश्च जीवशक्तिसमन्वितः।
अङ्किरेकाऽङ्कुराधारश्चाष्ट्याधारो वसुंधरा॥२१०॥
शेषो वसुंधराधारः शेषाधारो हि कच्छपः।
वायुश्च कच्छपाधारो वाय्वाधारोऽहमेव च॥२११॥

१. क. ०नकर्तनम्।

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे देवी! मैं तुमको योगीन्द्रगण के लिये भी दुर्लभ शोकछेदनकारी आध्यात्मिक योग कहता हूं। तुम श्रवण करो। हे सुन्दरी! तुम विवेचना करके देखो, यह ब्रह्माण्ड आधार–आधेयरूप से व्याप्त है। आधार के बिना कहीं भी आधेय की कल्पना नहीं की जा सकती। फल का आधार है पुष्प। पुष्प का आधार है पत्ते। पल्लव (पत्ते) का आधार है शाखा। शाखा का आधार है वृक्ष! वृक्ष का आधार है बीजशक्तिमय अंकुर। अंकुर का आधार है बीज। बीज का आधार है पृथिवी। पृथिवी के आधार हैं शेषनाग। शेष के आधार हैं कच्छप। कच्छप के आधार हैं वायु। वायु का आधार तो मैं ही हूं।।२०७-२११।।

ममाऽऽधारस्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि सांप्रतम्।
त्वं च शक्तिसमूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी।।२१२।।
त्वं शरीरस्वरूपाऽसि त्रिगुणाधाररूपिणी।
तवाऽऽत्माऽहं निरीहश्च चेष्टावांश्च त्वया सह।।२१३।।
पुरुषाद्वीर्यमुत्पन्नं वीर्यात्संततिरेव च। तयोराधाररूपा च कामिनी प्रकृतेः कला।।२१४।।

मेरी आधार स्वरूपा तुम हो। मैं तुममें सदा स्थित रहता हूं। तुम तो स्वयमेव शक्ति समूह तथा ईश्वरी मूलप्रकृति हो। तुम मेरी शरीरस्वरूपा तथा त्रिगुणाधाररूपा हो। मैं तुम्हारी निरीह आत्मा हूं। तुम्हारे सहयोग से ही मैं चेष्टारत हो पाता हूं। पुरुष से वीर्य उत्पन्न होता है। वीर्य से सन्तानोत्पत्ति होती है, तथापि प्रकृति कला से सम्भूता नारी ही सन्तान की आधाररूपा होती है।।२१२-२१४।।

विना देहेन क्वाऽऽत्मा च क्व शरीरं विनाऽऽत्मना।
प्राधान्यं च [१]तयोर्देवि विना त्वाद्यांकुतो भवः।।२१५।।

देह के विना आत्मा कहां? आत्मा के अभाव में शरीर कहां? हे देवी! अपनी–अपनी जगह दोनों ही प्रधान हैं, तथापि इन दोनों के अभाव में संसार कैसे हो सकता है?।।२१५।।

न कुत्राप्याऽऽवयोर्भेदो राधे संसारबीजयोः।
यत्राऽऽत्मा तत्र देहं च न भेदो विनयेन किम्।।२१६।।
यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने।
भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मयि स्थितिः।।२१७।।
धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा।
भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथाऽऽवयोः।।२१८।।

हे राधिका! तुम व्यर्थ में ऐसा विनय क्यों कर रही हो? हम दोनों ही संसार के बीज हैं। हममें कहीं भी भेद नहीं है। जहां देह है, वहीं आत्मा है। इन दोनों में भेद ही नहीं है! जैसे दुग्ध में धवलता

१. क. द्वयो०।

है, अग्नि में दाहिका शक्ति है, पृथिवी में गन्ध तथा जल में शीतगुण एक साथ स्थित रहता है, उसी प्रकार हम दोनों एक ही रूप में, ऐक्यभावेन विद्यमान रहते हैं! हममें आपसी विच्छेद की कोई संभावना ही नहीं है।।२१६-२१८।।

मया विना त्वं निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना।
त्वया विना भवं कर्तुं नालं सुन्दरि निश्चितम्॥२१९॥
विना मृदा घटं कर्तुं यथा नालं कुलालकः।
विना स्वर्णं स्वर्णकारोऽलङ्कारं कर्तुमक्षमः॥२२०॥

हे सुन्दरी! मेरे विना तुम निर्जीव हो जाती हो तथा तुम्हारे विना मैं अदृश्य हो जाता हूं। तुम्हारे बिना मैं सृष्टि नहीं कर सकता, यह निश्चित है। जैसे कुम्हार बिना मिट्टी के घट का निर्माण नहीं कर सकता, स्वर्णकार स्वर्ण बिना अलंकार नहीं बना सकता। तदनुरूप मैं तुम्हारे बिना कुछ भी नहीं कर सकता।।२१९-२२०।।

स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम्।
सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वाधारा सनातनी॥२२१॥
मम प्राणसमा लक्ष्मीर्वाणी च सर्वमङ्गला।
ब्रह्मेशानन्तधर्माश्च त्वं मे प्राणाधिका प्रिया॥२२२॥

आत्मा तो स्वयमेव नित्य है, इसी भांति तुम प्रकृति भी नित्य हो। तुम सर्वशक्ति समायुक्ता तथा सनातनी और सबकी आधारभूता हो। ये सभी मेरे प्राणों के समान हैं। यथा–लक्ष्मी, वाणी सर्वमङ्गला पार्वती, ब्रह्मा, शिव, अनन्त तथा धर्म! तथापि तुम तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो।।२२१-२२२।।

समीपस्था इमे सर्वे सुरा देव्यश्च राधिके।
एभ्योऽप्यधिका नो चत्कथं वक्षःस्थलस्थिता॥२२३॥
त्यजाश्रुमोक्षणं राधे भ्रान्तिं च निष्फलां सति।
विहाय शंकां निःशंकं वृषभानुगृहं व्रज॥२२४॥

हे राधिके! विवेचना करके देखो। यदि तुम ऐसी नहीं होती तब केवल तुम ही मेरे वक्षस्थल पर अवस्थित क्यों रहती, जबकि ये सभी देवता मेरे समीप ही रहते हैं। इनको मेरे वक्षस्थल में स्थान नहीं मिला। हे राधिके! तुम अश्रुपात से रहित हो जाओ। अपने मिथ्या भ्रम का त्याग करो। सभी शंकाओं को त्याग कर निःशंक चित्त से वृषभानु के गृह जाओ।।२२३-२२४।।

कलावत्याश्च जठरे मासानां नव सुन्दरि। वायुना पूरयित्वा च गर्भं रोधय मायया॥२२५॥
दशमे समनुप्राप्ते त्वमाविर्भव भूतले। स्वात्मरूपं परित्यज्य शिशुरूपं विधाय च॥२२६॥

वायुनिःसारणे काले कलावत्याः समीपतः।
भूमौ विवसनीभूय पतित्वा रोदिषि ध्रुवम्॥२२७॥

हे सुन्दरी! तुम वृषभानु की पत्नी कलावती के उदर से, अपनी माया से ९ मास पर्यन्त उस उदर को अपनी माया द्वारा वायुपूरित करके रोकना। दशम मासारंभ में तुम अपने इस रूप को छोड़कर शिशु रूप ग्रहण कर लेना। जब कलावती के गर्भ से वह वायु निकले तब तुम कलावती के समीप शिशुरूपेण वस्त्र रहित स्थिति में प्रकट होकर अवश्य रुदन करना।।२२५-२२७।।

अयोनिसंभवा त्वं च भविता गोकुले सति।
अयोनिसंभवोऽहं च नाऽऽवयोर्गर्भसंस्थितिः॥२२८॥

भूमिसंस्पृष्टमात्रं मां गोकुले प्रापयिष्यति। तव हेतोर्गमिष्यामि कृत्वा कंसभयं छलम्॥२२९॥

हे देवी! इस प्रकार तुम गोकुल में अयोनिजा होकर आविर्भूत हो जाओगी। मैं भी अयोनिज रूप से मथुरा में प्रकट हो जाऊंगा। हमारी तथा तुम्हारी संस्थिति गर्भ में कदापि संभव नहीं है। तब भूमि का स्पर्श होते ही मेरे पिता वसुदेव मुझे गोकुल पहुंचा देंगे। कंस के भय के बहाने मैं तुम्हारे उद्देश्य से वहां अवश्य जाऊंगा।।२२८-२२९।।

यशोदामन्दिरे मां च सानन्दं नन्दनन्दनम्।
नित्यं द्रक्ष्यसि कल्याणि ममाऽऽश्लेषणपूर्वकम्॥२३०॥
स्मृतिस्ते भविता काले वरेण मम राधिके।
स्वच्छन्दं विहरिष्यामि नित्यं वृन्दावने वने॥२३१॥

हे कल्याणी! यशोदा के गृह में तुम मुझे सदैव आनन्दित देखोगी। वहां तुम्हारे साथ मुझ नन्दनन्दन का मिलन भी होता रहेगा। हे राधिके! मेरे वर के प्रभाव से समयानुसार पूर्वापर समस्त विषय तुम्हारे स्मृतिपथ में आयेगा तथा हम दोनों वृन्दावन के वनों में स्वच्छन्दरूपेण विहार कर सकेंगे।।२३०-२३१।।

त्रिःसप्तशतकोटीभिर्गोपीभिर्गोकुलं व्रज।
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याभिः सुशीलादिभिरेव च॥२३२॥
संस्थाप्य संख्यारहिता गोपीर्गोकुल एव च।
ता आश्वास्य प्रबोधैश्च मितया च सुधागिरा॥२३३॥

तुम वृन्दावन में सैंतिस शतकोटि गोपियों के साथ गोकुल जाकर ३३ सुशील आदि सखीगण सहित वहां अवतीर्ण हो जाओ। तदनन्तर असंख्य गोपीगण को तुम अपनी वाणी से प्रबोधित करते रहना।।२३२-२३३।।

अहं गोपालसुहृदः संस्थाप्यात्रैव राधिके।
वसुदेवाश्रमं पश्चाद्यास्यामि मथुरां पुरीम्॥२३४॥
व्रजं व्रजन्तु क्रीडार्थं मम सङ्गे प्रियात्प्रियाः।
बल्लवानां गृहे जन्म लभन्तां गोपकोटयः॥२३५॥

हे राधिके! मैं भी असंख्य गोपों को वृन्दावन में तथा गोकुल में स्थापित करके मथुरापुरी में वसुदेव के यहां अवतरित हो जाऊंगा। ये सभी प्रिय करोड़ों गोप मेरे साथ क्रीड़ा के निमित्त व्रजधाम जाकर गोपों के यहां जन्म ग्रहण करें।।२३४-२३५।।

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद। ऊषुर्देवाश्च देव्यश्च गोपा गोप्यश्च तत्र वै।।२३६।।
ब्रह्मेशशेषधर्माश्च श्रीकृष्णं तं परात्परम्। शिवापद्मासरस्वत्यस्तुष्टुवुः परया मुदा।।२३७।।

भक्त्या गोपाश्च गोप्यश्च विरहज्वरकातराः।
तत्र संस्तूय श्रीकृष्णं प्रणेमुः प्रेमविह्वलाः।।२३८।।

हे नारद! इतना कहने के अनन्तर श्रीकृष्ण मौन हो गये। वे सभी देवी-देवता, गोप, गोपीगण वहीं रुक गये। इसके पश्चात् ब्रह्मा, शिव, अनन्त, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती सभी परात्पर श्रीकृष्ण का स्तव करने लगीं। विरह वेदना से कातर होकर गोप-गोपीगण प्रेमविह्वल होकर प्रणत स्थिति में भक्ति पूर्वक कृष्ण का स्तव करने लगे।।२३६-२३८।।

प्राणाधिकं प्रियं कान्तं राधापूर्णमनोरथम्।
[१]परितुष्टोऽभवद्भक्त्या विरहज्वरकातराम्।।२३९।।
साश्रुपूर्णातिदीनां च दृष्ट्वा राधां भयाकुलाम्।
प्रबोधवचनं [२]सत्यमुवाच तां हरिः स्वयम्।।२४०।।

प्राणाधिक प्रियकान्त का पूर्ण मनोरथा राधा ने कुछ विरहकातर होकर भक्ति के साथ स्तव किया। हरि ने राधा को जब साश्रुनयना तथा अत्यन्त दुःखी और भय से आकुलित देखा, तब उनको वे सत्य वचनों से प्रबोधित करके कहने लगे-।।२३९-२४०।।

श्रीकृष्ण उवाच

प्राणाधिके महादेवि स्थिरा भव भयं त्यज।
यथा त्वं च तथाऽहं च का चिन्ता ते मयि स्थिते।।२४१।।
किं तु ते कथयिष्यामि किंचिदेवास्त्यमङ्गलम्।
वर्षाणां शतकं पूर्णं त्वद्विच्छेदो मया सह।।२४२।।
श्रीदामशापजन्येन कर्मभोगेन सुन्दरि। भविष्यत्येव मम च मथुरागमनं ततः।।२४३।।

श्रीकृष्ण कहते हैं-हे प्राणाधिके! तुम स्थिरचित्त हो जाओ। जब मैं विद्यमान हूं तब भय कैसा? तब भी कुछ अमंगलमय कारण है, जिसे कहता हूं। हे सुन्दरी! श्रीदामा के शापरूप कर्म भोग के कारण मेरे साथ तुम्हारा शतवर्षीय विच्छेद होगा। उस समय मैं मथुरा चला जाऊंगा।।२४१-२४३।।

---

१. क. ०रथाः। परितुष्टाव भक्त्या च वि०।
२. ख. श्रुत्य०।

तत्र भारावतरणं पित्रोर्बन्धनमोचनम्।
मालाकारतन्तुवायकुब्जिकानां च मोक्षणम्॥२४४॥
घातयित्वा च यवनं मुचुकुन्दस्य मोक्षणम्।
द्वारकायाश्च निर्माणं राजसूयस्य दर्शनम्॥२४५॥
उद्वाहं राजकन्यानां सहस्राणां च षोडश। दशाधिकशतस्यापि शत्रूणां दमनं तथा॥२४६॥
मित्रोपकरणं चैव वाराणस्याश्च दाहनम्।
हरस्य जृम्भणं तत्र बाणस्य भुजकृन्तनम्॥२४७॥
पारिजातस्य हरणं यद्यत्कर्माणि तानि च। गमनं तीर्थयात्राणां मुनिसंघप्रदर्शनम्॥२४८॥

वहां मैं पृथिवी का भारवतरण, पिता का बन्धनमोचन करूंगा। मैं वहां माली, दरजी, कुब्जा प्रभृति को मुक्त करूंगा और तत्पश्चात् यवनराज का विनाश करके, मुचुकुन्द का उद्धार तथा द्वारका का निर्माण करूंगा। तत्पश्चात् युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का दर्शन करूंगा। तदनन्तर १६००० राजकन्याओं से विवाह करने के पश्चात् पुनः ११० स्त्रियों से पाणिग्रहण तथा शत्रु वध करूंगा। मित्रों का उपकार, बाणराज की पुरी का दहन, शिव का जृम्भण कार्य करूंगा। (शिव पर कृष्ण ने जृम्भणास्त्र छोड़ा था)। मैं बाणराज की सहस्र बाहु का छेदन करके पारिजात हरण इत्यादि कार्य सम्पन्न करूंगा। तत्पश्चात् तीर्थयात्रा करते हुये मुनिगण का दर्शन करूंगा!॥२४४-२४८॥

संभाषणं च बन्धूनां यज्ञसंपादनं पितुः। शुभक्षणे पुनस्तत्र त्वया सार्धं प्रदर्शनम्॥२४९॥
करिष्यामि च तत्रैव गोपिकानां च दर्शनम्।
तुभ्यमाध्यात्मिकं दत्त्वा पुनः सत्यं त्वया सह।
दिवानिशमविच्छेदो मया सार्धमतःपरम्॥२५०॥
भविष्यति त्वया सार्धं पुनरागमनं व्रजे। कान्ते विच्छेदसमये वर्षाणां शतके सति॥२५१॥
नित्यं संमीलनं स्वप्ने भविष्यति त्वया सह।
मम नारायणांशो यस्तस्य यानं च द्वारकाम्॥२५२॥
शतवर्षान्तरे साध्यमेतदेव सुनिश्चितम्। भविष्यति पुनस्तत्र वने रासस्त्वया सह॥२५३॥

इसके पश्चात् बन्धुजन से वार्त्ता करके, पिता के यज्ञ को सम्पन्न कराने के अनन्तर शुभ-मुहूर्त्त में पुनः तुम्हारे साथ उसी स्थान पर मिलूंगा और गोपीगण के साथ साक्षात्कार करूंगा। तुमको तब अध्यात्म का सत्य ज्ञान देकर सदा के लिये अपने साथ विच्छेद रहित स्थिति में रखूंगा। तब मैं पुनः तुम्हारे साथ ब्रजधाम आ जाऊंगा, तथापि हे कान्ते! उस शतवर्षीय विरहकाल में भी नित्य तुम्हारे साथ स्वप्न में मेरा मिलन होता ही रहेगा। जब मैं तुमसे अलग होकर द्वारका में रहूंगा, तब उन सौ वर्षों में मेरे नारायणांश ही इन सौ वर्षों में सम्पन्न होने वाले कार्य को सम्पन्न करेंगे। भविष्य में पुनः वृन्दावन में तुम्हारे साथ रासक्रीड़ा होगी। तदनन्तर मैं वृन्दावन में रास-क्रीड़ा तुम्हारे साथ करूंगा।॥२४९-२५३॥

पुनः पित्रोश्च गोपीनां शोकसंमार्जनं परम्। कृत्वा भारावतरणं पुनरागमनं मम॥२५४॥
त्वया सहापि गोलोकं गोपैर्गोपीभिरेव च।
मम नारायणांशस्य वाण्या च पद्मया सह॥२५५॥
वैकुण्ठगमनं राधे नित्यस्य परमात्मनः। श्वेतद्वीपं धर्मगेहमंशानां च भविष्यति॥२५६॥
देवानां चैव देवीनामंशा यास्यन्ति स्वक्षयम्।
पुनः संस्थितिरत्रैव गोलोके मे त्वया सह॥२५७॥

तदनन्तर माता-पिता का एवं गोपीगण के शोक का शमन करके तथा धरती का भार उत्तरने के पश्चात् मैं गोलोक में पुनः आगमन करूंगा। तुमको तथा गोप-गोपीगण को भी साथ लेकर मैं गोलोक आऊंगा। जो नित्य परमात्मा नारायण मेरे अंशरूप हैं, वे भी लक्ष्मी तथा सरस्वती को लेकर वैकुण्ठ पदार्पण करेंगे। मेरे धर्मादि जो अन्य अंशरूप देवता हैं, वे श्वेतद्वीप में निवास करेंगे। हे राधिके! जो लोग अन्य देवगण अथवा देवीगण के अंश से पृथिवी पर अवतीर्ण हो गये थे, वे भी अपने-अपने पूर्व स्थान पर चले जायेंगे। तब मैं तथा तुम पूर्ववत् इसी गोलोक में ही आकर निवास करेंगे।।२५४-२५७।।

इत्येवं कथितं सर्वं भविष्यं च शुभाशुभम्।
मया निरूपितं यत्तत्कान्ते केन निवार्यते॥२५८॥

"हे कान्ते! यह मैंने भविष्य का सभी शुभ-अशुभ वृत्तान्त तुमसे कह दिया। यह सब मेरे द्वारा कथित है। इसे कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता।"।।२५८।।

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः कृत्वा राधां स्ववक्षसि।
तस्यौ तस्थुः सुराः सर्वे सुरपत्न्यश्च विस्मिताः॥२५९॥

यह कहकर कृष्ण ने राधा को अपने वक्ष से लगा लिया। देवता तथा देवपत्नियां यह सब देखकर आश्चर्य चकित हो गये।।२५९।।

उवाच श्रीहरिर्देवान्देवीं च समयोचितम्।
देवा गच्छत कार्यार्थं स्वालयं विषयोचितम्॥२६०॥
गच्छ पार्वति कैलासं सुताभ्यां स्वामिना सह।
मया नियोजितं कर्म सर्वं काले भविष्यति॥२६१॥

अब श्रीहरि ने देवता तथा देवीगण से समयोचित बात कहा कि अब तुम सभी लोग सम्बन्धित कार्य हेतु स्वस्थान पर जाओ। हे पार्वती! आप पुत्रगण तथा पति शिव के साथ कैलास जायें। मेरे द्वारा निश्चित कार्य समयानुरूप सम्पन्न होगा।।२६०-२६१।।

भविता कलया जन्म सर्वेषां च व्रजेश्वरि। क्षुद्राणां चैव महतां देवं लम्बोदरं विना॥२६२॥

श्रीकृष्ण ने कहा-"हे ब्रजेश्वरी! गणेश को छोड़कर अन्य सभी महान् तथा सामान्य देवता एवं देवियां अपनी-अपनी कला से भूतल पर अवतीर्ण होंगे।"।।२६२।।

प्रणम्य श्रीहरिं देवाः स्वालयं प्रययुर्मुदा।
लक्ष्मीं सरस्वतीं भक्त्या प्रणम्य पुरुषोत्तमम्॥२६३॥
हरिणा योजितं कर्म कर्तुं व्यग्रा महीं ययुः।
भर्त्रा निरूपितं स्थानं देवानामपि दुर्लभम्॥२६४॥

इसके पश्चात् सभी देवताओं ने पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, लक्ष्मी तथा सरस्वती को प्रणाम किया तथा मुदित मन से अपने-अपने गृह चले गये। हरि द्वारा नियोजित कार्य को करने के लिये व्यग्र होकर उन सबने धरती पर गमन किया। स्वामी कृष्ण द्वारा निरूपित स्थान का ज्ञान देवगण के लिये भी दुर्लभ था॥२६३-२६४॥

उवाच राधिकां कृष्णो वृषभानुगृहं व्रज। गोपगोपीसमूहश्च सह पूर्वनिरूपितैः॥२६५॥
अहं यास्यामि मथुरां वसुदेवालयं प्रिये।
पश्चात्कंसभयव्याजाद्गोकुलं तव संनिधिम्॥२६६॥

तब कृष्ण ने राधा से कहा–हे राधे! तुम पूर्व निरूपित गोप-गोपीगण सहित वृषभानु के गृह जाओ। हे प्रिये! मैं भी मथुरा में वसुदेव के गृह जा रहा हूं। हे प्रिये! तब मैं कंस के भय के बहाने तुम्हारे पास गोकुल गमन करूंगा॥२६५-२६६॥

राधा प्रणम्य श्रीकृष्णं रक्तपंकजलोचना। भृशं रुरोद पुरतः प्रेमविच्छेदकातरा॥२६७॥
स्थायं स्थायं क्वचिद्यान्ती गत्वा गत्वा पुनः पुनः।
पुनः पुनः समागत्य दर्शं दर्शं हरेर्मुखम्॥२६८॥
पपौ चक्षुश्चकोराभ्यां निमेषरहिता सती। शरत्पार्वणचन्द्राभसुधापूर्णं प्रभोर्मुखम्॥२६९॥

राधा ने रक्तकमलनयन वाले श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। तब राधा प्रेमविच्छेद के भय से कातर होकर रोने लगीं। वे भी जाने के लिये उद्यत होती, पुनः रुक जातीं, अगले ही क्षण पुनः लौटकर श्रीहरि का मुख देखने लगतीं। वे निष्पलक होकर अपने नयन रूपी चकोर से शारदीय सुधापूर्ण पूर्णचन्द्र के समान शोभायमान प्रभु के मुखचन्द्र की रश्मि का पान करने लगतीं!॥२६७-२६९॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य सप्तधा परमेश्वरी। प्रणम्य सप्तधा चैव पुनस्तस्थौ हरेः पुरः॥२७०॥

इसके अनन्तर परमेश्वरी राधा ने सात बार श्रीकृष्ण की परिक्रमा करने के उपरान्त उनको सात बार प्रणाम किया और अन्ततः प्रभु के समक्ष खड़ी हो गयीं॥२७०॥

आजग्मुर्गोपिकानां च त्रिःसप्तशतकोटयः।
आजगाम च गोपानां समूहः कोटिसंख्यकः॥२७१॥
गोपानां गोपिकानां च समूहैः सह राधिका।
पुनः प्रणम्य तं राधा तत्र तस्थौ च नारद॥२७२॥

हे नारद! तभी वहां ७३ कोटि गोपीगण और एक करोड़ गोपगण भी आ गये। उस समय सभी गोपियों, गोपों तथा राधा ने पुनः कृष्ण को प्रणाम किया तथा वहां खड़ी हो गईं।।२७१-२७२।।

त्रयस्त्रिंशद्वयस्याभिर्गोपीभिः सह सुन्दरी।
गोपानां च समूहैश्च प्रणम्य प्रययौ महीम्।।२७३।।
हरिणा योजितं स्थानं प्रजग्मुर्नन्दगोकुलम्।
वृषभानुगृहं राधा गोपी गोपगृहं ययौ।।२७४।।
महीं गतायां राधायां गोपीभिः सह गोपकैः।
बभूव श्रीहरिः सद्यः पृथिवीं गमनोत्सुकः।।२७५।।

जब राधा की ३३ सहचरी सखियां कुछ क्षण उपरान्त वहां आईं तब राधा गोप-गोपियों के साथ हरि को प्रणाम करके धरती पर आ गईं। वे हरि द्वारा निरूपित नन्दगोकुल ग्राम में वृषभानु के गृह में गईं और बाकी गोपीगण गोकुलस्थ अन्य गोपों के यहां अवतीर्ण हो गईं। जब राधा ने गोप-गोपीगण के साथ धरातल पर गमन किया, तब श्रीहरि भी धरती पर जाने हेतु उद्यत हो गये।।२७३-२७५।।

संभाष्य गोपान्गोपीश्च नियोज्य स्वीयकर्मणि।
मनोयायी जगन्नाथो जगाम मथुरां हरिः।।२७६।।
पूर्वं यद्यदपत्यं च देवकीवसुदेवयोः। बभूव सद्यस्तत्कंसः पुत्रषट्कं जघान ह।।२७७।।
शेषांशं सप्तमं गर्भं माययाऽऽकृष्य गोकुले।
निधाय रोहिणीगर्भे जगाम चाऽऽज्ञया हरेः।।२७८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० नारदना० श्रीकृष्णजन्मख० षष्ठोऽध्यायः।।६।।

जगन्नाथ श्रीहरि गोप-गोपीगण को उनके कार्य में नियुक्त करके मनोगामी रथ पर आरूढ़ होकर मथुरा आये। मथुरा में वसुदेव-देवकी के छह पुत्रों का वध कंस ने क्रमशः कर दिया। सप्तम गर्भ में शेषनाग थे, जिनको हरि की आज्ञा पाकर भगवती योगमाया ने आकर्षित करके रोहिणी के गर्भ में गोकुल में स्थापित कर दिया था।।२७६।।

।।छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णजन्म का प्रसंग वर्णन

नारद उवाच

व्यस्यातिरेकं कृष्णस्य महत्पुण्यकरं परम्। वद जन्म महाभाग जन्ममृत्युजरापहम्॥१॥

वसुदेवः कस्य पुत्रः कस्य कन्या च देवकी।
को वसुर्देवकी का वा विवाहं चोभयोर्वद॥२॥
कथं जघान कंसस्तत्पुत्रषट्कं च दारुणः।
कस्मिन्दिने हरेर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे महाभाग! कृष्ण के जन्म का वर्णन सुनने पर जन्म, मृत्यु, जरा प्रभृति का कष्ट दूरीभूत हो जाता है। व्यक्ति का पुण्य बढ़ता है। ऐसी कृष्णकथा का वर्णन करिये। वसुदेव किसके पुत्र हैं? देवकी किसकी पुत्री हैं? देवकी-वसुदेव कौन हैं? उनका विवाह विवरण भी कहिये। दारुण कंस ने उनके छह पुत्रों का वध क्यों किया था? हरि का जन्म किस दिन हुआ था, वह विशेषतया कहिये। यह सब सुनने की मेरी प्रबल इच्छा है।।१-३।।

नारायण उवाच

कश्यपो वसुदेवश्च देवमाता च देवकी। पूर्वपुण्यफलेनैव प्रापतुः श्रीहरिं सुतम्॥४॥

देवमीढान्मारिषायां वसुदेवो महानभूत्।
यस्योद्भवे देवसंघो वादयामास दुन्दुभिम्॥५॥

आनकं च महाहृष्टाः श्रीहरेर्जनकं च तम्। सन्तः पुरातनास्तेन वदन्त्यानकदुन्दुभिम्॥६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनि! महात्मा कश्यप वसुदेव रूप में तथा अदिति देवकी रूप में जन्म ग्रहण करके पूर्वपुण्य के फल से श्रीहरि को पुत्ररूपेण प्राप्त किया था। महात्मा वसुदेव ने देवमीढ़ के औरस से तथा मारिषा के गर्भ से जन्म लिया था। उसी समय देवताओं ने आनक तथा दुन्दुभि नामक वाद्य का वादन किया था। तभी प्राचीन साधुगण ने श्रीहरि के पिता का नाम आनक दुन्दुभि रख दिया।।४-६।।

आहुकस्य सुतः श्रीमान्यदुवंशसमुद्भवः। देवको ज्ञानसिन्धुश्च तस्य कन्या च देवकी॥७॥
गर्गो यदुकुलाचार्यः संबन्धं वसुना सह। देवक्याः कारयामास विधिवच्च यथोदितम्॥८॥
महासंभृतसंभारो वसुदेवः शुभे क्षणे। उद्वाहे देवकीं तस्मै देवकः प्रददौ किल॥९॥

अश्वानां च सहस्राणि गजानां च शतानि च।
सालंकृतानां दासीनां शतानि सुन्दराणि च॥१०॥

नानाविधानि द्रव्याणि रत्नानि विविधानि च।
मणिश्रेष्ठानि वज्राणि स्वर्णपात्राणि नारद॥११॥
सद्रत्नभूषितां कन्यां शतचन्द्रसमप्रभाम्।
त्रैलोक्यमोहिनीं धन्यां मान्यां श्रेष्ठां च योषिताम्॥१२॥

यदुवंश में आहुक के पुत्र ज्ञानसिंधु देवक थे। उनकी कन्या थी देवकी! यदुकुल के आचार्य गर्ग मुनि ने वसुदेव के साथ देवकी का विवाह निश्चित किया। वसुदेव ने अतीव समारोह के साथ शुभक्षण में देवक द्वारा प्रदत्ता देवकी से सविधि विवाह किया था। हे नारद! देवक ने विवाह काल में सविधि विवाहोचित द्रव्य, १००० अश्व, स्वर्णपात्र समूह, अलंकृता सुन्दरी १०० परिचारिकायें, नाना प्रकार की समाग्री, रत्न-मणिमय वस्त्र, रत्नपात्र प्रभृति वसुदेव को दहेज में दिया। वसुदेव ने उत्तम रत्न भूषिता सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिमती, त्रैलोक्य मोहिनी वसुदेव को प्रदान किया, जो स्त्रियों में धन्या-मान्या तथा श्रेष्ठ थीं।।७-१२।।

रूपाधारां गुणाधारां सुस्मितां वक्रलोचनाम्।
नवसङ्गमयोग्यां च प्रोद्भिन्ननवयौवनाम्॥१३॥
तां गृहीत्वा रथे कृत्वा प्रस्थानसमये तदा। कंसो हृष्टः सहचरो भगिन्युद्वाहकर्मणि॥१४॥
तस्या रथसमीपस्थे कंसे गच्छति तत्क्षणे। कंसं संबोध्य गगने वाग्बभूवाशरीरिणी॥१५॥

वह कन्या देवकी रूप तथा गुण की निधिरूपा, स्मितवदना, तिरछी चितवन युता, नवसंगम के योग्य एवं नवयौवना थी। इस कन्यारत्न को ग्रहण करके जैसे ही वसुदेव रथारूढ़ होकर जाने लगे तब बहन के विवाह कर्म से प्रसन्न होकर कंस भी बहन को राज्य सीमा तक पहुंचाने के लिये साथ में अपने अनुचरों के साथ चल पड़ा। वह देवकी के साथ-साथ आगे बढ़ रहा था। तभी आकाश से कंस को सम्बोधित करती अशरीरी वाणी सुनाई पड़ी।।१३-१५।।

कथं हृष्टोऽसि राजेन्द्र शृणु सत्यं वचो हितम्।
देवक्या ह्यष्टमो गर्भो मृत्युहेतुस्तवैव हि॥१६॥

यथा-हे राजेन्द्र कंस! तुम इतने प्रसन्न क्यों हो? यह सत्यवाक्य श्रवण करो। देवकी के अष्टम गर्भ से उत्पन्न सन्तान तुम्हारी मृत्यु का कारण होगा।।१६।।

श्रुत्वैवं देवकीं कंसः खड्गहस्तो महाबलः।
देववाक्याद्भयात्क्रोधात्पापिष्ठो हन्तुमुद्यतः॥१७॥
तां हन्तुमुद्यतं दृष्ट्वा वसुदेवः सुपण्डितः। बोधयामास नीतिज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः॥१८॥

यह दैववाणी सुनकर भय एवं क्रोध से आक्रान्त होकर महाबली, पराक्रमी पापी कंस ने खड्ग उठाया तथा देवकी का वध करने हेतु उद्यत हो गया। तभी नीतिशास्त्रज्ञ विद्वान् वसुदेव ने देवकी का वध करने के लिये उद्यत कंस से यह प्रबोध वाक्य कहा-।।१७-१८।।

वसुदेव उवाच

राजनीतिं न जानासि शृणु मे वचनं हितम्।
यशस्करं च दोषघ्नं शास्त्रोक्तं समयोचितम्॥१९॥
अस्या एवाष्टमो गर्भो मृत्युश्चेत्तव भूमिप।
इमां च हत्वा दुष्कीर्तिं करोषि त्वं नरः कथम्॥२०॥
वधे च क्षुद्रजन्तूनां हिंसकानां च पण्डितः।
कार्षापणं समुत्सृज्य मृत्युकाले प्रमुच्यते॥२१॥
अहिंसकानां क्षुद्राणां वधः शतगुणं ध्रुवम्।
प्रायश्चित्तं मृत्युकाले कथितं पद्मयोनिना॥२२॥

वसुदेव कहते हैं–हे राजन्! प्रतीत होता है आप नीति को विशेषतया नहीं जानते। अतः मेरा यह यशप्रद, दोषनाशक, शास्त्रोक्त एवं समयोचित हितप्रद वाक्य श्रवण करिये। हे राजन्! इसका अष्टम गर्भ आपके विनाश का कारण है। तब देवकी का वध करके क्यों दुष्कीर्त्ति तथा नरक जाने के मार्ग का विस्तार आप कर रहे हैं? विद्वान् लोग क्षुद्र जन्तुओं तथा हिंस्र जन्तुओं का वध करके भी मृत्युकाल में धन उत्सर्ग प्रायश्चित्त करके इस पाप से मुक्ति लाभ करते हैं, तथापि हिंसक जन्तु की तुलना में अहिंसक छोटे जन्तु तक का वध करने में हिंसक जन्तुवध की तुलना में १०० गुना पाप लगता है। ब्रह्मा ने तभी ऐसे पाप के लिये १०० गुना प्रायश्चित्त कहा है।।१९-२२।।

वधे विशिष्टजन्तूनां पश्वादीनां च कामतः। ततः शतगुणं पापं निश्चितं मनुरब्रवीत्॥२३॥
नराणां म्लेच्छजातीनां वधे शतगुणं ततः।
म्लेच्छानां च शतानां च यत्पापं लभते वधे॥२४॥
सच्छूद्रैकस्य च वधे तत्पापं लभते पुमान्॥२५॥
सच्छूद्राणां शतानां च यत्पापं लभते वधे। तत्पापं लभते नूनं गोवधैकेन निश्चितम्॥२६॥

मनु कहते हैं कि इच्छानुसार विशेष जन्तु, पशु प्रभृति का वध करने पर तो अहिंसक जन्तु वध की तुलना में उससे भी १०० गुना अधिक पाप लगता है। सामान्य म्लेच्छ प्रभृति का वध करने पर इससे भी १०० गुना पाप लगता है। जब मानव १०० म्लेच्छों का वध करता है, वही पाप सद्वंशोत्पन्न एक शूद्र वध पर भी होता है। जब मनुष्य सद्वंशोत्पन्न १०० शूद्रों का वध करता है, उससे जो पाप होता है, वह एक गोवध जनित पाप के समान कहा गया है। यह ब्रह्मा का वचन है।।२३-२६।।

गवां दशगुणं पापं ब्राह्मणस्य वधे भवेत्। विप्रहत्यासमं पापं स्त्रीवधे लभते नरः॥२७॥
विशेषतो हि भगिनी पोष्या च शरणागता। स्त्रीहत्याशतपापं च भवेदस्या वधे नृप॥२८॥

एक ब्राह्मण का वध करने पर गोहत्या से १० गुणित अधिक पातक होता है। नारी वध का

पातक भी ब्राह्मणवध इतना होगा। विशेष रूप से बहन, अपने द्वारा पाली गई अथवा शरणागता नारी की हत्या का भी यही पातक लगता है। अतः स्त्री हत्या की तुलना में १०० गुना पातक इनकी हत्या से लगेगा।।२७-२८।।

तपो जपं च दानं च पूजनं तीर्थदर्शनम्। विप्राणां भोजनं होमं स्वर्गार्थं कुरुते बुधः।।२९।।
जलबुद्बुदवत्सर्वं स्वप्नतुल्यं भ्रमं भवम्। पश्यन्ति सततं सन्तो धर्मं कुर्वन्ति यत्नतः।।३०।।

भगिनीं त्यज[1] धर्मिष्ठ स्ववंशपद्मभास्कर।
बुधाः कतिविधाः सन्ति सभायां पृच्छ्यतां नृप।।३१।।
अस्याश्चैवाष्टमो गर्भो यदपत्यं भविष्यति।
बन्धो तुभ्यं प्रदास्यामि तेन मे किं प्रयोजनम्।।३२।।
अथवा यान्यपत्यानि भवन्ति ज्ञानिनां वर।
तानि सर्वाणि दास्यामि त्वत्तः को मे वरः प्रियः।।३३।।

भगिनीं त्यज राजेन्द्र कन्यातुल्यां प्रियां तव। मिष्टान्नपानदानेन वर्धितामनुजां सदा।।३४।।

तप, जप, दान, पूजा, तीर्थाटन, ब्राह्मणभोजन तथा हवन बुद्धिमान लोग स्वर्ग लाभार्थ करते हैं, तथापि जो साधु हैं, वे संसार को भययुक्त, स्वप्नवत् तथा जल के बुलबुले जैसा देखते हैं और धर्माचरणरत रहा करते हैं। हे धार्मिकप्रवर! तुम कमलरूप तथा अपने वंश के लिये सूर्यस्वरूप हो। अतः अपनी बहन को छोड़ दो। हे राजन्! इस सभा में न जाने कितने विद्वान् उपस्थित हैं। इनसे ही तुम पूछ लो। किम्बहुना! तुम तो मेरे बन्धु हो। इसके आठवें गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह तुमको प्रदान कर दूंगा। उस पुत्र का मुझे क्या प्रयोजन? हे ज्ञानीप्रवर! अपनी कन्यातुल्य प्रिय बहन को जीवित रहने दो। तुमसे बढ़कर प्रिय मेरे लिये कोई नहीं है। हे राजेन्द्र! तुमने इसे मिष्ठान्न खिला-खिला कर बड़ा किया है। यह उचित नहीं है कि इसका वध करो।।२९-३४।।

वसुदेववचः श्रुत्वा तत्याज भगिनीं नृपः। वसुदेवः प्रियां नीत्वां जगाम निजमन्दिरे।।३५।।
क्रमादपत्यषट्कं च यद्यद्भूतं च नारद। ददौ तस्मै वसुः सत्यात्स जघान क्रमेण तान्।।३६।।
देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां ददौ भिया। रोहिणीजठरे माया तमाकृष्य ररक्ष च।।३७।।
रक्षकाः कथयामासुर्गर्भस्त्रावो बभूव ह। तस्माद्बभूव भगवानात्मा संकर्षणः प्रभुः।।३८।।

वसुदेव का वचन सुनकर कंस ने बहन को जीवित छोड़ दिया। वसुदेव अपने प्रिया को लेकर अपने गृह चले गये। हे नारद! तत्पश्चात् क्रमशः देवकी के गर्भ से एक के बाद एक करके ६ पुत्र जन्मे। सत्यरक्षार्थ वसुदेव उनको कंस को देते गये। कंस भी उन पुत्रों का क्रमशः वध करता गया। देवकी के सप्तम गर्भ के समय कंस ने भय के कारण देवकी के यहां रक्षक नियुक्त किया तथा योगमाया ने उस

---

१. भग्नीश्च त्यजेति त्यज भगिनिश्चेति वा प्रायः पाठः।

गर्भ को देवकी के उदर से आकर्षित करके रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया! रक्षकों ने यह रहस्य नहीं जाना और कंस से जाकर कहा कि यह सप्तमगर्भ गर्भस्राव के कारण नष्ट हो गया। इस गर्भ का आकर्षण करके उसे रोहिणी के गर्भ में स्थापित किया गया था। तभी इस गर्भ से जन्मे पुत्र संकर्षण कहलाये!।।३५-३८।।

तस्या एवाष्टमो गर्भो वायुपूर्णो बभूव ह। गते च नवमे मासि दशमे समुपस्थिते।।३९।।
दृष्टिं ददौ च गर्भे च भगवान्सर्वदर्शनः। स्वयं रूपवती देवी सर्वासां योषितां वरा।।४०।।
बभूव दर्शनात्सद्यः सुन्दरी सा चतुर्गुणा। ददर्श देवकीं कंसः प्रफुल्लवदनेक्षणाम्।।४१।।
तेजसा प्रज्वलन्ती च मायामिव दिशो दश।
ज्योतिषां संहतिं चैव यथा मूर्तिमतीमिव।।४२।।

देवी का अष्टम गर्भ जब प्रकट हुआ, तब वह वायुपूर्ण था। जब नवम मास समाप्त होकर दशम मास आया, तब वह गर्भ भी वायु से पूर्ण हो गया। उस समय सर्वदर्शी प्रभु ने उस गर्भ पर दृष्टिपात किया। देवकी जो पहले से ही सभी नारियों से श्रेष्ठ तथा अत्यन्त रूपवती थीं, वे अब चतुर्गुण सुन्दरी लग रही थीं। उन प्रफुल्लित मुख वाली देवकी को उस समय कंस ने देखा। वह योगमायावत् होकर दसों दिशाओं को अपने तेज से प्रज्वलन्त कर रही थीं। वे उस समय मूर्त्तिमती, ज्योतिमयी परिलक्षित हो रही थीं।।३९-४२।।

दृष्ट्वा तामसुरेन्द्रश्च विस्मयं परमं ययौ। अस्माद्गर्भादपत्यं च मृत्युबीजं ममैव च।।४३।।
इत्येवमुक्त्वा कंसश्च ददौ रक्षां प्रयत्नतः। देवकीं वसुदेवं च सप्तद्वारं ररक्ष च।।४४।।

असुरपति कंस देवकी को देखकर अत्यन्त विस्मित हो गया। उसने विचार किया कि "यही सन्तान मेरी मृत्यु का कारण होगा।" यह कहकर कंस अब देवकी एवं वसुदेव की सर्वप्रयत्न पूर्वक रक्षा करने लगा। उस समय कंस ने इन दम्पति को सात द्वार वाले स्थान पर रखा।।४३-४४।।

पूर्णे च दशमे मासे गर्भः पूर्णो बभूव ह। बभूव सा चलस्पन्दा जडरूपा च नारद।।४५।।
गर्भे च वायुना पूर्णे निर्लिप्तो भगवानजित्।
हृत्पद्मकोशे देवक्या अधिष्ठानं चकार ह।।४६।।
सा विश्वंभरगर्भा च मन्दिराभ्यन्तरे सती। उवास जडरूपा च क्लेशयुक्ता बभूव ह।।४७।।

दसवें मास में गर्भ पूर्ण हो गया। इस समय देवकी की गति मन्द-सी हो गई। हे नारद! देवकी इस समय जड़रूप हों गयीं। जब वह गर्भ वायु से भर गया, तब अजित एवं निर्लिप्त प्रभु ने देवकी के हृत्कमलकोश में अपना अधिष्ठान किया। जब प्रभु विश्वंभर गर्भ में आ गये तब सती देवकी अपने गृह में जड़रूपा क्लेदयुक्त हो गईं।।४५-४७।।

उवास च क्षणं देवी क्षणमुत्थाय तिष्ठति। क्षणं व्रजति पादैकं क्षणं स्वपिति तत्र वै।।४८।।

कभी वे बैठतीं, अगले क्षण उठकर बैठ जाती, तदनन्तर कुछ क्षण पश्चात् एक-दो पग चलकर वहीं शयनरत हो जातीं।।४८।।

दृष्ट्वा च देवकीं शीघ्रं वसुदेवो महामनाः। प्रसूतिसमयं ज्ञात्वा सस्मार हरिमीश्वरम्॥४९॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते मन्दिरे सुमनोहरे। स्थापयामास खड्गं च लोहं तोयं हुताशनम्॥५०॥
मन्त्रज्ञं च नरं चैव बन्धुपत्नीभयाकुलः। विद्वांसं ब्राह्मणं चैव त्रस्तो बन्धूंश्च सादरम्॥५१॥

तत्पश्चात् प्रशस्त मन वाले वसुदेव ने देवकी को देखकर यह समझ लिया कि प्रसवकाल सन्निकट है। अब वे श्रीहरि का स्मरण करने लगे। अत्यन्त भयग्रस्त होकर वसुदेव ने देवकी के मनोहर कक्ष में खड्ग, लौह, जल, अग्नि रखा तथा मन्त्रज्ञ व्यक्ति, बन्धुगण की पत्नियों, विद्वान् ब्राह्मण तथा सादर बन्धुगण को भी वहां बुलाया।।४९-५१।।

एतस्मिन्नन्तरे तस्या रात्रेर्द्वौ प्रहरौ गतौ। व्यासं च गगनं मेघैः क्षणद्युतिसमन्वितैः॥५२॥
ववुश्च वायवश्चेष्टा ययुर्निद्रां च रक्षकाः। अचेष्टिताश्च शयने मृता इव विचेतना॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाऽऽजग्मुस्त्रिदशेश्वराः। तुष्टुवुर्धर्मब्रह्मेशा गर्भस्थं परमेश्वरम्॥५४॥

तभी रात के दो प्रहर व्यतीत होने पर विद्युत्युक्त मेघ आकाश में छा गये। वायु बहने लगी। सभी रक्षक निद्रित हो गये। मानो सभी चेतना रहित होकर शय्या पर पड़े हों। यह देखकर देवेश्वर ब्रह्मा, शिव, धर्म गर्भस्थित परमेश्वर की स्तुति करने लगे।।५२-५४।।

देवा ऊचुः

जगद्योनिरयोनिस्त्वमनन्तोऽव्यय एव च।
ज्योतिः स्वरूपो ह्यनघः सगुणो निर्गुणो महान्॥५५॥
भक्तानुरोधात्साकारो निराकारो निरङ्कुशः।
निर्व्यूहो निखिलाधारो[1] निःशङ्को निरुपद्रवः॥५६॥

देवगण कहते हैं–हे प्रभो! आप जगद्योनि (जगत् के उत्पत्ति स्थल) हैं। आप ही अयोनि (उत्पत्ति रहित) हैं। आप अनन्त, अव्यय, ज्योतिःस्वरूप, निष्पाप, सगुण, निर्गुण, महान् भी हैं। आप निरंकुश, स्वेच्छाचारी, निर्व्यूह, सबके आधार, निःशङ्क एवं उपद्रव रहित हैं।।५५-५६।।

निरुपाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः।
स्वात्मारामः पूर्णकामो[2] निमिषो नित्य एव च॥५७॥
स्वेच्छामयः सर्वहेतुः सर्वः सर्वगुणाश्रयः। सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जनान्तक एव च॥५८॥
सुभगो दुर्भगो वाग्मी दुराराध्यो दुरत्ययः। वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद्विभुः॥५९॥

हे भगवन्! आप निरुपाधि, निर्लिप्त, निरीह, मृत्यु के भी काल, स्वात्माराम, पूर्णकाम, निर्निमेष, नित्य, स्वेच्छामय, सबके कारण, सर्व, सर्वगुणाश्रय, सुखद-दुःखद, दुर्गरूप, दुर्जननाशक, सुभग, दुर्भग, वाग्मी, दुराराध्य, दुरत्यय, वेद के कारण, वेदरूप, वेदांग, वेदज्ञ एवं विभु हैं।।५७-५९।।

१. क. ०लाकरो।
२. क. निमेषो।

इत्येवमुक्त्वा देवाश्च प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः। हर्षाश्रुलोचनाः सर्वे ववृषुः कुसुमानि च॥६०॥
द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं लभते वाञ्छितं फलम्॥६१॥

यह स्तुति करके देवगण ने प्रभु को बारम्बार प्रणाम किया। वे अश्रुपूर्ण नेत्रों से प्रभु पर पुष्पवर्षण करने लगे। यहां इस स्तोत्र में कहे भगवान् के ४२ नामों का जो पाठ करता है—वह हरि के प्रति दृढ़भक्ति, प्रभु का दास्य एवं इच्छित फल लाभ करता है।।६०-६१।।

नारायण उवाच

इत्येव स्तवनं कृत्वा देवास्ते स्वालयं ययुः। बभूव जलवृष्टिश्च निश्चेष्टा मथुरापुरी॥६२॥
घोरान्धकारनिबिडा बभूव यामिनी मुने। गते सप्तमुहूर्ते तु चाष्टमे समुपस्थिते॥६३॥
वेदातिरिक्तदुर्ज्ञेये सर्वोत्कृष्टे शुभे क्षणे। शुभग्रहे दृष्टियुक्तेऽप्यदृष्टे चाशुभग्रहे॥६४॥
अर्धरात्रे समुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमीतिथौ। जयन्तीयोगसंयुक्ते चार्धचन्द्रोदये मुने॥६५॥
दृष्ट्वा दृष्ट्वा क्षणं लग्नं भीताः सूर्यादयस्तदा।
गगने क्रममुल्लङ्घ्य जग्मुर्मीनं शुभावहाः॥६६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—प्रभु का यह स्तवन करके देवगण अपने-अपने गृह चले गये। उस समय मथुरा पुरी निश्चेष्ट तथा जलवर्षा से आच्छन्न हो गयी। रात्रि भी घोर अन्धाकर में डूब गयी। हे मुनिवर! सातलग्न व्यतीत होते ही अष्टमलग्न आया। यह वेदातिरिक्त, दुर्ज्ञेय एवं सर्वोत्तम शुभ-क्षण था। उस मुहूर्त्त लग्न पर केवल शुभग्रहों की दृष्टि थी। अशुभग्रहगण लग्न को नहीं देख रहे थे। वेदातिरिक्त दुर्ज्ञेय भगवान् कृष्ण आविर्भूत होंगे, अतः अशुभग्रह अदृष्ट थे। शुभग्रह दृष्ट सर्वोत्तम क्षण आया। अर्द्धरात्रिकाल में रोहिणी नक्षत्र, अष्टमी तिथि, जयन्ती योग, अर्द्धचन्द्रोदय तथा शुभ लग्न एवं उत्तम लक्षण देखकर सूर्यादि शुभ-अशुभ-ग्रह भयभीत होकर अपने-अपने क्रम का उल्लंघन करके मीन लग्न में स्थित हो गये। जो शुभ लग्न था।।६२-६६।।

सुप्रसन्ना ग्रहाः सर्वे बभूवुस्तत्र संस्थिताः। एकादशास्ते प्रीत्या च मुहूर्तं धातुराज्ञया॥६७॥
ववर्षुश्च जलधरा ववुर्वाताः सुशीतलाः। सुप्रसन्ना च पृथिवी प्रसन्नाश्च दिशो दश॥६८॥
ऋषयो मनवश्चैव यक्षगन्धर्वकिंनराः। देवा देव्यश्च मुदिता ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥६९॥
जगुर्गन्धर्वपतयो विद्याधर्यश्च नारद। सुखेन सुस्त्रुवुर्नद्यो जज्वलुश्चाग्नयो मुदा॥७०॥

सभी शुभ-ग्रह मीन लग्न में स्थित हो गये। यह विधाता की आज्ञा थी कि वे मुहूर्त्त भर के लिये एकादश स्थान में आनन्द पूर्वक स्थित हो गये। उस समय जलधर जल वर्षा करने लगे। शीतल वायु बहने लगी। पृथिवी तथा दसों दिशा प्रसन्न हो गईं। ऋषि समूह, मनुगण, यक्ष-गन्धर्व-किन्नर, देव-देवीगण उस समय मुदित थे। अप्सरागण नृत्य करने लगीं। हे नारद! उस समय गन्धर्वपति तथा

विद्याधरियां गीत गायन करने लगीं। उस समय नदियां भी सुख के साथ बह रहीं थीं। अग्नि प्रसन्नता पूर्वक प्रज्वलित हो गये।।६७-७०।।

नेदुर्दुन्दुभयो नाके चाऽऽनकाश्च मनोहराः। पारिजातप्रसूनानां महावृष्टिर्बभूव ह।।७१।।
जगाम सूतिकागेहं नारीरूपं विधाय भूः। जयशब्दः शङ्खशब्दो हरिशब्दो बभूव ह।।७२।।

स्वर्ग से दुन्दुभि का तथा मनोहर आनक वाद्यों का निनाद होने लगा। पारिजात के पुष्पों की महावृष्टि उस समय हो रही थी। उस समय वसुन्धरा नारीरूप धारण करके सूतिकागृह में आईं। उस समय जय-जयकार, शंखध्वनि, हरि-हरि का शब्द होने लगा था।।७१-७२।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पपात देवकी सती। निःससार च वायुश्च देवकीजठरात्ततः।।७३।।
तत्रैव भगवान्कृष्णो दिव्यरूपं विधाय च। हृत्पद्मकोशाद्देवक्या हरिराविर्बभूव ह।।७४।।
अतीव कमनीयं च शरीरं सुमनोहरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं स्फुरन्मुकुटकुण्डलम्।।७५।।
ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्।।७६।।

तदनन्तर सती देवकी भूपतित हो गईं तथा देवकी के गर्भ में संचित वायु बहिर्गत् हो गया। तभी भगवान् कृष्ण देवकी के हृदय कोश से दिव्यरूप धारण करके आविर्भूत हो गये। उनका शरीर अत्यन्त मनोहर तथा कमनीय था। वे द्विभुज, मुरलीधारी, तनिक मन्द मुस्कान युक्त आनन वाले, चमक रहे मुकुट-कुण्डलधारी, प्रसन्न मुख तथा भक्तों पर कृपा करने वाले थे।।७३-७६।।

मणिरत्नेन्द्रसाराणां भूषणैश्च विभूषितम्। नवीननीरदश्यामं शोभितं पीतवाससा।।७७।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं बिम्बाधरमनोहरम्।।७८।।

वे मणि तथा उत्तम रत्नों के सारभाग से निर्मित आभूषणों से विभूषित थे। श्रीकृष्ण का देहवर्ण नये जलधर के समान श्यामवर्ण का था। जो पीतवर्ण के वस्त्रों को धारण करके शोभित हो रहे थे। उनके अंग चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम द्रव से लिप्त चर्चित थे। उनका आनन शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा से भी प्रभाभूर्ण था। उनके अधर भी बिम्बफल के समान वर्ण वाले तथा मनोहारी थे।।७७-७८।।

मयूरपच्छिचूडं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्। त्रिभङ्गवक्रमध्यं च वनमालाविभूषितम्।।७९।।
श्रीवत्सवक्षसं चारुकौस्तुभेन विराजितम्।
किशोरवयसं शान्तं कान्तं ब्रह्मेशयोः परम्।।८०।।

प्रभु श्रीकृष्ण के शिर पर मोरपंख का मुकुट तथा विशुद्ध रत्ननिर्मित मनोहर उज्वल किरीट विराजित था। उनकी कमर (मुरलीवादन के कारण) वक्र थी। वे त्रिभङ्ग स्थिति में तथा वनमाला भूषित थे। उनके वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न था तथा वहीं उत्तम कौस्तुभमणि भी विराजमान थी। वे प्रभु किशोरवय वाले, शान्त रूप तथा ब्रह्मा एवं ईश्वर शिव को भी अत्यन्त प्रिय थे।।७९-८०।।

ददर्श वसुदेवश्च देवकीपुरतो मुने। तुष्टाव परया भक्त्या विस्मयं परमं ययौ।।८१।।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः।
साश्रुपूर्णः सपुलको देवक्या च स्त्रिया सह॥८२॥

हे मुनिवर! उस समय माता देवकी तथा पिता वसुदेव ने जब उनको देखा, तब वे अत्यन्त विस्मयविमुग्ध हो गये। वे दोनों पति-पत्नी परम भक्ति पूर्वक नतशिर होकर भगवान् का स्तव करने लगे॥८१-८२॥

वसुदेव उवाच

त्वामतीन्द्रियमव्यक्तमक्षरं निर्गुणं विभुम्। ध्यानासाध्यं च सर्वेषां परमात्मानमीश्वरम्॥८३॥
स्वेच्छामयं सर्वरूपं स्वेच्छारूपधरं परम्। निर्लिप्तं परमं ब्रह्म बीजरूपं सनातनम्॥८४॥

श्रीवसुदेव कहते हैं-हे प्रभो! आप इन्द्रियों से अगोचर, अव्यक्त, अक्षर, निर्गुण, सर्वव्याप्त, ध्यान साध्य, सबके परमात्मा एवं ईश्वर हैं। आप स्वेच्छामय, सर्वरूपधारी, परमपुरुष, निर्लिप्त, परमब्रह्म तथा सनातन बीजरूप हैं॥८३-८४॥

स्थूलात्स्थूलतरं व्यासमतिसूक्ष्ममदर्शनम्। स्थितं सर्वशरीरेषु साक्षिरूपमदृश्यकम्॥८५॥
शरीरवन्तं सगुणमशरीरं गुणोत्करम्। प्रकृतेः प्रकृतीशं च प्राकृतं प्रकृतेः परम्॥८६॥
सर्वेशं सर्वरूपं च सर्वान्तिकरमव्ययम्।
सर्वाधारं निराधारं निर्व्यूहं स्तौमि किं विभुम्॥८७॥

आप स्थूल से भी स्थूल हैं, आप व्याप्त तथा अत्यन्त सूक्ष्मरूप अदर्शनीय, सभी शरीर में साक्षीरूपेण स्थित होकर भी अदृश्य, सगुण शरीरधारी, अशरीरी, गुणमय, प्रकृति, प्रकृति के ईश्वर, प्राकृत हैं। आप प्रकृति से भी श्रेष्ठ हैं। आप सर्वेश, सर्वरूप, सर्वान्तकारी तथा अव्यय हैं। आप सर्वाधार होकर भी निराधार, निर्व्यूह हैं! मैं आपकी स्तुति कर सकने में कैसे सक्षम हो सकता हूं?॥८५-८७॥

अनन्तः स्तवनेऽशक्तोऽशक्ता देवी सरस्वती।
यं वा स्तोतुमशक्तश्च पञ्चवक्त्रः षडाननः॥८८॥
चतुर्मुखो वेदकर्ता यं स्तोतुमक्षमः सदा। गणेशो न समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥८९॥

आपकी स्तुति कर सकने में अनन्तदेव, देवी सरस्वती, पंचानन शिव तथा गणेश भी समर्थ नहीं हैं। आपकी स्तुति षडानन स्कन्द, वेदकर्त्ता चतुर्मुख ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। आप तो योगीन्द्रों के गुरुओं के भी गुरु हैं॥८८-८९॥

ऋषयो देवताश्चैव मुनीन्द्रमनुमानवाः। स्वप्ने तेषामदृश्यं च त्वामेवं किं स्तुवन्ति ते॥९०॥
श्रुतयः स्तवनेऽशक्ताः किं स्तुवन्ति विपश्चितः।
विहायैवं शरीरं च बालो भवितुमर्हसि॥९१॥

ऋषिगण, देवगण, मुनीन्द्रगण, मनुगण तथा मानवों को तो स्वप्न में भी आपका दर्शन नहीं

मिलता, तब वे आपकी स्तुति किस प्रकार कर सकते हैं। आपकी स्तुति कर सकने में तो श्रुतियां भी अशक्त हैं, अतः विद्वान् लोग आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? आप इस शरीर की जगह बालक रूप हो जायें।।९०-९१।।

वसुदेवकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। भक्तिं दास्यमवाप्नोति श्रीकृष्णचरणाम्बुजे।।९२।।
विशिष्टपुत्रं लभते हरिदासं गुणान्वितम्। संकटं निस्तरेत्तूर्णं शत्रुभीत्या प्रमुच्यते।।९३।।

जो कोई मनुष्य वसुदेव कृत इस स्तोत्र को तीनों सन्ध्याकाल में पढ़ता है, वह श्रीकृष्ण के चरणों का दासत्व लाभ कर लेता है। वह हरि के दास रूप विशिष्ट गुणीपुत्र की प्राप्ति करता है। वह शीघ्र संकटों को पार कर लेता है। वह शत्रुभय से भी रहित हो जाता है।।९२-९३।।

नारायण उवाच

वसुदेववचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम्। प्रसन्नवदनः श्रीमान्भक्तानुग्रहकारकः।।९४।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—वसुदेव का यह कथन सुनकर हरि प्रसन्न हो गये। उस भक्तानुग्रहकारी श्रीहरि ने वसुदेव से स्वयं कहा—।।९४।।

श्रीकृष्ण उवाच

तपसां च फलेनैव पुत्रोऽहं तव सांप्रतम्। वरं वृणीष्व भद्रं ते भविष्यति न संशयः।।९५।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—मैं आपके तप के ही कारण आपका पुत्र हो गया हूं। हे भद्र! आप वर मांगें। आपका कल्याण होगा। यह निःसंशय है।।९५।।

पुरा तपस्विनां श्रेष्ठः सुतपास्त्वं प्रजापतिः।
पत्नी ते[1] पृश्निनाम्नी च तपसाऽराधितस्त्वया।।९६।।
पुत्रो मत्सदृशस्तत्र दृष्ट्वा मां च वृतो बुधः।
मया दत्तो वरस्तुभ्यं मत्समो भविता सुतः।।९७।।

पूर्वजन्म में आप महान् तपस्वी तथा सुतपा प्रजापति थे। आपकी पत्नी थीं पृश्नि। जब इस तपस्या से भी आप लोगों को मेरा दर्शन नहीं मिला तब आपने मेरे समान पुत्र प्राप्त करने का वर मांगा था। मैंने भी आप दोनों को यह वर दिया था कि आपको मेरे समान पुत्र होगा।।९६-९७।।

दत्त्वा तुभ्यं वरं तात मनसाऽलोच्य चिन्तितः।
मत्समो नास्ति भुवने पुत्रोऽहं तेन हेतुना।।९८।।

आप लोगों को यह वर देकर मैं मन में यह विचार करके चिन्तित हो गया कि इस त्रिभुवन में मेरे समान कोई नहीं है अतः मैं ही आपका पुत्र बनूंगा।।९८।।

तपसां च प्रभावेण त्वमेव कश्यपः स्वयम्। सुतपा देवमातेयमदितिश्च पतिव्रता।।९९।।

१. क. ते सूतोपेयं च।

अधुना कश्यपांशस्त्वं वसुदेवः पिता मम। देवकी देवमातेयमदितेरंशसंभवा॥१००॥
त्वत्तोऽदित्यां वामनोऽहं पुत्रस्तेऽशेन संभवः।
अधुना परिपूर्णोऽहं पुत्रस्ते तपसां फलात्॥१०१॥

आप अपने तपःश्चरण के प्रभाव से प्रजापति कश्यप हो गये। आपकी पतिव्रता पत्नी देवमाता पतिव्रता अदिति हो गयीं। आप वसुदेव कश्यप के अंश से उत्पन्न होकर मेरा पिता हैं। देवमाता अदिति के अंश से उत्पन्न देवकी मेरी माता हैं। पूर्वकाल में मैं ही आपके द्वारा अदिति के गर्भ से अंशतः उत्पन्न होकर आपका पुत्र वामन हो गया था। अब आप दोनों की तपस्या के फलस्वरूप आपका पुत्र हो गया हूं।।९९-१०१।।

मां वा त्वं पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन वा पुनः।
मां प्राप्तोऽसि महाप्राज्ञ जीवन्मुक्तो भविष्यसि॥१०२॥
यशोदाभवनं शीघ्रं मां गृहीत्वा व्रजं व्रज।
संस्थाप्य तत्र मां तात मायामादाय स्थापय॥१०३॥

हे महाप्राज्ञ! आपने मुझे पुत्रभाव से अथवा ब्रह्मभावना से प्राप्त किया है। अतः आप जीवन्मुक्त होंगे। हे तात! मुझे शीघ्रता से व्रजधाम में यशोदा के गृह में ले जायें। वहां आप मुझे रखें तथा वहां से योगमाया को यहां लाकर स्थित करें।।१०२-१०३।।

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र बालरूपो बभूव ह।
नग्नं भूमौ शयानं च ददर्श श्यामलं सुतम्॥१०४॥
दृष्ट्वा स बालकं तत्र मोहितो विष्णुमायया।
किं वा कूटं च तन्द्रायामपूर्वं सूतिकागृहम्॥१०५॥
इत्युक्त्वा वसुदेवश्च समालोच्य स्त्रिया सह।
गृहीत्वा बालकं क्रोडे जगाम नन्दगोकुलम्॥१०६॥
गत्वा नन्दव्रजं शीघ्रं विवेश सूतिकागृहम्।
ददर्श शयनविष्टां यशोदां निद्रयाऽन्विताम्॥१०७॥

यह कहकर श्रीहरि बालरूप हो गये। वसुदेव ने तब उस श्यामवर्ण सन्तान को धरती पर नग्नवत् शयन करते देखा। वे बालक को वहां देखकर विष्णुमाया से मोहित हो गये। वे सोचने लगे कि मैंने क्या स्वप्नावस्था में यह सब सूतिकागृह में देखा था? यह कहकर वसुदेव ने पत्नी के साथ समालोचना किया तथा बालक को गोद में उठाकर व्रजधाम के नन्दभवन में ले गये। वहां उन्होंने सूतिकागृह में प्रवेश करके देखा कि वहां यशोदा शय्या पर अत्यन्त गहरी निद्रा में निमग्न हैं।।१०४-१०७।।

निद्रान्वितं च नन्दं च सर्वं तत्र गृहे स्थितम्।
ददर्श बालिकां नग्नां तप्तकाञ्चनसंनिभाम्॥१०८॥
ईषद्धास्यां प्रसन्नास्यां पश्यन्तीं गृहशेखरम्।
तां दृष्ट्वा वसुदेवश्च विस्मयं परमं ययौ॥१०९॥
संस्थाप्य तत्र पुत्रं च कन्यामादाय सत्वरम्।
जगाम मथुरां हृष्टः स्वकान्तासूतिकागृहम्॥११०॥

वहां वसुदेव ने भी नन्दराज तथा गृह के सभी लोगों को निद्रा में लीन देखा। तत्पश्चात् उन्होंने उस कन्या को देखा जो नग्न एवं तप्त स्वर्ण के समान कान्तिमान थी। वह मन्द मुस्कान युक्त प्रसन्नानना कन्या कक्ष के पाटन की ओर देख रही थीं। यह देखकर वसुदेव अत्यन्त विस्मित हो गये। वसुदेव ने अपने पुत्र को वहां पर रखकर उस कन्या को उठाया और शीघ्र मथुरा में अपनी पत्नी के सूतिकागृह में पहुंचे॥१०८-११०॥

स्थापयामास तत्रैव महामायां च बालिकाम्।
रोरूयमाणां तामेव दृष्ट्वा हृष्टा च देवकी॥१११॥
रोदनेनैव सा बाला बोधयामास रक्षकान्।
उत्थाय रक्षकाः शीघ्रं च बालिकां जगृहुस्तदा॥११२॥
गृहीत्वाबालिकां ते च प्रजग्मुः कंससंनिधिम्।
जगाम देवकी पश्चाद्वसुदेवश्च शोकतः॥११३॥

अपनी पत्नी के सूतिकागृह में वसुदेव ने उस कन्या महामाया को रखा। अब वह बालिका यहां लाये जाने पर जोरों से रुदन करने लगी। उस बालिका को देखकर देवकी हर्षित हो गयीं। उस बालिका के रुदन का स्वर सुनकर रक्षकों को यह ज्ञात हो गया कि वहां सन्तान जन्म हुआ है। रक्षकगण ने उस बालिका को वहां से उठाकर कंस के यहां रख दिया। रक्षकगण का अनुगमन करते हुये वसुदेव तथा देवकी भी वहां पहुंच गये॥१११-११३॥

दृष्ट्वा च बालिकां कंसो नातिहृष्टो महामुने।
रोरूयमाणां कल्याणीं तद्दया न बभूव ह॥११४॥
तां गृहीत्वा च पाषाणे हन्तुं यान्तं सुदारुणम्। उवाच वसुदेवश्च देवकीं परमादरम्॥११५॥

हे महामुने! बालिका देखकर कंस अधिक हर्षित तो नहीं था, तथापि उसके मन में उस रुदनरत कन्या के प्रति मन में तनिक भी दया नहीं थी। कंस बालिका को पत्थर पर पटककर उसका वध करने को उद्यत था। यह देखकर देवकी तथा वसुदेव ने अत्यन्त आदर के साथ कंस से कहा-॥११४-११५॥

भो भोः कंस नृपश्रेष्ठ नीतिशास्त्रविशारद।
निबोध वाक्यं सत्यं च नीतियुक्तं मनोहरम्॥११६॥
हत्वाऽवयोः पुत्रषट्कं दया ते नास्ति बान्धव।
अधुना चाष्टमे गर्भे बालिकामबलां मम॥११७॥
हत्वा तव किमैश्वर्यं भविष्यति महीतले। स्त्रीमेव हन्तुमबलां किं क्षमा रणमूर्धनि॥११८॥

(देवकी-वासुदेव कहते हैं)–हे कंस! तुम श्रेष्ठ राजा तथा नीतिशास्त्र वेत्ता हो। तुम मेरी नीतियुक्त उत्तम तथा सत्य बातों को सुनो। हे बन्धु! तुमने मेरे छह पुत्रों का वध तो कर दिया, परन्तु अब भी तुम्हारे मन में दया का लेश नहीं है। अब यह मेरी पत्नी के अष्टम गर्भ से उत्पन्न बालिका है, जो अबला है। इसे मारकर धरती पर तुमको कौन-सा ऐश्वर्य लाभ होगा? क्या एक अबला रणभूमि में तुम्हारे राज्य का अथवा तुम्हारे जीवन का हरण कर लेगी?॥११६-११८॥

इत्येवमुक्त्वा तं वसुर्देवकी च सभातले। रुरोद पुरतस्तत्र कंसस्य च दुरात्मनः।
कंसस्तयोर्वचः श्रुत्वा तामुवाच दुरात्मना॥११९॥

यह कहने के अनन्तर उस सभा में वसुदेव तथा देवकी रुदनरत हो गये। वे दुष्ट-दुरात्मा कंस के सामने रुदन कर रहे थे। दुरात्मा कंस ने उनकी बातों का तब उत्तर दिया–॥११९॥

कंस उवाच

शृणु वाक्यं मदीयं च निबोध बोधयामि ते।
तृणेन पर्वतं हन्तुं शक्तो धाता च दैवतः॥१२०॥
कीटेन सिंहशार्दूलं मशकेन गजं तथा। शिशुना च महावीरं महान्तं क्षुद्रजन्तुभिः॥१२१॥
मूषकेन च मार्जारं मण्डूकेन भुजङ्गमम्। एवं जन्येन जनकं भक्ष्येणैव च भक्षकम्॥१२२॥
वह्निना च जलं नष्टुं वह्निं शुष्कतृणेन च। पीताः सप्त समुद्राश्च द्विजेनैकेन जह्नुना॥१२३॥

कंस कहता है–हे वसुदेव! मेरा वाक्य श्रवण करिये। मैं जो कुछ आपको समझा रहा हूं, उसे यथार्थतः समझें। (दैववशात्) एक तृण से पर्वत को विधाता दैव नष्ट कर सकते हैं। इसी प्रकार दैवात् एक कीट सिंह व्याघ्र को, मच्छर हाथी को, शिशु महावीर को तथा क्षुद्र जन्तु महान् प्राणी को और मूषक विडाल को अथवा मण्डूक महासर्प को नष्ट कर सकता है। दैव सन्तान द्वारा पिता का, भक्ष्य (आहार) द्वारा भक्षक (खाने वाले का) का नाश कर सकता है। दैव तो अग्नि द्वारा जल को एवं शुष्क तृण से अग्नि को नष्ट कर देता है। जह्नु नामक ब्राह्मण तो सात समुद्र का जल पी गये थे॥१२०-१२३॥

धातुर्गतिर्विचित्रा तु दुर्ज्ञेया भुवनत्रये। दैवेन बालिका नष्टुं मां समर्था भविष्यति॥१२४॥
बालिकां च वधिष्यामि नात्र कार्या विचारणा।
इत्येवमुक्त्वा कंसश्च गृहीत्वा बालिकां तदा॥१२५॥

"तीनों लोक में विधाता की गति विचित्र है, वह जानी नहीं जा सकती। दैवात् एक बालिका भी भविष्य में मेरा नाश कर सकने में समर्थ है। मैं इस बालिका का वध अवश्य करूंगा। इसमें अन्य विचार मुझे नहीं करना है।" यह कहकर कंस ने वधार्थ उस बालिका को पकड़ा।।१२४-१२५।।

हन्तुमारब्धवान्कंसस्तमुवाच वसुस्तदा। वृथा हिंसितवान्राजन्देहि बालां कृपानिधे।।१२६।।
स तच्छ्रुत्वा विचारज्ञः कंसस्तुष्टो महामुने। संबोधयन्तं तत्रैव वाग्बभूवाशरीरिणी।।१२७।।

अब कंस उसका वध करना ही चाह रहा था कि वसुदेव ने कहा–"हे राजन्! आप अब तक व्यर्थ हिंसा कार्य करते रहे हैं, हे कृपानिधि राजन्! यह बालिका मुझे दे दीजिये।" वसुदेव का यह कथन सुनकर कंस जो विचारज्ञ भी था, सन्तुष्ट हो गया। तभी कंस को सम्बोधित करती अशरीरी वाणी वहां श्रुतिगोचर हो गयी।।१२६-१२७।।

हे कंस हंसि कां मूढ न विज्ञाय हरेर्गतिम्।
कुत्रचित्त्वन्निहन्ताऽस्ति काले व्यक्तो भविष्यति।।१२८।।

आकाशवाणी ने कहा–"हे कंस! तू मूढ़ है। तुमको श्रीहरि की गति नहीं पता! यह तू किसका वध कर रहा है? तुम्हारा जो विनाश करने वाला है, वह कहीं एक स्थान पर विराजमान हो गया है, जो समय आने पर प्रकट होगा।"।।१२८।।

श्रुत्वैव देववाणीं च तत्याज बालिकां नृपः।
वसुदेवो देवकी च तामादाय मुदान्वितौ।।१२९।।
जग्मतुः स्वगृहं तौ च कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि।
मृतामिव पुनः प्राप्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्।।१३०।।

यह आकाशवाणी सुनकर राजा कंस ने बालिका को छोड़ दिया। तब वसुदेव-देवकी मुदित मन से बालिका को अपने वक्षस्थल से लगाकर घर लौट गये। उन्होंने मृत्यु के मुख से उस कन्या को बच जाने के उपलक्ष्य में ब्राह्मणगण को धन दिया।।१२९-१३०।।

सा परा भगिनी विप्र कृष्णस्य परमात्मनः।
एकानंशेति विख्याता पार्वत्यंशसमुद्भवा।।१३१।।
वसुस्तां द्वारकायां तु रुक्मिण्युद्वाहकर्मणि।
ददौ दुर्वाससे भक्त्या शंकरांशाय भक्तितः।।१३२।।
एवं निगदितं सर्वं कृष्णजन्मानुकीर्तनम्। जन्ममृतयुजरारिघ्नं सुखदं पुण्यदं मुने।।१३३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० कृष्णजन्मख० नारदना० सप्तमोऽध्यायः।।७।।

हे मुनि! यह कन्या परमात्मा कृष्ण की बड़ी बहन तथा पार्वती के अंश से समुद्भूता 'एकानंशा' कहलाई। वसुदेव ने इस कन्या को द्वारका में कृष्ण-रुक्मिणी विवाह के समय शंकर के अंश दुर्वासा को भक्तिभाव से प्रदान कर दिया। इस प्रकार मैंने कृष्णजन्म प्रसंग का वर्णन कर दिया। यह जन्म-मृत्यु-जरा का नाशक प्रसंग है, जो सुखप्रद एवं पुण्यप्रद भी हैं।।१३१-१३३।।

।।सातवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ अष्टमोऽध्यायः

जन्माष्टमी व्रतोपासना का फल वर्णन

नारद उवाच

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि व्रतानां व्रतमुत्तमम्। फलं जयन्ती योगस्य सामान्येनैव सांप्रतम्।।१।।

को वा दोषोऽप्यकरणे भोजने वा महामुने।

उपवासफलं किं वा जयन्त्यां च सुसंमतम्।।२।।

व्रतं पूजाविधानं च संयमस्य च सांप्रतम्। उपवासपारणयोः सुविचार्य वद प्रभो।।३।।

देवर्षि नारद कहते हैं—आप कृपया अत्युत्तम व्रत जन्माष्टमी का वर्णन करिये। इसके फल के साथ जयन्ती योग का फल व्रतक्रम में सामान्य रूप से कहिये। जन्माष्टमी व्रत न करने तथा इस दिन आहारादि ग्रहण से क्या दोष होता है? जयन्ती योग में सुसंगत होकर उपवास करने का फल क्या है? हे प्रभो! व्रत, पूजनविधि, संयम, उपवास तथा पारण का जो फल है, वह सब सुन्दर रूप से कहिये!।।१-३।।

नारायण उवाच

कृत्वा हविष्यं सप्तम्यां संयतः पारणे तथा। अरुणोदयवेलायां समुत्थाय परेऽहनि।।४।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—मैं इस व्रत को कहता हूं। हे नारद! एक दिन पूर्व सप्तमी तिथि पर हविष्यान्न भोजी रहे। तदनन्तर अगले दिन अरुणोदय बेला में उठ जाये।।४।।

प्रातः कृत्यं संविधाय स्नात्वा संकल्पमाचरेत्। व्रतोपवासयोर्ब्रह्मञ्छ्रीकृष्णप्रीतिहेतुकम्।।५।।

मन्वादिदिवसे प्राप्ते यत्फलं स्नानपूजनैः। फलं भाद्रपदेऽष्टम्यां भवेत्कोटिगुणं द्विज।।६।।

तस्यां तिथौ वारिमात्रं पितृणां यः प्रयच्छति।

गयाश्राद्धं कृतं तेन शताब्दं नात्र संशयः।।७।।

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा निर्माय सूतिकागृहम्।
लोहखण्डवह्निजालैर्युक्तं रक्षकसंघकैः॥८॥
तत्र द्रव्यं बहुविधं नाभिच्छेनकर्तनम्। धात्रीस्वरूपां नारीं च यत्नतः स्थापयेद्बुधः॥९॥

वह व्यक्ति स्नान करके प्रातःकृत्य सम्पन्न करे। तत्पश्चात उसे "श्रीकृष्ण की प्रीति हेतु मैं आज व्रतोपवास करूंगा।" यह कहकर सङ्कल्प करना होगा। मनुष्य मन्वन्तरादि के दिन स्नान तथा हरिपूजा करके जो फल लाभ करता है, भाद्रपद की कृष्णाष्टमी के दिन स्नान तथा पूजन करने से उससे एक कोटिगुणित फल की प्राप्ति होती है। इसमें संशय न करे। जो व्यक्ति जन्माष्टमी के दिन पितरों को केवल मात्र जल भी प्रदान कर देता है, उसे १०० वर्ष पर्यन्त तक गया श्राद्ध करने का सुफल मिल जाता है। इसमें संशय न करे। व्रती व्यक्ति इस दिन स्नानोपरान्त नित्यक्रिया सम्पादन करके सूतिकागृह का निर्माण करके उसमें लौह, खड्ग, अग्नि तथा रक्षकों को स्थापित करे। इसी गृह में अनेक द्रव्य, नाड़ीच्छेद (नाल काटने हेतु) हेतु कैंची रखे तथा धायरूपी एक स्त्री, पण्डित को नियुक्त करे।।५-९।।

पूजाद्रव्याणि चारूणि सोपचाराणि षोडश।
फलान्यष्टौ च मिष्टानि द्रव्याण्येव हि नारद॥१०॥
जातीफलं च कङ्कोलं दाडिमं श्रीफलं तथा॥११॥
नारीकेरं च जम्बीरं कूष्माण्डं च सुवाससम्। आसनं वसनं पाद्यं मधुपर्कं तथैव च॥१२॥
अर्घ्यमाचमनीयं च स्नानीयं शयनं तथा। गन्धं पुष्पं च नैवेद्यं ताम्बूलमनुलेपनम्॥१३॥

हे नारद! वहां उत्तम षोडशोपचार हेतु पूजन के उत्तम द्रव्य, आठ फल, मिष्टान्न, अन्यद्रव्य, जायफल, कंकोल, अनार, बेल, नरिकेल, नीबू, कुम्हड़ा, उत्तम वस्त्र, आसन, पाद्य, मधुपर्क, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानार्थ जल, शय्या, गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, ताम्बूल, उबटन, उत्तम धूप, दीप, आभूषण रखें। यही सब १६ उपचार के अन्तर्गत् सामग्री है।।१०-१३।।

धूपदीपौ भूषणं वै चोपचारांश्च षोडश। पादप्रक्षालनं कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी॥१४॥
आचम्य चाऽसने स्थित्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
घटस्याऽरोपणं कृत्वा संपूज्य पञ्च देवताः॥१५॥
घटे ह्यावाहनं कृत्वा श्रीकृष्णं परमेश्वरम्। वसुदेवं देवकीं च यशोदां नन्दमेव च॥१६॥
रोहिणीं बलदेवं च षष्ठीदेवीं वसुंधराम्। रोहिणीं ब्राह्मणीं चैव अष्टमीं स्थानदेवताम्॥१७॥
अश्वत्थाम्ना सह बलिं हनूमन्तं विभीषणम्। कृपं परशुरामं च वेदव्यासं मृकण्डुजम्॥१८॥
सर्वस्याऽऽवाहनं कृत्वा ध्यानं कुर्याद्धरेस्तदा।
पुष्पकं मस्तके न्यस्य पुनर्ध्यायेद्विचक्षणः॥१९॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु वक्ष्यामि नारद। ब्रह्मणा कथितं पूर्वं कुमाराय महात्मने॥२०॥

व्रती व्यक्ति पैर धोकर धुले दो वस्त्र धारण करके आसन पर बैठे। तदनन्तर आचमन करके स्वास्तिवाचन करे। इसके अनन्तर घट स्थापन करके, उसमें पंचदेवता की पूजा करके, उस घट में श्रीकृष्ण का आवाहन करना होगा। इसके अनन्तर वसुदेव, देवकी, यशोदा, नन्द, रोहिणी, बलदेव, षष्ठीदेवी, वसुन्धरा, ब्रह्मा, अष्टमी, स्थानदेव, अश्वत्थामा, बलि, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम, व्यास, मार्कण्डेय आदि का आवाहन करके हरि ध्यान करे। तब पुष्प को मस्तक पर रखकर पुनः ध्यान करे। हे नारद! यह सामवेदोक्त ध्यान सर्वप्रथम ब्रह्मा ने सनत्कुमार से कहा था। वही मैं अब तुमसे कह रहा हूं।।१४-२०।।

बालं नीलाम्बुजाभ[1]मतिशयरुचिरं स्मेरवक्त्राम्बुजं तं
ब्रह्मेशानन्तधर्मैः कतिकतिदिवसैः स्तूयमानं परं यम्[2]।
ध्यानासाध्यमृषीन्द्रैर्मुनिगणमनुजैः सिद्धसंघैरसाध्यं
योगीन्द्राणामचिन्त्यमतिशयमतुलं साक्षिरूपं भजेऽहम्।।२१।।

ध्यान—मैं बालरूप श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूं, जो नीलमेघ के समान अत्यन्त रुचिर एवं सुन्दर हैं। उनके मुखकमल पर मन्द मुस्कान विराजमान हैं। ब्रह्मा, शिव, अनन्त, धर्म अनेक-अनेक दिवसों तक उनकी स्तुति में लीन रहते हैं। वे प्रभु ऋषीन्द्र, मुनीन्द्र, मनुष्य, सिद्धगण हेतु भी ध्यान से असाध्य हैं। वे योगीन्द्रगण के लिये भी अचिन्त्य हैं। वे अतिशय अतुलनीय तथा साक्षीरूप हैं। मैं उन श्रीकृष्ण का भजन करता हूं।।२१।।

ध्यात्वा पुष्पं च दत्त्वा च तत्सर्वं च निवेदयेत्।
एवं व्रती व्रतं कुर्याच्छृणु मन्त्रक्रमं मुने।।२२।।

आसनं सर्वशोभाढ्यं सद्रत्नमणिनिर्मितम्। विचित्रं च विचित्रेण गृह्यतां शोभनं हरे।।२३।।

हे मुनि! यह ध्यान करके व्रती व्यक्ति पुष्प प्रदान करके अन्य समस्त वस्तु को यथाक्रमेण मन्त्रोच्चार के साथ प्रदान करे। अब मैं द्रव्याभिधान का मन्त्रक्रम कहता हूं।

आसन—आपका मैं सर्वशोभासम्पन्न विशुद्ध रत्न तथा मणिनिर्मित नानारूप चित्र-विचित्र आसन प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करिये।।२२-२३।।

वसनं वह्निशौचं च निर्मितं विश्वकर्मणा। प्रतप्तस्वर्णखचितं चित्रितं गृह्यतां हरे।।२४।।

वस्त्र—हे हरि! मैं आपको वह्निशुद् विश्वकर्मा द्वारा निर्मित तप्त स्वर्ण से जड़े एवं चित्र-विचित्र वर्ण वाले वस्त्र प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करें।।२४।।

पादप्रक्षालनार्थं च स्वर्णपात्रस्थितं जलम्। पवित्रं निर्मलं चारु पाद्यं च गृह्यतां हरे।।२५।।

---

१. अत्र प्रथमतृतीयचतुर्थपादेसन्धिरार्षः।

२. ख. यत्।

पाद्य–हे प्रभो! मैं आपको पादप्रक्षालनार्थ स्वर्णपात्रस्थ पवित्र निर्मल जल तथा पुष्प प्रदान करता हूं। ग्रहण करिये।।२५।।

मधुसर्पिर्दधिक्षीरं शर्करासंयुतं परम्। स्वर्णपात्रस्थितं देयं स्नानार्थं गृह्यतां हरे।।२६।।

स्नानीय–हे हरि! मधु, घृत, दधि, क्षीर, शर्करायुक्त परम उत्तम स्वर्णपात्रस्थ जल स्नानार्थ ग्रहण करिये।।२६।।

दूर्वाक्षतं शुक्लपुष्पं स्वच्छतोयसमन्वितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीसहितं गृह्यतां हरे।।२७।।

अर्घ्य–हे हरि! आप दूर्वा, अक्षत, श्वेत पुष्प सहित चन्दन-अगुरु कस्तूरी मिश्रित स्वच्छ जल का अर्घ्य ग्रहण करें।।२७।।

सुस्वादु स्वच्छतोयं च वासितं गन्धवस्तुना। शुद्धमाचमनीयं च गृह्यतां परमेश्वर।।२८।।

आचमनीय–गन्धवस्तु से सुवासित सुस्वादु स्वच्छ जल का आचमनीय ग्रहण करिये।।२८।।

गन्धद्रव्यसमायुक्तं विष्णो तैलं सुवासितम्।
आमलक्या द्रवं चैव स्नानीयं गृह्यतां हरे।।२९।।

आचमनीय–हे हरि! गन्ध द्रव्य तथा सुवासित तैल एवं आमलकी द्रव्य सहित इस आचमनीय को आप ग्रहण करिये। (यहाँ मूल में 'स्नानीय' अशुद्ध लगता है)।।२९।।

सद्रत्नमणिसारेण रचितां सुमनोहराम्। छादितां सूक्ष्मवस्त्रेण शय्यां च गृह्यतां हरे।।३०।।

शय्या–हे हरि! हे विभु! मैं आपको विशुद्ध रत्न तथा मणिनिर्मित सूक्ष्मवस्त्र युक्त मनोहर शैय्या प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करिये।।३०।।

चूर्णं च वृक्षभेदानां मूलानां द्रवसंयुतम्। कस्तूरीद्रवसंयुक्तं गन्धं च गृह्यतां हरे।।३१।।

गन्धजल–हे प्रभो! आपको नाना वृक्षों के चूर्ण से तथा अनेक वृक्षों की जड़ के द्रव्य से मिश्रित तथा कस्तूरी युक्त गन्ध प्रदान करता हूं। इसे ग्रहण करें।।३१।।

पुष्पं सुगन्धियुक्तं च संयुक्तं कुङ्कुमेन च। सुप्रियं सर्वदेवानां सांप्रतं गृह्यतां हरे।।३२।।

पुष्प–हे परमेश्वर! मैं आपको वनस्पति से उत्पन्न सभी देवगण को अत्यन्त प्रिय सुगन्धित पुष्प प्रदान करता हूं। ग्रहण करिये।।३२।।

गृह्यतां स्वस्तिकोक्तं च मिष्टद्रव्यसमन्वितम्। सुपक्वफलसंयुक्तं नैवेद्यं गृह्यतां हरे।।३३।।

नैवेद्य–हे विभु! मैं आपको शर्करा तथा जलेबी युक्त मीठी वस्तु तथा पके फल से युक्त नैवेद्य प्रदान करता हूं। ग्रहण करिये।।३३।।

लड्डुकं मोदकं चैव सर्पिः क्षीरं गुडं मधु। नोवद्धतं दधि तक्रं नैवेद्यं गृह्यतां हरे।।३४।।

नैवेद्य–हे हरि! मैं आपको लड्डू, मोदक, घृत, क्षीर, गुड़, मधु, नयी निकली दही, मट्ठा का नैवेद्य प्रदान करता हूं।।३४।।

शीतलं शर्करायुक्तं क्षीरं स्वादु सुपक्वकम्। ताम्बूलं भोगसारं च कर्पूरादिसमन्वितम्।
भक्त्या निवेदितमिदं गृह्यतां परमेश्वर॥३५॥

ताम्बूल–हे परमेश्वर! मैं कर्पूरादि सुवासित भोग का साररूप ताम्बूल भक्ति के साथ आपको प्रदान करता हूं। ग्रहण करिये॥३५॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम्। अबीरचूर्णं रुचिरं गृह्यतां परेश्वर॥३६॥

अबीर–हे प्रभो! मैं आपको चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुङ्कुम युक्त उत्तम अबीर चूर्ण (अबीर) प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करें॥३६॥

तरुभेदरसोत्कर्षो गन्धयुक्तोऽग्निना सह। सुप्रियः सर्वदेवानां धूपोऽयं गृह्यतां हरे॥३७॥

धूप–हे प्रभो! मैं आपको वृक्षविशेष के उत्तम रस से उत्पन्न सभी देवताओं को प्रिय गन्धद्रव्य धूप अग्नि में जलाकर प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करें॥३७॥

घोरान्धकारनाशैकहेतुरेव शुभावहः। सुप्रदीपो दीप्तिकरो दीपोऽयं गृह्यतां हरे॥३८॥

दीपदान–हे हरि! आपको घोर अन्धकार का नाश करने वाला शुभप्रद सुन्दर प्रदीप्त दीप्तिकर दीप प्रदान करता हूं। ग्रहण करें॥३८॥

पवित्रं निर्मलं तोयं कर्पूरादिसमायुतम्। जीवन सर्वजीवानां पानार्थं गृह्यतां हरे॥३९॥

पानीय–हे प्रभो! आपको मैं कर्पूरादि युक्त सभी प्राणीगण का जीवन रूप जल प्रदान करता हूं। हे हरि! इसे पानार्थ ग्रहण करें॥३९॥

नानापुष्पसमायुक्तं ग्रथितं सूक्ष्मतन्तुना। शरीरभूषणवरं माल्यं च प्रतिगृह्यताम्॥४०॥

माला–हे प्रभो! आपको नाना पुष्पयुक्त सूक्ष्म सूत्र से गुंथी तथा देह की भूषणस्वरूप माला प्रदान करता हूं। ग्रहण करें॥४०॥

दत्त्वा देयानि द्रव्याणि पूजोपयोगितानि च। व्रतस्थानस्थितं द्रव्यं हरये देयमेव च॥४१॥
फलानि तरुबीजानि स्वादूनि सुन्दराणि च। वंशवृद्धिकराण्येव गृह्यतां परमेश्वर॥४२॥
आवाहितांश्च देवांश्च प्रत्येकं पूजयेद्व्रती।
तान्पूज्य भक्तिभावेन दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम्॥४३॥

इस प्रकार से व्रती मनुष्य सभी उपयोगी द्रव्य प्रदान करे। तब व्रतस्थान पर अन्य जो कुछ द्रव्य बचे हो, वह सब श्रीहरि को निवेदित करे। तब व्रती व्यक्ति आवाहन किये गये देवताओं की पूजा भक्तिभाव से करके तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करे॥४१-४३॥

सुनन्दनन्दकुमुदान्गोपान्गोपीश्च राधिकाम्।
गणेशं कार्तिकेयं च ब्रह्माणं च शिवं शिवाम्॥४४॥
लक्ष्मीं सरस्वतीं चैव दिक्पालांश्च ग्रहांस्तथा। शेषं सुदर्शनं चैव पार्षदप्रवरांस्तथा॥४५॥

संपूज्य सर्वदेवांश्च प्रणम्य दण्डवद्भुवि।
ब्राह्मणेभ्यश्च नैवेद्यं दत्त्वा दद्याच्च दक्षिणाम्॥४६॥

सुनन्द, नन्द, कुमुद, गोपी, गोप, राधा, गणेश, कार्त्तिक, ब्रह्मा, शिव-पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, दिक्पालगण, ग्रहगण, शेषनाग, सुदर्शनचक्र, श्रेष्ठ पार्षदगण की पूजा करके सभी देवगण को भूमि पर दण्डवत् होकर प्रणाम करे। ब्राह्मणों को दक्षिणा तथा नैवेद्य प्रदान करे।।४४-४६।।

कथां च जन्माध्यायोक्तां शृणुयाद्भक्तिभावतः।
तदा कुशासने स्थित्वा कुर्याज्जागरणं व्रती॥४७॥
प्रभाते चाऽह्निकं कृत्वा संपूज्य श्रीहरिं मुदा।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च कारयेद्धरिकीर्तनम्॥४८॥

भक्तिभाव से भगवान् के जन्म की कथा जो जन्माध्याय में कही गई है, उसे श्रवण करे। तदनन्तर व्रती व्यक्ति कुशासन पर आसीन होकर रात्रि जागरण करे। प्रभातकाल में आह्निक करके मुदित मन से श्रीहरि की पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराने के अनन्तर हरिकीर्त्तन करे।।४७-४८।।

नारद उवाच

व्रतकालव्यवस्थां च वेदोक्तां सर्वसंमताम्।
वेदार्थं च समालोच्य संहितां च पुरातनीम्॥४९॥
उपवासे जागरणे व्रते किं वा फलं मुने। किं वा पापं तत्र भुक्त्वा वद वेदविदां वर॥५०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—व्रतकाल में सर्वसंमत वेदोक्त काल-व्यवस्था एवं उपवास तथा जागरण का फल क्या है? उपवास एवं रात्रि जागरण का फल क्या है? इस दिन भोजन करने का क्या पापफल होता है? वेदांग तथा पुरातनी संहिता की आलोचना करके अनुग्रह पूर्वक यह सब कहिये। हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ! यह सब बताने का अनुग्रह करिये।।४९-५०।।

नारायण उवाच

अष्टमी [१]कर्क्षसंयुक्ता रात्र्यर्धे यदि दृश्यते।
स एव मुख्यकालश्च तत्र जातः स्वयं हरिः॥५१॥
जयं पुण्यं च कुरुते जयन्ती तेन संस्मृता।
तत्रोपोष्य व्रतं कृत्वा कुर्याज्जागरणं बुधः॥५२॥
सर्वापवादः कालोऽयं प्रधानः सर्वसंमतः।
इति वेदविदां वाणी चेत्युक्ता वेधसा पुरा॥५३॥

१. कर्क्षेण ब्रह्मनक्षत्रेण रोहिणीनक्षत्रेण संयुक्तेत्यर्थः।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–जिस दिन अर्द्धरात्रि में अष्टमी का एक भी पाद हो, उस दिन को मुख्य काल मान कर उसे ही श्रीहरि का जन्म-दिवस मानना होगा। यह योग पुण्य तथा जयप्रद कहा गया है। तभी इसे जयन्ती योग कहा गया। इस जयन्ती योग में विद्वान् व्यक्ति उपवास-व्रत करते हुये रात्रि में जागरण करे। यह काल व्रत के लिये प्रधान तथा सर्वसम्मत माना जाता है। यह वेदज्ञों का कथन है, जिसे पूर्वकाल में ब्रह्मा ने भी कहा था।।५१-५३।।

तत्र जागरणं कृत्वा यश्चोपोष्य व्रतं चरेत्।
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।।५४।।
वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसहिताऽष्टमी।
सा सर्क्षाऽपि न कर्तव्या सप्तमीसहिताऽष्टमी।।५५।।
अविद्धायां कत्रृक्षायां जातो देवकिनन्दनः। वेदवेदाङ्गगुप्तेति विशिष्टे मङ्गलक्षणे।।५६।।

इस समय जो मनुष्य व्रतोपवास तथा जागरण करता है, उसको करोड़ों जन्म के अर्जित पातकों से मुक्तिलाभ हो जाता है। यह निःसंशय बात है। व्रती व्यक्ति सप्तमी विद्ध (युक्त) अष्टमी का वर्जन करे। सप्तमी विद्धा अष्टमी के समय कदापि यह व्रत न करे। भले ही उस समय रोहिणी नक्षत्र क्यों न हो! वह काल सर्वतोभावेन वर्जनीय है। भगवान् देवकीनन्दन का जन्म अविद्ध रोहिणी नक्षत्रकाल में कहा गया है। यह मङ्गल क्षण वेद-वेदांग में भी गुप्त है।।५४-५६।।

व्यतीते रोहिणीऋक्षे व्रती कुर्याच्च पारणाम्।
तिथ्यन्ते च हरिं स्मृत्वा कृत्वा देवार्चनं व्रती।।५७।।
पारणं पावनं पुंसां सर्वपापप्रणाशनम्। उपवासाङ्गभूतं च फलदं सिद्धिकारणम्।।५८।।
सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते। अन्यथा फलहानिः स्यात्कृते धारणपारणे।।५९।।
न रात्रौ पारणं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतात्।
निशायां पारणं कुर्याद्वर्जयित्वा महानिशाम्।।६०।।

जब रोहिणी नक्षत्र विगत हो जाये, तब उस समय व्रती व्यक्ति पारण करे। तिथि का अन्त होने पर श्रीहरि का स्मरण करके, देवार्चना सम्पन्न करने के पश्चात् पारण करना चाहिये। यह पारण अत्यन्त पवित्र है तथा पुरुषों के सभी पाप का नाशक कहा गया है। पारण को उपवास का ही अंग माना गया है। यह शुभफलदायक तथा शुद्धि का कारण भी है। मुनिगण के मत से सभी उपवास का दिन में पारण करना चाहिये। इसके विपरीत व्रतधारण तथा पारण कार्य करने से फल नष्ट हो जाता है। केवल रोहिणी व्रत में ही रात्रि में पारण करे। अन्य व्रत में रात्रि पारण वर्जित है। इस रोहिणी नक्षत्र में भी महानिशाक्षण का वर्जन करके रात्रिकाल में पारण करे।।५७-६०।।

पूर्वाह्ले पारणं शस्तं कृत्वा विप्रसुरार्चनम्। सर्वेषां संमतं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतम्।।६१।।
बुधसोमसमायुक्ता जयन्ती यदि लभ्यते। न कुर्याद्गर्भवासं च तत्र कृत्वा व्रतं व्रती।।६२।।

उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि। भवेद्बुधेन्दुसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता॥६३॥
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न लभ्यते। व्रतं तत्र व्रती कुर्यात्पुंसां कोटिं समुद्धरेत्॥६४॥
नृणां विना व्रतेनापि भक्तानां हीनसंपदाम्। कृतेनैवोपवासेन प्रीतो भवति माधवः॥६५॥
भक्त्या नानोपचारेण रात्रौ जागरणेन च। फलं ददाति दैत्यारिर्जयन्तीव्रतसंभवम्॥६६॥

वित्तशाठ्यमकुर्वाणः सम्यक्फलमवाप्नुयात्।
कुर्वाणो वित्तशाठ्यं च लभते सदृशं फलम्॥६७॥
अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात्पारणं बुधः।
हन्यात्पुराकृतं पुण्यं चोपवासार्जितं फलम्॥६८॥

हे विप्र! पूर्वाह्न में देवताओं की अर्चना के पश्चात् पारण सर्वसम्मत है, तथापि रोहिणी व्रत में यह नियम प्रभावी नहीं है (उसमें रात्रि में पारण होता है)। जो बुध अथवा सोमयुक्त जयन्ती योग में व्रत करता है, उसे कदापि गर्भयातना भोग नहीं करना पड़ता। यदि समस्त दिन नवमी रहे, तथापि उस काल में अष्टमी का योग हो तथा इस दिन सोम अथवा बुध हो तथा रोहिणी नक्षत्र का भी योग हो, तब यह योग १०० वर्ष में भी मिले अथवा न मिले, इसमें सन्देह है, तथापि ऐसा योग मिल जाये तब व्रती व्यक्ति व्रत करके अपनी एक करोड़ पीढ़ी का उद्धार कर देता है। धनहीन भक्त व्यक्ति यदि व्रत न करके मात्र उपवास ही करता है, तब दैत्य शत्रु प्रभु श्रीकृष्ण उसे समस्त व्रतफल प्रदान कर देते हैं। जो मनुष्य धन की कंजूसी न करके व्रत करता है, उसे सम्यक् फल मिलेगा। जो कोई धन रहते कंजूसी करके व्रत करता है, उसे कोई फल नहीं मिलता। जयन्ती व्रत में दीक्षित मनुष्य यदि भक्ति के साथ नाना उपचार द्वारा पूजनादि करके रात्रि जागरण करता है, तब उसे सम्यक् फल श्रीकृष्ण प्रदान करते हैं। पण्डित व्यक्ति अष्टमी अथवा रोहिणी काल में पारण न करे। इससे पूर्वकृत पुण्य तथा उपवास से अर्जित फल का नाश हो जाता है।।६१-६८।।

तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम्।
तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम्॥६९॥
महानिशायां प्राप्तायां तिथिभान्तं यदा भवेत्।
तृतीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पारणं कुरुते बुधः॥७०॥
षण्मुहूर्ते व्यतीते तु रात्रावेव महानिशा। लभते ब्रह्महत्यां च तत्र भुक्त्वा च नारद॥७१॥
गोमांसविण्मूत्रसमं ताम्बूलं च फलं जलम्।
पुंसामभक्ष्यं शुद्धानामोदनस्य च का कथा॥७२॥

अष्टमी तिथि में आठ गुना तथा उक्तनक्षत्र में पारण चतुर्गुण फल का नाश करता है। अतः यत्नतः तिथि के अन्तम में तथा नक्षत्रान्त में पारण करे। हे मुनिप्रवर! यदि महानिशाकाल में तिथि तथा नक्षत्र का अन्त हो जाये, तब व्रती उसमें पारण न करके तीसरे दिन पारण करे। हे नारद! रात्रि का छह

मुहूर्त्त अतीत हो जाने पर ही महानिशा होती है। इसमें जो भोजन करता है, वह ब्रह्महत्यापातक में लिप्त हो जाता है। शुद्धमहानिशाकाल में भोजन की तो बात ही क्या? ताम्बूल, फल, जल आदि भी व्यक्ति के लिये भक्ष्य नहीं हैं। क्रमशः वह गोमांस, विष्ठा एवं मूत्रतुल्य हो जाता है।।६९-७२।।

त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाऽऽद्यं च चतुष्टयम्।
नाडीनां तदुभे संध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते।।७३।।

आदि तथा अन्त के ४-४ दण्ड काल को छोड़कर मध्य की तीन प्रहरमयी रात्रि को त्रियामा कहते हैं। दिन के आदि तथा अन्त भाग में दो सन्ध्या होती है। एक को दिनादि (प्रातःसन्ध्या) तथा दूसरी को दिनान्त (सायं सन्ध्या कहा गया है)।।७३।।

जन्माष्टम्यां च शुद्धायां कृत्वा जागरणं व्रतम्।
शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।।७४।।
जन्माष्टम्यां च शुद्धायामुपोष्य केवलं नरः। अश्वमेधफलं तस्य व्रतं जागरणं विना।।७५।।
यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने यच्च वार्धके।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।।७६।।
श्रीकृष्णजन्मदिवसे यश्च भुङ्क्ते नराधमः।
स भवेन्मातृगामी च ब्रह्महत्याशतं लभेत्।।७७।।
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्।
अनर्हश्चाशुचिः शश्वद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि।।७८।।
अन्ते वसेत्कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
कृमिभिः शूलतुल्यैश्च तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च भक्षितः।।७९।।

शुद्ध जन्माष्टमी में जागरण एवं व्रत करने वाले के १०० जन्मार्जित पातक नष्ट हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं करें। मानव यदि शुद्ध जन्माष्टमी के समय केवल उपवासी रहे तथा जागरण न करे, तब भी वह अश्वमेध यज्ञफल लाभ कर लेता है। वह बाल्य, कौमार, यौवन, वार्द्धक्य के सप्तजन्मार्जित पातकों से मुक्त हो जाता है, यह निःसंशय है। जो नराधम कृष्ण जन्माष्टमी को भोजन करता है, उसे माता के साथ समागम का तथा सौ ब्रह्महत्या का पातक लग जाता है। उसके कोटि जन्मार्जित पुण्य नष्ट हो जाते हैं। वह दैव-पितृ कार्य का अधिकारी नहीं रह जाता। वह अशुद्ध माना जाता है। अन्ततः वह सूर्य-चन्द्र की सृष्टि में विद्यमानता पर्यन्त शूल के समान तीक्ष्ण दांतों वाले कृमियों द्वारा भक्षित होकर कालसूत्र नरक में निवास करता है।।७४-७९।।

पापी ततः समुत्थाय भारते जन्म चेल्लभेत्।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत्।।८०।।

गृध्रकोटिसहस्त्राणि शतजन्मानि सूकरः।
श्वापदः शतजन्मानि सृगालः सप्त जन्म च॥८१॥

सप्तजन्मसु सर्पश्च काकश्च सप्तजन्मसु। ततो भवेन्नरो मूको गलत्कुष्ठी सदाऽतुरः॥८२॥
ततो भवेत्पशुघ्नश्च व्यालग्राही ततो भवेत्। तदन्ते च भवेद्दस्युर्धर्महीनश्च[1] गृध्रकः॥८३॥
ततो भवेत्स रजकस्तैलकारस्ततो भवेत्। ततो भवेद्देवलको ब्राह्मणश्च सदाऽशुचिः॥८४॥

तदनन्तर वहां से निकलने पर उसका भारत में जन्म होगा। वह ६० हजार वर्ष तक मल में कृमि होगा। तदनन्तर सहस्र कोटि जन्मों तक गृध्र, सौ जन्मों तक शूकर, सौ जन्मों तक मांसभक्षी जन्तु, सौ जन्मों तक श्रृगाल, सात जन्मों तक सर्प तथा सात जन्मों तक काक योनि में जन्म लेकर तब मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर मूक, गलितकुष्ठयुक्त तथा सदा आतुर रहेगा। उसके पश्चात् के जन्म में वह पशुघाती तथा सपेरा, नरघातक, धर्महीन दस्यु होकर जन्म लेगा। तदनन्तर धोबी, तत्पश्चात् तेली तथा अन्त में अशुद्ध देवल ब्राह्मण होकर जन्म ग्रहण करेगा॥८०-८४॥

उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं च भोजयेत्। तावद्धनानि वा दद्याद्यद्भुक्तं द्विगुणं भवेत्॥८५॥
सहस्त्रसंमितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान्।
कुर्याद्द्वादशसंख्याकान्यथार्थं तद्व्रते नरः[2]॥८६॥
इत्येवं कथितं वत्स श्रुतं यद्धर्मवक्त्रतः। व्रतोपवासपूजानां विधानमकृते च यत्॥८७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० कृष्णजन्माष्टमीव्रतपूजोपवासनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

—***—

यदि कोई व्यक्ति इस दिन उपवासी न रह सके, तब वह कम से कम एक ब्राह्मण को भोजन कराये अथवा अन्न के मूल्य से दूना धन ब्राह्मण को प्रदान करे अथवा १००० सावित्रीमन्त्र जप करे। किंवा व्रत की जगह १२ प्राणायाम ही करे। हे वत्स! मैंने धर्मदेव से जो कुछ सुना था, तदनुसार समस्त जन्माष्टमी पूजाविधि एवं व्रतोपवास विधान कह दिया॥८५-८७॥

॥आठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

---

१. क. ०हीनो नरघ्नकः।
२. न यया तत्र ते नर इति क्वचित् पाठः।

अथ नवमोऽध्यायः

नन्द के पुत्रजन्मोत्सव का वर्णन

नारद उवाच

संस्थाप्य गोकुले कृष्णं यशोदामन्दिरे वसुः।
जगाम स्वगृहं नन्दः किंचकार सुतोत्सवम्॥१॥

किं चकार हरिस्तत्र कतिवर्षस्थितिः प्रभोः। बालक्रीडनकं तस्य वर्णय क्रमशो मुने॥२॥
पुरा कृता या प्रतिज्ञा गोलोके राधया सह। तत्कृतं केन विधिना प्रतिज्ञापालनं हरेः॥३॥
कीदृग्वृन्दावनं नाम मण्डलं किंविधं वद। रासक्रीडां जलक्रीडां संव्यस्य वर्णय प्रभो॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे महर्षि! तदनन्तर जब वसुदेव गोकुल के यशोदागृह में कृष्ण को रखकर अपने घर चले गये, तब नन्दराज ने किस प्रकार से पुत्रजन्मोत्सव मनाया? श्रीहरि ने नन्दभवन में कब तक अवस्थान किया तथा क्या-क्या कार्य किया था? हे प्रभो! उनकी बाल्यक्रीड़ा की समस्त घटना का क्रमिक वर्णन करिये। पूर्वकाल में हरि ने राधा से जो प्रतिज्ञा किया था, उसका प्रतिपालन उन्होंने किस प्रकार से किया? रासमण्डल का क्या रूप है? वृन्दावन किस प्रकार का है? भगवान् की रासक्रीड़ा तथा जलक्रीड़ा का वर्णन करिये॥१-४॥

नन्दस्तपः किं चकार यशोदा चाथ रोहिणी। हरेः पूर्वं च हलिनः कुत्र जन्म बभूव ह॥५॥
पीयूषखण्डमाख्यानमपूर्वं श्रीहरेः स्मृतम्। विशेषतः कविमुखान्नव्यं नूनं पदे पदे॥६॥
स्वरासमण्डलक्रीडां वर्णय स्वयमेव च। परोक्षवर्णनात्काव्यं प्रशस्तं नव्यवर्णनम्॥७॥

श्रीकृष्णांशो भवान्साक्षाद्योन्द्राणां गुरोर्गुरु;।
यो यस्यांशः स च जनस्तस्यैव सुखतः सुखी॥८॥
त्वयैव वर्णितौ पादौ विलीनौ तु युवां हरेः।
साक्षाद्गालोकनाथांशस्त्वमेव तत्समो महान्॥९॥

हे प्रभो! नन्द, रोहिणी, यशोदा ने किस प्रकार का तप किया था? श्रीहरि से पहले बलराम कहां जन्मे थे? हरि का अद्भुत आख्यान तो अमृतखण्ड के समान है। यह कवियों द्वारा वर्णित होने पर प्रतिपद नूतन भावमय हो जाता है। अतः अपने रासमण्डल का तथा क्रीड़ा का आप स्वयं वर्णन करिये। परोक्ष वर्णित काव्य की अपेक्षा देखे गये दृश्य की वर्णना प्रशस्त कही गयी है। आप साक्षात् श्रीकृष्ण के अंशरूप हैं। आप योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु हैं। नियम है कि जो जिसका अंश होता है, वह उसी के सुख में स्वयं सुखी हो जाता है। आप लोग दोनों ही श्रीहरि के चरणों में विलीन थे। आप साक्षात् कृष्ण के अंश एवं उनके ही समान महानुभाव हैं॥५-९॥

नारायण उवाच

ब्रह्मेशशेषविघ्नेशाः कूर्मो धर्मोऽहमेव च। नरश्च कार्तिकेयश्च श्रीकृष्णांशा वयं नव॥१०॥

अहो गोलोकनाथस्य महिमा केन वर्ण्यते।
यं स्वयं नो विजानीमो न वेदाः किं[१] विपश्चितः॥११॥
सूकरो वामनः कल्किबौद्धः कपिलमीनकौ।
एते चांशाः कलाश्चान्ये सन्त्येव कतिधा मुने॥१२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–ब्रह्मा, शिव, अनन्त, गणेश, धर्मदेव, कूर्म, मैं, ऋषि नर तथा कार्त्तिकेय, ये ९ लोग कृष्ण के अंश से उत्पन्न हैं। गोलोकनाथ की आश्चर्यमयी महिमा का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है? हे नारद! जिस महिमा को हम लोग नहीं जान सके, उसे पण्डितगण क्या जानेंगे? वराहावतार, वामन, कल्कि, बुद्ध, कपिल, मीनावतार, ये हरि के अंश से उत्पन्न हैं। इसी प्रकार अन्य कलासम्भूत अवतार हैं, जिनको कृष्ण की कला से उत्पन्न कहा है॥१०-१२॥

कूर्मो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपविराड्विभुः।
परिपूर्णतमः कृष्णो वैकुण्ठे गोकुले स्वयम्॥१३॥
वैकुण्ठे कमलाकान्तो रूपभेदाच्चतुर्भुजः।
गोलोके गोकुले राधाकान्तोऽयं द्विभुजः स्वयम्॥१४॥
अस्यैव तेजो नित्यं च चित्ते कुर्वन्ति योगिनः।
भक्ताः पादाम्बुजं तेजः कुवस्तेजस्विनं विना॥१५॥

शृणु विप्र वर्णयामि यशोदानन्दयोस्तपः। रोहिण्याश्च यतो हेतोर्ददृशुस्ते हरेर्मुखम्॥१६॥

कूर्म, नृसिंह, राम, श्वेतद्वीपस्थ विराड्प्रभु (विष्णु के पूर्णांश हैं) हैं। श्रीकृष्ण परिपूर्णतम प्रभु हैं जो वैकुण्ठ एवं गोकुल में स्वयं विराजमान हैं। वैकुण्ठ में वे कमलाकान्त रूप भेद से चतुर्भुज हैं। गोलोकस्थ गोकुल में राधाक्रान्त स्वयं द्विभुज हैं। उनके ही नित्य तेज का चिन्तन योगीगण सदा ध्यान में करते हैं। तेजस्वी व्यक्ति के विना तेज कहां रहेगा? हे विप्र! यशोदा, नन्द, रोहिणी ने जिस प्रकार तप करके हरि के मुखकमल का दर्शन पाया था, उस तपः का इस समय वर्णन करता हूं, श्रवण करो॥१३-१६॥

वसूनां प्रवरो नन्दो नाम्ना द्रोणस्तपोधनः।
तस्य पत्नी धरा साध्वी यशोदा सा तपस्विनी॥१७॥

रोहिणी सर्पमाता च कद्रूश्च सर्पकारिणी। एतेषां जन्मचरितं निबोध कथयामि ते॥१८॥

एकदा च धराद्रोणौ पर्वते गन्धमादने। पुण्यदे भारते वर्षे गौतमाश्रमसंनिधौ॥१९॥

१. किं नारदमिति क्वचित् पाठः।

चक्रतुश्च तपस्तत्र वर्षाणामयुतं मुने। श्रीकृष्णदर्शनार्थं च निर्जने सुप्रभातटे॥२०॥

न ददर्श हरिं द्रोणो धरा चैव तपस्विनी।
कृत्वाऽग्निकुण्डं वैराग्यात्प्रवेष्टुं समुपस्थितौ॥२१॥

वसुगण में श्रेष्ठ द्रोण नामक वसु पूर्वकाल में अत्यन्त तपस्वी थे। द्रोणपत्नी का नाम था धरा। इन धरा ने ही यशोदारूपेण जन्म लिया था। सर्पमाता कद्रु ने ही रोहिणी रूप से जन्म लिया था। इनके जन्म का चरित कहता हूं। तुम उसे विशेषतया जानो। हे मुनि! एक बार धरा तथा द्रोण पुण्यक्षेत्र भारतभूमि में स्थित गन्धमादन पर्वत पर गौतम ऋषि के आश्रम के निकट आये तथा सुप्रभानदी के तट पर श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ १०००० वर्ष पर्यन्त तप किया। तदनन्तर तपस्विनी धरा तथा द्रोण ने श्रीकृष्ण का दर्शन न पाने कारण, वैराग्यवशात् अग्निकुण्ड का निर्माण किया तथा उसमें प्रवेशार्थ उद्यत हो गये।।१७-२१।।

तौ मर्तुकामौ दृष्ट्वा च वाग्बभूवाशरीरिणी।
द्रक्ष्यथः श्रीहरिं पृथ्व्यां गोकुले पुत्ररूपिणम्॥२२॥
जन्मान्तरे वसुश्रेष्ठ दुर्दर्शयोगिनां विभुम्।
ध्यानासाध्यं च विदुषां ब्रह्मादीनां च वन्दितम्॥२३॥

जब वे मरने का उपक्रम कर रहे थे, तभी अशरीरी वाणी उन लोगों ने सुना–"हे वसुश्रेष्ठ! तुम जन्मान्तर में ब्रह्मा आदि देवगण वन्दित योगी तथा मुनिगण के लिये दुर्लभ दर्शन भगवान् का दर्शन प्राप्त करोगे। वे ध्यान से भी विद्वानों के लिये असाध्य हैं।।२२-२३।।

श्रुत्वैवं तद्धराद्रोणौ जग्मतुः स्वालयं सुखात्।
लब्ध्वा तु भारते जन्म दृष्टं ताभ्यां हरेर्मुखम्॥२४॥

यशोदानन्दयोरेवं कथितं चरितं तव। सुगोप्यं त्रिदशानां च रोहिणीचरितं शृणु॥२५॥

एकदा देवमाता च पुष्पोत्सवदिने सती।
विज्ञापनं चरद्वारा चकार कश्यपं मुने॥२६॥

सुस्नाता सुन्दरी देवी रत्नालङ्कारभूषिता। चकार वेषं विविधं ददर्श दर्पणे मुखम्॥२७॥

यह सुनकर द्रोण तथा धरा सुख के साथ स्वगृह चले गये। उन दोनों ने भारत में नन्द-यशोदा के रूप में जन्म लेकर हरि का मुख देखा। उनको प्रभु का दर्शन गोकुल में पुत्ररूपेण मिला।" मैंने इस प्रकार यशोदा तथा नन्द का चरित कहा। अब देवगण के लिये भी गोपनीय रोहिणी चरित कहता हूं। श्रवण करो। हे मुनिवर! एक समय देवमाता अदिति ने ऋतुमती होकर उस पुष्पोत्सव के समय पति कश्यप को दूत द्वारा यह संवाद भेजा। तत्पश्चात् सुन्दरी अदिति ऋतु स्नान करके रत्नालंकार से भूषित हो गई तथा विविध वेशसज्जा करने के उपरान्त उन्होंने दर्पण में अपना मुख देखा।।२४-२७।।

कस्तूरीबिंदुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुसंयुतम्। रत्नकुण्डलशोभाढ्यं पत्राभरणभूषितम्॥२८॥

गजमौक्तिकसंयुक्तं[1] नासाग्रं सुमनोहरम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम्।।२९।।

उन्होंने कस्तूरी की बिन्दी के साथ सिन्दूर की बिन्दी लगाया था। उनके कानों में रत्नकुण्डल शोभायमान थे। उन्होंने पत्रों का आभरण धारण किया था। उनका सुमनोहर नासाग्र भाग गजमुक्ता युक्त था। उनका मुख शरत् पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शोभायमान था। उनके नेत्र शरत्कालीन कमल के समान थे।।२८-२९।

वक्रभ्रूभङ्गिना युक्तं विचित्रकज्जलोज्ज्वलम्। पक्वदाडिमबीजाभदन्तपंक्तिविराजितम्।।३०।।
पक्वबिम्बाधरौष्ठं च सस्मितं सुन्दरं सदा। अतीव कमनीयं च मुनीन्द्रचित्तमोहनम्।।३१।।

उनकी वक्र भौंहें थी तथा नेत्र विचित्र कज्जल से उज्वल लग रहे थे। भगवती की दन्तपंक्ति अनार के बीजों के समान मनोहर थी। देवी के अधरोष्ठ पके बिम्बफल के समान वर्ण वाले थे। उनके मुख पर सुन्दर मुस्कान सदा विराजमान रहती थी, जो अतीव कमनीय तथा मुनीन्द्रों के चित्त को भी मोहित करती रहती थी।।३०-३१।।

एवभूतं मुखं दृष्ट्वा सुन्दरी स्वगृहे स्थिता। पश्यन्ती पतिमार्गं च कामबाणप्रपीडिता।।३२।।

शुश्राव वार्तामदितिः कश्यपं कद्रुसंयुतम्।
रत्नसारसमारम्भे तस्या वक्षःस्थले स्थितम्।।३३।।
श्रुत्वा चुकोप साध्वी सा हताशा रतिकातरा।
न शशाप पतिं प्रेम्णा शशाप सर्पमातरम्।।३४।।

देवी सती अदिति ने अपने मुखमण्डल को दर्पण में देखा तथा वे अपने गृह में ही स्थित होकर निरन्तर पति के आने की प्रतीक्षा कर रहीं थीं। वे कामबाण से पीड़ित होने लगीं। इतिपूर्व कश्यप ऋषि कद्रु के साथ कामक्रीड़ा में आसक्त थे। अदिति ने दूत द्वारा यह समाचार पाया कि कश्यप तो कद्रु के साथ हैं तथा उसके वक्ष पर स्थित हैं (शिर रखे हैं)। यह समाचार सखी से पाकर रतिकातरा सती अदिति हताश हो गईं। वे अत्यन्त क्रोधित थीं। अदिति ने प्रेमपरवश होने के कारण पति कश्यप को शाप नहीं दिया। अदिति ने सर्पों की माता कद्रु को शाप दे दिया।।३२-३४।।

न देवालययोग्या सा धर्मिष्ठा धर्मनाशिनी।
दूरं गच्छतु स्वर्लोकादात्मयोनिं च मानवीम्।।३५।।

श्रुत्वैव सा चरद्वारा शशाप देवमातरम्। सा चैवं मानवीं योनिं यातु मर्त्ये जरायुताम्।।३६।।

कश्यपो बोधयामास कद्रुं च सर्पमातरम्।
काले यास्यसि मर्त्यं च मया सह शुचिस्मिते।।३७।।
त्यज भीतिं लभ सुखं द्रक्ष्यसि श्रीहरेर्मुखम्।
एवमुक्त्वा कश्यपश्च जगाम चादितेर्गृहम्।।३८।।

१. सौन्दर्यमिति क्वचित् पाठः।

(अदिति ने कहा)—"यह धार्मिकों के धर्म का नाश करने वाली कद्रु देवलोक में निवास योग्य नहीं है। यह पापिनी स्वर्गलोक से दूर जाकर मानवयोनि लाभ करे।" जब कद्रु ने अपने गुप्तचर के माध्यम से यह कथन सुना, तब उसने भी देवमाता अदिति को शाप दे दिया कि "यह अदिति भी गर्भाशय में जरायु से युक्त होकर मानवयोनि में जाये।" इस प्रकार दोनों सती स्त्रियां शापग्रस्त हो गईं। यह देखकर कश्यप ने कद्रु को सान्त्वना देते हुये कहा—"हे सुहासिनी! तुम कालक्रम से मेरे साथ ही मर्त्यलोक जाओगी तथा हम साथ रहेंगे। अतः तुम भय त्यागो। सुख लाभ करो। तुमको हरि के श्रीमुख का वहां दर्शन मिलेगा।" कश्यप यह कहने के अनन्तर अदिति के घर चले गये।।३५-३८।।

वाञ्छां पूर्णां च तस्याश्च चकार भगवान्विभुः।
ऋतौ तत्र महेन्द्रश्च बभूव च सुरर्षभः।।३९।।

अदितिर्देवकी चैव सर्पमाता च रोहिणी। कश्यपो वसुदेवश्च श्रीकृष्णजनको महान्।।४०।।
रहस्यं गोपनीयं च सर्वं निगदितं मुने। अधुना बलदेवस्य जन्माख्यानं मुने शृणु।।४१।।

वहां जाकर कश्यप ने अदिति की कामना पूर्ण किया। उस ऋतुकाल में कश्यप के समागम से अदिति के गर्भ से देवराज इन्द्र जन्मे थे। तदनन्तर अदिति देवी देवकी रूप से, कद्रु रोहिणी रूप से तथा कश्यप श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के रूप से धरती पर जन्मे थे। हे मुनिवर! मैंने तुमसे क्रमशः समस्त गोपनीय रहस्य कह दिया। अब दीर्घकाय सहस्र फण वाले अनन्त अप्रमेय बलराम का जन्म वृत्तान्त कहता हूं। उसे सुनो।।३९-४१।।

अनन्तस्याप्रमेयस्य सहस्रशिरसः प्रभोः। रोहिणी वसुदेवस्य भार्यारत्नं च प्रेयसी।।४२।।
जगाम गोकुलं साध्वी वसुदेवाज्ञया मुने। संकर्षणस्य रक्षार्थं कंसभीता पलायिता।।४३।।

रोहिणी रूपा कद्रू वसुदेव की प्रिय भार्या हो गईं। हे मुनिवर! साध्वी रोहिणी वसुदेव की आज्ञानुसार बलदेव की रक्षा हेतु कंस के भय से वहां से गोकुल भाग गयीं। अनन्त अप्रमेय सहस्रशिर शेष के अवतार थे बलदेव।।४२-४३।।

देवक्याः सप्तमं गर्भं माया कृष्णाज्ञया तदा।
रोहिण्या जठरे तत्र स्थापयामास गोकुले।।४४।।

संस्थाप्य च तदा गर्भं कैलासं सा जगाम ह। दिनान्तरे कतिपये रोहिणी नन्दमन्दिरे।।४५।।
सुषाव पुत्रं कृष्णांशं तप्तरौप्याभमीश्वरम्। ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।।४६।।

तब महामाया ने कृष्ण की आज्ञा से देवकी के सप्तमगर्भ को संकर्षित करके रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया था। यह कार्य करके महामाया कैलास चली गयीं। इसके कुछ दिनों के उपरान्त रोहिणी ने नन्दभवन में कृष्ण के अंश स्वरूप, तप्त रजतवर्णवत् कान्तिमान ईश्वर, तनिक हंसते हुये आनन वाले, ब्रह्मतेज से दीप्त पुत्र को उत्पन्न किया।।४४-४६।।

तस्यैव जन्ममात्रेण देवा मुमुदिरे तदा। स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुरानका मुरजादयः।।४७।।

जयशब्दं शङ्खशब्दं चक्रुर्देवा मुदाऽन्विताः।
नन्दो हृष्टो ब्राह्मणेभ्यो धनं बहुविधं ददौ॥४८॥

उनके जन्ममात्र से देवगण मुदित हो उठे। उस समय स्वर्ग में दुन्दुभि, आनक तथा मृदंगादि वाद्य बजने लगे। देवगण मुदित मन से शङ्खनाद तथा जयनाद करने लगे। नन्द ने भी प्रसन्नता पूर्वक तत्काल अनेक प्रकार का धन ब्राह्मणों को प्रदान किया॥४७-४८॥

विच्छेद नाडीं धात्री च स्नापयामास बालकम्।
जयशब्दं जगुर्गोप्यः सर्वाभरणभूषिताः॥४९॥

परपुत्रोत्सवं नन्दश्चकार परमादरात्। तदा यशोदा गोपीभ्यो ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥५०॥
धनानि नानावस्तूनि तैलं सिन्दूरमेव च। इत्येवं कथितं वत्स यशोदानन्दयोस्तपः॥५१॥

तत्पश्चात् दाई ने बालक का नाड़ीछेदन किया और उसे स्नान कराया। उस समय सभी गोपियों ने आभूषणों से भूषित होकर वहां जयध्वनि भी किया। इस प्रकार नंद ने अत्यन्त आदर पूर्वक अन्य के पुत्र का जन्मोत्सव मनाया था। उस समय मुदिता यशोदा ने गोपियों तथा ब्राह्मणों को नाना वस्तु, धन तथा सिन्दूर प्रदान किया। हे वत्स! इस प्रकार मैंने यशोदा एवं नन्द का तप प्रसंग तुमसे कह दिया॥४९-५१॥

जन्माख्यानं च हलिनो रोहिणीचरितं तथा।
अधुना ते वाञ्छनीयं नन्दपुत्रोत्सवं शृणु॥५२॥

सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युजरापहम्। मङ्गलं कृष्णचरितं वैष्णवानां च जीवनम्॥५३॥

इस जन्म के आख्यान में बलभद्र का जन्म प्रसंग एवं रोहिणी चरित भी संलग्न है। अब अभिलषित नन्द का पुत्रोत्सव सुनो, जो तुम सुनना चाहते हो। यह सुखप्रद, मोक्षप्रद, सारतत्वरूप, जन्म-मृत्यु-जरा नाशक, मंगलमय कृष्ण चरित है, जो वैष्णवों का जीवन है॥५२-५३॥

सर्वाशुभविनाशं च भक्तिदास्यप्रदं हरेः। श्रीकृष्णं वसुदेवश्च संस्थाप्य नन्दमन्दिरे॥५४॥
गृहीत्वा बालिकां हृष्टो जगाम निजमन्दिरम्।
कथितं चरितं तस्याः श्रुतं सन्मुखतो[1] मुने॥५५॥

अधुना गोकुले कृष्णचरितं शृणु मङ्गलम्। वसुदेवे गृहं याते यशोदा नन्द एव च॥५६॥
मङ्गले सूतिकागारे जयागारे जयान्विते। ददर्श पुत्रं भूमिष्ठं नवीननीरदप्रभम्॥५७॥

यह सर्व अशुभनाशक तथा हरि की भक्ति एवं दास्य प्रदान करने वाला आख्यान है। हे मुनिवर! वसुदेव ने नन्दगृह में श्रीकृष्ण को रखा तथा वहां उत्पन्न बालिका को हर्षित होकर उन्होंने उठाया तथा अपने घर आ गये। मैंने यह चरित तथा कन्या का उत्तम प्रसंग पहले ही तुमसे कह दिया

---

१. यः सुखदमिति क्वचित् पाठः।

है। हे मुनिवर! अब मंगलमय कृष्ण चरित सुनो जो गोकुल में हुआ था। जब वसुदेव कन्या को लेकर चले गये तब यशोदा एवं नन्द ने जयातिथि युक्त जयागार सूतिकागृह में नव जलधर के समान प्रभा वाले पुत्र को देखा जो जन्मा था।।५४-५७।।

अतीव सुन्दरं नग्नं पश्यन्तं गृहशेखरम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं नीलेन्दीवरलोचनम्।।५८।।
रुदन्तं च हसन्तं च वेणुसंसक्तविग्रहम्। हस्तद्वयं सुविन्यस्तं प्रेमवन्तं पदाम्बुजम्।।५९।।

दृष्ट्वा नन्दः स्त्रिया सार्धं हरिं हृष्टो बभूव ह।
धात्री तं स्नापयामास शीततोयेन बालकम्।।६०।।
चिच्छेद नाडीं बालस्य हर्षादगोप्यो जयं ददुः।
आजग्मुर्गोपिकाः सर्वा बृहच्छ्रोण्यश्चलत्कुचाः।।६१।।

वह अत्यन्त सुन्दर नग्न था। वह कक्ष के पाटन की ओर देख रहा था। उसका मुखमण्डल शरत्कालीन पूर्णिमा के-चन्द्रमा के समान था। दोनों नेत्र नीलकमल के समान थे। वह क्षण में रोता, तो अगले क्षण हंसने लगता था! उसका शरीर धूलधूसरित था। कभी वह दोनों हाथ भूमि पर रख कर अपने पैरों को फैलाने का उद्यम करने लगता। उसके चरणकमल प्रमेपुंज से प्रतीत हो रहे थे। नन्द बालरूपी हरि को देखकर अपनी पत्नी सहित अत्यन्त हर्षित हो गये। उस समय दाई ने शीतल जल से इस बालक को स्नान कराकर उसका नाड़ी छेदन कर दिया! उस समय गोपियां आनन्द पूर्वक जय-जयकार करने लगीं। उस समय वहां स्थूल नितम्बों वाली तथा हिलते स्तनों वाली गोपियों का भी आगमन हो गया।।५८-६१।।

बालिकाश्च वयस्याश्च विप्रपत्न्यच सूतिकाम्।
आशिषं युयुजुः सर्वा ददृशुर्बालकं मुदा।।६२।।
क्रोडे चक्रुः प्रशंसन्त्य ऊषुस्तत्र च काश्चन।
नन्दः सचैलः स्नातश्च धृत्वा धौते च वाससी।।६३।।

वहां बालिकायें, यशोदा की समवयस्का सखियां, विप्रगण की पत्नियां भी उस सूतिका गृह के सम्मुख आ गयीं। वे सभी बालक को देखकर मुदित मन से उसे आशीर्वाद देने लगीं। कोई स्त्री उस बालक को गोद में लेकर उसकी प्रशंसा करने लगीं। कतिपय स्त्रियां वहीं रुक गयीं। उस समय नन्द ने जो वस्त्र पहना था, उसे ही पहने हुये उन्होंने स्नान किया तथा दो धुले वस्त्र को धारण किया।।६२-६३।।

पारम्पर्यविधिं तत्र चकार हृष्टमानसः। ब्राह्मणान्भोजयामास कारयामास मङ्गलम्।।६४।।

वाद्यानि वादयामास बन्दिभ्यश्च ददौ धनम्।
ततो नन्दश्च सानन्दं ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्।।६५।।

अब नन्दराज ने अपनी कुल परम्परानुरूप सभी विधियों को प्रसन्न मन से सम्पन्न किया।

उन्होंने मंगलवाद्य-वादन, मंगलमय पाठ, ब्राह्मण भोजन कराया तथा बन्दीगण को धन प्रदान करके नन्दराज ने आनन्द पूर्वक ब्राह्मणगण को धन दिया।।६४-६५।।

सद्रत्नानि प्रवालानि हीरकाणि च सादरम्। तिलानां पर्वतान्सप्त सुवर्णशतकं मुने।।६६।।
रौप्यं धान्याचलं वस्त्रं गोसहस्त्रं मनोहरम्। दधि दुग्धं शर्करां च नवनीतं घृतं मधु।।६७।।

मिष्टान्नं सल्लड्डुकौघं स्वादूनि मोदकानि च।
भूमिं च सर्वसस्याढ्यां वागुवेगांस्तुरङ्गमान्।।६८।।
ताम्बूलानि च तैलानि दत्त्वा हृष्टो बभूव ह।
रक्षितुं सूतिकागारं योजयामास ब्राह्मणान्।।६९।।

नन्दराज ने उत्तम रत्न, प्रवाल, हीरे सादर प्रदान किया। हे मुनिवर! उन्होंने तिल के ७ पर्वत तथा स्वर्ण के १०० पर्वत, चांदी तथा धान्य के पर्वत (ढेर), वस्त्र, १००० सुन्दर गौ, दधि, दुग्ध, शर्करा, नवनीत, घृत, मधु, मिष्ठान्न, उत्तम श्रेणी के लड्डुक, स्वादिष्ट मोदक, फसल युक्तभूमि, वायुवेगवान् अश्व, ताम्बूल तथा तैल दान किया। यह कार्य करके नन्दराज अत्यन्त हर्षित हो उठे। नन्द ने वहां सूतिकागृह के रक्षणार्थ ब्राह्मणों को नियुक्त कर दिया।।६६-६९।।

तत्र मन्त्रज्ञमनुजान्स्थविरान्गोपिकागणान्। वेदांश्च पाठयामास हरेर्नामैकमङ्गलम्।।७०।।

भक्त्या च ब्राह्मणद्वारा पूजयामास देवताः।
गोपालिकाश्च वृद्धाश्च रत्नालङ्कारभूषिताः।।७१।।

आनन्दाः सुमुखा गोपाः पुलकाञ्चितविग्रहाः। प्रहृष्टमानसा ब्रह्मन्नाजग्मुर्नन्दमन्दिरम्।।७२।।

आशीर्वादं प्रयुञ्जाना ब्राह्मणा वेदपारगाः।
शीघ्रगाः पुष्पहस्ताश्चाप्याजग्मुर्नन्दमन्दिरम्।।७३।।
नानाविधाश्च गणका ज्योतिःशास्त्रविशारदाः।
वाक्सिद्धाः पुस्तककरा आजग्मुर्नन्दमन्दिरम्।।७४।।

उन्होंने वहीं पर मन्त्रज्ञ मनुष्यों एवं वृद्ध गोपों को भी रक्षणार्थ नियुक्त किया। तत्पश्चात् नन्दराज ने वेदपाठ एवं मंगलमय श्रीहरि के नाम का कीर्त्तन कराया। उन्होंने भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों से देवपूजन कराया। तदनन्तर वृद्धा गोपालिकायें रत्नालङ्कारभूषिता होकर नन्दगृह में आईं। उस समय पुलकित, आनन्दित देह वाले सुमुख गोपगण प्रसन्न मन से हर्षित होकर वहां आये। तभी वेदज्ञ ब्राह्मण वृन्द अंजलि में पुष्प लेकर बालक को आशीर्वाद देने हेतु शीघ्रता के साथ नन्दभवन पहुंचे। उनके वाक्सिद्ध गणकगण जो ज्योतिषशास्त्र पारङ्गत थे, हाथों में पुस्तक लिये नन्द के महल में आये।।७०-७४।।

सस्मिता विप्रपत्न्यश्च वयस्याः स्थविरा वराः।
बालिका बालकयुता आजग्मुर्नन्दमन्दिरम्।।७५।।

तेभ्योऽपि प्रददौ रत्नं धनानि विविधानि च[1]।
वरवस्त्राणि रौप्याणि गोसहस्राणि सादरम्॥७६॥
नन्दस्तेभ्यो नमस्कृत्य चकार विनयं मुदा। आशिषं युयुजुः सर्वे ददृशुर्बालकं परम्॥७७॥

उस समय मन्द मुस्कान करते हुये युवतियां तथा वृद्धा ब्राह्मण पत्नियां मुदित मन से अपने बालक-बालिकाओं के साथ नन्दभवन में आईं। नन्दराज ने उनको भी रत्न, धन, विविध प्रकार के उत्तम वस्त्र, चांदी तथा सहस्र गौयें सादर प्रदान किया। नन्द ने उन सबको विनयावनत होकर प्रणाम किया तथा मुदित हो गये। ब्राह्मणों ने भी नन्द को आशीर्वाद देकर उस परम श्रेष्ठ बालक का दर्शन किया॥७५-७७॥

एवं सभृतसंभारो बभूव व्रजपुङ्गवः। गणकैः कारयामास यद्भविष्यं शुभाशुभम्॥७८॥
एवं ववर्ध बालश्च शुक्लपक्षे यथा शशी।
नन्दालये हली चैव भुङ्क्ते मातुः पयोधरम्॥७९॥
तदा च रोहिणी हृष्टा तत्र पुत्रोत्सवे मुदा। तैलसिन्दूरताम्बूलं धनं ताभ्यो ददौ मुने॥८०॥
दत्त्वाऽऽशिषश्च शिरसि ताश्च ते स्वालयं ययुः।
यशोदारोहिणीनन्दास्तस्थुर्गेहे मुदाऽन्विताः॥८१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० नन्दपुत्रोत्सवो नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

नन्दराज ने इस प्रकार विपुल संभार के साथ पुत्रोत्सव सम्पन्न किया। उन्होंने गणक ज्योतिषियों से बालक के शुभाशुभ भविष्य की गणना कराया। इस प्रकार वह बालक नन्द भवन में उस प्रकार बढ़ने लगा जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ते हैं। उस समय नन्द भवन में हलधर बलराम भी मातृस्तनपान कर रहे थे। हे मुनिवर! तब रोहिणी ने भी प्रसन्न होकर मुदित मन से पुत्रोत्सव मनाया। हे मुनि! उन्होंने तैल, सिन्दूर, ताम्बूल तथा धन उस पुत्रोत्सव में समागता नारीगण को प्रदान किया। उन सभी स्त्रियों ने बालक के शिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दिया तथा स्वगृह लौट गईं। अब यशोदानन्द तथा रोहिणी मुदित मन से गृह पर रहने लगे॥७८-८१॥

॥नवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

---

१. सार्द्धश्लोकोऽयं पुस्तके न दृश्यते।

अथ दशमोऽध्यायः

पूतना के मोक्ष का वर्णन

नारायण उवाच

अथ कंसः सभामध्ये स्वर्णसिंहासनस्थितः। शुश्राव वाचं गगने सूनृतामशरीरिणीम्॥१॥

किं करोषि महामूढ चिन्तां स्वश्रेयसः कुरु।
जातः कालो धरण्यां ते तिष्ठोपाये नराधिपः॥२॥
नन्दाय तनयं दत्त्वा वसुदेवस्तवान्तकम्।
कन्यामादाय तुभ्यं च दत्त्वा संमायया स्थितः॥३॥

मायांशा कन्यकेयं च वासुदेवः स्वयं हरिः। तव हन्ता गोकुले च वर्धते नन्दमन्दिरे॥४॥

देवक्याः सप्तमो गर्भो वर्धते नन्दमन्दिरे।
देवक्याः सप्तमो गर्भो न सुस्त्रावामृतं सुतम्॥५॥

स्थापयामास माया तं रोहिणीजठरे किल। तत्र जातश्च शेषांशो बलदेवो महाबलः॥६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—कंस अपनी सभा के स्वर्ण-सिंहासन पर सुख से बैठा करता था। एक दिन उसने दैववाणी सुना कि "हे मूढ़ नराधिप! क्या कर रहे हो? अब अपने मङ्गल की चिन्ता करो। तुम्हारा विनाशक धरणी पर जन्म ले चुका है। वसुदेव ने दैवमायाबल द्वारा तुम्हारे विनाशक अपना पुत्र नंद को दे दिया तथा उनकी कन्या को लाकर तुमको प्रदान किया था। वह कन्या स्वयं माया है। वसुदेव के पुत्र हरि तुम्हारा वध करने वाले हैं। वे गोकुलस्थ नन्दभवन में बढ़ रहे हैं।" "देवकी के सप्तम गर्भ का जन्म नहीं हुआ, वह नष्ट हो गया, यह मिथ्या संवाद तुमको मिला था। महामाया ने तो उसे रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया था। रोहिणी के उस गर्भ से शेषदेव के अंश महाबली बलभद्र उत्पन्न हुये हैं"।।१-६।।

गोकुले तौ च वर्धेते कालौ ते नन्दमन्दिरे। श्रुत्वेति वचनं राजा बभूवाऽनम्रकंधरः॥७॥
चिन्तामवाप सहसा तत्याजाहारमुन्मुनाः। पूतनां च समानीय प्राणेभ्यः प्रेयसीं सतीम्॥८॥

उवाच भगिनीं राजा सभामध्ये च नीतिवित्।

"कृष्ण-बलराम तुम्हारे काल हैं। वे दोनों नन्दगृह में बढ़ रहे हैं।" यह सुनकर राजा के कंधे झुक गये। वह उन्मना-सा हो गया तथा भोजन तक त्याग दिया। उस नीतिज्ञ राजा कंस ने अपने प्राणों से भी प्रिय बहन सती पूतना को बुलाया तथा वह सभा में ही उससे कहने लगा—।।७-८।।

कंस उवाच

पूतने गोकुलं गच्छ कार्यार्थं नन्दमन्दिरम्॥९॥

विषाक्तं च स्तनं कृत्वा शिशवे देहि सत्वरम्।
त्वं मनोयायिनी वत्से मायाशास्त्रविशारदा॥१०॥

कंस कहता है–हे पूतना! तुम एक कार्य हेतु गोकुल में स्थित नन्दराज के घर जाओ। वहां पहुंचकर, अपने स्तनों में विष लगाकर, उसे शिशु के मुख में शीघ्र देना। हे पुत्री! तुम मन की गति से जाने वाली तथा मायाशास्त्र में निपुण हो।।९-१०।।

मायामानुषरूपं च विधाय व्रज योगिनि। दुर्वाससो महामन्त्रं प्राप्य सर्वत्रगामिनी॥११॥
सर्वरूपं विधातुं त्वं शक्ताऽसि सुप्रतिष्ठिते।
इत्युक्त्वा तां महाराजस्तस्थौ संसदि नारद॥१२॥
जगाम पूतना कंसं प्रणम्य कामचारिणी। तप्तकाञ्चनवर्णाभा नानालङ्कारभूषिता॥१३॥
बिभ्रती कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्। कस्तूरीबिन्दुना युक्तं सिन्दूरं दधती मुदा॥१४॥
मञ्जीररशनाभ्यां च कलशब्दं प्रकुर्वती। संप्राप्य गोष्ठं दुर्दर्शं नन्दालयमनोहरम्॥१५॥
परिखाभिर्गंभीराभिर्दुर्लङ्घ्याभिश्च वेष्टितम्। रचितं प्रस्तरैर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्मणा॥१६॥

"हे योगिनी! तुम अपनी माया से मनुष्य रूप धारण करके वहां जाओ। तुमने दुर्वासा से महामन्त्र प्राप्त किया है, अतः तुम सब जगह जाने में समर्थ हो। तुम नाना प्रकार का रूप धारण करने में समर्थ हो।" हे नारद! कंस के यह कहने पर पूतना ने उसे प्रणाम करके वहां से प्रस्थान किया। अपनी इच्छा से सर्वत्र विचरण करने वाली तथा इच्छानुरूप वेष धारण में समर्थ पूतना ने तप्त स्वर्ण के समान प्रभावान् तथा नाना अलंकार से भूषित रूप धारण किया। उसके केशपाश मालतीमाला से युक्त थे। उसने ललाट पर कस्तूरी की बिन्दी सहित सिन्दूर की बिन्दी लगाया था। उसके पायल तथा करधनी में लगी किंकिणियों (छोटी-घंटियों) का मनोहर शब्द सभी दिशाओं को मुखरित कर रहा था। कुछ दूर चल कर पूतना गोष्ठ में पहुंची। वहां से उसने दुर्लक्ष्य, जिसे लांघा नहीं जा सकता, ऐसी गहरी-पानी भरी खाईयों से घिरा विश्वकर्मा द्वारा दिव्य पत्थरों से निर्मित नन्दभवन को देखा।।११-१६।।

इन्द्रनीलैर्मरकतैः पद्मरागैश्च भूषितम्। सुवर्णकलशैर्दिव्यैश्चित्रितैः शेखरोज्ज्वलैः॥१७॥
प्राकारैर्गगनस्पर्शैश्चतुर्द्वारसमन्वितैः। युक्तलोहकपाटैश्च द्वारपालसमन्वितैः॥१८॥

वह भवन इन्द्रनील, मरकत, पद्मराग प्रभृति से भूषित दिव्य स्वर्ण कलश सूमह से युक्त था। उसका शिखर प्रदेश इन कलशों से सुशोभित था तथा चित्रित था। वह भवन ऊंची दीवारों से घिरा तथा चार द्वारों वाला था। ये द्वार लौह के कपाटों वाले थे तथा द्वारपालों से रक्षित थे।।१७-१८।।

वेष्टितं सुन्दरं रम्यं सुन्दरीगणवेष्टितम्। मुक्तामाणिक्यपरशैः पूर्णरत्नादिभिर्धनैः॥१९॥
स्वर्णपात्रघटाकीर्णं गवां कोटिभिरन्वितम्।
भरणीयैः किंकरैश्च गोपलक्षैः समन्वितम्॥२०॥

दासीनां च सहस्त्रैश्च कर्मव्यग्रैः समन्वितम्।
प्रविवेशाऽश्रमं साध्वी सस्मिता सुमनोहरा॥२१॥

यह नगरी रमणीय सुन्दरी स्त्रियों से शोभायमान थी। वह अपनी रमणीयता का इस प्रकार से विस्तार करने वाली थी। यह नन्दभवन नाना मुक्ता, माणिक्य, स्पर्शमणि, धन, रत्न, स्वर्ण पात्र, स्वर्णघट तथा कोटि-कोटि दुग्धवती गौओं से परिपूर्ण था। वहां नन्द द्वारा परिपालित लाखों गोप-किङ्कर थे तथा अपने-अपने कार्य में तत्पर हजारों दासियों का समूह भी था। ऐसे नन्द गृह में वह सती मनोहर वेषधारी पूतना मन्द-मन्द मुस्कराती हुई प्रविष्ट हो गई।।१९-२१।।

दृष्ट्वा तां प्रविशन्तीं च गोप्यो दृष्ट्वाऽनुमेनिरे।
किं वा पद्मालया दुर्गा कृष्णं द्रष्टुं समागता॥२२॥
प्रणेमुर्गोपिका गोपाः पप्रच्छुः कुशलं च ताम्।
ददौ सिंहासनं पाद्यं वासयामास तत्र वै॥२३॥

गोपियों ने जब पूतना को वहां आते देखा, तब उन्होंने विचार किया कि लक्ष्मी किंवा स्वयं दुर्गा बालक कृष्ण का दर्शन करने नन्दभवन आई हैं! इसके पश्चात् वहां उपस्थित गोपीगण ने तथा गोपों ने उसे प्रणाम करने के उपरान्त उससे कुशल प्रश्न पूछा। उसे पाद्यादि अर्पित करके बैठने हेतु सिंहासन भी प्रदान किया।।२२-२३।।

पप्रच्छ कुशलं सा च गोपानां बालकस्य च।
उवास सस्मिता साध्वी पाद्यं जग्राह सादरम्॥२४॥

तब सती पूतना ने भी वहां स्थित गोपगण एवं बालकों का कुशल पूछा तथा सादर पाद्यादि जल ग्रहण करके मुस्कराते हुये आसनासीन हो गई।।२४।।

तामूचुर्गोपिकाः सर्वाः का त्वमीश्वरि सांप्रतम्।
वासस्ते कुत्र किं नाम किं वाऽत्र कर्म नो वद॥२५॥

तदनन्तर गोपियों ने पूतना से पूछा-"हे ईश्वरी! आप कौन हैं? आपका निवास कहां है? आपका नाम क्या है? आप यहां क्यों आई हैं? कृपा पूर्वक सब कहिये।।२५।।

तासां च वचनं श्रुत्वा साऽप्युवाच मनोहरम्।
मथुरावासिनी गोपी सांप्रतं विप्रकामिनी॥२६॥
श्रुतं वाचिकवक्त्रेण तत्त्वं मङ्गलसूचकम्। बभूव स्थविरे काले नन्दपुत्रो महानिति॥२७॥
श्रुत्वाऽगताऽहं तं द्रष्टुमाशिषं कर्तमीप्सिताम्।
पुत्रमानय तं दृष्ट्वा यामि कृत्वा तमाशिषम्॥२८॥

गोपीगण का कथन सुनकर उसने (पूतना ने) मधुर वाणी में उत्तर देते हुए कहा-"हे गोपियो!

मैं मथुरा निवासी ब्राह्मण की भार्या हूं। दीर्घकाल में नन्दराज को एक उत्तम सन्तान की प्राप्ति का मंगल समाचार सुनकर मैं उसे आशीर्वाद प्रदान करने आ गई। तुम लोग उस पुत्र को लाओ। मैं उसे देखकर आशीर्वाद प्रदान करके स्वस्थान लौट जाऊंगी।"।।२६-२८।।

ब्राह्मणीवचनं श्रुत्वा यशोदा हृष्टमानसा। प्रणमय्य सुतं क्रोडे ददौ ब्राह्मणयोषितः॥२९॥

कृत्वा क्रोडे तु तं साध्वी चुचुम्ब च पुनः पुनः।
स्तनं ददौ सुखासीना हरिं पुण्यवती सती॥३०॥
अहोऽद्भुतोऽयं बालस्ते सुन्दरो गोपसुन्दरि।
गुणैर्नारायणसमो बालोऽयमित्युवाच ह॥३१॥

ब्राह्मणी का कथन सुनकर यशोदा प्रसन्न हो गईं। उसने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणी को प्रणाम करके अपना पुत्र उसकी गोद में दे दिया। पुण्यात्मा साध्वी पूतना ने उस पुत्र को गोद में लेकर उसका चुम्बन बारम्बार किया तथा सुख पूर्वक बैठी पूतना ने अपना स्तन श्रीहरि (कृष्ण) के मुख में देकर कहा–"हे गोपसुन्दरी यशोदा! तुम्हारा पुत्र तो अद्भुत है। यह तो गुण में नारायण के समान लग रहा है!"।।२९-३१।।

कृष्णो विषस्तनं पीत्वा जहास वक्षसि स्थितः।
तस्याः प्राणैः सह पपौ विषक्षीरं सुधामिव॥३२॥

उधर शिशु कृष्ण ने उस पूतना के विषलिप्त स्तन को अमृत जैसे पीया। कृष्ण ने उसके प्राणों के साथ स्तन पी लिया तथा उसके वक्षस्थल पर बैठे हंसने लगे।।३२।।

तत्याज बालकं साध्वी प्राणांस्त्यक्त्वा पपात ह।
विकृताकारवदना चोत्तानवदना[1] मुने॥३३॥

स्थूलदेहं परित्यज्य सूक्ष्मदेहं विवेश सा। आरुरोह रथं शीघ्रं रत्नसारविनिर्मितम्॥३४॥
पार्षदप्रवरैर्दिव्यैर्वेष्टितं सुमनोहरैः। श्वेतचामरलक्षेण शोभितं लक्षदर्पणैः॥३५॥
वह्निशौचेन वस्त्रेण सूक्ष्मेण भूषितं वरम्। नानाचित्रविचित्रैश्च सद्रत्नकलशैर्युतम्॥३६॥
सुन्दरं शतचक्रं च ज्वलितं रत्नतेजसा। पार्षदास्तां रथे कृत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम्॥३७॥

उस साध्वी पूतना ने अपने प्राणों के साथ-साथ कृष्ण को भी छोड़ दिया। मृत्युकाल में उसका मायानिर्मित मनोहर रूप लुप्त हो गया और वह विकटाकृति, विकरालमुख वाली राक्षसी जैसे परिलक्षित होने लगी। वह ऊर्ध्वमुख किये धरती पर गिर पड़ी। पूतना ने अपने स्थूल देह का त्याग हो जाने पर सूक्ष्मदेह में प्रवेश किया तथा रत्नसार निर्मित दिव्य रथ पर बैठ गई। वह दिव्य रथ श्रेष्ठ पार्षदों से घिरा मनोहर था। उस पर लाखों श्वेतचामर एवं दर्पण शोभायमान थे। वह अग्निशुद्ध पवित्र वस्त्रों से युक्त था।

---

१. चोत्तारवदनेति क्वचित् पाठः।

उसमें नाना प्रकार के चित्र समूह तथा रत्नकलश थे, जो उसकी शेभावृद्धि कर रहे थे। यह सुन्दर रथ एक चक्र वाला तथा रत्नों के तेज के कारण अत्यन्त प्रदीप्त था। वे हरिपार्षद पूतना के सूक्ष्म शरीर को उत्तम गोलोकधाम ले गये!।।३३-३७।।

दृष्ट्वा तमद्भुतं लोका गोपिकाश्चातिविस्मिताः।
कंसः श्रुत्वा च तत्सर्वं विस्मितश्च बभूव ह।।३८।।
यशोदा बालकं नीत्वा क्रोडे कृत्वा स्तनं ददौ।
मङ्गलं कारयामास विप्रद्वारा शिशोर्मुने।।३९।।
ददाह देहं तस्याश्च नन्दः सानन्दपूर्वकम्। चन्दनागुरुकस्तूरीसमं संप्राप्य सौरभम्।।४०।।

पूतना के शव को देखकर गोप-गोपियां विस्मित हो गये। हे मुनिवर! यशोदा ने शिशु कृष्ण को क्रोड़ में रखकर तत्काल स्तनपान कराया तथा ब्राह्मणों से माङ्गलिक पाठ भी कराया। तदनन्तर नन्दराज ने सानन्द पूतना के शव का दाहकृत्य सम्पन्न कराया। जलते समय पूतना के देह से चन्दन-अगुरु तथा कस्तूरी की सुगन्ध निकलने लगी।।३८-४०।।

नारद उवाच

सा वा का राक्षसीरूपा[1] कथं पुण्यवती सती।
केन पुण्येन तं दृष्ट्वा जगाम कृष्णमन्दिरम्।।४१।।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे मुनिवर! यह राक्षसी रूपा पुण्यात्मा स्त्री कौन थी? किस पुण्यप्रताप से उसने कृष्ण का दर्शन करके कृष्ण लोक (गोलोक) प्राप्त किया?।।४१।।

नारायण उवाच

बलियज्ञे वामनस्य दृष्ट्वा रूपं मनोहरम्। बलिकन्या रत्नमाला पुत्रस्नेहं चकार तम्।।४२।।
मनसा मानसं चक्रे पुत्रस्य सदृशो मम। पिबेद्यदि स्तनं कृष्णः करोमि तं च वक्ष्यसि।।४३।।
हरिस्तन्मानसं ज्ञात्वा पपौ जन्मान्तरे स्तनम्।
ददौ मातृगतिं तस्यै कामपूरः कृपानिधिः।।४४।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–बलिराज की कन्या रत्नमाला ने पिता के यज्ञकाल में समागत भगवान् वामन का जब मनोहर रूप देखा, तब वह उनके प्रति पुत्रस्नेह से भर गई। उसने मन में अभिलाषा किया कि "यदि इनके समान पुत्र मेरी गोद में बैठकर मेरा स्तनपान करता तब मैं उसे स्तनपान कराती तथा गोद में रखती!" सबकी कामना की पूर्त्ति करने वाले कृपानिधि हरि ने रत्नमाला का मनोगत-भाव जान लिया और पूतनारूपी इस जन्मान्तर में उसका स्तनपान करके श्रीकृष्ण ने उसे मातृगति प्रदान किया!।।४२-४४।।

१. क. ०पा सुः पु०।

दत्त्वा विषस्तनं कृष्णं पूतना राक्षसी मुने।
भक्त्या मातृगतिं प्राप कं भजाम विना हरिम्॥४५॥
इत्येव कथितं विप्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्। पदे पदे सुमधुरं प्रवरं कथयामि ते॥४६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्म० नारदना० पूतनामोक्षो नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

—※※※—

हे मुनिवर! राक्षसी पूतना ने कृष्ण को विषलिप्त स्तनपान कराया था, तथापि प्रभु ने उसे मातृगति प्रदान कर दिया। मैं ऐसे हरि के अतिरिक्त किसकी भक्ति करूं? यह मैंने प्रभु कृष्ण का गुणकीर्त्तन कर दिया, जो प्रति पग पर सुमधुर तथा श्रेष्ठ है। अब इससे भी अधिक कृष्णगुणमयी कथा कहता हूं।।४५-४६।।

।।दसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकादशोऽध्यायः

तृणावर्त्त वध का वर्णन तथा राजा सहस्राक्ष का उपाख्यान

नारायण उवाच

एकदा गोकुले साध्वी यशोदा नन्दगेहिनी। गृहकर्मणि संसक्ता कृत्वा बालं स्ववक्षसि॥१॥
वात्यारूपं तृणावर्तमागच्छन्तं च गोकुलम्। श्रीहरिर्मनसा ज्ञात्वा भारयुक्तो बभूव ह॥२॥
भाराक्रान्ता यशोदा च तत्याज बालकं तदा। शयने कारयित्वा च जगाम यमुनां मुने॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वात्यारूपधरोऽसुरः। आदाय तं भ्रामयित्वा गत्वा च शतयोजनम्॥४॥
बभञ्ज वृक्षशाखाश्च ह्यन्धीभूत च गोकुलम्। चकार सद्यो मायावी पुनस्तत्र पपात ह॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—एक समय नंद की पत्नी साध्वी यशोदा गोकुल में गृहकार्य में व्यस्त रहकर भी शिशु कृष्ण को वक्ष से लगाये थीं। उसी समय वायुरूप तृणावर्त्त वहां आ गया। यह श्रीहरि (कृष्ण) मन ही मन जानकर अत्यन्त भारी हो गये। हे मुनिवर! तदनन्तर यशोदा ने अत्यन्त भारी हो गये शिशु को शय्या पर लिटा दिया और यमुना नदी चली गईं। उसी समय वायुरूपी असुर, अपने वायुवेग से श्रीहरि को उड़ाकर १०० योजन दूर उठा ले गया। उसके वेग से सैकड़ों वृक्षों की शाखायें टूट गईं। गोकुल को उसने अन्धकार पूर्ण कर दिया। तदनन्तर वह मायावी पुनः उसी स्थान पर मर कर गिर पड़ा; क्योंकि कृष्ण के भार का वहन नहीं कर पाया!।।१-५।।

असुरोऽपि हरिस्पर्शाज्जगाम हरिमन्दिरम्। सुन्दरं रथमारुह्य कृत्वा कर्मक्षयं स्वकम्।।६।।
पाण्ड्यदेशोद्भवो राजा शापाद्दुर्वाससोऽसुरः। श्रीकृष्णचरणस्पर्शाद्गोलोकं स जगाम ह।।७।।

वह तृणावर्त्त असुर होकर भी हरि के स्पर्श से परिपूत होकर हरिलोक (गोलोक) चला गया। उसका कर्मक्षय हो गया तथा दिव्य उत्तम रथ पर बैठकर वह गोलोक चला गया। पूर्वजन्म में वह पाण्ड्य देश का राजा था, जो कि दुर्वासा के शाप से असुर हो गया था। वह श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श से पावन होकर गोलोक चला गया।।६-७।।

वात्यारूपे गते गोपा गोप्यश्च भयविह्वलाः। न दृष्ट्वा बालकं तत्र शयानं शयने मुने।।८।।
सर्वे निजघ्नुः स्वं वक्षःस्थलं शोकाकुला भयात्।
केचिन्मूर्च्छामवापुश्च रुरुदुश्चापि केचन।।९।।

जब आंधी रूपी राक्षस मृत हो गया, तब गोप-गोपीगण भय से विह्वल हो गये; क्योंकि उन लोगों ने शय्या पर बालक को नहीं पाया। हे मुनिवर! यह देखकर वे सभी लोग भय तथा शोकातिरेक के कारण अपने वक्षस्थल को पीटने लगे। (छाती पीटने लगे)। कोई मूर्च्छित हो गया। कोई रोने लगा।।८-९।।

अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुर्बालकं व्रजे। धूलिधूसरसर्वाङ्गं पुष्पोद्यानान्तरस्थितम्।।१०।।
बाह्यैकदेशे[1] सरसस्तीरे नीरसमन्विते। पश्यन्तं गगनं शश्वद्व (द्रु) दन्तं भयकातरम्।।११।।

ब्रजवासीगण चारों ओर शिशु कृष्ण को खोजने लगे। उन्होंने खोजते हुए देखा कि बालक धूल-धूसरित स्थिति में एक पुष्पोद्यान में पड़ा था। वह स्थान नगर से बाहर एक सरोवर के तट पर जल के समीप था। वहां वह बालक भूमि पर पड़ा आकाश की ओर भय कातर होकर देखता रो रहा था।।१०-११।।

गृहीत्वा बालकं नन्दः कृत्वा वक्षसि सत्वरम्।
दर्शं दर्शं मुखं तस्य रुरोद च शुचाऽन्वितः।।१२।।
यशोदा रोहिणी शीघ्रं दृष्ट्वा बालं रुरोद च।
कृत्वा वक्षसि तद्वक्त्रं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः।।१३।।
मङ्गलं कारयामास स्नापयामास बालकम्। स्तनं ददौ यशोदा च प्रसन्नवदनेक्षणा।।१४।।

यह देखकर नन्द ने तत्काल बालक को उठाकर अपने वक्ष से लगा लिया तथा वे बारम्बार बालक का मुख देख-देखकर रुदन करने लगे। यशोदा तथा रोहिणी भी बालक को देखकर रोते हुये उसे गोद में उठाकर बार-बार उसका मुख चूमने लगी तथा उसे अपने वक्ष से लगाने लगीं। सभी ने मंगलपाठ कराकर बालक को स्नान कराया। तब यशोदा प्रसन्नता पूर्वक बालक के मुख में स्तन देकर दुग्धपान कराने लगीं।।१२-१४।।

---
१. वाद्येकदेशे इति वा पाठः।

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासाः पाण्ड्यदेशोद्भवं नृपम्।
सुविचार्य वद ब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम्॥१५॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे ब्रह्मन्! दुर्वासा ने पाण्ड्य नरेश को कब शाप प्रदान किया था? कृपया इस प्राचीन इतिहास को अच्छी तरह विचार करके कहिये॥१५॥

नारायण उवाच

पाण्ड्यदेशाधिपो राजा सहस्त्राक्षः प्रतापवान्।
स्त्रीसहस्त्रं समादाय कामबाणप्रपीडितः॥१६॥
मनोहरे निर्जने च पर्वते गन्धमादने। विजहार नदीतीरे पुष्पोद्याने मनोरमे॥१७॥
नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं नृपः। नखदन्तक्षताङ्गं च कामिनीनां चकार सः॥१८॥
कृत्वा मूर्तिसहस्त्रं च योगीन्द्रो नृपतीश्वरः।
कृत्वा स्थलविहारं च जलक्रीडां चकार ह॥१९॥
नार्यो विवसनाः सर्वा नग्नाश्च नृपयोषितः। विजह्रुश्च पुष्पभद्रानदीतीरे मनोहरे॥२०॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–पाण्ड्य देश का महाप्रतापी राजा सहस्त्राक्ष कामबाण से अत्यन्त पीड़ित होकर स्त्रियों के साथ मनोहर निर्जन प्रदेश गन्धमादन पर्वत पर स्थित नदी के तटस्थ पुष्पोद्यान में सुख पूर्वक विहार रत हो गया। राजा सहस्त्राक्ष वहां विपरीत आदि अनेक शृङ्गार क्रीड़ा (आसनों) को कर रहा था। वह कामिनी स्त्रियों के मुख पर तथा स्तनों पर दन्तक्षतादि भी कर रहा था। राजेश्वर योगीप्रवर सहस्त्राक्ष इस प्रकार १००० मूर्ति (देह) धारण करके नाना प्रकार से स्थल पर कामक्रीड़ा करने के अनन्तर जलक्रीड़ा रत हो गया। अब पुष्पभद्रा नदी के मनोहर तट पर राजा की सभी पत्नियां उसके साथ वस्त्र रहित होकर क्रीड़ारत हो गईं॥१९-२०॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायातो महामुनिः। शिष्यलक्षैः परिवृतो गच्छन्वै शंकरं प्रति॥२१॥
दृष्ट्वा मुनिं महामत्तो नोत्तस्थौ न ननाम ह।
वाचा हस्तेन राजा च संभाषां न चकार ह॥२२॥
दृष्ट्वा चुकोप नृपतिं शशाप स्फुरिताधरः। असुरो भव पापिष्ठ योगाद्भ्रष्टो भुवं व्रज॥२३॥
भारते लक्षवर्षं च स्थातव्यं ते नराधम। ततो हरिपदस्पर्शाद्गोलोकं यास्यसि ध्रुवम्॥२४॥

इसी बीच वहां महामुनि दुर्वासा एक लाख शिष्यों से घिरे वहां पहुंच गये, जो भगवान् शिव के यहां जा रहे थे। उस समय महामत्ता सहस्त्राक्ष उनको देखकर भी जल से बाहर नहीं निकला। उसने ऋषि को प्रणाम तक नहीं किया तथा ऋषि को वाणी अथवा हाथ के संकेत से भी कुछ इंगित नहीं किया। मुनि यह देखकर अत्यन्त कुपित हो गये। उनके अधरोष्ठ क्रोध के कारण फड़कने लगे। उन्होंने

राजा को शाप दे दिया। "हे नराधम! तुम पापी योगभ्रष्ट असुर होकर व्रज में रहो। वहां एक वर्ष तक भारत क्षेत्र में इस योनि में रहने पर, तुम श्रीहरि का चरण स्पर्श होने पर अवश्य गोलोक जाओगे। यह निश्चित है"।।२१-२४।।

स्थाने स्थाने हे महिष्यो जनिं लभत भारते। राजेन्द्रगेहे राजेन्द्रा विष्यथ मनोहरा।।२५।।

इत्युक्त्वा तु मुनीन्द्रस्तु जगाम शंकरालयम्।
हाहाशब्दं विचक्रुश्च शिष्यसंघाः कृपालवः।।२६।।

गते मुनीन्द्रे राजेन्द्रो रुरोद च सरित्तटे। रुरुदू रमणीयाश्च रमण्यो विरहातुराः।।२७।।

"हे रानियो! तुम सब भी भारत में नाना स्थानों में राजाओं के यहां जन्म ग्रहण करोगी। तुम लोग अत्यन्त सुन्दरी कन्या होगी।" मुनिश्वर दुर्वासा यह कहकर शंकर के यहां चले गये। दुर्वासा के दयालु शिष्यगण यह शाप सुनकर हाहाकार करने लगे। जब दुर्वासा चले गये तब राजा उस सरोवर के तट पर फूट-फूट कर रुदन करने लगे। उनकी स्त्रियां भी विरह व्याकुलित होकर रुदन कर रही थीं।।२५-२७।।

हे नाथ रमणश्रेष्ठेत्युच्चार्य च पुनः पुनः।
त्वां विना वा क्व यास्यामो वयं त्वं वा क्व यास्यसि।।२८।।

वयं नो विहरिष्यामस्त्वया सार्धं सुनिर्जने।
न करिष्यसि राज्यं त्वं न यास्यामो गृहं वयम्।।२९।।

शरच्चन्द्रप्रभामुष्टं न द्रक्ष्यामो मुखं तव।
प्रसारिताभ्यां बाहुभ्यां नाऽनयिष्याम इत्यतः।।३०।।

इत्युक्त्वा रुरुदुः सर्वाः पुरस्कृत्य नराधिपम्। मूर्च्छामवापुश्चरणं धृत्वा राज्ञः सरित्तटे।।३१।।

राजाऽग्निकुण्डमाधाय नारीभिः सह नारद।
स्मृत्वा हरिपदाम्भोजं ज्वलदग्निं विवेश ह।।३२।।

वे स्त्रियां कह रही थी-"हे नाथ! रमणश्रेष्ठ राजन्! आपके न रहने पर हम कहां जायेगीं? आप कहां जायेंगे? हे नाथ! क्या अब हम आपके साथ निर्जन स्थान में विहार नहीं कर सकेंगी? क्या आप अब राज्य का उपभोग नहीं कर सकेंगे? अब हम शारदीय चन्द्रमा की प्रभा की तरह दीप्त प्रतीत होने वाले मुखकमल का दर्शन क्या नहीं कर सकेंगी? क्या आपके फैले हुए बाहुओं में आकर हम आपको वक्ष से सटा नहीं सकेंगी?" वे सब स्त्रियां नदी तट पर राजा को अपने सामने स्थित करके, उनका चरण पकड़ कर ऐसे विलाप करते मूर्च्छित हो गईं। हे नारद! तब राजा ने अग्निकुण्ड बनाया तथा श्रीहरि के चरणों का हृदय में स्मरण करके अपनी स्त्रियों सहित उस अग्निकुण्ड में प्रवेश कर लिया।।२८-३२।।

हाहाकारं सुराः सर्वे विचक्रुर्गगने स्थिताः। इत्यूचूर्मुनयश्चैवं दैवं च बलवत्तरम्।।३३।।

स च राजा तृणावर्तो जगाम हरिमन्दिरम्।
महिष्यो भारते वर्षे लेभिरे जन्म वाञ्छितम्।।३४।।

यह देखकर आकाशस्थ सभी देवगण हाहाकार करके कहने लगे कि मुनियों के अनुसार दैव अत्यन्त बली होता है। तदनन्तर राजा ही तृणावर्त्त असुर होकर श्रीहरि के लोक चला गया। उसकी रानियों ने भारत में इच्छित स्थानों पर जन्म ले लिया।।३३-३४।।

इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्माहात्म्यमुत्तमम्। मोक्षणं नृपतेश्चैव मुनीन्द्रशापहेतुकम्।।३५।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० तृणावर्तवधो नामैकादशोऽध्यायः।।११।।

यह मैंने श्रीहरि के सभी उत्तम माहात्म्य को कह दिया। इसी क्रम में मैंने मुनिशाप से राजा की मुक्ति को भी कह दिया।।३५।।

।।११वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

शाकटासुर-भंजन का वर्णन

नारायण उवाच

एकदा मन्दिरे नन्दपत्नी सानन्दपूर्वकम्। कृत्वा वक्षसि गोविन्दं क्षुधितं च स्तनं ददौ।।१।।

एतस्मिन्नन्तरे गोप्य आजग्मुर्नन्दमन्दिरम्।
स्थविराश्च वयस्याश्च बालिका बालकान्विताः।।२।।

अतृप्तं बालकं शीघ्रं संन्यस्य शयने सती। प्रणनाम समुत्थाय कर्मण्यौत्थानिके मुदा।।३।।

तैलसिन्दूरताम्बूलं ददौ ताभ्यो मुदाऽन्विता।
मिष्टवस्तूनि वस्त्राणि भूषणानि च गोपिका।।४।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं-एक बार नन्दभवन में आनन्द पूर्वक नन्द पत्नी यशोदा आनन्द पूर्वक क्षुधायुक्त शिशु गोविन्द को वक्ष से लगाकर अपना स्तनपान कराने जा रही थीं, तभी समवयस्का एवं वयस्का आयु वाली गोपियां अपने बालक-बालिकाओं को लेकर वहां आ गईं। श्रीहरि उस समय स्तनपान से परितृप्त नहीं हो सके थे, वे अभी अतृप्त ही थे कि सती यशोदा शिशु गोविन्द को शय्या

पर रखकर उठ गयीं। उन्होंने समागत गोपियों को प्रणाम किया तथा वे शिशु की वर्षगांठ के उपलक्ष्य में मङ्गलजनक कर्म हेतु उठीं। उन्होंने उन गोपियों को तेल, सिन्दूर, ताम्बूल, मिष्ठान्न, वस्त्र तथा आभूषण प्रदान किया।।१-४।।

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो रुरोद क्षुधितस्तदा। प्रेरयित्वा स चरणं मायेशो मायया विभुः।।५।।
पपात चरणं तस्य प्रवीणे शकटे मुने। विश्वंभरपदाघातात्तच्च चूर्णं बभूव ह।।६।।
बभञ्ज शकटं पेतुर्भग्नकाष्ठानि तत्र वै। पपात दधि दुग्धं च नवनीतं घृतं मधु।।७।।

तभी दुग्धपान न कर पाने के कारण अतृप्त एवं भूखे शिशु कृष्ण रुदन करने लगे। उन मायाधीश विभु ने माया से अपने चरणों को घुमाया। हे मुनि! प्रभु का चरण अत्यन्त मजबूत तथा निकटस्थ शकट (छकड़े) पर लग गया। विश्वम्भर प्रभु के पैरों के आघात से वह शकट चूर्ण हो गया। इससे लकड़ी के बने शकट की लकड़ियां वहां गिर गयीं तथा दधि, दुग्ध, घृत, नवनीत, मधु आदि सभी वस्तु जो शकट पर रखी थीं, वह भूमि पर गिर गयी। दुग्ध-दधि, घृत, मधु आदि धरती पर बहने लगा।।५-७।।

दृष्ट्वाऽश्चर्यं गोपिकाश्च [१]दुद्रुवुर्बालकं भयात्।
ददृशुर्भग्नशकटमिन्धनाभ्यन्तरे शिशुम्।।८।।
भग्नभाण्डसमूहं च पतितं बहुगोरसम्। प्रेरयित्वा तु काष्ठानि जग्राह बालकं भिया।।९।।
मायारक्षितसर्वाङ्गं रुदितं क्षुधितं क्षुधा। स्तनं ददौ यशोदा तं रुरोद च भृशं शुचा।।१०।।

यह आश्चर्य देखकर गोपिकायें अत्यन्त विस्मित हो गयीं। उन्होंने भयभीत अवस्था में शकट की टूटी काष्ठराशि के बीच पड़े शिशु कृष्ण को देखा तथा मिट्टी के घट आदि को भग्न देखा। उन भग्न पात्रों से प्रचुर गोरस बह रहा था। यह देखकर उन्होंने भग्न काष्ठ को हटाकर उसके बीच पड़े बालक को अत्यन्त श्रम से बाहर निकाला, तथापि शिशु कृष्ण के सभी अङ्ग उनकी माया द्वारा रक्षित थे। शिशु कृष्ण मात्र भूख के कारण रुदन कर रहे थे। यद्यपि शिशु की यह स्थिति देखकर यशोदा स्वयं रुदन कर रही थीं, तथापि वे शिशु को स्तनपान कराने लगीं।।८-१०।।

[२]पप्रच्छुर्बालकान्गोपा बभञ्ज शकटं कथम्।
किंचिद्धेतुं न पश्यामः सहसेति किमद्भुतम्।।११।।
इत्यूचुर्बालकाः सर्वे गोपाः शृणुत मद्वचः।
श्रीकृष्णस्य पदाघाताद्बभञ्ज शकटं ध्रुवम्।।१२।।
श्रुत्वा तद्वचनं गोपा गोप्यश्च जहसुर्मुदा।
न हि जग्मुः प्रतीतिं च मिथ्येत्यूचुर्व्रजे प्रजाः।।१३।।

१. क. ०वुर्बल्लभा भ०।
२. क. ०प्रच्छ बालकान्गोपी ब०।

तभी उपस्थित गोपों ने वहां पहले से क्रीड़ा करते बालकों से पूछा कि "यह शकट कैसे भग्न हो गया? हम यहां इसके भग्न होने का कोई कारण नहीं देख पा रहे हैं? यह आश्चर्य घटना कैसे हो गयी?" यह सुनकर बालकों ने कहा–"हे गोपवृन्द! आप हम लोगों का कथन सुनिये। यह निश्चित जानिये कि कृष्ण के पैरों के आघात से यह शकट टूटा है।" गोपगण तथा गोपियां बालकों का यह कथन सुनकर हंसने लगे। उन्हें बालकों के कथन पर विश्वास नहीं हो सका। उन्होंने बालकों का कथन मिथ्या समझा। ब्रज की प्रजा का भी यही मत था कि बालक मिथ्या कह रहे हैं।।११-१३।।

शिशोः स्वस्त्ययनं कार्यं चक्रुर्ब्राह्मणपुङ्गवाः।
हस्तं दत्त्वा शिशोर्गात्रे पपाठ कवचं द्विजः॥१४॥

वदामि तत्ते विप्रेन्द्र कवचं सर्वरक्षणम्। यद्दत्तं मायया पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे॥१५॥
निद्रिते जगतीनाथे जले च जलशायिनि। भीताय स्तुतिकर्त्रे च मधुकैटभयोर्भयात्॥१६॥

तदनन्तर शिशु कृष्ण के लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने स्वस्तिपाठ, स्वस्त्ययन किया। ब्राह्मण ने शिशु के शरीर पर हाथ रखकर कवच पाठ भी किया। हे विप्रप्रवर! मैं वह सर्वरक्षक कवच कहता हूं। इसे पूर्वकाल में ब्रह्मा को योगमाया ने प्रदान किया था। ब्रह्मा जगन्नाथ के जल पर शयन करने के उरापन्त मधुकैटभ के आक्रमण से अत्यन्त भयभीत होकर योगमाया की स्तुति कर रहे थे। तभी योगमाया ने यह कवच ब्रह्मा को दिया था।।१४-१६।।

योगनिद्रोवाच

दूरीभूतं कुरु भयं भयं किं ते हरौ स्थिते।
स्थितायां मयि च ब्रह्मन्सुखी तिष्ठ जगत्पते॥१७॥
श्रीहरिः पातु ते वक्त्रं मस्तकं मधुसूदनः।
श्रीकृष्णश्चक्षुषी पातु नासिकां राधिकापतिः॥१८॥
कर्णयुग्मं च कण्ठं च कपालं पातु माधवः।
कपोलं पातु गोविन्दः केशांश्च केशवः स्वयम्॥१९॥

अधरोष्ठं हृषीकेशो दन्तपङ्क्तिं गदाग्रजः। रासेश्वरश्च रसनां तालुकं वामनो विभुः॥२०॥
वक्षः पातु मुकुन्दश्च जठरं पातु दैत्यहा। जनार्दनः पातु नाभिं पातु विष्णुश्च मेहनम्॥२१॥

देवी योगनिद्रा कहती हैं–हे ब्रह्मन्! भय को दूर करिये। जब मैं तथा हरि हैं, तब आपको यह भय कैसे? सुख से रहिये। आपके मुख की रक्षा हरि करें। मधुसूदन मस्तक की रक्षा करें। आपके दोनों नेत्रों की श्रीकृष्ण, नासिका की राधिकापति, कर्णयुगल-कण्ठ-कपाल की माधव, कपोल की गोविन्द, केशों की स्वयं केशव, अधरोष्ठ की हृषीकेश, दन्तपंक्ति की गदाग्रज, रसना की रासेश्वर, तालु की वामन, वक्षस्थल की मुकुन्द, जठर की दैत्यारि, नाभि की जनार्दन तथा लिङ्ग की रक्षा विष्णु करें।।१७-२१।।

नितम्बयुग्मं गुह्यं च पातु ते पुरुषोत्तमः। जानुयुग्मं जानकीशः पातु ते सर्वदा विभुः॥२२॥
हस्तयुग्मं नृसिंहश्च पातु सर्वत्र संकटे। पादयुग्मं वराहश्च पातु ते कमलोद्भवः॥२३॥

ऊर्ध्वं नारायणः पातु ह्यधस्तात्कमलापतिः।
पूर्वस्यां पातु गोपालः पातु वह्नौ दशास्यहा॥२४॥
वनमाली पातु याम्यां वैकुण्ठः पातु नैर्ऋतौ।
वारुण्यां वासुदेवश्च सतो रक्षाकरः स्वयम्॥२५॥

पुरुषोत्तम आपके नितम्ब तथा गुह्य की, जानकीश दोनों घुटनों की रक्षा करें। सर्व संकट काल में हस्तद्वय की रक्षा नृसिंह करें। कमलोद्भव वराह चरणद्वय की रक्षा करें। ऊर्ध्व में नारायण, अधः में कमलापति, पूर्व दिक् में गोपाल, अग्निकोण में दशमुख हन्ता, दक्षिण दिक् में वनमाली, नैर्ऋत्कोण में वैकुण्ठ तथा पश्चिम दिक् में सत् जन रक्षक वासुदेव स्वयं रक्षा करें।।२२-२५।।

पातु ते संततमजो वायव्यां विष्टरश्रवाः। उत्तरे च सदा पातु तेजसा जलजासनः॥२६॥

ऐशान्यामीश्वरः पातु पातु सर्वत्र शत्रुजित्।
जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां पातु राघवः॥२७॥

वायुकोण में सतत् अजन्मा विष्टरश्रवा रक्षा करें। उत्तर दिक् में सदा जलजासन (कमलासन) स्वतेज से आपकी रक्षा करें। ईशानकोण में सर्वत्र ईश्वर शत्रुजित् रक्षा करें। जल, स्थल, अन्तरिक्ष एवं निद्रा में राघव सदा रक्षा करें।।२६-२७।।

इत्येवं कथितं ब्रह्मन्कवचं परमाद्भुतम्। कृष्णेन कृपया दत्तं स्मृतेनैव पुरा मया॥२८॥
शुम्भेन सह संग्रामे निर्लक्ष्ये घोरदारुणे। गगने स्थितया सद्यः प्राप्तिमात्रेण स जितः॥२९॥
कवचस्य प्रभावेण धरण्यां पतितो मृतः। पूर्वं वर्षशतं खे च कृत्वा युद्धं भयावहम्॥३०॥

मृते शुम्भे च गोविन्दः कृपालुर्गगनस्थितः।
मालां च कवचं दत्त्वा गोलोकं स जगाम ह॥३१॥

यह मैंने परम अद्भुत ब्रह्मकवच कहा। इसे मेरे स्मरण करने पर कृष्ण ने कृपा पूर्वक मुझे प्रदान किया था। प्राचीन काल में जब दुर्गा के साथ शुंभदैत्य का घोर दारुण संग्राम हुआ था, तब आकाशस्थ देवी दुर्गा ने इस कवच को प्राप्त करते ही उस दैत्य को जीत लिया था। इसी कवच के प्रभाव से वह धरणी पर मृत होकर गिर गया। पूर्वकाल में जब आकाश में सौ वर्षों तक देवी दुर्गा से शुंभ का भयावह युद्ध हुआ था, तब शुंभ के मृत होने पर कृपालु गोविन्द ने आकाश में स्थित रहते हुये यह माला तथा कवच मुझे प्रदान किया। तत्पश्चात् वे गोलोक प्रस्थान कर गये।।२८-३१।।

कल्पान्तरस्य वृत्तान्तं कृपया कथितं मुने। अभ्यन्तरभयं नास्ति कवचस्य प्रभावतः॥३२॥

कोटिशः कोटिशो नष्टा मया दृष्टाश्च वेधसः।
अहं च हरिणा सार्धं कल्पे कल्पे स्थिरा सदा॥३३॥

इत्युक्त्वा कवचं दत्त्वा सान्तर्धानं चकार ह।
निःशङ्को नाभिकमले तस्थौ स कमलोद्भवः॥३४॥
सुवर्णगुटिकायां च कृत्वेदं कवचं परम्।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ बध्नीयाद्यः सुधीः सदा॥३५॥

"हे मुनि! यह कल्पान्तर का वृत्तान्त मैंने कृपा पूर्वक तुमसे कह दिया। इस कवच के प्रभाव से तुमको कोई भय नहीं है। मैंने हरि के साथ स्थिर रहकर कल्प-कल्प में कोटि-कोटि ब्रह्माओं का नाश होते देखा है।" यह कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गईं। उधर ब्रह्मा भी प्रभु के नाभिकमल में निःशंक रहने लगे। मनुष्य को चाहिये कि वह बुद्धिमान व्यक्ति स्वर्ण की ताबीज में यह उत्तमोत्तम कवच रखकर कण्ठ में अथवा दाहिनी बाहु पर धारण किये रहे।।३२-३५।।

विषाग्निजलशत्रुभ्यो भय तस्य न जायते।
जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां रक्षतीश्वरः॥३६॥
संग्रामे वज्रपाते च विपत्तौ प्राणसंकटे। कवचस्मरणादेव सद्यो निःशङ्कतां व्रजेत्॥३७॥

ऐसे कवचधारी को विष,,अग्नि, जल, शत्रु का भय कदापि नहीं होता। जल, स्थल, अन्तरिक्ष तथा निद्रा में ईश्वर सदैव उसकी रक्षा करते रहते हैं। संग्राम, वज्रपात, विपत्ति, प्राणसंकट में कवच के स्मरण मात्र से व्यक्ति तत्काल निःशंक हो जाता है।।३६-३७।।

बद्ध्वेदं कवचं कण्ठे शंकरस्त्रिपुरं पुरः। जघान लीलामात्रेण दुरन्तमसुरेश्वरम्॥३८॥
बद्ध्वेदं कवचं काली रक्तबीजं चखाद सा।
सहस्रशीर्षा धृत्वेदं विश्वं धत्ते तिलं यथा॥३९॥
आवां सनत्कुमारश्च धर्मसाक्षी च कर्मणाम्।
कवचस्य प्रभावेण सर्वत्र जयिनो वयम्॥४०॥
तस्य नन्दशिशोः कण्ठे चकार कवचं द्विजः।
आत्मनः कवचं कण्ठे दधार च स्वयं हरिः॥४१॥
प्रभावः कथितः सर्वः कवचस्य हरेस्तथा। अनन्तस्याच्युतस्यैव प्रभावमतुलं मुने॥४२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० शकटभञ्जनयोगनिद्रोक्तकवचन्यासो नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

—✻✻✻—
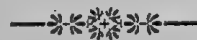
पूर्वकाल में यही कवच कण्ठ में धारण करके शिव ने लीलाक्रमेण दुरन्त त्रिपुरासुर का वध किया था तथा काली यही कवच धारण करके रक्तबीज का भक्षण करने में सक्षम हो सकीं। सहस्र शिर वाले अनन्त यही कवच धारण करके पृथिवी को तिलवत् शिर पर धारण करते हैं। इसी के प्रभाव से सनत्कुमार, सर्वकर्मसाक्षी धर्मदेव तथा मैं, इसी कवच के प्रभाव से सर्वत्र विजयी हो गये हैं। यही

कवच उन ब्राह्मण ने शिशु गोपाल के कण्ठ में बांधा था। श्रीहरि अपने कण्ठ में स्वयं यह कवच धारण करते हैं। हे मुनिवर! मैंने तुमसे अनन्त अच्युत श्रीहरि का तथा उनके कवच का अतुल प्रभाव का वर्णन कर दिया।।३८-४२।।

।।१२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

शिशु कृष्ण का अन्नप्राशन तथा नामकरण संस्कार वर्णन

नारायण उवाच

अपरं कृष्णमाहात्म्यं शृणु किंचिन्महामुने। विघ्ननिघ्नं पापहरं महापुण्यकरं परम्।।१।।

एकदा नन्दपत्नी च कृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि।
स्वर्णसिंहासनस्था च क्षुधितं तं स्तनं ददौ।।२।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्रेन्द्रैकः समागतः। वृतः शिष्यसमूहैश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा।।३।।

प्रजपन्परमं ब्रह्म शुद्धस्फटिकमालया।
दण्डी छत्री शुक्लदन्तः शोभितः शुक्लवाससा।।४।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे महामुनि! अब तुम श्रीकृष्ण का अन्य माहात्म्य श्रवण करो जो विघ्नों का नाश करने वाला, पापहारी, महापुण्यमय है। एक बार नन्द की पत्नी यशोदा कृष्ण को वक्ष से सटाये स्वर्ण के सिंहासन पर बैठी थीं। वे क्षुधार्त्त कृष्ण को स्तनपान कराने लगी। तभी वहां एक श्रेष्ठ ब्राह्मण आये जो शिष्यों से घिरे तथा ब्रह्मतेज से दीप्त थे। वे शुद्ध स्फटिक की माला पर परमब्रह्म का जप करने में तल्लीन थे। वे दण्ड एवं छत्रधारी, श्वेत दांतों वाले तथा श्वेत वस्त्रधारी थे।।१-४।।

ज्योतिर्ग्रन्थो मूर्तिमांश्च वेदवेदाङ्गपारगः। परिबिभ्रज्जटाजालं तप्तकाञ्चनसंनिभम्।।५।।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यो गौराङ्गः पद्मलोचनः। योगीन्द्रो धूर्जटेः शिष्यः शुद्धभक्तो गदाभृतः।।६।।

व्याख्यामुद्राकरः श्रीमाञ्छिष्यानध्यापयन्मुदा।
वेदव्याख्यां कतिविधां प्रकुर्वन्निव लीलया।।७।।

एकीभूय चतुर्वेदस्त्ततेजसा मूर्तिमानिव। साक्षात्सरस्वतीकण्ठः सिद्धान्तैकविशारदः।।८।।

ध्यानैकनिष्ठः श्रीकृष्णपादाम्भोजे दिवानिशम्।
जीवन्मुक्तो हि सिद्धेशः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।।९।।

वे ज्योतिषशास्त्र में अद्वितीय तथा वेद-वेदांग पारदर्शी थे। वे ब्राह्मण प्रवर तप्तस्वर्ण के समान वर्ण वाली जटा से युक्त थे। उनका मुखमण्डल शरत्कालीन चन्द्र के समान था, अंग गौरवर्ण थे तथा उनके नेत्रद्वय कमल के समान था। वे द्विज धूर्जटी शिव के शिष्य तथा गदाधर श्रीहरि के शुद्ध भक्त और योगीन्द्र थे। वे व्याख्यामुद्रायुक्त हाथों से शिष्यगणों का अध्यापन कर रहे थे। वे लीला से ही (अत्यन्त सामान्य रूप से) वेद की ऐसी व्याख्या करने लगे, जिससे प्रतीत होता था कि चारों वेद मूर्त्तमान होकर वहां आये हैं। उन द्विज के कण्ठ में साक्षात् सरस्वती विराजित थीं। वे शास्त्र सिद्धान्तों के एकमात्र विशारद लग रहे थे। वे अहर्निश श्रीकृष्ण के चरण कमलों के ध्यान में निरत रहते थे। वे जीवन्मुक्त, सिद्धीश्वर, सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी थे।।५-९।।

तं दृष्ट्वा सा समुत्तस्थौ यशोदा प्रणनाम च।
पाद्यं गां मधुपर्कं च स्वर्णसिंहासनं ददौ।।१०।।
बालकं वन्दयामास मुनीन्द्रं सस्मितं मुदा। मुनिश्च मनसा चक्रे प्रणामशतकं हरिम्।।११।।

देवी यशोदा उनको देखकर उठ कर खड़ी हो गईं तथा उन्होंने ब्राह्मण को प्रणाम करके उनको पाद्य-मधुपर्क तथा स्वर्ण सिंहासन प्रदान किया। तत्पश्चात् देवी यशोदा ने मुस्कराते हुये प्रसन्न मन से अपने बालक कृष्ण द्वारा उन मुनि की वन्दना करवाया। उन मुनि ने बालक कृष्ण को पहचान लिया था। उन्होंने हरि को मन ही मन सैकड़ों प्रणाम किया।।१०-११।।

आशिषं प्रददौ प्रीत्या वेदमन्त्रोपयोगिकम्।
प्रणनाम च शिष्यांश्च ते तां युयुजुराशिषम्।।१२।।

तत्पश्चात् उन द्विज (ब्राह्मण मुनि ने) ने वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुये प्रीति के साथ बालक को आशीर्वाद प्रदान किया। इसके पश्चात् यशोदा माता ने उन मुनि के शिष्यों को प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद भी प्राप्त किया।।१२।।

शिष्यान्पाद्यादिकं भक्त्या प्रददौ च पृथक्पृथक्।
सशिष्याङ्घ्री च प्रक्षाल्य समुवास सुखासने।।१३।।
समुद्यता सा प्रष्टुं च पुटाञ्जलियुता सती।
स्वक्रोडे बालकं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकं धरा।।१४।।
स्वात्मारामं मङ्गलं च प्रष्टुं यद्यपि न क्षमा।
तथाऽपि भवतो नाम शिवं पृच्छामि सांप्रतम्।।१५।।
अबलाबुद्धिहीनाया दोषं क्षन्तुं सदाऽर्हसि। मूढस्य सततं दोषं क्षमां कुर्वन्ति साधवः।।१६।।
अङ्गिरा वाऽथ वाऽत्रिर्वा मरीचिर्गौतमोऽथवा।
क्रतुः किं वा प्रचेता वा पुलस्त्यः पुलहोऽथवा।।१७।।

दुर्वासाः कर्दमस्त्वं वा वशिष्ठो गर्ग एव वा।
जैगीषव्यो देवलो वा कपिलो वा स्वयं विभुः॥१८॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दो वा सनातनः।
वोढुः पञ्चशिखो वा त्वमासुरिः सौभरिः किमु॥१९॥
विश्वामित्रोऽथ वाल्मीको वामदेवोऽथ कश्यपः।
संवर्तः किमुतथ्यो वा किं कचो वा बृहस्पतिः॥२०॥

इसके पश्चात् माता यशोदा ने शिष्यगण को पृथक्-पृथक् पाद्यादि भी प्रदान किया। उन शिष्यों ने भी उनको आशीर्वाद दिया। जब मुनि तथा उनके शिष्य पाद प्रक्षालन आदि कर चुके तथा सुखासनासीन हो गये तब यशोदा ने बालक कृष्ण को अपनी गोद में उठाया तथा उन्होंने नतशिर होकर कुछ पूछने का उपक्रम किया। उन्होंने मुनि से कहा-"हे महर्षि! आप तो आत्माराम हैं। आपसे मैं कुशल-मङ्गल पूछ सकने में स्वयं को अक्षम पाकर भी कतिपय कुशल समाचार (लोक प्रचलित नियमानुसार) पूछ रही हूं। मैं तो एक बुद्धि रहित अबला हूं। आप मेरे इस दोष को क्षमा करिये। साधुगण मूढ़ व्यक्ति के दोष को तत्काल क्षमा कर देते हैं। हे प्रभो! क्या आप ऋषि अङ्गीरा, अत्रि, मरीचि, गौतम हैं? किंवा आप क्रतु, प्रचेता, पुलत्स्य, पुलह, दुर्वासा, कर्दम, वसिष्ठ, गर्ग, जैगीषव्य अथवा देवल ऋषि हैं? अथवा क्या आप स्वयं प्रभु कपिल, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, वोढु, पंचशिख, आसुरि, सौमारि, विश्वामित्र, वाल्मीकि, वामदेव अथवा कश्यप हैं? क्या आप संवर्त्त, उतथ्य, कच अथवा बृहस्पति तो नहीं हैं?॥१३-२०॥

भृगुः शुक्रश्च च्यवनो नरनारायणोऽथवा।
शक्तिः पराशरो व्यासः शुकदेवोऽथ जैमिनिः॥२१॥
मार्कण्डेयो लोमशश्च कण्वः कात्यायनस्तथा।
आस्तीको वा जरत्कारुर्ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः॥२२॥
पौलस्त्यस्त्वमगस्त्यो वा शरद्वान्गिरिरेव च।
शमीकोऽरिष्टनेमिश्च मण्डव्यः पैल एव च॥२३॥

क्या आप भृगु, शुक्र, च्यवन, नर-नारायण, शक्ति, पराशर, व्यास, शुकदेव, जैमिनि, मार्कण्डेय, लोमश, कण्व, कात्यायन, आस्तीक, जरत्कारु, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक, पौलत्स्य, अगत्स्य, शरद्वान, गिरि, शमीक, अरिष्ट नेमि, माण्डव्य, पैल तो नहीं हैं?॥२१-२३॥

पाणिनिर्वा कणादो वा शाकल्यः शाकटायनः।
अष्टावक्रो भागुरिर्वा सुमन्तुर्वत्स एव वा॥२४॥
जाबालो याज्ञवल्क्यश्च वैशंपायन एव च। यतिर्हंसी पिप्पलादो मैत्रेयः करुषस्तथा॥२५॥
उपमन्युर्गौरमुखोऽरुणिरौर्वोऽथ कक्षिवान्। भरद्वाजो वेदशिराः शङ्कुकर्णोऽथ शौनकः॥२६॥

एतेषां पुण्यश्लोकानां को भवान्वद मे प्रभो।
प्रत्युत्तरार्हा नाहं चेत्तथाऽपि वक्तुमर्हसि॥२७॥
किंकरः किंकरी वाऽपि समर्था प्रष्टुमीश्वरम्।
यो यस्य सेवानिरतः स कं पृच्छति तं विना॥२८॥
धन्याऽहं कृतकृत्याऽहं सफलं जीवितं मम।
त्वत्पादाब्जरजःस्पर्शाज्जन्मकोट्यंहसां क्षयः॥२९॥

कहीं आप पाणिनि, कणाद, शाकल्य, शाकटायन, अष्टावक्र, भागुरि, सुमन्तु, जाबाल, याज्ञवल्क्य, वैशंपायन, यति, हंसी, पिप्पलाद, मैत्रेय, करुष, उपमन्यु, गौरमुख, आरुणि, और्व, कक्षिवान्, भरद्वाज, वेदशिरा, शंकुकर्ण, शौनक, इनमें से हे प्रभो ! आप कौन हैं? मैं आपसे उत्तर पाने योग्य नहीं हूं, तथापि कृपया आप अपना परिचय तथा नाम बतलाने की कृपा करिये। सेवक अथवा सेविका ही स्वामी से जिज्ञासा कर पाते हैं। मैं अत्यन्त धन्या हूं। मैंने यह भी जाना है कि मैं कृतकृत्य हूं तथा मेरा जीवन सफल है। आपके चरणकमल की रजः के स्पर्श से मेरे कोटि जन्मकृत पातक क्षयीभूत हो गये॥२४-२९॥

त्वत्पादोदकसंस्पर्शात्सद्यः पूता वसुंधरा। तवाऽगमनमात्रेण तीर्थोभूतो ममाऽश्रमः॥३०॥
ये ये श्रुताः श्रुतौ ब्रह्मञ्छ्रुतिसारा महाजनाः।
तेषामेको मया दृष्टः पूर्वपुण्यफलोदयात्॥३१॥
शिष्या वेदा मूर्तिमन्तो ग्रीष्ममध्याह्नभास्कराः।
गोकुलं मत्कुलं सद्यः पुनन्ति पादरेणुना॥३२॥
आशिषं कर्तुमर्हन्ति प्रसन्नमनसा शिशुम्। पूर्णस्वस्त्ययनं सद्यो विप्राशीर्वचनं ध्रुवम्॥३३॥
इत्येवमुक्त्वा नन्दस्त्री भक्त्या तस्थौ मुनेः पुरः।
नरं प्रस्थापयामास नन्दमानयितुं सती॥३४॥
यशोदावचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः। जहसुः शिष्यसंघाश्च भासयन्तो दिशो दश॥३५॥

आपके चरणों के स्पर्श से यह धरती पवित्र हो गई है। आपके आगमन मात्र से यह मेरा गृह तीर्थ के समान हो गया है। हे ब्राह्मणदेव! मैंने श्रुति में जिन-जिन महान् लोगों का प्रसंग सुना है, आप तो उनमें से एक हैं। मैंने अपने पूर्व पुण्यबल से आपका दर्शन लाभ किया है। आप मूर्त्तिमान वेदस्वरूप हैं। आप तो ग्रीष्मकाल के मध्याह्न सूर्य के समान हैं। आपके इन शिष्यों की चरणरज से "मेरा कुल तथा मेरी गौओं का कुल सदा-सर्वदा आप द्वारा पवित्र हो गया। आज आपने मेरे कुल को तथा गोकुल को पूर्णतः पवित्र कर दिया। आप लोग अत्यन्त प्रसन्न मन से इस बालक को आशीर्वाद दीजिये। ब्राह्मणों का आशीर्वाद तो पूर्ण स्वस्त्ययन स्वरूप तथा अत्यन्त मङ्गलदायक होता है।" नन्दपत्नी यशोदा यह कहकर स्वयं वहां बैठ गई तथा उन्होंने नन्दराज को वहां बुलाने के उद्देश्य से एक अनुचर को भेजा।

इधर यशोदा का यह कथन सुनकर स्वयं हंसने लगे तथा उनके शिष्यों के हंसने से दसों दिशायें उद्भासित हो उठीं!।।३०-३५।।

हितं तथ्यं नीतियुक्तं महत्पुण्यकरं[१] परम्। तामुवाच मुदा युक्तः शुद्धबुद्धिर्महामुनिः।।३६।।

गर्ग उवाच

सुधामयं ते वचनं लौकिकं च कुलोचितम्।
यस्य यत्र कुले जन्म स एव तादृशो भवेत्।।३७।।
सर्वेषां [२]गोपपद्मानां गिरिभानुश्च भास्करः।
पत्नी पद्मासमा तस्य नाम्ना पद्मावती सती।।३८।।
तस्याः कन्या यशोदा त्वं यशोवर्धनकारिणी।
बल्लवानां च प्रवरो लब्धो नन्दश्च वल्लभः।।३९।।
नन्दो यस्त्वं च या भद्रे बालो यो येन वाऽऽगतः।
जानामि निर्जने सर्वं वक्ष्यामि नन्दसंनिधिम्।।४०।।

उस समय शुद्ध बुद्धि वाले महामुनि (गर्ग) ने आनन्द पूर्वक यशोदा से सत्यनीतिपूर्ण हितकर वाक्य कहा–"हे देवी! तुम्हारा कथन समयोचित लौकिक रीतिपूर्ण तथा सुधामय है। जिसका जैसे कुल में जन्म होता है, वह तद्रूप हो जाता है। गिरीभानु गोपसमुदायरूप कमल के सूर्य स्वरूप हैं। उनकी पत्नी पद्मावती लक्ष्मी की ही तरह हैं। तुम उन पद्मावती की पुत्री तथा यशोवर्द्धन करने वाली होने के कारण यशोदा कहलाती हो। तुमने वल्लव कुल के श्रेष्ठ तथा गोपप्रवर नन्दराज को प्राणवल्लभ के रूप में प्राप्त किया है। तुम कौन हो, ये नन्द कौन हैं, यह बालक कृष्ण कौन है, यह मैं भलीभाँति जानता हूं, तथापि यह रहस्य नन्द के सामने निर्जन स्थल में ही बतला सकूंगा!"।।३६-४०।।

गर्गोऽहं यदुवंशानां चिरकालं पुरोहितः।
प्रस्थापितोऽहं वसुना नान्यसाध्ये च कर्मणि।।४१।।

"मैं गर्ग नाम वाला यदुवंश का दीर्घकाल से पुरोहित रहा हूं। वसुदेव ने ऐसे कार्य के लिये यहां मुझे भेजा है, जो अन्य व्यक्ति द्वारा साध्य नहीं है!"।।४१।।

एतस्मिन्नन्तरे नन्दः श्रुतमात्रं जगाम ह। ननाम दण्डवद्भुमौ मूर्ध्ना तं मुनिपुङ्गवम्।।४२।।

शिष्यान्ननाम मूर्ध्ना च ते तं युयुजुराशिषम्।
समुत्थायाऽऽसनात्तूर्णं यशोदा नन्द एव च।
गृहीत्वाऽभ्यन्तरं रम्यं जगाम विदुषां वरः।।४३।।

१. क. ०हत्प्रीतिक०।
२. क. ०पबल्लानां।

गर्गो नन्दो यशोदा च सपुत्रा सा मुदाऽन्विता।
वाक्यं गर्गस्तदोवाच निगूढं निर्जने मुने॥४४॥

तत्पश्चात् अनुचर द्वारा संवाद सुनकर नन्द वहां तत्काल आये तथा उन्होंने मुनिपुंगव गर्गदेव को नतशिर होकर प्रणाम किया। उन्होंने मुनि के शिष्यगण को भी शिर झुकाकर प्रणाम करके उनका शुभ आशीर्वाद प्राप्त किया। तदनन्तर यशोदा तथा विद्वान् नन्दराज शीघ्र वहां से उठे तथा घर के अन्दर स्थित एकान्त एवं रमणीय कक्ष में चले गये। मुनि गर्ग, यशोदा एवं नन्द पुत्र के साथ उस कक्ष में जब प्रविष्ट हो गये। तब गर्गदेव ने यशोदा तथा नन्द से अत्यन्त गुप्त रहस्य कहा–॥४२-४४॥

गर्ग उवाच

अयि नन्द प्रवक्ष्यामि वचनं ते सुखावहम्।
प्रस्थापितोऽहं वसुना येन तच्छ्रुयतामिति॥४५॥
वसुना सूतिकागारे शिशुः प्रत्यर्पणं कृतः।
पुत्रोऽयं वसुदेवस्य ज्येष्ठश्च तस्य च ध्रुवम्॥४६॥
कन्या ते तेन या नीता मथुरां कंसभीरुणा। अस्यान्नप्राशनायाहं नामानुकरणाय च।
गूढेन प्रेषितस्तेन तस्योद्योगं कुरु द्विज॥४७॥

गर्गदेव कहते हैं–हे नन्द! मैं तुमसे अत्यन्त सुखदायक वचन कहता हूं। वसुदेव ने यहां मुझे जिस कार्य हेतु भेजा है, वह सुनो। वसुदेव ने अपने इस पुत्र को यहां लाकर रखा है। यह वसुदेव का पुत्र है। यह तुम्हारे ज्येष्ठस्वरूप वसुदेव का पुत्र है। वसुदेव कंस के भय से तुम्हारी कन्या को मथुरा ले गये तथा उस समय अपने इस पुत्र को यहां रख गये। उन्होंने इस शिशु के अन्नप्राशन तथा नामकरण के लिये गुप्तरूप से यहां भेजा है। अब तुम उसकी तैयारी करो॥४५-४७॥

पूर्णब्रह्मस्वरूपोऽयं शिशुस्ते मायया महीम्।
आगत्य भारहरणं कर्ता धात्रा च सेवितः॥४८॥
गोलोकनाथो भगवाञ्छ्रीकृष्णो राधिकापतिः।
नारायणो यो वैकुण्ठे कमलाकान्त एव च॥४९॥
श्वेतद्वीपनिवासी यः पाता विष्णुश्च सोऽप्यजः।
कपिलोऽन्ये तदंशाच्च नरनारायणावृषी॥५०॥
सर्वेषां तेजसां राशिर्मूर्तिमानागतः किमु। तं वसुं दर्शयित्वा च शिशुरूपो बभूव ह॥५१॥
सांप्रतं सूतिकागारादाजगाम तवाऽऽलयम्। अयोनिसंभवश्चायमाविर्भूतो महीतले॥५२॥
वायुपूर्णं मातृगर्भं कृत्वा च मायया हरिः। आविर्भूय वसुं मूर्तिं दर्शयित्वा जगाम ह॥५३॥

तुम्हारा यह शिशु पूर्णब्रह्मरूप है। यह माया के द्वारा तथा विधाता ब्रह्मा की प्रार्थना से पृथिवी

का भार उतारने के लिये यहां अवतीर्ण हो गये। यह गोलोकनाथ भगवान् ही राधिकापति कृष्ण हैं। यही वैकुण्ठ के कमलाकान्त नारायण भी है। यही श्वेतद्वीपवासी तुम सबका रक्षक विष्णु है। यह अजन्मा है। कपिल, नर-नारायण ऋषि इसके ही अंशरूप हैं। यह सभी तेजराशि का मूर्त्तरूप होकर यहां आया है। यह यहां अयोनिज रूप से धरती पर आविर्भूत होकर पृथिवी पर आया है। इसने पहले वसुदेव को दर्शन प्रदान किया, तत्पश्चात् शिशुरूप हो गया। हरि ने पहले देवकी माता के गर्भ को वायु से भर दिया, जिससे वे गर्भिणी प्रतीत होने लगीं। तदनन्तर हरि ने प्रकट होकर वसुदेव को अपना दर्शन दिया और शिशुरूपी होकर उनके द्वारा यहां लाये गये।।४८-५३।।

युगे युगे वर्णभेदो नामभेदोऽस्य बल्लव।
शुक्लः पीतस्तथा रक्त इदानीं कृष्णतां गतः।।५४।।
शुक्लवर्णः सत्ययुगे सुतीव्रतेजसाऽऽवृतः।
त्रेतायां रक्तवर्णोऽयं पीतोऽयं द्वापरे विभुः।।५५।।
कृष्णवर्णः कलौ श्रीमांस्तेजसां राशिरेव च। परिपूर्णतमं ब्रह्म तेन कृष्ण इति स्मृतः।।५६।।

हे वल्लव (नन्द)! युगभेद से प्रति युग में इनका विभिन्न नाम तथा विभिन्न वर्ण हो जाता है। पहले युग में शुक्लवर्ण, द्वितीय युग में रक्तवर्ण तथा पीतवर्ण होकर वर्त्तमान में इनका अवतार कृष्णवर्ण का हुआ है। सत्ययुग में ये अत्यन्त तीव्र तेजयुक्त होने के कारण शुक्लवर्ण थे। त्रेता में ये रक्तवर्ण तथा द्वापर में पीतवर्ण हो गये। ये ही कलिकाल के प्रारम्भ में कृष्णवर्ण वाले हो गये। ये तेजराशि परिपूर्णता ब्रह्म हैं। ये ही कृष्ण कहे गये हैं।।५४-५६।।

ब्रह्मणो वाचकः कोऽयमृकारोऽनन्तवाचकः।
शिवस्य वाचकः षश्च नकारो धर्मवाचकः।।५७।।
अकारो विष्णुवचनः श्वेतद्वीपनिवासिनः। नरनारायणार्थस्य विसर्गो वाचकः स्मृतः।।५८।।

'कृष्ण' में जो 'क' है, उसका तात्पर्य है ब्रह्म। ऋकार अनन्तवाचक है। रकार शिववाचक तथा णकार धर्मवाचक है। सर्वान्तस्थ ऊकार श्वेतद्वीपस्थ विष्णुवाचक है। इसमें स्थित विसर्ग (कृष्णः) तो नर-नारायण का वाचक कहा गया है।।५७-५८।।

सर्वेषां तेजसां राशिः सर्वमूर्तिस्वरूपकः। सर्वाधारः सर्वबीजस्तेन कृष्ण इति स्मृतः।।५९।।
कर्मनिर्मूलवचनः कृषिर्नो दास्यवाचकः। अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः।।६०।।

ये सर्वतेजराशि, सर्वमूर्त्तिस्वरूप, सर्वाधार तथा सर्वबीजात्मक हैं। इसी कारण इनको कृष्ण कहा गया है। कृष् शब्द कर्मनिर्मूल करने का वाचक है। णकार दास्यवाचक है। अन्त का अकार दातृवाचक है। अतः इनको कृष्ण कहा गया।।५९-६०।।

कृषिर्निश्श्रेष्टवचनो नकारो भक्तिवाचकः।
अकारः प्राप्तिवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः।।६१।।

कृषिर्निर्वाणवचनो नकारो मोक्षवाचकः। अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः॥६२॥

'कृष्' निश्चेष्टता का, 'ण' भक्ति का तथा अंतिम 'अ' वर्ण प्राप्ति का वाचक है। अतः ये कृष्ण कहे गये। 'कृष्' निर्वाणवाचक 'ण' मोक्षवाचक, अंतिम 'अ' दातृवाचक होने के कारण इनको कृष्ण कहते हैं॥६१-६२॥

नाम्ना भगवतो नन्द कोटीनां स्मरणेन यत्। तत्फलं लभते नूनं कृष्णोति स्मरणे नरः॥६३॥

यद्विधं स्मरणात्पुण्यं वचनाच्छ्रवणात्तथा।
कोटिजन्मांहसो नाशो भवेद्यत्स्मरणादिकात्॥६४॥
विष्णोर्नाम्ना च सर्वेषां सारात्सारं परात्परम्।
कृष्णोति सुन्दरं नाम मङ्गलं भक्तिदायकम्॥६५॥

हे नन्द! भगवान् के करोड़ों नाम स्मरण से जो फललाभ होता है, वह सब मात्र कृष्ण नाम के स्मरण से मनुष्य प्राप्त करता है। 'कृष्ण' नाम स्मरण से जो पुण्यलाभ होता है, उस नाम के कहने तथा सुनने का भी वही फल है। इस कृष्ण नाम के स्मरण तथा श्रवणादि से मानव की करोड़ों जन्मों में संचित की गई पापराशि दूर हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं है। विष्णु के सभी नामों में से 'कृष्ण' नाम समस्त नामों का सारभूत है। यह परात्पर, मङ्गलमय एवं भक्ति तथा दास्यप्रद है॥६३-६५॥

ककारोच्चारणाद्भक्तः कैवल्यं मृत्युजन्महम्। ऋकाराद्दास्यमतुलं षकाराद्भक्तिमीप्सिताम्॥६६॥
नकारात्सहवासं च तत्समं कालमेव च। तत्सारूप्यं विसर्गाच्च लभते नात्र संशयः॥६७॥

कृष्ण नाम के 'ककार' के उच्चारण से ही भक्त को मृत्यु-जन्मनाशक कैवल्य लाभ होता है। 'ऋकार' के उच्चारण से व्यक्ति अतुलित दास्यभाव तथा 'षकार' के उच्चारण से वांछित भक्ति लाभ करता है। 'ण' के उच्चारण से प्रभु सान्निध्य मिलता है। विसर्गोच्चारण से व्यक्ति सारूप्य मोक्ष लाभ करता है। यह निःसंशय है॥६६-६७॥

ककारोच्चारणादेव वेपन्ते यमकिंकराः।
ऋकारोक्तेर्न तिष्ठन्ति षकारात्पातकानि च॥६८॥

नकारोच्चारणाद्रोगा अकारान्मृत्युरेव च। ध्रुवं सर्वे पलायन्ते नामोच्चारणभीरवः॥६९॥
स्मृत्युक्तिश्रवणोद्योगाकृष्णानाम्नो व्रजेश्वर। रथं गृहीत्वा धावन्ति गोलोकात्कृष्णकिंकराः॥७०॥

'ककार' का उच्चारण करने से यमदूत कम्पित हो उठते हैं, 'ऋकार' का उच्चारण होते ही वे पलायित हो जाते हैं। हे ब्रजेश्वर! भगवान् कृष्ण का नाम लेने, कहने, श्रवण करने मात्र से कृष्ण के किंकर गोलोक से रथ पर बैठकर चले आते हैं॥६८-७०॥

पृथिव्या रजसः संख्यां कर्तुं शक्ता विपश्चितः।
नाम्नः प्रभावसंख्यानं सन्तो वक्तुं न च क्षमाः॥७१॥

पुरा शंकरवक्त्रेण नाम्नोऽस्य महिमा श्रुतः।
[1]गुणनामप्रभावं च किंचिज्जानाति मद्गुरुः॥७२॥

बुद्धिमान व्यक्ति येनकेन-प्रकारेण धरती पर स्थित बालुकाकण की गणना भले ही कर लें, तथापि सन्तगण तक श्रीकृष्ण के नाम के प्रभाव की गणना नहीं कर सकते। मैंने पूर्वकाल में शंकर के मुख से नाम की महिमा सुना था। मेरे गुरु ही इस नाम के गुण तथा प्रभाव को कुछ-कुछ जानते हैं।।७१-७२।।

ब्रह्माऽनन्तश्च धर्मश्च सुरर्षिमनुमानवाः।
वेदाः सन्तो न जानन्ति महिम्नः षोडशीं कलाम्॥७३॥

इत्येवं कथितो नन्द महिमा ते सुतस्य च। यथामति यथाज्ञानं गुरुवक्त्राद्यथा श्रुतम्॥७४॥

कृष्णः पीताम्बरः कंसध्वंसी च विष्टरश्रवाः।
देवकीनन्दनः श्रीशो यशोदानन्दनो हरिः॥७५॥

सनातनोऽच्युतोऽनन्तः सर्वेशः सर्वरूपधृक्। सर्वाधारः सर्वगतिः सर्वकारणकारणम्॥७६॥

राधाबन्धू राधिकात्मा राधिकाजीवनः स्वयम्।
राधाप्राणो राधिकेशो राधिकारमणः स्वयम्॥७७॥

राधिकासहचारी च राधामानसपूरणः। राधाधनो राधिकाङ्गो राधिकासक्तमानसः॥७८॥

राधिकाचित्तचोरश्च राधाप्राणाधिकः प्रभुः। परिपूर्णतमं ब्रह्म गोविन्दो गरुडध्वजः॥७९॥

नामान्येतानि कृष्णस्य श्रुतानि मन्मुखाद्धृदि। जन्ममृत्युहराण्येव रक्ष नन्द शुभेक्षण॥८०॥

नाम की महिमा का १/१६ कला भाग भी ब्रह्मा, अनन्त, धर्म, देवगण, ऋषिगण, मनुगण तथा मानवगण और वेद तथा सन्त भी नहीं जान पाते। हे नन्द! मैंने तुम्हारे पुत्र की महिमा का यथामति तथा अपने ज्ञान के अनुसार गुरु के मुख से जो सुना था, वही तुमसे कह दिया। तुम कृष्ण के नामों को मुझसे सुनकर हृदय में धारण करो। कृष्ण, पीताम्बर, कंसध्वंसी, विष्टरश्रवा, देवकीनन्दन, श्रीश, यशोदानन्दन, हरि, सनातन, अच्युत, अनन्त, सर्वेश, सर्वरूपधारी, सर्वाधार, सर्वगति, सर्वकारण, कारण, राधाबन्धु, राधिकात्मा, राधिका जीवन, राधाचित्त चोर, राधाप्राणाधिक, प्रभु, परिपूर्णब्रह्मा, गोविन्द, गरुड़ध्वज। कृष्ण के ये सभी नाम हैं। हे शुभेक्षणनन्द, ये नाम जन्ममृत्यु का हरण करने वाले तथा रक्षाकारी हैं।।७३-८०।।

कृतं निरूपणं नाम्नां कनिष्ठस्य यथा श्रुतम्।
ज्येष्ठस्य हलिनो नाम्नाः संकेतं शृणु मन्मुखात्॥८१॥

गर्भसंकर्षणादेव नाम्ना संकर्षणः स्मृतः। नास्त्यन्तोऽस्यैव वेदेषु तेनानन्त इति स्मृतः॥८२॥

बलदेवो बलोद्रेकाद्धली हलधारणात्। शितिवासा नीलवासान्मुसली मुसलायुधात्॥८३॥

१. ख. गुणान्नाम०।

यह मैंने तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र कृष्ण के नामों को जैसा सुना था, उसी प्रकार कह दिया। अब अपने ज्येष्ठ पुत्र हलधर का नाम-संकेत मुझसे श्रवण करो। वे गर्भ से कर्षित (खींचे) गये। तभी **संकर्षण** कहे गये। अन्तहीन होने के कारण वे **अनन्त** हैं। महाबली होने के कारण **बलदेव** हैं। हल धारण करने के कारण **हली** हैं। नील परिधानधारी होने के कारण **शितिवासा**, मूसलधारी होने के कारण **मुसली** हैं।।८१-८३।।

रेवत्या सह संभोगाद्रेवतीरमणः स्वयम्। रोहिणीगर्भवासात्तु रोहिणेयो महामतिः।।८४।।
इत्येवं ज्येष्ठपुत्रस्य श्रुतं नाम निवेदितम्। यास्याम्यहं गृहं नन्द सुखं तिष्ठ स्वमन्दिरे।।८५।।

रेवती से संभोगरत होने के कारण वे **रेवतीरमण** हैं। रोहिणी के गर्भ में निवास करने के कारण **रोहिणेय** हैं। यह मैंने तुम्हारे ज्येष्ठपुत्र के नामों को जैसा सुना था, वैसे कह दिया। हे नन्द! अब मैं अपने गृह जा रहा हूं। तुम यहां सुख पूर्वक अपने गृह में रहो।।८४-८५।।

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा नन्दः स्तब्धो बभूव ह।
निश्चेष्टा नन्दपत्नी च जहास बालकः स्वयम्।।८६।।
प्रणम्योवाच नन्दस्तं वाक्यं विनयपूर्वकम्। पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः।।८७।।

ब्राह्मण का कथन सुनकर नन्द स्तब्ध हो गये। नन्द पत्नी निश्चेष्ट हो गईं। बालक हंसने लगा। तब नन्द ने ब्राह्मण को प्रणाम करके तथा हाथ जोड़कर और भक्ति पूर्वक नतशिर होकर, विनय पूर्वक कहा—।।८६-८७।।

नन्द उवाच

गतश्चेत्त्वं तदा कर्म करिष्यत्येव को महान्।
स्वयं शुभेक्षणं कृत्वा कुरु नाम्नाऽन्नप्राशनम्।।८८।।
यन्नामौघश्च कथितो राधाप्राणाधिको दश।
तस्यापि का वा राधेति कन्यका कस्य च ध्रुवम्।।८९।।

नन्दराज कहते हैं—हे प्रभो! यदि आप चले गये तब इस श्रेणी का और कौन महात्मा है, जो यह कार्य सम्पन्न करा सके? अतः आप स्वयं शुभक्षण निरूपित करके इसका अन्नप्राशन-नामकरण सम्पन्न करा दीजिये। हे मुनि! आपने राधाप्राणाधिक आदि जो १० नाम कहे हैं, उसका कारण क्या है? वह विशेषतया कहिये।।८८-८९।।

नन्दस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। निगूढं परमं तत्त्वं रहस्यं कथयामि ते।।९०।।

नन्द का कथन सुनकर मुनिप्रवर गर्ग हंसने लगे। उन्होंने यह गूढ परमतत्वमय रहस्य कहा—।।९०।।

गर्ग उवाच

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम्।।९१।।

पुरा गोलोकवृत्तान्तं श्रुतं शंकरवक्त्रतः।
श्रीदाम्नो राधया सार्धं बभूव कलहो महान्॥९२॥
श्रीदामशापाद्दैवेन गोपी राधा च गोकुले।
वृषभानुसुता सा च माता तस्याः कलावती॥९३॥
कृष्णस्यार्धाङ्गसंभूता नाथस्य सदृशी सती। गोलोकवासिनी सेयमत्र कृष्णाज्ञयाऽधुना॥९४॥

हे नन्द! मैं इस सम्बन्ध में पुरातन इतिहास कहता हूं। श्रवण करो। मैंने पूर्वकाल में शिव से गोलोक का वृत्तान्त श्रवण किया था। राधा तथा श्रीदामा के बीच महान् विवाद हुआ था। राधा वृषभानु की पुत्री हैं। उनकी माता कलावती हैं। सती राधा कृष्ण की अर्द्धांगिनी हैं। वे कृष्ण के ही सदृश हैं। वे गोलोकवासिनी हैं, तथापि कृष्ण के आदेश से यहाँ आई हैं।।९१-९४।।

अयोनिसंभवा देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। मातुर्गर्भं वायुपूर्णं कृत्वा च मायया सती॥९५॥
वायुनिःसरणे काले धृत्वा च शिशुविग्रहम्।
आविर्बभूव मायेयं पृथ्व्यां कृष्णोपदेशतः॥९६॥
वर्धते सा व्रजे राधा शुक्ले चन्द्रकला यथा।
श्रीकृष्णतेजसोऽर्धेन सा च मूर्तिमती सती॥९७॥

वे मूलप्रकृति ईश्वरी तथा अयोनिसंभव हैं। उन सती ने माया से माता के गर्भ को वायु से भर दिया, जिससे वे गर्भिणी लगें। जब वह गर्भगत वायु बाहर निकलने लगा, उस समय उन्होंने शिशुरूप धारण कर लिया। कृष्ण की आज्ञा के अनुसार वे माया से पृथिवी पर आविर्भूत हो गईं। राधा ब्रज में उस प्रकार बढ़ने लगीं जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि होती है। ये सती कृष्ण के आधे तेज से मूर्त्तरूप होकर अवतीर्णा हैं।।९५-९७।।

एका मूर्तिर्द्विधाभूता भेदो वेदे निरूपितः।
इयं स्त्री सा पुमान् किंवा सा वा कान्ता पुमानयम्॥९८॥
द्वे रूपे तेजसा तुल्ये रूपेण च गुणेन च। पराक्रमेण बुद्ध्या वा ज्ञानेन संपदाऽपि च॥९९॥
पुरतो गमनेनैव किं तु सा वयसाऽधिका।
ध्यायते तामयं शश्वदिमं सा स्मरति प्रियम्॥१००॥

वेद ने कहा कि एक ही मूर्त्ति राधा-कृष्ण रूपी भागद्वय में विभक्त होकर प्रकट है। इनसे एक भाग स्त्री तथा अन्य भाग पुरुष है, किंवा वे ही एक स्त्री तथा पुरुष दोनों हैं। ये दोनों रूप तेज तथा गुण में समान हैं। ये दोनों रूप पराक्रम, बुद्धि, ज्ञान में भी समान हैं, तथापि राधा कृष्ण के अवतीर्ण होने के पहले पृथिवी पर अवतरित होने के कारण आयु में कृष्ण से ज्येष्ठा हैं। श्रीकृष्ण सदैव राधा का तथा राधा सदैव कृष्ण का स्मरण करती हैं।।९८-१००।।

रचिता साऽस्य प्राणैश्च तत्प्राणैर्मूर्तिमानयम्।
अस्य राधानुसारेण गोकुलागमनं परम्॥१०१॥
स्वीकारं सार्थकं कर्तुं गोलोके यत्कृतं पुरा।
कंसभीतिच्छलेनैव गोकुलागमनं हरेः॥१०२॥
प्रतिज्ञापालनार्थाय भयेशस्य भयं कुतः।
राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता॥१०३॥

कृष्ण राधा के प्राणों से रचित हैं। राधा कृष्ण के प्राणों से ही मूर्तिमान रहती हैं। श्रीकृष्ण राधा का अनुसरण करते परमगोकुल धाम में आये हैं। पूर्वकाल में गोकुल में जो कुछ स्वीकृत हुआ था (पृथिवी का भारण हरण कार्य स्वीकृत हुआ था), उसे ही सम्पूर्णतः करने के लिये कंस के भय का दिखावा करके भगवान् गोकुल में आये हैं। भय के ईश्वर को किसका भय, तथापि उसी पूर्ण प्रतिज्ञा के पालनार्थ कृष्ण-राधा का धरती पर आगमन होना कहा गया है। राधा शब्द की व्युत्पत्ति सामवेद में कही गई है।।१०१-१०३।।

नारायणस्तामुवाच ब्रह्माणं नाभिपङ्कजे।
ब्रह्मा तां कथयामास ब्रह्मलोके च शंकरम्॥१०४॥
पुरा कैलासशिखरे मामुवाच महेश्वरः। देवानां दुर्लभां नन्द निशामय वदामि ते॥१०५॥

सर्वाग्र में नारायण द्वारा नाभिकमलस्थ ब्रह्मा को यह व्युत्पत्ति बतलाई गई थी, जिसे ब्रह्मा ने ब्रह्मलोक में शंकर से कहा था। पूर्वकाल में राधा नाम की यह व्युत्पत्ति कैलास शिखर पर महेश्वर ने मुझसे कहा था। हे नन्द! यह राधा नाम की व्युत्पत्ति देवगण के लिये भी दुर्लभ है, वह मैं तुमसे कहता हूं।।१०४-१०५।।

सुरासुरमुनीन्द्राणां वाञ्छितां मुक्तिदां पराम्।
रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम्॥१०६॥
आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्।
धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम्॥१०७॥

इस राधा नाम की व्युत्पत्ति की आकांक्षा देवता, असुर, मुनिगण सभी करते हैं। यह परामुक्तिप्रदा है। राधा में स्थित 'रेफ' (र) कोटिजन्मार्जित शुभाशुभ कर्मभोग तथा पातक नाशक हैं। इस नाम का "आ" गर्भवास, मृत्यु तथा रोगनाशक है। 'धकार' आयु की हानि से तथा यह द्वितीय 'आ' भवबन्धन नाशक है।।१०६-१०७।।

श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः न प्रणश्यति संशयः।
रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे॥१०८॥

सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम्। धकारः सहवासं च तत्तुल्यकालमेव च॥१०९॥

ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः [1]समम्।
आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिं हरौ यथा॥११०॥

राधा नाम के श्रवण, स्मरण, कीर्त्तन से सर्वदोष समूह नष्ट हो जाते हैं। यह निश्चित है। राधा नाम के आद्य अक्षर 'रकार' के उच्चारण से कृष्ण के चरण-कमल की भक्ति तथा दास्य भाव की प्राप्ति होती है। राधा नाम का 'आ' सभी इच्छित वस्तु तथा कामना प्रदाता है। यह 'आ' सदा आनन्ददायक सर्वसिद्धिप्रद तथा ईश्वर लाभ कराने वाला है। 'धकार' कृष्ण के निकट निवास प्रदान करने वाला है। यह प्राणीगण को सार्ष्टि मुक्ति, सारूप्य मुक्ति तथा श्रीहरि के समान तत्त्वज्ञान प्रदान करता है। 'धकार' के साथ वाला 'आकार((धा) तेजराशि तथा हरि के समान दान दानशक्ति प्रदान करता है।।१०८-११०।।

योगशक्तिं योगमतिं सर्वकालं हरिस्मृतिम्।
श्रृत्युक्तिस्मरणाद्योगान्मोहजालं च किल्विषम्।
रोगशोकमृत्युयमा वेपन्ते नात्र संशयः॥१११॥
राधामाधवयोः किंचिद्व्याख्यानं च यतः श्रुतम्।
तदुक्तं च यथाज्ञानं साकल्यं वक्तुमक्षमः॥११२॥
आराद्वृन्दावने नन्द विवाहो भविताऽनयोः।
पुरोहितो जगद्धाता कृत्वाऽग्निं साक्षिणं मुदा॥११३॥

कुबेरपुत्रमोक्षं च गव्यस्याऽहृत्य भक्षणम्। हिंसनं धेनुकस्यैव कानने तालभोजनम्॥११४॥
बककेशिप्रलम्बानां हिंसनं चाऽथ लीलया। मोक्षणं द्विजपत्नीनां मिष्टान्नपानभोजनम्॥११५॥
भञ्जनं शक्रयागस्य शक्राद्गोकुलरक्षणम्। गोपीनां वस्त्रहरणं व्रतसंपादनं तथा॥११६॥

ताभ्यः पुनर्वस्त्रदानं वरदानं यथेप्सितम्।
चेतसां हरणं तासामयं वश्याः करिष्यति॥११७॥

यह 'आ' योगशक्ति, योगबुद्धि तथा सर्वदा हरि स्मृति प्रदान करता है। इस राधा नाम के स्मरण, उच्चारण, श्रवण तथा इसके सुयोग से व्यक्ति भी पापराशि तथा उस पर आच्छन्न मोहजाल ध्वस्त हो जाता है। रोग, शोक, मृत्यु, यम आदि उसके भय से कम्पित हो जाते हैं। मैंने राधा-माधव के स्तव-ध्यान के सम्बन्ध में जो कुछ सुना था, वह सब अपनी जानकारी के अनुसार यत्किञ्चित् कह दिया। इसे सम्पूर्णतया वर्णन करने की क्षमता मुझमें नहीं है। हे नन्द! इन कृष्ण का राधा के साथ इसी वृन्दावन में विवाह होगा। जगत्विधाता ब्रह्मा इस विवाह के पुरोहित होंगे। यह कार्य अग्नि के साक्ष्य में सम्पन्न होगा। यह तुम्हारा पुत्र कृष्ण कुबेर पुत्रों की मुक्ति, क्षीर-नवनीतादि

१. क. स्वयम्।

भक्षण, धेनुकासुरवध. वन में ताल भक्षण तथा लीलाक्रम में बक, केशी, प्रलम्ब आदि असुरगण का वध करेगा। यह द्विजपत्नियों से मिष्ठान्न भोजन तथा पानीय पान करेगा। यह उनको मुक्ति देगा, इन्द्रयज्ञ भग्न करेगा तथा इन्द्र से गोकुल की रक्षा करेगा। यह गोपीगण का वस्त्र हरण तथा उनके व्रत को सम्पन्न करेगा। तदनन्तर उनको पुनः वस्त्र तथा इच्छित वर प्रदान करेगा। तदनन्तर कृष्ण उनका चित्तहरण करके वशीभूत कर लेगा॥१११-११७॥

रासोत्सवं महारम्यं सर्वेषां हर्षवर्धनम्। पूर्णचन्द्रोदये नक्तं वसन्ते रासमण्डले॥११८॥

गोपीनां नवसंभोगात्कृत्वा पूर्णं मनोरथम्।
ताभिः सह जलक्रीडां करिष्यति कुतूहलात्॥११९॥
विच्छेदोऽस्य वर्षशतं श्रीदामशापहेतुकम्।
गोपालैर्गोपिकाभिश्च भविता राधया सह॥१२०॥
मथुरागमनं तत्र गोपीनां शोकवर्धनम्।
पुनः प्रबोधनं तासां दानमाध्यात्मिकस्य च॥१२१॥

स्यन्दनाक्रूरयो रक्षां सद्यस्ताभ्यां करिष्यति। रथमारोहणं कृत्वा मथुरागमनं पुनः॥१२२॥

पितृभ्रातृव्रजैः सार्धं विलङ्घ्य यमुनां व्रजे।
अक्रूराय ज्ञानदानं दर्शयित्वा स्वकं जले॥१२३॥

तत्पश्चात् वे महारम्य, हर्षवर्द्धक रासोत्सव करेंगे। वसन्त में, पूर्णिमा की रात्रि में, रासमण्डल में वे गोपीगण से नवसंभोग करके उनकी मनोकामना पूर्ण करेंगे। उनके साथ वे कुतूहलमय जलक्रीड़ा करेंगे। तदनन्तर श्रीदाम के शाप के कारण उनका इन सबसे १०० वर्ष का विछोह होगा। इस १०० वर्ष तक उनकी गोप, गोपियों तथा राधा के साथ वियोग की स्थिति रहेगी। कृष्ण के मथुरागमन करने के कारण गोपीगण का शोक बढ़ जायेगा। इसके पश्चात् आध्यात्मिक उपदेश देकर प्रभु गोपियों से अक्रूर की तथा रथ की रक्षा करेंगे। तदनन्तर वे रथ पर बैठकर पुनः आने की प्रतिज्ञा करेंगे। इस प्रकार वे पिता, भाई एवं व्रज के बालकों के साथ यमुना पार करेंगे। वे अक्रूर को ज्ञान दान देंगे। जल के भीतर अपने रूप का दर्शन भी करायेंगे॥११८-१२३॥

कौतुकेन च सायाह्ने नगरात्सर्वदर्शनम्।
मालाकारतन्तुवायकुब्जानां बन्धमोक्षणम्॥१२४॥

धनुर्भङ्गं शंकरस्य यागस्थानप्रदर्शनम्। हिंसनं गजमल्लानां दर्शनं नृपतेः [1]पुरः॥१२५॥
कंसस्य हिंसनं सद्यः पित्रोर्निगडमोक्षणम्। प्रबोधनं च युष्माकमुग्रसेनाभिषेचनम्॥१२६॥

तस्य तस्य वधूनां च ज्ञानाच्छोकापनोदनम्।
भ्रातुः स्वस्योपनयनं विद्यादानं गुरोर्मुखात्॥१२७॥

१. क. सभाम्।

सायंकाल श्रीकृष्ण मथुरा में आकर कौतूहल के कारण नगर भ्रमण करते समय वहां के लोगों को अपना दर्शन प्रदान करेंगे। वे वहां माली, दरजी, कुब्जा का भवबन्धन छिन्न करेंगे। वे शङ्कर का धनुष भंग करके यज्ञभूमि को देखेंगे। इसके अनन्तर कुवलयापीड़ गज एवं चारुण आदि मल्लों का वध करके मथुरा के राजा कंस को देखने जायेंगे। वे तत्काल कंसवध करके पिता को तथा माता को बेड़ी से मुक्त करायेंगे। वे वहां तुम सबको प्रबोधित करके उग्रसेन का तिलक मथुरा नरेश के रूप में करेंगे। वे मृतकों की पत्नियों के शोक का नाश ज्ञानदान द्वारा करके बलराम का एवं अपना उपायन संस्कार हो जाने पर गुरु के यहां गुरुमुख प्रदत्त विद्या का अध्ययन करेंगे।।१२४-१२७।।

गुरुपुत्रप्रदानं च पुनरागमनं गृहे। छलनं नृपसैन्यानां यवनस्य दुरात्मनः।।१२८।।

निर्माणं द्वारकायाश्च मुचुकुन्दस्य मोक्षणम्।
द्वारकागमनं चैव यादवैः सह कौतुकात्।।१२९।।
स्त्रीसंघानां विहरणं ताभिः सार्धं च क्रीडनम्।
सौभाग्यवर्धनं तासां पुत्रपौत्रादिकस्य च।।१३०।।
मणिसंबन्धिनो मिथ्याकलङ्कस्य च मोक्षणम्।
साहाय्यं पाण्डवानां च भारावतरणादिकम्।।१३१।।

निष्पन्नं राजसूयस्य धर्मपुत्रस्य लीलया। पारिजातस्य हरणं शक्राहंकारमर्दनम्।।१३२।।

वे गुरु के मृतपुत्र को पुनः जीवनदान देकर गुरु को प्रदान करायेंगे। तदनन्तर स्वगृह लौट आयेंगे। तदनन्तर वे राजा की सेना से छल करके दुष्ट कालयवन का वध, मुचुकुंद को मोक्ष दे करके यादवों के साथ द्वारका जायेंगे। यही बालक कृष्ण द्वारका का निर्माण करके वहां स्त्रियों से विवाह करेंगे। उनके साथ क्रीड़ा करके, उनके साथ पुत्र-पौत्रादि के सौभाग्य की वृद्धि करेंगे। तदनन्तर कृष्ण मणि अपहरण के मिथ्या दोष से कलंकित होकर उससे मुक्त होंगे। यही बालक कृष्ण पाण्डवगण की सहायता करके धरती के भार का हरण भी करेंगे। ये धर्मपुत्र युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ को लीला से पूर्ण करायेंगे। तदनन्तर स्वर्ग से पारिजात वृक्ष का हरण करके इन्द्र के अहंकार को चूर्ण कर देंगे।।१२८-१३२।।

व्रतपूर्णं च सत्याया बाणस्य भुजकृन्तनम्।
मर्दनं शिवसैन्यानां हरस्य जृम्भणं परम्।।१३३।।

हरणं बाणपुत्र्याश्चैवानिरुद्धस्य मोक्षणम्। वाराणस्याश्च दहनं विप्रदारिद्र्यभञ्जनम्।।१३४।।
विप्रपुत्रप्रदानं च दुष्टानां दमनादिकम्। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन युष्माभिः सह दर्शनम्।।१३५।।

ये कृष्ण सत्यभामा के व्रत को पूर्ण करायेंगे। बाणासुर की सहस्र भुजाओं का छेदन करेंगे। शिव की सेना का मर्दन करके उनका जृंभण करेंगे। ये बाण तनया उषा का हरण, अनिरुद्ध की बन्धन मुक्ति, वाराणसी नगरी का दहन, ब्राह्मण की दरिद्रता का नाश करके ब्राह्मण के मृतपुत्र को लाकर दुष्ट दलन करके तीर्थयात्रा काल में तुम यादवों से पुनः मिलेंगे।।१३३-१३५।।

कृत्वा च राधया सार्धं व्रजमागमिता पुनः।
प्रस्थापयित्वा द्वारां च परं नारायणांशकम्॥१३६॥
सर्वं निष्पादनं कृत्वा गोलोकं राधया सह।
गमिष्यत्येव गोलोकं नाथोऽयं जगतां पतिः॥१३७॥
नारायणश्च वैकुण्ठं गमिता स्म त्वया सह।
धर्मगेहमृषी द्वौ च विष्णुः क्षीरोदमेव च॥१३८॥

ये तदनन्तर राधा सहित पुनः ब्रजमण्डल आकर अपने नारायणांश को द्वारका में स्थापित करेंगे। यह सब करके वे राधा के साथ पुनः गोलोक गमन करेंगे। नारायण तुम लोगों के साथ वैकुण्ठ गमन करेंगे। नर-नारायण ऋषिद्वय धर्मदेव के यहां जायेंगे। विष्णु क्षीरसागर गमन करेंगे।।१३६-१३८।।

इत्येवं कथितं नन्द भविष्यं वेदनिर्णयम्। श्रूयतां सांप्रतं कर्म यदर्थं गमनं मम॥१३९॥
माघशुक्लचतुर्दश्यां कुरु कर्म शुभे क्षणे। गुरुवारे च रेवत्यां विशुद्धे चन्द्रतारके॥१४०॥
चन्द्रस्थे मीनलग्ने च लग्नेशपूर्णदर्शने। वणिजे करणोत्कृष्टे शुभयोगे मनोहरे॥१४१॥
सुदुर्लभे दिने तत्र सर्वोत्कृष्टोपयोगिके।
आलोच्य पण्डितैः सार्धं कुरु मर्म मुदाऽन्वितः॥१४२॥

हे नन्द! यह मैंने तुमसे भविष्य के सम्बन्ध में वेद का निर्णय कह दिया। अब तुम वह सब कार्य श्रवण करो, जिस हेतु मेरा यहां आगमन हुआ है। माघ शुक्ला चतुर्दशी के दिन शुभमुहूर्त में गुरुवार के दिन रेवती नक्षत्र है। इस दिन चन्द्रमा तथा तारक विशुद्ध स्थिति में हैं। चन्द्रमा मीन लग्न में है। उस पर लग्नेश की पूर्ण दृष्टि है। (बृहस्पति की पूर्ण दृष्टि है) करण अत्युत्तम वणिज् नामक है। उस समय मनोहर तथा शुभ योग भी है। ऐसा दिन अत्यन्त दुर्लभ है तथा इसमें सर्वोत्कृष्ट उपयोगी योग भी हैं। तुम विद्वानों के साथ इस पर विचार करके प्रसन्नता के साथ मुदित मन से यह (अन्नप्राशन, नामकरण नामक) कर्म सम्पन्न करो।।१३९-१४२।।

इत्युक्त्वा बहिरागत्य स उवास मुनीश्वरः।
हृष्टो नन्दो यशोदा च कर्मोद्योगं चकार ह॥१४३॥
एतस्मिन्नन्तरे द्रष्टुं गर्गं गोपाश्च गोपिकाः।
बालका बालिकाश्चैव ह्याजग्मुर्नन्दमन्दिरम॥१४४॥
ददृशुस्ते मुनिश्रेष्ठं ग्रीष्ममध्याह्नभास्करम्। शिष्यसंघैः परिवृतं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥१४५॥
गूढयोगं प्रवोचन्तं सिद्धाय पृच्छते मुदा।
पश्यन्तं सस्मितं नन्दभवनानां परिच्छदम्॥१४६॥
स्वर्णसिंहासनस्थं च योगमुद्राधरं वरम्।
भूतं भव्यं भविष्यं च पश्यन्तं ज्ञानचक्षुषा॥१४७॥

उस एकान्त कक्ष में यह कहने के उपरान्त मुनीश्वर गर्ग बाहर आकर आसनासीन हो गये। यह सब सुनकर नन्द एवं यशोदा अत्यन्त हर्षित होकर उक्त कार्य को सम्पन्न करने का उद्योग करने लगे। इसके पश्चात् ऋषिगर्ग के दर्शनार्थ वहां गोप-गोपीगण, बालक तथा बालिकायें आईं। वे सब देखते हैं कि ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्य के समान तथा शिष्यों से घिरे, ब्रह्मतेज की प्रभा से प्रदीप्त मुनि गर्ग से उनके शिष्यगण सिद्धि के लिये दृढ़ योग के सम्बन्ध में प्रशन कर रहे हैं। वे ऋषि सानन्दचित्त होकर नन्दभवन की शोभा का अवलोकन कर रहे हैं। वे मुनि रत्नसिंहासनासीन होकर हाथों से योगमुद्रा बनाकर स्थित हैं। वे अपने ज्ञाननेत्रों से भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान को देख रहे हैं।।१४३-१४७।।

हृदीश्वरं प्रपश्यन्तं सिद्धं मन्त्रप्रभावतः।
बहिर्यशोदाक्रोडस्थं तादृशं सस्मितं शिशुम्।।१४८।।
महेशदत्तध्यानेन यद्रूपं च निरूपितम्। तं दृष्ट्वा परमप्रीत्या पूर्णभूतमनोरथम्।।१४९।।
साश्रुनेत्रं पुलकितं निमग्नं भक्तिसागरे। हृदि पूजां प्रणामं च कुर्वन्तं योगचर्यया।।१५०।।

मुनिप्रवर गर्ग सिद्धमन्त्र के प्रभाव से हृद्गत ईश्वर का दर्शन कर रहे थे तथा बाह्यतः हृदयस्थ ईश्वर की छवि के अनुरूप यशोदा की गोद में स्थित शिशु कृष्ण का भी दर्शन कर रहे थे। भूतभावन महेश द्वारा प्रदत्त ध्यानयोग की जो विधि उनको मिली थी तथा जो रूप उसमें निरूपित था तदनुसार वही मूर्त्ति नेत्रों से सम्मुख देखकर ऋषिगर्ग पूर्ण मनोरथ हो गये तथा उन्होंने परमाप्रीति प्राप्त कर लिया। वे साश्रुनेत्र होकर पुलकित हो गये। वे अब भक्तिसागर में निमग्न थे। उन्होंने योगमार्ग से हृदय में कृष्ण की पूजा तथा प्रणामादि भी किया।।१४८-१५०।।

मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते तं च स च तानाशिषं ददौ।
आसनस्थो मुनिस्तस्थौ ते जग्मुः स्वालयं मुदा।।१५१।।
नन्दः स्वानन्दयुक्तश्च बन्धून्मङ्गलपत्रिकाः। प्रस्थापयामास शीघ्रमाराद्दूरस्थितान्मुदा।।१५२।।

इन ऋषि गर्ग को सभी समागत व्यक्तिगण तथा स्त्रियों ने नतशिर होकर प्रणाम किया। मुनि गर्ग ने भी सभी को शुभाशीर्वाद प्रदान किया। तत्पश्चात् मुनिगर्ग तो वही आसन पर स्थित बैठे रह गये, परन्तु सभी समागत लोग स्वगृह मुदित मन से चले गये। अब नन्द ने आनन्दित मन से अपने बन्धुगण को निमन्त्रण स्वरूप मङ्गलपत्रिका भेजा। सभी निकटवर्त्ती एवं दूरवर्त्ती बन्धुगण को मुदित मन से उन्होंने यह निमन्त्रण भेजा था।।१५१-१५२।।

दधिकुल्यां दुग्धकुल्यां घृतकुल्यां प्रपूरिताम्।
गुडकुल्यां तैलकुल्यां मधुकुल्यां च विस्तृताम्।।१५३।।
नवनीतकुल्यां पूर्णां च तक्रकुल्यां यदृच्छया।
शर्करोदककुल्यां च परिपूर्णां च लीलया।।१५४।।
तण्डुलानां च शालीनामुच्चैश्च शतपर्वतान्।
पृथुकानां शैलशतं लवणानां च सप्त च।।१५५।।

अब नन्दराज ने वहां दधि-दुग्ध-घृत-गुड़-मधु-तैल-नवनीत-तक्र-शर्करा तथा जल की झील निर्मित कराया। उन्होंने साठीधान के १०० पर्वत, लवण के सात पर्वत वहां निर्मित कराये। वहां उन्होंने चिवड़ा के १०० पर्वत भी निर्मित कराये।।१५३-१५५।।

सप्त शैलाञ्छर्करानां लड्डुकानां च सप्त च।
परिपक्वफलानां च तत्र षोडश पर्वतान्।।१५६।।
यवगोधूमचूर्णानां पक्वलड्डुकपिण्डकान्।
मोदकानां च शैलं च स्वस्तिकानां च पर्वतान्।।१५७।।

नन्द ने ७ शर्करा के पर्वत, लड्डू के ७ पर्वत, पके फल के १६ पर्वत, जौ-गेहूं के चूर्ण के लड्डू, पिण्ड, मोदक, इमरती के अनेक पर्वतों का निर्माण कराया।।१५६-१५७।।

कपर्दकानामत्युच्चैः शैलान्सप्त च नारद।
कर्पूरादिकयुक्तानां ताम्बूलानां च मन्दिरम्।।१५८।।
विस्तृतं द्वारहीनं च वासितोदकसंयुतम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन समन्वितम्।।१५९।।

उन्होंने कौड़ी का अत्युच्च ७ पर्वत बनवाया। कर्पूरयुक्त ताम्बूल का अत्यन्त विस्तृत द्वारहीन गृह बनवाया। सुवासित जल का गृह भी बनवाया, जहां के जल में चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम मिश्रित था।।१५८-१५९।।

नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि विविधानि च।
मुक्ताफलानि रम्याणि प्रवालानि मुदाऽन्वितः।।१६०।।
नानाविधानि चारूणि वासांसि भूषणानि च।
पुत्रान्नप्राशने नन्दः कारयामास कौतुकात्।।१६१।।

कृष्ण के अन्नप्राशन संस्कार के लिये राजा नन्द ने वहां नाना जाति के रत्न, स्वर्ण, मुक्ता, प्रवाल, नाना सुन्दर एवं विभिन्न प्रकार के वस्त्राभूषण को अत्यन्त उत्सुकता से एकत्र किया था।।१६०-१६१।।

संस्कारयुक्तं रुचिरं चन्दनद्रवचर्चितम्। प्राङ्गणं कदलीस्तम्भं रसालनवपल्लवैः।।१६२।।
ग्रथितैः सूक्ष्मवस्त्रेण वेष्टयामास कौतुकात्। युक्तं मङ्गलकुम्भैश्च फलपल्लवसंयुतैः।।१६३।।
चन्दनागुरुकस्तूरीपुष्पमालाविराजितैः। माल्यानां वरवस्त्राणां राशिभिश्च विराजितम्।।१६४।।
गवां च मधुपर्काणामासनानां च नारद।
फलानां जलकुम्भानां समूहैश्च समन्वितम्।।१६५।।
नानाप्रकारैर्वाद्यैश्च दुर्लभैः सुमनोहरैः। ढक्कानां दुन्दुभीनां च पटहानां तथैव च।।१६६।।
मृदङ्गमुरजादीनामानकानां समूहकैः। वंशीसंनहनीकांस्यशरयन्त्रैश्च शब्दितम्।।१६७।।
विद्याधरीणां नृत्येन भृङ्गिमाभ्रमणेन च। गन्धर्वनायकानां च सङ्गीतैर्मूर्च्छनायुतैः।।१६८।।

स्वर्णसिंहासनानां च रथानां निःस्वनैर्युतम्।
एतस्मिन्नन्तरे नन्दमुवाच वाचको मुदा॥१६९॥

नन्दराज ने पुत्र के अन्नप्राशन के उपलक्ष्य में यह सब एकत्र करने के अनन्तर कौतुक के कारण कदली स्तम्भों से प्रांगण को घेर दिया था। वे कदली स्तम्भ आम के पत्तों की बन्दनवार से शोभित किये गये। उस प्रांगण का संस्कार करके मनोहर चन्दन चर्चित, चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-पुष्पमाला युक्त फलपल्लव संयुक्त मंगलकुंभों (घटों) से सुशोभित किया गया था। मालाओं तथा उत्तम वस्त्रों से भी उसको सुशोभित किया गया। हे नारद! वहां गौ, मधुपर्क, आसन, फल, पद्मसमूह सजाये गये। मनोहर दुन्दुभि तथा अनेक अन्य वाद्य जैसे ढक्का, पटह, मृदंग, मुरज, आनक, वंशी, सन्नहनी, कांस्य, स्वरयन्त्र का कोलाहल शब्द प्रांगण में गूंज रहा था। वहां विद्याधारियों का मनोहर भंगिमा के साथ नृत्य और गन्धर्व नायकों के मनोहर गीतों के मूर्च्छनालाप होने लगे। प्रांगण में स्थान-स्थान पर स्वर्ण के सिंहासन तथा रथसमूह स्थापित थे। इन सबसे वहां की शोभा वृद्धि हो रही थी। तदनन्तर एक संदेश-वाहक ने नन्दराज से कहा-॥१६२-१६९॥

आजग्मुर्बल्लवेन्द्राश्च बान्धवा बल्लवास्तथा।
अश्वस्थाश्च गजस्थाश्च रथस्थाश्चेति सत्वरम्॥१७०॥
आजग्मू राजपुत्राश्च रत्नालङ्कारभूषिताः।
आगतो गिरिभानुश्च सस्त्रीकश्च सकिंकरः॥१७१॥
रथानां च चतुर्लक्षं गजानां च तथैव च।
तुरङ्गमाणां कोटिश्च शिबिकानां तथैव च॥१७२॥

(सन्देशवाहक कहता है)-"हे राजन्! यहां गिरिभानु अपनी पत्नी के साथ आये हैं। वे अपने किंकरों सहित आये हैं। उनके साथ चार लाख रथ, चार लाख गज, करोड़ों अश्व, एक करोड़ पालकी भी आई हैं। आपके अन्य बान्धव वल्लवराजगण, गोपगण हाथियों, अश्वों तथा रथों पर आरूढ़ होकर यहां आये हैं। यहां रत्नालंकार भूषित अनेक राजपुत्रों का भी आगमन हो गया है।॥१७०-१७२॥

ऋषीन्द्राणां मुनीन्द्राणां विप्राणां च विपश्चिताम्।
बन्दिनां भिक्षुकाणां च समूहैश्च समीपतः॥१७३॥
गोपानां गोपिकानां च संख्यां कर्तुं च कः क्षमः।
पश्याऽगत्य बहिर्भूयेत्युवाच प्राङ्गणे स्थितः॥१७४॥

"ऋषिगण, मुनिगण, ब्राह्मणगण, विद्वान् लोग, बन्दी, भिक्षुक का समूह भी निकट तक आ पहुंचा है। इतने गोप-गोपी भी आये हैं, उनकी संख्या गणना कौन कर सकेगा? आप इस प्रांगण से बहिर्गत् होकर स्वयं सब देखिये।" यह संवाद उस संदेशवाहक ने आंगन में स्थित होकर नन्दराज को दिया।॥१७३-१७४॥

श्रुत्वैवं तानुपव्रज्य समानीय व्रजेश्वरः। प्राङ्गणे वासयामास पूजयामास सत्वरम्॥१७५॥
ऋष्यादिकसमूहं च प्रणम्य शिरसा भुवि।
पाद्यादिकं च तेभ्यश्च प्रददौ सुसमाहितः॥१७६॥

यह संवाद सुनकर व्रजेश्वर नन्द तत्काल प्रांगण से बाहर निकले और उन्होंने सभी समागत लोगों के पास जाकर उन सबको आंगन में लाकर आसीन कराया। उन्होंने सबका सत्कार किया। नन्द ने ऋषियों के समूह को भूमि पर शिर रखकर प्रणाम करके उनको पाद्य आदि समाहित होकर निवेदित किया॥१७५-१७६॥

वस्तुभिर्बन्धुभिः पूर्णं बभूव नन्दगोकुलम्।
न कोऽपि कस्य शब्दं च श्रोतुं शक्तश्च तत्र वै॥१७७॥
त्रिमुहूर्तं कुबेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा। चकार स्वर्णवृष्ट्या च परिपूर्णं च गोकुलम्॥१७८॥
कौतुकापह नवं चक्रुर्बन्धुवर्गाश्च क्रीडया।
आनम्रकंधराः सर्वे दृष्ट्वा नन्दस्य संपदम्॥१७९॥
नन्दः कृताहनिकः पूतो धृत्वा धौते च वाससी।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनैव भूषितः॥१८०॥

उस समय नन्दभवन वस्तु समूह तथा बन्धुवर्ग से इतना भर गया था कि कोई भी किसी की बात नहीं सुन पा रहा था। कुबेर ने श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिये गोकुल में तीन मुहूर्त्त तक स्वर्ण वर्षा करके गोकुल को स्वर्ण से भर दिया। जो सब भेंट नन्द के बन्धुवर्ग बालक कृष्ण को अर्पित करने के लिये आये थे, वे सभी लोग नन्द का यह ऐश्वर्य देखकर लज्जा से नतमस्तक होकर छिप गये। तत्पश्चात् नन्दराज ने अपना आह्निक आदि इष्टकार्य सम्पन्न करा और पवित्र धुला वस्त्र पहना। नन्दराज चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम से भूषित थे॥१७७-१८०॥

उवास पादौ प्रक्षाल्य स्वर्णपीठे मनोहरे।
गर्गस्य च मुनीन्द्राणां गृहीत्वाऽऽज्ञां व्रजेश्वरः॥१८१॥
संस्मृत्य विष्णुमाचान्तः स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
कृत्वा कर्म च वेदोक्तं भोजयामास बालकम्॥१८२॥
गर्गवाक्यानुसारेण बालकस्य मुदाऽन्वितः।
कृष्णेति मङ्गलं नाम ररक्ष च शुभे क्षणे॥१८३॥
सघृतं भोजयित्वा च कृत्वा नाम जगत्पतेः।
वाद्यानि वादयामास कारयामास मङ्गलम्॥१८४॥

नन्दराज चरणों का प्रक्षालन करके ऋषिगर्ग तथा अन्य मुनियों की आज्ञा से स्वर्णपीठ पर

आसीन हो गये। उन्होंने विष्णु का स्मरण करके आचमन किया। तदनन्तर स्वस्तिवाचन एवं वेद में कहे गये कर्म को सम्पन्न करके बालक को (अन्नप्राशनार्थ) भोजन कराया। तदनन्तर ब्रजराज ने आनन्दित होकर गर्ग के कथनानुसार बालक का "कृष्ण" नाम रखा, जो मंगलप्रद था। घृतयुक्त अन्न का बालक को भोजन कराकर तथा जगत्पति का शुभक्षण में नामकरण-संस्कार सम्पन्न करके नन्द ने वहां अनेक वाद्यों का वादन कराकर मङ्गलानुष्ठान भी करा दिया।।१८१-१८४।।

नानाविधानि स्वर्णानि धनानि विविधानि च।
भक्ष्यद्रव्याणि वासांसि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा।।१८५।।
बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च सुवर्णं विपुलं ददौ।
भाराक्रान्ताश्च ते सर्वे न शक्ता गन्तुमेव च।।१८६।।

नन्द ने मुदित होकर अनेक प्रकार के स्वर्ण, रत्न, धन, भक्ष्यद्रव्य, वस्त्र ब्राह्मणों को प्रदान किया। उन्होंने बन्दीगण तथा भिक्षुकों को विपुल स्वर्ण प्रदान किया था। इनको प्रदत्त स्वर्ण का भार इतना अधिक था कि उसके बोझ से वे चल ही नहीं पा रहे थे।।१८५-१८६।।

ब्राह्मणान्बन्धुवर्गांश्च भिक्षुकांश्च विशेषतः।
मिष्टान्नं भोजयामास परिपूर्णं मनोहरम्।।१८७।।
दीयतां दीयतां चैव खाद्यतां खाद्यतामिति।
बभूव शब्दोऽत्युच्चैश्च सततं नन्दगोकुले।।१८८।।

नन्दराज ने ब्राह्मणों, बन्धुओं तथा भिक्षुकगण को विशेष रूप से मनोहर मिष्ठान्न का भोजन कराया। नन्द के गोकुल में "दो प्रदान करो, भक्षण करो, भक्षण करो का शब्द सतत् होने लगा।।१८७-१८८।।

रत्नानि परिपूर्णानि वासांसि भूषणानि च।
प्रवालानि सुवर्णानि मणिसाराणि यानि च।।१८९।।
चारूणि स्वर्णपात्राणि कृतानि विश्वकर्मणा।
गत्वा गर्गाय विनयं चकार व्रजपुङ्गवः।।१९०।।
शिष्येभ्यः स्वर्णभाराणि प्रददौ विनयान्वितः।
द्विजेभ्योऽप्यवशिष्टेभ्यः परिपूर्णानि नारद।।१९१।।

ब्रजपुंगव नन्दराज ने रत्न पूर्णपात्र, वस्त्राभूषण, प्रवाल, स्वर्ण, मणियों का सार, उत्तम स्वर्णपात्र जो विश्वकर्मा द्वारा निर्मित थे, वह सब विनय पूर्वक गर्ग को प्रदान किया। हे नारद! उन्होंने गर्ग के शिष्यों तथा अन्य ब्राह्मणों को भी विशेष रूप से तथा पूर्णरूप से स्वर्णभार दिया।।१८९-१९१।।

नारायण उवाच

गृहीत्वा श्रीहरिं गर्गो जगाम निभृतं मुदा।
तुष्टाव परया भक्त्या प्रणम्य च तमीश्वरम्॥१९२॥

साश्रुनेत्रः सपुलको भक्तिनम्रात्मकंधरः। पुटाञ्जलियुतौ भूत्वोवाच कृष्णपादाम्बुजे॥१९३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–इसके अनन्तर गर्ग मुनि कृष्ण को लेकर एक एकान्त स्थान में गये। वे वहां इन प्रभु को भक्ति पूर्वक प्रणाम करके उनका स्तव करने लगे। ऋषिप्रवर ने पुलकित होकर तथा भक्ति के साथ नतमस्तक होकर और हाथ जोड़ कर कहा–॥१९२-१९३॥

गर्ग उवाच

हे कृष्ण जगतां नाथ भक्तानां भयभञ्जन।
प्रसन्नो भव मामीश देहि दास्यं पदाम्बुजे॥१९४॥

त्वत्पित्रा मे धनं दत्तं तेन मे किं प्रयोजनम्। देहि मे निश्चलां भक्तिं भक्तानामभयप्रद॥१९५॥

अणिमादिकसिद्धिषु योगेषु मुक्तिषु प्रभो।
ज्ञानतत्त्वेऽमरत्वे वा किंचिन्नास्ति स्पृहा मम॥१९६॥
इन्द्रत्वे वा मनुत्वे वा स्वर्गलोकफले चिरम्।
नास्ति मे मनसा वाञ्छा त्वत्पादसेवनं विना॥१९७॥
सालोक्यं सार्ष्टिसारूप्ये सामीप्यैकत्वमीप्सितम्।
नाहं गृहणामि ते ब्रह्मंस्त्वत्पादसेवनं विना॥१९८॥

ऋषि गर्गाचार्य कहते हैं–हे कृष्ण! आप जगन्नाथ तथा भक्तों का भय नष्ट करने वाले हैं। आप प्रसन्न होकर मुझे अपने चरणकमल का दासत्व प्रदान करिये। आपके पिता नन्द ने मुझे जो धन दिया है, उसका मुझे क्या प्रयोजन? आप मुझे भक्तों को अभय प्रदान करने वाली अपनी निश्चला भक्ति दीजिये। हे प्रभो! अणिमादि ऐश्वर्य, सिद्धि, योग, मुक्ति, ज्ञानतत्व, अमरत्व की मुझे तनिक भी कामना नहीं है। हे भगवान्! आपके दासत्व के आगे मुझे इन्द्रत्व किंवा मनुत्वपद अथवा चिरकालीन स्वर्गभोग भी मुझे वांछित नहीं है। हे भगवान्! मुझे आपके दासत्व के अतिरिक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य तथा सारूप्य मुक्ति भी नहीं चाहिये। आपके दासत्व के बिना मेरे लिये इन सबका कोई प्रयोजन नहीं है॥१९४-१९८॥

गोलोके वाऽपि पाताले वासे नास्ति मनोरथः।
किन्तु ते चरणाम्भोजे संततं स्मृतिरस्तु मे॥१९९॥
त्वन्मन्त्रं शंकरात्प्राप्य कतिजन्मफलोदयात्।
सर्वज्ञोऽहं सर्वदर्शी सर्वत्र गतिरस्तु मे॥२००॥

कृपां कुरु कृपासिन्धो दीनबन्धो पदाम्बुजे।
रक्ष मामभयं दत्त्वा मृत्युर्मे किं करिष्यति॥२०१॥

मेरी तो इच्छा गोलोक किंवा पाताल में भी निवास की नहीं है। मेरी यह इच्छा है कि मुझमें आपके चरणकमल की स्मृति सदा बनी रहे। नाना जन्मों का जब पुण्यफल उदित हो गया तभी मैंने शिव द्वारा आपका मन्त्र प्राप्त किया। उस मन्त्र के प्रभाव से ही मैं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हो गया तथा मेरी गति सर्वत्र अबाधित है, तथापि हे दीनबन्धु! कृपासिन्धु! मुझ पर कृपा करिये। आप मुझे अपने चरणों में शरण देकर मुझे अभय दीजिये। तब मृत्यु मेरा क्या कर सकेगी?।।१९९-२०१।।

सर्वेषामीश्वरः सर्वस्त्वत्पादाम्भोजसेवया।
मत्युञ्जयोऽन्तकालश्च बभूव योगिनां गुरुः॥२०२॥
ब्रह्मा विधाता जगतां त्वत्पादाम्भोजसेवया। यस्यैकदिवसे ब्रह्मन्पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश॥२०३॥
त्वत्पादसेवया धर्मः साक्षी च सर्वकर्मणाम्।
पाता च फलदाता च जित्वा कालं सुदुर्जयम्॥२०४॥

सर्वेश्वर शिव ने आपके चरणकमल की सेवा करके स्वयं मृत्युञ्जयत्व, संहारत्व तथा योगीगण का गुरुत्व लाभ किया है। जिनके एक दिन में १४ इन्द्रों का कार्यकाल समाप्त हो जाता है, वे ब्रह्मा भी आपके चरणों की सेवा करके ही जगत् के सृष्टिकर्त्ता हो सके हैं। धर्मदेव भी आपकी चरण सेवा करके ही दुर्जय काल पर विजय पाकर सर्वकर्मसाक्षी, सबके रक्षक एवं कर्मफलदाता हो सके।।२०२-२०४।।

सहस्रवदनः शेषो यत्पादाम्बुजसेवया।
धत्ते सिद्धार्थवद्विश्वं शिवः कण्ठे विषं यथा॥२०५॥
सर्वसंपद्विधात्री या देवीनां च परात्परा। करोति सततं लक्ष्मीः केशैस्त्वत्पादमार्जनम्॥२०६॥
प्रकृतिर्बीजरूपा सा सर्वेषां शक्तिरूपिणी।
स्मारं स्मारं त्वत्पदाब्जं बभूव तत्परा वरा॥२०७॥
पार्वती सर्वरूपा सा सर्वेषां बुद्धिरूपिणी।
त्वत्पादसेवया कान्तं ललाम शिवमीश्वरम्॥२०८॥

सहस्रफणा शेषनाग आपके चरणकमल की सेवा द्वारा उसी प्रकार विश्व को सरसों के दाने के समान धारण कर लेते हैं जैसे शङ्कर ने हलाहल विष को कण्ठ में धारण किया है। जो लक्ष्मी निखिल सम्पत्ति प्रदान करती है तथा देवियों में श्रेष्ठा एवं परात्परा हैं, वे भी निरन्तर अपने केशों से आपके चरणकमल की मार्जना करती रहती हैं। सर्वशक्तिरूपा, बीजरूपिणी प्रकृति देवी आपके चरणों का अनवरत स्मरण करके अपने चित्त को आपके प्रति आसक्त रखती हैं। सभी प्राणीगण की बुद्धिरूपा, सभी देवियों की ईश्वरी पार्वती भी आपके चरणों का स्मरण करके ही ईश्वर शिव को पतिरूप से प्राप्त कर सकीं!।।२०५-२०८।।

विद्याधिष्ठात्री देवी या ज्ञानमाता सरस्वती।
पूज्या बभूव सर्वेषां सम्पूज्य त्वत्पदाम्बुजम्॥२०९॥
सावित्री वेदजननी पुनाति भुवनत्रयम्।
ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च गतिस्त्वत्पादसेवया॥२१०॥

जो विद्या की अधिष्ठातृ देवी, ज्ञानमाता सरस्वती हैं, वे भी आपके चरणों का पूजन करके सबकी पूज्या हो सकीं। जो भुवनत्रय को पावन करने वाली देवी सावित्री हैं, वे ब्रह्मा एवं ब्राह्मणों की अनन्य गति भी यह सब आपके चरणों की सेवा के फल से ही कर पाती हैं।।२०९-२१०।।

क्षमा जगद्बिभर्तुं च रत्नगर्भा वसुंधरा। प्रसूतिः सर्वसस्यानां त्वत्पादपद्मसेवया॥२११॥
राधा ममांशसंभूता तव तुल्या च तेजसा।
स्थित्वा वक्षसि ते पादं सेवतेऽन्यस्य का कथा॥२१२॥
यथा शर्वादयो देवा देव्यः पद्मादयो यथा।
सनाथं कुरु मामीश ईश्वरस्य समा कृपा॥२१३॥

देवी वसुन्धरा भी आपके चरणकमलों की सेवा के बल से समग्र जगत् को धारण करने में सक्षम होकर सभी प्रकार की फसलों को जन्म दे पाती हैं। अन्य की क्या बात करूं? देवी राधा आपके वामांश से उत्पन्न हैं तथा आपके तेज के प्रभाव से आपके समान होकर भी आपके चरण-कमल को अपने वक्ष पर स्थापित करके आपकी अविरत सेवा करती हैं। हे नाथ! जिस प्रकार शिव आदि देवता, लक्ष्मी आदि देवियां आपकी कृपापात्र हो गईं, उसी प्रकार आप मुझे अपनी कृपा का पात्र बना लीजिये। ईश्वर तो सभी प्राणीगण पर समान कृपा करते हैं।।२११-२१३।।

न यास्यामि गृहं नाथ न गृहणामि धनं तव।
कृत्वा मां रक्ष पादाब्जसेवायां सेवकं रतम्॥२१४॥

हे नाथ! अब मैं अपने गृह नहीं जाना चाहता, न तो आपके पिता नन्द द्वारा प्रदत्त धन ही ग्रहण करूंगा! आप अपने चरण-कमल का सेवक बनाकर मेरी रक्षा करिये।।२१४।।

इति स्तुत्वा साश्रुनेत्रः पपात चरणे हरेः।
रुरोद च भृशं भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहः॥२१५॥
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा जहास भक्तवत्सलः।
उवाच तं स्वयं कृष्णो मयि ते भक्तिरस्त्विति॥२१६॥

इस प्रकार स्तव करके ऋषि गर्ग साश्रुनयन एवं पुलकित कलेवर की स्थिति में श्रीहरि (बालक कृष्ण) के चरणकमल पर गिर कर पुनः-पुनः रुदन करने लगे। उस समय भक्तवत्सल कृष्ण ने गर्ग की स्तुति सुनकर उनसे हंसते हुए कहा-"तुम्हारी अविचल भक्ति मेरे प्रति हो जाये!"।।२१५-२१६।।

इदं गर्गकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं स्मृतिं च लभते ध्रुवम्॥२१७॥

जो मनुष्य गर्गदेव कृत इस स्तोत्र को नित्य तीनों सन्ध्याकाल में पढ़ता है, उसे दृढ़ भक्ति, हरि का दासत्व तथा अचला स्मृति निश्चित प्राप्त हो जाती है।।२१७।।

जन्ममृत्यु जरारोगशोकमोहादिसंकटात्। तीर्णो भवति श्रीकृष्णदाससेवनतत्परः॥२१८॥
कृष्णस्य सहकालं च कृष्णसार्धं च मोदते।
कदाचिन्न भवेत्तस्य विच्छेदो हरिणा सह॥२१९॥

वह जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-शोक-मोह तथा अत्यन्त संकट आदि से रहित होकर कृष्ण का दासत्व लाभ करता है तथा उनकी सेवा में तत्पर हो जाता है। वह व्यक्ति कृष्ण के साथ कृष्ण के धाम में सदा अवस्थित रहता है। उसका कभी भी कृष्ण से वियोग नहीं होता।।२१८-२१९।।

नारायण उवाच

हरिं मुनिः स्तवं कृत्वा ददौ नन्दाय तं मुदा।
उवाच तं गृहं यामि कुर्वाज्ञामिति बल्लव॥२२०॥
अहो विचित्रः संसारो मोहजालेन वेष्टितः।
संमीलनं च विरहो नराणां सिन्धुफेनवत्॥२२१॥
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा रुरोद नन्द एव च। सद्विच्छेदो हि साधूनां मरणादतिरिच्यते॥२२२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं-हे मुनिवर! गर्ग ने इस प्रकार हरि का अनेक प्रकार से स्तव करके बालक कृष्ण को नन्द के हाथों अर्पित करके उनसे कहा-"हे ब्रजराज! अब मैं वापस अपने घर जाना चाहता हूं। सम्मति प्रदान करो! अत्यन्त विचित्रता तो यह है कि यह जगत् विचित्र मोहजाल से आच्छन्न है। जैसे समुद्र का फेन एक बार मिलकर पुनः अलग हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का मिलन तथा पुनः विच्छेद जगत् में होता रहता है।" गर्ग का यह कथन सुनकर नन्दराज रुदन करने लगे; क्योंकि साधु से अलग होना मृत्यु से भी अधिक कष्टकारक होता है।।२२०-२२२।।

सर्वशिष्यैः परिवृतं मुनीन्द्रं गन्तुमुद्यतम्।
सर्वे नन्दादयो गोपा रुदन्ते गोपिकास्तदा॥२२३॥
प्रणेमुः परमप्रीत्या चक्रुस्तं विनयं मुने।
दत्त्वाऽऽशिषं मुनिश्रेष्ठो जगाम मथुरां मुदा॥२२४॥

हे मुनिवर! उस समय नन्द आदि गोपों ने, गोपिकाओं ने शिष्यों सहित मुनि को जाने के लिये उद्यत देखकर रुदन करना प्रारम्भ किया तथा प्रीति पूर्वक विनय के साथ ऋषिप्रवर को प्रणाम किया। मुनि गर्ग नें उन सबको आशीर्वाद दिया तथा आनन्दित होकर मथुरा चले गये।।२२३-२२४।।

ऋषयो मुनयश्चैव बन्धुवर्गाश्च बल्लवाः।
सर्वे जग्मुर्धनैः पूर्णाः स्वालयं हृष्टमानसाः॥२२५॥
प्रजग्मुर्बन्दिनः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः। मिष्टद्रव्यांशुकोत्कृष्टतुरगस्वर्णभूषणैः॥२२६॥
आकण्ठपूर्णा भुक्त्या च भिक्षुका गन्तुमक्षमाः।
स्वर्णवस्त्रभरोद्रेकपरिश्रान्ता मुदाऽन्वताः॥२२७॥
सुमन्दगामिनः केचित्केचिद्भूमौ च शेरते।
केचिद्वार्त्मनि तिष्ठन्तश्चोत्तिष्ठन्तश्च केचन॥२२८॥

इसके पश्चात् समागत ऋषि-मुनि, नन्द के बन्धु-बान्धव, गोपगण सभी लोग धन से पूर्ण होकर प्रसन्नता के साथ अपने घर चले गये। बन्दीगण भी मिष्ठान्न, उत्तम वस्त्र, उत्तम आभूषण तथा स्वर्णरचित भूषणादि पाकर परिपूर्ण मनोरथ की स्थिति में अपने गृह चले गये। भिक्षुगण भी पेट भर आहार करने के उपरान्त अपने घर नहीं जा पाये; क्योंकि वे चलने में अक्षम हो गये। इतना आहार कर लिया था। सभी लोग नन्द से प्राप्त वस्तु के भार को ढोने में अत्यन्त थक गये। कोई मन्दगति से चल रहा था, कोई थककर भूमि पर ही लेट गया, कोई-कोई भार से पीड़ित होकर, कभी उठते-कभी बैठते आगे बढ़ रहा था।।२२५-२२८।।

केचिदूषुः प्रमुदिता हसन्तस्तत्र केचन। कपर्दकानां वस्तूनां शेषांश्चोर्वरितान्बहून्॥२२९॥
केचित्तानाददुः स्थित्वा दर्शयन्तश्च केचन।
केचिन्नृत्यं प्रकुर्वन्तो गायन्तस्तत्र केचन॥२३०॥

कोई अत्यानन्द से सराबोर होकर वहीं रुक गया। कोई हंसता था। कोई-कोई वहां की बची-खुची कौड़ियों तथा ढोकर ले जाने में असमर्थ लोगों द्वारा वहां छोड़ी गई वस्तुओं को समेट कर ले रहा था। कोई प्राप्त वस्तु अन्य को दिखला रहा था। कोई प्रभूत वस्तु एवं धन पा जाने की प्रसन्नता में नृत्य-गायन करने लगा।।२२९-२३०।।

केचिद्बहुविधा गाथाः कथयन्तः पुरातनाः। मरुत्तश्वेतसगरमांधातृणां च भूभृताम्॥२३१॥
उत्तानपादनहुषनलादीनां च याः कथाः।
श्रीरामस्याश्वमेधस्य रन्तिदेवस्य कर्मणाम्॥२३२॥

कोई नाना प्रकार की गाथा कहता। वह राजा मरुत्, श्वेत, सगर, मांधाता, उत्तानपाद, नहुष-नल प्रभृति राजाओं की गाथा बखानता चला जा रहा था। कोई श्रीराम के अश्वमेध का वर्णन करता, तो कोई राजा रन्दिदेव के उत्तम कर्म की गाथा कहता।।२३१-२३२।।

येषां येषां नृपाणां च श्रुता वृद्धमुखात्कथाः।
कथयन्तश्च ताः केचिच्छ्रुतवन्तश्च केचन॥२३३॥

स्थायं स्थायं गताः केचित्स्वापं स्वापं च केचन।
एवं सर्वे प्रमुदिताः प्रजग्मुः स्वालयं व्रजात्॥२३४॥
हृष्टो नन्दो यशोदा च बालं कृत्वा च वक्षसि।
तस्थौ स्वमन्दिरे रम्ये कुबेरभवनोपमे॥२३५॥

अन्य लोगों ने जो इतिहास वृद्धों से सुना था, वही यहां कहने लगे। कोई व्यक्ति मार्ग में एक बार विश्राम करता, तब पुनः चल पड़ता। कोई-कोई श्रम के कारण बारम्बार शयन करके तब एक बार चलता। इसी प्रकार सभी आनन्दित चित्त के साथ अपने-अपने घर चले गये। इसके पश्चात् नन्द-यशोदा ने बालक को अपने वक्ष से लगाया तथा कुबेर भवन के समान अपने ऐश्वर्यमय रमणीक भवन में रहने चले गये।।२३३-२३५।।

एवं प्रवर्धितौ बालौ शुक्लचन्द्रकलोपमौ।
गवां पुच्छं च भित्तिं च धृत्वा चोत्तस्थतुर्मुदा॥२३६॥
शब्दार्धं वा तदर्धं वा क्षमौ वक्तुं दिने दिने।
पित्रोर्हर्षं च वर्धन्तौ गच्छन्तौ प्राङ्गणे मुने॥२३७॥

इस प्रकार बालक कृष्ण उसी प्रकार नित्य-प्रति बढ़ने लगे जैसे शुक्लपक्षीय चन्द्र बढ़ता है। कृष्ण अब गौओं की पूंछ तथा दीवार पकड़कर प्रसन्नता से खड़े हो जाते। वे दिन-प्रतिदिन क्रमशः आधा किंवा चौथाई शब्द बोलने का प्रयत्न करते। हे मुनिवर! घर के आंगन में विचरते कृष्ण तथा बलराम इस प्रकार बढ़ने लगे। वे अपने माता-पिता के हर्ष की वृद्धि करते रहते थे।।२३६-२३७।।

बालो द्विपादं पादं वा गन्तुं शक्तो बभूव ह।
गन्तुं शक्तो हि जानुभ्यां प्राङ्गणे वा गृहे हरः॥२३८॥
वर्षाधिको हि वयसा कृष्णात्संकर्षणः स्वयम्।
ततो मुदं वर्धयन्तौ वर्धितौ च दिने-दिने॥२३९॥

अब तक बलराम एक-दो डग चलने भी लगे थे। श्रीकृष्ण घुटनों से प्रांगण तथा गृह में चलते रहते थे। बलभद्र कृष्ण से आयु में एक वर्ष ज्येष्ठ थे। इस प्रकार वे दोनों बालक क्रमशः बढ़ते जा रहे थे।।२३८-२३९।।

व्रजन्तौ गोकुले बालौ प्रहृष्टौ गमने क्षमौ।
उक्तवन्तौ स्फुटं वाक्यं मायाबालकविग्रहौ॥२४०॥
गर्गो जगाम मथुरां वसुदेवाश्रमं मुने। स तं ननाम पप्रच्छ पुत्रयोः कुशलं तयोः॥२४१॥

ये दोनों माया से बालक रूपधारी थे। इस प्रकार बलराम तथा कृष्ण गोकुल में हर्षित होकर घूमते-फिरते रहते तथा अब शब्दों का सम्यक् उच्चारण भी करने लगे थे। हे मुनिवर! महर्षि गर्ग उस

समय मथुरा में वसुदेव के गृह पहुंचे। वसुदेव ने महर्षि को प्रणाम करके उनसे दोनों बालकों की कुशलता पूछा—।।२४०-१४१।।

मुनिस्तं कथयामास कुशलं सुमहोत्सवम्। आनन्दाश्रुनिमग्नश्च श्रुतमात्राद्बभूव ह॥२४२॥
देवकी परमप्रीत्या पप्रच्छ च पुनः पुनः। आनन्दाश्रुनिमग्ना स रुरोद च मुहुर्मुहुः॥२४३॥

तब मुनि गर्ग ने वसुदेव से दोनों बालकों की कुशलता तथा वहां आयोजित महोत्सव का वर्णन किया। यह प्रसंग सुनते ही आनन्दाश्रु से उनके नेत्र भर गये। देवकी भी पुनः-पुनः परमप्रीति के साथ उन बालकों के सम्बन्ध में पूछती जातीं तथा आनन्दाश्रु में निमग्न होकर बारम्बार रोने लगतीं।।२४२-२४३।।

गर्गस्तावाशिषं दत्त्वा जगाम स्वालयं मुदा। स्वगृहे तस्थतुस्तौ च कुबेरभवनोपमे॥२४४॥

तत्पश्चात् महर्षिगर्ग भी नन्द-यशोदा को आशीर्वाद देकर स्वगृह चले गये। इधर नन्द-यशोदा भी कुबेर के समान प्रतीत होने वाले अपने भवन में रहने लगे।।२४४।।

नारायण उवाच

यत्र कल्पै कथा चेयं तत्र त्वमुपबर्हणः। पञ्चाशत्कामिनीनां च पतिर्गन्धर्वपुङ्गवः॥२४५॥
तासां प्राणाधिकस्त्वं च शृङ्गारनिपुणो युवा।
ततोऽभूद्ब्रह्मणः शापाद्दासीपुत्रो द्विजस्य च॥२४६॥
ततोऽधुना ब्रह्मपुत्रो वैष्णवोच्छिष्टभोजनात्।
सर्वदर्शी च सर्वज्ञः स्मारको हरिसेवया॥२४७॥
कथितं कृष्णचरितं नामान्नप्राशनादिकम्। जन्ममृत्युजरातिघ्नमपरं कथयामि ते॥२४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० कृष्णान्नाप्राशननामकरणप्रस्तावो नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

—※—

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! जिस कल्प का मैं वृत्तान्त कर रहा हूं, उस समय तुम ५० स्त्रियों के पति उपबर्हण गन्धर्वराज थे। तुम उन स्त्रीरत्नों के प्राणाधिक प्रिय शृंगार निपुण युवा पति थे। तदनन्तर तुम ब्रह्मा के शाप द्वारा ब्राह्मण के दासीपुत्र हो गये। उसी जन्म में तुम ब्राह्मणों का जूठन खाकर उस पुण्यफल से ब्रह्मा के पुत्र होकर भगवत् सेवा द्वारा सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त हो गये हों। मैंने तुमसे भगवान् कृष्ण के नामकरण तथा अन्नप्राशन का प्रसंग कहा। यह जन्म-मृत्यु-जरा नाशक है। अब तुम अन्य वृत्तान्त श्रवण करो।।२४५-२४८।।

।।१३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

वृक्षयोनि से यमलार्जुन का उद्धार

नारायण उवाच

एकदा नन्दपत्नी च स्नानार्थं यमुनां ययौ। गव्यपूर्णं गृहं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः॥१॥
दधिदुग्धाज्यतक्रं च नवनीतं मनोरमम्। गृहस्थितं च यत्किंचिच्चखाद मधुसूदनः॥२॥

मधु हैयङ्गवीनं यत्स्वस्तिकं शकटस्थितम्।
भुक्त्वा पीत्वांऽशुकैर्वक्त्रसंस्कारं कर्तुमुद्यतम्॥३॥
ददर्श बालकं गोपी स्नात्वाऽऽगत्य स्वमन्दिरम्।
गव्यशून्यं भग्नभाण्डं मध्वादिरिक्तभाजनम्॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! एक समय नन्द पत्नी यशोदा स्नानार्थ यमुना गई थीं। उस समय मधुसूदन कृष्ण ने देखा कि घर में दुग्ध तथा उत्तम मक्खन घटों में रक्खा है। अतः वे गृह में यह सब जो कुछ था सब खा गये। उन्होंने छकड़े पर रखी जलेबी, ताजा घृत, मधु, नवनीत आदि सब कुछ खा-पी लिया तथा मुख पोंछने जा रहे थे, तभी यशोदा स्नानोपरान्त घर में आई तथा उन्होंने बालक कृष्ण को देखा। वे देखती हैं कि घर में चारों ओर गोदुग्ध, दधि आदि गव्यपदार्थ तथा मधु भरे घट खाली पड़े हैं। कुछ भग्न भी हैं।।१-४।।

दृष्ट्वा पप्रच्छ बालांश्च अहो कर्मेदमद्भुतम्। यूयं वदत सत्यं च कृतं केन सुदारुणम्॥५॥
यशोदावचनं श्रुत्वा सर्वमूचुश्च बालकाः। चखाद सत्यं बालस्ते नास्मभ्यं दत्तमेव च॥६॥

यह देखकर माता यशोदा ने वहां खेल रहे बालकों से प्रश्न किया–"हे बालको! इस विचित्र कार्य को किसने किया है? यह करने का साहस किसने किया? तुम सभी सत्यता से कहो।" तब बालकों ने यशोदा का कथन सुनकर कहा कि "आपके इस पुत्र कृष्ण ने सब कुछ खा लिया है। हमें कुछ भी नहीं दिया!"।।५-६।।

बालानां वचनं श्रुत्वा चुकोप नन्दगेहिनी। वेत्रं गृहीत्वा दुद्राव रक्तपङ्कजलोचना॥७॥

पलायमानं गोविन्दं ग्रहीतुं न शशाक ह।
ध्यानासाध्यं शिवादीनां दुरापमपि योगिनाम्॥८॥

नन्द पत्नी यशोदा बालकों का यह कथन सुनकर कुपित हो गईं। क्रोध से उनके नेत्र रक्तकमल जैसे हो गये। उन्होंने एक बेंत उठाया तथा कृष्ण के पीछे दौड़ने लगीं, तथापि वे कृष्ण को पकड़ सकने में समर्थ नहीं हो सकीं! कृष्ण तो शिव ब्रह्मा के लिये भी ध्यान से ही साध्य हैं। वे तो योगीगण हेतु अत्यन्त दुर्लभ हैं।।७-८।।

यशोदा भ्रमण कृत्वा विश्रान्ता धर्मसंयुता।
तस्थौ कोपपरीतात्मा शुष्ककण्ठौष्ठतालुका॥९॥
विश्रान्तां मातरं दृष्ट्वा कृपालुः पुरुषोत्तमः।
संतस्थौ पुरतो मातुः सस्मितो जगदीश्वरः॥१०॥
करे धृत्वा च तं देवी समानीय स्वमालयम्।
बद्ध्वा वस्त्रेण वृक्षे च तताड मधुसूदनम्॥११॥
बद्ध्वा कृष्णं यशोदा सा जगाम स्वालयं प्रति।
हरिस्तस्थौ वृक्षमूले जगतां पतिरीश्वरः॥१२॥

यशोदा कृष्ण के पीछे दौड़ते हुये अत्यन्त थक गई, उनके देह से स्वेदबिन्दु बहने लगे। कण्ठ तथा ओष्ठ तक शुष्क हो गये। इससे वे और भी क्रोधित हो उठीं। जब कृपालु कृष्ण ने जननी को ऐसी श्रान्त स्थिति में देखा वे हंसते हुए माता के समक्ष खड़े हो गये। यशोदा उनका हाथ पकड़ कर खींचते हुए गृह में ले आईं। उन्होंने मधुसूदन को वृक्ष से बांध दिया तथा उन पर बारम्बार प्रहार करने लगीं! अन्ततः माता यशोदा कृष्ण को ऐसे बंधन में ही छोड़कर घर में कार्य से चली गयीं। जगत्पति ईश्वर कृष्ण उस वृक्ष के तने से बंधे वृक्ष के नीचे खड़े रह गये॥९-१२॥

श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण सहसा तत्र नारद।
पपात वृक्षः शैलाभः शब्दं कृत्वा भयानकम्॥१३॥
सुवेषः पुरुषो दिव्यो वृक्षादाविर्बभूव ह। दिव्यस्यन्दनमारुह्य जगाम स्वालयं पुरः॥१४॥
प्रणम्य जगतीनाथं शातकौम्भपरिच्छदम्।
किशोरः सस्मितो गौरो रत्नालङ्कारभूषितः॥१५॥

हे नारद! तभी कृष्ण के स्पर्शमात्र से वह वृक्ष महाशब्द के साथ भूपतित हो गया! वृक्ष से एक दिव्य देवपुरुष सहसा आविर्भूत हो गया। वह पुरुष रत्नालंकारभूषित, किशोरवय तथा गौरवर्ण था। वह उत्तम स्वर्णिम वस्त्र पहने हुये था। उसने भगवान् को प्रणाम किया तथा मन्दमुस्कान के साथ दिव्य रथ पर बैठकर स्वधाम चला गया!॥१३-१५॥

सा वृक्षपतनं दृष्ट्वा भिया त्रस्ता व्रजेश्वरी।
क्रोडे चकार बालं तं रुदन्तं श्यामसुन्दरम्॥१६॥
आजग्मुर्गोकुलस्थाश्च गोपा गोप्यश्च तद्गृहम्।
यशोदां भर्त्सयामासुः शान्तिं चक्रुः शिशोर्मुदा॥१७॥
अत्यन्तस्थविरे काले तनयोऽयं बभूव ह। धनं धान्यं च रत्नं वा तत्सर्वं पुत्रहेतुकम्॥१८॥
सुमतिर्नास्ति ते सत्यं ज्ञातं नन्दव्रजेश्वरि। न भक्षितं यत्पुत्रेण तत्सर्वं निष्फलं भुवि॥१९॥
पुत्रं बद्ध्वा गव्यहेतोर्वृक्षमूले च निष्ठुरे। गृहकर्मणि व्यग्रायां दैवाद्वृक्षः पपात ह॥२०॥

वृक्षस्य पतनाद्घोपीभाग्याद्बालोऽपि जीवितः।
प्रनष्टे बालके मूढे वस्तूनां किं प्रयोजनम्॥२१॥

उस वृक्ष को गिरा देखकर ब्रजेश्वरी यशोदा भयभीत हो गईं। उन्होंने रुदनरत श्यामसुन्दर को गोद में लेकर वक्ष से लिपटा लिया। तभी वहां अन्य गोप-गोपियां भी गोकुल से शीघ्रता से आये तथा वे यशोदा के कृत्य की भर्त्सना करने लगे। उन सबने हर्षित होकर बालक को शान्त किया। वे समागत गोप-गोपियां यशोदा से कहने लगे-"तुमने अत्यन्त वृद्ध आयु में यह पुत्र प्राप्त किया है। तुम्हारा धन-धान्य-रत्नादि तो सब पुत्र हेतु ही है। हे नन्द के व्रज की अधीश्वरी! तुममें सुबुद्धि नहीं है, यह हमें आज अच्छी तरह से ज्ञात हो गया। जो वस्तु पुत्र न खाये, वह तो धरती पर निष्फल है। हे निर्दयी! तुमने गव्यपदार्थ खा लेने के कारण पुत्र को वृक्ष की जड़ में बांध दिया था, स्वयं गृह कार्य करने लगी। तभी दैवात् यह वृक्ष गिर गया। यह सबका भाग्य था कि वृक्ष गिरने पर भी बालक जीवित रह गया। हे मूढ़ नारी! यदि यह बालक वृक्ष पतन से नष्ट हो जाता, तब सभी वस्तु का क्या प्रयोजन रहेगा?।।१६-२१।।

आशिषं युयुजुर्विप्रा बन्दिनश्च शुभावहाम्। द्विजेन कारयामासुर्नामसंकीर्तनं हरेः॥२२॥
एवं कृत्वा जनाः सर्वे प्रययुर्निजमन्दिरम्। उवाच पत्नीं नन्दश्च रक्तपङ्कजलोचनः॥२३॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणगण तथा बन्दीगण ने बालक को शुभ आशीर्वाद प्रदान किया। उस समय द्विजों ने हरि का नामसंकीर्त्तन भी किया। यह कार्य करके सभी लोग अपने-अपने घर चले गये। तभी नन्द ने क्रोध से आंखे लाल करके अपनी पत्नी यशोदा से कहा-।।२२-२३।।

नन्द उवाच

यास्यामि तीर्थमद्यैव कण्ठे कृत्वा तु बालकम्।
अथवा त्वं गृहाद्गच्छ त्वया मे किं प्रयोजनम्॥२४॥
शतकूपाधिका वापी शतवापीसमं सरः। सरःशताधिको यज्ञः पुत्रो यज्ञशताधिकः॥२५॥
तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखप्रदम्। सुखप्रदोऽपि सत्पुत्र [1]इहैव च परत्र च॥२६॥
पुत्रादपि परो बन्धुर्न भूतो न भविष्यति। एवमुक्त्वा स्वभार्यां च तस्थौ नन्दःस्वमन्दिरे।
यशोदा रोहिणी चैव नियुक्ता गृहकर्मणि॥२७॥

नन्द कहते हैं-"हे यशोदा! मैं तो आज ही बालक को गले में लटका कर तीर्थयात्रार्थ जा रहा हूं। अन्यथा तुम अब अन्य गृह में चली जाओ। तुम्हारी क्या आवश्यकता? सौ कूपों से अधिक एक बाबली होती है। सौ बाबली के बराबर एक तालाब, सौ तालाब के बराबर एक यज्ञ होता है, तथापि पुत्र तो १०० यज्ञों से भी बढ़कर है। तप तथा दान के प्रभाव से उत्पन्न जो पुण्य है, वह जन्मान्तर में सुख देता है, लेकिन सत्पुत्र तो इहलोक तथा परलोक, दोनों में सुखप्रद है। पुत्र से बढ़कर बन्धु न तो है न

१. क. प्राणेभ्योऽपि सुनिश्चितम्।

होगा।" यह कहकर नन्दराज अपने भवन में चले गये। यशोदा तथा रोहिणी अपना-अपना गृहकार्य करने लगीं॥२४-२७॥

नारद उवाच

सुवेषः पुरुषः को वा वृक्षरूपी च गोकुले।
भगवन्हेतुना केन वृक्षत्वं समवाप ह॥२८॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे प्रभो! वह श्रेष्ठ देवपुरुष कौन था, जो गोकुल में वृक्षरूपी था। हे भगवन् ! क्यों वह वृक्ष हो गया?॥२८॥

नारायण उवाच

कुबेरतनयः श्रीमान्नाम्ना यो नलकूबरः। जगाम नन्दनवनं क्रीडार्थं सह रम्भया॥२९॥
निर्जने सरस्तीरे पुष्पोद्याने मनोहरे। वटवृक्षसमीपे च सौरभे पुष्पवायुना॥३०॥
विधाय पुष्पशयनं रत्नदीपैश्च दीपितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम्॥३१॥
परितः पुष्पमाल्यैश्च क्षौमवस्त्रैश्च वेष्टितम्। तत्र रम्भां समानीय विजहार यथेच्छया॥३२॥
शृङ्गाराष्टप्रकारं च विपरीतादिकं सुखम्।
चुम्बनं षट्प्रकारं च यथास्थानं निरूपितम्॥३३॥
अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगत्रिविधाश्लेषणं मुदा। नखदन्तकरक्रीडां चकार रसिकेश्वरः॥३४॥

श्रीनारायण देव कहते हैं—कुबेरपुत्र श्रीमान् नलकूबर कामक्रीडार्थ रम्भा अप्सरा के साथ नन्दनकानन गये थे। तदनन्तर वे उस कानन में कुछ समय पुष्पोद्यान में, कुछ समय सुगन्धित पुष्पवायु से सुरभित वटवृक्ष के पास, कभी आलोकमाला से उद्दीपित, चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम आदि के निर्यास से चर्चित, चतुर्दिक् विचित्र पुष्पमाला एवं क्षौमवस्त्र द्वारा वेष्ठित, मनोहर पुष्पशय्या बनाकर उस पर रंभा के साथ क्रीड़ारत होकर सुखप्रद आठ प्रकार की विपरीतादि रति में रत हो गये। वे कामशास्त्र में (अंग विशेष हेतु) स्थानानुसार निरूपित छह प्रकार के चुम्बन तथा अंगप्रत्यंग के संयोग की विभिन्न विधियों से आलिंगन कर रहे थे। रसिकेश्वर नलकूबर ने नखक्षत, दन्तक्षत तथा हाथों द्वारा कामकेलि किया॥२९-३४॥

जलान्स्थले स्थलात्तोये कामशास्त्रविशारदः। रतिभोगं प्रकुर्वन्तं ददर्श देवलो मुनिः॥३५॥
नग्नां रम्भां मुक्तकेशीं पीनश्रोणिपयोधराम्।
नखदन्तक्षताङ्गीं च पुलकाञ्चितविग्रहाम्॥३६॥
पश्यन्तीं प्राणनाथं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा।
वक्रभ्रूभङ्गसंयुक्तां कामुकीं च ददर्श ताम्॥३७॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम्। विचित्ररत्नमाल्यैश्च पुष्पमाल्यैश्च भूषिताम्॥३८॥

किङ्किणीजालसंयुक्तां सिन्दूरबिन्दुसंयुताम्। तया युक्तं पुलकितं नोत्तिष्ठन्तं [1]स्मरान्वितम्॥३९॥

वृक्षत्वं याहि पापिष्ठेत्युवाच मुनिपुङ्गवः।
शशाप रम्भां कामार्तां मानुषी त्वं भवति च॥४०॥
जन्मेजयस्य [2]सुभगा भविता कामिनीति च।
त्वमेव गोकुलं गच्छ वृक्षरूपी भवेति च॥४१॥

श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण पुनरायास्यसि गृहम्। रम्भे [3]त्वमिन्द्रसंयोगात्पुनरायास्यसि [4]ध्रुवम्॥४२॥

कामशास्त्र में निपुण नलकूबर जल से स्थल में जाकर पुनः स्थल से जल में जाकर रंभा के साथ रतिक्रीड़ा कर रहे थे, तभी महामुनि देवल ने नलकूबर तथा रंभा को इस प्रकार देखा। रंभा नग्न थी। उसके बाल बिखरे थे। उसका नितम्ब तथा स्तन स्थूल था। उसके अंगों पर नलकूबर द्वारा किये गये नखक्षत एवं दन्तक्षत के चिह्न भी थे। ऐसी रंभा पुलकित थी। उसके अंग रोमांचित थे। वह प्राणनाथ नलकूबर को देख रही थी। नलकूबर उसे देख रहा था। वह अत्यन्त हर्षित था। कुटिल चितवन वाली, कामुकी, कानों में पहने कुण्डल जो कपोलों तक लटके उसके गालों की शोभा बढ़ा रहे थे, ऐसे कर्णकुण्डल को धारण करने वाली, विचित्र रत्नमाला तथा पुष्पमाला से भूषिता, छोटी घंटियों के समूह से युक्त तथा सिन्दूर की बिन्दी से युक्त रंभा पर मुनि की दृष्टि पड़ी। ऐसी कामिनी से युक्त, कामक्रीड़ासक्त, रोमांचित नलकूबर तथा रंभा को देखकर महामुनि देवल ने शाप दिया–"हे पापी नलकूबर! तुम वृक्ष योनि प्राप्त करो। हे कामार्त्ता रंभा! तुम मनुष्य योनि में जन्मेजय राजा की सौभाग्यमयी पत्नी बनो। हे नलकूबर! तुम गोकुल में वृक्ष योनि पाकर पुनः कृष्ण स्पर्श होते ही अपने गृह चले जाओगे। हे रंभा! जब मनुष्य योनि में इन्द्र का संभोग प्राप्त करोगी, तब तुमको अवश्य स्वर्ग में पुनः स्थान मिलेगा।।३५-४२।।

इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम निजमन्दिरम्। कुबेरतनयः श्रीमान्स जगाम निजालयम्॥४३॥
इत्येवं कथितं विप्र रम्भाख्यानं वदामि ते। सुचन्द्रस्य गृहे रम्भा ललाभ जन्म भारते॥४४॥

कन्या लक्ष्मीस्वरूपा च बभूव सुन्दरी वरा।
तां च सालंकृतां कृत्वा सुचन्द्रो नृपतीश्वरः॥४५॥

नानाकौतुकसंयुक्तां ददौ जन्मेजयाय च। जन्मेजयस्य सुभगा बभूव महिषी वरा॥४६॥

तदनन्तर मुनि अपने आश्रम गये तथा नलकूबर स्वगृह गया। हे विप्र! मैं इस प्रकार तुमसे रंभा का आख्यान कह रहा हूं। रम्भा ने भारत में राजा सुचन्द्र के यहां जन्म ग्रहण कर लिया। वह कन्या

१. क. ०रातुरम्।
२. क. सौभाग्या।
३. क. ०संभोगात्पु०।
४. क. व्रजम्।

लक्ष्मी के समान तथा श्रेष्ठ सुन्दरी थी। राजा ने उसे नाना प्रकार से अलंकृत करके अनेक उत्सव आदि एवं दहेज सहित जन्मेजय को प्रदान किया। वह जन्मेजय की सुभगा श्रेष्ठ पत्नी बनी।।४३-४६।।

स्थाने स्थाने निर्जने च राजा रेमे तया सह। एकदा नृपतिश्रेष्ठश्चाश्वमेधेन दीक्षितः।।४७।।
अश्वसङ्गोपनं कृत्वा तस्थौ शक्रश्च मन्दिरे। यज्ञाश्वं रुचिरं मत्वा कौतुकेन च सुन्दरी।।४८।।
द्रष्टुं जगाम सा साध्वी चाश्वमेकाकिनी मुदा।
शक्रोऽश्वनिकटे भूत्वा धर्षयामास तां सतीम्।।४९।।

राजा जन्मेजय ने स्थान-स्थान पर तथा निर्जन में अपनी इस रानी के साथ रमण किया। एक बार राजा जन्मेजय अश्वमेध यज्ञ में दीक्षित थे। इन्द्र यज्ञ के अश्व को छिपाकर राजभवन में स्वयं गोपनीय रूप से रुक गये। रानी उस यज्ञीय अश्व को उत्तम जानकर कौतुक के कारण देखने गयी। जैसे ही वह अश्व को देखने लगीं, तभी इन्द्र ने सती रानी से बलात् संभोग किया।।४७-४९।।

तया निवार्यमाणश्च रेमे तत्र तया सह। मूर्च्छामवाप शक्रश्च बुबुधे न दिवानिशम्।।५०।।
सा च संभोगमात्रेण देहं तत्याज योगतः।
नृपस्य लज्जया भीत्या शक्रः स्वर्गे जगाम ह।।५१।।

रानी ने इन्द्र को बहुत रोका, तथापि इन्द्र ने अपनी कामना पूर्ण किया तथा वे काम से मूर्च्छित हो जाने से वे दिन-रात का भेद तक भूल गये। तब रानी ने इस बलात्कार से क्षुब्ध होकर योग द्वारा देह त्याग दिया। इन्द्र भी राजा के भय से लज्जित होकर स्वर्ग भाग गये।।५०-५१।।

राजा श्रुत्वा मृतां दृष्ट्वा विललाप भृशं मुहुः।
यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो ददौ पूर्णां च दक्षिणाम्।।५२।।
रम्भा च मानवं देहं त्यक्त्वा स्वर्गं जगाम ह। इत्येवं कथितं सर्वं वृक्षार्जुनविभञ्जनम्।।५३।।
नलकूबरमोक्षश्च रम्भायाश्च महामुने। पुण्यदं कृष्णचरितं जन्ममृत्युजरापहम्।
इत्येवं कथितं सर्वमपरं कथयामि ते।।५४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० वृक्षार्जुनभञ्जनो नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

—❋❋❋—

जब राजा ने यह समाचार सुना, वह बारम्बार रोने लगा। उसने यज्ञ समापन करके ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा दिया। रंभा भी योग द्वारा मानव कलेवर त्यागकर स्वर्ग चली गईं। इस प्रकार प्रकार मैंने वृक्षार्जुन के भग्न होने का प्रसंग सुना दिया। हे महामुनि! नलकूबर तथा रंभा के भी वृक्ष तथा मानव देह से विमुक्ति का प्रसंग तुमसे कह दिया। यह कृष्णचरित पुण्यप्रद तथा जन्म-मृत्यु-जरा नाशक है। इसे कहने के अनन्तर अब मैं अन्य प्रसंग कह रहा हूं।।५२-५४।।

।।१४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

राधा-कृष्ण विवाह का वर्णन

नारायण उवाच

एकदा कृष्णसहितो नन्दो वृन्दावनं ययौ। तत्रोपवनभाण्डीरे चारयामास गोधनम्॥१॥
सरःसु स्वादु तोयं च पाययामास तत्पपौ। उवास वृक्षमूले च बालं कृत्वा स्ववक्षसि॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो मायामनुषविग्रहः। चकार माययाऽकस्मान्मेघाच्छन्नं नभो मुने॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—एक बार नन्दराज कृष्ण के साथ वृन्दावन जाकर वहां भाण्डीर उपवन में गोधन को घास चराने लगे। वहां के सरोवर का सुस्वादु जल उन्होंने स्वयं पान किया तथा गौओं को पिलाया। वे बालक कृष्ण को अपने वक्ष से लगाकर एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। हे मुनि! तदनन्तर माया से मनुष्य रूप धारण करने वाले कृष्ण ने वहां आकाश को मेघाच्छन्न कर दिया॥१-३॥

मेघावृतं नभो दृष्ट्वा श्यामलं काननान्तरम्।
झञ्झावातं मेघशब्दं वज्रशब्दं च दारुणम्॥४॥
वृष्टिधारामतिस्थूलां कम्पमानांश्च पादपान्। दृष्ट्वैवं पतितस्कन्धान्नन्दो भयमवाप ह॥५॥
कथं यास्यामि गोवत्सान्विहाय स्वाश्रमं बत।
गृहं यदि न यास्यामि भविता बालकस्य किम्॥६॥

उस स्थिति में नन्दराज ने देखा कि आकाश मेघाच्छन्न है तथा भाण्डीरवन श्यामवर्ण हो गया। वहां झंझावात का और मेघ गर्जन का दारुण एवं वज्र जैसा घोरतर निनाद श्रुतिगोचर होने लगा। तभी घोर वर्षा होने लगी। वृक्ष समूह वायु के प्रबल वेग के कारण कम्पित हो उठे। यह देखकर नन्दराज अत्यन्त भयग्रस्त होकर कहने लगे—"इन सब गौ तथा बछड़ों को यहां छोड़कर किस प्रकार घर वापस जा सकूंगा? घर न जाने पर पता नहीं बालक की क्या स्थिति होगी?॥४-६॥

एवं नन्दे प्रवदति रुरोद श्रीहरिस्तदा। [१]पयोभिया हरिश्चैव पितुः कण्ठं दधार सः॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगाम कृष्णसंनिधिम्। गमनं कुर्वती राजहंसखञ्जनगञ्जनम्॥८॥
शरत्पार्वणचन्द्राभामुष्टवक्त्रमनोहरा। शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना॥९॥

नन्द यही सोच रहे थे कि बालक कृष्ण रुदन करने लगे। वे वर्षा से इतने भयभीत थे कि उन्होंने पिता का कण्ठ पकड़ लिया! तभी राधा भी कृष्ण के निकट आ गईं। उनकी चाल ऐसी थी, जो राजहंस एवं खञ्जन की चाल को भी मात दे रही थी। राधा का मुख शारदीय पूर्णिमा की चांदनी को भी

१. क. मायाभिया भयेभ्यश्च पि०।

लज्जित करने वाला तथा अत्यन्त मनोहर था। शरद ऋतु के मध्याह्न काल में खिले कमल की शोभा का भी हरण करने वाले उनके नेत्र थे।।७-९।।

परितस्तारकापक्ष्मविचित्रकज्जलोज्ज्वला। खगेन्द्रचञ्चुचारुश्रीशंसानाशकनासिका।।१०।।
तन्मध्यस्थलशोभार्हस्थूलमुक्ताफलोज्ज्वला। कबरीवेषसंयुक्ता मालतीमाल्यवेष्टिता।।११।।

उनके नेत्रद्वय चतुर्दिक् विचित्र काजल से रंजित थे। नासिका तो पक्षीराज गरुड़ की चोंच की तरह उत्तम श्री की छवि का भी नाश करने वाली प्रतीत हो रही थी। नासिका का मध्यस्थल स्थूल तथा मुक्तायुक्त था। वह उज्वल शोभासम्पन्न लग रहा था। उनके केशपाश मालती की सुन्दर माला से गूंथे जाकर अत्यन्त शोभायमान थे।।१०-११।।

ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामुष्टककुण्डला। पक्वबिम्बफलानां च श्रीमुष्टाधरयुग्मका।।१२।।

राधिका के कर्णद्वय में ग्रीष्मऋतु के मध्याह्न कालीन प्रचण्ड सूर्य की प्रभा के समान उज्वल कुण्डलद्वय विराजमान थे। उनके अधर तथा ओष्ठ बिम्बफल की शोभा का भी हरण करने वाले थे।।१२।।

मुक्तापङ्क्तिप्रभातैकदन्तपङ्क्तिसमुज्ज्वला। ईषत्प्रफुल्लकुन्दानां सुप्रभानाशकस्मिता।।१३।।

राधा की दन्तपंक्ति मुक्तापंक्ति के समान लग रही थी। इससे राधा के मुख की उज्वलता और भी दीप्त प्रतीत हो रही थी। राधा के मुख पर छिटक रही मन्द मुस्कान तो मानो कुन्दपुष्प की सुप्रभा को भी म्लान कर रही थी।।१३।।

कस्तूरीबिन्दुसंयुक्तसिन्दूरबिन्दुभूषिता। कपालं मल्लिकायुक्तं बिभ्रती श्रीयुतं सती।।१४।।
सुचारुवर्तुलाकारकपोलपुलकान्विता। मणिरत्नेन्द्रसाराणां हारोरःस्थलभूषिता।।१५।।
सुचारुश्रीफलयुगकठिनस्तनसङ्गता। पत्रावलीश्रियायुक्ता दीप्ता सद्रत्नतेजसा।।१६।।
सुचारुवर्तुलाकारमुदरं सुमनोहरम्। विचित्रत्रिवलीयुक्तं निम्ननाभि च बिभ्रती।।१७।।

सती राधा का ललाट कस्तूरी की विन्दी के साथ सिन्दूर की बिन्दी से भूषित था। ऐसी श्रीराधा ने अपने सुन्दर कपोल पर मल्लिकापुष्प भी धारण किया था। सती राधा का उत्तम वर्तुलाकृति कपोल पुलकित लग रहा था। उन्होंने अपने वक्षस्थल पर उत्तम मणि तथा रत्नों के सार से निर्मित हार धारण किया था। राधा के स्तनद्वय बिल्व फल के आकार के कठोर तथा परस्परतः सटे हुये थे। देवी राधा चित्र-विचित्र पत्र रचना से शोभान्विता तथा समुज्वल रत्नों के तेज से प्रदीप्त लग रही थीं। उनका उदर वर्तुलाकार था। उनकी मनोहर नाभि विचित्र त्रिवलीयुक्त तथा तनिक गंभीर (गहरी) थी।।१४-१७।।

सद्रत्नसाररचितमेखलाजालभूषिता। कामास्त्रसारभ्रूभङ्गयोगीन्द्रचित्तमोहिनी।।१८।।
कठिनश्रोणियुगलं करिणीकरनिन्दितम्। स्थलपद्मप्रभामुष्टचरणं दधती मुदा।।१९।।
रत्नभूषणसंयुक्तं यावकद्रवसंयुतम्। मणीन्द्रशोभासंमुष्टसालक्तकपुनर्भवम्।।२०।।

श्रीराधा का कटि प्रदेश शुद्ध रत्नों के सार से बनी मेखला (करधनी) की लड़ियों से सज्जित था। वे देवी कामदेव के एक मात्र अस्त्रस्वरूप लगने वाली तथा अपने भ्रूभंग से योगीगण का भी मन हरण करने वाली थीं। उनके कठोर उरू युगल हाथी की सूड़ को भी लज्जित करने वाले थे। देवी राधा के चरणयुगल स्थलकमल की भी कान्ति का हरण करने वाले लग रहे थे। राधा के चरणयुगल रत्नभूषण से युक्त थे, आलता से शोभायमान थे। देवी के चरण के नख लाख के राग से रंगे थे। वे उत्तम मणियों की शोभा को लज्जित करने वाले तथा अपूर्व शोभा सम्पन्न थे।।१८-२०।।

सद्रत्नसाररचितवक्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। रत्नकङ्कणकेयूरचारुशङ्खविभूषिता।।२१।।
रत्नाङ्गुलीयनिकरवह्निशुद्धांशुकोज्ज्वला। चारुचम्पकपुष्पाणां प्रभामुष्टकलेवराः।।२२।।
सहस्त्रदलसंयुक्तक्रीडाकमलमुज्ज्वलम्। श्रीमुखश्रीदर्शनार्थं बिभ्रती रत्नदर्पणम्।।२३।।

उनके चरणद्वय श्रेष्ठरत्नों के सार से रंजित थे, जो क्वणनध्वनियुक्त नूपुरों से सजे थे। उन्होंने भुजा में रत्न के कंकण, बाजूबन्द तथा शंख की चूड़ियां पहना था। उनकी उंगलियों में रत्नों की अंगूठिया शोभायमान थीं। देवी राधा ने अग्निशुद्ध वस्त्र पहन रखा था। उनकी अंगप्रभा मनोहर चम्पक पुष्प जैसी थी। उन्होंने एक हाथ में सहस्त्रदल वाला उज्वल क्रीड़ाकमल धारण किया था। साथ ही देवी राधा ने अपने श्रीमुख की छवि देखने के लिये अन्य हाथ में रत्नमय दर्पण भी लिया था।।२१-२३।।

दृष्ट्वा तां निर्जने नन्दो विस्मयं परमं ययौ।
चन्द्रकोटिप्रभामुष्टां भासयन्ती दिशो दश।।२४।।
ननाम[१] तां साश्रुनेत्रो भक्तिनम्रात्मकंधरः।
जानामि त्वां गर्गमुखात्पद्माधिकप्रियां हरेः।।२५।।
जानामीमं महाविष्णोः परं निर्गुणमच्युतम्।
तथाऽपि मोहितोऽहं च मानवो विष्णुमायया।।२६।।
गृहाण प्राणनाथं च गच्छ भद्रे यथासुखम्।
पश्चाद्दास्यसि मत्पुत्रं कृत्वा पूर्णमनोरथम्।।२७।।

ऐसी राधा को निर्जन में देखकर नन्द को अत्यन्त विस्मय हो गया। वे भगवती राधा अपने शरीर के प्रदीप्त तेज से दसों दिशाओं को उद्भासित कर रही थीं। नन्द ने ऐसी भगवती राधा को देखकर प्रणाम किया तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों की स्थिति भक्ति के साथ झुककर राधा से कहा–"हे देवी! महर्षि गर्ग के द्वारा आपके विषय में मैं सुन चुका हूं। मुझे ज्ञात है कि आप हरि (कृष्ण) की प्रिया हैं। आप लक्ष्मी से भी अधिक हरि को प्रिय हैं। मेरी गोद का यह बालक महाविष्णु से भी श्रेष्ठ अच्युत है, यह भी मैं जानता हूं, तथापि मैं विष्णुमाया से मोहित हूं। हे भद्रे! आप अपने इन प्राणनाथ को लीजिये। आप अपना मनोरथ पूरा करके मेरे इन पुत्र को पुनः मुझे देने की कृपा करियेगा।।२४-२७।।

१. क. उवाच तां।

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्यै रुदन्तं बालकं भिया।
जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं सुखात्॥२८॥

नन्दराज ने यह कहकर रोते हुए बालक कृष्ण को राधा के हाथों में दे दिया। बालक को ग्रहण करके राधा सुख पूर्वक मधुरता के साथ हंसने लगीं॥२८॥

उवाच नन्दं सा यत्नान्न प्रकाश्यं रहस्यकम्।
अहं दृष्टा त्वया नन्द कतिजन्मफलोदयात्॥२९॥
प्राज्ञस्त्वं गर्गवचनात्सर्वं जानासि कारणम्।
अकथ्यमावयोर्गोप्यं चरितं गोकुले व्रज॥३०॥
वरं वृणु व्रजेश त्वं यत्ते मनसि वाञ्छितम्।
ददामि लीलया तुभ्यं देवानामपि दुर्लभम्॥३१॥

तत्पश्चात् राधा ने नन्द से कहा–"हे नन्द! तुमने अनेक जन्म का फलोदय होने पर मेरा दर्शन किया है। तुमने गर्ग के द्वारा समस्त कारण से अवगत होकर इस सम्बन्ध में पूर्ण अभिज्ञता पाया है। हमारे इस गोपनीय चरित्र को तुम किसी से मत कहना। तुम इस समय गोकुल चले जाओ। हे ब्रजेश्वर! तुम मुझसे मनोवांछित वर को मांगो। मैं तुमको देवदुर्लभ वर प्रदान करूंगी।"॥२९-३१॥

राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच व्रजेश्वरः। युवयोश्चरणे भक्तिं देहि नान्यत्र मे स्पृहा॥३२॥
युवयोः संनिधौ वासं दास्यसि त्वं सुदुर्लभम्।
आवाभ्यां देहि जगताम्मम्बिके परमेश्वरि॥३३॥

राधिका का वचन सुनकर उससे व्रजेश्वर ने कहा–"आप दोनों के चरणों में मेरी भक्ति हो, आप यही वर दीजिये। इसके अतिरिक्त मुझे कोई कामना नहीं है। हे जगदम्बिके! परमेश्वरी! हमें यह वर दीजिये कि हम दोनों पति-पत्नी आपके दुर्लभ चरणों के समीप निवास करें।"॥३२-३३॥

श्रुत्वा नन्दस्य वचनमुवाच परमेश्वरी। दास्यामि दास्यमतुलमिदानीं भक्तिरस्तु ते॥३४॥
आवयोश्चरणाम्भोजे युवयोश्च दिवानिशम्। प्रफुल्लहृदये शश्वत्स्मृतिरस्तु सुदुर्लभा॥३५॥
माया युवां च प्रच्छन्नौ न करिष्यति मद्वरात्।
गोलोके यास्यथान्ते च विहाय मानवीं तनुम्॥३६॥

नन्दराज का कथन सुनकर परमेश्वरी ने कहा–"मैं तुम दोनों को अपनी अतुलनीय भक्ति तथा दास्य प्रदान करती हूं। हम दोनों के चरण की स्मृति अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी तुम्हारे तथा यशोदा के आनन्दमग्न मन में वह सर्वदा जागृत रहे। मेरे वर के प्रभाव से तुम दोनों को माया कदापि आच्छन्न नहीं कर सकेगी। तत्पश्चात् मृत्युकाल में तुम दोनों मानवदेह त्याग कर गोलोकधाम गमन करोगे।॥३४-३६॥

एवमुक्त्वा तु सानन्दं कृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि।
दूरं निनाय श्रीकृष्णं बाहुभ्यां च यथेप्सितम्॥३७॥

कृत्वा वक्षसि तं कामाच्छ्लेषं श्लेषं चुचुम्ब च।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मार रासमण्डलम्॥३८॥

भगवती राधिका यह कहकर सानन्द चित्त से अपनी बाहों में कृष्ण को उठाकर अपने वक्ष से लिपटाये अपने वांछित दूरस्थ स्थान में चली गयीं। वे कामेच्छा के कारण कृष्ण को वक्ष से बारम्बार लिपटाकर उनका चुम्बन लेती जा रही थीं। उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा था। उनको रासमण्डल का स्मरण हो आया!॥३७-३८॥

एतस्मिन्नन्तरे राधा मायासद्रत्नमण्डपम्। ददर्श रत्नकलशशतेन च समन्वितम्॥३९॥
नानाविचित्रचित्राढ्यं चित्रकाननशोभितम्।
सिन्दूराकारमणिभिः स्तम्भसंघैर्विराजितम्॥४०॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवयुक्तया। संयुक्तं मालतीमालासमूहपुष्पशय्यया॥४१॥
नानाभोगसमायुक्तं दिव्यदर्पणसंयुतम्। मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यमालाजालैर्विभूषितम्॥४२॥
मणीन्द्रसाररचितकपाटेन समन्वितम्। भूषितं भूषितैर्वस्त्रैः पताकानिकरैर्वरैः॥४३॥
कुङ्कुमत्कारमणिभिः सप्तसोपानसंयुतम्।
युक्तं षट्पदसंयुक्तैः पुष्पोद्यानं च पुष्पितैः॥४४॥

तदनन्तर राधा ने माया रचित (कृष्ण की माया से रचित) सैकड़ों रत्नकलश युक्त रत्नमण्डप देखा। वह माया रचित रत्नमण्डप नाना चित्रों से चित्रिंत, अनेक वनों से युक्त था। वहां सिन्दूर के समान रक्तवर्ण मणिस्तम्भ विराजमान थे। मण्डप के मध्य में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम आदि गन्धद्रव्य लिप्त मालती माला से विरचित मनोहर अनेक पुष्पशय्या भी शोभायमान थीं। मण्डप के मध्यभाग में कहीं-कहीं मनोहर नाना भोग्यवस्तु रखी थी, कहीं दिव्य दर्पण लगे थे। कहीं-कहीं पर उत्तम मणियां, मुक्ता, माणिक्य की मालायें लगी थीं। यह रत्नमण्डप मणियों के सारभाग से बने कपाटों से युक्त था। वहां पर नाना प्रकार के आभूषण, वस्त्र थे तथा श्रेष्ठ पताकायें फहरा रहीं थीं। वहां पर कुङ्कुमाकृति मणियों से निर्मित सात सोपान थे तथा वह स्थान ऐसी पुष्प वाटिका से शोभायमान था जहां भ्रमर गुंजार कर रहे थे॥३९-४४॥

सा देवी मण्डपं दृष्ट्वा जगामाभ्यन्तरं मुदा। ददर्श तत्र ताम्बूलं [1]कर्पूरादिसमन्वितम्॥४५॥
जलं च रत्नकुम्भस्थं स्वच्छं शीतं मनोहरम्।
सुधामधुभ्यां पूर्णानि रत्नकुम्भानि नारद॥४६॥
पुरुषं कमनीयं च किशोरं श्यामसुन्दरम्। कोटिकन्दर्पलीलाभं चन्दनेन विभूषितम्॥४७॥
शयानं पुष्पशय्यायां सस्मितं सुमनोहरम्। पीतवस्त्रपरीधानं प्रसन्नवदनेक्षणम्॥४८॥

१. क. ०दिसुवासितम्।

मणीन्द्रसारनिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। सद्रत्नसारनिर्माणकेयूरवलयान्वितम्॥४९॥

मणीन्द्रकुण्डलाभ्यां च गण्डस्थलविराजितम्।
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम्॥५०॥

जैसे ही देवी राधा ने यह मण्डप देखा वह मुदित होकर उसमें चली गयीं। वहां उन्होंने कर्पूर आदि से युक्त ताम्बूल देखा। वहां रत्नकलश में स्वच्छ शीतल मनोहर जल देखा। हे नारद! वहां पर सुधा तथा मधु से भरे रत्नघट भी रखे थे। मण्डप के मध्य में एक पुष्पशय्या पर कमनीय श्यामसुन्दर किशोर आयु के पुरुष शयन कर रहे थे, ऐसा राधा ने देखा। उनका शरीर करोड़ों कामदेव की प्रभा के समान आभायुक्त तथा चन्दन से चर्चित था। वे मनोहर पुरुष मन्द मुस्कान के कारण अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे। उनका परिधान था पीतवस्त्र। चेहरे तथा नयनों से प्रसन्नता छलक रही थी। उनके अंग श्रेष्ठ मणियों से निर्मित मुखर मंजीर भूषणों से युक्त थे। उनके बाहुद्वय रत्नों के सारभाग से निर्मित केयूर तथा वलय युक्त थे। उनके कपोल कानों से लटकते कुण्डलद्वय से शोभायमान थे। उनका वक्षस्थल उत्तम कौस्तुभ मणि से समुज्वल हो रहा था॥४५-५०॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यप्रभामुष्टमुखोज्ज्वलम्। शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोचनलोचनम्॥५१॥

मालतीमाल्यसंश्लिष्टशिखिपिच्छसुशोभितम्।
त्रिवङ्कचूडां बिभ्रन्तं पश्यन्तं रत्नमन्दिरम्॥५२॥

उनका मुखमण्डल मानों शारदीय पूर्णिमा के चन्द्र की प्रभा का हरण करके प्रभावान हो गया था। उनके लोचनद्वय शरत्कालीन विकसित कमल जैसे मनोहर थे। इन श्रेष्ठ पुरुष ने मालती पुष्पों की माला से गूंथी गई मोरपंख से शोभित चोटी धारण किया था। ये श्रेष्ठ पुरुष उस रत्नमण्डप की ओर देख रहे थे॥५१-५२॥

क्रोडं बालकशून्यं च दृष्ट्वा तं नवयौवनम्।
सर्वस्मृतिस्वरूपा सा तथाऽपि विस्मयं ययौ॥५३॥

रूपं रासेश्वरी दृष्ट्वा मुमोह सुमनोहरम्। कामाच्चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं पपौ मुदा॥५४॥
निमेषरहिता राधा नवसङ्गमलालसा। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मिता मदनातुरा॥५५॥
तामुवाच हरिस्तत्र स्मेराननसरोरुहाम्। नवसङ्गमयोग्यां च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा॥५६॥

तब राधा ने देखा कि उनकी गोद में बालक कृष्ण नहीं हैं। दूसरी ओर उस नवयुवक को देखते ही सर्वस्मृतिस्वरूपा राधा विस्मित हो गईं। उस युवक के मनोहर रूप को देखकर रासेश्वरी मोहित हो गईं। काम के वशीभूत हो जाने के कारण राधा के नयनद्वय रूपी चकोर उस पुरुष के मुखचन्द्र की रश्मियों का मानों पान करने लगा। तभी राधा नवसङ्गम की लालसा से निर्निमेष नेत्रों से उस पुरुष को देखने लगीं। उनके अंग रोमांचित हो उठे। वे अतीव कामातुरा हो गईं। उस समय श्रीकृष्ण ने खिले कमल के समान हास्ययुक्त मुखवाली, नवसंगमयोग्या राधा को अपनी ओर कटाक्षयुक्त चितवन से देखते हुये कहा—॥५३-५६॥

श्रीकृष्ण उवाच

राधे स्मरसि गोलोकवृत्तान्तं सुरसंसदि। अद्य पूर्णं करिष्यामि स्वीकृतं यत्पुरा प्रिये॥५७॥

त्वं मे प्राणाधिका राधे प्रेयसी च वरानने।
यथा त्वं च तथाऽहं च भेदो हि नाऽऽवयोर्ध्रुवम॥५८॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे राधा! यदि तुमको स्मरण हो, तब गोलोक के वृत्तान्त का स्मरण करो जो वहां देवसभा में घटित हुआ था। मैंने उस समय पूर्वकाल में जो कुछ वचन दिया था, उसे पूर्ण करूंगा। तुम तो मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हो। हे वरानने! जैसे तुम हो वैसा ही मैं हूं। हम दोनों में कोई भेद नहीं हैं। यह निश्चित है।।५७-५८।।

यथा क्षीरे च धावल्यं ययाऽग्नौ दाहिका सति।
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाऽहं त्वयि संततम्॥५९॥
विना मृदा घटं कर्तुं विना स्वर्णेन कुण्डलम्।
कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः कदाचन॥६०॥

तथा त्वया विना सृष्टिमहं कर्तुं न च क्षमः। सृष्टेराधारभूता त्वं वीजरूपोऽहमच्युतः॥६१॥

जैसे दुग्ध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति, पृथिवी में गन्ध प्रभृति नित्य अवस्थित रहती है, उसी प्रकार मैं भी तुममें नित्य अवस्थान करता हूं। जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घट निर्माण नहीं कर सकता, स्वर्णकार स्वर्ण के बिना कुण्डल आदि आभूषण नहीं बना सकता, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे बिना सृष्टि कार्य में सक्षम नहीं हो सकता। तुम सृष्टि की आधारभूता हो, मैं अच्युत उसका बीजरूप हूं।।५९-६१।।

आगच्छ शयने साध्वि कुरु वक्षःस्थले हि माम्।
त्वं मे शोभास्वरूपाऽसि देहस्य भूषणं यथा॥६२॥
कृष्णं वदन्ति मां लोकास्त्वयैव रहितं यदा।
श्रीकृष्णं च तदा तेऽपि त्वयैव सहितं परम्॥६३॥
त्वं च श्रीस्त्वं च संपत्तिस्त्वमाधारस्वरूपिणी।
त्वं स्त्री पुमानहं राधे इति वेदेषु निर्णयः॥६४॥
सर्वशक्तिस्वरूपाऽसि सर्वरूपोऽहमक्षरः॥६५॥

हे साध्वी! तुम मेरे पास शय्या पर आकर अपने वक्ष से लिपटा लो। जैसे देह की शोभा आभूषण होते हैं, उसी प्रकार से तुम मेरी शोभा रूपा हो। लोक में लोग मुझे तब 'कृष्ण' कहते हैं, जब मैं तुम्हारे बिना रहता हूं। तुम्हारा साथ होते ही सभी लोग मुझे 'श्रीकृष्ण' कहते हैं। तुम ही (मेरी) श्री, सम्पत्ति तथा आधाररूपा हो। तुम सर्वशक्तिस्वरूपा हो, मैं ही सर्वरूपमय अक्षर (अविनश्वर) हूं। हे राधे! वेद का यह निर्णय है कि तुम स्त्री तथा मैं पुरुष हूं।।६२-६५।।

यदा तेजः स्वरूपोऽहं तेजोरूपाऽसि त्वं तदा।
न शरीरी यदाऽहं च तदा त्वमशरीरिणी॥६६॥

सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि। त्वं च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी॥६७॥

जब मैं तेजरूप रहता हूं, तब तुम भी तेजस्वरूपा हो जाती हो। हे सुन्दरी! जब मैं योग से सर्वबीजरूप होता हूं, तब तुम ही सर्वशक्तिमयी हो जाती हो। तब तुम सर्वस्त्रीरूप धारिणी हो जाती हो। जब मैं अशरीरी रहता हूं, तब तुम भी अशरीरी हो जाती हो।।६६-६७।।

ममाङ्गांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी। शक्त्या बुद्ध्या च ज्ञानेन मया तुल्या वरानने॥६८॥

आवयोर्भेदबुद्धिं च यः करोति नराधमः। तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥६९॥

पूर्वान्सप्त परान्सप्त पुरुषान्पातयत्यधः॥७०-७१॥

तुम ही मेरे अंश से सम्भूता मूलप्रकृति ईश्वरी हो। हे वरानने! तुम शक्ति-बुद्धि-ज्ञान-तेज में मेरे ही समान हो। जो अधम हम दोनों के बीच पृथक् बुद्धि रखते हैं, वे पापी चन्द्र-सूर्य की सृष्टि में जब तक स्थिति है, तब तक कालसूत्र नरक में निवास करते हैं। उनकी पूर्व की सात पीढ़ी वाले तथा भावी सात पीढ़ी वाले लोग अधोगामी हो जाते हैं।।६८-७१।।

राशब्दं कुर्वतस्त्रस्तो ददामि भक्तिमुत्तमाम्।
धाशब्दं कुर्वतः पश्चाद्यामि श्रवणलोभतः॥७२॥

जो कोई व्यक्ति "रा" शब्द मात्र का उच्चारण करता है, प्रशस्तचित्त से उसको मैं उत्तम भक्ति प्रदान करता हूं। तदनन्तर जो व्यक्ति "धा" शब्द का उच्चारण करता है, उसे सुनने हेतु मैं लालसा से उस व्यक्ति के पास चला जाता हूं।।७२।।

ये सेवन्ते च दत्त्वा मामुपचाराश्च षोडश। यावज्जीवनपर्यन्तं या प्रीतिर्जायते मम॥७३॥

सा प्रीतिर्मम जायेत राधाशब्दात्ततोऽधिका।
प्रिया न मे तथा राधे राधावक्ता ततोऽधिकः॥७४॥

जो व्यक्ति यावत्जीवन १६ उपचार अर्पित कर मेरी सेवा करते हैं, उनके प्रति मेरी जीवन पर्यन्त जो प्रीति वर्षा होती रहती है, उससे भी अधिक प्रिय वह मुझे है, जो 'राधा' शब्द का उच्चारण करता है। हे राधा! उतनी तो तुम मुझे प्रिय नहीं हो, जितना राधा नाम का जप करने वाला मुझे प्रिय है।।७३-७४।।

ब्रह्माऽनन्तः शिवो धर्मो नरनारायणावृषी।
कपिलश्च गणेशश्च कार्तिकेयश्च मत्प्रियः॥७५॥
लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री प्रकृतिस्तथा।
मम प्रियाश्च देवाश्च तास्तथाऽपि न तत्समाः॥७६॥

ते सर्वे प्राणतुल्या मे त्वं मे प्राणाधिका सती।
भिन्नस्थानस्थितास्ते च त्वं च वक्षःस्थले स्थिता॥७७॥
या मे चतुर्भुजा मूर्तिर्बिभर्ति वक्षसि प्रियाम्।
सोऽहं कृष्णस्वरूपस्त्वां विवहामि स्वयं सदा[१]॥७८॥

ब्रह्मा, अनन्त, शिव, धर्म, नर-नारायण ऋषि, कपिल, गणेश, कार्त्तिकेय मेरे प्रिय हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, प्रभृति देवी मेरी प्रिया हैं, तथापि तुम्हारे समान प्रिया कोई भी नहीं है। हे सती! वे मात्र प्राण के ही समान हैं, तथापि तुम प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। वे सभी तो अलग-अलग स्थानों में रहती हैं, परन्तु तुम तो नित्य मेरे वक्षस्थल में निवास करती हो। मेरी चतुर्भुज मूर्त्ति भी तुमको नित्य वक्ष में धारण करती है। मैं कृष्णरूप भी तुमको सदा अपने हृदय में धारण किये रहता हूं।।७५-७८।।

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णस्तस्थौ तल्पे मनोरमे। उवाच राधिका नाथं भक्तिनम्रात्मकंधरा॥७९॥

यह कहकर श्रीकृष्ण उस मनोरम शय्या पर स्थित विराजित हो गये। उस समय राधिका ने भक्ति से नतमस्तक होकर प्राणनाथ से कहा-।।७९।।

राधिकोवाच

स्मरामि सर्वं जानामि विस्मरामि कथं विभो। यत्त्वं वदसि सर्वाऽहं त्वत्पादाब्जप्रसादतः॥८०॥
ईश्वरस्याप्रियाः केचित्प्रियाश्च कुत्र केचन।
ये यथा मां न स्मरन्ति तथा तेषु तवाकृपा॥८१॥
तृणं च पर्वतं कर्तुं समर्थः पर्वतं तृणम्।
तथाऽपि योग्यायोग्ये च संपत्तौ च समा कृपा॥८२॥
तिष्ठत्यहं शयानस्त्वं कथाभिर्यत्क्षणं गतम्। तत्क्षणं च युगसमं नाहं प्रापयितुं क्षमा॥८३॥
वक्षःस्थले च शिरसि देहि ते चरणाम्बुजम्।
दुनोति मन्मनः सद्यस्त्वदीयविरहानलात्॥८४॥
पुरः पपात मे दृष्टिस्त्वदीयचरणाम्बुजे। नीता मया न हि क्लेशाद्द्रष्टुमन्यत्कलेवरम्॥८५॥
प्रत्येकमङ्गं दृष्ट्वैव दत्ता शान्ते मुखाम्बुजे।
दृष्ट्वा मुखारविन्दं च नान्यं गन्तुं च सा क्षमा॥८६॥

श्रीराधा कहती हैं-हे प्रभो! वह सब वृत्तान्त मैं कैसे भूल सकती हूं? मुझे सब कुछ याद है। आपके चरणकमलों की कृपा से जो कुछ आपने कहा, वह सब मुझे ज्ञात है। हे मायापति! मैं आपकी भक्त होकर भी आपके ऐसे मायाजाल में आबद्ध हो गई हूं। आपके मायाजाल में बद्ध मेरे समान कितने लोग चक्रमण करते रहते हैं। मैंने भी एक भक्त के शाप से गोपिकारूप से धरती पर

१. क. मुदा।

जन्म लिया है। अब मुझे आपसे सौ वर्ष तक अलग रहना होगा, यह शाप मिला था। ईश्वर को कुछ लोग अप्रिय लगते हैं, कुछ प्रिय लगते हैं, तथापि जो कोई मेरा स्मरण नहीं करते, उन पर आपकी अकृपा रहती है। आप तो पर्वत को तृण तथा तृण को पर्वत बना सकते हैं, तथापि योग्य-अयोग्य के प्रति सम्पदा तथा विपदा में आपकी कृपा एक जैसी होती हैं। मैं नीचे हूं, आप शय्या पर हैं। इस वार्त्ता कथा में जो क्षण व्यर्थ निकल गया, वह मुझे युग के समान लग रहा है। मैं उसे वापस नहीं ला सकती। अब आप मेरे वक्ष तथा शिर पर अपना चरणकमल स्थापित करिये। सतत् विरह ज्वाला से मेरा मन जल रहा है। मेरी दृष्टि सर्वप्रथम आपके चरणकमलों पर पड़ी थी। मैंने तब क्लेश होने पर भी आपके अन्य अंग दर्शनार्थ आपकी ओर से दृष्टि नहीं हटाया। मेरी दृष्टि इसके पश्चात् आपके प्रत्येक अंगों का दर्शन करके आपके मुखकमल पर पड़ी। आपके शान्त मुखकमल पर जैसे ही दृष्टि पड़ी, वह दृष्टि अब अन्यत्र जाने में अक्षम हो गई।।८०-८६।।

राधिकावचनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः। तामुवाच हितं तथ्यं श्रुतिस्मृतिनिरूपितम्॥८७॥

राधिका का यह कथन सुनकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने हंसकर सारभूत तथा हितप्रद और श्रुति-स्मृति सम्मत वाक्यों को राधा से कहा–।।८७।।

श्रीकृष्ण उवाच

न खण्डनीयं तत्तत्र मया पूर्वं निरूपितम्। तिष्ठ भद्रे क्षणं भद्रं करिष्यामि तव प्रिये॥८८॥
त्वन्मनोरथपूर्णस्य स्वयं कालः समागतः॥८९॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे भद्रे! प्रिये! जिस देश में,जिस जन्म में जिसे जो आचरण करना है, वह मैंने पूर्व में ही कह दिया है। उसे खण्डन कर सकना सभी के लिये असाध्य है। हे प्रिये! अतः तुम कुछ प्रतीक्षा करो। मैं तुम्हारे लिये मंगलजनक कार्य करूंगा। तुम्हारे मनोरथ लाभ का काल स्वयं आया है।।८८-८९।।

यस्य यल्लिखितं पूर्वं यत्र काले निरूपितम्।
तदेव खण्डितुं राधे क्षमो नाहं च को विधिः॥९०॥
विधातुश्च विधाताऽहं येषां यल्लेखनं कृतम्।
ब्रह्मादीनां च क्षुद्राणां न तत्खण्ड्यं कदाचन॥९१॥

जिसके भाग्य में जो अदृष्टलिपि जिस काल हेतु पूर्व में अंकित हो गई है, उसका खण्डन कर सकना विधाता के लिये तो दूर की बात है, मैं भी उसका खण्डन नहीं कर सकता। मैं विधाता का भी विधाता हूं। अतः मैंने जिसके अदृष्ट में जो लिखा है, ब्रह्मा आदि क्षुद्र देवता भी उसका कभी खण्डन नहीं कर सकते।।९०-९१।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्माऽऽजगाम पुरतो हरेः। मालाकमण्डलुकार ईषत्स्मेरचतुर्मुखः॥९२॥
गत्वा ननाम तं कृष्णं प्रतुष्टाव यथागमम्। साश्रुनेत्रः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकंधरः॥९३॥

स्तुत्वा नत्वा जगद्धाता जगाम हरिसंनिधिम्।
पुनर्नत्वा प्रभुं भक्त्या जगाम राधिकान्तिकम्॥९४॥
मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मातुस्तच्चरणाम्बुजे।
चकार संभ्रमेणैव जटाजालेन वेष्टितम्॥९५॥
कमण्डलुजलेनैव शीघ्रं प्रक्षालितं मुदा। यथागमं प्रतुष्टाव पुटाञ्जलियुतः पुनः॥९६॥

यह कथनोपकथन हो ही रहा था, तभी वहां मालाकमण्डलुधारी मुस्कराते हुये चतुर्मुख ब्रह्मा हरि के समक्ष आ गये। ब्रह्मा ने सर्वप्रथम कृष्ण को प्रणाम किया तथा भक्ति पूर्वक मस्तक नत करके साश्रुनेत्र होकर तथा पुलकित अन्तःकरण से कृष्ण का स्तव आगमोक्त प्रकार से करने लगे। जगत्विधाता पितामह ने इस प्रकार हरि का स्तव करने के अनन्तर उनको पुनः प्रणाम किया तत्पश्चात् उन्होंने राधिका के निकट जाकर देवी के चरणद्वय को अपने शिर की जटायें लपेटकर अपने कमण्डलु स्थित जल से उनको धोया। इसके अनन्तर वे हाथ जोड़कर आगमोक्त प्रकार से राधा का स्तव करने लगे॥९२-९६॥

ब्रह्मोवाच

हे मातस्त्वपदाम्भोजं दृष्टं कृष्णप्रसादतः। सुदुर्लभं च सर्वेषां भारते च विशेषतः॥९७॥
षष्टिवर्षसहस्त्राणि तपस्तप्तं पुरा मया। भास्करे पुष्करे तीर्थे कृष्णस्य परमात्मनः॥९८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे माता! श्रीकृष्ण की कृपा से मैं आपके सर्वसुदुर्लभ चरणकमलों का दर्शन करने में सक्षम हो सका। ये तो अत्यन्त दुर्लभ हैं। पूर्व में मैंने पुष्कर तीर्थ में ६०००० वर्ष पर्यन्त परमात्मा श्रीकृष्ण की आराधना किया था॥९७-९८॥

आजगाम वरं दातुं वरदाता हरिः स्वयम्। वरं वृणीष्वेत्युक्ते च स्वाभीष्टं च वृतं मुदा॥९९॥
राधिकाचरणाम्भोजं सर्वेषामपि दुर्लभम्। हे गुणातीत मे शीघ्रमधुनैव प्रदर्शय॥१००॥
मयेत्युक्तो हरिरयमुवाच मां तपस्विनम्।
दर्शयिष्यामि काले च वत्सेदानीं क्षमेति च॥१०१॥

इसके पश्चात् प्रसन्न होकर वरदाता श्रीकृष्ण वर देने हेतु स्वयं आये। उन्होंने कहा—"हे ब्रह्मा! तुम वांछित वर मांगो।" भगवान् के यह कहने पर मैंने वांछित वर मांगते हुए कहा—"हे गुणातीत प्रभो! मैं सर्वदुर्लभ राधिका के चरणों का दर्शन पा सकूं, यह वर दीजिये।" उस समय हरि ने मेरे तपस्वीभाव को देखकर माया त्याग कर कहा—"हे वत्स! समय आने पर मैं तुमको राधा के चरण कमलों का दर्शन करा दूंगा। कुछ समय प्रतीक्षा करो। इस विषय में अभी मुझे क्षमा करो॥९९-१०१॥

नहीश्वराज्ञा विफला तेन दृष्टं पदाम्बुजम्।
सर्वेषां वाञ्छितं मातर्गोलोके भारतेऽधुना॥१०२॥
सर्वा देव्यः प्रकृत्यंशा जन्याः प्राकृतिका ध्रुवम्।
त्वं कृष्णाङ्गार्धसंभूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः॥१०३॥

श्रीकृष्णस्त्वमयं राधा त्वं राधा वा हरिः स्वयम्।
न हि वेदेषु मे दृष्ट इति केन निरूपितम्॥१०४॥
ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वं च गोलोकोऽस्ति यथाऽम्बिके।
वैकुण्ठश्चाप्यजन्यश्च त्वमजन्या तथाऽम्बिके॥१०५॥

हे माता! ईश्वर की आज्ञा कभी विफल नहीं होती। तभी मैं आपके चरण कमलों का दर्शन कर सका। आप गोलोक में तथा भारत में भी सबके द्वारा वांछित रहती हैं। सभी देवियां प्रकृति के अंश से उत्पन्न होती हैं। वे प्राकृतिक हैं तथा जन्म लेने वाली जन्या हैं, तथापि आप कृष्ण के अर्द्धांश से उत्पन्न होने के कारण सर्वदा कृष्ण के ही समान हैं। आप सभी प्रकार से उनके ही समान हैं। आप श्रीकृष्ण हैं, वे राधा हैं। आप राधा हैं, वे स्वयं हरि हैं। यह निरूपण कौन कर सकता है? ऐसा निश्चय (कि आप दोनों में से कौन क्या है? कोई भी नहीं कर सकता) वेदों में भी नहीं है। हे अम्बे! गोलोक ब्रह्माण्ड के बाहर उससे ऊर्ध्व में स्थित है। इसी प्रकार से वैकुण्ठ लोक भी जन्य (किसी के द्वारा उत्पन्न) नहीं है। आप भी इसी प्रकार अजन्य हैं। अर्थात् गोलोक, वैकुण्ठ तथा आप—ये सभी नित्य हैं।।१०२-१०५॥

यथा समस्तब्रह्माण्डे श्रीकृष्णांशांशजीविनः।
तथा शक्तिस्वरूपा त्वं तेषु सर्वेषु संस्थिता॥१०६॥
पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निखिलाः स्त्रियः।
[1]आत्मना देहरूपा त्वमस्याऽऽधारस्त्वमेव हि॥१०७॥
अस्यानुप्राणैस्त्वं मातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः।
किमहो निर्मितः केन हेतुना शिल्पकारिणा॥१०८॥

ब्रह्माण्ड में सभी जीव कृष्ण के अंश से उत्पन्न हैं। इसी प्रकार भी आप प्रत्येक प्राणी में सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। समस्त पुरुष हरि के अंश से उत्पन्न हैं। स्त्री समूह आपके अंश से उत्पन्न हैं। भगवान् कृष्ण सबकी आत्मा हैं। आप सबकी आधारभूता तथा देहरूपा हैं। हे माता! आप कृष्ण के प्राणों से युक्त होकर जगत् की माता हैं। श्रीकृष्ण आपके प्राण विशेष होने के कारण ईश्वर हो गये। यही आश्चर्य है। अर्थात् आपके प्राण से ईश्वर प्राणयुक्त हैं और ईश्वर के प्राणों से आप प्राणमयी हैं। किस कारण से किसी शिल्पी ने ऐसा सृजन किया है, यह कदापि बोधगम्य नहीं है।।१०६-१०८।।

नित्योऽयं च तथा कृष्णस्त्वं च नित्या तथाऽम्बिके।
अन्यांशा त्वं त्वदंशोवाऽप्ययं केन निरूपितः॥१०९॥
अहं विधाता जगतां वेदानां जनकः स्वयम्।
तं पठित्वा गुरुमुखाद्भवन्त्येव बुधा जनाः॥११०॥

१. क. आत्माऽहं दे०।

गुणानां वास्तवानां ते शतांशं वक्तुमक्षमः।
वेदो वा पण्डितो वाऽन्यः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः॥१११॥
स्तवानां जनकं ज्ञानं बुद्धिर्ज्ञानाम्बिका सदा।
त्वं बुद्धेर्जननी मातः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः॥११२॥

हे अम्बिके! जैसे कृष्ण नित्य हैं, उसी प्रकार आप भी नित्य हैं। (यह पता नहीं कि) आप इनकी अंश हैं अथवा ये आपके अंश हैं। इसका उत्तर देने में कोई समर्थ नहीं है। मैं ब्रह्मा जगत् का विधाता एवं वेदों का स्रष्टा हूं। वेदों का गुरु से अध्ययन करने वाले विद्वान् हो जाते हैं, तथापि वे आपके यथार्थ गुणों के सौवें भाग का भी वर्णन कहीं कर सकते। कोई भी वेद अथवा विद्वान् किंवा अन्य कोई भी आपकी स्तुति कर सकने में समर्थ ही नहीं हो सकता! समस्त स्तुति का जनक है ज्ञान। ज्ञान की माता है बुद्धि और आप तो बुद्धि की भी जननी हैं। तब आपकी स्तुति कर सकने की क्षमता किसमें हैं?॥१०९-११३॥

यद्वस्तु दृष्टं सर्वेषां तद्धि वक्तुं बुधः क्षमः। यददृष्टाश्रुतं वस्तु तन्निर्वक्तुं च कः क्षमः॥११३॥

जो कुछ दृष्टिगोचर हो पाता है, विद्वान् लोग उसके बारे में ही कह पाते हैं, तथापि जो न देखा गया, न तो सुना गया उसके सम्बन्ध में कौन तनिक भी वर्णन कर सकेगा?॥११३॥

अहं महेशोऽनन्तश्च स्तोतुं त्वां कोऽपि न क्षमः।
सरस्वती च वेदाश्च क्षमः कः स्तोतुमीश्वरः॥११४॥
यथागमं यथोक्तं च न मां निन्दितुमर्हसि।
ईश्वराणामीश्वरस्य योग्यायोग्ये समा कृपा॥११५॥
जनस्य प्रतिपाल्यस्य क्षणे दोषः क्षणे गुणः।
जननी जनको यो वा सर्वं क्षमति स्नेहतः॥११६॥

मैं, अनन्तदेव किंवा शिव इनमें से कोई भी आपका स्तव करने की क्षमता नहीं रखते। हे जगदीश्वरी! आपका स्तव करने की क्षमता तो सरस्वती तथा वेदों की भी नहीं है। मैंने आगमों के अनुसार आपका स्तुति वाक्य कहा है। इसके लिये आप मेरी निन्दा मत करिये। आप ईश्वर की भी ईश्वर हैं। आपकी तो योग्य एवं अयोग्य पर समान कृपा होती है। प्रतिपाल्य (पाले गये) सन्तान का क्षण में दोष तो क्षण में गुण उजागर होता है, परन्तु माता-पिता उनके प्रति स्नेह के कारण उनके दोषों को क्षमा कर देते हैं।॥११४-११६॥

इत्युक्त्वा जगतां धाता तस्थौ च पुरतस्तयोः।
प्रणम्य चरणाम्भोजं सर्वेषां वन्द्यमीप्सितम्॥११७॥
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
राधामाधवयोः पादे भक्तिर्दास्यं लभेद्ध्रुवम्॥११८॥

जगन्माता से यह कहकर ब्रह्मा ने सर्वपूज्य तथा सर्वेप्सित सर्ववन्द्य राधा-कृष्ण के चरण-कमलों पर प्रणाम किया तथा वे उनके समक्ष खड़े हो गये। जो कोई ब्रह्मा द्वारा किये इस स्तोत्र को तीनों सन्ध्याकाल में पढ़ता है, उसे राधामाधव के चरणों की भक्ति तथा दास्य निश्चित मिल जाता है।।११७-११८।।

कर्मनिर्मूलनं कृत्वा मृत्युं जित्वा सुदुर्जयम्।
विलङ्घ्य सर्वलोकांश्च याति गोलोकमुत्तमम्।।११९।।

वह अपने सभी कर्मों को निर्मूल करके दुर्जय मृत्यु पर विजयी हो जाता है। वह सभी लोकों को पार करता हुआ उत्तम गोलोक गमन करता है।।११९।।

नारायण उवाच

ब्रह्मणः स्तवनं श्रुत्वा तमुवाच ह राधिका। वरं वृणु विधातस्त्वं यत्ते मनसि वर्तते।।१२०।।

राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच जगद्विधिः।
वरं च युवयोः पादपद्मभक्तिं च देहि मे।।१२१।।
इत्युक्ते विधिना राधा तूर्णमोमित्युवाच ह।
पुनर्ननाम तां भक्त्या विधाता जगतां पतिः।।१२२।।
तदा ब्रह्मा तयोर्मध्ये प्रज्वाल्य च हुताशनम्।
हरिं संस्मृत्य हवनं चकार विधिना विधिः।।१२३।।
उत्थाय शयनात्कृष्ण उवास वह्निसंनिधौ।
ब्रह्मणोक्तेन विधिना चकार हवनं स्वयम्।।१२४।।
प्रणमय्य पुनः कृष्णं राधां तां जनकः स्वयम्।
कौतुकं कारयामास सप्तधा च प्रदक्षिणाम्।।१२५।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं– राधा देवी ने ब्रह्मा का स्तव सुनकर उनसे कहा–"हे विधाता! आप मनोवांछित वर मांगिये।" राधिका का वचन सुनकर जगत्‌विधाता ब्रह्मा ने कहा–"हे देवी! आप दोनों के चरणों की अचला भक्ति मुझे प्राप्त हो, यह वर दीजिये।" देवी राधिका ने ब्रह्मा की यह प्रार्थना तत्काल स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने पुनः राधा को प्रणाम किया और ब्रह्मा ने वहां अग्नि प्रज्वलित करके हरि का स्मरण किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने वहां सविधि हवन सम्पन्न कर दिया। तभी श्रीकृष्ण स्वयं शय्या से उठे तथा उन्होंने ब्रह्मोक्त विधान से होम स्वयं सम्पन्न किया। इसके पश्चात् ब्रह्मा के निवेदन करने पर राधा ने कृष्ण को प्रणाम किया। अब ब्रह्मदेव ने राधा के पिता का कर्त्तव्य पालन करते हुये मांगलिक वैवाहिक कृत्य करते हुये राधा-कृष्ण से अग्नि की ७ परिक्रमा कराया।।१२०-१२५।।

पुनः प्रदक्षिणां राधां कारयित्वा हुताशनम्।
प्रणमय्य ततः कृष्णं वासयामास तं विधिः॥१२६॥
तस्या हस्तं च श्रीकृष्णं ग्राहयामास तं विधिः।
वेदोक्तसप्तमन्त्रांश्च पाठयामास माधवम्॥१२७॥
संस्थाप्य राधिकाहस्तं हरेर्वक्षसि वेदवित्। श्रीकृष्णहस्तं राधायाः पृष्ठदेशे प्रजापतिः॥१२८॥
स्थापयामास मन्त्रांस्त्रीन्पाठयामास राधिकाम्।
पारिजातप्रसूनानां मालां जानुविलम्बिताम्॥१२९॥
श्रीकृष्णस्य गले ब्रह्मा राधाद्वारा ददौ मुदा।
प्रणमय्य पुनः कृष्णं राधां च कमलोद्भवः॥१३०॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने राधा द्वारा पुनः अग्नि की प्रदक्षिणा कराया और कृष्ण को उनके द्वारा प्रणाम कराने के पश्चात् उनको (राधा को) वहां बैठाया। इसके पश्चात् ब्रह्मा ने राधा का हाथ कृष्ण को पकड़ाया। उस समय ब्रह्मदेव ने कृष्ण से वेदोक्त सात मन्त्रों का पाठ कराया। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने राधा का हाथ कृष्ण के वक्षस्थल पर और कृष्ण का हाथ राधा की पीठ पर रखकर राधिका से मन्त्रों का पाठ कराया और घुटनों तक लम्बी पारिजात पुष्पों की माला राधा द्वारा कृष्ण के गले में अर्पित कराया। राधा ने भी तत्पश्चात् कृष्ण को प्रणाम किया॥१२६-१३०॥

राधागले हरिद्वारा ददौ मालां मनोहराम्।
पुनश्च वासयामास श्रीकृष्णं कमलोद्भवः॥१३१॥
तद्वामपार्श्वे राधां च सस्मितां कृष्णचेतसम्।
पुटाञ्जलिं कारयित्वा माधवं राधिकां विधिः॥१३२॥
पाठयामास वेदोक्तान्पञ्च मन्त्रांश्च नारद।
प्रणमय्य पुनः कृष्णं समर्प्य राधिकां विधिः॥१३३॥
कन्यकां च यथा तातो भक्त्या तस्थौ हरेः पुरः।
एतस्मिन्नन्तरे देवाःसानन्दपुलकोद्गमाः॥१३४॥
दुन्दुभिं वादयामासुश्चाऽऽनकं मुरजादिकम्॥१३५॥

ब्रह्मा ने कृष्ण द्वारा अतीव मनोहरा माला राधा के कण्ठ में पहनवाया। इसके पश्चात् ब्रह्मा ने कृष्ण को आसनासीन कराकर उनके वामभाग में राधा को आसीन कराया। इसके अनन्तर राधा-माधव दोनों ने ब्रह्मा के निर्देश के अनुसार हाथ जोड़ा और उनसे ब्रह्मा ने ५ वेदमन्त्रों का पाठ कराया। राधा से कृष्ण को पुनः प्रणाम कराया तथा ब्रह्मा ने पितृवत् भाव से राधा को अपनी कन्या के समान मानकर भक्तिभाव से कृष्ण को अर्पित कर दिया। सर्वान्त में ब्रह्मा प्रभु एवं भगवती के

समक्ष खड़े हो गये। उसी समय देवता आनंदित एवं पुलकित हो उठे। वे दुन्दुभि, आनक, मुरज आदि वाद्य बजाने लगे।।१३१-१३५।।

पारिजातप्रसूनानां पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। जगुर्गन्धर्वप्रवरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥१३६॥
तुष्टाव श्रीहरिं ब्रह्मा तमुवाच ह सस्मितः।
युवयोश्चरणाम्भोजे भक्तिं मे देहि दक्षिणाम्॥१३७॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम्।
मदीयचरणाम्भोजे सुदृढा भक्तिरस्तु ते॥१३८॥
स्वस्थानं गच्छ भद्रं ते भविता नात्र संशयः।
मया नियोजितं कर्म कुरु वत्स ममाऽऽज्ञया॥१३९॥

आकाश से देवगण पारिजात पुष्पों की वर्षा करने लगे। गन्धर्वगण का गायन तथा अप्सराओं का नृत्य होने लगा। उस समय मुस्कान के साथ ब्रह्मदेव राधा-माधव की स्तुति करते कहने लगे- "आप अपने चरणकमलों की अचला भक्ति इस विवाह की दक्षिणा रूप में प्रदान करिये।" ब्रह्मा का कथन सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा-"आप की सुदृढ़भक्ति हम दोनों के चरणों में बनी रहे। अब आप अपने लोक जायें। इसमें तनिक संशय नहीं है कि आपका सभी प्रकार से मंगल होगा। हे वत्स! हमारी आज्ञा से आप हमारे बताये कार्य को सम्पन्न करिये।।१३६-१३९।।

नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा विधाता जगतां मुने।
प्रणम्य राधां कृष्णं च जगाम स्वालयं मुदा॥१४०॥
गते ब्रह्मणि सा देवी सस्मिता वक्रचक्षुषा।
सा ददर्श हरेर्वक्त्रं चच्छाद व्रीडया मुखम्॥१४१॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी कामबाणप्रपीडिता। प्रणम्य श्रीहरिं भक्त्या जगाम शयनं हरेः॥१४२॥
चन्दनागुरुपङ्कं च कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्।
ललाटे तिलकं कृत्वा ददौ कृष्णस्य वक्षसि॥१४३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं-हे मुनिवर! ब्रह्मा ने ईश्वर की आज्ञा सुनकर राधा-कृष्ण को प्रणाम किया तथा अपने भवन चले गये। ब्रह्मदेव के प्रस्थान करने पर राधा हंसते हुये तथा कटाक्षपूर्ण चितवन के साथ हरि के मुखमण्डल का बारम्बार दर्शन करने लगीं तथा लज्जा के कारण अपना मुख ढ़क लिया। राधा का सर्वाङ्ग अत्यन्त कामपीड़ित होने से रोमांचित हो उठा। उन्होंने भक्तिभाव से हरि को प्रणाम करके श्रीहरि के शयनागार में जाकर वहां कस्तूरी, कुङ्कुम युक्त चन्दन और अगुरु का लेप कृष्ण के वक्षस्थल पर किया। उन्होंने अपने ललाट पर तिलक लगाया।।१४०-१४३।।

सुधापूर्णं रत्नपात्रं मधुपूर्णं मनोहरम्। प्रददौ हरये भक्त्या बुभुजे जगतीपतिः॥१४४॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्।
ददौ कृष्णाय सा राधा सादरं बुभुजे हरिः॥१४५॥
चखाद सस्मिता राधा हरिदत्तं सुधारसम्। ताम्बूलं तेन दत्तं च बुभुजे पुरतो हरेः॥१४६॥
कृष्णश्चर्वितताम्बूलं राधिकायै मुदा ददौ।
चखाद परया भक्त्या पपौ तन्मुखपंकजम्॥१४७॥

इसके पश्चात् राधा ने सुधा तथा मधु से पूर्ण रत्नपात्र हरि को प्रदान किया। हरि ने उसे सादर ग्रहण किया। भगवान् जगतीपति ने उसका सहर्ष पान भी किया। इसके अनन्तर राधा ने प्रभु को सस्मित भाव से उत्तम कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल प्रदान किया। कृष्ण ने आदर पूर्वक राधा प्रदत्त ताम्बूल का चर्वण किया। भगवान् द्वारा बचा सुधारस दिये जाने पर राधा ने उस अमृत रस का पान मुस्कराते हुये किया तथा प्रभु प्रदत्त ताम्बूल को भी श्रीहरि के समक्ष खा लिया। कृष्ण ने अपना चबाया यह ताम्बूल मुदित होकर राधा को दिया तथा जिसे राधा ने परम भक्ति से खाया और प्रभु के मुखकमल के सौन्दर्य का नेत्रों से पान करने लगीं॥१४४-१४७॥

राधाचर्वितताम्बूलं ययाचे मधुसूदनः। जहास न ददौ राधा क्षमेत्युक्तं तया मुदा॥१४८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमुत्तमम्। राधिकायाश्च सर्वाङ्गे प्रददौ माधवः स्वयम्॥१४९॥
यः कामो ध्यायते नित्यं यस्यैकचरणाम्बुजम्।
बभूव तस्य स वशी राधासंतोषकारणात्॥१५०॥
यद्भृत्यभृत्यैर्मदनो जितः सर्वक्षणं मुने।
स्वेच्छामयो हि भगवाञ्जितस्तेन कुतूहलात्॥१५१॥
करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि।
चकार शिथिलं वस्त्रं चुम्बनं च चतुर्विधम्॥१५२॥

इसके पश्चात् कृष्ण ने राधा द्वारा चबाये जा रहे ताम्बूल की याचना किया, तब राधा ने हंसते हुये उत्तर दिया—"इस विषय में मुझे क्षमा करिये।" माधव ने अब राधा के सर्वाङ्ग में चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुङ्कुम आदि गन्ध द्रव्य का लेपन कर दिया। कामदेव नित्य जिनके चरणकमल का चिन्तन करते रहते हैं, इस समय वे ही कृष्ण राधिका के सन्तोष के लिये काम के वशीभूत हो गये! हे नारद! जिन प्रभु के भृत्य के भी भृत्य से काम पराभूत हो जाता है, अब वही काम भगवान् की इच्छा से कौतुक पूर्वक उनको ही पराजित कर रहा था! इसके अनन्तर भगवान् ने राधिका का हाथ पकड़ कर अपने वक्ष पर रखा और ४ प्रकार से राधा का चुम्बन लेकर राधा के वस्त्र को ढीला कर दिया!॥१४८-१५२॥

बभूव रतियुद्धेन विच्छिन्ना क्षुद्रघण्टिका।
चुम्बनेनौष्ठरागश्च ह्याश्लेषेण च पत्रकम्॥१५३॥
शृङ्गारेणैव कबरी सिन्दूरतिलकं मुने। जगामालक्तकाङ्कश्च विपरीतादिकेन च॥१५४॥

हे मुनिवर! इनके रतियुद्ध (कामक्रीड़ा) में राधा के आभूषणों की छोटी-छोटी घंटियां विच्छिन्न होने लगीं। चुम्बन से ओठों पर लगा रक्तिम राग छूट गया, आलिंगन करने के कारण वक्षस्थल पर की गई पत्रों की चित्रकारी नष्ट हो गयी। हे मुनिवर! इनके पारस्परिक संभोग में केशपाश खुल गये। सिन्दूर तिलक फैल गया और विपरीत आदि रति के समय आलता प्रभृति पुंछ से गये॥१५३-१५४॥

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी बभूव नवसङ्गमात्।
मूर्च्छामवाप सा राधा बुबुधे न दिवानिशम्॥१५५॥
प्रत्यङ्गेनैव प्रत्यङ्गमङ्गेनाङ्गं समाश्लिषत्।
शृङ्गाराष्टविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रवित्॥१५६॥

इस नवसंगम से राधा का सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। वे ऐसी मूर्च्छित (विभोर)-सी हो गई कि उनको अब रात-दिन का कोई भान नहीं हो रहा था। श्रीकृष्ण कामशास्त्र के वेत्ता हैं। उनका शास्त्रपारदर्शी ने अपने अंग-प्रत्यंग से राधा के प्रत्येक अंग का आलिंगन करते आठ प्रकार के संभोग को सम्पन्न किया॥१५५-१५६॥

पुनस्तां च समाश्लिष्य सस्मितां वक्रलोचनाम्।
क्षतविक्षतसर्वाङ्गीं नखदन्तैश्चकार ह॥१५७॥
कङ्कणानां किङ्किणीनां मञ्जीराणां मनोहरः। बभूव शब्दस्तत्रैव शृङ्गारसमरोद्भवः॥१५८॥

इसके पश्चात् उन्होंने तिरछी चितवन वाली राधा को खींचकर दांतों तथा नखों से उनका सर्वाङ्ग आलिंगन करते हुये क्षत-विक्षत कर दिया। उस शृङ्गार समर में राधिका के कंकण, मेखला तथा नूपुरों में लगी छोटी-छोटी घंटियां मनोहर शब्द कर रही थीं॥१५७-१५८॥

पुनस्तां च समाकृष्य शय्यायां च निवेश्य च।
चकार रहितां राधां कबरीबन्धवाससा॥१५९॥
निर्जने कौतुकात्कृष्णः कामशास्त्रविशारदः।
चूडावेषांशुकैर्हीनं चकार तं च राधिका॥१६०॥
न कस्य कस्माद्धानिश्च तौ द्वौ कार्यविशारदौ।
जग्राह राधाहस्तात्तु माधवो रत्नदर्पणम्॥१६१॥

इसके पश्चात् उस निर्जन में कामशास्त्रज्ञ कृष्ण ने कौतुक पूर्वक राधिका को वस्त्रहीन करके

शय्या पर अपने निकट बैठाकर उनका जूड़ा खोल दिया। उनकी करधनी आदि उतार दिया। ये दोनों इस कार्य में इतने निपुण थे कि इसमें एक-दूसरे से किसी की कोई हानि नहीं हो रही थी। इसी बीच माधव ने राधा से उनका रत्न-दर्पण छीन लिया।।१५९-१६१।।

मुरली माधवकराज्जग्राह राधिका बलात्।
चित्तापहारं राधायाश्चकार माधवो बलात्।।१६२।।
जहार राधिका रासान्माधवस्यापि मानसम्।
निवृत्ते कामयुद्धे च सस्मिता वक्रलोचना।।१६३।।
प्रददौ मुरलीं प्रीत्या श्रीकृष्णाय महात्मने।
प्रददौ दर्पणं कृष्णः क्रीडाकमलमुज्ज्वलम्।।१६४।।

यह देखकर राधिका ने भी माधव के हाथों से बल प्रयोग करके उनकी मुरली का हरण कर लिया। माधव ने इस शृङ्गारप्रसंग में राधा का चित्त हरण कर लिया था। उधर राधा ने भी माधव के मन का हरण कर लिया था। हे मुनिप्रवर! इस कामयुद्ध का अवसान होने पर तिरछी चितवन से कृष्ण को देखती राधा ने मन्द हास्य के साथ महात्मा कृष्ण को उनकी मुरली प्रेम पूर्वक वापस कर दिया। उधर भगवान् ने राधा का उज्वल क्रीड़ा कमल तथा दर्पण भी राधा को लौटा दिया।।१६२-१६४।।

चकार कबरीं रम्यां सिन्दूरतिलकं ददौ। विचित्रपत्रकं वेषं चकारैवंविधं हरिः।।१६५।।

विश्वकर्मा न जानाति सखीनामपि का कथा।
वेषं विधातुं कृष्णस्य यदा राधा समुद्यता।।१६६।।

बभूव शिशुरूपं च कैशोरं च विहाय च। ददर्श बालरूपं तं रुदन्तं पीडितं क्षुधा।।१६७।।

प्रभु ने राधा का मनोहर जूड़ा पुनः बाधा तथा उनके ललाट पर सिन्दूर का तिलक लगा दिया। श्रीहरि ने राधा का ऐसा वेश बनाया तथा उनके वक्ष पर ऐसी पत्रावलि का चित्रण किया, वैसी रचना कर सकना तो सखियों के लिये दूर की बात है, वैसी रचना कर सकने में स्वयं विश्वकर्मा भी सक्षम नहीं थे। जैसे ही राधा कृष्ण की वेशसज्जा करने हेतु यत्न करने लगीं, तभी कृष्ण ने कैशोरावस्था त्यागकर तत्काल शिशु रूप धारण कर लिये। राधा देखती हैं कि यह शिशु क्षुधा से पीड़ित होकर रुदन कर रहा है।।१६५-१६७।।

यादृशं प्रददौ नन्दो भीतं तादृशमच्युतम्।
विनिःश्वस्य च सा राधा हृदयेन विदूयता।।१६८।।

इतस्ततस्तं पश्यन्ती शोकार्ता विरहातुरा। उवाच कृष्णमुद्दिश्य काकूक्तिमिति कातरा।।१६९।।

जिस प्रकार नन्दराज ने भयभीत अच्युत शिशु कृष्ण को राधा के हाथों में दिया था, राधा ने इस समय कृष्ण को उसी रूप में देखा। इससे राधा दुःखी होकर दीर्घ निश्वास छोड़ते हुये किशोर कृष्ण को

इधर-उधर खोजने लगीं। उनको कहीं न पाकर राधा विरहातुरा हो गयीं। वे शोकाकुल चित्त होकर, अत्यन्त करुण स्वर से कातर होकर, कृष्ण को सम्बोधित करके कहने लगीं!।।१६८-१६९।।

मायां करोषि मायेशं किंकरी कथमीदृशीम्।
इत्येवमुक्त्वा सा राधा पपात च रुरोद च।।१७०।।

(राधा कहती हैं)-"हे मायाधीश! मैं आपकी दासी हूं। आप अपनी माया का विस्तार मुझ पर क्यों कर रहे हैं?" यह कहते राधा रुदन करते-करते भूपतित हो गई तथा कृष्ण भी शिशुरूपेण क्षुधा से रुदन करने लगे।।१७०।।

रुरोद कृष्णस्तत्रैव वाग्बभूवाशरीरिणी। कथं रोदिषि राधे त्वं स्मर कृष्णपदाम्बुजम्।।१७१।।
आरासमण्डलं यावन्नक्तमत्राऽऽगमिष्यति। करिष्यसि रतिं नित्यं हरिणा सार्धमीप्सितम्।।१७२।।
छायां विधाय स्वगृहे स्वयमागत्य मा रुद। कृत्वा क्रोडे च प्राणेशं मायेशं बालरूपिणम्।।१७३।।

त्यज शोकं गृहं गच्छ सुन्दरीत्थं प्रबोधिता।
श्रुत्वैवं वचनं राधा कृत्वा क्रोडे च बालकम्।।१७४।।

ददर्श पुष्पोद्यानं च वनं सद्रत्नमण्डपम्। तूर्णं वृन्दावनाद्राधा जगाम नन्दमन्दिरम्।।१७५।।

तभी वहां अशरीरी वाणी राधा ने सुना-"हे राधा! तुम क्यों रुदन कर रही हो? तुम कृष्ण के चरणकमल का स्मरण करो। जब तक यहां रासमण्डल विद्यमान रहेगा, तब तक तुम अपनी छाया अपने गृह में रखकर स्वयं यहां आकर हरि के साथ नित्य वांछित रति का आनन्द उठाना। रुदन मत करो। ये मायापति अब बालकरूपी हो गये हैं। इन प्राणेश को गोद में लेकर गृह जाओ। हे सुन्दरी! शोक मत करो।" इस प्रकार राधा ने प्रबोधित होकर कृष्ण को क्रोड़ में उठाया तथा वे वहां पुष्प वाटिका तथा रत्नों के बने उस उत्तम मण्डप को देखकर शीघ्रता के साथ वृन्दावन में नन्द भवन पहुंच गईं।।१७१-१७५।।

सा मनोयायिनी देवी निमिषार्धेन नारद। संसिक्तस्निग्धमधुररसना रक्तलोचना।।१७६।।

यशोदायै शिशुं दातुमुद्यता सेत्युवाच ह।
गृहीत्वैवं शिशुं स्थूलं[1] रुदन्तं च क्षुधातुरम्।।१७७।।
गोष्ठे त्वत्स्वामिना दत्तं प्राप्नोमि यातनां पथि।
संसिक्तं वसनं वत्से मेघाच्छन्नेऽतिदुर्दिने।।१७८।।

पिच्छिले कर्दमोद्रेके यशोदे वोढुमक्षमा। गृहाण बालकं भद्रे स्तनं दत्त्वा प्रबोधय।।१७९।।

गृहं चिरं परित्यक्तं यामि तिष्ठ सुखं सति।
इत्युक्त्वा बालकं दत्त्वा जगाम स्वगृहं प्रति।।१८०।।

१. तूर्णमिति क्वचित् पाठः।

हे नारद! राधा मनोवेग से अर्धनिमेष मात्र में नन्द भवन आ गईं। राधा की वाणी अत्यन्त स्निग्ध तथा मधुर थी। उनके नेत्र लाल हो रहे थे। वे यशोदा की गोद में बालक देते-देते कहने लगीं– "आपके पति नन्दराज ने ब्रज में मुझे यह बालक देकर कहा कि घर पहुंचा देना। परन्तु मैं मार्ग में इस स्थूल, क्षुधार्त्त तथा रुदनरत बालक को उठाये हुये मार्ग यातना भोगते आई हूं। स्वेद से गीला मेरा वस्त्र बालक के देह से चिपट गया है। इस समय गगनमण्डल मेघाच्छन्न है। समय अत्यन्त खराब है। मार्ग कीचड़ तथा फिसलनयुक्त है। हे यशोदा! अब मैं इस बालक को और अधिक ढो नहीं सकती। बालक को लेकर इसे दुग्धपान कराकर शान्त करें। मैं देर से गृह के बाहर हूं। अब मुझे तत्काल घर जाना है। हे सती! आप सुखी रहें।" यह कहकर राधा बालक को यशोदा की गोद में देकर अपने गृह वापस चली गईं।।१७६-१८०।।

यशोदा बालकं नीत्वा चुचुम्ब च स्तनं ददौ।
बहिर्निर्विष्टा सा राधा स्वगृहे गृहकर्मणि।।१८१।।
नित्यं नक्तं रतिं तत्र चकार हरिणा सह।
इत्येवं कथितं वत्स श्रीकृष्णचरितं शुभम्।।१८२।।
सुखदं मोक्षदं पुण्यमपरं कथयामि ते।।१८३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णविवाहनवसङ्गम-
प्रस्तावो नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

माता यशोदा बालक को गोद में लेकर उसे स्तनपान कराने तथा उसका चुम्बन लेने लगीं। उधर राधा स्वगृह जाकर वहां बाह्यत: गृहकर्म में लगी रहती थीं, तथापि वे नित्य (मनोवेग से जाकर) वृन्दावन में कृष्ण के साथ रति में तन्मय रहतीं। हे वत्स नारद! मैंने तुमसे यह शुभ कृष्णचरित कहा। यह सुखद, मोक्षप्रद तथा पुण्यप्रद प्रंसग है। अब अन्य कृष्णप्रंसग कहता हूं।।१८१-१८३।।

।।१५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ षोडशोऽध्यायः

बक, केशी तथा प्रलम्बासुर का वध, वसुदेवादि गन्धर्वों का शङ्कर शापोपलम्भन एवं कृष्ण का वृन्दावन जाने का प्रस्ताव

नारायण उवाच

माधवो बालकैः सार्धमेकदा हलिना सह।
भुक्त्वा पीत्वा च क्रीडार्थं जगाम श्रीवनं मुने॥१॥
तत्र नानाविधां क्रीडां चकार मधुसूदनः।
कृत्वा तां शिशुभिः सार्धं चालयामास गोधनम्॥२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनि! एक समय की बात है कि माधव भोजनादि सम्पन्न करके बलराम तथा अन्य शिशुगण के साथ क्रीड़ा हेतु श्रीवन गये। वहां मधुसूदन ने बालकों के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ा करके गौओं को चरने हेतु आगे बढ़ाया॥१-२॥

ययौ मधुवनं तस्माच्छ्रीकृष्णो गोधनैः सह। तत्र स्वादु जलं पीत्वा वने च स महाबलः॥३॥
तत्रकदैत्यो बलवाञ्छ्वेतवर्णो भयंकरः। विकृताकारवदनो बकाकारश्च शैलवत्॥४॥
दृष्ट्वा च गोकुलं गोष्ठे शिशुभिर्बलकेशवौ।
यथा ह्यगस्त्यो वातापिं सर्वं जग्रास लीलया॥५॥
बकग्रस्तं हरिं दृष्ट्वा सर्वे देवा भयान्विताः। चक्रुर्हाहेति संत्रस्ता धावन्तः शस्त्रपाणयः॥६॥
शक्रश्चिक्षेप वज्रं च मुनेरस्थिविनिर्मितम्। न ममार बकस्तस्मात्पक्षमेकं ददाह च॥७॥

वहां से श्रीकृष्ण गौओं के साथ मधुबन गये। वहां सभी ने तथा महाबली प्रभु ने स्वादिष्ट जल का पान किया। वहां एक महाबलवान् श्वेतवर्ण का विकृत मुख वाला पर्वत के समान, बक (बगुले) की आकृति वाला भयानक दैत्य था। जब उसने गोकुल की गौओं को तथा बालकों सहित बलभद्र तथा कृष्ण को उसी प्रकार निगल लिया जैसे वातापि दैत्य को अगत्स्य मुनि ने उदरस्थ कर लिया था। भगवान् को इस बक द्वारा निगला गया देखकर सभी देवगण भयभीत हो गये। वे लोग हाहाकार करते शस्त्र लेकर दौड़ पड़े। इन्द्र ने कोई उपाय न देखकर ऋषि दधीचि की अस्थि से निर्मित वज्र को बक पर छोड़ा, तथापि उससे बकासुर नहीं मरा। उस अस्त्र से मात्र उसका एक पंख ही जल पाया॥३-७॥

नीहारास्त्रं शशधरः शीतार्तस्तेन दानवः। यमदण्डं सूर्यपुत्रस्तेन कुण्ठो बभूव ह॥८॥
वायव्यास्त्रं च वायुश्च तेन स्थानान्तरं ययौ। वरुणश्च शिलावृष्टिं चकार तेन पीडितः॥९॥

हुताशनश्च वाह्नेन पक्षांश्चैव ददाह सः। कुबेरस्यार्धचन्द्रेण च्छिन्नपादो बभूव ह॥१०॥

यह देखकर चन्द्रमा ने बकासुर के विरुद्ध अपना नीहार अस्त्र चलाया। इससे वह असुर शीत से आर्त्त हो गया। तब यमराज ने अपने यमदण्ड से असुर बक पर प्रहार किया। इससे बकासुर कुण्ठित हो गया। तभी वसुदेव ने बकासुर पर वायव्यास्त्र का प्रहार किया। इसके प्रहार से वह अन्यत्र जा गिरा। अग्निदेव ने उस असुर पर आग्नेयास्त्र का प्रहार किया, जिससे उसके सभी पंख दग्ध हो गये। कुबेर के अर्द्धचन्द्र बाणों के प्रहार से उसके पैर कट गये। वरुण ने अपने अस्त्र का प्रहार करके बकासुर पर शिलावृष्टि किया, जिससे वह नितान्त पीड़ित हो गया॥८-१०॥

ईशानस्य च शूलेन बभूव मूर्च्छितोऽसुरः।
ऋषयो मुनयश्चैव कृष्णं चक्रुर्भियाऽऽशिषम्॥११॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। ददाह दैत्यसर्वाङ्गं बाह्याभ्यन्तरमीश्वरः॥१२॥

तत्सर्वं वमनं कृत्वा प्राणांस्तत्याज दानवः॥१३॥

शिव के शूलाघात से राक्षस मूर्च्छित हो गया। यह देखकर ऋषि तथा मुनिगण भयभीत चित्त हो गये तथा वे सभी कृष्ण को आशीर्वाद देने लगे। इसी के साथ श्रीकृष्ण ने ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होकर राक्षस के बाह्य एवं आभ्यन्तर अंगों को जला दिया। इससे उस राक्षस ने जितने गोपों को, कृष्ण-बलराम को तथा गोधन को निगला था, सभी का वमन करके अपने प्राणों को त्याग दिया॥११-१३॥

बकं निहत्य बलवाञ्छिशुभिर्गोधनैः सह। ययौ केलिकदम्बानां काननं सुमनोहरम्॥१४॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृषरूपधरोऽसुरः। नाम्ना प्रलम्बो बलवान्महाधूर्तश्च शैलवत्॥१५॥

शृङ्गाभ्यां च हरिं धृत्वा भ्रामयामास तत्र वै। दुद्रुवुर्बालकाः सर्वे रुरुदुश्च भयातुराः॥१६॥

बलो जहास बलवाञ्ज्ञात्वा भ्रातरमीश्वरम्।
बालकान्बोधयामास भयं किमित्युवाच ह॥१७॥

बलराम तथा कृष्ण ने बकासुर का विनाश करने के अनन्तर अत्यन्त मनोहर केलिकदम्बकानन की ओर प्रस्थान किया। वहां पर्वताकार अत्यन्त धूर्त्त प्रलम्बासुर ने वृषरूप धारण करके वहां आगमन किया। वह अपनी सींगों में कृष्ण को फंसाकर घुमाने तथा चक्कर देने लगा। यह दृश्य देखकर सभी गोप बालक भयातुर एवं दुःखी होकर रुदनरत हो गये, तथापि ऐसे संकट में भी बलवान् बलराम छोटे भाई कृष्ण को ईश्वर जानते हुये हंस रहे थे। उन्होंने बालकों को सान्त्वना दिया कि भय मत करो॥१४-१७॥

तद्विषाणं गृहीत्वा च स्वयं श्रीमधुसूदनः। भ्रामयित्वा च गगने पातयामास भूतले॥१८॥

प्राणांस्तत्याज दैत्येन्द्रो निपत्य च महीतलम्। जहसुर्बालकाः सर्वे ननृतुश्च जगुर्मुदा॥१९॥

अन्ततः श्रीमधुसूदन ने स्वयं उस वृषरूपी राक्षस के सींग पकड़ कर गगन में उसे घुमाया तथा धरती पर पटक दिया। भूपतित होते ही वह दैत्येन्द्र प्राण त्याग कर निर्जीव हो गया। गोप बालक यह देखकर मुदित मन से नृत्य करने लगे॥१८-१९॥

हत्वा प्रलम्बं श्रीकृष्णो बलेन सह सत्वरम्।
गोधनं चारयामास ययौ भाण्डीरमीश्वरः॥२०॥
गच्छन्तं माधवं दृष्ट्वा केशी दैत्येश्वरो बली।
वेष्टयामास तं शीघ्रं खुरेण विलिखन्महीम्॥२१॥
मूर्ध्नि कृत्वा हरिं तुष्टो गगनं शतयोजनम्। उत्पात्य भ्रामयामास पपात च महीतले॥२२॥
जग्राह स हरिं पापी चर्वयामास कोपतः। स भग्नदन्तो दैत्यश्च वज्राङ्गचर्वणाहो॥२३॥
श्रीकृष्णतेजसा दग्धः प्राणांस्तत्याज भूतले। स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिर्बभूव ह॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पार्षदा दिव्यरूपिणः।
तत्राऽऽजग्मुः स्यन्दनस्था द्विभुजा पीतवाससः॥२५॥
किरीटिनः कुण्डलिनो वनमालाविभूषिताः। विनोदमुरलीहस्ताः क्वणन्मञ्जीररञ्जिताः॥२६॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा गोपवेषधरा वराः। ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकारकाः॥२७॥
प्रदीप्तं रथमास्थाय रत्नसारविनिर्मितम्। भाण्डीरवनमाजग्मुर्यत्र संनिहितो हरिः॥२८॥
दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिताः। प्रणमय्य हरिं स्तुत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम्॥२९॥
मुक्त्वा देहं परित्यज्य वैष्णवाः पुरुषास्त्रयः।
संप्राप्य दानवीं योनिं बभुवुः कृष्णपार्षदाः॥३०॥

प्रलम्बासुर का वध करके श्रीकृष्ण बलराम गो चारण करते यथाशीघ्र भाण्डीर वन में आये। तभी मार्ग में अश्वरूपी दैत्येन्द्र महाबली केशी ने कृष्ण को घेर लिया। वह खुरों से धरती खोदने लगा। दुष्ट केशी कृष्ण को उठाकर सौ योजन ऊपर आकाश में ले गया तथा वहां से चक्कर देकर कृष्ण को धरती पर फेंक दिया। तदनन्तर वह पृथिवी पर आकर क्रोध पूर्वक कृष्ण को दांतों से चबाने लगा। परन्तु जैसे ही उसने कृष्ण के वज्र शरीर को चबाने का उपक्रम किया उसके दांत टूट गये। वह कृष्ण के तेज से दग्ध होकर शीघ्र भूपतित होकर प्राण रहित हो गया। उस समय स्वर्ग से दुन्दुभि वाद्य का वादन होने लगा तथा कृष्ण पर देवता पुष्प वृष्टि करने लगे। उसी समय द्विभुज हरि के पार्षदगण दिव्य रथ पर बैठकर वहां आये। वे किरीट, कुण्डल, वनमाला भूषित थे। उनके हाथों में चित्त को शान्त करने वाली मधुर मुरली तथा चरणों में क्वणन करती मंजीर शोभायमान थी। (मंजीर=नूपुर)। उनका सर्वांग चन्दन चर्चित था। वे सभी गोपवेशधारी, मन्दमुस्कान युक्त, मुदित आनन वाले भक्तों पर कृपालु थे। ये सभी पार्षद श्रेष्ठ रत्नों से बने प्रदीप्त रथ से आये थे। ये सभी पार्षद भाण्डीर वन में हरि के पास आये। इन दिव्यवस्त्रधारी पार्षदों ने जो रत्नों के अलंकार से भूषित थे, हरि को प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति करके गोलोकधाम चले गये। ये तीनों दैत्य जो कृष्ण द्वारा निहत किये गये थे, वे सभी पूर्वजन्म में वैष्णव थे। उन्होंने कृष्ण द्वारा निहत होकर राक्षस देह त्याग किया। वे तीनों दानव अब कृष्ण के पार्षद हो गये।।२०-३०।।

नारद उवाच

के ते च दिव्यपुरुषा वैष्णवा दैत्यरूपिणः। कथयस्व महाभाग श्रुतं किं परमाद्भुतम्॥३१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाभाग! ये तीनों वैष्णव दिव्य पुरुषगण जिनको दैत्ययोनि मिली, वे कौन थे? यह तो अत्यन्त अद्भुत प्रसंग है। कृपया इसे विस्तार से कहिये।।३१।।

नारायण उवाच

शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। श्रुतं महेशवदनात्सूर्यपर्वणि पुष्करे॥३२॥
हरेर्गुणप्रसङ्गेन कथयामास शंकरः। संपृष्टो मुनिसंघैश्च मया धर्मेण ब्रह्मणा॥३३॥
ब्रह्मपुत्र महाभाग कथां भुवनपावनीम्। कथयामास विस्तार्य सावधानं निशामय॥३४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! श्रवण करो। इस प्रसंग को मैंने पुष्करतीर्थ में शिव से सुना था। वही पुरातन इतिहास अब तुमसे कहता हूं। पूर्वकाल में मैंने, मुनियों तथा ब्रह्म. ने शंकर से यही प्रसंग पूछा था। शिव ने हरिगुण वर्णन करते समय हम लोगों से यह विषय विशेषतया कहा था। हे महाभाग ब्रह्मपुत्र! मैं वह त्रिभुवन पवित्र करने वाली शिवमुख से सुनी गई उस कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूं। सावधानी से श्रवण करो।।३२-३४।।

गन्धर्वेशो गन्धवाहः पर्वते गन्धमादने। महांस्तपस्विप्रवरो हरिसेवनतत्परः॥३५॥
पुत्रा बभूवुश्चत्वारो गन्धर्वप्रवरा मुने।
सस्मरुः कृष्णपादाब्जं स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम्॥३६॥
ते च दुर्वाससः शिष्याः श्रीकृष्णार्चनतत्पराः।
नित्यं दत्त्वा च कमलं संपूज्य तं पपुर्जलम्॥३७॥
वसुदेवः सुहोत्रश्च सुदर्शनसुपार्श्वकौ। चत्वारो वैष्णवश्रेष्ठास्तेपुस्ते पुष्करे तपः॥३८॥
चिरकालं तपस्तप्त्वा बभूवुः सिद्धमन्त्रिणः।
ज्येष्ठो दुर्वाससो योगं संप्राप्य योगिनां वरः॥३९॥
सिद्धश्चाकृतदारश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। सद्यो देहं परित्यज्य बभूव कृष्णपार्षदः॥४०॥

पूर्वकाल में गन्धमादन पर्वत पर गन्धर्वेश गन्धवाह का निवास था। वे महान् तपस्वीगण में श्रेष्ठ तथा हरिसेवा में सदा तत्पर रहा करते थे। हे मुनिवर! उनके गन्धर्वश्रेष्ठ चार पुत्र थे। वे सोते-जागते-स्वप्न तक में रातदिन कृष्ण के चरण कमलों का स्मरण करते रहते थे। वे सभी दुर्वासा के शिष्यत्व में श्रीकृष्णार्चन तत्पर होकर सर्वप्रथम प्रभु को कमल अर्पित करके उनके पूजन के उपरान्त ही जल पीते थे। उसके पहले जल तक नहीं पान करते थे। इन चारों का नाम क्रमशः था—वसुदेव, सुहोत्र, सुदर्शन तथा सुपार्श्वक। ये चारों परम वैष्णव थे तथा ये पुष्कर क्षेत्र में तपश्चरणरत थे। ये चिरकालीन तपःश्चरण के फलस्वरूप मन्त्रसिद्ध हो गये। वसुदेव जो सबसे बड़े थे, उन्होंने दुर्वासा से

योग प्राप्त किया तथा योगीगण में श्रेष्ठ हो गये। ये अविवाहित थे तथा ब्रह्मतेज से सतत् प्रदीप्त रहते थे। ये तत्काल देहत्याग करके कृष्णपार्षद हो गये।।३५-४०।।

एकदा भ्रातरस्ते[१] च जग्मुश्चित्रसरोवरम्। पद्मानि कृष्णपूजार्थमाहर्तुमुदये रवेः।।४१।।

पद्मानां चयनं कृत्वा गच्छतो वैष्णवान्मुने।
दृष्ट्वा निबध्य सञ्जग्मुः सर्वे शंकरकिंकराः।।४२।।
बलिष्ठा दुर्बलान्धृत्वा जग्मुः शंकरसंनिधिम्।
ते सर्वे शंकरं दृष्ट्वा प्रणेमुः शिरसा भुवि।।४३।।
तानुवाच शिवः शीघ्रं प्रयुज्याऽऽशिषमुत्तमाम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः।।४४।।

एक बार सुहोत्र आदि तीनों भ्राता कृष्णपूजार्थ प्रातः पद्म चयनार्थ चित्र सरोवर गये। वहां से ये तीनों पद्म लेकर वापस आ रहे थे, तभी सरोवर रक्षक शिव किङ्करों ने उनको देखकर बांध लिया। महाबली शंभु-किङ्करगण थे। उन्होंने दुर्बल तीनों गन्धर्वों को बांध कर शिव के समक्ष प्रस्तुत किया। शिव के पास जाकर सभी ने शिव का दर्शन करते ही भूमि पर शिर टेक कर उनको प्रणाम किया। तब भक्तवत्सल शिव ने प्रसन्नता के साथ उनको आशीर्वाद देकर कहा–।।४१-४४।।

शिव उवाच

से यूयं पद्महर्तारः पार्वत्याश्च सरोवरे। लक्षयक्षै रक्षणीयं पार्वतीव्रतहेतवे।।४५।।
नित्यं सहस्रकमलं ददाति हरये सती। व्रते त्रैमासिके भक्त्या पतिसौभाग्यवर्धने।।४६।।

श्रीशिव कहते हैं–पार्वती के व्रतपूर्त्ति हेतु उनके सरोवर में लाखों यक्षों द्वारा रक्षित कमलों का हरण करने वाले तुम लोग कौन हो? सती पार्वती पति के सौभाग्यवर्द्धनार्थ त्रैमासिक व्रत में नित्य श्रीहरि को १००० पद्म अर्पित करती हैं।।४५-४६।।

शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमूचुर्वैष्णवा भिया।
पुटाञ्जलियुताः सर्वे भक्तिनम्रात्मकंधराः।।४७।।

शिव का कथन सुनकर वे वैष्णव गन्धर्व भयभीत हो गये। उन्होंने झुककर हाथ जोड़ते हुये शिव से कहा–।।४७।।

गन्धर्वा ऊचुः

वयं गन्धर्वप्रवरा गन्धवाहसुता विभो। हरये कमलं दत्त्वा पिबामो जलमीश्वर।।४८।।
वयं न विद्मो हे नाथ पार्वत्या रक्षितं सरः। गृहाण कमलं सर्वं युष्माकं च फलं कुरु।।४९।।

---
१. भ्रातुरन्ते चेति क्वचित् पाठः।

न दास्यामोऽद्य कमलं पास्यामोऽद्य जलं हर।
किंवा कथं न पास्यामस्तुभ्यं दत्तानि तानि च॥५०॥
नित्यं ध्यात्वा यत्पदाब्जं पद्मेन पूजयामहे।
साक्षात्तस्मै प्रदत्त्वा च पद्मं पूता वयं प्रभो॥५१॥

गन्धर्वगण कहते हैं–हे प्रभो! हम सभी गन्धर्वप्रवर गन्धवाह के पुत्र हैं। हे ईश्वर! हम कृष्ण को कमल अर्पण करके ही तभी जल पीते हैं। हे भगवान्! हमें यह ज्ञात नहीं था कि यह सरोवर पार्वती द्वारा रक्षित है। अब यह पद्म आप ग्रहण करके उसका फल हमें प्रदान करिये। अब हम कमल प्रदान किये बिना जल भी नहीं पी सकते! अथवा हम जलपान क्यों नहीं करेंगे? क्योंकि हमने आपको सभी कमल अर्पित कर दिया। हे विभु! हम नित्य जिनके चरणों का ध्यान करके कमलों से जिनकी पूजा करते हैं, आज साक्षात् उनको ही कमल अर्पित करके हम तो पावन हो गये।।४८–५१।।

एकं ब्रह्म ह्यद्वितीयं क्व देहः क्व च रूपवान्। भक्तानुग्रहतो देहो रूपभेदश्च मायया॥५२॥
किं तु गृहाण पद्मानि त्वमेव मत्प्रभुः प्रभो। यतो नो मानसं पूर्णं तद्रूपं दर्शयाच्युत॥५३॥
द्विभुजं कमनीयं च किशोरं श्यामसुन्दरम्। विनोदमुरलीहस्तं पीताम्बरधरं परम्॥५४॥
एकवक्त्रं द्विनयनं चन्दनागुरुचर्चितम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नालङ्कारभूषितम्॥५५॥

कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्जवलम्।
मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यभूषितम्॥५६॥

पारिजातप्रसूनानां मालाराजिविभूषितम्। कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाममनोहरम्॥५७॥
गोपीसंघैर्दृश्यमानं सस्मितैर्वक्रलोचनैः। नवयौवनसंपन्नं राधावक्षःस्थलस्थितम्॥५८॥

ब्रह्म तो एक ही हैं। दूसरा, अन्य कोई ब्रह्म है ही नहीं। उनका देह तथा रूप भी नहीं है। वे भक्त पर कृपा करने के लिये देह धारण करते हैं। माया के कारण उनके रूप भिन्न-भिन्न हैं। यह रूपभेद माया के ही कारण है। हे प्रभो! आप ही वह मेरे दयालु प्रभु हैं। अतः आप इन कमलों को ग्रहण करिये। हमें उन कृष्ण का दर्शन कराईये जिससे हमारा मन पूर्णतः तृप्त हो जाये। वे द्विभुज, किशोर, श्यामसुन्दर हैं। वे मुरलीधारी, पीतवस्त्र पहनने वाले, एकमुख, द्विनेत्र हैं। उनका शरीर चन्दन तथा अगुरु से चर्चित रहता है। उनका मुखमण्डल मन्द हास्ययुक्त तथा प्रसन्न है। वे रत्नालङ्कार भूषित, मयूर पुच्छनिर्मित जूड़ा वाले, मालती एवं पारिजात पुष्पों की माला से सुशोभित हैं। उन प्रभु का वक्षस्थल मणिश्रेष्ठ कौस्तुभ की कान्ति से उज्वल रहता है। वे कोटिकन्दर्प की सुन्दरता से युक्त मनोहर लीलाधाम हैं। वे तिरछी चितवन से गोपीगण के समूह की ओर देखने वाले, नवयौवन से शोभायमान हैं। वे राधिका के वक्षस्थल पर स्थित हैं।।५२–५८।।

ब्रह्मादिभिः स्तूयमानं वन्द्यं ध्येयमभीप्सितम्।
स्वात्मारामं पूर्णकामं भक्तानुग्रहकातरम्॥५९॥

ब्रह्मादि देवता अविरत उनकी स्तुति करते रहते हैं। वे सबके द्वारा वन्दित, ध्यानयोग्य हैं। सभी उनको पाने की कामना करते रहते हैं। वे पूर्णकाम तथा स्वात्माराम हैं। वे भक्तों पर कृपा करने के लिये सदा उद्विग्न से रहते हैं।।५९।।

इत्युक्त्वा पुरतः शंभोस्तस्थुर्गन्धर्वपुङ्गवाः। श्रीकृष्णरूपश्रवणात्पुलकाङ्कितविग्रहः।।६०।।

यह कहकर वे तीनों श्रेष्ठ गन्धर्व शम्भु के समक्ष स्थित हो गये। श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन सुनकर स्वयं शिव पुलकित हो गये।।६०।।

गन्धर्वाणां वचः श्रुत्वा शिवस्तानित्युवाच ह। श्रीकृष्णरूपश्रवणात्साश्रुपूर्णविलोचनः।।६१।।
मयैव यूयं विज्ञाता वैष्णवप्रवरा महीम्। पूतां कर्तुं च भ्रमथ चरणाम्भोजरेणुना।।६२।।

अहं वाञ्छा करोम्येव श्रीकृष्णभक्तदर्शने।
समागमो हि साधूनां त्रिषु लोकेषु दुर्लभः।।६३।।
पार्वत्याश्च सुराणां च सदा यूयं मम प्रियाः।
आत्मनश्चाऽऽत्मभक्तेभ्यो वैष्णवाश्च प्रियाश्च नः।।६४।।

किंतु मोघं च न भवेन्मया यत्स्वीकृतं पुरा। तच्छ्रूयतां महाभागाः पार्वतीव्रतकर्मणि।।६५।।
सरसश्चैव पद्मानि यैर्हृतानि व्रतान्तरे। ते तूर्णमासुरीं योनिं गमिष्यन्ति न संशयः।।६६।।

न हि श्रीकृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्।
सप्राप्य मानवीं योनिं गोलोकं यास्यथ ध्रुवम्।।६७।।

उस समय शङ्कर ने गन्धर्वों से जो कृष्णरूप दर्शन प्रसंग सुना था, उसे सुनकर उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। उन्होंने गन्धर्वगण से कहा–"हे गन्धर्वगण! मैंने यह जान लिया कि तुम लोग वैष्णवों में अग्रगण्य हो। तुम लोग अपनी चरणधूलि से पृथिवी को पावन करने के उद्देश्य से घूमते रहते हो। मैं सदा कृष्णभक्तों के दर्शन की कामना करता रहता हूं। त्रैलोक्य में तुम्हारे समान साधु का समागम अत्यन्त दुर्लभ है। तुम लोग मेरे, पार्वती के तथा देवगण के सदा प्रीतिभाजन हो। मुझे अपने भक्तों से अधिक प्रिय हैं वैष्णवगण। हे महाभागगण! तथापि पार्वती के व्रतकार्य हेतु मैंने जो प्रण किया था, वह कदापि निष्फल नहीं होगा। उस प्रतिज्ञा को सुनो। पार्वती द्वारा अनुष्ठित व्रत काल में (तीन माह में) जो कोई उस सरोवर का पद्म लेगा, उसे तत्क्षण असुर योनि मिलेगी। इसमें कोई संशय नहीं है, तथापि असुर योनि में भी कृष्णभक्तों का कोई अमंगल नहीं होता। तुम लोग मनुष्य योनि पाकर गोलोक गमन करोगे। यह निश्चित है।।६१-६७।।

यूयं श्रीकृष्णरूपं च प्रत्यक्ष द्रष्टुमुत्सुकाः।
ध्रुवं द्रक्ष्यथ भो वत्सा वृन्दारण्ये च भारते।।६८।।
दृष्ट्वा कृष्णं ततो मृत्युं संप्राप्य वैष्णवोत्तमाः।
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य गमिष्यथ हरेर्गृहम्।।६९।।

अधुना वाञ्छनीयं च रूपं द्रष्टुमिहोत्सुकाः।
तत्सर्वं पश्यतेत्युक्त्वा दर्शयामास तच्छिवः॥७०॥

तुम लोग कृष्ण के रूपदर्शन के लिये अत्यन्त उत्सुक हो। हे वत्स! वह रूपदर्शन तुमको भारतवर्ष में स्थित वृन्दावन में निश्चित प्राप्त होगा। हे वैष्णवो! उस समय तुम अपने सामने कृष्णरूप दर्शन करते-करते दानव देह त्याग कर दिव्य रथारूढ़ होकर कृष्ण धाम जाओगे। अभी तुम जिस कृष्ण रूप का दर्शन करने हेतु अत्यन्त उत्कण्ठित हो उसका दर्शन करो।" यह कह कर शिव ने उस दिव्य रूप का दर्शन गन्धर्वगण को कराया।।६८-७०।।

रूपं दृष्ट्वा साश्रुनेत्राः प्रणम्य सर्वरूपिणम्।
आजग्मुर्दानवीं योनिमिति ते दानवेश्वराः॥७१॥

वसुदेवः पुरा मुक्तः सुहोत्रश्च बकासुरः। सुदर्शनः प्रलम्बोऽयं स्वयं केशी सुपार्श्वकः॥७२॥

हरस्य वरदानेन दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम्।
मृत्युं संप्राप्य श्रीकृष्णाज्जग्मुस्ते कृष्णमन्दिरम्॥७३॥

इत्येवं कथितं विप्र हरेश्चरितमद्भुतम्। बककेशिप्रलम्बानां मोक्षणं मोक्षकारकम्॥७४॥

कृष्ण के उस रूप का दर्शन करके उन गन्धर्वों ने साश्रुनयन होकर उन सर्वरूपी भगवान् को प्रणाम किया तथा वे दानवेश्वर होकर दानवी योनि में चले गये। बड़ा भ्राता वसुदेव गन्धर्व तो इतिपूर्व ही मुक्त हो गये थे। सुहोत्र गन्धर्व बकासुर हो गया। सुदर्शन गन्धर्व ही प्रलम्ब दैत्य था। सुपार्श्वक गन्धर्व ही केशी दानव बना। शिव के वरदान के कारण इन तीनों ने क्रमशः कृष्ण के अत्युत्तम रूप का दर्शन प्राप्त किया तथा कृष्ण द्वारा निहित किये जाकर कृष्ण भवन (गोलोक) चले गये।। हे विप्र! यह मैंने श्रीहरि का अद्भुत चरित कह दिया। यह बक, केशी तथा प्रलम्बवध प्रसंग तथा उनकी मोक्ष प्राप्ति सबके लिये मोक्षकारक है।।७१-७४।।

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं महाभाग त्वत्प्रसादाद्यदद्भुतम्।
अधुना श्रोतुमिच्छामि पार्वत्या किं कृतं व्रतम्॥७५॥
को वाऽऽराध्यो व्रतस्यास्य किं फलं नियमश्च कः।
कानि द्रव्याणि भगवन्व्रतोपयोगिकानि च॥७६॥
कतिकालं व्रतं किं वा प्रतिष्ठायां निरूपणम्।
सुविचार्य वद विभो श्रोतुं कौतूहलं मम॥७७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाभाग! मैंने आपकी कृपा से यह अत्यन्त अद्भुत् वृत्तान्त सुना। अब मुझे यह जानना है कि पार्वती ने किस व्रत का अनुष्ठान किया था, उस व्रत के आराध्य कौन हैं तथा उस

व्रत का नियम एवं फल क्या है? हे प्रभो! उस व्रत के विहित द्रव्यों को कहिये। उस व्रत का काल क्या हो, उसकी प्रतिष्ठा को भी बतलाने की कृपा करें। हे प्रभो! आप अच्छी तरह विचार कर यह सब कहिये। मुझे श्रवणार्थ अत्यन्त कुतूहल हो रहा है।।७५-७७।।

नारायण उवाच

व्रतं त्रैमासिकं नाम पतिसौभाग्यवर्धनम्।
आराध्यो भगवान्कृष्णो राधिकासहितो मुने॥७८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे मुनिवर! यह त्रैमाससाध्य व्रत है। इसका नाम है पतिसौभाग्यवर्द्धक व्रत। हे मुनि! इसके आराध्य देवता हैं राधा सहित श्रीकृष्ण।।७८।।

विषुवे च समारम्भः समाप्तिर्दक्षिणायने।
संयम्य पूर्वदिवसे कृत्वाऽवश्यं हविष्यकम्॥७९॥
स्नात्वा वैशाखसंक्रान्त्यां संकल्प्य जाह्नवीतटे।
घटे मणौ शालग्रामे जले वा पूजयेद्व्रती॥८०॥
ध्यायेद्भक्त्या च राधेशं संपूज्य पञ्च देवताः।
ध्यानं च सामवेदोक्तं निबोध कथयामि ते॥८१॥

इसे उत्तरायण के विषुव से प्रारंभ करना चाहिये। इसका समापन दक्षिणायन सूर्य में होता है। प्रथमतः संयम पूर्वक (अर्थात् व्रतारंभ के पूर्ववाले दिन) हविष्यान्न भोजी रहे। द्वितीय दिन वैशाख संक्रान्ति काल में गंगा तट पर स्नानोपरान्त वहीं व्रतारम्भ का संकल्प करना चाहिये। तदनन्तर व्रती मनुष्य घट में, मणि में, शालग्राम शिला में अथवा जल में पञ्चदेवता का पूजन करके भक्तिभाव से राधापति का ध्यान करे। यह सामवेदोक्त ध्यान कहता हूं। श्रवण करो।।७९-८१।।

नवीननीरदश्यामं पीतकौशेयवाससम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम्॥८२॥
शरत्प्रफुल्लपद्माक्षं मञ्जुलाञ्जनरञ्जितम्। मानसं गोपिकानां च मोहयन्तं मुहुर्मुहुः॥८३॥
राधया दृश्यमानं च राधावक्षःस्थल स्थितम्। ब्रह्मानन्तेशधर्माद्यैः स्तूयमानमहं भजे॥८४॥

राधापति कृष्ण नवमेघ के समान श्यामवर्ण हैं। वे पीत कौषेय वस्त्रधारी हैं। उनका मुखमण्डल मन्द मुस्कान युक्त है। उनके नेत्रद्वय शरत्कालीन विकसित कमल के समान तथा कज्जल युक्त मनोहर एवं शोभायमान हैं। ये बारम्बार गोपियों के मन को मोहित करते रहते हैं। ये राधा के वक्षस्थल पर विराजित हैं, जिनकी ओर पुनः-पुनः राधा देखती रहती हैं। ब्रह्मा, अनन्त, शेष, धर्मादि देवता उनकी सतत् स्तुति करते रहते हैं। ऐसे प्रभु का मैं भजन करता हूं।।८२-८४।।

ध्यात्वा कृष्णं च ध्यानेन तमावाह्य व्रती मुदा।
ध्यायेत्तदा राधिकां च ध्यानं मध्यंदिनेर (रि) तम्॥८५॥

राधां रासेश्वरीं रम्यां रासोल्लासरसोत्सुकाम्।
रासमण्डलमध्यस्थां राधाधिष्ठातृदेवताम्॥८६॥
रासेश्वरोरः स्थलस्थां रसिकां रसिकप्रियाम्।
रसिकप्रवरां रम्यां रमां च रमणोत्सुकाम्॥८७॥

कृष्ण का ध्यान करके व्रती पुरुष को चाहिये कि मुदित मन से कृष्ण का आवाहन करके माध्यन्दिनोक्त (यजुर्वेद की एक शाखा) के अनुसार श्रीराधिका का ध्यान करे। ये राधा रासेश्वरी, रमणीया, रासोल्लास से उत्कण्ठिता हैं, जो रासमण्डल के मध्य में स्थिता रास की अधिदेवता हैं। ये रासेश्वर कृष्ण के वक्ष पर सदा निवास करती हैं। ये स्वयं रसिका तथा रसिकप्रिया हैं। ये रसिकप्रवरा, रमणीय रूप वाली मनोहारिणी हैं। ये ही रमा तथा रमणोत्सुका हैं।।८५-८७।।

शरद्राजीवराजीनां प्रभामोचनलोचनाम्।
वक्रभ्रूभङ्गसंमु (यू) क्तां मञ्जीरेणेव रञ्जिताम्॥८८॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यामीषद्धास्यमनोहराम्। चारुचम्पकवर्णाभां चन्दनेन विभूषिताम्॥८९॥
कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुना युताम्। चारुपत्रावलीयुक्तां वह्निशुद्धांशुकोज्ज्वलाम्॥९०॥
सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च सुकपोलस्थलोज्ज्वलाम्। रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलविराजिताम्॥९१॥

राधा के बंकिम नेत्रद्वय शरत्कालीन पद्मश्रेणी के समान शोभासम्पन्न तथा भ्रूभंगिमायुक्त एवं अंजन से रंजित हैं। उनका मुखमण्डल शरत्कालीन पूर्णिमा के चन्द्र के समान मनोहर तथा मन्दमुस्कान युक्त है। इनका वर्ण सुन्दर चम्पा पुष्प के समान है। इनका शरीर चन्दन से विभूषित है। इनके ललाट पर कस्तूरी की विन्दी के साथ सिन्दूर की बिन्दी विराजमान हैं। ये नूपुरों से शोभायमान हो रही हैं। इनके वक्ष पर मनोहर पत्रावली रचित हैं। इनका कपोल उत्तम रत्नकुण्डल कानों में लटकने से प्रकाशमान है। इन्होंने अग्नि के समान शुद्धवस्त्र धारण किया है। उत्तम रत्नों से बना हार इनके वक्षस्थल पर विराजमान हैं।।८८-९१।।

रत्नकङ्कणकेयूरकिङ्किणीरत्नरञ्जिताम्। सद्रत्नसाररचितक्वमणन्मञ्जीररञ्जिताम्॥९२॥
ब्रह्मादिभिश्च सेव्येन श्रीकृष्णेनैव सेविताम्।
सर्वेशेन स्तूयमानां सर्वबीजां भजाम्यहम्॥९३॥

रत्न से युक्त कंकण, केयूर, किंकिणी आदि आभूषण तथा उत्तम रत्नों के सारभाग से बने झंकारमय केयूर से चरणों की शोभा वर्द्धित हो रही है। जो श्रीकृष्ण ब्रह्मा आदि देवगण द्वारा सुसेवित हैं, वे स्वयं राधा की सेवा कर रहे हैं। सर्वकारण, स्वरूपा राधा की स्तुति सर्वेश्वर प्रभु स्वयं कर रहे हैं। ये सर्वबीज स्वरूपा हैं। मैं ऐसी भगवती राधा का भजन सतत् करता हूं।।९२-९३।।

इति ध्यात्वा च कृष्णेन सहितां तां च पूजयेत्।
भक्त्या दत्त्वा प्रतिदिनमुपचारांश्च षोडश॥९४॥

प्रत्येकं च पृथक्कृत्वा सर्वं दद्याद्व्रती मुदा। सहस्त्रकमलं दिव्यं शतमष्टोत्तरं मुने॥९५॥

होमं कुर्याद्व्रती नित्यमष्टोत्तरशताहुतीः।
दद्याद्भक्त्या च कृष्णाय स्वाहेत्युच्चार्य यत्नतः॥९६॥

इस ध्यान के अनन्तर कृष्ण सहित राधा की पूजा करे। व्रती व्यक्ति भक्ति पूर्वक नित्य १६ उपचार इनको प्रदान करे। प्रत्येक उपचार को अलग-अलग मुदित मन से अर्पित करे। व्रती व्यक्ति १००८ कमल पृथक्-पृथक् प्रदान करके नित्य १०८ आहुति भी प्रदान करें। पूर्ण भक्तिभाव से "कृष्णाय स्वाहा" कहकर आहुति यत्नतः देनी चाहिये।।९४-९६।।

रसालस्य कदल्याश्च ह्यामं वा पक्वमेव च।
नित्यमष्टोत्तरशतं दद्याद्भक्त्याऽक्षतैः फलम्॥९७॥
नित्यं च भोजयेद्भक्त्या ब्राह्मणानां शतं मुने।
होमं कुर्याद्व्रती नित्यमष्टोत्तरशताहुतीः॥९८॥
दद्याद्भक्त्या च कृष्णाय राधिकासहिताय च।
तिलेन हवनं कुर्यादाज्यमिश्रेण नारद॥९९॥

वाद्यं च वादयेन्नित्यं कारयेद्धरिकीर्तनम्। एवं मासत्रयं कृत्वा प्रतिष्ठां तदनन्तरम्॥१००॥

आम्र एवं केले का कच्चा किंवा पक्व फल लाये तथा उसकी १०८ आहुति भक्ति पूर्वक प्रदान करे। अखण्डित फल की आहुति देनी चाहिये। हे मुनिवर! १०० ब्राह्मणों को व्रती मनुष्य नित्य भोजन कराये तथा नित्य १०८ आहुति द्वारा होम करे। यह १०८ आहुति भक्ति के साथ राधा-कृष्ण को प्रदान करे। हे नारद! घृताक्त तिल से होम करे। नित्य वाद्यवादन एवं श्रीहरि का नामकीर्त्तन कराये। यह कार्य ३ मास करके व्रत प्रतिष्ठा करनी चाहिये।।९७-१००।।

प्रतिष्ठादिवसे तत्र विधानं शृणु नारद। कमलानां च नवतिसहस्त्राण्यक्षतानि च॥१०१॥

ब्राह्मणानां सहस्त्राणि नव विप्रेन्द्र यत्नतः।
भोजयेत्परमान्नानि स्वादूनि मिष्टकानि च॥१०२॥

फलं विंशाधिकं सप्तशतं नवसहस्त्रकम्। दद्यान्नानाविधं द्रव्यं नैवेद्यं सुमनोहरम्॥१०३॥

संस्कृताग्निं च संस्थाप्य होमं कुर्याद्विचक्षणः।
नवतिं च सहस्त्राणि हुत्वाऽऽज्येन तिलेन च॥१०४॥
सवस्त्रं च सभोज्यं च यज्ञसूत्रफलान्वितम्।
गन्धपुष्पार्चितान्भक्त्या दद्यान्नवतिलड्डुकान्॥१०५॥

दद्यान्नवतिकुम्भांश्च शीततोयप्रपूरितान्। एवंविधं व्रतं कृत्वा दद्याद्विप्राय दक्षिणम्॥१०६॥

हे नारद! अब व्रत प्रतिष्ठा विधि कहता हूं। श्रवण करो! इस हेतु ९०००० अखण्डित कमल

पुष्पों की आहुति प्रदान करके यत्नतः ९००० ब्राह्मण को स्वादिष्ट मिष्ठान्न तथा उत्तम अन्न भोजन कराये। ९ हजार ७२० फल, नाना द्रव्य एवं मनोहर नैवेद्य प्रदान करे। इसके अनन्तर संस्कारयुक्त अग्नि को स्थापित करके घृत-तिल की ९०००० आहुति प्रदान करके ब्राह्मणगण को पूर्ण भक्ति के साथ वस्त्र, भोजन, फल, यज्ञोपवीत, गन्धपुष्पयुक्त ९० लड्डु, शीतल जलपूर्ण ९० कलश दान करे। व्रत समापनोपरान्त ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिये।।१०१-१०६।।

दक्षिणायाः परिमितं वेदेषु यन्निरूपितम्।
वृषेन्द्राणां सहस्त्रं च स्वर्णशृङ्गसमन्वितम्।।१०७।।
इत्येवं कथितं विप्र कृतं त्रैमासिकव्रतम्। विशिष्टसंततिकरं पतिसौभाग्यवर्धनम्।।१०८।।
व्रतस्यास्य प्रभावेण सौभाग्यं शतजन्मनि।
सत्पुत्रजननी सा च भवेज्जन्मशतं ध्रुवम्।।१०९।।

दक्षिणा का परिमाण जो वेद ने कहा है, वही हो। स्वर्ण मढ़े शृङ्गों वाले १००० वृष दान करे। यह त्रैमासिक व्रत मैंने तुमसे कह दिया। हे विप्र! यह विशेष सन्तानप्रद तथा पतिसौभाग्यवर्द्धक व्रत है। इस व्रत के प्रभाव से नारी को सौ जन्म पर्यन्त सौभाग्य-लाभ होता है। वह सौ जन्मों तक उत्तम पुत्रों की माता होती है। यह निश्चित जाने।।१०७-१०९।।

कदाऽपि न भवेत्तस्या भेदश्च पतिपुत्रयोः।
दासतुल्यो भवेत्पुत्रो भर्ता च स्ववचस्करः।।११०।।
अनुक्षणं भवेद्राधाकृष्णभक्तियुता सती। भवेद्व्रतप्रभावेण प्राप्तज्ञानहरिस्मृतिः।।१११।।

इस व्रत को सम्पन्न करने वाली नारी को सौ जन्मों तक पति-पुत्र से भेद अथवा वियोग नहीं होता। उसका पुत्र उसके दास के समान होता है। पति-पत्नी के वचनों का पालन करता है। वह सती नारी प्रतिक्षण राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति से युक्त रहती है। इस व्रत के प्रभाव से उसे ज्ञान तथा हरिस्मृति की प्राप्ति होती है।।११०-१११।।

व्रतं च सामवेदोक्तं कृतं पूर्वमथाऽऽवयोः।
सर्वेषां च व्रतानां च श्रेष्ठं शृणु वदामि ते।।११२।।
स्वायंभुवस्य च मनोः शतरूपाभिधा सती।
तया कृतं प्रथमतः कृत्वाऽगस्त्यं पुरोहितम्।।११३।।
तदा कृतं देवहूत्या चाऽऽकूत्या च कृतं तदा।
पुरोहितं पुलस्त्यं च कृत्वा श्रुत्युक्त्या मुने।।११४।।
चकार रोहिणी तत्तु क्रतुं कृत्वा पुरोहितम्।
रतिश्चकार तद्भक्त्या गौतमस्तत्पुरोहितः।।११५।।

अकारि तद्व्रतं भक्त्या तारया गुरुकान्तया। महासंभृतसंभारो वसिष्ठस्तत्पुरोहितः॥११६॥

तद्दृष्ट्वा गुरुपत्न्याश्च शक्रशच्या कृतं व्रतम्।
महासंभृतसंभारस्तत्पुरोधा बृहस्पतिः॥११७॥
व्रतं चकार स्वाहा च सर्वतोऽपि विलक्षणम्।
अतिसंभृतसंभारो मरीचिस्तुत्पुरोहितः॥११८॥

तद्दृष्ट्वा पार्वती ब्रह्मन्नुवाच शंकरं मुदा। पुटाञ्जलियुता देवी भक्तिनम्रात्मकंधरा॥११९॥

पूर्वकाल में हम दोनों (नर-नारायण) की माता ने इस सामवेदोक्त व्रत का आचरण किया था। यह सभी व्रतों में प्रधान व्रत प्रथमतः स्वायम्भुव मनु की पत्नी सती शतरूपा ने अगत्स्य ऋषि को पुरोहित बनाकर किया था। हे मुनिवर! उस समय देवहूति एवं चारुहूति ने भी पुलत्स्य को पुरोहित बनाकर यह व्रत किया था। तत्पश्चात् रोहिणी ने क्रतु ऋषि को पुरोहित बनाकर यह व्रत किया था। कामपत्नी रति ने भी गौतम मुनि को पुरोहित बनाकर यह व्रत सम्पन्न किया था। तदनन्तर देवगुरु की पत्नी तारा ने अत्यन्त समारोह के साथ तथा भक्ति पूर्वक यह व्रत वसिष्ठदेव को पुरोहित बनाकर किया। गुरुपत्नी द्वारा किये गये इस व्रत को देखकर आनन्दित होकर इन्द्रपत्नी शची ने महासमारोह के साथ बृहस्पति को पुरोहित बनाकर यह व्रत किया था। इसके अनन्तर अग्नि पत्नी स्वाहा ने यह विलक्षण व्रत प्रभूत सामग्री के साथ मरीचि मुनि को पुरोहित बनाकर सम्पन्न किया। हे ब्रह्मन्! स्वाहा द्वारा कृत इस व्रत को जब देवी पार्वती ने देखा, तब उन्होंने नतमस्तक एवं करवद्ध होकर हर्षित मन से शङ्कर से कहा-॥११२-११९॥

पार्वत्युवाच

आज्ञां कुरु जगन्नाथ करोमि व्रतमुत्तमम्। आवयोरिष्टदेवस्य व्रतानां च परं व्रतम्॥१२०॥
हरेराराधनं नाथ सर्वमङ्गलकारणम्। इष्टं दत्तं श्रुतेःपाठं तीर्थं पृथ्व्याः प्रदक्षिणम्॥१२१॥
हरेराराधनस्यापि कलां नार्हन्ति षोडशीम्। बहिरभ्यन्तरे यस्य हरिस्मृतिरनुक्षणम्॥१२२॥
जीवन्मुक्तस्य तस्यैव मुक्तिर्भवति दर्शनात्। तस्य पादाब्जरजा सद्यः पूता वसुंधरा॥१२३॥
तस्य दर्शनमात्रेण पुनाति भुवनत्रयम्। ब्रह्मा विष्णुश्च धर्मश्च शेषस्त्वं च गणेश्वरः॥१२४॥

ध्यायं ध्यांय यत्पदाब्जं तेजसा तत्समो महान्।
यश्च यं संततं ध्यायेत्स तमाप्नोति निश्चितम्॥१२५॥
गुणेन तेजसा बुद्ध्या ज्ञानेन तत्समो भवेत्।
कृष्णस्य स्मरणाद्ध्यानात्तपसा तस्य सेवया॥१२६॥
मया प्राप्तो हि भगवान्स्वामी वा पुत्र एव च।
प्रलब्धं लीलया सर्वं पूर्णं मन्मानसं तदा॥१२७॥

श्रीपार्वती कहती हैं–हे जगन्नाथ! व्रतों में श्रेष्ठ अपने इष्टदेव का यह व्रत जो सर्वोत्तम व्रत है, इसे करने की आज्ञा मुझे प्रदान करें। हे नाथ! हरि की आराधना सभी मंगलों की कारण रूपा है। समस्त यज्ञ, दान, वेदपाठ, तीर्थाटन एवं पृथिवी प्रदक्षिणा यह सब भगवदाराधन की तुलना में सोलहवां भाग (१/१६) भी नहीं है। जिस व्यक्ति के बाह्य एवं आभ्यन्तर में हरिस्मृति अनुक्षण बनी रहती है, वही जीवन्मुक्त है। उसके दर्शन मात्र से मुक्ति मिल जाती है। उसकी चरणधूलि के कण से पृथिवी सद्यः पवित्र होती है। उसके दर्शनमात्र से त्रिभुवन पवित्र हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, धर्म, शेष, आप तथा गणेश्वर, सभी उनके चरण कमलों का नित्य ध्यान करके तेज में उन प्रभु के ही समान हो गये हैं, जो जिनका सतत् ध्यान करता है, वह निश्चित रूप से उसे प्राप्त कर लेता है। वह गुण, तेज, बुद्धि में एवं ज्ञान में उस ध्येय के ही समान हो जाता है। श्रीकृष्ण के स्मरण, ध्यान, सेवा करने से तथा उनके उद्देश्य से तप द्वारा आप प्रभु को स्वामी तथा गणेश्वर को पुत्ररूपेण प्राप्त किया है। मैंने यह सब लीला में ही पा लिया। मेरा मन पूर्णतः परिपूर्ण है।।१२०-१२७।।

स्वामी मे त्वादृशः पुत्रौ कार्तिकेयगणेश्वरो।
पिता हिमाद्रिः कृष्णांशो मम किं दुर्लभं प्रभो॥१२८॥

मुझे आप जैसे स्वामी, गणेश्वर तथा कार्त्तिकेय के समान पुत्र तथा कृष्ण के अंश रूप हिमाचल की प्राप्ति पितारूपेण हो गई है। हे प्रभो! तब मेरे लिये दुर्लभ क्या रहा?।।१२८।।

पार्वतीवचनं श्रुत्वा सुप्रीतः शंकरः स्वयम्। प्रहस्योवाच मधुरं पुलकाङ्कितविग्रहः॥१२९॥

पार्वती का वचन सुनकर शङ्कर परम प्रसन्नता पूर्वक हंसने लगे। उनका शरीर पुलकित हो उठा। तब उन्होंने मधुर वाणी में पार्वती से कहा–।।१२९।।

महादेव उवाच

महालक्ष्मीस्वरूपाऽसि किमसाध्यं तवेश्वरि। सर्वसंपत्स्वरूपा त्वमनन्तशक्तिरूपिणी॥१३०॥

त्वं च यस्य गृहे देवि स चैश्वर्यस्य भाजनम्।
न लक्ष्मीर्यद्गृहे तस्य जीवान्मरणं वरम्॥१३१॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वयि भक्त्या शुभप्रदे।
संहारसृष्टिकाले च त्वत्प्रसादाद्वयं क्षमाः॥१३२॥
को वा हिमालयः कोऽहं कौ कार्तिकगणेश्वरौ।
त्वद्विहीना अशक्ताश्च त्वया च वयमीश्वराः॥१३३॥

श्रीमहादेव कहते हैं–हे सर्वेश्वरी! तुम तो स्वयं महालक्ष्मी स्वरूपा हो। तुम्हारे लिये असाध्य क्या है? तुम सर्व सम्पत्ति स्वरूपा एवं अनन्तशक्तिरूपिणी हो। हे देवी! तुम जिसके गृह में स्थित रहती हो, वह समस्त ऐश्वर्य का भागी हो जाता है। जिसके गृह में लक्ष्मी नहीं है, उसके जीवन धारण से तो उसका मृत हो जाना श्रेष्ठ है। हे शुभप्रदा देवी! मैं, ब्रह्मा तथा विष्णु सदा तुम्हारी भक्ति करते हैं। तुम्हारी

कृपा से ब्रह्मा सृष्टि कार्य में, विष्णु पालन कार्य में तथा मैं शिव संहार कार्य में समर्थ हो सके हैं। हिमवान्, मैं, कार्त्तिकेय, गणेश्वर हैं क्या? तुम्हारे अस्तित्व के बिना हम सभी अशक्त हैं। तुम्हारी कृपा से ही हम सभी समर्थ हो सके हैं तथा ईश्वरत्व युक्त हैं।।१३०-१३३।।

युक्ताः पतिव्रतायाश्च याः पुराऽऽज्ञाः श्रुतौ श्रुताः।
गृहीत्वाऽऽज्ञामीश्वरस्य व्रतं कुरु पतिव्रते।।१३४।।

व्रतमेतत्कृतं याभिस्ताभ्यः कुरु विलक्षणम्। सनत्कुमारो भगवान्व्रते तेऽस्तु पुरोहितः।।१३५।।

कमलानां ब्राह्मणानां द्रव्याणां दायकोप्यहम्।
कुबेरं द्रव्यकोशे च रक्षकं कुरु सुन्दरि।।१३६।।
व्रते च दानाध्यक्षोऽहं धनदात्री च श्रीः स्वयम्।
पाठको वह्निदेवश्च वरुणो जलदायकः।।१३७।।
वस्तूनां वाहका यक्षास्तदध्यक्षः षडाननः।
स्थानसंस्कारकर्त्ता च व्रतेऽत्र पवनः स्वयम्।।१३८।।

श्रुति का वचन है कि पतिव्रता नारी द्वारा पति की आज्ञा लेना सर्वतोभावेन उचित एवं विहित है। हे पतिव्रते! तुम मेरी आज्ञा लेकर व्रत हेतु उद्यत हो गई हो। जिन लोगों ने अब तक यह व्रत किया है, उनसे अधिक विशेषता के साथ तुम यह व्रत करो। भगवान् सनत्कुमार तुम्हारे व्रत के पुरोहित होंगे। मैं कमल, ब्राह्मण तथा विहित द्रव्य वस्तुओं का संग्रहकर्त्ता रहूंगा। हे सुन्दरी! तुम इस व्रत हेतु कुबेर को कोषाध्यक्ष बनाओ। दानाध्यक्ष मैं बनूंगा। लक्ष्मी स्वयं धनप्रदा रहेंगी। स्वयं अग्निदेव इसमें पाचक (रसोईयां) होंगे। वरुण वांछित जल प्रदाता रहेंगे। यक्षगण वस्तुओं को लाने-ले जाने वाले वाहक बनेंगे। षडानन उनके अध्यक्ष होंगे। इस व्रत के स्थान को स्वच्छ करने वाले स्वयं वायुदेव होंगे!।।१३४-१३८।।

परिवेष्टा स्वयं शक्रश्चन्द्रोऽधिष्ठापको व्रते।
सूर्यश्च दाननिर्वक्ता योग्यागयं यथोचितम्।।१३९।।

व्रतोपयुक्तं यद्द्रव्यं दत्त्वा नियमितं प्रिये। ततोऽधिकं फलं पुष्पं हरये देहि सुन्दरि।।१४०।।

व्रते नियमितान्विप्रान्भोजयित्वा ततोऽधिकान्।
असंख्यान्ब्राह्मणान्देवि भक्त्या कुरु निमन्त्रणम्।।१४१।।

स्वयं इन्द्र परोसने वाले होंगे। चन्द्रमा इस व्रतकार्य के अधिष्ठाता रहेंगे। सूर्यदेव दान का निर्णय करेंगे कि योग्य-अयोग्य पात्र को क्या देना चाहिये। हे सुन्दरी! व्रतोपयुक्त वस्तु को नियमित रूप से जिस मात्रा में प्रदान किया जाने का विधान है, उससे कहीं अधिक मात्रा में फल-पुष्पादि हरि को समर्पित करना। व्रत हेतु जितने ब्राह्मणों को भोजन कराने का विधान है, तुम उतने ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करने के अनन्तर असंख्य ब्राह्मणगण को भक्ति पूर्वक भोजनार्थ निमन्त्रण देना।।१३९-१४१।।

समाप्तिदिवसे स्वर्णं रत्नं मुक्तां प्रवालकम्।
व्रतोक्तां दक्षिणां दत्त्वा सर्वं देहि द्विजातये॥१४२॥

व्रतान्त में ब्राह्मणगण को व्रतविधानोक्त मात्रा में स्वर्ण, रत्न, मुक्ता, प्रवालादि उतना देकर, बाकी सब धन ब्राह्मणों को दक्षिणा में देना।।१४२।।

इत्युक्त्वा शंकरस्तां च कारयामास तद्व्रतम्।
व्रतं चकार सा दुर्गा सर्वाभ्यश्च विलक्षणम्॥१४३॥
इत्येवं कथितं विप्र पार्वत्या यद्व्रतं कृतम्।
रत्नं वोढुमशक्ताश्च ब्राह्मणा पार्वतीव्रते॥१४४॥

शङ्कर ने पार्वती को यह उपदेश देकर यह व्रत पार्वती से सम्पन्न कराया। दुर्गा (पार्वती) ने सब की तुलना में इस व्रत को अत्यन्त विलक्षणता से सम्पन्न किया। हे विप्र! यह पार्वती कृत व्रत का वर्णन तुमसे कह दिया। हे नारद! पार्वती कृत व्रत में दक्षिणा द्रव्य इतना अधिक दिया गया था कि ब्राह्मणगण उसका वहन करके ले जाने में असमर्थ थे।।१४३-१४४।।

इतिहासः श्रुतः सर्वः प्रकृतं शृणु नारद। श्रीकृष्णबालचरितं नूत्नं नूत्नं पदे पदे॥१४५॥
हत्वा तान्दानवेन्द्रांश्च शिशुभिः सह गोकुले।
जगाम स्वगृहं कृष्णः कुबेरभवनोपमम्॥१४६॥

हे नारद! मैंने इतिहास में जो सुना था, वह सब तुमसे कह दिया। श्रीकृष्ण का बाल्यावस्था का चरित पग-पग पर नवीनता युक्त रहता था। तीनों महादानवों का वध करने के अनन्तर कृष्ण गोप बालकों के साथ अपने कुबेर के महल जैसे भवन में गये।।१४५-१४६।।

सर्वेभ्यो वनवार्ता च प्रोक्ता च शिशुभिर्मुदा।
श्रुत्वैवं विस्मिताः सर्वे नन्दो भयमवाप ह॥१४७॥
आनीय वृद्धान्गोपांश्च गोपिकाः स्थविरास्तथा।
युक्तिं चकार तैः सार्धमालोच्य समयोचिताम्॥१४८॥
कृत्वा युक्तिं च गोपेशस्तत्स्थानं त्यक्तुमुद्यतः।
गन्तुं वृन्दावनं सर्वानुवाच तत्क्षणं मुने॥१४९॥
नन्दाज्ञां च समाकर्ण्य ते सर्वे गन्तुमुद्यताः।
गोपाश्च गोपिकाश्चैव बालका बालिकास्तथा॥१५०॥
कृष्णेन हलिना सार्धं प्रययुर्बालका मुदा। सङ्गीतं च प्रगायन्तो नानावेषसमन्विताः॥१५१॥
वेणुप्रवादकाः केचित्केचिच्छृङ्गप्रवादकाः। करतालकराः केचिद्वीणाहस्ताश्च केचन॥१५२॥
शरयन्त्रकराः केचित्केचिच्छृङ्गहस्ताश्च केचन।
नवपल्लवकर्णाश्च केचिद्गोपालबालकाः॥१५३॥

केचिन्मुकुलकर्णाश्च पुष्पकर्णाश्च केचन। नवमाल्यकराः केचित्केचिदाजानुमालिनः॥१५४॥
केचित्पल्लवचूडाश्च पुष्पचूडाश्च केचन। गोपालबालकाः सर्वे विप्रेन्द्र नवकोटयः॥१५५॥

तदनन्तर गोप बालकों ने वन की घटना का वर्णन वहां पर सबसे कर दिया। यह सुनकर सभी लोग विस्मित हो गये, परन्तु नन्दराज अत्यन्त भयभीत हो गये। नन्दराज ने वृद्ध गोप-गोपीगण को बुलाकर विचार करने के उपरान्त समयोचित युक्ति किया। उन्होंने यह स्थान त्याग कर वृन्दावन जाकर रहने हेतु छकड़ों को तैयार किया। नन्द की आज्ञा सुनकर गोप-गोपियां एवं बालक-बालिकायें सभी वृन्दावन जाने हेतु उद्यत हो गये। तदनन्तर नाना वेश-भूषा धारण करके और कृष्ण के गुणों का तथा संगीत का गायन करते-करते सभी लोग कृष्ण के साथ उस वन में चले गये। मार्ग में कोई वेणुवादन, कोई शृङ्ग वादन कर रहा था, कोई वीणा, तो कोई करताल वादन कर रहा था तथा कोई शरयन्त्र लिये था। किसी ने हाथ में श्रृंग धारण किया था। कुछ ने कर्ण में पुष्प कलिका पहना था। किसी ने पुष्प धारण किया था। कुछ के हाथ में नवमालायें थीं। कुछ ने घुटनों तक झूलती मालाओं को धारण किया था। कुछ ने पत्तों तथा पुष्पों का जूड़ा बनाया था। हे विप्रेन्द्र! सभी गोप बालकों की संख्या ९ करोड़ थी।।१४७-१५५।।

जग्मुर्गोप्यो वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुदा।
वृद्धाश्च कोटिशस्तत्र बृहच्छ्रोण्यश्चलत्कुचाः॥१५६॥
राधिकासहचारिण्यो बाला गोपालिका मुने।
ताः सुशीलादयो भव्या नानालङ्कारभूषिताः॥१५७॥
दिव्यवस्त्रपरीधानाः सस्मितास्ता ययुर्मुदा।
काश्चिदारुह्य शिबिकां रथमारुह्य काश्चन॥१५८॥

इनके साथ ही बृहद् नितम्ब एवं स्थूल स्तनों वाली करोड़ों गोपियां, उनकी संखिया, वृद्धा स्त्रियां भी अत्यन्त मुदित होकर चल पड़ीं। हे मुनिवर! राधा की जो सुशीला प्रभृति भव्या नाना अलङ्कार भूषिता, सुन्दर रूपवती, दिव्यवस्त्रधारिणी सखियां थीं वे सभी मुदित मन से मन्द मुस्कान बिखेरती जा रही थीं। कोई रथारूढ़ थीं, तो कोई पालकी पर ले जाई जा रही थीं।।१५६-१५८।।

राधा स्यन्दनमारुह्य शातकौम्भपरिच्छदम्। ताभिर्युक्ता ययौ देवी रत्नालङ्कारभूषिता॥१५९॥
यशोदा रोहिणी चैव रत्नालङ्कारभूषिता।
ययौ स्यन्दनमारुह्य शातकौम्भपरिच्छदम्॥१६०॥
नन्दः सुनन्दः श्रीदामा गिरिभानुर्विभाकरः। वीरभानुश्चन्द्रभानुर्गजस्थाः प्रययुर्मुदा॥१६१॥
श्रीकृष्णबलदेवौ तौ रत्नालङ्कारभूषितौ। स्वर्णस्यन्दमास्थाय जग्मतुः परया मुदा॥१६२॥

देवी राधिका रत्नमय परिच्छद से भूषित रथ पर जा रही थीं। नन्द, सुनन्द, श्रीदामा, गिरिभानु, विभाकर, वीरभानु, चन्द्रभानु आदि प्रधान गोपगण गज पर बैठे आनन्द पूर्वक जा रहे थे। नानालङ्कारभूषिता

यशोदा तथा रोहिणी देवी स्वर्णमय रथ पर आरूढ़ हो कर जा रही थीं। श्रीकृष्ण तथा बलराम जो नाना अलङ्कार एवं रत्नों से भूषित थे, वे परम मुदित होकर स्वर्णमय रथ पर बैठे जा रहे थे।।१५९-१६२।।

कोटिशः कोटिशो गोपा वृद्धाश्च यौवनान्विताः।
अश्वस्थाश्च गजस्थाश्च रथस्थाश्चैव केचन॥१६३॥

गोपा ययुर्मुदा युक्ताश्चोद्धता नन्दकिंकराः। वृषस्था गर्दभस्थाश्च सङ्गीततानतत्पराः॥१६४॥
अपरा राधिकादास्यस्त्रिसप्तशतकोटयः। मुदाऽन्विताः सस्मिताश्च स्वर्णालङ्कारभूषिताः॥१६५॥

काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित्कज्जलवाहिकाः।
काश्चित्कन्दुकहस्ताश्च काश्चित्पुत्तलिकाकराः॥१६६॥
भोगद्रव्यकराः काश्चित्क्रीडाद्रव्यकरा वराः।
वेषद्रव्यकराः काश्चित्काश्चिन्मालाकरा वराः॥१६७॥
काश्चिद्वाद्यकहस्ताश्च प्रवयुर्गोपिका मुदा।
वह्निशुद्धांशुकानां च वाहिकाश्चैव काश्चन॥१६८॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रववाहिकाः। काश्चित्सङ्गीतनिरताः काश्चिच्चित्रकथारताः॥१६९॥

साथ में करोड़ों की संख्या में वृद्ध तथा युवक गोपगण भी चल रहे थे। कोई हाथी पर, कोई अश्व पर, कोई रथ पर, तो कोई संगीत एवं ताल तत्पर मन से वृष तथा गर्दभ पर बैठा अपने किंकरों से घिरा चला जा रहा था। आनन्द में मग्ना स्वर्णालङ्कारभूषिता सात सौ कोटि संख्यक राधा की परिचारिकायें हर्षित मन से चली जा रही थीं। किसी के हाथों में सिन्दूर था, किसी ने काजल लिया था, कोई चन्दन-अगुरु, कस्तूरी-कुंकुम द्रव्य उठाये थी। किसी ने गेंद, तो किसी ने कठपुतलियां लिया था। किसी के हाथ में भोगद्रव्य, तो किसी के हाथ में क्रीड़ा द्रव्य था। कोई वेश-सज्जा सामग्री उठाये थी। किसी ने पुष्पमाला, किसी ने वाद्ययन्त्र उठाया था। वे सभी राधा के साथ चलती जा रही थीं। किसी ने अग्नि जैसे शुद्ध वस्त्र धारण किया था। कोई संगीत में तन्मय होकर गा रही थीं, कुछ विचित्र कथायें कह रही थीं।।१६३-१६९।।

कोटिशः कोटिशो रम्याः प्रययुः शिबिकान्विताः।
कोटिशः कोटिशश्चाश्वाः कोटिशः कोटिशो रथाः॥१७०॥

कोटिशः कोटिशश्चैव शकटा द्रव्यपूरिताः। कोटिशः कोटिशश्चैव वृषेन्द्रा द्रव्यवाहकाः॥१७१॥

कोटिशः कोटिशश्चैव दशलक्षाणि हस्तिनाम्।
हस्तिपांकुशयुक्तानि ययुर्वृन्दावनं वनम्॥१७२॥
सर्वे वृन्दावनं गत्वा दृष्ट्वा शून्यगृहं मुने।
वृक्षमूले यथास्थानं तस्थुः सर्वे यथोचितम्॥१७३॥

उवाच गोपाञ्छ्रीकृष्णो गृहांश्रेष्टतमान्व्रजाः।
अद्य संतिष्ठतेत्येवं श्रुत्वा श्रीकृष्णभाषितम्॥१७४॥
कुत्र सन्ति गृहाः कृष्णेत्येवमूचुस्तु गोपकाः।
इति तेषां वचः श्रुत्वा श्रीकृष्णो वाक्यमब्रवीत्॥१७५॥

करोड़ों मनोहर रूप वाली गोपियां पालकी से जा रही थीं। करोड़ों अश्व, रथ छकड़े द्रव्य से भरकर ले जाये गये। करोड़ों वृष सामान ढो रहे थे। करोड़ों हाथी महावत तथा अंकुश द्वारा ले जाये जा रहे थे। सभी का गन्तव्य वृन्दावन था। वृन्दावन गृह रहित प्रदेश था। सभी लोग वहां आकर वृक्ष के नीचे उचित रूप से ठहरे। तभी वांछित प्रकार के गृह तथा गौओं के शरणस्थल का संकेत देकर कृष्ण ने गोपगण से कहा–"सभी उचित रूप से स्थित हो जाओ।" तब गोपगण ने पूछा–"यहां घर कहां है, जहां हम ठहरें।" तब श्रीकृष्ण ने कहा–॥१७०-१७५॥

श्रीकृष्ण उवाच

अत्र स्थाने गृहाः सन्ति प्रसन्ना देवनिर्मिताः।
देवप्रीतिं विना शक्ता न हि द्रष्टुं च केचन॥१७६॥
अद्य तिष्ठत गोपालाः संपूज्य वनदेवताः। प्रातर्यूयं गृहान्रम्यान्द्रक्ष्यथाद्य ध्रुवं मुदा॥१७७॥
धूपदीपादिनैवेद्यैर्बलिभिः पुष्पचन्दनैः।
देवीं च वटमूलस्थां पूजां कुरुत चण्डिकाम्॥१७८॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–"यहां देवनिर्मित प्रभूत स्वच्छ गृह है, तथापि देवगण को प्रसन्न किये बिना उनको कोई नहीं देख सकेगा। हे गोपगण! यहां रुक कर वनदेवता की पूजा करो तथा यहीं ठहरो। तुम लोग प्रातः प्रसन्नता के साथ उन मनोहर गृहों का दर्शन कर सकोगे। तुम सब वटमूलस्था चण्डिका की अर्चना धूप-दीप-नैवेद्य, उपहार-पुष्प-चन्दनादि से करो।"॥१७६-१७८॥

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा गोपाः संपूज्य देवताम्।
भुक्त्वा भोगान्दिने रात्रौ तत्रैव सुषुपुर्मुदा॥१७९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० बकप्रलम्बककेशिवधपूवक-
वृन्दावनगमनं नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

—❊❊❊—

कृष्ण का कथन सुनकर सभी ने दिवाकाल में चण्डिका की पूजा करके भोजनादि से निवृत्त होकर हर्ष पूर्वक रात में वहीं शयन किया था॥१७९॥

॥१६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ सप्तदशोऽध्यायः

वृन्दावन निर्माण, कलावती के साथ वृकभानु का विवाह, वृन्दावन नाम का कारण कथन, राधा आदि १६ नामों की व्युत्पत्ति, भगवान् कृत राधास्तोत्र का वर्णन

नारायण उवाच

सुप्तेषु व्रजनन्देषु नक्तं वृन्दावने वने। सुनिद्रिते च निद्रेशे मातृवक्षःस्थलस्थिते॥१॥
निद्रितासु च गोपीषु रम्यतल्पस्थितासु च। यूनां च सुखसंयोगानुषक्तमानसासु च॥२॥
कासुचिच्छिशुयुक्तासु सखीयुक्तासु कासुचित्।
कासुचिच्छकटस्थासु स्यन्दनस्थासु कासुचित्॥३॥
पूर्णेन्दुकौमुदीयुक्ते स्वर्गादपि मनोहरे। नानाप्रकारकुसुमवायुना सुरभीकृते॥४॥
सर्वप्राणिनि निश्चेष्टे मुहूर्ते पञ्चमे गते। तत्राऽऽजगाम भगवाञ्छिल्पिनां च गुरोर्गुरुः॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—जब रात में ब्रजवासी तथा नन्दराज आदि शयन रत हो गये थे तब श्रीकृष्ण भी माता की गोद में निद्रामग्न हो गये। उस समय मनोहर शय्या पर शयन करती गोपियां कामोन्मत्ता होकर अपने प्रियतम के साथ सुख पूर्वक रमण करते-करते निद्रामग्न हो गईं। किसी गोपी ने शिशु को अपनी गोद में लिटाया, कोई सखियों से सट गई। कोई छकड़ा गाड़ी पर, तो कोई रथ पर सो गई। सबके निद्रित हो जाने पर पूर्णिमा के चन्द्रमा ने चारों ओर अपनी किरणों का विस्तार कर दिया। इससे वृन्दावन क्षेत्र स्वर्ग से भी मनोहर प्रतीत होने लगा। नाना प्रकार के पुष्पों की गन्ध वहां की वायु के द्वारा अपनी सुरभि बिखेरने लगी। उस समय सभी प्राणी रात्रि के कारण निश्चेष्ट से हो गये। जब रात्रि का पांचवा मुहूर्त भी अतीत हो गया, तभी शिल्पीगण के गुरु के भी परमगुरु भगवान् विश्वकर्मा वहां आये॥१-५॥

बिभ्रद्दिव्यांशुकं सूक्ष्मं रत्नमाल्यं मनोहरम्। रत्नालङ्कारमतुलं श्रीमन्मकरकुण्डलम्॥६॥
ज्ञानेन वयसा वृद्धो दर्शनीयः किशोरवत्। अतीव सुन्दरः श्रीमान्कामदेवसमप्रभः॥७॥
विशिष्टशिल्पनिगुणैः सार्धं शिल्पित्रिकोटिभिः। मणिरत्नैर्हेमरत्नैर्लोहास्त्रयुतहस्तकैः॥८॥

उन्होंने दिव्य तथा सूक्ष्म वस्त्र धारण किया था। उनके कंठ में मनोहर माला, कानों में मकराकृति कुण्डल लटक रहे थे। वे नाना रत्नालंकारधारी थे। वस्तुतः वे ज्ञान में तथा आयु में भले ही वृद्ध थे, तथापि देखने में उनकी आयु किशोरावस्था की प्रतीत हो रही थी। वे अत्यन्त सुन्दर शोभायुक्त तथा कामदेव के समान प्रभाशाली लग रहे थे। विश्वकर्मा वहां पर तीन करोड़ निपुण शिल्पियों के साथ आये थे। उन सबके हाथ में मणि, रत्न, स्वर्णरत्न तथा निर्माण में प्रयुक्त होने वाले लौह औजार भी थे॥६-८॥

आजग्मुर्यक्षनिकराः कुबेरवनकिंकराः। स्फाटिका रत्नवेषाश्च दीर्घस्कन्धाश्च केचन॥९॥
पद्मरागकराः केचिदिन्द्रनीलकरा वराः। केचित्स्यमन्तककराश्चन्द्रकान्तकरास्तथा॥१०॥

इसी बीच वहां कुबेर वन से कुबेर किंकर भी आ गये। वे किंकरगण स्फटिक मणि तथा रत्नों से भूषित थे। उनमें से कतिपय के कन्धे विशाल थे। किसी ने उत्तम पद्मरागमणि, तो किसी ने इन्द्रनीलमणि, किसी ने स्यमन्तकमणि, किसी ने चन्द्रकान्त मणियों के ढेर को हाथों में उठा रक्खा था॥९-१०॥

सूर्यकान्तकराश्चान्ये प्रभाकरकरा वराः। केचित्परशुहस्ताश्च लोहसारकरा वराः॥११॥
केचिच्च गन्धसाराणां मणीन्द्राणां च वाहकः।
केचिच्चामरहस्ताश्च केचिद्दर्पणवाहकाः॥१२॥
स्वर्णपात्रघटादीनां वाहकाश्चैव केचन। विश्वकर्मा च सामग्रीं दृष्ट्वा तु सुमनोहराम्॥१३॥

किसी ने हाथों में सूर्यकान्त मणि, तो किसी ने प्रभाकर मणि का ढेर हाथों में लिया था। किसी के हाथों में फरसा, किसी के हाथ में लौहसार, किसी ने गन्धसार तथा श्रेष्ठ मणियों को लेकर यहां आगमन किया था। किसी ने हाथों में चामर, तो किसी ने दर्पण उठाया था। कोई-कोई स्वर्णपात्र तथा घट आदि को ढोने वाला था। इस प्रकार विश्वकर्मा ने यह सब अत्यन्त मनोहर सामग्री को वहां एकत्र होते देखा॥११-१३॥

नगरं कर्तुमारेभे ध्यात्वा कृष्णं शुभेक्षणम्। पञ्चयोजनविस्तीर्णं भारते श्रेष्ठमुत्तमम्॥१४॥

अन्ततः विश्वकर्मा ने शुभ दृष्टि वाले कृष्ण का मन में ध्यान करके वहां नगर निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया। वह भारत का उत्तम तथा श्रेष्ठ नगर पांच योजन विस्तृत था॥१४॥

पुण्यक्षेत्रं तीर्थसारमतिप्रियतमं हरेः। तत्रस्थानां मुमुक्षूणां परं निर्वाणकारणम्॥१५॥
गोलोकस्य च सोपानं सर्वेषां वाञ्छितप्रदम्।
चतुष्कोटिचतुःशालं तत्रैवातिमनोहरम्॥१६॥

यह पुण्यक्षेत्र तीर्थों का सारभूत तथा हरि को अत्यन्त प्रियतर लगता है। यही स्थान मुमुक्षु लोगों की निर्वाणमुक्ति का कारण स्वरूप, सभी को वांछित तथा गोलोक के समान स्वरूप वाला कहा गया है। यह तीर्थ सभी को उसकी मनोकामना प्रदान करता है। यहां विश्वकर्मा ने ४-४ कमरों वाले चार कोटि भवन का निर्माण किया, जिसके कारण वह नगर अत्यन्त मनोहर प्रतीत होने लगा॥१५-१६॥

कपाटस्तम्भसोपानसहितैः प्रस्तरैर्वरैः। चित्रपुत्तलिकापुष्पकलशोज्ज्वलशेखरम्॥१७॥

यहां प्रस्तर के सोपान के साथ कपाट स्तम्भ भी बनाया गया था। यह नगर विशाल कपाट, स्तम्भ तथा सोपानों से अतीव मनोहर लगता था। वहां चित्रों में पुतलियां बनी थीं। पुष्प कलश भवनों के शिखर भाग पर लगे थे, जिससे वह भाग अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत होने लगा॥१७॥

शैलजाश्मविनिर्माणवेदिप्राङ्गणसंयुतम्। शिलाप्राकारसंयुक्तं प्रचकाराथ लीलया॥१८॥

विश्वकर्मा ने नगर को पर्वतों के पत्थरों से बनी नाना वेदियों तथा प्रांगणों से युक्त कर दिया। खेल-खेल में विश्वकर्मा ने वहां शिलामय चहारदीवार प्रभृति का निर्माण कर दिया। वह सम्पूर्ण नगर पत्थर की दीवार तथा उत्तम परकोटों से वेष्ठित था।।१८।।

यथोचितबृहत्क्षुद्रद्वारद्वयसमन्वितम्। स्फाटिकाकारमणिभिर्मुदा युक्तो विनिर्ममे।।१९।।

सोपानैर्गन्धसाराणां स्तम्भैः शङ्कुविनिर्मितैः।
कपाटैर्लोहसाराणां राजतैः कलशोज्ज्वलैः।।२०।।
वज्रसारनिर्माणप्राकारैः परिशोभितम्।
कृत्वाऽऽश्रमं बल्लवानां यथास्थानं यथोचितम्।।२१।।

वृषभान्वालयं रम्यं कर्तुमारब्धवान्पुनः। प्राकारपरिखायुक्तं चतुर्द्वारान्वितं परम्।।२२।।

इस नगर के भवनों में छोटे-बड़े दो दरवाजे भी थे। अत्यन्त मुदित मन से विश्कर्मा ने स्फटिक मणियों से इन नगर को बनाया था। यहां चन्दन के सोपान, शंकु द्वारा स्तम्भ, लौहसार द्वारा कपाट, रजत से उज्वल कलश तथा वज्रसार से निर्मित दीवार से नगर अत्यन्त शोभायमान था। विश्वकर्मा ने एवंविध गोपगण के निवास हेतु यथोचित गृह यथास्थान निर्मित किया। तदनन्तर वे वृषभानु का रम्य भवन बनाने लगे। इस भवन की चारों दिशा में चार दरवाजे बने। चतुर्दिक् दीवार तथा खाई बनी थी।।१९-२२।।

चारुविंशच्चतुःशालं महामणिविनिर्मितम्। रत्नसारविकारैश्च तूलिकानिकरैर्वरैः।।२३।।
सुवर्णकारमणिभिरारोहैरतिसुन्दरैः। लोहसारकपाटैश्च शोभितं चित्रकृत्रिमैः।।२४।।
मन्दिरे मन्दिरे रम्ये सुवर्णकलशोज्ज्वलम्। तदाश्रमैकदेशे च निर्जनेऽतिमनोहरे।।२५।।

चारुचम्पकवृक्षाणामुद्यानाभ्यन्तरे मुने।
संभोगार्थं कलावत्याः स्वामिना सह कौतुकात्।।२६।।

विशिष्टेन मणीन्द्रेण चकाराट्टालिकालयम्। युक्तं नवभिरारोहैरिन्द्रनीलविनिर्मितैः।।२७।।
स्थूणाकपाटनिकरैर्गन्धसारविकारजैः। अत्युच्छ्रितं मनोरम्यं सर्वतोऽपि विलक्षणम्।।२८।।

इस वृषभानु गृह में ४-४ कक्ष वाले २० भव्य भवन बनाये गये। यह गृह महामूल्य मणियों से बनाया गया था। रत्नसार से बनी उत्तम तूलिकाओं से स्वर्णकारों ने मणियों द्वारा अत्यन्त सुन्दर नाना सोपान बनाया। इस गृह के कपाट लोहसार से बने थे। कृत्रिम चित्र लग जाने से वृषभानु गृह अत्यन्त शोभायमान हो रहा था। प्रत्येक भवन स्वर्णकलश लगने से अत्युज्वल लग रहा था। उस गृह के रम्य मनोहर चम्पावृक्षों के उद्यान के अन्तर्गत् वाले निर्जन क्षेत्र में कलावती तथा उसके पति के निवासार्थ विश्वकर्मा ने कौतूहलप्रद एक अट्टालिका का निर्माण विशेष प्रकार की श्रेष्ठ मणियों से किया। उस अट्टालिका की ९ सीढ़ियां इन्द्रनीलमणि निर्मित थीं। खम्भे चन्दन की लकड़ी के लगे थे। वह भवन कपाट से अधिक उच्च तथा मनोरम था। वह सबसे विलक्षण लग रहा था।।२३-२८।।

नारद उवाच

कलावती का भगवन्कस्य पत्नी मनोहरा। यत्नतो यद्गृहं रम्यं निर्ममे सुरकारुणा॥२९॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे प्रभो! विश्वकर्मा ने जिसके रम्य गृह का निर्माण इतने यत्न से किया था, वह कलावती कौन थी, किसकी पत्नी थी? कृपया कहिये॥२९॥

नारायण उवाच

पितृणां मानसी कन्या कमलांशा कलावती। सुन्दरी वृषभानस्य पतिव्रतपरायणा॥३०॥

यस्याश्च तनया राधा कृष्णप्राणाधिका प्रिया।
श्रीकृष्णार्धांशसंभूता तेन तुल्या च तेजसा॥३१॥
यस्याश्च चरणाम्भोजरजःपूता वसुंधरा।
यस्यां च सुदृढां भक्तिं सन्तो वाञ्छन्ति संततम्॥३२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–कमला के अंश से जन्मी कलावती पितरों की मानसपुत्री थी (मनोत्पन्न पुत्री)। वह सुन्दरी वृषभानु की पत्नी पतिव्रत परायणा थीं। उनकी ही पुत्री कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा हैं। ये राधा कृष्ण के अर्द्धभाग से उत्पन्न हैं। वे कृष्ण के तुल्य ही तेजस्वी हैं। राधा की चरणधूलि के कणों से यह धरती पवित्र हो गई है। सन्तगण उनकी ही दृढ़भक्ति की सदा कामना करते हैं॥३०-३२॥

नारद उवाच

पितृणां मानसीं कन्यां व्रजे तिष्ठन्कथं मुने। मानवः केन पुण्येन कथमाप सुदुर्लभाम्॥३३॥

वृषभानुर्व्रजपतिः पुराऽऽसीत्को महानहो।
कस्य वा केन तपसा राधा कन्या बभूव ह॥३४॥

देवर्षि नारद कहते हैं–साधुगण जिनकी सुदृढ़ भक्ति प्राप्त करने की सदा कामना करते हैं, ब्रज में निवास करने वाले मनुष्य वृषभानु ने किस पुण्यफल से उन राधा को पुत्रीरूपेण प्राप्त कर लिया? ब्रजपति वृषभानु पूर्वजन्म में कौन थे? किस तपस्या के फलस्वरूप उन्होंने राधा को पुत्रीरूपेण प्राप्त किया था?॥३३-३४॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा महर्षिर्ज्ञानिनां वरः। प्रहस्योवाच प्रीत्या तमितिहासं पुरातनम्॥३५॥

सूत जी कहते हैं–ज्ञानीप्रवर महर्षि नारायण ने नारद का वाक्य सुनकर हंसते हुये प्रसन्न होकर नारद से प्राचीन इतिहास कहा–॥३५॥

नारायण उवाच

बभूवुः कन्यकास्तिस्त्रः पितृणां मानसात्पुरा। कलावतीरत्नमालामेनकाश्चातिदुर्लभाः॥३६॥

रत्नमाला च जनकं वरयामास कामुकी। शैलाधिपं हरेरंशं मेनका सा हिमालयम्॥३७॥

दुहिता रत्नमालाया अयोनिसंभवा सती।
श्रीरामपत्नी श्रीः साक्षात्सीता सत्यपरायणा॥३८॥

कन्यका मेनकायाश्च पार्वती सा पुरा सती। अयोनिसंभवा सा च हरेर्माया सनातनी॥३९॥
सा लेभे तपसा देवं हरं नारायणात्मकम्। कलावती सुचन्द्रं च मनुवंशसमुद्भवम्॥४०॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं– पूर्वकाल में पितरों की तीन मानसी कन्या जन्मी थीं। उनके नाम हैं–कलावती, रत्नमाला, मेनका। इनमें से रत्नमाला ने काम के वशीभूत होकर जनकराज का पतिरूप से वरण कर लिया। मेनका ने श्रीहरि के अंशरूप हिमवान् को पतिरूपेण वरण किया। रत्नमाला की ही कन्या अयोनिसम्भवा श्रीरामपत्नी साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा सत्यपरायणा देवी सीता हैं। मेनका की कन्या पार्वती हैं, जो पूर्वजन्म में दक्षपुत्री सती थीं। ये अयोनिसंभवा सनातनी विष्णुमाया हैं। उन्होंने तप बल से नारायणात्मक शिव का वरण पतिरूप में किया। कलावती ने मनुवंशोत्पन्न राजा सुचन्द्र का वरण पतिरूप में किया था।।३६-४०।।

स च राजा हरेरंशस्तां संप्राप्य कलावतीम्। मेने गुणवतां श्रेष्ठमात्मानमतिसुन्दरम्॥४१॥
अहो रूपमहो वेषमहो अस्या नवं वयः। सुकोमलाङ्गं ललितं शरच्चन्द्राधिकाननम्॥४२॥
गमनं दुर्लभमहो गजखञ्जनगञ्जनम्। कटाक्षैर्मोहितुं शक्ता मुनीन्द्राणां च मानसम्॥४३॥

राजा सुचन्द्र ने कलावती को पत्नी रूप से पाकर तथा स्वयं को पुण्यवानों में श्रेष्ठ जानकर यह विचार किया कि यह कलावती तो आश्चर्यजनक रूपवती तथा मनोहर वेशभूषा वाली हैं। यह नवयौवना, कोमल सुन्दर अंगों वाली तथा शारदीयचन्द्र से भी कहीं अधिक मुख वाली हैं। इसकी मदमत्त दुर्लभ गति ऐसी है, जो गज एवं खंजन की चाल को भी लज्जित कर दें! यह अपनी वक्रचितवन से तो मुनिप्रवरगण के भी चित्त को मोहित कर सकने में सक्षम है।।४१-४३।।

श्रोणियुग्मं सुललितं रम्भास्तम्भविनिर्मितम्। स्तनद्वयं सुकठिनमतिपीनोन्नतं मुने॥४४॥

नितम्बयुगलं चारु रथचक्रविनिर्मितम्।
हस्तौ पदौ च रक्तौ च पक्वबिम्बफलाधरम्॥४५॥

पक्वदाडिमबीजाभं दन्तपङ्क्तिमनोहरम्। शरन्मध्याह्न पद्मानां प्रभामोचनलोचनम्॥४६॥
भूषणैर्भूषितं रूपं कृतं सद्रत्नभूषणम्। इतीव मत्वा दृष्ट्वा च कामबाणप्रपीडितः॥४७॥

"इसकी जांघे तो कदली वृक्ष के स्तम्भ की शोभा को भी लज्जित कर देने वाली प्रतीत होती हैं। इसके स्तनद्वय अत्यन्त कठोर, स्थूल उन्नत हैं। इस कलावती के नितम्ब रथचक्रवत् मनोहर हैं। हथेली एवं पैर के तलवे रक्तवर्ण हैं। इसके अधरोष्ठ पक्व बिम्बफल के समान लालिमा युक्त हैं। दन्तपंक्ति पक्व दाड़िम (अनार) फल के दानों के समान मन का हरण करने वाली हैं। इसके नेत्रद्वय तो शरत्कालोत्पन्न मध्याह्न में खिले कमल की भी कान्ति का हरण करते प्रतीत हो रहे हैं। यह भूषणों

से भूषित है, तथापि लगता है कि यही भूषणों को अपनी रूपछटा से विभूषित कर रही हैं!" कलावती का यह रूप देखकर राजा सुचन्द्र अत्यधिक कामोन्मत्त हो गया!।।४४-४७।।

दिव्यं स्यन्दनमारुह्य कामुक्या सह कामुकः।
क्रीडां चकार रहसि स्थाने स्थाने मनोहरे॥४८॥

रम्यायां मलयद्रोण्यां चन्दनागुरुवायुना। चारुचम्पकपुष्पाणां तल्पे रतिसुखावहे॥४९॥
मालतीमल्लिकानां च पुष्पोद्यानेऽतिपुष्पिते। पुष्पभद्रानदीतीरे निर्जने केतकीवने॥५०॥
पश्चिमाब्धितटान्तःस्थकानने जन्तुवर्जिते। नन्दने मन्दरद्रोण्यां कावेरीतीरजे वने॥५१॥
शैले शैले सुरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे। द्वीपे द्वीपे तु रहसि स रेमे वामया सह॥५२॥

यह कामुक राजा अपनी कामुकी पत्नी को लेकर दिव्य रथ पर आरूढ़ हो गया और वह प्रत्येक एकान्त रम्य स्थलों पर जाकर उसके साथ सम्भोग करता भ्रमण करने लगा। गंगातट पर, गन्धमादन की गुफाओं, गोदावरी तीरस्थ, निर्जन केतकी वन में, पश्चिम समुद्र के तट के समीपस्थ निर्जन काननों में, कभी नन्दन कानन में, कभी-कभी कावेरी तट के वनों में, कभी मलयपर्वत की उस घाटी में जहां चन्दन एवं अगुरु की सुगन्ध से पूर्ण वायुप्रवाह होता रहता है, कभी रति सुखप्रदा चन्दन, पुष्प शय्या पर, कभी मालती-मल्लिका के खिले पुष्पों की वाटिका में, एवंविध प्रत्येक रमणीय पर्वत, प्रत्येक श्रेष्ठ नदी के तट, प्रत्येक नदों के तीर पर, प्रत्येक द्वीपों के निर्जन स्थलों पर राजा सुचन्द्र ने कलावती के साथ यथेच्छ संभोग किया।।४८-५२।।

नवसङ्गमसंयोगाद्बुबुधे न दिवानिशम्। एवं वर्षसहस्रं तद्गतमेव मुहूर्तवत्॥५३॥
कृत्वा विहारं सुचिरं स विरक्तो बभूव ह। जगाम तपसे विन्ध्यशैलं तीर्थं तया सह॥५४॥
भारतेऽतिप्रशस्यं च पुलहाश्रममुत्तमम्। तपस्तेपे नृपस्तत्र दिव्यवर्षसहस्रकम्॥५५॥

मोक्षाकाङ्क्षीः निःस्पृहाश्च निराहारः कृशोदरः।
मूर्च्छामाप मुनिश्रेष्ठ ध्यात्वा कृष्णपदाम्बुजम्॥५६॥

इस नवसंगम संभोग काल में राजा को दिन-रात की भी सुध-बुध नहीं रह गई। अतः एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये, परन्तु राजा को वह समय मुहूर्त्त मात्र ही लगा! इस प्रकार दीर्घकालीन संभोग-विहार करके राजा के मन में विरक्ति आ गयी। अन्ततः राजा अपनी पत्नी कलावती को लेकर भारत में अत्यन्त विस्तार वाले उत्तम पुलहाश्रम युक्त विन्ध्यपर्वत पर तपःश्चरण करने लगा। वहां मोक्षाकांक्षी, निःस्पृह एवं निराहार रहकर अपना शरीर क्षीण करते हुये राजा ने दिव्य १००० वर्षों तक तपःश्चरण किया (१ दिव्य वर्ष=३६० मनुष्यवर्ष) राजा कृष्ण के चरणकमलों का चिन्तन करते रहकर तप कर रहा था। इस प्रकार तप करते-करते कृश शरीर ध्यानमग्न राजा एक बार मूर्च्छित होकर गिर गया।।५३-५६।।

तद्गात्रव्याप्तवल्मीकं साध्वी दूरं चकार सा।
निश्चेष्टितं पतिं दृष्ट्वा त्यक्तं प्राणैश्च पञ्चभिः॥५७॥

मांसशोणितरिक्तं तमस्थिसंसक्तविग्रहम्। उच्चै रुरोद शोकार्ता निर्जने तु कलावती॥५८॥

राजा का शरीर दीर्घकालीन तप करते-करते दीपकों की बांबी से भर गया था, वह सब उसकी पतिव्रता स्त्री कलावती ने झाड़-पोंछ कर हटाया, तथापि उसने देखा कि पति का शरीर पांचों प्रकार की प्राणवायु से शून्य है। इतना कृश है कि मांस-रक्त भी उसमें नहीं है। राजा का शरीर मात्र अस्थि एवं चर्ममात्र है। राजा की यह स्थिति देखकर वह पतिव्रता कलावती उस जनशून्यप्रदेश में उच्च स्वर से रुदन करने लगीं।।५७-५८।।

हे नाथ नाथेत्युच्चार्य कृत्वा वक्षसि मूर्च्छितम्।
विललाप महादीना पतिव्रतपरायणा॥५९॥
दृष्ट्वा नृपं निराहारं कृशं धमनिसंयुतम्।
श्रुत्वा च रोदनं तस्याः कृपया च कृपानिधिः॥६०॥
आविर्बभूव जगतां विधाता कमलोद्भवः।
क्रोडे कृत्वा च तं तूर्णं रुरोद भगवान्विभुः॥६१॥

वह पतिव्रत परायणा तथा महादीन हो गई कलावती अपने पति के वक्ष पर गिर कर हे नाथ! हे नाथ! कहती रुदन कर रही थी। राजा निराहार तप कर रहा था। कलावती ने देखा कि वह इतना कृश हो गया था कि केवल उसकी धमनियां ही चर्म पर झलक रही थीं। उसका रुदन सुनकर उसके प्रति कृपालु होकर कृपानिधि, जगद्विधाता, कमलजन्मा ब्रह्मदेव वहां प्रकट हो गये। वे भगवान् विभु तत्काल राजा का शरीर शीघ्र गोद में लेकर रुदन करने लगे।।५९-६१।।

ब्रह्मा कमण्डलुजलेनाऽऽसिच्य नृपविग्रहम्।
जीवं सञ्चारयामास ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मवित्॥६२॥

तदनन्तर ब्रह्मज्ञ ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु का जल राजा के शरीर पर छिड़का तथा ब्रह्मज्ञान के द्वारा राजा के शरीर में जीव का संचार कर दिया!।।६२।।

नृपेन्द्रश्चेतनां प्राप्य पुरो दृष्ट्वा प्रजापतिम्।
प्रणनाम च तं दृष्ट्वा तं च कामसमप्रभम्॥६३॥

तमुवाचेति संतुष्टो वरं वृणु यथेप्सितम्। स विधेर्वचनं श्रुत्वा वव्रे निर्वाणमीप्सितम्॥६४॥
दयानिधे त्वं ददया वरं दातुं समुद्यतः। प्रसन्नवदनः श्रीमान्स्मेराननसरोरुहः॥६५॥
कृत्वाऽनुमानं मनसि शुष्ककण्ठोष्ठतालुका। तमुवाच सती त्रस्ता वरं दातुं समुद्यतम्॥६६॥

तत्पश्चात् चेतना प्राप्त होने पर राजा ने अपने समक्ष जब प्रजापति ब्रह्मा को देखा, तब राजा ने तत्काल ब्रह्मा को प्रणाम किया। कामदेव के समान सुन्दर राजा के प्रति प्रसन्न होकर ब्रह्मदेव ने कहा— "मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं। तुम वांछित वर मांगो।" विधाता का यह कथन सुनकर उनसे अपना वांछित

वर निर्वाण मुक्ति मांगा। प्रसन्न आनन वाले तथा आनन्द पूर्वक मुस्कराते मुखकमल वाले दयानिधि कमलयोनि ब्रह्मा यह वर राजा को देने ही जा रहे थे, तभी सती कलावती ने ब्रह्मा को वर देने के लिये जैसे ही उद्यत देखा उसका कण्ठ, तालु, ओष्ठ शुष्क हो उठा। उसने त्रस्त होकर ब्रह्मदेव से तत्काल कहा—॥६३-६६॥

कलावत्युवाच

यदि मुक्तिं नृपेन्द्राय ददासि कमलोद्भव। अतोऽबलाया हे ब्रह्मन्का गतिर्भविता वद॥६७॥
विना कान्तं च कान्तानां का शोभा चतुरानन।
व्रतं पतिव्रतायाश्च पतिरेव श्रुतौ श्रुतम्॥६८॥
गुरुश्चाभीष्टदेवश्च तपोधर्ममयः पतिः। सर्वेषां च प्रियतरो न बन्धुः स्वामिनः परः॥६९॥
सर्वधर्मात्परा ब्रह्मन्पतिसेवा सुदुर्लभा। स्वामिसेवाविहीनायाः सर्वं तन्निष्फलं भवेत्॥७०॥

सती कलावती कहती हैं—हे कमलोद्भव प्रभु! यदि आप राजा को मुक्ति प्रदान कर देते हैं, तब इस हतभाग्य अबला नारी की क्या गति होगी? पहले आप यही विचार करिये। हे चतुरानन! कान्त के बिना मुझ कान्ता की क्या शोभा रह जायेगी? यह श्रुति में कहा गया है कि पतिव्रता नारी के लिये पति ही उसका व्रत है। तपधर्ममय पति ही पतिव्रता का गुरु तथा इष्टदेव होता है। नारी के लिये स्वामी से बढ़कर प्रिय कोई बन्धु नहीं होता। हे ब्रह्मन्! नारी के लिये समस्त धर्मों से बढ़कर है दुर्लभ पति सेवा। जो नारी स्वामी सेवा से रहित है, उसके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं।।६७-७०।।

व्रतं दानं तपः पूजा जपहोमादिकं च यत्।
स्नानं च सर्वतीर्थेषु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणम्॥७१॥
दीक्षा च सर्वयज्ञेषु महादानानि यानि च। पठनं सर्ववेदानां सर्वाणि च तपांसि च॥७२॥
वेदज्ञानां ब्राह्मणानां भोजनं देवसेवनम्।
एतानि स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥७३॥
स्वामिसेवाविहीना या वदन्ति स्वामिने कटुम्।
पतन्ति कालसूत्रे च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥७४॥
सर्पप्रमाणाः कृमयो दंशन्ति च दिवानिशम्।
संततं विपरीतं च कुर्वन्ति शब्दमुल्बणम्॥७५॥
मूत्रश्लेष्मपुरीषाणां कुर्वन्ति भक्षणं मुदा। मुखे तासां ददत्येवमुल्कां च यमकिंकराः॥७६॥
भुक्त्वा भोगं च नरके कृमियोनिं प्रयान्ति ताः।
भक्षन्ति जन्मशतकं रक्तमांसपुरीषकम्॥७७॥

व्रत, दान, तप, जप, होम, सर्वतीर्थ स्नान, पृथिवी प्रदक्षिणा, दीक्षा, यज्ञकार्य, विविध महादान,

वेदपाठ, तपस्या, वेदज्ञान, ब्राह्मण भोजन, देवसेवा प्रभृति सभी धर्मकृत्य, ये सभी मिलाकर पतिसेवा की तुलना में सोलहवां अंश (१/१६) भी नहीं हैं। जो स्त्रियां पतिसेवा नहीं करतीं, स्वामी से कटु वाक्य कहती हैं, ऐसी हतभागिनी नारियां कालसूत्र नरक में चन्द्र-सूर्य जब तक हैं, तब तक निवास करती हैं। वहां उनका सर्प जैसे कीटगण रात-दिन डसते रहते हैं। इस यातना की पीड़ा से वे स्त्रियां वहां अत्यन्त घोर विपरीत शब्द करती हैं। वहां वे कटुभाषिणी नारीगण मूत्र-श्लेष्मा तथा विष्ठा का नित्य भक्षण करती हैं। यमदूत उन स्त्रियों के मुख में प्रज्वलित अग्नि भरते हैं। ये स्त्रियां यह सब कष्ट भोगकर कृमि योनि प्राप्त करती हैं। वे सौ जन्मों तक कीट होकर रक्त-मांस-विष्ठा आदि भक्षण करती रहती हैं।।७१-७७।।

श्रुत्वाऽहं विदुषां वक्त्राद्वेदवाक्येषु निश्चितम्।
जानामि किंचिदबला त्वं वेदजनको विभुः।।७८।।

गुरोर्गुरुश्च विदुषां योगिनां ज्ञानिनां तथा। सर्वज्ञमेवंभूतं त्वां बोधयामि किमुच्यते।।७९।।

प्राणाधिकोऽयं कान्तोऽयं यदि मुक्तो बभूव ह।
मम को रक्षिता ब्रह्मन्धर्मस्य यौवनस्य च।।८०।।
कौमारे रक्षिता तातो दत्त्वा पात्राय सत्कृती।
सर्वदा रक्षिता कान्तस्तदभावे च तत्सुतः।।८१।।
त्रिष्ववस्थासु नारीणां त्रातारश्च त्रयः स्मृताः।
याः स्वतन्त्राश्च ता नष्टाः सर्वधर्मबहिष्कृताः।।८२।।

मैं तो अबला नारी हूं, तथापि मैंने पण्डितों के मुख से ऐसे सुनिश्चित वेदवाक्य सुने हैं। इसी से कुछ इस विषय को जान सकी हूं, तथापि आप तो वेदों के जनक, विभु, योगी, महाज्ञानी तथा गुरुगण के भी गुरु हैं। आप सर्वज्ञ तथा प्रभु हैं। मैं इस सम्बन्ध में आपसे अधिक क्या कह सकती हूं। हे ब्रह्मन्। यदि मेरे प्राणाधिक प्रिय पति मुक्त हो जाते हैं, तब मेरे धर्म तथा यौवन की रक्षा कौन कर सकेगा? नारी की उसकी कुमारावस्था में पिता रक्षा करता है, तदनन्तर उसकी युवावस्था में पिता कन्या को सुपात्र को प्रदान कर देता है। तब वह पति उसकी रक्षा करता है। यदि पति गत हो जाये, तब पुत्र उसकी रक्षा करता है। नारी की इन तीन अवस्थाओं में उसके ये तीन रक्षक निरूपित हैं। जो नारी स्वतन्त्र है, वह नष्ट हो जाती है तथा वह सर्वधर्म बहिष्कृत हो जाती है।।७८-८२।।

असत्कुलप्रसूतास्ता कुलटा दुष्टमानसाः। शतजन्मकृतं पुण्यं तासां नश्यति पद्मज।।८३।।

पुत्रस्नेहो यथा बाल्ये तथा युनि च वार्धके।
पतिव्रतानां कान्ते च सर्वकाले समा स्पृहा।।८४।।
सुते स्तनंधये स्नेहो मातृणां चातिशोभिते।
पतिस्नेहस्य साध्वीनां कलां नार्हति षोडशीम्।।८५।।

हे पद्मयोनि! वे असत् कुल में उत्पन्न होती हैं, कुलटा एवं दुष्ट मति होती हैं। उनकी सौ जन्म कृत पुण्यराशि नष्ट हो जाती है। नारी को पुत्र स्नेह जिस प्रकार से बाल्यावस्था में रहता है, उसी प्रकार से यौवन एवं वार्द्धक्य में भी बना रहता है। इसी प्रकार पतिव्रता नारी का पतिप्रेम सर्वावस्था में समान ही रहता है। स्तनपायी शिशु के प्रति माता अधिक स्नेह भले ही करती हो, तथापि पतिव्रता का जो पति के प्रति स्नेह होता है, उसकी तुलना में यह शिशु स्नेह सोलहवां भाग (१/१६) भी नहीं है।।८३-८५।।

स्तनान्धे स्तनदानान्तं मिष्टान्ने भोजनावधि।
कान्ते चित्तं सतीनां च स्वप्ने ज्ञाने च संततम्।।८६।।

स्तनपायी शिशु का स्नेह स्तनपान की आयु तक रहता है। मिष्ठान्न के प्रति बालक का स्नेह उसके भक्षण तक ही रहता है, तथापि पति के प्रति सती नारी को स्नेह स्वप्न देखते, सोते, जागते, सभी स्थिति में बना रहता है!।।८६।।

दुःखान्तो बन्धुविच्छेदः पुत्राणां च ततोऽधिकः।
सुदारुणः स्वामिनश्च दुःखं नातः परं स्त्रियाः।।८७।।
अविदग्धा यथा दग्धा ज्वलदग्नौ विषादने।
तथा विदग्धा दग्धा स्याद्विदग्धविरहानले।।८८।।
नान्ने तृष्णा जले तृष्णा साध्वीनां स्वामिनं विना।
विरहाग्नौ मनो दग्धं वह्नौ शुष्कतृणं यथा।।८९।।
नहि कान्तात्परो बन्धुर्नहि कान्तात्परः प्रियः।
नहि कान्तात्परो देवो नहि कान्तात्परो गुरुः।।९०।।
नहि कान्तात्परो धर्मो नहि कान्तात्परं धनम्।
नहि कान्तात्पराः प्राणा नहि कान्तात्परः स्त्रियाः।।९१।।

बन्धु वियोग दुःखप्रद कहा गया है। उससे अधिक है पुत्र वियोग, परन्तु स्वामी वियोग से बढ़कर दुःख तो अत्यन्त दारुण होता है। नारी के लिये इससे बढ़कर कोई भी दुःख नहीं होता। जिस प्रकार से मूढ़ नारी अग्नि अथवा विषपान से दग्ध होती विषाद करती है, उसी प्रकार बुद्धिमान रमणी पति की विरहाग्नि में दुःख दग्ध होती रहती है। सती स्त्री को पति के बिना अन्न भक्षण की इच्छा नहीं होती। उसे प्यास में भी जल की कामना नहीं रहती। उसका मन इस विरहाग्नि में शुष्क तृण की तरह दग्ध होता रहता है। स्त्री के लिये पति से बढ़कर बन्धु कोई नहीं है। उसके लिये पति से बढ़कर प्रिय अन्य कोई नहीं है। पति की तुलना में उसके लिये देवता भी अधिक माननीय नहीं हैं। पत्नी के लिये पति से बढ़कर कोई गुरु नहीं है। उसके लिये स्वामी से बढ़कर धर्म, धन तथा प्राण भी नहीं है।।८७-९१।।

निमग्नं कृष्णापादाब्जे वैष्णवानां यथा मनः। यथैकपुत्रे मातुश्च यथा स्त्रीषु च कामिनाम्।।९२।।

धनेषु कृपणानां च चिरकालार्जितेषु च। यथा भयेषु भीतानां शास्त्रेषु विदुषां यथा॥९३॥

स्तनादाने शिशूनां च शिल्पेषु शिल्पिनां यथा।
यथा जारे पुंश्चलीनां साध्वीनां च तथा प्रिये॥९४॥
तं विना जीवितुं ब्रह्मन्क्षणमेकं न च क्षमम्।
मरणं जीवनं तासां जीवनं मरणाधिकम्॥९५॥

सद्भर्तृरहितानां च शोकेन हतचेतसाम्। अन्यशोकनिमग्नानां कालेन पानभोजनात्॥९६॥

विपरीतः कान्तशोको वर्धते भक्षणादहो।
कर्मच्छाया सतीनां च संगिनीनां सती वरा॥९७॥

जिस प्रकार से वैष्णवों का मन कृष्ण के चरणों में निश्चल भाव से निमग्न रहता है, जैसे माता का मन अपने एकलौते पुत्र में लगा रहता है, जैसे कामुक पुरुष का मन स्त्री में, कृपण का मन चिरकालार्जित धन में विन्यस्त रहता है, भीत व्यक्ति का मन आसन्न भय में, विद्वद्जन का मन शास्त्र में, शिशु का मन स्तनपान में, शिल्पकार का मन शिल्प में, व्यभिचारिणी नारी का मन उपपति जार में लीन देखा जाता है, तदनुरूप पतिव्रता नारी का मन सतत् प्रियतम के प्रति निमग्न रहता है। हे ब्रह्मन्! सती नारी के लिये अपने उत्तम स्वामी के वियोग में अपना शोक-सन्तप्त हृदय लेकर जीवित रहने की अपेक्षा मरण ही अधिक सुखकर लगता है। उसे ऐसी हालत में मृत्यु भी जीवन की तुलना में अधिक श्रेयस्कर लगता है। उसके लिये जीवित रहना मृत्यु से भी अधिक क्लेशदायक हो जाता है। अन्य बन्धु आदि हेतु वियोग जनित शोक तो क्रमशः पान-भोजनादि से समाप्त हो जाता है, तथापि पति शोक की तो अलग बात है। वह तो भोजन-पान से और भी बढ़ता जाता है। साध्वी नारी, कृतकर्म तथा छाया ये सभी चिरसंगी हैं। इनमें भी साध्वी स्त्री श्रेष्ठ तथा प्रधान है।।९२-९७।।

इतरे भोगदेहान्ते साध्वी जन्मनि जन्मनि। करोषि चेज्जगद्धातरिमं मुक्तं मया विना॥९८॥
त्वां शप्त्वाऽहं त्वयि विभो पश्य दास्यामि स्त्रीवधम्॥९९॥

अन्य प्रकार की नारी भोगदेह तक ही साथ देती हैं, लेकिन पतिव्रता स्त्री स्वामी का जन्म-जन्मान्तर में साथ देती है। हे विभु! यदि आप केवल इनको मुक्त करते हैं, तब मैं आपको शापग्रस्त करके स्त्रीवध का पातक अर्पित कर दूंगी।।९८-९९।।

श्रुत्वा कलावतीवाक्यमुवाच विस्मितो विधिः।
हितं पीयूषसदृशं भयसंविग्नमानसः॥१००॥

विधाता ब्रह्मा कलावती का कथन सुनकर विस्मित हो गये। उन्होंने भययुक्त मन से कलावती से अमृतवत् हितदायक वाक्य कहा-।।१००।।

ब्रह्मोवाच

वत्से मुक्तिं न दास्यामि स्वामिनं च त्वया विना। मुक्तं कर्तुं त्वया सार्धं सांप्रतं नाहमीश्वरः॥१०१॥

मातर्मुक्तिर्विना भोगाद्दुर्लभा सर्वसंमता।
निर्वाणतां समाप्नोति भोगी भोगविकृन्तने॥१०२॥
कतिवर्षं स्वर्गभोग कुरुष्व स्वामिना सह। ततस्तु युवयोर्जन्म भविता भारते सति॥१०३॥
यदा भविष्यति सती कन्या ते राधिका स्वयम्।
जीवन्मुक्तौ तथा सार्धं गोलोकं च गमिष्यथः॥१०४॥
कतिकालं नृपश्रेष्ठ भुङ्क्ष्व भोगं स्त्रिया सह।
साध्वी वै सत्त्वयुक्ता च मा मां शप्तुं त्वमर्हसि॥१०५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्री! मैं तुम्हारे बिना तुम्हारे स्वामी को मुक्त नहीं करूंगा, तथापि मुझमें यह क्षमता नहीं है कि तुमको भी स्वामी के साथ मुक्त कर सकूं। हे माता! भोग समाप्त किये बिना मुक्ति नहीं मिलती, यह तो सर्वसम्मत मत है। भोगी व्यक्ति का भोग जब समाप्त हो जाता है, तभी निर्वाण मिलता है। हे सती! अतः तुम कुछ काल तक स्वामी के साथ स्वर्ग भोग करो। तत्पश्चात् तुम लोगों का भारत में जन्म होगा। हे सती! जब राधिका स्वयं तुम्हारी पुत्री के रूप में जन्म लेंगी, तब तुम दोनों जीवन्मुक्त होकर उनके साथ गोलोक जाओगे। हे नृपप्रवर! तुम अपनी पत्नी के साथ कुछ समय भोग्य विषयों का उपभोग करो। साधुजन सत्वगुण सम्पन्न होते हैं। तुम्हारी सत्वगुणसम्पन्ना पत्नी मुझे शाप देने योग्य नहीं है॥१०१-१०५॥

जीवन्मुक्ताः समाः सन्तः कृष्णपादाब्जमानसाः।
वाञ्छन्ति हरिदास्यं च दुर्लभं च निर्वृतिम्॥१०६॥
इत्युक्त्वा तौ वरौ दत्त्वा संतस्थौ पुरतस्तयोः।
ययतुस्तौ तं प्रणम्य जगाम स्वालयं विधिः॥१०७॥

"कृष्ण के चरणकमल में सतत् मन लगाये रहने वाले सन्तजन प्रभु का दुर्लभ दासत्व चाहते हैं। उनको निर्वाण की कामना नहीं रहती।" यह कहकर ब्रह्मा ने उन पति-पत्नी को वरदान दे दिया तथा ब्रह्मा राजा एवं कलावती के सामने स्थित हो गये। ब्रह्मा को प्रणाम करके राजा-रानी स्वर्ग चले गये। तदनन्तर ब्रह्मा भी स्वधाम चले गये॥१०६-१०७॥

आजग्मतुस्तौ कालेन भुक्त्वा भोगं च भारतम्।
परं पुण्यप्रदं दिव्यं ब्रह्मादीनां च वाञ्छितम्॥१०८॥

स्वर्ग में कुछ काल सुख भोग करके कालान्तर में पति-पत्नी भारत में जन्में। वह परम पुण्यप्रद तथा दिव्य एवं ब्रह्मा आदि का वांछित स्थल है॥१०८॥

सुचन्द्रो वृषभानुश्च ललाभ जन्म गोकुले। पद्मावत्याश्च जठरे सुरभानस्य रेतसा॥१०९॥
जातिस्मरो हरेरंशः शुक्लपक्षे यथा शशी। ववर्धानुदिनं तत्र व्रजगेहे व्रजाधिपः॥११०॥

सर्वज्ञश्च महायोगी हरिपादाब्जमानसः। नन्दबन्धुर्वदान्यश्च रूपवान्गुणवान्सुधीः॥१११॥

सुचन्द्र राजा ने वृषभानु नाम से गोकुल में जन्म ग्रहण किया। उनके पिता थे सुरभानु तथा उनका जन्म पद्मावती के गर्भ से हुआ था। वे श्रीहरि के अंश थे तथा उनको पूर्वजन्म की स्मृति थी। ब्रज में वे ब्रजपति उसी प्रकार से रोज बढ़ते जा रहे थे जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ते हैं। वृषभानु सर्वज्ञ, महायोगी तथा हरि के चरणकमल में निरत रहने वाले थे। वे नन्द के बन्धु उदार, रूपवान्, गुणी तथा सुधी थे।।१०९-१११।।

कलावती कान्यकुब्जे बभूवायोनिसंभवा।
जातिस्मरा महासाध्वी सुन्दरी कमलाकला॥११२॥
कान्यकुब्जे नृपश्रेष्ठो भनन्दन उरुक्रमः।
स तां संप्राप्य यागान्ते यज्ञकुण्डसमुत्थितम्॥११३॥
नग्नां हसन्तीं रूपाढ्यां स्तनान्धामिव बालिकाम्।
तेजसा प्रज्वलन्तीं च प्रतप्तकनकप्रभाम्॥११४॥

कलावती का जन्म कान्य-कुब्ज देश में अयोनित रूप से हुआ था। वह पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त महासाध्वी, सुन्दरी तथा भगवती लक्ष्मी की कला से उत्पन्न थी। उस समय कान्य-कुब्ज का राजा था महाबली भनन्दन। उसके यज्ञान्त में कलावती यज्ञकुण्ड से नग्न तथा स्तनपायी स्थिति में प्रकट हो गई थी। वह उस समय हंस रही थी। वह तपाये स्वर्ण की प्रभा वाले वर्ण की थी तथा इस कान्ति से प्रदीप्त-सी थी।।११२-११४।।

कृत्वा वक्षसि राजेन्द्रः स्वकान्तायै ददौ मुदा।
मालावती स्तनं दत्त्वा तां पुपोष प्रहर्षिता॥११५॥
तदन्नप्राशनदिने तथां मध्ये शुभे क्षणे। नामरक्षणकाले च वाग्बभूवाशरीरिणी॥११६॥
कलावतीति कन्याया नाम रक्ष नृपेति च॥११७॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा तच्चकार महीपतिः।
विप्रेभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च बन्दिभ्यश्च धनं ददौ॥११८॥
सर्वेभ्यो भोजयामास चकार सुमहोत्सवम्।
कालेन सा रूपवती यौवनस्था बभूव ह॥११९॥

राजा भनन्दन ने उसे वक्ष से लगा लिया तथा मुदित मन से वह बालिका अपनी पत्नी को प्रदान कर दिया। रानी मालावती ने अत्यन्त हर्षित होकर उसे स्तनपान कराया तथा उसका पालन करने लगीं। जब शुभ-बेला में राजा तथा समागत सज्जनों की उपस्थिति में बालिका का अन्नप्राशन एवं नामकरण संस्कार हो रहा था तभी अशरीरी वाणी वहां सुनाई पड़ी कि "हे राजन्! इस कन्या का नाम कलावती रखो।" यह वचन सुनकर राजा ने यही नाम उस कन्या का रख दिया। इस अवसर पर राजा ने बन्दीगण,

भिक्षुकों तथा विप्रगण को प्रचुर धन प्रदान किया। राजा ने सबको भोजन कराकर वहां महोत्सव भी किया। कुछ काल व्यतीत होने पर वह कन्या रूपवती युवती हो गई।।११५-११९।।

अतीव सुन्दरी श्यामा मुनिमानमोहिनी। चारुचम्पकवर्णाभा शरच्चन्द्रनिभानना।।१२०।।
ईषद्धास्यप्रन्नास्या प्रफुल्लपद्मलोचना। नितम्बश्रोणिभारार्ता स्तनभारनता सती।।१२१।।

वह अत्यन्त सुन्दरी श्यामवर्ण तथा मुनिगण का मन मोहित करने वाली, उत्तम चम्पक वर्णा थी। उसका आनन शरत्कालीन चन्द्रमा के समान था। उसके नेत्र खिले कमल के समान थे। उसका आनन मन्दहास्य के साथ शोभायमान था। वह नितम्बों तथा जंघा के भार से थकी तथा स्तनभार से कुछ झुकी-सी लगती थी।।१२०-१२१।।

गच्छन्ती राजमार्गेण गजेन्द्रमन्दगामिनी।
ददर्श नन्दः पथि तां गच्छन्तीं च मुदाऽन्वितः।।१२२।।
जितेन्द्रियश्च ज्ञानी च मूर्च्छामाप तथाऽपि च।
त्रस्तो लोकान्पथि गतांस्तूर्णं पप्रच्छ सादरम्।।१२३।।
गच्छन्ती कस्य कन्येयमिति होवाच तं जनः।
भनन्दनस्य नृपतेः कन्या नाम्ना कलावती।।१२४।।

वह गजेन्द्र के समान मन्दगामिनी थी, जिसे नंदराज ने राजमार्ग पर देख लिया था। उसे देखकर नन्दराज मुदित हो उठे। यद्यपि वे ज्ञानी तथा जितेन्द्रिय थे, तथापि इस रूपवती को देखकर वे मूर्च्छित हो उठे। तब उन्होंने सङ्कोच पूर्वक पथिकगण से सादर यह प्रश्न किया कि–"यह जो कन्या जा रही है, किसकी पुत्री है?" तब लोगों ने कहा–"यह राजा भनन्दन की पुत्री कलावती है।"।।१२२-१२४।।

कमलाकलया कन्या संभूता नृपमन्दिरे।
कौतुकेन च गच्छन्ती क्रीडार्थं सखिमन्दिरम्।।१२५।।
व्रजं व्रज व्रजश्रेष्ठेत्युक्त्वा लोको जगाम ह। प्रहृष्टमानसो नन्दो जगाम राजमन्दिरम्।।१२६।।
अवरुह्य रथात्तूर्णं विवेश नृपतेः सभाम्।
उत्थाय राजा संभाष्य स्वर्णसिंहासनं ददौ।।१२७।।
इष्टालापं बहुतरं चकार च परस्परम्। विनयावनतो नन्दः संबन्धोवितं चकार ह।।१२८।।

"यह लक्ष्मी की कला से नृपमंदिर में जन्मी है। यह अपनी सखियों के साथ क्रीड़ार्थ उत्सुकता पूर्वक उनके यहां जा रही है। हे ब्रजेश ! आप अब ब्रज चले जायें।" यह सुनकर नन्द प्रसन्नता के साथ राजा के भवन में गये तथा रथ से उतर कर वहां की राजसभा में उन्होंने प्रवेश किया। राजा भनन्दन नन्दराज को देखते ही उठा तथा नन्दराज से कुशलवार्त्ता करके उनको स्वर्णसिंहासन पर बैठाया। बहुत देर तक अनेक वांछित वार्त्ता उन दोनों ने किया। तत्पश्चात् विनयावनत नन्द ने भनन्दन से कहा–।।१२५-१२८।।

नन्द उवाच

श्रृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि विशेषवचनं शुभम्।
संबन्धं कुरु कन्याया विशिष्टेन च सांप्रतम्॥१२९॥

सुरभानुसुतः श्रीमान्वृषभानुर्व्रजाधिपः। नारायणांशो गुणवान्सुन्दरश्च सुपण्डितः॥१३०॥
स्थिरयौवनयुक्तश्च योगी जातिस्मरो युवा। कन्या तेऽयोनिसंभूता यज्ञकुण्डसमुद्भवा॥१३१॥

त्रैलोक्यमोहिनी शान्ता कमलांशा कलावती।
स च योग्यस्त्वद्दुहितुस्तद्योग्या ते च कन्यका॥१३२॥

विदग्धाया विदग्धेन संबन्धो गुणवान्नृप। इत्येवमुक्त्वा नन्दस्तु विरराम च संसदि।
उवाच तं नृपश्रेष्ठो विनयावनतो मुने॥१३३॥

नन्दराज कहते हैं–"हे राजेन्द्र! मैं एक शुभ तथा विशेष बात आपसे कहने जा रहा हूं। उसे सुनिये। आप अपनी कन्या का सम्बन्ध एक विशिष्ट पुरुष से करें। व्रजाधिप सुरभानु के पुत्र श्रीमान् वृषभानु नारायण के अंश से उत्पन्न, गुणी, सुन्दर तथा उत्तम पण्डित हैं। वे स्थिर यौवन से युक्त, योगी तथा पूर्वजन्म की स्मृति वाले हैं। आपकी कन्या अयोनिसंभवा तथा यज्ञकुण्ड से प्रादुर्भूत है। कलावती त्रैलोक्य को मोहित करने वाली शान्त लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न है। वह कन्या वृषभानु के योग्य है तथा वृषभानु आपकी कन्या के योग्य है। हे नृप! बुद्धिमान् का सम्बन्ध गुणी के साथ उचित होता है।" यह सभा में कहकर नन्दराज मौन हो गये। हे मुनि! तब विनयावनत होकर राजा भनन्दन ने कहा–॥१२९-१३३॥

भनन्दन उवाच

संबन्धो हि विधिवशो न मे साध्यो व्रजाधिप।
प्रजापितिर्योगकर्ता जन्मदाताऽहमेव च॥१३४॥

राजा भनन्दन कहते हैं–हे ब्रजराज! यह वैवाहिक सम्बन्ध विधाता के अधीन है। इस विषय में मेरी कोई क्षमता नहीं है। प्रजापति ही यह मिलन कराने वाले हैं। मैं तो मात्र जन्मदाता हूं॥१३४॥

का कस्य पत्नी कन्या वा वरः को वा ससाधनः।
कर्मानुरूपफलदः सर्वेषां कारणं विधिः॥१३५॥
भवितव्यं कृतं कर्म तदमोघं श्रुतौ श्रुतम्।
अन्यथा निष्फलं सर्वमनीशस्योद्यमो यथा॥१३६॥

इस संसार में कौन किसकी पत्नी तथा कौन किसकी पुत्री है? कौन व्यक्ति किस नारी का आत्मसाधक है? साधनयुक्त पति है। कर्मानुरूप फल सबको देने वाले विधाता ही इस सबके कारण हैं। कृत कर्म का फल अवश्य मिलता है। यह कथन कदापि निष्फल नहीं है। यही बात श्रुति द्वारा भी सुना

है। यदि ऐसा नहीं होता, तब आक्षम व्यक्ति के उद्यम के समान सभी निष्फल हो जाता है। (अर्थात् अनाधिकारी का उद्यम जैसे विफल होता है, तदनुरूप सभी कर्म निष्फल हो जाता है)।।१३५-१३६।।

वृषभानुप्रिया धात्रा लिखिता चेत्सुता मम।
पुरा भूतैव को वाऽहं केनान्येन निवार्यते।।१३७।।

यदि कलावती के अदृष्ट में ब्रह्मा ने वृषभानु की प्रिया होना लिखा है, तब तो वह कार्य पहले ही सम्पन्न हो गया जानें। ऐसी स्थिति में उसमें हस्तक्षेप करने वाला मैं कौन? तथा ब्रह्मा की लिपि को कौन अन्यथा कर सकेगा।।१३७।।

इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विनयानतकंधरः। मिष्टान्नं भोजयामास सादरेण च नारद।।१३८।।
नृपानुज्ञामुपादाय व्रजराजो व्रजं गतः। गत्वा स कथयामास सुरभानस्य संसदि।।१३९।।
सुरभानुश्च यत्नेन नन्दनेन च सादरम्। संबन्धं योजयामास गर्गद्वारा च सत्वरम्।।१४०।।
विवाहकाले राजेन्द्रो विपुलं यौतुकं ददौ। गजरत्नमश्वरत्नं रत्नानि मणिभूषणम्।।१४१।।

वृषभानुर्मुदा युक्तः प्राप्य तां च कलावतीम्।
रेमे सुनिर्जने रम्ये बुबुधे न दिवानिशम्।।१४२।।
चक्षुर्निमेषविरहाद्व्याकुलं स्वामिना विना।
व्याकुलो वृषभानुश्च क्षणेन च तया विना।।१४३।।

हे नारद! यह कहकर राजा ने विनयावनत होकर नन्दराज को सादर मिष्ठान्न भोजन कराया। इसके पश्चात् व्रजप्रवर नन्द राजा से आज्ञा लेकर ब्रज चले गये। वे वहां सुरभानु की सभा में आये तथा उनसे कान्यकुब्ज में घटित समस्त वृत्तान्त सुनाया। यह सब सुनकर सुरभानु ने नन्दराज एवं गर्गमुनि के प्रयास से शीघ्र इस सम्बन्ध को निश्चित किया। विवाहकाल में भनन्दन राजा ने दहेज में गजरत्न, अश्वरत्न तथा अनेक प्रकार का आभूषण प्रदान किया। वृषभानु भी मनमोहिनी कलावती को प्राप्त करके आनन्द पूर्वक निर्जन स्थान में कलावती के साथ कामक्रीड़ा में आसक्त हो गये। उनको रात-दिन का भी भान नहीं रह गया था। कलावती एक निमेष मात्र भी स्वामी विरह हो जाने पर पति विरह से व्याकुल हो उठती थी। वृषभानु भी कलावती के एकक्षण वियोग को भी सहन नहीं कर पाते थे। वे व्याकुल हो जाते।।१३८-१४३।।

जातिस्मरा च सा कन्या मायामानुषरूपिणी।
जातिस्मरो हरेरंशो वृषभानो मुदाऽन्वितः।।१४४।।
बवर्ध च तयोः प्रेम नित्यं नित्यं नवं नवम्।
सदा सकामा सा प्रौढा स च कामसमो युवा।।१४५।।
तयोः कन्या च कालेन राधिका सा बभूव ह।
दैवात्सुदामशापेन श्रीकृष्णस्याऽऽज्ञया पुरा।।१४६।।

अयोनिसंभवा सा च कृष्णप्राणाधिका सती।
यस्या दर्शनमात्रेण तौं विमुक्तौ बभूवतुः॥१४७॥

माया से मनुष्य देहधारिणी कलावती पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त थी। मुनि! वृषभानु भी श्री हरि के अंश थे पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त थे। इन दोनों का प्रेम नित्य नवीनता पूर्वक बढ़ता जा रहा था। वह कन्या भी सदा कामभाव युक्त रहती। युवा वृषभानु भी कामदेव के समान थे। तदनन्तर काल व्यतीत होने पर उनकी कन्या राधा का जन्म हुआ। गोलोक में कृष्ण की आज्ञा तथा सुदाम गोपपार्षद के शाप से पृथिवी पर अयोनिसंभवा होकर उन कृष्ण की प्राणाधिका सती का जन्म हुआ। उनके दर्शन मात्र से वृषभानु तथा कलावती विमुक्त हो गये॥१४४-१४७॥

इतिहासश्च कथितः प्रकृतं शृणु सांप्रतम्।
पापेन्धनानां दाहे च ज्वलदग्निशिखोपमः॥१४८॥
वृषभानाश्रमं गत्वा शिल्पिनां प्रवरो मुदा।
स्थानान्तरं विश्वकर्मा जगाम स्वगणैः सह॥१४९॥
क्रोशमात्रं स्थलं चारु मनसाऽऽलोच्य तत्त्ववित्।
आश्रमं कर्तुमारेभे नन्दस्य सुमहात्मनः॥१५०॥

यह सब इतिहास था, जो मैंने तुमसे कहा। अब जो प्रसङ्गतः वृत्तान्त है, उसे श्रवण करो। यह सब वृत्तान्त पापरूपी ईन्धन के लिये प्रज्वलन्त अग्निशिखावत् है। शिल्पीप्रवर विश्वकर्मा वृषभानु के घर पर आकर अपने गणों के साथ अन्य स्थान पर गये। उन तत्वज्ञ ने अपने मन में विचार करके एक क्रोश का स्थान चयन किया तथा वहां पर उत्तम महात्मा नन्द का निवास निर्माण करने लगे॥१४८-१५०॥

कृत्वाऽनुमानं बुद्ध्या च सर्वतोऽपि विलक्षणम्।
परिखाभिर्गभीराभिश्चतुर्भिः संयुतं वरम्॥१५१॥
दुर्लङ्घ्याभिर्वैरिभिश्च खनिताभिश्च प्रस्तरैः।
पुष्पोद्यानैः पुष्पिताभिः पारावारेषु पुष्पितैः॥१५२॥
चारुचम्पकवृक्षैश्च पुष्पितैः सुमनोहरैः। परितो वासिताभिश्च सुगन्धिवायुना मुने॥१५३॥
आम्रैर्गुडालैः पनसैः खर्जूरैर्नारिकेलकैः। दाडिमैः श्रीफलैर्भृङ्गैर्जम्बीरैर्नागरङ्गकैः॥१५४॥
तुङ्गैराम्रातकैर्जम्बुसमूहैश्च फलान्वितैः।
कदलीनां केतकीनां कदम्बानां कदम्बकैः॥१५५॥
सर्वतः शोभिताभिश्च फलैस्तैः पुष्पितैरहो।
क्रीडार्हाभिर्निगूढाभिर्वाञ्छिताभिश्च सर्वदा॥१५६॥

उन्होंने अपनी बुद्धि से अनुमान लगाकर सबसे विलक्षण निर्माण वहां किया। उस नन्दभवन के चतुर्दिक् विश्वकर्मा ने अत्यन्त गहरी जलपूर्ण खाईयों का निर्माण किया। यह पांषाणयुक्त थी तथा ऐसी थी, जिसको शत्रु लांघ ही न सकें। उन खाईयों के तट पर पुष्पोद्यान थे। वह स्थान पुष्पित लग रहा था। वहां मनोहर पुष्प वाले उत्तम चम्पा के वृक्ष थे। उन पुष्पों का स्पर्श करके बहता वायु उस स्थान को सुगन्धियुक्त कर रहा था। हे मुनिवर! खाईयों के तट पर आम्र, सुपारी, कटहल, खजूर, नारियल, अनार, बेल, इलायची, जम्बीरी नीबू, नारंगी, ऊंचे आमड़ा के वृक्ष थे। वहां जामुन, कदलीफल, केवड़ा तथा कदम्बों के फलित, पुष्पित वृक्ष शोभावर्द्धन कर रहे थे। वे खाईयां वृक्षों से ढकी होने के कारण जलक्रीड़ार्थ सदा उपयुक्त थीं।।१५१-१५६।।

परिखानां रहःस्थाने चकार मार्गमुत्तमम्। दुर्गमं परवर्गाणां स्वानां च सुगमं सदा।।१५७।।

संकेतेन मणिस्तम्भैश्छादितैः स्वल्पपाथसा।
स्तम्भसीमाकृतमहो न संकीर्णं च विस्तृतम्।।१५८।।

परिखोपरिभागे च प्राकारं सुमनोहरम्। धनुःशतप्रमाणं च चकारातिसमुच्छ्रितम्।।१५९।।

प्रस्तरस्य प्रमाणं च पञ्चविंशतिहस्तकम्।
सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितं चातिसुन्दरम्।।१६०।।
बाह्ये द्वाभ्यां च संयुक्तमन्तरे सप्तभिस्तथा।
द्वार्भिश्च संनिरुद्धाभिर्मणिसारकपाटकैः।।१६१।।

हरिन्मणीनां कलशैश्चित्रयुक्तैर्विराजितम्। मणिसारविकारैश्च कपाटैश्च सुशोभितम्।।१६२।।

उस परिखा (खाई) के एक गुप्त स्थान पर बाहर से भवन में जाने के लिये एक गुप्त उत्तम मार्ग बना था। उसमें यह कौशल विश्वकर्मा ने किया था कि वह शत्रुवर्ग के लिये दुर्गम था, परन्तु आत्मीय परिचितों के लिये सुगम था। सांकेतिक मणियों के स्तम्भों से ढ़के स्वल्प जल से शोभायमान एवं स्तम्भों के निर्माण से उसकी सीमा बनी थी, जो न तो संकीर्ण मार्ग था, न अधिक फैला हुआ। इस खाई के ऊपरी भाग में सौ धनुष माप वाली एक उच्च दीवार बनाई गई । इस दीवार में लगे एक-एक पाषाण २५-२५ हाथ लम्बे थे। यह दीवार सिन्दूराकृति मणि द्वारा अत्यन्त सुन्दररूप से बनी थी। इस दीवार के बाहर दो द्वारों पर उत्तम मणियों से निर्मित कपाट लगे थे। अन्दर के मणियों के सारभाग से निर्मित द्वारों पर सात कपाट लगाये गये थे।

इस नन्दभवन में हरितवर्ण के तथा मणियों से रचित चित्र से चित्रित कलश स्थापित थे। प्रत्येक द्वार मणियों के सार से बने कपाटों से युक्त था।।१५७-१६२।।

स्वर्णसारविनिर्माणकलशोज्ज्वलशेखरम्। नन्दालयं विनिर्माय बभ्राम नगरं पुनः।।१६३।।
राजमार्गांश्च विविधान्स च चारूंश्चकार ह। रक्तभानुविकारैश्च वेदिभिश्च सुपत्तनैः।।१६४।।

पारावारे च परितो निबद्धांश्च मनोहरान्।
वाणिज्यार्हैश्च वणिजां परितो मणिमण्डपैः।।१६५।।

सर्वतो दक्षिणे वामे ज्वलद्भिश्च विराजितान्।
ततो वृन्दावनं गत्वा निर्ममे रासमण्डलम्॥१६६॥
सुन्दरं मण्डलाकारं मणिप्राकारसंयुतम्। परितो योजनायामं मणिवेदिभिरन्वितम्॥१६७॥
मणिसारविकारैश्च मण्डपैर्नवकोटिभिः। शृङ्गारार्हैश्च चित्राढ्यै रतितल्पसमन्वितैः॥१६८॥

इस भवन के शिखर पर स्वर्ण के सार (उत्तम अंश) से निर्मित कलश लगे थे, जिससे शिखर दीप्त हो रहा था। यह भवन निर्मित करने के अनन्तर विश्वकर्मा ने नगर को घूम-घूम कर देखा तथा नाना उत्तम राजमार्गों का निर्माण किया। रक्तभानु मणि की वेदियों तथा उत्तम पत्तनों से राजपथ समूह अत्यन्त मनोहर शोभापूर्ण हो गये। इस राजमार्ग के दाहिनी तथा बायीं ओर वणिकों के व्यापार के लिये उपयोगी उज्वल मणिमण्डपों का निर्माण विश्वकर्मा ने किया। इन मणिमण्डपों का प्रकाश राजमार्ग पर फैलता था। यह नगरी के चतुर्दिक् बना था। तदनन्तर विश्वकर्मा ने वृन्दावन जाकर सुन्दर वत्तुलाकार मणियों की दीवार से युक्त रासमण्डल का निर्माण किया था। उसके चतुर्दिक् विश्वकर्मा ने एक-एक योजन दीर्घ मणिवेदिका का निर्माण किया। उन्होंने इस रासमण्डल में मणियों के सार से शृङ्गार सुखोपभोगयोग्य मनोहर चित्रों से चित्रित, रतिशय्या समन्वित ९ करोड़ मण्डप बनाये। ये उस रासमण्डल की शोभा का वर्द्धन कर रहे थे।।१६३-१६८।।

नानाजातिप्रसूनानां वायुनां सुरभीकृतैः। रत्नप्रदीपसंयुक्तैः सुवर्णकलशोज्ज्वलैः॥१६९॥

वे मण्डप ऐसे बने थे, जिसके कारण अनेक जाति के पुष्पों की सुगन्ध लेकर बहते वायुदेव उन मण्डलों को भी सुगन्धपूर्ण कर रहे थे। स्वर्ण कलशों के कारण मण्डलों की उज्वलता वर्द्धित हो रही थी। वहां सभी मण्डलों में रत्नदीप जलते थे।।१६९।।

पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च सरोभिश्च सुशोभितम्।
रासस्थलं विनिर्माय जगामान्यत्स्थलं पुरः॥१७०॥
दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं परितुष्टो बभूव ह। वृन्दावनाभ्यन्तरे च स्थाने स्थाने सुनिर्जने॥१७१॥
कृत्वा परिमितं बुद्ध्या मानसाऽऽलोच्य यत्नतः।
विलक्षणानि रम्याणि तत्र त्रिंशद्वनानि च॥१७२॥

वह रासमण्डल पुष्पोद्यानों तथा सरोवरों के कारण शोभायमान था। तदनन्तर विश्वकर्मा अन्यत्र जाकर निरीक्षण करने लगे। उन्होंने वृन्दावन के अन्तः तथा बाह्य क्षेत्र के एकान्त स्थलों को देखकर मन तथा बुद्धि से विचार किया तथा निर्णय लेकर तीस रम्य एवं विलक्षण वन स्थापित किया।।१७०-१७२।।

राधामाधवयोरेव क्रीडार्थं च विनिर्ममे। ततो मधुवनाभ्याशे निर्जनेऽतिमनोहरे॥१७३॥
वटमूलसमीपे च सरसः पश्चिमे तटे। चम्पकोद्यानपूर्वायां केतकीवनमध्यतः॥१७४॥
पुनस्तयोश्च क्रीडार्थं चकार रत्नमण्डपम्। चतुर्भिर्वेदिकाभिश्च परीतमतिसुन्दरम्॥१७५॥

सद्रत्नसाररचितै राजितं तूलिकाशतैः। अमूल्यरत्नरचितैर्नानाचित्रेण चित्रितैः॥१७६॥
कपाटैर्नवभिर्युक्तं नवद्वारैर्मनोहरैः। रत्नेन्द्रचित्रकलशैः कृत्रिमैश्च त्रिकोटिभिः॥१७७॥

उन्होंने राधामाधव की क्रीड़ा के लिये इन वनों का निर्माण किया था। इसके पश्चात् विश्वकर्मा ने मधुवन के निकट चम्पकोद्यान के पूर्वभाग में, सरोवर के पश्चिम तट पर, केतकी वन में अतीव मनोहर निर्जन वटमूल के पास राधा-कृष्ण की क्रीड़ा के लिये अन्य एक मण्डप का निर्माण किया। उसके चतुर्दिक् स्वर्ण की तुलना में सौगुने महंगी दुर्लभ मणियों से सुन्दर ४ वेदिका का उन्होंने निर्माण किया। यह मण्डप रत्न के सारभाग से बने स्तम्भ से युक्त, अमूल्यरत्नों से निर्मित तथा नाना चित्रों से चित्रित था। विश्वकर्मा ने इस मण्डप के ९ द्वारों का निर्माण करके उनको ९ दरवाजों से दृढ़ता पूर्वक निबद्ध कर दिया। उसकी दीवारों के उभय पार्श्व में तथा ऊर्ध्व में भी श्रेष्ठ रत्नमय कृत्रिम चित्रों से चित्रित ३ कोटि कलश इस मण्डप की शोभा बढ़ा रहे थे।।१७३-१७७।।

परितः परितो भित्त्यामूर्ध्वं च परिशोभितम्। महामणीन्द्रविकृतैरारोहैर्नवभिर्वृतम्॥१७८॥
सद्रत्नसाररचितकलशोज्ज्वलशेखरम्। पताकातोरणैर्युक्तं शोभितं श्वेतचामरैः॥१७९॥
सर्वतः पुरतौ दीप्तममूल्यरत्नदर्पणैः। धनुःप्रमाणशतकमूर्ध्वमग्निशिखोपमम्॥१८०॥

वह मण्डप उत्तम मणि निर्मित ९ सीढ़ियों से सज्जित था। श्रेष्ठ रत्नों के सारभाग से निर्मित कलश उस मण्डप की शिखर को उज्वल कर रहे थे। वह शिखर पताका, तोरण तथा श्वेत चामर के युक्त होने से शोभान्वित हो रहा था। उसके चतुर्दिक् अमूल्य रत्नों के दर्पण लगे थे। वह मण्डप इस कारण प्रत्येक देखने वालों को अपने समक्ष एवं सामने की ओर से दीप्तियुक्त लगता था। वह ऊर्ध्व में १०० धनुष माप तथा अग्निशिखा जैसा प्रज्वलन्त लग रहा था।।१७८-१८०।।

शतहस्तप्रमाणं च प्रस्तारं वतुलाकृतिम्। शोभितं रत्नतल्पैश्च तदभ्यन्तरमुत्ततम्॥१८१॥
वह्निशुद्धांशुकैर्वस्त्रैर्मालाजालविचित्रितैः। पारिजातप्रसूनानां माल्योपधानसंयुतैः॥१८२॥
चन्दगागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैः सुरभीकृतम्। नवशृङ्गारयोग्यैश्च कामवर्धनकारिभिः॥१८३॥
मालतीचम्पकानां चपुष्पराजिभिरन्वितम्।
सकर्पूरैश्च ताम्बूलैः सद्रत्नपात्रसंस्थितैः॥१८४॥

वह मण्डप १०० हाथ विस्तृत तथा वर्त्तुलाकृति (गोल) था। उसके अन्दर का उत्तम भाग उत्तम रत्नों से निर्मित पलंगों से शोभित था। इन पलंग पर अग्नि जैसे शुद्ध वस्त्र बिछाये गये थे। माला के जाल (बन्दनवार) सजे वे पलंग विचित्र शोभा युक्त थे। वहां पारिजात पुष्प की मालाओं से निर्मित तकिये रखे थे। वह भवन चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम से सुवासित था। वे पलंग नव शृङ्गार योग्य तथा कामभाव की वृद्धि करने वाले थे। उस भवन में मालती तथा चम्पक पुष्पों की मालायें रखी थीं। नायक-नायिका के पारस्परिक प्रेम का वर्द्धन कराने वाला कर्पूरादि युक्त ताम्बूल वहां उत्तम रत्न के पात्रों में रखा था।।१८१-१८४।।

वज्रसारेण खचितैर्मुक्ताजालविलम्बिभिः।
रत्नसारघटाकीर्णं [1]रत्नपीठैः सुसंयुतम्॥१८५॥
रत्नसिंहासनैर्युक्तं रत्नचित्रेण चित्रितैः। क्षरितैश्चन्द्रकान्तैश्च सुसिक्तं जलबिन्दुभिः॥१८६॥
शीतवासिततोयेन संयुक्तं भोगवस्तुभिः। कृत्वा रतिगृहं रम्यं नगरं च पुनर्ययौ॥१८७॥

वहां कोई-कोई स्थान ऐसा था, जो वज्रसार निर्मित था। वहां मुक्ताओं की झालर विलम्बित थी। वहां रत्नों से खचित अनेक पीठ (चौकियां) भी थी। वे हीरक जड़ित थीं। वह स्थल रत्नसार से बने घटों से पूर्ण था। वह स्थल (एवं भवन) रत्न के चित्रों से चित्रित रत्नमय सिंहासन युक्त और चन्द्रकान्तमणियों से बूंद-बूंद झड़ रहे जलविन्दु से सुसिक्त था। वहां शीतल सुवासित जल तथा भोग की नाना वस्तु रखी थीं। इस प्रकार से विश्वकर्मा वह रम्य रतिगृह बनाकर पुनः नगर का अवलोकन करने निकले॥१८५-१८७॥

यानि येषां मन्दिराणि तन्नामानि लिलेख सः।
मुदा युक्तो विश्वकर्मा शिष्यैर्यक्षगणैः सह॥१८८॥

अब विश्वकर्मा ने प्रत्येक भवन पर उन-उन लोगों का नाम अंकित किया, जिनके लिये वे भवन निर्मित किये गये थे। यह कार्य उनके साथ मुदित मन वाले यक्ष तथा विश्वकर्मा के शिष्यगण कर रहे थे॥१८८॥

निद्रेशं निद्रितं नत्वा प्रययौ स्वालयं मुने। सर्वत्रैवं सुकृतिनां समस्तं भगवत्कृपा॥१८९॥
नेहाऽऽश्चर्यं च नगरं बभूवेशेच्छया भुवि। इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम्।
सुखदं पातकहरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१९०॥

हे मुनिवर! इतना कार्य सम्पन्न करके विश्वकर्मा ने निद्रेश कृष्ण को उनकी निद्रित अवस्था में प्रणाम किया तथा अपने गृह वापस चले गये। जो सुकृति हैं उनको भगवत् कृपा से सर्वत्र सुखलाभ होता है। यहां कोई आश्चर्य न करे; क्योंकि प्रभु की इच्छा से ही ऐसे नगर का निर्माण किया गया। मैंने इस प्रकार हरि का मंगलमय चरित सुना दिया। यह सुखप्रद तथा पापहर है। अब क्या सुनने की कामना है?॥१८९-१९०॥

नारद उवाच

कथं वृन्दावनं नाम काननस्यास्य भारते।
व्युत्पत्तिरस्य संज्ञा वा तत्त्वं वद सुतत्त्ववित्॥१९१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे सुतत्वज्ञ! इस वन का नाम वृन्दावन क्यों पड़ा? इसकी व्युत्पत्ति तथा संज्ञा का वर्णन करें॥१९१॥

१. क. रत्नाङ्घ्रिपीठ सं०।

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणो मुदा।
प्रहस्योवाच निखिलं तत्त्वमेव पुरातनम्॥१९२॥

सूत जी कहते हैं–नारद का कथन सुनकर नारायण ऋषि ने मुदित होकर हंसते हुये समस्त पुरातन तत्व का वर्णन किया॥१९२॥

नारायण उवाच

पुरा केदारनृपतिः सप्तद्वीपपतिः स्वयम्। आसीत्सत्ययुगे ब्रह्मन्सत्यधर्मरतः सदा॥१९३॥
स रेमे सह नारीभिः पुत्रपौत्रगणैः सह।
पुत्रानिव प्रजाः सर्वाः पालयामास धार्मिकः॥१९४॥
कृत्वा क्रतुशतं राजा लेभे नेन्द्रत्वमीप्सितम्।
कृत्वा नानाविधं पुण्यं फलकाङ्क्षी न च स्वयम्॥१९५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे ब्रह्मन्! पूर्व सत्ययुग में सप्तद्वीपाधिपति सत्य एवं धर्मपरायण केदार नामक राजा था। वह पुत्र-स्त्री प्रभृति के साथ आनन्दित होकर काल व्यतीत कर रहा था। वह पुत्रवत् प्रजापालन करता था तथा महाधार्मिक था। राजा ने यद्यपि १०० अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया था, तथापि उसने सबका ईप्सित-वांछित इन्द्र पद ग्रहण नहीं किया। राजा ने अनेक प्रकार का पुण्यकर्म करके भी कभी फल की कामना नहीं किया था॥१९३-१९५॥

नित्यं नैमित्तिकं सर्वं श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम्।
केदारतुल्यो राजेन्द्रो न भूतो भविता पुनः॥१९६॥
पुत्रेषु राज्यं संन्यस्य प्रियां त्रैलोक्यमोहिनीम्।
जैगीषव्योपदेशेन जगाम तपसे वनम्॥१९७॥
हरेरैकान्तिको भक्तो ध्यायते संततं हरिम्।
शश्वत्सुदर्शनं चक्रमस्ति यत्संनिधौ मुने॥१९८॥

राजा केदार सभी नित्य-नैमित्तिक कृत्य केवल मात्र श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये करते थे। केदार के समान राजेन्द्र कोई अब तक नहीं जन्मा है और न भविष्य में जन्म लेगा। कुछ काल के पश्चात् राजा ने महर्षि जैगीषव्य के उपदेश को पाकर राज्यभार तथा त्रैलोक्यमोहिनी अपनी स्त्री का भार पुत्रों को दे दिया तथा स्वयं वन में चले गये। वन में हरि के एकान्तिक भक्त राजा केदार सतत् हरि का ध्यान करते तपःश्चरण करने लगे। हे मुनिवर! उस समय प्रभु श्रीहरि का सुदर्शन चक्र सतत् राजा के पास ही रहकर अविरत उनकी रक्षा करता रहता था॥१९६-१९८॥

चिरं तप्त्वा मुनिश्रेष्ठो गोलोकं च जगाम सः।
केदारं नाम तीर्थं च तन्नाम्ना च बभूव ह॥१९९॥

तत्राद्यापि मृतः प्राणी सद्यो मुक्तो भवेद्ध्रुवम्।
कमलांशा तस्य कन्या नाम्ना वृन्दा तपस्विनी॥२००॥

न वव्रे सा वरं कंचिद्योगशास्त्रविशारदा। दत्तो दुर्वाससा तस्यै हरेर्मन्त्रः सुदुर्लभः॥२०१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार दीर्घकाल तक तप करके राजा केदार गोलोक चले गये। उनके नाम के अनुसार वह क्षेत्र केदार नामक तीर्थ हो गया। वहां अभी भी जो मृत होता है, उसे निश्चित रूप से मोक्षलाभ हो जाता है। राजा केदार की कन्या वृन्दा लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न थी। वह अत्यन्त तपस्विनी तथा योगशास्त्र विशारदा थी। वृन्दा ने पतिरूपेण किसी का भी वरण नहीं किया था। उसे तपोधन महर्षि दुर्वासा ने अतिदुर्लभ हरिमन्त्र प्रदान किया था।।१९९-२०१।।

सा विरक्ता गृहं त्यक्त्वा जगाम तपसे वनम्। षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे सुनिर्जने॥२०२॥

आविर्बभूव श्रीकृष्णस्तत्पुरो भक्तवत्सलः।
प्रसन्नवदनः श्रीमान्वरं वृणिवत्युवाच सः॥२०३॥

वह विरक्त होकर वन में तप करने चली गई जहां उसने ६०००० वर्ष तक निर्जन में घोर तप किया। तदनन्तर उसके तप से प्रसन्न होकर भक्तवत्सल श्रीकृष्ण उसके समक्ष आविर्भूत हो गये। उस समय प्रसन्न आनन वाले भगवान् ने कहा—"हे वत्स! वर मांगो।।"।।२०२-२०३।।

दृष्ट्वा सा राधिकाकान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम्।
मूर्च्छां संप्राप सा सद्यः कामबाणप्रपीडिता॥२०४॥
सा च शीघ्रं वरं वव्रे पतिस्त्वं मे भवति च।
ओमित्युक्त्वा च रहसि चिरं रेमे तया सह॥२०५॥
सा जगाम च गोलोकं कृष्णेन सह कौतुकात्।
राधासमा सा सौभाग्याद्गोपीश्रेष्ठा बभूव ह॥२०६॥

उस समय वृन्दा ने जैसे ही सुन्दरतम शान्त राधिकाकान्त का दर्शन किया, वह उनको देखते ही कामबाण से पीड़ित हो गई। इसी के साथ वह मूर्च्छित-सी हो गई। इसके पश्चात् चेतना प्राप्त होते ही उसने श्रीकृष्ण से वर मांगा कि आप मेरे पति हो जायें! श्रीकृष्ण ने यह सुनकर कहा—'ऐसा ही हो।' तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने चिरकाल तक उस निर्जन प्रदेश में वृन्दा के साथ रमण-विहार भी किया। तदनन्तर वृन्दा आनन्दित होकर कौतुक के कारण श्रीकृष्ण के साथ गोलोक चली गई। गोलोक में वह महासौभाग्यवती तथा गोपियों में श्रेष्ठ गोपी कही गई।।२०४-२०६।।

वृन्दा यत्र तपस्तेपे तत्तु वृन्दावनं स्मृतम्।
वृन्दयाऽत्र कृता क्रीडा तेन वा मुनिपुङ्गव॥२०७॥
अथान्यं चेतिहासं च शृणुष्व वत्स पुण्यदम्।
येन वृन्दावनं नाम निबोध कथयामि ते॥२०८॥

कुशध्वजस्य कन्ये द्वे धर्मशास्त्रविशारदे। तुलसीवेदवत्यौ च विरक्ते भवकर्मणि॥२०९॥

तपस्तप्त्वा वेदवती प्राप नारायणं परम्।
सीता जनककन्या सा सर्वत्र परिकीर्तिता॥२१०॥
तुलसी च तपस्तप्त्वा वाञ्छां कृत्वा हरिं प्रति।
दैवाद्दुर्वाससः शापात्प्राप्य शङ्खासुरं पतिम्॥२११॥
पश्चात्सम्प्राप्य कमलाकान्तं कान्तं मनोहरम्।
सा चैव हरिशापेन वृक्षरूपा सुरेश्वरी॥२१२॥
तस्याः शापेन च हरिः शालग्रामो बभूव ह।
तथा तस्थौ च सततं शिलावक्षसि सुन्दरी॥२१३॥

हे मुनिपुंगव! वृन्दा ने जहां तपःश्चरण किया था तथा कृष्ण के साथ विहार किया था, वही स्थल वृन्दावन के नाम से विख्यात हो गया। हे वत्स! और भी एक पुण्यप्रद इतिहास सुनो। जिस कारण से इस स्थान का नाम वृन्दावन हो गया, वह अन्य वृत्तान्त कहता हूं। पूर्वकाल में राजा कुशध्वज की तुलसी एवं वेदवती नामक धर्मशास्त्र विशारदा दो कन्या संसार से विरक्त होकर तपस्या करने लगीं। वेदवती ने कालान्तर में नारायण को पतिरूप से प्राप्त कर लिया था। वे ही जनकनन्दिनी सीता कहलाईं। तुलसी ने भी हरि को पतिरूप से पाने की कामना करके तप किया था। परन्तु दैवात् दुर्वासा के शाप के कारण उसे पतिरूप में शंखासुर मिला! लेकिन कालक्रम से उसने पुनः मनोहर कमलाकान्त को पतिरूप से प्राप्त कर लिया। ये सुरेश्वरी तुलसी ही श्रीहरि के शाप से वृक्षरूपा हो गईं। इन तुलसी के शाप के कारण हरि भी शालग्राम शिलारूप हो गये। ये सुन्दरी तुलसी इन शिलारूप हरि के वक्षस्थल पर निरन्तर स्थित रहती हैं।।२०७-२१३।।

विस्तीर्णं कथितं सर्वं तुलसीचरितं च ते, तथापि च प्रसङ्गेन किञ्चिदुक्तं मुने पुनः॥२१४॥
तस्याश्च तपसः स्थानं तदिदं च तपोधन। तेन वृन्दावनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः॥२१५॥
अथवा ते प्रवक्ष्यामि परं हेत्वन्तरं शृणु। येन वृन्दावनं नाम पुण्यक्षेत्रस्य भारते॥२१६॥

राधाषोडशनाम्नां च वृन्दानाम श्रुतौ श्रुतम्।
तस्याः क्रीडावनं रम्यं तेन वृन्दावनं स्मृतम्॥२१७॥

हे मुनिप्रवर नारद! पूर्वकाल में मैंने तुमसे तुलसी चरित को विस्तृत रूप से कह दिया था, तथापि प्रसंगवशात् उसे पुनः संक्षेप में कहा है। इन तुलसी का ही नामान्तर है वृन्दा। इन्होंने वहीं तप किया था। तभी मनीषी लोग इस क्षेत्र को वृन्दावन कहते हैं और भी एक अन्य कारण कहता हूं। श्रुति में श्रीमती राधा के १६ नामों में से एक नाम वृन्दा भी है। उन राधा का रम्य क्रीड़ावन होने के कारण यह स्थल वृन्दावन के नाम से प्रसिद्ध हो गया!।।२१४-२१७।।

गोलोके प्रीतये तस्याः कृष्णेन निर्मितं पुरा।
क्रीडार्थं भुवि तन्नाम्ना वनं वृन्दावनं स्मृतम्॥२१८॥

पूर्व में श्रीकृष्ण ने राधा की प्रसन्नता हेतु गोलोक में वृन्दावन का निर्माण किया था। पुनः भूतल में भी राधा की क्रीड़ा हेतु यह वृन्दावन उन्होंने स्थापित किया। तभी यह वन वृन्दावन कहलाया।।२१८।।

नारद उवाच

कानि षोडश नामानि राधिकाया जगद्गुरो।
तानि मे वद शिष्याय श्रोतुं कोतूहलं मम॥२१९॥
श्रुतं नाम्नां सहस्रं च सामवेदे निरूपितम्।
तथाऽपि श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो नामानि षोडश॥२२०॥
अभ्यन्तराणि तेषां वा तदन्यान्येव मे विभो।
अहो पुण्यस्वरूपाणि भक्तानां वाञ्छितानि च॥२२१॥
नामानि तेषां व्युत्पत्तिं सर्वेषां दुर्लभानि च।
पावनानि जगन्मातुर्जगतामपि कारणम्॥२२२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—राधिका के वे १६ नाम क्या-क्या हैं? हे जगद्गुरु! उनको अपने इस शिष्य से कहिये। मैंने सामवेद में निरूपित राधा के १००० नामों को सुना है, तथापि आपसे इन १६ नामों को सुनने की कामना है। हे विभु! भक्तगण हेतु वांछित ये राधा के १६ नाम सामवेदोक्त १००० राधा नामों में से ही हैं, अथवा अन्य हैं? यह जानने की कामना है। ये नाम पुण्यमय तथा भक्तों के अभीष्ट हैं। इन नामों की व्युत्पत्ति सबके लिये दुर्लभ है। जगन्माता के ये नाम अत्यन्त पवित्र तथा जगत् के कारणरूप भी हैं।।२१९-२२२।।

नारायण उवाच

राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी। कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया च कृष्णरूपिणी॥२२३॥
कृष्णवामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी। कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी॥२२४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—राधा के सारभूत नाम ये हैं। यथा—राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्रिया, कृष्ण प्राणाधिका, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामांगसम्भूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावन विनोदिनी।।२२३-२२४।।

चन्द्रावती चन्द्रकान्ता शतचन्द्रनिभानना।
नामान्येतानि साराणि तेषामभ्यन्तराणि च॥२२५॥

चन्द्रावती, चन्द्रकान्ता, शतचन्द्रनिभानना। हे मुनिवर! ये १६ नाम भी सामवेदोक्त राधासहस्रनाम के ही अन्तर्गत् हैं।।२२५।।

राधेत्येवं च संसिद्धा राकारो दानवाचकः।
स्वयं निर्वाणदात्री या सा राधा परिकीर्तिता॥२२६॥

राधा नाम में 'रा' दानवाचक तथा 'धा' निर्वाण वाचक कहा गया है। जो स्वयं निर्वाण दान करती हैं, वे राधा हैं।।२२६।।

रा च रासे च भवनाद्धा एव धारणदहो। हरेरालिङ्गनादारात्तेन राधा प्रकीर्तिता॥२२७॥

'रा' रासवाचक है। 'धा' धारणार्थ वाचक है। जो दूर से अथवा निकट से हरि का आलिंगन करे वे राधा हैं।।२२७।।

रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता।
रासे च वासो यस्माश्च तेन सा रासवासिनी॥२२८॥

वे रासेश्वर कृष्ण की पत्नी हैं। अतः **रासेश्वरी** तथा रास में सदा रत-निवास करने के कारण वे **रासवासिनी** हैं।।२२८।।

सर्वासां रसिकानां च देवीनामीश्वरी परा।
प्रवदन्ति पुरा सन्तस्तेन तां रसिकेश्वरीम्॥२२९॥

वे समस्त रसिक देवीगण की उत्तम अधीश्वरी हैं। तभी उनको पूर्वकाल के सन्तगण रसिकेश्वरी कह गये हैं।।२२९।।

प्राणाधिका प्रेयसी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
कृष्णप्राणाधिका सा च कृष्णोन परिकीर्तिता॥२३०॥

वे परमात्मा कृष्ण की उनके प्राणों से भी बढ़कर प्रेयसी हैं। तभी उनको **कृष्णप्राणाधिका** कहा गया।।२३०।।

कृष्णस्यातिप्रिया कान्ता कृष्णो वाऽस्याः प्रियः सदा।
सर्वैर्देवगणैरुक्ता[1] तेन कृष्णप्रिया स्मृता॥२३१॥

वे कृष्ण की अतीव प्रिय कान्ता हैं अथवा उनको श्रीकृष्ण सदा प्रिय हैं। तभी समस्त देवता उनको **कृष्णप्रिया** कहते हैं।।२३१।।

कृष्णरूपं संविधातु[2] या शक्ता चावलीलया।
सर्वांशैः कृष्णसदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी॥२३२॥

वे लीलाक्रम में कृष्णरूप धारिणी हैं तथा वे इस रूप धारण में समर्थ हैं। वे सर्वांश में कृष्ण के समान हैं अतः **कृष्णस्वरूपिणी** कही जाती हैं।।२३२।।

---

१. उक्त्वेति सवकार पाठस्तु प्रामाणिक एव।
२. ख. संनिधा०।

वामाङ्गार्धेन कृष्णस्य या सम्भूता परा सती।
कृष्णवामाङ्गसम्भूता तेन कृष्णेन कीर्तिता॥२३३॥

सर्वश्रेष्ठतम पतिव्रता राधा श्रीकृष्ण के वामांश से संभूता हैं। कृष्ण ने स्वयं उनको **कृष्णवामांश सम्भूता** कहा है। तभी उनका यह नाम प्रसिद्ध है।।२३३।।

परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती। श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी॥२३४॥

ये सती राधा स्वयं मूर्त्तिमती परम आनन्द की राशि हैं। तभी वेद में इनको परमानन्दरूपिणी कहा गया है।।२३४।।

कृषिर्मोक्षार्थवचनो न एवोत्कृष्टवाचकः।
आकारो दातृवचनस्तेन कृष्णा प्रकीर्तिता॥२३५॥

'**कृष्**' का अर्थ है मोक्ष। 'ण'कार उत्तमार्थ है। 'आ' का अर्थ है दान। ये उत्तम मोक्ष प्रदान करने वाली हैं। अतः इनको **कृष्णा** कहा जाता है।।२३५।।

अस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेन वृन्दावनी स्मृता।
वृन्दावनस्याधिदेवी तेन वाऽथ प्रकीर्तिता॥२३६॥

जिनका यह वृन्दावन है अथवा जो वृन्दावन की अधिष्ठातृ देवी हैं, तभी इनको लोग **वृन्दावनी** कहते हैं।।२३६।।

सङ्घः सखीनां वृन्दः स्यादकारोऽप्यस्तिवाचकः।
सखिवृन्दोऽस्ति यस्याश्च स वृन्दा परिकीर्तिता॥२३७॥

वृन्द का तात्पर्यार्थ है सखियों का समूह। 'आ' का अर्थ है 'है'। जिनका यह सखी समूह है अतः ये **वृन्दा** कहलाती हैं।।२३७।।

वृन्दावने विनोदश्च सोऽस्या ह्यस्ति च तत्र वै।
वेदा वदन्ति तां तेन वृन्दावनविनोदिनीम्॥२३८॥

'विनोद' का अर्थ है आनन्द। तभी वृन्दावन में देवी को अधिक विनोद (आनन्द) लाभ होता है। इसी कारण राधा को वेद वृन्दावनविनोदिनी कहते हैं।।२३८।।

नखचन्द्रावलीवक्त्रचन्द्रोऽस्ति यत्र संततम्।
तेन चन्द्रावली सा च कृष्णेन परिकीर्तिता॥२३९॥

राधिका का मुखचन्द्र तथा नखचन्द्र अवलीयुक्त है। तभी कृष्ण उनको **चन्द्रावली** कहते हैं।।२३९।।

कान्तिरस्ति चन्द्रतुल्या सदा यस्यादिवानिशम्।
सा चन्द्रकान्ता हर्षेण हरिणा परिकीर्तिता॥२४०॥

राधा की मुखकान्ति दिन-रात चन्द्रतुल्य बनी रहती है। तभी हरि भी हर्ष के साथ उनको **चन्द्रकान्ता** कहते हैं।।२४०।।

शरच्चन्द्रप्रभा यस्याश्चाऽऽननेऽस्ति दिवानिशम्।
मुनिना कीर्तिता तेन शरच्चन्द्रप्रभानना।।२४१।।

उनके मुखमण्डल पर अहर्निश शारदीय चन्द्र के समान प्रभा छिटकती रहती है। तभी मुनिगण उनको **शरच्चन्द्रप्रभानना** कह गये हैं।।२४१।।

इदं षोडशनामोक्तमर्थव्याख्यानसंयुतम्। नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे।।२४२।।
ब्रह्मणा च पुरा दत्तं धर्माय जनकाय मे। धर्मेण कृपया दत्तं मह्यमादित्यपर्वणि।।२४३।।
पुष्करे च महातीर्थे पुण्याहे देवसंसदि। राधाप्रभावप्रस्तावे सुप्रसन्नेन चेतसा।।२४४।।

हे मुनि! एवंविध मैंने राधा की षोडश नामावलियों को अर्थ सहित कहा। नारायण ने यह व्याख्या नीलकमलस्थ ब्रह्मा से कहा था। ब्रह्मा ने इसे पूर्वकाल में मेरे पिता धर्मदेव से कहा। तदनन्तर महातीर्थ पुष्कर में सूर्यग्रहण काल में पुण्य पर्व पर देवगण की सभा में जब राधा के प्रभाव का वर्णन हो रहा था, तभी अत्यन्त प्रसन्न होकर मेरे पिता ने कृपा पूर्वक यह व्याख्या मुझे प्रदान कर दिया।।२४२-२४४।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं तुभ्यं दत्तं मया मुने। निन्दकायावैष्णवाय न दातव्यं महामुने।।२४५।।

यावज्जीवमिदं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
राधामाधवयोः पादपद्मे भक्तिर्भवेदिह।।२४६।।
अन्ते लभेत्तयोर्दास्यं शश्वत्सहचरो भवेत्।
अणिमादिकसिद्धिं च सम्प्राप्य नित्यविग्रहम्।।२४७।।

हे मुनिराज! वही महापुण्यमय स्तोत्र मैंने अभी तुमको प्रदान किया है। यह कदापि अवैष्णव को तथा वैष्णवों की निन्दा करने वाले को प्रदान नहीं करना। जो मनुष्य यावज्जीवन तीनों सन्ध्याकाल में यह स्तोत्र पाठ करता है, वह इहकाल में राधामाधव के चरणकमलों की भक्ति का लाभ करके अन्त में अणिमादि सिद्धि पाकर नित्य देह प्राप्त करता है और राधामाधव के दासत्व में निरत होकर सतत् उनके साथ काल व्यतीत करता है।।२४५-२४७।।

व्रतदानोपवासैश्च सर्वैर्नियमपूर्वकैः। चतुर्णां चैव वेदानां पाठैः सर्वार्थसंयुतैः।।२४८।।
सर्वेषां यज्ञतीर्थानां करणैर्विधिबोधितैः। प्रदक्षिणेन भूमेश्च कृत्स्नाया एव सप्तधा।।२४९।।
शरणागतरक्षायामज्ञानां ज्ञानदानतः। देवानां वैष्णवानां च दर्शनेनापि यत्फलम्।।२५०।।

तदेव स्तोत्रपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम्।
स्तोत्रस्यास्य प्रभावेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।।२५१।।

नियम पूर्वक सभी व्रत, दान, उपवास, समस्त अर्थयुक्त चतुर्वेद पाठ, यथाविधि यज्ञानुष्ठान, समस्त तीर्थाटन, सात बार पृथिवी प्रदक्षिणा, शरणागत रक्षण, अज्ञानी को ज्ञानदान, देवता-वैष्णवदर्शनादि का जो फल कहा जाता है, इस स्तोत्र पाठ की तुलना में वह इसका षोडशांश (१/१६) भाग भी नहीं है। किम्बहुना, इस स्तोत्र का पाठ करने वाला जीवन्मुक्त हो जाता है।।२४८-२५१।।

नारद उवाच

सम्प्राप्तं परमाश्चर्यं स्तोत्रं सर्वसुदुर्लभम्। कवचं चापि देव्याश्च संसारविजयं प्रभो।।२५२।।
कृतं स्तोत्रं सुयज्ञेन प्राप्तं तदपि दुर्लभम्।
श्रुत्वा कृष्णकथां चित्रां त्वत्पादाब्जप्रसादतः।।२५३।।
अधुना श्रोतुमिच्छामि यद्रहस्यं च तद्वद। प्रातश्च नगरं दृष्ट्वा किमूचुर्बल्लवा मुने।।२५४।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे विभु! आपने सयत्न सन्तापहारक सर्वदुर्लभ परमाश्चर्यमय राधिका के स्तोत्र को मुझसे कहा है तथा आपके द्वारा पूर्वकाल में कहे गये देवी के संसार विजय कवच को भी मैंने जान लिया। आपके चरणों की कृपा से मैंने विचित्र कृष्ण कथा का भी श्रवण किया है। अब उनके रहस्य को सुनने की इच्छा है। प्रातःकाल शयन से उठने पर विश्वकर्मा रचित नगर को देखकर गोपगण ने एक-दूसरे से क्या कहा, हे मुनिवर! वह कहने की कृपा करिये।।२५२-२५४।।

नारायण उवाच

गतायां तत्र यामिन्यां गते च विश्वकर्मणि।
अरुणोदयवेलायां जनाः सर्वे जजागरुः।।२५५।।
उत्थाय दृष्ट्वा नगरं सर्वेभ्योऽपि विलक्षणम्।
किमाश्चर्यं किमाश्चर्यमित्यूचुर्व्रजवासिनः।।२५६।।
कांश्चिद्गोपान्केचिदूचुः कुत एतदभूदिदम्।
न जाने केन रूपेण को भूमौ प्रभवेदिति।।२५७।।
बुबुधे मनसा नन्दो गर्गवाक्यमनुस्मरन्। श्रीहरेरिच्छया सर्वं जगदेतच्चराचरम्।।२५८।।
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यस्य भ्रूभङ्गलीलया।
आविर्भूतं तिरोभूतं तस्यासाध्यं च किं कुतः।।२५९।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—रात्रि विगत हो जाने पर जब विश्वकर्मा चले गये, तब अरुणोदय काल में सभी ब्रजवासी शयन से उठे। उस समय उन्होंने स्वर्ग से भी उत्तम नगर को देखकर कहा—आश्चर्य है, आश्चर्य है! कोई गोप अन्य गोप से कहने लगा—"किसने यह सब बना दिया? धरती पर ऐसी क्षमता वाला कौन है?" तभी नन्द को गर्ग का कथन स्मरण हो आया। उन्होंने मन में जान लिया कि हरि की इच्छा के भ्रूभंग मात्र से ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त यह चराचर जगत् आविर्भूत होता है तथा अन्ततः तिरोहित हो जाता है। ऐसे प्रभु के लिये असाध्य क्या हो सकता है?।।२५५-२५९।।

विवरेष्वेव यल्लोम्नां ब्रह्माण्डान्यखिलानि च।
ईशस्य तन्महाविष्णोः किमसाध्यं हरेरहो॥२६०॥
ब्रह्मानन्तेशधर्माश्च ध्यायन्ते यत्पदाम्बुजम्।
किमसाध्यं तदीशस्य मायामानुषरूपिणः॥२६१॥

"जिन हरि के प्रति रोमकूप में अखिल विश्व ब्रह्माण्ड विराजमान है ऐसे महाविष्णु के भी नियन्ता हरि के लिये असाध्य क्या है? ब्रह्मा-अनन्त-महेश्वर तथा धर्म आदि जिनके चरणकमलों का ध्यान करते हैं, उन माया-मानुषरूपधारी उनके अंश के लिये असाध्य क्या हो सकता है।"॥२६०-२६१॥

भ्रामं भ्रामं तन्नगरं दर्शं दर्शं गृहं गृहम्। पाठं पाठं च नामानि सर्वेभ्यो निलयं ददौ॥२६२॥
कृत्वा शुभक्षणं नन्दो वृषभानुश्च कौतुकी।
चकार स गणैः सार्धं मुदाऽऽश्रमनिवेशनम्॥२६३॥

गोपराज नन्द ने यह विचार करके उस नगर में पुनः-पुनः भ्रमण किया तथा सभी भवनों पर जिनका-जिनका नाम लिखा था, वह पढ़कर उन-उन व्यक्ति को वह-वह भवन प्रदान किया। इसके पश्चात् नन्दराज तथा वृषभानु ने विस्मयपूर्ण चित्त से शुभक्षण का विचार करके गणों तथा आत्मीयों के साथ प्रसन्नता पूर्वक उस भवन में प्रवेश किया॥२६२-२६३॥

सर्वे वृन्दावनस्थाश्च प्रसन्नवदनेक्षणाः। मुदा प्रवेशनं चक्रुः स्वं स्वमाश्रममुत्तमम्॥२६४॥
सर्वे मुमुदिरे गोपाः स्वे स्वे स्थाने मनोहरे।
बालका बालिकाश्चैव चिक्रीडुश्च प्रहर्षिताः॥२६५॥
श्रीकृष्णो बलदेवश्च शिशुभिः सह कौतुकात्।
क्रीडां चकार तत्रैव स्थाने स्थाने मनोहरे॥२६६॥
इत्येवं कथितं सर्वं निर्माणं नगरस्य च। अबलानां वने रासमण्डलस्य च नारदः॥२६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारद० वृन्दावननगरवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

—❀❀❀—

सभी वृन्दावन निवासी लोगों ने अपने-अपने नामांकित गृह में प्रवेश किया। सभी का मुखमण्डल तथा नयनयुगल आनन्दित था। सभी गोपगण अपना-अपना मनोहर निवास पाकर सानन्द थे। मैंने समग्र नगर निर्माण का वृत्तान्त तुमसे कह दिया। हे नारद! वहां बालक-बालिकायें आनन्दित होकर क्रीड़ा करने लगे। कृष्ण-बलराम भी कौतुकपूर्ण चित्त से शिशुगण के साथ रासमण्डल के मनोहर स्थानों में तथा वहां के वनों में क्रीडारत हो गये॥२६४-२६७॥

॥१७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथाष्टादशोऽध्यायः

विप्रपत्नी मोक्षण, विप्रपत्नीकृत श्रीकृष्णस्तोत्र, अग्नि के सर्वभक्षकत्व के कारण का कथन

शौनक उवाच

अहो किमद्भुतं सूत रहस्यं सुमनोहरम्।
श्रुतं कृष्णस्य चरितं सुखदं मोक्षदं परम्॥१॥

ऋषि शौनक कहते हैं–हे सूत! आज मैंने अद्भुत सुमनोहर रहस्यमय, सुख एवं मोक्षप्रद श्रीकृष्ण चरित का श्रवण किया। हे मुनि! तदनन्तर देवर्षि नारद ने वहां नगर निर्माण की यह बात सुनकर धर्मपुत्र नारायण ऋषि से किस मांगलिक कृष्ण चरित की जिज्ञासा किया?।।१।।

सूत उवाच

श्रुत्वा नगरनिर्माणं नारदो मुनिसत्तमः। पप्रच्छ कृष्णचरितमपरं सुमनोहरम्॥२॥

सूत जी कहते हैं–मुनिप्रवर नारद ने नगर निर्माण प्रसंग सुनकर अन्य कृष्णचरित सुनने की इच्छा प्रकट किया था।।२।।

नारद उवाच

श्रीकृष्णाख्यानचरितं पीयूषमृषिसत्तम। ज्ञानसिन्धो निगद मां शिष्यं च शरणगतम्॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे ऋषिप्रवर! ज्ञानसिन्धु! मैं आपका शरणागत हूं। मैं आपका शिष्य हूं। आप अमृतमय कृष्णचरित का वर्णन मुझसे करिये।।३।।

नारदस्य वचः श्रुत्वा मुदा नारायणः स्वयम्। उवाच परमीशस्य चरितं परमाद्भुतम्॥४॥

नारद का कथन सुनकर नारायण ऋषि मुदित हो गये। वे स्वयं हर्ष के साथ परमेश्वर का परम अद्भुत चरित कहने लगे–।।४।।

नारायण उवाच

एकदा बालकैः सार्धं बलेन सह माधवः। जगाम श्रीमधुवनं यमुनातीरनीरजम्॥५॥
बिचेरुर्गोसहस्रैश्च चिक्रीडुर्बालकास्तदा। विश्रान्तास्तृट्परीताश्च क्षुधाऽतिपरिपीडिताः॥६॥

तमूचुर्गोपशिशवः श्रीकृष्णं परमेश्वरम्।
क्षुदस्मान्बाधते कृष्ण किं कुर्मो ब्रूहि किंकरान्॥७॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–एक बार माधव, बलदेव तथा अन्य बालक यमुना के तटवर्त्ती मधुवन गये। सभी के वहां पहुंचने पर हजारों गौयें भी वहां विचरण करने लगीं। सभी बालकगण वहां

आते-आते श्रान्त एवं क्षुधा-पिपासापीड़ित हो गये। उन्होंने कृष्ण से कहा–"हे कृष्ण! हम क्षुधा-पिपासा से अत्यन्त व्याकुल हैं। हम तो आपके किंकर हैं। हम क्या करें?।।५-७।।

शिशूनां वचनं श्रुत्वा तानुवाच दयानिधिः।
हितं तथ्यं च वचनं प्रसन्नवदनेक्षणः।।८।।

शिशुओं का वचन सुनकर प्रसन्नतापूर्ण मुखाकृति तथा दृष्टि वाले दयानिधि कृष्ण ने तथ्यपूर्ण, हितप्रद वाक्य उनसे कहा–।।८।।

श्रीकृष्ण उवाच

बाला गच्छत विप्राणां यज्ञस्थानं सुखावहम्।
अन्नं याचत ताञ्छीघ्रं ब्राह्मणांश्च क्रतून्मुखान्।।९।।
विप्रा आङ्गिरसाः सर्वे स्वाश्रमे श्रीवनान्तिके।
यज्ञं कुर्वन्ति विप्राश्च श्रुतिस्मृतिविशारदाः।।१०।।
निःस्पृहा वैष्णवाः सर्वे मां यजन्ति मुमुक्षवः।
मायया मां न जानन्ति मायामानुषरूपिणम्।।११।।
न चेद्ददति युष्मभ्यमन्नं विप्राः क्रतून्मुखाः।
तत्कान्ता याचत क्षिप्रं दयायुक्ताः शिशून्प्रति।।१२।।

श्रीकृष्ण कहते हैं–"हे बालको! तुम लोग ब्राह्मणों के सुखप्रद यज्ञस्थल में जाओ। वहां यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों से अन्न मांगो। श्रुति-स्मृति विशारद अंगीरा कुल में जन्मे वे ब्राह्मण श्रीवन के पास अपने आश्रम में यज्ञरत हैं। वे सभी निःस्पृह तथा परम वैष्णव हैं। वे मुक्तिकामना से मेरी पूजा कर रहे हैं, तथापि मेरी माया से मोहित वे लोग मेरे इस मायामानुष रूप को नहीं जानते। यदि वे यज्ञकारी ब्राह्मण अन्न नहीं देते, तब शीघ्र तुम लोग उनकी पत्नियों से अन्न की याचना करना। वे बालकों के प्रति अतीव दयामयी हैं।"।।९-१२।।

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ययुर्बालकपुङ्गवाः। पुरतो ब्राह्मणानां च तस्थुरानम्रकंधराः।।१३।।

श्रीकृष्ण का कथन सुनकर वे सभी श्रेष्ठ बालक यज्ञस्थल पर गये तथा ब्राह्मणों के समक्ष नत होकर खड़े हो गये।।१३।।

इत्यूचुर्बालकाः शीघ्रमन्नं दत्त द्विजोत्तमाः।
न शुश्रुवुर्द्विजाः केचित्केचिच्छ्रुत्वा स्थिराः स्थिताः।।१४।।

बालकों ने ब्राह्मणों से कहा–"हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! कृपया हमें शीघ्र अन्न दीजिये, तथापि कुछ ब्राह्मणों ने बालकों की याचना अनसुनी कर दिया, बाकी उस याचना पर कोई ध्यान न देकर यथावत् खड़े रह गये थे!।।१४।।

ते ययू रन्धनागारं ब्राह्मणो यत्र पाचिकाः।
नत्वा बाला विप्रभार्याः प्रणेमुर्नतकन्धराः॥१५॥
नत्वोचुर्बालकाः सर्वे विप्रभार्याः पतिव्रताः। अन्नं दत्त मातरोऽस्मान्क्षुधार्तान्बालकानपि॥१६॥
बालानां वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा तांश्च मनोहरान्।
पप्रच्छुः सादरं साध्व्यः स्मेराननसरोरुहाः॥१७॥

इस प्रकार वहां से निराश होकर बालक पाकशाला में गये। वहां ब्राह्मण पत्नियां अन्नपाक कर रही थीं। बालकों ने उनको नत होकर प्रणाम किया। उन पतिपरायणा विप्रपत्नियों से प्रणामोपरान्त बालकों ने कहा–"हे मातृगण! हम सभी बालक क्षुधार्त्त हैं। आप लोग हमें भोजन प्रदान करें।" बालकों की याचना सुनकर तथा उनका मनोहर रूप देखकर उन मन्द मुस्कान से युक्त मुखकमल से शोभित पतिव्रताओं ने अत्यन्त स्नेह एवं आदर से बालकों से पूछा॥१५-१७॥

विप्रपत्न्य ऊचुः

के यूयं प्रेषिताः केन कानि नामानि कोविदाः।
दास्यामोऽन्नं बहुविधं व्यञ्जनैः सहितं वरम्॥१८॥

ब्राह्मण पत्नियां कहती हैं–हे बुद्धिमान बालकगण! तुमलोग कौन हो, क्या नाम है, किसने तुमको मेरे पास भेजा है? पहले यह सब उत्तर दो तब हम अनेक व्यंजनों सहित तुमको उत्तम अन्न देंगी॥१८॥

ब्राह्मणीनां वचः श्रुत्वा ता ऊचुस्ते मुदाऽन्विताः।
स्निग्धा हसन्तः स्फीताश्च सर्वे गोपालबालकाः॥१९॥

वे गोपबालकगण ब्राह्मण पत्नियों का कथन सुनकर सभी हर्षित हो गये। स्निग्ध एवं पुष्ट देह वाले उन गोप बालकों ने हंसते हुये उत्तर दिया॥१९॥

बाला ऊचुः

प्रेषिता रामकृष्णाभ्यां वयं क्षुत्पीडिता भृशम्।
दत्तान्नं मातरोऽस्मभ्यं क्षिप्रं यामस्तदन्तिकम्॥२०॥
इतो विदूरे भाण्डीरे वनाभ्यन्तरमेव च। वटमूले मधुवने वसन्तौ रामकेशवौ॥२१॥
विश्रान्तौ क्षुधितौ तौ च याचेतेऽन्नं च मातरः।
किमु देयमदेयं वा शीघ्रं वदत नोऽधुना॥२२॥

बालक कहते हैं–हे माताओ! हमें अत्यन्त क्षुधार्त्त देखकर बलराम-कृष्ण ने हमें यहां भेजा। यहां से कुछ ही दूरी पर वे भाण्डीर वनान्तर्गत् मधुवन के एक वटवृक्ष के नीचे बैठे हैं। अब आप हमें

अन्न दीजिये, जिससे हम यथाशीघ्र उनके पास जा सकें। हे माताओ! उन्होंने भी श्रान्त एवं क्षुधार्त्त होकर आपसे अन्न मांगा है। आप अन्न देंगी अथवा नहीं, शीघ्र कहिये।।२०-२२।।

गोपानां वचनं श्रुत्वा हृष्टानन्दाश्रुलोचनाः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गास्तत्पादाब्जमनोरथाः।।२३।।
नानाव्यञ्जनसंयुक्तं शाल्यन्नं सुमनोहरम्। पायसं पिष्टकं स्वादु दधि क्षीरं घृतं मधु।।२४।।

रौप्ये कांस्ये राजते च पात्रे कृत्वा मुदाऽन्विताः।
ताः सर्वा विप्रपत्न्यश्च प्रययुः कृष्णसन्निधिम्।।२५।।
नानामनोरथं कृत्वा मनसा गमनोत्सुकाः।
प्रतिव्रतारता धन्याश्च श्रीकृष्णदर्शनोत्सुकाः।।२६।।

श्रीकृष्णं ददृशुर्गत्वा रामं च सहबालकम्। वटमूले वसन्तं तमुडुमध्ये यथोडुपम्।।२७।।

श्यामं किशोरवयसं पीतकौशेयवाससम्।
सुन्दरं सस्मितं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्।।२८।।

श्रीकृष्ण के चरण-कमल की प्राप्ति की कामना वाली वे ब्राह्मण पत्नियां गोप-बालकों का कथन सुनकर आनन्दित हो उठीं! उनके नेत्रों से आंसू छलक आये तथा वे सभी रोमांचित हो उठीं। उन्होंने चांदी-कांस्य के पात्र में नाना व्यंजनयुक्त मनोहर शालिअन्न, पायस, पिष्टक, स्वादु दधि, दुग्ध, घृत तथा मधु लिया तथा वे सभी श्रीकृष्ण के पास जाने लगीं। वे सभी श्रीकृष्णदर्शनोत्सुका धन्या पवित्र पतिव्रता स्त्रियां नाना प्रकार की अभिलाषा मन में संजोकर जाने लगीं। वे सभी उस वटवृक्ष के नीचे पहुंची, जहां श्रीकृष्ण बालकों तथा बलराम सहित विराजित थे। प्रतीत हो रहा था मानो वहां नक्षत्रमण्डल से घिरे चन्द्रमा विराजमान हैं! विप्रपत्नियों ने वहां पीत कौषेयवस्त्रधारी, सुन्दर, मनोहर मुस्कान वाले, शान्तप्रकृति, मनोहर, किशोरवय वाले श्याम कलेवर राधाकान्त श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त किया।।२३-२८।।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं रत्नालङ्कारभूषितम्। रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां गण्डस्थलविराजितम्।।२९।।
रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरभूषितम्। आजानुलम्बितां शुभ्रां बिभ्रतं रत्नमालिकाम्।।३०।।
मालतीमालया कण्ठवक्षःस्थलविराजितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाञ्चितविग्रहम्।।३१।।
सुनखं[1] सुकपोलं च पक्वबिम्बाधरं वरम्। पक्वदाडिमबीजाभं बिभ्रतं दन्तमुत्तमम्।।३२।।

शिखिपिच्छसमायुक्तं बद्धचूडं परात्परम्।
कदम्बपुष्पयुग्माभ्यां कर्णमूले विराजितम्।।३३।।

उनका आनन शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान प्रभापूर्ण था। वे रत्नालंकार भूषित थे। कानों में पहने गये दो रत्नकुण्डल उनके कपोलों तक लटक रहे थे। वे रत्नमय केयूर, वलय तथा रत्ननूपुर से भूषित थे। उनके गले में शुभ्र रत्नमाला थी, जो उनके जांघों तक लटक रही थी। श्रीकृष्ण

१. क॰ सुनखं।

का वक्षस्थल कण्ठ में पहनी मालती माला से शोभायमान था। उनके अंग चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम से चर्चित था। उनकी नासिका तथा कपोल अत्यन्त मनोहारी थे। अधरोष्ठ पके बिम्बफल के वर्ण के थे। उनकी दन्तपंक्ति पक्व अनार के दानों जैसी श्रेष्ठ थी। वे मूयर पुच्छ के मुकुट को पहने शोभायमान थे। वे परात्पर प्रभु के दोनों कर्णमूलों में दो कदम्ब पुष्प विराजमान थे।।२९-३३।।

ध्यानासाध्यं योगिनां च भक्तानुग्रहकारकम्।
ब्रह्मेशधर्मशेषेन्द्रैः स्तूयमानं मुनीश्वरैः॥३४॥

दृष्टैवमीश्वरं भक्त्या प्रणेमुर्द्विजयोषितः। स्वानां ज्ञानानुरूपं च तुष्टुवुर्मधुसूदनम्॥३५॥

परात्पर प्रभु श्रीकृष्ण भक्तों पर अनुग्रह करने वाले तथा योगियों के ध्यान में भी अगम्य हैं। ब्रह्मा, ईश्वर, धर्मदेव, शेष, इन्द्र तथा मुनिगण द्वारा वे सतत् स्तुत होते रहते हैं। उन ईश्वर को देखकर द्विजपत्नियों ने उनको सादर प्रणाम करके अपने ज्ञानानुरूप उन मधुसूदनप्रभु की स्तुति करने लगीं।।३४-३५।।

विप्रपत्न्य ऊचुः

त्वं ब्रह्म परमं धाम निराहो निरहंकृतिः।
निर्गुणश्च निराकारः साकारः सगुणः स्वयम्॥३६॥
साक्षिरूपश्च निर्लिप्तः परमात्मा निराकृतिः।
प्रकृतिः पुरुषस्त्वं च कारणं च तयोः परम्॥३७॥
सृष्टिस्थित्यन्तविषये ये च देवास्त्रयः स्मृताः।
ते त्वदंशाः सर्वबीजा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥३८॥

द्विजपत्नियां कहती हैं—हे प्रभो! आप ही ब्रह्म, परमधाम, अहंकार एवं इच्छा रहित हैं। निर्गुण-निराकार होकर भी आप स्वयं साकार तथा सगुण भी हैं। आप साक्षीरूप, निर्लिप्त परमात्मा तथा आकृति रहित है। आप ही प्रकृति, पुरुष हैं। आप ही प्रकृति एवं पुरुष के परम कारण भी हैं। सृष्टि-स्थिति-संहारात्मक जो देवतात्रय ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर वर्णित हैं, वे आपके सर्वबीजात्मक अंश ही हैं।।३६-३८।।

यस्य लोम्नां च विवरे चाखिलं विश्वमीश्वर।
महाविराणमहाविष्णुस्त्वं तस्य जनको विभो॥३९॥
तेजस्त्वं चापि तेजस्वी ज्ञानं ज्ञानी च तत्परः।
वेदेऽनिर्वचनीयस्त्वं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥४०॥

हे ईश्वर! आप उन महाविष्णु महाविराट् के भी जन्मदाता हैं, जिनके प्रति लोमकूप में अखिल विश्व विराजित रहता है। आप ही तेज, तेजस्वी, ज्ञानरूप तथा परमज्ञानी हैं। आपको वेद में अनिर्वचनीय कहा गया है। हे महेश्वर! आपकी स्तुति कर सकने में कौन समर्थ है?।।३९-४०।।

महदादिसृष्टिसूत्रं पञ्चतन्मात्रमेव च। बीजं त्वं सर्वशक्तीनां सर्वशक्तिस्वरूपकः॥४१॥

सर्वशक्तीश्वरः सर्वः सर्वशक्त्याश्रयः सदा।
त्वमनीहः स्वयंज्योतिः सर्वानन्दः सनातनः॥४२॥
अहोऽप्याकारहीनस्त्वं सर्वविग्रहवानपि।
सर्वेन्द्रियाणां विषयं जानासि नेन्द्रियी भवान्॥४३॥

आप महत्वादि सृष्टि के सूत्र, पंचतन्मात्र, सर्वशक्ति बीज तथा सर्वशक्तिरूप हैं। आप सर्वशक्ति समूह के ईश्वर सर्व हैं। आप सर्वदा सर्वशक्ति के आश्रय हैं। आप अचिन्त्य तथा स्वयं ज्योतिर्मय भी हैं। आप सर्वानन्द सनातन हैं। यह महाआश्चर्य है कि आप शरीरधारी होकर भी अशरीरी ही हैं। आपको कोई इन्द्रिय है ही नहीं, तथापि आप सभी इन्द्रिय विषयों के ज्ञाता हैं!॥४१-४३॥

सरस्वती जडीभूता यत्स्तोत्रे यन्निरूपणे।
जडीभूतो महेशश्च शेषो धर्मो विधिः स्वयम्॥४४॥
पार्वती कमला राधा सावित्री वेदसूरपि।
वेदश्च जडतां याति के वा शक्ता विपश्चितः॥४५॥

आपके रहस्य तत्व का निरूपण करने तथा आपकी स्तुति कर सकने में सरस्वती जड़ हो जाती हैं (असमर्थ हो जाती हैं)। महेश्वर, शेष, धर्म, ब्रह्मा तक जड़ हो जाते हैं। यहां तक कि इस सम्बन्ध में पार्वती, लक्ष्मी, राधा, वेदमाता सावित्री तथा स्वयं वेद भी जड़वत् हो जाते हैं, तब ऐसा कौन है, जो आपकी स्तुति कर सकने की शक्ति रखता हो?॥४४-४५॥

वयं किं स्तवनं कुर्मः स्त्रियः प्राणेश्वरेश्वरः।
प्रसन्नो भव नो देव दीनबन्धो कृपां कुरु॥४६॥

हे प्राणेश्वरेश्वर! ऐसी स्थिति में हम स्त्रियां आपका स्तवन कैसे कर सकती हैं? हे देव! दीनबन्धु! हमारे ऊपर प्रसन्न होकर कृपा करिये॥४६॥

इति पेतुश्च वा विप्रपत्न्यस्तच्चरणाम्बुजे। अभयं प्रददौ ताभ्यः प्रसन्नवदनेक्षणः॥४७॥

यह कहकर विप्रपत्नियां श्रीकृष्ण के चरणकमलों पर गिर पड़ीं। प्रसन्नमुद्रायुक्त तथा प्रसन्नतापूर्ण दृष्टि से श्रीकृष्ण ने उन विप्रपत्नियों को अभयदान दे दिया॥४७॥

विप्रपत्नीकृतं स्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत्।
स गतिं विप्रपत्नीनां लभते नात्र संशयः॥४८॥

विप्रपत्नीगण कृत यह स्तोत्र पाठ जो कोई पूजाकाल में करेगा, वह वही गति प्राप्त करेगा जिसे इन विप्रपत्नियों ने प्राप्त किया था। यह संशय रहित है॥४८॥

नारायण उवाच

ताः पदाम्भोजपतिता दृष्ट्वा श्रीमधुसूदनः। वरं वृणुत कल्याणं भविता चेत्युवाच ह॥४९॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा विप्रपत्न्यो मुदाऽन्विताः।
तमूचुर्वचनं भक्त्या भक्तिनम्रात्मकंधराः॥५०॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–जब श्रीकृष्ण ने उन ब्राह्मण पत्नियों को अपने चरणकमलों पर गिरी देखा, तब उन्होंने कहा–"तुम लोग वर मांगो। तुम्हारा मंगल हो।" श्रीकृष्ण से यह सुनकर, भक्ति से झुक कर उन हर्षित मुनि पत्नियों ने भक्ति पूर्वक यह कहा–॥४९-५०॥

द्विजपत्न्य ऊचुः

वरं कृष्ण च गृह्णीमो नः स्पृहा त्वत्पदाम्बुजे।
देहि स्वं दास्यमस्मभ्यं दृढां भक्तिं सुदुर्लभाम्॥५१॥
पश्यामोऽनुक्षणं वक्त्रसरोजं तव केशव। अनुग्रहं कुरु विभो न यास्यामो गृहं पुनः॥५२॥

द्विजपत्नियां कहती हैं–हे कृष्ण! हम सब कोई वर नहीं चाहतीं। हम तो केवल आपके चरणकमल की भक्ति की कामना करती हैं। हमें आप दृढ़ सुदुर्लभ भक्ति तथा दास्य प्रदान करिये। हे केशव! हम प्रतिक्षण आपके इस मुखकमल का दर्शन लाभ करें। हम सभी अब अपने गृह वापस नहीं जाना चाहतीं॥५१-५२॥

द्विजपत्नीवचः श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः।
ओमित्युक्त्वा त्रिलोकेशस्तस्थौ बालकसंसदि॥५३॥
प्रदत्तं विप्रपत्नीभिर्मिष्टमन्नं सुधोपमम्।
बालकान्भोजयित्वा तु स्वयं च बुभुजे विभुः॥५४॥

त्रिलोकेश, करुणानिधि, श्रीकृष्ण ने द्विजपत्नियों का वचन सुनकर कहा–"ऐसा ही हो" तथा वे बालक मण्डली में बैठे और उन्होंने उन ब्राह्मण पत्नियों द्वारा प्रदत्त अमृत के समान मिष्ठान्न तथा अन्न भोजन बालकों को कराया तथा प्रभु ने स्वयं भी भोजन सम्पन्न किया॥५३-५४॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शातकुम्भं रथं परम्। ददृशुर्विप्रपत्न्यश्च पतन्तं गगनादहो॥५५॥
रत्नदर्पणसंयुक्तं रत्नसारपरिच्छदम्। रत्नस्तम्भैर्निबद्धं च सद्रत्नकलशोज्ज्वलम्॥५६॥
श्वेतचामरसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम्॥५७॥
शतचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम्। वेष्टितं पार्षदैर्दिव्यैर्वनमालाविभूषितैः॥५८॥
पीतवस्त्रपरीधानै रत्नालङ्कारभूषितैः। नवयौवनसम्पन्नैः श्यामलैः सुमनोहरैः॥५९॥
द्विभुजैर्मुरलीहस्तैर्गोपवेषधरैर्वरैः। शिखिपिच्छगुञ्जमालाबद्धवक्रिमचूडकैः॥६०॥

इसी समय आश्चर्य पूर्वक विप्रपत्नीगण देखती हैं कि वहां आकाश से एक परमोत्तम रथ उतरा जो रत्नदर्पण तथा रत्नसार से निर्मित परिच्छदयुक्त, रत्नस्तम्भों पर आबद्ध, श्रेष्ठ रत्नमय कलशों की प्रभा से समुज्वल, अग्नि के समान शुद्ध वस्त्रों, श्वेत चामरों एवं पारिजात पुष्पों की बनी मालाओं से

सज्जित था। वह शतचक्र संयुक्त, मनोवेगगामी मनोहर रथ था। वह वनमालाधारी दिव्य पार्षदगण से आवेष्ठित था। वे सभी पार्षद पीताम्बरधारी, रत्नालंकार भूषित, नवयौवनसम्पन्न, श्यामवर्ण, श्यामलकान्ति तथा मनोहर थे। वे मुरलीधारी, गोपवेष से सज्जित, मोरपंख तथा घुमची की माला से बद्ध वक्र चूड़ाधारी थे।।५५-६०।।

अवरुह्य रथात्तुर्णं ते प्रणम्य हरेः पदम्। रथमारोहणं कर्तुमूचुर्ब्राह्मणकामिनीः॥६१॥

विप्रभार्या हरिं नत्वा जग्मुर्गोलोकमभीप्सितम्।
बभूवुर्गोपिकाः सद्यस्त्यक्त्वा मानुषविग्रहान्॥६२॥

वे पार्षद तत्काल रथ से नीचे उतरे तथा भगवान् के चरणों पर प्रणत होकर उन्होंने ब्राह्मण पत्नियों से उस दिव्यरथ पर सुखासनासीन होने के लिये कहा। वे सभी विप्रपत्नियां तत्काल मानव देह त्यागकर गोपिका रूप में परिवर्त्तित होकर प्रभु को प्रणाम करके उस रथ से गोलोक चली गईं।।६१-६२।।

हरिच्छायां विनिर्माय तासां च विष्णुमायया।
प्रस्थापयामास गृहान्ब्राह्मणानां स्वयं विभुः॥६३॥
विप्राश्च भार्या उद्दिश्य परमोद्विग्नमानसाः।
अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुः पथि कामिनीः॥६४॥

दृष्ट्वोवुर्ब्राह्मणाः सर्वे तास्ते च विनयान्विताः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः प्रसन्नवदनेक्षणाः॥६५॥

इधर स्वयं प्रभु ने विष्णुमाया से उन विप्रपत्नियों की छाया बनाया तथा उनको ब्राह्मणों के गृह भेज दिया। वे ब्राह्मण अत्यन्त उद्विग्न होकर अपनी पत्नियों को खोज रहे थे कि मार्ग में उन्होंने अपनी पत्नियों को आते देखा। इस दृश्य को देखकर उन ब्राह्मणों के अंग पुलकित हो गये। मुख तथा नेत्र पर प्रसन्नता झलकने लगी। अन्ततः उन ब्राह्मणों ने विनय पूर्वक पत्नियों से कहा–।।६३-६५।।

ब्राह्मणा ऊचुः

अहोऽतिधन्या यूयं च दृष्टो युष्माभिरीश्वरः। अस्माकं जीवनं व्यर्थं वेदपाठोऽप्यनर्थकः॥६६॥
वेदे पुराणे सर्वत्र विद्वद्भिः परिकीर्तिताः। हरेर्विभूतयः सर्वाः सर्वेषां जनको हरिः॥६७॥
तपो जपो व्रतं ज्ञानं वेदाध्ययनमर्चनम्। तीर्थसनानमनशनं सर्वेषां फलदो हरिः॥६८॥

श्रीकृष्णः सेवितो येन किं तस्य तपसां फलैः।
प्राप्तः कल्पतरुर्येन किं तस्यान्येन शाखिना॥६९॥
श्रीकृष्णो हृदये यस्य तस्य किं कर्मभिः कृतैः।
किं पीतसागरस्यैव पौरुषं कूपलङ्घने॥७०॥

ब्राह्मण कहते हैं–अहो! तुम लोग ही धन्य हो; क्योंकि तुम सबने कृष्ण का दर्शन कर लिया।

हमारा जीवन तथा वेदपाठ सब व्यर्थ हैं। वेदों तथा पुराणों में, सर्वत्र विद्वानों ने कहा कि सभी पदार्थ समूह श्रीहरि की विभूति हैं। प्रभु ही सबके जन्मदाता हैं। तप, जप, व्रत, दान, वेदाध्ययन, देवपूजा, तीर्थस्नान, अनशन आदि जितने धर्मकार्य हैं, सबके फलदाता श्रीहरि हैं। जिस प्रकार कल्पवृक्ष मिल जाने पर अन्य वृक्ष का कोई भी प्रयोजन नहीं रहता, उसी प्रकार जो श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं, उनके लिये तप:फल की क्या आवश्यकता? जिसके हृदय में श्रीकृष्ण विराजित हैं, उसे अन्य कर्म करने का क्या प्रयोजन? जिसने समुद्र पान कर लिया, उसका कूप लांघना क्या अर्थ रखता है?।।६६-७०।।

इत्येवमुक्त्वा विप्राश्च गृहीत्वा कामिनीर्वराः।
आजग्मुः स्वगृहं हृष्टास्ताभिः सार्धं च रेमिरे।।७१।।
तासां ततोऽधिकं प्रेम क्रीडासु सर्वकर्मसु।
दाक्षिण्यं मायया शक्त्या ब्राह्मणानामतर्कितम्।।७२।।

विप्रगण ने यह कहकर अपनी-अपनी पत्नियों को साथ लिया तथा हर्षित होकर गृह आकर उनके साथ रमण करते हुये रहने लगे। अब उन पत्नियों के साथ क्रीड़ा तथा अन्य सभी कार्य में ब्राह्मणगण उनके प्रति पूर्वापेक्षा अधिक प्रेम तथा लगाव झलकता था, तथापि प्रभु की मायाशक्ति के प्रभाव से ब्राह्मण यह रहस्य नहीं जान सके।।७१-७२।।

अथ नारायणः सोऽयं बलेन शिशुभिः सह।
जगाम स्वालयं स्वालयं तूर्णं पूर्णब्रह्म सनातनः।।७३।।
इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्माहात्म्यमुत्तमम्। पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।७४।।

तत्पश्चात् पूर्णब्रह्म सनातन श्रीकृष्ण (नारायण), बलराम तथा बालकों के साथ शीघ्रता से अपने गृह चले गये। मैंने श्रीहरि का यह उत्तम माहात्म्य जो पूर्व में पिता धर्मदेव से सुना था, वह तुमसे कह दिया। अब क्या श्रवणेच्छा है?।।७३-७४।।

नारद उवाच

ऋषीन्द्र केन पुण्येन बभूव विप्रयोषिताम्। मुनीन्द्रयोगसिद्धानां दुर्लभा गतिरीश्वरी।।७५।।
इमाः का वा पुण्यवत्यः पुरा तस्थुर्महीतलम्।
आजग्मुः केन दोषेण वद संदेहभञ्जनम्।।७६।।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे ऋषिप्रवर! उन ब्राह्मण पत्नियों ने अपने किस पुण्य से मुनिगण, योगीगण तथा सिद्धगण के लिये भी दुर्लभ गति को प्राप्त कर लिया? ये पुण्यवती स्त्रियां पूर्वजन्म में कौन थीं, किस दोष के कारण मृत्युलोक में उनका जन्म हुआ? यह संदेहभंजन करिये।।७५-७६।।

नारायण उवाच

सप्तर्षीणां रमण्यश्च रूपेणाप्रतिमाः पराः। गुणवत्यः सुशीलाश्च धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः।।७७।।

नवीनयौवनाः सर्वाः पीनश्रोणिपयोधराः। दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिताः॥७८॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा स्मेराननसरोरुहाः। मुनीनां मोहितुं शक्ता मानसं वक्रचक्षुषा॥७९॥
दृष्ट्वा तासां स्तनश्रोणिमुखानि सुन्दराणि च। अनलश्चक्रमे ताश्च मदनानलपीडितः॥८०॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–ये सभी विप्रपत्नियां पूर्व में सप्तर्षियों की अनुपम सुन्दरी, श्रेष्ठ, गुणी, सुशीला, धार्मिक, पतिव्रता पत्नियां थीं। वे सभी नवयौवना, स्थूल श्रोणी तथा स्थूल स्तनों वाली, दिव्यवस्त्रधारिणी, नाना अलंकारभूषिता, तप्तस्वर्णवत् कान्तिवाली, खिले कमल जैसे मुख वाली थीं तथा अपनी तिरछी चितवन से मुनिगण का भी मन मोहने में समर्थ थीं। उन स्त्रियों के उत्तम स्तन, श्रोणि, मुख देखकर कामाग्नि से पीड़ित अग्निदेव ने उनकी कामना किया था।।७७-८०।।

अग्निस्थानस्थितानां च शिखया सुरतोन्मुखः।
स्पृष्ट्वा चाङ्गानि तासां च बभूव हतचेतनः॥८१॥
पतिव्रता न जानन्ति पतिपादाब्जमानसाः।
अग्निरङ्गानि तासां च दर्शं दर्शं मुमोह च॥८२॥

एक बार अग्निदेव इन स्त्रियों से सुरतक्रीड़ा करने के लिये उत्सुक हो गये। उन्होंने पाकशाला में अपनी अग्निशिखा से इनके अंगों का जैसे ही स्पर्श किया, वे चेतना रहित हो गये। पति के चरणों का एकाग्रचित्त से चिन्तन करने वाली ये पतिव्रता स्त्रियां यह सब तनिक भी नहीं जान सकीं! अग्निदेव इनके अंगों को देख-देखकर बारम्बार मोहग्रस्त हो रहे थे!।।८१-८२।।

वह्नेश्च मानसं ज्ञात्वा भगवानङ्गिरा मुनिः। शशाप तं चेत्युवाच सर्वभक्षो भवेति ह॥८३॥
वह्निः सचेतनो भूत्वा तुष्टाव मुनिपुङ्गवम्। व्रीडया नम्रवदनश्चकम्पे ब्रह्मतेजसा॥८४॥

क्रुद्धो मुनिवरः स्पृष्टाः कामिन्यश्च शशाप ह।
यात यूयं पापयुक्ता मानुषीं योनिमेव च॥८५॥
भारते ब्राह्मणानां च गृहे लभत जन्म वै।
करिष्यन्ति विवाहं च युष्माकं कुलजा द्विजाः॥८६॥

भगवान् अङ्गीरा मुनि ने अग्नि के मन के इस विकार को जानकर उनको यह शाप दिया "तुम आज से सर्वभक्षी हो जाओ।" जब अग्नि इस मोह से जागे तब वे उन मुनिपुंगव की स्तुति करने लगे। तदनन्तर ऋषि अंगीरा के ब्रह्मतेज से भयकंपित होकर तथा लज्जित होकर वे नतमस्तक हो गये। उधर क्रोधित मुनि ने अग्नि स्पर्शयुता उन स्त्रियों को शाप दिया कि "तुम सभी पापयुक्त हो। मनुष्य योनि प्राप्त करो। भारत में ब्राह्मणगृह में जन्म लो। तुम लोगों का विवाह उत्तम कुल के ब्राह्मणों से होगा।"।।८३-८६।।

श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्ताश्च रुरुदुः प्रेमविह्वलाः।
पुटाञ्जलियुताः सर्वा ऊचुस्तं विदुषां वरम्॥८७॥

मुनिपत्नियां मुनि अंगीरा का यह शाप सुनकर प्रेमविह्वल स्थिति में रुदनरत हो गईं। वे सभी करवद्ध स्थिति में होकर उन श्रेष्ठ विद्वान् मुनि से कहने लगीं–।।८७।।

मुनिपत्न्य ऊचुः

न त्यजास्मान्मुनिश्रेष्ठ निष्पापाश्च प्रतिव्रताः।
अजानन्त्यः परस्पृष्टा न च नस्त्यक्तुमर्हसि॥८८॥
भक्तानां किङ्करीणां च न दण्डं कर्तुमर्हसि।
युष्माकं चरणाम्भोजं कदा द्रक्ष्यामहे वयम्॥८९॥
खड्गच्छेदाद्वज्रपातात्सर्वप्रहरणान्मुने। दारुणः कान्तविच्छेदः साध्वीनां दुःसहः सदा॥९०॥
ब्रह्मिष्ठानां गुणवतां परान्कान्तान्महामुनीन्।
एवंभूतान्कथं त्यक्त्वा यास्यामः पृथिवीतलम्॥९१॥
यास्यामो यदि विप्रेश कदाऽत्राऽऽगमनं वद।
अज्ञानस्पर्शदोषश्च न स्यान्नो विधिबोधितः॥९२॥

मुनि पत्नियां कहती हैं–हे मुनिप्रवर! आप सप्तर्षिगण हमारा त्याग न करिये; क्योंकि हम सभी पाप रहित एवं पतिव्रता हैं। अनजाने में अन्य पुरुष का स्पर्श घटित हो गया। हम सभी आपकी भक्त तथा किंकरी हैं। हमें दण्ड देना कदापि उचित नहीं है। अब हमें आप लोगों के चरणों का दर्शन कब मिलेगा। हे मुनिवर! खड्ग का आघात, वज्राघात, अन्य सब प्रकार के प्रहार की तुलना में पतिव्रता के लिये पति विच्छेद दारुण दुःसह दुःख है। हम सब आप लोगों के समान गुणी, श्रेष्ठ महामुनिरूपी स्वामियों को छोड़कर कैसे पृथिवीलोक में जा सकेंगी? हे विप्रेन्द्र! यदि हमें जाना ही पड़ेगा, तब यह कहें कि हम कब यहां पुनः आ सकेगीं? यह स्पर्श अनजाने में हुआ है। अतः स्पर्शदोष की हम भागी नहीं हैं। यह विधिसम्मत है।।८८-९२।।

अहल्यया पुनः प्राप्तः स्वामीन्द्रस्य प्रधर्षणात्।
सा संभोगात्पुनः शुद्धा स्पर्शनाद्वर्जिता वयम्॥९३॥
विचारं कुरु धर्मिष्ठ वेदवेदाङ्गपारग। विश्वकर्तुश्च पुत्रस्त्वं सर्ववेदविदां वर॥९४॥
अन्येषां च भयात्कान्ता व्रजन्ति शरणं पतिम्।
स्वकान्तभयसंविग्नाः शरणं कं व्रजन्ति ताः॥९५॥

अहल्या ने इन्द्र के द्वारा उपभोग किये जाने के उपरान्त भी पुनः अपने पति को प्राप्त कर लिया था। वह तो इन्द्र के द्वारा संभोग किये जाने पर भी शुद्ध हो गई, जबकि हम अनजाने में किये गये स्पर्श के कारण त्यागी जा रही हैं? हे धर्मिष्ठ! आप तो वेद-वेदांग में निष्णात हैं। आप विचार करिये। आप जगत् रचयिता के पुत्र तथा वेदज्ञों में श्रेष्ठ हैं। अन्य के द्वारा जब स्त्रियां भयग्रस्त होती हैं, तब वे पति

की शरण ग्रहण करती हैं। जब हमें अपने पति से ही भय प्राप्त हो, तब हम किसी शरण में जायें?।।९३-९५।।

अभयं देहि धर्मिष्ठ भययुक्ताभ्य एव च।
पुत्रे शिष्ये कलत्रे च को दण्डं रक्षितुं क्षमाः।।९६।।
दुर्बलः सबलो वाऽपि स्ववस्तूनामपीश्वरः।
स्वद्रव्यविक्रयं कर्तुं न चान्यो रक्षितुं क्षमः।।९७।।

हे धर्मात्मा! आप हम भयग्रस्त स्त्रियों को अभय दीजिये। पुत्र-शिष्य तथा पत्नी को दण्डित करने पर कौन रक्षा करेगा? सबल हो, किंवा दुर्बल हो, अपनी वस्तु पर सभी का प्रभुत्व रहता है। जब वह चाहे अपनी वस्तु का विक्रय कर सकता है, उसकी वस्तु की अन्य कोई रक्षा नहीं कर सकता।।९६-९७।।

कामिनीनां वचः श्रुत्वा दयालुर्मुनिपुङ्गवः।
प्रेम्णा रुरोद तासां च निरीक्ष्य मुखपङ्कजम्।।९८।।
वेदवेदाङ्गपारज्ञो ज्ञानिनां योगिनां वरः। पत्नीविच्छेदविषये मूर्च्छां प्राप तथापि सः।।९९।।
सर्वे बभूवुः शोकार्ता विरहोद्विग्नमानसाः।
निरीक्ष्य तासां वक्त्राणि तस्थुः पुत्तलिका यथा।।१००।।
कृत्वा विलापं सुचिरं सर्ववेदविदां वरः।
भ्रातृभिश्च सहाऽऽलोच्यता उवाच शुचाऽऽतुरः।।१०१।।

वे दयालु मुनिप्रवर स्त्रियों का कथन सुनकर तथा उनका दुःखी मुख देखकर प्रेम में भरकर रुदन करने लगे। यद्यपि वे वेद-वेदांग पारंगत, ज्ञानी तथा योगीप्रवर थे, तथापि पत्नी विच्छेद के कारण मूर्च्छित से हो गये। सर्ववेदविद् लोगों में श्रेष्ठ ऋषि अंगीरा ने शोक में भरकर देर तक विलाप किया। तदनन्तर भ्रातागण के साथ विचार करके शोकातुर स्त्रियों से कहा-।।९८-१०१।।

अङ्गिरा उवाच

यूयं शृणुत वक्ष्यामि वचनं सत्यमेव च।
स्वकर्मभोगिनां भोगमाकर्माच्च श्रुतौ श्रुतम्।।१०२।।
गतो भोगश्च युष्माकमस्माभिः सह निश्चितम्।
गते भोगे पुनर्भोगो न हि वेदे निरूपितः।।१०३।।

ऋषि अङ्गीरा कहते हैं-तुम लोग मेरी सत्य बात को सुनो! स्वकर्मभागी प्राणी को कर्मक्षय होने तक भोग भोगना पड़ता है। यही श्रुति का कथन है। इस समय हमारे सहित जो तुम लोगों का भोग था, उसका अवसान हो रहा है। जब भोग नष्ट हो जाता है, तब पुनः उस कर्म का भोग नहीं भोगना होता। यह वेदों का कथन है।।१०२-१०३।।

शुभाशुभं च यत्कर्म भारते कृतिभिः सह।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि॥१०४॥
परभुक्तां च कान्तां च यो भुङ्क्ते स नराधमः।
स पच्यते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥१०५॥
न सा दैवे न सा पैत्र्ये पाकार्हा पापसंयुता।
तस्या आलिङ्गने भर्ता भ्रष्टश्रीस्तेजसा हतः॥१०६॥
देवताः पितरस्तस्य हव्यदाने च तर्पणे।
सुखिनो न भवन्त्येवमित्याह कमलोद्भवः॥१०७॥

भारत में जो कुछ शुभाशुभ कर्म किया जाता है, वह फल भोगे बिना कदापि शतकोटि कल्प में भी नष्ट नहीं होता। जो व्यक्ति अन्य द्वारा भोगी नारी का भोग करता है, वह नराधम चन्द्र-सूर्य की स्थिति पर्यन्त कालसूत्र नरक में यन्त्रणा भोग करता है। वह पापिनी नारी दैव किंवा पितृ कार्य में पाक करने योग्य नहीं रहती। उसका आलिंगन करने से पति की श्री तथा तेज का नाश होता है। स्वयं ब्रह्मा ने कहा है कि अन्य द्वारा भोगी गयी स्त्री का आलिंगन करने वाले का हव्यदान देवता ग्रहण नहीं करते। उससे उनको सन्तोष नहीं होता। उसका तर्पित जल भी पितरों को सन्तुष्ट नहीं करता!।।१०४-१०७।।

तस्माद्यत्नेन भार्याया रक्षणं कुरुते सुधीः।
अन्यथा पापभाग्भर्ता निश्चितं नरकं व्रजेत्॥१०८॥
पदे पदे सावधानः कान्तां रक्षिति पण्डितः।
न व्रती न स्थली योषा दोषाणां च करण्डिका॥१०९॥

अतः विद्वान् लोग सर्व प्रकार से पत्नी की रक्षा करते हैं। जो ऐसा नहीं करता वह निश्चित रूप से पापभागी होकर नरकगामी हो जाता है। तभी विद्वान् लोग प्रति पग पर सावधानी से पत्नी की रक्षा करते हैं; क्योंकि रमणी दोष की आधार होती है। वह विश्वास का स्थान नहीं होती। अर्थात् उसे व्रत तथा स्थल का ज्ञान नहीं होता।।१०८-१०९।।

कलत्रं पाकपात्रं च सदा रक्षितुमर्हसि। परस्पर्शादशुद्धां च शुद्धां स्वस्पर्शने सदा॥११०॥
स्वकान्तं च परित्यज्य परं गच्छति याऽधमा।
कुम्भीपाकं सा प्रयाति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥१११॥
तामेव यमदूताश्च संस्थाप्य नरकान्तरे। उत्तिष्ठति विदूराच्चेत्कुर्वन्ति दण्डताडनाम्॥११२॥

अतः पत्नी तथा भोजन पाक करने वाले पात्र की सदा रक्षा करें। वह अन्य के स्पर्श से अशुद्ध हो जाती है। वह अपनों के स्पर्श से शुद्ध रह पाती है। जो नारी अपने पति को धोखा देकर अन्य कां अवलम्बन लेती है, वह अधमा है। वह चन्द्र-सूर्य की सृष्टि में स्थिति काल तक कुंभीपाक नरक में

रहती है। यमदूतगण उसे इस नरक में क्लेशवशात् उठने पर उसे अन्य नरक में फेंक देते हैं। वहां से निकलने का प्रयास करने पर उस पर दण्डाघात करते हैं।।११०-११२।।

सर्पप्रमाणाः कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्राः सुदारुणाः।
दशन्ति पुंश्चलीं तत्र सततं च दिवानिशम्।।११३।।
विकृताकारशब्दं च करोति शाश्वतं भिया। न ममार प्रहारेण सूक्ष्मदेहविधारिणी।।११४।।

उस व्यभिचारिणी को नरक में सर्प जैसे तीखी दाढ़ों वाले भयानक कीट सतत् काटते हैं। वह भयभीत होकर विकृत शब्द सदा करती रहती है। उसे सूक्ष्म यातना शरीर मिला रहता है। अतः नाना कष्ट एवं प्रहार से भी वह मृत नहीं होती।।११३-११४।।

मुहूर्तार्धं सुखं भुक्त्वा लोकेऽत्र यशसा हता।
पतिता परलोके च गतिमेतादृशीं लभेत्।।११५।।
परस्पृष्टा च वै नारी या स्पृहां कुरुते परम्।
साऽपि दुष्टा परित्याज्या चेत्याह कमलोद्भवः।।११६।।
तस्मान्नारी परैर्यत्नाददृष्टा कृतिभिः कृता।
असूर्यंपश्या या दाराः शुद्धास्ताश्च पतिव्रताः।।११७।।

व्यभिचारिणी स्त्रियां क्षणकालिक सुख की लालसा के वश में होकर, पापिनी होकर परलोक में ऐसी दशा भोगती हैं। अन्य पुरुष द्वारा स्पर्श की गई नारी अथवा परपुरुष की कामना करने वाली नारी, ये दोनों ही दुष्टा एवं त्याज्य हैं। यह ब्रह्मा का कथन है। इसीलिये विद्वानों ने प्रयत्नतः स्त्रियों के लिये यह नियम बनाया है कि अन्य उसे न देख सकें। जो नारी परदे में रहने के कारण सूर्य को भी न देख सके, वही शुद्धा तथा पतिव्रता है।।११५-११७।।

स्वच्छन्दगामिनी या च स्वतन्त्रा सूकरीसमा।
अन्तर्दुष्टा सदा सैव निश्चितं परगामिनी।।११८।।
स्वामिसाध्या च या नारी कुलधर्मभिया स्थिता।
कान्तेन सार्धं सा कान्ता वैकुण्ठं याति निश्चितम्।।११९।।
यात यूयं च पृथिवीं मानुषीं योनिमीप्सिताम्।
कृष्णदर्शनमात्रेण गोलोकं यास्यथ ध्रुवम्।।१२०।।

जो स्वेच्छाचारिणी तथा स्वतन्त्र नारी है, वह तो शूकरी के समान है। परगामिनी नारी अन्दर से (मन से) सदा दुष्टा होती है। जा कुलधर्म से भयभीत होकर पति के वशीभूत रहती है, वह नारी पति सहित वैकुण्ठधाम जाती है। यह निश्चित है। अब तुम सभी धरती पर मनुष्य योनि में जन्म लेकर श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से गोलोक जाओगी।।११७-१२०।।

हरिणा निर्मिताश्छाया युष्माकं योगमायया।
ता विप्रमन्दिरे स्थित्वा चाऽऽगमिष्यन्ति नो ध्रुवम्॥१२१॥
पुनरंशेन नः पत्न्यो भविष्यथ न संशयः।
युष्माकं मम शापश्च बभूव च वराधिकः॥१२२॥

तदनन्तर श्रीहरि योगमाया द्वारा तुम लोगों की छाया का निर्माण करेंगे। तुम लोगों का छायारूप कुछ समय उन ब्राह्मणों के गृह में रहकर पुनः हमारे पास चला आयेगा। तब तुम लोग अपने अंश रूप से हम लोगों की पत्नी होगी। यह संदेह रहित बात है। मैंने जो शाप दिया है, वह तो इस प्रकार वरदान से भी अधिक होगा।।१२१-१२२।।

इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम शुचाऽन्वितः।
ता आगत्य महीं शापाद्बभूवुर्विप्रयोषितः॥१२३॥
दत्त्वाऽन्नं हरये भक्त्या प्रजग्मुर्हरिमन्दिरम्।
बभूव निश्चितं तासां शापश्च सम्पदोऽधिकः॥१२४॥

यह कहकर शोकमग्न मुनि मौन हो गये। इस शाप के कारण वे सप्तर्षि पत्नियां पृथिवी पर ब्राह्मण पत्नियां हो गईं। वे प्रभु को भोजन अर्पित करके उनके धाम चली गई। तभी यह शाप उनके लिये वर से भी श्रेष्ठ हो गया।।१२३-१२४।।

निन्द्या नीचाच्च सम्पत्तिर्विपत्तिर्महतो बरा।
अहो सद्यः सतां कोपश्चोपकाराय कल्पते॥१२५॥
विना विपत्तेर्महिमा कुतः कस्य भवेद्भुवि।
भूताः कान्तपरित्यागान्मुक्ता ब्राह्मणयोषितः॥१२६॥

यदि कोई निन्दनीय व्यक्ति सम्पदा भी देता है, वह लेना निन्दनीय है। परन्तु महान् व्यक्ति से प्राप्त विपत्ति भी श्रेष्ठ होती है। साधु का किया क्रोध भी उपकार का कारण होता है। इस धरती पर जिसने विपत्ति झेला, उसी की महिमा वृद्धि होती है। पति द्वारा त्यागी गई इन स्त्रियों ने जब मुक्तिलाभ कर लिया, तब पृथिवी पर विपत्ति झेले बिना यशलाभ कैसे होगा?।।१२५-१२६।।

इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमुत्तमम्। अहो पुण्यवतीनां च मोक्षाख्यानं मनोहरम्॥१२७॥

श्रीकृष्णाख्यानं विप्रेन्द्र नूत्नं नूत्नं पदे पदे।
नहि तृप्तिः श्रुतवतां केन श्रेयसि तृप्यते॥१२८॥
यावद्रम्यं तत्कथितं यच्छ्रुतं गुरुवक्त्रतः।
वद मां वाञ्छितं यत्ते किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१२९॥

इस प्रकार मैंने परम उत्तम हरिचरित कह दिया, जिसमें पुण्यवती नारियों का मोक्ष सम्बन्धित

उपाख्यान भी है, जो अत्यन्त मनोहर हैं। कृष्ण का आख्यान तो पग-पग पर नित्य नवीन है। इसे सुनकर तृप्ति नहीं होती और सुनने की आकांक्षा बनी रहती है। कौन ऐसा व्यक्ति है, जो श्रेय प्राप्ति से तृप्त हो जाये? उसकी तो सतत् श्रेयलाभ की आकांक्षा बढ़ती जायेगी। मैंने गुरु से जो सुना था, उतना यह रम्य वृत्तान्त तुमसे कह दिया। अब तुम अपनी इच्छा कहो कि और क्या सुनना चाहते हो।।१२७-१२९।।

नारद उवाच

यद्यच्छ्रुतं त्वया पूर्वं गुरुवक्त्रात्कृपानिधे। मङ्गलं कृष्णचरितं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो।।१३०।।

देवर्षि नारद कहते हैं-हे कृपानिधि! हे जगद्गुरु! आपने पूर्वकाल में गुरु से जो कुछ कृष्णचरित सुना था, वह कृपया कहिये।।१३०।।

सूत उवाच

श्रुत्वा देवर्षिवचनमृषिर्नारायणः स्वयम्। अपरं कृष्णमाहात्म्यं प्रवक्तुमुपचक्रमे।।१३१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० विप्रपत्नीमोक्षणप्रस्तावो नामाष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

—※※※—

सूत जी कहते हैं-देवर्षि नारद का यह कथन सुनकर ऋषि प्रवर नारायण ने स्वयं कृष्ण का अन्य माहात्म्य कहना प्रारम्भ कर दिया।।१३१।।

।।१८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

एकोनविंशोऽध्यायः

कालियनाग दमन, कालियकृत श्रीकृष्ण स्तव, दावाग्नि मोक्षण, गोप-गोपीकृत कृष्ण-स्तोत्र का वर्णन

नारायण उवाच

एकदा बालकैः सार्धं बलदेवं विना हरिः। जगाम यमुनातीरं यत्र कालियमन्दिरम्।।१।।
परिपक्वफलं भुक्त्वा यमुनातीरजे वने। स्वेच्छामयस्तृट्परीतः पपौ च निर्मलं जलम्।।२।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं-एक बार कृष्ण-बलराम बालकों को लिये बिना यमुनातट गये जहां कालिय का निवास था। तदनन्तर स्वेच्छामय कृष्ण ने यमुनातटस्थ स्थान पर यमुना का निर्मल जल तटस्थ वन के फलों को खाकर पान किया।।१-२।।

गोकुलं चारयामास शिशुभिः सह कानने।
विजहार च तैः सार्धं स्थापयामास गोकुलम्॥३॥
क्रीडानिमग्नचित्तोऽयं बालकाश्च मुदाऽन्विताः।
भुक्त्वा नवतृणं गावो विषतोयं पपुर्मुने॥४॥
विषाक्तं च जलं पीत्वा दारुणान्तकचेष्टया[1]।
ज्वालाभिः कालकूटानां सद्यः प्राणांश्च तत्यजुः॥५॥

वे वन में बालकों सहित गोचारण करने लगे। तदनन्तर गौओं को गोकुल में एक साथ झुण्ड में रखकर क्रीड़ा करने लगे। इसमें बालकगण-अत्यन्त प्रसन्न थे। हे मुनिवर! गौओं ने नव तृण चरकर यमुना का कालिय विषव्याप्त जल पी लिया। भयानक काल से प्रेरित गौओं ने उस महाविषाक्त जल को पी लिया था। उस कालकूट जैसे विष की ज्वाला से सन्तप्त गौयें अपने प्राणों को खो बैठीं!॥३-५॥

दृष्ट्वा मृतं गोसमूहं गौपाश्चिन्ताकुला भिया। विषण्णवदनाः सर्वे तमूचुर्मधुसूदनम्॥६॥
ज्ञात्वा सर्वं जगन्नाथो जीवयामास गोकुलम्।
उत्तस्थुस्तत्क्षणं गावो ददृशुः श्रीहरेर्मुखम्॥७॥
कृष्णः कदम्बमारुह्य यमुनातीरनीरजम्। पपात सर्पभवने नागमध्ये नराकृतिः॥८॥

गौओं को मृत देखकर गोप बालक चिन्तातुर हो गये। उन्होंने उदास तथा भयातुर होकर कृष्ण से यह कहा—जगन्नाथ कृष्ण ने समस्त घटना जानकर गौओं को जीवन प्रदान कर दिया। वे गौयें पुनर्जीवित होकर उठीं तथा कृष्ण को देखने लगीं। तभी यमुना तटस्थ कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर मनुष्यरूपी कृष्ण सर्प के स्थान पर यमुना में कूद पड़े॥६-८॥

शतहस्तप्रमाणं च जलोत्थानं बभूव ह। बाला हर्षं विषादं च मेनिरे तत्र नारद॥९॥
सर्पो नराकृतिं दृष्ट्वा कालीयः क्रोधविह्वलः।
जग्राह श्रीहरिं तूर्णं तप्तलोहं यथा नरः॥१०॥
दग्धकण्ठोदरो नागश्चोद्विग्नो ब्रह्मतेजसा।
प्राणा यान्त्येवमुक्त्वा च चकरोद्वमनं पुनः॥११॥

हे नारद! इससे जल १०० हाथ ऊपर तक उछला। यह देखकर बालकों को एक साथ हर्ष तथा विषाद, इन दोनों का अनुभव हो गया। उधर कालिय नाग एक नराकृति को वहां देखकर अत्यन्त क्रोधित हो उठा। उसने बिना विचार किये श्रीकृष्ण को तत्काल निगल लिया। परन्तु अत्यन्त तप्त लौह के निगलने पर जो अनुभव होता है, वही उसे भगवान् के ब्रह्मतेज के कारण होने लगा। उस नाग को कण्ठ तथा उदर में दग्ध जैसा होने का जब अनुभव हुआ तब उसने विचार किया कि अब मेरे प्राण ही निकलने वाले हैं, अतः उसने भगवान् को पुनः उगल दिया॥९-११॥

१. क. ०न्तरचे०।

भग्नदन्तो रक्तमुखः कृष्णवज्राङ्गचर्वणात्।
रक्तवक्त्रस्य भगवानुत्तस्थौ मस्तकोपरि॥१२॥

कृष्ण के वज्र के समान अंगों को चबाने के कारण कालिय के दांत भग्न हो गये। उसका मुख उसके ही रक्त से भर गया। तभी भगवान् कृष्ण उस नाग के मस्तक पर स्थित हो गये॥१२॥

नागो विश्वंभराक्रान्तः स प्राणांस्त्यक्तुमुद्यतः। चकार रक्तोद्वमनं पपात मूर्च्छितो मुने॥१३॥
दृष्ट्वा तं मूर्च्छितं नागा रुरुदुः प्रेमविह्वलाः।
केचित्पलायिता भीताः केचित्प्रविविशुर्बिलम्॥१४॥

अब विश्वंभर प्रभु के भार से आक्रान्त होने के कारण नाग की स्थिति ऐसी हो गई कि उसके प्राण निकलने लगे। हे मुनिवर! वह रक्त वमन करता मूर्च्छित होकर गिर गया। उसे मूर्च्छित देखकर उसके अनुगत नागगण प्रेमविह्वल होकर रोने लगे। कुछ डरकर इधर-उधर भाग गये, जबकि कुछ बिलों में जाकर छिप गये!॥१३-१४॥

मरणाभिमुखं कान्तं दृष्ट्वा सा सुरसा सती। नागिनीभिः सह प्रेम्णा रुरोद पुरतो हरेः॥१५॥
पुटाञ्जलियुता तूर्णं प्रणम्य श्रीहरिं भिया।
धृत्वा पादारविन्दे च तमुवाच भियाऽऽकुला॥१६॥

यह देखकर कि उसका पति कालिय मरणासन्न है, उसकी साध्वी पत्नी सुरसा प्रेम के कारण अन्य नागिनियों के साथ हरि के सामने आकर रुदन करने लगी। उसने भयाकुल चित्त से हाथ जोड़कर श्रीहरि को प्रणाम किया तथा प्रभु श्रीकृष्ण का चरण पकड़ कर कहने लगी-॥१५-१६॥

सुरसोवाच

हे जगत्कान्त कान्तं मे देहि मानं च मानद।
पतिः प्राणाधिकः स्त्रीणां नास्ति बन्धुश्च तत्परः॥१७॥
सकलभुवननाथ प्राणनाथं मदीयं न कुरु वधमनन्त प्रेमसिन्धो सुबन्धो।
अलिखभुवनबन्धो राधिकाप्रेमसिन्धो पतिमिह कुरु दानं ते विधातुर्विधातः॥१८॥

सुरसा कहती है-हे जगत्कान्त! मानद! मेरे पति को प्रदान करिये। स्त्रियों के लिये तो पति प्राणों से बढ़कर होता है। पति के समान उसका परमबन्धु अन्य कोई नहीं होता। हे प्रभो! आप तो अनन्त प्रेमसागर स्वरूप हैं। आप श्रेष्ठ देवगण के स्वामी हैं। आप प्रेमसिन्धु सुबन्धु हैं। आप अखिल जगत् के बन्धु हैं। आप मेरे प्राणप्रिय पति को प्राणहीन न करें। हे राधिका प्रेमसिन्धु! आप विधाता ब्रह्मा के भी विधाता हैं। आप मेरे पति को जीवन दान दीजिये॥१७-१८॥

त्रिनयनविधिशेषा षण्मुखश्चा[1]ऽऽस्यसंघैः स्तवनविषयजाड्यात्स्तोतुमीशा न वाणी।
न खलु निखिलवेदाः स्तोतुमन्येऽपि देवाः स्तवनविषयशक्ताः सन्ति सन्तस्तवैव॥१९॥

१. क० ०श्चान्यसं०।

कुमतिरहमधिज्ञा योषितां क्वाधमा वा क्व भुवनगतिरीशश्चक्षुषो गोचरो मे।
विधिहरिहरशेषैः स्तूयमानश्च यस्त्वमतनुमनुजमीशं स्तोतुमिच्छामि तं त्वाम्॥२०॥

हे देव! विश्वनाथ! जब महादेव, ब्रह्मा, अनन्त, षडानन, सरस्वती, समस्त वेद भी आपकी स्तुति करने में जड़ (अक्षम) हैं, तब अन्य कौन है, जो आपकी स्तुति कर सकेगा? हे नाथ! तब स्त्रियों में अधम, अज्ञ कुमति मेरी क्या गणना? कहां मैं और कहां इन्द्रियों से अतीत त्रिभुवनपति आप परमेश्वर! फलतः मुझ जैसी नीच के लिये तो आपका दर्शन लाभ होना नितान्त असंभव है। आप तो सदा ब्रह्मा, हरि, हर, अनन्त प्रभृति देवगण द्वारा तथा मनु, मनुज एवं मुनीन्द्रों द्वारा स्तुत होते रहते हैं, तब मैं आपका स्तव करने का साहस कैसे कर सकती हूं? निराकार तथा अब मनुष्यरूपधारी आप परमेश्वर की स्तुति करने की इच्छा करती हूं, यह तो एक विडम्बना ही है!॥१९-२०॥

स्तवनविषयभीता पार्वती यस्य पद्मा श्रुतिगणजनयित्री स्तोतुमीशा न यं त्वाम्।
कलिकलुषनिमग्ना वेदवेदाङ्गशास्त्रश्रवणविषयमूढा स्तोतुमिच्छामि किं त्वाम्॥२१॥

जिनकी स्तुति कर सकने में पार्वती, लक्ष्मी, वेदमाता सावित्री तक असमर्थ हैं तथा भयभीत रहती हैं, उन आप परमेश्वर की स्तुति में कलिकलुष में मग्न तथा वेद-वेदाङ्ग एवं शास्त्र श्रवण से रहित मैं मूढा नारी कैसे कर सकती हूं? क्यों ऐसा करने की मेरी इच्छा हो रही है? इसका कारण समझ में नहीं आ रहा है॥२१॥

शयानो रत्नपर्यङ्के रत्नभूषणभूषितः। रत्नभूषणभूषाङ्गी राधावक्षसि संस्थितः॥२२॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः स्मेराननसरोरुहः। प्रोद्यप्रेत्मरसाम्भोधौ निमग्नः सततं सुखात्॥२३॥
मल्लिकामालमतीमालाजालैः शोभितशेखरः। पारिजातप्रसूनानां गन्धामोदितमानसः॥२४॥
पुंस्कोकिलकलध्वानैर्भ्रमरध्वनिसंयुतैः। कुसुमेषुविकारेण पुलकाङ्कितविग्रहः॥२५॥
प्रियाप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवान्यः सदा मुदा।
वेदा अशक्ता यं स्तोतुं जडीभूता विचक्षणाः॥२६॥
तमनिर्वचनीयं च किं स्तौमि नागवल्लभा। वन्देऽहं त्वत्पदाम्भोजं ब्रह्मेशशेषसेवितम्॥२७॥
लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गाजाह्नवीवेदमातृभिः। सेवितं सिद्धसंघैश्च मुनीन्द्रैर्मनुभिः सदा॥२८॥
निष्कारणायाखिलकारणाय सर्वेश्वरायापि परात्पराय।
स्वयंप्रकाशाय परावराय परावराणामधिपाय ते नमः॥२९॥

हे मुनि! जो रत्नभूषणों से भूषित रत्नपर्यंकशायी हैं (रत्नों की शय्या पर सोने वाले हैं), जो रत्नभूषणभूषिता राधा के वक्षस्थल में निवास करते हैं, जिनका सर्वांग चन्दन चर्चित रहता है, जिनके मुखकमल पर सदा मन्द मुस्कान विराजमान रहती है, जो सर्वदा सुख पूर्वक प्रेमरस सागर में निमग्न रहने वाले हैं, जिनका जूड़ा मल्लिका तथा मालती माला से गुंथा शोभान्वित है, जिनका मन पारिजात पुष्पों के सौरभ से आनन्दाप्लुत है, नर कोकिलों की कूक तथा भ्रमर गुंजार ध्वनि सुनकर कामविकार

से जिनका शरीर रोमाञ्चित है, जो निरन्तर प्रिया प्रदत्त ताम्बूल चर्वण करते सुख पूर्वक काल व्यतीत करते हैं, जो ब्रह्मा, महादेव तथा अनन्तदेव द्वारा भी वन्दनीय हैं, मैं उन परमेश्वर के चरणकमलों की वन्दना करती हूं। वेद भी जिनकी स्तुति नहीं कर पाते, सभी विद्वान् जिनकी स्तुति कर सकने में अक्षम हैं, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, जाह्नवी, सावित्री, सिद्धगण, मनु, मुनीन्द्रगण जिनकी निरन्तर सेवा करते रहते हैं, वे काम रहित, सर्वकारण के भी कारण, सर्वेश्वर, परात्पर, स्वप्रकाश, श्रेष्ठ, श्रेष्ठतरों के भी स्वामी आप प्रभु को मेरा प्रणाम!।।२२-२९।।

हे कृष्ण हे कृष्ण सुरासुरेश ब्रह्मेश शेषेश प्रजापतीश।
मुनीश मन्वीश चराचरेश सिद्धीश सिद्धेश [1]गणेश पाहि।।३०।।

हे कृष्ण! हे कृष्ण! सुर-असुर सबके स्वामी, ब्रह्मा-शेष-प्रजापति के ईश्वर, मुनि-मनु-सचराचर-सिद्धियों तथा सिद्धों के स्वामी, गणों के स्वामी! आप मेरी रक्षा करिये।।३०।।

धर्मेश धर्मीश शुभाशुभेश वेदेश वेदेष्वनिरूपितश्च।
सर्वेश सर्वात्मक सर्वबन्धो जीवीश जीवेश्वर पाहि मत्प्रभुम्।।३१।।

हे सर्वेश! सर्वात्मक प्रभो! आप ही धर्म तथा धर्मी हैं। आप ही शुभ एवं अशुभ हैं तथा आप ही वेदेश्वर हैं। वेदों द्वारा भी आपका सम्यक् निरूपण नहीं हो सका। आप ही जीव एवं जीवी के नियन्ता, सबके बन्धु हैं। आप मेरे स्वामी की रक्षा करिये।।३१।।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरा। विधृत्य चरणाम्भोजं तस्थौ नागेशवल्लभा।।३२।।
नागपत्नीकृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
सर्वपापात्प्रमुक्तस्तु यात्यन्ते श्रीहरेः पदम्।।३३।।
इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद्ध्रुवम्। लभते पार्षदो भूत्वा सालोक्यादिचतुष्टयम्।।३४।।

नागपत्नी यह स्तव करके भक्ति से अवनत मस्तक होकर स्तव करने लगी। तदनन्तर वह कृष्ण के चरणों को पकड़ कर वहीं बैठ गई। जो व्यक्ति तीनों सन्ध्याकाल में नागपत्नी कृत यह स्तोत्र पाठ करता है, वह सर्वपातक रहित होकर अन्त में हरिलोक गमन करता है। वह इहलोक में हरिभक्ति पाकर परलोक में हरि का दासत्व पाकर उनका पार्षद हो जाता है। उसे सालोक्यादि चतुर्विध मुक्ति प्राप्त हो जाती है।।३२-३४।।

नारद उवाच

नागपत्नीवचः श्रुत्वा भगवान्सर्वनन्दनः। प्रहृष्टोत्फुल्लनयनः किमुवाच हरिः स्वयम्।
कथयस्व महाभाग रहस्यं परमाद्भुतम्।।३५।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाभाग! हरि ने नागपत्नी की प्रार्थना सुनकर उससे क्या कहा? हे महाभाग! वह परमाद्भुत रहस्य कहिये।।३५।।

१. क. गुणे०।

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान्सर्वदर्शनः[१]। उवाच परमात्मानं मधुवृन्दं पदे पदे॥३६॥

सूत जी कहते हैं—नारद का वाक्य सुनकर धर्मनन्दन नारायण ऋषि ने यह अतिमधुर परमाख्यान कहना प्रारंभ किया—॥३६॥

नारायण उवाच

नागपत्नीवचः श्रुत्वा श्रीकृष्णस्तामुवाच ह। पुटाञ्जलियुतां पादे पतितां भयविह्वलाम्॥३७॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—श्रीकृष्ण ने नागपत्नी का कथन सुनकर पैरों में हाथ जोड़े पड़ी भयविह्वला नागपत्नी से कहा—॥३७॥

श्रीकृष्ण उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ नागेशे वरं वृणु भंह त्यज। गृहाण कान्तं हे मातर्मद्वरादजरामरम्॥३८॥

कालिन्दीह्रदमुत्सृज्य स्वकीयं भवनं व्रज।
भर्त्रा स्वगोष्ठ्या सार्धं च गच्छ वत्से[२] सुखी भव॥३९॥
अद्य प्रभृति नागेशि भूता कन्या च त्वं मम।
त्वत्प्राणाधिक एवायं जामाता च न संशयः॥४०॥
मत्पादपद्मचिह्नेन गरुडस्त्वत्पतिं शुभे।
कृत्वा च स्तवनं भक्त्या प्रणमिष्यति मत्पदम्॥४१॥

त्यज त्वं गरुडाद्भीतिं शीघ्रं रमणकं व्रज। ह्रदान्निर्गच्छ वत्से त्वं वरं वृणु यथेप्सितम्॥४२॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे नागेश्वरी! उठो! भय त्यागो। वांछित वर मांगो। हे माता! मेरे वर द्वारा अपने अजर-अमर पति को ग्रहण करो। हे वत्से! तुम पति तथा अपने परिवार के साथ इस कालिन्दी ह्रद का त्याग करके स्वेच्छा से अपने स्थान पर चली जाओ। हे नागेशी! तुम आज से मेरी पुत्री हो गई हो। अतः तुम्हारा यह प्राणाधिक पति भी मेरा जामाता हो गया। हे शुभे! अब गरुड़ भी तुम्हारे स्वामी के मस्तक पर मेरा चरणचिह्न देखते ही तुम्हारे स्वामी का स्तव करके उसे प्रणाम करेंगे। हे भद्रे! गरुड़ का भय त्याग कर इस ह्रद से निकलो तथा शीघ्र रमणकद्वीप चली जाओ। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर मांगो॥३८-४२॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा। उवाच साश्रुनेत्रा सा भक्तिनम्रात्मकंधरा॥४३॥

श्रीकृष्ण का यह अभयदान सुनकर सुरसा का चेहरा तथा नेत्र खिल उठा। उसके नेत्र हर्षाश्रु से भर गये। उसने भक्ति से नतशिर होकर श्रीकृष्ण से कहा—॥४३॥

१. क. ०र्वनन्दनः।
२. क. ०से त्वभीप्सितम्।

सुरसोवाच

वरं दास्यसि चेदानीं वरदेश्वर मेऽपि च। त्वत्पादाब्जे दृढां भक्तिं निश्चलां दातुमर्हसि॥४४॥
मन्मनस्त्वत्पदाम्भोजे भ्रमतु भ्रमरो यथा।
तव स्मृतेर्विस्मृतिर्मे कदाऽपि न भविष्यति॥४५॥
स्वकान्ते मम सौभाग्यं कान्तोऽयं ज्ञानिनां वरः।
इत्येवं प्रार्थनीयं च परिपूर्णं कुरु प्रभो॥४६॥

सुरसा कहती है–हे वरदेश्वर! हे पिता! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तब आप अपने चरणों की निश्चला भक्ति मुझे प्रदान करिये। मेरा मन निरन्तर मधुलोलुप भृंग के समान आपके चरण-कमलों पर ही मंडराता रहे। मुझे आपके चरणकमल कदापि विस्मृत न हों। मुझे सदैव पति सौभाग्य प्राप्त हो तथा मेरे पति ज्ञानीगण में श्रेष्ठ हो जायें। हे प्रभो! मेरी यह प्रार्थना आप पूर्ण करें।।४४-४६।।

इत्येवमुक्त्वा सर्पस्त्री प्रतस्थौ पुरतो हरेः। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं ददर्श श्रीहरेर्मुखम्॥४७॥
लोचनाभ्यां पपौ वक्त्रं निमेषरहितं सती। सर्वाङ्गपुलकोद्भिन्ना सानन्दाश्रुपरिप्लुता॥४८॥

यह कहकर वह नागपत्नी श्रीहरि के समक्ष खड़ी होकर शरत्कालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसे प्रभु का मुखमण्डल देखने लगी। उस नागपत्नी ने एक टक दीर्घकाल तक हरि की मुखच्छवि का अवलोकन किया। इस दर्शन से उसका शरीर पुलकित हो उठा। उसके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगा!।।४७-४८।।

सुन्दरं बालकं दृष्ट्वा पुत्रस्नेहं प्रकुर्वती। उवाच पुनरेवेदं भक्त्युद्रेकपरिप्लुता॥४९॥
न यास्यामि रमणकं तत्र नास्ति प्रयोजनम्।
सर्पः करोतु संसारं कुरु मां निजकिंकरीम्॥५०॥
न वाञ्छा मम हे कृष्ण सालोक्यादिचतुष्टये।
त्वत्पदाम्भोजसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम्॥५१॥
विना त्वत्पादसेवां च यो वाञ्छति वरान्तरम्।
भारते दुर्लभं जन्म लब्ध्वाऽसौ वञ्चितः स्वयम्॥५२॥

सुरसा ने परम स्नेह पूर्वक भगवान् की उस बालक मूर्त्ति को पुत्रवत् प्रेम से दर्शन किया। वह भक्ति से सराबोर होकर कृष्ण से कहने लगी–"हे प्रभो! मैं रमणक द्वीप नहीं जाना चाहती। अब संसार से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। सर्पराज कालिय संसार चलायें। आप मुझे सदा के लिये अपनी दासी बना लीजिये। हे कृष्ण! मुझे तो सालोक्यादि चारों मुक्ति भी नहीं चाहिये। वे आपकी चरण सेवा की तुलना में सोलहवां अंश भी नहीं हैं। जो व्यक्ति आपकी चरण सेवा के अतिरिक्त अन्य वर की कामना करता है, वह भारत में दुर्लभ जन्म पाकर भी स्वयं ठगा जाता है।।४९-५२।।

नागपत्न्या वचः श्रुत्वा स्मेराननसरोरुहः। प्रसन्नमानसः श्रीमानोमित्येवमुवाच ह॥५३॥

एतस्मिन्नन्तरे दिव्यः सद्रत्नसारनिर्मितः। आजगाम रथस्तूर्णमुद्दीप्तस्तेजसा मुने॥५४॥
पार्षदप्रवरैर्युक्तो वस्त्रमालापरिच्छदः। शतचक्रो वायुवेगी मनोयायी मनोहरः॥५५॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं श्यामलाः श्यामकिङ्कराः।
प्रणम्य कृष्णं तां नीत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम्॥५६॥

नागपत्नी का कथन सुनकर श्रीकृष्ण का मुखकमल हास्य से खिल उठा। उन्होंने नागपत्नी की प्रार्थना सुनकर वही स्वीकार कर लिया। हे मुनिवर! तभी वहां पर एक उत्तम रत्नों से निर्मित तेज से दीप्त दिव्यरथ आया। यह रथ वस्त्र-माला आदि से सज्जित श्रेष्ठ हरि पार्षदों से युक्त सौ चक्र (पहिया) वाला था, जो वायुवेग वाला, मन की गतियुक्त तथा अत्यन्त मनोहर लग रहा था। प्रभु के श्यामवर्ण पार्षद शीघ्र रथ से उतरे तथा श्रीकृष्ण को प्रणाम करके उन्होंने नागपत्नी को रथ पर बैठाया और उसे गोलोकधाम ले गये।।५३-५६।।

हरिश्छायां विनिर्माय ददौ सर्पाय तेजसा।
स च किंचिन्न बुबुधे मोहितो विष्णुमायया॥५७॥

तत्पश्चात् श्रीहरि ने माया द्वारा नागपत्नी की छाया निर्मित करके उसे कालिय को प्रदान कर दिया। कालिय विष्णुमाया से मोहित होकर कुछ भी जान नहीं सका।।५७।।

अवरुह्य सर्पमूर्ध्नः श्रीकृष्णः करुणानिधिः।
ददौ हस्तं च कृपया शीघ्रं कालियमस्तके॥५८॥
सम्प्राप्य चेतनां सद्यो ददर्श पुरतो हरिम्। पुटाञ्जलियुतां साश्रुपूर्णां च सुरसां सतीम्॥५९॥
प्रणनाम हरिं सद्यो रुरोद प्रेमविह्वलः। भक्त्युद्रेकात्साधुनेत्रां पुलकाङ्कितविग्रहाम्॥६०॥
तूष्णीभूतां च तां दृष्ट्वा समुवाच कृपानिधिः।
यदीश्वरस्य सततं योग्यायोग्ये समा कृपा॥६१॥

तदनन्तर करुणानिधि कृष्ण कालिय के मस्तक से उतरे और कृपा के कारण उन्होंने शीघ्रता से कालिय के मस्तक पर अपना हाथ रख दिया। इससे तत्क्षण कालियनाग चेतनायुक्त हो गया! उसने अपने सामने श्रीहरि को तथा उनके समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी अपनी पत्नी (जो छाया थी) को देखा। यह देखकर कालिय के नेत्र भक्तिभाव के उद्रेक के कारण अश्रुपूर्ण हो गये। उसका शरीर रोमांचित हो उठा। उसने प्रेमविह्वल होकर श्रीहरि को प्रणाम किया तथा रुदन करने लगा। कृपामय कृष्ण सर्प को मौनी देखकर उससे बात करने लगे। परमेश्वर योग्य तथा अयोग्य पर समान रूप से कृपालु हो जाते हैं।।५८-६१।।

श्रीकृष्ण उवाच

वरं वृणु त्वं कालिय यस्ते मनसि वर्तते।
त्वं मे प्राणाधिको वत्स सुखं तिष्ठ भयं त्यज॥६२॥

तस्याहमनुगृह्णामि योऽतिभक्तो ममांशजः।
किञ्चित्तद्दमनं कृत्वा तत्प्रसादं करोम्यहम्॥६३॥
त्वद्वंशजातान्सर्पांश्च हन्ति यो मानवाधमः।
ब्रह्महत्यासमं पापं भविता तस्य निश्चितम्॥६४॥
मत्पादपद्मचिह्ने यः करोति दण्डताडनम्।
द्विगुणं ब्रह्महत्याया भविता तस्य किल्बिषम्॥६५॥
लक्ष्मीर्यास्यति तद्गेहाच्छापं दत्त्वा सुदारुणम्।
वंशायुर्यशसां हानिर्भविता तस्य निश्चितम्॥६६॥
ध्रुवं वर्षशतं कालसूत्रे यास्यति मद्गिरा।
त्वत्प्रमाणा कीटसंघा दंशिष्यन्ति च संततम्॥६७॥
भोगान्ते जन्म लब्ध्वा च तन्मृत्युस्तस्य दंशनात्।
तस्य वंशोद्भवानां च त्वद्वंशाद्भविता भयम्॥६८॥
ये च त्वद्वंशजान्दृष्ट्वा सुपदाङ्कं मदीयकम्।
प्रणमिष्यन्ति भक्त्या ते मुच्यन्ते सर्वपातकात्॥६९॥
गच्छ शीघ्रं रमणकं त्यज भीतिं खगाधिपात्।
मत्पदाङ्कं मूर्ध्नि दृष्ट्वा त्वां भक्त्या प्रणमिष्यति॥७०॥
तव त्वद्वंशजानां च गरुडान्न भयं क्वचित्।
सर्वेषां ज्ञातिसर्पाणां वरोऽद्य भव मद्वरात्॥७१॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे कालिय! जो इच्छा मन में हो, वह वर मांगो। हे वत्स! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। भय त्यागो! सुख से रहो। जो मेरा अंशजात भक्त है, उस पर मैं अनुग्रह करके उसका कुछ दमन करता हूं, (जिससे उसके दोषों का नाश हो जाये) तदनन्तर पुनः उसके प्रति कृपा करता हूं। जो कोई नराधम तुम्हारे वंशोत्पन्न सर्पों का वध करेगा उसे ब्रह्महत्या जैसा पातक लगेगा। जो कोई मेरे चरणचिह्न पर डण्डे का आघात करेगा, उसे तो ब्रह्महत्या से भी दूना पातक लग जायेगा। लक्ष्मी दारुण अभिशाप देकर उसके गृह से चली जायेगी। उसे वंश, आयु तथा यशोहानि सहन करना होगा। वे पापी निश्चित रूप से १०० वर्ष काल सूत्र नरक में दण्ड भोगेंगे। वहां तुम्हारी आकृति वाले कीट उसे डसते रहेंगे। पुनः वे जन्म लेकर उसी सर्प के डसने से प्राण त्याग करेंगे। उस व्यक्ति के वंश से उत्पन्न लोगों को भी सर्पदंश का भय बना रहेगा। जो तुम्हारे वंशोत्पन्न सर्प को देखकर उसके मस्तकस्थ मेरे चरणचिह्न को प्रणाम करेंगे, वे समस्त पातकों से मुक्त हो जायेंगे। अब तुम गरुड़ का भय त्याग कर शीघ्र रमणक द्वीप जाओ। गरुड़ तुम्हारे मस्तक पर मेरा चरणचिह्न देखकर तुमको भक्ति के साथ प्रणाम करेंगे। तुम्हारे वंशजों को भी गरुड़ से भय नहीं होगा। यह मेरा वर है। आज से तुम अपनी जाति के सर्पों में सर्वप्रधान रहोगे।॥६२-७१॥

वरं किमपरं वत्स वाञ्छितं वरयाधुना।
भयं त्यक्त्वा कथय मां त्वदीयं दुःखभञ्जनम्॥७२॥
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा कालियः कम्पितो भिया।
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा तमुवाच भुजङ्गमः॥७३॥

हे वत्स! अब तुमको क्या वर वांछित है, उसे कहो। भय त्याग कर मुझे अपने दुःख का नाश करने वाला मानकर मुझसे कहो। श्रीकृष्ण का कथन सुनकर कालिय भय से कांपता हुआ हाथ जोड़कर कहने लगा–॥७२-७३॥

कालिय उवाच

वरेऽन्यस्मिन्मम विभो वाञ्छा नास्ति वरप्रद।
भक्तिं स्मृतिं त्वत्पदाब्जे देहि जन्मनि जन्मनि॥७४॥
जन्म ब्रह्मकुले वाऽपि निर्यग्योनिषु वा समम्।
तद्भवेत्सफलं यत्र स्मृतिस्त्वच्चरणाम्बुजे॥७५॥
तन्निष्फलः स्वर्गवासो नास्ति चेत्त्वत्पदस्मृतिः।
त्वत्पादध्यानयुक्तस्य यत्तत्स्थानं च तत्परम्॥७६॥
क्षणं वा कोटिकल्पं वा पुरुषायुः क्षयोऽस्तु वा।
यदि त्वत्सेवया याति सफलो निष्फलोऽथवा॥७७॥
तेषां चाऽऽयुर्व्ययो नास्ति ये त्वत्पादाब्जसेवकाः।
न सन्ति जन्ममरणरोगशोकार्तिभीतयः॥७८॥
इन्द्रत्वे वाऽमरत्वे वा ब्रह्मत्वे चातिदुर्लभे।
वाञ्छा नास्त्येव भक्तानां त्वत्पादसेवनं विना॥७९॥
सुजीर्णपटखण्डस्य समं नूतनमेव च।
पश्यन्ति भक्ता किं चान्यत्सालोक्यादिचतुष्टयम्॥८०॥

कालिय कहता है–हे वरप्रद प्रभो! मुझे अन्य वर की इच्छा नहीं है। आपके चरणकमलों के प्रति मेरी भक्ति तथा स्मृति जन्म-जन्मान्तर में बनी रहे। यही वर दीजिये। तभी मेरे जन्म सफल होंगे। जहां आपके चरणों की स्मृति न रहे, ऐसा स्वर्ग निवास भी मेरे लिये निष्फल है। आपके चरणों का चिन्तन करने वाला चाहे जहां भी रहे, वही स्थान उत्तम है। पुरुष की आयु क्षणिक हो किंवा कोटि कल्प की क्यों न हो, यदि वह आयु आपकी सेवा में व्यतीत होती रहे, तभी वह सफल है। अन्यथा वह निष्फल है। जो आपके चरणकमलों की सेवा में निरत है, उनकी आयु क्षयीभूत नहीं होती। जन्म-मरण, रोग-शोकादि का भय उनको नहीं रहता। भक्तों के लिये आपकी चरण सेवा से रहित इन्द्रत्व, अमरत्व

अथवा दुर्लभ ब्रह्मपद की भी कामना नहीं होती। किम्बहुना! आपके भक्त जीर्ण-शीर्ण वस्त्र खण्ड की तरह दुर्लभ नूतन सालोक्यादि चतुर्विध मुक्ति को (उपेक्षा से) देखते हैं।।७४-८०।।

सम्प्राप्तस्त्वन्मनुर्ब्रह्मन्ननन्ताद्यावदेव हि। तावत्त्वद्भावनेनैव त्वद्वर्णोऽहमनुग्रहात्।।८१।।

मां च भक्तमपक्वं वा विज्ञाय गरुडः स्वयम्।
देशाद्दूरं च न्यक्कारं चकार दृढभक्तिमान्।।८२।।
भवता च दृढां भक्तिं दत्त्वा मे वरदेश्वर।
स च उक्तश्च भक्तोऽहं न मां त्यक्तुं क्षमोऽधुना।।८३।।
त्वत्पादपद्मचिह्नाक्तं दृष्ट्वा श्रीमस्तकं मम।
सदोषं गुणयुक्तं मां सोऽधुना त्यक्तुमक्षमः।।८४।।
ममाऽऽराध्याश्च नागेन्द्रा न तद्बाध्योऽहमीश्वर।
भयं न केभ्यः सर्वत्र तमनन्तं गुरुं विना।।८५।।

हे ब्रह्मन्! मैंने अनन्तदेव से आपका मन्त्र लाभ किया था। तभी मैं आपका उस समय ध्यान करते-करते आपकी कृपा से आपके समान कृष्णवर्ण हो गया। दृढ़भक्तिशाली गरुड़ ने मुझे अपक्व (अधकचरा) भक्त जानकर तिरस्कार के साथ भगा दिया था। हे वरदेश्वर! आपने मुझे दृढ़ भक्ति प्रदान कर दिया है, अब तो मैं वैसा ही आपका भक्त हूं, जैसे आपके भक्त गरुड़ हैं। अतएव वे कदापि मेरा भक्षण नहीं कर पायेंगे। अब भले ही मैं गुणयुक्त रहूं अथवा दोषयुक्त ही क्यों न रहूं, तथापि वे जब मेरा मस्तक आपके चरणकमल के चिह्न से चिह्नित देखेंगे, वे निश्चितरूप से मुझे भक्षण किये बिना त्याग देंगे। अब वे यह मान लेंगे कि ये चरणचिह्न चिह्नित नागेन्द्रगण मेरे वध्य नहीं हैं। हे ईश्वर! अब मैं गरुड़ का वध्य नहीं रह गया। केवल गुरु अनन्तदेव के अतिरिक्त मुझे किसी का भी भय नहीं है।।८१-८५।।

यं देवेन्द्राश्च देवाश्च मुनयो मनवो नराः। स्वप्ने ध्यानं न पश्यन्ति चक्षुषोर्गोचरः समे।।८६।।

भक्तानुरोधात्साकारः कुतस्ते विग्रहो विभो।
सगुणस्त्वं च साकारो निराकारश्च निर्गुणः।।८७।।
स्वेच्छामयः सर्वधाम सर्वबीजं सनातनम्।
सर्वेषामीश्वरः साक्षी सर्वात्मा सर्वरूपधृक्।।८८।।
ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रवेदवेदाङ्गपारगाः ।
स्तोतुं यमीशं ते जाड्याः सर्पः स्तोष्यति तं विभुम्।।८९।।

मेरा कितना उत्तम भाग्य है! देवेन्द्र, देवता, मुनिगण, मनु तथा मानव भी जिनका ध्यानयोग द्वारा स्वप्न में भी दर्शन नहीं पा सकते, उनका आज मैं दर्शन कर रहा हूं। हे विभु! आप निराकार हैं, तथापि आप भक्तों पर कृपा करके साकार हो जाते हैं। अन्यथा आपको शरीर कहां? आप साकार होकर

सगुण है अन्यथा सर्वदा निराकार निर्गुण है। आप स्वेच्छामय, सर्वेश्वर, सर्वसाक्षी, सर्वात्मा तथा सर्वरूपधारी हैं। वेद-वेदांगपारग ब्रह्मा, महेश्वर, अनन्त, धर्म तथा इन्द्र भी जिनका स्तव नहीं कर पाते, उन परमेश्वर आप का मैं स्तव एक सामान्य सर्प होकर कैसे कर सकता हूं?।।८६-८९।।

हे नाथकरुणासिन्धो दीनबन्धो [१]क्षमाधमम्।
खलस्वभावादज्ञानात्कृष्ण त्वं चर्वितो मया॥९०॥
नास्त्रलक्ष्यो यथाऽऽकाशो न दृश्यान्तो न लङ्घ्यकः।
न स्पृश्यो हि न चाऽऽवर्यस्तथा तेजस्त्वमेव च॥९१॥

हे नाथ! करुणासिन्धु! दीनबन्धु! इस अधम को क्षमा करिये। मैं दुष्ट स्वभाव हूं तथा मैंने अज्ञानता के कारण आपको निगला तथा चबाया था। हे प्रभो! जैसे आकाश का स्पर्श अस्त्र से नहीं किया जा सकता, वह अदृश्य तथा अलंघ्य है, आप भी वैसे ही हैं। आप सर्वश्रेष्ठ, महातेजयुक्त हैं। आपको देख सकना भी अत्यन्त कठिन है।।९०-९१।।

इत्येवमुक्त्वा नागेन्द्रः पपात चरणाम्बुजे।
ओमित्युक्त्वा हरिस्तुष्टः सर्वं तस्मै वरं ददौ॥९२॥

वह नाग यह कहकर श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ा। हरि उससे प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा— "ऐसा ही हो" तथा उसे वांछित वर प्रदान कर दिया।।९२।।

नागराजकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तद्वंश्यानां च तस्यैव नागेभ्यो न भयं भवेत्॥९३॥
स नागशय्यां कृत्वैव स्वप्तुं शक्तः सदा भुवि।
विषपीयूषयोर्भेदो नास्त्येव तस्य भक्षणे॥९४॥

नागराज कृत यह स्तोत्र जो कोई प्रातः उठकर पढ़ता है, वह तथा उसके वंशज नागभय से रहित रहते हैं। वैसे व्यक्ति भूतल पर नागशय्या पर भी शयनरत रह सकते हैं। वे चाहे तो विष भक्षण करें। उनके लिये तो विष-अमृत्र का भेद नहीं रह जाता!।।९३-९४।।

नागग्रस्ते नागघाते प्राणान्ते विषभोजनात्।
स्तोत्रस्मरणमात्रेण सुस्थो भवति मानवः॥९५॥
भूर्जे कृत्वा स्तोत्रमिदं कण्ठे वा दक्षिणे करे।
बिभर्ति यो भक्तियुक्तो नागेभ्योऽपि न तद्भयम्॥९६॥
यत्र गेहे स्तोत्रमिदं नागस्तत्र न तिष्ठति। विषाग्निवज्रभीतिश्च न भवेत्तत्र निश्चितम्॥९७॥

नाग द्वारा घेरे जाने पर, नाग का आघात होने पर, विष भोजन से प्राणान्त हो जाने पर इस स्तोत्र

१. क. ०माक्षमम्।

के स्मरणमात्र से मानव स्वस्थ हो जाते हैं। भोजपत्र पर इसे लिखकर जो भक्तिभाव से दाहिनी भुजा अथवा कण्ठ में धारण करता है, व्रह सर्पभय से सदा मुक्त रहता है। जिस गृह में यह स्तोत्र रहेगा, वहां सर्प रुक ही नहीं सकेंगे। वहां विष, अग्नि, वज्र भय नहीं होगा। यह निश्चित है।।९५-९७।।

इह लोके हरेर्भक्तिं स्मृतिं च सततं लभेत्।
अन्ते च स्वकुलं पूत्वा दास्यं च लभते ध्रुवम्॥९८॥

उस व्यक्ति को इहलोक में भगवद्‌भक्ति तथा भगवद् स्मृति सतत् बनी रहती है। वह अपने अन्तकाल में अपने कुल को पवित्र करता हरि का दासत्व लाभ करता है, यह निश्चित है।।९८।।

नारायण उवाच

नागेन्द्राय वरं दत्त्वा पुनस्तं जगदीश्वरः। उवाच मधुरं वाक्यं परिणामसुखावहम्॥९९॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–जगदीश्वर हरि ने उस नागेन्द्र को वर देकर परिणाम में सुख देने वाला वाक्य मधुरवाणी में कहा–।।९९।।

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छ त्वं च रमणकं यथेन्द्रनगरं परम्। सार्धं स्वगोष्ठ्या नागेन्द्र यमुनाजलवर्त्मना॥१००॥
श्रुत्वा नागो हरेराज्ञां रुरोद प्रेमविह्वलः। कदा द्रक्ष्यामि त्वत्पादपद्मं नाथेत्युवाच ह॥१०१॥
प्रणम्य शतकृत्वश्च स्त्रिया गोष्ठ्या सहेश्वरम्।
जगाम जलमार्गेण नागेन्द्रो विरहातुरः॥१०२॥
यमुनाह्रदतोयं च बभूवामृतकल्पकम्। प्रसन्ना जन्तवः सर्वे बभूवुस्तेन नारद॥१०३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–"हे वत्स नागेन्द्र! अब अपने परिवार वर्ग सहित यमुना के जलमार्ग से इन्द्र की नगरी के समान सुन्दर रमणक द्वीप जाओ।" हरि की आज्ञा सुनकर नागराज प्रेमविह्वल होकर रुदन करने लगा। उसने कहा–"हे नाथ! मैं आपके चरणकमलों का दर्शन कब प्राप्त कर सकूंगा?" विरह व्यथा से पीड़ित नागेन्द्र ने प्रभु को शताधिक प्रणाम किया तथा सपरिवार यमुना के जलमार्ग से रमणक द्वीप चला गया। उस नाग परिवार के जाते ही यमुना ह्रद का जल अमृतवत् हो गया। हे नारद! इससे सभी प्राणीगण प्रसन्न हो गये।।१००-१०३।।

गत्वा ददर्श भवनं यथेन्द्रनगरं परम्। आज्ञया च कृपासिन्धोर्निर्मितं विश्वकर्मणा॥१०४॥
तत्र तस्थौ च नागेन्द्रः स्त्रिया पुत्रगणैः सह। निःशङ्को हर्षयुक्तश्च हरिभावनतत्परः॥१०५॥

कालिय ने वहां जाकर इन्द्र की नगरी जैसा वह सुन्दर द्वीप तथा भवन देखा। कृपासिन्धु, श्रीकृष्ण की आज्ञा से विश्वकर्मा ने वहां भवन निर्माण कर दिया था। वहां कालिय अपने परिवार के साथ भगवत् प्रेम में निमज्जित रहता, भय रहित एवं हर्षयुक्त होकर निवास करने लगा।।१०४-१०५।।

इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमद्भुतम्। सुखदं मोक्षदं सारं परं किं श्रोतुमिच्छसि॥१०६॥

हे नारद! इस प्रकार मैंने अद्भुत हरि चरित कह दिया। यह सुखप्रद, मोक्षप्रद सबका सार है। अब क्या सुनने की इच्छा है।।१०६।।

सूत उवाच

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नारदो हर्षविह्वलः। ऋषिं पप्रच्छ सन्देहं सर्वसंदेहभञ्जनम्।।१०७।।

सूत जी कहते हैं–देवर्षि नारद महर्षि का वचन सुनकर हर्षविह्वल हो उठे। उन्होंने तब सर्वसंदेहभंजन करने वाले ऋषि से अपने संदेह को कहा–।।१०७।।

नारद उवाच

कथं विहाय कालीयः स्वपूर्वभवनं परम्। जगाम यमुनातीरं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो।।१०८।।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे जगद्गुरु! कालियनाग ने अपने पूर्ववर्त्ती निवास को त्यागकर यमुनाकुण्ड में क्यों रहना प्रारंभ किया था? कृपया कहिये।।१०८।।

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रान्मे मलये सूर्यपर्वणि।।१०९।।
कृष्णाख्यानप्रसङ्गेन सुप्रभापश्चिमे तटे। पप्रच्छ धर्मं पुलहः कथितं मुनिसंसदि।।११०।।
इदमाख्यानमाश्चर्यमुवाच तं कृपानिधिः तत्र श्रुतं मया विप्र निबोध कथयामि ते।।१११।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! मैं एक ऐसा पुरातन इतिहास कह रहा हूं जिसे सूर्यग्रहण के समय मैंने मलयपर्वतस्थ सुप्रभा नदी के पश्चिम तट पर धर्मदेव से कृष्ण कथा प्रसंग में सुना था। श्रवण करो। जब वहां मर्हिषगण के संसद में पुलह मुनि ने धर्मदेव से पूछा था, तब उन कृपानिधि मेरे पिता धर्मदेव ने यही आख्यान पुलह से कहा था, जिसे मैंने सुना था। हे विप्र! वही मैं कह रहा हूं।।१०९-१११।।

शेषाज्ञया नागगणाः प्रतिसंवत्सरं भिया।
कार्तिकीपूर्णिमायां तु कुर्वन्ति गरुडार्चनम्।।११२।।
पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्बलिभिर्मुदा। पुष्करे च महातीर्थे सुस्नातो भक्तिसंयुतः।।११३।।
तस्य पूजां च कालीयो न चकारात्यहंकृतः। नागपूजोपकरणं बलाद्भक्षितुमुद्यतः।।११४।।
चक्रुर्निवारणं नागा नीतिमूचुर्मदोद्धतम्।
न शक्ता वारणे ते चेत्याविर्भूतः खगेश्वरः।।११५।।

भगवान् शेष की आज्ञा से भयतीत होकर नागगण प्रतिवर्ष कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन गरुड़ार्चना पुष्प, धूप, नैवेद्य तथा बलि आदि उपहार द्वारा मुदित मन से करते थे। एक बार की बात है कि महातीर्थ पुष्कर में भक्ति पूर्वक उत्तम प्रकार से स्नात कालिय ने यह पूजा उस तिथि पर अपने अहंकार के कारण नहीं किया। वह तो नागपूजा की सामग्री भी बलात् भक्षणार्थ उद्यत हो गया। नागगण ने उसे नीतिवाक्यों

द्वारा इस कार्य से रोकना चाहा तथा अन्त में कहा–"हम सब तुमको इस कार्य से रोक नहीं पा रहे हैं।" इतने में वहां खगराज गरुड़ आ गये।।११२-११५।।

दृष्ट्वा खगेश्वरं नागा कालीयप्राणरक्षया।
प्राणशक्त्या च युयुधुर्यावत्सूर्योदयं मुने।।११६।।
पक्षीन्द्रतेजसा सर्वे समुद्विग्नाः पलायिताः। अनन्तं शरणं जग्मुः सर्वेषामभयप्रदम्।।११७।।

हे मुनि! गरुड़ को देखकर नागगण ने अपना प्राण बचाने की प्रार्थना कालिय से किया। तब नागों ने अपनी तथा कालिय की रक्षा हेतु प्राणों की परवाह किये बिना गरुड़ से सूर्योदय तक युद्ध किया, परन्तु वे सभी पक्षीन्द्र गरुड़ के तेज से उद्विग्न होकर अन्य नागों के साथ वहां से भाग गये। वे सभी नाग वहां से पलायन करके सबको अभय देने वाले अनन्त की शरण में चले गये।।११६-११७।।

पलायनपरान्दृष्ट्वा नागांश्च करुणानिधिः।
तत्र तस्थौ च निःशङ्कः कालीयस्तं ददर्श ह।।११८।।
स्मृत्वा हरिपदाम्भोजं कालीयो युयुधे मुने।
मुहूर्तं च तयोर्युद्धं बभूवातीव दारुणम्।।११९।।
पराजितश्च नागेन्द्रस्तेजसा गरुडस्य च। भिया पलायनं कृत्वा जगाम यमुनाह्रदम्।।१२०।।
न तं सौभरिशापेन खगेन्द्रो गन्तुमीश्वरः।
तत्र तस्थौ भिया नागो जग्मुः पश्चाच्च तद्गणाः।।१२१।।

उस समय कालिय ने जब नागों को वहां से भागते देखा वह निःशङ्क चित्त से वहां खड़ा होकर गरुड़ की ओर देखने लगा तथा कृष्ण के चरणों का स्मरण करके गरुड़ से युद्धरत हो गया। उन दोनों के बीच मुहूर्त्त पर्यन्त अत्यन्त भयानक युद्ध तो छिड़ गया था, तथापि कालिय नाग गरुड़ के तेज से पराजित होकर यमुना ह्रद में आ गया। यहां पर गरुड़ सौभरि ऋषि के शाप के कारण नहीं आ सकते थे। कालिय गरुड़ के भय से जब यहां रहने लगा, तब उसका अनुसरण करते उसके अन्य गण भी वहां आकर रहने लगे।।११८-१२१।।

नारद उवाच

कथं तु सौभरेः शापो बभूव गरुडाय वै। कथं न शक्तो गन्तुं तं ह्रदमीश्वरवाहनः।।१२२।।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे मुनिवर! गरुड़ को सौभरि मुनि ने किस कारण से शाप दिया था? गरुड़ तो परमेश्वर के वाहन होकर भी वहां जा सकने में क्यों अशक्त थे?।।१२२।।

नारायण उवाच

दिव्यं वर्षसहस्रं च वर्षाणां तत्र सौभरिः।
तपस्तप्त्वा महासिद्धो दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम्।।१२३।।

समीपे ध्यायमानस्य कूले च यमुनाजले।
गणेन सार्धं निःशङ्कःकरोति भ्रमणं मुदा॥१२४॥
पुच्छमुत्फाल्य बहुधा प्रेरितः परमेच्छया।
मुनिं प्रदक्षिणीकृत्य यात्यायाति मुदाऽन्वितः॥१२५॥
सुकुलं सुमहात्मानं दर्शं दर्शं खगाधिपः। जग्राह चञ्चुना मीनं मुनीन्द्रस्य समीपतः॥१२६॥
गच्छन्तं तं मीनमुखं ददर्श कोपचक्षुषा। प्रकम्पितो मुनेर्दृष्ट्या मीनस्तोये पपात ह॥१२७॥
तमुवाच मुनीन्द्रश्च पुनरादातुमुद्यतम्। मीनश्च गरुडत्रासात्तस्थौ मुनिसमीपतः॥१२८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–सौभरि ने वही पर १ हजार दिव्यवर्ष पर्यन्त कठोर तप किया था, जिससे वे महासिद्ध हो गये थे। वे सतत् कृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करते थे! इसी समय उनके समीप यमुना में एक मत्स्य अपने गणों के साथ निःशंक स्थिति सानन्द तैर रहा था। वह परम आनन्दित होकर स्वेच्छा से पूंछ हिलाता हुआ मुनि की प्रदक्षिणा करता हुआ वहां आवागमन कर रहा था। वह अत्यन्त आनन्दित था। उन उत्तम कुल के श्रेष्ठ महात्मा को बारम्बार देख कर भी गरुड़ ने चोंच से उस मत्स्य को पकड़ लिया। उधर मुनि ने जब गरुड़ को मत्स्य उठाकर ले जाते देखा उन्होंने क्रोधपूर्ण दृष्टि से गरुड़ की ओर देखा। तत्काल उस कोप दृष्टि से प्रकम्पित गरुड़ की चोंच से वह मत्स्य जल में गिर पड़ा। जब गरुड़ ने पुनः मत्स्य को पकड़ना चाहा, वह जान बचाने मुनि के निकट चला गया। तब मुनि गरुड़ से कहने लगे–॥१२३-१२८॥

सौभरिरुवाच

गच्छ दूरं गच्छ दूरं खगेन्द्र मत्समीपतः।
का योग्यता मत्पुरस्ते ग्रहीतुं जीवमुल्बणम्॥१२९॥
श्रीकृष्णवाहनं ज्ञात्वा चाऽऽत्मानं बहु मन्यसे।
त्वद्विधान्कोटिशः कृष्णः स्त्रष्टुं शक्तश्च वाहकान्॥१३०॥
करोमि भस्मसात्तूर्णं त्वां च भ्रूभङ्गलीलया।
वाहनं च त्वमीशस्य न वयं तव किङ्कराः॥१३१॥
अद्यप्रभृति पक्षीन्द्र यद्यागच्छसि मे ह्रदम्।
मदीयशापात्तूर्णं च भस्मसाद्भविता ध्रुवम्॥१३२॥

सौभरि कहते हैं–हे खगराज! तुम मत्स्य के पास से दूर जाओ। मेरे विद्यमान रहते तुम्हारा यह साहस कैसे हो गया कि मेरे समक्ष जीव हत्या करो? तुम स्वयं को कृष्ण का वाहन जानकर अपने को महान् समझने लगे? श्रीकृष्ण तो तुम्हारे समान करोड़ों वाहन की सृष्टि कर सकते हैं। मैं भी अपने भ्रूभंग मात्र से तुमको दग्ध कर सकता हूं। तुम हरि के वाहन हो, तथापि मैं तो उनका किंकर हूं। तुम्हारा

किंकर नहीं हूं। हे पक्षीन्द्र! यदि आज के बाद कभी तुम इस कुण्ड के निकट आये तब निश्चित रूप से भस्म हो जाओगे। यह मेरा शाप है, जो निश्चित घटित होगा।।१२९-१३२।।

मुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रचचाल खगेश्वरः।
स्मारं स्मारं कृष्णपादं तं प्रणम्य जगाम ह॥१३३॥
अद्यप्रभृति विप्रेन्द्र पतगेन्द्रस्य संततम्।
ह्रदस्य श्रुतिमात्रेण कम्पो भवति निश्चितम्॥१३४॥

खगेन्द्र ने जब मुनिवर का कथन सुना तब वे अत्यन्त प्रकम्पित हो उठे। वे मुनि को प्रणाम करके कृष्ण का स्मरण करते हुये वहां से चले गये। हे विप्रेन्द्र! आज भी गरुड़ जब भी उस ह्रद का नाम भी सुनते हैं, तब-तब उनका ह्रदय कम्पित हो उठता है। ऐसा निश्चित होता है।।१३३-१३४।।

इतिहासश्च कथितो यः श्रुतो धर्मवक्त्रतः। सरहस्यं श्रुतिसुखं प्रकृतं शृणु मङ्गलम्॥१३५॥

विज्ञाय सुचिरं बाला नोत्तस्थौ तज्जलाद्धरिः।
चक्रुर्विषादं मोहाच्च रुरुदुर्यमुनातटे॥१३६॥
स्ववक्षोघातनं चक्रुः केचिद्बालाः शुचाऽऽकुलाः।
केचिन्निपत्य भूमौ च मूर्च्छां प्रापुर्हरिं विना॥१३७॥
ह्रदं प्रवेष्टुं केचिच्च विरहेण समन्विताः।
केचिद्गोपालबालाश्च चक्रुश्च तन्निवारणम्॥१३८॥
कृत्वा विलापं केचिच्च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यताः।
तेषां केचिज्ज्ञानवन्तो रक्षां चक्रुः प्रयत्नतः॥१३९॥
केचिदूचुश्च हाहेति कृष्ण कृष्णेति केचन।
केचिद्वक्तुं प्रवृत्तिं च प्रययुर्नन्दसंनिधिम्॥१४०॥
केचित्संमीलितास्तत्र शोकमोहभयातुराः।
इत्यूचुः किं करिष्यामः कुतोऽस्माकं गतो हरिः॥१४१॥

मैंने धर्मदेव से जो कुछ इतिहास सुना था, वह तुमसे कह दिया। अब सुनने से कानों को सुख देने वाला मंगलमय रहस्य श्रवण करो। उधर जब श्रीहरि देर तक जल से बाहर नहीं आये, तब वे सभी गोपबालकगण उसी यमुना तट पर विषाद भरे ह्रदय से रुदन करने लगे। कोई बालक शोकाकुल स्थिति में अपना सीना पीटने लगा। कोई बालक हरि को न देखकर भूपतित होकर मूर्च्छित हो गया। कोई बालक तो हरि के विरह को सहन न करने के कारण उस कालिय नाग वाले ह्रद में कूदने के लिये उद्यत हो गया। कोई बालक उसे कूदने से रोकने लगा। कोई बालक रोते हुये प्राण त्याग करने हेतु उद्यत हो गया। कोई हाहाकार करने लगा। कोई हा कृष्ण, हा कृष्ण कहता चीत्कार करने लगा। कोई बालक यह

वृत्तान्त कहने नन्दराज के पास चला गया। कुछ बालक एकत्र होकर शोक-मोह तथा भय से आक्रान्त से होकर यह चीत्कार करने लगे कि-"हमारे हरि कहां गये? अब हम क्या करें!।।१३५-१४१।।

हे नन्दसूनो हे कृष्ण प्राणेभ्योऽप्यधिकप्रिय।
हे बन्धो दर्शनं देहीत्यूचुः प्राणाः प्रयान्ति हि[1]॥१४२॥

कुछ यह कहकर रुदन करने लगे कि "हे नन्दपुत्र! प्राणाधिक प्रिय कृष्ण! हे बन्धु! शीघ्र दर्शन दो अन्यथा देह से प्राण जा रहे हैं।।१४२।।

एतस्मिन्नन्तरे केचिद्बालका नन्दसन्निधिम्।
सम्प्रापुरतिलोलाश्च रुदन्तः शोकविह्वलाः॥१४३॥
प्रवृत्तिमूचुस्तं शीघ्रं यशोदां मूलतो बलम्।
गोपान्गोपालिकाश्चैव रक्तपङ्कजलोचनाः॥१४४॥

इसी समय कुछ अत्यन्त चंचल शोकाकुल बालक तत्काल नन्द के यहां गये। वहां उन्होंने यशोदा तथा उनके निकटस्थ बलराम से एवं अन्यान्य गोपगण तथा लालकमल के वर्ण वाले नेत्रों वाली गोपियों से यह संवाद दे दिया।।१४३-१४४।।

श्रुत्वा वार्तां च ते सर्वे शीघ्रं जग्मुः शुचाऽन्विताः।
कलिन्दनन्दिनीतीरं रुरुदुर्बालकैर्युताः॥१४५॥
गत्वा सम्मीलिताः सर्वे रुरुदुः शोकमूर्च्छिताः।
ह्रदं विशन्तीमम्बां तां केचिच्चक्रुर्निवारणम्॥१४६॥
गोपा गोपालिकाश्चैव जघ्नुरङ्गानि शोकतः।
केचिद्विललपुस्तत्र मूर्च्छां पापुश्च केचन॥१४७॥
ह्रदं विशन्तीं तां राधां वारयामास काचन।
मूर्च्छां च प्राप सा शोकान्मृतेव च सरित्तटे॥१४८॥
विलप्यातिभृशं नन्दो मूर्च्छां प्राप पुनः पुनः।
भूयोऽपि रोदनं कृत्वा भूयो मूर्च्छामवाप ह॥१४९॥
विलपन्तं भृशं नन्दं यशोदां शोककर्शिताम्।
गोपाश्च गोपिकाश्चैव राधिकामतिमूर्च्छिताम्॥१५०॥
रुदतो बालकान्सर्वान्बालिकाश्च शुचाऽन्विताः।
सर्वांश्च बोधयामास बलश्च ज्ञानिनां वरः॥१५१॥

गोपगण एवं गोपियां यह वृत्तान्त सुनते ही शोकाकुल चित्त से यथाशीघ्र यमुना तट पर आकर

१. क. नः।

रोते-रोते शोक से मूर्च्छित हो गये। तभी माता यशोदा कालिय ह्रद में कूदने जा रही थी, यह देखकर लोगों ने उनको रोक दिया। राधा तो यमुना तट पर शोकवशात् मृतवत् जैसी होकर मूर्च्छित हो गईं। नन्दराज रुदन करते-करते पुनः-पुनः मूर्च्छित होते जा रहे थे। तभी ज्ञानीप्रवर बलदेव ने अत्यन्त रुदन करते नन्द को, शोकमूर्च्छिता माता यशोदा को, रुदनरत बालकों तथा बालिकाओं को शोकाकुल देखकर सभी को सान्त्वना देते हुये कहा-।।१४५-१५१।।

बलदेव उवाच

गोपा गोपालिका बालाः सर्वे शृणुत मद्वचः।
हे नन्द ज्ञानिनां श्रेष्ठ गर्गवाक्यस्मृतिं कुरु।।१५२।।
जगद्विभर्तुः शेषस्य संहर्तुः शङ्करस्य च।
विधातुः संविधातुश्च भुवि कस्मात्पराजयः।।१५३।।
परमाणुः परो व्यूहः स्थुलात्स्थूलः परात्परः।
विद्यमानोऽप्यदश्यश्च संयोगो योगिनामपि।।१५४।।

बलदेव कहते हैं-हे गोप! गोपियों तथा बालको! सभी लोग मेरा कथन श्रवण करो। हे ज्ञानी प्रवर नन्दराज! आप गर्ग मुनि द्वारा कहे वचन को स्मरण करिये। जो अनन्तरूप से (शेष रूप से) जगत् को धारण करने वाले को भी धारण करते हैं, संहारक शिव का भी संहार करने वाले हैं, जो विधाता ब्रह्मा की भी सृष्टि करने वाले विधाता हैं, उनको इस धरती पर कौन पराजित कर सकता है? वे परमाणु से भी परम अणु (सूक्ष्म) तथा स्थूल से भी स्थूल परात्पर प्रभु हैं। वे तो विद्यमान रहने पर भी अदृश्य रहते हैं। वे ही योगीगण के संयोग रूप (परमयोगरूप) हैं।।१५२-१५४।।

दिशां नास्ति समाहारः स्पृश्यो नाऽकाश एव च।
अपि [१]सर्वेश्वरो बाध्य इत्यूचुः श्रुतयः स्फुटम्।।१५५।।
नाऽऽत्मा दृश्यो नास्त्रलक्ष्यो न वध्यो न हि दृश्यकः।
नाग्निग्रस्तो न हिंस्यश्चापीदमाध्यात्मिका विदुः।।१५६।।

दसों दिशायें कदापि एकाकार नहीं हो सकतीं। कोई आकाश का स्पर्श नहीं कर सकता। यह श्रुति का कथन है कि उन सर्वेश्वर को कोई भी किसी प्रयोजन हेतु बाध्य नहीं कर सकता। आत्मा कदापि दृष्टिगोचर नहीं होता। वह अस्त्र से बेधा नहीं जा सकता। वह कदापि दृश्य नहीं हो सकता। वह अग्नि से दग्ध नहीं हो सकता, उसकी हिंसा कर सकना संभव नहीं है, ऐसा आध्यात्मिक विद्वानों का मत है।।१५५-१५६।।

विग्रहोऽस्यैव कृष्णस्य भक्तध्यानार्थमेव च।
ज्योतिः स्वरूपस्य विभोर्नाऽऽद्यन्तमध्यमात्मनः।।१५७।।

१. क. बोधेश्वरो वा०।

जलप्लुते च ब्रह्माण्डे जलशायी जनार्दनः।
यन्नाभिपद्मजो ब्रह्मा तस्येशस्य ह्रदे विपत्॥१५८॥
मशकश्चेत्क्षमो ग्रस्तुं ब्रह्माण्डमखिलं पितः।
न तथाऽपि तदीशं तं ग्रस्तुं सर्पः क्षमो भवेत्॥१५९॥

यह जो श्रीकृष्ण का साकार रूप (विग्रह) है यह केवल भक्तों के ध्यान के ही लिये है। परमात्मा तो ज्योतिःस्वरूप है। उनका न तथा आदि है, न मध्य है, न अन्त ही है! यह विचित्र बात है कि जब समग्र ब्रह्माण्ड जलमग्न हो जाता है, उस स्थिति में भी जलशायी परमेश्वर के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हो जाते हैं। उन परमात्मा को इस सामान्य कालिय ह्रद में क्या विपत्ति हो सकती है? हे पिता! किम्बहुना, यदि एक मच्छर भले ही समग्र ब्रह्माण्ड को निगल ले, परन्तु मेरे ईश्वर कृष्ण को एक सामान्य सर्प कदापि निगल नहीं सकता!॥१५७-१५९॥

इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकमनुत्तमम्।
निगूढं योगिनां सारं संशयच्छेदकारणम्॥१६०॥

मैंने आप लोगों से योगिगण के लिये भी अज्ञात संशय छेदक कारणों का साररूप उत्तम आध्यात्मिक विषय का वर्णन कर दिया॥१६०॥

बलदेववचः श्रुत्वा गर्गवाक्यमनुस्मरन्।
तत्याज शोकं नन्दश्च व्रजश्च व्रजयोषितः॥१६१॥
प्रबोधं मेनिरे सर्वे न यशोदा न राधिका। बन्धुविच्छेदविषये प्रबोधे न स्थितं मनः॥१६२॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णमुत्पतन्तं जलान्मुने। ददृशुस्तं सुप्रसन्ना वज्राश्च व्रजयोषितः॥१६३॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सस्मितं सुमनोहरम्। अस्निग्धवस्त्रमस्निग्धमलुप्तचन्दनाञ्जनम्॥१६४॥
सर्वाभरणसंयुक्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। मयूरपिच्छचूडं च वंशीवदनमच्युतम्॥१६५॥
यशोदा बालकं दृष्ट्वा कृत्वा वक्षसि सस्मिता।
चुचुम्ब वदनाम्भोजं प्रसन्नवदनेक्षणा॥१६६॥

गर्ग के कथन का स्मरण करके तथा बलदेव का वाक्य सुनकर नन्दराज ने तथा ब्रज की स्त्रियों तथा गोपगण ने शोक त्याग दिया, तथापि उस समय भी यशोदा तथा राधिका को इस कथन से तनिक भी प्रबोध नहीं हो सका। वस्तुतः जब बन्धु का विच्छेद हो जाता है, तब मात्र प्रबोध वाक्य से व्यक्ति को सन्तोष नहीं हो पाता। हे मुनिवर! इसी समय श्रीकृष्ण जल से निकले। यह देखकर ब्रजवासी नर-नारी सभी प्रसन्न हो गये। श्रीकृष्ण का मुखमण्डल शारदीय पूर्णिमा के समान कान्तियुक्त था। उनकी मन्दमुस्कान अनूठी मनोहर शोभा बिखेर रही थी। लेकिन आश्चर्य यह था कि जल से बाहर निकलते समय उनका वस्त्र सूखा था। अंजन, चन्दनादि लेप पर भी जल का कोई प्रभाव नहीं पड़ सका था! प्रभु अच्युत श्रीकृष्ण पूर्ववत् ही सर्वाभरणभूषित, ब्रह्मतेज से दीप्त तथा मयूर पुच्छ चूड़ाधारी, वंशीवादन

करते जल से निकले। उनको देखते ही यशोदा ने उनको पकड़ कर अपने वक्ष से लगाया तथा उनका मुख एवं नेत्र पुत्र को पाकर खिल उठा। माता यशोदा हर्षोत्फुल्ल हो मुस्कराते हुये कृष्ण के मुखकमल का बारम्बार चुम्बन करने लगीं!।।१६१-१६६।।

क्रोडे चकार नन्दश्च बलश्च रोहिणी मुदा। निमेषरहिताः सर्वे ददृशुः श्रीमुखं हरेः।।१६७।।

प्रेमान्धा बालकाः सर्वे चक्रुरालिङ्गनं हरेः।
पपुश्चक्षुश्चकोरैश्च मुखचन्द्रं च गोपिकाः।।१६८।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सहसा काननान्तरम्।
दावाग्निर्वेष्टयामास तैः सर्वैः सह गोकुलम्।।१६९।।

दृष्ट्वा शैलप्रमाणाग्निं परितः काननान्तरे। प्रणाशं मेनिरे सर्वे भयमापुश्च सङ्कटे।।१७०।।

श्रीकृष्णं तुष्टुवुः सर्वे संपुटाञ्जलयो व्रजाः।
बाला गोप्यश्च संत्रस्ता भक्तिनम्रात्मकन्धराः।।१७१।।

इसके पश्चात् नन्दराज, बलदेव, रोहिणी ने परमानन्द पूर्वक क्रमशः कृष्ण को अपनी गोद में ले लिया। वहां उपस्थित सभी लोग निर्निमेष श्रीकृष्ण के मुखकमल का दर्शन करने लगे! वहां के सभी गोप बालक कृष्ण के प्रति प्रेमान्ध होकर उनका आलिंगन करने लगे। गोपिकागण के नयन चकोर मानो कृष्ण के मुखचन्द्र के अमृत का नयनों से पान करने लगीं। तभी उस वन में दावाग्नि भड़क उठी! उस दावाग्नि ने सभी लोगों के साथ गोकुल को भी अपने घेरे में ले लिये। सबने देखा कि पर्वत से इतनी ऊंची लपटे उठ रही है। सभी इस संकट के कारण भयग्रस्त हो गये। सबने इससे अपना नाश होना मान लिया। उस समय समस्त ब्रजवासीगण, गोप-गोपिकायें तथा बालक भक्ति के कारण नतशिर होकर तथा हाथों को जोड़कर श्रीकृष्ण का स्तवगान करने लगे।।१६७-१७१।।

बाला ऊचुः

यथा संरक्षितं ब्रह्मन्सर्वापत्स्वेव नः कुलम्। तथा रक्षां कुरु पुनर्दावाग्नेर्मधुसूदन।।१७२।।
त्वमिष्टदेवताऽस्माकं त्वमेव कुलदेवता। स्रष्टा पाता च संहर्ता जगतां च जगत्पते।।१७३।।

वह्निर्वा वरुणो वाऽपि चन्द्रो वा सूर्य एव च।
यमः कुबेरः पवन ईशानाद्याश्च देवताः।।१७४।।
ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवः स्मृताः।
मानवाश्च तथा दैत्या यक्षराक्षसकिन्नराः।।१७५।।

ये ये चराचराश्चैव सर्वे तव विभूतयः। आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषां च तवेच्छया।।१७६।।

बालकगण कहते हैं–हे ब्रह्मन्! हे मधुसूदन! जैसे इससे पहले भी आपने सभी आपत्तियों से हमारे कुल की रक्षा किया है, पुनः इस दावाग्नि से तदनुरूप हमारी रक्षा आप करिये। आप ही हमारे

इष्ट देवता तथा कुल देवता हैं। अग्नि, वरुण, सूर्य-चन्द्र, यम, कुबेर, पवन, ईशानदेव, ब्रह्मा, महेश्वर, अनन्त, धर्मादि देवता तथा मुनिगण, मनु, मानव, दैत्य, यक्ष, राक्षस, किन्नरगण तथा यह सचराचर आपकी ही विभूतिरूप है। हे जगत्पति! आपकी इच्छा मात्र से जगत् का आविर्भाव-तिरोभाव होता है।।१७२-१७६।।

अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु। वयं त्वां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतान्।।१७७।।

हे गोविन्द! हमें अभय देकर इस अग्नि को रोकिये। हम सभी आपके शरणागत हैं । हमारी रक्षा करिये।।१७७।।

इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वा पदाम्बुजम्।
दूरीभूतस्तु दावाग्निः श्रीकृष्णामृतदृष्टितः।।१७८।।
दूरीभूते च दावाग्नौ ननृतुस्ते मुदाऽन्विताः।
सर्वापदः प्रणश्यन्ति हरिस्मरणमात्रतः।।१७९।।

यह कहकर वहां सभी लोग कृष्ण के पादाम्बुज का ध्यान करने लगे। श्रीकृष्ण की अमृतदृष्टि पड़ते ही वह दावाग्नि दूर हो गई। इस दावाग्नि के दूर हो जाने के कारण मुदित होकर सभी लोग वहां नृत्यरत हो गये। श्रीहरि के स्मरणमात्र से समस्त आपत्ति दूरीभूत हो जाती है।।१७७-१७९।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
वह्निनो न भवेत्तस्य भयं जन्मनि जन्मनि।।१८०।।
शत्रुग्रस्ते च दावाग्नौ विपत्तौ प्राणसङ्कटे।
स्तोत्रमेतत्पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः।।१८१।।
शत्रुसैन्यं क्षयं याति सर्वत्र विजयी भवेत्।
इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद्ध्रुवम्।।१८२।।

इइ महान् पुण्यमय स्तोत्र को जो प्रातः उठकर पढ़ता है, उसे जन्म-जन्मान्तर में कभी-भी अग्नि से भय नहीं होता। शत्रुग्रस्त होने पर, दावाग्नि ग्रस्त होने पर, विपदा में, प्राणसंकट के समय जो इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह निःसंशय सभी संकट से मुक्त हो जाता है। इसके फलस्वरूप शत्रुसैन्य का क्षय होता है। स्तोत्र पाठ करने वाला सर्वत्र विजयी होता है। वह इहलोक में हरिभक्ति प्राप्त करके अन्तकाल में निश्चित रूप से हरिभक्ति लाभ करता है।।१८०-१८२।।

नारायण उवाच

दावाग्निमोक्षणं कृत्वा तैः सार्धं शृणु नारद। श्रीहरिर्गेहं कुबेरभवनोपमम्।।१८३।।

ब्राह्मणेभ्यो धनं नन्दः परिपूर्णं ददौ मुदा।
भोजनं कारयामास ज्ञातिवर्गांश्च बान्धवान्।।१८४।।

नानाविधं मङ्गलं च हरेर्नामानुकीर्तनम्। वेदांश्च पाठयामास विप्रद्वारा मुदाऽन्वितः॥१८५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! इस प्रकार श्रीहरि ने सभी को दावाग्नि से मुक्त किया। तदनन्तर श्रीहरि कुबेर के महल के समान अनुपम अपने भवन में चले गये। उस समय नन्दराज ने मुदित होकर ब्राह्मणगण को प्रचुर धन दिया तथा ब्राह्मणों, ज्ञातिवर्ग एवं बन्धुवर्ग को भोजन कराया। उन्होंने मुदित मन से ब्राह्मणों द्वारा वेदपाठ कराया। साथ ही नाना प्रकार का मंगलकृत्य और हरिनाम का कीर्त्तन भी कराया।।१८३-१८५।।

एवं मुमुदिरे सर्वे वन्दारण्ये गृहे गृहे। श्रीकृष्णचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसाः॥१८६॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम्। कलिकिल्बिषकाष्ठानां दाहने दहनोपमम्॥१८७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० कालियदमनदावाग्निमोक्षणं नामैकोनविंशोऽध्यायः।।१९।।

इस प्रकार से श्रीकृष्ण के चरण कमलों के ध्यान में तत्पर निष्ठावान् वृन्दावनवासीगण ने आनन्दोत्सव का भी आयोजन किया था। मैंने इस प्रकार तुमसे मंगलमय श्रीहरिचरित कहा। यह कलिकाल रूपी काष्ठ को दग्ध करने वाले अग्नि के समान है।।१८६-१८७।।

।।१९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ विंशोऽध्यायः

ब्रह्मा द्वारा गोवत्स आदि का हरण करना तथा ब्रह्माकृत श्रीकृष्ण स्तोत्र

नारायण उवाच

एकदा बालकैः सार्धं बलेन सह माधवः।
भुक्त्वा पीत्वाऽनुलिप्तश्च वृन्दारण्यं जगाम ह॥१॥

क्रीडां चकार भगवान्कौतुकेन च तैः सह। क्रीडानिमग्नचित्तानां दूरं तद्गोकुलं ययौ॥२॥
तस्य प्रभावं विज्ञातुं विधाता जगतां पतिः। चकार निह्नुतिं गाश्च वत्सांश्च बालकानपि॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–एक बार की घटना है। माधव बालकों तथा बलदेव के साथ भोजनादि से निवृत्त एवं चन्दन चर्चित देह करके वृन्दावन में गये। वहां श्रीहरि ने परम कौतुक सहित

उन बालकों के साथ क्रीड़ा प्रारम्भ कर दिया। जब वे क्रीड़ा में निमग्न थे, तभी गौयें चरते हुये दूर चली गईं। तभी जगत्पति विधाता ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण का प्रभाव ज्ञात करने के लिये गौओं, बछड़ों तथा बालकों का हरण कर लिया।।१-३।।

विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञः सर्वकारकः। पुनश्चकार तत्सर्वं योगीन्द्रो योगमायया।।४।।

जगाम श्रीहरिर्गेहं कालयित्वा च गोकुलम्।
बलेन बालकैः सार्धं क्रीडाकौतुकमानसः।।५।।

एवं चकार भगवान्वर्षमेकं च प्रत्यहम्। यमुनागमनं गोभिर्बलेन सह बालकैः।।६।।

ब्रह्मा प्रभावं विज्ञाय लज्जनम्रात्मकंधरः। आजगाम हरेः स्थानं भाण्डीरवटमूलके।।७।।

ददर्श कृष्णं तत्रैव गोपालगणवेष्टितम्। यथा पार्वणचन्द्रं च विभान्तं स्वगणैः सह।।८।।

ब्रह्मा का यह मन्तव्य जानकर सर्वज्ञ, सर्वकारक, योगीन्द्र, श्रीकृष्ण ने अपनी योगमाया द्वारा उन गौओं, बछड़ों तथा बालकों की पुनः सृष्टि कर दिया। तदनन्तर क्रीड़ा कौतुकचित्त श्रीकृष्ण गोचारण कराने के पश्चात् गौओं, बलदेव तथा गोप बालकों सहित गृह लौट आये। इस प्रकार श्रीकृष्ण एक वर्ष पर्यन्त नित्य गौओं, गोप बालकों तथा गौओं के साथ गमनागमन करते रहे। भगवन् के इस प्रभाव को देखकर ब्रह्मा लज्जित होकर भाण्डीरवन में वटवृक्ष के नीचे आये। वहां उन्होंने गोपालों से घिरे कृष्ण को उस प्रकार देखा जैसे नक्षत्रों से घिरे पूर्णचन्द्र शोभायमान होते हैं।।४-८।।

रत्नसिंहासनस्थं च हसन्तं सस्मितं मुदा। पीतवस्त्रपरीधानं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।।९।।

रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम्। रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां स्वकपोलस्थलोज्ज्वलम्।।१०।।

कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाममनोहरम्। चन्दागुरुकस्तूरीकुङ्कुमार्चितविग्रहम्।।११।।

उन्होंने देखा कि प्रभु कृष्ण रत्नसिंहासनासीन हैं। वे ब्रह्मतेज से प्रज्वलित तथा मृदु मुस्कान से युक्त प्रसन्न होकर पीताम्बर, रत्नकेयूर, वलय तथा मंजीरादि से शोभायमान हो रहे हैं। उन्होंने कानों में रत्नकुण्डल युगल धारण कर रखा था, जो उनके कपोल तक लटक रहे थे। उनकी कान्ति से कृष्ण के कपोल उद्भासित हो रहे थे। श्रीकृष्ण की मनोहर मूर्त्ति कोटि-कोटि कन्दर्प (कामदेव) के समान मनोहर लीलाधाम थी। उनका विग्रह चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम के लेप से लिप्त था।।९-११।।

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विभूषितम्। नवीननीरदश्यामं प्रोद्भिन्ननवयौवनम्।।१२।।

मालतीमाल्यसंयुक्तं मयूरपिच्छचूडकम्।
स्वाङ्गसौन्दर्यदीप्त्या च कृतभूषणभूषितम्।।१३।।

शरत्पार्वणचन्द्रस्य प्रभामुष्टास्यसुन्दरम्। पक्वबिम्बाधरौष्ठं च खगेन्द्रचञ्चुनासिकम्।।१४।।

श्रीकृष्ण पारिजात पुष्पों की अनेक माला से भूषित, नवजलधर श्याम तथा उन्मिषित हो रहे नवयौवन से युक्त थे। उनका मोरपंख का मुकुट शिर पर मालती मालाओं से गुथा था। श्रीकृष्ण प्रभु अपने अंगों की दीप्ति से अपने देह पर स्थित आभूषणों को भी दीप्त कर रहे थे। उनका मुख अत्यन्त

सुन्दर था। प्रतीत हो रहा था कि प्रभु के आनन ने शारदीय पूर्णचन्द्र की कान्ति का हरण कर लिया है। उनके अधरोष्ठ पक्व बिम्बफल के समान थे तथा नासिका की सुन्दरता तो गरुड़ की चोंच को भी लज्जित कर देने वली थी!॥१२-१४॥

शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनम्। मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम्॥१५॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम्।
शान्तं च राधिकाकान्तं परिपूर्णतमं परम्॥१६॥
एवंभूतं प्रभुं दृष्ट्वा प्रणनामातिविस्मितः। दर्शं दर्शमीश्वरं तं प्रणनाम पुनः पुनः॥१७॥
यद्दृष्टं हृदयाम्भोजे तद्रूपं बहिरेव च। या मूर्तिः पुरतो दृष्टा सा पश्चात्परितस्ततः॥१८॥

शरत्कालीन मध्याह्नकाल में खिले कमल की कान्ति को भी पराजित करने वाले प्रभु के नेत्रद्वय थे। प्रभु श्रीकृष्ण की दन्तपंक्ति तो मुक्तापंक्तियों की भी शोभा को म्लान करने वाली थी। ऐसी दन्तपंक्तियुक्त प्रभु का स्वरूप अत्यन्त मनोहारी था। प्रभु का वक्षस्थल वहां स्थित मणीन्द्र कौस्तुभ के कारण समुज्वल लग रहा था। ये शान्त राधिकाकान्त परम परिपूर्णतम थे। ऐसे प्रभु को देखकर ब्रह्मा विस्मित हो उठे। उन्होंने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया, तथापि वे इतने से सन्तुष्ट न होकर उनको बारम्बार देखते तथा प्रणाम करते! ब्रह्मा ने अपने हृदयकमल में जिस रूप का साक्षात् दर्शन किया था, वही उन्होंने यहां बाह्यतः भी देखा। जो कृष्ण मूर्त्ति उनके समक्ष परिदृश्यमान थी, वही मूर्त्ति पीछे तथा चतुर्दिक् परिलक्षित हो रही थी!॥१५-१८॥

तत्र वृन्दावने सर्वं दृष्ट्वा कृष्णसमं मुने। ध्यायं ध्यायं च तद्रूपं तत्र तस्थौ जगद्गुरुः॥१९॥
गावो वत्साश्च बालाश्च लता गुल्माश्च वीरुधः।
सर्वं वृन्दावनं ब्रह्मा श्यामरूपं ददर्श ह॥२०॥
दृष्ट्वैवं परमाश्चर्यं पुनर्ध्यानं चकार ह। ददर्श त्रिजगद्ब्रह्मा नान्यत्कृष्णं विना मुने॥२१॥
क्व च वृक्षः क्व वा शैलः क्व मही क्व च सागरः।
क्व देवाः क्व च गन्धर्वा मुनीन्द्राः क्व च मानवाः॥२२॥
क्व चाऽऽत्मा क्व जगद्बीजं क्व स्वर्गः क्वायमेव च।
सर्वं च स्वदृशा ब्रह्मा ददर्श मायया हरेः॥२३॥

हे मुनि! तब जगत्रचयिता ब्रह्मा ने इस वृन्दावन में स्थित सब कुछ को कृष्णमय देखा। वे बारम्बार इसी रूप का ध्यान करते-करते वहीं विराजमान हो गये। ब्रह्मा वहां स्थित गौ, गोवत्स, गोपबालक, लता, गुल्म, वृक्षादियुक्त समस्त वृन्दावनस्थ वस्तुसमूह को श्यामप्रभुरूपी देखने लगे। हे मुनिवर! ब्रह्मा ने जब यह परमाश्चर्य देखा, तब वे पुनः ध्यानावस्थित हो गये। उन्होंने त्रैलोक्य में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं देखा। न तो कहीं वृक्ष था, न पर्वत! पृथिवी, वृक्ष, सागर, गौयें, देवता, गन्धर्व, मुनीन्द्र, मानव, आत्मा, जगद्बीज, स्वर्ग इत्यादि कुछ भी नहीं था। सर्वत्र हरिरूप को ही उन्होंने देखा॥१९-२३॥

क्व कृष्णो जगतां नाथः क्व वा मायाविभूतयः।
सर्वं कृष्णमयं दृष्ट्वा किंचिन्निर्वक्तुमक्षमः॥२४॥
कं स्तौमि किं करोमीति मनसैवं प्रगृह्य च।
तत्र स्थित्वा जगद्धाता जपं कर्तुं समुद्यतः॥२५॥
सुखं योगासनं कृत्वा बभूव सम्पुटाञ्जलिः।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिदीनवत्॥२६॥

उस समय जगन्नाथ कृष्ण कहां? प्रभु की मायाविभूतियां कहां? कहीं कुछ भी नहीं। सब कुछ कृष्णमय ब्रह्मा ने देखा! यह देखकर ब्रह्मा कुछ भी बोल नहीं सके! उन्होंने विचार किया "मैं किसकी स्तुति करूं? मेरा अब कर्त्तव्य क्या है?" वे कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहे थे। तदनन्तर सर्वान्त में विधाता वहीं जपरत हो गये! इस समय वे करवद्ध होकर सुखासनासीन हो गये। उनका सभी अंग रोमांचित था। नेत्रों में अश्रु भर गये थे। वे तो अतिदीन हो गये॥२४-२६॥

इडां सुषुम्नां मध्यां च पिङ्गलां नलिनीं धुराम्।
नाडीषट्कं च योगेन निबध्य च प्रयत्नतः॥२७॥
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरं मनोहरम्। विशुद्धं परमाज्ञाख्यं षट्चक्रं च निबध्य च॥२८॥
लङ्घनं कारयित्वा च तत्षट्चक्रं क्रमाद्विधिः। ब्रह्मरन्ध्रं समानीय वायुबन्धं चकार ह॥२९॥

इसके अनन्तर ब्रह्मा ने योग द्वारा यत्न पूर्वक इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, मेध्या, नलिनी तथा धुरा नामक ६ नाड़ियों को तथा मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र को निबद्ध किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने इन सबका लंघन करके (वायु द्वारा लंघन करके) वायु को ब्रह्मरंध्र में लाकर आबद्ध कर दिया॥२७-२९॥

निबध्य वायुं मध्यां तामानीय हृदयाम्बुजम्।
तं वायुं भ्रामयित्वा च योजयामास मध्यया॥३०॥
एवं कृत्वा तु निष्पन्दो यो दत्तो हरिणा पुरा। जजाप परमं मन्त्रं तस्यैव च दशाक्षरम्॥३१॥

इसके पश्चात् उस निबद्ध वायु को हृदयकमलस्थ मध्या नाड़ी में लाये। विधाता ने उस वायु को भ्रमित करके इस मध्या में योजित कर दिया। यह कहने के कारण वे निष्पन्द हो गये तथा हरि ने पूर्वकाल में उनको जो दशाक्षर परममन्त्र दिया था उसका जप करने लगे॥३०-३१॥

मुहूर्तं च जपं कृत्वा ध्यायं ध्यायं पदाम्बुजम्। ददर्श हृदयाम्भोजे सर्वतेजोमयं मुने॥३२॥
तत्तेजसोऽन्तरे रूपमतीव सुमनोहरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं भूषितं पीतवाससा॥३३॥
श्रुतिमूलस्थलन्यस्तज्वलन्मकरकुण्डलम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्॥३४॥

ब्रह्मा हरि के चरणकमलों का एक मुहूर्त्त तक ध्यानयुक्त जप करते रहे। हे मुनि! तब उन्होंने

अपने हृदयकमल में तेजोमण्डल के मध्य में अतिशय सुमनोहर रूप का दर्शन किया। वह रूप द्विभुज, मुरलीधारी तथा पीतवस्त्र भूषित था। उनका कर्णमूल मकराकृति कुण्डल से भूषित था। वह मन्दहास्य से प्रसन्न आनन वाला तथा भक्तों पर अनुग्रहकारीरूप था।।३२-३४।।

यद्दृष्टं ब्रह्मरन्ध्रे च हृदि तद्बहिरेव च। दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं तुष्टाव परमेश्वरम्।।३५।।
यत्स्तोत्रं च पुरा दत्तं हरिणैकार्णवे मुने। तमीशं तेन विधिना भक्तिनम्रात्मकंधरः।।३६।।

ब्रह्मा ने जो रूप ब्रह्मरन्ध्र में तथा हृदयकमल में देखा था, परम आश्चर्यमय वही रूप बाहर भी देखा। हे मुनि! पूर्वकाल में एकार्णव में स्थित हरि ने उन ब्रह्मा को जिस स्तोत्र का उपदेश प्रदान किया था, ब्रह्मा ने नतशिर होकर तथा हाथ जोड़कर उसी स्तव से प्रभु की स्तुति परम भक्तिभाव से किया।।३५-३६।।

ब्रह्मोवाच

सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वकारणकारणम्। सर्वानिर्वचनीयं तं नमामि शिवरूपिणम्।।३७।।
नवीनजलदाकारं श्यामसुन्दरविग्रहम्। स्थितं जन्तुषु सर्वेषु निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम्।।३८।।
स्वात्मारामं पूर्णकामं जगद्व्यापि जगत्परम्। सर्वस्वरूपं सर्वेषां बीजरूपं सनातनम्।।३९।।
सर्वाधारं सर्ववरं सर्वशक्तिसमन्वितम्। सर्वाराध्यं सर्वगुरुं सर्वमङ्गलकारणम्।।४०।।
सर्वमन्त्रस्वरूपं च सर्वसंपत्करं वरम्[1]।
शक्तियुक्तमयुक्तं च स्तौमि स्वेच्छामयं विभुम्।।४१।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—जो सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, सर्वकारणों के भी कारण, अनिर्वचनीय हैं, मैं उन शिशुरूपी हरि को प्रणाम करता हूं! जिनका शरीरवर्ण नवीन जलधरमेघ के समान सुन्दर श्यामल है, जो सभी प्राणीगण में स्थित हैं, जो सबसे निर्लिप्त तथा साक्षीरूप हैं, जो स्वात्माराम, पूर्णकाम, जगत् में व्याप्त होकर भी जगत् से परे हैं, उन सर्वस्वरूप, सबके बीजरूप, सर्वाधार, सर्वश्रेष्ठ, सर्वशक्तिसमन्वित, सर्वाराध्य, सबके गुरु, सबका मङ्गल करने वाले, सर्वमन्त्रस्वरूप, श्रेष्ठ सर्वसम्पदाप्रदाता तथा शक्तियुक्त अव्यक्त हैं तथा स्वेच्छामय प्रभु हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूं।।३७-४१।।

शक्तीशं शक्तिबीजं च शक्तिरूपधरं वरम्। संसारसागरे घोरे शक्तिनौकासमन्वितम्।।४२।।
कृपालुं कर्णधारं च नमामि भक्तवत्सलम्।
आत्मस्वरूपमेकान्तं लिप्तं निर्लिप्तमेव च।।४३।।
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म स्तौमि स्वेच्छास्वरूपिणम्।
सर्वेन्द्रियादिदेवं तमिन्द्रियालयमेव च।।४४।।
सर्वेन्द्रियस्वरूपं च विराड्रूपं नमाम्यहम्। वेदं च वेदजनकं सर्ववेदाङ्गरूपिणम्।।४५।।

---
१. क. परम्।

सर्वमन्त्रस्वरूपं च नमानि परमेश्वरम्। सारात्सारतरं द्रव्यमपूर्वमनिरूपिणम्॥४६॥
स्वतन्त्रमस्वतन्त्रं च यशोदानन्दनं भजे। सन्तं सर्वशरीरेषु तमदृष्टमनूहकम्॥४७॥

आप शक्ति के ईश्वर, शक्ति के बीज (करण) शक्तिरूपधारी, श्रेष्ठ हैं। आप घोर संसार-सागर में शक्ति नौका समन्वित, कृपालु, कर्णधार हैं। हे भक्तवत्सल! आपको प्रणाम करता हूं! आप आत्मरूप, एकान्त, लिप्त-निर्लिप्त हैं। आप ही सगुण-निर्गुण ब्रह्म हैं। आप स्वेच्छास्वरूपधारी की मैं स्तुति करता हूं। आप सभी इन्द्रियों के आदिदेव, सभी इन्द्रियों के आलय (आश्रय), सर्वेन्द्रिस्वरूप, विराट् रूप हैं। आपको नमस्कार! आप वेद, वेद के जनक तथा सर्ववेदाङ्गरूपी हैं। आप सर्वमन्त्रस्वरूप परमेश्वर को मैं प्रणाम करता हूं! आप सार के भी सारतर हैं। आप अपूर्व एवं अनिरूपित हैं, आप स्वतन्त्र होकर भी अस्वतन्त्र हैं (भक्त के अधीन हैं), मैं आप यशोदा नन्दन का भजन करता हूं। आप सर्वशरीरवासी, अदृष्ट तथा तर्क-वितर्क से अतीत हैं।।४२-४७।।

ध्यानासाध्यं विद्यमानं योगीन्द्राणां गुरुं भजे।
रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम्॥४८॥
गोपीभिः सेव्यमानं च तं धरेशं नमाम्यहम्। सतां सदैव सन्तं तमसन्तमसतामपि॥४९॥
योगीशं योगसाध्यं च नमामि शिवसेवितम्।
मन्त्रबीजं मन्त्रराजं मन्त्रदं फलदं फलम्॥५०॥
मन्त्रसिद्धस्वरूपं तं नमामि च परात्परम्। सुखं दुःखं च सुखदं दुःखदं पुण्यमेव च॥५१॥

आप ध्यान से असाध्य, नित्यविद्यमान, योगीन्द्रगण के गुरु हैं। मैं आप का भजन करता हूं। आप रासमण्डलमध्य में स्थित तथा रास के उल्लास हेतु उत्सुक रहते हैं। आप गोपीगण द्वारा सेव्यमान तथा धरती के ईश्वर हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! जो निरन्तर साधुगण के सन्निधान में रहने वाले तथा असाधुगण हेतु अविद्यमान हैं, जो योगीश्वर एवं योगस्वरूप हैं, उन शिव सेवित प्रभु को मैं प्रणाम करता हूं! आप मन्त्रबीज, मन्त्रराज, मन्त्रप्रद, फल देने वाले, फलरूप हैं। आप मन्त्रसिद्धिस्वरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप ही सुख-दुःख हैं तथा आप सुख-दुःख देने वाले, पुण्यरूप हैं।।४८-५१।।

पुण्यप्रदं च शुभदं शुभबीजं नमाम्यहम्।
इत्येवं स्तवनं कृत्वा दत्त्वा गाश्च स बालकान्॥५२॥
निपत्य दण्डवद्भूमौ रुरोद प्रणनाम च। ददर्श चक्षुरुन्मील्य विधाता जगतां मुने॥५३॥

"आप पुण्यप्रद, शुभप्रद, शुभबीज हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं!" इसके अनन्तर जगद्विधाता ने कृष्ण की इस प्रकार से स्तुति करके बालकों, गौओं आदि कृष्ण को प्रदान किया और उन्होंने भूमि पर दण्डवत् होकर कृष्ण को प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे रुदन करने लगे। हे मुनि! सर्वान्त में ब्रह्मा ने अपने नेत्रों को खोलकर कृष्ण का दर्शन प्राप्त किया।।५२-५३।।

ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम्॥५४॥
लभते दास्यमतुलं स्थानमीश्वरसन्निधौ। लब्ध्वा च कृष्णसान्निध्यं पार्षदप्रवरो भवेत्॥५५॥

हे मुनिप्रवर! जो कोई इस ब्रह्माकृत स्तव का नित्य भक्तिभाव से पाठ करता है, वह इहलोक में सुख भोगकर अन्त में श्रीहरि के लोक को प्राप्त करता है। वह उस स्थान में अतुलित दास्यभाव पाकर प्रभु के सान्निध्य में पार्षद प्रवर हो जाता है।।५४-५५।।

नारायण उवाच

गते जगत्कारणे च ब्रह्मलोके च ब्रह्मणि।
श्रीकृष्णो बालकैः सार्धं जगाम स्वालयं विभुः॥५६॥
गावो वत्साश्च बालाश्च जग्मुर्वर्षान्तरे गृहम्।
श्रीकृष्णमायया सर्वे मेनिरे ते दिनान्तरम्॥५७॥
गोपा गोपालिकाः किञ्चित्तत्कर्तुं न क्षमास्तदा।
योगिनः कृत्रिमं सर्वं किं नूत्नं वा पुरातनम्॥५८॥
इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णचरितं शुभम्। सुखदं मोक्षदं पुण्यं सर्वकालसुखावहम्॥५९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोवत्सबालकहरणप्रस्तावो नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

—✻✻✻—

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—जब जगत्कारण ब्रह्मा ब्रह्मलोक चले गये, तब श्रीकृष्ण भी बालकों के साथ अपने घर लौट गये। उस समय सभी गौ, गोवत्स तथा बालकों ने एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मा के पास रहने पर भी यही अनुभव किया कि वे उसी दिन के अन्त में गृह लौट रहे हैं। यह कृष्णमाया का प्रभाव था। इस विषय में गोप-गोपिकाओं के मन में कोई वितर्क अथवा अनुमान का किञ्चित् लवलेश भी अनुभूत नहीं हो सका। योगीगण कृत समस्त कृत्य में क्या नूतन है, क्या पुरातन है, इसका निश्चय नहीं हो सकता। हे विप्र! मैंने तुमसे सुखदायक, मोक्षदायक, पुण्यप्रद, सार्वकालिक सुख देने वाला श्रीकृष्णचरित कह दिया।।५६-५९।।

।।२०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकविंशोऽध्यायः

इन्द्रयागभंजन, नन्दकृत इन्द्रस्तोत्र, श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्द्धन धारण, इन्द्रकृत गोविन्द का स्तोत्र

नारायण उवाच

एकदाऽऽनन्दयुक्तश्च नन्दो गोपव्रजे मुने। दुन्दुभिं वादयामास शक्रयागकृतोद्यमः॥१॥
दधि क्षीरं घृतं तक्रं नवनीतं गुडं मधु। एतान्यादाय शक्रस्य पूजां कुर्वन्त्विति ब्रुवन्॥२॥

ये ये सन्त्यत्र नगरे गोपा गोप्यश्च बालकाः।
बालिकाश्च द्विजा भूयो वैश्याःशूद्राश्च भक्तितः॥३॥

इत्येवं श्रावयामास स्वयमेव मुदाऽन्वितः। यष्टिमारोपयामास रम्यस्थाने सुविस्तृते॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनिवर! एक बार ब्रजपुरी में गोपराजनन्द सानन्द इन्द्रयाग करने को उद्यत हो गये। उन्होंने नगर में दुन्दुभि वादन कराया कि "इस नगरी के सभी गोप-गोपियां, बालक-बालिकायें, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रगण, जो-जो लोग हैं, वे सभी दधि, क्षीर, घृत, मट्ठा, गुड़-मधु आदि वस्तु संग्रह करके भक्ति पूर्वक इन्द्र पूजा करें।" यह घोषणा कराने के अनन्तर उन्होंने स्वयं भी विस्तृत रमणीय प्रदेश में आनन्द पूर्वक इन्द्रध्वजारोहण कराया!॥१-४॥

ददौ तत्र क्षौमवस्त्रं मालाजालं मनोहरम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमेव च॥५॥

स्नातः कृताह्निको भक्त्या धृत्वा धौते च वाससी।
उवास स्वर्णपीठे च प्रक्षालितपदाम्बुजः॥६॥

नानाप्रकारपात्रैश्च ब्रह्मणैश्च पुरोहितैः। गोपालैर्गोपिकाभिश्च बालाभिः सह बालकैः॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्राऽऽजग्मुर्नगरवासिनः। महासंभृतसंभारा नानोपायनसंयुताः॥८॥
आजग्मुर्मुनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा। सान्ताः शिष्यगणैः सार्धं वेदवेदाङ्गपारगाः॥९॥

गर्गश्च गालवश्चैव शाकल्यः शाकटायनः।
गौतमः करुषः कण्वो वात्स्यः कात्यायनस्तथा॥१०॥

सौभरिर्वामदेवश्च याज्ञवल्क्यश्च पाणिनिः। ऋष्यशृङ्गो गौरमुखो भरद्वाजश्च वामनः॥११॥
कृष्णद्वैपायनः शृङ्गी सुमन्तुर्जैमिनिः कचः। पराशरश्च मैत्रेयो वैशम्पायन एव च॥१२॥

ब्राह्मणाश्च कतिविधा भिक्षुका बन्दिनस्तथा।
भूपा वैश्याश्च शूद्राश्च समाजग्मुर्महोत्सवे॥१३॥

नन्दराज ने उस ध्वजा पर क्षौमवस्त्र तथा मनोहर मालायें लगवाया। उस ध्वजा के बांस पर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम का लेप कराया। स्वयं स्नान करके नन्द ने दो वस्त्र पहना तथा पैरों को

धोकर भक्तिभाव से आह्निक सम्पन्न करने के पश्चात् वे स्वर्णपीठ पर जा बैठे। वहां नाना प्रकार के यज्ञीय पात्र लाये गये। वहां पुरोहित ब्राह्मण तथा गोपियां-गोपगण तथा बालक-बालिकायें भी आसन पर बैठ गये। तभी नगरवासीलोग नाना प्रकार की भेट लेकर प्रभूत संभार युक्त होकर वहां आये। तब ब्रह्मतेज से दीप्त वेदवेदांग-पारङ्गत शान्त प्रकृति गर्गमुनि, गालव, शाकल, शाकटायन, गौतम, करुष, कण्व, वात्स्य, कात्यायन, सौभरि, वामदेव, याज्ञवल्क्य, पाणिनि, ऋष्यशृङ्ग, गौरमुख, भरद्वाज, वामन, कृष्णद्वैपायन, श्रृंगी, सुमन्तु, जैमिनि, कच, पराशर, मैत्रेय, वैशम्पायन आदि तथा अनेक प्रकार के ब्राह्मण, भिक्षुगण, बन्दीगण, राजा, वैश्य तथा शूद्र भी इस इन्द्र महोत्सव में वहां आये।।५-१३।।

दृष्ट्वा मुनीन्द्रान्नन्दश्च ब्राह्मणान्भूमिपांस्तथा।
स्वर्णपीठात्समुत्तस्थौ वज्राश्चोत्तस्थुरेव च॥१४॥

प्रणम्य वासयामास मुनीन्द्रान्विप्रभूमिपान्। तेषामनुमतिं प्राप्य तत्रोवास पुनर्मुदा॥१५॥
पाकं च यष्टिनिकटे कर्तुमाज्ञां चकार ह। पाकप्राज्ञं ब्राह्मणानां शतमानीय सादरम्॥१६॥
तत्र रत्नप्रदीपाश्च जज्वलुः परितस्तथा। अन्धीभूतं च धूपेन स्थानं तत्सुरभीकृतम्॥१७॥

तब गोपराज नन्दराज ने वहां मुनीन्द्रगण, ब्राह्मणों तथा राजाओं को समागत देखा, तब वे तथा व्रजवासी सभी अपने आसन से उठे तथा उन मुनियों, ब्राह्मणों तथा राजाओं को प्रणाम करके सबको सादर बैठाया। तदनन्तर उनकी अनुमति लेकर स्वयं भी आनन्द के साथ बैठ गये। तभी राजा ने पाक कार्य में निष्णात १०० ब्राह्मणों से कहा कि "आप सब ध्वजदण्ड के निकट पाक कार्य को प्रारंभ करें।" वहां चतुर्दिक् रत्नमय प्रदीप प्रज्वलित थे, यद्यपि वहां धूपदान के कारण समस्त वातावरण भले ही सुरभित था, तथापि वह अन्धकारमय (धूयें से) हो गया।।१४-१७।।

नानाविधानि पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च। नैवेद्यं च बहुविधमपूर्वं सुमनोहरम्॥१८॥

तिललड्डुकपूर्णं च मण्डकानां सहस्त्रकम्।
स्वस्तिकैः परिपूर्णं च यष्टिस्थानं च नारद॥१९॥

कलशानां सहस्त्रं च पूर्णं शर्करया मुने। यवगोधूमचूर्णानां लड्डुकैर्मधुरैर्वरैः॥२०॥

घृतपक्वैर्विप्रकृतैः पूर्णानि कलशानि च।
वृक्षपक्वानि रम्याणि चारुरम्भाफलानि च॥२१॥
फलानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च।
क्षीराणां कुम्भलक्षाणि दध्नां तावन्ति नारद॥२२॥
मधूनां कुम्भशतकं सर्पिः कुम्भसहस्त्रकम्।
कलशानां त्रिलक्षाणि तक्रपूर्णानि निश्चितम्॥२३॥
घटानां पञ्चलक्षाणि गुडपूर्णानि निश्चितम्।
तिलतैलेन पूर्णं च कलशानां सहस्त्रकम्॥२४॥

हे नारद! नाना प्रकार के पुष्प, तरह-तरह की मालायें, अनेक प्रकार के मनोहर नैवेद्य, तिल के लड्डू, मण्डक नामक हजारों मिष्ठान्न तथा इमरती से वह ध्वजस्थल भर गया। हे मुनिवर! वह हजारों कलश शर्करा भरे रखे थे। जौ, गेहूं के आटे से निर्मित मधुर तथा श्रेष्ठ लड्डू को घृत में ब्राह्मणों ने बनाकर कलशों में भरकर वहां रखवा दिया। हे नारद! वृक्ष में ही पके रमणीय कदलीफल, देशकालानुरूप पके फल लाखों खीर के घट, सौ कलश नवनीत से पूर्ण, एक हजार विष्णुतैल पूर्ण कलश (तिल तैल=विष्णु तैल), तक्र के तीन लाख घट, ५ लाख गुड़युक्त कलश वहां रखे गये।।१८-२४।।

वृषेन्द्राश्च बहुविधा भोगार्हद्रव्यवाहकाः। नानाविधानि पात्राणि सौवर्णराजतानि च॥२५॥

स्वर्णपीठानि च ब्रह्मन्नाजग्मुर्यष्टिसन्निधिम्।
वस्त्राणि वरणार्हाणि चारूणि भूषणानि च॥२६॥
नानाविधानि वाद्यानि चारूणि मधुराणि च।
वादकाः स्वरयन्त्राणि वादयामासुरुत्सवे॥२७॥
छागलानां सहस्राणि महिषाणां शतानि च।
मेषकाणां च लक्षाणि ह्यानयामास तत्र वै॥२८॥

वहां उपभोग की नानावस्तु, इन सबको ढोने वाले पुष्ट बृहदाकार वृष, नाना प्रकार के स्वर्ण-रजत पात्र रखे थे। हे ब्रह्मन्! उस ध्वजदण्ड के निकट स्वर्ण के पीठासन, वरणयोग्य वस्त्र, उत्तम आभूषण, नाना प्रकार के सुन्दर-मधुर ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्य एवं स्वरयन्त्र वहां बजाये जा रहे थे। वहां १००० बकरे, १०० भैंसें, १ लक्ष भेड़ें एकत्र की गईं।।२५-२८।।

शतान्येव गण्डकानामाजग्मुर्यष्टिसन्निधिम्।
प्रेक्षितानि च सर्वाणि रक्षितानि च रक्षकैः॥२९॥
बालकानां बालिकानां वृक्षाणां वृक्षयोषिताम्।
यूवां च युवतीनां च संख्यां कर्तुं च कः क्षमः॥३०॥
गायकानां च सङ्गीतं नर्तकानां च नर्तनम्।
श्रुत्वा दृष्ट्वा जनाः सर्वे मुमुहुः सुमहोत्सवे॥३१॥

ध्वज के समीप स्थल पर १०० गैड़े भी लाये गये। सभी दर्शनीय वस्तु रक्षकों से रक्षित होकर वहां लाई जा रहीं थीं। वहां वृन्दावन में इतने बालक, बालिका, युवक-युवती, वृक्ष-लतायें थीं, जिनकी संख्या गणना कौन कर सकता है? वहां गायक संगीत गा रहे थे, नर्त्तक नृत्यरत थे। यह सब गायन सुनकर तथा नृत्य देखकर उस महोत्सव में लोग मोहित हो गये।।२९-३१।।

रम्भोर्वशी मेनका च घृताची मोहिनी रतिः।
प्रभावती भानुमती विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा॥३२॥

चन्द्रप्रभा सुप्रभा च रत्नमाला मदालसा। रेणुका रमणी ब्रह्मन्नेता आजग्मुरुत्सवे॥३३॥

तासां नृत्येन गीतेन स्तनास्यश्रोणिदर्शनात्।
रूपेण वक्रदृष्ट्या च मूर्च्छां प्रापुश्च मानवाः॥३४॥

हे ब्रह्मन्! उत्सव स्थल पर रम्भा, उर्वशी, मेनका, घृताची, मोहिनी, रति, प्रभावती, विप्रचित्ति, भानुमती, तिलोत्तमा, चन्द्रप्रभा, सुप्रभा, रत्नमाला, मदालसा, रेणुका, प्रभृति स्वर्ग वेश्यायें भी आ गईं। मनुष्य उनके नृत्य-गीत, स्तन-मुख-नितम्बादि को देखकर उनका रूप तथा वक्र (तिरछी) चितवन देखकर मूर्च्छित हो जाते थे।।३२-३४।।

एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हरिः स्वयम्। गोपालबालकैः सार्धं बलेन बलशालिना॥३५॥

दृष्ट्वा तं च जनाः सर्वे संभ्रान्ता हर्षविह्वलाः।
उत्तस्थुराराद्भीताश्च पुलकाङ्कितविग्रहाः॥३६॥

क्रीडास्थानात्समायान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम्। विनोदमुरलीवेणुशृङ्गशब्दसमन्वितम्॥३७॥

तभी वहां गोपबालकों महाबली बलभद्र सहित स्वयं प्रभु श्रीकृष्ण आ गये। उनको दूर से ही आते देखकर सभी उपस्थित लोग हर्ष-विह्वल तथा रोमांचित हो गये। सभी भय पूर्वक हड़बड़ाहट में उठकर खड़े हो गये। श्रीकृष्ण अपने क्रीड़ास्थल से यहां आ रहे थे। उनका स्वरूप शान्त एवं सुन्दर था। उनके आगमन के साथ-साथ विनोद साधानभूता मुरली-वेणु-शृंग वाद्यों की ध्वनि श्रुतिगोचर होने लगी।।३५-३७।।

सद्रत्नसारभूषाभिर्भूषितं कौस्तुभेन च। चन्दनागुरुपङ्केन चर्चितं श्यामविग्रहम्॥३८॥
शरन्मध्याह्नपद्मास्यं पश्यन्तं रत्नदर्पणे। चारुचन्दनचन्द्रेण कस्तूरीबिन्दुना सह॥३९॥

उनके शरीर पर उत्तम रत्नभूषण समूह विभूषित थे। उनका वक्षस्थल कौस्तुभमणि से भूषित था। उनका श्याम कलेवर चन्दन तथा अगुरु के लेप से चर्चित था। वे एक रत्नदर्पण में शरत्कालीन मध्याह्न काल में खिले पद्म के समान अपने मनोहर मुख का दर्शन कर रहे थे। जैसे आकाशमण्डल में नक्षत्रसमूह मस्तक पर लगी बिन्दी जैसे प्रतीत होते हैं, तदनुरूप कृष्ण के ललाट पर कस्तूरी की बिन्दी सहित पूर्णिमा के चन्द्र के समान प्रतीत होने वाली मनोहर श्वेत-चन्दन की भी बिन्दी लगी थी।।३८-३९।।

शशाङ्केन यथाऽऽकाशं भालमध्यविराजितम्।
मालतीमालया श्यामकण्ठवक्षःस्थलोज्ज्वलम्॥४०॥
बकपङ्क्त्या यथाऽऽकाशं शारदीयं सुनिर्मलम्।
चारुणा पीतवस्त्रेण शोभितं श्यामविग्रहम्॥४१॥

विभान्तं विद्युता शश्वन्नवीनं नीरदं यथा। कुन्दप्रसूनैर्गुञ्जाभिर्बद्धवक्रिमचूडकम्॥४२॥

यथेन्द्रधनुषा भाति विभातं भगणैर्नभः।
रत्नकुण्डलदीप्त्या च स्मितवक्त्रसुशोभितम्॥४३॥
शरत्प्रफुल्लपद्मं च द्युमणेः किरणेर्यथा। विप्रक्षत्रियवैश्याश्च मुनयो बल्लवा मुने॥४४॥
प्रणम्य वासयामास रत्नसिंहासने शुभे। उवास रत्नपीठे स तेषां मध्ये जगत्पतिः॥४५॥
यथा बभौ शरच्चन्द्रो ज्योतिषामन्तरे च खे। श्रुत्वा तमूचुस्ते सर्वे जगतामीश्वरं परम्॥४६॥
स्वेच्छामयं गुणातीतं ज्योतीरूपं सनातनम्। दृष्ट्वा महोत्सवं शीघ्रमुवाच पितरं हरिः।
सर्वेषां[1] दुर्लभां नीतिं नीतिशास्त्रविशारदः॥४७॥

जैसे शारदीय निर्मल आकाश बगुले की पंक्तियों के उड़ने से शोभायमान होता है, उसी प्रकार नीलगगन जैसा उनका श्यामल कण्ठ एवं वक्षस्थल भी मनोहर मालती माला से समुज्वल हो रहा था। जिस प्रकार नूतन मेघाच्छन्न बादलों में चमक रही विद्युत् वल्लरी शोभायमान लगती है,उसी प्रकार उनके श्याम वर्ण के शरीर पर मनोहर पीतवस्त्र शोभायमान हो रहा था। श्रीकृष्ण के मस्तक पर एक ओर नत, वक्र मयूरपिच्छ का मुकुट कुन्दपुष्प तथा गुंजामाला से आबद्ध था। प्रतीत हो रहा था जैसे कि गगनमण्डल इन्द्रधनुष तथा नक्षत्रों से शोभायमान है। प्रभु श्रीकृष्ण का मुस्कान युक्त मुख उनके कानों से विलम्बित कुण्डलद्वय की दीप्ति से ऐसा दीप्तिमान् था मानो शारदीय मध्याह्न में विकसित कमल सूर्य किरणों के स्पर्श से और भी उत्फुल्ल हो रहा है। हे मुनिवर! ऐसे शोभाशाली श्रीकृष्ण को देखकर वहां समागत ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यगण तथा गोपगण ने उनको प्रणति निवेदित किया तथा जगत्पति को रत्नसिंहासनासीन कराया। सिंहासनासीन भगवान् की सबके बीच ऐसी शोभा हो रही थी मानों वे आकाश में उगे शारदीय पूर्णचन्द्र हों तथा चतुर्दिक् बैठे लोग तारागण के समान हों। उनका यह स्वरूप देखकर उपस्थित लोगों ने कहा-"ये जगत् के परम ईश्वर, स्वेच्छामय, त्रिगुणातीत ज्योतिरूप सनातन प्रभु हैं।" तदनन्तर उस महोत्सव का महा आयोजन देखकर नीतिशास्त्रज्ञ हरि ने पिता से जो कुछ कहा, वह अन्य के लिये दुर्लभ नीति थी।।४०-४७।।

श्रीकृष्ण उवाच

भो भो बल्लवराजेन्द्र किं करोषीह सुव्रत।
आराध्यः कश्च का पूजा किंफलं पूजने भवेत्॥४८॥
फलेन साधनं किं वा कः साध्यः साधनेन च।
देवे रुष्टे भवेत्किं वा पूजायाः प्रतिबन्धके॥४९॥
तुष्टो देवः किं ददाति फलमत्र परत्र किम्। काचिद्ददात्यत्र फलं परत्रेह न काचन॥५०॥
काचिच्च नोभयत्रापि चोभयत्रापि काचन।
अवेदविहिता पूजा सर्वहानिकरण्डिका॥५१॥

१. क. विदुषां।

पूजेयमधुना वा ते किमु वा पुरुषक्रमात्। दृष्टो देवस्त्वया कस्मिन्पूजेयं चानुसारिणी॥५२॥

साक्षात्खादति देवस्ते साक्षात्किं वा न खादति।
साक्षाद्भुङ्क्ते च यो देवः सुप्रशस्तं तदर्चनम्॥५३॥

प्रभु श्रीकृष्ण कहते हैं–हे वल्लवगण के राजेन्द्र! हे सुव्रत! आप यह सब क्या आयोजन कर रहे हैं? किसकी पूजा की जा रही है? पूजा का फल क्या है? उससे क्या साधन सुलभ होगा? उससे क्या मनोरथ सिद्ध होगा? हे पिता! यदि यह पूजा न की जाये, तब इसके आराध्य के रुष्ट होने पर क्या होगा? यदि पूजा से वे आराध्य प्रसन्न हों जायें, तब वे इहलोक का अथवा परलोक का क्या फल प्रदान करेंगे? कुंछ पूजा ऐसी कही गयी है, जो इहलोक का ही फल देती है। वह पारलौकिक फल नहीं दे पाती। किसी पूजा से दोनों में से कोई फल किसी लोक का नहीं मिलता। किसी पूजा से उभयलोक का फल लाभ होता है, तथापि जो पूजा वेदविहित नहीं है, वह तो सभी प्रकार के अनिष्ट का आधार हैं। आप जो पूजा कर रहे हैं क्या वह परम्परा से होती चली आई है अथवा इसे आप नवीनतया आरंभ कर रहे हैं? जिन देवता की आप पूजा कर रहे हैं, क्या आपने कभी उनको प्रत्यक्ष देखा है? क्या आपके देवता साक्षात् आकर नैवेद्य ग्रहण करते हैं, अथवा अप्रत्यक्षरूपेण ग्रहण करते हैं? जो देवता साक्षात् आकर नैवेद्य भक्षण करते हैं, उनकी अर्चना अत्यन्त प्रशस्त है ।।४८-५३।।

पृथिव्यां ब्राह्मणा देवा इति वेदे निरूपितम्।
सर्वेषां[1] पूजनात्तात सुप्रशस्तं द्विजार्चनम्॥५४॥

साक्षात्खादति नैवेद्यं विप्ररूपी जनार्दनः। ब्राह्मणे परितुष्टे च संतुष्टाः सर्वदेवताः॥५५॥

किं तस्य देवपूजायां यो नियुक्तो द्विजार्चने।
पूजिता ब्राह्मणा येन पूजिताः सर्वदेवताः॥५६॥

देवाय दत्त्वा नैवेद्यं द्विजाय न प्रयच्छति। भस्मीभूतं च नैवेद्यं पूजनं निष्फलं भवेत्॥५७॥

वेदों ने कहा है कि पृथिवी पर ब्राह्मण ही देवता हैं! सभी देवगण की पूजा की तुलना में ब्राह्मण की पूजा अत्यन्त श्रेष्ठ है। ब्राह्मणरूपी जनार्दन नैवेद्य का साक्षात् भोजन करते हैं। ब्राह्मण के प्रसन्न होने पर सभी देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं। जिसने द्विजों की अर्चना कर लिया, उसे अन्य देवपूजा का क्या प्रयोजन? फलतः ब्राह्मण की पूजा द्वारा सभी देवता पूजित हो जाते हैं। यदि देवता को नैवेद्य प्रदान करके ब्राह्मण को पूजक नैवेद्य प्रदान नहीं करता, उसका नैवेद्य भस्मीभूत हो जाता है। उसकी पूजा निष्फल मानी जाती है।।५४-५७।।

विप्राय देवनैवेद्यदानादध्रुवमनन्तकम्। तुष्टो देवो वरं दत्त्वा प्रयाति च स्वमन्दिरम्॥५८॥

दत्त्वा देवाय नैवेद्यं मूढो भुङ्क्ते स्वयं यदि।
दत्तापहारी देवस्वयं भुक्त्वा च नरकं व्रजेत्।

१. क. विदुषां।

देवदत्तं न भोक्तव्यं नैवेद्यं च विना हरेः। प्रशस्तं सर्वदेवेषु विष्णुनैवेद्यभोजनम्॥५९॥

देवता का नैवेद्य ब्राह्मण को अर्पित करने से अनन्त फल पूजक को मिलता है। देवता प्रसन्न होकर उसे वर देकर अपने लोक चले जाते हैं। यदि कोई मूढ़ व्यक्ति देव नैवेद्य ब्राह्मण को अर्पित किये बिना स्वयं भक्षण कर लेता है, उस स्थिति में वह देवधन (देवस्व) का अपहरण कर्त्ता होता है। वह अप्रदत्त नैवेद्य भक्षण के पातकस्वरूप नरकगामी होता है। अतः हरि के अतिरिक्त अन्य देवता का नैवेद्य कदापि न खाये। हरि के अतिरिक्त अन्य देवता को नैवेद्य प्रदान करना कर्त्तव्य नहीं है। मात्र विष्णु नैवेद्य भोजन करना ही उचित एवं प्रशस्त है॥५८-५९॥

अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्। सर्वेषां च क्रममिदं ब्राह्मणानां विशेषतः॥६०॥

न दत्त्वा वस्तु देवाय दत्तं विप्राय चेत्सुधीः।
भुक्त्वा विप्रमुखे देवास्तुष्टाः स्वर्गं प्रयान्ति च॥६१॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विप्राणामर्चनं कुरु। प्रशस्तफलदातॄणामिह लोके परत्र च॥६२॥

जो अन्न विष्णु को निवेदित नहीं किया गया वह अन्न मल के समान है। उनको अनिवेदित जल मूत्रवत् है। यह नियम सबके लिये है, तथापि ब्राह्मण को यह नियम अवश्य पालन करना होगा। यदि कोई देवता को नैवेद्य न देकर ब्राह्मण को प्रदान कर देता है, तब देवता उस नैवेद्य को उस ब्राह्मण के मुख द्वारा ग्रहण करके प्रसन्नता पूर्वक स्वर्गगामी हो जाते हैं। अतः व्यक्ति सर्वप्रयत्न पूर्वक ब्राह्मणार्चन करें। वे ही इहलोक तथा परलोक सम्बन्धित श्रेष्ठफल प्रदान कर देते हैं॥६०-६२॥

जपस्तपश्च पूजा वा यज्ञो दानं महोत्सवः। सर्वेषां कर्मणां सारा[१] विप्रतुष्टिश्च दक्षिणा॥६३॥

ब्राह्मणानां शरीरेषु तिष्ठन्ति सर्वदेवताः। पादेषु सर्वतीर्थानि पुण्यानि पादधूलिषु॥६४॥

पादोदके च विप्राणां तीर्थतोयानि सन्ति च।
तत्स्पर्शात्सर्वतीर्थेषु स्नानजन्यफलं लभेत्॥६५॥
नश्यन्ति भक्षणाद्रोगा भक्तिभावेन बल्लव।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः॥६६॥

ब्राह्मण को सन्तुष्ट कर देना तथा ब्राह्मण को दान करना ही जप, तप, पूजा, यज्ञ, दान तथा महोत्सवादि समस्त कार्य का साररूप है। ब्राह्मण के समस्त शरीर में समस्त देवता का वास है। उनके चरणों तथा चरणधूलि में समस्त तीर्थ विद्यमान रहते हैं। ब्राह्मण के चरणामृत में समस्त तीर्थों का वास है। ब्राह्मण के चरणोदक का स्पर्श करने मात्र से समस्त तीर्थों में स्नान का फल मिल जाता है। हे गोपराज! भक्ति पूर्वक विप्रपादोदक पान करने से समस्त रोगों का नाश होता है तथा सात जन्मों के पातकों से मुक्ति मिल जाती है। इसमें संशय न करें॥६३-६६॥

पापं पञ्चविधं कृत्वा यो विप्रं प्रणमेद्बुधः। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वपापात्प्रमुच्यते॥६७॥

१. ख. सारं।

ब्राह्मणस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी। दर्शनान्मुच्यते पापादिति वेदे निरूपितम्॥६८॥

जो कोई व्यक्ति पंचविध पातकों को करके भी यदि ब्राह्मण को प्रणाम कर देता है, उसने तो सभी तीर्थों का स्नान कर लिया। वह सर्वपातक रहित हो जाता है। वेद में कहा है कि पापी व्यक्ति ब्राह्मण के स्पर्शमात्र से पापमुक्त हो जाता है तथा ब्राह्मण का दर्शन होते ही वह समस्त पातकों से रहित हो जाता है। यह वेद का वचन है।।६७-६८।।

अप्राज्ञो वाऽथ प्राज्ञो वा ब्राह्मणो विष्णुविग्रहः।
प्रियाः प्राणाधिका विष्णोर्ये विप्रा हरि-सेविनः॥६९॥

द्विजानां हरिभक्तानां प्रभावो दुर्लभः श्रुतौ। येषां पादाब्जरजसा सद्यः पूता वसुंधरा॥७०॥

ब्राह्मण भले ही ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी क्यों न हो, ब्राह्मणमात्र विष्णुरूपी हैं। जो हरिसेवक ब्राह्मण हैं, वे तो विष्णु को प्राणों से अधिक प्रिय हैं। वेद में हरिभक्त विप्रगण के प्रभाव को दुर्लभ कहा गया है। उनकी चरणधूलि के स्पर्श मात्र से धरती तत्क्षण पावन हो जाती है।।६९-७०।।

तेषां च पादचिह्नं यत्तीर्थं तत्परिकीर्तितम्। तेषां च स्पर्शमात्रेण तीर्थपापं प्रणश्यति॥७१॥
आलिङ्गनात्सदालापात्तेषामुच्छिष्टभोजनात्। दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव सर्वपापात्प्रमुच्यते॥७२॥

भगवद्भक्त ब्राह्मण का जो चरणचिह्न पृथिवी पर अंकित हो जाता है, वह तीर्थरूप है। उसके स्पर्शमात्र से तीर्थों में किया गया पातक भी नष्ट हो जाता है। ऐसे ब्राह्मणगण से वार्त्ता, उनका आलिङ्गन, उनका जूठन ग्रहण करना, उनका दर्शन तथा स्पर्श व्यक्ति को सभी पातकों से रहित कर देता है।।७१-७२।।

भ्रमणे सर्वतीर्थानां यत्पुण्यं स्नानतो भवेत्।
हरिदासस्य विप्रस्य तत्पुण्यं दर्शनाल्लभेत्॥७३॥

ये विप्रा हरये दत्त्वा नित्यमन्नं च भुञ्जते। उच्छिष्टभोजनात्तेषां हरेर्दास्यं लभेन्नरः॥७४॥
न दत्त्वा हरये भक्त्या भुञ्जते चेद्भ्रमादपि। पुरीषसदृशं वस्तु जलं मूत्रसमं भवेत्॥७५॥

सभी तीर्थयात्रा करके वहां स्नान द्वारा जो फल लाभ होता है, वही पुण्य हरिसेवक ब्राह्मण के दर्शनमात्र से प्राप्त हो जाता है। जो विप्रगण भगवान् को निवेदित किया भोजन नित्य ग्रहण करते हैं, ऐसे विप्र का जूठन खाने से भी व्यक्ति श्रीहरि का दासत्व लाभ कर लेता है। यदि कोई प्रभु को भक्तिभाव से अर्पित किये बिना आहार करता है, तब वह भोजन मल के समान त्याज्य है । ऐसा जल तो मूत्रवत् ही है।।७३-७५।।

शूद्रश्चेद्धरिभक्तश्च नैवेद्यभोजनोत्सुकः। आमान्नं हरये दत्त्वा पाकं कृत्वा च खादति॥७६॥
विप्रक्षत्रियवैश्यानां शालग्रामशिलार्चने। अधिकारो न शूद्राणां हरेरप्यर्चने तथा॥७७॥

द्रव्याण्येतानि गोपेन्द्र विप्रेभ्यश्चेन्न दास्यति।
भस्मीभूतानि सर्वाणि भविष्यन्ति न संशयः॥७८॥

अन्नं च सर्वजीवेभ्यः पुण्यार्थं दातुमर्हति।
दत्त्वा विशिष्ट जीवेभ्यो विशिष्टं फलमाप्नुयात्॥७९॥
अतो दत्त्वा मानुषेभ्यो लभतेऽष्टगुणं फलम्।
ततो विशिष्टशूद्रेभ्यो दत्त्वा तद्द्विगुणं फलम्॥८०॥
दत्त्वाऽन्नं वैश्यजातिभ्यस्ततश्चाष्टगुणं फलम्।
शूद्राणां द्विगुणं पुण्यं वैश्येभ्योऽन्नं प्रदाय च॥८१॥

यदि शूद्र हरिभक्त है तथा नैवेद्य भोजनार्थ उत्सुक है, तब वह बिना पकाया अन्न हरि को निवेदित करके उसे पाक करके आहार करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को ही शालग्रामशिला पूजनाधिकार है। केवल शूद्र का इसमें अधिकार नहीं है। हे नन्दराज! आप यदि यह सब द्रव्य ब्राह्मण को अर्पित नहीं करते, तब यह सब अन्न (प्रदान का फल) भस्मीभूत होगा। यह निःसंशय जाने। पुण्यलाभार्थ सभी प्राणीगण को अन्न देना चाहिए, तथापि विशिष्ट प्राणी को अन्नदान का विशेष फल मिलता है। अन्य प्राणी की अपेक्षा मनुष्य को अन्नदान का फल आठ गुना होगा। विशिष्ट शूद्र को अन्न देने का फल दोगुना होगा। वैश्यों को अन्न देने से अष्टगुण फल मिलेगा। शूद्र की तुलना में वैश्य को अन्न दान का द्विगुणित फल कहा गया है॥७६-८१॥

दत्त्वाऽन्नं क्षत्रियेभ्योऽपि वैश्यानां द्विगुणं भवेत्।
क्षत्रियाणां शतगुणं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदाय च॥८२॥
विप्राणां च शतगुणं शास्त्रज्ञे ब्राह्मणे फलम्।
शास्त्रज्ञानां शतगुणं भवते विप्रे लभेद्ध्रुवम्।
स चान्नं हरये दत्त्वा भुङ्क्ते भक्त्या च सादरम्॥८३॥
विष्णवे विप्रभक्ताय दत्त्वा दातुश्च यत्फलम्।
तत्फलं लभते नूनं भक्तब्राह्मणभोजने॥८४॥

वैश्य के स्थान पर क्षत्रिय को अन्नदान का फल वैश्य की अपेक्षा दूना होगा। ब्राह्मण को अन्न देने से उसका फल क्षत्रिय को अन्न देने से सौगुना होगा। सामान्य विप्र की तुलना में शास्त्रवेत्ता विप्र को अन्नदान का फल सौगुना कहते हैं। भक्त ब्राह्मण को अन्नदान का फल शास्त्रज्ञ विप्र को देने की अपेक्षा सौ गुणा कहा जाता है। प्रत्येक अन्न भक्तिभाव से हरि को अर्पित करके सादर भोजन करें। ब्राह्मणभक्त प्रभु विष्णु को किसी वस्तु को अर्पित करने से जो फल लाभ होता है, वही फल हरिभक्त विप्र को भोजन कराने से मिल जाता है। यह निश्चय जाने॥८२-८४॥

भक्ते तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टे च देवताः।
भवन्ति सिक्ताः शाखाश्च यथा मूलनिषेचनात्॥८५॥

भक्त की सन्तुष्टि से हरि सन्तुष्ट होते हैं। हरि के सन्तुष्ट होते ही समस्त देवताओं को सन्तोष

मिल जाता है। जैसे वृक्ष की जड़ की सिंचाई से उसकी शाखायें पुष्ट होती हैं, यहां भी वही बात है।।८५।।

द्रव्याण्येतानि देवाय यद्येकस्मै प्रयच्छति।
सर्वे देवाश्च रुष्टाश्चेद्देवैः कः किं करिष्यति॥८६॥
अथवाऽर्धं च वस्तूनां देहि गोवर्धनाय च।
गा वर्धयति नित्यं यस्तेन गोवर्धनः स्मृतः॥८७॥
गोवर्धनसमस्तात पुण्यवान्न महीतले।
नित्यं ददाति गोभ्यो यो नवीनानि तृणशानि च॥८८॥
तीर्थस्थानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने। सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥८९॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने। भुवः पर्यटने यत्तु सत्यवाक्येषु यद्भवेत्॥९०॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः।
तत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च॥९१॥

यह विचार करिये कि यदि यह समस्त द्रव्य केवल किसी एक ही देवता को अर्पित किया जाये, तब अन्य देवता असन्तुष्ट हो जायेंगे। अतएव जब सभी देवता असन्तुष्ट रहेंगे, तब मात्र एक देवता (पूजक की) कैसे रक्षा कर सकेगा? आप यह सब वस्तुसमूह गोवर्द्धन पर्वत को प्रदान करिये। ये नित्य गोधन का वर्द्धन कर देते हैं, तभी इनका नाम 'गोवर्द्धन' प्रसिद्ध है। हे तात! इस धरती पर गोवर्द्धन ऐसा पुण्यवान् अन्य कोई नहीं है। ये नित्य गौओं को नया-नया तृण-घास प्रदान कर देते हैं। समुदय तीर्थों में स्नान, ब्राह्मण भोजन, महादान, सभी हरिसेवा, सभी व्रतोपवास, सभी प्रकार की तपस्या, पृथिवी परिक्रमा, यज्ञ तथा निरन्तर सत्य भाषण, इन सबका जो पुण्य है, वह सब गो सेवा से ही प्राप्त हो जाता है। गौओं को तृण प्रदान करने का वही फल है।।८६-९१।।

भुक्तवन्तीं तृणं यश्च गां वारयति कामतः।
ब्रह्महत्या भवेत्तस्य प्रायश्चित्ताद्विशुध्यति॥९२॥
सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च। तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः॥९३॥
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः। तीर्थस्नातो भवेत्सद्यो जयस्तस्य पदे पदे॥९४॥

हे पिता! जो किसी कारण से तृण खाती गौओं को रोक देता है, उसे ब्रह्महत्या के समान पाप का भागी होना पड़ेगा तथा वह प्रायश्चित्त करने से ही शुद्धिलाभ कर सकेगा। हे पिता! गौओं के अंग में समस्त देवगण का निवास है। गौओं के चरणों में सभी तीर्थ विराजमान हैं। उनके गुह्य देश में स्वयं लक्ष्मी की विद्यमानता रहती है। गौओं के खुर का निशान जहां पड़ा हो, वहां की मृत्तिका का तिलक जिसने कर लिया उसने तो तत्काल तीर्थ में स्नान कर लिया। वह पग-पग पर विजयी हो जाता है।।९२-९४।।

गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव यत्तीर्थं परिकीर्तितम्।
प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद्ध्रुवम्॥९५॥
ब्राह्मणानां गवामङ्गं यो हन्ति मानवाधमः। ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य न संशयः॥९६॥
नारायणांशान्विप्रांश्च गाश्च ये ध्नन्ति मानवाः।
कालसूत्रं च ते यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥९७॥

जहां व्यक्ति गौओं को रखता है, वह स्थान तीर्थ कहा गया है। वहां पर प्राणत्याग करने वाला शीघ्र मुक्त हो जाता है। यह निश्चित है। जो मानवों में अधम व्यक्ति ब्राह्मण तथा गौ पर प्रहार करता है, उसे निश्चित रूप से ब्रह्महत्या जैसा पातक लगता है। इसमें संशय नहीं है। जो मनुष्य ब्राह्मण तथा गौओं की हत्या करते हैं, वे सृष्टि में चन्द्र-सूर्य के स्थिति काल पर्यन्त कालसूत्र नरक में क्लेश भोगते हैं॥९५-९७॥

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद। आनन्दयुक्तो नन्दश्च तमुवाच स्मिताननः॥९८॥

हे नारद! यह कहकर श्रीकृष्ण मौन हो गये। तब यह कृष्ण वचन सुनकर नन्द ने आनन्दित होकर मुस्कुराते हुये कहा-॥९८॥

नन्द उवाच

पौर्वापरीयं पूजेति महेन्द्रस्य महात्मनः। सुवृष्टिसाधनी साध्यं सर्वसस्यं मनोहरम्॥९९॥
सस्यानि प्राणिनां प्राणाः सस्याज्जीवन्ति जीविनः।
पूजयन्ति व्रजस्थाश्च महेन्द्रं पुरुषक्रमात्।
महोत्सवं वत्सरान्ते निर्विघ्नाय शिवाय च॥१००॥

नन्दराज कहते हैं-हे वत्स! महात्मा इन्द्र की यह पूजा हमारे यहां परम्परागत रूप से होती चली आई है। यह उत्तमवृष्टि कराने वाली पूजा है, जिससे सभी प्रकार के फसल उत्तम रूप से उत्पन्न होती है। शस्य (धान्य आदि) की उत्पत्ति से ही प्राणीगण की प्राणरक्षा होती है। यह तो सभी प्राणीगण का प्राण स्वरूप धान्य ही है, जिसके द्वारा सभी जीवधारी जीवित रहा करते हैं। हम पूर्व परम्परानुरूप इन महेन्द्र की पूजा करते आ रहे हैं। यह महान् उत्सव हम लोग वर्ष के अन्त में आयोजित करते हैं। इससे हमारे विघ्न दूर होते हैं। यह सब आयोजन कल्याण लाभार्थ किया जाता है॥९९-१००॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा बलेन सह माधवः। उच्चैर्जहास स पुनरुवाच पितरं मुदा॥१०१॥

पिता का यह वचन सुनकर बलभद्र तथा माधव उच्चस्वर से हंसने लगे। तब कृष्ण ने मुदित मन से अपने पिता से कहा-॥१०१॥

श्रीकृष्ण उवाच

अहो श्रुतं विचित्रं ते वचनं परमाद्भुतम्। उपहास्यं लोकशास्त्रवेदेष्वेव विगर्हितम्॥१०२॥

निरूपणं नास्ति कुत्र शक्राद्वृष्टिः प्रजायते। अपूर्वं नीतिवचनं श्रुतमद्य मुखात्तव॥१०३॥

श्रृणु नीतिं श्रुतिमतां हे तात नानयं वदेः।
वचनं सामवेदोक्तं सन्तो जानन्ति सर्वतः॥१०४॥
प्रश्नं कुरुष्व मन्त्रांश्च बिबुधानपि[1] संसदि।
ब्रुवन्तु परमार्थं च किमिन्द्रावृष्टिरेव च॥१०५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—क्या आश्चर्य है! हे पिता! आपके द्वारा मैंने परम अद्भुत विचित्र बातों को सुना। वह लोक तथा शास्त्रों एवं वेद में निन्दित तथा उपहास योग्य बात है। शास्त्रों में ऐसा निरूपण कहीं नहीं है कि इन्द्र से वर्षा होती है। यह अपूर्व नीतिवाक्य तो आज मैंने आप से ही सुना! हे तात! आप ऐसी अनीतिपूर्ण बातें मत कहिये। अब आप विद्वानों द्वारा कथित नीतिवाक्यों का श्रवण करिये। सभी विद्वद्वर्ग को सामवेदोक्त यह नीतिवाक्य सर्वतोभावेन ज्ञात है। आप इस सभा में विद्वानों से इस सामवेदोक्त मन्त्र के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे कि क्या इन्द्र ही वृष्टि करते हैं?॥१०२-१०५॥

सूर्याद्धि जायते तोयं तोयात्सस्यानि शाखिनः।
तेभ्योऽन्नानि फलान्येवतेभ्यो जीवन्ति जीविनः॥१०६॥
सूर्यग्रस्तं च नीरं च काले तस्मात्समुद्भवः।
सूर्यो मेघादयः सर्वे विधात्रा ते निरूपिताः॥१०७॥
यत्राब्दे यो जलधरो गजश्च सागरो मतः।
सस्याधियो नृपो मन्त्री विधात्रा ते निरूपिताः॥१०८॥
जलादिकानां सस्यानां तृणानां च निरूपितम्।
अब्देऽब्देऽस्त्येव तत्सर्वं कल्पे कल्पे युगे युगे॥१०९॥

हे पिता! सूर्य से जलोत्पत्ति होती है। इस जल से फसल तथा वृक्षादि उत्पन्न होते हैं। वृक्ष से फल होते हैं तथा धान्य से अन्न की पूर्त्ति होती है। इससे प्राणीगण का जीवनचक्र चलता है। इसी के द्वारा वे जीवित रह पाते हैं। सूर्य अपनी प्रखर रश्मियों द्वारा धरती से जल का शोषण करके वर्षाऋतु में उसी जल की उत्पत्ति (वर्षण) कर देते हैं। विधाता द्वारा ही सूर्य तथा मेघ से यह कार्य करने का आदेश दिया गया है। प्रतिवर्ष जलयुक्त मेघ, गज, सागर, वायु, शस्य के अधिपति, मन्त्री आदि का निश्चय किया जाता है। इसी प्रकार प्रतिवर्ष जल, शस्य तथा तृणों की आढ़क संख्या का भी निर्णय होता है। इसी निर्णय क्रमानुसार ही प्रतिवर्ष, प्रतियुग तथा प्रतिकल्प में सभी घटित होता है।॥१०६-१०९॥

हस्तीसमुद्रादादाय करेण जलमीप्सितम्। दद्याद्धनाय तद्दद्याद्वातेन प्रेरितो घनः॥११०॥

स्थाने स्थाने पृथिव्यां च काले काले यथोचितम्।
ईशेच्छयाऽऽविर्भूतं च न भवेत्प्रति बन्धकम्॥१११॥

१. ख. ०विविधा०।

हस्ति (हस्ति शक्ति) अपनी शुण्ड से समुद्र से वांछित जल लेकर मेघ को देते हैं। मेघ वायु से चालित होकर समय-समय पर पृथिवी के स्थान-स्थान पर इस जल की यथोचित वर्षा करते हैं। यह सब ईश्वरेच्छा से ही होता है। इसमें कोई बाधा नहीं होती। कोई ईश्वरेच्छा का प्रतिबंधक हो ही नहीं सकता।।११०-१११।।

भूतं भव्यं भविष्यच्च महत्क्षुद्रं च मध्यमम्।
धात्रा निरूपितं कर्म केन तात निवार्यते॥११२॥
जगच्चराचरं सर्वं कृतं तेनेश्वराज्ञया।
आदौ विनिर्मितं भक्ष्यं पश्चाज्जीव इति स्मृतः॥११३॥
अभ्यासात्स स्वभावो हि स्वभावात्कर्म एव च।
जायते कर्मणां भोगो जीविनां सुखदुःखयोः॥११४॥

हे तात! भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान, महत्-मध्यम-क्षुद्रकर्म, ये सभी विधाता द्वारा निरूपित हैं। कोई भी इनका निवारण नहीं कर सकता। परमेश्वर की इच्छा से ही विधाता ने इस सचराचर जगत् का सृजन किया है तथा यह भी कहा गया है कि पहले भक्ष्यपदार्थ का तदनन्तर प्राणीगण का निर्माण किया था। अब अभ्यास से (बारम्बार ऐसा ही होने के कारण) स्वभाव का निर्माण होता है। (इस बारम्बार होने वाली व्यवस्था का नाम ही स्वभाव है)। स्वभाव द्वारा ही कर्म किया जाता है। कर्मानुसार ही प्राणीगण सुख-दुःख लाभ करते हैं।।११२-११४।।

यातनाजन्ममरणरोगशोकभयानि च। समुत्पत्तिर्विपद्विद्या कविता वा यशोऽयशः॥११५॥
पुण्यं च स्वर्गवासश्च पापं नरकसंस्थितिः।
भुक्तिर्मुक्तिर्हरेर्दास्यं कर्मणा घटते नृणाम्॥११६॥

मनुष्य को उसके कर्मानुसार ही यातना, जन्म-मरण, रोग-शोक-भय, सम्पदा-विपदा, विद्या, कविता, यश-अपयश, पुण्यलाभ, स्वर्गनिवास, पाप, नरकनिवास, भक्ति, भुक्ति-मुक्ति, हरि का दासत्व मिलता है।।११५-११६।।

सर्वेषां जनको हीशश्चाभ्यासः शीलकर्मणाम्।
धातुश्च फलदाता च सर्वं तस्येच्छया भवेत्॥११७॥
विनिर्मितो विराड्येन तत्त्वानि प्रकृतिर्जगत्।
कूर्मश्च शेषधरणी चाऽऽब्रह्मस्तम्ब एव च॥११८॥
यस्याऽऽज्ञया मरुत्कूर्मं धत्ते शेषं बिभर्ति सः।
शेषो वसुन्धरां मूर्ध्ना सा च सर्वं चराचरम्॥११९॥
यस्याऽऽज्ञया सदा याति जगत्प्राणो जगत्त्रये।
तपति भ्रमणं कृत्वा भूगोलं सुप्रभाकरः॥१२०॥

दहत्यग्निः सञ्चरते मृत्युश्च सर्वजन्तुषु।
उत्पत्तिः[1] शाखिनां काले पुष्पाणि च फलानि च॥१२१॥
स्वे स्वे स्थाने समुद्राश्च तूर्णं मज्जन्त्यधोऽधुना।
तमीशं भज भक्त्या च शक्रः किं कर्तुमीश्वरः॥१२२॥

प्रभु ही इस अभ्यास, स्वभाव, शील तथा कर्म के जनक हैं। वे ही विधाता तथा फलदाता हैं। सब कुछ उनकी ही इच्छा से सम्पन्न हो पाता है। उन प्रभु ने ही विराट्पुरुष का, सभी तत्वों का, प्रकृति, जगत्, कूर्म, अनन्त, धरणी का तथा ब्रह्मा से तृण पर्यन्त सब कुछ का निर्माण किया है। उनकी आज्ञा से ही वायु कूर्म को, कूर्म अनन्त को, अनन्त अपने मस्तक पर वसुन्धरा को धारण करते हैं तथा वसुन्धरा द्वारा सचराचर को धारण किया जाता है। जिनकी आज्ञा से जगत्प्राण वायु त्रैलोक्य में प्रवहमान रहता है, प्रभाकर सूर्यदेव भ्रमण करते भूमण्डल को तापित करते हैं तथा जिनकी आज्ञा से अग्निदेव दाहन कार्य करते हैं, मृत्यु प्राणियों में विचरण करते हैं तथा वृक्षसमूह समय से फल-पुष्प प्रदान करते हैं। उनकी आज्ञा से ही समुद्र अपने-अपने स्थान पर स्थित रहकर नीचे की ओर अत्यन्त गहरे हो जाते हैं। आप इस समय उन परमेश्वर का ही भजन करिये। इन्द्र आपकी क्या हानि कर सकते हैं?॥११७-१२२॥

ब्रह्माण्डं च कतिविधमाविर्भूतं तिरोहितम्।
विधयश्च[2] कतिविधा यस्य भ्रूभङ्गलीलया॥१२३॥
मृत्योर्मृत्युः कालकालो विधातुर्विधिरेव सः।
भज तं शरणं तात स ते रक्षां करिष्यति॥१२४॥

उनकी भ्रूभंग की लीला से ही न जाने कितने ब्रह्माण्ड आविर्भूत होते तथा तिरोहित हो जाते हैं, न जाने उनके भ्रूभंग से कितने ब्रह्मा आविर्भूत तथा तिरोहित होते हैं! वे प्रभु मृत्यु की भी मृत्यु, काल के भी काल तथा विधाता के भी विधाता हैं। आप उनकी ही शरण ग्रहण करिये। वे प्रभु आपकी सदा रक्षा करेंगे।॥१२३-१२४॥

अहोऽष्टाविंशदिन्द्राणां पतने यदहर्निशम्। विधातुरेव जगतामष्टोत्तरशताधिकः[3]॥१२५॥
निमेषाद्यस्य पतनं निर्गुणस्याऽऽत्मनः प्रभोः।
एवंभूते तिष्ठतीशे शक्रपूजा विडम्बनम्॥१२६॥

क्या आश्चर्य है? २८ इन्द्रों का पतन हो जाने वाला समय ब्रह्मा का एक अहोरात्र (दिन-रात) है। ऐसे १०८ जगत्स्रष्टा ब्रह्मा का जितने काल में पतन होता है, वह उन निर्गुणात्मा प्रभु का मात्र

१. क. विपत्ति।
२. क. विधेयाश्च।
३. क. ०तायुषः।

एक निमेष ही है। ऐसे ईश्वर के विराजमान रहते तो इन्द्र की पूजा मात्र एक विडम्बना ही है!।।१२५-१२६।।

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद। प्रशंसुश्च मुनयो भगवन्तं सभासदः।।१२७।।

नन्दः सपुलको हृष्टः सभायां साश्रुलोचनः।
आनन्दयुक्ता मनुजा यदि पुत्रैः पराजिताः।।१२८।।

हे नारद! इतना कहकर भगवान् कृष्ण मौन हो गये। वहां उपस्थित मुनिगण तथा सभासद लोग यह सुनकर श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने लगे। उस समय नन्दराज भी अत्यन्त हर्षित तथा पुलकित हो उठे। उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। मनुष्य अपने पुत्र से पराजित होकर अत्यन्त आनन्दपूर्ण हो जाते हैं।।१२७-१२८।।

श्रीकृष्णाज्ञां समाज्ञाय चकार स्वस्तिवाचनम्।
क्रमेण वरणं तत्र सर्वेषां च चकार ह।।१२९।।
पर्वतस्य मुनीन्द्राणां चकार पूजनं मुदा।
बुधानां ब्राह्मणानां च गवां वह्नेश्च सादरम्।।१३०।।
तत्र पूजासमाप्तौ च क्रतौ च सुमुहोत्सवे।
नानाप्रकारवाद्यानां बभूव शब्द उल्वणः।।१३१।।

जयशब्दः शङ्खशब्दो हरिशब्दो बभूव ह। वेदमङ्गलकाण्डं च पपाठ मुनिपुङ्गवः।।१३२।।

बन्दिनां प्रवरो डिण्डी कंसस्य सचिवः प्रियः।
उच्चैः पपाठ पुरतो मङ्गलं मङ्गलाष्टकम्।।१३३।।

तत्पश्चात् नन्द ने श्रीकृष्ण की आज्ञा से स्वस्तिवाचन कराया तथा सबका वरण किया। नन्द ने पर्वत गोवर्द्धन की एवं मुनिगण की वहां पर पूजा किया। वह पूजा समाप्त होने पर उस महोत्सव में मंगलजनक नाना वाद्यों का तुमुल शब्द गूंजने लगा। जयजयकार, शंखध्वनि तथा हरिध्वनि लोग करने लगे। मुनिप्रवर लोग भी वहां वेदपाठ तथा मङ्गलमय काव्य पाठ करने लगे। तभी वहां कंस का श्रेष्ठ बन्दी तथा प्रिय सचिव डिण्डि अत्युच्च स्वर में मङ्गलाष्टक का मंगलपाठ करने लगा।।१२९-१३३।।

कृष्णः शैलान्तिकं गत्वा भिन्नां मूर्तिं विधाय च।
वस्तु खादामि शैलोऽस्मि वरं वृणिवत्युवाच ह।।१३४।।

उसी समय श्रीकृष्ण गोवर्द्धन पर्वत के निकट आये तथा अपना अन्य स्वरूप धारण करके कहने लगे—"हे सम्यगण! मैं गोवर्द्धन पर्वत इन अर्पित वस्तुओं का भक्षण कर रहा हूं। आपलोग वर मांगे।।१३४।।

उवाच नन्दं श्रीकृष्णः पश्य शैलं पितः पुरः।
वरं प्रार्थय भद्रं ते भविता चेत्युवाच ह।।१३५।।

तभी श्रीकृष्ण नन्द से कहने लगे–"हे पिता! आपके समक्ष शैलराज गोवर्द्धन आये हैं। आप वर मांगें। आपका मङ्गल होगा।।१३५।।

हरेर्दास्यं हरेर्भक्तिं वरं वव्रे स बल्लवः।
द्रव्यं भुक्त्वा वरं दत्त्वा सोऽन्तर्धानं चकार ह।।१३६।।

नन्दराज ने पर्वत से प्रार्थना किया–"आप हमें प्रभु का दासत्व तथा भक्ति प्रदान करिये।" गोवर्द्धनरूपधारी कृष्ण समस्त अर्पित द्रव्य का भक्षण करके वहां से अन्तर्ध्यान हो गये!।।१३६।।

मुनीन्द्रान्ब्राह्मणांश्चैव भोजयित्वा च गोपपाः।
बन्दिभ्यो ब्रह्मणेभ्यश्च मुनिभ्यश्च धनं ददौ।।१३७।।
मुनिभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि दत्त्वा नन्दो मुदाऽन्वितः।
रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सगणः स्वालयं ययौ।।१३८।।
रौप्यं वस्त्रं सुवर्णं च वरमश्वं मणिं तथा।
भक्ष्यं द्रव्यं बहुविधं बन्दिने डिण्डिने ददौ।।१३९।।
स्तुत्वा नत्वा रामकृष्णौ मुनयो ब्राह्मणा ययुः।
ययुरप्सरसः सर्वा गन्धर्वाः किंनरास्तथा।।१४०।।
राजानो बल्लवाः सर्वे चाऽऽगता ये महोत्सवे।
सर्वे प्रणम्य श्रीकृष्णं ययुः सादरपूर्वकम्।।१४१।।

तत्पश्चात् गोपराज नन्द ने मुनीन्द्रों तथा ब्राह्मणों को यथेष्ट भोजन कराया तथा बन्दीगण, ब्राह्मणगण तथा मुनियों को धन दान किया। तदनन्तर उनको प्रणाम करने के उपरान्त सहर्ष रामकृष्ण को आगे करके स्वजनों के साथ अपने गृह वापस आ गये। तदनन्तर बन्दीप्रवर डिण्डि को नन्दराज ने स्वर्ण, रजत, वस्त्र, उत्तम अश्व, मणि तथा अनेक भक्ष्य वस्तु भी प्रदान किया। इसके पश्चात् वहां आये मुनिगण, ब्राह्मणगण, अप्सरायें, गन्धर्व-किन्नरादि सभी बलराम एवं कृष्ण का स्तव करके उनको प्रणाम करने के अनन्तर अपने-अपने गृह चले गये। वहां जो राजा तथा गोपगण इस महोत्सव में आये थे, वे सभी कृष्ण को सादर प्रणाम करके चले गये!।।१३७-१४१।।

एतस्मिन्नन्तरे शक्रः कोपप्रस्फुरिताधरः।
मखभङ्गे[१] बहुविधां निन्दां श्रुत्वा सुरेश्वरः।।१४२।।
मरुद्भिर्वारिदैः[२] सार्धं रथमारुह्य सत्वरम्। जगाम नन्दनगरं वृन्दारण्यं मनोहरम्।।१४३।।
सर्वे देवा ययुः पश्चाद्युद्धशास्त्रविशारदाः।
शस्त्रास्त्रपाणयः कोपाद्रथमारुह्य नारद।।१४४।।

१. क. ०भङ्गं ब०।
२. स्वगणैरिति पाठस्तु क्वाचित्कः।

वायुशब्दैर्मेघशब्दैः सैन्यशब्दैर्भयानकैः। चकम्पे नगरं सर्वे नन्दो भयमवाप ह॥१४५॥

भार्यां सम्बोध्य स्वगणमुवाच शोककातरः।
रहःस्थलं समानीय नीतिशास्त्रविशारदः॥१४६॥

तभी इन्द्र अपनी निन्दा सुनकर तथा अपने लिये किये जाने वाले यज्ञ की परम्परा भंग हो जाने के कारण इतने क्रोधित हो गये कि उनके अधर फड़कने लगे। वे वायुगण तथा मेघगण के साथ रथ पर बैठकर मनोहर नन्दनगर वृन्दावन आये। हे नारद! युद्धशास्त्रप्रवीण समस्त देवता भी अस्त्र-शस्त्र के साथ कोपयुक्त होकर तथा रथों पर बैठकर इन्द्र का अनुगमन करते वहां पहुंच गये। उस समय समस्त वायुशब्द, मेघशब्द तथा सैन्यशब्द से वह नगर कांप उठा। इससे नन्दराज अत्यन्त भयभीत हो गये! इसके पश्चात् नीतिशास्त्रज्ञ नन्द शोककातर होकर पत्नियों तथा स्वजनों एवं गणों के साथ निर्जन स्थान में आ गये। नीतिशास्त्रज्ञ नन्द ने पत्नीगण से कहा—॥१४२-१४६॥

नन्द उवाच

हे यशोदे समागच्छ वचनं शृणु रोहिणि। रामकृष्णौ समादाय व्रज दूरं व्रजात्प्रिये॥१४७॥

बालका बालिका नार्यो यान्तु दूरं भयाकुलाः।
बलवन्तश्च गोपालास्तिष्ठन्तु मत्समीपतः॥१४८॥
पश्चाच्च निर्गमिष्यामो वयं च प्राणसङ्कटात्।
इत्युक्त्वा बल्लवश्रेष्ठःसस्मार श्रीहरिं भिया॥१४९॥
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः।
काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव ह शचीपतिम्॥१५०॥

नन्द ने कहा—"हे यशोदा! हे रोहिणी! तुम लोग मेरे पास आकर मेरा कथन सुनो। हे प्रिये! शीघ्र बलराम-कृष्ण को लेकर व्रजधाम से दूर भाग जाओ। यहां के बालक-बालिकायें तथा स्त्रियां भी दूर पलायन करें। केवल बली गोपगण ही हमारे पास रुकें। अधिक प्राणसंकट होने पर हमलोग भी नगर त्याग देंगे।" गोपराज ने यह कहकर श्रीहरि का स्मरण किया। वे हाथ जोड़कर भक्ति एवं विनय से काण्वशाखा में कहे गये स्तोत्र द्वारा शचीपति का स्तव करने लगे॥१४७-१५०॥

नन्द उवाच

इन्द्रः सुरपतिः शक्रो दितिजः पवनाग्रजः॥१५१॥
सहस्राक्षो भगाङ्गश्च कश्यपाङ्गज एव च।
बिडौजाश्च सुनासीरो मरुत्वान्पाकशासनः॥१५२॥

जयन्तजनकः श्रीमाञ्छचीशो दैत्यसूदनः। वज्रहस्तः कामसखो गौतमीव्रतनाशनः॥१५३॥
वृत्रहा वासवश्चैव दधीचिदेहभिक्षुकः। जिष्णुश्च वामनभ्राता पुरुहूतः पुरंदरः॥१५४॥

दिवस्पतिः शतमखः सुत्रामा गोत्रभिद्विभुः।
लेखर्षभो बलारातिर्जम्भभेदी सुराश्रयः॥१५५॥

संकन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण्मेघवाहनः। आखण्डलो हरिहयो नमुचिप्राणनाशनः॥१५६॥
वृद्धश्रवा वृषश्चैव दैत्यदर्पनिषूदनः। षट्चत्वारिंशन्नामानि पापघ्नानि विनिश्चितम्॥१५७॥

नन्दराज कहते हैं—इन्द्र, सुरपति, शक्र, दितिज, पवनाग्रज, सहस्राक्ष, भगाङ्ग, कश्यपाङ्गज, विडौजा, सुनासीर, मरुत्वान्, पाकशासन, जयन्त-जनक, श्रीमान्, शचीश, दैत्यसूदन, वज्रहस्त, कामसखा, गौतमी-व्रत-नाशक, वृत्रहा, वासव, दधीचि-देह-याचक, जिष्णु, वामन-भ्राता, पुरुहूत, पुरन्दर, दिवस्पति, शतमख, सुत्रामा, गोत्रभिद्, विभु, लेखर्षभ, बलाराति, जम्भभेदी, सुराश्रय, संकन्दन, दुश्च्यवन, तुराषाट्, मेघवाहन, आखण्डल, हरिहय, नमुचि, प्राणनाशन, वृद्धश्रवा, दैत्यदर्पनिषूद, ये ४६ इन्द्र के नाम निश्चित रूप से पाप नाशक हैं।।१५१-१५७।।

स्तोत्रमेतत्कौथुमोक्तं नित्यं यदि पठेन्नरः। महाविपत्तौ शक्रस्तं वज्रहस्तश्च रक्षति॥१५८॥
अतिवृष्टिशिलावृष्टिवज्रपाताच्च दारुणात्।
कदाचिन्न भयं तस्य रक्षिता वासवः स्वयम्॥१५९॥
यत्र गेहे स्तोत्रमिदं यश्च जानाति पुण्यवान्। न तत्र वज्रपतनं शिलावृष्टिश्च नारद॥१६०॥

यह स्तोत्र कौथुमशाखा में कहा गया है। इसे जो मनुष्य नित्य पढ़ता है, महाविपदा के समय भी इन्द्र वज्र लेकर उसकी रक्षा करते हैं। अतिवृष्टि, शिलावृष्टि, दारुण वज्रपात का भी उसे भय नहीं होता उसकी रक्षा स्वयं इन्द्र करते हैं। हे नारद! जिस पुण्यात्मा व्यक्ति को यह स्तोत्र ज्ञात है, उसके घर में कदापि वज्रपात तथा शिलावृष्टि नहीं हो सकती।।१५८-१६०।।

नारायण उवाच

स्तोत्रं नन्दमुखाच्छ्रुत्वा चुकोप मधुसूदनः। उवाच पितरं नीतिं प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥१६१॥
कं स्तौषि भीरो को वेन्द्रस्त्यज भीतिं ममान्तिके।
क्षणार्धे भस्मसात्कर्तुं क्षमोऽहमवलीलया॥१६२॥
गाश्च वत्सांश्च बालांश्च योषितो हि भयातुराः।
गोवर्धनस्य कुहरे संस्थाप्य तिष्ठ निर्भयम्॥१६३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—जब मधुसूदन कृष्ण ने नन्द के मुख से यह स्तोत्र सुना, वे क्रोध तथा ब्रह्मतेज से प्रज्वलित हो गये। उन्होंने पिता से यह नीतिवाक्य उस समय कहा—“हे भीरु! आप यह किसकी स्तुति कर रहे हैं? जब मैं यहां हूं, आप भय का त्याग करिये। मैं खेल-खेल में आधे क्षण में इन उत्पातों को दग्ध कर सकता हूं। आप गौओं, गोवत्सों, बालाओं तथा भयातुर स्त्रियों को गोवर्द्धन की कन्दरा में भेजकर निर्भय हो जायें।।१६१-१६३।।

बालस्य वचनं श्रुत्वा तच्चकार मुदाऽन्वितः।
हरिर्दधार शैलं तं वामहस्तेन दण्डवत्॥१६४॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दीप्तोऽपि रत्नतेजसा। अन्धीभूतश्च सहसा बभूव रजसाऽऽवृतः॥१६५॥
सवातो मेघनिकरश्चच्छाद गमनं मुने। वृन्दावने बभूवातिवृष्टिरेव निरन्तरम्॥१६६॥
शिलावृष्टिर्वज्रवृष्टिरुल्कापातः सुदारुणः। समस्तं पर्वतस्पर्शात्पतितं दूरतस्ततः॥१६७॥

बालक कृष्ण का कथन सुनकर नन्दराज ने मुदित होकर उस आज्ञा का पालन यथावत् किया। तभी श्रीकृष्ण ने अनायास अपने बायें हाथ से गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर दण्ड की तरह धारण कर लिये। यद्यपि वह स्थान वज्रतेज से अत्यन्त प्रदीप्त हो गया था, तथापि सहसा वह स्थान धूल से ढ़ककर पुनः अन्धकार से भर गया। हे मुनिवर! उसी समय भयंकर वायु के प्रवाह के साथ ही मेघों से सम्पूर्ण गगनमण्डल समाच्छन्न हो गया। वृन्दावन में अत्यन्त भयानक वर्षा निरन्तर होने लगी। उस समय शिलावृष्टि, वज्रवृष्टि तथा दारुण उल्कापात भी हो रहा था। आश्चर्य यह था कि वे सब दारुण उत्पात पर्वत का स्पर्श होते ही दूर जा गिरते!॥१६४-१६७॥

विफलस्तत्समारम्भो यथाऽनीशोद्यमो मुने।
दृष्ट्वा मोघं च तत्सर्वं सद्यः शक्रश्चुकोप ह॥१६८॥

जग्राहामोघकुशिलं दधीच्यस्थिविनिर्मितम्। दृष्ट्वा तं व्रजहस्तं जहास मधुसूदनः॥१६९॥
सहस्तं स्तम्भयामास वज्रमेवातिदारुणम्। सहामरगणं मेघं चकार स्तम्भनं विभुः॥१७०॥

हे मुनिवर! जैसे अशक्त सामान्य व्यक्ति के समस्त उद्यम व्यर्थ हो जाते हैं, उसी प्रकार यहां पर इन्द्र के सभी प्रयास व्यर्थ हो गये। इन्द्र अपना प्रयास व्यर्थ जाते देखकर अत्यन्त क्रोधित हो गये। उन्होंने दधीचि ऋषि की अस्थि से निर्मित अमोघ वज्र उठाया। इन्द्र को वज्रहस्त देखकर कृष्ण हंसने लगे। तभी श्रीकृष्ण ने इन्द्र के हाथ के साथ ही उस भयानक दारुण वज्र को स्तम्भित कर दिया। प्रभु श्रीकृष्ण ने इसी के साथ मेघों, देवताओं को भी स्तम्भित कर दिया॥१६८-१७०॥

सर्वे तस्थुर्निश्चलास्ते भित्तौ पुत्तलिका यथा।
हरिणा जृम्भितः शक्रः सद्यस्तन्द्रामवाप ह॥१७१॥

ददर्श सर्वं तन्द्रायां तत्र कृष्णमयं जगत्। द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नालङ्कारभूषितम्॥१७२॥
पीतवस्त्रपरीधानं रत्नसिंहासनस्थितम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्॥१७३॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गमेतत्सर्वं चराचरम्। दृष्ट्वाऽद्भुततमं तत्र सद्यो मूर्च्छामवाप ह॥१७४॥

इस प्रकार वे सब दीवार पर चित्रित चित्र की भांति निश्चल स्थित हो गये। इन्द्र तो श्रीहरि द्वारा स्तम्भित किये जाने के कारण तत्क्षण तन्द्रायुक्त हो गये। वे उस तन्द्रावस्था में देखते हैं कि समस्त जगत् कृष्णमय है। वे देखते हैं कि चारों दिशाओं में द्विभुज, मुरलीधारी, रत्नालंकार विभूषित, पीतवस्त्र धारण किये हुये श्रीहरि रत्न सिंहासनासीन हैं। वे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, प्रसन्न मुखमण्डलयुक्त,

मन्दहास्य से प्रकाशित हैं। उनका सर्वांग चन्दन चर्चित है। इन्द्र ने जब सचराचर को परम अद्भुत रूप में कृष्णमय देखा, वे तत्क्षण मूर्च्छित हो गये।।१७१-१७४।।

जजाप मन्त्रं तत्रैव प्रदत्तं गुरुणा पुरा। सहस्त्रदलपद्मस्थं ददर्श ज्योतिरुल्बणम्॥१७५॥
तत्रान्तरे दिव्यरूपमतीव सुमनोहरम्। नवीनजलदोत्कर्षं श्यामसुन्दरविग्रहम्॥१७६॥
सद्रत्नसारनिर्माणज्वलन्मकरकुण्डलम्। ज्वलन्मणीन्द्रमकरकिरीटोज्ज्वलशेखरम्॥१७७॥
ज्वलता कौस्तुभेन्द्रेणकण्ठवक्षःस्थलोज्ज्वलम्। मणिकेयूरवलयमणिमञ्जीररञ्जितम्।
अन्तर्बहिः समं दृष्ट्वा तुष्टाव परमेश्वरम्।।१७८।।

तदनन्तर वे पूर्वकाल में गुरुप्रदत्त मन्त्र का जप उसी स्थान पर करने लगे। जपकाल में इन्द्र ने सहस्त्रदलकमल पर उज्वल ज्योति को विराजित देखा। उस ज्योतिमण्डल के मध्य में इन्द्र ने देखा कि वहां नव जलधर श्याम मनोहर दिव्यरूप प्रभु विराजमान हैं। उनके कर्णमूल में उत्तममणियों से निर्मित मकराकृति कुण्डल विराजित है। उनके मस्तक पर मणीन्द्रों के सारभाग से रचित किरीट द्योतित हो रहा था। उनका कण्ठ एवं वक्ष प्रज्वलित कौस्तुभमणि से अतिशय उज्वल प्रतीत हो रहा था। उन्होंने मणिमय केयूर-वलय तथा मंजीर भूषण धारण कर रखा था। इस प्रकार देवराज ने बाह्यतः जिस रूप को देखा था, वही रूप उन्होंने आभ्यन्तर में देखकर उन समानरूप वाले परमात्मा की स्तुति प्रारंभ कर दिया।।१७५-१७८।।

इन्द्र उवाच

अक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम्। गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनन्तकम्॥१७९॥
भक्तध्यानाय सेवायै नानारूपधरं वरम्। शुक्लरक्तपीतश्यामं युगानुक्रमणेन च॥१८०॥
शुक्लतेजःस्वरूपं च सत्ये सत्यस्वरूपिणम्।
त्रेतायां कुङ्कुमाकारं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥१८१॥
द्वापरे पीतवर्णं च शोभितं पीतवाससा। कृष्णवर्णं कलौ कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम्॥१८२॥

इन्द्र कहते हैं—हे जगदीश! आप अक्षर, परमब्रह्म, ज्योतिरूपी, सनातन, गुणातीत, निराकार, सदा स्वेच्छामय, अनन्त हैं। आप नाना श्रेष्ठरूप इसलिये धारण करते हैं, जिससे भक्त आपका ध्यान तथा आपकी सेवा कर सकें। आप युगों के अनुरूप शुक्ल, रक्त, पीत तथा श्यामरूप धारण करते हैं। आप सत्ययुग में शुक्लतेजरूप तथा सत्यस्वरूप रहते हैं। आप त्रेता में ब्रह्मतेज से प्रज्वलित कुंकुमवर्ण (रक्तवर्ण) रहते हैं। आप ही द्वापर में पीतवर्ण तथा पीतवस्त्रधारी होकर शोभायमान होते हैं। आप परिपूर्णतम एकमेव परमात्मा ही कलिकाल में कृष्णवर्ण रहकर कृष्ण नाम वाले हो जाते हैं।।१७९-१८२।।

नवधाराधरोत्कृष्टश्यामसुन्दरविग्रहम्। नन्दैकनन्दनं वन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम्॥१८३॥

गोपिकाचेतनहरं राधाप्राणाधिकं परम्। विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कौतुकेन च॥१८४॥

हे देव! आपका यह कलेवर नवीन मेघ के समान उत्कृष्ट तथा श्यामसुन्दर रूप है। आप एकमात्र नन्दनन्दन हैं तथा यशोदा के लिये जीवन स्वरूप हैं। मैं आपकी वन्दना करता हूं। आप ही सबके प्रभु तथा सबके वन्दनीय हैं। आप राधा का चित्त हरण करने वाले तथा राधा के लिये प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। आप कौतुक के कारण तथा विनोदार्थ मुरली की ध्वनि का प्रसार करते रहते हैं॥१८३-१८४॥

रूपेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम्। कन्दर्पकोटिसौन्दर्यं बिभ्रतं शान्तमीश्वरम्॥१८५॥

क्रीडन्तं राधया सार्धं वृन्दारण्ये च कुत्रचित्।
कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम्॥१८६॥

जलक्रीडां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित्। राधिकाकबरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद्वने॥१८७॥

कुत्रचिद्राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम्। राधाचर्चिततताम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा॥१८८॥

आपका श्रीविग्रह अप्रतिमरूप वाला, रत्नाभूषणभूषित, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर, शान्त हैं। आप तो सर्वेश्वर हैं। आप कभी वृन्दावन में राधा के साथ क्रीड़ा करते हैं, तो कभी निर्जन रम्य प्रदेश में राधा के वक्षस्थल पर विराजमान हो जाते हैं। आप कभी राधा के साथ जल में क्रीड़ा करते हैं, तो कभी राधा की चोटी गूंथते हैं। कभी आप राधा के चरणों में आलता लगाते हैं, कभी-कभी आप राधा के द्वारा चबाये गये ताम्बूल को लेकर प्रसन्नता से उसका चर्वण करने लगते हैं!॥१८५-१८८॥

पश्यन्तं कुत्रचिद्राधां पश्यतीं वक्रचक्षुषा।
दत्तवन्तं च राधायै कृत्वा मालां च कुत्रचित्॥१८९॥
कुत्रचिद्राधया सार्धं गच्छन्तं रासमण्डलम्।
राधादत्तां गले मालां धृतवन्तं च कुत्रचित्॥१९०॥
सार्धं गोपालिकाभिश्च विहरन्तं च कुत्रचित्।
राधां गृहीत्वा गच्छन्तं विहाय तां च कुत्रचित्॥१९१॥
विप्रपत्नीदत्तमन्नं भुक्तवन्तं च कुत्रचित्।
भुक्तवन्तं तालफलं बालकैः सह कुत्रचित्॥१९२॥

कभी आप बांकी चितवन वाली राधा को निहारते होते हैं, तो कभी अपने हाथों से गूंथी माला उनको प्रदान कर रहे होते हैं! कभी आप राधा के साथ रासमण्डल में गमन करते हैं, तो कभी राधा को छोड़कर एकाकी ही कहीं चल पड़ते हैं। कभी आप राधा के साथ विहार करते होते हैं, तो कभी राधा के साथ चले जाते हैं। कभी आप द्विजपत्नीगण द्वारा प्रदत्त अन्न भोजन करते हैं, तो कभी बालकगण के साथ ताड़ का फल खाते होते हैं!॥१८९-१९२॥

वस्त्रं गोपालिकानां च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा।
गवां गणं व्याहरन्तं कुत्रचिद्बालकैः सह॥१९३॥
कालीयमूर्ध्नि पादाब्जं दत्तवन्तं च कुत्रचित्।
विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कुत्रचिन्मुदा॥१९४॥
गायन्तं रम्यसङ्गीतं कुत्रचिद्बालकैः सह।
स्तुत्वा शक्रः स्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरिं भिया॥१९५॥

पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृत्रासुरेण च। कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते॥१९६॥
एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम्। दत्तमेतत्कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा॥१९७॥

"कभी आप मुदित मन से गोपियों का वस्त्र हरण करके छिपा देते हैं, तो कभी बालकों केसाथ मिलकर गौओं को पुकारने लगते हैं। कभी आप कालिय नाग के शीर्ष पर अपने चरणकमल रखते हैं, कभी आप मुदित मन से विनोद पूर्वक मुरलीध्वनि का विस्तार कर रहे होते हैं। आप कभी बालकों के साथ रम्य संगीत का गायन करते हैं।" यह उत्तम स्तुति करके भयभीत इन्द्र ने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। पूर्वकाल में गुरु बृहस्पति ने ही स्तोत्र वृत्रासुर युद्ध के समय इन्द्र को दिया था। सबसे पहले तपःश्चरण कर रहे ब्रह्मा को श्रीकृष्ण ने यह स्तव एकाक्षर मन्त्र तथा कवच प्रदान किया था॥१९३-१९७॥

कुमारोऽङ्गिरसे दत्तं गुरवेऽङ्गिरसा मुने॥१९८॥
इदमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्।
स हि प्राप्य दृढां भक्तिमन्ते दास्यं लभेद्ध्रुवम्॥१९९॥
जन्ममृत्युजराव्याधिशोकेभ्यो मुच्यते नरः।
न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम्॥२००॥

ब्रह्मा ने एकाक्षर मन्त्र, यह स्तव एवं कवच पुष्कर क्षेत्र में कुमार को दिया था। कुमार ने ऋषि अंगीरा को, अंगीरा ने बृहस्पति को यह प्रदान किया था। जो कोई इन्द्रकृत इस स्तोत्र का पाठ नित्य भक्तिभावेन करता है, वह निश्चित रूप से दृढ़ हरिभक्ति तथा प्रभु का दासत्व लाभ करता है। वह व्यक्ति इसके पश्चात् जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-शोक से रहित हो जाता है। उसे स्वप्न में भी यमदूतों का तथा यमलोक का दर्शन नहीं होता!॥१९८-२००॥

नारायण उवाच

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्न श्रीनिकेतनः।
प्रीत्या तस्मै वरं दत्त्वा स्थापयामास पर्वतम्॥२०१॥
प्रणम्य च हरिं शक्रः प्रययौ स्वगणैः सह।
गह्वरस्था जनाः सर्वे प्रजग्मुर्गह्वराद्गृहम्॥२०२॥

ते सर्वे मेनिरे कृष्णं परिपूर्णतमं विभूम्।
पुरस्कृत्य वज्रस्थांश्च प्रययौ स्वालयं हरिः॥२०३॥
तुष्टाव नन्दः पुत्रं तं पूर्णब्रह्म सनातनम्। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्तिपूर्णाश्रुलोचनः॥२०४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–लक्ष्मीनिवास प्रभु इन्द्र का स्तव सुनकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रीति पूर्वक वर इन्द्र को प्रदान किया तथा पर्वत को यथास्थान रख दिया। तब कृष्ण को प्रणाम करके इन्द्र अपने गणों सहित स्वर्ग चले गये। पर्वत कन्दराओं में शरण लिये हुये सभी वृन्दावन वासी भी अपने-अपने गृह वापस चले गये। सभी ने अब कृष्ण को परिपूर्णतम पूर्णब्रह्म सनातन रूप से जान लिया। भगवान् ने ब्रजवासी लोगों को आगे किया तथा अपने गृह गये। उस समय नन्द का सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। उनके नेत्र भक्ति के अतिरेक के कारण अश्रुपूर्ण हो गये। वे अत्यन्त भक्ति पूर्वक मुदित मन से पूर्ण ब्रह्म सनातन देव श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे॥२०१-२०४॥

नन्द उवाच

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥२०५॥

नन्दराज कहते हैं–हे कृष्ण! आप ब्रह्मण्यदेव (ब्राह्मणों के हित चिन्तक), गौओं तथा ब्राह्मणों का हित करने वाले, जगत् का हित करने में तत्पर कृष्ण-गोविन्द को प्रणाम!॥२०५॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डधामधाम्ने नमोऽस्तु ते॥२०६॥
नमो मत्स्यादिरूपाणां जीवरूपाय साक्षिणे।
निर्लिप्ताय निर्गुणाय निराकाराय ते नमः॥२०७॥
अतिसूक्ष्मस्वरूपाय स्थूलात्स्थूलतमाय च।
सर्वेश्वराय सर्वाय तेजोरूप नमोऽस्तु ते॥२०८॥
अतिप्रत्यक्षरूपाय ध्यानासाध्याय योगिनाम्।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां वन्द्याय नित्यरूपिणे॥२०९॥
धाम्ने चतुर्णां वर्णानां युगेष्वेव चतुर्षु च। शुक्लरक्तपीतश्यामाभिधानगुणशालिने॥२१०॥

आप ब्राह्मणों का निरन्तर प्रिय करने वाले, ब्रह्म, परमात्मा हैं। आप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के आधार रूप हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप ही मत्स्यादि अवतारों के कारण हैं। आप ही जीवरूप तथा सर्वसाक्षी भी हैं। आप निर्लिप्त, निर्गुण तथा निराकार हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूं! आप अतिसूक्ष्म स्वरूप हैं। आप ही स्थूल से भी स्थूल रूपी भी हैं। आप ही सर्वेश्वर, सर्वरूप तथा तेजरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप अतिप्रत्यक्ष रूप होकर भी योगीगण द्वारा ध्यान करने

पर भी उनके लिये असाध्य ही हैं। आप नित्यरूप तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर द्वारा भी सर्वदा वन्दनीय हैं। आप चारों युगों में यथाक्रमेण शुक्ल, रक्त, पीत, श्यामवर्ण के आधार रूप गुणों से शोभायमान रहते हैं।।२०६-२१०।।

योगिने योगरूपाय गुरवे योगिनामपि।
सिद्धेश्वराय सिद्धाय सिद्धानां गुरवे नमः।।२११।।
यं स्तोतुमक्षमो ब्रह्मा विष्णुर्यं स्तोतुमक्षमः।
यं स्तोतुमक्षमो रुद्रः शेषो यं स्तोतुमक्षमः।।२१२।।
यं स्तोतुमक्षमो धर्मो यं स्तोतुमक्षमो रविः।
यं स्तोतुमक्षमो लम्बोदरश्चापि षडाननः।।२१३।।
यं स्तोतुमक्षमाः सर्वे[१] मुनयः सनकादयः।
कपिलो न क्षमः स्तोतुं सिद्धेन्द्राणां गुरोर्गुरुः।।२१४।।
न शक्तौ स्तवनं कर्तुं नरनारायणावृषी।
अन्ये जडधियः के वा स्तोतुं शक्ताः परात्परम्।।२१५।।

आप योगी, योगरूप तथा योगीगण के भी गुणरूप हैं। हे देव! आप ही सर्वेश्वर, सिद्धेश्वर, सिद्ध हैं। आप ही सिद्धगण के गुरु भी हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! जिनकी स्तुति कर सकने में ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर भी अक्षम रह जाते हैं, जिनकी स्तुति कर सकने में अनन्त, शेष, धर्मदेव, विधि, लम्बोदर गणेश तथा स्वामी कार्त्तिकेय भी असमर्थ हैं, जिनकी स्तुति करने में सनकादि, ब्रह्मर्षि, सिद्धेन्द्रगण, गुरुओं के गुरु मुनिवर कपिल भी समर्थ नहीं हैं, जिनका स्तव करने की शक्ति नर-नारायण में भी नहीं है, उन परात्पर प्रभु की स्तुति कर सकने में अन्य कौन (मुझ जैसा) जड़ बुद्धि समर्थ हो सकता है?।।२११-२१५।।

वेदा न शक्ता नो वाणी न च लक्ष्मीः सरस्वती।
न राधा स्तवने शक्ता किं स्तुवन्ति विपश्चितः।।२१६।।

आपकी स्तुति कर सकने में सभी वेद, सरस्वती, लक्ष्मी, राधा भी समर्थ नहीं हैं, तब अन्य पण्डितगण आपका स्तव कैसे कर सकते हैं?।।२१६।।

क्षमस्व निखिलं ब्रह्मन्नपराधं क्षणे क्षणे।
रक्ष मां करुणासिन्धो दीनबन्धो भवार्णवे।।२१७।।
पुरा तीर्थे तपस्तप्त्वा पुत्रः प्राप्तः सनातनः।
स्वकीयचरणाम्भोजे भक्तिं दास्यं च देहि मे।।२१८।।

---

१. क. ब्रह्मऋषयः।

ब्रह्मत्वममरत्वं वा सालोक्यादिकमेव वा।
त्वत्पदाम्भोजदास्यस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥२१९॥
इन्द्रत्वं वा सुरत्वं वा सम्प्राप्तिं सिद्धिस्वर्गयोः।
राजत्वं चिरजीवित्वं सुधियो गणयन्ति किम्॥२२०॥
एतद्यत्कथितं सर्वं ब्रह्मत्वादिकमीश्वरः। भक्तसङ्गक्षणार्धस्य नोपमा ते किमर्हति॥२२१॥
त्वद्भक्तो यस्त्वत्सदृशः कस्त्वां तर्कितुमीश्वरः।
क्षणार्धालापमात्रेण पारं कर्तुं स चेश्वरः॥२२२॥

मैं क्षण-क्षण में आपका जो अपराध कर रहा हूं, उन सब अपराधों को आप क्षमा करिये। हे करुणासिन्धु! दीनबन्धु! इस संसार-सागर से मेरी रक्षा करिये। हे श्रीकृष्ण! मैंने पूर्वकाल में तीर्थस्थल में तपःश्चरण करके आप सनातन परमेश्वर को पुत्ररूपेण प्राप्त कर लिया है, अब आप मुझे अपने चरणकमलों के प्रति दृढ़भक्ति दीजिये। ब्रह्मत्व, इन्द्रत्व, सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्ति, ये सब मिलाकर भी आपकी चरण सेवा का सोलहवां अंश भी नहीं हैं। बुद्धिमान लोग कदापि इन्द्रत्व, अमरत्व, स्वर्ग, सिद्धिलाभ, राजत्व अथवा चिरजीवन नहीं चाहते। हे जगदीश्वर! यह ब्रह्मत्वादि जो सभी पद कहा गया है, ये सभी आपके भक्तों के सत्संग के क्षणार्द्ध काल के समान नहीं हैं। हे विभु! आपके भक्त भी आपके ही तुल्य होते हैं। उनकी महिमा इतनी अधिक है, उसका आकलन कोई नहीं कर सकता। जब आपके भक्त की महिमा का आकलन नहीं किया जा सकता, तब आपकी महिमा का अनुमान करना किसके लिये संभव है? भक्तों के साथ किया गया आधे क्षण का भी सत्संग व्यक्ति को अनायास भवसागर से पार उतार देता है।।२१७-२२२।।

भक्तसङ्गाद्भवत्येव भक्तिं कर्तुमनेकधा। त्वद्भक्तजलदालापजलसेकेन वधते॥२२३॥
अभक्तालापतापात्तु शुष्कतां याति तत्क्षणम्।
त्वद्गुणस्मृतिसेकाच्च वर्धते तत्क्षणे स्फुटम्॥२२४॥

आपके भक्तों के साथ किया गया सत्संग ही अनश्वर भक्तिवृक्ष का अंकुर स्वरूप माना गया है। यह अंकुर हरिभक्तों के साथ होने वाला सत्संग वार्त्तारूपी जल से सिंचित होकर क्रमशः बढ़ने लग जाता है। यदि अभक्तों का संसर्ग किया जाये, तब उनके अभक्तों के साथ जो व्यर्थ वार्त्तालाप होता है, उसके ताप से यह भक्तिरूपी अंकुर शुष्क हो जाता है। यह निश्चित है, तथापि जब भक्तों एवं भगवत् गुणानुवाद की स्मृति रूपी जल से इस अंकुर को व्यक्ति सींचता है, तब यह तत्क्षण ही वर्द्धित होने लगता है।।२२३-२२४।।

त्वद्भक्त्यङ्कुरमुद्भूतं स्फीतं मानसजं परम्।
न नश्यं वर्धनीयं च नित्यं नित्यं क्षणे क्षणे॥२२५॥

ततः सम्प्राप्य ब्रह्मत्वं[1] भक्तस्य जीवनाय च।
ददात्येव फलं तस्मै हरिदास्यमनुत्तमम्॥२२६॥

जब आपकी भक्ति का अंकुर एक बार भी मानसपटल पर फूट उठता है, तब उसका विनाश नहीं होता। वह नित्य क्षण-क्षण में बढ़ता जाता है। तदनन्तर यही भक्ति का अंकुर प्रबल वृक्षरूपेण परिणत होकर भक्त के जीवन में ही अत्युत्तम हरिदासत्व रूप फल प्रदान कर देता है। उस भक्त को जीवन में ही ब्रह्मपद की भी प्राप्ति हो जाती है।।२२५-२२६।।

सम्प्राप्य दुर्लभं दास्यं यदि दासो बभूव ह।
सुनिश्चयेन तेनैव जितं सर्वं भयादिकम्॥२२७॥

यदि व्यक्ति दुर्लभतम हरिदासत्व को पाकर हरि का दास हो जाये, तब वह निःस्पृह भक्त भयादि सब कुछ को जीत लेता है।।२२७।।

इत्येवमुक्त्वा भक्त्या च नन्दस्तस्थौ हरेः पुरः।
प्रसन्नवदनः कृष्णो ददौ तस्मै तदीप्सितम्॥२२८॥

नन्दराज इस प्रकार भक्ति पूर्वक हरि स्तुति करके प्रभु के समक्ष खड़े हो गये। उस समय श्रीकृष्ण ने प्रसन्नता के साथ नन्दराज को उनका वांछित वर प्रदान कर दिया।।२२८।।

एवं नन्दकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्।
सुदृढां भक्तिमाप्नोति सद्यो दास्यं लभेद्धरेः॥२२९॥
तपस्तप्त्वा यदा द्रोणस्तीर्थे च धरया सह।
स्तोत्रं तस्मै पुरा दत्तं ब्रह्मणा तत्सुदुर्लभम्॥२३०॥
हरे षडक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वरक्षणम्। इह सौभरिणा दत्तं तस्मै तुष्टेन पुष्करे॥२३१॥
तदेव कवचं स्तोत्रं स च मन्त्रः सुदुर्लभः।
ब्रह्मणोंऽशेन मुनिना नन्दाय च तपस्यते॥२३२॥

यह नन्दराज कृत स्तोत्र का जो कोई नित्य भक्तिभाव से पाठ करता है, वह प्रभु की सुदृढ़ भक्ति तथा उनका श्रेष्ठ दासत्व लाभ कर लेता है। यह स्तोत्र ब्रह्मा ने पुष्कर तीर्थ में तपःश्चरणरत द्रोण ब्राह्मण को दिया था, जो वहां अपनी पत्नी धरा के साथ तपनिरत थे। साथ में हरि का षडक्षरमन्त्र एवं सर्वलक्षणसम्पन्न हरिकवच भी प्रदान किया था। तत्पश्चात् यही द्रोण ब्राह्मण जब नन्दरूप से व्रज में जन्म तथा पुष्कर में तप किया, तब वही कवच, यही स्तोत्र तथा वही दुर्लभ षडक्षरमन्त्र ब्रह्मांश संभूत मुनिवर गर्ग ने प्रसन्न होकर नन्दराज को दिया था।।२२९-२३२।।

मन्त्रः स्तोत्रं च कवचमिष्टदेवो गुरुस्तथा।
या यस्य विद्या प्राचीना न तां त्यजति निश्चितम्॥२३३॥

---

१. क. वृक्षत्वं।

इत्येवं कथितं स्तोत्रं श्रीकृष्णाख्यानमद्भुतम्।
सुखदं मोक्षदं सारं भवबन्धविमोचनम्॥२३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख०नारदना० इन्द्रयागभञ्जननन्दस्तोत्रप्रस्तावैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

—❀❀❀—

फलस्वरूप जिसे जो मन्त्र, स्तोत्र, कवच, इष्टदेवता तथा गुरु से एक बार प्राप्त हो जाता है, इस सम्बन्ध में जो विद्या परम्परारूपेण चलती आती है, वह उसका त्याग नहीं करती। वह पुरुष भी उसे न त्यागे। मैंने सुखद, मोक्षदायक, सर्वसारस्वरूप, भवबन्धन नाशक श्रीकृष्ण का यह स्तोत्र तथा अद्भुत उपाख्यान तुमसे कह दिया॥२३३-२३४॥

॥२१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

कृष्ण द्वारा धेनुक वध का वर्णन, धेनुक द्वारा कहे गये कृष्ण स्तोत्र वर्णन

नारायण उवाच

एकदा राधिकानाथो बलेन सह बालकैः। जगाम तत्तालवनं परिपक्वफलान्वितम्॥१॥
वृक्षाणां रक्षिता दैत्यः खररूपी च धेनुकः। कोटिसिंहसमबलो देवानां दर्पनाशनः॥२॥
शरीरं पर्वतसमं कूपतुल्ये च लोचने। ईषापङ्क्तिसमा दन्तास्तुण्डं पर्वतगह्वरम्॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—एक समय की बात है, राधिकानाथ श्रीकृष्ण, बलराम बालकों के साथ तालवन में गये जो पक्व फलों से परिपूर्ण था। उन वृक्षों की रक्षा हेतु वहां गर्दभरूपधारी धेनुकासुर निवास करता था। वह कोटि सिंहवत् बली तथा देवगण के बलदर्प का भी नाश करने वाला था। उसका शरीर पर्वताकार था, उसके नेत्र कूप के समान थे। मुख पर्वत गुफा के समान थे, जिसमें स्थित दन्तपंक्ति ईषापंक्ति के समान प्रतीत होते थे॥१-३॥

शतहस्तपरिमिता जिह्वा लोला भयानका।
कासारसदृशी नाभिः शब्दस्तस्य भयानकः॥४॥
दृष्ट्वा तालवनं बाला हर्षमापुरनिन्दिताः। कौतुकात्कृष्णमूचुस्ते स्मेराननसरोरुहाः॥५॥

उसकी लपलपाती भयानक जिह्वा की लम्बाई १०० हाथ थी। उसकी नाभि सरोवर के समान थी तथा उसका शब्द अतीव भयंकर था। उस तालवन को देखकर बालक हर्षित हो गये। वे मुस्कुराते हुये कौतुक के साथ कृष्ण से कहने लगे—।।४-५।।

बाला ऊचुः

हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते। महाबल बलभ्रातः समस्तबलिनां वर।।६।।
अवधानं कुरु विभो क्षणार्धं नो निवेदने। क्षुधितानां शिशूनां च भक्तानां भक्तवत्सल।।७।।
स्वादूनि सुन्दराण्येव पश्य तालफलानि च।
भङ्क्तुं चालयितुं वृक्षान्पातितुं च फलानि च।।८।।
नानावर्णानि पुष्पाणि पक्वानि दुर्लभानि च।
आज्ञां करोषि चेत्कृष्ण चेष्टां कर्तुं वयं क्षमाः।।९।।

बालकगण कहते हैं—हे करुणासिन्धु! दीनबन्धु! जगत्पति! कृष्ण! आप महाबली बलभद्र के भाई तथा समस्त बली लोगों में प्रधान हैं। आप दोनों हमारी प्रार्थना श्रवण करिये। हे विभु! हम सभी (इन ताल वृक्षों को देखकर) क्षुधापीड़ित हो रहे हैं। हमारी कामना है कि फलों को नीचे गिराने हेतु तालवृक्षों को हिलायें। साथ ही रंग-बिरंगे पुष्पों एवं इन सुदुर्लभ पक्व फलों को नीचे गिराकर उनको प्राप्त करें। हे कृष्ण! आपकी आज्ञा होने पर ही हम यह प्रयत्न कर सकेंगे।।६-९।।

किं त्वत्र दैत्यो बलवान्खररूपी च धेनुकः। अजितस्त्रिदशैः सर्वैर्महाबलपराक्रमः।।१०।।
दुर्निवार्यश्च सर्वेषां कंसस्य सचिवो महान्।
हिंसकः सर्वजन्तूनां वनानामस्ति रक्षिता।।११।।

तथापि इसमें एक व्यवधान है। गर्दभरूपी महाबलवान् दैत्य धेनुक इस वन का रक्षक है। वह समस्त देवगण के लिये भी अजेय तथा प्रबल पराक्रमी है। कोई उसे रोकने में समर्थ नहीं है। वह महादैत्य सभी प्राणीगण का हिंसक तथा कंस का महासचिव है।।१०-११।।

सुविचार्य जगत्कान्त वद ना वदतां वर। युक्तं कार्यमयुक्तं वा कर्तव्यमथवा न वा।।१२।।

हे वाग्मीगण में श्रेष्ठ! जगत्पति! इस सम्बन्ध में विचार करके यह बतलाने की कृपा करें कि क्या यह प्रयत्न हमारे लिये युक्त है अथवा अयुक्त है? हमें कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य का इस सम्बन्ध में आदेश दीजिये।।१२।।

बालकानां वचः श्रुत्वा भगवान्मधुसूदनः। उवाच मधुरं बालान्वचनं तत्सुखावहम्।।१३।।

बालकगण का कथन सुनकर श्रीकृष्ण ने उन बालकों से मधुर तथा उत्तम वचन कहा—।।१३।।

श्रीकृष्ण उवाच

किं वो दैत्याद्भयं बाला यूयं मत्सहचारिणः। वृक्षान्भङ्क्त्वा चालयित्वा फलानि खादताभयम्।।१४।।

श्रीकृष्ण कहते हैं–"हे बालको! तुम सब मेरे सहचर हो। तब तुमको दैत्य से क्या भय? तुम लोग जाकर वृक्षों को हिलाओ तथा फलों को तोड़कर यथेच्छ फल का भक्षण करो।"।।१४।।

श्रीकृष्णाज्ञां समादाय बालका बलशालिनः।
उत्पेतुर्वृक्षशिखरं क्षुधितांश्च फलार्थिनः॥१५॥
नानाप्रकारवर्णानि स्वादूनि सुन्दराणि च। फलानि पातयामासुः परिपक्वानि नारद॥१६॥
केचिद्बभञ्जुर्वृक्षांश्च चालयामासुरेव च। केचित्कोलाहलं चक्रुननृतुस्तत्र केचन्॥१७॥
अवरुह्य तरुभ्यश्च बालका बलशालिनः। फलान्यादाय गच्छन्तो ददृशुर्दैत्यपुङ्गवम्॥१८॥
महाबलं महाकायं घोरं गर्दभरूपिणम्। आगच्छन्तं महावेगात्कुर्वन्तं शब्दमुल्बणम्॥१९॥
तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे फलानि तत्यजुर्भिया।
कृष्ण कृष्णेति शब्दं च प्रचक्रुर्बहुधा भृशम्॥२०॥

हे नारद! श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर वे सभी बली बालक क्षुधित तथा फल की आकांक्षा होने के कारण तत्काल वृक्षों पर चढ़ गये तथा नाना वर्ण वाले स्वादु, सुन्दर, परिपक्व फलों को जमीन पर गिराने लगे। कोई वृक्षों की शाखा तोड़ते, कोई हिलाते, कोई कोलाहल करते अथवा नृत्य करने लगते। तदनन्तर जब बालक वृक्ष से उतर कर फलों को लेकर जाने लगे तभी महाबली, दीर्घकाय, घोर गर्दभरूपी दैत्यप्रवर धेनुकासुर घोर शब्द करते अत्यन्त वेग से वहां आया। यह देखकर समस्त बालक रोने लगे। भयभीत बालकों ने समस्त एकत्रित फल वहीं त्याग दिया तथा हा कृष्ण! हा कृष्ण! की चीत्कार करने लगे।।१५-२०।।

अस्मान्रक्ष समागच्छ हे कृष्ण करुणानिधे।
हे संकर्षण नो रक्ष प्राणा नो यान्ति दानवात्॥२१॥
हे कृष्ण हे कृष्ण हरे मुरारे गोविन्द दामोदर दीनबन्धो।
गोपीश गोपेश भवार्णवेऽस्माननन्त नारायण रक्ष रक्ष॥२२॥
भयेऽभये वाऽथ शुभेऽशुभे वा सुखेषु दुःखेषु च दीननाथ।
त्वया विनाऽन्यं शरणं भवार्णवे न नोऽस्ति हे माधव रक्ष रक्ष॥२३॥
जय जय गुणसिन्धो कृष्ण भक्तैकबन्धो बहुतरभययुक्तान्बालकान्रक्ष रक्ष।
जहि दनुजकुलानामीशमस्माकमन्तं सुरकुलबलदर्पं वर्धयेमं निहत्य॥२४॥

वे सभी बालक भयभीत होकर कहने लगे–"हे करुणानिधि! श्रीकृष्ण! आकर हमारी रक्षा करो! हे संकर्षण! इस दानव प्रदत्तभय से हमारी रक्षा करो! हे कृष्ण! हरि! गोविन्द! दामोदर! तुम दीनों के बन्धु हो। तुम ही गोप-गोपीगण के स्वामी हो। हे अनन्त! नारायण! इस भवसागर से हमारी रक्षा करो। हे कृष्ण! हरि! मुरारी! गोविन्द! दामोदर! दीनबन्धु! गोपीश! गोपेश! रक्षा करो! रक्षा करो! हे माधव! भय-अभय काल में, शुभ-अशुभ में, सुख-दुःख में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है, जो

हमें शरण दे सके! हे प्रभो! इस भवसागर में हमारी रक्षा करो। हे गुणसिन्धो! तुम्हारी जय हो! हे कृष्ण! तुम भक्तों के बन्धु हो। हम बालक बहुत भयभीत हैं। हमारी रक्षा करो। यह दनुजकुलेश्वर हमारे लिये काल के समान हैं। इसका हनन करके देवताओं के बलदर्प की वृद्धि करो।।२१-२४।।

बालानां विक्लवं दृष्ट्वा बलेन सह माधवः।
आजगाम शिशुस्थानं भयहा भक्तवत्सलः॥२५॥
भयं नास्ति भयं नास्तीत्युक्त्वा दुद्राव सत्वरम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो निर्भयं दत्तवाञ्छिशून्॥२६॥
दृष्ट्वा कृष्णं बलं बाला ननृतुर्विजहुर्भयम्। हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदायिका॥२७॥
श्रीकृष्णो दानवं दृष्ट्वा ग्रसन्तं पुरतः त्रिशून्। बलं सम्बोध्य बलिनमुवाच मधुसूदनः॥२८॥

इस समय सर्वभयसमूह निवारक भक्तवत्सल माधव ने बालकों का यह विलाप सुनकर बलदेव के साथ ही यह कहा—भय मत करो। कोई भय नहीं है! यह कहते वे शीघ्रता पूर्वक शिशुगण के निकट आये तथा उन्होंने शिशुगण को अभय प्रदान किया। उनके मुखमण्डल पर मन्दमुस्कान नाचने लगी। उस समय बालकों ने भी कृष्ण-बलराम को वहां समागत देखकर भय छोड़ दिया। वे प्रसन्नता के साथ नाचने लगे। हरि का स्मरण अभय देने वाला तथा सर्वमङ्गलदायक है। उस समय जब मधुसूदन ने दानव को क्रोध में भरकर शिशुगण को ग्रास करने हेतु उद्यत देखा, तब वे महाबलियों में श्रेष्ठ बलभद्र से कहने लगे—।।२५-२८।।

श्रीकृष्ण उवाच

दानवो बलिपुत्रोऽयं नाम्ना साहसिको बली।
गर्दभो ब्रह्मशापेन शप्तो दुर्वाससा पुरा॥२९॥
पापिष्ठो मम वध्योऽयं महाबलपराक्रमः। अहमेनं वधिष्यामि त्वं रक्षबालकान्बल॥३०॥

श्रीकृष्ण प्रभु कहते हैं—हे भ्राता! बलभद्र! यह महाबली दानव दैत्य बलि का पुत्र है। इसका नाम साहसिक है। पूर्वकाल में दुर्वासा के ब्रह्मशाप के कारण यह गर्दभरूप हो गया। यह महाबली, महापराक्रमी पापी मेरे द्वारा ही वध योग्य है। मैं ही इसे निहत करूंगा। तब तक आप बालकों की रक्षा करें।।२९-३०।।

आदाय बालकान्सर्वान्दूरं गच्छेत्युवाच ह।
तान्गृहीत्वा बलः शीघ्रं जगाम त्वरयाऽऽज्ञया॥३१॥
दृष्ट्वा कृष्णं दानवेन्द्रो महाबलपराक्रमः।
जग्रास[१] लीलया कोपाज्ज्वलदग्निशिखोपमम्॥३२॥

---
१. क. ०ग्राह।

बभूवातिदाहयुक्तो मर्तुकामोऽतितेजसा।
उज्जग्रास[1] पुनर्दैत्यो विभुं तेजस्विनं भिया॥३३॥

श्रीकृष्ण का वचन सुनकर बलदेव कृष्ण के निर्देशानुरूप शीघ्र बालकगण को लेकर वहां से हट गये। अब कृष्ण को उस महाबली, पराक्रमी दानवेन्द्र ने क्रोध से ज्वलित होते हुये निगल लिया, तथापि कृष्ण के तेज से उसके उदर में घोर दाह होने लगा। मरणासन्न की स्थिति में जब वह मरने लगा, तब भयवश तेजस्वी व्यापक प्रभु को दैत्य ने पुनः बहिर्गत् कर दिया।।३१-३३।।

उज्झितं सन्तमीशं च दृष्ट्वा दैत्यो मुमोच ह।
अतीव सुन्दरं शान्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥३४॥
कृष्णदर्शनमात्रेण बभूवास्य पुरास्मृतिः। आत्मानं बुबुधे कृष्णं जगतां कारणं परम्॥३५॥
तेजःस्वरूपमीशं तं दृष्ट्वा तुष्टाव दानवः। यथागमं यथाजन्म गुणातीतं श्रुतेः परम्॥३६॥

अब उसने प्रभु को देखा जो परम सुन्दर शान्त तथा ब्रह्मतेज से प्रज्वलित थे। कृष्ण के दर्शनमात्र से उसे पूर्वस्मृति का स्मरण हो गया। उसने परम जगत् कारण प्रभु को एवं स्वयं को भी जान लिया। तेजरूप उन ईश्वर को देखकर वह दानव उन गुणातीत प्रभु की स्तुति उनके जन्मों के उल्लेख के अनुसार करने लगा जो श्रुति से परे हैं।।३४-३६।।

दानव उवाच

वामनोऽसि त्वमंशेन मत्पितुर्यज्ञभिक्षुकः। राज्यहर्ता च श्रीहर्ता सुतलस्थलदायकः॥३७॥
बलिभक्तिवशो वीरः सर्वेशो भक्तवत्सलः।
शीघ्रं त्वं हिन्धि मां पापं शापाद्गर्दभरूपिणम्॥३८॥
मुनेर्दुर्वाससः शापादीदृशं जन्म कुत्सितम्। मृत्युरुक्तश्च मुनिना त्वत्तो मम जगत्पते॥३९॥
षोडशारेण चक्रेण सुतीक्ष्णेनातितेजसा।
जहि मां जगतां नाथ सद्भक्तिं[2] कुरु मोक्षद॥४०॥

दानव कहता है—हे प्रभो! आपने अपने अंश से वामनमूर्त्ति धारण करके मेरे पिता के यज्ञ में भिक्षार्थी का रूप धारण किया था तथा उनके राज्य एवं श्री का हरण कर लिया था। आपने उनको सुतल लोक का राज्य प्रदान किया था। हे दयालु! आप सर्वेश्वर तथा भक्तवत्सल हैं। हे दयामय! आप अपने भक्त बलिराज की भक्ति का स्मरण करके शाप के कारण मुझे प्राप्त गर्दभरूप इस पापी शरीर का संहार शीघ्र करें। हे जगत्पति! महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण मुझे यह अत्यन्त कुत्सित योनि मिली है। उन मुनि ने कहा था कि आप ही के द्वारा मेरी मृत्यु होगी। हे जगन्नाथ!

१. क. ०ग्राह।
२. क. सद्गतिं।

आप अपने सुतीक्ष्ण अत्यन्त तेजयुक्त षोडशार चक्र सुदर्शन द्वारा मेरा संहार करिये। हे जगन्नाथ! मोक्षदाता! मुझे इस प्रकार सद्गति दीजिये।।३७-४०।।

त्वमंशेन वराहश्च समुद्धर्तुं वसुंधराम्। वेदानं रक्षिता नाथ हिरण्याक्षनिषूदनः।।४१।।
त्वं नृसिंहः स्वयं पूर्णो हिरण्यकशिपोर्वधे। प्रह्लादानुग्रहार्थाय[1] देवानां रक्षणाय च।।४२।।

हे नाथ! आपने अपने अंश से ही वराहरूपी होकर वसुन्धरा का उद्धार किया था तथा हिरण्याक्ष का वध करके देवगण की रक्षा किया था। आपने प्रह्लाद के प्रति कृपा करके देवगण के निमित्त अपने पूर्णांश से नृसिंह मूर्त्ति धारण करके हिरण्यकशिपु का वध किया था।।४१-४२।।

त्वं च वेदोद्धारकर्ता मीनांशेन दयानिधे नृपस्य ज्ञानदानाय रक्षायै सुरविप्रयोः।।४३।।
शेषाधारश्च कूर्मस्त्वमंशेन सृष्टिहेतवे। विश्वाधारश्च विश्वस्त्वमंशेनापि सहस्त्रधृत्।।४४।।
रामो दाशरथिस्त्वं च जानक्यूद्धारहेतवे। दशकंधरहन्ता च सिन्धौ सेतुविधायकः।।४५।।

हे दयानिधि! आपने अपने अंश से मीनावतार लेकर वेदों का उद्धार तथा राजा (मनु) को ज्ञान देकर देवता एवं विप्रों की रक्षा किया था। आपने सृष्टि के लिये अपने अंश से कूर्मरूप धारण करके अनन्तदेव (शेषनाग) को आश्रय दिया। आपने ही अपने अंश से सहस्त्रमुख अनन्तरूप में अवतरित होकर अपने मस्तक पर विश्व को आधार प्रदान किया था। आपने ही दशरथनन्दन रामरूप में अवतार लिया तथा जानकी का उद्धार करने के लिये समुद्र पर सेतु बांधकर दशानन का वध किया।।४३-४५।।

कलया परशुरामश्च जमदग्निसुतो महान्। त्रिःसप्तकृत्वो भूपानां निहन्ता जगतीपते।।४६।।
अंशेन कपिलस्त्वं च सिद्धानां च गुरोर्गुरुः। मातृज्ञानप्रदाता च योगशास्त्रविधायकः।।४७।।
अंशेन ज्ञानिनां श्रेष्ठौ नरनारायणावृषी। त्वं च धर्मसुतो भूत्वा लोकविस्तारकारकः।।४८।।
अधुना कृष्णारूपस्त्वं परिपूर्णतमः स्वयम्। सर्वेषामवताराणां बीजरूपः सनातनः।।४९।।
यशोदाजीवनो नित्यो नन्दैकानन्दवर्धनः। प्राणाधिदेवो गोपीनां राधाप्राणाधिकप्रियः।।५०।।

अपनी कला से महान् जमदग्निपुत्र परशुराम के रूप अवतरित होकर जगत्पति आपने ही २१ बार राजाओं का वध किया था। आपने ही अपने अंश से कपिल मुनि रूप से अवतीर्ण होकर अपनी माता को ज्ञान दिया तथा सांख्ययोगशास्त्र की रचना किया। ये कपिल सिद्धगण के गुरुओं के भी गुरु हैं। आप ही के अंशावतार नरनारायण ऋषि हैं जो धर्मनन्दन तथा लोकविस्ताकारक हैं। इस समय आप परिपूर्णतम प्रभु कृष्ण स्वरूप में प्रकट हैं। आप सभी अवतारों के कारणरूप तथा सनातन हैं। आप सदा यशोदा के जीवनस्वरूप, नन्द के आनन्द को बढ़ाने वाले, गोपियों के प्राणों के अधिदेवता तथा राधा को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।।४६-५०।।

वसुदेवसुतः शान्तो देवकीदुःखभञ्जनः। अयोनिसंभवः श्रीमान्पृथिवीभारहारकः।।५१।।

---

१. क. प्रहलादा०।

पूतनायै मातृगतिं प्रदाता च कृपानिधिः। बककेशिप्रलम्बानां ममापि मोक्षकारकः॥५२॥
स्वेच्छामय गुणातीत भक्तानां भयभञ्जन। प्रसीद राधिकानाथ प्रसीद कुरु मोक्षणम्॥५३॥
हे नाथ गार्दभीयोनेः समुद्धर भवार्णवात्। मूर्खस्त्वद्भक्तपुत्रोऽहं मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि॥५४॥

आप वसुदेव के पुत्र, शान्तात्मा, देवकी के दुःख का नाश करने वाले, अयोनिजन्मा तथा श्रीमान् हैं जो पृथिवी के भार का हरण करने के लिये अवतरित हैं। आप इतने कृपासागर हैं कि आपने पूतना तक को मातृगति प्रदान कर दिया। आप बक, केशि, प्रलम्ब तथा मेरे मोक्ष के कारक हैं। आप स्वेच्छामय, गुणातीत, भक्तभयभंजक हैं। प्रभु! राधिका नाथ! मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे इस योनि से मुक्त करिये। हे नाथ! इस संसारसागर की इस गर्दभ योनि से मेरा उद्धार करिये। मैं मूर्ख आपके महाभक्त बलि का पुत्र हूं। कृपया मेरा उद्धार करिये।।५१-५४।।

वेदा ब्रह्मादयो यं च मुनीन्द्राः स्तोतुमक्षमाः।
किं स्तौमि तं गुणातीतं पुरा दैत्योऽधुना खरः॥५५॥

आपका स्तुति कर सकने में वेद, ब्रह्मादिदेवता, मुनीन्द्रगण अक्षम हैं। आप गुणातीत की स्तुति वह व्यक्ति क्या कर सकेगा जो पूर्व में दैत्य था तथा अब गर्दभ है।।५५।।

एवं कुरु कृपासिन्धो येन मे न भवेज्जनुः। दृष्ट्वा पादारविन्दं ते कः पुनर्भवनं व्रजेत्॥५६॥

ब्रह्मा स्तोता खरः स्तोता नोपहासितुमर्हसि।
सदीश्वरस्य विज्ञस्य योग्यायोग्ये समा कृपा॥५७॥

हे कृपासिन्धु! ऐसा विधान करिये जिससे मुझे अब कभी जन्म न लेना पड़े। हे मधुसूदन! ब्रह्मा तक आपका स्तव करते हैं। अतः मेरे स्तव का (सामान्य व्यक्ति कृत स्तव का) आप उपहास न करें; क्योंकि सर्वज्ञ परमेश्वर की तो योग्य-अयोग्य, सबके प्रति सामान्य कृपा रहती है।।५६-५७।।

इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रस्तस्थौ च पुरतो हरेः। प्रसन्नवदनः श्रीमानतितुष्टो बभूव ह॥५८॥

इदं दैत्यकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्।
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यं लीलया लभते हरे॥५९॥
इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं सुदुर्लभम्।
विद्यां श्रियं सुकवितां पुत्रपौत्रान्यशो लभेत्॥६०॥

यह कहकर दैत्यराज धेनुक प्रभु के समक्ष स्थित हो गया। वह अब प्रसन्नानन, श्रीमान् एवं सन्तुष्ट लग रहा था; क्योंकि कृष्ण उस पर प्रसन्न थे। दैत्य धेनुक कृत यह स्तोत्र पाठ नित्य करने वाला मनुष्य अनायास हरि की सालोक्य, सार्ष्टि एवं सामीप्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। उसे इहलोक में हरिभक्ति प्राप्त होती है। वह अन्त में हरिदास्य, विद्या, श्री, उत्तम कविता, पुत्र-पौत्र तथा यशलाभ करता है।।५८-६०।।

नारायण उवाच

श्रुत्वाऽनुमेने दैत्येन्द्रस्तवनं करुणानिधिः। कथं करोमि संहारमीदृशं भक्तमित्यहो॥६१॥

अनुमन्य स्मृतिं तस्य सञ्जहार हरिः स्वयम्।
न हि युक्तो वधः स्तोतुर्दुर्वक्तुर्विधिरीश्वरात्॥६२॥
दानवो मायया विष्णोर्विसस्मार पुनः स्वकम्।
दुरुक्तिस्तत्कण्ठदेशे ह्यधिष्ठानं चकार ह॥६३॥

उवाच श्रीहरिं दैत्यः कोपात्प्रस्फुरिताधरः। मुने सद्यो मर्तुकामो दैवग्रस्तो विचेतनः॥६४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—करुणानिधि प्रभु ने इस दैत्यराज का स्तव सुनकर विचार किया कि "मैं ऐसे भक्त का वध कैसे कर सकता हूं?" तदनन्तर हरि ने उसका संहार करने के लिये उसकी स्मृति का हरण कर लिया। नियम है कि जो स्तुति करे उसका वध नहीं किया जा सकता। जो कटुवक्ता है, स्वामी उसका ही नाश करता है। भगवान् की माया से वह दैत्य पूर्वजन्म की स्मृति से रहित हो गया। उसके कण्ठ में कटूक्ति स्थित हो गई। हे मुनि! उस दैत्य के ओष्ठ क्रोध से फड़कने लगे। अब मृत्युकामी दैवग्रस्त, चेतना रहित दैत्य श्रीहरि से कहने लगा—॥६१-६४॥

दैत्य उवाच

ध्रुवं त्वं मर्तुकामोऽसि दुर्बुद्धे मानवार्भक।
अद्य प्रस्थापयिष्यामि त्वामहं यममन्दिरम्॥६५॥
आयासि जीवनाकाङ्क्षी मम तालवनं शिशो।
न यास्यसि पुनर्गेहं बान्धवं न हि द्रक्ष्यसि॥६६॥
न कंसो न जरासंधो नरको न समो मम।
देवाः कम्पन्ति मे नित्यं के चान्ये मत्समा भुवि॥६७॥
न हि संहारकर्त्ता च मां संहर्तुं क्षमः शिवः।
न च ब्रह्मा न विष्णुश्च न मृत्युःकाल एव च॥६८॥
मम तालतरून्भङ्क्त्वा पातयित्वा फलानि च।
अहंकरोषि सहसा किमहो कस्य तेजसा॥६९॥

दैत्य कहता है—हे दुर्बुद्धि! मनुष्य की सन्तान! अवश्य तेरी मरण की इच्छा हो गई। मैं अभी तुमको यमलोक भेजता हूं। हे शिशु! तुम इस तालवन में आकर भी जीवित रहना चाहते हो? लेकिन तुम अब कदापि गृह वापस नहीं जा सकोगे, न तो बन्धुगण को ही अब देख सकोगे? ये कंस, जरासन्ध, नरकासुर आदि में से कोई भी मेरे समान नहीं हैं। देवगण नित्य मेरे भय से कम्पित होते रहते हैं। मेरे समान भूमि पर अन्य कोई भी नहीं है। शिव जगत् संहारक होकर भी मेरा संहार करने में सक्षम नहीं

हैं। ब्रह्मा-विष्णु-काल की भी यह क्षमता नहीं है। तुम किसके बल तथा तेज के सहारे इस मेरे तालवन के फलों को गिरा रहे थे तथा अभिमान से वृक्षों को तोड़ रहे थे?।।६५-६९।।

कस्त्वं वद बटो सत्यं कमनीयोऽतिसुन्दरः। दुर्लभं जीवनं दातुं मह्यं कथमिहागतः।।७०।।

तुम अपना परिचय दो कि तुम कौन हो? तुम तो अतीव कमनीय तथा सुन्दर हो। अपना दुर्लभ जीवन मुझे प्रदान करने यहां क्यों आ गये?।।७०।।

इत्युक्त्वा मस्तके कृत्वा प्रेरयित्वा तु तं बली।
दूरतः पातयामास श्रीकृष्णं मरणोन्मुखः।।७१।।
पातयित्वा च तं भूमौ विषाणाभ्यां जघान सः।
कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण तद्विषाणे बभञ्जतुः।।७२।।

यह कहने के पश्चात् उस मरणोन्मुख बली दैत्य ने कृष्ण को अपने शिर के आघात से दूर उछाल दिया। उसने कृष्ण को भूपतित करके उन पर अपने शृङ्गों का प्रहार कर दिया, तथापि कृष्ण के अङ्ग का स्पर्श करते ही उसके शृङ्ग खण्डित होकर टूट गये।।७१-७२।।

दैत्यो भग्नविषाणश्च तमीशं कोपयन्मुने। जग्रास[१] चर्वणं कर्तुं भग्नदन्तो बभूव ह।।७३।।

तेजसा दग्धवक्त्रश्च तमुज्जग्राह तत्क्षणे।
जज्वाल व्यथितः कोपाद्ददार खुरतो महीम्।।७४।।
घूर्णयित्वा तु लाङ्गूलं शब्दं कृत्वा भयानकम्।
स जगाम शिशुस्थानं दुद्रुवुर्बालका भिया।।७५।।

बलं च प्रेरयामास मस्तकेन महाबली। बलो मुष्टिं ददौ तस्मै मूर्च्छामाप ततोऽसुरः।।७६।।

क्षणेन चेतनां प्राप्य जगाम हरिसन्निधिम्।
बलमुष्ट्या[२] च व्यथितः पुनर्मुर्च्छामवाप सः।।७७।।

पुनश्च चेतनां प्राप्य समुत्तथौ व्यथाकुलः। उत्ससर्ज बृहल्लेण्डं मूत्रं च भयमाप ह।।७८।।

जब शृङ्गविहीन हो गये दैत्य ने कृष्ण को क्रोध पूर्वक पकड़ कर चबाना चाहा, उसके सभी दांत टूट गये। कृष्ण तेज से उसका मुख दग्ध हो गया। इससे उसने कृष्ण को उगल दिया। वह क्रोध से दग्ध होता अपने खुरों से पृथिवी खोदते तथा पुच्छ को घुमाकर भयानक शब्द करते वहां गया जहां बालक खड़े थे। उसे देखकर बालकगण वहां से पलायन करने लगे, तभी बलभद्र के प्रचण्ड मुष्टि प्रहार से दैत्य मूर्च्छित हो गया। पुनः चेतनालाभ होने पर वह कृष्ण के समीप गया तथा बलराम के मुष्टि प्रहार से पुनः मूर्च्छित हो गया। पुनः चेतना लाभ होते ही व्याकुल दैत्य उठा तथा भय के कारण मूत्र एवं मल त्याग करने लगा!।।७३-७८।।

१. क. ग्राह०।
२. क. ज्र०।

क्षणात्संधिक्षणं प्राप्य महाबलपराक्रमः। कृत्वा शिरसि गोविन्दं घूर्णयामास दानवः॥७९॥
पातयामास भूमौ तं घूर्णयित्वा पुनः पुनः।
उत्पाट्य तालवृक्षं तं ताडयामास माधवः॥८०॥
यथा[1] केशप्रहारेण दानवस्य भवेद्व्यथा। तथा बभूव दैत्यस्य तालवृक्षस्य ताडनात्॥८१॥
गोवर्धनं समुत्पाट्य घातयामास तं विभुः। पपात वेगाच्छैलेन्द्रस्तस्योपरि महामुने॥८२॥
पर्वतस्य प्रहारेण मूर्च्छामाप महाबलः। बभूव जर्जराङ्गश्च रुधिरं च समुद्वमन्॥८३॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ रुषासुरः। गृहीत्वा पर्वतश्रेष्ठं प्रेरयामास माधवम्॥८४॥
दृष्ट्वा शैलमुत्पतन्तं वेगेन मधुसूदनः। जग्राह दक्षिणकरे यथेक्षुदण्डवत्प्रभुः॥८५॥
पूर्वस्थाने पर्वतं तं स्थापयामास कौतुकात्। गृहीत्वा दैत्यकर्णाग्रं पातयामास दूरतः॥८६॥
उत्पत्य च महावेगाच्चकार वेष्टनं हरेः। पृथिवीं धर्षयामास तीक्ष्णाग्रेण खुरेण च॥८७॥
प्रगृह्य श्रीहरिं वेगात्कृत्वा मूर्ध्नि महासुरः। उत्पपात मनोयायी लीलया लक्षयोजनम्॥८८॥
प्रहरं च तयोर्युद्धं निर्लक्षे च बभूव ह। ततो गृहीत्वा श्रीकृष्णं पपात धरणीतले॥८९॥
पुनर्मुहूर्तं युद्धं च बभूव भूतले तयोः। मुदा हरिः प्रशशंस प्रहस्य दानवेश्वरम्॥९०॥

कुछ क्षण विश्रामोपरान्त उस महाबली, पराक्रमी दानव ने गोविन्द को शिर पर उठाया तथा घुमाकर पृथिवी पर पटक दिया। तभी माधव एक तालवृक्ष उखाड़ कर उस दैत्य पर प्रहार करने लगे, तथापि एक बाल के प्रहार द्वारा मनुष्यों को जितनी नगण्य व्यथा होती है, दैत्य को भी वह प्रहार वैसा नगण्य लगा। हे महामुनि! यह देखकर श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन उखाड़ कर दैत्य पर आघात किया। जब वह शैलराज अत्यन्त वेग से दैत्य पर गिरा तब वह दैत्य मूर्च्छापन्न आकुलित अङ्ग वाली स्थिति में रुधिर वमन करने लगा, तथापि अगले क्षण दैत्यराज चैतन्यता प्राप्त करके उठा तथा उस पर्वतराज को उठाकर कृष्ण पर चलाया। अपनी ओर आते उस पर्वत को कृष्ण ने इक्षुदण्ड की भांति अनायास पकड़ लिया तथा कौतुक के साथ उस पर्वत को उसके अपने स्थान पर रखा। तत्पश्चात् कृष्ण ने दैत्य का कान पकड़कर उसे दूर उछाल दिया। तत्पश्चात् उस राक्षस महावेग पूर्वक उछल तथा हरि को पकड़कर अपने तीक्ष्ण खुरों से पृथिवी खोदने लगा। तभी मनोवेग से चलने वाले इस महासुर ने कृष्ण का शिर लीलाक्रमेण अत्यन्त वेग से पकड़ा तथा एक लाख योजन ऊर्ध्व आकाश में चला गया। उस अन्तरीक्ष में कृष्ण का दैत्य के साथ एक प्रहरव्यापी युद्ध चला। तभी वह दैत्य कृष्ण को पकड़कर धरती पर गिरा जहां के निर्जन स्थान में दोनों वीरों ने पुनः एक मुहूर्त पर्यन्त युद्ध किया। श्रीहरि आनन्द से हंसते हुये दैत्यराज की प्रशंसा करने लगे॥७९-९०॥

मद्भक्तस्य बलेः पुत्रं धन्यं तज्जजीवनं परम्।
स्वस्त्यस्तु ते दानवेन्द्र वत्स निर्वाणतां व्रज॥९१॥

१. क. खड्गप्र॰।

मद्दर्शनं स्वस्तिबीजं परं निर्वाणकारणम्। सर्वाधिकं सर्वपरं लभ स्थानं मनोहरम्॥९२॥

श्रीकृष्ण ने कहा–हे दानव! तुम तो मेरे परमभक्त बलि के पुत्र हो। तुम्हारा यह श्रेष्ठ जीवन धन्य है। तुम्हारा मंगल हो। तुम निर्वाण लाभ करो। मेरा दर्शन मंगल का कारण रूप है। वह निर्वाण कारक है। तुम सबसे श्रेष्ठ, सर्वोत्तम, मनोहर स्थान प्राप्त करो॥९१-९२॥

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः सस्मार चक्रमुत्तमम्।
सूर्यकोटिसमं दीप्त्या जग्राह तत्सुदर्शनम्॥९३॥
चिक्षेप भ्रामयित्वा च षोडशारमनुत्तमम्।
चिच्छेद लीलयाऽवध्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः॥९४॥

यह कहकर प्रभु श्रीकृष्ण ने अपने सर्वोत्तम चक्र का स्मरण किया तथा कोटि सूर्यवत् दीप्तिमान सुदर्शन चक्र को ग्रहण किया, जो अत्युत्तम सोलह अरों से युक्त था। श्रीकृष्ण ने घूर्णित करके ब्रह्मा-विष्णु-शिव से भी अवध्य उस दैत्य पर उस चक्र का प्रहार किया तथा लीला पूर्वक उसका छेदन कर दिया॥९३-९४॥

पपात मस्तकं भूमौ दानवस्य महात्मनः। तेजःसमूह उत्तस्थौ शतसूर्यसमप्रभः॥९५॥

विलोक्य हरिलोकं संश्लिष्टं कृष्णपदाम्बुजे।
सम्प्राप्य (प) परमं मोक्षमहो दानवपुङ्गवः॥९६॥

जैसे ही उस महात्मा दानव का मस्तक भूमि पर गिरा उसमें से शतसूर्यसमप्रभ तेजपुंज निर्गत हो गया। श्रीकृष्ण के चरणकमल का दर्शन करके वह तेजपुंज हरिलोक को कृष्ण के चरणकमल में स्थित देखकर उसी में लीन हो गया। इस प्रकार वह दैत्य परम मोक्ष को प्राप्त हो गया॥९५-९६॥

गगनस्थाः सुराः सर्वे मुनयश्च भृशं मुदा। पारिजातप्रसूनानां चक्रुस्ते तत्र वर्षणम्॥९७॥
नेदुर्दुन्दुभयं स्वर्गे ननृतुश्चाप्सरोगणाः। जगुर्गन्धवनिकरास्तुष्टुवुर्मुनयो मुदा॥९८॥

स्तुत्वा जग्मुः सुराः सर्वे मुनयो हर्षविह्वलाः।
धेनुकस्य वधं दृष्ट्वा तत्राऽऽजग्मुश्च बालकः॥९९॥
बलश्च बलिनां श्रेष्ठस्तुष्टाव पुरुषोत्तमम्।
तुष्टुवुर्बालकाः सर्वे ननृतुश्च मुदाऽन्विताः॥१००॥

उस समय गगन में स्थित समस्त देवता एवं मुनिगण परमानन्द में मग्न होकर पुष्पवृष्टि करने लगे। स्वर्ग में दुन्दुभि ध्वनि होने लगी तथा अप्सरायें नृत्य करने लगीं। गन्धर्वगण उत्तम गायन करने लगे तथा मुनिगण हर्ष पूर्वक पुरुषोत्तम की स्तुति करने लगे। वहां सभी गोप बालकों ने भी मुदान्वित होकर श्रीकृष्ण की स्तुति तथा नृत्य किया॥९७-१००॥

दत्त्वा कृष्णबलाभ्यां च प्रपक्वानि फलानि च।
सर्वाणि भक्षयामासुर्बालाः प्रहृष्टमानसाः॥१०१॥

भुक्त्वा पीत्वा हरिः शीघ्रं बलेन बालकैः सह।
जगाम स्वालयं ब्रह्मन्निहत्य दानवेश्वरम्॥१०२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० धेनुकवधो नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

सभी लोग मुदित हो गये। बालकगण ने बलभद्र तथा कृष्ण को सभी ने पक्वफल प्रदान किया तथा स्वयं भी उन सभी ने पके फल का प्रसन्न मन से भक्षण किया। हे ब्रह्मन्! इस प्रकार दानवेश्वर धेनुक का वध करने के उपरान्त श्रीकृष्ण, बलराम तथा सभी बालक फल भोजन तथा जलपान करके अपने गृह चले गये॥१०१-१०२॥

॥२२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

प्रसङ्गक्रम से तिलोत्तमा तथा बलिपुत्र का दुर्वासा के शाप का वर्णन

नारद उवाच

केन पापेन बलिजो गर्दभत्वमवाप ह। दुर्वासाः केन दोषेण शशाप दानवेश्वरम्॥१॥
केन पुण्येन वा नाथ वलिजः[1] श्रीहरेः पदम्। सहसैकत्वमुक्तिंच सम्प्राप दानवाधिपः॥२॥
मुने सर्वं सुविस्तार्य वद संदेहभञ्जन। अहो कविमुखे काव्यं नूत्नं नूत्नं पदे पदे॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—किस शाप के कारण बलिपुत्र को गर्दभ शरीर मिला तथा उस दानवराज को दुर्वासा ने किस कारण से शाप दिया था? हे नाथ! उस दानवाधिप ने किस पुण्यबल से हठात् हरिपद में लीन होकर एकत्व मुक्तिलाभ किया? हे मुनिवर! आप सभी विषयों के सन्देह का भंजन कर देते हैं। तभी सब विस्तृत रूप से कहिये। क्या आश्चर्य की बात है? कवि के मुख द्वारा निर्गत सभी वाक्यसमूह पग-पग पर नूतन से लगते हैं!॥१-३॥

नारायण उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गन्धमादने॥४॥

१. क. संलीय॰।

पाद्मकल्पं च वृत्तान्तं विचित्रं सुमनोहरम्। नारायणकथोपेतं कर्णपीयूषमुत्तमम्।।५।।
यत्र कल्पे कथा चेयं तत्र त्वमुपबर्हणः। आकल्पजीवी सश्रीकः सुन्दरः स्थिरयौवनः।।६।।
पञ्चाशत्कामिनीनां च पतिः शृङ्गारतत्परः। वरेण ब्रह्मणस्त्वं च सुकण्ठो स्थिरयौवनः।।७।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे वत्स! मैं तुमसे एक प्राचीन इतिहास कहता हूं। श्रवण करो। पूर्वकाल में मैंने इसे गन्धमादन पर्वत पर पिता धर्मदेव से सुना था। पाद्मकल्प का यह वृत्तान्त विचित्र, सुमनोहर, नारायणकथा समन्वित है। यह कानों में प्रविष्ट होने पर उत्तम अमृत रूप प्रतीत होता है। जिस कल्प की यह उत्तम कथा है, तब तुम उस कल्पान्त तक जीवित रहने वाले श्रीयुक्त सुन्दर स्थिर यौवनयुक्त होकर ५० कामिनियों के पति, शृङ्गार तत्पर तथा ब्रह्मा के वर से सुकण्ठगायक प्रवर उपबर्हण नामक गन्धर्व थे।।४–७।।

अनुक्षणं पपुस्तास्ते सुन्दरं मुखपङ्कजम्। निमेषरहिताः सर्वाः कामबाणप्रपीडिताः।।८।।
तासां प्राणैश्च घटितो विधिना त्वमिव श्रुतम्।
दिवानिशं सहचरा च जीवन्ति त्वया विना।।९।।
पुष्पोद्याने च रहसि स्थाने स्थाने मनोरमे। गह्वरेषु च शैलानां कन्दरेषु नदीषु च।।१०।।
काननेषु च रम्येषु श्मशाने जन्तुवर्जिते। यथामनोरथं ताश्च क्रीडां चक्रुस्त्वया सह।।११।।
तदा द्वैवाद्विधेः शापाद्भूत्वा दासीसुतो भवान्।
अधुना ब्रह्मणः पुत्रो वैष्णवोच्छिष्टभोजनात्।।१२।।

वे सभी ५० कामिनियां कामबाण से पीड़ित होकर अनिमेष नेत्रों से प्रतिक्षण तुम्हारे सुन्दर मुखकमल को देखती रहती थीं। विधाता ने उनके प्राणों को तुम्हारे प्राणों से एक कर दिया था। यह कहा जाता था। अतः वे सभी दिन–रात तुम्हारी संगिनी रहती थीं। तुम्हारे बिना वे जी नहीं सकती थीं। वे तुम्हारे साथ कभी निर्जन पुष्पोद्यान में, तो कभी विजन मनोहर स्थानों में, कभी पर्वत गुफाओं में, कभी नदियों, कन्दराओं तथा उत्तम वनों एवं जन्तु रहित श्मशानों में भी तुम्हारे सहित मनोवांछित क्रीड़ा करती रहती थीं। तभी तुम दैवात् ब्रह्मशाप से दासीपुत्र हो गये। उसी जन्म में ब्राह्मणों का जूठन खाने के कारण अब ब्रह्मपुत्र हो!।।८–१२।।

असंख्यकल्पजीवी च वैष्णवप्रवरो महान्। ज्ञानदृष्ट्या सर्वदर्शी प्रियशिष्यश्च धूर्जटेः।।१३।।
तस्य कल्पश्च वृत्तान्तं मुने मत्तो निशामय।
विस्तार्य दैत्यवृत्तान्तं कथयामि सुधोपमम्।।१४।।
एकदैव बलेः पुत्रो नाम्ना साहसिको बली।
स्वतेजसा सुराञ्जित्वा प्रतस्थे गन्धमादनम्।।१५।।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नभूषणभूषितः। रत्नसिंहासनस्थश्च बहुसैन्यसमन्वितः।।१६।।
एतस्मिन्नन्तरे तेन यथा याति तिलोत्तमा। रूपेणाप्सरसां श्रेष्ठा नानावेषविधायिनी।।१७।।

इस समय तुम असंख्य कल्पों तक जीवित रहने वाले महान् वैष्णव श्रेष्ठ हो। तुम ज्ञानदृष्टिसम्पन्न, सर्वदर्शी तथा शिव के प्रिय शिष्य भी हो। हे मुनिवर! उसी कल्प का वृत्तान्त मुझसे सुनो। अमृत के समान प्रतीत होने दैत्य वृत्तान्त का तुम मुझसे श्रवण करो। यह मैं विस्तार से कहता हूं। एक बार साहसिक नामक महाबली बलिपुत्र ने अपने बल से सभी देवताओं पर विजय पा लिया था। तब वह गन्धमादन पर्वत पर आया। वहां पर चन्दन चर्चित अंगों वाला, रत्नभूषण भूषित दैत्य प्रभूत सैन्ययुक्त होकर रत्नसिंहासनासीन था। उसी समय रूप में सभी अप्सराओं से श्रेष्ठा, नानावेषधारिणी तिलोत्तमा आई।।१३-१७।।

चारुचम्पकवर्णाभा रत्नाभरणभूषिता। नवयौवनसम्पन्ना कामबाणप्रपीडिता॥१८॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या दिव्यवस्त्र सुबिभ्रती। वक्रभ्रूभङ्गयुक्ता सा गजेन्द्रमन्दगामिनी॥१९॥
स्तनमूरुं मुखेन्दुं च दृष्ट्वा साहसिको युवा।
वायुना मुक्तवस्त्रायास्तस्या मूर्च्छामवाप ह॥२०॥

वह अप्सरा उत्तम चम्पक पुष्प जैसे वर्णों वाली, रत्नाभरणभूषिता, नवयौवनयुता एवं कामबाण से पीड़िता थीं। उसके मुख पर मन्द मुस्कान छिटक रही थी। वह दिव्यवस्त्र धारण करने वाली वक्र भ्रूभंगिमा से युक्त तथा मत्तगजेन्द्र की तरह धीरे-धीरे चल रही थी। वायु के प्रवाह से उसका आंचल बारम्बार हट जा रहा था। युवा साहसिक नामक वह दैत्य उस रूपसी के स्तन, उरु, मुखचन्द्र को देखकर मूर्च्छित हो गया।।१८-२०।।

सा ददर्श बलेः पुत्रमतीव सुमनोहरम्। प्रफुल्लमालतीमालां बिभ्रतं नवयौवनम्॥२१॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सुस्मितं सुमनोहरम्।
दृष्ट्वा तं विस्मिता कामात्कटाक्षं च चकार सा॥२२॥
क्रीडायै चन्द्रलोकं च गच्छन्ती चन्द्रकामुकी।
तस्थौ केन च्छलेनैव मत्ता शृङ्गारलालसा॥२३॥
दर्शं दर्शं च तस्यास्यं प्रहस्य वक्रचक्षुषा।
मुखस्याऽऽच्छादनं चक्रे वाससा सा पुनः पुनः॥२४॥

तिलोत्तमा ने भी उस अत्यन्त मनोहर, खिले मालतीपुष्पों की माला से भूषित, नवयौवनसम्पन्न, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखमण्डल वाले, मुस्कुराते हुये बलिपुत्र साहसिक को जैसे ही देखा, वह काम के वशीभूत हो गई। वह मुस्कुराते हुये तिरछी चितवन से साहसिक दैत्य को देखने लगी। वह क्रीड़ार्थ चन्द्रलोक जा रही थी, तथापि वह बलिपुत्र के साथ कामक्रीड़ा की प्रत्याशा में किसी छल का आश्रय लेकर वहीं रुक गई। तभी वह विलासिनी अप्सरा हंसते हुये तिरछी चितवन से बारम्बार साहसिक की ओर देखने लगी तथा बारम्बार (लज्जा प्रदर्शन करते) अपना मुख वस्त्राच्छादित करने लगी।।२१-२४।।

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गं धर्मकर्मसमन्वितम्। बभूव काममत्तायाः योनौ कण्डूयनं जलम्॥२५॥
विसस्मार शशधरं बलिपुत्रमनोरथा।अहो को वेद भुवने दुर्ज्ञेयं पुंश्चलीमनः॥२६॥

यह देखकर धर्म-कर्म सम्पन्न साहसिक दैत्य पुलकित हो उठा। उधर कामोन्मत्त अप्सरा की योनि में खुजलाहट होने लगी तथा अप्सरा की योनि आर्द्र हो उठी। बलिपुत्र के साथ संभोग की लालसा के कारण उसने चन्दमा को विस्मृत कर दिया। पुंश्चली स्त्री का मन इतना दुर्ज्ञेय होता है कि उसका रहस्य वेद भी नहीं जान सकते!॥२५-२६॥

पुंश्चल्यां यो हि विश्वस्तो विधिना स विडम्बितः।
बहिष्कृतश्च यशसा धर्मेण स्वकुलेन च॥२७॥
वाञ्छितं नूतनं प्राप्य विनश्यति पुरातनम्।
तदा[1] स्वकर्मसाध्या सा को वा तस्याः प्रियोऽप्रियः॥२८॥

जिस भी व्यक्ति ने पुंश्चली नारी पर विश्वास कर लिया, वह तो विधाता द्वारा विडम्बित (वंचित) है। उसका अपना कुल, धन तथा यश नष्ट हो जाता है। ऐसी नारी नये इच्छित पुरुष को पाकर पुरातन प्रेमी को भूल जाती है। उसकी पुराने प्रेमी के प्रति रुचि नहीं रहती। वे केवल अपना स्वार्थ साधन करती हैं। ऐसी स्त्री का न तो कोई प्रिय है न अप्रिय॥२७-२८॥

दैवे कर्मणि पैत्र्ये च पुत्रे बन्धौ न भर्तरि। दारुणं पुंश्चलीचित्तं सदा शृङ्गारकर्मणि॥२९॥
प्राणाधिकं रतिज्ञं साऽमृतदृष्ट्या च पुंश्चली। रत्नप्रदं रत्नविज्ञं विषदृष्ट्या हि पश्यति॥३०॥

सर्वेषां स्थलमस्त्येव पुंश्चलीनां च कुत्रचित्।
दारुणा पुंश्चली जातिर्नरघातिभ्य एव च॥३१॥

जो पुंश्चली नारी है, उसका लगाव दैव-पैत्र्य कार्यों के नहीं रहता। उनके मन में पुत्र, बन्धु, स्वामी के प्रति कोई आदर नहीं होता। पुंश्चली का चित्त अत्यन्त दारुण होता है, वह सतत् शृङ्गार कर्म में ही लिप्त रहता है। पुंश्चली नारी रमणीय रतिपटु पुरुष को प्राण से बढ़कर प्रिय मानती है। वह उसे अमृतदृष्टि से देखती है। वह रति विषय में अपटु व्यक्ति द्वारा रत्नदान करने पर भी, उसे विष दृष्टि से देखती है। सबके लिये कहीं न कहीं ऐसा स्थान है जहां वे पातक नहीं करते, तथापि पुश्चली के लिये सभी स्थान समान हैं। उसके लिये वर्जित स्थान है ही नहीं। पुंश्चली को तो नरहत्यारे से भी दारुण कठोर कहा गया है॥२९-३१॥

निष्कृतिः [2]सर्वभोगान्ते सर्वेषामस्ति निश्चितम्।
न पुंश्चलीनां विप्रेन्द्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥३२॥

---

१. क. सदा।
२. क. कर्म०।

अन्यासां कामिनीनां च कीटं हन्तुं च या दया।
सा नास्ति पुंश्चलीनां तु कान्तं हन्तुं पुरातनम्॥३३॥

हे विप्रेन्द्र! सभी को पापभोग भोगकर छुटकारा मिल जाता है, उद्धार हो जाता है, परन्तु पुंश्चली का नरक से उद्धार तब तक नहीं होता, जब तक चन्द्रसूर्य की सत्ता है। पुंश्चली नारी के मन में अपने पूर्व प्रेमी की हत्या करते समय उतनी भी दया नहीं आती, जितनी दया सामान्य साध्वी नारीगण को एक कीट मारते समय हो जाती है!॥३२-३३॥

कान्तं दृष्ट्वा हिनस्त्येव सोपायेनावलीलया। रतिज्ञं नूतनं प्राप्य विषतुल्यं पुरातनम्॥३४॥
पृथिव्यां यानि पापानि पुंश्चलीष्वेव भारते।
तिष्ठन्ति ताभ्यो न पराः पापिष्ठाः सन्ति केचन॥३५॥

जब पुंश्चली नारी रतिकार्य में पटु नूतन व्यक्ति को पा लेती है, उसे पुराना प्रेमी विष तुल्य लगता है। वह उसे किसी न किसी उपाय से नष्ट कर देती है। समग्र पृथिवी पर जितने भी पातक विद्यमान हैं, वे सभी भारत में पुंश्चली स्त्री में मिलते हैं। यहां उनसे बढ़कर पातकी कोई नहीं है॥३४-३५॥

पुंश्चलीपरिपक्वान्नं सर्वपातकमिश्रितम्। दैवे कर्मणि पैत्र्ये च न देयं च तथा जलम्॥३६॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं पुंश्चलीनां च निश्चितम्।
दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो भुक्त्वा च नरकं व्रजेत्॥३७॥
शतवर्षं कालसूत्रे पचत्येव सुदारुणे। घोरान्धकारे कृमयस्तं दशन्ति दिवानिशम्॥३८॥
पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते दैवाद्यदि नराधमः।
सप्तजन्मकृतं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्॥३९॥

पुंश्चली द्वारा पाक किया गया अन्न सभी पातकों से युक्त होता है। वह देव-पैत्र्य कार्यों में प्रदान नहीं किया जाता। पुंश्चली का जल भी कहीं प्रदत्त नहीं होता। उसका अन्न विष्ठा के समान, जल मूत्र के समान निश्चित रूप से होता है। जो पुंश्चली प्रदत्त अन्न-जल देवता तथा पितरों को अर्पित करता है अथवा भक्षण करता है, वह नरकगामी होगा। यह निश्चित है। ऐसा व्यक्ति दारुण कालसूत्र नरक में १०० वर्ष तक क्लेशभोग करता है जहां घोर अन्धकार के बीच उसे कृमि रात-दिन दंश करते रहते हैं। यदि दैवात् कोई नराधम पुंश्चली का अन्न भोजन कर लेता है, निश्चित रूप से उसका सप्तजन्मार्जित पुण्य नष्ट हो जाता है॥३६-३९॥

आयुः श्रीयशसां हानिरिह लोके परत्र च। तस्माद्यत्नाद्रक्षणीयं पाकपात्रं कलत्रकम्॥४०॥
पुंश्चलीदर्शने पुण्यं यात्रासिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।
स्पर्शने च महापापं तीर्थस्नानाद्विशुध्यति॥४१॥

उसके आयु-यश की हानि इहलोक तथा परलोक दोनों में होती है। तभी कहा गया है कि स्त्री

को तथा भोजन पकाने वाले पात्र की यत्न पूर्वक रक्षा करें। शकुन के अनुसार यदि यात्राकाल में पुंश्चली स्त्री का दर्शन हो, तब वह पुण्यदायक है, तथापि उसका स्पर्शन महापापप्रद है, जो केवल तीर्थयात्रा से शुद्ध होगा।।४०-४१।।

स्नानं दानं व्रतं चैव जपश्च देवपूजनम्। निष्फलं पुंश्चलीनां च भारते जीवनं वृथा॥४२॥
कथितं कुलाटाख्यानं दुर्ज्ञेयं च यथागमम्। संवादं च तयोस्तत्र प्रकृतं शृणु नारद॥४३॥

भारतवर्ष में पुंश्चली का जन्म लेना व्यर्थ है; क्योंकि वह स्नान, दान, व्रत, जप, देवपूजादि चाहे जो करे, सभी फलहीन होगा। हे नारद! प्रसंगक्रमेण मैंने यह कुलटा प्रसंग कह दिया। अब साहसिक एवं तिलोत्तमा का संवादरूप वास्तविक प्रसंग कहता हूं।।४२-४३।।

स पुनश्चेतनां प्राप्य तां दृष्ट्वैव बलेः सुतः।
कामातुरः प्रमत्तश्च जगाम कुलटान्तिकम्॥४४॥
उवाच कुटिलापाङ्गीं पीनश्रोणिपयोधराम्।
व्रीडया वाससा वक्त्रमाच्छन्नं कुर्वतीं मुदा॥४५॥

जब साहसिक दैत्य ने क्रमशः पुनः चेतना लाभ कर लिया, तब वह तिलोत्तमा को देखते ही कामातुर प्रमत्त होकर उस कुलटा के पास चला गया। उसने स्थूल जंघा तथा स्थूल स्तनों वाली तथा तिरछी चितवन से देखने वाली, लज्जा प्रदर्शन करती वस्त्र से मुख आवरित करके हर्ष पूर्वक स्थित कुलटा से कहा-।।४४-४५।।

साहसिक उवाच

काऽसि त्वं कस्य कन्याऽसि कस्य कान्ताऽसि।
स्वयं क्व यासि कं सुभ्रूः पुण्यवन्तं मनोहरम्॥४६॥
कल्पान्ते तपसा पूतं भोक्तुं त्वामेव सुन्दरि।
यं तं यासि याहि सा त्वं भृत्यं मां कर्तुमर्हसि॥४७॥
क्रीणीहि रतिपुण्येन मां भृत्यं रतिलोलुपम्।
शृङ्गारलोलुपा त्वं च शृङ्गारं देहि कामुकि॥४८॥
त्वया सह ममाऽऽश्लेषो विधिना च विनिर्मितः।
निरूपितं यत्तेनैव वार्यते केन तत्प्रिये॥४९॥

साहसिक दैत्य कहता है-हे कल्याणी! तुम कौन हो? किसी कन्या तथा किसकी कान्ता हो? हे सुभ्रु! तुम स्वयं कहां जा रही हो? ऐसा मनोहर अथच कल्पान्तकारी तप से पवित्र हो गया ऐसा पुण्यात्मा व्यक्ति कौन है, जो तुम स्वयं उसके यहां जा रही हो। तुम जा सकती हो, तथापि मुझे अपना भृत्य बना लो। हे कामुकी! रतिरूपी मूल्य प्रदान करके इस रतिलोलुप भृत्य को तुम क्रय कर लो।

निश्चय तुम भी शृङ्गार क्रीड़ा की लोलुप लगती हो। अतः तुम मेरे साथ शृङ्गार क्रीड़ा में प्रवृत्त हो जाओ। हे प्रिये! तुम्हारे साथ मेरा मिलन विधाता द्वारा निश्चित हो गया है। अब उसे कौन रोक सकता है?।।४६-४९।।

वाक्यं पीयूषसदृशं सस्मितं वद सुन्दरि। शीघ्रं भुजलतापाशैर्बन्धनं कुरु निर्जने।।५०।।
आसनं देहि कल्याणि स्वोरुं कनकसन्निभम्।
स्तनमण्डलकुम्भं च [१]पात्रयोग्यं प्रदर्शय।।५१।।

हे सुन्दरी! तुम अपनी अमृतमयी वाणी से कुछ कहो। तुम शीघ्र अपनी बाहुरूपी लता के बन्धन से इस निर्जन में मुझे बांधो। हे कल्याणी! अपनी कनक के समान जंघाओं का आसन मुझे प्रदान करो। पात्र के समान अपना स्तनमण्डल घट मुझे प्रदर्शित करो।।५०-५१।।

तीक्ष्णास्त्रेण कटाक्षेण जर्जरं कुरु भामिनि। कामसर्पक्षतं पादस्पर्शनेनारुजं कुरु।।५२।।
अधरोष्ठामृतं स्वादु देहि मे क्षुधिताय च। पक्वदाडिमबीजाभं दन्तं दर्शय सुन्दरम्।।५३।।
गम्भीरनाभिं त्रिवलीं द्रष्टुमिच्छामि सुन्दरि। नीवीप्रमोक्षणं कर्तुमिच्छा मे वर्तते सदा।।५४।।

हे भामिनी! अपने कटाक्षरूपी तीक्ष्ण अस्त्र से मुझे (मेरे मन को) जर्जर कर दो। हे प्रिये! कामरूप सर्प ने मुझे डस लिया है। अपने चरणों के स्पर्श से उस डसे स्थान को तुम रोग रहित कर दो। मुझ भूखे को अपने स्वादु अधरोष्ठामृत का पान कराओ। पके अनार बीज की आभा वाले अपने सुन्दर दांतों का मुझे दर्शन कराओ। हे सुन्दरी! मैं तुम्हारी गहरी नाभि का दर्शन करना चाहता हूं जो त्रिवली युक्त है। मेरे मन में सदा तुम्हारा नीवी बन्धन खोलने की इच्छा हो रही है।।५२-५४।।

श्रोणीं पश्यामि ललितं मुनिमानसमोहिनीम्।
शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनाम्।।५५।।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं प्रसन्नं च प्रदर्शय। सा च तद्वचनं श्रुत्वा तमुवाच स्मरातुरा।
दृष्ट्वाऽऽर्तं कामबाणेन मानसंक्षयकामिनी।।५६।।

तब मैं तुम्हारी श्रोणी का दर्शन की इच्छा को रोक नहीं पा रहा हूं। शरत्कालीन मध्याह्नकाल में खिले कमल की कान्ति का भी हरण करने वाले तुम्हारे नेत्रद्वय को मैं सतत् देख रहा हूं। अब कृपया शरत्कालीन पूर्णचन्द्र के समान प्रभापूर्ण अपना प्रसन्न मुख दर्शन मुख पर पड़े वस्त्राच्छादन को हटाकर कराओ।" साहसिक का वचन सुनकर कामातुर कामिनी ने जो मान का नाश करने वाली थी, उस कामबाण पीड़ित दैत्य से कहा—।।५५-५६।।

तिलोत्तमोवाच

पतिस्त्वत्सदृशो नाथ कामिनीनां मनीषितः। बलिपुत्रोऽसि धर्मिष्ठो रूपवान्गुणवान्युवा।।५७।।

---

१. क. यात्रायो०।

शृङ्गारनिपुणः कान्तः[1] कामशास्त्रविशारदः।
सदा मनोज्ञः स्त्रीणां त्वं सुवेषश्च स्वभावतः॥५८॥
सुवेशं सुन्दरं शान्तं कान्तं दान्तमरोगिणम्।
शृङ्गारज्ञं गुणज्ञं त्वां युवानं रसिकं शुचिम्॥५९॥
स्त्रीमनोज्ञं दयालुं च बलिष्ठं सन्तमीश्वरम्।
दातारमनुरक्तं च कान्तमिच्छति कामिनी॥६०॥
एते सर्वे गुणाः कान्त सन्ति कान्ते त्वयि ध्रुवम्।
त्वां न वाञ्छन्ति याः कान्तास्ता अविज्ञाश्च वञ्चिताः॥६१॥

तिलोत्तमा कहती है–हे नाथ! आप जैसे पति ही कामिनी नारी को वांछित होते हैं। आप राजा बलि के पुत्र, धार्मिक, सुरूप, गुणी, युवा, शृङ्गारशास्त्रज्ञ, शान्त एवं कामशास्त्र के ज्ञाता हैं। आपके समान सुन्दर वेशधारी रूपवान् पुरुष को स्त्रियां सदा मन से चाहती हैं। स्त्रियां सुवेशधारी, सुन्दर, शान्त, कमनीय, दान्त, निरोग, शृङ्गारज्ञाता, गुणी, युवा, पवित्र, स्त्रीगण के मन के अनुरूप, दयालु, बली, साधु, दाता, क्षमतावान्, अनुरक्त व्यक्ति को ही पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा करती हैं। यह निश्चित है। जो आप ऐसे पति की कामना नहीं करती वे नारियां अविज्ञ तथा वंचिता रह जाती हैं॥५७-६१॥

संतोषं ते करिष्यामि समागम्य विधोर्गृहात्।
वेषं कृत्वा तु चन्दार्थं यात्राऽद्य तस्य कामिनी॥६२॥
अन्याश्लेषणमात्रेण भविता धर्मलङ्घना। याश्च धर्मान्न रक्षन्ति तासां च जीवनं वृथा॥६३॥
चन्द्राश्लेषं च जानन्ति यास्ता मूढाः प्रकीर्तिताः।
ता एव मातृगर्भस्था न प्राज्ञाः पौरुषै रसैः॥६४॥

मैं चन्द्र गृह से वापस आते समय आपका मनोरथ पूर्ण करूंगी। मैंने यह वेष चन्द्रमा के ही लिये बनाया था। मैं आज उनकी समर्पित कामिनी हूं। यही हम अप्सराओं का धर्म है। जो नारी चन्द्रमा से आलिङ्गिता नहीं होती, वह मूढ कही जाती है। निश्चय ही ऐसी नारी पुरुषरस से वंचिता है तथा मातृगर्भ में ही अभी भी स्थित है। आज चन्द्र के अतिरिक्त अन्य पुरुष का आलिङ्गन करने से मेरे द्वारा धर्मलंघन हो जायेगा। जो स्त्री धर्मरक्षा नहीं करती, उसका जीवित रहना व्यर्थ है।।६२-६४।।

स्वर्वैद्यौ मदनश्चन्द्रो मरुत्वान्नलकूबरः। एभिर्नाऽऽलिङ्गिता यास्ता वञ्चिता रतिकर्मभिः॥६५॥
दिवानिशं मानसं मे तेषां क्रीडां च चिन्तयेत्।
विशेषतः कामदेवो निपुणो रतिकर्मणि॥६६॥

१. क. शान्तः।

चन्द्रश्रृङ्गारमाश्लेषमालापममृताधिकम्। अद्य तस्य रतिदिनं तेन तच्चिन्तयेन्मनः।
तिलोत्तमावचः श्रुत्वा जहास बलिनन्दनः। सकामश्च सपुलकस्तामुवाच रहःस्थले॥६७॥

देववैद्य अश्विनीकुमार, कामदेव, चन्द्रमा, वायु, नलकूबर का जिस कामिनी ने आलिङ्गन नहीं किया, वे तो रतिकर्म से सदा वंचित ही रह गईं। मेरा चित्त रात-दिन उनके साथ की गई रतिक्रीड़ा का स्मरण करता रहता है। इन सबमें से कामदेव ही रतिकार्य में सर्वाधिक प्रवीण हैं, तथापि चन्द्रदेव का आलिङ्गन एवं उनकी श्रृङ्गार क्रीड़ा अमृत से भी मनोहारी है। आज मेरा उनके साथ रति का दिवस है। तभी मेरा मन सतत् चन्द्र के प्रति आसक्त बना है।" तिलोत्तमा का कथन सुनकर बलिपुत्र साहसिक हंस पड़ा। वह कामभाव युक्त तथा पुलकित होकर उस एकान्त में तिलोत्तमा से कहने लगा।।६५-६७।।

साहसिक उवाच

ब्रह्मणा निर्मिता त्वं च कौतुकेन तिलोत्तमे।
[१]अतो वरा चाप्सरसां विदग्धरसिकेश्वरी॥६८॥
सुन्दोपसुन्दयोर्नाशनिमित्तेन प्रयत्नतः। सर्वरूपगुणाधारा विधिना च कृता पुरा॥६९॥
सर्वं जानासि सर्वज्ञे विज्ञे सुरतकर्मणि। हर्षेण श्रोतुमिच्छामि वद वो मानसं वचः॥७०॥
अतिप्रियश्च को वा च कः स्वभावो वरानने।
अकथ्यं गोपनीयं च श्रोतुमिच्छामि सुन्दरि॥७१॥
गन्धर्वाणां सुराणां च राज्ञां पुण्यवतामपि।
सर्वेषां प्राणतुल्या त्वमेषु ते कः परः प्रियः॥७२॥

साहसिक कहता है—हे तिलोत्तमा! ब्रह्मा ने कौतुक पूर्वक तुमको बनाया है, तभी तुम श्रेष्ठतम अप्सरा तथा अत्यन्त चतुरतापूर्ण रसिकेश्वरी हो गई हो। पूर्वकाल में सुन्द-उपसुन्द नामक दैत्यों का नाश करने हेतु समस्तरूप-गुणयुक्त तुम्हारा निर्माण ब्रह्मा ने किया था। हे सर्वज्ञे! तुम सुरतकर्म से पूर्णतः अवगत हो। अब तुम अपने प्रिय लोगों का वर्णन करो! मुझे यह सब सुनने की कामना हो रही है। हे वरानने! तुम को अतिशय प्रिय कौन है? रुचि भी बतलाओ! हे सुन्दरी! मैं यह सब अकथ्य तथा अतिगुप्त बात सुनना चाहता हूं। हे सुन्दरी! तुम तो समस्त गन्धर्व, देवगण तथा पुण्यात्मा राजाओं के लिये प्राणतुल्य हो, तथापि इनमें से तुम्हारा परमप्रिय कौन है?।।६८-७२।।

असुरस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य सा तिलोत्तमा।
मुखमाच्छादनं चक्रे विलोक्य वक्रचक्षुषा॥७३॥
सत्यं सारमन्तरस्थमव्यक्तमतिगोपनम्। उवाच मानसं वाक्यमज्ञातं विदुषामपि॥७४॥

उस असुर का वचन सुनकर तिलोत्तमा हंसने लगी। उसने वक्रदृष्टि से देखकर वस्त्र से पुनः

---

१. क. त्वत्तो महा नाप्सरसो वि०।

अपना मुख ढांक लिया। तदनन्तर वह अपने मन की सत्य, साररूप, अन्तस्थ, अव्यक्त (जो गुप्त थी) तथा गोपनीय बातें कहने लगी–जिसे विद्वान् लोग भी नहीं जानते।।७३-७४।।

तिलोत्तमोवाच

कथनीयं साहसिक पुंश्चलीनां मनोवचः। स्त्रीजातीनां च सर्वासामुपहासकरं परम्।।७५।।
सर्वेषामपि दुर्ज्ञेयं चरितं योषितामपि। विशेषतोऽपि दुर्ज्ञेयं पुंश्चलीनां मनोवचः।।७६।।

वेदवेदाङ्गशास्त्रान्तं सर्वं जानाति पण्डितः।
कान्त नान्तं विजानाति दिशामाकाशयोषितम्।।७७।।
विषादप्यप्रियो वृद्धो रत्नदोऽपि च योषिताम्।
युवा सर्वस्वहर्ता चेत्प्राणेभ्योऽपि परः प्रियः।।७८।।

तिलोत्तमा कहती है–हे साहसिक! पुंश्चली स्त्री के मन का वर्णन करती हूं। श्रवण करिये। हे कान्त! पण्डित लोग वेद-वेदान्त शास्त्र के अन्त को भले ही जान लें, परन्तु वे भी दिक्, आकाश तथा नारीगण का अन्त पा नहीं सकते। स्त्रीगण को एक वृद्ध भले ही कितना रत्न प्रदान कर दे, तथापि उनको वृद्ध व्यक्ति विष से भी अधिक अप्रिय लगता है। यदि युवा उनका सर्वस्व हरण भी कर ले, तथापि वह उनको प्राणों से भी अधिक प्रिय प्रतीत होता है।।७५-७८।।

युवानं सुन्दरं दृष्ट्वा ह्यार्था भवति पुंश्चली। विशेषतः सुवेषं च दृष्ट्वैव हतचेतना।।७९।।

निमेषरहिता तस्य लोचनाभ्यां पिबेन्मुखम्।
योनौ जलं क्षरेत्तस्या सद्यः कण्डूयनं भवेत्।।८०।।

मनोऽतिलोलमस्थैर्यं सर्वाङ्गानि चकम्पिरे। जडीभूतं शरीरं च प्रदग्धं मदनानलात्।।८१।।

पुंश्चली नारी युवा सुन्दर पुरुष को देखकर उन्मत्त हो जाती है। यदि वही उत्तम वेष वाला हो, तब तो उसके दर्शन मात्र से नारी चेतना खो देती है। पुंश्चली स्त्री उसे एकटक देखती रहती है। उसकी योनि आर्द्र तथा खुजलीयुक्त हो जाती है। उसका मन अस्थिर हो जाता है तथा उसका सर्वाङ्ग कम्पित हो उठता है। शरीर जड़वत् होकर कामाग्नि से दग्ध होने लगता है।।७९-८१।।

सम्प्राप्य तं चेद्रहसि[१] साऽऽलापं कुरुते स्फुटम्।
सकटाक्षं स्मेरवक्त्रं दर्शयित्वा पुनः पुनः।।८२।।
तथा यदि वशं कर्तुं न शशाक जितेन्द्रियम्।
स्वमङ्गं दर्शयित्वा तमन्तर्वाक्यं स्फुटं वदेत्।।८३।।

यदि वह नारी ऐसे पुरुष को एकान्त में पा लेती है, तब वह उसकी ओर कटाक्षपात करती, बारम्बार मुस्कान के साथ अपना मुख प्रदर्शन कराती उससे उन्मुक्त होकर वार्त्ता भी करने लगती है।

१. क. संला०।

यदि वह युवा इन्द्रियजित् हो तथा उस स्त्री के वश में नहीं आ सका, तब अपने अंगों का प्रदर्शन करती अपने मन की (रतिकामना) कामना उससे प्रकट रूप से कह देती है।।८२-८३।।

दुःसाध्ये नायके दुःखं भवेदाजन्मजन्मनि। तत्तुल्यं तत्परं प्राप्य तं विस्मरति पुंश्चली॥८४॥

पुंश्चलीनामप्रियः कः कः प्रियो वा महीतले।
योऽतिशृङ्गारनिपुणः स च प्राणाधिकः प्रियः॥८५॥

जो नायक पुंश्चली के वश में किसी भी प्रकार से नहीं हो पाता, ऐसे नायक के सम्बन्ध में उसे जन्म-जन्मान्तरीण दुःख का अनुभव होने लगता है। तभी किसी अन्य नायक को पा लेने पर उस पुंश्चली को इस जितेन्द्रिय नायक का प्रसंग विस्मृत हो जाता है। यह कोई नहीं कह सकता कि पुंश्चली नारी का प्रिय कौन है तथा अप्रिय कौन है?। जो कोई व्यक्ति शृङ्गार क्रीड़ा (रतिक्रीड़ा) में निपुण होता है, केवल वही उस समय उस नारी का प्राणाधिक प्रिय हो जाता है।।८४-८५।।

पूर्वजारं पतिं पुत्रं भ्रातरं पितरं प्रसूम्। विशिष्टं नूतनं प्राप्य सर्वं त्यजति लीलया॥८६॥

न दानेन न मानेन सत्येन स्तवनेन वा।
नोपकारेण प्रीत्या वा सा साध्या सुरतिं विना॥८७॥

जब पुंश्चली रमणी को गुणी जार (नायक) मिल जाता है, तब वह पहले वाले उपपति, पति, पुत्र-भाई, पिता-माता प्रभृति का अनायास त्याग कर देती है। कुलटा नारी केवल उत्तम रतिक्रीड़ा (सुरति) से ही वशीभूत होती है। वह अनेक वस्तु प्रदान, मान, सत्य, स्तुति, उपकार तथा प्रेमादि द्वारा भी वशीभूत नहीं होती।।८६-८७।।

शयने भोजने चापि स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम्।
नित्यं सत्पुरुषाश्लेषं स्मरन्ति कुलटाः स्त्रियाः॥८८॥
शृङ्गारनिपुणानां च ध्यानसाध्या[1] चिरं परम्।
दारुणा पुंश्चलीजातिः प्रार्थयन्ती नवं नवम्॥८९॥

जो पुंश्चली (कुलटा) नारी हैं, वे नित्य रात-दिन शयन, भोजन, स्वप्न, जागरणादि स्थितियों में केवल उत्तम पुरुष के आलिंगन को ही याद रखती हैं। जो शृङ्गार निपुण पुरुष हैं, ये दारुण पुंश्चली स्त्रियां ध्यानमात्र से दीर्घकाल तक उनके वशीभूत हो जाती हैं। ये नित्य-नवीन पुरुषों की ही कामना करती हैं।।८८-८९।।

सर्वासां कुलटानां च चरितं कथितं मया। अकथ्यं गोपनीयं च मम हृद्वचनं शृणु॥९०॥
मम सन्ति प्रियतरा गन्धर्वेषु सुरेषु च। युवानो रतिशूराश्च कामशास्त्रविशारदाः॥९१॥
विशेषतः शशधरे स्नेहो मे विद्यते परः। ततोऽतिरिक्तः सर्वस्मादपि कामः प्रियो मम॥९२॥

---

१. क. मान०।

प्रियो मे कामसदृशो न भूतो न भविष्यति।
स्मरस्य स्मरणात्तूर्णं सुस्निग्धं मानसं मम॥९३॥

मेरे द्वारा यह सभी कुलटाओं का चरित कह दिया गया। अब जो कहने योग्य नहीं है तथा अत्यन्त गोपनीय तथ्य है, वह मेरा हृदयगत कथन सुनो। गन्धर्वों तथा देवगण में केवल कामशास्त्र प्रवीण तथा रतिक्रीड़ा शक्तियुक्त शूर ही मुझे प्रिय हैं, तथापि चन्द्रमा के प्रति मेरा विशेष स्नेह है। उनके अतिरिक्त कामदेव मुझे अतिशय प्रिय हैं। मेरा कामदेव के समान न तो कोई प्रिय है न होगा! किम्बहुना! कामदेव के स्मरण मात्र से मेरा चित्त अत्यन्त सुस्निग्ध हो जाता है।।९०-९३।।

इत्येवं कथितं सर्वमात्मनो योषितामपि।
आज्ञां कुरु महाराज यास्यामि चन्द्रसन्निधिम्॥९४॥
चन्द्रस्थानात्तव स्थानं समागत्य सुनिश्चितम्।
संतोषं तव दैत्येन्द्र करिष्यामि न संशयः॥९५॥

हे महाराज! एवंविध मैंने अपना तथा सभी नारीगण का वृत्तान्त कह दिया। अब आप आज्ञा दीजिये। मैं चन्द्रमा के यहां जाना चाहती हूं। मैं चन्द्रमा के यहां विहार करके तब आपके यहां आगमन करूंगी। हे दैत्येन्द्र! तब मैं आपको सन्तोष प्रदान करूंगी। इसमें संशय नहीं है।।९४-९५।।

श्रुत्वैवं बलिपुत्रश्च जहासोच्चैः पुनः पुनः।
सा वक्रचक्षुषाऽऽलोक्य तं जहास स्मरातुरा॥९६॥
छलेन दर्शयामास कठिनं स्तनयोर्युगम्। चारुचम्पकवर्णाभं वर्तुलं पीनमुच्छ्रितम्॥९७॥
श्रोणी सुकठिनां रम्यां रम्भास्तम्भविनिन्दिनीम्।
सकटाक्षं स्मेरमुखं कपोलं पुलकाञ्चितम्॥९८॥
रहःस्थानं समासाद्य कामेन हतचेतना। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी लोचनाभ्यां पपौ मुखम्॥९९॥
तस्य रूपं च वेषं च दर्शं दर्शं पुनः पुनः।
मुखस्याऽऽच्छादनं भावात्कुर्वती सूक्ष्मवाससा॥१००॥
अतिकामातुरां दृष्ट्वा सुप्राज्ञो बलिनन्दनः।
पप्रच्छ कामिनां कामी भावं विज्ञातुमुत्सुकः॥१०१॥

बलिनन्दन वह दैत्य तिलोत्तमा का यह कथन सुनकर उच्चस्वर में हंसने लगा। उधर कामातुरा तिलोत्तमा भी बारम्बार उस पर कटाक्षपात करते हुये मुस्कुराने लगी। तभी इस अप्सरा ने छल के साथ अपना चम्पकपुष्प के समान वर्ण एवं आभा सम्पन्न कठोर गोलाकार स्थूल स्तनद्वय और कदली स्तम्भ को भी लज्जित करने वाले अपनी जङ्घाओं का, कटाक्षयुक्त अपने मुखकमल का तथा पुलकित कपोल का दर्शन कराया। उस निर्जन प्रदेश में कामबाण से हतज्ञान एवं पुलकित अंगों वाली तिलोत्तमा अपने

नेत्रों से निरन्तर बलिपुत्र की ओर देखने लगीं। वह इस प्रकार से दैत्यराज के रूप तथा वेष को पुनः देखने लगी। उसने अपने सूक्ष्मवस्त्र से अपना मुख तक आवरित कर लिया। महाबुद्धिमान् बलिपुत्र ने जब तिलोत्तमा को अत्यन्त कामातुरा देखा, तब उस कामिनी के भाव को जानने के लिये उत्सुक होकर उस तिलोत्तमा से पूछा।।९६-१०१।।

साहसिक उवाच

किं करिष्यसि मां सत्यं वद पङ्कजलोचने।
कार्यान्तरं करिष्यामि सुचिरं स्थातुमक्षमः।।१०२।।
कामिनीषु बलात्कारो न धर्मो धर्मिणां प्रिये।
विशेषतोऽतिविदुषां नास्माकं स्वकुलोचितः।।१०३।।
शृङ्गारं देहि वा गच्छ रतिं कर्तुं सुरान्तिके।
कः क्षमो वा वशीकर्तुं पुंश्चलीं बहुगामिनीम्।।१०४।।

दैत्यराज साहसिक कहता है–हे कमलनयनी! सत्य कहो। अब क्या करोगी। मैं दीर्घकाल तक यहां नहीं रुक सकता। हे प्रिये! कामिनियों से बलात्कार करना धार्मिक का कर्त्तव्य नहीं है। विशेष ज्ञानी के लिये यह तो अत्यन्त अकर्त्तव्य है। यह मेरे कुलधर्म के विपरीत बात है। तुम मुझ रतिक्रीड़ा पारङ्गत के पास आकर मुझे शृङ्गार सुख प्रदान करो। अथवा ऐसा कौन पुरुष है, जो अनेक पुरुषों से समागम करने वाली पुंश्चली को वशीभूत कर सके?।।१०२-१०४।।

दानवस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।
आत्मानमधमंमन्या भिद्यमाना स्मरास्त्रतः।।१०५।।

दानवराज का कथन सुनकर तिलोत्तमा के कण्ठ, ओंठ तथा तालु शुष्क हो गये। अन्ततः काम के वशीभूत होने के कारण उसने मान त्याग दिया। उसने मन ही मन अपनी निन्दा करते हुये कहा–।।१०५।।

तिलोत्तमोवाच

कथमेवं ब्रूहि (षि) त्वं मे कान्तः प्राणाधिकः प्रियः।
कथं वा कोपयुक्तोऽसि कुरु कार्यं मनीषितम्।।१०६।।
त्वामेव विमुखं कृत्वा यामि चन्द्रान्तिकं यदि।
तवाभिशशापात्तत्रैव सद्यो विघ्नो भविष्यति।।१०७।।

तिलोत्तमा कहती हैं–हे कान्त! आप ऐसी बातें क्यों कह रहे हैं? आप तो मुझे प्राणाधिक प्रिय हैं। आप क्रोधित क्यों हो रहे हैं? आपकी जो इच्छा हो, वैसा करिये। यदि मैं आपको असन्तुष्ट छोड़कर चन्द्रमा के यहां जाती हूं, तब आपके अभिशाप के कारण तत्काल वहीं पर पहुंचते ही विघ्न हो जायेगा!।।१०६-१०७।।

विहारं कुरु भद्रं ते करिष्यति हरिः स्वयम्।
पदे पदे शुभं तस्य यः स्त्रीमानं च रक्षति॥१०८॥
अवमन्य स्त्रियं मूढो यो याति पुरुषाधमः। पद; पदे तदशुभं करोति पार्वती सती॥१०९॥

हे नाथ! आप मेरे साथ यथेच्छ विहार करिये। स्वयं हरि आपका मङ्गल करेंगे। जो व्यक्ति स्त्री के मान की रक्षा करते हैं, हरि की कृपा से पग-पग पर उसका शुभ होता है। जो पुरुषाधम मूढ़जन स्त्री की अवमानना करके चला जाता है, सती पार्वती उसका पग-पग पर अशुभ करती हैं।।१०८-१०९।।

तिलोत्तमावचः श्रुत्वा जहास बलिनन्दनः। कामशास्त्रेषु निष्णातस्तद्भावं बुबुधे सुधीः॥११०॥
भावं विज्ञाय भावज्ञः कामशास्त्रविशारदः।
करे धृत्वा समाश्लिष्य चुचुम्ब मुखपङ्कजम्॥१११॥
जगाम च तया सार्धं गन्धमादनगह्वरम्।
ददर्श तत्र गत्वा च स्थानं जन्तुविवर्जितम्॥११२॥
संस्थाप्य रत्नदीपांश्च धूपं च सुमनोहरम्।
शय्यां रतिकरीं कृत्वा सुष्वाप च तया सह॥११३॥

तिलोत्तमा का कथन सुनकर बलिपुत्र हंस पड़ा। वह कामशास्त्र में निष्णात था। उसने अप्सरा का मनोभाव जान लिया। भावज्ञाता तथा कामशास्त्रविशारद दैत्य तिलोत्तमा का हाथ पकड़ कर उसका गाढ़ आलिङ्गन तथा मुखचुम्बन करने लगा। वह दैत्य तिलोत्तमा को लेकर गन्धमादन की गुफा में गया, जो जन्तु रहित थी। दैत्यराज ने वहां रत्नदीप, अत्यन्त मनोहर धूप तथा रतिक्रीड़ार्थ उत्तम शैय्या स्थापित किया। वहां दैत्यराज उस अप्सरा के साथ शयन करने लगा।।११०-११३।।

नानाप्रकारशृङ्गारं चकार काममोहितः। तिलोत्तमा तं बुबुधे सुरादपि विचक्षणम्॥११४॥
विपरीतरतौ तुष्टा बभूव रसिकेश्वरी। दिवानिशं न बुबुक्षे नवसङ्गममूर्च्छिता॥११५॥
तिलोत्तमा कामभावाद्बलिपुत्रमुवाच ह।
कृत्वा वक्षसि प्राणेशं स्तनयोरन्तरे मुदा॥११६॥

उस काममोहित दैत्य ने तिलोत्तमा का अनेक प्रकार से शृङ्गार किया। तिलोत्तमा ने उसे देवगण से भी अधिक रतिकार्य में प्रवीण अनुभव किया। रसिकेश्वरी तिलोत्तमा उस दैत्य के साथ विपरीत रति द्वारा सन्तुष्ट हो गई। इस नवसंगम में वे दोनों ऐसे विभोर थे कि उनको दिवा-रात्रि का भान तक नहीं था। तभी तिलोत्तमा ने कामवेग के वश में होकर अपने प्राणेश्वर का शिर अपने वक्ष पर स्तनों के बीच करने के अनन्तर उससे मुदित मन से कहा–।।११४-११६।।

तिलोत्तमोवाच

कदा द्रक्ष्याम्यहं कान्त मुखचन्द्रं मनोहरम्। एवंभूतं शुभदिनं कदा मे भविता पुनः॥११७॥

अयि किं रूपमाश्चर्यं गुणो वा तव दानव।
ध्रुवं शृङ्गारनिपुणस्त्वत्परो नास्ति कश्चन॥११८॥
मां विस्मरसि कालेन पुरुषः षट्पदो यथा।
स्त्रीणां सत्पुरुषाश्लेष आजीवं मनसि स्थितः॥११९॥
सत्सङ्गमः शुभदिने पुण्यात्पुण्यवतां भवेत्। सद्विच्छेदो दुःखहेतुर्मरणादतिरिच्यते॥१२०॥

तिलोत्तमा कहती हैं—हे कान्त! अब मैं कब आपके मनोहर मुखचन्द्र का दर्शन कर सकूंगी? कब मेरे जीवन में पुनः यह शुभ घड़ी आयेगी? हे दानवेश्वर! आपका रूप तथा गुण आश्चर्यमय हैं। यह निश्चित है कि शृङ्गार क्रीड़ा में आपके समान निपुण कोई भी नहीं है। हे नाथ! भ्रमर की तरह आप मुझे विस्मृत कर देंगे (जैसे भ्रमर एक पुष्प का रसपान करके उसे भूलकर अन्य पुष्प पर चला जाता है) तथापि स्त्रियों के चित्त में सत्पुरुष का आलिङ्गन यावज्जीवन देदीप्यमान रहता है। पुण्यबल से ही पुण्यवान् व्यक्ति को शुभ दिन में सत्सङ्गम प्राप्त हो पाता है। सत्पुरुष का वियोग दुःख का कारण है, वह तो मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी हैं।।११७-१२०।।

पीयूषभोजनात्स्वर्गवासादपि च दुर्लभः।
तत्सङ्गमः सुखमयोऽप्यसत्सङ्गो विषाधिकः॥१२१॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरालिङ्गनं कुरु।
त्वया सार्धं मम प्राणा यास्यन्ति चेतसा सह॥१२२॥

सुखमय सत्पुरुष संगम तो अमृतपान एवं स्वर्ग में निवास की अपेक्षा सुदुर्लभ है। असत्सङ्ग विष से भी भयानक होता है। हे राजन्! आप क्षणकाल यहीं रुककर पुनः मेरा आलिङ्गन करें। आपके साथ ही मेरा प्राण तथा चित्त चला जायेगा।।१२१-१२२।।

इत्येवमुक्त्वा कुलटा कृत्वा वक्षसि सादरम्।
पुमङ्गसङ्गोत्पुलका मूर्च्छामाप सुखेन च॥१२३॥
कुलटालिङ्गनालापात्सोऽतिकामी बभूव ह।
यथा दीप्तः कृष्णवर्त्मा वर्धते हविषाऽधिकम्॥१२४॥
पुनश्चकार शृङ्गारमसुरोऽष्टविधं मुने। चुम्बनं च नवविधं यथास्थाने यथोचितम्॥१२५॥
नखदन्तकरैः क्रीडां चकार विविधां पुनः।
किङ्किणीनां कङ्कणानां बभूव शब्द उल्बणः॥१२६॥

यह कहकर उस कुलटा ने पुनः दैत्य को हृदय से लगा लिया। पुरुष सङ्ग से पुलकित तिलोत्तमा सुख से विभोर हो गई। प्रदीप्त अग्नि जिस प्रकार हवि छोड़ने से और भी बढ़ जाती है, उसी प्रकार वह दैत्यराज कुलटा के आलिङ्गन तथा उसकी बातों के कारण अत्यन्त कामातुर हो उठा। हे

मुनिवर! अब दैत्यराज ने पुनः आठ प्रकार की शृङ्गार क्रीड़ा तथा यथास्थान यथोचित ९ प्रकार के चुम्बनादि के साथ सम्भोग क्रीड़ा किया। वह तदनन्तर पुनः नख-दन्त तथा हाथों से भी नाना काम-क्रीड़ा करने लगा। इससे किङ्किणियों तथा कङ्कणों का शब्द वहां गुञ्जरित हो उठा।।१२३-१२६।।

मुनेर्दुर्वाससस्तेन ध्यानभङ्गो बभूव ह। अदृष्टस्य तयोस्तत्र वल्मीकाच्छादितस्य च।।१२७।।
योगासनं कुर्वतश्च गन्धमादनगह्वरे। ध्यायतश्चरणाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः।।१२८।।
न पपात तयोर्दृष्टिः समीपस्थे महामुनौ। कामात्मनोर्न हि ज्ञानं कामेन हतचेतसोः।।१२९।।
सहसा चेतना प्राप्य प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। ददर्श पुरतस्तौ तु मुनिरुन्मील्य लोचने।।१३०।।

दिवानिशं च जानन्तौ संयुक्तौ काममोहितौ।
दृष्ट्वा चुकोप तेजस्वी रुद्रांशो भगवान्विभुः।।१३१।।

उवाच तौ विहारान्ते रक्तपङ्कजलोचनः। ध्यानप्राप्तपदाम्भोजविच्छेदोद्विग्निमानसः।।१३२।।

वहीं निकट स्थल पर महर्षि दुर्वासा दीर्घकाल से ध्यानमग्न थे। दीर्घकालीन तपःश्चरण के कारण मुनि का शरीर दीमक की बांबी से छिप-सा गया था। अतः वे इन दैत्य तथा अप्सरा को दृष्टिगोचर नहीं हो सके! इस किंकिणी आदि के गुञ्जार से जो तीव्र शब्द हुआ उससे उसी पर्वत गुहा में विराजमान परमेश्वर कृष्ण के चरण-कमल के ध्यान में निमग्न महर्षि का ध्यान भङ्ग हो गया। दैत्यराज तथा अप्सरा ये दोनों काम-क्रीड़ा में नष्ट चित्त हो गये। उस स्थिति में कामीगण को ज्ञान नहीं रह जाता। उन्हें काममोहित संयुक्तावस्था में दिन-रात का भी भान नहीं था। उनको देखकर रुद्रांशोत्पन्न तेजवान् भगवान् दुर्वासा अत्यन्त क्रोधित हो गये। ध्यान भङ्ग हो जाने पर श्रीकृष्ण के चरणकमल से वियुक्त होने के कारण महामुनि का चित्त उद्विग्न हो उठा। इन दोनों कामीगण का विहार समाप्त हो जाने पर रक्तकमल वर्ण के नेत्र वाले महर्षि उन दोनों से कहने लगे-।।१२७-१३२।।

दुर्वासा उवाच

उत्तिष्ठ गर्दभाकार निर्लज्ज पुरुषाधम। भक्तप्रधानस्य बलेः पुत्रः पशुसमप्रभः।।१३३।।

देवो वा मानवो वाऽपि दैत्यगन्धर्वराक्षसाः।
लज्जां कुर्वन्ति सततं स्वजातौ च पशून्विना।।१३४।।
ज्ञानलज्जाविहीना च खरजातिर्विशेषतः।
तस्मात्त्वं दानवश्रेष्ठ खरयोनिं व्रजाधुना।।१३५।।
तिलोत्तमे त्वमुत्तिष्ठ लज्जाहीना च पुंश्चली।
एतादृशी स्पृहा दैत्ये व्रज योनिं च दानवीम्।।१३६।।

महर्षि दुर्वासा कहते हैं-"हे गर्दभाकार निर्लज्ज पुरुषाधम! उठो! तुम भक्तप्रवर बलिराज के पुत्र होकर भी पशुवत् हो! देवता, मानव, दैत्य, गन्धर्व तथा राक्षसगण सभी अपनी-अपनी जाति के

प्रति लज्जा रखते हैं। केवल पशुजाति में लज्जा नहीं रह जाती। विशेषतया गर्दभ जाति ही ज्ञान तथा लज्जा से रहित होती है। हे दानवश्रेष्ठ! अतः तुम गर्दभयोनि प्राप्त करो। हे तिलोत्तमा! तुम उठो। तुम लज्जा रहित कुलटा हो। तुम दैत्य के प्रति प्रेम रख रही हो। अतः तुम दानवीयोनि प्राप्त करो।"।।१३३-१३६।।

इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तस्थौ तत्र रुषा ज्वलन्।
तौ च तुष्टुवतुर्भीतावुत्थाय व्रीडितौ मुनिम्।।१३७।।

यह कहकर क्रोध से प्रज्वलित मुनि दुर्वासा मौन हो गये। तब दैत्यराज एवं तिलोत्तमा लज्जित होकर मुनिप्रवर की स्तुति करने लगे।।१३७।।

साहसिक उवाच

त्वं ब्रह्मा त्वं च विष्णुश्च त्वं च साक्षान्महेश्वरः।
हुताशनस्त्वं सूर्यश्च सृष्टिस्थित्यन्तकारकः।।१३८।।
क्षमापराधं भगवन्कृपां कुरु कृपानिधे। मूढापराधं सततं यः क्षमेत्स सदीश्वरः।।१३९।।

साहसिक दैत्य कहता है—आप ही ब्रह्मा, विष्णु, साक्षात् महेश्वर हैं। आप ही अग्नि तथा सृष्टि-स्थिति प्रलयकारी सूर्यदेव भी हैं। हे भगवान्! आप क्षमा करिये। हे कृपानिधि! आप अधम पर कृपा करिये। हे प्रभु! आप मुझ मूढ़ के अपराध को क्षमा करें। जो मूढ़जन के अपराध को सदा क्षमा करता है, वही सत् ईश्वर है।।१३८-१३९।।

इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रो रुरोदोच्चैः पुरो मुनेः।
कृत्वा तृणानि दशने पपात चरणाम्बुजे।।१४०।।

हे मुनि! यह कहकर वह दैत्येन्द्र अत्यन्त रोते हुये दांतों में तृण दबाकर (अत्यन्त दीनता प्रदर्शन करते, उनके चरणों पर गिर पड़ा।।१४०।।

तिलोत्तमोवाच

हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु।
विधिसृष्टौ च सर्वेषां मूढा स्त्रीजातिरेव च।।१४१।।
ततोऽतिमत्ता कुलटा सदा कामातुरा परा।
लज्जा भीतिश्चेतना च न सन्ति कामुके विभो।।१४२।।

तिलोत्तमा कहती है—हे नाथ! करुणासिन्धु! दीनबन्धु! कृपा करिये! विधाता सबके कर्त्ता हैं। उनके द्वारा सृष्ट किये गये प्राणीगण में स्त्री जाति सबसे मूढ़ कही गई है। हे प्रभो! उसमें भी जो कुलटा स्त्री है, वह मत्त तथा अत्यन्त कामातुरा होती है। हे विभो! जो कामुक होते हैं, उनमें भय, चेतना तथा लज्जा नहीं होती।।१४१-१४२।।

इत्युक्त्वा रोदनं कृत्वा जगाम शरणं मुनेः।
विना विपत्तौ केषाञ्चिज्ज्ञानं भवति भूतले।
तयोर्दृष्ट्वा च वैकल्यं बभूव करुणा मुनेः॥१४३॥

यह कहकर रुदन करती तिलोत्तमा ने मुनि दुर्वासा की शरण ले लिया। बिना विपत्ति झेले भूतल पर किसे ज्ञान मिला है? उनकी यह विकलता देखकर मुनि करुणा से पूर्ण हो गये॥१४३॥

दुर्वासा उवाच

अतिशापः प्रसादो वा भवेद्दैवेन दानव। सत्कीर्तिरपकीर्तिर्वा प्राक्तनप्रभवा ध्रुवम्॥१४४॥
विष्णुभक्तबलेः पुत्रः सद्वंशप्रभवो जनः।
जनकाद्विष्णुभक्तोऽसि जानामि त्वां सुनिश्चितम्॥१४५॥
जनकस्य स्वभावो हि जन्ये तिष्ठति निश्चितम्।
यथा श्रीकृष्णपादाङ्कः कालीयवंशमस्तके॥१४६॥
सम्प्राप्य गार्दभीं योनिं वत्स निर्माणतां व्रज।
पूर्वं कृष्णार्चनफल न हि लुप्तं सतां चिरात्॥१४७॥
वृन्दारण्यं तालवनं व्रज शीघ्रं वज्रान्तिकम्।
प्राणांस्त्यक्त्वा हरेश्चक्रान्मुक्तिं प्राप्स्यसि निश्चितम्॥१४८॥

मुनि दुर्वासा कहते हैं–हे राजन्! दैववशात् ही प्राणियों को अभिशाप किंवा कृपा मिलती है। सत्कीर्त्ति अथवा अपकीर्त्ति भी पूर्वकर्म के फल से उत्पन्न होती है। हे वत्स! तुम विष्णुभक्त बलि के पुत्र तथा उत्तम वंश में जन्म हो। तुम अपने पिता की तुलना में अधिक विष्णुभक्त हो। यह मुझे निश्चित रूप से ज्ञात है। पिता का स्वभाव पुत्र में भी रहता है। श्रीकृष्ण पदचिह्न जिस प्रकार कालिय के मस्तक पर है, उसी प्रकार उस सर्प के वंशजों के मस्तक पर विद्यमान है। हे वत्स! तुम गर्दभयोनि पाकर निर्वाणमुक्ति लाभ करोगे। पूर्वकृत कृष्णार्चन अनन्त काल में भी व्यर्थ नहीं होता। तुम शीघ्र व्रज के पास स्थित तालवन में जाओ। वह वृन्दावन में है। तुम कालान्तर में कृष्णचक्र से निहत होकर निश्चित रूप से मुक्त हो जाओगे॥१४४–१४८॥

तिलोत्तमे भारते त्वं बाणपुत्री भविष्यसि।
श्रीकृष्णपौत्राश्लेषेण पुनः पूता भविष्यसि॥१४९॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम महामुने। तौ जग्मतुर्यथास्थानं प्रणम्य मुनिपुङ्गवम्॥१५०॥

"हे तिलोत्तमा! तुम भारत में बाणासुर की पुत्री ऊषा के रूप में जन्म लोगी। तुम श्रीकृष्ण प्रभु के पौत्र अनिरुद्ध से विवाहित होकर पवित्र हो जाओगी।" महामुनि यह कहकर मौन हो गये। दैत्य तथा तिलोत्तमा ने उन मुनिप्रवर को प्रणाम किया तथा जहां जाना था, वहां चले गये॥१४९–१५०॥

इत्युक्तं सर्ववृत्तान्तं दैत्यस्य खरजन्मनः।
तिलोत्तमा बाणपुत्री ह्युषाऽनिरुद्धकामिनी॥१५१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० तिलोत्तमाबलिपुत्रयोर्ब्रह्मशाप-
प्रस्तावो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

—❊❊❊—

हे मुनिवर! मैंने दैत्य की गर्दभयोनि का वृत्तान्त कह दिया। तिलोत्तमा ने बाणासुर की कन्या होकर अनिरुद्ध का पतिरूपेण वरण किया था॥१५१॥

॥२३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

चतुर्विंशोऽध्यायः

महर्षि दुर्वासा का विवाह तथा पत्नी वियोग

नारायण उवाच

निगूढं शृणु वृत्तान्तं मुनेर्दुर्वाससो मुने। अहोऽस्य दारसंयोगः कथं तदूर्ध्वरेतसः॥१॥
दृष्ट्वा तयोश्च शृङ्गारं मुनिः कामी बभूव ह।
जितेन्द्रियोऽसत्संसर्गाद्दोषः सांसर्गिको भवेत्॥२॥
सहसा तस्य हृदये बभूव सुरते स्पृहा। तपस्तप्त्वा तत्र दध्यौ कामिनी मदनातुरः॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! अब दुर्वासा मुनि का गूढ़ वृत्तान्त श्रवण करो। यह विस्मय की बात है कि वे मुनि ऊर्ध्वरेता होकर भी पत्नीयुक्त कैसे हो गये? वे मुनि दैत्य साहसिक तथा तिलोत्तमा की काम-क्रीड़ा देखकर कामासक्त हो गये। नियम है कि जितेन्द्रिय व्यक्ति को भी असत् संसर्ग के कारण सांसारिक दोष उत्पन्न हो जाता है। उनके हृदय में सहसा कामक्रीड़ामय सुरति की आकांक्षा जाग्रत हो गई। वहां पर उन मुनि ने अब तपःश्चरण त्याग दिया तथा कामिनी का चिन्तन कामातुर होकर करने लगे॥१-३॥

एतस्मिन्नन्तरे येन पथा याति मुनीश्वरः। प्रार्थयन्त्या पतिं सन्तमौर्वश्च सुतया सह॥४॥
ऊरूद्भवो ब्रह्मणश्च पुरा कल्पे तपस्यतः। ऊर्ध्वरेताश्च योगीन्द्र और्वस्तेन इति स्मृतः॥५॥
तस्य जानूद्भवा कन्या कन्दली नाम विश्रुता। दुर्वाससं प्रार्थयन्ती नान्यं मनसि रोचते॥६॥

इसी समय मुनिप्रवर और्व अपनी कन्या के साथ वहां से जा रहे थे। यह पतिवरण की

कामना कर रही थीं। महर्षि और्व तपस्यानिरत ब्रह्मा के उरु (जंघा) से उत्पन्न हो गये। तभी उनका नाम और्व कहा गया। ये महर्षि ऊर्ध्वरेता एवं योगीन्द्र थे, जिनके उरु से उत्पन्ना यह कन्या कन्दला नाम्नी जन्मी जो केवल दुर्वासा को पाने की आकांक्षा रखती थी। उसे अन्य किसी पुरुष में रुचि नहीं थी।।४-६।।

ससुतो हि मुनिश्रेष्ठो मुनेदुर्वाससः पुरः। तस्थौ महाप्रसन्नश्च ज्वलदग्निशिखोपमः।।७।।
मुनीन्द्रोऽपि मुनीन्द्रं तं पुरो दृष्ट्वा ससंभ्रमः। प्रजवेन समुत्तस्थौ ननाम च मुदाऽन्वितः।।८।।
और्वो दुर्वाससं तत्र समाश्लिष्य मुदाऽन्वितः। उवाच मुनये सर्वं कन्यकाया मनोरथम्।।९।।

तदनन्तर प्रज्वलित अग्निशिखा समप्रभ महामुनि और्व अत्यन्त प्रसन्नता के साथ दुर्वासा के पास अपनी कन्या सहित आये तथा उनको प्रसन्नता पूर्वक आया देखकर ऋषि दुर्वासा शीघ्रता से उठे तथा प्रसन्न अन्तःकरण से दुर्वासा ने महर्षि और्व को प्रणाम किया। तदनन्तर और्व ने भी दुर्वासा को प्रणाम करके उनका आलिङ्गन किया तथा उनसे अपनी कन्या की अभिलाषा के सम्बन्ध में बतला दिया।।७-९।।

और्व उवाच

विख्याता कन्दली नाम मम कन्या मनोहरा।
प्रौढा त्वामेव ध्यायन्ती श्रुत्वा वाचिकवक्त्रतः।।१०।।
अयोनिसम्भवा कन्या त्रैलोक्यं मोहितुं क्षमा। सर्वरूपगुणाधारा दोषेणैकेन संयुता।।११।।
अतीव कलहाविष्टा कोपेन कटुभाषिणी। नानागुणयुतं द्रव्यं न त्यजेदेकदोषतः।।१२।।

महर्षि और्व कहते हैं—हे महर्षि! यह मनोहरा सुन्दरी प्रौढ़ कन्या कन्दली नाम वाली है। इसने संदेशवाहक से आपके रूप तथा गुणों को जब से सुना है, यह आपके प्रति अनुरक्त हो गई हैं। यह अयोनिसंभवा कन्या है। सभी प्रकार के गुणों तथा रूप की आधार है। त्रैलोक्य को मोहित कर सकने में समर्थ है। सभी गुणमयी होने पर भी इसमें मात्र एक ही दोष है कि यह अत्यन्त कलह करने वाली होने के कारण, क्रोध के कारण कटु-भाषण करने वाली हैं। जो वस्तु अनेक गुणों वाली हो, उसका त्याग मात्र एक दोष के कारण नहीं करना चाहिये।।१०-१२।।

और्वस्य वचनं श्रुत्वा हर्षशोकान्वितो मुनिः। ददर्श कन्यां पुरतो गुणरूपसमन्विताम्।।१३।।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्। ईषद्धासप्रसन्नास्यां पीनश्रोणिपयोधराम्।।१४।।
नवयौवनसंयुक्तां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा। रत्नालङ्कारशोभाढ्यां वह्निशुद्धांशुकान्विताम्।।१५।।

मुनिप्रवर दुर्वासा को और्व मुनि का कथन सुनकर हर्ष तथा शोक, दोनों हो गया। उन्होंने रूप तथा गुणयुक्त उस कन्या को देखा जो उनके सामने खड़ी थी। उसका मुखमण्डल मन्द मुस्कान युक्त था। उसका आनन शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान था। शारदीय कमल के समान उसके दोनों नयन थे। उसके नितम्ब एवं स्तन अत्यन्त विस्तृत थे। उसने अग्नि के समान प्रभापूर्ण शुद्ध वस्त्रों को धारण

किया था। वह उत्तम अलंकार भूषिता, नवयौवनसम्पन्ना, उस समय दुर्वासा को तिरछी चितवन से देख रही थीं।।१३-१५।।

मुनिर्मुमोह तां दृष्ट्वा कामबाणप्रपीडितः। उवाच तं मुनिश्रेष्ठं हृदयेन विदूयता।।१६।।

ऋषि दुर्वासा ऐसी कमनीय कन्या को देखकर कामबाण से पीड़ित हो उठे। उन्होंने हार्दिक पीड़ा के साथ मुनिप्रवर और्व से कहा–।।१६।।

दुर्वासा उवाच

नारीरूपं त्रिभुवने मुक्तिमार्गनिरोधकम्। व्यवधानं तपस्यायाः सततं मोहकारणम्।।१७।।
कारागारे च संसारे दुर्वहं निगडं परम्। अच्छेद्यं ज्ञानखड्गैश्च महद्भिः शङ्करादिभिः।।१८।।
सङ्गिच्छायातिरिक्तं च कर्मभोगात्परात्परम्। इन्द्रियादिन्द्रियाधाराद्विद्यायाश्च मतेरपि।।१९।।

आदेहं सङ्गिनी छाया भोगान्तं भोग एव च।
देहेन्द्रियाणि जीवान्तं विद्या चैवावशीलिनम्।।२०।।
मतिश्चैवावशीलान्ता सुस्त्री जन्मनि जन्मनि।
यावज्जीवी च सुस्त्रीको न तावज्जन्मखण्डनम्।।२१।।

ऋषि दुर्वासा कहते हैं–हे ब्रह्मन्! त्रिभुवन में स्त्री रूप निरन्तर मुक्तिमार्ग का अवरोधक है। यह तपस्या का प्रतिबन्धक तथा मोह का कारण है। यह संसार रूप कारागार की बेड़ी के स्वरूप है। महात्मा शङ्कर आदि भी ज्ञानरूप खड्ग से इसका छेदन कर सकने में असमर्थ हैं। हे महात्मन्! नारी तो सदा साथ रहने वाली छाया से भी बढ़कर संगिनी हो जाती है। कर्मभोग, इन्द्रियाधार तथा बुद्धि से भी बन्धनकारिणी है। छाया की स्थिति तो देहावस्थान काल तक ही रहता है। भोग भी भोग समाप्त होने पर साथ छोड़ देते हैं। देह एवं इन्द्रियां भी देह रहने तक संगिनी रहती हैं। विद्या अपने अनुशीलन तक ही साथ रहती है। (अनुशीलन=अभ्यास, प्रयोग) यही मति की भी स्थिति है। परन्तु स्त्री तो जन्म-जन्मान्तर तक, तब तक पीछा नहीं छोड़ती, जब तक जन्म-मरण का चक्र समाप्त न हो जाये। उत्तम स्त्री युक्त पुरुष जन्ममरण चक्र को निवृत्त नहीं कर पाता।।१७-२१।।

यावच्च जीविकाजन्म तावदभोगः सुखावहः।
परं मुनीन्द्र सर्वस्माद्धरिपादाब्जसेवनम्।।२२।।
ध्यायतः कृष्णपादाब्जं मम विघ्नो बभूव ह। न जाने कर्मदोषेण केन वा पूर्वजन्मनः।।२३।।
पुंश्चल्या सह शृङ्गारं दृष्ट्वा दैत्यस्य मन्मनः।
बभूव कामसंयुक्तं दत्तं धात्रा च तत्फलम्।।२४।।
किं त्वहं तव कन्यायाः कटूक्तिशतकं मुने।
ध्रुवं क्षमां करिष्यामि दास्यामि च ततः फलम्।।२५।।

जब तक प्राणी जन्म-मरण चक्र में भ्रमित होता रहता है, उसी समय तक उसे भोग-वासना का आकर्षण तथा उसके प्रति प्रियभाव बना रहता है। हे मुनीन्द्र! सर्वाधिक श्रेष्ठ है श्रीहरि के चरणकमलों की सेवा। मुझे ज्ञात नहीं है कि पूर्वजन्म के किस कर्मदोष से मेरे कृष्णचरणारविन्द के ध्यानकाल में विघ्न घटित हो गया? कुलटा नारी के साथ दैत्यराज की रतिक्रीड़ा देखकर मेरा मन जैसे ही कामासक्त हो गया, तभी विधाता ने मुझे उसका फल भी प्रदान कर दिया! हे मुनिवर! जो भी हो, तथापि आपकी पुत्री की सौ कटूक्ति को क्षमा पूर्वक मैं सुन लूंगा। उसके पश्चात् यदि वह कोई कटूक्ति कहती है, तव मैं उसका फल अवश्य प्रदान करूंगा।।२२-२५।।

सर्वतोऽपि परा निन्दा स्त्रीकटूक्तिसहिष्णुता।
अतीव निन्दितः सत्सु स्त्रीजितो भुवनत्रये॥२६॥
तवाऽऽज्ञां मस्तके कृत्वा ग्रहीष्यामि सुतां तव।
उपेतां कामिनीं त्यक्त्वा कालसूत्रं व्रजेन्नरः॥२७॥

सभी लोग स्त्री की कटूक्ति सहन करने की निन्दा करते हैं। ऐसा स्त्रीजित् पुरुष त्रैलोक्य में निन्दनीय माना जाता है। मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके आपकी कन्या को निश्चित ग्रहण करूंगा। नियम है कि उपस्थित कामिनी का त्याग करने वाला कालसूत्र नरक भोग करता है।।२६-२७।।

रहस्युपस्थितां कामात्पुंश्चलीं चेज्जितेन्द्रियः। परित्यजेद्धर्मभयादधर्मान्नरकं व्रजेत्॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा दुर्वासा विरराम मुनेः पुरः। मुनिर्वेदोक्तविधिना ददौ तस्मै सुतां मुने॥२९॥

स्वस्तीत्युवाच दुर्वासा मुनिश्च कौतुकं ददौ।
कन्यासमर्पणं कृत्वा मोहाच्चैव रुरोद ह॥३०॥
मूर्च्छामवाप स मुनिः स्वकन्याविरहातुरः।
अपत्यभेदशोकौघः स्वात्मारामं न मुञ्चति॥३१॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य बोधयामास कन्यकाम्।
मूर्च्छितां तातविच्छेदाद्रुदन्तीं शोकसंयुताम्॥३२॥

हे मुनि नारद! दुर्वासा ने मुनि और्व से यह कहा तथा मौन हो गये। मुनिवर और्व ने वेदविधान के अनुसार अपनी कन्या दुर्वासा को प्रदान कर दिया। दुर्वासा ने 'स्वस्ति' कहकर उसे ग्रहण किया। और्वऋषि ने दुर्वासा को दहेज भी प्रदान किया तथा पुत्री के मोह के कारण रुदन करने लगे। मुनिवर और्व अपनी कन्या के विरह के कारण मूर्च्छित से हो गये। आश्चर्य की बात है! सन्तान विरह के शोक से आत्माराम लोग भी अछूते नहीं रहते! जब उनको चेतना लाभ हो गया, तब मुनि ने अपनी उस कन्या से जो पितृविरह के कारण शोकान्विता होकर रुदन कर रही थी, प्रबोधित करते हुये कहा-।।२८-३२।।

औौर्व उवाच

श्रृणु वत्से प्रवक्ष्यामि नीतिसारं सुदुर्लभम्। हितं सत्यं च वेदोक्तं परिणामसुखावहम्॥३३॥
स्वकान्तश्च परो बन्धुरिह लोके परत्र च।
न हि कान्तात्परः प्रेयान् कुलस्त्रीणां पुरो गुरुः॥३४॥
देवपूजा व्रतं दानं तपश्चानशनं जपः। स्नानं च सर्वतीर्थेषु दीक्षा सर्वमखेषु च॥३५॥
प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च ब्राह्मणातिथिसेवनम्।
सर्वाणि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥३६॥
किमेतैः पतिभक्तााया अभक्तायाश्च भारते।
यदा दुःखी सुखारम्भे साकाङ्क्षः प्रथमो भवेत्।
पतिसेवापरोः धर्मः सर्वशास्त्रेषु पठ्यते। स्वप्रज्ञानेन सततं कान्तं नारायणाधिकम्॥३७॥

ऋषि औौर्व कहते हैं–हे पुत्री! मैं तुमसे परिणाम में सुख देने वाला, वेदसम्मत सत्य, हितप्रद, दुर्लभ नीतिवाक्य कहता हूं। सुनो! हे वत्से! अपना स्वामी ही स्त्री के लिये इहकाल तथा परकाल का परम-बन्धु होता है। कुलस्त्री के लिये अपने पति से बढ़कर प्रिय तथा परम गुरु अन्य कोई भी नहीं है। देवपूजा, व्रत, दान, तप, अनशन, जप, सर्वतीर्थ स्नान, सर्वयज्ञ दीक्षा, पृथिवी प्रदक्षिणा, ब्राह्मण, अतिथिसेवा, ये सभी कार्य में पति सेवा की तुलना में १/१६वां भाग भी नहीं हैं। पतिभक्ता रमणी के लिये इन कार्यों का कोई प्रयोजन नहीं है। अभक्ता के लिये भी इनका भारत में प्रयोजन नहीं है; क्योंकि यदि अभक्ता नारी इन पुण्य कार्य को करती है, तब उसे कोई फल नहीं मिलेगा। उसके लिये ये सभी निष्प्रयोज्य हैं। वेद में कहा गया है कि स्त्रीगण के लिये पतिसेवा से बढ़कर उत्कृष्ट धर्म अन्य कुछ भी नहीं है। हे पुत्री! तुम स्वप्न-जागरणादि सभी अवस्था में पति को नारायण से भी श्रेष्ठ, पूज्य समझना।।३३-३७।।

दृष्ट्वा तच्चरणाम्भोजसेवां नित्यं करिष्यति। परिहासेन कोपेन भ्रमेणावज्ञया सुते॥३८॥
कटूक्तिं स्वामिनः साक्षात्परोक्षान्न करिष्यति।
स्त्रिया वाग्योनिदुष्टायाः कामतो भारते भुवि॥३९॥
प्रायश्चित्तं श्रुतौ नास्ति नरकं ब्रह्मणः शतम्।
सर्वधर्मपरीता या कटूक्तिं कुरुते पतिम्॥४०॥
शतजन्मकृतं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्।
दत्त्वा कन्यां बोधयित्वा जगाम मुनिपुङ्गवः॥४१॥

पति के चरणों का दर्शन करके सदा उनकी चरण सेवा करना। हे पुत्री! परिहास, कोप, किंवा भ्रम से किंवा अवहेलना (अवज्ञा) के समय भी स्वामी के समक्ष अथवा उनके पीठ पीछे उनके लिये

कटुवचन कदापि न बोलना। इस भारत भूमि में जो नारी जान-बूझकर पति से स्वेच्छा से कटुवचन बोलती है, अथवा दुराचार में प्रवृत्त होती है, उसके लिये वेद में भी कोई प्रायश्चित्त नहीं है। वह सौ ब्रह्माओं के स्थिति काल तक नरकभोग का क्लेश भोगती है। जो सर्वधर्मयुक्त नारी भी यदि पति से कटुवचन बोलती है, उसका शत जन्मों में अर्जित पुण्य नष्ट हो जाता है। महामुनि और्व ने इस प्रकार कन्या को प्रबोधित करके मुनिपुंगव दुर्वासा को वह कन्या प्रदान कर दिया।।३८-४१।।

स्वात्मारामः स्वाश्रमे च तस्थौ स्त्रीसहितो मुदा।
संभोगेच्छावृते चित्ते कामी सम्प्राप कामिनीम्।।४२।।
अहो सुकृतिनां कामो वाञ्छामात्रेण सिध्यति।
शय्यां रतिकरीं कृत्वा मुनिश्रेष्ठो महामुने।।४३।।
शुभे क्षणे गृहीत्वा तां सुष्वाप निर्जने प्रियाम्।
नारीरसानभिज्ञः स्यादाजन्म मुनिपुङ्गवः।।४४।।
तथाऽपि सुरतौ विज्ञः कामशास्त्रविशारदः।
नानाप्रकारं शृङ्गारं चकार विधिपूर्वकम्।।४५।।
नवसङ्गममात्रेण मूर्च्छां सम्प्राप कन्दली। मूर्च्छां प्राप मुनिश्रेष्ठो बुबुधे न दिवानिशम्।।४६।।
एवं प्रतिदिनं तत्र चकार सुरतिं मुने। विदग्धाया विदग्धेन बभूव सङ्गमः समः।।४७।।

आत्माराम महर्षि दुर्वासा भी पत्नी के साथ परमानन्द पूर्वक अपने आश्रम में रहने लगे। आश्चर्य की बात तो यह है कि मुनि ने कामवेग के कारण सम्भोग की इच्छा करने मात्र से कामिनी नारी को प्राप्त कर लिया था। सुकृति व्यक्ति की इच्छा होते ही तत्क्षण उसकी कामना पूरी हो जाती है। तदनन्तर महामना मुनि दुर्वासा ने रतिक्रीड़ा के लिये उपयुक्त शय्या रचना किया तथा शुभक्षण में प्रिया के साथ निर्जन स्थान में शयन किया। यद्यपि ये महामुनि आजन्म नारी रस से अछूते थे, तथापि वे कामशास्त्रविशारद एवं सुरत (रतिक्रीड़ा) के विशेष ज्ञाता थे। अतः वे पत्नी के साथ सविधि नाना प्रकार की शृङ्गारजनित रतिक्रीड़ा करने लगे। वह कन्दली नवसङ्गम के कारण विभोर हो गई। दोनों में से किसी को भी दिन-रात का भान नहीं था। दुःखी व्यक्ति के जीवन में जैसे ही सुख का आरम्भ होता है, उसकी आकांक्षा की शान्ति नहीं होती। उसी प्रकार से मुनि भी अपनी संभोग आकांक्षायुक्त चित्त से प्रतिदिन रतिक्रीड़ा करने लगे। यह रति चतुर पुरुष का चतुरा स्त्री के साथ समागम का फल था।।।४२-४७।।

सम्बभूव गृहासक्तस्तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः।
करोति कलहं नित्यं कन्दली स्वामिना सह।।४८।।
मुनीन्द्रो बोधयामास नीतिवाक्येन कामिनीम्।
सा तन्न बुबुधे किञ्चित्करोतिकलहे स्पृहाम्।।४९।।

तातप्रदत्तज्ञानेन सा न शान्ता बभूव ह। न हीयते प्रबोधेन स्वभावो दुरतिक्रमः॥५०॥

अब मुनीश्वर दुर्वासा अपनी तपस्या का त्याग करके गृहस्थी में आसक्त हो गये। उधर कन्दली नित्य पति से कलह करती रहती थी। उस कामिनी को दुर्वासा अनेक नीतिवाक्यों से समझाते रहते थे, तथापि वह मुनि की बातों को अनसुनी करके उनसे नित्य कलह करती। यद्यपि पिता ने उसे इस सम्बन्ध में प्रबोधित किया था, तथापि उसका कलह शान्त न हो सका। स्वभाव सर्वदा दुरतिक्रम जो होता है।।४८-५०।।

नित्यं कटूक्तिं कान्तं सा करोति हेतुना विना।
जगत्प्रकम्पितं येन तया कोपात्स कम्पितः॥५१॥
तया कृतां कटूक्तिं च क्षमासंस्थां चकार ह।
बोधयामास तां नित्यं सद्यो मोहाद्दयानिधिः॥५२॥
कटूक्तिशतकं पूर्णं तत्कालेन बभूव ह।
क्षमां चकार कृपया कटूक्तिं च शताधिकाम्॥५३॥
पत्नीकटूक्त्या नियतं प्रदग्धं मानसं मुने।
तस्याः कटूक्तिकारिण्याः कर्म पूर्णं बभूव ह॥५४॥

वह कन्दली अकारण नित्यप्रति स्वामी के प्रति कठोर वाक्यों का प्रयोग करने लगी। जिसके प्रभाव से यह संसार कम्पित हो जाता है, वे महर्षि दुर्वासा कन्दली के कटु वाक्य से क्रोध से कम्पित हो ज़ाते तथा उसकी कटूक्तियों की संख्या ही गिनते थे। वे कृपानिधि नित्य कन्दली को समझाते भी थे, तथापि वह शान्त नहीं होती थी। इस प्रकार क्रमशः १०० कटुक्तियों की संख्या पूरी हो गई। इस पर भी मुनिवर ने कृपा पूर्वक सौ से कहीं अधिक कटुक्तियों को सहन कर लिया। अन्ततः कटुक्तियों का क्रम समाप्त न होने के कारण मुनि का मन दग्ध होने लगा। उस कटुक्तिभाषिणी का कर्म अब संसार में समाप्त हो चला था!।।५१-५४।।

स्वात्मारामो दयालुश्च कोपं त्यक्तुं न स क्षमः।
शशाप कामिनीं मोहाद्भस्मराशिर्भवेति च॥५५॥
मुनेरिङ्गितमात्रेण भस्मसात्सा बभूव ह। एवमत्युच्छ्रितानां च न कल्याणं जगत्त्रये॥५६॥
शरीरे भस्मसाद्भूते प्रतिबिम्बः स चाऽऽत्मनः।
जीवस्तत्रान्तरिक्षस्थो ह्युवाच विनयात्प्रभुम्॥५७॥

महर्षि दुर्वासा स्वात्माराम तथा दयालु थे, तथापि वे कोप का संवरण नहीं कर सके। उन्होंने मोहवशात् पत्नी को शाप दे दिया "तुम भस्म हो जाओ।" मुनि का ईङ्गित होते ही कन्दली भस्म हो गई। जो ऐसी उच्छ्रिङ्खलता करने वाली नारी होती है, उसका त्रैलोक्य में भी कल्याण नहीं होता। जब शरीर दग्ध हो गया, तब कन्दली भी आत्मा का प्रतिबिम्ब जीव अन्तरक्षिस्थ होकर मुनि से विनय पूर्वक कहने लगा–।।५५-५७।।

जीव उवाच

हे नाथ सर्वदर्शी त्वं सततं ज्ञानचक्षुषा। सर्वं जानासि सर्वज्ञः किमहं बोधयामि ते॥५८॥

सदुक्तिर्वा कटूक्तिर्वा कोपः सन्ताप एव च।
लोभो मोहश्च कामश्च क्षुत्पिपासादिकं च यत्॥५९॥
स्थौल्यं कार्श्यं च नाशश्च दृश्यादृश्यं समुद्भवम्।
सर्वं शरीरधर्मं च न जीवस्य न चाऽऽत्मनः॥६०॥

सत्त्वं रजस्तम इति शरीरं त्रिगुणात्मकम्। तच्च नानाप्रकारं च निबोध कथयामि ते॥६१॥

जीव कहता है–हे नाथ! आप सर्वदर्शी हैं। आप अपने ज्ञान नेत्र से सब कुछ जान लेते हैं। मैं आपको क्या बतला सकती हूं? सदुक्ति, कटुक्ति, कोप, सन्ताप, लोभ, मोह, काम, क्षुधा, तृष्णा आदि, स्थूलता-कृशता, नाश, दृश्यत्व-अदृश्यत्व तथा जन्म, ये सभी शरीर के धर्म हैं। ये जीव एवं आत्मा के धर्म हैं ही नहीं। यह देह त्रिगुणात्मक हैं। यह तो नाना प्रकार का होता है। कृपया श्रवण करें॥५८-६१॥

किञ्चित्सत्त्वातिरिक्तं च किञ्चिदेव रजोधिकम्।
तमोऽतिरिक्तं किञ्चिच्च न समं कुत्रचिन्मुने॥६२॥
सत्त्वोदयाच्च मुक्तीच्छा कर्मेच्छा च रजोगुणात्।
तमोगुणाज्जीवहिंसा कोपोऽहंकार एव च॥६३॥
कोपात्कटूक्तिर्नियतं कटूक्त्या शत्रुता भवेत्।
तया चाप्रियता सद्यः शत्रुः कः कस्य भूतले॥६४॥
को वा प्रियोऽप्रियः को वा किं मित्रं को [1]रिपुर्भवेत्।
इन्द्रियाणि च बीजानि सर्वत्र शत्रुमित्रयोः॥६५॥

हे मुनिवर! किसी देह में स्तवगुणाधिक्य है, किसी में रजोगुण की, तो किसी में तमोगुण की अधिकता होती है। किसी भी देह में ये तीनों गुण समान नहीं होते। जब देह में सत्वगुण की अधिकता होती है, तब दया एवं मुक्ति की कामना का उद्रेक होता है। रजोगुणाधिक्य होने पर कर्म की इच्छा होती है। तमोगुण की अधिकता होने पर व्यक्ति जीवहिंसा, कोप तथा अहंकारयुक्त हो जाता है। क्रोध का कारण है कटुवचन तथा इससे शत्रुता उत्पन्न होती है। शत्रुता होने के कारण सदा अप्रियता का वातावरण हो जाता है। अन्यथा जगत् में कौन किसका शत्रु है? कौन किसका प्रिय तथा अप्रिय है? कौन किसका मित्र है? सभी स्थान पर शत्रु-मित्र इत्यादि का बीजरूप (कारण) हैं इन्द्रियां॥६२-६५॥

प्राणाधिकः प्रियः स्त्रीणां भर्तुः प्राणाधिका प्रिया।
बभूव शत्रुता सद्यो दुरुक्त्या च क्षणाद्द्वयोः॥६६॥

१. क. ०पुर्भुवि।

यद्गतं तद्गतं सर्वं कामदोषेण वै प्रभो। क्षमापराधं निखिलं किं कर्त्तव्यं वदाधुना॥६७॥

किं करोमि क्व यामीति भविता कुत्र जन्म मे।
तव नान्यस्य जायाऽहं भविष्यामि जगत्त्रये॥६८॥

नारी के लिये पति प्राणाधिक प्रिय कहा गया है। पति के लिये पत्नी प्राणाधिक प्रिय होती है। तब भी मेरे तथा आपके बीच एकमात्र दुर्वचन के कारण क्षणमात्र में तत्काल शत्रुता पनप गई! हे प्रभो! मेरे कर्मदोष के कारण जो होना था, वह हो गया। अब मेरे सभी अपराधों को क्षमा करके मेरे लिये जो कर्त्तव्य हो वह कहें। मैं कहां जाऊं, कहां मेरा जन्म होगा? मैं आपके अतिरिक्त त्रैलोक्य में किसी की भी पत्नी नहीं होना चाहती हूं।।६६-६८।।

इत्येवमुक्त्वा जीवश्च मौनीभूतो बभूव ह। मूर्च्छामवाप स मुनिः शोकेन हतचेतनः॥६९॥

स्वात्मारामो महाज्ञानी जहार चेतनामहो।
स्त्रीविच्छेदो विदग्धानां सर्वशोकात्परात्परः॥७०॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य प्राणांस्त्युक्तुं समुद्यतः।
तत्र योगासनं कृत्वा चकार वायुधारणम्॥७१॥

वह जीवात्मा यह कहकर मौन हो गया। वे महामुनि दुर्वासा शोक से चेतना खोकर मूर्च्छाग्रस्त हो गये। क्या आश्चर्य है? जो आत्माराम तथा महाज्ञानी थे, उन जैसे विदग्ध व्यक्ति के लिये भी स्त्री विरह का शोक, सभी प्रकार के शोक से कहीं बढ़कर होता है! तदनन्तर अगले क्षण चेतना लाभ करके वे प्राणत्याग हेतु उद्यत हो गये। वे योगासनासीन होकर वायु धारणा में निरत हो गये!।।६९-७१।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र जगाम ब्राह्मणोऽर्भकः।
दण्डी छत्री रक्तवासा बिभ्रत्तिलकमुत्तमम्॥७२॥
सस्मितः श्यामवर्णश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा।
वयसाऽतिशिशुः शान्तो ज्ञानी वेदविदां वरः॥७३॥

दृष्ट्वा तं संभ्रमेणैव दुर्वासाः प्रणनाम ह। वासयामास तत्रैव पूजयामास भक्तितः॥७४॥
उवाच ब्राह्मणवटुर्दत्त्वा तस्मै सदाशिवम्। तद्दर्शनादाशिषा च सर्वं दुःखं गतं मुनेः॥७५॥

इतने में वहां एक ब्राह्मण बालक आ गये। वे दण्ड, छत्र तथा रक्तवस्त्रधारी थे। उन्होंने अत्युज्वल तिलक धारण किया था। उनका मुखमण्डल किञ्चित् हास्य से प्रफुल्लित था। वे श्यामवर्ण, ब्रह्मतेज से दीप्त, शान्त, ज्ञानी एवं वेदज्ञों के गुरु थे, तथापि देखने में उनका वयस शिशु जैसा लग रहा था। दुर्वासा ने उनको देखते ही तत्काल प्रणाम किया तथा उत्तम आसन पर उनको बैठाकर भक्ति पूर्वक उनका पूजन भी किया। तदनन्तर उन ब्राह्मण कुमार ने दुर्वासा को शुभ आशीर्वाद देकर उनसे वार्ता प्रारंभ किया। इससे दुर्वासा का समस्त दुःख समाप्त हो गया!।।७२-७५।।

शिशुरूपं क्षणं स्थित्वा तमुवाच विचक्षणः।
पीयूषतुल्यं नीत्योथं[1] नीतिशास्त्रविशारदः॥७६॥

इसके पश्चात् उन नीतिशास्त्रविशारद तथा विद्वान् बालक क्षणकाल रुककर दुर्वासा से अमृततुल्य नीतिवाक्य कहना प्रारम्भ कर दिया॥७६॥

शिशुरुवाच

सर्वं जानासि सर्वज्ञ गुरोर्मन्त्रप्रसादतः।
किं तत्त्वं त्वामहं विप्र पृच्छामि शोककातरम्॥७७॥
ब्राह्मणानां तपो धर्मस्तपः साध्यं जगत्त्रयम्।
स्वधर्मं वै परित्यज्य किमिदानी करोषि भोः॥७८॥
का कस्य पत्नी कः कान्तः कस्या वा भुवनत्रये।
मूर्खाणां वञ्चनां कर्तुं करोति मायया हरिः॥७९॥
मिथ्या पत्नी तवेयं च क्षणात्तेन गताऽधुना।
न हि सत्यमदृश्यं च मिथ्या यत्राचिरस्थितिः॥८०॥

शिशु ब्राह्मण कहते हैं–हे विप्र! मैं गुरुकृपा से सर्वज्ञ हूं। ऐसा कोई विषय है ही नहीं जो मुझे ज्ञात न हो। मैं आपको शोककातर देख रहा हूं। ऐसी स्थिति में मैं आपसे कौन-सा तत्व कह सकूंगा? हे ब्रह्मन्! ब्राह्मण का धर्म है तपस्या। यह तीनों लोक तप से वशीभूत हो जाता है। आप स्वधर्म त्यागकर किस कार्य को करने जा रहे हैं? इस त्रैलोक्य में कौन किसकी पत्नी है, कौन किसका पति है? मूर्ख लोग ही हरि की माया से इस प्रकार ऐसा करते हैं; क्योंकि श्रीहरि ही यह सब माया करने वाले हैं। आपकी यह पत्नी कन्दली आपकी मिथ्या पत्नी थी। तभी वह क्षणमात्र में चली गई। अदृश्य हो गई। सत्य कभी अदृश्य नहीं होता। जो चिरकाल तक न रहे, वही मिथ्या है!॥७७-८०॥

एकाऽनंशा च भगिनी वसुदेवसुता हरेः। पार्वत्यंशसमुद्भूता सुशीला चिरजीविनी॥८१॥
कल्पे कल्पे सुन्दरी सा तव पत्नी भविष्यति।
मनो देहि तपस्यायां मुदा कतिपयं दिनम्॥८२॥

श्रीकृष्ण की भगिनी तथा वसुदेव पुत्री एकानंशा पार्वती के अंश से उत्पन्न है। वह सुशीला, सुन्दरी, चिरजीवन वाली कल्प-कल्प में आपकी पत्नी होगी। आप कुछ समय मुदित मन से अपना चित्त तप में लगायें॥८१-८२॥

कन्दली कदलीजातिर्भविष्यति महीतले।
शुभदा फलदा कान्ता सकृत्सूता सुदुर्लभा॥८३॥

१. ख. नित्यौघं।

कल्पान्तरे शान्तरूपा तव पत्नी भविष्यति।
अत्युच्छ्रितस्य दमनमुचितं च श्रुतौ श्रुतम्॥८४॥

कन्दली धरती पर अब कंदली जाति की होकर जन्म लेगी। यह शुभप्रदा, फलप्रदा, मनोहरा, उत्तम सन्तानप्रदा, शान्तस्वरूपा सुदुर्लभा होकर भविष्य में आपकी पत्नी होगी। जो अत्यन्त उद्धृत स्वभाव है, उसका दमन उचित कार्य है, यह वेदों में सुना गया है॥८३-८४॥

इत्येवमुक्त्वा शीघ्रं च विप्ररूपी जनार्दनः। दत्त्वा ज्ञानं च विप्राय सोऽन्तर्धानं चकार ह॥८५॥
मुनिः सर्वं भ्रमं त्यक्त्वा तपस्यायां मनो दधे।
कन्दली कदलीजातिर्बभूव धरणीतले॥८६॥
दैत्यस्यालवनं गत्वा बभूव गर्दभाकृतिः। तिलोत्तमा बाणपुत्री बभूव समये मुने॥८७॥
दैत्येन्द्रो विष्णुचक्रेण प्राणांस्त्यक्त्वा सुवाञ्छितम्।
सम्प्राप्त चरणाम्भोजं मुनेरपि सुदुर्लभम्॥८८॥

वे विप्रबालकरूपी भगवान् जनार्दन यह ज्ञान दान देकर तत्काल अन्तर्हित् हो गये। तब मुनि ने समस्त घटना जनित भ्रम की विवेचना किया तथा उन्होंने अपना चित्त तपःश्चरण में लगा दिया। इधर कन्दली भी पृथिवी पर कन्दली जाति की होकर उत्पन्न हो गई। हे मुनिवर! दैत्यराज साहसिक तालवन में गर्दभरूपी हो गया। तिलोत्तमा ने यथाकाल बाणासुरनन्दिनी ऊषा के रूप में जन्म लिया! हे मुनिवर! यह गर्दभरूपी दैत्य कालान्तर में विष्णुचक्र से मृत हो गया। उसने मुनिगण के लिये भी दुर्लभ अत्यन्त वांछनीय श्रीहरि के चरणारबिन्द को प्राप्त किया॥८५-८८॥

काले तिलोत्तमा भूत्वा जगाम स्वालयं पुनः। कृष्णपौत्रालिङ्गनपरिपूर्णमनोरथा॥८९॥
इत्येवं कथितं [१]श्रुत्वा श्रीकृष्णख्यानमुत्तमम्।
पदे पदे सुन्दरं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥९०॥

इति ब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० तालफलभक्षणप्रसङ्गे बलिपुत्रमोक्षो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

—❋—

कालान्तर में तिलोत्तमा (सम्प्रति ऊषा) ने कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का आलिंगन प्राप्त किया। इससे वह परिपूर्ण मनोरथ होकर अपने स्वर्गगृह को पुनः पा सकीं। यह श्रीकृष्ण का उत्तम आख्यान मैंने तुमसे कह दिया। यह तो प्रति पग पर अत्यन्त सुन्दर आख्यान है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥८९-९०॥

॥२४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

१. क. ब्रह्मन्।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

और्व मुनि के शाप से दुर्वासा का पराजित होना, दुर्वासाकृत श्रीकृष्ण स्तवगान, दुर्वासा की सुदर्शन चक्र से मुक्ति

नारद उवाच

श्रुतं किमद्भुतं ब्रह्मनं हरेश्चरितमङ्गलम्। विशेषतस्तव मुखे ह्यतीव सुमनोहरम्॥१॥
मृतायां मुनिकन्यायां शापाद्दुर्वाससो मुनेः। किं चकार समागत्य तन्मे ब्रूहि तपोधन॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मैंने कितना अद्भुत तथा मङ्गलजनक हरितत्व श्रवण किया। विशेषतया दुर्वासा मुनि के शाप देने के कारण और्व की पुत्री मृत हो गई। हे तपोधन! तब और्व मुनि ने दुर्वासा के पास आकर क्या किया? कृपया कहिये।।१-२।।

नारायण उवाच

सरस्वतीनदीतीरे तपस्यां कुर्वतो मुनेः। पपात धौतमूर्ध्वाच्च धार्यमाणं च वायुना॥३॥
पृथ्व्यां पतिते वस्त्रे तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः।
ध्यानेन बुबुधे सर्वं कन्यासम्बन्धिसङ्कटम्॥४॥
जगाम शोकाविष्टोऽपि तूर्णं जामातुराश्रमम्। सिषेच पृथिवीरेणूञ्छश्वन्नयनबिन्दुना॥५॥
गत्वाऽऽलयसमीपं च विप्रः कातरमानसः। हे वत्से कन्दलीत्येवमुवाच च पुनः पुनः॥६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे मुनिवर! और्व मुनि सरस्वती नदी के तट पर उस समय तपस्या कर रहे थे। तभी उनके मस्तक पर कन्या की धोती वायु से उड़ते उनके ऊपर आ पड़ी। उस समय मुनि ने तप छोड़कर ध्यान द्वारा कन्या पर आये संकट को जान लिया। वे तब अत्यन्त शोकार्त्त होकर शीघ्रता से जामाता के आश्रम में गये। उस समय उनके अश्रुकण पृथिवी पर गिर कर धरती की रेणु का सिंचन करने लगे! वे कातरचित्त से जामाता दुर्वासा के आश्रम पर पहुंचे तथा बार-बार "हा बेटी कन्दली" इस प्रकार से पुकारने लगे।।३-६।।

श्वशुरस्य स्वरं ज्ञात्वा दुर्वासा भयविह्वलः। बहिर्बभूव शीघ्रं च पपात चरणाम्बुजे॥७॥
प्रणम्य श्वशुरं शोकाद्विललाप भृशं पुनः। प्रवृत्तिं कथयामास मूलतो मुनिसत्तमम्॥८॥
श्रुत्वा वार्तां शुचाऽविष्टः पपात धरणीतले।
मूर्च्छामाप महाज्ञानी निश्चेष्टो हि यथा मृतः॥९॥
मृतं दृष्ट्वा स दुर्वासा मेने मनसि सङ्कटम्। चेतनां कारयामास प्रयत्नेन महामुनेः॥१०॥

श्वसुर का कण्ठस्वर पहचान कर दुर्वासा भयार्त्तचित्त से तत्काल आश्रम से बाहर आये तथा महर्षि और्व के चरणों पर गिर पड़े। दुर्वासा ने श्वसुर को प्रणाम करने के पश्चात् बारम्बार अतिशय

विलाप करते हुये उनसे समस्त वृत्तान्त कह दिया। तत्पश्चात् महाज्ञानी और्व यह श्रवण करके शोकार्त्त एवं मूर्च्छाग्रस्त होकर, धरती पर निश्चेष्ट होकर गिर पड़े। उनकी स्थिति मृतवत् हो रही थी। दुर्वासा उनको मृतवत् देखकर आसन्न संकट से स्तब्ध हो उठे। उन्होंने अनेक प्रयत्न करके और्व मुनि को चैतन्य किया।।७-१०।।

सम्प्राप्य चेतनां शीघ्रमुवाच तं पुरःस्थितम्। जामातरं शोकयुतं भीतं प्रणतकन्धरम्।।११।।
महाशोकोदश्रुपूर्णं रक्तपङ्कजलोचनम्। कोपात्कम्पितवाञ्छश्वत्संत्रस्तः स्फुरिताधरः।।१२।।

तब अपने सामने शोकग्रस्त, भयभीत झुक कर प्रणाम कर रहे अपने जामाता से महान्शोकार्त्त एवं अश्रुपूर्ण स्थिति में क्रोध से कांपते, संत्रस्त हो रहे तथा स्फुटित ओष्ठ वाले और्वमुनि ने कहा-।।११-१२।।

और्व उवाच

अये ब्रह्मन्नत्रिवंश पौत्रस्त्वं जगतीपतेः। स्वल्पदोषे बहुतरः कृतो दण्डस्त्वया कथम्।।१३।।
त्वज्जन्म शङ्करांशेन शिष्यस्तस्य जगद्गुरोः।
वेदवेदाङ्गविज्ञश्च सर्वज्ञो गुणवान्स्वयम्।।१४।।
अनसूया महासाध्वी कमलांशा तव प्रसूः। न जाने केन दोषेण तव चैतादृशी मतिः।।१५।।
गुणवाञ्जनको यस्य माता गुणवती सती। तयोः पुत्रो दयाहीनो गतिः सूक्ष्मा श्रुतेरहो।।१६।।

और्व मुनि कहते हैं-हे ब्रह्मन्! तुम जगत्पति ब्रह्मा के पौत्र तथा अत्रिवंशोत्पन्न हो। तब तुमने स्वल्प दोष के बदले इतना गुरुतर दण्ड पत्नी को दे दिया? तुम्हारा जन्म शंकर के अंश से हुआ है, तुम उन जगद्गुरु शंकर के शिष्य हो। स्वयं गुणी, सर्वज्ञ तथा वेदवेदांग पारदर्शी हो। तुम्हारी माता हैं लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न महासाध्वी अनुसूया देवी। तब तुम्हारी बुद्धि किस दोष से ऐसी हो गई, यह जान ही नहीं पा रहा हूं! जिनके पिता-माता दोनों गुणी हैं, उनका पुत्र इतना निर्दय क्यों हो गया? यह वेद की कैसी सूक्ष्म गति है?।।१३-१६।।

मम प्राणाधिका कन्या मुदा त्वयि समर्पिता।
महागुणान्विता स्वल्पदोषेण परिमिश्रिता।।१७।।
वाग्दुष्टायाश्च दण्डो हि परित्यागः श्रुतौ श्रुतः।
त्वया क्रोधाद्यदि त्यक्ता पिता यत्नेन पालिता।।१८।।
मदपत्यं स्वल्पदोषे यतो भस्मीकृतं त्वया। पराभवस्तव महान्भविष्यति न संशयः।।१९।।
महतां क्षुद्रजन्तूनां सर्वेषां जीविनां सदा।
स्त्रष्टा पाता च शास्ता च भगवान्करुणानिधिः।।२०।।

मैंने मुदित होकर अपनी प्राणों से भी अधिक प्रिय कन्या तुमको दिया था। वह महान्

गुणान्विता थी। उसमें केवल स्वल्पमात्र दोष था। कटुभाषिणी रमणी के लिये वेदोक्त दण्ड है, उसका त्याग कर देना। यदि तुम उसका त्याग कर देते, तब वह मुझ पिता द्वारा यत्नतः पाली जाती। तुमने सामान्य दोष के कारण मेरी कन्या को भस्म कर दिया, इस कारण तुमको निश्चित रूप से महान् पराजय का भागी होना ही पड़ेगा। करुणानिधि प्रभु सभी प्राणीगण की सदा सृष्टि, पालन तथा शासन करते रहते हैं।।१७-२०।।

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो विलप्य च पुनः पुनः।
हेऽम्ब वत्से ह्ययीत्युक्त्वा जगाम स्वालयं रुषा॥२१॥
गते मुनीन्द्रे दुर्वासा विललाप भृशं पुनः।
ज्ञानेन विस्मृतः शोको बभूव द्विगुणः पुनः॥२२॥
शोकानलो हि कालेन विच्छिन्नो ज्ञानभस्मना। बन्धुदर्शनशुष्केन्धदानेन वर्धते पुनः॥२३॥

यह कहकर मुनिप्रवर बारम्बार विलाप करने लगे। वे हे वत्से! हे वत्से! कहते क्रोधित स्थिति में स्वाश्रम चले गये। मुनि और्व के चले जाने पर ऋषि दुर्वासा भी घोर विलाप करने लगे। पहले ज्ञान से वे स्त्री वियोग का जो दुःख भूल गये थे, वह द्विगुणित हो उठा! यह नियम है कि शोकाग्नि ज्ञानरूपी भस्म से ढ़क तो जाती है, तथापि बन्धुदर्शन अथवा स्मृतिरूपी शुष्क ईन्धन के सम्पर्क से वह अग्नि पुनः भड़क जाती है। वह द्विगुणित हो जाती है।।२१-२३।।

स्मारं स्मारं प्रियां तत्र विलप्य च पुनः पुनः।
बोधयित्वा स्वमात्मानं तपस्यायां मनो दधौ॥२४॥
इत्येवं कथितं सर्वं मुनेः शापस्य कारणम्। बभूव तस्य कालेन दुःसहश्च पराभवः॥२५॥

वे दुर्वासा ऋषि अब अपनी प्रिया का बारम्बार स्मरण करके अतिशय विलाप करने लगे। तदनन्तर अपने मन को पुनः-पुनः प्रबोधित करके वे तपस्या करने लगे।" हे मुनि! यह मैंने दुर्वासा को मिले शाप का कारण कह दिया। इस प्रकार यथाकाल दुर्वासा का दुःसह पराभव हुआ था।।२४-२५।।

नारद उवाच

दुर्वासाः शङ्करस्यांशः शिवतुल्यश्च तेजसा।
तेजस्वी को महानेव चकार तत्पराभवम्॥२६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—दुर्वासा तो शंकर के अंश तथा शिववत् तेजस्वी हैं। कौन ऐसा महातेजस्वी था, जिसने उनको भी परास्त कर दिया?।।२६।।

नारायण उवाच

अम्बरीषो हि राजेन्द्रः सूर्यवंशसमुद्भवः। श्रीकृष्णाचरणाम्भोजे तन्मनाः संततं मुने॥२७॥
न राज्येषु न भार्यासु न पुत्रेषु प्रजासु च। न सम्पत्सु क्षणं चित्तं पुण्यकर्मार्जितासु च॥२८॥

ध्यायतेऽहर्निशं धर्मी स्वप्ने ज्ञाने हरिं मुदा।
महाजितेन्द्रियः शान्तो विष्णुव्रतपरायणः॥२९॥
एकादशीव्रतरतः कृष्णपूजासु तत्परः। सर्वकर्मस्वलिप्तश्च कर्ता कृष्णार्पितेषु च॥३०॥
सुतीक्ष्णं षोडशारं च हरेश्चक्रं सुदर्शनम्। तेजसा हरितुल्यं च सूर्यकोटिसमप्रभम्॥३१॥
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानं पूजितं च सुरासुरैः। प्रभुणा रक्षितं शश्वद्रक्षायै नृपसन्निधौ॥३२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे मुनि! सूर्यवंशोत्पन्न राजेन्द्र अम्बरीष सदा श्रीकृष्ण के चरणकमलों में तन्मय रहा करते थे। उनका मन राज्य, सम्पदा, पत्नी, पुत्र, प्रजा, वित्त तथा पुण्यकर्मों से प्राप्त वस्तुओं में नहीं लगता था। वे विष्णुव्रत परायण महान् जितेन्द्रिय, शान्त तथा धर्मशील थे। अम्बरीष स्वप्न-जागरण अहर्निश परमानन्द में मग्न रहकर केवल श्रीहरि का ही ध्यान करते थे। वे एकादशीव्रत तथा कृष्णपूजा में नितान्त मग्न रहा करते थे। वे समस्त कर्मफल श्रीकृष्ण को अर्पित कर देते थे। प्रभु कृष्ण ने भी सुतीक्ष्ण, षोडशारयुक्त, तेज में अपने तुल्य, कोटि सूर्य समप्रभ प्रभावान् ब्रह्मादि देवगण के स्तुति योग्य सुरासुरपूजित अपना सुदर्शन चक्र इस राजा की सदा रक्षा हेतु नियुक्त कर दिया था॥२७-३२॥

एकादशीव्रतं कृत्वा द्वादशीदिवसे सति।
स्नात्वा विधाय पूजां च कालेन विधिपूर्वकम्॥३३॥
दत्त्वा दानं ब्राह्मणेभ्यः सुवर्णरजतादिकम्।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च भोजनार्थमुवास ह॥३४॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तपस्वी क्षुधितो मुने।
दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुत्तमम्॥३५॥
जटिलोऽतिकृशस्त्रस्तः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः।
तत्राऽऽजगाम भगवान्दुर्वासा नृपतेः पुरः॥३६॥

हे मुनिवर! एक बार की बात है राजा ने एकादशी व्रत करके द्वादशी के दिन स्नानोपरान्त कालानुसार सविधि हरिपूजा किया तथा इसके अनन्तर ब्राह्मण को भोजन कराकर स्वयं भोजनार्थ जा ही रहे थे, तभी वहां दण्डछत्रधारी, शुभवस्त्र पहने, समुज्वल तिलक से शोभित ललाट वाले, जटाधारी, अत्यन्त दुर्बल, भूखे एक तपस्वी शुष्क कण्ठ से ग्रस्त भाव से वहां आये। वे स्वयं भगवान् दुर्वासा थे॥३३-३६॥

स च दृष्ट्वा मुनीन्द्रं तमुत्थाय च प्रणम्य च।
दत्त्वा पाद्यं च सम्प्रीत्या स्वर्णसिंहासनं ददौ॥३७॥
तस्मै दत्त्वाऽऽशिषं विप्रः समुवास सुखासने।
प्रपच्छ राजा तं प्रीतः काऽऽज्ञा ते वद कामितम्॥३८॥

उन मुनीन्द्र को वहां समागत देखकर राजा ने उनको उठकर प्रणाम किया। उनका चरण प्रक्षालन करके प्रीति पूर्वक उनको बैठने हेतु स्वर्णसिंहासन भी प्रदान किया। विप्र दुर्वासा राजा को आशीर्वाद देकर सिंहासन पर बैठ गये। तब राजा ने प्रेम के साथ मुनि से कहा–"आपकी क्या आज्ञा है? आप अपनी कामना कहिये।"।।३७-३८।।

नृपेन्द्रवचनं श्रुत्वा तमुवाच महामुनिः। बुभुक्षितस्य मे राजन्द्रेह्यन्नं विधिपूर्वकम्।।३९।।
किं त्वघमर्षणमन्त्रं जप्त्वाऽऽयाम्यचिरेण वै।
क्षणं प्रतीक्षतां राजन्नित्युक्त्वा च गतो मुनिः।।४०।।

राजा का वचन सुनकर महामुनि ने कहा–"हे राजन् ! मैं भूखा हूं। आप मुझे सविधि अन्न प्रदान करे, तथापि मैं अभी अधमर्षण मन्त्र जपने के पश्चात् पुनः आता हूं। क्षणमात्र प्रतीक्षा करें।" यह कहकर मुनि वहां से चले गये।।३९-४०।।

गते विप्रे तु राजर्षिश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम्। विलोक्य विगतप्रायां द्वादशीं भयसंयुतः।।४१।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायान्तं गुरुं मुदा। नत्वा निवेद्य सर्वं तु नृपतिः समुवाच ह।।४२।।
नाऽऽयाति मुनिशार्दूलः प्रयाति द्वादशी तिथिः।
सङ्कटेऽस्मिन्विधेयं च विविच्य विधिपूर्वकम्।
शीघ्रं वद मुनिश्रेष्ठ भद्राभद्रं च मामिति।।४३।।

उधर राजा अत्यन्त चिन्तातुर हो गये। वे द्वादशी को शीघ्र व्यतीत होती जानकर भयभीत हो गये। तभी वहां राजा के गुरु महर्षि वसिष्ठ आ गये। उनको आया देखकर राजा ने उन महर्षि को प्रणाम किया तथा सभी प्रसंग वर्णन करने के पश्चात् गुरु से पूछा–"हे प्रभो! द्वादशी व्यतीत होने ही वाली है। मुनिवर दुर्वासा को गये विलम्ब हो गया। वे अभी तक वापस नहीं आये। इस आसन्न संकट में मैं क्या करूं? आप शुभाशुभ का विचार करके जो करना उचित हो वह कहिये।।४१-४३।।

श्रुत्वा नृपोक्तिं त्वरितमुवाच मुनिपुङ्गवः। हितं तथ्यं च वेदोक्तं परिणामसुखावहम्।।४४।।

राजा का कथन सुनकर मुनि वसिष्ठ ने हितप्रद, तथ्यपूर्ण तथा वेदोक्त बातों को कहा जो परिणाम में सुखप्रद थीं।।४४।।

वसिष्ठ उवाच

द्वादश्यां समतीतायां त्रयोदश्यां तु पारणम्।
उपवासफलं हत्वा व्रतिनं हन्ति निश्चितम्।।४५।।
ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य श्रुतौ श्रुतम्। भक्ष्यद्रव्यं सुरातुल्यमित्याह कमलोद्भवः।।४६।।
न भोजयित्वा मूढश्चेदतिथिं समुपस्थितम्।
सत्रस्तः क्षुधितो भुङ्क्ते कुम्भीपाके व्रजेद्ध्रुवम्।।४७।।

शतवर्षं तत्र तिष्ठन्नरश्चाण्डालतां व्रजेत्। व्याधियुक्तो दरिद्रश्च भवेज्जन्मनि जन्मनि॥४८॥

श्रीवसिष्ठ मुनि कहते हैं–हे राजन्! द्वादशी अतीत होने पर यदि व्रती त्रयोदशी पर पारण करता है, तब इससे उपवास जनित फल का नाश होता है। उसे ब्रह्महत्यातुल्य पातक लगता है। उसका ग्रहण किया समस्त भोजन मद्यतुल्य हो जाता है। यह वेद में ब्रह्मा का कथन है। यदि कोई मूढ़ मनुष्य उपस्थित अतिथि को भोजन प्रदान किये बिना स्वयं भोजन करता है, प्रबल क्षुधा के कारण त्रस्त होकर स्वयं भोजन ग्रहण कर लेता है, तब वह पापी कुंभीपाक नरक भोग करके चाण्डाल योनि में जन्म लेगा। प्रत्येक जन्म में वह दरिद्र तथा व्याधिग्रस्त होगा।।४५-४८।।

अतोऽतिसूक्ष्मं किं ब्रूमोऽधुनो परमसङ्कटे। रक्षां कुरु द्वयोर्धर्मं समालोक्य वदामि ते॥४९॥
उपवासफलं रक्ष कृष्णस्य चरणोदकम्। भुक्त्वा शीघ्रमपो राजंस्तद्भक्षणमभक्षणम्॥५०॥

इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो विरराम महामुने।
बुभुजे तज्जलं किञ्चित्कृष्णपादाम्बुजं स्मरन्॥५१॥

इस घोर संकटापन्न स्थिति में इसकी अपेक्षा तुमसे और सूक्ष्म विषय क्या कहूं? जिससे दोनों परिस्थितियों में रक्षा हो सके वही करो। इस विषय में सम्यक् रूप से विचार करके जो कह रहा हूं, वह सुनो! हे राजन्! श्रीकृष्णार्चना की चरणामृत का पान करके उपवास फल की भी रक्षा करो। जलपान तो अनाहार तुल्य होता है। उससे आतिथ्यसत्कार की हानि नहीं होगी। हे मुनिवर! यह कहकर ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ मौन हो गये। तब राजा ने कृष्ण के चरणकमल का स्मरण करके तनिक चरणामृत जल का पान कर लिया।।४९-५१।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्नाजगाम मुनीश्वरः। चिच्छेदं कोपात्सर्वज्ञः स्वजटां नृपतेः पुरः॥५२॥

ततः समुत्थितः शीघ्र पुरुषोऽग्निशिखोपमः।
खड्गहस्तो महाभीमो राजेन्द्रं हन्तुमुद्यतः॥५३॥
हरेश्चक्रं च तं दृष्ट्वा सूर्यकोटिसमप्रभम्।
चिच्छेद कृत्यापुरुषं ब्राह्मणं छेत्तुमुद्यतम्॥५४॥

हे ब्रह्मन्! तभी वहां मुनीश्वर दुर्वासा आये। उन्होंने सर्वज्ञ होने के कारण समस्त विषय जान लिया। वे क्रोध से प्रज्ज्वलित हो गये। उन्होंने राजा के यहां अपनी जटा का एक बाल तोड़कर फेंका। उससे तत्काल एक अग्निशिखा के समान खड्गहस्त महाभीमकाय पुरुष उत्पन्न होकर राजा का वध करने हेतु उद्यत हो गया। तभी कोटिसूर्य समप्रभ प्रभाशाली श्रीहरि का चक्रसुदर्शन वहां प्रकट हो गया तथा उस कृत्या पुरुष को छिन्न-भिन्न करके ब्राह्मण दुर्वासा के वधार्थ उद्यत हो गया!।।५२-५४।।

दृष्ट्वा सुदर्शनं विप्रो दुद्राव भयविह्वलः। द्विजः पश्चात्तं ददर्श ज्वलदग्निशिखोपम्॥५५॥

ब्रह्माण्डक्रमणं कृत्वा निर्विण्णोऽतिभयाकुलः।
तं च मत्वा जगन्नाथं ब्रह्माणं शरणं ययौ॥५६॥

त्राहि त्राहीत्येवमुक्त्वा विवेश ब्रह्मणः सभाम्।
उत्थाय ब्रह्मा विप्रेन्द्रं पप्रच्छ कुशलं मुने॥५७॥
सर्वं स कथयामास वृत्तान्तं मूलतो विधिम्।
श्रुत्वा ब्रह्मा निशश्वास तमुवाच भयाकुलः॥५८॥

उस सुदर्शन को प्रहारोद्यत देखकर ब्राह्मण दुर्वासा अत्यन्त भयभीत होकर वहां से पलायित हो गये, तथापि प्रलयाग्नि शिखा के समान वाला सुदर्शन चक्र ब्राह्मण दुर्वासा के पीछे-पीछे चला जा रहा था। यह देखकर भयार्त्त दुर्वासा समग्र ब्रह्माण्ड का चक्रमण करते श्रान्त हो गये अत: वे ब्रह्म सभा में गये। उनको आया देखकर ब्रह्मा ने उठकर उनकी कुशलता पूछा। हे मुनिवर! तब दुर्वासा ने साद्योपान्त समस्त वृत्तान्त ब्रह्मदेव से कहा। यह सब सुनकर ब्रह्मा भयार्त्त होकर निःश्वास त्याग करते कहने लगे-॥५५-५८॥

ब्रह्मोवाच

हरिदासं वत्स शप्तुं गतोऽसि कस्य तेजसा।
रक्षिता यस्य भगवांस्तं को हन्ता जगत्त्रये॥५९॥
क्षुद्राणां महतां चैव भक्तानां रक्षणाय च। ररक्ष सततं चक्रं श्रीहरिर्भक्तवत्सलः॥६०॥

ब्रह्मा कहते हैं-हे वत्स! तुमने किसके तेज तथा बल पर आश्रित होकर हरिभक्त को शाप देने का साहस किया? जिसकी रक्षा स्वयं भगवान् करते हैं, त्रैलोक्य में उनका वध कौन कर सकेगा? भक्तवत्सल श्रीहरि अपने छोटे-बड़े सभी भक्तगण की रक्षा के लिये अपने सुदर्शन चक्र को सतत् नियुक्त रखते हैं।॥५९-६०॥

यो मूढो वैष्णवं द्वेष्टि विष्णुप्राणसमं द्विज। तस्य संहारकर्तारं संहर्तुमीश्वरो हरिः॥६१॥
शीघ्रं स्थानान्तरं गच्छ वत्स त्राणं न वाऽधुना।
अन्यथा त्वां मया सार्धं हनिष्यति सुदर्शनम्॥६२॥
किं ब्रह्मलोकं ब्रह्माण्डं दग्धुं शक्तं क्षणेन यत्।
तेजसा विष्णुतुल्यं यत्केनान्येन निवार्यते॥६३॥

हे द्विज! जो मूढ़ व्यक्ति विष्णु के लिये प्राणतुल्य वैष्णवों से द्वेष करते हैं, उसे बचाने वाले का भी प्रभु संहार कर देते हैं। हे वत्स! तुम शीघ्र अन्यत्र जाओ। यहां तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। यहां रहने पर तुम जीवित नहीं रहोगे। यदि तुम यहां से नहीं जाते तब सुदर्शन मेरा तथा तुम्हारा, दोनों का नाश कर देगा। यह सुदर्शन तो ब्रह्मलोक की तो बात ही क्या? समस्त ब्रह्माण्ड का भी विनाश कर सकता है। यह तेज में विष्णुतुल्य है। इसे कौन रोक सकेगा?॥६१-६३॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ततो दुद्राव ब्राह्मणः। त्रस्तो जगाम कैलासं शङ्करं शरणं भिया॥६४॥

कृपानिधान मां रक्षेत्युवाच शङ्करं भिया।
न हि पप्रच्छ कुशलं सर्वज्ञो ब्राह्मणं शिवः॥६५॥
उवाच दीनदीनेशः संहर्ता जगतां क्षणात्। स्थिरो भव द्विजश्रेष्ठ मदीयं वचनं शृणु॥६६॥

ब्रह्मदेव का कथन सुनकर त्रस्त हो गये दुर्वासा ब्राह्मण वहां से पलायित होकर शंकर की शरण में कैलासधाम गये। उन्होंने भयभीत होकर शंकर से कहा–"हे कृपानिधि! रक्षा करिये।" सर्वज्ञ शिव ने तो इन ब्राह्मण का कुशल संवाद भी उनसे नहीं पूछा। क्षणमात्र में जगत्संहार समर्थ शिव ने कहा–"हे ब्राह्मण प्रवर! क्षणमात्र स्थिर चित्त होकर मेरा कहना सुनो।"॥६४-६६॥

शङ्कर उवाच

पौत्रस्त्वं जगतां धातुरत्रेश्च तनयो मुनेः। वेदज्ञाताऽसि सर्वज्ञ मूर्खतुल्यं तु कर्म ते॥६७॥
वेदेषु च पुराणेषु सेतिहासेषु सर्वतः। निरूपितो यः सर्वेशस्तं न जानासि मूढवत्॥६८॥
अहं ब्रह्मा च इन्द्रश्च[1] आदित्या वसवस्तथा।
धर्मेन्द्रौ च सुराः सर्वे मुनीन्द्रा मनवस्तथा॥६९॥
आविर्भूतास्तिरोभूता यस्य भ्रूभङ्गलीलया।
तस्य प्राणाधिकं भक्तं हेसि त्वं कस्य तेतसाः॥७०॥
अहं ब्रह्मा च कमला दुर्गा वाणी च राधिका।
न हि भक्तात्पराः प्रेम्णा भक्ताश्च सर्वतः प्रियाः॥७१॥
क्षुद्रांश्च महतो भक्ताञ्छश्वद्रक्षति यत्नतः। सर्वान्तरात्मा भगवांश्चक्रेण दुःसहेन च॥७२॥
नियुज्य चक्रं दुर्वार्यं स्वात्मतुल्यं च तेजसा।
तथाऽपि न प्रतीतिश्च स्वयं गच्छति रक्षितुम्॥७३॥

श्रीशंकर कहते हैं–हे मुनि! तुम जगत्विधाता ब्रह्मा के पौत्र तथा अत्रि मुनि के पुत्र हो। तुम वेदज्ञ तथा सर्वज्ञ हो, तथापि तुम्हारा कर्म मूर्ख जैसा है। वेद-पुराण-इतिहास में जिनके विषय का निरूपण किया गया है, उन सर्वेश को तुम मूढ़ के समान नहीं जानते। मैं, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, वसुगण, धर्मदेव, इन्द्र, सभी देवता एवं मुनिगण तथा मानव भी जिनके भ्रूभङ्ग मात्र से आविर्भूत होते तथा विलीन होते रहते हैं, उनके प्राणाधिक प्रिय भक्त को किसके तेज का आश्रय लेकर मारने को उद्यत हो गये हो? मैं, ब्रह्मा, कमला, दुर्गा, सरस्वती, राधिका–इन सबको हरि अपने भक्त से बढ़कर प्रिय नहीं मानते। भक्त उनके लिये सबसे बढ़कर प्रिय है। सर्वान्तरात्मा भगवान् दुःसह सुदर्शन-चक्र को भक्तरक्षण कार्य में नियुक्त तो कर देते हैं, तथापि उनको उस पर विश्वास नहीं होता। फलतः वे भक्त रक्षणार्थ स्वयं चले जाते हैं॥६७-७३॥

---

१. क. रुद्राश्च।

स्वकीयगुणनाम्नां च श्रवणादतिसंभ्रमः। भक्तसङ्गे भ्रमत्येव च्छायेव सन्ततं हरिः॥७४॥

कान्ता प्राणाधिका शश्वन्न हि कोऽपि ततोऽधिकः।
भक्तान्द्वेष्टि स्वयं सा चेत्तूर्णं त्यजति तां प्रभुः॥७५॥
सर्वेषां च प्रिया विप्राः स्वशरीरादपि द्विज।
ब्राह्मणेभ्यः प्रिया भक्ता प्राणेभ्यश्च हरेरपि॥७६॥
ईश्वरस्य प्रियः को वाऽप्रियः को वा जगत्त्रये।
यः शिष्टस्तं भजेच्छशवद्ध्यायते सततं सदा॥७७॥

महति प्रलये ब्रह्मन्ब्रह्माण्डौघे जलप्लुते। न तत्र नाशो भक्तानां सर्वेषां च भविष्यति॥७८॥

श्रीहरि अपना गुण वर्णन, नामश्रवण सुनकर तृप्त होने के निमित्त भक्तों सहित छाया के साथ नित्य भ्रमण करते रहते हैं। श्रीहरि की प्रियतमा राधा तो उनकी प्राणाधिका प्रियतमा हैं। उनसे बढ़कर कोई प्रिय है ही नहीं, तथापि यदि राधा भी भक्तों के प्रति द्वेष करती हैं, तब प्रभु तत्क्षण उनका भी परित्याग कर देते हैं। सभी वर्णों में से हरि को ब्राह्मण अपने शरीर से भी अधिक प्रिय मानते हैं, तथापि जो शिष्ट व्यक्ति निरन्तर उनका भजन तथा ध्यान करते हैं, वे ही उनको प्रिय हैं। हे ब्रह्मन्! महाप्रलय में यह ब्रह्माण्ड जलप्लावित होने पर भी उसमें कृष्ण भक्तों का कदापि नाश नहीं होता।।७४-७८।।

भज ब्राह्मण गोविन्दं स्मर तस्य पदाम्बुजम्।
सर्वापदो विनश्यन्ति श्रीहरेः स्मरणादपि॥७९॥
व्रज शीघ्रं च वैकुण्ठे वैकुण्ठेः शरणं तव।
दास्यत्येवाभयं तुभ्यं करुणासागरो विभुः॥८०॥

हे ब्राह्मण! गोविन्द का भजन करो। ब्राह्मणों के चरण-कमल का स्मरण करो। हरि का स्मरण करने से सभी आपत्ति का नाश हो जाता है। तुम शीघ्र वैकुण्ठ जाओ। वैकुण्ठ में ही तुमको शरण मिलेगी। करुणासागर प्रभु तुमको अभयदान देंगे।।७९-८०।।

एतस्मिन्नन्तरे व्याप्तं कैलासं चक्रतेजसा। यथा च सूर्यकिरणैः सुप्रदीप्तं महीतलम्॥८१॥

दग्धा ज्वालाकरालैश्च सर्वे कैलासवासिनः।
त्राहि त्राहीत्येवमुक्त्वा शङ्करं शरणं ययुः॥८२॥
दृष्ट्वा चक्रं दुर्विषहं शङ्करः करुणानिधिः।
पार्वत्या सह सम्प्रीत्या ब्राह्मणायाऽऽशिषं ददौ॥८३॥
तेजः सत्यं तपः सत्यं यदि चेच्चिरसंचितम्।
कृतापराधो भीतश्च द्विजो भवतु विज्वरः॥८४॥

इसी समय जिस प्रकार सूर्यकिरण से महीतल दीप्त होता है, उसी प्रकार सभी कैलासवासी

लोग चक्र की ज्वाला से दग्ध होने लगे। वे चीत्कार करने लगे रक्षा करो, रक्षा करो। यह कहते वे शंकर की शरण में गये। करुणानिधि शंकर ने उस दुःसह चक्र को देखकर पार्वती सहित उन ब्राह्मण को प्रीति के साथ आशीर्वाद प्रदान करके कहा–"हमारा चिरसंचित तेज तथा तप यदि सत्य हो, तब यह अपराधी भयभीत ब्राह्मण विपदा रहित हो जाये।"।।८१-८४।।

पार्वत्युवाच

यत्प्रभोमम पुण्येषु ब्राह्मणः शरणागतः।
ममाऽऽशिषा महाभीत्या शीघ्रं भवतु विज्वरः॥८५॥

इत्येवमुक्त्वा कृपया विरराम शिवा शिवः। मुनिः प्रणम्य देवेशं वैकुण्ठं शरणं ययौ॥८६॥
गत्वा वैकुण्ठभवनं मनोयायी मुनीश्वरः। दृष्ट्वा सुदर्शनं पश्चाद्विवेशान्तः पुरं हरेः॥८७॥
ददर्श श्रीहरिं विप्रो रत्नसिंहासनस्थितम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम्॥८८॥

श्यामं चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम्।
रत्नालङ्कारशोभाढ्यं रत्नमालाविभूषितम्॥८९॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। सद्रत्नसाररचितकिरीटोज्ज्वलशेखरम्॥९०॥
पार्षदप्रवरेन्द्रैश्च सेवितं श्वेतचामरैः। पद्मासेवितपादाब्जं सरस्वत्या स्तुतं पुरः॥९१॥

पार्वती कहती हैं–"यह ब्राह्मण मेरे स्वामी के पुण्यकर्म तथा पुण्यफल से हमारा शरणागत हो गया है, अतः मेरे आशीर्वाद से यह महाभयभीत व्याकुल ब्राह्मण विपदा से मुक्त हो जाये।" यह कहकर पार्वती मौन हो गयीं। तत्पश्चात् मुनि ने देवेश को प्रणाम किया तथा आत्मरक्षार्थ वैकुण्ठ चले गये। पीछे-पीछे आते सुदर्शन को देखकर श्रीहरि के वैकुण्ठपुर में प्रवेश करके दुर्वासा देखते हैं कि श्रीहरि रत्नसिंहासनस्थ हैं। उनके हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म शोभित हैं। उन्होंने पीतवस्त्र धारण किया था। वे श्यामसुन्दर चतुर्भुज, शान्तमूर्ति, कमलाकान्त, मनोहर श्रेष्ठ अलंकारधारी, रत्नमाला तथा वनमालाभूषित थे। उनका मुखमण्डल मन्दमुस्कान से प्रसन्न था। वे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले थे। उनका मस्तक विचित्र रत्नसार निर्मित उज्वल मुकुट से शोभित था। वे श्वेतचामरधारी उत्तम पार्षदों द्वारा सेवित हो रहे थे। उनके चरणों की सेवा लक्ष्मी कर रहीं थीं। सरस्वती उनकी स्तुति कर रही थीं।।८५-९१।।

सुनन्दनन्दकुमुदप्रचण्डादिभिरावृतम्। गुणानुवादं गायन्तं तन्त्रैः[१] पश्यन्तमीप्सितम्॥९२॥
एवंभूतं प्रभुं दृष्ट्वा दण्डवत्प्रणमाम च[२]। तुष्टाव सामवेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम्॥९३॥

सुनन्द, नन्द, कुमुद, प्रचण्डादि विष्णुगण उनको घेर कर खड़े थे। वे वाद्यों से प्रभु का

---

१. क. यन्त्रैः।
२. क. तम्।

गुणानुवाद कर रहे थे। सभी भक्त प्रभु की ओर देख रहे थे। ऐसे प्रभु को देखकर दुर्वासा ने उनको दण्डवत् प्रणाम कर दिया। वे अब सामवेदोक्त स्तोत्र से परमेश्वर की स्तुति करने लगे–॥९२-९३॥

दुर्वासा उवाच

त्राहि मां कमलाकान्त त्राहि मां करुणानिधे।
दीनबन्धोऽतिदीनेश करुणासागर प्रभो॥९४॥

दुर्वासा कहते हैं–हे कमलाकान्त! करुणानिधि! मेरी रक्षा करिये। आप दीनबन्धु, दीनों के ईश्वर, करुणावतार प्रभु हैं॥९४॥

वेदवेदाङ्गसंस्त्रष्टुर्विधातुश्च स्वयं विधिः। मृत्योर्मृत्युः कालकाल त्राहि मां सङ्कटार्णवे॥९५॥
संहारकर्तुः संहारः सर्वेशः सर्वकारणः। महाविष्णुतरोर्बीज रक्ष मां भवसागरे॥९६॥
शरणागतशोकार्तभयत्राणपरायण। भगवन्नव मां भीतं नारायण नमोऽस्तु ते॥९७॥

आप वेद-वेदांग के स्रष्टा, विधाता के विधाता हैं। आप मृत्यु की मृत्यु, काल के काल हैं। इस संकटरूपी समुद्र से मेरी रक्षा करें। आप संहारकर्त्ता के भी संहारक, सर्वेश, सर्वकारण, महाविष्णुरूपी वृक्ष के बीज (कारण) हैं। कृपया भवसागर से मेरी रक्षा करिये। आप शोकार्त्त, शरणागत का भय से त्राण करने में परायण हैं। हे नारायण! मुझ भयभीत की रक्षा करिये। आपको प्रणाम!॥९५-९७॥

वेदेष्वाद्यं च यद्वस्तु वेदाः स्तोतुं न च क्षमाः।
सरस्वती जडीभूता किं स्तुवन्ति विपश्चितः॥९८॥
शेषः सहस्त्रवक्त्रेण यं स्तोतुं जडतां व्रजेत्। पञ्चवक्त्रो जडीभूतो जडीभूतश्चतुर्मुखः॥९९॥
श्रुतयः स्मृतिकर्तारो वाणी चेत्स्तोतुमक्षमा।
कोऽहं विप्रश्च वेदज्ञः शिष्यः किं स्तौमि मानद॥१००॥
मनूनां च महेन्द्राणामष्टाविंशतिमे गते। दिवानिशं यस्य विधेरष्टोत्तरशतायुषः॥१०१॥
तस्य पातो भवेद्यस्य चक्षुरुन्मीलनेन च।
तमनिर्वचनीयं च किं स्तौमि पाहि मां प्रभो॥१०२॥

जो वेद के आदिभूत हैं, जिनका स्तव करने में सहस्रमुख वाले अनन्तदेव भी जड़ हो जाते हैं, चतुरानन, पंचानन, श्रुति-श्रुतिकर्त्ता-सरस्वती भी जड़ीभूत होकर जिनके स्तव करने में असमर्थ हो जाते हैं, वेदज्ञ द्विज भी जिनका स्तव नहीं कर पाते, हे मानद! मैं उन वेदज्ञों का शिष्य आपका स्तव कैसे कर सकूंगा? मुझमें ऐसी क्या योग्यता? २८ मनु तथा इन्द्र की आयु का समापन हो जाने पर जिनका एक अहोरात्र (दिन-रात) पूर्ण होता है, वे विधाता ऐसे वर्ष परिमाण से १०८ वर्ष जीवित रहते हैं। यह आपका एक पल है, उसमें ब्रह्मा का १०८ वर्ष पूर्ण हो जाता है। ऐसे अनिर्वाच्य प्रभु की स्तुति कैसे कर सकता हूं! हे प्रभो! कृपया रक्षा करें॥९७-१०२॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा पपात चरणाम्बुजे। नयनाम्बुजनीरेण सिषेच भयविह्वलः॥१०३॥
दुर्वाससा कृतं स्तोत्रं हरेश्च परमात्मनः। पुण्यदं सामवेदोक्तं जगन्मङ्गलनामकम्॥१०४॥
यः पठेत्सङ्कटग्रस्तो भक्तियुक्तश्च संयतः। नारायणस्तं कृपया शीघ्रमागत्य रक्षति॥१०५॥

यह स्तवन करके दुर्वासा प्रभु नारायण के चरणों पर गिर पड़े। वे भयविह्वल होकर अपने अश्रुजल से नारायण के चरणद्वय का सिंचन करने लगे। यह हरि परमात्मा का दुर्वासा कृत स्तोत्र सामवेदोक्त तथा जगत् का मङ्गल करने वाला पुण्यदायक है। जो संकटग्रस्त भक्तियुक्त होकर संयत मन से इसका पाठ करता है, नारायण शीघ्र आकर उसकी कृपा पूर्वक रक्षा करते हैं।।१०३-१०५।।

राजद्वारे श्मशाने च कारागारे भयाकुले। शत्रुगस्ते दस्युभीतौ हिंस्त्रजन्तुसमन्विते॥१०६॥
वेष्टिते राजसैन्येन मग्ने पोते महार्णवे। स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशय॥१०७॥

राजद्वार, श्मशान, कारागार में, भय उपस्थित होने पर, दस्युभय के अवसर पर, हिंस्त्र जंतुगण का आतंक होने पर, राजसैन्य से घिर जाने पर, महासमुद्र में पोत जलमग्न होने पर इस स्तोत्र का स्मरण करते ही मानव संकटमुक्त हो जाता है। यह निःसंशय है।।१०६-१०७।।

नारायण उवाच

मुनेश्च स्तवनं श्रुत्वा भगवान्भक्तवत्सलः। प्रहस्योवाच मधुरं पीयूषवृष्टिवन्मुदा॥१०८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–उस समय भक्तवत्सल प्रभु हरि दुर्वासा का स्तोत्र सुनकर हंस पड़े। वे मधुर अमृत वर्षा जैसे मधुर स्वर में कहने लगे–।।१०८।।

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते भविष्यति वरेण मे।
किं तु मे वचनं नित्यं शृणु सत्यं सुखावहम्॥१०९॥
अन्येषां च भवेज्ज्ञानं श्रुत्वा शास्त्रं सतां मुखात्।
स्वमूर्तिमन्ति शास्त्राणि भवे सन्तश्चरन्ति हि॥११०॥
कर्म वेदविरुद्धं च सर्वेषामतिगर्हितम्।
करोति विद्धांश्चेज्ज्ञात्वा स च जीवन्तमृताधिकः॥१११॥
पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु ब्राह्मण। वैष्णवानां च महिमा श्रुतः सर्वैश्च सर्वतः॥११२॥
अहं प्राणा वैष्णवानां मम प्राणाश्च वैष्णवाः।
तानेव द्वेष्टि यो मूढो ममासूनां च हिंसकः॥११३॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे मुनि! उठो! मेरे वर से तुम्हारा कल्याण निश्चित होकर रहेगा। साधुओं के रूप में शास्त्र मूर्त्तरूप जैसे विचरते हैं। साधुगण के द्वारा श्रुत शास्त्र से अन्य लोग ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, तथापि यदि विद्वान् वेदविरुद्ध तथा गर्हित कर्म करने लगे, तब वह जीवन्मृत ही है। हे ब्राह्मण!

पुराण, इतिहास, वेद में वैष्णवों की महिमा सर्वत्र सुनी जाती है। मैं वैष्णवगण का प्राण हूं। वैष्णव मेरे प्राण हैं। उनसे जो द्वेष करता है, वह तो मेरे प्राणों का हिंसक है!।।१०९-११३।।

पुत्रान्पौत्रान्कलत्रांश्च राज्यं लक्ष्मीं विहाय च।
ध्यायन्ते सततं ये मां को मे तेभ्यः परः प्रियः॥११४॥
परा भक्तान्न मे प्राणा न च लक्ष्मीर्न शङ्करः।
न भारती न च ब्रह्मा न दुर्गा न गणेश्वरः॥११५॥
न ब्राह्मणा न वेदाश्च न वेदजननी परा। न गोपी न च गोपाला न राधा प्राणतः प्रिया॥११६॥

पुत्र, पौत्र, पत्नी, राज्य, धन को छोड़कर जो सतत् मेरे ध्यान में तत्पर रहता है, उससे अधिक कौन मुझे प्रिय हो सकेगा? मेरे प्राण भी भक्त से श्रेष्ठ नहीं हैं। भक्तों से बढ़कर लक्ष्मी, शंकर, सरस्वती, ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश्वर, ब्राह्मण, वेद, वेदजननी सावित्री, गोपियां, गोपाल तक मुझे प्रिय नहीं हैं। प्राणाधिक प्रिया राधा भी भक्त से अधिक प्रिय नहीं हैं।।११४-११६।।

इत्येवं कथितं सर्वं सत्यं सारं च वास्तवम्।
न प्रशंसापरं तेषां ते च प्राणाधिकाः प्रियाः॥११७॥
मां द्विषन्ति च ये मूढा ज्ञानहीनाश्च वञ्चिताः।
आत्मानं ये न जानन्ति ते यान्ति निरयं चिरम्॥११८॥

एवंविध मैंने सब सत्य कह दिया। यही वास्तव में सारतत्त्व है। मैंने यह कोई अतिरंजित बात भक्तों के सम्बन्ध में नहीं कहा। वे तो मुझे प्राणाधिक प्रिय हैं। जो मुझसे द्वेष करते हैं, वे मूर्ख, ज्ञानहीन एवं परमात्मा को जानने से वंचित हैं। वे चिरकाल तक नरक निवास करते हैं।।११७-११८।।

ये द्विषन्ति च मद्भक्तान्प्राणानामधिकं प्रियान्।
तेषां शास्ता त्वहं तूर्णं परत्र निरयं चिरम्॥११९॥
प्रभावोऽहं च सर्वेषामीश्वरः परिपालकः।
तथाऽपि[1] न स्वतन्त्रोऽहं भक्ताधीनो दिवानिशम्॥१२०॥
गोलोके वाऽथ वैकुण्ठे द्विभुजं च चतुर्भुजम्।
रूपमात्रमिदं शश्वत्प्राणा मे भक्तसन्निधौ॥१२१॥
यदुक्तं भक्तदत्तं च भक्षणीयं च तन्मम। अभक्ष्यं द्रव्यमन्येन दत्तं चेदमृतोपमम्॥१२२॥
अम्बरीषं नृपश्रेष्ठं निरीहं तमहिंसकम्। कथं हंसि दयाशीलं सर्वप्राणिहिते रतम्॥१२३॥
दयां कुर्वन्ति ये सन्तः सततं सर्वजन्तुषु।
तान्द्विषन्ति च ये मूढास्तेषां हन्ताऽहमेव च॥१२४॥

१. ख. न च व्यापी।

भक्तानां हिंसकं शत्रुमहं रक्षितुमक्षमः। अम्बरीषालयं गच्छ स त्वां रक्षितुमीश्वरः॥१२५॥

जो मेरे प्राणाधिक प्रिय भक्त से द्वेष करते हैं, मैं उनको यथाशीघ्र दण्ड प्रदान करता हूं। वे दीर्घकाल तक नरक में क्लेशभोग करते हैं। हे द्विज! मैं सबका स्वामी, पालनकर्त्ता, ईश्वर होकर भी स्वाधीन नहीं हूं। मैं सर्वदा भक्तों के अधीन रहता हूं। मैं गोलोक में द्विभुज रूप से तथा वैकुण्ठ में चतुर्भुज रूप से रहता हूं, तथापि इन दोनों लोक में मात्र मेरा रूप ही रहता है। मेरे प्राण तो सतत् भक्तों की सन्निधि (निकटता में) में रहते हैं। मेरा भोज्य वही है, जो कुछ भक्त मुझे प्रदान करें। यदि अभक्तगण मुझे अमृत वस्तु भी प्रदान करे, वह खाना मेरे लिये वर्जित है। राजा अम्बरीष निरीह, अहिंसक, दयाशील, सभी प्राणीगण के हित में रत रहते हैं। वे सभी प्राणी पर दयालु सन्त हैं। जो मूर्ख सन्तों से द्वेष करते हैं, उन मूढों का हनन मैं करता हूं। मैं कदापि भक्तों के शत्रु तथा उनकी हिंसा करने वालों की रक्षा नहीं कर सकता। तुम अम्बरीष के यहां जाओ। वे ही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं।।११९-१२५।।

नारायण उवाच

इदं वाक्यं च तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणो भयविह्वलः।
विषण्णमानसस्तस्थौ स्मरन्कृष्ण पदाम्बुजम्॥१२६॥

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भवान्या सह शङ्करः। धर्मश्चन्द्रादयो देवा आजग्मुर्मुनिपुङ्गवाः॥१२७॥
प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे परमात्मानमीश्वरम्। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गा भक्तिनम्रात्मकंधरा॥१२८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–ब्राह्मण दुर्वासा नारायण का ऐसा कथन सुनकर भयग्रस्त हो गये। वे खिन्न मन से श्रीकृष्ण के चरणकमलों का स्मरण करते वहीं स्थित हो गये। तभी वहां ब्रह्मा, शिव-पार्वती, धर्म, चन्द्रादि देवता तथा अनेक श्रेष्ठ मुनिगण आ गये। वे सभी रोमांचित होकर विनय एवं भक्ति के साथ नतशिर होकर परमात्मा ईश्वर को प्रणाम करके वहीं उनकी स्तुति करने लगे।।१२६-१२८।।

ब्रह्मोवाच

स्वात्मस्वरूप निर्लिप्त भक्तानुग्रहकारक। भक्तापराधजनकं रक्ष ब्राह्मणपुङ्गवम्॥१२९॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे प्रभो! आप परमात्मास्वरूप निर्लिप्त तथा भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु मूर्त्तिमान हैं। अतः भक्त का अपराध करने वाले इन ब्राह्मण प्रवर की रक्षा करें।।१२९।।

महादेव उवाच

दीनबन्धो जगन्नाथ नायं विप्रो जगद्बहिः।
कृतापराधं दीनं च पाहीमं शरणागतम्॥१३०॥

महादेव कहते हैं–आप दीनबन्धु, जगन्नाथ हैं। यह ब्राह्मण संसार से बाहर का नहीं है। इस अपराधी दीन शरणागत की रक्षा करिये।।१३०।।

पार्वत्युवाच

भक्त एवाम्बरीषस्ते न द्विजा न सुरा वयम्।
सर्वेषामीश्वरस्त्वं च रक्ष विप्रं कृतागसम्॥१३१॥

पार्वती कहती हैं–अम्बरीष राजा आपके यथार्थ भक्त हैं। ऐसे भक्त सभी ब्राह्मण, देवता तथा हम सभी नहीं हैं। आप सर्वेश्वर इस अपराधी ब्राह्मण की रक्षा करें॥१३१॥

धर्म उवाच

सर्वेषां जनकस्त्वं च पाता दण्डकृदीश्वरः।
शिशुहेतोः शिशुं हन्ति पितेत्येवं कुतः प्रभो॥१३२॥

धर्मदेव कहते हैं–आप सभी के पिता, पालनकर्त्ता, दण्डप्रदाता ईश्वर हैं, तथापि पिता एक शिशु हेतु अन्य शिशु की यदि हत्या करता है, हे प्रभो! क्या यह उचित है?॥१३२॥

इन्द्र उवाच

कृपया समता शश्वत्सर्वेषु जीविषु प्रभो। अपराधफलं भूतमधुनां पातुमर्हसि॥१३३॥

इन्द्रदेव कहते हैं–हे प्रभो! आप सभी जीवों पर क्षमता का भाव कृपा पूर्वक रखते हैं। यह ब्राह्मण अपराध का फल प्राप्त कर चुके हैं। इनकी रक्षा करिये॥१३३॥

रुद्र उवाच

शान्तिं कर्तुं समुचितमुचितं साम्प्रतं कुरु। कृतकुण्ठस्य मूढस्य पालनं कर्तुमर्हसि॥१३४॥

रुद्रदेव कहते हैं–आप इसे क्षमा प्रदानार्थ जो कुछ करने वाले हैं, वह उचित ही होगा। यह मूढ़ कुण्ठित है, इसका पालन करिये॥१३४॥

दिक्पाल उवाच

कृतापराधं विप्रं च च्छेत्तुमर्हसि न श्रुतौ। अपराधशमं[1] कृत्वा सदा पाति सदीश्वरः॥१३५॥

दिक्पालगण कहते हैं–ऐसा वेद में कहीं नहीं कहा गया कि अपराधी विप्र को आप खण्ड-खण्ड करें! आप सदा ईश्वर हैं। अपराध का शमन करके आप सभी का पालन करते हैं॥१३५॥

ग्रहा ऊचुः

यो द्वेष्टि वैष्णवं मूढस्तं रुष्टाः सर्वदेवताः।
पीडां कुर्मो वयं शश्वत्पश्चात्त्वं पातुमर्हसि॥१३६॥

ग्रहगण कहते हैं–उस मूढ़ के प्रति सभी देवता कुपित हो जाते हैं जो वैष्णव द्वेषी हैं। हम लोग उसे सदा पीड़ा प्रदान करते हैं। तदनन्तर आप उसे बचाते हैं॥१३६॥

१. क. ०फलं।

मुनय ऊचुः

नाथ विप्रे पराभूते सर्वे जीवन्मृता वयम्।
दण्डं विधातुमेकस्य भवेल्लज्जा स्वजातिषु॥१३७॥

मुनिगण कहते हैं—हे नाथ! इस विप्र के पराजित होने पर हम सभी जीवन्मृतवत् हो जायेंगे। यदि स्वजाति में एक भी दण्डित होता है, तब यह पूरी जाति के लिये लज्जा का विषय जो है॥१३७॥

अत्रिरुवाच

त्वयैव दत्तः पुत्रो मे क्रोधी त्वत्सेवकः सदा।
न कं बिभेति त्रैलोक्ये तेजस्वी तेजसा तव॥१३८॥

महर्षि अत्रि कहते हैं—आप द्वारा प्रदत्त मेरा यह पुत्र दुर्वासा क्रोधी होकर भी आपका सतत् सेवक है। यह आपके तेज से तेजस्वी बना है। यह त्रैलोक्य में कहीं भय नहीं करता!॥१३८॥

लक्ष्मीरुवाच

क्षमापराधं भगवन् ब्राह्मणं शरणागतम्।
स्तुवन्ति देवविप्राश्च न विप्रं हन्तुमर्हसि॥१३९॥

श्रीलक्ष्मी कहती हैं—हे प्रभो! शरणागत ब्राह्मण का अपराध क्षमा करें। सभी देवता-ब्राह्मणगण आपकी स्तुति में लगे हैं। आप विप्रवध न करें॥१३९॥

सरस्वत्युवाच

बोधयिष्यामि देवानां जनकं कामदं श्रुतिम्।
भगवन्स्वामी सर्वेषां सर्वांश्च पातुमर्हसि॥१४०॥

सरस्वती कहती हैं—हे प्रभो! आप देवगण के जन्मदाता तथा काम प्रदायक हैं। यह श्रुतिवचन मैं कहूंगी। आप सबके भगवान् तथा स्वामी हैं। आप सबकी रक्षा करें॥१४०॥

पार्षदा ऊचुः

भवतः स्मृतिमात्रेण सर्वेषां सर्वमङ्गलम्। भवत्सर्वापदो यान्ति पाहीमं शरणागतम्॥१४१॥

विष्णु पार्षदगण कहते हैं—हे देव! आपके स्मरण मात्र से सभी प्रकार का मङ्गल सबको प्राप्त होता है। उसकी सभी आपदा नष्ट हो जाती हैं, जो आपका स्मरण करता है। कृपया शरणागत की रक्षा करिये॥१४१॥

नर्तका ऊचुः

दारिद्र्यभञ्जन यं भिक्षुकास्तव संततम्।
भिक्षां नः साम्प्रतं देहि परित्राणं द्विजस्य च॥१४२॥

नर्तकगण कहते हैं–आप सर्वदा दरिद्रता नाशक हैं। हम सदा आपके भिक्षुक हैं। आप यह भिक्षा दीजिये कि ब्राह्मण की रक्षा हो जाये।।१४२।।

एतेषां स्तवनं श्रुत्वा प्रभुः शरणवत्सलः। प्रहस्योवाच वचनं सर्वतोषकारणम्॥१४३॥

शरणागत वत्सल प्रभु ने सबकी स्तुति सुनकर हंसते हुये सबके लिये सन्तोषदायक वचन कहा–।।१४३।।

श्रीभगवानुवाच

सर्वे शृणुत मद्वाक्यं नीतियुक्तं सुखावहम्।
विप्ररक्षां करिष्यामि युष्माकमाज्ञया ध्रुवम्॥१४४॥
किंत्वयं यातु वैकुण्ठादम्बरीषालयं पुनः। करोति पारणं तत्र राज्ञः सुप्रीतये मुनिः॥१४५॥
विप्रस्तस्यातिथिर्भूत्वा निर्दोष सप्तुमुद्यतः।
सुदर्शनं तु तं रक्ष्यं ब्राह्मणं हन्तुमुद्यतम्॥१४६॥
पूर्णं वर्षभयं भीतो भ्रमत्येव भुवं मुदा।
उपवासी स राजेन्द्रः सस्त्रीकश्च शुचाऽन्वितः॥१४७॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे देवताओ! तुम सभी लोग मेरा नीतियुक्त वाक्य श्रवण करो। तुम लोगों की प्रार्थना के अनुसार मैं निश्चय ब्राह्मण की रक्षा करूंगा, तथापि यह द्विज पुनः वैकुण्ठ से अम्बरीष के यहां जाकर राजा की प्रसन्नता हेतु वहां पारण करे। यह दुर्वासा अम्बरीष राजा का अतिथि होकर निरपराध राजा को शाप देना चाहता था। तब सुदर्शन राजा की रक्षा के लिये इस मुनि के विनाशार्थ उद्यत हो गया था। इससे भयभीत होकर यह मुनि तब से एक वर्ष तक नाना स्थान पर भ्रमण करने लगा। तभी से राजा भी सपत्नीक शोक सन्तप्त होकर उपवासी है।।१४४-१४७।।

ततोऽहमुपवासी च भक्तोपवासकारणात्।
स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा न भुङ्क्ते जननी यथा॥१४८॥
ममाऽऽशिषा मुनिश्रेष्ठः सद्यो भवतु विज्वरः।
पथि तत्रास्य हिंसां च मच्चक्रं न करिष्यति॥१४९॥
अहमेवाद्य निश्चिन्तः सुखं भोक्ष्यामि निश्चितम्।
भक्तदत्तं च यद्वस्तु प्रीत्या कृत्वा सुधोपमम्॥१५०॥
लक्ष्मीदत्तं च यद्द्रव्यं न चाहं भोक्तुमीश्वरः।
विना भक्तप्रदानेन न च सा दातुमीश्वरी॥१५१॥

भक्त उपवास कर रहा है, अतः तभी से मैं भी उपवास कर रहा हूं। जब माता देखती हैं कि उसका दुधमुहां बच्चा उपवास कर रहा है, तब वह भी भोजन नहीं करती। वही मेरी स्थिति है। मेरे

आशीर्वाद से यह मुनिश्रेष्ठ शीघ्र विपत्ति रहित हो जायेगा। यहां से अम्बरीष के यहां जाने में रास्ते में दुर्वासा का विनाश सुदर्शन चक्र नहीं करेगा। तब मैं भी निश्चिन्त मन से सुखभोग कर सकूंगा। मैं भक्त प्रदत्त वस्तु का भोजन अमृत मानकर करता हूं। अन्यथा मैं तो लक्ष्मी प्रदत्त वस्तु भक्षण में भी समर्थ नहीं हूं। लक्ष्मी भी यदि पहले भक्त को प्रदत्त न करें, तब मुझे भी कोई वस्तु देने का सामर्थ्य नहीं रखती।।१४८-१५१।।

हे मुनीन्द्र महाप्राज्ञ गच्छ वत्स नृपालयम्।
सर्वे देवाश्च देव्यश्च गच्छन्तु मुनयो गृहम्।।१५२।।

हे मुनीन्द्र! महापंडित दुर्वासा! वत्स! तुम राजगृह गमन करो। समस्त देवता, मुनि स्वगृह जायें।।१५२।।

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णं ययौ स्वान्तःपुरं मुदा।
ययुः सर्वे मुदा युक्ताः प्रणम्य जगदीश्वरम्।।१५३।।
ब्राह्मणश्च मनोयायी जगाम नृपमन्दिरम्। सुदर्शनं च तच्चक्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्।।१५४।।
उपोष्य वत्सरं राजा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः। सिंहासनस्थो ददर्श पुरतो मुनिपुङ्गवम्।।१५५।।

यह आज्ञा देकर मुदित होकर श्रीविष्णु अपने पुर में शीघ्र चले गये। अन्य सभी लोग जगदीश्वर को प्रणाम करके हर्ष पूर्वक चले गये। मन की गति से चलने वाले ब्राह्मण दुर्वासा भी अम्बरीष राजा के घर गये। उनके साथ ही कोटि सूर्यसमप्रभ चक्र भी राजा के यहां गया। संवत्सर पर्यन्त के उपवास के कारण राजा के कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो गये। जब वे सिंहासनासीन थे उन्होंने सामने आये दुर्वासा को देखा।।१५३-१५५।।

उत्थाय संभ्रमात्सद्यः प्रणम्य सादरं मुदा।
भोजयित्वा तु मिष्टान्नं ब्राह्मणं बुभुजे स्वयम्।।१५६।।
भुक्त्वा तुष्टो द्विजश्रेष्ठो युयुजे परमाशिषम्।
जगाम स्वालयं तूर्णं प्रशशंस पुनः पुनः।।१५७।।
उवाच पथि विप्रेन्द्रो मनसा विस्मयाकुलः।
माहात्म्यं दुर्लभमहो वैष्णवानामिति द्विजः।।१५८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदनामुनिमोक्षणप्रस्तावो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

—❋❋❋—

मुनि को देखकर राजा आसन से उठे तथा मुनि को प्रणाम किया। उनको राजा ने मिष्ठान्नादि भोजन प्रदान किया। मुनि के आहार ग्रहण कर लेने पर राजा ने भी आहार ग्रहण किया। दुर्वासा भोजन करके अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये तथा उन्होंने राजा को आशीर्वाद प्रदान किया। वे अम्बरीष की प्रशंसा का

गायन करते-करते अपने घर चले गये। उस समय मुनिप्रवर मन ही मन कहते जा रहे थे–"अहो! वैष्णवों का माहात्म्य कितना दुर्लभ है!"।।१५६-१५८।।

।।२५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ षड्विंशोऽध्यायः

एकादशी व्रत वर्णन

नारद उवाच

द्वादशीलङ्घने दोषः श्रुतस्त्वन्मुखतो मुने। पराभवो मुनेश्चैव नृपत्राणं हरेरहो।।१।।
अधुना श्रोतुमिच्छामि सर्वेषामीप्सितं च मे।
एकादशीव्रतस्यास्य विधानं वद निश्चितम्।।२।।
अहो श्रुतौ श्रुतं किञ्चिन्मतभेदान्न निश्चितम्।
श्रुतीनां कारणमुखाच्छ्रोतुं कौतूहलं मम।।३।।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे मुनिवर! मैंने द्वादशी लंघन के दोषों को सुना। इसमें मुनि की पराजय तथा राजा की रक्षा का वर्णन है। मैं सर्वाभीप्सित एकादशी व्रत विधान अब सुनना चाहता हूं। अहो! श्रुति में सुने गये मतभेद के कारण मैं मन में कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहा हूं। आप श्रुति के कारण हैं। आपसे यह प्रसंग सुनने के लिये अत्यन्त कुतूहल हो रहा है।।१-३।।

नारायण उवाच

एकादशीव्रतमिदं देवानामपि[1] दुर्लभम्। श्रीकृष्णप्रीतिजनकं तपःश्रेष्ठं तपस्विनाम्।।४।।
देवानां च यथा कृष्णो देवीनां प्रकृतिर्यथा।
आश्रमाणां यथा विप्रो वैष्णवानां तथा शिवः।।५।।
यथा गणेशः पूज्यानां तथा वाणी विपश्चिताम्।
शास्त्राणां च यथा वेदास्तीर्थानां जाह्नवी यथा।।६।।
तैजसानां यथा स्वर्णं प्राणिनां वैष्णवो यथा।
धनानां च यथा विद्या सङ्गिनां च यथा प्रिया।।७।।

१. क. व्रतानां दुर्लभं परम्।

प्रमथानां यथा रुद्रः श्रेयसां च यथा मतिः।
आत्मा यथेन्द्रियाणां च चञ्चलानां यथा मनः॥८॥
गुरुणां च यथा माता बन्धूनां च यथा पतिः।
बलिष्ठानां यथा दैवं कालः कलयतां यथा॥९॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनिवर! यह एकादशी व्रत सभी व्रतों में दुर्लभ है। यह श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने वाला तथा तपस्वी लोगों के लिये श्रेष्ठ तप स्वरूप भी है। जिस प्रकार देवगण में कृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार देवीगण में प्रकृति देवी श्रेष्ठ हैं तथा वैष्णवगण में शिव सर्वश्रेष्ठ हैं। पूज्यों में गणेश, पण्डितों में सरस्वती, शास्त्रों में वेद, तीर्थों में गङ्गा, तैजस् (धातु) पदार्थ में स्वर्ण, प्राणीगण में वैष्णव, धनों में विद्याधन, संगी (साथियों) में प्रियतमा को श्रेष्ठ कहा गया है। प्रमथों में रुद्र, श्रेयपदार्थों में मति, इन्द्रियों में से आत्मा, चपल वस्तुओं में मन, गुरुजनों में माता, बन्धुओं में पति, बलिष्ठों में दैव तथा कलना करने वालों में काल श्रेष्ठ कहा गया है।।४-९।।

सुशीलं चैव मित्राणां शत्रूणां रुग्यथा मुने।
यथा कीर्तिः कीर्तिमतां गृहिणां च यथा गृहम्॥१०॥
यथा सर्पो हिंसकानां दुष्टानां चैव पुंश्चली।
तेजस्विनां गहेशश्च सहिष्णुनां यथा क्षितिः॥११॥
यथाऽमृतं भक्षणानां दाहकानां यथाऽनलः।
यथा श्रीर्धनदातृणां सतीनां च यथा सती॥१२॥
प्रजेशानां यथा ब्रह्मा सरितां सागरो यथा।
यथा साम श्रुतीनां च गायत्री छन्दसां यथा॥१३॥
वृक्षाणां च यथाऽश्वत्थः पुष्पाणां तुलसी यथा।
यथा मार्गो हि मासानामृतूनां च यथा मधु॥१४॥
आदित्यानां यथा सूर्यो रुद्राणां शङ्करो यथा।
यथा भीष्मो वसूनां च वर्षाणां भारतं यथा॥१५॥

मित्रों में सुशील व्यक्ति, शत्रुओं में रोग, कीर्त्तिमान में कीर्त्ति, गृह में गृहिणी, हिंसकों में सर्प, दुष्टाओं में कुलटा, तेजस्वी लोगों में सूर्य, सहिष्णु लोगों में पृथिवी, भक्ष्य वस्तु में अमृत, दाहकों में अग्नि, धनदाताओं में लक्ष्मी, साध्वियों में सती देवी, प्रजापतियों में ब्रह्मा, नदियों में सागर, वेदों में सामवेद, छन्दों में गायत्रीच्छन्द, वृक्षों में पीपल वृक्ष, पुष्पों में तुलसी, मासों में अग्रहायण, ऋतुओं में वसन्त, आदित्यों में सूर्य, रुद्रों में शिव, वसुओं में भीष्म, वर्षों में भारत।।१०-१५।।

देवर्षीणां यथा त्वं च ब्रह्मर्षीणां यथा भृगुः।
नृपाणां च यथा रामः सिद्धानां कपिलो यथा॥१६॥

यथा सनत्कुमारश्च योगिनां ज्ञानिनां वरः। ऐरावतो गजेन्द्राणां पशूनां शरभो यथा॥१७॥

यथा हिमाद्रिः शैलानां मणिनां कौस्तुभो यथा।
सरस्वती नदीनां च यथा पुण्यस्वरूपिणी॥१८॥

गन्धर्वाणां चित्ररथो यथा श्रेष्ठश्च नारद। यथा कुबेरो यक्षाणां सुमाली रक्षसां यथा॥१९॥

यथा श्रेष्ठा च नारीणां शतरूपा वरा परा।
मनूनां च यथा श्रेष्ठः स्वयं स्वायंभुवो मनुः॥२०॥
सुन्दरीणां यथा रम्भा यथा माया च मायिनाम्।
एकादशीव्रतमिदं व्रतानां च वरं तथा॥२१॥

देवर्षियों में तुम नारद, ब्रह्मर्षियों में भृगु, राजाओं में राम, सिद्धों में कपिल मुनि, योगी तथा ज्ञानीगण में सनत्कुमार, ग़जेन्द्रों में ऐरावत, पशुओं में शरभ, पर्वतों में हिमाचल, मणियों में कौस्तुभमणि, नदियों में पुण्यस्वरूपा सरस्वती नदी, गन्धर्वों में चित्ररथ श्रेष्ठ हैं। हे नारद! यक्षों में कुबेर, राक्षसों में सुमाली, नारियों में शतरूपा श्रेष्ठ हैं। मनुओं में श्रेष्ठ हैं स्वायम्भुव मनु, सुन्दरियों में रंभा, मायावियों में प्रभु की माया, व्रतों में एकादशी व्रत श्रेष्ठ माना गया है।।१६-२१।।

कर्त्तव्यं च चतुर्णां च वर्णानां नित्यमेव च।
यतीनां वैष्णवानां च ब्राह्मणानां विशेषतः॥२२॥

सत्यं सर्वाणि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। सन्त्येवौदनमाश्रित्य श्रीकृष्णव्रतवासरे॥२३॥

भुक्त्वैतानि च पापानि यो भुङ्क्ते तत्र मन्दधीः।
इहातिपातकी सोऽपि यात्यन्ते नरकं ध्रुवम्॥२४॥
एकादशीप्रमाणानि युगसंख्याकृतानि च।
कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत्॥२५॥

यह व्रत चारों वर्णों वाले सदा करें। इसे यती, वैष्णव तथा ब्राह्मण विशेषतया करें। एकादशी की तिथि के दिन सभी पाप, ब्रह्महत्यादि पके चावल में निवास करते हैं। जो मन्दबुद्धि इस तिथि पर पक्व ओदन (भात) खाता है, वह सर्वपातकभागी होकर मरने के पश्चात् नरकगामी होता है। यह निश्चित है। वह ११ युग पर्यन्त घोरतम कुंभीपाक में रहकर तदनन्तर चाण्डाल योनि में जन्म लेता है।।२२-२५।।

गलितव्याधियुक्तश्च ततः सप्तसु जन्मसु।
पश्चान्मुक्तो भवेत्पापादित्याह कमलोद्भवः॥२६॥

इत्येवं कथितं ब्रह्मन्यो दोषस्तत्र भोजने। द्वादशीलङ्घने दोषो मयोक्तश्च श्रुतः पुरा॥२७॥
दशमीलङ्घने दोषं निबोध कथयामि ते। पुरा श्रुतो धर्मवक्त्राद्वेदसारोद्धृतोऽपि च॥२८॥

तदनन्तर वह ७ जन्मों तक गलित कुष्ठ रोगी होकर उस पातक से मुक्त होता है। यह ब्रह्मदेव

का वचन है। हे ब्रह्मन्! यह एकादशी को भोजन तथा दोष तुमसे कहा। मैंने तुमको द्वादशी लंघनजनित दोष पहले ही सुना दिया था। अब दशमीलंघन दोष मैं तुमसे कह रहा हूं, जिसे पूर्वकाल में मैंने धर्मदेव से सुना था। धर्मदेव ने इसे वेद का साररूप बतलाया था।।२६-२८।।

दशमीं यः कलामात्रां मूढोऽज्ञानेन लङ्घयेत्।
याति श्रीस्तद्गृहात्तूर्णं शापं दत्त्वा तु दारुणम्।।२९।।

इह तद्वंशहानिश्च यशोहानिर्भवेद्ध्रुवम्। अन्ते मन्वन्तरशतमन्धकूपे वसेद् द्विज।।३०।।
दशम्येकादशी वाऽपि द्वादशी यत्र वासरे। तत्र भुक्त्वा परदिने उपोष्य व्रतमाचरेत्।।३१।।

द्वादश्यां च व्रतं कृत्वा त्रयोदश्यां च पारणम्।
द्वादशीलङ्घने दोषो व्रतिनां तन्न विद्यते[१]।।३२।।

जो मूढ़ व्यक्ति कलामात्र दशमी का भी जान-बूझकर लंघन करता है, अर्थात् जो कलामात्र दशमीयुक्त एकादशी को उपवासी होता है, लक्ष्मी उसे दारुण शाप देकर उसके गृह से चली जाती हैं। उसका यश नष्ट होता है, वह अन्त में सौ वर्ष तक अन्धकूप नरक में निवास करता है। जिस दिन दशमी, एकादशी तथा द्वादशी, इन तीनों का योग हो जाता है, उस दिन भोजन करके अगले दिन उपवासी रहे। यहां द्वादशी को व्रती रहकर त्रयोदशी को पारण करने से व्रती द्वादशी लंघन दोष में लिप्त नहीं होता।।२९-३२।।

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते किञ्चिदेव सा। तत्रोपोष्या द्वितीया च परा चेद्यदि वर्धते।।३३।।

षष्टिदण्डात्मिका यत्र प्रभाते च तिथित्रयम्।
कुर्वन्ति गृहिणः पूर्वं नैव यत्यादयस्तथा।।३४।।

परत्रानशनं कृत्वा नित्यकृत्यं समाचरेत्। व्रते जागरणं सर्वं पूर्वत्रैवाऽऽचरेद्बुधः।।३५।।
तत्पूर्वदिवसे[२] नित्यं व्रतं कृत्वा परेऽहनि। एकादश्यां व्यतीतायां पारणं तु समाचरेत्।।३६।।

वैष्णवानां यतीनां च विधवानां तथैव च।
सर्वाः समा उपोष्यास्ता भिक्षूणां ब्रह्मचारिणाम्।।३७।।

शुक्लामेव तु कुर्वन्ति गृहिणो वैष्णवेतराः। न कृष्णलङ्घने दोषस्तेषां वेदेषु नारद।।३८।।

शयनीबोधिनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत्।
सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन।।३९।।
इत्येवं कथितो ब्रह्मन्निर्णयोऽयं श्रुतौ श्रुतः।
व्रतस्यास्य विधानं च निबोध कथयामि ते।।४०।।

यदि पूर्व दिन में सम्पूर्ण एकादशी हो तथा अगले दिन प्रभात काल में द्वादशी अल्पकाल तक

---

१. क. तत्र।
२. क. गृही तत्पूर्वदिवसे ब्र०।

रहे, तब एकादशी की वृद्धि के कारण इसके अगले दिन उपवासी रहे। यदि परातिथि वृद्धि के कारण ६० दण्ड की हो तथा प्रातः तीन तिथि का स्पर्श हो, तब गृहस्थ पूर्व दिन में व्रत करें, परन्तु यति आदि द्वितीय दिन उपवासी रहे तथा नित्यकर्म करें। यदि एकादशी दो दिवस हो, तब व्रत एवं समस्त जागरणादि कार्य पहली रात्रि में ही होगा। प्रथम दिन व्रत करें। द्वितीय दिन पारण करें। वैष्णव, यति, विधवा, ब्रह्मचारी, भिक्षु (संन्यासी) प्रति एकादशी को समान रूप से उपवासी रहें, तथापि वैष्णवों के अतिरिक्त जो गृहस्थ हैं, वे केवल शुक्लपक्षीय एकादशी को ही व्रती रहें। यदि वे कृष्णपक्षीय एकादशी का लंघन करते हैं, उनको कोई दोष नहीं होगा। यह वेदों में कहा गया है। यदि शयन एकादशी एवं हरिबोधिनी एकादशी के मध्यकाल में जो कृष्णा एकादशी आती है, उसमें वैष्णवों के अतिरिक्त अन्य गृहस्थ उपवास करें। वे अन्य कृष्णा एकादशी में उपवासी न रहें। हे ब्रह्मन्! यह वेदोक्त एकादशी व्रत विधि कहा। अब व्रत विधान सुनो।।३३-४०।।

कृत्वा हविष्यं पूर्वाह्णे न च भुङ्क्ते पुनर्जलम्।
एकाकी कुशशय्यानां नक्तं शयनमाचरेत्।।४१।।
ब्राह्मेण मुहूर्ते चोत्थाय प्रातः कृत्यं विधाय च।
नित्यकृत्यं विधायाथ ततः स्नानं समाचरेत्।।४२।।
व्रतोपवासं सङ्कल्प्य श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम्।
कृत्वा सन्ध्यां तर्पणं च विधायाऽऽह्निकमाचरेत्।।४३।।
नित्यपूजां दिने कृत्वा व्रतद्रव्यं समाहरेत्। कृत्वा षोडशोपचारं प्रदृष्टं विधिबोधितम्।।४४।।

व्रती व्यक्ति पूर्वाह्ण में हविष्य ग्रहण करके उस दिन पुनः जल तक पान न करे। रात्रि में एकाकी कुशशय्या पर शयन करे। अगले दिन ब्राह्ममुहूर्त्त में शय्या से उठकर प्रातःकृत्य का समापन करके नित्य कृत्य को भी सम्पन्न करके स्नान करे। व्रती को चाहिये कि तब व्रतोपवासार्थ यह सङ्कल्प करे "यह व्रत श्रीकृष्ण की प्रसन्नता हेतु कर रहा हूं।" इसके अनन्तर सन्ध्या तर्पणादि सविधि समाप्त करके उसे दैनिक पूजन करना चाहिये। इस नित्य पूजनोपरान्त दिन में ही व्रत द्रव्यों को लाये। इसमें षोडशोपचार का द्रव्य एकत्र करने का विधान है। तभी शास्त्रोक्त कार्य किया जा सकेगा।।४१-४४।।

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं पुष्पानुलेपनम्। धूपं दीपं च नैवेद्यं यज्ञसूत्रं च भूषणम्।।४५।।
गन्धं स्नायीयताम्बूले मधुपर्कं पुनर्जलम्। एतान्याहृत्य दिवसे व्रतं नक्तं समाचरेत्।।४६।।
उपविश्याऽऽसने पूतो धृत्वा धौते च वाससी।
आचम्य श्रीहरिं नत्वा[1] स्वस्तिवाचनमाचरेत्।।४७।।
आरोप्य मङ्गलघटं धान्याधारे शुभे क्षणे। फलशाखाचन्दनाक्तं वेदोक्तं मुनिभिर्मुदा।।४८।।

१६ उपचारों का वर्णन करता हूं। यथा—आसन, वस्त्र, पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, अनुलेप, धूप,

१. क. स्मृत्वा।

दीप, नैवेद्य, यज्ञोपवीत, भूषण, गन्ध, स्नानीय, ताम्बूल, मधुपर्क, आचमनीय। यह सब दिन में एकत्र करके रात में व्रत करना चाहिये। अब व्रती व्यक्ति दो धुला वस्त्र धारण करके पवित्रता के साथ आसन पर बैठे। आचमनोपरान्त श्रीहरि को नमन करके स्वस्तिवाचन करे। धान्य के ऊपर शुभ मुहूर्त में मंगलघट की स्थापना करके कलश पर आम के पत्ते तथा फलादि स्थापित करे। कलश पर चन्दन लेप करे। तत्पश्चात् मुनिगण तथा वेदों द्वारा कहे गये नियम से एवं विधान से पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।।४५-४८।।

देवषट्कं समावाह्य पृथग्ध्यानैः समाचरेत्। पूजां पञ्चोपचारैश्च प्रकुष्टैश्च विचक्षणः।।४९।।

गणेश्वरं दिनकरं वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
सम्पूज्यैतान्प्रणम्याथ व्रतं कुर्याद्धरिं स्मरन्।।५०।।

इसी घट पर पृथक्-पृथक् धान्य पुञ्ज के ऊपर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती का आवाहन करके वह विद्वान् व्रती उत्तम पञ्चोपचार से इनकी पूजा करे। इस षट्देव पूजनोपरान्त इन सबको प्रणाम करे तथा हरि स्मरण करते व्रतारंभ करे।।४९-५०।।

नाऽऽराध्य देवषट्कं च यदि कर्म समाचरेत्।
नित्यं नैमित्तिकं चापि तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।।५१।।

इत्येवं कथितं सर्वं व्रताङ्गभूतमेव च। कण्वशाखोक्तमिष्टं च व्रतं शृणु महामुने।।५२।।

यदि कोई व्रती व्यक्ति इन छह देवताओं की आराधना किये बिना नित्य-नैमित्तिक कार्य करता है, उसका यह सभी कार्य निष्फल हो जायेगा। यह मैंने सभी व्रतांग विधान कह दिया। हे महामुने! अब तुम कण्वशाखा में कहे गये अभिलषित व्रत का वर्णन श्रवण करो।।५१-५२।।

सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा कृष्णं परात्परम्।
पुष्पं च शिरसि न्यस्य पुनर्ध्यानं समाचरेत्।।५३।।
ध्यानं शृणु निगूढं च सर्वेषामपि वाञ्छितम्।
न प्रकाश्यमभक्ताय भक्तप्राणाधिकं परम्।।५४।।

नवीननीरदो[१] यद्वच्छ्यामसुन्दरविग्रहम्। शरत्पार्वणचन्द्राभाविनिन्द्यास्यमनुत्तमम्।।५५।।
शरत्सूर्योदयाब्जानां प्रभामोचनलोचनम्। स्वाङ्गसैन्दर्यशोभाभी रत्नभूषणभूषितम्।।५६।।
गोपीलोचनकोणैश्च प्रसन्नै रतिसूचकैः। शश्वन्निरीक्ष्यमाणं तत्प्राणैरिव विनिर्मितम्।।५७।।
रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम्। राधावक्त्रशरच्चन्द्रसुधापानचकोरकम्।।५८।।
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम्।।५९।।
सद्रत्नसारनिर्माणं किरीटोज्ज्वलशेखरम्। विनोदमुरलीन्यस्तहस्तं पूज्यं सुरासुरैः।।६०।।

---
१. क. ०दोद्रिक्तश्याम०।

ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मादीनां च वन्दितम्।
कारणं कारणानां यस्तमीश्वरमहं भजे॥६१॥

ध्यान–सबसे पहले परात्पर कृष्ण का सामवेदोक्त ध्यान करके वह व्रती मस्तक पर पुष्प रखे। अब पुनः यह ध्यान करना होगा। अब मैं सबके द्वारा ईप्सित निगूढ़ ध्यान का वर्णन करता हूं। सुनो। यह ध्यान भक्तों के लिये प्राण के समान है। अभक्त के समक्ष यह कदापि प्रकाश्य नहीं है। यथा–जिनकी मूर्ति नवजलधर के समान श्याम वर्ण है, मुखमण्डल तो शरत्कालीन चन्द्रमा की आभा का भी हरण कर लेने वाला है, शरत्कालीन सूर्योदय के उपरान्त खिले कमल जैसे शोभायमान नेत्रयुगल हैं, जो अपने अंगों की सुन्दरता, रूप तथा रत्नमय भूषणों से भूषित हैं, गोपियां जिनको अपनी आखों के कोर से तिरछी चितवन द्वारा निहार रही हैं मानो इनकी मूर्त्ति उनके प्राणों द्वारा विनिर्मित हो, जो रासोल्लास से उत्सुक होकर सदा रासमण्डल में अवस्थान करते हैं जो राधा के शारदीय चन्द्रमा के समान मुखमण्डल की छवि सुधा का पान करने वाले चकोर स्वरूप हैं, जिनका वक्षस्थल कौस्तुभमणि से समुज्वल है, जो पारिजात पुष्पों की माला कण्ठ में धारण करने वाले तथा मस्तक पर विशुद्ध रत्नों से बना मुकुट धारण करके शोभायमान हैं, जो मुरलीधारी हैं, इन सुरों–असुरों द्वारा पूज्य, ब्रह्मादि देवगण के लिये भी दुराराध्य ध्यान से भी असाध्य प्रभु की वन्दना ब्रह्मादि देवगण भी करते रहते हैं। ये कारणों के भी कारण हैं। मैं इन ईश्वर का भजन करता हूं।।५३-६१।।

ध्यात्वाऽनेन तमावाह्य चोपचाराणि षोडश।
दत्त्वा सम्पूज्येद्भक्त्या मन्त्रैरेभिश्च नारद॥६२॥

हे नारद! इस विधि से प्रभु श्रीकृष्ण का ध्यान एवं आवाहन करके उनकी पूजा १६ उपचारों से करे।।६२।।

आसनं स्वर्णनिर्माणं रत्नसारपरिच्छदम्। नानाचित्रविचित्राढ्यं गृह्यतां परमेश्वर॥६३॥

आसन मन्त्र–हे परमेश्वर! इन स्वर्ण निर्मित, रत्नों के सारभाग से जुड़े हुये, नाना विचित्र चित्रों से सज्जित यह आसन अर्पित है। कृपया ग्रहण करें।।६३।।

वह्निप्रक्षालितं वस्त्रं निर्मितं विश्वकर्मणा।
मूल्यानिर्वचनीयं च गृह्यतां राधिकापते॥६४॥

वस्त्रदान–हे राधिका पति! विश्वकर्मा विरचित अग्नि के समान शुद्ध बहुमूल्य वस्त्र आपको अर्पित है। कृपया ग्रहण करें।।६४।।

पादप्रक्षालनार्हं च सुवर्णपात्रसंस्थितं। सुवासितं शीतलं च गृह्यतां करुणानिधे॥६५॥

पाद्यदान–हे करुणानिधि! यह पैर धोने योग्य स्वर्णपात्रस्थ सुवासित जल आपको अर्पित है। ग्रहण करें।।६५।।

इदमर्घ्यं पवित्रं च शङ्खतोयसमन्वितम्। पुष्पदूर्वाचन्दनाक्तं गृह्यतां भक्तवत्सल॥६६॥

अर्घ्यदान–हे भक्तवत्सल! यह शङ्ख में रखा जल, पुष्प, दूर्वा, चन्दन युक्त तथा पवित्र है। यह अर्घ्य प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करिये।।६६।।

सुवासितं शुक्लपुष्पं चन्दनागुरुसंयुतम्। सद्यस्ते प्रीतिजनकं गृह्यतां सर्वकारण।।६७।।

पुष्पदान–हे सर्वजगत्कारण! आपको सर्वदा प्रीतिजनक चन्दन, अगुरुयुक्त सुवासित शुभ्रपुष्प अर्पित है। कृपया ग्रहण करिये।।६७।।

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमोशीरमुत्तमम्। सर्वेप्सितमिदं कृष्ण गृह्यतामनुलेपनम्।।६८।।

अनुलेपदान–हे कृष्ण! चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम तथा अबीर युक्त अनुलेप प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करें।।६८।।

रसो वृक्षविशेषस्य नानाद्रव्यसमन्वितः। सुगन्धियुक्तः सुखदो धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।६९।।

धूपदान–हे प्रभो! नानाद्रव्ययुक्त सुगन्धित सुखप्रद वृक्षविशेष का रसरूप धूप आपको अर्पित है। कृपया स्वीकार करिये।।६९।।

दिवानिशं सुप्रदीप्तो रत्नसारविनिर्मितः। पुनर्ध्वान्तनाशबीजं दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।७०।।

दीपदान–हे प्रभो! रत्नों के उत्तम सार से निर्मित नित्य रात-दिन दीप्त रहने वाला सुन्दर दीप प्रदान करता हूं, जो घनान्धकार को नाश करने का कारणरूप है। कृपया ग्रहण करिये।।७०।।

नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि सुरभीणि च।
चोष्यादीनि पवित्राणि स्वात्माराम प्रगृह्यताम्।।७१।।

नैवेद्यदान–हे परमात्मन्! स्वादिष्ट मधुर नाना प्रकार के पवित्र चोष्य, पेय, लेह्यादि नैवेद्य पदार्थ प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करें।।७१।।

सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तं स्वर्णतन्तुविनिर्मितम्। गृह्यतां देवदेवेश रचितं चारुकारुणा।।७२।।

यज्ञोपवीतदान–हे देवदेवेश! स्वर्णतन्तु से बनाया गया, सावित्री (गायत्री मन्त्र की) ग्रन्थियुक्त, चतुर कारीगर रचित यज्ञोपवीत प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करिये।।७२।।

अमूल्यरत्नरचितं सर्वावयवभूषणम्। त्विषा जाज्वल्यमानं च गृह्यतां नन्दनन्दन।।७३।।

आभूषणदान–हे नन्दनन्दन! अमूल्य रत्नों से रचित, तेज से जाज्वल्यमान सर्वाङ्ग हेतु आभूषण अर्पित है। कृपया ग्रहण करें।।६३।।

प्रधानो वर्णनीयश्च सर्वमङ्गलकर्मणि। प्रगृह्यतां दीनबन्धो गन्धोऽयं मङ्गलप्रदः।।७४।।

गन्धदान–हे दीनबन्धु! सभी मङ्गल कार्यों में प्रधान, वर्णनीय, सभी मंगल कर्मों हेतु निश्चित यह मङ्गलदायक गन्ध अर्पित है। कृपया ग्रहण करिये।।७४।।

धात्रीश्रीफलपत्रोत्थं विष्णुतैलं मनोहरम्।
वाञ्छितं सर्वलोकानां भगवन्प्रतिगृह्यताम्।।७५।।

तैलदान–हे प्रभो! आमलकी तथा बिल्वपत्र से निर्मित यह मनोहर विष्णुतैल प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करें।।७५।।

वाञ्छनीयं च सर्वेषां कर्पूरादिसुवासितम्।
मया निवेदितं नाथ ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्।।७६।।

ताम्बूलदान–हे नाथ! सबको ईप्सित, कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल भक्तिभाव से आपको अर्पित है। कृपया स्वीकार करें।।७६।।

सर्वेषां प्रीतिजनकं सुमिष्टं मधुरं मधु। सद्रत्नसारपात्रस्थं गोपीकान्त प्रगृह्यताम्।।७७।।

मधुदान–हे गोपीकान्त! सबके लिये प्रीतिजनक, शुद्ध, रत्नपात्र में रखा सुमिष्ट मधुर मधु आपको अर्पित करता हूं। कृपया ग्रहण करिये।।७७।।

निर्मलं जाह्नवीतोयं सुपवित्रं सुवासितम्। पुनराचमनीयं च गृह्यतां मधुसूदन।।७८।।

पुनराचमनीयदान–हे मधुसूदन! मैं सुवासित पुनराचमनीय पवित्र जाह्नवी जल प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करिये।।७८।।

इति षोडशोपचारान्दत्त्वा भक्तो मुदाऽन्वितः।
मन्त्रेणानेन पुष्पाणि[1] माल्यं दत्त्वा प्रयत्नतः।।७९।।
नानाप्रकारपुष्पैश्च ग्रथितं शुक्लतन्तुना। प्रवरं भूषणानां च माल्यं च गृह्यतां प्रभो।।८०।।
इति पुष्पाञ्जलिं दद्यान्मूलमन्त्रेण च व्रती।
कुर्यात्तत्स्तवनं भक्त्या पुटाञ्जलियुतः सुधीः।।८१।।

रत्नमालादान–भक्त आनन्द पूर्वक १६ उपचारों को अर्पित करके इस मन्त्र से रत्नमाला प्रदान करें। यथा–हे विभु! नानारूप पुष्प तथा सूक्ष्म धागे से गूंथी गयी भूषणों में श्रेष्ठ माला ग्रहण करिये।।७९-८०।।

पुष्पाञ्जलिदान–अब पुष्पाञ्जलि को व्रती व्यक्ति मूलमन्त्र से अर्पित करे। तदनन्तर भक्ति पूर्वक हाथ जोड़कर स्तुति करें।।८१।।

भक्त उवाच

हे कृष्ण राधिकानाथ करुणासागर प्रभो। संसारसागरे घोरे मामुद्धर भयानके।।८२।।
शतजन्मकृतायासादुद्विग्नस्य मम प्रभो। स्वकर्मपाशनिगडैर्बद्धस्य मोक्षणं कुरु।।८३।।
प्रणतं पादपद्मे ते पश्य मां शरणागतम्। भवपाशभयाद्भीतंपाहि त्वं शरणागतम्।।८४।।

स्तुतिगान–भक्त व्रती कहे–हे कृष्ण! राधिकानाथ! करुणासागर प्रभो! आप कृपा पूर्वक इस भयानक संसार-सागर से मेरा उद्धार करिये। हे प्रभो! मैं सैकड़ों जन्मों में कष्ट भोग-भोगकर अतीव

१. क. ०ष्पाणां मा०।

उद्विग्न हो गया हूं। मैं अपनी कर्मरूप बेड़ी में दृढ़ता पूर्वक बंध गया हूं। उससे मुझे मुक्त करिये। हे भगवान्! मैं आपकी शरण में आकर आपके चरणों में प्रणत पड़ा हूं। आप अपनी कृपा द्वारा मुझ भवपाश से भयभीत को भय रहित करिये। मैं शरण में आया हूं।।८२-८४।।

भक्तिहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च वेदतः। वस्तुमन्त्रविहीनं यत्तत्सम्पूर्णं कुरु प्रभो।।८५।।
वेदोक्तविहिताज्ञानात्स्वाङ्गहीने च कर्मणि। त्वन्नामोच्चारणेनैव सर्वं पूर्णं भवेद्धरे।।८६।।

हे देव! मेरे कर्म भक्तिहीन, क्रियाहीन, वेदविधि रहित, वस्तुहीन तथा मन्त्रहीन हैं। हे प्रभो! इसे पूर्ण करें। हे हरि! वेदोक्त विधान न जानने के कारण मेरे द्वारा किये कार्य में मेरे अज्ञान के कारण यदि कोई कर्माङ्गहीनता हो गई हो, तब आपके नामोच्चारण से ही वह कार्य पूर्ण हो जाये।।८५-८६।।

इति स्तुत्वा तं प्रणम्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम्।
महोत्सवं विधायाऽथ कुर्याज्जागरणं व्रती।।८७।।
कृत्वा व्रतोपवासं च यदि निद्रां निषेवते। पुनरेव जलं भुङ्क्ते व्रतार्धफलभाग्भवेत्।।८८।।
यत्नेन च हविष्यान्नं सकृदेव समाचरेत्। मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र श्रीकृष्णचरणं स्मरन्।।८९।।
हे अन्न प्राणिनां प्राणा ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
देहि मे विष्णुरूप त्वं व्रतोपवासयोः फलम्।।९०।।

इस प्रकार की स्तुति करके तथा श्रीहरि को प्रणाम करके, ब्राह्मण को दक्षिणा देकर अत्यन्त महान् उत्सव के साथ व्रती रात्रि जागरण करे। यदि कोई व्रतोपवास करके शयन करता है अथवा पुनः जल ग्रहण कर लेता है, तब उसे आधा व्रतफल ही मिलेगा। हे विप्रप्रवर नारद! व्रती व्यक्ति श्रीकृष्ण के चरणों का ध्यान करता हुआ इस मन्त्र द्वारा यत्नतः एक ही समय हविष्यान्न भक्षण करे। "मन्त्र यह है" हे विष्णुरूपी अन्न! तुम प्राणीगण के प्राण हो। ब्रह्मा ने पहले इसी उद्देश्य से तुम्हारा निर्माण किया था। हे विष्णुरूपी अन्न! तुम मुझको व्रत-उपवास का फल प्रदान करो।।८७-९०।।

एव यः कुरुते भक्त्या भारते व्रतमुत्तमम्।
पूर्वान्सप्त परान्सप्त स्वात्मानमुद्धरेद् ध्रुवम्।।९१।।
मातरं भ्रातरं चैव श्वश्रूं च श्वशुरं सुताम्। जामातरं तथा भृत्यमुद्धरेन्निश्चितं नरः।।९२।।

हे नारद! जो व्यक्ति भारत में भक्तिभावेन एकादशी व्रताचरण करता है, उसकी ७ पूर्व पीढ़ी तथा बाद की सात पीढ़ी, उसकी अपनी आत्मा, माता-भाई-श्वसुर-कन्या-जामाता तथा सेवक तक का अवश्यमेव उद्धार हो जाता है।।९१-९२।।

इत्येव कथितं विप्र श्रीकृष्णचरितव्रतम्। सुखदं मोक्षदं सारमपरं कथयामि ते।।९३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० एकादशीव्रतनिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

—❊❊❊—

हे नारद! विप्र! मैंने श्रीकृष्ण का सुखदायक, मोक्षप्रद, व्रत एवं चरित्र कहा। अब अन्य विषय कहता हूं। श्रवण करो।।९३।।

।।२६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

सप्तविंशोऽध्यायः

गोपकन्याकृत श्रीकृष्णस्तोत्र, गोपीगण का चीरहरण, राधिकाकृत श्रीकृष्ण स्तव, गौरीव्रतविधि, व्रतकथा पार्वती स्तोत्र तथा व्रतपूर्ण होने पर पार्वती द्वारा वर देना

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि श्रीकृष्णचरितं पुनः। गोपीनां वस्त्रहरणं वरदानं मनीषितम्।।१।।

हेमन्ते प्रथमे मासि गोपिकाः काममोहिताः।
कृत्वा हविष्यं भक्त्या च यावन्मासं सुसंयुताः।।२।।
स्नात्वा सूर्यसुतातीरे पार्वतीं बालुकामयीम्।
कृत्वाऽऽवाह्य च मन्त्रेण पूजां कुर्वन्ति नित्यशः।।३।।

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च मनोहरैः। नानाप्रकारपुष्पैश्च माल्यैर्बहुविधैरपि।।४।।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वस्त्रैर्नानाफलैर्मुने। मणिमुक्ताप्रवालैश्च वाद्यैर्नानाविधैरपि।।५।।
हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि। नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते।।६।।
मन्त्रेणानेन देवेशीं परिहारं विधाय च। ततः कृत्वा तु सङ्कल्पमपूजन्मूत्रमन्त्रतः।।७।।

मन्त्रस्तु समावेदोक्तोऽयातयामः सबीजकः।
ॐ ह्रीं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः इति।।८।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! कृष्ण चरित के अन्तर्गत् गोपीगण का वस्त्रहरण तथा उनको कृष्ण द्वारा वांछित वर देने की कथा का वर्णन करता हूं। श्रवण करो। गोपीगण ने काममोहिता होकर हेमन्त ऋतु के प्रथम महीने में व्रतारम्भ किया। वे नित्य मात्र एक बार हविष्य लेकर (खाकर) रहतीं। वे स्नान करके भक्तिभाव से यमुना तट पर बालुका द्वारा पार्वती मूर्त्ति बनाकर सविधि क्रम से

उनका आवाहन करतीं। तत्पश्चात् मनोहर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, नाना प्रकार के पुष्प, अनेक प्रकार की माला, धूप-दीप, नाना नैवेद्य, फल, उत्तम वस्त्र, मणि-मुक्ता-प्रवाल आदि प्रदान करतीं। वे गोपियां अनेक वाद्यध्वनि करते हुये इन बालुकामयी पार्वती मूर्त्ति की नित्य पूजा करने लगीं। वे कहती-"हे उत्तमव्रत पालन करने वाली! जगन्माता! आप ही सृष्टि-स्थिति-लयकारिणी हैं। आप नन्दगोप के पुत्र कृष्ण को हमें पतिरूपेण प्रदान करिये।" गोपियां सबसे पहले इसी मन्त्र से देवी से प्रार्थना करके तत्पश्चात् सङ्कल्प करके मूल मन्त्र से देवी की पूजा उन्होंने आरम्भ किया। सामवेदोक्त मूलमन्त्र यह है "ॐ ह्रीं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः"।।१-८।।

पुष्प माल्यं च नैवेद्यं धूपं दीपं तथा शुभम्।
मन्त्रेणानेन तद्भक्त्या ददुः सर्वा मुदाऽन्विताः॥९॥
प्रवालमालया भक्त्या चेमं मन्त्रं सहस्रधा।
जपं कृत्वा च स्तुत्वा च प्रणेमुः शिरसा भुवि॥१०॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वकामप्रदे शिवे। देहि मे वाञ्छितं देवि नमस्ते शङ्करप्रिये॥११॥

पुष्प, माला, नैवेद्य, धूप, दीप आदि समाग्री गोपियां मुदित होकर इसी मन्त्र से अर्पित करती थीं। तत्पश्चात् वे सभी प्रवाल की माला से इस मन्त्र का १००० जप करके और स्तुति करके धरती पर शिर टेककर देवी को प्रणाम करती। उस समय गोपियां प्रार्थना क़रतीं। "हे भगवती! आप सभी मङ्गलों का भी मङ्गल करने वाली तथा सर्वकामनाप्रदा शिवा हैं। हे देवी! हमें हमारा वांछित वर दीजिये। हे शङ्करप्रिये! हम आपको प्रणाम करती हैं!।।९-११।।

इत्युक्त्वा च नमस्कारं कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम्।
नैवेद्यानि च सर्वाणि ब्रह्मणेभ्यो ययुर्गृहम्॥१२॥

यह कहकर तथा देवी को प्रणाम करके वे सभी गोपी नैवेद्य एवं दक्षिणा ब्राह्मण को देकर गृह चली जातीं।।१२।।

नारायण उवाच

स्तवराजं शृणु मुने तुष्टुवुर्येन पार्वतीम्।
भक्त्या गोपाङ्गनाः सर्वाः सर्वाभीष्टफलप्रदाम्॥१३॥
जगत्येकार्णवे घोरे चन्द्रसूर्यविवर्जिते। अञ्जनाकारतोयेन संप्लुते च चराचरे॥१४॥
दत्तं पुरा ब्रह्मणे च हरिणा जलशायिना। तस्मै दत्त्वा सर्वमिदं निद्रां भेजे जगत्पतिः॥१५॥
नाभिपद्मे जगत्स्रष्टा मधुना कैटभेन च। पीडितः परितुष्टाव मूलप्रकृतिमीश्वरीम्॥१६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं-हे मुनिवर! ये गोपियां पार्वती की भक्ति पूर्वक जिस स्तव से प्रार्थना करती थीं, वह सर्वअभीष्टप्रद स्तवराज श्रवण करो। यथा-एकार्णव काल में समस्त जगत् जलमग्न था।

उस समय चन्द्र-सूर्य का कहीं सन्धान भी नहीं था। यह सचराचर जगत् अंजन (काजल) के समान जल से परिप्लुत हो गया था। उस स्थिति में जलशायी हरि ने यही स्तव ब्रह्मा को प्रदान किया था। तदनन्तर वे जलराशि पर शयन करने लगे। वे योगनिद्रा का आश्रय लेकर शयनरत हो गये। तदनन्तर भगवान् के नाभिकमलस्थ ब्रह्मा जब मधु-कैटभ से पीड़ित किये गये, तब उन्होंने मूलप्रकृति ईश्वरी की स्तुति इसी स्तवराज से किया।।१३-१६।।

ब्रह्मोवाच

दुर्गे शिवेऽभये माये नारायणि सनातनि। जये मे मङ्गलं देहि नमस्ते सर्वमङ्गले।।१७।।
दैत्यनाशार्थवचनो दकारः परिकीर्तितः। उकारो विघ्ननाशार्थवाचको वेदसम्मतः।।१८।।
रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्नवाचकः। भयशत्रुघ्नवचनश्चाऽऽकारः परिकीर्तितः।।१९।।

स्मृत्युक्तिस्मरणाद्यस्या एते नश्यन्ति निश्चितम्।
अतो दुर्गा हरेः शक्तिर्हरिणा परिकीर्तिता।।२०।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे अभये! आप दुर्गा, शिवा, माया, नारायणी, सनातनी, जया तथा सर्वमङ्गला हैं। आप मङ्गल प्रदान करिये। आपको प्रणाम करता हूं! हे दुर्गे! आपके नाम के 'दकार' का अर्थ दैत्य नाशक अर्थवाचक, 'उकार' विघ्ननाशवाचक है। यह वेद सम्मत अर्थ है। 'दुर्गा' शब्द का रेफ रोगनाश वाचक है। अतः जिनका यह समस्त विशेष अर्थयुक्त तथा इन वर्ण से गठित नामोच्चारण है, उसके श्रवण तथा मनन मात्र से सभी दोष नष्ट होते हैं। (दैत्यादि का भी नाश हो जाता है।) स्वयं हरि का कथन है कि यह 'दुर्गा' भगवत् शक्ति है।।१७-२०।।

विपत्तिवाचको दुर्गश्चाऽऽकारो नाशवाचकः।
दुर्गं नश्यति या नित्यं सा दुर्गा परिकीर्तिता।।२१।।

दुर्गो दैत्येन्द्रवचनोऽप्याकारो नाशवाचकः। तं ननाश पुरा तेन बुधैर्दुर्गा प्रकीर्तिता।।२२।।
शश्च कल्याणवचन इकारोत्कृष्टवाचकः। समूहवाचकश्चैव वाकारो दातुवाचकः।।२३।।
श्रेयःसङ्घोत्कृष्टदात्री शिवा तेन प्रकीर्तिता। शिवराशिर्मूर्तिमती शिवा तेन प्रकीर्तिता।।२४।।

शिवो हि मोक्षवचनश्चाऽऽकारो दातृवाचकः।
स्वयं निर्वाणदात्री या सा शिवा परिकीर्तिता।।२५।।
अभयो भयनाशोक्तश्चाऽऽकारो दातृवाचकः।
प्रददात्यभयं सद्यः साऽभया परिकीर्तिता।।२६।।
राज्यश्रीवचनो माश्च याश्च प्रापणवाचकः।
तां प्रापयति या नित्यं सा माया परिकीर्तिता।।२७।।

'दुर्ग' शब्द का अर्थ है विपत्ति। 'आ' का अर्थ है नाश करना। जो सदा विपत्ति का नाश करती

हैं, वे दुर्गा हैं। दुर्ग का अर्थ है दैत्येन्द्र! 'आ' नाश वाचक है। पूर्वकाल की बात है कि देवी ने राक्षसों का नाश किया था। तभी बुद्धिमान लोग उनको दुर्गा कहते हैं। 'श' कल्याणार्थक है। 'इकार' उत्कृष्टता बोधक है तथा समूह बोधक है। 'वा' शब्द दातृवाचक है। जो उत्कृष्ट श्रेय:प्रदा हैं, वे ही शिवा हैं। अन्य अर्थ है–जो मूर्त्तिमती मङ्गलराशि हैं, वे ही शिवा हैं। 'शिव' शब्द मोक्षवाचक है। 'आ' मातृवाचक है। जो स्वयं निर्वाण-मुक्ति प्रदातृ हैं, वे ही शिव हैं। 'अभय' शब्द भयनाश स्थिति का बोध कराता है। 'आ' दातृवाचक है। जो अभयप्रदा हैं, वे ही अभया हैं। 'मा' का अर्थ है मोक्ष। 'या' का अर्थ है प्राप्त करना। अत: जो नित्य मोक्ष प्रदान करती हैं, वे माया कही गईं। राजलक्ष्मी अर्थात्मक 'मा' है तथा प्राप्त कराना "या" है। तत्काल राजलक्ष्मी प्रदान करने के कारण ये माया है।।२१-२७।।

माश्च मोक्षार्थवचनो याश्च प्रापणवाचकः।
तां प्रापयति या नित्यं सा माया परिकीर्तिता॥२८॥

नारायणार्धाङ्गभूता तेन तुल्या च तेजसा। सदा तस्य शरीरस्था तेन नारायणी स्मृता॥२९॥

निर्गुणस्य च नित्यस्य वाचकश्च सनातनः।
सदा नित्या निर्गुणा या कीर्तिता सा सनातनी॥३०॥
जयः कल्याणवचनो याकारो दातृवाचकः।
जयं ददाति या नित्यं सा जया परिकीर्तिता॥३१॥

'मा' शब्द मोक्षवाचक है। 'या' शब्द प्राणवाचक है। जो मोक्ष को तत्काल प्राप्त कराती हैं, वे माया हैं। जो नारायण के अर्द्धांश से उत्पन्न हैं, अत: तेज में उनके ही समान हैं, सदा उनके ही शरीर में अवस्थान करती हैं, तभी उसका नाम नारायणी है। 'सनातन' शब्द निर्गुण तथा नित्य वाचक है। जो सर्वदा नित्या एवं निर्गुणा हैं, वे ही सनातनी हैं। 'जय' शब्द कल्याणार्थक है। 'आकार' दातृवाचक है। जो नित्य जय प्रदान करने की कारणभूता हैं, वे ही जया कहीं जाती हैं।।२८-३१।।

सर्वमङ्गलशब्दश्च सम्पूर्णैश्वर्यवाचकः। आकारो दातृवचनस्तद्दात्री सर्वमङ्गला॥३२॥
नामाष्टकमिदं सारं नामार्थसहसंयुतम्। नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे॥३३॥
तस्मै दत्त्वा निद्रितश्च बभूव जगतां पतिः। मधुकैटभौ दुर्दान्तौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ॥३४॥

स्तोत्रेणानेन स ब्रह्मा स्तुतिं नत्वा चकार ह।
साक्षात्स्तुता तदा दुर्गा ब्रह्मणे कवचं ददौ॥३५॥
श्रीकृष्णकवचं दिव्यं सर्वरक्षणनामकम्।
दत्त्वा तस्मै महामाया साऽन्तर्धानं चकार ह॥३६॥

'सर्वमङ्गल' शब्द ऐश्वर्य वाचक है। 'आकार' दातृवाचक है। सर्वैश्वर्यप्रदातृ होने के कारण वे सर्वमङ्गला कही गई हैं। ये सारभूत ८ नाम देवी के हैं। यह स्तोत्र उनके नामार्थ से युक्त हैं। प्रभु नारायण ने नाभिकमलासीन ब्रह्मा को यह स्तोत्र प्रदान किया तथा इसके पश्चात् जगत्पति शयन करने

लगे। तभी दुर्दान्त दैत्य मधुकैटभ ब्रह्मा का नाश करने को उद्यत हो गये। उसी समय ब्रह्मा ने नतशिर होकर इस स्तोत्र से दुर्गा का स्तवन किया। दुर्गा ने साक्षात् स्तुत होकर ब्रह्मा को कवच प्रदान किया। श्रीकृष्ण कवच दिव्य तथा सर्वरक्षण नाम वाला है। यह कवच ब्रह्मा को देकर देवी दुर्गा अन्तर्हित् हो गईं।।३२-३६।।

स्तोत्रं कुर्वन्ति निद्रां च संरक्ष्य कवचेन वै। निद्रानुग्रहतः सद्यः स्तोत्रस्यैव प्रभावतः।।३७।।

तत्राऽऽजगाम भगवान् वृषरूपी जनार्दनः।
शक्त्या च दुर्गया सार्धं शङ्करस्य जयाय च।।३८।।

सरथं शङ्करं मूर्ध्नि कृत्वा च निर्भयं ददौ। अत्यूर्ध्वं प्रापयामास जया तस्मै जयं ददौ।।३९।।

स्तोत्रस्यैव प्रभावेण सम्प्राप्य कवचं विधिः।
वरं च कवचं प्राप्य निर्भयं प्राप निश्चितम्।।४०।।

ब्रह्मा ददौ महेशाय स्तोत्रं च कवचं वरम्। त्रिपुरस्य च संग्रामे सरथे पतिते हरौ।।४१।।

ब्रह्मास्त्रं च गृहीत्वा स सनिद्रं श्रीहरिं स्मरन्।
स्तोत्रं च कवचं प्राप्य जघान त्रिपुरं हरः।।४२।।

इस कवच द्वारा निद्रा की संरक्षा करके ब्रह्मा स्तुति करने लगे। इस स्तोत्र के ही प्रभाव से तथा निद्रादेवी की कृपा से भगवान् जनार्दन वृषरूपी होकर दुर्गा के साथ ही वहां आये। शङ्कर की विजय हेतु श्रीहरि (नारायण) ने शङ्कर को रथ सहित अपने शिर से उठाकर उनको निर्भय कर दिया। (त्रिपुरासुर से युद्ध करते समय महादेव रथ सहित गिर गये थे। तब ब्रह्मा ने उनको यह स्तव तथा सर्वरक्षण कवच प्रदान किया। तब शंकर ने जयार्थ इस दिव्यकवच का पाठ तथा निद्रारूपा दुर्गा का स्तव किया। स्तव के प्रभाव से तथा निद्रा के अनुग्रह से वहां जनार्दन शङ्कर की विजय हेतु शान्तिरूपा दुर्गा के साथ वहां वृषरूप से आये। उन्होंने रथ सहित शिव को प्रभु ने अपने शिर से अधिक ऊपर तक उठा कर अभय प्रदान किया तथा जया द्वारा उनको जय लाभ हो सका)। ब्रह्मा से कवच पाकर तथा स्तोत्र के प्रभाव शङ्कर निर्भय हो गये। श्रीशिव ने निद्रित हरि का स्मरण करके ब्रह्मास्त्र उठाया तथा स्तोत्र तथा कवच मिल जाने के कारण त्रिपुर वध कर दिया।।३७-४२।।

स्तोत्रेणानेन तां दुर्गां कृत्वा गोपालिकाः स्तुतिम्।
लेभिरे श्रीहरिं कान्तं स्तोत्रस्यास्य प्रभावतः।।४३।।

गोपकन्याकृतं स्तोत्रं सर्वमङ्गलनामकम्। वाञ्छितार्थप्रदं सद्यः सर्वविघ्नविनाशनम्।।४४।।

त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं भक्तियुक्तश्च मानवः।
शैवो वा वैष्णवो वाऽपि शाक्तो दुर्गात्प्रमुच्यते।।४५।।

गोपीगण ने भी इसी स्तोत्र से दुर्गा की स्तुति करके इसी के प्रभाव द्वारा श्रीकृष्ण को पतिरूपेण प्राप्त कर लिया। गोप-कन्याओं द्वारा रचित सर्वमङ्गल नामक स्तोत्र सर्वाभीष्टदायक तथा तत्काल

विघ्ननाशक है। इसका भक्तिभाव से जो कोई त्रिसन्ध्याकाल में पाठ करता है, भले ही वह चाहे शैव हो, चाहे वैष्णव हो, अथवा शाक्त क्यों न हो, तत्काल सर्वसंकट रहित हो जाता है।।४३-४५।।

राजद्वारे श्मशाने च दावाग्नौ प्राणसङ्कटे। हिंस्रजन्तुभयग्रस्तो मग्नः पोते महार्णवे॥४६॥
शत्रुग्रस्ते च संग्रामे कारागारे विपद्गते। गुरुशापे ब्रह्मशापे बन्धुभेदे च दुस्तरे॥४७॥
स्थानभ्रष्टे धनभ्रष्टे जातिभ्रष्टे शुचाऽन्विते। पतिभेदे पुत्रभेदे खलसर्पविषान्विते॥४८॥
स्तोत्रस्मरणमात्रेण सद्यो मुच्यते निर्भयः। वाञ्छितं लभते सद्यः सर्वैश्वर्यमनुत्तमम्॥४९॥

राजद्वार, श्मशान, दावाग्नि तथा प्राणसंकटकाल में, हिंसकजन्तु का भय होने पर, महासागर में जहाज भग्न हो जाने पर, युद्ध में शत्रुग्रस्त होने पर, कारागार में, विपदा आने पर, गुरु का अभिशाप मिलने पर, ब्राह्मण का शाप मिलने पर, बन्धु का अत्यन्त वियोग होने पर, स्थानभ्रष्ट होने पर, जातिभ्रष्ट हो जाने पर, शोकग्रस्तता में, पति वियोग, पुत्रवियोग होने पर, दुष्टसर्प के विष से आक्रान्त होने पर इस स्तोत्र का स्मरण करने मात्र से व्यक्ति संकटमुक्त एवं निर्भय हो जाता है। वह वांछित सभी प्रकार के उत्तम ऐश्वर्य की तत्काल प्राप्ति कर लेता है।।४६-४९।।

इह लोके हरेर्भक्तिं दृढां च सततं स्मृतिम्।
अन्ते दास्यं च लभते पार्वत्याश्च प्रसादतः॥५०॥
अनेन स्तवराजेन तुष्टुवुर्नित्यमीश्वरीम्। प्रणेमुः परया भक्त्या यावन्मासं व्रजाङ्गनाः॥५१॥
एवं पूर्णे च मासे च समाप्तिदिवसे तथा।
स्नातुं प्रजग्मुर्गोप्यश्च वस्त्राण्याधाय तत्तटे॥५२॥
नानाविधानि द्रव्याणि रत्नमूल्यानि नारद।
पीतलोहितशुक्लानि चारूणि मिश्रितानि च॥५३॥
तीरावृतान्यसंख्यानि तैश्च तीरं सुशोभनम्। चन्दनागुरुकस्तूरीवायुना सुरभीकृतम्॥५४॥

उसे इहजन्म में हरिस्मृति तथा दृढ़ भक्ति का लाभ होता है। अन्ततः वह पार्वती की कृपा से हरिदासत्व लाभ करता है। ब्रजगोपियों ने इस स्तवराज से एक मास पर्यन्त नित्य ईश्वरी मूलप्रकृति दुर्गा का स्तव करके उनको भक्तिभाव से प्रणाम किया। हे नारद! इस प्रकार एक मास पूर्ण होने पर समाप्ति के दिन गोपियों ने वहां यमुना तट पर अपने वस्त्र को रखा तथा स्नानार्थ जल में उतरीं। हे नारद! रत्नों के विनिमय से मिलने वाले नाना प्रकार के बहुमूल्य द्रव्य, रत्न-पीत-श्वेत-मिश्रितवर्णयुक्त सुन्दर वस्त्र यमुना तट पर फैले थे। उनकी संख्या गणना नहीं हो सकती थी। इन चित्र-विचित्र वर्ण वाले वस्त्रों से यमुना तट शोभित हो रहा था। वहां गोपीगण द्वारा लाये चन्दन, अगुरु, कस्तूरी का स्पर्श करती वायु सुरभित हो रही थी!।।५०-५४।।

नैवेद्यैश्च बहुविधैः कालदेशोद्भवैः फलैः।
धूपैः प्रदीपैः सिन्दूरैः कुङ्कुमैश्च विराजितम्॥५५॥

जले क्रीडोन्मुखा गोप्यो बभुवुः कौतुकेन च।
नग्नाः क्रीडाभिरासक्ताः श्रीकृष्णार्पितमानसाः॥५६॥
दृष्ट्वा कृण्णश्च वस्त्राणि द्रव्याणि विविधानि च।
वासांस्यादाय वस्तूनि चखाद शिशुभिः सह॥५७॥
गत्वा दूरं च गोपालास्तस्थुः सर्वे मुदाऽन्विताः।
वस्त्राणि पुञ्जीकृत्याऽऽदावूचुः स्कन्धेऽतिलोलुपाः॥५८॥

नाना प्रकार के नैवेद्य, देशकालानुसार उपलब्ध फल, धूप, दीप, सिन्दूर, कुंकुम वहां थे। जल में गोपीगण कौतुक से जलक्रीड़ारत हो गयीं। उन्होंने अपना मन श्रीकृष्ण को अर्पित कर दिया था। वे सभी उस समय क्रीडासक्त तथा नग्न थीं। तभी श्रीकृष्ण ने तट पर एकत्र नाना प्रकार के द्रव्यों तथा वस्त्रों को देखा। वे वहां अपने गोपाल सखागण के साथ गये तथा सभी लोग खाद्य वस्तु का भोजन करने लगे। वे सभी बालक अत्यन्त चंचल थे। वे सभी वहां से गोपियों के वस्त्रों की गठरी बांध कर दूर जाकर आपस में वार्त्ता करने लगे। वस्त्रों की गठरी उनके कंधों पर रखी थी। वे सभी बालक लोलुप थे तथा मुदित मन से खड़े बातें करने लगे।।५५-५८।।

श्रीदामा च सुदामा च वसुदामा तथैव च। सुबलश्च सुपार्श्वश्च शुभाङ्गः सुन्दरस्तथा॥५९॥
चन्द्रभानो वीरभानुः सूर्यभांस्तथैव च। वसुभानो रत्नभानो गोपाला द्वादश स्मृताः॥६०॥
श्रीकृष्णो बलदेवश्च प्रधानाश्च चतुर्दश। गोपाहरेर्वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुने॥६१॥
वस्त्राण्यादाय ते सर्वे तस्थुरेकत्र दूरतः। शतशः पुञ्जिकास्तत्र स्थापयामासुरुन्मुखाः॥६२॥
किञ्चिद्वस्त्रं समादाय कृत्वा च पुञ्जिकां मुदा।
समारुह्य कदम्बागमुवाच गोपिका हरिः॥६३॥

श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, सुबल, सुपार्श्व, शुभांग, सुन्दर, चन्द्रभानु, वीरभानु, सूर्यभानु, वसुभानु, रत्नभानु—ये १२ गोपाल कहे गये हैं। श्रीकृष्ण एवं बलभद्र को मिलाकर १४ प्रधान गोपाल थे। हे मुनि! वैसे तो कृष्ण के साथ कोटि-कोटि-गोप थे। वे सभी उनके समवयस्य थे। वे गोपीगण के वस्त्र के साथ कुछ दूर जाकर अवस्थित हो गये। उनके पास वस्त्रों की शताधिक गठरी थीं। कतिपय गठरी लेकर मुदित मुद्रा में श्रीकृष्ण कदम्ब वृक्ष के ऊपर चढ़ गये तथा वहां से श्रीहरि गोपियों से कहने लगे-।।५९-६३।।

श्रीकृष्ण उवाच

भो भो गोपालिकाः सर्वा विनष्टा व्रतकर्मणि।
कृत्वा विधानं मद्वाक्यं श्रुत्वा क्रीडत मन्मथात्॥६४॥
सङ्कल्पिते व्रतार्हे च मासे मङ्गलकर्मणि। यूयं नग्नाः कथं तोये व्रताङ्गहानिकारिकाः॥६५॥

परिधेयानि वासांसि पुष्पमाल्यानि यानि च।
व्रतार्हाणि च वस्तूनि केन नीतानि वोऽधुना॥६६॥
व्रते तु नग्ना या स्नाति तां रुष्टो वरुणः स्वयम्।
वरुणानुचराश्चक्रुर्वासोवस्तूपनिर्हृतिम् ॥६७॥
कथं यास्यथ नग्नाश्च व्रतस्य किं भविष्यति।
व्रताराध्या कथं सा वो वस्तूनि किं न रक्षति॥६८॥
चिन्तां कुरुत तां पूज्यां तुष्टां[1] बलिभिरीश्वरीम्।
युष्माकमीदृशी देवी न शक्ता वस्तुरक्षणे॥६९॥
कथं व्रतफलं सा वो दातुं शक्ता सुरेश्वरी।
फलं प्रदातुं[2] या शक्ता सा शक्ता सर्वकर्मणि॥७०॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे गोपियो! सुनो। तुम सबने अपना व्रतकर्म नष्ट कर दिया। पहले मेरी बातों को सुनो, तब अपने विधि-विधान का करना। तदनन्तर क्रीड़ारत होना। व्रत के मास में व्रतरूपी मंगल कार्य का संकल्प लेकर तुम लोग नग्नावस्था में जल में उतरी हो ऐसा करके व्रत की अंगहानि क्यों कर रही हो? इस समय तुम्हारे वस्त्र, पुष्प, माला तथा व्रतार्ह वस्तुओं का हरण किसने कर लिया? जो नारी व्रत की दीक्षा लेकर नग्नावस्था में स्नान करती है, वरुणदेव उससे स्वयं रुष्ट हो जाते हैं। वरुण के सेवक अनुचर उस व्रती का वस्त्र हर लेते हैं। तुम लोग नग्नावस्था में अब कैसे गृह जाओगी? यदि गृह नहीं जाती तब व्रत कैसे होगा? तुम्हारे व्रत में क्या देवी ने वस्तुओं की रक्षा नहीं किया? जब तुम लोग बलि द्वारा परितुष्टा पूज्या जिन ईश्वरी का चिन्तन कर रही हो, यदि वे देवी तुम लोगों के इन द्रव्यों की रक्षा नहीं कर सकीं, तब वे किस प्रकार व्रत का सारभूत फल प्रदान कर सकेंगी? जो ईश्वरी फल प्रदान का सामर्थ्य रखती हैं, वह तो सभी कार्य में सक्षम होती हैं!॥६४-७०॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा चिन्तामापुर्वजस्त्रियः।
ददृशुर्यमुनातीरं वस्त्रवस्तुविहीनकम्॥७१॥
चक्रुर्विषादं तोये च नग्नास्ता रुरुदुर्भृशम्।
क्व गतानि च वस्त्राणि वस्तूनीत्यूचुरत्र नः॥७२॥
कृत्वा विषादं तत्रैव तमूचुर्गोपकन्यकाः।
पुटाञ्जलियुताः सर्वा भक्त्या विनयपूर्वकम्॥७३॥

श्रीकृष्ण का वचन सुनकर गोपियों ने देखा कि यमुना तट पर उनके वस्त्र तथा व्रतसामग्री अब

---

१. ख. तुष्टाव वलिरी०।
२. क. ०तुं मा शक्ता साऽशक्ता स०।

नहीं हैं। वे चिन्तित हो गईं। वे सभी जल में नग्नावस्था में खड़ी सोचने लगीं कि हमारे वस्त्र तथा व्रतसामग्री कहां गई। इस प्रकार वे सभी विषाद के साथ रुदनरत हो गईं। वे सभी गोपियां भक्ति के साथ करवद्ध होकर विनम्र स्वर में श्रीकृष्ण से कहने लगीं–।।७१-७३।।

गोपालिका ऊचुः

परिधेयानि वस्त्राणि किङ्करीणां सदीश्वर।
निबोधयाऽऽत्मानमेव स्पर्शं कर्तुं त्वमर्हसि॥७४॥
व्रतार्हाणि च वस्तूनि देवस्वानि च साम्प्रतम्। अदत्तानि नोचितानि ग्रहीतुं वेदविद्वर॥७५॥
देहि धौतानि धृत्वा च करिष्यामो व्रतं वयम्।
वसतुनाऽन्येन गोविन्द वस्तूनां भक्षणं कुरु॥७६॥

गोपीगण कहती हैं–हे प्रभो! आप हम दासीगण के सत् ईश्वर हैं। आप हमारे परिधान वस्त्रों को अपना ही जानिये। आपको हमारे वस्त्रों को स्पर्श करने का पूर्ण अधिकार है, तथापि व्रतोपयोगी अन्य वस्तु हमारे आराध्य देव का देवस्व है। अतः उन वस्तुओं को आराध्य देव को अर्पित किये बिना ग्रहण करना कदापि उचित नहीं है। हे श्रेष्ठ वेदज्ञ प्रभु! आप हमारी सभी धोती वापस कर दीजिये। उनको धारण करके ही हम व्रत कर सकेंगी। हे गोविन्द! शेष वस्तु का आप भक्षण कर लीजिये।।७४-७६।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र श्रीदामा वस्त्रपुञ्जिकाम्। दर्शयित्वा च ताः सर्वा दूरं दुद्राव तत्पुरः॥७७॥
दृष्ट्वा सवस्त्रं गोपालं सर्वासामीश्वरी परा।
सर्वा वयस्याश्चोवाच कोपयुक्ता जलप्लुता॥७८॥

गोपियां यह कह ही रही थीं, इतने में श्रीदामा ने उनको वस्त्रों की गठरी दिखाया तथा वहां से भाग गया। यह देखकर उन सबकी अधीश्वरी पराप्रकृति राधा ने वस्त्रों की गठरी के साथ उन बालकों को देखकर अत्यन्त क्रोध सहित जलस्थ आर्द्र शारीरिक स्थिति में सखियों से कहा–।।७७-७८।।

राधिकोवाच

हे सुशीले शशिकले हे चन्द्रमुखि माधवि। कदम्बपाले हे कुन्ति यमुने सर्वमङ्गले॥७९॥
हे पद्ममुखि सावित्रि पारिजाते च जाह्नवि।
सुधामुखि शुभे पद्मे हे गौरि हे स्वयंप्रभे॥८०॥
कालिके कमले दुर्गे हे सरस्वति भारति। अपूर्णे रति हे गङ्गे चाम्बिके सति सुन्दरि॥८१॥
कृष्णाप्रिये मधुमति चम्पे चन्दननन्दिनि।
यूयं सर्वाः समुत्थाय बध्वाऽऽनयत बल्लवम्॥८२॥

श्रीराधा कहती हैं–हे सुशीला! शशिकला! चन्द्रमुखी! कदम्बमाला! कुन्ती! यमुना! सर्वमंगला! सावित्री! पारिजाता! जाह्नवी! सुधामुखी! शुभे पद्मे! गौरी! स्वयंम्प्रभा! कालिका! कमला! दुर्गा!

सरस्वती! भारती! अपूर्वा! रति! गङ्गा! अम्बा! सुन्दरी! कृष्णप्रिया! मधुमति! चम्पा! चन्दननन्दिनी! तुम सब जाओ तथा इन गोपों को बांधकर लाओ।।७९-८२।।

सर्वा राधाज्ञया तूर्णं समुत्थाय जलात्क्रुधा।
प्रजग्मुर्गोपिका नग्ना योनिमाच्छाद्य पाणिना।।८३।।

एतासां सहचारिण्यो गोप्यस्तूर्णं सहस्रशः। प्रजग्मुस्तेन रूपेण कोपादारक्तलोचनाः।।८४।।

वेगेन दुद्रुवुः सर्वाः श्रीदामानं च बालिकाः।
वेगेन च प्रधावन्तं बिभ्रतं वस्त्रपुञ्जिकाम्।।८५।।

राधा की यह आज्ञा पाकर वे क्रोध से जल से बाहर निकलीं। उन्होंने हथेली से अपनी-अपनी योनि को ढ़क लिया तथा नग्नावस्था में दौड़ पड़ीं। इन सबकी सहचारिणी हजारों-हजार गोपियां इसी अवस्था में कोप में भरकर आंखें लाल किये प्रधान गोपियों के पीछे दौड़ने लगीं। सभी गोपियां श्रीदामा का पीछा करने लगीं जो वस्त्रों की गठरी उठाये भाग रहा था।।८३-८५।।

जगाम शीघ्रं श्रीदामा यत्र गोपाः सहांशुकाः।
जवेन दुद्रुवुर्गोप्यस्तत्पश्चाद्बलसंयुताः।।८६।।

वस्त्रचोरांश्च गोपांश्च वेष्टयामासुराशु ताः। भिया प्रदुद्रुवुर्बाला यत्र कृष्णः सहांशुकः।।८७।।

श्रीकृष्णसहितान्बालान्वरयामासुराशु च।
गोपिकानां भिया गोपा ददुर्वस्त्राणि माधवम्।।८८।।
माधवः स्थापयामास स्कन्धे स्कन्धे तरोस्तथा।
कदम्बवृक्षः शुशुभे वस्त्रेर्नानाविधैरपि।।८९।।

भागते हुये श्रीदामा वहां आ गया जहां अन्य गोप बालक वस्त्रों की गठरी लिये बैठे थे। गोपियां तीव्र वेग से दौड़ती वहां पहुंच गयीं। वे बल पूर्वक उसके पीछे-पीछे वहां आ गईं तथा शीघ्रता से वस्त्रचोर गोप बालकों को घेर लिया। परन्तु गोप बालक भयभीत होकर वहां आये जहां कदम्ब वृक्ष पर कुछ गठरियों के साथ कृष्ण बैठे थे। वहां भी गोपियों ने कृष्ण तथा बालकों को घेर लिया। अब गोप बालकों ने भयभीत होकर वस्त्रों की गठरियां कृष्ण को सौंप दिया। माधव ने भी सभी वस्त्रों को उठाकर वृक्ष की एक-एक शाखाओं पर रख दिया। वह कदम्बतरु भी नाना वर्ण के वस्त्रों से अत्यन्त शोभायमान हो रहा था।।८५-८९।।

वस्त्राणां पुञ्जिकाः सर्वाः स्कन्धेषु विनिधाय च।
उवाच गोपिकाः कृष्णः परिहासपरं वचः।।९०।।

श्रीकृष्ण ने इस तरह वस्त्रों की सभी गठरियां वृक्ष शाखाओं पर रख दिया तथा श्रीकृष्ण गोपियों से परिहास के साथ बातें करने लगे-।।९०।।

श्रीकृष्ण उवाच

भो भो गोपालिका नग्ना इदानीं किं करिष्यथ।
वस्त्रयाच्ञां प्रकर्तुं च कुरुताऽऽशु पुटाञ्जलिम्॥९१॥
गत्वा वदत युष्माकमीश्वरीमथ राधिकाम्।
करोतु शीघ्रं वस्त्राणां याच्ञां कृत्वा पुटाञ्जलिम्॥९२॥
अन्यथाऽहं न दास्यामि युष्मभ्यमंशुकानि च।
युष्माकमीश्वरी राधा किं करिष्यति मेऽधुना॥९३॥
व्रताराध्या च या देवी सा वा मे किं करिष्यति।
इत्येवं कथितं सर्वं ब्रूत यूयं च राधिकाम्॥९४॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे गोप कन्याओ! तुम लोग वस्त्रहीन होकर यह कैसा आचरण कर रही हो? वस्त्रों को मांगने हेतु तुम लोग शीघ्र करवद्ध होकर याचना करो तथा स्वामिनी राधा से भी शीघ्र करवद्धावस्था में वस्त्रों की याचना करने को कहो। तभी मैं वस्त्र दूंगा। अन्यथा नहीं दूंगा। तुम्हारी स्वामिनी ईश्वरी राधा मेरा क्या कर लेंगीं? तुम्हारे व्रत की इष्टदेवी ही मेरा क्या बिगाड़ लेंगीं? तुम सबको जो कुछ कहना हो वह राधा से जाकर कहना।।९१-९४।।

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ताः सर्वा गोपकन्यकाः।
वीक्ष्य लोचनकोणेन प्रजग्मू राधिकान्तिकम्॥९५॥
चक्रुर्निवेदनं गत्वा यदुवाच हरिः स्वयम्।
श्रुत्वा जहास सा राधा बभूव कामपीडिता॥९६॥

श्रीकृष्ण का यह कथन सुनकर वे सभी गोपियां कृष्ण को कनखी से देखते (नेत्र के कोने से देखते हुये) राधिका के पास चली गईं। वहां जाकर श्रीहरि ने जो कुछ उनसे कहा था, वह सब कह दिया। राधा वह संवाद सुनकर राधा कामपीड़िता होकर हंसने लगीं।।९५-९६।।

श्रुत्वा तासां च वचनं पुलकाञ्चितविग्रहा।
न जगाम हरेः स्थानं व्रीडया सस्मिता सती॥९७॥
जले योगासनं कृत्वा दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम्।
ब्रह्मेशानन्तधर्माणां वन्द्यमीप्सितदं परम्॥९८॥
स्मारं स्मारं पदाम्भोजं साश्रुसम्पूर्णलोचना।
भावातिरेकात्प्राणेशं तुष्टाव निर्गुणं परम्[1]॥९९॥

सखियों से श्रीकृष्ण का कथन सुनकर रोमांचित हो उठी। वे लज्जा के कारण श्रीहरि के पास

१. क. विभुम्।

न जा सकने के कारण वहीं जल में ही योगासनासीन होकर ब्रह्मा, ईश्वर शिव, अनन्तदेव, धर्मदेव द्वारा वन्दित तथा वांछित कृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करने लगीं। वे अश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त होकर बारम्बार श्रीकृष्ण के चरणकमलों का स्मरण करती भावातिरेक के कारण गद्गद् स्थिति में परमनिर्गुण प्राणेश्वर कृष्ण की स्तुति करने लगीं।।९७-९९।।

राधिकोवाच

गोलोकनाथ गोपीश मदीश प्राणवल्लभ।
हे दीनबन्धो दीनेश सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते॥१००॥
गोपेश गोसमूहेश यशोदानन्दवर्धन। नन्दात्मज सदानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते॥१०१॥

श्रीराधिका कहती हैं—हे गोलोकनाथ! गोपेश, मेरे ईश्वर, प्राणवल्लभ, दीनबन्धु, दीनेश, सर्वेश्वर, गोपेश, गोसमूह के ईश्वर, यशोदा माता का आनन्द बढ़ाने वाले, नन्दपुत्र, सदानन्द, नित्यानन्द! आपको बारम्बार प्रणाम!।।१००-१०१।।

शतमन्योर्मन्युभग्न ब्रह्मदर्पविनाशक। कालीयदमन प्राणनाथ कृष्ण नमोऽस्तु ते॥१०२॥
शिवानन्तेश ब्रह्मेश ब्राह्मणेश परात्पर। ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते॥१०३॥
चराचरतरोर्बीजि गुणातीत गुणात्मक। गुणबीज गुणाधार गुणेश्वर नमोऽस्तु ते॥१०४॥
अणिमादिकसिद्धीश सिद्धे सिद्धिस्वरूपक।
तपस्तपस्विंस्तपसां बीजरूप नमोऽस्तु ते॥१०५॥

हे प्राणेश्वर कृष्ण! आप इन्द्र के यज्ञ को भग्न करने वाले, (गोवर्द्धन की पूजा द्वारा), ब्रह्मा का दर्प चूर्ण करने वाले तथा कालिय नाग का दमन करने वाले हैं। मैं आपके चरणों में प्रणाम करती हूं! हे नाथ! आप ब्रह्मा, अनन्त, शिव, ब्राह्मणों के ईश्वर, परात्पर, ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मबीज हैं। आपको मेरा प्रणाम! आप सचराचर रूप वृक्ष के बीजस्वरूप (कारणरूप), गुणातीत, गुणमय, गुणों के कारण, गुणाधार, गुणों के ईश्वर, अणिमादि सिद्धियों के ईश्वर, सिद्धि के भी सिद्धिस्वरूप, तपस्वी, तप के कारण, बीजरूप हैं। आपको मैं प्रणाम करती हूं!।।१०२-१०५।।

यदनिर्वचनीयं च वस्तु निर्वचनीयकम्।
तत्स्वरूप तयोर्बीजि सर्वबीज नमोऽस्तु ते॥१०६॥
अहं सरस्वती लक्ष्मीर्दुर्गा गङ्गा श्रुतप्रसूः।
यस्य पादार्चनान्नित्यम् पूज्यास्तस्मै नमो नमः॥१०७॥

हे देव! अब अनिर्वचनीय तथा निर्वचनीय वस्तु स्वरूप है। आप ही इनके बीज तथा सर्वबीजरूप हैं। अतः आपको प्रणाम करती हूं! मैं जिनके चरणों की नित्य अर्चना द्वारा नित्य पूज्या हो गई तथा जिनके चरणों की सेवा से सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, गंगा एवं सावित्री भी जगत् में नित्य पूज्या हो गईं। ऐसे आप प्रभु को बारम्बार प्रणाम करती हूं!।।१०६-१०७।।

स्पर्शेन यस्य भृत्यानां ध्यानेन च दिवानिशम्।
पवित्राणि च तीर्थानि तस्मै भगवते नमः॥१०८॥

जिन प्रभु के सेवकगण के स्पर्श तथा सतत् ध्यान द्वारा सभी तीर्थस्थल पवित्र होते हैं, उन प्रभु को मेरा प्रणाम!॥१०८॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी जले संन्यस्य विग्रहम्।
मनः प्राणांश्च श्रीकृष्णे तस्थौ स्थाणुसमा सती॥१०९॥

यह स्तुति करके भगवती सती श्रीराधा ने अपना शरीर जल में ही रहने देकर अपना मन-प्राण श्रीकृष्ण को अर्पित कर दिया। वे अब जल में स्थाणु की तरह, शुष्क काष्ठवत् स्थित हो गईं॥१०९॥

राधाकृतं हरेः स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
हरिभक्तिं च दास्यं च लभेद्राधागतिं ध्रुवम्॥११०॥
विपत्तौ यः पठेद्भक्त्या सद्यः सम्पत्तिमाप्नुयात्।
चिरकालगतं द्रव्यं हृतं नष्टं च लभ्यते॥१११॥
बन्धुवृद्धिर्भवेत्तस्य प्रसन्नं मानसं परम्।
चिन्ताग्रस्तः पठेद्भक्त्या परां निवृतिमाप्नुयात्॥११२॥
पतिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च सङ्कटे। मासं भक्त्या यदि पठेत्सद्यः संदर्शनं लभेत्॥११३॥
भक्त्या कुमारी स्तोत्रं च शृणुयाद्वत्सरं यदि।
श्रीकृष्णसदृशं कान्तं गुणवन्तं लभेद् ध्रुवम्॥११४॥

जो कोई त्रिसन्ध्याकाल में राधाकृत इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह हरिभक्ति, हरि का दास्य प्राप्त करके देवी राधा की गति प्राप्त करता है। जो विपदा में यह स्तवपाठ भक्ति के साथ करता है, वह तत्काल सम्पदालाभ करता है। वह चिरकाल से हरण किया गया किंवा नष्ट द्रव्य भी प्राप्त कर लेता है। उसके बन्धुओं की वृद्धि होती है। उसका मन सदा प्रसन्न रहता है। जो चिन्तातुर व्यक्ति इसका पाठ भक्तिभाव से करता है, वह चिन्तामुक्त हो जाता है। पति वियोग, पुत्र वियोग, मित्रवियोग तथा संकट में नित्य एक मास पर्यन्त इसका पाठ करने वाला व्यक्ति इन सभी का पुनः दर्शन लाभ कर लेता है। यदि कुमारी कन्या भक्तिभाव से यह स्तोत्र नियमित रूप से एक वर्ष पर्यन्त पाठ करती है, तब उसे कृष्ण की तरह गुणी पति निश्चित प्राप्त होगा॥११०-११४॥

जलस्था राधिका ध्यात्वा श्रीकृष्णचरणाम्बुजम्।
स्तुत्वैवं चक्षुरुन्मील्य दृष्ट्वा कृष्णमयं जगत्॥११५॥
ददर्श यमुनातीरं वस्त्रद्रव्यमयं मुने। दृष्ट्वा तन्द्राऽथवा स्वप्नमिति मेने च राधिका॥११६॥

जब जल में स्थित राधा ने कृष्ण के चरण-कमल का ध्यान तथा यह स्तुति करके जब अपने

नेत्रों को खोला तब उन्होंने कृष्णमय जगत् का दर्शन किया। तभी वे देखती हैं कि उनकी समस्त व्रतोपयोगी वस्तु तथा वस्त्र यमुना तट पर ही है। यह देखकर राधा ने सोचा क्या यह तब तन्द्रा है किंवा स्वप्न है?।।११५-११६।।

यत्र स्थाने यदाधारे यद्द्रव्यं संस्थितं पुरा।
वस्त्रैश्च सहितं सर्वं तत्प्रापुर्गोपकन्यकाः।।११७।।
जलादुत्थाय ताः सर्वा व्रतं कृत्वा मनीषितम्।
सम्प्राप्य च वरं देव्यास्ताः सर्वाः स्वालयं ययुः।।११८।।

हरण होने के पूर्व जहां जिस आधार पर जो वस्तु पहले थी, गोपियों ने वस्त्रों सहित उन सभी वस्तुओं को उसी स्थान पर पाया। अब गोपियों ने जल से निकल कर (वस्त्रादि धारणोपरान्त) अभिलषित व्रत सम्पन्न करके देवी का आदेश पाकर स्वगृह गमन किया। उनको देवी का वर भी प्राप्त हो गया।।११७-११८।।

नारद उवाच

व्रतस्य किं विधानं च किं नाम किं फलं प्रभो।
कानि द्रव्याणि देयानि का देया तत्र दक्षिणा।।११९।।
व्रतान्ते किं रहस्यं च बभूव सुमनोहरम्।
व्यासं कृत्वा महाभाग वद नारायणीं कथाम्।।१२०।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे प्रभो! व्रत का विधान तथा नाम क्या है? इस व्रत हेतु क्या वस्तु तथा दक्षिणा प्रदान करना चाहिये? हे महाभाग! व्रतान्त में कौन-सा मनोहर रहस्य प्राप्त होता है? हे प्रभो! यह सब कृष्णकथा कृपा पूर्वक सविस्तार कहिये।।११९-१२०।।

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः।
कथां कथितुमारेभे कवीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।।१२१।।

सूत जी कहते हैं—नारद का कथन सुनकर कवीन्द्रों के गुरुओं के भी गुरु महामुनि नारायण ने हंसकर कथा कहना प्रारम्भ किया।।१२१।।

नारायण उवाच

सर्वं व्रतविधानं च मत्तो वत्स निशामय।
ख्यातं गौरीव्रतं नाम मार्गे मासि कृतं स्त्रिया।।१२२।।
पुंसां च धर्मकामार्थमोक्षदं कृष्णभक्तिदम्।
देशभेदे प्रसिद्धं च व्रतं पौर्वापरं स्मृतम्।।१२३।।

कामदं कामुकानां च फलं कान्तनिमित्तकम्।
उपोष्य पूर्वदिवसे वस्त्रं प्रक्षाल्य संयता॥१२४॥
प्रातश्च मार्गसंक्रान्त्यां भक्त्या गत्वा सरित्तटम्।
धृत्वा धौते च स्नात्वा च नानाद्रव्येण कन्यका॥१२५॥
देवषट्कं च सम्पूज्य कृत्वा चाऽऽवाहनं घटे।
गणेशं च दिनेशं च वह्निं नारायणं शिवम्॥१२६॥
दुर्गां पञ्चोपचारैश्च सम्पूज्य व्रतमारभेत्।
घटाधः पिण्डिकां कृत्वा चतुरस्त्रां सुविस्तृताम्।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृताम्॥१२७॥
निर्माय बालुकानां च दुर्गां दशभुजां पराम्।
धृत्वा कपाले सिन्दूरं तदधश्चन्दनेन्दुकम्॥१२८॥
तां ध्यात्वाऽऽवाहयेद्देवीं ततो भूत्वा पुटाञ्जलिः।
इमं मन्त्रं पठित्वाऽदौ ततः पूजां समारभेत्॥१२९॥
हे गौरि शकरार्धाङ्गि यथा त्वं शङ्करप्रिया।
तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम्॥१३०॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे वत्स! ऐसे समस्त व्रत विधि का श्रवण करो। इसे गौरीव्रत कहते हैं, जिसे अग्रहायण मास में करना पड़ता है। यह कामनाप्रद व्रत धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष एवं कृष्णभक्तिप्रद हैं। देश भेद से यह व्रत पूर्वापर परम्परा से होता चला आ रहा है, जो कामुकों को काम देने वाला है। इससे कन्यागण को पतिरूप फल मिलता है। कुमारी कन्यायें व्रत के पहले के (पूर्व) दिन संयम पूर्वक रहें तथा वस्त्र धोयें। अगले दिन (व्रतारंभ के दिन) अग्रहायण की संक्रान्ति दिवस पर भक्तिभाव से नदी तट पर स्नान करें। वह स्नानोपरान्त दो वस्त्र पहने। कलश पर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, दुर्गा का आवाहन करके, पञ्चोपचार से उनकी पूजा करके व्रत प्रारंभ करें। व्रती मनुष्य कलश के नीचे विस्तृत चौकोर वेदी बनाये तथा उसे चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम से संस्कृत करे। वहां बालू की दश भुजा श्रेष्ठ दुर्गा मूर्त्ति बनाकर उसके ललाट पर सिन्दूर की बिन्दी लगाये तथा उसके नीचे कुंकुम तथा चन्दन की बिन्दी लगाये। ध्यान द्वारा देवी का आवाहन करके करवद्ध होकर उनकी अर्चना इस मन्त्र से करे यथा–"हे गौरी! आप शंकर की अर्द्धाङ्गिनी हैं। हे कल्याणी! जिस प्रकार आप शङ्कर की प्रिया हैं, तदनुरूप मुझे भी मेरे प्रियतम की दुर्लभा प्रेयसी बनायें।"॥१२२-१३०॥

इमं मन्त्रं पठित्वा तु ध्यायेद्देवीं जगत्प्रसूम्।
ध्यानं तत्सामवेदोक्तं निगूढं सर्वकामदम्॥१३१॥

श्रृणु नारदवक्ष्यामि मुनीन्द्राणां च दुर्लभम्।
ध्यायन्त्यनेन सिद्धाश्च दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥१३२॥

यह मन्त्र पढ़कर जगत् को जन्म देने वाली देवी का ध्यान करना चाहिये। हे नारद! इन देवी का सर्वकामप्रद गूढ़ ध्यान सामवेद में कहा गया है। हे नारद! मैं वह ध्यान कहता हूं जो मुनीन्द्रों के लिये भी दुर्लभ है। यही वह ध्यान है, जिसके द्वारा सिद्धगण दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का ध्यान करते हैं।।१३१-१३२।।

शिवां शिवप्रियां शैवां शिववक्षःस्थलस्थिताम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्॥१३३॥

नवयौवनसपन्नां रत्नाभरणभूषिताम्। रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिताम्॥१३४॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम्। मालतीमाल्यसंसक्तकबरीभ्रमरान्विताम्॥१३५॥
सिन्दूरतिलकं चारुकस्तूरीबिन्दुना सह। वह्निशुद्धांशुकां रत्नकिरीटां सुमनोहराम्॥१३६॥
मणीन्द्रसारसंसक्तरत्नमालासमुज्ज्वलाम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालानुलम्बिताम्॥१३७॥

सुपीनकठिनश्रोणीं बिभ्रतीं च स्तनानताम्।
नवयौवनभारौघादीषन्नम्रां मनोहराम्॥१३८॥

यथा–जो शिवा, शिवप्रिया, शैवा, शिववक्षस्थलस्था हैं, वे देवी मन्द मुस्कान युक्त मुखमण्डल वाली, प्रसन्नतापूर्ण युगल नेत्रों वाली, उत्तम प्रतिष्ठाशालिनी, नवयौवना, रत्नों के आभूषणों से भूषिता, रत्नमय कंकण-केयूर तथा नूपुरों से सुशोभित हैं। उनके कपोलों पर कानों से लटकते कुण्डलद्वय की प्रभा विद्यमान है। उन्होंने गले में मालती पुष्पों की माला तथा मस्तक पर भ्रमरों के गुंजार से युक्त मालती माला से गुथा जूड़ा धारण किया है। उन्होंने उत्तम कस्तूरी की बिन्दी के साथ सिन्दूर तिलक भी लगाया है। उनके वस्त्र अग्नि के समान विशुद्ध प्रभा वाले हैं। उन्होंने रत्नमय मनोहर मुकुट मस्तक पर धारण किया है। वे मणियों के सारभाग से जुड़ी रत्नमाला से दीप्त हैं। उनके देह पर पारिजात पुष्पों की घुटनों तक लम्बी मालायें शोभायमान हैं। उन देवी का श्रोणीभाग अत्यन्त स्थूल तथा कठोर है। वे अपने स्थूल स्तनों के भार से झुकी प्रतीत हो रही हैं। वे देवी नवयौवन के भार से कुछ नत एवं मनोहर लग रही हैं।।१३३-१३८।।

ब्रह्मादिभिः स्तूयमानां सूर्यकोटिसमप्रभाम्।
पक्वबिम्बाधरौष्ठीं च चारुचम्पकसन्निभाम्॥१३९॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तराजिविराजिताम्।
मुक्तिकामप्रदां देवीं शरच्चन्द्रमुखीं भजे॥१४०॥

भगवती कोटि सूर्यसमप्रभ है तथा ब्रह्मादि देवता उनकी स्तुति करते रहते हैं। उनके अधर तथा ओष्ठ पके बिम्बफल के वर्ण वाले हैं। उनका देह वर्ण उत्तम चम्पक पुष्प के वर्ण वाला है। उनकी

दन्तपंक्ति मुक्तापंक्ति को भी लज्जित कर रही है। ये देवी मोक्ष तथा मनोकामना देने वाली शारदीय पूर्णचन्द्रवत् मुखमण्डल से युक्त हैं। मैं इनका भजन करता हूं।।१३९-१४०।।

ध्यात्वैवं मस्तके पुष्पं विन्यस्य च व्रती मुदा।
पुष्पं गृहीत्वा भक्त्या च पुनर्ध्यात्वा च पूजयेत्।।१४१।।
दत्त्वा षोडशोपचारान्प्रहृष्टं तत्र नित्यशः।
पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण मुदा भक्त्या व्रते व्रती।।१४२।।
पूर्वोक्तेनैव स्तोत्रेण स्तुत्वा च प्रणमेत्तदा।
कृत्वा प्रणामं भक्त्या च संयतः शृणुयात्कथाम्।।१४३।।

यह ध्यान करके व्रती व्यक्ति ध्यानपुष्प मस्तक पर रखे। तदनन्तर अन्य पुष्प लेकर भक्ति के साथ पुनः ध्यान करके पूजा करे। व्रतकार्य में व्रती व्यक्ति पूर्वोक्त मन्त्र से नित्य आनन्द पूर्वक भक्तिभाव से १६ उपाचारों को प्रदान करके पूर्वोक्त मन्त्र से स्तव करके प्रणाम करे। तदनन्तर भक्तिभाव से कथा श्रवण करना चाहिये।।१४१-१४३।।

नारद उवाच

व्रतं व्रतविधानं च फलं च स्तोत्रमद्भुतम्।
अधुना श्रोतुमिच्छामि गौरीव्रतकथां शुभाम्।।१४४।।
व्रतं केन कृतं पूर्वं भूमौ केन प्रकाशितम्।
एतत्सर्वं सुविस्तार्य वद संदेहभञ्जन।।१४५।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे प्रभो! मैंने व्रत प्रकार, व्रत विधान, फल तथा अद्भुत स्तोत्र को आपसे सुना। अब कृपया गौरीव्रत की शुभ-कथा कहिये। हे सर्व संदेहनाशक! सर्वप्रथम किसने यह गौरीव्रत सम्पन्न किया था? इसे धरती पर किसने प्रचालित किया? यह विस्तार से कहिये।।१४४-१४५।।

नारायण उवाच

कुशध्वजस्य हि सुता नाम्ना वेदवती सती। तया कृतं व्रतमिदं महातीर्थे च पुष्करे।।१४६।।
समाप्तिदिवसे साक्षाद्बभूव जगदम्बिका।
योगिनीलक्षसंयुक्ता सूर्यकोटिसमप्रभा।।१४७।।
शातकुम्भविनिर्माणरथस्था परमेश्वरी। ईषद्धास्यप्रसन्नास्या तामुवाच सुसंयताम्।।१४८।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! पूर्वकाल में राजा कुशध्वज की साध्वी पुत्री वेदवती ने पुष्कर तीर्थ में प्रथमतः यह व्रताचरण किया था। व्रत समाप्ति के दिन कोटि सूर्यसमप्रभ जगदम्बा दुर्गा ने स्वर्ण रथ से १ लाख योगिनियों के साथ आकर वेदवती को प्रत्यक्ष दर्शन दिया था। उन्होंने मन्दहास्य के साथ प्रसन्नता पूर्वक वेदवती से कहा जो संयमशीला थी।।१४६-१४८।।

पार्वत्युवाच

हे वेदवती भद्रं ते वरं वृणु यथेप्सितम्।
तव व्रतेन तुष्टाऽहं तुभ्यं दास्यामि वाञ्छितम्॥१४९॥

भगवती पार्वती कहती हैं–हे भद्रे वेदवती! तुम यथेच्छ वर मांगो। मैं तुम्हारे व्रताचरण से प्रसन्न हूं। तुम्हें वांछित वर प्रदान करूंगी।।१४९।।

पार्वतीवचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा तां हृष्टमानसाम्।
पुटाञ्जलियुता साध्वी प्रणम्योवाच नारद॥१५०॥

पार्वती का कथन सुनकर तथा देवी को प्रसन्न देखकर वेदवती ने पार्वती से करवद्ध प्रार्थना किया।।१५०।।

वेदवत्युवाच

देवि नारायणं कान्तं मह्यं देहि मनीषितम्।
वरेऽन्यस्मिन्स्पृहा नास्ति दृढां भक्तिं च तत्पदे॥१५१॥

वेदवती कहती हैं–हे देवी! आप मुझे मेरे अभीष्ट पति नारायण को प्रदान करें। मैं अन्य कोई वर नहीं चाहती। आप मुझे नारायण के चरणों की भक्ति प्रदान करें।।१५१।।

श्रुत्वा वेदवतीवाक्यं प्रहस्य जगदम्बिका। अवरुह्य रथात्तूर्णं तामुवाच हरिप्रियाम्॥१५२॥

वेदवती का कथन सुनकर भगवती जगदम्बा तत्काल स्वर्ण रथ से उतर कर हरिप्रिया वेदवती से कहने लगीं–।।१५२।।

पार्वत्युवाच

ज्ञातं सर्वं जगन्मातस्त्वं च लक्ष्मीः स्वयं सती।
भारतं पादरजसा पूतं कर्तुं समागता॥१५३॥
त्वत्पादरजसा साध्वि सद्यः पूता वसुंधरा।
निखिलानि च तीर्थानि पूतानि परमेश्वरि॥१५४॥
व्रतं ते लोकशिक्षार्थं तपश्चर तपस्विनि।
नारायणस्य कान्ता त्वं प्रिया जन्मनि जन्मनि॥१५५॥
भारावतरणे विष्णुर्वसुधामागमिष्यति। रामो दाशरथिः पूर्णः कर्तुं दस्युविनिग्रहम्॥१५६॥
ब्रह्मशापाच्च च्युतयोर्मोक्षणाय च भक्तयोः।
अयोध्यायां च त्रेतायामाविर्भावो हरेरपि॥१५७॥

देवी पार्वती कहती हैं–हे जगन्माता! तुम स्वयं लक्ष्मी स्वरूपा हो, यह मैंने जान लिया। तुम्हारे केवल भारतभूमि को पावन करने के लिये ही तुमने धरती पर अवतार लिया है। हे देवी! तुम्हारे

चरणों का स्पर्श होने के कारण वसुन्धरा सदा पावन बनी रहती हैं। हे परमेश्वरी! समस्त तीर्थ भी तुम्हारी चरण-धूलि का स्पर्श करके पावन बने रहते हैं। हे तपस्विनी! तुम जो यह व्रताचरण तथा तप कर रही हो, यह केवल लोक-शिक्षार्थ ही है। तुम तो जन्म-जन्मान्तर में नारायण की प्रियतमा पत्नी रहती हो। भगवान् विष्णु पृथिवी के भारहरण तथा राक्षस, दस्यु निग्रहार्थ दशरथ नन्दन राम के रूप में, त्रेतायुग काल में, अयोध्या नगरी में पूर्ण परमात्मा अवतीर्ण होंगे। प्रभु के भक्तद्वय जय-विजय ब्रह्मशाप के कारण राक्षस योनि में जन्मे हैं। उनके उद्धारार्थ श्रीहरि का अयोध्या में यह अवतार होगा।।१५३-१५७।।

त्वमेव मिथिलां गच्छ विधाय शिशुविग्रहम्।
त्वामिमां प्राप्य जनकोऽप्ययोनिसंभवां सुताम्।।१५८।।
पालयिष्यति यत्नेन सीता त्वं च भविष्यसि।
गत्वा रामोऽपि मिथिलां त्वद्विवाहं करिष्यति।।१५९।।
नारायणस्य कान्ता त्वं कल्पे कल्पे भविष्यसि[1]।
इत्युक्त्वा तां समालिङ्ग्य पार्वती स्वालयं ययौ।।१६०।।

"तुम भी शिशुरूप धारण करके मिथिला नगरी जाओ। मिथिला के राजा जनक तुमको अयोनिजा कन्या के रूप में पाकर यत्नतः तुम्हारा पालन करेंगे। तुम्हारी ख्याति सीता के नाम से होगी। तदनन्तर दशरथनन्दन श्रीराम तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। इस प्रकार प्रतिकल्प में तुम नारायण की प्रियतमा होती रहोगी।" यह कहकर वेदवती पार्वती आलिङ्गन करके अपने गृह चली गईं।।१५८-१६०।।

गत्वा सा मिथिलां साध्वी शिशुरूपं विधाय च।
लाङ्गलस्य च रेखायां सुप्त्वा तस्थौ च[2] मायया।।१६१।।
विलोक्य जनकस्तां च नग्नां मुद्रितलोचनम्।
तप्तकाञ्चनवर्णां च रुदन्तीं तेजसाऽन्विताम्।।१६२।।
दृष्ट्वा तां च गृहीत्वा च कृत्वा वक्षसि नारद।
गच्छन्तं प्रति तत्रैव वागबभूवाशरीरिणी।।१६३।।

साध्वी वेदवती शिशुरूप धारण करके मिथिला चली गयी। वे हल की रेखा में (खेत में) माया से सुख के साथ सुप्तावस्था में चली गईं। एक दिन राजा जनक देखते हैं कि एक बालिका नग्न होकर भूमि पर शयन कर रही है। उसकी अंगकान्ति तप्त स्वर्ण के समान थी। वह तेजस्विनी बालिका रुदन कर रही थी। हे नारद! उस बालिका को देखकर राजा ने उसे उठाकर वक्ष से लगा लिया। वे जा ही रहे थे तभी उन्होंने आकाशवाणी सुना।।१६१-१६३।।

१. क. हरिप्रिये।
२. ख. सुखात्त०।

अयोनिसंभवां कन्यां कमलां ग्रहणं कुरु।
नारायणस्ते जामाता भवितेत्येव मे वचः॥१६४॥

यथा–"यह अयोनिसंभवा कन्या साक्षात् कमला है। श्रीनारायण प्रभु तुम्हारे जामाता होंगे। यह मेरा वचन है।१६४॥

श्रुत्वा तदा देववाणीं गृहीत्वा कन्यकामृषिः।
गत्वा ददौ स्वकान्तायै पालनाय मुदाऽन्वितः॥१६५॥
सा लब्धयौवना प्राप रामं दशरथिं सती।
व्रतस्यास्य प्रभावेण कान्तं त्रिजगतां पतिम्॥१६६॥
प्रकाशितं वसिष्ठेन पृथिव्यां भक्तिभावतः।
राधा कृत्वा व्रतमिदं श्रीकृष्णं प्राप वल्लभम्॥१६७॥
गोपाङ्गपाश्च तं प्रापुर्व्रतस्यास्य प्रभावतः।
इत्येवं कथिता विप्र कथा गौरीव्रतस्य च॥१६८॥
भारते च व्रतमिदं या करोति कुमारिका।
स्वामिनं कृष्णतुल्यं च सा प्राप्नोति न संशयः॥१६९॥

राजा जनक ने जब यह आकाशवाणी सुना वे उसे लेकर आनन्द के साथ अपने भवन चले गये। उन्होंने अत्यन्त हर्षित होकर उसे पालनार्थ अपनी पत्नी को दे दिया। क्रमशः यह बालिका यौवनावस्था में पहुंची। इसी व्रत के प्रभाव से उसने दशरथनन्दन राम को पतिरूपेण प्राप्त किया था। इसी व्रत के प्रभाव से गोपियों ने श्रीकृष्ण को पतिरूप से प्राप्त किया था। हे ब्राह्मण! मैंने यह गौरीव्रत प्रसंग तुमसे कह दिया। भारत में जो भी कुमारी यह व्रत करती है, वह निश्चित रूप से कृष्णतुल्य पति प्राप्त करती है। इसमें सन्देह नहीं है॥१६५-१६९॥

(गौरीव्रत कथा समाप्त)

नारायण उवाच

एवं व्रतं च चक्रुस्ता यावन्मासं च गोपिकाः।
पूर्वस्तोत्रेण तां देवीं तुष्टुवुश्च दिने दिने॥१७०॥
समाप्तिदिवसे गोप्यो व्रतं कृत्वा मुदाऽन्विताः।
कण्वशाखोक्तस्तोत्रेण तुष्टुवः परमेश्वरीम्॥१७१॥
येन स्तोत्रेण तां स्तुत्वा सीता सत्यपरायणा।
सद्यः सम्प्राप कान्तं च रामं राजीवलोचनम्॥१७२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! इस प्रकार से गोपियों ने १ मास तक व्रताचरण किया था।

वे पूर्वोक्त स्तोत्र का नित्य पाठ करके भगवती की स्तुति करती थीं। व्रत समाप्ति के दिन गोपियों ने अत्यन्त आनन्द के साथ व्रत का समापन किया था। उस दिन उन्होंने काण्वशाखोक्त स्तोत्र से देवी का स्तव किया। हे नारद! जिस स्तोत्र से स्तव करके सत्यपरायणा भगवती सीता ने राजीवलोचन राम को पतिरूप से प्राप्त किया था, उसे कहता हूं। श्रवण करो।।१७०-१७२।।

जानक्युवाच

शक्तिस्वरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाश्रये। सदा शंकरयुक्ते च पतिं देहि नमोऽस्तु ते।।१७३।।

सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे नमोऽस्तु ते।।१७४।।

हे गौरि पतिमर्मज्ञे पतिव्रतपरायणे। पतिव्रते पतिरते पतिं देहि नमोऽस्तु ते।।१७५।।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते। संर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले।।१७६।।
सर्वप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुभविनाशिनि। सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शङ्करप्रिये।।१७७।।
परमात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि। साकारे च निराकारे सर्वरूपे नमोऽस्तु ते।।१७८।।

देवी जानकी कहती हैं—हे शक्तिस्वरूपा! आप सर्वपदार्थ की आधाररूपा, गुणों की आश्रयभूता तथा सदैव शंकर सहगामिनी हैं। आप मुझे पति प्रदान करिये। मैं आपको प्रणाम करती हूं! हे देवी! आप सृष्टि-स्थिति तथा सबका अन्त करने वाली हैं। आप ही सृष्टि-स्थिति-संहार की बीज (कारण) हैं। आपको मैं प्रणाम करती हूं! हे गौरी! आप पति मर्मज्ञाता, पतिव्रतपरायणा, पतिव्रता, पतिरता हैं। मुझे पति प्रदान करिये। मैं आपको प्रणाम करती हूं! आप सभी मंगलों का भी मंगल करने वाली, सभी मंगलों से युत, सर्वमंगलबीज हैं। आप सर्वमंगला को प्रणाम! आप सर्वप्रिय, सर्वबीज, सभी अशुभों का नाश करने वाली, सर्वेशी, सबकी जननी, शंकरप्रिया, परमात्मस्वरूपा, नित्यरूपा, सनातनी, साकारा-निराकारा, सर्वरूपा हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूं!।।१७३-१७८।।

क्षुत्तृष्णेच्छा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा स्मृतिः क्षमा।
एतास्तव कलाः सर्वा नारायणि नमोऽस्तु ते।।१७९।।
लज्जा मेधा तुष्टिपुष्टी शान्तिसम्पत्तिवृद्धयः।
एतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे नमोऽस्तु ते।।१८०।।

क्षुधा, तृष्णा, इच्छा, निद्रा, तन्द्रा, स्मृति तथा क्षमा आपकी कलायें हैं। हे नारायणी! आपको प्रणाम! आप ही की कलायें लज्जा, मेधा, तुष्टि-पुष्टि-शान्ति, सम्पदा तथा बुद्धि हैं। हे सर्वरूपा भगवती! आपको प्रणाम!।।१७९-१८०।।

दृष्टादृष्टास्वरूपे च तयोर्बीजे फलप्रदे। सर्वानिर्वचनीये च महामाये नमोऽस्तु ते।।१८१।।

शिवे शङ्करसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि।
हरिं कान्तं च सौभाग्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते।।१८२।।

दृष्ट-अदृष्ट आपके स्वरूप हैं। आप उनकी बीजरूपा हैं तथा उनके फल को प्रदान करने वाली आप ही हैं। आप पूर्णतः अनिर्वचनीया हैं। हे महामाया! आपको मेरा प्रणाम! हे शिवे! आप शंकररूपी सौभाग्य से सतत् युक्त तथा सौभाग्यप्रदा हैं। हे देवी! आप हमें हरि को पतिरूप से देकर सौभाग्य प्रदान करें। हे देवी! आपको प्रणाम!।।१८१-१८२।।

स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्वा समाप्तिदिवसे शिवाम्।
नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ते हरिं पतिम्।।१८३।।
इह कान्तसुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम्।
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य यान्त्यन्ते कृष्णसन्निधिम्।।१८४।।

जो व्रत समापन के दिन यह स्तुति करके भक्तिभाव से ओत-प्रोत होकर देवी पार्वती को प्रणाम करती हैं, उनको श्रीहरि पतिरूपेण मिल जाते हैं। वे स्त्रियां परात्पर प्रभु को पतिरूपेण पाकर इहलोक में पतिसुख भोगने के अनन्तर सर्वान्त में दिव्यरथारूढ़ होकर श्रीकृष्ण का सान्निध्य लाभ करती हैं।।१८३-१८४।।

समाप्तिदिवसे राधा गोपीभिः सह संयुता।
देवीं प्रणम्य स्तुत्वा च व्रतं पूर्णं चकार ह।।१८५।।
गोसहस्रं ब्राह्मणेभ्यः सुवर्णशतकं मुदा। विप्राय दक्षिणां दत्त्वा स्वगृहं गन्तुमुद्यता।।१८६।।
ब्राह्मणानां सहस्रं च भोजयामास सादरम्।
वाद्यानि वादयामास भिक्षुकाय धनं ददौ।।१८७।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनि। आविर्बभूव गगनाज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा।।१८८।।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या योगिनीशतसंयुता[१]।
सिंहस्था च दशभुजा रत्नालङ्कारभूषिता।।१८९।।

व्रत समापन के दिन भगवती राधिका ने गोपीगण सहित इस व्रत को, इसी स्तुति से तथा देवी को प्रणति निवेदित करके सम्पन्न किया। उन्होंने ब्राह्मणगण को १००० गौयें तथा १०० स्वर्णमुद्रा प्रदान किया। वे इस प्रकार दक्षिणा देकर गृह जाने लगीं। राधिका तथा गोपीगण ने १००० ब्राह्मणों को परम आदर के साथ भोजन कराकर नाना वाद्य-वादन भी कराया। भिक्षुकगण को प्रभूत धन बांटा। तभी भगवती दुर्गतिनाशिनी दुर्गा गनन में ब्रह्मतेज से प्रज्वलित-सी होती प्रकट हो गईं। वे मन्द मुस्कान से युक्त तथा सौ योगिनियों से घिरी थीं। दुर्गा सिंहासनासीन, दस भुजाधारी तथा रत्नालंकार से भूषिता थीं।।१८५-१८९।।

शातकुम्भमयाद्दिव्याद्रत्नसारपरिच्छदात्। अवरुह्य रथात्तूर्णमालिङ्ग्योरसि राधिकाम्।।१९०।।

---

१. क. ०शिव०।

दृष्ट्वा गोपाङ्गना देवीं प्रणेमुश्च मुदाऽन्विताः।
आशिषं युयुजे दुर्गा वाञ्छासिद्धिर्भविष्यति॥१९१॥
गोपिकाभयो वरं दत्त्वा ताः संभाष्य च सादरम्।
उवाच राधिकां दुर्गा स्मेराननसरोरुहा॥१९२॥

भगवती दुर्गा रत्नसारविनिर्मित परिच्छदयुक्त स्वर्ण रथ से तत्काल उतरीं तथा उन्होंने राधा का आलिङ्गन किया। उस समय गोपियों ने भी देवी को सानन्दित होकर प्रणाम किया। देवी दुर्गा आशीर्वाद दिया कि "तुम सबकी कामना पूर्ण होगी।" गोपीगण को वर देकर भगवती ने उनसे सादर वार्त्ता करने के पश्चात् मुस्कानयुक्त मुखकमल से शोभायमान देवी दुर्गा राधा से कहने लगीं-॥१९०-१९२॥

पार्वत्युवाच

राधे सर्वेश्वरप्राणादधिके जगदम्बिके। व्रतं ते लोकशिक्षार्थं मायामानुषरूपिणि॥१९३॥
गोलोकनाथं गोलोकं श्रीशैलं विरजातटम्।
श्रीरासमण्डलं दिव्यं[1] वृन्दावनमनोहरम्॥१९४॥
चरितं रतिचोरस्य स्त्रीणां मानसहारकम्।
विदुषः कामशास्त्राणां किंस्वित्स्मरसि सुन्दरि॥१९५॥
श्रीकृष्णार्धाङ्गसम्भूता कृष्ण तुल्या च तेजसा।
तवांशकलया देव्यः कथं त्वं मानुषी सती॥१९६॥

देवी पार्वती कहती हैं-हे राधा! तुम तो सर्वेश्वर कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। तुमने तो माया से ही मनुष्य रूप धारण किया है। तुम्हारा व्रताचरण तो लोक-शिक्षणार्थ ही है। हे सुन्दरी! गोलोक, श्रीशैल, विरजानदी, ये सभी कामशास्त्रज्ञ रतिप्रिय गोलोकनाथ श्रीकृष्ण विरचित हैं। रमणीगण के मन को मोहित करने वाला वृन्दावन में विराजित मनोहर रासमण्डल शास्त्रविद् वंशीधारी क्या तुम्हारी स्मृति में है? तुम तो स्वयं कृष्ण के अर्द्धांश से उत्पन्न तथा उनके समान तेज से सम्पन्न हो। सभी देवीगण तुम्हारी ही अंशकला से उत्पन्न हैं। हे सती! अतः तुम मानुषी कैसे हो सकती हो?॥१९३-१९६॥

भवती च हरेः प्राणा भवत्याश्च हरिः स्वयम्।
वेदे नास्ति द्वयोर्भेदः कथं त्वं मानुषी सती॥१९७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि ब्रह्मा तप्त्वा तपः पुरा।
न ते ददर्श पादाब्जं कथं त्वं मानुषी सती॥१९८॥

१. क. रम्यं।

कृष्णाज्ञया च त्वं देवि गोपीरूपं विधाय च।
आगतासि महीं शान्ते कथं त्वं मानुषी सती॥१९९॥
सुयज्ञो हि नृपश्रेष्ठो मनुवंशसमुद्भवः।
त्वत्तो जगाम गोलोकं कथं त्वं मानुषी सती॥२००॥

तुम हरि की प्राणरूपा हो। हरि तुम्हारे प्राण हैं। वेद के अनुसार तुम दोनों में कोई भेद नहीं है। हे सती! तुम मानुषी कैसे हो सकती हो? पूर्वकाल में ६०००० वर्षों तक तप करने के उपरान्त भी ब्रह्मा तुम्हारे चरणकमल का दर्शन नहीं पा सके। अतः तुम मानुषी कैसे हो सकती हो? तुमने कृष्ण की आज्ञा से पृथिवी पर आगमन किया है? अतः तुम मानुषी कैसे हो सकती हो? तुम्हारी कृपा से ही मनुवंशोत्पन्न राजा सुयज्ञ गोलोक जा सके। अतः तुम मानुषी कैसे हो सकती हो?॥१९७-२००॥

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां चकार पृथिवीं भृगुः।
तव मन्त्रेण कवचात्कथं त्वं मानुषी सती॥२०१॥
शङ्करात्प्राप्य त्वन्मन्त्रं सिद्धं कृत्वा च पुष्करे।
जघान कार्तवीर्यं च कथं त्वं मानुषी सती॥२०२॥
बभञ्ज दर्पाद्दन्तं च गणेशस्य महात्मनः।
त्वत्तो नाम भयं चक्रे कथं त्वं मानुषी सती॥२०३॥

महर्षि परशुराम ने तुम्हारे मन्त्र तथा कवच के प्रभाव से २१ बार पृथिवी को क्षत्रिय रहित किया था तथा शंकर से तुम्हारा मन्त्र पाकर पुष्कर में उसे सिद्ध करके कार्त्तवीर्य राजा का वध किया था। अतः हे सती! तुम मानुषी कैसे हो सकती हो? कालान्तर में परशुराम ने दर्प में भरकर महान् गणेश का दांत तोड़ दिया था। वह केवल तुमसे ही भयभीत रहते थे। अतः तुम मानुषी किस प्रकार से हो सकती हो?॥२०१-२०३॥

मय्युद्धतायां कोपेन भस्मसात्कर्तुमीश्वरि।
ररक्षाऽऽगत्य मत्प्रीत्या कथं त्वं मानुषी सती॥२०४॥
कल्पे कल्पे तव पतिः कृष्णो जन्मनि जन्मनि।
व्रतं लोकहितार्थाय जगन्मातस्त्वया कृतम्॥२०५॥
अहो श्रीदामशापेन भारावतरणाय च। भूमौ तवाधिष्ठानं च कथं त्वं मानुषी सती॥२०६॥
अयोनिसंभवा त्वं च जन्ममृत्युजरापहा।
कलावतीसुता पुण्या कथं त्वं मानुषी सती॥२०७॥
त्रिषु मासेष्वतीतेषु मधुमासे मनोहरे। निर्जने निर्मले रात्रौ सुयोग्ये रासमण्डले॥२०८॥
सर्वाभिर्गोपिकाभिश्च सार्धं वृन्दाने वने।
हर्षेण हरिणा सार्धं क्रीडा ते भविता सति॥२०९॥

विधात्रा लिखिता क्रीडा कल्पे कल्पे महीतले।
तव श्रीहरिणा सार्धं केन राधे निवार्यते॥२१०॥

जब परशुराम ने मेरे पुत्र गणेश का दांत तोड़ दिया था, तब मैंने हे ईश्वरी! मैं क्रोध के कारण परशुराम को भस्म करने के लिये उद्यत हो गई। तब तुम्हारे प्रेम के कारण ही ईश्वर हरि ने वहां आकर परशुराम की रक्षा किया था। ऐसी स्थिति में तुमको मानुषी किस प्रकार कहा जा सकता है? हे जगन्माता! कल्प-कल्पान्तर में श्रीहरि तुम्हारे ही पति होंगे। यह निरूपित हो गया था। तब भी तुम जो यह व्रतादि अनुष्ठान करती हो, यह केवल लोकशिक्षा हेतु ही तुम्हारा कार्य है। अहो! गोप श्रीदाम के शाप के बहाने तुम पृथिवी पर यहां का भार उतारने मृत्युलोक में आई हो। तुम मानुषी कैसे हो सकती हो? तुम कलावती की अयोनिजा कन्या हो। तुम पुण्यरूपा, जन्म-मृत्यु, जरा का हरण करती हो। अब तुम मानुषी कैसे हो सकती हो। हे सती! आज से तीन महीने के उपरान्त मनोहर मधुमास की रात में निर्जनस्थ रम्य रासमण्डल में वृन्दावन की भूमि पर तुम गोपियों सहित हरि के साथ आनन्द पूर्वक क्रीड़ा करोगी। प्रत्येक कल्प में तुम श्रीहरि के साथ क्रीड़ा करती रहोगी। यह विधाता ने लिख दिया है। उसे कौन अन्यथा कर सकेगा?।।२०४-२१०।।

यथा सौभाग्ययुक्ताऽहं हरस्य श्रीहरिप्रिये।
तथा सौभाग्ययुक्ता त्वं भव कृष्णस्य सुन्दरि॥२११॥
यथा क्षीरेषु धावल्यं यथा वह्नौ च दाहिका।
भुवि गन्धो जले शैत्यं तथा कृष्णे स्थितिस्तव॥२१२॥
देवी वा मानुषीं वाऽपि गान्धर्वी राक्षसी तथा।
त्वत्तः परा च सौभाग्या न भूता न भविष्यति॥२१३॥

हे हरिप्रिया! सुन्दरी! जिस प्रकार मैं शंकर की सौभाग्यशालिनी भार्या हूं, तदनुरूप तुम भी कृष्ण की सौभाग्यमयी वल्लभा हो। जैसे दुग्ध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति है, धरती में गन्ध, जल में शीतलत्व है, तदनुरूप कृष्ण में तुम स्थित रहती हो। हे देवी! जगत् में कोई भी मानुषी, गान्धर्वी किंवा राक्षसी तुमसे अधिक सौभाग्यमयी न थी न होगी!।।२११-२१३।।

परात्परो गुणातीतो ब्रह्मादीनां च वन्दितः।
स्वयं कृष्णस्तवाधीनो मद्वरेण भविष्यति॥२१४॥
ब्रह्मानन्तशिवाराध्यो भविता त्वद्वशः सति।
ध्यानासाध्यो दुराराध्यः सर्वेषामपि योगिनाम्॥२१५॥
त्वं च भाग्यवती राधे स्त्रीजातिषु न ते परा।
कृष्णेन सार्धं पश्चात्त्वं गोलोकं च गमिष्यसि॥२१६॥

"यह मेरा वरदान है कि परात्पर, गुणातीत, ब्रह्मादि द्वारा वन्दनीय स्वयं श्रीकृष्ण तुम्हारी

अधीनता में रहेंगे। जो समस्त योगीगण के भी ध्यान में असाध्य हैं तथा जिनकी आराधना अत्यन्त दुःसाध्य है, वे ब्रह्मा-अनन्त-शिव के आराध्यदेव कृष्ण तुम्हारे वशीभूत रहेंगे। हे राधा! तुम्हारे समान भाग्यशाली नारी सभी जातियों में नहीं है। तुम अन्त में कृष्ण के साथ गोलोक गमन करोगी।"।।२१४-२१६।।

इत्युक्त्वा पार्वती सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे मुने।
सार्धं गोपालिकाभिश्च राधिका गन्तुमुद्यता।।२१७।।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो जगाम राधिकापुरः।
राधा ददर्श श्रीकृष्णं किशोरं श्यामसुन्दरम्।।२१८।।
पीतवस्त्रपरीधानं रत्नालङ्कारभूषितम्। आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम्।।२१९।।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं शरत्पङ्कजलोचनम्।।२२०।।

यह कहकर पार्वती देवी वहां से तत्काल अन्तर्ध्यान हो गईं। तभी राधा भी गोपियों के साथ स्वगृह जाने को उद्यत हो गई। इतने में वहां राधिका के समक्ष श्रीकृष्ण आ गये। राधा ने किशोर श्यामसुन्दर कृष्ण को वहां देखा। वे पीतवस्त्रधारी, नाना अलङ्कारों से भूषित, जानु पर्यन्त लटकती मालती की माला तथा वनमाला से भूषित थे। उनका मुख मन्दमुस्कान से शोभायमान था। वे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, चन्दन चर्चित अंगयुक्त तथा शारदीय कमल के समान विकसित नेत्रों वाले थे।।२१७-२२०।।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्। पक्वदाडिमबीजाभदशनं सुमनोहरम्।।२२१।।
विनोदमुरलीहस्तन्यस्तलीलासरोरुहम्। कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम्।।२२२।।
गुणातीतं स्तूयमानं ब्रह्मानन्तशिवादिभिः।
ब्रह्मस्वरूपं ब्रह्मण्यं श्रुभिभिश्चानिरूपितम्।।२२३।।
अव्यक्तमक्षरं व्यक्तं ज्योतीरूपं सनातनम्।
माङ्गल्यं मङ्गलाधारं मङ्गलं मङ्गलप्रदम्।।२२४।।
दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं सम्भ्रमात्प्रणनाम तम्।
तं दृष्ट्वा मूर्च्छिता राधा कामबाणप्रपीडिता।।२२५।।
दर्शं दर्शं मुखाम्भोजं सस्मिता वक्रलोचना।
मुखस्याऽऽच्छादनं चक्रे व्रीडया च पुनः पुनः।।२२६।।

उनका मुखमण्डल शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान था। उन्होंने रत्नमय उज्वल मुकुट धारण किया था। उनकी दन्तपंक्ति पके अनार के बीजों के समान मनोहर थी। विनोदार्थ वे मुरलीधारी थे। उन्होंने लीलाकमल भी धारण किया था। वे कोटि कामदेव के समान सौन्दर्यशाली, लीलाधाम,

मनोहर, गुणातीत, ब्रह्मा-अनन्त-शिव प्रभृति देवगण द्वारा स्तुत, ब्रह्मरूप, ब्राह्मणगण के हितकारी, जिनका वर्णन श्रुति भी नहीं कर सकती, अव्यक्त, अविनाशी, व्यक्तज्योतिःरूप, सनातन, मङ्गल करने वाले, मङ्गलाधार, मङ्गलमय तथा मङ्गलप्रद हैं। राधा उनका यह अद्भुतरूप देखकर तत्काल उठीं तथा उनको प्रणाम किया। वे श्रीकृष्ण को देखने मात्र से कामबाण से पीड़िता होकर सुध-बुध खो बैठीं। वे तिरछी, चितवन से बारम्बार कृष्ण का मुखकमल देखतीं तथा लज्जा से बारम्बार अपना मुख ढांक लेती थीं।।२२१-२२६।।

दृष्ट्वा हरिस्तामुवाच प्रसन्नवदनेक्षणः। गोपालिकासमूहानां सर्वेषां पुरतः स्थितः।।२२७।।

तब प्रसन्नानन एवं हर्षित नेत्रों से कृष्ण ने अपने सामने स्थित गोप बालाओं के समूह को देखकर उनसे कहा-।।२२७।।

श्रीकृष्ण उवाच

प्राणाधिके राधिके त्वं वरं वृणु मनीषितम्।
भो भो गोपालिकाः सर्वा वरं वृणुत वाञ्छितम्।।२२८।।
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा वरं वव्रे च राधिका।
गोपालिकाः प्रहृष्टाश्च सर्वसङ्कल्पपादपात्।।२२९।।

श्रीकृष्ण कहते हैं-"हे प्राणाधिक प्रिय राधिका! तुम वांछित वर मांगो। हे गोपिका! तुम लोग भी अपना अभिलषित वर मांग लो।" श्रीकृष्ण का यह वचन सुनकर राधिका एवं गोपबालिकायें अत्यन्त हर्षित हो उठीं। तदनन्तर राधा तथा गोपबालाओं ने समस्त कामना पूर्ण करने के लिये कल्पवृक्ष स्वरूप प्रभु श्रीकृष्ण से वर मांगा।।२२८-२२९।।

राधिकोवाच

त्वत्पादाब्जे मन्मनोलिः सततं भ्रमतु प्रभो। पातुं भक्तिरसं पद्मे मधुपश्च यथा मधु।।२३०।।

मदीयप्राणनाथस्त्वं भव जन्मनि जन्मनि।
त्वदीयचरणाम्भोजे देहि भक्तिं सुदुर्लभाम्।।२३१।।
तव स्मृतौ गुणे चित्तं स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम्।
भवेन्निमग्नं सततमेतन्मम मनीषितम्।।२३२।।

श्रीराधा कहती हैं-हे प्रभो! मेरा मनरूपी भ्रमर आपके चरणकमलों पर निरन्तर भ्रमण करके उसी प्रकार भक्तिरस का पान करे जैसे भ्रमर पुष्पों पर मंडराता हुआ मधुपान करता है। आप प्रभु प्रत्येक जन्मों में मेरे प्राणनाथ रहें। आप मुझे अपने चरणकमलों की दुर्लभ भक्ति प्रदान करिये। स्वप्न-जागरण स्थिति में, अहर्निश मेरा चित्त आपके गुणों तथा आपका स्मरण करने तथा वर्णन करने में निरत रहे। यही मेरा वांछित वर है।।२३०-२३२।।

गोपालिका ऊचुः

यथा राधा तथा नश्च प्राणबन्धो दिवानिशम्।
भविष्यसि प्राणनाथः पास्यसि प्रतिजन्मनि॥२३३॥

गोपियां कहती हैं—हे प्राणबन्धु! जिस प्रकार प्रतिजन्म में आप दिन-रात राधा के प्राणनाथ रहेंगे तथा उनकी रक्षा करेंगे, उसी प्रकार हमारे लिये भी आप हमारे बने रहें।।२३३।।

आसां च वचनं श्रुत्वा तथास्त्वेवमुवाच ह। प्रसन्नवदनः श्रीमान्यशोदानन्दवर्धनः॥२३४॥
क्रीडापद्मं राधिकायै सहस्रदलसंयुतम्।
ललितां मालतीमालां ददौ प्रीत्या जगत्पतिः॥२३५॥
मालासमूहं पुष्पाणि गोपीभ्यो गोपिकापतिः।
प्रहस्य परमप्रीत्या प्रददावित्युवाच ह॥२३६॥

यशोदानन्दन ने प्रसन्नता के साथ राधा तथा गोपीगण से कहा—"ऐसा ही हो।" तब श्रीकृष्ण ने प्रेम पूर्वक राधा को सहस्रदल क्रीड़ापद्म प्रदान करके, ललिता को मालती माला प्रदान किया। तत्पश्चात् परमप्रीति के साथ अन्य गोपीगण को माला तथा पुष्प का समूह प्रसन्न होकर प्रदान किया और कहने लगे।।२३४-२३६।।

श्रीकृष्ण उवाच

त्रिषु मासेष्वतीतेषु यूयं क्रीडा मया सह।
रासमण्डलरम्ये च वृन्दारण्ये करिष्यथ॥२३७॥
[1]यथाऽहं च तथा यूयं नाहं (यं) भेदः श्रुतौ श्रुतः।
प्राणोऽहं चैव युष्माकं यूयं प्राणा मम प्रभो॥२३८॥
व्रतं वो लोकरक्षार्थं न हि स्वार्थमिदं प्रियाः।
सहाऽऽगताश्च गोलोकाद्गमनं च मया सह॥२३९॥
गच्छत स्वालयं शीघ्रं वोऽहं जन्मनि जन्मनि।
प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यो यूयं मे नात्र संशयः॥२४०॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे गोपियो! तीन मास अतीत हो जाने पर वृन्दावनस्थ रमणीय रासमण्डल में तुम लोग मेरे साथ क्रीड़ा करोगी। जो मैं हूं, वही तुम लोग हो। हमारे बीच में वेदों द्वारा भी कोई भेद नहीं कहा गया है। अर्थात् तुम लोगों में तथा मुझमें कोई पारस्परिक भेद ही नहीं है। मैं तुम लोगों का प्राणस्वरूप हूं। तुम लोग मेरी प्राणवल्लभा हो। हे प्रेयसियो! तुम लोगों का व्रत मात्र लोकशिक्षार्थ है। तुम लोगों ने मेरे साथ ही गोलोक से यहां आगमन किया है। मेरे सहित ही तुम लोग गोलोक जाओगी।

१. एकोऽह०।

तुम सब शीघ्र अपने गृह लौट जाओ। मैं जन्मजन्मान्तर में तुम्हारा ही रहूंगा। तुम सब मेरे लिये प्राणों से भी अधिक हो। यह निःसन्देह है।।२३७-२४०।।

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र तस्थौ सूर्यसुतातटे।
तस्थुर्गोपालिकाः सर्वा वीक्ष्य कृष्णं पुनः पुनः॥२४१॥
सर्वाः प्रहृष्टवदनाः सस्मिता वक्रलोचनाः।
प्रीत्या चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं पपुर्हरेः॥२४२॥
ताः शीघ्रं प्रययुर्गेहं जयं दत्त्वा पुनः पुनः।
हरिश्च शिशुभिः सार्धं प्रसन्नः स्वालयं ययौ॥२४३॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम्। गोपीनां वस्त्रहरणं सर्वलोकसुखावहम्॥२४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोपिकावस्त्रहरणप्रस्तावो नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

यह कहकर श्रीकृष्ण वहीं यमुना तट पर बैठ गये। गोपीगण भी वहीं रहकर बारम्बार कृष्ण की ओर देखती जा रही थीं। वे सभी गोपियां प्रसन्नवदन होकर मुस्कराते हुये, कटाक्ष द्वारा प्रेम पूर्वक श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र की सुधा का पान करने लगीं, जैसे चकोर चन्द्ररशिम का पान करता है। वे तदनन्तर कृष्ण की जय-जयकार करती स्वगृह चली गईं। हरि भी गोपशिशुओं के साथ प्रसन्नता पूर्वक अपने घर चले गये। हे नारद! मैंने सर्वलोकसुखावह श्रीहरि का मङ्गलमय चरित कहा तथा गोपिकाओं के वस्त्र हरण का भी सुख प्रसंग कह दिया।।२४१-२४४।।

।।२७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

अष्टाविंशोऽध्यायः

रासलीला का वर्णन

नारद उवाच

त्रिषु मासेष्वतीतेषु तासां च हरिणा सह। वद केन प्रकारेण बभूव [१]तनुसङ्गमः॥१॥
वृन्दावनं किंप्रकारं किंविधं रासमण्डलम्। हरिरेकस्ताश्च बह्व्यः केन क्रीडा बभूव ह॥२॥
कुतूहलं भवति मे इदं श्रोतुं नवं नवम्। कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्तन॥३॥

१. क. नव०।

कथा पुराणसाराणां रासयात्रा हरेरहो। हरिलीलाः पृथिव्यां तु सर्वाः श्रुतिमनोहराः॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे प्रभो! तीन मास व्यतीत होने पर गोपियों से हरि का किस प्रकार का समागम हुआ था? यह वृन्दावन किस प्रकार का है? रासमण्डल का स्वरूप क्या है? श्रीहरि ने एकाकी होकर भी किस प्रकार से अनेक नारीगण से रासक्रीड़ा किया? मुझे यह नवीन, नूतन हरिचरित सुनने का अत्यन्त कुतूहल हो रहा है! मैं पुराण के सारस्वरूप रासयात्रा का श्रवण करने के लिये अत्यन्त व्यग्र हो रहा हूं। भूमण्डल पर की गई श्रीहरि की सभी लीला सुनने में मनोहर हैं। अतः सुनने में पुण्यमय, कहने में पुण्यमय, इन समस्त विवरण को कहिये।।१-४।।

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणः स्वयम्। प्रहस्य सुप्रसन्नास्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे॥५॥

सूत जी कहते हैं–नारद का कथन सुनकर ऋषि नारायण प्रसन्न हो गये। वे स्वयं हंसते हुये कहने लगे।।५।।

नारायण उवाच

एकदा श्रीहरिर्नक्तं वनं वृन्दावनं ययौ। शुभे शुक्लत्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये मुने॥६॥
यूथिकामालतीकुन्दमाधवीपुष्पवायुना। वासितं कलनादेन मधुभ्राणां मनोहरम्॥७॥
नवपल्लवसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम्। नवलक्षरासवाससंयुक्तं सुमनोहरम्॥८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनिवर! एक बार श्रीकृष्ण रात्रिकाल में वृन्दावन गये। उस दिन शुभ शुक्लपक्षीय त्रयोदशी तिथि थी तथा पूर्ण चन्द्रोदय हो गया था। वे देखते हैं कि उस वृन्दावन में जूही, माधवी, कुन्द तथा मालती आदि पुष्पों का परिमल उड़ाती सुगन्धित वायु से वहां सभी स्थान सुवासित हो रहे हैं। भ्रमरों के मधुर गुंजार से वह स्थान अत्यन्त मनोहर शोभायुक्त हो रहा था। यह वन प्रदेश नव पल्लव युक्त वृक्षों से शोभित लग रहा था, जिन पर नरकोकिल की मनोहर कूंजन ध्वनि गूंज रही थी। यह स्थल ९ लक्ष रासगृहयुक्त था। जिनके कारण वृन्दावन की शोभा अत्यन्त मनोहर थी।।६-८।।

चन्दनागुरुकस्तुरीकुङ्कमेन सुवासितम्। कर्पूरान्विततताम्बूलभोगद्रव्यसमन्वितम्॥९॥
प्रसूनैश्चम्पकानां च कस्तूरीचन्दनान्वितैः।
रतियोग्यैर्विरचितैर्नानातल्पैः सुशोभितम्॥१०॥
दीप्तं रत्नप्रदीपैश्च धूपेन सुरभीकृतम्। नानापुष्पैश्च रचितं मालाजालैर्विराजितम्॥११॥
परितो वर्तुलाकारं तत्रैव रासण्डलम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कमेन सुसंस्कृतम्॥१२॥
पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च युक्तं क्रीडासरोवरैः। हंसकारण्डवाकीर्णैर्जलकुक्कुटकूजितैः॥१३॥
क्रीडनीयैः सुन्दरैश्च सुरतश्रमहारिभिः। शुद्धस्फटिकसंकाशतोयपूर्णैः सुनिर्मलैः॥१४॥

दधिपूर्णशुक्लधान्यलाजैर्निर्मञ्छनीकृतम्[1]। रम्भास्तम्भसमूहेन सुन्दरेण सुशोभितम्॥१५॥
आम्रपल्लवयुक्तेन सूत्रबन्धेन चारुणा। भूषितं मङ्गलघटैः सिन्दूरचन्दनान्वितैः॥१६॥
मालतीमाल्यसंयुक्तैर्नारिकेलफलान्वितैः। स रासमण्डलं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः॥१७॥
चकार तत्र कुतुकाद्विनोदमुरलीरवम्। गोपीनां कामुकीनां च कामवर्धनकारणम्॥१८॥

वह स्थल चन्दन-अगुरु, कस्तूरी एवं कुंकुम से सुवासित था। साथ ही कर्पूर युक्त ताम्बूलादि सुखप्रद भोगद्रव्यों से पूर्ण था। वहां पर का कोई-कोई स्थान कस्तूरी एवं चन्दन लिप्त चम्पा पुष्पों से सज्जित रतियोग्य अनेक प्रकार की शय्याओं से शोभायमान तथा रत्नमय दीपों से आलोकित था। वह स्थल सुगन्ध धूपों के मनोहर सौरभ से आमोदित हो रहा था। वहां नाना पुष्पों से रचित बन्दनवार मनोहर रूप से विराजमान थी। उस वृन्दावन में वर्त्तुलाकार चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुंकुम द्वारा सुसंस्कृत रासमण्डल शोभायमान था। उसमें न जाने कितने पुष्पित पुष्पोद्यानों में क्रीड़ा सरोवर भी थे। उनमें हंस, कारण्डव, जलमुर्गादि, पक्षीगण इधर-उधर विचर रहे थे। उस सरोवर में सर्वसुरत श्रम का हरण करने वाला, शुद्ध स्फटिक के समान जल भरा था। वहां मनोहर क्रीड़ा योग्य सोपान श्रेणी भी विराजमान थी। वहां रासमण्डल में दधि, श्वेतधान्य तथा लावा आदि द्वारा छिड़काव किया गया था। वह स्थल उत्तम कदली स्तम्भों के समूह से शोभायमान लग रहा था। वहां का स्थल सूत्रबद्ध आम्रपल्लवों की बन्दनवार, सिन्दूर, चन्दन लिप्त मंगल कलशों से वह स्थान सजा था। वहां मंगल कलशों पर मालती माला तथा नारिकेल फल भी सजे थे। (रखे थे)। ऐसे रासमण्डल को देखकर श्रीकृष्ण हंस पड़े। तब मधुसूदन ने कौतुकवशात् कामुकी गोपिकागण की कामवृत्ति को बढ़ाने के लिये विनोद साधनरूपा मुरलीवादन वहां पर किया॥९-१८॥

तच्छ्रुत्वा राधिका सद्यो मुमोह मदनातुरा। बभूव स्थाणुवद्देहा ध्यानैकतानमानसा॥१९॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य पुनः शुश्राव सा ध्वनिम्।
उवास सा समुत्तस्थौ समुद्विग्ना पुनः पुनः॥२०॥
त्यक्त्वा चाऽऽवश्यकं कर्म निःससार द्रुतं गृहात्।
ययौ तदनुसारेण प्रसमीक्ष्य चतुर्दिशम्॥२१॥

उस मुरली ध्वनि को सुनते ही राधा तत्काल कामातुर हो गईं। वे मोहग्रस्त होकर निश्चल वृक्ष की तरह खड़ी रह गई। उनका मन-प्राण उस मुरली की तान में लीन हो गया! कुछ क्षणों बाद चेतना लौटने पर उन्होंने पुनः उस मुरली ध्वनि को सुना। तब वे अत्यन्त उद्विग्न हो उठीं। वे तत्काल उठकर खड़ी हो गईं। कभी वे बैठती, कभी उठ जाती। अन्ततः वे अपना आवश्यक कार्य छोड़कर घर से निकलीं तथा चतुर्दिक् देखने लगीं। वे वंशीध्वनि जिधर से आ रही थी, उधर जाने लगीं॥१९-२१॥

ध्यायन्ती चरणाम्भोजं श्रीकृष्णस्य महात्मनः। तेजसा च द्योतयन्ती सद्रत्नसारभूषणैः॥२२॥

१. ख. ०जलै०।

बहिर्बभूवुस्तास्त्रस्ता रवेण हृतचेतनाः। कुलधर्मं परित्यज्य निःशङ्काः काममोहिताः॥२३॥

त्रयस्त्रिंशद्वयस्याश्च ताः सुशीलादयः स्मृताः।
राधिकायाः प्रियतमा गोपीनां प्रवरा ययुः॥२४॥

उनके मन में केवल कृष्ण के चरणारविन्द की ही स्मृति जाग्रत थीं। उनके अपने स्वतेज तथा उत्तम रत्नों के सार से निर्मित शरीर पर धारण किये गये आभूषणों के तेज से चतुर्दिक् प्रकाश प्रसारित हो रहा था। राधा की सखियां भी मुरली ध्वनि से त्रस्त होकर अपनी चेतना खो बैठीं। वे कुलधर्म त्याग करके निःशंक तथा काममोहित हो गईं। ये सभी प्रधान तथा राधा की परमप्रिय ३३ गोपी सखियां जो सुशीला आदि नाम से प्रसिद्ध थीं, राधा का अनुगमन कर रहीं थीं।।२२-२४।।

तासां पश्चाद्ययुर्गोप्यस्तासां संख्या निबोध मे।
समा वेषेण वयसा रूपेण च गुणेन च॥२५॥
ययुः सुशीलासङ्गेन सहस्राणि च षोडश[1]।
ययुश्चन्द्रमुखी पश्चात्सहस्राणि च षोडश॥२६॥
एकादश सहस्राणि माधव्याल्यश्च निर्ययुः।
जग्मुः कदम्बमालाल्यः सहस्राणि त्रयोदश॥२७॥
ययुः कुन्तीवयस्याश्च सहस्राणि दश समृताः।
चतुर्दश सहस्राणि ययुस्ता यमुनानुगाः॥२८॥

जाह्नवीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्नव। ययुर्नव सहस्राणि पद्ममुख्याल्य एव च॥२९॥

सावित्र्याल्यः पञ्चदश सहस्राणि ययुर्व्रजात्।
पारिजातावयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश॥३०॥
स्वयंप्रभानुगाः सप्त सहस्राणि ययुर्व्रजात्।
ययुः सुधामुखी गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश॥३१॥

शुभानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश। पद्मानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश॥३२॥

[2]गौरीपद्मा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश।
ययुः सर्वमङ्गलाल्यः सहस्राणि च षोडश॥३३॥
कालिकाल्यो ययुर्गोप्यः सहस्राणि च[3] षोडश।
निर्ययुः कमलाल्यश्च सहस्राणि त्रयोदश॥३४॥

---

१. क॰ त्रयोदश।
२. क. चतुर्दश।
३. क. चतुर्दश॰।

दुर्गानुगा ययुर्गोप्यः सहस्त्राणि च षोडश। ययुः सरस्वतीपश्चात्सहस्त्राणि त्रयोदश॥३५॥
प्रजग्मुर्भारतीपश्चात्सहस्त्राणि दश व्रजात्। अपर्णासहचारिण्यः सहस्त्राणि चतुर्दश॥३६॥

हे नारद! इन प्रधान सखियों के पीछे-पीछे उनका अनुगमन करके जाने वाली सखियों की संख्या आदि को मुझसे सुनो। वे सभी आयु, रूप, गुण में समान थीं। सुशीला के साथ १६०००, कदम्बमाला के साथ तेरह सहस्त्र, कुन्ती के साथ १० हजार, यमुना के साथ १४ हजार, जाह्नवी के साथ ९ हजार, पद्ममुखी के साथ ९ हजार, सावित्री के साथ १५०००, पारिजाता के साथ १० हजार, स्वयम्प्रभा के साथ ७ हजार, सुखामुखी के साथ १४ हजार, शुभ्रा के साथ १४ हजार, पद्मा के साथ भी १४०००, गौरीपद्मा के साथ भी १४ हजार, सर्वमङ्गला के साथ १६ हजार, दुर्गा के साथ भी १६ हजार, कमला के साथ १३ हजार, सरस्वती के साथ १३ हजार, भारती के साथ १० हजार, अपर्णा के साथ १४ हजार गोपियां जा रही थीं।।२५-३६।।

रतिपश्चाद्वयस्याश्च सहस्त्राणि [1]ययुर्दश। गङ्गावयस्याः प्रययुः सहस्त्राणि चतुर्दश॥३७॥
प्रजग्मुरम्बिकापश्चात्सहस्त्राणि च षोडश। सतीपश्चाद्ययुर्गोप्यः सहस्त्राणि त्रयोदश॥३८॥
नन्दिनीसहचारिण्यः सहस्त्राणि ययुर्दश। प्रययुः सुन्दरीपश्चात्सहस्त्राणि त्रयोदश॥३९॥
ययुः कृष्णप्रियापश्चात्सहस्त्राणि च षोडश। ययुर्मधुमतीपश्चात्सहस्त्राणि च[2] षोडश॥४०॥

रति के साथ १० हजार, गंगा के साथ १४ हजार, अम्बिका के साथ १६ हजार, सती के साथ १३ हजार, नन्दिनी के साथ १० हजार, सुन्दरी के साथ १३ हजार, कृष्णप्रिया के साथ १६ हजार, मधुमती के साथ भी १६ हजार गोपियां गई थीं।।३७-४०।।

ययुश्चम्पानुगा गोप्यः सहस्त्राणि त्रयोदश।
चन्दनाल्यो ययुः पश्चात्सहस्त्राणि च[3] षोडश॥४१॥

सर्वा बभूवुरेकत्र तत्र तस्थुः पलं मुदा। तत्राऽऽययुर्गोपिकाश्च मालाहस्ताश्च काश्चन॥४२॥
चारुचन्दनहस्ताश्च काश्चित्तत्राऽऽययुर्व्रजात्। श्वेतचामरहस्ताश्च काश्चित्तत्राऽऽययुर्मुदा॥४३॥
तत्राऽऽययुर्गोपकन्याः काश्चित्कस्तूरिकाकराः। तत्राऽऽययुर्गोपकन्याः काश्चित्कुङ्कुमवाहिकाः॥४४॥
काश्चित्तत्राऽऽययुर्गोप्यस्ताम्बूलपात्रवाहिकाः। यावत्काञ्चनवस्त्राणां वाहिका गोपकन्यकाः॥४५॥

चम्पा के साथ वहां उसका अनुगमन करती १३००० गोपियां आईं। चंदना के साथ उसकी सखी १६००० गोपियां भी वहां पहुंच गई। वहां सभी एक साथ कुछ पल मुदित होकर खड़ी हो गई। कतिपय गोपियां वहां माला लेकर आईं। कुछ गोपियां ब्रजधाम से वहां उत्तम चन्दन लेकर, कुछ गोपीगण हर्षित मन से श्वेत चामर लेकर, तो कतिपय गोपियां कस्तूरी लेकर, कुछ गोपीगण केसर लेकर

१. क. चतुर्दश।
२. क. चतुर्दश।
३. क. चतुर्दश।

वहां आईं। इसी क्रम में कुछ गोपियां वहां ताम्बूल का पात्र (पानदान), तो कुछ स्वर्ण तथा वस्त्र लेकर वहां आ गईं!।।४१-४५।।

काश्चित्तत्राऽऽययुः शीघ्रं यत्र चन्द्रावली मुदा।
सर्वाश्चैकत्र संभूय सस्मिताश्च मुदाऽन्विता।।४६।।

विधाय राधिकावेषं स्थानाश्च प्रययुर्मुदा। चक्रुः पुनः पुनस्ताश्च हरिशब्दजपं पथि।।४७।।
प्रापुर्वृन्दावनं रम्यं ददृशू रासमण्डलम्। स्वर्गेभ्यः सुन्दरं दृश्यं राकापतिकरान्वितम्।।४८।।

कोई गोपियां आनन्द पूर्वक चन्द्रावली राधा के पास आकर खड़ी हो गईं। ये सभी गोपियां एक ही स्थान पर एकत्र हो गईं तथा उन्होंने हर्षित चित्त से राधा की वेषसज्जा किया तथा हर्षित होकर वहां से आगे बढ़ने लगीं। वे वृन्दावन की ओर बढ़ते समय हरि की जय-जयकार करती जा रहीं थीं। इस प्रकार वे रमणीय वृन्दावन पहुंच गयीं, जहां उन्होंने मनोहर रासमण्डल का दर्शन किया। वह चन्द्रकिरणों से समावृत प्रतिच्छवित रासमण्डल तो स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर लग रहा था।।४६-४८।।

सुनिर्जनं कुसुमितं वासितं पुष्पवायुना। नारीणां कामजननं मुनिमोहनकारणम्।।४९।।

शुश्रुवुस्तत्र ताः सर्वाः पुंस्कोकिलकलध्वनिम्।
अतिसूक्ष्मकलं चापि भ्रमराणां मनोहरम्।।५०।।

प्रसूनमधुमत्तानां भ्रमरीसङ्गसङ्गिनाम्। शुभे क्षणे प्रविवेश राधिका रासमण्डलम्।।५१।।

सर्वाभिरालिभिः सार्धं ध्यात्वा कृष्णपदाम्बुजम्।
राधामारात्तु संवीक्ष्यं कृष्णस्तत्र मुदाऽन्वितः।।५२।।

वह रासमण्डल अत्यन्त निर्जन था। वहां अनेक प्रकार के पुष्प खिल रहे थे। वहां मृदुमन्द वायु के संचार के कारण उन पुष्पों का सौरभ चारों दिशाओं को आमोदित कर रहा था। गोपिकाओं ने वहां जाकर इस मनोहर प्रदेश को देखा जो कामिनी स्त्रियों के लिये कामोत्पादक तथा मुनियों के भी मन का हरण करने वाला था। वहां नर कोकिलों की कुहुक शब्दायमान हो रही थी। वहां पर पुष्पों के परागमधु का पान करके मदमत्त भ्रमरगण भ्रमरियों के साथ-साथ गुन-गुन का शब्द कर रहे थे। देवी राधा ने गोप बालाओं के साथ श्रीकृष्ण के चरणकमलों का चिन्तन करते-करते शुभक्षण में रासमण्डल में प्रवेश किया। श्रीकृष्ण ने भी उस समय देखा कि सखियों से घिरी राधिका उनके पास आ रही हैं। यह देखकर कृष्ण आनन्दमग्न हो गये।।४९-५२।।

जगामानुव्रजन्प्रीत्या सस्मितो मदनातुरः। मध्यस्थां सखिसङ्घानां रत्नालङ्कारभूषिताम्।।५३।।
दिव्यवस्त्रपरीधानां सस्मितां वक्रलोचनाम्। गजेन्द्रगामिनीं रम्यां मुनिमानसमोहिनीम्।।५४।।

नवीनवेषवयसा रूपेणातिमनोहराम्।
तल (स्तन) श्रोणिनितम्बानां भारशेषान्वितां पराम्।।

चारुचम्पकवर्णाभां शरच्चन्द्रनिभाननाम्। बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्।।५५।।

राधा ददर्श श्रीकृष्णं किशोरं श्यामसुन्दरम्। नवयौवनसम्पन्नं रत्नाभरणभूषितम्॥५६॥

ये देवी राधा रत्नालंकार भूषिता थीं। उन्होंने मनोहर वस्त्रों को धारण किया था। उनके नेत्रद्वय तिरछी चितवन वाले थे। वे मदमत्त हाथी के साथ चली जा रही थीं। वे मुनिगण का भी मन हरण कर सकने में सक्षम थीं। वे देवी राधा नववयस वाली, नववेशधारिणी तथा रूप में मन का हरण करने वाली थीं। उनके स्तन, नितम्ब तथा जंघा अत्यन्त स्थूल थे, जिनके भार से वे श्रान्त थीं। वे मनोहर चम्पकवर्ण, कान्तियुता, शारदीय पूर्ण चन्द्र ऐसे मुख वाली राधा मालती माला से गुंथी वेणी का भार वहन करती चली आ रही थीं। ऐसी राधा ने किशोरवय वाले कृष्ण श्यामसुन्दर प्रभु को देखा, जो नवयौवन सम्पन्न तथा रत्नाभरणभूषित थे!॥५३-५६॥

कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाम मनोहरम्।
प्राणाधिकां तां पश्यन्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा॥५७॥

परमाद्भुतरूपं च सर्वत्रानुपमं परम्। विचित्रवेषं चूडां च बिभ्रतं सस्मितं मुदा॥५८॥

वक्रलोचनकोणेन दर्शं दर्शं पुनः पुनः। मुखमाच्छादयाञ्चके व्रीडया सस्मिता सती॥५९॥

मूर्च्छामवाप सा सद्यः कामबाणप्रपीडिता। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी बभूव हतचेतना॥६०॥

कटाक्षकामबाणैश्च विद्धः क्रीडारसोन्मुखः।
मूर्च्छां प्राप्य न पपात तस्थौ स्थाणुसमो हरिः॥६१॥
पपात मुरली तस्य क्रीडाकमलमुज्ज्वलम्।
द्वितीयं पीतवस्त्रं च शिखिपिच्छं शरीरतः॥६२॥

श्रीकृष्ण करोड़ों कामदेव के लावण्य से समन्वित तथा मनोहर लीलाधाम थे। वे प्रभु भी अपनी प्राणाधिका राधा को देख रहे थे, जो उनकी ओर सतत् कटाक्ष से देखती जा रही थीं। राधा ने भी इन परमअद्भुत अनुपम रूप वाले विचित्र वेश (एवं मोरमुकुटधारी) धारी कृष्ण को अपने तिरछी, चितवन युक्त नेत्रों के कोण से बारम्बार देखा। तदनन्तर उन्होंने लज्जा के साथ अपने मुख को आंचल दे ढ़ाक लिया। वे इस दर्शन से कामबाण पीड़ित तथा अत्यन्त विभोर हो उठीं। उनके सभी अंग पुलकित हो उठे। वे एक प्रकार से अपनी चेतना (सुध-बुध) खो बैठीं। इसी प्रकार से क्रीड़ारसोन्मुख हरि भी राधा के कटाक्षपात से तथा कामबाणों से भी आहत होकर सुध-बुध खो बैठे, तथापि वे भूपतित न होकर शुष्क वृक्ष ऐसे निःस्पन्द खड़े ही रहे। उनके हाथों में स्थित मुरली भूपतित हो गई, उज्वल क्रीड़ा कमल भी गिर पड़ा। उनके कंधे वाला पीताम्बर तथा शिरस्थ मोरपंख भी खिसक गया॥५७-६२॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य ययौ राधान्तिकं मुदा।
कृत्वा वक्षसि तां प्रीत्या समाश्लिष्य चुचुम्ब सः॥६३॥
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण सम्प्राप्य चेतनां सती।
प्राणाधिकं प्राणनाथं समाश्लिष्य चुचुम्ब ह॥६४॥

मनो जहार राधायाः कृष्णस्तस्य च सा मुने।
जगाम राधया सार्धं रसिको रतिमन्दिरम्॥६५॥

क्षणकाल के अनन्तर श्रीहरि ने प्रबुद्ध होकर तथा चेतना प्राप्त करके राधिका के पास जाकर उनको हृदय से लगाया और उनका आलिंगन एवं मुख चुम्बन किया। यहां स्थिति ऐसी थी कि कृष्ण ने राधा का मन तथा राधा ने कृष्ण का मन हर लिया था। इनके पश्चात् रसिकप्रवर कृष्ण राधा के साथ रतिगृह में चले गये॥६३-६५॥

रत्नप्रदीपसंयुक्तं रत्नदर्पणसंयुतम्। चारुचम्पकशय्याभिश्चन्दनाक्ताभी राजितम्॥६६॥
कर्पूरान्विततताम्बूलैर्भोगद्रव्यैः समन्वितम्।
उवास राधया सार्धं कृष्णस्तत्र मुदाऽन्वितः॥६७॥
राधया दत्तताम्बूलं चखाद मधुसूदनः। रासेश्वरी कृष्णदत्तं ताम्बूलं बुभुजे मुदा॥६८॥

वह रतिगृह रत्नदीपकों की प्रभा से दीप्त था। वहां अनेक रत्नदर्पण सुशोभित थे। वहां की शय्या चन्दन चर्चित मनोहर चम्पा पुष्पों से सज्जित थी। वह रतिगृह कर्पूरयुक्त ताम्बूलों तथा भोगद्रव्यों से परिपूर्ण था। वहां कृष्ण मुदित होकर राधा के साथ विराजित हो गये। वहां राधा द्वारा प्रदत्त ताम्बूल का चर्वण कृष्ण कर रहे थे तथा कृष्ण द्वारा प्रदत्त ताम्बूल का चर्वण रासेश्वरी राधा मुदित मन से कर रहीं थीं॥६६-६८॥

दत्तं चर्विततताम्बूलं राधायै प्रभुणा मुदा। चखाद भक्त्या सा तूर्णं प्रहस्य मदनातुरा॥६९॥
राधाचर्विततताम्बूलं ययाचे माधवो मुदा। न ददौ राधिका भीता पपात चरणाम्बुजे॥७०॥

श्रीकृष्ण प्रभु ने तभी अपना चर्वित ताम्बूल मुदित मन से राधा को प्रदान किया। उस कृष्ण चर्वित ताम्बूल को कामातुरा रासेश्वरी ने भक्ति पूर्वक प्रसन्न होकर हंसते हुये तत्काल चबा लिया। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने राधा द्वारा चबाये गये ताम्बूल को प्रसन्न चित्त से मांगा, परन्तु राधा ने उनको वह नहीं दिया और भयभीत होकर कृष्ण के चरणकमल पर गिर पड़ीं॥६९-७०॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सकामः सुरतोन्मुखः। सुष्वाप राधया सार्धं रतितल्पे मनोहरे॥७१॥
शृङ्गाराष्टप्रकारं च विपरीतादिकं विभुः। नखदन्तकराणां च प्रहारं च यथोचितम्॥७२॥

तभी श्रीहरि काम का उद्रेक होने के कारण कामक्रीडा हेतु राधा के साथ उसी रतिशय्या पर शयन करने लगे। तत्पश्चात् रसिकेश्वर हरि विपरीत रति आदि आठ प्रकार के शृंगार तथा नख-दन्त तथा हाथों के शृंगार शास्त्रोक्त प्रहारादि से यथोचित कामक्रीड़ा करने लगे॥७१-७२॥

कामशास्त्रेषु यद्गोप्यं चुम्बनाष्टविधं परम्। कामिनीनां मनोहारि चकार रसिकेश्वरः॥७३॥
अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि स्मरातुरः।
चकाराऽऽश्लेषणं तत्र कामुकीनां सुखावहम्॥७४॥

कामशास्त्र में जो सुगुप्त तथा कामिनीगण का मन हरण करने वाले अष्टविधा चुम्बन वर्णित हैं, उनका भी प्रयोग रसिकेश्वर कृष्ण ने किया। तदनन्तर कामातुर कृष्ण ने अपने अंगों को राधा के अंग से सटाकर राधिका का उस प्रकार आलिंगन किया, जिसे कामुकी नारीगण हेतु सुखप्रद कहा गया है।।७३-७४।।

शृङ्गारकुशलौ तौ तु कामशास्त्रसुपण्डितौ। रतियुद्धविरामश्च च बभूव द्वयोरपि।।७५।।
एवं गृहे गृहे रम्ये नानामूर्तिं विधाय च। रेमे गोपाङ्गनाभिश्च सुरम्य रासमण्डले।।७६।।
अभ्यन्तरे रतिं कृत्वा बहिः क्रीडां चकार ह।
गोपीगोपसमाश्लिष्टः सर्वत्र रासमण्डले।।७७।।
गोपीनां नव लक्षाणि गोपानां च तथैव च। लक्षाण्यष्टादश मुने युक्तानि रासमण्डले।।७८।।

कृष्ण तथा राधा, ये दोनों शृंगार एवं कामशास्त्र के पारंगत थे। इन दोनों का रतियुद्ध समाप्त ही नहीं हो रहा था। इसी प्रकार वहां स्थित प्रत्येक रतिगृह में जो रासमण्डल में स्थित थे, श्रीहरि ने अपनी नाना देह रचना करके प्रत्येक गोपांगनाओं के साथ रतिक्रीड़ा सम्पन्न किया था। उस समय कृष्ण गोपरूप में थे। उन्होंने रतिगृह के भीतर रतिक्रीड़ा सम्पन्न करके बाह्य प्रदेश में भी गोपियों के साथ अन्य-अन्य प्रकार की क्रीड़ा किया। ९ लाख गोपियों हेतु कृष्ण ने ९ लाख गोपों का रूप धारण किया था। इस प्रकार सब मिलाकर १८ लाख गोप-गोपिकाओं का समावेश इस रासमण्डल में हुआ।।७५-७८।।

मुक्तकेशानि नग्नानि विच्छिन्नभूषणानि च।
वेषोच्छिन्नानि मत्तानि मूर्च्छितानि स्मरेण च।।७९।।
कङ्कणानां किङ्किणीनां वलयानां च नारद। सद्रत्ननूपुराणां च शब्दयुक्तानि संततम्।।८०।।
एवं कृत्वा स्थलक्रीडां युयुस्तानि जलं मुदा।
कृत्वा तत्र चिरं क्रीडां परिश्रान्तानि साम्प्रतम्।।८१।।
तूर्णं जलात्समुत्थाय वासांसि परिधाय च। ददृशुर्मुखपद्मानि सद्रत्नदर्पणेषु च।।८२।।

इन सबके केश मुक्त थे, ये नग्न, भग्न आभूषण वाले, बिखरी वेशभूषा वाले, कामावेश में मत्त तथा सुध-बुध खो बैठे थे। हे नारद! अब वहां केवल कंकण, किंकिणी, वलय तथा विशुद्ध रत्ननूपुरादि का मनोहर शब्द ही गुंजरित हो रहा था। वे इस प्रकार स्थलक्रीड़ा करके जलक्रीड़ार्थ जल में गये। ये लोग वहां चिरकाल पर्यन्त क्रीड़ा करने के कारण श्रान्त हो गये। उन्होंने शीघ्र जल से निकलकर वस्त्र धारण किया। वे अपने मुखकमल रत्नदर्पणों में देखने लगे।।७९-८२।।

चन्दागुरुकस्तूरीद्रव्याणि पुष्पमालिकाः। मुदा परिदधुस्तानि सम्प्रापुश्चेतनानि च।।८३।।

तत्पश्चात् उन्होंने चन्दन, अगुरु तथा कस्तूरी का लेप लगाया और पुष्पमालायें धारण करके तनिक प्रभृतिस्थ हो गये।।८३।।

सकर्पूरं च ताम्बूलं भुक्त्वा सर्वाणि कौतुकात्।
ददृशुमुखपद्मानि[१] सद्रत्ने ददर्पणेऽमले॥८४॥

उस समय कौतुक के साथ गोपीगण ने कर्पूरमिश्रित ताम्बूल खाया तथा उत्तम निर्मल दर्पण में अपने मुख देखने लगीं।।८४।।

काचित्कामातुरा कृष्णं बलादाकृष्य कौतुकात्।
हस्ताद्वंशीं निजग्राह वसनं च चकर्ष ह॥८५॥

काचित्कामप्रमत्ता च नग्नं कृत्वा तु माधवम्। निजग्राह पीतवस्त्रं परिहस्य पुनर्ददौ॥८६॥

कोई-कोई गोपी तो इतनी कामातुरा हो गई थी कि वह कौतुक के वश में होकर कृष्ण के हाथों से वंशी छीनने लगी तथा कृष्ण का वस्त्र भी छीन लिया। किसी गोपी ने काम से प्रमत्त होकर माधव को नग्न कर दिया तथा उनका पीतवस्त्र लेकर कृष्ण के साथ परिहास करके पुनः कृष्ण को वस्त्र वापस कर दिया।।८५-८६।।

युक्तिं शृण्वित्येवमुक्त्वा काचित्सङ्गृह्यस्वामिनम्।
चुचुम्ब गण्डे बिम्बोष्ठे समाश्लिष्य पुनः पुनः॥८७॥
सस्मितं सकटाक्षं च मुखचन्द्रं स्तनोन्नतम्।
काचिच्छ्रोणीं सुललितां दर्शयामास कामतः॥८८॥
काचित्कान्तं करे कृत्वा सम्प्राप्य श्रोणिदेशतः।
चकार चूडानिर्माणं मालतीमाल्यसंयुतम्॥८९॥
काचिच्चूडां समाकृष्य मयूरपिच्छकं ददौ।
गुञ्जामाल्यं च चूडायां वेष्टयामास काचन॥९०॥

किसी गोपी ने कहा-"अब युक्तिपूर्ण बात सुनो।" यह कहकर उसने स्वामी कृष्ण को पकड़ा तथा उनके कपोल तथा बिम्बफल के वर्ण के समान रक्तिम अधरोष्ठ का चुम्बन लेकर उनका बारम्बार आलिंगन करने लगी। कोई गोपिका कटाक्षपूर्ण मुस्कान के साथ अपना चन्द्रमा के समान मुखमण्डल, अपने स्थूल-उन्नत स्तन, सुललित नितम्ब की ओर कृष्ण को अभिलाषा के साथ संकेत देने लगी। किसी गोपी ने कृष्ण का हाथ पकड़ कर उनको अपनी जांघ पर बैठा लिया तथा मालती माला से कृष्ण का जूड़ा गूंथने लगी। किसी गोपी ने कृष्ण का चूड़ा खींचकर उसमें मोरपंख खोंस दिया। किसी गोपी ने कृष्ण के उस चूड़ा में घुमची की माला गूंथ दिया।।८७-९०।।

प्रददौ स्वामिने कामात्प्रेमवर्धनहेतवे।
काचित्कांचित्समाकृष्य नग्नां कृत्वा तु कामतः॥९१॥

१. क. ०चन्द्रांश्च।

प्रेषयामास कृष्णस्य क्रोडे चन्दनचर्चिते।
ननृतुश्च जगुः काश्चित्कान्तं कृत्वा तु कामतः॥९२॥

किसी गोपी ने अन्य गोपी को खींचकर उसे कामवेग से कृष्ण को दे दिया ताकि इस गोपी को कृष्ण को देने के कारण स्वयं के प्रति कृष्ण का प्रेमवर्द्धन हो जाये। उसने इस गोपी को नग्न करके कृष्ण की गोद में बैठा दिया। कृष्ण की गोद चन्दन चर्चित थी। कतिपय गोपियां कामवेग के कारण कृष्ण के समक्ष नृत्य-गायन करने लगीं॥९१-९२॥

नर्तनं कारयामास तं च काचिद्बलेन च।
कृष्णश्च वस्त्रं कस्याश्च विचकर्ष कुतूहलात्॥९३॥
काश्चित्कृत्वा तु नग्नां च कस्यैचिदंशुकं ददौ।
कृष्णो राधां समाकृष्य वासयामास वक्षसि॥९४॥

कोई गोपी कृष्ण को ही बल पूर्वक नचाने लगी। तब खेल-खेल में कृष्ण ने भी किसी गोपी का वस्त्र ही खींच लिया। उन्होंने तदनन्तर अन्य गोपी को नग्न करके उसका वस्त्र अन्य गोपी को दे दिया। तदनन्तर कृष्ण ने राधा को बलात् खींचकर अपने वक्ष पर बैठा लिया॥९३-९४॥

तस्याश्च कबरीं रम्यां सुनिर्माणं चकार ह।
सिन्दूरं च ददौ भाले कस्तूरीं बिन्दुभिः सह॥९५॥
अतिसूक्ष्मं चन्दनेन्दुं कौतुकात्तदधो ददौ। पत्रावलीं सुललितां सुकपोले चकार ह॥९६॥
बह्निशुद्धांशुकं चारु परिधार्य प्रयत्नतः। पदोः सद्रत्नमञ्जीरे गृहीत्वा चरणाम्बुजे॥९७॥

कृष्ण ने राधा की उस समय मनोहर केशपाश की रचना किया। उनके ललाट पर कस्तूरी की बिन्दी के साथ यत्नतः सिन्दूर की बिन्दी लगाया तथा उसके नीचे अत्यन्त सूक्ष्म चन्द्र जैसी बिन्दी लगाकर उनके कपोल पर चित्र पत्रावली की रचना कर दिया। तत्पश्चात् कृष्ण ने उसे वह्निशुद्ध वस्त्र धारण कराने के पश्चात् उनके चरणकमल पकड़ कर उनमें विशुद्ध रत्ननिर्मित नूपुर धारण करा दिया॥९५-९७॥

नखनिर्मार्जनं कृत्वा सुन्दरं यावकं ददौ। भूषणैर्भूषितां कृत्वा सम्प्रलिप्यानुलेपनैः॥९८॥
दत्त्वा च मालतीमालां चुचुम्ब च पुनः पुनः। चारुलोचनपद्मे च चकाराञ्जनसंयुते॥९९॥

राधा के नखों का मार्जन करके कृष्ण ने उसमें आलता लगाया। तत्पश्चात् कृष्ण राधा को उत्तम आभूषणों से भूषित किया तथा चन्दनादि का उत्तम लेप उनको लगाकर मालती माला से राधा को सजाने के पश्चात् उनका बारम्बार चुम्बन करने लगे। उन्होंने राधा के अत्यन्त सुन्दर नयनकमलों को अंजन द्वारा अंजित कर दिया॥९८-९९॥

प्रददौ नासिकामध्ये दुर्लभं गजमौक्तिकम्।
श्रोणिदेशे च स्तनयोर्नखच्छिद्रं चकार ह॥१००॥

चकार दन्तदलनं पक्वबिम्बाधरे वरे। सरसश्च तटे रम्ये पुष्पोद्याने सुनिर्जने॥१०१॥
कृत्वा क्रीडां पुनरपि जगाम रासमण्डलम्। रासेश्वरः पूर्णरासं चकार रासमण्डले॥१०२॥

कृष्ण ने राधा की नासिका में उत्तम गजमुक्ता पहनाया तदनन्तर रतिक्रीडा करते हुये कृष्ण ने देवी राधा की श्रोणि पर और स्तनद्वय को नखक्षत चिह्नाङ्कित कर दिया! उन्होंने अपने दांतों से राधा के पके बिम्बफल के समान अधरों का दंशन भी उस समय किया! इस प्रकार वहां सरोवर के अत्यन्त रम्यतट पर जल और क्रीड़ा करने के अनन्तर रासमण्डल में यह सब क्रीड़ा किया। तदनन्तर रासेश्वर कृष्ण ने रासमण्डल में पूर्णरास किया।।१००-१०२।।

बहिश्चन्द्रोदये रम्ये पुष्पचन्दन चर्चिते। अगुरुचन्दनाक्तेन वायुना सुरभीकृते॥१०३॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते। बहुमूर्तीः संविधाय योगिनां परमो गुरुः॥१०४॥
पुनश्चकार शृङ्गारं गोपीनां चित्तहारकः। किङ्किणां कङ्कणानां नूपुराणां च नारद॥१०५॥

उस समय बाहर चन्द्रोदय हो गया था। वहां का स्थान अतीव मनोहर पुष्प-चन्दन चर्चित था, जिसका स्पर्श करके बहने वाली वायु भी चन्दन परिमल से सुरभीकृत हो गई। रासमण्डल में भ्रमरों का समूह मधुर गुनगुनाहट की ध्वनि कर रहा था। वहां नर कोकिलों के कलकण्ठ से निर्गत कुहू-ध्वनि-ध्वनित हो रही थी। योगीगण के परमगुरु तथा गोपियों का चित्त हरण कर लेने वाले हरि वहां नाना रूप धारण करके पुनः गोपियों के साथ रतिक्रीड़ा में रत हो गये। हे नारद! इस रतिक्रीड़ा के कारण शृंगार क्रिया के अतिरेक के कारण वहां किंकिणी, कंकण, नूपुरों की अत्यन्त सुन्दर झंकार का शब्द होने लगा! गोपियां इस नवसंगम मात्र से अत्यन्त विभोर होकर सुध-बुध खो बैठीं।।१०३-१०५।।

शृङ्गारोद्रेकतस्तत्र बभूव सुन्दरो रवः। मूर्च्छामवापुस्ताः सर्वा नवसङ्गममात्रतः॥१०६॥
बभूवुरचलास्पन्दाःपुलकाञ्चितविग्रहाः। शृङ्गारविरते भूते सम्प्रापुश्चेतनां पुनः॥१०७॥
नखदन्तप्रहारं च प्रचकार परस्परम्। कृष्णः कररुहाघातं ददौ तासां कुचोपरि॥१०८॥
श्रोणिदेशे सुकठिने नखचिह्नं चकार ह।
नीवी विस्रंसिता तासां कबरी क्षुद्रघण्टिकाः॥१०९॥

वे इतनी सुध-बुध खो बैठी थीं कि अचल चित्र जैसी प्रतीत होने लगीं। अन्ततः उनका शरीर पुलकित हो उठा। इस प्रकार शृंगार क्रीड़ा से विरत हो जाने पर उनमें पुनः चेतना का संचार हो गया। वे परस्पर एक-दूसरे पर नख-दन्त का प्रहार (कामातिरेक के कारण) करने लगीं। उस समय उनके स्तनों पर कृष्ण ने भी नख प्रहार किया। उनके कठोर श्रोणी भाग पर भी तथा नितम्बों पर कृष्ण ने नखक्षत का चिह्न कर दिया। इससे गोपीगण का नीवीबंधन खिसक गया तथा जूड़े पर बंधी किंकिणी (छोटी-छोटी घंटियां) भी ढीली पड़ गईं!।।१०६-१०९।

दूरीभूतं सुवसनं सुवेषं सुमनोहरम्। आलिङ्गनं नवविधं चुम्बनाष्टविधं मुदा॥११०॥

गोपियों की कमर में बंधे सुन्दर वस्त्र भी खिसकने लगे। उनका अत्यन्त मनोहर सुवेष भी

बिगड़ गया। अब रसिकेश्वर कृष्ण ने उनका ९ प्रकार का कामशास्त्रोक्त आलिंगन तथा अष्टविध चुम्बन किया। प्रभु श्रीकृष्ण उस समय अत्यन्त मुदित थे।।११०।।

शृङ्गारं षोडशविधं चकार रसिकेश्वरः।
अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि च योषिताम्।।१११।।
चकाराऽऽलिङ्गनं प्रीत्या कामुकीनां च कामुकः।
नारीणां षोडश कलाः शृङ्गारस्तत्प्रमाणकः।।११२।।
कलाभेदेन तद्भेदं कामशास्त्रविदो विदुः। प्राकृतं द्वादशविधं चकार रसिकेश्वरः।।११३।।
निरूपितं कामशास्त्रे चकारेशस्ततोऽधिकम्।
क्रीडारम्भे च मध्ये च विरतौ कर्म योषिताम्।।११४।।
प्रीत्यर्थमपि कर्तव्यं चकारेशस्ततोऽधिकम्।
गोपीकङ्कणरेखाभिः पादालक्तकचिह्नितः।।११५।।
शुशुभे कृष्णदेहश्च यथाऽद्रिर्गैरिकेण च। एवंभूते पूर्णरासे सम्भूते रासमण्डले।।११६।।

अब कामुकप्रवर श्रीहरि ने कामुकी गोपिकाओं के अंगों का अपने अंगों से सटाकर तथा अपने प्रत्यङ्गों को गोपियों के प्रत्यङ्गों से स्पर्शित कराते हुये उनका प्रगाढ़ आलिङ्गन किया। कामशास्त्र में विद्वान् नारीगण के शृङ्गार कलाभेदानुसार जिस-जिस शृङ्गार भेद से अवगत हैं, वह प्राकृत शृङ्गार (रति) १२ प्रकार का है। विपरीत रति चार प्रकार की ही शृङ्गारशास्त्र में निरूपित है। कृष्ण तो इनसे भी अधिक शृङ्गार कलात्मक क्रीड़ा द्वारा गोपीगण के साथ विहाररत थे। कामक्रीड़ा के प्रारम्भ में तथा कामक्रीड़ा के मध्य काल में और कामक्रीड़ा के अवसान काल में जो विधि कामशास्त्र में निरूपित है, श्रीकृष्ण ने तो उन कामी ललनाओं की प्रीति के लिये उन सबकी अपेक्षा कहीं अधिक क्रीड़ा सम्पन्न किया! उस समय गोपियों के साथ क्रीड़ा करते समय कृष्ण के शरीर पर गोपियों के कंकण का चिह्न तथा गोपीगण के पैर के आलता का चिह्न लग गया, जिससे प्रतीत होता था मानो कोई पर्वत गेरु से शोभायमान हो गया है। इस प्रकार से रासमण्डल में पूर्णरास की क्रीड़ा होने लगी!।।१११-११६।।

समाजग्मुः सुराः सर्वे सकलत्राश्च सानुगाः।
सुवर्णस्यन्दनस्थाश्च कौतुकात्स्वगणावृताः।।११७।।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः कामबाणप्रपीडिताः।
ऋषयो मुनयश्चैव सिद्धाश्च पितरस्तथा।।११८।।
विद्याधराश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः।
सस्त्रीकाश्च समाजग्मुर्ददृशुश्च मुदाऽन्विताः।।११९।।

इस पूर्णरास में अनुचरगण तथा परिवारगण के साथ कौतुक में भरकर सभी देवगण भी आ

गये। वे सभी स्वर्ण के रथ पर बैठे थे। वे सभी देवगण कामबाण प्रपीड़ित तथा रोमांचित अंग वाले थे। उस समय ऋषिवृन्द, मुनिवृन्द, सिद्ध, पितृगण, विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नरगण भी इस रासक्रीड़ा के अवलोकनार्थ हर्षित होकर आये। वे सभी रासलीला देखने लगे। वे सभी सपत्नीक आये थे तथा अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे।।११७-११९।।

दिव्यस्यन्दनमारुह्य शातकौम्भविनिर्मितम्। सुशोभितं च मणिना रत्नसारपरिच्छदम्॥१२०॥
वह्निशुद्धांशुकेनैव वेष्टितं सुमनोहरम्। श्वेतचामरसंयुक्तं सद्रत्नचरणाम्बुजम्[1]॥१२१॥
शतचक्रं चित्रयुक्तं मनोयायि मनोहरम्। सद्ररत्नसारनिर्माणकलशोज्ज्वलशेखरम्॥१२२॥

उस समय दिव्य स्वर्णनिर्मित मणियों तथा रत्नसार भाग से निर्मित उपकरणयुक्त मनोहर अग्नि के समान उज्वल शुद्ध वस्त्रों से वेष्ठित, श्वेतचामर तथा उत्तम रत्नदर्पणों से सज्जित सौ चक्रों (पहियों) से युक्त, मनोवेग से चलने वाले, विशुद्ध रत्नकलशों से उज्वलीकृत शिखा वाले रथ पर आसीन होकर भगवान् शङ्कर तथा भगवती पार्वती वहां आये। वह रथ रत्न से निर्मित चरणकमल युक्त था।।१२०-१२२।।

समाजगाम भगवान्पार्वत्या सह शङ्करः। वामपार्श्वे महाकालो दक्षिणे नन्दिकेश्वरः॥१२३॥
पुरतः कार्तिकेयश्च स्वयं देवो गणेश्वरः। पिङ्गलाक्षादयः सर्वे पार्षदाः परितस्तयोः॥१२४॥
क्षेत्रपालादयः सर्वे तथाऽष्टौ भैरवेश्वराः।
वक्षःस्थलस्थिता दुर्गा सस्मिता वक्रलोचना॥१२५॥

उस रथ पर भगवान् शिव पार्वती सहित विराजमान थे। उनके वाम पार्श्व में महाकाल तथा दाहिने पार्श्व में नन्दिकेश्वर थे। श्रीकार्त्तिकेय तथा गणेश्वर देव सम्मुखस्थ थे। इन सबके चतुर्दिक् भगवान् शिव के पिङ्गलाक्ष प्रभृति पार्षद खड़े थे। वहां सभी क्षेत्रपालगण तथा अष्टभैरव विराजमान थे। बांकी चितवन वाली दुर्गा मुस्कराती हुई शिव के वक्षस्थल पर स्थित थीं।।१२३-१२५।।

भारत्या सह ब्रह्मा च शातकौम्भरथस्थितः। वामे सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणे सनकादयः॥१२६॥
सुवर्णस्यन्दनस्थश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम्।
वक्षःस्थलस्थिता तस्य मूर्तिः स्मेरानना सती॥१२७॥
पश्यन्ती पूर्णरासं च सकामा वक्रलोचना।
परितः पार्षदाः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा॥१२८॥

वहां एक स्वर्णरथ पर ब्रह्मा देवी भारती के साथ बैठे थे। उनके बांयीं ओर सप्तर्षिगण तथा दाहिनी ओर सनकादि मुनिगण थे। सर्वकर्मसाक्षी धर्मदेव स्वर्ण रथ पर बैठे थे, जिनके वक्षस्थल पर मन्दहास्ययुता देवी सती विराजमान थीं। (ये सती शिवपत्नी सती नहीं हैं)। ये देवी कामातुर स्थिति में

---

१. क. ०णान्वितम्।

बांकी चितवन से उस पूर्णरास को देख रही थीं। धर्मदेव के चतुर्दिक् ब्रह्मतेज से प्रज्वलन्त पार्षद खड़े थे॥१२६-१२८॥

शच्या सह महेन्द्रश्च रोहिण्या च कलानिधिः।
स्वाहासार्धं स्वयं वह्निः सूर्यश्च संज्ञया सह॥१२९॥
समाजगाम कामश्च रतिं कृत्वा च वक्षसि।
सर्वे ग्रहाश्च दिक्पाला आजग्मुः सकलत्रकाः॥१३०॥

वहां इन्द्र के साथ शची, रोहिणी के साथ चन्द्रमा, स्वाहा के साथ अग्नि, संज्ञा के साथ सूर्य विराजित थे। वहां रति को वक्षस्थल पर धारण किये हुये कामदेव आये और सभी ग्रह, दिक्पालादि भी वहां अपनी-अपनी पत्नी के साथ आ गये॥१२९-१३०॥

आकाशस्थाश्च ददृशुः सरासं रासमण्डलम्।
केचिच्च मुमुहुस्तत्र मूर्च्छामापुश्च केचन॥१३१॥

ये सभी आकाशस्थ होकर मुदित मन से इस रासपूर्ण रासमण्डल को देखते जा रहे थे। वे रासमण्डल में हो रही रास को देखकर विभोर हो रहे थे। उनमें से कुछ लोग तो अपनी सुध-बुध तक खो बैठे थे॥१३१॥

मुहूर्तं च सुराः सर्वे सस्मिताश्च मुदाऽन्विताः।
चन्दनद्रववृष्टिं च पुष्पवृष्टिं च चिक्षिपुः॥१३२॥
कस्तूरीयुक्तमाल्यानां वृष्टिं चक्रुर्मुनीश्वराः। रासं दृष्ट्वा देवपत्न्यः कामबाणप्रपीडिताः॥१३३॥

दो घड़ी पर्यान्त सभी देवताओं ने हर्षयुक्त होकर मुस्कराते हुये इस पूर्ण रास को देखा। तदनन्तर वे आकाश से द्रवरूप चन्दन तथा पुष्पों की वर्षा करने लगे। मुनीश्वरगण ने वहां कस्तूरी लिप्त मालाओं की वर्षा प्रारम्भ कर दिया। तभी इस पूर्णरास को देखकर देवगण की पत्नियां कामपीड़ित हो गईं॥१३२-१३३॥

स्थले रतिरसं कृत्वा जगाम यमुनाजलम्। राधया सह कृष्णश्च पूर्णब्रह्म सनातनः॥१३४॥
गोपीभिः सह जग्मुश्च मायाः श्रीकृष्णरूपिकाः।
प्रपीडिताः कामबाणैः क्रीडां चक्रुर्जले मुदा॥१३५॥

तभी पूर्णब्रह्म सनातन कृष्ण ने स्थल पर रासक्रीड़ा को समाप्त करके यमुना जल में प्रवेश कर दिया। श्रीकृष्ण की माया द्वारा निर्मित उनके ही समान रूपगुणयुक्त जितनी कृष्ण मूर्त्तियां थीं, वे सभी यमुना जल में प्रविष्ट हो गईं। अर्थात् श्रीकृष्णरूपा जितनी माया थीं, वह गोपीगण के ही साथ यमुना में चली गईं। वे सभी कृष्ण मूर्त्तियां कामपीड़िता गोपीगण के साथ मुदित मन से जलक्रीड़ा करने लगीं॥१३४-१३५॥

जलं ददौ राधिकायै सकामो माधवः स्वयम्।
ददौ सा च माधवाय कामार्तायाञ्जलित्रयम्॥१३६॥
वस्त्रं जग्राह तस्याश्च सा च नग्ना बभूव ह।
मालां चिच्छेद कबरीं चकार शिथिलां हरिः॥१३७॥
सिन्दूरपत्रकं लुप्तं वेषं च जलताडनैः। भ्रूविचित्रमोष्ठरागं लुप्तं कज्जललोचनम्॥१३८॥

उस समय कामभावयुक्त कृष्ण ने राधिका पर जल छोड़ा, तब कामार्त्त राधा ने भी कृष्ण पर तीन अंजलि भर कर जल छोड़ दिया। तभी कृष्ण ने राधा का वस्त्र बलात् उतार कर उनको नग्न कर दिया। कृष्ण ने राधा माला तोड़कर उनका जूड़ा ढीला कर दिया। जल के छींटों से कृष्ण ने राधा की सिन्दूरपत्र रचना को धो दिया। इससे राधा की वेशभूषा जल प्रहार के कारण ध्वस्त हो गई। उनकी भौंयें विचित्र लगने लगीं। ओठों पर लगी लालिमा तथा नेत्रों पर लगा काजल भी इस जल के छींटों से लुप्त हो गया!॥१३६-१३८॥

तां च नग्नां समाश्लिष्य निममज्ज जले हरिः।
प्रकृत्याभ्यन्तरे क्रीडां सुतस्थौ च तया सह॥१३९॥

तत्पश्चात् नग्न हो गई राधा को अपने आलिङ्गन में बांधकर जल के भीतर खींच ले गये। वे जल के भीतर ही राधा के साथ क्रीड़ारत हो गये। उन्होंने जल में ही क्रीड़ा किया तथा वहीं राधा सहित स्थित हो गये॥१३९॥

तां च नग्नां दर्शयित्वा गोपिकां क्रीडया[1] नताम्।
सस्मितां प्रेरयामास दूरतो यमुनाजले॥१४०॥

तत्पश्चात् रति क्रीड़ा से नत हो गई तथा नग्न राधा को उनका यह रूप दिखलाकर मुस्कराते हुये श्रीकृष्ण उनको यमुना जल में दूर ले गये॥१४०॥

सा वेगेन समुत्थाय बलाज्जग्राह माधवम्। गृहीत्वा मुरलीं कोपात्प्रेयामास दूरतः॥१४१॥
गृहीत्वा पीतवसनं चकार तं दिगम्बरम्।
वनमालां च चिच्छेद ददौ तोयं पुनः पुनः॥१४२॥

तब राधा ने भी वेग पूर्वक जल में उठकर, बल पूर्वक माधव के हाथ से मुरली खींचा तथा उसे दूर फेंक दिया। राधा ने भी कृष्ण का पीलावस्त्र खींचकर उनको नग्न किया। कृष्ण की वनमाला तोड़कर बारम्बार राधा अब कृष्ण पर जल से प्रहार करने लगीं!॥१४१-१४२॥

हरिं पुनः समाकृष्य प्रेरयामास पाथसि। गभीरे स्त्रोतसि मुने निममज्ज जगत्पतिः॥१४३॥
उत्थाय माधवः शीघ्रं तां गृहीत्वा प्रहस्य च।
कृत्वा वक्षसि नग्नां च चुचुम्ब च पुनः पुनः॥१४४॥

---
१. क. व्रीडयाऽन्विताम्।

वे पुनः कृष्ण को खींचकर गहरे जल में ले गईं। हे मुनिवर! तब जगत्पति गहरे गल में डूब गये। अगले ही क्षण श्रीकृष्ण ने गहरे जल से ऊपर उतराकर हंसते हुये राधा को पकड़ा तथा राधा को अपने वक्ष से लगाकर उनका बारम्बार चुम्बन किया।।१४३-१४४।।

एवं तां मूर्तयः सर्वा गोपीभिः सह कौतुकात्। क्रीडां विचक्रुर्यमुनातीरनीरे मनोहरे।।१४५।।

तीरं गत्वा तया सार्धं हरिर्नग्नश्च नग्नया।
स्नातं ययाचे वसनं स च तां सस्मितां सतीम्।।१४६।।
राधिकायै ददौ वस्त्रं रम्यां मालां च माधवः।
प्रददौ हरये वस्त्रं वंशीं रासेश्वरी मुदा[1]।।१४७।।
चन्दनागुरुकस्तूरीं सर्वाङ्गे कुङ्कुमान्विताम्।
कृष्णस्य परया भक्त्या ददौ श्रोणिस्थितस्य च।।१४८।।
निर्माय चूडां ललितां कामिनीं चित्तमोहिनीम्।
शोभनैर्मालतीमाल्यैश्चकार वेष्टनं पुनः।।१४९।।

इसी प्रकार वहां जितनी कृष्ण की पतिरूपमयी मूर्त्तियां थीं, वे मूर्त्तियां सभी इसी प्रकार का कौतुक एक-एक गोपी से करने लगीं। इस प्रकार यमुनातीर पर यह मनोहर जलक्रीड़ा होने लगी। तत्पश्चात् नग्न स्थिति में कृष्ण-राधा दोनों तट पर जाकर एक-दूसरे से परस्परत अपना-अपना वस्त्र मांगने लगे। अन्ततः माधव ने राधा को वस्त्र प्रदान किया तथा राधा ने कृष्ण को उनका वस्त्र लौटा दिया। कृष्ण ने राधा को उनकी रम्य माला भी वापस कर दिया। तब रासेश्वरी राधा ने भी हर्ष पूर्वक कृष्ण की वंशी भी उनको दे दिया। राधा ने अपनी जांघ पर आसीन कृष्ण के सर्वाङ्ग को भक्तिभाव से चन्दन-अगुरु-केसर-कस्तूरी के लेप से चर्चित कर दिया। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने राधा का कामिनी चित्तमोहन चूड़ा बनाकर उसके चारों ओर मालती माला गूंथ दिया।।१४५-१४९।।

श्रीकृष्णो राधिकायाश्च कबरीं सुमनोहराम्।
कृत्वा कुण्डलसंस्कारं निर्ममे पत्रकावलीम्।।१५०।।

ददौ ललाटे सिन्दूरं कस्तूरीबिन्दुभिः सह। तदधश्चन्दनेन्दुं च सुसूक्ष्मं सुमनोहरम्।।१५१।।
नखाङ्कं स्तनयोरूर्वोरुरस्येव घनं मुदा। दत्त्वा तां वासयामास वह्निशुद्धांशुकेन वै।।१५२।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानां द्रवेण सः। कृत्वा वक्षसि संलिप्य चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः।।१५३।।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने राधा के सुमनोहर केशपाश को गूंथा। उनके कुण्डलों का संस्कार करके राधा के कपोल पर उत्तम पत्रावली बनाया। यह करने के अनन्तर कृष्ण ने राधा के ललाट पर कस्तूरी की बिन्दी के साथ सिन्दूर की बिन्दी भी अंकित करके उसके कुछ नीचे चन्दन की सूक्ष्म अर्द्धचन्द्राकार रेखा

१. ख. तथा।

अंकित किया। इसके पश्चात् कृष्ण ने देवी राधा के स्तनद्वय, जङ्घाद्वय तथा वक्ष पर हर्षित होकर अपने नखों का क्षतचिह्न भी अंकित कर दिया और कृष्ण ने राधा को अत्यन्त शुद्ध अग्नि के समान प्रभायुक्त वस्त्र पहनाया। उन्होंने चन्दन-अगुरु-कस्तूरी तथा कुंकुम के लेप से उनको (राधा के) लिप्त कर दिया और अपने वक्ष पर उनका आलिंगन करके बारम्बार राधा का चुम्बन भी किया।।१५०-१५३।।

पुनराश्लेषणं कृत्वा ददौ मालां गले पुनः। भूषणैर्भूषितां कृत्वा मञ्जीरं चरणे ददौ॥१५४॥

अलक्तकं चरणयोर्नखेषु च ददौ पुनः।
एवं गोपश्च गोपीनां विदधौ च पृथक् पृथक्॥१५५॥

इसके पश्चात् कृष्ण ने राधा का पुनः आलिंगन करके राधा के कण्ठ में माला पहनाकर उनको भूषणों से आभूषित कर दिया। तदनन्तर कृष्ण ने राधा के चरणों में नूपुर भी धारण कराया! इसके अनन्तर कृष्ण ने राधा के चरणों में तथा वहां के नखों में पुनः आलता लगाया। इसी प्रकार वहां कृष्ण के जितने भी प्रतिरूप थे, उन्होंने भी अपने-अपने साथ क्रीड़ा करती गोपियों को भी उपरोक्त विधि से अच्छी तरह सज्जित कर दिया।।१५४-१५५।।

पुनः प्रजग्मुस्ता मत्तः सुन्दरं रासमण्डलम्।
पूर्णेन्दुचन्द्रिकायुक्तं रतियोग्यं सुनिर्जनम्॥१५६॥

माधवीकेतकीकुन्दमालतीनां मनोहरैः। चम्पायूथीमल्लिकानां पुष्पैश्च सुरभीकृतम्॥१५७॥

दृष्ट्वा च स्फुटितं पुष्पं चयनं कर्तुमीश्वरी।
गोपीर्नियोजयामास कौतुकेन च राधिका॥१५८॥

काश्चिन्नियोजयामास मालानिर्माणकर्मणि। काश्चित्ताम्बूलसज्जेषु काश्चिच्चन्दनघर्षणे॥१५९॥

इसके पश्चात् सभी मदमत्ता गोपियां पूर्ण चन्द्रिका युक्त उत्तम निर्जन स्थल रासमण्डल में आ गईं। यह रतिक्रीड़ा हेतु गुप्त योग्य स्थान जो था। यह रासमण्डल माधवी, केतकी, कुंद, मालती, चम्पा, यूथिका, मल्लिका आदि पुष्पों के सौरभ से सुरभीकृत (सुगन्धित) स्थल था। वहां खिले हुये पुष्पों को देखकर राधा ने गोपियों को उनको एकत्रित करने का आदेश दिया। राधा ने कुछ गोपियों को कौतुक से माला बनाने में, कुछ को ताम्बूल लगाने के कार्य में, तो कुछ को चन्दन घिस कर लेप बनाने के कार्य में नियुक्त किया।।१५६-१५९।।

मालाचन्दनताम्बूलं गोपीदत्तं च सुन्दरीं।
ददौ कृष्णाय सम्प्रीत्या सस्मिता वक्रलोचना॥१६०॥

काश्चिन्नियोजनं चक्रे कृष्णसङ्गीतकर्मणि। मृदङ्गमुरजादीनां वादनेषु च काश्चन॥१६१॥

वक्रलोचना सस्मिता राधा ने गोपियों द्वारा प्रदत्त माला, चन्दन, ताम्बूल कृष्ण को प्रदान किया। देवी राधा ने कतिपय गोपीगण को कृष्ण के साथ संगीत हेतु नियुक्त किया। कुछ को राधा ने मृदंग-मुरज आदि वाद्य-वादनार्थ आदेश प्रदान किया।।१६०-१६१।।

एवं रासे रतिं कृत्वा लीलया हरिणा सह। विजहार च सर्वत्र निर्जनेषु मनोहरम्॥१६२॥
पुष्पोद्यानेषु रम्येषु सरसां च तटेषु च। कन्दरे कन्दरे रम्ये नदेषु च नदीषु च॥१६३॥
अतीव निर्जनस्थाने श्मशाने गिरिगह्वरे। वाञ्छितेषु च नारीणां त्रयस्त्रिंशद्वनेषु च॥१६४॥

वहां गोपिकायें रासमण्डल में कृष्ण तथा कृष्ण के अनेक प्रतिरूपों के साथ लीला पूर्वक रतिक्रीड़ा सम्पन्न करके उनके ही साथ वहां के निर्जन मनोहर स्थानों में विहार करने लगीं। वे रम्य पुष्पोद्यानों में, सरोवर के तटों पर, कुछ गुफाओं में, रम्य नद-नदियों में, अत्यन्त निर्जन स्थलों में, श्मशान तथा गिरि की गुफाओं में तथा वहां स्त्रियों के लिये सदा वाञ्छित ३३ वनों में विहार करने लगीं॥१६२-१६४॥

भाण्डीरे श्रीवने रम्ये कदम्बकानने तथा। तुलसीकानने कुन्दवने चम्पककानने॥१६५॥
निम्बारण्ये मधुवने जम्बीरकानने तथा। नालिकेरवने पूगवने च कदलीवने॥१६६॥
बदरीकानने बिल्ववने नारङ्गीकानने। अश्वत्थकानने वंशवने दाडिमकानने॥१६७॥
मन्दारकानने तालवने चूतवने तथा। केतकीकाननेऽशोकवने खर्जूरकानने॥१६८॥
आम्रातकवने जम्बूगहने शालकानने। कण्टके कानने पद्मवने जातिवने मुने॥१६९॥
न्यग्रोधगहने घोरे श्रीखण्डकानने तथा। प्रहृष्टकेसरवने सर्वतोऽपि विलक्षणे॥१७०॥

एवं रेमे कौतुकेन कामाक्षिंशद्दिवानिशम्।
तथापि मानसं पूर्णं न च किञ्चिद्बभूव ह॥१७१॥

हे नारद! वे ३३ स्थान हैं भाण्डीर वन, श्रीवन, रम्य कदम्बवन, तुलसी वन, कुन्द वन, चम्पक कानन, नीम का अरण्य, मधुवन, जम्बीर वन, नारिकेल वन, पूग (सुपारी) वन, कदली वन, बदरी वन, बिल्व वन, नारंग वन, पीपल वन, बांस का वन, अनार का वन, मन्दार वन, ताल वन, आम्रवन, केतकी वन, अशोक वन, खजूर वन, आम्रातक वन, जम्बू वन, साखू वन, कण्टक कानन, पद्म वन, (चमेली) जाति वन। वे अत्यन्त गहन न्यग्रोध वन, श्रीखण्डकानन वन, सबसे विलक्षण तथा अति विकसित केसर वन में भ्रमण करती रहती थीं। वहां भ्रमणरत देवी ने ३० दिनों तक अहर्निश कौतुक के साथ रमण किया, तथापि ऐसा ३० दिन तक दिन-रात करके भी कृष्ण-राधा का मन तृप्त नहीं हो सका!॥१६५-१७१॥

न कामिनीनां कामश्च शृङ्गारेण निवर्तते। अधिकं वर्धते शश्वद्यथाऽग्निर्घृतधारया॥१७२॥
जग्मुर्देवाः स्वगेहं च देव्यश्च मुनयस्तथा। ते सर्वे प्रशशंसुश्च विस्मयं च ययुर्मुदा॥१७३॥

गेहे गेहे नृपेन्द्राणां लेभिरे जन्म भारते।
दग्धाः कामाग्नि अंशेन देव्यः शृङ्गारलालसाः॥१७४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० रासक्रीडाप्रस्तावो नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

—※※※—

कामिनियों का कामभाव शान्त नहीं होता, जैसे घृतधारा-अग्नि में पड़कर और भी अग्नि को दीप्त कर देती है। तदनन्तर देवी-देवता विस्मित होकर तथा मुनिगण आश्चर्यान्वित होकर रास कार्य की प्रशंसा करते-करते स्वगृह चले गये। कामाग्नि के अंश से दग्धीभूत अनेक देव स्त्रियां हरि के साथ आई थीं। तदनन्तर इन सबने हरि के साथ शृंगार की कामना के साथ कामाग्नि से दग्ध होकर भारत में राजा-महाराजाओं के यहां जन्म लिया।।१७२-१७४।।

।।२८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

अष्टावक्र का मोक्ष तथा अष्टावक्र कृत श्रीकृष्ण स्तोत्र

नारायण उवाच

अथ गोपाङ्गनाः सर्वाः काममत्ततया मुने। अतिप्रौढाश्च मानिन्यो नेश्वरं मेनिरे पतिम्॥१॥
काश्चिदूचुरहो कृष्णे सस्मिता वक्रलोचनाः। मालतीपुष्पमुत्तोल्य देहि मे मालिकामिति॥२॥

काश्चिदूचुरये कृष्ण स्वक्रोडेऽस्मांश्च कुर्विति।
गृहीत्वा श्रीहरेः स्कन्धमारुरोह च काचन॥३॥

उवाच काचिद्दर्पेण प्रमत्ता प्राणवल्लभम्। स्वकीयपीतवसनं परिधापय मामिति॥४॥

उवाच काचिदीशं तं सिन्दूरं देहि मामिति।
उवाच काचित्प्राणेशं शीघ्रमागत्य साम्प्रतम्॥५॥
कृत्वा कुन्तलसंस्कारं कुरु मे कबरीमिति।
काश्चित्संप्रेरयामासुः श्रीखण्डं वल्लवाय च॥६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं-हे गोपियां! जो काममत्ता प्रौढ़ा तथा मानिनी थीं, उन्होंने पति श्रीकृष्ण को ईश्वर नहीं समझा। कोई गोपी निर्जन में कृष्ण के प्रति कटाक्षपात करके हंसते हुये कहीं-"हे नाथ! मालती पुष्पों को तोड़कर उसकी माला गूंथों तथा मुझे प्रदान करो।" कुछ कहती- "हे कृष्ण! हमें अपनी गोद में बैठाओ।" कोई श्रीकृष्ण के कंधे पकड़कर उस पर बैठ जाती। कोई प्रमत्त गोपिका प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण से कहतीं-"हे कृष्ण! अपना पीतवस्त्र मुझे पहनाओ।" कोई जगदीश्वरी श्रीकृष्ण से कहती-"हे नाथ! तुम मेरे ललाट पर सिन्दूर की बिन्दी लगाओ।" कोई गोपी तत्काल कृष्ण के पास आकर कहती-"हे प्राणनाथ! तुम मेरे केश संवार कर उनका जूड़ा

बाधो!!" कोई गोपी जो अपनी वेश सज्जा स्वयं कर रही थीं, वह अपने कानों में पहनने हेतु चन्दन की पत्ती लाने प्रभु को भेज देती।।१-६।।

स्वाङ्गवेषविधायिन्यो भूषार्यं श्रुतिमूलयोः। उवाच काचित्कामेन परं सङ्केतपूर्वकम्।।७।।

पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं सस्मिता मैथुनाय च।
काचिज्जग्राह मुरलीं बलादाकृष्य माधवम्।।८।।
जहार पीतवसनं कृत्वा नग्नं च कामिनी।
कामिन्यः काश्चिदित्यूचुर्मानिन्यो मधुसूदनम्।।९।।

अलक्तकद्रवं देहि पादयोर्नखरेषु च। उवाच काचित्प्रेम्णा तं गण्डयोः स्तनयोर्मम।।१०।।

नानाचित्रविचित्राढ्यां कुरु पत्रावलीमिति।
कृत्वाऽनुमानं मनसा दृष्ट्वा तासां प्रमत्तताम्।।११।।
माधवो राधया सार्धमन्तर्धानं चकार ह।
अतीवनिर्जने स्थाने मुदा स्वेच्छामयो विभुः।।१२।।

हे नारद! कोई गोपी काम वासना से विवश होकर कृष्ण से गूढ़ संकेत द्वारा अपने मनोगत भावों को व्यक्त करतीं। वह मैथुन क्रीड़ार्थ कृष्ण के हास्य से खिल उठे मुखकमल की ओर एकटक देखती रहती। कोई उद्धत गोपी बल पूर्वक माधव को खींचकर उनकी मुरली छीनती तथा कृष्ण का पहना पीतवस्त्र उतार कर उनको नग्न करके हंसने लगी। कोई-कोई मानिनी-कामिनी गोपी मधुसूदन से कहती-"हे नाथ! मेरे पैरों के नखों पर आलता लगाओ!" कोई गोपी प्रेम विभोर होकर कहती-"हे नाथ! प्राणवल्लभ! मेरे कपोल पर तथा दोनों स्तनों पर नाना चित्र-विचित्रित पत्रावली बना दो।" कृष्ण ने जब गोपिकाओं को इतना प्रमत्त देखा, तब वे राधा सहित वहां से अन्तर्ध्यान हो गये। वे विभु स्वेच्छामय प्रभु वहां से अतीव निर्जन स्थान में चले गये।।७-१२।।

कलामानप्रकारं च शृङ्गारं च चकार ह। पर्वते पर्वते रम्ये द्वीपे द्वीपे सुनिर्जने।।१३।।
तटे तटे नदीनां च सर्वजन्तुविवर्जिते। श्रीगोष्ठे रत्नशैले च वेलागङ्गातटेऽपि च।।१४।।
कालिन्दे च पुलिन्दे च मन्दिरे गन्धमादने। मनोहरे कुन्दवने कावेरीतीरनीरजे।।१५।।
पुष्पभद्रापुलिनजे पुष्पोद्याने सुपुष्पिते। सर्वत्र रमणं कृत्वा राधावेशं विधाय च।।१६।।

वहां उन्होंने कलामान के अनुसार (?) निर्जन में राधा के साथ संभोगमयी नाना प्रकार की शृंगार क्रीड़ा को किया। कृष्ण ने पर्वतों पर, रमणीय द्वीपों में, सर्वजन्तु रहित नदियों के तट पर, श्रीगोष्ठ में, रत्न पर्वत पर, गंगातट पर, तो कभी कालिन्दी के किनारे के गृह में, कभी गन्धमादन पर्वत पर, तो कभी कुन्द वन में, कावेरीतटस्थ कमलवन में तथा पुष्पभद्रा तटस्थ खिले पुष्पों की वाटिका में रमण किया। तदनन्तर कृष्ण ने राधा का वेश धारण किया।।१३-१६।।

जगाम मलयद्रोणीं रम्यां चन्दनवायुना। शय्यां पुष्पमयीं कृत्वा तत्र रेमे तया सह।।१७।।

तब वे मलयपर्वत पर गये जहां रम्य चन्दन से सुरभित वायु प्रवाहित थी। वहां कृष्ण ने पुष्पशय्या की रचना किया और राधा के साथ रमण किया!।।१७।।

अतीव सुखसंभोगान्मूर्छां सम्प्राप्य राधिका।
कृत्वा वक्षसि गोविन्दं पुलकाञ्चितविग्रहा।।१८।।
दृष्ट्वा तां मूर्छितां कृष्णो घनश्रोणिपयोधराम्।
विलुप्तवेषां कामार्तां नग्नां शिथिलकुन्तलाम्।।१९।।
चेतनां कारयामास कृत्वा वक्षसि तन्द्रिताम्।
वासयामास वसनं राधया मेखलाम्बरम्।।२०।।

इस अत्यन्त सुखमय संभोग से आनन्दित राधा अपनी सुध-बुध खो बैठीं। वे गोविन्द के वक्षस्थल पर लिपट गयीं। तब श्रीकृष्ण देखते हैं कि सघन जांघों वाली तथा स्थूल स्तनों वाली, अस्तव्यस्त वेशभूषा वाली, कामपीड़िता, नग्ना, कामक्रीड़ा के कारण शिथिल हो गयीं। उत्तम केशों की वेणी वाली राधा मूर्च्छिता हैं। तब कृष्ण ने उनको प्रबोधित किया। कृष्ण ने राधा की तन्द्रामयी स्थिति में ही उनको अपने वक्ष से सटाकर वस्त्र तथा मेखला (करधनी) धारण कराया।।१८-२०।।

कबरीं रचयामास किञ्चिद्वामेन वक्रताम्।
मालतीमाल्यसंयुक्तां कुन्दपुष्पैश्च वेष्टिताम्।।२१।।
तस्याः कपाले सिन्दूरतिलकं सुन्दरं ददौ।
गण्डयोः स्तनयोश्चित्रां चकार पत्रिकां मुदा।।२२।।

कृष्ण ने राधा के केशों का बायीं ओर नत जूड़ा बनाया। उसमें कृष्ण ने मनोहर मालती माला तथा कुन्दपुष्प गूंथा। श्रीहरि ने देवी के ललाट पर सिन्दूर की बिन्दी लगाकर कपोल तथा स्तनों पर चित्र-विचित्र पत्रावली अंकित कर दिया।।२१-२२।।

सालक्तकांश्च नखरांश्चित्रितान्पादपद्मयोः। नखैः कृत्रिमपद्मानि निर्ममे श्रोणिवक्षसोः।।२३।।
उत्थायाथ तया सार्धं जगाम ह सरोवरम्। नानाप्रकारपद्मानां राजिभिश्च विराजितम्।।२४।।

कृष्ण ने राधा के चरण कमलों तथा उस पर नखों को आलता से चित्रित करके अपने नखों से राधा की जांघों तथा वक्षस्थल पर कृत्रिम पद्म की रचना किया। इसके पश्चात् कृष्ण राधा के साथ उठ कर ऐसे सरोवर में उतरे जो नाना प्रकार की कमल पंक्ति से शोभायमान था।।२३-२४।।

निर्मलस्फटिकाकारजलपूर्णं मनोहरम्। हंसकारण्डवाकीर्णं जलकुक्कुटकूजितम्।।२५।।
मधुलुब्धमधुभ्राणां पद्मस्थानं सुपद्मजम्। चारुणा कलशब्देन शब्दितं शश्वदेव हि।।२६।।

वह उत्तम सरोवर निर्मल स्फटिक के समान जल से पूर्ण तथा मनोहर था। उसने हंस-कारण्डव आदि जलपक्षी भरे थे। वहां जल कुक्कुट कूजन कर रहे थे। वहां मधुलोभी भ्रमरगण सरोवर

में उगे उत्तम कमल पुष्पों पर सतत् गुंजार कर रहे थे। उनका यह गुंजार अत्यन्त सुन्दर ध्वनि युक्त था।।२५-२६।।

तत्र स्नात्वा जलक्रीडां चकार ह तया सह।
जलं ददौ राधिकायै मुदा सा माधवाय च॥२७॥

श्रीकृष्ण उस सरोवर में स्नान करते हुये राधा के साथ जलक्रीड़ारत हो गये। उस समय राधा ने माधव पर जल फेंका। तब मुदित माधव ने भी राधा पर जल उछाला।।२७।।

सहस्रदलपद्मे च गृहीत्वा माधवः स्वयम्। एकं ददौ राधिकायै ररक्ष स्वार्थमेककम्॥२८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमीप्सितम्। स्वाङ्गे दत्त्वा राधिकायै लिलेप राधिकेश्वर॥२९॥

उस समय कृष्ण ने सरोवर में से दो कमल पुष्पों का चयन करके एक राधा को देकर एक स्वयं अपने पास रख लिया। इसके अनन्तर राधिकेश्वर श्रीकृष्ण ने चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम का लेप राधा के अंगों पर किया। इसके पूर्व श्रीकृष्ण ने भी अपने अंगों पर यही लेप किया था।।२८-२९।।

ततो गच्छंस्तया सार्धं ददर्श पुरतो वटम्। अतीवोत्तुङ्गशाखाग्रमतिविस्तृतमेव च॥३०॥
मूले योजनपर्यन्तं छायया परिवेष्टितम्। उवास तत्र गोविन्दः केतकीवनसन्निधौ॥३१॥
पुष्पात्केन सुशीतेन वायुना सुरभीकृते। चित्रं रहस्यं सुचिरं पुराणं च पुरातनम्॥३२॥
प्रहर्षितश्च श्रीकृष्ण कथयामास राधिकाम्। एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श मुनिपुङ्गवम्॥३३॥

इसके पश्चात् जैसे ही राधा को लेकर वहां से कृष्ण चले ही थे, उन्होंने अपने समक्ष वटवृक्ष देखा। वह अत्यन्त उच्च था तथा उसकी शाखायें अत्यन्त विस्तृत थीं। वह मूल में एक योजन की छाया वाला था। उस केतकी वन की सन्निधि में श्रीकृष्ण बैठ गये। वह स्थल चतुर्दिक् पुष्प सौरभ से सुरभित शीतल वायु से सुगन्धित हो रहा था। वहां बैठकर श्रीकृष्ण ने अनेक पुरातन तथा विचित्र रहस्यमयी कथायें राधा से कहा। यह सब श्रीकृष्ण राधा से हर्षित होकर कह ही रहे थे कि उन्होंने वहां एक श्रेष्ठ मुनि को आते देखा।।३०-३३।।

आगच्छन्तं च तं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम्[१]। न दृष्ट्वा हृदये रूपमीशस्य परमात्मनः॥३४॥
ध्यानाद्विरतमग्रे च पश्यन्तं बहिरेव तत्। सर्वावयववक्रं च कृष्णं खर्वं दिगम्बरम्॥३५॥
नाम्नाऽष्टवक्रं जटिलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। मुखतोऽग्निमुद्गिरन्तंतपोराशिमिवोत्थितम्॥३६॥

अहो किं वा ब्रह्मतेजो[२] मूर्तिमन्तमिह स्वयम्।
नखश्मश्रुसुदीर्घं च शान्तं तेजस्विनं परम्॥३७॥

वे मुनि कृष्ण की ही ओर आ रहे थे। उनके आनन पर तथा नेत्रों में प्रसन्नता थी। इन मुनि ने जब परमात्मा का रूप हृदय में नहीं देखा, तब ध्यान से विरत होकर उन्होंने अपने नेत्र खोला। तभी

१. क. ०क्षणः।
२. क. ०ह्मचर्यं।

उन्होंने सामने अनिर्वचनीय रूप वाले कृष्ण को देखा। उन मुनि के सभी अंग टेढ़े थे। वे कृष्णवर्ण, नाटी आकृति वाले दिगम्बर थे। उनका नाम था अष्टावक्र। वे जटाधारी तथा ब्रह्मतेज से दीप्तिमान थे। मानों ब्रह्मतेज से उठती तपःरूपी अग्नि उनके मुख से निर्गत हो रही हो! उनको देखकर बोध हो रहा था मानो मूर्त्तिमान ब्रह्मतेज वहां समागत है। उनके नख, दाढ़ी आदि दीर्घ थे। वे शान्त तथा परमतेजस्वी थे।।३४-३७।।

पुटाञ्जलियुतं भक्त्या भीतं प्रणतकंधरम्।
दृष्ट्वा हसन्तीं राधां तां वारयामास माधवः॥३८॥
प्रभावं कथयामास मुनीन्द्रस्य महात्मनः। अथ प्रणम्य गोविन्दं तुष्टाव मुनिपुङ्गवः।
यत्स्तोत्रं च पुरा दत्तं शङ्करेण महात्मा॥३९॥

वे दोनों हाथ जोड़कर भक्ति के साथ झुके हुये थे। यह देखकर राधा हंसने लगीं, परन्तु माधव ने उनको रोक दिया। तब कृष्ण ने महात्मा मुनीन्द्र का माहात्म्य उनसे कहा। अब वे मुनिपुंगव हाथ जोड़कर उस स्तोत्र से कृष्ण की स्तुति करने लगे जो शंकर ने उनको प्रदान किया था।।३८-३९।।

अष्टावक्र उवाच

गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक। गुणीश गुणिनां बीज गुणायन नमोऽस्तु ते॥४०॥
सिद्धिस्वरूप सिद्ध्यंश सिद्धबीज परात्पर।
सिद्धिसिद्ध गुणाधीश सिद्धानां गुरवे नमः॥४१॥

ऋषि अष्टावक्र कहते हैं–हे प्रभो! आप गुणातीत, गुणाधार, गुणों के बीज, परात्पर, गुणियों के ईश्वर, सिद्धिस्वरूप, सिद्ध के अंश, सिद्धबीज हैं। आप सिद्ध रूप, सिद्धों के ईश्वर, सिद्धों के गुरु हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं!।।४०-४१।।

हे वेदबीज वेदज्ञ वेदिन्वेदविदां वर। वेदज्ञाताऽऽद्यरूपेश वेदज्ञेश नमोऽस्तु ते॥४२॥
ब्रह्मानन्तेश शेषेन्द्रधर्मादीनामधीश्वर। सर्वं सर्वेश सर्वेश बीजरूप नमोऽस्तु ते॥४३॥

हे वेदबीज! वेदज्ञ, वेदवेत्ताओं में प्रधान, वेदों से भी न जाने गये, आद्यरूप, वेदज्ञों के ईश, ब्रह्मा तथा अनन्त के भी ईश्वर, शेष-इन्द्र-धर्म के भी अधीश्वर, सर्व, सर्वेश, शर्व अर्थात् महादेव के भी ईश्वर तथा बीजरूप हैं। आपको प्रणाम करता हूं!।।४२-४३।।

प्रकृते प्राकृत प्रज्ञ प्रकृतीश परात्पर। संसारवृक्ष तद्बीज फलरूप नमोऽस्तु ते॥४४॥
सृष्टिस्थित्यन्तबीजेश सृष्टिस्थित्यन्तकारण।
महाविराट्तरोर्बीज राधिकेश नमोऽस्तु ते॥४५॥

आप ही प्रकृति, प्राकृत, प्रज्ञ तथा प्रकृति के परात्पर ईश्वर हैं। आप ही संसार रूपी वृक्ष के बीज तथा फलरूप हैं, आप ही सृष्टि-पालन-प्रलय के बीज एवं स्वामी हैं। आप सृष्टि-स्थिति-संहार के कारणरूप महाविराट् रूप वृक्षबीज, राधा के स्वामी हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं!।।४४-४५।।

अहो यस्य त्रयः स्कन्धा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
शाखाप्रशाखा वेदाद्यास्तपांसि कुसुमानि च॥४६॥

संसारा[1] विफला एव प्रकृत्यङ्कुरमेत्य[2] च। तदाधार निराधार सर्वाधार नमोऽस्तु ते॥४७॥

आप ही मूल वृक्ष हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर, इस वृक्ष की तीन शाखा हैं। वेदादि इसकी प्रशाखा, तपः पुष्प हैं। संसार इसका फल है। प्रकृति इसकी अंकुर रूपा है। आप ही इसके आधार होकर भी सर्वाधार होकर भी निराधार (तत्वतः) हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूं!।।४६-४७।।

तेजोरूप निराकार प्रत्यक्षानूहमेव च। सर्वाकारातिप्रत्यक्ष स्वेच्छामय नमोऽस्तु ते॥४८॥

आप तेजरूप, निराकार, प्रत्यक्ष-प्रमाण से अतीत, सर्वाकार, अत्यन्त प्रत्यक्ष तथा स्वेच्छामय हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं!।।४८।।

इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो निपत्य चरणाम्बुजे।
प्राणांस्तत्याज योगेन तयोः प्रत्यक्ष एव च॥४९॥

पपात तत्र तद्देहः पादपद्मसमीपतः। तत्तेजश्च समुत्तस्थौ ज्वलदग्निशिखोपम्॥५०॥

सप्ततालप्रमाणं तु चोत्थाय च पपात ह। भ्रामं भ्रामं च परितो लीनं चाभूत्पदाम्बुजे॥५१॥

यह कहकर अष्टावक्र कृष्ण के चरणकमलों पर गिर पड़े। उन्होंने राधा-श्रीकृष्ण के सामने ही योगावलम्बन द्वारा प्राण त्याग कर दिया। उनका निर्जीव शरीर कृष्ण के चरणकमल के पास गिर गया। तभी उससे ज्वलन्त अग्निशिखा समप्रभ तेज निर्गत हो उठा। वह तेज सात तालवृक्ष की ऊंचाई तक उठा तथा पुनः गिर पड़ा। वह चतुर्दिक् घूमता श्रीकृष्ण के चरणकमलों में लीन हो गया।।४९-५१।।

अष्टावक्रकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
परं निर्वाणमोक्षं च समाप्नोति न संशयः॥५२॥

प्राणाधिको मुमुक्षूणां स्तोत्रराजश्च नारद। हरिणाऽहो पुरा दत्तो वैकुण्ठे शङ्कराय च॥५३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मुनिमोक्षणप्रस्ताव एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

जो कोई अष्टावक्र कृत इस स्तोत्र का पाठ प्रातः उठकर करता है, उसे परमनिर्वाण मोक्ष की निःसंशय रूप से प्राप्ति होती है। हे नारद! मुमुक्षुगण के लिये यह स्तोत्र तो प्राणाधिक प्रिय है। पूर्वकाल में यह स्तोत्र श्रीहरि ने वैकुण्ठ में ही शिव को प्रदान किया था॥५२-५३॥

॥२९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

१. ख. ०सारवि०।
२. ख. ०मेव च।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

राधिका से श्रीकृष्ण द्वारा अष्टावक्र उपाख्यान के अन्तर्गत् ऋषि असितकृत श्रीकृष्ण स्तोत्र का कथन, रम्भा अप्सरा के शाप से देवल ऋषि को अष्टावक्रत्व की प्राप्ति

नारद उवाच

महामुने रहस्यं च श्रुतं ब्रह्मन्किमद्भुतम्। मृते मुनौ किं चकार श्रीकृष्णो भक्तवत्सलः॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महामुनि! मैंने आपसे यह अत्यन्त अद्भुत रहस्य सुना। तत्पश्चात् ऋषि अष्टावक्र की मृत्यु के उपरान्त भक्तवत्सल कृष्ण ने क्या कहा?॥१॥

नारायण उवाच

दृष्ट्वा मृतं मुनिं कृष्णः संस्कारं कर्तुमुद्यतः। कृत्वा वक्षसि तद्देहं रुरोदोच्चैर्यथा नरः॥२॥
बाहुभ्यां च समाश्लिष्य पिपेषोद्रिक्तमोहतः। निर्गतं भस्मनिकरं शवाद्व्राङ्गघर्षणात्॥३॥
रक्तमांसास्थिहीनं तच्छरीरं च महात्मनः। षष्टिवर्षसहस्त्राणि निराहारकृतो मुनेः॥४॥
दग्धं लोहितमांसास्थि ज्वलता जठराग्निना। बाह्यज्ञानविहीनस्य हरिपादाब्जचेतसः॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—जब कृष्ण ने मुनिश्रेष्ठ का मृत शरीर देखा, तब वे उसका यथोचित संस्कार करने हेतु उद्यत हो गये। तदनन्तर वे मुनि का शव हृदय से लगाकर सामान्य लोगों की तरह उच्चस्वर से रुदन करने लगे। भगवान् ने जब शव का आलिंगन किया, तब उनके हाथों के घर्षण के कारण मुनि के शव से भस्म का ढेर झड़ने लगा। उस भस्मनिर्गमन का कारण यह था कि मुनि ने ६०००० वर्ष तक तप किया था। इससे उनका शरीर रक्त-मांस आदि से रहित हो गया जठरानल के ताप से उनके देह का रक्त, मांस, अस्थि तक दग्ध हो गया। जीवनकाल में उनका चित्त सतत् भगवत् चरणकमल में संलग्न रहता था। वे बाह्यज्ञान से रहित रहते थे॥२-५॥

चितां चन्दनकाष्ठेन निर्माय मधुसूदनः। कृत्वाऽग्निकार्यं तत्रैव स्थापयामास शोकतः॥६॥
दादौ चितायामग्निं च काष्ठं दत्त्वा शवोपरि।
ज्वलितायां चितायां च मूर्च्छामाप क्षणं विभुः॥७॥

तदनन्तर मधुसूदन ने उस शव के लिये चन्दनकाष्ठ की चितानिर्मित करके अष्टावक्र के शव का अग्निकार्य सम्पन्न किया। सामान्य व्यक्ति की तरह शोक करते हुये कृष्ण ने चिता पर शव को रखा। उस समय कृष्ण के नेत्र अश्रु से भर गये। इसके पश्चात् शव के ऊपर भी काष्ठ स्थापित करके चिता में अग्नि स्पर्श कराया। इस समय क्षण पर्यन्त के लिये भगवान् अपनी सुध-बुध खो बैठे॥६-७॥

तद्देहे भस्मसाद्भूते नेदुर्दुन्दुभयो दिवि। बभूव पुष्पवृष्टिश्च तत्क्षणाद्गनादहो॥८॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र रत्नसारविनिर्मितम्। स्यन्दनं च मनोयायि वस्त्रमाल्यपरिच्छदम्॥९॥
पार्षदप्रवरैर्युक्तं श्रीकृष्णसदृशैर्वरैः। आविर्बभूव गोलोकात्सुन्दरं पुरतो हरेः॥१०॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं पार्षदप्रवरा हरेः। सर्वे समानरूपास्ते प्रणम्य राधिकेश्वरौ॥११॥
धृतवन्तं सूक्ष्मदेहं प्रणमय्य मुनीश्वरम्। रथे कृत्वा तु तं देहं जग्मुर्गोलोकमुत्तमम्॥१२॥

गते मुनीन्द्रे गोलोकं वृन्दावनविनोदिनी।
बभूव विस्मिता साध्वी पप्रच्छ जगदीश्वरम्॥१३॥

जब ऋषि का शव भस्मीभूत हो गया, तब आकाश से दुन्दुभियां बजने लगी तथा उसी क्षण गगन से पुष्पवृष्टि भी होने लगी। तदनन्तर आकाश से रत्नों के सारभाग से निर्मित मनोवेगगामी, वस्त्रों-मालाओं से सुशोभित श्रीकृष्ण के सदृश पार्षद प्रवरों से युक्त एक दिव्य रथ गोलोक से वहां आया। हरि के ही समान रूप वाले पार्षद उसमें से शीघ्र उतरे तथा उन्होंने राधाकृष्ण को प्रणाम किया। उन्होंने सूक्ष्मदेहस्थ मुनीश्वर को भी प्रणाम किया तथा उनको रथ पर आसीन कराने के पश्चात् उत्तम गोलोक ले गये। जब वे मुनीन्द्र गोलोक चले गये तब वृन्दावन-विनोदिनी साध्वी राधा ने अत्यन्त विस्मित होकर जगदीश्वर से पूछा-॥८-१३॥

राधिकोवाच

कोऽयं नाथ मुनिश्रेष्ठः सर्वावयववक्रिमः। अतिखर्वजनाकारस्तेजीयानतिकुत्सितः॥१४॥

कथं वा निर्गतं भस्म देहादस्य किमद्भुतम्।
साक्षाद्विलीनं यत्तेजस्त्वत्पादाब्जेऽनलोपमम्॥१५॥
रथस्थः पुण्यवान्सद्यो गोलोकं च जगाम ह।
स्वात्मारामस्य यद्धेतो रोदनं ते बभूव ह॥१६॥

त्वया कृतं च सत्कारमश्रुपूर्णेन चक्षुषा। सर्वं विवरणं तूर्णं संव्यस्य कथय प्रभो॥१७॥

देवी राधिका कहती हैं-जिन मुनि के समस्त अंग वक्र थे, जो नाटे तथा कृष्णवर्ण होने के कारण कुत्सित लगने पर भी अत्यन्त तेजवान् थे, उनके शरीर से किस प्रकार से भस्म निकला, यह अद्भुत बात है। इनका अग्नि के समान तेज आपके चरणों में लीन होते मैंने देखा। आपने स्वयं परमात्मा होकर भी इनके निमित्त रुदन किया, इसका क्या कारण है? आपने स्वयं अश्रुपूरित नेत्रों से मुनिवर का संस्कार किया? हे प्रभो! यह सब प्रसंग कृपया विस्तार से कहिये॥१४-१७॥

राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः। कथां कथितुमारेभे युगान्तरगतामपि॥१८॥

राधिका का कथन सुनकर मधुसूदन हंस पड़े। वे युगान्तरीण कथा इस सम्बन्ध में कहने लगे॥१८॥

श्रीकृष्ण उवाच

रहस्यमष्टावक्रीयं विख्यातं सर्वतः प्रिये।
पश्चाच्छ्रोष्यसि कालेन प्रसङ्गे विदुषां मुखात्॥१९॥
अष्टावक्रो मुनीन्द्रोऽपि विख्यातो भुवनत्रये। परिपूर्णं यद्यशसा जगन्मातर्जगत्त्रयम्॥२०॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे प्रिये! अष्टावक्र मुनि का समस्त वृत्तान्त तो जगत्प्रसिद्ध है। तुम कालक्रमेण बाद में भी किसी प्रसंग में यह विद्वानों से सुन लेना। ये मुनि सभी मुनिवरों में श्रेष्ठ तथा त्रिभुवन विख्यात थे। हे जगत्जननी! उनकी यशोराशि से जगत् व्याप्त है।।१९-२०।।

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा विमनस्का हरिप्रिया। उवाच मधुरं यत्नाच्छुष्कण्ठोष्ठतालुका॥२१॥

श्रीकृष्ण का यह कथन सुनकर हरिप्रिया राधा अन्यमनस्क हो उठीं। उनका कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो गया। तदनन्तर वे प्रयत्नतः मधुर वाणी में कहने लगीं।।२१।।

राधिकोवाच

यत्तृषालोर्मनः पूर्णं न बभूव सुधाम्बुधौ। स वितृप्तो भवति किं गोष्पदोदकपानतः॥२२॥
वेदानां वेदवक्तॄणां विधातुर्जनकस्य च।
महाविष्णोरीश्वरस्त्वं कोऽन्यो वक्ताऽस्ति त्वत्परः॥२३॥

श्रीराधिका कहती हैं—हे प्राणनाथ! मन की जो पिपासा सुधासागर में निमज्जित होने पर भी तृप्त नहीं होती, वह मन क्या गाय के खुर से बने गढ़े का जल पीकर कभी तृप्त हो सकेगा? आप तो वेदों के वक्ताओं के तथा विधाता के भी विधाता, महाविष्णु के भी ईश्वर हैं। आप जैसा वक्ता इस विश्व में अन्य कौन हो सकता है?।।२२-२३।।

राधिकावचनं श्रुत्वा तुष्टः कृष्णो बभूव ह। उवाच गोपनीयं च रहस्यं परमाद्भुतम्॥२४॥

राधिका का वचन सुनकर कृष्ण सन्तुष्ट हो गये। वे राधा से इस परम अद्भुत एवं गोपनीय रहस्य का वर्णन करने लगे।।२४।।

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। श्रवणात्कथनाद्यस्य सर्वं पापं प्रणश्यति॥२५॥
महाविष्णोर्नाभिपद्माद्बभूव जगतां विधिः। यमांशश्च मत्कलया जलाकीर्णे जगत्त्रये॥२६॥
पुत्रा बभूवश्चत्वारो ब्रह्मणो मानसात्पुरा। नारायणपराः सर्वे ज्वलतो ब्रह्मतेजसा॥२७॥
शिशवः पञ्चवर्षीया नग्ना अज्ञानिनो यथा। बाह्यज्ञानविहीनाश्च ब्रह्मतत्त्वविशारदाः॥२८॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवानेते चत्वार एव च॥२९॥
तानुवाच जगद्धाता सृष्टिं कुरुत पुत्रकाः। ते न तस्थुः पितुर्वाक्ये प्रययुस्तपसे मम॥३०॥

श्रीकृष्णदेव कहते हैं—हे कान्ते! मैं अत्यन्त पुरातन इतिहास कहता हूं। श्रवण करो। इसको

श्रवण करने वाले का तथा वक्ता का, इन दोनों का पातक नष्ट हो जाता है। पूर्वकाल में यह त्रैलोक्य जलराशि से भरा था। तभी महाविष्णु के नाभिकमल से मेरे अंशरूप ब्रह्मा मेरी कला से उत्पन्न हो गये। उस समय ब्रह्मा के चार पुत्र जन्मे। वे ब्रह्मतेज से ज्वलन्त तथा नारायण परायण थे। वे अज्ञानी पांच वर्ष के शिशु की तरह नग्न, बाह्यज्ञान रहित, ब्रह्मतत्व विशारद थे। उनका चारों का नाम है सनक, सनन्दन, सनातन तथा भगवान् सनत्कुमार। उनसे जगत्विधाता ब्रह्मा ने कहा–"हे पुत्रो! सृष्टि करो।", तथापि उन्होंने पिता के कथन को नहीं माना और तप करने चले गये।।२५–३०।।

विधाता विमनस्कश्च तनयेषु गतेषु च। पितुर्दुःखाय प्रभवेत्पुत्रश्चेदवचस्करः।।३१।।
ज्ञानेन निर्ममे पुत्रान्स्वाङ्गेषु च तपोधनान्। वेदवेदाङ्गविज्ञांश्च ज्वलतो ब्रह्मतेजसा।।३२।।

पुत्रों के चले जाने पर विधाता विमनस्क हो गये। जो पुत्र पिता की आज्ञा का पालन नहीं करते, वे पिता के लिये दुःखप्रद हो जाते हैं। तत्पश्चात् विधाता ने अपने विभिन्न अवयवों से ज्ञान द्वारा अन्य पुत्रों को उत्पन्न किया। वे वेद–वेदान्तज्ञ तथा ब्रह्मतेज से अतीव दीप्त थे।।३१–३२।।

अत्रिः पुलस्त्यः पुलहो मरीचिर्भृगुरङ्गिराः।
क्रतुर्वसिष्ठो वोढुश्च कपिलाश्चासुरिः कविः।।३३।।
शङ्कुः शङ्खः पञ्चशिखः प्रचेतास्ते तपोधनाः।
बहुकालं तपस्तप्त्वा चक्रुः सृष्टिं तदाज्ञया।।३४।।

उनके नाम हैं अत्रि, पुलत्स्य, पुलह, मरीचि, भृगु, अंगीरा, क्रतु, वसिष्ठ, वोढु, कपिल, आसुरी, कवि, शंकु, शंख, पंचशिख, तपोधन, प्रचेता। इन लोगों ने दीर्घकाल तप से तप्त होकर ब्रह्मा की आज्ञा से सृष्टि कार्य किया।।३३–३४।।

कलत्रवन्तस्ते सर्वे संसारं कर्तुमुन्मुखाः। बभुवुः पुत्रपौत्राश्च सर्वेषां च तपस्विनाम्।।३५।।
तदस्तु च तथा बह्वी मुनिर्वंशानुकीर्तनी। चार्वी पुण्यस्वरूपा च प्रकृतं शृणु सुन्दरि।।३६।।

ये सभी पत्नीयुक्त थे तथा सृष्टि वृद्धि हेतु उन्मुख हो गये। इन सभी तपस्वीगण के अनेकों पुत्र–पौत्रादि जन्मे थे। वे भी तपस्वी थे। हे सुन्दरी! यह सुन्दर पुण्यस्वरूप मुनिवंश का प्रसंग अत्यन्त विस्तृत है। उसका कोई प्रयोजन यहां नहीं है। अतः तुम अब प्रकृत प्रसंग का वर्णन सुनो।।३५–३६।।

प्रचेतसः सुतः श्रीमानसितो मुनिपुङ्गवः। सकलत्रस्तपस्तेपे दिव्यं वर्षसहस्रकम्।।३७।।
न बभूव सुतस्तस्य प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः। तं सम्बोद्धुं बभूवाथ सत्य वागशरीरिणी।।३८।।

श्रीमान् प्रचेतागण के पुत्र थे मुनिप्रवर असित। असित ने सपत्नीक दिव्यमान वाले १००० वर्ष तक तपःश्चरण किया। जब उनको तप द्वारा पुत्रलाभ नहीं हो सका तब वे प्राण त्याग करने लगे। उसी समय उनके उद्देश्य से वहां अशरीरी वाक् सुनाई पड़ी।।३७–३८।।

कथं त्यजसि प्राणांस्त्वं गच्छ शङ्करसन्निधिम्।
सिद्धं कुरु गृहीत्वा च मन्त्रं शङ्करवक्त्रतः।।३९।।

मन्त्राधिष्ठातृदेवी ते सद्यः साक्षाद्भविष्यति।
वरेणाभीष्टदेव्याश्च पुत्रस्ते भविता ध्रुवम्॥४०॥

उस अशरीरी वाणी ने कहा–"हे मुनिवर! तुम प्राण त्याग क्यों कर रहे हो? तुम शंकर के पास जाओ। उनसे मन्त्र ग्रहण करके उस मन्त्र को सिद्ध करो। उस मन्त्र की अधिष्ठातृ देवी तुमको साक्षात् दर्शन प्रदान करेंगी। उनके वरदान से तुम निश्चित रूप से पुत्रलाभ करोगे।।३९-४०।।

श्रुत्वैतच्चरितं विप्रो जगाम शिवसन्निधिम्।
योगिनामप्यगम्यं च शिवलोकं निरामयम्॥४१॥
सकलत्रो यथा योगी तुष्टाव योगिनां गुरुम्।
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः॥४२॥

ऐसा सुनकर ब्राह्मण असित योगी लोगों के लिये अगम्य, निरामय शिवलोक गये। वे अपनी पत्नी के साथ वहां जाकर उन योगी लोगों के गुरु शिव के समक्ष हाथ जोड़कर, खड़े होकर उनकी स्तुति करने लगे।।४१-४२।।

असित उवाच

जगद्‌गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च।
योगीन्द्राणां च योगीन्द्र गुरूणां गुरवे नमः॥४३॥
मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन। मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युञ्जय नमोऽस्तु ते॥४४॥

ऋषि असित कहते हैं–हे जगद्‌गुरु! आप मंगलमय, मंगलदाता (शिवप्रद), योगीन्द्रों तथा योगीन्द्रगण के गुरुओं के भी गुरु हैं। मैं आपको प्रणिपात करता हूं! आप मृत्यु के भी मृत्यु स्वरूप, मृत्युरूपी संसार का खण्डन करने वाले हैं। हे मृत्यु के ईश्वर! मृत्यु के बीज! मृत्युञ्जय देव! आपको प्रणाम!।।४३-४४।।

कालरूपं कलयतां कालकालेश कारण।
कालादतीत कालस्थ कालकाल नमोऽस्तु ते॥४५॥
गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक। गुणीश गुणिनां बीज गुणिनां गुरवे नमः॥४६॥
ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावे च तत्पर। ब्रह्मबीजस्वरूपेण ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते॥४७॥

हे कालरूप! आप संहारकों के भी काल हैं। आप काल के ईश्वर, काल के कारण, कालतीत, काल में विराजित तथा काल के भी काल हैं। हे विभु! मैं आपको प्रणाम करता हूं! हे गुणाधार! आप गुणातीत, गुणबीज (गुणों के कारण), गुणात्मक तथा गुणियों के ईश्वर हैं। आप गुणी लोगों के कारणस्वरूप तथा गुणियों के गुरु हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं!।।४५-४७।।

इति स्तुत्वा शिवं नत्वा पुरस्तस्थौ मुनीश्वरः। दीनवत्साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः॥४८॥

मुनीश्वर असित ने यह कहकर शिव को प्रणाम किया। वे तदनन्तर नेत्रों से अश्रुपात करते हाथ जोड़कर शङ्कर के समक्ष दीनवत् खड़े हो गये उनका सर्वांग पुलकित था।।४८।।

असितेन कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्।
वर्षमेकं हविष्याशी शङ्करस्य महात्मनः।।४९।।
स लभेद्वैष्णवं पुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम्।
भवेद्धनाढ्यो दुःखी च मूको भवति पण्डितः।।५०।।
अभार्यो लभते भार्यां सुशीलां च प्रतिव्रताम्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते शिवसन्निधिम्।।५१।।
इदं स्तोत्रं पुरा दत्तं ब्रह्मणा च प्रचेतसा। प्रचेतसा स्वपुत्रायासिताय दत्तमुत्तमम्।।५२।।

महर्षि असित कृत यह स्तोत्र भक्तिभाव से जो कोई पढ़ता है तथा वर्ष पर्यन्त हविष्यभोजी रहकर भक्ति के साथ इसका पाठ करता है, वह परमवैष्णव दीर्घायु पुत्रलाभ करता है। इसके पाठ से दुःखी व्यक्ति धनवान्, मूक व्यक्ति पण्डित होता है। पत्नीहीन पत्नीयुक्त होकर सुशीला तथा पतिव्रता पत्नी लाभ करता है। इस स्तोत्र का नित्य पाठ करने वाला इहलोक में सुख भोगकर देहान्त के पश्चात् शिव सन्निधि प्राप्त करता है। पूर्वकाल में यह स्तोत्र ब्रह्मा ने प्रचेतागण को प्रदान किया था। प्रचेता ने इसे अपने पुत्र असित को प्रदान किया।।४९-५२।।

श्रीकृष्ण उवाच

समाकर्ण्य मुनेः स्तोत्रं भगवाञ्छंकरः स्वयम्।
उवाच ब्रह्मणः पुत्रं स्वभक्तं भक्तवत्सलः।।५३।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—भगवान् भक्तवत्सल शङ्कर ने यह स्तोत्र सुनकर ब्राह्मण पुत्र अपने भक्त से कहा—।।५३।।

शङ्कर उवाच

स्थिरो भव मुनिश्रेष्ठ जानामि तव वाञ्छितम्।
पुत्रस्ते भविता सत्यं मदंशन च मत्समः।।५४।।
दास्यामि मन्त्रमतुलं सर्वेषां च सुदुर्लभम्।
इत्युक्त्वा च ददौ मन्त्रं तवैव षोडशाक्षरम्।।५५।।
स्तोत्रं पूजाविधानं च कवचं परमाद्भुतम्। संसारविजयं नाम पुरश्चरणपूर्वकम्।।५६।।
वरं दातुमिष्टदेवी प्रत्यक्षा भवितेति च। इत्युक्त्वा विरतो रुद्रः स तं नत्वा जगाम ह।।५७।।
जजाप परमं मन्त्रं सोऽसितः शतवत्सरम्।
शाक्षाद्भूत्वा वरस्तस्मै त्वया दत्तः पुरा सति।।५८।।

पुत्रस्ते भविता सत्यं महाज्ञानी सुतेति च।
वरं दत्त्वा त्वमगमो गोलोकं मम सन्निधिम्॥५९॥

कालेन च सुतस्तस्य शिवांशेन बभूव ह। ब्रह्मिष्ठो देवलो नाम्ना कन्दर्पसमसुन्दरः॥६०॥

भगवान् शङ्कर कहते हैं—"हे मुनिशार्दूल! तुम स्थिर हो जाओ। मैं तुम्हारी कामना जान गया हूं। मेरे अंश से मेरे ही समान रूप, गुणयुक्त तुम्हारा एक पुत्र अवश्य होगा। मैं अपने ही समान अत्यन्त दुर्लभ मन्त्र तुमको प्रदान करता हूं।" यह कहकर शङ्कर ने असित को षोडशाक्षर मन्त्र, स्तोत्र, पूजाविधि, संसारबीज नाम वाला अद्भुत कवच तथा पुरश्चरण विधि देकर कहा कि अब इष्ट देवी प्रत्यक्षरूप से आकर वांछित वर प्रदान करेंगी।" यह कहकर रुद्रदेव मौन हो गये। ब्राह्मण असित भी शिव को प्रणाम करके वहां से चले गये। असित ने यह परममन्त्र १०० वर्षों तक जपा। इससे हे देवी! तुमने प्रत्यक्ष होकर (राधा ने प्रत्यक्ष होकर) पूर्वकाल में असित को वर प्रदान किया था। हे सती! तुमने वर दिया था कि "हे ऋषिवर! मेरी कृपा से तुमको निश्चित ज्ञानी पुत्र की प्राप्ति होगी।" यह वर प्रदान करने के अनन्तर तुम गोलोक मेरे पास आ गईं। कालक्रमेण शिवांश से असित को मुनिकुमार देवल नामक पुत्र जन्मा। वह ब्रह्मज्ञों में प्रधान तथा कामदेव से भी बढ़कर रूपवान् था।।५४-६०।।

सुयज्ञनृपतेः कन्यां रत्नमालावतीं मुदा। तां सुन्दरीं विवाहेन जगृहे सर्वमोहिनीम्॥६१॥
स्थाने स्थाने च रहसि शतवर्षं तया सह। स रेमे निपुणः श्रेष्ठः स्त्रीणां रमणकर्मणि॥६२॥
कालान्तरे स विरतो बभूव मुनिपुङ्गवः। सुखं सर्वं परित्यज्य धर्मिष्ठः श्रीहरिं स्मरन्॥६३॥
उत्थाय रात्रौ शयनाद्विरक्तश्च तपोधनः स ययौ तपसे कान्ते गन्धमादनगह्वरम्॥६४॥

देवल का विवाह राजा सुयज्ञ की अति रूपवती तथा सर्वमोहिनी कन्या रत्नमालावती से हो गया। तत्पश्चात् कामक्रीड़ा निपुण देवल मुनि ने रत्नमालावती के साथ अनेक निर्जन तथा गोपनीय स्थानों में १०० वर्ष पर्यन्त रमण किया। तत्पश्चात् कालान्तर में ये मुनिप्रवर भोगादि से विरत हो गये। रात्रिकाल में ये धार्मिक मुनि सभी लौकिक सुख त्यागकर, भगवान् का स्मरण करते हुये, शय्या त्यागकर तप के लिये गन्धमादन पर्वतस्थ कन्दरा में चले गये।।६१-६४।।

निद्रां त्यक्त्वा च तत्कान्ता न दृष्ट्वा स्वामिनं सती।
विललाप भृशं शोकात्प्रदग्धा विरहाग्निना॥६५॥

उत्तिष्ठन्ती निर्विशन्ती रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः। तप्तपात्रे यथा धान्यं बभूव तन्मनस्तदा॥६६॥

आहारं च परित्यज्य प्राणांस्तत्याज सुन्दरी।
चकार तत्सुतस्तस्याः कर्म निर्हरणादिकम्॥६७॥

जब रत्नमालावती ने प्रातः उठकर पति को नहीं देखा, तब वह विरहानल से दग्ध प्रायः होकर दुःखपूर्ण विलाप करने लगीं। वह कभी उठते, कभी बैठते उच्चस्वर से रोने लगी। जैसे अत्यन्त तप्त पात्र में धान के दाने छोड़ने पर उस दाने की जो स्थिति होती है, वही स्थिति रत्नमालावती की हो रही

थी। इस सती ने आहारादि त्यागकर अपने प्राणों को भी त्याग दिया। तब इस सती के पुत्र ने माता का दाह संस्कारादि और्ध्वदैहिक कृत्य सम्पन्न किया।।६५-६७।।

तपश्चकार स मुनिर्गन्धमादनगह्वरे। दिव्यं वर्षसहस्रं च मम भक्तो जितेन्द्रियः।।६८।।
तं ददर्श ह दैवेन रम्भा शृङ्गारलोलुपा। अतीव सुन्दरं शान्तं कन्दर्पमिव सुन्दरम्।।६९।।
सा च तं कथयामास निर्जने समुपस्थिता। विधाय वेषं यत्नेन त्रैलोक्यचित्तमोहिनी।।७०।।

मेरे परम भक्त तथा जितेन्द्रिय मुनि देवल ने गन्धमादन की गुफा में १००० दिव्य वर्ष पर्यन्त तप किया। तभी उधर से जाती अप्सरा रम्भा ने अत्यन्त सुन्दर, शान्त, काम के समान सुरूप देवल को देखकर अपना सर्वजन चित्तमोहन वेष बनाया। तत्पश्चात् वह अप्सरा उस निर्जन स्थान में आकर मुनि से कहने लगी।।६८-७०।।

रम्भोवाच

निबोध साधो मद्वाक्यं कामिनीनां मनोहरम्।
त्यक्त्वा कठोरं रहसि भज मां सुखदायिकाम्।।७१।।
त्वं वरेषु वरः पृथ्व्यां वरारोहा स्वयंवरा। विदग्धाया विदग्धस्य दुर्लभो नवसङ्गमः।।७२।।
यज्ञं कुर्वन्ति भूपाला भारते स्वर्गहेतुकम्। स्वर्गभोगनिमित्तं च भोगसारा वयं मुने।।७३।।
स्तनयोर्युग्ममूर्वोर्मे सुन्दरं मुखपङ्कजम्।
हास्यभ्रूभङ्गसहितं दृष्ट्वा को न लभेत्सुखम्[1]।।७४।।
स्त्रीरसः सुखसारश्च मुनीनामभिवाञ्छितः। रसिकासुखसंभोगो निर्जने चातिदुर्लभः।।७५।।

रम्भा कहती है–हे साधु! मेरा कथन सुनो। तुम्हारा रूप कामिनियों को मोहित करने वाला है। अतः इस निर्जन में कठोर तप त्याग दो और मेरे साथ सुख उपभोग करो। तुम इस धरती में श्रेष्ठतम हो। मैं भी परम उत्तम नारी हूं। मैं स्वयं आकर तुम्हारा वरण कर रही हूं। चतुर नारी के साथ चतुर नायक का ऐसा नवसंगम अतिदुर्लभ है। भारत में राजा लोग स्वर्ग लाभार्थ यज्ञ करते हैं, तथापि मैं तो स्वर्गभोग की सारभूता हूं। मेरे स्तनद्वय, जांघे, सुन्दर मुखकमल, मेरी हंसी तथा भ्रूभंग देखने वाला कौन ऐसा है, जिसे सुख न मिले? नारी का रस तो सुख का साररूप है। उसकी कामना मुनिगण भी करते हैं। रसिक नारी का एकान्त स्थान में सुखसंभोग को अतीव दुर्लभतर है।।७१-७५।।

देवो वा मानवो वाऽपि गन्धर्वो वाऽथ राक्षसः।
स्त्रीसुखेष्वप्यविज्ञेयो रम्भाया रतिवञ्चितः।।७६।।
रहस्युपस्थितां कान्तां न भजेद्यो जितेन्द्रियः।
गात्रलोमप्रमाणाब्दं कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम्।।७७।।

१. क. ०त्सुधीः।

सत्यं तस्याश्च वधभाक्तच्छापेन प्रणश्यति। विधाता मोहिनीशापदपूज्यो भुवनत्रये॥७८॥
येन त्यक्तोपस्थिता तं यथा पश्यति पुंश्चली।
स्वामिपुत्रस्वबन्धूनां न तथा घातकं रुषा॥७९॥

देवता, मनुष्य, गन्धर्व, राक्षस में से जो कोई भी रम्भा के साथ रतिसंभोग से वंचित हैं, वे तो वास्तविक स्त्री सुख से ही रहित हैं। यह जान लेना चाहिये। जो व्यक्ति जितेन्द्रिय है तथा निर्जन प्रदेश में आई कान्ता के साथ संभोग नहीं करता, वह अपने शरीर में स्थित जितने भी रोये हैं, उतने कालपर्यन्त निश्चितरूप से कुंभीपाक नरक में क्लेशभोग करता है। जो पुरुष संभोग की लालसा से समागता नारी की उपेक्षा करता है, वह उस स्त्री द्वारा वध का भागी होता है और उस नारी के शाप द्वारा उसका नाश निश्चित है। ब्रह्मा तक मोहिनी के शाप से त्रैलोक्य में अपूज्य हो गये! जो व्यक्ति स्वयं आई रमणी का त्याग कर देते हैं, वह पुंश्चली नारी उस व्यक्ति को अपने स्वामी-पुत्र-बन्धुवर्ग के घातक की अपेक्षा भी अधिक क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखती है।।७६-७९।।

परं प्रियं च सर्वेषां जारं जानाति पुंश्चली। यदि तेन परित्यक्ता तं हन्तुं सा तु दक्षिणा॥८०॥
पुंश्चली हिंस्रजन्तुभ्यो नरघातिभ्य एव च। दुष्टा शश्वद्दयाहीना दुरन्ता प्रतिजन्मनि॥८१॥
त्यज ध्यानं मुनिश्रेष्ठ भुङ्क्ष्वेदं तपसः फलम्।
रहस्युपस्थितां मां च गृहीत्वा सुचिरं सुखम्॥८२॥

पुंश्चली नारी अपने उपपति को सर्वापेक्षा प्रिय मानती है। यदि वह उपपति उस कुलटा नारी का त्याग कर देता है, तब वह वेश्या कुलटा उस व्यक्ति का वध करने का विशेष यत्न करती है। पुंश्चली नारी सभी हिंसक जन्तुओं तथा नर हत्यारे लोगों से भी कहीं अधिक दुष्ट स्वभाव की मानी गई है। वह तो प्रत्येक जन्म-जन्मान्तर में दयाहीना होती है। हे मुनिप्रवर! अब आप ध्यान त्याग करिये। मेरे साथ एकान्त में दीर्घकालीन सुख भोग करिये।।८०-८२।।

स रम्भावचनं श्रुत्वा तामुवाच भयाकुलः। हितं तथ्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम्॥८३॥

रम्भा का वचन सुनकर देवल भयाकुल हो गये। उन्होंने तथ्यपूर्ण, हितप्रद परिणाम में सुख देने वाले नीतिसार को कहा-।।८३।।

देवल उवाच

शृणु रम्भे प्रवक्ष्यामि वेदसारं परं वचः। कुलधर्मोचितं सत्यं ब्राह्मणानां तपस्विनाम्॥८४॥
धर्मोऽयं युक्तकाले च स्वयोषिति रतो द्विजः।
सर्वत्र पूजितः शश्वदिह लोके परत्र च॥८५॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यो रतः परयोषिति।
याति तस्यापूजितस्य रुष्टा लक्ष्मीर्गृहादपि॥८६॥

इहातिनिन्द्यः सर्वत्र नाधिकारी स्वकर्मसु। परत्रैवान्धकूपे च यावद्वर्षशतं वसेत्॥८७॥

देवल ऋषि कहते हैं–हे रम्भा! मैं तुमसे ब्राह्मण तथा तपस्वी लोगों के कुलधर्मानुरूप वेद का सारभूत सत्यवचन कहता हूं। श्रवण करो। जो ब्राह्मण धर्माचरण के उपयुक्त कालपर्यन्त अपनी रमणी में (पत्नी में) रत रहता है, वह इहलोक तथा परलोक में नित्य पूजित होता है, तथापि यदि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य परनारी में रत होते हैं, तब वे भले ही जगत्पूज्य क्यों न हों, लक्ष्मी रुष्ट होकर उनके गृह से चली जाती हैं। इहलोक में वह व्यक्ति सर्वत्र अतिनिन्दित होकर सभी कर्म का अनधिकारी होता है। परकाल में वह १०० वर्ष पर्यन्त अन्धकूप नरक में क्लेश भोग करता है।।८४-८७।।

ग्राह्या चोपस्थिता स्त्री च गृहिणा न तपस्विना।
त्यागे दोषः कामिनीनां शापभाक्पाप भाग्गृही॥८८॥
ब्रह्मा जगद्विधाताऽपि न विरक्तः कलत्रवान्।
त्यागे दोषस्तत्कदाचिन्नास्माकं त्यक्तयोषिताम्॥८९॥
स्वभार्यां च परित्यज्य यो गृह्णाति परस्त्रियम्।
यशोधनायुषां हानिर्भवेज्जीवन्मृतस्य च॥९०॥

अतः नियम है कि गृही लोग ही नारी का भोग करें। वे ही स्वयं समागत नारी का त्याग करने पर पापभागी एवं उस नारी प्रदत्त शाप के भागी होते हैं, तथापि यह नियम तपस्वी के लिये नहीं है। जगत्विधाता ब्रह्मा तक पत्नी परिग्रह करके स्त्रीयुक्त हैं। अतः उनको नारी संसर्ग से वैराग्य नहीं है, तथापि जब मैंने स्त्री संग का त्याग कर ही दिया है, तब मुझे नारी की स्पृहा (कामना) क्यों होगी? जो व्यक्ति अपनी पत्नी का त्याग करके परनारी को सादर ग्रहण करता है, उसके यश, धन, आयु की हानि होती है। उसका जीवन मृत्युतुल्य ही है।।८८-९०।।

भुवि नास्ति यशो यस्य जीवनं तस्य निष्फलम्।
सुसंपदा किं राज्येन सुखेन च तपस्विनः[1]॥९१॥

निष्कामेन[2] च वृद्धेन मया किं ते प्रयोजनम्। सुवेशं सुन्दरं मातर्युवानं पश्य सुन्दरि॥९२॥

जगत् में जो यशोहीन हैं, उनका जीवन व्यर्थ है। उसे सम्पदा, राज्य, सुख तथा धन का क्या प्रयोजन? हे सुन्दरी! मैं वृद्धतपस्वी हूं। मुझसे तुम्हारा कोई भी प्रयोजन साधित नहीं होगा। हे माता! अन्य सुवेशधारी सुन्दर युवा के पास तुम जाओ।।९१-९२।।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा चुकोपाप्सरसां वरा। उवाच भूयो वाक्यं तं त्रस्ता प्रस्फुरिताधरा॥९३॥

मुनि का यह वचन सुनकर क्रोध से रम्भा के ओठ फड़कने लगे। उसने त्रस्त होकर देवल से कहा–।।९३।।

१. क. धनेन च।
२. क. तपस्विना।

रम्भोवाच

चारुचम्पकवर्णाभः कन्दर्पसमसुन्दरः। तपः प्रभावात्सश्रीकः सुवेषः सम्मतः स्त्रियाः॥९४॥

त्वया विनाऽन्यं कं यामि को वाऽस्ति त्वत्परः पुमान्।

पुंश्चली त्वां परित्यज्य का जीवति स्मरातुरा॥९५॥

शीघ्रं मां भज विप्रेन्द्र दग्धां कामाग्निना सदा।

कामो नश्यति मां त्वत्तो यथा रम्भां मतङ्गजः॥९६॥

रम्भा कहती है—हे मुनि! तुम्हारा वर्ण उत्तम चम्पा के पुष्प के समान है। तपः प्रभाव से तुम्हारी शोभा अतीव उत्तम परिलक्षित हो रही है। तुमको त्यागकर मैं किसी अन्य पुरुष के पास कैसे जा सकती हूं? तुमसे श्रेष्ठ किसी पुरुष को मैं नहीं देखती। कोई भी कामपीड़ित नारी तुमको छोड़कर जीवन धारण नहीं कर सकती। हे विप्रेन्द्र! मैं कामाग्नि से अत्यन्त दग्ध हो रही हूं। तुम शीघ्र मेरे साथ उसी प्रकार संभोग करे। जैसे मदमत्त हाथी केले के तने को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार तुमको देखने से जो कामाग्नि मुझमें उद्दीप्त हो गई उससे मेरा नाश हो रहा है।।९४-९६।।

न चेच्छापं प्रदायामि वद वेदविदां वर। मां वा दारुणशापं वा सत्वरं ग्रहणं कुरु॥९७॥

दग्धाः प्राणा मनो दग्धं स्वात्मा वा इति संततम्।

नवशृङ्गारपीयूषपाननिर्वाणतां व्रजेत्॥९८॥

स्वान्तर्दुःखेन दुःखार्तो यो यं शपति निश्चितम्।

तं शापं खण्डितुं शक्तो न विधाता जगत्पतिः॥९९॥

हे वेदज्ञप्रवर! यदि तुम मेरी बात नहीं मानते तब मैं तुमको दारुण शाप प्रदान करूंगी। मेरे प्राण, मन, आत्मा निरन्तर दग्ध हो रहे हैं। ये सब तुम्हारे द्वारा प्रदत्त नव शृङ्गार रूपी कामसुधा का (संभोग का) पान करके ही शान्त हो सकेंगे। अन्य उपाय से इस ज्वाला का शान्त हो सकना संभव नहीं है। हे मुनिवर! जब नारी अत्यन्त दुःखार्त्ता होकर किसी को क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखती अभिशाप देती है, वह दारुण शाप ऐसा होता है, जिसका खण्डन जगत्प्रभु विधाता भी नहीं कर सकते।।९७-९९।।

द्विजो रम्भावचः श्रुत्वा बभूव ध्यानतत्परः।

नोवाच किञ्चिन्मौनस्थः सा तं कोपाच्छशाप ह॥१००॥

हे वक्रचित्त ते विप्र सर्वावयववक्रिमम्। शरीरमञ्जनाकारं रूपयौवनवर्जितम्॥१०१॥

अतीव विकृताकारं त्रिषु लोकेषु गर्हितम्। पुरातनं तपो नष्टं सद्यो भवति निश्चितम्॥१०२॥

द्विजप्रवर देवल रम्भा का यह कथन सुनकर ध्यान में लीन हो गये। वे कुछ भी न बोल कर मौन ही थे। यह देखकर रम्भा ने मुनिदेवल को शाप दे दिया। "हे वक्र चित्तवाले! तुम्हारे सभी अवयव वक्र हो जायें। देह अंगों सहित वक्र हो जाये। तुम्हारा देहवर्ण काजल के जैसा काला हो तथा तुम रूप-

यौवन रहित हो जाओ। तुम अत्यन्त विकृत आकृति वाले तथा त्रैलोक्य में कुरूपता के कारण निन्दित होगे। तुम्हारा पूर्वकृत तप तत्काल नष्ट हो जाये। यह निश्चित है।।१००-१०२।।

इत्युक्त्वा पुंश्चली कामात्कामलोकं जगाम ह।
अचिरेण मुनीन्द्रश्च न ददर्श हरेः पदम्।।१०३।।

पादारविन्दविरहात्समुद्विग्नो बभूव ह। त्वाङ्गं च दृष्ट्वा विकृतं पूर्वपुण्यविवर्जितम्।।१०४।।

यह कहकर वह कुलटा काम के वशीभूत होकर कामदेव के लोक चली गई। अब मुनि भी भगवत् चरण कमलों का दर्शन नहीं पा रहे थे। वे पूर्वपुण्य रहित हो गये थे। अतः उनको प्रभु के चरणकमलों का पुनः दर्शन नहीं हो सका। इससे वे अत्यन्त उद्विग्न हो उठे! उन्होंने अपने अंगों को देखा जो विकृत हो गया था।।१०३-१०४।।

कृत्वाऽग्निकुण्डं शोकेन प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः।
मया दृष्टो वरो दत्तो दिव्यज्ञानेन बोधितः।।१०५।।

स्वयं को विकृत तथा पूर्व पुण्यहीन हो जाते देखकर शोकातिरेक से अग्निकुण्ड में प्राण देने तक को उद्यत हो गये। तब मैंने मुनि को वरदान तथा दिव्यज्ञान प्रदान करके प्रबोधित किया।।१०५।।

आश्वासश्च कृतः प्रीत्या ततः शान्तो बभूव ह।
अङ्गान्यष्टौ च वक्राणि दृष्ट्वा तूर्णं महामुनेः।।१०६।।

अष्टावक्रेति तन्नाम कौतुकेन मया कृतम्। मद्वाक्यान्मलयद्रोणीमयमागम्य सत्वरः।।१०७।।
षष्टिवर्षसहस्राणि चकार परमं तपः। तपोऽवसाने मद्भक्तो मया मुक्तः कृतः प्रिये।।१०८।।
सर्वस्मिन्प्रलये नष्टे न मद्भक्तः प्रणश्यति। सुचिरेणैव तपसा ज्वलता जठराग्निना।।१०९।।
त्यक्ताहारस्यान्तरं च भस्मपूर्णं ततो मुने। आगतं मलयद्रोणीं मुनिहेतोर्मया प्रिये।।११०।।

जब मैंने प्रेम के साथ मुनि देवल को आश्वस्त किया, तब वे शान्त हो गये। हे महामुनि! मैंने देवल के आठ अंगों को वक्र हो गया देखकर कौतुक के साथ उनका 'अष्टावक्र' नाम रख दिया। वे मेरी आज्ञा से मलयाचल पर्वत की घाटी में आये तथा वहां उन्होंने ६०००० वर्ष पर्यन्त महान् तपःश्चरण किया। हे प्रिये! तभी इस तप के अन्त में (तुम्हारे समक्ष) मैंने अपने भक्त अष्टावक्र को मुक्त कर दिया था। प्रलय में भले ही सब कुछ का नाश हो जाता है, तथापि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता। अष्टावक्र ने सुदीर्घकाल तथा निराहार रहते मेरा तप किया था। उनकी जठराग्नि ने उनके शरीर के अंदर का सब कुछ दग्ध करके भस्मीभूत कर दिया। हे प्रिये! मैं इन मुनि को मुक्त करने हेतु ही मलयाचल की घाटी में आया था।।१०६-११०।।

अष्टावक्राच्च मद्भक्तो न भूतो न भविष्यति।
एवं भूतस्तपोनिष्ठः प्रपौत्रो ब्रह्मणो मुनिः।।१११।।

निष्कलः पुंश्चलीशापाद् ब्रह्माऽपूज्यो यथा पुरा।
इत्येवं कथितं सर्वं रहस्यं च महात्मनः।
सुखदं पुण्यदं गूढं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥११२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाप्रश्नेऽष्टावक्रं प्रति रम्भाशापो नाम त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥

—❀❀❀—

अष्टावक्र के समान मेरा भक्त न कोई था न होगा। ये ब्रह्मपौत्र इस प्रकार के तपोनिष्ठ मुनि थे, तथापि ये कुलटा के शाप से वैसी हीन स्थिति को प्राप्त हो गये, जिन स्थिति में पूर्वकाल ब्रह्मा पड़कर अपूज्य हो गये। मैंने तुमसे यह सब रहस्य बतला दिया। यह सुखप्रद तथा पुण्यप्रद एवं गूढ़ हैं। अब क्या सुनने की इच्छा है?॥१११-११२॥

॥३०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मा के पास मोहिनी का जाना, मोहिनी कृत कामस्तोत्र

राधिकोवाच

किमाश्चर्यं श्रुतं नाथ चरितं सुमनोहरम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि ब्रह्मणः शापकारणम्॥१॥
यो विधाता त्रिजगतां तपसां फलदायकः। स कथं कुलटाशापादपूज्यश्च बभूव ह॥२॥

श्रीराधा कहती हैं—हे नाथ! मैंने महर्षि अष्टावक्र का अद्भुत चरित सुना। अब ब्रह्मा को शाप क्यों मिला, यह सुनने की इच्छा है। जो जगत्सृष्टिकर्त्ता तथा तप का फल देने वाले हैं, वे क्यों एक सामान्य वेश्या के शाप से जगत् में अपूज्य क्यों हो गये?॥१-२॥

श्रीकृष्ण उवाच

मन्वन्तरे रैवतस्य सुचन्द्रो नृपपुङ्गवः। तपस्वी वैष्णवः श्रेष्ठो ज्ञानी परमधार्मिकः॥३॥
स च पूर्वं तपः कुर्वन्नाजगाम मम प्रिये। इमां च मलयद्रोणीं भारतेषु मनोहराम्॥४॥
तपश्चकार राजेन्द्रो वर्षाणां च सहस्रकम्। जीर्णं तस्य शरीरं च कठोरेण तपस्विनः॥५॥
वल्मीकाच्छादितं देहं दृष्ट्वा धाता कृपानिधिः।
आजगाम वरं दातुं तपःस्थानं सुनिर्जनम्॥६॥

कमण्डलुजलेनैव मम देहोद्भवेन च। सिषेच तं च मन्त्रेण मया दत्तेन योगवित्॥७॥
कमण्डलुजलस्पर्शादुत्थाय नृपतिः स्वयम्।
ननाम भक्त्या जगतां स्त्रष्टारं च पुरःस्थितम्॥८॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे प्रिये! दैवत मन्वन्तर में सुचन्द्र नामक तपस्वी, श्रेष्ठ वैष्णव ज्ञानी, परमधर्मात्मा राजर्षि थे। इन महात्मा राजर्षि ने पूर्वकाल में मेरी आराधना के लिये भारत के इस मलयपर्वत के शिखर पर आकर १००० वर्ष तक कठोर तप किया। मुनियों के कठोर नियमों का पालन करने से इनका शरीर जीर्ण हो गया। उस पर दीमक की बांबी लग गई। यह देखकर कृपानिधि विधाता उनको वर प्रदानार्थ उस निर्जन तपःस्थली में आये। विधाता ने अपने कमण्डल में रखे गये मेरे अंगों से उत्पन्न जल द्वारा तथा मेरे प्रदत्तमन्त्र द्वारा उन राजर्षि का जलाभिषेक किया। वे राजा इस कमण्डल जल का स्पर्श होते ही उठे। उन्होंने भक्तिभाव के साथ जगत्स्त्रष्टा ब्रह्मा को प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़े हो गये॥३-८॥

स तं नमन्तं राजानमुवाच कमलोद्भवः। वरं वृण्विति राजेन्द्र यत्ते मनसि वाञ्छितम्॥९॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वरं वव्रे परात्परम्। ममैव चरणे भक्तिं मदीयं दास्यमेव च॥१०॥
कृपया च वरं ब्रह्मा दत्तवानभिवाञ्छितम्। स च तत्पुरतस्तथौ कामदेवसमप्रभः॥११॥

तब कमलयोनि ब्रह्मा ने सुचन्द्र राजा से कहा–"हे राजन्! तुम इच्छित वर मांगो।" ब्रह्मा का वाक्य सुनकर राजा ने उनसे मेरे चरणों की भक्ति तथा मेरे दासत्वरूप अपना वांछित वर मांगा। विधाता ने भी कृपा परवश होकर यही वांछित वर राजा सुचन्द्र को प्रदान किया। अब कामदेव के समान प्रभावान् राजा सुचन्द्र वांछित वर प्राप्त कर विधाता के समक्ष ही स्थित हो गये॥९-११॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा ददर्श रथमुत्तमम्। आकाशान्निपतन्तं वै शतसूर्यसमप्रभम्॥१२॥
तेजसाऽऽच्छादितं सर्वं सुप्रदीप्तं दिशो दश। रत्नेन्द्रसारनिर्माणं शतचक्रसमन्वितम्॥१३॥
अमूल्यरत्नरचितं विचित्रकलशोज्ज्वलम्।
मुक्तामाणिक्यहीराणां मालाजालैश्च राजितम्॥१४॥
सद्रत्नदर्पणैर्दीप्तैरतीव सुमनोहरम्। भूषितं दिव्यवस्त्रैश्च श्वेतचामरकोटिभिः॥१५॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम्।
मनोयायि महाश्चर्यं नानाचित्रेण चित्रितम्॥१६॥

तभी राजा ने आकाश से उतरते एक रथ को देखा जो सैकड़ों सूर्य के समान प्रभाशाली था। उसने अपने तेज से सब कुछ को आच्छादित कर लिया। यह रथ आकाश से धरती पर उतर रहा था। यह रथ रत्नों के सारभाग से निर्मित, १०० पहियों वाला तथा उज्वल तेज से आवृत था। उसकी तेजराशि से दसों दिशायें आलोकित हो रही थीं। यह रथ अमूल्यरत्नों से निर्मित कलशों की आभा से द्योतित था। यह मुक्ता, माणिक्य, हीरक आदि की मालाओं से सजा था। इसमें दीप्त रत्नों से बने दर्पण

लगे थे, जो अत्यन्त मनोहर थे। दिव्य वस्त्रों तथा करोड़ों श्वेतचामर आदि से यह रथ शोभायमान था। इसके चतुर्दिक् पारिजात पुष्पों का वन्दनवार लगा था। यह मन के वेग से चलने वाला रथ नाना चित्रों से चित्रित तथा महाश्चर्यमय था।।१२-१६।।

वेष्टितं पार्षदैर्दिव्यै रत्नभूषणभूषितैः। चतुर्भुजैः श्यामलैश्च ज्वलद्भिः स्थिरयौवनैः।।१७।।
पीतवस्त्रपरीधानैश्चन्दनागुरुचर्चितैः। दृष्ट्वा रथस्थान्देवांश्च ननाम नृपतिर्मुदा।।१८।।

इस दिव्यरत्न के आभूषणों से भूषित पार्षदों ने घेर रक्खा था। वे सभी चतुर्भुज, श्यामवर्ण तथा अपने स्थिर यौवन के कारण तेज से चमक रहे थे। वे सभी पीताम्बरधारी थे तथा चन्दन-अगुरु के लेप से उनके अंग चर्चित थे। मुदित राजा ने रथारूढ़ देवगण को देखकर उनको प्रणाम निवेदन किया।।१७-१८।।

सहसा तस्य शिरसि पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे चाऽऽनकाश्च मनोहराः।।१९।।
ऋषयो मुनयः सिद्धाः प्रकुर्वन्तो मुदाऽऽशिषम्।
प्रशशंसुः सुराः सर्वे राजानं हर्षनिर्भराः।।२०।।
राजा च पार्षदान्ध्यात्वा तद्रूपश्च बभूव ह।
पार्षदास्तं रथे कृत्वा नीत्वा जग्मुर्ममालयम्।।२१।।
मदीयः पार्षदो भूत्वा स च तस्थौ ममान्तिके।
ततः स्वमन्दिरं यान्तं ददर्श मोहिनी विधिम्।।२२।।
पुष्पोद्याने च रम्ये च पुष्पचन्दनवायुना। सद्यो मुमोह तं दृष्ट्वा प्रदग्धा मदनानलैः।।२३।।
विलोक्य वक्रनयना जुगोप सस्मितं मुखम्।
सिन्दूरबिन्दुं दधती कस्तूरीबिन्दुना सह।।२४।।
चारुचम्पकवर्णाभा सततं स्थिरयौवना। बृहन्नितम्बयुगला पीनश्रोणिपयोधरा।।२५।।
शरत्पार्वणशुभ्रांशुप्रभामुष्टकरानना। सूक्ष्मवस्त्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिता।।२६।।
त्रैलोक्यं मोहितुं शक्ता कटाक्षैरेव लीलया।
अतीव कामिनी शश्वद्गजेन्द्रमन्दगामिनी।।२७।।

उसी समय राजा के शिर पर पुष्पवर्षा होने लगी। स्वर्ग में दुन्दुभि तथा मनोहर आनक बजने लगे। ऋषि, मुनि, सिद्धगण ने उस समय राजा को आशीर्वाद दिया तथा देवगण हर्षपूर्ण होकर राजा की प्रशंसा करने लगे। राजा ने उन पार्षदों के रूप का ध्यान किया, अतः वे भी तद्रूप हो गये। पार्षदगण राजा को लेकर मेरे लोक आये। वह राजा मेरा पार्षद होकर मेरे निकट निवास करने लगा। तभी वहां मोहिनी ने अपने धाम वापस जाते ब्रह्मा को देखा। वहां का पुष्पोद्यान अत्यन्त रमणीय था । वहां पुष्प तथा चन्दन की सुरभि से युक्त वायु प्रवाहित थी। उस ऐसे रम्य स्थल पर समागत् ब्रह्मा को देखकर मोहिनी कामाग्नि से दग्ध हो उठी। वह ब्रह्मा की ओर कटाक्ष से देखने

लगी। वह उस समय मुस्कराती जा रहा थी। तदनन्तर उसने सलज्जभाव का प्रदर्शन करते हुये अपने आंचल से अपना मुख ढांक लिया! उस समय मोहिनी के ललाट पर लगी कस्तूरी की बिन्दी के साथ सिन्दूर की बिन्दी से उसका रूप और भी मनोहर लग रहा था। मोहिनी का देहवर्ण मनोहर चम्पा के पुष्प के समान था। उसका यौवन चिरस्थायी था। उसकी जांघें, नितम्ब तथा स्तन स्थूल था। उसका मुखमण्डल मानो शारदीय पूर्णिमा के चन्द्र की भी शोभा का हरण करके अपनी शोभा का विस्तार कर रहा था। उसने सूक्ष्म दिव्य वस्त्र धारण किया था तथा उसका शरीर रत्नों के अलंकार से भूषित था। प्रतीत हो रहा था मानो यह मोहिनी अपनी बांकी चितवन से त्रिभुवन को लीलामात्र से मोहित कर लेगी! वह अत्यन्त कामभावोन्मत्ता तथा मत्त गजराज के समान धीमी चाल से चल रही थी।।१९-२७।।

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी मूर्च्छां सम्प्राप वर्त्मनि।
सन्निरीक्ष्य च तां ब्रह्मा जगाम श्रीहरिं स्मरन्॥२८॥
स विकारं न हि प्राप ह्यात्मारामो जितेन्द्रियः।
ब्रह्मलोकं च सम्प्राप ब्रह्मा च जगतां पतिः॥२९॥
सकामा सा च कुलटा बभूव हतचेतना।
दिवानिशं चिन्तयन्ती स्वप्ने ज्ञाने चतुर्मुखम्॥३०॥
सर्वं जारं विसस्मार तत्याजाहारमीश्वरी। उत्तिष्ठन्ती निवसती शयनं कुर्वती क्षणम्॥३१॥
तप्तपात्रे यथा सस्यं भ्रमत्येव तथा पथि। एतस्मिन्नन्तरे रम्भा विदग्धाऽप्सरसां वरा॥३२॥

ऐसी सुन्दरी मोहिनी उस उद्यान में विधाता को देखकर इतनी रोमांचित हो गई कि उसने अपनी सुध-बुध खो दिया। परन्तु आत्माराम, जितेन्द्रिय, पद्मयोनि पितामह ब्रह्मा मोहिनी का यह भाव देखकर भी विकारग्रस्त नहीं हो सके। उन्होंने उस समय श्रीहरि का चिन्तन करते हुये वहां से प्रस्थान कर दिया। जब ब्रह्मा वहां से ब्रह्मलोक चले गये तब वह कामोन्मत्त कुलटा चेतना खो बैठी। वह स्वप्न-जागरणादि प्रत्येक स्थिति में रात-दिन चतुर्मुख ब्रह्मा का ही चिन्तन करती रहती थी। वह अपने सभी उपपतिगण को भूल गयी थी। यहां तक कि मोहिनी ने इन्द्र तक को विस्मृत कर दिया था। वह उठते, बैठते, शय्या पर रहते सभी स्थिति में ब्रह्मा को नहीं भूल पा रही थी। जैसे तपाये पात्र में छोड़ा धान भूंजे जाते समय उछलता है तथा व्यग्र रहता है, तदनुरूप वह इधर-उधर भटकने लगी। तभी वहां अत्यन्त बुद्धिमान श्रेष्ठ अप्सरा रंभा आ गई!।।२८-३२।।

गच्छन्ती कामलोकं सा सकामा तेन वर्त्मना।
दृष्ट्वा सहचरीं तत्र शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाम्॥३३॥
अभिप्रायेण बुबुधे पप्रच्छ सस्मिता तदा॥३४॥

रम्भा उस समय काम से अभिभूत होकर कामदेव के लोक जा रही थी। उसने अपनी सखी

मेनका को त्रस्तास्थिति में मार्ग में देखा कि उसके ओष्ठ, कण्ठ, तालु शुष्क हो रहे हैं, तब रम्भा ने किञ्चित् मुस्काते हुये मेनका से इसका कारण पूछा।।३३-३४।।

रम्भोवाच

कथमेवंविधा त्वं हि त्रैलोक्यचित्तमोहिनि। वद शीघ्रं महाभागे रम्भाऽहं चेतनां कुरु।
कमुद्दिश्य सकामा त्वं गच्छ त्वं कान्तमीप्सितम्।।३५।।
कुल्टा सर्वसौभाग्या[1] न वयं कुलपालिकाः।
सर्वे व्यग्रा इन्द्रियाणां सुखाय भुवनत्रये।।३६।।

रम्भा कहती है–हे सखी! तुम त्रैलोक्य का चित्त मोहित करने वाली होकर इस प्रकार विचरण क्यों कर रही हो? हे महाभागे! इसका कारण शीघ्र कहो। चैतन्य हो जाओ! तुम किस पुरुष के लिये सकामा होकर विचरण कर रही हो? मैं तुम्हारी प्रिय सखी रंभा हूं। तुम अपने वांछित प्रियतम के यहां गमन करो। कुलटा नारी तो चिरकाल सौभाग्यवती रहती हैं। हमें कुल रक्षा, कुलमर्यादा का बन्धन नहीं है। कुलटा सर्वभोग्या कही गई हैं। तीनों लोक में सभी लोग इन्द्रियजनित सुख हेतु व्यग्र रहते हैं!।।३५-३६।।

यान्ति प्राणा यतः काले[2] का लज्जा तत्र जीविनाम्।
न चाऽऽत्मनः परः कश्चित्प्रियोऽस्ति भुवनत्रये।।३७।।
कान्तेऽपत्ये स्वबन्धौ च स्नेहो यः स्वात्महेतुकः।
सम्बन्धः स्वात्मनो यावत्तावत्स्नेहोऽस्ति तत्र वै।।३८।।
येषु यन्मानसं शश्वत्तेषां प्राणास्त एव हि।
गच्छन्तीं कामलोकं च सकामां पश्य मां प्रिये।।३९।।
सह सख्या समालोच्य मनसा गच्छ तं प्रियम्।
निबध्य नीवीं केशांश्च कृत्वा वेषमभीप्सितम्।।४०।।
मुनिमोहनबीजं च तं मोहं कुरु मोहिनि। कथयस्व महाभागे वचनं हृदयङ्गमम्।।४१।।
रक्षाऽऽत्मानं प्रभावं च स्त्रीजातीनां जगत्त्रये।
स्वाभिप्रायश्च सुरतौ न प्रकाश्यः कदाचन।।४२।।

प्राण संकट उपस्थित होने पर प्राणी के मन में लज्जा को क्या स्थान? त्रैलोक्य में अपनी आत्मा से प्रियतर कुछ भी नहीं होता। सभी का अपने ही कारण पति-पुत्र-बन्धुगण से स्नेह होता है। जब तक इनसे अपनी आत्मा का सम्बन्ध रहता है, तभी तक व्यक्ति का इनके प्रति लगाव तथा प्रेम

---

१. क. ०वैसंयोग्या।
२. क. कान्ते।

होता है। जिसका चित्त जहां स्थित रहता है, उसके प्राण भी वहीं स्थित रहते हैं। हे प्रिय सखी! मैं भी कामवेग के कारण काम लोक जा रही हूं। मुझ सखी के साथ विवेचना तथा विचार करके अपने मन को उस प्रियतम में लगाकर उसके पास जाओ। अपनी नीव तथा केशपाश बांधकर तथा मुनियों को भी मोहित करने वाला स्वरूप बनाकर जाओ तथा प्रियतम को मोहित करो। हे महाभागे! उसके पास जाकर हृदयस्पर्शी बातें करो। स्वयं की प्राण रक्षा करो। साथ ही ऐसा मत करो कि त्रैलोक्य में स्त्री का प्रभाव न बना रहे। सुरति क्रीड़ा में तुम अपना मनोभाव, अभिप्राय कभी प्रकट न करो।।३७-४२।।

स्वान्तं कान्तं स्वानुरक्तमृज्वीं सहचरीं विना।
तस्माद्यत्नेन हृद्वाक्यं प्रकाश्यं च प्रिये प्रिये॥४३॥
अन्यथा चोपहासाय मरणायैव कल्पते। तस्याश्च वचनं श्रुत्वा सस्मित सा सुलज्जिता।
हृद्यं च कथयामास यद्धेतोस्ता दृशी गतिः॥४४॥

"यह हार्दिक भाव तब तक प्रकट न करे, जब तक अपना प्रिय कान्त अथवा छल रहित सखी न मिले। (इन्हीं के भाव प्रकट करे। अन्य से नहीं)। हे प्रिये! जब प्रिय कान्त मिल जाये, तब उससे अपना हृदयस्थ भाव अवश्य कहे। अन्यथा उस स्त्री का इतना उपहास होता है कि वही उसके मरण का कारण बन जाता है।" रम्भा का कथन सुनकर लज्जिता मोहिनी मृदु मुस्कान के साथ अपना हृदयस्थ भाव इस प्रिय सखी से बतलाने लगी जिसके कारण उसकी यह दशा हो गई थी!।।४३-४४।।

मोहिन्युवाच

यावद्दृष्टो मया रम्भे निर्जने चतुराननः॥४५॥
तावन्मनो मेऽतिदग्धं शश्वन्मनसिजानलैः। न दत्तमात्मने भक्ष्यमन्तरे न हि रोचते॥४६॥
जानामि नाहमुदयं यामिनीशदिनेशयोः। अधुना न हि भेदो मे सततं स्वप्नज्ञानयोः॥४७॥
मम प्राणाः प्रतीक्षन्ते तस्याऽऽलिङ्गनमेव च।
क्षणं विज्ञाय न चिरं यास्यन्ति नान्यथा प्रिये॥४८॥
कामज्वालाकलापैश्च स्वर्णाकारं कलेवरम्। अनाहारेण चेदानीं बभूव दग्धशैलवत्॥४९॥
गन्तुं स्थातुं न शक्ताऽहं शयनं कर्तुमुद्यता।
धिगस्तु पुंश्चलीजातिं मामेव च विशेषतः॥५०॥

मोहिनी कहती है-हे रम्भे! जब से मैंने निर्जन उद्यान में चतुरानन ब्रह्मा को देखा है, तब से मुझे भोजनादि की कोई इच्छा ही नहीं हो रही है। तभी से कामाग्नि द्वारा मैं दग्ध हो रही हूं। कब चन्द्रोदय हो गया, कब सूर्योदय हो रहा है, इसका कोई भान मुझे नहीं हो पा रहा है। इस समय मुझे स्वप्नावस्था अथवा सज्ञानावस्था के बीच कोई भेद प्रतीत नहीं हो रहा है। मेरे प्राण सदैव उसके वांछित आलिङ्गन की ही इच्छा कर रहे हैं। क्षणकाल में यदि यह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी तब मेरे प्राण इन प्रणेश के निमित्त मेरे देह से बहिर्गत् हो जायेंगे। हे प्रिये! यह मेरी स्वर्णवत् देह काम की उत्तप्त ज्वालाओं के

कारण तथा आहार रहित हो जाने के कारण जले हुये पर्वत जैसी हो रही है। मेरा चलना-फिरना सब बन्द है। शक्ति ही नहीं रही मैं तो चलने-फिरने से अशक्त होकर शय्या पर शयन करती रहती हूं। हम कुलटाओं को धिक्कार है। मुझे तो विशेषतया धिक्कार है।।४५-५०।।

कमुपायं करिष्यामि वद रम्भेऽत्र साम्प्रतम्।
लज्जां वाऽपि शरीरं वा विसृजामि च किं द्वयो।।५१।।

हे रम्भा! यह कहो कि मैं अब क्या उपाय करूं? मैं अब लज्जा को त्यागू किंवा अपने शरीर का त्याग करूं, अथवा दोनों का विसर्जन करूं?।।५१।।

मोहिनीवचनं श्रुत्वा प्रहस्याप्सरसां वरा। तामुवाच हितं नीतमुपायं शुभकारणम्।।५२।।

मोहिनी का वचन सुनकर अप्सराओं में श्रेष्ठ रम्भा हंसती हुई हितप्रद, नीतिमय शुभ उपाय कहने लगीं-।।५२।।

रम्भोवाच

एवमेतदहो भद्रे भद्रस्य कारणं तव। सर्वं त्वपनयिष्यामि शृणूपायं भयं त्यज।।५३।।

कृत्वा वेषमपूर्वं च पूर्वमाराध्य मन्मथम्।
तेन सार्धं स्वयं गत्वा त्वं मोहं कुरु भामिनि।।५४।।
जितेन्द्रियाणां प्रवरं साक्षान्नारायणात्मकम्।
विना कामसहायेन का शक्ता जेतुमीश्वरम्।।५५।।
भज कामं तपः कृत्वा पुष्करे व्रज मोहिनि।
सद्यः साक्षात्स भविता दयालुर्योषितां प्रभुः।।५६।।

रम्भा कहती है-हे भद्रे! तुमने जो कुछ कहा है, वह सत्य है, तथापि मैं तुम्हारे सभी अमंगल के कारण को दूर करूंगी। तुम भय त्यागो। अब उचित उपाय श्रवण करो। हे मोहिनी! अब तुम अपूर्ववेशधारी कामदेव की आराधना करो। उनके साथ स्वयं जाकर अपने प्रियकान्त में (कामदेव की सहायता से) मोह का उत्पादन करो। कामदेव की सहायता के बिना जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ साक्षात् नारायणरूप ब्रह्मा को कौन नारी पराजित कर सकने में सक्षम हो सकेगी? हे सखी मोहिनी! तुम पहले पुष्कर तीर्थ जाकर वहां तपस्या द्वारा कामदेव की आराधना करो। तभी रमणियों के प्रति दयावान् कामदेव प्रत्यक्षरूप से तुम्हारे समक्ष प्रकट होंगे।।५३-५६।।

इत्युक्त्वा तामप्सरसां प्रवरा काममन्तिकम्।
जगामेन्द्रियशान्त्यर्थं सा जगाम च पुष्करम्।।५७।।
पुष्करे च तपः कृत्वा कामं सम्प्राप्य मोहिनी।
जगाम तेन सार्धं च ब्रह्मलोकमनामयम्।।५८।।

मोहिनी से यह कहकर अप्सराप्रवर रम्भा वहां से इन्द्रियसुख पाने हेतु कामदेव के यहां चली गई। मोहिनी कामदेव की आराधना हेतु तत्काल पुष्कर तीर्थ चली गईं। मोहिनी ने पुष्कर में दीर्घकाल तपःश्चरण करके कामदेव का दर्शन प्राप्त किया तथा वह कामदेव के साथ ब्रह्मलोक चली गई।।५७-५८।।

ददर्श निर्जनस्थं च मोहिनी कमलोद्भवम्। तमेव मोहनं कर्तुं समारेभे पुरःस्थिता।।५९।।
क्षणं ननर्त सुचिरं सुगानेन क्षणं जगौ। सङ्गीतं मम सम्बन्धि भक्तानां चित्तमोहनम्।।६०।।

विधाता जगतां तस्याः श्रुत्वा सङ्गीतमीप्सितम्।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो मुमोह साश्रुलोचनः।।६१।।

दृष्ट्वा मुग्धं चतुर्वक्त्रं मोहिनी हृष्टमानसा। कलाप्रमाणं भावं च चकार तत्र लीलया।।६२।।
स्वाङ्गं संदर्शयामास स्मेरभ्रूभङ्गपूर्वकम्। का लज्जा तस्य संसारे यः कामहतचेतनः।।६३।।

मोहिनी ने जब ब्रह्मलोक में ब्रह्मा को एकान्त में देखा, तब उसने कमलजन्मा ब्रह्मा को मोहित करने का कार्य उनके समक्ष आकर प्रारम्भ कर दिया। कभी उत्तम ताल पर मनोहर नृत्य करती, कभी प्रियजन मनमोहनकारी मनोहर संगीत गायन करती। तब जगद्विधाता उसका मनोमुग्धकारी संगीत सुनकर मोहित हो गये। उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। नेत्रों से अश्रु विन्दु गिरने लगे। जब मोहिनी ने देखा कि चतुरानन मुग्ध हो गये तब वह आनन्दित होकर लीलाक्रमेण कामशास्त्रोक्त कलानुरूप हाव-भाव प्रदर्शित करने लगी। उसने मुस्कराते हुये अपने अंगों का भी प्रदर्शन ब्रह्मा के समक्ष किया। जिसकी मति कामवासना से मारी गई है, उसे लज्जा कहां?।।५९-६३।।

विज्ञाय ब्रह्मा तद्भावं नतवक्त्रो बभूव ह। प्रदाय तस्यै दानं च विरतः श्रीहरिं स्मरन्।।६४।।

विज्ञाय ब्रह्मणो भावं शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।
हतोद्यमा सा तुष्टाव कामं कामप्रदं वरम्।।६५।।

ब्रह्मा ने जब मोहिनी के भाव को समझा तब उनका शिर नत हो गया। वे भगवत् स्मरण करने लगे। उन्होंने अपने मन का वहां से प्रत्याहार कर लिया। ब्रह्मा का यह भाव जानते ही मोहिनी का कण्ठ-ओठ-तालु शुष्क हो गया। उसने देखा कि उसका प्रयत्न निष्फल हो गया है, तब वह कामप्रद श्रेष्ठ कामदेव की स्तुति करने लगी।।६४-६५।।

मोहिन्युवाच

सर्वेन्द्रियाणां प्रवरं विष्णोरंशं च मानसम्। तदेव[1] कर्मणां बीजं तदुद्भव नमोऽस्तु ते।।६६।।
स्वयमात्मा हि भगवाञ्ज्ञानरूपो महेश्वरः। नमो ब्रह्मञ्जगत्स्त्रष्टस्तदुद्भव नमोऽस्तु ते।।६७।।
स्थितः[2] सर्वशरीरेषु दृष्टिश्च योगिनामपि। जगत्साध्य दुराराध्य दुर्निवार नमोऽस्तु ते।।६८।।

१. क. तद्देव।
२. क. सृष्टि।

सर्वाजित जगज्जेतर्जीवजीवमनोहर। रतिबीज रतिस्वामिन्रतिप्रिय नमोऽस्तु ते॥६९॥

मोहिनी कहती है—हे कामदेव! आप मन-इन्द्रियों से श्रेष्ठ हैं तथा विष्णु के अंश हैं। मन तो सभी कर्म का बीज है। मन से ही आप उद्भूत हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूं! देहधारियों के देह में भगवान् हरि स्वयं आत्मारूप हैं। शिव ज्ञानरूप हैं। ब्रह्मा मनोरूपेण स्थित हैं। आप मन से उद्भूत हैं। अतः मैं आपको प्रणाम करती हूं! आप सभी देह में स्थित तथा योगीगण की दृष्टि हैं। आप जगत् साध्य, दुराराध्य, दुर्निवार हैं। आपको मेरा प्रणाम! आप सबसे अजेय, जगत् विजयी, सभी प्राणीगण से मनोहर हैं। आप रति के कारण (बीज) स्वरूप, रति के स्वामी, रतिप्रिय हैं। आपको प्रणाम!॥६६-६९॥

शश्वद्योषिदधिष्ठान योषित्प्राणाधिकप्रिय।
योषिद्वाहन योषास्त्र योषिद्बन्धो नमोऽस्तु ते॥७०॥

पतिसाध्यकराशेषरूपाधार गुणाश्रय। सुगन्धिवातसचिव मुधमित्र नमोऽस्तु ते॥७१॥
शश्वद्योनिकृताधार स्त्रीसंदर्शनवर्धन। विदग्धानां विरहिणां प्राणान्तक नमोऽस्तु ते॥७२॥

आप सदा योगीगण के अधिष्ठान स्वरूप हैं। आप तो नारियों के प्राणाधिक प्रिय, स्त्रीवाहन, स्त्रियों के अस्त्ररूप, स्त्रियों के बन्धु हैं। आपको प्रणाम! आप ही से पति नारीगण के साध्य होते हैं, आप समस्त सुरूप के आधार रूप हैं। आप गुणाश्रय, सुगन्धित वायु के सचिव रूप, मधुमास वसन्त के मित्र हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूं! आप निरन्तर योनि के आधार, स्त्रियों के प्रति संदर्शन की वृत्ति पुरुषों में बढ़ाने वाले, चतुर विरहिणी नारी के लिये प्राणान्तक हैं। आपको प्रणाम!॥७०-७२॥

अकृपा येषु तेऽनर्थस्तेषां ज्ञानविनाशनम्।
अनूहरूप भक्तेषु कृपासिन्धो नमोऽस्तु ते॥७३॥
तपस्विनां च तपसां विघ्नबीजावलीलया।
मनः सकामं मुक्तानां कर्तुं शक्त नमोऽस्तु ते॥७४॥

आपकी कृपा जिस पर नहीं होती, उसका जीवन व्यर्थ है। उसका ज्ञान नाशोन्मुख हो जाता है। आप अपने भक्तों में अतीव सूक्ष्मता से स्थित होते हैं। आप तपस्वीगण के तप में लीला पूर्वक विघ्नबीज बो देते हैं। आप मुक्तगण के मन में भी कामभावोत्पत्ति करने में समर्थ हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूं!॥७३-७४॥

तपःसाध्याश्चाऽऽराध्याश्च सदैवं पाञ्चभौतिकाः।
पञ्चेन्द्रियकृताधार पञ्चबाण नमोऽस्तु ते॥७५॥

आप पांच भौतिक देहधारीगण के सदा इसी प्रकार साध्य एवं आराध्य हो जाते हैं। आप पञ्चेन्द्रिय आधार तथा पञ्चबाणधारी को मेरा प्रणाम!॥७५॥

मोहिनीत्येवमुक्त्वा तु मनसा सा विधेः पुरः।
विररामाऽऽनम्रवक्त्रा बभूव ध्यानतत्परा॥७६॥

उक्तं माध्यन्दिने कान्ते स्तोत्रमेतन्मनोहरम्। पुरा दुर्वाससा दत्तं मोहिन्यै गन्धमादने॥७७॥

यह कहकर मोहिनी मौन हो गई। वह ब्रह्मा के समक्ष नतशिर होकर ध्यान करने लगी। हे राधिके! उसने माध्यन्दिन शाखान्तर्गत् उस स्तोत्र का पाठ किया, जो गंधमादन पर पूर्वकाल में दुर्वासा ने मोहिनी को प्रदान किया था॥७६-७७॥

स्तोत्रमेतन्महापुण्यं कामी भक्त्या यदा पठेत्।
अभीष्टं लभते नूनं निष्कलङ्को भवेद्ध्रुवम्॥७८॥

चेष्टां च कुरुते कामः कदाचिदपि तं प्रियम्। भवेदरोगी श्रीयुक्तः कामदेवसमप्रभः।
वनितां लभते साध्वीं पत्नीं त्रैलोक्यमोहिनीम्॥७९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मोहिनीस्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

जो कोई कामी व्यक्ति इस महापुण्यमय स्तव का पाठ करता है, वह अभीष्ट लाभ करता है। उसे निष्कलङ्कत्व की प्राप्ति होती है। यह निश्चित है। कामदेव कदापि उस प्रियपुरुष को पीड़ित नहीं करते। वह व्यक्ति स्वयं काम के समान प्रभावान् होकर रोग रहित होता है। उसे त्रैलोक्यमोहिनी विनीता पतिव्रता-पत्नी का लाभ होता है॥७८-७९॥

॥३१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मा तथा मोहिनी का पारस्परिक संवाद, ब्रह्माकृत श्रीकृष्ण स्तोत्र वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

मोहिनीस्तवनेनैव कामस्तुष्टो बभूव ह। चकार शरसंधानमन्तरिक्षे स्थितः स्वयम्॥१॥
मन्त्रपूतं महास्त्रं च चिक्षेप पितरं मुदा। बभूव चञ्चलो ब्रह्मा कामास्त्रेण च कामुकः॥२॥
क्षणं निरीक्षणं चक्रे मोहिन्यास्ये पुनः पुनः। ज्ञानं प्राप्य तदा धाता विरराम हरिं स्मरन्॥३॥
बुबुधे मनसा सर्वं चरितं मन्मथस्य च। शशाप तं सुतमपि विधाता क्रोधविह्वलः॥४॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे प्राणाधिके! तब कामदेव भी मोहिनी के स्तव से सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने

आन्तरिक्ष में रहते पुष्पबाण संधान किया। कामदेव ने अपने पिता ब्रह्मा पर मन्त्रपूत मोहनास्त्र छोड़ा। इससे ब्रह्मा कामोद्रेक से अत्यन्त चंचल हो कर कुछ क्षण मोहिनी के मुखकमल का पुनः पुनः दर्शन करने लगे। तदनन्तर ज्ञानोदय होने पर उन्होंने श्रीहरि का स्मरण किया, जिससे वे इस भावना से विरत हो गये। ब्रह्मा ने इस समय काम का समस्त चरित जान लिया तथा क्रोध से उसे शाप भी दिया। उनको अपना पुत्र होने पर भी तनिक क्षमा नहीं किया। विधाता उस समय क्रोधविह्वल थे।।१-४।।

हे काम यौवनोन्मत्तं मूढैश्वर्येण गर्वित। भविता दर्पभङ्गस्ते गुरोर्मे हेलनादिति॥५॥

(ब्रह्मा कहते हैं)–हे काम! तुम मूढ़ यौवनोमत्त तथा ऐश्वर्य से गर्वित हो। मुझ गुरु का अपमान करने के कारण तुम्हारा यह गर्व भंग होकर रहेगा।।५।।

हतोद्यमो जगामाऽऽशु मन्मथो मधुना सह। ब्रह्मणः शापभीतश्च शुष्कण्ठोष्ठतालुकः॥६॥

कामदेव अपना प्रयत्न निष्फल हो गया देखकर वसन्त के साथ वहां से चले गये। वे ब्रह्मशाप से भयभीत थे। उनका कण्ठ-ओष्ठ-तालु सूख गया था।।६।।

इत्युवाच जगद्धाता मोहिनीं मदनातुराम्। चतुर्वक्त्रं च पश्यन्तीं सस्मितं वक्रचक्षुषा॥७॥

यह कहकर जगद्धाता विधाता उस कामपीड़िता से कहने लगे जो मन्द मुस्कान के साथ बांकी चितवन से उनको देख रही थी।।७।।

ब्रह्मोवाच

मातर्मोहिनि गच्छ त्वं निष्फलं कर्म चात्र ते।
ज्ञातस्तवाभिप्रायश्च न योग्योऽस्य कर्मणः॥८॥

वेदे जुगुप्सितं कर्म तदेव कर्तुमक्षमः। वेदकर्ता स्वयमहं व्यवस्थाकारको भवे॥९॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे माता मोहिनी! तुम जो चाहती हो, वह कार्य यहां सफल नहीं हो सकता। मैंने तुम्हारा मन्तव्य जान लिया है। मैं इस कार्य के कदापि योग्य नहीं हो सकता। जिस कार्य को वेदों ने त्याज्य एवं निन्दायोग्य कहा है, मैं उसे करने में असमर्थ हूं; क्योंकि मैं स्वयं वेदवक्ता तथा व्यवस्था करने वाला हूं।।८-९।।

अकीर्तिर्वेदवक्तुश्च निन्द्यं च किमतः परम्।
उपस्थिता च या योषिदत्याज्या रागिणामपि॥१०॥
श्रुतौ श्रुतमिति त्याज्या सर्वदैव तपस्विनाम्।
अहो सर्वैः परित्याज्या पुंश्चली च विशेषतः॥११॥

वेदकर्त्ता के लिये इसकी तुलना में निन्दनीय कार्य कौन हो सकता है? जो कामभावयुक्त ऐसी नारी है, उसका भी वेदानुरागी सदा त्याग करे। तपस्वी तो ऐसी नारी का सर्वदा त्याग करे। यह वेद का मत सुना गया है। विशेषतः पुंश्चलीं (व्यभिचारिणी नारी) तो सबके द्वारा सर्वदा त्याज्य है।।१०-११।।

धनायुः प्राणयशसां नाशिनो दुःखदायिनी। स्वकार्यतत्परा शश्वत्परकार्यविनाशिनी॥१२॥
निष्ठुरा नरघातिभ्यः सर्वापद्बीजरूपिणी।
विद्युद्दीप्तिर्जले रेखा लोभान्मैत्री यथा भवेत्॥१३॥
परद्रोहाद्यथा संपत्कुलटाप्रेम तत्समम्। सर्वेभ्यो हिंस्रजन्तुभ्यो विपद्बीजा सदैव हि॥१४॥
यो विश्वसेत्तां सम्मूढो विपत्तस्य पदे पदे।
त्वं च रूपवती धन्या वञ्चिता कामुकैः सदा॥१५॥
यूनां संपत्स्वरूपा च विषतुल्या तपस्विनाम्।
त्वमेवाप्सरसां श्रेष्ठा सर्वदा स्थिरयौवना॥१६॥

ऐसी कुलटा नारी धन-आयु-प्राण-यश, इन सबका नाश करने वाली, दुःखप्रदा हैं। यह सदा अपने कार्य एवं स्वार्थ साधना में तत्पर रहने वाली तथा दूसरे के कार्य का नाश करने वाली है। यह नर हत्यारे से भी बढ़कर निष्ठुर तथा सभी आपदाओं के लिये कारण (बीजरूपा) है। विद्युत् की चमक, जल पर बनाई गई रेखा तथा लोभवश मित्रद्रोह करना, परद्रोह करके अर्जित सम्पदा-यह सभी क्षणस्थायी कही गई है। इसी प्रकार कुलटा नारी का प्रेम भी क्षणस्थायी होता है। ऐसी पुंश्चली नारी तो सभी हिंसक जन्तुओं की तुलना में कुलटा से विपदा की आंशका अधिक रहती है। जो मूढ़ कुलटा नारी के प्रेमपाश में आबद्ध हो जाता है, उसे तो प्रत्येक पग पर विपदा की आशंका रहती है। तुम रूपवती तथा स्त्रियों में धन्या हो। तुम युवकों के लिये सम्पत्ति रूपा हो तथा तप करने वालों के लिये विपत्ति के समान हो। तुम सदैव स्थिर यौवन सम्पन्ना श्रेष्ठ अप्सरा हो।।१२-१६।।

तवैव कर्म योग्यं च युवानं पश्य सुन्दरि।
त्वं विदग्धा च योषित्सु विदग्धान्वेषणं कुरु॥१७॥
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान्भवेत्।
जरातुरोऽहं वृद्धश्च तपस्वी वैष्णवो द्विजः॥१८॥
अस्वतन्त्रः पराधीनः का रतिःपुंश्चलीषु मे।
अये वत्से गच्छ शीघ्रं विहाय पितरं च माम्॥१९॥

हे सुन्दरी! तुम अपने कर्म के लिये योग्य युवा को खोजो। तुम स्त्रियों में चतुर हो। तुम अपने समान चतुर पुरुष का अन्वेषण अपनी कार्यसिद्धि हेतु करो। चतुरनारी का चतुरपुरुष से जो संगम होता है, वह गुणयुक्त होता है। मैं वृद्धावस्था से आतुर, वृद्ध, तपस्वी तथा वैष्णव ब्राह्मण हूं। मैं स्वतन्त्र न होकर पराधीन हूं। मुझे कुलटाओं से कभी प्रेम नहीं होगा। हे पुत्री! मुझ पिता के समान व्यक्ति को छोड़कर शीघ्र यहां से अन्यत्र जाओ।।१७-१९।।

नाम्नाऽहं च जगत्स्रष्टा तस्मात्तव पिता सदा।
मन्मथं चन्द्रमित्रं च जयन्तं नलकूबरम्॥२०॥

स्ववैद्यो चन्द्रतनयं दितिपुत्रांश्च सुन्दरान्। कामशास्त्रेषु निष्णातान्रतिकर्मविशारदान्॥२१॥
या मां यासि हि तांवस्त्यक्त्वा सा विदग्धा च कामुकी।
सदा संभोगविषये स्त्रियं प्रार्थयते पुमान्॥२२॥

मैं नामतः जगत्स्रष्टा होने के कारण सदैव तुम्हारा पिता हूं। कामदेव, चन्द्र, जयन्त, नलकूबर, देववैद्य, चन्द्रपुत्र बुध तथा दिति पुत्रों के पास जाओ जो सुन्दर हैं। ये सभी कामशास्त्र में पारङ्गत तथा रतिकर्म में निपुण हैं। जब तुम उन सबको त्याग कर मेरे पास आई हो, तब तुमको चतुर कामुकी नारी कैसे कहा जाये? नियम है कि संभोग हेतु पुरुष ही स्त्री से प्रार्थना करते हैं।।२०-२२।।

स्त्री चेत्प्रयाति पुरुषं विपरीतं विडम्बनम्। सर्वेषां चैव रत्नानां स्त्रीरत्नं दुर्लभं परम्॥२३॥
स्वयं प्रार्थयते स्वामी न तु स्वामिनमेव च।
योषिज्जातिषु धिक् ताश्च स्वयं याः समुपस्थिताः॥२४॥

जहां स्त्री पुरुष के पास संभोग की याचना करे, वह तो विपरीत लगने वाली बात है। जितने भी रत्न सृष्टि में हैं उनमें से स्त्री रत्न सर्वदुर्लभ है। स्वामी सदा स्त्री से (रति) प्रार्थना करता है। स्त्री स्वामी से कदापि ऐसी प्रार्थना नहीं करती। ऐसी नारी को धिक्कार है, जो स्वयं पुरुष के पास रति प्रार्थना करने आये।।२३-२४।।

भवेद्दूरं स्वल्पमूल्यं रत्नं स्वयमुपस्थितम्।
नित्यं पुमान्स्त्रियं याति स्त्री वा याति च न प्रियम्॥२५॥
लोकाचारेषु वेदेषु न स्त्री याति परप्रियम्।
स्ववस्तु भुङ्क्ते यः काले शास्त्रोक्तविधिपूर्वकम्॥२६॥
स पूज्यो न भवेत्पूज्यो यद्रतिः परवस्तुषु। कः कस्य शत्रुरबले निशामय जगत्त्रये॥२७॥
स्वेन्द्रियाः शत्रवः सर्वे शत्रुता यन्निमित्ततः।
वेदोक्ताचरणे सर्वं मित्रं च जगतां जगत्॥२८॥
कृते वेदविरुद्धे च मित्रं शत्रुर्भवेद्ध्रुवम्। वेदोक्तं कृतवन्तं च हरिस्तुष्टो दिवानिशम्॥२९॥

जो रत्न स्वयं मिल जाता है, उसका मूल्य कम हो जाता है। यह शास्त्रसम्मत है कि पुरुष अपनी स्त्री से रमण करे तथा स्त्री भी अपने स्वामी की ही इस कार्य में अनुगामिनी रहे, तथापि रमणी का परपुरुष संयोग तो वेद एवं लोकाचार के विपरीत है। जो मनुष्य शास्त्रोक्त विधि द्वारा नियत काल में अपनी वस्तु का उपभोग करता है, वह जगत् पूज्य कहा जाता है। पराई वस्तु की कामना करने वाला कभी भी जगत् में पूज्य नहीं होता। हे अबले! त्रैलोक्य में कौन किसका शत्रु है? शत्रुता का मूल है कि स्वयं अपनी इन्द्रियां ही शत्रु होती हैं। इनके लिये ही शत्रुता जन्म लेती है। जो वेदोक्त आचरण करता है, उसका तो समस्त संसार मित्र है। जो वेदविरुद्ध आचरण करता है, उसके मित्र तक उसके शत्रुरूप हो जाते हैं। जो वेदोक्त आचरण करता है, उस पर श्रीहरि दिन-रात प्रसन्न रहते हैं।।२५-२९।।

हरौ तुष्टे जगत्तुष्टं तस्मिन्रुष्टे भवो रिपुः।
कुत्रास्ति कुलटाजातिः साध्वीजातिश्च कुत्र वा॥३०॥
स्वकीयाचरणात्सर्वं भवे भवति कर्मणः। स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा नारायण विनिर्मिता॥३१॥

जब प्रभु सन्तुष्ट रहते हैं, हरि के सन्तुष्ट रहने पर उस व्यक्ति के प्रति समस्त जगत् सन्तुष्ट हो जाता है। जब श्रीहरि रुष्ट होते हैं, तब समस्त जगत् उससे रुष्ट हो जाता है। यहां कौन कुलटा जाति है, कहां है साध्वी जाति? ये दोनों अपने-अपने कृतकर्म से ही होती हैं। कृतकर्म ही सब कुछ है। समस्त स्त्री जाति की उत्पत्ति प्रकृति के अंश से होती है। इसका निर्माण स्वयं नारायण ने किया है।।३०-३१।।

दुःशीला पुंश्चली निन्द्या सुशीला च पतिव्रता।
पतिव्रतास्तु त्रिविधाः पुंश्चलीषु च योषितः॥३२॥
तासामेवंविधा नास्ति स्वयं याति परप्रियम्।
स्त्रीजातीनां च मध्ये च काऽस्त्येवं कुलकज्जला॥३३॥
भवे रत्यै स्वयं दृष्ट्वा वेषं कृत्वा प्रयाति तम्।
क्षोभिता यदि पश्यन्ती भक्ष्यद्रव्यमसाध्यकम्॥३४॥
वैकुल्यान्नहि तत्साध्यं सामान्यमेव केवलम्।
इत्येवमुक्त्वा जगतां विधाता विरराम च।
वक्तुं समुद्यता सा च कोपप्रस्फुरिताधरा॥३५॥

दुःशीला कुलटा निन्दनीय है। सुशीला ही साध्वी पतिव्रता होती है। पतिव्रता तीन प्रकार की कही गई है। परन्तु पुंश्चली का कोई अन्य प्रकार नहीं होता। कुलटा पुंश्चली तो स्वयं परपुरुष के पास रति हेतु जाती है। उसे स्त्री जाति में कालिख स्वरूप कहते हैं। ऐसी कुलटा पुंश्चली स्वयं रतिक्रीड़ा हेतु वेश-भूषा धारण करके जार (परपुरुष) के पास जाती है। जैसे जो नारी भक्ष्य द्रव्य को देखते ही क्षुब्ध हो जाये, तो उसकी यह विकलता सामान्य ही है (?)। यह कहकर विधाता मौन हो गये। तभी क्रोध से ओष्ठ फड़फड़ाते मोहिनी कहने लगी।।३२-३५।।

मोहिन्युवाच

ज्ञातं सर्वं जगद्धातश्चरितं तव साम्प्रतम्॥३६॥
त्वया निबोधिता नीतिर्मनो मे न स्थिरं भवेत्।
भूतं त्वयि विशिष्टं[1] च यावद्दृष्टः क्षणे भवान्॥३७॥
त्वद्वक्रदृष्टिमात्रेण सर्वे जाराश्च विस्मृताः। देहं कामाग्निना दग्धं यदा त्यक्तुं समुद्यता॥३८॥
निषिषेध च मां रम्भा प्रददौ मन्त्रमीदृशम्। तदा कामसहायेन त्वत्समीपं समागता॥३९॥

१. क. निविष्टं।

समधुस्तव शापेन स जगाम हतोद्यमः। अहो गन्तुमशक्ताऽहं त्वया यद्यपि भर्त्सिता॥४०॥

मोहिनी कहती है–हे विधाता! आपका समस्त चरित्र मैं जानती हूं। आप नीति के अनुरूप कह रहे हैं, तथापि मेरा मन कदापि स्थिर नहीं हो पा रहा है। जब से मैंने आपको देखा है, तभी से मेरा मन आपके साथ ही लगा है। आपका मुखकमल देखने मात्र से ही मैं सभी उपपतियों को भूल गई। हे प्रभो! जब मैं कामाग्नि में दग्ध होकर देहत्याग करने जा रही रही थी, तभी रंभा ने मुझे देहत्याग से रोक दिया। उसने मुझे यह सलाह दिया है। उसी की मन्त्रणा के अनुसार मैं कामदेव के साथ आपके पास आई हूं, तथापि वे कामदेव भी आपका शाप मिलने के कारण अपने मित्र वसन्त के साथ अपने प्रयत्न में असफल होकर चले गये। यद्यपि आपने मेरी अनेक प्रकार से भर्त्सना किया है, तथापि मैं आपके पास से जा नहीं सकती। मुझमें शक्ति नहीं रही॥३६–४०॥

सर्वाङ्गेष्वेव मे जाड्यं बभूव साम्प्रतं विभो।
कृपां कुरु कृपासिन्धो न मां हन्तुं त्वमर्हसि॥४१॥
तवाऽऽश्लेषणमात्रेण विज्वराऽहं सुनिश्चितम्।
त्वमेव जगतां धाता कुलटाऽहं च कर्मणा॥४२॥

हे विभु! मेरे सभी अंग-प्रत्यङ्ग जड़ता से अभिभूत हो रहे हैं। हे कृपासिन्धु! मुझ पर कृपा करिये। मेरी हत्या करना आपके लिये उचित नहीं है। हे प्रभो! आपके द्वारा आलिंगित किये जाते ही मैं विगतज्वर हो जाऊंगी। यह निश्चित है। मैं अपने कर्म से पुंश्चली हूं तथा आप अपने कर्म के कारण जगत् विधाता हैं॥४१–४२॥

सन्तो गर्वं न कुर्वन्ति कर्मसाध्याश्च जीविनः।
कश्चित्प्रयाति यानेन वहन्ति तं च केचन॥४३॥

करं गृह्णाति नृपतिः कर्मणा ददति प्रजाः। कश्चित्सिंहासनस्थश्च नृपमात्रश्च[1] कश्चन॥४४॥
केचिद्भूता बहुविधास्तत्र तस्य स्वकर्मणा। यान्ति केचिदश्वपृष्ठैर्गजपृष्ठैश्च केचन॥४५॥

कर्मणा वाहकाः केचित्केचिद्वाहनपालकाः।
सूकरीजठरं कश्चित्सम्प्रयाति स्वकर्मणा॥४६॥

साधुगण कदापि गर्व नहीं करते। जीवन-कर्मसाध्य होता है। कोई–कोई यान में जाता है, कोई उस यान को ढोता है। राजा कर वसूल करता है, प्रजा कर देती है। यह सब अपने कर्म का फल है। कोई तो सिंहासन पर बैठा राजा है, तो कोई उसका पात्र मित्र है (नाम का राजा है)। इस प्रकार अपने कर्म से लोग अनेक प्रकार के हो जाते हैं। कोई घोड़े पर बैठकर गमन करता है, तो कोई गज पर। कर्म से कोई यान वाहन के स्वामी–पालक होते हैं, कर्मवशात् कोई उस यान को ढोता है। कोई अपने कर्म से सूकरी के गर्भ में जाकर जन्म लेता है॥४३–४६॥

---

१. क. ०पपात्र०।

कश्चिच्छच्याश्च जठरं तव पुत्राश्च केचन।
केचित्कृत्वा हरेर्भक्तिं कर्मणा तस्य पार्षदाः॥४७॥
केचिद्भवन्ति कृमयो विष्ठायां दैवदोषतः।
स्वर्गं प्रयान्ति राजेन्द्राः केचिच्च स्वस्वकर्मणा॥४८॥
केचित्प्रयान्ति नरकं विण्मूत्रे तत्र पच्यते।
कर्मणा कश्चिदिन्द्रेन्द्रः सुराणां प्रवरः स्वयम्॥४९॥
केचित्सुरा नराः केचित्केचिच्च क्षुद्रजन्तवः।
केचिच्च कर्मणा विप्रा वर्णश्रेष्ठा महीतले॥५०॥

कोई इन्द्रपत्नी शची के गर्भ में जाता है, तो कोई आपका पुत्र होता है। कोई अपने कर्म से हरिभक्ति करके हरि का पार्षद हो जाता है। दैवदोष से कोई विष्ठा का कृमि होता है, कोई राजेन्द्र अपने-अपने कर्म से स्वर्ग जाता है। कोई नरकगामी होकर मल-मूत्र में क्लेशयुक्त होते हैं, कोई अपने कर्म से देवगण में श्रेष्ठ इन्द्र का भी इन्द्र हो जाता है। कोई स्वकर्म से देवता, कोई मनुष्य बनता है, कोई क्षुद्रजन्तु योनिलाभ करता है। कोई पृथिवी पर अपने कर्म के कारण वर्णों में प्रधान ब्राह्मण वर्ण में उत्पन्न होता है।।४७-५०।।

केचिद्भूपा वैश्यशूद्राः केचिच्च म्लेच्छजातयः।
केचित्स्वकर्मणा प्राज्ञा ज्ञानेन सर्वदर्शिनः॥५१॥
केचिन्मूर्खाः केचिदन्धाः स्वाङ्गहीनाश्च केचन।
केच्छिास्त्रं बोधयन्ति शिष्यवर्गान्स्वकर्मणा॥५२॥
केचित्पठन्ति सर्वार्थं जानन्ति गुरुवक्त्रतः। भवन्ति कर्मणा केचिद्देहे स्थावरजङ्गमे॥५३॥

कोई कर्म के प्रभाव से राजा होता है, तो कोई वैश्य, शूद्र तथा म्लेच्छ योनि में उत्पन्न होता है। यह सब कर्म का ही परिणाम है। कोई अपने कर्म से प्राज्ञ होता है तथा ज्ञान द्वारा सर्वदर्शित्व लाभ करता है। कर्म के ही कारण कोई मूर्ख, कोई अन्ध, कोई अंगहीन हो जाते हैं। कोई स्वकर्म से विद्वान् होकर अपने शिष्यों को शास्त्रज्ञान कराते हैं। कोई अपने कर्मवशात् गुरुमुख से सब जान लेते हैं तथा पठन करते हैं। किसी ने कर्म के कारण स्थावर, तो किसी ने जंगम देह धारण किया है।।५१-५३।।

तपस्वी नरघाती च त्वं च ब्रह्मा च कर्मणा।
काचित्स्वकर्मणा साध्वी पूज्येह च परत्र च॥५४॥
काचिद्वेश्या तदाहारं भुङ्क्ते कृत्वाऽङ्गविक्रयम्।
स्वर्वेश्याऽहं सुरपुरे सुरभोग्या सुपूजिता॥५५॥
तेषामालिङ्गनेनैव कर्मणां खण्डनं भवेत्।
मनः स्वभावबीजं च स्वभावः कर्मबीजकः॥५६॥

तत्कर्मफलबीजं च सर्वेषां जनको हरिः। फलं ददाति नियतं कर्मद्वारा विभुः स्वयम्॥५७॥
सर्वेभ्यो बलवान्नित्यं कर्मरूपी जनार्दनः।
कुतो हेतोर्निन्दिताऽहं त्वयैव भर्त्सिता कथम्॥५८॥

कर्म से ही कोई तपस्वी तो कोई नरघाती हो जाता है। आप अपने कर्मफल से ब्रह्मा हो सके हैं। कोई नारी अपने कर्म से साध्वी पतिव्रता होकर परलोक में भी पूज्या हो जाती है। अपने कर्म से ही कोई नारी वेश्या होकर अपना अंगविक्रय करके जीवनोपाय अर्जित करती है। हे ब्रह्मन्! मैं स्वर्ग की वेश्या हूं जिसका स्वर्ग में देवता भोग करते हैं तथा मैं सुपूज्या भी हूं। वे देवता ऐसे हैं, जिनके आलिंगन मात्र से कर्मजाल खण्डित हो जाता है। मन का बीज (कारण) स्वभाव है। स्वभाव ही कर्म का बीजरूप है। कर्म तथा फल के बीज (कारण) हैं सबको उत्पन्न करने वाले श्रीहरि। कर्म द्वारा उसका फल विभु परमेश्वर स्वयं प्रदान करते हैं। कर्मरूपी जनार्दन नित्य तथा सबसे अधिक बली हैं। अतः आपने मेरी भर्त्सना क्यों किया? मैं किस दृष्टि से निन्दित हूं?॥५४-५८॥

जगत्स्रष्टुरीश्वरस्य पादाब्ज द्रष्टुमागता। स्वप्ने यस्य पदद्वन्द्वं न हि पश्यन्ति योगिनः॥५९॥

मैं उन ईश्वर को पति बनाने हेतु स्वेच्छा से आई हूं जो जगत्स्रष्टा हैं तथा जिनके चरणकमलद्वय का दर्शन योगीगण तक स्वप्न में भी नहीं कर पाते॥५९॥

तमीश्वरं पतिं कर्तुमिच्छया स्वयमागता। गत्वा हि कस्यचित्स्थानमस्पृश्येह परत्र च॥६०॥
कस्यचित्पादरजसा य शसा भान्ति योषितः।
इत्युक्त्वा मोहिनी शीघ्रं गत्वोवास विधेः पुरः॥६१॥

"ऐसे ईश्वर को पतिरूप में प्राप्त करने हेतु मैं स्वेच्छा से यहां आ गई हूं। मैं किसी भी समय, किसी अन्य के समीप जा नहीं सकती। अन्य के स्थान पर जाने से इहलोक तथा परलोक में कोई भी मेरा स्पर्श अस्पृश्य हो जाने के कारण नहीं करेगा। नारी सर्वदा एक व्यक्ति के चरणरज का सेवन करने से ही यशभागी हो गई है।" यह कहकर मोहिनी शीघ्र ब्रह्मा के समक्ष आसीन हो गई॥६०-६१॥

स्वयं विधाता जगतां चकम्पे कुलटाभयात्।
सस्मिता वक्रनयना कामभावं चकार ह॥६२॥
स्वाङ्गं च दर्शयामास कामबाणप्रपीडिता। एतस्मिन्नन्तरे कामः सर्वज्ञः सर्वयोगवित्॥६३॥
आविर्भूय पञ्चबाणन्निचिक्षेप च ब्रह्मणि। सम्मोहनं समुद्वेगं बीजस्तम्भितकारणम्॥६४॥
उन्मत्तबीजं ज्वलदं शश्वच्चेतनहारकम्।
एतान्प्रक्षिप्य मदनोऽप्यन्तरिक्षस्थितः स्वयम्॥६५॥

इस कुलटा के भय से स्वयं जगत् के विधाता कांप उठे। उधर मोहिनी मन्दहास्य करती वक्रदृष्टि से कामभाव पूर्ण होकर उनकी ओर देखती जा रही थी। वह कामबाण से पीड़ित होकर ब्रह्मा को अपने अंगों का प्रदर्शन करा रही थी तभी वहां सर्वज्ञ, सर्वयोगविद् सर्वाङ्ग कामदेव आविर्भूत हो

गये। उन्होंने ब्रह्मा पर तत्काल अपने पांचों बाणों को एक साथ छोड़ा। मदन कामदेव ने अन्तरिक्ष में रहते अपने पंचबाण सम्मोहन, समुद्वेग, बीजस्तम्भित कारण, ज्वलद उन्मत्तबीज तथा निरन्तर चेतनाहारक इन बाणों को ब्रह्मा पर छोड़कर अन्तरिक्ष में ही स्थित थे।।६२-६५।।

किङ्करान्प्रेषयामास सम्मोहाय पितुर्मुदा। वसन्तं कोकिलालीश्च गन्धवातं मनोहरम्।।६६।।

नियुज्याभ्यन्तरं गत्वा तद्विकारं चकार ह।
पुंस्कोकिलः कलं रावमुवाच तत्समीपतः।।६७।।
षट्पदः सुन्दरं सूक्ष्मं जुगुञ्जे पुरतः स्थितः।
शश्वद्ववौ गन्धवहो मन्दोऽतिशीतलः प्रिये।।६८।।
सततं मुदितस्तत्र बभ्राम च मधुः स्वयम्।
पुलकाञ्चित सर्वाङ्गो बभूव जगतां विधिः।।६९।।

अपने पिता ब्रह्मा को और मोहित करने के उद्देश्य से कामदेव ने अपने सेवक वसन्त ऋतु, भ्रमर एवं अत्यन्त सुरभित वायु को भेजा। वह कामदेव स्वयं ब्रह्मा के अभ्यन्तर में प्रविष्ट होकर उनमें विकार उत्पन्न कर रहे थे। तभी ब्रह्मा के समक्ष नरकोकिल का कूजन तथा भ्रमर का गुञ्जार प्रारम्भ हो गया। वहां सुरभित वायु प्रवहमान थी। हे प्रिये! वहां वसन्त ऋतु स्वयमेव मुदितमन से भ्रमणरत था। इससे जगद्विधाता ब्रह्मा रोमाञ्चित हो उठे।।६६-६९।।

ददर्श मोहिनीभावं प्रहस्य च पुनः पुनः। अतीव वक्रनयना कामास्त्रहतचेतना।।७०।।
विधाता बुबुधे सर्वं सर्वधर्मनिबन्धम्[१]। नियन्तुं न मनः शक्तः सस्मार श्रीहरिं भिया।।७१।।
तुष्टाव मनसा कृष्णं शान्तं हृत्पङ्कजस्थितम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं हरिं पीताम्बरं परम्।।७२।।

अतीव कमनीयं च किशोरं स्थिरयौवनम्।
रत्नालङ्कारभूषाढ्यं सस्मितं श्यामसुन्दरम्।।७३।।

अब ब्रह्मा पुनः-पुनः हंसते हुये मोहिनी का भाव देखने लगे। उस समय मोहिनी हंसते हुये कामबाण से चेतना खो बैठी (विभोर हो गई)। वह तिरछी चितवन से युक्त अचेतन हो गई। विधाता ने यह जान लिया था कि उनका यह सब भाव काम के आविर्भाव के कारण हो रहा है। विधाता सभी प्रकार के धर्मज्ञाता थे (देहधर्मादि, कामधर्म प्रभृति सबके ज्ञाता थे), तथापि कामोद्वेग को मन से दूर करने हेतु उन्होंने श्रीहरि का स्मरण किया। तदनन्तर ब्रह्मदेव द्विभुज, मुरलीधारी, पीताम्बर धारण करने वाले, परमकमनीय, किशोर, स्थिर यौवन, रत्नालंकार भूषित, मन्दमुस्कान से शोभित श्यामसुन्दर हरि की स्तुति करने लगे जो शान्त एवं हृदयकमल पर आसीन थे।।७०-७३।।

ब्रह्मोवाच

रक्ष रक्ष हरे मां च निमग्नं कामसागरे। दुष्कीर्तिजलपूर्णे च दुष्पारे बहुसङ्कटे।।७४।।

१. ख. ०र्वबन्धनि०।

भक्तिविस्मृतिबीजे च विपत्सोपानदुस्तरे। अतीव निर्मलज्ञानचक्षुःप्रच्छन्नकारणे॥७५॥
जन्मोर्मिसङ्गसहिते योषिन्नक्रौधसंकुले। रतिस्त्रोतःसमायुक्ते गम्भीरे घोर एव च॥७६॥
प्रथमामृतरूपे च परिणामविषालये। यमालयप्रवेशाय मुक्तिद्वारातिविस्तृते॥७७॥

ब्रह्मा कहते हैं–हे हरि! मैं दुष्कृतिरूप जल से भरे अनेक संकटाकीर्ण दुस्तर कामसागर में डूबता जा रहा हूं। मेरी शीघ्र रक्षा करिये। यह दुस्तर कामसागर भक्ति विस्मृति का बीजरूप है। यह विपत्ति की एकमात्र सोपान है तथा अतीव निर्मल ज्ञानचक्षु के लिये आवरणरूप है। यह दुष्पार कामसागर जन्मरूप उर्मिमालाओं से समाकुल है। इसमें रमणीरूपी ग्राह निरन्तर विचरते रहते हैं। यह अत्यन्त गहन गंभीर सागर है, जिसमें रतिरूपी स्त्रोत अत्यन्त वेग से प्रवहमान रहता है। सर्वप्रथम तो यह कामसागर अत्यन्त अमृतमय प्रतीत होता है, परन्तु परिणाम में यह विषपूर्ण है। यह मुक्तिमार्ग को बंद करके यमप्रदेश के मार्ग को अत्यन्त प्रशस्त कर देता है।।७४-७७।।

बुद्ध्या तरण्या विज्ञानैरुद्धरास्मानतः स्वयं। स्वयं च त्वं कर्णधारः प्रसीद मधुसूदन॥७८॥

मद्विधाः कतिचिन्नाथ नियोज्या भवकर्मणि।
सन्ति विश्वेश[1] विधयो हे विश्वेश्वर माधव॥७९॥

न कर्मक्षेत्रमेवेदं ब्रह्मलोकोऽयमीप्सितः। तथाऽपि[2] न स्पृहा कामे त्वद्भक्तिव्यवधायके॥८०॥
हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु। त्वं महेश महाज्ञाता दुःस्वप्नं मां न दर्शय॥८१॥

हे मधुसूदन! आप स्वयं कर्णधार होकर बुद्धिरूपी नौका तथा उत्तम ज्ञान द्वारा मुझे इस दुस्तर सागर से पार करिये। हे नाथ! न जाने मेरे जैसे कितने अनगिनत ब्रह्मा सृष्टिकार्य में लगे हैं। न जाने विश्व में कितने विधाता हैं। उनका अन्त नहीं है। हे विश्वेश! विश्वेश्वर! माधव! यद्यपि यह ब्रह्मलोक कर्मक्षेत्र नहीं है, ब्रह्मलोक के नाम से विख्यात है, तथापि आपकी भक्ति के अतिरिक्त मेरी कोई कामना नहीं है। हे नाथ! करुणासिन्धु! हे दीनबन्धु! आप मुझ पर कृपा करिये। हे मायामय! मैं अत्यन्त अज्ञानरूप तमोराशि से आच्छन्न हूं। मुझे और दुःख प्रदान न करें। आप महाज्ञाता हैं। मुझे दुःस्वप्न दर्शन न करायें।।७८-८१।।

इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम सनातनः। ध्यायं ध्यायं मत्पदाब्जं शश्वत्सस्मार मामिति॥८२॥

यह कहकर जगत्विधाता प्रणाम करके मौन हो गये। वे मेरे बारम्बार प्रभु चरण कमलों का ध्यान तथा मेरा स्मरण करने लगे।।८२।।

ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च च पठेत्।
स चैवाऽऽकर्ण्य विषये न निमग्नो भवेद्ध्रुवम्॥८३॥

---

१. क. ०श्वेषु वि०।
२. ख. ०पि नः स्पृ०।

मम मायां विनिर्जित्य संज्ञानं लभते ध्रुवम्। इह लोके भक्तियुक्तो मद्भक्तप्रवरो भवेत्॥८४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाप्रश्ने ब्रह्ममोहिनीसं० श्रीकृष्णस्तोत्रं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

जो कोई भक्तिभाव के साथ ब्रह्माकृत यह स्तोत्र पाठ करता है, वह कभी भी अकीर्त्तिप्रद विषयों में निमग्न नहीं होगा। वह मेरी माया को पार करके, मेरा दास्य प्राप्त करके इहलोक में भक्तियुक्त होगा। सर्वान्त में वह मेरा महान् भक्त हो जायेगा॥८३-८४॥

॥३२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मा को मोहिनी का शाप तथा ब्रह्मा का गर्व भङ्ग

श्रीकृष्ण उवाच

कृत्वा ब्रह्मा हरेः स्तोत्रं तस्थौ तस्याः समीपतः।
मनो मत्तगजेन्द्रं च कामासक्तं निवारयन्॥१॥
दिव्यज्ञानाङ्कुशेनैव मया दत्तेन राधिके। उवाच मोहिनी तं च परिहासपरं वचः॥२॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—ब्रह्मा श्रीहरि की स्तुति करके मेरे द्वारा प्रदत्त दिव्यज्ञानमय अंकुश से कामासक्त अपने मनरूप मत्त गजेन्द्र को निवारित करके (रोक कर) मोहिनी के समीप स्थित हो गये। तब मोहिनी उनसे परिहासमय वाक्य कहने लगी॥१-२॥

मोहिन्युवाच

इङ्गितेनैव नारीणां सद्यो मत्तं भवेन्मनः। करोत्याकृष्य संभोगं यः स एवोत्तमो विभो॥३॥
ज्ञात्वा स्फुटमभिप्रायं नार्या सम्प्रेषितो हि यः।
पश्चात्करोति शृङ्गारं पुरुषः स च मध्यमः॥४॥

मोहिनी कहती है—हे विभो! जो व्यक्ति स्त्रियों का संकेत मिलते ही मत्त होकर उनको खींचकर उनसे संभोग करता है, वही उत्तम पुरुष है। जो पुरुष स्त्री के स्पष्ट अभिप्राय को जानकर (संकेत द्वारा न जानकर) तथा उस अभिप्राय से प्रेरित होकर उसके साथ रमण करता है, वह मध्यम श्रेणी का पुरुष कहा गया है॥३-४॥

पुनः पुनः प्रेषितश्च स्त्रिया कामार्तया च यः।
तया न लिप्तो रहसि स क्लीवो न पुमानहो॥५॥
गृही तपस्वी कामी वा त्यजेत्स्त्रियमुपस्थिताम्। व्रजेत्परत्र नरकमपूज्यश्च भवेदिह॥६॥
नष्टश्रीर्भ्रष्टरूपश्च भ्रष्टबुद्धिर्भवेद्ध्रुवम्। स सद्यः क्लीवतां याति ब्रह्मञ्शापेन योषितः॥७॥
उत्तिष्ठ जगतीनाथ पारं कुरु स्मरार्णवे। निमग्नां दुस्तरे घोरे कर्णधार भयानके॥८॥

तथापि जो पुरुष कामभाव से पीड़ित रमणी द्वारा प्रार्थना करने पर भी निर्जन स्थल में उसके साथ संभोग नहीं करता, वह हतभाग्य पुरुष तो क्लीव (नपुंसक) कहलाने योग्य है। जो गृहस्थ, तपस्वी किंवा कामी व्यक्ति सामने उपस्थित स्त्री का त्याग कर देता है, वह इहलोक में अपूज्य कहलाकर अन्त में नरक जाता है। वह व्यक्ति नारी के शाप से श्रीभ्रष्ट, रूपभ्रष्ट तथा दर्पभ्रष्ट होकर बुद्धिभ्रष्ट होकर रहता है। वह नारी के शाप से तत्काल नपुंसक हो जाता है। हे जगत् के नाथ! उठिये इस घोर कामरूपी सागर से मुझे (संभोग द्वारा) पार करिये इस भयानक काम-सागर से पार उतारने वाले कर्णधार हो जाईये।।५-८।।

अतीव निर्जनस्थाने सर्वजन्तुविवर्जिते। सुगन्धिवायुना रम्ये पुंस्कोकिलरुतश्रुते॥९॥
सततं त्वन्मनस्कां मां दासीं जन्मनि जन्मनि।
क्रीणीहि रतिपण्येनामूल्यरत्नेन सत्वरम्॥१०॥

हे प्रभो! यह निर्जन स्थान है। यहां सुगन्धित मन्द वायु बह रही है। यह स्थान रमणीय है जहां नर कोकिलों की कूजन हो रही है। ऐसे निर्जन प्रदेश में अपनी जन्म-जन्मान्तर की इस दासी को जो सतत् अपना मन आप में तद्गत होकर लगाये रहती है, इसे आप रतिक्रीड़ा रूपी मूल्य देकर शीघ्र क्रय कर लीजिये।।९-१०।।

इत्युक्त्वा मोहिनी सद्यो जगत्स्रष्टुश्च ब्रह्मणः।
विचकर्ष वरं[१] वस्त्रं सस्मिता कामविह्वला॥११॥
विज्ञाय समयं धाता तामुवाच भयातुरः। पीयूषतुल्यं वचनं वरं विनयपूर्वकम्॥१२॥

यह कहने के पश्चात् मोहिनी मन्द मुस्कान के साथ ब्रह्मा का वस्त्र कामविह्वल होकर हटाने लगी। तब समयानुकूल, अमृततुल्य वचन, भयातुर ब्रह्मा मोहिनी से विनय पूर्वक कहने लगे।।११-१२।।

ब्रह्मोवाच

शृणु मोहिनि मद्वाक्यं सत्यसारं हितं स्फुटम्।
न कुरु त्वं च त्रैलोक्ये स्त्रीजातीनामपत्रपाम्॥१३॥
त्यज मामम्बिके पुत्रं वृद्धं निष्काममेव च। त्वत्कर्म योग्यरसिकं युवानं पश्य सुस्मिते॥१४॥

१. क. करं।

निषेकाल्लभते पत्नी गुरु भर्तुः शुभाशुभम्। मन्त्रशिल्पमपत्यं च सर्वमेतन्न यत्नतः॥१५॥
त्वया सह मम रतेर्निर्बन्धो नास्ति सुव्रते। क्षुद्रं महद्वा यत्कर्म सर्वं दैवनिबन्धकम्॥१६॥

ब्रह्मा कहते हैं–हे मोहिनी! मैं तुमसे स्पष्टतया सारभूत, सत्य एवं हितप्रद वाक्य कहता हूं। श्रवण करो। इस त्रैलोक्य में स्त्री का कदापि यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह निर्लज्जता अपनाये। हे माता! मैं तुम्हारा कामना रहित वृद्धपुत्र हूं। हे शुचिस्मिते! तुम मेरा त्याग करके अपने कार्य के लिये उपयुक्त रसिक युवा पुरुष को देखो। (खोजो)। हे सुन्दरी! एक पत्नी, गुरु रूप पति से, शुभाशुभ फललाभ, मन्त्र, शिल्प, पुत्र यह सब गर्भाधान से ही प्राप्त कर लेती है। यह सब प्रयत्न से नहीं मिलते। हे सुव्रते! तुम्हारे साथ रति हेतु मेरी कोई भी प्रतिज्ञा, निर्बन्ध नहीं है। छोटे, बड़े सभी कर्म दैव द्वारा ही होते हैं। इसमें प्रयत्न कारण नहीं है।।१३-१६।।

इत्युक्तवन्तं ब्रह्माणं स्मरन्तं मत्पदाम्बुजम्। विचकर्ष पुनर्वेश्या कामेन हतचेतना॥१७॥

ब्रह्मदेव इतना कहकर मौन हो गये। वे कृष्ण के चरणों का स्मरण करने लगे। उधर वेश्या मोहिनी कामपीड़ित होकर सुध-बुध खोकर ब्रह्मा का वस्त्र पुनः खींचने लगी।।१७।।

एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रं स्थानं तत्सुमनोहरम्। आजग्मुर्मुनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा॥१८॥

अत्रिः पुलस्त्यः पुलहो वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराः।
भृगुर्मरीचिः कपिलो वोढुः पञ्चशिखो रुचिः॥१९॥
आसुरिश्च प्रचेताश्च स्वयं शुक्रो बृहस्पतिः।
उतथ्यः करकः कण्वः कश्यपा गौतमस्तथा॥२०॥

सनकश्च सनन्दश्च कर्दमश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवान्योगिनां परमो गुरुः॥२१॥

शातातपः पिप्पलश्च शङ्कुः शुक्रः पराशरः।
मार्कण्डेयो लोमशश्च मृकण्डुश्च्यवनस्तथा॥२२॥
दुर्वासाश्च जरत्कारुरास्तीकश्च विभाण्डकः।
ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजो वामदेवश्च कौशिकः॥२३॥

इसी समय ब्रह्मतेज से अत्यन्त दीप्त मुनिवृन्द उस रम्य स्थल पर तत्काल आ गये। वे थे– पुलत्स्य, अत्रि, पुलह, वसिष्ठ, क्रतु, अंगीरा, भृगु, मरीचि, कपिल, वोढु, पंचशिख, रुचि, आसुरि, प्रचेता, शुक्र, गुरु, उतथ्य, करक, कण्व, कश्यप, गौतम, सनक, सनन्दन, कर्दम, सनातन, योगीगण के महागुरु सनत्कुमार, शातातप, पिप्पल, शंकु, पराशर, मार्कण्डेय, लोमश, मृकण्डु, च्यवन, दुर्वासा, जरत्कारु, आस्तीक, विभाण्डक, ऋष्यशृङ्ग, भरद्वाज, वामदेव तथा कौशिक।।१८-२३।।

दृष्ट्वैतांश्च तपोनिष्ठानागतांश्च मुनीश्वरान्।
तत्याज मोहिनी शीघ्रं व्रीडया कमलोद्भवम्॥२४॥

तत्रोवास जगद्धाता तद्वामपार्श्वतश्च सा। प्रणेमुर्मुनयस्तं च भक्तिनम्रात्मकंधराः॥२५॥

आशिषं युयुजे ब्रह्मा वासयामास तान्विभुः।

तेषु मध्ये प्रजज्वाल तथा तारासु चन्द्रमाः॥२६॥

मोहिनी ने जब इन तपोनिष्ठ मुनिवृन्द को वहां समागत देखा, तब उसने लज्जित होकर ब्रह्मा का वस्त्र तत्काल छोड़ दिया। उस समय जगद्धाता ब्रह्मा वहीं बैठ गये। ब्रह्मा के वामपार्श्व में मोहिनी बैठ गई। तदनन्तर भक्ति से नत शिर होकर महर्षिवृन्द ने ब्रह्मदेव को प्रणाम किया। ब्रह्मा ने भी मुनिगण को आशीर्वाद देकर आसन प्रदान किया। इन ऋषिगण के बीच आसीन ब्रह्मा उसी प्रकार प्रतीत हो रहे थे, जैसे तारागण के मध्य में चन्द्रमा!।।२४-२६।।

पप्रच्छुर्मुनयो देवं कथमेषा तवान्तिके। स्वर्वेश्यानां च प्रवरा मोहिनीत्येवमेव च॥२७॥

श्रुत्वा मुनीनां वचनमुवाच तान्प्रजापतिः।

स्त्रीजातीनां च वचनं लज्जाच्छादनमेव च॥२८॥

तदनन्तर मुनिगण ने ब्रह्मा से पूछा–"हे देव! यह स्वर्गवेश्या मोहिनी आपके पास क्यों बैठी है?" मुनिगण का कथन सुनकर प्रजापति ने कहा–"स्त्री जाति का वाक्य स्वभावतः लज्जाच्छन्न होता है।"।।२७-२८।।

ब्रह्मोवाच

अपूर्वं नृत्यगीतं च चिरं कृत्वा शुभावहा।

उवासेयं परिश्रान्ता यथा कन्या पितुः पुरः॥२९॥

इत्युक्त्वा जगतां धाता जहास मुनिसंसदि। जहसुर्मुनयः सर्वे सर्वज्ञास्तत्र राधिके॥३०॥

सर्वं रहस्यं विज्ञाय जगत्स्त्रष्टुश्च मानसम्। सद्यश्चुकोप कुलटा हास्यव्याजेन संसदि॥३१॥

सर्वाङ्गकम्पमाना सा कुलटा कुटिलानना। रक्तपङ्कजनेत्रा च कोपप्रस्फुरिताधरा॥३२॥

उत्थाय च सभामध्ये तेषां च पुरतः स्थिता।

सम्बोध्योवाच ब्रह्माणं मृत्युकन्या यथा रुषा॥३३॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–"इस मोहिनी शुभमूर्त्ति वाली कन्या दीर्घकाल तक अपूर्व नृत्य गीतादि करने से अत्यन्त थक गई है। तभी यह अपने पिता मेरे पास बैठी है।" विधाता ब्रह्मा यह कहकर उस मुनियों की सभा में हंसने लगे। हे राधिके! यह सुनकर वहां स्थित सभी मुनिमण्डली भी हंसने लगी। स्वर्गवेश्या मोहिनी ने उस सभा में हो रहे हास्य के द्वारा जगत्स्त्रष्टा ब्रह्मा का मनोभाव जान लिया, जिससे वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गई। उसका शरीर कांपने लगा। नेत्र क्रोध से लालवर्ण के कमल के समान लाल हो गये तथा दृष्टि वक्र-सी हो गई। उसके अधरोष्ठ क्रोधातिरेक से फड़कने लगे। वह मोहिनी अब क्रोध में भरकर उठी तथा वह सभा में खड़ी होकर क्रोधित मृत्युकन्या की तरह ब्रह्मा से कहने लगी!।।२९-३३।।

मोहिन्युवाच

अये ब्रह्मञ्जगन्नाथ वेदकर्ता त्वमेव च॥३४॥
किंवा वेदप्रणिहितं कर्म किं तद्विपर्ययम्। विचारं मनसा स्वेन कुरु वेदविदां गुरो॥३५॥
स्वकन्यायां यत्स्पृहा स कथं हससि नर्तकीम्।
निर्मिताऽहमीश्वरेण स्ववेंश्या सर्वगामिनी॥३६॥
सतां कर्म विरुद्धं यत्तदत्यन्तविडम्बनम्। दासीतुल्यां विनीतां च दैवेन शरणागताम्॥३७॥
यतो हससि गर्वेण ततोऽपूज्यो भवाचिरम्।
अचिराद्दर्षभङ्गं ते करिष्यति हरिः स्वयम्॥३८॥
निबोध वचनं ब्रह्मन्वेश्यायाश्च तु साम्प्रतम्।
तवैव वचनं स्तोत्रं गृह्णाति यो नरः सदा॥३९॥
भविता तस्य विघ्नश्च स यास्यत्युपहास्यताम्।
भविता वार्षिकी पूजा देवतानां युगे युगे॥४०॥
तव माध्यां च संक्रान्त्यां न भविष्यति सा पुनः।
कल्पान्तरेऽत्र कल्पे वा देहे देहान्तरेऽत्र वा॥४१॥
पुनः पूजा न भविता या गता सा गतैव च।
इत्युक्त्वा मोहिनी शीघ्रं जगाम मदनालयम्॥४२॥
तेन सार्धं रतिं कृत्वा बभूव विज्वरा पुनः।
पश्चात्सा चेतनां प्राप्य विललाप भृशं पुनः॥४३॥

मोहिनी कहती है—"हे ब्रह्मन्! आप जगत् के नाथ तथा वेदकर्त्ता हैं। हे वेदज्ञो के गुरु! आप जो कह रहे हैं, उस पर विचार यह करिये कि वेदविहित क्या है, क्या वेदों के विपरीत है। जिसने अपनी कन्या की पूर्वकाल में कामना किया था, वह मुझ नर्त्तकी पर कैसे हंस सकता है। (आप मेरा उपहास कैसे कर सकते हैं?)। ईश्वर ने मुझे सर्वगामिनी वेश्यारूप में बनाया है। लेकिन आप जैसे सज्जनों का जो कार्य वेदविरुद्ध होता है, वह तो एक विडम्बना ही है! आपने मुझ दासी तुल्य विनीता तथा दैववशात् अपनी शरणागत का अत्यन्त गर्वित होकर जो उपहास किया है इसके फलस्वरूप आप शीघ्र अपूज्य हो जायेंगे। स्वयं श्रीहरि आपका गर्व चूर-चूर कर देंगे। अब हे ब्रह्मन्! आप इस वेश्या का वचन श्रवण करें। अब से जो कोई व्यक्ति आपके स्तोत्र, कवच, मन्त्र को ग्रहण करेगा, उसे पग-पग पर विघ्न उठना होगा। वह भी उपहास का पात्र बनेगा! प्रतियुग में देवगण की वार्षिक पूजा की जायेगी, तथापि माघ की संक्रान्ति तक को आपकी पूजा नहीं होगी। इस वर्त्तमान कल्प में, आगामी कल्पों में, आपके इस देह में अथवा अन्य देह में आपकी पूजा कदापि नहीं की जायेगी। अब तक आपकी जो

पूजा हो गई, वही अन्त है।" यह कहकर मोहिनी तत्काल कामदेव के गृह चली गई। वहां कामदेव के साथ रतिक्रीड़ा द्वारा उसका कामज्वर समाप्त हो गया। तदनन्तर प्रबोधित होने पर वह अत्यन्त रुदन करने लगी।।३४-४३।।

अयं कथं मया शप्तो जगद्विधिरतिप्रियः।
स्वर्वेश्यायां गतायां च मुनयो दुःखिता भृशम्।।४४।।

वह रुदन करते कहती जा रही थी-"मैंने अपने परमप्रिय जगत् विधाता को अभिशाप दे दिया।" यह विलाप करके वह जब चली गई तब मुनिगण भी अत्यन्त दुःखी हो गये।।४४।।

स्वयं विधाता जगतां चकम्पे नतकंधरः। उपायं मनुयस्तस्मै ददुः कल्याणकारिणः।।४५।।
शरणं व्रज वैकुण्ठमित्युक्त्वा ते गृहान्ययुः। ब्रह्मा जगाम शरणं मम मूर्त्यन्तरं परम्।।४६।।

शान्तं तं कमलाकान्तं श्यामं नारायणाभिधम्।
गत्वा विषण्णवदनः प्रणम्य च चतुर्भुजम्।।४७।।

तत्रोवास जगत्कर्ता नातिदूरे समीपतः। रहस्यं कथयामास शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः।।४८।।
दीनबन्धु दयासिन्धुं विपत्तारणकारणम्। श्रुत्वा रहस्यं तत्सर्वं प्रहस्योवाच तं विभुः।

सत्यं सारं हितं वाक्यं जगतां च सुखावहम्।।४९।।

उधर इस शाप के कारण स्वयं विधाता भी कम्पित हो उठे। उनका मस्तक तक नत हो गया। इस समय मुनियों ने ब्रह्मदेव को उनके कल्याण का उपाय बतलाया कि आप वैकुण्ठपति की शरण में जायें।" यह कहकर सभी मुनि अपने-अपने गृह लौट गये। (श्रीकृष्ण कहते हैं) तब ब्रह्मा भी मेरी अन्य मूर्त्ति, शान्त, कमलाकान्त, श्यामसुन्दर, नारायण के शरणागत हो गये। वहां जाकर उन ब्रह्मा ने जिनका कण्ठ-ओंठ-तालु शुष्क हो गया था, चतुर्भुज प्रभु नारायण को प्रणाम किया तथा वहां बैठ गये। तदनन्तर ब्रह्मा ने कृपासागर, विपत्तितारण के कारणरूप नारायण को समस्त गोपनीय विवरण कहा। यह रहस्य प्रसंग सुनकर श्रीहरि हंसने लगे तथा उन्होंने ब्रह्मा से हितप्रद, सुखावह, सारभूत सत्य वाक्य कहा-।।४५-४९।।

नारायण उवाच

स्वयं त्वं वेदविदसि विदुषां च गुरोर्गुरुः।।५०।।
त्वया कृतं च यत्कर्म इह[1] केन न तत्कृतम्।
स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा जगतां बीजरूपिणी।।५१।।

स्त्रीणां विडम्बनेनैव प्रकृतेश्च विडम्बनम्। न तद्वारवर्षं च पुण्यक्षेत्रनमुत्तमम्।।५२।।
क्रीडाक्षेत्रे ब्रह्मलोके कस्तवेन्द्रियनिग्रहः। यदि तद्भारते दैवात्कामिनी समुपस्थिता।।५३।।

१. क. हालिके०।

स्वयं रहसि कामार्ता न सा त्याज्या जितेन्द्रियैः।
त्यक्त्वा परत्र नरकं व्रजेदतिविडम्बितः[1]॥५४॥

देवदेव श्रीनारायण प्रभु कहते हैं–हे ब्रह्मा! आपने तो स्वयं वेदज्ञ तथा पण्डितों के गुरुओं के भी गुरु होकर जैसा कर्म किया, वह अन्य कोई नहीं कर सकता। स्त्री जाति प्रकृति की अंश तथा जगत् बीजरूप है। जो स्त्री जाति की अवहेलना करता है, उसके साथ विडम्बना करता है, उसने तो प्रकृति देवी की ही उपेक्षा तथा अवहेलना कर दिया। वह स्थान जहां मोहिनी आपसे मिली थी, वह अत्युत्तम पुण्यभूमि भारतवर्ष नहीं था। वह तो क्रीडा क्षेत्र ब्रह्मलोक था, जहां इन्द्रियनिग्रह आपने क्यों किया? यदि दैवात् भारत में ही कोई स्वयं कामार्त्ता नारी आ जाये, तब जितेन्द्रिय भी उसका त्याग न करे। उसका भी जो त्याग कर देगा, उसे इस लोक में दीनता तथा परलोक में नरक मिलेगा।।५४-५४।।

भवेदेव हि दुःखार्ता शापं दद्याच्च तं ध्रुवम्।
विहाय स्वकलत्रं च यो गृह्णाति परस्त्रियम्॥५५॥
लोभात्कामसुखाद्वाऽपि सोऽधमो नात्र संशयः। पातयित्वा स च पतेद्दशपूर्वान्दशापरान्॥५६॥
त्यक्त्वा स्वस्वामिनं या च परं गच्छति कामतः।
न पुमान्न च वेश्या च कुलस्त्री तत्र दुष्यति॥५७॥
उपायेन च या साध्यं करोति परपूरुषम्। तिष्ठत्येवान्धकूपे सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥५८॥

इस प्रकार त्यागी गई नारी कामवेग से दुःखार्त्त होकर निश्चित रूप से पुरुष को शाप देगी। जो पुरुष अपनी पत्नी को त्याग कर कामलालसा अथवा लोभ के कारण परनारी का वरण करता है, वह निःसंशय अधम है। उसकी वर्तमान तथा भावी १०-१० पीढ़ी के लोग नरकगामी होते हैं। यदि कुलस्त्री अपने स्वामी का त्याग करके अन्य पुरुष से समागम करती है, वह कुलस्त्री अवश्य दूषिता हो जाती है, तथापि (स्वर्ग) वेश्या तथा उससे समागमरत व्यक्ति दूषित नहीं होता। यदि कुलस्त्री उपाय द्वारा परपुरुष को अपने वश में करती है, तब वह जब तक सृष्टि में चन्द्र-सूर्य की स्थिति है, तब तक वह अन्धकूप नरक में क्लेश भोग करती रहेगी।।५५-५८।।

स्वर्वेश्या च दिवं याति सततं कुलधर्मतः।
ध्रुवं भवेत्सोऽपराधी तस्या अप्यवमानतः॥५९॥
तमुपायं करिष्यामि शप्तो यत्र विशुद्ध्यति। क्षणं तिष्ठ जगन्नाथ पापिनश्च भवार्णवे॥६०॥

तथापि स्वर्गवेश्या (अप्सरा) का कुल धर्म यही है। अतः वह स्वर्गगामी होती है। उसका जो अपमान करता है, वह तो सदैव अपराधी है। अब मैं वह उपाय कहता हूं, जिससे आपकी शाप से शुद्धि हो सके। आप क्षण भर पापीगण के भवार्णव में रहिये।।५९-६०।।

एतस्मिन्नन्तरे काश्चिदाजगाम हरेः पुरः। द्वारपालः शीघ्रगामीत्युवाच नतकंधरः॥६१॥

१. क. ०जेदिह वि०।

तभी प्रभु के समक्ष वैकुण्ठ के द्वारपाल ने नत शिर होकर तथा शीघ्रता से वहां आकर भगवान् से कहा—।।६१।।

द्वारपाल उवाच

अन्यब्रह्माण्डधिपतिर्ब्रह्मा दशमुखः स्वयम्। द्वारे तिष्ठन्महाभक्तस्त्वां द्रष्टुं स्वयमागतः।।६२।।

द्वारपालवचः श्रुत्वा स चैवानुमतिं ददौ।
द्वारपालाज्ञया ब्रह्मा तुष्टावाऽऽगत्य भक्तितः।।६३।।
स्तोत्रैरतिविचित्रैश्च चतुर्वक्त्राश्रुतैरहो।
स्तुत्वोवासाऽऽज्ञया विष्णोः कृत्वा पश्चाच्चतुर्मुखम्।।६४।।

द्वारपाल कहता है—"हे प्रभो! अन्य ब्रह्माण्ड के स्वामी दस मुख वाले ब्रह्मा आपकी दर्शनाभिलाषा लेकर भक्तिभाव से द्वार पर खड़े हैं।" श्रीहरि ने द्वारपाल का कथन सुनकर उन ब्रह्मा को लेकर आने की अनुमति दिया। तदनन्तर द्वारपाल से आज्ञा पाकर दस मुख वाले ब्रह्मा हरि के निकट आये तथा परमभक्तिभाव से प्रभु की स्तुति करने लगे। उन्होंने ऐसे विचित्र स्तोत्र द्वारा कमलाकान्त की स्तुति किया, जिसे चतुर्मुख ब्रह्मा ने कभी नहीं सुना था। तदनन्तर नारायण की आज्ञा से दसमुख वाले ब्रह्मा चतुर्मुख ब्रह्मा के पीछे बैठ गये।।६२-६४।।

नारायणो द्वारपालानित्युवाच चतुर्भुजान्। आगन्तुकं जनमपि प्रवेशयत सादरम्।।६५।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृन्दावनविनोदिनी। आजगामातिप्रणतो ब्रह्मा शतमुखःस्वयम्।।६६।।
दिव्यैः स्तोत्रैश्च तुष्टाव निगूढमतिसुन्दरैः। स्तुत्वोवास वरैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतैरहो।।६७।।

तदनन्तरं तयोरग्रे भक्त्या शतमुखः स्वयम्।
जगद्विधौ सभायां च तत्र तिष्ठति तत्क्षणे।।६८।।
आजगामान्यब्रह्माण्डाधिपो ब्रह्मा हरेः पुरः।
सहस्रवदनः श्रीमान्भक्त्या नम्रात्मकंधरः।।६९।।
स्तुत्वोवास वरैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतैरहो।
तं च प्रपच्छ सर्वेषां ब्रह्माण्डानां च ब्रह्मणाम्।।७०।।

तदनन्तर चतुर्भुज द्वारपालगण से विष्णु ने कहा—"सभी द्वारस्थ आगन्तुकगण को सादर ले आओ। हे वृन्दावनविनोदिनी राधा! तभी वहां १०० मुख वाले ब्रह्मा स्वयं आ गये। उन्होंने दिव्य गूढ़ तथा अतिसुन्दर स्तोत्रों से प्रभु की सतुति किया। ऐसी स्तुति पहले किसी ने नहीं सुनी थी। तत्पश्चात् सौमुख वाले ये ब्रह्मा चतुर्मुख एवं दसमुख ब्रह्माओं के आगे बैठ गये। इतने में ही अन्य ब्रह्माण्डाधीश्वर सहस्रमुख ब्रह्मा विष्णु के समक्ष आ गये। वे अत्यन्त विनम्रता तथा भक्ति के साथ झुककर ऐसे स्तोत्रों से प्रभु की स्तुति करने लगे जिसे आज तक किसी ने भी श्रवण नहीं किया था। जब वे स्तुति करके

आसनासीन हो गये तब भगवान् नारायण ने सभी ब्रह्माओं से उनके-उनके ब्रह्माण्ड का समाचार पूछा। उन्होंने उन ब्रह्माओं की भी कुशलता पूछा।।६५-७०।।

वार्ता विषयिणां चैव सुराणां च क्रमेण च। चतुर्मुखस्य तान्दृष्ट्वा दर्पभङ्गो बभूव ह।।७१।।

आत्मानं विष्णुसदृशं मन्यमानस्य दर्पतः।
अन्यान्यान् दर्शयामास ब्रह्माण्डस्थान्विधीन्हरिः।।७२।।
दृष्ट्वा च कृपया तत्र मृततुल्यं चतुर्मुखम्।
यावन्ति गात्रलोमानि सन्ति नारायणस्य मे।।७३।।
तत्प्रमाणाश्च ब्रह्माण्डा ब्रह्माणः सन्ति संततम्।
नारायणं प्रणम्याऽऽशु जग्मुस्ते स्वालयं प्रति।।७४।।

स मेने विधिरात्मानमत्यल्पविषयाधिपम्। पप्रच्छ प्रणतं विष्णुर्लज्जानम्रचतुर्मुखम्।।७५।।

भगवान् ने उनके यहां के देवगण का भी क्रमशः समाचार पूछा। ऐसे-ऐसे ब्रह्माओं को देखते ही चतुर्मुख ब्रह्मा का गर्व भंग हो गया। वे दर्प के कारण स्वयं को विष्णु के समान समझने लगे थे। तब भगवान् ने इन चतुर्मुख ब्रह्मा को अन्य ब्रह्माण्डों में स्थित ब्रह्माओं को भी दिखलाया। यह देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा की स्थिति मृतकवत् हो गयी। नारायण ने तब कहा कि मेरे शरीर में जितने रोम हैं, उतने ब्रह्माण्ड हैं तथा उनके अधिपति ब्रह्मा भी उतने ही हैं। ये सभी सदा विद्यमान रहते हैं। तदनन्तर सभी समागत ब्रह्मा भगवान् को प्रणाम करके अपने-अपने स्थान पर चले गये। तब चतुर्मुख ब्रह्मा ने जान लिया कि मैं तो अत्यन्त छोटे प्रदेश का ब्रह्मा मात्र हूं। वे प्रणत तथा लज्जित हो गये तब विष्णु ने उनसे प्रश्न किया।।७१-७५।।

वद तत्किमिदं दृष्टं स्वप्नवद्भवताऽधुना। नारायणवचः श्रुत्वा विधिरित्युक्तवांस्तदा।।७६।।

भूतं भव्यं भविष्यं च तव मायासमुद्भवम्।
इत्येवमुक्त्वा स विधिस्तस्थौ संसदि लज्जया।
सर्वान्तर्यामी भगवांस्तस्योपायं विनिर्ममे।।७७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मोहिनीशापब्रह्मदर्पभङ्गो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।

(विष्णु ने कहा)–"हे ब्रह्मन्! आपने इस समय स्वप्नवत् क्या देखा?" तब चतुरानन ब्रह्मा ने उत्तर दिया–"हे प्रभो! भूत-भविष्य-वर्त्तमान, सब कुछ आपकी माया से ही उत्पन्न होता है।" ब्रह्मा यह कहकर लज्जावनत स्थिति में सभा में स्थित हो गये। तब सर्वान्तरात्मा नारायण ब्रह्मा से शुद्धिलाभ का उपाय कहने लगे।।७६-७७।।

।।३३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

गङ्गा के जन्म का वृत्तान्त, भागीरथी आदि गंगा नाम की व्युत्पत्ति, गंगा माहात्म्य वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शङ्करः समुपस्थितः। सस्मितो वृषभेन्द्रस्थो विभूतिभूषणः स्वयम्॥१॥
व्याघ्रचर्माम्बरधरो नागयज्ञोपवीतकः। स्वर्णाकारजटाभारमर्धचन्द्रं च संदधत्॥२॥
त्रिशूलपट्टिशकरो विभ्रत्खट्वाङ्गमुत्तमम्। सद्रत्नसाररचितस्वरयन्त्रकरो मुदा॥३॥
वाहनादवरुह्याऽऽशु भक्तिनभ्रात्मकंधरः।
प्रणम्य कमलाकान्तं वामे चोवास[1] भक्तितः॥४॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—इसी समय विष्णु की सभा में विभूतिभूषण वृषध्वज प्रसन्नवदन स्वयं शङ्कर आ गये। उनका परिधान था व्याघ्रचर्म। उनके गले में नाग का यज्ञोपवीत था। मस्तक पर स्वर्णवर्ण की जटा थी। ललाट पर अर्द्धचन्द्र तथा उनके हाथों में मनोहर त्रिशूल, पट्टिश, उत्तम खट्वाङ्ग तथा विशुद्धरत्न निर्मित स्वरयन्त्र था। वे मुदित मन से अपने वाहन से तत्काल नीचे उतरे। उन्होंने परम भक्तिभाव से नतशिर होकर कमलाकान्त हरि को प्रणाम किया। वे कमलाकान्त के वाम भाग की ओर बैठ गये॥१-४॥

आजग्मुर्मुनयः सर्वे सुराः शक्रादयस्तथा। आदित्या वसवो रुद्रा मनवः सिद्धचारणाः॥५॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य तं शिवं सर्वे सुराश्चाऽऽनम्रकंधराः॥६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सङ्गीतं शङ्करो जगौ। कृत्वाऽतीव सुतालं च स्वरयन्त्रसमन्वितः॥७॥
आवयोश्च गुणाख्यानं राससम्बन्धि सुन्दरम्। समयोचितरागेण मनोमोहनकारिणा॥८॥
यन्त्रकण्ठैकतानेन चैकमानेन चारुणा। पदभेदविरामेण गुरुणा लघुना क्रमात्॥९॥
गमकेनातिदीर्घेण भदे (न्द्रे) न मधुरेण च।
भवेति दुर्लभं सृष्टं प्रीत्या स्वेन विनिर्मितम्॥१०॥

तभी वहां समस्त मुनिगण, इन्द्रादि सभी देवता, आदित्य, वसु, रुद्र, मनु, सिद्ध-चारण आ गये जो सभी पुलकित थे। उन सबने पुरुषोत्तम हरि की स्तुति करके नतशिर होकर शङ्कर को प्रणाम किया। उनके तदनन्तर शिव ने अपने स्वरयन्त्र के द्वारा सुमधुर ताल एवं स्वर के साथ संगीत प्रारंभ कर दिया। उनके संगीत द्वारा मेरे तथा तुम्हारे (राधा के) गुण तथा रासलीला सम्बन्धित ललित पदों का गायन हो रहा था। उस समय मनमोहक सामयिक राग, कण्ठ की एकतानता, एक मान, गुरु-लघु क्रमानुरूप अतुलनीय

---

१. क. हर्षितः।

वर्णना का वे गायन कर रहे थे। इसमें एक समान कण्ठ कलाप, गुरुलघु क्रमेण पदभेद तथा विराम, अतिदीर्घ गमक सहित मधुर संगीत शिव गा रहे थे। ऐसा संगीत जगत् में दुर्लभ है। वह संगीत उनके ही द्वारा प्रेम पूर्वक निर्मित था।।५-१०।।

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्र पुनः पुनः। तदेव श्रुतिमात्रेण मूर्च्छां प्रापुर्विचेतनाः।।११।।
बभूवू रुद्ररूपाश्च मुनयः पुरतः प्रिये। रुद्ररूपाः सुराःसर्वे विधातृहरिपार्षदाः।।१२।।
नारायणश्च लक्ष्मीश्च गायकश्च शिवः स्वयम्।
जलपूर्णं च वैकुण्ठं दृष्ट्वा त्रस्तोऽहमीश्वरि।।१३।।

उनका सर्वांग पुलकित हो उठा। उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो जा रहे थे। इस संगीत को सुनने मात्र से लोग सुध-बुध खो देते थे। वहां शङ्कर के सामने स्थित रुद्र पार्षद लोग, मुनिमण्डली, देवता, सभी-ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी तथा गायक शिव तक रुद्र रूप हो गये। वैकुण्ठ लोक जलप्लावित हो गया। हे ईश्वरी राधा! यह देखकर मैं भी त्रस्त हो गया!।।११-१३।।

गत्वा मूर्तीर्विनिर्माय सर्वाश्च तादृशीरिति। तत्स्वरूपास्तदस्त्राश्च तत्स्ववाहनभूषणाः।।१४।।
तत्स्वभावास्तन्मनस्कास्तत्तद्विषयमानसाः। स्थानं निर्माय परितो वैकुण्ठस्य चतुर्दिशि।।१५।।
तदधिष्ठातृदेवी च आजगाम स्वमालयम्। शरीरजा सुराणां सा बभूव सुरनिम्नगा।।१६।।

तदनन्तर मैंने वहां स्थित सभी देवता-मुनिगण आदि के देह (मूर्त्ति) को पुनः पूर्ववत् कर दिया (जो रुद्र रूप हो गये थे, उनको मैंने उनके पूर्वरूप से युक्त कर दिया)। अब उनका जो रूप पहले था, उनके जो अस्त्र, वाहन तथा भूषण थे, वे सब पूर्ववत् हो गये। अब उनका स्वभाव, चित्त तथा विषय वासना भी पूर्ववत् हो गया। मैंने उस जलराशि हेतु वैकुण्ठ के चतुर्दिक् गर्त्त बना दिया। तब उसकी अधिष्ठात्री देवी स्वयं अपने उस वासस्थान में आ गई। वह जल देव शरीर से उत्पन्न हो गया था। तभी इस जल की अधिष्ठात्री गंगा हो गईं। उनको देवनदी कहा गया।।१४-१६।।

मुक्तिदा च मुमुक्षूणां भक्तानां हरिभक्तिदा।
कोटिजन्मार्जितं पापं विविधं पापिनामहो।।१७।।
यस्याश्च स्पर्शवायोश्च सम्पर्केण विनश्यति।
किंवा न जाने प्राणेशि स्पर्शदर्शनयोः फलम्।।१८।।
किमुत स्नानजन्यं च कथयामि निरूपणम्।
सर्वतीर्थात्परं पृथ्व्यां पुष्करं परिकीर्तितम्।।१९।।

ये गङ्गा मोक्षकामी को मोक्ष तथा भक्तगण को भगवद्भक्ति प्रदान करती हैं। हे प्राणेश्वरी राधिके! इन देवनदी के स्पर्श तथा दर्शन का फल मुझे भी नहीं ज्ञात है। तब इसमें जो स्नान करते हैं, उनको मिलने वाले पुण्य फल का वर्णन कैसे कहा जाये! पृथिवी पर सभी तीर्थों से श्रेष्ठ पुष्कर तीर्थ कहा गया है।।१७-१९।।

वेदोक्तं च तदेवास्याः कलां नार्हति षोडशीम्।
भगीरथेन चाऽऽनीता तेन भागीरथी स्मृता॥२०॥
गामागता स्त्रोतसोंऽशाद्गङ्गा तेन प्रकीर्तिता।
जानुद्वारा पुरा दत्ता जह्नुनाऽऽपीय कोपतः॥२१॥
तस्य कन्यास्वरूपा सा जाह्नवी तेन कीर्तिता।
भीष्मः स्वयं वसुर्जातस्तस्यांशात्तेन भीष्मसूः॥२२॥

तथापि वह पुष्करतीर्थ गङ्गा की षोडशवीं कला (१/१६) के समान भी नहीं है। यह भगीरथ राजा द्वारा धरती पर लाई जाने के कारण **भागीरथी** कहलाईं। यह अपने स्त्रोत के अंश से धरती पर आने के कारण **गङ्गा** कही गई। पूर्वकाल में जह्नु मुनि क्रोध पूर्वक गंगा का पान कर गये। अन्त में उन्होंने गङ्गा को अपने जानु से बहिर्गत् कर दिया। तब से उनकी कन्यास्वरूपा गङ्गा **जाह्नवी** कहीं गयी। वसु के अंशरूप भीष्म गंगा के गर्भ से उत्पन्न हो गये थे। तभी इस नदी को **भीष्म जननी** कहा गया।।२०-२२।।

धाराभिस्तिसृभिः स्वर्गं पृथिवीमतलं तथा।
ममाऽऽज्ञया च गच्छन्ती तेन त्रिपथगामिनी॥२३॥
प्रधानधारया स्वर्गे सा च मन्दाकिनी स्मृता।
योजनायुतविस्तीर्णा प्रस्थे च योजना स्मृता॥२४॥
क्षीरतुल्यजला शश्वदत्युत्तुङ्गतरङ्गिणी। वैकुण्ठाद्ब्रह्मलोकं च ततः स्वर्गं समागता॥२५॥
स्वर्गाद्धिमाद्रिमार्गेण पृथिवीमागता मुदा।
सा धाराऽलकनन्दाख्या लवणोदेन मिश्रिता॥२६॥

मुझ कृष्ण की आज्ञा से गङ्गा त्रिधारात्मक होकर स्वर्ग-धरती-पाताल में जाने के कारण **त्रिपथगामिनी** कही गई। इस गंगा की सर्वप्रधानधारा **मन्दाकिनी** १० हजार योजन लम्बी, १ योजन चौड़ी स्वर्ग में है। इसका जल क्षीर सागरवत् है तथा यह उत्ताल तरंग युक्त है। यह वैकुण्ठ से ब्रह्मलोक आई तब वहां से स्वर्गगामिनी हो गई। जो गंगाधारा हिमालय होती स्वर्ग से हर्षित होकर पृथिवी पर आकर लवण-सागर से मिलित हो गई, वही **अलकनंदा** है।।२३-२६।।

शुद्धस्फटिकसंकाशा बहुवेगवती सती। पापिनां पापशुष्केन्धं दग्धुं पावकरूपिणी॥२७॥
अहो सागरवंशेभ्यो निर्वाणमुक्तिदायिनी।
वैकुण्ठगामिनी सा च सोपानरूपिणी वरा॥२८॥
अतोऽपि मृत्युसमये सतां पुण्यस्वरूपिणाम्।
आदौ पादौ च संन्यस्य मुखे तोयं प्रदीयते॥२९॥

गङ्गासोपानमारुह्य सन्तो यान्ति निरामयम्।
आब्रह्मलोकं संलङ्घ्य रथस्थाश्च निरापदः॥३०॥

गंगा शुद्ध स्फटिकवत् धवल वर्ण जल वाली, अत्यन्त वेगयुक्त है। यह पातकी लोगों के पातक को वैसे ही जला देती है जैसे अग्नि द्वारा सूखी लकड़ी दग्ध हो जाती है। अहो! सागर के वंशजात पुत्रगण को गंगा द्वारा ही निर्वाणमुक्ति मिल सकी। यह वैकुण्ठ जाने के लिये श्रेष्ठ सोपान है। तभी मुमूर्षु पुण्यशील साधुगण का दोनों चरण सन्यस्त करके तब उनके मुख में गङ्गाजल छोड़ते हैं। साधुगण गङ्गारूपी सोपान से निरामय वैकुण्ठ तक चले जाते हैं। वे ब्रह्मलोक को भी पार करके विमानारूढ़ होकर अबाधित गति से गमन करते हैं॥२७-३०॥

दैवात्पुरा प्राक्तनेन मग्नं चेत्कृतपातकैः। लोकप्रमाणवर्षं च मोदन्ते हरिमन्दिरे॥३१॥

ततो भोगो भवेत्तेषां निश्चितं पापपुण्ययोः।
अतिस्वल्पेन कालेन कालव्यूहं च बिभ्रताम्॥३२॥
ततः पुण्यवतां गेहे लब्ध्वा जन्म च भारते।
सम्प्राप्य निश्चलां भक्तिं भवन्ति हरिरूपिणः[1]॥३३॥

यदि दैवयोग से तथा प्राक्तन किसी पुण्यफल से महापापी भी गङ्गा में डूबने से मृत हो जाते हैं, तब उनको सभी पातकों से मुक्तिलाभ हो जाता है। उनको मेरी सारूप्यमुक्ति का लाभ होता है। वे शिव के श्रेष्ठ पार्षद होकर उनके समीप निवास करते हैं। उन मेरे स्वरूप को प्राप्त पुरुषों की प्रलयकाल में भी मृत्यु नहीं होती। यदि किसी भी प्रकार, किसी की मृत देह गङ्गाजल में गिर जाती है, तब उसके जितने रोम उसके शरीर में हैं, वह उतने वर्षों तक हरिलोक में निवास करता है। इसके अनन्तर उनको अपने पूर्वकृत पाप-पुण्य का भोग करना पड़ता है, तथापि वे स्वल्पकाल में इस भोग के काल को पूर्ण कर लेते हैं। तदनन्तर उनका भारत में पुण्यात्मा के यहां जन्म होता है। तदनन्तर उनको प्रभु की निश्चल भक्ति मिलती है और वे हरिरूप हो जाते हैं॥३१-३३॥

मृतद्विजानां देहांश्च दैवाच्छूद्रा वहन्ति चेत्। पदप्रमाणवर्षं च तेषां च नरके स्थितिः॥३४॥

ततस्तेषां च साहाय्यं करोति हरिरूपिणी।
ददाति मुक्तिं तेभ्योऽपि क्रमेण च कृपामयी॥३५॥

यदि मृत द्विज के शव का वहन दैववशात् शूद्र करता है, तब जितने पग वह शूद्र शव ढोकर ले जाता है, उतने वर्षपर्यन्त उस व्यक्ति की स्थिति नरक में होगी, तथापि हरिरूपा गङ्गा उनकी सहायता करके तथा कृपामयी होकर उन्हें क्रममुक्ति प्रदान करती है॥३४-३५॥

जन्म पुण्यवतां गेहे कारयित्वा च भारते।
स्थलं ददाति वैकुण्ठे निश्चितं जन्मभिस्त्रिभिः॥३६॥

१. क. मम पार्षदाः।

यात्रां कृत्वा तु यः शुद्धौ स्नातुं याति सुरेश्वरीम्।
पदप्रमाणवर्षं च वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम्॥३७॥

वह तीन जन्मों तक भारत में पुण्यात्माओं के यहां जन्म लेता है। तदनन्तर गङ्गा उसे वैकुण्ठ में निश्चित रूप से स्थान प्रदान कर देती है। जो स्वशुद्धि हेतु गङ्गा स्नानार्थ पदयात्रा करता है, इसमें वह जितने पद चलेगा, वह उतने वर्षों तक वैकुण्ठ में मुदित स्थिति में रहता है। यह निश्चित है।।३६-३७।।

गङ्गां प्राप्यानुषङ्गेण स्नाति चेत्समलो[1] नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्यदि न लिप्यते॥३८॥

यदि कोई व्यक्ति गङ्गा-स्नान के ध्येय से न जाकर अन्य कर्मों हेतु गङ्गा के निकट जाकर हठात् आनुषंगिक रूप से गङ्गा स्नान करता है, वह सभी पातकों से मुक्त हो जायेगा यदि पुनः पातकों में लिप्त न हो।।३८।।

कलौ पञ्चसहस्राब्दं स्थितिस्तस्याश्च भारते।
तस्यां च विद्यमानायां कः प्रभावः कलेरहो॥३९॥
कलौ दशसहस्राणि वर्षाणि प्रतिमा मम।
तिष्ठन्ति च पुराणानि प्रभावस्तत्र कः कलेः॥४०॥
अतलं याति या धारा सा च भोगवती स्मृता। पयःफेननिभा शश्वदतिवेगवती सदा॥४१॥
आकाराऽमूल्यरत्नानां मणीन्द्राणां च संततम्।
नागकन्याश्च यत्तीरे क्रीडन्ति स्थिरयौवनाः॥४२॥

यह गङ्गा कलिकाल के ५००० वर्षों तक ही भारत में स्थित रहेगी। गङ्गा की विद्यमानावस्था में कलि का कोई प्रभाव नहीं रहेगा। कलिकाल के १०००० वर्ष पर्यन्त मेरी प्रतिमा तथा पुराणों की स्थिति रहेगी। मेरी प्रतिमा की विद्यमानावस्था पर्यन्त कलिकाल का कोई प्रभाव ही नहीं रहेगा। गङ्गा की जो धारा पातालगामिनी है, उसका नाम है भोगवती। उसकी जलराशि दुग्धफेन के समान है। वह सदा अत्यन्त वेग से प्रवाहित रहती है। भोगवती नदी तो रत्न तथा मणियों की खान है। उसके तट पर स्थिर यौवना नागकन्यायें सतत् क्रीड़ारत रहती हैं।।३९-४२।।

स्वयं देवी च वैकुण्ठं वेष्टयित्वा च संततम्।
सहस्रयोजना प्रस्थे दैर्घ्ये च लक्षयोजना॥४३॥
अस्या विनाशः प्रलये नास्त्येव दुहितुर्मम। नानारत्नाकरं दिव्यं तत्तीरं सुमनोहरम्॥४४॥

गङ्गा देवी वैकुण्ठ को चारों ओर से घेरे हुये स्थित हैं। यह वहां १००० योजन चौड़ी तथा १ लाख योजन तक फैली है। मेरी पुत्री गङ्गा का नाश प्रलय में भी नहीं होता। उसका मनोहर दिव्यतट नाना रत्नों की खान है।।४३-४४।।

१. क. चेन्मौसलं न०।

इत्येवं कथितं सर्वं जाह्नवीजन्म पुण्यदम्। ब्रह्मणश्च प्रतीकारो मोहिनीशापतः शृणु॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० जाह्नवीजन्मप्रस्तावो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

हे राधा! यह मैंने जाह्नवी के जन्म का यह पुण्यदायक प्रसङ्ग कह दिया। अब मैं ब्रह्मा की मोहिनी के शाप से मुक्ति का प्रसङ्ग कहता हूं। श्रवण करो॥४५॥

॥३४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

गङ्गा-स्नान द्वारा ब्रह्मा की शापमुक्ति, भारती से ब्रह्मा का संभोग, रति-काम का जन्म, कामबाण से ब्रह्मा का चित्तविकार और नारायण एवं ऋषियों द्वारा ब्रह्मा को उपदेश देना

श्रीकृष्ण उवाच

नारायणश्च ब्रह्माणमुवाच कृपया पुनः। दृष्ट्वा गङ्गां च सर्वे तां मम मायां च मेनिरे॥१॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—इधर नारायण की सभा में सभी ने गङ्गा को देखकर इसे मेरी माया कहा। उस समय वैकुण्ठनाथ नारायण ने कृपा पूर्वक ब्रह्मा से कहा—॥१॥

नारायण उवाच

उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते भविष्यति चतुर्मुख।
अत्र स्नात्वाऽभिशप्तस्त्वं पूता भव ममाऽऽज्ञया॥२॥
त्वं चेत्सत्यं स्वयं पूतः स्पर्शं वाञ्छन्ति तानि ते।
वैष्णवेशस्य तीर्थानि सर्वाणि सततं मुने॥३॥

तथाऽपि शापमुक्तस्त्वमत्र प्रकृतिहेलनात्। अहङ्कारश्च सर्वेषां पापबीजममङ्गलम्॥४॥

श्रीनारायण देव कहते हैं—हे भद्र चतुर्मुख! आप अभिशप्त हो गये हैं, अतः मेरी आज्ञानुसार उठें तथा गङ्गाजल में स्नान करके पवित्र हो जायें। आप का मङ्गल हो। आप गङ्गाजल में स्नान द्वारा

निश्चित पवित्र हो जायेंगे। सभी तीर्थ आपके समान वैष्णवप्रवर के स्पर्श की कामना करते हैं। इसलिये प्रकृति की जो (मेनका की) अवहेलना आपने करके शाप पाया है, उससे भी मुक्ति मिलेगी। अहङ्कार अमङ्गलरूप तथा पापबीजरूप है।।१-४।।

शीघ्रं त्वं गच्छ गोलोकं ममाऽऽलयं परात्परम्।
प्रकृत्यंशां मङ्गलदां तत्र प्राप्स्यसि भारतीम्।।५।।
प्रकृतिं भज कल्याण सृष्टिबीजस्वरूपिणीम्।
अहो कल्पान्तपर्यन्तं तपस्तप्तं त्वयाऽधुना।।६।।
तव मन्त्रं न गृह्णन्ति केऽपि वेश्याभिशापतः। यदन्यदेवपूजायां तव पूजा भविष्यति।।७।।

आप यथाशीघ्र मेरे गृह गोलोक जायें। वहां आपको प्रकृति की ही अंशरूपा मङ्गलप्रदा भारती (सरस्वती) मिलेगी। आप उन कल्याण सृष्टिबीजरूपा प्रकृति का भजन करिये। यह अत्यन्त शोचनीय विषय है कि आपने कल्पान्त पर्यन्त तप किया, तब भी इस समय आपका मन्त्र कोई भी ग्रहण नहीं करेगा, तथापि अन्य देवगण की पूजा के ही साथ आपकी भी पूजा होगी।।५-७।।

त्वमेव जगतां धाता स्वात्मारामश्च योषितः। सर्वरूपी च पूजा च सर्वदेहेषु सर्वतः।।८।।
तदा ममाऽज्ञया ब्रह्मा स्नात्वा च जाह्नवीजले।
शीघ्रं जगाम गोलोकं मां प्रणम्य जगद्गुरुः।।९।।

"आप जगत्विधाता, स्वात्माराम, सर्वरूपी तथा सभी शरीर में सदा पूज्य हैं।" हे राधिके! तब ब्रह्मा ने मेरी आज्ञा के अनुसार जाह्नवी जल में स्नान किया तथा जगद्गुरु रूप मुझे प्रणाम करके शीघ्र गोलोक चले गये।।८-९।।

ते देवा मुनयः सर्वे प्रजग्मुः स्वालयं मुदा। सुनिर्मलं मम यशो गायन्तश्च पुनः पुनः।।१०।।
विधिरागत्य गोलोकं सम्प्राप्य भारतीं सतीम्।
सर्वविद्याधिदेवीं तां मदृक्त्राश्च[1] विनिर्गताम्।।११।।
वागीश्वरीं च सम्प्राप्य ब्रह्मा प्रमुदितः स्वयम्।
कामास्त्राणां च व्यापारमनुमेने स्वयं विभुः।।१२।।
तत आगत्य मां नत्वा प्राप्य त्रैलोक्यमोहिनीम्।
क्रीडां चकार भगवान्स्थाने स्थानेऽतिनिर्जने।।१३।।
रतिं चिरतरं कृत्वा विरराम स्वयं विधिः। वागीश्वरीमुवाचेदं त्वं वै ब्रह्मा च कर्मणा।।१४।।
काचित्स्वकर्मणा साध्वी पूज्या च स्थिरयौवना।
तवैव कर्मयोगं च युवानं पश्य सुन्दरि।।१५।।

---
१. ख. ॰क्त्राब्जविनिर्मिताम्।

विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान्भवेत्।
जरातुरोऽहं वृद्धश्च तपस्वी वैष्णवो द्विजः॥१६॥
अस्वतन्त्रः पराधीनः का रतिः पुंश्चलीषु मे।
आजगाम ब्रह्मलोकं पुनरेव निजालयम्॥१७॥

तदनन्तर सभी देवता तथा मुनिगण पुनः-पुनः मेरे निर्मल यश का गायन करते-करते अपने-अपने गृह लौट गये। उधर ब्रह्मा ने गोलोक जाकर सर्वविद्याअधिष्ठात्री सती भारती को प्राप्त किया, जो मेरे मुखकमल से आविर्भूत हैं। वागीश्वरी (भारती) को पाकर ब्रह्मा अत्यन्त प्रमुदित हो गये। उस समय ब्रह्मा ने कामदेव को स्वयं अपने ऊपर कामास्त्र चलाने की अनुमति दे दिया। उन्होंने उन त्रैलोक्यमोहिनी भारती को पाकर मुझे प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा भारती को लेकर अत्यन्त निर्जन स्थान में जाकर उनके साथ रतिक्रीड़ा (अनेक स्थानों में) करने लगे। दीर्घकालपर्यन्त यह रति क्रीड़ा करने के उपरान्त विधाता इससे विरत होकर सरस्वती से कहने लगे कि "हे देवी! तुम तो कर्म से ब्रह्मा ही हो। कोई भी नारी अपने (उत्तम) कर्म के कारण सती साध्वी, पूज्यनीय तथा स्थिर यौवन वाली हो जाती है। हे सुन्दरी! तुम अपने कर्म हेतु किसी युवा को देखो। चतुरा का चतुर से सम्बन्ध गुणमय होता है। मैं जरा से आतुर, वृद्ध, तपस्वी, वैष्णव ब्राह्मण हूं। मैं पराधीन हूं। मैं स्वतन्त्र नहीं हूं। अतः पुंश्चली नारी के प्रति मेरा कोई आकर्षण नहीं है। मैं अपने गृह ब्रह्मलोक पहुंच गया हूं।।१०-१७।।

ददृशुर्ब्रह्मलोकस्थास्तां देवीं कौतुकान्विताः।
अतीव सुन्दरीं रम्यां शुभ्रवर्णां च सस्मिताम्॥१८॥
शरच्छीतांशुवदनां शरत्पङ्कजलोचनाम्। पक्वबिम्बप्रभामुष्टदीप्तौष्ठाधरपल्लवाम्॥१९॥
मुक्तापङ्क्विविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम्। रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरशोभिताम्॥२०॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन कर्णमूलविराजिताम्। रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलाम्॥२१॥
वह्निशुद्धांशुकं सूक्ष्मं बिभ्रतीं नवयौवनाम्।
अतीव कमनीयां च पीनश्रोणिपयोधराम्॥२२॥
वीणापुस्तकहस्तां च व्याख्यामुद्राकरां वराम्।
ते च निर्मञ्छनं कृत्वा चक्रुः परममङ्गलम्॥२३॥

तब ब्रह्मलोक निवासी लोगों ने कौतुक पूर्वक भारती को देखा कि वे अतीव सुन्दरी, शुभ्रवर्णा, मन्द मुस्कान वाली हैं, जिनका मुखमण्डल शारदीय पूर्णचन्द्र के समान है। उनके नेत्रद्वय शरत्कालीन खिले कमल के समान हैं। उनके अधर एवं ओष्ठ तो पके बिम्बफल की शोभा का भी हरण करते प्रतीत हो रहे हैं। उनकी दन्तपंक्ति तो मुक्तापंक्ति की शोभा से भी कहीं अधिक है। उनके मनोहर कपोल रत्नमय कुण्डलयुगल से शोभायमान हैं। उनका वक्षस्थल रत्नों के सार से बनी हार की लड़ियों से उद्भासित हो रहा है। ये देवी रत्नमय केयूर, वलय (कंकण) तथा नूपुर से शोभायमान हैं। ये नवयौवना

हैं, जिनका शरीर अग्निशुद्ध सूक्ष्म वस्त्र के परिधान से युक्त है। ये अत्यन्त कमनीय हैं, जिनका नितम्ब तथा स्तनद्वय अत्यन्त स्थूल हैं। इन्होंने अपने हस्तद्वय में वीणा-पुस्तक धारण किया है तथा अन्य हाथ व्याख्यामुद्रा युक्त हैं। यह देखकर ब्रह्मलोक के लोगों ने देवी को अनेक उत्तम वस्तु प्रदान करके परममाङ्गलिक उत्सव मनाया।।१८-२३।।

पुरीं प्रवेशयामासुब्रह्माणं भारतीं मुदा।
ब्रह्मा तया सह क्रीडां चकार स दिवानिशम्।।२४।।

अतीव सुखसंभोगे निमग्नः सततं मुदा। गूढं सर्वपुराणेषु किं पुनः श्रोतुमिच्छसि।।२५।।

उन्होंने अत्यन्त उत्सव के साथ ब्रह्मा तथा भारती को मुदित होकर नगरी में प्रवेश कराया। वहां ब्रह्मा भी अहर्निश भारती के साथ क्रीड़ामग्न हो गये। वे सतत् मुदित होकर अतीव सुखमय संभोग में भारती के साथ निरत रहते थे। यह सभी पुराणों का गूढ़ तत्त्व है। हे राधा! अब तुम क्या सुनना चाहती हो?।।२४-२५।।

नारायण उवाच

प्राणेशवचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी। भयोऽपि परिपप्रच्छ कौतुकान्मानसं पुरा।।२६।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–प्राणेश्वर माधव का यह कथन सुनकर परमेश्वरी राधा ने हंसकर कौतुक के कारण पुनः अपना मनोभाव श्रीकृष्ण से कहा–।।२६।।

राधिकोवाच

ब्रह्मा कथं न जग्राह वेश्यां स्वयमुपस्थिताम्।
न कर्मक्षेत्रे रहसि फलदाता च कर्मणाम्।।२७।।
उपस्थितायास्त्यागे च महान्दोषोहि योषितः।
ज्ञात्वा[1] देवो विधाता स कथं तत्याज मोहिनीम्।।२८।।

देवी राधिका कहती हैं–हे नाथ! सर्वकर्मफलदाता ब्रह्मा ने एकान्त स्थल में स्वयं उस मोहिनी वेश्या के उपस्थित होने पर उसे ग्रहण क्यों नहीं किया था? ब्रह्मलोक तो भारत की तरह कर्मक्षेत्र नहीं है। ब्रह्मा ने यह जानकर भी कि स्वयं समागत नारी का त्याग करना महादोषजनक है, तब भी उन्होंने मोहिनी का त्याग क्यों किया था?।।२७-२८।।

नारायण उवाच

राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः। पाद्मकल्पस्य वृत्तान्तमुवाच परमेश्वरीम्।।२९।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–राधिका का यह कथन सुनकर मधुसूदन ने परमेश्वरी राधा से हंसते हुये पाद्मकल्प का वह प्रसंग सुनाया।।२९।।

१. क. ०त्वा वेदधि०।

श्रीकृष्ण उवाच

श्रृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि पुरावृत्तान्तमीप्सितम्।
अकथ्यं गोपनीयं च महतामभिनिन्दितम्।।३०।।

एकदा च प्रजाः स्त्रष्टुं विधाता प्रेरितो मया। ससर्ज मनसा पुत्राञ्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा।।३१।।
सनकं च सनन्दं च सनातनमनुत्तमम्। सनत्कुमारं वोढुं च कविं पञ्चशिखं विभुम्।।३२।।

असितं कपिलं सिद्धं सिद्धान्मम कलोद्भवान्।
तान्नग्नान्पञ्चवर्षीयान्पिता स्त्रष्टुं जगाद ह।।३३।।

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे प्रिये! मैं पूर्ववर्त्ती महात्माओं के गुप्त, अकथनीय, अभिनन्दित (कोई विद्वान् इसका अर्थ अतिनिन्दनीय भी करते हैं) जो समस्त विषय है, वह तुमसे कहता हूं। श्रवण करो। एक समय मैंने ब्रह्मा को प्रजासृष्टि हेतु प्रेरित किया था। तब ब्रह्मा ने ब्रह्मतेज से प्रज्वलित हो रहे मानसपुत्रों की सृष्टि किया था। उनके नाम हैं सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, वोढु, कवि, पंचशिख, सिद्ध, कपिल, असित। ये सभी पञ्चवर्षीय बालक लगने वाले मेरी कला से उत्पन्न सिद्धगण नग्न थे। इनको पितामह ब्रह्मा ने सृष्टि का आदेश दिया।।३०-३३।।

प्रजाः स्त्रष्टुं प्रेरकं च जनकं तेऽवमन्य च। प्रजग्मुस्तपसे तूर्णं ममार्चनपरायणाः।।३४।।
तदा रुष्टो जगद्धाता पुनः पुत्रान्विनिर्ममे। रुद्रानेकादश वरान्रुदतो भीमविग्रहान्।।३५।।

तस्मिन्प्रयुज्य तरसा पुनः पुत्रान्विनिर्ममे।
योग योगेन मां ध्यात्वा स्वात्मारामः स्वविग्रहे।।३६।।

ये सभी मानसपुत्र सतत् मेरी अर्चना में लगे रहते थे। इन्होंने सृष्टि प्रेरक पिता की आज्ञा की अवहेलना किया तथा तत्काल तप करने चले गये। तदनन्तर रुष्ट होकर जगत्विधाता ब्रह्मा ने पुनः पुत्रोत्पत्ति किया, जो भयानक रूप वाले, रुदनरत एकादश रुद्र थे। इनको सृष्टि कार्य में नियोजित करके ब्रह्मा ने अपने स्वात्माराम विग्रह देह में योग द्वारा मेरा ध्यान किया।।३४-३६।।

वसिष्ठं पुलहं चैव क्रतुमङ्गिरसं तथा। भृगुमत्रिं पुलस्त्यं च दक्षं कर्दममेव च।।३७।।
मरीचिं च विनिर्माय प्रजाः स्त्रष्टुं नियुज्य च। प्रहृष्टमानसः पुत्रं कन्यैकां च ससर्ज ह।।३८।।
कृष्णस्य कामिनः पुत्रः कामदेवो बभूव ह। कन्या षोडशवर्षीया रत्नभूषणभूषिता।।३९।।

उवाच पुत्रं स विधिः सुदीप्तं पुरतः स्थितम्।
दुर्निवार्यं मत्कलांशं स्वात्मारामं मनोहरम्।।४०।।

इस ध्यान से वसिष्ठ, पुलह, क्रतु, अंगीरा, भृगु, अत्रि, पुलत्स्य, पुलह, दक्ष, कर्दम तथा मरीचि जन्मे। ब्रह्मा ने इनको प्रजासृष्टि कार्य में नियुक्त किया। तदनन्तर हर्षित होकर ब्रह्मा ने एक पुत्र तथा एक कन्या का सृजन किया। यह पुत्र ही (कालान्तर में) कामयुक्त श्रीकृष्ण के पुत्र कामदेव (प्रद्युम्न)

होकर जन्मे थे। रत्नाभूषण भूषित जो कन्या सृष्ट हुई वह १६ वर्षीय थी। उस समय ब्रह्मा ने अपने सामने स्थित परमदीप्त, दुर्निवार, मेरी ही कला के अंश से उत्पन्न स्वात्माराम मनोहर उस पुत्र से कहा-।।३७-४०।।

ब्रह्मोवाच

स्त्रीपुंसोः क्रीडनार्थाय मुदा त्वं च विनिर्मितः।
हृदि योगेन सर्वेषामधिष्ठानं करिष्यसि।।४१।।

सम्मोहनं समुद्वेगं बीजस्तम्भितकारणम्। उन्मत्तबीजं ज्वलदं शश्वच्चेतनहारकम्।।४२।।
प्रगृह्यैतान्मया दत्तान्सर्वान्सम्मोहनं कुरु। दुर्निवार्यो मम वराद्भव वत्स भवेषु च।।४३।।

ब्रह्मा कहते हैं-हे पुत्र! मैंने तुम्हारा सृजन स्त्री-पुरुषों की क्रीड़ार्थ मुदित मन से किया है। तुम योग द्वारा सबके हृदय में अधिष्ठान करो। तुम मेरे द्वारा प्रदत्त इन पांच बाणों को लेकर सब का सम्मोहन करो। हे वत्स! मेरा वरदान यह है कि इन पंचबाण का कोई प्रतिरोध नहीं कर सकेगा। इनके नाम हैं-सम्मोहन, समुद्वेग, बीजस्तम्भन कारण, उन्मत्त बीज, ज्वलद।।४१-४३।।

बाणान्दत्त्वैवमुक्त्वा च प्रहृष्टश्च जगद्विधिः। दृष्ट्वोवाच दुहितरं वरं दातुं समुद्यतः।।४४।।
एतस्मिन्नन्तरे कामो मनसाऽऽलोच्य मन्त्रणाम्।
कर्तुं शस्त्रपरीक्षां च बाणांश्चिक्षेप ब्रह्मणि।।४५।।
मन्त्रपूतैश्च बाणैश्च दुर्वार्यैः स्मरणेन च। अतिविद्धो महायोगी मूर्च्छितो हतचेतनः।।४६।।
क्षणेन चेतनां प्राप्य ददर्शाग्रे च कन्यकाम्।
तां संभोक्तुं मनश्चक्रे सा दुद्राव भिया सती।।४७।।
दृष्ट्वा पश्चाच्च पितरं धावन्तं हतचेतनम्।
जगाम शरणं शीघ्रं भ्रातृणां च तपस्विनाम्।।४८।।

यह वर तथा बाण उस पुत्र को देकर विधाता ब्रह्मा अत्यन्त हर्षित हो गये। तदनन्तर ब्रह्मा उस पुत्री को देखकर उसे भी वर प्रदानार्थ उद्यत हो गये। तभी कामदेव (पुत्र) ने विचार किया तथा उन बाणास्त्र के परीक्षणार्थ उसे ब्रह्मा पर ही छोड़ा। सिद्ध महायोगी ब्रह्मा कामदेव द्वारा छोड़े मन्त्रपूत तथा दुर्निवार (जिसका निवारण कोई न कर सके), बाण के प्रभाव से चेतना तथा सुध-बुध खो बैठे। क्षणकालोपरान्त ब्रह्मा ने अपने समक्ष उस कन्या (पुत्री) को देखा तथा हतचेतन ब्रह्मा उस कन्या से ही संभोग की कामना करते उसके पीछे दौड़ने लगे। उस सती कन्या ने भय पूर्वक वहां से पलायन कर दिया। इस कन्या ने अपना आपा कामवशात् खो बैठे पिता को जब अपने पीछे दौड़ते देखा, तब वह अपने तपस्वी भाईयों की शरण में चली गई!।।४४-४८।।

तं तां समीपे संस्थाप्य तमूचे पितरं क्रुधा। हितं तथ्यं च वेदोक्तं नीतिसारं परं वचः।।४९।।

तब वे तपस्वी मुनिगण बहन के अपने संरक्षण में लेकर क्रोध पूर्वक पिता ब्रह्मा से हितप्रद, वेदसाररूप एवं नीतिपूर्ण सत्य वाक्य कहने लगे।।४९।।

ऋषय ऊचुः

अहो किमेतज्जनक कर्म तेऽतिविगर्हितम्।
नीचानां[1] चरितं यत्तत्करोषि त्वं जगद्विधे।।५०।।

पश्यन्ति सततं सन्तः प्रसूमिव परस्त्रियम्। ये ते सर्वत्र पूज्याश्च परत्रेह जितेन्द्रियाः।।५१।।

ऋषिगण कहते हैं–हे पिता! आपका यह कैसा गर्हित कार्य है? आप यह नीचों द्वारा किया जाने वाला कार्य क्यों कर रहे हैं? हे जगद्विधाता! सन्तजन सतत् परनारी को अपनी माता जैसा देखते हैं। जो जितेन्द्रिय हैं, वे तो इहलोक तथा परलोक, सर्वत्र पूजित हो जाते हैं।।५०-५१।।

त्वं स्वयं वेदकर्ता च कन्यां संभोक्तुमिच्छसि।
कन्या च मातृवर्गेषु प्रविष्टा च श्रुतौ श्रुता।।५२।।
गुरोः पत्नी राजपत्नी विप्रपत्नी च या सती।
पत्नी च भ्रातृसुतयोर्मित्रपत्नी च तत्प्रसूः।।५३।।
प्रसूः पित्रोस्तथा भ्रातुः पत्नीश्वश्रूः स्वकन्यकाः।
जननी तत्सपत्नी च भगिनीं सुरभी तथा।।५४।।
स्वाभीष्टसुरपत्नी च धात्रिकाऽन्नप्रदायिका।
गर्भधात्री स्वनाम्ना च भयात्त्रातुश्च कामिनी।।५५।।
एता वेदप्रणीताश्च सर्वेषां मातरः स्मृताः।
एतास्वपि च सर्वासु न्यूनता नास्ति कासु च।।५६।।

आप स्वयमेव वेदकर्त्ता होकर भी अपनी पुत्री के साथ संभोग की इच्छा कर रहे हैं? श्रुति का कथन सुना गया है कि अपनी कन्या मातृवर्ग में आती है। गुरुपत्नी, राजा की पत्नी, ब्राह्मण की पत्नी, सती, भाई तथा पुत्र की पत्नी, मित्र की पत्नी एवं उनकी मातायें, माता-पिता की जन्मदायिनी माता, सास, अपनी पुत्री, माता, माता की सौत, बहन, गौ, इष्टदेव की पत्नी, धाय मा, अन्न देने वाली, जो गर्भकाल से ही धाय का कार्य कर रही है, जो भय से छुटकारा दिलाये उसकी पत्नी, वेदों के अनुसार ये सभी माता हैं। इनमें से कोई भी छोटी नहीं है। ये समान रूप से माता हैं।।५२-५६।।

कन्यादाताऽन्नदाता च ज्ञानदाताऽभयप्रदः।
जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठ भ्राता च पितरः स्मृताः।।५७।।

एता वहन्ति ये मूढा ये एताञ्जनकानपि। पच्यन्ते नरके ते च यावद्वै ब्राह्मणो वयः।।५८।।

१. क. नीचैर्नाऽऽच॰।

तानन्धकूपे संस्थाप्य दूरतो यमकिङ्कराः। कुर्वन्ति ताडनं शश्वत्पुरीषं पाययन्ति च॥५९॥

कन्यादाता, अन्नदाता, ज्ञानदाता, अभयदाता, जन्मदाता, मन्त्रदाता, ज्येष्ठ भाई-पितृतुल्य होते हैं। जो मूढ़ इनकी अवमानना तथा अपमान करता है, वह ब्रह्मा के जीवनकाल तक नरकगामी होता है। यमदूत भी इनका स्पर्श न करके दूर से ही इनको नरक में फेंक कर सतत् इन पर ताड़ना तथा प्रहार करते हैं। इनको मल भोजन मिलता है।।५७-५९।।

त्वमेव विश्वकर्ता च शास्ता वै शमनस्य च।
स्वयं विधाता जगतां तेन गृह्णासि कन्यकाम्॥६०॥
अस्माकं पुरतो दूरं गच्छ कामार्तमानस।
न कुर्मो भस्मसात्कर्तुं शक्ताश्च जनकं वयम्॥६१॥
गुरोर्दोषसहस्राणि क्षन्तुमर्हन्ति पण्डिताः।
सर्वघ्नं तं विनिघ्नन्ति नीतिज्ञाः स्वगुरुं विना॥६२॥

हे ब्रह्मन्! आप विश्व के स्रष्टा, यमराज के भी शासक तथा त्रैलोक्य विधाता हैं। आप अपनी ही कन्या को ग्रहण करने की अभिलाषा कर रहे हैं? हे कामुक! आप हमारी दृष्टि से शीघ्र दूर हो जायें। आपका मन कामवासना से कलुषित हो रहा है। हम यद्यपि आपको भस्म कर सकते हैं, तथापि पिता होने के कारण हम पुत्रगण आपको क्षमा कर रहे हैं। जो विद्वान् हैं, वे गुरु के सहस्रों दोषों को क्षमा कर देते हैं। नीतिज्ञ जन सबका हनन करने वालों का वध कर देते हैं, परन्तु अपने गुरु का वध नहीं करते।।६०-६२।।

गृह्णन्तं यदि सर्वस्वं शपन्तं निष्ठुरं गुरुम्।
साधवस्तं न निन्दन्ति प्रणमन्ति स्वभक्तितः॥६३॥
ये द्विषन्ति च निन्दन्ति गुरुमिष्टं सुरात्परम्।
पच्यन्ते तेऽन्धकूपे च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥६४॥

नियम है कि यदि अपना गुरु शिष्य का सर्वस्व हर ले तथा शाप तक प्रदान कर दे, तथापि साधुजन ऐसे निर्दयी गुरु की निन्दा तक न करके उसे भक्तिपूर्ण चित्त से प्रणाम कर देते हैं। गुरु तो शिष्य के लिये देवता से भी बढ़कर होता है। उनसे द्वेष रखने वाले तथा उनकी निन्दा करने वाले शिष्य तब तक के लिये अन्धकूप नरकवासी होते हैं, जब तक सृष्टि में चन्द्रमा तथा सूर्य स्थित हैं।।६३-६४।।

पुरीषं भुञ्जते नित्यं क्षुभिता यमताडनैः। [१]सर्पप्रमाणकीटैश्च दंशिताश्च दिवानिशम्॥६५॥

वे यमदूतों की ताड़ना सहते हैं। क्षुधित होने पर विष्ठा भोजन करते हैं तथा सर्प के समान कीट उनको दिन-रात डसते रहते हैं।।६५।।

इत्येवमुक्त्वा मुनयः प्रणेमुस्तत्पदाम्बुजम्। सर्वं भवति दैवेन प्रशान्तमनसा ध्रुवम्॥६६॥

१. क. सालप्र०।

उन्मुखा मुनयः सर्वे बभूवुश्च स्वकर्मणि। ब्रह्मा शरीरं संत्यक्तुं व्रीडया च समुद्यतः॥६७॥
योगेन भित्त्वा षट्चक्रं सर्वान्प्राणान्निरुध्य च।
ब्रह्मरन्ध्रं समानीय तत्याज स्वेन वर्त्मना॥६८॥
मनसा श्रीहरिं स्मृत्वा नमस्कारं चकार ह। न मे मनः परद्रव्ये भविता [१]लोलमीश्वर॥६९॥
प्राणत्यागात्परं दुःखमयशश्च यशस्विनाम्।
बभूव हृदि कत्वैकं ब्रह्मा लीनश्च ब्रह्मणि॥७०॥

यह कहकर उन मुनिगण ने ब्रह्मा को प्रणाम किया तथा उन्होंने प्रशान्तमन से निश्चय किया कि सब कुछ दैव द्वारा निश्चित होकर वही होता है। वे सभी मुनिगण वहां से विमुख होकर अपने तपःकार्य में प्रवृत्त हो गये। उधर लज्जा के कारण ब्रह्मा अपने शरीर त्यागार्थ समुद्यत हो गये। उन्होंने षट्चक्र भेदन करके प्राणों का निरोध किया। तदनन्तर वे अपने समस्त निरुद्ध प्राण को उत्थित करके ब्रह्मरन्ध्र में लाये तथा अपने कर्मफल का त्याग कर दिया। इस प्राणत्याग काल में ब्रह्मा ने श्रीहरि का स्मरण करके यही कामना उनको प्रणाम करके किया कि "हे प्रभो! मेरा मन कभी भी पराई वस्तु के प्रति चञ्चल न हो।" यह चिन्तन करते हुये ब्रह्मा ब्रह्मलीन हो गये।।६६-७०।।

कन्या तातं मृतं दृष्ट्वा विलप्य च भृशं मुहुः।
योगेन देह तत्याज सा प्रलीना च ब्रह्मणि॥७१॥
मृतं तातं च भगिनीं दृष्ट्वा च मुनिपुङ्गवाः।
सस्मरुः श्रीहरिं कोपात्स्वात्मारामं विलप्य च॥७२॥
नारायणो मदंशश्च कृपयाऽऽगत्य सत्वरम्।
ब्रह्माणं जीवयामास ब्रह्मज्ञानात्सुतां च ताम्॥७३॥

पिता ब्रह्मा को ब्रह्मलीन (मृत) हो गया देखकर कन्या पुनः-पुनः विलाप करने लगी। अन्ततः वह भी देहत्याग करके ब्रह्मलीन हो गई। वे मुनिगण (ब्रह्मपुत्रगण) भी पिता एवं बहन को मृत देखकर क्रोध पूर्वक विलाप करते आत्माराम श्रीहरि का स्मरण करने लगे। (हे राधा) तब मेरे अंशभूत नारायण कृपा परवश होकर यथाशीघ्र वहां आ गये। उन्होंने ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से ब्रह्मा तथा उनकी पुत्री को पुनर्जीवित कर दिया।।७१-७३।।

ब्रह्मा पुरो हरिं दृष्ट्वा वरं वव्रे स्म वाञ्छितम्।
भक्तिं त्वच्चरणे शश्वन्निश्चलामनपायिनीम्॥७४॥

उस समय ब्रह्मा ने जीवन पाकर अपने समक्ष हरि को देख यह वांछित वर मांगा। आपके चरणों के प्रति मेरी निश्चला तथा अनपायिनी भक्ति सदा बनी रहे।।७४।।

१. ख. स्तोकमी०।

ब्रह्माणं विरसं दृष्ट्वा तमुवाच कृपानिधिः। प्रबोधवचनं सत्यं नीतिसारं मनोहरम्॥७५॥

यह वर देकर अब कृपानिधि प्रभु ने ब्रह्मा को विषण्ण भावयुक्त तथा विरस देखा, तब प्रभु ने उनसे सत्य, नीति का सार रूप मनोहर प्रबोधमय वचन कहा–॥७५॥

नारायण उवाच

श्रृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्येऽहं मुखमुत्तोल्य साम्प्रतम्।
त्यज लज्जां जगन्नाथ हृदयज्वररूपिणीम्॥७६॥
सत्कीर्तिरपकीर्तिर्वा सुप्रतिष्ठाऽप्युपद्रवः। क्षुद्राणां चैव महतां भवत्येव स्वकर्मणा॥७७॥
सर्वेषामपि सर्वेभ्यः स्वकर्म बलवत्तरम्।
तस्मात्सन्तः प्रकुर्वन्ति नित्यं सत्कर्म संततम्॥७८॥
केचित्कुर्वन्ति निर्मूलं सर्वेषामपि कर्मणाम्।
कृतं कर्म परं भुक्त्वा हरिपादाब्जचेतसः॥७९॥
कुककर्मणश्चापकीर्तिस्ततो लज्जा भवेद्ध्रुवम्।
सुकर्मणः सुप्रतिष्ठा सर्वत्र निर्मलं यशः॥८०॥

प्रभु श्रीनारायण देव कहते हैं–हे ब्रह्मन्! आप हृदयपीड़ा दायिका लज्जा का त्याग करके मुख ऊपर उठायें तथा मैं जो कह रहा हूं उसे सुनिये। चाहे व्यक्ति छोटा अथवा महान् क्यों न हो, उसे स्वकर्मानुरूप सत्कीर्त्ति, अपकीर्त्ति तथा सुप्रतिष्ठा किंवा उपद्रव की स्थिति मिलती है। व्यक्ति का अपना किया कर्म सर्वाधिक बली होता है। तभी सन्त लोग नित्य-प्रति सत्कर्म करते रहते हैं। कोई तो हरि के चरण कमलों में चित्त लगाये रहकर पूर्वकृत कर्मों को भोगकर सर्वकर्मसमूह को निर्मूल कर देते हैं। कुकर्म करने से ही लज्जा तथा अपयश होना निश्चित है। सुकर्म द्वारा उत्तम प्रतिष्ठा मिलती है तथा सर्वत्र निर्मल यशलाभ होता है।।७६-८०।।

कालेन जरसा देहो बलं रूपं शुभाशुभम्।
कीर्तिर्या त्रिगुणा चैव मोहश्चापयशो विधे॥८१॥
ऋणव्रणापवादाश्च जन्तूनां यान्ति कालतः। महतां तौ च पूर्वोक्तौ नेतरश्च कदाचन॥८२॥
सदाऽपकीर्तिर्वसति परस्त्रीषु च वस्तुषु।
तस्मात्ते नैव गृह्णन्ति सन्तः स्वक्लेशकारणे॥८३॥
स्मर मामन्तरे ब्राह्मेण मदीयं विषयं कुरु। अतस्ते न मनो लोलं भविता परवस्तुषु॥८४॥

हे ब्रह्मन्! काल आने पर व्यक्ति को वृद्धावस्था, जराकीर्ण शरीर, बल-रूप, शुभ-अशुभ, त्रिगुणात्मिका कीर्त्ति, कलंक, मोह, अपयश, व्रण इत्यादि मिलता है। अर्थात् कालक्रम से जरा स्थिति में देह, बल, रूप, शुभाशुभ कार्य नष्ट हो जाते हैं, परन्तु कीर्त्ति, गुण, यश नष्ट नहीं होता। कालक्रम से

सामान्य जीवगण का रूप-व्रण तथा कलंक भी नष्ट हो जाता है, तथापि जो प्रधान लोग हैं भले ही उनका रूप तथा व्रण नष्ट हो जाये, परन्तु उनका कलंक कदापि लुप्त नहीं होता। परस्त्री तथा परवस्तुलोलुपता में सदा अपकीर्त्ति रहती है तभी साधुगण क्लेश की कारणरूपा परस्त्री तथा परवस्तु-लोलुपता को कभी ग्रहण नहीं करते। अब आप अपने अन्तर में एवं बाहर सदा मेरा स्मरण करिये। इससे आपका मन परवस्तुलोलुपता तथा परस्त्री कामना से सदा दूर रहेगा।।८१-८४।।

योषिद्रूपा च मे माया सर्वेषां मोहकारिणी।
लीलया कुरुते मोहं स्वात्मारामस्य संततम्।।८५।।
ननामुद्राश्रये देशे रागिणां सन्ततं रतिः।
स्तनाभिधे मांसपिण्डेऽधरे लालालयेऽशुचौ।।८६।।
श्रोणिवक्त्रस्तनं तासां कामदेवालयं सदा।
तस्मात्ते[1] न हि पश्यन्ति सन्तो हि धर्मभीरवः।।८७।।

सब में मोह उत्पन्न करने वाली स्त्रीरूपा माया जगत् में विद्यमान हैं। यह लीला द्वारा आत्माराम साधु में भी मोहोत्पत्ति कर देती है। जो पुरुषगण रमणी के नाना हाव-भाव, नवयौवन तथा उसकी मुस्कान की कामना करते हैं, वे सदा नारी के स्तन नाम वाले उसके वक्षस्थल पर स्थित मांस पिण्ड को ही परम पदार्थ मानते हैं। वे नारी के अपवित्र लार के आधारभूत उसके अधर में ही मन लगाये रहते हैं। जो धर्मभीरु सन्त हैं, वे नारी के स्तन, जघन, मुख को नहीं देखते जो कामदेव का गृह स्वरूप है।।८५-८७।।

को धर्मः किं यशस्तेषां का प्रतिष्ठा च किं तपः।
किं बुद्धिर्विद्या दानं च परस्त्रीषु च यन्मनः।।८८।।
इहाप्यपयशो दुःखं नरकेषु परत्र च। वासः प्रहारस्तेषां च ताडनैः कृमिभक्षणैः।।८९।।
दुःखबीजं सुखं मत्वा मूढाश्च दैवदोषतः। परस्त्रीसेवनं प्रीत्या कुर्वन्ति सन्ततं मुदा।।९०।।

जिनका मन सदा परस्त्री में आसक्त रहता है, उनका धर्म, यश, प्रतिष्ठा, तप, बुद्धि, विद्या तथा ज्ञानादि सभी फलहीन है। ऐसे हतबुद्धि लोगों का इहलोक में अपयश फैलता है तथा परलोक में उनको दुःसह नरकयातना भोगना पड़ता है। वहां उनको यमदूतों का प्रहार तथा वहां के कीटों का दंश झेलना पड़ जाता है। जो मूर्ख हैं, वे दैव के वशीभूत होकर परस्त्री सेवन रूपी दुःख बीज को भी सुख मानते हैं तथा वे नित्य परस्त्री सहवास मुदित होकर करते रहते हैं।।८८-९०।।

उत्तमा मत्पदाम्भोजं सत्कर्म मध्यमा सदा। स्मरन्ति शश्वदधमाः परस्त्रीसेवनं मुदा।।९१।।
विपत्तिः सन्ततं तस्य परवस्तुषु यन्मनः। विशेषतः परस्त्रीषु सुवर्णेषु च भूमिषु।।९२।।

१. क. ०स्माता न।

दैवात्परस्त्रियं दृष्ट्वा विरमेद्यो हरिं स्मरन्। दृष्ट्वा परसुवर्णं च हस्तप्रक्षालनाच्छुचिः॥९३॥

उत्तम पुरुष लोग मेरे चरण कमलों का चिन्तन करते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग सदा सत्कर्म करते हैं। परन्तु जो अधम लोग हैं, वे सदा मुदित होकर परनारी सेवन करते हैं। जिनका मन पराई वस्तु में लगा रहता है, उन पर सदा विपत्ति मडराती रहती है। विशेषतया पराई नारी, पराया स्वर्ण तथा पराई भूमि में उनका मन रमा रहता है। यदि दैवात् परस्त्री को देखकर जो मनुष्य रुककर हरिस्मरण करता है तथा पराया धन देखकर जो हाथों को धो लेता है, इस प्रकार ये दोनों पवित्र हो जाते हैं।।९१-९३॥

संततं नैव संसक्ताः सन्तः स्वस्त्रीषु कामतः।
यक्ष्मव्याधिज्ञानहानिलोकनिन्दाभयेन च॥९४॥
तपस्विनस्तपस्यायां शास्त्रचिन्तासु पण्डिताः।
योगिनो योगचिन्तासु वेदार्थेषु च वैदिकाः॥९५॥

साध्व्यश्च पतिसेवासु गृहस्था गृहकर्मसु। विषयेषु विषयिणो मद्भक्ता मम सेवने॥९६॥

जो सन्त जन हैं, वे स्त्री संग जनित होने वाली यक्ष्मा व्याधि, ज्ञाननाश, लोकनिन्दा के भय से अपनी पत्नी में भी आसक्ति नहीं रखते। तपस्वी तप में, पण्डित शास्त्र चिन्तन में, योगी योग चिन्तन में, वेदज्ञ वेदार्थ चिन्तन में, साध्वी नारी पतिसेवा में, गृहस्थ गृहकार्य में, विषयी लोग भोग विषय में तथा मेरे भक्त मेरी सेवा में सतत् यत्नशील रहते हैं।।९४-९६।।

एते नियुक्ता एतेषु सभासु च प्रशंसिताः। वेदोक्ताचरणेनैव तद्विरुद्धेन निन्दिताः॥९७॥

सर्वे नित्यं प्रशंसन्ति शश्वत्सन्मार्गगामिनम्।
हालिका अपि निन्दन्ति कुवर्त्मगामिनं विधे॥९८॥

भविता न परस्त्रीषु परवस्तुषु ते मनः। अद्यप्रभृति जीवान्तं निविष्टं मद्वरेण च॥९९॥

ये सभी यदि वेदोक्त विधि से स्व-स्व आचरणरत रहते हैं, तब समाज एवं सभा में प्रशंसालाभ करते हैं यही सब वेदविरुद्ध विधि से करने वाले सर्वत्र निन्दित होते हैं। हे ब्रह्मन्! जो लोग सदा सन्मार्गगामी हैं, उनकी सदा प्रशंसा होती है। जो कुपथगामी हैं, उसकी निन्दा तो सामान्य कृषक भी कर देता है, जो हल चलाता है। मैं यह वर देता हूं कि आज से आपका मन परनारी तथा परवस्तु में नहीं लगेगा। ऐसा जीवन पर्यन्त होगा।।९७-९९।।

मदीयविषये बाह्ये मया दत्तं कुरु प्रियम्।
अन्तरा मत्पदाम्भोजचिन्तां विघ्नविनाशिनीम्॥१००॥

कन्या भवतु ते[1] ब्रह्मन्कामदेवस्य कामिनी। रतिनार्म परित्याज्या रत्यधिष्ठातृदेवता॥१०१॥

बाह्यतः आप मेरे द्वारा प्रदत्त मेरे प्रिय कार्य को करिये तथा अपने अन्तरतम में मेरे विघ्ननाशक

---

१. ख. मे।

चरणों का चिन्तन करिये। हे ब्रह्मन्! आपकी पुत्री अब कामदेव की पत्नी 'रति' नाम वाली होगी। यह समस्त रतिक्रीड़ा की अधिष्ठात्री देवी कही जायेगी। आप इसका त्याग करें।।१००-१०१।।

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमाश्वास्य कमलापतिः। जगाम नित्यं वैकुण्ठं वृन्दावनविनोदनः।।१०२।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं० ब्रह्मणः प्रसङ्गो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।।

यह कहकर कमलापति ने ब्रह्मा को आश्वस्त किया। तदनन्तर वृन्दावन में विनोद करने वाले प्रभु कमलापति वैकुण्ठ चले गये।।१०२।।

।।३५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

शिव का दर्प भङ्ग तथा उनके ऐश्वर्य का वर्णन, श्रीकृष्ण द्वारा शिव की प्रशंसा

राधिकोवाच

एतेन नियमेनैव ब्रह्मा तत्याज मोहिनीम्। कथं स कुलटाशापादपूज्यः संबभूव ह।।१।।
कथं तस्य दर्पभङ्गं चकार कमलापतिः। कथयस्व सर्वबीजं सर्वेषामीश्वरः स्वयम्।।२।।

श्रीराधा कहती हैं–इसी प्रकार नियमतः ब्रह्मा ने मोहिनी का त्याग किया था, तथापि उस कुलटा के शाप से वे अपूज्य क्यों हो गये? कमलापति ने जो सर्वकारण ईश्वर हैं, उन्होंने स्वयं ब्रह्मा का दर्प कैसे भङ्ग किया? आप सबके कारण तथा सर्वेश हैं। कृपया कहिये।।१-२।।

नारायण उवाच

रासेश्वरीवचः श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः। निगूढमितिहासं च तां वक्तुमुपचक्रमे।।३।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–रासेश्वरी राधा का कथन सुनकर, रसिकपति श्रीकृष्ण ने हंसकर वह गूढ़ इतिहास कहना प्रारम्भ किया।।३।।

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मा चिरं तपस्तप्त्वा मत्तो लब्ध्वा वरं वरम्।
सृष्टिं नानाविधां कृत्वा विधाता स बभूव ह।।४।।

तपसां फलदाता च सर्वेषां शास्तिकृत्प्रभुः। आत्मानमीश्वरं ज्ञात्वा महागर्वो बभूव ह॥५॥
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु गर्वपर्यन्तमुन्नतिः। इति मत्वा ब्रह्मणश्च दर्पभङ्गः कृतो मया॥६॥
येषां येषां भवेद्दर्पो ब्रह्माण्डेषु परात्परः। विज्ञाय सर्वं सर्वात्मा तेषां शास्ताऽहमेव च॥७॥
प्रथमे ब्रह्मणो गर्वो मया चूर्णीकृतः श्रुतः। शङ्करस्य च पार्वत्याश्चन्द्रस्य च रवेस्तथा॥८॥
वह्नेर्दुर्वाससश्चैव तथा धन्वन्तरेः प्रिये। क्रमेण दर्पभङ्गं च कथयामि निशामय॥९॥
क्षुद्राणां महतां चैव येषां गर्वो भवेत्प्रिये। एवंविधमहं तेषां चूर्णीभूतं करोमि च॥१०॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे प्रिये! ब्रह्मा ने अनेक प्रकार से दीर्घकाल तक तप द्वारा मुझसे वर पाकर अनेक प्रकार की सृष्टि किया, जिससे वे विधाता कहे गये। वे तपस्या के फलदाता तथा सबके शासक विभु हो गये, जिसके कारण उनमें तनिक गर्व संचरित हो गया तथा वे स्वयं को ईश्वर मानने लगे थे। इस ब्रह्माण्ड में जब तक किसी को अधिक गर्व नहीं होता तब तक उसकी वृद्धि होती है। मैंने इसी बात का विचार करके ब्रह्मा का गर्व भंग कर दिया था। हे परात्परे राधिका! इस ब्रह्माण्ड में जिस किसी में दर्प का संचार हो जाता है, मैं वह सब जान लेता हूं और उसका शासन करने में प्रवृत्त हो जाता हूं। प्रथमतः मैंने जिस प्रकार ब्रह्मा का गर्व चूर्ण किया था, वह तुमने मुझसे सुना है। अब तुम शंकर, पार्वती, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, दुर्वासा एवं धन्वन्तरि के दर्पचूर्ण होने का प्रसंग सुनो। हे प्रिये! गर्व करने वाला भले ही बड़ा हो किंवा छोटा हो, मैं उसके गर्व को अवश्य चूर्ण करता हूं।।४-१०।।

नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।
प्रपच्छ राधा यत्नेन संत्रस्ता भयविह्वला॥११॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–भगवान् का कथन सुनते ही राधा के कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो गये। उन्होंने भयविह्वल तथा सन्त्रस्त होकर श्रीहरि से प्रश्न किया।।११।।

राधिकोवाच

कस्य केन प्रभावेण महादर्पो बभूव ह। त्वया केन प्रभावेण तस्य भङ्गः कृतः पुरा॥१२॥
कथयस्य प्राणनाथ सर्वेषां दर्पभञ्जन। दर्पदाभयद प्राणदानैककारणेश्वर॥१३॥

श्रीराधा कहती हैं–इनमें से किसे किस कारण से दर्प हो गया? आपने पूर्वकाल में किस उपाय से उनका दर्प भंग किया? हे प्राणनाथ! आप सबका दर्प नष्ट करने वाले, दर्पदाता, अभयदाता, प्राणदान के मात्र अकेले कारणरूप हैं। हे ईश्वर! इसका वर्णन करिये।।१२-१३।।

श्रीकृष्ण उवाच

येन भूतं गर्वचूर्णं श्रुतं त्रिजगतां विधेः। अन्येषां श्रूयतां राधे व्यासेन कथयामि ते॥१४॥
स्वयं शिवो मदंशश्च संहर्ता जगतां च यः। तेजसा मत्समः पूर्णो ज्ञानेन च गुणेन च॥१५॥

ध्यायन्ति योगिना यं स योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।
ज्ञानानन्दस्वरूपोऽयं तस्याख्यानं शृणु प्रिये॥१६॥
युगषष्टितसहस्राणि तपस्तप्त्वा दिवानिशम्।
भूत्वा च मत्कलापूर्णो बभूव मत्समो विभुः॥१७॥
तपसा तेजसा शश्वत्तेजोराशिर्बभूव ह। सूर्यकोटिप्रभावश्च भक्तानां कल्पपादपः॥१८॥

श्रीकृष्ण प्रभु कहते हैं–मैंने तुमसे ब्रह्मा के दर्प भंग का प्रसंग कह दिया। उसे तुमने सुना है। अब मैं अन्य लोगों के दर्पभंग का सविस्तार वर्णन करता हूं। हे प्रिये! जगत् के संहारक शिव मेरे अंशरूप हैं। वे परिपूर्णतम हैं तथा तेज, गुण तथा ज्ञान में मेरे समान हैं। योगीगण उनका ध्यान योगीन्द्रों के गुरु के गुरु रूप में तथा ज्ञानानन्दस्वरूपमय रूप में करते हैं। उनका आख्यान सुनो। शूलपाणि शिव ६०००० युगों तक दिन-रात तप करके मेरे समान तथा पूर्ण रूप हो गये हैं। वे तेज तथा तप में प्रज्वलित तेजराशि के समान हैं। उनका प्रभाव करोड़ों सूर्य के समान है। वे भक्तों के लिये कल्पवृक्ष हैं। शिव सबको मनोभिलषित वस्तु प्रदान करते हैं।।१४-१८।।

ध्यायं ध्यायं च योगीन्द्रास्तत्तेजो बहुकालतः।
तदनन्तरे च पश्यन्ति स्वरूपमतिसुन्दरम्॥१९॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्। त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम्॥२०॥
जपन्तं स्वात्मनाऽऽत्मानं श्वेताब्जबीजमालया।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं चन्द्रचूडं परात्परम्॥२१॥
स्वर्णाकारं जटाभारं दधतं शिरसा मुदा। शान्तं कान्तं त्रिजगतां भक्तानुग्रहकारकम्॥२२॥
अथ स्वमीश्वरं मत्वा प्रदाता सर्वसम्पादम्।
ददाति सर्वं सर्वेभ्यो वाञ्छितं कल्पपादपः॥२३॥
यो यं वाञ्छति तं तस्मै वरं दत्त्वा वरेश्वरः।
बभूव गर्भसंयुक्तः स्वात्मारामः स्वलीलया॥२४॥

योगीन्द्रगण दीर्घकाल तक उनके तेज का ध्यान करते रहकर उस तेज के अन्तर्गत् अत्यन्त सुन्दर स्वरूप का दर्शन करते हैं जो शुद्ध स्फटिक के समान पञ्चमुख, त्रिनेत्र, त्रिशूल-पट्टिश हाथों में धारण करने वाले तथा श्रेष्ठ व्याघ्र चर्माम्बरधारी हैं। वे श्वेत कमल के बीजों की माला द्वारा स्वयमेव अपने परमात्म स्वरूप का जप करते रहते हैं। उनका मुखमण्डल मन्द मुस्कानयुक्त है। वे सदा प्रसन्न रहते हैं। उनके ललाट पर अर्द्धचन्द्र की शोभा परिलक्षित होती है। वे अपने मस्तक पर स्वर्ण वर्ण जटा से शोभायमान हैं। उनकी प्रशान्त मूर्त्ति त्रैलोक्य में कमनीय है। वे सदा भक्तों के प्रति कृपालु रहते हैं। उन्होंने स्वयं को ईश्वर स्वरूप मान लिया तथा वे सबको सभी सम्पत्ति देने लगे तथा सभी को कल्पवृक्ष की तरह उनकी इच्छानुरूप विषयवस्तु भी प्रदान करने लगे। उनसे जो कोई-जो कुछ भी मांग लेता,

विश्वेश स्वात्माराम शंकर उसे वही वर लीलामात्र में अनायास प्रदान करते रहते थे। इससे उनके मन में कुछ गर्व का संचार हो गया। उनके मन में गर्व के अंकुर उग गये।।१९-२४।।

एकदा च वृको दैत्यस्तपस्तेपे शिवस्य च। केदारे च कठोरेण वर्षमेकं दिवानिशम्॥२५॥
नित्यं याति तत्समीपं कृपया च कृपानिधिः।
वरं दातुं यथाभीष्टं च जग्राहासुरो वरम्॥२६॥
वर्षान्ते शङ्करःशश्वत्तस्थौ तत्पुरतः स्वयम्। वरदो भक्तिपाशेन क्षणं गन्तुं न स क्षमः॥२७॥

एक बार वृक नामक दैत्य ने शिव को प्रसन्न करने हेतु केदारतीर्थ में एक वर्ष तक रात-दिन कठोर तप किया था। कृपासिन्धु शिव उस पर दया करके उसे इच्छित वर देने उसके पास नित्य आगमन करते थे, परन्तु उस दैत्य ने एक भी वर शंकर से नहीं मांगा। वर्षान्त होने पर तो मानो वरप्रद शिव उसकी भक्ति के पाश में ऐसे बंध गये कि वे क्षणकाल भी वहां से कहीं भी जा नहीं सकते थे।।२५-२७।।

सर्वैश्वर्यं सर्वसिद्धिं भुक्तिं मुक्तिं हरेः पदम्।
दैत्यः किञ्चिन्न गृह्णाति प्रेरितः शूलपाणिना॥२८॥

भगवान् महेश्वर तो उसे सर्वैश्वर्य, सर्वसिद्धि, भुक्ति-मुक्ति, भगवत् पद तक देने के लिये उद्यत थे, तथापि दैत्य ने उनसे कुछ भी ग्रहण नहीं किया।।२८।।

ध्यायमानं तत्पदाब्जं दृष्ट्वा त्रस्तो महेश्वरः। अयाचितारं निश्चेष्टं रुरोद प्रेमविह्वलः॥२९॥
अतीव रोदनात्तस्य ध्यानङ्गो बभूव ह। ददर्श पुरतः साक्षाद्दातारं सर्वसम्पदाम्॥३०॥

वह सतत् शिवशंकर के चरण कमलों के ही ध्यान में लीन रहता था। ऐसे कुछ भी याचना न करने वाले निश्चेष्ट असुर को देखकर महेश्वर त्रस्त तथा प्रेमविह्वल होकर रोने लगे। भगवान् के अत्यधिक रुदन करने से दैत्य का ध्यान भङ्ग हो गया। तब उसने अपने सामने सर्वसम्पदा प्रदाता शिव को साक्षात् देखा।।२९-३०।।

यन्मायया वरं वव्रे दैत्येन्द्रो भक्तिपूर्वकम्।
हस्तं दधे च यन्मूर्ध्नि स भस्म भवितेति च॥३१॥
ओमित्युक्त्वा प्रयान्तं तं दुद्राव दैत्यपुङ्गवः।
मृत्युञ्जयो मृत्युभयाद्दुद्राव त्रासविह्वलः॥३२॥
पपात डमरुस्तस्य व्याघ्रचर्म मनोहरम्। दिगम्बरो दश दिशो भेजे दानवभीतये॥३३॥
न हन्ति तं च कृपया भक्तं च भक्तवत्सलः। दुष्टानुसारं साधुश्च न करोति कदाचन॥३४॥

तब शिव की माया से मोहित दैत्येन्द्र ने भक्ति पूर्वक यह वर शिव से मांगा कि मैं जिसके शिर पर हाथ रखूं, वह भस्म हो जाये। शङ्कर उसे यह वर देकर जैसे ही जाने लगे, उस दैत्य प्रवर ने शङ्कर

का पीछा किया। इससे मृत्युञ्जय शिव दुःखी हो गये तथा मृत्युभय से त्रस्त होकर पलायनरत हो गये। इस भागदौड़ में शङ्कर का डमरू, मनोहर व्याघ्रचर्म भी गिर गया। वे दिगम्बर स्थिति में दानव के भय से दसों दिशाओं में भागने लगे, तथापि भगवान् शिव जो अत्यन्त भक्तवत्सल हैं, वे उस दैत्य का वध करने के इच्छुक नहीं थे। जो साधु व्यक्ति होते हैं, वे दुष्ट की तरह के व्यवहार को कदापि स्वयं नहीं करते!।।३१-३४।।

साधवो घ्नन्ति घ्नन्तं च भृत्यं पुत्रं प्रियां विना।
प्रबोधितुं न शक्तश्च स्वात्मानं कृपया समम्।।३५।।
शिवः स्वमृत्युं मत्वा च भीतश्च निरहंकृतः।
स्मारं स्मारं च मां भद्रे मामेव शरणं ययौ।।३६।।

जो साधु होते हैं, वे भृत्य, पुत्र, प्रिया को छोड़कर यद्यपि अन्य किसी भी घातक का विनाश तो कर देते हैं, तथापि भक्तवत्सल शूलपाणि भक्त को तो अपना ही स्वरूप मानते थे। तत्पश्चात् शिव ने अपनी मृत्यु को निश्चित जान लिया। अतः वे भयभीत स्थिति में होकर अहंकारशून्य हो गये। हे प्रिये राधिके! वे बारम्बार मेरा ही स्मरण करते मेरे शरणागत हो गये!।।३५-३६।।

दृष्ट्वा स्वाश्रममायान्तं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकम्। हे हरे रक्ष रक्षेति जपन्तं भयविह्वलम्।।३७।।

संस्थाप्य तत्समीपे च स दैत्यो बोधितो मया।
पृष्टश्च सर्ववृत्तान्तमुवाच मां क्रमेण च।।३८।।
तदा ममाऽऽज्ञया तूर्णं वञ्चितो माययाऽसुरः।
दत्त्वा स्वमूर्ध्नि हस्तं च सद्यो भस्म बभूव ह।।३९।।
तदा सिद्धाः सुरेन्द्राश्च मुनीन्द्रा मनवो मुदा।
तुष्टुवुर्मां सुभक्त्या च लज्जया लज्जितः शिवः।।४०।।
बभूव चूर्णस्तद्गर्वो जगाम बोधितो मया।
वरं ददाति वरदस्ततो बोध्यो[1] ह्यहं शिव।।४१।।

उस समय शङ्कर के ओष्ठ-काष्ठ-तालु शुष्क हो गये थे। वे व्याकुल होकर यह जप करते जा रहे थे "हे हरि! मेरी रक्षा करिये।" ऐसी स्थिति में मैंने शङ्कर के समीप उस दैत्य को बैठाकर उसे प्रबोधित करते हुये सब वृत्तान्त पूछा। जब दैत्य ने समस्त वृत्तान्त कह दिया, तब मैंने माया को आदेश दिया। माया ने उस असुर को ऐसा भ्रमित किया कि उसने अपने हाथ स्वयं अपने मस्तक पर जैसे ही हाथ रखा, वह तत्काल भस्मीभूत हो गया। उस समय सिद्ध, इन्द्र, मुनीन्द्र, मनुगण भक्तिभाव से मेरी स्तुति करने लगे। तब शिव ने भी लज्जित होकर मेरा स्तव किया। जब शिव का गर्व इस प्रकर चूर्ण हो गया, तब वे मेरे प्रबोध वाक्य से प्रबोधित होकर अपने भवन चले गये। मैंने उनसे कहा था—"हे शिव!

१. क. वध्यो ह्य०।

वर देने वाला वर दे देता है; परन्तु उस वरदान को पूर्ण करने वाला, सम्पन्न करने वाला मैं ही हूं।" (यह स्मरण रखिये)।।३७-४१।।

अथ गर्वान्वितो रुद्रो हन्तुं त्रिपुरमुल्बणम्। मत्वा मनसि संहर्ता सर्वेषां जगतामिति।।४२।।
कोऽयं पतङ्गवद्दैत्य इति मत्वा ययौ रणम्। विहाय शूलं मद्दत्तं मदीयकवचं परम्।।४३।।
चिरं बभूव समरं वर्षमेकं दिवानिशम्। न कोऽपि चेतुं कं शक्तो द्वौ समौ समरे तदा।।४४।।

पृथिव्यां च रणं कृत्वा दैत्येन्द्रो मायया प्रिये।
अत्यूर्ध्वं च समुत्तस्थौ पञ्चाशत्कोटियोजनम्।।४५।।

उत्तस्थौ शङ्करस्तूर्णं हन्तुं दैत्यं जगत्प्रभुः। बभूव तत्र युद्धं च मासमेकं निराश्रये।।४६।।

अस्त्राणि चापं चिच्छेद शङ्करस्यासुरो बली।
रथं बभञ्ज दैत्येन्द्रश्चापमस्त्राणि शङ्करात्।।४७।।

जघान मुष्टिना रुद्रो दानवेन्द्रं प्रकोपतः। वज्रमुष्टिप्रहारेण सद्यो मूर्च्छामवाप सः।।४८।।
क्षणेन चेतनां प्राप्य कोपाद्दानवपुङ्गवः। शिवं शयानमुत्तोल्य पातयामास भूतले।।४९।।

शिव को एक और समय स्वयं के एकमात्र संहारक होने का गर्व हो गया था। शिव ने स्वयं को ऐसा मान लिया तथा अत्यन्त गर्व पूर्वक त्रिपुरासुर वधार्थ उद्यत हो गये। उन्होंने मन में यह विचार किया कि यह दैत्य तो पतंगे की तरह है। इसके वधार्थ विशेष आडम्बर की क्या आवश्यकता? वे मेरे द्वारा प्रदत्त त्रिशूल एवं उत्तम कवच को छोड़कर युद्ध करने गये। इसके पश्चात् त्रिपुरासुर के साथ शङ्कर का १ वर्ष तक युद्ध चला। यह युद्ध दिन-रात चला, तथापि कोई किसी को पराजित नहीं कर सका। हे प्रिय राधिके! तदनन्तर दैत्यराज पृथिवी पर पैर रखकर मायाबल से ५० कोटि योजन ऊर्ध्व में उछला। तभी जगत्प्रभु शिव भी दैत्य के विनाशार्थ तत्क्षण स्वयं भी उतने ऊपर उठे। उस निरालम्ब प्रदेश में दोनों के बीच १ मास पर्यन्त युद्ध होता रहा। बली त्रिपुर ने शंकर का अस्त्र तथा धनुष छिन्न-भिन्न कर दिया! उसने शंकर का रथ तथा अन्य सभी अस्त्रों को तोड़ दिया। तब रुद्र देव ने दैत्य पर मुष्टि का प्रहार किया। शंकर की वज्र मुष्टि के प्रहार से दैत्य तत्काल मूर्च्छित हो गया। अगले क्षण चेतनायुक्त होकर दानवराज ने शयनरत शंकर को उठाकर पृथिवी पर पटक दिया।।४२-४९।।

सरथे पातिते रुद्रे देवा देवर्षयो भिया। तुष्टुवुर्मां परित्राहि कृष्णेत्युक्त्वा पुनः पुनः।।५०।।
हरः सस्मार मामेव निर्भयो भयकारणम्। तुष्टाव भक्त्या स्तोत्रेण मया दत्तेनसङ्कटे।।५१।।
तदाऽहं कलया शीघ्रं वृषरूपं विधाय च। शयानं शङ्करं धृत्वा विषाणाभ्यामुरुक्रमम्।।५२।।
ददौ तस्मै स्वकवचं स्वशूलमरिमर्दनम्। प्राप्य तद्दानवस्थानमत्यूर्ध्वं च निराश्रयम्।।५३।।
मया दत्तेन शूलेन जघान त्रिपुरं हरः। मामेव दर्पहन्तारं तुष्टाव व्रीडितः पुनः।।५४।।

इससे देवता एवं देवर्षिगण अत्यन्त भयभीत हो गये। वे बारम्बार "हे कृष्ण! मेरी रक्षा करो!" कहते स्तुति करने लगे। भय का कारण जानकर शिव ने भी निर्भय होकर मेरा स्मरण किया। तब मैंने

अपनी कला से शीघ्र वृषरूप धारण किया तथा वहां लेटे शंकर को अपने सींग का सहारा देकर उठाया। उनको कवच एवं शत्रुनाशक शूल दे दिया। यह शूल पाकर शिव ने ऊंचे आकाश में निराधार टिके त्रिपुर को मेरे द्वारा प्रदत्त उस शूल से नष्ट कर दिया। तदनन्तर शिव ने अत्यन्त लज्जा के साथ मुझ दर्पहारी की बारम्बार स्तुति किया।।५०-५४।।

सद्यः पपात दैत्येन्द्रश्चूर्णीभूतश्च भूतले। देवता मुनयः सर्वे तुष्टुवुः शङ्करं मुदा।।५५।।

यह दैत्य चूर्ण होकर तत्काल भूपतित हो गया। यह देखकर सभी देवता तथा मुनिगण मुदित होकर शंकर की स्तुति करने लगे।।५५।।

तत्याज शङ्करो दर्पं विघ्नबीजं ततो विभुः। ज्ञानानन्दस्वरूपश्च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु।।५६।।
ततोऽहं वृषरूपेण वहामि तेन तं प्रियम्। मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः।।५७।।

शंकर ने उसी समय अभिमान को दर्प का बीज जानकर त्याग दिया। वे अपने ज्ञानानन्दस्वरूप में स्थित होकर सभी कर्म से निर्लिप्त हो गये। तभी से मैं भी वृषरूप धारण करके प्रिय भक्त शंकर का वहन वाहनरूप से अपनी पीठ पर कर रहा हूं। शिव से बढ़कर त्रैलाक्य में मुझे कोई प्रिय नहीं है।।५६-५७।।

मनःस्वरूपो ब्रह्मा मे ज्ञानरूपो महेश्वरः। बुद्धिर्भगवती दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी।।५८।।
निद्रादयः शक्तयो यास्ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः।
वागधिष्ठशतृदेवी या सा स्वयं च सरस्वती।।५९।।
मम कल्याणाधिदेवो हर्षरूपो गणेश्वरः। परमार्थः स्वयं धर्मो मम भक्तो हुताशनः।।६०।।
सर्वैश्वर्याधिदेवी मे सर्वगोलोकवासिनः। प्राणाधिष्ठातृदेवी त्वं सदा प्राणाधिका मम।।६१।।
गोपाङ्गनास्तव कला अत एव मम प्रियाः।
मल्लोमकूपजा गोपाः सर्वे गोलोकवासिनः।।६२।।

ब्रह्मा मेरे मन हैं, महेश्वर ज्ञानरूप हैं। मूलप्रकृति ईश्वरी भगवती दुर्गा बुद्धिरूप हैं। निद्रा आदि शक्तियां सभी प्रकृति की कला हैं। सरस्वती स्वयं मेरे वाक् की अधिष्ठात्री देवी हैं। मेरे हर्षरूप हैं कल्याण के अधिदेवता गणेश्वर! धर्म स्वयं परमार्थ हैं। अग्नि मेरे भक्त हैं। मेरे सभी ऐश्वर्य की अधिदेवी तुम हो। सभी गोलोक निवासी गोप मेरे लोमकूप से उत्पन्न हैं।।५८-६२।।

तेजःस्वरूपः सूर्यश्च प्राणा मे वायवः स्मृताः।
जलाधिदेवो वरुणः पृथिवी मे मलोद्भवा।।६३।।
मम शून्यो महाकाशो मदनो मानसोद्भवः। इन्द्रादयः सुराः सर्वे मत्कलाशंशसंभवाः।।६४।।

मेरे तेजस्वरूप सूर्य हैं। मेरे प्राण हैं वायु। वरुण जल के अधीश्वर हैं तथा पृथिवी मेरे मल से उत्पन्न है। यह महाकाश मेरा शून्य स्थल है। कामदेव मेरे मन से उद्भूत हैं। इन्द्रादि सभी देवता मेरे ही कलांश से उत्पन्न होते हैं।।६३-६४।।

एतानि सृष्टिबीजानि महदादीनि चैव हि। सर्वेषां बीजरूपोऽहं स्वमात्मा निराश्रयः॥६५॥
जीवो मे प्रतिबिम्बश्च कर्मभोगाधिकारकः। अहं साक्षी निरीहश्च न भोगी सर्वकर्मसु॥६६॥
भक्तध्यानार्थदेहोऽयं मम स्वेच्छामयस्य च। प्रकृतिः पुरुषोऽहं च एक एव परात्परः॥६७॥

यह जो सृष्टि बीजरूप महत् आदि तत्त्व है, उन सबका मैं ही बीजरूप तथा निराश्रय आत्मा हूं। जीव मेरा प्रतिबिम्ब है। वही कर्मभोग का अधिकारी है। मैं तो निरीह साक्षी रूप होने के कारण किसी कर्म का भोक्ता नहीं हूं। मेरा शरीर (विग्रह) भक्त के ध्यानार्थ तथा स्वेच्छामय है। मैं प्रकृति, पुरुष, एकमात्र तथा परात्पर हूं।।६५-६७।।

इत्येवं कथितं राधे शिवदर्पविमोचनम्। सृष्टिबीजं च शृणु मे पार्वतीदर्पमोचनम्॥६८॥

हे राधा! यह सब मैंने शिव के दर्प विमोचनार्थ घटित प्रसंग तुमसे कहा। अब तुम सृष्टिबीजरूपी पार्वती के भी दर्पमोचन का प्रसंग सुनो।।६८।।

नारायण उवाच

इत्युक्तवन्तं श्रीकृष्णं परमात्मनमीश्वरम्। पप्रच्छ राधिका देवी निगूढमभिवाञ्छितम्॥६९॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—यह सब श्रीकृष्ण से सुनकर राधा ने उन परमात्मा ईश्वर से गुप्त एवं वांछित प्रश्न पूछा।।६९।।

राधिकोवाच

भगवन्सर्वतत्त्वज्ञ सर्वबीज सनातन। वद मे वाञ्छितं प्रश्नं सर्वसंदेहभञ्जनम्॥७०॥
सर्वज्ञानाधिदेवश्च शङ्करः सर्वतत्त्ववित्।
मृत्युञ्जयः कालकालो भगवांस्त्वत्समो महान्॥७१॥
कथं विभूतिगात्रश्च पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः। दिगम्बरो जटाधारी नागसङ्घातभूषणः॥७२॥
वृषेणाटति देवेन्द्रो विहाय वरवाहनम्। न बिभर्ति कथं रत्नं सारनिर्माणभूषणम्॥७३॥

देवी राधिका कहती हैं—हे भगवान्! आप सर्वतत्त्वज्ञ तथा सर्वबीज स्वरूप हैं। आप सनातन सर्वसंदेह नाशक हैं। समस्त ज्ञान के अधिदेवता शंकर हैं तथा वे सर्वतत्त्वज्ञाता हैं। आप मृत्युञ्जय काल के भी काल हैं। वे आपके समान महान् हैं। तब वे देह में विभूति लिप्त क्यों करते हैं? वे पंचमुख, त्रिनेत्र, दिगम्बर, जटाधारी, नागभूषण भूषित क्यों हैं? उन देवों के स्वामी ने अन्य उत्तम वाहनों के स्थान पर वृष को ही वाहन क्यों बनाया है? वे रत्नों के सारभाग से निर्मित आभूषण क्यों धारण नहीं करते?।।७०-७३।।

वह्निशुद्धांशुकं त्यक्त्वा धत्ते शार्दूलचर्मकम्। धत्ते धत्तूरकुसुमं पारिजातं विहाय च॥७४॥
नास्ति रत्नकिरीटेच्छा जटायां प्रीतिरुत्तमा।
दिव्यलोकं परित्यज्य शमशानेषु स्पृहा विभोः॥७५॥

चन्दनागुरुकस्तूरीसुगन्धिकुसुमानि च।
त्यक्त्वा स्पृहा बिल्वपत्रे बिल्वकाष्ठानुलेपने॥७६॥

शिव क्यों अग्निशुद्ध वस्त्रों का त्याग करके व्याघ्रचर्म पहनते हैं? वे पारिजात पुष्प को छोड़कर धतूरा के पुष्प को क्यों ग्रहण करते हैं? वे रत्नमय मुकुट की इच्छा त्याग करके जटा से उत्तम प्रीति क्यों रखते हैं? वे विभु महेश्वर दिव्यलोकों को त्याग कर श्मशान में क्यों रहते हैं? वे चंदन, अगुरु, कस्तूरी, सुगन्धपुष्पों को त्यागकर बिल्वपत्र तथा विल्व काष्ठ के घिसे लेप की कामना क्यों करते हैं?॥७४-७६॥

एतद्वेतितुच्छिामि व्यासेन कथय प्रभो। श्रोतुं कौतूहलं नाथ वर्धते मे मनःस्पृहा॥७७॥

हे प्रभो! मैं यह सब संक्षेप में सुनने की इच्छुक हूं। हे नाथ! इनका उत्तर सुनने का कुतूहल मेरे मन में बढ़ता जा रहा है।॥७७॥

राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः। कथां कथितुमारेभे कृत्वा राधां स्ववक्षसि॥७८॥

राधा का वचन सुनकर मधुसूदन ने हंसकर राधा को अपने वक्ष से सटाकर आलिंगन किया तथा इस सम्बन्ध में कथा प्रारम्भ कर दिया।॥७८॥

श्रीकृष्ण उवाच

युगषष्टिसहस्त्राणि तपः कृत्वा महेश्वरः। विरराम पूर्णतमो ध्यात्वा मां मनसा मुदा॥७९॥
एतस्मिन्नन्तरे मां च ददर्श पुरतः स्थितम्। अतीव कमनीयाङ्गं किशोरं श्यामसुन्दरम्॥८०॥
अहोऽनिर्वचनीयं च दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम्।
न बभूव वितृष्णश्च लोचनाभ्यां त्रिलोचनः॥८१॥
पश्यन्निमेषरहित इति मत्वा स्वमानसे। भक्त्युद्रेकान्महाभक्तो रुरोद प्रेमविह्वलः॥८२॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे प्रिये! पूर्व में महेश्वर ६०००० युगव्यापी तप करके पूर्णतम होने के पश्चात् तप से विरत हो गये। तब वे मन ही मन मेरा ध्यान करने लगे। उस समय मैं किशोर श्यामसुन्दर अति कमनीय वेश में उनके समक्ष प्रकट हो गया था। वे निरन्तर मेरे उस मनोहर रूप का दर्शन कर रहे थे। त्रिलोचन ने मेरी उस अनुपम रूपराशि को देखा, तथापि इससे उनके नेत्रों की तृप्ति नहीं हो रही थी। वे निरन्तर निर्निमेष नेत्रों से मेरी ओर देख रहे थे तथा भक्ति का महान् उद्रेक होने के कारण प्रेमविह्वल स्थिति में रुदनरत हो गये।॥७८-८२॥

सहस्त्रवदनोऽनन्तो भाग्यवांश्च चतुर्मुखः। बहुभिर्लोचनैर्दृष्ट्वा तुष्टाव बहुभिर्मुखैः॥८३॥
पश्यामि किंवा किं स्तौमि सम्प्राप्य नाथमीदृशम्।
आस्थैकेन लोचनाभ्यां चतुर्धा स पुनः पुनः॥८४॥
स्वमानसे कुर्वतीदं शङ्करे च तपस्विनि। तद्बभूव चतुर्वक्त्रं पूर्वेण सह पञ्चमम्॥८५॥

एकैकवक्त्रं शुशुभे लोचनैश्च त्रिभिस्त्रिभिः।
बभूव तेन तन्नाम पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः॥८६॥

स्तवनादधिकप्रीतिः शिवस्य दर्शने मम। तेनाधिकानि तस्यैवं बभूवुर्लोचनानि च॥८७॥
चक्षूंषि गुणरूपाणि तस्य ब्रह्मस्वरूपिणः। सत्त्वं रजस्तम इति तस्य हेतुं निशामय॥८८॥

शिव ने विचार किया कि सहस्रमुख अनन्त एवं चतुर्मुख ब्रह्मा मुझसे अधिक भाग्यशाली हैं। इन दोनों अनेक नेत्रों से श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त किया तथा अनेक मुखों से उन देवाधिदेव की स्तुति किया। मेरा तो एक मुख तथा मात्र दो ही नेत्र हैं। मैं उनका दर्शन तथा स्तुति कैसे कर सकूंगा? जब शिव ने यही चार बार उच्चारण किया, तब उनके अन्य चार मुख प्रकट हो गये। इस प्रकार वे पञ्चमुख हो गये। उनका प्रत्येक मुख त्रिनेत्रमय था। तभी शिव पञ्चमुख तथा त्रिनेत्र कहे जाते हैं। शङ्कर को स्तुति की अपेक्षा मेरा रूप दर्शन अधिक प्रिय है। तभी उनके १५ नेत्र हो गये। इन ब्रह्मस्वरूप शिव के चक्षु गुणरूप हैं। ये सत्व, रजः तथा तमोगुण के क्रम से हैं। अब इसका हेतु श्रवण करो॥८३-८८॥

सत्त्वांशेन दृशा शम्भुः पश्यन्याति च सात्त्विकान्।
राजसेन राजसिकांस्तामसेन च तामसान्॥८९॥

चक्षुषस्तामसात्पश्चाल्ललाटस्थाद्धरस्य च। संहारकाले संहर्तुरग्निराविर्भवेत्क्रुधा॥९०॥
कोटितालप्रमाणश्च सूर्यकोटिसमप्रभः। लेलिहानो दीर्घशिखस्त्रैलोक्यं दग्धुमीश्वरः॥९१॥

अपने सत्वांश वाले नेत्र से शंभु सात्विकों को, राजसांश नेत्रों से वे राजसिक लोगों को तथा तामसांश नेत्र से शंभु तामसी जीवों का अवलोकन करते उनका रक्षण कार्य करते हैं। संहार काल में शंभु अपने लालटस्थ तामस नयन से अग्नि प्रादुर्भूत करते हैं। यह अग्नि करोड़ों ताल वृक्ष के प्रमाण वाली कोटिसूर्यसमप्रभ है। उसकी शिखा की उच्चता तो आकाश स्पर्शी तथा दीर्घ होती है। यह अग्नि त्रिभुवन को दग्ध कर देने में सक्षम है। यह विशाल लपलपाती अग्निशिखा त्रैलोक्यदग्धकारिणी है॥८९-९१॥

विभूतिगात्रः स विभुः सतीसंस्कारभस्मना।
धत्ते तस्या अस्थिमालां प्रेमभावेन भस्म च॥९२॥
स्वात्मारामो यद्यपीशस्तथाऽपि पूर्णमब्दकम्।
सतीशवं गृहीत्वा च भ्रामं भ्रामं रुरोद ह॥९३॥

प्रत्यङ्गं चापि तस्याश्च पपात यत्र यत्र ह। सिद्धपीठस्तत्र तत्र बभूव मन्त्रसिद्धिकृत्॥९४॥

ये सती के दग्ध देह की भस्म से देह को लिप्त किये रहने के कारण विभूतिधारी हैं। देवी सती से इनका इतना प्रेम था कि उनकी अस्थि की माला पहनते तथा उनकी भस्म धारण करते हैं। स्वात्माराम होकर भी शिव सती का शव उठाये एक वर्ष तक रुदन करते घूमते रहे हैं। देवी सती का अंग जहां-जहां गिरा वह स्थल तो परमसिद्धपीठ हो गया। वहां जपा मन्त्र सिद्धिदायक हो जाता है॥९२-९४॥

त (य) दा शवावशेषं च कृत्वा वक्षसि शङ्करः।
पपात मूर्च्छितो भूत्वा सिद्धिक्षेत्रे च राधिके॥९५॥
तदा गत्वा महेशं तं कृत्वा क्रोडे प्रबोध्य च।
अददां दिव्यतत्त्वं च तस्मै शोकहरं परम्॥९६॥
तदा शिवश्च सन्तुष्टः स्वं लोकं च जगाम ह।
मूर्त्यन्तरेण कालेन तां सम्प्राप प्रियां सतीम्॥९७॥

तब उस समय शिव की ऐसी स्थिति देखकर शिव को मैंने अपने क्रोड़ में लेकर उनको प्रबोधित किया था; क्योंकि शिव शव के बचे-खुचे भाग को लिपटाये सिद्धिस्थल पर सुध-बुध खोकर पड़े थे। तभी मैंने शिव को परमशोकनाशक दिव्यतत्व प्रदान किया था। इससे शिव भी सन्तुष्ट होकर अपने लोक चले गये। उन्होंने तब अपनी अन्य मूर्त्ति काल द्वारा प्रिया सती को प्राप्त किया।।९५-९७।।

दिव्यस्त्रग्धारियोगेन[1] नेच्छा नित्ये परे[2] विभो।
जटां तपस्याकालीनां धत्तेऽद्यापि विवेकतः॥९८॥
न चेच्छा केसशङ्गारे स्वाङ्गे[3] वेषे च योगिनः।
समता चन्दने पङ्के लोष्टे रत्ने मणीश्वरे॥९९॥

विभु शिव योगस्थ रहते हैं, अतः दिगम्बर हैं। उनमें अन्य कामना है ही नहीं। उन्होंने तपस्या काल में जटा धारण किया था। उसे वे विवेक के कारण आज भी धारण किये रहते हैं। वे योगी हैं। अतः केशसज्जा तथा अंगों की साज-सज्जा की उनमें कोई इच्छा नहीं है। उनके लिये कीचड़ तथा चंदन में कोई भेद नहीं है। उनके लिये मिट्टी का ढेला तथा श्रेष्ठ रत्नमणियां समान हैं।।९८-९९।।

गरुडद्वेषियो नागाः शङ्करं ययुः। बिभर्ति कृपया स्वाङ्गे तानेव शरणागतान्॥१००॥
वाहनं वृषरूपोऽहमन्यस्तं वोढुमक्षमः। त्रिपुरस्य वधे पूर्वं मत्कलांशसमुद्भवः॥१०१॥
पारिजातादिकं पुष्पं सुगन्धिचन्दनादिकम्।
मयि संन्यस्य तेष्वेवं प्रीतिर्नास्ति कदाचन॥१०२॥

कभी गरुड़ से डरे हुये सर्प शंकर की शरण में आये थे। शंकर ने कृपा पूर्वक सभी शरणागत सर्पों को अपने अंगों में धारण कर लिया। उनको वहन कर सकने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। तभी मैं वृषरूपेण उनका वाहन बन गया। यह वृष त्रिपुरासुर वध के समय मेरे अंश से उत्पन्न है। वे पारिजात पुष्प, चन्दनादि सुगन्ध द्रव्य, पूर्वकाल में मुझे अर्पित कर चुके थे। तभी शङ्कर की प्रीति उन द्रव्यों तथा पुष्पों के प्रति नहीं है।।१००-१०२।।

१. क. दिग्वस्त्रधारी यो०।
२. क. पदे।
३. ख. स्वाङ्गवेषेण यो०।

धत्तूरे तत्सदा प्रीतिर्बिल्वपत्रानुलेपने। गन्धहीने सुगन्धे च योगीष्टे[1] व्याघ्रचर्मणि॥१०३॥
दिव्यलोके दिव्यतल्पे जनतायां न तन्मनः।
श्मशशनेऽतीव रहसि ध्यायते मामहर्निशम्॥१०४॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं समं च मन्यते शिवः। ममानिर्वचनीयेऽत्र रूपे तन्मग्नमानसम्॥१०५॥
ब्रह्मणः पतनेनापि शूलपाणेः क्षणो भवेत्।
तस्याऽऽयुषः प्रमाणं च नाहं जानामि का श्रुतिः॥१०६॥
ज्ञानं मृत्युञ्जयः शूलं धत्ते मत्तेजसा[2] समम्। विना मया न कश्चित्तं शङ्करं जेतुमीश्वरः॥१०७॥

धतूरा के पुष्प, बिल्वपत्र, बेल के काष्ठ को घिसकर निर्मित चन्दन, गन्धहीन पुष्प (धतूरा) तथा व्याघ्रचर्म योगीगण को वांछित हैं। योगी का मन दिव्यलोक, दिव्य शय्या तथा जनसमूह में नहीं लगता। तभी वे अतीव निर्जन स्थल श्मशान में अहर्निश मेरे ध्यान में निरत रहते हैं। ब्रह्मा की पूर्ण आयु काल शिव का मात्र एक क्षण ही है। शिव की आयु कितनी है, यह मुझे भी अज्ञात है। तब यह श्रुति को कैसे ज्ञात होगा? ये मृत्युञ्जय मेरे तेज से सम्पन्न ज्ञान तथा शूल धारण करते हैं। मेरे अतिरिक्त कोई भी शिव को जीत सकने में समर्थ ही नहीं है।।१०३-१०७।।

शङ्करः परमात्मा मे प्राणेभ्योऽपि परः शिवः।
त्र्यम्बके मन्मनः शश्वन्न प्रियो मे भवात्परः॥१०८॥
ब्रह्माण्डनिकरं छन्नं मया मन्मायया सदा। सा[3] कम्पति हरं शश्वन्न च तं मोहितुं क्षमा[4]॥१०९॥
न संवसामि गोलोकं वैकुण्ठे तव वक्षसि।
सदा शिवस्य हृदये निबद्धः प्रेमपाशतः॥११०॥

शंकर मुझे प्राणों से बढ़कर प्रिय हैं। वे परमात्मरूप तथा मंगलमय भी हैं। इन त्र्यम्बक के प्रति मेरा मन सदा निश्चल होकर स्थित रहता है। मेरे लिये उनसे अधिक प्रिय कोई भी नहीं है। मैं सभी ब्रह्माण्ड का स्वामी हूं। मेरी माया से समस्त जगत् समाच्छन्न है। इस माया के अतिरिक्त अन्य कोई शंकर को मोहाच्छन्न नहीं कर सकता। मैं गोलोक, वैकुण्ठ तथा तुम्हारे वक्षस्थल में सदा निवास नहीं करता। मैं शिव के हृदय में उनके प्रेमपाश से आबद्ध होकर सतत् स्थित रहता हूं।।१०८-११०।।

स्वरसिद्धं सुतानेन पञ्चवक्त्रेण शङ्करः। शश्वद्गायति मद्गाथां तेनाहं तत्समीपतः॥१११॥
स्त्रष्टुं शक्तो हि नष्टुं च भ्रूभङ्गलीलयाऽपि यः।
ब्रह्माण्डनिकरं योगान्न योगी शङ्करात्परः॥११२॥

१. क. योगेष्टे।
२. क. जसां मलम्।
३. ख. स।
४. क. क्षमः।

दिव्यज्ञानेन यः स्रष्टुं नष्टुं भ्रूभङ्गलीलया।
मृत्युं कालादिकं शक्तो न ज्ञानी शङ्करात्परः॥११३॥

शंकर अपने पांचों मुखों से सुतान तथा उत्तमलय में मेरी गाथा का सदा गायन करते रहते हैं। तभी मैं सदा उनके पास रहा करता हूं। जिनकी भ्रूभंगलीला तथा योगबल से ब्रह्माण्डों का नाश तथा सृजन होता है, उनके समान योगी त्रैलोक्य में कोई नहीं है। वे अपने दिव्यज्ञान तथा भ्रूभंगिमा मात्र से नष्ट हो गये मृत्यु एवं काल आदि की पुनः सृष्टि कर सकते हैं, उन शंकर से श्रेष्ठ कोई ज्ञानी ही नहीं है॥१११-११३॥

मम भक्तिं च दास्यं च मुक्तिं च सर्वसम्पदः।
सर्वसिद्धिं दातुमीशो न दाता शङ्करात्परः॥११४॥
पञ्चवक्त्रेण मन्नाम यो हि गायत्यहर्निशम्।
मद्रूपं ध्यायते शश्वन्न भक्तः शङ्करात्परः॥११५॥
अहं सुदर्शनं शंभुस्तेजसा च वयं समाः।
ब्रह्मा स्रष्टा च योगेन नास्माभिस्तेजसा समः॥११६॥
इत्येवं कथितं सर्वं शङ्करस्य यशोऽमलम्।
तथाऽप्यस्य दर्पभङ्गं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥११७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णकृतशङ्करप्रशंसा नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

शिव में यह सामर्थ्य है कि वे मेरी भक्ति, मेरा दास्यत्व, मुक्ति, सर्वसम्पदा, सर्वसिद्धि प्रदान कर सकते हैं। शंकर से बढ़कर कोई दाता नहीं है। वे महेश्वर अहर्निश अपने पंचमुख से मेरे नामों का गान किया करते हैं। वे मेरे रूप का सतत् ध्यान करते रहते हैं। शंकर से श्रेष्ठ कोई भी मेरा भक्त है ही नहीं। मैं कृष्ण, सुदर्शन चक्र तथा शिव, ये तीनों समान तेज वाले हैं। सृष्टि करने वाले ब्रह्मा भी योग तथा तेज में हम तीनों के समान नहीं हैं। हे राधिके! मैंने इस प्रकार तुमसे शङ्कर का निर्मल यश तथा उनके दर्पभंग का प्रसङ्ग कह दिया। अब तुमको क्या सुनने की इच्छा है?॥११४-११७॥

॥३६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

पार्वती के शाप के कारण शिव नैवेद्य अग्राह्य होना, शिव द्वारा कृत पार्वती स्तोत्र का वर्णन

राधिकोवाच

एवंभूतस्य च विभोः सर्वेशस्य महात्मनः। न शस्तं कथमुच्छिष्टं ब्रूहि सन्देहभञ्जन॥१॥

देवी राधिका कहती हैं—हे सन्देह का भञ्जन करने वाले प्रभु! जो शिव विभु सर्वेश्वर तथा महात्मा हैं, उनका उच्छिष्ट क्यों प्रशस्त नहीं कहा जाता?।।१।।

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। पापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखोपमम्॥२॥
सनत्कुमारो वैकुण्ठमेकदा च जगाम ह। ददर्श मुक्तवन्तं च नाथं नारायणं द्विजः॥३॥
तुष्टाव गूढैः स्तोत्रैश्च प्रणम्य भक्तितो मुदा। अवशेषं ददौ तस्मै सन्तुष्टो भक्तवत्सलः॥४॥
प्राप्तमात्रेण तत्रैव भुक्तं तेनैव किञ्चन। किञ्चिद्ररक्ष बन्धूनां भक्षणाय च दुर्लभम्॥५॥
सिद्धाश्रमे च यद्दत्तं गुरवे शूलपाणिने। भक्त्युद्रेकाच्च तत्सर्वं भुक्तं च प्राप्तिमात्रतः॥६॥
भुक्त्वा सुदुर्लभं वस्तु ननर्त प्रेतविह्वलः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रो मुदाऽन्वितः॥७॥
गायन्मम गुणान्भक्त्या सुकण्ठः पञ्चवक्त्रतः। रागभेदैकतानेन तालमानेन सुन्दरम्॥८॥
पपात डमरुर्हस्ताच्छृङ्गं च व्याघ्रचर्म च। स्वयं निपत्य पश्चाच्च रुदन्मूर्च्छामवाप ह॥९॥

श्रीकृष्णदेव कहते हैं—पाप रूप ईन्धन का दहन करने में अग्निशिखा के समान पुरातन इतिहास मैं तुमसे कहता हूं। श्रवण करो। एक बार सनत्कुमार वैकुण्ठ गये उन्होंने वहां देखा कि नारायण भोजन कर रहे हैं। इन द्विजोत्तम ने उनको भक्तिभाव से प्रणाम किया तथा अत्यन्त गूढ़ रहस्यमय स्तव करने लगे। तभी भक्तवत्सल प्रभु ने उन पर सन्तुष्ट होकर अपना उच्छिष्ट उनको दे दिया। उन द्विज ने कुछ उच्छिष्ट स्वयं भोजन कर लिया शेष बन्धुजन को देने हेतु रख लिया। जब सनत्कुमार सिद्धाश्रम पहुंचे तब उन्होंने शेष उच्छिष्ट अपने गुरु शूलपाणि शिव को दे दिया। शंकर में उस उच्छिष्ट को पाते ही अत्यन्त भक्ति का उद्रेक उमड़ उठा। उन्होंने तत्काल उसका भक्षण कर लिया। उस सुदुर्लभ वस्तु का भक्षण करते ही शङ्कर प्रेमविह्वल तथा परम आनन्द के साथ पुलकित होकर नृत्य करने लगे। उनके नेत्रों से अश्रु बिन्दु टपकने लगे। वे पञ्चानन प्रभु मधुरकण्ठ से तथा रागभेद से तालमान लय के साथ भक्ति पूर्वक मेरे गुणों का गायन करने लगे! उस समय शङ्कर इतने भावविभोर थे कि उनके हाथ से डमरु तथा शृङ्ग गिर गया। कटि में बंधा व्याघ्रचर्म भी खिसक गया। वे सुधबुध खो बैठे थे। वे स्वयं धरती पर गिर गये थे तथा रोने से उनको मूर्च्छा आ गयी।।२-९।।

अतीव कमनीयं तद्रूपं[1] ध्यात्वैकमानसः। सहस्त्रदलमध्यस्थं मां पश्यन्हृत्सरोरुहे॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी। मुदाऽऽजगाम शीघ्रं तत्प्रसन्नवदनेक्षणा॥११॥
रुदन्तं मूर्च्छितं दृष्ट्वा निपतन्तं च भक्तितः।
प्रहस्य वार्तां पप्रच्छ कुमारं शूलपाणिनः॥१२॥

वे प्रभु महेश्वर उस समय मेरे कमनीय रूप का एकाग्रता से सहस्त्रदल में ध्यान कर रहे थे। वे अपने हृदयकमल में मेरा दर्शन कर रहे थे। इसी बीच वहां प्रसन्नानन तथा उत्फुल्ल नेत्रों वाली देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी भगवती मुदित मन से पहुंच गयीं। उन्होंने भक्तिभाव से ओत-प्रोत रुदन करते मूर्च्छित होते, कभी गिरते-उठते, शिव को जब देखा, तब उन्होंने हंसते हुये सनत्कुमार से भगवान् शूलपाणि का समाचार जानना चाहा॥१०-१२॥

सर्वं तां कथयामास कुमारः सम्पुटाञ्जलिः।
श्रुत्वा चुकोप सा देवी शिवं प्रस्फुरिताधरा॥१३॥

उस समय महर्षि सनत्कुमार ने हाथ जोड़कर भगवती से सभी समाचार जैसे ही कहा, देवी क्रोधित हो गईं। उनके अधर फड़कने लगे॥१३॥

तां शप्तुमुद्यतां देवीमुत्थाय च त्रिलोचनः।
बोधयामास विविधं तुष्टाव सम्पुटाञ्जलिः॥१४॥
श्रुत्वा मनोहरं स्तोत्रं न शशाप शिवं शिवा। दुष्टं चक्रे तदुच्छिष्टमभक्ष्यं विदुषामपि॥१५॥

तभी त्रिलोचन शिव ने जब देवी को शाप देने हेतु उद्यत देखा उन्होंने देवी को अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर उनकी स्तुति भी किया। उस मनोहर स्तोत्र को सुनकर भगवती शिवा ने शिव को शाप तो नहीं दिया, तथापि उस उच्छिष्ट को दूषित कर दिया। वह अब पण्डितगण के लिये भी अभक्ष्यरूप हो गया। सभी के लिये निषिद्ध हो गया॥१४-१५॥

न लोकानां प्रभावश्च तपः सौभाग्यतेजसाम्।
ब्रह्माण्डे सर्वसंहर्ता चकम्पे पार्वतीमये॥१६॥
उवाच तं जगन्माता नीतिसारं परं वचः। गणप्रसूः सकोपा च रक्तपङ्कजलोचना॥१७॥
अहो तपः प्रभावश्च तेजसश्च न जीविनाम्।
स ब्रह्माण्डस्य संहर्ता चकम्पे शैलकन्यका॥१८॥

तथापि तपस्या बल से जो सौभाग्यशाली लोग हैं, उन पर इस शाप का प्रभाव नहीं होगा। उस समय सर्वसंहारक ब्रह्माण्ड संहारक शिव भी पार्वती के भय से कांप उठे। तब गणों की माता के नेत्र कोप से रक्तवर्ण हो गये। अहो! तप का कैसा प्रभांव है। जीवगण का तेज व्यर्थ है। ब्रह्माण्ड संहारक रुद्र भी शैलकन्या से भयभीत हो गये। उन जगन्माता ने नीतिसार रूप परम वचन कहा-॥१६-१८॥

१. क. ०भूपध्यानकै०।

पार्वत्युवाच

त्वं पोष्टा जगतां पाता ममैव च विशेषतः।
वक्ता चतुर्णां वेदानां जनकश्च स्वयं विभुः॥१९॥
मुक्तिप्रदाता भक्तानां दाता च सर्वसम्पदाम्।
त्वं चेत्करोषि दुर्नीतिं को वा धर्मं च पाति वै॥२०॥
सदा ते परिपाल्याऽहं पोष्या भक्त्या च किङ्करी।
वञ्चिता कर्मदोषेण हरनिर्माल्यभक्षणे॥२१॥
किञ्चिच्छुद्धं हिरण्येन किञ्चिद्वस्तु च वायुना।
किञ्चित्प्रक्षालनेनैव सर्वं विष्णोर्निवेदनात्॥२२॥

आप समस्त जगत् के रक्षक, पालक तथा विशेषतया मेरे हैं। आप चारों वेदों के जनक तथा व्यापक रूप हैं। आप भक्तों के मुक्तिदाता तथा सर्वसम्पत् प्रदाता भी हैं। जब आप ही दुर्नीति करने लगे, तब धर्मरक्षा कौन कर सकेगा? हे देव! मैं सदा आपके द्वारा पाली जाने वाली, पोष्या तथा दासी हूं। मैं केवल अपने कर्मदोष के कारण शिव निर्माल्य भक्षण अब नहीं कर सकूंगी। कतिपय वस्तु की शुद्धि स्वर्ण स्पर्श से, कुछ भी वायु स्पर्श से, कुछ की शुद्धि प्रक्षालन से होती है। परन्तु विष्णु को अर्पित किया सब कुछ शुद्ध हो जाता है।।१९-२२।।

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्या सर्वदेवता। पितरोऽतिथयश्चैवमिति वेदेषु निश्चितम्॥२३॥
अनिवेद्यमभक्ष्यं च नैवेद्यमुदरे हरो। त्यक्त्वा करोति यो भक्त्या पार्षदप्रवरो भवेत्॥२४॥

विष्णु को जो अन्न अर्पित किया गया उसी से सभी देवगण का यजन होता है। उसी से पितृगण तथा अतिथि का भी सत्कार करना चाहिये। यह वेदों में वर्णित है। जो अन्न हरि को अर्पित नहीं है, वह अभक्ष्य है। उसका सर्वथा त्याग करे। जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक हरि को अर्पित नैवेद्य का भक्षण करता है, वह श्रेष्ठ हरिपार्षद हो जाता है।।२३-२४।।

अमृतं सर्ववस्तूनामिष्टं सारं सुदुर्लभम्।
विष्णोर्निवेदितान्नस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥२५॥

हन्त्यकालिकमृत्युं तदमृतं मूढरञ्जनम्। नैवेद्यं च हरेरेव हरितुल्यं करोत्यहो॥२६॥

अमृत को तो लोग सभी वस्तु का सार, इष्ट एवं दुर्लभ कहते हैं, परन्तु अमृत भी हरि को निवेदित अन्न की तुलना में १६वीं कला बराबर (१/१६ भाग) भी नहीं है। अमृत तो अकालमृत्यु नाशक तथा मूर्खों को प्रसन्नता प्रदान करता है, परन्तु हरि का नैवेद्य तो व्यक्ति को हरि के समान बना देता है। अहो! यह अत्यद्भुत बात है!।।२५-२६।।

यदृच्छया तन्नैवेद्यं यो भुङ्क्ते साधुसङ्गतः। षष्टिवर्षसहस्राणां प्राप्नोति तपसः फलम्॥२७॥

यो निवेद्य हरिं भुङ्क्ते भक्त्या भक्तश्च नित्यशः।
किंवा तपस्यां कर्ता च स हरेस्तेजसा समः॥२८॥

जो कोई साधुगण के साथ अपनी इच्छा से हरि नैवेद्य भक्षण करता है, उसे ६०००० वर्ष पर्यन्त तपःश्चरण करने के फल की प्राप्ति होती है। जो भक्त हरि को निवेदित करके नित्य भोजन करता है, उसे तप की क्या जरूरत? वह तो हरि के समान तेजस्वी है। उसे तप की क्या आवश्यकता?॥२७-२८॥

श्रुतं पुरा त्वन्मुखतः पुष्करे मुनिसंसदि। अहं वेदविधाता न किमहं वक्तुमीश्वरी॥२९॥
सुचिरं च तपस्तप्त्वा मया लब्धस्त्वमीश्वरः।
त्वया विष्णोः प्रसादेन वञ्चिताऽहं कथं प्रभो॥३०॥
यतो न दत्तं नैवेद्यं विष्णोर्मह्यं त्वयाऽधुना। अतो मत्तो गृहाणैतत्फलमेव महेश्वरः॥३१॥
अद्यप्रभृति ये लोका नैवेद्यं भुञ्जते तव। ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येव भारते॥३२॥

मैंने पूर्वकाल में मुनि समाज के समक्ष पुष्करतीर्थ में आपके ही श्रीमुख से यह सब श्रवण किया था। उसका पूर्ण वर्णन मैं कैसे करूं? आप वेदकर्त्ता हैं। आपने जिस प्रकार से वर्णन किया था, मैं वैसा वर्णन कर ही नहीं सकूंगी। हे प्रभो! मैंने हिमालय पर दीर्घकालीन तपःश्चरण के द्वारा आप ईश्वर को पतिरूपेण प्राप्त किया है। हे प्रभो! तब आपने विष्णु के प्रसाद से मुझे वंचित क्यों कर दिया? अतः आप इसका फल, मुझसे ग्रहण करें। आज से जो कोई भारत में आपके नैवेद्य का भक्षण करेगा, वह भारत में एक जन्म श्वान का लेगा॥२९-३२॥

इत्युक्त्वा पार्वतीमाता रुरोद पुरतो विभोः।
दृष्टि पपात तत्कण्ठे नीलकण्ठो बभूव ह॥३३॥
तदा शिवः शिवां भक्त्या कृत्वा वक्षसि सादरम्।
तन्मानभङ्गं स्तोत्रेण विनयेन चकार ह॥३४॥

यह कहकर पार्वती शिव के समक्ष रुदन करने लगीं। तभी भगवती की दृष्टि जैसे ही शिव के कण्ठ पर गई, तत्काल शिव नीलकण्ठ हो गये! तब शिव ने पार्वती को सादर वक्ष से लगाकर आलिंगन किया। उस समय शिव ने अपने विनयपूर्ण व्यवहार से तथा शिवा की स्तुति करके उन देवी का मान दूरीभूत कर दिया!॥३३-३४॥

करेण चक्षुषोर्नीरं मंसृज्य च पुनः पुनः। बोधयामास विविधैर्नीतिवाक्यैर्मनोहरैः॥३५॥
परितुष्टा च सा देवी भर्तारं समुवाच ह। कलेवरं च त्यक्ष्यामि नैवद्येन विना हरेः॥३६॥
बिभर्ति (र्मि) देहं सततं तव सौभाग्यवर्धनम्।
कथं वहामि सौभाग्यरहितं च कलेवरम्॥३७॥

शिव ने अपनी हथेली से बार-बार शिवा के नेत्राश्रुओं को पोंछा तथा शिव नाना मनोहर वाक्यों

से भगवती को प्रबोधित कर दिया। तब देवी ने सन्तुष्ट होकर पति महेश्वर से कहा–"मैं हरि का नैवेद्य न मिलने के कारण देह त्याग करूंगी। क्योंकि मैं वही देह धारण करती हूं, जिससे आपका सौभाग्य वर्धित होता है। मैं इस सौभाग्यहीन शरीर को अब नहीं ढो सकूंगी!।।३५-३७।।

अपूर्वं तव नैवेद्यं[1] जन्ममृत्युजराहरम्। कृतं दुष्टं च यत्तस्मात्पश्य देहं त्यजामि च॥३८॥
लिङ्गोपरि च यद्दत्तं तदेवाग्राह्यमीश्वर। सुपवित्रं भवेत्तस्य[2] विष्णोर्नैवेद्यमिश्रितम्॥३९॥

आपका अपूर्व नैवेद्य तो जन्म, मृत्यु, जरा का हरण करने वाला है, तथापि मैंने उसे दूषित कर दिया। (शाप द्वारा दूषित कर दिया) तभी मैं देहत्याग कर रही हूं। हे महेश्वर! आपके लिङ्ग के ऊपर जो भी वस्तु प्रदान किया जायेगा, वह सब अग्राह्य होगा। लेकिन यदि उसमें हरि का नैवेद्य मिला दिया जायेगा। तब वही वस्तु पवित्र हो जायेगी। ग्राह्य तथा भक्ष्य होगी।।३८-३९।।

इत्येवमुक्त्वा सा देवी देहं त्यक्तुं समुद्यता।
त्रस्तो हरस्तत्पुरतः स्तुत्वा च स्वीचकार ह॥४०॥

यह कहकर भगवती देहत्याग हेतु उद्यत हो गईं। यह देखकर भगवान् महेश्वर त्रस्त होकर भगवती के समक्ष उनकी स्तुति करके देवी का वचन स्वीकार कर लिया।।४०।।

शङ्कर उवाच

स्थिरा भव महादेवि चण्डिके जगदम्बिके। ममापराधमखिलं क्षन्तुमर्हसि सुन्दरि॥४१॥
मां भृत्यं तपसा क्रीतं कृपां कुरु ममोपरि। ब्रह्मविष्णुमहेशानां बीजभूते सनातनि॥४२॥
अहो गोलोकनाथस्य गुणातीतस्य निर्गुणे। सर्वशक्तिस्वरूपे च सदैव सहचारिणि॥४३॥
साकारे च निराकारे नित्ये स्वेच्छामये प्रिये।
कृपया तद्विभोरेव मम वक्षसि साम्प्रतम्॥४४॥
सर्वबीजस्वरूपे च महामाये मनोहरे। सर्वसिद्धिप्रदे देवि मुक्तिदे कृष्णभक्तिदे॥४५॥

श्रीशंकर कहते हैं–हे महादेवी! चण्डिके! जगदम्बा! स्थिर हो जाओ। हे सुन्दरी! मेरा सभी अपराध क्षमा करो। तुमने मुझे अपने तप से खरीद लिया है। मैं तुम्हारा भृत्य हूं। तुम मुझ पर कृपा करो। हे सनातनी! तुम ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की कारण (बीजरूपा) हो। अहो! हे देवी! तुम निर्गुण हो! हे देवी! तुम गुणों से अतीत गोलोकनाथ की शक्तिस्वरूपा तथा सदैव सहचारिणी हो। हे प्रिये! तुम ही साकार, निराकार, नित्य, स्वेच्छामयी हो। तुम विभु कृष्ण की ही कृपा से मेरे वक्ष पर विराजमान हो। हे देवी! हे महामाया! तुम सर्वबीजस्वरूप, मनोहरा, सर्वसिद्धिप्रदा, मुक्तिप्रदा तथा कृष्णभक्ति देने वाली हो।।४१-४५।।

इच्छैवं श्रीहरेः साक्षान्नाहं दातुमपि क्षमः। तदा देहं परित्यज्य निर्गुणं व्रज निर्गुणे॥४६॥

१. क. हविर्भुक्ते।
२. क. तत्र।

मैंने जो तुमको हरि का नैवेद्य नहीं दिया यह तो श्रीहरि की साक्षात् इच्छा थी! हे निर्गुणे! यह जानकर ही देहत्याग करो तथा तुम निर्गुण में निवास करोगी।।४६।।

इत्येवमुक्त्वा पुरतस्तस्थौ च चन्द्रशेखरः। बभूव सुप्रसन्ना सा प्रणनाम हरं परम्।।४७।।

यह स्तव करके चन्द्रशेखर शिव देवी भगवती के समक्ष स्थित हो गये। इस स्तव से देवी ने प्रसन्न होकर परमेश्वर शिव को प्रणाम किया!।।४७।।

इत्येवं पार्वतीस्तोत्रं शङ्करेण कृतं पुरा। यः पठेद्विपदाग्रस्तः स भयादेव मुच्यते।।४८।।
मित्रभेदो भवेद्दूरं तत्संप्रीतिर्भवेत्पुरा। पार्वती परितुष्टा च न त्यजेत्तस्य मन्दिरम्।।४९।।

पूर्वकाल में शंकर कृत इस पार्वती स्तोत्र को जो कोई आपदाग्रस्त व्यक्ति पढ़ेगा, वह भय से शीघ्र मुक्त हो जायेगा। उसका मित्र से विरोध दूर होगा। मित्र पूर्ववत् प्रीति करेंगे। भगवती पार्वती इस स्तोत्र पाठ करने वाले पर सन्तुष्ट होकर उसका गृह कदापि त्याग नहीं करेगी।।४८-४९।।

श्रीकृष्ण उवाच

श्रुत्वा प्रतिज्ञां नाथस्य परितुष्टा बभूव सा। जगाम स्वर्णदीं तूर्णं स्नानार्थं शङ्कराज्ञया।।५०।।

स्नात्वा सम्पूज्य भक्त्या च सुरमिष्टं च निर्गुणम्।
चकार प्रस्तुतं शीघ्रं मिष्टान्नं व्यञ्जनानि च।।५१।।
शिवः स्नात्वा च सम्पूज्य ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
तुष्टाव परया भक्त्या मामेव हृदयस्थितम्।।५२।।

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे प्रिये राधिके! पार्वती ने प्राणपति शिव की प्रतिज्ञा जब सुना वे सन्तुष्ट हो गई। वे शीघ्र शिव की आज्ञा से मन्दाकिनी नदी में स्नानार्थ चली गईं। स्नानोपरान्त देवी ने भक्तिभाव पूर्वक निर्गुण अभीष्ट देव की पूजा किया तथा शीघ्र मिष्टान्न तथा व्यंजनादि अर्पित किया। उस समय शिव ने भी स्नानोपरान्त परमभक्ति के साथ हृदयस्थ ब्रह्मज्योतिस्वरूप सनातन श्रीहरि की अर्चना किया तथा उन्होंने मुझ श्रीकृष्ण का स्तव किया।।५०-५२।।

गत्वा सर्वमहं भुक्त्वा तस्मै दत्त्वाऽभिवाञ्छितम्।
नैवेद्यं पार्वती लेभे तव मूलं समागता।।५३।।

तदनन्तर मैं स्वयं वहां गया तथा अर्पित अन्न भक्षण करके शिव-पार्वती को वांछित फल प्रदान किया। तदनन्तर हे राधा! पार्वती ने तुम्हारे चरणकमलों की शरण ग्रहण करके स्वयं नैवेद्य ग्रहण किया।।५३।।

भुक्त्वाऽवशेषं सा देवी सह भर्त्रा मुदान्विता।
दुष्टाव शङ्करं भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहः।।५४।।

भगवती शिव के साथ अवशिष्ट नैवेद्य को ग्रहण करके अत्यन्त मुदित हो गईं। उन्होंने शङ्कर की स्तुति करके उनको बारम्बार प्रणाम निवेदन किया।।५४।।

इत्येवं कथितं सर्वं त्वया पुष्टं सुरेश्वरि। अभिशप्तं शङ्करस्य निर्माल्यं येन हेतुना॥५५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० हरिनिर्माल्यशापप्रसङ्गो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

—*—

हे सुरेश्वरी! मैंने तुम्हारी जिज्ञासा का इस प्रकार वर्णन कर दिया। यह भी बतला दिया कि शिव निर्माल्य क्यों अभिशप्त हो गया॥५५॥

॥३७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

दुर्गादर्पभङ्ग प्रसङ्ग के अन्तर्गत् दर्पनाशार्थ सती का प्राणत्याग, पार्वतीरूपेण उनका जन्म तथा शिव-गिरि समागम वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

दर्पभङ्गं श्रुतो देवि शङ्करस्य जगद्गुरोः। अधुना श्रूयतां मत्तो दुर्गादर्पविमोचनम्॥१॥
तेजसा सर्वदेवानामाविर्भूय जगत्प्रसूः। दधार कामिनीरूपं कमनीयं मनोहरम्॥२॥
निहत्य दानवेन्द्रांश्च ररक्ष देवताकुलम्। लेभे जन्म ततो देवी जठरे दक्षयोषितः॥३॥
पिनाकपाणिं जग्राह सा देवी सुरसाधनम्। शश्वत्परमभक्त्या च सिषेवे स्वामिनं सती॥४॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे देवी! तुमने जगद्गुरु शङ्कर का दर्पभङ्ग वृत्तान्त तो सुना। अब जिस प्रकार मैंने दुर्गा का दर्पभङ्ग किया था, उसे श्रवण करो। पूर्वकाल में जगत्प्रसविनी दुर्गा ने सभी देवताओं के तेज से आविर्भूत होकर मनोहर, कमनीय, कामिनी का रूप धारण किया था। तत्पश्चात् उन्होंने दानवेन्द्रगण का वध करके देवकुल की रक्षा किया था। इसके पश्चात् उन्होंने दक्ष प्रजापति की पत्नी के उदर से जन्म लिया। उन्होंने देवताओं द्वारा सेवित पिनाकपाणि शङ्कर को पतिरूपेण प्राप्त किया और पूर्ण भक्तिभाव के साथ वे स्वामी सेवा निरत हो गईं॥१-४॥

दक्षेण सार्धं दैवेन बभूव शिवशत्रुता। निरर्थकं दैवयोगात्पुरा वै सुरसंसदि॥५॥
दक्षश्चकार यज्ञं च तत आगत्य कोपतः। सर्वान्विज्ञापयामास तत्रैव शङ्करं विना॥६॥

सस्त्रीका देवताः सर्वा आजग्मुर्दक्षमन्दिरम्।
सगणः शङ्करः कोपान्नाऽऽजगामाभिमानतः॥७॥

सती पतिं च मोहेन बोधयामास यत्नतः।
न तं चालयितुं शक्ता बभूव चञ्चला स्वयम्॥८॥

तदनन्तर एक बार ब्रह्मा ने हिमालय में यज्ञ किया था। उसमें देवगण की सभा में दक्ष के साथ शिव की निरर्थक रूप से शत्रुता हो गई। दक्ष उस यज्ञ से क्रोध में भरकर अपने गृह आये तथा उन्होंने स्वयं यज्ञ करना प्रारम्भ किया। उसमें दक्ष ने सभी देवताओं को निमन्त्रित किया, परन्तु शंकर को उस यज्ञ में आमन्त्रित नहीं किया। इस यज्ञ में देवगण सपत्नीक भाग लेने दक्ष के यहां आये थे, तथापि शङ्कर क्रोध तथा अभिमान के कारण अपने गणों के साथ नहीं आये थे। उस समय देवी सती ने यत्न पूर्वक मोहवशात् पति शङ्कर को अनेक प्रबोध वाक्यों से समझाया था, तथापि वे किसी भी प्रकार से शङ्कर को दक्ष यज्ञ में जाने के लिये सहमत नहीं कर सकीं, तथापि सती स्वयं दक्ष यज्ञ में जाने के लिये चंचल हो उठीं।।५-८।।

आजगाम पितुर्गेहं दर्पात्तस्य विनाऽऽज्ञया। तस्य शापेन तस्याश्च दर्पभङ्गो बभूव ह॥९॥
न हि संभाषणं चक्रे वाङमात्रेण पिता च ताम्।
श्रुत्वा च निन्दां भर्तुश्च देहं तत्याज मानतः॥१०॥

देवी सती बिना शंकर की आज्ञा लिये दर्प के कारण पितृगृह आ गईं। अतः उनके (शिव के) शाप के कारण सती का दर्पभङ्ग हो गया। जब सती पिता के घर आ गईं पिता दक्ष ने वाक्यों से भी सती का आदर-सत्कार नहीं किया तथा सती से कोई बात तक नहीं किया। दक्ष द्वारा पति निन्दा किये जाने पर सती ने मान के कारण अपना शरीर त्याग दिया।।९-१०।।

एवं प्रिये निगदितं सतीदर्पविमोचनम्। तस्या जन्मान्तरं नित्यं दर्पभङ्गश्च श्रूयताम्॥११॥
लेभे जन्म सती शीघ्रं जठरे शैलयोषितः।
शिवस्तस्याश्चिताभस्म चास्थि जग्राह भक्तितः॥१२॥
चकार मालामस्थ्नां च भस्मना तनुलेपनम्।
स्मारं स्मारं सतीं प्रेम्णा भ्रामं भ्रामं पुनः पुनः॥१३॥

हे प्रिये! इस प्रकार मैंने सती के दर्पभङ्ग का प्रसंग कहा। यही नहीं, अन्य जन्म में भी सती का दर्पभङ्ग होने का प्रसंग श्रवण करो। सती ने पुनः हिमालय की पत्नी के उदर से जन्म ग्रहण किया। उधर अत्यन्त प्रीति के कारण शिव ने अपने शरीर पर सती की चिताभस्म लगाया और सती की अस्थियों की माला बनाकर धारण किया। देवी सती की भस्म ही शिव का अङ्गराग तभी से हो गई। अब महेश्वर शिव बारम्बार सती का स्मरण करते चारों ओर घूमने लगे।।११-१३।।

सुषाव मेना तां देवीमतीव सुमनोहराम्।
सृष्टौ विधातुस्तस्याश्च ह्युपमा नास्ति कुत्र च॥१४॥
गुणप्रसूर्गुणान्सर्वान्सर्वरूपान्बिभर्ति सा। सर्वाश्च देवपत्न्यस्तत्कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१५॥

बभूव वर्धमाना सा शुक्ले चन्द्रकला यथा। अतीव यौवनस्था च शैलगेहे दिने दिने॥१६॥
वभूवाऽऽकाशवाणी च तां सम्बोध्य जगत्प्रसूम्।
शिवे शिवं च तपसा कठोरेण लभेति च॥१७॥
विनेश्वरं न तपसा प्राप्ता हि गर्भसंभवम्। प्रहस्य तस्थौ श्रुत्वेति सा च यौवनगर्विता॥१८॥
मम जन्मान्तरीयं च भस्मास्थि च बिभर्ति यः।
स मां प्रौढां कथं दृष्ट्वा न गृह्णात्यत्र जन्मनि॥१९॥

उधर हिमालय की भार्या मेना ने विधाता ब्रह्मा की सम्पूर्ण सृष्टि की सर्वोत्तम रूपशालिनी अनुपम रूपवती देवी (उमा) को जन्म दिया। ऐसी रूपवती संसार में कोई भी नहीं थीं। समस्त गुणों को जन्म देने वाली देवी उमा सर्वगुण एवं सर्वरूप धारिणी होकर शोभायमान होने लगीं। सभी देवगण की पत्नियां भी रूप-गुण में उमा का षोडशांश भी नहीं थीं। ये देवी पर्वतराज के गृह में शुक्लपक्षीय चन्द्रकला के समान दिनोंदिन वृद्धिगत होने लगीं। इस प्रकार उन्होंने यौवनावस्था में पदार्पण किया। उस समय उन भगवती उमा को सम्बोधित करती दैववाणी ने कहा–"हे शिवे ! तुम कठोर तप करके शिव को पतिरूप से प्राप्त करो। तुम गर्भ से उत्पन्न हो। इसीलिये बिना तपस्या किये तुम ईश्वर शिव की पतिरूपेण प्राप्ति नहीं कर सकती।" यह सुनकर यौवन के दर्प से गर्विता देवी ने हंसते हुये विचार किया कि जो शिव और पूर्वजन्म की अस्थियां तथा देहभस्म धारण किये घूमते रहते हैं, वे इस जन्म में मुझे प्रौढयौवनयुक्त देखकर क्यों ग्रहण नहीं करेंगे?॥१४-१९॥

यो विदग्धश्च ब्रह्माण्डं बभ्राम मम शोकतः।
स कथं मां न गृह्णाति दृष्ट्वा परमसुन्दरीम्॥२०॥
दक्षयज्ञं यो बभञ्ज मम हेतोः कृपानिधिः।
स कथं मां न गृह्णाति पत्नीं जन्मनि जन्मनि॥२१॥
या यस्य पत्नी या यस्या भर्ता प्राक्तनतः पुरा।
कुतो विश्वे तयोर्भेदो निषेको नान्यथा भवेत्॥२२॥

जो अत्यन्त बुद्धिशाली होकर भी मेरे शोक में ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते रहते हैं, वे मुझ परमासुन्दरीरूपवती को क्यों ग्रहण नहीं करेंगे? जिस कृपामय प्रभु ने मेरे कारण दक्षयज्ञ ध्वंस कर दिया वे मेरे इस जन्म में मुझ जैसी पत्नी को ग्रहण क्यों नहीं करेंगे? जिस रमणी का जो पूर्वजन्म में पति रहा है तथा पूर्वजन्म में जो जिसकी पत्नी रह चुकी है, उसमें अब भेद (पृथक्ता) कैसे संभव है। प्रारब्ध कभी अन्यथा नहीं हो सकता॥२०-२२॥

सर्वरूपगुणाधारं मत्वा स्वमतिमानतः। न चकार तपः साध्वी न विज्ञाय तमीश्वरम्॥२३॥
सुन्दरीषु च सर्वासु मत्तो नास्त्येव सुन्दरी। हृदीति मत्वा गर्वेण न चकार तपः शिवा॥२४॥
रूपयौवनवेषाणां पुमान्ग्राही स्वयोषिताम्। शिवो मच्छ्रुतिमात्रेण मां गृह्णाति विना तपः॥२५॥

हृदीति मत्वा गिरिजा तस्थौ हिमगिरेगृहे।
शश्वत्सहचरीमध्ये क्रीडोन्मत्ता दिवानिशम्॥२६॥

एतस्मिन्नन्तरे तूर्णं दूतः शैलेन्द्रसंसदि। उवाचाऽऽगत्य मधुरं तत्पुरः सम्पुटाञ्जलिः॥२७॥

भगवती उमा ने इस प्रकार का अभिमान किया तथा उन्होंने स्वयं को सर्वापेक्षा अधिक सुन्दरी मान कर गर्व से तपस्या ही नहीं किया। इसी कारण पार्वती ने शिव को उस समय ईश्वर नहीं समझा। उनका यह विचार था कि पुरुष मात्र ही रूप-यौवन सम्पन्ना रमणी की कामना करते हैं। अतः मेरे रूप-यौवन के सम्बन्ध में सुनकर वे मुझे स्वयं ग्रहण करेंगे। इसमें तपःश्चरण आवश्यक नहीं है। इस प्रकार गिरिजा अपने मन में धारणा बनाकर पिता हिमालय के गृह में सखियों के साथ क्रीड़ामग्न रहतीं समय व्यतीत करने लगीं। तभी एक दिन एक दूत पर्वतराज की सभा में आया तथा हाथ जोड़कर पर्वतराज हिमालय से मधुर वाणी में कहने लगा॥२३-२७॥

दूत उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शैलेन्द्र गच्छाक्षयवटान्तिकम्। आजगाम महादेवः सगणो वृषवाहनः॥२८॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः। पूजनं कुरु शैलेन्द्र देवेन्द्रं तमतीन्द्रियम्॥२९॥

सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्।
मृत्युञ्जयं कालकालं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्॥३०॥

परमात्मस्वरूपम् च सगुणं निर्गुणं विभुम्। भक्तध्यानार्थममलं दधानं देहमीश्वरम्॥३१॥

दूत कहता है—हे शैलराज! आप शीघ्र उठें तथा अक्षय वटवृक्ष के पास जायें। वहां वृषवाहन महादेव प्रमथगणों के साथ आये हैं। हे शैलपति! आप नतशिर होकर, भक्ति के साथ मधुपर्क आदि से इन इन्द्रियातीत देवेन्द्र शिव की पूजा करिये। हे राजन्! वे सिद्धिस्वरूप, सिद्धीश्वर, योगीन्द्रों के गुरुओं के भी गुरु हैं। वे मृत्युञ्जय, काल के भी काल, ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म हैं। वे परमात्मारूप, सगुण तथा निर्गुण विभु हैं। उन्होंने केवल इसीलिये मूर्त्तरूप (देह) धारण किया है, जिससे भक्त उनका ध्यान कर सकें॥२८-३१॥

शैलो दूतवचः श्रुत्वा समुत्तस्थौ मुदाऽन्वितम्।
मधुपर्कादिकं नीत्वा जगाम शङ्करान्तिकम्॥३२॥

देवी दूतवचः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा। हृदीति मेने मद्धेतोराजगाम महेश्वरः॥३३॥
चकार वेषमतुलं दधार वस्त्रमुत्तमम्। रत्नेन्द्रसारालङ्कारान्रत्नमालां मनोहराम्॥३४॥
पारिजातप्रसूनानां मालां चन्दनसंयुताम्। चकार शङ्करार्थं च मत्वा मालां मनोहराम्॥३५॥
रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श दर्पणे मुखम्। कस्तूरीविन्दुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुभूषितम्॥३६॥
आरक्तनेत्रयुगलं निर्मलाञ्जनसंयुतम्। शरन्मध्याह्नकमलं यथाऽलिपङ्क्तिवेष्टितम्॥३७॥

शैलपति हिमाचल दूत का कथन सुनकर सानन्द अपने आसन से उठे तथा मधुपर्क आदि एकत्र करके यथाशीघ्र शंकर के पास आये। दूत से शंकर के आगमन का संवाद पाकर भगवती गिरिजा (उमा) का मुख प्रफुल्लित हो उठा। वे विचार करने लगीं कि "शङ्कर तो मेरे कारण आये हैं।" यह विचार करके देवी ने उत्तम वेषभूषा धारण किया। मनोहर वस्त्र पहना तथा रत्नों के सारभाग से निर्मित मनोहर माला गले में धारण कर लिया। उन्होंने उत्तम पारिजात पुष्पों की माला में भी चन्दन लगाया तथा अपने कण्ठ में धारण कर लिया। देवी ने इसके पश्चात् स्वयं को अत्यन्त मनोहर मान लिया और वे उत्तम रत्नमय सिंहासन पर बैठकर दर्पण में अपने मुख का अवलोकन करने लगीं। उनका ललाट कस्तूरी की बिन्दी के नीचे सिन्दूर की बिन्दी से युक्त होने के कारण शोभायमान था। देवी के नेत्रद्वय लालिमा युक्त थे। उसमें निर्मल काजल लगा था। देवी के नेत्र शरदकालीन मध्याह्न काल में विकसित कमल ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जो भ्रमरपंक्तियों से घिरे होते हैं।।३२-३७।।

सुकोमलौष्ठयुगलं ताम्बूलरागसंयुतम्। अतीव सुन्दरं रम्यपक्वबिम्बफलं यथा॥३८॥
रत्नकुण्डलदीप्त्या च गण्डस्थलविराजितम्। सूर्योदयेन ज्वलितं सुमेरुशिखरं यथा॥३९॥

उन भगवती के अधरोष्ठ ताम्बूल की लालिमा से रंजित, रम्य तथा पक्व बिम्ब फलवत् अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे। उनके कानों में लटकते दोनों कुण्डल की प्रभायुक्त किरणों से देवी का कपोल उस प्रकार शोभायमान था जैसे सूर्योदय काल में सुमेरुपर्वत शिखर द्योतित होने लगता है।।३८-३९।।

अत्यनिर्वचनीयं च दन्तपङ्क्तिमनोहरम्। यथा मुक्तासमूहं च सजलं जलदागमे॥४०॥
गजमुक्तासमायुक्तं सुचारुनासिकोत्तमम्। सुशोभितं यथा मेरुं स्वर्णदीजलधारया॥४१॥
मालतीमाल्यसंयुक्तकबरीभारसंयुतम्। बकपङ्क्तिसुशोभाढ्यं नवीनं जलदं यथा॥४२॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभं चारुवक्षःस्थलोज्ज्वलम्। रत्नेन्द्रसारहाराक्तं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्॥४३॥
चारुचम्पकवर्णाभं स्तनयुग्मं मनोहरम्। बदरीफलतुल्यं च चारुपत्रकशोभिताम्॥४४॥
मध्यं मनोहरं क्षीणं निम्ननाभिस्थलोज्ज्वलम्। अतीव सुन्दरं रम्य सुंदरं वर्तुलाकृति॥४५॥
रम्भास्तम्भविनिन्द्यैकमुरुयुग्मं मनोहरम्। कामालयं सुकठिनं निगूढमंशुकेन च॥४६॥
स्थलपद्मप्रभामुष्टपदयुग्मं मनोहरम्। रत्नपाशकसंयुक्तं सिद्धालक्तकभूषितम्॥४७॥

भगवती शिवा की दन्तपंक्ति अत्यन्त मनोहर तथा अनिर्वचनीय थी। उनको देखकर लग रहा था कि वह वर्षाकालीन जलयुक्त मुक्तापंक्ति हो! भगवती की नासिका गजमुक्ता युक्त थी। उनको देखकर प्रतीत होता था मानों सुमेरु पर्वत गङ्गा की जलधारा से शोभायमान हो रहा हो! जैसे नवीन मेघ के नीचे श्वेत बगुलों की पंक्ति मनोहारिणी तथा शोभायुक्त लगती है, तद्रूप देवी के केशपाश में गुंथी श्वेतमालाती की माला शोभायमान लग रही थी। भगवती के वक्षस्थल की आभा तप्त स्वर्णवत् समुज्वल तथा मनोहारिणी थी। उनका कटिप्रदेश क्षीण तथा मनोहर था। भगवती ने वक्षस्थल पर रत्नों के सारभाग से निर्मित हार धारण किया था तथा वक्षस्थल कस्तूरी, कुंकुम से लिप्त था। देवी के

स्तनद्वय उत्तम चम्पा के पुष्पों के वर्ण की आभा वाले तथा मनोहारी थे। वे आकार में बेर फल के समान तथा उत्तम चित्रपत्र से (चित्रकारी-से) शोभायमान हो रहे थे। देवी की गंभीर नाभि प्रकाशमान प्रतीत हो रही थी। देवी का उदर अत्यन्त सुन्दर तथा गोलाकृति एवं रमणीय था। देवी की दोनों जांघें तो केले के स्तम्भ की शोभा को भी लज्जित कर देने वाली अतीव सुन्दर थीं। देवी का कामालय (भग प्रदेश) अत्यन्त कठिन तथा वस्त्र में छिपा था। देवी के चरणयुगल तो स्थलपद्म की भी शोभा का हरण करने वाले रत्नों की पाजेब से भूषित थे तथा उनमें आलता लगा था।।४०-४७।।

दधतं रत्नमञ्जीरं राजहंसानुकारि च। रत्नेन्द्रसाराभरणं निर्मितं विश्वकर्मणा।।४८।।
करं सुकोमलतरं सुन्दरं कनकप्रभम्। रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषितम्।।४९।।
बिभ्रत्सद्रत्नमुकूरं[1] लीलाकमलमुज्ज्वलम्। रत्नाङ्गुलीयमतुलं दधनं सुमनोहरम्।।५०।।
दृष्ट्वा स्वरूपमतुलं दध्यौ शङ्करमीश्वरम्। विशिष्य मनसा शश्वद्भर्तुश्चरणपङ्कजम्।।५१।।

भगवती ने ऐसे रत्ननूपुर धारण किया था, जो ऐसे बजते थे मानो राजहंस बोल रहे हों! देवी के आभूषणों को विश्वकर्मा ने उत्तम रत्नों के सारभाग से बनाया था। भगवती की हथेली अत्यन्त कोमल तथा स्वर्णप्रभा से युक्त लगती थी। देवी की बाहु में रत्न के कंकण, केयूर, शङ्ख के बने आभूषण विभूषित थे। देवी के हाथों में रत्नदर्पण, उज्वल लीला कमल, मनोहर तथा अतुलनीय रत्नों से निर्मित मुद्रिका शोभायमान थी। जब देवी के दर्पण में अपने इस अतुलनीय रूप का दर्शन किया, तब वे ईश्वर शिव के ध्यान के अतिरिक्त विशेषतया शिव के चरण कमलों का ध्यान करने लगीं।।४८-५१।।

पितरं मातरं बन्धुं साध्वीवर्गं सहोदरम्। अन्तरे सा न सस्मार किञ्चिदेव शिवं विना।।५२।।
अथ शैलेश्वरस्तत्र ददर्श चन्द्रशेखरम्। स्वर्णदीपुलिनाद्रम्यादुत्पतन्तं च सस्मितम्।।५३।।

देवी उस समय अपने पिता-माता, बन्धु, साध्वीवर्ग, सहोदर, किसी का भी स्मरण न करके केवल शिवध्यान में तन्मय थीं। तभी शैलेश्वर हिमाचल ने वहां पदार्पण करके चन्द्रशेखर शिव का दर्शनलाभ किया। भगवान् शिव उस समय मन्दाकिनी नदी के पावन तट से होते हुये हास्यपूर्ण स्थिति में उधर ही चले आ रहे थे।।५२-५३।।

दधतं संस्कृतां मालां जपन्तं मम नामकम्। तप्तस्वर्णप्रभाजुष्टजटाराशिविराजितम्।।५४।।
वृषभस्थं शूलपाणिं सर्वभूषणराजितम्। नागयज्ञोपवीतं च सर्वभूषणभूषितम्।।५५।।
शुद्धस्फटिकसंकाशं व्याघ्रचर्मधरं परम्। विभूतिभूषिताङ्गं तमस्थिमालं दिगम्बर।।५६।।
पञ्चवक्त्रं त्रिनयनं सूर्यकोटिसमप्रभम्। ददर्श रुद्रान्परितो ज्वलतो ब्रह्मतेजसा।।५७।।

वे संस्कारयुक्त जपमाला को लेकर मेरा नाम जप रहे थे। उनके मस्तक पर तप्तस्वर्ण की प्रभा को भी म्लान कर देने वाला जटाभार विराजमान था। वे वृषारूढ़ तथा नागभूषण से भूषित थे। उनकी अंगज्योति शुद्ध स्फटिकवत् शुभ्र थी। उनका परिधान था व्याघ्रचर्म। उनका कलेवर विभूति (भस्म) से

१. ख. मुकुटम्।

भूषित था। गले में अस्थिमाला अत्यन्त मनोहर लग रही थी। वे दिगम्बर थे। उनके पांचों मुखों में से प्रत्येक पर तीन-तीन नेत्र दीप्त हो रहे थे। हिमवान् ने इस प्रकार कोटिसूर्य समप्रभ शिव के चतुर्दिक् ब्रह्मतेज से प्रज्वलित रुद्रों को देखा।।५४-५७।।

शिववामे महाकालं दक्षिणे नन्दिकेश्वरम्। भूतप्रेतपिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान्।।५८।।
वेतालान्क्षेत्रपालांश्च भैरवान्भीमविक्रमान्। सनकं च सनन्दं च कुमारं च सनातनम्।।५९।।
जैगीषव्यं देवलं च काणादं गौतमं तथा। पिप्लादं कणखनं वोढुं पञ्चशिखं कठम्[1]।।६०।।
जाजलिं[2] करखं[3] कर्णं लोमशं सूर्यवर्चसम्।
कात्यायनं पाणिनिं च शङ्खं दुर्वाससं ततः।।६१।।
शातातपं पारिभद्रमष्टावक्रं मरुद्भवम्। एतान्पुरोगमान्नत्वा प्रणनाम शिवं गिरिः।।६२।।

शिव के बायीं ओर महाकाल, दाहिनी ओर नन्दिकेश्वर स्थित थे। वहीं पर भूत-प्रेत-पिशाच-कूष्माण्ड-ब्रह्मराक्षस-वेताल-क्षेत्रपाल-भीमविक्रम भैरव स्थित थे। वहां सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, जैगीषव्य, देवल, कणाद, गौतम, पिप्पलाद, कणखन, वोढु, पंचाशिख, कंठ, जाजलि, करख, कर्ण, लोमश, सूर्यवर्चा, कात्यायन, शंख, दुर्वासा, शातातप, पारिभद्र, अष्टावक्र, मरुद्व शिव के समक्ष खड़े थे। यह देखकर पर्वतराज ने शिव को नत होकर प्रणाम किया।।५८-६२।।

मूर्ध्ना निपत्य भूमौ स दण्डवत्संपुटाञ्जलिः।
अथो अनल्पया भक्त्या धृत्वा तच्चरणाम्बुजम्।
ननाम चाश्रुनेत्रः स पुलकाञ्चितविग्रहः।।६३।।
धर्मदत्तेन स्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम्। तुष्टे ब्राह्मे दिनेऽतीते पुष्करे सूर्यपर्वणि।।६४।।

पर्वतराज ने भूमि पर लेटकर अत्यन्त भक्ति से शिव के चरण पकड़कर उनको दण्डवत् किया तथा हाथ जोड़कर शिव को नमस्कार किया। उस समय हिमालय का शरीर रोमांचित हो उठा। उनके नेत्र से अश्रु बहने लगा। इसके अनन्तर हिमालय धर्मदेव द्वारा प्रदत्त स्तोत्र से परमेश्वर की स्तुति करने लगे। यह स्तोत्र धर्मदेव ने सूर्य ग्रहण के अवसर पर ब्राह्मदिवस व्यतीत होने पर पुष्कर क्षेत्र में हिमवान् को प्रदान किया था।।६३-६४।।

हिमालय उवाच

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः।
त्वं शिवः शिवदोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः।।६५।।
त्वमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः। प्रकृतः प्रकृतीशश्च प्राकृतः प्रकृतेः परः।।६६।।

---
१. ख. कचम्।
२. ख. जाबालिम्।
३. ख. करथं कण्वम्।

नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे। येषु रूपेषु यत्प्रीतिस्तत्तद्रूपं बिभर्षि च॥६७॥

हिमवान् कहते हैं–आप ही सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा तथा सृष्टिपालक विष्णु हैं। आप ही कल्याणप्रद शिव तथा सर्वसंहारकारी एवं अनन्त भी हैं। आप गुणातीत ईश्वर, सनातन, ज्योतिरूप, प्रकृति, प्रकृति से अतीत हैं। आप भक्तगण के ध्यानार्थ ही नानारूप धारण करते हैं। जो भक्त जैसे रूप का ध्यान करना चाहता है, आप उसके लिये वैसा ही रूप धारण कर लेते हैं।।६५-६७।।

सूर्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम्।
सोमस्त्वं सस्यपाता च सततं शीतरश्मिना॥६८॥
वायुस्त्वं वरुणस्त्वं च त्वमग्नि सर्वदाहकः।
इन्द्रस्त्वं देवराजश्च कालो मृत्युर्यमस्तथा॥६९॥

मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः। वेदस्त्वं वेदकर्ता च वेदवेदाङ्गपारगः॥७०॥

आप ही सृष्टिकर्त्ता सूर्य तथा सभी तेज के आधार हैं। आप ही सस्य (फसल) के रक्षक सोम हैं जो सतत् शीतरश्मियों द्वारा रक्षण कार्य करते हैं। आप ही वायु, वरुण तथा सर्वदाहक अग्नि हैं। आप इन्द्र, देवराज, काल, मृत्यु, यम, मृत्युञ्जय, मृत्यु की भी मृत्यु, काल के भी काल, यम का भी नाश करने वाले, वेद, वेदकर्त्ता तथा वेदाङ्ग-पारङ्गत हैं।।६८-७०।।

विदुषां जनकस्त्वं च विद्वांश्च विदुषां गुरुः।
मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं तत्फलप्रदः॥७१॥
वाक् त्वं वागधिदेवी त्वं तत्कर्ता तद्गुरुः स्वयम्।
अहो सरस्वतीबीजं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥७२॥

आप ही विद्वानों को जन्म देने वाले, विद्वान्, विद्वत्वर्ग के गुरु, मन्त्र-जप-तप हैं। आप तपःफलदाता भी हैं। आप ही वाक्, वाग्देवी (वाग् की अधिदेवता), इनके कर्त्ता तथा इनके गुरु भी हैं। आप ही सरस्वती के भी बीजरूप (सरस्वती के कारण) हैं। अतएव हे महेश्वर! मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूं।।७१-७२।।

इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वा पदाम्बुजम्।
तत्रोवास तमाबोध्य चावरुह्य वृषाच्छिवः॥७३॥

यह कहने के अनन्तर शैलराज शिव के चरण कमलों को पकड़े वही स्थित हो गये। ऐसी स्थिति में शिव ने वृष से नीचे उतरकर हिमालय को प्रबोधित किया तथा वहीं आसीन हो गये।।७३।।

स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो भयेभ्यश्च भवार्णवे॥७४॥
अपुत्रो लभते पुत्रं मासमेकं पठेद्यदि। भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुमनोहराम्॥७५॥
चिरकालगतं वस्तु लभते सहसा ध्रुवम्। राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं शङ्करस्य प्रसादतः॥७६॥

इस महापुण्यमय स्तव को जो तीनों सन्ध्याकाल में नित्य पढ़ता है, वह इस भवसागर में समस्त पातकों से एवं भय से मुक्त हो जाता है। इसका एक मास त्रिकाल में पाठ करने वाला निश्चित रूप से पुत्र लाभ करेगा। पत्नीहीन को इस पाठ के फल से सुशीला भार्या मिल जायेगी। इस स्तोत्र पाठ से तथा शंकर की कृपा से दीर्घकाल पूर्व हरण की गई वस्तु पुनः प्राप्त हो जाती है। इसके पाठ फल से राज्यभ्रष्ट को राज्यलाभ होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। ऐसा शंकर की कृपा से हो जाना निश्चित है।।७४-७६।।

कारागारे श्मशाने च शत्रुग्रस्तेऽतिसङ्कटे। गभीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपोतेः विषादने॥७७॥
रणमध्ये महाभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते। सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शङ्करस्य प्रसादतः॥७८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० पार्वतीगर्वभङ्गप्रस्तावेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

कारागार में, श्मशान तथा शत्रु संकट होने पर, गंभीर जल में डूबने की दशा में, जल में पोत (जहाज) टूट जाने पर, हिंसक जन्तुओं से आक्रान्त होने पर, युद्धभूमि में, व्यक्ति इस स्तोत्र से प्रभु की स्तुति करके, शङ्कर की कृपा से सर्वसंकट रहित हो जाता है।।७७-७८।।

।।३८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वती का गर्व भङ्ग, हिमवान् तथा पार्वती द्वारा शिव का दर्शन, मदन के भस्म होने का वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

इति स्तुत्वा हिमगिरिर्विसतः शङ्करस्य च। उवास पुरतो दूरे लब्धाज्ञः सर्वसम्मतः॥१॥
मधुपर्कादिकं तस्मै प्रददौ भक्तिपूर्वकम्। मुनीन्सम्पूजयामास ततः शङ्करपार्षदान्॥२॥
तदा तत्र समागत्य मेनका स्त्रीगणैः सह। ददर्श वटमूलस्थं शङ्करं चन्द्रशेखरम्॥३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—जब गिरिराज ने वृष वाहन शिव की स्तुति किया, तब शिव की आज्ञा से सर्वसम्मत रूप से कुछ दूरी पर शिव के ही समक्ष आसनासीन हो गये। उसी स्थान से उन्होंने सर्वप्रथम शिव को मधुपर्क आदि प्रदान किया तथा मुनिगण की पूजा करने के अनन्तर शिवपार्षदों का पूजन

सम्पन्न किया। तभी हिमवान् की भार्या मेना वहां पर अन्य नारीगण के साथ आई और उन्होंने वट के नीचे समासीन चन्द्रशेखर शंकर का दर्शन किया।।१-३।।

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं वसन्तं व्याघ्रचर्मणि। मध्ये मुनिगणानां च ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।।४।।
यथाऽऽकाशे तारकाणां द्विजराजं विराजितम्। परमाह्लादकं रूपं कन्दर्पकोटिसन्निभम्।।५।।
विहाय वार्द्धकावस्थां दधतं नवयौवनम्। अतीव सुन्दरं रम्यं चित्तचोरं च योषिताम्।।६।।
कामं कामातुराणां च सतीनां च सुतं यथा।
वैष्णवानां महाविष्णुं शैवानां च सदाशिवम्।।७।।

प्रभु चन्द्रशेखर मन्दमुस्कानयुक्त होकर व्याघ्रचर्म के आसन पर समासीन थे। वे ब्रह्मतेज से प्रज्वलित रूप में मुनिगण के बीच बैठे थे। प्रतीत हो रहा था कि मानो आकाशीय नक्षत्र-तारकों के मध्य में चन्द्रमा समासीन हों। उन प्रभु का रूप परम आह्लाददायक तथा करोड़ों कामदेव के समान था। उस समय शिव ने वृद्धावस्था त्याग कर नवयौवनमय रूप धारण किया था। वे उस समय अत्यन्त सुन्दर रम्य तथा नारीगण के चित्त का हरण करने वाले लग रहे थे। वे कामपीड़ित नारीगण को काम के समान, पतिव्रता नारीगण को पुत्र के समान, वैष्णवगण को महाविष्णु के समान, शैवों को साक्षात् सदाशिव प्रतीत हो रहे थे।।४-७।।

शक्तिस्वरूपं शाक्तानां सौराणां सूर्यरूपिणम्।
कालस्वरूपं दुष्टानां शिष्टानां परिपालकम्।।८।।
कालकालसमं मृत्योर्मृत्युमृत्युं भयानकम्। व्याघ्रचर्मचारुवस्त्रं बभूव भस्मचन्दनम्।।९।।
सर्पाः सुन्दरमाल्यानि कस्तूरी या विषप्रभा।
जटा सुललिता चूडा चन्द्रस्त्वलिकचन्दनम्।।१०।।

वे शाक्तों को शक्तिस्वरूप, सौर उपासकों को सूर्यस्वरूप, दुष्टों को कालस्वरूप, शिष्टगण को परिपालक स्वरूप, काल को काल स्वरूप तथा मृत्य को उसकी भयानक मृत्यु रूप लग हे थे! उत्तम व्याघ्रचर्म उनका श्रेष्ठ वस्त्र बन गया तथा भस्म ही चन्दनरूप हो गया! उस समय शङ्कर के शरीर में लिपटे सर्प सुन्दर माला हो गये। कण्ठस्थ कालकूट विष की प्रभा कस्तूरी ही लगने लगी! उनकी जटा अब उत्तम जूड़ा रूप लग रही थी। मस्तकस्थ अर्द्धचन्द्र चन्दन का तिलक प्रतीत होने लगे।।८-१०।।

सुचार्वी मालतीमाला गङ्गाधारा मनोहरा।
अस्थिमाला रत्नमाला धत्तूरं चारुचम्पकम्।।११।।
एकीभूतं पञ्चवक्त्रं नेत्रयुग्माब्जशोभितम्। शरत्पार्वणचन्द्राभां प्रच्छाद्य दीप्तमुत्तमम्।।१२।।
बन्धुजीवविनिन्द्यैकमोष्ठाधरमनोहरम्। श्वेतश्चन्द्रो वृषेन्द्रश्च भूताद्या नर्तका इव।।१३।।

भगवान् महेश्वर के कण्ठ में पड़ी अस्थिमाला ही रत्नों की माला हो गई। धतूरा का पुष्प मनोहारी चम्पक पुष्प रूप हो गया। अब उनका पञ्चमुख ही एकमुख रूप में परिणत हो गया। यह मुख

मात्र दो नेत्र पद्म से शोभायमान था। भगवान् शंभु के मुख की आभा तो शरत्कालीन पूर्णचन्द्र की भी शोभा को म्लान करती लग रही थीं! बन्धुजीव पुष्प की लालिमा को भी लज्जित करते उन प्रभु के अधरोष्ठ के कारण उनका मुख और अधिक मनोहर प्रतीत होने लगा। श्वेत चन्द्रमा ही वृषराज प्रतीत होने लगे। सभी भूत-प्रेतादि नर्त्तकरूप हो गये!।।११-१३।।

सद्यो व्यतिक्रमं सर्वं महेशस्य महेश्वरि। दृष्ट्वैवं शिवरूपं च मेना तुष्टा बभूव ह।।१४।।

काश्चिन्निमेषरहिताः कामेन पुलकाञ्चिताः।
अतिकामातुराः सत्यः प्रापुर्मूर्च्छां च काश्चन।।१५।।
काश्चिद्विनिन्द्य कान्तांश्च प्रशशंसुर्महेश्वरम्।
मनोरथेन मनसा समाश्लिष्यन्ति काश्चन।।१६।।

हे राधिके! इस प्रकार महेश्वर का रूप पूर्णतः परिवर्त्तित हो गया। जो रूप पहले था ठीक उसके विपरीत परिलक्षित होने लगा। मेनका शिव का यह रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो गईं। कतिपय स्त्रियां तो काम के वश में होकर रोमांचित हो गई थीं। वे एकटक शिव की ओर देखने लगीं। कोई तो इतनी कामातुरा हो गईं कि अपनी सुध-बुध खो बैठीं! कतिपय स्त्रियां अपने पति की निन्दा (पति के रूप की निन्दा) करती शिव के रूप की प्रशंसा कर रही थीं। कुछ मन ही मन (कल्पना द्वारा) शिव का मानसिक आलिङ्गन करने लगीं!।।१४-१६।।

काचिन्मानसिकं कामात्कुर्वन्ती चुम्बनं मुदा।
ध्रुवं कामं करिष्यामो वयं च कामसागरे।।१७।।
अस्माकमेवं भर्ता चेत्परत्र[1] च यतो भवेत्।
इहैवं[2] किं करिष्यामो वयं कान्तौ रतौरतम्।।१८।।
दृष्ट्वा तमेवं सुचिरमिति जल्पन्ति काश्चन।।१९।।
काश्चिद्दृष्ट्वा शिवं किञ्चिन्मुख माच्छाद्य वाससा।
सस्मिता वक्रनयनाः पश्यन्त्येवं पुनः पुनः।।२०।।
वयं गृहं न यास्यामो यास्यामः शिवसन्निधिम्।
शरत्सुधांशुवदनं द्रक्ष्योमोऽहर्निशं मुदा।।२१।।
संसारं न करिष्यामः प्रविशामो हुताशनम्।
भविता नः शिवः स्वामीत्येवं जलपन्ति काश्चन।।२२।।

कतिपय नारीगण कामभावना से कल्पना द्वारा शिव का मानसिक चुम्बन लेतीं मन ही मन यह कामना करने लगीं कि हम कामसागर में इनसे निश्चित रूप से काम-क्रीड़ा करेंगी! कई नारियां यह

---

१. ख. रत्रैव यशो भ.।

२. क. इहैवैकं करिष्यामो वयं कान्तं रतौ रतम्।

कहने लगीं कि हम इस जन्म में भी इन्हीं पुरुष (शिव) को प्रिय बनाकर इनसे रतिक्रीड़ा करेंगी तथा हम ऐसी कठोर तपस्या करेंगी जिससे ये ही पुरुष भावी जन्मों में भी हमारे पति रहें! कोई-कोई नारी शिव का रूप देखकर अपना मुख वस्त्रांचल से ढांक कर मुस्कराते हुये शिव पर कटाक्षपात कर रही थीं। कोई स्त्री कह रही थी कि अब मैं घर लौटकर नहीं जाऊंगी। अब मैं शिव के ही पास रहकर नित्य शरद्कालीन चन्द्रमा की सुधा के समान इनके इस मुख का ही दर्शन करती रहूंगी। कोई नारी तो यहां तक कहने लगी कि मैं अब संसार त्याग करूंगी। मैं इस कामना के साथ अग्नि में प्रवेश करूंगी। जिससे अगले जन्म में शिव ही मेरे स्वामी हो जायें!।।१७-२२।।

अहो पुण्यवती दुर्गा श्लाघ्यते[1] जन्म भारते।
यस्या अयं शिवः स्वामीत्येवं जल्पन्ति काश्चन॥२३॥
मुदा मेना शिवं दृष्ट्वा गृहं ताभिर्जगाम ह।
शिवं सम्पूज्य शैलेन्द्रः प्रणम्य स्वगृहं ययौ॥२४॥
कृत्वाऽनुमानं रहसि गिरीशो मेनया सह।
दुर्गां प्रस्थापयामास शिवाय शिवसन्निधिम्॥२५॥
पार्वती सखिभिः सार्धं वेषं कृत्वा मनोहरम्।
भावानुरक्ता हर्षेण जगाम शिवसन्निधिम्॥२६॥
दृष्ट्वा शिवा शिवं शान्तं प्रसन्नवदनेक्षणम्।
सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा सस्मिता प्रणनाम सा॥२७॥

कतिपय ललनायें आपस में कह रही थीं कि-"अहो! यह दुर्गा कितनी पुण्यतमा है! तभी उसका ऐसा जन्म हो गया, जो स्पृहायोग्य है।" यह कहकर उन लोगों ने दुर्गा को शिवसेवार्थ शिव के पास भेजा। पार्वती भी मनोहारी वेशभूषा बनाकर सखियों के साथ हाव-भाव युक्त होकर शिव के पास आईं। शिवा ने प्रसन्न दृष्टि वाले शान्त शिव का दर्शन पाकर उनकी सात प्रदक्षिणा किया। तदनन्तर दुर्गा (पार्वती) ने प्रसन्नता पूर्वक शिव को प्रणाम किया।।२३-२७।।

अनन्यभावं गुणिनममरं ज्ञानिनां वरम्। सुन्दरं लभ भर्तारं सुन्दरीत्याशिषं ददौ॥२८॥
भविता तव सौभाग्यं शुभे स्वामिनि संततम्।
पुत्रस्ते भविता साध्वि नारायणसमो गुणैः॥२९॥
भविता ते परा पूजा त्रैलोक्ये जगदम्बिके। ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु सर्वेषां च परा भव॥३०॥
सप्त प्रदक्षिणाःकृत्वा यतो भक्त्या त्वया नतम्।
सप्तजन्मनि तुष्टोऽहं तत्फलं लभ सुन्दरि॥३१॥

१. क. श्लाघ्यं ते ज०।

तीर्थे कान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ मन्त्रे तथौषधे।
आस्था च यादृशी यासां सिद्धिस्तासां व तादृशी॥३२॥

तभी शंकर पार्वती को शुभाशीर्वाद देते कहने लगे—"हे सुन्दरी! शुभे! तुमको अनन्य प्रेमभाव रखने वाले पति की प्राप्ति हो। तुम स्वामी सौभाग्य लाभ करो। तुमको नारायण के समान गुणीपुत्र होगा। हे जगदम्बिके! त्रैलोक्य में तुम्हारी पूजा सर्वोत्कृष्ट होगी। तुम ब्रह्माण्ड में सबसे श्रेष्ठ मानी जाओगी। हे देवी! सुन्दरी! तुमने मेरी सात प्रदक्षिणा करके मुझे भक्ति-भाव से प्रणाम किया है। इस कारण से मैं तुम्हारे ऊपर ७ जन्मों तक प्रसन्न रहूंगा। हे सुन्दरी! अब (आशीर्वाद का) इसका फल प्राप्त करो। हे कान्ते! तीर्थ, इष्टदेव, गुरु, मन्त्र तथा औषधि प्रभृति के प्रति जिसकी जैसी आस्था होती है, उसे उसी प्रकार के ही फल की प्राप्ति होती है।।२८-३२।।

इत्युक्त्वा शङ्करस्तूर्णं ब्रह्मज्योतिः परं च माम्।
दध्यौ योगासनं कृत्वा योगीशो व्याघ्रचर्मणि॥३३॥
प्रक्षाल्य चरणौ देवी पपौ तच्चरणोदकम्।
चकार मार्जनं भक्त्या वह्निशौचेन वाससा॥३४॥
रत्नसिंहासनं रम्यं विश्वकर्मादिनिर्मितम्। अपूर्व कांस्यपात्रस्थं नैवेद्यं प्रददौ किल॥३५॥

(श्रीकृष्ण कहते हैं)—हे देवी! यह कहकर योगीश्वर शिव शीघ्र व्याघ्रचर्म पर योगासनासीन हो गये तथा ब्रह्मज्योतिरूपा मेरा ध्यान करने लगे। इसके पश्चात् देवी ने उनके चरणद्वय धोकर उस चरणामृत का पान किया तथा अग्निशुद्ध वस्त्र द्वारा भक्ति पूर्वक उनके चरणों की मार्जना किया। इसके अनन्तर पर्वतनन्दिनी पार्वती ने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित रम्य रत्नसिंहासन शिव को अर्पित किया तथा पार्वती ने कांस्य पात्र में रखा अनुपम नैवेद्य भी शिव को अर्पित किया।।३३-३५।।

अर्घ्यं मन्दाकिनीतोयसंयुक्तं चरणे ददौ। सुगन्धिचन्दनं चारुकस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्।
प्रददौ मालतीमालां गले गरलसुन्दरे॥३६॥

उन्होंने मन्दाकिनी जलयुक्त अर्घ्य भी शिव के श्रीचरणों पर प्रदान किया। तदनन्तर पार्वती ने शंकर को सुगन्धित चन्दन, उत्तम कस्तूरी, कुंकुम युक्त मालती माला शिव के उस कण्ठ में पहना दिया, जो विष स्थित होने के कारण (नीलकण्ठ) सुन्दर प्रतीत हो रहा था।।३६।।

भक्त्या पूजा चकाराथ पुष्पवृष्टिं च तुष्टये। पीयूषं स्वर्णपात्रस्थं प्रददौ मधुरं मधु॥३७॥
रत्नप्रदीपशतकं समन्ताद्धूपमुत्तमम्। त्रैलोक्यदुर्लभं वस्त्रं स्वर्णयज्ञोपवीतकम्॥३८॥
सुगन्धिशीततोयं च पानार्थं पार्वती ददौ। अतीव सुन्दरं रम्यं रत्नसारेन्द्रभूषणम्॥३९॥

तदनन्तर पार्वती ने अन्य उपचारों द्वारा भक्ति पूर्वक शिव की पूजा करके शिव को प्रसन्न करने के उद्देश्य से उनके ऊपर पुष्पवर्षा किया। तत्पश्चात् पार्वती ने स्वर्ण के पात्र में रखकर मधुर पीयूष (अमृत) तथा मधु शङ्कर को प्रदान किया। उन्होंने वहां शङ्कर के समक्ष सैकड़ों दीप प्रज्वलित करके

चतुर्दिक् उत्तम धूप प्रदान किया। इससे वहां सुगन्ध फैल गई। पार्वती ने तत्पश्चात् देवाधिदेव शङ्कर को अत्यन्त दुर्लभ वस्त्र एवं स्वर्ण के तार का बना यज्ञोपवीत भी प्रदान किया। पार्वती ने भगवान् को पीने के लिये सुगन्धित शीतल जल देकर उत्तम रत्नों के सार से बने रम्य एवं सुन्दर आभूषणों को प्रदान किया।।३७-३९।।

दुर्लभां कामधेनुं च स्वर्णशृङ्गसमन्विताम्।
स्नानीयं तीर्थतोयं च ताम्बूलं च मनोहरम्।।४०।।
दत्त्वा षोडशोपचारं प्रणनाम पुनः पुनः।
सम्पूज्य शूलिनं भक्त्या ययौ नित्यं पितुर्गृहम्।।४१।।

पार्वती ने दुर्लभ कामधेनु गौ को उसकी सींग सोने से मढ़कर शङ्कर को अर्पित किया। साथ में स्नानोपयोग में आने वाली वस्तु एवं द्रव्य, तीर्थजल एवं मनोहारी ताम्बूल भी अर्पित कर दिया। तदनन्तर पार्वती ने शिव को १६ उपचारों को अर्पित करने के पश्चात् उनको प्रणाम भी किया। इस प्रकार पार्वती शिव की पूजा नित्य करतीं तथा पितृगृह वापस चली जाती थीं।।४०-४१।।

शुश्रावाप्सरसां वक्त्राद्देवीमिन्द्रो महेश्वरः। श्रुत्वा वार्तां शुनासीरो ननर्त हर्षसंयुतः।।४२।।
दूतद्वारा कामदेवमानिनाय त्वरान्वितः। इन्द्राज्ञया कामदेवः प्रजगामामरावतीम्।।४३।।
तूर्णं प्रस्थापयामास तं च यत्र शिवः शिवा। पञ्चसायकसंयुक्तो जगाम पञ्चसायकः।।४४।।

प्रसन्नवदनः श्रीमान्यत्र शक्तियुतः शिवः।
गत्वा ददर्श मदनः शिवायुक्तं शिवं विभुम्।।४५।।
शान्तं त्रैलोक्यकान्तं च प्रसन्नवदनेक्षणम्।
कामः स्थितोऽन्तरिक्षे च धृत्वा च सशरं धनुः।।४६।।

चिक्षेपास्त्रं दुर्निवार्यममोघं शङ्करे मुदा। बभूवामोघमस्त्रं च मोघं तत्परमात्मनि।।४७।।

आकाश इव निर्लिप्ते निर्लिप्ते परमात्मनि।
मोघीभूते च शस्त्रे च भयमाप च मन्मथः।।४८।।

जब अप्सराओं द्वारा इन्द्र ने यह संवाद पाया कि महेश्वर पार्वती के प्रति कृपालु हैं, तब इन्द्र हर्षोन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। उस समय इन्द्र ने दूत भेजकर कामदेव को तत्काल बुलवाया। इन्द्र की आज्ञा पाकर कामदेव अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक अमरावतीपुरी आ गये। इन्द्र ने अत्यन्त त्वरा के साथ कामदेव को वहां भेजा जहां शिव एवं पार्वती थे। कामदेव अत्यन्त प्रसन्नता के साथ वहां गये जहां शिव एवं शिवा विराजमान थे। वे वहां पर अपने पांच बाणों (तथा पुष्प धनुष) के साथ आये। शिव को कामदेव ने देखा जो विभु एवं शिवायुक्त थे। वे त्रैलोक्येश्वर शान्त, प्रसन्न आनने वाले तथा उत्फुल्ल नेत्रों वाले थे। कामदेव यह देखकर अन्तरिक्ष में गये तथा वहां उन्होंने बाणयुक्त अपना धनुष उठाकर मुदित मन से अमोघ बाण शंकर को लक्ष्य करके छोड़ दिया, तथापि काम का यह अमोघ अस्त्र शिव

पर उसी प्रकार मोघ (बेकार) हो गया, जिस प्रकार से आकाश पर कुछ भी लिप्त नहीं हो सकता। परमात्मा शिव तो आकाश की तरह निर्लिप्त हैं। जब उन पर यह अमोघशस्त्र व्यर्थ हो गया, तब कामदेव अत्यन्त भयभीत हो उठा!।।४२-४८।।

चकम्प पुरतः स्थित्वा दृष्ट्वा मृत्युञ्जयं विभुम्।
सस्मार त्रिदशान्कामः शक्रादीन्भयविह्वलः।।४९।।

वह अपने समक्ष विभु मृत्युञ्जय को स्थित देखकर कांप उठा। वह भयविह्वलता के साथ इन्द्रादि देवगण को स्मरण करने लगा!।।४९।।

आययुर्देवताः सर्वाः शंभुकोपेन वेपिताः।
चक्रुः स्तुतिं च स्तोत्रेण शङ्करं त्रिदशेश्वरम्।।५०।।
कोपाग्निमुद्गिरन्तं तं कपाललोचनादहो। स्तुतिं कुर्वत्सु देवेषु स वह्निः शंभुसंभवः।।५१।।
जज्वालोर्ध्वशिखो दीप्तः प्रलयाग्निशिखोपमः।
उत्पत्य गगने घूर्णन्निपत्य धरणीतले।।५२।।
भ्रामं भ्रामं च परितः पपात मदनोपरि। वभूव भस्मसात्कामः क्षणेन हरकोपतः।।५३।।

शम्भु के क्रोध के कारण वहां कम्पित कलेवर सभी देवगण आ गये। वे देवदेवेश्वर शिव की स्तुति करने लगे। जब देवगण उन प्रभु की स्तुति कर ही रहे थे, तभी कुपित महेश्वर के ललाट नेत्र से अत्यन्त उच्च ज्वाला उठने लगी। वह प्रलयाग्नि जैसी अग्निज्वाला प्रज्वलित होकर आकाश में ऊपर उठी तदनन्तर वेग से आकाश में घूमती वह ज्वाला धरती पर आकर चतुर्दिक् वेग से घूम कर हठात् कामदेव पर गिर पड़ी। इस ज्वाला के कारण कामदेव क्षणमात्र में ही शिव के कोप से दग्ध हो गये।।५०-५३।।

विषण्णा देवताः सर्वा नतवक्त्रा च पार्वती। विललाप बहुतरं हरस्य पुरतो रतिः।।५४।।
तुष्टुवुर्देवताः सर्वाः कम्पिताश्चन्द्रशेखरम्। रतिमूचुः सुराः सर्वे रुरुदुश्च मुहुर्मुहुः।।५५।।
किञ्चिद्भस्म गृहीत्वा च रक्ष मातर्भयं त्यज।
वयं तं जीवयिष्यामो लभिष्यसि प्रियं पुनः।।५६।।

यह देखकर समस्त देवता अत्यन्त खिन्न हो गये। पार्वती का भी मुख नत हो गया। भगवान् हर के समक्ष रति अत्यन्त रुदनरत हो गईं। उस समय सभी देवता कांपते हुये चन्द्रशेखर की स्तुति करने लगे। कुछ क्षण के उपरान्त देवताओं ने बारम्बार रुदन करती रति से कहा–"हे माता! भय त्यागो तथा कुछ भस्म अपने पास रख ले जो कामदेव के दग्ध होने से पड़ी है।" हम काम को पुनर्जीवित कर देंगे। तब तुम पुनः अपने पति को प्राप्त कर लोगी।।५४-५६।।

हरकोपापनयने सुप्रसन्ने दिने तथा। दृष्ट्वा रतेर्विलापं च मूर्च्छां सम्प्राप पार्वती।।५७।।

तथापि यह तभी हो सकेगा जब शिव कोप त्याग कर पुनः प्रसन्न होंगे। उस समय पार्वती रति को विलाप करते देखकर सुध-बुध खो बैठीं।।५७।।

अतीन्द्रियं गुणातीतं तुष्टाव चन्द्रशेखरम्।
रुदन्तीं पार्वतीं त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययौ शिवः।।५८।।
सद्यो बभूव तत्रैव पार्वतीदर्पमोक्षणम्। रूपयौवनयोर्गर्वं तत्याज शैलकन्यका।।५९।।

तदनन्तर पार्वती ने चेतना प्राप्त होने पर गुणातीत चन्द्रशेखर की स्तुति किया, तथापि शिव वहां पर रुदन करती पार्वती को छोड़कर अपने स्थान पर चले गये। इस प्रकार तत्काल पार्वती का गर्व समाप्त हो गया। तभी शैलकन्या पार्वती ने अपने रूप-यौवन का गर्व तक त्याग दिया।।५८-५९।।

मुखं दर्शयितुं लज्जा तद्बभूव सखीगणे।
सुराश्च रतिमाश्वास्य सर्वे जग्मुःस्वमन्दिरम्।।६०।।
प्रणम्य दण्डवद्रुद्रं शोकादुद्विग्न मानसाः।
स्तुत्वा रुदित्वा शोकेन भयेन कामकामिनी।।६१।।
कोपरक्तेक्षणं रुद्रं राधिके स्वालयं ययौ। न जगाम पितुर्गेहं पार्वती सा तु लज्जया।।६२।।
स्वालिभिर्वार्यमाणाऽपि जगाम तपसे वनम्।
प्रजग्मुः सहचारिण्यस्तत्पश्चाच्छोकविह्वलाः।।६३।।

वे तो अपनी सखियों तक को अपना मुखदर्शन कराने में लज्जा का अनुभव करने लगीं। उसके पश्चात् सभी देवताओं ने रति को धैर्य धारण कराया और वे लोग शोक से उद्विग्न होकर रुद्रदेव को प्रणाम करके अपने-अपने गृह चले गये। उधर कामपत्नी रति भी शोक-भय की स्थिति में रुदन करती तथा क्रोध से रक्तोक्त नेत्र वाले रुद्र की स्तुति करती वहां से चली गई। पार्वती अब लज्जा के कारण पिता के गृह नहीं गयीं। पार्वती अपनी सखियों द्वारा बहुतेरा रोके जाने पर भी तप करने वन में चलीं गयी। पार्वती का अनुगमन करती सखियां भी शोकविह्वल स्थिति में उनके साथ वन में चली गईं!।।६०-६३।।

मातृभिर्वार्यमाणा सा स्वर्णदीतीरजं वनम्।
सुचिरं च तपस्तप्त्वा सा सम्प्राप त्रिलोचनम्।।६४।।
रतिः सम्प्राप मदनं शङ्करस्य वरेण च। इत्येवं कथितं सर्वं पार्वतीदर्पमोक्षणम्।
निगूढचरितं राधे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।६५।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं० पार्वतीदर्पभङ्गो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

माताओं द्वारा बारम्बार रोके जाने पर भी पार्वती स्वर्ण नदी गंगा के तटस्थ वन में चली गईं

जहां उन्होंने दीर्घकाल तक कठोर तपःश्चरण द्वारा त्रिलोचन को पतिरूपेण प्राप्त किया। शङ्कर के वर प्रभाव से रति ने भी पति कामदेव को पा लिया। हे राधिके! इस प्रकार मैंने पार्वती दर्पभङ्ग वृत्तान्त तुमसे कहा। पार्वती का यह निगूढ़ चरित सुनने के पश्चात् क्या सुनना चाहती हो?।।६४-६५।।

।।३९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वती की तपस्या, विप्र बालक वेष में शङ्कर का वहां आगमन, दोनों का वार्त्तालाप, पितृगृह में स्थित पार्वती के पास भिक्षुक वेश में महेश्वर का आना तथा गुरु-बृहस्पति के साथ देवगण की मन्त्रणा

राधिकोवाच

अहो विचित्रं चरितमपूर्वं किं श्रुतं विभो। सुन्दरं श्रुतिपीयूषं निगूढं ज्ञानकारणम्॥१॥

न विशेषं समासं च श्रुतं न व्यासमीप्सितम्।
अधुना श्रोतुमिच्छामि विस्तीर्णं कथय प्रभो॥२॥
किं किं तपः कठोरं च चकार पार्वती स्वयम्।
कं कं वरं वा सम्प्राप्य कथमाप महेश्वरम्॥३॥

रतिः केन प्रकारेण जीवयामास मन्मथम्। पार्वतीशिवयोः कृष्ण विवाहं वर्णय प्रभो॥४॥

श्रीराधा कहती हैं—हे नाथ! अहो! मैंने कितना मनोहर ज्ञानकारणभूत श्रवणसुखद अमृततुल्य अद्भुत चरित आपके द्वारा सुना। हे प्रभो! आपने इसे न तो अधिक विस्तार से कहा, न अति संक्षिप्त रूप से! हे प्रभो! मैं इसे विस्तार से सुनना चाहती हूं। कृपया इसे विस्तीर्ण रूप से कहिये। रति ने किस प्रकार कामदेव को जीवित किया था? स्वयं पार्वती ने कौन-सा कठोर तप किया था? किस वर को पाकर पार्वती ने महेश्वर को पतिरूप से प्राप्त किया था? हे कृष्ण! आप पार्वती-शिव के विवाह का भी वर्णन करिये।।१-४।।

तयो रहसि संभोगं पापिनां[1] पापमोचनम्।
कथ्यतां करुणासिन्धो दुःखिनां दुःखमोचनम्॥५॥

---

१. क. पार्वतीपा.।

दम्पतीविरहोक्तिश्च कर्णज्वाला च योषितः।
श्रोतुं कौतूहलं कृष्ण पुनः सम्मेलनं तयोः॥६॥
अग्निज्वाला विषज्वाला क्षमा सोढुं च योषितः।
दम्पतीविरहज्वाला न श्रोतुं च क्षणं क्षमा॥७॥

आप कृपा पूर्वक शिव-पार्वती का एकान्त में जो संभोग हुआ था, वह भी कहिये। उसके द्वारा पापीगण की पापमुक्ति होती है। हे करुणासिन्धु! वह प्रसंग अवश्य कहिये; क्योंकि वह प्रसंग पापीगण के दुःख को नाश करने वाला है। नारियां अग्नि की ज्वाला तथा विषज्वाला भले ही सहन कर लें, तथापि वे दम्पति के बीच के परस्पर विरह की ज्वाला को क्षणमात्र भी सुन नहीं सकती। स्त्रीगण को दम्पत्ति के परस्पर विरह की बात कान में ज्वाला जैसी लगती है। अतः मुझे अब शिव-पार्वती के पुनर्मिलन वृत्तान्त का सुनने हेतु कुतूहल हो रहा है।।५-७।।

राधिकावचनं श्रुत्वा विस्मितश्चकिताननः। विस्तीर्णं वक्तुमारेभे हृदयेन विदूयता॥८॥
दम्पतीविरहोक्तिं च या राधा श्रोतुमक्षमा। विच्छेदे शतवर्षीये किमस्या भविता मम॥९॥

राधा का कथन सुनकर श्रीकृष्ण चकित हो गये। उनके मुख पर आश्चर्य झलकने लगा। उन्होंने विचार किया, जो इस प्रकार किसी भी दम्पति की विरह-व्यथा तक नहीं सुन पा रही हैं, वे मेरा १०० वर्ष का विच्छेद किस प्रकार सहन कर सकेंगी? उनकी उस विरह से क्या दशा होगी। अतः श्रीकृष्ण ने दुःखी होकर पार्वती-शिव का प्रसंग विस्तार पूर्वक कहना प्रारंभ कर दिया।।८-९।।

इत्येवं मानसे कृत्वा मायेशो माययाऽन्वितः।
कृपासिन्धुश्च कृपया कथां कथितुमुद्यतः॥१०॥

यह विचार करके माया के ईश्वर, तथापि इस समय मायायुक्त कृपासिन्धु प्रभु कहने लगे।।१०।।

श्रीकृष्ण उवाच

प्राणाधिके राधिके त्वं श्रूयतां प्राणवल्लभे।
प्राणाधिदेवि प्राणेशि प्राणाधारे मनोहरे॥११॥

वटमूलाद्गते रुद्रे पार्वती तपसे ययौ। पुनः पुनःस्वमात्रा च पित्रा च विनिवारिता॥१२॥
गत्वा सा स्वर्णदीतीरं स्नात्वा त्रिषवणं मुदा। संदेशे च मया दत्तं जजाप तं मनुं मुदा॥१३॥
वर्षमेकं च सम्पूर्णमनाहारा स्वभक्तितः। तप्त्वा तपः कठोरं च चकार जगदम्बिका॥१४॥

ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलन्तं दिवानिशम्।
कृत्वा प्रतस्थौ तन्मध्ये संततं जपती मनुम्॥१५॥
शश्वत्श्मशाने वर्षासु कृत्वा योगासनं शिवा।
शिलां दृष्ट्वा च संसिक्तां बभूव जलधारया॥१६॥

शीते जलान्तरे शश्वत्प्रतस्थौ भक्तिपूर्वकम्। अनाहारा शरद्रौद्रनीहारासु निशासु[१] च॥१७॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे प्राणाधिके! हे प्राणवल्लभे! प्राणों की आधार रूपा मनोहरा! राधा! अब कथा श्रवण करो। जब वटवृक्ष के नीचे स्थित भगवान् रुद्र वहां से स्वगृह चले गये, तब देवी पार्वती भी अपने माता-पिता द्वारा बारम्बार निवारित किये जाने पर भी तप करने गङ्गा तट पर चली गयीं। वहां वे मुदित मन से तीन बार स्नान तथा मेरे द्वारा प्रदत्त मन्त्र का जप करने लगीं। उन्होंने अपनी भक्ति के कारण एक वर्ष पर्यन्त पूर्णतः निराहार रहकर कठोर तपःश्चरण किया थ। उन जगदम्बा ने ग्रीष्म में अपने चतुर्दिक् अग्नि जलाया तथा बीच में बैठकर दिन-रात मन्त्र जप किया। वर्षा ऋतु में भगवती पार्वती- श्मशान में योगासन पर बैठकर जलधारा से भींगती हुई शिला पर दृष्टि रखकर जप करती रहतीं। (यहां शिला से शिवलिङ्ग का तात्पर्य प्रतीत हो रहा है।) शीतकाल में पार्वती जल में आकण्ठ खड़ी होकर भक्ति के साथ मन्त्र जप करती रहतीं। शरद्काल में जब प्रचुर ओस रात्रि में गिरती है, उस समय भी पार्वती निराहार रहती जप करती रहतीं।।११-१७।।

एवं कृत्वा परं वर्षमप्राप्य शङ्करं सती। शुचा कृत्वाऽग्निकुण्डं च प्रवेष्टुं सा समुद्यता॥१८॥

तामग्निकुण्डं विशतीं तपसाऽतिकृशां सतीम्।
दृष्ट्वा शिवः कृपासिन्धुः कृपया तां जगाम ह॥१९॥

इस प्रकार की कठोर तपस्या के कारण देवी अत्यन्त दुर्बल हो गयीं। तब भी पार्वती के लिये शङ्कर अप्राप्त थे, नहीं मिल सके। अन्ततः पार्वती शोकातिरेक के कारण अग्निकुण्ड में प्रवेशार्थ उद्यत हो गईं। जब कृपासिन्धु शिव ने देखा कि अत्यन्त दुर्बल शरीर वाली सती पार्वती अग्निकुण्ड में प्राण त्यागने जा रही हैं, वहां प्रभु तत्काल आ गये।।१८-१९।।

अतीव वामनो बालो विप्ररूपी स्वतेजसा।
प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री जटाधरः॥२०॥
शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लवासाश्च सस्मितः।
श्वेताब्जबीजमालां च बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्॥२१॥

उस समय वे प्रभु स्वतेज से दीप्त नाटे शरीर वाला रूप धारण करके आये थे। वे अत्यन्त प्रसन्न लग रहे थे। उन्होंने जटा, छत्र एवं दण्ड धारण किया था। उनके वस्त्र श्वेत थे। उनका यज्ञोपवीत भी श्वेत था और उन्होंने श्वेत कमल के बीजों की माला तथा श्वेतवर्ण का उज्वल तिलक लगाया था।।२०-२१।।

निर्जने बालकं दृष्ट्वा स्निग्धा साऽपि जगाद ह।
तत्तेजसाऽति प्रच्छन्ना[२] तत्याज च तपः स्वयम्॥२२॥

---

१. ख. ०दिशा०।

२. क. प्रसन्ना।

को भवानिति पप्रच्छ तं शिशुं पुरतः स्थितम्।
मनसाऽऽलिङ्गनं कर्तुमिच्छन्ती परमादरम्॥२३॥
श्रुत्वा शैलसुताप्रश्नं प्रहस्य परमेश्वरः। उवाचातीव मधुरं कर्णपीयूषमीश्वरम्॥२४॥

देवी पार्वती उस निर्जन प्रदेश में इस बालक को देखकर स्नेह से भर गईं। उस समय उस बालक के तेज से आच्छन्न होकर देवी ने स्वयं अपना तप त्याग कर बालक के सम्मुख स्थित होकर प्रश्न किया—"आप कौन हैं?" वे यह कहकर उस द्विज बालक का परम आदर से आलिंगन करना चाहने लगीं। शैलपुत्री देवी पार्वती का प्रश्न सुनकर परमेश्वर ने हंसकर अत्यन्त मधुर कानों को अमृत जैसा लगने वाला वचन कहा—।।२२-२४।।

शङ्कर उवाच

इच्छागामी बटुरहं तपस्वी विप्रबालकः।
का त्वं कान्ताऽतिकान्तारे तपश्चरसि सुन्दरि॥२५॥
वद कस्य कुले जाता कस्य कन्या च काऽभिधा।
तपसः फलदात्री त्वं कस्माद्धेतोस्तपस्तव॥२६॥

श्रीशङ्कर कहते हैं—हे देवी! मैं तपस्वी ब्राह्मण बालक हूं। मैं स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरण करता रहता हूं। तुम किस कुल में जन्मी हो? तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारा नाम क्या है? तुम तो स्वयं तप का फल देने वाली होकर किस उद्देश्य से तप कर रही हो?।।२५-२६।।

अहो वा तपसां राशिः स्वयं मूर्तिमती सती।
तपो वा लोकशिक्षार्थं करोषि कमलेक्षणे॥२७॥
स्वयं तेजःस्वरूपा वा मूलप्रकृतिरीश्वरी। विधाय भक्तध्यानार्थं विग्रहं भारते जनुः॥२८॥
किंवा त्रिलोके लक्ष्मीस्त्वं संपद्रूपा सनातनी।
रक्षां विधातुं जगतामागता धातुरन्तिके॥२९॥
किंवाऽम्बिका त्वं देवानां स्वयं मूर्तिमती सती।
सावित्री भारते जन्म स्वेच्छया लब्धुमागता॥३०॥

हे सती! हे कमलनयनी! तुम तो स्वयं तपस्या राशि तथा मूर्त्तिमती तपस्वरूपा हो। क्या तुम लोकशिक्षार्थ यह तप कर रही हो? तुम तो स्वयं तेजस्वरूपा मूलप्रकृति तथा ईश्वरी हो। तुमने भारत में इसलिये मूर्त्त होकर जन्म लिया है, जिससे भक्तगण तुम्हारे विग्रह का ध्यान कर सकें। अथवा तुम त्रैलोक्य में स्थित सम्पत्तिरूपिणी लक्ष्मी सनातनी देवी हो! तुम विधाता के निकट त्रैलोक्यरक्षिणी होकर आई हो! क्या तुम देवगण की अम्बिका हो अथवा स्वयं मूर्त्तिमती सती हो। अथवा तुम ही सावित्री हो, जिसने भारत में अपनी इच्छा से जन्म ग्रहण किया है!।।२७-३०।।

रागाधिष्ठातृदेवी वा स्वयं साक्षात्सरस्वती।
सर्वविद्याः प्रकटितुं स्वेच्छया जन्म भारते॥३१॥

अथवा तुम रागों की अधिष्ठात्री साक्षात् सरस्वती हो, जिसने सभी विद्यासमूह के प्रकटीकरणार्थ स्वेच्छा से भारत में जन्म लिया है!॥३१॥

एतासु मध्ये का वा त्वं नाहं तर्कितुमीश्वरः।
या सा भवति कल्याणि परितुष्टा च मां भव॥३२॥

सति त्वयि प्रसन्नायां प्रसन्नः परमेश्वरः। परिव्रतायां तुष्टायां तुष्टो नारायणः स्वयम्॥३३॥
तुष्टे नारायणे देवे शश्वत्तुष्टं जगत्त्रयम्। तरुमूलेषु सिक्तेषु शाखाः सिक्ता यथा प्रिये॥३४॥

इन सब में से तुम कौन हो, यह निश्चित कर सकने में मैं सक्षम नहीं हूं। हे कल्याणी! तुम चाहे कोई भी देवी क्यों न हो, इसमें तर्क का कोई प्रयोजन नहीं है। तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। हे सती! तुम्हारे प्रसन्न होने से स्वयं परमेश्वर मुझ पर प्रसन्न हो जायेंगे। पतिव्रता नारी के प्रसन्न होने पर स्वयं नारायण प्रसन्न हो जाते हैं। जिस प्रकार वृक्ष के जड़ का जलसिंचन होने से समस्त शाखायें स्वयं सिंचित हो जाती हैं। उसी प्रकार से नारायण के सन्तुष्ट हो जाने पर त्रिभुवन सन्तुष्ट हो जाता है॥३२-३४॥

शिशोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी। उवाच वचनं चारु कर्णपीयूषमीश्वरी॥३५॥

शिशु का वचन सुनकर परमेश्वरी पार्वती ने हंस कर कानों में अमृत के समान लगने वाले वचन उस ब्राह्मण शिशु से कहा—॥३५॥

पार्वत्युवाच

नाहं वेदप्रसूर्लक्ष्मीर्वागधिष्ठातृदेवता। जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं शैलकन्यका॥३६॥
पूर्वं जन्म दक्षगेहे सती शङ्करकामिनी। योगेन त्यक्तदेहाऽहं तातभर्तृविनिन्दया॥३७॥

देवी पार्वती कहती हैं—हे महात्मन्! मैं जगत् जननी सावित्री, लक्ष्मी अथवा वाक्य की अधिष्ठात्री सरस्वती नहीं हूं। सम्प्रति शैलकन्या के रूप में भारत में मेरा जन्म हुआ है। मैंने पूर्वजन्म में दक्षगृह में सती नाम से प्रसिद्ध होकर जन्म लिया था। उस जन्म में शङ्कर मेरे पति थे। मैंने जब पिता दक्ष से स्वामी शिव की निन्दा सुना, तब मैंने योगबल से देहत्याग कर दिया॥३६-३७॥

अत्र जन्मनि पुण्येन सम्प्राप्ते शङ्करे द्विज।
मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं स जगाम ह॥३८॥

प्रयाते शङ्करे तापाद्व्रीडयाऽहं पितुर्गृहात्। आगमत्तपसे चित्तं ममेदं स्वर्णदीतटे॥३९॥

तपः कृत्वा कठोरं च सुचिरं प्राणवल्लभम्।
अप्राप्याग्निं प्रवेष्टुं च त्वां च दृष्ट्वा क्षणं स्थिता॥४०॥

गच्छ त्वं प्रविशाम्यग्नौ प्रलयाग्निशिखोपमे।
कृत्वा स्वकामनां विप्र हरप्राप्तिमनीषिताम्॥४१॥

हे द्विज! इस जन्म में पुण्यबल से मैंने शंकर को प्राप्त किया था, परन्तु अदृष्ट के कारण उन्होंने मेरा त्याग करके कामदेव को भस्म कर दिया तथा अन्यत्र चले गये। शङ्कर के चले जाने पर लज्जा तथा मनःस्ताप के कारण मैंने पितृगृह से इस मन्दाकिनी तट पर तप आरम्भ कर दिया। दीर्घकाल पर्यन्त तप करके भी जब मैंने प्राणवल्लभ शिव को प्राप्त नहीं किया, तब मैं इस अग्निकुण्ड में प्रवेश करने हेतु उद्यत हो गई, तथापि तुमको देखकर मैं देहत्याग करने से कुछ समय के लिये रुक गई हूं। हे ब्राह्मण! अब तुम अपने गन्तव्य पथ परं जाओ। मैं अब मन में जन्म-जन्म में शिवप्राप्तिरूपी अभिलाषा लेकर प्रलयाग्नि शिखा के समान अग्नि में प्रवेश करके हृदय की ज्वाला दूर करूंगी।।३८-४१।।

यत्र यत्र जनुर्लब्ध्वा लभिष्यामि शिवं परम्।
प्राणाधिकं प्रियं कान्तं विभुं जन्मनि जन्मनि॥४२॥
सर्वा हि स्वप्रियं लब्धुं लभन्ति जन्म वाञ्छितम्।
तज्जन्म पतिलाभार्थं सर्वासां च श्रुतौ श्रुतम्॥४३॥

जहां कहीं भी मेरा जन्म होगा मैं प्रति जन्म में इन प्राणाधिक, विभु, प्रिय, कान्त, शिव को प्राप्त करूंगी। सभी स्त्रियां प्रियपति प्राप्त करने हेतु ही जन्मग्रहण करती हैं। वह वेद में निर्दिष्ट भी है॥४२-४३।।

प्राक्तनीयो हि यो भर्ता स तासां प्रतिजन्मनि।
या स्त्री येषां सुनियता सा तेषां जन्मजन्मनि॥४४॥
तद्देहमिह न प्राप्य कृत्वा घोरतरं तपः।
कृत्वाऽग्निकुण्डे काम्यं च लभिष्यामि परत्र तम्॥४५॥

पूर्वजन्म का पति ही इस जन्म में तथा प्रति जन्म में उस नारी को प्राप्त होता है। मैं इस जन्म में घोरतर तपश्चरण करके भी अपने प्रिय पति शिव को प्राप्त नहीं कर सकी। अतएव मैं उन पति की प्राप्ति की इच्छा के साथ अग्निकुण्ड में अपना शरीर दग्ध कर दूंगी। इस काम्यकर्म द्वारा मैं अगले जन्म में उनको प्राप्त कर लूंगी।।४४-४५।।

इत्युक्त्वा पार्वती तत्र तत्पुरः प्रविवेश ह। निषिध्यमाना पुरतो ब्राह्मणेन पुनः पुनः॥४६॥
वह्निप्रवेशं कुर्वन्त्याः पार्वत्याः परमेश्वरि। बभूव तपसा सद्यो वह्निश्चन्दनवद्ध्रुवम्॥४७॥

क्षणं तदन्तरे स्थित्वा चोत्पतन्तीं शिवां शिवः।
पुनः पप्रच्छ सहसा वृन्दावनविनोदिनि॥४८॥

यह कहकर ब्राह्मण के बारम्बार निषेध करने पर भी उसके समक्ष ही पार्वती अग्निकुण्ड में प्रवेश कर गईं! जैसे ही पार्वती ने उस कुण्ड में प्रवेश किया, हे परमेश्वरी राधा! पार्वती के तप के प्रभाव

से वह अग्निकुण्डस्थ अग्नि तत्काल चन्दनवत् शीतल हो गयी। हे वृन्दावन में विनोद करने वाली राधिका! उसी समय क्षणकाल पर्यन्त अग्नि में रहने के पश्चात् पार्वती अग्निकुण्ड से बाहर आ गईं। तब उन बालकरूपी शिव ने भगवती पार्वती से कहा—।।४६-४८।।

महादेव उवाच

अहो तपस्ते किं भद्रे न बुद्धं किञ्चिदेव हि।
न दग्धो वह्निना देहो न च प्राप्तो मनीषितः।।४९।।
शिवं कल्याणरूपं च भर्तारं कर्तुमिच्छसि।
अविग्रहं पतिं कृत्वा किं वा ते वाञ्छितं भवेत्।।५०।।

श्रीमहादेव कहते हैं—हे भद्रे! यह तुम्हारा तप कैसा (आश्चर्यमय) है। मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं हो पा रहा है? न तो तुम्हारा शरीर अग्नि में दग्ध हो सका और न तो तुमको वांछित पति ही मिल पाया! तुमने कल्याणरूप शिव को पतिरूप से प्राप्त करने की इच्छा किया है, तथापि वे तो विग्रह रहित हैं। अविग्रह (आकार रहित) पति को पाने से तुमको क्या प्राप्त होगा? कौन-सी कामना सिद्ध हो सकेगीं?।।४९-५०।।

संहर्तारं च भर्तारं यदीच्छसि शुचिस्मिते।
कान्तमिच्छति का वा स्त्री सर्वसंहारकारणम्।।५१।।
मोक्षं वाञ्छसि चेद्देवि कृत्वा कान्तं स्वरूपिणम्।
सर्वमुक्तिप्रदा त्वं च तपस्या विफला तव।।५२।।
शिवश्च मङ्गले मोक्षे संहर्ता न च दृश्यते।
शिवशब्दस्य चान्योऽर्थो न हि वेदे निरूपितः।।५३।।

हे शुचिस्मिते! (जिसकी मन्दमुस्कान से पवित्रता झलके) शिव तो संहारकर्त्ता हैं। यदि उनको पति बनाने की इच्छा है, तब उत्तर दो कि कौन नारी सर्वसंहारकारण रूप व्यक्ति को पति बनाना चाहेगी? यदि तुम उनको पति बनाकर मोक्ष लाभ की कामना करती हो, तब तो तुम्हारा समस्त तप विफल है। इसका कारण यह है कि तुम स्वयं मुक्ति देने वाली हो! तुम जिन शिव को मुक्ति के लिये पति बनना चाहती हो, वे तो केवल संहार करने वाले हैं। 'शिव' शब्द का अन्य अर्थ है जो वेद में नहीं कहा गया है। वे मङ्गल तथा मोक्ष कर्त्ता न होकर मात्र संहर्त्ता ही हैं।।५१-५३।।

तं च संहारकर्तारं यदि वाञ्छसि सुन्दरि। लभिष्यसे रतं रुद्रं सर्वलोकभयङ्करम्।।५४।।
न भविष्यति मोक्षस्ते स्वाभीष्टं देवसेवनम्। हरिस्मृतिरमोघा च सर्वमङ्गलदा सदा।।५५।।

शीघ्रं पितृगृहं गच्छ तत्र द्रक्ष्यसि शङ्करम्।
ममाऽऽशिषा स्वतपसां फलेन च सुदुर्लभम्।।५६।।

हे सुन्दरी! यदि तुम ऐसे संहारक को स्वामी बनाने की अभिलाषिणी हो, तब तुम तो निश्चित रूप से सर्वलोक भयंकर रुद्र को प्राप्त कर लोगी, तथापि तुमको मोक्ष नहीं मिलेगा और अपने अभीष्ट देवता की सेवा का भी लाभ नहीं प्राप्त होगा। श्रीहरि का स्मरण अमोघ है तथा सर्वमङ्गलदायक कहा गया है। हे देवी! अब तुम अपने पिता के गृह चली जाओ। मेरे आशीर्वाद से तथा अपनी तपस्या के बल से तुमको दुर्लभ शङ्कर का दर्शन लाभ होगा।।५४-५६।।

इत्युक्त्वा पार्वती विप्रस्तत्रैवान्तरधीयत। दुर्गा ययौ पितुर्गेहं महादेवेति वादिनी।।५७।।
पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेनका च हिमालयः। दिव्यं यानं पुरस्कृत्य प्रययौ हर्षविह्वलः।।५८।।
संस्थाप्य मङ्गलघटान्राजवर्त्मनि राधिके। चन्दनागुरुकस्तूरीफलशाखासमन्वितान्।।५९।।

पार्वती से यह कहकर वह ब्राह्मण बालक वहीं अन्तर्हित् हो गया। तब दुर्गा भी शिव नाम का बारम्बार जप करते-करते पिता के गृह चली गयीं। जब मेनका तथा हिमालय ने पार्वती के आगमन का संवाद सुना, वे हर्षविह्वल होकर पार्वती को ले आने के लिये दिव्य यान लेकर चल पड़े। हे राधा! राजाज्ञा से आज्ञानुसार (हिमालय की आज्ञा से) राजमार्ग चन्दन-अगुरु-कस्तूरी युक्त एवं फलशाखायुक्त मंगल घट रखे गये।।५७-५९।।

पट्टसूत्रसन्निबद्धरसालपल्लवान्वितैः। परितः परितो रम्भास्तम्भवृन्दसमन्विते।।६०।।
पतिपुत्रवतीयोषित्समूहैर्दीपहस्तकैः। पूर्णैर्लाजाधान्यदूर्वाफलपुष्पसमन्वितैः।।६१।।
सुपुण्यैर्ब्राह्मणैश्चापि मुनिभिर्ब्रह्मचारिभिः। नटीभिर्नर्तकीभिश्च गजेन्द्रैः परिशोभिते।।६२।।
पुरोहितैश्च संयुक्तैः कुर्वद्भिर्मङ्गलध्वनिम्।
सुचारुमालतीमालाहस्तैः शस्तैः प्रशंसितैः।।६३।।

कलशों में वह पट्टसूत्र बंधा था तथा आम्रपल्लव भी उनमें लगे थे। उन कलशों के चतुर्दिक् कदली स्तम्भ भी लगाये गये थे। पति-पुत्रयुक्त साध्वी स्त्रियां वहां हाथों में दीपक, धान का लावा, धान्य, दूर्वा, फल, पुष्प लिये चल रही थीं। वह राजमार्ग पुण्यवान् ब्राह्मण, मुनिगण, ब्रह्मचारियों, नट-नर्तकियों तथा गजराजों द्वारा शोभित हो रहा था! वहां पुरोहित वृन्द सुन्दर मालती मालायें हाथों में लेकर एक साथ मङ्गल ध्वनि करते आ रहे थे।।६०-६३।।

नानाप्रकारवाद्यैश्च शङ्खध्वनिसुनादितैः। सिन्दूररेणुभिश्चारुचन्दनद्रवपङ्किलम्।।६४।।
प्रविश्य नगरं दुर्गा ददर्श पितरौ पुरः। सुप्रसन्नौ प्रधावन्तौ हर्षाश्रुपुलकान्वितौ।।६५।।
प्रसन्नवदना देवी चाऽऽलिभिः प्रणनाम तौ।
संयुज्याथाऽऽशिषं तौ च चक्रतुस्तां च वक्षसि।।६६।।
हे वत्से वत्सेत्युच्चार्य रुदन्तौ प्रेमविह्वलौ।
तदा तां च रथे कृत्वा जग्मतुर्निजमन्दिरम्।।६७।।

वहां नाना प्रकार के वाद्यों की ध्वनि होने लगी! शङ्ख का उत्तम नाद भी होने लगा। राजमार्ग

पर सिन्दूर तथा चन्दन मिश्रित जल के गिरने से वहां कीचड़ हो गया। तभी दुर्गा देवी ने नगर में प्रवेश किया। उन्होंने देखा कि उनके माता, पिता मेनका तथा हिमालय प्रसन्नता से तथा हर्ष से पुलकित होकर दौड़े चले आ रहे हैं। उस समय प्रसन्न होकर देवी ने अपनी सखियों सहित मेनका तथा हिमालय को प्रणाम किया। उस समय इन दोनों ने सबको एक साथ आशीर्वाद देकर पार्वती को वक्ष से लगा लिया। साथ ही माता-पिता हे पुत्री! हे पुत्री! कहते रुदन करने लगे। तदनन्तर उन्होंने दुर्गा को यान (रथ) पर बैठाया तथा अपने भवन ले गये।।६४-६७।।

स्त्रियो निर्मञ्छनं चक्रुर्विप्रा युयुजुराशिषम्।
ब्राह्मणेभ्यश्च बन्दिभ्यः पर्वतेन्द्रो धनं ददौ।।६८।।
मङ्गलं कारयामास पाठयामास छान्दसम्।
एवं स्वकन्यया सार्धं तस्थतुस्तौ स्वमन्दिरे।।६९।।

गृह आने पर स्त्रीगण ने पार्वती का निर्मच्छन किया तथा ब्राह्मणगण ने उनको आशीर्वाद प्रदान किया। उस समय राजा (हिमवान्) तथा रानी (मेनका) ने बन्दीगण तथा ब्राह्मणों को प्रचुर मात्रा में धन देकर उनसे विविध मङ्गल पाठ तथा छन्दपाठ कराया। अब गिरिजा के साथ माता-पिता प्रसन्न मन होकर अपने गृह में सुख पूर्वक रहने लगे।।६८-६९।।

सुखेन वसतौ तौ हि हर्षनिर्भरमानसौ। एकदा च तपः कर्तुं जगाम स्वर्णदीं गिरिः।।७०।।
मेनका कन्यया सार्धमुवास प्राङ्गणे मुदा। एतस्मिन्नन्तरे भिक्षुर्नर्तकश्च सुगायनः।।७१।।
सहसैक आजगाम मेनकासन्निधिं मुदा। शृङ्गवाद्यं वामहस्ते डमरुं दक्षिणे तथा।।७२।।
कृत्वा विभूतिगात्रोऽतिवृद्धोऽतीव जरातुरः।
पृष्ठकन्थो रक्तवासाः सुकण्ठोऽतिमनोहरः।।७३।।

इस प्रकार हर्षपूर्ण एवं सुख से निवास करते पर्वतराज हिमवान् एक बार तप करने हेतु गङ्गा तट पर चले गये। मेनका कन्या पार्वती के साथ अपने आंगन में मुदित मन से बैठी थीं। तभी वहां एक नर्त्तन तथा उत्तम गायन करता भिक्षुक आ गया। वह मुदित मन से सहसा मेनका के निकट आया। उसके बायें हाथ में सिंगी वाद्य (सींग का बना बाजा) तथा दाहिने हाथ में डमरु था। उसने देह में भस्म मल रखा था। वह अत्यन्त वृद्ध, जरावस्था के लक्षणों वाला था, जिसने रक्तवर्ण वस्त्र धारण किया था। उसके पीठ पर गुदड़ी थी तथा उसका कंठ स्वर सुन्दर तथा अत्यन्त मनोहारी था।।७०-७३।।

जगौ मम गुणाख्यानं कृत्वा नृत्यं मनोहरम्। वादयामास शृङ्गं च क्षणं डमरुकं तथा।।७४।।
आजग्मुर्नागरा बाला बालिका हर्षविह्वलाः।
वृद्धा युवानो युवतीसमूहो वृद्धयोषितः।।७५।।
श्रुत्वा तु सुन्दरं गीतं सुतानस्वरसंयुतम्। सहसा मुमुहुः सर्वे ते मूर्च्छामवाप्नुवन्।।७६।।
मूर्च्छां सम्प्राप सा दुर्गा ददर्श हृदि शङ्करम्। त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्मधरं परम्।।७७।।

विभूतिभूषणं रम्यमस्थिमालं सुनिर्मलम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सुप्रसन्नं त्रिलोचनम्।।७८।।

वह मनोहर नृत्य करता मेरे गुणों का गान कर रहा था। कभी वह सिंगी वाद्य, तो कभी डमरु वादन करता था। उसका गायन तथा वाद्यध्वनि सुनकर वहां पर नगर के बालक-बालिका हर्षविह्वल होकर आ गये। वहां नगर के वृद्ध-युवा-युवती-वृद्धा नारीगण भी आ गईं। उस भिक्षुक के उत्तम तान एवं उत्तम स्वर वाले सुन्दर गीत को सुनकर सभी लोग मोहित हो कर सुध-बुध खो बैठे। दुर्गा ने भी इस आत्मविभोर स्थिति में होकर अपने हृदय में शिवशंकर प्रभु का दर्शन किया। उन्होंने हाथों में त्रिशूल तथा पट्टिश धारण किया था। उन्होंने अत्युत्तम व्याघ्रचर्म भी धारण किया था। उन भस्मभूषित प्रभु ने कण्ठ में रम्य अस्थिमाला धारण किया था, जो अतीव निर्मल थी। त्रिलोचनधारी शिव की मुखमुद्रा किञ्चित् मुस्कान युक्त तथा सुप्रसन्नता पूर्ण थी।।७४-७८।।

मालाहस्तं पञ्चवक्त्रं नागयज्ञोपवीतकम्। वरं वृणिवत्युक्तवन्तं सुन्दरं चन्द्रशेखरम्।।७९।।

हृदयस्थं हरं दृष्ट्वा मनसा तं ननाम सा। वरं वव्रे मानसे सा त्वं पतिर्मे भवेति च।।८०।।

एवं दत्त्वा शिवस्तस्यै चान्तर्धानं चकार सः।
न दृष्ट्वा हृदि तं दुर्गां सम्प्राप्य चेतनां पुनः।।८१।।

ददर्श चक्षुरुन्मील्य भिक्षुकं गायकं पुरः। नृत्यसङ्गीततः सा तु भिक्षुकस्य च मेनका।।८२।।

दातुं ययौ सा रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च।
भिक्षां ययाचे भिक्षुस्तां दुर्गां नान्यां गृहीतवान्।।८३।।

पुनश्च नर्तनं कर्तुमुद्यतः कौतुकेन च। मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप विस्मयं ययौ।।८४।।

उन प्रभु के पांच मुख (शिर) थे। उन्होंने नाग का यज्ञोपवीत धारण किया था। उन हृदयस्थ अत्यन्त सुन्दर रूप वाले चन्द्रशेखर ने पार्वती से कहा-"तुम वांछित वर मांगो।" उस समय अपने हृदयस्थ शिव को देखकर देवी पार्वती ने उनको मानसिक प्रणाम करके यह वर मांगा कि-"आप ही मेरे पति हो जायें।" यही वर देकर शिव (हृदय में ही) अन्तर्हित् हो गये। जब दुर्गा ने शिव को हृदय में नहीं देखा, तब वे पुनः चेतनायुक्त होकर देखती हैं कि सामने वह गायन करता भिक्षु स्थित है। देवी मेनका भिक्षु के नृत्य-गीतादि से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर स्वर्णपात्र में रत्नों को रखकर उसे प्रदान करने लगीं, तथापि भिक्षुक ने वह ग्रहण नहीं किया। उसने भिक्षा में मात्र दुर्गा को मांगा। तदनन्तर वह कौतुक में भरकर पुनः नृत्य करने लगा। देवी मेना उस भिक्षुक का यह कथन सुनकर विस्मय तथा क्रोध से भर गईं।।७९-८४।।

भिक्षुकं भर्त्सयामास बहिः कर्तुमुवाच तम्।
पत्नी त्रिलोकनाथस्य शिवस्य परमात्मनः।।८५।।
याञ्चामिमां प्रकुर्वन्तं दूरं कुरु कुभाषिणम्।
एतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा गिरः स्वालयमाययौ।।८६।।

तब मेना ने भिक्षुक की अनेक प्रकार से भर्त्सना करके वहां आत्मीयगण से कहा कि इसे यहां से बाहर निकालो। उन्होंने यह आज्ञा देते हुये कहा–"यह उमा परमात्मा त्रैलोक्यनाथ शिव की पत्नी हैं। ऐसी पार्वती की याचना करने वाले इस कुवचन भाषी भिक्षुक को निकाल बाहर करो।"॥८५-८६॥

ददर्श पुरतो भिक्षुं प्राङ्गणस्थं मनोहरम्। कृत्वा नारायणार्चां च गङ्गातीरे मनोहरे॥८७॥
तन्मूर्तिध्यानविश्लेषशोकादुद्विग्नमानसः। श्रुत्वा मेनामुखाद्वार्तां जहास च चुकोप सः॥८८॥
आज्ञां चकार स्वचरं बहिः कर्तुं च भिक्षुकम्।
आकाशमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा॥८९॥

इसी समय वहां पर तपःश्चरण करके हिमालय भी अपने घर पहुंच गये। वे देखते हैं कि उनके आंगन में एक मनोहर भिक्षुक खड़ा है। उन्होंने गंगा के मनोहर तट पर नारायण की अर्चना करते समय ध्यान में उनकी मूर्त्ति का दर्शन नहीं पाया; क्योंकि ध्यान काल में श्रीहरि की मूर्त्ति बारम्बार लुप्त हो जा रही थी। अतः इस प्रकार ध्यान में मूर्त्ति वियोग होने के कारण उनका मन शोक से उद्विग्न हो चला था। अब यहां पर मेना द्वारा जब उनको भिक्षु की याचना के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ उन्होंने भिक्षुक के प्रति व्यंग में हंसकर क्रोध के साथ उस भिक्षुक को भवन से बाहर निकालने हेतु आदेश दिया। परन्तु जैसे कोई आकाश को नहीं स्पर्श कर सकता, उसी प्रकार वह भिक्षुक स्पर्श नहीं होने वाला तथा ब्रह्मतेज से प्रज्वलित था॥८७-८९॥

न शाशक बहिः कुर्तं समीपं गन्तुमक्षमः। ददर्श भिक्षुकं शैलः क्षणं चारुचतुर्भुजम्॥९०॥
किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं परम्। सुवेषं सुन्दरं श्याममीषद्धास्यं मनोहरम्॥९१॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुग्रहकारकम्। यद्यत्पुष्पं प्रदत्तं च पूजाकाले गदाभृते॥९२॥
गात्रे शिरसि तत्सर्वं भिक्षुकस्य ददर्श ह। धूपः प्रदीपो यो दत्तो नैवेद्यं वा मनोहरम्॥९३॥
ददर्श शैलस्तत्सर्वं भिक्षुकस्य पुरः स्थितम्। क्षणं ददर्श द्विभुजं विनोदमुरलीकरम्॥९४॥
गोपवेषं किशोरं च सस्मितं श्यामसुन्दरम्। मयूरपिच्छचूडं च रत्नालङ्कारभूषितम्॥९५॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वनमालाविभूषितम्। क्षणं ददर्श स्वच्छं च शङ्करं चन्द्रशेखरम्॥९६॥

कोई भी अनुचर उस भिक्षुक को वहां से निकाल ही नहीं सका। तभी अगले क्षण हिमवान् देखते हैं कि वह भिक्षुक उत्तम चतुर्भुज, पीताम्बरधारी तथा किरीट एवं कुण्डलों से विभूषित, उत्तम वेषधारी, श्यामवर्ण किञ्चित् मुस्कराता हुआ एवं अत्यन्त मनोहर रूप वाला है। उसका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित है। वह भक्तों पर अनुग्रह करने वाला है। हिमाचल देखते हैं कि गङ्गा तट पर तपस्याकाल में पूजा करते समय उन्होंने भगवान् गदाधर पर जो-जो पुष्प अर्पित किया था, वे इनके ऊपर पड़े हैं। वे सभी इनके अंगों तथा शिर पर रखे हैं! गङ्गा तट पर भगवान् गदाधर को हिमाचल ने जो भी धूप, दीप, मनोहर नैवेद्य अर्पित किया था, वह सब हिमाचल ने इनके समक्ष रखा देखा। अगले क्षण पर्वतराज देखते हैं कि ये पुरुष जो चतुर्भुज थे अब द्विभुज तथा हाथों में विनोदमयी मुरली लिये खड़े हैं। वे

गोपवेषधारी, मुस्कराते हुये, किशोर आयु वाले, श्यामसुन्दर हैं। उन्होंने मयूरपंख का चूड़ा शिर पर धारण किया है। वे प्रभु रत्नों के अलंकार से भूषित हैं। उनके सभी अंग चन्दन चर्चित हैं। वे वनमालाधारी हैं। अगले क्षण हिमवान् देखते हैं कि वे अब शुक्लवर्ण शङ्कर चन्द्रशेखर रूपधारी हो गये!।।९०-९६।।

त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम्। विभूतिगात्रममलमस्थिमालाविभूषितम्।।९७।।

अब वे प्रभु हाथों में त्रिशूल एवं पट्टिश लिये हुये, अत्यन्त श्रेष्ठ व्याघ्रचर्म धारण करने वाले, अङ्गों पर भस्म लगाये एवं निर्मल अस्थिमाला से भूषित हैं।।९७।।

नागयज्ञोपवीतं च तप्तस्वर्णजटाधरम्। डमरुशृङ्गहस्तं च सुप्रशस्तं मनोहरम्।।९८।।
प्रजपन्तं हरेर्नाम श्वेताब्जबीजमालया। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यंभक्तानुग्रहकारकम्।।९९।।

स्वेतजसा प्रज्वलन्तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्।
क्षणं ददर्श जगतां स्त्रष्टारं च चतुर्मुखम्।।१००।।
जपन्तं श्रीहरेर्नाम स्वच्छस्फटिकमालया।
क्षणं सूर्यस्वरूपं च ददर्श त्रिगुणात्मकम्।।१०१।।

उनकी जटा तप्तस्वर्णाभ लग रही है। उन्होंने नाग का यज्ञोपवीत धारण किया है। हाथों में डमरू तथा शृंगवाद्य धारण करने के कारण उनका रूप अत्यन्त प्रशस्त एवं मनोहर प्रतीत हो रहा है। वे हाथ में श्वेत कमल के बीजों की माला लेकर उस पर सतत् हरिनाम जप रहे हैं। उनके मुख पर मन्द मुस्कान झलक रही है। वे भक्तों पर कृपा करने हेतु उद्यत हैं। ये पंचमुख त्रिलोचन अपने स्वतेज से उद्भासित हो रहे हैं। अगले ही क्षण हिमाचल देखते हैं कि अब वे भिक्षु जगत् सृष्टिकर्त्ता, चतुर्मुख ब्रह्मारूप वाले हो गये! वे ब्रह्मा स्वच्छ वर्ण की स्फटिक माला पर सतत् हरिनाम जप रहे थे। अगले क्षण हिमवान् ने उनको त्रिगुणात्मक सूर्य रूप में देखा!।।९८-१०१।।

ददर्श तमतीव्रं तु ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। क्षणमग्निस्वरूपं च ज्वलन्तमतितेजसा।।१०२।।
क्षणमाह्लादजनकं चन्द्ररूपं ददर्श ह। क्षणं तेजःस्वरूपं च निराकारं निरञ्जनम्।।१०३।।

निर्लिप्तं च निरीहं च परमात्मस्वरूपिणम्।
एवं स्वेच्छामयं दृष्ट्वा नानारूपधरं परम्।।१०४।।

यह सूर्यरूप अत्यन्त तीव्र ब्रह्मतेज से प्रज्वलन्त प्रतीत हो रहा था। अगले क्षण हिमवान् ने भिक्षुक को अत्यन्त तेज से उद्भासित प्रदीप्त अग्निरूपी देखा। अगले क्षण भिक्षुक को आह्लाद देने वाले चन्द्रमा के रूप में देखा! अगले क्षण हिमवान् देखते हैं कि अब वह भिक्षुक तेजस्वरूप, निराकृति, निरंजन, निर्लिप्त, निरीह परमात्मरूप हो गया। इस प्रकार उस भिक्षुक को हिमवान् ने स्वेच्छा से अनेक रूप धारण करते देखा।।१०२-१०४।।

हर्षाश्रुपुलकः शैलो दण्डवत्प्रणनाम तम्। भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च पुनः पुनः।।१०५।।

समुत्पत्य हर्षयुक्तो ददर्श पुनरेव तम्। वास्तवं भिक्षुकं दृष्ट्वा शैलेन्द्रो विष्णुमायया॥१०६॥
विसस्मार च तत्सर्वं नानारूपधरं[१] परम्।
भिक्षां ययाचे भिक्षुस्तं भिक्षास्थालीस्वपार्श्वकः[२]॥१०७॥
रक्ताम्बरः शृङ्गवाद्यविचित्रडमरुः करे। आदातुमुत्सुको दुर्गां नान्यां भिक्षुः कदाचन॥१०८॥

यह देखकर हिमाचल के नेत्रों से हर्षमय अश्रुबिन्दु गिरने लगे। उन्होंने रोमाञ्चित होकर भिक्षुक को दण्डवत् प्रणाम किया। वे भक्तिभाव से उस भिक्षुक की प्रदक्षिणा करने एवं बारम्बार उनको प्रणाम करने लगे! तदनन्तर हिमालय हर्षित चित्त से पुनः भिक्षुक के पास गये। तब इस समय हिमालय ने वास्तव में उसी भिक्षुरूप को ही देखा। अब विष्णु की माया के कारण हिमाचल उन भिक्षुक के नानारूप धारण वाला प्रसंग भूल गये। अब वे भिक्षुक अपने भिक्षा के पात्र में पुनः भिक्षा की याचना करने लगे। भिक्षुक के हाथ में शृङ्गवाद्य तथा विचित्र डमरू था। उन्होंने रक्तवर्ण का वस्त्र धारण किया था, तथापि वे भिक्षा में केवल दुर्गा की ही याचना करने हेतु उत्सुक थे। उनको इसके अतिरिक्त अन्य भिक्षा की इच्छा ही नहीं थी!॥१०५-१०८॥

न स्वीचकार शैलेन्द्रो मोहितो विष्णुमायया। भिक्षः किञ्चिन्न जग्राह तत्रैवान्तरधीयत॥१०९॥
तदा बभूव ज्ञानं च मेनकाशैलयोः प्रिये। अहो दृष्टो जगन्नाथ आवाभ्यां स्वप्नवद्दिने॥११०॥
आवां शिवो वञ्चयित्वा स्वस्थानं गतवान्विभुः।
तयोर्भक्तिं शिवे दृष्ट्वा सर्वे देवाश्च चिन्तिताः॥१११॥
चक्रुः शक्रादयो युक्तिं सुमेरो रक्षणे भरात्।
एकान्तभक्त्या शैलश्चेत्कन्या तस्मै प्रदास्यति॥११२॥
ध्रुवं निर्वाणतां सद्यः सम्प्रानोत्येव भारते।
अनन्तरत्नधारश्चेत्पृथ्वीं त्यक्त्वा प्रयास्यति॥११३॥
रत्नगर्भाभिधा भूमेर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम्।
स्थावरत्वं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः॥११४॥
कन्यां शूलभृते दत्त्वा विष्णुलोकं गमिष्यति।
नारायणस्य सारूप्यं भविष्यत्येव लीलया॥११५॥

वे भिक्षु अन्य कुछ भी स्वीकार नहीं करना चाहते थे, तथापि विष्णुमाया से विमोहित पर्वतराज ने यह याचना स्वीकार ही नहीं किया। अतः वे भिक्षुक बिना कुछ ग्रहण किये ही वहां से अन्तर्ध्यान हो गये। हे प्रिय राधिके! जब वे भिक्षुक चले गये तब मेनका तथा शैलराज को ज्ञान हुआ कि "अहो! ये तो जगन्नाथ थे, जिन्होंने दिन में हमें स्वप्नवत् आकार दर्शन दिया था। इस प्रकार उन्होंने वञ्चना (ठग

१. क. ०पप्रदर्शनम्।
२. ख. ०कम्।

लिया) किया तथा स्वगृह चले गये।" जब इन्द्रादि देवताओं ने हिमालय तथा मेनका की ऐसी दृढ़ शिवभक्ति को देखा, वे सभी देवता चिन्तामग्न हो गये। तभी सभी देवगण ने सुमेरु पर्वतस्थ स्थान में एकत्र होकर आपस में युक्ति से निर्णय लिया। यदि शैलराज भारत प्रदेश में इस अनन्य भक्ति के साथ अपनी कन्या शिव को प्रदान करते हैं, तब तो उनको तत्काल निर्वाण मुक्ति प्राप्त होगी। जब वे पृथिवी त्याग करके चले जायेंगे, तब पृथिवी का रत्नगर्भा नाम ही मिथ्या माना जायेगा; क्योंकि हिमाचल में ही समस्त रत्नों की खान है! हिमालय शूलपाणि को भक्तिभाव से कन्या देने के कारण अपना स्थावर रूप त्याग करके दिव्यरूपी हो जायेंगे। वे निश्चित रूप से विष्णुलोक प्राप्त करके वहां श्रीहरि का सारूप्य मोक्ष अनायास प्राप्त कर लेंगे।।१०९-११५।।

सम्प्राप्य पार्षदत्वं च हरिदासो भविष्यति।
दशवापीसमा कन्या दीयते ब्राह्मणाय ताम्।।११६।।

वेदज्ञाय पवित्राय चाप्रतिग्रहशालिने। सन्ध्यायज्ञ वेदपाठकारिणे सत्यवादिने।।११७।।

अस्मे प्रदत्ता कन्या च दशवापीफलप्रदा।
त्रिसन्ध्यं कारिणे सत्यवादिने गृहशालिने।।११८।।

वेदज्ञाय सुविप्राय दत्त्वा सुफलदायिनी। प्रतिग्रहगृहीताय सन्ध्याहीनाय नित्यशः।।११९।।
मूर्खाय दत्ता कन्या सा त्वर्धांशफलदायिनी। परदारगृहीताय याजकाय द्विजातये।।१२०।।

शठाय सन्ध्याहीनाय वाप्यैकफलदा सुता।
सर्वसन्ध्यास्वगायत्रीविहीनाय शठाय च।।१२१।।
वैश्योद्भवाय[1] दत्ता या वाप्यर्धफलदा स्मृता।
पापिने शूद्रजाताय विप्रक्षत्त्रोद्भवाय च।।१२२।।
दत्त्वा चाण्डालतुल्याय कन्या सा नरकप्रदा।
विष्णुभक्ताय विदुषे विप्राय सत्यवादिने।।१२३।।

तत्पश्चात् पार्षदत्व पाने के कारण उनको हरि का दासत्व लाभ भी हो जायेगा। ब्राह्मण को कन्या प्रदान करने वाला १० बाबली निर्माण का पुण्यलाभ करता है। वेदज्ञ, पवित्र, दान न लेने वाले, सन्ध्या-यज्ञ-वेदपाठ करने वाले, सत्यवादी को कन्या देने वाला भी १० वापी निर्माण का पुण्यफल लाभ करता है। त्रिसन्ध्या करने वाले, सत्यवक्ता, गृहस्थ, वेदज्ञ ब्राह्मण को कन्या देना उत्तम फलप्रद है। जो दान लेने वाले, नित्य सन्ध्या रहित मूर्ख विप्र को कन्या देता है, उसे आधा फल ही मिलेगा। अन्य की नारी को ग्रहण करने वाले, यज्ञ कराने वाले, शठ, सन्ध्या रहित द्विज को कन्या देने से मात्र १ वापी बनवाने का फल मिलता है। (वापी = बावली)। जो सभी सन्ध्या, गायत्री से रहित शठ को वैश्योत्पन्न व्यक्ति को कन्यादान करने से आधी बाबली बनाने का फल लाभ होता है। पापिनी ब्राह्मणी

१. क. विप्रोद्भ०।

के गर्भ से शूद्र-क्षत्रिय अथवा विप्र के द्वारा उत्पन्न की गई चाण्डालतुल्य सन्तान को जो कन्या प्रदान करता है, उस व्यक्ति को नरक की प्राप्ति होगी। विष्णुभक्त, विद्वान्, सत्यवादी विप्र को कन्या प्रदान करे।।११६-१२३।।

जितेन्द्रियाय दत्ता या विंशद्वापीफलप्रदा। षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यरूपं विधाय च।।१२४।।

एवंभूताय दत्ता चेन्मोदते विष्णुमन्दिरे।
दत्त्वा कन्यां सुशीलां च हराय हरयेऽथवा।।१२५।।
नारायणस्वरूपं च भवेदेव श्रुतौ श्रुतम्।
विष्णुभक्तो यदा कन्यां ददाति विष्णुप्रीतये।।१२६।
स लभेद्धरिदास्यं च ध्रुवं विप्रोद्भवाय च।
इत्यालोच्य सुराः सर्वे कृत्वा च मन्त्रणां प्रिये।।१२७।।

तथा जितेन्द्रिय ब्राह्मण कुमार को जो कन्या प्रदान करता है, उसे बीस बावली निर्माण का पुण्यफल लाभ होगा। तदनन्तर वह ६०००० वर्ष पर्यन्त दिव्यरूपधारी होकर विष्णुधाम में आनन्द लाभ करता है। जो शिव किंवा विष्णु को सुशीला कन्या प्रदान करता है, उसे नारायण स्वरूप (सारूप्य मोक्ष) लाभ होता है। यह वेद का कथन है। यदि कोई विष्णुपरायण व्यक्ति विष्णु को प्रसन्न करने के उद्देश्य से विप्रपुत्र को कन्या प्रदान करता है, उस महात्मा व्यक्ति को निश्चित रूप से हरि दासत्व की प्राप्ति हो जाती है। हे प्रिये राधा! देवगण ने इस प्रकार से मन्त्रणा किया था।।१२४-१२७।।

गुरुं प्रस्थापितुं जग्मुर्हिमालयगृहं प्रति। गत्वा प्रणम्य च गुरुं सर्वे चक्रुर्निवेदनम्।।१२८।।

हिमालयगृहं गत्वा कुरु निन्दां च शूलिनः।
पिनाकिनं विना दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति।।१२९।।
अनिच्छया सुतां दत्त्वा फलं पूर्णं न लभ्यते।
कालेन यातु शैलेन्द्रश्चेदानीं भुवि तिष्ठतु।।१३०।।

अनन्तरत्नाधारं च त्वमेव रक्ष भारते। देवानां वचनं श्रुत्वा प्रददौ कर्णयोः करौ।।१३१।।
न स्वीचकार स्वगुरुः स्मरन्नारायणेति च। उवाच देववर्गांश्च संभर्त्स्य च पुनः पुनः।

वेदवेदाङ्गविज्ञाता[1] महाभक्तो हरौ हरे।।१३२।।

इस मन्त्रणा के अनुसार कि गुरु को हिमालय के यहां भेजना है, सभी देवता गुरु बृहस्पति के पास गये तथा उनको प्रणाम करके यह निवेदन किया कि "आप हिमालय के यहां जाकर शूलपाणि की निन्दा उनसे करिये, तथापि दुर्गा कदापि शिव के अतिरिक्त अन्य का वरण नहीं करेगीं। अतः हिमालय अनिच्छा से कन्यादान करने के कारण कन्यादान का यथार्थ फल नहीं पा सकेंगे। अतः वे पृथिवी पर

---

१. ख. ०दान्तवि०।

ही रह जायेंगे। (अर्थात् उनका मोक्ष इस कन्यादान जनित पुण्य के कारण नहीं होगा)। हे गुरुदेव! आप ही इस अनन्तरत्नधारी हिमाचल को पृथिवी पर ही रख सकते हैं।" देवगण का वचन सुनते ही बृहस्पति ने अपने कानों को हाथ से बन्द कर लिया। उन्होंने तत्काल नारायण का नामस्मरण करते हुये देवगण की प्रार्थना को नहीं माना। गुरु बृहस्पति वेद-वेदांग के ज्ञाता तथा हरि एवं शिव के महाभक्त थे। वे देवगण की भर्त्सना बारम्बार करते कहने लगे।।१२८-१३२।।

बृहस्पतिरुवाच

श्रूयतां मद्वचः सत्यं हे देवाः स्वार्थसाधकाः।
नीतिसारं च वेदोक्तं परिणामसुखावहम्।
हरकेशवयोर्भक्तं ये च निन्दन्ति पापिनः।।१३३।।
भूदेवान्ब्राह्मणांश्चैव स्वगुरुं च पतिव्रताः। पतिभिक्षुब्रह्मचारिसृष्टिबीजान्सुरांस्तथा।।१३४।।
पच्यन्ते कालसूत्रे ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ। श्लेष्ममूत्रपूरीषेषु शेरते ते दिवानिशम्।।१३५।।
भक्षिताःकीटनिकरैः शब्दं कुर्वन्ति कातराः।
ये निन्दन्ति च ब्राह्मणं स्त्रष्टारं जगतां गुरुम्।।१३६।।
शिवं सुराणां प्रवरं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम्।
गीतां च तुलसीं गङ्गां वेदांश्च वेदमातरम्।।१३७।।
व्रतं तपस्यां पूजां च मन्त्रं मन्त्रप्रदं गुरुम्।
ते पच्यन्तेऽन्धकूपे वै चाऽऽयुषोऽर्धं विधेरहो।।१३८।।

श्रीबृहस्पति कहते हैं–हे स्वार्थसाधक देवताओ! मेरा सत्यवचन श्रवण करो। यह मेरा कथन नीति का सार, वेदसम्मत तथा परिणाम में सुखदायक है। जो पापी लोग हरि-हर के भक्त की, भूदेव ब्राह्मण की, अपने गुरु की, पतिव्रता नारी की, भिक्षु (संन्यासी) की, ब्रह्मचारी की, सृष्टिबीज रूप देवगण की निन्दा करते हैं, जो नारी पति निन्दा करती है, ये सभी जब तक जगत् में सूर्य-चन्द्र की स्थिति है, तब तक कालसूत्र नरक में पकाये जाते हैं। इन सबको दिन-रात श्लेष्मा-मल-मूत्र प्रभृति पर लिटाया जाता है, वहां कीट समूह इनको निरन्तर काटते रहते हैं, जिससे पीड़ित होकर ये सभी पातकी कातर होकर चीखते रहते हैं। जो कोई जगत्स्त्रष्टा ब्रह्मा की, जगद्गुरु शिव की जो देव प्रवर हैं, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गीता, तुलसी, गंगा, वेद, वेदमाता सावित्री की, व्रत-तप-पूजन-मन्त्र-मन्त्रप्रदाता गुरु की निन्दा करते हैं, उनको ब्रह्मा की आधी आयुकाल पर्यन्त अन्धकूप नरक में महाक्लेश भोग के साथ पकाया जाता है।।१३३-१३८।।

भक्षिताः सर्पसङ्घैश्च शब्दं कुर्वन्ति संततम्।
ये निन्दन्ति हृषीकेशं देवसाम्यं विधाय च।।१३९।।

विष्णुभक्तिप्रदं चैव पुराणं च श्रुतेः परम्।
राधां तदङ्गजा गोपीर्ब्राह्मणांश्च सदार्चितान्॥१४०॥
ते पच्यन्तेऽवटे देवा विधातुरायुषा समम्।
अधोमुखा ऊर्ध्वजङ्घाःसर्पसङ्घैश्च वेष्टिताः॥१४१॥

वहां वे सर्पदंश निरन्तर होते रहने के कारण निरन्तर आर्त्त स्वर में चीत्कार करते रहते हैं। जो हृषीकेश की सामान्य देवता से तुलना (समानता) करता है तथा निन्दा करता है, जो विष्णुभक्ति प्रदाता तथा वेद से भी परम पुराणों में दोष दर्शन करता है, राधा तथा उनके अंगों से उत्पन्न गोपीगण की, सदापूज्य ब्राह्मणगण की निन्दा करता है, वह भले ही देवता क्यों न हो, उसे ब्रह्मा के आयुकाल तक नरकगर्त्त में नीचे शिर तथा पैर ऊपर करके लटका कर पकाते हैं। उनको सर्प डंसते रहते हैं॥१३९-१४१॥

भक्षिता विकृताकारैः कीटैः सर्पसमाकृतैः।
अतीव कातरा भीताः शब्दं कुर्वन्ति संततम्॥१४२॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि ध्रुवं भक्षन्ति क्षोभिताः।
उल्कां ददति रुष्टाश्च तन्मुखे यमकिङ्कराः॥१४३॥
त्रिसन्ध्यं तर्जनं कृत्वा कुर्वन्ति दण्डताडनम्।
कुर्वन्ति मूत्रपानं च प्रहारैस्तृषितान्भिया॥१४४॥

सर्प के समान विकृत आकार वाले कीट काटकर खाते रहते हैं। वह पातकी अत्यन्त कातर एवं भयभीत होकर निरन्तर चीत्कार करता रहता है। वह निश्चित रूप से वहां श्लेष्मा, मल-मूत्र को क्षुब्ध होकर भक्षण करता रहता है। उस समय कुपित यमदूतगण उसके मुख में जलती हुई लकड़ी भर देते हैं। वे यमगण तीनों सन्ध्याकाल में उस पापी को धिक्कारते हुये, उस पर गर्जते हुये, उस पर प्रहार करते रहते हैं। दण्ड से प्रहार सहने के कारण पिपासा लगने पर वह पातकी यमदूतों से भयभीत होकर मूत्रपान तक करता है॥१४२-१४४॥

तदा कल्पान्तरे स्रष्टुं सृष्टिं च प्रथमे पुनः। तेषां भवेत्प्रतीकार इत्याह कमलोद्भवः॥१४५॥

कृत्वा हि शिवनिन्दां च यास्यन्ति नरकं सुराः।
इममेवोपकारं च कर्तुमिच्छथ पुत्रकाः॥१४६॥

ब्रह्मणा प्रेरितो दक्षो दत्त्वा शूलभृते सुताम्। न पापं परमैश्वर्यं सम्प्राप हरनिन्दकः॥१४७॥

अनिच्छया सुतां दत्त्वा तुर्यपुण्यं ललाभ सः।
अहो विहाय सारूप्यं तुच्छं स्वर्गं ललाभ सः॥१४८॥

जब इसके पश्चात् आने वाले कल्प की सृष्टि के समय उसके पापों का तभी निवारण हो पाता है। यह ब्रह्मा का वचन है। शिवनिन्दक देवता तक नरकगामी होते हैं। हे पुत्रगण (देवगण)! क्या तुम लोग

मेरा यही उपकार कर रहे हो? (अर्थात् शिवनिन्दा कराकर मुझे नरक भेज रहे हो?)। ब्रह्माज्ञा के कारण दक्ष ने अपनी कन्या सती शिव को पूर्वकाल में प्रदान किया था। अतः वे शिवनिन्दा करके भी पापभागी नहीं बने। उन्होंने परम ऐश्वर्य लाभ किया, तथापि यह भी सत्य है कि उन्होंने अनिच्छा के साथ शिव को अपनी कन्या सती प्रदान किया था। इस कारण वे चतुर्थांश मात्र पुण्यफल पा सके। उनको हरि का सारूप्य मोक्ष नहीं मिला। उनको केवल तुच्छ स्वर्गलाभ ही हो सका था!।।१४५-१४८।।

कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गत्वा शैलगृहं सुराः।
सम्पादयत्वभिमतं शैलेन्द्रस्य प्रयत्नतः।।१४९।।
अनिच्छया सुतां दत्त्वासुखं तिष्ठतु भारते।
तस्मै भक्त्या सुतां दत्त्वा मोक्षं प्राप्स्यति निश्चितम्।।१५०।।

हे देवगण! तुम देवताओं में से कोई देवता हिमालय के यहां जाये तथा अपना अभिमत कार्य सिद्ध करे। हिमाचल अपनी कन्या शिव को अनिच्छा पूर्वक प्रदान करे तथा फलस्वरूप वे भारत में ही रहे। यदि वे स्वेच्छा से भक्ति के साथ शिव को कन्यादान करते हैं, तब तो उनको मोक्ष ही मिल जायेगा। (अर्थात् तब यह धरती रत्नों की खान नहीं रह जायेगी; क्योंकि हिमालय ही नहीं रह जायेंगे!)।।१४९-१५०।।

पश्चात्सप्तर्षयः सर्वे गृहीत्वा तामरुन्धतीम्।
ध्रुवं तस्य गृहं गत्वा बोधयिष्यन्ति पर्वतम्।।१५१।।
विना पिनाकिनं दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति।
अनिच्छया सुतां तस्मै प्रदास्यति सुताज्ञया।।१५२।।
इत्येवं कथितं सर्वं देवा गच्छन्तु मन्दिरम्।
इत्युक्त्वा वाक्पतिः शीघ्रं तपसे स्वर्णदीं गतः।।१५३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० चत्वारिंशोऽध्यायः।।४०।।

"इसके पश्चात् सप्तर्षिगण देवी अरुन्धती के साथ हिमालय के गृह जाकर उनको प्रबोधित करेंगे। दुर्गा भी शिव के अतिरिक्त अन्य पति का वरण नहीं करेंगी। अतः शैलराज अनिच्छा पूर्वक कन्या की इच्छा के अनुसार उसे शिव को समर्पित कर देंगे। हे देवगण! मैंने तुमसे सब कुछ बतला दिया। अब अपने-अपने घर चले जाओ।" यह कहकर बृहस्पति तपस्यार्थ मन्दाकिनी तट पर चले गये।।१५१-१५३।।

।।४०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

हिमालय से ब्राह्मणरूपी महादेव द्वारा अपनी ही निन्दा किया जाना, गिरिजा के पास सप्तर्षिगण तथा अरुन्धती का आगमन, वसिष्ठ द्वारा कन्यादान सम्बन्धित कथा प्रसंग में अनरण्य राजा का उपाख्यान वर्णन करना

श्रीकृष्ण उवाच

तदा देवाः समालोच्य जग्मुस्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम्।
सर्वे निवेदनं चक्रुर्ब्रह्माणं जगतां पतिम्॥१॥

प्रभु श्रीकृष्ण कहते हैं—तदनन्तर परस्परतः विचार-विवेचना करके देवमण्डली ब्रह्मा के यहां पहुंची। वहां सभी देवताओं ने जगत्पति ब्रह्मा से कहा—॥१॥

देवा ऊचुः

तव सृष्टौ जगत्स्त्रष्टा रत्नाधारो हिमालयः। स चेत्प्राप्स्यति मोक्षं च रत्नगर्भा कुतो मही॥२॥
सुतां शूलभृते दत्त्वा भक्त्या शैलेश्वरः स्वयम्।
नारायणस्य सारूप्यं सम्प्राप्स्यति न संशयः॥३॥

देवगण कहते हैं—हे संसार सृष्टिकर्त्ता! आपकी सृष्टि में हिमालय को रत्नाधार कहते हैं। यदि शैलराज स्वयं भक्ति पूर्वक शिव को कन्या प्रदान कर देते हैं, तब वे नारायण का सारूप्य लाभ करके मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। तब पृथिवी रत्नगर्भा कैसे रह जायेगी? यह निश्चित जाने कि पृथिवी रत्नगर्भा तब नहीं रहेगी॥२-३॥

त्वं तस्य निन्दनं कृत्वा विमतिं प्रतिपादय।
त्वया विना क्षमो नान्यो गच्छ शैलगृहे प्रभो॥४॥

हे प्रभो! आप हिमालय के यहां जाकर शिव निन्दा करिये जिससे उनमें मतिभ्रम उत्पन्न हो सके। आपके अतिरिक्त यह कार्य करना किसी के वश में नहीं है। हे प्रभो! आप ही शैलराज के गृह जायें॥४॥

देवानां वचनं श्रुत्वा तानुवाच विधिः स्वयम्। वचनं नीतिसारं च कर्णपीयूषमुत्तमम्॥५॥

देवगण का कथन सुनकर विधाता ने उन देवताओं से स्वयं नीति का साररूप तथा कानों को अमृत जैसा लगने वाला उत्तम वचन कहा—॥५॥

ब्रह्मोवाच

नाहं कर्तुं क्षमो वत्साः शिवनिन्दां सुदुष्कराम्।
संपद्विनाशरूपां च विपदो बीजरूपिणीम्॥६॥
भूतेशं प्रस्थापयत स्वात्मनिन्दां करोतु सः। परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे परम्॥७॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे वत्सगण! यह शिवनिन्दा कार्य तो सम्पदानाशक, विपत्ति का बीजरूप दुष्कर कार्य है। मैं यह कदापि नहीं कर सकता। तुम लोग शिव के यहां जाकर स्वयं उनको हिमालय के गृह भेजो। वे स्वयं अपनी निन्दा वहां करें। परनिन्दा विनाशक होती है। अपनी निन्दा से परमयश की प्राप्ति हो जाती है।।६-७।।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तं प्रणम्य सराः प्रिये।
शीघ्रं ययुस्ते कैलासं गत्वा च तुष्टुवुः शिवम्॥८॥
सर्वं निवेदनं चक्रुः शङ्करं करुणालयम्। स ययौ शैलमूलं च तानाश्वास्य प्रहस्य च॥९॥

हे प्रिय राधा! ब्रह्मा का कथन सुनकर सभी देवगण ने उनको प्रणाम किया तथा वे शीघ्रता से कैलास पहुंचकर शिव स्तुति करने लगे। उन्होंने करुणाधाम शिव से समस्त वृत्तान्त को कहा। यह सब सुनकर शिव उन्मुक्त भाव से हंसने लगे। वे देवगण को आश्वस्त करके हिमाचल के भवन में स्वयं आये।।८-९।।

देवा मुमुदिरे सर्वे शीघ्रं गत्वा स्वमन्दिरम्। इष्टासिद्धिर्मुदे शश्वदसिद्धिर्दुःखवर्धिनी॥१०॥
अथ शैलः सभामध्ये समुवास मुदाऽन्वितः।
बन्धुवर्गैः परिवृतः पार्वतीसहितः स्वयम्॥११॥

यह देखकर मुदित मन देवगण शीघ्र अपने गृह आ गये। इष्टसिद्धि मुदित करने वाली तथा असिद्धि निरन्तर दुःखदायिनी होती है। उस समय शैलपति आनन्दित होकर बन्धुवर्ग से घिरे स्वयं सभा में आसीन थे। वहां भगवती पार्वती भी आसीन थीं।।१०-११।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्ररूपी शिवः स्वयम्। समाजगाम सहसा प्रसन्नवदनेक्षणः॥१२॥
दण्डी छत्री दीर्घवासा बिभ्रत्तिलकमुत्तमम्।
करे स्फटिकमाला च शालग्रामं गले दधत्॥१३॥
तं च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणश्च हिमालयः। ननाम दण्डवद्भूमौ भक्त्याऽतिथिमपूर्वकम्॥१४॥
ननाम पार्वती भक्त्या प्राणेशं विप्ररूपिणम्।
आशिषं युयुजे विप्रः सर्वेषां प्रीतिपूर्वकम्॥१५॥

तभी सहसा विप्ररूपधारी शिव वहां प्रसन्न मुखमुद्रा में समागत हो गये। वे दण्ड, छत्रधारी थे। उनका वस्त्र दीर्घ था। उनका ललाट श्रेष्ठ तिलक से युक्त था। उनके हाथों में स्फटिक की जपमाला थी

तथा गले में शालग्राम को उन्होंने धारण किया था। उन विप्र को देखकर हिमवान् अपने गणों के साथ आदर पूर्वक उठे। उन्होंने भूमि पर दण्डवत् होकर भक्ति पूर्वक उन अपूर्वरूप अतिथि को प्रणाम किया। विप्ररूपधारी अपने प्राणेश्वर को भी पार्वती ने भक्ति के साथ प्रणाम किया। तब उन विप्र ने सभी को प्रीति पूर्वक आशीर्वाद प्रदान किया।।१२-१५।।

शैलदत्तासने शीघ्रमुवास ब्राह्मणः स्वयम्। मधुपर्कादिकं सर्वं जग्राह प्रीतिपूर्वकम्।।१६।।
पप्रच्छ कुशलं शैलो ब्राह्मणं को भवानिति। उवाच सर्वं विप्रेन्द्रो गिरीन्द्रं सादरेण च।।१७।।

उन ब्राह्मण ने पर्वतराज द्वारा प्रदत्त आसन को ग्रहण किया तथा उस पर बैठ गये। हिमाचल प्रदत्त मधुपर्क आदि को भी प्रीति के साथ ब्राह्मण अतिथि ने स्वीकार किया। हिमवान् ने इसके पश्चात् ब्राह्मण से कुशलता पूछने के अनन्तर उनसे आदर पूर्वक कहा—"आप कौन हैं, कृपया बतायें।" तब उन श्रेष्ठ ब्राह्मण ने पर्वतराज से सादर उत्तर दिया।।१६-१७।।

ब्राह्मण उवाच

वाटिकां वृत्तिमाश्रित्य भ्रमामि धरणीतले। मनोयायी सर्वगामी सर्वज्ञोऽहं गुरोर्वरात्।।१८।।
मया ज्ञातं शङ्कराय सुतां दातुं त्वमिच्छसि। इमां पद्मासमां दिव्यामज्ञातकुलशीलिने।।१९।।
निराश्रयायासङ्गायारूपाय निर्गुणाय च। श्मशानगामिने सर्वभूतनाथाय योगिने।।२०।।
दिग्वाससेऽहिगात्राय विभूतिभूषणाय च।
व्यालग्राहिस्वरूपाय कालव्यापादनाय च।।२१।।
अज्ञातमृत्युवेऽज्ञायानाथायाबन्धवे भवे। तप्तस्वर्णजटाभारधारिणे निर्धनाय च।।२२।।

अतिथि ब्राह्मण कहते हैं—मैं घटक वृत्ति ब्राह्मण हूं जो वर-कन्या का विवाह कराने के उद्देश्य से पृथिवी पर घूमता रहता हूं। गुरु की कृपा से मेरी गति मन के समान तीव्र है। मैं सर्वज्ञ हूं तथा सर्वत्र जा सकता हूं। मुझे विदित हुआ है कि आप अपनी लक्ष्मी जैसी कन्या एक अज्ञात कुलशील व्यक्ति को प्रदान कर रहे हैं। ये शिव निराश्रय, संग एवं रूप से रहित, निर्गुण, श्मशानवासी, सर्वभूतों के स्वामी, योगी, दिगम्बर, देह में सर्पों को लपेटे, अंगों पर भस्म मलने वाले, सपेरा ऐसा स्वरूप धारण करने वाले, कालनाशक, अज्ञातमृत्यु, भव, अज्ञ, अनाथ, बन्धु रहित, तप्तस्वर्ण ऐसी जटा धारण करने वाले तथा निर्धन हैं।।१८-२२।।

अज्ञातवयसेऽतीव वृद्धाय चाविकारिणे। सर्वाश्रयाय भ्रमिणे नागहाराय भिक्षवे।।२३।।
निबोध ज्ञानिनां श्रेष्ठं नारायणं कुलोद्भवम्। स ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदातृकर्मणि[१]।।२४।।

उनकी आयु अज्ञात हैं, वे अत्यन्त वृद्ध, विकार रहित, सबको आश्रय देने वाले, चारों ओर भटकने वाले, नागहारधारी एवं भिक्षु हैं। यदि आपको पुत्री ही देनी है, तब नारायण ज्ञानी प्रवर, उत्तम कुलोत्पन्न हैं। वे पार्वती हेतु उपयुक्त पात्र भी हैं।।२३-२४।।

१. क. ०दानक०।

महाजनः स्मेरमुखः श्रुतिमात्राद्भविष्यति।
लक्षशैलधिपस्त्वं च न तस्यैकोऽस्ति बान्धवः॥२५॥
बान्धवान्मेनकां प्रश्नं कुरु शीघ्रं प्रयत्नतः।
सर्वान्पृच्छ प्रयत्नेन हे बन्धो पार्वतीं विना॥२६॥
रोगिणे नौषधं शश्वत्कुपथ्यं रोचते सदा।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणः शीघ्रं स्नात्वा भुक्त्वा मुदाऽन्वितः॥२७॥

जब लोग यह समाचार सुनेंगे कि पार्वती का विवाह शंकर से हो रहा है, तब महाजनगण आपका उपहास करेंगे। वे व्यंग से मुस्कराने लगेंगे। आप तो लाखों पर्वतों के स्वामी हैं। उधर शिव का तो एक भी बन्धु नहीं है। आप अपनी पत्नी मेनका तथा अपने बन्धुबान्धवगण से विचार करके तब कुछ करें। हे बन्धु! आप इस सम्बन्ध में सबका मत अवश्य ले सकते हैं, तथापि पार्वती से तो कदापि इस विषय में मत पूछिये। इसका कारण है कि रुग्ण व्यक्ति को सर्वदा कुपथ्य अच्छा लगता है। उसे औषधि सेवन बुरा लगता है। यह कहकर ब्राह्मण वहां मुदित मन से स्नान भोजनादि सम्पन्न करने के पश्चात् शीघ्र चले गये।।२५-२७।।

जगाम स्वालयं शान्तो वृन्दावनविनोदिनि।
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा मेनोवाच हिमालयम्।
शोकेन साश्रुनयना हृदयेन विदूयता॥२८॥

हे वृन्दावनविनोदिनी राधिके! वह ब्राह्मण शान्तमुद्रा में अपने गृह चले गये। तदनन्तर ब्राह्मण का कथन सुनकर मेना का हृदय शोकपूर्ण हो गया। उनके नेत्रों में अश्रु भर गये। तब शोकार्त्त मेना ने हिमालय से कहा–।।२८।।

मेनकोवाच

शृणु शैलेन्द्र मद्वाक्यं परिणामसुखावहम्। पृच्छ शैलवरानस्मै न दास्यामि सुतामहम्॥२९॥
त्यक्ष्यामि सर्वान्विषयान्भक्ष्यामि विषमेव च।
गले बद्ध्वाऽम्बिकां पश्य यास्यामि घोरकाननम्॥३०॥

देवी मेनका कहती हैं–हे शैलराज! आप मेरा यह वाक्य सुनिये जो परिणाम में सुखप्रद है। आप सभी उत्तम एवं श्रेष्ठ पर्वतों से जिज्ञासा करिये कि इस सम्बन्ध में क्या करना उचित है? मैं किसी प्रकार से भी इन महादेव को कन्या प्रदान नहीं कर सकतीं। हे शैलराज! यदि आप मेरी बात नहीं मानते तब मैं यह घर ही त्याग दूंगी। किंवा विष खाकर प्राणत्याग करूंगी। अथवा आप देखते रहियेगा, मैं अभी अम्बिका पार्वती को गले में बांधकर निर्जन वन में चली जाऊंगी!।।२९-३०।।

गृहीत्वा पार्वतीं मेना गत्वा कोपालयं रुषा।
त्यक्त्वाऽऽहारं रुदन्ती च चकार शयनं भुवि॥३१॥

यह कहकर क्रोधान्वित होकर मेना ने पार्वती का हाथ पकड़ा तथा रोष के कारण कोपभवन में चलीं गयीं। वहां मेनका ने आहार त्याग दिया तथा विलाप करती वे भूमि पर ही सो गयीं।।३१।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसिष्ठो भ्रातृभिः सह। आजगाम पुनस्तैश्च युक्ता पश्चादरुन्धती।।३२।।

प्रणम्य शैलस्तान्सर्वान्स्वर्णसिंहासनं ददौ।
दत्त्वा षोडशोपचारान्पूजयामास भक्तितः।।३३।।

ऋषयश्च सभामध्ये सुखमूषुः सुखासने। जगामारुन्धतीं तूर्णं यत्र मेना च पार्वती।।३४।।

गत्वा ददर्श मेनां च शयानां शोकमूर्च्छिताम्।
उवाच मधुरं साध्वी सावधाना हितं वचः।।३५।।

इसी समय वहां पर वसिष्ठ अपने भ्रातागण (सप्तर्षिगण) सहित हिमाचल के पास आये। इन ऋषियों के पीछे इनका अनुगमन करते भगवती अरुन्धती भी वहां आ गईं। शैलराज ने इन सभी समागत महात्माओं को प्रणाम करके आसन पर बैठाया। इनका १६ उपचारों से पूजन भी किया। ऋषिगण सभा में शैलराज प्रदत्त आसनों पर सुख के साथ आसीन हो गये। तभी अरुन्धती देवी ने मेनका के पास जाकर देखा कि वे मूर्च्छित प्रायः होकर धरती पर शयन कर रही हैं। तब साध्वी अरुन्धती ने मेनका से हितप्रद मधुर वाक्य कहा–।।३२-३५।।

अरुन्धत्युवाच

उत्तिष्ठ मेनके साध्वि त्वद्गृहेऽहमरुन्धती।
पितॄणां मानसी कन्या मां जानीहि विधेर्वधूम्।।३६।।

अरुन्धती देवी कहती हैं–"हे साध्वी मेनका! उठो! मैं पितरों की मानसी कन्या तथा ब्रह्मदेव की पुत्रवधु अरुन्धती हूं। मैं तुम्हारे घर आई हूं।"।।३६।।

अरुन्धत्याः स्वरं श्रुत्वा शीघ्रमुत्थाय मेनका।
उवाच शिरसा नत्वा तां पद्मामिव तेजसा।।३७।।

अरुन्धती का कथन सुनकर मेनका तुरन्त उठ गईं। उन्होंने लक्ष्मी के समान तेजस्विनी अरुन्धती को नत शिर होकर प्रणाम करके कहा–।।३७।।

मेनकोवाच

अहोऽद्य किमिदं पुण्यमस्माकं पुण्यजन्मनाम्।
वधूर्जगद्विधेः पत्नी वसिष्ठस्य ममाऽऽलये।।३८।।

संभ्रमेणेदमेवोक्तं गृहं तेऽहं च किङ्करी। ईश्वरीं जगतां द्रष्टुमागतां बहुपुण्यतः।।३९।।

मेनका कहती हैं–अहो! हमारा कितना (अधिक) पुण्यबल है! हम कितनी पुण्यजन्मा हैं, जो आज जगत्‌विधाता की पुत्रवधु वसिष्ठ पत्नी मेरे गृह में आई हैं! हे भगवती! मैं आपकी दासी हूं। आपने

ऐसा क्यों कहा कि "मैं तुम्हारे घर आई हूं; क्योंकि यह आपका ही घर है। यह तो हम लोगों का प्रभूत पुण्य है, जो हमें जगदीश्वरी का दर्शन मिला!।।३८-३९।।

पाद्यं दत्त्वा स्वर्णपीठे वासयामास तां सतीम्।
भोजयामास मिष्टान्नं बुभुजे कन्यया सह।।४०।।
शिवस्य हेतोर्नीतिं च बोधयामास मेनकाम्।
अरुन्धती प्रसङ्गेन सम्बन्धयोजनानि च।।४१।।

अथ शैलमृषीन्द्राश्च नीतिसारं परं वचः। बोधयामासुः सम्बन्धयोजनानि[१] प्रसङ्गतः।।४२।।

तदनन्तर उस पतिव्रता को पाद्य (अर्थात् चरण धोने का) जल देकर मेनका ने उन सती को स्वर्णपीठ पर आसनासीन कराया। देवी अरुन्धती को मेनका ने मिष्ठान्न भोजन कराने के पश्चात् कन्या पार्वती के साथ स्वयं भोजन किया। अब देवी अरुन्धती ने मेना को शिव से सम्बन्धित नीतिवाक्यों को समझाया तथा शिव से सम्बन्ध युक्त करने वाले वाक्यों को भी कहा। उधर सप्तर्षिगण ने भी परम नीतिसारयुक्त वचन कहकर प्रसंगतः शिव से सम्बन्ध युक्त करने के सम्बन्ध में भी समझाया।।४०-४२।।

ऋषय ऊचुः

शैलेन्द्र श्रूयतां वाक्यमस्माकं शुभकारकम्। शिवाय पार्वतीं देहि संहर्तुः श्वशुरो भव।।४३।।
अयाचितारं देवेशं बोधयाऽऽशु प्रयत्नतः। तव शङ्काविनाशाय ब्रह्मसम्बन्धकर्मणि।।४४।।
नेच्छको दारसंयोगे शङ्करो योगिनां वरः। विधेः प्रार्थनया देवस्तव कन्यां ग्रहीष्यति।।४५।।
दुहितुस्ते तपस्यान्ते प्रतिज्ञानं चकार सः। हेतुद्वयेन योगीन्द्रो विवाहं च करिष्यति।।४६।।

ऋषिगण कहते हैं—हे शैलेन्द्र! हमारे शुभप्रद वाक्यों का श्रवण करो। तुम शिव को पार्वती प्रदान करके सर्वसंहारक शिव के श्वसुर बन जाओ। ये शिव सर्वदा अयाचक हैं। वे कदापि तुम्हारी कन्या नहीं मांग सकते, तथापि ब्रह्मा ने तारकासुर का वध करने के लिये इस सम्बन्ध को करने के लिये शिव को यत्नतः समझाया है (क्योंकि शिव-पार्वती के पुत्र द्वारा ही तारक वध होगा)। ये योगीप्रवर शिव कदापि विवाह कामनायुक्त नहीं हैं। शिव को विवाहार्थ राजी कर लेने पर ब्रह्मसम्बन्ध कर्म (विवाह) के प्रति तुम्हारे मन की शङ्का निवृत्त हो जायेगी। वे ब्रह्मा की प्रार्थना से पार्वती से विवाह कर लेंगे। जब पार्वती का तप समाप्त हो गया था, तब शिव ने पार्वती से ऐसी ही प्रतिज्ञा किया था। इन दोनों कारण से वे योगीन्द्र शिव विवाह कर लेंगे।।४३-४६।।

ऋषीणां वचनं श्रुत्वा प्रहस्य च हिमालयः। उवाच किञ्चिद्भीतश्च परं विनयपूर्वकम्।।४७।।

उन ऋषियों का कथन सुनकर हिमालय हंसने लगे, तथापि आन्तरिक भय के कारण उन्होंने विनय के साथ कहा—।।४७।।

१. क. ०नाय।

हिमालय उवाच

शिवस्य राजसामग्रीं[1] न हि पश्यामि काञ्चन।
किञ्चिदाश्रममैश्वर्यं किंवा स्वजनबान्धवम्॥४८॥
न कन्यामतिनिर्लिप्तयोगिने दातुमर्हति।
यूयं विधातुः पुत्राश्च सत्यं वदत निश्चितम्॥४९॥
नानुरूपाय पात्राय पिता कन्यां ददाति चेत्।
कामाल्लोभाद्भयान्मोहाच्छताब्दं[2] नरकं व्रजेत्॥५०॥
न हि दास्याम्यहं कन्यामिच्छया शूलपाणिने।
यद्विधानं भवेद्योग्यमृषयस्तद्विधीयताम्॥५१॥

हिमालय कहते हैं–हे मुनिगण! मैं शिव के पास कोई भी राजकीय सामग्री, गृह, ऐश्वर्य अथवा स्वजन-बांधव कुछ भी नहीं देख रहा हूं। वे अतीव निर्लिप्त योगी हैं। उनको कन्या प्रदान करना कदापि उचित नहीं है। आप लोग साक्षात् विधाता के पुत्र हैं। आप लोग निश्चित रूप से सत्य वचन कहिये। यदि पिता मोह, लोभ, भय के कारण कन्या उसके अनुरूप पात्र को प्रदान नहीं करता, तब इसके कारण उस व्यक्ति को १०० वर्षों तक के लिये नरक भोग होना निश्चित है। अतएव मैं स्वेच्छा से कदापि शूलपाणि को कन्या प्रदान नहीं करूंगा। हे ऋषिगण! मेरे लिये जो उचित विधान हो, वह मुझसे कहिये तथा वही करिये।।४८-५१।।

हिमालयवचः श्रुत्वा वसिष्ठो विधिनन्दनः। वेदवेदाङ्गविज्ञाता वेदोक्तं वक्तुमुद्यतः॥५२॥

वेदवेदान्तज्ञ विधिपुत्र वसिष्ठ ने हिमालय का कथन सुनकर वेदोक्त वाक्य हिमालय से कहा–।।५२।।

वसिष्ठ उवाच

वचनं त्रिविधं[3] शैल लौकिके वैदिके तथा।
सर्वं जानाति शास्त्रज्ञो निर्मलज्ञानचक्षुषा॥५३॥

असत्यमहितं पश्चात्साम्प्रतं श्रुतिसुन्दरम्। सुबुद्धं शत्रुर्वदति न हितं च कदाचन॥५४॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं–हे पर्वतराज! लौकिक तथा वैदिक वाक्य तीन प्रकार के होते हैं। निर्मल सर्वज्ञ व्यक्ति सर्वत्र ज्ञाननेत्रों से सब कुछ जान लेते हैं। जो वाक्य प्रथमतः सुनने में मधुर लगे, तथापि परिणाम में अहितकर तथा असत्य सिद्ध हो, उसे शत्रु ही कहता है। वह कदापि हितप्रद नहीं होता।।५३-५४।।

१. क. राज्यसा०।
२. ख. काला०।
३. ख. विवि०।

आपातप्रीतिजनकं परिणामसुखावहम्। दयालुर्धर्मशीलश्च बोधयत्येव बान्धवम्॥५५॥

दूसरे प्रकार का जो वचन है, वह प्रारम्भ में भले ही दुःखप्रद लगे, तथापि परिणाम में सुखावह हो। दयालु धर्मात्मा लोग ऐसे वाक्यों से बन्धुगण को प्रबोध प्रदान करते हैं॥५५॥

श्रुतिमात्रात्सुधातुल्यं सर्वकाले सुखावहम्। सत्यसारं हितकरं वचसां श्रेष्ठमीप्सितम्॥५६॥

तृतीय प्रकार वाला वचन सत्य, सारभूत तथा हितकर होता है। वह सुनने में अमृततुल्य तथा परिणाम में भी सुधा के समान होता है। ऐसा वाक्य सर्वश्रेष्ठ होता है तथा सभी को वांछित है॥५६॥

एवं च विविधं शैल नीतिशास्त्रनिरूपितम्।
कथ्यतां त्रिषु मध्ये किं वदामि वाक्यमीप्सितम्॥५७॥

हे शैलराज! इन तीन प्रकार के वाक्य नीतिशास्त्र में निरूपित किये गये हैं। अब आप यह कहिये कि इन तीनों वाक्य में से आप कौन-सा वाक्य सुनना चाहते हैं, जिसे हम आपसे कहें!॥५७॥

बाह्यसम्पद्विहीनश्च शङ्करस्त्रिदशेश्वरः। तत्त्वज्ञानसमुद्रेषु सन्निमग्नैकमानसः॥५८॥

आपातभ्रमसंपत्तिर्विद्युच्छ्रीरिव नाशिनी।
सदानन्दस्येश्वरस्य स्वात्मारामस्य का स्पृहा॥५९॥
गृही ददाति स्वसुतां राज्यसम्पत्तिशालिने।
कन्यां विद्वेषिणे दत्त्वा कन्याघाती भवेत्पिता॥६०॥

देवेश्वर शिव बाह्य सम्पदा से रहित हैं; क्योंकि उनका मन सर्वदा एकमात्र तत्वज्ञानरूप समुद्र में निमग्न रहता है। जो यह बाह्य भ्रमरूप सम्पदा है, वह भ्रमपूर्ण है तथा आकाशीय विद्युत् वल्लरी के समान नश्वर है। उसके प्रति सदानन्दमय स्वात्माराम शिव को क्या कामना हो सकती है। गृह व्यक्ति अपनी पुत्री को सदा राज्य तथा सम्पत्तिवान् व्यक्ति को प्रदान करते हैं। जो पिता कन्याद्वेषी को कन्या प्रदान करता है, वह पिता कन्याघाती है॥५८-६०॥

को ववेच्छङ्करो दुःखी कुबेरो यस्य किङ्करः।
भ्रूभङ्गलीलया सृष्टिं स्रष्टुं नष्टुं क्षमा हि यः॥६१॥
निर्गुणः परमात्मा च य[१] ईशः प्रकृते परः।
सर्वेशः स च निर्लिप्तो लिप्तश्च सर्वजन्तुषु॥६२॥
स एकः सृष्टिसंहारे स सर्वः सृष्टिकर्मणि।
निराकारश्च साकारो विभुः स्वेच्छामयः स्वयम्॥६३॥

य ईशस्त्रिविधां मूर्तिं विधत्ते सृष्टिकर्मणि। सृष्टिस्थित्यन्तजननीं ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्॥६४॥

धनपति कुबेर जिनके किंकर हैं, उन शंकर को कौन है, जो दुःखी कह सके? वे जो अपनी

१. क. यज्ञेशः।

भौंओं को वक्र करने मात्र से समस्त सृष्टि का निर्माण तथा विनाश करने में सक्षम हैं। वे निर्गुण परमात्मा प्रकृति से परे तथा ईश्वर हैं। वे सर्वेश्वर हैं। वे सबसे निर्लिप्त होकर भी सभी प्राणीगण में लिप्त बने रहते हैं। वे एकाकी ही समग्र सृष्टि का संहार तथा समग्र सृष्टि के सृजन में समर्थ हैं। वे ही निराकार-साकार, सर्वव्यापक एवं स्वेच्छामय प्रभु हैं। वे ही सृष्टि सृजनार्थ ब्रह्मा का, सृष्टि पालनार्थ विष्णु का तथा सृष्टि संहारार्थ शिव का रूप धारण करते हैं। ये तीनों उनकी ही मूर्त्तियां हैं।।६१-६४।।

ब्रह्मा च ब्रह्मलोकस्थो विष्णुः क्षीरोदवासकृत्।
शिवः कैलासवासी च सर्वाः कृष्णाविभूतयः।।६५।।

श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः। चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम्।।६६।।
तस्य देवस्य तेंऽशाश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। केचिद्देवाः कलास्तस्य कलांशाश्चैव केचन।।६७।।
कृष्णः सृष्ट्युन्मुखश्चापि प्रकृतिं तत्र निर्ममे। निर्माय तां च तद्योनौ वीर्याधानं चकार ह।।६८।।

इस त्रिमूर्त्ति में से ब्रह्मा ब्रह्मलोक में, विष्णु क्षीरसागर में तथा शिव कैलासधाम में निवास करते हैं। ये तीनों मूर्त्ति श्रीकृष्ण की ही विभूति हैं। श्रीकृष्ण दो रूपधारी हैं। यथा द्विभुज एवं चतुर्भुज। वे चतुर्भुज रूप से वैकुण्ठ में, द्विभुज रूप से स्वयं गोलोक में अवस्थित रहते हैं। ब्रह्मा विष्णु-महेश्वर-ये तीनों परमात्मा कृष्ण के अंश से उत्पन्न हैं। देवताओं में से कोई तो उनके अंश से उत्पन्न हैं, कोई उनके अंश के अंश से उत्पन्न हैं। प्रभु श्रीकृष्ण जब सृष्टिकार्य में उन्मुख होते हैं, तब वे प्रकृति का सृजन करते हैं। प्रकृति का निर्माण करके श्रीकृष्ण उसकी योनि में वीर्य स्थापित कर देते हैं।।६५-६८।।

ततो डिम्भः समुद्भू तस्तन्मध्ये च महाविराट्।
महाविष्णुः स विज्ञेयो श्रीकृष्णषोडशांशकः।।६९।।

नाभिपद्मोद्भवो ब्रह्मा तस्यैव जलशायिनः। भालोद्भवस्तस्य स्रष्टुः शङ्करश्चन्द्रशेखरः।।७०।।

महाविष्णु (ष्णो) र्वामपार्श्वात्सम्भूतो विष्णुरेव च।
सर्वे प्राकृतिकाः शैलब्रह्मविष्णुशिवादयः।।७१।।

धत्ते चतुर्विधां मूर्तिं प्रकृतिः कृष्णसम्भवा। अंशेन लीलया सृष्ट्यै कलया बहुधा तथा।।७२।।

इससे (इस वीर्य के कारण योनिगर्भ से) एक डिम्ब उत्पन्न हो गया। उसमें से महाविराट् प्रभु नारायण प्रकट हो गये। ये नारायण ही महाविष्णु हैं। ये महाविष्णु ही कृष्ण के षोडशांश स्वरूप हैं। इन जलशायी विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हो गये थे। तदनन्तर उन महाविष्णु के वाम पार्श्व से विष्णु उत्पन्न हो गये। हे शैलराज! ब्रह्मा-विष्णु-शिव-ये प्राकृतिक सृष्टि हैं। यह कृष्ण से उद्भूत प्रकृति ही नाना मूर्त्ति धारण करके लीलाक्रम से सृष्टि कार्य में अपने अंश तथा कला द्वारा नाना रूप धारण करते हैं।।६९-७२।।

कृष्णवामाङ्गसम्भूता राधा रासेश्वरी स्वयम्।
मुखोद्भवा स्वयं वाणी रागाधिष्ठातृदेवता।।७३।।

वक्षःस्थलोद्भवा लक्ष्मी सर्वसम्पत्स्वरूपाणी।
शिवा तेजःसु देवानामाविर्भावं चकार सा॥७४॥

कृष्ण के वामांग से स्वयं रासेश्वरी राधा उद्भूत हो गईं। वाक् की अधिष्ठातृ देवता वाणी कृष्ण के मुख से उद्भूत हैं। कृष्ण के वक्षस्थल से सर्वसम्पदा स्वरूपा लक्ष्मी उद्भूत हैं। तदनन्तर सभी देवताओं के तेज से शिवा अभिव्यक्त हो गयी!॥७३-७४॥

निहत्य दानवान्सर्वान्देवेभ्यश्च श्रियं ददौ। प्राप्य कल्पान्तरे जन्म जठरे दक्षयोषितः॥७५॥
नाम्ना सती शिवं प्राप दक्षस्तस्मै ददौ च ताम्।
योगेन देहं तत्याज श्रुत्वा सा भर्तृनिन्दनम्॥७६॥

देवी शिवा ने सभी दानवों का वध करके देवगण को श्रीप्रदान किया। अन्य कल्प में शिवा ने ही दक्ष पत्नी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया था। उनका नाम सती था। वे शिवपत्नी हो गईं। दक्ष ने स्वयं सती को शिव के हाथों में प्रदान किया था, तथापि अपने पति की निन्दा सुनकर सती ने योगबल से देहत्याग कर दिया॥७५-७६॥

पितॄणां मानसी कन्या मेनका तव गेहिनी।
ललाभ तस्या जठरे जन्म सा जगदम्बिका॥७७॥
शिवा शिवस्य पत्नीयं शैल जन्मनि जन्मनि।
कल्पे कल्पे बुद्धिरूपा ज्ञानिनां जननी परा॥७८॥

हे हिमाचल! पितरों की मानसी कन्या तुम्हारी पत्नी मेनका के गर्भ से सती ने ही जगज्जननी रूप से जन्म लिया है। हे शैलराज! यह शिवा तो जन्म-जन्मान्तर में शिव की पत्नी हैं। ये ही कल्प-कल्प में ज्ञानीगण की बुद्धिरूपा तथा जननीरूपा कहीं जाती हैं॥७७-७८॥

जातिस्मरा च सर्वज्ञा सिद्धिदा सिद्धिरूपिणी।
अस्या अस्थि चिताभस्म भक्त्याधत्ते शिवः स्वयम्॥७९॥
ददासि स्वेच्छया कन्यां देहि भद्र शिवाय च।
अथवा सा स्वयं कान्तस्थानं यास्यति द्रक्ष्यसि॥८०॥

ये पूर्वजन्म को स्मरण करने वाली, सर्वज्ञा, सिद्धिप्रदा तथा स्वयं सिद्धिरूपिणी हैं। सती देवी की अस्थि तथा उनके देह की भस्म शिव ने यत्न पूर्वक अपनी देह में धारण कर लिया। यदि तुम स्वेच्छा से शिव को कन्या प्रदान करने की कामना कर रहे हो, तब शीघ्र उनको कन्या प्रदान करो। अन्यथा तुम यह देख लेना कि पार्वती स्वयं पति के पास चली जायेगी॥७९-८०॥

प्राक्तनाद्यस्य या कान्ता सा तं प्राप्नोति वल्लभम्।
प्रजापतेर्निर्बन्धं च न कोऽपि खण्डितुं क्षमः॥८१॥

विवाहे नोत्सुकः शम्भुः स्वात्मारामश्च तत्त्ववित्।
तष्टुवुस्तं सुरा सर्वे तारकाख्येन पीडिताः॥८२॥

जो पुरुष जिस नारी का पति होता है, वह रमणी प्राक्तन कर्म के योग के कारण उसे ही पति रूप से प्राप्त कर लेती है। यह ब्रह्मा का नियम है। कोई इस नियम को खण्डित नहीं कर सकता! शंभु स्वात्माराम तथा तत्वज्ञ हैं। वे विवाहार्थ उत्सुक नहीं हैं। इधर देवगण तारक असुर द्वारा अत्यन्त पीड़ित हैं। अतः सभी देवगण ने शिव की स्तुति किया।।८१-८२।।

देवानां पीडनं दृष्ट्वा ब्रह्मणा प्रार्थितो विभुः।
कृपया स्वीचकाराऽऽशु कृपालुर्देवसंसदि॥८३॥
कृत्वा प्रतिज्ञां योगीन्द्रो दृष्ट्वा क्लेशमसंख्यकम्।
दुहितुस्तु तपःस्थानमाजगाम द्विजात्मकः॥८४॥
तामाश्वस्य वरं दत्त्वा जगाम निजमन्दिरम्।
तच्छ्रुत्वैवाऽऽययुः सर्वे सुराःशक्रादयो मुदाः॥८५॥

देवताओं की यह पीड़ा देखकर देवगण ने ब्रह्मा से प्रार्थना किया। तब ब्रह्मा ने भी शिव से प्रार्थना किया। देवगण की इस प्रार्थना को कृपालु शिव ने देवसभा में स्वीकार कर लिया। इस प्रकार पार्वती से विवाहार्थ प्रण करके जब योगीराज शंकर ने तुम्हारी पुत्री को असंख्य क्लेश उठाते देखा, तव वे ब्राह्मण का रूप धारण करके तुम्हारी कन्या पार्वती के पास गये। उन्होंने पार्वती को आश्वस्त करके वर प्रदान किया तथा तत्पश्चात् अपने धाम चले गये। यह संवाद सुनकर सभी इन्द्रादि देवता मुदित हो गये!।।८३-८५।।

नारायणश्च भगवान्ब्रह्मा धर्मश्च साम्प्रतम्। ऋषयो मुनयः सर्वे गन्धर्वा यक्षराक्षसाः॥८६॥
तत्र सर्वे मुदा युक्तैः समालोचनकर्तृभिः। प्रस्थापिता वयं शीघ्रमनृणा सा अरुन्धती॥८७॥
तव प्रबोधने प्रीतिर्वर्धते महती सदा। सम्प्राप्तं शुभकार्यं च सर्वकालसुखावहम्॥८८॥

शिवां शिवाय शैलेन्द्र स्वेच्छया चेन्न दास्यासि।
भविता वा विवाहश्च भवितव्यबलेन च॥८९॥

आगमिष्यति देवो या नारायणसहायवान्। रत्नसाररथे कृत्वा देवानां प्रवरं वरम्॥९०॥
योगीन्द्राणां वरेण्यं तं ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम्। आदिमध्यान्तरहितमविकारमजं परम्॥९१॥
वरं ददौ शिवायै स शिवश्च तपसः स्थले। नईश्वरप्रतिज्ञातं दुर्लभं विफलं भवेत्॥९२॥

इसके पश्चात् भगवान् नारायण, ब्रह्मा, धर्मदेव, ऋषिवृन्द, मुनिगण, समस्त गन्धर्व-यक्ष-राक्षस ने समवेत होकर परस्परतः विचार किया तथा उन सबने हम सप्तर्षिगण को यहां शीघ्रता से भेज दिया। देवी अरुन्धती ने अपना कार्य यहां पर पूर्ण कर दिया। वे उऋण हो गयीं। हम तुमको प्रबोधित करके अत्यन्त हर्षित हो रहे हैं। तुमको सभी काल में सुखप्रद यह शुभकार्य (विवाह कार्य) का

अधिकार प्राप्त है। हे हिमवान्! यदि तुम स्वेच्छा से अपनी कन्या शिव को प्रदान नहीं करते तब भवितव्यता के कारण उनका विवाह तो होकर रहेगा। जिन देवाधिदेव शिव ने तपस्थली पर आकर शिवा को वर प्रदान किया था, वे तो सभी देवताओं में श्रेष्ठ आदि-अन्त-मध्य रहित, ज्ञानीगण के गुरु, निर्विकार, जन्म रहित, योगीगण में श्रेष्ठ हैं। वे नारायण के साथ रत्नमय रथ पर बैठकर तुम्हारे गृह आयेंगे। ईश्वर की प्रतिज्ञा कभी व्यर्थ नहीं जाती!।।८६-९२।।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमस्थिरम्। अहो प्रतिज्ञा दुर्लङ्घ्या साधुनामविनाशिनी।।९३।।

एको महेन्द्रः शैलानां पक्षांश्चिच्छेद लीलया।
पवनो लीलया मेरोः शृङ्गभङ्गं चकार ह।।९४।।

ब्रह्मा से तृण पर्यन्त जो कुछ भी है, वह सब नश्वर तथा अस्थिर है। साधुगण की प्रतिज्ञा अविनाशिनी होती है तथा लंघनीय नहीं होती। अकेले इन्द्र ने पर्वतों के पंखों को लीला में ही काट दिया था। पवन ने खेल-खेल में ही मेरु शिखर को भंग कर दिया था।।९३-९४।।

के वा शैलेषु योद्धारः सुरैः सह हिमालय। पतिष्यन्ति समुद्रेषु पवनैः प्रेरिताः क्षणात्।।९५।।
एकार्थे यदि शैलेन्द्र सर्वसम्पद्विनश्यति। सर्वान्रक्षति तद्दत्त्वा विना च शरणागतम्।।९६।।
शरणागतरक्षार्थं प्राणांश्च दातुमर्हति। पुत्रदारधनं सर्वानिति नीतिविदो विदुः।।९७।।

हे हिमालय! पर्वतों में से कौन ऐसा है, जो देवगण से युद्ध कर सके? यदि दुःसाहस के कारण कोई पर्वत यह दुःसाहस यदि करता भी है, तब पवन द्वारा प्रेरित होने के कारण क्षणमात्र में सभी पर्वत समुद्र में गिर जायेंगे। हे शैलराज! यदि एक के कारण सभी सम्पदा नष्ट होने लगे, तब उस एक को देकर समस्त सम्पत्ति की रक्षा करनी चाहिये, तथापि यह विधान शरणागत के लिये नहीं है। शरणागत के रक्षणार्थ तो व्यक्ति को अपना प्राण तक उत्सर्ग कर देना होगा। तब शरणागत की रक्षा के लिये पुत्र, स्त्री तथा धन आदि की तो बात ही क्या है? यह नीतिज्ञ जन का कथन है।।९५-९७।।

दत्त्वा विप्राय स्वसुतामनरण्यो नृपेश्वरः। ब्रह्मशापाद्विमुक्तश्च ररक्ष सर्वसम्पदम्।।९८।।
तमाशु बोधयामासुर्नीतिशास्त्रविदो जनाः। ब्रह्मशापनिमग्नं च ब्रह्मण्यमतिकातरम्।।९९।।
त्वमेवं शैलराजेन्द्र सुतां दत्त्वा शिवाय च। रक्ष सर्वान्बन्धुवर्गान्वशे कुरु सुरानपि।।१००।।

महाराज अनरण्य ने अपनी पुत्री ब्राह्मण को प्रदान करके ब्रह्मशाप से मुक्तिलाभ किया था तथा वे सभी सम्पत्ति की रक्षा कर सके थे। नीतिशास्त्रज्ञ लोगों ने ब्रह्मशाप में निमग्न अत्यन्त दुःख से कातर नृपति अनरण्य को यही हितप्रद कार्य करने का उपदेश दिया था। हे पर्वतराज! तुम भी अपनी कन्या शिव को प्रदान करके समस्त बन्धु-बान्धवों की रक्षा करके देवकुल को वश में करो।।९८-१००।।

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य पर्वतेश्वरः। पप्रच्छ नृपवृत्तान्तं हृदयेन विदूयता।।१०१।।

वसिष्ठ मुनि का यह कथन सुनकर पर्वतेश्वर हंसने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने दुःखी हृदय से राजा अनरण्य का वृत्तान्त पूछा।।१०१।।

हिमालय उवाच

कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन्ननरण्यो नृपेश्वरः। सुतां दत्त्वा स च कथमरक्षत्सर्वसम्पदम्॥१०२॥

हिमालय कहते हैं—हे ब्रह्मन्! राजा अनरण्य का जन्म किस वंश में हुआ था। उन्होंने कन्या देकर किस प्रकार से अपनी सम्पदा की रक्षा किया?॥१०२॥

वसिष्ठ उवाच

मनुवंशोद्भवो राजा सोऽनरण्यो नृपेश्वरः।
चिरञ्जीवी धर्मशीलो वैष्णवो विजितेन्द्रियः॥१०३॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं ब्रह्मपुत्रोऽतिधार्मिकः।
राज्यं चकार धर्मेण युगानामेकसप्ततिम्॥१०४॥
ततो जगाम वैकुण्ठं सहितः शतरूपया।
सम्प्राप्य दास्यं सांन्निध्यं हरेर्दासो बभूव ह॥१०५॥

मुनि वसिष्ठ कहते हैं—हे पर्वतराज! नृपप्रवर अनरण्य मनुवंश में जन्मे थे। वे चिरंजीवी, धार्मिक, इन्द्रियजित् एवं वैष्णवों में अग्रणी थे। पूर्वकाल में ब्रह्मपुत्र महान् धार्मिक स्वायम्भु मनु ने ७१ युगों तक धर्मानुसार राज्य पालन किया। तत्पश्चात् अपनी पत्नी शतरूपा के साथ वैकुण्ठ जाकर श्रीहरि का दासत्व उन्होंने प्राप्त किया। तदनन्तर वे श्रीहरि के पार्षद हो गये॥१०३-१०५॥

मनुर्बभूव तत्पश्चात्स्वयं स्वारोचिषो महान्।
स्वारोचिषे गते शैल बभूव मनुरुत्तमः॥१०६॥

उत्तमे निर्गते धर्मी तामसो मनुरेव च। ततो मनुर्बभूवात्र रैवतो ज्ञानिनां वरः॥१०७॥

चक्षुषश्च ततो ज्ञेयः श्राद्धदेवश्च सप्तमः। सावर्णिरष्टमो ज्ञेयः श्रीसूर्यतनयो महान्॥१०८॥

चैत्रवंशोद्भवो राजा पुराऽऽसीत्सुरथो भुवि।
नवमो दक्षसावर्णिब्रअ्मसावर्णिको दश॥१०९॥

हे शैलराज! तदनन्तर स्वारोचिष मनु का आविर्भाव हो गया। उनका अवसान हो जाने पर उत्तम मनु आविर्भूत हो गये। उत्तम मनु का अवसान होने पर धार्मिक प्रवर तामस मनु का आविर्भाव हो गया। जब उनका अधिकार काल व्यतीत हो गया, तब ज्ञानीप्रवर रैवत मनु ने जन्म लिया। इसके पश्चात् चाक्षुष मनु उद्भूत हो गये। उनका भी अवसान हो जाने पर वैवस्वत मनु आविर्भूत हो गये। वे सप्तम मनु कहे गये। तत्पश्चात् सूर्यपुत्र सावर्णि मनु ने जन्म लिया। वे अष्टम मनु हैं। ये सावर्णि मनु ही पूर्वजन्म में चैत्रवंश में उत्पन्न सुरथ राजा थे। उनका अवसान हो जाने पर दक्षसावर्णि नामक नवम मनु जन्मे। उनके पश्चात् दशम मनु थे ब्रह्मसावर्णि॥१०६-१०९॥

एकादशो मनुश्रेष्ठो धर्मसावर्णिरुच्यते। ततश्च रुद्रसावर्णिर्विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः॥११०॥

तत्परो देवसावर्णिरिन्द्रसावर्णिकस्ततः। इत्येवं कथिता बन्धो मनवश्च चतुर्दश॥१११॥

एकादशवें श्रेष्ठ मनु थे धर्मसावर्णि। द्वादशवें मनु का नाम था रुद्रसावर्णि। ये प्रभु विष्णु के परमभक्त एवं जितेन्द्रिय थे। तदनन्तर त्रयोदश मनु थे देवसावर्णि। चतुर्दश मनु थे इन्द्रसावर्णि। हे बन्धु! मैंने तुमसे १४ मनुगण का प्रसंग कह दिया॥११०-१११॥

एतेषु समतीतेषु बभूव ब्रह्मणो दिनम्। इन्द्रसावर्णिवृत्तान्तं सर्वं मत्तो निशामय॥११२॥
मनूनां प्रवरो धर्मी शुद्धभक्तो गदाभृतः। चकार राज्यं धर्मेण युगानामेकसप्ततिम्॥११३॥

इन १४ मनुगण का समय जितने काल में समाप्त होता है, वह ब्रह्मा का मात्र १ दिन ही है। अब इन्द्रसावर्णि मनु का वृत्तान्त श्रवण करो। ये सभी मनुगण में श्रेष्ठ, अत्यन्त धार्मिक तथा गदाधारी विष्णु के शुद्ध भक्त थे। इन्होंने ७१ युगपर्यन्त धर्मतः राज्य किया॥११२-११३॥

राज्यं दत्त्वा सुरेन्द्राय[1] जगाम तपसे वनम्।
सुरेन्द्रस्य[2] सुतः श्रीमाञ्छ्रीनिकेतुर्महाबलः॥११४॥
तस्य पुत्रो महायोगी पुरीषतरुरेव च। तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी गोकामुख इति स्मृतः॥११५॥
वृद्धश्रवाः सुतस्तस्य तत्पुत्रो भानुरेव च।
पुण्डरीकः सुतस्तस्य तत्पुत्रो जिह्वलस्तथा॥११६॥
जिह्वलस्य सुतः शृङ्गी तत्पुत्रो भीम एव च।
तत्पुत्रोऽपि यशश्चन्द्रो यशसा च शशी जितः॥११७॥

तदनन्तर इन्होंने सुरेन्द्र (नामान्तर सुचन्द्र) नामक अपने पुत्र को राज्य प्रदान किया तथा तपस्यार्थ वन में चले गये। इन सुरेन्द्र का पुत्र था महाबली श्रीमान् श्रीनिकेतु, उनका पुत्र था महायोगी पुरीषतरु, इनका अत्यन्त तेजवान् पुत्र था गोकामुख, इनका पुत्र था वृद्धश्रवा जिनका पुत्र था भानु। इनका पुत्र था पुण्डरीक जिनके पुत्र का नाम था जिह्वल। उनका पुत्र था शृंगी। इनका पुत्र था भीम। भीम के पुत्र थे यशश्चन्द्र। इन्होंने यज्ञ करके चन्द्रमा पर विजय पाई॥११४-११७॥

तत्कीर्तिं निर्मलां सन्तो गायन्ति सन्ततं सुराः।
तस्य पुत्रो वरेण्यश्च पुरारण्यश्च तत्सुतः॥११८॥
तत्पुत्रो धार्मिकः श्रीमान्धरारण्यश्च[3] एव च।
तत्पुत्रो मङ्गलारण्यस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः॥११९॥
अपुत्रको नृपश्रेष्ठस्तपसे पुष्करं गतः। सुचिरं च तपस्तप्त्वा वरं लब्ध्वा महेश्वरात्॥१२०॥

---
१. क. सुचन्द्रा०।
२. क. सुचन्द्र।
३. क. वरा०।

सम्प्राप्य वैष्णवं पुत्रमनरण्यं जितेन्द्रियम्।
दत्त्वा तस्मै च राज्यं च जगाम तपसे वनम्॥१२१॥

यशश्चन्द्र की निर्मल कीर्त्ति का गायन देवगण सतत् करते रहते हैं। उनका पुत्र था वरेण्य जिनका पुत्र था पुरारण्य। उसके धार्मिक पुत्र का नाम था श्रीमान् धरारण्य। उसका पुत्र था तपस्वी तथा ज्ञानीप्रवर मंगलारण्य। यह अत्यन्त तपःशील था अतएव पुत्र न होने के कारण पुष्कर जाकर दीर्घकाल पर्यन्त वहां तप करने के फलस्वरूप महादेव से वर लाभ किया। इस वर के प्रभाव से उसने विष्णुभक्ति परायण जितेन्द्रिय अनरण्य नामक पुत्र प्राप्त किया। राजा मंगलारण्य पुत्र अनरण्य को राज्यभार देकर वन में तप हेतु चला गया॥११८-१२१॥

अनरण्यो नृपश्रेष्ठः सप्तद्वीपमहीपतिः। चकार यज्ञशतकं भृगुणा च पुरोधसा॥१२२॥

तुच्छं मत्वाऽऽशु शक्रत्वं न लेभे नश्वरं सुधीः।
लीलया च जितः शक्रो लीलया च जितो बलिः॥१२३॥
जिताश्च दानवेन्दा वै ज्वलता स्वेन तेजसा।
बभूवुः शतपुत्राश्च राज्ञस्तस्य हिमालय॥१२४॥

नृपश्रेष्ठ अनरण्य सप्तद्वीपों का राजा हो गया। उसने भृगु ऋषि को पुरोहित बनाकर १०० यज्ञ किये थे। इस परम बुद्धिमान् राजा ने इन्द्रत्व को तुच्छ तथा नश्वर मानकर उस पद को ग्रहण नहीं किया तथा लीला में ही उसने अनायास इन्द्र एवं बलि पर विजय लाभ भी किया था। उस राजा के ज्वलन्त तेज से दानवराज भी पराजित हो गया। हे हिमाचल! इस राजा के १०० पुत्र जन्मे थे॥१२२-१२४॥

कन्यैका सुन्दरी रम्या पद्मा पद्मालयासमा।
सा कन्या यौवनस्था च बभूव पितृमन्दिरे॥१२५॥

राजा अनरण्य की लक्ष्मी के समान रमणीया पद्मा नामक पुत्री भी थी। राजा अनरण्य पुत्रों की अपेक्षा कन्या से अधिक स्नेह करता था। वह कन्या पिता के यहां क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हो गई॥१२५॥

चारं प्रस्थापयामास वराय नृपतीश्वरः। एकदा पिप्पलादश्च गन्तुं स्वाश्रममुत्सुकः॥१२६॥
तपःस्थाने निर्जने च गन्धर्वं स ददर्श ह। स्त्रीषु निमग्नचित्तं च शृङ्गाररससागरे॥१२७॥

कामादतीव मत्तं च न जानन्तं दिवानिशम्।
दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलः सकामश्च बभूव ह॥१२८॥
ततः[1] सुभग्नचित्तः संश्चिन्तयन्दारसंग्रहम्।
एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन्मुनीश्वरः॥१२९॥

---

१. क. तपःसु भग्नचित्तश्च चि०।

ददर्श पद्मां युवतीं पद्मामिव मनोरमाम्।
केयं कस्येति पप्रच्छ समीपस्थाञ्जनान्मुनिः॥१३०॥
जना निवेदनं चक्रुः पद्माऽनरण्यकन्यका।
मुनिः स्नात्वाऽभीष्टदेवं सम्पूज्य राधिकेश्वरम्॥१३१॥

राजा ने कन्या के वर हेतु चतुर्दिक् अपने दूतगण को भेजा। एक बार पिप्पलाद ऋषि अपने आश्रम जाने के लिये उद्विग्न थे। तभी उन्होंने अपनी निर्जन तपस्थली में एक गन्धर्व को देखा। वह गन्धर्व अपनी स्त्रियों के साथ शृंगार क्रीड़ा में इतना मग्न हो गया कि उसे दिन-रात का भान ही नहीं था। वह अत्यन्त कामोन्मत्त हो गया था। उसकी शृङ्गार क्रीड़ा देखकर मुनि पिप्पलाद भी कामयुक्त हो गये। उनका चित्त भले ही तप में आसक्त था, तथापि इस कारण तपस्या से चित्त भग्न हो गया। उनके मन में विवाह से स्त्री प्राप्ति की कामना जाग्रत रहने लगी! एक बार पिप्पलाद मुनि पुण्यभद्रा नदी में स्नानार्थ जा रहे थे। उन्होंने वहां यौवनवती तथा लक्ष्मी के समान रूपवती राजकन्या पद्मा को देखा। उन्होंने समीपस्थ लोगों से उस कन्या के विषय में पूछा तब उन लोगों ने कहा कि यह राजा अनरण्य की कन्या पद्मा है। तदनन्तर मुनि ने स्नान किया तथा इष्ट देव राधिकेश्वर कृष्ण की पूजा सम्पन्न किया।।१२६-१३१।।

जगाम कामी भिक्षार्थमनरण्यसभाजिरे।
राजा शीघ्रं मुनिं दृष्ट्वा प्रणनाम भयाकुलः॥१३२॥

तदनन्तर मुनि पिप्पलाद जो काम के वशीभूत थे भिक्षार्थ राजा अनरण्य की सभा में गये। राजा मुनि को देखकर भयभीत हो गया। उसने मुनि को तत्काल प्रणाम किया।।१३२।।।

मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः।
कामात्सर्वं गृहीत्वा च ययाचे कन्यकां मुनिः॥१३३॥
मौनी बभूव नृपतिः किञ्चिन्निर्वक्तुमक्षमः।
मुनिः पुनर्ययाचे तं कन्यां देहीति मे नृपः॥१३४॥
अथवा भस्मासात्सर्वं करिष्यामि क्षणेन च।
सर्वे बभूवुराच्छन्ना गणाश्च तेजसा मुनेः॥१३५॥

तत्पश्चात् राजा ने मुनि को मधुपर्कादि प्रदान करके भक्तिभाव से उनकी पूजा भी किया। मुनि ने यह सब पूजा स्वीकार करके राजा से कन्या की याचना किया। यह सुनकर राजा मौन हो गया। वह स्तब्धता के कारण कोई उत्तर ही नहीं दे सका। तब मुनि ने राजा से पुनः कहा-"मुझे कन्या प्रदान करो, अन्यथा क्षणमात्र में सब कुछ भस्मीभूत कर दूंगा।" राजा के सभी गण उस समय मुनि के तेज से आच्छन्न से हो गये थे!।।१३३-१३५।।

रुरोद राजा सगणो दृष्ट्वा वृद्धं जरातुरम्। महिष्यो रुरुदुः सर्वा इतिकर्तव्यमक्षमाः॥१३६॥

मूर्च्छां प्राप महाराज्ञी कन्या माता शुचाऽऽकुला।
पण्डितो नीतिशास्त्रज्ञो बोधयामास भूमिपम्॥१३७॥

राजा उन वृद्ध तथा जराग्रस्त मुनि को देखकर अपने सेवकों के साथ रुदन करने लगा। उस समय राजा की सभी रानियां भी रुदन करने लगीं। सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। अब क्या करणीय है, यह भी निर्णय की क्षमता किसी में नहीं थी! कन्या की माता महारानी शोक से मूर्च्छित-सी हो गयी। तब नीतिज्ञ पण्डितों ने राजा को समझाया।।१३६-१३७।।

महीषीं च नृपसुतान्कन्यकानीतिमुत्तमाम्।
अद्य वाऽपि दिनान्ते वा दातव्या कन्यका नृप॥१३८॥
पराय विप्रादन्यस्मै कस्मै वा दातुमर्हसि।
सत्पात्रं ब्राह्मणादन्यं न पश्यामि जगत्त्रये॥१३९॥
सुतां दत्त्वा च मुनये रक्षस्व सर्वसम्पदम्।
राजन्कन्यानिमित्तेन सर्वसम्पत्प्रणश्यति॥१४०॥
सर्वं रक्षति तत्त्यक्त्वा विना तं शरणागतम्।
राजा प्राज्ञवचः श्रुत्वा विलप्य च मुहुर्मुहुः॥१४१॥

उन विद्वानों ने रानी तथा राजकुमारी को उत्तम नीति का उपदेश दिया। यथा-"आज अथवा अन्य किसी दिन यह कन्या तो किसी वर को प्रदान करना ही है। आप इन ब्राह्मण के स्थान पर अन्य किसे यह कन्या देने के अभिलाषी हैं? हम लोग त्रैलोक्य में इस ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई अन्य सत्पात्र नहीं देख पा रहे हैं। आप मुनि को पुत्री प्रदान करके सारी सम्पत्ति की रक्षा करिये। अन्यथा राजकन्या के कारण सब कुछ नष्ट हो जायेगा। आप केवल शरणागत को छोड़कर इस एक को (कन्या को) प्रदान करके सर्वस्व रक्षण करें।" राजा उन विद्वानों का कथन सुनकर पुनः-पुनः रोने लगा।।१३८-१४१।।

कन्यां सालंकृतां कृत्वा मुनीन्द्राय ददौ किल।
कान्तां गृहीत्वा स मुनिर्मुदितः स्वालयं ययौ॥१४२॥
राजा सर्वान्परित्यज्य जगाम तपसे शुचा।
भर्तुश्च दुहितुः शोकात्प्राणांस्तत्याज सुन्दरी॥१४३॥
पुत्राः पौत्राश्च भृत्याश्च मूर्च्छां प्रापुर्नृपं विना।
अनरण्यस्तपस्तप्त्वा चिन्तयन्राधिकेश्वरम्॥१४४॥

अन्ततः राजा ने कन्या को अलंकार द्वारा सज्जित करके उन मुनि को प्रदान कर दिया। पत्नी पाकर वे मुनि मुदित मन से अपने आश्रम चले गये। अब राजा दुःखी होकर समस्त राज्य का त्याग

करके तपःश्चरार्थ चला गया। राजपत्नी ने पति के वियोग के शोक में प्राण त्याग दिया। राजा के अभाव में उसके पुत्र-पौत्र-भृत्यादि मूर्च्छित हो गये। अनरण्य राजा तपःश्चरण द्वारा तप्त होता हुआ राधिकेश्वर का चिन्तन करने लगा!।।१४२-१४४।।

गोलोकनाथं संसेव्य गोलोकं च जगाम ह।
बभूव कीर्तिमान्राजा[1] ज्येष्ठपुत्रो नृपस्य च।
पुत्रवत्पालयामास प्रजाः सर्वा महीतले॥१४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं० एकचत्वारिंशोऽध्यायः।।४१।।

—✲✲✲—

राजा गोलोकनाथ की सेवा करते गोलोक चले गये। तदनन्तर राजा का ज्येष्ठ पुत्र कीर्त्तिमान राजा हुआ। उसने महीतल की समस्त प्रजा का पालन पुत्रवत् किया।।१४५।।

।।४१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

वसिष्ठ द्वारा पद्मा तथा धर्म के बीच के संवाद का वर्णन, देवी सती का देहत्याग कथन

वसिष्ठ उवाच

अथानरण्यस्य कन्या सिषेवे भक्तितो मुनिम्।
कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा॥१॥
एकदा स्वर्णदीं स्नातुं गच्छन्तीं सस्मितां सतीम्।
ददर्श पथि धर्मश्च मायया नृपलिङ्गकः॥२॥
चारुरत्नरथस्थश्च रत्नालङ्कारभूषितः। नवीनयौवनश्रीमान्कामदेवसमप्रभः॥३॥
दृष्ट्वा तां सुन्दरीं रम्यामुवाच मायया विभुः।
विज्ञातुमन्तस्तत्त्वं च तस्याश्च मुनियोषितः॥४॥

श्रीवसिष्ठ देव कहते हैं—हे पर्वतराज! उस अनरण्य राजा की पुत्री ने कर्म, वाक्य तथा मन द्वारा

[1] क. राज्ये ज्ये०।

भक्तिभाव से मुनि पिप्पलाद की सेवा उसी प्रकार किया, जिस प्रकार लक्ष्मी देवी भगवान् नारायण की सेवा करती हैं। एक समय सती पद्मा स्नान करने के लिये मन्दाकिनी तट पर जा रही थीं। तभी माया से राजा का रूप धारण करके धर्मदेव ने मुस्कराती हुई मुनि पत्नी पद्मा से उसका मनोभाव जानने हेतु कुछ कहा। उस समय धर्मदेव सुन्दर रत्नमय रथ पर आरूढ़, रत्नालंकार भूषित तथा नवयौवन के कारण कामदेव के समान प्रतीत हो रहे थे। विभु धर्म ने उस रमणीय सुन्दरी मुनि पत्नी को देखकर उसके अन्तर्मन का भाव जानने के लिये कहा–॥१-४॥

धर्म उवाच

अयि सुन्दरि लक्ष्मीव राजयोग्ये मनोहरे। अतीव यौवनस्थे च कामिनि स्थिरयौवने॥५॥
जरातुरस्य वृद्धस्य समीपे त्वं न राजसे। चन्दनागुरुसंलिप्ता राजसे राजवक्षसि॥६॥
विप्रं तपःसु निरतं सत्यज्ञं मरणोन्मुखम्। विहाय पश्य राजेन्द्रं रतिशूरं स्मरातुरम्॥७॥

धर्मदेव कहते हैं–हे सुन्दरी! तुम लक्ष्मी की तरह स्थिर यौवना मनोहारिणी लग रही हो। तुम तो राजा के योग्य नारी हो। इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है! तुम्हारा ऐसे जरातुर वृद्ध मुनि केपास रहना शोभाजनक नहीं है। तुम तो चन्दन, अगुरु से लिप्त होकर राजाओं के वक्षस्थल पर शोभा प्राप्त करने के लिये बनी हो! हे सुन्दरी! तुम इन तपस्वी, सत्यप्रतिज्ञ, मरणोन्मुख, ब्राह्मण को त्यागकर मुझ रतिनिपुण, कामार्त्त की ओर दृष्टिपात करो॥५-७॥

प्राप्नोति सुन्दरी पुण्यात्सौन्दर्यं पूर्वजन्मनः। सफलं तद्भवेत्सर्वं रसिकालिङ्गनेन च॥८॥
सहस्रसुन्दरीकान्तं कामशास्त्रविशारदम्।
किङ्करं कुरु मां कान्ते परित्यक्ष्यामि ता अपि॥९॥

सुन्दरी नारी पूर्वजन्मार्जित पुण्यबल से ही सौन्दर्य लाभ कर पाती है। जब ऐसी नारी का आलिङ्गन रसिक मनुष्य करता है तभी उसके सौन्दर्य की सफलता होती है! मैं हजारों सुन्दरीगण का प्रिय, कामशास्त्र विशारद हूं। मुझे तुम अपना किङ्कर-दास बना लो। मैं तुमको पाते ही अन्य सभी रमणीगण का त्याग कर दूंगा॥८-९॥

निर्जले निर्जने रम्ये शैले शैले नदे नदे। पुष्पोद्याने पुष्पिते च सुगन्धिपुष्पवायुना॥१०॥
मलये चन्दनारण्ये चारुचन्दनवायुना। विहरिष्यामि कामेन कामिन्या च त्वया सह॥११॥
कामज्वरेण दग्धायाः शान्तिं कर्तुमहं क्षमः। विहरस्व मया सार्धं जन्मेदं सफलं कुरु॥१२॥

हे कामिनी! मैं तुम्हारे साथ रमणीय निर्जन स्थलों में, निर्जल स्थान में, रम्य पर्वतों पर, नदियों, नदों, ऐसे उद्यानों में जो पुष्पित हैं, जहां पुष्पों की सुगन्धित वायु बह रही है, मलयगिरि स्थित चन्दन वन में जहां उत्तम चन्दनगन्धयुक्त वायु प्रवहमान है, विहार करूंगा। हे सुन्दरी! मैं काम ज्वर से प्रपीड़िता रमणी की कामपीड़ा निवृत्त करने में सक्षम हूं। अतएव मेरे साथ विहार करके जन्म सफल करो॥१०-१२॥

इत्येवमुक्तवन्तं तं स्थरथादवरुह्य च। ग्रहीतुमुत्सुकं हस्ते तमुवाच पतिव्रता॥१३॥

यह कहकर राजारूपधारी धर्मदेव रथ से नीचे उतरे तथा उन्होंने जैसे ही पद्मा का हाथ पकड़ना चाहा, तब उनकी भर्त्सना करते हुये उस पतिव्रता ने कहा-॥१३॥

पद्मोवाच

दूरं गच्छ गच्छ दूरं पापिष्ठ भूमिपाधम।
मां चेत्पश्यसि कामेन सद्यो भस्म भविष्यसि॥१४॥
पिप्पलादं मुनिश्रेष्ठं तपसा पूतविग्रहम्।
विहाय त्वां भजिष्यामि स्त्रीजितं रतिलम्पटम्॥१५॥
स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सर्वं पुण्यं प्रणश्यति।
न भूमौ पातकी पापात्पापिनां स्त्रीजितात्परः॥१६॥
मां मातरं च स्त्रीभावं कृत्वा येन ब्रवीषि च।
भविष्यति क्षयस्तेन कालेन मम शापतः॥१७॥

पद्मा कहती है-हे पापी! नृपकुल के अधम! यहां से दूर जाओ। यदि तुमने पुनः कामभाव से मेरी ओर दृष्टिपात भी किया, तुम तत्काल भस्म हो जाओगे। क्या मैं तपःबल से परिपूत महर्षि प्रवर पिप्पलाद को त्याग कर तुम्हारे समान स्त्री से पराजित तथा लम्पट के साथ विहार कर सकती हूं? स्त्रीजित पुरुष का स्पर्श होते ही समस्त पुण्य नष्ट हो जाता है। स्त्रीजित व्यक्ति से बढ़कर पातकी कोई भी नहीं है। मैं तुम्हारी माता के समान हूं। तुम मेरे प्रति स्त्रीभाव से बोल रहे हो। अतः समय आने पर मेरे शाप से तुम्हारा क्षय हो जायेगा।।१४-१७।।

श्रुत्वा धर्मः सतीशापं नृपमूर्तिं विहाय च।
धृत्वा स्वमूर्तिं देवेशः कम्पमान उवाच ताम्॥१८॥

धर्मदेव ने सती का शाप सुनते ही राजा का वेष त्याग कर स्वमूर्त्ति (अपना रूप) धारण करके कांपते हुये पद्मा से कहा-।।१८।।

धर्म उवाच

मातर्जानीहि मां धर्मं धर्मज्ञानं गुरोर्गुरुम्। परस्त्रीमातृबुद्धिं च कुर्वन्तं सन्ततं सति॥१९॥
अहं तवान्तर्विज्ञातुमागतस्तव सन्निधिम्।
युष्माकं च मनो जाने तथाऽपि दैवबोधितः[१]॥२०॥

धर्मदेव कहते हैं-हे माता! मैं धर्मज्ञों के गुरुगण का भी गुरु हूं। हे सती! मेरा परायी नारी के प्रति सदैव मातृभाव रहता है। मैं केवल तुम्हारा मनोभाव देखने आया था। यद्यपि मैं सती नारीगण का

१. क. वबाधि०।

मनोभाव अवश्य भली प्रकार से जानता हूं, तथापि यह विडम्बना है कि मैं दैव से प्रेरित होकर तुम्हारी परीक्षा के लिये आ गया!।।१९-२०।।

कृतं मे दमनं साध्वि न विरुद्धं यथोचितम्।
शास्तिः समुत्पथस्थानामीश्वरेण विनिर्मिता॥२१॥

हे साध्वी! तुमने शाप द्वारा मेरा दमन करके उचित ही किया है। यह धर्मविरुद्ध नहीं है; क्योंकि जो अनीति पथ पर चले उसका शासन होना ईश्वरीय नियम है।।२१।।

धर्मं स्वधर्मं विज्ञातुं कालं कलयितुं क्षमः।
विधातारं संविधातुं तस्मै कृष्णाय ते नमः॥२२॥

जो धर्म को भी स्वधर्म पालन का ज्ञान कराते हैं, जो काल की भी कलना करने वाले तथा स्त्रष्टा की भी (विधाता की भी) अनायास सृष्टि करने में सक्षम हैं, मैं उन कृष्ण को प्रणाम करता हूं!।।२२।।

संहर्तुं यः क्षमः काले संहर्तारं भवं विभुः।
स्त्रष्टारं लीलया स्त्रष्टुं तस्मै कृष्णाय ते नमः॥२३॥
शत्रुं विधातुं मित्रं च सुप्रीतिं कलहं क्षमः। स्त्रष्टुं नष्टुं तदेवं च तस्मै कृष्णाय ते नमः॥२४॥
शापं प्रदातुं सर्वांश्च सुखःदुःखवरान्क्षमः।
सम्पदं विपदं यो हि तस्मै कृष्णाय ते नमः॥२५॥
प्रकृतिर्निर्मिता येन महाविष्णुश्च निर्मितः।
ब्रह्माविष्णुमहेशाद्यास्तस्मै कृष्णाय ते नमः॥२६॥

जो संहारक काल की भी संहार तथा स्त्रष्टा ब्रह्मा का भी सृजन करने वाले हैं, उन कृष्ण को प्रणाम करता हूं! जो प्रभु शत्रु को मित्र बनाने में सक्षम हैं तथा जो परमप्रीति को भी कलह में परिवर्तित कर देते हैं, जो सृजन तथा संहार कर सकने में भी सक्षम हैं, उन कृष्ण को मैं प्रणाम करता हूं! जो कृष्ण सभी प्राणीगण को शाप देने में, सुख-दुःख देने में, वर एवं सम्पदा तथा विपदा दे सकने में समर्थ हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूं! जिन कृष्ण ने प्रकृति, महाविष्णु, ब्रह्मा-विष्णु-शिव का भी सृजन किया है, मैं उनको प्रणाम करता हूं!।।२३-२६।।

येन शुक्लीकृतं क्षीरं जलं शीतं कृतं पुरा।
दाहीकृतो हुताशश्च तस्मै कृष्णाय ते नमः॥२७॥
अतितेजः समुत्थाय तेजोरूपाय मूर्तये। गुणश्रेष्ठनिर्गुणाय तस्मै कृष्णाय ते नमः॥२८॥

जिन श्रीकृष्ण देव ने पूर्व में दुग्ध को श्वेत, जल को शीतल, अग्नि को दहनकारी बनाया, उनको मैं प्रणाम करता हूं! उन निर्गुण कृष्ण को मैं प्रणाम करता हूं! जो अत्यन्त तेज के समुत्थित

होने के कारण मूर्त्त तेजरूप हैं, निर्गुण होकर भी श्रेष्ठगुणरूप हैं, उन कृष्ण को मैं प्रणाम करता हूं!।।२७-२८।।

सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वेषामन्तरात्मने। सर्वबन्धुस्वरूपाय तस्मै कृष्णाय ते नमः।।२९।।

जो सर्वरूप, सर्वबीज, सर्वान्तरात्मस्थ, सबके बन्धु हैं, उन कृष्ण को मैं प्रणाम करता हूं!।।२९।।

इत्युक्त्वा पुरतस्तस्यास्तस्थौ धर्मो जगद्गुरुः।
सा साध्वी तं च विज्ञाय सहसोवाच पर्वत।।३०।।

हे पर्वतराज! यह कहने के अनन्तर जगद्गुरु धर्मदेव राजकुमारी पद्मा के समक्ष स्थित हो गये। साध्वी पद्मा ने भी उनको पहचान कर कहा–।।३०।।

पद्मोवाच

त्वमेव धर्म सर्वेषां साक्षी च सर्वकर्मणाम्। सर्वान्तरेषु सर्वात्मा सर्वज्ञः सर्वतत्त्ववित्।।३१।।
कथं मनो मे विज्ञातुं विडम्बयसि किङ्करीम्। यत्कृतं त्वत्कृते ब्रह्मन्नपराधो बभूव मे।।३२।।
त्वं च शप्तो मयाऽऽज्ञानात्स्त्रीस्वभावात्क्रुधा विभो।
का व्यवस्था भवेत्तस्य चिन्तयामीति साम्प्रतम्।।३३।।

पद्मा कहती हैं–आप सबके धर्म तथा सभी के कर्मों के साक्षी हैं। आप सबके अन्तः में स्थित सर्वात्मा, सर्वज्ञ तथा सर्वतत्त्ववेत्ता भी हैं। ऐसी स्थिति में मुझ सेविका के मन को जानने के लिये आपने ऐसा विडम्बना पूर्ण कार्य क्यों किया? हे ब्रह्मन्! मैंने जो कुछ आपसे कहा, वह मेरे द्वारा कृत अपराध है। मैं अज्ञानी स्त्री स्वभाव हूं जो मैंने क्रोधित होकर आपको शाप दे दिया? अब मुझे इस बात की चिन्ता है कि उस शाप के सम्बन्ध में क्या व्यवस्था हो?।।३१-३३।।

आकाशोऽसौ दिशः सर्वा यदि नश्यति वायवः।
तथाऽपि साध्वीशापस्तु न नश्यति कदाचन।।३४।।
त्वं च नष्टो भवसि चेत्सृष्टिनाशो भवेत्तदा।
इतिकर्तव्यतामूढा तथाऽपि त्वां वदाम्यहम्।।३५।।
सत्ये पूर्णश्चतुष्पादैः पौर्णमास्यां यथा शशी।
विराजसे देवराज सर्वकालं दिवानिशम्।।३६।।
पादक्षयश्च त्रेतायां भगवन्भविता तव। पादौ परौ द्वापरे च तृतीयश्च कलौ विभो।।३७।।
कलिशेषे शेषपादस्तवाऽऽच्छन्नौ भविष्यति।
पुनः सत्ये समायाते परिपूर्णो भविष्यसि।।३८।।

भले ही आकाश, सभी दिशायें, वायु तक नष्ट हो जाये, तथापि साध्वी प्रदत्त शाप कदापि नष्ट नहीं हो सकेगा। आपके नष्ट होने से सृष्टि नाश हो जायेगा। ऐसी स्थिति में मैं तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई

हूं, तथापि कुछ कहती हूं। आप सत्ययुग में तो उसी प्रकार चारों चरण से पूर्ण रहेंगे जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा पूर्ण रहता है। आप दिन-रात शोभायमान रहेंगे। हे देवराज! प्रभो! परन्तु त्रेता में आपका एक चरण क्षीण होगा। हे द्विज! द्वापर में आपके दो चरण क्षीण होंगे। कलिकाल में तो आपका तीन चरण क्षीण हो जायेगा। कलि के अन्त के समय में आपका यह एक चरण भी आच्छादित होकर रहेगा। यह चारों चरण सत्ययुग आते ही पूर्ण होंगे।।३४-३८।।

सत्ये सर्वव्यापकस्त्वं तदन्येषु च कुत्रचित्।
यत्र स्थानं तवाऽऽधारो वदामि श्रूयतां विभो॥३९॥

वैष्णवेषु च सर्वेषु यतिषु ब्रह्मचारिषु। पतिव्रतासु प्राज्ञेषु वानप्रस्थेषु भिक्षुषु॥४०॥
नृपेषु धर्मशीलेषु सत्सु सद्वैश्यजातिषु। द्विजसेविषु शूद्रेषु सत्संसर्गस्थितेषु च॥४१॥
एषु त्वं सततं पूर्णो धर्मराज विराजसे। युगे युगे तवाऽऽधारा यत्र पुण्यतमा जनाः॥४२॥

आप सत्ययुग में तो सर्वव्यापक रहेंगे। शेष समय कहीं-कहीं प्रकाशित रहेंगे। हे विभु! जहां-जहां आपकी स्थिति रहेगी, वह सुनिये। हे धर्मदेव! वैष्णव, विप्र, यति, ब्रह्मचारी, पतिव्रता, निर्मल ज्ञानयुक्तव्यक्ति, वानप्रस्थ, भिक्षु (संन्यासी), धर्मशीलनृप, साधु व्यक्ति, उत्तम वैश्य, द्विजसेवा तत्पर शूद्र, सत्संसर्ग में रहने वाले-इनमें आप पूर्णतः विद्यमान रहेंगे। प्रत्येक युग में जहां पुण्यात्मा रहेंगे, वे आपके आधार ही रहा करेंगे। (उनमें आप विराजित रहेंगे)।।३९-४२।।

अश्वत्थवटबिल्वेषु तुलसीचन्दनेषु च। दीक्षापरीक्षाशपथगोष्ठगोष्पदभूमिषु॥४३॥
देवार्हेषु च पुष्पेषु विद्यमानोऽसि शाखिषु। देवालयेषु[1] तीर्थेषु सतां शश्वद्गृहेषु च॥४४॥

पीपल, वटवृक्ष, बिल्ववृक्ष, तुलसी, चन्दन वृक्ष पर, दीक्षा-परीक्षा-शपथ में, गोष्ठ में, गोपद भूमि में, देवगण के योग्य (विहित) पुष्प तथा उन वृक्ष पर आप विराजमान रहेंगे। देवमन्दिर, तीर्थस्थल, सज्जनवृन्द के गृह में भी आपका निवास होगा।।४३-४४।।

वेदवेदाङ्गश्रवणे जलेषु च सभासु च। श्रीकृष्णगुणनामोक्तश्रुतिगीतस्थलेषु च॥४५॥
व्रतपूजातपोन्याययज्ञसाक्ष्यस्थलेषु च। गवां गृहेषु गोष्वेव विद्यमानो हि पश्यसि॥४६॥
कृशता ते न भविता धर्म तेषु स्थलेषु च। एतदन्येषु कृशता यदगम्यं च तच्छृणु॥४७॥

जब वेद-वेदांग का श्रवण होता रहे, जल में, सभा में, जहां कृष्ण नाम का तथा गुणों का कीर्त्तन होता रहे, इनका श्रवण जहां हो, जहां यह गान हो वहां आपका निवास होगा। व्रत-पूजन-तप-न्याय-यज्ञस्थल में, साक्षी देने वाला स्थान, गोगृह में आप सदा विद्यमान रहेंगे। इन स्थानों में आपमें (युगकाल जनित) क्षीणता नहीं रहेगी। अन्य स्थान में युगधर्मानुसार आपमें क्षीणता हो जायेगी। अब आप अपने लिये अगम्य स्थान का वर्णन श्रवण करिये।।४५-४७।।

---

१. ख. विवाहेषु।

पुंश्चलीषु च सर्वासु गृहेषु नरघातिनाम्। नरघातिषु नीचेषु मूर्खेषु च खलेषु च॥४८॥
देवतागुरुविप्रेष्टपाल्यानां धनहारिषु। असन्नरेषु धूर्तेषु चौरेषु रतिभूमिषु॥४९॥
दुरोदरसुरापानकलहानां स्थलेषु च। शालग्रामसाधुतीर्थपुराणरहितेषु च॥५०॥
दस्युस्नेहेषु वादेषु तालच्छायासु गर्विषु। असीजीविमषीजीविदेवलग्रामयाजिषु॥५१॥
वृषवाहस्वर्णकारजीवहिंसोपजीविषु। भर्तृनिन्दितनारीषु स्त्रीजितेषु च पुंसु च॥५२॥

सभी कुलटा नारी के यहां, हत्यारों के गृह में, नर हत्यारों, नीच, मूर्ख, दुष्टों में, देव-गुरु-ब्राह्मण-इष्टदेव तथा पालनीय पुण्यवानों का धन हरण करने वालों में, दुर्जनों-धूर्त्तों-चोरों में, रति स्थल में, द्यूत-मदिरापान तथा कलहयुक्त स्थानों में, आचार भ्रष्ट लोगों के स्थान में, जहां शालग्राम-साधु तीर्थ तथा पुराण न हो, वह आपके लिये अगम्य स्थान होगा। दस्यु से ग्रस्त स्थान में, घमण्डी व्यक्ति में आप नहीं रहेंगे। आप विवाद में, ताड़ की छाया में, तलवार से जीविकोपार्जन करने वालों के यहां, स्याही से जीवन निर्वाह करने वाले, मन्दिर-मठ के पुजारियों में, गांव-गांव घूमकर यज्ञ कराने वाले पुरोहित में, बैल जोतने वालों में, स्वर्णकार में, जीव हिंसक कार्य से जीविका चलाने वालों में, पतिनिन्दक पत्नियों में, स्त्रीजनित लोगों में आपका निवास नहीं होगा।।४८-५२।।

दीक्षासन्ध्याविष्णुभक्तिविहीनेषु द्विजेषु च। स्वाङ्गकन्याविक्रयिषु स्वयोषिद्विक्रयेष्वथ॥५३॥
शालग्रामसुरग्रन्थभूमिविक्रयिषु प्रभो। मित्रद्रोहिकृतघ्नेषु सत्यविश्वासघातिषु॥५४॥
शरणागतहीनेषु[1] चाश्रितघ्नेषु नृष्वपि। शश्वन्मिथ्योक्तिशीलेषु तथा सीमापहारिषु॥५५॥
कामात्क्रोधात्तथा लोभान्मिथ्यासाक्ष्यप्रवादिषु। पुण्यकर्मविहीनेषु पुण्यकर्मविरोधिषु॥५६॥
स्थातुमेतेषु निन्द्येषु नाधिकारस्तव प्रभो। ममापि वचनं सत्यं बभूव तत्क्षणं तव॥५७॥

जो दीक्षा-सन्ध्या-विष्णुभक्ति रहित द्विज हैं, जो अपनी कन्या के विक्रेता हैं, पत्नी विक्रेता हैं, शालग्राम-देवप्रतिमा-ग्रन्थ-भूमि विक्रेता हैं, हे प्रभो! जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, सत्यघाती, विश्वासघाती हैं, जो शरणागत-दीन तथा उनके आश्रितों के हत्याकारी हैं, सदा असत्यभाषी हैं, (खेत-मार्ग आदि की) सीमा भंग करने वाले हैं, क्रोध-तथा लालच में मिथ्या साक्ष्य देते हैं, जो पुण्यकर्म रहित तथा उसके विरोधी हैं, वहां आप नहीं रह सकेंगे। इस प्रकार मेरा वाक्य सत्य होगा तथा आपकी भी रक्षा होगी।।५३-५७।।

यास्यामि पतिसेवायै गच्छ तात स्वमन्दिरम्।
इत्येवं वादिनीं साध्वीमुवाच विधिनन्दनः।
प्रसन्नवदनः श्रीमानतीव विनयं वचः॥५८॥

"हे देव! हे तात! मैं पतिसेवार्थ अपने गृह जा रही हूं।" यह सुनकर ब्रह्मपुत्र धर्मदेव ने उस पतिव्रता से अत्यन्त विनय पूर्वक कहा-।।५८।।

१. ख. ०दीने०।

धर्म उवाच

धन्याऽसि पतिभक्ताऽसि स्वस्ति तेऽस्तु च संततम्॥५९॥
वरं गृहाण दास्यामि मत्परित्राणकारिणि। युवा भवतु भर्ता ते रतिशूरश्च कन्यके॥६०॥
रूपवान्गुणवान्साध्वि[1] सन्ततं स्थिरयौवनः। परमैश्वर्यसंयुक्ता त्वं भव स्थिरयौवना॥६१॥
चिरजीवी भवतु स मार्कण्डेयात्परः सुते। कुबेराद्धनवांश्चैव शक्रावैश्वर्यवानपि॥६२॥

धर्मदेव कहते हैं–हे पतिभक्त साध्वी! तुम धन्य हो। तुम्हारा सदा मंगल हो। मुझे परित्राण कराने वाली! तुम मुझसे वर ग्रहण करो। हे कन्या! तुम्हारे पति युवा, रतिक्रीड़ा में शूर, रूपवान्, गुणी, स्थिर यौवन, परमैश्वर्यमय हो जायें। तुम स्थिर यौवना हो जाओ। हे पुत्री! तुम्हारे पति मार्कण्डेय से भी अधिक चिरायु हों। वे कुबेर के समान धनी तथा ऐश्वर्य में इन्द्र के समान हो जायें।।५९-६२।।

विष्णुभक्तः शिवसमः सिद्धस्तु कपिलात्परः।
स्वामिसौभाग्यसंयुक्ता भव त्वं जीवनावधि॥६३॥
गृहा भवन्तु ते साध्वि कुबेरभवनाधिकाः।
माता त्वं दशपुत्राणां गुणिनां चिरजीविनाम्॥६४॥

स्वभर्तुरधिकानां च भविष्यसि न संशयः। इत्येवमुक्त्वा संतस्थौ धर्मराजश्च पर्वत॥६५॥

"वे विष्णुभक्त, शिव के समान, कपिल के समान सिद्ध हों। जीवनपर्यन्त तुम स्वामीसौभाग्य सम्पन्न रहोगी। तुम्हारा भवन कुबेर के महल से भी अधिक भव्य हो। तुमको अपने पति से भी अधिक गुणयुक्त, दीर्घजीवी १० पुत्रों की प्राप्ति हो। इसमें संशय नहीं है।" हे पर्वत! यह कहकर धर्मदेव मौन हो गये!।।६३-६५।।

सा तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य स्वगृहं ययौ।
धर्मस्तामाशिषं युक्त्वा जगाम निजमन्दिरम्॥६६॥

पतिव्रतां प्रशशंस प्रतिसंसदि संसदि। सा रेमे स्वामिना सार्धं यूना रहसि संततम्॥६७॥
पश्चाद्बभूवुः सत्पुत्रा तद्भर्तुरधिका गुणैः। शैलेन्द्र कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम्॥६८॥
दत्त्वाऽनरण्यः स्वसुतां ररक्ष सर्वसम्पदम्। त्वमेव कन्यकां दत्त्वा सर्वेषामीश्वराय च॥६९॥
रक्ष सर्वबन्धुवर्गानात्मनः सर्वसम्पदम्। सप्ताहे समतीते च दुर्लभेऽतिशुभे क्षणे॥७०॥

धर्मराज से यह वर पाकर पद्मा ने धर्मदेव की प्रदक्षिणा किया तथा अपने गृह जाने लगी। धर्मदेव भी पद्मा को आशीर्वाद देकर अपने गृह आ गये। तभी से वे प्रत्येक सभा में पतिव्रता नारी की प्रशंसा करने लगे। पद्मा भी अपने गृह आकर अपने यौवनप्राप्त स्वामी पिप्पलाद ऋषि के साथ निर्जन में सतत् रतिक्रीड़ा करने लगी। तदनन्तर उसने अपने स्वामी से भी अधिक गुणी अनेक पुत्रों को जन्म

१. क. ०वान्वाग्मी सं०।

दिया। जिस प्रकार राजा अनरण्य ने अपनी कन्या इन मुनि को देकर राज्य-सम्पदा की रक्षा किया था, वह पुरातन इतिहास मैंने तुमसे कह दिया। तुम भी अपनी कन्या पार्वती इन सर्वेश्वर को देकर अपने सभी बंधु-बान्धवों तथा समस्त सम्पत्ति की रक्षा करो। एक सप्ताह पश्चात् अत्यन्त दुर्लभ शुभलक्षण आसन्न हैं।।६६-७०।।

लग्नाधिपे च लग्नस्थे चन्द्रे स्वतनयान्विते। मोदते रोहिणीयुक्ते विशुद्धे चन्द्रतारके।।७१।।
मार्गशीर्षे चन्द्रवारे सर्वदोषविवर्जिते। सर्वसद्ग्रहसंदृष्टे ह्यसद्ग्रहविवर्जिते।।७२।।
सदपत्यप्रदेऽतीव पतिसौभाग्यदायिनि। अवैधव्यप्रदे सौख्यप्रदे जन्मनि जन्मनि।।७३।।

उस समय चन्द्रमा लग्नेश होकर लग्नस्थान में अपने ही पुत्र बुध सहित स्थित रहेंगे। चन्द्र-तारकादि पूर्णतः शुद्ध रहेंगे। वह मार्गशीर्ष मास के सोमवार का दिन होगा। यह लग्न सर्वदोष रहित, सभी शुभग्रह से दृष्ट तथा असद्ग्रह रहित है। यह उत्तम सन्तान देने वाला तथा पति सौभाग्यप्रद स्थिति है। यह वैधव्य रहित करने वाला तथा जन्म-जन्म में सुख देने वाला योग है।।७१-७३।।

अत्यन्तप्रेमाविच्छेदप्रदायिनि परात्परे। कन्यां प्रदाय देवाय त्वं कृती भव पर्वत।।७४।।
जगदम्बां जगत्पित्रे मूलप्रकृतिमीश्वरीम्। तेजःस्वरूपां सर्वेषां देवानां देवपूजिताम्।।७५।।

इस प्रकार कभी भी प्रेम का विच्छेद न होने देने वाला अत्यन्त उत्तम योग उस समय होगा। तब तुम अपनी कन्या मूलप्रकृति रूपा ईश्वरी, सभी देवगण के तेज से आविर्भूत, सर्वदेवपूजिता जगदम्वा को महादेव को जो जगत्पिता हैं—प्रदान करो। इस प्रकार तुम कृतार्थ हो जाओगे।।७४-७५।।

आविर्भूता पुरा कल्पे देवानां रक्षणाय च।
तेजोराशिः सुरौघाणां प्रज्वलन्ती दिशो दश।।७६।।
अस्याः स्वतेजसा दैत्याः केचिद्दग्धा पलायिताः।
केचिद् बभूवुः शैलेन्द्र भस्मीभूताश्च भूतले।।७७।।
बिलं प्रविविशुः केचिन्मूर्च्छां प्रापुश्च केचन।
केचिद्दन्ते तृणं कृत्वा जग्मुः शरणमीश्वरीम्।।७८।।
केचिच्चिक्षिपुरस्त्राणि स्तम्भिता अपि केचन।
केचिच्चिरं रणं कृत्वा ययुः स्वर्गमनामयम्।।७९।।
निःशत्रवो बभूवुस्ते सुरा अस्याः प्रसादतः।
कृष्णाज्ञया सा कल्पान्ते दक्षकन्या बभूव ह।।८०।।

पूर्वकल्प में देवगण की रक्षा के लिये सुरसमूह की तेजराशि से आविर्भूत होकर इन्होंने दसों दिशाओं को प्रकाशित किया था। इन्होंने अपने तेजबल से दैत्य कुल में से किसी को दग्ध किया, किसी को भस्म कर दिया। कोई-कोई पलायित हो गया। कोई भूमिविवर में चला गया, कोई मूर्च्छित हो गया,

कोई-कोई दांतों में तृण दबाकर शरणागत हो गया। देवी के भीषण ताप से तप्त होकर किसी ने वस्त्र त्याग दिया, कोई स्तम्भित हो गया। कोई दीर्घकाल तक युद्ध करता अनामय स्वर्ग सिधार गया। पूर्वकाल में इन पार्वती के ही प्रभाव से सभी देवता शत्रु रहित हो गये थे। ये ही कल्पान्त में कृष्ण की आज्ञा से दक्षकन्यारूपेण जन्मी थीं।।७६-८०।।

दक्षश्च विधिवद्देवीं प्रददौ शूलपाणये। देवेन मत्पितुर्यज्ञे सहसा सुरसंसदि॥८१॥
बभूव कलहः शैल तेन शूलभृता महान्।
ब्रह्माणं च नमस्कृत्य ययौ रुष्टस्त्रिलोचनः॥८२॥

दक्ष ने भी देवी सती को सविधि शूलपाणि को प्रदान किया। हे पर्वत! तदनन्तर मेरे पिता ब्रह्मा के यज्ञ में, देवसभा के मध्य दक्ष एवं शूलपाणि शिव के बीच महान् कलह हो गया। इस प्रकार शिव क्रोधित हो गये तथा वह ब्रह्मा को नमस्कार करके वहां से चले गये।।८१-८२।।

दशश्च समणो रुष्टः प्रययौ स्वालयं तदा। कोपात्संभृतसंभारो दक्षो यज्ञं चकार ह॥८३॥
न ददौ यज्ञभागं च मात्सर्याच्छूलपाणये। दृष्ट्वा सती प्रकुपिता जनकं रक्तलोचना॥८४॥
निर्भर्त्स्य च बहुतरं हृदयेन विदूयता। यज्ञस्थानात्समुत्थाय जगाम मातुरन्तिकम्॥८५॥
भविष्यं कथयामास त्रिकालज्ञा परात्परा। यज्ञभङ्गादिकं सर्वं स्वपितुश्च पराभवम्॥८६॥
पलायनं च देवानां यज्ञस्थानाद्गिरीश्वरम्। मुनीनामृत्विजां चैव पर्वतानां तथैव च॥८७॥
जय शङ्करसैन्यानां स्वात्मनो मृत्युमेव च। शोकात्पर्यटनं भर्तुर्विरहातुरचेतसा॥८८॥
निर्माणं नेत्रसरसः प्रबोधं च जनार्दनात्। मूर्तिभेदात्पुनः प्राप्तिं विहारं तस्य तत्समम्॥८९॥
अपरं भवितव्यं च सर्वमुक्त्वा जगाम सा।
स्वमात्रा भगिनीभिश्च प्रतिषिद्धा च दुःखिता॥९०॥

तदनन्तर दक्ष ने भी क्रोधित होकर महान् समारोह के साथ यज्ञ आरंभ किया तथा मात्सर्य के कारण शूलपाणि को उसमें यज्ञभाग नहीं दिया। इससे सती ने पिता का यह दुर्व्यवहार जब देखा, तब क्रोध से उनके नेत्र आरक्त हो गये। उन्होंने पिता की अनेक भर्त्सना किया तथा वहां से माता प्रसूति के पास गईं। उस समय परात्परा त्रिकालज्ञ सती ने यज्ञभंग तथा पिता का पराभव प्रभृति भविष्य में घटने वाली सभी घटना माता को बतला दिया इसमें उन्होंने यज्ञभंग, पिता का अपमान, यज्ञभूमि से देवगण का हिमालय पलायन, मुनिगण, ऋत्विक्, पर्वतों का वहां से पलायन, शङ्कर की सेना की विजय, अपनी होने वाली मृत्यु, शोकाकुल पति शिव का विरह से व्याकुल होकर चतुर्दिक् भ्रमण, शङ्कर के अश्रुजल से सरोवर निर्माण, प्रभु जनार्दन द्वार प्रबोधित किये जाने पर शंकर का धैर्य धारण, अन्य शरीर से (पार्वतीरूपेण) पुनः शिव प्राप्ति, शिव के साथ विहार आदि समस्त भविष्य में घटित होने वाला वृत्तान्त माता से कह दिया। माता तथा बहनों के बारम्बार रोके जाने पर भी सती ने वहां से प्रस्थान कर दिया।।८३-९०।।

बभूवादर्शना योगात्सर्वासां सिद्धियोगिनी।
गत्वा सा जाह्नवीतीरं स्मृत्वा सम्पूज्य शङ्करम्॥९१॥
स्मृत्वा तच्चरणाम्भोजं देहं तत्याज सुन्दरी। गन्धमादनद्रोणीस्थं शरीरं प्रविवेश ह॥९२॥
सञ्जहार पुरा येन दैत्यानामखिलं कुलम्।
हाहाकारं प्रचक्रुश्च सुराः सर्वेऽतिविस्मिताः॥९३॥
जग्मुः शङ्करसेनाश्च दक्षयज्ञं विनश्य च। पराभवं च सर्वेषां कृत्वा शोकातुराः पुराः॥९४॥
सत्वरं सर्ववृत्तान्तं कथयामासुरीश्वरम्। श्रुत्वा प्रवृत्तिं संहर्ता सर्वरुद्रगणैर्वृतः॥९५॥

तत्पश्चात् सिद्धयोगिनी सती जाह्नवी तट पर गईं। वे वहां सबकी दृष्टि से ओझल (योगबल से) हो गईं। उन्होंने जाह्नवी तट पर शंकर का स्मरण तथा पूजन किया। वहां उन सुन्दरी ने शिव के चरणकमल का स्मरण करते हुये देहत्याग कर दिया। तदनन्तर भगवती ने गन्धमादन पर्वत गुफा में स्थित अपने दिव्य विग्रह में प्रवेश कर लिया। इसी दिव्य देह से पूर्वकल्प में भगवती ने दैत्यों का वध किया था। जब देवगण ने सती का देहत्याग देखा, सभी देवता विस्मित होकर हाहाकार करने लगे। तब शङ्कर की सैन्य ने दक्षयज्ञ का विनाश किया। सबको पराजित करके शिवगणों ने शोकमग्न स्थिति में समस्त वृत्तान्त महेश्वर से कहा। रुद्रगण से घिरे लोकसंहर्त्ता महेश्वर ने यह वृत्तान्त उस समय सुना॥९१-९५॥

मूर्च्छां सम्प्राप शोकेन ज्ञानानन्दः परात्परः।
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्थाय त्रिलोचनः॥९६॥
जगाम स्वर्णदीतीरं यत्र देवीकलेवरम्॥९७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० सतीदेहत्यागो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

यह सुनकर वे ज्ञानानन्द परात्पर प्रभु सुध-बुध खो बैठे। अन्ततः कुछ क्षणों में चेतना प्राप्त करके प्रभु त्रिलोचन उठकर वहां आये जहां गंगा तटा पर देवी सती का शरीर पड़ा था॥९६-९७॥

॥४२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

शङ्कर का विरह तथा उनके शोक को दूर करने का वर्णन

नारायण उवाच

अथ दुर्गां महादेवः सतीमूर्तिं मनोहराम्। अम्लानपद्मवक्त्रां तां शयानां जाह्नवीतटे॥१॥
दधतीमक्षमालां च प्रतप्तकाञ्चनप्रभाम्। तेजसा प्रज्वलन्तीं च दधानां शुक्लवाससम्॥२॥
दृष्ट्वा सतीशरीरं च प्रदग्धो विरहाग्निना। तत्त्वराशिर्मूर्तिमांश्च मूर्च्छां प्राप तथाऽपि च॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—वहां जाकर महादेव देखते हैं कि जाह्नवी तट पर अम्लान कमलपत्र की आभावाली मनोरमा सती की मनोहर देह शयान है। उनकी कान्ति यथावत् है। उन्होंने हाथ में अक्षमाला लिया है। उनकी कान्ति तप्तस्वर्ण प्रभा के समान है। उन्होंने श्वेतवस्त्र धारण किया है तथा वे अपने तेज से स्वतः प्रकाशमान हैं। सती देह को देखकर शङ्कर विरहाग्नि से दग्ध होने लगे। वे मूर्त्तिमान् तत्वराशि ईश्वर होकर भी मूर्च्छित हो गये॥१-३॥

कलत्रशोको बलवान्स्वात्मारामं परात्परम्। बाधते वेदबीजं तं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्॥४॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य तामुवाच त्रिलोचनः।
निरीक्ष्य वदनाम्भोजं स्थाणुः स्थाणुरिवापरः॥५॥
साश्रुनेत्रोऽतिदीनश्च दीनानां शरणप्रदः। दीनदैन्यापहारी च विललाप परं वचः॥६॥

स्वात्माराम, परात्पर, वेदबीज, श्रेष्ठों से भी परमश्रेष्ठ, योगीन्द्रों के गुरुओं के गुरु को भी बलवान पत्नी-वियोग अत्यन्त कष्टकर लगा। अगले क्षण चेतना प्राप्त होने पर त्रिलोचन ने सती का मुखकमल देखा, तब वे स्थाणु (निश्चल) से हो गये। तदनन्तर दीनों को शरण देने वाले, दीनों की दीनता का हरण करने वाले त्रिलोचन देव दीन की तरह नेत्रों में अश्रु भरकर विलाप करते कहने लगे॥४-६॥

शङ्कर उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुभगे सति प्राणेश्वरि प्रिये। शङ्करोऽहं तव स्वामी पश्य मां निकटागतम्॥७॥
शिवं शिवप्रदं सर्वंसंपद्रूपं च सिद्धिदम्। सर्वात्मानं च सर्वेशं शवतुल्यं त्वया विना॥८॥
शक्तोऽहं च त्वया सार्धं सर्वशक्तिस्वरूपया। शक्तिहीनः शवसमो निश्चेष्टः सर्वकर्मसु॥९॥
यश्च शक्तिं न जानाति ज्ञानहीनश्च निन्दति।
तं त्यक्तुमुचितं विज्ञे कथं मां त्यजसि प्रिये॥१०॥

श्रीशङ्कर कहते हैं—हे प्राणेश्वरी! प्रिये! तुम उठो। एक बार तो उठ जाओ। हे सुभगे! देखो! मैं तुम्हारा स्वामी हूं। मैं तुम्हारे पास आया हूं। मैं शिवप्रद, सर्वेश्वर, सर्वरूप, सिद्धिप्रद, सर्वात्मारूप शिव

हूं। हे प्रिये! तथापि मैं तुम्हारे बिना सबके लिये शवतुल्य हूं। तुम सर्वशक्ति स्वरूपा हो। जब तुम साथ रहती थी, तभी तक मैं शक्तियुक्त था। अब मैं शक्ति रहित होकर सभी कार्य में चेष्टा रहित तथा शवरूप हो गया। हे विज्ञ देवी! शक्ति को न जानने वाले ज्ञानहीन व्यक्ति तुम्हारे निन्दक हैं। उनका भले ही तुम त्याग कर दो, तथापि मेरा त्याग तुमने क्यों किया?॥७-१०॥

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः साध्यभूता वयं तव।
सस्मितं सकटाक्षं च वद किञ्चित्सुधोपमम्॥११॥
मधुराभासदृष्ट्या च मां दग्धं सेचनं कुरु।
मां दृष्ट्वा दूरतः शीघ्रं स्निग्धं वदसि सस्मितम्॥१२॥

हे प्राणेश्वरी! स्वयं ब्रह्मा, विष्णु तथा मैं, ये सभी तुम्हारे ही साध्य हैं। तुम मुस्कराते हुये मेरे ऊपर कटाक्षपात करके सुधातुल्य अपनी वाणी के प्रयोग से मेरा हृदय शीतल करो। हे प्रिये! तुम अपने मधुर आलाप तथा मधुर दृष्टिरूप अमृतमय जलसिंचन से मेरे दग्ध हृदय का ताप दूर करो। तुम दूर से मेरा दर्शन करके शीघ्र मेरे प्रति स्नेहमय मधुर वाणी का प्रयोग करो॥११-१२॥

कथमद्यापि रुष्टेव विलपन्तं न भाषसे। प्राणाधिके समुत्तिष्ठ रुदन्तं मां न पश्यसि॥१३॥
परित्यज्य च नः प्राणान्गन्तुं नार्हसि सुन्दरि। जगदम्बे समुत्तिष्ठ प्राणाधारे परात्परे॥१४॥
पतिव्रते समुत्तिष्ठ कथं मां नाद्य सेवसे। कथं करोषि विज्ञाय व्रतभङ्गं श्रुतिप्रसूः॥१५॥

हे प्रिय! तुम निश्चेष्ट होकर विलाप करते मुझे शिव से अभी भी संभाषण नहीं कर रही हो! हे प्रिये! तुम मेरे प्राण की आधाररूपा परात्परा हो। शीघ्र उठो। तुम जगदाधाररूपा जगदम्बा हो। हे देवी! मैं अत्यन्त विनीत होकर कहता हूं तुम उठो। हे दक्षकन्ये! उठो! इस विलाप करते शिव की ओर एक बार भी नेत्र खोलकर नहीं देख रही हो? हे सुन्दरी! मेरे प्राणों को इस प्रकार त्याग कर तुम्हारा चला जाना कदापि उचित नहीं है। हे पतिव्रते! उठो! क्यों अब मेरी सेवा नहीं कर रही हो? हे वेदमाता! जान-बूझ कर अपना व्रत क्यों भंग कर रही हो?॥१३-१५॥

इत्युक्त्वा मृतदेहं च प्रियाया विरहातुरः।
निधायोरसि संश्लिष्य चुचुम्ब च पुनः पुनः॥१६॥
अधरे चाधरं दत्त्वा वक्षो वक्षसि शङ्करः। पुनः पुनः समाश्लिष्य पुनर्मुर्च्छामवाप सः॥१७॥

इस प्रकार विलाप करके विरह से आतुर शङ्कर ने अपनी प्रिया सती का शव वक्ष पर रक्खा तथा उसका पुनः-पुनः आलिङ्गन तथा चुम्बन करने लगे। शङ्कर प्रिया के अधरों पर अपना अधर, उनके वक्ष पर अपना वक्ष रखकर पुनः-पुनः उनका आलिङ्गन करने लगे। इस प्रकार वे अपनी सुध-बुध खोकर मूर्च्छाग्रस्त हो गये॥१६-१७॥

पुनः स चेतनां प्राप्य वेगादुत्थाय शोकतः।
दुद्राव च यथोन्मत्तो ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः॥१८॥

सप्तद्वीपं सप्तसिन्धुं लोकालोकं च काञ्चनम्।
बभ्राम भ्रान्तवज्ज्ञानी सतीं कृत्वा स्ववक्षसि॥१९॥

पुनः जब उनकी चेतना लौटी तब वे शोक पूर्वक वेग से उठ गये। वे ज्ञानीगण के गुरुओं के भी गुरु होने पर भी उन्मत्तवत् दौड़ने लगे। वे प्रभु सती के शव को वक्ष पर लगाये हुये सप्तद्वीप, सप्तसिन्धु, लोकालोक तथा सुमेरु पर्वत पर अत्यन्त भ्रान्त अज्ञानी की तरह भ्रमणरत हो गये।।१८-१९।।

शतशृङ्गगिरेः पार्श्वे जम्बुद्वीपे च भारते। सुनिर्जनेऽक्षयवटे गङ्गातीरे सरित्तटे॥२०॥
रुरोदोच्चैः स्वयं कृत्वा सति साध्वीत्युदीर्य च। त्रिनेत्रनेत्रनीरेण सम्बभूव सरोवरम्॥२१॥
तन्नेत्रं च सरो नाम मुनीनां तपसः स्थलम्। योजनद्वयविस्तीर्णं पुण्यतीर्थं मनोहरम्॥२२॥
यत्र स्नात्वा पुनर्जन्म नराणां न भवेद्गिरे। शतजन्मकृतं पापं स्नानमात्रेण नश्यति॥२३॥
त्यक्त्वा तां मानवीं मूर्तिं नरा यान्ति हरेः पदम्।
तत्र स रोदनं त्यक्त्वा पुनर्बभ्राम मेदिनीम्॥२४॥

तदनन्तर वे भारत में शतशृंग पर्वत के पार्श्व में जम्बूद्वीप के निर्जन प्रदेश में अक्षयवट के नीचे नदी तट के निकट भटकते हुये हा सती! साध्वी! उच्चस्वर से कहते रोदन करने लगे। उनके नयनत्रय से जो अश्रु गिरे, उससे वहां एक सरोवर निर्मित हो गया। उसका नाम है नेत्र सरोवर। वहां मुनिगण तपस्या करते हैं। वह सरोवर दो योजन विस्तीर्ण है। वह एक मनोहर पुण्यतीर्थ है। हे गिरिराज! उसमें स्नान करने से मनुष्यों का पुनर्जन्म नहीं होता। इसमें स्नानमात्र से मनुष्य सौ जन्मों के पातक से मुक्त हो जाता है। वह मनुष्य देहत्याग करके हरिधाम में गमन करता है। शंभु ने वहां रोदन बन्द किया तथा पुनः वे पृथिवी पर भ्रमणरत हो गये।।२०-२४।।

पूर्णमब्दं महायोगी विरहातुरमानसः। सतीगलितप्रत्यङ्गैरङ्गैश्च पर्वतेश्वर॥२५॥
बभूव सिद्धपीठानां समूहो वाञ्छितप्रदः। शेषाङ्गानां महादेवः संस्कारं वै विधाय च॥२६॥
अस्थिमालां विनिर्माय चकार कण्ठभूषणम्।
नित्यं तद्भस्म भक्त्या च चकार गात्रलेपनम्॥२७॥
सति प्राणेश्वरीत्युक्त्वा पुनर्मूर्च्छामवाप सः। विसस्मार ब्रह्म परमात्मानमात्मसंभवः॥२८॥

तत्पश्चात् महायोगी शङ्कर ने उस सरोवर का त्याग किया। वे विरहाकुल चित्त से पूर्ण एक वर्ष पर्यन्त पृथिवी पर घूमते रहे। हे पर्वतेश्वर! इस सती देह के अङ्ग-प्रत्यंग जहां-जहां गिरे थे, वह-वह स्थान सर्वकामनाप्रद सिद्धपीठ कहलाया। तत्पश्चात् शङ्कर ने सती के देह के बाकी बचे अंश का संस्कार कर दिया। उन्होंने सती की अस्थियों की माला बनवाकर उसे कण्ठ का आभूषण बना लिया। सती के देह की भस्म को अपने अंगों पर लिप्त कर दिया। तदनन्तर वे हा प्राणेश्वरी! हा सती! कहते मूर्च्छित हो गये। उस समय आत्मसंभव शिव ने परमात्मा ब्रह्म को भी विस्मृत कर दिया।।२५-२८।।

स्वात्मारामः पूर्णकामो निश्चेष्टो विरहज्वरात्।
तं शयानं गिरिवरस्याभ्याशे वटमूलके॥२९॥
दृष्ट्वा देवाः समाजग्मुर्विस्मिताः शिवसन्निधिम्।
नारायणश्च भगवानीश्वरः सह पार्षदे॥३०॥
रत्नयानेनाऽऽजगाम पद्मार्चितपदाम्बुजः। रत्नालङ्कारशोभाढ्यः पीतवासाश्चतुर्भुजः॥३१॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो वनमालाविभूषितः। ब्रह्मा शेषश्च धर्मश्च सुराः सर्वे महर्षयः॥३२॥
समूषुरीशसदसि लक्ष्मीकान्तं प्रणम्य ते। श्रीहरिः शङ्करमहो कृत्वा वक्षसि मूर्च्छितम्।
रुदन्तं बोधयामास ज्ञानीशो ज्ञानिनां गुरुम्॥३३॥

वे स्वात्माराम पूर्णकाम शिव भी विरह ज्वर जनित सन्ताप से निश्चेष्ट से हो गये। देवगण ने वटमूल के समीप शिव को जब लेटे देखा वे सब उनके निकट आ गये। इस समय देवता अत्यन्त विस्मित थे। उस समय रत्नयान पर आसीन लक्ष्मी द्वारा पूजित चरणकमल वाले रत्नाभूषणभूषित नारायण भी पार्षदगण के साथ वहां आ गये। वे पीताम्बरधारी, चतुर्भुज, मृदुमुस्कान युक्त, प्रसन्नचित्त तथा वनमाला भूषित थे। तत्पश्चात् ब्रह्मा, शेष, धर्मदेव तथा महर्षिगण ने वहां आगमन करके भगवान् लक्ष्मीकान्त को प्रणाम किया। तदनन्तर वे सभी उस सभा में बैठ गये। तदनन्तर ज्ञानीश-ज्ञानीगण के गुरु श्रीहरि उन रुदनरत शिव को अपने क्रोड़ में बैठाकर उनको प्रबोधित करने लगे।।२९-३३।।

श्रीभगवानुवाच

स्वात्माराम निबोधेदं मदीयं वचनं शृणु। हितमध्यात्मसारं च दुःखशोकनिकृन्तनम्॥३४॥
सर्वाध्यात्मविद्यामानबीजं ज्ञाननिधिं विधिम्।
तथाऽपि बोधयामि त्वां सर्वज्ञं वेधसां विधिम्॥३५॥
बुधं बोधयितुं शक्तोऽबुधोऽपि प्राणसङ्कटे।
व्यवहारोऽस्ति लोकेषु सर्वः सर्वपरस्परम्॥३६॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे शम्भु! आप परमात्मस्वरूप होकर क्यों इस प्रकार सामान्य लोगों की तरह अधीर हो रहे हैं? आप मेरा दुःख-शोक विनाशक सारभूत हितकर आध्यात्मिक वाक्य श्रवण करो। हे शङ्कर! आप विधाता के भी विधाता, सर्वज्ञ, ज्ञाननिधि तथा समस्त अध्यात्म के बीजरूप, स्त्रष्टा के भी सृष्टिकर्त्ता हैं, तथापि मैं आपको प्रबोधित कर रहा हूं। जब प्राणसङ्कट उपस्थित हो जाता है, तब उस समय अविद्वान् व्यक्ति भी विद्वान् को परस्परतः समझाते हैं। यह लोक व्यवहार है।।३४-३६।।

मायाश्रिता गुणाः सर्वे हेतवः सुखदुःखयोः। विष्णुमाया बलवती गुणयुक्तं प्रबाधते॥३७॥
दुःखं शोकं भयं शम्भो दुर्दिने भवतीश्वर। तत्रातीते कुतस्तानि सुदिने च समागते॥३८॥
हर्ष ऐष्वर्यदर्पश्च सन्ततं तत्र वर्धते। सर्वाण्येतानि गण्यन्ते स्वप्नानीव विपश्चितः॥३९॥

जो समस्त गुण प्राणीगण के सुख-दुःख के कारण हैं, वे सब माया के अधीन हैं। विष्णुमाया अत्यन्त बलवती है, वही गुणयुक्त पुरुष को पीड़ा प्रदान करती है। हे शम्भु! दुर्दिन आने पर दुःख, शोक, भय प्रभृति अनिष्ट घटना उपस्थित हो जाती है। किन्तु जब दुर्दिन बीत जाते हैं तथा अच्छे दिन आते हैं, तब यह सब दुःख-शोकादि भी दूरीभूत हो जाते हैं। उस सुदिन में हर्ष एवं ऐश्वर्य का दर्प सतत् बढ़ता जाता है। बुद्धिमान लोग इसे स्वप्नवत् ही मान लेते हैं।।३७-३९।।

ज्ञानं लभ महादेव ज्ञानबीज सनातन। चेतनां कुरु भद्रं ते सतीं प्राप्स्यसि निश्चितम्।।४०।।

न तोयं शीतता नित्यं नाग्निं मुञ्चति दाहिका।
तेजः सूर्यं महीं गन्धो तथा त्वां च सती शिव।।४१।।
शैलेत्येवं समाकर्ण्य हरिं किञ्चिदुवाच ह।
नेत्राण्युन्मीलनं कृत्वा त्रिनेत्रः श्रूयतामिति।।४२।।

हे महादेव! ज्ञान लाभ करें। आप ज्ञानबीज तथा सनातन हैं। हे भद्र! चैतन्य हो जायें। आपका कल्याण हो। आप निश्चित रूप से सती को प्राप्त करेंगे। हे शिव! जिस प्रकार से शीतलता गुण जल का, दाहिका शक्ति अग्नि का तथा तेज सूर्य का एवं गन्ध पृथिवी का त्याग नहीं करता, तदनुरूप सती आप से कदापि पृथक् नहीं हैं। हे पर्वतराज! यह विष्णु का वाक्य सुनकर त्रिलोचन शिव ने हरि को जो उत्तर दिया, उसे श्रवण करो।।४०-४२।।

त्रिनेत्र उवाच

कस्त्वं तेजःस्वरूपोऽसि क इमे तव सन्निधौ।
किन्नाम भक्तश्चैषां कानि नामानि का सती।।४३।।
कोऽहं को मे भवान्ब्रूते किङ्कराः कुत आगताः।
क्व यास्यसि क्व यास्यामि क्व गच्छन्त इमे वद।।४४।।

श्रीशिव कहते हैं-हे तेजस्वरूप! आप कौन हैं? हे महात्मन्! आपके समीप स्थित ये लोग कौन हैं? आपका क्या नाम है? ये सती कौन हैं? मैं कौन हूं? मुझसे बात करने वाले आप कौन हैं? आप किससे क्या कह रहे हैं? ये किंकरगण कौन हैं, ये सब कहां आ रहा हैं? कृपया कहिये।।४३-४४।।

हरिरित्येवमाकर्ण्य रुरोद सगणो गिरे। नेत्रनीरैस्त्रिनेत्रं तं रुदन्तं प्रसिषेच सः।।४५।।
हरित्रिनेत्रयोर्नेत्रनीरपातेन तत्र वै। बभूव सरसां श्रेष्ठं तीर्थं भुवनपावनम्।।४६।।

भारतेऽस्तगिरेः पश्चात्तत्राक्षयवटान्तिके।
स्थलं बभूव तपसां मुक्तिबीजं तपस्विनाम्।।४७।।

अथोवाच पुनः शीघ्रमाध्यात्मं च हरं हरिः। शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।।४८।।

हे पर्वतराज! यह श्रवण करके हरि अपने पार्षदों के साथ रुदन करने लगे। उनके रुदन से

बहते अश्रुजल द्वारा शिव का शरीर आर्द्र हो उठा। उस जल से जो नारायण तथा शिव के नेत्रों से गिरा था, वहां एक उत्तम सरोवर निर्मित हो गया। वह आज भी भुवनों को पवित्र करने वाला तीर्थरूप है। यह स्थल भारत में अस्ताचल पर्वत के पृष्ठभाग में है, वहां की तपःस्थली मुनिगण की मुक्ति का कारण हो गई है। तदनन्तर श्रीहरि ने समस्त देवगण तथा ऊर्ध्वरेता मुनियों को सुनाते हुये शिव से पुनः शीघ्रता से आध्यात्मतत्व कहा–।।४५-४८।।

श्रीभगवानुवाच

श्रृणु शङ्कर वक्ष्यामि ज्ञानानन्द सनातन॥४९॥

ज्ञानं ज्ञाननिधे शोकाद्विस्मृतोऽसि परात्पर। सुदिनं दुर्दिनं सश्वद्भक्त्येव भवे भव॥५०॥
सर्वेषां प्राकृतानां च ते बीजे सुखदुःखयोः। सुखाद्भवति हर्षश्च दर्पः शौर्यं प्रमत्तता॥५१॥
राग ऐश्वर्यकामश्च विद्वेषश्च निरन्तरम्। दुःखाच्छोकात्समुद्वेगाद्भयं नित्यं प्रवर्तते॥५२॥
हतान्येतानि सर्वाणि हते बीजे महेश्वर। सुदिनं दुर्दिनं चैव सर्वं कर्मोद्भवं भव[1]॥५३॥

तत्कर्म तपसां साध्यं कर्मणां च शुभाशुभम्।
तपः स्वभावसाध्यं च स्वभावोऽभ्यासतो भवेत्॥५४॥
संसर्गसाध्योऽभ्यासश्च संसर्गः पुण्यतो भवेत्।
पुण्यबीजं मनश्चैव पापबीजं च चञ्चलम्॥५५॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे शङ्कर! आप ज्ञानानन्द तथा सनातन हैं। अब मैं जो कह रहा हूं, वह श्रवण करिये। हे परात्पर! इस समय आप शोकग्रस्त होकर वास्तविक ज्ञान को भूल गये हैं। आप से अध्यात्म विषय कहता हूं। श्रवण करिये। हे शिव! सुदिन तथा दुर्दिन सदा रहते हैं। ये ही प्राकृत प्राणीगण के सुख-दुःख के कारणस्वरूप हैं। इनमें सुख होने से हर्ष, दर्प, शौर्य, प्रमत्तता, राग, ऐश्वर्य, अभिलाषा, विद्वेष आदि की उत्पत्ति होती हैं। दुःख-शोक-उद्वेग सदा भय को प्रवर्द्धित करता है। हे महेश्वर! इसके बीज (कारण) के नष्ट होते ही यह सब विनष्ट हो जाता है। हे शङ्कर! सुदिन-दुर्दिन तो स्वकर्मकृत होते हैं। यह कर्म तपःश्चरण से साध्य है तथा कर्म का शुभ अथवा अशुभ फल मिलता है। तपस्या स्वभाव साध्य है। स्वभाव अभ्यास से ही बन पाता है। अभ्यास संसर्ग साध्य माना जाता है। संसर्ग पुण्य से ही मिल पाता है। हे शंभु! मन ही पाप का कारण है यह चंचल मन ही पुण्य का भी कारण है। यही चंचल कहा गया है। (एकाग्रमन पुण्य का तथा चंचल मन पाप का कारण है)।।४९-५५।।

मनः शंभो ममांशश्च सर्वेन्द्रियपुरःसरम्। सर्वेषां जनकोऽहं च चित्त्वं ब्रह्मा पतिस्त्वयम्॥५६॥
ब्रह्मैकं मूर्तिभेदस्तु गुणभेदेन संततम्। तद्ब्रह्म द्विविधं वस्तु सगुणं निर्गुणं शिव[2]॥५७॥

१. क. भवे।
२. क. शिवम्।

मायाश्रितो यः सगुणो मायातीतश्च निर्गुणः।
स्वेच्छामयश्च भगवानिच्छया विकरोति च॥५८॥

यह सभी इन्द्रियों का अग्रवर्त्ती मन मेरे अंश से उत्पन्न हैं। हे शंभु! सभी का जनक अहंकार है। आप उस अहंकार के अधिष्ठाता हैं। ब्रह्मा बुद्धि के अधिष्ठाता हैं। (अर्थान्तर यह भी है कि मैं ही आपका प्रजापति, ब्रह्मा का जनक हूं)। ब्रह्म वास्तव में एक ही है। गुणभेद से उसका मूर्त्तिभेद (भिन्न-भिन्न रूप) लक्षित होता है। यह ब्रह्म द्विविध है। यथा–सगुण-निर्गुण। वह मायायुक्त होने पर सगुण है। माया रहित होने पर वही निर्गुण है। भगवान् तो स्वेच्छामय हैं, जो अपनी इच्छा से समस्त सृजन करते हैं।।५६-५८।।

इच्छाशक्तिश्च प्रकृतिर्नित्या सर्वप्रसूः सदा।
केचिदेकं वदन्त्येव ब्रह्मज्योतिः सनातनम्॥५९॥
केचिद्वदन्ति द्विविधं ब्रह्म प्रकृतिपूर्वकम्। शृणु ये च वदन्त्येकं मायापुरुषयोः परम्॥६०॥
तस्माद्भवति तौ द्वौ च तद्ब्रह्म सर्वकारणम्।
अथ चैकं परं ब्रह्म द्विविधं भवतीच्छया॥६१॥
इच्छाशक्तिश्च प्रकृतिः सर्वशक्तिप्रसूः सदा।
तत्राऽऽसक्तश्च सुगणः शरीरी प्राकृतस्तथा॥६२॥

प्रकृति ही उनकी इच्छा शक्ति का नाम है। यह प्रकृति नित्य तथा सबको जन्म देने वाली है। कतिपय विद्वानों का मत है कि ब्रह्म ज्योतिस्वरूप तथा सनातन (एक ही) है। अन्य विद्वानों का कथन है कि वे ब्रह्म प्रकृति तथा पुरुष रूप से द्विविध है। जो ब्रह्म को एक मानते हैं उनका मत यह है कि ब्रह्म सर्वकारणस्वरूप तथा प्रकृति-पुरुष से अतीत है। उस एक परमब्रह्म से ही प्रकृति-पुरुष की उत्पत्ति होती है अथवा एक ही परब्रह्म इच्छा क्रम से द्विविध हो जाते हैं। इस मत वालों का कथन है कि ब्रह्म की इच्छाशक्ति ही प्रकृति है। यही समस्त शक्तियों की प्रसवकारिणी जननी है। परब्रह्म इस इच्छाशक्ति से आसक्त (युक्त) होकर सगुण, शरीरी तथा प्राकृत कहे जाते हैं।।५९-६२।।

निर्गुणस्तत्र निर्लिप्तोऽशरीरी च निरङ्कुशः।
सर्वात्मा भगवान्नित्यः सर्वाधारः सनातनः॥६३॥
सर्वेश्वरः सर्वसाक्षी सर्वत्रास्ति फलप्रदः। शरीरं द्विविधं शम्भो नित्यं प्राकृतमेव च॥६४॥
नित्यं विनाशरहितं नश्वरं प्राकृतं सदा। अहं त्वं चापि भगवान्नाऽऽवयोर्नित्यविग्रहः॥६५॥
आवयोरंशभूता ये प्राकृता नष्टविग्रहाः। रुद्रादयस्त्वदंशाश्च मदंशा विष्णुरूपिणः॥६६॥
ममाप्येवं द्विधा रूपं द्विभुजं च चतुर्भुजम्। चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे पद्मया पार्षदैः सह॥६७॥
गोलोके द्विभुजोऽहं च गोपीभिः सह राधया।
द्विविधं ये वदन्त्येव द्वौ प्रधानौ तु तन्मते॥६८॥

जब परब्रह्म इच्छाशक्ति से निर्लिप्त रहते हैं, तब वे निर्गुण-निरंकुश कहे गये हैं। वे भगवान् नित्य, सर्वाधार, सनातन, सर्वेश्वर, सर्वसाक्षी, सर्वत्र फलदाता हैं। हे शम्भु! वे सर्वत्र अवस्थान करते हैं। हे महेश्वर! उनका शरीर द्विविध है। यथा नित्य एवं प्राकृत। नित्य शरीर सदा अविनाशी हैं तथा प्राकृत शरीर नश्वर है। हे प्रभो! मेरा तथा आपका शरीर नित्य है, तथापि जो मेरे तथा आपके अंश से उत्पन्न हैं उनका शरीर नश्वर तथा प्राकृत होता है। मेरे तथा आपके अंशभूत प्राणीगण का शरीर त्रिगुणमयी प्रकृति से उत्पन्न होता है। वे प्राकृत तथा विनाशशील शरीरधारी हैं। रुद्र आपके अंश हैं। विष्णुरूप मेरा अंश है। मेरे दो रूप हैं। यथा द्विभुज तथा चतुर्भुज। मेरा चतुर्भुज रूप वैकुण्ठ में लक्ष्मी तथा पार्षदों के साथ रहता है। मैं गोलोक में द्विभुजरूपेण राधा तथा गोपीगण के साथ रहता हूं। कुछ लोग जो ब्रह्म को द्विविध कहते हैं उनका मत है कि प्रधानतत्व दो हैं।।६३-६८।।

पुरुषश्च सदा नित्यो नित्या प्रकृतिरीश्वरी।
सदा तौ द्वौ च संश्लिष्टौ सर्वेषां पितरौ शिव।।६९।।
सशरीरौ निःशरीरौ स्वेच्छया सर्वरूपिणौ।
प्राधान्यं च यथा पुंसः प्रकृतेश्च सदा तथा।।७०।।

इनके मत से ये दो तत्व हैं नित्य पुरुष तथा नित्या प्रकृति। हे शिव! ये जगत् के पिता-माता हैं। ये दोनों सदा संश्लिष्ट रहते हैं। ये इच्छा होने पर शरीरी होते हैं अन्यथा अशरीरी भी रहते हैं। ये अपनी इच्छा से ही नानारूपधारी हो जाते हैं। इस मत वाले विद्वानों का कथन है कि जिस प्रकार से पुरुष की प्रधानता है, तदनुरूप प्रकृति भी प्रधान है।।६९-७०।।

सतीमिच्छसि चेच्छंभो प्रकृतेः स्तवनं कुरु।
यत्स्तोत्रं च त्वया दत्तं पुरा दुर्वाससे मुदा।।७१।।
तद्दिव्यं कण्वशाखोक्तं भज तेन जगत्प्रसूम्।
शोकनाशो भवतु ते शिवं शिव ममाऽऽशिषा।।७२।।
दूरं विप्लवहेतुश्च यातु स्त्रीविरहज्वरः। इत्येवमुक्त्वा लक्ष्मीशो विरराम गिरीश्वर।।७३।।

हे शंभु! यदि आप सती को पुनः पाने के इच्छुक हैं, तब आप प्रकृति का स्तव करिये। हे शंभु! जो स्तव मैंने पूर्वकाल में ऋषि दुर्वासा को प्रदान किया था, उसी काण्वशाखोक्त स्तव द्वारा आप जगन्माता प्रकृति की आराधना करिये। हे शङ्कर! मेरे आशीर्वाद से आपका शोक दूर होगा। मङ्गल होगा। आपकी स्त्री विरहजनित पीड़ा एवं स्त्रीविरह का कारण भी दूर हो जायेगा। हे गिरिराज हिमालय! यह कहकर लक्ष्मीपति मौन हो गये।।७१-७३।।

स्तवनं कर्तुमारेभे प्रकृतेश्च महेश्वरः। स्नात्वा नत्वा च श्रीकृष्णं ब्रह्माणं भक्तिसंयुतः।
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा पुलकाञ्चितविग्रहः।।७४।।

उस समय महेश्वर देव ने स्नानोपरान्त भक्तियुक्त होकर श्रीकृष्ण एवं ब्रह्मा को करवद्ध प्रणाम किया तथा वे प्रकृति देवी का स्तव पुलकित होकर करने लगे।।७४।।

महेश्वर उवाच–

(ॐ नमः प्रकृत्यै। मन्त्रः।)

ब्राह्मि ब्रह्मस्वरूपे त्वं मां प्रसीद सनातनि। परमात्मस्वरूपे च परमानन्दरूपिणि।
भद्रे भद्रप्रदे दुर्गे दुर्गघ्ने दुर्गनाशिनि। पोतस्वरूपे जीर्णे त्वं मां प्रसीद भवार्णवे॥७५॥

महेश्वर कहते हैं–ॐ नमः प्रकृत्यै। हे ब्राह्मी! आप ब्रह्मस्वरूपा, सनातनी, परमात्मस्वरूपा, परमानन्दरूपा हैं। आप प्रसन्न हो जायें। हे भद्रे! आप भद्रप्रदा (कल्याणप्रदा), दुर्गा, दुर्गतिनाशिनी, दुर्गासुरघातिनी, मंगलप्रदा, भवार्णव पार कराने हेतु नौकारूपा हैं। आप मुझ भवार्णव में गिर रहे व्यक्ति पर प्रसन्न हो जायें।।७५।।

सर्वस्वरूपे सर्वेशि सर्वबीजस्वरूपिणि। सर्वाधारे सर्वविद्ये मां प्रसीद जयप्रदे॥७६॥
सर्वमङ्गलरूपे च सर्वमङ्गलदायिनि। समस्तमङ्गलाधारे प्रसीद सर्वमङ्गले॥७७॥

हे देवी! आप सर्वस्वरूपा, सर्वेशी, सर्वबीजरूपा (सर्वकारणरूपा), सर्वाधार, सर्वविद्या, जयप्रदा हैं। आप मेरे प्रति प्रसन्न हों। आप सर्वमङ्गलरूपा, सर्वमङ्गलदायिनी, समस्त मङ्गलों की आधाररूपा, सर्वमङ्गला मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।७६-७७।।

निद्रे तन्द्रे क्षमे श्रद्धे तुष्टिपुष्टिस्वरूपिणी। लज्जे मेधे बुद्धिरूपे प्रसीद भक्तवत्सले॥७८॥
वेदस्वरूपे वेदानां कारणे वेददायिनि। सर्ववेदाङ्गरूपे च वेदमातः प्रसीद मे॥७९॥

हे देवी! आप निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, श्रद्धा, तुष्टि, पुष्टिस्वरूपा हैं। आप ही लज्जा, मेधा, बुद्धिरूपा हैं। हे भक्तवत्सले! आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। आप वेदस्वरूपा, वेदकारण, वेदप्रदायिनी, सर्ववेदाङ्गरूपा हैं। हे वेदमाता! मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।७८-७९।।

दये जये महामाये प्रसीद जगदम्बिके।
क्षान्ते शान्ते च सर्वान्ते क्षुत्पिपासास्वरूपिणि॥८०॥
लक्ष्मि नारायणक्रोडे स्त्रष्टुर्वक्षसि भारति। मम क्रोडे महामाये विष्णुमाये प्रसीद मे॥८१॥

हे देवी! आप ही दया, जया, महामाया, जगदम्बा हैं। मुझ पर प्रसन्न हों। आप ही क्षान्ता, शान्ता, सबका अन्त करने वाली, क्षुधा-पिपासारूपा हैं। आप नारायण की गोद में स्थित लक्ष्मी हैं। आप ब्रह्मा के वक्ष पर भारती रूप से स्थिता हैं। आप ही मेरी गोद में महामाया हैं। हे विष्णुमाया! आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।८०-८१।।

कलाकाष्ठास्वरूपे च दिवारात्रिस्वरूपिणि। परिणामप्रदे देवि प्रसीद दीनवत्सले॥८२॥
कारणे सर्वशक्तीनां कृष्णस्योरसि राधिके। कृष्णप्राणाधिके भद्रे प्रसीद कृष्णपूजिते॥८३॥

हे देवी! आप ही कला-काष्ठा स्वरूपा, दिन-रात स्वरूपा, परिणामप्रदा (फलप्रदा), दीन वत्सला हैं। कृपया मुझ पर प्रसन्न हों! आप ही सभी शक्तियों की मूल कारण हैं। आप कृष्ण के वक्षस्थलस्थ राधा हैं। हे भद्रे! आप कृष्ण द्वारा पूजिता कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। हे देवी! मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।८२-८३।।

यशःस्वरूपे यशसां कारणे च यशःप्रदे। सर्वदेवीस्वरूपे च नारीरूपविधायिनि।।८४।।
समस्तकामिनीरूपे कलांशेन प्रसीद मे। सर्वसम्पत्स्वरूपे च सर्वसम्पत्प्रदे शुभे।।८५।।

हे देवी! आप ही यशस्वरूपा, यशों की कारणभूता, यशप्रदा, सर्वदेवीस्वरूपा, नारीरूप विधायिनी हैं। आप ही अपने कलांश से समस्त कामिनी (स्त्री) रूपा हैं। आप सर्वसम्पदास्वरूप तथा समस्त सम्पत्तिप्रदा शुभा हैं। आप मेरे प्रति प्रसन्न हो जायें।।८४-८५।।

प्रसीद परमानन्दे कारणे सर्वसम्पदाम्। यशस्विनां पूजिते च प्रसीद यशसां निधे।।८६।।
आधारे सर्वजगतां रत्नाधारे वसुंधरे। चराचरस्वरूपे च प्रसीद मम मा चिरम्।।८७।।

हे देवी! आप परमानन्दमयी तथा सभी सम्पदा की कारणरूप हैं। आप यशस्वीगण से पूजिता हैं। यश की निधि भी आप ही हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। आप समस्त संसार तथा रत्नों की आधार वसुन्धरा हैं। आप चराचर स्वरूपा हैं। कृपया मुझ पर शीघ्र प्रसन्न हो जायें।।८६-८७।।

योगस्वरूपे योगीशे योगदे योगकारणे। योगाधिष्ठात्रि[१] देवीशे प्रसीद सिद्धयोगिनि।।८८।।
सर्वसिद्धिस्वरूपे च सर्वसिद्धिप्रदायिनि। कारणे सर्वसिद्धीनां सिद्धेश्वरि प्रसीद मे।।८९।।

हे देवी! आप योगस्वरूपा, योगेश्वरी, योगप्रदा, योग की कारण, योग की अधिष्ठात्रि देवी, देवीगण की भी ईश्वरी तथा सिद्धयोगिनी हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हों। आप सर्वसिद्धिस्वरूपा तथा सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसिद्धियों की कारणरूपा, सिद्धेश्वरी हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।८८-८९।।

व्याख्यानं सर्वशास्त्राणां मतभेदे महेश्वरि। ज्ञाने[२] यदुक्तं तत्सर्वं क्षमस्व परमेश्वरि।।९०।।
केचिद्वदन्ति प्रकृतेः प्राधान्यं पुरुषस्य च। केचित्तत्र मतद्वैधे व्याख्याभेदं विदुर्बुधाः।।९१।।

हे देवी! समस्त शास्त्रों की व्याख्या में जो मतभेद है इस कारण हे परमेश्वरी! यदि ज्ञानतः अज्ञानतः मैंने कुछ अनुचित कह दिया हो, उसे क्षमा करिये। कतिपय विद्वान् प्रकृतिं को प्रधान कहते हैं तो कतिपय विद्वान् पुरुष की प्रधानता मानते हैं। कुछ विद्वान् दोनों मतों के व्याख्या-भेद को इसका कारण कहते हैं। इस मत विभिन्नता के कारण व्याख्या भिन्नतया होती है!।।९०-९१।।

महाविष्णोर्नाभिदेशे स्थितं तं कमलोद्भवम्।
मधुकैटभौ महादैत्यौ लीलया हन्तुमुद्यतौ।।९२।।
दृष्ट्वा स्तुतिं प्रकुर्वन्तं ब्राह्मणं रक्षितं पुरा। बोधयामास गोविन्दं विनाशहेतवे तयोः।।९३।।

१. क. ०ष्ठातृदे०।
२. क. ०ने ज्ञाने यदुक्तं तत्क्ष०।

पूर्वकाल में दुर्दान्त मधुकैटभ महाविष्णु के नाभिकमल में स्थित कमलयोनि ब्रह्मा का वध करने हेतु उद्यत हो गये थे। यह देखकर जब ब्रह्मा ने आपकी स्तुति किया, तब इन दैत्यद्वय के वधार्थ आपने ही गोविन्द को इनके विनाशार्थ प्रबोधित किया था।।९२-९३।।

नारायण त्वया शक्त्या जघान तौ महासुरौ।
सर्वेश्वरस्त्वया सार्धमनीशोऽयं त्वया विना।।९४।।

पुरा त्रिपुरसंग्रामे गगनात्पतिते मयि। त्वया च विष्णुना सार्धं रक्षितोऽहं सुरेश्वरि।।९५।।
अधुना रक्ष मामीशे प्रदग्धं विरहाग्निना। स्वात्मदर्शनपण्येन[३] क्रीणीहि परमेश्वरि।।९६।।

तब नारायण ने आपकी ही शक्ति से उन दुर्दान्त असुरद्वय का वध किया। आपकी ही सहायता से वे सर्वेश्वर होते हैं, तथापि मैं आपसे विरहित होकर ईश्वर न रहकर अनीश्वर हो गया हूं! हे देवी! पूर्वकाल में त्रिपुरयुद्धकाल में मैं आकाश से भूमि पर गिर गया। हे सुरेश्वरी! उस समय आपने ही विष्णु के साथ आकर मेरी रक्षा किया था। हे ईश्वरी! मैं आपकी वियोगाग्नि में जल रहा हूं। आप अपना दर्शनरूप मूल्य प्रदान करिये। हे परमेश्वरी! इस मूल्य से मुझे क्रय कर लीजिये।।९४-९६।।

इत्युक्त्वा विरतः शंभुर्ददर्श गगनस्थिताम्। रत्नसाररथस्थां तां देवीं शतभुजां मुदा।।९७।।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां रत्नाभरणभूषिताम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां जगतां मातरं सतीम्।।९८।।
दृष्ट्वा तां विरहासक्तः पुनस्तुष्टाव सत्वरम्। दुःखं निवेदयामास प्ररुदन्विरहोद्भवम्।।९९।।

दर्शयामासास्थिमालां स्वाङ्गस्थं भस्मभूषणम्।
कृत्वा बहु परीहारं तोषयामास सुन्दरीम्।।१००।।

यह कहकर शंभु मौन हो गये। तभी उन्होंने देखा कि गगन से रत्नसार निर्मित रथ पर आसीन देवी दशभुजा आ रही हैं। उनके शरीर की आभा तप्त स्वर्ण के समान थी। वे रत्नभूषणों से भूषिता थीं। उनका मुख मन्द मुस्कान से युक्त तथा प्रसन्न था। वे ही जगन्माता सती थीं। विरहाकुल शिव ने दशभुजा देवी को जैसे ही देखा वे विरहजनित दुःख से रोने लगे। उन्होंने अपना दुःख देवी से निवेदित करते हुये उनका स्तव पुनः प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपने शरीरस्थ अस्थिमाला तथा भस्म को दिखलाया तथा अनेक विनय प्रदर्शन के साथ उन परमसुन्दरी देवी को सन्तुष्ट करने लगे।।९७-१००।।

नारायणश्च ब्रह्मा च धर्मः शेषः सुरर्षयः।
शिवं रक्षेश्वरीत्युक्त्वा तुष्टुवुस्ते सनातनीम्।।१०१।।
बभूव परितुष्टा सा तेषां स्तोत्रेण तत्क्षणम्।
उवाच कृपया शम्भुं प्राणेशं प्राणवल्लभा।।१०२।।

उस समय नारायण, ब्रह्मा, धर्मदेव, अनन्त, देवर्षिगण सभी ने देवी से प्रार्थना किया– "हे देवी!

---

३. ख. ०पुण्ये०।

ईश्वरी! आप शिव को शान्त करिये।" तदनन्तर वे सभी देवी की स्तुति करने लगे। देवी ने उस समय देवताओं की स्तुति से सन्तुष्ट होकर, अपने प्राणवल्लभ शिव के प्रति कृपा करके उन प्राणेश्वर शम्भु से कहा–॥१०१-१०२॥

प्रकृतिरुवाच

स्थिरो भव महादेव मम प्राणाधिके प्रभो।
भवानात्मा च योगीशः स्वामी जन्मनि जन्मनि॥१०३॥
अहं शैलेन्द्रकामिन्यां लब्ध्वा जन्म महेश्वर।
तव पत्नी भविष्यामि मुञ्च त्वं विरहज्वरम्॥१०४॥

प्रकृति देवी कहती हैं–हे प्राणाधिक प्रिय महादेव! हे प्रभो! आप ही मेरी आत्मा तथा मेरे जन्म-जन्मान्तर के स्वामी हैं। हे महेश्वर! मैं शैलराज की पत्नी से जन्म लेकर आपकी पत्नी बन जाऊंगी। आप विरहज्वर का त्याग करें॥१०३-१०४॥

इत्युक्त्वा शिवमाश्वास्य चान्तर्धानं चकार सा। सुराजग्मुस्तमाश्वास्यलज्जानम्रात्मकंधरम्॥१०५॥

यह कहकर तथा शिव को आश्वस्त करके देवी अन्तर्ध्यान हो गईं। तदनन्तर देवगण ने लज्जा पूर्वक नतशिर होकर शिव को आश्वासन प्रदान किया तथा वहां से चले गये॥१०५॥

हर्षान्तरात्मा गिरीशः कैलासं तु जगाम ह। ननर्त सगणस्तूर्णं संत्यज्य विरहज्वरम्॥१०६॥

उधर गिरीश शङ्कर ने कैलास धाम जाकर वहां विरह ज्वर को त्याग दिया। वे वहां अपने गणों के साथ नृत्यरत हो गये॥१०६॥

इदं शिवकृतं स्तोत्रं प्रकृत्या यः पठेन्नरः।
न भवेत्कामिनीभेदस्तस्य जन्मनि जन्मनि॥१०७॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा स याति शिवमन्दिरम्।
धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते नात्र संशयः॥१०८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० शङ्करशोकापनोदनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

—※※※—

शिवकृत इस प्रकृति स्तव को जो व्यक्ति नित्य पढ़ता है, उसे किसी भी जन्म में भार्या से वियोग नहीं होता। वह इहलोक में सुख भोगकर अन्त में शिवलोक जाता है। वह इहलोक में धर्म-काम-अर्थ एवं मोक्ष लाभ करता है। इसमें कोई संशय नहीं है॥१०७-१०८॥

॥४३वां अध्याय संपूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

महादेव का विवाह-यात्रा तथा हिमालय कृत शिवस्तोत्र का वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा सगणोऽपि हिमालयः।
विस्मितो भार्यया सार्धं जहास पार्वती स्वयम्॥१॥
अरुन्धती च तां मेनां बोधयामास कातराम्।
निराहारां च रुदतीं जहौ शोकं मुदा च सा॥२॥
अरुन्धतीं भोजयित्वा बुभुजे भोगमुत्तमम्। सर्वं प्रहृष्टमनसा मङ्गलं च चकार ह॥३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे राधिके! हिमालय वसिष्ठ द्वारा वर्णित प्रसंग सुनकर अपनी पत्नी तथा मन्त्रियों के साथ अत्यन्त विस्मित हो गये। परन्तु पार्वती यह प्रसंग सुनकर हंसने लगी। उधर देवी अरुन्धती ने निराहार, दुःख से कातर तथा रुदन कर रही मेनका को आश्वस्त तथा प्रबोधित किया। तब मेनका ने शोक त्याग दिया और देवी अरुन्धती को विविध उत्तम भोग्य वस्तु का भोजन कराने के अनन्तर स्वयं भोजन ग्रहण किया। इसके पश्चात् मेनका ने प्रसन्न मन से अनेक मङ्गलकृत्य का भी अनुष्ठान सम्पन्न किया॥१-३॥

शैलः संभृतसंभारो वसिष्ठस्याऽऽज्ञया प्रिये।
पत्रं प्रस्थापयामास नानास्थानं त्वरान्वितः॥४॥
ततः प्रस्थापयामास शिवं मङ्गलपत्रिकाम्। नानाप्रकारद्रव्याणि वाह्यानि च चकार ह॥५॥
तन्दुलानां च शैलान्वै पृथुकानां च सुन्दरि।
तैलानां च घृतानां च दध्नां वापीश्चकार ह॥६॥
गुणानामासवानां च क्षीराणां च तथैव च। अथो हैयङ्गवीनानां लवणानां परं मुदा[1]॥७॥
लड्डुकानां शर्कराणां स्वस्तिकानां तथैव च।
यवचूर्णादिपिष्टानां घृतपक्वानि तानि च॥८॥
नानाप्रकारवस्त्राणि वह्निशौचानि यानि च। महारत्नप्रवालानि सुवर्णरजतानि च॥९॥
द्रव्याण्येतानि शैलेन्द्रः कृत्वा तुविधिपूर्वकम्। मङ्गलं कर्तुमारेभे तत्रैव मङ्गले दिने॥१०॥

हे प्रिये! तत्पश्चात् वसिष्ठ की आज्ञा से हिमवान् ने अत्यन्त त्वरा के साथ समस्त विवाह में प्रयोज्य सामग्री को एकत्र किया तथा नाना स्थानों में मङ्गलपत्रिका (वैवाहिक निमन्त्रण) भेजा। उन्होंने

१. ख. मुने।

नाना प्रकार के द्रव्य तथा वाहन भी वहां एकत्र किया था। हे सुन्दरी! शैलराज ने वहां चावल, चूड़ा के पर्वत बना दिया। तैल-घृत-दधि-गुड़-आसव-क्षीर-सद्योजात घृत-नवनीत प्रभृति की तो बाबली बना दिया। वह लवण-लड्डू-शर्करा-इमरती-घृतपक्व यव की पिष्ठी, नाना प्रकार के अग्निशुद्ध वस्त्र, उत्तम रत्न, प्रवाल, स्वर्ण, रजत को पर्वतपति ने सविधि वहां एकत्र किया। तदनन्तर मङ्गलमय दिन से वहां माङ्गलिक कार्य भी प्रारम्भ करा दिया।।४-१०।।

संस्कारं कारयामासुः पार्वतीं पर्वतस्त्रियः।
स्नापयित्वा वस्त्रयुगं धारयामासुराशु ताः॥११॥
कारयित्वा सुवेषां च रत्नभूषणभूषिताम्। दर्पणं धारयामासुर्दूर्वाक्षतसमन्वितम्॥१२॥
ददुश्चालक्तकं चारु पादाङ्गुलिषु पादयोः।
गण्डे पत्रावलीं रम्यां नेत्रे कज्जलमुज्ज्वलम्॥१३॥
कबरीं कारयामासुर्मालतीमाल्यवेष्टिताम्। पट्टसूत्रपिनद्धां तां वामवक्त्रां मनोहराम्॥१४॥
एतस्मिन्नन्तरे राधे समाजग्मुः सुरेश्वराः। नीत्वा त्रिनेत्रं तत्रैव रत्नयानस्थमीश्वरम्॥१५॥
शैलःसंभृतसंभारान्संभाषयितुमीश्वरान्। शैलान्प्रस्थापयामास ब्राह्मणानपि पूजितान्॥१६॥
प्राङ्गणं कारयामास रम्भास्तम्भैः समन्वितम्। पट्टसूत्रसन्निबद्धरसालपल्लवान्वितैः॥१७॥

वहां की पर्वतीय स्त्रियों ने पार्वती का सविधि संस्कार करके उनको स्नान कराया तथा शीघ्रता से उनको वस्त्रद्वय धारण करा दिया। उनको उत्तम वेष से सज्जित करके रत्नों के आभूषणों से भी भूषित कर दिया। तदनन्तर दूर्वा एवं अक्षत सहित दर्पण धारण कराया। पर्वतीय स्त्रीगण ने पार्वती के चरणों की उंगलियों में उत्तम आलता लगाकर कपोलों पर उत्तम पत्रावली रचा तथा नेत्रों में काजल लगाया। तत्पश्चात् मालती माला गूंथकर देवी का केशपाश (चोटी) सजाया गया। उसे पट्टसूत्र से बांधा गया था। हे राधिके! इस समय सुरेश्वरगण रत्नयान स्थित भगवान् त्रिलोचन को लेकर हिमालय के यहां आये। शैलराज हिमालय ने उनकी अगवानी के लिये पूजित ब्राह्मणगण तथा वार्त्ता प्रवीण पर्वतों को उपयुक्त सामग्री के साथ भेजा। भवन के प्रांगण को केले के स्तम्भों से सज्जित कराया गया। रेशमी सूत्र से आम्रपल्लव की वन्दनवार बनाकर वहां टांगी गई।।११-१७।।

फलपल्लवसंयुक्तैःकलशैर्जलसंयुतैः। चन्दनागुरुकस्तूरीसुचारुकुसुमान्वितैः॥१८॥
मालतीमाल्यसंयुक्तैः संयुक्तं सुमनोहरम्। देवेश्वरान्पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम हिमालयः॥१९॥
रत्नसिंहासनं दातुं प्रेरयामास किङ्करान्। नारायणो हि भगवानुवास पार्षदैः सह॥२०॥
विनतानन्दनात्तूर्णमवरुह्य चतुर्भुजः। चतुर्भुजैः पार्षदैश्च रत्नभूषणभूषितैः॥२१॥
रत्नमुष्टिनिबद्धैश्च सेवितःश्वेतचामरैः। ऋषिश्रेष्ठैः सुरश्रेष्ठैः स्तूयमानश्च संसदि॥२२॥

जलपूर्ण कलशों को फल तथा पल्लवों से सज्जित किया गया। उसमें चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-उत्तमपुष्प भी छोड़े गये। आंगन को मालती माला से सज्जित किया गया। उस समय हिमालय ने अपने

समक्ष समागत देवदेवेश्वर शिव का दर्शन करके उनको प्रणाम किया तथा सेवकों को आज्ञा दिया कि भगवान् महेश्वर को रत्नसिंहासन प्रदान करें। तभी नारायण भी पार्षदों सहित वहां आ गये। उन चतुर्भुज नारायण को विनता नंदन गरुड़ की पीठ से उतार कर शीघ्र रत्नसिंहासनासीन कराया गया। उस समय रत्नाभूषणभूषित चतुर्भुज विष्णुपार्षद अपनी रत्नमयी मुट्ठी में धारण किये गये श्वेत चामर नारायण पर झल कर उनकी सेवा कर रहे थे। उस सभा में परमश्रेष्ठ ऋषिगण तथा प्रधानदेवतागण नारायणदेव की स्तुति कर रहे थे।।१८-२२।।

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः। उवास च तदभ्याशे ब्रह्मा देवगणैः सह॥२३॥
ऋषयो मनुयश्चैव समूषुर्मङ्गले स्थले। एतस्मिन्नन्तरे शंभुरवरुह्य रथादहो॥२४॥
रत्नासने समुत्तिष्ठन्ददर्श पर्वतालयम्। समाजग्मुः शिवं द्रष्टुं शैलेन्द्रनगरस्त्रियः॥२५॥

भगवान् नारायण का मुखकमल उस समय मृदु मुस्कान युक्त तथा सुप्रसन्न था। वे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले देवदेव उस सभा में अवस्थित हो गये। नारायणदेव के निकट ही देवगण के साथ पितामह ब्रह्मा भी आसनासीन हो गये। समस्त ऋषि तथा मुनिवृन्द भी वहां उस मङ्गलमय स्थल पर बैठ गये। इसके पश्चात् शिव भी अपने रथ से नीचे उतरे। उन्होंने रत्नसिंहासन पर बैठ कर पर्वतालय को देखा। तभी शिव को देखने के लिये वहां हिमालय नगरी की स्त्रियां भी आ गईं!।।२३-२५।।

वृद्धा बाला युवत्यश्च वस्त्राभरणभूषिताः।
काश्चित्कज्जलहस्ताश्च वस्त्रहस्ताश्च काश्चन॥२६॥
काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित्कङ्कतिकाकराः।
वेषार्धभूषिताः काश्चित्काश्चिन्नैवार्धभूषिताः॥२७॥
काश्चिन्निर्भूषिताः काश्चित्सर्वाभरणभूषिताः। सर्वा आगत्य संतस्थुः सस्मिताः पर्वतालये॥२८॥

वे वृद्धा-बाला-युवती सभी वस्त्रों तथा आभरणों से भूषित थीं। कुछ ने हाथों में काजल, कुछ ने वस्त्र, कुछ ने सिन्दूर, कुछ ने कंघी लिया था। कुछ जल्दी से आने के कारण आधी वेषभूषा से ही सज्जित थीं। कुछ ने तो आधी सज्जा भी नहीं किया था। कुछ ने तो अपनी सज्जा ही नहीं किया तथा शीघ्र आने की होड़ में केवल सभी आभूषण को ही धारण कर लिया! वे सभी पर्वतराज के भवन में तनिक हंसती हुई आईं।।२६-२८।।

ऋषिकन्या देवकन्या नागकन्या मनोहराः। गन्धर्वशैलकन्याश्च राजकन्याः समागताः॥२९॥
सर्वा अप्सरसो दिव्या रम्भाद्याः समुपस्थिताः। मेना कन्यागणैः सार्धं ददर्श शङ्करं वरम्॥३०॥
चारुचम्पकवर्णाभमेकवक्त्रं त्रिलोचनम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नाभरणभूषितम्॥३१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीचारुकुङ्कुमभूषितम्। मालतीमाल्यसंयुक्तं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्॥३२॥

वहां ऋषियों, देवताओं, नागों, गन्धर्वों तथा पर्वतों एवं नृपतियों की भी सुन्दरी कन्यायें आ गईं। वहां सभी रम्भा आदि दिव्य अप्सरायें भी आ गईं। मेना ने भी अपने यहां की कन्याओं के साथ

दुलहा शिव का दर्शन किया। वे महेश्वर उत्तम चम्पापुष्पवत् वर्ण वाले, एकमुख, त्रिनेत्र, तनिक मुस्कराते हुये, प्रसन्नमुख, रत्नाभरण से भूषित थे। वे चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा उत्तम कुंकुम से चर्चित अंगवाले, मालती मालायुक्त, उत्तम रत्नों से निर्मित उज्वल मुकुटधारी थे।।२९-३२।।

वह्निशौचेनातुलेन चातिसूक्ष्मेण चारुणा। अमूल्यवस्त्रयुग्मेन विचित्रणातिभूषितम्।।३३।।
रत्नदर्पणहस्तं च कज्जलोज्ज्वललोचनम्। सर्वया प्रभयाऽऽच्छन्नमतीव सुमनोहरम्।।३४।।
अतीव तरुणं रम्यैर्भूषिताङ्गैश्च भूषितम्। बिभ्रतं रूपमतुलं परं नारायणाज्ञया।।३५।।
योगस्वरूपं योगेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्।
स्वेच्छामयं गुणातीतं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।।३६।।

वे अग्निविशुद्ध अतुलनीय अत्यन्त सूक्ष्म उत्तम वस्त्रद्वय एवं विचित्र अमूल्य वस्त्रों से विभूषित थे। उनके हाथों में रत्न दर्पण था। नेत्र काजल से उज्वल लग रहे थे। वे उत्तम प्रभा से आच्छन्न तथा अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रहे थे। वे अत्यन्त तरुण अवस्था वाले थे। उनके अंग उत्तम एवं रम्य आभूषणों से भूषित थे। शङ्कर ने नारायण की आज्ञा से यह अतुलनीय रूप धारण किया था। वे योगस्वरूप, योगीश, योग के ईश्वर, योगीन्द्रों के गुरुओं के भी गुरु, स्वेच्छामय, गुणातीत, ब्रह्मज्योति तथा सनातन हैं।।३३-३६।।

गुणभेदाद्रूपभेदं धत्तेऽनन्तमरूपकम्। तारणं तं भवस्थानां सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।।३७।।
सर्वाधारं सर्वबीजं सर्वेशं सर्वजीवनम्। साक्षिरूपं निरीहं च परमानन्दमक्षरम्।।३८।।
आद्यन्तमध्यरहितं सर्वाद्यां सर्वरूपकम्।
दृष्ट्वा जामातरं मेना जहौ शोकं मुदाऽन्विता।।३९।।

वे गुणभेद तथा रूपभेद द्वारा अनन्तरूपधारी हैं। वे प्रभु संसार-सागर में निमग्न हो रहे प्राणीगण के उद्धारक, जगत् के सृजन-पालन तथा अन्त के भी कारणरूप हैं। वे सर्वाधार, सबके बीज (कारण), सबके ईश्वर तथा सर्वरूप हैं। ऐसे जामाता को देखकर मेनका हर्षित हो उठीं। उन्होंने समस्त शोक त्याग दिया। वे अब मुदित थीं।।३७-३९।।

प्रशशंसुर्युवत्यश्च धन्या धन्या सतीति ताः।
दुर्गा भाग्यवतीत्येवमुचूः काश्चन कन्यकाः।।४०।।
कामेन काश्चित्कामिन्यो मौनीभूताश्च स्तम्भिताः। न दृष्टो वर इत्येवमस्माभिर्ज्ञानगोचरे।।४१।।
काश्चिन्निमेषरहिता मूर्च्छामापुश्च काश्चन।
निनिन्दुः स्वपतिं काश्चित्स्वेच्छां चक्रुश्च काश्चन।।४२।।

वहां उपस्थित युवतियां पार्वती को धन्य-धन्य कहने लगीं। कतिपय कन्याओं ने उन दुर्गा को भाग्यवती कहा। शंकर को देखकर अनेक कामिनी स्त्रियां कामभाव के कारण स्तम्भित तथा मौन हो गईं। कुछ कहने लगीं कि हमने यावत् जीवन ऐसा वर नहीं देखा! कुछ कन्यायें शंकर को एकटक

देखती सुधबुध खो बैठीं! कतिपय स्त्रियां अपने-अपने पतियों की निन्दा (शङ्कर से तुलना करके) करने लगीं। जबकि कुछ कन्यायें शङ्कर को प्राप्त करने के लिये इच्छुक हो गयीं।।४०-४२।।

काश्चिद्भावेन रुरुदुः पुलकाञ्चितविग्रहाः। जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥४३॥
दृष्ट्वा शङ्कररूपं च प्रहृष्टाः सर्वदेवताः। नानाप्रकारवाद्यानि चारूणि मधुराणि च॥४४॥

कोई नारी भावावेग में रुदन कर रही थी। उस समय वहां गन्धर्वपति नृत्यरत थे। अप्सरायें गायन कर रही थीं। शिव के उस रूप-सौन्दर्य का अवलोकन करके सभी देवगण हर्षित थे। वहां वादक लोग नाना प्रकार के मधुर तथा उत्तम वाद्यों का वादन कर रहे थे।।४३-४४।।

वादका वादयामासुर्नानाशिल्पेन तत्र वै। एतस्मिन्नन्तरे दुर्गां शैलान्तःपुरचारिका॥४५॥
बहिश्चकार सद्रत्नासनस्थां[1] वस्त्रवेष्टिताम्। कस्तूरीबिन्दुभिः सान्द्रसिन्दूरबिन्दुभूषिताम्॥४६॥
चारुचन्दनचन्द्राभां नम्रभालस्थलोज्ज्वलाम्। रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलविभूषिताम्॥४७॥
त्रिनेत्रदत्तनेत्रां तामन्यवारितलोचनाम्। अतीषद्धास्ययुक्तास्यां सकटाक्षां मनोहराम्॥४८॥

वे वादकगण वहां नाना प्रकार के वाद्यकौशल प्रदर्शित करते-करते वाद्यवादन कर रहे थे। तभी अन्तःपुर की परिचारिकायें दुर्गा को बाहर लाईं। परिचारिकाओं ने रत्नमय आभूषणों से भूषित दुर्गा को रत्न निर्मित तथा वस्त्रों से सज्जित आसन पर आसीन कराया। पार्वती का मुखमण्डल कस्तूरी तथा सिन्दूर की विन्दियों से भूषित था। उनका भालप्रदेश उत्तम चंदन से चर्चित तथा चन्द्रमा के समान आभा से युक्त तथा किञ्चित् झुका हुआ था। उसकी अत्यधिक शोभा हो रही थी। उत्तम रत्नों के सार से निर्मित हार उनके वक्षस्थल पर विभूषित था। भगवती की दृष्टि त्रिलोचन महादेव की ओर थी, जिनको वे अपने नेत्र के कोनों से (कनखी से) निरन्तर देखती जा रही थीं। वे अन्य किसी भी ओर नहीं देख रही थीं। देवी दुर्गा का मुख मन्दमुस्कान से अत्यन्त आभापूर्ण लग रहा था। वे शङ्कर के प्रति कटाक्ष करती अत्यन्त मनोहर लग रही थीं।।४५-४८।।

रत्नकेयूरवलयरत्नकङ्कणमण्डिताम्। रत्नपाशकसंसक्तां क्वणन्मञ्जीररञ्जिताम्॥४९॥
अमूल्यातुल्यचित्राढ्यवस्त्रयुग्मसुशोभिताम्। सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च चारुगण्डस्थलोज्ज्वलाम्॥५०॥
मणिसारप्रभामुष्टदन्तराजिविराजिताम्। रत्नदर्पणहस्तां च क्रीडापद्मं विघूर्णतीम्॥५१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनाङ्गचर्चिताम्। मुदिता ददृशुः सर्वे जगदाद्यां जगत्प्रसूम्॥५२॥
त्रिनेत्रो नेत्रकोणेन तां ददर्श मुदाऽन्वितः।
सर्वां सत्याकृतिं दृष्ट्वा विजहौ विरहज्वरम्॥५३॥

उनके दोनों हाथों में रत्ननिर्मित केयूर तथा रत्नकंकण सज्जित थे। कानों में पहना कुण्डलद्वय गालों तक लटकता शोभायमान था। उन्होंने रत्नों से बनी करधनी तथा क्वणनशब्द युक्त मंजीर पहना था। देवी की दन्तपंक्ति मणियों के सारभाग की शोभा का भी हरण कर लेने वाली थीं। उनके एक हाथ

---
१. ख. रत्नवेदिका०।

में रत्नमय दर्पण था। भगवती दूसरे हाथों में क्रीड़ाकमल लिये उसे घुमा रही थीं। देवी के अङ्ग चन्दन-अगुरु-कस्तूरी तथा कुंकुम के विलेपन युक्त थे। देवी ने अतुलनीय रूप से चित्रित अमूल्य वस्त्रद्वय धारण किया था, जिससे देवी की मनोहर शोभा परिलक्षित हो रही थी। वहां उपस्थित सभी लोग जगत् की आद्याशक्तिरूपा जगन्माता का दर्शन आनन्द के साथ करने लगे। त्रिलोचन देव भी हर्षित होकर उनको अपने नेत्र कोणों से देख रहे थे। शिवा-पार्वती का समस्त रूप सती की आकृति के ही समान था। यह देखकर शिव का सती विरहज्वर तत्काल दूर हो गया!।।४९-५३।।

शिवः सर्वं विसस्मार दुर्गासंन्यस्तमानसः। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो हर्षाश्रुयुक्तलोचनः।।५४।।
एतस्मिन्नन्तरे शैलः प्रहृष्टः सपुरोहितः। तं वरं वरयामास वस्त्रचन्दनभूषणैः।।५५।।
भक्त्या पाद्यादिभिर्माल्यैर्दिव्यगन्धमनोहरैः।
ततः शीघ्रं वेदमन्त्रैः सम्प्रदानं चकार ताम्।।५६।।

इस कारण अब शिव सब कुछ भूल गये। उनका मन पूर्णतः दुर्गा से ही संसक्त हो गया। उनका शरीर पुलकित हो गया। नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगा। तभी वहां अत्यन्त हर्षित मन से पर्वतराज अपने पुरोहित के साथ आये। उन्होंने चन्दन, आभूषण, पाद्य, माला एवं दिव्य मनोहर गन्ध शिव को प्रदान किया तथा इस प्रकार हिमालय ने शिव का वररूपेण वरण किया। उन्होंने शिव को इस प्रकार अलंकृत करके शीघ्र वेदमन्त्रोच्चारण के साथ उनके हाथों अपनी कन्या प्रदान कर दिया।।५४-५६।।

यौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च।
चारुरत्नविकाराणि पात्राणि सुन्दराणि च।।५७।।
गवां लक्षं गजेन्द्राणां सहस्राणि च राधिके।
रत्नकम्बलयुक्तानि साङ्कुशानि मुदाऽन्वितः।।५८।।
त्रिंशल्लक्षं हयानां च सज्जितानामकातरः। दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्रत्नभूषितम्।।५९।।
शतं द्विजबटूनां च पार्वतीभ्रातृतुल्यकम्। रथानां च शतं रम्यं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम्।।६०।।
पार्वतीं वस्तुसहितां स्वस्तीत्युच्चार्य शङ्करः। जग्राहाऽऽनन्दमनसा यत्नाच्छैलसमर्पिताम्।।६१।।

हे राधिके! हर्षोत्फुल्ल पर्वतराज हिमालय ने मुक्तहस्त से शिव को विविध रत्न, रत्ननिर्मित सुन्दर पात्र आदि एक लक्ष गौ, हजारों गजेन्द्र जो रत्नमय कम्बल तथा अंकुश युक्त थे, सज्जित तीन लक्ष अश्व, श्रेष्ठ रत्नों से सज्जित अनुरक्त लाखों दासियां, पार्वती को कनिष्ठ भ्राता ऐसे प्रिय १०० ब्राह्मण बटु, श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित १०० अत्यन्त सुन्दर रथ भी प्रदान किया। शंकर ने शैलराज द्वारा प्रेम पूर्वक प्रदत्त द्रव्यसमूह को तथा पार्वती को "स्वस्ति" शब्द का प्रसन्न मन से उच्चारण करके यत्नतः ग्रहण कर लिया।।५७-६१।।

हिमालयः सुतां दत्त्वा परिहारं चकार तम्।
माध्यंदिनोक्तस्तोत्रेण तुष्टशव सम्पुटाञ्जलिः।।६२।।

तदनन्तर हिमवान् ने कन्या प्रदान करने के उपरान्त माध्यन्दिन शाखा में कहे गये स्तोत्र से विनय पूर्वक करवद्ध होकर शिव की स्तुति किया।।६२।।

हिमालय उवाच

प्रसीद दक्षयज्ञघ्न नरकार्णवतारक। सर्वात्मरूप सर्वेश परमानन्दविग्रह।।६३।।
गुणार्णव गुणातीत गुणयुक्त[1] गुणेश्वर। गुणबीज महाभाग प्रसीद गुणिनां वर।।६४।।
योगाधार योगरूप योगज्ञ योगकारण। योगीश योगिनां बीज प्रसीद योगिनां गुरो।।६५।।

पर्वतपति हिमवान् कहते हैं–हे दक्षयज्ञ को भंग करने वाले नरक सागर से उत्तीर्ण करने वाले! सर्वात्मरूप! सर्वेश्वर! आप परमानन्दविग्रह हैं। आप गुणों के सागर, गुणातीत, गुणयुक्त, गुणेश्वर, गुणों के कारणरूप तथा गुणियों में प्रधान हैं। हे महाभाग! मुझ पर प्रसन्न हो जायें। आप योग के आधार, योगरूप, योगवेत्ता, योगकारण, योगीश्वर, योगीग के बीज (कारणस्वरूप) तथा योगियों के गुरु हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।६३–६५।।

प्रलय प्रलयाद्यैक भवप्रलयकारण। प्रलयान्ते सृष्टिबीज प्रसीद परिपालक।।६६।।
संहारकाले घोरे च सृष्टिसंहारकारण। दुर्निवार्य दुराराध्य चाऽऽशुतोष प्रसीद मे।।६७।।

आप ही प्रलयरूप, प्रलय के आदि तथा जगत्प्रलय के कारण, प्रलयान्त में सृष्टिबीजरूप हैं। आप अद्वितीय हैं। आप घोर संहार काल में सृष्टि के संहारकारण, दुर्निवार, दुराराध्य, शीघ्र कृपा करने वाले हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।६६–६७।।

कालस्वरूप कालेश काले च फलदायक। कालबीजैक कालघ्न प्रसीद कालपालक।।६८।।
शिवस्वरूप शिवद शिवबीज शिवाश्रय। शिवभूत शिवप्राण प्रसीद परमाश्रय।।६९।।

आप कालस्वरूप, काल के ईश्वर, काल समागत होने पर (समय आने पर) आप फलप्रद, काल के बीजरूप, काल का नाश करने वाले, कालपालक प्रभु हैं। आप कृपया मुझ पर प्रसन्न हो जायें। आप शिवस्वरूप, शिव (कल्याण) प्रदाता, कल्याणबीज तथा कल्याणाश्रय, कल्याणरूप, कल्याण के प्राण तथा परमाश्रय हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हों।।६८–६९।।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा विरराम हिमालयः। प्रशशंसुः सुराः सर्वे मुनयश्च गिरीश्वरम्।।७०।।

यह स्तवन करके हिमालय मौन हो गये। तब सभी देवताओं तथा मुनिगण ने शिव की प्रशंसा किया।।७०।।

हिमालयकृतं स्तोत्रं संयतो यः पठेन्नरः। प्रददाति शिवस्तस्मै वाञ्छितं राधिके ध्रुवम्।।७१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० पार्वतीसम्प्रदाने नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४४।।

—⁂—

१. ख. गणे०।

हे राधा! जो हिमाचल कृत इस स्तोत्र को संयत मन से पढ़ता है, उसे शिव समस्त वांछित प्रदान कर देते हैं। यह निश्चित है।।७१।।

।।४४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

अथ वेदविधानेन संस्थाप्य वह्निमीश्वरः। यज्ञं चकार तत्रैव वामे संस्थाप्य पार्वतीम्।।१।।
निवृत्ते विधिवद्यजे विप्रेभ्यो दक्षिणां ददौ। शिवः शतसुवर्णानि वृन्दावनविनोदिनि।।२।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—इसके पश्चात् ईश्वर महेश्वर ने वेद विधान से अग्निस्थापनोपरान्त पार्वती को अपनी बायीं ओर बैठाकर होमकार्य सम्पन्न किया। हे वृन्दावन में विनोद करने वाली राधिका! यह यज्ञ सम्पन्न हो जाने पर शिव ने १०० स्वर्ण दक्षिणा ब्राह्मणगण को अर्पित किया।।१-२।।

अथ प्रदीपमानीय शैलेन्द्रनगरस्त्रियः। निर्वर्त्य मङ्गलं कर्म गृहं सम्प्राप्य दम्पती।।३।।
कृत्वा जयध्वनिं प्रीत्या शुभनिर्मञ्छनादिकम्।
सस्मिताः सकटाक्षाश्च पुलकाञ्चितविग्रहाः।।४।।
वासगेहं सम्प्रविश्य ददृशुः कामिनीगणाः। शङ्करं रूपवेषाढ्यं रत्नभूषणभूषितम्।।५।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाञ्चितविग्रहम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सकटाक्षं मनोहरम्।।६।।
अपूर्वसूक्ष्मवेषाढ्यं सिन्दूरबिन्दुभूषितम्। चारुचम्पकवर्णाभं सर्वावयवसुन्दरम्।।७।।

तत्पश्चात् हिमालय नगरवासिनी स्त्रियां वहां प्रदीप लेकर आईं तथा सभी मंगल कर्म को सम्पन्न करके शिव-पार्वती को वहां से घर में ले गईं। उन्होंने प्रीति पूर्वक जयजयकार करके निर्मञ्छनादि शुभ-कृत्य सम्पन्न किया और वे सभी पुलकित होकर हंसते हुये शिव के प्रति कटाक्षपात करने लगीं। जब शिव ने वहां वासगृह में प्रवेश किया, तब वहां स्त्रियां शंकर के अनुपम रत्नभूषणभूषित रूप को देखने लगीं। शङ्कर का विग्रह (शरीर) चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम से चर्चित था। उनके मुख पर मन्द मुस्कान शोभायमान थी। वे मनोहर कटाक्षयुक्त थे। उनका वेष अपूर्व, सूक्ष्म, सिन्दूर की बिन्दियों से भूषित, उत्तम चम्पा के पुष्पों के वर्ण वाला था। उनके सभी अवयव अत्यन्त सुन्दर थे।।३-७।।

नवीनयौवनस्थं च मुनीन्द्रचित्तमोहनम्। सरस्वतीं च लक्ष्मीं च सावित्रीं जाह्नवीं रतिम्।।८।।

अदितिं च शचीं चैव लोपामुद्रामरुन्धतीम्।
अहल्यां तुलसीं स्वाहां रोहिणीं च वसुंधराम्॥९॥
शतरूपां च संज्ञां च सतीस्त्रीणां च षोडश।
देवकन्या नागकन्या मुनिकन्या मनोहराः॥१०॥

वे नवीन यौवन युक्त तथा मुनिगण के भी चित्त को मोहित करने वाले परमेश्वर थे। वासगृह में १६ पतिव्रता सती स्त्रियां उस समय विद्यमान थीं। यथा–सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, जाह्नवी, रति, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुन्धरा, शतरूपा तथा देवी संज्ञा। वहां मनोहरा देवकन्यायें, नागकन्यायें तथा मुनिकन्यायें भी आई थीं।।८-१०।।

या याः स्थितास्तत्र तासां संख्यां कर्तुं च कः क्षमः।
ताभी रत्नासने दत्ते तत्रोवास शिवो मुदा।
तमुचूः क्रमशो देव्यो मधुरोक्तिं सुधामिव॥११॥

वहां जितनी स्त्रियां तथा कन्यायें विद्यमान थीं उनकी गणना कर सकने में कौन समर्थ हो सकता है? उनके द्वारा प्रदत्त रत्नासन पर वहां शिव मुदित होकर आसीन हो गये। तभी वहां उपस्थित प्रधान देवियां क्रमशः सुधा के समान मधुर वचन कहने लगीं–।।११।।

सरस्वत्युवाच

प्राप्ता सती महादेवाधुना प्राणाधिका मुदा।
दृष्ट्वा प्रियास्यं चन्द्राभं संतापं त्यज कामुक।[१]।१२॥
कालं गमय कालेश सदा संश्लेषपूर्वकम्।
विश्लेषस्ते न भविता सर्वकालं ममाऽऽशिषा॥१३॥

देवी सरस्वती कहती हैं–हे महादेव! आपने इस समय उन प्राणाधिका सती को ही हर्ष पूर्वक प्राप्त किया है। हे कामुक! आप प्रिया का चन्द्रमुख देखकर अपने हृदय के संताप का त्याग करें। हे कालेश! आप इनके साथ संयोगसहित समय व्यतीत करें। मेरा यह आशीर्वद है कि इनसे आपका वियोग किसी भी काल में नहीं होगा।।१२-१३।।

लक्ष्मीरुवाच

लज्जा विहाय देवेश सतीं कृत्वा स्ववक्षसि।
तिष्ठ सम्प्रति का लज्जा प्राणा यान्ति यया विना॥१४॥

देवी लक्ष्मी कहती हैं–हे देवेश! आप लज्जा त्याग कर इन सती को वक्ष से लगायें। जिसके विरह से प्राण ही निकले जा रहे हों, उसके प्राप्त होने पर यह लज्जा कैसी?।।१४।।

१. सर्वावयवसुन्दरं इति पाठान्तरं क्वचित्।

सावित्र्युवाच

भोजयित्वा सतीं शंभो शीघ्रं भोजय मा खिदः।
तदाचम्य सकर्पूरं ताम्बूलं देहि भक्तितः॥१५॥

देवी सावित्री कहती हैं—हे शंभु! आप इन सती देवी को भोजन कराकर स्वयं आहार ग्रहण करें। आप अब दुःख न करें। आप इनको आचमनोपरान्त भक्ति पूर्वक कर्पूर युक्त ताम्वूल प्रदान करिये।।१५।।

जाह्नव्युवाच

स्वर्णकङ्कतिकां धृत्वा केशान्मार्जय योषितः।
कामिन्याः स्वामिसौभाग्यं सुखं नातः परं भवेत्॥१६॥

जाह्नवी कहती हैं—आप सोने की कंघी लेकर इनकी केश मार्जना करिये। कामिनी के लिये स्वामी सौभाग्य से बढ़कर कोई सुख नहीं होता।।१६।।

रतिरुवाच

गृहीत्वा पार्वतीं देव सुभगामतिदुर्लभाम्।
कथं मम प्राणनाथो निःस्वार्थं भस्मसात्कृतः॥१७॥
जीवयित्वा विभो कामं कामव्यापारमात्मनि।
कुरु दूरं च सन्तापं मम विश्लेषहेतुकम्॥१८॥
दम्पतीविरहक्लेशं सर्वं ज्ञात्वा दयानिधे।
तथाऽपि मम कान्तश्च कोपेन भस्मसात्कृतः॥१९॥

देवी रति कहती हैं—हे देव! आपने अति दुर्लभ रूपवती पार्वती को प्राप्त करके भी मेरे पति काम को बिना कारण क्यों दग्ध कर दिया? आप स्वयं के काम-क्रीड़ा व्यापार हेतु मेरे पति काम को पुनर्जीवित करके मेरे विरहदुःख को दूर करिये। हे दयानिधि! आपको स्वयं दम्पति के विरह दुःख का भली प्रकार ज्ञान है, तथापि आपने क्रोध के कारण मेरे पति को भस्म कर दिया!।।१७-१९।।

इत्युक्त्वा कामभस्माथ ददौ सा ग्रन्थिबन्धितम्।
रुरोद पुरतः शंभोर्नाथ नाथेत्युदीर्य च॥२०॥
हरिस्तद्रोदनं श्रुत्वा करुणामयसागरः। ब्रह्मा धर्मादिदेवाश्च ययुर्वासगृहं शिवम्॥२१॥

रति ने यह कहकर कामदेव के शरीर की भस्म से बंधी पोटली शिव को दे दिया तथा वे शिव के ही सामने हे नाथ! हे नाथ! कहती रुदन करने लगीं। इस रुदन को सुनकर करुणासागर हरि, ब्रह्मा, धर्मादि देवता वहां शिव के पास वासगृह में आ गये।।२०-२१।।

दृष्ट्वा नारायणं धर्मं ब्रह्माणं च सुरानपि। जवेन पीठादुत्थाय स्वाज्ञां कुर्वित्युवाच ह॥२२॥

भगवान् शिव समागत नारायण, धर्म, ब्रह्मा आदि देवगण को देखकर तत्काल आसन से उठे तथा कहा–"आज्ञा दीजिये।"।।२२।।

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम्।
कामं जीवय हे रुद्रेत्युक्त्वा शीघ्र जगाम सः॥२३॥
ऊचुर्देव्यो बहुतरं वाक्यं विनयपूर्वकम्। सुधादृष्ट्या शूलभृतो भस्मतो निर्गतः स्मरः॥२४॥

शंकर का कथन सुनकर स्वयं हरि ने कहा–"हे रुद्र! आप कामदेव को पुनर्जीवित करिये।" यह कहकर वे वहां से शीघ्र बाहर चले गये। तभी वहां उपस्थित देवीगण ने भी विनय के साथ शिव से इस सम्बन्ध में निवेदन किया। तभी शिव ने अपनी अमृतमयी दृष्टि से उस भस्म को जैसे ही देखा कामदेव उस भस्म से निर्गत हो गये।।२३-२४।।

दृष्ट्वा कामं रतिस्तं च प्रणनाम महेश्वरम्। तद्रूपं च तदाकारं सस्मितं सधनुःशरम्॥२५॥
प्रणम्य शङ्करं कामः स्तुतिं कृत्वा यथागमम्। बहिर्गत्वा हरिं देवान्प्रणम्य समुवास ह॥२६॥
कामं संभाष्य देवाश्च युयुजुश्च तमाशिषम्।
काले रक्षा विनाशश्च निषेध (कः) केन वार्यते॥२७॥

रति ने काम को देखते ही कामदेव को तथा देवाधिदेव महेश्वर को प्रणाम किया। कामदेव का रूप पूर्ववत् था। पूर्ववत् आकार, उसी प्रकार की मन्द मुस्कान युक्त मुख तथा वही इक्षुधनु एवं पुष्पबाण उनके हाथो में था। कामदेव ने शंकर की शास्त्रोक्त स्तुति करके उनको प्रणाम किया। तदनन्तर कामदेव उस वासगृह से बाहर जाकर हरि को तथा देवगण को प्रणाम करके वहीं आसीन हो गये। देवगण ने कामदेव से अनेक बातचीत करने के उपरान्त उनको आशीर्वाद भी प्रदान किया। समयानुरूप होने वाली रक्षा को तथा विनाश को कौन रोक सकेगा।।२५-२७।।

अथ शैलः सुरान्सर्वान्नारायणपुरोगमान्।
भोजयामास भक्त्या च शाययामास यत्नतः॥२८॥
अथ शंभुर्वासगृहे वामे संस्थाप्य पार्वतीम्।
मिष्टान्नं भोजयामास तया सह मुदाऽन्वितः॥२९॥
भुक्तवन्तं शिवं तत्र देवमाताऽदितिः स्वयम्।
उवाच सस्मितं राधे सम्प्रीत्या सरसं वचः॥३०॥

इसके पश्चात् शैलराज ने नारायण प्रभृति सभी देवगण को सादर भक्तिभाव से भोजन कराया तथा उनको यत्न पूर्वक शयन भी करवा दिया। उधर वासगृह में शिव ने पार्वती को अपनी बायीं ओर बैठाकर अत्यन्त मुदित होकर उनके सहित मिष्ठान्न भोजन किया। तभी वहां स्वयं देवमाता अदिति आ गईं। हे राधिके! उन्होंने शङ्कर से अत्यन्त प्रीति पूर्वक मुस्कान के साथ सरस बातें कहीं।।२८-३०।।

अदितिरुवाच

भोजनान्ते शचि शम्भोः शौचार्थं जलमर्पय।
देहि शीघ्रं मम प्रीत्या दम्पत्योः प्रीतिपूर्वकम्॥३१॥

देवी अदिति कहती हैं–हे इन्द्राणी! शची! शंभु को हस्त-मुख प्रक्षालनार्थ जल प्रदान करो। मेरी प्रसन्नतार्थ तुम शीघ्र इन दम्पति को प्रेम के साथ जल प्रदान करो।।३१।।

शच्युवाच

कृत्वा विलापं यद्धेतोः शवं कृत्वा स्ववक्षसि।
यो बभ्राम भुवं मोहात्कालेन प्राप तां सतीम्॥३२॥

देवी शचि कहती हैं–हे शिव! आपने जिन सती के विरह में अनेक विलाप किया था तथा जिनका शव वक्ष से लगाये आपने भुवनमण्डल में मोह के कारण चक्रमण किया था, उन सती को आपने प्राप्त कर लिया।।३२।।

अरुन्धत्युवाच

मया दत्ता सती तुभ्यं मेना दातुमनीप्सिता। विविधं बोधयित्वेमां रतिं च कर्तुमर्हसि॥३३॥

देवी अरुन्धती कहती हैं–मेनका आपको पार्वती को देने हेतु सहमत नहीं थीं। मैंने उनको अनेक प्रकार से समझा कर सती पार्वती को प्रदान कराया। अब आप इसके साथ रति करें।।३३।।

अहल्योवाच

वृद्धावस्थां परित्यज्य ह्यतीव तरुणोऽधुना। तेन मेना तु मेने त्वां सुतामर्पितुमीश्वर॥३४॥

देवी अहल्या कहती हैं– इस समय आप वार्द्धक्यावस्था त्यागकर तरुणरूप हो गये। तभी हे ईश्वर! मेना ने आपको अपनी पुत्री प्रदान किया।।३४।।

तुलस्युवाच

सती त्वया परित्यक्ता कामो दग्धः पूरा कृतः।
कथं तदा वसिष्ठश्च प्रभो प्रस्थापितोऽधुना॥३५॥

देवी तुलसी कहती हैं–हे प्रभो! पूर्वकाल में आपने सती को त्यागकर काम को दग्ध किया था। तब आपने (हिमाचल को समझाने हेतु) वसिष्ठ को क्यों भेजा?।।३५।।

स्वाहोवाच

स्थिरो भव महादेव स्त्रीणां वचसि साम्प्रतम्।
विवाहे व्यवहारोऽस्ति पुरंध्रीणां[1] प्रगल्भता॥३६॥

१. क. पुरस्त्रीणां।

देवी स्वाहा कहती हैं—हे महेश्वर! इस समय इन स्त्रियों के कथन को सुनें। विवाह काल में यह प्रचलन है कि महिलायें घृष्टता का आचरण करती ही हैं।।३६।।

रोहिण्युवाच

कामं पूरय पार्वत्याः कामशास्त्रविशारद।
कुरु पारं स्वयं कामी कामिनीकामसागरम्[१]।।३७।।

देवी रोहिणी कहती हैं—हे कामशास्त्रविशारद! पहले आप पार्वती की कामना पूर्ण करें। आप स्वयं कामी हो जायें। अब आप कामिनी रूपी काम सागर को पार करें।।३७।।

वसुंधरोवाच

भोगद्रव्यं विना भोगी न हि तुष्टः क्षुधातुरः।
येन तुष्टिर्भवेच्छंभो तत्कर्तुमुचितं स्त्रियाः।।३८।।

देवी वसुन्धरा कहती हैं—हे शम्भु! क्षुधातुर व्यक्ति भोजनद्रव्य की प्राप्ति के बिना कदापि सन्तुष्ट नहीं हो सकता। अतः स्त्री को जिस प्रकार से सन्तोष हो वही करिये।।३८।।

संज्ञोवाच

जानासि भावं सर्वज्ञ कामार्तानां च योषिताम्।
न च स्वं स्वामिनं शम्भो सती जानाति सङ्गतम्।।३९।।

संज्ञा कहती हैं—हे सर्वज्ञ! शिव! आप कामपीड़ित नारी के स्वभाव के ज्ञाता हैं। सती स्वामी से संगत होने की कामना करती है। स्त्री स्वामी का रक्षण नहीं करती! स्वामी ही स्त्री की रक्षा करते हैं।।३९।।

शतरूपोवाच

तूर्णं प्रस्थापय प्रीत्या पार्वत्या सह शङ्करम्। रत्नप्रदीपं ताम्बूलं तल्पं निर्माय निर्जने।।४०।।

शतरूपा कहती हैं—सभी स्त्रियां शीघ्र प्रीति पूर्वक निर्जन स्थल में जाकर वहां रत्नदीपक, ताम्बूल तथा शय्या का निर्माण करके (रखकर) वहां पार्वती तथा शङ्कर को पहुंचायें।।४०।।

श्रीकृष्ण उवाच

स्त्रीणां तद्वचनं श्रुत्वा ता उवाच शिवः स्वयम्।
निर्विकारी च भगवान्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।।४१।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे राधिके! उन नारीगण का ऐसा-ऐसा कथन सुनकर निर्विकार तथा योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु भगवान् शिव ने स्वयं कहा—।।४१।।

---

१. ख. ०मिनाँ का०

शङ्कर उवाच

देव्यो मा वदतोक्तिं च ह्येवंभूतां ममान्तिके।
जगतां मातरः साध्व्यः पुत्रे चपलता कथम्॥४२॥

श्रीशंकर कहते हैं–हे देवियो! आप सब ऐसा वाक्य मत कहिये। आप सब साध्वी तथा जगत् की माता हैं। आप लोग पुत्र से चपलता क्यों कर रही हैं?।।४२।।

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा लज्जिताः सुरयोषितः।
बभूवुः सम्भ्रमात्तूष्णीं चित्रपुत्तलिका यथा॥४३॥
भुक्त्वा मिष्टानि भगवानाचम्य च मुदाऽन्वितः।
सकर्पूरं च ताम्बूलं बुभुजे भार्यया सह॥४४॥
रत्नसिंहासने शम्भुर्मेनादत्ते मनोहरे। सन्निधाय मुदा युक्तो ददर्श वासमन्दिरम्॥४५॥

शङ्कर का यह कथन सुनकर देवस्त्रियां लज्जा से नत होकर चित्रलिखित सी मौन एवं स्तब्ध हो गई। इसके पश्चात् भगवान् शिव ने मुदित मन से मिष्ठान्न ग्रहण किया। उन्होंने भार्या पार्वती के साथ कर्पूरयुक्त ताम्बूल का भी भक्षण किया। इसके पश्चात् वे मेना द्वारा निवेदित मनोहर रत्नसिंहासन पर आसीन होकर हर्षित मन से उस वासगृह की शोभा का अवलोकन करने लगे।।४३-४५।।

रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्भिर्ज्वलितं श्रिया। रत्नपात्रघटाकीर्णं मुक्तामाणिक्यभूषितम्॥४६॥
रत्नदर्पणशोभढ्यं मण्डितं श्वेतचामरैः। चन्दनागुरुसंयुक्तं पुष्पशय्यासमन्वितम्॥४७॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा। रत्नासारेण खचितं रचितं हीरकैर्वरैः॥४८॥
कुत्रचित्सुरनिर्माणवैकुण्ठसुमनोहरम्। वृन्दावनं कुञ्जवनं कुत्रचिद्रासमण्डलम्॥४९॥
कैलासं च कुत्रचन कुत्रचिदिन्द्रमन्दिरम्। दृष्ट्वाऽऽचर्यं महादेवः परितुष्टो बभूव ह॥५०॥

उन्होंने देखा कि प्रज्वलित सैकड़ों रत्नप्रदीप की आभा से वह वासगृह प्रदीप्त है। चारों ओर मुक्ता-माणिक्य प्रभृति से वह गृह भूषित है। वहां रत्नपात्र तथा रत्नमय अनेक घट रखे हुये हैं। कहीं रत्नमय दर्पणों तथा श्वेत चामरों से वह गृह अलंकृत है। वहां एक ओर चन्दन, अगुरु, कस्तूरीयुक्त (लिप्त) पुष्पशय्या रखी है। स्वयं विश्वकर्मा ने यह गृह रत्नसार तथा हीरक द्वारा एवं नाना चित्रों से चित्रित करके बनाया है। इसमें यत्र-तत्र उत्तम रत्न जड़े हुये थे। कहीं चित्रमय मनोहर वैकुण्ठ, कहीं वृन्दावन, कहीं कुंजवन, तो कहीं पर रासमण्डल रचित था। कहीं कैलास, तो कहीं इन्द्रभवन का अद्भुत अंकन था। यह आश्चर्यमय दृश्य देखकर महादेव अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये।।४६-५०।।

अथ प्रभातकालश्च बभूव प्राणवल्लभे। नानाप्रकारवाद्यानि वादयांश्चक्रिरे जनाः॥५१॥
सर्वे सुराः समुत्तस्थुः सज्जीभूताः ससम्भ्रमाः।
स्ववाहनान्समारुह्य कैलासं गन्तुमुद्यताः॥५२॥

वासगेहं समागत्य धर्मो नारायणाज्ञया। उवाच शङ्करं योगी योगीशं समयोचितम्॥५३॥

हे प्राणवल्लभे राधिका! प्रातःकाल होते ही लोग वहां विभिन्न प्रकार के वाद्यों का वादन करने लगे। यह वाद्य सुनकर वहां सभी देवगण उठ गये तथा वे लोग सज्जित होकर शीघ्रता के साथ अपने-अपने वाहनों पर बैठकर कैलासगमनार्थ उद्यत हो गये। तभी नारायण की आज्ञा से योगी धर्मदेव ने वासभवन में जाकर भगवान् शिव से समयोचित प्रसंग कहा–।।५१-५३।।

धर्म उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते भवतु प्रमथाधिप। पार्वत्या सह माहेन्द्रे यात्रां कुरु हरिं स्मरन्॥५४॥

धर्मदेव कहते हैं–हे प्रमथेश्वर! भद्र! आप उठिये। हरि का स्मरण करके पार्वती के साथ इस शुभ माहेन्द्र योग में यात्रा करें।।५४।।

इत्थं धर्मवचः श्रुत्वा पार्वत्या सह शङ्करः। यात्रां चकार माहेन्द्रे वृन्दावनविनोदिनि॥५५॥

यात्रां कुर्वति देवेश पार्वत्या सह शङ्करे।
उच्चैरुदित्वा या मेना तमुवाच कृपानिधिम्॥५६॥

हे वृन्दावनविनोदिनी राधा! यह सुनकर शङ्कर ने पार्वती के साथ (कैलास धाम की ओर) यात्रा उस माहेन्द्र योग में प्रारम्भ किया। जब देवेश्वर कृपालु शङ्कर पार्वती के साथ यात्रार्थ निकले, तभी मेनका देवी उच्चस्वर में रुदन करने लगीं। उन्होंने कृपानिधि शङ्कर से कहा–।।५५-५६।।

मेनोवाच

कृपानिधे कृपां कृत्वा मद्वत्सां पालयिष्यसि।
सहस्रदोषान्भगवानाशुतोषः क्षमिष्यसि॥५७॥
त्वत्पदाम्बुजभक्तैषा मद्वत्सा जन्मजन्मनि।
स्वप्ने ज्ञाने स्मृतिर्नास्ति महादेवप्रभुं विना॥५८॥

त्वद्भक्तिश्रुतिमात्रेण हर्षाश्रुपुलकान्विता। त्वन्निन्दया भवेन्मौना मृत्युञ्जय मृता इव॥५९॥

मेना कहती हैं–हे कृपानिधि! आप मेरी बेटी का पालन कृपा पूर्वक करियेगा। हे भगवान्! आप आशुतोष हैं। इसके हजारों दोषों को क्षमा करियेगा। मेरी यह पुत्री जन्म-जन्मान्तर में आपके ही चरणकमलों की भक्त है। स्वप्न में, जागरण में, प्रत्येक अवस्था में यह शिव के अतिरिक्त अन्य का चिन्तन ही नहीं करती। आपकी भक्ति के सम्बन्ध में सुनते ही इसके हर्षाश्रु विगलित होने लगते हैं। इसका शरीर पुलकित हो उठता है। हे मृत्युञ्जय! आपकी निन्दा सुनते ही यह मृतवत् मौन हो जाती है।।५७-५९।।

इत्युक्त्वा मेनका शीघ्रं तत्राऽऽगत्य हिमालयः।
उच्चै रुरोद च तदा वत्सां कृत्वा स्ववक्षसि॥६०॥

क्व यासि वत्सेत्युच्चार्य शून्यं कृत्वा हिमालयम्।
स्मारं स्मारं तद्गुणौघं विदार्यं मन्मनः स्फुटम्॥६१॥

जब मेना यह कह रही थीं, तभी वहां पिता हिमवान् आ गये। वे मेना को हृदय से लगाकर उच्च स्वर में रुदन करने लगे। वे शिवा से कहने लगे–"हे पुत्री! तुम हिमालय देश को शून्य करके कहां चली जा रही हो? जब भी मुझे तुम्हारे गुणों के भण्डार का स्मरण हो आ रहा है, तब-तब मेरा हृदय विदीर्ण होने लग जा रहा है!॥६०-६१॥

इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रः समर्प्य च शिवां शिवे। सशैलः सहपुत्रश्च रुरोदोच्चैर्मुहर्मुहुः॥६२॥
नारायणश्च भगवानध्यात्मविद्यया स्वयम्।
सर्वान्प्रबोधयामास कृपया च कृपानिधिः॥६३॥

यह कहकर पर्वतराज हिमालय ने शिवा को शिव को अर्पित कर दिया। उस समय हिमालय अपने पुत्रों सहित रुदन करने लगे। तभी कृपानिधि स्वयं नारायणदेव ने अध्यात्मविद्या के उपदेश से सबको प्रबोधित करने की कृपा किया।॥६२-६३॥

ननाम पार्वती भक्त्या मातरं पितरं गुरून्। मायया च महामाया रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः॥६४॥
पार्वतीरोदनेनैव रुरुदुः सर्वयोषितः। मुनयश्च सुराः सर्वे सस्त्रीकाः सगणा ध्रुवम्॥६५॥
शीघ्रं ययुस्ते कैलासं देवा मानसयायिनः[1]।
मुहूर्तार्धेन मुदिताः सम्प्रापुः शङ्करालयम्॥६६॥
दृष्ट्वाऽऽगतं [2]देवपत्न्यो मुनिपत्न्यश्च सत्वरम्।
आययुर्दीपमानीय मुदा मङ्गलकर्मणि॥६७॥

उस समय पार्वती ने भक्ति पूर्वक माता-पिता-गुरु को प्रणाम किया। वे भगवती महामाया पार्वती माया का वरण करके उच्च स्वर में रुदनरत हो गईं। पार्वती का रुदन सुनकर वहां पर मुनि पत्नियां, देवपत्नियां आदि सभी स्त्रियां भी रोने लगीं। इससे वहां आये देवता तथा मुनिगण भी रुदन करने लगे। तदनन्तर मनोगति से चलने वाले वे सभी कैलासधाम दो घड़ी में ही आनन्द पूर्वक पहुंच गये। सभी वहां शिवधाम पर एकत्रित हो गये। शिवागमन जानकर वहां देवस्त्रियां, मुनिपत्नियां मुदित मन से दीपक लेकर मंगलकार्य सम्पन्न करने हेतु तत्काल आ गईं।॥६४-६७॥

वायुपत्नी कुबेरस्य कामिनी शुक्रकामिनी।
तारा[3] सुरगुरोः पत्नी पत्नी दुर्वाससस्तथा॥६८॥
अत्रिभार्याऽनसूया च चन्द्रपत्न्यस्तथैव च। देवकन्या नागकन्या मुनिकन्याः सहस्रशः॥६९॥

१. ख. शायि०।
२. दृष्टवागत्तन् मिति पाठान्तरम्।
३. तथा सुरगुरोरिति वा पाठः।

असंख्यकामिनीसंघः संख्यां कर्तुं च कः क्षमः।
ताश्च प्रवेशयामासुर्दम्पतीं वासमन्दिरम्॥७०॥

वहां वायुदेव की पत्नी, कुबेर की पत्नी, शुक्र की पत्नी, सुरगुरु की पत्नी तारा, दुर्वासा की पत्नी, अत्रिपत्नी अनुसूया, चन्द्रमा की सभी २७ पत्नियां, सहस्त्रों देव कन्यायें, नागों की तथा मुनिगण की कन्यायें भी वहां आ गईं। वे हजारों की संख्या में थीं। वे असंख्य थीं। उनकी गणना कौन कर सकता है? उन्होंने सादर शिव-शिवा को वहां के वासभवन में प्रवेश कराया॥६८-७०॥

रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम्। सतीं तां दर्शयामास शिवः पूर्वालयं मुदा॥७१॥
सति स्मरस्यतो गेहाद्यद्गता तातमन्दिरम्। अधुना शैलकन्या त्वं तत्र दक्षसुता पुरा॥७२॥
जातिस्मरां स्मारयामि नित्यं स्मरसि चेद्वद।
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा सस्मितोवाच सा सती॥७३॥
सर्वं स्मरामि प्राणेश[1] मौनीभूतो भवेति तम्।
शिवः संभृतसंभारो नानावस्तुमनोहरम्॥७४॥

वहां पर सभी स्त्रियों ने ईश्वरी पार्वती को रत्नसिंहासनासीन करा दिया। तब शिव ने मुदित मन से सती (पार्वती) को उनका पूर्वजन्म वाला यह गृह दिखलाया। उन्होंने पार्वती से कहा-"तुम इसी गृह से ही अपने पिता के यज्ञ में गई थीं। हे सती! क्या तुमको स्मरण है? पूर्वकाल में तुम दक्षपुत्री थी। अब शैलकन्या हो। भले ही तुम पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त जातिस्मरा हो, यह सब तुमको स्मरण हो, तब मुझे बतलाओ।" शङ्कर का कथन सुनकर सती मुस्कराने लगीं। उन्होंने कहा-"हे प्राणेश्वर! मुझे सबकुछ स्मरण है, तथापि अभी आप मौन रहिये।" तदनन्तर शिव ने सभी मनोहर वस्तु के ढेर को एकत्र कराया॥७१-७४॥

भोजयामास देवांश्च नारायणपुरोगमान्।
भुक्त्वा देवा प्रजग्मुस्ते नानारत्नविभूषिताः॥७५॥
सस्त्रीकाः सगणाः सर्वे प्रणम्य चन्द्रशेखरम्।
नारायणं च ब्रह्माणं ननाम शङ्करः स्वयम्॥७६॥
तौ च तं च समाश्लिष्याऽऽशिषं कृत्वा प्रजग्मतुः।
अथ शैलश्च मेना च मैनाकमाजुहाव ह॥७७॥
शीघ्रमानय भद्रं ते पार्वती शङ्करं सुत।
तयोः स वचनं श्रुत्वा शीघ्रं गत्वा शिवालयम्॥७८॥
आजगाम समानीय पार्वतीपरमेश्वरौ। पार्वत्यागमनं श्रुत्वा बालाश्च बालिकास्तथा॥७९॥

१. देवेश इति पाठान्तरम्।

वृद्धा युवत्यो या[1] याश्च शैलाश्च दद्रुवुर्मुदा। मेना सुताभ्यां बध्वा च सह दुद्राव सस्मिता॥८०॥

उन्होंने इन सब वस्तु का भोजन नारायण आदि सभी देवगण को कराया। भोजनोपरान्त वे सभी देवता वहां से नानारत्नों से भूषित होकर अपनी-अपनी पत्नियों तथा गणों के साथ शङ्कर चन्द्रशेखर देव को प्रणाम करके चले गये। स्वयं शिव ने ब्रह्मा तथा नारायण को प्रणाम किया। इन दोनों देवताओं ने शिव का आलिङ्गन किया तथा वे दोनों शिव को आशीर्वाद देकर अपने-अपने गृह चले गये। उधर हिमालय ने तथा मेना ने पुत्र मैनाक को बुलाकर उससे कहा-"हे पुत्र! भद्र! शीघ्र पार्वती एवं शङ्कर को ले आओ। मैनाक यह सुनकर तत्काल कैलास गया तथा वहां से पार्वती तथा परमेश्वर को अपने साथ ले आया। पार्वती का आगमन सुनकर हिमालय नगरी की बालिकायें तथा बालकगण, वृद्धा, युवतियां, पर्वतगण सभी उन दम्पति के दर्शनार्थ वहां आ गये। मेना देवी भी इनके दर्शनार्थ अपने पुत्रों तथा पुत्रवधुओं के साथ वहां दौड़ती तथा मुस्कराती आ गईं।।७५-८०।।

हिमालयश्च मुदितो दुद्रावानुव्रजन्सुताम्। अवरुह्य रथाद्देवी मातरं पितरं गुरून्॥८१॥
प्रणनाम प्रमुदिता निमग्नाऽऽनन्दसागरे। पार्वतीं च समाश्लिष्य मेनका हर्षविह्वला॥८२॥

उधर हिमालय भी इस दम्पत्ति के दर्शनार्थ दौड़ पड़े। तत्पश्चात् देवी पार्वती ने रथ से नीचे उतरकर सानन्द पिता-माता तथा गुरुजनों को प्रणाम किया तथा उनका दर्शन पुनः पाकर भगवती पार्वती आनन्दसागर में मग्न हो गईं।।८१-८२।।

हिमालयश्च मुदितो गताः प्राणा इवाऽऽगताः।
सुतां निधाय गेहे स्वे रत्नसिंहासनं ददौ॥८३॥
शूलभृते गणेभ्यश्च मधुपर्कादिकं मुदा। तस्थौ श्वशुरगेहे च सगणश्चन्द्रशेखरः॥८४॥
नित्यं षोडशोपचारैः पूजितः सह भार्यया। इत्येवं कथितं राधे शङ्करोद्वाहमङ्गलम्।
शोकघ्नं हर्षजनकं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥८५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं० शङ्करविवाहो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।।४५।।

हिमालय के तो मानो शरीर से चले गये प्राण पुनः वापस आ गये। उन्होंने कन्या को भवन में ले जाकर रत्नसिंहासन प्रदान किया। उन्होंने शूलपाणि तथा उनके गणों का स्वागत मधुपर्कादि से किया। अब पार्षदों के साथ प्रभु महेश्वर श्वसुर गृह में रहने लगे। श्वसुरगृह में षोडशोपचार से सपत्नीक शङ्कर पूजित होते थे। हे राधिके! इस प्रकार मैंने मङ्गलमय शिव विवाह कहा। यह शोकनाशक तथा हर्षजनक है। अब क्या सुनना चाहती हो?।।८३-८५।।

।।४५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

१. जायाश्च इत्यपि पाठः।

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

हर-गौरी के विलास का वर्णन तथा सर्वमङ्गल कथन

राधिकोवाच

सुचिरं च मृतं कामं शङ्करेण च जीवितम्।
रतिः पुनः प्रियं प्राप्य किं चकार मुदाऽन्विता॥१॥

स्त्रीणां स्वस्वामिविच्छेदो मरणादतिदुष्करः। पुनः सम्मेलनं भर्तुः सुखं परमदुर्लभम्॥२॥

देवी राधिका कहती हैं–हे प्रभो! अतिचिरकाल से मृत कामदेव को शङ्कर ने जीवन प्रदान किया। तब मुदितरति ने अपने पति को पुनः पाकर क्या किया? स्त्रीगण के लिये अपने स्वामी का वियोग तो मरण से भी दुष्कर है। पुनः पति मिलन सुखलाभ तो उनके लिये परमदुर्लभ होता है॥१-२॥

शिवः सती तां सम्प्राप्य सङ्गे मङ्गलकर्मणि। चिरं प्रनष्टविरहः किं चकार मुदाऽन्वितः॥३॥

कलत्रविरहः पुंसां सर्वशोकात्सुदुष्करः। पुनः सम्मीलनं तस्याः प्राणदानाधिकं सुखम्॥४॥

भगवान् शिव ने साङ्गपरिणयरूप मङ्गल कार्य द्वारा दीर्घकाल के विरह के पश्चात् सती को पाकर चिरकालीन विरहज्वाला से रहित तथा हर्षयुक्त हो जाने पर क्या किया? पुरुष के लिये स्त्री विछोह सभी प्रकार के शोकों से दुस्तर है। उसका पुनः मिलन हो जाना तो प्राणदान से भी बढ़कर सुखदायक है॥३-४॥

रतिः पुंसो विरहिणी शिवः स्त्रीविरही चिरम्।
द्वयोर्द्वयोश्च सम्प्राप्तौ किं बभूव द्वयोः सुखम्॥५॥

तदेव श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं मम। कृपया विदुषां श्रेष्ठ सव्यासं कथय प्रभो॥६॥

मेलनं शक्तिशिवयो रतिमन्मथयोस्ततः। शोकापहं श्रुतवतां सर्वमङ्गलकारणम्॥७॥

रति पुरुष विरही थीं। शङ्कर दीर्घकाल से स्त्री विरही थे। इन दोनों ने अपना-अपना वांछित प्राप्त कर लिया। अब मुझे यह कुतूहल हो रहा है कि उन दोनों को क्या सुख मिला? आप विद्वानों में प्रधान हैं। इसे विस्तार से कहिये। रति काम का संयोग तथा शिव-शक्ति का संयोग श्रवण शोक नाशक है। यह सुनने पर सर्वमङ्गलकारक भी है॥५-७॥

नारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिका देवी सस्मिता विरराम ह।
कृष्णस्तद्वचनं श्रुत्वा सस्मितस्तामुवाच ह॥८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–यह कहकर सस्मिता राधा मौन हो गईं। श्रीकृष्ण राधा का कथन सुनकर हंसते हुये कहने लगे॥८॥

श्रीकृष्ण उवाच

मृतं कामं पुनः प्राप्य कामार्ता कामकामिनी। स्वालयं तं समानीय हरोद्वाहगृहादहो॥९॥
भर्तुः सुवेषं विविधं स्वात्मनः स्वालिभिर्मुदा।
कारयामास यत्नेन सा रती रमणोत्सुका॥१०॥
ज्ञात्वा कामस्तु तद्भावं कामशास्त्रविधायकः।
रत्नयानं समारुह्य जगाम स्वालयाद्वनम्॥११॥
शैले शैलेऽतिरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे। द्वीपे द्वीपे सिन्धुतटे पुष्पोद्याने मनोहरे॥१२॥
काञ्चने भूमिनिकरे[1] वटमूलेऽतिनिर्जने। नदीपुलिनभूम्यां च पुष्पिते पुष्पकानने॥१३॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्तेपुंस्कोकिलरुतश्रुते। सुगन्धिवायुनाऽऽकीर्णे दधति जलसीकरम्॥१४॥
चित्तेषु चेतनानां च हरणं योषितामहो। कलामानप्रकारेण शृङ्गारं च चकार सा॥१५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे राधिके! कामार्त्ता कामपत्नी रति मृत कामदेव को पुनः जीवित पाकर शिव के विवाहगृह से अपने घर आई तथा रमणोत्सुक होकर सखियों द्वारा यत्न पूर्वक अपनी तथा अपने पति की वेश–सज्जा कराया। कामशास्त्रविशारद कामदेव रति का भाव जानकर उसके साथ रत्नमय यान में बैठे। वहां से वे दोनों वन में आये। तदनन्तर रम्य पर्वत समूह, प्रतिनदी, प्रतिनद, प्रतिद्वीप, सिन्धुतट, मनोहर पुष्पोद्यान तथा काञ्चनीभूमि के निकटवर्त्ती वटवृक्ष के नीचे उन्होंने विहार किया। अन्ततः सागरतट के ऊर्ध्वस्थ भाग में स्थित पुष्पित पुष्प कानन में जहां भ्रमरध्वनि तथा कोकिल की कूक गूंज रही थी, जलकण को संजोये सुगन्धित वायु जहां प्रवहमान थी, वहां उन दोनों ने विविध कलायुक्त कामक्रीड़ा किया। इसको देखकर अन्य नारीगण की चेतना का हरण जैसा हो गया। वे विस्मित हो गईं।।९–१५।।

पूर्णमब्दशतं दिव्यं स रेमे वामया सह। दिवानिशं च न बुबुधे संसक्तः सततं मुदा॥१६॥
तस्थतुस्तौ च तत्रैव संसक्तो सततं मुदा। सुरतौ च न विरतौ रतिशास्त्रविशारदौ॥१७॥
पतिविच्छेदसन्तापं विजहौ सा रतिर्मुदा। प्राप्य रत्नमपहृतं कः क्षणं त्यक्तुमुत्सहेत्॥१८॥
इत्येवं कथितं सर्वं रतिसंतापकारणम्[2]। शृङ्गारं शक्तिशिवयोरतुलं शृणु राधिके॥१९॥
शृण्वतां कर्णपीयूषं परमाश्चर्यमीप्सितम्। सर्वसंतापहरणं सुखदं पुण्यदं शुभम्॥२०॥

इन दोनों रति कामदेव ने दिव्यमान वाले १०० वर्ष पर्यन्त रमण किया। इनको रात–दिन की भी सुध–बुध नहीं थी। ये अभी भी रति संयोग से विरत नहीं थे; क्योंकि दोनों ही रतिशास्त्र के विशारद जो थे। रति के मन से अब सुदीर्घकालीन पतिवियोग का दुःख शेष नहीं रह गया था। जिसे अपहृत अथवा खोया हुआ रत्न पुनः मिल गया हो, वह उसे क्षणमात्र के लिये भी नहीं छोड़ता। हे राधा! मैंने तुमसे रति

१. क. ०कटे व०।
२. रतिसन्ताप वारणमिति पाठान्तरम्।

के सन्ताप कारण का वृत्तान्त कह दिया। अब तुम शक्ति-शिव की अतुलित श्रृङ्गार क्रीड़ा का श्रवण करो। यह परमआश्चर्यमय, अभीप्सित वृत्तान्त है। जो सुनने में कानों में अमृतवत लगता है। यह सर्वसंतापहारी, सुखप्रद, पुण्यप्रद तथा शुभ प्रसंग है।।१६-२०।।

वसञ्छ्वशुरगेहे च पार्वत्या सह शङ्करः। तदनुज्ञां समादाय क्रीडार्थं प्रययौ वनम्।।२१।।
रत्नस्यन्दनमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम्। रत्नसारेण खचितं रचितं विश्वकर्मणा।।२२।।
शतशृङ्गे सुवसने[1] मलये गन्धमादने। नन्दने पुष्पभद्रे च पारिभद्रे च भद्रके।।२३।।

पुलिन्दे च कलिन्दे च पुण्ड्रे पिण्डारकेऽन्धके।
वने वनेऽतिरम्ये च सागराणां तटे तटे।।२४।।

निकटेऽस्तगिरेः पार्श्ववटमूले मनोहरे। चकार करुणां यत्र परित्यज्य सती शिवम्।।२५।।
नानास्थानेषु रहसि पशुपक्षिविवर्जिते। यथामनोरर्थगामी स रेमे वामया सह।।२६।।

श्वसुर गृह में कुछ समय रहकर शिव-पार्वती ने श्वसुर की आज्ञा लेकर क्रीडार्थ वन में गमन किया। वे रत्नसारभाग के परिच्छद से युक्त रत्नमय तथा रत्नजड़ित रथ पर बैठकर गये जो विश्वकर्मा रचित था। उन्होंने अपने मनोरथ के अनुसार पशु-पक्षी रहित एकान्त स्थानों की यात्रा करके वहां इच्छित रमण किया। यथा शतशृङ्ग पर्वत, सुवसन पर्वत पर, मलयाचल, गन्धमादन, नन्दनवन, पुष्पभद्र, पारिभद्र, भद्रक, कलिन्द, पुलिन्द, पुण्ड्र, पिण्डारक, अंधक प्रदेश में, नाना रमणीय वनों में, सागर के तटों पर, अस्ताचल पर्वत के पास शक्ति-शिव ने रमण किया। यहां तक कि वटवृक्ष के नीचे जहां उन्होंने सती को त्यागकर करुणस्वर में विलाप किया था, वहां भी शिव ने पार्वती के साथ रमण किया।।२१-२६।।

यत्र यत्र शवं नीत्वा बभ्राम धरणीतलम्। तत्सर्वं दर्शयामास सती शंभुर्मुदाऽन्वितः।।२७।।
कृत्वा विहारं सुचिरं न पूर्णं मानसं तयोः। महाशृङ्गारमारेभे सहस्राब्दं जगत्पिता।।२८।।

जहां-जहां शिव ने सती के शव को लेकर भ्रमण किया था, शंभु ने प्रसन्न मन से वह सब स्थल पार्वती को दिखलाया। इस प्रकार जगत्पिता ने महाशृङ्गारक्रीड़ा के साथ पार्वती के साथ पुनः १००० वर्षों तक रमण किया; क्योंकि यत्र-तत्र दीर्घकाल तक विहार करने से भी उनका मन नहीं भरा था!।।२७-२८।।

मायातीतोऽतिमायेशो मायासक्तः स्वमायया।
न कालं बुबुधे योगी सुखेन कालकारकः।।२९।।

शक्तिशक्तिमतोस्तत्र न बभूव परिश्रमः। जहतोः सर्वसन्तापमन्योन्यविरहोद्भवम्[2]।।३०।।
सुखसंसक्तमनसोः पुलकाञ्चितगात्रयोः। कामबाणमूर्च्छितयोः पुष्पशय्याशयानयोः।।३१।।

१. सुवदने इति पाठान्तरम्।
२. क. ०मसह्यवि०।

जो प्रभु शिव माया से अतीत तथा माया के अधिपति हैं, वे अपनी ही माया द्वारा अपनी माया में आसक्त हो गये। इन महायोगी को जो स्वयं काल के निर्माता हैं, काल के कारण हैं, इस सुखमय क्रीड़ा में दिन-रात का भी भान नहीं रह गया। दीर्घकालीन विरहजनित ताप का त्याग शक्ति तथा शक्तिमान ने अनायास कर दिया। इसमें उनको तनिक भी परिश्रम नहीं करना पड़ा। वे सुख से संसक्त मन से पुलकित अंगों वाले शक्ति-शिव पुष्पशय्या पर लेटे कामबाण से मूर्च्छित प्रायः हो रहे थे।।२९-३१।।

नग्नयोः सुखसंभोगाद्रतिशास्त्रविधिज्ञयोः। नखदन्तप्रहारैश्च क्षतविक्षतदेहयोः।।३२।।
चन्दनागुरुकस्तूरीसिन्धूरबिन्दुलिप्तयोः। निबद्धकेशकबरीश्लथयोश्छिन्नमाल्ययोः।।३३।।

वसनानां नूपुराणां कङ्कणानां च सुन्दरि।
वलयानां कुण्डलानां शब्दैः क्रीडां प्रकुर्वतोः।।३४।।
पुष्पतल्पं दलितयोर्वाष्पोत्कर्षं च बिभ्रतोः।
तेजसा समयोः शश्वत्क्रीडया कौतुकेन च।।३५।।

भारेण विश्वंभरयोर्भाराक्रान्ता वसुंधरा। सा विदीर्णा चकम्पे च सशैलवनसागरा।।३६।।
तयोर्भरभराक्रान्त[१]धरायाश्च भरेण च। भाराक्रान्तो हि शेषश्च तद्भरार्तोऽपि कच्छपः।।३७।।
कच्छपस्य भरेणैव सर्वाधाराः समीरणाः। महाविक्लवयुक्ताश्च सर्वप्राणाश्च स्तम्भिताः।।३८।।

वे शिव-शिवा जो रतिशास्त्र के ज्ञाता थे, इस सुख संभोग में नग्न हो गये। परस्परतः नख-दन्त के प्रहार से उनका शरीर क्षत-विक्षत हो गया था। उनके शरीर पर अंकित चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-सिन्दूर की बिन्दियां इस रतिक्रीड़ा में लिप-सी गई। केशपाश जो बंधा था ढीला हो गया। मालायें छिन्न-भिन्न हो गयीं। हे सुन्दरी! उन दोनों के इस रति क्रीड़ाकाल में उनके वस्त्र, नूपुर, कंगन, वलय तथा कुण्डलों का शब्द होने लगा। वे रतिक्रीड़ा में पुष्पशय्या कुचल रहे थे। वे हांफते हुये अत्यन्त तेजयुक्त तथा क्रीड़ा कौतुक निरत थे। वे इस रतिक्रीड़ा में समान थे। इन विश्व का भरण करने वाले शिव-शिवा के भार से समग्र पृथिवी भाराक्रान्त हो गई। पृथिवी विदीर्ण होने लगी। सभी पर्वत, वन, सागर कम्पित हो उठे। इस भाराक्रान्त पृथिवी के शिव-शक्तियुक्त अतिशय भार के कारण पृथिवी को धारण करने वाले शेष भाराक्रान्त हो गये। अन्ततः शेष को धारण करने वाले कच्छप भी इस वर्द्धित भार से पीड़ित हो गये। कच्छप के भारग्रस्त होने के कारण उनके अतिशय इस भार से सर्वाधार वायु की विकलता के कारण सभी प्राणीगण के प्राण स्तम्भित हो उठे।।३२-३८।।

स्तम्भितेषु समीरेषु त्रिलोका भयविह्वलाः। ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वैकुण्ठं शरणं ययुः।।३९।।
सर्वं निवेदनं चक्रुर्नारायणपदाम्बुजे। नारायणश्च भगवानुवाच कमलोद्भवम्।।४०।।

वायु के स्तम्भन के कारण त्रैलोक्य भयविह्वल हो गया। तब ब्रह्मादि सभी देवता वैकुण्ठ में

१. तयोर्भरतरात्रम्र इति पाठान्तरम्।

नारायण की शरण में गये। वहां सबने जाकर नारायण के चरणकमल में इस सङ्कट को कहा। तब कमलोद्भव ब्रह्मा से भगवान् नारायण ने कहा—।।३९-४०।।

नारायण उवाच

शृङ्गारभङ्गसमयो भविता नाधुना विधे। कालप्रयुक्तं कार्यं च सिद्धं तत्समयौचितम्।।४१।।
पूर्णे वर्षसहस्त्रे च स्वेच्छया विरमिष्यति। शंभोः संभोगमिष्टं च को भेदं कर्तुमीश्वरः।।४२।।
स्त्रीपुंसो रतिविच्छेदमुपायेन करोति यः। तस्य स्त्रीपुंसयोर्भेदो भवेज्जन्मनि जन्मनि।।४३।।
यात्यन्ते कालसूत्रे च वर्षलक्षं स पातकी। भ्रष्टज्ञानो नष्टकीर्तिरलक्ष्मीको भवेदिह।।४४।।

भगवान् नारायण कहते हैं—हे विधाता! अभी शिव का सम्भोग शृङ्गार भंग करने का समय नहीं हो सका है। कार्यमात्र यथाकाल आरम्भ करने से ही यथाकाल सिद्ध होता है। एक सहस्त्र वर्ष पूर्ण होते ही शङ्कर इस संभोगक्रीड़ा से विरत हो जायेंगे। इस समय शंभु के इस अभिलषित संभोग को कोई भी भंग नहीं कर सकता। इसमें कोई भी समर्थ नहीं है। जो व्यक्ति किसी भी उपाय से स्त्री-पुरुष के बीच हो रहे रति कार्य को भंग कर देता है, प्रत्येक जन्म में ही उसे स्त्री-पुत्र का विच्छेद भोगना पड़ता है। वह पातकी इस जन्म में ज्ञान-कीर्त्ति तथा लक्ष्मी से भ्रष्ट होकर अन्त में एक लाख वर्ष पर्यन्त कालसूत्र नरक में क्लेश भोगने के लिये रखा जाता है।।४१-४४।।

रम्भायुक्तं शक्रमिमं चकार विरतं रतौ। महामुनीन्द्रो दुर्वासास्तत्स्त्रीभेदो बभूव ह।।४५।।
पुनरन्यां स[१] सम्प्राप्य निषेव्य शूलपाणिनम्। दिव्यवर्षसहस्त्रं च विजहौ विरहज्वरम्।।४६।।
[२]रोहिणीसहितं चन्द्रं चकार विरतं रतौ। महर्षिगौतमस्तस्य स्त्रीविच्छेदो बभूव ह।।४७।।
पुनः शिवं समाराध्य प्राप्याहल्यां च पुष्करे। दिव्यवर्षसहस्त्रं च विजहौ विरहज्वरम्।।४८।।

पूर्वकाल में रम्भा तथा इन्द्र की रतिक्रीड़ा को महामुनि दुर्वासा ने भंग कर दिया था अतः उनको स्त्री वियोग सहना पड़ा। तदनन्तर मुनि ने १००० दिव्य वर्षों तक शिवाराधना द्वारा अन्य पत्नी को प्राप्त किया, जिससे उनका विरह ज्वर दूरीभूत हो गया। गौतम ऋषि ने पूर्वकाल में चन्द्रमा तथा रोहिणी की रति में व्यवधान करके उसे भग्न किया था। फलस्वरूप गौतम को अपनी पत्नी अहल्या का विरह दीर्घकाल तक सहना पड़ा। तदनन्तर पुष्करतीर्थ में गौतम ने शिवाराधन द्वारा पुनः अहल्या को प्राप्त किया था। गौतम ने इस उद्देश्य से १००० दिव्य वर्षों तक तप किया था। तभी उनका विरहज्वर (वियोग कष्ट) दूर हो सका था!।।४५-४८।।

मुनिः स्वभार्यासंसक्ते दिवसे निर्जने वने। ब्रह्माण्डकसुतं नीत्वा चकार विरतं रुषा।।४९।।

बभूव पुत्रविच्छेदस्तस्य कल्पान्तरे पुनः।
शिवं निषेव्य सम्प्राप्य पुत्रं तत्याज विक्लवम्।।५०।।

१. पुनरन्यामिति पाठो बहुषु पुस्तकेषु दृश्यते।
२. क. घृताच्या सह संश्लिष्टं कामं वारितवानुरुः। षण्मासाभ्यन्तरे च।

ब्रह्माण्डक ऋषि ने निर्जन वन में दिवाकाल में अपने पुत्र को पत्नी से सम्भोग रत देखकर क्रोध से भरकर उसे संभोग से विरत कर दिया था। इसके पापफल स्वरूप उनको पुत्र विच्छेद हो गया। उन्होंने कल्पान्तर में पुनः शिवार्चन करके पुत्र प्राप्त किया तथा उनकी विकलता दूर हो गई।।४९-५०।।

हरिश्चन्द्रो हालिकं च वृषल्या सह संयुतम्। वारयामास निश्श्रेष्टं निर्जने तत्फलं शृणु।।५१।।
भ्रष्टं श्रीराज्यवित्तेभ्यस्तं चकारावलीलया। विश्वामित्रो महर्षिश्च ताडयामास तं पुरा।।५२।।

ततः शिवं समाराध्य दातारं सर्वसम्पदाम्।
सद्यो जगाम वैकुण्ठं सगणो मम मन्दिरम्।।५३।।

हरिश्चन्द्र ने हलवाहे को निर्जन वन में वृषली स्त्री से रति करने से रोक दिया था। इससे कालान्तर में उनका पुत्र विच्छेद हो गया। इसके फलस्वरूप महर्षि विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को स्त्री-पुत्र रहित तथा राज्य से भ्रष्ट कर दिया। तदनन्तर हरिश्चन्द्र ने सर्व सम्पत्ति प्रदाता भगवान् शिव की अर्चना करके आत्मीयवर्ग के साथ मेरे धाम वैकुण्ठ को प्राप्त कर लिया।।५१-५३।।

अजामिलं द्विजश्रेष्ठं वृषल्या सह संयुतम्।
न भिया वारयामासुः सुरास्तं चापि केचन।।५४।।
निष्पन्ने कर्मभोगे च स मद्भक्तो मुमोच ह।
मन्नामस्मृतिमात्रेण चाऽऽजगाम ममाऽऽलयम्।।५५।।

सर्वं निषेकसाध्यं च निषेको बलवान्विधे। निषेकफलदाताऽहं निषेकः केन वार्यते।।५६।।
दिव्यं वर्षसहस्त्रं च शम्भोः संभोगकर्म तत्। निषेकफलदातुस्तु निषेकफलसञ्चयम्।।५७।।
पूर्णे वर्षसहस्त्रे च गत्वा तत्र सुरेश्वरः। येन वीर्यं पतेद्भूमौ तत्करिष्यति निश्चितम्।।५८।।

तत्र वीर्ये च भविता स्कन्दको भक्ततारकः।
सदा भद्रस्वरूपोऽहं भयं किं वो मयि स्थिते[1]।।५९।।

अधुनां त्वं गृहं गच्छ भगवन्स्वगणैः सह। करोतु शम्भुः संभोगं पार्वत्या सह निर्जने।।६०।।

द्विजप्रवर अजामिल वृषली नारी के साथ समागम करते थे। उनको किसी भी देवता का भय इस कार्य से नहीं रोक सका। जब भक्त अजामिल का कर्मभोग समाप्त हो गया, तब अजामिल उस वृषली को त्यागकर मेरे नाम का एक बार स्मरण करने मात्र से मेरे धाम आ गया। हे विधाता! समस्त कार्य शुभशुभ कर्मों का ही परिणाम है। कर्मों का फलदाता मैं हूं। उसे कौन निवारित कर सकता है? हे ब्रह्मन्! शंभु का यह संभोग कार्य सहस्त्रदिव्य वर्षों तक चलेगा। एक सहस्त्र वर्ष पूर्ण होने पर देवेन्द्र इन्द्र ऐसा उपाय करें कि शिव-वीर्य भूमि पर ही गिरे। इस वीर्य से स्कन्द की उत्पत्ति होगी जो भक्तों का उद्धार करने वाले हैं। मैं सदा आप लोगों के लिये मंगल स्वरूप हूं। मेरे विद्यमान रहते आप लोगों को

१. भयं नास्ति मयि स्थिते इति पाठान्तरम्।

कोई भी भय नहीं है। अब आप देवताओं के सहित अपने-अपने स्थान पर जाईये। भगवान् शंभु यहां देवी पार्वती के साथ संभोग सुख का अनुभव करें।।५४-६०।।

इत्युक्त्वा कमलाकान्तः शीघ्रं स्वान्तः पुरं ययौ।
स्वालयं प्रययुर्देवाः शिवः स्वस्थो रतौ रतः।।६१।।

यह कहकर प्रभु कमलाकान्त शीघ्रता से अपने अन्तःपुर में चले गये। देवगण भी अपने-अपने घर चले गये। शिव भी स्वस्थता तथा आनन्द पूर्वक देवी के साथ रतिक्रीड़ा में निरत हो गये।।६१।।

नारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिकां कृष्णः सकटाक्षां च सस्मिताम्।
जगाम चन्दनवनं[1] निर्जने च तया सह।।६२।।

अतीव निर्जनं रम्यं वायुना सुरभीकृतम्। पुष्पोद्यानैः समाकीर्णं तत्र क्रीडां चकार ह।।६३।।
पुष्पतल्पसमाकीर्णे परपुष्टरुतश्रुते। भ्रमरध्वनिसंयुक्ते कामिनीनां मनोहरे।।६४।।

कृष्णसंभोगमात्रेण सुखसम्मूर्च्छिता च सा।
अतीव मूर्च्छितः कृष्णो राधाङ्गस्पर्शमात्रतः।।६५।।

तस्थतुस्तत्र संयुक्तौ राधारासेश्वरौ मुने। अतीव रतिनिश्चेष्टौ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।६६।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं-श्रीकृष्ण ने बांकी चितवन से मुस्कराती राधा से यह कहा। तदनन्तर श्रीकृष्ण राधा को लेकर निर्जन, रम्य, सुरभित वायु से सुशीतल, पुष्पोद्यान युक्त कोकिल की कूजन तथा भ्रमरों की ध्वनि से पूर्ण स्थान में चले गये जो कामिनी नारियों के लिये अत्यन्त मनोहर था। यहां पर श्रीकृष्ण ने पुष्पशय्या पर राधिका के सहित रतिक्रीड़ा का प्रारम्भ कर दिया। राधा यहां पर कृष्ण के संभोग सुख मात्र से सुधबुध खो बैठी। उधर कृष्ण भी राधा के अंगों के स्पर्श मात्र से अत्यन्त विभोर तथा मूर्च्छित हो उठे। हे मुनि नारद! वहां राधा तथा रासेश्वर कृष्ण इस संयुक्त स्थिति में रतिक्रीड़ारत होकर अत्यन्त निश्चेष्ट हो गये। अब तुम क्या सुनना चाहते हो?।।६२-६६।।

इत्येवं मङ्गलं कर्म यः शृणोति समाहितः। कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य नारद।।६७।।

महाशोकार्णवे मग्नो भेदे पुत्रकलत्रयोः।
मद्भृत्यानां च बन्धूनां मासं श्रुत्वा लभेद्ध्रुवम्।।६८।।

हे नारद! इस मंगल कर्म प्रसंग को जो समाहित होकर सुनता है, उसे कदापि बन्धु विच्छेद नहीं होता। वह महाशोक-सागर में डूब जाने की स्थिति में, पुत्र-पत्नी-भृत्य-बन्धुगण से मतभेद होने की स्थिति में इस प्रसंग का एक मास श्रवण करे (किंवा पाठ करे), उसे वांछित फल की अवश्य प्राप्ति होगी, यह निश्चित है।।६७-६८।।

---

१. नन्दनवन मिति पाठः क्वचित्कः।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा धर्मपुत्रश्च विरराम महामुनिः। पुनः सम्प्रष्टुमारेभे देवर्षिः कौतुकान्वितः।।६९।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मङ्गलवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४६।।

सूत जी कहते हैं—यह कहकर महामुनि धर्मनन्दन नारायण मौन हो गये। तब कौतुकान्वित देवर्षि नारद ने उनसे पुनः प्रश्न किया।।६९।।

।।४६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्र के दर्प का भंग

नारद उवाच

अथ क्रीडान्तरे राधा किं पप्रच्छ हरिं विभुम्।
कां कथां कथयामास कथ्यतां करुणानिधे।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे करुणानिधि! इस रतिक्रीड़ा का अवसान होने पर राधा ने हरि से क्या पूछा? हरि ने उनसे कौन-सी कथा कहा? वह कृपया कहिये।।१।।

नारायण उवाच

उत्थाय सुखसंभोगाद्राधां कृत्वा पुरो हरिः। उवास मलयद्रोणीं वटमूले मनोहरे।।२।।
राधा तं परिपप्रच्छ सस्मितं सुमनोहरम्। दर्पभङ्गं वज्रभृतो निगूढं श्रुतिसुन्दरम्।।३।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—तदनन्तर श्रीहरि सुखसंभोग से उत्थित होकर (निवृत्त होकर) राधा के साथ मलयगिरि घाटी में आकर मनोहर वटवृक्ष के नीचे बैठ गये! उस समय राधिका ने मनोहर मन्द मुस्कान के साथ सुनने में मधुर वज्रपाणि इन्द्र के दर्पभंग का प्रसंग श्रीकृष्ण से पूछा। यह प्रसंग अत्यन्त गुप्त था।।२-३।।

राधिकोवाच

श्रुतं यशः शूलभृतो दर्पभङ्गश्च दैवतः। पार्वत्या दर्पभङ्गश्च विवाहश्च तयोरहो।।४।।
अधुना श्रोतुमिच्छामि दर्पभङ्गं हरेर्हरिः। शेषाणां च क्रमेणैव वद व्यस्य जगद्गुरो।।५।।

देवी राधिका कहती हैं–हे हरि! जगद्गुरु! आपने शूलपाणि त्रिलोचन देव के यश का तथा दैववश इनके तथा पार्वती के दर्पभंग के साथ-साथ इनके विवाह का भी प्रसंग मुझे सुना दिया। हे हरि! अब इन्द्र का दर्पभंग सुनने की कामना है। हे जगद्गुरु! आप क्रमशः अन्य लोगों के भी दर्पभङ्ग का विषय विस्तार पूर्वक कहिये।।४-५।।

श्रीकृष्ण उवाच

दर्पभङ्गं सुरपतेस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। कर्णपीयूषमतुलं सुन्दरं शृणु सुन्दरि॥६॥
पुरा शतमखो दर्पात्कृत्वा शतमखान्मुदा। बभूव सर्वदेवानामध्यक्षः सम्पदा युतः॥७॥
दिने दिने तदैश्वर्यं वर्धते तपसां फलात्। दीक्षां तं कारयामास सिद्धमन्त्रं बृहस्पतिः॥८॥
स जजाप महामन्त्रं पुष्करे शतवत्सरम्। बभूव मन्त्रसिद्धश्च परिपूर्णमनोरथः॥९॥
ब्रह्मस्वरूपां प्रकृतिं सम्पन्मूढो[१] न मन्यते।
सा तं शशाप स्वगुरोः शापं लेभेऽतिकोपतः॥१०॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–सुरपति इन्द्र का दर्पभङ्ग तो त्रैलोक्य में विख्यात है। मैं इसे कहता हूं, श्रवण करो। यह कानों के लिये अमृत स्वरूप तथा अतिशय मनोहर है। पूर्व में इन्द्र ने दर्प पूर्वक आनन्द के साथ १०० यज्ञ किया, जिसके फलस्वरूप वे सर्वसम्पदायुक्त तथा सभी देवगण के अध्यक्ष हो गये थे। तदनन्तर तपस्या के फलस्वरूप उनका ऐश्वर्य दिनों-दिन वर्द्धित होने लगा। उनको बृहस्पति ने सिद्धमन्त्र से दीक्षित भी किया था। तदनन्तर पुष्कर तीर्थ में उन्होंने १०० वर्षों तक उस महामन्त्र का जप किया था, जिसके फलस्वरूप महासिद्धिलाभ हो जाने के कारण इन्द्र के सभी मनोरथ परिपूर्ण हो गये। तदनन्तर इन्द्र ने सम्पदा के मद में मत्त होकर ब्रह्मस्वरूपा देवी प्रकृति का अनादर किया था। तब प्रकृति देवी ने उनको शाप दिया था कि "तुम गुरु द्वारा शाप प्राप्त करोगे।"।।६-१०।।

एकदा प्रकृतेः शापाद्धतबुद्धि स्वसंसदि। गुरुं दृष्ट्वा समुत्थाय न ननाम मदान्वितः॥११॥
बृहस्पतिस्ततः कोपान्नोवास गृहमाययौ। न तस्थौ तारकाभ्याशे तपसे काननं ययौ॥१२॥

अतः इन्द्र की बुद्धि प्रकृति के शाप से नष्ट हो गई जिसके परिणाम स्वरूप इन्द्र अपनी सभा में समागत बृहस्पति को देखकर भी मदमत्त होने के कारण अपना आसन छोड़कर नहीं उठे तथा गुरु को प्रणाम भी नहीं किया। इससे बृहस्पति कुपित हो गये। वे वहां सभा में नहीं रुके। यहां तक कि वे पत्नी तारा के पास बिना आये सीधे तप हेतु वन में चले गये।११-१२।।

उवाच मनसा दीनो यातु सम्पद्धरेरिति। अथ शक्रो मतिं प्राप्य क्व गतोऽतो मदीश्वरः॥१३॥
इत्युक्त्वा वेगतः पीठाज्जगाम तारकान्तिकम्।
प्रणम्य मातरं भक्त्या नतस्कन्धः पुटाञ्जलिः॥१४॥

---

१. सम्पन्मन्तो इति पाठः क्वचिद्दृश्यते।

सर्वं निवेदनं कृत्वा रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः। पुत्रस्य रोदनं दृष्ट्वा रुरोद तारका भृशम्॥१५॥

उन्होंने वन में आकर मन ही मन दुःखित स्थिति में यह कामना किया कि "इन्द्र की सम्पदा नष्ट हो जाये।" कुछ समय के उपरान्त जब इन्द्र की सुमति जाग्रत हो गई तब वे अत्यन्त वेग पूर्वक सिंहासन से उठे तथा कहा—"मेरे गुरुदेव कहां चले गये।" वे तत्काल गुरुपत्नी तारा के पास गये। वहां उन्होंने देवी तारा को भक्तिभाव से झुककर प्रणामं किया तदनन्तर करवद्ध होकर देवी तारा से सभी वृत्तान्त को कहकर बारम्बार रुदन करने लगे! पुत्र इन्द्र को विलाप करते देखकर देवी तारा भी रुदनरत हो गईं॥१३-१५॥

वत्स गच्छ गृहं नैव गुरुं द्रक्ष्यसि साम्प्रतम्।
दुर्दिनान्ते गुरुं प्राप्य पुनर्लक्ष्मीमवाप्स्यसि॥१६॥

अधुना कर्मणां भोगं भुङ्क्ष्व मूढ दुराशय। दुर्दिने स्वगुरो[1] रोषः सुदिने परितोषणम्॥१७॥

उन्होंने कहा—"हे वत्स इन्द्र! अभी तुमको गुरु का दर्शन नहीं होगा। दुर्दिन का अन्त होने पर तुमको पुनः गुरु की प्राप्ति होगी तथा पुनः लक्ष्मी प्राप्त होगी। हे दुष्टबुद्धि मूर्ख! अब तुम स्वकृत कर्म का फलभोग करो! यह दुर्दिन का समय है, इसमें गुरु का रोष तुमको मिला। सुदिन आने पर गुरु की सन्तुष्टि तुमको मिलेगी॥१६-१७॥

सुदिनं दुर्दिनं शक्र कारणं सुखदुःखयोः। इत्युक्त्वा तारका देवी विरराम पतिव्रता॥१८॥

"हे देवेन्द्र! शक्र! सुदिन तथा दुर्दिन ही सुख-दुःख के कारण कहे गये हैं।" यह कहकर पतिव्रता तारा मौन हो गई॥१८॥

जगाम शक्रः स्नानार्थं स्वर्णदीं सुमनोहराम्।
ददर्श तत्र रुचिरां मार्जन्तीं च नितम्बिनीम्॥१९॥
सस्मितां सकटाक्षां तामहल्यां गौतमप्रियाम्।
दृष्ट्वा च विपुलश्रोणीं स्तनयुग्मं मनोहरम्॥२०॥
स तस्याः शक्रः संपश्यन्मुमोह काममोहितः।
पुनः स चेतनां प्राप्य विहाय स्नानमीश्वरि॥२१॥
मूर्तिं विधाय तद्भर्तुस्तत्समीपं जगाम ह।
गत्वा तु स्निग्धवस्त्रां तां समाकृष्य स्मरातुरः॥२२॥

चकार विविधं तत्र शृङ्गारं सुमनोहरम्। मूर्च्छां सम्प्राप कामेन तन्द्रां च मुनिकामिनी॥२३॥
निश्चेष्टा सुखसंभोगान्निश्चेष्टस्त्रिदशाधिपः। एतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा समागत्य मुनीश्वरः॥२४॥

तदनन्तर इन्द्र स्नानार्थ मनोहर स्वर्णनदी (मन्दाकिनी) में गये जहां स्नान करती अमित सुन्दरी

१. ख. गुरौ दोषः।

गौतम पत्नी अहल्या को देखा जो बांकी चितवन वाली तथा मन्द मुस्कान वाली थीं। उन विशाल नितम्बों वाली तथा मनोहर स्तनद्वय से शोभायमान अहल्या को देखकर काममोहित इन्द्र हतचेतन हो गये। चैतन्यता प्राप्त होते ही स्नान करना छोड़कर इन्द्र ने अहल्या के पति गौतममुनि का रूप धारण किया तथा अहल्या के समीप आये। उन्होंने कामातुर होकर अहल्या को अपनी ओर खींचा जो आर्द्रवस्त्र पहने थीं। अब इन्द्र ने मुनिपत्नी अहल्या के साथ अत्यन्त मनोहर तथा अनेक प्रकार का संभोग किया। मुनिपत्नी इस संभोग को प्राप्त कर कामवशात् सुध-बुध को बैठीं! इन्द्र तथा अहल्या दोनों ही इस सुखसंभोग में विभोर होकर निश्चेष्ट से हो गये। तभी वहां तप से तप्त मुनीश्वर गौतम भी आ गये!।।१९-२४।।

ददर्श गेहे मिथुनं मैथुने च रतं प्रिये। दृष्ट्वा चुकोप स मुनिर्ज्वलन्निव हुताशनः॥२५॥
विज्ञानेनातिरोषेण बभञ्ज सुरतिक्षणम्। शक्रः स चेतनां प्राप्य दृष्ट्वा च मुनिपुङ्गवम्॥२६॥

हे प्रिये राधिके! वहां समागत मुनि ने गृह में इस इन्द्र-अहल्या के जोड़े को मैथुनरत देखा। यह देखकर मुनि का क्रोध ज्वलन्त अग्नि जैसा भड़क उठा। उन्होंने वास्तविकता को अपने विशिष्ट (अन्तर्ज्ञान) ज्ञान से जानकर क्षणमात्र में इन दोनों की रतिक्रीड़ा को भग्न कर दिया। तभी इन्द्र ने चेतना प्राप्त होते ही उन मुनिप्रवर गौतम को देखा।।२५-२६।।

कालस्वरूपं त्रासेन[1] दधार चरणाम्बुजम्। कोपरक्तास्यनयनो देवं पादानतं भिया।
उवाच नीतिवचनं गौतमः शरणागतम्॥२७॥

उन कालरूप मुनि का स्वरूप देखकर इन्द्र त्रस्त होकर उनके चरणकमलों पर गिर पड़े। तब क्रोध से आरक्तनयन वाले गौतम ऋषि ने अपने पैरों पर गिरे भयभीत शरणागत इन्द्र से नीतिपूर्ण वचन कहा-।।२७।।

गौतम उवाच

धिक् स्वामिन्द्र सुरश्रेष्ठ कश्यपात्मज पण्डित॥२८॥
प्रपौत्र जगतां स्त्रष्टुर्बुद्धिस्ते कथमीदृशी। मातामहः स्वयं दक्षोऽदितिर्माता पतिव्रता॥२९॥
कर्मसाध्यः स्वभावश्च कुलधर्मं प्रबाधते।
वेदं विज्ञाय ज्ञानी त्वं योनिलुब्धोऽसि कर्मणा॥३०॥
योनीनां च सहस्त्रं च तव गात्रे भवत्विह। पूर्णवर्षं च सततं योनिगन्धं त्वमाप्नुहि॥३१॥
ततः सूर्यं समाराध्य योनिश्चक्षुर्भविष्यति। मम प्राणेश्वरी दुष्टा येन मूढ त्वया कृता॥३२॥
मच्छापेन गुरोः कोपाद्भ्रष्टश्रीर्भव साम्प्रतम्। गुरोरपेक्षया मूढ प्राणा नापहृतास्तव॥३३॥
तेजस्विनोऽतिबन्धोर्मे बन्धुभेदभिया सुर।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेन्द्र गच्छ वत्स स्वमन्दिरम्॥३४॥

१. रोषेण इति पाठान्तरम्।

शुभाशुभं च यत्किंचित्सर्वं कर्मोद्भवं भवेत्।
महामुनीन्द्रवचनाद्गतः शक्रश्च पुष्करम्॥३५॥

महर्षि गौतम कहते हैं–हे कश्यपात्मज! तुमको धिक्कार है। हे इन्द्र! तुम देवगण में श्रेष्ठ, पण्डित, ब्रह्मा के प्रपौत्र तथा कश्यप के पुत्र हो, तथापि तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों है? तुम्हारे नाना साक्षात् दक्ष हैं। अदिति जैसी पतिव्रता तुम्हारी माता हैं। अतः यह स्पष्ट है कि स्वभाव कर्मसाध्य है। वह कुलधर्म की अपेक्षा नहीं करता। तुम वेदज्ञ तथा ज्ञानी होकर भी अपने कर्मानुसार योनि के लोभी हो। अतः तुम्हारे शरीर में १००० योनि हो जाये। तुम १ वर्ष पर्यन्त निरन्तर योनिगन्ध का अनुभव करोगे। तदनन्तर सूर्याराधना से यह सभी १००० योनियां १००० नेत्ररूप में परिणत हो जायेंगी। हे मूढ! तुमने मेरी प्राणेश्वरी पत्नी को दूषित किया है। अतः तुम इसी समय अपने गुरु बृहस्पति के कोप के कारण मेरे शाप से श्रीभ्रष्ट हो जाओ। मैंने अपने परबन्धु अमित तेजस्वी गुरु बृहस्पति के कारण तुम्हारे प्राणों का इस लिये हरण नहीं किया; क्योंकि ऐसा करने पर बृहस्पति के साथ मेरा विग्रह (फूट) होने का भय मुझे है। हे वत्स देवेन्द्र! उठो तथा अपने गृह जाओ। सभी प्रकार का शुभ तथा अशुभ कर्म से ही होता है।" महामुनि गौतम का यह वचन सुनकर इन्द्र पुष्करतीर्थ गये।।२८-३५।।

चकाराऽऽराधनं भक्त्या [१]नैष्कृत्यं च चकार ह।
पादानता महल्यां तामुवाच मुनिपुङ्गवः॥३६॥
वनं गत्वा चिरं तिष्ठ विधाय मूर्तिमश्मनः।
अकामो चकमे शक्रः सर्वं जानाम्यहं प्रिये॥३७॥
तथा च (ऽपि) परभोग्या मे न च भोग्या व्रजाधमे।
परवीर्यं यदुदरे कामतोऽकामतोऽपि वा॥३८॥
अहल्ये याति दैवेन तदुपायं निशामय। अकामतो न दुष्टा सा प्रायश्चित्तेन शुध्यति॥३९॥

वहां इन्द्र ने भक्तिभाव से आराधना करके इस पातक का प्रायश्चित्त किया। उधर मुनिप्रवर गौतम ने अपने चरणों पर गिरी अहल्या से भी कहा कि–"हे अहल्या! तुम वन में जाकर पाषाणमूर्त्ति होकर दीर्घकाल तक पड़ी रहोगी। हे प्रिये! मैं यह जान गया हूं कि तुम्हारी इच्छा बिना ही इन्द्र ने तुम्हारा उपभोग किया था, तथापि पराये उपभोग के कारण तुम अधम हो गई तथा अब मेरी भोग्या नहीं रही। हे अहल्या! स्त्री की सहमति रहे अथवा न रहे, यदि दैवात् उसके उदर में पराये व्यक्ति का वीर्य चला जाये, तब उसका शुद्धि उपाय कहता हूं। ऐसी स्त्री का उपभोग उसकी इच्छा से नहीं किया गया, अतः वह सर्वथा दूषित नहीं होतीं। वह प्रायश्चित्त से शुद्धिलाभ कर लेती है।।३६-३९।।

कामभोगेन त्याज्या सा कर्मभोगेन शुष्यति।
पितृपाके दैवपाके पूजायां नाधिकारिणी॥४०॥

१. क. नैरुज्यं च।

षष्टिवर्षसहस्त्राणि कालसूत्रं प्रयाति सा। षष्टिवर्षसहस्त्राणि क्षयं कृत्वा स्वकर्मणः॥४१॥

तथापि जो अपनी इच्छा से परपुरुष का उपभोग करती है, उसका त्याग कर दे। वह कर्म का भोग करके शुद्ध होती है। ऐसी परभोग्या नारी पितृगण तथा देवगण के लिये अन्नपाक की अधिकारी नहीं रहती। वह पूजा की भी अधिकारी नहीं रह जाती। उसे ६०००० वर्ष पर्यन्त कालसूत्र नामक नरक में रहना पड़ता है। वही अपने कर्म का वह भोग करती है।।४०-४१।।

स्वामिनो वचनात्सा तु प्रणम्य स्वामिनं भिया।
नाथ नाथेति कुर्वन्ती रुदन्ती वनमाप सा॥४२॥

षष्टिवर्षसहस्त्राणि भुक्त्वा भोगं मुनिप्रिया।श्रीरामचरणस्पर्शात्सद्यः श्रद्धा बभूव ह॥४३॥

त्रैलोक्यमोहनं रूपं विधाय मुनिकामिनी।
जगाम गौतमाभ्याशं मुनिः सम्प्राप्य (प) सुन्दरीम्॥४४॥

अहल्या ने स्वामी का वचन सुनकर उनको प्रणाम किया तथा हा नाथ! हा नाथ! कहती वन में चली गई। उस मुनिपत्नी ने वहां ६०००० वर्षों तक कर्मभोग भोगा तथा कालान्तर में श्रीराम का चरण स्पर्श होते ही वह तत्काल शुद्ध हो गई। उस मुनिपत्नी ने पुनः अपना त्रैलोक्य मोहक रूप प्राप्त किया। तब वह पुनः गौतम के पास आई जिन्होंने उसे तत्काल स्वीकार कर लिया।।४२-४४।।

अथ शक्रस्य वृत्तान्तं परमं शृणु सुन्दरि। पापघ्नं पुण्यबीजं तत्संव्यस्य कथयामि ते॥४५॥

हे सुन्दरी! अब मैं इन्द्र का अन्य परमश्रेष्ठ वृत्तान्त कह रहा हूं, जो पुण्यबीजरूप, पापनाशक तथा श्रोतव्य है।।४५।।

एकदा च गुरोः कोपात्प्रकृतेरवहेलनात्। ब्रह्महत्या वज्रभृतो बभूव हतचेतसः॥४६॥
शक्रस्त्यक्तगुरुर्दैवग्रस्तो दैत्यनिपीडितः। जगाम शरणं भीतो ब्रह्माणं जगतां गुरुम्॥४७॥

एक बार देवी प्रकृति की उपेक्षा से तथा गुरु के कोप के कारण हतचेतन इन्द्र से ब्रह्महत्या हो गई। गुरु से त्यागे गये, दुर्दैव से ग्रस्त, दैत्यपीड़ित, भयभीत इन्द्र जगद्गुरु ब्रह्मा की शरण में गये।।४६-४७।।

तदाज्ञया विश्वरूपं चकार च पुरोहितम्। बभूव तत्र विश्वस्तो दैवाद्बुद्धिहतो हरिः॥४८॥

दैत्यदौहित्रस्य भावं विज्ञाय च विचक्षणः।
प्रचिच्छेद शिरस्तस्य तीक्ष्णबाणेन लीलया॥४९॥
विश्वरूपपिता त्वष्टा श्रुत्वा सद्यश्चुकोप ह।
इन्द्रशत्रो[1] विवर्धस्वेत्युक्त्वा यज्ञं चकार ह॥५०॥

यज्ञकुण्डात्समुत्तस्थौ वृत्रो नाम महासुरः। चकार निग्रहं कोपाद्देवानामवलीलया॥५१॥

---

१. क. ०शत्रुर्वर्धतामित्यु०।

शक्रो महामुनेरस्थ्नां वज्रं कृत्वा सुदारुणम्। जघान वृत्रं देवानां कण्टकं दैत्यमर्दनः॥५२॥

ब्रह्मा की आज्ञा से इन्द्र ने विश्वरूप को पुरोहित बनाकर यज्ञारंभ किया, परन्तु दैवात् बुद्धिनाश हो जाने के कारण इन्द्र ने विश्वरूप पर पूर्ण विश्वास कर लिया था। कुछ दिन व्यतीत होने पर विद्वान् चतुर इन्द्र ने दैत्यों के दौहित्र पुरोहित विश्वरूप का दुष्ट अभिप्राय जानकर तत्काल विश्वरूप के शिर का उच्छेद तीक्ष्ण बाण से कर दिया। यह संवाद पाकर उनके पिता त्वष्टा ने क्रोध पूर्वक एक यज्ञ यह कहकर दिया–"हे इन्द्रशत्रु! तुम वृद्धिलाभ करो!" तभी उस यज्ञकुण्ड से वृत्त नामधारी महाअसुर प्रकट हो गया। उसने खेल-खेल में देवगण पर अधिकार स्थापित कर दिया था, तथापि दैत्यनाशक इन्द्र ने दधीचि की अस्थियों से निर्मित अत्यन्त दारुण वज्र से देवों के कण्टकरूप वृत्रासुर का संहार कर दिया॥४८-५२॥

ब्रह्महत्या शुनासीरं दुद्राव हतचेतनम्। रक्तवस्त्रपरीधाना [१]वृद्धस्त्रीवेषधारिणी॥५३॥
सप्ततालप्रमाणा सा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका। ईषाप्रमाणदशना महाभीतं चकार तम्॥५४॥

धावन्तं परि (मनु) धावन्ती बलिष्ठा हतचेतनम्।
खड्गहस्ता दयाहीना वेगेन परिधावति॥५५॥
इन्द्रो दृष्ट्वा च तां घोरां स्मारं स्मारं गुरोः पदम्।
विवेश मानससरो मृणालसूक्ष्मसूत्रतः॥५६॥
तत्र गन्तुं न शक्ता सा ब्रह्मणः शापकारणात्।
सा तस्थौ वटशाखायां सरसस्तटसन्निधौ॥५७॥

तथापि रक्तवस्त्रधारिणी, वृद्ध स्त्री वेष वाली, ब्रह्महत्या हतबुद्धि इन्द्र के पीछे लग गयी। उसका शरीर सात ताल वृक्षों के इतना ऊंचा था। उसकी दन्तपंक्ति हल के लौह फाल की तरह भयानक थीं। उसे देखकर प्रतीत होता था कि उसके कण्ठ-ओठ-तालु शुष्क हैं। वह खड्गधारिणी, दयाहीना, बली ब्रह्महत्या भीत-कातर-अस्त्रहीन इन्द्र के पीछे दौड़ने लगी। इन्द्र ने जब ऐसी ब्रह्महत्या को देखा, तब वे गुरु के चरणकमल का स्मरण करके कमलनाल के सूक्ष्म सूत्र के द्वारा मानसरोवर में छिप गये। वहां ब्रह्महत्या ब्रह्मशाप के कारण प्रविष्ट न हो सकने के कारण उस सरोवर के तट पर स्थित वटवृक्ष की शाखा पर स्थित हो गई॥५३-५७॥

अथात्र नहुषो भूपस्त्रिलोकेशो बभूव ह। स ययाचे शचीं देवान्बलिष्ठो दुर्बलानपि॥५८॥

शची श्रुत्वा महाभीता तारकां शरणं ययौ।
तारा निर्भर्त्स्य स्वपतिं भृत्यपत्नी ररक्ष च॥५९॥

शचीमाश्वास्य स गुरुजगाम तत्सरो मुदा। आजुहाव शुनासीरं कातरं हतचेतनम्॥६०॥

उधर बलिष्ठ राजा नहुष (इन्द्र की अविद्यमानता में) त्रैलोक्याधीश्वर इन्द्र बनाये गये। उनसे

१. ख. स्त्री०।

सभी देवता दुर्बल थे। उन्होंने इन्द्रपद पाकर देवगण से कहा—"इन्द्राणी शची मेरी सेवा हेतु आयें।" महाभीता शची यह सुनकर तारा के पास आईं। तारा ने बृहस्पति की भर्त्सना करके उनसे कहा कि "आप अपने भृत्य इन्द्र की पत्नी की नहुष से रक्षा करिये।" तब गुरु ने शची को आश्वस्त किया। वे हर्षित होकर हतचेतन तथा दुःखकातर इन्द्र के पास जाकर कहने लगे।५८-६०।।

बृहस्पतिरुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हे वत्स भयं किं ते मयि स्थिते। त्वदीश्वरं स्वरेणैव निशामयभयं त्यज।।६१।।

गुरु बृहस्पति कहते हैं—हे वत्स! उठो! मेरे विद्यमान रहते तुमको क्या भय! मैं तुम्हारा गुरु हूं। मेरे कण्ठस्वर से मुझे पहचानो। निर्भयता के साथ आगमन करो।।६१।।

स्वरं बृहस्पतेर्ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो हरिः। सूक्ष्मरूपं परित्यज्य स्वरूपं च दधार सः।।६२।।

उत्थाय सद्यः सम्भ्रान्तो गुरुं तं सूर्यवर्चसम्।
दृष्ट्वा ननाम सम्प्रीत्या सम्प्रीतं त्यक्तकोपकम्।।६३।।

पादाम्बुजे निपतितं रुदन्तं भयविह्वलम्। निधाय वक्षसि प्रेम्णा रुरोद प्रेमविह्वलः।।६४।।

रुदन्तं वाक्पतिं तुष्टं तुष्टाव त्रिदशेश्वरः। पुटाञ्जलिः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकंधरः।।६५।।

तब सर्वसिद्धीश्वर देवराज इन्द्र ने गुरु बृहस्पति का स्वर पहचान कर अपना सूक्ष्म रूप त्याग दिया। वे अपना स्वरूप धारण करके तत्क्षण उठे। उन्होंने देखा कि गुरुदेव बृहस्पति सूर्यवत् तेज से दीप्त हैं। उन्होंने देखा कि अब वें क्रोध रहित तथा कृपा से पूर्ण हैं। यह देखकर इन्द्र तत्काल उनके चरणों में नत हो गये। तब प्रेमविह्वल बृहस्पति ने चरण में पड़े रुदन करते भयविह्वल इन्द्र को अपने वक्ष से लगा लिया। वे स्वयं भी रुदन करने लगे। तदनन्तर देवराज ने इन सन्तुष्ट, प्रेम से रुदन करते बृहस्पति को पुलकित होकर प्रणाम किया तथा भक्ति से शिर झुकाये तथा हाथ जोड़े हुये उनकी स्तुति करने लगे।।६२-६५।।

इन्द्र उवाच

क्षमस्व भगवन्दोषं कृपां कुरु कृपानिधे। भृत्यापराधं सततं न गृह्णाति सदीश्वरः।।६६।।

स्वभार्यासु स्वशिष्येषु स्वभृत्येषु सुतेषु च।
दुर्बलः सबलो वाऽपि को दण्डं कर्तुमक्षमः।।६७।।

इन्द्र कहते हैं—हे भगवान्! मेरा दोष क्षमा करके मुझ पर कृपा करिये। सत् स्वामीगण अपने भृत्य के अपराधों पर दृष्टिपात नहीं करते। अपनी पत्नी, अपने शिष्य, अपने सेवक तथा अपने पुत्र को तो कोई भी व्यक्ति दण्डित कर सकता है। इसके दण्डदाता का सबल होना अथवा निर्बल होना आवश्यक नहीं है।।६६-६७।।

त्रिषु कोटिषु देवेषु देवकोऽहमपण्डितः। त्वत्प्रसादात्सुरश्रेष्ठ कृपया वर्धितस्त्वया।।६८।।

संहर्तुमीशस्त्वं सर्वमहं को वाऽपि कीटवत्।
स्वयं विधातुःपौत्रश्च पुनः स्त्रष्टुं स्वयं क्षमः॥६९॥

हे सुरश्रेष्ठ! इन तीन कोटि देवगण में से एक मैं ही अपण्डित हूं। इतने पर भी आपने मुझ पर कृपा करके तथा प्रसन्न होकर सदा मुझे बढ़ाया है। आप सबका संहार कर सकते हैं। आपके सामने मुझ कीट की क्या गणना? आप स्वयं विधाता के पौत्र हैं। आप तो स्वयं ही सृष्टि कर सकते हैं।।६८-६९।।

इति तस्य स्तवं श्रुत्वा परितुष्टो गुरुः स्वयम्। उवाच वचनं प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः॥७०॥

इन्द्र की स्तुति सुनकर गुरु बृहस्पति सन्तुष्ट हो गये। उनके नेत्र तथा मुख पर प्रसन्नता झलकने लगी। उन्होंने प्रेम पूर्वक इन्द्र से कहा-।।७०।।

गुरुरुवाच

स्थिरो भव महाभाग निश्चलां कमलां लभ।
सम्प्राप्य परमैश्वर्यं पूर्वस्माच्च चतुर्गुणम्॥७१॥

गच्छामरावतीं वत्स राज्यं कुरु पुरंदर। हतशत्रुर्मत्प्रसादाद्गत्वा पश्य शचीं सतीम्॥७२॥

गुरु बृहस्पति कहते हैं-हे महाभाग! अब तुम स्थिर हो जाओ। तुम निश्चल लक्ष्मी प्राप्त करो। पहले से चौगुना परम ऐश्वर्य प्राप्त करो। हे वत्स पुरंदर! तुम अब अमरावती जाकर मेरी कृपा से शत्रु वध करके सती शची को देखो।।७१-७२।।

इत्येवमुक्त्वा स गुरुः सशिष्यो गन्तुमुद्यतः। ददर्श पुरतो घोरां ब्रह्महत्यां सुदुःसहाम्॥७३॥
दृष्ट्वा शक्रो महाभीतस्तं गुरुं शरणं ययौ। बृहस्पतिर्महाभीतः सस्मार मधुसूदनम्॥७४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। स्वल्पाक्षरा च बह्वर्था तां शुश्राव बृहस्पतिः॥७५॥

यह कहकर जैसे ही गुरु अपने शिष्य के साथ गमनोद्यत हुये ही थे, इन्द्र ने अपने समक्ष अत्यन्त दुःसह घोर रूप ब्रह्महत्या को देखा। उस देखकर इन्द्र अतीव भयग्रस्त होकर गुरुदेव की शरण में गये। गुरु बृहस्पति ने भी अत्यन्त भयभीत होकर मधुसूदन का स्मरण किया। तभी स्वल्प अक्षरों वाली तथा अनेकार्थ निहित अशरीरी वाणी बृहस्पति ने सुनी।।७३-७५।।

संसारविजयं नाम सर्वाशुभविनाशनम्। राधिकाकवचं दत्त्वा शिष्यं रक्षाधुनेति च॥७६॥

यथा-हे गुरु! सर्वशत्रुनाशक संसार विजय नामक राधा कवच अपने शिष्य को प्रदान करके इसकी रक्षा करो। वह सर्व अमङ्गल नाशक कवच है।।७६।।

तदा त्वत्कवचं दत्त्वा शिष्याय शिष्यवत्सलः।
चकार भस्मसात्तां च हुङ्कारेणैव लीलया॥७७॥

उस समय शिष्य वत्सल गुरु ने यह कवच शिष्य को प्रदान किया। तदनन्तर इन्द्र के हुंकार मात्र से खेल-खेल में वह ब्रह्महत्या नष्ट हो गई!।।७७।।

तदा शिष्यं गृहीत्वा च गत्वाताममरावतीम्।
ददर्श च्छिन्नभग्नां च शत्रुणा वचनाद्गुरोः॥७८॥
भर्तुरागमनं श्रुत्वा शची संहृष्टमानसा। प्रणम्य च गुरुं भक्त्या स्वकान्तं प्रणनाम सा॥७९॥
श्रुत्वाऽऽगमनमिन्द्रस्य समाजग्मुः सुराः प्रिये। ऋषयो मुनयश्चैव हर्षगद्गदमानसाः॥८०॥
योजयामास सत्कारुं निर्मातुममरावतीम्। पूर्णमब्दशतं शिल्पी निर्ममे रुचिरां पुरीम्॥८१॥
नानारत्नविचित्राढ्यां मणिरत्नेन्द्रनिर्मिताम्। मनोहरां निरूपमां न हि तुष्टो यया हरिः॥८२॥

अब बृहस्पतिदेव अपने शिष्य के साथ अमरावती गये। उन्होंने शत्रु द्वारा छिन्न-भिन्न अमरावती पुरी को देखा। तभी देवी शची पति के आने का संवाद पाते ही वहां आनन्द पूर्वक आ गईं। उन्होंने गुरु बृहस्पति के चरणों में भक्ति पूर्वक प्रणाम करके अपने पति इन्द्र को प्रणाम किया। हे प्रिये! इन्द्र के आगमन का सुसंवाद सुनकर हर्ष गद्‌गद् देवता, ऋषिगण तथा मुनिवृन्द भी वहां उपस्थित हो गये। तब देवराज ने पुनः विश्वकर्मा को बुलाकर अमरावती के पुनर्निमाणार्थ नियुक्त किया। उन देव शिल्पी ने एक वर्ष में ही उस मनोहर पुरी का निर्माण कर दिया। वह उत्कृष्ट मणि-रत्नों से बनी वह पुरी विचित्र रत्नों से मण्डित होने के कारण अत्यन्त मनोहारी लग रही थीं। उसकी उपमा किससे की जाये, ऐसा कोई स्थान ही नहीं था! तथापि इतने से भी देवराज सन्तुष्ट नहीं हो सके!।।७८-८२।।

विश्वकर्मा गृहं गन्तुं न शशाक विनाऽऽज्ञया। परमोद्विग्नचित्तश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ॥८३॥
विज्ञाय तदभिप्रायं तमुवाच विधिः स्वयम्।
तव कर्मक्षयादेव तावच्छ्वो भवितेति च॥८४॥

तथापि बिना इन्द्र की आज्ञा लिये विश्वकर्मा अपने घर वापस नहीं जा सकते थे। अंतः विश्वकर्मा अत्यन्त उद्विग्न चित्त होकर ब्रह्मा के शरणागत हो गये। विधाता ने विश्वकर्मा का मन्तव्य जानकर कहा-"हे देव! तुम्हारा कर्म कल तक क्षीण हो जायेगा। अतः कल तुम यहां से मुक्त हो जाओगे।।८३-८४।।

श्रुत्वा तद्वचनं कारुः शीघ्रं प्रापामरावतीम्।
ब्रह्मा जगाम वैकुण्ठं प्रणम्योवाच मातरम्॥८५॥
हरिर्ब्रह्माणमाश्वास्य प्रस्थाप्य स्वगृहं च तम्। विप्ररूपं समास्थाय चाऽजगामामरावतीम्॥८६॥

वे कारीगर विश्वकर्मा ब्रह्मा का वचन सुनकर शीघ्र अमरावती वापस आ गये। अब ब्रह्मा वैकुण्ठधाम आये तथा वहां अपने जन्मदाता हरि को प्रणाम करके अपने आगमन का कारण कहा। हरि तब ब्रह्मा को आश्वस्त करके ब्रह्मलोक वापस भेजकर स्वयं विप्ररूपधारी होकर अमरावती आये।।८५-८६।।

दण्डी छत्री शुक्लवासा विभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्।
अतिखर्वः शुक्लदन्तः सस्मितः सुमनोहरः॥८७॥

वयसाऽतिशिशुर्बुद्ध्या ज्ञानवृद्धाद्विचक्षणः। स्वयं विधातुर्धाता च दाता च सर्वसम्पदाम्॥८८॥
इन्द्रद्वारे समुत्तिष्ठन्द्वारपालमुवाच ह। ब्रूहीदं ब्राह्मणो द्वारे शीघ्रं त्वां द्रष्टुमागतः॥८९॥

वे दण्ड-छत्र-शुक्ल वस्त्रधारी, उज्वल तिलक लगाये, वामन, मन्दहास्य युक्त तथा मनोहर लग रहे थे। उनके सभी दांत अत्यन्त शुक्लवर्ण थे। वे देखने में तो अत्यन्त शिशु प्रतीत हो रहे थे, तथापि बुद्धि में तो वृद्ध विद्वान् से भी बढ़कर थे। ये प्रभु ब्रह्मा के भी सृष्टिकर्त्ता तथा सर्वसम्पद-प्रदाता नारायण थे। इन ब्राह्मण ने इन्द्र के द्वार पर स्थित द्वारपाल से कहा-"तुम देवराज से कहो कि आपके दर्शनार्थ ब्राह्मण आया है।"।।८७-८९।।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा द्वारि ज्ञानं चकार तम्।
स च शीघ्रं समागम्य ददर्श ब्राह्मणार्भकम्॥९०॥
बालकानां बालिकानां समूहैः परिवेष्टितम्।
हसद्भिश्च महोत्साहात्सस्मितं तेजसाऽन्वितम्॥९१॥
प्रणनाम हरिर्भक्त्या तं हरिं शिशुरूपिणम्।
आशिषं युयुजे प्रीत्या तं हरिर्भक्तवत्सलः॥९२॥

द्वारपाल ने यह सुनकर इन्द्र को यह संवाद दिया। इन्द्र ने तत्काल द्वार पर आकर इन बालक का दर्शन किया। वे देखते हैं कि यह बालक ब्राह्मण मन्द मुस्कान से युक्त तथा ब्रह्मतेज से परिपूर्ण है। वहां अमरावती के बालक-बालिका महान् उत्साह के साथ, प्रसन्नमुख होकर उनको घेरे खड़े हैं। इन्द्र ने इन शिशुरूपी श्रीहरि को भक्ति पूर्वक प्रणाम किया। भक्तवत्सल ब्राह्मणरूपधारी हरि ने प्रसन्न होकर इन्द्र को आशीर्वाद दिया।।९०-९२।।

मधुपर्कादिकं दत्त्वा शक्रः पूजां चकारं तम्।
पप्रच्छाऽऽगमनं कस्माद्वदेति विप्रबालकम्॥९३॥
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्भकः। मेघगम्भीरया वाचा बृहस्पतिगुरोर्गुरुः॥९४॥

तव इन्द्र ने मधुपर्कादि से इन्द्र की पूजा करके उन बालक से उनके आगमन का कारण पूछा। इन्द्र का वचन जब उन बालक ने सुना जो इन्द्र के गुरु, बृहस्पति के गुरु, ब्रह्मा के भी गुरु थे, तब वे मेघगंभीर वाणी में कहने लगे।।९३-९४।।

ब्राह्मण उवाच

समागतोऽहं त्वां द्रष्टुं प्रष्टुं वचनमीप्सितम्। चित्रं नगरनिर्माणं समाकर्ण्याद्भुतं हरे॥९५॥
कतिवर्षं च निर्माणे भवान्सङ्कल्पितो यथा।
कतिचित्तां विश्वकर्मा निर्माणं वा करिष्यति॥९६॥

ब्राह्मण कहते हैं-हे हरि (इन्द्र)! मैं यहां तुमको देखने तथा इस अद्भुत नगरी के निर्माण का

समाचार सुनकर कुछ प्रश्न तुमसे पूछने के उद्देश्य से आया हूं। हे देवराज! तुमने कितने वर्षों में इस पुरी के निर्माण को पूर्ण करने की योजना बनाई हैं? किंवा विश्वकर्मा कब तक इसे पूर्ण बना देंगे?।।९५-९६।।

एवंभूतं च निर्माणं न केनेन्द्रेण निर्मितम्। नैवंविधसुनिर्माणे विश्वकर्मा परः क्षमः॥९७॥

हे इन्द्र! आज तक ऐसा निर्माण पूर्व में किसी इन्द्र ने भी नहीं किया, न करा सके! अन्य विश्वकर्मा भी ऐसा सुनिर्माण करा सकने में समर्थ नहीं है।।९७।।

बालकस्य वचः श्रुत्वा जहास स सुरेश्वरः।
सम्पन्मदातिमत्तश्च पुनः पप्रच्छ बालकम्॥९८॥
कतीन्द्राणां समूहैश्च त्वया दृष्टः श्रुतोऽथवा।
विश्वकर्मा कतिविधस्तं मे ब्रूहि शिशोऽधुना॥९९॥

बालक ब्राह्मण का कथन सुनकर इन्द्र हंसने लगे। उन्होंने बालक से पूछा–"हे शिशु! आपने अब तक कितने इन्द्रसमूह को तथा कितने विश्वकर्मा को देखा है अथवा उनके बारे में सुना है? वह मुझसे कहिये।।९८-९९।।

शक्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य विप्रबालकः। तमुवाच श्रुतिसुखं पीयूषसदृशं वचः॥१००॥

इन्द्र का वचन सुनकर विप्र बालक ने हंसकर कर्ण को सुख देने वला अमृतमय वचन कहा–।।१००।।

ब्राह्मण उवाच

जानामि कश्यपं तात तव तातं प्रजापतिम्।
मुनिं मरीचिनामानं तत्तातं च तपोनिधिम्॥१०१॥
नाभिपद्मोद्भवं विष्णोः स्तुत्वा तं विधिमीश्वरम्।
रक्षितारं च तं विष्णुं परं सत्त्वगुणान्वितम्॥१०२॥
एकार्णवं च प्रलयं सत्त्वशून्यं भयानकम्।
सृष्टिं कतिविधां शक्र कल्पं कतिविधं ध्रुवम्॥१०३॥
ब्रह्माण्डं च कतिविधं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।
ब्रह्माण्डेषु कतिविधानिन्द्रान्को गन्तुमीश्वरः॥१०४॥
यदि संख्याऽस्ति रेणूनां धरायां च सुराधिप।
तथाऽपि संख्या शक्राणां नास्त्येवेति विदुर्बुधाः॥१०५॥

शक्रस्याऽऽयुश्चाधिकारो युगानामेकसप्ततिः। अष्टाविंशतिशक्राणां पतनेऽहर्निशं विधेः॥१०६॥

ब्राह्मण बालक कहते हैं–हे इन्द्र! मैं तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यप तथा पितामह तपोनिधि

मरीचि मुनि को जानता हूं। मैं मरीचि मुनि के पिता विष्णु के नाभिकमल से उद्भूत भगवान् विधाता ब्रह्मा से भी अवगत हूं। मैं ब्रह्मा के रक्षक सत्वगुणावलम्बी तथा उनके रक्षक महाविष्णु से भी परिचित हूं। मैं सत्वशून्य (प्राणी रहित) महाभयानक एकार्णव प्रलय को जानता हूं। हे शक्र! सृष्टि कई प्रकार की हैं, कल्प भी कई हैं। ब्रह्माण्ड भी न जाने कितने हैं। इन ब्रह्माण्डों के ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-इन्द्रादि इतने हो चुके तथा हैं, जिनकी गणना कर सकने में कौन समर्थ है? हे इन्द्र! पण्डितों का यह निश्चय है कि भले ही संसार के बालुका कणों तथा वृष्टि के बूदों की गणना हो जाये, परन्तु इन्द्रों की संख्या की गणना नहीं की जा सकती। इन्द्र की आयु तथा उनका अधिकार काल मात्र ७१ चतुर्युग है। ऐसे २८ इन्द्रों का काल समाप्त होने पर जितना काल होता है, वह विधाता का मात्र एक दिन-रात ही है।।१०१-१०६।।

विधेरष्टोत्तरशतमायुरेव[1]प्रमाणतः। सुरेन्द्राणां च का संख्या नास्ति संख्या विधेरपि॥१०७॥

ब्रह्माण्डसंख्या यत्र क्व ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। महाविष्णोर्लोमकूपोद्भवे तोये सुनिर्मले॥१०८॥

ब्रह्माण्डेऽस्ति यथा नौका भवतोये च कृत्रिमा।
एवं लोम्नः प्रमाणेन ब्रह्माण्डाःसन्त्यसंख्यकाः॥१०९॥

इस प्रकार के १०८ वर्षों पर्यन्त ब्रह्मा का पूर्ण आयुकाल है, तथापि जब इस सृष्टि में कितने ब्रह्मा हैं, उनकी ही गणना नहीं हो सकती तब इन्द्रों के सम्बन्ध में क्या कहा जाये? जब सृष्टि में कितने ब्रह्माण्ड हैं, उनकी गणना कर सकना असंभव है, तब ब्रह्मा-विष्णु-महेश कितने हैं, कौन गिन सकता है? महाविष्णु के रोमकूपों से उद्भूत सुनिर्मल जल में ब्रह्माण्ड समूह उसी प्रकार है, जैसे सांसारिक नदियों में मनुष्य निर्मित नौकायें! महाविष्णु के महादेह में जितने रोम छिद्र हैं, उतनी ही ब्रह्माण्डों की संख्या हैं।।१०७-१०९।।

ब्रह्माण्डे च कतिविधाः सुराःसन्त्येव त्वत्समाः।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श पुरुषोत्तमः॥११०॥

पिपीलिकासमूहं च व्यायतं धनुषां शतम्। श्रमशस्तान्सन्निरीक्ष्य जहासोच्चैर्द्विजार्भकः॥१११॥

नोवाच किञ्चिन्मौनी च गम्भीरः सागरो यथा।
दृष्ट्वा हास्यं विप्रबटोर्गाथां श्रुत्वाऽतिविस्मितः।
प्रप्रच्छ च पुनर्विप्रं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः॥११२॥

"प्रति ब्रह्माण्ड में तुम जैसे न जाने कितने देवता रहते हैं?" तभी वहां ब्राह्मणरूपधारी पुरुषोत्तम ने १०० धनुष तक में एक चींटी का झुण्ड देखा। ब्राह्मण बालक उस झुण्ड को देखकर उच्चस्वर से हंस पड़े। उन्होंने गंभीर सागर की तरह मौन धारण कर लिया। कुछ भी नहीं कहा। इस समय उस ब्राह्मण बालक का हास्य सुनकर इन्द्र विस्मित हो उठे। उनके कण्ठ-ओष्ठ-तालु सूख गये। तब उन्होंने पुनः ब्राह्मण बालक से पूछा।।११०-११२।।

१. क. ०रेवं प्र०।

इन्द्र उवाच

कथं हससि विप्रेन्द्र मां शीघ्रं कारणं वद।
त्वं वा को माययाच्छन्नः शिशुरूपी गुणार्णवः॥११३॥

इन्द्रदेव कहते हैं–हे विप्रेन्द्र! आप अभी जो हंसे इसका कारण मुझसे कहिये। आप गुणों के सागर रूप मायाच्छन्न शिशुरूप धारी कौन हैं?॥११३॥

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्भकः।
आध्यात्मिकं नीतिसारं ज्ञानबीजं परं वचः॥११४॥

इन्द्र का वचन सुनकर उन ब्राह्मण बालक ने इन्द्र से आध्यात्मयुक्त, नीति का सार ज्ञानबीजरूप परम वाक्य कहा–॥११४॥

ब्राह्मण उवाच

दृष्टः पिपीलिकासंघो हेतुरस्य निगूढकः।
मा मां पृच्छ शोकबीजं तव चाज्ञानकारणम्॥११५॥
सांसारिकाणां संसारवृक्षमूलनिकृन्तनम्। अज्ञानतमसि च्छन्नं ज्ञानदीपमनुत्तमम्॥११६॥
निगूढं सर्ववेदेषु सिद्धानामपि दुर्लभम्। योगिनां प्राणतुल्यं च मूढाहंकारभञ्जनम्॥११७॥

ब्राह्मण बालक कहते हैं–मैं जो इस चींटियों के झुण्ड को देखकर हंसने लगा, इसके पीछे अत्यन्त गूढ़ कारण है। तुम इस शोक के कारण को मुझसे मत पूछना। यह गूढ़ विषय संसारी लोगों के संसार वृक्ष को जड़ से काट देने वाला तथा अज्ञान तिमिर से आच्छन्न लोगों के लिये अतीव उत्तम ज्ञानदीप के समान है। यह सिद्धों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है तथा सभी वेदों में भी अत्यन्त गुप्त हैं। यह योगीगण के लिये प्राण के समान है तथा मूढ़ के अहंकार को चूर्ण करने वाला है॥११५-११७॥

इत्युक्त्वा तत्र संतस्थौ सस्मितो द्विजपुङ्गवः।
पुनः पप्रच्छ शक्रस्तं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः॥११८॥

यह कहकर वे द्विजबटु मौन हो गये तथा मुस्कराने लगे। तब शुष्क कंठ-ओष्ठ-तालु वाले इन्द्र ने पुनः इन बालक से जिज्ञासा किया॥११८॥

शक्र उवाच

ब्रूहि विप्रबटो शीघ्रं ज्ञानदीपं पुरातनम्।
न जानामि शिशुः कस्त्वं ज्ञानराशिः स्वमूर्तिमान्॥११९॥

इन्द्रदेव कहते हैं–हे विप्रबटुक! आप शीघ्र मुझसे वह पुरातन ज्ञानदीप कहिये। मुझे यही ज्ञात नहीं हो पा रहा है कि आप ज्ञानराशि तथा मूर्त्तिमान, ज्ञानस्वरूप इस शिशु रूप में कौन हैं?॥११९॥

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः। ज्ञानं भाषितुमारेभे योगीन्द्राणां सुदुर्लभम्॥१२०॥

इन्द्र का कथन सुनकर उन विप्ररूपी जनार्दन ने योगीन्द्रों के लिये भी दुर्लभ ज्ञान कहना प्रारंभ किया।।१२०।।

ब्राह्मण उवाच

सृष्टः पिपीलिकासङ्घ एकैकः[१] क्रमशो मया।
सर्वे स्वकर्मणा शक्र शक्रीभूताः सुरालये।।१२१।।
अधुना कर्मणा सर्वे क्रमशो भूतजन्मनाम्।
अतीतकाले सम्प्राप्ता भूतजातिं पिपीलिकाम्।।१२२।।
कर्मणा जीविनो यान्ति वैकुण्ठं च निरामयम्।
कर्मणा ब्रह्मलोकं च शिवलोकं च कर्मणा।।१२३।।
स्वर्गं स्वर्गसमास्थानं पातालं च स्वकर्मणा।
कर्मणा नरकं घोरं स्वात्मदुःखैककारणम्।।१२४।।

ब्राह्मण बटु कहते हैं—हे इन्द्र! मैंने इन चींटियों के समुदाय की एक-एक करके सृष्टि किया था। ये सभी स्वकर्म से देवलोकों में इन्द्रपद पर स्थापित हो चुके थे, तथापि अपने कर्म से ये सभी नाना जीवयोनियों में जन्म लेते हुये अब चींटी जाति में जन्मे हैं। कर्म द्वारा ही प्राणी निरामय वैकुण्ठधाम प्राप्त करते हैं। ये कर्म से ही—ब्रह्मलोक तथा शिवलोकगामी होते हैं। ये ही अपने कर्म से पाताल अथवा स्वर्ग में स्थान पाते हैं। ये कर्म से ही आत्मदुःखदायक घोर नरक में जाते हैं।।१२१-१२४।।

कर्मणा सूकरीगर्भे कर्मणा क्षुद्रजीवनम्।
कर्मणा पशुपत्नीनां कर्मणा पक्षियोषिताम्[२]।।१२५।।
कर्मणा कीटयोनिं च वृक्षत्वं च स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा सुखी दुःखी सेव्यः सेवक एव च।।१२६।।

स्वकर्म द्वारा ही प्राणी शूकरी के गर्भ से जन्म लेते हैं। कर्म द्वारा ही क्षुद्र जीवन पाते हैं। कर्म से ही व्यक्ति मादापशु के गर्भ में जाता है। कर्म से ही वह मादापक्षियों के अंडों से जन्म लेता है। स्वकर्म से ही प्राणी कीटयोनि अथवा वृक्षयोनि में उत्पन्न होता है। स्वकर्म से ही वह सुखी-दुःखी, स्वामी-सेवक होता है।।१२५-१२६।।

कर्मणा ब्राह्मणत्वं च देवं चापि स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा च प्रेतत्वं ब्रह्मत्वं च स्वकर्मणा।।१२७।।
कर्मणा शिबिकारोहो राजेन्द्रश्च स्वकर्मणा। कर्मणा व्याधियुक्तश्च कर्मणैवातिसुन्दरः।।१२८।।

१. क. कैकं क्र०।
२. क. ०षिताः।

कर्म से ही प्राणी को ब्राह्मणत्व अथवा देवत्व मिलता है। कर्म से ही वह ब्रह्मत्व किंवा प्रेतत्व पाता है। अपने कर्म से ही वह पालकी पर बैठकर चलता है, कर्म से ही वह राजेन्द्रत्व पाता है। कर्म बल से ही वह व्याधियुक्त किंवा अतीव सुन्दर होता है।।१२७-१२८।।

कर्मणा स्वाङ्गहीनश्च स्वाङ्गवृद्धश्च कर्मणा। विधाता कर्मसूत्रेण फलदाता च जीविनाम्।।१२९।।
कर्म स्वभावसाध्यं च स्वभावोभ्यासजीवकः। इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकपरं वचः।।१३०।।
सुखदं पुण्यदं सारं नरकार्णवतारकम्। संसारं[1] स्वप्नवत्सर्वं देवेन्द्र सचराचरम्।।१३१।।

मृत्युश्च मस्तकस्थायी सर्वेषां कालयोगतः।
कलबुद्बुदवत्सर्वं जीविनां च शुभाशुभम्।।१३२।।
शक्र शश्वद्भ्रमत्येव नाऽऽविष्टस्तत्र पण्डितः।
इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च तत्र तस्थौ च सस्मितः।।१३३।।

"कर्म से ही वह अंगहीन होता है तथा कर्म से ही वह अधिकांग (जैसे छह उंगली वाला इत्यादि) होकर जन्म लेता है। विधाता कर्मसूत्र से ही प्राणीगण को फल देते हैं। कर्म स्वभाव साध्य हैं। स्वभाव अभ्यास मूलक है। यह सब जो आध्यात्मिक वाक्य मैंने कहा है, यह सुखमोक्षप्रद, सबका साररूप तथा नरक से पार उतारने वाला है। हे देवराज! यह सचराचर संसार स्वप्नवत् है। काल द्वारा निश्चित मृत्यु सभी के मस्तक पर स्थायी रूप से स्थित है। हे इन्द्र! जीवगण का समस्त दुःख-सुख जलबुद्बुद् के समान नश्वर जानो। यह निरन्तर चक्रीय गति से चक्रमण करता रहता है। तभी पण्डितगण इसमें आसक्त नहीं होते।" यह कहकर वे ब्राह्मण बटु वहीं मौन होकर बैठ गये।।१२९-१३३।।

विस्मितस्त्रिदशाध्यक्षो नाऽऽत्मानं बहु मन्यते।
एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम मुनीश्वरः।।१३४।।
अतिवृद्धो महायोगी ज्ञानेन वयसा महान्।
कृष्णाजिनी जटाधारी बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्।।१३५।।
वक्षःस्थले रोमचक्रं बिभर्ति मस्तके कटम्।
स्थितं सर्वं मध्यदेशे किञ्चिदुत्पाटितं स्फुटम्।।१३६।।
समागत्य द्वयोर्मध्ये तस्थौ स्थाणुवदेव सः।
महेन्द्रो ब्राह्मणं दृष्ट्वा प्रणनाम मुदाऽन्वितः।।१३७।।
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः।
पप्रच्छ कुशलं विप्रं चकार विनयं परम्।।१३८।।
तुष्टावातिथिभावेन मुदा सादरपूर्वकम्। विप्रार्भकस्तेन सार्धं सम्भाषां च चकार सः।
स्ववाञ्छितं परं प्राह सर्वं विनयपूर्वकम्।।१३९।।

१. ख. ०सारः स्व०।

उस समय विस्मित देवराज इन्द्र ने तब अपने सम्बन्ध में यह जान लिया कि वे अत्यन्त सामान्य ही हैं। इसी समय वहां पर एक अत्यन्त वृद्ध महायोगी मुनि आ गये। वे कृष्ण मृग चर्मधारी, जटा-जूट तथा उज्वल तिलक से शोभित मस्तक वाले थे। उनके वक्ष पर रोम का चक्र था तथा उन्होंने शिर पर रखी चटाई से स्वयं को ढांक लिया था। उनके वक्षस्थल का रोमचक्र तो समस्त यथावत् था केवल कुछ छोटा-सा भाग रोम रहित था। ऐसे मुनिवर वहां सभा में इन्द्र तथा ब्राह्मण बटु के बीच शुष्क काष्ठवत् स्थित हो गये। इन्द्र ने इन ब्राह्मण को प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम किया तथा परम भक्ति के साथ उनको मधुपर्क आदि निवेदित करके उनकी पूजा किया। तत्पश्चात् इन्द्र ने अत्यन्त विनय पूर्वक इन ब्राह्मण से उनकी कुशलता सम्बन्धित प्रश्न भी किया। अपने आतिथ्य एवं सत्कार से इन्द्र ने इन महर्षि को प्रसन्न कर दिया। इसके पश्चात् ब्राह्मण बटु उन ऋषि से बातें करने लगे। उन्होंने विनय के साथ उनसे इच्छित प्रश्न पूछा।।१३४-१३९।।

बालक उवाच

कुतस्त्वमागतो विप्र किन्नाम भवतो वद।
को वाऽत्राऽऽगमने हेतुर्निवासः कुत्र तेऽधुना।।१४०।।
कटं कथं मस्तके तं लोकचक्रं च वक्षसि।
अत्युन्नतं मध्यदेशे किञ्चिदुत्पाटितं मुने।।१४१।।
मां चेत्कृपाऽस्तिते विप्र सर्वं संव्यस्य कथ्यताम्।
अत्यद्भुतमिदं सर्वं श्रोतुं कौतूहलं मम।।१४२।।

बालक बटु कहते हैं-हे विप्र! आपका आगमन कहां से हुआ है? आप अपना नाम कहिये। आपके यहां आगमन का प्रयोजन क्या है? आप अपना निवास स्थान भी कहिये। आपने मस्तक पर यह चटाई क्यों रखा है? आपके वक्षस्थल का रोमचक्र तो अत्यन्त बढ़ा है, तथापि बीच के कुछ रोम क्यों उखाड़े गये हैं? हे मुनिवर! आप यदि मेरे प्रति कृपालु हैं, तब मेरे पूछे गये प्रश्नों का विस्तृत वर्णन करिये। यह सब अद्भुत प्रसंग सुनने हेतु मुझमें अत्यन्त कुतूहल जागृत हो रहा है।।१४०-१४२।।

स शिशोर्वचनं श्रुत्वा तमुवाच महामुनिः।
सर्वं स्वकीयवृत्तान्तं शक्रस्य पुरतो मुदा।।१४३।।

उन महामुनि ने इन शिशु का कथन सुनकर इन्द्र के समक्ष अपना वृत्तान्त कहना प्रारंभ किया।।१४३।।

मुनिरुवाच

अल्पायुषा मया विप्र कुत्रापि न कृता गृहाः।
न विवाहश्चोपजीव्यं भिक्षोपजीविनाऽधुना।।१४४।।

लोमशेति च मन्नाम हेतुर्विप्रस्य दर्शनम्। वर्षणातपशान्त्यर्थं मस्तकस्थं कटं मम॥१४५॥
वक्षःस्थलस्थितं रोमचक्रं तत्कारणं शृणु। सांसारिकाणां भयदं विवेकजननं परम्॥१४६॥

वृद्ध मुनि कहते हैं–हे ब्राह्मण बालक! विप्र! मेरी आयु अल्प है। अतः मैंने कहीं भी विवाह नहीं किया। कहीं गृह निर्माण नहीं किया। मैं जीविका के अर्जन का भी प्रयत्न नहीं करता। मैं मात्र भिक्षा पर जीवित रहता हूं। मेरा नाम लोमश है। यहां आने का प्रयोजन ब्राह्मण दर्शन है। वर्षा तथा सूर्यताप से रक्षार्थ शिर पर चटाई रखता हूं। आप मेरे वक्षस्थलस्थ रोमचक्र का कारण श्रवण करिये। यह कारण सांसारिकों के लिये भयप्रद है तथा यही उत्तम विवेक का कारण भी है॥१४४-१४६॥

आयुः संख्याप्रमाणं मे लोमचक्रं च वक्षसि।
शक्रैकपतने विप्र लोमैकोत्पाटनं मम॥१४७॥
उत्पाटितानि लोमानि तेन मध्ये स्थितानि च।
ब्रह्मणो द्विपरार्धे च मम मृत्युर्निरूपितः॥१४८॥
असंख्यविधयो ब्रह्मन्मरिष्यन्ति मृता अपि।
कलत्रेण च पुत्रेण गृहेण किं प्रयोजनम्॥१४९॥

ब्रह्मणः पतने चक्षुर्निमेषश्च हरेर्भवेत्। तत्पादपद्ममतुलं चिन्तयामि निरन्तरम्॥१५०॥
दुर्लभं श्रीहरेर्दास्यं भक्तिर्मुक्तेर्गरीयसी। स्वप्नवत्सर्वमैश्वर्यं तद्भक्तिव्यवधायकम्॥१५१॥

यह रोमचक्र मेरी आयु संख्या का प्रणाम है। हे विप्र! एक इन्द्र की आयु की समाप्ति पर मेरा एक रोम इस रोमचक्र से उखड़ जाता है। तभी मध्य के कुछ रोयें उत्पाटित हो गये, तथापि अभी तो बहुत विद्यमान हैं। ब्रह्मा के द्वितीय परार्धान्त तक मेरी आयु है। तब मेरी मृत्यु हो जायेगी। अब तक सृष्टि में असंख्य ब्रह्मा मृत हो गये और भी ब्रह्मा मृत होंगे। मुझे इसी कारण स्त्री-पुत्र-गृहादि का प्रयोजन नहीं है? एक ब्रह्मा के पतन तक (मरण) में विष्णु का एक पल मात्र होता है। उनकी एक पलक मात्र झपकती है। तभी मैं सतत् विष्णु के अलौकिक चरणों का निरन्तर ध्यान करता हूं। हरि की भक्ति मुक्ति से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। उनका दास्य तो परम दुर्लभ है। जागतिक तथा स्वर्ग का समस्त ऐश्वर्य स्वप्नवत् तथा भक्ति के पथ पर बाधक जाने॥१४१-१५१॥

इदं मद्गुरुणा दत्तं शंभुना ज्ञानमुत्तमम्।
विना भक्तिं न गृह्णामि सालोक्यादिचतुष्टयम्॥१५२॥

मैंने यह परमश्रेष्ठ ज्ञान अपने गुरु शिव से प्राप्त किया है। तभी मैं साल्योक्यादि चारों प्रकार की भक्ति रहित मुक्ति नहीं चाहता॥१५२॥

इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम शिवसन्निधिम्।
शिशुरूपी हरिस्तत्रैवान्तर्धानं चकार ह॥१५३॥

इन्द्रस्तु स्वप्नवद्दृष्ट्वा बभूव तत्र विस्मितः। तृष्णामात्रं च सम्पत्तौ नास्त्येव परमेश्वरे॥१५४॥

विश्वकर्माणमानीय प्रियमुक्त्वा शतक्रतुः।
दत्त्वा रत्नानि सम्पूज्य तं प्रस्थापितवान्गृहम्।।१५५।।

यह वचन कहकर वे महामुनि वहां से तत्काल शिव के यहां चले गये। उसी समय शिशुरूपी नारायण भी अन्तर्ध्यान हो गये। यह स्वप्नवत् दृश्य देखकर इन्द्र विस्मय में पड़ गये। उन देवेश्वर इन्द्र के मन में सम्पदा हेतु अब तनिक भी तृष्णा नहीं रह गई थी। अतः इन्द्र ने विश्वकर्मा को बुलाकर उनसे प्रियवाक्य कहा तथा उनको उत्तम रत्नादि से सम्मानित करके घर जाने दिया।।१५३-१५५।।

सर्वं विन्यस्य पुत्रे च शरणं गन्तुमुद्यतः।
शचीं राज्यश्रियं त्यक्त्वा विवेकी क्षयकामुकः।।१५६।।
दृष्ट्वा विवेकिनं कान्तं हृदयेन विदूयता।
शची जगाम शोकार्ता संत्रस्ता शरणं गुरोः।।१५७।।

तदनन्तर इन्द्र ने सब कुछ अपने पुत्र को प्रदान कर दिया तथा स्वयं भगवान् की शरण जाने को उद्यत हो गये। इस समय विवेक के कारण वे कामना क्षय करने का उपाय करने लगे। उन्होंने शची तथा राज्य त्याग कर दिया। जब इन्द्राणी शची ने देखा कि पति तो विवेकी हो गये, वे शोकार्त्त हो गईं। वे सन्त्रस्त होकर दुःखी मन से गुरु बृहस्पति की शरणागता हो गईं।।१५६-१५७।।

सर्वं निवेदनं कृत्वा समानीय बृहस्पतिम्।
बोधयामास शक्रं तं नीतिसारेण कामिनी।।१५८।।
गुरुः शास्त्रविशेषं च दम्पतीरससंयुतम्।
विधाय च स्वयं प्रीत्या पाठयामास तं मुदा।।१५९।।
नीतिशास्त्रं बहुविधं बोधयामास वाक्पतिः।
स चकार तदा राज्यं वृन्दावनविनोदिनि।।१६०।।

शची देवी ने सब वृत्तान्त गुरु बृहस्पति से कहा तथा गुरु को अपने घर ले आई। इन कामिनी शची ने गुरु के माध्यम से इन्द्र को नीतिसार का उपदेश दिलाया। गुरु ने दम्पतिरसयुक्त शास्त्र विशेष को रचकर प्रीति पूर्वक इन्द्र को पढ़ाया। वाक्पति गुरु बृहस्पति ने अनेक प्रकार का नीतिशास्त्र कहकर इन्द्र को प्रबोधित किया। हे वृन्दावन विनोदिनी राधिके! अब इन्द्र पूर्ववत् त्रैलोक्य राज्य करने लगे।।१५८-१६०।।

इत्येवं कथितं सर्वं शक्रदर्पविमोचनम्।
साक्षाद्दृष्टो दर्पभङ्गो नन्दयज्ञे सुरेश्वरि।।१६१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना०श्रीकृष्णराधासं० शक्रदर्पभङ्गो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।।४७।।

हे सुरेश्वरी! मैंने इन्द्र का दर्पभङ्ग तुमसे कहा। नन्द के (गोवर्धन यज्ञ) यज्ञ में इन्द्र दर्पदलन का अवलोकन तो तुमने स्वयं किया है!।।१६१।।

।।४७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

सूर्य के दर्पभंग का वर्णन

राधिकोवाच

कथितो भवता मह्यं दर्पभङ्गः श्रुतो हरेः। दर्पभङ्गं रवेश्चापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥१॥

श्रीराधिका कहती हैं–हे प्रभो! आपने इन्द्र का दर्पभंग तो मुझसे कह दिया। अब मैं तत्वतः रवि का दर्पभंग सुनना चाहती हूं।।१।।

श्रीकृष्ण उवाच

एकदैवोदयं कृत्वा रविरस्तं जगाम ह। माली सुमाली दैत्येन्द्रो दीप्तिं कर्तुं समुद्यतौ॥२॥
महासम्पन्मदोन्मत्तौ शङ्करस्य वरेण च। तयोश्च प्रभया रात्रिर्न भवेदिति सुन्दरि॥३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–एक बार सूर्यदेव उदित होकर पुनः अस्त हो गये। तब माली तथा सुमाली नामक दो दैत्य चतुर्दिक् दीप्ति करने हेतु उद्यत हो गये। शङ्कर से वर पाकर ये दोनों महान् सम्पत्तिशाली तथा मदोन्मत्त हो गये। हे सुन्दरी राधा! इनके कारण रात्रि होती ही नहीं थी; क्योंकि ये ऐसा प्रभापूर्ण प्रकाश कर देते थे!।।२–३।।

रुष्टः सूर्यः स्वशूलेन तौ जघानावलीलया। पतितौ सूर्यशूलेन मूर्च्छितौ धरणीतले॥४॥
भक्तापायं च विज्ञाय शङ्करो भक्तवत्सलः। आगत्य जीवयामास महाज्ञानेन तौ विभुः॥५॥
तौ च नत्वा शिवं भक्त्या जग्मतुर्निजमन्दिरम्।
दुद्राव च महादेवः सूर्यं हन्तुं रुषा ज्वलन्॥६॥
दृष्ट्वा संहारकर्तारं जिघांसन्तं हरं रविः। भिया पलायमानश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ॥७॥

इनके इस कृत्य से सूर्यदेव अत्यन्त रुष्ट हो गये। उन्होंने इन दोनों पर अपने शूल का सहज में आघात किया। जिससे ये दैत्य शूलाघात से आहत होकर भूपतित हो गये। तब भक्तवत्सल शंकर ने जब अपने भक्त माली–सुमाली का विनाश जाना, तब उन्होंने आकर अपने महाज्ञान के बल से इन दोनों को पुनर्जीवित कर दिया। तब इन दोनों दैत्यों ने प्रीति पूर्वक शिव को प्रणाम किया तथा अपने घर चले गये।

अब प्रभु महेश्वर भी अत्यन्त क्रोधित होकर सूर्य को नष्ट करने हेतु सूर्य के पीछे दौड़ पड़े। सूर्य ने देखा कि ये जगत्संहारक शिव मेरा वध करने को उद्यत हैं, तब सूर्य भयार्त्त होकर भागे तथा ब्रह्मा की शरण में आ गये।।४-७।।

दुद्राव च महादेवो ब्रह्मणो निलयं रुषा। शूलमत्यर्थमुद्यम्य कालकालो विधेर्विधिः॥८॥
दृष्ट्वा ब्रह्मा हरं रुष्टं तुष्टाव परमेश्वरम्। चतुर्वक्त्रेण वेदोक्तस्तोत्रेण जगतां पतिः॥९॥

तब काल के भी काल, ब्रह्मा के भी विधाता क्रोध से अपना अमोघ शूल उठाकर ब्रह्मा के गृह में आये। जगत्पति ब्रह्मा ने उस समय जब परमेश्वर शिव को कुपित देखा, तब चतुर्मुख ब्रह्मा चारों मुख से वेदोक्त स्तोत्र से महेश्वर का स्तव करने लगे।।८-९।।

ब्रह्मोवाच

प्रसीद दक्षयज्ञघ्न सूर्यं मच्छरणागतम्। त्वयैव सृष्टः सृष्टेश्च समारम्भे जगद्गुरो॥१०॥
आशुतोष महाभाग प्रसीद भक्तवत्सल। कृपया च कृपासिन्धो रक्ष रक्ष दिवाकरम्॥११॥
ब्रह्मस्वरूप भगवन्सृष्टिस्थित्यन्तकारण। स्वयं रविं विनिर्माय स्वयं संहर्तुमिच्छसि॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे दक्षयज्ञनाशक! आप प्रसन्न हो जायें। ये सूर्य मेरे शरणागत हैं। हे जगद्गुरु! आप समस्त सृष्टि के स्रष्टा हैं। हे आशुतोष! महाभाग! भक्तवत्सल! प्रसन्न हो जायें। हे कृपासिन्धु! कृपा पूर्वक दिवाकर की आप रक्षा करिये। आप ब्रह्मस्वरूप हैं। हे भगवान्! आप सृष्टि-स्थिति तथा संहार के कारण हैं। आपने तो स्वयं सूर्य का निर्माण किया है तथा अब आप स्वयं उनके संहार की इच्छा कर रहे हैं!।।१०-१२।।

स्वयं ब्रह्मा स्वयं शेषो धर्मः सूर्यो हुताशनः।
इन्द्रचन्द्रादयो देवास्त्वत्तो भीताः परात्पर॥१३॥
ऋषयो मुनयश्चैव त्वां निषेव्य तपोधनाः।
तपसां फलदाता त्वं तपस्त्वं तपसां[1] फलम्॥१४॥

आप स्वयं ब्रह्मा, स्वयं शेषनाग, स्वयं धर्मदेव तथा अग्नि हैं। हे परात्पर! इन्द्र-चन्द्रादि देवता सदा आपसे भयभीत रहते हैं। तपोधन, ऋषिगण तथा मुनिगण आपकी सेवा करके ही तपःफल लाभ कर पाते हैं, तथापि आप तो तपस्या से भी अतीत हैं।।१३-१४।।

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा तं सूर्यमानीय भक्तितः। प्रीत्या समर्पयामास शङ्करे दीनवत्सले॥१५॥
शम्भुस्तमाशिषं कृत्वा विधिं नत्वा जगद्विधिः।
प्रसन्नवदनः श्रीमानालयं प्रययौ मुदा॥१६॥

यह कहकर ब्रह्मा वहां सूर्यदेव को लाये तथा प्रेम पूर्वक उनको शंकर को समर्पित कर दिया।

१. क. ०पसः परः।

उस समय श्रीमान् जगद्‌विधाता शंभु ने सूर्यदेव को आशीर्वाद दिया तथा शंभु ब्रह्मा को प्रणाम करके प्रसन्न होकर आनन्द के साथ अपने गृह चले गये।।१५-१६।।

इति धातृकृतं स्तोत्रं संकटे यः पठेन्नरः।
भयात्प्रमुच्यते भीतो बद्धो मुच्येत बन्धनात्।।१७।।
राजद्वारे श्मशाने च भग्नपोते महार्णवे। स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः।।१८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णराधासं० सूर्यदर्पभङ्गो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।।४८।।

यह विधाता कृत स्तोत्र जो कोई संकटकाल में पढ़ता है, वह भयभीत व्यक्ति भयमुक्त हो जाता है। बन्धनयुक्त व्यक्ति बन्धन रहित हो जाता है। राजद्वार, श्मशान में, महासमुद्र में नौका भग्न हो जाने पर, इस स्तोत्र का स्मरण करने मात्र से वह संकट रहित हो जाता है।।१७-१८।।

।।४८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अग्निदेव के दर्प का भंग

श्रीकृष्ण उवाच

सूर्यः प्रणम्य ब्रह्माणं मुदा युक्तस्तदाज्ञया।
चकार विनयं प्रीत्या तेजस्वी त्रिगुणात्मकः।।१।।

श्रीकृष्ण कहते हैं–तदनन्तर महातेजवान् त्रिगुणात्मक सूर्यदेव ने सानन्द ब्रह्मा को प्रणाम किया तथा उनकी आज्ञा लेकर विनय पूर्वक अपना व्यवहार सबसे करने लगे। अब वे अभिमान रहित थे।।१।।

अथ वह्नेरुपाख्यानं सावधानं निशामय। गोपनीयं पुराणेषु कर्णपीयूषमुत्तमम्।।२।।
त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुमेकदाग्निः समुद्यतः।
शततालप्रमाणां तां शिखां कृत्वा भयानकाम्।।३।।

हे राधे! अब मैं तुमसे पुराणों में गुप्त, उत्तम, कर्ण को अमृत रूप लगने वाले अग्नि के प्रसंग को कहता हूं। इसे सावधानी से श्रवण करो। किसी समय अग्नि अपनी अग्निशिखा सैकड़ों तालवृक्ष के समान भयानक विस्तृत करके एकाकी त्रैलोक्य को दग्ध करने हेतु उद्यत हो गये।।२-३।।

क्षुभितः कुपितश्चैव भृगोः शापस्य कारणात्।
स्वं च तेजस्विनं मत्वा तुच्छं मत्वाऽन्यमात्मनः॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगामावलीलया। वह्नेस्तां दाहिकीं शक्तिं तां जहार पुरः स्थितः॥५॥
मायया शिशुरूपी च तमुवाच जनार्दनः। सस्मितो विनयं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः॥६॥

उन्होंने उस समय स्वयं को सबसे अधिक तेजस्वी मान लिया तथा अपने अतिरिक्त सभी को तुच्छ समझा। वे भृगु के शाप के कारण क्रोधित तथा क्षुब्ध थे। तभी भगवान् विष्णु वहां आ गये तथा उन्होंने अग्नि के समक्ष स्थित होकर अनायास उनकी दाहिका शक्ति का हरण कर लिया। उस समय वहां जनार्दन माया द्वारा शिशुरूप में आये। उन्होंने विनय प्रदर्शन करते हुये तथा हंसते-हंसते नतशिर होकर अग्नि से कहा-॥४-६॥

शिशुरुवाच

कथं रुष्टोऽसि भगवन्भवान्मां कारणं वद।
त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुमुद्यतोऽसि निरर्थकम्॥७॥
त्वमेव भृगुणा शप्तो भृगोश्च दमनं कुरु। एकापराधात्त्रैलोक्यं भस्मीकर्तुं न चार्हसि॥८॥
विश्वं च ब्रह्मणा सृष्टं तस्य पाता स्वयं हरिः। संहर्ता भगवान्रुद्र एवमेव क्रमो भवेत्॥९॥

शिशुरूपी जनार्दन कहते हैं-हे प्रभो! आप रुष्ट क्यों हैं? उसका कारण मुझसे कहिये। आप व्यर्थ में त्रैलोक्य को भस्मसात् करने के लिये उद्यत हैं। आप को भृगु ने अभिशाप दिया है। आप भृगु का ही दमन करिये। मात्र एक व्यक्ति के अपराध के लिये त्रैलोक्य को भस्म करना आपके लिये कदापि उचित नहीं है। ब्रह्मा विश्व का सृजन करते हैं। स्वयं हरि उनके रक्षक हैं तथा प्रभु रुद्रदेव विश्वसंहारक हैं। यही क्रम निरूपित है।॥७-९॥

तत्कथं भस्मसात्कर्तुमीश्वरे शङ्करे स्थिते। रक्षितारं हरिं जित्वा संहारं कुरु सत्वरम्॥१०॥

अतएव संहारकर्त्ता शिव के रहते आप त्रैलोक्य भस्म करने के लिये क्यों उद्यत हैं। यदि आपको यही करना अभिप्रेत है, तब आप जगत् रक्षक विष्णु को जय कर लीजिये। तदनन्तर शीघ्रता से जगत् संहार करिये।॥१०॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणबटुः शरपत्रं पुरः स्थितम्।
अतिशुष्कं करे धृत्वा दग्धं कर्तुं ददौ मुदा॥११॥
दृष्ट्वा शुष्केन्धनं वह्निर्लेलिहानो भयानकः।
स वव्रे शिखया विप्रं मेघेन शशिनं यथा॥१२॥

यह कहकर ब्राह्मण बटु ने सामने धरती पर पड़े एक सरपत के पत्ते को हाथों में उठाया। उन्होंने प्रसन्न मन से अग्नि को दग्ध करने हेतु प्रदान कर दिया। तब अग्नि ने उस सरपत पत्र को शुद्ध

ईन्धन देखकर भयानक लपलपाती ज्वाला के समान होकर अपनी ज्वाला से ब्राह्मण बटु को चतुर्दिक् आवेष्ठित कर दिया, जिस प्रकार मेघ से चन्द्रमा घिर जाते हैं।।११-१२।।

न च दग्धं शुष्कपत्रं लोमैकं च शिशोस्तथा।
दृष्ट्वा व्रीडायुतो वह्निर्निस्तब्धो हि शिशोः पुरः॥१३॥

कृत्वा वह्नेर्दर्पभङ्गमन्तर्धानं चकार सः। वह्निः स्वमूर्ति संहृत्य स्वस्थानं भीतवद्ययौ॥१४॥

तथापि अग्नि उस सुखे पत्ते को दग्ध नहीं कर सके तथा उस बटु का एक रोम भी नहीं दग्ध कर सके। यह देखकर लज्जावनत अग्नि स्तब्ध होकर शिशु बटु के समक्ष खड़े हो गये। अग्नि का दर्पभंग करके बालकरूपधारी प्रभु नारायण वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। अग्नि भी अपनी भयानक मूर्त्ति को त्याग कर अत्यन्त भयभीत होकर अपने स्थान पर चले गये।।१३-१४।।

उक्तो वह्नेर्दर्पभङ्गः परं वै श्रोतुमिच्छसि। नित्यनूतनमाख्यानं देवानां दर्पमोचनम्॥१५॥

हे राधिके! इस अग्नि दर्पभंग का प्रसंग मैंने कह दिया। अब क्या सुनने की इच्छा है। देवताओं के दर्पभंग के आख्यान नित्य नूतन हैं।।१५।।

राधिकोवाच

शेषाणां दर्पभङ्गं च क्रमेण कथय प्रभो। कथापीयूषधारां ते श्रुत्वा तृप्येत को भुवि॥१६॥

श्रीराधा कहती हैं–हे भगवन्! अब बाकी देवगण के दर्पभंग का प्रसंग कहिये। इस भूमण्डल पर इस अमृतधारा जैसी कथा को सुनकर कौन तृप्त होगा?।।१६।।

नारायण उवाच

राधिकावचनं श्रुत्वा सस्मितो भगवान्प्रभुः।
कथां कथितुमारेभे श्रुत्वा रम्यां पुरातनीम्॥१७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० अग्निदर्पमोचनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।

—※※※—

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–राधिका का कथन सुनकर भगवान् विष्णु मुस्कराने लगे। वे अब प्राचीन रम्य कथा कहने लगे।।१७।।

।।४९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

महर्षि दुर्वासा का दर्पभंग वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

दुर्वासतो दर्पभङ्गं कथयामि शृणु प्रिये। महामुनेर्योगिनश्च रुद्रांशस्यातितेजसः॥१॥
एकदा चाम्बरीषश्च कृत्वा च द्वादशीव्रतम्। पारणं कर्तुमारेभे भोजयित्वा द्विजान्बहून्॥२॥
एतस्मिन्नन्तरेतत्र चाऽऽजगाम मुनिः स्वयम्। क्षुधार्तश्च तृषार्तश्च विष्णुव्रतपरायणः॥३॥
मां भोजय महाभोगेत्येवं स नृपमुक्तवान्।
राजा भक्त्या ददौ तस्मै परमान्नं सुधोपमम्॥४॥
सकेशं पायसं दृष्ट्वा राजानं शप्तुमुद्यतः। जटां निकृत्य शिरसः स्थापयामास भूतले॥५॥

श्रीकृष्ण प्रभु कहते हैं–हे प्रिये! रुद्र के अंश अत्यन्त तेजस्वी महामुनि योगी दुर्वासा के दर्पभंग के विषय को कहता हूं। श्रवण करो। एक बार अम्बरीष ने द्वादशी व्रतानुष्ठान करके बहुत से ब्राह्मणों को भोजन कराया। तदनन्तर वे पारण करने हेतु बैठे थे। उसी समय विष्णुव्रत परायण मुनिवर दुर्वासा भूख-प्यास से आर्त्त होकर स्वयं वहां आ गये। उन्होंने राजा से कहा–"हे महाभाग! मुझे भोजन कराओ।" राजा ने भक्ति पूर्वक उनको सुधा के समान परमान्न दान किया। तदनन्तर दुर्वासा ने राजा द्वारा प्रदत्त पायस में एक बाल पड़ा देखा। यह देखकर महामुनि दुर्वासा राजा को शाप देने हेतु उद्यत हो गये। तब मुनि ने अपनी जटा तोड़कर भूमि पर पटका॥१-५॥

जटामध्यात्समुद्भूतो ज्वलदग्निशिखोपमः। सप्ततालप्रमाणश्च पुरुषः प्रलयान्तकः॥६॥
नृपश्रेष्ठं सराजानं कोपेन हन्तुमुद्यतः। भयेन कम्पिताः सर्वे शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः॥७॥
सस्मार च महाभीतो राजा मम पदाम्बुजम्। सर्वविघ्नस्योपशमः स्मृतिमात्राद्बभूव ह॥८॥

उस जटा से एक ज्वलन्त अग्निशिखा के मान ७ ताल वृक्ष इतना लम्बा एक प्रलयान्तक पुरुष उद्भूत हो गया। वह पुरुष क्रोधातुरः होकर राजा का वध करने हेतु उद्यत हो गया। यह देखकर वहां सभी का कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो गया। तभी महाभयग्रस्त राजा अम्बरीष ने मेरे चरणकमलों का स्मरण किया। मेरा स्मरण करने मात्र से सभी विघ्न वहां शान्त हो गये॥६-८॥

एतस्मिन्नन्तरे चक्रं दुर्निवार्यं सुदर्शनम्। तेजसा मम तुल्यं च कोटिसूर्यप्रभोपमम्॥९॥
आविर्बभूव सहसा सभामध्ये च घूर्णितम्। निकृत्य कृत्यापुरुषं दुद्राव मुनिपुङ्गवम्॥१०॥

तभी वहां अचानक चक्रसुदर्शन प्रकट हो गया। वह चक्र सबके लिये दुर्निवार था। वह तेज में मेरे तुल्य तथा कोटिसूर्यसमप्रभ था। वह चक्र सभा के बीच सहसा आविर्भूत होकर वहीं घूमने लगा। वह दुर्वासा द्वारा आहूत कृत्या पुरुष का वध करके मुनि दुर्वासा का पीछा करने लगा॥९-१०॥

सशैलसागरां पृथ्वीं काञ्चनीं भूमिमुत्तमाम्।
भ्रामयित्वा महीं सर्वां पुनर्दुद्राव तं मुनिम्॥११॥
धावन्तं मुक्तकेशं तं भीतं कातरमातुरम्।
तेजसाऽऽच्छाद्य सूर्यं तं दीप्तिं कुर्वन्तमुत्तमाम्॥१२॥
कैलासं सप्तस्वर्गं च ब्रह्मलोकमनामयम्।
विप्रेन्द्रो भ्रमणं कृत्वा वैकुण्ठं शरणं ययौ॥१३॥

वह चक्र सूर्य से भी अधिक भास्वर था। समस्त पर्वत-सागर युक्त समग्र भूमण्डल, सुमेरुपर्वत पर्यन्त वह चक्र पलायनरत दुर्वासा ऋषि का पीछा कर रहा था। दौड़ते हुये उन महामुनि के सभी केश खुल गये। वे भीत, कातर तथा आतुर होकर तथा अपने तेज से सूर्य की भी दीप्ति को आच्छादित करते तथा अपनी दीप्ति से दिशाओं को उद्भासित करते भाग रहे थे। वे मुनि शरण हेतु कैलास, सातों स्वर्ग, अनामय ब्रह्मलोक तक दौड़ते हुये अन्ततः वैकुण्ठ की शरण में आये।।११-१३।।

पादपद्मे पतन्तं च ददर्श विप्रपुङ्गवम्। कृपया च कृपासिन्धुर्ददौ विप्राय निर्भयम्॥१४॥
नारायणवरेणैव बभूव विज्वरो द्विजः। पुनर्ययौ हरिं स्तुत्वा नृपगेहं तदाज्ञया॥१५॥

जब वहां कृपासिन्धु श्रीकृष्ण ने उन विप्रप्रवर को अपने चरणों पर गिरे देखा, तब उन्होंने ब्राह्मण दुर्वासा को अभय प्रदान किया। नारायण द्वारा प्रदत्त वरदान को पाकर वे ब्राह्मण क्लेश रहित हो गये। वे द्विज भगवान् विष्णु की स्तुति करने के अनन्तर विष्णु की आज्ञा से पुनः राजा अम्बरीष के घर गये।।१४-१५।।

राजा मुनीन्द्रं सम्प्राप्य भोजयामास पायसम्।
स्वयं च पारणां चक्रे सस्त्रीकः सहबान्धवः॥१६॥
राजानमाशिषं कृत्वा भुक्त्वा विप्रो गृहं ययौ।
मया नियोजितं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च॥१७॥
नश्यन्ति सर्वे प्रलये न मे भक्तः प्रणश्यति।
सर्वे देवा मम प्राणा भक्ताः प्राणाधिका मम॥१८॥

मुनि के आगमन को देखकर प्रसन्न राजा ने उनको पायस भोजन कराया तथा तदनन्तर उन्होंने स्वयं पत्नी तथा बन्धुगण सहित पारण किया। भोजनोपरान्त दुर्वासा राजा को आशीर्वाद देकर अपने आश्रम चले गये। मैंने अपने सुदर्शन चक्र को भक्तों की रक्षा हेतु नियोजित किया है। सब कोई प्रलयकाल में नष्ट हो जाते हैं, परन्तु मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। सभी देवता मेरे प्राण हैं। परन्तु भक्त तो मेरे लिये प्राणों से भी बढ़कर ही हैं।।१६-१८।।

त्वं च लक्ष्मीर्महामाया सावित्री वा सरस्वती।
ब्रह्मा शंभुरनन्तश्च धर्मश्च ब्राह्मणास्तथा॥१९॥

गोपाङ्गनाश्च गोपाश्च सर्वे प्रियतमा मम।
तेभ्यः प्रियाः परा भक्ताः प्रियो भक्तान्न कश्चन॥२०॥
दत्त्वा सुदर्शनं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च।
तथाऽपि न प्रतीतिर्मे स्वयं द्रष्टुं प्रयामि तान्॥२१॥

तुम राधा, लक्ष्मी, महामाया, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्मा, विष्णु, अनन्त, धर्म, ब्राह्मणगण तथा गोप-गोपांगना सभी मेरे प्रियतम हैं, तथापि तुम सब लोगों की अपेक्षा भक्त ही मुझे परम प्रिय हैं। भक्त से बढ़कर मुझे कोई भी प्रिय नहीं है। मैं वैसे तो भक्तों के रक्षार्थ सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर देता हूं, तथापि मुझे इससे विश्वास तथा सन्तोष नहीं होता। मैं स्वयं उनको देखने आता हूं।।१९-२१।।

दुर्वाससो दर्पभङ्गः श्रुतौ मत्तः सुरेश्वरि।
आज्ञापय महाभागे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥२२॥

हे सुरेश्वरी राधा! तुमने मुझसे दुर्वासा का दर्पभङ्ग सुन लिया। हे महाभागे! अब मुझे आज्ञा दो कि क्या सुनने की इच्छा है?।।२२।।

राधिकोवाच

धन्वन्तरेर्दर्पभङ्गं कथयस्व जगद्गुरो। पुराणे गोपनीयं च श्रोतुं कौतूहलं मम॥२३॥

देवी राधिका कहती हैं—हे जगद्गुरु! आप धन्वन्तरी का दर्पभंग मुझसे कहिये। यह पुराणों का गोपनीय विषय है। इसे सुनने हेतु मुझे अत्यन्त कुतूहल है।।२३।।

नारायण उवाच

राधिकावचनं श्रुत्वा जहास मधुसूदनः।
कथां कथितुमारेभे श्रुतिरभ्यां पुरातनीम्॥२४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० दुर्वाससो दर्पभङ्गोनाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।

—✻✻✻—

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—राधिका का वचन सुनकर मधुसूदन हंसने लगे। उन्होंने श्रवणरमणीय प्राचीन कथा कहना प्रारंभ कर दिया।।२४।।

।।५०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

धन्वन्तरि के दर्पभंग का कथन

श्रीकृष्ण उवाच

नारायणांशो भगवान्स्वयं धन्वन्तरिर्महान्। पुरा समुद्रमथने समुत्तस्थौ महोदधेः॥१॥
सर्ववेदेषु निष्णातो मन्त्रतन्त्रविशारदः। शिष्यो हि वैनतेयस्य शङ्करस्योपशिष्यकः॥२॥
शिष्याणां च सहस्रेण गतः कैलासमीश्वरि। ददर्श तक्षकं मार्गे लेलिहानं भयानकम्॥३॥

लक्षनागैः परिवृतं शैलतुल्यं विषोल्बणम्।
भोक्तुं कोपात्समायान्तमेवं दृष्ट्वा जहास च॥४॥
दम्भो धन्वन्तरेः शिष्यो धृत्वा तक्षकमुल्बणम्।
मन्त्रेण जृम्भितं कृत्वा निर्विषं तं चकार ह॥५॥

अमूल्यं मणिरत्नं च जहार मस्तकस्थिरम्। करेण भ्रामयित्वा च प्रेरयामास दूरतः॥६॥

श्रीकृष्णदेव कहते हैं—भगवान् धन्वन्तरि स्वयं नारायण के अंश तथा महान् थे। पूर्वकाल में समुद्रमंथन के समय वे उस महासागर से उद्भूत हुये थे। वे समस्त वेदों में पारंगत तथा मन्त्र-तन्त्र विशारद हैं। वे गरुड़ के शिष्य तथा शंकर के उपशिष्य कहे गये हैं। हे ईश्वरी! राधिके! एक बार वे अपने १००० शिष्यों के साथ कैलास जा रहे थे। तभी मार्ग में उन्होंने जीभ लपलपाते महाभयानक नाग तक्षक को देखा। वह लाखों नाग से घिरा महाविषधर तक्षक पर्वत के समान विशाल था। उस तक्षक को क्रोधित होकर अपनी ओर भक्षणार्थ आते देखकर धन्वन्तरि शिष्य दम्भी हंसने लगा। उस शिष्य ने उस उद्धत तक्षक को मन्त्रबल से जृम्भित करके विष रहित किया तथा पकड़कर उसके मस्तक में स्थित अमूल्य नागमणि को निकाल कर घुमाया तथा दूर फेंक दिया!॥१-६॥

निश्चेष्टस्तक्षकस्तस्थौ तत्र मार्गे यथा मृतः। गणा निवेदनं चक्रुर्गत्वा वासुकिसन्निधिम्॥७॥

वासुकिस्तत्समाकर्ण्य प्रज्वलन्नतिकोपतः।
सर्पान्प्रस्थापयामासासंख्यांश्चैव विषोल्बणान्॥८॥

सर्पसेनाग्रणीनां च मुख्यान्पञ्च विशारदान्। द्रोणकालीयकर्कोटपुण्डरीकधनञ्जयान्॥९॥

सर्वे नागाः समाजग्मुर्यत्र धन्वन्तरिः स्वयम्।
भयमापुः शिष्यगणा दृष्ट्वा नागानसंख्यकान्॥१०॥

नागनिःश्वासवातेन सर्वे शिष्या मृता इव। निश्चेष्टा ज्ञानरहिताः शेरते धरणीतले॥११॥

इससे तक्षक मृतवत् निश्चेष्ट हो गया। वह वहीं मार्ग में ही पड़ा रह गया। तब तक्षक के साथ आये नाग वासुकि नाग के पास गये तथा उससे सभी वृत्तान्त का वर्णन किया। वासुकि यह वृत्तान्त

सुनकर क्रोध से जल उठा। उसने असंख्य महाविषधर सर्पों को सर्पसेना के अग्रणी द्रोण, कालिय, कर्कोटक, पुण्डरीक तथा धनञ्जय के साथ वहां भेजा। वे सब नाग वहां आये जहां स्वयं धन्वतरि स्थित थे। धन्वन्तरि के शिष्य इन असंख्य नागों को देखकर भयग्रस्त हो गये। वे सभी शिष्य नागों की निःश्वास वासु से ही निश्चेष्ट तथा चेतना रहित होकर धरती पर गिर गये! वे सभी ज्ञानशून्य हो गये थे।।७-११।।

धन्वन्तरिश्च भगवान्पीयूषवर्षणेन च। जीवयामास शिष्यांश्च मन्त्रेण च गुरुं स्मरन्॥१२॥

चेतनां कारयित्वा च शिष्याणां च जगद्गुरुः।
चकार जृम्भितं मन्त्रैः सर्पसङ्घं विषोल्बणम्॥१३॥
सर्वे बभूवुर्निश्चेष्टा जृम्भितास्ते मृता इव।
कोऽपि नालं ततो देवि वार्तां दातुं गणेषु च॥१४॥

वासुकिर्बुबुधे सर्व सर्वज्ञः सर्वसङ्कटम्। आजुहाव जगद्गौरीं भगिनीं ज्ञानरूपिणीम्॥१५॥

तभी भगवान् धन्वन्तरि ने अपने गुरु वैनतेय गरुड़ का स्मरण किया तथा अमृतवर्षा एवं मन्त्रोच्चार से सभी शिष्यों को पुनर्जीवित कर दिया। उस समय जगद्गुरु धन्वन्तरि ने शिष्यों को चेतनायुक्त करने के उपरान्त महाविषधर सभी सर्पगण को मन्त्र प्रयोग से जृम्भित कर दिया। सभी जृम्भणयुक्त सर्प धरती पर निश्चेष्ट से पड़ गये। हे देवी! उन सर्पगण में कोई अपने लोक में जाकर यह समाचार पहुंचाने योग्य भी नहीं रह गया, तथापि सर्वज्ञ वासुकिनाग ने यह संकट जान लिया उसने अपनी भगिनी ज्ञानरूपा जगद्गौरी को बुलाकर उससे कहा—।।१२-१५।।

वासुकिरुवाच

मनसे त्वं समागच्छ नागान्रक्षातिसङ्कटात्। जगत्त्रये महाभागे पूजा तव भविष्यति॥१६॥

वासुकि कहता है—हे मनसा! तुम नागजाति की इस संकट से रक्षा करने हेतु जाओ। इस कार्य को सम्पन्न करने के कारण तुम त्रैलोक्य पूजित हो जाओगी। हे महाभागे! शीघ्र जाओ।।१६।।

वासुकेर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्योवाच कन्यका।
वाक्यं पीयूषतुल्यं च विनयावनतस्थिता॥१७॥

वासुकि की बात सुनकर वह कन्या हंसकर विनीतभाव से अमृततुल्य वचन कहने लगी।।१७।।

मनसोवाच

नागेन्द्र शृणु मद्वाक्यं यास्यामि समरं प्रति।
भद्राभद्रं दैवसाध्यं करिष्यामि यथोचितम्॥१८॥

तं शत्रुं संहरिष्यामि लीलया समरस्थले। अहं यं निहनिष्यामि तं को रक्षितुमीश्वरः॥१९॥

यदि ब्रह्मादयो देवाः समायान्ति रणस्थले।
तथाऽपि तव शत्रुं च प्रजेष्यामि न संशयः॥२०॥

गुरुर्मे भगवाञ्शेषः सिद्धमन्त्रं च दत्तवान्। नारायणस्य जगतामीशस्य परमाद्‌भुतम्॥२१॥
बिभर्मि कवचं कण्ठे परं त्रैलोक्यमङ्गलम्।
संसारं भस्मसात्कृत्वा पुनः स्त्रष्टुमहं क्षमा॥२२॥

देवी मनसा कहती हैं—हे नागेन्द्र! मेरा कथन सुनिये। मैं युद्धस्थल पर जाकर यथोचित कार्य तो करूंगी, परन्तु जो कुछ शुभ-अशुभ होना है, वह तो दैव के अधीन है। मैं समरस्थल में अनायास उस शत्रु का संहार करूंगी। मैं जिसका संहार करूंगी उसकी रक्षा कौन कर सकता है? किम्बहुना, यदि ब्रह्मादि देवता भी उस रणभूमि में आते हैं (उस शत्रु की सहायता करते हैं), तथापि मैं उस शत्रु को जीत लूंगी। मेरे गुरु भगवान् अनन्तदेव ने मुझे जगदीश्वर नारायण का परम अद्भुत सिद्धमन्त्र प्रदान किया है। मैंने उस त्रैलोक्य मंङ्गल नामक उत्तम कवच को कण्ठ में पहना भी है। मैं तो संसार को भस्म करके उसकी पुनःसृष्टि भी कर सकती हूं। यह कार्य मैं इस कवच की कृपा से कर सकने में समर्थ हूं।।१८-२२।।

शिष्याहं मन्त्रशास्त्रेषु शंभोर्भगवतः पुराः। महाज्ञानं दत्तवान्स मह्यं च कृपया विभुः॥२३॥
शंभोश्च शिष्यो गरुडो गणयामि न तं ध्रुवम्।
धन्वन्तरिस्तच्छिष्याणामेकः किं गणयामि तम्॥२४॥

मैं मन्त्रशास्त्र हेतु भगवान् शिव की शिष्या हूं। उन प्रभु ने कृपा पूर्वक मुझे यह महाज्ञान प्रदान किया था। यद्यपि गरुड़ भी शिव के ही शिष्य हैं, तथापि मैं गरुड़ को भी कुछ नहीं समझती! धन्वन्तरि तो गरुड़ के अनेक शिष्यों में से एक है। उनकी मैं क्या गणना करूं?।।२३-२४।।

इत्युक्त्वा सा जगामैका त्यक्त्वा नागगणान्रुषा।
प्रणम्य श्रीहरिं शम्भुं शेषं च हृष्टमानसा॥२५॥
यत्र धन्वन्तरिर्देवः प्रसन्नवदनेक्षणः। तत्राऽऽजगाम सा देवी कोपरक्तेक्षणा रुषा॥२६॥
दृष्टिमात्रेण सर्पांश्च जीवयामास सुन्दरी। विषदृष्ट्या शत्रुशिष्यान्निश्चेष्टांश्च चकार ह॥२७॥
धन्वन्तरिस्तु भगवान्मन्त्रशास्त्रविशारदः। मन्त्रेण यत्नं कृतवान्नोत्थापयितुमीश्वरः॥२८॥

मनसा ने यह कहकर श्रीहरि, शम्भु तथा अनन्तदेव को प्रणाम किया तथा क्रोध में भरकर उन नाग वासुकि आदि को वहीं छोड़कर प्रसन्नचित्त से एकाकिनी वहां गई जहां प्रसन्न मुद्रा में धन्वन्तरि स्थित थे। वहां वह देवी मनसा क्रोध से आरक्त नेत्रों की स्थिति में आई। उस सुन्दरी के दृष्टिपात मात्र से सभी नागगण जीवित हो गये। उसकी विषदृष्टि पड़ते ही सभी शत्रु शिष्यगण चेष्टा रहित होकर पड़े रह गये। मन्त्रशास्त्र विशारद भगवान् धन्वन्तरि ने मन्त्रबल से शिष्यों को चेतना प्रदान करना चाहा, परन्तु वे कृतकार्य नहीं हो सके!।।२५-२८।।

दृष्ट्वा धन्वन्तरिं देवी प्रहस्योवाच सत्वरम्। [१]बहूक्तिमर्थयुक्तां च साहङ्कारां सुरेश्वरि॥२९॥

तब देवी ने धन्वन्तरि को देखकर अनेक अर्थमय अहंकारयुक्त वाक्य उनसे कहा—।।२९।।

---

१. क. कटूक्तिम्।

मनसोवाच

मन्त्रार्थं मन्त्रशिल्पं च मन्त्रभेदं महौषधम्।
वद जानासि किं सिद्ध शिष्याऽसि गरुडस्य च॥३०॥

अहं च वैतनेयश्च शिष्यौ शंभोश्च विश्रुतौ। सुकल्पकालं सुचिरमहं धन्वन्तरे शृणु॥३१॥

देवी मनसा कहती हैं–हे सिद्ध! हे धन्वन्तरि! तुम तो गरुड़ के प्रसिद्ध शिष्य हो, अतएव क्या तुमको मन्त्रार्थ, मन्त्रशिल्प, मन्त्रभेद तथा महान् औषध का ज्ञान है? हे धन्वन्तरि! मैं तथा तुम्हारे गुरु गरुड़, दोनों ही शिव के विख्यात विश्रुत शिष्य हैं। हमने एक कल्प पर्यन्त शंभु से शिक्षा ग्रहण किया है॥३०-३१॥

इत्युक्त्वा सरसः पद्मं समानीय जगत्प्रसूः। मन्त्रसंवलितं कृत्वा प्रेरयामास कोपतः॥३२॥

दृष्ट्वाऽऽगतं पद्मपुष्पं ज्वलदग्निशिखोपमम्।
धन्वन्तरिश्च निःश्वासैर्भस्मसात्तच्चकार ह॥३३॥

तच्च धन्वन्तरिं दृष्ट्वा समन्त्ररेणुमुष्टिना। चकार निष्फलं भस्म तां प्रहस्यावलीलया॥३४॥

देवीं जग्राह शक्तिं च ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम्। मन्त्रसंवलितां कृत्वा प्रेरयामास तं रिपुम्॥३५॥

दृष्ट्वा जाज्वल्यमानां तां शक्तिं धन्वन्तरिः स्वयम्।
विष्णुदत्तेन शूलेन समुच्चिच्छद लीलया॥३६॥

यह कहकर जगज्जननी मनसा ने सरोवर के एक कमल पुष्प को मन्त्रयुक्त करके क्रोध पूर्वक धन्वन्तरि पर फेंका। उस ज्वलन्त अग्निशिखावत् पुष्प को आते देखकर धन्वन्तरि ने उसे निःश्वास मात्र से भस्मवत् कर दिया। इसके पश्चात् धन्वन्तरि ने हंसते हुये एक मुट्ठी धूल उठाकर उसे अभिमन्त्रित किया तथा कमल की भस्म का प्रभाव इस धूल से नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् मनसा ने एक शक्ति उठाया, जो ग्रीष्मकालीन सूर्य की प्रभा से युक्त था। उसे अभिमन्त्रित करके मनसा ने शत्रु धन्वन्तरि के ऊपर छोड़ा। परन्तु उस जाज्वल्यमान शक्ति को अपनी ओर आते देखकर धन्वन्तरि ने अनायास विष्णुप्रदत्त शूल द्वारा उसे नष्ट कर दिया॥३२-३६॥

तां च शक्तिं वृथा दृष्ट्वा प्रजज्वालेश्वरी रुषा।
जग्राह नागपाशं च घोरमव्यर्थमुल्बणम्॥३७॥

नागलक्षसमायुक्तं सिद्धमन्त्रेण मन्त्रितम्। प्रेरयामास कोपेन कालान्तकसमप्रभम्॥३८॥

धन्वन्तरिर्नागपाशं दृष्ट्वा च सस्मितो मुदा। सस्मार गरुडं तूर्णमाजगाम खगेश्वरः॥३९॥

उस शक्ति को व्यर्थ होते देखकर देवी क्रोध से प्रज्वलित हो उठीं। उन्होंने अमोघ भयानक नागपाश ग्रहण किया, जो काल के समान महाविषधर एक लाख महानागों से युक्त था। इसे मनसा ने सिद्धमन्त्र से अभिमन्त्रित करके क्रोध में भरकर धन्वन्तरि पर छोड़ा। धन्वन्तरि ने यह नागपाश अपनी

ओर आते देखकर आनन्द सहित हंसते हुये गरुड़देव का स्मरण किया, जिससे पक्षीराज वहां शीघ्र आ गये।।३७-३९।।

सर्पास्त्रमागतं दृष्ट्वा गरुडो हरिवाहनः। [१]निधाय चञ्चुना शीघ्रं बुभुजे क्षुधितश्चिरम्।।४०।।

नागास्त्रं निष्फलं दृष्ट्वा कोपरक्तेक्षणा भृशम्।
जग्राह भस्ममुष्टिं च शिवदत्तां पुरा प्रिये।।४१।।
भस्ममुष्टिं मन्त्रपूतां दृष्ट्वा च प्रेरितां यथा।
पक्षवातेन चिक्षेप शिष्यं पश्चान्निधाय च।।४२।।

उस सर्पास्त्र को धन्वन्तरि की ओर आते जब हरिवाहन गरुड़ ने देखा, तब उन दीर्घकाल से भूखे गरुड़ ने शीघ्रता पूर्वक अपनी चोंच के प्रहार से उस अस्त्र के सभी नाग-सर्पगण को खा लिया। जब मनसा ने नागास्त्र को व्यर्थ जाते देखा, तब अत्यन्त क्रोधित होने के कारण उनके नेत्र रक्त जैसे लाल हो गये। हे प्रिये राधिके! तब मनसा ने पूर्वकाल में शिवप्रदत्त भस्म को हाथों लिया तथा उसे मन्त्र से पवित्र करके धन्वन्तरि पर छोड़ा। तब गरुड़ ने शिष्य धन्वन्तरि को अपने पृष्ठभाग में करके अपने पंखों को हिलाकर उस भस्म को उड़ा दिया।।४०-४२।।

निरस्तां भस्मुष्टिं च दृष्ट्वा देवी चुकोप ह। जग्राह शूलमव्यर्थं हन्तुं धन्वन्तरिं स्वयम्।।४३।।
शिवदत्तं च शूलं च शतसूर्यसमप्रभम्। अव्यर्थशूलं लोकेषु प्रलयाग्निसमप्रभम्।।४४।।

भस्म को व्यर्थ जाते देखकर देवी मनसा अत्यन्त कुपित हो गईं। उन्होंने धन्वन्तरि का वध करने हेतु शिवप्रदत्त शतसूर्य समप्रभ अमोघ तथा प्रलयाग्निसमप्रभ शूल उठाया।।४३-४४।।

अथ ब्रह्मा तथा शम्भुराजगाम रणाजिरम्। धन्वन्तरेश्च रक्षार्थं शमनार्थं खगस्य च।।४५।।

दृष्ट्वा शम्भुं जगद्गौरी विधिं च जगतां पतिम्।
भक्त्या ननाम तावेव निःशङ्का शूलधारिणी।।४६।।

धन्वन्तरिश्च गरुडः प्रणनाम सुरेश्वरौ। तुष्टाव परया भक्त्या तौ च चक्रतुराशिषम्।।४७।।

तभी धन्वन्तरि की रक्षा करने तथा गरुड़ को शान्त करने के उद्देश्य से वहां रणभूमि में ब्रह्मा एवं शिव आ गये। तब निःशङ्क शूल लिये खड़ी जगद् गौरी ने वहां जगत्पति ब्रह्मा तथा शिव को आया देखकर उनको भक्तिभाव से प्रणाम किया। धन्वन्तरि तथा गरुड़ ने भी इन देवश्रेष्ठ ब्रह्मा तथा शिव को प्रणाम किया। तदनन्तर परम भक्तिभाव से उनकी स्तुति भी किया।।४५-४७।।

उवाच ब्रह्मा मधुरं हितं धन्वन्तरिं मुदा।
पूजार्थं मनसायाश्च लोकानां हितकाम्यया।।४८।।

अब लोकहितार्थ तथा मनसादेवी की पूजा हेतु मुदित मन से ब्रह्मा ने धन्वन्तरि से मधुर एवं हितप्रद वाक्य कहा-।।४८।।

---

१. ख. विधा०।

ब्रह्मोवाच

धन्वन्तरे महाभाग सर्वशात्रविशारद। रणं ते मनसा सार्धं न हि साम्यं च मे मतम्॥४९॥
शिवदत्तेन शूलेन दुर्निवार्येण सर्वतः। त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं क्षमेयं त्रिदशेश्वरी॥५०॥
ध्यानं कौथुमशाखोक्तं कृत्वा भक्त्या समाहितः।
दत्त्वा षोडशोपचारं देव्याश्च कुरु पूजनम्॥५१॥
आस्तीकोक्तेन स्तोत्रेण स्तवनं कर्तुमर्हसि। परितुष्टा च मनसा वरं तुभ्यं प्रदास्यति॥५२॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे महाभाग धन्वन्तरि! हे सर्वशास्त्रज्ञ! मेरे विचार से मनसा से युद्ध करना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। ये देवी शिव प्रदत्त त्रिशूल से त्रैलोक्य को भस्म करने में समर्थ हैं। अतः अब तुम समाहित होकर भक्तिभाव से कौथुमशाखोक्त ध्यान के साथ १६ उपचारों से देवी की पूजा करो तथा आस्तीक मुनि कथित स्तोत्र से इनका स्तव करो। तभी मनसा प्रसन्न होकर तुमको वर प्रदान करेंगी॥४९-५२॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा चकारानुमतिं शिवः। वैनतेयश्च सम्प्रीत्या बोधयामास यत्नतः॥५३॥
एषां च वचनं श्रुत्वा स्नात्वा शुचिरलंकृतः।
विधिं पुरोहितं कृत्वा पूजां कर्तुं समुद्यतः॥५४॥

ब्रह्मा का वाक्य सुनकर शिव ने भी धन्वन्तरि को अनुमति दे दिया। तत्पश्चात् गरुड़ ने भी प्रेम पूर्वक धन्वन्तरि को समझाया। तदनन्तर धन्वन्तरि ने इन सबकी आज्ञा के अनुसार स्नानोपरान्त पवित्र तथा वस्त्रादि से अलंकृत होकर ब्रह्मा को पुरोहित बनाया तथा पूजार्थ उद्यत हो गये॥५३-५४॥

धन्वन्तरिरुवाच

इहाऽऽगच्छ जगद्गौरि गृहाण मम पूजनम्।
पूज्या त्वं त्रिषु लोकेषु पुरा कश्यपकन्यके॥५५॥
त्वया जितं जगत्सर्वं देवि विष्णुस्वरूपया। तेन तेऽस्त्रप्रयोगश्च न कृतो रणभूमिषु॥५६॥

भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं–"हे जगद्गौरी! यहां आकर मेरी पूजा स्वीकार करिये। हे कश्यपनन्दिनी! आप त्रैलोक्यपूज्या तथा श्रेष्ठा हैं। हे देवी! आपने ही विष्णुस्वरूपा होकर समस्त जगत् को जीत लिया है। इसी कारण इस रणभूमि में मैंने आपके ऊपर किसी अस्त्र का प्रहार नहीं किया था"॥५५-५६॥

इत्युक्त्वा संयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः।
गृहीत्वा शुक्लकुसुमं ध्यानं कर्तुं समुद्यतः॥५७॥

यह कहकर संयत तथा भक्तिभाव से नत धन्वन्तरि ने हाथों में श्वेत पुष्प लिया तथा मनसा देवी का ध्यान करने लगे॥५७॥

चारुचम्पकवर्णाभां सर्वाङ्गसुमनोहराम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शोभितां सूक्ष्मवाससा॥५८॥

सुचारुकबरीशोभां रत्नाभरणभूषिताम्। सर्वाभयप्रदां देवीं भक्तानुग्रहकारकाम्॥५९॥
सर्वविद्याप्रदां शान्तां सर्वविद्याविशारदाम्।
नागेन्द्रवाहिनीं देवीं भजे नागेश्वरीं पराम्॥६०॥

ध्यान–आप चारु चम्पा पुष्प के समान वर्ण वाली हैं। आपके सभी अंग सुमनोहर हैं। आपका मुखमण्डल किञ्चित् हास्य के कारण विकसित (कुछ खुला है) है। आप सूक्ष्मवस्त्र से शोभायमान हैं। आप केशपाश तथा रत्नों के आभूषण से भूषिता हैं। आप अभयप्रदा, दिव्यरूपिणी, भक्तों के प्रति अनुग्रह करने वाली, सर्वविद्या प्रदात्री, शान्तस्वरूपिणी, सर्वविद्या विशारदा, नागेन्द्रवाहिनी, नागेश्वरी तथा परा देवी हैं।।५८-६१।।

ध्यात्वैवं कुसुमं दत्त्वा नानाद्रव्यसमन्वितम्।
दत्त्वा षोडशोपचारं पूजयामास तां प्रिये॥६१॥
स्तोत्रं चकार यत्नाच्च पुलकाञ्चितविग्रहः।
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः॥६२॥

हे प्रिये राधा! धन्वन्तरि ने इस प्रकार का ध्यान करके पुष्प प्रदान किया तथा नानाद्रव्य युक्त १६ उपचारों से भगवती का पूजन करने के पश्चात् धन्वन्तरि का शरीर भक्तिभाव से रोमांचित तथा पुलकित हो उठा। वे भक्ति पूर्वक नतशिर होकर तथा हाथ जोड़कर भगवती मनसा की स्तुति करने लगे।।६१-६२।।

धन्वन्तरिरुवाच

नमः सिद्धिस्वरूपायै सिद्धिदायै नमो नमः।
नमः कश्यपकन्यायै वरदायै नमो नमः॥६३॥
नमः शङ्करकन्यायै शङ्करायै नमो नमः। नमस्ते नागवाहिन्यै नागेश्वय नमो नमः॥६४॥
नमः आस्तीकजनन्यै जनन्यै जगतां मम।
नमो जगत्कारणायै जरत्कारुस्त्रियै नमो नमः॥६५॥

श्रीधन्वन्तरि कहते हैं–आप सिद्धिस्वरूपा, सिद्धिप्रदा हैं। आपको पुनः-पुनः नमस्कार! हे कश्यपकन्या, आप वरप्रदा हैं। आप शंकर कन्या, शंकर रूपा को बारम्बार प्रणाम! आप नागवाहिनी तथा नागेश्वरी, आस्तीक जननी, जगज्जननी, जगत्कारणभूता, जरत्कारु मुनि की पत्नी हैं। आपको बारम्बार नमस्कार करता हूं!।।६४-६५।।

नमो नागभगिन्यै च योगिन्यै च नमो नमः। नमश्चिरं तपस्विन्यै सुखदायै नमो नमः॥६६॥
नमस्तपस्यारूपायै फलदायै नमो नमः।
सुशीलायै च साध्व्यै च शान्तायै च नमो नमः॥६७॥

आप नागों की बहन, योगिनी, चिरकाल तपःश्चरण करने वाली, सुखप्रदा, तपस्यारूपा, सुखदा, फलप्रदा, सुशीला, साध्वी तथा शान्तस्वरूपा को बारम्बार नमस्कार करता हूं!।।६६-६७।।

इत्येवमुक्त्वा भक्त्या च प्रणनाम प्रयत्नतः।
तुष्टा देवी वरं दत्त्वा सत्वरं स्वालयं ययौ॥६८॥

ब्रह्मरुद्रवैनतेयाः समाजग्मुर्निजालयम्। धन्वन्तरिश्च भगवाञ्जगाम निजमन्दिरम्॥६९॥
जग्मुर्नागाः प्रहृष्टाश्च फणाराजिविराजितः। इत्येवं कथितं सर्वं स्तवराजं मया तव॥७०॥

विधिना मातरं भक्तिमास्तीकश्च चकार ह।
तदा तुष्टा जगद्गौरी पुत्रं तं मुनिपुङ्गवम्॥७१॥

यह कहकर धन्वन्तरि ने मनसा को भक्ति के साथ प्रणाम किया। इससे प्रसन्न होकर देवी ने धन्वन्तरि को वर दिया तथा स्वगृह चली गईं। ब्रह्मा, शिव, गरुड़ अपने-अपने स्थान पर चले गये। धन्वन्तरि भी स्वगृह लौट गये। फणधारी सभी नाग भी प्रसन्न होकर वहां से चले गये। तत्पश्चात् ऋषि आस्तीक ने भी अपनी माता मनसा की सविधि भक्तिभाव से पूजा किया। वे जगद्गौरी तब अपने इन पुत्र के प्रति प्रसन्न हो गईं।।६८-७१।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्।
वंशजानां नागभयं नास्ति तस्य न संशयः॥७२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं० धन्वन्तरिदर्पभङ्गमनसा-
विजयो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५१।।

—❋❋❋—

इस महापुण्य स्तोत्र का जो भक्तिभावेन पढ़ता है, उसे तथा उसके वंशजों को कदापि नागों का भय नहीं होता। यह निश्चित है।।७२।।

।।५१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधा का खेद, पहले राधा कहकर तब कृष्ण अर्थात् राधा-कृष्ण कहने का रहस्य

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वेषां दर्पभङ्गश्च कथितश्च श्रुतस्त्वया। क्षुद्राणां महतां चैव कृत एव न संशयः॥१॥
अधुना च समुत्तिष्ठ गच्छ वृन्दावनं वनम्। गोपिका विरहार्ताश्च शीघ्रं पश्यामि सुन्दरि॥२॥

श्रीकृष्णदेव कहते हैं—इस प्रकार मैंने सभी के दर्पभंग का विषय कह दिया। यह सब तुमने श्रवण किया। सभी क्षुद्र का तथा महान् का दर्पभंग होता है। इसमें सन्देह नहीं है। अब हे राधा! तुम उठो तथा वृन्दावन जाओ। मैं वहां विरह से आर्त्त गोपियों को शीघ्र देखूंगा।।१-२।।

नारायण उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा मानिनी रसिकेश्वरी। उवाच कृष्णं नय मां न शक्ता गन्तुमीश्वर॥३॥
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः। मामारुहेत्येवमुक्त्वा सोऽन्तर्धानं चकार ह॥४॥
सा मनोयायिनी राधा कृत्वा च रोदनं क्षणम्। इतस्ततस्तमन्वेष्य वृन्दारण्यं जगाम सा॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—यह सुनकर मानिनी रसिकेश्वरी राधा ने कृष्ण से कहा—"हे ईश्वर! मुझे आप ही ले चलिये। मैं चलने में असमर्थ हूं।" राधिका का कथन सुनकर श्रीकृष्ण हंसने लगे। उन्होंने कहा "तुम मेरे ऊपर बैठकर चलो।" यह कहकर वे अन्तर्ध्यान हो गये। तब मनोवेग से चलने वाली राधा इतःस्ततः कृष्ण को खोजने के पश्चात् कुछ क्षण रुदन करके वृन्दावन चली गईं।।३-५।।

विवेश चन्दनवनं रुदती शोककातरा। ददर्श गापिकास्तत्र शोकार्ता भयविह्वलाः॥६॥
ताम्रास्या घूर्णनयना भ्रमन्तीः सर्वकाननम्।
नाथ नाथेति कुर्वन्ती निराहारा रुषाऽन्विताः॥७॥

वहां जब राधा ने चन्दन वन में प्रवेश किया, तब वे देखती हैं कि वहां शोकार्त्त, भयविह्वल, रोती हुई गोपियां जिनका मुख ताम्रवर्ण का हो गया है, नेत्र कृष्ण के विरह में चंचल हैं, वहां सभी काननों में "हा नाथ! हा नाथ! पुकारती निराहार एवं कोपयुक्त भटक रही हैं।।६-७।।

तां दृष्ट्वा राधिका सा च प्रेमविच्छेदकातरा। कथयामास वृत्तान्तं मलयभ्रमणादिकम्॥८॥
ताभि सार्धं च सा राधा रुरोद विरहातुरा। हा नाथ नाथेत्युच्चार्य विलप्य च मुहुर्मुहुः॥९॥

राधिका कृष्ण के प्रेम के विच्छेद के कारण अत्यन्त कातर थीं। उन्होंने गोपियों से अपने मलयपर्वत आदि के भ्रमण का प्रसंग कहा। तदनन्तर विरहकातर राधा भी गोपियों के साथ रोने लगीं। वे हा नाथ! हा नाथ! पुकारती विलाप करने लगीं।।८-९।।

विनिन्द्य कृष्णं कोपेन तर्जयामास च क्षणम्।
क्षणं शरीरमुत्स्त्रष्टुं कोपात्सर्वाः समुद्यताः॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तत्र चन्दनकानने।
स्वात्मानं दर्शयामास राधिकां गोपिकागणम्॥११॥

तदनन्तर वे कोप से तर्जन करती साथ ही विलाप करती कृष्ण निन्दा करने लगीं। वे क्षण में कोप के कारण देहत्याग हेतु भी उद्यत हो गईं। तदनन्तर कृष्ण ने वहां चन्दन वन में राधा तथा गोपियों को अपना दर्शन प्रदान किया।।१०-११।।

राधा गोपाङ्गनाभिश्च दृष्ट्वा प्राणेश्वरं मुदा। सस्मिता च प्रदुद्राव पलकाञ्चितविग्रहा॥१२॥
तूर्णं कृष्णं समाश्लिष्य जहार मुरलीं रुषा।
मालां च पीतवसनं नग्नं[1] कृत्वा च मानिनी॥१३॥

जब राधा एवं गोपीगण ने प्राणेश्वर कृष्ण को देखा वे मुदित हो गईं। उन्होंने मुस्कराते हुये शीघ्र उनके निकट आ गईं। कृष्ण दर्शन से उनका शरीर पुलकित हो उठा। उन्होंने शीघ्रता के साथ कृष्ण का आलिंगन किया। तदनन्तर क्रोध से कृष्ण की मुरली-माला-पीताम्बर का उन सबने हरण कर लिया। मानिनी राधा ने तो कृष्ण को नग्न ही कर दिया।।१२-१३।।

पुनः संधारयामास वस्त्रं मालां मनोहराम्। विनोद मुरलीं तुष्टा वृन्दावनविनोदिनी॥१४॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च कातरम्। मुहुर्मुहुर्मुखं वीक्ष्य चुचुम्ब परमादरम्॥१५॥
क्षणं संतर्जयामास क्षणं स्तोत्रं चकार ह। सकूर्परं ज ताम्बूलं क्षणं तस्मै ददौ मुदा॥१६॥

तत्पश्चात् वृन्दावन विनोदिनी राधा ने प्रसन्न होकर कृष्ण को पुनः वस्त्र-मनोहर माला तथा विनोद मुरली से युक्त भी कर दिया था। उन्होंने कृष्ण का शरीर चन्दन अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम के लेप से लिप्त करके परम आदर पूर्वक बारम्बार कृष्ण का मुखकमल देखते हुये उसका चुम्बन भी किया। वे क्षण में कृष्ण की तर्जना करती, अगले ही क्षण उनकी स्तुति करने लगती। अगले ही क्षण राधा ने श्रीकृष्ण प्रभु को कर्पूरादि से सुवासित किया गया ताम्बूल प्रदान किया।।१४-१६।।

अथ गोपाङ्गना सर्वा रुरुदुः प्रेमविह्वलाः। सर्वं निवेदनं चक्रुः स्वदुखं विरहोद्भवम्॥१७॥
देहत्यागं च स्नानं च स्वाहारस्य विसर्जनम्। वने वनेऽहर्निशं च शश्वद्भ्रमणमेव च॥१८॥
क्षणं तं भर्त्सयामासुः स्तोत्रं चक्रुःक्षणं मुदा।
क्षणं ददुर्भूषणं च क्षणं तस्मै च चन्दनम्॥१९॥
काश्चिदूचुः प्राणचोरं पश्य रक्षेति सन्ततम्। एवं पुनर्न कर्तव्यमनेनेति च काश्चन॥२०॥
काश्चिदूचुरिमं मध्ये यूयं कुरुत सत्वरम्। निबद्धप्रेमपाशेन हृदये चेति काश्चन॥२१॥

१. ख. भग्नं।

काश्चिदूचुरयं नास्ति प्रतीतिर्न कदाचन। यत्नाच्चेतनचोरं च पश्य पश्येति काश्चन॥२२॥
काश्चिदूचुर्निष्ठुरोऽयं नरघातीति कोपतः। न पुनर्वदते मां च काश्चनेति च नारद॥२३॥

तदनन्तर सभी प्रेमविह्वल गोपियों ने रोते हुये विरहवेदना काल के अपने-अपने दुख का निवेदन श्रीकृष्ण से किया। उन्होंने कृष्ण से यह भी बतलाया कि उस विरहकाल में उन्होंने देहत्याग हेतु प्रस्तुत होकर स्नान-भोजनादि का त्याग किया। उस समय वनों में रात-दिन भटकना भी कृष्ण से गोपीगण ने कहा। तदनन्तर गोपियां कभी तो विरहवेदना को याद करके उनकी भर्त्सना करतीं, तो कभी इस पुनर्मिलन से विभोर होकर प्रसन्नता पूर्वक कृष्ण की स्तुति करतीं! कभी उनको आभूषण धारण करातीं, कभी कृष्ण के शरीर में चन्दनादि का लेप करतीं। इस समय कोई गोपी कहने लगीं-"ये तो पहले ऐसे (निर्दयी) नहीं थे।" कोई कहती "हे सखी! इन प्राणचोर को अपने नयनों में रख लो।" कोई कहती-"तुम लोग इनको शीघ्र हम सबके बीच में लाओ।" कोई कहतीं-"इन चित्तचोर को प्रेमपाश में बांधकर हृदय में स्थित करो।" कोई कहने लगीं-"इनका कभी विश्वास मत करना।" कोई गोपी कहती-"इन चितचोर पर सदा दृष्टि रखकर पहरा दो।" हे नारद! कोई गोपी कातर स्वर में कहती- "यह कृष्ण तो निष्ठुर नर हत्यारे हैं!" कोई गोपी कहती-"इन कृष्ण के प्रति ऐसे कठोर वाक्यों का प्रयोग मत करो।" कोई कहती-"ये मुझसे बात ही नहीं कह रहे हैं!"॥१७-२३॥

निर्जनानि च रम्याणि यानि यानि वनानि च।
भ्रमेयुर्गोपिकास्तानि कृष्णेन सह कौतुकात्॥२४॥

एवं तं गोपिकाः सर्वा मध्ये कृत्वा सदीश्वरम्। ययुर्वनान्तरं यत्र सुरम्यं रासमण्डलम्॥२५॥

तत्पश्चात् गोपियों ने यह विचार किया कि हम सभी कृष्ण के साथ कौतुक पूर्वक यहां के सभी निर्जन एवं रम्य वनों में भ्रमण करें। इस निर्णय के साथ सभी गोपियों ने कृष्ण को अपने बीच में किया तथा उनके साथ उस वन में चली गईं, जहां अत्यन्त रम्य रासमण्डल था॥२४-२५॥

रासं गत्वा स्वर्णपीठे तस्थौ स रसिकेश्वरः।
निशि भाति यथाऽऽकाशे चन्द्रस्तारागणैः सह॥२६॥
नानामूर्तिर्विधायात्र सह ताभिर्जनार्दनः।
चकार च पुनः क्रीडां कामुकीनां मनोहराम्॥२७॥

वहां रसिकेश्वर कृष्ण रासमण्डलस्थ स्वर्णपीठ पर विराजमान हो गये। वे वहां गोपियों के मध्य में उसी प्रकार शोभायमान थे, जिस प्रकार आकाश में तारागण के साथ चन्द्रमा शोभित होते हैं। तत्पश्चात् वहां कृष्ण ने अपने समान अनेक मूर्त्ति (शरीर) धारण किया तथा उन गोपियों के साथ पुनः कामुकों को प्रिय लगने वाली मनोहारिणी क्रीड़ा करने लगे॥२६-२७॥

स्वयं राधां करे धृत्वा पूर्वोक्तं रतिमन्दिरम्। विश्वकर्मविनिर्माणमारुरोह स्मरातुरः॥२८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाक्तं सुवासितम्। तत्र चम्पकतल्पे स सुष्वाप च तया सह॥२९॥

कृष्ण ने स्वयं राधा का करकमल पकड़ा तथा वे कामातुर होकर विश्वकर्मा निर्मित रतिमन्दिर में पहुंच गये। वह मन्दिर (गृह) चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम के लिप्त तथा सुवासित था। उन्होंने वहां चम्पा की बनी पुष्पशय्या पर राधा के साथ शयन किया।।२८-२९।।

नानाप्रकारशृङ्गारं कामशास्त्रविशारदः।
चकार कामी क्रीडां च कामिन्या सह कौतुकी॥३०॥
बभूव सुरतिस्तत्र सुचिरं च तयोर्मुने। रतिनिष्ठा तयो रम्या निरतिर्नास्ति तत्क्षणम्॥३१॥
एवं तौ तस्थतुस्तत्र राधाकृष्णौ रसोत्सुकौ।
तस्थुस्ता गोपिकाभिश्च सुरतौ कृष्णमूर्तयः॥३२॥

कामासक्त, कामशास्त्र विशारद कृष्ण ने वहां कौतुमवशात कामिनी राधा के साथ अनेक रतिक्रीड़ा किया। हे मुनि! वे दोनों राधा-कृष्ण वहां सुदीर्घकाल तक रतिक्रीड़ा रत थे। वे दोनों रतिक्रिया में प्रवीण थे। अतः उन्होंने इस कार्य में क्षणकाल भी विराम नहीं किया। वे रतिरसोत्सुक राधा-कृष्ण वहां इस प्रकार अवस्थान करने लगे। इसी प्रकार कृष्ण की अन्य मूर्त्तियां (अन्य कृष्णरूप) भी गोपियों के साथ इसी प्रकार रतिक्रीड़ासक्त थे।।३०-३२।।

नारद उवाच

आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं विदुर्बुधाः।
निमित्तमस्य मां भक्तं वद भक्तजनप्रिय॥३३॥

देवर्षि नारद कहते हैं-हे भक्तजनप्रिय! जो विद्वान् वर्ग है, वह पहले राधा कहकर तब कृष्ण कहता है। कृपया मुझ भक्त से इसका कारण कहिये।।३३।।

नारायण उवाच

निमित्तमस्य त्रिविधं कथयामि निशामय। जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता॥३४॥
गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः।
राधाकृष्णोति गौरीशेत्येवं शब्दः श्रुतौ श्रुतः॥३५॥
कृष्णराधेशगौरीति लोके न च कदा श्रुतः। प्रसीद रोहिणीचन्द्र गृहाणार्घ्यमिदं मम॥३६॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सह भास्कर। प्रसीद कमलाकान्त गृहाण मम पूजनम्॥३७॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं-इसके तीन कारण हैं। उसे सुनो-(१) प्रकृति हैं जगन्माता। पुरुष हैं जगत्पिता, तथापि त्रैलोक्य में पिता की अपेक्षा माता को अधिक गौरवमयी माना गया है। वे पिता से १०० गुना अधिक गरीयसी कही गई हैं। (२) तभी वेद में राधाकृष्ण किंवा गौरीश कहा गया है। किसी को भी कृष्णराधा तथा ईशगौरी कहते नहीं सुना गया। अन्य देवता के लिये भी हे रोहिणीचन्द्र! अथवा सूर्य के लिये "हे संज्ञासहित सूर्य! आप मेरे अर्घ्य को स्वीकार करके प्रसन्न हों।" अथवा "हे कमलाकान्त! मेरी पूजा ग्रहण करके आप प्रसन्न हो जायें।" यह कहते हैं।।३४-३७।।

इति दृष्टं सामवेदे कौथुमे मुनिसत्तम। राशब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवति माधवः॥३८॥
धाशब्दोच्चारतः पश्चाद्धावत्येव ससंभ्रमः।
आदौ पुरुषमुच्चार्य पश्चात्प्रकृतिमुच्चरेत्॥३९॥
स भवेन्मातृघाती च वेदातिक्रमेण मुने। त्रैलोक्ये भारतं धन्यं कर्मक्षेत्रं च पुण्यदम्॥४०॥

हे मुनिसत्तम! सामवेद की कौथुमीशाखा में भी यही परिलक्षित होता है, जो ऊपर कहा गया है। (३) "रा" शब्द उच्चरित होते ही कृष्ण उठ जाते हैं। 'धा' कहते ही वे ससंभ्रम उच्चारणकर्त्ता के पीछे दौड़ने लगते हैं। जो पहले पुरुष नाम (कृष्ण, शिव, चन्द्र, सूर्य आदि का) का उच्चारण करके तब प्रकृति (राधा, पार्वती, रोहिणी, संज्ञा आदि का) उच्चारण करता है, हे मुनिवर! वह वेद का उल्लंघन करने वाला मातृघाती के समान पातकी है। त्रैलोक्य में भारत धन्य तथा पुण्यप्रद कर्मक्षेत्र है।।३८-४०।।

ततो वृन्दावनं पुण्यं राधापादाब्जरेणुना। षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं च वेधसा।
राधिकाचरणाम्भोजपादरेणूपलब्धये॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधामाधवयो रासवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५२।।

—※※—

इसमें भी सर्वाधिक पुण्य प्रदेश है राधा के चरणकमलों की धूलि से परिपूत वृन्दावन। राधा के इन्हीं चरणकमलों की रज पाने हेतु ब्रह्मा ने ६०००० वर्ष कठोर तप किया था।।४१।।

।।५२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधा कृष्ण का विहार

नारद उवाच

समतीते पूर्णरासे किं चकार जगत्पतिः। रहस्यं किं बभूवाथ तद्भवान्वक्तुमर्हति॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—पूर्णरास सम्पन्न हो जाने पर जगत्पति ने अन्य कौन-सा रहस्यावृत चरित किया, यह कृपया आप बतलाने की कृपा करिये।।१।।

नारायण उवाच

रासं निवर्त्य रासे च रासेश्वर्या समन्वितः। स्वयं रासेश्वरस्तस्माद्यमुनापुलिनं ययौ॥२॥

तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा निर्मलं निर्मले जले।
सार्धं गोपाङ्गनाभिश्च जलक्रीडां चकार सः॥३॥

ततो जगाम भगवान्भाण्डीरं राधया सह। गोपाङ्गनाश्च स्वगृहान्प्रययुर्विरहातुराः॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—स्वयं रासेश्वर ने रासेश्वरी के साथ रासमण्डल में रासक्रीड़ा सम्पन्न करके वहां से यमुना तट की ओर प्रस्थान किया। वहां के निर्मल जल में स्नान किया तथा उस निर्मल जल का पान करके वहीं श्रीकृष्ण प्रभु गोपियों के साथ जलक्रीड़ा करने लगे। तदनन्तर भगवान् वहां से भाण्डीरवन में राधा के साथ गये। गोपियां राधाकृष्ण के चले जाने पर विरहाकुल होकर अपने-अपने गृह चली गईं॥२-४॥

क्रीडां चकार रहसि भाण्डीरे मालतीवने। मालतीपुष्पशय्यायां रम्यायां रमणोत्सुकः॥५॥
कृत्वा क्रीडां च तत्रैव वासन्तीकाननं ययौ। रेमे तत्रैव रासेशो वसन्ते सुमनोहरे॥६॥
तत्रैव रमणं कृत्वा ययौ चन्दनकाननम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो गृहीत्वा चन्दनोक्षिताम्॥७॥
रम्ये चन्दनतल्पे च स्निग्धे चन्दनपल्लवे। पूर्णचन्द्रे समुदिते विजहार तया सह॥८॥
कृत्वा विहारं तत्रैव ययौ चम्पककाननम्। रम्ये चम्पकतल्पे च चकार रतिमीश्वरः॥९॥
रतिं निर्वृत्य तत्रैव ययौ पद्मवनं प्रभुः। पद्मपत्रसमाकीर्णे तल्पेऽतिसुमनोहरे॥१०॥

रमणोत्सुक राधा के साथ कृष्ण ने भाण्डीरवन में मालती पुष्प शय्या पर रमणक्रीड़ा किया तदनन्तर वहां से कृष्ण तथा राधा वासन्ती वन में गये। उस सुमनोहर वासन्तीवन में जाकर राधा के साथ रमण किया। तत्पश्चात् कृष्ण तथा राधा यहां से चन्दनवन में गये। वहां जाते-जाते पूर्ण चन्द्रमा उदित हो गये। वहां श्रीकृष्ण का सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित था। राधिका देवी भी चन्दन चर्चित थीं। वहां चन्दन वृक्ष के पत्तों की रमणीक चन्दन लिप्त शय्या पर श्रीकृष्ण राधा के साथ विहार में प्रवृत्त हो गये। वहां से विहार समाप्त करके भगवान् राधा के साथ चम्पकवन में गये। वहां वे रमणीय चम्पक पुष्प बिछी शय्या पर राधा के साथ रतिक्रीड़ारत हो गये। वहां भगवान् ने जब रतिक्रीड़ा सम्पन्न कर लिया, तब वे राधा को लेकर पद्मवन में आये। वहां पद्म की पंखुड़ियां बिछी सुमनोहर शय्या थी॥५-१०॥

सार्धं तत्र पद्ममुख्या शीतेन पद्मवायुना। चकार सुखसंभोगं ययौ निद्रां तया सह॥११॥
विहाय निद्रां निद्रेशो ददर्श निद्रितां प्रियाम्। शयानां पद्मतल्पे च सुखसंभोगमात्रतः॥१२॥

वहां कृष्ण ने इस शय्या पर पद्ममुखी राधा के साथ सुखसम्भोग किया तथा उनके साथ निद्रित हो गये। तदनन्तर निद्रा के ईश्वर श्रीकृष्ण ने निद्रा त्याग दिया तथा वे पद्म-शय्या पर सुखसम्भोग के पश्चात् शयनरता प्रियतमा की ओर देखने लगे। श्रीराधा गम्भीर निद्रा में मग्न थीं॥११-१२॥

दृष्ट्वा मुखं च धर्मार्क्तं शरच्चन्द्रविनिन्दितम्।
अतिसंलुप्तसिन्दूरं लुप्तं कज्जलमुल्बणम्॥१३॥

संलुप्ताधररागं च संलुप्तगण्डपत्रकम्। विस्त्रस्तकबरीभारं नेत्रोत्पलविमुद्रितम्॥१४॥

रत्नकुण्डलयुग्मेनामूल्येन परिशोभितम्। राजितं मौक्तिकेनैव गजराजोद्भवेन च॥१५॥

वहां उन्होंने शारदीय चन्द्र को भी लज्जित कर देने वाले राधा के मुख को देखा जो (सम्भोग श्रमजनित) स्वेद बिन्दुओं से आर्द्र था। इस आर्द्रता के कारण राधा के ललाट पर लगी सिन्दूर बिन्दी लुप्त हो चली थी। नेत्र में लगा कज्जल, ओठों पर लगी लालिमा तथा कपोलों पर चित्रित पत्रादि भी लुप्त से हो चले थे। केशपाश भी शिथिल हो गया था। नीलकमल के समान राधा की नेत्रों की पलकें बन्द थीं। देवी राधा का मुखमण्डल कानों में पहने गये अमूल्य रत्नकुण्डलों की द्युति से शोभायमान था। (नासिका में पहनी गई) गजमुक्ता से देवी का आनन विभूषित था।।१३-१५।।

प्रेम्णा स्वसूक्ष्मवस्त्रेण वह्निशुद्धेन माधवः।
चकार मार्जनं भक्त्या तद्वक्त्रं भक्तवत्सलः॥१६॥
केशसम्मार्जनं कृत्वा निर्माय कबरीं हरिः।
माधवीमालतीमालाजालेन परिशोभिताम्॥१७॥

रत्नपट्टसूत्रबद्धां वामवक्त्रां मनोहराम्। अतीव वर्तुलाकारां कुन्दपुष्पसुशोभिताम्॥१८॥
ददौ सिन्दूरतिलकमधश्चन्दनमुज्ज्वलम्। कस्तूरीबिन्दुना सार्धं परितः परिशोभिताम्॥१९॥

चकार पत्रकं गण्डयुग्मे चित्रविचित्रितम्।
प्रददौ कज्जलं भक्त्या नेत्रोत्पलसमुज्ज्वलम्॥२०॥

चकाराधररागं च राधायाश्चानुरागतः। कर्णभूषणयुग्मं च चकारातीव निर्मलम्॥२१॥

इसके अनन्तर भगवान् भक्तवत्सल माधव ने प्रेम पूर्वक अग्निशुद्ध सूक्ष्म वस्त्र से भक्ति पूर्वक राधा का मुंह पोंछा। तदनन्तर श्रीहरि ने उनकी कंघी से केशसज्जा करके केशपाश बनाया। यह केशपाश मालती मालाजाल से गुंथा था, रत्नमय पट्टसूत्र से बंधा था। यह जूड़ा वामभाग की ओर कुछ झुका अत्यन्त मनोहर वर्त्तुलाकार तथा कुन्द पुष्पों से शोभायमान था। तत्पश्चात् कृष्ण ने राधा के ललाट पर सिन्दूर तिलक लगाकर उसके नीचे उज्वल चन्दन सहित कस्तूरी की बिन्दी लगाया। अर्थात् सिन्दूर तिलक चारों ओर कस्तूरी की बिन्दी से शोभित था, जिसके नीचे चन्दन विन्दु शोभायमान था। गालों पर कृष्ण ने चित्रविचित्र पत्रावली का अंकन करके भक्ति पूर्वक नेत्रों में काजल लगाया। इससे कमल जैसे राधा के नयन शोभायमान लग रहे थे। इसके पश्चात् कृष्ण ने अनुराग के साथ लाली लगाकर राधा के अधर को लाल किया। उनके कर्णद्वय में कृष्ण ने अत्यन्त निर्मल दो कर्णभूषण पहनाया।।१६-२१।।

अमूल्यरत्नहारं च स्तनभारयुगोज्ज्वलम्।
ददौ कण्ठे च वैकुण्ठो मणिराजिविराजितम्॥२२॥

वह्निशुद्धांशुकं दिव्यममूल्यं विश्वरत्नतः। वासयामास वसनं कस्तूरीकुङ्कुमाक्तकम्॥२३॥

कृष्ण ने अमूल्य रत्न का ऐसा हार राधा को पहनाया, जिससे उनके स्तनद्वय प्रकाशमान लगने लगे। कृष्ण ने राधा के गले में मणियों से निर्मित अमूल्य रत्न माला पहनाया। कृष्ण ने राधा

के अग्निविशुद्ध परमदिव्य विश्वरत्नों से भी मूल्यवान वस्त्रों को कस्तूरी-कुंकुम से सुगन्धित कर दिया।।२२-२३।।

प्रददौ पादयुगले रत्नमञ्जीररञ्जितम्। चकारालक्तकं भक्त्या पादाङ्गुलिनखेषु च।।२४।।
चकार सेवां सेव्यायाः सेव्यस्त्रिजगतां सताम्।
अहो सेवकसंभक्त्या श्वेतेन चामरेण च।।२५।।

कृष्ण ने राधा के चरणों में रत्नजड़ित नूपुर पहनाकर पैर की उंगलियों के नखों को परम भक्ति के साथ आलता से रंग दिया। जो श्रीकृष्ण प्रभु त्रैलोक्य के सत्पुरुषों द्वारा सेव्य हैं (सेव्यमान-सेवनीय हैं), वे ही सेवक की तरह परमभक्ति के साथ श्वेत चामर झलकर राधा की सेवा करने लगे, यह महान् आश्चर्य है!।।२४-२५।।

सर्वभावविदां श्रेष्ठो बोधज्ञः कामशास्त्रवित्।
कामिनीं बोधयामास वासयामास वक्षसि।।२६।।
प्रेम्णा च प्रददौ तस्यै सद्रत्नदर्पणं शुभम्। सुवेषदर्शनार्थं च मुखचन्द्रं च मार्जितुम्।। २७।।
नानापुष्पैर्विरचितामम्लानां चन्दनोक्षिताम्।
गण्डे सौभाग्ययुक्तायाः सौभाग्येन ददौ हरिः।।२८।।
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धि चन्दनं ततः। ददौ प्रियायाः सर्वाङ्गे प्रियः प्रेमभरेण च।।२९।।

भगवान् श्रीकृष्ण सर्वभावविद् श्रेष्ठ बोधयुक्त (ज्ञानमय) तथा कामशास्त्र के महाज्ञाता हैं। उन कृष्ण ने तत्पश्चात् अपनी प्रिय कामिनी राधा को वक्ष से लगा लिया। उन्होंने परमप्रेम के साथ राधा को उत्तमरत्नमय शुभ दर्पण प्रदान किया। यह उन्होंने राधा को अपने वेष का मार्जन उस दर्पण में देखकर करने तथा अपना मुखचन्द्र अवलोकन करने हेतु प्रदान किया। इसके पश्चात् प्रभु श्रीकृष्ण सौभाग्यवान् राधिका के गले में नाना पुष्पों से बनी चन्दन चर्चित अम्लान माला जो सौभाग्यप्रदा थी, पहना कर प्रेमविभोर हो गये। उन प्रियतम कृष्ण ने इसके पश्चात् प्रियतमा राधा के सर्वाङ्ग पर कस्तूरी कुंकुम युक्त सुगन्धमय चन्दन का लेप लगाया।।२६-२९।।

पारिजातस्य कुसुमं दत्तं रहसि ब्रह्मणा। प्रददौ तत्कबर्यां च ललितायाश्च नारद।।३०।।
कमलं निर्मलं दिव्यं सहस्रदलमुज्ज्वलम्। शिवेन दत्तं रहसि ददौ तद्दक्षिणे करे।।३१।।
अतिसारं मणीन्द्राणां मणिरत्नं च कौस्तुभम्। दत्तं रहसि धर्मेण तस्यै सुप्रीतये ददौ।।३२।।
आसवं रत्नपात्रस्थं दस्रदत्तं च निर्जने। पानार्थं प्रददौ तस्यै कामोन्मादकरं परम्।।३३।।
मालतीमाधवीकुन्दमन्दारचम्पकादिकम्। पुष्पं सद्रत्नपात्रस्थं तस्यै सुप्रीतये ददौ।।३४।।

हे नारद! श्रीकृष्ण को ब्रह्मा ने जो पारिजात पुष्प एकान्त में प्रदान किया था, उनसे कृष्ण ने राधा के जूड़े को सज्जित कर दिया। कृष्ण को एकान्त में शिव ने जो सहस्रदलयुक्त, निर्मल, उज्ज्वल कमल प्रदान किया था, उसे श्रीकृष्ण ने प्रिया राधा के दाहिने हाथ में दे दिया। धर्मदेव ने श्रीकृष्ण को

एकान्त स्थल में मणीन्द्रों के सार से निर्मित जो कौस्तुभमणि दिया था, उसे कृष्ण ने प्रीति पूर्वक राधा को धारण कराया। अश्विनीकुमारद्वय में से एक कुमार दस्र द्वारा निर्जन में प्रदत्त वह आसव जो परम कामोन्माद प्रदायक था, उसे कृष्ण ने राधा को पानार्थ दे दिया। कृष्ण ने इसके अतिरिक्त उत्तम रत्न पात्रों में रखकर मालती, माधवी, कुन्द, मन्दार, चम्पा आदि पुष्पों को रखकर अत्यन्त प्रेम के साथ राधा को दे दिया।।३०-३४।।

सुदुर्लभं च ताम्बूलं कर्पूरादिसुसंस्कृतम्। भक्षणं कारयामास समयज्ञश्च तां प्रियाम्।।३५।।
सुदुर्लभम् च विश्वेषु वाक्पतेः परिनिर्मितम्। अनुत्तमममूल्यं च वरुणेन रहःस्थले।।३६।।
अतिसूक्ष्ममनुपमं दत्तं भक्त्या विराजितम्।
वासयामास वसनं कृत्वा नग्नां च कौतुकात्।।३७।।

तदनन्तर उचित समय के ज्ञाता श्रीकृष्ण ने प्रिया राधा को कर्पूर आदि से सुवासित दुर्लभ ताम्बूल खिलाया। तदनन्तर कृष्ण ने राधा को विश्व में दुर्लभ बृहस्पति देवगुरु निर्मित उत्तम वस्त्र धारण कराया, जिन वस्त्रों को एकान्त में वरुण ने कृष्ण को दिया था। कौतुकवश श्रीकृष्ण ने इस अतिसूक्ष्म अनुपम वस्त्रों को राधा को नग्न करके पहनाया, जिसे वरुण द्वारा अत्यन्त भक्तिभाव से प्रदान किया गया था।।३५-३७।।

देवराजेन दत्तं च गजराजेन्द्रमौक्तिकम्। नासिकाभूषणं चारु तस्यै सुप्रीतये ददौ।।३८।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुशीलाद्याश्च गोपिकाः।
षष्टिः तत्सहचर्यश्च राधायाः सुप्रतिष्ठिताः।।३९।।
षष्टितत्कोटिगोपीभिः सार्धं संहृष्टमानसाः।
आययुःपादचिह्नेन प्रियस्य वहतः प्रियाम्।।४०।।
काश्चिच्चन्दनहस्ताश्च काश्चिच्चामरवाहिकाः।
काश्चित्कस्तूरिहस्ताश्च मालाहस्ताश्च काश्चन।।४१।।

श्रीकृष्ण को देवराज ने जो गजमुक्ता प्रदान किया था, उसे भगवान् ने राधा की प्रसन्नता हेतु उनको नासिका के आभूषण हेतु प्रदान किया। राधा की सुशीला आदि अत्यन्त प्रिय ६० सखियां थीं। वे ६० कोटि श्रेष्ठ गोपीगण के साथ जो अत्यन्त उत्फुल्ल थीं तथा अत्यन्त प्रतिष्ठित थीं, कृष्ण को उनके चरणचिह्नों से खोजती वहां आ गईं। इनमें से कुछ गोपीगण ने हाथों में चन्दन, कतिपय ने चामर, कुछ ने कस्तूरी, कुछ ने माला लिया था। कतिपय सखियों के हाथ में सिन्दूर, कतिपय के हाथ में दर्पण, कतिपय के हाथों में उत्तम पुष्पपात्र था। कुछ ने माला उठा रक्खा था।।३८-४१।।

काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित्कङ्कतिकाकराः।
काश्चिदलक्तककरा वस्त्रहस्ताश्च काश्चन।।४२।।
काश्चिद्दर्पणहस्ताश्च पुष्पपात्रधरा वराः। काश्चित्क्रीडापद्महस्ता मालाहस्ताश्च काश्चन।।४३।।

काश्चिदासवहस्ताश्च काश्चिद्भूषणवाहिकाः।
करतालकराः काश्चिन्मृगं (मृदङ्गं) वाहिकाः पराः॥४४॥
स्वरयन्त्रकराः काश्चिद्वीणाहस्ताश्च काश्चन। षट्त्रिंशद्रागरागिण्यो गोपिकारूपधारिकाः॥४५॥
गोलोकादागता याश्च भारतं राधया सह।
काश्चिज्जगुश्च ननृतुस्तत्राऽऽगत्य च काश्चन॥४६॥
काश्चिच्चक्रुश्च सेवां च राधायाः श्वेतचामरैः।
काश्चिच्चक्रुश्च देव्याश्च पादसंवाहनं मुदा॥४७॥

कुछ गोपियों ने सिन्दूर, कुछ ने कंघी, कुछ ने आलता, कुछ ने वस्त्र, कुछ ने दर्पण, कुछ ने उत्तम पुष्पपात्र, कुछ ने क्रीड़ाकमल, कुछ ने माला हाथों में लिया था। कुछ ने आसव उठाया था। कुछ ने भूषण, कुछ ने करताल लिया था। कुछ गोपियों ने मृदंग, कुछ ने स्वरयन्त्र, किसी ने वीणा धारण किया था। गोलोक से राधिका के साथ गोपियों का रूप धारण किये ३६ राग-रागिनियां भारत में आईं। जब वे राधा के समक्ष आईं तब कतिपय गायन, कतिपय नृत्य, कतिपय श्वेत चामर लेकर राधा की सेवा करने लगीं। कुछ मुदित होकर मुदिन मन से राधा की चरण सेवा करने लगीं।।४२-४७।।

काचिद्ददौ च ताम्बूलं भक्षणार्थं महामुने। एवं कौतुकयुक्तश्च पुण्ये वृन्दावने वने॥४८॥
प्रतस्थौ गोपिकासार्धं राधावक्षःस्थलस्थितः।
क्षणं पपौ च माध्वीकं प्रियया सह माधवः॥४९॥
क्षणं चखाद ताम्बूलं क्षणं निद्रां ययौ मुदा। क्षणं चकार शृङ्गारं रत्ननिर्मितमन्दिरे॥५०॥
क्षणं जलविहारं च चकार यमुनाजले। इत्येवं कथिथा वत्स रासक्रीडा हरेरहो॥५१॥

हे महामुनि! कुछ राधा को चर्वणार्थ ताम्बूल प्रदान कर रही थीं। राधा के वक्षस्थल पर स्थित श्रीकृष्ण इस पवित्र वृन्दावन में कौतुकयुक्त होकर गोपीगण के साथ अवस्थित हो गये। वे प्रभु कभी प्रिया के साथ आसवपान करते थे। अगले ही क्षण ताम्बूल खाते तथा उसके बाद प्रसन्नता के साथ निद्रा मग्न हो जाते। अगले ही क्षण वे रत्नमन्दिर में राधा के साथ शृंगार क्रीड़ा संलग्न होते। क्षण में वे यमुना में जलविहार करने लगते।।४८-५१।।

स्वेच्छामयस्याऽऽत्मनश्च परिपूर्णतमस्य च।
निर्गुणस्य स्वतन्त्रस्य परस्य प्रकृतेः प्रभोः॥५२॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरस्य परस्य च। कृष्णजन्मरहस्यं च बालक्रीडनमीप्सितम्॥५३॥
उक्तं किशोरचरितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥५४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णरासक्रीडावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।

हे वत्स! यह मैंने तुमसे स्वेच्छामय, परिपूर्णतम, परमात्मा, निर्गुण, स्वतन्त्र, प्रकृति के अतीत ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि के ईश्वर सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीहरि की आश्चर्य रासक्रीड़ा का वर्णन कर लिया। मैंने इस प्रकार श्रीकृष्ण का जन्मरहस्य, अभिलषित बालक्रीड़ा तथा उनके किशोरावस्था का चरित कह दिया। अब पुनः क्या सुनना चाहती हो?।।५२-५४।।

।।५३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधा-कृष्ण संवाद, संक्षेप में कृष्ण-चरित वर्णन

नारद उवाच

अतः परं किं रहस्यं बभूव मुनिसत्तम। कथं जगाम भगवान्मथुरां नन्दमन्दिरात्॥१॥
नन्दो दधार प्राणांश्च विच्छेदेन हरेः कथम्। गोपाङ्गना यशोदा वा कृष्णैकतानमानसाः॥२॥
चक्षुर्निमेषविच्छेदाद्या राधा न हि जीवति। कथं दधार सा देवी प्राणान्प्राणेश्वरं विना॥३॥
ये ये तत्सङ्गिनो गोपाः शयनासनभोगतः। कथं विसस्मरुस्ते च तादृशं बान्धवं व्रजे॥४॥
श्रीकृष्णो मथुरां गत्वा किं किं कर्म चकार सः। स्वर्गारोहणपर्यन्तं तद्भवान्वक्तुमर्हति॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनिप्रवर! इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने कौन-सी गूढ़ लीला किया? उन्होंने किस प्रकार नन्दगृह से मथुरा गमन किया। गोपराजनन्द तथा कृष्णैकगतमानस (जिनका मन केवल कृष्ण को अर्पित है) ऐसी गोपियों तथा यशोदा ने किस प्रकार कृष्ण के विरह में प्राण धारण किया? जो राधिका एक पल मात्र भी कृष्ण का विच्छेद होने पर जीवित नहीं रह सकती थीं, उन्होंने प्राणेश्वर कृष्ण के बिना किस प्रकार से प्राण धारण किया था? जो गोपगण शयन, भोजनादि सभी कार्य में कृष्ण के साथी थे, उन्हांने किस प्रकार से ब्रजधाम में ऐसे बन्धु को विस्मृत कर दिया? कृष्ण ने मथुरा जाकर क्या कार्य किया? कृष्ण के स्वर्गारोहण तक का सम्पूर्ण चरित कृपया कहिये।।१-५।।

नारायण उवाच

[1]कंसश्चकार यज्ञं च समाहूतो धनुर्मखम्। जगाम तत्र भगवान् तेन राज्ञा निमन्त्रितः॥६॥
राजा प्रस्थापयामास[2] चाक्रूरं भगवत्प्रियम्। अक्रूरः प्रेरितो राज्ञा गत्वा च नन्दमन्दिरम्॥७॥

१. क. ०शंकरयज्ञं च समारेंभे ध०।
२. क. ०स तमक्रूरं च गोकुलम्।

श्रीकृष्णं च गृहीत्वा स सगणं मथुरां गतः। कृष्णश्च मथुरां गत्वा जघान नृपतिं मुने॥८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! कंस ने धनुर्यज्ञ नामक यज्ञ के अवसर पर नन्द को बुलाया था। राजा कंस का निमन्त्रण पाकर श्रीकृष्ण प्रभु यहां आये। भूपति कंस ने इनको ले आने के लिये अक्रूर को गोकुल भेजा था। अक्रूर को राजा कंस द्वारा भेजा गया था। वे इस कारण नन्दगृह आये तथा गणों के साथ बलदेव तथा कृष्ण को साथ लेकर मथुरा लौटे। हे मुनि! कृष्ण ने मथुरा आकर राजा का वध कर दिया॥६-८॥

जघान रजकं चैव चाणूरं मुष्टिकं गजम्। चकार पित्रोरुद्धारं बान्धवानां च बान्धवः॥९॥

मथुरा आकर कृष्ण ने कंस के धोबी, मल्ल चारुण तथा मुष्टिक, गजराज कुवलयापीड का वध किया तथा कंस के यहां से अपने माता-पिता देवकी, वसुदेव तथा अन्य बन्धुगण का भी उद्धार किया॥९॥

कुब्जया सह शृङ्गारं कृत्वा च कौतुकेन च।
तां च प्रस्थापयामास गोलोकं गोपिकापतिः॥१०॥
चकार कृपया कृष्णो मालाकारस्य मोक्षणम्।
कृपया चोद्धवद्वारा बोधयामास गोपिकाः॥११॥

गोपीपति कृष्ण ने वहां कुब्जा के साथ कौतुक पूर्वक शृंगार क्रीड़ा करके उसे गोलोक भेज दिया। कृष्ण ने कृपा करके माली को मुक्त कर दिया। उन्होंने उद्धव से गोकुल अपना प्रबोधनमय संवाद भेजकर उनको प्रबोधित किया॥१०-११॥

तदोपनीतो भगवानवन्तीनगरं ययौ। चकार विद्याग्रहणं मुनेः सान्दीपनेर्गुरोः॥१२॥
ततो जित्वा जरासन्धं निहत्य यवनेश्वरम्। उग्रसेनं च नृपतिं चकार विधिपूर्वकम्॥१३॥

तत्पश्चात् कृष्ण-बलराम का उपनयन संस्कार सम्पन्न किया गया। वे दोनों भ्राता विद्याध्ययनार्थ महर्षि सांदीपनी के यहां अवन्तीपुरी आये। जब कृष्ण वहां से वापस आये तब उन्होंने जरासन्ध को जीता। यवनेश्वर कालयवन का कौशल से वध किया तथा उग्रसेन को मथुरा का राजा सविधि बनाया॥१२-१३॥

गत्वा समुद्रनिकटे निर्माय द्वारकां पुरीम्।
जहार रुक्मिणीं देवीं जित्वा नृपतिसङ्घकम्॥१४॥
कालिन्दीं लक्ष्मणां शैब्यां सत्यां जाम्बवतीं सतीम्।
मित्रविन्दां नाग्नजितीं समुद्वाहं चकार सः॥१५॥

कृष्ण ने समुद्र के निकट जाकर द्वारकापुरी का निर्माण किया। कृष्ण ने तदनन्तर राजाओं के संघ को जीतकर रुक्मिणी का हरण किया। इसी प्रकार कृष्ण ने यमुना, लक्ष्मणा, शैव्या, सत्या, सती जाम्बवती, मित्रविन्दा तथा नाग्नजीति से विवाह किया॥१४-१५॥

निहत्य नरकं भूपं रणेन दारुणेन च। पत्नीः षोडशसाहस्रं विहारं च चकार सः॥१६॥

तदनन्तर भगवान् ने घनघोर युद्ध करके नरकासुर का वध किया तथा वहां वन्दिनी १६००० कन्याओं से विवाह किया तथा उनके साथ विहार किया॥१६॥

जहार पारिजातं च जित्वा शक्रं च लीलया।
चिच्छेद बाणहस्तांश्च जित्वा च चन्द्रशेखरम्॥१७॥
पौत्रस्य मोक्षणं कृत्वा पुनरागत्य द्वारकाम्।
आत्मानं दर्शयामास लोकांश्च प्रतिमन्दिरम्॥१८॥

श्रीकृष्ण ने इन्द्र को अनायास पराजित करके पारिजात वृक्ष का हरण किया। तत्पश्चात् कृष्ण ने बाणासुर के १००० हाथों को काटकर चन्द्रशेखर शिव को भी युद्ध में जीत किया। वे अपने पौत्र अनिरुद्ध को बाणासुर के यहां से मुक्त कराने के पश्चात् द्वारिका लाये तथा वहां प्रत्येक भवन में स्थित लोगों को अपना दर्शन प्रदान किया॥१७-१८॥

यागे च वसुदेवस्य तीर्थयात्राप्रसङ्गतः। प्राणाधिष्ठातृदेवीं च ददर्श तत्र राधिकाम्॥१९॥
पूर्णे च शतवर्षे च सुदाम्नः शापमोक्षणे। पुनर्ययौ तथा सार्धं पुण्यं वृन्दावनं वनम्॥२०॥

तत्पश्चात् कृष्ण ने वासुदेव के यज्ञ में तीर्थ-यात्रा करते हुये समागत अपनी प्राणाधिष्ठातृदेवी राधिका को देखा। कृष्ण ने १०० वर्ष में सुदाम गोप के शाप से मुक्त हो गई राधा के साथ पुनः वृन्दावन की यात्रा किया॥१९-२०॥

पुनश्चतुर्दशाब्दं च तया सार्धं जगत्पतिः। चकार रासं रासे च पुण्यक्षेत्रे च भारते॥२१॥
पूर्णमेकादशाब्दं च निवृत्य नन्दमन्दिरे। मथुरायां द्वारकायां पूर्णमब्दशतं विभुः॥२२॥
चकार भारहरणं पृथिव्यां पृथुविक्रमः। पञ्चविंशतिवर्षे च शतवर्षाधिकं मुने॥२३॥
तिष्ठञ्जगाम गोलोकं पृथिव्यां च पुरातनः। यशोदायै च नन्दाय वृषभानाय धीमते॥२४॥

राधामात्रे कलावत्यै ददौ सामीप्यमोक्षणम्।
कृष्णेन सार्धं गोपी च राधिका च कुतूहलात्॥२५॥

निबध्य धर्मसेतुं च वेदोक्तं च युगे युगे। इत्येवं कथितं सर्वं समासेन महामुने॥२६॥
श्रीकृष्णचरितं रम्यं चतुर्वर्गफलप्रदम्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च॥२७॥

तत्पश्चात् पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में श्रीकृष्ण ने वृन्दावनस्थ रासमण्डल में पुनः आगमन किया जहां जगत्पति कृष्ण ने १४ वर्ष पर्यन्त राधा के साथ रासक्रीड़ा किया था। श्रीकृष्ण नन्दभवन में ११ वर्ष (बाल्यकाल में) रहे थे। प्रभु कृष्ण ने मथुरा तथा द्वारका में पूरे १०० वर्ष पर्यन्त निवास किया था। इन परमपराक्रमी श्रीकृष्ण ने पृथिवी का भार हरण किया था। ये पुरातन परमेश्वर पृथिवी पर १२५ वर्ष तक रहकर पुनः गोलोक चले गये थे। भगवान् कृष्ण ने यशोदा, नन्द, धीमान् वृषभानु, राधा की माता

कलावती को सामीप्य मोक्ष प्रदान किया था। देवी राधा युग-युगान्तर में इसी प्रकार से वेदोक्त धर्मसेतु निबद्ध करती हैं। हे महामुनि! इस तरह से मैंने तुमसे संक्षेप में चतुर्वर्ग प्रदायक मनोहर समस्त कृष्णचरित का वर्णन कर दिया। ब्रह्मा से तृणपर्यन्त सब कुछ नश्वर जानो।।२१-२७।।

भज तं परमानन्दं सानन्दनन्दनम्। स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्।।२८।।
[1]परमव्ययमव्यक्तं भक्तानुग्रहविग्रहम्। सत्यं नित्यं स्वतन्त्रं च सर्वेशं प्रकृतेः परम्।।२९।।
निर्गुणं च निरीहं च निराकारं निरञ्जनम्।।३०।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदनारा० श्रीकृष्णराधिकोसंवादो नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५४।।

—❋❋❋—

अतः तुम आनन्द पूर्वक परमानन्दमय नन्दनन्दन का भजन करो। वे स्वेच्छामय, परब्रह्म, परमात्मा ईश्वर हैं। वे अक्षर अव्यक्त परमपुरुष भक्तों के प्रति अनुग्रह के ही कारण देहधारी हो जाते हैं। वे सत्य, नित्य, स्वतन्त्र, सर्वेश्वर, प्रकृति से अतीत, निर्गुण, निराकार, निरीह तथा निरंजन हैं।।२८-३०।।

।।५४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण की महिमा तथा प्रभाव का वर्णन

नारायण उवाच

स एव भगवान्कृष्णः सर्वात्मा पुरुषः[2] परः।
दुराराध्योऽतिसाध्यश्च सर्वाराध्यः सुखप्रदः।।१।।
निजभक्तातिसाध्यश्चाभक्तस्यासाध्य एव च।
शश्वद्दृश्यः स्वभक्तस्याभक्तस्यादृश्य एव च।।२।।
दुर्ज्ञेयं तस्य चरितं कार्यं हृदयमेव च। बद्धास्तन्मायया सर्वे मोहिताश्च दुरन्तया।।३।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं-सर्वात्मा कृष्ण सभी पुरुषों से श्रेष्ठ हैं। वे दुराराध्य होकर भी अत्यन्त साध्य है। वे सबके आराध्य तथा सुखदाता हैं। वे अपने भक्तों हेतु अत्यन्त साध्य हैं। भक्तों के आराध्य हैं। उनके भक्तगण उनका बारम्बार दर्शन प्राप्त करते हैं। वे प्रभु अभक्तों हेतु अदृश्य हैं। उन

१. क. ०मक्षरम्।
२. क. ०रुषात्प०।

परमेश्वर का चरित, कार्य तथा हृदय किसी को ज्ञात ही नहीं हो सकता; क्योंकि सभी प्राणी उनकी दुरन्त माया से बंधे तथा मोहित रहते हैं।।१-३।।

यद्भयाद्वाति वातोऽयं कूर्मं धत्ते निराश्रयः। कूर्मोऽनन्तं विधत्ते च यद्भयेन निरन्तरम्।।४।।
बिभर्ति शेषो विश्वं च यद्भयेन च नारद। सहस्रशीर्षा पुरुषः शिरसश्चैकदेशतः।।५।।
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा। शैलकाननसंयुक्ता पातालाः सप्त एव च।।६।।
सप्त स्वर्गाश्च विविधा ब्रह्मलोकसमन्विताः। एवं विश्वं त्रिभुवनं कृत्रिमं परिकीर्तितम्।।७।।

यद्भयेन विधात्रा च प्रतिसृष्टौ च निर्मितम्।
एवं विश्वान्यसंख्यानि लोमकूपैर्महान्विराट्।।८।।
यद्भयेन विधत्ते च यदन्नो ध्यायते हि यम्।
विष्णुः पाति च संसारं यद्भयेन कृपानिधिः।।९।।
कालाग्निरुद्रो यद्भीतः कालः संहरते प्रजाः।
मृत्युञ्जयो महादेवो यद् भयाद्ध्यायाते च यम्।।१०।।

षड्गुणैरनुरागैश्च विरागी विरतः सदा। यद्भयेन दहत्यग्निः सूर्यस्तपति यद्भयात्।।११।।

जगत् में वायु का प्रवाह उनके ही भय से होता है। कूर्म ने बिना किसी आधार के निरन्तर अनन्तदेव (शेष को) को धारण किया है। हे नारद! उनके ही भय से सहस्रशीर्ष वाले अनन्तदेव ने मस्तक के एक ओर समस्त विश्व को धारण कर रखा है। यह सात सागरों वाली, पर्वत वनयुक्त, सप्तद्वीपा वसुन्धरा, सात पाताल तथा ब्रह्मलोक युक्त विविध सप्त वर्गमय यह त्रिभुवनरूप विश्व ब्रह्माण्ड कृत्रिम कहा गया है। विधाता उन प्रभु के ही भय से प्रति सृष्टिकाल में इस त्रैलोक्य का निर्माण करते हैं। उनके ही भय से महाविराट् पुरुष (महाविष्णु) अपने प्रत्येक रोमकूप में असंख्य विश्वों को धारण करते हैं। वे उनके अंश हैं (उन प्रभु के अंश हैं) तथा सतत् उनके ही ध्यान में मग्न रहते हैं। उन प्रभु के ही भय से कृपानिधि विष्णु संसार का पालन करते हैं। उनके ही भय से कालाग्निरुद्र भयभीत होकर संहारकाल में प्रजा का संहार करते हैं। उन प्रभु से ही भयभीत होकर मृत्युंजय महादेव षड्गुणयुक्त तथा संसार से विरत होकर उनका ध्यान करते रहते हैं। उनके ही भय से अग्नि दग्ध करते हैं तथा सूर्य उनके ही भय से ताप प्रदान करते हैं।।४-११।।

यद्भयाद्वर्षतीन्द्रश्च मृत्युश्चरति जन्तुषु। यद्भयेन यमः शास्ता पापिनीं धर्म एव च।।१२।।

धत्ते च धरणी लोकान्यद्भयेन चराचरान्।
सूयते प्रकृतिः सृष्टौ यद्भयान्महदादिकम्।।१३।।

दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं को वा जानाति पुत्रक। यत्प्रभावं न जानन्ति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।।१४।।

उन देवाधिदेव प्रभु के भय से ही इन्द्र वर्षण कार्य करते हैं तथा मृत्यु प्राणीगण में विचरता है। उनके ही भय से भीत होकर धर्मरूपा यम पापीगण पर शासन करते हैं। उन प्रभु से ही भयभीत

वसुन्धरा सचराचर लोकों को धारण करती हैं। उनके ही भय के कारण प्रकृति देवी भी महदादि की सृष्टि करती हैं। हे पुत्र! उनके गूढ़ अभिप्राय को कौन जान सकता है? उनके प्रभाव को तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर भी नहीं जान पाते!।।१२-१४।।

कथं जानामि तच्चेष्टामहं वत्स सुमन्दधीः।
कथं जगाम मथुरां त्यक्त्वा वृन्दावनं वनम्॥१५॥
कथं तत्याज गोपीश्च राधां प्राणाधिकां प्रियाम्।
यशोदां बान्धवादींश्च नन्दं वा नन्दनन्दनः॥१६॥

हे वत्स! ऐसे भगवान् की चेष्टा को मुझ जैसा मन्दबुद्धि व्यक्ति कैसे जान सकेगा कि वे वृन्दावन त्यागकर क्यों मथुरा गये, उन्होंने गोपियों, प्राणाधिक प्रियतमाराधा, यशोदा-नन्द, अन्य बन्धुवर्ग को त्याग कर क्यों मथुरा गमन किया?।।१५-१६।।

दर्पहा दर्पदः सोऽपि सर्वेषां सर्वदः सदा। बभञ्ज राधादर्पं च सुदाम्नः शापकारणात्॥१७॥
अन्येषां भावनाहेतोर्ब्रह्मप्राप्तिस्तथा भवेत्।
एवं किञ्चिद्वितर्कं च कुरुते कमलोद्भवः॥१८॥
चकार दर्पभङ्गं च महाविष्णुः पुरा विभुः।
ब्रह्मणश्च तथा विष्णोः शेषस्य च शिवस्य च॥१९॥

भगवान् श्रीकृष्ण सदा सभी प्रकार का दर्प उत्पन्न करने वाले दर्पदाता हैं तथा वे ही दर्पहारी भी हैं। तभी उन्होंने श्रीदाम के शाप के बहाने (कि राधा का कृष्ण के साथ १०० वर्ष का वियोग होगा) राधिका का दर्पभंग किया था। प्रभु सबको सब कुछ प्रदान भी कर देते हैं। केवल भावना से ही अन्य लोगों को ब्रह्मप्राप्ति भी इन प्रभु ने प्रदान किया है। एक बार कमल जन्मा ब्रह्मा के मन में कुछ तर्क उठा था तथा प्रभु ने उनका दर्पभंग पूर्वकाल में महाविष्णु के रूप में कर दिया। श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा-विष्णु-शेष तथा शिव तक का दर्पदलन किया था।।१७-१९।।

धर्मस्य च यमस्यापि साम्बस्य चन्द्रसूर्ययोः। गरुडस्य च वह्नेश्च गुरोर्दुर्वाससस्तथा॥२०॥
दौवारिकस्य भक्तस्य जयस्य विजयस्य च।
सुराणामसुराणां च भवतः कामशक्रयोः॥२१॥
लक्ष्मणस्यार्जुनस्यापि बाणस्य च भृगोस्तथा।
सुमेरोश्च समुद्राणां वायोश्च वरुणस्य च॥२२॥
सरस्वत्याश्च दुर्गायाः पद्मायाश्च भुवस्तथा।
सावित्र्याश्चैव गङ्गाया मनसायास्तथैव च॥२३॥
प्राणाधिष्ठातृदेव्याश्च प्रियायाः प्राणतोऽपि च।
प्राणाधिकाया राधाया अन्येषामपि का कथा॥२४॥

धर्म, यम, साम्ब, चन्द्र, सूर्य, गरुड़, अग्नि, बृहस्पति, दुर्वासा, अपने द्वारपाल भक्त जय-विजय, देवता, राक्षसों का, तुम्हारा (नारद का), कामदेव, इन्द्र, लक्ष्मण, अर्जुन, बाणासुर, भृगु, सुमेरु, समुद्र, वायु, वरुण, सरस्वती, दुर्गा, कमला, वसुन्धरा, सावित्री, गंगा, मनसा तथा अपने प्राणों की अधिष्ठातृ देवी राधा तक के दर्प का भंग उन प्रभु ने किया था। जब प्राणाधिक प्रिय राधा तक के दर्प का भंग भगवान् ने स्वयं कर दिया, तब अन्य लोग दर्प करके कैसे बच सकते हैं?।।२०-२४।।

हृत्वा दर्पं च सर्वेषां प्रसादं च चकार सः। कर्ता हर्ता पालयिता स्रष्टा स्रष्टुश्च सर्वतः।।२५।।

प्रभु श्रीकृष्ण सबके कर्त्ता, पालनकर्त्ता, संहर्त्ता तथा विधाता के भी विधाता हैं। ये सभी के सभी प्रकार के दर्प का हरण करके भी सब पर कृपा कर देते हैं।।२५।।

यं स्तोतुमीशो नालं च पञ्चवक्त्रैस्तु[1] शङ्करः।
स्तोतुं नालं चतुर्वक्त्रो विधाता जगतामपि।।२६।।
स्तोतुं नालमनन्तश्च सहस्रवदनैरहो। स्वयं विष्णुर्विश्वव्यापी नालं स्तोतुं जनार्दनः।।२७।।
महाविराण्न शक्तोऽपि यं स्तोतुं परमेश्वरम्।
कम्पिता यस्य पुरतः प्रकृतिः परमात्मनः।।२८।।
सरस्वती जडीभूता यं स्तोतुं परमेश्वरम्। महिमानं न जानन्ति वेदा[2] यस्य च नारद।।२९।।

जिनकी स्तुति में अपने पंचमुखों से शंकर, चतुर्मुखों से ब्रह्मा, सहस्रमुखों से अनन्तदेव भी समर्थ नहीं हैं तथा जिनकी स्तुति विश्वव्यापी विष्णु जनार्दन भी कर सकने में समर्थ नहीं है, महाविराट् पुरुष भी जिन परमेश्वर की स्तुति कर सकने में असमर्थ हैं, जिनके सामने प्रकृति भी कांप उठती है, सरस्वती तक जिनकी स्तुति का प्रयास करने में जड़ीभूत हो जाती हैं, हे नारद! उन परमेश्वर की महिमा वेद भी नहीं जानते!।।२६-२९।।

इत्येवं कथितो ब्रह्मन्प्रभावः परमात्मनः।
निर्गुणस्य च कृष्णस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।३०।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदना० श्रीकृष्णप्रभाववर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५५।।

हे ब्रह्मन्! मैंने तुमसे उन निर्गुण परमेश्वर कृष्ण का प्रभाव कह दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?।।३०।।

।।५५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

---

१. क. ०वक्त्रेण शं०।
२. क. देवा।

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

महाविष्णु प्रभृति के दर्पभंग का वृत्तान्त तथा देवताओं द्वारा कृत लक्ष्मीस्तोत्र का वर्णन

नारद उवाच

किमपूर्वं श्रुतं ब्रह्मन्रहस्यं परमाद्भुतम्। अनन्तचरितं धन्यमनन्तस्याच्युतस्य च॥१॥
कथं कृष्णो महाविष्णोदर्पभङ्गं चकार सः। अन्येषां वा कथमहो तद्भवान्वक्तुमर्हति॥२॥
स्वतः श्रीकृष्णचरितमतीव मधुर श्रुतौ। अतीव मधुरं रम्यं काव्यं कविमुखात्ततः॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मैंने आपसे अनन्त अच्युत श्रीकृष्ण के अपूर्व, अतीव अद्भुत, गूढ़, प्रशंसनीय चरित को सुना। अब आप कृपया यह कहने की कृपा करिये कि उन प्रभु ने किस प्रकार से महाविष्णु तथा अन्य सभी का दर्पभंग किया? स्वभावतः कृष्णचरित अत्यन्त मधुर है, तथापि जब यही कथा किसी कवि से सुनी जाये, तब वह अधिक श्रुतिमधुर (सुनने में प्रिय) तथा रमणीय हो जाती है॥१-३॥

नारायण उवाच

महाविष्णोरहङ्कारो बभूव सहसेति च। सर्वं मल्लोमकूपेषु विश्वान्येवाऽहमीश्वरः॥४॥
संहारभैरवो भूत्वा तं स जग्रास लीलया। स्थिते मूर्धावशेषे च प्रसादं तं चकार सः॥५॥
सर्वात्मना ध्यायमानः स्तुतो भीतं कृपानिधिः। तच्छरीरं सुसम्पन्नं पुनरेव चकार सः॥६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—एक बार सहसा महाविष्णु को यह गर्व हो गया कि "यह समग्र विश्व मेरे रोम के छिद्रों में स्थित है। अतः मैं ही ईश्वर हूं!" यह जानते ही श्रीकृष्ण ने संहार भैरव रूप से आविर्भूत होकर अनायास उनका ग्रास कर लिया। जब मात्र महाविष्णु का शिर मात्र बच गया, तब वे भयभीत होकर पूर्ण एकाग्रता से श्रीकृष्ण का ध्यान एवं स्तव करने लगे। अतः भगवान् ने उन पर कृपा करके उनका शरीर पूर्ववत् सुसम्पन्न कर दिया॥४-६॥

ब्रह्मणः सहसा ब्रह्मन्निति दर्पो बभूव ह। अहं त्रिजगतां धाता कर्ताऽहमीश्वरः स्वयम्॥७॥
मत्परः पूजितो नास्ति मत्परश्च जितेन्द्रियः। इत्येवं मनसा कृत्वा बहुदर्पो बभूव ह॥८॥
तं ब्रह्मणां समूहं च दर्शयामास तत्क्षणम्। गोलोके स्वसमीपे च वसन्तं पुरतो विभोः।
चतुर्वक्त्रं पञ्चवक्त्रं [१]षड्वक्त्रं च ततोऽधिकम्॥९॥
शतवक्त्रं च प्रत्येकं ब्रह्माण्डौघं च लीलया।
त्यक्तुकामं स्वदेहं च व्रीडया नतकन्धरम्॥१०॥

१. क. ०दशवक्त्रं त०।

पुनः प्रसादं कृपया तं चकार कृपानिधिः। कालेन मोहिनीद्वारा तमपूज्यं चकार सः॥११॥

हे ब्रह्मन्! एक बार ब्रह्मा को अतिशय दर्प हो गया कि मैं त्रैलोक्य का विधाता (धारक) तथा सृष्टिकर्त्ता एवं साक्षात् ईश्वर हूं। मैं सर्वश्रेष्ठ पूज्य हूं। मुझसे अधिक जितेन्द्रिय कोई भी नहीं है। इस विचार से गर्व से भर गये। तब श्रीकृष्ण ने गोलोक में अपने सामने बैठे ब्रह्मा को अनायास माया द्वारा पञ्चमुख, षड्मुख, दशमुख तथा शतमुख पर्यन्त ब्रह्माओं के समूह का और असंख्य ब्रह्माण्डों का दर्शन करा दिया। यह देखकर ब्रह्मा लज्जावनत होकर देहत्याग की कामना करने लगे। उस समय कृपानिधि श्रीकृष्ण ने कृपा पूर्वक उन पर अनुग्रह कर दिया था। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने मोहिनी द्वारा ब्रह्मा को शापित कराया, जिससे ब्रह्मा जगत् में अपूज्य हो गये!॥७-११॥

स्वकन्यां दर्शयित्वा तं सकामं च चकार ह। पुनस्तद्दर्पभङ्गं च शिवद्वारा चकार सः॥१२॥
तत्याज लज्जया देहं पुनर्देहं दधार सः। पुनश्चकार तं पूज्यं [1]ब्रह्माणं ब्रह्मणः प्रभुः॥१३॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को उनकी अपनी कन्या के ही प्रति कामभावना युक्त कर दिया था। शिव द्वारा इस बार ब्रह्मा के अभिमान को चूर्ण कराया। इससे लज्जित ब्रह्मा ने वह शरीर त्याग कर अन्य देह धारण किया। तत्पश्चात् महाज्ञानी महाज्ञानानन्दमय सनातन प्रभु श्रीकृष्ण ने पुनः ब्रह्मा को ब्राह्मणरूप में प्रकट होकर ज्ञानदान देकर उनको पूज्य बनाया॥१२-१३॥

ज्ञानं ददौ महाज्ञानी ज्ञानानन्दः सनातनः। विष्णोर्बभूव गर्वश्च जगत्पाताऽहमीश्वरः॥१४॥
तमात्मविस्मृतं कृष्णश्चकार रामजन्मनि। अहं विश्वं बिभर्मीति शेषो दर्पी बभूव ह॥१५॥
तद्दर्प गरुडद्वारा चूर्णीभूतं चकार सः। एकदा पूजितो नागैर्गरुडः कृष्णवाहनः॥१६॥
न पूजितश्च शेषेण स्वदर्पेण पुरा मुने। गरुडेन जितं क्रोधात्तमनन्तं मनस्विनम्॥१७॥

चकार मोक्षणं तस्य श्रीकृष्णश्च कृपानिधिः।
स्वयं शिवः स्वदर्पाश्च विवाहं न चकार सः॥१८॥
तं कृत्वा मायया मोहं कारयामास स्त्रीयुतम्।
पुनर्जहार तत्पत्नीं दक्षकन्यां महासतीम्॥१९॥

एक बार विष्णु को गर्व हो गया कि मैं ही जगत्पालक परमेश्वर हूं। विष्णु ने जब रामजन्म लिया, तब भगवान् श्रीकृष्ण प्रभु ने उनको आत्मविस्मृत करके यह गर्व चूर्ण कर दिया। हे मुनिवर! शेषनाग (अनन्त) को भी यह गर्व हो गया कि मैं विश्व-जगत् को धारण करता हूं। मेरे समान अन्य है कौन? तब प्रभु ने गरुड़ द्वारा उनका गर्व चूर्ण-विचूर्ण करा दिया। हे मुनिवर! एक बार समस्त नागगण ने प्रभु कृष्ण के वाहन गरुड़ की पूजा किया, तथापि अपने दर्प के कारण शेषनाग ने गरुड़ की पूजा नहीं किया! इस कारण क्रोध में भरे गरुड़ ने शेष को पराजित किया, तथापि कृपा पूर्वक श्रीकृष्ण ने मनस्वी गरुड़ से शेषनाग को मुक्त करा दिया। स्वयं शिव अपने गर्व के कारण विवाह नहीं कर रहे

१. ख. ब्राह्म०।

थे, तथापि भगवान् की माया से मोहित होकर उन्होंने दक्षपुत्री सती से विवाह किया। पुनः (उनेके दर्पदलनार्थ) प्रभु ने महासती दक्षपुत्री को उनसे विलग कर दिया; क्योंकि दक्षयज्ञ में सती ने देह दग्ध कर लिया था।।१४-१९।।

वर्षं शुशोच तद्देहं क्रोडे कृत्वा च शङ्करः। नानास्थानं च बभ्राम रुदञ्छोकान्मुहुर्मुहुः।।२०।।

जन्मान्तरे पुनः प्राप्य तां सतीं पार्वतीं मुदा।
विसस्मार च स्वज्ञानं दक्षशप्तः पुनः शिवः।।२१।।

पुनश्चाऽऽङ्गीरसद्वारा स्मारयामास सत्वरम्। एकदा सरभः शम्भुः प्रेरितस्त्रिपुरे पुरा।।२२।।

एक वर्ष तक शंकर सती के शव को गोद में उठाये शोकातुर होकर रुदन करते भटकते रहे। पुनः सती के अन्य जन्म में पार्वती रूप में पाकर शिव अत्यन्त हर्षित हो उठे, तथापि दक्ष के शाप से वे अपने ज्ञान को भूल गये। पुनः आङ्गीरस ने वह ज्ञान उनको पुनः स्मरण करा दिया था। एक बार भगवान् ने शंभु को त्रिपुर वधार्थ रथारूढ़ करके भेजा था।।२०-२२।।

हत्वा दैत्यं शिवद्वारा त्रिपुरारिं चकार तम्।
सर्वं वरं च सर्वस्मै दातुं शंभुः कृपानिधिः।।२३।।
स्वयं कल्पतरुर्भूत्वा प्रतिज्ञां च चकार सः।
वृकासुरोऽनुष्ठानं च कृत्वा वव्रे वरं विभुम्।।२४।।
दास्यामि हस्तं यन्मूर्ध्नि भस्मसाद्भवतु क्षणात्।
जगाद जगतां नाथ ईप्सितं ते भविष्यति।।२५।।
इति लब्ध्वा वरं रुद्राद्गच्छन्तं शङ्करं विभुम्।
हस्तं दातुं च तुं मूर्ध्नि प्राधावत्सत्वरं पुरा।।२६।।
अतीव भीतः शंभुश्च जगाम शरणं हरिम्।
भगवांश्च शिवस्यार्थे दैत्यं भस्मीचकार सः।।२७।।

शिव द्वारा प्रभु श्रीकृष्ण ने उस दैत्य का वध करा दिया। इससे शिव त्रिपुरारि नाम से प्रसिद्ध हो गये। एक बार शिव ने स्वयं को कल्पतरु समझ कर सभी को सब वरदान देने की प्रतिज्ञा किया। तदनन्तर वृकासुर ने शिवाराधन द्वारा उनसे यह वर मांगा कि "मैं जिसके शिर पर हाथ रखूं वह तत्काल भस्मसात् हो जाये।" यह सुनकर जगन्नाथ शिव ने कहा–"तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।" यह वर देकर वहां से जाते हुए शिव के शिर पर हाथ रखकर वर की सत्यता की परीक्षा लेने शिव के ही पीछे दौड़ पड़ा। इससे महेश्वर अत्यन्त भयभीत होकर श्रीहरि कृष्ण प्रभु की शरण में गये। भगवान् ने ही शिव के निमित्त उस दैत्य को भस्म कर दिया!।।२३-२७।।

शिवं युद्धं च कुर्वन्तं बाणयुद्धे पुरा विभुः।
लीलया जृम्भणास्त्रेण जडीभूतं चकार सः।।२८।।

समागतं दक्षयज्ञे शम्भुं दम्भेन लीलया। वारयामास भगवान्हस्तं दत्त्वा च तद्गले॥२९॥

(शिवदर्पहरणार्थ) पूर्वकाल में बाणासुर से संग्रामकाल में शिव को युद्धरत देखकर श्रीकृष्ण ने उनको अनायास जृम्भणास्त्र से जड़ीभूत कर दिया। पुनः दक्षयज्ञ में समागत शंभु को भगवान् ने उनके गले पर हाथ रखकर अनायास हटा दिया; क्योंकि शंभु दम्भ पूर्वक आये थे।।२८-२९।।

केदारकन्यकाद्वारा शप्तो धर्मोऽतिदैवतः।
बभूवातिकृशो भीतः कुह्वामेव यथा शशी॥३०॥
तदा तस्याश्च शापान्ते सत्ये पूर्णो बभूव ह।
त्रिपाद्बभूव त्रेतायां द्वापरं च द्विपादिति॥३१॥
एकपाच्च कलौ सोऽपि कलेरन्ते पुनः क्षयः।
षोडशांशोऽतिक्लिष्टश्च सस्मार चरणं विभोः॥३२॥

तदा सत्ययुगारम्भे परिपूर्णोऽभवत्पुनः। पुनर्युगानुरोधेन क्रमेण च पुनः क्षयः॥३३॥

धर्मदेव केदार कन्या से शापित हो गये। भयभीत धर्म क्रमशः अमावस्या के चन्द्र की तरह क्षीण हो गये थे। शापान्त में सत्ययुग आते ही वे स्वस्थ हो गये। वे त्रेता में त्रिपाद, द्वापर में द्विपाद हो जाते हैं। कलि में उनका एक चरण मात्र बचता है। कलि के अन्त तक यह बचा एक पाद भी मात्र सोलहवां भाग (१/१६) ही बचता है। तब उन्होंने अत्यन्त दुःखी होकर भगवत् चरणारविन्द का स्मरण किया। अन्ततः सत्ययुग में परिपूर्ण हो गये। वे इस प्रकार युगानुरूप बढ़ते-घटते रहते हैं।।३०-३३।।

यमो माण्डवशापेन शूद्रयोनिमवाप ह। तदा पुनः शताब्दान्ते पुनः शुद्धो बभूव ह॥३४॥

साम्बो विमातृशापेन गलत्कुष्ठी बभूव सः।
तदा सूर्यव्रतं कृत्वा पुनः शुद्धो बभूव सः॥३५॥

चन्द्रो दर्पमदेनैव जहार च गुरोः प्रियाम्। बभूव दर्पभङ्गोऽस्य यक्ष्मग्रस्तो बभूव सः॥३६॥

सूर्यो दर्पात्तेजसश्च हन्तुं शङ्करकिङ्करम्।
सुमालीत्यभिधं दैत्यं जगामाऽऽशु गिरिं प्रति॥३७॥

अहर्निशं दीप्तिकरं कुर्वन्तं विषयं रवेः। सूर्येण भीतो दैत्यश्च शङ्करं शरणं ययौ॥३८॥

सूर्यं दृष्ट्वा शङ्करश्च जग्राह शूलमेव च। भीतो दुद्राव सूर्यश्च दृष्ट्वा तं शूलिनं मुने॥३९॥

जघान काश्यां शूलेन शूली काशीश्वरो रविम्।
मूर्च्छां सम्प्राप्य शूलेन दर्पभङ्गो बभूव ह॥४०॥

यम भी माण्डव ऋषि के शाप के कारण शूद्रयोनि को प्राप्त हो गये थे। १०० वर्ष व्यतीत होने पर वे पुनः शुद्ध हो सके! साम्ब को विमाता के शाप से गलित कुष्ठरोग हो गया। वे सूर्यव्रत से पुनः निरोग-शुद्ध हो पाये! चन्द्र ने ऐश्वर्य से मदान्ध होकर गुरुपत्नी का हरण किया था। यक्ष्मारोग से

ग्रस्त होने पर उनका दर्पभंग हो गया। सूर्यदेव ने दर्पान्वित होकर शङ्कर सेवक सुमाली दानव के वधार्थ अस्ताचल गमन किया। यह सुमली सूर्यवत् ही प्रकाश रात्रि में भी कर देता था। अन्ततः सूर्य के भय से सुमाली ने महेश्वर की शरण ग्रहण किया। शंकर ने सूर्य को देखकर उनके वधार्थ अपना त्रिशूल उठाया। यह देखकर सूर्य भयग्रस्त होकर काशी आये। तभी शंकर काशीपति महेश्वरदेव ने सूर्य पर शूल का प्रहार किया। जिससे सूर्य मूर्च्छापन्न होकर गिर पड़े। इस प्रकार सूर्य का दर्पभंग हो गया।।३४-४०।।

सान्द्रान्धकारः सहसा जग्राह पृथिवीतलम्।
आशुतोषो महादेवो जीवयामास तत्क्षणम्।।४१।।
तुष्टाव शङ्कर सूर्यो लज्जितोऽपि भयेन च।
कृत्वा तमाशिषं तुष्टो ययौ गेहं कृपानिधिः।।४२।।

सूर्य के मूर्च्छित होते ही समस्त पृथिवी तल घोर अन्धकार से व्याप्त हो गया। तब आषुतोश महादेव ने उनको तत्क्षण जीवनदान दे दिया। इससे सूर्य लज्जित होकर भयभीत हो गये तथा शंकर की स्तुति करने लगे। तब कृपानिधि शंकर ने उन पर प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया तथा अपने घर चले गये।।४१-४२।।

विभुर्गरुत्मतो दर्पं बभञ्ज लीलया पुरा। निःश्वासैः प्रेरितस्यापि शिवस्य वृषभस्य च।।४३।।
आगच्छन्तं च वैकुण्ठं पृष्ठे कृत्वा शिवं पुरा।
द्रष्टुं समागतं भक्त्या देवं नारायणं परम्।।४४।।

पूर्वकाल में श्रीकृष्ण ने अनायास शिववाहन वृष के निःश्वास को चालित करके गरुड़ का दर्प नष्ट कर दिया। यह वृषभ नारायण के दर्शनार्थ उत्सुक शिव को पीठ पर बैठाकर वैकुण्ठ लाया था, जहां गरुड़ की यह दशा हो गई। गरुड़ वृषभ की निःश्वास वायु से पत्रवत् उड़ गये!।।४३-४४।।

वह्निर्दर्पी भृगोः शापात्सर्वभक्षी बभूव ह। गुरोः स्वभार्याहरणाद्दर्पश्चूर्णो बभूव ह।।४५।।
दुर्वाससो दर्पभङ्गो बभूव ह्यम्बरीषतः। सुदर्शनेन चक्रेण विष्णोर्दुर्विषहेण च।।४६।।
जयस्य विजयस्यापि दर्पभङ्गं चकार सः। वैकुण्ठात्पतितस्यापि ब्रह्मशापच्छलेन च।।४७।।
नृसिंहेण हतः सोऽपि हिरण्यकशिपुर्यथा। सूकरेण हिरण्याक्षो लीलया च रसातले।।४८।।
रावणः कुम्भकर्णश्च निहतौ रामबाणतः।
जन्मान्तरे च लङ्कायां ब्रह्मणा प्रार्थितस्य च।।४९।।
शिशुपालो हि निहतः [१]कृष्णबाणेन लीलया।
दन्तवक्रश्च सहसा परिपूर्णेऽत्र जन्मनि।।५०।।

---

१. ०ष्णाचक्रेण।

सुराणां दर्पभङ्गं च दैत्यद्वारा चकार ह। असुराणां सुरद्वारा विरोधेन परस्परम्॥५१॥

इसी प्रकार भृगु के शाप से अग्नि का दर्प चूर्ण हो गया तथा वे सर्वभक्षी हो गये। देवगुरु बृहस्पति का गर्व उनकी भार्या तारा का अपहरण चन्द्रमा द्वारा किये जाने से चूर्ण हो गया। अम्बरीष के प्रसंग में विष्णु द्वारा छोड़े गये दुर्दमनीय सुदर्शन चक्र ने दुर्वासा का दर्पभंग कर दिया। भगवान् ने ब्राह्मण सनत्कुमारादि द्वारा शाप के माध्यम से द्वार रक्षकों जय-विजय का दर्प चूर्ण किया। ये ही हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक दुर्दमनीय दैत्य हो गये। हिरण्यकशिपु का वध नृसिंह रूप में तथा रसातल में हिरण्याक्ष का वध अनायास वराहरूप में श्रीकृष्ण ने कर दिया। तदनन्तर जय-विजय ही रावण-कुम्भकर्ण रूप में जन्मे। इनके वधार्थ ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना किया था अतः वे रामावतार में द्वारा मारे गये। तृतीय जन्म में जय-विजय शिशुपाल तथा दन्तवक्र होकर जन्मे जो श्रीकृष्ण के बाणों से मृत होकर स्वर्गगामी हो गये। इस प्रकार देवगण का दर्प श्रीकृष्ण ने दैत्यों द्वारा तथा दैत्यों का दर्प उन्होंने देवगण द्वारा, इस प्रकार पारस्परिक विरोध से नष्ट करा दिया!॥४५-५१॥

विधिद्वारा दर्पभङ्गं भवतश्च चकार सः। भवानासीन्नारदश्च पुरा पुत्रः प्रजापतेः॥५२॥
गन्धर्वश्च पितुः शापाच्छूद्रीपुत्रस्ततः क्रमात्। ततः पुनर्नारदश्च प्रसादादधुना विभोः॥५३॥

हे नारद! इस प्रकार श्रीकृष्ण प्रभु ने ब्रह्मा द्वारा पूर्वकाल में तुम्हारा भी दर्पभंग करा दिया। पूर्वकाल में तुम नारद नामक प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र थे। पितृशाप के कारण तुम क्रमशः गन्धर्व तथा शूद्रपुत्र होकर जन्मे। तत्पश्चात् विभु भगवान् की कृपा से पुनः तुम नारद हो गये हो॥५२-५३॥

मम साध्यं विश्वमिति कामदर्पो बभूव ह। तं प्रमत्तं हरद्वारा भस्मसाच्च चकार सः॥५४॥

पुनः कृत्वा प्रसादं तं जीवयामास लीलया।
ऐकान्तिकं च तद्भक्तं स च नास्त्रं करोति हि॥५५॥

चकार दर्पभङ्गं च दर्पिणो लक्ष्मणस्य च। रणे शङ्करशूलेन रावणप्रेरितेन च॥५६॥
पुनस्तं जीवयामास रामस्य स्तवनेन च। स्वयं विस्मृतविष्णोश्च ब्रह्मशापेन नारद॥५७॥
चकार दर्पभङ्गं च कार्तवीर्यार्जुनस्य च। जामदग्न्यस्य शस्त्रेणामोघेन पर्शुना पुरा॥५८॥
विप्रपुत्रस्य मरणे हरणे कृष्णयोषिताम्। कर्णेन सार्धं समरे पार्थदर्पं बभञ्ज सः॥५९॥

कामदेव को यह गर्व हो गया कि समग्र विश्व मेरे वश में है। ऐसे प्रमत्त कामदेव को भगवान् ने शिव के द्वारा भस्म करा दिया। तदनन्तर पुनः अपने परमभक्त कामदेव पर कृपा करके उसे जीवित करा दिया। तब से कामदेव अपने पुष्पबाण का व्यर्थ प्रयोग नहीं करते। भगवान् ने रणस्थल में रावण प्रेरित शिवशूल से (रावण द्वारा छोड़े गये शिवशूल से) लक्ष्मण का दर्पभंग कराया। राम के द्वारा किये स्तव से वे पुनः जीवित हो सके थे। हे नारद! ब्रह्मशाप के कारण स्वयं विष्णु आत्मविस्मृत हो गये थे। पूर्वकाल में भगवान् ने कार्त्तवीर्य अर्जुन का दर्पभंग परशुराम के अमोघ परशु से कराया। एवंविध कृष्ण ने अर्जुन का दर्पभंग ब्राह्मण के पुत्र के मरण, कृष्ण के स्वलोकगमन के उपरान्त उनकी स्त्रियों का

अर्जुन के समक्ष ही अपहरण तथा महाभारत युद्ध में कर्णार्जुन युद्ध के समय करा दिया।।५४-५९।।

बाणस्य चोषाहरणे चिच्छेद च भुजान्विक्षुः। भृगोश्च दक्षयज्ञे च दर्पभङ्गं चकार सः।।६०।।
पर्शुरामस्य रामस्य विवाहो पथि गच्छतः। बभञ्ज दर्पं समरे रामद्वारा पुरा विभुः।।६१।।
सुमेरोः शृङ्गभृङ्गं च वायुद्वारा चकार सः। समुद्राणां दर्पभङ्गं चकारागस्त्यभक्षणात्।।६२।।
अकाले सृष्टिहरणे तत्पुत्रमरणे पुरा। कोपयुक्तस्य वायोश्च दर्पभङ्गं चकार सः।।६३।।

बाणासुर का दर्पभंग स्वयं श्रीकृष्ण ने उषाहरण के समय उसकी भुजाओं को काट कर किया। दक्षयज्ञ में भृगुऋषि का दर्पभंग किया। श्रीकृष्ण ने रामविवाह में मार्ग में जाते रामचन्द्र के द्वारा परशुराम का दर्पभंग करा दिया। सुमेर पर्वत का अभिमान वायु द्वारा उसके शिखर को भूपतित कराकर भग्न कर दिया। अगत्स्य द्वारा समस्त जल को पान किया गया। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने समुद्र का भी दर्पदलन करा दिया। प्राचीन काल में अकाल सृष्टि का विनाश करने के लिये उद्यत वायुदेव का दर्पनाश श्रीकृष्ण ने उनके पुत्र की मृत्यु द्वारा करा दिया।।६०-६३।।

उषाहरणयात्रायां द्वारकागमने हरेः। बाणस्य च गवां हेतोर्वरुणं च शशाप सः।।६४।।

कलहे गङ्गया सार्धं वाण्या नारायणाग्रतः।
सरस्वतीं च तत्याज तस्या दर्पं बभञ्ज सः।।६५।।

उषाहरण काल में हरि के द्वारका से जाने पर बाणासुर की गौओं के कारण वरुण को शाप दिया। जब उनके सामने (कृष्ण के समाने) गंगा से सरस्वती ने कलह किया था, तब सरस्वती का त्याग करके कृष्ण ने उनका दर्पभंग कर दिया।।६४-६५।।

दर्पयुक्तां च दुर्गां च त्यक्त्वा शम्भुर्हिमालये।
कामं च भस्मसात्कृत्वा तपसे च ययौ विभुः।।६६।।
लज्जामवाप सा देवी तस्या दर्पं बभञ्ज सः।
सा ययौ तपसे विष्णोः प्राप्तिहेतोः शिवस्य च।।६७।।

भारते सुचिरं तप्त्वा देवी विष्णोर्वरेण च। चकार स्वामिनं शंभुं भगवन्तं सनातनम्।।६८।।

शिव ने हिमालय में दर्पयुक्त दुर्गा का त्याग कर दिया। (दुर्गा=पार्वती) तथा काम को दग्ध करके स्वयं तप हेतु हिमालय चले गये। दर्पभंग होने पर पार्वती अत्यन्त लज्जित होकर शिव प्राप्ति हेतु विष्णु की आराधना करने वन में चली गईं। पार्वती ने भारत में चिरकाल तपःश्चरण किया तथा विष्णु से वर पाकर सनातन शिव को पतिरूपेण प्राप्त किया।।६६-६८।।

महासौभाग्ययुक्ता सा बभूव शङ्करप्रिया। विश्वेषु सर्वदेवीषु पूज्या वन्द्या स्तुता सुरैः।।६९।।
दर्पयुक्ता महालक्ष्मीर्बभूव सा महामुने। पराभूता पुरा[1] देवी जयेन विजयेन च।।७०।।

---
१. क. परा।

प्रविशन्तीं विभोर्द्वारं दत्त्वा भक्ताय वाञ्छितम्।
निवारिता सा द्वाराच्च तेन दौवारिकेण वै॥७१॥

[१]यदात्मनस्तिरस्कारं साभिमाना महासती। स्मृत्वा[२] हरेः पादपद्मं देहं त्यक्तुं समुद्यता॥७२॥

वे महासौभाग्यवती शंकरप्रिया हो गईं। वे विश्व में सभी देवीगण की पूज्या तथा देववन्दिता हो गईं। हे महामुनि! इसी प्रकार से महालक्ष्मी भी दर्पयुक्त हो गईं। भगवान् ने द्वारपाल जय-विजय से उनको अपमानित कराकर उनका दर्पभंग किया। वे लक्ष्मी भक्त को वांछित वर देकर वैकुण्ठ द्वार में प्रविष्ट हो रही थीं। तब इन द्वारपालगण ने उनको मना कर दिया। उन महासती अभिमानिनी ने इसे अपना अपमान माना तथा प्रभु के चरणकमल का स्मरण करके देह त्यागार्थ उद्यत हो गईं॥६९-७२॥

तदा ब्रह्मा महेशश्च विष्णुर्धर्मश्च भास्करः। चन्द्रश्च कामदेवश्च वैश्वानरो धनेश्वरः॥७३॥
ऋषयो मुनयश्चैव मनवो विघ्ननाशकाः। महेन्द्रो वरुणश्चैव जगत्प्राणो हुताशनः॥७४॥
समाययूरुदन्तस्ते पद्मायाः पुरतः पुरा। तुष्टुवुश्च महालक्ष्मीं मूलप्रकृतिमीश्वरीम्॥७५॥

यह देखते ही वहां ब्रह्मा, महेश्वर, नारायण विष्णु, धर्मदेव, सूर्य, चन्द्रमा, कामदेव, वैश्वानर, कुबेर, ऋषियों का समूह, मुनिवृन्द, विनायकगण, मनु, इन्द्र, वरुण, वायु रुदन करते लक्ष्मी के निकट आये। वे सभी मूलप्रकृति ईश्वरी महालक्ष्मी की स्तुति करने लगे॥७३-७५॥

देवा ऊचुः

क्षमस्व भगवत्यम्ब क्षमाशीले परात्परे। शुद्धसत्त्वस्वरूपे च कोपादिपरिवर्जिते॥७६॥
उपमे सर्वसाध्वीनां देवीनां देवपूजिते। त्वया विना जगत्सर्वं मृततुल्यं च निष्फलम्॥७७॥
सर्वसंपत्स्वरूपा त्वं सर्वेषां सर्वरूपिणी। रासेश्वर्यभिदेवी त्वं त्वत्कलाः सर्वयोषितः॥७८॥

कैलासे पार्वती त्वं च क्षीरोदे सिन्धुकन्यका।
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं मर्त्यलक्ष्मीश्च भूतले॥७९॥

देवता कहते हैं—हे क्षमाशीले परात्परे भगवती! आप शुद्धस्वरूपा कोप आदि से दूर हैं। क्षमा करिये। आप सभी साध्वीगण के लिये उपमा का स्थल हैं। आप के अभाव में यह जगत् मृत्युतुल्य निष्फल हो जाता है। हे देवी! आप सभी के लिये सर्वसम्पदास्वरूपा हैं। आप सर्वरूपिणी, आप रासेश्वरी तथा उस रास की अधिष्ठात्री हैं। समस्त स्त्रियां आपकी ही कला हैं। आप ही कैलास पर पार्वती, क्षीरसागर में सिन्धुकन्या लक्ष्मी, स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी, भूतल पर मर्त्यलक्ष्मी हैं॥७६-७९॥

वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्देवदेवी सरस्वती।
गङ्गा च तुलसी त्वं च सावित्री ब्रह्मलोकतः॥८०॥

---

१. क. महात्मनस्ति०।
२. क. दृष्ट्वा।

कृष्णप्राणाधिदेवी त्वं गोलोके राधिका स्वयम्।
रासे रासेश्वरी त्वं च वृन्दा वृन्दावने वने॥८१॥

कृष्णप्रिया त्वं भाण्डीरे चन्द्रा चन्दनकानने। विरजा चम्पकवने शतशृङ्गे च सुन्दरी॥८२॥

आप वैकुण्ठ में महालक्ष्मी तथा देवदेवी सरस्वती हैं। आप ही वैकुण्ठस्था गङ्गा तथा तुलसी तथा ब्रह्मलोक में स्थित सावित्री हैं। आप ही गोलोक में स्वयं ही कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिया राधा हैं। आप रासमण्डल में रासेश्वरी तथा वृन्दावन में वृन्दादेवी हैं। आप भाण्डीरवन में कृष्णप्रिया, चन्दनकानन में चन्द्रा, चम्पकवन में विरजा तथा शतशृंग पर्वतस्था सुन्दरी भी हैं।।८०-८२।।

पद्मावती पद्मवने मालती मालतीवने। कुन्ददन्ती कुन्दवने सुशीला केतकीवने॥८३॥
कदम्बमाला त्वं देवी कदम्बकाननेऽपि च। राजलक्ष्मी राजगेहे गृहलक्ष्मीर्गृहे गृहे॥८४॥

आप पद्मवन में स्थित पद्मावती, मालतीवनस्था मालती, कुन्दवन में विराजमान कुन्ददन्ती तथा केतकी वनस्था सुशीला हैं। आप कदंबवनस्था कदम्बमाला, राजा के घर की राजलक्ष्मी तथा गृहस्थों की गृहलक्ष्मी हैं।।८३-८४।।

इत्युक्त्वा देवताः सर्वे मुनयो मनवस्तथा। रुरुदुर्नम्रवदनाः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः॥८५॥

यह कहकर वहां उपस्थित सभी देवता, मुनिमण्डली तथा मनुगण नत मुख होकर रुदन करने लगे। उन सबके कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो गये थे।।८५।।

इति लक्ष्मीस्तवं पुण्यं सर्वदेवैः कृतं शुभम्।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय स वै सर्वं लभदे्ध्रुवम्॥८६॥

इस सर्वदेवकृत, पुण्यप्रद, शुभदायक लक्ष्मी स्तव का जो कोई प्रातः पाठ करता है, वह निश्चित रूप से सब कुछ पा लेता है।।८६।।

अभार्यो लभते भार्यां विनीतां च सुतां सतीम्।
सुशीलां सुन्दरीं रम्यामतिसुप्रियवादिनीम्॥८७॥

पुत्रपौत्रवतीं शुद्धां कुलजां कोमलां वराम्। अपुत्रो लभते पुत्रं वैष्णवं चिरजीविनम्॥८८॥
परमैश्वर्ययुक्तं च विद्यावन्तं यशस्विनम्। भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भ्रष्टश्रीर्लभते श्रियम्॥८९॥

हतबन्धुर्लभेद्बन्धुं धनभ्रष्टो धनं लभेत्।
कीर्तिहीनो लभेत्कीर्तिं प्रतिष्ठां च लभेद्ध्रुवम्॥९०॥

इसके पाठफल से भार्या रहित को विनीता पुत्रवती सती, सुशीला, सुन्दरी, रम्या, मधुरभाषिणी, पुत्र-पौत्रवती, उत्तम कुलोत्पन्न कोमल श्रेष्ठ भार्या मिलती हैं। अपुत्र को वैष्णव चिरंजीवी सत्पुत्र मिलता है। वह पुत्र विद्यावान्, परमैश्वर्यशाली, यशस्वी होगा। जिनका राज्यभ्रष्ट (च्युत) हो गया वे राज्य तथा नष्ट हो गई श्रीको पुनः प्राप्त करते हैं। बन्धु रहित को बन्धु, धनभ्रष्ट को धन, कीर्त्तिहीन को कीर्त्ति तथा प्रतिष्ठा अवश्य मिलती है।।८७-९०।।

सर्वमङ्गलदं स्तोत्रं शोकसन्तापनाशनम्। हर्षानन्दकरं शश्वद्धर्ममोक्षसुहृत्प्रदम्॥९१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदना० भगवद्गुणवर्णने लक्ष्मीस्तोत्रकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥
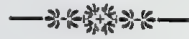
यह स्तोत्र सभी मङ्गल देने वाला, शोक-सन्तापनाशक, हर्ष-आनन्ददायक तथा धर्म, सुहृद तथा मोक्षदायक भी है॥९१॥

॥५६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्राणत्यागोद्यता मानिनी लक्ष्मी का वैराग्य त्याग

नारायण उवाच

देवानां स्तवनं श्रुत्वा त्यक्त्वा च रोदनं सती। उवाच सुप्रसन्ना तांस्तेषां स्तोत्रेण नारद॥१॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! देवगण का स्तवन सुनकर सती लक्ष्मी ने रुदन बन्द कर दिया। उन्होंने देवगण कृत इस स्तुति से प्रसन्न होकर कहा—॥१॥

महालक्ष्मीरुवाच

त्यजामि देहं न क्रोधान्न वैराग्येण साम्प्रतम्। इदं हृदि समालोच्य देवास्तच्छ्रूयतामिति॥२॥
यस्मिन्सदीशे महति सर्वसाम्ये च निर्गुणे। सर्वात्मनि सदानन्दे समता तृणशैलयोः॥३॥

श्रीमहालक्ष्मी कहती हैं—हे देवताओ! मैंने क्रोधवश देहत्याग नहीं करना चाहा है। इसका कारण तुम सब श्रवण करो। मेरा जो निश्चय है, वह सुनो। जो सर्वत्र समदर्शी, निर्गुण, सर्वात्मा, सदानन्दमय, सदीश्वर हैं, उनके लिये तृण तथा पर्वत समान ही है॥२-३॥

भ्रूभङ्गलीलया लक्ष्मीर्लक्षं स्रष्टुमलं च यः।
भृत्ये स्त्रियां यत्समता किं कार्यं तस्य सेवया॥४॥
तत्पत्नीनां प्रधानाऽहं निरस्ता द्वारिणाऽधुना।
तद्भृऽत्यभृत्यभृत्येन परिपूर्णेन नेप्सिता॥५॥

वे अपनी भ्रूभंग लीलामात्र से लाखों लक्ष्मी का सृजन कर सकते हैं। उनके लिये तो भृत्य तथा

पत्नी समान है। उनकी सेवा करने से क्या लाभ! मैं भगवान् की पत्नियों में भले ही प्रधान हूं, तथापि उनके भृत्य के भी भृत्य के भृत्य द्वारपाल ने मुझे प्रवेश करने से रोक दिया। इससे प्रतीत होता है कि मैं स्वामी कृष्ण के लिये ईप्सित तथा वांछित नहीं रह गई!।।४-५।।

त्यक्ष्यामि जीवनमहमसौभाग्या च स्वामिनि।
वह्नौ च कामनां कृत्वा यथा भद्रं भवेत्पुरा[१]।।६।।
या स्त्री भर्तुरसौभाग्या साऽसौभाग्या च सर्वतः।
शयनेऽभोजने तस्या न सुखं जीवनं वृथा।।७।।
यस्या नास्ति प्रियप्रेम तस्या जन्म निरर्थकम्।
तत्किं पुत्रे धने रूपे सम्पत्तौ यौवनेऽथवा।।८।।
यद्भक्तिर्नास्ति कान्ते च सर्वप्रियतमे परे। साऽशुचिर्धर्महीना च सर्वकर्मविवर्जिता।।९।।

मैं इस प्रकार स्वामी सौभाग्य से विहीन हो गई हूं। अतः मैं अग्नि में इस कामना के साथ देहत्याग करूंगी कि भावी जन्म में मेरा मंगल हो। पूर्ववत् ही मेरा कल्याण हो। पतिसौभाग्यहीन नारी तो सर्वत्र सौभाग्य रहित हो जाती है। उसे शयन-भोजन में सुख नहीं मिलता। उसे जीवन व्यर्थ प्रतीत होता है। जिस नारी को स्वामी का प्रेम प्राप्त नहीं है, उसका जीवन व्यर्थ है। उसे पुत्र, धन, रूप, सम्पदा, यौवन से क्या प्रयोजन रह गया? जिस नारी को अपने परमप्रियतम कान्त के प्रति भक्ति नहीं है, वह सदा अपवित्र, धर्महीन तथा सभी कर्म से वर्जित मानी गयी है।।६-९।।

पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च। सर्वस्माच्च परः स्वामी न गुरुः स्वामिनः परः।।१०।।
पिता माता सुतो भ्राता क्लिष्टो दातुमिदं धनम्।
सर्वस्वदाता स्वामी च मूढानां योषितां सुराः।।११।।

पति ही नारी का बन्धु, गति, देवता तथा गुरु हैं। अतः पति ही सर्वाधिक प्रधान माना गया है। गुरु भी पति से बढ़कर नहीं है। हे देवताओ! पिता, माता, पुत्र, भाई अत्यन्त क्लेश पूर्वक धन दे पाते हैं, तथापि पति तो मूढ़ स्त्री को भी सर्वस्व प्रदान कर देता है!।।१०-११।।

काचिदेव हि जानाति महासाध्वी च स्वामिनम्।
अतिसद्वंशजाता च सुशीला कुलपालिका।।१२।।

जो महासाध्वी नारी है, वही पति के महान् महत्व को जान सकती है। ऐसी पतिव्रता जो उत्तम कुलोत्पन्न, सुशीला तथा कुलपालिनी को ही पति का महत्व विदित होता है।।१२।।

आसद्वंशप्रसूता या दुःशीला धर्मवर्जिता। मुखदुष्टा योनिदुष्टा पतिं निन्दति कोपतः।।१३।।
या स्त्री सर्वपरं द्वेष्टि पतिं विष्णुसमं गुरुम्।
कुम्भीपाके पचति सा यावदिन्द्राश्चतुर्दश।।१४।।

१. क. ०परः।

व्रतं चानशनं दानं सत्यं पुण्यं तपश्चिरम्। पतिभक्तिविहीनाया भस्मीभूतं निरर्थकम्॥१५॥

जो नारीगण असत्कुलोत्पन्न हैं, दु:शीला, धर्मवर्जिता, कटु बोलने वाली, चरित्रभ्रष्टा होती हैं, वे ही क्रोध के कारण पति निन्दा करती हैं। जो पत्नी (नारी के लिये) परमगुरुरूप, सर्वश्रेष्ठ विष्णुस्वरूप पति की निन्दा करती है अथवा उससे द्वेष करती है, वह १४ इन्द्रों के जीवनकाल तक कुंभीपाक नरक में महान् क्लेश भोग करती है। पतिभक्ति रहित नारी का व्रत, उपवास, दान, सत्य, पुण्य तथा दीर्घ तपस्या भी निरर्थक है। वह सब भस्मीभूत हो जाता है।।१३-१५।।

अतःकिञ्चिन्न वक्ष्यामि निष्ठुरं पतिमीश्वरम्।
भृत्यापराधैर्देवस्य[1] प्राणांस्त्यक्ष्यामि निश्चितम्॥१६॥
पतिदोषे महासाध्वी पतिं न निष्ठुरं वदेत्।
यदि सोढुमशक्ता च प्राणांस्त्यजति धर्मतः॥१७॥

अत: मैं अपने निष्ठुर पतिपरमेश्वर के लिये कुछ नहीं कहने वाली हूं, तथापि पति के भृत्य के अपराध के कारण मैं निश्चित रूप से प्राण त्याग करूंगी। जो महासती नारी होती है, वह पति द्वारा अपराध किये जाने पर भी उससे कोई प्रतिवाद इत्यादि नहीं करती। यह असहनीय होने पर वह धर्मतः प्राण-त्याग देती है।।१६-१७।।

पतिसेवा व्रतं स्त्रीणां पतिसेवा परं तपः। पतिसेवा परो धर्मः पतिसेवा सुरार्चनम्॥१८॥
पतिसेवा परं सत्यं दानतीर्थानुकीर्तनम्। सर्वदेवमयः स्वामी सर्वदेवमयः शुचिः॥१९॥

स्त्रियों का परम व्रत है पतिसेवा। यही परमतप है। यही उसका महान् धर्म है। यही उसके लिये देवपूजन है। यही पति सेवा स्त्री के लिये परमसत्यरूप, दानरूप तथा तीर्थसेवनवत् है। स्त्री के लिये उसका पति सर्वदेवमय पवित्र मूर्त्तरूप देवता है।।१८-१९।।

सर्वपुण्यस्वरूपश्च पतिरूपी जनार्दनः। या सती भर्तुरुच्छिष्टं भुङ्क्ते पादोदकं सदा॥२०॥
तस्या दर्शमुपस्पर्शं नित्यं वाञ्छन्ति देवताः।
ततः सर्वाणि तीर्थानि पुनन्ति पापिनो ह्यघात्॥२१॥

नारी के लिये उसका पति रूपी जनार्दन सर्वगुणस्वरूप है। जो सती पति का जूठन खाती तथा उसका चरण जलपान करती है, देवगण उसके स्पर्शन तथा दर्शन की नित्य कामना करते हैं। ऐसी स्त्री के दर्शन तथा स्पर्श से तीर्थ पवित्र होकर पापीगण को पाप रहित एवं पवित्र कर देते हैं।।२०-२१।।

इत्युक्त्वा च महासाध्वी रुरोद च मुमुर्मुहुः।
उवाच ब्रह्मा भीतश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः॥२२॥

यह कहकर महासाध्वी बारम्बार रुदन करने लगीं। यह देखकर ब्रह्मा भयभीत हो गये। वे भक्ति पूर्वक नतमस्तक होकर कहने लगे।।२२।।

१. क. दैवेन।

ब्रह्मोवाच

भविष्यति न भद्रं च जयस्य विजयस्य च।
त्वया न शप्तौ तौ मूढौ प्रियापराधभीतया॥२३॥

सापराधं च धर्मिष्ठः क्षमया न शपेद्यदि। सर्वनाशो भवेत्तस्य निश्चितं मा चिरं सति॥२४॥
यदि शप्तुं न शक्तश्च न दण्डं कर्तुमीश्वरः। सापराधे च पुरुषे धर्मो दण्डं करोति च॥२५॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे पतिव्रता लक्ष्मी! जय-विजय का कदापि मंगल नहीं होगा। तुमने उनको इस भय से शाप नहीं दिया कि कहीं इससे प्रियतम पति के प्रति आपसे अपराध न हो जाये। धर्मात्मा पुरुष अपने अपराधी को अपने क्षमागुण के कारण शाप नहीं देता, तथापि उस अपराधी का शीघ्र ही सर्वनाश हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति अपराधी को शाप देने अथवा दण्डित कर सकने में अक्षम रह जाता है, तब धर्म ही उस अपराधी को स्वयं दण्डित कर देता है।।२३-२५।।

सर्वं क्षमस्व हे मातर्गच्छगच्छ प्रियान्तिकम्।
मां च त्वत्स्वामिनो भक्तं नियोज्य सृष्टिकर्मणि॥२६॥

हे माता! तुम सबको क्षमा करके स्वामी के यहां जाओ। मैं तुम्हारे स्वामी का भक्त हूं। मुझे सृष्टिकर्म करने में लगाकर अपने प्रियतम के यहां गमन करो।।२६।।

इत्युक्त्वा तां पुरस्कृत्वा सार्धं देवैर्मुनीन्द्रकैः।
शीघ्रं जगाम वैकुण्ठं वैकुण्ठं स्तोतुमीश्वरः॥२७॥

तत्र गत्वा जगन्नाथं तुष्टाव कमलासनः। चतुर्वक्त्रैश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्वेदविदां गुरुम्॥२८॥
ब्रह्मणः स्तवनं श्रुत्वा दृष्ट्वा लक्ष्मीं पुरःसराम्। रुदतीं नम्रवदनामुवाच कमलापतिः॥२९॥

ब्रह्मा ने यह कहकर देवी लक्ष्मी को आगे किया तथा देवताओं एवं मुनिगण के साथ वैकुण्ठपति का स्तवन करने शीघ्रता से वैकुण्ठधाम गये। चतुर्वेदज्ञों के गुरु चतुर्मुख ब्रह्मा ने वहां पहुंचकर कमलापति की स्तुति किया। भगवान् कमलापति ब्रह्माकृत स्तव सुनकर तथा अपने समक्ष खड़ी लक्ष्मी को विनयावनत रुदन करते देखकर कहने लगे।।२७-२९।।

श्रीभगवानुवाच

सर्वं जानामि सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वपालकः।
सर्वशास्ता च सर्वादिकारणं कमलोद्भव॥३०॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे कुलोद्भव! मैं सर्वज्ञ, सर्वात्मा, सर्वपालक, सबका शासक, सबका आदिकारण हूं। मुझे सब ज्ञात है।।३०।।

भक्ते कलत्रे बन्धौ च सर्वत्र समता मम। विशेषतोऽतिमद्भक्तः कलत्रात्पर एव च॥३१॥
मद्भक्तौ तव पुत्रौ च द्वारपालौ दुरन्तकौ। क्षम मामपराधं च तयोश्च भक्तिपूर्णयोः॥३२॥

मद्भक्तिपूर्णो बलवान्दैत्येभ्यो न बिभेति च।
रक्षितो मम चक्रेण भक्तिमाध्वीकदुर्मदः॥३३॥

मेरा भक्त, पत्नी, बन्धु आदि सबके प्रति समान भाव रहता है। इसमें विशेषता यह है कि मुझे अपना विशिष्ट भक्त पत्नी से भी बढ़कर प्रिय है। हे चतुरानन! ये जो मेरे दुरन्त द्वारपाल मेरे भक्त तथा आपके पुत्र हैं, आप उनका तथा मेरा अपराध क्षमा करिये। वे भक्तिपूर्ण हैं। जो मेरे जन मेरी भक्ति से आप्लावित रहते हैं, वे कदापि बलवान् दैत्यगण से भी नहीं डरते। जिसने मेरी भक्तिरूप मदिरा का पान कर लिया उन भक्तिमदमत्त लोगों की रक्षा सतत् मेरा सुदर्शन चक्र करता है।।३१-३३।।

इत्युक्त्वा जगतां नाथो लक्ष्मीं कृत्वा स्ववक्षसि। समानीय द्वारपालं तमुवाचेदमेव च॥३४॥
मा भैर्वत्स सुखं तिष्ठ भयं किं ते मयि स्थिते।
मद्भक्तानां च कः शास्ता गच्छ वत्साऽऽत्मनःपदम्॥३५॥

यह कहकर जगन्नाथ ने लक्ष्मी को वक्ष से लगा लिया। तदनन्तर भगवान् ने द्वारपालों को बुलाकर कहा–"हे वत्स! भय मत करना। सुख से रहो। मेरे विद्यमान रहते तुमको क्या भय? मेरे भक्तों पर शासन कर सकने में कौन समर्थ है? तुम जाकर अपने पद पर (द्वारपाल के पद पर) स्थिर हो जाओ।।३४-३५।।

इत्युक्त्वा भगवांस्तत्र विरराम महामुने। ययुर्देवाश्च स्वस्थानं प्रणम्य जगदीश्वरम्॥३६॥
नारायणवचः श्रुत्वा द्वारपाल उवाच तम्। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकंधरः॥३७॥

हे महामुनि! भगवान् यह कहकर मौन हो गये। देवता आदि सभी लोग उनको प्रणाम करके स्वस्थान चले गये। उधर नारायण का कथन सुनकर द्वारपाल का सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। उसने नत-मस्तक होकर भगवान् से कहा–।।३६-३७।।

जय उवाच

नाहं बिभेमि देवांश्च लक्ष्मीं मुनिगणांस्तथा। त्वदीयचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसः॥३८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदनारा० लक्ष्मीवैराग्यमोचनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५७॥

—※※※—

जय द्वारपाल कहता है–हे प्रभो! मेरा चित्त निरन्तर आपके चरणकमलों के ध्यान में सदा आसक्त रहता है। मुझे देवता, लक्ष्मी तथा मुनिगण का भी भय नहीं है।।३८।।

(यहां द्वारपाल ने भी एक प्रकार का दर्प प्रकट किया, तभी भगवान् ने उन्हें दैत्य योनि प्रदान किया था।)

।।५७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथाष्टापञ्चाशत्तमोऽध्यायः

संक्षेप में पृथिवी, सावित्री, गंगा, मनसा तथा राधा के दर्प का हरण

नारायण उवाच

बभूव दर्पः पृथ्व्याश्च सर्वाधाराऽहमेव च। पृथुद्वारा च तद्दर्पं जघान चैव तत्प्रभुः॥१॥
बभूव दर्पः सावित्र्या वेदमाताऽहमेव च। काले चकार तस्याश्च सपुत्राया अदर्शनम्॥२॥
बभूव दर्प गङ्गाया अहं निर्वाणदेति च। जह्नुद्वारा च तद्दर्पं जहार जगतां पतिः॥३॥
जहार मनसादर्पं दुर्गाद्वारा पुरा मुने। विरजोपगतं कृष्णं भर्त्सयामास कोपतः॥४॥
प्रविशन्तं रासगृहं गोपीभिर्विनिवारितम्। दौवारिकाभिर्वेत्रैश्च ताडितं तं च दर्पतः॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–एक बार पृथिवी को यह अभिमान हो गया कि वे ही सबकी आधार हैं। तदनन्तर प्रभु कृष्ण ने उनके इस दर्प को राजा पृथु द्वारा नष्ट किया। सावित्री को यह दर्प हो गया कि मैं वेदमाता हूं। उनके इस दर्प को भगवान् ने उनके पुत्रों को उनसे अदृश्य करके चूर्ण कर दिया। हे मुनिवर! गङ्गा को दर्प हो गया कि मैं निर्वाणप्रदा हूं। तदनन्तर जह्नु मुनि के द्वारा उनका पान करा के भगवान् ने उनके गर्व को नष्ट किया। पूर्वकाल में दुर्गा के द्वारा प्रभु ने देवी मनसा के दर्प का हरण किया था। जब एक बार कृष्ण विरजा के साथ गोलोक में रमणरत थे, तब राधा ने दर्प के वशीभूत होकर कृष्ण की क्रोध में भरकर भर्त्सना किया था। राधा ने दर्प में भरकर रासभवन में उनको प्रवेश करते देखकर अपनी द्वारपाल गोपियों द्वारा उनका बेंत से ताड़न कराया॥१-५॥

सुदाम्ना निजभक्तेन राधा शप्ता बभूव ह।
देवेन सहसा ध्वस्ता गोलोकादागता धराम्॥६॥

वृषभानुस्त्रियां जाता कलावत्यां च नारद। कृष्णस्तदनुरोधेन कंसभीतिच्छलेन च॥७॥
समागतो नन्दगेहं तेनाहं नन्दनन्दनः। सुदाम्नः शापविच्छेदपालनार्थं जगत्पतिः॥८॥
पुनर्जगाम मथुरामित्याह कमलोद्भवः। अस्यापरमभिप्रायं को वा जानाति नारद॥९॥
कथं जातः समायातो मथुरायाश्च गोकुलम्। इत्येवं कथितं सर्वमपरं श्रूयतामिति॥१०॥

तब अपने भक्त सुदामा के माध्यम से प्रभु ने राधा को शाप प्रदान कराया। वे राधा दैव की मारी गोलोक से धरती पर वृषभानु की पत्नी कलावती के गर्भ से जन्मी। श्रीकृष्ण भी राधा के अनुरोध द्वारा तथा कंस के भय का दिखावा करके मथुरा के कारागार से नन्द के गृह में आये। तभी प्रभु नन्दनन्दन कहे जाते हैं। जगत्पति ने सुदाम के द्वारा राधा को दिये गये शतवर्षीय वियोग-रूपी शाप का पालन करने हेतु कृष्ण पुनः मथुरापुरी गये, यह कमलयोनि ब्रह्मा ने कहा था। हे नारद! वे पृथिवी पर

आविर्भूत होते ही मथुरा से गोकुल क्यों आये? इस प्रभुलीला का कारण कौन कह सकता है? यह सब जो मैंने सुना था, वह सब कह दिया। अब इसके आगे वाला प्रसंग श्रवण करो।।६-१०।।

यथा जगाम मथुरां नन्दान्स नन्दनन्दनः।
शोकं नन्दो यशोदा च यथा सम्प्राप दैवतः॥११॥
यथा गोपाश्च गोप्यश्च गावो वृन्दावने वने।
वने वने वा वन्यास्ते वन्या जानन्ति किञ्चन॥१२॥

उधर दैवात् जैसे ही नन्दनन्दन गये, तभी से नन्द भवन में यशोदा तथा नन्द दुःखी हो गये। उसी प्रकार वृन्दावनवासिनी गोपियां तथा गोपगण एवं गौयें कृष्णविरह से कातर होकर वन-वन में भटकने लगे। वे एक प्रकार से वनेचर हो गये। केवल वनवासी ही उनका कुछ संवाद जानते थे!।।११-१२।।

वनं रम्यं वन्यपदमपि त्यक्त्वा वने वने।
श्मशाने वाऽश्मशाने वा बभ्राम भामिनी मुने॥१३॥
ग्रामं त्यक्त्वा च बभ्राम चेतनाऽचेतना क्षणम्।
क्षणेन वर्जिता सा च प्रार्थयन्ती प्रतिक्षणम्॥१४॥
क्षणं क्षणं सा श्वसिति चिन्तनं कुर्वती क्षणम्।
क्षणं विशन्ती तल्पे च क्षणमुत्थाय तिष्ठति॥१५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदनारा० अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५८।।

वे लोग उत्तम वन प्रान्तर तथा रम्य स्थलों को छोड़कर वन-वन फिर रहे थे। हे मुनिवर! राधिका भी वनों आदि को त्याग कर कभी घोर वनों में, कभी श्मशानों में, तो कभी अश्मशान स्थलों में भटकती घूम रही थीं। आनन्दोत्सव रहिता राधा तो कभी कृष्ण के प्रति क्रोध प्रकट करतीं, कभी कोप रहित हो जाती थीं। वे कभी चेतनायुक्त रहती, तो कभी अचेतन पड़ जाती! कभी कृष्ण को पुनः प्राप्त करने की अभिलाषा करती थीं। वे क्षण-क्षण में दीर्घश्वास छोड़तीं, अगले क्षण चैतन्य हो जातीं। वे कभी विपन्न होकर शय्या पर शयन करने जातीं, कभी अगले ही क्षण उठकर खड़ी हो जातीं!।।१३-१५।।

।।५८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

विस्तार पूर्वक इन्द्र दर्पभंग वर्णन तथा इन्द्राणी कृत गुरु स्तवद्ध इन्द्राणी नहुष संवाद वर्णन

नारायण उवाच

इत्येवं कथितं सर्वं सर्वेषां दर्पभञ्जनम्। इन्द्रस्य दर्पभङ्गं च विस्तरेण निशामय॥१॥

इन्द्रो दर्पात्सभायां च [१]रत्नसिंहासनाद्वरात्।
नोत्तस्थौ स्वगुरुं दृष्ट्वा ब्रह्मिष्ठं च बृहस्पतिम्॥२॥

गुरुर्जगामातिरुष्टः स्वापमाने समत्सरः, तथापि कृपया धर्मी स्नेहाच्च च शशाप तम्॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—मैंने अब तक सबके अभिमान भंग का प्रसंग कह दिया। अब मैं इन्द्र के दर्पभंग को सविस्तार कहता हूं। एक बार इन्द्र देवसभा में आसीन थे। तभी उनके तत्वज्ञगुरु बृहस्पति (जीव) वहां आये, तथापि दर्पवश देवराज ने उनको देखकर भी अपने श्रेष्ठ स्वर्ण सिंहासन से उठकर उनकी आभ्यर्थना नहीं किया। गुरु अपनी अवमानना से रुष्ट होकर वहां से चल पड़े। उनके मन में मत्सर भाव का उदय भले ही हो गया था, तथापि उन धार्मिक ने स्नेह के कारण इन्द्र को शाप नहीं दिया।।१-३।।

विना शापेन तद्दर्पश्चूर्णीभूतो बभूव ह।
अन्यश्चेन्न शपेद्धर्मात्प्रेम्णा वा [२]चातिकिल्विषम्॥४॥

तथाऽपि तं च फलति धर्मस्तं हन्ति नारद। यो यं हिंस्रं सापराधं शपेत्कोपेन धार्मिकः॥५॥

विनाशः सापराधस्य धर्मो नष्टश्च धर्मिणः। तेनाधर्मेण शक्रस्य ब्रह्महत्या बभूव ह॥६॥

हे नारद! तथापि भले ही गुरु ने इन्द्र को शाप नहीं दिया, तथापि भविष्य में इन्द्र का यह दर्प चूर्ण हो गया। यदि धार्मिक मनुष्य धर्मतः किंवा स्नेहतः पातकी को शाप नहीं देता, तथापि उसे इस दुष्कर्म का फल मिलना निश्चित है। धर्मदेव उसको नष्ट कर देते हैं। यदि धार्मिक क्रोधित होकर हिंस्र व्यक्ति को शाप देता है, तब उस अपराधी के नाश के साथ ही उस धार्मिक व्यक्ति का ही धर्म नाश होता है। (तभी धार्मिक व्यक्ति शाप देने से डरते हैं)। इस अधर्म के कारण इन्द्र को ब्रह्महत्या लग गयी।।४-६।।

भीतस्त्यक्त्वा स्वराज्यं च प्रययौ स सरोवरम्।
सरसः पद्मसूत्रे च निवासं च चकार सः॥७॥

---

१. क. ०सने वसन्।।
२. क. जातकि०।

गन्तुं च शक्ता हत्या च पुण्यं विष्णुसरोवरम्। श्रेष्ठं भरतवर्षे च तपःस्थानं तपस्विनाम्॥८॥
तदेव पुष्करं तीर्थं प्रवदन्ति पुराविदः। राज्यभ्रष्टं हरिं दृष्ट्वा हरिभक्तो नराधिपः॥९॥
बलाज्जहार तद्राज्यं नहुषो नाम धार्मिकः।
दृष्ट्वा शचीं वरारोहामनपत्यां च सुन्दरीम्॥१०॥
स्वर्गगङ्गां च गच्छन्तीं हृदयेन विदूयता। नवयौवनसम्पन्नां रत्नालङ्कारभूषिताम्॥११॥
सुकोमलां तां सुदतीं वदन्तीं च महासतीम्।
मूर्च्छां सम्प्राप राजेन्द्रः कामेन यौवनेन च।
उवाच तत्पुरः स्थित्वा सुविनीतश्च दासवत्॥१२॥

इस ब्रह्महत्या से भयग्रस्त होकर इन्द्र ने राज्य त्याग कर सरोवर में शरण लिया। वे सरोवर के भीतर सूक्ष्मरूपी होकर कमलसूत्र में रहने लगे। वह पावन विष्णु सरोवर ब्रह्महत्या के लिये अगम्य था। वह उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकी। यह सरोवर भारत में तापस लोगों हेतु उत्तम तपःस्थली है। प्राचीन पण्डितगण उसे पुष्करतीर्थ कहते हैं। जब धार्मिक हरिभक्त राजा नहुष ने इन्द्र को राज्यभ्रष्ट देखा, तब नहुष ने बलात् इन्द्रपुरी पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया। एक बार नहुष ने अत्यन्त मनोहर अंगवाली, सन्तान रहित, नवयौवना, रत्नालंकारभूषिता, सुकोमला, उत्तम दन्तपंक्ति वाली इन्द्रपत्नी शची को देखा। वह दुःखी महासती नारी अपनी सखियों से वार्त्तालाप करती आकाशगङ्गा गमन कर रही थी। राजा नहुष उसके यौवन को देखकर कामोन्मत्त हो गये। उन्होंने शची के समक्ष खड़े होकर विनीत स्वर में एक दास की तरह शची से कहा—॥७-१२॥

नहुष उवाच

धातुर्गतिर्विचित्राऽहो न बोध्या न सतामपि॥१३॥
ईदृशी स्त्री भगाङ्गस्य लुब्धस्य परयोषिति। ईदृशी सुन्दरी यस्य परभार्यासु तन्मनः॥१४॥
अस्या अग्रे च का रम्भा कोर्वशी का तिलोत्तमा।
का वा मेना घृताची वा रत्नमाला कलावती॥१५॥
कालिका सुन्दरी भद्रावती चम्पावती तथा।
एताश्चाप्सरसश्चान्याः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१६॥

राजा नहुष कहते हैं—अहा! विधाता की गति विचित्र है! ज्ञानी भी उसे नहीं जान पाते। जिस इन्द्र ने परस्त्री के प्रति कामुक होकर सम्पूर्ण शरीर में भगचिह्न का शाप पाया, उसकी स्त्री ऐसी सुन्दरी है! क्या अद्भुत बात है। जिनकी पत्नी स्वयं इतनी सुन्दर है, जिसके सामने रंभा भी तुच्छ है। उसका चित्त यदि परनारी में आसक्त है, तब क्या कहा जाये? शची की तुलना में तो रंभा, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेना, घृताची, रत्नमाला, कलावती, कालिका, सुन्दरी भद्रावती, चम्पावती आदि स्वर्गीय अप्सरायें उसका १६वां भाग भी नहीं ठहरतीं!॥१३-१६॥

इमां विहाय मूढोऽन्यां कथं गच्छति मन्दधीः।
अस्माकं योषितोऽस्याश्च चेटितुल्याश्च निश्चितम्॥१७॥
मां भजस्व वरारोहे सुप्रीता भव किङ्करम्।
यथा राधा च गोलोके कृष्णवक्षसि राजते॥१८॥
वैकुण्ठोरसि वैकुण्ठे यथा लक्ष्मीः सरस्वती।
ब्रह्मलोके च ब्रह्माणी यथैव ब्रह्मवक्षसि॥१९॥
यथा मूर्तिर्महासाध्वी धर्मवक्षःस्थलस्थिता। पातालतललक्ष्मीर्वा यथैवाऽनन्तवक्षसि॥२०॥
यथा पुष्टिर्गणेशे च देवसेना च कार्तिके। वरुणे वरुणानी च यथा स्वाहा हुताशने॥२१॥
यथा रतिः कामदेवे यथा संज्ञा दिनेश्वरे।
वायोः पत्नी यथा वायौ यथा चन्द्रे च रोहिणी॥२२॥
यथाऽदितिर्देवमाता तव श्वश्रूश्च कश्यपे। यथा हिमालये मेना पितृकन्या च मानसी॥२३॥
लोपामुद्रा यताऽगस्त्ये यथा तारा बृहस्पतौ। कर्दमे देवहूतिश्च वसिष्ठेऽरुन्धती यथा॥२४॥
मनौ च शतरूपेव दमयन्ती नले यथा। तथा भव त्वं सौभाग्या मम वक्षसि सुन्दरि॥२५॥

वह मूढ़ मन्दबुद्धि इन्द्र ऐसी ललना को छोड़कर क्यों अन्य स्त्रियों के पास जाता है? हमारी स्त्रियां तो शची के सामने दासी जैसी भी नहीं ठहरतीं। हे वरारोहे! मैं तुम्हारा दास हूं। तुम प्रसन्न होकर मुझसे प्रेम करो। जिस प्रकार गोलोक में राधाकृष्ण के वक्षस्थल पर विराजमान हैं, जैसे वैकुण्ठनाथ के वक्षस्थल पर लक्ष्मी तथा सरस्वती विराजित रहती हैं, ब्रह्मलोक के ब्रह्मा के वक्षस्थल पर जैसे ब्रह्माणी स्थिता हैं, जैसे महासाध्वी मूर्त्तिदेवी धर्मदेव के वक्षस्थल पर विराजमान हैं, जैसे पाताललक्ष्मी पाताल में अनन्त के वक्ष पर विराजमान हैं, जैसे गणेश के अंक में पुष्टि, कार्तिक के अंक में (गोद में) देवसेना, वरुण के अंक में वरुणानी, अग्नि के अंक में स्वाहा, कामदेव के अंक में रति, सूर्य के अंक में संज्ञा, हिमालय के अंक में पितरों की मानसी कन्या मेनका विराजमान हैं, जैसे वायु की पत्नी वायु के अंक में, रोहिणी चन्द्र के अंक में, देवमाता अदिति कश्यप के अंक में, लोपामुद्रा अगत्स्य के अंक में, तारा बृहस्पति के अंक में, देवहुति कर्दम के अंग में तथा अरुन्धती वसिष्ठ के अंक में स्थित हैं, जैसे शतरूपा मनु के अंक में, दमयन्ती नल के अंक में स्थित हैं तथा सुशोभित हैं, हे सुन्दरी! उसी प्रकार तुम सौभाग्यवती शची मेरे अंक पर विराजित हो जाओ!॥१७-२५॥

लीलया च सहस्त्रेन्द्राञ्छेत्तुं शक्तोऽहमीश्वरः।
नारी वाञ्छति जारं च स्वामिनो बलवत्तरम्॥२६॥
सुमेरुगिरिकूटे च दुर्गमेति रहःस्थले। अथवा मलये रम्ये रम्ये चन्दनवायुना॥२७॥
विश्रम्भके सुरसने किंवा नन्दनकानने। निकटे शतशृङ्गस्य पुष्पभद्रानदीतटे॥२८॥
गोदावरीतीरनीरे समीपे शीतवायुना। चम्पावतीनदीतीरे रम्ये चम्पककानने॥२९॥

मैं हजारों इन्द्रों को नष्ट कर सकने में समर्थ हूं। मैं उनका खण्ड-खण्ड कर सकता हूं। नारी सर्वदा स्वामी की अपेक्षा बली व्यक्ति को उपपति बनाने की कामना करती है। मैं अत्यन्त निर्जन सुमेरु पर्वत की घाटी में अथवा शिखर पर, किंवा रम्य चन्दन वायु से सुगन्धित अत्यन्त रम्य मलयपर्वत पर तुम्हारे साथ चलूंगा जो सुन्दर रस के आस्वादन का उपयुक्त स्थल है अथवा नन्दनकानन में, पुष्पभद्रा के तट पर, शतशृंगपर्वत के निकट, गोदावरी नदी के तट पर जो शीतल वायुयुक्त है, अथवा चम्पावती के तट पर, किंवा रम्य चम्पक वन में तुमको लेकर चलूंगा।।२६-२९।।

श्मशानेऽतिश्मशाने च रम्येऽतिनिर्जने वने।
शैले शैलेऽतिरहसि कन्दरे कन्दरे वने।।३०।।

द्वीपे द्वीपे दुर्गदुर्गे नद्यां नद्यां नदे नदे। समुद्रपुलिने रम्ये सर्वजन्तुविवर्जिते।।३१।।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो निर्जने सुखः। पुष्पचन्दनशय्यायां पुष्पचन्दनचर्चिते।।३२।।
मां गृहीत्वा कुरु रतिं पुष्पचन्दनचर्चितम्। ब्रह्मणश्च वरैर्देवि जरामृत्युविवर्जितम्।।३३।।
मां कुरुष्व पतिं भद्रे नित्यं सुस्थिरयौवनम्। सुवेषं सुन्दरं धीरं कामशास्त्रविशारदम्।।३४।।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं चन्द्रवंशसमुद्भवम्।
आगतामुर्वशीं मह्यां त्यक्तवन्तं च याचतीम्।।३५।।

कभी श्मशानों में, रम्य निर्जन वनों में, पर्वतों की एकान्त कन्दराओं में, वनों में, द्वीपों में, दुर्गों में, नदियों-नदों में, रम्य सुमद्र तट पर जो जन्तुशून्य हैं, वहां हम चलेंगे। इन स्थानों पर जाने का कारण यह है कि निर्जन स्थल में ही चतुरकामी पुरुष का कामिनी स्त्री से संगम सुखदायक होता है। पुष्प चन्दन की शय्या पर उन पुष्पचन्दन युक्त प्रदेश में तुम मेरे सान्निध्य में मेरे साथ रति क्रीड़ा करो। मैं ब्रह्मा के वर द्वारा जरा-मृत्यु से रहित हो गया। मैं उत्तम वेषधारी, सुन्दर, वीर, धीर, कामशास्त्र विशारद, शारदीय पूर्णचन्द्र के समान आनन वाला तथा चन्द्रवंश में जन्मा हूं। पृथिवी निवास काल में स्वयं उर्वशी मेरे पास रति की कामना लेकर आई थी, तथापि मैंने उसका त्याग कर दिया था।।३०-३५।।

न मे स्पृहा परस्त्रीषु त्वां दृष्ट्वा लोलुपं मनः।
त्यक्ता मया स्वभार्याश्च रत्नभूषणभूषिताः।।३६।।
अथवा रक्षिताः सर्वा दासीः कृत्वा वरानने।
रत्नेन्द्रसारां मालां ते दास्यामि वरुणस्य च।।३७।।
निर्जित्य वरुणं युद्धे ब्रह्मास्त्रेणातितेजसा।
वह्निशुद्धं वस्त्रयुगं जित्वा वह्निं सुदुर्बलम्।।३८।।

दास्याम्यद्यैव ते देवि नियोज्य मां नियोजय। मणीन्द्रसारनिर्माणमकाराकारकुण्डले।।३९।।
दास्यामि देवान्निर्जित्य देवमातुशच सुन्दरि। करभूषणयुग्मं चात्यमूल्यरत्ननिर्मितम्।।४०।।

दास्याम्यद्यैव रोहिण्याश्चन्द्रं जित्वाऽतिदुर्लभम्[1]।
यक्ष्मग्रस्तमतिकृशं ममैव पूर्वपूरुषम्॥४१॥

मैं पृथिवी पर कभी भी परनारी को देखकर उसके प्रति आकर्षित नहीं हुआ था, तथापि तुमको देखते ही मेरा मन तुम्हारे प्रति लोलुप हो गया। मैं रत्नभूषणभूषिता अपनी सभी पत्नियों का त्यागने को तैयार हूं। हे वरानने! अथवा उनको तुम्हारी दासी बनाकर रखूंगा। मैं तुमको श्रेष्ठ रत्नों के सार से बनी तथा वरुण से प्राप्त माला दे रहा हूं। मैंने अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मास्त्र से वरुण को जीता था। मैं अग्नि से वह्निशुद्ध दो वस्त्र लाकर तुमको प्रदान करूंगा। अग्नि तो मेरे समक्ष अत्यन्त दुर्बल है। हे देवी! मैं तुम्हारा सेवक हूं। मुझे अपनी सेवा में नियोजित करो। अदिति देवमाता हैं। उनका मणीन्द्रों के सारभाग से निर्मित मकराकृति कुण्डल मैं देवगण को जीत कर तुमको लाकर प्रदान करूंगा। दो कंकण जो अमूल्यरत्न से निर्मित हैं, वे दुर्लभ कंकण रोहिणी के हैं। मैं चन्द्रमा को जीतकर वे कंकण तुमको लाकर अर्पित करूंगा। मेरे पूर्वपुरुष चन्द्र शाप के कारण यक्षाग्रस्त होने के कारण अत्यन्त दुर्बल हैं।।३६-४१।।

विना युद्धेन भीतो मां कृपया वा प्रदास्यति।
अमूल्यरत्ननिर्माणं क्वणन्मञ्जीरयुग्मकम्॥४२॥
दास्याम्यद्यैव पार्वत्या भिक्षां कृत्वा महेश्वरम्।
आशुतोषं स्तुतिवशं भक्तेशं च कृपामयम्॥४३॥
सर्वसम्पत्तिदातारं[2] परं कल्पतरुं शुभे। अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरयुगुलं प्रिये॥४४॥

हो सकता है ऐसे दुर्बल चन्द्रमा अत्यन्त भयभीत होकर अथवा बिना युद्ध किये कृपा पूर्वक वे कंकण मुझे प्रदान करें। हे शुभे! मैं अभी महेश्वर के पास जाकर पार्वती का अमूल्यरत्नों से निर्मित मधुरशब्दायमान नूपुर उनसे भिक्षारूप मांगकर तुमको अर्पण करूंगा। महेश्वर वे आशुतोष हैं, वे भक्तगण के स्वामी, कृपालु, सर्वसम्पति प्रदाता तथा कल्पतरु हैं। वे यह नूपुर अवश्य प्रदान करेंगे। हे प्रिये! मैं गंगा का युगल केयूर जो अमूल्य रत्नों से बना है तथा दुर्लभ है।।४२-४४।।

दास्यामि तेऽद्य गङ्गाया युद्धं कृत्वा सुदुर्लभम्।
बहुलीयुगुलं चारु सूर्यपत्न्या मनोहरम्॥४५॥
सद्रत्नसारनिर्माणं दास्याम्यद्य सुशोभने। अमूल्यरत्ननिर्माणं दर्पणं चातिनिर्मलम्॥४६॥
दास्यामि ते कामपत्न्याः कामं जित्वा च लीलया।
क्रीडाकमलमम्लानं कमलायाश्च सुन्दरि॥४७॥

---

१. क. ०दुर्बल०।
२. क. स्वप्राणानां च दा०।

भिक्षां कृत्वा च दास्यामि स्तुत्वा च कमलापतिम्।
अङ्गुलीयकरत्नानि विश्वेषु दुर्लभानि च॥४८॥

उन केयूरद्वय को मैं गंगा को युद्ध में जीतकर तुमको प्रदान कर दूंगा। मैं सूर्यपत्नी का मनोहर बहुलीयुगल आज ही प्रदान करूंगा। वह उत्तम रत्नों के सारभाग से बना है। हे सुशोभने! अमूल्य रत्नों से बना अतिनिर्मल दर्पण मैं कामदेव को जीतकर अनायास लाकर प्रदान करूंगा जिसका उपभोग कामपत्नी रति करती हैं। हे सुन्दरी! मैं कमलापति विष्णु की स्तुति करके उनको प्रसन्न करूंगा तथा लक्ष्मी का कभी न मुरझाने वा क्रीड़ाकमल उनसे मांगकर तुमको प्रदान कर दूंगा। जो विश्व की दुर्लभ रत्नमय अंगूठी है।।४५-४८।।

सावित्र्याश्च प्रदास्यामि कृत्वा च ब्रह्मणस्तपः।
स्वयं गीतं प्रगायन्तीं मूर्च्छनाश्रुतिसंयुताम्॥४९॥
वाणीवीणां प्रदास्यामि कृत्वा नारायणव्रतम्।
रत्नपाशकसङ्गं च विश्वकर्मविनिर्मितम्॥५०॥
कुबेरपत्न्या दास्यामि पादाङ्गुलिविभूषणम्। इत्येवमुक्त्वा नहुषः पपात तत्पदाम्बुजे॥५१॥

"वह सावित्री की जगत् दुर्लभ अंगूठी तप द्वारा ब्रह्मा से मांगकर तुमको प्रदान कर दूंगा। तुमको मैं सरस्वती की वीणा प्रदान करूंगा जो वीणा मूर्च्छना तथा श्रुतियुक्त रूप में स्वयं गीत-गायन करती है। मैं नारायण का व्रत करके उसे नारायण से मांगकर तुमको प्रदान करूंगा। हे सुन्दरी! मैं कुबेर पत्नी का विश्वकर्मानिर्मित पैर की उंगलियों में धारण करने वाला आभूषण (बिछुआ) तुमको प्रदान करूंगा।" यह कहकर राजा नहुष शची के चरणों पर गिर गये।।४९-५१।।

उवाच तं शची त्रस्ता राजमार्गगतं नृपम्।
उत्थाप्य तं करे धृत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।
स्मारं स्मारं पदाम्भोजं महासाध्वी हरेर्गुरोः॥५२॥

शची यह देखकर त्रस्त हो गई। उनका कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो गया। अन्ततः इन्द्राणी ने उस राजपथ पर अपने चरणों पर पड़े राजा को हाथ से उठाया तथा उस समय बृहस्पति तथा इन्द्र के चरणकमलों का स्मरण करते हुये महापतिव्रता शची ने नहुष से कहा-।।५२।।

शच्युवाच

शृणु वत्स महाराज हे तात भयभञ्जन॥५३॥
भय त्राता च राजा च सर्वेषां पालकः पिता।
भ्रष्टश्रीश्च महेन्द्रोऽद्य त्वं च स्वर्गे नृपोऽधुना॥५४॥
यो राजा स पिता पाता प्रजानामेव निश्चितम्।
गुरुपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा वधूः॥५५॥

पित्रोः स्वसा शिष्यपत्नी भृत्यपत्नी च मातुली।
पितृपत्नी भ्रातृपत्नी श्वश्रूश्च भगिनी सुता॥५६॥
गर्भधात्रीष्टदेवी च पुंसः षोडश मातरः। त्वं नरो देवभार्याऽहं माता ते देवसंमता॥५७॥

शची कहती हैं–हे वत्स! महाराज! तात! आप भयभंजन हैं। राजा सबका पिता तथा भय से त्राण करने वाला होता है। अभी इन्द्र राज्यभ्रष्ट हो गये हैं। आप इस समय स्वर्ग के नृप हैं। राजा ही प्रजा का पिता तथा पालक होता है। यह निश्चित है। गुरुपत्नी, राजा की भार्या, देवता की पत्नी, पुत्र की पत्नी, माता की बहन, पिता की बहन, शिष्य की भार्या, सेवक की पत्नी, मामी, पिता की अन्य पत्नी, भाई की पत्नी, सास, बहन, कन्या तथा गर्भधारिणी माता, ये १६ माता प्रत्येक पुरुष की होती हैं। आप मनुष्य हैं। मैं देवता की भार्या हूं। मैं तो आपकी देवसम्मत माता हूं।।५३-५७।।

गच्छ वत्सादितिं रन्तुं यदि चेच्छसि मातरम्।
सर्वेषां निष्कृतिश्चास्ति न वत्स मातृगामिनाम्॥५८॥

हे वत्स! यदि मातृगमन की इच्छा होती है, तब आप यह जाने कि मातृगामी का कहीं भी उद्धार नहीं है। हे वत्स! यदि आप मातृसंभोग के इच्छुक हैं, तब आप अदिति के साथ रमण करिये। हे वत्स! सभी पातकी के लिये प्रायश्चित्त का विधान है, परन्तु जो मातृगमनकारी है, उसके लिये कहीं भी कोई प्रायश्चित्त नहीं है।।५८।।

कुम्भीपाके ते पचन्ति यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
ततो भवन्ति कृमयः कल्पाः सप्त भवन्ति ते॥५९॥
ततश्च कुष्ठिनो म्लेच्छा भवन्ति सप्तजन्मसु।
नास्त्येव निष्कृतिस्तेषामित्याह कमलोद्भवः॥६०॥
एवं विट्क्षत्त्रशूद्राणां ब्राह्मणीगमने नृप। वेदेषु निष्कृतिर्नास्ति चेत्याङ्गिरसभाषितम्॥६१॥

ऐसा पातकी कुंभीपाक में ब्रह्मा की पूर्ण आयु पर्यन्त क्लेश भोगता है। उसके पश्चात् वह सात कल्प तक कृमि होता है। तदनन्तर वह सात जन्म तक कुष्ठ रोगी तथा म्लेच्छ होता है। तभी ब्रह्मा का वचन है कि ऐसे व्यक्ति के लिये कहीं भी शुद्धि, निष्कृति (बचाव) है ही नहीं। हे नृप! यदि वैश्य, शूद्र, क्षत्रिय, ब्राह्मण नारी से समागम करता है, तब वेद तक ने उसकी शुद्धि का कोई भी उपाय नहीं कहा है। यह देवगुरु का कथन है।।५९-६१।।

स्वर्गसंपत्तिभोगश्च सुखं संसारिणां ध्रुवम्। मुमुक्षूणां च मोक्षश्च तपश्चैव तपस्विनाम्॥६२॥
ब्राह्मणानां च ब्राह्मण्यं मुनीनां मौनमेव च।
वेदाभ्यासो वैदिकानां कवीनां काव्यवर्णनम्॥६३॥
विष्णुदास्यं वैष्णवानां विष्णुभक्तिरसं परम्।
विष्णुभक्तिं विना नैव मुक्तिं वाञ्छन्ति वैष्णवाः॥६४॥

संसारी व्यक्ति के लिये स्वर्गभोग सुखकर होता है, तथापि मुमुक्षु का सुख है मोक्ष तथा तपोधनों का सुख है तप। ब्राह्मणों का सुख है ब्राह्मणत्व प्राप्ति, मुनिगण का सुख है मौन, वैदिकों का सुख है वेदाभ्यास, कवियों का सुख है काव्य वर्णन। वैष्णवगण का सुख है विष्णुदासत्व लाभ तथा परम विष्णुभक्तिरस। वैष्णव भगवद्भक्ति रहित मुक्ति भी नहीं चाहते।।६२-६४।।

मलाढ्येषु च क्लेदेषु दुर्गन्धिनिलयेषु च।
साधूनां किं सुखं साधो स्त्रीणां योनिषु मां वद॥६५॥
कुलप्रदीप राजेन्द्र राज्ञां मण्डलवर्तिनाम्। लब्धं च भारते जन्म पुण्येन बहुजन्मनाम्॥६६॥
पद्मानां चन्द्रवंश्यानां नृपाणां दीप्तिहेतवे।
त्वमाविरासीस्तेजस्वी ग्रीष्ममध्याह्नभास्करः॥६७॥
सर्वेषामाश्रमाणां च स्वधर्मश्च यशः परम्। स्वधर्महीना नरके पतन्ति मूढचेतसः॥६८॥

हे साधु! आप यह बतलायें कि स्त्रियों का मल से परिपूर्ण, जल से आर्द्र, दुर्गन्ध का स्थान उनकी योनि है। उसमें साधु को क्या सुखलाभ होता है? हे राजेन्द्र! कुलप्रदीप! आप राजाओं के मण्डल के मध्यवर्त्ती, चक्रवर्त्ती कुलोत्पन्न हैं। आपने अनेक जन्म के पुण्यों से भारत में जन्म लिया है। हे राजन्! आप चन्द्रवंशीय नृपतिगण रूप पद्मसमूह के प्रकाशार्थ अतितेजस्वी ग्रीष्मकालीन मध्याह्नकालीन सूर्य के समान आविर्भूत हैं। अतः आपके समान महान् व्यक्ति के द्वारा धर्म पालन करना आवश्यक कर्त्तव्य है। सभी आश्रम के लोगों के लिये अपने-अपने आश्रमों का स्वधर्म पालन ही उनका महान् यज्ञ है। स्वधर्म से च्युत व्यक्ति नरकगामी होते हैं।।६५-६८।।

ब्राह्मणस्य स्वधर्मश्च त्रिसन्ध्यमर्चनं हरेः। तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं च सुधाधिकम्॥६९॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रमनिवेद्य हरेर्नृप। भवन्ति सूकराः सर्वे ब्राह्मणा यदि भुञ्जते॥७०॥

ब्राह्मण का स्वधर्म है त्रिसन्ध्या तथा हरि अर्चना। नित्य अमृत से भी अधिक विष्णु पादोदक तथा नैवेद्य भोजन ब्राह्मण का स्वधर्मरूप है। विष्णु को जो अन्न अर्पित नहीं है, वह अन्न मलस्वरूप है। अनिवेदित जल तो मूत्र के समान है। ऐसा अनिवेदित अन्न-जल ग्रहण करने वाला ब्राह्मण शूकरयोनि प्राप्त करता है।।६९-७०।।

आजीवं भुञ्जते विप्रा एकादश्यां न भुञ्जते।
कृष्णजन्मदिने चैव शिवरात्रौ सुनिश्चितम्॥७१॥
तथा रामनवम्यां च यत्नतः पुण्यवासरे। ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च कथितो ब्रह्मणा नृप॥७२॥

ब्राह्मण आजीवन भले ही भोजन ग्रहण करें, परन्तु एकादशी को भोजन न करें। कृष्ण-जन्माष्टमी तथा शिवरात्रि को उपवास सुनिश्चित करें। रामनवमी तथा अन्य पुण्यदिवसों पर भी भोजन न करें। हे राजन्! ब्राह्मणों के लिये यह धर्म ब्रह्मा ने कहा है।।७१-७२।।

व्रतं पतिव्रतानां च पतिसेवा परं तपः। यथा पुत्रः परपतिरेष धर्मश्च योषिताम्॥७३॥

पालयन्ति यथा भूपाः प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
प्रजास्त्रियं च पश्यन्ति राजानो मातरं यथा॥७४॥
यज्ञं कुर्वन्ति विष्णोश्च सेवनं देवविप्रयोः। निवारणं च दुष्टानां शिष्टानां प्रतिपालनम्॥७५॥
इति धर्मः क्षत्रियाणां कथितो ब्रह्मणा पुरा।
वाणिज्यं चैव वैश्यानां स्वधर्मो धर्मसञ्चयः॥७६॥

पति सेवा ही पतिव्रता नारी का परम तप है। स्त्रीगण का धर्म है कि वह पराये पुरुष को पुत्रवत् देखे। राजा अपने स्वपुत्र की तरह प्रजापालन करते हैं तथा राजागण प्रजा की स्त्रियों को मातृदृष्टि से देखते हैं। वे देवता-विप्र की सेवा तथा विष्णु सेवा करते हैं। यज्ञ करते हैं। शिष्टों का पालन तथा दुष्टों का निवारण करते हैं। यह क्षत्रियधर्म पूर्वकाल में ब्रह्मा ने कहा है। वैश्यगण का स्वधर्म है वाणिज्य। इसी से वे धर्मसंचय कर पाते हैं।।७३-७६।।

शूद्राणां विप्रसेवा च परो धर्मो विधीयते।
सर्वन्यासो हरौ भूप धर्मः संन्यासिनां ध्रुवम्॥७७॥
रक्तैकवासा दण्डी च बिभर्ति मृत्कमण्डलुम्। सर्वत्र समदर्शी च स्मरेन्नारायणं सदा॥७८॥
करोति भ्रमणं नित्यं गेहे गेहे न तिष्ठति। विद्यामन्त्रं च कस्मैचिन्न ददाति च लोभतः॥७९॥

शूद्रों का परम धर्म है ब्राह्मण सेवा। हे राजन्! श्रीकृष्ण ने समस्त कर्म समर्पण संन्यासीगण का धर्म कहा है। संन्यासी रक्त वर्ण वस्त्र पहने। दण्ड तथा मिट्टी का कमण्डल धारण करे। वह सर्वत्र समद्रष्टा रहे। निरन्तर नारायण स्मरणरत रहे। नित्य घर-घर जाकर न रहे। किसी के गृह में न ठहरे। सदा विचरता रहे। लोभ के कारण किसी व्यक्ति को भी विद्या किंवा मन्त्र प्रदान न करे।।७७-७९।।

करोति नाऽऽश्रमं भिक्षु करोति नान्यवासनाम्।
करोति नान्यसङ्गं च निर्मोहः सङ्गवर्जितः॥८०॥
न स्वादु भुङ्क्ते लोभाच्च स्त्रीमुखं न हि पश्यति।
न वाञ्छितं भक्ष्यवस्तु याचते गृहिणं व्रती॥८१॥
इति संन्यासिनां धर्म इत्याह कमलोद्भवः।
इति ते कथितं पुत्र गच्छ वत्स यथासुखम्॥८२॥

भिक्षु कहीं भी आश्रम नहीं बनाये। कोई अन्य वासना न रखे। किसी का संग न करे। वह निर्मोही तथा संग रहित रहे। लोभवश वह स्वाद के लिये भोजन न करे। स्त्री का मुख न देखे। कभी भी गृहस्थ के यहां वांछित भोजन न मांगे। व्रती की तरह निवास करे। यही ब्रह्मा कथित संन्यासधर्म है। हे वत्स! पुत्र! यह मैंने सब कह दिया। अब तुम सुख पूर्वक जाओ।।८०-८२।।

इत्युक्त्वा च महेन्द्राणी विरराम च वर्त्मनि। उवाच नहुषो राजा शचीं वक्रप्रकंधरः॥८३॥

यह कहकर शची देवी मौन हो गईं। तदनन्तर अपनी ग्रीवा नत करके राजा नहुष शची से कहने लगे।।८३।।

नहुष उवाच

त्वया यत्कथितं देवी सर्वं तत्तु विपर्ययम्। यथार्थधर्मं वेदोक्तं निबोध कथयामि ते।।८४।।
कर्मणां फलभोगश्च सर्वेषां सुरसुन्दरि। नैव स्वर्गे न पाताले नान्यद्वीपे श्रुतौ श्रुतम्।।८५।।

कृत्वा शुभाशुभं कर्म पुण्यक्षेत्रे च भारते।
अन्यत्र तत्फलं भुङ्क्ते कर्मी कर्मनिबन्धनात्।।८६।।
हिमालयादासमुद्रं पुण्यक्षेत्रं च भारतम्।
श्रेष्ठं सर्वस्थलानां च मुनीनां च तपःस्थलम्।।८७।।
तत्र लब्ध्वा जन्म जीवी वञ्चितो विष्णुमायया।
शश्वत्करोति विषयं विहाय सेवनं हरेः।।८८।।
कृत्वा तत्र महत्पुण्यं स्वर्गं गच्छति पुण्यवान्।
गृहीत्वा सर्वकन्याश्च चिरं स्वर्गे प्रमोदते।।८९।।

राजा नहुष कहते हैं–हे देवी! तुमने जो कुछ कहा, वह सब विपरीत बात है। अब मैं तुमसे यथार्थ वेदोक्त धर्म कहता हूं। श्रवण करो। हे सुरसुन्दरी! स्वर्ग, पाताल अथवा अन्य किसी भी द्वीप में किये कर्मसमूह का फलभोग नहीं करना पड़ता। यह वेदसम्मत है। कर्मीगण पुण्यक्षेत्र भारत में शुभाशुभ कर्म करके अन्यत्र लोकों में उसका फलभोग करते हैं। हिमालय से लेकर दक्षिणसमुद्र पर्यन्त स्थान का नाम पुण्यभूमि भारत है। यह सभी स्थल से श्रेष्ठ तथा मुनियों की तपःस्थली है। यहां जन्म लेकर व्यक्ति जीव भगवान् की माया से ठगा जाकर हरिसेवा त्यागकर विषयभोग में आबद्ध हो जाता है। (यहां भारत में कर्मकर्त्ता कर्मबन्धन में रहने के कारण कर्मों का भोग करके ही बन्धन मुक्त होता है।), तथापि भारत भूमि में पुण्यात्मा लोग महान् पुण्य उपार्जन करके स्वर्गलाभ करते हैं। वे वहां स्वर्ग में स्वर्ग की कन्याओं के साथ आनन्द भोग करते हैं।।८४-८९।।

स्वर्गमागच्छति नरो विहाय मानवीं तनुम्।
स्वशरीरेणाऽऽगतोऽहं मत्पुण्यं पश्य सुन्दरि।।९०।।
अनेकजन्मपुण्येन चाऽऽगतः स्वर्गमीप्सितम्।
ततः किं केन पुण्येन दर्शनं मे त्वया सह।।९१।।

न हि कर्मस्थलमिदं स्वभोगस्थलमेव च। सारं च सर्वभोगानां वरस्त्रीभोगमेव च।।९२।।

हे सुन्दरी! सामान्यतया मनुष्यगण मनुष्यदेह त्यागकर स्वर्गगामी होते हैं, तथापि मैं तो सशरीर यहां आ गया। यह मेरा पुण्य है। लोग नाना जन्मों का पुण्य संचय करके स्वर्ग लाभ करते हैं। उससे

भी अधिक मेरा यह सौभाग्य है कि मैं तुम्हारा दर्शन पाकर तुमसे वार्त्ता कर रहा हूं। यह स्वर्ग कर्म भूमि नहीं है। यह भोगभूमि है। सभी भोगों में से उत्तम स्त्री से संभोग ही सब भोग का सार है।।९०-९२।।

भोगस्थले भोगवस्तु न हि त्यक्तुं प्रशस्यते।
भावानुरक्ता रसिका भोग्या त्वं भोगिनामिह।।९३।।
द्रव्यमस्वामिकं भोग्यं सुखं त्यजति मन्दधीः।
अविरोधसुखत्यागी पशुरेव न संशयः।।९४।।
गच्छ कान्ते गृहं गत्वा कुरु तल्पं मनोहरम्। रमणीयं च रहसि वरं रतिकरं परम्।।९५।।

भोगस्थल पर भोग्य सुख को बुद्धिहीन त्यागते हैं। जो स्वामी रहित निर्विरोध प्राप्त भोग सुख का त्याग कर देता है, वह तो पशु है। इस बात में संशय नहीं है। हे कान्ते! अब तुम मेरे कथन को मानकर गृह जाओ। तदनन्तर वहां निर्जन स्थल में रम्य उत्तम रतियोग्य शय्या सज्जित तथा प्रस्तुत करो।।९३-९५।।

त्यज द्वैधं च मनसो निश्चितं वरवर्णिनि। वरानने मया सार्धं मोदस्व वरमन्दिरे।।९६।।
अमूल्यरत्नमालां च मणिराजविराजिताम्।
भिक्षां कृत्वा च दास्यामि लक्ष्मीवक्षसि शोभिताम्।।९७।।
मणिं चानन्तशिरसः सर्वेषामतिदुर्लभम्। दुष्प्राप्यं त्रिषु लोकेषु तुभ्यं दास्यामि सुन्दरि।।९८।।
मणिरत्नं कौस्तुभं च यो नारायणवक्षसि।
भिक्षां कृत्वा तु दास्यामि कृत्वा नारायणव्रतम्।।९९।।
चन्द्रशेखरमौलेश्च यदर्धं चन्द्रभूषणम्। जरामृत्युव्याधिहरं [1]शक्तं क्रीडाकरं वरम्।।१००।।
अतीव विश्वदुष्प्राप्यं विश्ववन्द्यं च सुन्दरम्।
विश्वनाथव्रतं कृत्वा तुभ्यं दास्यामि निश्चितम्।।१०१।।

हे वरवर्णिनी! इसे दृढ निश्चित करो। मानसिक द्विधा-द्वन्द्व को दूर करो। हे वरानने! तुम अब उत्तम भवन में मेरे साथ आनन्द उठाओ। मैं भगवती लक्ष्मी के वक्ष पर शोभायमान उत्तम मणिरत्नभूषित अमूल्य रत्नमाला लाकर प्रदान करूंगा। हे सुन्दरी! मैं शेषनाग के शीश पर सुशोभित सबके लिये सुदुर्लभ, त्रैलोक्य में दुप्राप्त मणि उनसे मांगकर तुमको प्रदान करूंगा। मैं वह अर्द्धचन्द्र भगवान् शिव से शिवव्रत द्वारा मांगकर तुमको प्रदान करूंगा जो चन्द्रभूषण जरा-मृत्यु-रोगनाशक, परमसमर्थ, अतीव क्रीडाकारक, श्रेष्ठ विश्व के सुदुर्लभ तथा जगत् में वन्दित अर्द्धचन्द्रात्मक है।।९६-१०१।।

दास्यामि ते श्रीसूर्यस्य मणिश्रेष्ठं स्यमन्तकम्।
भक्त्या सूर्यव्रतं कृत्वा त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।।१०२।।

---
१. क. शस्तं।

अष्टौ भारान्सुवर्णं च यश्च नित्यं प्रसूयते। जरामृत्युहरं चैव परं क्रीडाकरं प्रिये॥१०३॥

हे प्रिये! मैं तुमको वह सूर्य की महामणि स्यमन्तक लाकर प्रदान करूंगा जो त्रैलोक्य दुर्लभ तथा नित्य ८ भार स्वर्ण प्रदान करती है। मैं उसे सूर्यव्रत करके लाऊंगा। वह जरामृत्युनाशक तथा परम क्रीड़ाकारी है।।१०२-१०३।।

अमूल्यरत्ननिर्माणं पात्ररत्नं मनोहरम्। सन्ततं मधुपूर्णं च दास्यामि मदनस्य च॥१०४॥

मैं कामदेव का वह पात्र लाकर तुमको प्रदान करूंगा जो सदा मधुपूर्ण रहने वाला, अमूल्यरत्ननिर्मित तथा मनोहर है।।१०४।।

अमूल्यरत्ननिर्माणं सूर्यतुल्यं च तेजसा।
नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्माणमीश्वरेच्छया॥१०५॥

निर्मलं मण्डलाकारं मणिराजविराजितम्। हस्तलक्षपरिमितं चतुरस्त्रं च [1]सुन्दरि॥१०६॥

पद्मापद्मासनं श्रेष्ठं प्रेष्ठं तस्या सुदुर्लभम्।
ध्रुवं तुभ्यं प्रदास्यामि कृत्वा पद्मालयाव्रतम्॥१०७॥

हे देवी! मैं कमलनिवासिनी देवी लक्ष्मी का व्रत करूंगा। तदनन्तर मैं अमूल्य रत्ननिर्मित, तेज में सूर्यसमप्रभ, नाना विचित्र-चित्र युक्त ईश्वरेच्छा से बना, निर्मल, मण्डलाकृति, श्रेष्ठ मणिपंक्तियुक्त एक लक्ष हाथ का चतुरस्त्र (चौकोर) पद्मासन निश्चित लाकर प्रदान करूंगा जो दुर्लभतर है। वह पद्मासन भगवती लक्ष्मी का है।।१०५-१०७।।

इत्येवमुक्त्वा नहुषः कृत्वा वर्त्मनिरोधनम्। पुनः पपात चरणे महेन्द्राण्या मुहुर्मुहुः॥१०८॥

नृपस्य वचनं श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।
तमुवाच महेन्द्राणी स्मारं स्मारं गुरुं हरिम्॥१०९॥

यह कहकर नहुष ने शची का मार्ग रोक लिया। वह बारम्बार शची के चरणों पर गिरने लगा। तब शची के कण्ठ-ओष्ठ-तालु नहुष की बातों को सुनकर शुष्क हो गये थे। उस समय शची ने गुरु तथा हरि का बारम्बार स्मरण करके कहा-।।१०८-१०९।।

शच्युवाच

अचेतनस्य मूढस्य कार्याकार्यमजानतः।
श्रोष्याम्यद्य कतिविधां कथां कामातुरस्य च॥११०॥

मधुमत्तः सुरामत्तः काममत्तो विचेतनः। मृत्युं च गणयेत्कामी कामेन हतमानसः॥१११॥

देवी शची कहती हैं (मन ही मन कहती हैं)-कार्य-आकार्य को न जानने वाले कामार्त्त हतबुद्धि इस मूढ़ की कितने प्रकार की बातें आज मुझे सुननी पड़ेंगी? मधुमत्त, सुरामत्त तथा

---

१. क. ०दरम्।

काममत्त मनुष्य अत्यन्त चेतना रहित हो जाता है। वह अपनी आसन्न मृत्यु की भी चिन्ता नहीं करता।।११०-१११।।

त्यज मामद्य हे मत्त मातृतुल्यां रजस्वलाम्।
ऋतोः प्रथमो दिवसो ह्यद्य हे नृप मे ध्रुवम्॥११२॥
प्रथमे दिवसे स्त्री च चाण्डली सा रजस्वला।
द्वितीये दिवसे म्लेच्छा तृतीये रजकी तथा॥११३॥

(तदनन्तर देवी शची ने व्यक्त रूप से नहुष से कहा)–हे मदमत्त! मैं तुम्हारे लिये मातृवत् तथा रजस्वला हूं। हे राजन्! यह मुझ ऋतुमती का प्रथम दिन है। प्रथम दिन की रजस्वला नारी चाण्डाली के समान, द्वितीय दिन म्लेच्छा तथा तृतीय दिन धोबन जैसी होती है।।११२-११३।।

शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि न शुद्धा दैवपै[1] ययौः।
असच्छूद्रासमा सा च तद्दिने चपरं प्रति॥११४॥
प्रथमे दिवसे कान्तां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम्।
ब्रह्महत्याचतुर्थांशं लभते नात्र संशयः॥११५॥

चतुर्थ दिन वह केवल पति के लिये शुद्ध होती है, तथापि चतुर्थ दिन वह देव-पितृकार्य हेतु पाकार्थ शुद्ध नहीं होती। वह चतुर्थ दिन अन्य हेतु असत् शूद्रा तुल्य होती है। प्रथम दिन की रजस्वला नारी के साथ समागम करने वाला पुरुष ब्रह्महत्या का १/४ हिस्सा पाप प्राप्त करता है। इसमें सन्देह न करें।।११४-११५।।

स पुमान्न हि कर्मार्हो दैवे पित्र्ये च कर्मणि।
अधमः स च सर्वेषां निन्दितश्च यशस्करः॥११६॥
द्वितीये दिवसे नारींय यो व्रजेच्च रजस्वलाम्।
कामतः परिपूर्णाञ्च[2] गोहत्यां लभते ध्रुवम्॥११७॥
आजीवनं नाधिकारी पितृविप्रसुरार्चने।
अमनुष्योऽयशस्यः स्यादित्याङ्गिरसभाषितम्॥११८॥

वह व्यक्ति देव तथा पितृकार्य के योग्य नहीं रहता। वह सर्वाधिक अधम, निन्दित तथा अपयश भागी होता है। द्वितीय दिन की रजस्वला से समागम करने वाला पुरुष पूर्ण गोहत्या भागी हो जाता है। वह आजीवन पितर, ब्राह्मण तथा देवपूजन योग्य नहीं माना जाता। वह अमनुष्य, अयशस्वी तथा विद्याहीन होता है। यह बृहस्पति ने कहा है।।११६-११८।।

---

१. क. ०त्रयोः।
२. ख. पूर्णश्च।

तृतीये दिवसे जायां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम्।
स मूढो भ्रूणहत्यां च लभते नात्र संशयः॥११९॥
पूर्ववत्पतितः सोऽपि न चार्हः सर्वर्मसु।
असच्छूद्रा चतुर्थेऽह्नि न गच्छेत्तां विचक्षणः।
यदि मां मातरं मूढ ग्रहीष्यसि बलेन च॥१२०॥
ऋतावतीते दिवसे गमनं च करिष्यसि। शच्याश्च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य नहुषस्तथा॥१२१॥

"जो व्यक्ति रजस्वला स्त्री के तीसरे दिन उससे समागम करता है, वह भ्रूणहत्या पातक का भागी होता है। इसमें संशय न करे। वह पतित होने के कारण सभी कर्म हेतु अनधिकारी माना गया है। चतुर्थ दिन की रजस्वला अस्पृश्य शूद्रावत् होती है। धीमान् पुरुष उससे समागम न करे। हे मूढ! यदि तुम मुझ मातृरूपा से बल पूर्वक संभोग करना चाहते ही हो, तब ऋतुधर्मकाल समाप्त हो जाने पर यह कार्य करना।" शची का कथन सुनकर राजा नहुष हंसने लगे॥११९-१२१॥

उवाच मधुरं शान्तः शक्रकान्तां च सुव्रताम्।
देवपत्नी सदा शुद्धा तन्न्यूनं मानवं प्रति॥१२२॥
शयने भोजने देवी नाशुद्धा मानवं प्रति। रजस्वलायाः संभोगे कर्मक्षेत्रे च भारते॥१२३॥
त्वयोक्तं च भवेत्पापं नात्र दु (स्व) र्गे च सुन्दरि।
कर्मक्षेत्रेऽपि तत्कर्म यद्वेदोक्तं शुभाशुभम्॥१२४॥
न भवेद्वैष्णवानां च ज्वलतां ब्रह्मतेजसा।
यथा प्रदीप्ते वह्नौ च शुष्काणि च तृणानि च॥१२५॥
भवन्ति भस्मीभूतानि तथा पापानि वैष्णवे।
वह्निसूर्यब्राह्मणेभ्यस्तेजीयान्वैष्णवः सदा॥१२६॥

नहुष ने शान्त भाव से मधुर वाणी में शची से कहा–"देवस्त्रियां सदा शुद्ध होती हैं, तथापि वे मुझ जैसे मनुष्य की कुछ न्यून ही शुद्ध होती हैं। शयन-भोजन कार्य के लिये देवनारी अशुद्ध नहीं होती। हे सुन्दरी! तुमने रजस्वला के साथ समागम के जिन दोषों को गिनाया है, वह तुम्हारा कहा पाप कर्मभूमि भारत में होता है। यहां स्वर्ग में वह दोष नहीं लगता। यहां तक कि कर्मभूमि भारत में भी वेदोक्त शुभाशुभ कर्म फलभोग कदापि ब्रह्मतेज से प्रज्वलित वैष्णवों को कदापि नहीं भोगना पड़ता। जैसे प्रदीप्त अग्नि में सूखा तृण भस्मीभूत हो जाता है, तदनुरूप सभी पाप वैष्णव के पास आते ही भस्म हो जाते हैं। वैष्णव तो अग्नि-सूर्य-ब्राह्मण से भी अधिक तेजस्वी होते हैं॥१२२-१२६॥

रक्षितो विष्णुचक्रेण स्वतन्त्रो मत्तकुञ्जरः।
न विचारो न भोगश्च वैष्णवानां स्वकर्मणाम्॥१२७॥

लिखितं साम्नि कौथुम्यां कुरु प्रश्नं बृहस्पतिम्।
अस्मांश्च सर्वे जानन्ति चन्द्रवंश्यांश्च वैष्णवान्॥१२८॥
देवमन्यं न सेवन्ते चन्द्रवंश्या हरिं विना।
सद्वंशप्रभवो यो हि ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा॥१२९॥
विष्णुमन्त्रं च गृह्णाति वञ्चितो देवमायया[1]।
को वा मन्त्रश्च के देवा न हि शास्ता यमो मम॥१३०॥
सर्वाञ्छास्तुं समर्थोऽहं ब्रह्मविष्णुशिवान्विना।
शय्यां कुरु गृहं गत्वा शीघ्रं यास्यामि ते गृहम्॥१३१॥

वैष्णवगण सदा विष्णु के चक्रसुदर्शन से रक्षित होते हैं। वे स्वतंत्र मत्त हाथी की तरह होते हैं। तभी वैष्णवगण अपने कर्मों का भोग नहीं करते। उनके कर्मों का विचार (यम द्वारा) नहीं होता। सामवेदोक्त कौथुमशाखा का यह कथन है। तुम इस सम्बन्ध में बृहस्पति से जिज्ञासा करो। हम चन्द्रवंशी वैष्णवगण को सभी जानते हैं। चन्द्रवंशी व्यक्ति हरि के अतिरिक्त अन्य किसी देवता की सेवा नहीं करते। सत्वगुण सम्पन्न ब्राह्मण किंवा क्षत्रिय विष्णुमाया बल से वंचित रहते हैं। वे विष्णु मन्त्र ग्रहण नहीं करते। मेरे लिये न कोई मन्त्र है, न देवता है। यमराज भी मुझ पर शासन नहीं करते। ब्रह्मा-विष्णु-शिव के अतिरिक्त मैं सब पर शासन कर सकता हूं। हे सुन्दरी! अब तुम घर जाकर शय्या प्रस्तुत सज्जित करो। मैं वहां शीघ्र आगमन करूंगा॥१२७-१३१॥

ऋतुपापं मयि भवेत्तव किं गच्छ शोभने।
इत्युक्त्वा नहुषो राजा प्रफुल्लवदनेक्षणः॥१३२॥

रत्नयानं समारुह्य ययौ नन्दनकाननम्। न ययौ सा शची गेहं प्रजगाम गुरोर्गृहम्॥१३३॥

"हे सुन्दरी! ऋतुकाल में रतिक्रीड़ा करने का पातक तो मुझे लगेगा। इसमें तुम्हारी क्या हानि है? अतः गृह जाकर शय्या प्रस्तुत करो।" यह कहकर राजा नहुष प्रसन्नता पूर्वक रत्नयान पर आरूढ़ होकर नन्दनकानन चला गया। उधर शची अपने घर न जाकर देवगुरु बृहस्पति के यहां गई॥१३२-१३३॥

गत्वा कुशासनस्थं च ददर्श च बृहस्पतिम्। तारासेवितपादाब्जं ज्वन्तं ब्रह्मतेजसा॥१३४॥
जपमालाकरं शश्वज्जपन्तं कृष्णमीप्सितम्। परमं परमानन्दं परमात्मानमीश्वरम्॥१३५॥
निर्गुणं च निरीहं च स्वतन्त्रं प्रकृतेः परम्। स्वेच्छामयं परंब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहम्॥१३६॥

वहां जाकर शची ने कुशासनासीन गुरु बृहस्पति को देखा। उनके चरणकमल की सेवा देवी तारा कर रही थीं। बृहस्पति के हाथ में जपमाला थी। वे उससे अपने इष्ट श्रीकृष्ण का नाम सतत् जप

१. क. विष्णुमा०।

रहे थे। वे प्रभु कृष्ण परम, परमानन्दमय भक्तों पर कृपा करने के लिये विग्रह धारण करने वाले हैं। वे निर्गुण, निरीह, स्वतन्त्र तथा प्रकृति से अतीत, स्वेच्छामय, परब्रह्म हैं।।१३४-१३६।।

तमानन्दाश्रुनेत्रं च ननाम शिरसा भुवि।
रुदती साश्रुनेत्रा सा मज्जन्ती भक्तिसागरे॥१३७॥
शोकार्णवे निमज्जन्ती हृदयेन विदूयता।
तुष्टाव भीता स्वगुरुं ब्रह्मिष्ठं च कृपानिधिम्॥१३८॥

आनन्दाश्रुनेत्र विन्दु युक्त भक्ति-सागर में निमग्ना गुरु को शची ने धरती पर शिर रखकर प्रणाम किया। तदनन्तर शोकसागर में मग्न हार्दिक दुःखयुक्त शची भयभीत होकर अपने गुरु कृपानिधि वसिष्ठ की स्तुति करने लगी।।१३७-१३८।।

शच्युवाच

रक्ष रक्ष महाभाग मां भीतां शरणागताम्।
[१]त्वमीश्वरः स्वदासीं च निमग्नां शोकसागरे॥१३९॥
अनीश्वरश्चेश्वरो वा बलवान्वा सुदुर्बलः।
स्वशिष्यभार्यां पुत्रांश्च शासितुं च सदा क्षमः॥१४०॥

शची कहती हैं—हे महाभाग! आप मुझ भयभीता शरणागता की रक्षा करिये। आप ईश्वर हैं। मैं शोक-सागर मग्ना आपकी दासी हूं। आप चाहे ईश्वर हो किंवा अनीश्वर हों, बली अथवा दुर्बल चाहे जैसे हों, तथापि आप अपने शिष्य की भार्या तथा पुत्रों को शासित करने में पूर्ण समर्थ हैं।।१३९-१४०।।

दूरीभूतः स्वराज्याच्च स्वशिष्यश्च कृतस्त्वया।
शान्तिर्बभूव दोषस्य चाधुनाऽनुग्रहं कुरु॥१४१॥
अनाथां सर्वशून्यां मां शून्यांताममरावतीम्।
संपच्छून्यमाश्रमं मे पश्य रक्ष कृपानिधे॥१४२॥
दस्युग्रस्तां च मां रक्ष देशं किङ्करमानय। दत्त्वा चरणरेणूंस्तं शुभाशीर्वचनं कुरु॥१४३॥
सर्वेषां च गुरूणां च जन्मदाता परो गुरुः।
पितुः शतगुणा माता पूज्या वन्द्या गरीयसी॥१४४॥
विद्यादाता मन्त्रदाता ज्ञानदो हरिभक्तिदः।
पूज्यो वन्द्यश्च सेव्यश्च मातुः शतगुणो गुरुः॥१४५॥

आपने अपने शिष्य को उसके राज्य से दूर कर दिया था। इस प्रकार आपने उनके अपराध का

१. क. त्वदीश्वरस्य दा०।

दण्ड दे दिया। अब आप उन पर कृपा करिये। हे कृपानिधान! मैं इस समय सबसे रहित अनाथ हूं। यह अमरावती तथा उसकी सम्पदा भी शून्य हो गई है। मेरा आश्रयस्थल भी शून्य है। आप स्वयं यह अवलोकन करिये। हे देव! मैं दस्यु पीड़िता हूं। मेरी रक्षा करिये। आप देखें! गुरु की अपेक्षा पिता श्रेष्ठ है। जन्मदाता पिता से माता १०० गुणा अधिक पूज्या तथा वन्दनीया एवं गरीयसी है। ऐसी माता की अपेक्षा विद्यादाता, मन्त्रदाता, ज्ञानदाता, हरिभक्तिदाता गुरु तो १०० गुना श्रेष्ठ है, वही सेवायोग्य है।।१४१-१४५।।

मन्त्राद्युद्गिरणेनैव गुरुरित्युच्यते बुधैः। अन्यो वन्द्यो गुरुरयमन्यश्चारोपितो गुरुः।।१४६।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।१४७।।

अदीक्षितस्य मूर्खस्य निष्कृतिर्नास्ति निश्चितम्।
सर्वर्मस्वनर्हस्य नरके तत्पशोः स्थितिः।।१४८।।

मन्त्रदाता मन्त्र का उपदेश देते हैं। तभी विद्वान् उनको गुरु कहते हैं। वे शिष्य के हृदय में मन्त्र प्रवेश कराते हैं। तभी वे गुरु हैं। कुछ गुरु बन्दनीय, तो कुछ कल्पित होते हैं। जो ज्ञानांजन शलाका द्वारा अज्ञानरूप अन्धकार से अन्ध व्यक्ति के नेत्र खोल देते हैं, मैं उन गुरु को प्रणाम करती हूं! ऐसे गुरु की गुरुता को प्रणाम! जो अदीक्षित व्यक्ति है, उस मूढ़ का उद्धार होना असंभव है। वह तो सभी कर्मों के लिये अयोग्य है। ऐसे पशुरूप लोग सदा नरक में निवास करते हैं।।१४६-१४८।।

जन्मदाताऽन्नदाता च माताऽन्ये गुरवस्तथा।
पारं कर्तुं न शक्तास्ते घोरसंसारसागरे।।१४९।।

विद्यामन्त्रज्ञानदाता निपुणः पारकर्मणि। स शक्तः शिष्यमुद्धर्तुमीश्वरश्चेश्वरात्परः।।१५०।।
गुरुर्विष्णुर्गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुर्धर्मो गुरुः शेषः सर्वात्मा निर्गुणो गुरुः।।१५१।।
सर्वतीर्थाश्रयश्चैव सर्वदेवाश्रयो गुरुः। सर्ववेदस्वरूपश्च गुरुरूपी हरिः स्वयम्।।१५२।।

अभीष्टदेवे रुष्टे च गुरुः शक्तोहि रक्षितुम्।
गुरौ रुष्टेऽभीष्टदेवो न हि शक्तश्च रक्षितुम्।।१५३।।

सर्वे ग्रहाश्च यं रुष्टा यं रुष्टा देवब्राह्मणाः। त्वमेव रुष्टो भवसि गुरुरेव हि देवताः।।१५४।।

न गुरोश्च प्रियश्चाऽऽत्मा न गुरोश्च प्रियः सुतः।
धनं प्रियं च न गुरोर्न च भार्या प्रिया तथा।।१५५।।
न गुरोश्च प्रियो धर्मो न गुरोश्च प्रियं तपः।
न गुरोश्च प्रियं सत्यं न पुण्यं न गुरोः परम्।।१५६।।

जो जन्मदाता, अन्नदाता तथा माता किंवा अन्य गुरुओं में से कोई भी संसार-सागर से पार कराने में सक्षम नहीं है। केवल विद्या-मन्त्र तथा ज्ञान प्रदाता ही संसार पार करा सकने में सक्षम होते हैं और कोई भी प्रभु शिष्य का उद्धार नहीं करा सकते। वह तो ईश्वर से भी श्रेष्ठ है। गुरु ही विष्णु, गुरु

ही ब्रह्मा, गुरु ही महेश्वर देव हैं। गुरु ही धर्मदेव, गुरु ही अनन्त शेषनाग, गुरु ही सर्वात्मा तथा निर्गुण (ब्रह्म) हैं। वे सभी तीर्थ के आश्रय, सभी देवगण के आश्रय, सर्ववेदरूप भी हैं। गुरु ही स्वयं हरि हैं। यदि इष्टदेव रुष्ट हो जाते हैं, तब गुरु उस शिष्य की रक्षा कर सकता है। यदि गुरु रुष्ट हो जायें, तब इष्टदेव उसकी कदापि रक्षा नहीं कर सकता। समस्त ग्रहदेवता तथा ब्राह्मणगण जिस व्यक्ति के प्रति रुष्ट हो जाते हैं, आप भी उसके प्रति रुष्ट हो गये हैं; क्योंकि गुरु तो देवता ही होता है। गुरु से बढ़कर प्रिय आत्मा, पुत्र, धन तथा स्त्री प्रिय नहीं होना चाहिये। गुरु से अधिक प्रिय धर्म, तप, सत्य तथा पुण्य भी नहीं है।।१४९-१५६।।

गुरोः परो न शास्ता च न हि बन्धुर्गुरोः परः।
देवो राजा च शास्ता च शिष्याणां च सदा गुरुः॥१५७॥
यावच्छक्तो दातुमन्नं तावच्छास्ता [1]तदन्नदः।
गुरुः शास्ता च शिष्याणां प्रतिजन्मनि जन्मनि॥१५८॥
मन्त्रो विद्यो गुरुर्देवः पूर्वलब्धो यथा पतिः।
प्रतिजन्मनि बन्धेन सर्वेषामुपरि स्थितः॥१५९॥
पिता गुरुश्च वन्द्यश्च यत्र जन्मनि जन्मदः।
गुरवोऽन्ये तथा माता गुरुश्च प्रतिजन्मनि॥१६०॥

गुरु से बढ़कर शिष्य का शासक कोई नहीं है। गुरु से बढ़कर कोई भी हितैषी नहीं होता। शिष्य का देवता, राजा तथा शासक केवल गुरु ही है। अन्नदाता तो जब तक अन्न दे सकता है तभी तक शासक कहलायेगा, लेकिन गुरु तो शिष्य के जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त शासक होते हैं। व्यक्ति को मन्त्र, विद्या, गुरु तथा देवता एवं पति प्रत्येक जन्म में पूर्वजन्म के ही प्राप्त होते हैं। तभी इनको सर्वापेक्षा श्रेष्ठ कहा गया है। पिता तो जिस जन्म में जन्म देता है, केवल उसी जन्म में वह पुत्र के लिये वन्द्य होता है। अन्य प्रकार के गुरु तथा माता भी केवल उसी जन्म में वन्द्य हैं, तथापि गुरु तो प्रत्येक जन्म में वन्द्य कहे गये हैं।।१५७-१६०।।

विप्राणां त्वं वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च तपस्विनाम्।
ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मविद्ब्रह्मन् धर्मिष्ठः सर्वधर्मिणाम्॥१६१॥
तुष्टो भव मुनिश्रेष्ठ मां च शक्रं च साम्प्रतम्।
त्वयि तुष्टे सदा तुष्टा भवन्ति ग्रहदेवताः॥१६२॥

हे गुरुदेव! आप ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, तपस्वियों के गुरु, सभी धार्मिक मण्डली में प्रधान तथा परम ब्रह्मज्ञ हैं। हे मुनिवर! आप मुझ पर तथा इन्द्र पर प्रसन्न हों। आपके प्रसन्न होने पर ग्रहदेवतागण भी प्रसन्न हो जायेंगे।।१६१-१६२।।

---
१. ख. तमन्नं।

इत्युक्त्वा सा शची ब्रह्मन्पुनरुच्चौ रुरोद ह।
दृष्ट्वा तद्रोदनं तारा रुरोदोच्चैर्महुर्मुहुः॥१६३॥
पपात चरणे तारा रुरोद च पुनः पुनः।
अपराधं क्षमेत्युक्त्वा गुरुस्तुष्टोऽप्युवाच ताम्॥१६४॥

हे नारद! यह कहकर देवी शची पुनः-पुनः रुदन करने लगीं। वे पुनः-पुनः विलाप करती जा रही थीं। उनका रुदन देखकर गुरुपत्नी तारा भी रोने लगीं। तदनन्तर तारा ने पति के चरणों पर गिरकर विलाप करते हुये बारम्बार कहा-"आप इनका अपराध क्षमा करिये।" यह सुनकर गुरु बृहस्पति प्रसन्नता पूर्व कहने लगे॥१६३-१६४॥

गुरुरुवाच

उत्तिष्ठ तारे शच्याश्च सर्वं भद्रं भविष्यति।
सद्यः प्राप्स्यति भर्तारं महेन्द्रं च मदाशिषा॥१६५॥

गुरु बृहस्पति कहते हैं-"हे तारा! उठो! शची का मंगल होगा। मेरे आशीर्वाद से शची पति इन्द्र को प्राप्त करेंगी।"॥१६५॥

इत्युक्त्वा स गुरुस्तत्र विरराम च नारद। पपात चरणे तारा पुनरेव रुरोद च॥१६६॥
गृहीत्वा च [1]शची तारा संस्थाप्य च स्ववक्षसि।
बोधयामास विविधमाध्यात्मिकमनुत्तमम्॥१६७॥

हे नारद! यह कहकर बृहस्पति मौन हो गये। तारा उनके चरणों पर गिरकर पुनः विलाप करने लगीं। तदनन्तर तारा ने शची को हृदय से लगाकर उनको अनेक प्रकार का आध्यात्मिक उपदेश प्रदान किया॥१६६-१६७॥

शचीकृतं गुरुस्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत्।
गुरुश्चाभीष्टदेवश्च सन्तुष्टः प्रतिजन्मनि॥१६८॥
ग्रहदेवद्विजास्तं च परितुष्टाश्च सन्ततम्।
राजानो बान्धवाश्चैव सन्तुष्टाः सर्वतः सदा॥१६९॥
गुरुभक्तिं विष्णुभक्तिं वाञ्छितं लभते ध्रुवम्।
सदा हर्षो भवेत्तस्य न च शोकः कदाचन॥१७०॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम्।
सुस्वरूपां गुणवतीं सतीं पुत्रवतीं ध्रुवम्॥१७१॥

यह शचीकृत गुरुस्तव जो कोई पूजा के समय पढ़ता है, प्रत्येक जन्म में उस पर गुरु तथा

१. सतीमिति पाठः क्वचित्कः।

इष्टदेवता प्रसन्न रहते हैं। उसके प्रति ग्रहदेवता तथा ब्राह्मण सदा प्रसन्न रहते हैं। उस व्यक्ति से राजा, बन्धुजन सदैव सन्तुष्ट बने रहते हैं। वह व्यक्ति अवश्यमेव गुरुभक्ति, विष्णुभक्ति तथा वांछित की प्राप्ति करता है। वह सदा हर्षित रहता है। उसे कदापि शोक नहीं होता। इस पाठ के प्रभाव से पुत्रार्थी पुत्र की भार्याकामी प्रिय भार्या की प्राप्ति करता है, जो स्वरूपवती, गुणवती, सती, पुत्रवती निश्चित रूप से होगी।।१६८-१७१।।

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्यते बन्धनात्।
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो[1] भवति पण्डितः।।१७२।।
कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य निश्चितम्।
नित्यं तद्वर्धते धर्मो विपुलं निर्मलं यशः।।१७३।।
लभते परमैश्वर्यं पुत्रपौत्रधनान्वितम्। इह सर्वसुखं भुक्त्वा प्राप्यते श्रीहरेः पदम्।।१७४।।
न भवेत्तत्पुनर्जन्म हरिदास्यं लभेद्ध्रुवम्।
विष्णुभक्तिरसाब्धौ च निमग्नश्च भवेद्ध्रुवम्।।१७५।।
शश्वत्पिबति शान्तिश्च विष्णुभक्तिरसामृतम्। जन्मृत्युजराव्याधिशोकसंतापनाशनम्।।१७६।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदनारा० महेन्द्रदर्पभङ्गप्रकरणे शचीशोकापनोदने शचीकृतगुरुस्तोत्रकथनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः।।५९।।

इस स्तव पाठ के फलस्वरूप रोगी रोग से, बद्ध व्यक्ति बन्धन से छूट जायेगा। अकीर्तिवान् व्यक्ति सुयश लाभ करेगा। मूर्ख भी पण्डित हो जायेगा। उसे कभी भी बन्धुविच्छेद नहीं होगा। यह निश्चित है। उसका धर्म, विपुल निर्मल यश सदा बढ़ता रहेगा। वह परमऐश्वर्य तथा पुत्र-पौत्र-धन युक्त रहेगा। यह निश्चित है। वह विष्णुभक्ति रूपी रस सागर में अवश्य निमज्जित रहेगा। इस स्तव का पाठ करने वाला शान्ति पूर्वक सतत् विष्णु भक्ति रूपी रसमय अमृत का पान करेगा जो जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि तथा शोक सन्ताप नाशक है!।।१७२-१७६।।

।।५९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

१. क. मूडो भ०।

अथ षष्टितमोऽध्यायः

बृहस्पति-दूत का संवाद, राजा नहुष को सर्पत्व प्राप्ति, इन्द्र की ब्रह्महत्या से मुक्ति

नारायण उवाच

शचीस्तोत्रं समाकर्ण्य परितुष्टो बृहस्पतिः। उवाच मधुरं शान्तः कान्तामिन्द्रस्य नारद॥१॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! शान्तमना महर्षि बृहस्पति शची के स्तोत्र को सुनकर सन्तुष्ट हो गये तथा वे इन्द्र पत्नी शची से मधुर वाक्य कहने लगे॥१॥

बृहस्पतिरुवाच

त्यज वत्से भयं सर्वं भयं किं ते मयि स्थिते।
यथा कचस्य पत्नी मे तथा त्वमपि शोभने॥२॥

यथा पुत्रस्तथा शिष्यो न भेदः पुत्रशिष्ययोः। तर्पणे [१]पितृदाने च पालने परितोषणे॥३॥

यथाऽग्निदाता पुत्रश्च तथा शिष्यश्च निश्चितम्।
इतीदं कण्वशाखायामुवाच कमलोद्भवः॥४॥
पिता माता गुरुर्भार्या शिशुश्चानाथबान्धवाः।
एते पुंसां [२]नित्यपोष्या इत्याह कमलोद्भवः॥५॥
यश्चैतांश्च न पुष्णाति भस्मान्तं तस्य सूतकम्।
दैवे पित्र्ये च कर्मार्हः सोऽपीत्याह महेश्वरः॥६॥

गुरु बृहस्पति कहते हैं—हे वत्से! भय त्याग करो। मेरे विद्यमान रहते तुमको कैसा भय? हे शोभने! जैसे मेरे पुत्र कच की पुत्रवधु है, उसी प्रकार मेरे लिये तुम हो। पुत्र तथा शिष्य समान होते हैं। तर्पण, पिण्डदान, भोजन तथा पालन का जो अधिकार पुत्र का होता है, वही शिष्य का भी जाने। शिष्य एवं पुत्र में भेद नहीं है। पुत्र की तरह ही शिष्य भी गुरु का दाहकार्य करने का अधिकारी है। यह ब्रह्मा ने वेद की काण्वशाखा में कहा है। जो गुरु का पालन-पोषण, तर्पण, पिण्डदानादि नहीं करता उसे तो चिता पर दग्ध होते समय तक सूतक लगा रहता है। पिता-माता-गुरु-पत्नी-शिशु सन्तान-अनाथबान्धव ये व्यक्ति द्वारा पोषणीय हैं। शङ्कर का कथन है कि ऐसा शिष्य देव-पितृकर्म का भी अनधिकारी है॥२-६॥

कुरुते नरबुद्धिं च मातरं पितरं गुरुम्। अयशस्तस्य सर्वत्र विघ्न एव पदे पदे॥७॥

१. क. ॰पिण्डदा॰।
२. क. ॰गुण्या।

सम्पन्मत्तो यः करोति स्वगुरोश्च पराभवम्।
अचिरात्सर्वनाशश्च भवेत्तस्य सुनिश्चितम्॥८॥
मां च दृष्ट्वा सभामध्ये नोत्तस्थौ पाकशासनः।
तत्फलं भुज्यते साक्षात्सद्यः पश्य च साम्प्रतम्॥९॥

जो मनुष्य पिता-माता-गुरु को मनुष्य कोटि में मानता है, उसे सर्वत्र अपयश मिलता है। उसे पग-पग पर विघ्नों का कष्ट सहना पड़ता है। जो सम्पत्ति के मद से मत्त होकर अपने गुरु की अवमानना करता है, उसका शीघ्र नाश होना निश्चित है। सभामध्य में मुझे समागत देखकर इन्द्र जो उठे नहीं थे, ये उसी का यथार्थ प्रत्यक्ष फलभोग रहे हैं। इसे तो तुम देख ही रही हो!॥७-९॥

अहं करोमि मोक्षं च तव रक्षां सुनिश्चितम्। शासितुं रक्षितुं शक्तः स एव गुरुरुच्यते॥१०॥
न पश्यति सतीत्वं च हृच्छुद्धायाश्च योषितः।
यन्मानसे विकल्पश्च तस्य धर्मश्च नश्यति॥११॥
भविष्यति प्रभावस्ते दुर्गायाश्च समः सति।
लक्ष्मीसमा प्रतिष्ठा च यशस्तद्यशसा समम्॥१२॥
सौभाग्यं राधिकातुल्यं तत्समं प्रेमभर्तरि। तत्तुल्यं गौरवं मान्यं प्रीतिः प्राधान्यमीश्वरे॥१३॥
रोहिण्याश्च समापेक्षा पूज्या च भारतीसमा।
शुद्धा निरुपमा शश्वत्सावित्रीसदृशी सदा॥१४॥

अब मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा तथा इन्द्र की संकट से मुक्ति अवश्य प्रदान करूंगा। जो शिष्य पर शासन करे तथा उसकी रक्षा भी करे, वही यथार्थ गुरु कहलाता है। हे भद्रे! जिस रमणी का हृदय पवित्र है, उसका सतीत्व कभी नष्ट नहीं होता। जिसके चित्त में दुविधा रहती है, उसी का धर्म नाश होता है। हे सती! तुम्हारा प्रभाव दुर्गा के समान होगा, तुम्हारी प्रतिष्ठा लक्ष्मी के समान होगी तथा यश भी लक्ष्मी के सामान ही मिलेगा। तुम राधा के समान सौभाग्य तथा पतिप्रेम प्राप्त करोगी। तुम्हारे प्रति पति की दृष्टि में उतना ही गौरव, मान्यता तथा प्रेम एवं प्रधानता रहेगी। तुम रोहिणी की तरह पति द्वारा सदा प्रिय मानी जाओगी। तुम सरस्वतीवत् पूज्या तथा सावित्री की तरह सदैव पवित्र रहोगी।।१०-१४।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र आगतो नहुषाच्चरः। उवाच वचनं भीतो वाक्पतेर्गोचरे ततः॥१५॥

इसी समय राजा नहुष द्वारा भेजा गया एक दूत आया। उसने भयभीत होकर बृहस्पति के समक्ष ही शची से कहा-।।१५।।

दूत उवाच

उत्तिष्ठ देवि शीघ्रं त्वं गच्छस्व नहुषं प्रति।
क्रीडां कर्तुं च रहसि रम्ये नन्दनकानने॥१६॥

दूत कहता है–हे देवी! उठकर नहुष के पास चलो। वे एकान्त में तुम्हारे साथ नन्दन कानन में क्रीड़ा करेंगे।।१६।।

दूतस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच बृहस्पतिः। कम्पितावयवः कोपाद्रक्तपङ्कजलोचनः।।१७।।

दूत का वचन सुनकर बृहस्पति के अवयव क्रोध से कांपने लगे। उनके नेत्र रक्तकमल जैसे लाल हो गये। उन्होंने उस दूत से कहा–।।१७।।

गुरुरुवाच

नहुषं वद गत्वा त्वं शचीं चेद्भोक्तुमिच्छसि।
अपूर्वं यानमारुह्य निशायामागमिष्यसि।।१८।।
सप्तर्षीणां च स्कन्धे च दत्त्वा स्वशिविकां शुभाम्। तामारुह्य गमनं कर्तुमर्हसि।।१९।।

गुरु बृहस्पति कहते हैं–तुम जाकर राजा नहुष से कहो। यदि तुम शची का उपभोग करना चाहते हो, तब किसी अलौकिक यान पर बैठकर रात्रि में आओ। अपना सुन्दर वेष विन्यास करके अपनी पालकी सप्तर्षियों के कन्धों पर रखकर ढुलवाओ। उस पर आसीन होकर आगमन करना।।१८-१९।।

वाक्पतेर्वचनं श्रुत्वा गत्वोवाच नृपं तदा। दूतस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्योवाच किङ्करम्।।२०।।
गच्छ गच्छ त्वरन् गच्छ सप्तर्षीञ्छीघ्रमानय।
उपायं च करिष्यामि तैः सार्धं साम्प्रतं चर।।२१।।
नृपस्य वचनं श्रुत्वा गत्वा दूतस्तदन्तिकम्। उवाच सर्वांस्तत्रैव यथोक्तं नहुषेण च।।२२।।
दूतस्य वचनं श्रुत्वा ययुः सप्तर्षयो मुदा।
राजा दृष्ट्वा च तान्सर्वान्ननामोवाच सादरम्।।२३।।

दूत ने बृहस्पति का कहा संवाद जाकर राजा से कहा। दूत का कथन सुनकर राजा ने हंसते हुये सेवक से कहा–"शीघ्र जाकर सप्तर्षिगण को लाओ। उनके आने पर उचित उपाय करूंगा।" राजा का आदेश सुनकर दूत सप्तर्षिगण के पास गया तथा उनको नहुष का कथन सुनाया। दूत का कथन सुनकर सप्तर्षिगण अत्यन्त प्रसन्नता के साथ राजा के पास आये। राजा ने उनको देखकर सादर प्रणाम किया तथा कहने लगे।।२०-२३।।

नहुष उवाच

यूयं च ब्रह्मणः पुत्रा ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा। ब्रह्मणः सदृशः सर्वे सततं भक्तवत्सलाः।।२४।।
नरायणपराः शश्वच्छुद्धसत्त्वस्वरूपिणः। मोहमात्सर्यहीनाश्च दर्पाहङ्कारवर्जिताः।।२५।।
नारायणसमाः सर्वे तेजसा यशसा सदा। गुणेन कृपया प्रेम्णा वरदानेन निश्चितम्।।२६।।

राजा नहुष कहते हैं–हे ऋषिगण! आप सभी ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मा के ही समान गुणी, ब्रह्मतेज

से प्रज्वलित तथा सदा भक्तवत्सल के रूप में प्रसिद्ध हैं। आप लोग सदा नारायण-परायण एवं शुद्धसत्वरूप हैं। आप लोगों में मोह, मात्सर्य, दर्प आदि का लेश भी नहीं है। आप तेज, यश, कृपादान, प्रेम तथा वरदान देने में साक्षात् नारायण के समान हैं।।२४-२६।।

इत्युक्त्वा प्रणतो राजा तुष्टाव च रुरोद च। दृष्ट्वा ते कातरं भूपमूचुः परहितैषिणः॥२७॥

उनकी यह स्तुति करके राजा ने उनको प्रणाम किया। तदनन्तर वह रोने लगा। प रहितैषी ऋषियों ने राजा को कातर होकर विलाप करते देख कर कहा-।।२७।।

ऋषय ऊचुः

वरं वृणीष्व हे वत्स यत्ते मनसि वाञ्छितम्।
सर्वं दातुं वयं शक्ता नासाध्यं नश्च किञ्चन॥२८॥
इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा चिरायुर्वा ततः परम्। सप्तद्वीपेश्वरत्वं चाप्यतीव सुचिरं सुखम्॥२९॥
अथापि सर्वसिद्धित्वं सर्वैश्वर्यं सुदुर्लभम्।
मुक्तिं वा हरिभक्तिं वा तपसा या सुदुर्लभा॥३०॥
किमीप्सितं ते हे वत्स ब्रूहि नः साम्प्रतं मुदा।
सर्वं तुभ्यं प्रदायैव यास्यामस्तपसे मुदा॥३१॥

ऋषिगण कहते हैं-हे वत्स! तुम अभिलषित वर मांगों। हमारे लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। हम सब प्रदान करने में समर्थ हैं। हे वत्स! इन्द्रत्व, मनुत्व, चिरजीवित्व, सप्तद्वीपाधिपत्य, अत्यन्त नित्यसुख किंवा सर्वसिद्धि, सुदुर्लभ सर्वैश्वर्य, जो पाने की तुम्हारी कामना हो, वह आनन्द के साथ हमसे कहो। हम वह सब तुमको देकर मुदित मन से तपस्या हेतु जायेंगे।।२८-३१।।

युगलक्षसमं यच्च क्षणं कृष्णार्चनं विना। तद्दिनं दुर्दिनं यत्तद्ध्यानसेवनवर्जितम्॥३२॥

जो क्षण बिना कृष्णार्चन के व्यतीत होता है, वह एक लाख युग के समान लगता है। उनके ध्यान-सेवा आदि से रहित जो दिन व्यतीत हो गया, वही दुर्दिन है।।३२।।

विना तत्सेवनं यो हि विषयान्यं च वाञ्छति।
विषमत्ति प्रणाशाय विहायामृतमीप्सितम्॥३३॥
ब्रह्मा शिवश्च धर्मश्च विष्णुश्चापि महान्विराट्। गणेशश्च दिनेशश्च शेषश्च सनकादयः॥३४॥
एते यच्चरणाम्भोजं ध्यायन्तेऽहर्निशं मुदा। जन्ममृत्युजराव्याधिहरं तन्निरता वयम्॥३५॥

उनकी सेवा रहित अन्य विषय कामना करने वाले ने तो अमृत त्याग कर अपने नाश के लिये विष भक्षण ही कर लिया। ब्रह्मा, शिव, धर्मदेव, विष्णु, महाविराट्, गणेश, सूर्य, शेषनाग, सनकादि मुनिगण अहर्निश जिन चरणकमलों का ध्यान करते हैं, जो जन्म-मृत्यु-जराव्याधि हारी हैं, उस प्रभु के चरणों के हम सतत् प्रसन्नता से ध्यान करते हैं।।३३-३५।।

तेषां च वचनं श्रुत्वा तानुवाच नृपेश्वरः। स लज्जितो नम्रवक्त्र मायामोहितमानसः॥३६॥

सप्तर्षिगण का यह कथन सुनकर माया से मोहित मन वाले राजा ने लज्जित होकर शिर झुका लिया। तदनन्तर वह कहने लगे॥३६॥

नहुष उवाच

सर्वं दातुं समर्थाश्च यूयं च भक्तवत्सलाः।
अधुना देहि (दत्त) मे तूर्णं शचीदानमभीप्सितम्॥३७॥
सप्तर्षिवाहनं कान्तं शचीच्छति महासती।
एतदेव मम वरं निष्पन्नं कुरुताचिरम्॥३८॥

राजा नहुष कहते हैं–आप लोग भक्तवत्सल हैं तथा सब कुछ प्रदान करने में समर्थ हैं। आप इस समय शीघ्र मुझे शची प्रदान करके मेरी कामना पूरी करें। सती शची की इस समय यह कामना है कि वह सप्तर्षियों को वाहन बनाकर उस यान पर बैठकर अपने प्रिय मेरे पास आये। मैं आपसे यही वर मांगता हूं। आप कृपया यही वर दीजिये॥३७-३८॥

नहुषस्य वचः श्रुत्वा मुनयश्च परस्परम्। अत्युच्चैर्जहसुः सर्वे कौतुकेन च नारद॥३९॥
राजानं मोहितं मत्वा वेष्टितं विष्णुमायया।
चक्रुः प्रतिज्ञां तं वोढुं कृपया दीनवत्सलाः॥४०॥

नहुष की बात सुनकर मुनिगण ने कौतुक के कारण परस्पर मिलकर उच्च स्वर में हास्य किया। तत्पश्चात् उन दीनवत्सल मुनिगण ने राजा को विष्णुमायाविमोहित मानकर तथा ठगा गया जानकर कृपापरवश होकर उसकी पालकी वहन करने की प्रतिज्ञा कर लिया॥३९-४०॥

चक्रुःस्कन्धे तच्छिविकां मुक्तामाणिक्यभूषिताम्।
राजा ययौ सुवेषश्च रत्नभूषणभूषितः॥४१॥
दृष्ट्वा चातिविलम्बं च भर्त्सयामास तान्नृपः।
क्रुधा शशाप दुर्वासाश्चाग्रगामी च वर्त्मनि॥४२॥

महानजगरो भूत्वा पत वै मूढमानस। दर्शनाद्धर्मपुत्रस्य तव मोक्षो भविष्यति॥४३॥
रत्नयानेन वैकुण्ठं गत्वा वैकुण्ठसेवनम्। करिष्यसि महाराज न कर्म निष्फलं भवेत्॥४४॥

तदनन्तर उन ऋषियों ने मुक्ता-मणि-माणिक्य जड़ित उस शिविका (पालकी) को कन्धे पर रखा जिसमें राजा उत्तमवेषधारी तथा रत्नाभूषणभूषित होकर आसीन था। मार्ग में जब राजा ने मुनिगण की चाल को विलम्बित देखा, तब उसने ऋषियों की भर्त्सना किया। उस पालकी को ढोने में दुर्वासा सबसे आगे की ओर थे। उन्होंने क्रोध पूर्वक राजा को शाप दिया–"हे मूढ़! तुम महान् अजगर की योनि प्राप्त करके भूपतित हो जाओ। जब तुम धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर का दर्शन प्राप्त करोगे, तभी इस योनि

से मुक्त हो सकोगे। हे महाराज! कृतकर्म कदापि नष्ट नहीं होता। अतः सर्पयोनि से मुक्त होकर तुम वैकुण्ठ गमन, रत्नयान पर बैठकर करोगे तथा वहां निवास करोगे।"।।४१-४४।।

इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे प्रहस्य मुनिसत्तमाः।
राजा पपात तच्छापात्सर्पो भूत्वा महामुने॥४५॥
शची जगाम तच्छुत्वा गुरुं नत्वाऽमरावतीम्।
ययौ बृहस्पतिः शीघ्रं यत्रेन्द्रः पद्मतन्तुषु॥४६॥
गत्वा सरोवराभ्याशमाजुहाव सुरेश्वरम्। अतिप्रसन्नवदनः कृपया च कृपानिधिः॥४७॥

यह कहकर वे सभी मुनिसत्तम सप्तर्षि हंसते हुये वहां से चले गये। हे महामुनि नारद! उसी समय राजा महासर्प होकर पृथिवीलोक में गिर पड़ा! यह सुनकर शची ने गुरु को प्रणाम किया तथा अमरावती चली गईं। इधर बृहस्पति तत्काल वहां गये जहां इन्द्र सूक्ष्मरूप से कमलनाल में भीतर छिपे थे। कृपानिधि बृहस्पति ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक सरोवर के निकट जाकर इन्द्र को पुकारा।।४५-४७।।

बृहस्पतिरुवाच

अयि वत्स त्वमागच्छ भयं किं ते मयि स्थिते।
त्यज भीतिमिहागच्छ गुरुस्तेहं बृहस्पतिः॥४८॥

गुरु बृहस्पति कहते हैं-"हे वत्स! शीघ्र मेरे निकट आओ। मेरे रहते किञ्चित् भय मत करो। मैं तुम्हारा गुरु बृहस्पति यहां आया हूं।"।।४८।।

स्वगुरोश्च स्वरं श्रुत्वा महेन्द्रो हृष्टमानसः। रूपं विहाय सूक्ष्मं च स्वरूपेण समाययौ॥४९॥
पपात दण्डवन्मूर्ध्ना भक्त्या चरणयोर्गुरोः। तं रुदन्तं महाभीतं मुदोरसि चकार सः॥५०॥
कारयित्वा सोमयागं प्रायश्चित्तार्थमेव च। रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास तं गुरुः॥५१॥

अपने गुरु का कण्ठ स्वर पहचानकर इन्द्र प्रसन्न हो गये। उन्होंने तत्काल अपना सूक्ष्मरूप त्यागा तथा स्वमूर्त्ति धारण करके वहां आये तथा गुरु के चरणकमलों पर अन्य भक्ति-भाव के साथ गिर पड़े। देवगुरु ने इन्द्र को रुदन करते तथा परम भयभीत देखकर उनको आनन्द पूर्वक अपने वक्ष से लगा लिया। तदनन्तर देवगुरु ने पाप के प्रायश्चित्त के लिये सोमयाग कराया तथा उनको रम्य रत्नसिंहासनासीन कराया।।४९-५१।।

प्रददौ परमैश्वर्यं पूर्वस्माच्च चतुर्गुणम्। आगत्य सर्वदेवाश्च चक्रुः सेवां मुदाऽन्विता॥५२॥
शची सम्प्राप भर्तारं महेन्द्रं त्रिदशेश्वरम्। मन्दिरे पुष्पतल्पे च मुमुदे सा मुदाऽन्विता॥५३॥

देवगुरु ने कृपा पूर्वक इन्द्र को पूर्वकाल से भी चौगुना परम ऐश्वर्य प्रदान किया। अब सभी देवता मुदित मन से इन्द्र की सेवा करने लगे। शची ने भी देवराज महेन्द्र को पुनः प्राप्त किया था। वे अपने पति इन्द्र को भवन में पुष्पशैय्या पर ले जाकर प्रसन्नमन से रहने लगीं। वे अत्यन्त प्रमुदित हो गई।५२-५३।।

इत्येवं कथितं वत्स महेन्द्रदर्पभञ्जनम्। शची सतीत्वरक्षा च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥५४॥

हे वत्स नारद! यह मैंने इन्द्र दर्पदमन का आख्यान कहा। यह शचीसतित्व रक्षा प्रसंग सुनने के पश्चात् क्या सुनना चाहते हो?॥५४॥

नारद उवाच

सोमयागविधानं च ब्रूहि मां मुनिसत्तम। कथं तं कारयामास गुरुश्च किं फलं परम्॥५५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनिवर! कृपया सोमयाग विधि का वर्णन करिये। इसे बृहस्पति ने किस प्रकार इन्द्र से सम्पन्न कराया? इसका फल क्या है?॥५५॥

नारायण उवाच

ब्रह्महत्याप्रशमनं सोमयाफलं मुने। वर्षं सोमलतापानं यजमानः करोति च॥५६॥
वर्षमेकं फलं भुङ्क्ते वर्षमेकं जलं मुदा। त्रैवार्षिकं व्रतमिदं सर्वपापप्रणाशनम्॥५७॥
यस्य त्रैवार्षिकं धान्यं निहितं [1]भूतवृद्धये।
अधिकं वाऽपि विद्येत स सोमं पातुमर्हति॥५८॥
महाराजश्च देवो वा यागं कर्तुमलं मुने। न सर्वसाध्यो यज्ञोऽयं बह्वन्नो बहुदक्षिणः॥५९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदनारा० शक्रदर्पभङ्गप्रकरणे शक्रमोक्षकथनं नाम षष्टितमोऽध्यायः॥६०॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे मुनि! इस सोमयाग का प्रधान फल है ब्रह्महत्या पातक शान्ति। इस याग में यजमान प्रसन्न होकर प्रेम पूर्वक एक वर्ष तक सोमलता रस का पान करे। तब एक वर्ष केवल फल खा कर रहे। तदनन्तर एक वर्ष मात्र जल पीकर ही रहना होगा। इस प्रकार ३ वर्ष में यह व्रत अनुष्ठित होता है। इससे समस्त पातक नष्ट हों जाते हैं। जो व्यक्ति प्राणीगण की समृद्धि हेतु ३ वर्ष के खर्च का अथवा उससे अधिक मात्रा में धान्य संग्रह करके रखता है, उसे ही सोमपान का अधिकार है। हे मुनिवर! राजागण अथवा देवगण ही के लिये यह यज्ञ कर सकना साध्य है। अन्य के लिये असाध्य है; क्योंकि इसमें प्रचुर अन्न तथा प्रचुर दक्षिणा का प्रयोजन होता है। यह यज्ञ सर्वसाध्य नहीं है॥५६-५९॥

॥६०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

१. क. भूतिवृ०।

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

बलि द्वारा इन्द्रदर्प भंजन, इन्द्र-अहल्या संवाद, इन्द्र द्वारा अहल्या से समागम, इन्द्र तथा अहल्या को गौतम का शाप मिलना

नारायण उवाच

इति ते कथितं किञ्चिदिन्द्रस्य दर्पभञ्जनम्। अपरं श्रूयतां ब्रह्मन्सावधानं निगूढकम्॥१॥
समुद्रमथनं कृत्वा पीत्वाऽमृतरसं पुरा। निर्जित्य दैत्यसंघांश्च बहुदर्पो बभूव ह॥२॥
तदा कृष्णो बलिद्वारा शक्रदर्प बभञ्ज ह। भ्रष्टश्रियो बभूवुस्ते देवा इन्द्रपुरोगमाः॥३॥
तदा बृहस्पतेः स्तोत्राददितेश्च व्रतेन ते। जातश्च स्वांशकलयाऽप्यदित्यां वामनो विभुः॥४॥
याच्ञां कृत्वा बलिं राज्यं कृपया च कृपानिधिः।
तस्मै ददौ महेन्द्राय देवेभ्यश्चापि सम्पदम्॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! यह मैंने इन्द्र के दर्प भंजन का किञ्चित् प्रसंग कह दिया। अब अन्य वृत्तान्त सावधानी से श्रवण करो। पूर्व में समुद्र मन्थन के अन्त में अमृत रसपान करने तथा दैत्यों को पराजित करने से देवराज इन्द्र अत्यन्त दर्पयुक्त हो गये। तब श्रीकृष्ण ने बलिराजा द्वारा उनका दर्प चूर्ण कराया। इससे इन्द्रादि देवता श्रीभ्रष्ट हो गये थे। तत्पश्चात् भगवान् बृहस्पति के स्तोत्र तथा अदिति के व्रताचरण से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने अपने अंशकला रूप से वामनरूप से जन्म लिया। तत्पश्चात् कृपानिधि भगवान् ने बलिराज से छल पूर्वक दान मांग कर इन्द्र को देवराज्य एवं देवताओं को उनकी पूर्णसम्पदा प्रदान कर दिया॥१-५॥

बभूव शक्रदर्पश्च पुनः कल्पान्तरे पुरा। विभुर्दुर्वाससो द्वारा जहार तच्छ्रियं मुने॥६॥
पुनर्ददौ च कृपया कृपालुर्भक्तवत्सलः। पुनः श्रीदुर्मदः सोऽपि जहार गौतमप्रियाम्॥७॥
तदा गौतमशापेन भगाङ्गश्च बभूव सः। सम्प्राप यातनामिन्द्रः स्वाङ्गवेदनया पुरा॥८॥

हे मुनि नारद! कल्पान्तर में इन्द्र पुनः दर्पयुक्त हो गये। उसे प्रभु ने दुर्वासा से नष्ट करा दिया तथा श्रीविहीन कर दिया, तथापि भक्तवत्सलता तथा कृपालुता के कारण उनको पुनः श्रीसम्पन्न कर दिया था, तथापि उन्होंने पुनः मदमत्त होकर गौतमपत्नी अहल्या का हरण किया था। उस समय वे इन्द्र गौतम के शाप द्वारा सहस्र भगयुक्त हो गये। इस भगांग युक्त देह में उनको भयानक पीड़ा जनित यातना होने लगी॥६-८॥

उच्चैस्तं जहसुर्दृष्ट्वा ऋषयो मनवस्तदा। देवाश्च लज्जिताः सर्वे मृततुल्यो बृहस्पतिः॥९॥
तदा सहस्रवर्ष च तपस्तप्त्वा रवेः पुरा। रवेर्वरेण शक्रः स सहस्राक्षो बभूव ह॥१०॥

कलङ्करूपमिन्द्रस्य तच्चक्षुर्निकरं परम्। यथा चन्द्रे कलङ्कश्च तारकाहरणादभूत्॥११॥

उनको सहस्त्र भगयुक्त देखकर ऋषि तथा मनुगण जोरों से उच्च हास्य करने लगे। इससे देवता लज्जित हो गये। यह सब देखकर तो बृहस्पति की अवस्था मृतकवत् हो गई। इस कारण इन्द्र ने १००० वर्ष पर्यन्त सूर्यदेव की उपासना किया, जिससे उनके देह में स्थित १००० भग (योनि) चिह्न नेत्र रूप में परिणत हो गये। तभी से इन्द्र को सहस्राक्ष कहा जाता है। जैसे बृहस्पति की पत्नी का हरण करने के पातक से चन्द्रमा को सदा के लिये कलंक लग गया, उसी प्रकार अहल्या के हरण रूप पातक के कारण इन्द्र के देह में ये १००० नेत्र कलंकरूप सदा के लिये स्थायी हो गये॥९-११॥

नारद उवाच

ब्रह्मन् केन प्रकारेण जहार गौतमप्रियाम्। महासतीमहल्यां च पूज्यां भुवनपावनीम्॥१२॥
शुद्धाशयां महाभागां निर्मलां कमलाकलाम्। एतद्वेदितुमिच्छामि वद वेदविदां वर॥१३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आप वेदज्ञों में श्रेष्ठ हैं। किस प्रकार इन्द्र ने महासती, भुवनों को पवित्र करने वाली पूज्या गौतमप्रिया अहल्या का हरण किया था? वे तो कमला की कला, शुद्ध आशययुक्त, महाभागा हैं। यह जानना चाहता हूं। कृपया कहिये॥१२-१३॥

नारायण उवाच

पुष्करे तीर्थयात्रायां सूर्यपर्वणि नारद। तत्राऽऽगतामहल्यां च ददर्श पाकशासनः॥१४॥

सुस्मितां सुदतीं शान्तां पीनश्रोणिपयोधराम्।
मूर्च्छामवाप चेन्द्रश्च दृष्टिमात्रेण तत्क्षणात्॥१५॥
अथा परदिने तां च दृष्ट्वा मन्दाकिनी तटे।
एकाकिनीं सुस्मितां च स्नातीं नग्नां सलज्जिताम्॥१६॥

दृष्ट्वा श्रोणिं स्तनयुगमतीव विपुलं हरिः। मूर्च्छामवाप कामार्तो जहार चेतनां पुनः॥१७॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य गत्वा कामी तदन्तिकम्।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा विनयेन पतिव्रताम्॥१८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! एक बार अहल्या तीर्थयात्रा के उपलक्ष्य में सूर्यग्रहणकाल में पुष्कर गई थीं। उस समय उनको इन्द्र ने देख लिया। अहल्या मन्दमुस्कान वाली, उत्तमदन्त-पंक्तियों से शोभिता, शान्त, स्थूल स्तनों तथा नितम्बों वाली थीं। उनको देखते ही तत्क्षण इन्द्रदेव अपनी सुध खो बैठे। दूसरे दिन इन्द्र ने उनको मन्दाकिनी के तट पर देखा। वे मनोहर मुस्कान वाली अहल्या सलज्जभाव से नग्न स्नान कर रही थीं। उनके अतीव बृहद् स्तनों तथा नितम्ब को देखकर इन्द्र कामार्त्त होकर चेतना खो बैठे। कुछ क्षण के पश्चात् पुनः चेतना पाकर इन्द्र अहल्या के पास गये। वे विनय पूर्वक उन पतिव्रता से स्निग्ध वाणी से कहने लगे॥१४-१८॥

महेन्द्र उवाच

अहो गुणमहो रूपमहो किं वा नवं वयः।
अहो किं वा मुखश्रीस्ते शरच्चन्द्रं विनिन्दती॥१९॥

महेन्द्र कहते हैं–हे सुन्दरी! तुम्हारा गुण, रूप तथा यह नवीन यौवन प्रशंसनीय है। तुम्हारे आनन की शोभा शारदीय चन्द्रमा को भी निन्दित करती लग रही है।।१९।।

अहो कटाक्षं कुटिलं पुंसां चित्तविकर्षणम्।
किमहो लोचनं पद्मप्रभामोचनमीप्सितम्॥२०॥
गमनं रमणीयं च गजखञ्जनभञ्जनम्। ओ वाक्यं सुमधुरं पीयूषादपि दुर्लभम्॥२१॥

तुम्हारी बांकी निगाहें पुरुषों के चित्त को खींच-सी लेती है। तुम्हारे नेत्र तो कमल की कान्ति का हरण करने वाले तथा अत्यन्त ईप्सित हैं। तुम्हारी चाल गजराज तथा खंजन पक्षी की चाल को भी लज्जित करने वाली हैं। तुम्हारी वाणी मधुर अमृत जैसी तथा दुर्लभ है।।२०-२१।।

किमहो विपुलश्रोणी कामाधारा मनोहरा। कामदा कामुकायैव मुनिमानसमोहिनी॥२२॥
अतीव कठिना पीना रम्भास्तम्भविडम्बिता।
अहो नितम्बयुगुलं वर्तुलं चन्द्रबिम्बवत्॥२३॥
श्रीयुक्तं श्रीफलयुगतुल्यं ते स्तनयुग्मकम्। अत्युन्नतं सुकठिनं त्रैलोक्यचित्तमोहनम्॥२४॥

मुनिमन मोहनकारी तुम्हारी विशाल श्रेणी काम का आधार प्रतीत हो रही है। उसके दर्शन मात्र से कामी के हृदय में काम प्रकट हो जाते हैं। जांघे अत्यन्त कठोर तथा स्थूल हैं। वे देखने में केले के स्तम्भ को भी लज्जित विडम्बित कर देती हैं। तुम्हारे नितम्बद्वय चन्द्रबिम्ब के समान वर्तुल हैं तथा त्रैलोक्य के चित्त को मोहित करने वाले अत्यन्त उन्नत कठिन श्रीयुक्त स्तनद्वय देखने में दो बिल्वफल प्रतीत हो रहे हैं।।२२-२४।।

अहो किं वा तपस्तेपे गौतमश्च तपोधनः। सम्प्राप यत्फलेनैव सुदतीं सुन्दरीं वराम्॥२५॥
निषेव्य प्रकृतिं दुर्गां विष्णुमायां सनातनीम्।
लक्ष्मीं च लक्ष्मीसदृशीमीदृशी[1] प्राप पद्मिनीम्॥२६॥
सुकोमलां सुवदनां ललनां नलिनाननाम्। शुद्धां च सुदतीं श्यामां न्यग्रोधदलमध्यमाम्॥२७॥

अहो! इन तपोधन गौतम ने क्या अनिर्वचनीय तप किया था, जिसके फल से उनके भाग्य में ऐसी परमसुन्दरी भार्या प्राप्त हो गई। उन्होंने निश्चित रूप से विष्णुमाया सनातनी प्रकृति देवी दुर्गा तथा देवी कमला की आराधना से इस प्रकार की कमला जैसी कमल के समान आनन वाली, कोमलांगी, शुद्धा, उत्तम दांतों वाली, शीत में उष्ण एवं ग्रीष्म में सुशीलता, तप्तकाञ्चन जैसे वर्ण

१. ख. दृशीं तपसा प्राप्य प०।

वाली, श्यामा, कठोर स्तनों वाली, विशाल नितम्बों वाली, लालना क्षीण कटिभाग युत, पद्मिनी भार्या प्राप्त किया।।२५-२७।।

त्वत्पालनं च जानामि कामशास्त्रविचक्षणः।
कामो वा कामुकश्चन्द्रः किं त्वा जानाति गौतमः॥२८॥
मां प्रशंसन्ति नित्यं ते कामशास्त्रविचक्षणाः।
उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो मां प्रशंसन्ति संततम्॥२९॥
दासीं कृत्वा च दास्यामि शचीं तुभ्यं वरानने।
त्रैलोक्यलक्ष्मी विपुलां गृहाण त्यज गौतमम्॥३०॥
अनभिज्ञं कामशास्त्रे दुर्बलं च तपस्विनम्। अव्यवहार्यं निष्कामं नारायणपरायणम्॥३१॥

मैं स्वयं कामशास्त्र प्रवीण हूं। मैं तुमको पालन करने की विधि जानता हूं। अथवा कामुक चन्द्र एवं कामदेव ही इस बात को जान सकते हैं। यह सब तपस्वी गौतम क्या जानेंगे? (तुम्हारे समान ललना से कैसे रमण करना होता है, ये तो बस चन्द्रमा अथवा कामदेव ही जान सकते हैं)। जो कामशास्त्रज्ञ हैं, वे नित्य मेरी प्रशंसा करते हैं। इस कार्य में उर्वशी आदि अप्सरायें भी नित्य मेरी प्रशंसा करती हैं। हे वरानने! मैं शची को तुम्हारी दासी बना दूंगा। इस समय तुम कामशास्त्र न जानने वाले, अनुराग के लिये अयोग्य, नारायण-परायण, निष्काम, अव्यवहारिक, दुर्बल, तपस्वी गौतम का त्याग करके (मेरे माध्यम से) विपुल त्रैलोक्य लक्ष्मी ग्रहण करो।।२८-३१।।

अविदग्धो विधाता च योजयामास योऽक्षमम्।
ईदृशीं कामुकीं रम्यां ददाति च तपस्विने॥३२॥

विधाता स्त्री-पुरुष संयोग कराने में सक्षम अवश्य हैं, तथापि वे अत्यन्त अचतुर हैं; क्योंकि उन्होंने ऐसी सुरम्य कामुकी कामिनी को तपस्वी के हाथों प्रदान कर दिया?।।३२।।

इत्युक्त्वा कामुकः शक्रः पपात चरणे मुदा।
तमुवाच महासाध्वी वेदोक्तं च यथोचितम्॥३३॥

कामुक इन्द्र यह कहकर मौन होकर आनन्द पूर्वक अहल्या के चरणों में गिर गये। तब महासाध्वी अहल्या उनसे यथोचित वेदोक्त बातें कहने लगीं-।।३३।।

अहल्योवाच

अभाग्याद्ब्रह्मणश्चापि मरीचेश्च तपस्विनः।
अभाग्यात्कश्यपस्यापि त्वं पुत्रः पापमानसः॥३४॥
किं तज्जपेन तपसा मौनेन च व्रतेन च। सुरार्चनेन तीर्थेन स्त्रीभिर्यस्य मनोहृतम्॥३५॥

देवी अहल्या कहती हैं- हे इन्द! तुम ब्रह्मा तथा मरीचि मुनि के दुर्भाग्य से कश्यप की

कुसन्तान पापी (कुपुत्र) होकर जन्मे हो। जिसका मन सतत् स्त्रियों में लगा रहता है, उसे जप, तप, मौन, व्रत, देवार्चन, तीर्थ का कोई लाभ नहीं मिलता; क्योंकि नारी ने उसका मन हर लिया।।३४-३५।।

स्त्रीरूपं निर्मितं सृष्टौ मोहाय कामिनां मनः।
अन्यथा न भवेत्सृष्टिः स्रष्टा[1] तेने पुराऽऽज्ञया।।३६।।

सर्वं मायाकरण्डश्च धर्ममार्गार्गलं नृणाम्। व्यवधानं च तपसां दोषाणामाश्रयं परम्।।३७।।
कर्मबन्धनिबद्धानां निगडं कठिनं स्मृतम्। प्रदीपरूपं कीटानां मीनानां बडिशं यथा।।३८।।

विधाता द्वारा सृष्टि में स्त्रीरूप इसलिये निर्मित किया गया है, जिससे वह कामी लोगों के मन का हरण कर सके। स्त्री के बिना सृष्टि नहीं हो पाती। तभी परमेश्वर की आज्ञा से विधाता ने कामीगण के मन को मुग्ध करने हेतु नारी का निर्माण किया। नारी का रूप सभी प्रकार से माया का आधार है। यह मनुष्यगण कर्ममार्ग में आगे बढ़ने का अवरोध रूप है। यह उनके लिये बेड़ी रूप है। यह नारी तपमार्ग में व्यवधान, अवरोधरूप हैं। वह दोष का आश्रय है। हे पुत्र! नारी संसार में आबद्ध लोगों के लिये कठोर बन्धनरूप है। यह पुरुष रूप मत्स्य को फसाने वाला लोहे का कांटा (बंसी) है। यह कीटों को (पुरुष रूप कीट को) दग्ध करने हेतु दीपक रूप है।।३६-३८।।

विषकुम्भं दुग्धमुखमारम्भे मधुरोपमम्। परिणामे दुःखबीजं सोपानं नरकस्य च।।३९।।

यह दुग्धभरा विषकुंभ स्वरूप है। नारी प्रारंभ में मधुर लगती है, तथापि यह परिणाम में दुःखदायक है। किम्बहुना, यह नरक की सीढ़ी ही है।।३९।।

ऋषयः सनकाद्याश्च नोद्वाहं चक्रुरीप्सितम्।
परस्त्रीषु मनो येषां तेषां सर्वं च निष्फलम्।।४०।।

परस्त्रीसेवनं शक्र इहैवात्ययशस्करम्। परत्र नरकं घोरं ददाति कामुकाय च।।४१।।

यही कारण है कि सनकादि ऋषिगण ने विवाह ही नहीं किया। जो परनारी के प्रति अनुराग तथा मनोभाव रखता है, उसका सब कुछ किया धरा सत्कर्म व्यर्थ है। हे इन्द्र! परस्त्री सेवन इस संसार में अत्यन्त अपयशकारक है। तदनन्तर वह कामी व्यक्ति परलोक में नरक लाभ करता है।।४०-४१।।

इत्युक्त्वा च महासाध्वी विहाय तं च कामुकम्।
प्रययौ स्वगृहं तूर्णं[2] गृहिणी गौतमस्य च।।४२।।

तत्सर्वं कथयामास गौतमाय तपस्विने। तस्थौ प्रहस्य च मुनिर्महेन्द्रं च विनिन्द्य च।।४३।।

यह कहकर गौतमपत्नी अहल्या कामी इन्द्र को वहीं छोड़कर शीघ्रता के साथ स्वगृह चली गईं। तदनन्तर तपस्वी गौतम से अहल्या ने समस्त वृत्तान्त कह दिया। तब मुनिवर गौतम ने महेन्द्र का यह चरित सुना तथा हंसते हुये महेन्द्र की निन्दा किया।।४२-४३।।

१. ख. स्रष्ट्रा तेन पु०।
२. क. रन्तुं।

एकदा गौतमः शीघ्रं जगाम शङ्करालयम्। शक्रो गौतमरूपेण तां संभोगं चकार सः॥४४॥
सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञः[1] मन्दिरद्वारमाययौ। निर्गच्छन्तं महेन्द्रं च ददर्श मुनिपुङ्गवः॥४५॥
नग्नामहल्यां रहसि पीनश्रोणिपयोधराम्। मुनिः शशाप शक्रं च भगाङ्गश्च भवेति च॥४६॥

एक बार गौतम शीघ्र शंकर के यहां गये। तब इन्द्र ने गौतम का रूप धारण करके अहल्या से संभोग कर लिया, तथापि सर्वज्ञ मुनि यह सब जान गये। वे सहसा घर के द्वार पर जब पहुंचे, उन्होंने इन्द्र को अपने घर से बाहर निकलते देखा। उस समय स्थूल नितम्बों तथा उन्नत स्तनों वाली अहल्या को उन्होंने गृह के निर्जन भाग में नग्न स्थिति में देखा। यह देखकर गौतम ने इन्द्र को शाप दिया कि तुम्हारे सभी अंगों में भग हो जायें।।४४-४६।।

कोपाच्छशाप पत्नीं च रुदतीं भयविह्वलाम्।
त्वं च पाषाणरूपा च महारण्ये भवेति च॥४७॥
ययौ च स्वगृहं शक्रो लज्जैकतानमानसः।
उवाच मधुरं भीता स्वामिनं शोककर्शिता॥४८॥

तब उन्होंने अपनी भयभीत एवं रुदनरत पत्नी अहल्या को शाप दिया कि तुम घोर वन में जाकर पाषाण बनो। उधर इन्द्र तो अत्यन्त लज्जापूर्ण स्थिति में स्वगृह चले गये तथा अत्यन्त भयभीत और शाकार्त्त अहल्या गौतम से मधुर वाणी में कहने लगीं-।।४७-४८।।

अहल्योवाच

मां च दासीं च निर्दोषां कथं त्यजसि धार्मिक।
त्वं च वेदविदां श्रेष्ठो विचारं कुरु धर्मतः॥४९॥

अहल्या कहती हैं-हे धार्मिक! मैं तो दासी तथा निर्दोष हूं। आप तो वेदज्ञों में श्रेष्ठ हैं। आप धर्मतः विचार करिये।।४९।।

गौतम उवाच

त्वां जानामि मनः शुद्धां सुव्रतां च पतिव्रताम्।
त्यक्ष्यामि च तथाऽपि त्वां परवीर्यं च बिभ्रतीम्॥५०॥
परभोग्या च या कान्ता साऽशुद्धा सर्वकर्मसु।
तां यो गच्छेन्महामूढो नरकं तस्य कल्पकम्॥५१॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं परभोग्याश्च (या) निश्चितम्।
उपस्पृशेन्न तस्याश्च हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥५२॥

महर्षि गौतम कहते हैं-मैं जानता हूं कि तुम शुद्ध मन वाली, सुव्रता, पतिव्रता हो, तथापि तुमने

१. ख. ०ज्ञः स्वयं मन्दिरमा०।

अन्य का वीर्य धारण कर लिया है। जो नारी पराये पुरुष की भोग्या हो जाती है, वह सभी दैव-पितृ कार्यादि के लिये अयोग्य मान ली जाती है। जो महामूर्ख व्यक्ति उससे समागम करता है, उस व्यक्ति को कल्पान्त तक नरक में रहना होगा। जो नारी परपुरुष द्वारा उपभोग में ले ली जाती है, उसका स्पर्श किया अन्न मल के समान तथा उसका स्पर्श किया जल मूत्रवत् हो जाता है। ऐसी नारी का पुरुष स्पर्श न करे अन्यथा पूर्वजन्मकृत् पुण्य नष्ट होगा।।५०-५२।।

अनिच्छया च शृङ्गारे स्त्री जारेण न दुष्यति।
दुष्टा स्त्री निश्चितं साध्वी स्वेच्छाशृङ्गारकर्मणि।।५३।।
त्वं शक्रं स्वामिनं मत्वा सुखं भुक्त्वा रतिं गृहे।
पश्चाद्बभूव ते ज्ञानं मां दृष्ट्वा च निशामय।।५४।।
गच्छ गच्छ महारण्यं भव पाषाणरूपिणी।
रामपादाङ्गुलिस्पर्शात्सद्यः पूता भविष्यसि।।५५।।

जो नारी अनिच्छा पूर्वक परपुरुष से संसर्ग करती है, वह दोषयुक्त नहीं होती, तथापि अपनी इच्छा से परभोग्या हो गई नारी दोषी हो जाती है। अतः तुमने इन्द्र को स्वामी समझकर इच्छा पूर्वक सुखसम्भोग करके जब मुझे देखा, तब तुमको वास्तविकता का ज्ञान हुआ। अतः तुम दोषी हो गई। हे अहल्या! अब महावन में जाकर पाषाणरूपा हो जाओ। तदनन्तर श्रीराम के चरणों की उंगली के स्पर्श से तुम पवित्र हो जाओगी।।५३-५५।।

मां सम्प्राप्स्यसि तत्पुण्यात्पुनरेवाऽऽगमिष्यसि।
गच्छ कान्ते महारण्यमित्युक्त्वा तपसे ययौ।।५६।।

उस पुण्य के प्रभाव से तुम यहां आकर पुनः मुझे प्राप्त करोगी। "हे कान्ते! महारण्य में जाओ।" यह कहकर गौतम तप करने चले गये।।५६।।

इत्येवं कथितं सर्वं महेन्द्रदर्पभञ्जनम्। पुनः सम्प्राप लक्ष्मीं च विभोश्च कृपया मुने।।५७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदनारा० एकषष्टितमोऽध्यायः।।६१।।

हे मुनिवर! मैंने तुमसे महेन्द्र दर्पभंग कह दिया। हे मुनि! इन्द्र ने भगवत् कृपा के द्वारा पुनः लक्ष्मी प्राप्त कर लिया।।५७।।

।।६१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

संक्षेप में रामायण का वर्णन

नारद उवाच

ब्रह्मन् केन प्रकारेण रामो दाशरथिः स्वयम्। चकार मोक्षणं कुत्र युगे[1] गौतमयोषितः॥१॥
रामावतारं सुखदं समासेन मनोहरम्। कथयस्व महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे ब्रह्मन्! स्वयं दाशरथी राम ने किस युग में गौतमपत्नी अहल्या का पाषाणरूप से उनका मुक्ति साधन किया था? आप वह मनोहर रामायण कथा संक्षेप में मुझसे कहिये। यह सुनने हेतु मुझे कुतूहल हो रहा है।।१-२।।

नारायण उवाच

ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुर्जातो[2] दशरथात्स्वयम्।
कौसल्यायां च भगवांस्त्रेतायां च मुदाऽन्वितः॥३॥
कैकेय्यां भरतश्चैव रामतुल्यो गुणेन च। लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नः सुमित्रायां गुणार्णवः॥४॥
विश्वामित्रप्रेषितश्च श्रीरामश्च सलक्ष्मणः। प्रययौ मिथिलां रम्यां सीताग्रहणहेतवे॥५॥
दृष्ट्वा पाषाणरूपा च रामो वर्त्मनि कामिनीम्।
विश्वामित्रं च पप्रच्छ कारणं जगदीश्वरः॥६॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महातपाः। उवाच तत्र धर्मिष्ठो रहस्यं सर्वमेव च॥७॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–विष्णु ने ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर दशरथ के गृह में कौशल्या के गर्भ से प्रसन्नता के साथ जन्म लिया। कैकेयी के गर्भ से राम के समान ही गुणी भरत ने तथा सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न ने जन्म लिया था। तदनन्तर श्रीराम ने विश्वामित्र के उपदेश से सीता को प्राप्त करने हेतु लक्ष्मण के साथ सुरम्य मिथिला नगर की यात्रा किया था। जगदीश्वर राम ने जाते समय पथ में पाषाणरूपा कामिनी अहल्या को देखकर विश्वामित्र से इसका कारण पूछा। धर्मिष्ठ महातपा विश्वामित्र ने राम का कथन सुनकर उनसे समस्त गूढ वृत्तान्त कह दिया।।३-७।।

कारणं तन्मुखाच्छ्रुत्वा रामो भुवनपावनः। स्पर्श पादाङ्गुलिना सा बभूव च पद्मिनी॥८॥
सा राममाशिषं कृत्वा प्रययौ भर्तृमन्दिरम्।
शुभाशिषं ददौ तस्मै भार्यां सम्प्राप्य गौतमः॥९॥
रामश्च मिथिलां गत्वा धनुर्भङ्गं शिवस्य च। चकार पाणिग्रहणं सीतायाश्चैव नारद॥१०॥

---

१. क. पुरे।
२. क. दाशरथिर्गृहे।

भुवनों को पावन करने वाले राम ने इसका कारण सुनकर अपनी पैरों की उंगली से पाषाणी अहल्या का स्पर्श किया। चरणस्पर्श होते ही अहल्या पद्मिनी रूप में प्रकट हो गईं। उन्होंने राम को आशीर्वाद दिया तथा अपने पतिगृह चली गईं। तब मुनिप्रवर गौतम ने भी अपनी पत्नी को पुनः पाकर राम को शुभाशीर्वाद प्रदान किया। हे नारद! तदनन्तर श्रीराम ने मिथिला जाकर वहां शिव धनु भग्न किया तथा सीता का पाणिग्रहण कर लिया।।८-१०।।

कृत्वा विवाहं राजेन्द्रो भृगुदर्पं निहत्य च।
अयोध्यां प्रययौ रम्यां क्रीडाकौतुकमङ्गलैः।।११।।

राजा पुत्रं नृपं कर्तुमिषेय कृतसादरम्। सप्ततीर्थोदकं तूर्णमानीय मुनिपुङ्गवान्।।१२।।

हे नारद! उन्होंने विवाह के अन्त में परशुराम का दर्पहरण किया तथा वे रम्य अयोध्या नगर में पहुंचे। राम के सपत्नीक आने पर अयोध्या में नाना प्रकार के क्रीड़ा-कौतुक तथा मङ्गलाचरण होने लगे। तत्पश्चात् राजा दशरथ ने पुत्र राम को राजपद पर अभिषिक्त करने के लिये सप्ततीर्थ जल मंगवा कर श्रेष्ठ मुनिगण को आमन्त्रित किया।।११-१२।।

कृताधिवासं श्रीरामं सर्व मङ्गलसंयुतम्। दृष्ट्वा भरतमाता च कैकेयी शोकविह्वला।।१३।।
वरयामास राजानं पूर्वमङ्गीकृतं वरम्। रामस्य वनवासं च राजत्वं भरतस्य च।।१४।।

सर्वमङ्गलयुक्त तथा अभिषेक विधान हेतु श्रीराम ने रात्रि में कुशासन पर शयन (अधिवास) किया। यह दृश्य देखकर कैकयी शोकविह्वल हो गईं। उन्होंने राजा से उन दो वरों को मांगा, जिसे पूर्वकाल में राजा ने देने का वचन दिया था। प्रथम वर था-राम १४ वर्ष वन में रहे तथा द्वितीय वर था कि भरत राजा बनें।।१३-१४।।

वरं दातुं महाराजो नेयेष प्रेममोहितः। धर्मसत्यभयेनैवोवाच रामो नृपं सुधीः।।१५।।

जब राम के वात्सल्य प्रेम में मोहित राजा दशरथ ने वर नहीं देना चाहा तब शास्त्रवेत्ता राम धर्म तथा सत्य के भय के कारण राजा दशरथ से कहने लगे।।१५।।

श्रीराम उवाच

तडागशतदानेन यत्पुण्यं लभते नरः। ततोऽधिकं च लभते वापीदानेन निश्चितम्।।१६।।
दशवापीप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः। ततोऽधिकं च लभते पुण्यं कन्याप्रदानतः।।१७।।
दशकन्याप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः। ततोऽधिकं च लभते यज्ञैकेन नराधिप।।१८।।
शतयज्ञेन यत्पुण्यं लभते पुण्यकृज्जनः। ततोऽधिकं च लभते पुत्रास्यदर्शनेन च।।१९।।

श्रीराम कहते हैं-१०० तड़ाग (तालाब) बनवाकर दान करने का जो फल है, उससे अधिक पुण्य एक बाबली दान से मिल जाता है। १० बाबली दान का जो पुण्य है, उससे अधिक पुण्य कन्यादान से प्राप्त होता है। १० कन्या का कन्यादान करने का जो फल है, उससे अधिक फल हे राजन्! एक यज्ञ

के करने से होता है। १०० यज्ञ करने का जो पुण्यफल पुण्यात्मा व्यक्ति प्राप्त करता है, उससे अधिक पुण्य व्यक्ति को पुत्र का मुख देखने से मिलता है।।१६-१९।।

दर्शने शतपुत्राणां यत्पुण्यं लभते नरः। तत्पुण्यं लभते नूनं पुण्यवान्सत्यपालनात्॥२०॥
न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्। न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात्परः॥२१॥
नास्ति धर्मात्परो बन्धुर्नास्ति धर्मात्परं धनम्।
धर्मात्प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः॥२२॥

१०० पुत्रों के दर्शन से मनुष्य को जो फल मिलता है, वही पुण्य पुण्यवान् व्यक्ति को सत्य का पालन करने से प्राप्त हो जाता है। असत्य के समान पातक नहीं है तथा सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। गंगा से श्रेष्ठ कोई तीर्थ नहीं है। केशव से बढ़कर कोई देवता नहीं है। धर्म से बढ़कर कोई बन्धु नहीं होता, धर्म से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। धर्म से अधिक कोई प्रिय नहीं है। आप यत्नतः धर्म की रक्षा करें।।२०-२२।।

स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत्सर्वत्र मङ्गलम्। यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम्॥२३॥
चतुर्दशाब्दं धर्मेण त्यक्त्वा गृहसुखं भ्रमन्।
वनवासं करिष्यामि सत्यस्य पालनाय ते॥२४॥
कृत्वा सत्यं च शपथमिच्छयाऽनिच्छयाऽथवा।
न कुर्यात्पालनं यो हि भस्मान्तं तस्य सूतकम्॥२५॥
कुम्भीपाके च पचति यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
ततो मूको भवेत्कुष्ठी मानवः सप्तजन्मसु॥२६॥

स्वधर्म की रक्षा करने से सभी स्थान पर सर्वदा मंगल होता है। यश, सुप्रतिष्ठा, प्रताप तथा पूज्यता भी मिलती है। मैं धर्मानुसार आपके सत्यपालन के निमित्त गृहसुख त्यागकर वनवासी होकर वन-वन में विचरण करूंगा। इच्छा से अथवा अनिच्छा पूर्वक जो शपथ लेकर उसका प्रतिपालन नहीं करता वह चिता में भस्म होने तक अपवित्र रहता है। वह चन्द्र-सूर्य की अवस्थिति तक कुंभीपाक नरक में यन्त्रणा भोग करता है। तत्पश्चात् वह ७ जन्मों तक मूक एवं कुष्ठरोगी होकर रहता है।।२३-२६।।

इत्येवमुक्त्वा श्रीरामो विधाय वल्कलं जटाम्।
प्रययौ च महारण्ये सीतया लक्ष्मणेन च॥२७॥
पुत्रशोकान्महाराजस्तत्याज स्वतनुं मुने। पालनाय पितुः सत्यं रामो बभ्राम कानन॥२८॥
कालान्तरे महारण्ये भगिनी रावणस्य च।
भ्रमन्ती कानने घोरे भर्त्रा सार्धं सुकौतुकात्॥२९॥

ददर्श रामं कुलटा कामार्ता राक्षसी तदा। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी मूर्च्छामाप स्मरेण च॥३०॥

यह कहकर श्रीराम ने जटा एवं वल्कल धारण किया। तत्पश्चात् वे सीता तथा लक्ष्मण के साथ महावन में चले गये। हे मुनिवर! तदनन्तर महाराज दशरथ ने पुत्र शोक में स्वदेह त्याग कर दिया। इधर श्रीराम पिता की शपथ के सत्य का पालन करने के लिये वन-वन भ्रमण करने लगे। कुछ समय व्यतीत होने पर रावण की बहन शूर्पणखा पति के साथ उस भयानक महारण्य में भ्रमण करते-करते श्रीराम को देखा। राम को देखकर वह कुलटा राक्षसी कामार्त्ता हो गई। उसके सर्वाङ्ग पुलकित हो उठे। वह कामभाव के कारण सुध-बुध खो बैठी थी।।२७-३०।।

श्रीरामनिकटं गत्वा सस्मितोवाच कामुकी। शश्वद्यौवनसंयुक्ताऽतिप्रौढा कामदुर्मदा॥३१॥

वह कामुकी मुस्कराते हुये राम के पास गई तदनन्तर वह सतत् यौवन संयुक्ता अतिप्रौढ़ा कामोन्मत्त होकर उनसे कहने लगी।।३१।।

शूर्पणखोवाच

हे राम हे घनश्याम रूपधाम गुणान्वित।
मायानुरक्तां वनितां मां गृहाण सुनिर्जने॥३२॥

शूपर्णखा कहती है—हे राम! घनश्याम! आप रूपधाम तथा गुणी हैं। इस निर्जन वन में मैं आप पर अनुरक्त होकर आई हूं। मुझ मायानुरक्ता वनिता को ग्रहण करिये।।३२।।

श्रुत्वा शूर्पणखावाक्यं धर्मं संस्मृत्य धार्मिकः।
उवाच मधुरं वाक्यं शापभीतश्च नारद॥३३॥

हे नारद! शूर्पणखा का वचन सुनकर राम ने शाप के भय से भीत होकर धर्म का स्मरण करके मधुर वचन कहा—।।३३।।

श्रीराम उवाच

अम्ब मातः सभार्योऽहमभार्यं गच्छ मेऽनुजम्।
दुःखं प्रियोऽन्यां प्रभजेदितरं च सुखालयम्॥३४॥

श्रीराम कहते हैं—हे अम्बे! माता! मैं स्वयं पत्नीसहित हूं। अतः तुम मेरे छोटे भाई लक्ष्मण के पास जाओ। पत्नी के लिये यह परम दुःखदायी स्थिति है कि पति अन्य नारी से प्रेम करे। तुम भार्या रहित आये मेरे छोटे भाई के पास जाओ। अन्य सुख के आलय व्यक्ति के पास जाओ।।३४।।

रामस्य वचनं श्रुत्वा प्रययौ लक्ष्मणं मुदा।
ददर्श लक्ष्मणं शान्तं कान्तं च लक्षणान्वितम्॥३५॥

राम का कथन सुनकर हर्षित होती शूपर्णखा लक्ष्मण के पास गई। वहां उसने उत्तम लक्षण वाले सुरूप शान्त लक्षमण को देखा।।३५।।

मां भजस्व महाभागेत्युवाच च पुनः पुनः।
लक्ष्मणस्तद्वचः श्रुत्वा तामुवाच कुतूहलात्॥३६॥

शूर्पणखा ने लक्ष्मण से बारम्बार कहा। "हे महाभाग! मेरा उपभोग पुनः-पुनः करो।" लक्ष्मण ने उसका वचन कुतूहल पूर्वक सुनकर उससे कहा-॥३६॥

लक्ष्मण उवाच

विहाय रामं सर्वेशं हे मूढे दासमिच्छसि।
सीतादासी च मत्पत्नी सीतादासोऽहमेव च॥३७॥
भव सीतासपत्नी त्वं गच्छ रामं मदीश्वरम्।
तव पुत्रो भविष्यामि सीतायाश्च यथा सति॥३८॥

लक्ष्मण कहते हैं–हे मूढ़ा! तुम सर्वेश राम को छोड़कर उनके दास की कामना कर रही हो? मैं तो देवी सीता का दास हूं। मेरी पत्नी तक भगवती सीता की दासी है। तुम मेरे ईश्वर राम के पास जाओ। तुम सीता का सौत बन जाओ। हे सती! तब मैं जो सीता का पुत्ररूप हूं, तदनुरूप तुम्हारा भी पुत्र हो जाऊंगा॥३७-३८॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा कामेन हृतमानसा।
उवाच लक्ष्मणं मूढा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका॥३९॥

कामवेग से हतबुद्धि होकर शूर्पणखा ने जब लक्ष्मण का यह कथन सुना, तब उस मूढ़ा के कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो गये। तब उसने लक्ष्मण से कहा-॥३९॥

शर्पूणखोवाच

यदि त्यजसि मां मूढ कामात्स्वयमुपस्थिताम्।
युवयोश्च विपत्तिश्च भविष्यति न संशयः॥४०॥
ब्रह्मा च मोहिनीं त्यक्त्वा विश्वेऽपूज्यो बभूव सः।
रम्भाशापेन दक्षश्च छागमस्तो बभूव सः॥४१॥
स्ववैंद्यश्चोर्वशीशापाद्यज्ञभागविवर्जितः। रूपहीनः कुबेरश्च मेनाशापेन लक्ष्मण॥४२॥

शूर्पणखा कहती है–हे निबोध! मैं काम के वशीभूत होकर स्वयं तुम्हारे पास आई हूं। यदि तुम मेरा त्याग करते हो, तब तुम दोनों पर विपत्ति आयेगी। यह निःसंशय है। ब्रह्मा मोहिनी का त्याग करके जगत् में अपूज्य हो गये। रम्भा के शाप के कारण दक्ष बकरे के मुख वाले हो गये। उर्वशी के शाप के कारण स्वर्ग के वैद्य अश्विनीकुमार यज्ञभाग रहित हो गये। हे लक्ष्मण! मेना के शाप से कुबेर कुरूप हो गये।॥४०-४२॥

कामो घृताचीशापेन बभूव भस्मसाच्छिवात्। बलिर्मदालसाशापाद्भ्रष्टराज्यो बभूव ह॥४३॥

शापेन मिश्रकेश्याश्च हृतभार्यो बृहस्पतिः। मम शापात्तथा रामो हृतभार्यो भविष्यति॥४४॥
कामातुरां यौवनस्थां भार्यां स्वयमुपस्थिताम्।
न त्यजेद्धर्मभीतश्च श्रुतं माध्यन्दिने पुरा॥४५॥

घृताची के शाप के कारण कामदेव भस्मरूप हो गये। मदालसा के शाप के कारण बलिराज राजभ्रष्ट हो गये। मिश्रकेशी के शाप के कारण बृहस्पति की पत्नी तारा का हरण हो गया। मेरे शाप के कारण ही राम की पत्नी सीता का हरण होगा। जब कामातुरा यौवना युवती नारी स्वयं पुरुष के पास आये, तब धर्मभीत (धर्म से डरने वाला) व्यक्ति उसका त्याग न करे। यह पूर्वकाल में माध्यन्दिनी शाखा में कहा गया है।।४३-४५।।

इह त्यक्त्वा विपद्ग्रस्तः परत्र नरकं व्रजेत्।
श्रुत्वा शूर्पणखावाक्यमर्धचन्द्रेण लक्ष्मणः॥४६॥
चिच्छेद नासिकां तस्याः क्षुरधारेण लीलया।
तस्या भ्राता च युयुधे बलवान्खरदूषणः॥४७॥
ससैन्यो लक्ष्मणास्त्रेण स जगाम यमालयम्। चतुर्दशसहस्त्रं च राक्षसान्खूरदूषणम्॥४८॥
मृतान्दृष्ट्वा शर्पूणखा भर्त्सयामास रावणम्। सर्वं निवेदनं कृत्वा जगाम पुष्करं तदा॥४९॥
ब्रह्मणश्च वरं प्राप कृत्वा च दुष्करं तपः।
उवाच तादृशीं दृष्ट्वा निराहारां तपस्विनीम्॥५०॥
सर्वज्ञस्तन्मनो मत्वा कृपासिन्धुश्च नारद॥५१॥

"इस प्रकार की नारी का त्याग करने वाला इस लोक में विपदाग्रस्त हो कर मरणान्त में नरकगामी होता है।" शूर्पणखा का यह कथन सुनकर क्षुरधारा के समान बाण से अनायास उसकी नासिका काट दिया। तब उसके बली भ्राता खर-दूषण ने वहां श्रीराम से युद्ध किया। उनको लक्ष्मण ने अपने अस्त्रों से सेनासहित यमपुर भेज दिया। जब १४००० राक्षस सैन्य सहित खर-दूषण का वध हो गया शूर्पणखा ने जाकर अपने भाई रावण की भर्त्सना किया। वह समस्त वृत्तान्त रावण से कहकर पुष्कर तीर्थ गई। वहां उसने दुष्कर तप करके ब्रह्मा से वरलाभ किया। हे नारद! जब उस निराहारा, व्रती, तपस्विनी को सर्वज्ञ ब्रह्मदेव ने देखा, तब उन्होंने समस्त स्थिति को जान लिया। तत्पश्चात् हे नारद! कृपासागर ब्रह्मा कहने लगे।।४६-५१।।

ब्रह्मोवाच

अप्राप्य रामं दुष्प्रापं करोषि दुष्करं तपः। जितेन्द्रियाणां प्रवरं लक्ष्मणं धर्मलक्षणम्॥५२॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरं प्रकृतेः परम्। जन्मान्तरे च भर्तारं प्राप्स्यसि त्वं वरानने॥५३॥

ब्रह्मा कहते हैं-हे शूर्पणखा! तुम दुष्प्राप्य राम को किंवा सर्वलक्षणान्वित जितेन्द्रिय प्रवर

लक्ष्मण को न पाकर ऐसी दुष्कर तप कर रही हो। इससे मैं अवगत हो गया। हे वरानने! तुम ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि के भी ईश्वर प्रकृति से अतीत श्रीराम को अन्य जन्म में पतिरूप से प्राप्त करोगी।"।।५२-५३।।

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च जगाम स्वालयं मुदा।
देहं तत्याज वा वह्नौ सा च कुब्जा बभूव ह।।५४।।
अथ शूर्पणखा वाक्यात्कोपात्कम्पितविग्रहः।
जहार मायया सीतां मायावी राक्षसेश्वरः।।५५।।
सीतां न दृष्ट्वा रामश्च मूर्च्छां प्राप चिरं मुने।
चेतनां कारयामास भ्राता चाऽऽध्यात्मिकेन च।।५६।।
ततो बभ्राम गहनं शैलं च कन्दरं नदम्। अहर्निशं च शोकार्तो मुनीनामाश्रमं मुने।।५७।।

यह कहकर मुदित ब्रह्मा अपने लोक चले गये। शूर्पणखा ने अग्नि में कूदकर अपना शरीर त्याग किया। कृष्णावतार के समय वह मथुरा में कुब्जा रूप से जन्मी थी। उधर शूर्पणखा की भर्त्सना सुनकर रावण का शरीर क्रोध से कम्पित हो उठा। उस मायावी राक्षसेश्वर ने माया से सीताहरण कर लिया। हे मुनि! सीता को जब राम ने वापस आकर नहीं देखा, तब राम मूर्च्छित हो गये। तब लक्ष्मण ने आध्यात्मिक वाक्यों से राम को प्रबोधित किया। हे मुनिवर! तब से श्रीराम शोकाकुल होकर दिन-रात, कभी गहन वन में, कभी पर्वतों पर, कभी कन्दराओं में, कभी नदों पर, कभी मुनियों के आश्रमों में भटकने लगे।।५३-५७।।

चिरमन्वेषणं कृत्वा च दृष्ट्वा जानकीं विभुः।
चकार मित्रतां रामः सुग्रीवेण स्वयं प्रभुः।।५८।।
निहत्य वालिनं बाणैर्ददौ राज्यं च लीलया।
सुग्रीवाय च मित्राय स्वीकारपालनाय वै।।५९।।
दूतान्प्रस्थापयामास सर्वत्र वानरेश्वरः। तस्थौ सुग्रीवभवने श्रीरामश्च सलक्ष्मणः।।६०।।

जब दीर्घकाल पर्यन्त खोजकर भी राम कहीं भी जानकी को नहीं देख सकें, तब राम ने स्वयं सुग्रीव से मित्रता किया। श्रीराम ने अनायास बाली का वध करके सुग्रीव को राज्य प्रदान कर दिया। तदनन्तर सुग्रीव ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुये सीता का अन्वेषण करने हेतु सर्वत्र अपने दूत भेजे। श्रीराम तथा लक्ष्मण सुग्रीव के गृह में रहने लगे।।५८-६०।।

हनूमते वरं दत्त्वा रम्यं रत्नाङ्गुलीयकम्। सीतायै शुभसन्देशं प्राणधारणकारणम्।।६१।।
तं च प्रस्थापयामास दक्षिणां दिशमुत्तमाम्।
सुप्रीत्याऽऽलिङ्गनं दत्त्वा पादरेणून्सुदुर्लभान्।।६२।।

श्रीराम ने हनुमान् को वर प्रदान किया तथा उन्होंने सीता को अपने दूत होने का प्रमाण देने हेतु

हनुमान् को अपनी मनोहर अंगूठी प्रदान किया तथा सीता प्राण धारण किये रहे, इस मन्तव्य से सीता को शुभसंदेश भी हनुमान के माध्यम से भेजा। तदनन्तर राम ने प्रीति पूर्वक हनुमान को हृदय से लगाने के उपरान्त अपनी दुर्लभ चरणधूलि प्रदान करके दक्षिण दिशा की ओर हनुमान् को भेजा।।६१-६२।।

हनुमान्प्रययौ लङ्कां सीतान्वेषणहेतवे। रामादधीतसंदेशो ययौ रुद्रकालोद्भवः।।६३।।

अशोककानने सीतां ददर्श शोककर्शिताम्।
निराहारामतिकृशां कुह्वां चन्द्रकलामिव।।६४।।
सततं राम रामेति जपन्तीं भक्तिपूर्वकम्।
बिभ्रन्तीं च जटाभारं तप्तकाञ्चनसन्निभाम्।।६५।।
ध्यायमानां पदाब्जं च श्रीरामस्य दिवानिशम्।
[१]शुद्धाशयां सुशीलां च सुव्रतां च पतिव्रताम्।।६६।।
महालक्ष्मीलक्ष्मयुक्तां प्रज्वलन्तीं स्वतेजसा।
पुण्यदां सर्वतीर्थानां दृष्ट्वा भुवनपावनीम्।।६७।।

प्रणम्य मातरं दृष्ट्वा रुदतीं वायुनन्दनः। रत्नाङ्गुलीयं रामस्य ददौ तस्यै मुदाऽन्वितः।।६८।।
रुरोद धर्मी तां दृष्ट्वा धृत्वा तच्चरणाम्बुजम्। उवाच रामसन्देशं सीताजीवनरक्षणम्।।६९।।

तदनन्तर हनुमान उत्तम दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े। हनुमान् रुद्रकला से उत्पन्न हैं। राम से सीता हेतु संदेश पाकर हनुमान सीता का अन्वेषण करने हेतु लंका चले गये। लंका में उपस्थित होकर हनुमान ने अशोक कानन में शोक से क्लिष्ट, निराहारा, दुर्बल शरीर वाली तथा अमावस्या कालीन चन्द्रकला जैसी सीता को देखा! वे सतत् राम-राम का जप भक्तिभाव से कर रही थीं। उन शुद्धाशया, सुव्रता, सुशीला, पतिव्रता, अहर्निश श्रीराम के चरणकमलों के ध्यान में निमग्ना सीता का हनुमान ने दर्शन किया। उन्होंने जटाभार धारण किया था। उनका देहवर्ण तप्त काञ्चन के समान था। महालक्ष्मी के समान लक्षण से युक्त, अपने तेज से दीप्यमान, सभी तीर्थों को भी पुण्य प्रदान करने वाली तथा भुवनों को पवित्र करने वाली माता सीता को हनुमान ने देखा जो रुदन कर रहीं थीं। हनुमान ने हर्ष के साथ सीता को श्रीराम की मुद्रिका प्रदान किया तथा स्वयं भी वे धार्मिक हनुमान माता सीता के चरणों को पकड़कर रुदन करने लगे। तदनन्तर उन्होंने राम का जीवन रक्षक संदेश कहा-।।६३-६९।।

हनुमानुवाच

पारेसमुद्रं श्रीरामः सन्नद्धश्च सलक्ष्मणः। बभूव राममित्रं च सुग्रीवो बलकान्कपिः।।७०।।

रामश्च वालिनं हत्वा राज्यं निष्कण्टकं ददौ।
सुग्रीवाय च मित्राय तद्भार्यां वालिना हृताम्।।७१।।

---
१. ख. शुद्धशय्यां।

सुग्रीवश्च तवोद्धारं स्वीचकार च धर्मतः। वानराश्च ययुः सर्वे तवान्वेषणकारणात्॥७२॥
प्राप्य मङ्गलवार्तां च मत्तो राजीवलोचनः।
गम्भीरं सागरं बद्ध्वा सोऽचिरेणाऽऽगमिष्यति॥७३॥
निहत्य रावणं पापं सपुत्रं च सबान्धवम्। करिष्यत्यचिरेणैव हे मातस्तव मोक्षणम्॥७४॥

श्रीहनुमान् कहते हैं—हे माता! समुद्र के उस पार श्रीराम लक्ष्मण के सहित पूर्णतः सन्नद्ध होकर स्थित हैं। महाबली कपिप्रवर सुग्रीव उनके मित्र हैं। श्रीराम ने बाली का वध करके सुग्रीव को निष्कण्टक राज्य तथा बाली द्वारा हरी गई उनकी भार्या को प्रदान किया है। सुग्रीव ने धर्मतः आपके उद्धारार्थ प्रण किया है। तभी वानरगण आपके अन्वेषण के लिये चारों ओर भेजे गये। हे माता! राजीवलोचन श्रीराम मेरे मुख से आपकी मंगल स्थिति सुनते ही इस गहरे सागर को सेतुबन्ध द्वारा पार करके शीघ्र आगमन करेंगे। हे माता! वे शीघ्र पुत्र-बान्धवों के साथ रावण का नाश करके आपका यहां से उद्धार कर देंगे!॥७०-७४॥

अद्य रत्नमयीं लङ्कां निःशङ्कस्त्वत्प्रसादतः।
भस्मीभूतां करिष्यामि मातः पश्य च सस्मितम्॥७५॥
मर्कटीडिम्भतुल्यां च लङ्कां पश्यामि सुव्रते। मूत्रतुल्यं समुद्रं च शरावमिव भूतलम्॥७६॥
पिपीलिकासंघमिव ससैन्यं रावणं तथा। संहर्तुं च समर्थोऽहं मुहूर्तार्धेन लीलया॥७७॥
रामप्रतिज्ञारक्षार्थं न हनिष्यामि साम्प्रतम्।
स्वस्था भव महाभागे त्यज भीतिं मदीश्वरि॥७८॥

मैं आपकी कृपा से इस रत्नमयी लंका को आज ही भस्मसात् करूंगा। आप हंसते हुये वह दृश्य देखियेगा। हे सुव्रते! मैं इस लंका को मात्र वानरी के गर्भ के भ्रूण के समान ही देखता हूं। यह समुद्र मेरे लिये मूत्रतुल्य है। पृथिवी मात्र मिट्टी के छोटे कटोरे (कसोरा) के ही समान है। मैं मात्र आधे मुहूर्त्त में अनायास सेनासहित रावण का नाश कर सकता हूं। ये मेरे लिये चींटी के झुण्ड के ही समान हैं, तथापि राम की प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये मैं सम्प्रति उन सबका वध नहीं करूंगा। हे मेरी ईश्वरी माता! आप स्वस्थ हो जाये! हे महाभागे! आप भय त्याग करिये।॥७५-७८॥

वानरस्य वचः श्रुत्वा रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः। उवाच वचनं भीता सीता रामपतिव्रता॥७९॥

वानर हनुमान का कथन सुनकर राम की पतिव्रता पत्नी बारम्बार रुदन करने लगीं। तदनन्तर उन भयभीत सीता ने हनुमान से कहा—॥७९॥

सीतोवाच

अये जीवति मे रामो मच्छोकार्णवदारुणात्॥८०॥
अपि मे कुशली नाथः कौसल्यानन्दनः प्रभुः।
कीदृशश्च कृशाङ्गश्च जानकीजीवनोऽधुना॥८१॥

किमाहारश्च किं भुङ्क्ते मम प्राणाधिकः प्रियः।
अपि पारे समुद्रस्य सत्यं सीतापतिः स्वयम्॥८२॥
अपि सत्यं स सन्नद्धो न शोकेन हतः प्रभुः।
अपि स्मरति मां पापां स्वामिनो दुःखरूपिणीम्॥८३॥

देवी सीता कहती हैं–हे पुत्र! श्रीराम मेरे विछोह रूपी दारुण शोकसागर में निमग्न होकर भी जीवित तो हैं? क्या मेरे नाथ कौशल्यानन्दन प्रभु कुशल तो हैं? वे जानकी जीवन इस समय कितने दुर्बल होंगे? वे मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय क्या आहार करते हैं? क्या यह सत्य है कि वे सीतापति राम क्या समुद्र के उस पार स्थित हैं? क्या मेरे प्रभु शोकाहत तो नहीं हैं? क्या यह सत्य है कि वे यहां आने हेतु सन्नद्ध हैं? क्या वे इस दुःखस्वरूपा मुझ पापिनी पत्नी का स्मरण करते हैं, जो स्वामी के लिये दुःखदायिनी हैं!॥८०-८३॥

मदर्थे कति दुःखं वा सम्प्राप स मदीश्वरः।
हारो नाऽऽरोपितः कण्ठे पुरा व्यवहितो रतौ॥८४॥
अधुनैवाऽऽवयोर्मध्ये समुद्रः शतयोजनः। अपि द्रक्ष्यामि तं रामं करुणासागरं प्रभुम्॥८५॥

उन मेरे स्वामी को मेरे कारण कितना दुःख उठाना पड़ रहा है? हम दोनों रतिकाल में गले में इस भय से हार नहीं पहनते थे कि उसके कारण हम दोनों के बीच में उतनी भी दूरी न रहे जितना स्थूल वह हार है? परन्तु अब तो हम दोनों के बीच में १०० योजन समुद्र का व्यवधान है! क्या मैं करुणासागर प्रभु राम का दर्शनलाभ कर सकूंगी?॥८४-८५॥

कान्तं शान्तं नितान्तं च धर्मिष्ठं धर्मकर्मणि।
अपि सेवां करिष्यामि पादपद्मे पुनः प्रभोः॥८६॥
पतिसेवाविहीनाया मूढाया जीवनं वृथा। अपि मे धर्मपुत्रश्च सत्यं जीवति लक्ष्मणः॥८७॥

मेरे कान्त श्रीराम शान्त, नितान्त धार्मिक हैं। वे धर्मकर्म निरत रहने वाले हैं। क्या मैं उन प्रभु के चरण कमलों की पुनः सेवा पूर्ववत् कर सकूंगी? मुझ पतिसेवाविहीन मूर्खा नारी का जीवन व्यर्थ है। क्या धर्मपुत्र लक्ष्मण वास्तव में जीवित हैं?॥८६-८७॥

मच्छोकसागरे मग्नो भग्नदर्पो मया विना। वीराणां प्रवरो धर्मी देवकल्पश्च देवरः॥८८॥
अपि सत्यं ससंन्नद्धो मत्प्रभोरनुजः सदा।
अपि द्रक्ष्यामि सत्यं तं लक्ष्मणं धर्मलक्षणम्।
प्राणानामधिकं प्रेम्णा धन्यं पुण्यस्वरूपिणम्॥८९॥

वे निश्चय मुझे न देखकर शोकसागर में मग्न तथा दर्प रहित हो गये होंगे। वे वीरों में श्रेष्ठ लक्ष्मण जो धर्मशील प्रभु राम के अनुज तथा देवता जैसे देवर हैं, क्या वास्तव में मेरे यहां से उद्धारार्थ

सन्नद्ध हैं? क्या मैं वास्तव में धर्म के लक्षण रूप, प्रेम के कारण प्राणाधिक प्रिय पुण्यस्वरूप लक्ष्मण को पुनः देख सकूंगी?॥८८-८९॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा दत्त्वा प्रत्युत्तरं शुभम्।
भस्मीभूतां च तां लङ्कां चकार लीलया मुने॥९०॥
पुनः प्रबोधं तस्यै च दत्त्वा वायुसुतः कपिः।
प्रययौ लीलया वेगाद्यत्र राजीवलोचनः॥९१॥
सर्वं तत्कथयामास वृत्तान्तं मातुरेव च। सीतामङ्गलवृत्तान्तं श्रुत्वा रामो रुरोद च॥९२॥

हे मुनिवर! सीता का यह कथन सुनकर हनुमान् ने उनको शुभ प्रत्युत्तर दिया तथा उन्होंने अनायास लंका को भस्मीभूत कर दिया। तदनन्तर वायुनन्दन कपि हनुमान ने सीता को पुनः आश्वस्त करके समुद्र को अनायास पार किया तथा शीघ्र राजीवलोचन राम के पास जाकर माता सीता के मंगल का वृत्तान्त कहा। यह सुनकर श्रीराम रोने लगे॥९०-९२॥

रुरोदोच्चैर्लक्ष्मणश्च सुग्रीवश्चापि नारद। वानरा रुरुदुः सर्वे महाबलपराक्रमाः॥९३॥
निबध्य सेतुं लङ्कां च प्रययौ रघुनन्दनः। ससैन्यः सानुजः शीघ्रं सन्नद्धश्चापि नारद॥९४॥
निहत्य रावणं रामो रणं कृत्वा सबान्धवम्।
चकार मोक्षणं ब्रह्मन् सीतायाश्च शुभे क्षणे॥९५॥

हे नारद! वहां लक्ष्मण तथा सुग्रीव भी उच्च स्वर में रुदन करने लगे। तदनन्तर महाबली एवं पराक्रमी वानरगण भी रुदन करने लगे। तत्पश्चात् हे नारद! राम ने लक्ष्मण तथा लक्ष्मण के साथ सन्नद्ध होकर सागर पर सेतु बनवाकर लंका प्रयाण किया। वहां जाकर राम ने रणभूमि में बन्धु-बान्धवों के साथ रावण वध कर दिया। हे ब्रह्मन्! तदनन्तर शुभक्षण में वहां से सीता को मुक्त कराया!॥९३-९५॥

कृत्वा पुष्पकयानेन सीतां सत्यपरायणाम्।
अयोध्यां प्रययौ शीघ्रं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः॥९६॥
क्रीडां चकार भगवान् सीतां कृत्वा च वक्षसि।
विजहौ विरहज्वालां सीता रामश्च तत्क्षणम्॥९७॥
सप्तद्वीपेश्वरो रामो बभूव पृथिवीतले।
बभूव निखिला पृथ्वी आधिव्याधिविवर्जिता॥९८॥

तत्पश्चात् सत्यपरायण प्रभु राम सीता को पुष्पक विमान पर बैठाकर क्रीड़ा- कौतुक-मंगल के साथ अयोध्या नगरी आये। श्रीराम सीता को हृदय से लगाकर क्रीड़ा करने लगे। इस प्रकार राम-सीता की विरहज्वाला तत्क्षण शान्त हो गई। पृथिवी पर राम ने सातों द्वीपों पर राज्य किया उस समय समस्त पृथिवीं आधि-व्याधि से रहित हो गई॥९६-९८॥

बभूवतू रामपुत्रौ धार्मिकौ च कुशीलवौ। तयोश्च पुत्रैः पौत्रैश्च सूर्यवंशोद्भवा नृपाः॥९९॥
इति ते कथितं वत्स श्रीरामचरितं शुभम्। सुखदं मोक्षदं सारं पारपोतं भवार्णवे॥१००॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदनारा० श्रीरामचरितं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

भगवान् राम के लव, कुश नामक दो धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुये। इनके पुत्र-पौत्रों से सूर्यवंश के अन्य राजाओं का भी क्रमशः जन्म हुआ था। हे वत्स! यह मैंने शुभ रामचरित कह दिया। यह सुखद, मोक्षप्रद तथा साररूप है। यह संसार-सागर को पार कराने के लिये जहाज के समान है।॥९९-१००॥

॥६२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

कंस द्वारा दुःस्वप्नदर्शन

नारायण उवाच

अथ कंसो विचिन्त्यैवं दृष्ट्वा दुःस्वप्नमेव च।
समुद्विग्नो महाभीतो निराहारो निरुत्सुकः॥१॥
पुत्रं मित्रं बन्धुगणं बान्धवं च पुरोहितम्। समानीय सभामध्ये तानुवाच सुदुःखितः॥२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–कंस ने रात्रि में जब दुःस्वप्न देखा, तब वह अतिशय उद्विग्न, चिन्तातुर हो गया। वह महान् भयग्रस्त उत्सुकता रहित हो गया। वह आहार भी नहीं करता था। उसने दुःखित होकर पुत्र, मित्र, बन्धु-बान्धव, पुरोहित को सभा में बुलाकर कहा–॥१-२॥

कंस उवाच

माया दृष्टो निशीथे[1] यो दुःस्वप्नो हि भयप्रदः।
निबोधत बुधाः सर्वे बान्धवाश्च पुरोहिताः॥३॥
बिभ्रती रक्तपुष्पाणां मालां सा रक्तचन्दनम्।
रक्ताम्बरं खड्गतीक्ष्णं खर्परं च भयङ्करम्॥४॥
प्रकृत्याट्टाट्टहासं च लोलजिह्वा भयङ्करी। अतीव वृद्धा कृष्णाङ्गी नगरे मम नृत्यति॥५॥

१. क. निशाशेषे।

कंस कहता है—मैंने रात्रि में भयानक दुःस्वप्न देखा। वह आप बुद्धिमान लोग, सभी बान्धव एवं पुरोहित सुने। मैंने देखा कि रक्तवर्ण पुष्पमाला पहने, रक्तचन्दन लगाये, रक्तवस्त्रधारिणी हाथों में तीक्ष्ण खड्ग तथा भयंकर खप्पर हाथों में लिये, वृद्धवय वाली तथा कज्जल जैसे वर्णवाली नारी नृत्य कर रही है! वह भयानक जिह्वा लपलपाती घोर अट्टहास कर रही है।।३-५।।

मुक्तकेशी छिन्ननासा कृष्णा कृष्णाम्बरप्रिया।
विधवा सा महाशूद्री मामालिङ्गितुमिच्छति॥६॥

मैंने स्वप्न में वहीं एक अन्य खुले बालों वाली, कटे नाक वाली, काली, काले रंग का वस्त्र पहने, महाशूद्री एक विधवा को देखा जो मेरा आलिङ्गन करने को इच्छुक थी।।६।।

मलिनं चैलखण्डं च बिभ्रती रूक्षमूर्धजान्। दधती चूर्णतिलकं कपोलं[1] मम वक्षसि॥७॥

कृष्णवर्णानि पक्वानि च्छिन्नभिन्नानि सत्यक।
पतन्ति कृत्वा शब्दांश्च शश्वत्तालफलानि च॥८॥

उसने वस्त्रों की स्थिति मलिन-फटी हुई थी। उसके केश रूक्ष थे। उसने कपोल पर तिलक के रूप में चूर्ण धारण किया था। हे विप्र! हे सत्यक! मैंने स्वप्न में देखा कि मेरे कपोल तथा मेरे वक्ष पर ताड़ वृक्ष के कृष्णवर्ण पक्व छिन्न-भिन्न फल शब्द के साथ बराबर गिरते जा रहे हैं।।७-८।।

कुचैलो विकृताकारो म्लेच्छो हि रूक्षमूर्धजः।
ददाति मह्यं भूषायां छिन्नभिन्नकपर्दकान्॥९॥
महारुष्टा च दिव्या स्त्री पतिपुत्रवती सती।
बभञ्ज पूर्णकुम्भं च साऽभिशप्य पुनः पुनः॥१०॥
अम्लानामोड्रमालां च रक्तचन्दनचर्चिताम्।
ददाति मह्यं विप्रश्च महारुष्टोऽतिशप्य च॥११॥

मैंने उसी स्वप्न में देखा कि मैले वस्त्र पहने, विकृत आकार वाला, रूखे बालों वाला म्लेच्छ मुझे टूटी हुई कौड़ियां आभूषण निर्माणार्थ दे रहा है। एक पति पुत्रवती स्त्री दिव्यनारी अत्यन्त रुष्ट होकर पूर्ण कलश को तोड़ते हुये मुझे पुनः-पुनः शाप दे रही है। एक महाक्रोधयुक्त ब्राह्मण रक्तचन्दनचर्चित अम्लान माला जो उसने पहन रखा था मुझे शाप देते हुये प्रदान कर रहा है।।९-११।।

क्षणमङ्गारवृष्टिश्च भस्मवृष्टिः क्षणं क्षणम्। क्षणं क्षणं रक्तवृष्टिर्भवेच्च नगरे मम॥१२॥

वानरं वायसं श्वानं भल्लूकं सूकरं खरम्।
पश्यामि विकटाकारं शब्दं कुर्वन्तमुल्बणम्॥१३॥
पश्यामि शुष्ककाष्ठानां राशिमम्लानकज्जलम्।
अरुणोदयवेलायां कपींश्छिन्ननखानि च॥१४॥

१. क. कपाले।

पीतवस्त्रपरिधाना शुक्लचन्दनचर्चिता। बिभ्रती मालतीमालां रत्नभूषणभूषिता॥१५॥

क्रीडाकमलहस्ता सा सिन्दूरबिन्दुशोभिता।
कृत्वाऽभिशापं मां रुष्टा याति मन्मन्दिरात्सती॥१६॥

वहां मेरे नगर में किसी क्षण अंगार वृष्टि हो रही थी। अगले ही क्षण वहां भस्म वर्षा होने लगी। अगले क्षण वहां रक्तवर्षा होने लगी। वानर, काक, श्वान, भालू, शूकर, गर्दभ, वहां भयानक शब्द करते मुझे दिखलाई पड़े। मैंने ऐसे सूखे काष्ठ का ढेर पड़ा देखा जिसकी कालिख अभी मिटी नहीं। मैंने अरुणोदय काल में स्वप्न में मैंने छिन्न नख तथा वानर देखा। मैंने पीतवस्त्रधारिणी, चन्दनचर्चितामालती मालाभूषिता तथा रत्नमय आभूषणों से सज्जित एक सती नारी को अपने भवन से बहिर्गत् होते देखा। उसका भालदेश सिन्दूर बिन्दी से विभूषित था तथा हाथों में क्रीड़ा कमल शोभायमान था। वह मुझे शाप देती चली गई। वह नारी अत्यन्त रुष्ट थी।।१२-१६।।

पाशहस्तांश्च पुरुषान्मुक्तकेशान्भयङ्करान्। अतिरूक्षांश्च पश्यामि विशतो नगरं मम॥१७॥

नग्ननारी मुक्तकेशी नृत्यन्ती च गृहे गृहे।
अतीव विकृताकारां पश्यामि सस्मितां सदा॥१८॥

छिन्ननासा च विधवा महाशूद्री दिगम्बरा सा तैलाभ्यङ्गितं मां च करोत्यतिभयङ्करी॥१९॥

मैंने अपनी नगरी में पाशधारी, खुले केश वाले, भयानक, रुखे पुरुषों को प्रविष्ट होते देखा। नगर के घर-घर में मैंने एक खुले बालों वाली नग्न नारी को नृत्य करते देखा जो अत्यन्त विकृत आकार वाली मुस्कराती दिखाई पड़ी। मैंने स्वप्न में एक नग्ना विधवा महाशूद्री नारी को देखा जो कटी नाकवाली महाभयंकर थी। वह मेरे सर्वाङ्ग में तैल लगा रही थी!।।१७-१९।।

निर्वाणाङ्गारयुक्ताश्च भस्मपूर्णा दिगम्बरा।
अतिप्रभातसमये चित्राः पश्यामि सस्मिताः॥२०॥

पश्यामि च विवाहं च नृत्यगीतमनोहरम्[१]। रक्तवस्त्रपरीधानान्पुरुषान्रक्तमूर्धजान्॥२१॥

रक्तं वमन्तं पुरुषं नृत्यन्तं नग्नमुल्बणम्।
धावन्तं च शयानं च पश्यामि सस्मितं सदा॥२२॥

अत्यन्त प्रातःकाल में मैंने स्वप्न देखा कि कुछ विचित्र नारीगण जो भस्म लगाये नग्ना थीं वे बुझे कोयले लिये मुस्कराती जा रही थीं। मैंने स्वप्न में नृत्य-गीतमय मनोहर विवाहोत्सव देखा। कतिपय रक्तवर्ण तथा रक्तकेश पुरुषों को भी देखा। मैंने एक नग्न पुरुष को देखा जो महाभयानक, कभी रक्त वमन करता, कभी नृत्य करता, कभी धावमान हो जाता, तो कभी निद्रित हो जाता, तथापि वह प्रत्येक अवस्था में मुस्कराता रहता था।।२०-२२।।

---

१. क. महोत्सवम्।

राहुग्रस्तं च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः।
एककाले च पश्यामि सर्वग्रासं च बान्धवाः॥२३॥
उल्कापातं धूमकेतुं भूकम्पं राष्ट्रविप्लवम्।
झञ्झावातं महोत्पातं पश्यामि च पुरोहित॥२४॥
वायुना घूर्णमानांश्च च्छिन्नस्कन्धान्महीरुहान्।
पतितान्पर्वतांश्चैव पश्यामि पृथिवीतले॥२५॥
पुरुषं छिन्नशिरसं नृत्यन्तं नग्नमुच्छ्रितम्। मुण्डमालाकरं घोरं पश्यामि च गृहे गहे॥२६॥
दग्धं सर्वाश्रमं भस्मपूर्णमङ्गारसङ्कुलम्। हाहाकारं च कुर्वन्तं सर्वं पश्यामि सर्वतः॥२७॥

हे बन्धुगण! मैंने आकाश में एक ही साथ चन्द्रमण्डल एवं सूर्य मण्डल को सर्वग्रास ग्रहण युक्त देखा! हे पुरोहित! मैंने स्वप्न में उल्कापात, धूमकेतू, भूकम्प, राष्ट्रविप्लव, आंधी, महोत्पात भी देखा। वायु के आघात से वृक्ष हिल रहे थे। उनकी शाखायें टूटती गिर रही थीं। पर्वत भूपतित होते जा रहा थे। नग्न, उच्च कद का, शिर रहित पुरुष नृत्यरत था। उसके हाथ में नरमुण्ड माला थी। सभी घर दग्ध हो गये तथा अंगार की भस्म से पूर्ण हो गये। सब ओर हाहाकार करते लोग दृष्टिगोचर हो रहे थे!।।२३-२७।।

इत्येवमुक्त्वा राजा स विरराम सभातले।
दृष्ट्वा (श्रुत्वा) स्वप्नं बान्धवाश्च न तमुक्त्वा निशश्वसुः॥२८॥
जहार चेतनां सद्यः सत्यकश्च पुरोहितः। मत्वा विनाशं कंसस्य यजमानस्य नारद॥२९॥
रुरोद नारीवर्गश्च पिता माता च शोकतः।
मेने विनाशकालं च सद्यः स्वयमुपस्थितम्॥३०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदनारा० कंसदुःस्वप्नकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः।।६३।।

—✻✻❁✻✻—

अपनी सभा में यह कहकर राजा कंस मौन हो गया। यह स्वप्न वृत्तान्त सुनकर सभी बन्धु-बान्धव नतशिर होकर दीर्घश्वास लेने लगे। इस वृत्तान्त को सुनकर पुरोहित ने कंस के शीघ्र विनाश को उपस्थित जान लिया। वे तत्काल अपनी सुध-बुध खो बैठे। वहां का नारीवर्ग तथा कंस के माता-पिता शोक से रुदन करने लगे। सब ने कंस के विनाश काल को सद्यः उपस्थित जान लिया।।२८-३०।।

।।६३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

कंसकृत यज्ञ का वर्णन

नारायण उवाच

सर्वं कृत्वा परामर्शं सत्यकश्च पुरोहितः। बुद्धिमाञ्छुक्रशिष्यश्च तमुवाच हितं मुने॥१॥

सत्यक उवाच

भयं त्यज महाभाग भयं किं ते मयि स्थिते। कुरु यागं महेशस्य सर्वारिष्टविनाशनम्॥२॥
यागो धनुमखो[1] नाम बह्वन्नो बहुदक्षिणः। दुःस्वप्नानां नाशकरः शत्रुभीतिविनाशकः॥३॥
आध्यात्मिकमाधिदैवमाधिभौतिकमुत्कटम्। एषां त्रिविधोत्पातानां खण्डनो भूतिवर्धनः॥४॥
यागे समाप्ते शंभुश्च जरामृत्युहरं वरम्। ददाति साक्षाद्भवति दाता च सर्वसम्पदाम्॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनिवर! तब बुद्धिमान् शुक्र के शिष्य सत्यक नामक पुरोहित ने अन्य विद्वानों से परामर्श लेकर कंस से कहा–"हे महाभाग! आप भय त्याग करें। मेरे रहते आपको भय नहीं करना चाहिये। इस समय सभी अरिष्टों के नाशक महेश्वर को प्रिय लगने वाले यज्ञ को करिये। वह दुःस्वप्न तथा शत्रुभय निवारक भी है। इस यज्ञ का अनुष्ठान करने से आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक उत्कट उत्पात प्रशमित हो जाते हैं। समृद्धि बढ़ती है। इस याग के पूर्ण होने पर सर्वसम्पदा प्रदाता शंभु प्रत्यक्ष होकर जरामृत्यु नाशकारी वर प्रदान कर देते हैं।।१-५।।

चकारेमं च यागं च पुरा बाणा महाबलः।
नन्दी परशुरामश्च भल्लश्च बलिनां वरः॥६॥
पुरा ददौ धनुरिदं शिवो नन्दीश्वराय च। यागेन भूत्वा सिद्धः स ददौ बाणाय धार्मिकः॥७॥
कृत्वा यागं महासिद्धो ददौ रामाय पुष्करे।
तुभ्यं ददौ परशुरामः कृपया च कृपानिधिः॥८॥
सहस्रहस्तपरिमितं दैर्घ्येऽतिकठिनं नृप। दशहस्तप्रशस्तं च शङ्करेच्छाविनिर्मितम्॥९॥
पशुपतेः पाशुपतं युक्तयानेन दुर्वहम्। सर्वे भङ्क्तुं न शक्ताश्च देवं नारायणं विना॥१०॥

पूर्वकाल में महाबली बाणासुर ने यह यज्ञ किया था। नन्दी, परशुराम तथा महाबली भल्ल ने भी इस यज्ञानुष्ठान को किया था। पूर्वकाल में शिव ने यह धनुष नन्दीश्वर को दिया, जो स्वयं यज्ञ से सिद्ध हो गये। नन्दीश्वर ने यह धनुष धार्मिक बाणासुर को दिया। यज्ञ से महासिद्ध हो गये बाणासुर ने यही धनुष पुष्कर तीर्थ में परशुराम को दिया था। कृपानिधि परशुराम ने वही धनुष तुमको दिया है। यह १००० हाथ लम्बा, अत्यन्त कठोर, दस हाथ चौड़ा तथा शंकर की इच्छा से बना है। यह पशुपति का

१. क. ०नुर्मयो।

पाशुपत अस्त्ररूपी धनुष यान द्वारा भी ढोने में अत्यन्त भारी है। केवल भगवान् नारायण ही इसे भग्न कर सकते हैं। अन्य में यह शक्ति नहीं है।।९-१०।।

यागे च धनुषः पूजां शङ्करस्य तु शङ्करे। कुरु शीघ्रं शुभार्थं च सर्वान्कुरु निमन्त्रणम्।।११।।
अस्मिन्यागे धनुर्भङ्गो भवेद्यदि नराधिप। विनाशो यजमानस्य भविष्यति न संशयः।।१२।।
भग्ने धनुषि यागश्च भग्नो भवति निश्चितम्।
फलं ददाति को वाऽत्र चानिष्पन्ने च कर्मणि।।१३।।

इस मांगलिक यज्ञ में इस धनुष तथा शंकर की पूजा करनी होगी। आप शीघ्र आत्मीयों को निमन्त्रण देकर मंगलप्रद इस यज्ञ का अनुष्ठान करिये। हे नरनाथ! यदि इस यज्ञ में इस धनुष का भंग हो जाये, तब तो निंश्चित रूप से यजमान नष्ट हो जायेगा। धनुष टूटते ही यज्ञभंग हो जायेगा। कार्य अपूर्ण रहने पर कौन फल देगा?।।११-१३।।

ब्रह्मा च धनुषो मूले मध्ये नारायणः स्वयम्। अग्रे चोग्रप्रतापश्च महादेवो महामते।।१४।।
धनुर्हि त्रिविकारं च सद्रत्नखचितं वरम्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाप्रच्छन्नकारणम्।।१५।।

हे महामति! इस धनुष के मूल में ब्रह्मा, मध्य में स्वयं नारायण विराजित हैं। इसके अग्रभाग में उग्रप्रतापी स्वयं महादेव स्थित हैं। यह धनुष त्रिविकारात्मक, श्रेष्ठ रत्नों से जड़ा है। यह ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्य की भी प्रभा को अपने सामने लज्जित कर देने वाला है।।१४-१५।।

अशक्तश्च नमयितुमनन्तश्च महाबलः। सूर्यश्च कार्तिकेयश्च का कथाऽन्यस्य भूमिप।।१६।।
त्रिपुरारिः पुराऽनेन जघान त्रिपुरं मुदा। निर्भयं कुरु स्वच्छन्दं मङ्गलार्हं महोत्सवम्[1]।।१७।।

इसे झुका देने में अनन्तदेव, सूर्य, कार्तिकेय भी समर्थ नहीं हैं। पूर्वकाल में त्रिपुरारी शिव ने हर्ष पूर्वक इसी से त्रिपुरवध किया था। आप निर्भीक होकर तथा स्वच्छन्द मन से इस महामांगलिक उत्सव को निष्पन्न करें।।१६-१७।।

सत्यकस्य वचः श्रुत्वा चन्द्रवंशविवर्धनः। उवाच कंसः सर्वार्थे सततं च हितैषिणम्।।१८।।

सत्यक का वचन सुनकर चन्द्रवंशवर्द्धक कंस ने सभी के हितकारी पुरोहित सत्यक से कहा-।।१८।।

कंस उवाच

वसुदेवगृहे जज्ञे मद्वधी कुलनाशनः। स्वच्छन्दं नन्दगेहे च वर्धते नन्दनन्दनः।।१९।।
मद्बन्धुवर्गाञ्छूरांश्च मन्त्रिणः सुविशारदान्।
भगिनीं पूतनां पूतां जघान बालको बली।।२०।।
गोवर्धनं दधारैककरेण बलवर्धनः। महेन्द्रस्य च शूरस्य चकार च पराभवम्।।२१।।

१. ख. ०त्सवे।

ब्रह्माणं दर्शयामास ब्रह्मरूपं चराचरम्। निवहं बालवत्सानां चकार कृत्रिमं मुदा॥२२॥
तमेव बलिनं हन्तुं मन्त्रणां कुरु सत्यक। मम शत्रुर्विना तेन नास्तीह धरणीतले॥२३॥

कंस कहता है—वसुदेव के घर में मेरा वधकर्त्ता तथा मेरे कुल का नाशक कृष्ण नन्दनन्दन उत्पन्न हो गया। वह नन्दगृह में वर्द्धित हो रहा है। उसने मेरे बन्धुओं, शूरों, विशारद मन्त्रियों, पावन बहन पूतना का वध कर दिया। स्वेच्छा से बलवर्द्धित करने वाले कृष्ण ने एक हाथ पर गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया। अत्यन्त बली इन्द्र तक को परास्त कर दिया। उसने ब्रह्मा को अपना चराचर ब्रह्मरूप प्रदर्शित किया था। (ब्रह्मा का गर्व खण्डन करने हेतु) उसने गोप बालकों तथा गोवत्सों की भी कृत्रिम रचना मुदित मन से किया था। हे सत्यक! आप उस बली कृष्ण के वधार्थ मन्त्रणा करिये। इस पृथिवी पर वही मेरा एकमात्र शत्रु है। अन्य शत्रु है ही नहीं॥१९-२३॥

नहि स्वर्गे न पाताले त्रिषु लोकेषु निश्चितम्।
सन्ति सन्तश्च राजानः सर्वत्र मम बान्धवाः॥२४॥
महातपस्वी ब्रह्मा च तपस्वी शङ्करः स्वयम्।
विष्णुः सर्वत्र सर्वात्मा समदर्शी सनातनः॥२५॥

नन्दपुत्रं निहत्याहं त्रिषु लोकेषु पूजितः। सार्वभौमो भविष्यामि सप्तद्वीपेश्वरो महान्॥२६॥

समस्त स्वर्ग-पाताल में, समस्त त्रैलोक्य में निश्चित रूप से मेरा शत्रु कोई नहीं है। जितने श्रेष्ठ राजा हैं, सभी मेरे बन्धु हैं। महातपस्वी ब्रह्मा, स्वयं शंकर तो महातपस्वी हैं। विष्णु सर्वात्मा तथा समद्रष्टा हैं। वे सनातन हैं। मात्र नन्दपुत्र कृष्ण का वध कार्य हो जाने से मैं त्रैलोक्य पूज्य, सार्वभौम, सातों द्वीपों का महान् अधिपति हो जाऊंगा॥२४-२६॥

स्वर्गे निहत्य शक्रं च दुर्बलं दैत्यनिर्जितम्।
भविष्यामि महेन्द्रश्च तत्र निर्जित्य भास्करम्॥२७॥

यक्ष्मग्रस्तं च चन्द्रं च ममैव पूर्वपूरुषम्। वायुं कुबेरं वरुणं यमं जेष्यामि निश्चितम्॥२८॥

तब मैं स्वर्ग में इन्द्र का वध करके दुर्बल दैत्यों पर विजय पाकर तथा सूर्य को जीतकर इन्द्र हो जाऊंगा। यक्ष्मारोग ग्रस्त चन्द्रमा तो मेरे पूर्वज हैं। मैं वायु, कुबेर, वरुण, यम को तो निश्चित रूप से जीत लूंगा॥२७-२८॥

गच्छ नन्दव्रजं शीघ्रं नन्दं च नन्दनन्दनम्। तद्भ्रातरं च बलिनं बलमानय साम्प्रतम्॥२९॥

हे पुरोहित! आप नन्दराज के व्रज में जायें। नन्द, नन्दपुत्र कृष्ण तथा उसके भाई को यहां शीघ्र ले आईये॥२९॥

कंसस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच स सत्यकः। हितं सत्यं नीतिसारं परं सामयिकं तथा॥३०॥

कंस का यह कथन सुनकर पुरोहित सत्यक ने उससे सत्य, नीति का साररूप परम सामयिक वचन कहा—॥३०॥

सत्यक उवाच

अक्रूरमुद्धवं वाऽपि वसुदेवमथापि वा। प्रस्थापय महाभाग नन्दव्रजमभीप्सितम्।।३१।।

सत्यक कहता है–हे महाभाग! आप अपने ईप्सित लोगों को लाने हेतु नन्द के व्रज में अक्रूर, उद्धव, अथवा वसुदेव को भेजिये।।३१।।

सत्यकस्य वचः श्रुत्वा वसन्तं तत्र संसदि। स्वर्णसिंहासनस्थं च वसुदेवमुवाच सः।।३२।।

सत्यक का कथन सुनकर कंस ने सभागार में स्वर्ण सिंहासन पर बैठे वसुदेव से कहा–।।३२।।

कंस उवाच

तत्त्वज्ञो नीतिशास्त्राणां त्वमुपायविशारदः। व्रज नन्दवज्रं बन्धो वसुदेव सुतालयम्।।३३।।
वृषभानं च नन्दं च बलं च नन्दनन्दनम्। शीघ्रमानय यज्ञेऽत्र सर्वं गोकुलवासिनम्।।३४।।

गृहीत्वा पत्रिकां दूता गच्छन्तु च चतुर्दिशम्।
नृपान्मुनिगणान्सर्वान्कर्तुं विज्ञापनं मुदा।।३५।।

कंस कहता है–हे वसुदेव! आप तत्वज्ञ, नीतिशास्त्रज्ञ उपाय ज्ञाता हैं। आप अपने पुत्रगृह तथा अपने बन्धु नन्द के व्रज में जाईये। आप वहां से वृषभान, नन्द, बलराम, नन्दनन्दन कृष्ण तथा सभी गोकुल निवासीगण को यहां यज्ञ में शीघ्र ले आईये। हे दूतो! तुम लोग सभी निमन्त्रण पत्रिका लेकर चतुर्दिक् जाओ तथा राजाओं तथा मुनियों को यज्ञ की सूचना से अवगत करो।।३३-३५।।

नृपस्य वचनं श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः।
उवाच वचनं ब्रह्मन् हृदयेन विदूषता।।३६।।

राजा का यह वाक्य सुनकर वसुदेव के कण्ठ-ओंठ-तालु शुष्क हो गये। हे ब्रह्मन्! उन्होंने दुःखी होकर कंस से कहा–।।३६।।

वसुदेव उवाच

नियुक्तमत्र राजेन्द्र गमनं मम साम्प्रतम्। विज्ञापितुं नन्दव्रजं नन्दं वा नन्दनन्दनम्।।३७।।
यद्यायातो नन्दपुत्रो यागे ते च महोत्सवे। अवश्यं तद्विरोधश्च भविष्यति त्वया सह।।३८।।

वसुदेव कहते हैं–हे राजन्! मैं यदि जाकर नन्द तथा उनके पुत्रों को आपके कथनानुसार बुलाने जाता हूं, तब आप के यज्ञोत्सव में उनके आने पर आपके साथ उनका विरोध होना निश्चित है। क्या मैं उनको लाकर आपसे युद्ध कराने का भागी बनूं? इससे आप दोनों पक्ष के लिये विघ्न होगा।।३७-३८।।

तमहं च समानीय कारयिष्यामि संयुतम्।
इति मे न हि भद्रं च विघ्नस्तस्य तवापि च।।३९।।

पित्राऽऽनीतो मृतः कृष्ण इति सर्वो वदिष्यति। वसुदेवः सुतद्वारा जघान नृपमेव च।।४०।।

द्वयोरेकतरस्यापि सद्यो मृत्युर्भविष्यति।
पतिष्यन्ति च शूराश्च नास्ति युद्धं निरामिषम्॥४१॥

क्या मैं उनको यहां लाकर आप में तथा उनमें युद्ध कराऊं? यह मेरे लिये उचित नहीं होगा; क्योंकि तब सब लोग यही कहेंगे कि कृष्ण के पिता ने कृष्ण को लाकर उसका नाश कराया अथवा वसुदेव ने अपने पुत्र को लाकर राजा का वध कराया; क्योंकि आप दोनों में से एक तो हत होकर रहेगा तथा न जाने कितने शूरवीरों का इस युद्ध में वध होगा। युद्ध कदापि आपदा रहित नहीं कहा गया है!॥३९-४१॥

वसुदेववचः श्रुत्वा रक्तपङ्कजलोचनः। खड्गं गृहीत्वा तं हन्तुं प्रययौ नृपतीश्वरः॥४२॥
हाहेति कृत्वा पुत्रं च वारयामास तत्क्षणम्। उग्रसेनो महाराजमतीव बलवान्मुने॥४३॥
स्वपीठाद्वसुदेवश्च कोपाविष्टो गृहं ययौ। अक्रूरं प्रेरयामास गन्तुं नन्दव्रजं नृपः॥४४॥
दूतान्प्रस्थापयामास शीघ्रं प्रतिदिशं तथा। आययुर्मुनयः सर्वे नृपाश्च सपरिच्छदा॥४५॥

वसुदेव का कथन सुनकर राजा कंस के दोनों नेत्र क्रोध के कारण रक्तवर्ण कमल जैसे लोहित वर्ण के हो गये। वह अपनी तलवार लेकर वसुदेव को मारने दौड़ पड़ा। यह देखकर अत्यन्त बलवान् उग्रसेन ने हाहाकार किया तथा पुत्र को वसुदेव के वध से निवृत्त कर दिया। वसुदेव भी क्रोध में भरकर सिंहासन से उठे तथा घर चले गये। तब राजा ने नन्द के व्रज में अक्रूर को भेजा। उसने सभी दिशाओं में अपने दूतों को भेजा जिनसे संवाद पाकर मुनिवृन्द तथा राजा लोग अपने-अपने मन्त्रियों आदि के साथ आ गये!॥४२-४५॥

दिक्पालाश्च सुराः सर्वे ब्राह्मणाश्च तपस्विनः।
सनकश्च सनन्दश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा॥४६॥
सनत्कुमारो भगवान्प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। कपिलश्चासुरिः पैलः सुमन्तुश्च सनातनः॥४७॥
पुलहश्च पुलस्त्यश्च भृगुश्च ऋतुरङ्गिराः। मरीचिः कश्यपश्चैव दक्षोऽत्रिश्च्यवनस्तथा॥४८॥
भरद्वाजश्च व्यासश्च गौतमश्च पराशरः। प्रचेताश्च वसिष्ठश्च संवर्तश्च बृहस्पतिः॥४९॥
कात्यायनो याज्ञवल्क्योऽप्युत्तङ्कः सौभरिस्तथा।
पर्वतो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च जैमिनिः॥५०॥
विश्वामित्रश्च सुतपाः पिप्पलः शाकटायनः।
जाबालिर्जाङ्गलिश्चैव[1] पिशलिश्च शिलालिकः॥५१॥

वहां दिक्पाल, सभी देवता, तपस्वी ब्राह्मण, कपिल, आसुरि, पैल, सुमन्तु, सनातन, पुलह, पुलत्स्य, भृगु, अंगीरा, मरीचि, कश्यप, अत्रि, दक्ष, च्यवन, भरद्वाज, व्यास, गौतम, पराशर, प्रचेता,

१. क. ०लाङ्ग०।

वसिष्ठ, संवर्त्त, बृहस्पति, कात्यायन, याज्ञवल्क्य, उत्तंक, सौभरि, पर्वत, देवल, जैगीषव्य, जैमिनि, विश्वामित्र, सुतपा, पिप्पलादि, शाकटायन, जाबालि, जांगलि, पिशलि शिलालिक।।४६-५१।।

आस्तीकश्च जगत्कारुस्तथा कल्याणमित्रकः। दुर्वासा वामदेवश्च ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः।।५२।।

पथिः कविः कणादश्च कौशिकः पाणिनिस्तथा।
कौत्सोऽघमर्षणश्चैव वाल्मीकिर्लोमहर्षणः।।५३।।

मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च पर्शुरामश्च सांकृतिः। अगस्त्यश्च तथा वान्तस्तथाऽन्ये मुनयो मुनेः।।५४।।

आस्तीक, जरत्कारु, कल्याणमित्र, दुर्वासा, वामदेव, विभाण्डक, ऋष्यशृंग, पथि, कवि, कणाद, कौशिक, पाणिनि, कौत्स, अघमर्षण, वाल्मीकि, लोमहर्षण, मार्कण्डेय, मृकण्डु, परशुराम, सांकृति, अगत्स्य, वान्त तथा अन्य मुनिगण भी आये।।५२-५४।।

सशिष्याश्च सपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च तपस्विनः। जरासंधो दन्तवक्रो दाम्भिको द्रविडाधिपः।।५५।।

शिशुपालो भीष्मकश्च भगदत्तश्च मुद्गलः। धार्तराष्ट्रो धूमकेशो धूम्रकेतुश्च शम्बरः।।५६।।

शल्यः सत्राजितः शङ्कुर्नृपाश्चान्ये महाबलाः।
भीष्मो द्रोणः कृपाचार्यो ह्यश्वत्थामा महाबलाः।।५७।।
भूरिश्रवाश्च शाल्वश्च कैकेयः कौशलस्तथा।
सर्वान्संभाषयामास महाराजो यथोचितम्।
सत्यको यज्ञदिवसे चकार च शुभक्षणम्।।५८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदनारा० कंसयज्ञकथनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः।।६४।।

—***—

वहां अपने शिष्यों तथा पुत्रों के साथ तपस्वी ब्राह्मण आये। हे मुनि नारद! वहां शिशुपाल, भीष्मक, भगदत्त, मुद्गल, धार्त्तराष्ट्र, धूमकेश, दाम्भिक, द्रविड़राज, जरासंध, दन्तवक्त्र, धूम्रकेतु, शम्बर, शल्य, सत्राजित्, शंकु तथा अन्य महाबली राजा आये। वहां भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, महाबली अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, कैकेय, कौशलराज भी आये। महाराज कंस ने सबसे यथोचित कुशल प्रश्न पूछा। तदनन्तर पुरोहित सत्यक ने भी यज्ञ के दिवस पर शुभक्षण में सभी कार्य किया।।५५-५८।।

।।६४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

अक्रूर को परम हर्ष लाभ

नारायण उवाच

कंसस्य वचनं श्रुत्वा सोऽक्रूरो धर्मिणां वरः।
उवाच चोद्धवं शान्तं शान्तः प्रहृष्टमानसः॥१॥

अक्रूर उवाच

सुप्रभाताऽद्य रजनी बभूव मे शुभं दिनम्।
तुष्टाश्च गुरवो विप्रा देवा मामिति निश्चितम्॥२॥

कोटिजन्मार्जितं पुण्यं मम स्वयमुपस्थितम्। बभूव मे समुत्पन्नं यद्यत्कर्म शुभाशुभम्॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–धार्मिकप्रवर शान्त स्वभाव अक्रूर कंस का कथन सुनकर प्रसन्नता के साथ शान्तमना उद्धव से कहने लगे–"हे बन्धु! आज मेरी रात तो सुप्रभात हो गई। आज का दिन मेरे लिये परम शुभ है। मेरे प्रति आज गुरु, ब्राह्मण, देवता प्रसन्न हैं। आज मेरा कोटि जन्मार्जित पुण्य स्वयं उदित हो गया! मैंने जो-जो शुभकर्म किया होगा, उसका फल मिल रहा है!॥१-३॥

चिच्छेद बन्धनिगडं मम बद्धस्य कर्मणा। कारागाराश्च संसारान्मुक्तो यामि हरेःपदम्॥४॥
सुहृदर्थी कृतोऽहं च कंसेन विदुषा रुषा। वरेण तुल्यो देवस्य क्रोधो मम बभूव ह॥५॥
व्रजराजं समाहर्तु[1] व्रजं यास्यामि साम्प्रतम्। द्रक्ष्यामि परमं पूज्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनम्॥६॥
नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम्। पीतवस्त्रसमायुक्तकटिदेशविराजितम्॥७॥
धूलिधूसरिताङ्गं च किंवा चन्दनचर्चितम्। अथवा नवनीताक्तमङ्गं द्रक्ष्यामि सस्मितम्॥८॥

मैं कर्म की बेड़ी से आवद्ध था। आज वह कर्मबन्धन कर्म (शुभकर्म) से उच्छिन्न हो गया। मैं संसाररूपी कारागार से मुक्त होकर हरिपद लाभ करूंगा। आज सुविज्ञ कंस ने वसुदेव के प्रति क्रोधित होकर मेरे बन्धु जैसा कार्य किया हैं। उनका क्रोध आज मेरे भाग्य से देवता के वरदान के समान हो गया। हे बन्धु! अब मैं ब्रजराज के संवर्द्धनार्थ (अभ्यर्थनार्थ) व्रजधाम आगवानी हेतु गमन करूंगा तथा नीलकमल के समान नेत्रवाले नवघनश्याम भक्ति-मुक्तिप्रदाता श्रीकृष्ण का दर्शन करूंगा। जिनके कमर में पीताम्बर शोभायमान है, वे प्रभु कृष्ण हो सकता है इसी वेष से भूषित होंगे अथवा वे धूलधूसरित अंगों वाले होंगे, किंवा वे चन्दनचर्चित शरीर वाले भी हो सकते हैं! अथवा उन्होंने मुस्कराते हुये अपना सर्वाङ्ग नवनीत से लिप्त कर दिया होगा!॥४-८॥

किंवा विनोदमुरलीं वादयन्तं मनोहरम्। किंवा गवां समूहं च चारयन्तमितस्ततः॥९॥

१. क. समुद्धर्तुं।

किंवा वसन्तं गच्छन्तं शयानं वा सुनिश्चितम्।
निद्रेशं कीदृशं चाद्य सुदृष्ट्वा च शुभे क्षणे॥१०॥

अथवा वे अपनी मनोहर विनोदमुरली बजा रहे होंगे, किंवा इधर-उधर गोचारण करते होंगे! अथवा मैं उनको कहीं बैठा हुआ देखूंगा, अथवा उनको उन निद्रापति प्रभु को निद्रितावस्था में देख सकूंगा। किम्बहुना, वह कौन-सा क्षण होगा जब मैं उनका दर्शन पाकर स्वयं मुदित हो सकूंगा!॥९-१०॥

यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
न हि जानाति यस्यान्तमनन्तोऽनन्तविग्रहः॥११॥
यत्प्रभावं न जानन्ति देवाः सन्तश्च संततम्।
यस्य स्तोत्रे जडीभूता भीता देवी सरस्वती॥१२॥

जिनके चरणकमलों का ध्यान निरन्तर ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवता करते रहते हैं, उनका अन्त तो अनन्त विग्रहधारी अनन्तदेव को भी ज्ञात नहीं है। उनके प्रभाव को देवता तथा महात्मा भी सदा नहीं जान पाते। उनकी स्तुति करने में सरस्वती भी भयभीत एवं जड़ परिलक्षित होती हैं!॥११-१२॥

दासीनियुक्ता यद्दास्ये महालक्ष्मीश्च लक्षिता।
गङ्गा यस्य पदाम्भोजन्निःसृता सत्त्वरूपिणी॥१३॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्रिभुवनात्परा। दर्शनस्पर्शनाभ्यां च नृणां पातकनाशिनी॥१४॥

जिनके दासकार्य हेतु महालक्ष्मी किंकरी रूप से नियुक्त हैं, जिनके चरणकमल से सत्वरूपा गंगा निर्गता हैं, वे गंगा त्रैलोक्य पूज्या हैं। वे गंगा अपने दर्शन-स्पर्श मात्र से मनुष्यों की जरा-व्याधि का हरण कर देती हैं तथा समस्त पातकों का नाश कर देती हैं।॥१३-१४॥

ध्यायते यत्पदाम्भोजं दुर्गा दुर्गविनाशिनी[१]। त्रैलोक्यजननी देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी॥१५॥
लोम्नां कूपेषु विश्वानि महाविष्णोश्च यस्य च।
असंख्यानि विचित्राणि स्थूलात्स्थूलतरस्य च॥१६॥
स च यत्षोडशांशश्च यस्य सर्वेश्वरस्य च। तं द्रष्टुं यामि हे बन्धो मायामानुषरूपिणम्॥१७॥
सर्वं सर्वान्तरात्मानं सर्वज्ञं प्रकृतेः परम्। ब्रह्मज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्॥१८॥
निर्गुणं च निरीहं च निरानन्दं निराश्रयम्। परमं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम्॥१९॥
स्वेच्छामयं सर्वपरं सर्वबीजं सनातनम्।
वदन्ति योगिनः शश्वद्ध्यायन्तेऽहर्निशं शिशुम्॥२०॥

जिन हरि के चरण-कमलों का ध्यान त्रैलोक्यजननी दुर्गति का नाश करने वाली परमेश्वरी दुर्गा सतत् करती हैं तथा स्थूल से स्थूलतर महाविष्णु के रोमकूपों में असंख्य विचित्र विश्व विराजमान रहा

१. ख. दुर्गार्तिना०।

करते हैं, वे भी जिन सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के (१/१६) षोडशांश मात्र हैं, मैं उन मायामनुषरूपधारी प्रभु श्रीहरि के दर्शनार्थ जाऊंगा। वे शिशुरूपी नन्दनन्दन श्रीकृष्ण सबके अन्तरात्मा हैं। वे सर्वज्ञ प्रकृति से भी अतीत तथा ब्रह्मज्योतिरूप हैं। उन्होंने भक्तों पर कृपा करने के लिये ही देह धारण किया है। वे निर्गुण-निरीह, निराश्रय हैं। वे ही परमपदार्थ तथा परमानन्दरूप भी हैं। वे सानन्द स्वेच्छामय सनातन श्रेष्ठ तथा सबके कारण हैं। वे परम आनन्दमय नन्दनन्दन हैं। ऐसा योगीगण कहते हैं तथा वे उनके शिशुरूप का अहर्निश ध्यान करते हैं।।१५-२०।।

मन्वन्तरसहस्त्रं च निराहारः कृशोदरः। पद्मे पाद्मस्तपस्तेपे पुरा पाद्मं तु यत्कृते।।२१।।

पुनः कुरु तपस्यां च तदा द्रक्ष्यसि मामिति।

सकृच्छब्दं च शुश्राव न ददर्श तथाऽपि तम्।।२२।।

तावत्कालं पुनस्तप्त्वा वरं प्राप ददर्श तम्। ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव।।२३।।

पूर्व पाद्मकल्प में पद्मयोनि ब्रह्मा ने भगवान् के नाभि कमल में अवस्थित रहकर १००० मन्वन्तरों तक श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ कठोर तप किया। उनका उदर अत्यन्त कृश होकर पीठ से सट गया, तब भी इतने दिन तपःश्चरण के उपरान्त उन्होंने मात्र एक वाक्य सुना "पुनः तप करो, तब मेरा दर्शन होगा।" तथापि तब भी वे प्रभु दर्शन नहीं पा सके। हे उद्धव! एकसहस्त्र मन्वन्तर पुनः तप करने पर ही उनको परमेश्वर का दर्शन तथा उनसे वर मिल सका।।२१-२३।।

पुरा शंभुस्तपस्तेपे यावद्वै ब्रह्मणो वयः। ज्योतिर्मण्डलमध्ये च गोलोके तं ददर्श सः।।२४।।

सर्वतत्त्वं सर्वसिद्धं[1] ममतत्त्वं परं वरम्।

संप्राप तत्पदाम्भोजे भक्तिं च निर्मलां पराम्।।२५।।

चकाराऽत्मसमं तं च यो भक्तो (क्तं) भक्तवत्सलः।

ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव।।२६।।

प्राचीन काल में शिव ने ब्रह्मा की आयु पर्यन्त तप किया, तब गोलोकधाम में ज्योतिर्मण्डल के मध्य में उनको प्रभु का दर्शन मिला। महेश्वर को प्रभु श्रीकृष्ण ने समस्त तत्व, सर्वसिद्धि, श्रेष्ठ तत्व, अपने चरणकमल की निर्मल पराभक्ति प्रदान किया। यहां तक कि भक्तवत्सल प्रभु ने अपने भक्त शिव को अपने समान बना दिया। हे उद्धव! आज मैं ऐसे परमेश्वर के दर्शनार्थ जा रहा हूं।।२४-२६।।

सहस्त्रशक्रपातान्तं निराहारः कृशोदरः। यस्यानन्तस्तपस्तेपे भक्त्या च परमात्मनः।।२७।।

तदा चाऽऽत्मसमं ज्ञानं ददौ तस्मै य ईश्वरः। ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव।।२८।।

हे उद्धव! १००० इन्द्रों के आयुकाल तक निराहार तथा अत्यन्त दुर्बल होकर परमभक्ति के साथ अनन्तदेव ने जिन ईश्वर के उद्देश्य से तप किया, तब उनको जिन ईश्वर ने उन्हें अपने समान ज्ञान प्रदान किया, आज मैं उनका दर्शन लाभ करूंगा।।२७-२८।।

१. क. ०सिद्धममरत्वं।

सहस्त्रशक्रपातान्तं धर्मस्तेपे च यत्तपः। तदा बभूव साक्षी स धर्मिणां सर्वकर्मिणाम्॥२९॥
शास्ता च फलदाता च यत्प्रसादान्नृणामिह। सर्वेशमीदृशमहो द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव॥३०॥

हे उद्धव! इतने ही काल तक जब धर्मदेव ने जिन परमेश्वर के लिये तप किया तथा जिनकी कृपा से वे सभी धर्मात्मा लोगों के कर्मसाक्षी बनाये गये तथा मनुष्यों के शासक और कर्मफलदाता हो गये, आज मैं उन सर्वाधीश्वर का दर्शन लाभ करूंगा!॥२९-३०॥

अष्टाविंशतिरिन्द्राणां पतने यद्दिवानिशम्।
एवं क्रमेण मासाब्दैः शताब्दं ब्रह्मणो वयः॥३१॥
अहो यस्य निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत्। इदृशं परमात्मानं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव॥३२॥

ब्रह्मा का एक दिन-रात २८ इन्द्रों की आयुकाल का होता है, इसी मान से १०० वर्ष व्यतीत होने पर एक ब्रह्मा की पूर्ण आयु कही गई है। ऐसी पूरी ब्रह्मा की आयु जितने समय में व्यतीत होती है, वह इन परमात्मा का एक पल मात्र होता है। हे उद्धव! आज मुझे ऐसे परमात्मा के दर्शन लाभ का अवसर मिलेगा!॥३१-३२॥

नास्ति भूरजसा संख्या यथैव ब्रह्मणां तथा।
तथैव बन्धो विश्वानां तदाधारो महाविराट्॥३३॥
विश्वे विश्वे च प्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
मुनयो मनवः सिद्धा मानवाद्याश्चराचराः॥३४॥
यत्षोडशांशः स विराट् सृष्टो नष्टश्च लीलया। इदृशं सर्वशास्तारं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव॥३५॥

हे बन्धु! जैसे पृथिवी की धूलि की संख्या गणना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार ब्रह्मा की भी गणना नहीं की जा सकती कि वे ब्रह्मा तथा ब्रह्माण्ड कितने हैं? इनका आधार महाविराट् है। प्रति विश्व में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, मुनिगण, मनुगण तथा सिद्धगण एवं मनुष्यादि चराचर विराजमान है, तथापि ये महाविराट् भी प्रभु के सोलहवें भाग मात्र (१/१६) हैं। वे अनायास सृष्ट होते तथा नष्ट हो जाते हैं। हे उद्धव! मैं आज उन सर्वनियन्ता परमेश्वर को प्रत्यक्ष दर्शन करूंगा!॥३३-३५॥

इत्येवमुक्त्वाऽक्रूरश्च पुलकाञ्चितविग्रहः। मूर्च्छां प्राप साश्रुनेत्रो दध्यौ तच्चरणाम्बुजम्॥३६॥
बभूव भक्तिपूर्णश्च स्मारं स्मारं पदाम्बुजम्।
कृत्वा प्रदक्षिणं वाऽपि कृष्णस्य परमात्मनः॥३७॥
उद्धवश्च तमाश्लिष्य प्रशशंस पुनः पुनः।
स च शीघ्रं ययौ गेहमक्रूरोऽपि स्वमन्दिरम्॥३८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदनारा० अक्रूरहर्षोत्कर्षकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥६५॥

यह कहकर अक्रूर का शरीर अत्यन्त पुलकित हो उठा। उनके नेत्र आनन्दाश्रु से प्लावित हो उठे। वे एक प्रकार से मूर्च्छित से हो गये। तत्पश्चात् वे बारम्बार भक्तिसहित श्रीकृष्ण के चरणकमल का स्मरण करने लगे। तदनन्तर उन्होंने परमात्मा कृष्ण की प्रदक्षिणा भी किया। तब उद्धव ने अक्रूर का आलिंगन किया तथा उनकी बारम्बार प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर अक्रूर तथा उद्धव स्वगृह चले गये।।३६-३८।।

।।६५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

राधा के शोक का निवारण होना

नारायण उवाच

अथ रासेश्वरीयुक्तो रासे रासेश्वरः स्वयम्। स च रेमे तया सार्धमतीव रमणोत्सुकः॥१॥
सुखसंभोगमात्रेण ययौ निद्रां च राधिका। दृष्ट्वा स्वप्नं समुत्थाय दीनोवाच प्रियं दिने॥२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—तदनन्तर रासेश्वरी के साथ रासेश्वर स्वयं रमणोत्सुक होकर रासमण्डल में रमण में प्रवृत्त हो गये। तदनन्तर राधिका सुखसम्भोग मात्र से निन्द्रिता होकर पुनः दुःस्वप्न देखकर उठ बैठीं। वे दीनता पूर्वक दिवाकाल में प्रियतम रासेश्वर से कहने लगीं—।।१-२।।

राधिकोवाच

अहो स्वामिन्निहाऽऽगच्छ त्वां करोमि स्ववक्षसि।
परिणामे विधाता मे न जाने किं करिष्यति॥३॥

श्रीराधिका कहती हैं—हे स्वामी! मेरे पास आईये। मैं आपको अपने वक्ष से लगाऊंगी। इस दुःस्वप्न के परिणाम स्वरूप पता नहीं विधाता क्या करने वाले हैं?।।३।।

इत्युक्त्वा सा महाभागा प्रियं कृत्वा स्ववक्षसि। दुःस्वप्नं कथयामास हृदयेन विदूयता॥४॥

यह कहकर महाभाग्यवती राधा ने अपने प्रिय कृष्ण को वक्ष से लगा लिया। तदनन्तर राधा दुःखी हृदय से अपने देखे गये दुःस्वप्न का वर्णन करने लगीं।।४।।

राधिकोवाच

रत्नसिंहासनेऽहं च रत्नच्छत्रं च बिभ्रती। तदातपत्रं जग्राह रुष्टो विप्रश्च मे प्रभो॥५॥

सागरे कज्जलाकारे महाघोरे च दुस्तरे। गभीरे प्रेरयामास मामेव दुर्बलां स च॥६॥

देवी राधा कहती हैं—मैं रत्नचित्रमय सिंहासन पर हाथ में रत्नमय छत्र लिये बैठी थी। तभी किसी विप्र ने रुष्ट होकर मेरा वह छत्र ले लिया। तदनन्तर उस ब्राह्मण ने कज्जलाकार महाघोर, पार न किये जाने योग्य अत्यन्त गहरे सागर में मुझे दुर्बल जानकर फेंक दिया॥५-६॥

तत्र स्त्रोतसि शोकार्ता भ्रमामि च मुहुर्मुहु। महोर्मीणां च वेगेन व्याकुला नक्रसंकुले॥७॥

त्राहि त्राहीति हे नाथ त्वां वदामि पुनः पुनः।
त्वां न दृष्ट्वा महाभीता करोमि प्रार्थनां सुरम्॥८॥
कृष्ण तत्र निमज्जन्ती पश्यामि चन्द्रमण्डलम्।
निपतन्तं च गगनाच्छतखण्डं च भूतले॥९॥

क्षणान्तरे च पश्यामि गगनात्सूर्यमण्डलम्। बभूव च चतुःखण्डं निपत्य धरणीतले॥१०॥

एककाले च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः। अतीव कज्जलाकारं सर्वं ग्रस्तं च राहुणा॥११॥

क्षणान्तरे च पश्यामि ब्राह्मणो दीप्तिमानिति।
मत्क्रोडस्थं सुधाकुम्भं बभञ्ज च रुषेति च॥१२॥
क्षणान्तरे च पश्यामि महारुष्टं च ब्राह्मणम्।
गृहीत्वा च व्रजन्तं च चक्षुषोः[1] पुरुषं मम॥१३॥

मैं उस जलस्त्रोत में गिरने के कारण शोकार्त्त एवं व्याकुल होकर बारम्बार मकरयुक्त महान् तरंग वेग से डूबने-उतराने लगीं। "हे नाथ! मेरी रक्षा करिये! मेरी रक्षा करिये।" मैं यही कहती जा रही थी, तथापि तब भी मैं आपको न देखकर महाभयभीत होकर देवगण की प्रार्थना करने लगीं। हे कृष्ण! तभी मैं देखती हूं कि मैं उन तरंगों में डूबती जा रही हूं। चन्द्रमण्डल गगन से धरती पर गिरकर शतखण्डात्मक हो गया। तभी मैंने देखा कि सूर्यमण्डल भूपतित हो गया उसके चार खण्ड हो गये। तभी मैं देखती हूं कि चन्द्र-सूर्य दोनों ही आकाश में राहुग्रस्त तथा अतीव कज्जलाकृति हो गये। अगले क्षण देखती हूं कि एक दीप्तिमान क्रोधित ब्राह्मण आया। उसने मेरे अंक में स्थित अमृत कलश को बलात् लेकर उसे खण्डित कर दिया। इसके पश्चात् मैं देखती हूं कि एक महान् क्रोधित ब्राह्मण मेरे आंख के सामने से एक पुरुष को पकड़ कर ले जा रहा है (इसका अन्य अर्थ है कि वह ब्राह्मण मेरे नेत्रस्थ पुरुष को पकड़ कर लेजा रहा है!)॥७-१३॥

क्रीडाकमलदण्डं च हस्ताद्ध्वस्तं मम प्रभो।
सहसा खण्डखण्डं च बभूव सह हेतुना॥१४॥
हस्ताद्ध्वस्तश्च सहसा सद्रत्नसारदर्पणः।
निर्मलः कज्जलाकारः खण्डखण्डो बभूव ह॥१५॥

---

१. क. ०क्षुषा।

हारो मे रत्नसाराणां छिन्नो भूत्वा च वक्षसः। अतीव मलिनं पद्मं पपात धरणीतले॥१६॥

सौधपुत्तिलिकाः सर्वा नृत्यन्ति च हसन्ति च।
आस्फोटयन्ति गायन्ति रुदन्ति च क्षणं क्षणम्॥१७॥

कृष्णवर्णं बृहच्चक्रं खे भ्रमन्तं मुहुर्मुहुः। निपतन्तं चोत्पतन्तं पश्यामि च भयङ्करम्॥१८॥

प्राणाधिदेवः पुरुषो निःसृत्याभ्यन्तरान्मम।
राधे विदायं[१] देहीति ततो यामीत्युवाच ह॥१९॥

हे प्रभु! मेरे हाथ में लिया गया क्रीड़ाकमल हठात् भूपतित हो गया तथा वह खण्डित हो गया। हाथों में लिया गया रत्न के सार से निर्मित निर्मल दर्पण कज्जलाकार होकर भग्न हो गया। मेरे वक्षस्थल पर स्थित रत्नसार निर्मित हार छिन्न-भिन्न हो गया। कमल तो अतीव मलिन होकर भूपतित हो गया! तत्पश्चात् मैं देखती हूं कि मेरे भवन की पुतलियां क्षण-क्षण में नृत्य, तो अगले क्षण हंस रही हैं। कुछ क्षणों बाद ताली बजाकर गा रही हैं, तो अगले ही क्षण रुदन कर रही हैं। गगन में कृष्णवर्ण का महान् चन्द्र बारम्बार घूर्णन कर रहा है। कभी नीचे गिरता है, तो कभी ऊपर उठ आता है। तभी मानों मेरे प्राणाधिष्ठातृ देवता मेरे अन्तस्थल से निकल कर कहने लगे–"हे राधा! मुझे विदा दो! मैं जा रहा हूं!"॥१४-१९॥

कृष्णवर्णा च प्रतिमा मामाश्लिष्यति चुम्बति।
कृष्णवस्त्रपरीधाना चेति पश्यामि साम्प्रतम्॥२०॥
इतीदं विपरीतं च दृष्ट्वा च प्राणवल्लभ।
नृत्यन्ति दक्षिणाङ्गानि प्राणा आन्दोलयन्ति मे॥२१॥
रुदन्ति शोकात्कर्षन्ति समुद्विग्नं च मानसम्।
किमिदं किमिदं नाथ वद वेदविदां वर॥२२॥

"हे प्रभो! तभी मैं देखती हूं कि एक काला वस्त्र धारण किये हुये एक प्रतिमा ने मेरा आलिंगन चुम्बन किया। हे प्राणप्रिय! मैंने स्वप्न में यह सब विपरीत घटनाक्रम देखा है। मेरा दाहिना अंग फड़क रहा है। प्राण आन्दोलित हो उठा है। मानों मेरे उद्विग्न चित्त शोकाधिक्य के कारण बारम्बार रो उठता है। हे नाथ! हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ! मुझे यह क्या हो गया?"॥२०-२२॥

इत्युक्त्वा राधिका देवी शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।
पपात तत्पदाम्भोजे भीता सा शोकविह्वला॥२३॥
श्रुत्वा स्वप्नं जगन्नाथो देवीं कृत्वा स्ववक्षसि।
आध्यात्मिकेन योगेन बोधयामास तत्क्षणम्॥२४॥

---

१. ख. ०दार्य!

तत्याज शोकं सा देवी ज्ञानं सम्प्राप्य निर्मलम्।
शान्तं च भगवन्तं च कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि॥२५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदनारा० राधाशोकापनोदने षट्षष्टितमोऽध्यायः॥६६॥

—❀❀❀—

यह कहते हुये राधा के कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो गये। वे भयभीत तथा शोक से विह्वल होकर श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ीं। जगन्नाथ देव ने राधा का स्वप्न सुनकर उनको वक्ष से लगा लिया। तदनन्तर कृष्ण ने उनको उसी समय आध्यात्मिक योग का उपदेश प्रदान किया। देवी राधा ने जब यह निर्मल ज्ञान प्राप्त किया उन्होंने शोक त्याग दिया। तदनन्तर उन्होंने अपने प्रिय शान्त प्रभु को अपने वक्ष से लगा लिया॥२३-२५॥

॥६६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

राधा से कृष्ण का आध्यात्मिक योग वर्णन

नारायण उवाच

विरहव्याकुलां दृष्ट्वा कामिनीं काममोहनः।
कृत्वा वक्षसि तां कृष्णो ययौ क्रीडासरोवरम्॥१॥

राजराजेश्वरी राधा कृष्णवक्षसि राजते। सौदामिनीव जलदे नवीने गगने मुने॥२॥
रेमे स रमया सार्धं कृपया च कृपानिधिः। द्वयोर्द्वयोर्यथा स्वर्णमण्योर्मारकतो मणिः॥३॥
रत्ननिर्माणपर्यङ्के रत्नेन्द्रसारनिर्मिते। रत्नप्रदीपे ज्वलति रत्नभूषणभूषितः॥४॥
रत्नभूषणभूषितया रासरत्नश्च[1] कौतुकात्। रसरत्नाकरे रम्ये निमग्नो रसिकेश्वरः॥५॥
रासे रासेश्वरी राधा रासेश्वरमुवाच सा। सुरतौ विरतौ सत्यां विरते न मनोरथे॥६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे देवर्षि! जब काम को भी मोहित करने वाले श्रीकृष्ण ने राधा को विरह व्याकुल देखा, तब उन्होंने राधा को अपने वक्ष से लगाया तथा क्रीड़ा सरोवर गये। हे मुनिवर! जिस प्रकार नवीन मेघयुक्त गगनमण्डल में विद्युत् वल्लरी शोभायमान होती है, राजराजेश्वरी राधा कृष्ण

१. क. रासो रत्नेन कौ.।

के वक्षस्थल से लिपटी उसी प्रकार शोभित हो रही थीं। तत्पश्चात् वहां कृष्ण ने राधा के साथ रमण किया। उस समय वे दोनों एक साथ उसी प्रकार शोभायमान हो गये, जिस प्रकार स्वर्ण में जड़ी मरकतमणि सुशोभित होती है। उत्तम रत्नों के सारभाग से निर्मित तथा रत्नजड़ित पलंग पर स्थित जहां रत्न प्रदीप जल रहा था, कृष्ण रत्नभूषणभूषिता साक्षात् रत्नस्वरूपा राधा के साथ रमण करने लगे। उस रास में सुरत से विरत होने पर रासेश्वरी राधा का अभी मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका था (वे तृप्त नहीं हो सकी थीं) तब उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा–।।१-६।।

राधिकोवाच

प्रफुल्लाऽहं त्वया नाथ मृताम्लाना च त्वां विना।
यथा महोषधिगणः प्रभाते भाति भास्करे।।७।।
नक्तं दीपशिखेवाहं त्वया सार्धं त्वया विना।
दिने दिने यथा क्षीणा कृष्णपक्षे विधोः कला।।८।।
तव वक्षसि मे दीप्तिः पूर्णचन्द्रप्रभासमा।
सद्यो मृता त्वया त्यक्ता कुह्वां चन्द्रकला यथा।।९।।

देवी राधिका कहती हैं–हे कमलाकान्त! जिस प्रकार सूर्योदय काल में औषधियां पहले तो प्रसन्न रहती हैं, तथापि जब दिन में सूर्य की प्रखरता बढ़ जाती है, तब वे म्लान हो जाती हैं, इसी प्रकार मैं आपका अदर्शन होने पर म्लान एवं मृतवत् हो जाती हूं और जब आप रहते हैं, तब मैं उसी प्रकार उद्भासित हो उठती हूं जैसे रात्रि में दीप-शिखा उद्भासित रहती है। जब आप नहीं रहते, तब मैं सतत् कृष्णपक्षीय चन्द्रवत् क्षीण होती जाती हूं।।७-९।।

ज्वलदग्निशिखेवाहं घृताहुत्या त्वया सह।
त्वया विनाऽहं निर्वाणा शिशिरे पद्मिनी यथा।।१०।।
चिन्ताज्वरजराग्रस्ता मत्तस्त्वयि गतेऽप्यहम्।
अस्तङ्गते रवौ चन्द्रे ध्वान्तग्रस्ता धरा यथा।।११।।
भ्रष्टो वेषस्त्वां विना मे रूपयौवनचेतनम्। तारावली परिभ्रष्टा सूर्यसूतोदये यथा।।१२।।

आपके साथ मेरी स्थिति ऐसी रहती है, जिस प्रकार घृताहुति देते समय अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। आपके न रहने पर मेरी स्थिति शिशिर कालीन पद्म की तरह म्लान हो जाती है। जब चन्द्र-सूर्य के अस्त हो जाने पर वसुन्धरा गाढ़ अन्धकाराच्छन्न हो जाती है, उसी प्रकार जब आप मेरे पास से चले जाते हैं, तब चिन्ताज्वर मुझे ग्रस्त कर लेता है। जब आप नहीं रहते, तब मेरी वेशभूषा, रूप, यौवन तथा चेतना आदि उसी प्रकार से भ्रष्ट हो जाती है, जैसे अरुणोदय काल में तारावलि नष्ट परिलक्षित होती हैं।।१०-१२।।

त्वमेवात्मा च सर्वेषां मम नाथो विशेषतः।
तनुर्यथात्मना त्यक्ता तथाहञ्च त्वया विना॥१३॥
पञ्चप्राणात्मकस्त्वं मे मृताहञ्च त्वयाविना।
यथा दृष्टिश्च गोलोके दृष्टिपुत्तलिकां विना॥१४॥
स्थलं यथा चित्रयुक्तं त्वया सार्द्धमहं तथा।
असंस्कृता त्वया हीना तृणाच्छन्ना यथा मही॥१५॥
त्वया सार्द्धमहं कृष्ण चित्रयुक्तेव मृण्मयी।
त्वां विना जलधौताहं विरूपा मृण्मयीवच॥१६॥

गोपाङ्गनानां शोभा च त्वया रासेश्वरेण च। हारे स्वर्णविकारे च श्वेतेन मणिना सह॥१७॥

हे नाथ! आप सबकी आत्मा अवश्य हैं, तथापि विशेषतया आप मेरी आत्मा हैं। आपके अभाव में मेरी दशा आत्मा रहित देह ऐसी हो जाती है। हे कान्त! आप ही मेरे पंचप्राण के समान हैं। देखने वाली आंख की पुतली के बिना केवल कृष्णवर्ण गोलक में (आंख के गोलक में) जिस प्रकार से दृष्टि शक्ति नहीं होती, उसी प्रकार आपके बिना मैं भी मृतवत् हो गई हूं। हे कृष्ण! जिस प्रकार से चित्रयुता होने पर मृण्मयी प्रतिमा की जो शोभा होती है, आपके साथ मिलिता होने पर मेरी भी वैसी ही शोभा हो जाती है। (चित्रयुता अर्थात् रंगों से रंगी मिट्टी की प्रतिमा)। आपके बिना मेरी वही हालत होती है, जो मिट्टी की प्रतिमा को पानी से धोने पर उसकी हालत हो जाती है (अर्थात् नष्ट हो जाती है)। हे रासेश्वर! आपके रहने पर ही गोपांगनायें उस प्रकार शोभित होती हैं मानो स्वर्ण के हार में श्वेतमणि को जड़ा जाये॥१३-१७॥

व्रजराज त्वया सार्द्धं राजन्ते राजराजयः। यथा चन्द्रेण नभसि ताराराजिर्विराजते॥१८॥

त्वया शोभा यशोदाया नन्दस्य नन्दनन्दन।
यथा शाखा फलस्कन्धैस्तरुराजिर्विराजते॥१९॥
त्वया सार्द्धं गोकुलेश शोभा गोकुलवासिनाम्।
यथा सर्वा लोकराजी राजेन्द्रेण विराजते॥२०॥

रासस्यापि च रासेश त्वया शोभा मनोहरा। राजते देवराजेन यथा स्वर्गेऽमरावती॥२१॥

वृन्दावनस्य वृक्षाणां त्वञ्च शोभा पतिर्गतिः।
अन्येषाञ्च वनानाञ्च बलवान् केशरी यथा॥२२॥
त्वयाविनायशोदाच निमग्ना शोकसागरे।
अप्राप्यवत्सं सुरभी क्रोशन्ती व्याकुला यथा॥२३॥
आन्दोलयन्ति नन्दस्यप्राणा दग्धञ्च मानसम्।
त्वयाविना तप्तपात्रे यथाधान्यसमूहकः॥२४॥

इत्युक्त्वा परमप्रेम्णा सा पतन्ती हरेः पदे। पुनराध्यात्मिकेनैव बोधयामास तां विभुः॥२५॥
आध्यात्मिको महायोगो मोहसंच्छेदकारणम्। यथापरशुर्वृक्षाणां तीक्ष्णधारश्च नारद॥२६॥

"हे व्रजराज! आकाशमण्डल में जिस प्रकार से चन्द्र के साथ ताराओं की स्थिति रहती है, उसी प्रकार से राजा लोग भी आपके साथ विराजमान रहते हैं। हे नंदनन्दन! जैसे वृक्ष शाखा, तना, फल तथा पुष्प से शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार से यशोदा तथा नन्द आपके साथ रहने पर तभी शोभित होते हैं। हे गोकुलेश्वर! राजाओं के समागम से जिस प्रकार से लोग शोभित होते हैं, उसी तरह आपको पाकर गोकुलवासियों की शोभा होती है। हे रासेश्वर! जैसे स्वर्ग की अमरावतीपुरी देवराज के रहने से शोभायमान होती है, उसी प्रकार रासमण्डल भी आपके अधिष्ठित रहने से ही मनोहर शोभा धारण कर लेता है। इस वृन्दावन की तथा यहां के वृक्षों की शोभा आप ही हैं। आप ही हमारी गति हैं। आप ही मेरे पति हैं। सभी बली लोगों में से जिस प्रकार केशरी सबसे बली हैं, उसी प्रकार वृन्दावनवासी लोगों में से आप सर्वश्रेष्ठ बली हैं। आपका अदर्शन होने पर यशोदा बछड़ा खो गये गौ की तरह शोकसागर में मग्न होकर व्याकुलित होकर रुदन करती हैं। आपको न देख सकने के कारण उनका प्राण उसी तरह आन्दोलित होता है जैसे तप्त पात्र में छोड़ा धान! इस प्रकार उनका मानस दग्ध हो जाता है।" राधिका इस प्रकार कहकर परम प्रेम पूर्वक हरि के चरणों पर गिर पड़ीं। तब प्रभु श्रीकृष्ण ने पुनः आध्यात्मिक योग का उपदेश देकर उनको सान्त्वना प्रदान किया। हे नारद! जिस प्रकार तीक्ष्ण कुठार सभी वृक्षों के काटने का कारण है, उसी प्रकार आध्यात्मिक महायोग भी शोकनाश का कारण है।।१८-२६।।

नारद उवाच

आध्यात्मिकं महायोगं वद वेदविदां वर। शोकच्छेदञ्च लोकानां श्रोतुं कौतूहलं मम॥२७॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे वेदविद्प्रवर! मेरी अत्यन्त कामना है कि जीवगण के शोक का नाश करने वाले आध्यात्मिक महायोग का श्रवण करूं। अतः वह कृपा पूर्वक कहिये।।२७।।

श्रीनारायण उवाच

आध्यात्मिको महायोगो न ज्ञातो योगिनामपि।
स च नानाप्रकारश्च सर्वं वेत्ति हरिः स्वयम्॥२८॥

किञ्चिदाध्यात्मिकञ्च गोलोके राधिकेश्वरः। सुप्रीतः कथयामास त्रिपुरारिंमहामुने॥२९॥
सहस्त्रेन्द्रनिपातान्तं तपः कुर्वन्तमीश्वरम्। श्रेष्ठं ज्येष्ठं वैष्णवानां वरिष्ठञ्च तपस्विनाम्॥३०॥

पुष्करे दुष्करं तप्त्वा पाद्मे पाद्मञ्च पद्मजः।
दृष्ट्वा तं सादरं कृत्वा उवाच किञ्चिदेव तम्॥३१॥

शतेन्द्रपातपर्य्यन्तं कठोरेण कृशोदरम्। निश्चेष्टमस्थिसारञ्च कृपया च कृपानिधिः॥३२॥
सिंहक्षेत्रे पुरा धर्मं मत्तातं धर्मिणां वरम्। चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं तपस्तप्त्वा कृशोदरम्॥३३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! यह आध्यात्मिक महायोग योगीगण भी नहीं जानते। यह अनेक प्रकार का है। केवल हरि को ही यह पूर्णतः विदित है। हे मुनिवर! पूर्वकाल में तपस्वीप्रवर वैष्णवों में श्रेष्ठ भगवान् त्रिपुरारि ने उतने काल तक तप किया, जितने काल में १००० इन्द्र नष्ट हो जाते हैं। इससे राधिकेश्वर कृष्ण उन पर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। कृष्ण ने उनसे गोलोकधाम में आध्यात्मिक योग का कुछ अंश कहा था। हे ब्रह्मपुत्र! पूर्वकाल के पाद्मकल्प में पद्मयोनि ब्रह्मदेव ने पुष्करतीर्थ में १०० इन्द्रों के आयुकाल पर्यन्त कठोर तप किया। कृष्ण ने उनको अत्यन्त कृश, निश्चेष्ट तथा कंकालमात्र देखकर उन पर कृपा किया तथा आदर पूर्वक इस योग का कुछ अंश उनसे प्रकाशित किया था। धर्मदेव के सिंहक्षेत्र में १४ इन्द्रों के जीवनकाल तक तप करने के कारण पूर्णतः कृश देखकर कृपा के कारण श्रीकृष्ण ने उनको किञ्चित् ही यह आध्यात्मिक योग प्रदान किया था। मैंने भी १०० इन्द्रों के जीवन काल तक तप किया। मेरे तप से प्रसन्न होकर मुझसे भी श्रीकृष्ण ने यह आध्यात्मिक योग किञ्चित् ही प्रदान किया था।।२८-३३।।

पपाठाऽऽध्यात्मिकं किंचित्कृपया च कृपानिधिः।
किंचिच्छतेन्द्रावच्छिन्नं[1] मां तपन्तमुवाच सः॥३४॥
किंचित्सनत्कुमारं च तपन्तं सुचिरं परम्। सुतपन्तमनन्तं च किंचिच्चोवाच नारद॥३५॥
चिरं तपन्तं कपिलं हिमशैले तपस्विनम्। पुष्करे भास्करे किञ्चित्तपन्तं दुष्करं तपः॥३६॥
उवाच किञ्चित्प्रह्लादं किञ्चिद्दुर्वाससं भृगुम्।
एवं निगूढं भक्तं च कृपया भक्तवत्सलः॥३७॥
क्रीडासरोवरे रम्ये यदुवाच कृपानिधिः।
शोकार्तां राधिकां तच्च कथयामि निशामय॥३८॥
विरसां[2] रसिकां दृष्ट्वा वासयित्वा च वक्षसि।
उवाचाऽऽध्यात्मिकं किञ्चिद्योगिनीं योगिनां गुरुः॥३९॥

तदनन्तर मेरे उद्देश्य से सनत्कुमार ने अत्यन्त दीर्घकाल कठोर तप किया। अर्थात् उन्होंने १०० इन्द्रों के जीवन काल तक तप किया था। तब भगवान् ने उनको भी कुछ अध्यात्मयोग बतलाया। हे नारद! भगवान् ने हिमालय पर दीर्घकाल तप निरत तपस्वी कपिल को, पुष्कर में कठोर तप निरत भास्कर को तथा निगूढ़ भक्तों प्रह्लाद, दुर्वासा, भृगु को भी किञ्चित् अध्यात्मयोग प्रदान किया। अब मैं वह संवाद कहने जा रहा हूं, जिसे रम्य क्रीड़ा सरोवर के तट पर कृपानिधि रासेश्वर ने शोकार्त्ता राधिका से कहा था। प्रियतमा रसिकायोगिनी राधिका को विरसा देखकर वक्षस्थल से लगाया तथा उनसे उन्होंने किञ्चित् आध्यात्मिक विषय वर्णन करना प्रारम्भ किया।।३४-३९।।

१. ख. ०च्छिन्नमातपन्तमु०।
२. विवशामिति क्वचित् पाठः।

श्रीकृष्ण उवाच

जातिस्मरे स्मराऽऽत्मानं कथं विस्मरसि प्रिये।
सर्वं गोलोकवृत्तान्तं सुदाम्नः शापमेव च॥४०॥
शापाकिंत्कचिद्दिनं दीने त्वद्विच्छेदो मया सह।
भविष्यति महाभागे मेलनं पुनरावयोः॥४१॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे प्रिये! तुम तो जातिस्मरा हो (पूर्वजन्म की स्मृतियुक्त हो)। तुमने किस कारण से समस्त गोलोक का वृत्तान्त तथा श्रीदाम के शाप को विस्मृत कर दिया? हे महाभागे! श्रीदाम के इसी शाप के कारण मेरा तुम्हारे साथ कुछ समय वियोग होगा, परन्तु पुनः आध्यात्मिक मिलन होगा!॥४०-४१॥

पुनरेव गमिष्यामि गोलोकं तं निजालयम्।
गत्वा गोपाङ्गनाभिश्च गोपैर्गोलोकवासिभिः॥४२॥
अधुनाऽऽध्यात्मिकं किञ्चित्वां वदामि निशामय।
शोकघ्नं हर्षदं सारं सुखदं मानसस्य च॥४३॥

अहं सर्वान्तरात्मा च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु। विद्यमानश्च सर्वेषु सर्वत्रादृष्ट एव च॥४४॥

हे प्रिये! हम लोग पुनः अपने धाम गोलोकवासी गोपाङ्गनाओं के साथ तथा गोपों के साथ इस पृथिवी से गोलोक चले जायेंगे। सम्प्रति मैं तुमसे शोकहारी, हर्षप्रद, सबका साररूप, चित्त को सुख देने वाला विवरण कह रहा हूं। यह आध्यात्मिक योग है। मैं सर्वान्तरात्मा, सभी कर्मों में निर्लिप्त, सबमें विद्यमान होकर भी सर्वत्र अदृश्य होकर रहता हूं।॥४२-४४॥

वायुश्चरति सर्वत्र यथैव सर्ववस्तुषु। न च लिप्तस्तथैवाहं साक्षी च सर्वकर्मणाम्॥४५॥

जिस प्रकार वायु सभी वस्तुओं में सदा सर्वत्र गमन करता रहता है, परन्तु कहीं लिप्त नहीं होता, तदनुरूप मैं कहीं भी लिप्त नहीं होता तथा सर्वकर्मसाक्षीरूप रहता हूं।॥४५॥

जीवो मत्प्रतिबिम्बश्च सर्वत्र सर्वजीविषु।
भोक्ता शुभाशुभानां च कर्ता च कर्मणां सदा॥४६॥

यथा जलघटेष्वेव मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः। भग्नेषु तेषु संश्लिष्टस्तयोरेव तथा मयि॥४७॥

जीवः श्लिष्टस्तथा काले मृतेषु जीविषु प्रिये।
आवां च विद्यमानौ च सततं सर्वजन्तुषु॥४८॥

सर्वत्र सभी जीवों में स्थित जीवात्मा मेरा ही प्रतिबिम्ब है। यह जीवात्मा निरन्तर कर्मानुष्ठान तथा शुभाशुभ कर्मफल भोग कर रहा है। जिस प्रकार से जलपूर्ण घट में सूर्य-चन्द्र का प्रतिबिम्ब विराजित रहता है तथा उस घट के भग्न हो जाने पर वह प्रतिबिम्ब अलग नहीं रह जाता। वह चन्द्र-

सूर्य में लीन हो जाता है। इसी प्रकार से देह के विनष्ट होने पर मेरा प्रतिबिम्व जीव भी मुझमें लीन हो जाता है। मैं समस्त प्राणीगण में जीवरूप से ही दृष्ट होता हूं। मैं ही आत्मारूप से अदृष्ट हो जाता हूं। मैं सर्वत्र सर्वदा सभी जन्तुओं तथा द्रव्य में अधिष्ठित रहता हूं। मैं शरीर धारण करके सगुण हो जाता हूं। अन्यथा निराकार निर्गुण रहता हूं।।४६-४८।।

आधारश्चाहमाधेयं कार्यं च कारणं विना। अये सर्वाणि द्रव्याणि नश्वराणि च सुन्दरि।।४९।।

आविर्भावाधिकाः कुत्र कुत्रचिन्न्यूनमेव च।
ममांशाः केऽपि देवाश्च केचिद्देवाः कलास्तथा।।५०।।
केचित्कलाः कलांशांशास्तदंशांशाश्च केचन।
मदंशा प्रकृतिः सूक्ष्मा सा च मूर्त्या च पञ्चधा।।५१।।
सरस्वती च कमला दुर्गा त्वं चापि वेदसूः।
सर्वे देवाः प्राकृतिका यावन्तो मूर्तिधारिणः।।५२।।

अहमात्मा नित्यदेही भक्तध्यानानुरोधतः[1]। ये ये प्राकृतिका राधे ते नष्टाः प्राकृते लये।।५३।।

हे सुन्दरी! समस्त द्रव्य नश्वर है। मैं आधार हूं। जगत् आधेय है। कारण के अभाव में कार्य नहीं रह सकता। मैं आधार तथा कारण हूं। मेरे बिना आधेय की सत्ता नहीं रह सकती। जगत् में कुछ स्थान पर मेरा अल्प आविर्भाव है तो कहीं अधिक आविर्भाव है। कुछ देवता मेरे अंश हैं, कुछ देवता मात्र मेरी कलामात्र हैं। यह प्रकृति मेरा ही अंश है। यह सूक्ष्म है तथा पांच प्रकार से मूर्त्तिमान है। ये मूर्तियां हैं–सरस्वती, कमला (लक्ष्मी), दुर्गा, राधा तथा सावित्री (वेदजननी)। जितने भी मूर्त्त देवता परिलक्षित होते हैं, वे सभी प्रकृति से उत्पन्न हैं। केवल मैं परमात्मा ही भक्तों के ध्यानानुरूप उनके लिये नित्य देह धारण हो जाता हूं। सभी देवता तथा स्वरूपधारी प्राकृतिक (प्रकृतिजनित) हैं। हे राधा! ये सभी प्राकृतिक प्राकृत स्थिति का लय होते ही नष्ट हो जाते हैं।।४९-५३।।

अहमेवाऽऽसमेवाग्रे पश्चादप्यहमेव च। यथाऽहं च तथा त्वं च यथा धावल्यदुग्धयोः।।५४।।

भेदः कदाऽपि न भवेन्निश्चितं च तथाऽऽवयोः।
अहं महान्विराट् सृष्टौ विश्वानि यस्य लोमसु।।५५।।

अंशस्त्वं तत्र महती स्वांशेन तस्य कामिनी। अहं क्षुद्रविराट् सृष्टौ विश्वं यन्नाभिपद्मतः।।५६।।

[2]अयं विष्णोर्लोमकूपे वासो[3] मे चांशतः सति।
तस्य स्त्री त्वं च बृहती स्वांशेन सुभगा तथा[4]।।५७।।

---

१. क. ०नुबोध०।
२. क. अहं।
३. अहं विष्णुः कृतिवासाः सर्वे मे इति च पाठः।
४. क. सदा।

तस्य विश्वे च प्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
ब्रह्मविष्णुशिवा अंशाश्चान्ये चापि च मत्कलाः॥५८॥

मैं ही केवल एकमात्र पहले भी था (आदि में था) तथा सबके पश्चात् (सृष्टि के पश्चात्) भी रहूंगा। मेरा कभी लय नहीं होता। मैं तथा तुम (राधा) एक ही हैं। हम दोनों में उसी प्रकार कोई भेद नहीं है, जैसे दुग्ध तथा उसकी धवलता (श्वेतवर्ण) में कोई भेद नहीं रहता। यह निश्चित है कि मेरे तथा तुम्हारे बीच कोई भी भेद नहीं है। मैं ही सृष्टिकाल में महाविराट् हूं जिसके रोमकूप में समस्त विश्व विद्यमान है। जब तुम भी (जो मेरे अंश से उत्पन्न हो) अपने अंश द्वारा महाविराट् की महती कामिनी हो जाती हो। हे सती! सृष्टिकाल में जिसके नाभिकमल से समस्त विश्व के कारण ब्रह्मा उत्पन्न हो गये थे, वे क्षुद्र विराट् भी मैं ही हूं। मैं ही विष्णु तथा महेश्वर भी हूं। फलस्वरूप ये सभी मेरे अंश से उत्पन्न हैं। शेष मेरे कलारूप हैं। प्रति ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवता रहते हैं। वे मेरे अंश हैं। देवता मेरी कला हैं। मुझ क्षुद्र विराट् के नाभिकमल से समग्र विश्व उद्भूत होता है। मैं अपने अंश से विष्णु के रोमकूप में यह मैं अंशतः स्थित रहता हूं। तब तुम अपने अंश से उनकी सुभगा पत्नी बृहती हो जाती हो।।५४-५८।।

मत्कलांशांशकलया सर्वे देवि चराचराः। वैकुण्ठे त्वं महालक्ष्मीरहं तत्र चतुर्भुजः॥५९॥
स च विश्वाद्‌बहिश्चोर्ध्वं यथा गोलोक एव च।
सरस्वती त्वं सत्ये च सावित्री ब्रह्मणः प्रियाः॥६०॥
शिवलोके शिवा त्वं च मूलप्रकृतिरीश्वरी। विनाश्य दुर्गं दुर्गा च सर्वदुर्गतिनाशिनी॥६१॥

हे देवी! समस्त सचराचर मेरे कलांश के ही अंशरूप हैं। वैकुण्ठ में तुम महालक्ष्मी रूपा रहती हो। तब मैं वहां चतुर्भुज रूपी हो जाता हूं। वैकुण्ठधाम भी गोलोकवत् ही ब्रह्माण्ड के भी बाहर तथा ब्रह्माण्ड से ऊर्ध्वस्थ हैं। तुम ही सत्यलोकस्थ ब्रह्मा की पत्नी प्रिया सावित्री हो। तुम ही ईश्वरी मूलप्रकृति शिवलोक में शिवा हो। तुम दुर्ग दैत्य को नष्ट करने वाली, सभी दुर्गति का नाश करने वाली दुर्गा देवी हो।५९-६१।।

सा एव दक्षकन्या च सा एव शैलकन्यका।
कैलासे पार्वती तेन सौभाग्या शिववक्षसि॥६२॥
स्वांशेन त्वं सिन्धुकन्या क्षीरोदे विष्णुवक्षसि।
अहं स्वांशेन सृष्टौ च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥६३॥
त्वं च लक्ष्मी शिवा धात्री सावित्री च पृथक्पृथक्।
गोलोके च स्वयं राधा रासे रासेश्वरी सदा॥६४॥

तुम ही दक्षपुत्री सती तथा शैलराज की पुत्री हो। ये सौभाग्यमयी पार्वती कैलासधाम में शिव के वक्षस्थल पर स्थित रहती हैं। तुम अपने ही अंश से क्षीर-सागर में सिन्धुकन्यारूपा स्थित हो। मैं

अपने ही अंश से सृष्टि के समय ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर के रूप में हो जाता हूं। उस समय तुम पृथक्-पृथक् ब्रह्मा की सावित्री, विष्णु की लक्ष्मी तथा शिव की शिवा अपने अंश से हो जाती हो। तुम सदा गोलोक में राधा तथा रास में सदैव रासेश्वरी हो।।६२-६४।।

वृन्द वृन्दावने रम्ये विरजा विरजातटे। सा त्वं सुदामशापेन भारतं पुण्यमागता।।६५।।
पूतं कर्तुं भारतं च वृन्दारण्यं च सुन्दरि। त्वत्कलांशांशकलया विश्वेषु सर्वयोषितः।।६६।।

या योषित्सा च भवती यः पुमान्सोऽहमेव च।
अहं च कलया वह्निस्त्वं स्वाहा दाहिका प्रिया।।६७।।

तुम ही वृन्दावन में वृन्दा तथा विरजानदी के तट पर विरजा हो। तुम श्रीदाम के शाप से पुण्यक्षेत्र भारत में आविर्भूत हो। हे सुन्दरी! तुम भारत तथा वृन्दावन को पवित्र करने आई हो। विश्व की सभी स्त्रियां तुम्हारे ही कलांश की कलारूपा हैं। विश्व की समग्र स्त्रियों के रूप में तुम विराजमान हो। विश्व के समस्त पुरुष रूप में मैं ही हूं। मैं ही अपनी कला से अग्नि हूं। तुम ही अग्नि की प्रिया दाहिका स्वाहा हो।।६५-६७।।

त्वया सह समर्थोऽहं नालं दग्धुं च त्वां विना।
अहं दीप्तिमतां सूर्यः कलया त्वं प्रभाकरी।।६८।।
संज्ञा त्वं च त्वया भामि त्वां विनाऽहं न दीप्तिमान्।
अहं च कलया चन्द्रस्त्वं च शोभा च रोहिणी।।६९।।

तुम्हारे साथ ही मैं दग्ध कर पाता हूं। तुम्हारे अभाव में मैं असमर्थ रह जाता हूं। मैं दीप्तिमान सूर्य हूं। तुम प्रभा को जन्म देने वाली प्रिया हो। तुम सूर्य भार्या संज्ञा हो। तुम्हारे साथ रहने से ही मैं दीप्तिमान हो पाता हूं। जब तुम विलग होती हो, तब मैं दीप्तिमय नहीं हो पाता। मैं अपनी कला से चन्द्र हूं। तुम चन्द्र की शोभा हो तथा चन्द्र पत्नी रोहिणी हो।।६८-६९।।

मनोहरस्त्वया सार्धं त्वां विना न च सुन्दरः[१]।
अहमिन्द्रश्च कलया स्वर्गलक्ष्मीश्च त्वं शची।।७०।।

तुम जब साथ हो, तभी मैं मनोहर हूं। तुम्हारे अभाव में मैं सुन्दर ही नहीं हो पाता। मैं अपनी कला से इन्द्र हूं। तुम ही स्वर्गलक्ष्मी शची देवी हो।।७०।।

त्वया सार्धं देवराजो हतश्रीश्च त्वया विना।
अहं धर्मश्च कलया त्वं च मूर्तिश्च धर्मिणी।।७१।।
नाहं शक्तो धर्मकृत्यो त्वां च धर्मक्रियां विना।
अहं यज्ञश्च कलया त्वं[२] च स्वांशेन दक्षिणा।।७२।।

१. विना च न सुन्दरी इति च पाठः।
२. ख. त्वं स्वाहांशे०।

त्वया सार्धं च फलदोऽप्यसमर्थस्त्वया विना।
कलया पितृलोकोऽहं स्वांशेन त्वं स्वधा सती॥७३॥
त्वयाऽलं कव्यदाने च सदा नालं त्वया विना।
अहं पुमांस्त्वं प्रकृतिर्न स्त्रष्टाऽहं त्वया विना॥७४॥

तुम्हारे साथ रहने से ही इन्द्र देवराज हैं। तुम्हारे बिना इन्द्र श्रीहत हो जाते हैं। मैं अपनी कला से धर्मदेव हूं। तुम धर्मपत्नी देवी मूर्ति हो। तुम धर्मक्रियारूप हो। बिना तुम्हारे मैं धर्म कृत्य नहीं कर सकता। मैं ही कलारूपेण यज्ञरूप हो जाता हूं, तथापि तुम्हारे अभाव में मैं यज्ञफल नहीं दे सकता। मैं ही अपनी कला से पितृरूप हूं। तुम अपने अंश से ही सती स्वधा हो जाती हो। मैं तुम्हारे साथ रहने पर ही कव्य (पिण्डदान) दान ले पाता हूं। तुम्हारे बिना यह कार्य नहीं कर सकता। मैं पुरुष हूं। तुम प्रकृति हो। मैं तुम्हारे बिना सृष्टि कर ही नहीं सकता।।७१-७४।।

त्वं च संपत्स्वरूपाऽहमीश्वरश्च त्वया सह।
लक्ष्मी युक्तस्त्वया लक्ष्म्या निःश्रीकश्च त्वया विना॥७५॥
यथा नालं कुलालश्च घटं कर्तुं मृदा विना। अहं शेषश्च कलया स्वांशेन त्वं वसुंधरा॥७६॥
त्वया सस्यरत्नाधारां च बिभर्मि मूर्ध्नि सुन्दरि।
त्वं च कान्तिश्च शान्तिश्च भूतिर्मूर्तिमती सती॥७७॥

तुम सर्वसम्पत्ति स्वरूपा हो। जब तक तुम साथ हो तभी तक मैं ईश्वर रहता हूं। मैं ही अपनी स्वात्मकला से शेषनाग हूं। तुम अपने अंश द्वारा वसुन्धरा हो। तुम लक्ष्मीस्वरूपा जब मेरे साथ हो, तभी तक मैं लक्ष्मीवान् हूं। जब तुम साथ तथा रत्नों की आधारभूता तुम वसुंधरा को शेषरूप से मस्तक पर धारण करता हूं। तुम कान्ति, शान्ति, भूति तथा मूर्तिमती सती देवी हो।।७५-७७।।

तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा क्षुधा तृष्णा परा दया।
निद्रा श्रद्धा च तन्द्रा च मूर्च्छा च सन्नतिः क्रिया॥७८॥
मूर्तिरूपा भक्तिरूपा देहिनां देहरूपिणी।
ममाऽऽधारा सदा त्वं च तवाऽत्माऽहं परस्परम्॥७९॥

तुम तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, सुधा, तृष्णा, अत्यन्त दया, निद्रा, श्रद्धा, तन्द्रा, मूर्च्छा, नमस्कार रूपी क्रिया हो। तुम ही मूर्तिरूपी, भक्तिरूपा, देहधारियों की देहरूपा हो। तुम सदा मेरी आधारभूता हो मैं तुम्हारा आधार हूं। हम दोनों परस्परतः एक-दूसरे के आधार है।।७८-७९।।

यथा त्वं च तथाऽहं च समौ प्रकृतिपूरुषौ। न हि सृष्टिर्भवेद्देवि द्वयोरेकतरं विना॥८०॥

जो तुम हो, वही मैं हूं। पुरुष-प्रकृति समान होते हैं। हे देवी! दोनों में से एक भी न हो, तब सृष्टि हो सकना असंभव जानो।।८०।।

इत्युक्त्वा परमात्मा च राधां प्राणाधिकां प्रियाम्।
कृत्वा वक्षसि सुप्रीतो बोधयामास नारद॥८१॥
स च क्रीडानियुक्तश्च बभूव रत्नमन्दिरे।
तथा च राधया सार्धं कामुक्या सह कामुकः॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० आध्यात्मिकयोगकथं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥६७॥
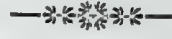
हे नारद! यह कहकर परमात्मा ने प्राणाधिका राधा को वक्ष से लगाकर प्रीति पूर्वक प्रबोधित किया। तदनन्तर कामुक श्रीकृष्ण कामुकी राधा के साथ रत्नमन्दिर में जाकर क्रीड़ारत हो गये॥८१-८२॥

॥६७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

विरह से दुःखी राधा की कृष्ण से प्रार्थना तथा कृष्ण का राधा को उपदेश प्रदान करना

नारायण उवाच

कृत्वा क्रीडां समुत्थाय पुष्पतल्पात्पुरातनः।
निद्रितां प्राणसदृशीं बोधयामास तत्क्षणम्॥१॥
सस्त्राञ्चलेन संस्कृत्य कृत्वा तन्निर्मलं मुखम्।
उवाच मधुरं शान्तं शान्तां च मधुसूदनः॥२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—इस क्रीड़ा के उपरान्त श्रीकृष्ण ने पुष्पशय्या से उठकर तत्क्षण प्राणप्रिया निद्रिता राधा को जगाया। तदनन्तर मधुसूदन राधा का मुखमण्डल वस्त्रांचल से पोंछ कर उनसे शान्तभाव से मधुर वचन कहा—॥१-२॥

श्रीकृष्ण उवाच

अयि तिष्ठ क्षणं राधे रासेश्वरि शुचिस्मिते। व्रज वृन्दावनं वाऽपि व्रजं व्रज व्रजेश्वरि॥३॥
रासाधिष्ठातृदेवि त्वं रासं रासे कुरु क्षणम्। ग्रामे ग्रामे यथा सन्ति सर्वत्र ग्रामदेवताः॥४॥

प्रियालिनिवहैः सार्धं क्षणं चन्दनकाननम्। क्षणं वा चम्पकवनं गच्छ वा तिष्ठ सुन्दरि॥५॥
क्षणं गृहं च यास्यामि विशिष्टं कार्यमस्ति मे।
विदायं देहि मे प्रीत्या क्षणं मां प्राणवल्लभे॥६॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी त्वं प्राणाश्च त्वयि सन्ति मे।
प्राणी विहाय प्राणांश्च कुत्र स्थातुं क्षमः प्रिये॥७॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे चारुहासिनी! रासेश्वरी! कुछ रुक जाओ। तदनन्तर तुम वृन्दावन अथवा व्रज में जाओ। हे प्रियतमे! तुम रास की अधिष्ठात्री देवी हो, अतः क्षणकाल (कुछ समय) रासमण्डल में जाकर रास-क्रीड़ा करो। तदनन्तर जिस प्रकार प्रतिग्राम में ग्रामदेवता अधिष्ठाता होकर रहते हैं तुम भी सखियों के साथ क्षणकाल के लिये चन्दनवन गमन करो। अथवा क्षणकालार्थ चम्पकवन में जाओ। किंवा वहीं ठहरो। हे सुन्दरी! मुझे एक विशेष प्रयोजन है। हे प्राणवल्लभे! क्षणकाल हेतु मुझे विदा करो। गृह में मुझे कार्य है। तुम मेरे प्राणों की अधिष्ठातृ देवी हो। मेरे प्राण तुममें रहते हैं। प्राणी व्यक्ति अपने प्राणों को अलग करके कैसे रह सकता है?॥३-७॥

त्वयि मे मानसं शश्वत्त्वं मे संसारवासना। त्वत्तो मम प्रिया नास्ति त्वमेव शंकरात्प्रिया॥८॥
प्राणा मे शङ्करः सत्यं त्वं च प्राणाधिका सति।
इत्युक्त्वा तां समाश्लिष्य भगवान् गन्तुमुद्यतः॥९॥

"मेरा मन तुममें सदा अनुरक्त रहता है। तुम तो मेरी संसार वासना हो। तुमसे बढ़कर प्रिय मुझे कोई नहीं है। किम्बहुना! तुम शंकर से भी अधिक मुझे प्रिय हो। यह सत्य है कि शंकर मेरे प्राण हैं, परन्तु तुम तो मेरे लिये प्राणों से भी अधिक हो।" यह कहकर भगवान् ने राधा का आलिंगन किया तथा वहां से जाने लगे॥८-९॥

अक्रूरागमनं ज्ञात्वा सर्वज्ञः सर्वसाधनः। आत्मा पाता च सर्वेषां सर्वोपकारकारकः॥१०॥
दृष्ट्वा तमेव गच्छन्तमुत्सुकं भिन्नमानसम्।
उवाच राधिका देवी हृदयेन विदूयता॥११॥

प्रभु यह कहकर जाने को उद्यत हो गये। उन्हें अक्रूर का आगमन ज्ञात हो गया था। वे सर्वज्ञ, सर्वसाधन, सर्वात्मा, सबके रक्षक, सबका उपकार करने वाले प्रभु को जाने के लिये उद्यत तथा अनमना देखकर राधा ने उनसे दुःखी हृदय से कहा–॥१०-११॥

राधिकोवाच

हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठश्च प्रेयसां मम। हे कृष्ण हे रमानाथ व्रजेश मा व्रज व्रजम्॥१२॥
अधुना त्वां प्राणनाथ पश्यामि भिन्नमानसम्।
गते त्वयि मम प्रेम गतं सौभाग्यमेव च॥१३॥

क्व यासि मां विनिक्षिप्य गम्भीरे शोकसागरे।
विरहव्याकुलां दीनां त्वय्येव शरणागताम्॥१४॥

राधा कहती हैं–हे नाथ! अत्यन्त प्रिय पति! रमणश्रेष्ठ! आप मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं। हे रमानाथ! हे व्रजेश्वर प्रभु! आप व्रज न जायें। हे प्राणनाथ! मैं आपको अनमना-सा देख रही हूं। आपके जाते ही मेरा प्रेम तथा सौभाग्यगत हो जायेगा; क्योंकि आप ही मेरे प्रेम तथा सौभाग्य जो हैं। आप मुझे गंभीर शोकसागर में छोड़कर क्यों जा रहे हैं? मैं दीन-विरह की आशंका से व्याकुल चित्त तथा आपकी शरणागत हूं।।१२-१४।।

न यास्यामि पुनर्गेहं यास्यामि काननान्तरम्।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति गायं गायं दिवानिशम्॥१५॥
न यास्याम्यथवाऽरण्यं यास्यामि कामसागरे।
तत्र त्वत्कामनां कृत्वा त्यक्ष्यामि च कलेवरम्॥१६॥
यथाऽऽकाशो यथाऽऽत्मा च यथा चन्द्रो यथा रविः।
तथा त्वं यासि मत्पार्श्वे निबद्धो वसनाञ्चले॥१७॥
अधुना यासि नैराश्यं कृत्वा मे दीनवत्सल।
न युक्तं हि परित्यक्तुं दीनां मां शरणागताम्॥१८॥

मैं अब पुनः घर लौटने वाली नहीं हूं। मैं किसी वन में जाकर अहर्निश कृष्ण नाम का गायन करती रहूंगी। किंवा वन में न जाकर मैं कामसागर में आपकी कामना करती हुई, वहीं प्राण त्याग कर दूंगी! आकाश, आत्मा, चन्द्र, सूर्य निरन्तर मेरे सहभागी हैं। उसी प्रकार आप मेरे आंचल से बंधकर मेरे सहगामी होकर कैसे अन्यत्र जा पायेंगे? हे दीनवत्सल! आप इस समय मुझे निराश करके क्यों जा रहे हैं? मुझ शरणागत दीन को त्यागकर जाना आपके लिये कदापि उचित नहीं है।।१५-१८।।

यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
त्वां मायया गोपवेषं कथं जानामि मत्सरी॥१९॥
कृतं यद्देव दुर्नीतमपराधसहस्रकम्। यदुक्तं पतिभावेन चाभिमानेन तत्क्षम॥२०॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर प्रभृति देवता जिनके चरणकमलों का निरन्तर ध्यान करते रहते हैं, मैं द्वेष-मत्सर युक्त नारी आप माया से गोपवेष धारी को कैसे जान सकती हूं? मैंने अविनय के कारण जो हजारों अपराध किया है तथा पति जानकर इस भाव से आप से जो कुछ अभिमान के कारण जब कभी कहा हो, आप उसे क्षमा करिये।।१९-२०।।

चूर्णीभूतश्च मद्गर्वो दूरीभूतो मनोरथः। विज्ञातुमात्मसौभाग्यं किमन्यत्कथयामि ते॥२१॥
ज्ञात्वा गर्गमुखाच्छ्रुत्वा मोहिता तव मायया।
त्वां च वक्तुं न शक्नोमि प्रेम्णा वा भक्तिपाशतः॥२२॥

यासि चेन्मां परित्यज्य सकलङ्को भविष्यसि।
त्वत्पुत्रपौत्रा नश्यन्ति ब्रह्मकोपानलेन च॥२३॥

मेरा गर्व चूर्ण-विचूर्ण हो गया। मेरे सारे मनोरथ दूरीभूत हो गये। मैं अपना सौभाग्य विशेषरूप से स्वयं जान गई। इस सम्बन्ध में आपसे अधिक क्या कहूं? मैंने पूर्वकाल में आपका वृत्तांत मुनि गर्ग से सुना था, तथापि आपकी माया से मोहित होकर तथा आपकी भक्तिरूपी पाश से बद्ध मैं आपसे और अधिक क्या कहने योग्य हूं? इतने पर भी यदि आप मुझे छोड़कर जा रहे हैं, तब आपको कलंक लगेगा तथा ब्रह्मशापरूप कोपाग्नि में आप के पुत्र-पौत्रादि का विनाश हो जायेगा।।२१-२३।।

क्षणं युगशतं मन्ये त्वां विना प्राणवल्लभम्।
कथं शताब्दं त्वां त्यक्त्वा बिभर्मि जीवनं प्रभो॥२४॥

हे प्राणवल्लभ! आपके बिना मुझे एक क्षण का समय भी सैकड़ों युग ऐसा प्रतीत होगा। तब मैं १०० वर्ष तक आपका वियोग सहकर किस प्रकार जीवन धारण कर सकूंगी?।।२४।।

इत्युक्त्वा राधिका कोपात्पपात धरणीतले। मूर्च्छां सम्प्राप सहसा जहारं चेतनां मुने॥२५॥

कृष्णस्तां मूर्च्छितां दृष्ट्वा कृपया च कृपानिधिः।
चेतनां कारयित्वा च वासयामास वक्षसि॥२६॥
बोधयामास विविधं योगैः शोकविखण्डनैः।
तथाऽपि शोकं त्यक्तुं च न शशाक शुचिस्मिता॥२७॥
सामान्यवस्तुविश्लेषो नृणां शोकाय केवलम्।
देहात्मनोश्च विच्छेदः क्व सुखाय प्रकल्पते॥२८॥

यह कहकर राधा अपनी सुध-बुध खो बैठीं। वे क्रोध के कारण सहसा पृथिवी पर गिरकर अचेतन हो गईं। तत्पश्चात् जब कृपानिधि कृष्ण ने उनको मूर्च्छित देखा, उन्होंने राधा को कृपा पूर्वक सचेत कराया और उनको अपने हृदय से लगा लिया। तब प्रभु ने उनको शोकखण्डित करने वाला विविध योगोपदेश कहा, तथापि उनके अनेक प्रयास से भी उन पवित्र मुस्कान वाली राधा का शोक दूर नहीं हो सका। जब मानव सामान्य वस्तु का भी वियोग सहन नहीं कर पाते, तब वे देह-आत्मा का विच्छेद कैसे सहन कर सकते हैं?।।२५-२८।।

न ययौ तत्र दिवसे व्रजराजो व्रजं पति। क्रीडासरोवराभ्याशं प्रययौ राधया सह॥२९॥
तत्र गत्वा पुनः क्रीडां चकार च तया सह। विजहौ विरहज्वालां रासे रासेश्वरी मुदा॥३०॥
राधा सा स्वामिना सार्धं पुष्पचन्दनचर्चिता। पुष्पचन्दनतल्पे च तस्थौ रहसि नारद॥३१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधाशोकविमोचनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः।।६८।।

—*—

राधा की इस अवस्था के कारण ब्रजराज श्रीकृष्ण ब्रजधाम उस दिन नहीं जा सके। वे उस दिन क्रीड़ा सरोवर से सीधे रासमण्डल की ओर चल पड़े। वहां पहुंचकर श्रीकृष्ण ने पुनः राधा के साथ रमणक्रीड़ा प्रारंभ कर दिया। इससे रासेश्वरी राधा (भावी) विरहवेदना से आनन्द पूर्वक छुटकारा पा गईं। हे नारद! उस समय भगवती राधा ने अपने अंगों को पुष्प-चन्दनादि से चर्चित किया तथा इस निर्जन स्थल में वे चन्दनासक्त पुष्पशैय्या पर अपने स्वामी के साथ अवस्थित हो गईं।।२९-३१।।

।।६८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

विरहातुर राधा की कृष्ण से प्रार्थना, कृष्ण द्वारा राधा को उपदेश प्रदान करना, ब्रह्मा-श्रीकृष्ण संवाद, श्रीकृष्ण-रत्नमाला का पारस्परिक संवाद वर्णन

नारद उवाच

अतः परं किं रहस्यं राधाकेशवयोर्वद। निगूढतत्त्वमस्पष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं-हे प्रभो! इसके पश्चात् राधा-माधव के बीच कौन-सा रहस्य व्यापार घटित हो गया था? वह अस्पष्ट-निगूढ़ तत्व मुझसे कहिये।।१।।

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्। गोपनीयं च वेदेषु पुराणेषु पुराविदाम्॥२॥

पुनः सकामो भगवान्कृष्णः स्वेच्छामयो विभुः।
रेमे स रमया सार्धं विदग्धश्च विदग्धया॥३॥
चतुःषष्टिकलाशक्त्या यथा कान्ता कलावती।
कामशास्त्रेषु निपुणा विदग्धा रसिकेश्वरी॥४॥

शृङ्गारलीलानिपुणा शश्वत्कामा च कामुकी। सुन्दरी सुन्दरीष्वेव शश्वत्सुस्थिरयौवना॥५॥

पितॄणां मानसी कन्या धन्या मान्या च मानिनी।
शंभोः शिष्या ज्ञानयुता शतकल्पान्तजीविनी॥६॥

वेदवेदाङ्गनिपुणा योगनीतिविशारदा। नानारूपधरा साध्वी प्रसिद्धा सिद्धयोगिनी॥७॥

तत्कन्या राधिका देवी मातृतुल्या च कामुकी।
चकार नानाभावं सा सुशीला स्वामिनं प्रति॥८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! मैं उस परम अद्भुत रहस्य को कहता हूं। श्रवण करो। यह प्रसंग समस्त वेद तथा पुराण समूह में अप्रकाशित हैं तथा पुराविद् लोग भी इसे नहीं जानते। हे ऋषिवर! तत्पश्चात् इन बुद्धिमान तथा अत्यन्त प्रवीण स्वेच्छामय भगवान् अत्यन्त प्रवीण राधिका के साथ कामान्वित होकर कामक्रीड़ा में प्रवृत्त हो गये। पितरों की मानसी कन्या, शंभु की प्रिय शिष्या, धन्या, मान्या, मानिनी, ज्ञानवती, शतकल्प तक जीवित रहने वाली, वेदवेदांग में निपुण, योगिनी रूप से प्रसिद्ध, सिद्धयोगिनी, नानारूप धारण करने वाली, अतीव अप्रतिम सुन्दरी, ६४ कला ज्ञाता, कामशास्त्र निपुणा, रसिकेश्वरी, शृङ्गारलीला निपुणा, निरन्तर कामभाव से युक्ता, शंकर शिष्या, ज्ञानसम्पन्ना पतिव्रता, राधा की माता कलावती थीं। राधिका भी माता के समान गुणवती तथा उनके ही समान कामिनी थीं। राधा ने अपने स्वामी कृष्ण के प्रति अनेक (काम) भाव प्रकट किया॥२-८॥

चतुःषष्टिकलामानं शृङ्गारं च चकार सः। तया विशिष्टया साकं रासे रासरसोत्सुकः॥९॥
तां नखाग्रक्षतश्रोणीं नखक्षतपयोधराम्। लुप्तचन्दनसिंदूरां कबरीशिथिलां सतीम्॥१०॥
सुखसंभोगमग्नां च नग्नां च शोकमूर्च्छिताम्।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गीं निद्रादेवी समाययौ॥११॥

रासरसोत्सुक श्रीकृष्ण ने उन निपुणा राधा के स्तनों तथा उनके नितम्बों को अपने नखों से क्षत-विक्षत करके ६४ कलाओं द्वारा उन प्रियतमा के साथ रति-विहार किया था। इससे राधा के अंगों का चन्दन तथा सिन्दूर तक पुंछ गया। उनका केशपाश (जूड़ा) ढीला हो गया। तत्पश्चात् सुख-संभोग निमग्ना नग्ना रमणसुख से आत्मविभोर पुलकित अंगों वाली राधिका निद्रित हो गयीं॥९-११॥

दृष्ट्वा तां निद्रितां कृष्णः कृपया च कृपानिधिः।
रुरोद मायया मायी मायेशो लोकशिक्षया॥१२॥
कृत्वा वक्षसि राधां च चुचुम्ब च पुनः पुनः।
स्नातां च नेत्रसलिलैः प्राणाधिष्ठातृदेवताम्॥१३॥
प्राणाधिकां प्रियतमां धारयामास वाससी।
वह्निशुद्धेऽतिसूक्ष्मे चामूल्ये विश्वसुदुर्लभे॥१४॥
कबरीं रचयामास ददौ कुङ्कुमचन्दनम्। तद्गात्रे च गले हारममूल्यं रत्ननिर्मितम्॥१५॥
सिन्दूरं च ददौ तस्याः सीमन्ताधःस्थलेऽमले[1]।
दाडिमीकुसुमाकारं युक्तं चन्दनबिन्दुभिः॥१६॥
चकार पद्मकं गण्डे नानाचित्रविचित्रकम्। ददौ तत्पादपद्मे च रत्नमञ्जीररञ्जितम्॥१७॥

१. क. ०स्थलोज्ज्वले।

पादाङ्गुलिनखाग्रे च सुन्दरालक्तकं ददौ।
नानासुवेषोज्ज्वलितां तां निद्राकुलितां विभुः॥१८॥

उस समय मायामय, मायेश्वर, कृपानिधि, श्रीकृष्ण राधा को निद्रित देखकर लोकशिक्षार्थ माया के कारण रोने लगे। अन्ततः उन्होंने कृपा पूर्वक राधा को अपने हृदय से लगा लिया। श्रीकृष्ण के नयन जल से प्राणाधिष्ठात्री राधा आर्द्र हो गयी थीं। तदनन्तर कृष्ण बारम्बार राधा के मुख का चुम्बन करने लगे। उन्होंने इसके पश्चात् राधा को अति सूक्ष्म तथा अग्निशुद्ध अमूल्य विश्व दुर्लभ दो वस्त्र पहना कर उनका जूड़ा बांधा और राधा के अंगों में कुंकुम-चन्दन लगाने के पश्चात् राधा के कण्ठ में अमूल्य रत्ननिर्मित हार धारण कराया तथा देवी के कपोल पर अनार के पुष्प के आकार वाले चन्दन बिन्दु लगाकर नाना प्रकार के कमल चिह्न की रचना किया। देवी राधा के चरणकमल में श्रीकृष्ण ने रत्ननूपुर पहनाकर चरण की उंगलियों तथा नखों में उत्तम आलता लगाया। प्रभु ने निद्रिता भगवती को उत्तम सुवेश से अलंकृत सज्जित कर दिया।।१२-१८।।

पुनश्चकार मोहेन गाढालिङ्गनमीप्सितम्। पुनश्च चुम्बनं कृत्वा निवेश्य च स्ववक्षसि॥१९॥
सुष्वाप जगतां स्वामी[1] कान्ताविरहकातरः।
एतस्मिन्नन्तरे काले ब्रह्मा लोकपितामहः॥२०॥
शिवशेषादिभिर्देवैर्मुनीन्द्रैः सार्धमाययौ। आगत्य नत्वा सिरसा तुष्टाव सम्पुटाञ्जलिः॥२१॥
सामवेदोक्तस्तोत्रेण परिपूर्णतमम् विभूम्॥२२॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने नानासुवेशधारिणी निद्रामग्न राधिका का पुनः मोहवशात् गाढ़ आलिङ्गन किया। तदनन्तर जगत् स्वामी ने देवी राधिका का पुनः-पुनः चुम्बन करके उनको अपने वक्ष पर धारण किया और स्वयं भी निद्रित हो गये। वे भी कान्ता राधिका के विरह से कातर होकर निद्रामग्न हो गये। इसी समय लोकपितामह ब्रह्मा, शिव, शेष प्रभृति देवता भी वहां मुनिगणसहित वहां आये तथा वहां आकर उन्होंने परिपूर्णतम भगवान् को प्रणाम किया तथा वे हाथ जोड़कर सामवेदोक्त स्तोत्र से भगवान् का स्तव करने लगे।।१९-२२।।

ब्रह्मोवाच

जय जय जगदीश वन्दितचरण निर्गुण निराकार स्वेच्छामय भक्तानुग्रह नित्यविग्रहः॥२३॥

गोपवेष मायया सुवेष सुशील शान्त सर्वकान्त दान्त नितान्तज्ञानानन्द परात्परतर प्रकृतेः पर सर्वान्तरात्मरूप निर्लिप्त साक्षिस्वरूप व्यक्ताव्यक्त निरञ्जन भारावतारण करुणार्णव शोकसंतापग्रसन जरामृत्युभयादिहरण शरणपञ्जर भक्तानुग्रहकारक भक्तवत्सल भक्तसंचितधन ॐ नमोऽस्तु ते॥२४॥

१. ख. कामी।

ब्रह्मा कहते हैं–हे जगदीश! आपके चरणों की वन्दना सभी जीवगण करते रहते हैं। आप निर्गुण, निराकार होकर भी साकार एवं स्वेच्छामय हैं। आपने भक्तों पर अनुग्रह करने के निमित्त नित्य विग्रह धारण किया है। हे मायापति! आपकी माया के कारण यह आपका गोपवेश प्रकाशित है। हे सुवेशधारी! हे सुशील, शान्त! आप सबको प्रिय लगने वाले नितान्त ज्ञानरूप परात्पर, प्रकृति से भी परे, सबकी अन्तरात्मा, निर्लिप्त, साक्षीस्वरूप, व्यक्त, अव्यक्त, निरंजन, धरती का भार उतारने वाले, करुणासागर, शोक-संताप का ग्रास करने वाले, जरामृत्युभयहारी, शरण रूपी पिंजड़ा स्वरूप (अर्थात् अपने पास शरण देने वाले), भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, भक्त के लिये संचित धन के समान (अर्थात् भक्तों के लिये अपनी पूंजी के समान) हैं। ॐ आपको नमस्कार करता हूं!।।२३-२४।।

सर्वाधिष्ठातृदेवायेत्युक्त्वा वै प्रीणनाय च। पुनःपुनरुवाचेदं मूर्च्छितश्च वभूव ह॥२५॥

"आप सबके अधिष्ठातृ देवता हैं!" ब्रह्मा ने प्रभु श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने हेतु यह बारम्बार कहा। यह स्तव करते वे अपनी सुध-बुध खो बैठे।।२५।।

इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
तत्सर्वाभीष्टसिद्धिश्च भवत्येव न संशयः॥२६॥

अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम्। निर्धनो लभते सत्यं परिपूर्णतमं धनम्॥२७॥

इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते दास्यं लभेद्धरेः।
अचलां भक्तिमाप्नोति मुक्तेरपि सुदुर्लभाम्॥२८॥

जो व्यक्ति ब्रह्मा द्वारा कहे इस स्तोत्र को समाहित होकर पढ़ता है, निःसंशयरूप से उसे सभी अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। अपुत्र को पुत्र, पत्नी रहित को पत्नी, निर्धन को परिपूर्ण धन लाभ होता है। यह निःसंशय है। वह इहलोक में सुख पाकर अन्त में हरि के दासत्व को प्राप्त करता है। उसे मुक्ति से भी बढ़कर दुर्लभ भक्ति का लाभ होता है।।२६-२८।।

स्तुत्वा च जगतां धाता प्रणम्य च पुनः पुनः।
शनैः शनैः समुत्थाय भक्त्या पुनरुवाच ह॥२९॥

जगत् विधाता ब्रह्मा ने इस प्रकार नारायण कृष्ण की स्तुति के पश्चात् उनको बारम्बार प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने क्रमशः धीरे-धीरे भगवान् के चरणों से उठकर भक्तिभाव से पुनः श्रीकृष्ण से कहा–।।२९।।

ब्रह्मोवाच

उत्तिष्ठ देवदेवेश परमानन्दकारण। नन्दनन्दन सानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते॥३०॥

व्रज नन्दालयं नाथ त्यज वृन्दावनं वनम्[1]। स्मर सुदामशापं च शतवर्षनिबन्धनम्॥३१॥

---

१. क. वरम्।

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे देवदेवश! आप परमानन्द कारण हैं। आप नन्दनन्दन, आनन्दमय, नित्यानन्द रूप हैं। आप कृपा पूर्वक उठ जाईये। आप अब इस वृन्दावन को छोड़कर नन्दगृह जायें। सुदामा के शाप के कारण आपको १०० वर्ष पर्यन्त राधा से अलग रहकर उनका वियोग सहन करना ही है।।३०-३१।।

भक्तशापानुरोधेन शतवर्ष पियां त्यज। पुनरेनां च सम्प्राप्य गोलोकं च गमिष्यसि।।३२।।
गत्वा पितृगृहं देव पश्याक्रूरं समागतम्। पितृव्यमतिथिं मान्यं धन्यं वैष्णवमीश्वर।।३३।।
तेन सार्धं मधुपुरीं भगवन् गच्छ साम्प्रतम्। कुरु शंभोर्धनुर्भङ्गं भग्नं वैरिगणं हरे।।३४।।

आप अब भक्त के शाप का सम्मान करते हुये (उसके शाप को शिरोधार्य करके भक्त का मान रखते हुये), वृन्दावन को छोड़कर १०० वर्ष हेतु राधा का त्याग करें। तदनन्तर उनको प्राप्त करके आप गोलोक जायेंगे। हे देव! आप अब नन्दभवन जाकर अपने पिता के यहां आये हुये अक्रूर का दर्शन करिये जो परमवैष्णव, सम्माननीय अतिथि, परममान्य एवं धन्य तथा आपके चाचा हैं। हे प्रभो! आप उनके साथ मधुपुरी (मथुरा) गमन करिये। हे हरि! वहां जाकर आप शंभु का धनुषभङ्ग तथा वैरीगण का नाश करिये।।३२-३४।।

हन कंसं दुरात्मानं तातं वोधय मातरम्। निर्माणं द्वारकायाश्च भारावतरणं भुवः।।३५।।
दह वाराणसीं शंभोः शक्रस्य सदनं विभो।
शिवस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुजकृन्तनम्।।३६।।
रुक्मिणीहरणं नाथ घातनं नरकस्य च। षोडशानां सहस्रं च स्त्रीणां पाणिग्रहं कुरु।।३७।।

आप वहां जाकर दुरात्मा कंस का हनन करके अपने माता-पिता को सान्त्वना प्रदान करें। तत्पश्चात् आप द्वारकापुरी का निर्माण करके पृथिवी के भार का हरण करिये। हे विभु! आप शिव की काशी नगरी को दग्ध करके इन्द्र का दमन करिये। आपका बाणासुर के साथ जो युद्ध होगा उसमें शिव पर जृम्भणास्त्र (जंभाई उत्पन्न करने वाला अस्त्र) प्रयोग करिये तथा उस युद्ध में बाणासुर की (९९८ भुजाओं का) भुजाओं का छेदन करें। (दो भुजा शेष रह जायेगी।) तदनन्तर आप रुक्मिणी हरण करके नरकासुर का विनाश करिये और १६००० स्त्रियों का पाणिग्रहण भी करिये।।३५-३७।।

त्यज प्रियां प्राणसमां व्रजेश्वर व्रजं व्रज। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते यावद्राधा न जाग्रति।।३८।।

हे ब्रजराज कृष्ण! अभी आप अपनी प्राणाधिका प्रिया राधा का त्याग करके व्रज जायें। इससे पहले की राधा निद्रा से जाग जायें, आप शीघ्र यहां से चले जाईये। आपका मंगल हो।।३८।।

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च सेन्द्रैर्देवगणैः सह। जगाम ब्रह्मलोकं च शेषश्च शंकरस्तथा।।३९।।
पुष्पचन्दनवृष्टिं च कृष्णस्योपरि देवताः।
चक्रुः प्रीत्या च भक्त्या च वाग्बभूवाशरीरिणी।।४०।।
वध कंसं वधार्हं च स्वपित्रोर्मोक्षणं कुरु। क्षयं कुरु भुवो भारं नारदेत्येवमेव च।।४१।।

यह कहकर ब्रह्मदेव इन्द्रादि देवगण के साथ वहां से चले गये। वहां से ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोक तथा शिव-शेषनाग आदि देवता अपने-अपने लोक चले गये। उस समय अन्तरिक्ष से देवताओं ने कृष्ण पर पुष्प-चंदन वर्षण किया तथा उस समय आकाशवाणी भी सुनाई पड़ी-"आप अब वधयोग्य कंस का वध करके पिता-माता का उद्धार करिये और पृथिवी के भार का हरण भी करिये।।३९-४१।।

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा भगवान् भूतभावनः।
राधा भगवतीं त्यक्त्वा समुत्तस्थौ शनैः शनैः॥४२॥
ययौ हरिः कियद्दूरं निरीक्ष्य च पुनः पुनः।
क्षणं तस्थौ चन्दनानां वने वाससमीपतः॥४३॥

यह आकाशवाणी सुनने के पश्चात् कृष्ण धीरे से निद्रित राधिका के पास से उठ गये। कृष्ण ने वहां से जाते समय राधा की ओर बारम्बार देखते जा रहे थे। इस प्रकार से कुछ दूर जाकर वे कुछ क्षण रासमण्डल के निकटस्थ चन्दनवन में रुक भी गये थे।।४२-४३।।

विहाय राधा निन्दां सा समुत्तस्थौ स्वतल्पतः।
न निरीक्ष्य हरिं शान्तं कान्तं च प्राणवल्लभम्॥४४॥
हा नाथ रमण श्रेष्ठ प्राणेश प्रात्तल्लभ। प्राणचोर प्रियतम क्व गतोऽसीत्युवाच ह॥४५॥
क्षणमन्वेषणं कृत्वा बभ्राम मालतीवनम्। उवास क्षणमुत्तस्थौ क्षणं सुष्वाप भूतले॥४६॥
रुरोद क्षणमत्युच्चैर्विललाप मुहुर्मुहुः। आगच्छाऽऽगच्छ हे नाथेत्येवमुक्त्वा पुनः पुनः॥४७॥
मूर्च्छां सम्प्राप संतापात्संतप्ता विरहानलैः।
भूतले च तृणाच्छन्ने पपात च यथा मृता॥४८॥

जब राधा निद्रा से जागीं तथा शय्या से उठीं, वे देखती हैं कि उनके प्राणवल्लभ शान्त प्राणों से भी प्रिय कृष्ण वहां नहीं हैं! वे यह देखकर "हा नाथ! हा रमणश्रेष्ठ! प्राणेश! प्राणवल्लभ! प्राणचोर! प्रियतम! आप कहां चले गये?" बारम्बार यह कहने लगीं। उन्होंने पहले वहां चारों ओर देखकर कृष्ण को खोजा, तत्पश्चात् उनको ढूंढते हुये मालती वन तक गईं। वहां भी कृष्ण को न देख कर राधा कभी बैठकर, तो कभी उठकर, कभी भूमि पर गिरकर उच्च स्वर से रोने लगतीं। कभी विलाप करते कहतीं-"हे नाथ! एक बार तो सामने आईये!" अन्ततः वे विरहानल से सन्तप्त तथा मूर्च्छित होकर घास से पूर्ण भूमि पर मृत-सी गिर पड़ीं।।४४-४८।।

आययुस्तत्र गोप्यश्च ब्रह्मञ्छतसहस्रशः। काश्चिच्चामरहस्ताश्च गृहीत्वा चन्दनद्रवम्॥४९॥
तासां मध्ये प्रिया लीला[१] कृत्वा राधां स्ववक्षसि।
मृतामिव प्रियां दृष्ट्वा रुरोद प्रेमविह्वला॥५०॥

१. ख. ०ली तां कृ०।

उस समय वहां एक लाख गोपियां आ गईं जो उनकी सेविका थीं। किसी ने राधा को चामर झला, कुछ ने उनको चन्दन का लेप लगाया। इन गोपियों में से राधा की एक प्रिय सखी थी। जब उसने राधा को मृतका की तरह देखा। वह प्रेमविह्वल चित्त से राधा को हृदय लगाकर रुदनरत हो गयीं।।४९-५०।।

सजलं पङ्कजदलं पङ्कोपरि निधाय च। स्थापयामास तां राधां निश्चेष्टां च मृतामिव।।५१।।
गोपीभिः सेवितां तत्र रुचिरैः श्वेतचामरैः।
चन्दनद्रवयुक्तां च स्निग्धवस्त्रान्वितां सतीम्।।५२।।
ददर्श कृष्णस्तत्रैत्य तामेव प्राणवल्लभाम्। निवारितश्च गोपीभिर्बलिष्ठाभिश्च नारद।।५३।।
यथा नीतः सापराधो दण्डथो राजभटादिभिः।
चकार राधां क्रोडे च समागत्य कृपानिधिः।।५४।।

तत्पश्चात् उसने गीले कमलदल को लिया तथा उसके ऊपर राधा को उस प्रकार लिटाया जैसे लोग शव को लिटाते हैं। उसी जगह गोपियां राधा की सेवा उत्तम श्वेतचामर झलती करने लगीं। उन्होंने स्निग्ध वस्त्रों को चन्दन से लिप्त करके सती राधा को धारण कराया। तभी कृष्ण ने जब प्राणवल्लभा राधा की इस हालत के सम्बन्ध में जाना, तब वे वहां आकर प्राणवल्लभा राधा को देखने लगे। जिस प्रकार राजा के कर्मचारी दण्डनीय अपराधी को रोकते हैं, हे नारद! बलवान् गोपियां उसी प्रकार से कृष्ण को राधा के निकट जाने से रोक रही थीं, तथापि कृपालु कृष्ण नहीं माने तथा उन्होंने राधा के पास जाकर उनको अपनी गोद में उठाया।।५१-५४।।

चेतनां कारयामास बोधयामास बोधनैः।
सम्प्राप्य चेतनां देवी ददर्श प्राणवल्लभाम्।।५५।।
बभूव सुस्थिरा देवी तत्याज विरहज्वरम्।
चकार कान्तं सा कान्ता गात्रालिङ्गनमीप्सितम्।।५६।।
नानाप्रकारश्रृङ्गारं चकार मधुसूदनः। उवास रत्नतल्पे च राधां कृत्वा स्ववक्षसि।।५७।।

कृष्ण उस समय नाना प्रकार के प्रबोधमय वाक्यों से राधा को सान्त्वना देने लगे। जब राधा में कुछ चेतना का संचार हो गया, उन्होंने अपने समक्ष अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण को साक्षात् देखा। इस दर्शन से राधा का चित्त स्वस्थ हो गया। उनकी विरहज्वाला दूर हो गयी। इस समय राधा ने अपने प्रियतम कृष्ण का गाढ़ रूप से आलिङ्गन भी किया। तदनन्तर कृष्ण राधा को अपने वक्ष से लगाकर रत्न शय्या पर राधा के साथ नाना प्रकार की केलि-क्रीड़ा करते तथा शृंगार क्रीड़ा करते अवस्थान करने लगे।।५५-५७।।

राधासखी रत्नमाला विदग्धा[१] सर्वपूजिता। उवाच कृष्णं मधुरं नीतसारमनुत्तमम्।।५८।।

१. क. ०ग्धासु च पू०।

सर्वपूजिता, बुद्धिमान राधा की रत्नमाला नामक सखी श्रीकृष्ण से अत्यन्त मधुर तथा उत्तम नीतिसारयुक्त वचन कहने लगी।।५८।।

रत्नमालोवाच

श्रृणु कृष्ण प्रवक्ष्यामि परिणामसुखावहम्।
हितं तथ्यं नीतिसारं दम्पत्योः प्रीतिकारणम्।।५९।।
सम्मतं कामशास्त्रेषु नीतौ वेदपुराणयोः। लौकिकव्यवहारेषु प्रशस्यं सुयशस्करम्।।६०।।
नारीणां च प्रिया माता प्रियो भ्राता च बन्धुषु।
ततः प्रियश्च पुत्रश्च पुत्रादेव प्रियः पतिः।।६१।।
शतपुत्रात्प्रियः स्वामी साध्वीनां साधुसम्मतः।
रसिकानां विदग्धाना[1] न हि भर्तुः परः प्रियः।।६२।।

रत्नमाला कहती है—हे कृष्ण! दम्पति के लिये परमसुखरूप, पारस्परिक प्रेम के कारण, सुखप्रद, नीतिमय, सत्य, हितकर वाक्य कहती हूं। कृपा श्रवण करिये। वह कामशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा वेदपुराणादि सम्मत एवं लौकिक व्यवहार में प्रशंसनीय एवं अत्यन्त यशप्रद हैं। हे प्रभो! रमणियों के बन्धुवर्ग में से पिता, माता तथा भ्राता को प्रिय कहा गया है। इन तीनों की अपेक्षा पुत्र अधिक प्रिय होता है, परन्तु नारी के लिये पुत्र से भी बढ़कर पति ही प्रिय माना जाता है। साधुओं का कथन है कि (साधु=सत्पुरुष) साध्वी नारी के लिये तो पति की स्थिति तो १०० पुत्रों से भी अधिक है। फलस्वरूप चतुर रसिका स्त्री के लिये पति से बढ़कर कोई भी प्रिय नहीं है।।५९-६२।।

यदि भर्ता विदग्धश्च विदग्धानां सुखावहः।
अन्यथा विषतुल्यश्च विषमश्चेत्खलः खलुः।।६३।।
संसारे चानृते वत्स सम्पत्योः प्रीतिरेव च। परस्परं च समता प्रियसौभाग्यमीप्सितम्।।६४।।

बुद्धिमान (कामक्रीड़ा में चतुर) रमणी का पति भी इस सम्बन्ध में उतना ही चतुर तथा कुशल हैं, तब वह उन रमणियों को अत्यन्त सुख देने वाला होता है। यदि वह पति इस प्रकार का न होकर खल स्वभाव एवं विषम स्वभाव है, तब वह पति नारी के लिये विषवत् ही है। हे वत्स! सांसारिक दम्पति हेतु पारस्परिक प्रीति ही उनके लिये साररूप हैं। पति-पत्नी की आपसी प्रभृति तथा समता होना अत्यन्त सौभाग्यदायक कहा गया है।।६३-६४।।

दम्पत्योः समता नास्ति यत्र-यत्र हि मन्दिरे।
अलक्ष्मीस्तत्र तत्रैव विफलं जीवनं तयोः।।६५।।
सुस्वामिनां विभेदश्च परं दुःखं च योषिताम्।
शोकसंतापबीजं च जीवितं मरणाधिकम्।।६६।।

१. विदग्धासु इति क्वचित् पाठः।

जिस गृह में दम्पति के बीच समता (भावना) नहीं है, वहां अलक्ष्मी रहती हैं। उस घर में उन दोनों का जीवन ही विफल है। अपने उत्तम स्वामी का विरह तथा वियोग नारी के लिये परम दुःख तथा शोक-सन्ताप का बीज स्वरूप (कारण रूप) है। वह तो उस स्त्री के लिये मरण से भी अधिक कष्टप्रद है।।६५-६६।।

स्वप्ने जागरणे चापि पतिः प्राणाश्च योषितः।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणामिह लोके परत्र च।।६७।।
अस्मात्त्वयि गते नाथे मूर्च्छां सम्प्राप राधिका।
पपात सहसा भूमौ तृणाच्छन्ने च भूतले।।६८।।
मया दत्तं मुखेऽस्याश्च शीतलं जलमुत्तमम्।
तदा श्वासो बभूवास्याश्चेतनं बाल्यमेव च।।६९।।

स्वप्न तथा जागरण, सभी अवस्था में नारी के लिये पति ही प्राणरूप है। इहलोक तथा परलोक, इन दोनों में पति ही नारी का गुरु भी है। इसी कारण से आपके चले जाते ही राधा मूर्च्छित होकर तृणों से आच्छादित भूमि पर गिर पड़ीं। उस समय मैंने ही उनके मुख पर उत्तम शीतल जल प्रदान किया। इसी से उनमें श्वास संचार तथा चेतना का लक्षण परिलक्षित हो सका।।६७-६९।।

क्षणं वदति हे नाथ हे कृष्णेति क्षणं सखी।
क्षणं रोदिति सन्तप्ता मूर्च्छां प्राप्नोति तत्क्षणम्।।७०।।
राधिकायाः शरीरं च सन्तप्तं विरहानलैः। दग्धलोहयष्टिसममस्पृश्यमनलोपमम्।।७१।।
स्वप्ने जागरणे रात्रौ दिवसे च गृहे वने। जले स्थले चान्तरिक्षेऽभ्युदये चन्द्रसूर्ययोः।।७२।।
नास्ति भेदश्च राधाया मृततुल्या जडाकृतिः।
शश्वत्पश्यति स्थानस्था सर्वं विष्णुमयं जगत्।।७३।।

वे कभी हे नाथ! हे कृष्ण! कहती रुदन करतीं। अगले क्षण वे सन्ताप के कारण मूर्च्छित हो जातीं! उस विरहाग्नि के कारण राधिका का शरीर मानो अग्नितप्त लौहदण्डवत् हो रहा था। राधा को यह भान नहीं हो रहा था कि वे निद्रिता हैं अथवा स्वप्नदर्शन कर रही हैं! उनको दिन-रात का, गृह-वन-जल-स्थल-अन्तरिक्षादि का तथा सूर्य-चन्द्रादि प्राकृतिक दृश्यभेद का कोई भी भान नहीं हो रहा था। वे केवल मृततुल्यावस्था में जड़ाकृति होकर निरन्तर कृष्णध्यान में इतनी तत्पर हो गईं कि उनको समस्त संसार विष्णुमय (कृष्णमय) प्रतीत हो रहा था।।७०-७३।।

स्निग्धपङ्के पङ्कजानां सजलानि दलानि च। निपत्य तत्कृते तल्पे सुष्वाप विरहातुरा।।७४।।
सेविता सा प्रियालीभिः सन्ततं श्वेतचामरैः। चन्दनद्रवसंसिक्ता स्निग्धवस्त्रसमन्विता।।७५।।

उनके लिये रत्नमाला सखी ने जो आर्द्र कलमदल की शय्या का निर्माण किया था तथा जिस पर विरहाकुल चित्तवाली राधा लेटी थीं, वहां सखिया उनको श्वेत चामर झल रही थीं। कोई उनके अंगों

पर घिसा चन्दन लेप लगा रही थीं। कोई-कोई राधा के अंगों पर अन्य स्निग्ध वस्त्र धारण करा रही थीं।।७४-७५।।

राधाङ्गस्पर्शमात्रेण पङ्कः सम्प्राप शुष्कताम्।
स्निग्धानि पद्मपत्राणि बभुवुर्भस्मसात्क्षणम्।।७६।।

चन्दनं शुष्कतां प्राप वर्णश्चम्पकसन्निभः। बभूव कज्जलाकारः केशस्य वर्णतो हरे।।७७।।

तथापि राधा का अंगस्पर्श होते ही वह आर्द्र कमलदल की शय्या शुष्क हो गई तथा सभी स्निग्ध कमलपत्र भी तत्काल भस्मसात् हो गये। हे मुनिवर! तत्क्षण शरीर पर लगा चन्दन लेप शुष्क होते ही राधा को चम्पा के पुष्प के समान का देह वर्ण अब कज्जल के समान काला हो गया; जिस प्रकार का वर्ण उनके केश का था।।७६-७७।।

सिन्दूरबिन्दू रुचिरः श्यामतां प्राप तत्क्षणम्।
वेषो विलासो लीला च क्रीडा त्यक्ता बभूव ह।।७८।।
रत्नमाला तु तां दृष्ट्वा गत्वा कृष्णान्तिकं तदा।
उवाच मधुरं वाक्यं राधाहितकरं परम्।।७९।।

देवी राधा के मस्तक पर लगी सिन्दूर की बिन्दी भी उस समय श्यामवर्ण की हो गई। राधा ने समस्त वेश-विन्यास, लीला-क्रीड़ा का भी तत्क्षण त्याग कर दिया! जब सखी रत्नमाला ने राधा की ऐसी अवस्था को देखा वह कृष्ण के पास जाकर राधा के लिये परम हितप्रद मधुर वाक्य उनसे कहने लगी!।।७८-७९।।

रत्नमालोवाच

हे कृष्ण कमलाकान्त त्वद्वियोगेन मत्सखी।
प्राणांस्त्यक्ष्यति शीघ्रं सा यदि नाऽऽयास्यसि ध्रुवम्।।८०।।
विचार्य मनसा कृष्ण यत्तत्समुचितं कुरु।
न भवेत्कामिनीहत्या येन नीतिविशारद।।८१।।

रत्नमाला कहती है–हे कृष्ण! कमलाकान्त! प्रभु! आप नीतिकुशल हैं। आपका वियोग होने पर मेरी सखी राधा शीघ्र प्राण त्याग कर देगी, यदि आप यहां नहीं रहते। यह निश्चित है। हे कृष्ण! आप नीतिकुशल हैं। जिससे यह स्त्री हत्या न हो, वैसा कार्य करिये। आप विचार करके जो उचित हो वह करें।।८०-८१।।

रत्नमालावचः श्रुत्वा प्रहस्योवाच माधवः। हितं सत्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम्।।८२।।

रत्नमाला का यह कथन सुनकर कृष्ण ने हंसते हुये हितप्रद, सत्यमय एवं नीतिसारयुक्त ऐसा वचन कहा जो परिणाम में सुखप्रद था।।८२।।

श्रीभगवानुवाच

ईशो यद्यपि शक्तोऽहं निषेकं खण्डितुं प्रिये।
तथाऽपि[1] न क्षमो रत्ने नियतेर्न करोम्यहम्॥८३॥

ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु मर्यादा स्थापिता मया। तया कर्म प्रकुर्वन्ति मुनयश्च सुरा नराः॥८४॥
सुदामशापाद्विच्छेदः शतवर्षमनीप्सितः। भविष्यत्येव दम्पत्योरावयोरेव सुन्दरि॥८५॥
भेदो जागरणेऽस्याश्च मया सह सुमध्यमे। संश्लेषः सन्ततं स्वप्ने मद्वरेण भविष्यति॥८६॥

आध्यात्मिकी मया दत्ता शोकच्छेदो भविष्यति।
राधां बोधय भद्रं ते यास्यामि नन्दमन्दिरम्॥८७॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे प्रिय रत्नमाला! यद्यपि मैं शुभ-अशुभ कर्मफल का खण्डन कर सकता हूं, तथापि मैं कदापि नियति लंघन नहीं करूंगा। मैंने ही समस्त ब्रह्माण्डों में जिस मर्यादा को स्थापित किया है सभी देवता, मुनि और मनुष्यगण तदनुरूप कर्म करते हैं। हे सुन्दरी! मुझ दम्पति का श्रीदामा के शाप के कारण १०० वर्ष का वियोग यद्यपि हम दोनों दम्पति को वांछित नहीं है, तथापि वह अवश्य घटित होना है। हे सुमध्यमे! मैं राधा को यह वर प्रदान करता हूं कि उसे मात्र जाग्रदावस्था में मेरा वियोग होगा, तथापि स्वप्नावस्था में मेरा संयोग सदा राधा को अनुभूत होता रहेगा। मैं उसे जिस अध्यात्म ज्ञान को प्रदान करूंगा, उससे उसके शोक का अवश्य नाश होगा। हे भद्रे! तुम राधा को प्रबोधित करो मैं शीघ्र नन्दभवन जा रहा हूं॥८३-८७॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो ययौ नन्दालयं प्रति।
राधिकां बोधयामासुरालिसङ्घाश्च नारद॥८८॥
गत्वा गृहं च पितरं ननाम मातरं तथा।
चकार माता क्रोडे च नवनीतं च नूतनम्॥८९॥

यह कहकर जगन्नाथ कृष्ण तत्काल नन्दभवन चले गये। हे नारद! तत्पश्चात् सखियों ने प्रयत्न पूर्वक राधा को प्रबोधित कर दिया। उधर श्रीकृष्ण ने नन्दालय जाकर माता-पिता को प्रणाम किया। माता ने उनको अपनी गोद में बैठाकर नवनीत भोजन कराया॥८८-८९॥

मातृदत्तं च ताम्बूलं चखाद शीतलं जलम्। उवास तत्र जगतां नाथो मातृसमीपतः॥९०॥
सर्वैर्गोपसमूहैश्च सेवितः श्वेतचामरैः। माल्यचन्दनताम्बूलं ते च तस्मै ददुर्मुदा॥९१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० श्रीकृष्णगमनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥६९॥

---

१. क. ०पि लक्षणा र०।

श्रीकृष्ण ने माता द्वारा प्रदत्त शीतल जल पान करके ताम्बूल भक्षण किया और जगन्नाथ कृष्ण माता के पास बैठ गये। वहां समागत गोपगण ने हर्षित होकर कृष्ण को माला-चन्दन-ताम्बूलादि मुदित मन से प्रदान किया तथा उनको श्वेत चामर झलने लगे।।९०-९१।।

।।६९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

अक्रूर का स्वप्न देखना, अक्रूर कृत श्रीकृष्ण स्तोत्र वर्णन, गोपीगण के साथ अक्रूर का विवाद, कृष्ण का प्रस्थान

नारायण उवाच

अथाक्रूरः स्वशरणं गत्वा कंसेन प्रेषितः। चकार शयनं तल्पे भुक्त्वा मिष्टान्नमुत्तमम्॥१॥
सकर्पूरं च ताम्बूलं चखाद वासितं जलम्। जगाम निद्रां सुखतः सुखसंभोगमात्रतः॥२॥
ततो ददर्श सुस्वप्नं पुराणश्रुतिसम्मतम्। निशावशेषसमये बाधादिपरिवर्जितः॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! उधर अक्रूर कंस की आज्ञा पाकर अपने भवन में गये तथा उन्होंने उत्तम मिष्ठान्न आदि का भोजन किया। उन्होंने सुवासित जल पीकर, कर्पूरयुक्त ताम्बूल खाने के पश्चात् अपनी शय्या पर सुख पूर्वक शयन किया। तदनन्तर उन्होंने वाताधिक्यादि बाधा दोष से रहित स्थिति में वेदपुराण सम्मत तथा रात्रि के अंतिम प्रहर में एक उत्तम स्वप्न देखा।।१-३।।

अरोगी बद्धकेशश्च वस्त्रयुग्मसमन्वितः। सुतल्पशायी सुस्निग्धश्चिन्ताशाकविवर्जितः॥४॥
किशोरवयसं श्यामं द्विभुजं मुरलीधरम्। पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम्॥५॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं मालतीमाल्यशोभितम्। भूषितं भूषणार्हं च सद्रत्नमणिभूषणैः॥६॥
मयूरपिच्छचूडं च सस्मितं पद्मलोचनम्। एवंभूतं द्विजशिशुं ददर्श प्रथमं मुने॥७॥

अक्रूर स्वप्न में देखते हैं कि एक ब्राह्मण बटु सभी प्रकार से निरोग, दो वस्त्र पहने, बाधा आदि से रहित स्थिति में दो वस्त्र पहने तथा अपने केशों को बांधे निद्रित है। उसकी शय्या स्निग्ध एवं उत्तम है। वह चिन्ता-शोकादि से रहित है। उसकी किशोरवयस है। वह श्यामवर्ण, द्विभुज तथा मुरलीधारी है। उसने पीतवर्ण वस्त्र पहना है। वह वनमाला भूषित, सर्वाङ्ग चन्दन लिप्त एवं मालती माला से शोभायमान, उत्तम रत्नों से निर्मित भूषणों से भूषित,मयूर के पंखों से शोभित जूड़ा वाला कमलनयन तथा मन्द मुस्कान से युक्त है। हे मुनिवर! ऐसे ब्राह्मण शिशु को अक्रूर ने सबसे पहले स्वप्न में देखा।।४-७।।

ततो ददर्श रुचिरां पतिपुत्रवतीं सीतम्। पीतवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥८॥
ज्वलत्प्रदीपहस्तां च शुक्लधान्यकरां वराम्।
शरच्चन्द्रनिभास्यां च सस्मितां वरदां शुभाम्॥९॥

तदनन्तर अक्रूर देखते हैं (स्वप्न में) कि एक पति-पुत्रवान् सती नारी पीतवस्त्रधारिणी, रत्नभूषण भूषिता खड़ी है। उसका मुखमण्डल शारदीय चन्द्रमा के समान मनोहर है। वह शुभ वरप्रदा सती एक हाथ में जलता दीपक तथा अन्य हाथ में श्वेत धान्य लिये हुये है॥८-९॥

ततो ददर्श विप्रं च प्रकुर्वन्तं शुभाशिषम्। श्वेतपद्मगतं हंसं तुरगं च सरोवरम्॥१०॥
ददर्श चित्रितं चारु फलितं पुष्पितं शुभम्। आम्रनिम्बनारिकेलगुर्वर्ककदलीतरुम्[1]॥११॥

तत्पश्चात् शुभाशीर्वाद देने वाला एक ब्राह्मण अक्रूर ने (स्वप्न में) देखा तथा उन्होंने श्वेत कमलस्थ हंस, अश्व तथा सरोवर को भी देखा। उसी स्वप्न में अक्रूर ने इसके पश्चात् पुष्प, शुभफल यथा आम, नीम, नारियल, गुवाक् तथा कदली वृक्ष भी देखा॥१०-११॥

दशन्तं [2]श्वेतसर्पं च स्वात्मानं पर्वतस्थितम्।
वृक्षस्थं च गजस्थं च तरिस्थं तुरगस्थितम्॥१२॥
वीणां वादितवन्तं च भुक्तवन्तं च पायसम्।
दधिक्षीरयुतान्नं च पद्मपत्रस्थमीप्सितम्॥१३॥

उसी स्वप्न में अक्रूर ने स्वयं को श्वेत सर्प से डसे जाते, पर्वत पर बैठे, वृक्षारूढ़, गजारूढ़, नौकारूढ़ एवं अश्वारूढ़ भी देखा। तदनन्तर वे स्वयं को वीणा-वादनरत, कमलपत्र पर वांछित दधि-दुग्ध मिश्रित भक्ष्य ग्रहण करते देखने लगे॥१२-१३॥

कृमिविट्सहिताङ्गं च रुदन्तं मोहितं तदा। शुक्लधान्यपुष्पकरं क्षणं चन्दनचर्चितम्॥१४॥
प्रासादस्थं समुद्रस्थमात्मानं च सलोहितम्। छिन्नभिन्नं क्षताङ्गं च मेदपूयसमन्वितम्॥१५॥

तदनन्तर अक्रूर ने स्वयं को तथा अपने अंगों को कृमियुक्त मल से लिप्त देखा। तत्पश्चात् उन्होंने स्वयं को मोहग्रस्त स्थिति में रुदनरत भी देखा। तदनन्तर वे उस स्वप्न में अपने हाथों में श्वेतपुष्प तथा श्वेतसूत्र लिये देखने लगे। अगले ही क्षण अक्रूर ने स्वप्न में ही स्वयं को अट्टारिका पर बैठे, समुद्र में स्थित, रक्तलिप्त, छिन्न-भिन्न अंगयुक्त देखा। तदनन्तर उन्होंने स्वयं को वसा एवं मवाद से लिप्त भी देखा॥१४-१५॥

ततो ददर्श रजतं मणिं शुभ्रं च काञ्चनम्।
मुक्तामाणिक्यरत्नं च पूर्णकुम्भजलं शुभम्॥१६॥

---

१. क. ०गुवाकक०।
२. श्वसन्तं इति पाठान्तरम्।

सुरभिं च सवत्सां च वृषभेन्द्रं मयूरकम्। शुकं च सारसं हंसं[1] चिल्लं खञ्जनमेव च॥१७॥

तत्पश्चात् अक्रूर ने उसी स्वप्न में स्वयं को रजत, शुभ्रमणि, स्वर्ण, मोती-माणिक्य, रत्न, जलभरा शुभ कलश उठाये देखा। उन्होंने स्वप्न में बछड़ा वाली सुरभि गौ, महावृषभ, मयूर, तोता, सारस, हंस, चील एवं खंजन पक्षी भी देखा!।।१६-१७।।

ताम्बूलं पुष्पमाल्यं च ज्वलदग्निं सुरार्चनम्।
पार्वतीप्रतिमां कृष्णप्रतिमां शिवलिङ्गकम्॥१८॥
विप्रबालां च बालं च सुपक्वफलितां कृषिम्।
देवस्थलीं च राजेन्द्रं सिंहं व्याघ्रं गुरुं सुरम्॥१९॥

इसके पश्चात् अक्रूर ने स्वप्न में जलती अग्नि, देवपूजा, पार्वती की मूर्त्ति, कृष्णमूर्त्ति, शिव-लिंग, विप्रकन्या, विप्रबालक, उत्तम पकी फसल, देवस्थली, राजा, सिंह, व्याघ्र, गुरु, देवता को देखा।।१८-१९।।

दृष्ट्वा स्वप्नं समुत्तस्थौ चकाराऽऽह्निकमीप्सितम्।
उद्धवं कथयामास सर्वं वृत्तान्तमेव च॥२०॥
उद्धवाज्ञां समादाय कृत्वा गुरुसुरार्चनम्।
यात्रां चकार श्रीकृष्णं ध्यात्वा मनसि नारद॥२१॥

यह स्वप्न देखकर अक्रूर उठ गये। तदनन्तर उन्होंने अपना आह्निकादि कृत्य सम्पन्न करने के अनन्तर यह समस्त वृत्तान्त सखा उद्धव से भी कहा। हे देवर्षि नारद! तत्पश्चात् अक्रूर ने यह सब वृत्तान्त उद्धव से कहने के अनन्तर उनकी आज्ञा से जाने के लिये तैयार हो देवतार्चन तथा गुरुपूजा भी सम्पन्न कर दिया। हे नारद! तत्पश्चात् अक्रूर ने कृष्ण का ध्यान करके अपनी यात्रा प्रारम्भ कर दिया।।२०-२१।।

ददर्श वर्त्मन्येवं च मङ्गलार्हं शुभप्रदम्। वाञ्छाफलप्रदं रम्यं पुरो मङ्गलसूचकम्॥२२॥

वामे शैवं[2] शिवां पूर्णकुम्भं नकुलचाषकम्।
पतिपुत्रवतीं साध्वीं दिव्याभरणभूषिताम्॥२३॥
शुक्लपुष्पं च माल्यं च धान्यं च खञ्जनं शुभम्।
दक्षिणे ज्वलदग्निं च विप्रं च वृषभं गजम्॥२४॥
वत्सप्रयुक्तां धेनुं च श्वेताश्वं राजहंसकम्।
वेश्यां च पुष्पमालां च पताकां दधि पायसम्॥२५॥

१. क. शङ्खचि०।
२. ख. शिवं।

मणिं सुवर्णं रजतं मुक्तामाणिक्यमीप्सितम्।
मद्यं मांसं चन्दनं च माध्वीकं घृतमुत्तमम्॥२६॥
कृष्णसारं फलं लाजाः सिद्धान्नं दर्पणं तथा।
विचित्रितं विमानं च सुदीप्तां प्रतिमां तथा॥२७॥
शुक्लोत्पलं पद्मवनं शङ्खचिल्लं च कीरकम्। मार्जारं पर्वतं मेघं मयूरं शुकसारसम्॥२८॥

यात्रा मार्ग में अक्रूर ने शुभप्रद, मङ्गलजनक,कामनाफलप्रद रम्य एवं आसन्न मंगलसूचक शकुन देखा। उन्होंने बाई ओर शिव-शिवा (शृगाल-श्रगाली), जलपूर्ण घट, नकुल (नेवला), नीलकंठ पक्षी देखा। उन्होंने अपनी बाई ओर पुनः दिव्यभूषण भूषिता पति-पुत्रवती साध्वी स्त्री, श्वेतपुष्प, माला, धान्य, शुभ खंजन नामक पक्षी देखा। तदनन्तर अक्रूर ने मार्ग में आगे जाकर दाहिनी ओर दीप्त अग्नि, विप्र, वृष, हस्ति, वत्सयुक्त गौ, श्वेत अश्व, राजहंस, वेश्या, पुष्पों की माला, ध्वजा, दधि, क्षीर, मणि, स्वर्ण, रजत, वांछित मुक्ता-मणि, मद्य-मांस, चन्दन, महुये का मद्य, उत्तम घी, कृष्णसार मृग, फल, लावा, श्वेत सरसों, दर्पण, नाना चित्रयुक्त विचित्र विमान, अत्यन्त तेजोमय प्रतिमा, श्वेतकमल, पद्मवन, शंखचील, चकोर पक्षी (कीरक), बिड़ाल, पर्वत, मेघ, मयूर, तोता, सारस पक्षी देखा॥२२-२८॥

शङ्खकोकिलवाद्यानां ध्वनिं शुश्राव मङ्गलम्।
विचित्रकृष्णसङ्गीतं हरिशब्दं जयध्वनिम्॥२९॥
एवंभूतं शुभं दृष्ट्वा श्रुत्वा प्रहृष्टमानसः। प्रविवेश हरिं स्मृत्वा पुण्यं वृन्दावनं वनम्॥३०॥
ददर्श पुरतो रम्यं रासमण्डलमीप्सितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीपुष्पचन्दनवायुना॥३१॥
वासितं मङ्गलघटै रम्भास्तम्भैर्विराजितम्। आम्रपल्लवसंधैश्च पट्टसूत्रविचित्रितैः॥३२॥
शोभितैः परितः शश्वत्पद्मरागविनिर्मितम्[1]।
शोभितं शोभनार्हं च त्रिकोटिरत्नमन्दिरैः॥३३॥
रम्यैः कुञ्जकुटीरैश्च राजितं शतकोटिभिः।
रासं वृन्दावनं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययौ च सः॥३४॥

उन्होंने मङ्गलजनक शङ्खध्वनि, कोकिल का कूजन, वाद्यों का निनाद, अद्भुत कृष्णगुणगायन, हरि-हरि का शब्द तथा जयजयकार सुना। इस प्रकार शुभ शकुनों का दर्शन करते-करते तथा शुभप्रद शब्दों को सुनते-अक्रूर परमपावन वृन्दावन में प्रविष्ट हो गये। उन्होंने भीतर प्रवेश करते ही वांछित रासमण्डल को देखा। रासमण्डल के चारों ओर चन्दन-अगुरु, कस्तूरी तथा पुष्प की गन्धमिश्रित वायु वातावरण को आमोदित कर रही थी। वह स्थल मङ्गलघट तथा केले के खम्भे से युक्त था। वहां आम के पत्तों की बन्दनवार जो विचित्र रंग के सूत्रों से बनी थी, वह शोभायमान थी। वह मण्डल पद्मराग की

१. पद्मरागविनिन्दितै इति वा पाठः।

मणियों से निर्मित था। वहां तीन कोटि रत्न-गृह शोभायमान थे। वहां रम्य कुंज कुटीर भी एक कोटि संख्यक थे। वे इस रासमण्डल को देखते हुये वृन्दावन के भीतर कुछ दूर तक गये।।२९-३४।।

ददर्श पुरतो रम्यं नन्दव्रजमनुत्तमम्। परं वैकुण्ठसंकाशं वैकुण्ठ निलयं शुभम्।।३५।।
रत्नसोपानसंयुक्तं रत्नस्तम्भैर्विराजितम्। नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्रत्नवलयान्वितम्।।३६।।

वहां उन्होंने अपने सामने स्थित अत्यन्त उत्तम नन्द का व्रजधाम देखा जो वैकुण्ठवत् था, वहां वैकुण्ठ जैसे शुभ गृह बने थे। वे रत्नमयी सीढ़ियों से शोभायमान तथा रत्नस्तम्भों से सज्जित थे। वह स्थान अत्यन्त विचित्र चित्रों तथा रत्नवलय से समन्वित था।।३५-३६।।

खचितं मणिसारेण रचितं विश्वकर्मणा। द्वारि दृष्टेन मार्गेण राजद्वारं विवेश सः।।३७।।
पताकारत्नजालाढ्यं मुक्तामाणिक्यभूषितम्। रत्नदर्पणशोभाढ्यं रत्नचित्रविचित्रितम्।।३८।।
रत्नवीथीविरचितं मङ्गलं मङ्गलैर्घटैः। अक्रूरागमनं श्रुत्वा साह्लादो नन्द एव च।।३९।।

यह स्थान मणियों के सारभग से जड़ित, रचित तथा विश्वकर्मा रचित था। अक्रूर यह सब देखते-देखते राजद्वार में प्रविष्ट हो गये। यह द्वार भी नानावर्ण की रत्नमणियों की सज्जा से युक्त मुक्ता-माणिक्य भूषित था। यह स्थान पताका तथा रत्नमय दर्पण से शोभायमान था। यहां रत्नों की बनी रत्नचित्रों से सज्जित वीथी (गली) विराजमान थी। वह मंगल घट से युक्त थी। वहां अक्रूर के आगमन का संवाद पाकर नन्दराज आह्लादित हो उठे!।।३७-३९।।

सहितो रामकृष्णाभ्यां जगामानुव्रजाय वै।
वृषभान्वादिभिर्युक्तः कृत्वा वेश्यां पुरःसरम्।।४०।।
पूर्णकुम्भं गजेन्द्रं च कृत्वाऽग्रे शुक्लधान्यकम्।
कृष्णां गां मधुपर्कं च पाद्यं रत्नासनादिकम्।।४१।।
गृहीत्वा सादरः शान्तः सस्मितो विनतस्तथा।
आनन्दयुक्तो नन्दश्च सगणः सहबालकः।।४२।।
दृष्ट्वाऽक्रूरं महाभागं तूर्णमालिङ्गनं ददौ। प्रणेमुः शिरसा सर्वे गोपा जगृहुराशिषम्।।४३।।

वे कृष्ण, बलराम, वृषभानु को अपने साथ लाये। उनके साथ अनेक प्रधान गोप भी थे। इनके आगे गायिकायें तथा नर्त्तकियां भी चल रही थीं। नन्दराज ने पूर्णघट, उत्तम गजराज को आगे रखकर श्वेतधान्य, काली गौ, मधुपर्क, पाद्य, रत्नासन अक्रूर को प्रदान किया। उस समय शान्त, मुदित, विनयावनत, आनन्दित बालकों, गोपगण के साथ नन्दराज ने महाभाग्यशाली अक्रूर का दर्शन लाभ किया। अक्रूर को देखते ही नन्द ने तत्काल उनका आलिङ्गन किया। नन्द के साथ समागत सभी लोगों ने भी नतशिर होकर अक्रूर को प्रणाम किया। तब अक्रूर ने सभी को आशीर्वाद भी दिया।।४०-४३।।

परस्परं च संयोगो बभूव गुणवान्मुने। क्रोडे चकाराक्रूरश्च कृष्णं रामं क्रमेण च।।४४।।
चुचुम्ब गण्डयुगुले पुलकाञ्चितविग्रहः। साश्रुनेत्रोऽतिसाह्लादः कृतार्थः सिद्धवाञ्छितः।।४५।।

हे मुनिवर! एवंविध अक्रूर तथा नन्दराज इस प्रकार आपस में ब्रज में मिले। तत्पश्चात् अक्रूर ने कृष्ण तथा राम को अपनी गोद में क्रमशः उठाया। इसके पश्चात् अक्रूर ने अपनी कृष्णदर्शन कामना पूर्ण हो जाने के कारण स्वयं को कृतार्थ माना। वे कृष्ण-बलराम के कपोलों का चुम्बन करने लगे। उनके नेत्र इस आह्लाद से भर आये। उनका शरीर पुलकित हो उठा!॥४४-४५॥

ददर्श कृष्णं द्विभुजं क्षणं श्यामलसुन्दरम्। पीतवस्त्रपरीधानं मालतीमाल्यभूषितम्॥४६॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं परं वंशीधरं वरम्। स्तुतं ब्रह्मेशशेषाद्यैर्मुनीन्द्रैः सनकादिभिः॥४७॥

तदनन्तर अक्रूर ने दो क्षण पर्यन्त अपनी क्रोड में स्थित द्विभुज, श्यामसुन्दर, पीतवस्त्रधारी, मालती माला से भूषित, चन्दन चर्चित देहवाले, श्रेष्ठ वंशी लिये हुये, ब्रह्मा, ईश्वर शिव, शेषादि देवगण सनकादि मुनीन्द्रों द्वारा सेवित एवं स्तुत कृष्ण को देखा॥४६-४७॥

वीक्षितं गोपकन्याभिः परिपूर्णतमं विभुम्।
क्षणं ददर्श क्रोडस्थं सस्मितं च चतुर्भुजम्॥४८॥

लक्ष्मीसरस्वतीयुक्तं वनमालाविभूषितम्। सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैः परिसेवितम्॥४९॥
सेवितं सिद्धसंघैश्च भक्तिनम्रैः परात्परम्। क्षणं ददर्श देवं तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥५०॥

परिपूर्ण विभु देवदेव कृष्ण की ओर गोपकन्यागण निर्निमेष दृष्टि पूर्वक देख रही थीं। तभी अक्रूर देखते हैं कि उनकी गोद में स्थित प्रभु अब चतुर्भुज हैं। वे मन्दमुस्कान वाले लक्ष्मी-सरस्वती युक्त, वनमाला भूषित हैं। सुनन्द, नन्द, कुमुद आदि पार्षद उनकी सेवा में निरत हैं। सिद्धगण वेदमन्त्रों से इन परात्पर प्रभु की उपासना कर रहे हैं। वे सभी भक्ति पूर्वक इनके चरणों में प्रणत हैं। ये प्रभु पर से भी परे हैं। अगले ही क्षण अक्रूर देखते हैं कि उनकी गोद में स्थित ये प्रभु पञ्चमुख तथा त्रिनेत्रधारी हो गये!॥४८-५०॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नागराजैर्विराजितम्। दिगम्बरं परं ब्रह्म भस्माङ्गं च जटायुतम्॥५१॥
जपमालाकरं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठं च योगिनम्।
क्षणं चतुर्मुखं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठं मनीषिणाम्॥५२॥
क्षणं धर्मस्वरूपं च शेषरूपं क्षणं क्षणम्। क्षणं भास्कररूपं च ज्योतीरूपं सनातनम्॥५३॥

उनका वर्ण शुद्ध स्फटिक के समान है। उनके देह पर नागराज सुशोभित हो रहे हैं। वे परब्रह्म, दिगम्बर, भस्मलिप्त शरीर तथा जटाजूटधारी हैं। उनके एक हाथ में जपमाला विराजित है। वे योगीगण में श्रेष्ठ तथा ध्याननिष्ठ हैं। अगले ही क्षण अक्रूर ने देखा कि अब वे परमश्रेष्ठ मनीषी चतुर्मुख ध्याननिष्ठ ब्रह्मा हैं। अगले क्षण वे धर्मदेवरूप हो गये! उसके परवर्त्ती क्षण में वे ही शेषनाग अनन्तरूप परिलक्षित होने लगे! उसके अगले क्षण उनको ही अक्रूर ने ज्योतिरूप सनातन भास्कर रूप में देखा!॥५१-५३॥

क्षणं परमशोभाढ्यं कोटिकन्दर्पनिन्दितम्।
कामिनीकमनीयं च कामुकं कामसंयुतम्॥५४॥

इसके अगले क्षण अक्रूर ने देखा कि उनका परमशोभायमान रूप करोड़ों कामदेवों को भी लज्जित करने वाला है, जो कामिनी नारीगण को कमनीय कामयुक्त कामुक पुरुष जैसा लगता है।।५४।।

एवंभूतं शिशुं दृष्ट्वा स्थापयामास वक्षसि। रत्नसिंहासने रम्ये नन्ददत्ते च नारद।।५५।।
कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहः।
प्रणम्य शिरसा भूमौ तुष्टाव पुरुषोत्तमम्।।५६।।

ऐसे शिशु को देखकर अक्रूर ने उसे वक्ष से लगा लिया। हे नारद! उसी समय अक्रूर ने नन्दराज द्वारा प्रदत्त रम्य रत्नमय सिंहासन पर उस शिशु को रखकर पुलकित होकर भक्ति के साथ उसकी प्रदक्षिणा किया तथा धरती पर अपना शिर टिका कर प्रणाम करने के अनन्तर उन परमेश्वर की स्तुति करने लगे।।५५-५६।।

अक्रूर उवाच

नमः कारणरूपाय परमात्मस्वरूपिणे
सर्वेषामपि विश्वानामीश्वराय नमो नमः। पराय प्रकृतेरीश परात्परतराय च।।५७।।
निर्गुणाय निरीहाय नीरूपाय स्वरूपिणे। सर्वदेवस्वरूपाय सर्वदेवेश्वराय च।।५८।।
सर्वदेवाधिदेवाय विश्वादिभूतरूपिणे। असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मक।।५९।।

अक्रूर कहते हैं–हे परमात्मास्वरूप तथा परमकारणरूप प्रभु! मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड के ईश्वर, प्रकृति से अतीत, प्रकृति के ईश्वर तथा परात्पर से भी परे हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप निर्गुण, निरीह, रूप रहित होकर भी स्वरूपधारी हैं। आप सर्वदेवस्वरूप, सभी देवगण के ईश्वर, सभी देवगण के अधिदेव, विश्व के आदिरूप हैं। इन असंख्य विश्वों में सभी में आप ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक हैं।।५७-५९।।

स्वरूपायाऽऽदिबीजाय तदीशविश्वरूपिणे। नमो गोपाङ्गनेशाय गणेशेश्वररूपिणे।।६०।।
नमः सुरगणेशाय राधेशाय नमो नमः। राधारमणरूपाय राधारूपधराय च।।६१।।
राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च। राधासाध्याय राधाधिदेवप्रियतमाय च।।६२।।

आप ही (सबके) स्वरूप, आदिबीज, इसके भी ईश्वर, विश्व रूप हैं। आप गोपीगण के ईश्वर तथा गणेश्वर रूप भी हैं। आपको प्रणाम! आप ही देवेश्वर तथा राधिका के कान्त हैं। अतः मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूं! हे प्रभो! आप ही राधारमणरूपी, राधारूपधारी, राधा के आराध्यदेव, राधा को प्राणाधिक प्रिय, राधा के आधार तथा राधा के अधिदेवता तथा प्रियतम हैं।।६०-६२।।

राधाप्राणाधिदेवाय विश्वरूपाय ते नमः। वेदस्तुतात्मवेदज्ञरूपिणे सर्ववेदिने।।६३।।
वेदाधिष्ठातृदेवाय वेदबीजाय ते नमः।
यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च नित्यशः।।६४।।

आप राधा के प्राणों के अधिदेवता, विश्वरूप हैं। आपको प्रणाम! हे देव! आप ही वेदवेदांग तथा वेदज्ञरूप हैं। आप ही वेदों के भी अधिष्ठातृदेव तथा कारण हैं। वेदों में सदा आपकी ही स्तुति का वर्णन मिलता है। मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप आत्मा एवं वेद के ज्ञाता हैं। आप वेदों के बीजरूप हैं। जिनके रोमों में नित्य असंख्य विश्व विद्यमान रहते हैं मैं उनको प्रणाम करता हूं!।।६३-६४।।

महद्विष्णोरीश्वराय विश्वेशाय नमो नमः। स्वयं प्रकृतिरूपाय प्राकृताय नमो नमः।।६५।।
प्रकृतीश्वररूपाय प्रधानपुरुषाय च। इत्येवं स्तवनं कृत्वा मूर्च्छामाप सभातले।।६६।।

"वे महाविष्णु आप ही हैं। आप इन महाविष्णु के भी ईश्वर हैं। आप समस्त विश्वसमूह के प्रभु हैं। आपको बारम्बार प्रणाम! आप प्रकृति के ईश्वररूप तथा प्रधानपुरुष भी हैं।" इस स्तवन को करके उसी सभा में अक्रूर सुध-बुध खोकर मूर्च्छित हो गये!।।६५-६६।।

पपात सहसा भूमौ पुनरीशं ददर्श सः। बहिःस्थं हृदयस्थं च परमात्मानमीश्वरम्।।६७।।
परितः श्यामरूपं च विश्वस्थं विश्वमेव च।
अक्रूरं मूर्च्छितं दृष्ट्वा नन्दः सादरपूर्वकम्।।६८।।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारद। पप्रच्छ सर्ववृत्तान्तं किंस्विद्दृष्टमिति त्वया।।६९।।

वे पृथिवी पर गिर पड़े। कुछ क्षणों के उपरान्त वे देखते हैं कि वे परमात्मा तो हृदय में तथा बाहर चारों ओर अपने श्यामरूप में विराजमान हैं। वे विश्व में हैं तथा विश्वरूप भी हैं। उस समय अक्रूर को मूर्च्छित देखकर नन्द ने उनको उठाकर सादर रत्नसिंहासन पर आसीन कराया। उन्होंने अक्रूर से सभी वृत्तान्त को जानने हेतु पूछा—"क्या आपने यहां कुछ देखा है?"।।६७-६९।।

मिष्टान्नं भोजयामास कुशलं च पुनः पुनः।
अक्रूरः कथयामास कंसवृत्तान्तमीप्सितम्।।७०।।
स्वपित्रोर्मोक्षणार्थं च गमनं रामकृष्णयोः। इत्यक्रूरकृतं स्तोत्रं यः पठेत्सुसमाहितः।।७१।।
अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम्। अधनो धनमाप्नोति निर्भूमिरुर्वरां महीम्।।७२।।
हतप्रजः प्रजालाभं प्रतिष्ठां चाप्रतिष्ठितः।
यशः प्राप्नोति विपुलमयशस्वी च लीलया।।७३।।

नन्द ने यह कहने के पश्चात् अक्रूर को मिष्ठान्न भोजन भी कराया। तदनन्तर पुनः-पुनः कुशलता तथा सभी वृत्तान्त को जानने हेतु जब नन्द ने पूछा तब अक्रूर ने भी नन्द से कंस का समस्त वृत्तान्त कहा। साथ ही कृष्ण के माता-पिता की मुक्ति हेतु कृष्ण-बलराम को अभीप्सित मथुरा में ले जाने के लिये अपना प्रस्ताव भी नन्दराज से कहा। जो व्यक्ति अक्रूर कृत इस स्तव का पाठ करता है, वह भक्ति पूर्वक पाठ करने वाला पुत्रहीन पुत्र की, भार्याहीन भार्या की, निर्धन धन की, भूमि रहित व्यक्ति उपजाऊ भूमि की प्राप्ति करता है। नष्ट प्रजा (सन्तान नष्ट होने वाला) प्रजा (सन्तान) की, अप्रतिष्ठित प्रजा की, अपयश युक्त व्यक्ति सुविपुल यश की प्राप्ति करता है।।७०-७३।।

अथ सुष्वाप समये परं संहृष्टमानसः। रम्ये चम्पकतल्पे च कृष्णं कृत्वा स्ववक्षसि॥७४॥

प्रातरुत्थाय सहसा कृत्वाऽऽह्निकमनुत्तमम्।
स्वरथे स्थापयामास रामं कृष्णं जगत्पतिम्॥७५॥

तत्पश्चात् अक्रूर अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर चम्पा युक्त शय्या पर कृष्ण को वक्षस्थल में धारण करके शयन करने लगे। उन्होंने सहसा प्रातः उठकर अत्युत्तम आह्निक कृत्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने रथ पर जगन्नाथ राम-कृष्ण को बैठाया।।७४-७५।।

गव्यं पञ्चप्रकारं च नानाद्रव्यं सुदुर्लभम्। वृषभानं च नन्दं च सुनन्दं चन्द्रभानकम्॥७६॥
नानाप्रकारं वाद्यं च मृदङ्गमुरजादिकम्। पटहं पणवं चैव ढक्कां दुन्दुभिमानकम्॥७७॥
सज्जां सन्नहनीं कास्यपट्टमर्दलमण्डवीम्। वादयामास सानन्दंनन्दगोपो व्रजेश्वरः॥७८॥

उन्होंने अपने साथ दूध, दधि, घृत, नवनीत तथा मट्ठा, नाना प्रकार के अतीव दुर्लभ पदार्थ भी रखा। तभी व्रजेश्वर गोपप्रवर नन्दराज ने मृदंग, पटह, पणव, ढक्का, दुन्दुभि, आनक, सन्नहनी, झांझ-मजीरा, कांस्यपट्ट, मर्दल तथा मंडवी वाद्यों का वादन वहां कराया।।७६-७८।।

श्रुत्वा वाद्यं च गोप्यश्च गमनं रामकृष्णयोः।
दृष्ट्वा कृष्णं रथस्थं तमाययुः कोपपीडिताः॥७९॥

कृष्णेन वारिताः सर्वाःप्रेरिता राधया द्विज। बभञ्जुरीश्वररथं पादाघातेन लीलया॥८०॥
तत्र सर्वेषु गोपेश हाहाकारं कृतेषु च। प्रययुर्बलवत्यश्च कृष्णं कृत्वा स्ववक्षसि॥८१॥

काचित्क्रूरं तमक्रूरं भर्त्सयामास कोपतः।
काश्चिद्बद्ध्वा च वस्त्रेण चाक्रूरं प्रययुस्ततः॥८२॥

तभी जब गोपियों को राम एवं कृष्ण के मथुरागमन का संवाद मिला तथा उन्होंने वाद्यध्वनि सुना और जब उन्होंने दूर से श्रीकृष्ण को रथारूढ़ देखा, तब वे वहां क्रोधित होकर चली आईं। राधा से प्रेरणा पाकर उन गोपियों ने बारम्बार कृष्ण द्वारा रोके जाने पर भी अपने पैरों के प्रहार से खेल-खेल में उस रथ को भग्न कर दिया। उस समय समस्त गोपगण हाहाकार करते रह गये, तथापि वे बलिष्ठ गोपियां कृष्ण को हृदय से लगाये वहां से चली गईं। कतिपय गोपियां अक्रूर की भर्त्सना कर रही थीं। कोई उनको क्रूर कहती उनकी निन्दा करने लगीं। किसी गोपी ने अक्रूर को वस्त्र से बांध भी दिया!।।७९-८२।।

काचित्तं ताडयामास कङ्कणेन करेण च। तद्वस्त्रं हारयामास कृत्वा विवसनं मुने॥८३॥
क्षतविक्षतसर्वाङ्गं दृष्ट्वाऽक्रूरं च माधवः। जगाम राधानिकटं बोधयामास तां पुनः॥८४॥

आध्यात्मिकेन योगेन[1] विनयेन च सादरम्।
अक्रूरं बोधयामास बोधयामास तां पुनः॥८५॥

१. क. नीतेन।

कुछ गोपियां अपने कंकण से अक्रूर पर प्रहार करने लगीं। हे मुनिवर! कुछ गोपियों ने अक्रूर का वस्त्र हरण करके उनको विवस्त्र कर दिया। जब माधव ने अक्रूर को क्षत-विक्षत अंगों वाला देखा, तब वे राधा के पास गये तथा अनेक प्रकार से विनीत होकर आध्यात्मिक योग द्वारा राधा को तथा अक्रूर को सान्त्वना देकर समझाया। तत्पश्चात् कृष्ण राधा के पास जाकर उनको पुनः समझाने लगे।।८३-८५।।

आकाशात्पतितं दिव्यं मन्त्रप्रस्थापितं रथम्। विचित्रवस्त्रसंयुक्तं ददर्श पुरतो हरिः।।८६।।
खचितं मणिराजेन रचितं विश्वकर्मणा। तं दृष्ट्वा मातृभवनमाजगाम जगत्पतिः।।८७।।

इसी समय जगत्पति कृष्ण के समक्ष एक विचित्र वस्त्रों से मण्डित मणिराज से जड़ित विश्वकर्मा द्वारा बनाया गया एक दिव्यरथ आकाश से वहां उतरा जो मन्त्रों से प्रस्थापित था। उस रथ को देखकर जगत्पति कृष्ण माता यशोदा के भवन में चले गये।।८६-८७।।

भुक्त्वा पीत्वा सुखं सुप्त्वा[१] भगवान्सहबान्धवः। तस्थौ मुनीन्द्रदेवेन्द्रब्रह्मेशशेषवन्दितः।।८८।।
सुषुपुर्गोपिकाः सर्वाः परं संहृष्टमानसाः। पुष्पतल्पे च रम्ये च राधया सह नारद।।८९।।
सर्वे चाऽऽनन्दयुक्ताश्च जना गोकुलवासिनः। केचिद्गोपाश्च ननृतुः केचित्सङ्गीततत्पराः।।९०।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० गोपीविषयो नाम सप्ततितमोऽध्यायः।।७०।।

—※※※—

वहां पर भगवान् अपने बन्धुगण के साथ भोजन-पानादि से निवृत्त होकर सुख पूर्वक शयन करने लगे। भगवान् कृष्ण मुनीन्द्रों, इन्द्रादि देवताओं, ब्रह्मा-शिव-शेष द्वारा नित्य वन्दनीय हैं। हे नारद! समस्त गोपियां भी हर्षित होकर रम्य पुष्पशय्या पर राधा के साथ शयन करने लगीं। सभी गोकुल निवासी जन इस समय आनन्दमग्न थे। कुछ गोपगण वहां नृत्यरत हो गये तथा कुछ संगीत गायन करने लगे।।८८-९०।।

।।७०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

१. क. गमने।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण की मथुरायात्राकाल में मङ्गलाचरण

नारायण उवाच

राधिकायां च सुप्तायां सुप्तासु गोपिकासु च। पुष्पचन्दनतल्पे च वायुना सुरभीकृते॥१॥
तृतीयप्रहरेऽतीते निशायां च शुभे क्षणे। शुभचन्द्रर्क्षयोगे चामृतयोगसमन्विते॥२॥
सौम्यस्वामियुते लग्ने सौम्यग्रहविलोकिते। पापग्रहसमासक्तदुष्टदोषादिवर्जिते[१]॥३॥
यशोदां बोधयामास कारयामास मङ्गलम्। बन्धूनाश्वासयामास समुत्थाय हरिः स्वयम्॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! राधिका तथा गोपिकायें जब सुगन्धित पुष्पचन्दन शय्या पर शयनरत थीं तब रात के तीसरे प्रहर के व्यतीत होने पर शुभ चन्द्रतारा युक्त अमृतयोग समन्वित शुभक्षण में तथा शुभदृष्टियुक्त, पापग्रह दृष्टिदोष से रहित सौम्यग्रह के लग्न में स्वयं हरि उठे तथा उन्होंने यशोदा को जगाया तथा मङ्गलाचरण कराया। हरि ने उस समय उठकर बन्धुगण को आश्वस्त किया॥१-४॥

वाद्यं निषेधयामास राधिकाभयभीतवत्।
स्वतन्त्रो विश्वकर्ता च पाता भर्ता स्वतन्त्रवत्॥५॥
प्रक्षाल्य पादयुगलं धृत्वा धौते च वाससी।
उवास संस्कृते स्थाने विलिप्ते चन्दनादिना॥६॥

फलपल्लवसंयुक्तं संस्कृतं चन्दनादिभिः। वामे कृत्वा पूर्णकुम्भं वह्निं विप्रं स्वदक्षिणे॥७॥
पतिपुत्रवतीं दीपं दर्पणं पुरतस्तथा। दूर्वाकाण्डं च सुस्निग्धं पुष्पं धान्यं सितं शुभम्॥८॥

उन्होंने अपने मथुरा प्रस्थान के उपलक्ष्य में बजाये जाने वाद्य-वादन को मना करा दिया; क्योंकि प्रभु को भय था कि राधा जाग्रत न हो जायें। जो जगत् के स्वतन्त्र कर्त्ता, विश्वरक्षक, विश्व का भरण-पोषण करने वाले श्रीकृष्ण ने भी अस्वतन्त्रवत् राधिका के भय के कारण वाद्यों के न बजाने का निर्णय लिया था। तदनन्तर कृष्ण ने अपने चरणद्वय का प्रक्षालय किया तथा दो श्वेत स्वच्छवस्त्र पहन कर चन्दन आदि से लिप्त स्वच्छ स्थान पर आसीन हो गये। उनके बायीं ओर चन्दनादि से सुसंस्कृत पूर्णकलश रखा था। वह फल, पुष्प युक्त था। उनके दाहिनी ओर अग्नि स्थापना करके ब्राह्मणों का बैठाया गया। सामने की ओर (कृष्ण के सामने) पति-पुत्रीवती साध्वी नारी को बैठाकर दीपक तथा दर्पण को रखा गया। श्रीकृष्ण ने गुरुप्रदत्त दूर्वा, स्निग्ध पुष्प, शुभप्रद श्वेत धान्य मस्तक पर रखा॥५-८॥

---

१. क. ०युक्तदृष्ट०।

गुरुदत्तं गृहीत्वा च प्रदधौ मस्तकोपरि। घृतं ददर्श माध्वीकं रजतं काञ्चनं दधि॥९॥
चन्दनं लेपनं कृत्वा पुष्पमालां गले ददौ। गुरुवर्ग ब्राह्मणं च वन्दयामास भक्तितः॥१०॥
शङ्खध्वनिं वेदपाठं सङ्गीतं मङ्गलाष्टकम्। विप्राशीर्वचनं रम्यं शुश्राव परमादरम्॥११॥
ध्यात्वा मङ्गलरूपं च सर्वत्र मङ्गलप्रदम्। चिक्षेप दक्षिणं पादं सुन्दरं स्वात्मविग्रहम्॥१२॥

विधृत्य नासिकावामभागं मध्यमया विभुः।
विसृज्य वायुं[1] सम्पूर्णं नासादक्षिणरन्ध्रतः॥१३॥
ततो ययौ नन्दनन्दो नन्दस्य प्राङ्गणं वरम्।
सानन्दः परमानन्दो नित्यानन्दः सनातनः॥१४॥

तदनन्तर घृत, मधु, रजत, स्वर्ण तथा दधि को देखकर और सर्वाङ्ग में चन्दन लेप करके कृष्ण ने पुष्पमाला धारण किया। इसके पश्चात् भक्ति पूर्वक गुरुगण तथा ब्राह्मणों की वन्दना करके शङ्खध्वनि, वेदपाठ, मङ्गलाष्टक संगीत तथा ब्राह्मणों का शुभ आशीर्वाद श्रीकृष्ण ने सुना। इसके अनन्तर सर्वत्र मङ्गलप्रद, मङ्गलरूप का ध्यान करके श्रीकृष्ण ने अपना सुन्दर दाहिना पैर भूतल पर रक्खा। इसके पश्चात् भगवान् कृष्ण ने अपनी मध्य उंगली द्वारा नासिका का वामछिद्र बन्द किया और अपनी नासा के दाहिने छिद्र से समस्त वायु का रेचन किया (अर्थात् बाहर किया)। इसके अनन्तर प्रभु परमानन्दस्वरूप, नित्यानन्दमग्न, सनातन, नन्दनन्दन श्रीकृष्ण नन्दराज के श्रेष्ठ आंगन में आये।।९-१४।।

नित्योऽनित्यो नित्यबीजस्वरूपो नित्यविग्रहः।
नित्याङ्गभूतो नित्येशो नित्यकृत्यविशारदः॥१५॥

नित्यनूतनरूपश्च नित्यनूतनयौवनः। नित्यनूतनवेषश्च वयसा नित्यनूतनः॥१६॥
नित्यनूतनसंभाषो यत्प्रेम नित्यनूतनम्। नित्यनूतनसम्प्राप्तिः सौभाग्यं नित्यनूतनम्॥१७॥
सुधारसपरं मिष्टं यद्वाक्यं नित्यनूतनम्। नित्यनूतनभक्तं च यत्पदं नित्यनूतनम्॥१८॥

वे प्रभु नित्य होकर भी अनित्य, नित्यबीज (कारण) स्वरूप, नित्यविग्रह, नित्य के अंगरूप, नित्येश्वर तथा नृत्यकृत्य विशारद हैं। उनका रूप नित्य नूतन है, उनका यौवन नित्य-नूतन है। उनका वेश नित्य नूतन है। उनका वयस (उम्र) भी नित नूतन है। उनका वार्त्तालाप नित्य नूतन है। उनका प्रेम भी नित्य नूतन ही है। सम्प्रति उनका सौभाग्य भी नित्य नूतन है। उनका अमृत से अधिक मधुर वाक्य भी नित्य नूतन है। उनका पद नित्य नूतन है। उनके भक्तगण भी नित्य नूतन हैं।।१५-१८।।

स्थायं स्थायं प्राङ्गणेऽस्मिन्मायेशो मायया युतः।
अतीव रम्ये सुस्निग्धो बभूव गमनोन्मुखः॥१९॥

वे मायायुक्त माया के ईश्वर कृष्ण इस अतीव सुन्दर स्निग्ध, रम्य आंगन से यात्रा पर जाने का उपक्रम करने लगे।।१९।।

१. क. ०युमिष्टं च ना०।

रम्भास्तम्भसमूहैश्च रसालपल्लवान्वितैः। पट्टसूत्रनिबद्धैश्च सुन्दरैश्च सुसंस्कृतैः॥२०॥
पद्मरागेण खचिते रचिते विश्वकर्मणा। कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च चन्दनैश्च सुसंस्कृते॥२१॥
तत्र तस्थौ स्वयं कृष्णः सहाक्रूरः सबान्धवः।
यशोदया समाश्लिष्टो वामपार्श्वेन मायया॥२२॥
नन्देनाऽऽनन्दयुक्तेनाऽऽश्लिष्टो दक्षिणपार्श्वतः।
संभाषितो बान्धवैश्च पित्रा मात्रा च चुम्बितः॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० यात्रामङ्गलं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः।।७१।।

तदनन्तर आम के पत्तों का सूत्र में बांधकर बने बन्दनवार से तथा कदली स्तम्भों से सजे, पद्मराग मणिजटित, विश्वकर्मा द्वारा रचित जो नन्द का आंगन कस्तूरी, कुंकुम एवं चन्दन से सुसंस्कृत था, वहां कृष्ण ने अक्रूर तथा अपने बन्धुगण के साथ वहां कुछ क्षण रुक गये। वहां माता यशोदा ने माया के वशीभूत होकर कृष्ण का बायीं ओर से तथा नन्दराज ने कृष्ण का दाहिनी ओर से आलिङ्गन एवं चुम्बन प्रेम पूर्वक किया। सभी बान्धवों ने भी कृष्ण से बातचीत करके उनसे बन्धुत्व प्रदर्शित किया।।२०-२३।।

।।७१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण का मथुरापुरी में प्रवेश, पुरी दर्शन, रजक निग्रह, कुब्जा पर कृपा, कंस का वध तथा वसुदेव-देवकी का बन्धन-मोक्ष

नारायण उवाच

अथ कृष्णो गरुं नत्वा निर्गम्य शिबिरान्मुने। आरुह्य स्वर्गयानं च शुभां मधुपुरीं ययौ॥१॥
निवेश मथुरां रम्यां सहाक्रूरगणैः समम्। निर्जित्य शक्रनगरी शोभायुक्तां मनोहराम्॥२॥
रत्नश्रेष्ठेन खचितां रचितां विश्वकर्मणा। अमूल्यरत्नकलशो राजितैश्च विराजिताम्॥३॥
राजमार्गशतैरिष्टैर्वेष्टितां रुचिरैर्वरैः। चन्द्राकारैश्चन्द्रसारैर्मणिभिः परिसंस्कृतैः॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनिवर! तदनन्तर श्रीकृष्ण ने (मन ही मन) गुरु को प्रणाम किया तथा नन्दभवन से बाहर निकले। वे स्वर्ग से आये दिव्यरथ पर आरूढ़ होकर शुभ मथुरा (मधुपुरी) की ओर अग्रसर हो गये। तदनन्तर कृष्ण ने मथुरा में प्रवेश किया, जो अमरावती को भी अपनी शोभा से लज्जित करने वाली पुरी थी। विश्वकर्मा द्वारा रचित श्रेष्ठ रत्नों से जड़ित, अत्यन्त मूल्यवान रत्न कलशों से शोभित थीं। वह अत्यन्त श्रेष्ठ सुन्दर राजमार्गों से घिरी, चन्द्रमा के आकृतिवाली चन्द्रसार मणियों से शोभायमान थी।।१-४।।

विचित्रैर्मणिसारैश्च वीथीशतविनिर्मितैः। शोभितैर्वणिजैः श्रेष्ठैः पुण्यवस्तुसमन्वितैः।।५।।
सरोवरसहस्रैश्च परितः परिशोभितम्। शुद्धस्फटिकसंकाशैः पद्मरागविराजितैः।।६।।
रत्नालङ्कारभूषाढ्यैः शोभितां पद्मिनीगणैः। स्थिरयौवनसंयुक्तैर्निमेषरहितैः परैः।।७।।
साक्षतैरूर्ध्ववदनैः कृष्णदर्शनलालसैः। भ्रूभङ्गलीलालोलैश्च शश्वच्चञ्चललोचनैः।।८।।

यह पुरी विचित्र मणियों के सारभाग से निर्मित गलियों से युक्त थी। यह पुरी वाणिज्य की वस्तुओं से पूर्ण मनोहर गलियों के बाजार के कारण अत्यन्त शोभायमान थी। इस नगरी के चतुर्दिक् निर्मल स्फटिक के समान जलपूर्ण हजारों-हजार सरोवरों से सुशोभित थी। वहां पद्मराग मणियों तथा रत्नालङ्कारभूषिता यौवनान्विता पद्मिनी स्त्रियां, कृष्ण दर्शन की लालसा से अक्षत लेकर निर्निमेष दृष्टि से अपना मुख ऊपर करके सदा अपने चंचल नेत्रों द्वारा कृष्ण के आने की प्रतीक्षा कर रही थीं।।५-८।।

शश्वत्कामसमायुक्तैः पीनश्रोणिपयोधरैः। कोमलाङ्गैर्मध्यकूपै रतिरासविशारदैः।।९।।
रत्ननिर्माणयानानां कोटिभिः परिशोभिताम्।
भूषणैर्भूषिताभिश्च चित्रिताभिश्च चित्रकैः।।१०।।
नानाप्रकारश्रीयुक्तां पुष्पोद्यानत्रिकोटिभिः। नानापुष्पैः पुष्पिताभिर्युक्ताभिर्मधुसूदनैः[1]।।११।।
माधुर्यमधुसंयुक्तैर्मधुलुब्धैर्मुदाऽन्वितैः। माध्वीकमधुमत्तैश्च युक्तैर्मधुकरीचयैः।।१२।।
नानाप्रकारदुर्गैश्च दुर्गम्यां वैरिणां गणैः। रणितां रणकैः शश्वद्रक्षाशास्त्रविशारदैः।।१३।।

उन स्त्रियों की बांकी चितवन चपल थी। रतिलास्य विशारद, कामासक्त वे स्त्रियां ऐसी थीं जिनके नितम्ब तथा स्तनमण्डल अत्यन्त स्थूल मांसल थे। इनकी कमर अत्यन्त पतली थी। सर्वाङ्ग अत्यन्त कोमल थे। इस नगरी में कहीं करोड़ों यान विराजमान थे, जो चित्र-विचित्र, भूषणभूषित, रत्नों से बने थे। यह नगरी नाना पुष्प-पादपों से शोभित थी। यहां के तीन कोटि उद्यान थे, जो पुष्प के पौधों से पूर्ण अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे। इन सभी उद्यानों में मधुमाधुर्य से आसक्त मदमत्त मधुलोभी भ्रमरमण्डली मत्त होकर मधुपान से प्रमत्त भ्रमरी समूह के साथ गुंजार कर रही थी। यह नगरी अनेक दुर्गों के समूह के होने के कारण शत्रुगण के लिये अत्यन्त दुर्गम भी थी। यह नगरी रक्षाशास्त्र विशारद रक्षकों द्वारा सतत् रक्षित थी।।९-१३।।

१. ख. ०दनः।

त्रिकोट्याट्टालिकाभिश्च संयुक्तां सुमनोहराम्। रचितां किल सद्रत्नैर्विचित्रैर्विश्वकर्मणा॥१४॥
एवंभूतां च मथुरां दृष्ट्वा कमललोचनः। ददर्श पथि कुब्जां तां वृद्धामतिजरातुराम्॥१५॥
यान्तीं दण्डसहायेन चातिनम्रां नमद्वलीम्। रूक्षितां विकृताकारां बिभ्रतीं चन्दनद्रवम्॥१६॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च [1]स्पर्शमात्रेण नारद। सुगन्धिमकरन्देन गन्धाढ्यं सुमनोहरम्॥१७॥

यह नगरी तीन करोड़ अट्टालिकाओं वाली अत्यन्त रम्य थी, जिसे देवशिल्पी विश्वकर्मा ने नाना उत्तम एवं विचित्र रत्नों से निर्मित किया था। कमलोचन भगवान् इस नगरी का अवलोकन करते आगे जा रहे थे, तभी उस राजपथ पर उन्होंने एक अत्यन्त जरातुरा वृद्धा नारी को देखा जो कुबड़ी थी। वह छड़ी के सहारे चलने वाली थी तथा कमर टेढ़ी होने के कारण अत्यन्त नत थी। वह रुक्ष चर्म वाली, विकृताकृति थी। उसने हाथों में कस्तूरी-कुंकुम मिला चन्दन लेप लिया था। हे नारद! उस कुब्जा के हाथ के स्पर्शपात्र में यह लेप सुगन्धित मकरन्द पूर्ण तथा अत्यन्त मनोहर था।।१४-१७।।

सा दृष्ट्वा सस्मिता वृद्धा श्रीकान्त शान्तमीश्वरम्।
श्रीयुक्तं श्रीनिवासं तं श्रीबीजं श्रीनिकेतनम्॥१८॥

इसी समय उस वृद्धा ने मन्द मुस्कान युक्त श्रीकान्त, शान्तरूप ईश्वर का दर्शन किया, जो श्रीयुक्त, श्रीनिवास, श्रीबीज तथा श्रीनिकेतन थे।।१८।।

प्रणम्य सहसा मूर्ध्ना भक्तिनम्रा पुटाञ्जलिः। प्रददौ चन्दनं तस्य गात्रे श्यामलसुन्दरे॥१९॥
गात्रेषु तद्गणानां च स्वर्णपत्रकरा वरा। कृत्वा प्रदक्षिणं कृष्णं प्रणनाम पुनः पुनः॥२०॥

कुब्जा ने सहसा भक्तिभाव से मस्तक झुकाकर कृष्ण को प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर भगवान् को प्रणाम करने के उपरान्त अपने श्रेष्ठ स्वर्णमय पात्र में रखा चन्दनादि लेप भगवान् के श्यामल सुन्दर अंगों पर लगाया और उनकी प्रदक्षिणा करके उन प्रभु श्रीकृष्ण को पुनः-पुनः प्रणाम किया।।१९-२०।।

श्रीकृष्णदृष्टिमात्रेण श्रीयुक्ता सा बभूव ह। सहसा श्रीसमा रम्या रूपेण यौवनेन च॥२१॥
वह्नि शुद्धांशुवसना रत्नभूषणभूषिता। यथा द्वादशवर्षीया कन्या धन्या मनोहरा॥२२॥

श्रीकृष्ण की दृष्टि जैसे ही उस कुब्जा पर पड़ी सहसा वह कुब्जा लक्ष्मी के समान सुन्दर रूप यौवनयुक्त हो गई। उसके वस्त्र तत्काल अग्निशुद्ध वस्त्र जैसे हो गये। वह रत्नभूषण भूषिता हो गई। वह अब १२ वर्ष की धन्या मनोहरा कन्या लग रही थी।।२१-२२।।

बिम्बोष्ठी सस्मिता श्यामा तप्तकाञ्चनसन्निभा। सुश्रोणी सुदती बिल्वफलतुल्यपयोधरा॥२३॥
अमूल्यरत्ननिर्माणहारसारविराजिता। गजेन्द्रराजगमना रत्नमञ्जीररञ्जिता॥२४॥

उसका ओष्ठ बिम्बफल के समान था। वह मुस्करा रही थीं। वह श्यामा तथा तप्तस्वर्ण वर्ण की लगने लगी। वह उत्तम श्रोणी तथा उत्तम दांतों वाली थी। उसके स्तनद्वय बिल्वफल के समान कठोर थे।

१. ख. स्पृष्टमा०।

उस समय कुब्जा के गले में अमूल्य रत्नों से निर्मित मनोहर हार विराजित था। उसके चरणयुगल रत्नमय नूपुर से रंजित थे। उसकी चाल गजराज के समान थी।।२३-२४।।

बिभ्रती कबरीभारं मालतीमाल्यवेष्टितम्। रक्षितं वामभागेन रुचिरं वर्तुलाकृतिम्।।२५।।
सिन्दूरबिन्दुं दधतीं दाडिमींकुसुमाकृतिम्। कस्तूरीबिन्दुमुपरि सार्धं चन्दनबिन्दुभिः।।२६।।
रत्नदर्पणहस्ता च प्रशस्ता रतिकर्मसु। श्रीकृष्णं वरयामास लोललोचनकोणतः।।२७।।

कुब्जा का केशपाश (जूड़ा) मालती माला से गुंथा था। वह जूड़ा बायीं ओर कुछ झुका तथा वर्त्तुलाकृति था। उस कुब्जा के ललाट पर कस्तूरी की बिन्दी लगी थी। उसके चारों ओर चन्दन की बिन्दी के साथ-साथ अनार पुष्प ऐसी सज्जित सिन्दूर की बिन्दी शोभायमान हो रही थी। कुब्जा के हाथों में दर्पण था। वह अब रतिक्रिया में अत्यन्त प्रवीण हो गई। उसने अपने चंचल कटाक्ष विक्षेप से श्रीकृष्ण को इस संकेत द्वारा वरण कर लिया (अपना पति माना)।।२५-२७।।

श्रीवासस्तां समाश्वस्य ययौ स्थानानन्तरं परम्।
कृतार्थरूपा सा प्रीत्या ययौ पद्मा यथाऽऽलयम्।।२८।।

सा ददर्श स्वभवनं यया पद्मालयालयम्। रत्नशय्याविरचितं सद्रत्नसारनिर्मितम्।।२९।।
रत्नप्रदीपराजीभी राजिताभिश्च राजितम्। रत्नदर्पणराजैश्च राजितं परितस्ततः।।३०।।
सिन्दूरवस्त्रताम्बूलं श्वेतचामरमाल्यकम्। बिभ्रतीभिश्च दासीभिर्वेष्टितं दाससंघकैः।।३१।।

तत्र गत्वा च भुक्त्वा च मिष्टान्नं परमं मुदा।
सुष्वाप रत्नपर्यङ्के सा दासीभिश्च सेविता।।३२।।

उस समय श्रीवास प्रभु कृष्ण ने बाद में उसके पास आने का आश्वासन दिया और आगे अन्यत्र स्थान पर चले गये। इस प्रकार साध्वी कुब्जा कृतार्थ हो गई। वह लक्ष्मी के समान अपने भवन चली गयी। घर जाकर कुब्जा देखती है कि उसका आवास लक्ष्मी के गृह जैसा रत्नसार से निर्मित है और रत्नमयी शय्या से सुसज्जित हैं! उस भवन में प्रदीप्त रत्नी दीप की पंक्ति तथा रत्ननिर्मित अत्युत्तम दर्पण चतुर्दिक् विराजमान हैं। यह भवन असंख्य दास-दासी से सेवकों से पूर्ण हैं। इन दासियों में से कोई सिन्दूर, तो कोई वस्त्र, कोई ताम्बूल, कोई श्वेत चामर, कोई माला लिये हुये है। वहां पहुंचकर कुब्जा अत्यन्त मुदित हो गई। उसने प्रसन्नता पूर्वक मिष्ठान्नभोजन किया। तदनन्तर वह दासीगण से सुसेवित होकर रत्नशय्या पर शयन करने लगी।।२८-३२।।

सकर्पूरं च ताम्बूलं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्। चन्दनं स्थापयामास स्वतल्पे हरये सती।।३३।।
मालतीमाल्ययुगलं कर्पूरादिसुवासितम्। शीतलं सलिलं स्वादु मिष्टान्नं स्वसमीपतः।।३४।।
कर्मणा मनसा वाचा चिन्तयन्ती हरेः पदम्। हरेरागमनं चापि मुखचन्द्रं मनोहरम्।।३५।।

इस समय कुब्जा ने हरि के निमित्त वहां अपने पास शय्या पर कर्पूरयुक्त ताम्बूल, कस्तूरी, कुंकुमयुक्त उत्तम चन्दन रख लिया। तदनन्तर उस सती ने पास के स्थान पर मालती मालाद्वय, कर्पूरादि

से सुवासित शीतल जल तथा उत्तम मिष्ठान्न भी रखा। वह मनसा-वाचा-कर्मणा श्रीहरि के चरणों का चिन्तन कर रही थी। वह हरि के आगमन की प्रतीक्षा करती उनके मनोहर मुखचन्द्र का चिन्तन भी कर रही थी।।३३-३५।।

जगत्कृष्णमयं शश्वत्पश्यन्ती कामुकी मुने।
कोटिकन्दर्पलीलाभं कामसक्तं च कामुकम्॥३६॥

हे मुनिवर! वह कामुकी कुब्जा अब समग्र संसार को कृष्णमय देख रही थी। उसने कोटि-कोटि कन्दर्प के समान मनोहर कामुक श्रीहरिरूप के चिन्तन में निमग्न हो गई। किम्बहुना उसके नेत्रों में समस्त जगत् कृष्णमय प्रतीत होने लगा।।३६।।

ततो ददर्श श्रीकृष्णो मालाकारं मनोहरम्। मालासमूहं बिभ्रन्तं गच्छन्तं राजमन्दिरम्॥३७॥

सोऽपि दृष्ट्वा च श्रीकान्तं प्रणम्य शिरशा भुवि।
ददौ माल्यसमूहं च कृष्णाय परमात्मने॥३८॥
कृष्णास्तस्मै वरं दत्त्वा स्वदास्यमतिदुर्लभम्।
माल्यं गृहीत्वा प्रययौ राजमार्गे वरं वरः॥३९॥

ततो ददर्श रजकं बिभ्रतं वस्त्रपुञ्जकम्। अहंकृतिबलिष्ठं च सततं यौवनोद्धतम्॥४०॥
वस्त्रं ययाचे तं कृष्णो विनयेन महामुने। स तस्मै न ददौ वस्त्रं तमुवाच च निष्ठुरम्॥४१॥

उधर मार्ग में जाते समय श्रीकृष्ण ने एक मनोहर माली को देखा। वह उत्तम माला लेकर राजा के यहां जा रहा था। उसने मार्ग में श्रीपति कृष्ण को देखकर भूमि पर शिर नत करके (कृष्ण को) प्रणाम किया। उसने परमात्मा कृष्ण को मालायें भी अर्पित कर दिया। कृष्ण ने उस माली को अपने दासत्व का दुर्लभ वर प्रदान कर दिया और वे माला धारण करके राजमार्ग पर आगे जाने लगे। तभी कृष्ण ने उस मार्ग में वस्त्रों का ढेर लेकर जाते एक अहंकारी, यौवन के मद के कारण उद्धत एक धोबी को देखा। हे महामुनि! जब कृष्ण ने विनय पूर्वक उस धोबी से वस्त्र मांगा, तब उसने कृष्ण को वस्त्र तो दिया नहीं, उलटे भगवान् से निष्ठुर कठोर वचन कहने लगा।।३७-४१।।

राजक वाचक

गोरक्षकाणां त्वद्योग्यं वस्त्रमेतत्सुदुर्लभम्। राजयोग्यं च हे मूढ हे गोपजनवल्लभ॥४२॥
गृहीत्वा गोपकन्याश्च कन्यालोलुप लम्पट। यद्विहारः कृतस्तत्र वृन्दारण्येऽप्यराजके॥४३॥

न चात्र तादृशं कर्म राज्ञः कंसस्य वर्त्मनि।
विद्यमानोऽत्र राजेन्द्रः शास्ता दुष्टस्य तत्क्षणम्॥४४॥

धोबी कहता है-हे मूढ! गोपजन के प्रिय! ये दुर्लभ वस्त्र राजा के ही निमित्त हैं। ये गोरक्षक ग्वालों के लिये नहीं हैं। हे कन्यालोलुप! लम्पट! तुमने राजा रहित वृन्दावन में भले गोप बालाओं के

साथ विहार किया है, तथापि यह राजा कंस का राजमार्ग है। यहां पर तुम उस प्रकार का कर्म नहीं कर सकते। यहां राजाधिराज विद्यमान हैं। अकार्य करने वाले दुष्ट को राजा तत्काल दण्डित कर देते हैं।।४२-४४।।

रजकस्य वचः श्रुत्वा जहास मधुसूदनः। जहास बलदेवश्च साक्रूरो गोपवर्गकः।।४५।।
तं हिनत्य चपेटेन जग्राह वस्त्रपुञ्जकम्। वस्त्रं संधारयामास श्रीकृष्णः सगणस्तथा।।४६।।
रत्नयानेन गोलोकं पार्षदैर्वेष्टितेन च। ययौ रजकराजश्च धृत्वा दिव्यकलेवरम्।।४७।।
शश्वद्यौवनयुक्तं च जरामृत्युहरं वरम्। पीतवस्त्रसमायुक्तं सस्मितं श्यामसुन्दरम्।।४८।।
बभूव सोऽपि गोलोके पार्षदेषु च पार्षदः।
कृष्णस्याऽऽगमनं तत्र सस्मार सततं वशी।।४९।।

उस धोबी का कथन सुनकर मधुसूदन, बलदेव, अक्रूर एवं गोपगण हंसने लगे। कृष्ण ने एक चपत लगाकर उसका वध कर दिया तथा सभी वस्त्र ग्रहण कर लिया। उस वस्त्र को कृष्ण तथा उनके गणों ने पहन लिया। वह धोबी मृत होने के पश्चात् गोलोक से आये रत्नयान पर दिव्यदेहधारी होकर बैठ गया तथा पार्षदों से घिर कर गोलोक चला गया, जो लोक शाश्वत यौवनपूर्ण जरामृत्युहारी तथा श्रेष्ठ है। अब वह धोबी श्यामसुन्दर जैसा पीतवस्त्रधारी तथा मृदुमुस्कान युक्त लग रहा था। वह रजक अब गोलोक जाकर श्रीकृष्ण की पार्षद मण्डली का एक पार्षद हो गया। वह जितेन्द्रिय पार्षद अब श्रीकृष्ण के मृत्युलोक से वापस आने की प्रतीक्षा करने लगा था।।४५-४९।।

अस्तं गते दिनकरोऽप्यक्रूरः स्वगृहं ययौ।
कृष्णस्यानुमतिं प्राप्य कृष्णोऽपि कस्यचिद्गृहम्।।५०।।
वैष्णवस्य कुविन्दस्य तस्मिन्नस्तधनस्य च। सानन्दो नन्दसहितो बलदेवादिभिर्युतः।।५१।।
स भक्तः पूजयामास प्रणम्य श्रीनिकेतनम्।
तस्मै ददौ स्वदास्यं च वरं ब्रह्मादिदुर्लभम्।।५२।।

सूर्यास्त होने पर अक्रूर अपने निवास स्थान चले गये। गृह जाने के पूर्व उन्होंने कृष्ण की अनुमति लिया था। उस समय कृष्ण एक वैष्णव कपड़ा बिनने वाले कुविन्द के घर गये। उनके साथ नंद, बलदेव तथा सभी गोप भी गये थे। उस भक्त ने श्रीनिकेतन कृष्ण का पूजन करके उनको प्रणाम किया। तब श्रीकृष्ण ने उस कुविन्द को अपना दास्यपद प्रदान किया, जो ब्रह्मा आदि देवगण को भी दुर्लभ है।।५०-५२।।

पर्यङ्के सुषुपुः सर्वे भुक्त्वा मिष्टान्नमुत्तमम्।
निद्रां च लेभे सा कुब्जा निद्रेशोऽपि ययौ मुदा।।५३।।
गत्वा ददर्श कुब्जां तां रत्नतल्पे च निद्रिताम्।
दासीगणैः परिवृतां सुन्दरीं कमलामिव।।५४।।

बोधयामास तां कृष्णो न दासीस्वपि निद्रिताः।
तामुवाच जगन्नाथो जगन्नाथप्रियां सतीम्॥५५॥

वहां सबने उत्तम मिष्ठान्न भोजन करके शयन किया, परन्तु तभी श्रीकृष्ण कुब्जा के घर चले गये। वह पलंग पर शयन कर रही थी। श्रीकृष्ण ने वहां कुब्जा को रत्नमयी शय्या पर निद्रित देखा। वह लक्ष्मी की तरह वहां दासियों से चतुर्दिक् सेवित हो रही थीं। वहां प्रभु ने निद्रित दासियों को न जगाकर केवल अपनी सेविका कुब्जा को जगाया। तदनन्तर कृष्ण उस सती से कहने लगे।।५३-५५।।

श्रीभगवानुवाच

त्यज निद्रां महाभागे श्रृङ्गारं देहि सुन्दरि। पुरा शूर्पणखा त्वं च भगिनीं रावणस्य च॥५६॥
रामजन्मनि मद्धेतोस्त्वया कान्ते तपः कृतम्।
तपःप्रभावान्मां कान्तं भज श्रीकृष्ण जन्मनि॥५७॥
अधुना सुखसंयोगं कृत्वा गच्छ ममाऽऽलयम्।
सुदुर्लभं च गोलोकं जरामृत्युहरं परम्॥५८॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे सुन्दरी! निद्रा त्याग करके मुझे श्रृंगार (कामक्रीड़ा) प्रदान करो। हे सुन्दरी! तुम पूर्वजन्म में रावण की बहन शूर्पणखा थी। हे कान्ते! तुमने रामावतार के समय मुझे प्राप्त करने हेतु तपःश्चरण किया था। तपःश्चरण के प्रभाव से मैं इस जन्म में श्रीकृष्णरूप में पति मिल गया। अब मेरे साथ सुख-संभोग करके मेरे गृह गोलोक जाना। जो दुर्लभ तथा जरामृत्युहारी लोक है।।५६-५८।।

इत्युक्त्वा श्रीनिवासश्च कृत्वा तामेव वक्षसि।
नग्नां चकार श्रृङ्गारं चुम्बनं चापि कामुकीम्॥५९॥
सा सस्मिता च श्रीकृष्णं नवसङ्गमलज्जिता।
चुचुम्ब गण्डे क्रोडे तं चकार कमला यथा॥६०॥

यह कहने के पश्चात् भगवान् श्रीनिवास ने कुब्जा को अपने हृदय से लगाकर नग्न किया तथा उसके साथ आलिंगन-चुम्बनादि कामक्रीड़ा करने लगे। उस समय कुब्जा मुस्करा रही थी। वह कृष्ण के साथ इस नवसंगम के कारण लज्जित भी हो रही थी। कुब्जा ने भी कृष्ण का चुम्बन किया तथा भगवान् ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। जिस प्रकार वे लक्ष्मी को गोद में बैठाते थे, उसी प्रकार उन्होंने कुब्जा को गोद में बैठाकर उसका चुम्बन किया।।५९-६०।।

सुरतेर्विरतिर्नास्ति दंपती रतिपण्डितौ। नानाप्रकारसुरतं बभूव तत्र नारद॥६१॥
स्तनश्रोणियुगं तस्या विक्षतं च चकार ह। भगवान्नखरैस्तीक्ष्णैर्दशनैरधरं वरम्॥६२॥

ये दम्पति रति-क्रीड़ा के पण्डित थे। इनकी रमण क्रीड़ा में कोई विराम नहीं हो रहा था। हे

नारद! श्रीकृष्ण तथा कुब्जा में अनेक प्रकार की सुरत क्रीड़ा होने लगी। श्रीकृष्ण ने तीक्ष्ण नखाघात एवं दंताघात से कुब्जा के स्तनों तथा नितम्ब को क्षतविक्षत कर दिया। श्रीकृष्ण ने तदनन्तर राधा के श्रेष्ठ अधर का पान भी किया।।६१-६२।।

निशावसानसमये वीर्याधानं चकार सः। सुखसंभोगभोगेन मूर्च्छामाप च सुन्दरी।।६३।।

तत्राऽऽजगाम तां तन्द्रा कृष्णवक्षःस्थलस्थिताम्।
बुबुधे न दिवारात्रं स्वर्गं मर्त्यं जलं स्थलम्।।६४।।

सुप्रभाता च रजनी बभूव रजनीपतिः। पत्युर्व्यतिक्रमेणैव लज्जयेव मलीमसः।।६५।।
अथाजगाम गोलोकाद्रथो रत्नविनिर्मितः। जगाम तेन तं लोकं धृत्वा दिव्यकलेवरम्।।६६।।
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम्। प्रतप्तकाञ्चनाभासं नित्यं जन्मादिवर्जितम्।।६७।।

सा बभूव च तत्रैव गोपी चन्द्रमुखी मुने।
गोप्यः कतिविधास्तस्या बभूवुः परिचारिकाः।।६८।।

तत्पश्चात् कृष्ण ने रात्रि के अवसान काल में कुब्जा में वीर्याधान भी किया। इस सम्भोग-सुख के कारण कुब्जा अपनी सुध-बुध खोकर मूर्च्छित-सी हो गई। इस अवस्था में वह कृष्ण के वक्षस्थल पर स्थित होकर दिन-रात, स्वर्ग-मर्त्य, जल-स्थल का बोध भी विस्मृत कर चुकी थी। तत्पश्चात् रात्रिविगत होने पर सुप्रभात हो गया। प्रतीत हो रहा था कि रजनीपति चन्द्रमा श्रीकृष्ण के इस व्यतिक्रम के कारण इसे देखकर लज्जित होकर म्लान हो गये। (प्रातः चन्द्रमा की रश्मि म्लान हो जाती है। यहां वही उपमा दी गयी है)। तत्पश्चात् वहां गोलोक से एक रत्नों से बना रथ आ गया। कुब्जा अग्निशुद्ध वस्त्रधारी तथा रत्नभूषण भूषिता एवं तपे स्वर्ण के वर्ण वाली होकर तथा नित्य जन्म-मृत्यु आदि से रहित होकर दिव्य कलेवरयुक्त हो गई। इस अवस्था में वह उस रथ पर आरूढ़ होकर गोलोक चली गई। हे मुनिवर! गोलोक में वह चन्द्रमुखी नामवाली श्रेष्ठ गोपीरूपा हो गई, जिसकी सेवा में अनेक गोपियां सतत् लगी रहती थीं!।।६३-६८।।

भगवानपि तत्रैव क्षणं स्थित्वा स्वमन्दिरम्। जगाम यत्र नन्दश्च सानन्दो नन्दनन्दनः।।६९।।

अथ कंसो निशायां च निद्रायां भयविह्वलः।
ददर्श दुःखदुःस्वप्नमात्मनो मृत्युसूचकम्।।७०।।
ददर्श सूर्यं भूमिस्थं चतुःखण्डं नभश्च्युतम्।
दशखण्डं चन्द्रबिम्बं भूमिस्थं खाच्च्युतं मुने।।७१।।

पुरुषान्विकृताकारान्रज्जुहस्तान्दिगम्बरान्। विधवां शूद्रपत्नीं च नग्नां च च्छिन्ननासिकाम्।।७२।।

हसन्तीं चूर्णतिलकां श्वेतकृष्णोच्चमूर्धजाम्।
खड्गखर्परहस्तां च लोलजिह्वां च बिभ्रतीम्।।७३।।

श्रीकृष्ण वहां कुछ क्षण रुककर आनन्द से वहां गये जहां नन्द आदि गोपगण ठहरे थे। इधर

कंस ने रात्रि में निद्रावस्था में अपनी मृत्यु के सूचक दुःस्वप्नों को देखा। हे मुनिवर! कंस देखता है कि सूर्य आकाश से चार टुकड़े होकर भूपतित हो गया है। चन्द्रमा भी १० टुकड़े होकर आकाश से नीचे धरती पर आ पड़ा है! विकृताकार वज्रधारी पुरुष है तथा एक नग्ना विधवा नाककटी शूद्र रमणी जिह्वा लपलपाते अट्टहास कर रही है। उसके ललाट पर चूने का तिलक लगा है। उसके श्वेत-श्याम वर्ण वाले केश ऊर्ध्व में उठे हैं। उनके हाथों में खड्ग, खप्पर है।।६०-७३।।

रुण्डमालासमायुक्तां गर्दभं महिषं वृषम्। भल्लूकं सूकरं काकं गृध्रं कङ्कं च वानरम्।।७४।।

विरजं कुक्कुरं नक्रं शृगालं भस्मपुञ्जकम्।
अस्थिराशिं तालफलं केशं कार्पासमुल्बणम्।।७५।।
निर्वाणाङ्गारमुल्कां च शवं मर्त्यं चिताश्रितम्।
कुलालतैलकाराणां चक्रं वक्रं कपर्दकम्।।७६।।
श्मशानं दग्धकाष्ठं च शुष्ककाष्ठं कुशं तृणम्।
गच्छन्तं च कबन्धं च नदन्तं मृतमस्तकम्।।७७।।

उसके कण्ठ में मुण्डमाला है। तदनन्तर कंस ने उसी स्वप्न में गर्दभ, भैंसा, वृष, भालू, शूकर, कौआ, गृध्र, कङ्क, वानर, विरज (श्वेतश्वान), मगर, सियार, भस्म का ढेर, हड्डियों के ढेर, ताल का फल, बाल, कपास, बुझे कोयले, उल्कापात, शव, चिता पर स्थित मनुष्य, कोहार का चक्र, तृणराशि, तेली का कोल्हू, वक्र कौड़ी, श्मशान, दग्ध काष्ठ, शुष्क काष्ठ, कुश तृण, चलता हुआ मनुष्य का शिर रहित धड़, नाद करता मृतक का मस्तक देखा।।७४-७७।।

दग्धस्थानं भस्मयुतं तडागं जलवर्जितम्।
दग्धमत्स्यं च लोहं च निर्वाणदग्धकाननम्।।७८।।

गलत्कुष्ठं च वृषलं नग्नं च मुक्तमूर्धजम्। अतीव रुष्टं विप्रं च शपन्तं गुरुमीदृशम्।।७९।।
अतीवरुष्टं भिक्षुं च योगिनं वैष्णवं नरम्। एवं दृष्ट्वा समुत्थाय कथयामास मातरम्।।८०।।
पितरं भ्रातरं पत्नीं रुदतीं प्रेमविह्वलाम्। मञ्चकान्कारयामास स्थापयामास हस्तिनम्।।८१।।

कंस ने स्वप्न में जल रहित सरोवर जो भस्म से भरा था, दग्ध स्थान, जला मत्स्य, लौह, दावाग्नि से जला दावाग्नि बुझ जाने परिलक्षित कानन, गलितकुष्ठयुक्त मनुष्य, शूद्र, नग्न तथा चोटी खोले अत्यन्त क्रोधित शाप देता ब्राह्मण एवं गुरु, अत्यन्त रुष्ट संन्यासी, कुपित योगी तथा वैष्णव, देखकर इस दुःस्वप्न से आतंकित कंस जाग गया। वह तब प्रेम से विह्वल रुदनरत पत्नी, माता, पिता, भाई से यह वृत्तान्त कहने लगा। तत्पश्चात् उसने द्वार पर हाथी को खड़ा करके सभागार में मंच स्थापित कराया।।७८-८१।।

मल्लसैन्यं च योद्धारं कारयामास मङ्गलम्।
सभां च कारयामास पुण्यं स्वस्त्ययनं शिवम्।।८२।।

यत्नेन योजयामास योगे युक्तं पुरोहितम्।
उवास मञ्चके रम्ये धृत्वा खड्गं विलक्षणम्॥८३॥

तब उसने युद्ध विशारद मल्लों को तथा सैन्य को वहां रखा। तत्पश्चात् मङ्गलाचरण प्रारम्भ किया। उसने उस सभा को सज्जित करके उसने ब्राह्मण से कुशलप्रद पुण्य स्वस्त्यायन भी कराया। तदनन्तर यत्न पूर्वक उपयुक्त पुरोहितों को यज्ञार्थ नियुक्त भी किया। वह उस मंच पर विलक्षण खड्ग लेकर बैठ गया॥८२-८३॥

रणे नियोजयामास योद्धारं युद्धकोविदम्।
वासयामास राजेन्द्रान्ब्राह्मणांश्च मुनीश्वरान्॥८४॥
ब्राह्मणांश्च सुहृद्वर्गान्धर्मिष्ठान्रणकोविदान्।
अथाऽऽजगाम गोविन्दो रामेण सह नारद॥८५॥

उसी स्थल पर कंस ने युद्ध की स्थिति होने का विचार करके वहां युद्ध में निपुण योद्धाओं को भी नियुक्त करके वहां स्थित विभिन्न मंचों पर राजाओं, ब्राह्मणों तथा मुनिगण को बैठाया। उसने बन्धुओं एवं सुहृदों को धर्मात्मा व्यक्तियों को तथा रणकुशल लोगों को भी बैठाया था। हे नारद! तभी वहां बलराम के साथ गोविन्द भी आ गये॥८४-८५॥

महेशस्य धनुर्मध्यं बभञ्ज तत्र लीलया। शब्देन तस्य मथुरा बधिरा च बभूव ह॥८६॥
विषादं प्राप कंसश्च मुदं च देवकीसुतः। उपस्थितः सभामध्ये गजं मल्लं नहत्य च।
योगी ददर्श तं देवं परमात्मानमीश्वरम्॥८७॥
यथा हृपद्ममध्यस्थं तादृशं बहिरेव च। राजेन्द्ररूपं राजानः शास्तारं दण्डधारिणाम्॥८८॥
पिता माता दुग्धमुखं स्तनान्धं बालकं यथा।
कामिन्यः कोटिकन्दर्पलीलालावण्यधारिणम्॥८९॥

गोविन्द ने लीलामात्र से शिवधनुष भंग कर दिया। उस धनुषभंग जनित शब्द से सभी मथुरावासी वधिर जैसे हो गये! इस घटना से देवकीनन्दन प्रभु प्रसन्न हो गये, तथापि कंस विषादग्रस्त हो गया। कृष्ण-बलराम ने उस सभा में मल्लों तथा विशाल गज का वध कर दिया। उस समय सभी योगी लोग उन परमात्मा परमेश्वर देव श्रीकृष्ण को हृदयकमल में स्थित तो देख ही रहे थे, तथापि वे इन परमात्मा को बाहर भी देख रहे थे। राजाओं ने उनको राजेन्द्ररूप में देखा। वे उनको दण्डधारी लोगों के शासक प्रतीत हो रहे थे। पिता-माता ने कृष्ण को स्तनपायी बालकवत् देखा। वहां कामिनी नारियों ने कृष्ण को लीला पूर्वक करोड़ों कामदेव के समान लावण्य से युक्त देखने लगीं॥८६-८९॥

कंसश्च कालपुरुषं वैरिणं तस्य बान्धवाः।
मल्ला मृत्युप्रदं चैव प्राणतुल्यं च यादवाः॥९०॥

नमस्कृत्य मुनीन्विप्रान्पितरं मातरं गुरुम्।
जगाम मञ्चकाभ्याशं हस्ते कृत्वा सुदर्शनम्॥९१॥
दृष्ट्वा भक्तं भक्तबन्धुः कृपया च कृपानिधिः।
आकृष्य मञ्चकात्कंसं जघान लीलया मुने॥९२॥
राजा ददर्श विश्वं च सर्वं कृष्णमयं परम्। पुरतो रत्नयानं च हीरकाहारभूषितम्॥९३॥

कंस ने कृष्ण को कालपुरुष रूप में देखा। कंस के बांधवों ने श्रीकृष्ण को वैरीरूप में देखा। उस समय श्रीकृष्ण ने माता-पिता, मुनियों, ब्राह्मणों तथा गुरु को प्रणाम किया। उन्होंने अपने हाथ में सुदर्शन चक्र धारण किया था। अब वे उस मंच के पास गये जहां कंस बैठा था। उस समय राजा कंस ने समस्त विश्व को कृष्णमय देखा। उसने अपने सामने हीरे के हार से भूषित रत्नयान को देखा। हे मुनिवर! भक्तों के बन्धु कृपानिधि कृष्ण ने मंचासीन कंस को नीचे घसीट कर उसका वध अनायास कर दिया। जब राजा कंस मर रहा था उसने वहां सर्वविश्वात्मक ब्रह्माण्ड को कृष्णमय देखा। उसने अपने समक्ष आये हीरक हार विभूषित रत्न विमान को भी देखा।।९०-९३।।

ययौ विष्णुपदं स्फीतो दिव्यरूपं विधाय च। तेजो विवेश परमं कृष्णपादाम्बुजे मुने॥९४॥
निवृत्य तस्य सत्कारं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ। ददौ राज्यं राजछत्रमुग्रसेनाय धीमते॥९५॥
स बभूव नृपेन्द्रश्च चन्द्रवंशसमुद्भवः। विललाप कंसमाता पत्नीवर्गश्च तत्पिता॥९६॥

हे मुनिवर! कंस ऐसे रथ (विमान) पर दिव्य शरीरधारी होकर आरूढ़ हो गया। उसका देहतेज श्रीकृष्ण के चरणों में विलीन हो गया। कंस का वध करने के उपरान्त श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणगण को धनदान दिया। उन्होंने मथुरा का राज्य तथा राजछत्र धीमान् उग्रसेन को प्रदान किया। अब चन्द्रवंश में जन्मे उग्रसेन वहां के नृपति हो गये। अब वहां कंस की माता तथा उसकी पत्नियां रुदनरत हो गयीं। पिता भी रुदनरत हो गये।।९४-९६।।

बान्धवा मातृवर्गश्च भगिनी भ्रातृकामिनी। दर्शनं देहि राजेन्द्र समुत्तिष्ठ नृपासने॥९७॥
राज्यं रक्ष धनं रक्ष बान्धवं बलमेव च।
क्व यासि बान्धवान्हित्वा त्वमनाथान्महाबल॥९८॥

कंस के बन्धुगण, मातृवर्ग, बहनें, भाईयों की पत्नियां भी रुदन करने लगी। वे सब कहने लगे–"हे राजेन्द्र कंस! हमें दर्शन दो। उठकर सिंहासन पर बैठो। तुम राज्य, धन, बान्धव, सेना की रक्षा करो। हे महाबली! तुम हम बान्धवों का त्याग करके कहां गमन कर रहे हो!।।९७-९८।।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमसंख्यं विश्वमेव च। सर्वं चराचराधारं यः सृजत्येव लीलया॥९९॥
ब्रह्मेशशेषधर्माश्च दिनेशश्च गणेश्वरः। मुनीन्द्रवर्गो देवेन्द्रो ध्यायते यमहर्निशम्॥१००॥
वेदाः स्तुवन्ति यं कृष्णं स्तौति भीता सरस्वती।
स्तौति यं प्रकृतिर्हृष्टा प्राकृतं प्रकृते परम्॥१०१॥

स्वेच्छामयं निरीहं च निर्गुणं च निरञ्जनम्। परात्परतरं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्॥१०२॥

नित्यं ज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्।
नित्यानन्दं च नित्यं च नित्यमक्षरविग्रहम्॥१०३॥
सोऽवतीर्णो हि भगवान्भारावतरणाय च।
गोपालबालवेषश्च मायेशो मायया प्रभुः॥१०४॥
स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान्।
स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च॥१०५॥

जो ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त चराचर में असंख्य विश्व समूह का सृजन करते हैं, ब्रह्मा-महादेव-अनन्त-धर्मदेव-सूर्य-गणपति-मुनीन्द्र-देवेन्द्र दिन-रात जिनके ध्यान में निमग्न रहते हैं, देवता, सरस्वती प्रभृति देवी समय जिन श्रीकृष्ण का स्तव करती हैं, जो स्वेच्छामय, निरीह, निर्गुण, निरंजन, परात्परतर, परमात्मा तथा ईश्वर हैं, जो नित्य तथा ज्योतिरूपी हैं, जिन्होंने भक्तों के प्रति कृपालु होकर शरीर धारण किया है, जो नित्यानन्द, नित्य, नित्यनिग्रह तथा अक्षय हैं, वे मायापति भगवान् श्रीकृष्ण पृथिवी के भार को उतारने के लिये माया द्वारा गोपवेशधारी बालक होकर अवतीर्ण हो गये हैं। वेद जिनकी स्तुति भयभीत होकर करते हैं, प्रकृति अत्यन्त हर्ष पूर्वक उन प्रकृति से परे प्राकृत कृष्ण की स्तुति करती रहती हैं। वे सर्वाधीश जिसका वध करने को तत्पर हैं, उसकी रक्षा तो कोई कर ही नहीं सकता। ये प्रभु जिसके रक्षक हैं, उसका वध कौन कर सकेगा?॥९९-१०५॥

इत्येवमुक्त्वा सर्वश्च विरराम महामुनेः।
ब्राह्मणान्भोजयामास तेभ्यः सर्वं धनं ददौ॥१०६॥
भगवानपि सर्वात्मा जगाम पितुरन्तिकम्।
छित्त्वा च लोहनिगडं तयोर्मोक्षं चकार सः॥१०७॥

ननाम दण्डवद्भूमौ मातरं पितरं तथा। तुष्टाव भक्त्या देवेशो भक्तिनम्रात्मकंधरः॥१०८॥

हे महामुनि! यह कहने के पश्चात् सभी लोग मौन हो गये। उन सबने ब्राह्मण भोजन कराया तथा ब्राह्मणों को प्रभूत धन प्रदान किया। तदनन्तर सर्वात्मा प्रभु पिता के पास गये तथा उनकी लौह की बेड़ी काटकर उन माता-पिता को मुक्त किया। तदनन्तर देवाधीश प्रभु ने माता-पिता को पृथिवी पर दण्डवत् होकर प्रणाम किया और भक्ति से नत होकर उनकी स्तुति करने लगे॥१०६-१०८॥

श्रीभगवानुवाच

पितरं मातरं विद्यामन्त्रदं गुरुमेव च।
यो न पुष्णाति पुरुषो[१] यावज्जीवं च सोऽशुचिः॥१०९॥

---

१. क. मूढश्च।

सर्वेषामपि पूज्यानां पिता वन्द्यो महान् गुरुः।
पितुः शतगुणैर्माता गर्भधारणपोषणात्॥११०॥
माता च पृथिवीरूपा सर्वेभ्यश्च हितैषिणी।
नास्ति मातुः परो बन्धुः सर्वेषां जगतीतले॥१११॥
विद्यामन्त्रप्रदः सत्यं मातुः परतरो गुरुः।
न हि तस्मात्परः कोऽपि वन्द्यः पूज्यश्च वेदतः॥११२॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे पिता-माता! जो व्यक्ति पिता-माता, विद्यादाता-मन्त्रदाता गुरु का पोषण नहीं करता, वह मूढ़ जीवन पर्यन्त अपवित्र है। सभी पूज्य लोगों की तुलना में पिता परम पूज्य तथा परमगुरु है तथा गर्भ धारण करने तथा पोषण करने के कारण पिता की तुलना में माता सौ गुना गरीयसी तथा पूज्या है। माता पृथिवी रूपा तथा सबसे अधिक हितैषी है। इस भूमण्डल में माता से बढ़कर परम बन्धु अन्य कोई नहीं है। परमविद्या एवं मन्त्रदाता तो माता की अपेक्षा परम गुरु है। परमविद्या एवं मन्त्रदाता के समान पूज्य एवं वन्दनीय कोई भी नहीं है। वे देवरूप ही हैं।।१०९-११२।।

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो बलभद्रो ननाम च।
माता चकार तौ क्रोडे पिता च सादरं मुने॥११३॥
मिष्टान्नं परमं तौ च भोजयामास सादरम्। नन्दश्च भोजयामास गोपालान्परमादरम्॥११४॥
मङ्गलं कारयामास भोजयामास ब्राह्मणान्।
वसुर्वसुसमूहं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥११५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० कंसवधवसुदेवदेवकीमोक्षणं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः।।७२।।

हे मुनिवर! यह कहकर बलदेव तथा कृष्ण ने उनको प्रणाम किया। हे मुनि! माता-पिता ने उनको सादर गोद में लेकर परम उत्तम मिष्टान्न सादर खिलाया। नन्दराज ने भी परम आदर के साथ गोपाल को भोजन कराया। वहां वसुदेव ने भी मंगलकृत्य सम्पन्न कराने के अनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा मुदित मन से उनको दक्षिणा में धनदान किया।।११३-११५।।

।।७२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण द्वारा नन्द आदि का दुःख मोचन करना

नारायण उवाच

अथ कृष्णश्च सानन्दं नन्दं तं पितरं बलः।
बोधयामास शोकार्तं दिव्यैराध्यात्मिकादिभिः॥१॥

उच्चै रुदन्तं निश्चेष्टं पुत्रविच्छेदकातरम्। दत्त्वा तस्मै मणिश्रेष्ठमित्युवाच जगत्पतिः॥२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—तदनन्तर कृष्ण-बलराम ने शोकार्त्त पिता नन्दराज को दिव्य आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा आनन्द पूर्वक प्रबोधित किया। वे पुत्र विच्छेद के कारण कातर होकर उच्च स्वर से रुदन करते-करते निश्चेष्ट हो जाते थे। तदनन्तर जगत्पति श्रीकृष्ण ने उनको श्रेष्ठमणि देकर कहा—॥१-२॥

श्रीभगवानुवाच

निबोध नन्द सानन्दं त्यज शोकं मुदं लभ। ज्ञानं गृहाण मद्दत्तं यद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा॥३॥
यद्यद्दत्तं च शेषाय गणेशायेश्वराय च। दिनेशाय मुनीशाय योगीशाय च पुष्करे॥४॥

कः कस्य पुत्रः कस्तातः का माता कस्यचित्कुतः।
आयान्ति यान्ति संसारं परं स्वकृतकर्मणा॥५॥
कर्मानुसाराज्जन्तुश्च जायते स्थानभेदतः।
कर्मणा कोऽपि जन्तुश्च योगीन्द्राणां नृपस्त्रियाम्॥६॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे पिता नन्द! आप आनन्द पूर्वक मेरा कथन श्रवण करिये तथा शोक त्याग करके आनन्दित हो जायें। मैंने पूर्वकाल में पुष्करतीर्थ में ब्रह्मा, अनन्तदेव, गणेश, कामदेव, सूर्य, मुनिगण तथा योगीन्द्रगण को जो ज्ञान दिया था, उसे ही आप भी ग्रहण करिये। हे तात! इस संसार में जन्तुगण अपने कर्मानुरूप ही स्थानभेद से जन्म लेते हैं। यहां कौन किसका पुत्र है, कौन किसका पिता है, कौन किसकी माता है? सभी स्वकृत कर्मानुरूप संसार में आते हैं। यहां कर्मानुसार ही कोई योगीन्द्र के यहां उत्पन्न होता है, कोई अपने कर्मानुसार ही राजरानी हो जाती है॥३-६॥

द्विजपत्न्यां क्षत्रियाणां वैश्यानां शूद्रयोनिषु।
तिर्यग्योनिषु कश्चिच्च कश्चित्पश्वादियोनिषु॥७॥

ममैव मायया सर्वे सानन्दा विषयेषु च। देहत्यागे विषण्णाश्च विच्छेदे बान्धवस्य च॥८॥
प्रजाभूमिधनादीनां विच्छेदो मरणाधिकः। नित्यं भवति मूढश्च न च विद्वाञ्छुचा युतः॥९॥

कर्मानुरूप कोई प्राणी द्विजपत्नी से, कोई इन्द्र की पत्नी से, कोई राजा की पत्नी से, कोई क्षत्रिय

पत्नी से, कोई वैश्य पत्नी से जन्म लेता है। कोई शूद्रयोनि में, तो कोई तिर्यक् योनि में (पक्षी योनि में) तो कोई पशु प्रभृति योनी में ही उत्पन्न हो जाता है। हे पिता! सभी मेरी माया के प्रभाव से ही विषयभोग से आनन्द प्राप्त करते हैं। वे बन्धु विच्छेद उनके मरणादि देहत्याग से भी खिन्न होते रहते हैं। प्रजा (सन्तान), भूमि, धनादि का विच्छेद तो मरण से भी अधिक कष्टकारक है। जो मूढ है, वही इन सब कारणों से दुःखी होता रहता है। जो विद्वान् है, वह इन सब कारणों से दुःखी नहीं होता॥७-९॥

मद्भक्तो भक्तियुक्तश्च मद्याजी विजितेन्द्रियः।
मन्मन्त्रोपासकश्चैव मत्सेवानिरतः शुचिः॥१०॥
मद्भयाद्वाति वातोऽयं रविर्भाति च नित्यशः।
भाति चन्द्रो महेन्द्रश्च कालभेदे च वर्षति॥११॥

जो मेरा यजन करने वाला, मेरी भक्तियुक्त भक्त है, वह विजितेन्द्रिय मेरे मन्त्रों की उपासना करने वाला, मेरी सेवा में निरत तथा सदैव शुद्ध बना रहता है। मेरे ही भय से वायु प्रवाहवान रहता है, मेरे भय से ही सूर्य नित्य प्रकाश प्रदान करता है, चन्द्रमा भी मेरे भय से रात्रि में प्रकाशित रहता है तथा कालव्यवस्थानुरूप इन्द्र भी मेरे भय के कारण ही वर्षा करते हैं॥१०-११॥

वह्निर्वहति मृत्युश्च चरत्येव हि जन्तुषु।
बिभर्ति वृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च॥१२॥
निराधारश्च वायुश्च वाय्वाधारश्च कच्छपः। शेषश्च कच्छपाधारः शेषाधारश्च पर्वतः॥१३॥

मेरे भय से ही अग्नि दग्ध करता है, मृत्यु भी मेरे भय के कारण प्राणीगण में विचरता रहता है। वृक्षगण भी मेरे भय से समयानुरूप पुष्प-फल प्रदान करते हैं। यह वायु तो सदा निराधार होकर भी कच्छप को धारण किये रहता है। कच्छप ने शेष को धारण किया है तथा शेष ने ही पर्वतादि को धारण किया है॥१२-१३॥

तदाधाराश्च पातालाः सप्त एव हि पङ्क्तितः।
निश्चलं च जलं तस्माज्जलस्था च वसुंधरा॥१४॥
सप्तस्वर्गं धराधारं ज्योतिश्चक्रं ग्रहाश्रयम्।
निराधारश्च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डेभ्यः परो वरः॥१५॥
तत्परश्चापि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनात्।
ऊर्ध्वं निराश्रयश्चापि रत्नसारविनिर्मितः॥१६॥
सप्तद्वारः सप्तसारः परिखासप्तसंयुतः। लक्षप्राकारयुक्तश्च नद्या विरजया युतः॥१७॥

ये पर्वत ही पंक्ति से सप्तपाताल के आधार रूप हैं। यह जल का स्थैर्य पाताल के कारण स्थिर है। जल के आधार पर वसुन्धरा टिकी है। धरती के ही आधार पर स्वर्गादि सप्त ऊर्ध्वलोक विराजमान हैं। ग्रहों के आधार पर ज्योतिश्चक्र (नक्षत्रमण्डल) स्थित रहता है। परन्तु वैकुण्ठ ब्रह्माण्ड से भी परे एवं

श्रेष्ठ हैं। यह पूर्णतः निराधार है। उस वैकुण्ठ से भी परे अर्थात् वैकुण्ठ से ५० कोटियोजन ऊर्ध्व में गोलोक है। यह भी सर्वथा निराधार, रत्नसार से रचित, सात द्वार वाला, सात सार युक्त तथा सार गहरी खाईयों से घिरा है। यहां लाखों चाहारदिवार हैं। यह विरजा नदी से युक्त है।।१४-१७।।

वेष्टितो रत्नशैलेन शतशृङ्गेण चारुणा। योजनायुतमानं च यस्यैकं शृङ्गमुज्ज्वलम्॥१८॥
शतकोटियोजनश्च शैल उच्छ्रित एव च। दैर्घ्यं तस्य शतगुणं प्रस्थं च लक्षयोजनम्॥१९॥

गोलोक श्रेष्ठ १०० शिखर वाले रत्नपर्वत से घिरा है। इस पर्वत की एक चोटी १०००० योजन परिमित है। इस शतशृङ्ग पर्वत की परिधि सौ कोटियोजन है। इसकी ऊंचाई इस परिधि से सौगुणी है। इसका प्रस्थ एक लाख योजन है। (प्रस्थ = चौड़ाई)।।१८-१९।।

योजनायुतविस्तीर्णस्तत्रैव रासमण्डलः। अमूल्यरत्ननिर्माणो वर्तुलश्चन्द्रबिम्बवत्॥२०॥
पारिजातवनेनैव पुष्पितेन च वेष्टितः। कल्पवृक्षसहस्रेण पुष्पोद्यानशतेन च॥२१॥
नानाविधैः पुष्पवृक्षैः पुष्पितेन च चारुणा। त्रिकोटिरत्नभवनो गोपीलक्षैश्च रक्षितः॥२२॥

इसी पर्वत में चन्द्र बिम्बवत् गोलाकार १०००० योजन विस्तृत रत्ननिर्मित रासमण्डल है। यह १००० पुष्पित कल्पवृक्ष, मनोहर १०० पुष्पोद्यान तथा नाना प्रकार के पुष्पों के वृक्षों से समन्वित है। यहां राजमण्डल में तीन करोड़ रत्नभवन हैं। वहां अनगिनत रत्नदीप तथा रत्नकुंभ शोभायमान हैं। यह निरन्तर एक लाख गोपियों से निरन्तर परिवेष्ठित रहता है। वे ही इसकी रक्षा करती हैं।।२०-२२।।

रत्नप्रदीपयुक्तश्च रत्नतल्पसमन्वितः[1]। नानाभोगसमायुक्तो मधुवापीशतैर्वृतः॥२३॥
पीयूषवापीयुक्तश्च कामभोगसमन्वितः। गोलोकगृहसंख्यानवर्णने वा विशारदः॥२४॥
न कोऽपि वेद विद्वान्वा वेदविद्वान्व्रजेश्वरः।
अमूल्यरत्ननिर्माणभवनानां त्रिकोटिभिः॥२५॥
शोभितं सुन्दरं रम्यं राधाशिविरमुत्तमम्। अमूल्यरत्नकलशैरुज्ज्वलं रत्नदर्पणैः॥२६॥

यहां नाना प्रकार की भोग्यवस्तु, सैकड़ों मधु की बावली अमृत की बावली तथा कामोपभोग की वस्तु है। यहां अनेक प्रकार की भोजनीय वस्तु भरी रहती हैं। गोलोक में कितने गृह हैं, इसकी गणना कोई भी विद्वान्-विशारद नहीं कर सकते। इनकी संख्या का वर्णन कोई भी विचक्षण वेदविद्वान् पुरुष अथवा स्वयं वेद भी कर सकने में समर्थ ही नहीं हैं। इन गृहसमूह में से अत्यन्त रमणीय राधा का गृह भी विराजित है, जो अमूल्यरत्न निर्मित तीन कोटि भवनों से शोभित तथा सुन्दर एवं उत्तम है। यह भवन समूह अमूल्य रत्नकलशों तथा रत्नदर्पणों के रहने के कारण अत्युज्वल प्रतीत होता है।।२३-२६।।

अमूल्यरत्नस्तम्भानां राजिभिश्च विराजितम्।
नानाचित्रविचित्रैश्च चित्रितं श्वेतचामरैः॥२७॥

---
१. क. ०र्यतः।

माणिक्यमुक्तासंसक्तं हीरावारसमन्वितम्। रत्नप्रदीपसंसक्तं रत्नसोपानसुन्दरम्॥२८॥
अमूल्यरत्नपात्रैश्च तल्पराजिविराजितम्। अमूल्यरत्नचित्रैश्च त्रिभिश्चित्रविचित्रितैः॥२९॥

यह स्थल अमूल्य रत्नस्तम्भों से सजा है। यह नाना प्रकार के चित्र-विचित्र श्वेत चामरों से चित्रित, मणि-माणिक्य-मुक्ता से शोभायमान, असंख्य हीरक समन्वित, रत्न प्रदीपों से सर्वथा प्रदीप्त है। यहां के सोपान तक रत्न जड़ित होने के कारण सुन्दर लगते हैं। यहां अमूल्य रत्नों के पात्र, अमूल्य शय्या की पंक्ति शोभायमान है। यह अमूल्य रत्नों से बने तीन प्रकार के चित्रों से चित्रित हैं जो अत्यन्त विचित्र हैं॥२७-२९॥

तिसृभिः परिखाभिश्च त्रिभिर्द्वारैश्च दुर्गमैः।
युक्तं षोडशकक्षाभिः प्रतिद्वारेषु वाऽन्तरम्॥३०॥
गोपीषोडशलक्षैश्च सन्नियुक्तैरितस्ततः। वह्निशुद्धांशुकाधानै रत्नभूषणभूषितैः॥३१॥

यह चित्र-विचित्र अमूल्य तीन रत्नमयी दीवारों तथा तीन खाईयों से घिरा स्थान है। इसमें दुर्गम तीन द्वार विराजमान हैं। इस शिविर में १६ कक्षा हैं। इन १६ कक्षाओं के द्वार पर नियुक्त १६ लक्ष गोपियां नियुक्त हैं, जो वहां इतः स्ततः विचरण करती रहती हैं। वे अग्निशुद्ध वस्त्रधारिणी तथा रत्नभूषणभूषिता हैं॥३०-३१॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभैः शतचन्द्रसमन्वितैः। राधिकाकिंकरीवर्गैर्युक्तमभ्यन्तरं वरम्॥३२॥
अमूल्यरत्ननिर्माणप्राङ्गणं सुमनोहरम्। अमूल्यरत्नस्तम्भानां समूहैश्च सुशोभितम्॥३३॥
रत्नमङ्गलकुम्भैश्च फलपल्लवसंयुतैः। संयुतं रत्नवेदीभिर्मुक्ता युक्ताभिरीप्सितम्॥३४॥
अमूल्यरत्नमुकुरैः शोभितं सुन्दरैरहो। अमूल्यरत्ननिर्माणं भवनानां वरं गृहम्॥३५॥

वे तप्त कांचन के वर्ण वाली तथा शतचन्द्र के समान राधा किंकरी हैं। वे भवन के अन्दर रहती हैं। उस स्थान का जो आंगन है, वह अमूल्य रत्न से बना तथा मनोहर है। वहां के स्तम्भ समूह अमूल्य रत्नों से शोभायमान है। वहां पर फल-पल्लवयुक्त मंगल घट भी हैं जो रत्नों से युक्त हैं। वहां स्थित रत्न वेदी अभीप्सित मुक्ता एवं रत्नों से बनी है। वह चतुर्दिक् रत्नदर्पण से सज्जित एवं शोभायमान है। वहां के श्रेष्ठ गृह अमूल्य रत्नों से निर्मित हैं॥३२-३५॥

रत्नसिंहासनस्था च गोपीलक्षैश्च सेविता।
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या श्वेतचम्पकसन्निभा॥३६॥
अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणैश्च विभूषिता। अमूल्यरत्नवसना बिभ्रती रत्नदर्पणम्॥३७॥
रत्नपद्मं च रुचिरं सव्यदक्षिणहस्ततः। दाडिम्बकुसुमाकारं सिन्दूरं सुमनोहरम्॥३८॥
सुशोभितं मृगमदैरिष्टैश्चन्दनबिन्दुभिः। दधती कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम्॥३९॥
रचितं वामभागेन मुनीन्द्राणां मनोहरम्।
एवंभूतं (ता) तत्र राधा गोपीभिः परिसेविता॥४०॥

श्वेतचामरहस्ताभिस्तत्तुल्याभिश्च सर्वतः। अमूल्यरत्ननिर्माणैर्भूषिताभिश्च भूषणैः॥४१॥

उस भवन में रत्नसिंहासनस्था राधा की सेवा एक लाख गोपियां करती हैं। वे कोटि पूर्ण चन्द्रमा के समान शोभायमान हैं। वे श्वेत चम्पा पुष्प के समान कान्तिवाली अमूल्यरत्नभूषिता एवं रत्नमय वस्त्रों से भूषिता हैं। उनके बायें हाथ में रत्नदर्पण तथा दाहिने हाथ में मनोहर रत्नमय पद्म विराजमान है। वे कस्तूरी की बिन्दी तथा चन्दन विन्दु से शोभित हैं। उन्होंने अनार के पुष्प के समान मनोहर सिन्दूर की बिन्दी लगाया है। राधा ने मालती माला मण्डित (मालती माला गूंथा हुआ) बायीं ओर कुछ नत मुनियों के मन को मोहित करने वाला जूड़ा धारण किया है। इस गोलोकधाम में इस प्रकार से सज्जित राधा को सभी तरह से अपने ही तरह के अमूल्य रत्ननिर्मित आभूषणों से भूषिता गोपीगण द्वारा श्वेत चामर झला जाता रहता है। इस प्रकार से वे गोपियां राधा की सेवा में निरत रहती हैं।।३६-४१।।

मत्प्राणाधिष्ठातृदेवी देवीनां प्रवरा वरा। सुदाम्नः सा च शापेन वृषभा सुताऽधुना॥४२॥

शताब्दिको हि विच्छेदो भविष्यति मया सह।
तेन भारावतरणं करिष्यसि भुवः पितः॥४३॥
तदा यास्यामि गोलोकं तया सार्धं सुनिश्चितम्।
त्वया यशोदया चाऽपि गोपैर्गोपीभिरेव च॥४४॥
वृषभानेन तत्पत्न्या कलावत्या च बान्धवैः।
एवं च नन्दं सानन्दं यशोदां कथयिष्यसि॥४५॥

ये देवी राधा मेरे प्राणों की अधिष्ठातृ देवी हैं। हे पिता (नन्दराज)! राधा इस समय श्रीदाम के शाप के कारण वृषभानु की पुत्री के रूप में अवतीर्ण हो गईं। उस शाप के कारण मेरे साथ उनका शतवर्षीय वियोग होना है। मैं इस बीच भूभार हरण करके पुनः (सौ वर्ष पश्चात्) राधा के साथ गोलोक जाऊंगा। अब आप ब्रजधाम जायें। राधा के साथ जब मैं गोलोक प्रस्थान करूंगा तब हमारे साथ आप, यशोदा, गोप तथा गोपियां, वृषभानु, वृषभानु की भार्या कलावती तथा बान्धवगण भी गोलोक गमन करेंगे। हे नन्दराज! यह आप आनन्द पूर्वक यशोदा से कहियेगा।।४२-४५।।

त्यज शोकं महाभाग व्रजैः सार्धं व्रजं व्रज।
अहमात्मा च साक्षी च निर्लिप्तः सर्वजीविषु॥४६॥
जीवो मत्प्रतिबिम्बश्च इत्येवं सर्वसम्मतम्।
प्रकृतिर्मद्विकारा च साऽप्यहं प्रकृतिः स्वयम्॥४७॥
यथा दुग्धे च धावल्यं न तयोर्भेद एव च।
यथा जले तथा शैत्यं यथा वह्नौ च दाहिका॥४८॥
यथाऽऽकाशे तथा शब्दो भूमौ गन्धो यथा नृप।
यथा शोभा च चन्द्रे च यथा दिनकरे प्रभा॥४९॥

यथा जीवस्तथाऽऽत्माहं तथैव राधया सह।
त्यज त्वं गोपिकाबुद्धिं राधायां मयि पुत्रताम्॥५०॥
अहं सर्वस्य प्रभवः सा च प्रकृतिरीश्वरी। श्रूयतां नन्द सानन्दं मद्विभूतिं सुखावहाम्॥५१॥

हे महाभाग! इस समय आप शोक त्याग कर ब्रजवासियों के ही साथ ब्रजधाम जायें। हे पिता! मैं समस्त जीवों की आत्मा हूं। मैं उनके आभ्यन्तर में निर्लिप्त होकर साक्षीरूप से स्थित रहता हूं। जीवात्मा मेरा ही प्रतिबिम्ब है। यह सर्वसम्मत है। प्रकृति मेरा विकार है अथवा मैं ही प्रकृति भी हूं। फलतः मुझमें तथा प्रकृति में उसी प्रकार कोई भेद नहीं है, जैसे दुग्ध तथा दुग्ध की धवलता में कोई भेद नहीं होता! हे राजन्! जैसे जल तथा शीतलता, अग्नि तथा दाहिका शक्ति, आकाश तथा शब्द, भूमि एवं गन्ध, शोभा तथा चन्द्र, सूर्य तथा सूर्यप्रभा, जीवात्मा तथा परमात्मा परस्परतः भिन्न नहीं हैं, तदनुरूप मैं तथा राधा अभेदरूप हैं। हम दोनों में कोई भेद ही नहीं है। हे पिता! आप राधा में गोपी बुद्धि का तथा मेरे प्रति पुत्रबुद्धि का त्याग करें। मैं इस समग्र सृष्टि का कारण आदिपुरुष हूं। राधिका ही सर्वेश्वरी है। हम दोनों सबके कारण हैं। हे नन्दराज! आप आनन्द पूर्वक मेरी सुखप्रद विभूतियों को सुनें॥४६-५१॥

पुरा या कथिता तात ब्रह्मणे व्यक्तजन्मने।
कृष्णोऽहं देवतानां च गोलोके द्विभुजः स्वयम्॥५२॥
चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे शिवलोके शिवः स्वयम्।
ब्रह्मलोके च ब्रह्माऽहं सूर्यस्तेजस्विनामहम्॥५३॥
पवित्राणामहं वह्निर्जलमेव द्रवेषु च। इन्द्रियाणां मनश्चास्मि समीरः शीघ्रगामिनाम्॥५४॥
यमोऽहं दण्डकतॄणां कालः कलयतामहम्।
अक्षराणामकारोऽस्मि साम्नां च साम एव च॥५५॥
इन्द्रश्चतुर्दशेन्द्रेषु कुबेरो धनिनामहम्। ईशानोऽहं दिगीशानां व्यापकानां नभस्तथा॥५६॥
सर्वान्तरात्मा जीवेषु ब्राह्मणश्चाऽऽश्रमेषु च।
धनानां च रत्नमहममूल्यं सर्वदुर्लभम्॥५७॥

हे तात! मैंने पूर्वकाल में अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा से जो कुछ वर्णन किया था, वह आप आनन्द पूर्वक मेरी यह सुखप्रद विभूति श्रवण करें। मैं ही गोलोक के देवगण में कृष्ण हूं जो द्विभुज हैं। मैं ही वैकुण्ठ में चतुर्भुज विष्णु, शिवलोक में साक्षात् स्वयं शिव, ब्रह्मलोक में ब्रह्मा, तेजस्वी लोगों में सूर्य, पवित्रों में अग्नि, द्रवों में जल, इन्द्रियों में मन, शीघ्रगामी में वायु, दण्डकर्त्ताओं में यम, संख्या निरूपकों में काल, अक्षरों में 'अ', वेदों में सामवेद, चतुर्दश-इन्द्रों में इन्द्र, धनिकों में कुबेर, दिक्पालों में ईशान, व्यापकों में आकाश हूं। मैं जीवगण में सर्वान्तरात्मा, चारों वर्णाश्रमों में ब्राह्मण, धन संभार में महामूल्य सर्वदुर्लभ रत्न हूं॥५२-५७॥

तैजसानां सुवर्णोऽहं मणीनां कौस्तुभः स्वयम्।
वैष्णवानां कुमारोऽहं योगीन्द्राणां गणेश्वरः॥५८॥
पुष्पाणां पारिजातोऽहं तीर्थानां पुष्करः स्वयम्।
शालग्रामस्तथाऽर्च्यानां पत्राणां तुलसीति च॥५९॥
सेनापतीनां स्कन्दोऽहं लक्ष्मणोऽहं धनुष्मताम्।
राजेन्द्राणां च रामोऽहं नक्षत्राणामहं शशी॥६०॥
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनामस्मि माधवः।
वारेष्वादित्यवारोऽहं तिथिष्वेकादशीति च॥६१॥
सहिष्णूनां च पृथिवी माताऽहं बान्धवेषु च।
अमृतं भक्ष्यवस्तूनां गव्येष्वाज्यमहं तथा॥६२॥

मैं तैजस में सुवर्ण, मणियों में स्वयं कौस्तुभ, वैष्णवों में सनत्कुमार, योगीन्द्रों में गणेश्वर, पुष्पों में पारिजात, तीर्थों में स्वयं पुष्कर, अर्चित होने वालों में शालग्राम, पत्तों में तुलसीदल, सेनापतियों में स्कन्दकुकार, धनुर्धारियों में लक्ष्मण, राजेन्द्रों में रामचन्द्र, नक्षत्रों में चन्द्रमा, मासों में मार्गशीर्षमास, ऋतुओं में मधुमास (वसन्त), वारों में रविवार, तिथियों में एकादशी, सहिष्णुओं में पृथिवी, बन्धुगण में माता, भक्ष्य पदार्थों में अमृत, गव्य पदार्थ में मैं घृत हूं (गव्य पदार्थ-गौ से उत्पन्न पदार्थ)।।५८-६२।।

कल्पवृक्षश्च वृक्षाणां सुरभिः कामधेनेषु। गङ्गाऽहं सरितां मध्ये कृतपापविनाशिनी॥६३॥

वाणीति पण्डितानां च मन्त्राणां प्रणवस्तथा।
विद्यासु बीजरूपोऽहं सस्यानां धान्यमेव च॥६४॥
अश्वत्थः फलिनामेव गुरूणां मन्त्रदः स्वयम्।
कश्यपश्च प्रजेशानां गरुडः पक्षिणां तथा॥६५॥

मैं वृक्षों में कल्पवृक्ष, गौओं में कामधेनु, नदियों में पापनाशिनी गंगा हूं। मैं ही पण्डितों में वाणी, मन्त्रों में प्रणव, विद्यासमूह गें बीज, फसलों में धान्य, वृक्षों में पीपल, गुरुगण में मन्त्र देने वाला, प्रजापतियों में कश्यप तथा पक्षियों में गरुड़ हूं।।६३-६५।।

अनन्तोऽहं च नागानां नराणां च नराधिपः। ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं देवर्षीणां च नारदः॥६६॥

राजर्षीणां च जनको महर्षीणां शुक्रस्तथा।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥६७॥

मैं ही नागों में अनन्तनाग, मनुष्यों में राजा, ब्रह्मर्षियों में भृगु तथा देवर्षियों में नारद हूं। मैं ही राजर्षियों में राजा जनक, मर्हिषयों में शुक्र, गन्धर्वों में चित्ररथ तथा सिद्धों में कपिल मुनि हूं।।६६-६७।।

बृहस्पतिर्बुद्धिमतां कवीनां शुक्र एव च।
ग्रहाणां च शनिरहं विश्वकर्मा च शिल्पिनाम्॥६८॥

मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वृषाणां शिववाहनम्।
ऐरावतो गजेन्द्राणां गायत्री छन्दसामहम्॥६९॥

वेदाश्च सर्वशास्त्राणां वरुणो यादसामहम्। उर्वश्यप्सरसामेव समुद्राणां जलार्णवः॥७०॥

सुमेरुः पर्वतानां च रत्नवत्सु हिमालयः। दुर्गा च प्रकृतीनां च देवीनां कमलालया॥७१॥

शतरूपा च नारीणां मत्प्रियाणां च राधिका।
साध्वीनामपि सावित्री वेदमाता च निश्चितम्॥७२॥

मैं ही बुद्धिमानों में बृहस्पति, कवियों में शुक्र, ग्रहों में शनि, शिल्पियों में विश्वकर्मा, मृगपशुओं में सिंह, वृषों में शिववाहन, गजेन्द्रों में ऐरावत, छन्दों में गायत्री, सभी शास्त्रों में वेद, जलचरों में वरुण, अप्सराओं में उर्वशी, समुद्रों में जलार्णव, पर्वतों में सुमेरु, रत्नसम्पन्न में हिमाचल, प्रकृति में दुर्गा, देवियों में लक्ष्मी, नारियों में देवी शतरूपा, मेरी प्रियाओं में राधा, साध्वियों में वेदमाता सावित्री भी निश्चितरूपेण मैं ही हूं।।६८-७२।।

प्रह्लादश्चापि दैत्यानां बलिष्ठानां बलिः स्वयम्।
नारायणर्षिर्भगवाञ्ज्ञानिनां मध्य एव च॥७३॥

हनूमान्वानराणां च पाण्डवानां धनञ्जयः। मनसा नागकन्यानां वसूनां द्रोण एव च॥७४॥

द्रोणो जलधराणां च वर्षाणां भारतं तथा।
कामिनां कामदेवोऽहं रम्भा च कामुकीषु च॥७५॥

गोलोकश्चास्मि लोकानामुत्तमः सर्वतः परः। मातृकासु शान्तिरहं रतिश्च सुन्दरीषु च॥७६॥

धर्मोऽहं साक्षिणां मध्ये सन्ध्या च वासरेषु च।
देवेष्वहं च माहेन्द्रो राक्षसेषु विभीषणः॥७७॥

कालाग्निरुद्रो रुद्राणां संहारो भैरवेषु च। शङ्खेषु पाञ्चजन्योऽहमङ्गेष्वपि च मस्तकः॥७८॥

परं पुराणसूत्रेषु चाहं भागवतं वरम्। भारतं चेतिहासेषु पञ्चरात्रेषु कापिलम्॥७९॥

मैं ही दैत्यों में प्रह्लाद, बलवानों में बलि, ज्ञानीगण में नारायण ऋषि, वानरों में हनुमान्, पाण्डवों में अर्जुन, नागकन्याओं में मनसा देवी, वसुओं में द्रोण, जलधाराओं में द्रोण नामक मेघ, वर्षों में भारतवर्ष, कामियों में कामदेव, कामुकी नारियों में रम्भा, लोकों में सर्वोत्तम सबसे परे गोलोक, मातृकागण में शान्ति, सुन्दरी स्त्रियों में रति, साक्षीगण में धर्म, वासरों में सन्ध्या, क्षणों में माहेन्द्रक्षण, राक्षसों में विभीषण, एकादश रुद्रों में कालाग्निरुद्र, भैरवों में संहार भैरव, शंखों में पाञ्चजन्य, अंगों में मस्तक, श्रेष्ठ पुराणों में सर्वोत्तम भागवत, इतिहासों में महाभारत तथा पाञ्चरात्रों में मैं ही कापिल हूं।।७३-७९।।

स्वयंभुवो मनूनां च मुनीनां व्यासदेवकः।
स्वधाऽहं पितृपत्नीषु स्वाहा वह्निप्रियासु च॥८०॥

यज्ञानां राजसूयोऽहं यज्ञपत्नीषु दक्षिणा। शस्त्रास्त्रज्ञेषु रामोऽहं जमदग्निसुतो महान्॥८१॥
पौराणिकेषु सूतोऽहं नीतिमत्स्वङ्गिरा मुनिः। विष्णुव्रतं व्रतानां च बलानां दैवमेव च॥८२॥
ओषधीनामहं दूर्वा तृणानां कुशमेव च। धर्मकर्मसु सत्यं च स्नेहपात्रेषु पुत्रकः॥८३॥

मैं ही मनुगण में स्वायम्भुव मनु, मुनियों में व्यासदेव, पितरों की पत्नियों में स्वधा, अग्नि की पत्नियों में मैं स्वाहा हूं। मैं ही यज्ञों में राजसूययज्ञ, यज्ञपत्नियों में दक्षिणा, शस्त्रास्त्र ज्ञाताओं में परशुराम हूं जो महान् तथा जमदग्निपुत्र थे। मैं ही पौराणिकों में सूत, नीतिज्ञों में अंगीरा मुनि, व्रत समूहों में विष्णुव्रत, बलों में दैवबल, औधियों में दूर्वा, तृणों में कुश, सभी धर्मकर्म में सत्य तथा स्नेह के पात्रों में पुत्र हूं॥८०-८३॥

अहं व्याधिश्च शत्रूणां ज्वरो व्याधिष्वहं तथा।
मद्भक्तिष्वपि मद्दास्यं वरेषु च वरः स्मृतः॥८४॥
आश्रमाणां गृहस्थोऽहं संन्यासी च विवेकिनाम्।
सुदर्शनं च शस्त्राणां कुशलं च शुभाशिषाम्॥८५॥
ऐश्वर्याणां महाज्ञानं वैराग्यं च सुखेष्वहम्।
मि (इ) ष्टवाक्यं प्रीतिदेषु दानेषु चाऽऽत्मदानकम्॥८६॥

सञ्चयेषु धर्मकर्म कर्मणां च मदर्चनम्। कठोरेषु तपश्चाहं फलेषु मोक्ष एव च॥८७॥

मैं ही शत्रुओं में महान् शत्रु व्याधि, रोगों में ज्वर, अपनी भक्तियों में दास्य, वरों में श्रेष्ठ वर रूप दास्यभाव हूं। चार आश्रमों में मैं ही गृहस्थाश्रम, विवेकियों में संन्यासी, शस्त्रों में सुदर्शन, शुभाशीर्वाद में कुशल-मंगल, ऐश्वर्य में महाज्ञान, सुखों में वैराग्य, प्रीतिपदों में मधुरवाक्य, दानों में आत्मदान, संचय में धर्मकर्म संचय, कर्मों में मेरी अर्चना तथा कठोर में मैं ही तपरूप हूं। फलों में मैं ही मोक्षरूप फल हूं॥८४-८७॥

अष्टसिद्धिषु प्राकाम्यमहं काशीपुरीषु च। नगरेषु तथा काञ्ची स देशो यत्र वैष्णवः॥८८॥
सर्वाधारेषु स्थूलेषु अहमेव महान्विराट्। परमाणुरहं विश्वे महासूक्ष्मेषु नित्यशः॥८९॥
वैद्यानामश्विनीपुत्रौ चौषधीषु रसायनम्।धन्वन्तरिर्मन्त्रविदां विषादः क्षयकारिणाम्॥९०॥
रागाणां मेघमल्लारः कामोदस्तत्प्रियासु च। मत्पार्षदेषु श्रीदामा मद्बन्धुष्वहमुद्धवः॥९१॥
पशुजन्तुषु गौश्चाहं चन्दनं काननेषु च। तीर्थपूतश्च पूतेषु निःशङ्केषु च वैष्णवः॥९२॥
न वैष्णवात्परः प्री मन्मन्त्रोपासकश्च यः। वृक्षेष्वङ्कुररूपोऽहमाकारः सर्ववस्तुषु॥९३॥
अहं च सर्वभूतेषु मयि सर्वे च संततम्। यथा वृक्षे फलान्येव फलेषु चाङ्कुरस्तरोः॥९४॥

आठों सिद्धि में मैं ही प्राकाम्य सिद्धि हूं। पुरियों में काशी तथा नगरों में मैं ही कांची हूं। इस कांची में लोग वैष्णव हैं। जितने भी स्थूल आधार हैं, उनमें मैं ही सर्वश्रेष्ठ महाविराट् हूं। इस विश्व में

नित्य महासूक्ष्मरूपी मैं ही परमाणु हूं। वैद्यों में ही मैं अश्विनीकुमार, औषधियों में रसायन, मन्त्रविदों में धन्वन्तरि, क्षय करने वालों में विषाद, सभी रागों में से मेघमल्हार, रागों की प्रियाओं में मैं ही कामोद हूं। मैं अपने पार्षदों में श्रेष्ठ श्रीदामा तथा बन्धुओं में उद्धव हूं। मैं पशुगण में गौ, वनों में चन्दन वन, पवित्र वस्तुओं में तीर्थ तथा शंका रहित निःशङ्कों में वैष्णव भी मैं ही हूं। मैं ही वृक्षों में अंकुर हूं। मैं ही सभी वस्तु का आकार (आकृति) हूं। मैं ही सभी में व्याप्त रहता हूं। मुझमें ही सब स्थित हैं।।८८-९४।।

सर्वकारणरूपोऽहं न च मत्कारणं परम्। सर्वेशोऽहं न मेऽपीशो ह्यहं कारणकारणम्॥९५॥

सर्वेषां सर्वबीजानां प्रवदन्ति मनीषिणः।
मन्मायामोहितजना मां न जानन्ति पापिनः॥९६॥

मैं सबका कारण हूं, तथापि मुझ कारण से श्रेष्ठ कोई कारण नहीं है। मैं ही सर्वेश तथा सबका कारण हूं। मैं कारण का भी कारण हूं। मैं समस्त बीजों का परमकारण हूं। यह मनीषीगण कहते हैं। जो मेरी माया से मोहग्रस्त पातकी हैं, वे मुझे नहीं जान सकते!।।९५-९६।।

पापग्रस्तेन दुर्बुद्ध्या विधिना वञ्चितेन च।
स्वात्माऽहं सर्वजन्तूनां स्वाम्यहं नादृतः स्वयम्॥९७॥
यत्राहं शक्तयस्तत्र क्षुत्पिपासादयस्तथा।
गते मयि तथा यान्ति नरदेहे (वे) यथाऽनुगाः॥९८॥

हे व्रजेश नन्द तात ज्ञानं ज्ञात्वा व्रजं व्रज। कथयस्व च तां राधां यशोदां ज्ञानमेव च॥९९॥

ये विधाता से वंचित पापग्रस्त प्राणी दुर्बुद्धि के कारण सभी प्राणीगण के अन्तरात्मा रूप मेरा अनादर करते हैं, इस प्रकार वे स्वयं अपनी आत्मा का ही अनादर करते हैं। हे तात! जहां मेरा अधिष्ठान है, वहीं मेरी क्षुधा-पिपासादि समस्त शक्तियां रहती हैं। जब मैं वहां से अन्यत्र चला जाता हूं (मनुष्य देह में जन्म लेता हूं), तब ये सभी शक्तियां अनुगत व्यक्ति की तरह मेरा अनुगमन करती चली आती हैं। हे व्रजेश्वर! हे पितानन्द! आप इस ज्ञानोपदेश को अब जान गये। अब आप ब्रजधाम चले जायें। वहां जाकर राधा एवं यशोदा को भी यह ज्ञान दीजिये।।९७-९९।।

ज्ञात्वा ज्ञानं व्रजेशश्च जगाम स्वानुगैः सह। गत्वा च कथयामास ते द्वे च योषितां वरे॥१००॥

ते च सर्वे जहुः शोकं महाज्ञानेन नारद।
कृष्णो यद्यपि निर्लिप्तो मायेशो मायया रतः॥१०१॥

यशोदया प्रेरितश्च पुनरागत्य माधवम्। तुष्टाव परमानन्दं नन्दश्च नन्दनन्दनम्॥१०२॥

सामवेदोक्तस्तोत्रेण कृतेन ब्रह्मणा पुरा। पुत्रस्य पुरतः स्थित्वा रुरोद च पुनः पुनः॥१०३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० नन्दादिशोकप्रमोचनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।।७३।।

—***—

ब्रजराजनन्द ने श्रीकृष्ण से यह ज्ञान लाभ करने के अनन्तर अपने अनुचरों के साथ ब्रजधाम प्रयाण किया तथा वहां जाकर उन्होंने नारीप्रधाना राधा तथा यशोदा को यही ज्ञान प्रदान किया। हे नारद! तब वे सभी इस ज्ञान बल से यह जान गये कि श्रीकृष्ण निर्लिप्त, मायायुक्त, परमब्रह्म हैं। इस विवेचना से वे सभी शोक रहित हो गये। तदनन्तर नन्द यशोदा द्वारा भेजे जाकर पुनः परमानन्दमय नन्दनन्दन माधव के पास आये। पूर्व में ब्रह्मा ने जो स्तव उनको दिया था, उस सामवेदोक्त स्तोत्र से उन्होंने कृष्ण का स्तव किया और उनके सामने बैठकर बारम्बार रोने लगे!।।१००-१०३।।

।।७३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्ण तथा नन्द का संवाद, भगवान् द्वारा कर्मबन्धन काटने का उपदेश

नारायण उवाच

श्रीकृष्णः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः। परमात्मा च परमो भक्तानुग्रहकारकः।।१।।
भुवो भारावतरणो निर्गुणः प्रकृतेः परः। परात्परस्तु भगवान्ब्रह्मेशशेषवन्दितः।।२।।
तुष्टो नन्दस्तवं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः। आगच्छन्तं गोकुलाच्च विरहज्वरकातरम्।।३।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नन्द! जो परमात्मा परमपुरुष, भक्तों के प्रति अनुग्रह वितरणार्थ तत्पर रहने वाले हैं, जो भूभारहरणार्थ अवतीर्ण हो गये थे, जो निर्गुण प्रकृति से भी परे, परात्पर, ब्रह्मा-महेश्वर-अनन्तादि प्रधान देवताओं से सदा वन्दनीय हैं, वे परमानन्दमय परिपूर्णतम जगत्पति परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण गोकुल से आये विरहज्वर से कातर नन्द का स्तव सुनकर प्रसन्न होकर उनसे कहने लगे।।१-३।।

श्रीभगवानुवाच

गच्छ नन्दव्रजं नन्द त्यज शोकं भ्रमं भुवि। शृणु सत्यं परं ज्ञानं शोकग्रन्थिनिकृन्तनम्।।४।।
वायुश्च भूमिराकाशो जलं तेजश्च पञ्चमम्। उक्तः श्रुतिगणैरेतैः पञ्चभूतैश्च नित्यशः।।५।।

सर्वेषां देहिनां तात देहश्च पाञ्चभौतिकः।
मिथ्याभ्रमःकृत्रिमश्च स्वप्नवन्माययाऽन्वितः।।६।।

देहं गृह्णन्ति सर्वेषां पञ्चभूतानि नित्यशः। मायासंकेतरूपं तदभिज्ञानं भ्रमात्मकम्॥७॥
को वा कस्य सुतस्तात का स्त्री कस्य पतिस्तु वा।
कर्मणा भ्रमणं शश्वत्सर्वेषां भूरिजन्मनि॥८॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे नन्द! आप इस समय मुझसे शोकग्रन्थिविनाशक परमसत्यमय ज्ञान सुनकर भ्रम–शोकादि का त्याग करके ब्रजधाम जायें। हे ब्रजेश्वर! वायु, क्षिति, आकाश, जल, तेज को वेद में पंचभूत कहा गया है। हे तात! समस्त जीवगण का शरीर इस पञ्चभूत से ही उत्पन्न होने के कारण पाञ्चभौतिक कहा जाता है। जीवगण मेरी ही माया के द्वारा मिथ्यारूप से भ्रमित होकर मेरा–पराया, यह ज्ञान ही सत्य समझने लगते हैं। इस पञ्चभूत ने ही सतत् सभी देहधारीगण में मायासंकेतरूप भ्रमात्मक देहसंज्ञा धारण किया है। (अर्थात् वे अपने को देहरूप "मैं देह हूं यह मानने लगते हैं)। हे पिता! कौन किसका पुत्र है, कौन किसका पिता है, कौन किसकी पत्नी है? कौन किसका पति है? सभी अपने कर्मबल से बारम्बार जन्म लेकर निरन्तर जन्म–मरण चक्र में घूमते रहते हैं।।४–८।।

कर्मणा जायन्ते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते। सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणा च प्रपद्यते॥९॥
केषां वा जन्म स्वर्गेषु केषां वा ब्रह्मणो गृहे।
केषां विप्रेषु क्षत्रेषु केषां वा वैश्यशूद्रयोः॥१०॥

प्राणी कर्मानुसार ही जन्म लेते तथा कर्मानुसार ही विलीन हो जाते हैं (मृत हो जाते हैं)। कर्म के प्रभाव से ही उनको स्वर्ग, ब्रह्मलोक, सुख, दुःख, शोक, भयादि प्राप्त होता है। कर्मानुरूप ही कोई ब्राह्मणगृह में, कोई क्षत्रिय योनि में, कोई वैश्य जाति में, तो कोई शूद्रजाति में जन्म लेता है।।९–१०।।

अतिनीचेषु केषां वा केषां कृमिषु विट्सु च।
पशुपक्षिषु केषां वा केषां वा क्षुद्रजन्तुषु॥११॥
पुनः पुनर्भ्रमन्त्येव सर्वे तात स्वकर्मणा। करोति कर्म निर्मूलं मद्भक्तो मत्प्रियः सदा॥१२॥
सत्यं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम्। पञ्चविंशत्सहस्राणां युगान्ते निधनं मनोः॥१३॥
मनोः समं महेन्द्रस्य परमायुर्विनिर्मितम्। चतुर्दशेन्द्रविच्छित्तौ ब्रह्मणो दिनमुच्यते॥१४॥
एव परिमिता रात्रिः कालविद्भिर्विनिर्मिता।
एवं परिमिता मासा वर्षं च परिनिश्चितम्॥१५॥
ब्रह्मणश्च वर्षशतं परमायुर्विनिर्मितम्। निमेषमात्रं कालोऽयं ब्रह्मणो निधने मम॥१६॥

कर्मानुरूप ही कोई अति निम्न जाति में अथवा कृमि–कीटादि योनि में, कोई पशु–पक्षी अथवा अत्यन्त क्षुद्र जन्तु की योनि में जन्म लेता है। हे तात! प्राणिगण इस प्रकार से अपने कर्म के कारण नाना योनि में जन्म लेते रहते हैं। मेरा प्रिय भक्त इस कर्मजाल को पूर्णतया निर्मूल कर देता है। हे ब्रजेश्वर! सत्य–त्रेता–द्वापर तथा कलि ये ४ युग वेद में निरूपित किये गये हैं। इस प्रकार से २५००० युगों का अवसान हो जाने पर एक मनु का काल समाप्त हो जाता है। यही इन्द्र की भी आयु है। १४ इन्द्र का

जो जीवन है, वह ब्रह्मा का १ दिन है। उनकी रात्रि भी इतनी ही है। (अर्थात् ब्रह्मा का एक दिन-एक रात्रि=२८ इन्द्रों का जीवन काल)। यह कालज्ञ विद्वानों का मत है। इसी परिमाण के अनुसार ब्रह्मा के एक मास तथा वर्ष का आकलन करना चाहिये। इस प्रकार के वर्ष परिमाण से ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष मानी गयी है। लेकिन मेरे एक निमेष काल का परिमाण ब्रह्मा की १०० वर्ष की आयु है। अर्थात् मेरे एक क्षण में एक ब्रह्मा की पूरी आयु व्यतीत हो जाती है।।११-१६।।

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं विश्वे विनिर्मितम्। सत्योऽहं परमात्मा च भक्तानुग्रहविग्रहः।।१७।।

मन्मन्त्रोपासकः सत्यो देहं त्यक्त्वा धरासु च।
यास्यत्येव हि गोलोकं छित्वा कर्म पुरातनम्।।१८।।

असंख्यब्रह्मणां पाते न भवेत्तस्य पातनम्। गृह्णाति नित्यं स्वं देहं जन्ममृत्युजरापहम्।।१९।।

न नन्द मम भक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्। नित्यं सुदर्शनं तं च परिरक्षति सर्वतः।।२०।।

ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त पदार्थ नश्वर है। मिथ्या है। मात्र भक्त पर अनुग्रह हेतु मैं परमात्मा विग्रह (देह) धारण करता हूं। मेरे मन्त्रों से मुझ परमात्मा की उपासना जो भक्त करता है, वह इस भूलोक में देह त्यागने के उपरान्त अपने पुरातन कर्मों का उच्छेद करके गोलोक गमन करता है। भले ही असंख्य ब्रह्मा का काल क्यों न व्यतीत हो जाये, मेरा भक्त गोलोक से कदापि पतन में नहीं जाता। वहां पर उसे नित्य तथा जन्मृत्यु-जरा रहित दिव्यदेह की प्राप्ति हो जाती है। हे नन्दराज! मेरे भक्तों का कभी भी अशुभ नहीं होता। मेरा चक्रराज सुदर्शन उनकी रक्षा में नित्य सन्नद्ध रहता है! सर्वत्र भक्तों की रक्षा वह चक्र करता है।।१७-२०।।

मत्तो हि बलवान्भक्तश्चिन्तितोऽहं न चिन्तितः।
अहं स्वामी च तस्यैव न मे स्वामी पिता प्रसूः।।२१।।
पुत्रबुद्धिं परित्यज्य भज मां ब्रह्मरूपिणम्।
छित्त्वा च ब्रह्मनिगडं गोलोकं तद्व्रज स्वयम्।।२२।।

मेरा भक्त तो मुझसे भी बली होता है। भले ही वह कितना बली क्यों न हो, तथापि उसका स्वामी होने के कारण मैं उसकी चिन्ता सदा करता हूं। कोई भी न तो मेरा स्वामी है न पिता है। न माता ही है। इसलिये आप मुझमें पुत्र बुद्धि न करके मुझे ब्रह्मरूप जानें। जिससे आप कर्मपाश त्याग करके गोलोक स्वयं जा सकें।।२१-२२।।

कथयस्व यशोदां च गोपीं गोपगणं व्रज।
तैश्च सर्वैर्जनैः शोकं त्यज स्वमन्दिरं व्रज।।२३।।

हे व्रजराज! आप यह ज्ञान यशोदा, गोपियों एवं गोपों से भी कह दीजिये। अब आप सब लोग अपना शोक त्याग कर स्वगृह जायें।।२३।।

इत्येवमुक्त्वा भगवान्विरराम च संसदि। पप्रच्छ पुनरेवं तं नन्दश्चाऽऽनन्दसंप्लुतः।।२४।।

यह उपदेश देकर भगवान् उस संसद में मौन हो गये। तदनन्तर आनन्दातिरेक में भरकर नन्दराज पुनः भगवान् से पूछने लगे।।२४।।

नन्द उवाच

वद सांसारिकं ज्ञानं येन यास्यामि त्वत्पदम्।
मूढोऽहं परमानन्द श्रुतीनां जनको भवान्।।२५।।

नन्द कहते हैं–हे कृष्ण! तुम तो परमानन्दप्रद तथा वेदों के भी रचयिता हो। मैं तो अत्यन्त मूढ़ हूं। अतः मैं जिस उपाय से तुम्हारा परमपद प्राप्त कर सकूं, तदनुरूप सांसारिक ज्ञान मुझे प्रदान करो।।२५।।

नन्दस्य वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञो भगवान्स्वयम्।
आह्निकं कथयामास श्रुतिभिर्न श्रुतं हि यत्।।२६।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसंवादे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः।।७४।।

नन्द का कथन सुनकर सर्वज्ञ भगवान् ने स्वयं नन्द को वेद में भी जो नहीं सुना गया ऐसा आह्निक कर्म उनसे कहा–।।२६।।

।।७४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा नन्द को जागतिक ज्ञानोपदेश

श्रीभगवानुवाच

श्रृणु नन्द प्रवक्ष्यामि ज्ञानं च परमाद्भुतम्। सुगोपनीयं वेदेषु पुराणेषु च दुर्लभम्।।१।।
न विश्वासो हि नारीषु संततं कुलटासु च। मोक्षमार्गार्गलास्वेव भ्रममायास्वमूषु[1] च।।२।।
हरिभक्तेरसाध्वीनां विरुद्धासु युतासु च। बीजरूपासु नाशानां प्रमदासु व्रजेश्वर।।३।।

श्रीभगवान् कहते हैं–हे नन्दराज! वेदानुरूप दुर्लभ अतिगुप्त परम अद्भुत ज्ञान का वर्णन करता हूं। श्रवण करिये। हे ब्रजेश्वर! मुक्तिपथ के लिये अर्गला स्वरूप भ्रममायापूर्ण कुलटा रमणी का कदापि

१. ख. ०यासु भूमिषु।

विश्वास न करे। वे हरिभक्ति रस के विरुद्ध आचरण करने वाली तथा हरिभक्ति विनाश की बीज (कारण) रूपा हैं। वे असाध्वी स्त्रियां सदा भक्ति एवं भक्त के विरुद्ध आचरण करती हैं।।१-३।।

नित्यं च प्रातरुत्थाय रात्रिवासो विहाय च। अभीष्टदेवं हृत्पद्मे ब्रह्मरन्ध्रे गुरुं परम्।।४।।
विचिन्त्य मनसा प्रातःकृत्यं सुनिश्चितम्। स्नानं करोति सुप्राज्ञो निर्मलेषु जलेषु च।।५।।

न सङ्कल्पं च कुरुते भक्तः कर्मनिकृन्तनः।
स्नात्वा हरिं स्मरेत्सन्ध्यां कृत्वा याति गृहं प्रति।।६।।

हे नन्दराज! व्यक्ति प्रातः उठकर रात्रि के पहने कपड़े बदल कर हृदयपद्म में अपने इष्टदेव का ध्यान करने के अनन्तर ब्रह्मरन्ध्र में परमगुरु का चिन्तन करे। इस चिन्तन को एकाग्रता पूर्वक सम्पन्न करके तब वह अपना प्रातःकृत्य प्रभृति कर्म सम्पन्न करे। वह धीमान् व्यक्ति स्वच्छ जल में स्नान करते समय कोई भी संकल्प न करें; क्योंकि भक्त कर्मबन्धन से मुक्ति चाहता है। भक्त कर्मनाश चाहते हैं। स्नानोपरान्त व्यक्ति हरि स्मरण करे तदनन्तर सन्ध्यावन्दनादि से निवृत्त होकर घर आ जाये।।४-६।।

प्रक्षाल्य पादौ प्रविशेन्निधाय धौतवाससी। पूजयेत्परमात्मानं मामेव मुक्तिकारणम्।।७।।
शालग्रामे मणौ यन्त्रे प्रतिमायां जलेऽपि च। तथा च विप्रे गवि च गुरुष्वेवं विशेषतः।।८।।
घटेऽष्टदलपद्मे च पात्रे चन्दननिर्मिते। आवाहनं च सर्वत्र शालग्रामे जलेन च।।९।।

वह अपने दोनों पैर प्रक्षालित करके तभी गृह में प्रविष्ट हो। वह वस्त्रद्वय धारण करके मुझ परमात्मा की पूजा करे जो मुक्तिकारण है। शालग्राम, मणि, यन्त्र, प्रतिमा, जल, ब्राह्मण, गौ, विशेषतः, गुरु में, कलश, अष्टदलयुक्त कमल, चन्दनपात्र में मेरी पूजा करे। व्रती मनुष्य शालग्राम तथा जल के अतिरिक्त सभी में मेरा आवाहन करे (जल तथा शालग्राम में आवाहन की आवश्यकता नहीं है)।।७-९।।

मन्त्रानुरूपध्यानेन ध्यात्वा मां पूजयेद्व्रती।
षोडशोपचारद्रव्याणि दद्यान्मूलेन भक्तितः।।१०।।

श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च। वीरभानुं शूरभानुं गोपान्पञ्च प्रपूजयेत्।।११।।
सुनन्दनन्दकुमुदं पार्षदं मे सुदर्शनम्। लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां राधां गङ्गां वसुन्धराम्।।१२।।

गुरुं च तुलसीं शंभुं कार्तिकेयं विनायकम्।
नवग्रहांश्च दिक्पालान्परितः पूजयेत्सुधीः।।१३।।
देवषट्कं च सम्पूज्य सर्वादौ विघ्नविघ्नतः।
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।।१४।।
श्रुतौ विनिर्मितान्देवांन्मोक्षदान्कर्मकृन्तनान्।
गणेशं विघ्ननाशाय सूर्यं व्याधिविनाशिने।।१५।।

वह मन्त्र के ही अनुरूप ध्यान करके भक्ति पूर्वक मूल मन्त्र से १६ उपचार प्रदान करके अर्चना करे। इसके पश्चात् वह साधक श्रीदाम, सुदाम, वसुदाम, वीरभानु, शूरभानु नामक तीन गोप की, सुनन्द, नन्द, कुमुद नामक पार्षदों की, सुदर्शन की, लक्ष्मी-दुर्गा-राधा-गंगा-वसुन्धरा की, गुरु-तुलसी-शंभु-कार्त्तिकेय एवं विनायक की पूजा करे। सुधी साधक नवग्रह, दिक्पाल की पूजा करे। छह देवगण यथा-गणेश, दिनेश्वर, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा की पूजा करे, तथापि सबसे पहले विघ्नविनाशन की पूजा करनी चाहिये। श्रुति में इन देवगण को कर्मपाश छेदक तथा मोक्षप्रद कहा गया है। गणेश विघ्ननाश करते हैं। सूर्य व्याधिनाशक हैं।।१०-१५।।

वह्निं प्राप्तिनिमित्तेन शान्तौ शुद्धौ भवेद्ध्रुवम्।
विष्णुं मोक्षनिमित्तेन ज्ञानदानाय शङ्करम्।।१६।।
बुद्धिमुक्तिनिमित्तेन पार्वतीं पूजयेत्सुधीः।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा स्वस्तोत्रं कवचं पठेत्।।१७।।
गुरुं प्रणम्य सम्पूज्य तत्पश्चात्प्रणमेत्सुरम्।
कृत्वाऽऽह्निकं च सम्पूज्य यथासुखमुदीरितम्।।१८।।
समाचरेत्स्वकर्मैतद्वेदोक्तं स्वात्मशुद्धये।
विष्ठां न पश्येत्प्राज्ञश्च व्याधिबीजस्वरूपिणीम्।।१९।।
मूत्रं च व्याधिबीजं च परं नरककारणम्।
लिङ्गं योनिं पापदुःखव्याधिदारिद्र्यदायिनीम्।।२०।।

कुछ प्राप्ति हेतु अग्नि की, शान्ति शुद्धि के लिये भी अग्नि की पूजा करे। मोक्षार्थ विष्णु की, ज्ञानलाभार्थ शिव की, बुद्धि-मुक्ति पाने के लिये बुद्धिमान व्यक्ति को पार्वती की पूजा करनी चाहिये। मुझे तीन पुष्पाञ्जलि देकर तब मेरा स्तोत्र-कवच पाठ करे। इसके अनन्तर पूजक व्यक्ति गुरुपूजा करे तथा उनको प्रणाम निवेदित करे। तत्पश्चात् देवगण को प्रणाम करना होगा। यह आह्निक (दैनिक अर्चना) करने के पश्चात् वेदविहित आत्मकर्त्तव्य का पालन करे। इससे आत्मशुद्धि होती है। प्राज्ञव्यक्ति कदापि विष्ठा की ओर न देखे। यह व्याधि बीजप्रद है। इसी प्रकार मूत्रदर्शन भी रोग का कारण एवं नरक का कारण रूप है। जो लिङ्ग तथा योनि देखता है, उसे पातक, दुःख, व्याधि एवं दरिद्रता भोगना ही होगा।।१६-२०।।

उरुं मुखं स्तनं स्त्रीणां कटाक्षं हास्यमेव च।
विनाशबीजं रूपं च विपदां कारणं सदा।।२१।।

जो परनारी की जंघा, वक्ष, मुख, स्तनद्वय, कटाक्ष तथा हास्य देखता है, उसका नाश होगा। पर नारी का रूप देखना विनाश तथा विपदा का कारण है।।२१।।

दिवाभोगं च स्वस्त्रीणां स्वालापं परिवर्जयेत्।
रोगाणां कारणं चैव चक्षुषोः कर्णयोस्तथा॥२२॥
एकतारं च गगनं न पश्येत्तु रुजां भयात्।
दैवाद्दृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा सप्तधा नारदं जपेत्॥२३॥
अस्तकाले रविं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम्।
खण्डं समुदितं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम्॥२४॥

रमणी का रूप भी विनाश का बीज एवं विपदा का कारण बताया गया है। अब उसे देखना तथा दिन में अपनी भार्या के साथ भी आलाप तथा संभोग को त्याग दे। इसी प्रकार से जब आकाश में मात्र एक तारा ही हो, तब उसका दर्शन करने से चक्षु तथा कान में पीड़ा होगी। इसके दर्शन से विमुख रहे। यदि दैवात् दिखलाई दे जाये, तब हरि का स्मरण करके ७ बार "नारद" का जप करे। अस्त होते सूर्य तथा चन्द्र को देखना व्याधि का कारण होता है। (मध्याह्न में घनाच्छन्न सूर्य न देखे) उदय में खण्ड चन्द्र न देखे। वह रोग का कारण है।।२२-२४।।

जलस्थं च रविं चन्द्रं दृष्ट्वा शोकं लभेन्नरः। बन्धुविच्छेदहेतुं च पश्येत्परमैथुनम्॥२५॥
एकत्र शयनं स्थानं भोजनं च गतिं तथा।
न कुर्यात्पापिना सार्धं सर्वं नाशस्य लक्षणम्॥२६॥
आलापाद्गात्रसंस्पर्शाच्छयनाश्रयभोजनात्। सञ्चरन्ति ध्रुवं पापास्तैलविन्दुरिवाम्भसा॥२७॥
हिंस्रजन्तुसमीपं च न गच्छेद्दुःखकारणम्।
खलेन सार्धं मिलनं न कुर्याच्छोककारणम्॥२८॥

जल में चन्द्र-सूर्य का प्रतिबिम्ब देखने से शोक होता है। पराया सम्भोग देखने से बन्धु वियोग होगा। अतः इस ओर कदापि दृष्टिपात न करे। पापियों के साथ एक ही जगह पर शयन, भोजन तथा यात्रा कदापि न करें। यह सर्वनाश का ही कारण होगा। ऐसे व्यक्ति से वार्त्तालाप, स्पर्श, शयन, भोजन से उस पातकी के पातक आ जाते हैं। जैसे जल में पड़ा तेल बिन्दु सम्पूर्ण जल पर फैला जाता है, इसे भी तद्वत् जानें। हिंस्र जन्तु के पास जाना दुःख का कारण है तथा खल के साथ मेल-जोल भी शोक का कारण है। अतः ऐसा कदापि न करे।।२५-२८।।

ब्राह्मणानां गवां चैव वैष्णवानां विशेषतः।
न कुर्याद्धिंसनं हानिं सर्वनाशस्य कारणम्॥२९॥
देवदेवलविप्राणां वैष्णवानां तथैव च। वित्तं धनं च न हरेत्सर्वनाशस्य कारणम्॥३०॥

जो ब्राह्मण, गौ, वैष्णव की हिंसा करता है किंवा हानि करता है, उसका सर्वनाश होगा। देवता, देवल ब्राह्मण तथा वैष्णवों की वृत्ति का किंवा धन का हरण करने से, इनके प्रति हिंसा भाव रखने से सर्वनाश होगा। ऐसा कार्य न करे।।२९-३०।।

स्वदत्तं परदत्तं वा ब्रह्मवित्तं हरेत्तु यः। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥३१॥

गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः।
श्वापदः शतजन्मानि गण्डकः सप्तजन्मनि॥३२॥
घोटकः सप्तजन्मानि कुम्भीरः पञ्चजन्मसु।
पुंश्चलीनां योनिकीटं शतजन्मसु निश्चितम्॥३३॥

व्रणकीटं च तेषां च शतजन्मसु नारद। गोधिका सप्तजन्मानि गर्दभः सप्तजन्मसु॥३४॥

सप्तजन्मानि मार्जारो नकुलस्त्रिषु जन्मसु।
उच्चैःश्रवा जन्मशतं खरश्चापि तथैव च॥३५॥

क्रूरसर्पश्च शार्दूलो महिषः सप्तजन्मसु। भेकश्च शतजन्मानि च्छागलः सप्तजन्मसु[1]॥३६॥

जो व्यक्ति स्वयं दिया अथवा अन्य का दिया ब्रह्मस्व (ब्राह्मण की जीविका) हरण करता है, उसे नरक में ६०००० वर्ष तक कृमिरूप से रहने की यातना मिलती है। तदनन्तर वह एक करोड़ वर्ष गृध्र, सौ जन्म शूकर, सौ जन्म मांसभोजी, सौ जन्म गैंड़ा, सौ जन्म अश्व, सात जन्म मगर तथा सौ जन्म तक कुलटा स्त्रियों के योनि का कीड़ा बनता है। यह निःसंशय है। हे नारद! वह सौ जन्मों तक व्रण का कीड़ा, सातजन्म तक गोह, सात जन्म गधा, सात जन्म तक बिडाल, तीन जन्म तक नेवला, १०० जन्म तक उच्चस्वर से बोलने वाला गर्दभ होता है। वह ७ जन्म तक क्रूरसर्प, व्याघ्र तथा महिष होकर १०० जन्म तक मेढक एवं सात जन्म तक बकरा होगा।।३१-३६।।

भल्लूकः शतजन्मानि शृगालो लक्षजन्मसु।
ततो जलौका भवति ब्रह्मस्वहरणाद्ध्रुवम्॥३७॥
कुम्भीपाके च पच्यन्ते पापिनो ब्रह्मणः शतम्।
दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य तत्कालं चेन्न दीयते॥३८॥

एकरात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत्। मासे शतगुणं प्रोक्तं द्विमासे तु सहस्रकम्॥३९॥
संवत्सरे व्यतीते तु स दाता नरकं व्रजेत्। दात्रा न दीयते मूर्खो ग्रहीता च न याचते॥४०॥

उभौ तौ नरकं यातो दाता व्याधियुतो भवेत्।
विप्राणां हिंसनं कृत्वा वंशहानिं लभेद्ध्रुवम्॥४१॥

वह सौ जन्मों तक भालू, एक लाख जन्मों तक शृगाल होकर ब्राह्मण का धन हरण करने के कारण जोंक होगा। यह निश्चित जाने। पापीगण सौ ब्रह्मा के जीवनकाल तक कुंभीपाक नरक में पीड़ा पाते हैं। जो व्यक्ति ब्राह्मण को संकल्पित करके तत्काल दक्षिणा नहीं देता, उसे एक रात व्यतीत होकर जब दिया जायेगा, तब दूनी दक्षिणा देनी होगी। यदि एक मास उपरान्त वह प्रदान की जाये, तब सौ

---

१. क. शत०।

गुणित दक्षिणा देना होगा। दो मास देर होने पर १००० गुणित देना होगा। यदि एक वर्ष तक प्रदान नहीं किया गया, तब दक्षिणा देने का वादा करने वाला वातरोगी होकर अन्त में नरकगामी होगा। यदि दाता न दे तथा जिसे मिलना है, वह याचना न करे, तब ये दाता एवं याचक नरकगामी होंगे। दाता रोगी होगा। जो ब्राह्मण के प्रति किसी भी प्रकार की हिंसा करेगा उसकी वंशहानि निश्चित होगी।।३७-४१।।

धनं लक्ष्मीं परित्यज्य भिक्षुकश्च भवेद्व्रजन्।
देवं च ब्राह्मणं दृष्ट्वा च नमेद्यो लभेच्छुचम्॥४२॥
न कुर्याद्गुरुभक्तिं यो लभते रौरवं शुचम्।
या स्त्री मूढा दुराचारा स्वपतिं हरिरूपिणम्॥४३॥
न पश्येत्तर्जनं कृत्वा कुम्भीपाके व्रजेद्ध्रुवम्।
वाक्तर्जनाद्भवेत्काको हिंसनात्सूकरो भवेत्॥४४॥
सर्पो भवति कोपेन दर्पेण गर्दभो भवेत्।
कुक्कुरी च कुवाक्येनाप्यन्धश्च विषदर्शनात्॥४५॥

ऐसा मानव धन एवं लक्ष्मी हीन होकर भिक्षुक होगा। देवता-ब्राह्मण को देखकर जो उनको प्रणाम नहीं करता वह शोकभागी होगा। गुरुभक्ति न करने वाला रौरव नरकगामी होगा। जो मूढ़ा दुराचारिणी नारी अपने विष्णुस्वरूप पति को देखकर आदर नहीं करती, अपितु उसे फटकारती है, वह निश्चित रूप से कुंभीपाक गमन करेगी। जो केवल वाणी से पति का अपमान करती है, वह काक होगी। हिंसा (प्रहारादि) करने वाली शूकर, क्रोध करने वाली सर्प, पति से अभिमान करने वाली गर्दभ, कुवाक्य बोलने वाली कुतिया तथा पति को विष देने वाली अंधी होगी।।४२-४५।।

पतिव्रता च वैकुण्ठं पत्या सह व्रजेद्ध्रुवम्।
शिवं दुर्गां गणपतिं सूर्यं विप्रं च वैष्णवम्॥४६॥
विष्णुं निन्दति यो मूढः स महारौरवं व्रजेत्। पितरं मातरं पुत्रं सतीं भार्यां गुरुं तथा॥४७॥
अनाथां भगिनीं कन्यां विनिन्द्य नरकं व्रजेत्।
विप्रभक्तिविहीनाश्च क्षत्रविट्शूद्रयोनिजाः॥४८॥
हरिभक्तिविहीनाश्च पच्यन्ते नरके ध्रुवम्। पतिभक्तिविहीनाश्च युवत्यश्च नराधमाः॥४९॥

पतिव्रता नारी पति के साथ निश्चित वैकुण्ठ रहती है। जो मूर्ख व्यक्ति शिव, दुर्गा, गणेश, सूर्य, विप्र, विष्णु का निन्दक है, वह महारौरव नरकगामी हो जाता है। पिता-माता-पुत्र-सती पत्नी-गुरु-अनाथ बहन एवं कन्या का निन्दक है, वह नरकगामी होता है। जो नराधम विप्र की भक्ति से रहित हैं, वे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र निश्चित रूप से नरक में पकाये जाते हैं। पतिभक्ति विहीन युवतियां नराधमा कही गयी हैं।।४६-४९।।

शालग्रामजलं विष्णुप्रसादं ये च भुञ्जते। तीर्थं पुनन्ति ते विप्राः शतं पुंसां वसुंधराम्॥५०॥

पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य खादन्मांसं द्विजः शुचिः।
यो भक्षति वृथा मांसं[1] स महारौरवं व्रजेत्॥५१॥
मत्स्यांश्च कामतो दग्ध्वा चोपवासं वसेद्द्विजः।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्याद्व्रतं चान्द्रायणं चरेत्॥५२॥
कामतो ब्राह्मणो मत्स्यं भुङ्क्ते यो ज्ञानदुर्बलः।
सोऽशुचिः सततं नन्द हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥५३॥
विष्णोरुच्छिष्टभोजी यो मत्स्यं मांसं न खादति।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्॥५४॥
एकादशीं ये कुर्वन्ति कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्।
शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः॥५५॥

जो विप्र शालग्राम शिला का पादोदक तथा विष्णु प्रसाद भक्षण करते हैं, वे तीर्थों को तथा वसुन्धरा को और अपनी १०० पीढ़ी को पावन कर देते हैं। ब्राह्मण, पितृगण तथा देवताओं को अर्पित मांस भोजन के उपरान्त भी पवित्र रहता है। वृथा मांस खाने वाला महारौरव नरक जाता है। यदि द्विजगण जान-बूझकर मत्स्य भोजन करता है, तब उसे त्रिरात्र उपवासी रहकर चान्द्रायण व्रत का प्रायश्चित्त करना होगा। हे नन्दराज! जो ज्ञानदुर्बल ब्राह्मण जान-बूझकर मत्स्य का आहार करता है, वह निरन्तर अपवित्र बना रहेगा। उसके पूर्वकृत पुण्यों का नाश हो जाता है। जो व्यक्ति मत्स्य तथा मांस त्यागी है यदि वह विष्णु का उच्छिष्ट (प्रसाद) नित्य खाता है, तब उसे पग-पग पर अश्वमेध यज्ञफल मिलेगा। एकादशी तथा कृष्ण-जन्माष्टमी व्रत पालक का १०० जन्मों का पातक नष्ट हो जाता है। इसमें संशय न करे।।५०-५५।।

यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्धके यच्च यौवने।
भस्मीभूतानि कुर्वन्ति पातकानि कृतानि च॥५६॥
एकादशीदिने भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीव्रते। त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः॥५७॥
आतुरे नियमो न स्यादपि वृद्धे च बालके।
भक्तस्य द्विगुणं दत्त्वा ब्राह्मणाय शुचिर्भवेत्॥५८॥

उस व्यक्ति ने बाल्यावस्था, कुमारावस्था, यौवनावस्था तथा वार्द्धक्यावस्था में जो कुछ पातक किया था, वे इन व्रतों के प्रभाव से भस्मीभूत हो जाते हैं। जो एकादशी तथा कृष्ण जन्माष्टमी के दिन भोजन करता है, उसे त्रैलोक्य में पातक भोगना पड़ता है, यह निःसंदिग्ध है, तथापि आतुर, वृद्ध, बालक के लिये यह नियम नहीं है। ये लोग अपने भोजन से द्विगुणित ब्राह्मण को अन्नदान द्वारा पवित्र हो जाते हैं।।५६-५८।।

---
१. क. स्वाद०।

यो भुङ्क्ते शिवरात्रौ च श्रीरामनवमीदिने। उपवासे समर्थश्च स महारौरवं व्रजेत्॥५९॥
कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च। नरश्चाण्डालयोनिः स्यात्स्त्रीतैलमांससेवनात्॥६०॥

मत्स्यं मांसं मसूरं च कांस्यपात्रे च भोजनम्।
आर्द्रकं रक्तशाकं च रवौ च परिवर्जयेत्॥६१॥

अन्यथा नरकं याति कुम्भीपाकं न संशयः। रजस्वलान्नं वेश्यान्नं मदिरान्नं व्रजेश्वर॥६२॥

यो भुङ्क्ते ब्राह्मणो दैवाद्विड्भोजी स भवेद्ध्रुवम्।
यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥६३॥

जो मनुष्य श्रीरामनवमी तथा शिवरात्रि के दिन भोजन करता है, यदि वह उपवास करने में समर्थ होकर भी अन्न खाता है, तब उसे महारौरव नरकगामी होना पड़ेगा। अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी को नारी संभोग करने वाले, तैल तथा मांस का प्रयोग करने वाले लोग चाण्डाल होते हैं। मछली मांस, मसूर का भोजन, कांसे के पात्र में भोजन, अदरख एवं लाल शाक का भोजन रविवार को न करें। ऐसा करने वाला कुम्भीपाक नरकगामी होगा। यह निर्विवाद है। हे व्रजेश्वर! रजस्वला नारी प्रदत्त किंवा पकाया अन्न, वेश्या का अन्न, मदिरा मिला अन्न दैवात् जिस ब्राह्मण ने खा लिया, उसने वास्तव में मल भोजन किया है। उसे नित्य किये जाने वाले सभी कार्यों का (धर्म कार्य का) कोई फल नहीं मिलेगा॥५९-६३॥

स भवेदशुचिर्नित्यं भस्मान्तं तस्य सूतकम्।
नारी वेश्या प्रविज्ञेया चतुष्पुरुषगामिनी॥६४॥
पाके च पितृदेवानामधिकारो न तद्भवेत्।
यद्ग्रामयाजिनामन्नं शूद्रश्राद्धान्नभोजनम्॥६५॥
भुक्त्वा च नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
शूद्राणां श्राद्धदिवसे तदन्नं भुञ्जते द्विजाः॥६६॥
कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावद्वै ब्रह्मणः शतम्।
यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुङ्क्ते श्राद्धदिनेऽन्यतः॥६७॥

सुरापीति स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः। असिजीवी मषीजीवी देवलो वृषवाहकः॥६८॥

ऐसा व्यक्ति सदा अशुद्ध रहेगा। जब तक वह भस्म नहीं हो जाता, तब तक उसे सूतक लगा रहेगा। जिसने ४ विभिन्न लोगों से भोग किया, उस नारी को वेश्या माने। उसका कोई अधिकार देवता तथा पितरों के कार्य में नहीं माना जाता। गांवों में जा-जाकर यज्ञ कराने वाले शूद्र श्राद्धभोजी का अन्न खाने वाला चन्द्र-सूर्य की स्थिति जब तक है, तब तक वह नरकगामी रहेगा। जो द्विज शूद्र के श्राद्ध के दिन उसका अन्न भोजन करता है, उसे १०० ब्रह्माओं के जीवनकाल पर्यन्त कुंभीपाक नरक में ही निवास करना होगा। जो श्राद्ध के दिन शूद्र की आज्ञा से अन्य व्यक्ति के यहां भोजन कर लेता है, उसे

"शराबी" माना गया है। उसे सभी धर्मकृत्य से बहिष्कृत माने। सिपाही, लेखक, मन्दिर का पुजारी, बैल से जीविकोपार्जन करने वाला, शूद्रों के शवों को दग्ध करने वाला, ऐसा जो व्यक्ति द्विजवर्णों का है, उसे सभी कार्यों से निकाल देना चाहिये।।६४-६८।।

शूद्राणां शवदाही च यो हि शूद्रापतिर्द्विजः।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यस्तदन्नं विट्समं सताम्।।६९।।
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः।।७०।।

जो द्विज शूद्रा का शवदाह करता है किंवा शूद्रा का पति है, वह शूद्रवत् सर्वकर्म बहिष्कृत है। सत्पुरुषों के लिये ऐसे व्यक्ति का अन्न विष्ठा के समान जाने। जो प्रातः-सायं सन्ध्या वन्दन नहीं करता, वह शूद्रवत् है। सभी द्विजकार्य से उसको निकाल देना चाहिये।।६९-७०।।

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदह्नाकुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्।।७१।।
वाममन्त्रोपासकश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्। नदीगर्भे च गर्ते च वृक्षमूले जलान्तिके।।७२।।
देवान्तिके सस्यभूमौ पुरीषं नोत्सृजेद्बुधः।
वल्मीकमूषकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा।।७३।।
शौचावशिष्टां गेहाच्च नाऽऽदद्याल्लेपसंभवाम्।
अन्तःप्राणिपिपील्यां च हलोत्खातां व्रजेश्वर।।७४।।

जो सन्ध्या रहित, नित्य अपानवन हैं, वह सभी कर्म के लिये अयोग्य माना गया है। वह जो भी कर्म करेगा, वह सब फलहीन होगा। (कर्म = धार्मिक कृत्य)।जो वाममार्ग के मन्त्रों की उपासना करते हैं, वे ब्राह्मण नरकगामी हो जाते हैं। नदी में, गर्त्त में, वृक्ष की जड़ पर, जलाशय के पास, देवगृह के निकट, फसलयुक्त खेत में कदापि बुद्धिमान मनुष्य मल विसर्जन न करे। हे ब्रजेश्वर नन्दराज! मल त्याग के उपरान्त शौचकार्य हेतु दीमक की बांबी की मिट्टी, मूषक द्वारा खोदी मिट्टी, जल के नीचे की मिट्टी, पहले शौचकार्य (हाथ धोने से बची) से बची मिट्टी, घर में लेप की गई मिट्टी, जिसमें प्राणी चींटी आदि हों, हल से जोती खेत की मिट्टी से कदापि हाथ आदि शुद्ध न करे।।७१-७४।।

आलवालोत्थितां चैव सस्यक्षेत्रोत्थितां तथा।
वृक्षमूलोत्थितां नन्द नदीगर्भोत्थितां तथा।।७५।।
परित्यजेन्मृदस्त्वेताः सकलाः शौचसाधने।
कूष्माण्डघातिका या स्त्री दीपनिर्वाणकः पुमान्।।७६।।
सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रो जन्मजन्मनि। प्रदीपं शिवलिङ्गं च शालग्रामं मणिं तथा।।७७।।

हे नन्दराज! जो वृक्षों का थाला बना होता है, उसकी मृत्तिका, खड़ी-हरी फसल के खेत की

मृत्तिका, वृक्ष के जड़भाग से खोदी मृत्तिका, नदी के अन्दर से निकली मृत्तिका का हाथ शुद्ध करने हेतु सदा त्याग करे। स्त्री कदापि कोहड़ा न काटे तथा पुरुष दीपक न वुझाये। ऐसा करने वाली नारी तथा ऐसा करने वाला पुरुष ७ जन्म तक रोगी एवं दरिद्र होते हैं। प्रदीप, शिवलिंग, शालग्राम शिला एवं मणि–।।७५-७७।।

प्रतिमां यज्ञसूत्रं च सुवर्णं शङ्खमेव च। हीरकं च तथा मुक्तां गोमूत्रं गोमयं घृतम्।।७८।।

शालग्रामशिलातोयं भूमौ त्यक्त्वा वज्रेदधः।
दरिद्रः कृपणः कुष्ठी वंशहीनोऽप्यभार्यकः।।७९।।
भूमिहीनः प्रजाहीनो बन्धुहीनश्च कुत्सितः।
अन्धः पङ्गुर्वा खर्वश्च खञ्जश्चैवाङ्गहीनकः।।८०।।
भवेत्क्रमेण पापी स ह्येतान्भूमौ त्यजेत्तु यः।
दिवसे सन्ध्ययोर्निद्रां स्त्रीसंभोगं करोति यः।।८१।।

सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रः सप्तजन्मसु। उदिते जगतीनाथे यः कुर्याद्दन्तधावनम्।।८२।।

स पापिष्ठः कथं ब्रूते पूजयामि जनार्दनम्।
मृद्भस्मगोसकृत्पिण्डैस्तथा बालुकयाऽपि वा।।८३।।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वेसत्कल्पशतं दिवि।
सहस्त्रपूजनात्सोऽपि लभते वाञ्छितं फलम्।।८४।।

देवता की मूर्ति, यज्ञसूत्र, स्वर्ण, शंख, हीरा, मोती, गोमूत्र, गोबर, गोघृत तथा शालग्राम शिला का जल भूमि पर छोड़ता है, वह अधोगामी होता है। वह पातकी क्रमशः दरिद्र, कृपण, कुष्ठी, वंशहीन, पत्नी रहित, भूमि रहित, प्रजा रहित, बन्धुहीन, कुत्सित, अन्धा, लंगड़ा, कुबड़ा, अंगहीन होता है। जो दिवाकाल में, दोनों सन्ध्याकाल में शयनरत तथा नारी संभोगरत रहता है, उसे ७ जन्मपर्यन्त रोगी होकर पुनः ७ जन्मपर्यन्त दरिद्रता प्राप्त होगी। जो जगन्नाथ भास्कर के उदयकाल में दन्तधावन करता है, वह पातकी अपने को जगन्नाथ का पूजक कैसे कहेगा? जो व्यक्ति मृत्तिका, भस्म, गोबर किंवा बालुका का शिवलिङ्ग बनाकर एक बार भी शिवपूजा करता है, उसे सौ कल्पपर्यन्त स्वर्ग में निवास का अवसर मिलेगा। इस प्रकार के १००० लिङ्ग बनाकर पूजा करने से इच्छित फल की प्राप्ति हो जाती है।।७८-८४।।

लक्षं च पूजयेद्यस्तु शिवत्वं लभते ध्रुवम्।
जीवन्मुक्तो भवेद्विप्रो लिङ्गमभ्यर्चयेत्तु यः।।८५।।

शिवपूजाविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्। मत्पूजितं प्रियतमं शिवं निन्दन्ति ये नराः।।८६।।

पच्यन्ते निरये तावद्यावद्वै ब्रह्मणः शतम्।
पूजिते शिवलिङ्गे च यदि स्यात्केशवालुका।।८७।।

स महान्धो वालुकया केशेन यवनो भवेत्।
क्षुद्रो दरिद्रः कृपणो व्याधिः स्यात्कुत्सिते यथा॥८८॥

जो ऐसे एक लाख लिङ्ग की पूजा करेगा, उसे निश्चित रूप से शिवत्व की प्राप्ति होगी। लिङ्गार्चन करने वाला विप्र तो जीवन्मुक्त हो जायेगा। शिवपूजा रहित विप्र नरक जाते हैं। शिव मेरे द्वारा पूजित तथा मेरे प्रियतम हैं। जो मनुष्य ऐसे शिव की निन्दा करता है, वह सौ ब्रह्मा की आयु पर्यन्त नरक में पकाया जायेगा। यदि पूजित शिवलिङ्ग में यदि कंकण विद्यमान है, तब वह पूजक जन्मान्तर में महान्ध होगा। यदि उसमें केश है, तब वह यवन होगा। वह क्षुद्र, दरिद्र, कृपण एवं कुत्सित व्याधिग्रस्त रोगी होगा।।८५-८८।।

सर्वेभ्यो मानहानिः स्याज्जायते नीचयोनिषु।
सर्वेषु प्रियपात्रेषु[१] ब्राह्मणश्च मम प्रियः॥८९॥
ब्राह्मणाच्च प्रिया लक्ष्मीः सततं वक्षसि स्थिता।
ततोऽधिका प्रिया राधा प्रिया भक्तास्ततोऽधिकाः॥९०॥
ततोऽधिकः शङ्करो मे नास्ति मे शङ्करात्प्रियः। महादेव महादेव महादेवेति वादिनः॥९१॥
पश्चाद्यामि च सन्तृप्तो नामश्रवणलोभतः।
मनो मे भक्तमूले च प्राणा राधात्मका ध्रुवम्॥९२॥

पुनः वह सबसे अपमानित होकर नीच योनि में जन्म लेगा। सभी प्रियपात्रों में से मुझे ब्राह्मण प्रिय हैं। ब्राह्मणों से अधिक लक्ष्मी प्रिय हैं, जो सदा मेरे वक्षस्थल पर विराजित रहती हैं। उससे अधिक मुझे राधा तो प्रिय हैं, परन्तु राधा से भी अधिक मुझे भक्त प्रिय हैं, तथापि इन भक्तों से बढ़कर मुझे शिव प्रिय हैं। शंकर से बढ़कर प्रिय मुझे कोई भी नहीं है। जो कोई "महादेव-महादेव" का उच्चारण करता गमन करता है, मैं शिव का नाम सुनने के लोभ से उसका अनुगमन करता चलता हूं। मेरा मन सतत् भक्तों में निरत रहता है। मेरा प्राण सतत् राधा में लगा रहता है। यह निश्चित है।।८९-९२।।

आत्मा मे शङ्करस्थानं शिवः प्राणाधिकश्च यः।
आद्या नारायणी शक्तिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी॥९३॥
करोमि च यया सृष्टिं यया ब्रह्मादिदेवताः।
यया जयति विश्वं च यया सृष्टिः प्रजायते॥९४॥
यया विना जगन्नास्ति मया दत्ता शिवाय सा।
दया निद्रा च क्षुत्तृप्तिस्तृष्णा श्रद्धा क्षमा धृतिः॥९५॥
तुष्टिः पुष्टिस्तथा शान्तिर्लज्जाधिदेवता हि सा।
वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीर्गोलोके राधिका सती॥९६॥

---

१. क. ०पात्रे०।

परन्तु मेरी आत्मा शिव में सतत् विराजित है, वे मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हैं। मेरी आद्याशक्ति नारायणी हैं जो सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी हैं। उसी शक्ति का अवलम्बन लेकर मैं सृष्टिकार्य में प्रवृत्त हो जाता हूं। उसके ही द्वारा ब्रह्मादि देवगण सृष्ट हो सके हैं। उस शक्ति के ही बल से विश्वविजय होती है। उसके बल से ही सृष्टि निष्पन्न होती है। उस शक्ति के बिना जगत् का क्षणमात्र भी अस्तित्व ही नहीं रह सकता! मैंने अपनी उस शक्ति को शिव को प्रदान कर दिया! वह शक्ति दया, निद्रा, क्षुधा, तृष्णा, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, लज्जा की अधिदेवता हैं। वह आद्याशक्ति वैकुण्ठ में महालक्ष्मी तथा गोलोक में सती राधा हैं।।९३-९६।।

मर्त्ये लक्ष्मीश्च क्षीरोदे दक्षकन्या सती च सा।
सा दुर्गा मेनकाकन्या दैन्यदुर्गतिनाशिनी।।९७।।
स्वर्गलक्ष्मीश्च दुर्गा सा शक्रादीनां गृहे गृहे।
सा वाणी सा च सावित्री विद्याधिष्ठातृदेवता।।९८।।

वे ही दक्षकन्या सती तथा मृत्युलोक में क्षीरसागर में स्थिता लक्ष्मी हैं। वे ही मेनका कन्या दुर्गा होकर दैन्य तथा दुर्गति का नाश करने वाली हैं। ये दुर्गा ही इन्द्रादि देवताओं के घरों में स्वर्ग लक्ष्मीरूपा होकर स्थित हैं। वे ही सरस्वती, सावित्री तथा विद्या की अधिदेवता भी हैं।।९७-९८।।

वह्नौ सा दाहिकाशक्तिः प्रभाशक्तिश्च भास्करे।
शोभाशक्तिः पूर्णचन्द्रे जले शक्तिश्च शीतता।।९९।।
सस्यप्रसूता शक्तिश्च धारणा च धरासु सा।
ब्राह्मण्यशक्तिर्विप्रेषु देवशक्तिः सुरेषु सा।।१००।।

वे ही अग्नि में दाहिकाशक्ति तथा भास्कर में प्रभाशक्ति हैं। वे पूर्णिमा के चन्द्र में शोभाशक्तिरूपा तथा जल की शीतलता रूपी शक्ति हैं। वे फसल (सस्य) उत्पादिका शक्ति धरा पर हैं। वे ही देवगण की देवशक्ति भी हैं।।९९-१००।।

तपस्विनां तपस्या सा गृहिणां गृहदेवता।
मुक्तिशक्तिश्च मुक्तानामाशा सांसारिकस्य सा।।१०१।।
मद्भक्तानां भक्तिशक्तिर्मयि भक्तिप्रदा सदा।
नृपाणां राज्यलक्ष्मीश्च वणिजां लभ्यरूपिणी।।१०२।।

ये आद्याशक्ति ही तपस्वीगण की तपस्या, गृही लोगों की गृहदेवता हैं। ये मुमुक्षुगण के लिये मुक्तिशक्ति हैं तथा संसारी लोगों हेतु आशाशक्ति हो जाती हैं। मेरे भक्तों में ये ही भक्तिशक्ति हैं जो सदा मेरी भक्ति प्रदान करती हैं। ये ही राजाओं की राज्यलक्ष्मी तथा वणिकों के लिये लाभरूपिणी हैं।।१०१-१०२।।

परि संसारसिन्धूनां त्रयीतत्त्वा तु तारिणी।
सत्सु सद्बुद्धिरूपा सा मेधाशक्तिस्वरूपिणी।।१०३।।

व्याख्याशक्तिः श्रुतौ शास्त्रे दातृशक्तिश्च दातृषु।
क्षत्रादीनां विप्रभक्तिःपतिभक्तिः सतीसु च॥१०४॥

ये संसार-सागर को पार कराने वाली त्रयीतत्वरूपा नौका रूपी तारिणी हैं। ये सत्पुरुषों में सद्बुद्धि एवं मेघाशक्तिरूपा हैं। ये आद्याशक्ति ही वेद-शास्त्र की व्याख्याशक्ति हैं। दानी लोगों की ये ही दातृशक्ति हैं। ये ही क्षत्रिय आदि की विप्रभक्ति तथा सती नारी की पतिभक्ति रूपा हैं।।१०३-१०४।।

एवं रूपा च या शक्तिर्मया दत्ता शिवाय सा।
एवं ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।
प्रश्नं करोषि यद्यन्मां सत्सर्वं कथयामि ते॥१०५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसंवादे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।।७५।।

मैंने इस प्रकार की अपनी आद्याशक्ति को शिव को दे दिया। मैंने यह सब प्रसंग आपसे कह दिया। अब आप क्या सुनना चाहते हैं? अब आप जो कुछ प्रश्न करियेगा, मैं उन सबका उत्तर प्रदान करूंगा।।१०५।।

।।७५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

शुभ दर्शनों के पुण्य का वर्णन तथा दानफल वर्णन

नन्द उवाच

येषां च दर्शने पुण्यं पापं यस्य च दर्शने। तत्सर्वं वद सर्वेश श्रोतुं कौतूहलं मम॥१॥

नन्दराज कहते हैं-जिसे देखने पर पुण्यलाभ होता है तथा जिसके अवलोकन से पातक होता है, हे सर्वेश! आप वह कहें। मुझे सुनने का कुतूहल हो रहा है।।१।।

श्रीभगवानुवाच

सुब्राह्मणानां तीर्थानां वैष्णवानां च दर्शने। देवताप्रतिमादर्शी तीर्थस्नायी भवेन्नरः॥२॥
सूर्यस्य दर्शने भक्त्या सतीनां दर्शने तथा।
संन्यासिनां यतीनां च तथैव ब्रह्मचारिणाम्॥३॥

भक्त्या गवां च वह्नीनां गुरूणां च विशेषतः।
गजेन्द्राणां च सिंहानां श्वेताश्वानां तथैव च॥४॥
शुकानां च पिकानां च खञ्जनानां तथैव च।
हंसानां च मयूराणां चाषाणां शङ्खपक्षिणाम्॥५॥
वत्सप्रयुक्तधेनूनामश्वत्थानां तथैव च। पतिपुत्रवतीनां च नराणां तीर्थयायिनाम्॥६॥
प्रदीपानां सुवर्णानां मणीनां च विशेषतः।
मुक्तानां हीरकाणां च माणिक्यानां महाशय॥७॥
तुलसीशुक्लपुष्पाणां दर्शनं पापनाशनम्।
फलानि शुक्लधान्यानि घृतं दधि मधूनि च॥८॥
पूर्णकुम्भं च लाजांश्च राजेन्द्रं दर्पणं जलम्।
मालां च शुक्लपुष्पाणां दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः॥९॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे ब्रजराज! मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मण, तीर्थ, वैष्णव, देवप्रतिमा-दर्शन तथा तीर्थस्नान से फललाभ करता है। भक्तिभाव के साथ सूर्य, सती, संन्यासी, यति, ब्रह्मचारी, गौ, खंजन-हंस पक्षी, मयूर, नीलकंठ, गजेन्द्र, सिंह, श्वेत अश्व, शुक, कोकिल, शंखपक्षी, वत्सयुत गौ, पति-पुत्रयुक्त नारी, तीर्थयात्री, दीपक, स्वर्ण, मणि-मुक्ता, हीरक, माणिक, तुलसी, श्वेत पुष्प का दर्शन पापनाशक कहा गया है। हे राजेन्द्र! फल, श्वेतधान्य, घृत, दधि, मधु, पूर्णघट, लावा, राजा, दर्पण, जल, माला, श्वेतपुष्प का दर्शन करने वाला मनुष्य पुण्यलाभ करता है॥२-९॥

गोरोचनं च कर्पूरं रजतं च सरोवरम्। पुष्पोद्यानं पुष्पितं च दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः॥१०॥
शुक्लपक्षस्य चन्द्रं च पीयूषं चन्दनं तथा।
कस्तूरीं कुङ्कुमं दृष्ट्वा नन्द पुण्यं लभेन्नरः॥११॥
पताकामक्षयवटं तरुं देवोत्थितं शुभम्। देवालयं देवखातं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः॥१२॥

गोरोचन, कपूर, चांदी, सरोवर, पुष्पित पुष्पोद्यान देखने वाला मनुष्य पुण्यलाभ करता है। शुक्लपक्षीय चन्द्रमा, अमृत, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम, पताका, बरगद का पेड़, शुभ देव का उठना (जागरण), देवमंदिर, देवखात का दर्शनकर्त्ता पुण्य लाभ करता है॥१०-१२॥

देवाश्रितं देवघटं सुगन्धिपवनं तथा। शङ्खं च दुन्दुभिं दृष्ट्वा सद्यः पुण्यं लभेन्नरः॥१३॥
शुक्तिं प्रवालं रजतं स्फटिकं कुशमूलकम्।
गङ्गामृदं कुशं ताम्रं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः॥१४॥
पुराणपुस्तकं शुद्धं सबीजं विष्णुयन्त्रकम्।
स्निग्धदूर्वाक्षते रत्नं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः॥१५॥

तपस्विनां सिद्धमन्त्रं समुद्रं कृष्णसारकम्। यज्ञं महोत्सवं दृष्ट्वा स पुण्यं लभते नरः॥१६॥

गोमूत्रं गोमयं दुग्धं गोधूलिं गोष्ठगोष्पदम्।
पक्वसस्यान्वितं क्षेत्रं दृष्ट्वा पुण्यं लभेद्ध्रुवम्॥१७॥

सीपी, मूंगा, रुद्राक्ष, स्फटिक, कुश की जड़, गंगा की मिट्टी, ताम्र, शुद्ध पुराण ग्रन्थ, बीजयुक्त विष्णुयन्त्र, स्निग्ध दूब, अक्षत, रत्न, तपस्वीगण का सिद्धमन्त्र, सागर, कृष्णमृग, यज्ञ महोत्सव, गोबर, गोमूत्र, दूध, गो धूलि बेला, गोशाला, गौ के खुर का चिह्न, पक्व शस्य (फसल) सहित खेत देखने से अवश्य पुण्यलाभ होता है।।१३-१७।।

रुचिरां पद्मिनीं श्यामां न्यग्रोधपरिमण्डलाम्।
सुवेषकां सुवसनां दिव्यभूषणभूषिताम्॥१८॥

वेश्यां क्षेमकरीं गन्धं सुदूर्वाक्षततण्डुलम्। सिद्धान्नं परमान्नं च दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः॥१९॥

दिव्यवसनभूषिता सुवदना श्यामा (जिसका वर्ण तप्त स्वर्ण के समान हो तथा शीतकाल में जो सुखजनक उष्ण और गीष्मकाल में सुखद शीतल हो), न्यग्रोधपरिमण्डला (जिसके दोनों स्तन कठोर हों, नितम्ब विशाल तथा स्थूल हो और कमर पतली हो), सुन्दरी पद्मिनी रमणी, वेश्या, क्षेमकरी पक्षी, सुगन्धित गन्ध, उत्तम दूर्वा, अक्षत चावल के दाने, सिद्धान्न, खीर इनका दर्शन पुण्यप्रद है।।१८-१९।।

कार्तिक्यां पूर्णिमायां च राधिकाप्रतिमां शुभाम्।
सम्पूज्य दृष्ट्वा नत्वा च करोति जन्मखण्डनम्॥२०॥
हिङ्गुलायां तथाऽष्टम्यामिषे मासि सिते शुभे।
श्रीदुर्गाप्रतिमां दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम्॥२१॥
शिवरात्रौ च काश्यां च विश्वनाथस्य दर्शनम्।
कृत्वोपवासं पूजां च करोति जन्मखण्डनम्॥२२॥
जन्माष्टमीदिने भक्तो दृष्ट्वा मां बिन्दुमाधवम्।
प्रणम्य पूजां कृत्वा च करोति जन्मखण्डनम्॥२३॥

कार्तिक पूर्णिमा के दिन शुभ राधा प्रतिमा का पूजन, दर्शन तथा उनको प्रणाम करना, इससे पुनर्जन्म नहीं होता। आश्विन शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिन हिंगुल तीर्थ में श्रीदुर्गा प्रतिमा के दर्शन से भी पुनर्जन्म का खण्डन होता है। जो मनुष्य शिवरात्रि के दिन उपवासी रहकर काशी में विश्वनाथ दर्शन-पूजन करता है, उसे पुनः संसार में जन्म नहीं लेना होता। जो मानव जन्माष्टमी को बिन्दुमाधव रूपी मेरा दर्शन-पूजन करके मुझे प्रणाम करता है, उसका पुनः जन्म नहीं होता।।२०-२३।।

पौषे मासि शुक्लरात्रौ यत्र यत्र स्थले नरः।
पद्मायाः प्रतिमां दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम्॥२४॥

सप्तजन्म भवेत्तस्य पुत्रः पौत्रो धनेश्वरः। उपोष्यैकादशीं स्नात्वा प्रभाते द्वादशीदिने॥२५॥

दृष्ट्वा काश्यामन्नपूर्णां करोति जन्मखण्डनम्।
चैत्रे मासि चतुर्दश्यां कामरूपेषु पुण्यदे॥२६॥
दृष्ट्वा नत्वा भद्रकालीं करोति जन्मखण्डनम्।
अयोध्यायां च रामं च श्रीरामनवमीदिने॥२७॥

पौषमासीय शुक्लपक्षीय रात में कहीं भी लक्ष्मीमूर्त्ति का दर्शन करके व्यक्ति पुनः जन्म-मरण-चक्र में नहीं पड़ता (बंगभाषा संस्करण में है कि पौषमासीय अमावस्या की रात में यह कार्य करे) वह पुत्र-पौत्रादि सहित सात जन्मों तक धनवान बना रहता है।[1] एकादशी को उपवासी रहकर द्वादशी प्रातः स्नानोपरान्त काशी में अन्नपूर्णा का दर्शन करने से पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। चैत्र मासीय चतुर्दशी के दिन पुण्यप्रद कामरूप में भद्रकाली का दर्शन करके उनको प्रणाम करे। इससे उस व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होगा। अयोध्या में रामनवमी को श्रीराम का दर्शन करें।।२४-२७।।

सम्पूज्य नत्वा दृष्ट्वा च करोति जन्मखण्डनम्।
उपोष्य पुष्करे स्नात्वा किंवा बदरिकाश्रमे॥२८॥
सम्पूज्य दृष्ट्वा मामेकं करोति जन्मखण्डनम्।
दत्त्वा विष्णुपदे पिण्डं विष्णुं यश्च प्रपूजयेत्॥२९॥
पितृणां स्वात्मनश्चैव करोति जन्मखण्डनम्।
प्रयागे मुण्डनं कृत्वा दानं[2] च कुरुते यदि॥३०॥

तब उनकी पूजा करके उनको प्रणाम करने से पुनर्जन्म नहीं होता। पुष्कर किंवा बदरिकाश्रम में उपवासी रहे। स्नानोपरान्त मेरा पूजन-दर्शन करने से पुनर्जन्म नहीं होता। गया स्थित विष्णुपद में पिण्ड देकर विष्णु पूजन करने वाला अपने पितृगण सहित जन्मादि चक्र से मुक्त हो जाता है। प्रयाग में मुण्डन कराकर दान करे।।२८-३०।।

उपोष्य नैमिषारण्ये करोति जन्मखण्डनम्।
सिद्धिं कृत्वा च बदरीं भुङ्क्ते बदरिकाश्रमे॥३१॥
दृष्ट्वा मत्प्रतिमां नन्द करोति जन्मखण्डनम्।
दोलायमानं गोविन्दं पुण्ये वृन्दावने च माम्॥३२॥
दृष्ट्वा सम्पूज्य नत्वा च करोति जन्मखण्डनम्।
भाद्रे दृष्ट्वा च मञ्चस्थे मामेव मधुसूदनम्॥३३॥

१. यह कुछ पाठान्तर लगता है यदि वह जन्ममरण चक्र से मुक्त हो जायेगा तब सात बार जन्म लेकर धनी क्यों बनेगा, यह विसंगति है। विद्वान् विचार करें।

२. क. यः पितृन्तर्पयेत्सुधीः।

सम्पूज्य नत्वा भक्तश्च करोति जन्मखण्डनम्। रथस्थं च जगन्नाथं यो द्रक्ष्यति कलौ नरः।
सम्पूज्य नत्वा भक्त्या च करोति जन्मखण्डनम्॥३४॥

तथा नैमिषारण्य में उपवासी रहे। इससे व्यक्ति जन्म-मरण चक्र से रहित हो जाता है। हे नन्द! जो व्यक्ति बदरिकाश्रम में सत्प्रतिमा दर्शनोपरान्त बदरीफल सिद्ध करके उसका भोजन करता है, उसे संसार-बन्धन से मुक्तिलाभ हो जाता है। जो मानव पुण्य वृन्दावन में गोविन्दरूपी मेरे झूले पर दर्शन तथा पूजन करके प्रसाद ग्रहण करता है, उसका भवबन्धन कट जाता है। जो कोई कल्याणदायक मंच पर प्रभु मधुसूदन का दर्शन भाद्रमास में करके उनकी पूजा करने के उपरान्त भक्ति पूर्वक उनको प्रणाम करता है, उसका आवागमन चक्र मिट जाता है। जो मनुष्य कलिकाल में रथस्थित जगन्नाथ का दर्शन, पूजन एवं प्रणाम करता है, उसका जन्म-मरण-चक्र खण्डित हो जाता है।।३१-३४।।

उत्तरायणसंक्रान्त्यां प्रयागे स्नानमाचरेत्।
सम्पूज्य नत्वा मामेव करोति जन्मखण्डनम्॥३५॥
कार्तिक्यां पूर्णिमायां च दृष्ट्वा मत्प्रतिमां शुभाम्।
उपोष्य पूजनं कृत्वा करोति जन्मखण्डनम्॥३६॥
चन्द्रभागासमीपे च माध्यां च मां नमेत्सुधीः।
राधया सह मां दृष्ट्वा करोति जन्मनः क्षयम्॥३७॥

उत्तरायण की संक्रान्ति के दिन प्रयाग स्नान तथा मेरी पूजा करके प्रणाम करे। वह मनुष्य जन्मादि चक्र से मुक्त होगा। कार्त्तिक पूर्णिमा को मेरी शुभ प्रतिमा देखकर जो उपवासी व्यक्ति मेरी पूजा करेगा, उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। जो व्यक्ति माघमासीय पूर्णिमा के दिन चन्द्रभागा नदी के निकट राधा की तथा मेरी मूर्त्ति आदर पूर्वक लाकर उसका दर्शन करे। वह व्यक्ति पुनः संसार में नहीं आयेगा।।३५-३७।।

रामेश्वरं सेतुबन्ध अषाढीपूर्णिमादिने। उपोष्य दृष्ट्वा सम्पूज्य करोति जन्मखण्डनम्॥३८॥
स्वर्गे विद्याधरा रात्रौ नृत्यन्ति च मुहुर्मुहुः। प्रणामं कर्तुमीशं तं समायाति विभीषणः॥३९॥
गायन्त किंनरा रात्रौ गन्धर्वाश्च मनोहरम्। प्रणामं कर्तुमीशं तं समायाति च माधवः॥४०॥
दृष्ट्वा साक्षाद्वसन्तं च सर्वेशं चन्द्रशेखरम्। जीवन्मुक्तो भवेदन्ते प्रयाति हरिमन्दिरम्॥४१॥

आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सेतुबन्ध रामेश्वर में उपवासी रहकर रामेश्वर का दर्शन तथा पूजन करे। वह व्यक्ति जन्म-मरण-चक्र से रहित होगा। रात्रिकाल में स्वर्ग के विद्याधर-विद्याधरी वहां आकर वहां बारम्बार नृत्य करते हैं। इन महेश्वर के दर्शनार्थ वहां विभीषण भी आते हैं। रात्रि में वहां गन्धर्व-किन्नरगण मनोहर संगीत गायन भी करते हैं। तभी वहां शिव को प्रणाम करने माधव भी आते हैं। इन चन्द्रशेखर को वहां साक्षात् निवास करते देखकर मनुष्य जीवन्मुक्त होकर अन्ततः भगवद्धाम में जाता है।।३८-४१।।

दीननाथं दिनकरं कोणार्के चोत्तरायणे।
उपोष्य दृष्ट्वा सम्पूज्य करोति जन्मखण्डनम्॥४२॥
कृषिकोष्ठे सुवसने कलविंके वसुन्धरे। विस्पन्दके राजकोष्ठे नन्दके पुष्पभद्रके॥४३॥
पार्वतीप्रतिमां दृष्ट्वा कार्तिकेयं गणेश्वरम्।
नन्दिनं शंकरं दृष्ट्वा करोति जन्मनःक्षयम्[1]॥४४॥

उत्तरायण काल में कोणार्क में दीनानाथ दिनकर सूर्य हेतु उपवासी रहकर उनकी पूजा एवं दर्शन करने वाला मनुष्य जन्ममरणचक्र रहित हो जाता है। कृषिकोष्ठ, सुवसन, कलविंक, वसुन्धर, विस्पन्दक, राजकोष्ठ, नन्दक, पुष्पभद्रक में पार्वती प्रतिमा का दर्शन करे। कार्त्तिकेय, गणेश्वर, नन्दी तथा शङ्कर का दर्शन वहां करने वाले का जन्म-मरण चक्र क्षय हो जाता है।।४२-४४।।

उपोष्य प्रातः[2] सम्पूज्य दृष्ट्वा स्तुत्वा स्तुतौ[3] नतः।
पारणं च दधि प्राश्य करोति जन्मखण्डनम्॥४५॥
त्रिकूटे मणिभद्रे च पश्चिमोदधिसन्निधौ।
समुपोष्य दधि प्राश्य मां दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नुयात्॥४६॥
प्रतिमासु मदीयासु पार्वतीप्रतिमासु च।
जीव संन्यस्य सम्पूज्य करोति जन्मखण्डनम्॥४७॥

इन स्थानों पर उपवासी रहे। इनकी अर्चना, पूजा, दर्शन, स्तुति तथा प्रणामोपरान्त अगले दिन दही से पारण करे। इससे जन्म सफल हो जाता है। पश्चिमसागर की सन्निधि में त्रिकूट पर्वत के मणिभद्र स्थान पर मेरा दर्शन उपवासी रहकर करे। दधि से पारण करे। वह व्यक्ति मुक्तिलाभ करता है। मेरी तथा पार्वती की प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा करके पूजनरत व्यक्ति संसार में अपने पुनरागमन का खण्डन कर देता है।।४५-४७।।

शिवदुर्गालयं कृत्वा मदीयं च विशेषतः।
शिवसंस्थापनं कृत्वा करोति जन्मखण्डनम्॥४८॥
पुष्पोद्यानं च शङ्कुं च सेतुं खातं सरोवरम्।
विप्रसंस्थापनं कृत्वा करोति' जन्मखण्डनम्॥४९॥
न च वेदाः पुराणानि ब्रह्मसंस्थापनं फलम्।
जानन्ति सन्तो मुनयः सुरा विप्रादयः पितः॥५०॥

जो व्यक्ति शिव-दुर्गा का, विशेषतया मेरा मन्दिर बनवाता है तथा वहां शिव की भी स्थापना

१. ख. फलम्।
२. ख. प्रति॰।
३. च. तौ।

करता है, उसे संसार से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पुष्पोद्यान, शंकु (यूप), सेतु, कूप, बावली आदि तथा सरोवर निर्माण करता है तथा ब्राह्मण को निवास देकर स्थापित करता है, उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। वेद, पुराण, संत-मुनिगण, देवता-ब्राह्मणादि इनमें से कोई भी ब्राह्मण को ऐसे स्थापित करने के फल को नहीं कह सकते। हे पिता! भले ही ब्रह्मा से पृथिवी के रजःकण की गिनती जान ले, वर्षा की बूंदे गिन ली जायें, तथापि ब्राह्मण को गृहदान का जो फल है, वह विधाता भी नहीं जान पाते।।४८-५०।।

गण्यन्ते पांसवो भूमेर्गण्यन्ते वृष्टिबिन्दवः।
न गण्यते विधात्राऽपि विप्रसंस्थापने फलम्।।५१।।
कृत्वोपजीव्यं विप्रस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
अचलां श्रियमाप्नोति परे मुक्तिचतुष्टयम्।।५२।।
मद्दास्यभक्तिं च लभेद्वैकुण्ठे मोदके चिरम्।
न हि पातो भवेत्तस्य यथा मे परमात्मनः।।५३।।

जो मनुष्य ब्राह्मण को जीविका देता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। वह अचला श्री इस लोक में पा जाता है। अन्ततः वह चतुर्विध मुक्तिलाभ करता है। तदनन्तर उसे मेरे दास्यभाव की भक्ति प्राप्त हो जाती है। वह चिरकाल तक वैकुण्ठ में आनन्द लाभ करता है। मुझ परमात्मा की ही तरह उसका वैकुण्ठ से कभी पतन ही नहीं होता।।५१-५३।।

कुमारीमष्टवर्षीयां सुविप्राय ददाति यः। सम्पूज्य सर्वाभरणां दुर्गादानफलं लभेत्।।५४।।
सर्वं स्वर्ग्यं[१] समालोक्य ब्रह्मलोकेषु पूजितः।
लभते मम दास्यं च वैकुण्ठे मोदते चिरम्।।५५।।
विवाहदर्शने कोटिस्वर्णदानफलं लभेत्।
अन्ते स्वर्गे प्रयात्येवमिहैव निश्चलां श्रियम्।।५६।।

जो सर्वाभूषणभूषिता अष्ठवर्षीया कुमारी को पूजा के साथ उत्तम ब्राह्मण को प्रदान करता है, उसे तो दुर्गादान के फल की प्राप्ति होती है। वह सभी स्वर्गों का दर्शन करके ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है। तदनन्तर वह मेरा दास पद पाकर चिरकाल वैकुण्ठ में आनन्द लाभ करता है। इस विवाह को देखने वाले को कोटि स्वर्णदान का फल मिलेगा। इस लोक में उसे निश्चला श्री मिलेगी। अन्ततः स्वर्गलाभ होगा।।५४-५६।।

यः सुविप्रमनाथं च दरिद्रं च सुपण्डितम्।
दृष्ट्वा कुर्यात्तद्विवाहं स मोक्ष लभते ध्रुवम्।।५७।।

---

१. क. स्वर्ग।

यच्छत्रपादुकादानं शालग्रामस्य योषितः।
करोति भक्त्या पुण्याहे पृथ्वीदानफलं लभेत्॥५८॥
गजदाने च तल्लोममानवर्षं श्रुतौ श्रुतम्। चतुर्गुणं गजेन्द्रं च मोदते मम मन्दिरे॥५९॥

जो कन्या का विवाह अनाथ निर्धन, तथापि उच्चकोटि के विद्वान् से कर देता है, वह मोक्षलाभ करेगा। पुण्य दिवस पर उपवासी रहकर जो व्यक्ति भक्ति के साथ मुझ शालिग्राम की प्राप्ति हेतु छत्र अथवा पादुका प्रदान करता है, उसे तो समग्र पृथिवी दानजनित फल की प्राप्ति होती है। वेद में कहा है कि ब्राह्मण को जो गज (हाथी) दान करता है, उसे उस हाथी के शरीर में जितने रोम हैं उतने वर्ष पर्यन्त तथा गजेन्द्र (महान् गज) दान करने से उसके चौगुने वर्ष पर्यन्त मेरे लोक में आनन्दानुभव प्राप्त होता है। यह वेद में उक्त है।।५७-५९।।

गजार्धं श्वेततुरगे तदर्धं चेतरे पितः। गजतुल्यं कृष्णगवां दाने च तत्फलं लभेत्॥६०॥
तत्तुल्यं धेनुदाने च ह्यर्धं सामान्यगोस्तथा। लभेद्वत्सप्रसूतानां दाने दाने फलं भुवः[1]॥६१॥
भूमिदाने रेणुमानवर्षं स्थानं च मत्पदे। ज्ञानदाने महत्पुण्यं वैकुण्ठे मोदते चिरम्॥६२॥
श्रियं लभेत्स्वर्णदाने राजत्वं रजतेन च। अन्नदाने फलं नाहं कथं जानामि वै श्रुतम्॥६३॥

श्वेत अश्व दान का फल गजदान से आधा कहा गया है। अन्य वर्ण के अश्वदान का फल गजदान से १/४ होगा। हे पिता! कृष्ण गौ के दान का फल गजदान के समान है। धेनु दान का भी यही फल है। सामान्य गौ का दान करने से इसका आधा फल लाभ होता है। सद्यः प्रसूता गौ का दानफल भूमिदान का आधा प्राप्त हो जाता है। जो भूमिदान करता है, वह उतने वर्ष तक मेरे लोक में रहेगा, जितने बालू के कण उस भूमि में हैं। लेकिन ज्ञानदान का महाफल वैकुण्ठ में चिरकाल पर्यन्त सुखलाभ कहा गया है। स्वर्णदान से लक्ष्मी लाभ, रजत (चांदी दान) दान द्वारा राजत्व लाभ होता है। अन्नदान का फल इतना है, जिसे मैं नहीं जानता न सुना। (अर्थात् अनन्त फल होता है)।।६०-६३।।

लभते सर्वदानस्य फलं ब्राह्मणभोजने। अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति॥६४॥
नात्र पात्रपरीक्षाऽस्ति न कालनियमः क्वचित्।
अन्नदाने शुभं पुण्यं दातुः पात्रं त्वपातकी॥६५॥
अन्नदानं च धन्यं स्याद्भूमौ वैकुण्ठहेतुकम्।
वस्त्रं ददाति विप्राय दरिद्राय कुटुम्बिने॥६६॥
वस्त्रसूत्रमानवर्षं वैकुण्ठे मोदते चिरम्। सुरम्ये चन्द्रलोके च वारुणे च तथैव च॥६७॥
कृत्वा लोहप्रदीपं च स्वर्णवर्तिसमन्वितम्। दत्त्वा घृतप्रदीपं च हरये परमात्मने॥६८॥
अन्धकारं च न गृहं यमदूतं यमं तथा। न हि पश्यति दाता च प्रयाति मम मन्दिरम्॥६९॥

---
१. ख. विभो।

जो ब्राह्मण भोजन कराता है, उसे सर्वदान का फल मिलता है। अन्नदान से बढ़कर कोई दान न होगा न था। अन्नदानार्थ कुपात्र-सुपात्र की परीक्षा नहीं की जाती। पातकी भी अन्नदान का पात्र हो सकता है। इससे भी दाता को शुभ पुण्य की प्राप्ति होती है। भूमण्डल पर अन्नदान धन्य है। उसके फल से मानव अनायास वैकुण्ठ की प्राप्ति कर लेता है। वस्त्र दान करने वाला तब तक चन्द्रलोक तथा वरुणलोक में आनन्द लाभ करता है, जितने वस्त्र में सूत्र हैं। जो मानव परमात्मा हरि के निमित्त लौह प्रदीप को घृत पूर्ण करके उसके लिये स्वर्ण की बत्ती लाता है तथा उसे हरि को अर्पित करता है, वह इहलोक में अपने गृह में यमदूत, यम तथा अन्धकार को कभी नहीं देखता। अन्ततः उसे मेरा धाम मिल जाता है।।६४-६९।।

ब्राह्मणाय च दत्त्वैव न याति यमयातनाम्। दिव्यवर्षसहस्त्रं च मोदते शक्रमन्दिरे।।७०।।
आसनं लभते स्वर्गे [1]वस्तुमात्रानुरूपतः। उत्तमे लक्षवर्षे च तदर्धं चेतरे व्रजेत्।।७१।।

जो ऐसा दीप ब्राह्मण को देता है, उसे यमयातना नहीं मिलती। वह इन्द्रलोक में दिव्य १००० वर्ष निवास करता है। वस्तु की मात्रा के अनुसार स्वर्ग में स्थानलाभ होता है। उत्तम मात्रा में देने पर स्वर्ग में एक लाख वर्ष तथा अन्यदान से ५०००० वर्ष स्वर्ग में सुखमय स्थान लाभ मिलता है।।७०-७१।।

ताम्बूलेन लभेद्भोगं स्वर्गे वर्षशतं व्रजेत्।
माल्यदाने प्रियं स्वर्गं वस्तुमात्रानुरूपतः[2]।।७२।।
फलदानफलं स्वर्गं लभते नात्र संशयः। सामान्यशय्यादानेन स्वर्गं वर्षशतं व्रजेत्।।७३।।
चतुर्गुणं प्रकृष्टायां गुणलक्षं विलक्षणे। अनाथाय सुविप्राय यदि गेहं प्रदीयते।।७४।।

ताम्बूल दान करने वाला स्वर्ग में १०० वर्ष तक उत्तम भोग भोगता है। माला दान करने वाला वस्तु तथा पात्र के अनुरूप स्वर्गभोग करता है। फलदाता भी स्वर्ग प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है। सामान्य शय्यादाता स्वर्ग में १०० वर्ष निवास करता है। उत्तम शय्यादाता स्वर्ग में ४०० वर्ष निवास करता है। अत्यंन्त विलक्षण शय्या देने वाला ३ लाख वर्ष तक स्वर्गभोग प्राप्त करता है। अनाथ तथा उत्तम विप्र को गृह प्रदान करे।।७२-७४।।

अत्रैव मानवर्षं च शक्रलोके महीयते। दृष्ट्वा बुभुक्षितं विप्रमन्नं तस्मै प्रदीयते।।७५।।
अचलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रविवर्धिनीम्। व्रजनाथ व्रजं गत्वा व्रजभूमौ व्रजाधुना।।७६।।
व्रज भोजय विप्रांश्च व्रज सर्वं[3] व्रजे व्रजे। गोकुले गोकुले वत्स वत्स वत्स निराकुले।।७७।।
व्याकुलानां गोकुलानां संकुले च व्रजे व्रजे। एतत्ते कथितं नन्द सानन्दं पुण्यवर्धनम्।
सुस्वप्नदर्शनं पुण्यं यदि नीचं न वक्ति च।।७८।।

---

१. ख. ०मानानु०।
२. ख. ०पात्रा०।
३. क. स्वर्णं।

इससे वह दाता इतने ही वर्ष (तीन लाख वर्ष) इन्द्रलोक में निवास करता है। भूखे ब्राह्मण को देखकर उसे अन्न अवश्य प्रदान करे। इससे अचला श्री मिलती है। पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है। हे ब्रजपति नन्द! आप तत्काल ब्रज जाकर वहां ब्राह्मणों को भोजन करायें। सभी व्रजवासी को यही आदेश दीजिये। वहां जाकर आप मेरे वियोग में व्याकुल गौओं तथा व्रजवासीगण को सान्त्वना दीजिये। हे नन्दराज! यह मैंने आपसे आनन्दित मन से पुण्यवर्धन उपाय कहा। इसका वर्णन कदापि निम्न लोगों से नहीं कहना चाहिये। तभी सुस्वप्न दर्शनफल मिलता है।।७५-७८।।

काश्यपं दुर्भगं नीचं शत्रुमज्ञानिनं स्त्रियम्।
त्यक्त्वा रात्रिं च दिवसे वक्ति विप्रं सुपण्डितम्।।७९।।
देवालये च देवं वाऽप्यश्वत्थतुलसीवटम्।
उक्त्वा तद्द्विगुणं पुण्यमप्रकाश्य चतुर्गुणम्।।८०।।
सुस्वप्नदर्शने प्राज्ञो गङ्गास्नानफलं लभेत्।
अर्थं वित्तं च भार्यां च भूमिं पुत्रं लभेत्प्रजाम्।।८१।।
मोक्षं च परमैश्वर्यं लभते सर्ववाञ्छितम्।
इत्येवं कथितं तात किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।८२।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसंवादे षट्सप्ततितमोऽध्यायः।।७६।।

इसे काश्यपगोत्रीय, दरिद्र, नीच, शत्रु, अज्ञानी तथा नारी से नहीं कहना चाहिये। इसे दिवाकाल में श्रेष्ठ विद्वान् विप्र से कहना उचित है। इसे देवालयस्थ देवता से, पीपल वृक्ष से, तुलसी पादप से, वट वृक्ष से कहने का द्विगुणित फल है। यदि इसे पूर्ण गोपनीय रखा जाये, तब चतुर्गुण फल मिलेगा। सुस्वप्न देखने से धीमान् व्यक्ति गंगा-स्नान फललाभ करते हैं। उसे अर्थ, धन, भार्या, भूमि, पुत्र-प्रजा प्राप्ति होती है। वह वांछित मोक्ष एवं परमैश्वर्य लाभ करता है। हे तात! मैंने यह सब कह दिया। अब क्या श्रवण करना चाहते हैं?।।७९-८२।।

।।७६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

सुस्वप्न का फलकथन

नन्द उवाच

केन स्वप्नेन किं पुण्यं केन मोक्षो भवेत्सुखम्।
कोऽपि कोऽपि च सुस्वप्नस्तत्सर्वं कथय प्रभो॥१॥

नन्दराज कहते हैं—हे प्रभो! किस स्वप्न से किस प्रकार का पुण्यलाभ होता है? किस स्वप्न से मोक्ष तथा कैसे स्वप्न से सुखलाभ होता है? किसे सुस्वप्न कहा गया है? कृपा कहिये॥१॥

श्रीभगवानुवाच

वेदेषु सामवेदश्च प्रशस्तः सर्वकर्मसु। तथैव कण्वशाखायां पुण्यकाण्डे मनोहरे॥२॥
स व्यक्तो यश्च दुःस्वप्नः शश्वत्पुण्यफलप्रदः।
तत्सर्वं निखिलं तात कथयामि निशामय॥३॥
स्वप्नाध्यायं प्रवक्ष्यामि बहुपुण्यफलप्रदम्।
स्वप्नाध्यायं नरः श्रुत्वा गङ्गास्नानफलं लभेत्॥४॥

श्रीभगवान् कहते हैं—वेदों में सामवेद सभी कर्म हेतु श्रेष्ठ कहा गया है। सामवेदोक्त काण्वशाखा के पुण्यकाण्ड को मनोहर माना गया है। उसमें सभी प्रकार के दुःस्वप्नों एवं पुण्यफलदायक सुस्वप्नों का वर्णन है। हे तात! मैं उन सबका वर्णन करता हूं। मैं प्रभूत पुण्यफलदायक स्वप्नाध्याय कहता हूं। इस स्वप्नाध्याय का श्रवण करने वाला गंगास्नानरूप फललाभ करता है॥२-४॥

स्वप्नस्तु प्रथमे यामे संवत्सरफलप्रदः। द्वितीये चाष्टभिर्मासैस्त्रिभिर्मासैस्तृतीयके॥५॥
चतुर्थे चार्धमासेन स्वप्नः स्वात्मफलप्रदः। दशाहे फलदः स्वप्नोऽप्यरुणोदयदर्शने॥६॥
प्रातःस्वप्नश्च फलदस्तत्क्षणं यदि बोधितः। दिने मनसि यद्दृष्टं तत्सर्वं च लभेद्ध्रुवम्॥७॥
चिन्ताव्याधिसमायुक्तो नरः स्वप्नं च पश्यति।
तत्सर्वं निष्फलं तात प्रयात्येव न संशयः॥८॥

रात के पहले पहर में जिन स्वप्न को देखा जाता है, वह एक वर्ष में फल देता है। द्वितीय प्रहर में देखा गया स्वप्न आठ मास में फल दे देता है। रात के तीसरे पहर में देखा गया स्वप्न तीन मास में तथा चतुर्थ प्रहर में देखा स्वप्न १५ दिनों में फल प्रदान करता है। सूर्य की लालिमा आकाश में उदित होने के समय जो स्वप्न देखा जाता है, वह १० दिन में ही फल देता है। यदि प्रातःकालीन स्वप्न स्मरणान्तर्गत् रहे, तब वह तत्क्षण फलप्रद है। पूरे दिन व्यक्ति ने जो दृश्य देखा किंवा जाना, वही स्वप्न में अवश्य दिखलाई देता है। हे तात! चिन्तातुर किंवा रोगी द्वारा देखा स्वप्न निष्फल कहा जाता है। यह निश्चित है॥५-८॥

जडो मूत्रपुरीषेण पीडितश्च भयाकुलः। दिगम्बरो मुक्तकेशो न लभेत्स्वप्नजं फलम्॥९॥

दृष्ट्वा स्वप्नं च निद्रालुर्यदि निद्रां प्रयाति च।
विमूढो वक्ति चेद्रात्रौ च लभेत्स्वप्नजं फलम्॥१०॥
उक्त्वा काश्यपगोत्रे च विपत्तिं लभते ध्रुवम्।
दुर्गते दुर्गतिं याति नीचे व्याधिंप्रयाति च॥११॥
शत्रौ भयं च लभते मूर्खे च कलहं लभेत्।
कामिन्यां धनहानिःस्याद्रात्रौ चोरभयं भवेत्॥१२॥
निद्रायां लभते शोकं पण्डिते वाञ्छितं फलम्।
न प्रकाश्यश्च सुस्वप्नः पण्डितैः काश्यपे व्रज॥१३॥

मलमूत्र वेग से जड़ीभूत, पीड़ित, भयभीत, नग्न, खुले बाल वाला पुरुष जो स्वप्न देखता है, वह फलित नहीं होता। निद्रालु मनुष्य स्वप्नदर्शन के पश्चात् यदि सो जाता है अथवा विमूढ़ता के कारण रात्रि में ही वह लोगों से कह देता है, तब स्वप्नज फल उसे नहीं मिल सकता। काश्यप गोत्र वाले से स्वप्न वृत्तान्त कहने वाला निश्चित रूप से विपदाग्रस्त हो जायेगा। अभाग्यशाली से स्वप्न वृत्तान्त कहने से धनहानि होती है। रात्रिकाल में स्वप्न कह देने से चोर का भय हो जाता है। हे ब्रजेश्वर! स्वप्नदर्शन के अन्त में निद्रागत हो जाने से शोक होता है। पण्डित से व्यक्त कर देने पर वांछित फल लाभ होता है। मूर्ख से स्वप्न वृत्तान्त कहने पर कलह, कामिनी से कहने पर धन हानि होती है। जो रात में ही स्वप्न वृत्तान्त व्यक्त कर देता है, उसे चोरभय होता है॥९-१३॥

गवां च कुञ्जराणां च हयानां च व्रजेश्वर।
प्रासादानां च शैलानां वृक्षाणां च तथैव च॥१४॥
आरोहणं च धनदं भोजनं रोदनं तथा।
प्रतिगृह्य तथा वीणां सस्याढ्यां भूमिमालभेत्॥१५॥
शस्त्रास्त्रेण यदा विद्धो व्रणेन कृमिणा तथा।
विष्ठया रुधिरेणैव संयुक्तोऽप्यर्थवान्भवेत्॥१६॥
स्वप्नेऽप्यगम्यागमतो भार्यालाभं करोति यः।
मूत्रसिक्तः पिबेच्छुक्रं नरकं च विशत्यपि॥१७॥

नगरं प्रविशेद्रक्तं समुद्रं वा सुधां पिबेत्। शुभवार्तामवाप्नोति विपुलं चार्थमालभेत्॥१८॥

हे ब्रजेश्वर! स्वप्नकाल में गौ, हस्ति, अश्व, प्रासाद, दर्शन, पर्वत तथा वृक्षारोहण देखने से तथा रुदन एवं भोजन करने का स्वप्न देखने से धनलाभ होगा। स्वप्न में वीणा ग्रहण देखने से फसलपूर्ण भूमि मिलती है। यदि व्यक्ति स्वप्न में स्वयं को शस्त्रों से विद्ध एवं व्रणपूर्ण देखता है, देह में कृमि, मल, रुधिर देखता है, तब उसे धनलाभ होगा। जो मनुष्य स्वप्न में अगम्या नारी से संभोग

करते स्वयं को देखे, तब उसे पत्नी लाभ होगा। जो स्वप्न में स्वयं को नगर में प्रविष्ट किंवा वीर्यपान करते देखे तथा वह वीर्य मूत्र से युक्त हो अथवा रक्त समुद्र किंवा सुधापान करते स्वयं को देखे तब उसे शुभ समाचार तथा विपुल धनलाभ होगा।।१४-१८।।

गजं नृपं सुवर्णं च वृषभं धेनुमेव च। दीपमन्नं फलं पुष्पं कन्यां छत्रं रथं ध्वजम्।।१९।।
कुटुम्बं लभते दृष्ट्वा कीर्तिं च विपुलां श्रियम्।
पूर्णकुम्भंद्विजं वह्निं पुष्पताम्बूलमन्दिरम्।।२०।।
शुक्लधान्यं नटं वेश्यां दृष्ट्वा श्रियमवाप्नुयात्।
गोक्षीरं च घृतं दृष्ट्वा चार्थं पुण्यधनं लभेत्।।२१।।
पायसं पद्मपत्रे च दधि दुग्धं घृतं मधु।
मिष्टान्नं स्वस्तिकं भुक्त्वा ध्रुवं राजा भविष्यति।।२२।।
पक्षिणां मानुषाणां च भुङ्क्ते मांसं नरो यदि।
बह्वर्थं शुभवार्ता च लभते वाञ्छितं फलम्।।२३।।
छत्रं वा पादुकां वाऽपि लब्ध्वा धान्यं च गच्छति।
असिं च निर्मलं तीक्ष्णं तत्तथैव भविष्यति।।२४।।

जो स्वप्न में गज, राजा, स्वर्ण, बैल, गौ, दीप, अन्न, फल, पुष्प, कन्या, छत्र, रथ, ध्वज, कुटुम्बलाभ देखता है, उसे विपुल धन तथा यश की प्राप्ति हो जाती है। पूर्णघट, ब्राह्मण, अग्नि, पुष्प, ताम्बूल, मन्दिर, श्वेत धान्य, नट, वेश्या का दर्शन होने से श्रीलाभ होता है। गो दुग्ध, घृत स्वप्न में देखने से अर्थ तथा पुण्य एवं धन की प्राप्ति होती है। स्वप्न में कमलपत्र पर खीर, दधि, दुग्ध, घृत, मधु जलेबी नाम वाली मिठाई खाने वाला राजा बन जाता है। यदि व्यक्ति स्वप्न में पक्षी मांस तथा नरमांस खाते स्वयं को देखता है, उसे शुभ समाचार, प्रभूत धन तथा वांछित फल की प्राप्ति हो जाती है। स्वप्न में छत्र तथा पादुका मिलने पर उस स्वप्न द्रष्टा को धान्य लाभ होगा। स्वप्न में उत्तम तीक्ष्ण तलवार मिलते देखने का भी यही फल है।।१९-२४।।

हेलया संतरेद्यो हि स प्रधानो भविष्यति।
दृष्ट्वा च फलितं वृक्षं धनमाप्नोति निश्चितम्।।२५।।
सर्पेण भक्षितो यो हि अर्थलाभश्च तद्भवेत्।
स्वप्ने सूर्यं विधुं दृष्ट्वा मुच्यते व्याधिबन्धनात्।।२६।।
वडवां कुक्कुटीं दृष्ट्वा क्रौञ्चीं भार्यां लभेद्ध्रुवम्।
स्वप्ने यो निगडैर्बद्धः प्रतिष्ठां पुत्रमालभेत्।।२७।।
दध्यन्नं पायसं भुङ्क्ते पद्मपत्रे नदीतटे। विशीर्णपद्मपत्रे च सोऽपि राजा भविष्यति।।२८।।

स्वप्न में जल के ऊपर तैर कर खेलने वाला व्यक्ति प्रधान होगा। जो फलदार वृक्ष को देखता है, उसे निश्चित रूप से धन मिलता है। जिसका भक्षण स्वप्न में सर्प करता है, उसे अर्थ लाभ होगा। स्वप्न में जिसने सूर्य-चन्द्र देखा, वह निश्चित रूप से व्याधि रहित हो जाता है। स्वप्न में घोड़ी, मुरगी तथा मादा क्रौंचपक्षी (बगुला) देखने वाला स्त्री लाभ करता है। स्वयं को स्वप्न में पाश (बेड़ी) से बंधा देखने वाला प्रतिष्ठा एवं पुत्रलाभ करता है। स्वप्न में नदी तट पर कमल के पत्ते में दधि-भात-खीर भोजी राजा होगा। भले ही यह पत्ता फटा क्यों न हो, उसे यही फल मिलेगा।।२५-२८।।

जलौकसं वृश्चिकं च सर्पं च यदि पश्यति। धनं पुत्रं च विजयं प्रतिष्ठां वा लभेदिति॥२९॥

शृङ्गिभिर्दंष्ट्रिभिः कोलैर्वानरैः पीडितो यदि।
निश्चितं च भवेद्राजा धनं च विपुलं लभेत्॥३०॥

यदि स्वप्न में जोंक, बिच्छू, सर्प दिखे, तब उस व्यक्ति को धन, पुत्र, जय तथा यशलाभ होगा। स्वप्न में यदि सींग वाले, बड़े दांतों वाले, शूकर, वानर आदि पीड़ित करें, तब वह व्यक्ति अवश्य राजपद लाभ करेगा तथा प्रचुर धन लाभ करेगा।।२९-३०।।

मत्स्यं मांसं मौक्तिकं च शङ्खं चन्दनहीरकम्।
यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते विपुलं धनमालभेत्॥३१॥
सुरां च रुधिरं स्वर्णं भुक्त्वा विष्ठां धनं लभेत्।
प्रतिमां शिवलिङ्गं च लभेद्दृष्ट्वा जयं धनम्॥३२॥
फलितं पुष्पितं बिल्वमाम्रं दृष्ट्वा लभेद्धनम्।
दृष्ट्वा च ज्वलदग्निं च धनं बुद्धिं श्रियं लभेत्॥३३॥

मत्स्य, मांस, मुक्ता, शंख, चन्दन, हीरा को जो स्वप्न के अन्तिम भाग में देखते हैं, उनको विपुल धनलाभ होता है। मद्य, रक्त, स्वर्ण को स्वप्न में देखना, स्वप्न में विष्ठा खाना इसका फल है धनलाभ। स्वप्न में मूर्ति एवं शिवलिङ्ग दर्शन होने से विजय एवं अर्थलाभ होता है। स्वप्न में फलित-पुष्पितलता, आम्रफल दर्शन से धन लाभ, ज्वलन्त अग्नि दर्शन से श्रीएवं बुद्धिलाभ होगा।।३१-३३।।

आमलकं धात्रीफलमुत्पलं च धनागमम्।
देवताश्च द्विजा गावः पितरो लिङ्गिनस्तथा॥३४॥
यद्ददाति मिथः स्वप्ने तत्तथैव भविष्यति। शुक्लाम्बरधरा नार्यः शुक्लमात्यानुलेपना।
समाश्लिष्यन्ति यं स्वप्ने तस्य श्रीः सर्वतः सुखम्॥३५॥
पीताम्बरधरां नारीं पीतमाल्यानुलेपनाम्।
अवगूहति यः स्वप्ने कल्याणं तस्य जायते॥३६॥

अमला का फल, आंवला, कमल का दर्शन स्वप्न में होना धनलाभप्रद है। देवता, ब्राह्मण, गौ,

पितर, ब्रह्मचारी बटु यदि स्वप्न में कुछ देते हैं, वह जाग्रत में वस्तुतः मिल जाता है। स्वप्न में स्वप्नद्रष्टा का आलिंगन यदि श्वेत वस्त्रधारिणी, श्वेत चन्दन लिप्ता, श्वेतमाला पहने हुये नारी करती है, तब उस व्यक्ति के लिये तो सभी ओर सुख ही सुख है। सर्वत्र श्रीलाभ है! यदि स्वप्न में पीताम्बरधारिणी नारी जो पीतवर्ण माला पहने तथा पीतवर्ण लेप लगाये उसका यदि स्वप्नद्रष्टा आलिंगन करता है, तब उस व्यक्ति का प्रभूत कल्याण होगा।।३४-३६।।

सर्वाणि शुक्लानि प्रशंसितानि भस्मास्थिकार्पासविवर्जितानि।
सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिवाजिद्विजदेववर्ज्यम्।।३७।।
दिव्या स्त्री सस्मिता विप्रा रत्नभूषणभूषिता।
यस्य मन्दिरमायाति स प्रियं लभते ध्रुवम्।।३८।।
स्वप्ने च ब्राह्मणो देवो ब्राह्मणी देवकन्यका।
ब्राह्मणो ब्राह्मणी वाऽपि सन्तुष्टा सस्मिता सती।।३९।।
फलं ददाति यस्मै च तस्य पुत्रो भविष्यति।
यं स्वप्ने ब्राह्मणा नन्द कुर्वन्ति च शुभाशिषम्।।४०।।
यद्वदन्ति भवेत्तस्य तस्यैश्वर्यं भवेद्ध्रुवम्।
परितुष्टो द्विजश्रेष्ठश्चाऽऽयाति यस्य मन्दिरम्।।४१।।
नारायणः शिवो ब्रह्मा प्रविशेत्तु तदाश्रमम्।
सम्पत्तिस्तस्य भवति यशश्च विपुलं शुभम्।।४२।।
पदे पदे सुखं तस्य समानं गौरवं लभेत्[१]। अकस्मादपि स्वप्ने तु लभते सुरभिं यदि।।४३।।
भूमिलाभो भवेत्तस्य भार्या चापि पतिव्रता।
करेण कृत्वा हस्ती यं मस्तके स्थापयेद्यदि।।४४।।
राज्यलाभो भवेत्तस्य निश्चितं च श्रुतौ मतम्[२]।
स्वप्ने तु ब्राह्मणस्तुष्टः समाश्लिष्यति यं व्रज।।४५।।
तीर्थस्नायी भवेत्सोऽपि निश्चितं च श्रियाऽन्वितः।
स्वप्ने ददाति पुष्पं च यस्मै पुण्यवते द्विजः।।४६।।

स्वप्न में सभी श्वेतवस्तु प्रशंसनीय हैं, तथापि भस्म, अस्थि तथा कपास श्वेत होने पर भी स्वप्न हेतु शुभ नहीं हैं सभी कृष्णवर्ण वस्तु स्वप्न में निन्दनीय हैं, तथापि काली गौ, हाथी, ब्राह्मण, देवता कृष्णवर्ण होने पर भी शुभ है। मुस्कराती दिव्यनारी यदि स्वप्न में भूषणभूषित एवं ब्राह्मणी हो, अथवा देवकन्या हो किंवा प्रसन्न ब्राह्मण-ब्राह्मणी हों, ये जिसे भी स्वप्न में फल प्रदान करते हैं, वह पुत्र-

१. क. भवेत्।
२. क. श्रुतम्।

सन्तान प्राप्त करता है। हे नन्दराज! यदि स्वप्न में ब्राह्मण स्वप्नदर्शक को शुभ आशीर्वाद देते हैं, वह अवश्य फलीभूत होगा। उस व्यक्ति को अवश्य ऐश्वर्यलाभ होगा। स्वप्न में अत्यन्त तृप्त ब्राह्मण प्रविष्ट हो जाये, उस गृह में स्वयं नारायण, शिव, ब्रह्मा ही प्रवेश कर जाते हैं। वह व्यक्ति सम्पदा, सुयश, पग-पग पर सुख तथा सम्मान एवं गौरव प्राप्त कर लेता है। स्वप्न में जिसे हाथी अपनी सूड़ से उठाये तथा शिर पर बैठाये, वह अवश्यमेव राज्यसम्पदा प्राप्त करेगा। यदि स्वप्नद्रष्टा को स्वप्न में गौ हठात् मिलती है, तब वह भूमि एवं सती पत्नी प्राप्त करेगा। यह वेदोक्ति है। हे ब्रजराज! यदि स्वप्न में ब्राह्मण प्रसन्नता पूर्वक स्वप्नद्रष्टा का आलिंगन करे, वह व्यक्ति निश्चित रूप से तीर्थ-स्नान करेगा तथा श्रीयुत हो जायेगा। स्वप्न में पुण्यात्मा ब्राह्माण यदि पुष्प देता है, तब-।।३७-४६।।

जययुक्तो भवेत्सोऽपि यशस्वी च धनी सुखी।
स्वप्ने दृष्ट्वा च तीर्थानि सौधरत्नगृहाणि च॥४७॥
यजयुक्तश्च धनवांस्तीर्थस्नायी भवेन्नरः।
स्वप्ने तु पूर्णकलशं कश्चित्कस्मै ददाति च॥४८॥
पुत्रलाभो भवेत्तस्य सम्पत्तिं वा समालभेत्।
हस्ते कृत्वा तु कुडवमाढकं वारसुन्दरी[१]॥४९॥
यस्य मन्दिरमायाति स लक्ष्मीं लभते ध्रुवम्।
दिव्या स्त्री यद्गृहं गत्वा पुरीषं विसृजेद्द्विज॥५०॥
अर्थलाभो भवेत्तस्य दारिद्र्यं च प्रयाति च।
यस्य गेहं समायाति ब्राह्मणो भार्यया सह॥५१॥
पार्वत्या सह शंभुर्वा लक्ष्म्या नारायणोऽथवा।
ब्राह्मणो ब्राह्मणी वाऽपि स्वप्ने तस्मै प्रदीयते॥५२॥
धान्यं पुष्पाञ्जलिं वाऽपि तस्य श्रीः सर्वतोमुखी।
मुक्ताहारं पुष्पमाल्यं चन्दनं च लभेद्व्रज॥५३॥
स्वप्ने ददाति विप्रश्च तस्य श्रीः सर्वतोमुखी।
गोरोचनं पताकां वा हरिद्रामिक्षुदण्डकम्॥५४॥
सिद्धान्नं च लभेत्स्वप्ने तस्य श्रीः सर्वतोमुखी।
ब्राह्मणो ब्राह्मणी वाऽपि ददाति ग्रस्य मस्तके॥५५॥

वह व्यक्ति विजयी, यशस्वी, धनी, सुखी होगा जिसने स्वप्न में तीर्थ, उत्तम प्रासाद, रत्न, गृह देखा हो, उसे विजय तथा धन का लाभ होगा। यदि स्वप्न में व्यक्ति किसी को पूर्णकलश दान करता

१. क. बाऽरिसु॰।

है, तब उस व्यक्ति को पुत्र-सम्पदा मिलेगी। यदि व्यक्ति गृह में कुड़व अथवा आढ़क लेकर वेश्या को अपने गृह में आते देखे तब उस व्यक्ति को निश्चित लक्ष्मीलाभ होकर रहेगा। हे ब्राह्मण! द्विज यदि स्वप्न में किसी दिव्य स्त्री को अपने गृह में मलत्याग करते देखे तब उस व्यक्ति को अर्थलाभ होगा तथा उसकी दरिद्रता दूर हो जायेगी। जिसने स्वप्न में शंभु-पार्वती को, अथवा लक्ष्मी-नारायण को, गृह में आते देखा अथवा ब्राह्मण दम्पति को धान्य अथवा पुष्पांजलि अर्पित करते देखा, उसे परम सम्पदा प्राप्त होगी। वह सभी प्रकार से सुखभोग करेगा। हे ब्रजराज! स्वप्न में विप्र से मुक्ता का हार, पुष्पमाला अथवा चन्दन प्राप्त करने वाला अतुल सम्पदा तथा सर्वसुखलाभ करता है। जिसने स्वप्न में गोचारण, पताका, हल्दी, ईख प्राप्त किया, वह भी प्रभूत सम्पदा तथा सुखलाभ करता है। ब्राह्मण किंवा ब्राह्मणी जिसे मस्तक पर-।।४७-५५।।

छत्रं वा शुक्लधान्यं वा स च राजा भविष्यति।
स्वप्ने रथस्थः पुरुषः शुक्लमाल्यानुलेपनः।।५६।।
तत्रस्थो दधि भुङ्क्ते च पायसं वा नृपो भवेत्।
स्वप्ने ददाति विप्रश्च ब्राह्मणी च सुधां दधि।।५७।।
प्रशस्तपात्रं यस्मै वा सोऽपि राजा भवेद्ध्रुवम्।
कुमारी चाष्टवर्षीया रत्नभूषणभूषिता।।५८।।
यस्य तुष्टा भवेत्स्वप्ने स भवेत्कविपण्डितः।
ददाति पुस्तकं स्वप्ने यस्मै पुण्यवते च सा।।५९।।

छत्र, धान्य (श्वेतवर्ण धान्य) स्वप्न में देखे, वह राजा हो जाता है। जिसने स्वप्न में श्वेतमाला धारण करके श्वेत लेप लगाया (चन्दन लेप) तथा रथारूढ़ होकर दधि किंवा क्षीर भोजन किया, वह राजा हो जाता है। स्वप्न में ही जिस स्वप्नद्रष्टा को ब्राह्मण किंवा ब्राह्मणी ने दधि अथवा अमृत श्रेष्ठ पात्र में प्रदान किया, वह अवश्यमेव राजपद प्राप्त करेगा। यदि स्वप्न में अष्टवर्षीया रत्नभूषणभूषिता कुमारी प्रसन्न हो जाये, वह व्यक्ति कवित्व एवं पाण्डित्य लाभ करेगा। यदि ऐसी कुमारी स्वप्न में किसी पुण्यात्मा स्वप्नद्रष्टा को पुस्तक देती है। तब-।।५६-५९।।

स भवेद्विश्वविख्यातः कवीन्द्रः पण्डितेश्वरः।
यं पाठयति स्वप्ने वा मातेव च सुतं यथा।।६०।।
सरस्वतीसुतः सोऽपि तत्परो नास्ति पण्डितः।
ब्राह्मणः पाठयेद्यं च पितेव यत्नपूर्वकम्।।६१।।
ददाति पुस्तकं प्रीत्या स च तत्सदृशो भवेत्।
प्राप्नोति पुस्तकं स्वप्ने पथि वा यत्र तत्र वा।।६२।।
स पण्डितो यशस्वी च विख्यातश्च महीतले। स्वप्ने यस्मै महामन्त्रं विप्रो विप्रे ददाति चेत्।।६३।।

स भवेत्पुरुषः प्राज्ञो धनवान्गुणवान्सुधीः।
स्वप्ने ददाति मन्त्रं वा प्रतिमां वा शिलामयीम्॥६४॥
यस्मै ददाति विप्रश्च मन्त्र सिद्धिश्च तद्भवेत्।
विप्रं विप्रसमूहं च दृष्ट्वा नत्वाऽऽशिषं लभेत्॥६५॥
राजेन्द्रः स भवेद्वाऽपि किंवा च कविपण्डितः।
शुक्लधान्ययुतां भूमिं यस्मै विप्रः समुत्सृजेत्॥६६॥
स्वप्नेऽपि परितुष्टश्च स भवेत्पृथिवीपतिः।
स्वप्ने विप्रो रथे कृत्वा नानास्वर्गं प्रदर्शयेत्॥६७॥
चिरञ्जीवी भवेदायुर्धनवृद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।
विप्राय विप्रः सन्तुष्टो यस्मै कन्यां ददाति च॥६८॥
स्वप्ने च स भवेन्नित्यं धनाढ्यो भूपतिः स्वयम्।
स्वप्ने सरोवरं दृष्ट्वा समुद्रं वा नदीं नदम्॥६९॥
शुक्लाहिं शुक्लशैलं च दृष्ट्वा श्रियमवाप्नुयात्।
यं पश्यन्ति मृतं स्वप्ने स भवेच्चिरजीविनः॥७०॥

वह विख्यात कवीन्द्र तथा पण्डितेश्वर होगा। स्वप्न में जिस स्वप्नदर्शी को माता पुत्रवत् अध्ययन कराये, वह सरस्वती पुत्र जैसा सर्वोपरि पण्डित होगा। यदि कोई ब्राह्मण स्वप्नद्रष्टा को स्वप्न में पितृवत पढ़ाये तथा प्रसन्न मन से उसे पुस्तक प्रदान करे तब वह व्यक्ति अद्वितीय पण्डित होगा। साथ ही उसे यशलाभ भी होगा। स्वप्न देखने वाले को यदि स्वप्न में कोई ब्राह्मण महामन्त्र प्रदान करता है, अथवा उसे कोई शिलामयी प्रतिमा दी जाती है, तब उसे अवश्य मन्त्र सिद्ध हो जायेगा, तथापि यहां स्वप्न देखने वाला ब्राह्मण होना चाहिये। स्वप्न में ब्राह्मण को अथवा ब्राह्मणों के झुण्ड को देखकर यदि व्यक्ति उनको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लाभ करता है, वह राजेन्द्र अथवा कवि एवं पण्डित हो जाता है। स्वप्न में ब्राह्मण से भूमि लाभ करता है, वह पृथिवी पति होगा। जिसने यह स्वप्न देखा हो कि उसे कोई ब्राह्मण रथ पर बैठाकर अनेक स्वर्ग का दर्शन करा रहे हैं, वह दीर्घजीवी होगा। नित्य उसकी आयु एवं धन बढ़ेगा। यदि स्वप्न में ब्राह्मण प्रसन्न होकर अन्य ब्राह्मण को कन्यादान करता है, वह भी धनी एवं राजा होगा। (कन्या प्राप्त करने वाला ही धनी एवं राजा होगा।) स्वप्न में सरोवर, समुद्र किंवा नदी देखने वाला, श्वेत सर्प तथा श्वेत पर्वत देखने वाला धनलाभ करता है। स्वप्न में मुर्दा देखने वाला दीर्घजीवी होगा।।६०-७०।।

अरोगी रोगिणं दुःखी सुखिनं च सुखं भवेत्।
दिव्या स्त्री यं प्रवदति मम स्वामी भवानिति[1]॥७१॥

१. क. ०वान्भव।

स्वप्ने दृष्ट्वा च जागर्ति स च राजा भवेद्दृढम्।
स्वप्ने वा कलिकां[1] दृष्ट्वा लब्ध्वा स्फटिकमालिकाम्॥७२॥

स्वप्न में रोगी को देखने वाला रोगी तथा सुखी को देखने वाला सुखी होता है। स्वप्न में यदि कोई दिव्य नारी आकर कहे कि (स्वप्न द्रष्टा से कहे) आप मेरे स्वामी हैं तथा यदि स्वप्नद्रष्टा तभी जाग्रत हो जाये, तब वह स्वप्न द्रष्टा निश्चित राजा होगा। स्वप्न में काली का दर्शन, स्फटिक माला लाभ,॥७१-७२॥

इन्द्रचापं शक्रवज्रं स प्रतिष्ठां लभेद्ध्रुवम्।
स्वप्ने वदति यं विप्रो मम दासो भवति च॥७३॥
हरिदास्यं च मद्भक्तिं स लब्ध्वा वैष्णवो भवेत्।
स्वप्ने विप्रो हरिः शम्भुर्ब्राह्मणी कमला शिवा॥७४॥
शुक्ला स्त्री देवमाता वा जाह्नवी वा सरस्वती।
गोपालिकावेषधरी बालिका राधिका मम॥७५॥

इन्द्रधनुष, इन्द्रवज्र देखने से प्रतिष्ठा लाभ निश्चित होगा। यदि स्वप्न में विप्र कहे कि तुम मेरे दास हो जाओ, तब स्वप्न देखने वाला निश्चित हरिभक्ति एवं मेरा दासत्व लाभ करेगा। वह वैष्णव हो जायेगा। स्वप्न में विप्र हरि शंभु हैं। ब्राह्मणी ही लक्ष्मी, शिवा है। श्वेत वस्त्रावृता अथवा श्वेतवर्णा नारी यदि स्वप्न में परिलक्षित हो, तब देवमाता, जाह्नवी किंवा सरस्वती है। स्वप्न में गोपी वेषधारी बालिका मेरी राधा है॥७३-७५॥

बालश्च बालगोपालः स्वप्नविद्भिः प्रकाशितः।
एष ते कथितो नन्द सुस्वप्नः पुण्यहेतुकः।
श्रोतुमिच्छसि किं वा त्वं किं भूयः कथयामि ते॥७६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० सुस्वप्नकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥७७॥

स्वप्न में लक्षित बालक ही गोपाल रूप हैं। यह बात स्वप्न वेत्ताओं ने कहा है। हे नन्द! इस प्रकार पुण्य के हेतु रूप स्वप्न मैंने कह दिया। अब आपको क्या सुनने की इच्छा है? वही मैं कहूंगा॥७६॥

॥७७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

---

१. क. बालि०।

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण द्वारा आध्यात्मिक उपदेश तथा अशुभ जनित पाप का कथन

नन्द उवाच

श्रीकृष्ण जगतां नाथ सुस्वप्नश्च श्रुतो मया।
वेदसारो नीतिसारो लौकिको वैदिकस्तथा॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि पापं येषां च दर्शने।
यस्मिन्कर्मणि वा वत्स तन्मां कथितुमर्हसि॥२॥
वचनं वेदशास्त्रोक्तं तथा वेदानुयायिनः।
श्रोतुमिच्छन्ति सन्तप्ता लोकास्त्वन्मुखतस्तथा॥३॥
वेदानां जनकस्त्वं च वैदिकानां सतामपि। ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां जगतामपि॥४॥
श्रुतं यत्त्वन्मुखाम्भोजात्प्रमाणं वचनामृतम्।
तेन देहोऽभिषिक्तो मे वत्सविच्छेददाहनः॥५॥
स्वप्ने यच्चरणाम्भोजं सर्वकामफलप्रदम्। ब्रह्मादयो न पश्यन्ति तदद्य दृष्टिगोचरम्॥६॥

नन्दराज कहते हैं–हे कृष्ण! जगन्नाथ! मैंने तुमसे सुस्वप्न वृत्तान्त श्रवण कर लिया। मैंने इसी के साथ तुम्हारे द्वारा कहा गया वैदिक नियम तथा नीतिसार और लौकिक नियमों को भी सुना। हे वत्स! जिन लोगों के दर्शन से अथवा जिन कार्यों को करने से पाप संचार होता है, अब उस सम्बन्ध में सुनने की इच्छा है। अतः तुम वह सब प्रसंग कहो। वेद का जो अनुशीलन करते हैं, वे संसार ताप से सन्तप्त होकर तुम्हारे मुख से वेदशास्त्रोक्त बाते सुनने की कामना करते हैं। हे प्रभो! वेदमार्गानुयायी साधु लोग के, ब्रह्मादि देवता, मुनिगण तथा समस्त जगत् के जनक तुम ही निर्दिष्ट हो। हे वत्स! मैंने तुम्हारे मुखकमल जिस प्रमाणित वचनामृत को सुना है, उससे मेरी विरह दग्ध देह मानो सिंचित हो गई। यह मेरा कैसा अद्भुत भाग्य है! ब्रह्मादि देवता भी स्वप्न में भी इन सर्वकामफलदायक चरणकमल का साक्षात् करने में असमर्थ हैं। उनका ही मैं दर्शन कर रहा हूं॥१-६॥

अतः परं त्वत्पदाब्जं क्व पश्यामि च पातकी।
विण्मूत्रधारी देहो मे निबद्धश्च स्वकर्मणा॥७॥
ईदृशं च दिनं वत्स कदा मम भविष्यति। त्वया ब्रह्मादिनाथेन संवादो मम पापिनः॥८॥
कृपां कुरु कृपानाथ मम दोषं क्षमस्व च। वत्सबुद्ध्या च दुर्नीतं यत्कृतं च महेश्वर॥९॥

हे देव! अब आगे मैं कब तुम्हारे चरणों का दर्शन लाभ कर सकूंगा? मैं पातकी हूं। तभी अपने

कर्मानुसार मैं मल-मूत्र के भंडार इस देह में आबद्ध पड़ा हूं। हे वत्स! मेरा वह शुभ दिन कब आयेगा, जब मैं पापी तुम ब्रह्मा आदि के स्वामी के साथ इस प्रकार का कथनोपकथन कर सकूंगा? हे कृपालु परमेश्वर! मैंने तुमको पुत्र जानकर जो भी अन्याय कार्य तुम्हारे साथ किया है, तुम कृपा करके मेरे वे सभी दोष समाप्त करो। क्षमा कर दो।।७-९।।

ब्रह्मेशशेषमुनयो ध्यायन्ते त्वत्पदाम्बुजम्। सरस्वती श्रुतिर्यस्य स्तवने जडतां व्रजेत्॥१०॥

तुम्हारे चरणकमल का ध्यान ब्रह्मा, महेश्वर, अनन्त, मुनिगण करते हैं। सरस्वती तथा वेद भी तुम्हारा स्तव करने में समर्थ नहीं हैं। ऐसे प्रभु के प्रति मैंने पुत्रबुद्धि रखा!।।१०।।

इत्येवमुक्त्वा नन्दश्च निरानन्दःशुचाऽऽकुलः।
मूर्च्छामाप रुदित्वा च पुत्रविच्छेदविह्वलः॥११॥
संत्रस्तो भगवान्कृष्णो बोधयामास यत्नतः।
परमाध्यात्मिकं ज्ञानं ददौ तस्मै जगत्पतिः॥१२॥

यह कहकर नन्द भावी पुत्र विरह से कातर एवं निरानन्द हो गये। वे शोकाकुल होकर रुदन करते-करते मूर्च्छित हो गये। तब जगत्पति कृष्ण ने सन्त्रस्त होकर उनको समझाते हुये उनसे परम आध्यात्मिक ज्ञान कहना प्रारम्भ किया।।११-१२।।

श्रीभगवानुवाच

हे नन्द जनकश्रेष्ठ सर्वश्रेष्ठ व्रजेश्वर। चेतनं कुरु कल्याण ज्ञानं च परमं शृणु॥१३॥
परमाध्यात्मिकं ज्ञानं ज्ञानिनां च सुदुर्लभम्।
वेदशास्त्रे गोपनीयं तुभ्यमेव ददाम्यहम्॥१४॥
निबोध श्रूयतां नन्द सानन्दः सुसमाहितः। जन्ममृत्युजराव्याधिर्यदभ्यासान्न जायते॥१५॥
स्थिरो भव महाराज व्रजनाथ व्रजं व्रज। ज्ञानं लब्ध्वा सदानन्दः शोकमोहविवर्जितः॥१६॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे नन्द! जनकश्रेष्ठ! सर्वश्रेष्ठ ब्रजेश्वर! अब आप चैतन्य होकर कल्याणप्रद परमज्ञान को सुनिये। जो ज्ञान ज्ञानीगण के लिये भी दुर्लभ है, वेदशास्त्र में गुप्त है, वह परम आध्यात्मिक ज्ञान आपको प्रदान करता हूं। हे नन्दराज! जिस ज्ञानाभ्यास से मानव को जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि उदित ही नहीं होती, यह वह ज्ञान है। हे महाराज ब्रजनाथ! आप स्थिर हो जायें। आप यह ज्ञानलाभ करके सदानन्द एवं शोकमोह रहित होकर ब्रजधाम चले जायें।।१३-१६।।

जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं सचराचरम्। प्रभाते स्वप्नवन्मिथ्या मोहकारणमेव च॥१७॥
मिथ्याकृत्रिमनिर्माणहेतुश्च पाञ्चभौतिकः।
मायया सत्यबुद्ध्या च प्रतीतिं जायते नरः॥१८॥

यह सचराचर संसार जल के बुलबुले के समान है। यह मोह का कारण है। जैसे प्रभातकाल

में जाग्रत होते ही स्वप्न का अस्तित्व नहीं रह जाता, उसी प्रकार से यह संसार है। प्राणीगण मोह के कारण इससे आबद्ध हैं। यह पांचभौतिक देह भी कृत्रिम तथा मिथ्या ही है। मानवगण मात्र माया के प्रभाव से ही इसे सत्य मानकर इस देह को गौरव प्रदान करते हैं।।१७-१८।।

कामक्रोधलोभमोहैर्वेष्टितः सर्वकर्मसु। मायया मोहितः शश्वज्ज्ञानहीनश्च दुर्बलः।।१९।।

निद्रातन्द्राक्षुत्पिपासाक्षमाश्रद्धादयादिभिः ।
लज्जा शान्तिर्धृतिः पुष्टिस्तुष्टिश्चाऽऽभिश्च वेष्टितः।।२०।।

मनोबुद्धिचेतनाभिः प्राणज्ञानात्मभिः सह। संसक्तः सर्वदेवैश्च यथा वृक्षश्च वायसैः।।२१।।

अहमात्मा च सर्वेशः सर्वज्ञानात्मकः स्मृतः।
मनो ब्रह्मा च प्रकृतिर्बुद्धिरूपा सनातनी।।२२।।
प्राणा विष्णुश्चेतना सा पद्मा तु चाधिदेवता।
मयि स्थिते स्थिताः सर्वे गतास्तेऽपि गते मयि।।२३।।

ज्ञानहीन दुर्बल मानव निरन्तर मायामोहित होकर सभी कर्म लोभ-मोह-काम-क्रोध से घिर जाते हैं। निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, श्रद्धा, दया, लज्जा, धृति, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि सभी प्राणीगण के कर्मों में अधिष्ठित है। जैसे कौओं से वृक्ष भरा रहता है, उसी प्रकार से मन, बुद्धि, चेतना, प्राण तथा ज्ञानरूप देवताओं का प्राणीगण पर अधिकार रहता है। मैं सर्वेश्वर प्रभु ही जीवों की आत्मा हूं। शंकर जीवों के ज्ञान हैं। ब्रह्मा मन हैं। सनातनी प्रकृति ही बुद्धिरूपा हैं। प्राण विष्णु स्वरूप, लक्ष्मी चेतना स्वरूपा अधिष्ठातृ देवता हैं। मेरे स्थित रहने पर ही ये सब देवता स्थित रहते हैं। मैं (आत्मा) जब देह में चला जाता हूं, तब ये सब भी चले जाते हैं।।१९-२३।।

अस्माभिश्च विना देहः सद्यः पतति निश्चितम्।
पाञ्चभूतो विलीनश्च पञ्चभूतेषु तत्क्षणम्।।२४।।
नामसङ्केतरूपं च निष्फलं मोहकारणम्।
शोकश्चाज्ञानिनां तात ज्ञानिनां नास्ति किञ्चन।।२५।।

मुझ आत्मा के चले जाने पर यह देह गिर जाती है। यह निश्चित है। देहस्थ पञ्चमहाभूत बाह्य महाभूतों में विलीन हो जाते हैं। हे तात! मानवगण का संकेतरूप,नाम तथा यहां का सांकेतिक रूप जो कुछ है, वह सब निष्फल है। यह सब मोह का कारण है। इस संसार के लिये ज्ञानीजन शोक नहीं करते। केवल अज्ञानी ही शोकाभिभूत हो जाते हैं।।२४-२५।।

निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः।
लोभादयो ह्यधर्मांशास्तथाऽहंकारपञ्चमः।।२६।।

ते ब्रह्मविष्णुरुद्रांशा गुणाः सत्त्वादयस्त्रयः ज्ञानात्मकः शिवो ज्योतिरहमात्मा च निर्गुणः।।२७।।

यदा विशामि प्रकृतौ तदाऽहं सगुणः स्मृतः। सगुणा विषया विष्णुब्रह्मरुद्रादयस्तथा॥२८॥
धर्मो मदंशो विषयी शेषः सूर्यः कलानिधिः।
एवं सर्वे मत्कलांशा मुनिमन्वादयः सुराः॥२९॥

यहां की निद्रा आदि सभी शक्तियां प्रकृति के अंश से उत्पन्न हैं। लोभ आदि तथा अहंकार की उत्पत्ति अधर्म के अंश से होती है। देहस्थित सत्व विष्णु का अंश है। देहस्थ रजोगुण ब्रह्मा का अंश है तथा तमोगुण रुद्रांश है। शिव देह में ज्ञानरूप हैं। मैं (कृष्ण) आत्मारूप से देह में स्थित रहता हूं। मैं प्रकृति से मिलित होकर ही सगुण होता हूं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादि सभी सगुण विषय है। मैं ही इन त्रिदेवरूप में प्रकट होकर सब कार्य करता हूं। धर्म, अनन्त, सूर्य, चन्द्र मेरे ही अंश से उत्पन्न हैं। मुनिगण, मनुगण तथा सभी अन्य देवगण मेरे कलांश से उत्पन्न होते हैं। ये विषयी कहे गये हैं॥२६-२९॥

सर्वदेहे प्रविष्टोऽहं न लिप्तः सर्वकर्मसु। जीवन्मुक्तश्च मद्भक्तो जन्ममृत्युजराहरः॥३०॥
सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्कीर्तिमान्पण्डितः कविः।
चतुस्त्रिंशद्विधः सिद्धः सर्वकर्मोपहारकः[१]॥३१॥
तमुपैमि स्वयं सिद्धं भक्तस्त्वन्यन्न वाञ्छति।
द्वाविंशतिविधं सिद्धं सिद्धिसाधनकारणम्॥३२॥
मन्मुखाच्छ्रुयतां नन्द सिद्धमन्त्रं गृहाण च।
अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा॥३३॥

मैं सभी प्राणीगण की देह में प्रविष्ट होकर भी उनसे लिप्त नहीं रहता। सभी देहों में मैं व्याप्त तो रहता हूं, तथापि उनके कर्मों में मैं लिप्त नहीं रहता। मेरे भक्त जीवन-मुक्त, जन्म-मरण-जरा का हरण करने वाले होते हैं। वे भक्त सर्वसिद्धेश्वर, श्रीमान्, कीर्त्तिशाली, विद्वान्, कवि हो जाते हैं! मेरे भक्त का आश्रय स्वयमेव सर्वसाधनकारण ३४ सिद्धियां ग्रहण कर लेती हैं, तथापि मेरा भक्त कदापि इन सिद्धियों की कामना नहीं करता! ये सिद्धियां जो साधन करता है, उसके लिये २२ प्रकार की होती हैं। हे नन्द! आप इनको मुझसे सुनकर सिद्धमन्त्र ग्रहण करें। ये हैं अणिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, लघिमा॥३०-३३॥

ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता। दूरश्रवणमेवेति परकायप्रवेशनम्॥३४॥
मनोयायित्वमेवेति सर्वज्ञत्वमभीप्सितम्। वह्निस्तम्भं जलस्तम्भं चिरञ्जीवित्वमेव च॥३५॥
वायुस्तम्भं क्षुत्पिपासानिद्रास्तम्भनमेव च।
कायव्यूहं च वाक्सिद्धिं मृतानयनमीप्सितम्॥३६॥

---

१. क. ०पकार०।

सृष्टीनां करणं चैव प्राणाकर्षणमेव च।
ॐ सर्वेश्वरेश्वराय[१] सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहेति॥३७॥

ईशित्व, वशित्व, कामवसायित्व, दूरश्रवण, परकाया प्रवेश, मनोयायित्व अर्थात् मनोवेग से आना-जाना, सर्वज्ञत्व, अग्निस्तम्भ, जलस्तम्भ, दीर्घायुत्व, वायुस्तम्भन, क्षुधा-पिपासा-निद्रा स्तम्भन, नाना देह रचना (कायव्यूह), वाक्सिद्धि, मृतक को बुलाना, (किसी वस्तु की सृष्टि करना, प्राण का आकर्षण, प्राणदान। इसका मन्त्र है-"ॐ सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहा।"।।३४-३७।।

अयं मन्त्रो महागूढः सर्वेषां कल्पपादपः।
सामवेदे च कथितः सिद्धानां सर्वसिद्धिदः॥३८॥
अनेन योगिनः सिद्धा मुनीन्द्राश्च सुरास्तथा। शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्सताम्॥३९॥
यदि नारायणक्षेत्रे हविष्यान्नरतो जपेत्।
गत्वा कुरु जपं तात काशिकां मणिकर्णिकाम्॥४०॥

यह मन्त्र महागूढ़ तथा कल्पवृक्षवत् है। यह सिद्धों को सर्वसिद्धि देने वाला मन्त्र सामवेद में कहा गया है। योगी, मुनि तथा देवता इसी से सिद्धिलाभ कर लेते हैं। यह मन्त्र सौ लक्ष जप करने से सिद्ध होता है। (एक कोटि जप)। हे तात! आप इसका जप काशी क्षेत्रस्थ मणिकर्णिका में करें। (वहां हविष्य भक्षण करते जप करें)।।३८-४०।।

श्रृणु नारायणक्षेत्रं जलाधस्तच्चतुष्टयम्।
अत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामी कदाचन॥४१॥
ज्ञानं चात्र मृते लोके मूर्तिर्भवति तस्य वै।
व्रतं[२] विनाऽपि मन्त्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः॥४२॥
व्रजं कुरु पवित्रं च व्रजनाथ व्रजं व्रज। पापं यद्दर्शने तात कथयामि निशामय॥४३॥

अब मैं आपको नारायण क्षेत्र का संधान देता हूं। नदी के जलप्रवाह से लेकर ४ हाथ तक का स्थान (भूमि) नारायण क्षेत्र है। इस स्थान के स्वामी केवल नारायण हैं। अन्य कोई नहीं है। इस ४ हाथ भूमि पर जो मृत होता है, वह ज्ञान एवं मुक्ति दोनों पा लेता है। इस स्थान पर व्रत न भी करे तथा केवल जपमात्र करे। इतने से ही व्यक्ति को मुक्तिलाभ होगा। यह निःसंशय जाने। हे व्रजनाथ! आप व्रजधाम जायें तथा उसे पावन करे। हे तात! अब मैं उनका वर्णन करता हूं, जिनके दर्शन से पाप होता है।।४१-४३।।

दुःस्वप्नं पापबीजं च केवलं विघ्नकारणम्।
गोघ्नं च ब्राह्मणघ्नं वा कृतघ्नं कुटिलं तथा॥४४॥

---

१. क. ०श्वरा०।
२. क. ब्रजानेना०।

देवघ्नं पितृमातृघ्नं पापं विश्वासघातिनम्।
मिथ्यासाक्षिप्रदातारं यं चाऽऽतिथ्यविवञ्चनम्॥४५॥
ग्रामयाजिनमेवेति देवविप्रस्वहारिणम्। अश्वत्थघातिनं दुष्टं शिवविष्णुविनिन्दकम्॥४६॥
अदीक्षितमनाचारं सन्ध्याहीनं द्विजं तथा। देवलं वृषवाहं च शूद्राणां सूपकारकम्॥४७॥
शवदाहं च शूद्राणां शूद्रश्राद्धान्नभोजिनम्।
अवीरां छिन्ननासां च देवब्राह्मणनिन्दकाम्॥४८॥
पतिभक्तिविहीनां च विष्णुभक्तिविहीनकाम्।
शूद्राणां विधवां चैव चाण्डालीं व्यभिचारिणीम्॥४९॥
शश्वत्कोपयुतं दुष्टमृणग्रस्तं च जारजम्। चौरं मिथ्यावादिनं च शरणागतयायिनम्[1]॥५०॥
मांसापहारिणं चैव ब्राह्मणं वृषलीपतिम्। ब्राह्मणीगामिनं शूद्रं द्विजं वाधुर्षिकं तथा॥५१॥
अगम्यागामिनं दुष्टं चतुर्वर्णं नराधमम्। माता सपत्नीमाता च श्वश्रूश्च भगिनी सुता॥५२॥
गुरुपत्नी पुत्रपत्नी सोदरस्य प्रिया सती। मातृष्वसा पितृष्वसा भागिनेयप्रिया तथा॥५३॥
मातुलानी नवोढा च पितृव्यस्त्री रजस्वला। पितृमातृप्रसूश्चैव चागम्याष्टादश स्मृताः॥५४॥
कीर्तिताः सामवेदे च परिपाल्याः सतां व्रज।
एता दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च ब्रह्महत्यां लभेन्नरः॥५५॥

दुःस्वप्न दर्शन पाप का बीजरूप तथा केवल विघ्नों का कारण है। गो हत्यारे, ब्रह्महत्यारे, कुटिल, देवघन (देवनाशक) मातृ-पितृघाती, विश्वासघाती, मिथ्यागवाही देने वाले, अतिथि से वंचना करने वाले, पापकर्मी, गांवों में घूम-घूम कर यज्ञ कराने वाले, देव द्रव्य का हरण करने वाले, ब्रह्मस्व हरण करने वाले (ब्राह्मणों की वृत्ति का हरण करने वाले), पीपल का पेड़ काटने वाले, शिवनिन्दक, विष्णु निन्दक, दुष्टलोग, दीक्षा रहित, दुराचारी, सन्ध्या रहित ब्राह्मण, देवल (पुजारी), बैल पर सामान लादने वाले, शूद्र का भोजन पकाने वाले, शूद्र के श्राद्धान्न का भोजन करने वाले, शूद्र का शव ढोने वाले, पति-पुत्रविहीन नारी, नाककटी नारी, देव-ब्राह्मण निन्दक नारी, पति तथा विष्णुभक्तिहीन नारी, विधवाशूद्रा, चाण्डाली, व्यभिचारिणी, ऋणग्रस्त व्यक्ति, सदा क्रोधी व्यक्ति, वर्णसंकर व्यक्ति, चौरकर्मी, झूठे, शरणागत को त्यागने वाले, मांसहरण करने वाले, शूद्रा नारी का पति ब्राह्मण, ब्राह्मणी के साथ रमण करने वाला शूद्र, ब्याज कमाने वाला ब्राह्मण, अगम्या नारी से रमण करने वाला व्यक्ति, चारों वर्णों में नराधम व्यक्ति, माता-पिता की अन्य पत्नी, सास, बहन, पुत्री, गुरुपत्नी, पुत्रपत्नी, भाई की पत्नी, पतिव्रता, मौसी, बुआ, भानजा की पत्नी, नवोढा स्त्री, चाची-ताई, रजस्वला नारी, पिता की माता (दादी), नानी, ये १८ स्त्रियां सामवेद में अगम्या कही गई हैं। हे व्रजराज! सज्जन व्यक्ति इनका सम्यक् रूप से पालन करें। इनको अशुद्धभाव से स्पर्श करने तथा देखने से मनुष्य को ब्रह्महत्या पातक लगता है।॥४४-५५॥

---

१. क. ०तदायि०।

तस्माद्दैवेन ता दृष्ट्वा सूर्यं दृष्ट्वा[१] हरिं स्मरेत्।
कामतो यदि पश्यन्ति विनिन्द्यास्ते भवन्ति वै॥५६॥
तस्मात्सन्तो न पश्यन्ति शापभीता व्रजेश्वर।
राहुग्रस्तं रविं सोमं न पश्यन्ति विपश्चितः॥५७॥

यदि इनके प्रति (कामभावयुक्त) दृष्टि पड़ जाये, तब प्रायश्चित्त हेतु सूर्य दर्शन किंवा हरिनाम स्मरण करे। इनको जो कामुक दृष्टि से देखता है, वह निन्दित होता है। हे ब्रजेश्वर! तभी शापभय से भयभीत सत्पुरुष इनको नहीं देखते। इसी प्रकार जो बुद्धिमान, धीमान् लोग हैं, वे सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण काल में सूर्यचन्द्र पर दृष्टिपात नहीं करते।।५६-५७।।

जन्माष्टसप्तरिः फाङ्कदशमस्थे दिवाकरे।
जन्मर्क्षे निधने चापि चतुर्थेऽपि कलानिधौ॥५८॥
सर्वैरंशैर्न पश्यन्ति कम्पितं चन्द्रभास्करम्।
नष्टचन्द्रो न दृश्यश्च भाद्रे मासि सितासिते॥५९॥
चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रः परित्यक्तो मनीषिभिः। चन्द्रस्तारापहरणं कलङ्कमतिदुष्करम्॥६०॥
तस्मै ददाति हे नन्द कामतो यदि पश्यति।
अकामतो नरो दृष्ट्वा मन्त्रपूतं जलं पिबेत्॥६१॥

जब सूर्य सप्तमस्थ अष्टमस्थ, जन्मस्थ, द्वादशस्थ किंवा दशमस्थ नवमस्थ हो, तब सूर्य का तथा जन्म नक्षत्र से जब चन्द्रमा चतुर्थ एवं अष्टमस्थ हो, तब चन्द्र का (ग्रहणकाल में) दर्शन न करे। भाद्रमासीय शुक्ल-कृष्णपक्ष में चतुर्थी को उगा चन्द्र नष्टचन्द्र कहा गया है। इसे न देखें। (यह निषेध भाद्रमासीय दोनों चतुर्थी हेतु है। हे नन्दराज! जो मनुष्य ज्ञानतः स्वेच्छा से नष्ट चन्द्रदर्शन करता है, चन्द्रमा उसे अतीव दुष्कर कलंक प्रदान करता है, जो चन्द्रमा को गुरुपत्नी तारा के हरण से लगा था। यदि हठात् अनिच्छा से इस तिथि पर चन्द्रदर्शन हो जाये, तब मन्त्र से अभिमंत्रित जल का पान करे।।५८-६१।।

तदा शुद्धो भवेत्सद्यो निष्कलङ्की महीतले। सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः॥६२॥
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः। इति मन्त्रेण पूतं च जलं साधुः पिबेद्ध्रुवम्।
इति ते कथितं सर्वमपरं कथयामि ते॥६३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० अष्टसप्ततितमोऽध्यायः।।७८।।

—✻✻✻—
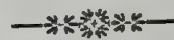
इस उपाय से अनिच्छाकृत चन्द्रदर्शन से व्यक्ति इस धरती पर तत्काल कलंक रहित हो जायेगा। वह मत्र है–"सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः।।"

१. क. स्पृष्ट्वा।

"हे बालक सुकुमार! तुम रुदन मत करो। सिंह ने प्रसेन का वध किया। जाम्बवान ने सिंह का वध करके यह स्यमन्तक मणि ले लिया, जो अब तुम्हारी है।" इस मन्त्र से पवित्र किया जल साधु सज्जन व्यक्ति पान करके शुद्ध हो जायेंगे। यह मैंने सब कह दिया। अब क्या कहूं?॥६२-६३॥

॥७८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

राहुग्रस्त सूर्य क्यों न देखें, इसका वर्णन

नन्द उवाच

राहुग्रस्तः कथं सूर्यश्चन्द्रो वाऽपि जगत्प्रभो।
नेष्टश्चन्द्रः कथं भाद्रे चतुर्थ्यां चासिते सिते॥१॥
वेदानां जनकस्त्वं च कं पृच्छामि त्वया विना।
वेदे पुराणे गोप्यं यन्न जानन्ति विपश्चितः।
इति तद्वचनं श्रुत्वा चेदं वचनमब्रवीत्॥२॥

नन्दराज कहते हैं—"हे जगत्प्रभु! किस कारण से चन्द्र-सूर्य राहुग्रस्त होते हैं तथा किसलिये भाद्रमास के दोनों पक्ष की चतुर्थी के दिन चन्द्रमा दृष्टि में नहीं आने चाहिये? तुम वेदों के जनक हो। तुम्हारे अतिरिक्त मैं किससे यह प्रश्न करूं? यह तत्व तो वेद-पुराण में भी गुप्त है। यहां तक कि विद्वान् लोग भी इसका रहस्य नहीं जानते।" भगवान् ने नन्दराज का यह वचन सुनकर उनसे कहा—॥१-२॥

श्रीभगवानुवाच

अतथ्यं वचनं चेदं निषिद्धं वैदिकैरपि। क्षमस्व नन्द भद्रं ते प्रश्नमन्यं कुरुष्व माम्॥३॥
विश्वस्तं वचनं तात न प्रकाश्यं मनीषिभिः।
विघ्नः प्रकाशे भवति सतां छिद्रं च दैवतः॥४॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे नन्दराज! वेदज्ञों ने यह रहस्य प्रकट करने से निषेध किया है। अतः यह कहा नहीं जा सकता। मुझे क्षमा करके अन्य विषय पूछिये। आपका मंगल हो। हे तात! दैववशात् घटित सज्जनों का छिद्र (भेद) विद्वान् लोग प्रकट नहीं करते। किसी का गूढ़ रहस्य भी मनीषी लोगों के लिये प्रकट कर देना उचित नहीं माना जाता! ऐसी विश्वस्त बात कही नहीं जाती। इससे विघ्न हो जाता है।॥३-४॥

नन्द उवाच

कथयस्व जगन्नाथ न भक्ते वञ्चनं कुरु। अदृश्यौ चापि देवेशौ राहुग्रस्तौ च पुण्यदौ॥५॥

नन्दराज कहते हैं—हे जगन्नाथ! भक्त के साथ वंचना मत करो। इसे कहो कि देवेश्वर सूर्य-चन्द्रमा ग्रहणकाल में राहुग्रस्त स्थिति में भी क्यों पुण्य देते हैं?॥५॥

श्रीभगवानुवाच

श्रृणु नन्द प्रवक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम्।
यां श्रुत्वा निष्कलङ्कश्च तीर्थस्नायी भवेन्नरः॥६॥

सर्वपातकिनं दृष्ट्वा यत्पापं लभते नरः। आख्यानश्रवणेनैव भस्मीभूतं भविष्यति॥७॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे नन्दराज! जिस पुरातनी कथा को सुनकर मानव कलंक रहित तथा तीर्थस्नान का फलभागी हो जाता है, मैं तुम्हारे द्वारा पूछे गये उस विषय को कहता हूं। श्रवण करो। मनुष्य नित्य पातकी लोगों को देखने के कारण जो पाप संचित करता है, वह इस आख्यान के श्रवण से भस्मीभूत हो जाता है॥६-७॥

एकदा जमदग्निश्च महाकौतूहलान्वितः। रेणुकासहितस्तुष्टो जगाम नर्मटातटम्॥८॥
निर्जने नर्मदातीरे विजहार तया सह। नवोढया च सुन्दर्या नवयौवनयुक्तया॥९॥
सुवेषया सुस्मितया रत्नभूषणयुक्तया। नतया स्तनभारेण श्रोणीभारेण मन्दया॥१०॥
सुन्दरीणामतुलया श्वेतचम्पकवर्णया। सुपूर्णचन्द्राननया कटाक्षयुतया तथा॥११॥
अतीवसूक्ष्माम्बरया कामबाणार्तया व्रज। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गसंभोगेनापि मूर्च्छया॥१२॥

एक बार की बात है, ऋषि जमदग्नि कौतुकान्वित होकर पत्नी रेणुका के साथ आनन्दमग्न होकर नर्मदा तट पर गये। तदनन्तर वे अपनी नवविवाहिता पत्नी रेणुका के साथ निर्जन नर्मदा तट पर विहाररत हो गये। ये रत्नभूषण से सज्जिता मन्द मुस्कान वाली रेणुका अपने स्थूल स्तनों के भार से कुछ झुक गयी थीं। वे स्थूल नितम्बों के भार के कारण मन्दगति से चलने को विवश थीं। वे अतुलनीय सुन्दरी श्वेतचम्पा के वर्णों वाली, पूर्णिमा के चन्द्र के समान मुखछवियुता तथा बांकी चितवन वाली थीं। उन्होंने अत्यन्त महीन वस्त्र पहना था। ऐसी सुन्दरी रेणुका कामबाण के प्रहार से आर्त्त हो गयी थीं। हे ब्रजराज! उनके अंग पुलकित हो उठे थे तथा वे संभोगसुख से सुध-बुध खोकर मूर्च्छित प्रायः हो गयी थीं॥८-१२॥

पुंस्कोकिलयुते रम्ये शब्दिते सुमधुव्रते। सुगन्धिवायुसंयुक्ते पुष्पतल्पान्विते शुभे॥१३॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वस्त्रमाल्यधरं मुनिम्। महारासरसाढ्यं तमुवाच भास्करः स्वयम्॥१४॥
वेदकर्तुः प्रप्रौत्रस्त्वं ब्रह्मणश्च जगत्पतेः। चतुर्वेदविधेयेषु सुनिष्णातः सदा शुचिः॥१५॥
वेदाङ्गकर्ता धर्मज्ञः श्रेष्ठो वेदविदां वरः। महातपस्वी तेजस्वी ब्रह्मचारी च सुव्रती॥१६॥

युष्मद्विधोक्तं शास्त्रं च पठित्वाऽन्यश्च पण्डितः।
वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः॥१७॥
धर्मं त्यजति धर्मज्ञो ह्यधर्मेण रतः कथम्। दिवामैथुनदोषं च वक्ति वेदो विशेषतः॥१८॥
अहं च धर्मिणां साक्षी तेन त्वां कथयामि ते।
सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा तत्याज मैथुनं द्विजः॥१९॥

उस समय वह स्थान सुगन्धित वायुयुक्त था तथा कोकिल की तथा मधुकरों की ध्वनि से गूंज रहा था। उस रम्य प्रदेश में पुष्पशय्या पर शायित समस्त देह में चन्दन लगाये महारासरस से सराबोर वस्त्र-मालाधारी मुनिवर को यह कामक्रीड़ा करते देखकर स्वयं सूर्यदेव कहने लगे–"हे मुनिवर! आप तो जगत्पति वेदप्रणेता ब्रह्मा के प्रपौत्र हैं। स्वयं भी चतुर्वेदों के ज्ञाता हैं। आप समस्त वेदोक्त कर्त्तव्य के ज्ञाता, महातपस्वी, तेजस्वी, ब्रह्मचारी तथा उत्तमव्रताचरण करने वाले हैं। आप जैसे विद्वानों द्वारा कहे शास्त्रों को जानकर अन्य लोग पाण्डित्य लाभ कर लेते हैं। आप को ज्ञात है कि वेदोक्त कार्य ही करना धर्म है। इसके विरुद्ध आचरण ही अधर्म है। हे मुनिप्रवर! आप स्वयं धार्मिक होकर भी धर्म त्याग करके अधर्मरत क्यों हो गये? देखिये! दिन के समय मैथुन का विशेष दोष कहा गया है। मैं तो जगत् में धर्म-कर्म का साक्षी हूं। तभी आपसे यह कह रहा हूं।" सूर्य का यह वचन सुनकर उन ब्राह्मण ने मैथुन त्याग दिया॥१३-१९॥

दृष्ट्वा पुरा विप्ररूपं सूर्यं तेजस्विनं सुरम्। उवाच सूर्यं रक्तास्यः कोपलज्जासमन्वितः।
रेणुका लज्जिता तत्र विधार्य वाससी सती॥२०॥

सूर्य देव का यह कथन सुनकर जमदग्नि ने सामने विप्ररूप में उपस्थित तेजस्वी सूर्य को देखा। लज्जा तथा क्रोध के कारण जमदग्नि का मुख रक्तवर्ण हो गया था। तभी रेणुका ने तत्काल लज्जा पूर्वक वस्त्र पहन लिया॥२०॥

जमदग्निरुवाच

को भवान्पण्डितंमन्यो न त्वदन्योऽस्ति पण्डितः।
अहं भृगोर्भगवतः शिष्यस्त्वं कश्यपस्य च॥२१॥
चतुर्वेदांश्च जानामि धर्माधर्मनिरूपणे। वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः॥२२॥
अज्ञानी पुरुषः शश्वज्जडितश्च स्वकर्मणा। तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा॥२३॥
अन्ये भवांश्च धर्मश्च साक्षी सर्वे च कर्मणाम्।
फलदाता च शास्त्रज्ञो यतस्त्वत्तनयः सदा॥२४॥
न वैष्णवानां शास्तारो यूयमस्माकमेव च।
न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्॥२५॥

ऋषि जमदग्नि कहते हैं–पाण्डित्य का अभिमानी कौन है? आप स्वयं विचार करिये। आप मानते हैं कि आपके अतिरिक्त कोई पण्डित ही नहीं है। मैं भगवान् भृगु का शिष्य हूं। आप कश्यप के शिष्य हैं। मैं धर्म–अधर्म के निरूपण में चारों वेद का ज्ञाता हूं। मुझे यह भी ज्ञात है कि वेदोक्त धर्म क्या है तथा उसके विरुद्ध क्या है? अतः अधर्म का भी मुझे ज्ञान है। अज्ञानी लोग सदा कर्म-बन्धन से जड़ित तथा जड़ की तरह हो जाते हैं। जैसे अग्नि सर्वभक्षी होने पर भी पवित्र है इसी प्रकार तेजस्वी को कोई दोष नहीं लगता (समरथ के नहिं दोष गोसाईं, रवि पावक सुरसरि की नाईं)। अन्य देवता, आप तथा धर्मदेव–ये सभी कर्म के साक्षी ही हैं। आपके शास्त्रज्ञाता पुत्र (यम) तो धर्म का फल भी देते हैं। आप लोगों में से कोई भी वैष्णवों पर शासन नहीं कर सकता। वासुदेव के भक्तगण का कभी भी अशुभ नहीं होता।।२१-२५।।

हरेः सुदर्शनं चक्रं शश्वद्रक्षति वैष्णवान्। नारायणश्च भगवान्स्वयं ब्रह्मा च शंकरः॥२६॥

शास्ता यमश्च नास्माकं त्वं वै नापि दिवाकर।
राजपुत्रो यथा स्थाने वयं स्वच्छन्दगामिनः॥२७॥

वैष्णवों की रक्षा सतत् सुदर्शन चक्र करता है। उसे यह हरि की आज्ञा जो है। हे सूर्यदेव! ये देव नारायण भगवान् रूप स्वयं ब्रह्मा, शङ्कर, यम, आप भी वैष्णवों के शासक नहीं हैं। हे सूर्यदेव! मैं तो खेल-खेल में एक क्षण में इन्द्र को भी समाप्त करने में समर्थ हूं। हम वैष्णव तो राजकुमार के समान स्वच्छन्दगामी हैं।।२६-२७।।

शक्तोऽहं भस्मसात्कर्तुं यमं सर्वसुरांस्तथा। महेन्द्रप्रभृतीन्सूर्य क्षणेनैवावलीलया॥२८॥

कस्त्वं धर्मप्रवक्ता मे याहि स्वस्थानमेव च।
मम शास्ता तु भगवाञ्छ्रीकृष्णः प्रकृतेः परः॥२९॥

मैं तो सभी देवता तथा यम, महेन्द्र तथा सभी देवगण को भस्म करने में समर्थ हूं। हे सूर्य! आप मुझे धर्मोपदेश देने वाले कौन? आप अपने स्थान जायें। मेरे शासक हैं प्रकृति से परे श्रीकृष्णदेव।।२८-२९।।

अद्य मे निर्जने स्थाने रसभङ्गस्त्वया कृतः।
मम शापात्पाप दृश्यो राहुग्रस्तो भविष्यसि॥३०॥
द्रष्टुं त्वां ये घनाः सर्वे दूरीभूता भवन्ति ते।
त्वामाच्छन्नं करिष्यन्ति वायुना प्रेरितास्तथा॥३१॥

स्वतेजसा भवान्गर्वाद्धततेजा भविष्यसि। मेघाच्छन्नः स्वल्पतेजा राहुग्रस्तो भवान्भव॥३२॥

आपने इस निर्जन स्थान में आकर मेरा रसभंग कर दिया। अतः मेरा यह शाप है कि आप राहु से ग्रस्त होंगे। अभी तक आपके अवलोकनार्थ समागत मेघ सदैव आपसे दूर रहते थे, तथापि अब वायु से प्रेरित मेघ आपको ढ़क लिया करेंगे। आपको जो अपने तेज का अभिमान है, वह मेघ द्वारा

आच्छादित होने के कारण हीन हो जायेगा। आप तब हततेजा रहेंगे। आप राहु से आच्छन्न होकर तथा मेघ से आच्छन्न होकर हततेज हो जायेंगे।।३०-३२।।

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा भगवान्भास्करः स्वयम्।
ततः पुटाञ्जलिर्भूत्वा तुष्टाव मुनिपुङ्गवम्।।३३।।

ब्राह्मण जमदग्नि का वचन सुनकर स्वयं भगवान् भास्कर हाथ जोड़कर जमदग्नि की स्तुति करने लगे।।३३।।

भास्कर उवाच

अवध्याः सर्वे धर्मज्ञ धन्या मान्याः पुरस्कृताः।
नारायणश्च भगवाञ्छंभुर्ब्रह्मा स्वयं प्रभुः।।३४।।
गणेशश्चापि शेषश्च धर्मश्चापि सनातनः। स्तुवन्ति ब्राह्मणं सर्वे विप्ररूपी जनार्दनः।।३५।।
विप्रदत्तश्च यो ब्रह्मन्वयमस्मन्मुखो द्विजः। हुताशनश्च द्विमुखाः सुराः सर्वे द्विजो वरः।।३६।।
क्षमस्व वैष्णवः शुद्धः स्वधर्मं च समाचर।
वैष्णवानां कुतः कोपो हृदि येषां जनार्दनः।।३७।।

भास्करदेव कहते हैं–हे महर्षि! ब्राह्मणगण अवध्य तथा धन्य, मान्य, सर्वपूजित कहे गये हैं। स्वयं भगवान् नारायण, शंभु, ब्रह्मा, गणेश, अनन्त, सनातन, धर्म सभी ब्राह्मण का स्तव करते हैं। इसका कारण है कि स्वयं ब्राह्मण विप्ररूपेण विद्यमान रहते हैं। हे ब्रह्मन्! इहलोक में जो ब्राह्मण को भोज्य वस्तु दान करता है, हम देवता ब्राह्मण के ही मुख से उसका भक्षण करते हैं। ब्राह्मण एवं अग्नि हमारे मुखस्वरूप हैं। तभी सभी देवता द्विजमुख कहलाते हैं। अग्नि दो मुख हैं, तथापि उनका ब्राह्मणमुख ही प्रधान एवं श्रेष्ठ कहा गया है। आप ऐसे शुद्ध ब्राह्मण हैं। विशेषतया वैष्णव हैं। अतः मुझे क्षमा करके आप स्वधर्म पालन करिये। जिनके हृदय में जनार्दन विराजित हैं, ऐसे वैष्णवों में क्रोध कहां होता है?।।३४-३७।।

अस्माभिः पूजिता विप्रा युष्माभिः पूजिताः सुराः।
परस्परं स्नेहपात्रं चेदमाचरणं द्विज।।३८।।
अहमेवं त्वया शप्तो मया शप्तो भवान्भव।
अन्यथा मां वदन्त्येवं सूर्यं निस्तेजसं जनाः।।३९।।
पराभूतः क्षत्रियेण भविष्यसि द्विजेश्वर। मरणं क्षत्रियास्त्रेण भवतश्च भविष्यति।।४०।।

हम देवता ब्राह्मणों द्वारा पूजित होते हैं। देवताओं द्वारा ब्राह्मणों की पूजा की जाती है। अतः हम दोनों ही परस्परतः एक-दूसरे के प्रेमपात्र हैं। हममें परस्परतः ऐसा ही आचरण है, तथापि आपने मुझे शाप दिया है तभी मैं भी आपको शाप दूंगा। अन्यथा सभी लोग सूर्य को तेजहीन कहेंगे। हे द्विजेश्वर! मेरा शाप यह है कि आप क्षत्रियों से पराजित होंगे तथा क्षत्रियों द्वारा आपकी मृत्यु होगी।।३८-४०।।

सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा चुकोप ब्राह्मणः पुनः।
तं शशापातिरक्तास्यः शंभुना निर्जितो भवान्॥४१॥

सूर्य का वचन सुनकर ब्राह्मण जमदग्नि कुपित हो गये। उनका आनन रक्तवर्ण हो गया। उन्होंने सूर्य को शाप दिया "आपकी पराजय शिव द्वारा होगी।"॥४१॥

उभयोः कलहं ज्ञात्वा कश्यपेन सह व्रज। आजगाम स्वयं ब्रह्मा विधाता जगतामपि॥४२॥

आगत्य ब्रह्मा संत्रस्त [1]बोधयामास भास्करम्।
मुनिश्रेष्ठं च धर्मज्ञं धर्मज्ञानां गुरोर्गुरुः॥४३॥

हे नन्दराज! उन दोनों को कलह करता जानकर स्वयं ब्रह्मा कश्यपऋषि के साथ वहां आये। वहां आकर जगद्विधाता धर्मज्ञ तथा धर्मज्ञ के गुरु ब्रह्मा ने वहां आकर भास्कर से तथा धर्मात्मा मुनिप्रवर जमदग्नि से कहा–॥४२-४३॥

ब्रह्मोवाच

क्षमस्व भास्कर त्वं च साक्षान्नारायणो भवान्।
युष्माकं परिपाल्यश्चाप्यवध्यो ब्राह्मणः सदा॥४४॥

अहं करोमि भवतो विप्रशापान्तमुल्बणम्। अत्राहमागतस्त्रस्तो भृगुणा प्रेरितस्ततः[2]॥४५॥

स्फुटोऽहं प्रेरितश्चापि कश्यपेन मरीचिना।
शान्तो भव सुरश्रेष्ठ साक्षी त्वं सर्वकर्मणाम्॥४६॥
कुत्रचिद्दिवसे ब्रह्मंस्त्वं तत्र कुत्रचित्क्षणम्।
भविष्यसि घनाच्छन्नः सद्यो मुक्तो भविष्यसि॥४७॥
न्यूनातिरक्ते वर्षे च राहुग्रस्तो भविष्यसि।
तत्रादृश्यश्च केषाञ्चित्पुण्यदृश्यो हि कस्यचित्॥४८॥
अन्यथा सर्वकालेन पुण्यदृश्यो भवान्भुवि।
त्वां दृष्ट्वा च नमस्कृत्य सर्वे निष्पापिनो जनाः॥४९॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे भास्कर! तुम तो साक्षात् नारायण ही हो। इन मुनिवर को क्षमा करो। सर्वदा ब्राह्मणगण तुम्हारे परिपाल्य तथा अवध्य हैं। इन विप्र ने तुमको जो शाप दिया है, मैं उसका अन्त कहता हूं। उसे संक्षेप कहता हूं। मैं इसी हेतु यहां त्रस्त होकर आया ; क्योंकि मुझे इस कार्य हेतु भृगु, मरीचि तथा कश्यप ने प्रार्थना किया। उसी कारण उनसे प्रेरित होकर आया हूं। हे सुरश्रेष्ठ! तुम तो सबके सभी कर्मों के साक्षीस्वरूप हो। अतः शान्त हो जाओ। हे ब्रह्मन्! तुम किसी एक दिन क्षणकाल हेतु

१. ब्रह्ममित्रस्तं इति पाठान्तरम्।
२. क. ०तः स्तुतः।

मेघों से ढ़क कर पुनः मुक्त हो जाओगे। तुम न्यून मास वाले तथा अधिक मास वाले वर्षों में राहुग्रस्त हो जाओगे। उस समय तुम किसी व्यक्ति हेतु पापदृश्य, तो किसी के लिये पुण्यदृश्य रहोगे। बाकी सभी समय तुम पृथिवी पर पुण्यदृश्य रहोगे। तब जो कोई तुमको प्रणाम करेगा तथा तुम्हारा दर्शन करेगा वह पाप रहित होगा।।४४-४९।।

जन्मसप्ताष्टरिः फाङ्कचतुर्थे दशमे तथा। जन्मर्क्षे निधने नृणामदृश्यस्त्वं भविष्यसि।।५०।।
अस्तकाले घनाच्छन्ने मध्याह्नस्थे जलेऽपि वा।
अर्धोदिते च काले च पापदृश्यो भविष्यसि।।५१।।
भार्यादुःखनिमित्तेन भार्यया हेतुभूतया। श्वशुरेण शालकेन हततेजा भविष्यसि।।५२।।
अन्यथा तव तेजश्च संज्ञा सहितुमक्षमा।
मालीसुमालियुद्धे च शंभुना त्वं पराजितः।।५३।।

लोगों के जन्मस्थान, सप्तम, अष्टम, द्वादश, नवम तथा चतुर्थ दशम स्थान पर (ग्रहणकाल में) तुम दर्शन योग्य नहीं रहोगे। इसी प्रकार अस्तकाल, मेघाच्छन्न होने के समय, मध्याह्न में, अर्ध उदित काल में जल में छायारूप में तुम अदर्शनीय (न देखने योग्य) रहोगे। (पापदायक रहोगे।) जब तुम्हारी पत्नी तुम्हारे तेज-से पीड़ित होकर वन चली जायेगी तब श्वसुर एवं साला मिलकर तुम्हारे तेज को न्यून (खराद कर) देंगे। नहीं तो पत्नी संज्ञा तुम्हारा तेज ही सहन नहीं कर पायेगी। माली-सुमाली के साथ युद्धकाल में तुम शंभु से पराजित हो जाओगे!।।५०-५३।।

इत्येवमुक्त्वा सूर्यं च बोधयामास ब्राह्मणम्।
नम्रं शापपराभूतं लज्जितं कोपितं व्रज।।५४।।
हे विप्र स्वगृहं गच्छ गच्छ वत्स यथासुखम्।
त्वत्तेजसा क्षणेनैव भस्मीभूतं भवेज्जगत्।।५५।।
सूर्यस्त्वत्परिपाल्यश्च भवान्सूर्यस्य नित्यशः।
परस्परं च पूज्यश्च सम्बन्धः पोष्यपोषकः।।५६।।
हर्यंशेन क्षत्रियेण कार्तवीर्यार्जुनेन च। भविष्यसि न संदेहः पराभूतो द्विजो मृतः।।५७।।
पुरा ते प्राक्तनं सर्वं कदाचिन्न हि खण्डितम्।
नारायणश्च स्वांशेन तव पुत्रो भविष्यति।।५८।।
त्रिःसप्तकृत्वो जगतीं निःक्षत्रां च करिष्यति।
मृत्युस्ते यशसो बीजं भविष्यति महीतले।।५९।।

ब्रह्मा ने यह कहकर सूर्यदेव को प्रबोधित किया था। हे ब्रजेश्वर! जब ब्रह्मा ने सूर्यदेव से यह कहा, तब उन्होंने शाप से पराजित, लज्जा-क्रोध से युक्त नम्र जमदग्नि को भी प्रबोधित किया। उन्होंने

कहा–"हे वत्स! ऋषि जमदग्नि तुम सुख पूर्वक स्वगृह जाओ। तुम्हारे तेज से तो क्षणमात्र में समस्त जगत् भस्मीभूत हो जायेगा। हे मुनिवर! ये सूर्य नित्य तुम्हारे द्वारा पालन योग्य हैं। ये तुम्हारे पूज्य हैं। तुम भी सूर्य द्वारा पालन योग्य तथा उनके पूज्य हो। तुम दोनों के बीच पोष्य-पोषक सम्बन्ध परस्परतः है। हे ऋषि! तुम्हारा पूर्वकृत कर्म कदापि खण्डित नहीं हो सकता। तुम हरि के अंश से उत्पन्न क्षत्रिय कार्त्तवीर्य अर्जुन द्वारा परास्त तथा मृत हो जाओगे, तथापि नारायण के अंश से उत्पन्न तुम्हारा एक पुत्र होगा। वह इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रिय रहित कर देगा। हे विप्रा! पृथिवी पर तुम्हारी मृत्यु भी यश का कारण होगी।।५४-५९।।

इत्वेवमुक्त्वा ब्रह्मा च ययौ गेहं वज्रेश्वर।
प्रययौ जमदग्निश्च भास्करश्च स्वमन्दिरम्।।६०।।
इत्येवं कथितं तात आख्यानं पुण्यकारकम्।
राहुग्रस्ता भास्करश्चाप्यदृश्यो येन हेतुना।।६१।।
चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो भाद्रे मासि सितासिते। अदृश्यो नष्टरूपश्च श्रूयतां येन हेतुना।।६२।।
राहुग्रस्तः कलङ्की वा पुरा शप्तो मया पितः।
सर्वं त्वां कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम्।।६३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० एकोनाशीतितमोऽध्यायः।।७९।।

हे ब्रजेश्वर! यह कहकर ब्रह्मा (अपने) स्वस्थान चले गये। जमदग्नि तथा सूर्य देव भी अपने-अपने गृह चले गये। हे तात! मैंने आपसे यह पुण्यबीज मनोहर आख्यान कह दिया। अब भाद्रमासीय शुक्ला तथा कृष्णा चतुर्थी के उदित चन्द्र को जिस कारण से दर्शनयोग्य नहीं मानते, नष्टरूप कहते हैं तथा चन्द्र जिस कारण पहले अभिशप्त, राहुग्रस्त एवं कलंकी हो गये, हे पिता! वह पुरातनी कथा कहता हूं।।६०-६३।।

।।७९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथाशीतितमोऽध्यायः

चन्द्रग्रहण कारण प्रसंग तथा चन्द्र को गुरुपत्नी तारा का शाप

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा तारा गुरोः पत्नी नवयौवनसंयुता। रत्नभूषणभूषाढ्या वरसूक्ष्माम्बरा सती॥१॥
सुश्रोणी सस्मिता रम्या सुन्दरी सुमनोहरा। अतीव कबरीरम्या मालतीमाल्यभूषिता॥२॥
सिन्दूरबिन्दुना साकं चारुचन्दनबिन्दुभिः।
कस्तूरीबिन्दुनाऽधश्च भालमध्यस्थलोज्ज्वला॥३॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीरञ्जीता। सुवक्रलोचना श्यामा सुचारुकज्जलोज्ज्वला॥४॥
सुचारुसारमुक्ताभदन्तपङ्क्तिमनोहरा। रत्नकुण्डलयुग्मेन चारुगण्डस्थलोज्ज्वला॥५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे पिता! पूर्व में बृहस्पति की पत्नी नवयौवनान्विता सती तारा ने एक बार उत्तम महीन वस्त्र पहना था तथा वह रत्न आभूषणों से भूषिता भी थीं। उन परम रूप लावण्यवती सुन्दरी का नितम्ब प्रदेश अत्यन्त सुन्दर था। मुखमण्डल मन्द मधुर हास्ययुक्त था। उनका जूड़ा मालती माला से गुंथा हुआ था। उनकी शोभा की कोई सीमा ही नहीं थी। उनका ललाट का मध्यस्थल चारों ओर चन्दन की बिन्दी से तथा उसके नीचे कस्तूरी तथा सिन्दूर की बिन्दी से विभूषित था। उनका चरणयुगल उत्तम रत्नसार से बने मधुर शब्दों से झंकृत तथा शब्दायमान नूपुरद्वय से रंजित था। उनकी आंखें उत्तम कज्जल से उज्वल थीं। वे तिरछी चितवन से देख रही थीं। उनकी दन्तपंक्ति उत्तम सुचारु मुक्ताश्रेणी की तरह मनोहर थी। उनके उत्तम रत्नकुण्डलों से उनका उत्तम कपोल प्रकाशित हो रहा था॥१–५॥

कामिनीष्वतुला बाला गजेन्द्रमन्दगामिनी।
सुकोमला चन्द्रमुखी कामाधारा च कामुकी॥६॥
स्वर्गमन्दाकिनीतीरे स्नाता स्निग्धाम्बरा वरा।
ध्यायन्ती गुरुपादं सा स्वगृहं गमनोन्मुखी॥७॥
दृष्ट्वा तस्याश्च सर्वाङ्गमनङ्गबाणपीडितः। भाद्रे चतुर्थ्यां चन्द्रश्च जहार चेतनां व्रज॥८॥

यह गजगामिनी कामिनियों में भी अतुलनीय बाला थीं। ये सुकोमल, चन्द्रमुखी, काम की आधारभूता, कामुकी थी। ये स्वर्ग मन्दाकिनी नदी के किनारे स्नान करके स्नानान्त में गीले कपड़े पहने पति बृहस्पति के चरणद्वय का ध्यान कर रही थीं। इसी प्रकार वे अपने गृह जाने वाली थीं। तभी उनके सर्वाङ्ग को चन्द्रमा ने जब देखा वे अत्यन्त कामबाण से पीड़ित हो उठे। इस प्रकार एक प्रकार से कुछ क्षण सुध खो बैठे। यह घटना भाद्रमासीय चतुर्थी के दिन घटितं हो गई थी॥६–८॥

ज्ञानं क्षणेन सम्प्राप्य रथस्थो रसिको बली। रथमारोहयामास करे धृत्वा च तारकम्॥९॥
कामोन्मत्तः कामिनीं तां समाश्लिष्य चुचुम्ब च।
शृङ्गारं कर्तुमुद्युक्तं तमुवाच गुरुप्रिया॥१०॥

हे ब्रजराज! अगले क्षण जब उनको पुनः चेतना लाभ हो गया, तब उन बली रसिक ने बल पूर्वक तारा का हाथ पकड़ा। तदनन्तर कामी चन्द्रमा ने तारा को खींचकर अपने ही रथ पर बैठाकर उस कामिनी तारा का आलिङ्गन तथा चुम्बन लेकर जब संभोगार्थ प्रयत्न किया, तब तारा चन्द्र से कहने लगीं–॥९-१०॥

तारकोवाच

त्यज मां त्यज मां चन्द्र सुरेषु कुलपांसन। गुरुपत्नी ब्राह्मणीं च पातिव्रत्यपरायणाम्॥११॥
गुरुपत्नीसङ्गमने ब्रह्महत्याशतं भवेत्। गुरुपत्नी विप्रपत्नी यदि सा च पतिव्रता॥१२॥
ब्रह्महत्यासहस्रं च तस्याः सङ्गमने लभेत्। पुत्रस्त्वं तव माताऽहं धैर्यं कुरु सुरेश्वर॥१३॥
धिक्त्वां श्रुत्वा सुरगुरुर्भस्मीभूतं करिष्यति।
पुत्राधिकश्च शिष्यश्च प्रियो मत्स्वामिनो भवान्॥१४॥
स्वधर्मं रक्ष पापिष्ठ मामेवं मातरं त्यज। दास्यामि स्त्रीवधं तुभ्यं यदि मां संग्रहीष्यसि॥१५॥

तारा कहती हैं–हे चन्द्र! मैं ब्राह्मणी हूं। विशेषतया तुम्हारे गुरु की पत्नी हूं तथा पतिव्रता हूं। गुरुपत्नीगमन तो सहस्र ब्रह्महत्या के समान पातक होता है। हे सुरेश्वर! धैर्य धारण करो। तुम मेरे पुत्र हो। मैं तुम्हारी माता हूं। तुमको धिक्कार है। सुरगुरु तुम्हारे इस कुत्सित कार्य को सुनकर तुमको भस्म कर देंगे। हे पापी! तुम तो मेरे पति के ऐसे शिष्य हो, जो उनको पुत्र से बढ़कर प्रिय है। तुम स्वधर्म की रक्षा करो। अब यदि तुम मुझे बलात् पकड़ोगे तब तुमको नारी हत्या का पातक लगेगा॥११-१५॥

विलङ्घ्य तारावचनं तां च संभोक्तुमुद्यतम्।
शशाप तारा कोपेन निष्कामा सा पतिव्रता॥१६॥

परन्तु चन्द्रमा ने तारा का यह कथन सुनकर भी उसके वचनों की अवहेलना किया और वे तारा का उपभोग करने हेतु उद्यत हो गये। यह स्थिति देखकर निष्कामा (कामभाव रहित) पतिव्रता तारा ने चन्द्रमा को शाप दे दिया॥१६॥

राहुग्रस्तो घनग्रस्तः पापदृश्यो भवान्भव।
कलङ्की यक्ष्मणा ग्रस्तो भविष्यसि न संशयः॥१७॥
चन्द्रं शप्त्वा तदा तूर्णं कामदेवं शशाप सा।
तेजस्विना केनचित्त्वं भस्मीभूतो भविष्यसि॥१८॥
चन्द्रस्तारां गृहीत्वा च कृत्वाऽपि रमणं व्रज। क्रोडे निधाय प्रययौ रुदतीं तां शुचाऽन्वितााम्॥१९॥

निर्जने निर्जने रम्ये शैले शैले मनोहरे। सरोनदनदीनां च तीरे तीरे मनोहरे॥२०॥
मधुव्रतपिकोस्ते च पुष्पोद्याने सुपुष्पिते। रम्यायां पुष्पशय्यायां च रेमे रामया सह॥२१॥

(तारा ने चन्द्र को शाप देते हुये कहा)–हे चन्द्र! तुम राहुग्रस्त, मेघाच्छन्न, पापदृश्य कलंकी तथा यक्ष्मारोगी हो जाओ। इसमें संशय नहीं है। तदनन्तर तारा ने चन्द्रमा के इस अपराध के मूल कारण कामदेव को भी शाप देते हुये कहा–"तुम किसी तेजस्वी के द्वारा दग्ध, भस्मीभूत कर दिये जाओगे।" इतने पर भी चन्द्र ने तारा को पकड़ कर उसके साथ रमण किया। हे व्रजराज! चन्द्रमा ने रुदनरत तारा को पकड़कर अपनी गोद में बैठाया तथा वहां से निर्जन, रम्य स्थलों में, मनोहर पर्वतों पर, रमणीय सरोवरों के तट पर, नद-नदियों के तीर पर, भ्रमरों के गुंजार तथा कोकिलों के कूंजन से पूर्ण पुष्पित वाटिकाओं में, खिले पुष्पों की शोभायमान सुन्दर पुष्प शय्याओं पर सुन्दरी तारा के साथ अत्यन्त आनन्द से रमण भी किया।।१७-२१।।

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो मधुपानरतः सुरः। सुखसंभोगसंसक्तो बुबुधे न दिवानिशम्॥२२॥
मलये मलयारण्ये मलयानिलसंयुते। स्यन्दने चन्दनवने पश्चिमोदधिसन्निधौ॥२३॥
त्रिकूटे वटमूले च तत्र चन्द्रसरोवरे। सुचारुशतपत्राणां पत्रे चन्दनचर्चिते॥२४॥
सुचारुचम्पकोद्याने चम्पकानिलपूजिते। क्षीरोदकाञ्चनीभूमौ क्रौञ्चकाञ्चनपर्वते॥२५॥
रत्नशैले मणिमये मणिमन्दिरसुन्दरे। माणिक्यमुक्तासारेण हीरहारेण शोभिते॥२६॥
सुचारुवस्त्रचित्राढ्ये श्वेतचामरदर्पणैः। भूषिते रत्नदीपैश्च देवक्रीडे प्रियस्थले॥२७॥

इस समय मधुपान के कारण उन्मत्त चन्दन चर्चित अंगों वाले चन्द्र इस सुख-संभोगानन्द में इतने विभोर हो गये कि उनको दिन-रात का भी भान नहीं रह गया था। वे कभी मयलानिल युक्त मलयवन में, कभी पश्चिम सागर के निकटवर्त्ती तट पर स्थित त्रिकूट पर, कभी रथ पर, कभी वटवृक्ष के नीचे, कभी चन्द्रसरोवर पर, उत्तम कमल के पत्तों पर जो चन्दन लिप्त होते थे, कभी उत्तम चम्पा के पुष्पयुत उद्यानों में, क्षीरसागर की स्वर्णिम तटभूमि पर, क्रौंच तथा मेरु पर्वत पर, रत्नगिरि पर, कभी मणिमय सुन्दर मणिमन्दिर में जो मणिमाणिक्य तथा मुक्ता के सारभाग से बना था तथा जहां हीरे की मालायें (बंदनवार) शोभायमान थीं जो अति सुन्दर चित्रविचित्र वस्त्रों, श्वेत चामर एवं दर्पण तथा रत्नदीपों से शोभायमान था तथा जो देवक्रीड़ा हेतु देवगण का प्रिय स्थल था।।२२-२७।।

वारुणीं मदिरां पीत्वा वरुणानीसमन्वितः। वरुणो रमते यत्र तत्र रेमे तया सह॥२८॥
पावने पवनोद्याने पारिजातानिलेन च। सुगन्धिमोहिते रत्नमालातीरे च निर्मले॥२९॥
ऋक्षशैले कल्पवृक्षवने वह्निप्रियाश्रमे। पपौ च कामधेनूनां क्षीरं क्षीरोदधेस्तटे॥३०॥

तथा जहां वारुणीमदिरा पान से प्रमत्त वरुण देव अपनी भार्या वरुणानीदेवी के साथ रमणरत रहते हैं, वहां भी चन्द्रमा ने तारा के साथ (बलात्) रमण किया था। चन्द्रमा ने तदनन्तर कभी पवन के उद्यान में जो रत्नमाला नदी के तट पर वृक्ष पारिजात के समीप अत्यन्त सुरभित था, कभी अक्षय पर्वत

पर, कभी कल्पवृक्षवन में तारा से विहार किया। इसके पश्चात् चन्द्रमा क्षीरसागर के तट पर आये और उन्होंने कामधेनु गौ के दुग्ध का पान किया। चन्द्र ने अग्निदेव की पत्नी स्वाहा के आश्रम में भी तारा के साथ विहार किया था।।२८-३०।।

वह्निशुद्धांशुकयुगं वह्निस्तस्मै ददौ मुदा। वरुणो रत्नमालां च रत्नच्छत्रं समीरणः।।३१।।
तत्र दृष्ट्वाऽसुरगुरुं बलिगेहात्समागतम्। प्रणम्य सर्वमुक्त्वा च चन्द्रस्तं शरणं ययौ।।३२।।

अग्नि ने उस समय चन्द्रमा को हर्षित मन से अग्निशुद्ध वस्त्रद्वय, वरुण ने रत्नमाला तथा वायु ने रत्नमय छत्र प्रदान किया। तभी चन्द्र ने बलिगृह से समागत असुरगुरु शुक्राचार्य को देखकर उनको प्रणाम किया तथा अपना सब घटनाक्रम उनसे कहकर उन असुरगुरु की शरणग्रहण किया।।३१-३२।।

शुक्रस्तं बोधयामास वचनं नीतियुक्तितः। निरपेक्षो मुनिश्रेष्ठो वेदवेदाङ्गपारगः।।३३।।

(चन्द्रमा का समस्त वृत्तान्त सुनकर) तब वेदवेदांग तत्वज्ञ निरपेक्ष बुद्धि मुनिप्रवर शुक्राचार्य नीतिपूर्ण वाक्यों से चन्द्रदेव को प्रबोधित करने लगे।।३३।।

शुक्र उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि गुरवे देहि तारकाम्। शंभोश्च गुरुपुत्राय पौत्राय ब्रह्मणश्च वै।।३४।।
पूजिताय सुराणां च देया तस्मै निशापते।
प्रियाय तत्प्रियां दत्त्वा शीघ्रं त्वं शरणं व्रज।।३५।।
गुरुपत्नीं मातृतुल्यां त्यज मद्वचनाद्विधो। कुरु पापक्षयं पापनिवृत्तिस्तु महाफला।।३६।।
सतीनां गुरुपत्नीनां ग्रहणे च बलेन च। ब्रह्महत्यासहस्राणां पातकं लभते जनः।।३७।।
कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावद्वै ब्रह्मणः शतम्।
साम्यं नारायणस्थाने तृणपर्वतयोः सुर।।३८।।
कस्त्वं वत्स हरेः स्थाने कर्मभोगोऽस्ति ब्रह्मणः।
नारायणाश्रिताः सर्वे जीविनस्त्रिविधा भवे।।३९।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० ताराहरणेऽशीतितमोऽध्यायः।।८०।।

—※※※—

शुक्राचार्य कहते हैं—हे वत्स! बृहस्पति ब्रह्मा के पौत्र हैं। वे शिव के गुरुपुत्र हैं। तुम उनको तारा लौटा दो। हे निशापति चन्द्र! तुम शीघ्र देवगुरु देवपूजित एवं अपने प्रिय गुरु की शरण में जाकर उनकी भार्या उनको वापस करो। हे चन्द्र! गुरुपत्नी मातृवत् हैं। मेरी आज्ञा से उनको तत्काल छोड़ो। तुम तत्काल प्रायश्चित्त द्वारा अपना पाप धो डालो। पातकमुक्त होना ही महाफलप्रद कहा गया है। बल पूर्वक पतिव्रता गुरुपत्नी का हरण एवं उसके साथ रमण एक हजार ब्रह्म वध जैसा अपराध है। वह पातकी सौ ब्रह्मा की पूर्ण आयुकाल पर्यन्त कुंभीपाक नरकगामी होता है। हे वत्स! नारायण के समक्ष तो तृण से

पर्वत पर्यन्त सबके प्रति साम्यमय स्थिति रहती है (कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। वे सभी को एक ही दृष्टि से देखते हैं)। ऐसे प्रभु के समक्ष तो ब्रह्मा तक अपना कर्मभोग भोगने हेतु विवश हैं। ऐसी स्थिति में तुम्हारी क्या बात? फलतः जगत् में सभी प्रकार के प्राणी, तीनों प्रकार के स्वेदज, अंडज, जरायुज जीव नारायण की आज्ञा के अधीन ही रहते हैं।।३४-३९।।

।।८०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

तारा के उद्धार का वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शुक्रः सुरश्रेणीं ददर्श सः। आकाशमार्गादायान्तीं रणशस्त्रास्त्रधारिणीम्।।१।।
पताकानां त्रिकोटिश्च शतकोटिर्महारथाः। शतकोटिर्गजेन्द्राणां रथानां तच्चतुर्गुणम्।।२।।
अश्वानां तच्छतगुणं समूहं च सुदारुणम्। पदातीनां समूहं च तुरङ्गेभ्यश्च षड्गुणम्।।३।।
दुंदुभीवाद्यभाण्डानां पञ्चलक्षं तथैव च।
पटहानां त्रिलक्षं च डिण्डिमानां द्विलक्षकम्[१]।।४।।
ऐरावते महेन्द्रं च श्वेताश्वे धर्ममेव च। कुबेरं वरुणं वह्निं रथस्थं पवनं तथा।।५।।
महिषस्थं यमं चैव स्यन्दनस्थं दिवाकरम्। ईशानं च [२]वृषेन्द्रस्थमनन्तं नागवाहम्।।६।।
आदित्यांश्च वसून्रुद्रान्सिद्धगन्धर्वकिन्नरान्। जीवन्मुक्तमुनीनां च समूहं सूर्यवर्चसम्।।७।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे व्रजराज! यह वार्त्ता हो रही थी, इतने में शुक्राचार्य देखते हैं कि वहां संग्राम के लिये उपयोगी शस्त्रास्त्र लेकर देवसेना वाले वीर आकाशमार्ग से आ रहे हैं। उनके साथ तीन कोटि पताका, शतकोटिमहारथ, लक्षकोटि गजराज, उससे चौगुने सामान्य गज, इन चौगुने गजों से सौगुणित दारुण अश्व, अश्व की संख्या से ६ गुने पैदल सैनिक, तीनलक्ष पटह वाद्य, एक लाख डिंडिम वाद्य, ऐरावत पर बैठे देवराज इन्द्र, श्वेत अश्व पर बैठे धर्मदेव, रथारूढ़ कुबेर-अग्नि-पवन-सूर्य, महिषारूढ़ यम, गजेन्द्रारूढ़ ईशानदेव, नाग पर आरूढ़ अनन्तदेव, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, सिद्ध-गन्धर्व-किन्नर, सूर्य तुल्य तेजवान् जीवन्मुक्त मुनिगण को आते शुक्राचार्य ने देखा।।१-७।।

---

१. ख. त्रि॰।
२. क. गजेन्द्र॰।

तान्दृष्ट्वा निर्भयः शुक्रः समाश्वास्य निशाकरम्।
सुराणां द्विगुणं सैन्यमाजुहाव व्रजेश्वर॥८॥
रत्नमालानदीतीरे हुताशनप्रियाश्रमे। तत्र तस्थौ दैत्यसैन्यं पुण्यक्षीरोदधेस्तटे॥९॥
एतस्मिन्नन्तरे शुक्रः समीपे सरसस्तटे। पुण्याश्रमेऽक्षयवटे सुरसैन्यात्समागतम्॥१०॥
ददर्श वृषभस्थं च शंकरं सर्वशंकरम्। त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम्॥११॥
तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रहविग्रहम्। सर्वसंपत्प्रदातारं सर्वज्ञं सर्वकारणम्॥१२॥
सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वरूपं सनातनम्। शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणम्॥१३॥
सस्मितं परमात्मानं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। संत्रस्तः सहसोत्थाय प्रणनाम पदाम्बुजे॥१४॥

हे व्रजराज! इतनी विशाल देवसेना को भी देखकर शुक्र निर्भय थे। उन्होंने चन्द्रमा को आश्वस्त किया और देव सैन्य से द्विगुण सेना वहां बुला लिया। यह समस्त दैत्यसेना रत्नमाला नदी के तटस्थ अग्निप्रिया स्वाहा के आश्रम में तथा क्षीर-सागर के तट पर रुक गयी। तभी शुक्राचार्य ने समीपवर्त्ती पुण्याश्रम के सरोवर-तट पर अक्षय वटवृक्ष के नीचे सुरसेना के साथ आये सर्वमङ्गलप्रद वृषारूढ़ शिव को देखा। वे त्रिशूलपट्टिश अस्त्रधारी तथा श्रेष्ठ बाघाम्बर पहने हुये, परम तेजरूप, भक्तों पर कृपा करने के लिये देहधारी, सर्वसम्पदाप्रदाता, सर्वज्ञ, सर्वकारण, सर्वेश्वर, सर्वपूजित, सर्वरूपधारी, सनातन, शरणागत दीन-आर्त्तजन के रक्षक थे। वे मन्द मुस्कानयुक्त आनन वाले, ब्रह्मतेज से ज्वलन्त, परमात्मा थे। उनको देखकर सहसा हड़बड़ाते शुक्राचार्य उठे तथा उन्होंने महेश्वर के चरणकमलों में प्रणाम किया॥८-१४॥

ददौ शुभाशिषं तस्मै सुप्रसन्नः परात्परः। रत्नसिंहासने तं च वासयामास सादरम्॥१५॥
अथ तत्रान्तरे विप्रं पुरतस्तं[1] ददर्श सः। शान्तं स्वयं विधातारं रत्नस्यन्दनसुन्दरम्॥१६॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नमालाविभूषितम्। प्रसन्नं सुस्मितं शुद्धं जगतामीश्वरं परम्॥१७॥
कर्मणां फलदातारं तपोरूपं तपस्विनाम्। वेदानां जनकं वेदप्रसूं कान्तं मनोहरम्॥१८॥
पुटाञ्जलिस्तदा त्रस्तः प्रणनाम सुरेश्वरम्। रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास भक्तितः॥१९॥
पूजां चकार भक्त्या चतयोश्चरणपङ्कजे। नोचितं कुशलप्रश्नं तयोः कल्याणमेव च॥२०॥
विधाता जगतां नन्द शुक्राचार्यं पुरस्थितम्।
सुनीतिं कथयामास यत्नतः शंभुसम्मतः॥२१॥

तत्पश्चात् उन परात्पर प्रभु शिव ने सुप्रसन्न होकर शुक्र को शुभाशीर्वाद प्रदान किया। शुक्र ने भी शंकर को सादर रत्नों से सजे सिंहासन पर आसीन कराया। तत्पश्चात् शुक्राचार्य ने वहां आये विधाता का दर्शन किया, जो रत्नजड़ित सुन्दर रथ पर बैठे थे। विधाता ब्रह्मा शान्तमूर्त्ति थे। उन मन्द मुस्कानयुक्त

१. सुवसन्त इति पाठान्तरम्।

जगदीश्वर सिद्ध विधाता के गले में रत्नमाला विद्यमान थी। उन्होंने अग्निविशुद्ध दो वस्त्र धारण किया था। वे कर्मफलदाता, तपस्वीगण के तपःस्वरूप, वेदजनक तथा सावित्री पति हैं। उनका रूप अत्यन्त मनोहर है। तदनन्तर शुक्र ने इन सुरेश्वर को भी भक्ति पूर्वक रम्य रत्नसिंहासनासीन कराया तथा भक्ति पूर्वक बैठाकर उनके तथा शिव के चरणकमलों की भक्तिभाव से पूजा किया। ये दोनों देवता तो स्वयं कल्याणरूप हैं, अतः इनसे कुशल प्रश्न करना शुक्र ने उचित नहीं माना। हे नन्दराज! तदनन्तर ब्रह्मा ने शिव की सहमति से अपने सामने स्थित शुक्राचार्य से यत्न पूर्वक उत्तम नीति कहना प्रारम्भ किया।।१५-२१।।

ब्रह्मोवाच

श्रृणु शुक्र प्रवक्ष्यामि दुर्नीतिं शशिनः सुत।
लज्जाकारं त्रिजगतां कर्म वेदबहिष्कृतम्।।२२।।
स्नात्वा गृहोन्मुखीं तारां गुरुपत्नीं पतिव्रताम्।
गृहीत्वा शरणापन्नस्त्वयि पापश्च साम्प्रतम्।।२३।।

प्रस्तुतं देवसैन्यं च पश्य वत्स रणोद्यतम्। अहं शंभुस्त्वत्समीपं तदर्थं च समागतौ।।२४।।

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे पुत्र शुक्र! श्रवण करो मैं चन्द्रमा की वह दुर्मति पूर्ण दुर्नीति कहता हूं जो त्रैलोक्य में लज्जाजनक कर्म है तथा वेद विरुद्ध कार्य है। गुरुपत्नी साध्वी तारा स्नानोपरान्त अपने गृह जाने को उद्यत थीं। तभी चन्द्रमा बल पूर्वक उन गुरुपत्नी का हरण करके अपने साथ ले गया। वह पातकी इस समय तुम्हारी शरण में छिपा है। हे पुत्र! यह विशाल देव सैन्य उसी से युद्धार्थ यहां प्रस्तुत है। मैं तथा शंभु तुम्हारे पास इसी निमित्त आये हैं!।।२२-२४।।

शंभुरुवाच

चन्द्रमानय हे विप्र यद्यात्मशिवमिच्छसि। संहरिष्ये शिरस्तस्य त्रिशूलेन च पापिनः।।२५।।

अन्यथा संहरिष्यामि सर्वदैत्यान्क्षणेन च।
मयि रुष्टे रक्षिता को दैत्यानां च भवेद्द्विज।।२६।।
सद्यः पाशुपतेनैव वाय्वास्त्रेण च साम्प्रतम्।
सुराणां रिपुवर्गं च हरिष्यामि च लीलया।।२७।।

दुर्वाससो मदंशस्य गुरुस्तस्याङ्गिरा मुनिः। परस्पराच्च सम्बन्धाद्गुरुपुत्रो गुरुर्मम।।२८।।
बृहस्पतिश्च तेजस्वी तं भस्मीकर्तुमीश्वरः। न चकार कृपालुश्चेत्प्रियशिष्येण हेतुना।।२९।।

श्रीशम्भु कहते हैं–हे विप्र! शुक्र! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तब शीघ्र चन्द्रमा को ले आओ। मैं अपने इस त्रिशूल से उस पातकी का शिर काट दूंगा। हे द्विज! यदि मेरा कथन नहीं मानोगे तब मैं क्षणकाल में सभी दैत्यों का संहार करूंगा। मेरे रुष्ट हो जाने पर कौन तुम्हारे दैत्यों का रक्षक

होगा? मैं कभी व्यर्थ न जाने वाले पाशुपतास्त्र से देवताओं के शत्रुवर्ग को लीलामात्र में नष्ट कर दूंगा। मुनि अंगीरा मेरे अंश से उत्पन्न दुर्वासा के गुरु हैं। इस परम्परा सम्बन्ध से बृहस्पति मेरे गुरुपुत्र होते हैं। तेजस्वी बृहस्पति भी उस पापी चन्द्र को नष्ट करके भस्म करने में समर्थ हैं, तथापि प्रिय शिष्य होने के कारण वे चन्द्र को कृपा परवश होकर भस्म करने से विरत हैं।।२५-२९।।

उतथ्यपत्नीं दृष्ट्वा स पुरा रेमे स्वकामतः।
तत्पतेः शापतोऽस्यैव परग्रस्ता[1] प्रिया सती।।३०।।
पत्नीं मद्गुरुपुत्रस्य देहि तारां मनोहराम्। मद्वैरिणं च चन्द्रं च भ्रातृभार्यापहारिणम्।।३१।।
शरणागतदीनार्तं न हि रक्षेद्यदीश्वरः। पच्यते निरये तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश।।३२।।
अत्र नास्ति विचारो मे पापिष्ठे शरणागते।
पापी यं शरणं याति स पापी च न संशयः।।३३।।
देहि तं विप्रशार्दूल पापिनं मातृगामिनम्।
बहिष्कृत्यस्वाश्रमाच्च तारासाध्वीसमन्वितम्।।३४।।

पूर्वकाल में बृहस्पति उतथ्य की पत्नी की सुन्दरता देखकर कामार्त्त हो गये थे। उन्होंने उतथ्य पत्नी के साथ रमण किया था। तब उतथ्य के शाप के कारण बृहस्पति की पत्नी को परभोग्या होना पड़ा। हे विप्र! अब तुम मेरे गुरुपुत्र बृहस्पति को उसकी मनोरमा पत्नी अर्पण करो। गुरुपुत्र तो भाई के समान होता है। अतः तुम मेरे भ्राता की पत्नी का हरण करने वाले मेरे वैरी चन्द्रमा को यहां ले आओ। जो व्यक्ति समर्थ होने पर भी शरणागत दीन-आर्त्त का त्याग कर देता है, वह १४ इन्द्रों के जीवनकाल पर्यन्त नरक में अशेष यन्त्रणा भोग करता है। यह उक्ति तो सत्य है, तथापि चन्द्रमा ऐसा पापकर्मा को जो शरण देगा, वह शरणदाता निःसन्देह पातकी ही है। हे विप्रशार्दूल! इसलिये तुम मातृ समान गुरुपत्नी से रमण करने वाले पातकी को तथा पतिव्रता तारा को आश्रम से बाहर लाओ तथा हमें अर्पित करो!।।३०-३४।।

शुक्र उवाच

सुराणामसुराणां च सर्वेषां जगतामपि।
त्वमेव शास्ता भगवान्को वा शास्ति सुरेऽसुरे।।३५।।
कृत्वा सुराणां साहाय्यं कथं दैत्यान्हनिष्यसि।
संहर्तुः सर्वजगतां दैत्यौधे किं च पौरुषम्।।३६।।
त्वं ज्योतिः परमं ब्रह्म सगुणा निर्गुणः स्वयम्।
गुणभेदान्मूर्तिभेदो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।।३७।।

---

१. परभोग्या इति पाठान्तरम्।

बलिद्वारे गदापाणिः स्वयमेव भवान्प्रभो।
स्वयं प्रदत्ता शक्राय तस्मै श्रीरपि लीलया॥३८॥

आचार्य शुक्र कहते हैं–हे प्रभो! आप ही सुर-असुर प्रभृति समस्त जगद्व्यापी जीवों के शासक हैं। आपका तो देवता तथा असुर दोनों के प्रति समान भाव है। आपका तो सर्वत्र समभाव है। अन्य कौन सबका शासक हो सकता है। अतः हे प्रभो! ऐसी स्थिति में आप क्यों देवगण की सहायता करके दैत्यों का संहार करेंगे? आप तो समस्त जगत् के संहारक हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य दैत्यों का वध करने में आपका कौन-सा पौरुष प्रदर्शित होगा? आप स्वयं सगुण-निर्गुण परंब्रह्म तथा ज्योतिरूप हैं। गुणभेद से ही आपका ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप मूर्त्तिभेद होता है। हे प्रभो! आप ही बलिराज के द्वार पर (पाताल में) गदा लेकर खड़े हैं। बलि तथा इन्द्र को जो राज्यलक्ष्मी प्राप्त है, वह तो आपने ही प्रदान किया है। यह सब आपने लीलामात्र से दे दिया है।।३५-३८।।

क्षमस्व भगञ्छंभो हर क्रोधं च संहर। किं पौरुषं च भवतो ब्रह्मणस्यापि हिंसया॥३९॥
अहं जीवञ्छरीरेण न दास्यामि निशाकरम्। शरणागतदीनार्तं लज्जितं पापसंयुतम्॥४०॥
अहं च त्वत्पदाम्भोजे शरणं यामि शङ्कर। यथोचितं कुरु विभो जगत्सर्वं तथैव च॥४१॥

हे भगवान् शंभु! क्रोध का संवरण करके क्षमा करिये। ब्राह्मण की हिंसा (चन्द्र ब्राह्मण हैं) करने से आपका कौन-सा पौरुष प्रकट होगा? मैं अपने जीवित रहते चन्द्रमा को नहीं दे सकता हूं। वह दीन, आर्त्त, शरणागत, पापयुक्त तथा लज्जित है। हे शङ्कर! मैं आपके चरणों की शरण में आया हूं। हे विभु! यह समस्त जगत् तथा मैं आपके ही अधीन हैं। हे प्रभो! जो उचित हो वही करिये।।३९-४१।।

शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो भगवाञ्छिवः।
इत्युवाच निशानाथं समानय शुभं भवेत्॥४२॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा बोधयित्वा कविं विभुः। समानीय निशानाथं तारकासहितं व्रज॥४३॥

शुक्र का कथन सुनकर भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर कहा–"तुम निशापति चन्द्र को यहां लाओ। इसमें ही उसका शुभ होगा।" तदनन्तर जब ब्रह्मा ने भी कवि शुक्र को उद्‌बुद्ध किया, तब वे तारा के साथ चन्द्रमा को वहां ले आये।।४२-४३।।

शंभोश्च चरणाम्भोजे चकार च समर्पणम्।
शंभुस्तं प्रीतियुक्तश्च वासयामास वक्षसि॥४४॥
दत्त्वा तस्मै पादरेणुं निष्पापं च चकार सः। दत्त्वा तन्मस्तके हस्तं कृपालुरभयं ददौ॥४५॥
क्षीरोदे स्नापयित्वा च प्रायश्चित्तेन शंकरः।
चकार चन्द्रं निष्पापं ब्रह्मणा सहितः शुचिम्॥४६॥

हे ब्रजराज! उस समय भगवान् शिव ने चन्द्रमा को प्रेम पूर्वक चन्द्रमा को हृदय से लगाया और अपनी चरणरज देकर उनका पाप-कल्मष दूर कर दिया। साथ ही शिव ने चन्द्रमा के शिर पर हाथ

रखकर उनको अभय प्रदान किया। तदनन्तर शङ्कर ने ब्रह्मा के साथ होकर पापों के प्रायश्चित्त हेतु चन्द्रमा को क्षीरसागर में स्नान कराया। इससे चन्द्रमा पापमुक्त एवं पावन हो गये।।४४-४६।।

योगेन चन्द्रं योगीन्द्रो द्विखण्डं तं चकार सः।
ररक्षार्धं ललाटे च सोऽप्यर्धं ब्रह्मणः पुरः॥४७॥
अत एव महादेवो बभूव चन्द्रशेखरः। मृगाङ्को लज्जितस्तत्र कलङ्की देवसंसदि॥४८॥
लज्जया च स्वयोगेन देहत्यागं चकार सः।
तच्छरीरं च क्षीरोदे ब्रह्मणा च समर्पितम्॥४९॥

तत्पश्चात् योगीन्द्र शिव ने योग द्वारा चन्द्रमा को खण्डद्वय में विभक्त करके वहां ब्रह्मा के ही समक्ष एक खण्ड अपने ललाट पर रखा। तभी से महादेव चन्द्रशेखर कहे गये। चन्द्रमा का अन्य खण्ड मृग चिह्न रूप कलंक से युक्त है। तभी चन्द्रमा देवसभा में लज्जा से युक्त जाने गये। इससे दुःखी चन्द्रमा ने अपना यह देह योगधारणा से त्याग दिया। उस देह को ब्रह्मा ने क्षीरसागर में फेंक दिया।।४०-४९।।

रुरोदात्रिश्च कृपया शुचा क्षीरोदधेस्तटे। अत्रेश्चक्षुर्जलं तस्य पपात च जले व्रज॥५०॥
तस्माद्बभूव चन्द्रश्च निष्पापो देवसंसदि। ब्रह्मा च भगवाञ्छंभुरभिषेकं चकार तम्।
उवाच तं महादेवो निर्भयं देवसंसदि॥५१॥

वहां यह देखकर चन्द्रमा के पिता अत्रिमुनि रुदनरत हो गये। जैसे ही अत्रि के अश्रु क्षीरसागर में गिरे, चन्द्रमा सर्वपाप रहित हो गये। हे ब्रजराज! इससे चन्द्रमा को देवसभा में निष्पाप मानकर शिव एवं ब्रह्मा द्वारा उनका अभिषेक सम्पन्न किया गया। तदनन्तर शङ्कर ने निर्भयता पूर्वक देवसभा में कहा—।।५०-५१।।

महादेव उवाच

स्वस्थानं गच्छ पुत्र त्वं कुरुष्व विषयं मुदा।
पश्चात्तस्याश्च[1] शापेन यक्ष्मग्रस्तो भविष्यसि॥५२॥
व्यर्थं पतिव्रताशापं कर्तुमीशश्च को भुवि। मदाशिषा यक्ष्मणश्च प्रतीकारो भविष्यति॥५३॥
यस्माद्भाद्रचतुर्थ्यां तु गुरुपत्नीक्षतिः[2] कृता।
तस्मात्तस्मिन्दिने वत्स पापदृश्यो युगे युगे॥५४॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥५५॥

१. क. ०श्चाच्छ्वशुरशा०।
२. क. क्षता कृ०।

महादेव कहते हैं–हे वत्स! तुम आनन्द पूर्वक अपने स्थान पर जाकर अपना अधिकार ग्रहण करो। तदनन्तर तुम श्वसुर के शाप से यक्ष्मारोग ग्रस्त हो जाओगे। इस जगत् में पतिव्रता का अभिशाप कोई व्यर्थ नहीं कर सकता, तथापि मेरे आशीर्वाद से यक्ष्मा का प्रतिकार होगा। हे वत्स! तुम्हारे द्वारा गुरुपत्नी तारा को भाद्रमासीय चतुर्थी तिथि के दिन क्षति प्रदान किया गया है। अतः युग-युग में (प्रतिवर्ष) उस दिन तुमको देखना पापपूर्ण होगा। नियम है कि कर्मभोग तो कोटिशतकल्प व्यतीत हो जाने पर भी बिना भोग किये नष्ट नहीं होता। अपने शुभ-अशुभ कृतकर्म का फलभोग तो करना ही होगा।।५२-५५।।

देहत्यागेन हे वत्स कर्मभोगो न नश्यति। प्रायश्चित्तान्न सन्देहो ह्यस्तमेव भविष्यति।।५६।।
तारापहरणावत्स कलङ्कश्चन्द्रमण्डले। मृगाकृतिर्विलग्नश्च भविष्यति युगे युगे।।५७।।

हे वत्स! देहत्याग के उपरान्त भी कर्मभोग नष्ट नहीं होता, तथापि प्रायश्चित्त द्वारा वह निःसन्देह नष्ट हो जाता है। हे वत्स! यही तारा हरण का कलंक प्रतियुग में चन्द्रमण्डल पर मृग के आकार में लगा रहना अवश्यम्भावी है।।५६-५७।।

श्रृणु वाक्यमिहाऽऽगच्छ[१] तारके च पतिव्रते।
सत्यं ब्रूहि कस्य गर्भं त्यक्त्वा शुद्धा भव प्रिये।।५८।।
अकामतो बलात्साध्वी न स्त्री जारेण दुष्यति।
कामतो नरकं यति यावच्चन्द्रदिवाकरौ।।५९।।

(महादेव तारा से कहते हैं)–हे तारा पतिव्रता! तुम यहां आकर मेरा कथन श्रवण करो। हे प्रिये! यह सत्य कहो। तुम्हारे उदर में किसका गर्भ है। उसे त्याग कर शुद्ध हो जाओ। कोई साध्वी नारी यदि बलात्, बिना अपनी इच्छा से जार व्यक्ति द्वारा उपयुक्त होती है, वह दूषित नहीं होती, तथापि जो स्वेच्छा पूर्वक परपुरुष का संग करती है, वह तब तक नरकवासिनी होती है जब तक जगत् में सूर्य-चन्द्र स्थित हैं।।५८-५९।।

उवाच तारा ब्रह्माणं गर्भं चन्द्रस्य सस्मितम्।
जहसुर्देवताः सर्वाः शंभुश्च मुनिसंघकाः।।६०।।

तब तारा ने मन्द मुस्कान के साथ ब्रह्मा से कहा–"यह गर्भ चन्द्रमा का है।" यह सुनकर वहां उपस्थित मुनि तथा देवता एवं शङ्कर हंसने लगे।।६०।।

ददौ तारां च गुरवे लज्जिताय व्रजेश्वर। बृहस्पतिर्ययौ गेहं गृहीत्वा च पतिव्रताम्।।६१।।
तया प्रसूतं पुत्रं च सुन्दरं कनकप्रभम्।
गृहीत्वा प्रययौ चन्द्रो नमस्कृत्य विधिं शिवम्।।६२।।

---
१. श्रृणुवक्ष्यामि ते वत्स इति पाठान्तरम्।

ययुर्देवाश्च मुनयः शंभुश्च कमलोद्भवः। प्रययौ स्वगृहं शुक्रौ दैत्ययुक्तौ मुदाऽन्वितः॥६३॥

हे ब्रजराज! यह सुनकर ब्रह्मा ने लज्जावनत बृहस्पति के हाथों तारा को अर्पित कर दिया। तदनन्तर देवगुरु पत्नी को स्वगृह ले गये। वहीं तारा ने पुत्र प्रसव कर दिया था। वह पुत्र सुन्दर तथा स्वर्ण के समान वर्ण वाला था। चन्द्रमा ने उस बालक को लिया तथा ब्रह्मा एवं शिव को प्रणाम करके बालक सहित अपने गृह चले गये। तत्पश्चात् वहां से सभी मुनि, देवता, शङ्कर, ब्रह्मा तथा दैत्य सैन्य वाले चले गये। शुक्राचार्य भी आनन्द पूर्वक अपने स्थान चले गये॥६१-६३॥

एतत्ते कथितं नन्द ह्याख्यानं पुण्यदं शुभम्। एतच्छ्रुत्वा तु निष्पापो निष्कलङ्की नरो भवेत्॥६४॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वसंपत्करं परम्। शोकापनोदनं हर्षकरं सर्वत्र मङ्गलम्॥६५॥

हे नन्दराज! यह मैंने अत्यन्त शुभ तथा पुण्यप्रद आख्यान कहा। यह सुनकर मनुष्य निष्पाप तथा कलंक रहित हो जाता है। यह प्रसंग धन्य, यशप्रद, आयुप्रद, सर्वसम्पदा है। यह शोकनाशक, हर्षदायक तथा सर्वत्र मङ्गलदायक भी है॥६४-६५॥

त्यज शोकं सदा नन्द गृहं व्रज व्रजेश्वर। ब्रूहि सर्वं यशोदां च मत्प्रसूं गोपिकागणम्॥६६॥
बोधयिष्यसि सर्वां तां स्त्रीजातिं शोकसंयुताम्। मदीयज्ञानदत्तेन हर्षयुक्तः सदा भव॥६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० ताराहरणं नामैकाशीतितमोऽध्यायः॥८१॥

—✻✻✻—

हे नन्दराज! आप ब्रजधाम जाकर मेरी माता तथा गोपियों से यह प्रसंग कहें। शोक त्यागें तथा वहां जाकर सभी शोकसंयुत स्त्रियों को सान्त्वना दीजिये। मेरे द्वारा प्रदत्त ज्ञान का स्मरण करके सदा हर्षान्वित रहियेगा॥६६-६७॥

॥८१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

दुःस्वप्नों का वर्णन तथा उनकी शान्ति करने का उपाय

नन्द उवाच

श्रुतं सर्वं महाभाग दुःस्वप्नं कथय प्रभो। उवाच तं वै भगवाञ्छ्रुयतामिति तद्वचः॥१॥

नन्दराज कहते हैं—"हे प्रभो! महाभाग! मैंने समस्त प्रसङ्ग सुना। कृपया अब दुःस्वप्न वर्णन करिये।" यह सुनकर प्रभु श्रीकृष्ण ने कहा—"मेरा कथन श्रवण करिये।"॥१॥

श्रीभगवानुवाच

स्वप्ने हसति यो हर्षाद्विवाहं यदि पश्यति। नर्तनं गीतमिष्टं च विपत्तिस्तस्य निश्चितम्॥२॥
दन्ता यस्य विपीड्यन्ते विचरन्तं च पश्यति। धनहानिर्भवेत्तस्य पीडा चापि शरीरजा॥३॥
अभ्यङ्गितस्तु तैलेन यो गच्छेद्दक्षिणां दिशम्। खरोष्ट्रमहिषारूढो मृत्युस्तस्य न संशयः॥४॥
स्वप्ने कर्णे[1] जपापुष्पमशोकं करवीरकम्। विपत्तिस्तस्य तैलं च लवणं यदि पश्यति॥५॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे व्रजराज! जो व्यक्ति स्वयं को स्वप्न में आनन्दित तथा हास्ययुक्त देखता है, नृत्य देखता एवं गीत श्रवण करता है, उसे निश्चित रूप से विपत्ति झेलनी होगी। स्वप्न में दांतों से दांत-रगड़ना तथा विचरण करते मनुष्य को देखना धनहानिकारक तथा पीड़ाप्रद होता है। जो व्यक्ति खुद तेल लगाये हुये गधा, ऊंट अथवा भैंसे पर बैठकर दक्षिणदिक् जाता है, उसकी मृत्यु तो निश्चित है। यदि कोई स्वप्न में कान पर रखा जवापुष्प-अशोकपुष्प-कनेर पुष्प देखता है, तैल अथवा लवण देखता है, उस पर विपदा आयेगी॥२-५॥

नग्नां कृष्णां छिन्ननासां शूद्रस्य विधवां तथा।
कपर्दकं तालफलं दृष्ट्वा शोकमवाप्नुयात्॥६॥
स्वप्ने रुष्टं ब्राह्मणं च ब्राह्मणीं कोपसंयुताम्।
विपत्तिश्च भवेत्तस्य लक्ष्मीर्याति गृहाद्ध्रुवम्॥७॥
वनपुष्पं रक्तपुष्पं पलाशं च सुपुष्पितम्।
कार्पासं शुक्लवस्त्रं च दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्॥८॥
गायन्तीं च हसन्तीं च कृष्णाम्बरधरां स्त्रियम्।
दृष्ट्वा कृष्णां च विधवां नरो मृत्युमवाप्नुयात्॥९॥
देवता यत्र नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च।
आस्फोटयन्ति धावन्ति तस्य देहो मरिष्यति॥१०॥
वान्तं मूत्रं पुरीषं च वैद्यं रौप्यं सुवर्णकम्। प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने जीवितं दशमावधि॥११॥
कृष्णाम्बरधरां नारीं कृष्णमाल्यानुलेपनाम्।
उपगूहति यः स्वप्ने तस्य मृत्युर्भविष्यति॥१२॥

नग्ना-कृष्णवर्णा-नाककटी-शूद्रा विधवा अथवा कौड़ी किंवा तालफल स्वप्न में देखना शोकप्रद है। जो मनुष्य स्वप्न में रुष्ट ब्राह्मण को अथवा कुपित ब्राह्मणी को देखता है, वह विपदाग्रस्त होगा तथा उसके यहां से लक्ष्मी चली जायेगी। स्वप्न में लाल वनपुष्प, सुपुष्पित पलाश वृक्ष, कपास अथवा श्वेतवस्त्र देखने पर दुःख-शोक होता है। यदि मानव स्वप्न में कालावस्त्र पहने किसी रमणी को गाते-

१. क. चूर्णं।

नाचते देखता है, अथवा काले वर्ण की विधवा को देखता है, तब उस स्वप्नद्रष्टा की मृत्यु अवश्य होगी। स्वप्न में अपने अधिकृत् स्थान में देवगण को नाचते, हंसते, गीत गाते अथवा ताल ठोकते, दौड़ते देखता है, उसकी मृत्यु होगी। जो स्वप्न में मूत्र, मल, वैद्य, स्वर्ण, रजत प्रत्यक्ष देखे वह १० दिन ही जीवित रहेगा।६-१२।।

मृतवत्सं च मुण्डं च मृगस्य च नरस्य च।
यः प्राप्नोत्यस्थिमालां च विपत्तिस्तस्य निश्चितम्।।१३।।
रथं खरोष्ट्रसंयुक्तमेकाकी योऽधिरोहयेत्। तत्रस्थोऽपि च जागर्ति मृत्युरेव न संशयः।।१४।।
अभ्यङ्गितस्तु हविषा क्षीरेण मधुनाऽपि च।
तक्रेणापि गुडेनैव पीडा तस्य विनिश्चितम्।।१५।।

मृत बछड़ा, मनुष्य किंवा पशु का मुण्ड देखना, किंवा अस्थिमाला पाना जो स्वप्न में अनुभव करता है, वह निश्चित विपदाग्रस्त होगा। जो एकाकी ही गधा अथवा ऊंट जुते रथ में स्वप्न में स्वयं को बैठे देखता है तथा बैठते ही जाग जाता है, उसकी मृत्यु में कोई सन्देह नहीं है। जो स्वयं को स्वप्न में घृत, हवि, क्षीर, मधु, मट्ठा, गुड़ से लिप्त देखे, उसे पीड़ा होना निश्चित है।।१३-१५।।

रक्ताम्बरधरां नारींरक्तमाल्यानुलेपनाम्।
उपगूहति यः स्वप्ने तस्य व्याधिर्विनिश्चितम्।।१६।।
पतितान्नखकेशांश्च निर्वाणाङ्गारमेव च। भस्मपूर्णां चितां दृष्ट्वा लभते मृत्युमेव च।।१७।।
श्मशानं शुष्ककाष्ठं च तृणानि लोहमेव च।
शमीं च किंचित्कृष्णाश्वं दृष्ट्वा दुःखं लभेद्ध्रुवम्।।१८।।

जो स्वप्न में रक्तवस्त्रधारिणी नारी अथवा लाल माला एवं रक्तवर्ण लेप से लिप्त नारी का आलिंगन करे, उसे व्याधि होना निश्चित है। स्वप्न में यत्र-तत्र पड़ा नख, केश, बुझा कोयला, राखभरी चिता देखने वाला भी मृत्युग्रस्त होगा। जो स्वप्न में श्मशान, शुष्क काष्ठ, तृण, लौह, शमी का पेड़, तनिक काले रंग का घोड़ा देखने में अवश्य दुःखग्रस्त होगा।।१६-१८।।

पादुकां फलकं रक्तं पुष्पमाल्यं भयानकम्।
माषां मसूरं मुद्गं वा दृष्ट्वा सद्यो व्रण लभेत्।।१९।।
कटकं सरठं काकं भल्लूकं वानरं गवम्।
पूयं गात्रमलं स्वप्ने केवलं व्याधिकारणम्।।२०।।

पादुका, फलक, भयानक लालपुष्प की माला, उर्द, मसूर, मूंग स्वप्न में देखने वाला सद्यः व्रणग्रस्त होगा। स्वप्न में कटक (इसका अर्थ कुछ लोग कंकपक्षी कहते हैं, कोई सेना कहते हैं), सरठ (कुछ लोग गिरगिट तो कुछ लोग गृह पक्षी कहते हैं), कौआ, भालू, वानर, नीलगाय, देह का मवाद आदि मल देखना व्याधिकारण होता है।।१९-२०।।

श्रीभगवानुवाच

स्वप्ने हसति यो हर्षाद्विवाहं यदि पश्यति। नर्तनं गीतमिष्टं च विपत्तिस्तस्य निश्चितम्॥२॥
दन्ता यस्य विपीड्यन्ते विचरन्तं च पश्यति। धनहानिर्भवेत्तस्य पीडा चापि शरीरजा॥३॥
अभ्यङ्गितस्तु तैलेन यो गच्छेद्दक्षिणां दिशम्। खरोष्ट्रमहिषारूढो मृत्युस्तस्य न संशयः॥४॥
स्वप्ने कर्णे[1] जपापुष्पमशोकं करवीरकम्। विपत्तिस्तस्य तैलं च लवणं यदि पश्यति॥५॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे व्रजराज! जो व्यक्ति स्वयं को स्वप्न में आनन्दित तथा हास्ययुक्त देखता है, नृत्य देखता एवं गीत श्रवण करता है, उसे निश्चित रूप से विपत्ति झेलनी होगी। स्वप्न में दांतों से दांत-रगड़ना तथा विचरण करते मनुष्य को देखना धनहानिकारक तथा पीड़ाप्रद होता है। जो व्यक्ति खुद तेल लगाये हुये गधा, ऊंट अथवा भैंसे पर बैठकर दक्षिणदिक् जाता है, उसकी मृत्यु तो निश्चित है। यदि कोई स्वप्न में कान पर रखा जवापुष्प-अशोकपुष्प-कनेर पुष्प देखता है, तैल अथवा लवण देखता है, उस पर विपदा आयेगी॥२-५॥

नग्नां कृष्णां छिन्ननासां शूद्रस्य विधवां तथा।
कपर्दकं तालफलं दृष्ट्वा शोकमवाप्नुयात्॥६॥
स्वप्ने रुष्टं ब्राह्मणं च ब्राह्मणीं कोपसंयुताम्।
विपत्तिश्च भवेत्तस्य लक्ष्मीर्याति गृहाद्ध्रुवम्॥७॥
वनपुष्पं रक्तपुष्पं पलाशं च सुपुष्पितम्।
कार्पासं शुक्लवस्त्रं च दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्॥८॥
गायन्तीं च हसन्तीं च कृष्णाम्बरधरां स्त्रियम्।
दृष्ट्वा कृष्णां च विधवां नरो मृत्युमवाप्नुयात्॥९॥
देवता यत्र नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च।
आस्फोटयन्ति धावन्ति तस्य देहो मरिष्यति॥१०॥

वान्तं मूत्रं पुरीषं च वैद्यं रौप्यं सुवर्णकम्। प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने जीवितं दशमावधि॥११॥

कृष्णाम्बरधरां नारीं कृष्णमाल्यानुलेपनाम्।
उपगूहति यः स्वप्ने तस्य मृत्युर्भविष्यति॥१२॥

नग्ना-कृष्णवर्णा-नाककटी-शूद्रा विधवा अथवा कौड़ी किंवा तालफल स्वप्न में देखना शोकप्रद है। जो मनुष्य स्वप्न में रुष्ट ब्राह्मण को अथवा कुपित ब्राह्मणी को देखता है, वह विपदाग्रस्त होगा तथा उसके यहां से लक्ष्मी चली जायेगी। स्वप्न में लाल वनपुष्प, सुपुष्पित पलाश वृक्ष, कपास अथवा श्वेतवस्त्र देखने पर दुःख-शोक होता है। यदि मानव स्वप्न में कालावस्त्र पहने किसी रमणी को गाते-

---
१. क. चूर्णं।

नाचते देखता है, अथवा काले वर्ण की विधवा को देखता है, तब उस स्वप्नद्रष्टा की मृत्यु अवश्य होगी। स्वप्न में अपने अधिकृत् स्थान में देवगण को नाचते, हंसते, गीत गाते अथवा ताल ठोकते, दौड़ते देखता है, उसकी मृत्यु होगी। जो स्वप्न में मूत्र, मल, वैद्य, स्वर्ण, रजत प्रत्यक्ष देखे वह १० दिन ही जीवित रहेगा।६-१२।।

मृतवत्सं च मुण्डं च मृगस्य च नरस्य च।
यः प्राप्नोत्यस्थिमालां च विपत्तिस्तस्य निश्चितम्॥१३॥
रथं खरोष्ट्रसंयुक्तमेकाकी योऽधिरोहयेत्। तत्रस्थोऽपि च जागर्ति मृत्युरेव न संशयः॥१४॥
अभ्यङ्गितस्तु हविषा क्षीरेण मधुनाऽपि च।
तक्रेणापि गुडेनैव पीडा तस्य विनिश्चितम्॥१५॥

मृत बछड़ा, मनुष्य किंवा पशु का मुण्ड देखना, किंवा अस्थिमाला पाना जो स्वप्न में अनुभव करता है, वह निश्चित विपदाग्रस्त होगा। जो एकाकी ही गधा अथवा ऊंट जुते रथ में स्वप्न में स्वयं को बैठे देखता है तथा बैठते ही जाग जाता है, उसकी मृत्यु में कोई सन्देह नहीं है। जो स्वयं को स्वप्न में घृत, हवि, क्षीर, मधु, मट्ठा, गुड़ से लिप्त देखे, उसे पीड़ा होना निश्चित है।।१३-१५।।

रक्ताम्बरधरां नारींरक्तमाल्यानुलेपनाम्।
उपगूहति यः स्वप्ने तस्य व्याधिर्विनिश्चितम्॥१६॥
पतितान्नखकेशांश्च निर्वाणाङ्गारमेव च। भस्मपूर्णां चितां दृष्ट्वा लभते मृत्युमेव च॥१७॥
श्मशानं शुष्ककाष्ठं च तृणानि लोहमेव च।
शमीं च किंचित्कृष्णाश्वं दृष्ट्वा दुःखं लभेद्ध्रुवम्॥१८॥

जो स्वप्न में रक्तवस्त्रधारिणी नारी अथवा लाल माला एवं रक्तवर्ण लेप से लिप्त नारी का आलिंगन करे, उसे व्याधि होना निश्चित है। स्वप्न में यत्र-तत्र पड़ा नख, केश, बुझा कोयला, राखभरी चिता देखने वाला भी मृत्युग्रस्त होगा। जो स्वप्न में श्मशान, शुष्क काष्ठ, तृण, लौह, शमी का पेड़, तनिक काले रंग का घोड़ा देखने में अवश्य दुःखग्रस्त होगा।।१६-१८।।

पादुकां फलकं रक्तं पुष्पमाल्यं भयानकम्।
माषां मसूरं मुद्गं वा दृष्ट्वा सद्यो व्रण लभेत्॥१९॥
कटकं सरठं काकं भल्लूकं वानरं गवम्।
पूयं गात्रमलं स्वप्ने केवलं व्याधिकारणम्॥२०॥

पादुका, फलक, भयानक लालपुष्प की माला, उर्द, मसूर, मूंग स्वप्न में देखने वाला सद्यः व्रणग्रस्त होगा। स्वप्न में कटक (इसका अर्थ कुछ लोग कंकपक्षी कहते हैं, कोई सेना कहते हैं), सरठ (कुछ लोग गिरगिट तो कुछ लोग गृह पक्षी कहते हैं), कौआ, भालू, वानर, नीलगाय, देह का मवाद आदि मल देखना व्याधिकारण होता है।।१९-२०।।

भग्नभाण्डं क्षतं शूद्रं गलत्कुष्ठं च रोगिणम्। रक्ताम्बरं च जटिलं सूकरं महिषं खरम्॥२१॥
अन्धकारं महाघोरं मृतजीवं भयङ्करम्।
दृष्ट्वा स्वप्ने योनिलिङ्गं विपत्तिं लभते ध्रुवम्॥२२॥
कुवेषरूपं म्लेच्छं च यमदूतं भयङ्करम्। पाशहस्तं पाशशस्त्रं दृष्ट्वा मृत्युं लभेन्नरः॥२३॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणी बाला बालको वा सुतः सुता।
विलापं कुरुते कोपाद्दृष्ट्वादुःखमवाप्नुयात्॥२४॥

स्वप्न में भग्नपात्र, गलित कुष्ठरोगी, क्षतशूद्र, रोगी, लालवस्त्रधारी, जटाधारी, वराह, महिष, गर्दभ, घोर अन्धकार, महाघोर, मृतजीव, योनि, लिङ्ग देखना विपदा सूचक है। कुवेषधारी म्लेच्छ, भयानक यमदूत, पाशधारी व्यक्ति, पाशशास्त्र, यह स्वप्न में देखना मृत्यु सूचक है। यदि स्वप्न में क्रोध के कारण ब्राह्मण, ब्राह्मणी, बालक, पुत्र, पुत्री कुपित होकर रुदन करते लक्षित हों, तब वह व्यक्ति (स्वप्नद्रष्टा) दुःख प्राप्त करेगा॥२१-२४॥

कृष्णं पुष्पं च तन्माल्यं सस्यं शस्त्रास्त्रधारिणम्।
म्लेच्छां च विकृताकारां दृष्ट्वा मृत्युंलभेद्ध्रुवम्॥२५॥
त्यक्तप्राणं मृतं दृष्ट्वा मृत्युं च लभते ध्रुवम्।
मत्स्यादि धारयेद्यो हि तद्भ्रातुर्मरणं ध्रुवम्॥२६॥
वाद्यं च[1] नर्तनं गीतं गायनं रक्तवाससम्।
मृदङ्गं वाद्यमानं[2] तं दृष्ट्वा दुःखं लभेद्ध्रुवम्॥२७॥

स्वप्न में काला पुष्प, उसकी माला, फसल, शस्त्रास्त्रधारी मनुष्य, विकृताकार म्लेच्छ नारी देखने से मृत्यु होना निश्चित है। स्वप्न में मत्स्यधारी देखने से उस स्वप्नद्रष्टा के भाई का मरण निश्चित है। स्वप्न में वाद्यवादन, नृत्य, गीतगायन, रक्तवर्ण वस्त्र तथा मृदंग बजना देखना दुःखप्रद है। यह निश्चित जाने॥२५-२७॥

छिन्नं वाऽपि कबन्धं[3] वा विकृतं मुक्तकेशिनम्।
क्षिप्रं नृत्यं च कुर्वन्तं दृष्ट्वा मृत्युं लभेन्नरः॥२८॥
मृतो वाऽपि मृता वाऽपि कृष्णा म्लेच्छा भयानका।
उपगूहति यं स्वप्ने तस्य मृत्युर्विनिश्चितम्॥२९॥
येषां दन्ताश्च भग्नाश्च केशाश्चापि पतन्ति हि।
धनहानिर्भवेत्तस्य पीडा वा तच्छरीरजा॥३०॥

---

१. वार्त्ताञ्च इति पाठान्तरम्।
२. क. विदायं।
३. ख. ०धं नरं वा।

उपद्रवन्ति यं स्वप्ने शृङ्गिणो दंष्ट्रिणोऽपि वा।
बालका मानवाश्चैव[१] तस्य राजकुलाद्भयम्॥३१॥
छिन्नवृक्षं पतन्तं च शिलावृष्टिं तुषं क्षुरम्।
रक्ताङ्गारं भस्मवृष्टिं दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्॥३२॥

छिन्न-भिन्न देह, केवल धड़, उन्मुक्त केश व्यक्ति, त्वरित नृत्य करता विकृत व्यक्ति स्वप्न में देखना मृत्युदायक है। स्वप्न में मृतपुरुष, मृतनारी अथवा कृष्णकाय भयानक म्लेच्छ जिसका आलिंगन करे उसकी मृत्यु निश्चित है। स्वप्न में जिसका दांत टूट जाये, बाल गिरें उसे धनहानि किंवा शरीर पीड़ा होगी। स्वप्न में सींगवाले, दाढ़वाले, बाणधारी, बाण की विद्या के शिक्षक जिसके प्रति उपद्रव करे (स्वप्नद्रष्टा के प्रति उपद्रव करें) उसे राजकुल से भय होगा। जो स्वप्न में गिरा वृक्ष (कटकर गिर रहे वृक्षादि), पत्थर बरसना, भूसी वर्षा, अंगार जलते हुये तथा बरसते देखना, छूरा तथा भस्म वर्षा देखता है, वह अवश्य विपत्तिग्रस्त होगा।।२८-३२।।

गृहं पतन्तं शैलं वा धूमकेतुं भयानकम्।
भग्नस्कन्धं तरोर्वाऽपि दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्॥३३॥

रथगेहशैलवृक्षगोहस्तितुरगाम्बरात्। भूमौ पतति यः स्वप्ने विपत्तिस्तस्य निश्चितम्॥३४॥
उच्चैः पतन्ति गर्तेषु भस्माङ्गारयुतेषु च। क्षारकुण्डेषु चूर्णेषु मृत्युस्तेषां न संशयः॥३५॥

गिरता हुआ गृह अथवा पर्वत, भयानक धूमकेतु भूपतित होते स्वप्न में देखने वाला तथा टूटे तने को देखने वाला शीघ्र दुःख झेलने वाला है। स्वप्न में रथ, गृह, पर्वत, वृक्ष, गौ, हाथी, अश्व को आकाश से भूपतित होते देखे उसे निश्चित रूप से विपदा झेलनी होगी। स्वप्न में जो ऊंचे से गिरकर नीचे भस्म, कोयला युक्त गढ़े में गिरता है अथवा क्षारकुण्ड किंवा चूर्णराशि पर गिरता है, उसकी मृत्यु निश्चित है। इसमें संशय न करे।।३३-३५।।

बलाद्गृह्णाति दुष्टश्चच्छत्रं च यस्य मस्तकात्।
पितुर्नाशो भवेत्तस्य गुरोर्वाऽपि नृपस्य वा॥३६॥
सुरभिर्यस्य गेहाच्च याति त्रस्ता सवत्सिका।
प्रयाति पापिनस्तस्य लक्ष्मीरपि वसुंधरा॥३७॥
पाशेन कृत्वा बद्धं च यं गृहीत्वा प्रयान्ति च।
यमदूताश्च ये म्लेच्छास्तस्य मृत्युर्विनिश्चितम्॥३८॥

स्वप्न में यदि स्वप्न द्रष्टा के शिर से कोई बलात् छत्र हटा लेता है, उसके पिता-गुरु-राजा का नाश होना अवश्यम्भावी है। स्वप्न में जिनके गृह से वत्सयुक्त गौ त्रस्त होकर पलायन कर जाती है, वह

१. वाणकामा नराश्चैवेति पाठान्तरम्।

पातकी है तथा उसके पास में लक्ष्मी तथा पृथिवी (भूमि) नहीं रह जाती। स्वप्न में जिसे पाशबद्ध करके यमदूत ले जाते हैं अथवा म्लेच्छ बांध कर ले जाते हैं, उसकी मृत्यु निश्चित हो गयी!।।३६-३८।।

गणको ब्राह्मणो वाऽपि ब्राह्मणी वा गुरुस्तथा।
परिरुष्टः शपति यं विपत्तिस्तस्य निश्चितम्॥३९॥
विरोधिनश्च काकाश्च कुक्कुटा भल्लुकास्तथा।
पतन्त्यागत्य यद्गात्रे तस्य मृत्युर्न संशयः॥४०॥

स्वप्न में ज्योतिषी, ब्राह्मण, ब्राह्मणी, गुरु जिस पर कुपित होकर शाप देते हैं, वह अवश्य विपदाग्रस्त होगा। स्वप्न में जिस पर शत्रु, काक, कुक्कुट किंवा भालू आक्रमण करते हैं, उसकी मृत्यु अवश्य होगी।।३९-४०।।

महिषा भल्लुका उष्ट्राः सूकरा गर्दभास्तथा।
रुष्टा धावन्ति यं स्वप्ने स रोगी निश्चितं भवेत्॥४१॥

स्वप्न में महिष, भालू, ऊंट, शूकर, गर्दभ जिन पर क्रोधित होकर दौड़ पड़ते हैं, वह निश्चय रोग्रस्त होगा।।४१।।

रक्तचन्दनकाष्ठानि घृताक्तानि जुहोति यः। गायत्र्याश्च सहस्रेण तेन शान्तिर्विधीयते॥४२॥
सहस्रधा जपेद्यो हि भक्त्यैनं मधुसूदनम्।
निष्पापो हि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत्॥४३॥

रक्त चन्दन की घृताक्त लकड़ी से गायत्री मन्त्र द्वारा १००० आहुति प्रदान करें। दुःस्वप्न शान्त होंगे। जो भक्तिभाव से 'मधुसूदन' इस नाम का १००० जप करता है, उसको निष्पाप स्थिति प्राप्त होती है। उसके देखे दुस्वप्न का भी फल सुस्वप्नवत् होगा।।४२-४३।।

अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम्। हंसं नारायणं चैव ह्येतन्नामाष्टकं शुभम्॥४४॥
शुचिः पूर्वमुखः प्राज्ञो दशकृत्वश्च यो जपेत्।
निष्पापोऽपि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान्भवेत्॥४५॥
विष्णुं नारायणं कृष्णं माधवं मधुसूदनम्। हरिं नरहरिं रामं गोविन्दं दधिवामनम्॥४६॥
भक्त्या चेमानि नामानि दश भद्राणि यो जपेत्।
शतकृत्यो भक्तियुक्तो जप्त्वा नीरोगतां व्रजेत्॥४७॥
लक्षधा हि जपेद्यो हि बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम्।
जप्त्वा च दशलक्षं च महावन्ध्या प्रसूयते॥४८॥

अच्युत, केशव, विष्णु, हरि, सत्य, जनार्दन, हंस, नारायण, ये आठ नाम शुभ हैं। विष्णु, नारायण, कृष्ण, माधव, मधुसूदन, हरि, नरहरि, राम, गोविन्द, दधिवामन, इन दस नाम को कल्याणप्रद

कहा गया है। इनका भक्ति पूर्वक सौ बार जप करने वाला रोग रहित हो जाता है। जो इनका जप एक लाख करेगा, वह निश्चित बन्धन मुक्त होगा। १०० लाख जप से वन्ध्या भी पुत्रवती हो जाती है।।४४-४८।।

हविष्याशी यतः शुद्धो दरिद्रो धनवान्भवेत्।
शतलक्षं च जप्त्वा च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।।४९।।
ॐ नमः शिवं दुर्गां गणपतिं कार्तिकेयं दिनेश्वरम्।
धर्मं गङ्गां च तुलसीं राधां लक्ष्मीं सरस्वतीम्।।५०।।
नामान्येतानि भद्राणि जले स्नात्वा च यो जपेत्।
वाञ्छितं च लभेत्सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान्भवेत्।।५१।।

जो कोई हविष्यान्न पर निर्भर रहकर सौ लाख जप करेगा, वह जीवन्मुक्त होगा। "ॐ नमः शिव, दुर्गा, गणपति, कार्त्तिकेय, दिनेशवर, धर्म, गंगा, तुलसी, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती इन पावन नामों को पढ़ता जल में स्नानोपरान्त जो जपता है, उसे समस्त वांछित लाभ होगा। उसके बुरे स्वप्न भी शुभ अच्छे स्वप्न हो जायेंगे।।४९-५१।।

ॐ ह्रीं क्लीं पूर्वदुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा।
कल्पवृक्षो हि लोकानां मन्त्रःसप्तदशाक्षरः।।५२।।

"ॐ ह्रीं क्लीं पूर्व दुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा" यह १७ अक्षरात्मक मन्त्र लोकों में कल्पवृक्ष के समान है।।५२।।

शुचिश्च दशधा जप्त्वा दुःस्वप्नः सुखवान्भवेत्।
शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्।।५३।।

पवित्र स्थिति में १० बार ही जप करे। दुःस्वप्न भी सुस्वप्न हो जायेंगे। १०० लक्ष जप से मन्त्र सिद्ध होगा। मन्त्रसिद्धि प्राप्त होते ही सभी इच्छित सिद्धियां प्राप्त होती हैं।।५३।।

सिद्धमन्त्रस्तु लभते सर्वसिद्धिं च वाञ्छिताम्।
ॐ नमो मृत्युञ्जयायेति स्वाहान्तं लक्षधा जपेत्।।५४।।
दृष्ट्वा च मरणं स्वप्ने शतायुश्च भवेन्नरः।
पूर्वोत्तरमुखो भूत्वा स्वप्नं प्राज्ञे प्रकाशयेत्।।५५।।
काश्यपे दुर्गते नीचे देवब्राह्मणनिन्दके। मूर्खे चैवानभिज्ञे च न च स्वप्नं प्रकाशयेत्।।५६।।

जब व्यक्ति स्वयं अपनी मृत्यु स्वप्न में देखे, तब वह निश्चय शतायु होगा। मन्त्रसिद्ध होने पर सभी इच्छित शक्तियां मिलती हैं। "ॐ नमो मृत्युञ्जाय स्वाहा" यह मन्त्र १००००० जपे। वह शतायु होगा। स्वप्न देखने वाला सदा पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुख करके विद्वान् से अपना स्वप्न कहे।

काश्यप गोत्री, दुर्गति को प्राप्त, नीच, देवब्राह्मण निन्दक, मूर्ख, अनभिज्ञ को अपना स्वप्न कभी न बताये।।५४-५६।।

अश्वत्थे गणके विप्रे पितृदेवासनेषु च।
आर्ये च वैष्णवे मित्रे दिवा स्वप्नं प्रकाशयेत्।।५७।।
इति ते पुण्यमाख्यातं कथितं पापनाशनम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।५८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।८२।।

पीपल, गणक ज्योतिषी, विप्र, पितर, आर्य, वैष्णव, मित्र–इनसे दिन में देखा स्वप्न कहे। यह पापहारी, धन्य, यश-आयुदायक यह पुण्य प्रसंग आपसे कहा। अब क्या श्रवणेच्छा है?।।५७-५८।।

।।८२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

चातुर्वर्ण का धर्म निरूपण, संन्यासी तथा विधवा के वर्ण का वर्णन

नन्द उवाच

वेदानां कारणं त्वं च ब्रह्मादीनां च पुत्रक। सर्वं कथय भद्रं ते कं पृच्छामि त्वया विना।।१।।
विप्राणां यो हि धर्मश्च क्षत्रविट्शूद्रकर्मणाम्।
संन्यासिनां च यो धर्मो यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।।२।।
विप्राणां विधवास्त्रीणां वैष्णवानां सतामपि।
पतिव्रतानां स्त्रीणां च तत्सर्वं वक्तुमर्हसि।।३।।

नन्दराज कहते हैं–हे पुत्र! तुम तो वेद आदि के तथा ब्रह्मा आदि सबके कारण हो। अतः मुझे तुम सब बतलाओ। हे भद्र! तुम्हारे सिवाय यह सब मैं किससे पूछने जाऊं? जो विप्रों का धर्म है, जो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संन्यासी, ब्रह्मचारी, यती, ब्राह्मण, विधवा नारी, वैष्णवों, सज्जनों, पतिव्रताओं नारियों का धर्म है, यह सब कहो।।१-३।।

गृहिणां गृहिणीनां च शिष्याणां च विशेषतः।
पुत्राणां चापि कन्यानां पितरं मातरं प्रति॥४॥
स्त्रीजातिश्च कतिविधा भक्तः कतिविधः प्रभो।
ब्रह्माण्डं च कतिविधं वदनं च किमात्मकम्॥
किं नित्यं कृत्रिमं किं च ब्रूहि सर्वं क्रमेण च॥५॥

गृही, गृहिणी का, विशेषतः शिष्यों का धर्म, माता-पिता के प्रति पुत्र-कन्या का धर्म भी तुम मुझसे कहो। हे प्रभु! भक्तों के कितने भेद हैं? स्त्रियों की कितनी जाति है? ब्रह्माण्ड कितने प्रकार का है? यह ब्रह्माण्ड समूह किस प्रकार के आकार का है? नित्य क्या है? कृत्रिम क्या है? यह सब आप क्रमशः कहिये।।४-५।।

श्रीभगवानुवाच

सन्ध्यापूतः सदा विप्रः कुरुते मम सेवनम्। नित्यं भुङ्क्ते मत्प्रसादमनिवेद्य[1] कदाचन॥६॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्। विष्णुप्रसादभोजी च जीवन्मुक्तश्च ब्राह्मणः॥७॥
नित्यं तपस्यानिरतः शुचिः शान्तश्च शास्त्रवित्।
व्रततीर्थाश्रितो धर्मी नानाध्यापनसंयुतः॥८॥
विष्णुमन्त्रं गृहीत्वा च कृत्वा च गुरुसेवनम्। गृहीत्वा तदनुज्ञां च पश्चाद्भवति स गृही॥९॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे पिता! ब्राह्मण सन्ध्या वन्दनादि से पवित्र होकर निरन्तर मेरी सेवा करें तथा नित्य मेरे प्रसाद का भक्षण करें। मुझे जो अन्न निवेदित नहीं किया गया, वह कदापि भक्षणयोग्य नहीं है। जो अन्न विष्णु को अर्पित नहीं है, वह मलरूप है। जो जल उनको अर्पित नहीं है, वह मूत्रतुल्य है। जो ब्राह्मण नित्य विष्णु का प्रसाद भक्षण करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। ब्राह्मण नित्य तपश्चरण रत पवित्र, शान्त स्वभाव, शास्त्रज्ञ, व्रत-तीर्थ पर आश्रित, धार्मिक तथा नाना प्रकार के शास्त्र अध्ययन में आसक्त रहे। वह नाना प्रकार के शास्त्र का अध्यापन भी करे। वह विष्णु मन्त्र ग्रहण करके गुरुसेवा करे। तदनन्तर गुरु की आज्ञा से वह गृहस्थ बने।।६-९।।

दक्षिणां नित्यपूजानां गुरवे च निवेदयेत्। गुरूणां पोषणं नित्य कर्तव्यं नात्र संशयः॥१०॥
सर्वेषामपि वन्द्यानां पिता चैव महान् गुरुः।
पितुः शतगुणैर्माता मातुः शतगुणैः सुरः॥११॥
मन्त्रदस्तन्त्रदश्चैव सुराणां च चतुर्गुणः। नारायणश्च भगवान्गुरुः प्रत्यक्ष ईश्वरः॥१२॥

वह स्वगुरु को नित्य पूजन की दक्षिणा अर्पित करे तथा गुरु का पोषण नित्य करे। इसमें संशय न करे। सभी वन्दनीय गुरुओं में से पिता ही महागुरु रूप है। पिता से माता का सौगुना श्रेष्ठ होता है।

१. क. ०द्यमभक्षणम्।

माता सेभी सौ गुणित श्रेष्ठ हैं इष्ट। इष्टदेव से भी चतुर्गुण श्रेष्ठ हैं मन्त्र-तन्त्रदाता गुरु। गुरु तो भगवान् नारायण तथा साक्षात् ईश्वर ही हैं।।१०-१२।।

उद्देशे दीयते तस्मै सुरायेति श्रुतौ श्रुतम्। प्रत्यक्षभोक्ता स्वगुरुः स्वयं देही जनार्दनः।।१३।।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव स्वयं शिवः। गुरौ च सर्वदेवाश्च तिष्ठन्ति सततं मुदा।।१४।।
गुरौ तुष्टे हरिस्तुष्टो यस्मिंस्तुष्टे च देवता। गुरुः पुत्रसमं स्नेहं शिष्येषु न[1] करिष्यति।।१५।।

लभते ब्रह्महत्यां च भुङ्क्ते कृत्वा च नाऽऽशिषम्।
स्वधर्मनिरतो विप्रो ब्राह्मणश्च सदा शुचिः।१६।।
विष्णुसेवी सदा विप्रस्तदन्योऽप्यशुचिः सदा।
ब्राह्मणो वृषवाहश्च शूद्राणां सूपकारकः।।१७।।

वेद में कहा है कि उन्हीं के निमित्त देवगण को सभी वस्तु अर्पित की जाती है, तथापि जनार्दन रूपी गुरु स्वयं प्रत्यक्ष रूप से भोजन करते हैं। वे ही श्रेष्ठ गुरु हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूपी सभी देवता निरन्तर आनन्दित होकर गुरुदेह में अधिष्ठान करते हैं। जिन हरि के सन्तुष्ट होने पर सभी देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं, वे हरि तो गुरु के सन्तुष्ट होने पर ही सन्तुष्ट हो पाते हैं। यदि कोई गुरु शिष्य के प्रति पुत्रवत् स्नेह नहीं करता तथा शिष्य के प्रणाम करने पर उनको शुभाशीष नहीं देता तथा भोजन करता है, तब वह ब्रह्महत्या पातक का भागी हो जाता है। जो ब्राह्मण स्वधर्म निरत तथा विष्णु की सेवा करने वाला है, वह सदा पवित्र है। हरि सेवा विहीन तथा स्वधर्मत्यागी ब्राह्मण सदा अशुद्ध हैं। जो ब्राह्मण वृषवाही है (बैल चलाकर जीविकोपार्जन करता है) तथा जो ब्राह्मण शूद्रों का भोजन पाक करता है।।१३-१७।।

ब्राह्मणो देवलश्चैव सन्ध्याहीनश्च दुर्बलः।
ब्राह्मणश्च दिवाशायी शूद्रश्राद्धान्नभोजनः।।१८।।
शूद्राणां शवदाही च ते च शूद्रसमा द्विजाः।
शालग्राममहामन्त्रं कृत्वा पूजां विधानतः।।१९।।
भुङ्क्ते नैवेद्यशेषं च तत्पादोदकमेव च। हरेः पादोदकं पीत्वा तीर्थस्नायी भवेन्नरः।।२०।।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।।२१।।

जो ब्राह्मण मन्दिर का पुजारी है, सन्ध्यावन्दन रहित है, दिन में शयन करता है, शूद्रों के श्राद्ध का अन्न भोजन करता है, उनके शवों का दाह करता है, वह तो शूद्रवत् ही है। जो शालग्राम के महामन्त्र से उन देव की सविधि पूजा करता है, उनका चरणामृत तथा नैवेद्य भोजन करता है, उसने तो तीर्थस्नान कर लिया। वह व्यक्ति सर्वपातक रहित होकर विष्णुलोक प्राप्त करता है। उसने तो सभी तीर्थों में स्नान कर लिया तथा उसने सभी यज्ञों की दीक्षा भी प्राप्त कर लिया!।।१८-२१।।

१. क. च।

शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत्। गङ्गाजलाद्दशगुणं शालग्रामजलं व्रज॥२२॥
नित्यं भुङ्क्ते च यो विप्रो जीवन्मुक्तः सुरैः समः।
विप्राणां नित्यकृत्यं च विष्णोर्नैवेद्यभोजनम्॥२३॥

हे ब्रजराज! गंगाजल से भी शालग्राम शिलाजल अत्यन्त श्रेष्ठ है। यह गंगा से १० गुना श्रेष्ठ कहा गया है। जो ब्राह्मण नित्य शालग्राम का चरणोदक पान करता है, वह जीवन्मुक्त है तथा देवतातुल्य है। विप्रगण का नित्य कृत्य है विष्णु नैवेद्य भोजन॥२२-२३॥

यत्नेन पूजनं तस्य तत्पादोदकसेवनम्।
नित्यं त्रिसन्ध्यं कुरुते भक्त्या च मम पूजनम्॥२४॥
एकादश्यां च भुङ्क्ते च मम वै जन्मवासरे। शिवरात्रौ च हे तात श्रीरामनवमीदिने॥२५॥
न च भुङ्क्ते व्रती यो हि जीवन्मुक्तो हि स द्विजः।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तस्य पादे च तानि च॥२६॥

विष्णु नैवेद्य भोजन करना, यत्नतः विष्णु अर्चना करना, शालग्राम अथवा विष्णु चरणजल पान, यह ब्राह्मण का नित्य कर्त्तव्य है। हे तात! जो विप्र तीनों काल सन्ध्या तथा भक्ति पूर्वक मेरी पूजा करता है तथा एकादशी के दिन, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन, शिवरात्रि के समय तथा श्रीरामनवमी को उपवासी रहता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। पृथिवी पर जितने भी तीर्थ हैं, वे सब ऐसे ब्राह्मण भक्त के चरणों में विद्यमान रहते हैं॥२४-२६॥

विप्रपादोदकं पीत्वा तीर्थस्नायी भवेन्नरः। विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी॥२७॥
तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम्। विष्णुप्रसादभोजी च पवित्रां कुरुते महीम्॥२८॥
तीर्थानि च नरांश्चैव जीवन्मुक्तो हि स द्विजः।
सर्वतीर्थेषु स स्नातो व्रतानां च फलं लभेत्॥२९॥

तभी विप्र का चरणामृत पान करके मानव को तीर्थ स्नान का फल मिलता है। मानव विप्रपादोदक पान करता जब तक भूमण्डल पर रहता है, उसके पितर लोग कमलपत्र के बने पात्रों में जल पीते हैं। विष्णु का प्रसाद भक्षण करने वाला व्यक्ति पृथिवी को पावन कर देता है। ऐसा द्विज तीर्थों तथा मनुष्यों को पावन करता है। वही जीवन्मुक्त भी हो जाता है। सभी तीर्थों में स्नान तथा व्रताचरण का जो फल है, उसे अनायास प्राप्त हो जाता है॥२७-२९॥

पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्छितं फलम्।
वह्निवायुसमः पूतस्तेजसा भास्करोपमः॥३०॥
यमदूतं यमं चैव स च स्वप्ने न पश्यति। वैकुण्ठे मोदते सोऽपि पार्षदो हरिणा सह॥३१॥

उस व्यक्ति को प्रति पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ फल की प्राप्ति होती जाती है। इसमें संशय ही

नहीं है। ऐसे व्यक्ति अग्नि तथा वायुवत् पवित्र होते हैं। वे सूर्यवत् तेजस्वी होते हैं। उनको स्वप्न में भी यमलोक, यमदूत किंवा यमदर्शन नहीं करना होता। वे हरि के पार्षदों के साथ वैकुण्ठ में आनन्दलाभ करते हैं।।३०-३१।।

न भवेत्तस्य पातो हि विप्रस्य हरिसेविनः।
विष्णुमन्त्रोपासकश्च स एव वैष्णवो द्विजः।।३२।।
ब्राह्मणो वैष्णवः प्राज्ञो न हि तस्मात्परः पुमान्।
वेदोक्तो वा पुराणोक्तस्तन्त्रोक्तो वा मनुः शुचिः।।३३।।

ऐसे हरि सेवक विप्र का वैकुण्ठ से कभी पतन नहीं होता। विष्णुमन्त्र की उपासना करने वाले ब्राह्मण ही वैष्णव हैं। ये ब्राह्मण वैष्णव ही प्राज्ञ हैं। उनसे बढ़कर श्रेष्ठ पुरुष है ही नहीं। वेदोक्त, पुराणोक्त किंवा तन्त्रोक्त मन्त्रों को पवित्र माना गया है।।३२-३३।।

विचारतो गृहीत्वा तं शैवः शाक्तश्च वैष्णवः।
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशत्ययम्।।३४।।
तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः। मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।।३५।।
भित्त्वा ब्रह्माण्डमखिलं यास्यत्येव हरेः पदम्।
पूर्वान्सप्त परान्सप्त सप्त मातामहादिकान्।।३६।।
सोदरानुद्धरेद्भक्तस्तत्प्रसूं तत्प्रसूं तथा। जपेन्नारायणक्षेत्रे पुरश्चरणपूर्वकम्।।३७।।
पुरुषाणां सहस्त्रं च लीलयाऽऽत्मानमुद्धरेत्। मन्त्रग्रहणमात्रेण फलमेतद्व्रजेश्वर।।३८।।

मानव विचार पूर्वक उसे ग्रहण करके मन्त्रानुसार ही शैव, शाक्त अथवा वैष्णव कहलाता है, तथापि जिनके कानों में गुरुमुख से विष्णुमन्त्र प्रविष्ट होता है; मनीषीगण उसे ही महापवित्र वैष्णव कह गये हैं। ऐसा मन्त्र ग्रहण करने मात्र से वह मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। वह समग्र ब्रह्माण्ड का भेदन करके हरिपद को प्राप्त कर लेता है। ऐसा भक्त अपनी पूर्व की तथा पश्चात् की ७-७ पीढ़ी को और मामा प्रभृति की ७ पीढी को सहोदरगण तथा प्रमातामही तक का उद्धार कर देता है। नारायण क्षेत्र में पुरश्चरण विधि सहित मन्त्र जप करने वाला अपनी एक हजार पीढ़ी का तथा स्वयं अपना उद्धार कर लेता है। हे व्रजेश्वर! मन्त्रग्रहण के साथ ही ऐसा फल मिला जाता है।।३४-३८।।

पुरश्चरणसंपर्कात्पुरुषाणां शतं शतम्। ऐकान्तिको वैष्णवश्च पुंसां लक्षं समुद्धरेत्।।३९।।
क्रिया विष्णुपदे यस्य संकल्पाश्च बहिःकृता।
द्विजाः सुरा मम प्राणा भक्तः प्राणात्परः प्रियः।।४०।।
विश्वेषु प्रियपात्रेषु न मे भक्तात्परः प्रियः।
तेजीयांसं गुरुं दृष्ट्वा सर्वत्र रक्षितुं क्षमम्।।४१।।

करोति मन्त्रग्रहणं तस्माद्भूयाद्विचक्षणः[१]। वयोहीनाज्ज्ञानहीनाद्विद्याहीनात्तथैव च।
जातिहीनाद्गुरोर्मन्त्रं गृह्णीयान्न कदाचन॥४२॥

पुरश्चरण विधि से जप करने वाले व्यक्ति की सौ पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। विष्णुमन्त्र जप करते-करते जिसकी समस्त कामनायें शान्त हो जाती हैं, उसके समस्त कार्यकलाप विष्णुपद में लीन हो गये रहते हैं, ऐसे एकान्तिक हरिभक्त अपनी एकलाख पीढ़ी का उद्धार कर देते हैं। ब्राह्मण तथा देवता तो मेरे प्राणों के समान हैं, तथापि जो भक्त हैं, वे तो मुझे अपने प्राणों से बढ़कर प्रिय हैं। विश्व ब्रह्माण्डस्थ सभी प्रियपात्रों में भक्तों से बढ़कर मुझे कोई प्रिय नहीं हैं। जो व्यक्ति सर्वत्र रक्षा करने में समर्थ गुरु को देखकर प्रसन्न मन से उनसे मन्त्रग्रहण करता है, वही बुद्धिमान है। अपने से आयु में कम, ज्ञानहीन, विद्याहीन, जातिहीन पुरुष से कदापि मन्त्रग्रहण न करें।।३९-४२।।

अशास्त्रार्थं[२] क्षतं मन्त्रं च गृह्णीयात्कदाचन।
मूर्खादाश्रमहीनाच्च पितुः संन्यासिनस्तथा॥४३॥
रोगिणो वंशहीनाच्च भार्याहीनात्तथैव च। मन्त्रक्षिप्तात्तथा मन्त्रं च गृह्णीयात्कदाचन॥४४॥
विष्णुमन्त्रं न गृह्णीयाद्विष्णुभक्तिविहीनतः।
न च शैवान्न शाक्ताच्च गृह्णीयाद्वैष्णवाद्द्विजात्॥४५॥

जो मन्त्र अशास्त्रीय हो, क्षतमन्त्र हो (अशुद्ध मन्त्र हो, खण्डित मन्त्र हो), उसे कदापि ग्रहण न करे। मूर्ख व्यक्ति से, जो आश्रम रहित हो (चतुर्वर्ण आश्रम से रहित हो), अपना पिता हो, संन्यासी, रोगी, निर्वंश, पत्नीहीन हो, जो मन्त्र को विस्मृत कर जाता हो, उससे कदापि मन्त्रग्रहण न करे। जो व्यक्ति विष्णुभक्ति रहित हो, किंवा शैव-शाक्त हो, उससे विष्णु मन्त्र कदापि नहीं लेना चाहिये। द्विजगण वैष्णवद्विज से ही विष्णुमन्त्र ग्रहण करें।।४३-४५।।

वयोहीनात्तथाऽल्पायुर्ज्ञानहीनादपण्डितः। विद्याहीनाद्भवेन्मूढो जातिहीनात्क्षयो भवेत्॥४६॥
मूर्खान्मूर्खो भवेत्सद्यो दुःखी स्वश्रमहीनतः।
यशोहानिः पितुश्चैव मृत्युः संन्यासिनस्तया॥४७॥
रोगिणो व्याधियुक्तश्च निर्वंशो वंशहीनतः।
भार्याहीनोऽपि स्त्रीहीनान्मन्त्रक्षिप्ताद्गुरो समः॥४८॥
विष्णुभक्तिविहीनाच्च भक्तिहीनो भवेन्नरः।
शैवाच्छाक्तादगृहीत्वा च हरौ भक्तिर्न वर्धते॥४९॥

आयु में अपने से कनिष्ठ से मन्त्र लेने वाला अपंडित तथा अल्पायु हो जाता है। विद्याहीन से मन्त्र लेने वाला मूढ़, जाति रहित (वर्णाश्रम रहित) से मन्त्र लेने वाला क्षयीभूत होता है। मूर्ख से मन्त्र

१. क. ०त्कृष्णो वि०।
२. ख. शास्त्रार्थ चाक्ष०।

लेने वाला मूर्ख तथा आश्रमहीन से मन्त्र लेने वाला सद्यः दुःखी हो जाता है। पिता से मन्त्र लेने से यश हानि होती है। संन्यासी से मन्त्र लेने से मृत्यु, रोगी से मन्त्र लेने पर रोग, पत्नीविहीन से मन्त्र लेने पर मन्त्रग्रहीता पत्नी रहित हो जाता है। जो मन्त्र वंशहीन व्यक्ति से लिया जाता है, वह मन्त्र लेने वाला निर्वंश हो जाता है। जो मन्त्र विस्मरण हो जाने वाले गुरु से लिया जाता है, वह व्यक्ति भी मन्त्र विस्मरण कर देने वाला हो जाता है। विष्णु भक्तिहीन से विष्णुमन्त्र लेने वाला भक्तिहीन हो जायेगा, जो कोई शैव किंवा शाक्त से विष्णुमन्त्र लेगा, उसमें हरि भक्ति की वृद्धि नहीं होती।।४६-४९।।

ब्राह्मणो वैष्णवःशुद्धः पक्वान्नं दातुमीश्वरः। पक्वान्नं हरये दातुमक्षमश्चेतरो जनः।।५०।।

ओंकारोच्चारणाद्धोमाच्छालग्रामशिलार्चनात् ।

मह्यं पक्वान्नदानाच्च विप्रादन्यो व्रजेदधः।।५१।।

केवल शुद्ध वैष्णव ब्राह्मण हरि को पक्वान्न बनाकर अर्पित कर सकता है। अन्य व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है; क्योंकि यदि विप्र के विना अन्य कोई ओंकार का उच्चारण, शालग्राम शिलार्चन तथा मुझे पक्वान्न प्रदान करेगा, उसे अधोगामी गति मिलेगी।।५०-५१।।

उदासीनाद्दुराचारान्न गृह्णीयान्मनुं सुधीः। दैवाद्यदि च गृह्णीयाद्धनहीनो भवेद्ध्रुवम्।।५२।।

ब्राह्मणानां सदा भक्ष्यं हविष्यं च निरामिषम्।

आमिषस्य परित्यागात्सूर्यवत्तेजसा भवेत्।।५३।।

नित्यं नूतनभाण्डेन कर्तव्यः पाक एव च।

अथवा पक्षपर्यन्तं ततस्त्याज्यं मनीषिभिः।।५४।।

स्थानं सुसंस्कृतं कृत्वा पाकं निर्वृत्य पूजकः।

स्थाने परिष्कृते विप्रो दत्त्वा मह्यं च भक्तितः।।५५।।

तदा निवेद्य भुङ्क्ते च दत्वा विप्राय सादरम्।

अनिवेद्य च भुक्त्या च सुरापीतिर्भवेद् द्विजः।।५६।।

बुद्धिमान् व्यक्ति उदासीन एवं दुराचरणरत व्यक्ति से मन्त्र ग्रहण न करे। दैवात् ऐसा अवसर हो जाने पर अर्थात् उदासीन एवं दुराचारी से मन्त्र ले लिया गया हो, तब मन्त्रग्रहीता धनहीन होगा। ब्राह्मणों को चाहिये कि वे सदा निरामिष (शाकाहारी) हविष्यान्न ग्रहण करे। आमिष भोजन त्याग देने वाला ब्राह्मण सूर्य की तरह तेजस्वी हो जाता है। मनीषी लोगों को नित्य नवीन (मांजे धुले स्वच्छ) पात्र में भोजन बनाना चाहिये। अथवा १५ दिन के पश्चात् वह पात्र त्यागे। पूजकगण स्वच्छ सुसंस्कृत किये स्थान पर अन्न पाक करके स्वच्छतम स्थान पर पूर्ण भक्तिभाव से वह अन्न मुझे निवेदित करें। मुझे सादर निवेदन करके ही विप्रगण अन्न भोजन करें। जो द्विज मुझे निवेदित किये बिना भोजन करता है, वह द्विज मद्यप जैसा अपवित्र है।।५२-५६।।

चन्द्रसूर्योपरागे वै चाऽऽशौचे मृतजातयोः। स्पृष्टेनाशुचिना सद्यः पाकभाण्डं परित्यजेत्।।५७।।

भृष्टं द्रव्यं तथाऽन्नं च धृत्वा धौते च वाससी।
पादप्रक्षालनं कृत्वा भुङ्क्ते स्थाने परिष्कृते॥५८॥
द्विर्भोजनं न कर्तव्यं स्थिते सूर्ये द्विजातिभिः।
निष्फलं तद्भवेत्कर्म भुक्त्वा च नरकं व्रजेत्॥५९॥

चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय, जनना-मरणा शौचकाल में, अशुद्ध व्यक्ति का स्पर्श हो जाने पर पाक करने वाला पात्र त्यागे। यह कार्य तत्क्षण करे। ब्राह्मण पैरों को धोकर, एक जोड़ी धुले वस्त्र पहने शुद्ध स्वच्छ किये स्थान पर भूजे हुये पदार्थ का किंवा अन्न का भोजन करे। द्विज लोग सूर्य के स्थितिकाल में (जब तक सूर्य उगे हों) दो बार भोजन न करें। नहीं तो उनका सभी कर्म निष्फल होगा। अन्ततः वे नरकगामी होंगे।।५७-५९।।

यात्रां युद्धं नदीतीरं पुनर्भोजनमैथुने। वर्जयेच्छ्राद्धदिवसे हविष्याशी च संयमी॥६०॥
द्विजाय विष्णुभक्ताय पात्रं दद्याद्बुधाय च। वृषलीपतये चैव न दद्याच्छूद्रयाजिने॥६१॥
सन्ध्याहीनाय दुष्टाय वृषवाहाय यत्नतः। शुक्रविक्रयिणे[1] चैव देवलाय कदाचन॥६२॥
प्रदत्तं पात्रमेतेभ्यो ब्राह्मणं नरकं नयेत्। पात्रे भुक्त्वा तद्दिवसे मैथुनान्नरकं व्रजेत्॥६३॥

श्राद्ध के दिन हविष्यान्न भोजी व्यक्ति का यात्रा, युद्ध, नदी पार जाना, पुनः भोजन करना, मैथुन करना वर्जित है। विष्णुभक्त द्विज को ही बुद्धिमान व्यक्ति श्राद्धपात्र प्रदान करे। वृषली (शूद्रा) के पति, शूद्रों को यज्ञ कराने वाले, सन्ध्या रहित, दुष्ट, वृष को गाड़ी में जोतकर जीवनयापन करने वाले, शुक्रविक्रयी, मंदिर के पुजारी—ऐसे ब्राह्मण को कदापि पात्रदान न करे। ऐसे ब्राह्मण को श्राद्धपात्र देने वाला नरक जाता है। जो श्राद्धपात्र में भोजन करके उस दिन स्त्री संगम करता है, वह भी नरकगामी होगा।।६०-६३।।

सर्वेभ्यः पातकी तात कन्याविक्रयकारकः।
मूल्यं गृहीत्वा या दद्यात्स महारौरवं व्रजेत्॥६४॥
कन्यालोमप्रमाणान्तं वर्षं च पितृभिः सह।
कुम्भीपाके पच्यते च पुत्रश्चापि पुरोहितः॥६५॥

तस्मात्कन्यां सुपात्राय दानं कुर्याद्विचक्षणः। शूद्रवद्ब्राह्मणेभ्यश्च नैव तद्वंशजाय च॥६६॥
विप्रवैष्णवयोर्धर्मः कथितश्च व्रजेश्वर। यदुक्तं च पुराणैश्च चतुर्भिः श्रुतिभिस्तथा॥६७॥

कन्या विक्रयी सबसे बड़ा पातकी होता है। मूल्य लेकर कन्या देने वाला महारौरव नरकगामी होगा। इसके पश्चात् उस कन्या के देह में जितने रोम हैं, वह कन्या विक्रेता उतने वर्ष तक अपने पितृगण के साथ, अपने पुत्र तथा पुरोहित के साथ कुंभीपाक नरक में पकाया जाता है। अतः बुद्धिमान मनुष्य

१. क. शुकवि०।

सुपात्र को कन्यादान करे। जो ब्राह्मण शूद्रवत् आचरण करता है, उसे किंवा उसके वंशजों को कदापि कन्या प्रदान न करे। हे व्रजेश्वर! मैंने आपसे वैष्णव विप्रगण हेतु वैष्णवधर्म कहा जो चतुर्वेद एवं पुराणोक्त है।।६४-६७।।

द्विजार्चनं क्षत्रियाणां तथा नारायणार्चनम्।
राज्यानां पालनं चैव रणे निर्भयता तथा॥६८॥
नित्यं दानं ब्राह्मणेभ्यः शरणागतरक्षणम्।
पुत्रतुल्यं प्रजानां च दुःखिनां परिपालनम्॥६९॥
शस्त्रास्त्राणां च नैपुण्यं रणे शौण्डीर्यमेव च।
तपश्च धर्मकृत्यं च यत्नतः कुरुते मुदा॥७०॥
पण्डितं नीतिशास्त्रज्ञं नित्यं च परिपालयेत्।
नियोजयेत्सभामध्ये नित्यं सद्भिश्च संयुते॥७१॥
हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं च चतुष्टयम्। पालयेद्यत्नतो नित्यं यशस्वी च प्रतापवान्॥७२॥
रणे निमन्त्रितश्चैव दाने न विमुखो भवेत्।
रणे वा यस्त्यजेत्प्राणांस्तस्य स्वर्गो यशस्करः॥७३॥

अब क्षत्रिय धर्म श्रवण करें। द्विजार्चन, नारायण पूजन, राज्यपालन, रण-निर्भयता, ब्राह्मणों को दान (नित्य दान), शरणागत रक्षा, प्रजाजन तथा दुःखीजन का पुत्रवत् पालन, अस्त्र-शस्त्र की निपुणता, रणदक्षता, तप एवं धर्मकार्य का अनुष्ठान करना क्षत्रियों का धर्म है। अतः वे इस धर्म का पालन आनन्द पूर्वक करें। क्षत्रिय नित्य शास्त्रज्ञ विद्वानों का पालन करे। उनको सत्पुरुषों की सभा में नियुक्त करे। हाथी, अश्व, रथ तथा पैदल सैन्य को सेना के ४ अंग कहा गया है। यशस्वी तथा प्रतापी क्षत्रिय रण में (युद्ध में) आमंत्रित होने पर कदापि युद्ध से मुंह न मोड़े। जो युद्ध में प्राणत्याग करता है, वह यशप्रद स्वर्गलाभ करता है।।६८-७३।।

वैश्यानामपि वाणिज्यमीश्वरः कृषिपालने। विप्रदेवार्चनं दानं तपस्या व्रतसेवनम्॥७४॥
विप्राणामर्चनं नित्यं शूद्रधर्मो विधीयते।
तत्कृषी तद्धनग्राही शूद्रचाण्डालतां व्रजेत्॥७५॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः। श्वापदः शतजन्मानि शूद्रो विप्रधनापहः॥७६॥

वैश्यगण का धर्म नित्य पशुपालन, देवार्चन, ब्राह्मण सेवा, दान, तप, व्रताचरण है। ब्राह्मणगण की नित्य पूजा शूद्र का धर्म कहा गया है। उनकी सम्पत्ति तथा धन पर अधिकार करने वाला, ब्राह्मणों को कष्ट पहुंचाने वाला शूद्र चाण्डालत्व प्राप्त करता है। जो शूद्र ब्राह्मण का धन हर लेता है, वह सहस्रकोटि जन्म पर्यन्त गृध्रयोनि में, सौ जन्म शूकर योनि में, सौ जन्म तक मांसभोजी पशु योनि में चक्रमण करता है।।७४-७६।।

यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी मातृगामी स पातकी।
कुम्भीपाके पच्यते स यावद्वै ब्रह्मणः शतम्।।७७।।
कुम्भीपाके तप्ततैले भुक्तः सर्पैरहर्निशम्। शब्दं च विकृताकारं कुरुते यमताडनात्।।७८।।

जिस शूद्र ने ब्राह्मणी से समागम किया,वह तो माता से समागम का पातकी हो जाता है। वह १०० ब्रह्मा के जीवन काल तक कुंभीपाक नरक में पकाया जाता है। कुंभीपाक में वह तपे तैल में पकाया जाता है। वहां उसे अहर्निश सर्प काटते रहते हैं। यमदूतों की ताड़ना से वह विकृत स्वर में चिल्लाता रहता है।।७७-७८।।

ततश्चाण्डालयोनिः स्यात्सप्तजन्मसु पातकी। सप्तजन्मसु सर्पश्च जलौकाः सप्तजन्मसु।।७९।।
जन्मकोटिसहस्रं च विष्ठायां जायते कृमिः।
पुंश्चलीनां योनिकृमिः स भवेत्सप्तजन्मसु।।८०।।
गवां व्रणकृमिः स्याच्च पातकी सप्तजन्मसु। योनौ योनौ भ्रमत्येवं न पुनर्जायते नरः।।८१।।

तदनन्तर उसे ७ जन्मों तक चाण्डल योनि मिलती है, तदनन्तर वह ७ जन्मों तक जोंक तथा सात जन्मों तक सर्प योनि प्राप्त करता है। तदनन्तर १००० जन्मों तक वह विष्ठा का कीड़ा होकर सात जन्मों तक कुलटा नारियों की योनि का कीट होकर जन्म लेता है। तदनन्तर वह ७ जन्मों तक गौओं के घाव में कीट होता है। वह पुनः-पुनः इस गर्हित योनियों में जन्म लेता रहेगा। कभी मनुष्य योनि नहीं पायेगा!।।७९-८१।।

संन्यासिनां च यो धर्मो मन्मुखाच्च निशामय। दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्।।८२।।
पूर्वकर्माणि दग्ध्वा च परकर्मनिकृन्तनम्।
कुरुते चिन्तयेन्मां च ह्यायाति मम मन्दिरम्।।८३।।

हे ब्रजराज! अब आप मुझसे संन्यासी का धर्म श्रवण करें। संन्यासदण्ड ग्रहण करते ही मनुष्य नारायण हो जायेगा। मेरे ध्यान में निरत संन्यासीगण पूर्वकृत कर्मसमूह को दग्ध कर देते हैं तथा इस जन्म का सभी कर्म उच्छिन्न कर देते हैं। उनका कोई भी कर्म शेष नहीं रह जाता। वे सतत् मेरा चिन्तन करने के कारण अन्ततः मेरा लोक प्राप्त कर लेते हैं।।८२-८३।।

संन्यासिनः पदस्पर्शात्सद्यः पूता वसुन्धरा। सद्यः पुनन्ति तीर्थानि वैष्णवस्य यथा व्रज।।८४।।
संन्यासिनश्च स्पर्शेन निष्पापो जायते नरः।
संन्यासिनं भोजयित्वा चाश्वमेघफलं लभेत्।।८५।।
नत्वा च कामतो दृष्ट्वा राजसूयफलं लभेत्।
फलं संन्यासिनां तुल्यं यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।।८६।।
संन्यासी याति सायाह्ने क्षुधितो गृहिणां गृहम्।
सदन्नं वा कदन्नं वा तद्दत्तं नैव वर्जयेत्।।८७।।

हे ब्रजराज! संन्यासीगण के चरण स्पर्श से ही वसुंधरा उसी प्रकार पवित्र होती है, जिस प्रकार वह वैष्णवों के चरण स्पर्श से परिपूत हो जाती है। मानव संन्यासी के स्पर्श से ही पातक रहित हो जाता है। संन्यासी को भोजन कराने से अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है। जो स्वेच्छा से संन्यासी का दर्शन करके उनको प्रणाम करता है, उसे यज्ञफल लाभ होता है। मनुष्य संन्यासी के समान व्यवहार यति एवं ब्रह्मचारी के प्रति भी करे। उसे वही फल प्राप्त होगा। भूखे संन्यासी सायंकाल गृही के द्वार पर आयें। वहां उनको भले ही उत्तम अन्न अथवा मध्यम-निम्न जो भी अन्न मिले उसे ग्रहण करें। उसका त्याग कदापि न करें।।८४-८७।।

न याचते च मिष्ठान्नं न कुर्यात्कोपमेव च। न धनग्रहणं कुर्यादेकवासा निरीहतः॥८८॥
शीतग्रीष्मसमानश्च लोभमोहविवर्जितः। तत्र स्थित्वैकरात्रं च प्रातरन्यत्स्थलं व्रजेत्॥८९॥

यानमारोहणं कृत्वा गृहीत्वा गृहिणो धनम्।
गृहं कृत्वा गृही रम्यात्स्वधर्मात्पतितो भवेत्॥९०॥
कृत्वा च कृषिवाणिज्यं कुवृत्तिं कुरुते च यः।
स संन्यासी हताचारः स्वधर्मात्पतितो भवेत्॥९१॥

संन्यासी उस समय कदापि मिष्ठान्न की याचना न करें। कुछ न मिलने पर गृही के प्रति कोप न करें। उससे धन भी ग्रहण न करें। संन्यासी एक वस्त्र मात्र पहने। संन्यासी शीत-उष्ण-गीष्मादि में समान रहे। वह सदा लोभमोह रहित होकर रहे। वह एक स्थान पर मात्र एक रात्रि निवास करके प्रातः होते ही अन्यत्र गमन करे। वाहन पर बैठना, गृही से धन लेना, रम्य गृह बनाकर रहना, गृही होना, इससे संन्यासी स्वधर्मच्युत हो जाता है। संन्यासी कृषि-वाणिज्य रूप अपने धर्म के विपरीत कुवृत्ति अपनाने से स्वधर्म पतित तथा आचारच्युत हो जाता है।।८८-९१।।

अशुभं च शुभं वाऽपि स्वकर्म कुरुते यदि।
बहिष्कृतः स्वधर्मी[1] वाऽप्युपहास्यश्च वै भवेत्॥९२॥
ब्राह्मणी पतिहीना या भवेन्निष्कामिनी सदा।
एकभुक्ता दिनान्ते सा हविष्यान्नरता सदा॥९३॥

न धत्ते दिव्यवस्त्रं च गन्धद्रव्यं सुतैलकम्। स्त्रजं च चन्दनं चैव शङ्खसिन्दूरभूषणम्॥९४॥

त्यक्त्वा मलिनवस्त्रा स्यान्नित्यं नारायणं स्मरेत्।
नारायणस्य सेवां च कुरुते नित्यमेव च॥९५॥

यदि संन्यासी संन्यासाश्रम के लिये वर्जित कोई भी शुभ किंवा अशुभ कार्य को करेगा, वह स्वधर्म से बहिष्कृत एवं उपहासास्पद होगा। हे पिता नन्दराज! विधवा ब्राह्मणी नित्य दिन का अन्त होने

१. क. धर्माच्चाप्यु०।

पर हविष्यान्न भोजन करे। सदा काम रहित रहे। शास्त्र की यही आज्ञा है। विधवा ब्राह्मणी कदापि उत्कृष्ट वस्त्र धारण न करे। गन्धद्रव्य, सुगन्धि तैल, माला, चन्दन, शंख, सिन्दूर, भूषण का सर्वथा त्याग करे। मलिन वस्त्र धारण करे तथा सदा हरिचिन्तन करना उसका कर्त्तव्य है। वह नित्य नारायण सेवा करे।।९२-९५।।

तन्नामोच्चारणं शश्वत्कुरुते नान्यभक्तितः। पुत्रतुल्यं च पुरुषं सदा पश्यति धर्मतः।।९६।।

मिष्टान्नं न च भुङ्क्ते सा न कुर्याद्विभवं व्रज।
एकादश्यां न भोक्तव्यं कृष्णजन्माष्टमीदिने।।९७।।

श्रीरामस्य नवम्यां तु शिवरात्रौ पवित्रया। अधोरायां च प्रेतायां चन्द्रसूर्योपरागयोः।।९८।।

भृष्टं द्रव्यं परित्यज्य भुज्यते परमेव च।
ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।।९९।।
संन्यासिनां च गोमांससुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम्।
रक्तशाकं मसूरं च जम्बीरं पर्णमेव च।।१००।।

अलाबुर्वर्तुलाकारा वर्जनीया च तैरपि। पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम्।।१०१।।

यानमारोहणं कृत्वा विधवा नरकं व्रजेत्।
न कुर्यात्केशसंस्कारं गात्रसंस्कारमेव च।।१०२।।
केशवेणी जटारूपं तत्क्षौरं तीर्थकं विना।
तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत नहि पश्यति दर्पणम्।।१०३।।

मुखं च परपुंसां च यात्रां नृत्यं महोत्सवम्। नर्तनं[1] गायनं चैव सुवेषं पुरुषं शुभम्।।१०४।।
शृणुयाच्च सतां धर्मं समावेदनिरूपितम्। परमार्थं परं चैव निबोध कथयामि ते।।१०५।।

वह परमभक्ति के साथ सतत् नामोच्चारणरत रहे। वह धर्मतः पुरुषों को पुत्रतुल्य देखे। वह मिष्ठान्न न खाये। हे वज्रेश्वर! वह विभव हेतु प्रयत्नशील न रहे। वह एकादशी तथा श्रीकृष्ण जन्माष्टमी को भोजन न करे। श्रीरामनवमी, पवित्र शिवरात्रि, अधोरा एवं प्रेता चतुर्दशी (नरक चतुर्दशी), चन्द्रसूर्यग्रहण के समय तनिक भोजन न करे। अधोरा एवं प्रेताचतुर्दशी काल में विधवा भूजे अन्न का त्याग करे। विधवा नारी, यती, ब्रह्मचारी, संन्यासी के लिये ताम्बूल गोमांस तथा सुरा जैसा त्याज्य है। लालशाक, मसूर, जम्बीर, पर्ण (पान का पत्ता), गोल लौकी इनके लिये वर्जित है। यदि विधवा पलंग पर शयन करती है, तब वह विधवा पति को अधोगति में पतित करने वाली है। यानवाहन का उपयोग करने पर विधवा नरकगामिनी होगी। विधवा नारी केश संस्कार तथा देह संस्कार का त्याग करे। (सज्जा न करे)। वह केशों की वेणी को केवल तीर्थ जाकर ही कटाये। जटारूप रखे। तैल न लगाये।

१. क. नर्तकं।

दर्पण न देखे। परपुरुष को न देखे। वह यात्रा, नृत्य, महोत्सव, में नृत्य-गीतोत्सव में न जाये। सुवेषधारी शुभपुरुष को न देखे। सामवेद निरूपित सज्जन लोगों के लिये धर्म का श्रवण करे। अब आप परमोत्तम परमार्थ सुनिये, जिसे मैं कहता हूं।।९६-१०५।।

अध्यापनमध्ययनं शिष्याणां परिपालनम्।
गुरूणां सेवनं नित्यं द्विजदेवार्चनं तथा।।१०६।।
सिद्धान्तशास्त्रनैपुण्यं भावनं स्वात्मतोषणम्।
व्याख्यानम् परिशुद्धं च ग्रन्थाभ्यस्तं च संततम्।।१०७।।
व्यवस्थापरिशुद्ध्यर्थं विचारो वेदसम्मतः।
शास्त्रार्थाचरणं चैव कर्तव्यं स्वयमेव च।।१०८।।

अध्ययन-अध्यापन, शिष्य पालन, गुरु की सेवा, नित्य ब्राह्मणों तथा देवगण की अर्चना करना, सिद्धान्त शास्त्र में निपुण होना, पुण्यमयी भावना रखना, आत्मसन्तोष धारण करना, शुद्ध व्याख्यान देना, सतत् ग्रन्थाभ्यास, परिशुद्ध व्यवस्था हेतु वेदसम्मत विचार, शास्त्रार्थानुरूप आचरण करना, यह साधुजन का कर्त्तव्य रूप है।।१०६-१०८।।

देवाह्निकेषु नैपुण्यं वेदाचरणमीप्सितम्। वेदोक्तभक्षणं चैव पवित्राचरणं सदा।।१०९।।

देवकार्य ने निपुणता, वेदसम्मत आचरण करना, वेदोक्त आहार भक्षण करना, सदा पवित्र आचरण करना सज्जनों के लिये अभीप्सित एवं आचरणीय है।।१०९।।

पतिव्रतानां यं धर्मं तं निबोध व्रजेश्वर।
नित्यं तु भर्तयौत्सुक्यात्तत्पादोदकमीप्सितम्।।११०।।
भक्तिभावेन सततं भोक्तव्यं तदनुज्ञया। व्रतं तपस्यां देवार्चां परित्यज्य प्रयत्नतः।।१११।।
कुर्याच्चरणसेवां च स्तवनं परितोषणम्। तदाज्ञारहितं कर्म च कुर्याद्वैरतः सती।।११२।।
नारायणात्परं कान्तं ध्यायते सततं सती। परपुंसां मुखं चैव सुवेषपुरुषं परम्।।११३।।
यात्रामहोत्सवं नृत्यं नर्तनं गायनं व्रज। परक्रीडां च सततं न हि पश्यति सुव्रता।।११४।।
यद्भक्ष्यं स्वामिनो नित्यं तदेवमपि योषिताम्।
नहि त्यजेत्तु तत्सङ्गं क्षणमेव च सुव्रता।।११५।।

हे ब्रजराज! अब मैं पतिव्रताओं का धर्म कहता हूं। वह प्रतिदिन सदा पति के प्रति अनुरागपूर्ण रहे। नित्य पति की आज्ञा लेकर भक्तिभाव से पति के चरणजल का पान करे। स्वामी का आदेश मिलने पर भोजन करे। वह व्रत, तप, देवार्चना त्यागकर प्रयत्न पूर्वक पतिचरण सेवा, उनकी स्तुति करे। सदा पति को सन्तुष्ट रखे। सती नारी विना पति की आज्ञा पाये कुछ भी न करे। वैर पूर्वक कुछ भी न करे। सती सदा नारायण से भी अधिक पति को मानकर सतत् उसका ही ध्यान करे। हे ब्रजराज! परपुरुष

मुख देखना, सुवेषधारी उत्तम पुरुष पर दृष्टिपात करना, यात्रा-महोत्सव-नृत्य-गीता तथा अन्य क्रीड़ा को पतिव्रता नारी (बिना पति के) कदापि नहीं देखती। पतिव्रता हेतु वही अन्न मान्य है, जो नित्य पति आहार करता है। सुव्रता नारी पति का संग एक क्षण भी नहीं छोड़ती।।११०-११५।।

उत्तरे नोत्तरं दद्यात्स्वामिनश्च पतिव्रता।
न कोपं कुरुते शुद्धा ताडिता चापि कोपतः।।११६।।
क्षुधितं भोजयेत्कान्तं दद्यात्पानं च भोजनम्।
न बोधयेत्तं निद्रालुं प्रेरयेन्नैव कर्मसु।।११७।।
पुत्राणां च शतगुणं स्नेहं कुर्यात्पतिं सती। पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं कुलयोषितः।।११८।।

जो पतिव्रता है, वह कदापि पति से उत्तर-प्रतिउत्तर (जबाब-सवाल) नहीं करती। वह कदापि स्वामी पर क्रोध नहीं करती। यहां तक कि यदि क्रोधित पति से ताड़ित होने पर भी क्रुद्ध नहीं होती! भूखे पति को पतिव्रता भोजन तथा जल प्रदान करे। वह निद्रालु पति को जगाकर कदापि काम न कराये। कार्य हेतु प्रेरित न करे। पतिव्रता नारी को चाहिये कि वह पुत्र की तुलना में १०० गुना प्रेम पति से करे। कुल नारी के लिये पति ही बन्धु, गति है। वही उसका देवता भी है।।११६-११८।।

शुभं दृष्ट्वा सुधातुल्यं कान्तं पश्यति सुन्दरी।
सस्मितं वदनं कृत्वा भक्ति भावेन यत्नतः।।११९।।
पुरुषाणां सहस्रं च सती स्त्री च समुद्धरेत्।
पतिः पतिव्रतानां च मुच्यते सर्वपातकात्।।१२०।।
नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा।
तया सार्धं च निष्कर्मी [१]मोदते हरिमन्दिरे।।१२१।।

सुन्दरी पतिव्रता नारी शुभ दृष्टि से अपने अमृततुल्य पति को देखती है। वह मुस्कराते हुये पति के प्रति भक्तिमान् होकर यत्नतः प्रसन्न दृष्टि से पति को देखती है। सती नारी अपनी सहस्रों पीढ़ी के पूर्वजों का उद्धार कर लेती है। ऐसी पतिव्रता का पति सर्वपातक रहित हो जाता है। पतिव्रता के तेज के द्वारा उनका पति समस्त कर्मभोग से रहित हो जाता है। सती पत्नी के पातिव्रत तेज के कारण कुछ भी कर्मभोग उसके पति को नहीं भोगना पड़ता वह पति ऐसी पतिव्रता पत्नी के साथ निष्काम होकर हरिधाम में आनन्दित होता है।।११९-१२१।।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि।
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीषु च।।१२२।।
तपस्विनां तपः सर्वं व्रतिनां यत्फलं व्रज।
दाने फलं यद्दातॄणां सत्सर्वं तासु सन्ततम्।।१२३।।

१. निष्कामेति च क्वचित्।

इस धरती पर के सभी तीर्थ सती नारी के पादद्वय में स्थित रहते हैं। सती में तो समस्त देवता तथा मुनिगण का तेज स्थित रहता है। हे ब्रजराज! तपस्वी को तप से, व्रतीगण को व्रत से, दानियों को प्रभूत दान से जो फल मिलता है, वह समस्त फल पतिव्रता नारी में विद्यमान रहता है॥१२१-१२३॥

स्वयं नारायणः शंभुर्विधाता जगतामपि।
सुराः सर्वे च मुनयो भीतास्ताभ्यां च सन्ततम्॥१२४॥

सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा। पतिव्रतां नमस्कृत्वा मुच्यते पातकान्नरः॥१२५॥

त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं क्षणेनैव पतिव्रता।
स्वतेजसा समर्था सा महापुण्यवती सदा॥१२६॥
सतीनां च पतिः साधुः पुत्रो निःशङ्क एव च।
न ह तस्य भयं किञ्चिद्देवेभ्यश्च यमादपि॥१२७॥

अधिक क्या कहा जाये! स्वयं नारायण, शंभु, जगत् विधाता ब्रह्मा, सभी देवता एवं मुनिवृन्द निरन्तर पतिव्रता सती नारी से डरते रहते हैं। सती के चरणस्पर्श से वसुन्धरा सद्यः पावन हो जाती है। पतिव्रता को प्रणाम करने वाले व्यक्ति के सभी पाप दूरीभूत हो जाते हैं। महापुण्यवती पतिव्रता नारी सदा अपने तेजःप्रभाव द्वारा क्षणमात्र में त्रैलोक्य को भस्म कर सकती है। सती के पुत्र तथा पति सदा निःशङ्क होकर स्थित रहते हैं। उनको देवगण से अथवा यम का कोई भय ही नहीं रहता॥१२४-१२७॥

शतजन्मपुण्यवतां गेहे जाता पतिव्रता। पतिव्रताप्रसूः पूता जीवन्मुक्तः पिता तथा॥१२८॥

सती स्त्री प्रातरुत्थाय त्यक्त्वा च रात्रिवाससम्।
भर्तारं च नमस्कृत्य करोति स्तवनं मुदा॥१२९॥
गृहकार्यं ततः कृत्वा स्नात्वा धौते च वाससी।
गृहीत्वा शुक्लपुष्पं च भक्तितः पूजयेत्पतिम्॥१३०॥
स्नापयित्वा सुपूतेन जलेन निर्मलेन च।
तस्मै दत्त्वा धौतवस्त्रं तत्पादौ क्षालयेन्मुदा॥१३१॥
आसने वासयित्वा च दत्त्वा भाले च चन्दनम्।
सर्वाङ्गलेपनं कृत्वा दत्त्वा माल्यं गलेऽपि च॥१३२॥

गृह में पतिव्रता का जन्म सैकड़ों जन्मार्जित पुण्य से होता है। पतिव्रता की माता स्वयं पावन हो जाती है तथा पिता जीवन्मुक्त हो जाते हैं। सती नारीगण प्रातः जाग्रत होकर रात्रि का वस्त्र बदलें तदनन्तर हर्षित मुद्रा में पति को प्रणामोपरान्त उनकी स्तुति करे। गृहकार्य से वह नारी निवृत्त होकर स्नान करके वस्त्रद्वय धारण करे। वह अब श्वेतपुष्प लेकर भक्तिभावेन पति का पूजन करे। तत्पश्चात् निर्मल पवित्रजल से पति को स्नान कराकर धुला वस्त्र उनको प्रदान करे तथा उनका चरण धोकर आसनासीन कराये। स्वामी के मस्तक पर चन्दन लगाकर सर्वाङ्ग में चन्दन लिप्त करके गले में माला पहनायें॥१२८-१३२॥

सामवेदोक्तमन्त्रेण भोगद्रव्यैः सुधोपमैः।
सम्पूज्य भक्तितः कान्तं स्तुत्वा च प्रणमेन्मुदा॥१३३॥
ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाश्रयाय स्वाहा।
इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वा पुष्पं च चन्दनम्॥१३४॥
पाद्यार्घ्यं धूपदीपौ च वस्त्र नैवेद्यमुत्तमम्।
जलं सुवासितं शुद्धं ताम्बूलं च सुवासितम्॥१३५॥

तदनन्तर सामवेदोक्त मन्त्र से सुधा के समान विविध भोगद्रव्य प्रदान करके प्रसन्न मन से भक्ति पूर्वक पति का स्तव कहकर उनको प्रणाम करे। इस मन्त्र से पति को पुष्प-चन्दन-पाद्य-अर्घ्य-धूप-दीप-उत्तम वस्त्र, नैवेद्य, सुगन्धित जल, शुद्ध जल, सुवासित कर्पूरयुक्त ताम्बूल प्रदान करे यह सब प्रदान करने का मन्त्र यह है-"ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाश्रयाय स्वाहा।"॥१३३-१३५॥

दत्त्वा स्तोत्रं पठेद्यद्यत्कृतं वै पाठ्यमेव च।
ॐ नमः कान्ताय भर्त्रे च शिरश्चन्द्रस्वरूपिणे[1]॥१३६॥

नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च। नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणपराय च॥१३७॥
नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः। पञ्चप्राणाधिदेवाय चक्षुषस्तारकाय च॥१३८॥

तदनन्तर वह भार्या यह स्तोत्र पति के समक्ष पढ़े यहां अर्थ मात्र दिया जा रहा है। स्तोत्र मूल से देखकर पढ़े) "हे कान्त, भर्त्ता आप शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रस्वरूप हैं। आप शान्त-दान्त तथा सर्वदेवाश्रय हैं। आप ब्रह्मस्वरूप, मुझ सती नारी के प्राण-परायण हैं। आपको प्रणाम! आप नमस्कार योग्य, पूज्य, मुझ पत्नी के हृदयाधार, मेरे पञ्चप्राण के अधिदेवता तथा मेरी आंखों के तारे हैं।॥१३६-१३८॥

ज्ञानाधाराय पत्नीनां परमानन्दरूपिणे। पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिरेव महेश्वरः॥१३९॥

पतिश्च निर्गुणाधारो ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते।
क्षमस्व भगवन् दोषं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत्॥१४०॥
पत्नीबन्धो दयासिन्धो दासीदोषं क्षमत्व मे।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्यादौ पद्मया कृतम्॥१४१॥
सरस्वत्या च धरया गङ्गया च पुरा व्रज।
सावित्र्या च कृतं पूर्वं ब्रह्मणे चापि नित्यशः॥१४२॥
पार्वत्या च कृतं भक्त्या कैलासे शङ्कराय च।
मुनीनां च सुराणां च पत्नीभिश्च कृतं पुरा॥१४३॥

१. क. शिवच०।

"आप ज्ञान के आधार तथा मुझ पत्नी को परमानन्द देने वाले हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूं! हे प्रभो! रमणी के लिये पति ही ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर हैं। उसके लिये पति ही निर्गुणाधार परब्रह्मरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूं! हे प्रभो! मेरे द्वारा जाने-अनजाने में जो दोष हो गया हो, वह सब क्षमा करिये। हे पत्नीबन्धु! दयासिन्धु! इस दासी के अपराधों को क्षमा करिये।" यह स्तोत्र महापुण्यमय है। सृष्टि के आदि में लक्ष्मी, सरस्वती, पृथिवी तथा गंगा द्वारा इस महापुण्यमय स्तोत्र का पाठ किया गया था। देवी सावित्री ने इस स्तोत्र से नित्य ब्रह्मास्तुति पूर्वकाल में किया था। पार्वती ने भक्तिभाव से कैलास शिखर पर इसी स्तोत्र से शिवस्तुति किया था। पूर्वकाल में मुनिपत्नियों तथा देव-पत्नियों ने अपने पतियों की इसी स्तोत्र से स्तुति किया था॥१३९-१४३॥

पतिव्रतानां सर्वासां स्तोत्रमेतच्छुभावहम्।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं या शृणोति पतिव्रता॥१४४॥
नरोऽन्यो वाऽपि नारी वा लभते सर्ववाञ्छितम्।
अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम्॥१४५॥
रोगी च मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
पतिव्रता च स्तुत्वा च तीर्थस्नानफलं लभेत्॥१४६॥
फलं च सर्वं तपसां व्रतानां च व्रजेश्वर। इदं स्तुत्वा नमस्कृत्वा भुङ्क्ते सा तदनुज्ञया।
उक्तः पतिव्रताधर्मो गृहिणां श्रूयतां व्रज॥१४७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥८३॥

यह स्तोत्र सभी पतिव्रता नारीगण के लिये सुखदायक है। जो पतिव्रता नारी इस महापुण्यप्रद स्तोत्र को सुनती है, अथवा पुरुष सुनते हैं, उनको वांछित फल की प्राप्ति हो जाती है। अपुत्र को पुत्र, निर्धन को है धन, रोगी को रोगमुक्ति, बद्ध को बन्धन से मुक्ति (छुटकारा) प्राप्त हो जाता है। हे व्रजेश्वर! पतिव्रता इस स्तोत्र से पति स्तुति करके तीर्थस्थान फललाभ कर लेती है। हे ब्रजेश्वर! उसे सभी तपःश्चरण तथा व्रताचरण जनित फल भी मिल जाता है। इस स्तुति को करने के पश्चात् पति को प्रणाम करके तथा उनकी आज्ञा लेकर पत्नी भोजन करे। यह पातिव्रत धर्म मेरे द्वारा कहा गया। अब आप गृही लोगों का धर्म श्रवण करें॥१४४-१४७॥

॥८३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

गृहस्थधर्म निरूपण, स्त्री चरित्र कथन, चारों वर्णों के भक्त-लक्षण तथा संक्षेप में कर्मपरिणाम तथा ब्रह्माण्ड वर्णन

श्रीभगवानुवाच

द्विजदेवार्चनं चैव करोति सततं गृही। स्वधर्माचरणं चैव चातुर्वर्ण्यं च नित्यशः॥१॥

कुर्वन्ति गृहिणामाशां सर्वे देवादयस्तथा।
अकृत्वाऽतिथिपूजां च गृहस्थश्च सदाऽशुचिः॥२॥

पितरः कर्मकाले चातिथिकाले च देवताः। सर्वे गृहस्थमायान्ति निपानमिव धेनवः॥३॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे पिता! गृही लोग सतत् द्विज एवं देवता की पूजा करें। ब्राह्मणादि चारों वर्ण नित्य धर्माचरण करें। देवतादि सभी गृहस्थ की प्रशंसा करते हैं। जो गृहस्थ अतिथि पूजा नहीं करता, वह सदा अपवित्र है। देवादि सभी की नित्य आशा गृहस्थ से रहती है। जैसे पिण्डदान काल में पिण्डदाता के पास सभी पितर आते हैं, उसी प्रकार अतिथि सेवा करते समय समस्त देवता गृही के यहां आ जाते हैं। यह उसी प्रकार है जैसे पिपासु गौयें जल के पास आती हैं॥१-३॥

समायाति प्रयत्नेन सयाह्ने क्षुधितोऽतिथिः।
पूजां लब्ध्वाऽऽशिषं कृत्वा प्रयाति गृहिणो गृहात्॥४॥

अकृत्वाऽतिथिपूजां च गृही भवति पातकी। त्रैलोक्यजनितं पापं लभते नात्र संशयः॥५॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिर्वते। पितरस्तस्य देवाश्च वह्नयश्च तथैव च॥६॥

निराशाः प्रतिगच्छन्ति गृहिणोऽतिथयो गृहात्।
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्राह्मणैर्गुरुतल्पगैः॥७॥

क्षुधित अतिथि सायाह्नकाल में व्यग्रचित्त से गृहस्थ के यहां आता है। वहां अतिथि सेवा पाकर वह अतिथि गृही को आशीर्वाद देकर उसके यहां से चला जाता है। गृही के द्वारा अतिथि जब सत्कार (अन्नादि) नहीं पाता तब वह गृही पापी हो जाता है। त्रैलोक्य जनित पातक उस गृही को लग जाता है। अतिथि के निराश होकर चले जाने पर उस गृही के गृह से पितर, देवता तथा अग्निदेव तक निराशा में भर कर चले जाते हैं। वह गृही स्त्री हत्यारा, कृतघ्न, ब्राह्मण की तथा गुरु की पत्नी से रमण का दोषी हो जाता है॥४-७॥

तुल्यदोषो भवत्येव [१]येनातिथिरनर्चितः। स्वात्मनः पातकं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥८॥

---

१. क. यस्याति०।

अर्थात् जिसने अतिथि की अर्चना नहीं किया उसे ऊपर कहे पातकों का इतना पाप लगता है। अतिथि उसे अपने पाप देकर तथा उस गृही के पुण्य लेकर चले जाते हैं।।८।।

तस्मात्कृत्वा सर्वसेवां देवादींश्च शुभाशयः।
पोष्याणां भरणं कृत्वा पश्चाद्भुङ्क्ते स धर्मवित्।।९।।
यस्य माता गृहे नास्ति भार्या च पुंश्चली तथा।
अरण्यं तेन गन्तव्यमरण्याद्दुःखदं गृहम्।।१०।।
पतिं द्वेष्टि सदा दुष्टा विषतुल्यं च पश्यति।
ददाति तस्मै नाऽऽहारं भर्त्सनं कुरुते सदा।।११।।
पूजितं मुनितुल्यं च सा च पापीयसी परम्।
सन्ततं तृणवन्मत्वा न्यक्कारं कुरुते सदा।।१२।।

तभी शुभाशय धर्मज्ञ गृही लोग देवादि सबकी सेवा तथा पोष्यवर्ग की सेवा करके सर्वान्त में भोजन करें। जिसके घर में माता नहीं है तथा पत्नी कुलटा है, उसका वन गमन ही करना श्रेष्ठ है। ऐसे व्यक्ति के लिये वन तथा गृह तो समान ही है। कुलटा नारी सदा पतिद्वेषी होती है। वह पति की ओर ऐसे देखती है मानो वह विष हो! वह पति को आहार नहीं देती। सदा पति की भर्त्सना करती है। भले ही पति मुनि के समान क्यों न हो, सभी तरह से श्रेष्ठ क्यों न हो, तथापि वह पापिनी कुलटा पति को सदा तृणवत् तुच्छ समझती उसकी भर्त्सना करती है।।९-१२।।

दुर्वाक्यवह्निना दग्धो मृत तुल्यश्च जीवति।
यावज्जीवनपर्यन्तं सम्प्राप्य दुष्टवंशजाम्।।१३।।
गृहिणीनां सदाचारं श्रूयतां तच्छ्रुतौ श्रुतम्। गृहिणी पतिभक्ता च देवब्राह्मणपूजिता।।१४।।

मानव ऐसी दुष्ट वंश में जन्मी नारी से विवाह करके यावत् जीवन उसकी दुर्व्यवहार रूपी अग्नि में जलता रहता है। हे व्रजराज! अब वेदोक्त वह सदाचार सुनें जो गृहिणीगण के लिये कहे गये हैं। गृहणी पतिभक्ता तथा शुद्धा देव-ब्राह्मण पूजिता होती है।।१३-१४।।

सा शुद्धा प्रातरुत्थाय नमस्कृत्य पतिं सुरम्। प्राङ्गणे मङ्गलं दद्याद्गोमयेन जलेन च।।१५।।
गृहकृत्यं च कृत्वा च स्नात्वाऽऽगत्य गृहं सती।
सुरं विप्रं पतिं नत्वा पूजयेद्गृहदेवताम्।।१६।।
गृहकृत्यं सुनिर्वृत्य भोजयित्वा पतिं सती।
अतिथिं पूजयित्वा च स्वयं भुङ्क्ते सुखं सती।।१७।।

वह नित्यप्रति प्रातः उठकर पति एवं देवता को प्रणाम करके आंगन को गोबर तथा जल लीपकर मंगलमय करती है। वह सती गृहकृत्य सम्पन्न करके स्नान करती है। तदनन्तर वापस घर

आकर देवता, ब्राह्मण तथा पति को प्रणाम करके गृह देवता पूजन करती है। गृहकृत्य सम्पन्न करके वह पति को भोजन प्रदान करती है। वह सती अतिथि पूजनोपरान्त स्वयं सुख से भोजन करती है।।१५-१७।।

पुत्रैश्च पूजितस्तातः शिष्यैश्च पूजितो गुरुः।
आज्ञया कुरुते कर्म पुत्रः शिष्यश्च भृत्यवत्॥१८॥
न प्रेरयेद्गुरुं तातं पुत्रः शिष्यश्च कर्मसु। पित्रे च गुरवे नित्यं सर्वस्वं च समर्पयेत्॥१९॥
न कुर्यान्नरबुद्धिं च गुरौ पितरि संततम्।
कृत्वा च नरबुद्धिं च ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम्॥२०॥
मातरं पूजयेद्भक्त्या पितुश्चाप्यधिकां तथा। मातुः परं गुरुं चैव पूजयेद्भक्तियोगतः॥२१॥
पिता माता गुरुर्भार्या शिष्यः पुत्रः सदाऽक्षमः।
अनाथा भगिनी कन्या नित्यं पोष्या गुरुप्रिया॥२२॥

पुत्रों द्वारा पिता पूजित होता है। शिष्यगण गुरु की पूजा (सेवा) करते हैं। पुत्र पिता के तथा शिष्य गुरु के आदेशानुरूप भृत्यवत् उनका सभी काम सम्पन्न करते हैं। पुत्र कदापि पिता को तथा शिष्य गुरु को किसी कार्य हेतु न भेजे। पुत्र पिता को तथा शिष्य गुरु को सर्वस्व अर्पित कर दे। पुत्र पिता को तथा शिष्य गुरु को कदापि मनुष्य न समझे। ऐसा करने वाला ब्रह्महत्या का भागी हो जाता है। मानव पिता की तुलना में अपनी माता की अधिक पूजा (सेवा) करे। माता से अधिक भक्तिभाव से गुरु की पूजा करनी चाहिये। पिता, माता, गुरु, पत्नी, शिष्य, अक्षम पुत्र, अनाथ बहन, कन्या, गुरुपत्नी ये सभी गृही द्वारा पोषणीय हैं।।१८-२२।।

एवं च कथितं तात सर्वेषां धर्ममुत्तमम्।
स्त्रीजातिर्वास्तवी शुद्धा ताश्च सर्वाः पतिव्रताः॥२३॥
सर्वा जातिरेकविधा चाऽऽदौ सृष्टा च ब्रह्मणा।
ताः सर्वाः प्रकृतेरंशाः पवित्राः पण्डिताधिकाः॥२४॥

हे तात! यह मैंने सबका उत्तम धर्म कह दिया। स्त्री तो वास्तव में शुद्ध होती हैं। उनमें भी पतिव्रता सबसे शुद्ध हैं। पूर्व में ब्रह्मा ने समस्त स्त्री जाति को एक प्रकार का ही सृजित किया था। वे सभी प्रकृति के अंश से उत्पन्न पवित्र तथा वे सभी पतिव्रता थीं। वे सभी पण्डिता थीं।।२३-२४।।

केदारकन्याशापेन स हि धर्मः क्षयं गतः।
तदा कोपेन धात्रा च कृत्या स्त्री च विनिर्मिता॥२५॥
कृत्या स्त्री त्रिविधा जातिर्ब्रह्मणा निर्मिता पुरा।
उत्तमा प्रथमा सा च मध्यमा चाधमा व्रज॥२६॥

उत्तमा पतिभक्ता सा किञ्चिद्धर्मसमन्विता।
प्राणान्तेऽपि न कुरुते तं जारमयशकरम्॥२७॥
पूजयेत्सा यथा कान्तं तथा देवद्विजातिथीन्।
व्रतानि चोपवासांश्च कुरुते सर्वपूजनम्॥२८॥
गुरुणा रक्षिता यत्नाज्जारं च न भजेद्भयात्।
सा कृत्रिमा मध्यमा च यथाकिंचित्पतिं भजेत्॥२९॥
स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः।
तेन हे नन्द तासां च सतीत्वमुपजायते॥३०॥
अधमा परमा दुष्टाऽत्यन्तासद्वंशजा तथा।
अधर्मशीला दुःशीला दुर्मुखा कलहान्विता॥३१॥
पतिं भर्त्सयते नित्यं जारं च सेवते सदा।
दुःखं ददाति कान्ताय विषतुल्यं च पश्यति॥३२॥

पूर्वकाल में केदारकन्या के अभिशाप के कारण धर्म क्षय हो गया था, तब ब्रह्मा ने क्रोधित होकर कृत्या स्त्री जाति का निर्माण किया जो त्रिविधा हैं। यथा उत्तमा, मध्यमा एवं अधमा। **उत्तमा धर्मसम्पन्ना नारी** पतिभक्ता होती है। यह प्राणान्त उपस्थित होने पर भी अपयशकारी जार (उपपति) को स्वीकार नहीं करती। वह जैसे पति की पूजा करती है, तदनुरूप देवता-ब्राह्मण-अतिथि की भी पूजा करती है। वह व्रत, उपवास तथा सबकी पूजा करती है। जो **मध्यमा कृत्रिमा नारी** है, वह पति को कुछ-ही मानती है। वह गुरुजन से रक्षित होने के कारण ही जारपुरुष का संसर्ग नहीं कर पाती। हे नन्दराज! ऐसी नारी के सतीत्व की रक्षा इसलिये होती है कि वह उचित स्थान न मिलने के कारण, उचित अवसर न मिलने के कारण तथा रति प्रार्थना करने वाले पुरुष के न मिलने के कारण सतीत्व धर्म स्थिर रख पाती है। **अधमा नारी** नीच कुल में उत्पन्न, अधर्म करने वाली, दुःशीला, कटुभाषिणी, कलही होती है। वह उपपति की सेवा करने वाली, अपने पति की भर्त्सना करने वाली होती है। वह पति को दुःख देती है। पति को विष के समान देखती है।।२५-३२।।

जारद्वारमुपायेन हन्ति कान्तं मनोहरम्। धर्मिष्ठं च वरिष्ठं च गरिष्ठं च महीतले॥३३॥
कामदेवसमं चापि जारं पश्यति कामतः[1]।
शुभदृष्ट्या कटाक्षेण शश्वत्पापीयसी मुदा॥३४॥
सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा युवानं रतिशूकरम्।
योनिः क्लिद्यति नारीणां कामिनीनां निरन्तरम्॥३५॥
ददाति भर्त्रे नाऽऽहारं विषोक्तिं वक्ति संततम्। अधर्मं चिन्तयेच्छश्वज्जारं च परमं मुदा॥३६॥

१. क. कामुका।

वह जार पुरुष से मिलकर अपने मनोहर, वरिष्ठ, गरिष्ठ एवं धर्मात्मा पति का वध करा देती है। वह अधमा पापिनी काम के वशीभूत होकर जारपुरुष को कामदेव जैसा मानती है। उसे आनन्दित होकर कटाक्षपात से देखती है। जार को शुभ दृष्टि से ही देखती है। अच्छे वेश वाले, रतिकुशल युवापुरुष को देखकर ऐसी अधमा कामुकी नारी की योनि आर्द्र हो उठती है। वह दुष्टा नारी अपने पति को आहार भी नहीं देती। निरन्तर उससे कटु वचन बोलती है। वह सतत् परम अधर्ममय उपपति (जार) के चिन्तन में आनन्द से निरत रहती है।।३३-३६।।

गुरुभिर्भर्त्सिता सा च रक्षिता च शतेन च।
तथाऽपि जारं कुरुते नापि साध्यः नृपैरपि॥३७॥
नास्ति तस्या प्रियं किञ्चित्सर्वं कार्यवशेन च।
गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ती नवं नवम्॥३८॥

वह अधमा नारी गुरुजनों द्वारा अपमानित किये जाने तथा भर्त्सना किये जाने पर भी तथा सैकड़ों लोगों द्वारा रक्षा किये जाने पर भी उपपति का साथ कर ही लेती है। राजा लोग भी ऐसी अधमा का निवारण उपपति से नहीं करा पाते। ऐसी दुष्टा के लिये प्रकृत प्रियवस्तु अन्य कुछ भी नहीं है। उसका प्रिय कुछ नहीं है। वह कार्यवश ही प्रिय बनाती है। जैसे वन में गौयें नित्य नया तृण खोजती हैं, उसी प्रकार अधमा नारी नित्य नये-नये जार पुरुष खोजती रहती है।।३७-३८।।

विद्युदाभा जले रेखा तस्य प्रीतिस्तथैव च।
अधर्मयुक्ता सततं कपटं वक्ति निश्चितम्॥३९॥
व्रते तपसि धर्मे च न मनो गृहकर्मणि। न गुरौ न च देवेषु जारे स्निग्धं च चञ्चलम्॥४०॥

जैसे आकाशीय विद्युत् की चमक क्षणिक होती है तथा जल में बनी रेखा भी अस्थायी होती है, उसी प्रकार से अधमा नारी की प्रीति भी क्षणिक जानें। वे अधर्म निरत तथा सदा कपटमय वाक्य बोलती हैं। उनका मन गृहकर्म, व्रत, तप, धर्म में नहीं लगता। गुरु तथा देवता के प्रति भी उनके मन में श्रद्धा नहीं रहती। उनका मन केवल अपने जार के ही प्रति चंचल एवं प्रेमपूर्ण रहा करता है।।३९-४०।।

स्त्रीजातित्रिविधानां च कथा च कथिता मया।
भक्तानां त्रिविधानां च लक्षणं श्रूयतामिति॥४१॥
तृणशय्यारतो भक्तो मन्नामगुणकीर्तिषु। मनो निवेशयेत्त्यक्त्वा संसारसुखकारणम्॥४२॥
ध्यायते मत्पदाब्जं च पूजयेद्भक्तिभावतः। अहैतुकीं तस्य देवाः सङ्कल्परहितस्य च॥४३॥
सर्वसिद्धिं न वाञ्छन्ति तेऽणिमादिकमीप्सितम्।
ब्रह्मत्वममरत्वं वा सुरत्वं सुखकारणम्॥४४॥
दास्यं विना न हीच्छन्ति सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नैव निर्वाणमुक्तिं च सुधापानमभीप्सितम्॥४५॥

यह त्रिविध नारीजाति की कथा मैंने कह दिया। अब आप त्रिविध भक्तों का लक्षण श्रवण करिये। मेरा भक्त तो कुश तृण की बनी चटाई पर भी सुख से रहता है। वह संसार के सभी सुखों का त्याग करके मेरे गुणों का तथा नामों का कीर्त्तन करता रहता है। वह तो सदा मेरे चरणों का ध्यान तथा मेरी पूजा ही करता रहेगा। वे भक्त अणिमा आदि सभी सिद्धियों, सुखकारण ब्रह्मत्व, अमरत्व, सुरत्व (देवत्व) की कामना भी नहीं करते। वे मेरे दास्य के अतिरिक्त सालोक्यादि चारों प्रकार की मुक्ति की भी कामना नहीं करते। वे अन्य लोगों को वांछित निर्वाण मुक्ति अथवा अमृतपान की भी इच्छा नहीं करते।।४१-४५।।

वाञ्छन्ति निश्चलां भक्तिं मदीयामतुलामपि।
स्त्रीपुंविभेदो नास्त्येव सर्वजीवेषु भिन्नता।।४६।।
तेषां सिद्धेश्वराणां च प्रवराणां व्रजेश्वर।
क्षुत्पिपासादिकं निद्रालोभमोहादिकं रिपुम्।।४७।।
त्यक्त्वा दिवानिशं मां च ध्यायन्ते च दिगम्बराः।
समद्भक्तोत्तमो नन्द श्रूयतां मध्यमादिकम्।।४८।।

वे तो केवल मेरी अतुलनीय अचला भक्ति हेतु ही उत्सुक रहते हैं। हे ब्रजेश्वर! सिद्धेश्वरों से भी श्रेष्ठ इन भक्तगण में स्त्री-पुरुष भेद की सत्ता नहीं रहती। वे सभी प्राणीगण की तरह यह भेद नहीं देखते। सिद्धेश्वरों से भी श्रेष्ठ इन भक्तगण को मनुष्य तथा प्राणीगण के परमशत्रु क्षुधा-पिपासा, निद्रा-लोभ-मोहादि भी कोई व्याघात नहीं पहुंचा पाते। इनको तो वस्त्र धारण की भी चिन्ता नहीं रहती। ये तो दिन-रात मेरे ही ध्यान में तन्मय रहा करते हैं। हे नन्दराज! अब आप इन **सर्वोत्तम भक्तों** का वर्णन सुनने के अनन्तर मेरे मध्यमादि भक्तों का भी वृत्तान्त श्रवण करिये।।४६-४८।।

नाऽऽसक्तः कर्मसु गृही पूर्वप्राक्तनतः शुचिः।
करोति सततं चैव[१] पूर्वकर्मनिकृन्तनम्।।४९।।
न करोत्यपरं यत्नात्सङ्कल्परहितः स च।
सर्वं कृष्णस्य यत्किंचिन्नाहं कर्ता च कर्मणः।।५०।।
कर्मणा मनसा वाचा सततं चिन्तयेदिति।
न्यूनभक्तश्च तन्न्यूनः स च प्राकृतिकः श्रुतौ।।५१।।

जो पवित्र गृहस्थ व्यक्ति पूर्वकर्मानुसार (पूर्व की तरह) कर्म में लिप्त न होकर सदैव कर्मपाश उच्छेदन में निरत रहा करते हैं तथा यत्न पूर्वक प्रवृत्त होकर किसी जागतिक कार्य का अनुष्ठान (उसमें लिप्त होकर) नहीं करते तथा संकल्प रहित होकर काया-मन-वाणी से निरन्तर यही चिन्तन करते हैं कि जो कुछ हो रहा है, वह श्रीकृष्ण की ही इच्छा है, मैं कर्म का कर्त्ता नहीं हूं। ऐसे

१. ख. कर्म।

भक्त **न्यूनभक्त** कहे गये हैं। इससे भी न्यून श्रेणी वाले भक्त **प्राकृतिक** कहे गये हैं। यह वेद में कहा गया है।।४९-५१।।

यमं वा यमदूतं वा स्वप्नेऽपि न च पश्यति। पुरुषाणां सहस्रं च पूर्वभक्तः समुद्धरेत्।।५२।।

पुंसां शतं मध्यमश्च तच्चतुर्थं च प्राकृतः।
भक्तश्च त्रिविधस्तात कथितश्च तवाऽऽज्ञया।।५३।।
ब्रह्माण्डरचनाख्यानं श्रूयतां सावधानतः।
ब्रह्माण्डरचनार्थं च भक्ता जानन्ति यत्नतः।।५४।।

मेरा भक्त कदापि यम को किंवा यमदूतों को नहीं देखता। ये सब उसे स्वप्न तक में परिलक्षित नहीं होते। उत्तम भक्तगण अपनी हजारों पूर्व पीढ़ियों को मुक्त कर देते हैं। मध्यम भक्त सौ पीढ़ी के पितरों को मुक्त कर देते हैं। प्राकृत भक्त २५ पीढ़ी को मुक्त कर देते हैं। हे तात! आपकी आज्ञा से मैंने इन त्रिविध भक्तों का वर्णन कर दिया। अब आप सावधानी से ब्रह्माण्डरचना का आख्यान श्रवण करिये। हे पिता! मेरे भक्तगण यत्न पूर्वक ब्रह्माण्ड रचना का विवरण जान लेते हैं।।५२-५४।।

मुनयश्च सुराः सन्तः किञ्चिज्जानन्ति दुःखतः।
जानामि विश्वं सर्वार्थं ब्रह्माऽऽनन्तो महेश्वरः।।५५।।

धर्मः सनत्कुमारश्च नरनारायणावृषी। कपिलश्च गणेशश्च दुर्गा लक्ष्मीः सरस्वती।।५६।।

वेदाश्च वेदमाता [१]च सर्वज्ञा राधिका स्वयम्।
एते जानन्ति विश्वार्थं नान्यो जानाति कश्चन।।५७।।
वैषम्यार्थं[२] च सुधियः सर्वे विज्ञातुमक्षमाः।
नित्याकाशो यथाऽऽत्मा च तथा नित्या दिशो दश।।५८।।

अत्यन्त क्लेशपूर्ण प्रयत्न से यह प्रसंग देवता तथा मुनिगण तनिक जान पाते हैं। मुझे तो यह सब ब्रह्माण्ड रचना विवरण विदित है। तदनन्तर ब्रह्मा, अनन्त, महेश्वर, धर्मदेव, सनत्कुमार, नर-नारायण ऋषि, कपिल, गणेश, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, वेद, वेदमाता-सावित्री तथा स्वयं सर्वज्ञा राधा, यह जानती हैं। अन्य कोई यह विषय नहीं जानता! किम्बहुना, समस्त सुधी धीमान् व्यक्ति भी ब्रह्माण्ड विषय को जानने में समर्थ नहीं हैं। यह आत्मा जैसे नित्य है, तदनुरूप आकाश तथा दिशायें भी नित्य हैं।।५५-५८।।

यथा नित्या च प्रकृतिस्तथैव विश्वगोलकः।
गोलोकश्च यथा नित्यस्तथा वैकुण्ठ एव च।।५९।।

---

१. देवाश्च देवमाता च इति क्वचित्।
२. विश्वस्यार्थश्च इति क्वचित्।

एकदा मयि गोलोके रासे नित्यं प्रकुर्वति[१]।
आविर्भूता च वामाङ्गाद्बाला षोडशवार्षिकी॥६०॥

जिस प्रकार प्रकृति नित्य है, तदनुरूप विश्वगोलक भी नित्य है। जैसे गोलोक नित्य है, उसी प्रकार वैकुण्ठधाम भी नित्य है। एक बार मैं गोलोक में रासरत था। तभी मेरे वामांग से षोडशवर्षीया सुन्दरी प्रकट हो गई।।५९-६०।।

श्वेतचम्पकवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा। अतीव सुन्दरी रामा रमणीनां परावरा[२]॥६१॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या कोमलाङ्गी मनोहरा। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नाभरणभूषिता॥६२॥
यथा जलदपङ्क्तिश्च बलाकाभिर्विभूषिता। सिन्दूरबिन्दूना चारुचन्द्रचन्दनबिन्दुभिः॥६३॥

उसका देहवर्ण श्वेत चम्पा पुष्प के समान था। उसकी प्रभा शरत्कालीन चन्द्रमा के तुल्य थी। वह अतीव सुन्दरी अभिरामा बाला समस्त सुन्दरियों से अत्यन्त श्रेष्ठ थी। वह तनिक मुस्कराती हुई, प्रसन्न मुखी, कोमलांगी मनोहरा थी। उसने अग्निशुद्ध चमकीले वस्त्र पहने थे तथा रत्नाभरण से भूषिता थी। वे भूषण ऐसे लग रहे थे मानो मेघ पंक्तियों में बगुलों का झुण्ड उड़ रहा हो। उसने ललाट पर सुन्दर सिन्दूर की बिन्दी लगाया था, जो उत्तम चन्द्रमा के समान चन्दन बिन्दुओं से घिरी थी।।६१-६३।।

कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धं सीमन्तान्धः स्थलोज्ज्वला।
अमूल्यनिर्माणसुस्निग्धकिरणोज्ज्वला ॥६४॥

इन नारी की मांग के नीचे कस्तूरी की बिन्दी लगी थी, जिससे वह भाग उज्वल प्रतीत हो रहा था। ये देवी अमूल्य रत्नों से निर्मित आभूषणों की स्निग्ध किरणों से दीप्त थीं।।६४।।

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसमुज्ज्वला। कुङ्कुमालक्तकस्तूरीचारुचन्दनपत्रकैः॥६५॥
विचित्रैश्च सुचित्रैश्च सुकपोलस्थलोज्ज्वला। खगेन्द्रञ्चुविजितनासामौक्तिकशोभिता॥६६॥
गजेन्द्रगण्डनिर्मक्तमुक्ताभूषणभूषिता। शुक्त्या[३] विमुक्तमुक्ताभदन्तपङ्क्तिमनोहरा॥६७॥
वलिताकलिताऽतीव[४] पक्वबिम्बाधरा वरा। शश्वत्पूर्णेन्दुनिन्दास्या पद्मनिन्दितलोचना॥६८॥

इनके कपोल के दोनों भाग कान में लटक रहे दो रत्नकुण्डल की दीप्ति से उज्वल हो रहे थे। इनके कपोल पर कुंकुम-आलता-कस्तूरी से उत्तम विचित्र रचनाओं वाले पत्रक बने थे। ये ऐसे विचित्र रूप से चित्रित थे, जिससे इनके कपोलों की शोभा कहते नहीं बनती। इनकी मनोहर नासिका तो पक्षीराज गरुड़ के चोंच की शोभा को भी पराजित कर रही थी। उसमें गजेन्द्र के गण्डस्थल से निकली गजमुक्ता लटक रही थी। उसकी शोभा की कोई सीमा ही नहीं है। इस ललिता नारी की दन्तपंक्ति तो

१. एकस्यापि च गोलोके रासो नित्यं मम ब्रज इति पाठान्तरम्।
२. क. ०रात्परा।
३. सूक्त्य इति पाठान्तरम्।
४. वसिता ललितातीव इति पाठान्तरम्।

सीपी से निकली मोती के समान मनोहर थी। देवी के अधर पके बिम्बफल के समान सुन्दर लग रहे थे। देवी का मुखकमल तो पूर्णिमा के चन्द्र को भी लजा देने वाला था। देवी के नेत्रद्वय तो कमल की शोभा को भी निन्दित करने वाले थे।।६५-६८।।

कृष्णसरनिभोद्भिन्नसुचारुकज्जलोज्ज्वला। अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरकङ्कणोज्ज्वला।।६९।।
मणीन्द्रराजराजीभिः शङ्खयुग्मकरोज्ज्वला। रत्नाङ्गुलीयकैरेभिरमृताङ्गुलिभूषिता।।७०।।

देवी के नेत्रद्वय कृष्णसार मृग नेत्रों के समान थे। उनमें काजल भी लगा था, जिसके कारण वे अत्यन्त उज्वल लग रहे थे। देवी के उज्वल कंकण एवं केयूर का निर्माण अमूल्य रत्नों से हुआ था। इससे भगवती का मणिबन्ध द्योतित हो रहा था। देवी के दोनों हाथ उत्तम मणियों की पंक्ति तथा शङ्ख से प्रभापूर्ण लग रहे थे। उनकी अमृतमयी उंगलियां रत्नमयी अंगूठियों से विभूषित थीं।।६९-७०।।

रत्नेन्द्रराजराजेन क्वणन्मञ्जीररञ्जिता। रत्नपाशकराजीभिः पादाङ्गुलिविराजिता।।७१।।
सुन्दरालक्तरागेण चरणाधःस्थलोज्ज्वला। गजेन्द्रगामिनी रामा कामिनी वामलोचना।।७२।।
मां ददर्श कटाक्षेण रमणी रमणोत्सुका। रासे सम्भूय रामा सा दधार पुरतो मम।।७३।।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिः प्रपूजिता। प्रहृष्टा प्रकृतिश्चास्यास्तेन प्रकृतिरीश्वरी।।७४।।

उनके चरणयुगल रत्नों के सारभाग से बने मधुर शब्द करने वाले नूपुरद्वय से शोभायमान हो रहे थे। उनके चरणों की उंगलियों में रत्नों की बनी बिछिया सुशोभित थीं। चरणतल सुन्दर महावर के रंगों से रंगा था। वे मत्तगज के समान मन्द-मन्द गति से चल रही थीं। उनके नेत्र रम्य तथा अत्यन्त सुन्दर थे। इस प्रकार की वह अतुलनीय सुन्दर कामिनी मुझे अपनी बांकी चितवन से देखने लगी। वह अत्यन्त रमणोत्सुक थी। वह सर्वपूजिता नारी रासमण्डल में उत्पन्न होकर मेरे आगे दौड़ पड़ी। इस प्रकार उसने मुझे धारण कर लिया। तभी विद्वान् लोगों ने उसे राधा कहकर सम्मानित किया! वे अत्यन्त हर्षित प्रकृति वाली होने के कारण ईश्वरी प्रकृति कहलाने लगीं।।७१-७४।।

शक्ता स्यात्सर्वकार्येषु तेन शक्तिः प्रकीर्तिता।
सर्वाधारा सर्वरूपा मङ्गलार्हा च सर्वतः।।७५।।
सर्वमङ्गलदक्षा सा तेन स्यात्सर्वमङ्गला। वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीर्मूर्तिभेदे सरस्वती।।७६।।
प्रसूय वेदान्विदिता वेदमाता च सा सदा।
सावित्रीं सा च गायत्री धात्री त्रिजगतामपि।।७७।।
पुरा संहृत्य दुर्गं च सा दुर्गा च प्रकीर्तिता। तेजसः सर्वदेवानामाविर्भूता पुरा सती।।७८।।
तेनाऽऽद्या प्रकृतिर्ज्ञेया सर्वासुरविमर्दिनी। सर्वानन्दा च सानन्दा दुःखदारिद्र्यनाशिनी।।७९।।
शत्रूणां भयदात्री च भक्तानां भयहारिणी।
दक्षकन्या सती सा च शैलजातेति पार्वती।।८०।।

वे सभी कार्य हेतु शक्ता (समर्था) हैं। तभी वे शक्ति नाम से प्रख्यात हैं। सर्वतोभावेन

मङ्गलमयी, सर्वाधारा, सर्वरूपिणी राधा सभी प्रकार के मङ्गलविधान में दक्षा हैं। अतः उन्होंने सर्वमङ्गला नाम भी धारण किया। वे ही मूर्त्तिभेद के कारण वैकुण्ठ में महालक्ष्मी तथा सरस्वती रूप से विराजमान हैं। वे ही वेदों को प्रसव करने के कारण सदा वेदमाता कही जाती हैं। फलस्वरूप वे ही सावित्री, गायत्री तथा त्रिलोक व्यापिनी शक्ति हैं। वे पूर्वकाल में दुर्ग दैत्य का संहार करने के कारण दुर्गा कही जाती हैं। इन सती ने पूर्वकाल में समस्त देवताओं के तेज से आविर्भूता होकर समस्त असुरों का नाश किया था। तभी ये आद्या प्रकृति के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सर्वानन्दरूपिणी तथा सानन्दा हैं। ये भक्तभयहारिणी, दुःख-दरिद्रतानाशिनी और शत्रुओं को भयभीत करने वाली हैं। ये दक्षकन्या सती देवी ही पर्वत से उत्पन्न होकर पार्वती हैं।।७५-८०।।

सर्वाधारस्वरूपा सा कलया सा वसुन्धरा।
कलया तुलसी गङ्गा कलया सर्वयोषितः।।८१।।
सृष्टिं करोमि च यया तात शक्त्या पुनः पुनः।
दृष्ट्वा तां रासमध्यस्थां मम क्रीडा तया सह।।८२।।
बभूव सुचिरं तात यावद्वै ब्रह्मणः शतम्।
अत्यद्भुतं कौतुकं च महाशृङ्गारमीप्सितम्।।८३।।

ये ही सबकी आधारमयी होकर अपनी एक कला से वसुन्धरा, एक कला से तुलसी, एक कला से गङ्गा तथा अपनी ही कला से समस्त नारीरूपा हैं। हे तात! मैं इन शक्ति के द्वारा ही पुनः-पुनः सृष्टि कार्य करता हूं। जब मैंने उस शक्ति को रासमण्डल में देखा, तब मैंने सौ ब्रह्माओं के आयु काल तक उसके साथ रमण क्रीड़ा किया। यह अत्यन्त कौतुकमय अद्भुत तथा अभीप्सित महाशृङ्गार रूप क्रीड़ा थी!।।८१-८३।।

तयोर्द्वयोर्धर्मराशिः सुस्राव रासमण्डले। तस्मान्मनोहरं जज्ञे नाम्नाकारसरोवरम्।।८४।।
पपात धर्मधाराऽधो वेगेन विश्वगोलके। बभूव जलपूर्णं च ब्रह्माण्डानां च गोलकम्।।८५।।
जलपूर्णं पुरा सर्वं सृष्टिशून्यं व्रजेश्वर। शृङ्गारान्ते च तस्यां च वीर्याधानं मया कृतम्।।८६।।
दधार गर्भं सा राधा यावद्वै ब्रह्मणः शतम्।
सुस्राव सा तदन्ते च डिम्भं च परमाद्भुतम्।।८७।।
चुकोप देवी तं दृष्ट्वा रुरोद विषसाद सा। पादेन प्रेरयामास तमधो विश्वगोलके।।८८।।

उस समय रासमण्डल में मेरे तथा राधा के अंगों से ऐसा पसीना बहने लगा, जिससे एक गहरा मनोहर सरोवर बन गया। क्रमशः यह धारा वेग से अधःस्थित विश्वगोलक में गिरने लगी। इस धारा से जितने भी ब्रह्माण्ड गोलक थे, सभी भर गये। हे ब्रजेश्वर! उस समय सर्वत्र जल ही जल था। सृष्टि शून्यमय थी। राधा के साथ उस शृङ्गार क्रीड़ा का अवसान होने पर मैंने उसमें वीर्य स्थापित कर दिया। राधा ने उस गर्भ को १०० ब्रह्मा के जीवनकाल तक धारण किया। तत्पश्चात् एक परमअद्भुत् डिम्भ

उत्पन्न हो गया। उसे देखकर राधा अत्यन्त विषाद के साथ रुदन करने लगीं। तत्पश्चात् राधा ने उस डिंभ को इस प्रकार पैरों से फेंका जिससे वह नीचे स्थित विश्वगोलक पर जा गिरा!।।८४-८८।।

स पपात जले तात सर्वाधारो महान्विराट्।
दृष्ट्वाऽपत्यं जलस्थं च मया शप्ता च सा पुरा॥८९॥
अनपत्या च सा राधा मच्छापेन पुरा विभो।
तेन प्रसूताः क्रमतो दुर्गा लक्ष्मीः सरस्वती॥९०॥

हे तात! वह सर्वाधारा महाविराट् उस महाजल में जा गिरा। उसे उस पूर्वकाल में जल में पड़ा देखकर मैंने राधा को शाप दे दिया था। हे विभु! मेरे उस शाप से राधा सन्तान रहित हो गईं। तभी दुर्गा-लक्ष्मी-सरस्वती उत्पन्न हो गईं।।८९-९०।।

चतस्त्रः परिपूर्णास्ताः प्रसूताश्च सुनिश्चितम्।
देव्योऽन्याश्चापि कामिन्यस्ताःप्रसूता व्रजेश्वर॥९१॥
कलया प्रभवो यासां कलांशांशेन वा व्रज।
जज्ञे महान्विराड्येन डिम्भेन कलयाऽऽश्रयः॥९२॥
अमृताङ्गुष्ठपीयूषं मया दत्तं पपौ च सः। जले स्थावररूपश्च शेते च निजकर्मणः॥९३॥
उपधानं जलं तल्पं तस्य योगबलेन च।
तस्य लोम्नां च कूपानि जलपूर्णानि संततम्॥९४॥
प्रत्येकं क्रमतस्तेषु शेते क्षुद्रविराट् पुनः। सहस्त्रपत्रं कमलं जज्ञे क्षुद्रस्य नाभितः॥९५॥
तत्र जज्ञे वरो ब्रह्मा तेनायं कमलोद्भवः।
तत्राऽऽविर्भूय स विधिश्चिन्ताग्रस्तो बभूव सः॥९६॥

यह चार मूर्त्ति परिपूर्णा है। इनमें से तीन निश्चित रूप से प्रसूता हैं। अन्य कामिनियां भी प्रसूता हैं। हे ब्रजेश्वर! इनकी कला से अथवा कलांश से महाविराट् प्रकट हो गया, जो मेरी कला पर आश्रित होकर प्रकट हुआ था। तब मैंने महाविराट् शिशु को अपने अमृतमय अंगूठे से अमृत प्रदान किया। उसे उसने पान किया। वह अपने कर्मानुरूप जल में स्थावर रूप से शयनरत हो गया। योगबल से उसने जल को ही शय्या एवं तकिया के रूप में कर दिया। उसके रोम के सभी छिद्र सतत् जलपूर्ण रहते हैं। उसके प्रत्येक रोम छिद्र में एक-एक क्षुद्र विराट् शयन करता है। क्षुद्र विराट् की नाभि से सहस्त्रदलपद्म निर्गत हो गया। उसी पर कमलोद्भव ब्रह्मा जन्मे। ये इसी कारण कमलोद्भव कहे जाते हैं। ब्रह्मा (विधि) आविर्भूत होते ही चिन्तातुर हो गये।।९१-९६।।

कस्माद्देहः क्व माता मे पिता वा क्व च बान्धवः।
दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च बभ्राम कमलान्तरे॥९७॥

ततो दिव्यं पञ्चलक्षं सस्मार तपसा च माम्। तदा मया दत्तमन्त्रं जजाप कमलान्तरे॥९८॥

दिव्यवर्षसप्तलक्षं नियतं संयतः शुचिः।
तदा मत्तो वरं लब्ध्वा स्त्रष्टा सृष्टिं चकार सः॥९९॥

ब्रह्मा चिन्तन करने लगे–"मेरा देह कैसे निर्मित हो गया? मेरा माता-पिता-बान्धव कौन है और कहां हैं? यह विचार करते उस कमल मध्य में ब्रह्मा को तीन लाख दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर पांच लाख दिव्य वर्षों तक ब्रह्मा ने तपःश्चरण करते हुये मेरा चिन्तन-स्मरण किया। तब ब्रह्मा को मैंने मन्त्र दिया, जिसका जप उन्होंने उस कमल में किया। यह मन्त्र जप ब्रह्मा ने ७ लाख दिव्य वर्ष पर्यन्त पवित्र एवं संयतमन से उसी कमल में किया। इस मन्त्र जप से प्रसन्न होकर जब मैंने ब्रह्मा को वर दिया, तब स्त्रष्टा ब्रह्मा ने सृष्टि कार्य किया॥९७-९९॥

मायया प्रति ब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः।
दिक्पाला द्वादशादित्या रुद्राश्चैकादशापि च॥१००॥

नवग्रहाष्टौ वसवो देवाः कोटित्रयं तथा। ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रा यक्षगन्धर्वकिन्नराः॥१०१॥

भूतादयो राक्षसाश्चाप्येवं सर्वं चराचरम्।
विश्वे विश्वे विनिर्माणाः स्वर्गाः सप्त क्रमेण च॥१०२॥
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
काञ्चनीभूमिसंयुक्ता तमोयुक्तं स्थलं तथा॥१०३॥
पातालाश्च तथा सप्त ब्रह्माण्डमेभिरेव च।
विश्वे विश्वे चन्द्रसूर्यो पुण्यक्षेत्रं च भारतम्॥१०४॥

मेरे मायाबल से प्रति ब्रह्माण्ड में (पृथक्-पृथक् ब्रह्माण्ड में) एक-एक ब्रह्मा-विष्णु-महेश उद्भूत हो गये। प्रति ब्रह्माण्ड में दिक्पालगण, १२ आदित्य, ११ रुद्र, ९ ग्रह, ८ वसु, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, भूतादि एवं राक्षस समन्वित समस्त चराचर सृष्ट हो गया। प्रति विश्व में तीन कोटि देवता, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी उत्पन्न हो गये। प्रति विश्व में सात स्वर्ग का निर्माण हुआ। सात सागर, सात द्वीप, स्वर्णभूमि तथा उसके पश्चात् अन्धकाराच्छन्न स्थान, सात पाताल तथा सात ब्रह्माण्ड प्रत्येक विश्व में हैं। प्रति विश्व में चन्द्र-सूर्य तथा पुण्यक्षेत्र भारत भी है!॥१००-१०४॥

तीर्थान्येतानि सर्वत्र गङ्गादीनि व्रजेश्वर।
यावन्ति लोमकूपानि महाविष्णोः क्रमेण च॥१०५॥
विश्वान्येव हि तावन्ति ह्यसंख्यातानिं च ध्रुवम्।
विश्वेषामूर्ध्वभागे च वैकुण्ठश्च निराश्रयः॥१०६॥
मदिच्छया विनिर्माणा वेदाः कथितुमक्षमाः।
कुयोगिनाम् दृष्टश्चामभक्तानां विनिश्चितम्॥१०७॥

हे व्रजेश्वर! प्रति ब्रह्माण्डों में चन्द्र, सूर्य, पुण्यमय भारत, गंगा आदि तीर्थ भी हैं। इन महाविराट् महाविष्णु के जितने रोमकूप हैं, उतने ही असंख्य विश्व हैं। यह निश्चित है। विश्व के ऊर्ध्वभाग में निराधार निराश्रय रूप से वैकुण्ठधाम स्थित है। यह वैकुण्ठ मेरी इच्छा से ही निर्मित है। वेद भी वैकुण्ठ का वर्णन कर सकने में असमर्थ ही हैं। जो भक्त नहीं हैं, कुयोगी हैं, वे इसे नहीं देख सकते। यह निश्चित है।।१०५-१०७।।

तस्मादुपरि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः।
वायुना धार्यमाणश्च विचित्रः परमाश्रमः।।१०८।।
अतीव रम्यनिर्माणो नित्यरूपो मदिच्छया। शतशृङ्गेण शैलेन पुण्यवृन्दावनेन च।।१०९।।
सुरासमण्डलेनापि नद्या विरजया युतः।
कोटियोजनविस्तीर्णा प्रस्थेन विरजा व्रज।।११०।।

गोलोक वैकुण्ठधाम में पचास कोटियोजन ऊर्ध्व में हैं। यह गोलोक विचित्र, परमआश्रयरूप, नित्य तथा मेरी इच्छा से अत्यन्त रमणीय रूप से निर्मित और वायु के आधार पर आधारित है। उसमें शतशृंग पर्वत, पुण्य वृन्दावन तथा रम्य रासमण्डल शोभायमान है। यह विरजा नदी से घिरा है। यह नदी प्रशंसनीया एवं शुभप्रदा है। इसकी चौड़ाई एक कोटियोजन है।।१०८-११०।।

दैर्घ्यं तस्याः शतगुणं परितः परमा शुभा। अमूल्यरत्ननिकरैर्हीरमाणिक्ययोस्तथा।।१११।।
मणीनां कौस्तुभादीनामसंख्यानां मनोहरा।
अमूल्यरत्ननिर्माणं तत्रापि प्रतिमन्दिरम्।।११२।।
मनोहरं च प्राकारमदृष्टं विश्वकर्मणा। गोपीभिर्गोपनिकरैर्वेष्टितं कामधेनुभिः।।११३।।
कल्पवृक्षैः पारिजातैरसंख्यैश्च सरोवरैः।
पुष्पोद्यानैः कोटिभिश्च संवृतं रासमण्डलम्।।११४।।

इसकी लम्बाई इस चौड़ाई से सौ गुनी अधिक है। यह चारों ओर परम शुभा है। इस नदी में अमूल्य मणि-माणिक्य आदि की खाने हैं। यहां के प्रत्येक भवन अमूल्यरत्न निर्मित हैं। हे ब्रजराज! इस स्थान के चतुर्दिक् जो दीवार है, वह तो ऐसी मनोरम है, जैसी दीवार विश्वकर्मा ने भी नहीं देखा होगा। वहां का रासमण्डल अनगिनत पारिजात वृक्ष, कामधेनु के झुण्ड, कल्पवृक्षों, गोप-गोपीगण के समूह, सरोवरों एवं कोटि-कोटि पुष्प वाटिकाओं-उद्यानों से शोभायमान है।।१११-११४।।

वेष्टितं वेष्टितैर्गोपैर्मन्दिरैः शतकोटिभिः। रत्नप्रदीपयुक्तैश्च पुष्पतल्पसमन्वितैः।।११५।।
सुगन्धिचन्दनामोदैः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितैः।
क्रीडोपयुक्तैर्भोगैश्च ताम्बूलैर्वासितैर्जलैः।।११६।।
धूपैः सुरभिरम्यैश्च माल्यैश्च रत्नदर्पणैः। रक्षकै रक्षितं शश्वद्राधादासीत्रिकोटिभिः।।११७।।

अमूल्यरत्नाभरणैर्वह्निशुद्धांशुकैरपि। लक्षमत्तगजेन्द्राणां वेष्टितं च बलैः क्रमात्॥११८॥
नवयौवनसम्पन्नै रूपैर्निरुपमैरपि। रम्यं च वर्तुलाकारं चन्द्रबिम्बं यथा व्रज॥११९॥
अमूल्यरत्नरचितं दशयोजनविस्तृतम्। कस्तूरीकुङ्कुमै रम्यैः सुगन्धिचन्दनार्चितम्॥१२०॥
आवृतं मङ्गलघटैः फलपल्लवसंयुतैः। दधिलाजैश्च पर्णैश्च स्निग्धदूर्वाङ्कुरैः फलैः॥१२१॥
श्रीरामकदलीस्तम्भैरसंख्यैश्च मनोहरैः। पट्टसूत्रनिबद्धैश्च स्निग्धैश्चन्दनपल्लवैः॥१२२॥

यह रासमण्डल पूर्णतः गोपगण के भवनों से घिरा है। ये संख्या में शतकोटि हैं। सभी भवन रत्नों के दीपक तथा पुष्प शय्या से समन्वित हैं। वे सुगन्धित चन्दन गन्ध से आमोदित हैं। उनमें कहीं ताम्बूल, कहीं सुवासित जल, कहीं क्रीड़ा के लिये उपयुक्त भोग्यवस्तु समूह सन्निविष्ट है। अग्निशुद्ध वस्त्रों एवं मूल्यवान रत्नों के आभूषणों से भूषित तीन कोटि संख्यक राधा की दासियां इस रासमण्डल का रक्षण करती रहती हैं। रासमण्डल एक लाख मदमत्त गजराजाओं के सैन्य से घिरा रहता है। ये सभी सैन्यकर्मी जो गजसेना के साथ रहते हैं, वे सभी नवयुवक तथा अत्यन्त सौन्दर्यशाली हैं। हे व्रजराज! अमूल्य रत्नों से जड़ा यह रासमण्डल विस्तार में दस योजन है। जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमण्डल गोल होता है, उसी प्रकार रासमण्डल भी रम्य एवं वर्त्तुलाकृति ही है। वह रासमण्डल सुरम्य कस्तूरी, कुंकुम एवं चन्दन से चर्चित एवं फलों से पूर्ण तथा पल्लव लगे मङ्गल घटों से पूर्ण हैं। यहां दधि, लावा, पत्र, नवदूर्वांकुर, नाना फल, असंख्य श्रीरामकदली स्तम्भ शोभित होते रहते हैं। यहां पट्टसूत्र से बनी चन्दन के पत्तों की बन्दनवार लगी रहती है।।११५-१२२।।

चन्दनासक्तमाल्यैश्च भूषणैश्च विभूषितम्। अमूल्यरत्नरचितं शतशृङ्गमनोहरम्॥१२३॥
कोटियोजनमूर्ध्वं च दैर्घ्यं शतगुणोत्तरम्। शैलप्रस्थपरिमितं पञ्चाशत्कोटियोजनम्॥१२४॥
अतीव कमनीयं च वेदानिर्वचनीयकम्।
प्राकारमिव तस्यापि गोलोकस्य मनोहरम्॥१२५॥

वहां का स्थान चन्दन लिप्त मालाओं तथा भूषणों से भूषित रहता है। इस गोलोक धाम में अमूल्यरत्नों से बना मनोहर शतशृंग पर्वत विद्यमान है। वह परिमाण में एक कोटियोजन उच्च है। लम्बाई में इससे शतगुणित हैं। उसकी चौड़ाई पचास कोटि योजन है। यह अत्यन्त कमनीय पर्वत इतना शोभित है कि उसका वर्णन कर सकने में वेद भी अक्षम रह जाते हैं। यह पर्वत तो गोलोक की मनोहर दीवार (चहारदिवार) ऐसा प्रतीत होता है।।१२३-१२५।।

परितो वेष्टितं रम्यं हीरहारसमन्वितम्। तत्र वृन्दावनं रम्यं युक्तं चन्दनपादपैः॥१२६॥
कल्पवृक्षैश्च रम्यैश्च मन्दारैः कामधेनुभिः।
शोभितं शोभनाढ्यैश्च पुष्पोद्यानैर्मनोहरैः॥१२७॥
क्रीडासरोवरै रम्यैः सुरम्यै रतिमन्दिरैः। अतीव रम्यं रहसि रासयोग्यस्थलान्वितम्[1]॥१२८॥

१. ख. वरम्।

रक्षितं रक्षकै रम्यैरसंख्यैर्गोपिकागणैः। परितो वर्तुलाकारं त्रिलक्षयोजनं वनम्॥१२९॥
षट्पदध्वनिसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतान्वितम्।
तत्राक्षयो वटो रम्यो रहस्ये बहुविस्तृतः॥१३०॥
सहस्रयोजनोर्ध्वश्च परितश्च चतुर्गुणः। गोपीनां कल्पवृक्षश्च सर्ववाञ्छाफलप्रदः॥१३१॥

यह चतुर्दिक् हीरों के बन्दनवार से आवृत अतीव रम्य है। यहीं पर अतीव रम्य वृन्दावन भी है। चन्दन के वृक्ष, कल्पवृक्ष, मन्दारवृक्षों से यह शोभित होता है। इसमें कामधेनु का झुण्ड विचरता रहता है। यह शोभायुक्त वृन्दावन असंख्य मनोहारी पुष्पों के उद्यानों, सुरम्य रतिक्रीड़ा मन्दिरों, रम्य जलक्रीड़ा हेतु निर्मित सरोवरों से सुशोभित होता रहता है। यह अत्यन्त रम्य विजन (निर्जन) निवास योग्य स्थल असंख्य रक्षक गोपिकाओं द्वारा सतत् रक्षित रहता है। यह वर्त्तुलाकृति तथा विस्तार में दो लाख योजन है। यहां निरन्तर भ्रमरों का गुंजार तथा नर कोकिलों की सुमधुर ध्वनि होती रहती है। यहां इस विजन प्रदेश में सहस्रयोजन उन्नत तथा चार सहस्र योजन परिधि वाला सुरम्य अक्षयवट भी विराजमान है। यहीं पर गोपीगण की समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला कल्पवृक्ष भी स्थित है॥१२६-१३१॥

क्रीडान्वितैरावृतश्च राधादासीत्रिलक्षकैः। विरजातीरनीराणां वायुना शीतलेन च॥१३२॥
पुष्पान्वितेन मन्देन पवित्रश्च सुगन्धिना। दासीगणैरसंख्यैश्च वृन्दावनविनोदिनी॥१३३॥
तत्र क्रीडति राधा सा मम प्राणाधिदेवता। सेयं श्रीदामशापेन वृषभानुसुताऽधुना॥१३४॥

यहीं पर क्रीड़ारत राधिका की तीन लाख दासियां इस स्थान को घेरे रहती हैं। यहां पर विरजा नदी के जलकणों को उड़ाती सुशीतल, पुष्पों की सुगन्धि से भरी मन्द-मन्द वायु प्रवाहित होती रहती है, जिससे यह स्थान अत्यन्त सुखप्रद प्रतीत होता है। मेरी प्राणाधिक प्रिय देवता वृन्दावन विनोदिनी राधा यहीं पर असंख्य दासीगण के साथ क्रीड़ा करती रहती हैं। वे ही श्रीदाम के शाप से इस समय वृषभानु की पुत्री होकर धराधाम पर आई हैं॥१३२-१३४॥

ब्रह्मादिदेवैः सिद्धेन्द्रैर्मुनीन्द्रैः पूजिता व्रज।
सिद्धैर्गुणैर्बलैर्बुद्ध्या ज्ञानयोगश्च विद्यया॥१३५॥
तात सर्वप्रकारेण वन्द्या मत्सदृशी प्रिया।
इत्येवं कथितं नन्द ब्रह्माण्डानां च वर्णनम्।
यथोचितं परिमितं किं भूयः स्रोतुमिच्छसि॥१३६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० चतुरशीतितमोऽध्यायः॥८४॥

—✻✻✻—

हे ब्रजराज! राधा तो ब्रह्मादि देवगण, सिद्धों एवं मुनियों से सुपूजिता हैं। वे मेरी प्रिया राधा

सिद्धि, गुण, बल, बुद्धि, ज्ञान, योग, विद्या आदि सबमें मेरे ही समान हैं। वे मेरे ही समान वन्दनीय भी हैं। हे नन्दराज! इस प्रकार मैंने समस्त ब्रह्माण्डों का वर्णन, उनका परिमाण आदि आप से कह दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?।।१३५-१३६।।

।।८४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

चातुर्वर्ण हेतु भक्ष्य-अभ्यक्ष्य वस्तु का वर्णन एवं कर्म विपाक कथन

नन्द उवाच

वर्णानां च चतुर्णां च भक्ष्याभक्ष्यं च साम्प्रतम्।
विपाकं कर्मणां चैव सर्वेषां प्राणिनामपि।।१।।
कथयस्व महाभाग कारणानां च कारणम्।
त्वत्तोऽन्य[१] कं च पृच्छामि निताान्नं सन्तमीश्वरम्।।२।।

नन्दराज कहते हैं–हे महाभाग! अब आप ब्राह्मणादि चारों वर्ण के लिये विहित भक्ष्य तथा अविहित अभक्ष्य पदार्थ का वर्णन करिये तथा प्राणीगण के कर्मविपाक का भी प्रसंग कहिये। हे जगदीश! आप तो कारणों के भी कारण एवं अद्वितीय ज्ञानवान् हैं। मैं आपके अतिरिक्त किससे यह सब जिज्ञासा करूं?।।१-२।।

श्रीभगवानुवाच

भक्ष्याभक्ष्यं चतुर्णां च वर्णानां च यथोचितम्।
वेदोक्तं श्रूयतां तात सावधानं निशामय।।३।।
अयः पात्रे पयःपानं गव्यं सिद्धान्नमेव च। भृष्टादिकं मधु गुडं नारिकेलोदकं तथा।।४।।
फलं मूलं च यत्किंचिदभक्ष्यं मनुरब्रवीत्। दग्धान्नं सप्तसौवीरमभक्ष्यं ब्रह्मनिर्मितम्।।५।।

श्रीभगवान् कहते हैं–हे तात! ब्राह्मणादि चारों वर्ण के लिये भक्ष्य-अभक्ष्य हेतु जो कुछ कहा गया है, उसे मैं कहता हूं। आप एकाग्रता पूर्वक श्रवण करिये। लौह पात्र में दूध तथा नारियल का जल

१. त्वत्तुल्यमिति च पाठः क्वचित्।

पीना, गव्यपदार्थ, सिद्धान्न, (गव्य=दुग्ध-दधि-घृत), भूजा दाना आदि, मधु, गुड़, फल-मूल अभक्ष्य माना गया है। यदि ब्राह्मण जौ की कांजी बनाये, तब वह अभक्ष्य है। दग्ध अन्न भी अभक्ष्य कहा गया है। यह मनु का कथन है।।३-५।।

नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु। गव्यं च ताम्रपात्रस्थं सर्वं मद्यं घृतं विना।।६।।
ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टे घृतभोजनम्। दुग्धं सलवणं चैव सद्यो गोमांसभक्षणम्।।७।।
अभक्ष्यं मधुमिश्रं च घृतं तैलं गुडं तथा। आर्द्रकं गुडसंयुक्तमभक्ष्यं श्रुतिसम्मतम्।।८।।

कांसा के पात्र में रखा नारियल का जल तथा ताम्रपात्र में रखा मधु, गव्य पदार्थ मद्य हो जाता है। वह अभक्ष्य है। केवल घृत अभक्ष्य नहीं होता। ताम्रपात्र में दुग्ध पीना, उच्छिष्ट पात्र में घृत का भोजन, नमक युक्त दुग्ध पान—यह सब ताजे गोमांसवत् त्याज्य है। श्रुति का कथन है कि मधुयुक्त घृत तथा, तेल-गुड़ (एक में मिला), गुड़युक्त अदरख अभक्ष्य है।।६-८।।

पीतशेषजलं चैव माघे च मूलकं तथा। जपादिकं च शयने सदा प्राज्ञः परित्यजेत्।।९।।
द्विर्भोजनं च दिवसे सन्ध्ययोर्भोजनं तथा।
भक्ष्यं च रात्रिशेषे च ध्रुवं प्राज्ञः परित्यजेत्।।१०।।
पानीयं पायसं चूर्णं घृतं लवणमेव च। स्वस्तिकं गुडकं चैव क्षीरं तक्रं तथा मधु।।११।।
हस्ताद्धस्तगृहीतं च सद्यो गोमांसमेव च। कर्पूरं रौप्यपात्रस्थमभक्ष्यं श्रुतिसम्मतम्।।१२।।
परिवेषणकारी चेद्रोक्तारं स्पृशते यदि। अभक्ष्यं च तदन्नं च सर्वेषामेव सम्मतम्।।१३।।

बुद्धिमान लोग पीने से जूठा बचा जल, माघ में मूली, सोते समय जप इसका त्याग करें। दिन में दो बार भोजन करना, दोनों सन्ध्याकाल में तथा रात्रि के अन्त में भोजन करना उचित नहीं है। जल, खीर, चूर्ण (आंटा भूजकर चीनी मिलाकर बना अन्न), पीट्ठी, गुड़, दुग्ध, मट्ठा, मधु किसी के हाथ से (बिना चम्मच आदि के) अपने हाथ (हथेली) पर लेना अभक्ष्य है। वह सद्यः गोमांस हो जाता है। रजत पात्र में रखा कर्पूर भी अभक्ष्य है। यह वेद का मत है। यदि भोजन प्रदान करने वाला (तथा परोसने वाला) आहार कर्त्ता का स्पर्श करे तब वह अन्न अभक्ष्य है। यह सभी का मत है।।९-१३।।

नकुलानां गण्डकानां महिषाणां च पक्षिणाम्।
सर्पाणां सूकराणां च गर्दभानां विशेषतः।।१४।।
मर्जाराणां श्रृगालानां कुक्कुटानां व्रजेश्वर।
व्याघ्राणामपि सिंहानां त्याज्यं मांसं नृणां सदा।।१५।।
जलौकसां च नक्राणां गोधिकानां तथैव च।
मण्डूकानां कर्कटानां चुञ्चुकानां च निश्चितम्।।१६।।
गवां च चमरीणां च न कलौ मांसभक्षणम्।
हस्तिनां घोटकानां च नृणामेव च रक्षसाम्।।१७।।

दंशश्च मशकश्चैव मक्षिका च पिपीलिका।
अन्येषां च निषिद्धानां लोके वेदे व्रजेश्वर॥१८॥
वानराणां भल्लुकानां शरभाणां तथैव च।
निषिद्धं मृगनाभीनां गर्दभानां च मांसकम्॥१९॥
अभक्ष्यं महिषीणां च दुग्धं दधि घृतं तथा।
स्वस्तिकं च तथा तत्र विप्राणां नवनीतकम्॥२०॥
मांसमुच्चैःश्रवसकं तस्य दुग्धादिकं तथा।
वर्णानां च चतुर्णां चाप्यभक्ष्यं च श्रुतौ श्रुतम्॥२१॥
अभक्ष्यमार्द्रकं चैव सर्वेषां च रवेर्दिने। पर्युषितं जलं चान्नं विप्राणां दुग्धमेव च॥२२॥

हे ब्रजेश्वर नन्दराज! नकुल, गैंड़ा, महिष, पक्षी, सर्प, शूकर, विशेषतया गर्दभ, बिड़ाल, श्गाल, मुर्गा, व्याघ्र, सिंह का मांस मनुष्य सदा त्यागे। जल-जन्तु जोंक, मगर, गोह, मेढक, केकड़ा, छछुन्दर, गौ, चमरी का मांस कलि में अभक्ष्य माना गया है। हे ब्रजराज! हाथी, घोड़ा, मनुष्य, राक्षस का मांस, मच्छर-डांस, मक्खी, चींटी तथा ऐसे अन्य अभक्ष्य प्राणियों का भोजन करना वेदों में तथा लौकिक नियमों में निषिद्ध माना गया है। वानर, भालू, शरभ, कस्तूरी मृग तथा गर्दभ मांस भोजन वर्जित है। भैंस का दूध, उसका दधि-घृत-मक्खन-मट्ठा ब्राह्मणों के लिये वर्जित है। इस महिष दुग्धादि निर्मित पीट्ठी भी ब्राह्मणों के लिये वर्जित है। अश्वमांस तथा घोड़ी का दुग्ध तो चारों वर्ण हेतु अभक्ष्य है। यह वेद में वर्णित है। रविवार को अदरख कोई न खाये। ब्राह्मणगण हेतु बासी जल-अन्न-दुग्ध अभक्ष्य है॥१४-२२॥

वर्णानां च चतुर्णां चाप्यवीरान्नस्य भक्षणम्।
तदन्नं च सुरातुल्यं गोमांसाधिकमेव च॥२३॥
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः। पितृदेवार्चनं तस्य निष्फलं मनुरब्रवीत्॥२४॥
ब्राह्मणानां वैष्णवानामभक्ष्यं मत्स्यमेव च। इतरेषामभक्ष्यं च पञ्चपर्वसु निश्चितम्॥२५॥
पितृदेवावशेषे च भक्ष्यं मांसं न दूषितम्। पञ्चपर्वसु त्याज्यं च सर्वेषां मनरब्रवीत्॥२६॥

ब्राह्मणादि चारों वर्ण पति-पुत्र रहित विधवा का अन्न ग्रहण न करें। वह अन्य मद्य के तुल्य तथा गोमांस से बढ़कर दोषपूर्ण है। मनु ने कहा है कि जो बुद्धिहीन ब्राह्मण ऐसी पतिपुत्र रहित विधवा (अवीरा) का अन्न भोजन करता है, उसकी समस्त देव-पितृ अर्चना विफल हो जाती है। ब्राह्मणों तथा वैष्णवों हेतु मत्स्य अभक्ष्य है। बाकी सब लोगों के लिये यह पांच पर्वों में अभक्ष्य है। ये पंचपर्व हैं- अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्य संक्रान्ति। यह निश्चित नियम है। लेकिन पितरों तथा देवता के उद्देश्य से निवेदित भक्ष्य मांस वर्जित नहीं होता। मनु का वचन है कि उक्त पंचपर्व में कोई भी मांस भोजन न करे॥२३-२६॥

असंस्कृतं च लवणं तैलं चाभक्ष्यमेव च।
भक्ष्यं पवित्रं सर्वेषां व्यञ्जनं वह्निसंस्कृतम्॥२७॥
एकहस्ते घृतं तोयमभक्ष्यं सर्वसम्मतम्।
आविलं कृमियुक्तं च परिशुद्धं च[1] निर्मलम्॥२८॥
अभक्ष्यं ब्राह्मणानां च वैष्णवानां विशेषतः। अनिवेद्यं हरेरेव यतीनां ब्रह्मचारिणाम्॥२९॥
पिपीलिकामिश्रितं च मधु गव्यं गुडं तथा।
यत्किंचिद्वस्तु वा तात न भक्ष्यं च श्रुतौ श्रुतम्॥३०॥
पक्षिभक्ष्यं कीटभक्ष्यं शुद्धं पक्वफलं तथा।
काकभक्ष्यमभक्ष्यं च सर्वेषां द्रव्यमेव च॥३१॥

असंस्कृत तैल एवं लवण अभक्ष्य है तथा व्यञ्जन में अग्नि संस्कृत होने से वह पवित्र हो जाता है। तब सबके लिये ग्रहण योग्य हो जाता है। एक हाथ पर लिया घृत तथा जल अभक्ष्य जाने। मटमैला, कृमियुक्त जल सदा वर्जित है। यदि निर्मल जल अशुद्ध हो, तब वह भी अभक्ष्य है। ब्राह्मण, संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा विशेषतया वैष्णवजन भगवान् को निवेदित किये बिना कोई भी पदार्थ भोजन न करें। हे तात! वेद का वाक्य है कि चींटी पड़ा मधु-दुग्ध-दधि-घृत-गुड़ तथा अन्य भोज्य पदार्थ अभक्ष्य है। कीटभक्षित फल तो शुद्ध है, तथापि काक भक्षित सभी वस्तु सबके लिये अभक्ष्य है।।२७-३१।।

घृतपक्वं तैलपक्वं मिष्टान्नं शूद्रसंस्कृतम्।
अभक्ष्यं[2] ब्राह्मणानां च शूद्रभक्ष्यं च पीठकम्॥३२॥
सर्वेषामशुचीनां च जलमन्नं परित्यजेत्। आशौचान्तात्परदिने शुद्धमेव न संशयः॥३३॥

शूद्र निर्मित घृतपक्व, तैलपक्व, मिष्ठान्न, पिट्ठी केवल शूद्र ही भोजन करें। वह ब्राह्मण हेतु नहीं है। सभी अपवित्र (अशौची) व्यक्ति के जल-अन्न का त्याग करे, तथापि जिस दिन अशौच समाप्त हो उसके अगले दिन वह शुद्ध होगा यह निःसंशय बात है।।३२-३३।।

विपाकं कर्मणामेव दुष्करं श्रुतिसम्मतम्। भक्ष्याभक्ष्यं च कथितं यथाज्ञानं व्रजेश्वर॥३४॥[3]
क्रमाच्चतुर्षु वेदेषु चोक्तं मतचतुष्टयम्। सर्वेषां सारभूतं च कथयामि पितः शृणु॥३५॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥३६॥

कर्म का विपाक (परिणाम) श्रुति के कथनानुसार अत्यन्त दुष्कर है। हे व्रजराज! मैंने आपसे भक्ष्याभक्ष्य का यथाज्ञान वर्णन कर दिया। अब कर्मविपाक श्रवण करिये। हे पिता! इस सम्बन्ध में चार

१. ख. चाप०।
२. क. भृष्टं विपी०।
३. इतः परं भगवानुवाच इति पाठः क्वचित्।

वेदों के चार मत हैं। उसमें जो सारभूत हैं, वह कहता हूं। श्रवण करें। कोटिकल्प भले ही व्यतीत क्यों न हो गया हो, कृतकर्म का फलभोग किये बिना वह कदापि समाप्त नहीं होता। कृतकर्म का फल अवश्य भोगना है भले ही वह शुभ-अशुभ क्यों न हो!।।३४-३६।।

तीर्थानां च सुराणां च सहायेन नृणामपि।
किञ्चिद्भवति साहाय्यं कायव्यूहेन सर्वतः[1]॥३७॥
प्रायश्चित्तानि चीर्णानि निश्चितम् मत्पराङ्मुखम्।
न निष्पुनन्ति हे तात सुराकुम्भमिवाऽऽपगाः॥३८॥
प्रायश्चित्तेन पुण्येन न हि शुध्यन्ति मानवाः।
सर्वारम्भेण वैश्येन्द्र दानेन योगतोऽपि वा॥३९॥
शुभाशुभं च यत्कर्म विना भोगान्न च क्षयः।
भोगेन शुद्धिमाप्नोति ततो मुक्तिर्भवेन्नृणाम्॥४०॥

यत्नतः तीर्थाटन, देवसेवा तथा अनेक देह क्रमशः धारण किये जाने से इस कर्मक्षय में कुछ सहायता मिल जाती है। हे तात! जैसे नदी मद्यघट को पावन नहीं कर सकती, इसी प्रकार मेरी सेवा से विमुख पाप नाना प्रायश्चित्त करके भी शुद्ध नहीं होते। यह निश्चित है। हे वैश्येन्द्र! मानवगण प्रायश्चित्त, दान, योग तथा पुण्यजनक कार्यों से भी शुद्धिलाभ नहीं कर पाते। शुभाशुभ कर्म का भोग किये बिना वह कदापि क्षयीभूत नहीं होता। तभी मानव इनका शुभ-अशुभ-फल भोग करके ही कर्मपाश रहित (कर्ममुक्त) होकर शुद्ध हो पाता है।।३७-४०।।

न नष्टं दुष्कृतं कर्म सुकृतेन च कर्मणा। न नष्टं सुकृतं कर्म कृतेन दुष्कृतेन च॥४१॥
यज्ञेन तपसा वाऽपि व्रतेनानशनेन च। तीर्थस्नानेन दानेन जपेन नियमेन च॥४२॥
भुवः प्रदक्षिणेनैव पुराण श्रवणेन च। उपदेशेन पुण्येन पूजया गुरुदेवयोः॥४३॥
स्वधर्माचरणेनैवातिथीनां पूजनेन च। ब्रह्मणां पूजनेनैव भोजनेन विशेषतः॥४४॥
यद्दत्तमपि विप्राय तत्प्राप्तं पूर्णरूपतः। बीजरूपं च तद्दानं क्षेत्ररूपं च ब्राह्मणः॥४५॥
एकेन कर्मणा तात स्वर्गं प्राप्नोति मानवः। कर्मणा न हि मोक्षं च तदेव मम सेवया॥४६॥

सुकृत कर्म करने से पाप कर्म नष्ट नहीं हो पाता। इसी प्रकार पापकर्म करने से सुकृतकर्म (सुकर्म) नष्ट नहीं होता। यज्ञ, तप, व्रत, अनशन (उपवास) तीर्थस्नान, दान, जप, नियम, पृथिवी प्रदक्षिणा, पुराणश्रवण, पवित्र आदेश ग्रहण, गुरु तथा देवता पूजा, स्वधर्म का आचरण, अतिथि पूजा तथा अतिथि को भोजनदान से भी व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता। जो कुछ ब्राह्मण को दिया जाता है, वह दाता को पूर्णतः मिल जाता है। ब्राह्मण खेत के समान है। दान बीज के समान है। दानरूप बीज ब्राह्मणरूप खेत में प्रदान करने से वह दाता को फलरूप में पुनः प्राप्त हो जाता है। हे तात! इनमें से

---

१. क. यत्नतः।

एक कर्म का भी अनुष्ठान करने से व्यक्ति को स्वर्ग लाभ तो होगा, परन्तु इन कर्म से अथवा किसी कर्म से मोक्ष नहीं मिलता। वह तो मात्र मेरी सेवा से ही मिलेगा।।४१-४६।।

स्वर्गं च सुकृतेनैव नरकं दुष्कृतेन च।
व्याधिर्जन्म च योनौ च कुत्सिते च ततः शुचिः।।४७।।

सुकृत करने से स्वर्ग, दुष्कृत्य करने से नरक मिलेगा। व्याधि, कुत्सित योनि में जन्म लेकर पापफल भोग लेने से ही मानव की शुद्धि होती है।।४७।।

गोघ्नो या ब्राह्मणानां च कामतश्चोपपातकी।
दन्दशूकत्वमाप्नोति गोलोमसमवर्षकम्।।४८।।
सर्पेण भक्षितस्तेन ज्वालया गरलस्य च। तृषितो व्यथितश्चैव निराहारः कृशोदरः।।४९।।
ततः कुण्डात्समुत्थाय गौर्भवेल्लोमवर्षकम्।
ततः कुष्ठी च चाण्डालो वर्षलक्षं ततो नरः।।५०।।

जो ब्राह्मण जानबूझ कर गोहत्या करता है तथा अन्य उपपातक समझ-बूझकर करता है, उस गौ के शरीर में जितने रोम थे, वह उतने वर्षों पर्यन्त दन्दशूक नामक नरक में क्लेश भोग करता है। वहां वह सर्पों से भक्षित, विषज्वाला से दग्ध, तृषित, व्याधिग्रस्त, निराहार, पिचके पेट वाला होकर महायातना भोगता है। इस नरक की यातना पूर्ण होने पर उसे उतने ही गोलोक वर्ष पर्यन्त के लिये गौ योनि मिलती है। तदनन्तर वह एक लक्षवर्ष पर्यन्त कुष्ठी, चाण्डाल योनि प्राप्त करता है। तब उसे मानव योनि मिलती है।।४८-५०।।

तदा भवेद्ब्राह्मणश्च कुष्ठयुक्तो हि कर्मणा।
भोजयित्वा विप्रलक्षं निर्व्याधिश्च भवेच्छुचिः।।५१।।
अकामतस्तदर्धं च क्षत्रियस्यापि कामतः। अकामतस्तदर्धं च तदर्धं च विशस्तथा।।५२।।
तदर्धं शूद्रगोघ्नश्च भुङ्क्ते पापं न संशयः। प्रायश्चित्तेन शुद्धश्च भुङ्क्ते शेषं च कर्मणः।।५३।।

तदनन्तर वह अपने कर्म से अब कुष्ठयुक्त ब्राह्मण के रूप में जन्म लेता है। तदनन्तर वह यदि एक लाख ब्राह्मणों को भोजन करायेगा, तब शुद्ध हो जायेगा। यदि ब्राह्मण से गोवध कर्म अनिच्छा से हो गया, तब वह आधा पाप फल प्राप्त करेगा। क्षत्रिय यदि गोवध इच्छा पूर्वक करेगा तब उसे पूर्ण पाप फल मिलेगा। अनिच्छा पूर्वक करने से उसे पाप का अर्द्धफल मिलेगा। इसके पाप का अर्द्धफल वैश्य को मिलेगा तथा वैश्य की तुलना में आधा पाप फल गोहत्यारा शूद्र भोगेगा। यह निःसंशय है। गोहत्यारा भले ही प्रायश्चित्त क्यों न करे तथा शुद्ध क्यों न हो जाये, उसे पाप का शेष कर्मफल तो भोगना ही होगा।।५१-५३।।

अनुकल्पे चतुर्थं च पापं भुङ्क्ते न संशयः।
चतुर्गुणं च गोघ्नानां ब्राह्मणानां च पातकम्।।५४।।

गोहत्या का अनुकल्प में वास्तविक गोहत्या इस पाप के चौथाई भाग का एक भाग होता है। इसे निःसंशय भोगना पड़ेगा (अर्थात् प्रायश्चित्त के पश्चात् भी यह एक भाग भोगना ही होगा। यदि गोहत्यारा ब्राह्मण है, तब उसे चतुर्गुण पाप फल भोगना होगा यह अनुकल्प का नियम है)।।५४।।

भुङ्क्ते पापं च ब्रह्मघ्नो ब्राह्मणश्चेतरोऽपि वा।
क्रमेणानेन बोध्यं च कामतोऽकामतोऽपि वा॥५५॥
प्रायश्चित्तं जन्म कर्म व्याधिरेव न संशयः।
गोघ्नो भवति गौश्चापि यावद्वर्षं च निश्चितम्॥५६॥

यह नियम ब्राह्मण तथा अन्य वर्ण वालों के लिये ब्राह्मण वध का भी है। उसमें भी इसी परिणाम में (जो गोहत्या हेतु निश्चित है) स्वेच्छाकृत ब्रह्मवध का अथवा अनिच्छाकृत ब्रह्मवध का पापफल भोगना होगा। जन्म, कर्म, व्याधि इसका प्रायश्चित्त है। इसमें सन्देह न करे। गोहत्यारा जितने वर्ष गो योनि में पड़ा रहता है, ब्रह्महत्यारा उससे चौगुने समय तक पाप भोगेगा। स्वेच्छाकृत तथा अनिच्छाकृत वह कर्म करने पर ब्रह्मघाती ब्राह्मण किंवा अन्य वर्ण वाला इसी क्रम से पाप भोग करेगा। वस्तुतः प्रायश्चित्त है जन्म लेना (नीच योनि में जन्म आदि), व्याधिग्रस्तता तथा कर्म। यह निःसंशय नियम है। गो हत्याकारी उस गौ के रोमों की संख्या इतने वर्ष तक अवश्य गौ योनि में रहेगा।।५५-५६।।

चतुर्गुणं च तेषां च ब्रह्मघ्नो विट्कृमिर्भवेत्।
ततो भवति म्लेच्छश्च तावद्वर्षचतुर्गुणम्॥५७॥
ततश्चान्धो भवेद्विप्रः पूर्वेषां च चतुर्गुणम्।
ब्राह्मणानां चतुर्लक्षं भोजयित्वा शुचिर्भवेत्॥५८॥

ब्रह्मघाती इससे चतुर्गुण वर्षों तक मल का कीट होगा। तदनन्तर इससे भी चौगुने वर्षों तक म्लेच्छ होगा। म्लेच्छ योनि से चतुर्गुण वर्षों तक वह अन्धा विप्र होगा। यह अन्धाविप्र चार लक्ष ब्राह्मण भोजन द्वारा ही शुद्धिलाभ कर सकेगा।।५७-५८।।

चक्षुष्मांश्च यशस्वी च भवेत्सोऽप्यतिपातकात्।
स्त्रीघ्नश्चतुर्णां वर्णानां वेदे सोऽप्यतिपातकी॥५९॥
कालसूत्रं च प्राप्नोति स्त्रीलोमसमवर्षकम्।
भक्षितः कृमिणा तत्र निराहारो व्यथायुतः॥६०॥
ततो भवति लोके च तावद्वर्षं च पातकी।
ततः पापी भवेत्सोऽपि यक्ष्मग्रस्तश्च कर्मणा॥६१॥
वर्षाणां शतकं चैव विप्रलक्षं च भोजयेत्।
ततः शुद्धो ब्राह्मणश्च विद्वांस्तपसि संयतः॥६२॥

किञ्चिद्भुङ्क्ते पापशेषं स्वर्णदानाच्छुचिर्भवेत्।
गर्भघ्नश्च महापापी सम्प्राप्नोति शुनीमुखम्[१]॥६३॥

तदनन्तर इस अतिपातक से रहित होकर वह नेत्रवान् एवं यशस्वी होगा। चतुर्वर्ण में स्त्री हत्यारा अतीव पातकी माना गया है। उस स्त्री के देह में जितने रोम थे, वह उतने वर्षों तक कालसूत्र नरक में कीट भक्षित होता, निराहार, व्यथायुक्त पड़ा रहेगा। तदनन्तर उतने वर्षों तक पृथिवी पर जन्म लेकर, उतने वर्ष तक पापपूर्ण एवं यक्ष्मारोग ग्रस्त रहेगा। वह १०० वर्षों तक नित्य एक लाख ब्राह्मण भोजन करने से ही पुनः पवित्र, विद्वान् एवं तपःनिरत विप्र योनि प्राप्त कर सकेगा। इसके पश्चात् बाकी बचे किञ्चित् पातक भोग करके वह स्वर्णदान से ही शुद्ध होगा। गर्भ का नाश करने वाला महापापी शुनीमुख नरक में जाता है।।५९-६३।।

वर्षाणां शतकं चैव घोटकश्च भवेद्ध्रुवम्।
वर्षाणां शतकं चैव सूक्ष्मशस्त्रेण पीडितः॥६४॥

ततः पापी भवेद्वैश्यो दद्रुयुक्तो[२] हि कर्मणा। पञ्चाशद्वर्षपर्यन्तं स्वर्णदानाद्भवेच्छुचिः॥६५॥

ततः स्वकुलजातोऽपि निर्व्याधिर्ब्राह्मणः शुचिः।
ब्राह्मणः क्षत्रियघ्नश्च क्षत्रियो वा विना रणात्॥६६॥
तप्तशूलं च प्राप्नोति वर्षाणां च सहस्रकम्।
क्वथितं तप्तलोहेन चाऽऽर्तनादं करोति च॥६७॥
ततो भवेन्मत्तगजो वर्षाणां शतकं तथा।
ततो रक्तविकारी च शूद्रो वर्षशतं तथा॥६८॥

उस नरक में उसे १०० वर्ष पर्यन्त वहां सूक्ष्म नुकीले शस्त्र से पीड़ित किया जाता है। तदनन्तर वह १०० वर्ष घोड़ा होता है। तत्पश्चात् कर्मदोष के कारण वह ५० वर्ष तक अपने कर्म से दाद रोग से पीड़ित रहता है। तदनन्तर स्वर्ण दान करने से उसे शुद्धि मिल जाती है। वह पुनः अपने कुल में जन्म लेता है और तत्पश्चात् रोग रहित पवित्र ब्राह्मण होगा। जिस ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय ने किसी क्षत्रिय को विना युद्ध हुये ही हत कर दिया उसे १००० वर्ष पर्यन्त तप्तशूलनरकगामी होना पड़ेगा। वह तप्त लौह से दागे जाने से वहां आर्त्तनाद करता रहेगा। तदनन्तर उसे १०० वर्ष के लिये मदमत्त हाथी की योनि मिलेगी। तत्पश्चात् वह १०० वर्ष तक रक्त विकार व्याधियुक्त शूद्र होगा।।६४-६८।।

गजदानेन मुक्तश्च व्याधिश्च ततो द्विजः। वैश्घ्नश्चापि वैश्यश्च शुद्रघ्नो वैश्य एव च॥६९॥

वैश्यघ्नचापि शुद्रश्च समं पापं लभेद्ध्रुवम्।
कृमिकुण्डं च प्राप्नोति वर्षाणां शतकं तथा॥७०॥

१. क. शुचिर्मु०।
२. क.. दत्तयु०।

कृमिभिर्भक्षितो दुःखी किरातश्च भवेत्ततः।
वर्षाणां शतकं चैव कृमिव्याधिसमन्वितः॥७१॥
ततो मन्दाग्नियुक्तश्च ब्राह्मणो दैन्यवान्व्रज। पञ्चाशद्वर्षपर्यन्तं दुर्बलश्च कृशोदरः॥७२॥
मुक्तिर्भवति युक्तेन तीर्थे चाश्वप्रदानतः।
शूद्रघ्नो ब्राह्मणश्चैव कामतोऽकामतोऽपि वा॥७३॥
सावित्री लक्षजाप्येन तदर्धेन शुचिर्भवेत्।
चतुर्वर्णः कुक्कुरघ्नो[1] ह्यभिशप्तश्च शंभुना॥७४॥
वर्षाणां शतकं चैव प्राप्नोति रौरवं नरः।
ततो भवेत्कुक्कुरश्च[2] वर्षाणामपि षोडश॥७५॥
ततः शुद्धो भवेद्विप्रो भक्षितः कुक्कुरेण[3] च।
गङ्गास्नानेन दानेन स्वर्णस्यापि भवेच्छुचिः॥७६॥

हे द्विज! वह हाथी का दान करने से व्याधि रहित होगा। तदनन्तर वह द्विज होगा। इसी प्रकार वैश्य हत्यारा वैश्य, शूद्र का हत्यारा वैश्य तथा वैश्य का हत्यारा शूद्र भी समान पातक भागी होते हैं। ये १०० वर्ष कृमिकुण्ड नामक नरक में कीड़ों द्वारा काटे जाते रहने के कारण अत्यन्त दुःखग्रस्त रहते हैं। तदनन्तर १०० वर्ष कृमिव्याधियुक्त किरात होते हैं। तदनन्तर वह मदाग्नि रोगी दीन-हीन ब्राह्मण होगा। ५० वर्ष तक कृश देह रहकर तब वह तीर्थ में अश्वदान से पाप रहित होगा। यदि ब्राह्मण स्वेच्छा से शूद्रवध करे तब वह एक लाख गायत्री जप से शुद्ध होगा। हे ब्रजेश्वर! अनिच्छावशात् अज्ञानतः शूद्रवध कर देने पर वह ५०००० गायत्री जप से शुद्ध होगा। जो चारों वर्ण के लोग कुत्ते का वध करते हैं, वे शिव शाप के कारण १०० वर्ष पर्यन्त रौरव नरक यातना भोगते हैं। तदनन्तर वे १६ वर्ष तक श्वान योनि में रहते हैं। तत्पश्चात् वे कुत्ते के द्वारा भक्षित होकर शुद्ध ब्राह्मण जन्म लेते हैं जहां उनकी शुद्धि गंगास्नान तथा स्वर्ण दान से होती है।।६९-७६।।

मार्जारघ्नश्चतुर्वर्णो गङ्गास्नानाद्भवेच्छुचिः।
विप्राय लवणं दत्त्वा षट्पलं च प्रमुच्यते॥७७॥
हत्वा सर्पांश्चतुर्वर्णो मम पादेन चिह्नितान्।
ब्रह्महत्याचतुर्थं च पातकं च लभेद्ध्रुवम्॥७८॥
असिपत्रं च नरकं वर्षाणां शतकं तथा।
प्राप्नोति यातनायुक्तो विच्छिन्नस्तीक्ष्णधारया।७९॥

१. ख. क्कुटघ्नो।
२. ख. भुङ्क्ते कुक्कुटश्च।
३. ख. क्कुटे।

ततो भवति सर्पश्च डुण्डुभो वर्षपञ्चकम्।
नरेण ताडितो दुःखी मृत्योर्भवति पीडितः॥८०॥

ततो भवेन्नरः पापी ज्वरयुक्तो हि दुर्बलः। वर्षाणां पञ्चकेनैव मृतो भवति कर्मणा॥८१॥

यदि चारों वर्ण में से कोई भी वर्ण वाला बिडाल वध करता है, वह गंगा स्नान से पवित्र होगा। वह व्यक्ति ब्राह्मण को छह पल लवण दान द्वारा पाप रहित हो जायेगा। चारों वर्ण वाले में से यदि कोई मेरे चरणचिह्नयुक्त सर्प का वध करता है, तब उसे निश्चित रूप से ब्रह्महत्या पातक का १/४ (चौथाई) पाप लगेगा। उसे १०० वर्ष तक तीक्ष्ण धार वाले पत्तों से छेदकर असिपत्र नरक में यातना दी जायेगी। तत्पश्चात् वह ५ वर्ष डुण्डुम (पानी का सांप) योनि में रहेगा। उसकी मृत्यु मनुष्य के प्रहार से दुःखपूर्ण होगी। तत्पश्चात् वह पापी ज्वरयुक्त दुर्बल मनुष्य देह प्राप्त करेगा। वह अपने पूर्वकर्म के कारण ५ वर्ष में ही मृत हो जायेगा।।७७-८१।।

अश्वघ्नश्च गजघ्नश्च चतुर्वर्णश्च पातकी। वर्षाणां दशकं पापान्मूत्रकुण्डं प्रयाति च॥८२॥

ततो भवति हस्ती च घोटको वा व्रजेश्वर।
यावद्विंशतिवर्षाणि ततः शूद्रो भवेद्ध्रुवम्॥८३॥
अहंकृती व्याधियुक्तो रौप्यदानेन मुच्यते।
ब्राह्मणानां च शतकं भोजयित्वा शुचिर्भवेत्॥८४॥

चारों वर्ण वाले अश्वहन्ता, गजहन्ता १० वर्ष पर्यन्त मूत्रकुण्ड नरक में यातना पाकर अन्त में अश्व अथवा हाथी की योनि में जन्म लेंगे। हे व्रजराज! २० वर्ष यह योनि भोगकर वे शूद्र होंगे। यह निश्चित है। वे अभिमानी रहेंगे। तदनन्तर रजतदान एवं सौ ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करने से उनकी शुद्धि होगी।।८२-८४।।

क्षुद्रजन्तुवधेनैव क्षुद्रजन्तुर्भवेन्नरः। वर्षाणां शतकं चैव क्षुद्रव्याधिं तरेत्ततः॥८५॥
कृपा कार्या सता शश्वदहिंस्रेषु च जन्तुषु। हिंसायां न हि दोषश्च हिंस्राणां च व्रजेश्वर॥८६॥
अश्वत्थघ्नश्चतुर्वर्णो ब्रह्महत्याचतुर्थकम्। पापं च लभते तात चासिपत्रं व्रजेद्ध्रुवम्॥८७॥

सतीक्ष्णेनापि शस्त्रेण विच्छिन्नश्च दिवानिशम्।
वर्षाणां शतकं चैव भुङ्क्ते परमयातनाम्॥८८॥

क्षुद्रकाय जीवों का घातक मनुष्य क्षुद्रप्राणी होता है। १०० वर्ष पर्यन्त तुच्छ व्याधियों से पीड़ित होकर मुक्तिलाभ करता है। हे व्रजेश्वर! अतः मानव सदा उन जीवों के प्रति कृपालु रहे जो हिंसक नहीं हैं। हिंसक प्राणी के वध से पातक नहीं होता। जो पीपल वृक्ष काटता है, वह चाहे चारों वर्ण में से ही किसी वर्ण का क्यों न हो उसे ब्रह्महत्या का चतुर्थभाग पातक लगेगा। इस पाप के फलस्वरूप वे असिपत्र वन में तीक्ष्ण पत्तों द्वारा अहर्निश छिन्न-भिन्न होते हैं। वहां १०० वर्ष तक महायातना भोगते हैं।।८५-८८।।

ततो भवति वृक्षश्च शाल्मलिर्वर्षलक्षकम्।
ततो भवति शूद्रश्च च्छिन्नाङ्गो व्याधिसंयुतः॥८९॥
यावज्जीवनपर्यन्तं ततो विप्रो भवेद्ध्रुवम्।
व्रणव्याधिसमायुक्तो मुच्यते स्वर्णदानतः॥९०॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदाता च कृतघ्नोऽतिकृतघ्नकः।
विश्वासघाती मित्रघ्नो विप्राणां धनहारकः॥९१॥
शूद्रश्राद्धान्नभोजी च शूद्राणां शवदाहकः। शूद्राणां सूपकारश्च वृषवाहकपातकी॥९२॥
धावको देवलश्चापि चैतेऽतिपापिनस्तथा।
कुम्भीपाकं प्रयान्त्येव वर्षाणां च सहस्रकम्॥९३॥
तत्रैव तप्ततैलेन संतप्तश्च दिवानिशम्। भक्षितो व्यथितश्चैव सर्पाकारेण जन्तुना॥९४॥

तदनन्तर वे पातकी एक लाख वर्ष पर्यन्त सेमल का वृक्ष होकर छिन्न अंग वाले व्याधि पीड़ित शूद्र होते हैं। तत्पश्चात् अगले जन्म में वे लोग व्रण-व्याधि-पीड़ित विप्र होते हैं। वहां स्वर्णदान करने से वे पापमुक्त हो जाते हैं। हे व्रजराज! मिथ्या साक्ष्य देने वाला, कृतघ्न, अत्यन्त कृतघ्न, विश्वासघातक, मित्रघाती, ब्रह्मस्व हरण करने वाला, शूद्र का श्राद्धान्न खाने वाला, शूद्र का शव ढोने वाला, शूद्र का पाचक (भोजन पकाने वाला), बैल से जीविका (बोझ ढुलवाकर) उपार्जित करने वाला, मन्दिर का पुजारी, इन सभी पातकी लोगों को १००० वर्ष तक कुंभीपाक नरक में दिन-रात तप्त तैल में पकाया जाता है। वहां वे सर्पाकार जन्तुओं द्वारा भक्षित होते हैं। इस प्रकार व्यथित होकर वे हजारों वर्ष कष्ट झेलते हैं।।८९-९४।।

गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः।
श्वापदः शतजन्मानि शूद्रो रोगी भवेत्ततः॥९५॥
मन्दाग्निज्वरसंयुक्तः पञ्चाशद्वर्षकं तथा। सुवर्णानां शतपलं दत्त्वा शुद्धो भवेद्ध्रुवम्॥९६॥
चतुर्वर्णो वस्त्रहारी गव्यहारी च मानवः। रौप्यमुक्तापहारी च शूद्रद्रव्यापहारकः॥९७॥
वर्षाणां च सहस्रं च बकजातिर्भवेद्ध्रुवम्।
मूत्रकुण्डं च वै भुक्त्वा वर्षाणां शतकं तथा॥९८॥
ततो भवेच्छूद्रजातिर्वर्षाणां शतकं व्रज। कुष्ठव्याधिसमायुक्तो गलितश्चैव पातकी॥९९॥
ततो भवेद्ब्राह्मणश्च कुण्ठावशेषसंयुतः।
स्वर्णषट्पलदानेन व्याधितो मुच्यते शुचिः॥१००॥

तदनन्तर वे इहलोक में वे करोड़ों सहस्र वर्ष पर्यन्त गृध्रयोनि में, सौ जन्म शूकर योनि में, सौ जन्म मांसाहारी पशु योनि में रहकर मन्दाग्नि-ज्वर रोग ग्रस्त शूद्रदेहधारी होकर रहते हैं। इस योनि में

वे १०० पल स्वर्ण दान करने से निश्चय शुद्ध हो जाते हैं। ब्राह्मणादि चारों वर्ण में से जो व्यक्ति वस्त्र चोरी, दुग्ध-दधि-घृत की चोरी, रजत-मुक्ता का हरण करता है, शूद्र के धन का हरण करता है, उसे १०० वर्ष तक मूत्रकुण्ड नरक भोग कर बगुले की योनि में १००० वर्ष रहना होगा, यह निश्चित जाने। तदनन्तर वह १०० वर्ष तक शूद्र योनि में पातकी तथा यावत् जीवन कुष्ठी रहता है। अगले जन्म में वह स्वल्प मात्र कुष्ठ रोगी ब्राह्मण होगा। जहां छह पल स्वर्ण दान से वह शुद्धिलाभ करेगा।।९५-१००।।

शाकापहारकश्चैव[1] फलापहारकस्तथा। यक्षः पृथिव्यां सम्भूतो लीलाद्रव्यापहारकः।।१०१।।
वर्षाणां शतकं चैव चाषपक्षी भवेद्ध्रुवम्। ततो भवेत्कृष्णवर्णः शूद्रश्च भारते भुवि।।१०२।।

ततो भवेद्ब्राह्मणश्चाप्यधिकाङ्गोऽपि जन्मनि[2]।
पुनर्जन्मद्विजो भूत्वा मुच्यते विप्रभोजनात्।।१०३।।

शाक चोर, फलचोर, खेल में द्रव्य चोरी करने वाला इस धरती पर यक्षयोनि प्राप्त करता है। तदनन्तर वह निश्चित रूप से १०० वर्ष तक नीलकण्ठ पक्षी होगा। तत्पश्चात् वह काले रंग वाला शूद्र होकर भारत में जन्म लेगा। तदनन्तर वह अधिक अंगों वाला ब्राह्मण जन्म लेकर पुनः द्विज होगा। वह ब्राह्मण भोजन द्वारा पातक रहित होगा।।१०१-१०३।।

पक्वद्रव्यापहारी च पशुयोनिभवेद्ध्रुवम्।
यस्माण्डकोशो गन्धाक्तः कस्तूरी यस्य नाम च।।१०४।।

सप्तजन्ममृगो भूत्वा ततो भवति गन्धकः। जन्मैकं च ततः शूद्रो गलत्कुष्ठी च जन्मनि।।१०५।।
ततो रोगावशेषेण संयुतो ब्राह्मणः कृशः। स्वर्णषट्पलदानेन मुच्यते नात्र संशयः।।१०६।।

पकी वस्तु (भोजन), पके फल की चोरी करने वाला निश्चित रूप से पशु योनि में जाता है। उस पशु का अण्डकोश सुगन्धित होता है, जो कस्तूरी कहा गया है। वह ७ जन्मों तक कस्तूरीमृग होकर तदनन्तर गन्धक पशु होता है। (गंधियारा पशु)। तत्पश्चात् वह जन्म से गलित कुष्ठी शूद्र रूप में उत्पन्न होता है। तब बाकी बचे रोग के साथ वह कृश ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होकर छह पल स्वर्ण दान से मुक्त होगा, इसमें सन्देह न करे।।१०४-१०६।।

धान्यापहारी दुःखी च कृपणः सप्तजन्मसु।
विष्ठाकुण्डं वर्षशतं सम्प्राप्य मुच्यते भिया।।१०७।।
स्वर्णापहारी कुष्ठी च मानवः पतितो भवेत्।
स्वर्णदानप्रतिग्राही विट्कुण्डं च प्रयाति च।।१०८।।
ततो वर्षशतं भुक्त्वा पुरीषं च दिवानिशम्।
ततो व्याघो भवेच्छूद्रो रक्तदोषेण संयुतः।।१०९।।

---
१. ख. कोशाप।
२. ख. ०न्मभिः।

तज्जन्मपातकं भुक्त्वा ब्राह्मणश्च पुनर्भवेत्।
व्याधिशेषावयुक्तश्च मुच्यते स्वर्णदानतः॥११०॥

धान्यहरण करने वाला व्यक्ति ७ जन्म पर्यन्त दुःखी तथा कृपण होता है। तदनन्तर स्वर्णदान देने पर भी उसे १०० वर्ष पर्यन्त विष्ठाकुण्ड नरक भोगना ही होगा। वहां वह दिन-रात मल भक्षण करता हुआ व्याध योनि पाकर पुनः रक्तव्याधियुक्त शूद्र होगा। इस जन्म में पातक भोगकर तब वह ब्राह्मण योनि में जन्म लेगा। उसे बाकी बचा रोग तब भी भोगना होगा। अन्ततः स्वर्णदान करके शेष रोग से रहित होगा॥१०७-११०॥

अगम्यानां च गामी च पूर्वोक्तं रौरवं व्रजेत्।
कुम्भीपाकं महाघोरं वर्षाणां चाप्यसंख्यकम्॥१११॥
ततो भवेत्पुंश्चलीनां योनीनां च कृमिस्तथा।
वर्षाणां च सहस्त्रं च विट्कृमिर्वर्षलक्षकम्॥११२॥
पशुयोनिर्भवेत्तस्मात्तस्माच्च क्षुद्रजन्तवः। ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्ततः शूद्राधमस्तदा॥११३॥
ततो भवति विप्रश्च व्याधियुक्तो नपुंसकः।
पुनश्च ब्राह्मणो भूत्वा तीर्थपर्यटनेन च॥११४॥

जो अगम्या नारी से सहवास करता है, वह पूर्वोक्त रौरव नरक में भेजा जाता है। तदनन्तर वह असंख्य वर्ष पर्यन्त कुंभीपाक नामक महाघोरनरक में क्लेश भोग करता है। तदनन्तर वह कुलटा नारी की योनि का कृमि होकर हजारों वर्ष रहकर पुनः एक लाख वर्ष तक मल का कृमि होता है। तदनन्तर उसे पशुयोनि मिलती है, जिसके पश्चात् वह क्षुद्र प्राणी योनि में उत्पन्न होता है। तदनन्तर म्लेच्छ होकर तदनन्तर अधम शूद्र होता है। तत्पश्चात् वह नपुंसक तथा व्याधियुक्त (ब्राह्मण (मनुष्य) जन्म लेकर अगला जन्म तीर्थपर्यटन के कारण ब्राह्मण का प्राप्त करता है॥१११-११४॥

क्रमेण शुद्धो भवति वंशहीनश्च पातकात्।
भोजयित्वा विप्रलक्षं पुत्रं च लभते शुचिः॥११५॥
मानवः क्रोधयुक्तश्च गर्दभः सप्तजन्मसु।
मानवः कलहाविष्टः सप्तजन्मसु वायसः॥११६॥
शालग्रामप्रतिग्राही कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम।
वर्षाणां शतकं चैव खञ्जरीटो भवेत्ततः॥११७॥
लोहचोरश्च निर्वंशो मषीचोरश्च कोकिलः।
शुकोऽप्यञ्जनचोरश्च मिष्टचोरः कृमिर्भवेत्॥११८॥
विप्रद्वेषी गुरुद्वेषी शिरसां च कृमिर्भवेत्।
पुंश्चलीं कामिनीं तात भुक्त्वा च रौरवं व्रजेत्॥११९॥

ततो वृथा कृमिश्चैव वर्षाणां शतकं तथा।
ततोऽपि विधवा चैव वन्ध्या च सप्तजन्मसु॥१२०॥
अस्पृश्या जातिहीना च च्छिन्ननासा भवेत्क्रमात्।
रक्तद्रव्यापहारी च रक्तदोषान्वितो भवेत्॥१२१॥

इस प्रकार वह क्रमशः शुद्ध होकर भी पूर्वपातक के कारण वंशहीन रहता है। एकलक्ष ब्राह्मण भोजन के पुण्यफल से पूर्ण शुद्ध होकर सन्तान लाभ करता है। कोपयुक्त मानव सातजन्म तक गधा होता है। कलही मानव ७ जन्म तक काक योनि प्राप्त करता है। शालग्राम का दान लेने वाला निश्चित रूप से १०० वर्ष कालसूत्रनरक भोग करेगा। तदनन्तर १०० वर्ष तक खंजन पक्षी योनि प्राप्त करेगा। लौह चोर निर्वंश होगा। स्याही चोर कोकिल, अंजन चोर शुक (तोता), मिष्ठान्न चोर कीट, ब्राह्मणद्वेषी-गुरुद्वेषी शिर के कीट होंगे। कुलटा स्त्री के साथ समागम करने वाला रौरव नरकगामी होगा। तदनन्तर वह व्यर्थ वाला कीट होकर १०० वर्ष रहता है। वह तत्पश्चात् ७ जन्मों तक विधवा नारी, अछूत, जातिहीन, नाक कटा होता है। जो लाल वर्ण की वस्तु चोरी करने वाला व्यक्ति रक्तदोषी होकर उत्पन्न होता है।।११५-१२१।।

आचारहीनो यवनः खञ्जो भवति हिंसकः[१]।
अदीक्षितो वङ्कुरश्च दुष्टदर्शी च काणकः॥१२२॥
अहङ्कारी कर्णहीनो बधिरो वेदनिन्दकः।
वाक्यहर्ता च मूकश्च हिंसकः केशहीनकः॥१२३॥
मिथ्यावादी श्मश्रुहीनो दुर्वाक्यो दन्तहीनकः।
जिह्वाहीनः सत्यहारी दुष्टोऽप्यङ्गुलिहीनकः॥१२४॥
ग्रन्थापहारी मूर्खश्च व्याधियुक्तो भवेद्ध्रुवम्।
अश्वग्राही च तच्चोरो लालामूत्रं व्रजेदिति॥१२५॥
वर्षाणां च शतं स्थित्वा घोटकश्च भवेद्ध्रुवम्।
गजचोरो गजग्राही विट्कुण्डे च सहस्रकम्॥१२६॥
स्थित्वा वर्षं भवेद्धस्ती तत्पश्चाद्वृषलो भवेत्।
अयज्ञे छागहन्ता च च्छागचोरप्रतिग्रही॥१२७॥
पूयकुण्डे वर्षशतं स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत्।
छागश्च वर्षपर्यन्तं तदा भवति मानवः॥१२८॥

आचारहीन यवन, हिंसकव्यक्ति, लंगड़ा, अदीक्षित वामन (बौना), लोगों के दोष देखने वाला

१. खञ्जो हीनश्च हिंसकः इति क्वचित्।

तथा लोगों का दुष्ट दृष्टि से देखने वाला काना होता है। अहंकारी, कर्णहीन, वेदनिन्दक, वधिर, वाक्यहारी (लोगों को बोलने से रोकने वाला) मूक होता है। हिंसक केश रहित, झूठा व्यक्ति, दाढ़ी-मूंछ विहीन, दुष्टवाक्य कहने वाला (दुर्वाक्य कहने वाला), दन्तहीन, सत्यभंग करने वाला, जिह्वाहीन, दुष्टतारत व्यक्ति, अंगुलि रहित, ग्रन्थचोर, मूर्ख एवं रुग्ण हो जाता है। यह निश्चित है। जो अश्वदान में लेता है अथवा अश्वचोरी करता है, वह १०० वर्ष लाला मूत्र नरक में कष्ट पाकर घोड़े की योनि में अवश्य जाता है। गजचोर तथा गजदान लेने वाला १००० वर्ष तक मलकुण्ड नरक में रहकर १००० वर्ष गज योनि में जाता है। तदनन्तर वह शूद्रयोनि में जन्म लेता है। यज्ञकाल के बिना बकरा मारने वाला अथवा उसकी चोरी किंवा दान लेने वाला १०० वर्ष पीब के कुण्ड में निवास करके चाण्डालत्व प्राप्त करता है। पुनः १ वर्ष बकरे की योनि भोगकर तब मानव जन्म प्राप्त करता है।।१२२-१२८।।

शत्रुशस्त्रेण च्छिन्नश्च तदा मुक्तो भवेद्द्विजः।
दत्तापहारी वाग्दानं कृत्वाऽपहरते पुनः।।१२९।।
स भवेन्म्लेच्छयोनौ च भुक्त्वा च नरकं व्रजेत्।
एकाकी मिष्टमश्नाति कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम्।।१३०।।
तत्र वर्षशतं स्थित्वा प्रेतो वर्षसहस्त्रकम्।
तदा भवति जन्मैकं मक्षिका च पिपीलिका।।१३१।।
जन्मैकं भ्रमरश्चैव जन्मैकं मधुमक्षिका। जन्मैकं वरलश्चैव जन्मैकं दंश एव च।।१३२।।
जन्मैकं मशकश्चैव जन्मैकं पूतिकं स्मृतम्।
जन्मैकं तल्पकीटश्च तदा शूद्रो भवेद्ध्रुवम्।।१३३।।
असद्बुद्धिर्व्याधियुक्तस्तदा मुक्तो भवेद्द्विजः।
तैलचोरस्तैलकारो मूर्ध्नि कीटस्त्रिजन्मकम्।।१३४।।
तदा भवेत्स्वर्णकारो जन्मैकं दुष्टमानसः। विश्वैकलिपिकर्ता च भक्ष्यदादुर्धनं हरेत्।।१३५।।
तमःकुण्डे वर्षशतं स्थित्वा स्वर्णवणिग्भवेत्।
जन्मैकं च दुराचारो जन्मैकं करणो भवेत्।।१३६।।
कायस्थेनोदरस्थेन मातुर्मांसं न खादितम्।
तत्र नास्ति कृपा तस्य दन्ताभावेन केवलम्।।१३७।।
स्वर्णकारः स्वर्णवणिक् कायस्थश्च वज्रेश्वर।
नरेषु मध्ये ते धूर्ताः कृपाहीना महीतले।।१३८।।

तदनन्तर मनुष्य योनि में शत्रु के शस्त्र से काटे जाने के कारण पापमुक्त होकर ब्राह्मण जन्म प्राप्त करता है। वस्तु देकर वापस लेने वाला, अथवा वागदान (वचन देकर) देकर उसका खण्डन

करने वाला पापी दीर्घकाल तक म्लेच्छ योनि में रहकर नरकगामी होता है। (अथवा नरक में दीर्घ काल तक रहकर तब म्लेच्छ योनि में जन्म लेता है।) अकेले मिठाई खाने वाला निश्चित कालसूत्रनरक में जायेगा। वह १०० वर्ष क्लेश भोगकर १००० वर्ष तक प्रेत होगा। तदनन्तर वह एक-एक बार मक्खी, चींटीं, भ्रमर, शहद की मक्खी, बर्रे, डांस, मच्छर, दुर्गन्धित कीड़ा तथा खटमल होकर अत्यन्त दुष्ट बुद्धि वाला व्याधियुक्त शूद्र योनि में उत्पन्न होगा। तदनन्तर पातक रहित होकर वह ब्राह्मण होगा। तेल पेरने वाला किंवा तेल चोर तीन जन्म तक जूं योनि में रहता है। तदनन्तर एक बार दुष्ट बुद्धि स्वर्णकार होकर जन्म लेगा। यदि समस्त संसार के भाग्य को लिखने वाले ब्रह्मा भी अन्नप्रदाता का धन हरण करें, तब उनको भी अन्धकारपूर्ण कुण्ड में १०० वर्ष रहने के पश्चात् स्वर्ण विक्रेता का जन्म मिलेगा। तदनन्तर एक जन्म पर्यन्त दुराचरण करने वाला होकर अगले जन्म में वह कायस्थ जाति वाला होकर रहेगा। कायस्थ के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने तो माता के गर्भ में माता का मांस इसलिये नहीं खाया कि उसे दांत नहीं थे। यह उसकी कृपा नहीं है। दांत न होने की विवशता है। अन्यथा कायस्थ कुछ भी नहीं छोड़ता। हे व्रजेश्वर! सोनार, स्वर्ण व्यापारी तथा कायस्थ समस्त मनुष्य जाति में सबसे बढ़कर धूर्त्त होते हैं। समग्र भूमण्डल में इनके जैसा धूर्त्त कृपाहीन कोई नहीं है।।१२९-१३८।।

हृदयं क्षुरधाराभं तेषां नास्ति च सादरम्।
शतेषु सज्जनः कोऽपि कायस्थो नेतरौ च तौ॥१३९॥
सुबुद्धिः शिवयुक्तश्च शास्त्रज्ञो धर्ममानसः।
न विश्वसेत्तेषु तात स्वात्मकल्याणहेतवे॥१४०॥

इनका हृदय तो छूरे की धारा के समान होता है। ये मन से किसी का आदर नहीं करते। हो सकता है कि सैकड़ों कायस्थ में से कोई एक साधु हो, परन्तु अन्य दो जाति स्वर्णकार तथा स्वर्णवणिक् में तो कोई सज्जन ही नहीं होता। हे तात! जो सुबुद्धि, शास्त्रवेत्ता, धार्मिक अपना कल्याण चाहें, वे इन पर विश्वास न करें।।१३९-१४०।।

सीमापहारी दुष्टश्च भूमिचोरश्च हिंसकः। भूमिदानापहारी च कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम्॥१४१॥
षष्टिवर्षसहस्राणि क्षुत्पिपासार्दितः स्थितः।
ततोऽपि तानि नामानि विष्ठायां जायते कृमिः॥१४२॥
ततो भवेदसच्छूद्रो जन्मैकं च ततः शुचिः।
तस्माज्ज्ञानैः सावधानं भवेत्प्राज्ञश्च यत्नतः॥१४३॥

खेत आदि की सीमा का हरण करने वाला दुष्ट, भूमिहरण करने वाला, हिंसक, दान की गई भूमि का हरणकारी, ये निश्चित रूप से कालसूत्र नरक जाते हैं। वे वहां ६०००० वर्षों तक क्षुधा-पिपासा से दुःखी होकर रहते हैं। तदनन्तर मल में कीट हो जाते हैं। तदनन्तर ये एक जन्म असत् शूद्र

का लेकर तब पवित्र हो पाते हैं। अतएव प्राज्ञ मनुष्य सदा ज्ञान का अनुशीलन करके सावधान रहें। (ऐसा कार्य न करें)।।१४१-१४३।।

रक्तवस्त्रापहारी च जन्मैकं रक्तकीटकः।
ततः शूद्रश्च जन्मैकं ततो विप्रो भवेच्छुचिः।।१४४।।
त्रिसन्ध्यहीनो विप्रश्च प्रातःशायी[1] च यो नरः।
सन्ध्याशायी दिवाशायी यज्ञसूत्रापहारकः।।१४५।।
अशुद्धः सन्ध्याकारी च वेदवेदाङ्गनिन्दकः। तद्विरुद्धः स्वर्गमार्गस्त्रिजन्मपतितो द्विजः।।१४६।।
यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी कुम्भीपाके व्रजेद्ध्रुवम्।
वर्षाणां च त्रिलक्षं च पच्यते तत्र पीडितः।।१४७।।

रक्त वस्त्र हरण करने वाला व्यक्ति एक जन्म लाल कीड़ा होकर, तब एक जन्म शूद्र का लेकर ब्राह्मण जन्म लेता है। तब वह पातक रहित हो जाता है। जो त्रिकाल सन्ध्या नहीं करता तथा प्रातःकाल, दिन के समय तथा सायं सन्ध्याकाल में शयनरत रहता है, यज्ञोपवीत हारी, अशुद्धि स्थिति में सन्ध्या करने वाला, वेद-वेदांग का निन्दक है, वह तीन जन्म तक पतित होता है। उसकी गति स्वर्गमार्ग से ठीक उलटी नरक की ओर ही होता है। जो शूद्र ब्राह्मणी से समागम करता है, उसे कुंभीपाक जाना निश्चित है। वह वहां ३ लाख वर्ष पर्यन्त पीड़ित किया जाता है।।१४४-१४७।।

दिवानिशं प्रदग्धश्च तप्ततैले च दारुणे।
ततो भवेद्योनिकीटः पुंश्चलीनां च पातकी।।१४८।।
षष्टिवर्षसहस्राणि चाऽऽहारं तस्य तन्मलम्।
ततो भवति चाण्डालो जन्मलक्षं क्रमेण च।।१४९।।
ततः शूद्रो गलत्कुष्ठी जन्मैकं च ततः शुचिः।
सोऽपि विप्रो व्याधिशेषस्तीर्थपर्यटनाच्छुचिः।।१५०।।

वहां उसे दिन-रात दारुण तप्त तैल में दग्ध किया जाता है। तदनन्तर वह कुलटाओं की योनि में कीट योनि प्राप्त करता है। वहां पर ६०००० वर्ष तक योनि का मल खाता हुआ तब एक लक्ष जन्म पर्यन्त चाण्डाल योनि में रहता है। तत्पश्चात् एक जन्म गलित कुष्ठ भोग कर तब पवित्र होता है। तदनन्तर शुद्ध होकर रोगी ब्राह्मण के रूप में जन्म लेता है। तदनन्तर तीर्थ पर्यटन से उसे शुद्धि मिल जाती है।।१४८-१५०।।

असच्छूद्रश्च भवति सोऽस्थानेऽसरपूजिते। दत्त्वा देवाय नैवेद्यमपवित्रं च मानवः।।१५१।।
सकेशं पार्थिवं लिङ्गं सम्पूज्य यवनो भवेत्।
दुर्बलेन भवेदन्धः कुत्सितेन च कुत्सितः।।१५२।।

१. प्रातःस्नायी न इति क्वचित्।

अङ्गहीनो दरिद्रश्च व्याधियुक्तश्च मानवः।
अश्रद्धया च निर्माणे निर्माणसदृशं फलम्॥१५३॥

जो व्यक्ति अस्थान पर (जहां अपवित्र असुर आदि पूजित होते हैं) देवपूजा करता है, वह असत् शूद्र होकर जन्म लेता है। देवगण को अपवित्र नैवेद्य निवेदित करने वाला अथवा जिस बालू-मृत्तिका के पार्थिव शिवलिङ्ग में केश पड़ा हो उसकी पूजा करने वाला यवन योनि प्राप्त करता है। जो व्यक्ति दुर्बल पार्थिव लिङ्ग बनाता है, वह अन्धा होगा। कुत्सित पार्थिव लिङ्ग बनाने वाला कुत्सित, अश्रद्धा से पार्थिव लिङ्ग निर्माण करने वाला अङ्ग रहित, निर्धन तथा रुग्ण होता है। जैसे वह लिङ्ग निर्माण करेगा, वैसा ही फल उसे मिलेगा।।१५१-१५३।।

मृद्भस्मगोशकृत्पिण्डैस्तथा वालुकयाऽपि वा।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वेसत्कल्पायुषं दिवि॥१५४॥
ततो भवति विप्रश्च महाप्राज्ञश्च भूमिमान्।
राजा भवेद्भारते च लिङ्गानां शतपूजनात्॥१५५॥

जो व्यक्ति मिट्टी, भस्म, गोबर तथा बालुका से शिवलिङ्ग बनाकर मात्र एक बार भी पूजा कर लेता है, वह एक कल्प तक स्वर्ग में निवास करता है। इसके पश्चात् वह भूमिवान् तथा महाबुद्धिशाली ब्राह्मण जन्म लाभ करता है। ऐसी १०० लिङ्गपूजा करने वाला भारत में राजा होकर जन्म लेता है।।१५४-१५५।।

सहस्रपूजनात्सोऽपि लभते निश्चितं फलम्।
स्थित्वा च सुचिरं स्वर्गे राजेन्द्रो भारते भवेत्॥१५६॥
अयुते च तदीशश्च लक्षे च पृथिवीश्वरः।
पूजने चातिभक्त्या चाप्यतिरिक्तं फलं लभेत्॥१५७॥

ऐसे सहस्रलिङ्ग का पूजन करने वाला व्यक्ति ऐसा फललाभ करता है, वह स्वर्ग में चिरकाल व्यतीत करके भारत में राजेन्द्र होता है। दस हजार लिङ्गों का पूजक समग्र भारत का सम्राट् होता है। एक लक्ष लिङ्गों का पूजक व्यक्ति भूमण्डल का अधीश्वर हो जाता है और भी अधिक भक्ति से पूजा करने वाला और भी अधिक फल की प्राप्ति करता है।।१५६-१५७।।

तीर्थस्नानेन दानेन विप्राणां भोजनेन च।
नारायणार्चया चैव विप्रजातिश्च कर्मणा॥१५८॥
अतिरिक्तेन तपसा पण्डितो ब्राह्मणो भवेत्।
पण्डितो ब्राह्मणश्चैव वैष्णवश्च जितेन्द्रियः॥१५९॥
अनेकजन्मपुण्येन जायते भारते भुवि। तस्याङ्घ्रिस्पर्शनेनैव सद्यः पूता वसुन्धरा॥१६०॥

तीर्थाः कुर्वन्ति तीर्थानि जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः।
स्वपुंसां च सहस्त्रं च पुनन्तीति श्रुतौ श्रुतम्॥१६१॥

तीर्थस्नान, दान, ब्राह्मण भोजन, नारायणार्चन करने वाला अपने इन शुभ कर्मों के अनुसार ब्राह्मण जाति में जन्म लेता है। जो और भी अधिक तपःश्चरण करता है, वह पण्डित ब्राह्मण हो जाता है। अनेक जन्मार्जित पुण्य से वह पण्डित ब्राह्मण अब इन्द्रियजित् तथा वैष्णव हो जाता है। तब उस अनेक जन्मों के पुण्यफल से उसका भारत में जन्म संभव हो पाता है। ऐसे व्यक्ति का चरणस्पर्श होने मात्र से सद्यः पृथिवी पवित्र हो जाती है। जीवन्मुक्त वैष्णवगण ही तीर्थों को तीर्थ बना देते हैं। यह वेद में सुना गया है कि ऐसे लोग अपने सहस्र पूर्व पुरुषों को पावन कर देते हैं॥१५८-१६१॥

पापेन वैद्यजन्मैव दुश्चिकित्सोऽपि ब्राह्मणः।
दुश्चिकित्सस्तथा वैद्यो व्यालग्राही त्रिजन्मसु॥१६२॥
अतिक्रूरो दुराचारो द्वेष्टा च सुरविप्रयोः।
स भवेत्कुटिलव्यालो वर्षाणां च सहस्त्रकम्॥१६३॥
पुंश्चलीलम्पटानां च दूती या कामिनी व्रज।
कालसूत्रे वर्षशतं स्थित्वा च गोधिका भवेत्॥१६४॥

पापाचार में रत ब्राह्मण लोग वैद्य तथा दुश्चिकित्सक होते हैं। तदनन्तर वह तीन जन्म पर्यन्त ऐसे दुष्ट वैद्य तथा सपेरा होते हैं। वे अतिक्रूर, दुराचारी, देवता तथा विप्रद्वेषी होते हैं। तत्पश्चात् कुटिलसर्पयोनि में जन्म लेकर एक हजार वर्ष रहते हैं। जो नारी कुलटा नारी एवं लम्पटों का दूतकार्य करती है, वह कालसूत्र नरक में १०० वर्ष कष्ट पाकर गोह का जन्म लेती है॥१६२-१६४॥

जन्मैकं गोधिका भूत्वा हरिणश्च त्रिजन्मसु।
जन्मैकं महिषचैव जन्मैकं भल्लुको भवेत्॥१६५॥
जन्मैकं गण्डकश्चैव शृगालश्च त्रिजन्मसु।
परकीयतडागं च[1] लुप्त्वा सस्यं ददाति च॥१६६॥
स भवेन्नक्रजातिश्च कच्छपश्च त्रिजन्मसु।
वृथा मांसं च यो भुङ्क्ते मत्स्यलुब्धश्च ब्राह्मणः॥१६७॥
भुङ्क्ते मांसमदत्तं च स मीनश्च मृगो भवेत्।
वर्षाणां च सहस्त्रं च तात भुक्त्वा च किल्बिषम्॥१६८॥
कर्मभोगाच्छुचिर्भूत्वा च पुनर्ब्राह्मणो भवेत्।
एकादशीविहीनश्च ब्राह्मणः पतितो भवेत्॥१६९॥

१. ख. सुप्तस०।

भक्ष्यस्य द्विगुणं दत्त्वा तेन पापेन मुच्यते।
मम जन्मदिने चैव यो भुङ्क्ते मानवोऽधमः॥१७०॥
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः।
भुक्त्वा च नरकं सर्वं पश्चाच्चण्डालतां व्रजेत्॥१७१॥
एवं च शिवरात्रौ च श्रीरामनवमीदिने। उपवासासमर्थश्च हविष्यान्नं समाचरेत्॥१७२॥

वह एक जन्म गोधिका होकर तीन जन्म पर्यन्त हरिण योनि में जन्म लेती है। तदनन्तर एक जन्म में महिष, अन्य जन्म में भालू तदनन्तर गैंडा तथा तीन जन्म तक शृगाल होती है। जो अन्य का तालाब पाट देता है तथा वहां फसल उगाता है, वह तीन जन्मों तक मगर तथा तीन जन्म तक कच्छप योनि में जन्म लेता है। मछली का लोलुप जो ब्राह्मण अनिवेदित मछली का तथा अनिवेदित पशुओं का मांस भक्षण करता है, वह मछली तथा मृग योनि में जन्म लेता है। हे तात! वह एक हजार वर्ष तक पापफल भोगने के पश्चात् कर्मभोग से पवित्र होकर ब्राह्मण हो जाता है। एकादशी व्रत पालन न करने वाला ब्राह्मण पतित होगा। यदि वह अपने खाये हुये भोजन का दूना दान करता है, तब पातक रहित होगा। जो मानवाधम मेरी कृष्ण जन्माष्टमी के दिन आहार ग्रहण करता हैं, उसने तो मानो त्रैलोक्य का पातक ही खा लिया। इसमें संशय नहीं है। वह सभी नरक भोग का दुःख भोगकर तदनन्तर चाण्डाल जन्म लेता है। इसी प्रकार शिवरात्रि तथा श्रीरामनवमी तिथि पर यही नियम जाने। यदि व्यक्ति उपवास में असमर्थ हो, तब हविष्यान्न भोजन करे।।१६५-१७२।।

ततोऽशक्तो दुर्बलश्च भोजयेद्ब्राह्मणानपि।
कृत्वा महोत्सवं पुण्यं मदीयं पातकाच्छुचिः॥१७३॥
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं नामसंकीर्तनं मम। गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः॥१७४॥
श्वापदःशतजन्मानि कुह्वां च निशि भोजनात्।
अदीक्षितो द्विजश्चैव शङ्खश्चिल्लः शुको भवेत्॥१७५॥
अनुद्वाही द्विजश्चैव राजहंसो भवेद्ध्रुवम्। चित्रवस्त्रापहारी च मयूरश्च त्रिजन्मसु॥१७६॥

यदि वह और भी अशक्त हो, तब वह मेरा पुण्यमय महोत्सव सम्पन्न करके ब्राह्मण भोजन कराने से पाप से शुद्ध हो जाता है। (व्रतभंग पाप से शुद्ध हो जाता है)। इन तिथियों पर मेरा नामकीर्त्तन करना आवश्यक है। जो व्यक्ति अमावस्या की रात्रि में भोजन करता है, वह कोटिसहस्र जन्मों तक गृध्र, १०० जन्मों तक शूकर, १०० जन्मों तक मांसाहारी जन्तु हो जाता है। अदीक्षित ब्राह्मण श्वेत चील तथा शुक होता है। जो द्विज अविवाहित है, वह राजहंस होगा। यह निश्चित जानें। जो चित्र-विचित्र वस्त्र हरण करता है, वह मयूर योनि में तीन जन्म लेगा।।१७३-१७६।।

तेजःपत्रापहारी च भवेत्कारण्डवश्चिरम्।
सुराणां प्रतिमाचोरोऽप्यन्धश्च सप्तजन्मसु॥१७७॥

दरिद्रो व्याधियुक्तश्च बधिरश्चापि कुब्जकः।
स्त्रीतैलमधुमांसानि रवौ वा पञ्चपर्वसु॥१७८॥
सेवते यो महामूढो वज्रदंष्ट्रं व्रजेद्ध्रुवम्।
पातकी दुःखितस्तत्र वर्षाणां च सहस्त्रकम्॥१७९॥

जो तेजपत्ता चोरी करता है, वह चिरकाल पर्यन्त कारण्डक जलपक्षी होगा। देवप्रतिमा चोरी करने वाला ७ जन्मों तक अन्धा होगा। वह दरिद्र, रोगी, बहरा तथा कुबड़ा होगा। रविवार तथा पंचपर्व काल में मधु, मांस नारी तैल का भोग वर्जित है। जो महामूढ़ ऐसा करता है, उसे वज्रदंष्ट्र नरक अवश्य प्राप्त होगा। वह पातकी १००० वर्षों तक वहां दुःखी होता है।।१७७-१७९।।

ततो भवति म्लेच्छश्च चाण्डालः सप्तजन्मसु।
व्याधियुक्तस्ततः शूद्रो ब्राह्मणश्च ततः शुचिः॥१८०॥
तस्माद्यत्नान्न भोक्तव्यं भारते धर्मभीरुणा।
ब्राह्मणं च सुरं दृष्ट्वा न नमेद्यो नराधमः॥१८१॥
यावज्जीवनपर्यन्तमशुचिर्यवनो भवेत्।
अभ्युत्थानं न कुरुते दृष्ट्वा चाऽऽगतब्राह्मणम्॥१८२॥
स भवेद्ब्रह्मघाती च सप्तजन्मसु निश्चितम्।
शिवद्वेषी कुक्कुटश्च देवलः सप्तजन्मसु॥१८३॥

तदनन्तर वह ७ जन्म पर्यन्त म्लेच्छ तथा चाण्डाल होता है। तत्पश्चात् वह रोगग्रस्त शूद्र का जन्म लेगा। अन्ततः वह ब्राह्मण होकर शुद्ध हो जायेगा। अतः इन तिथियों पर जो भारत में धर्मभीरु हैं, आहार न करें। जो नराधम ब्राह्मण अथवा देवता को देखकर नमस्कार नहीं करता, वह यावत् जीवन अपवित्र रहकर यवन हो जाता है। जो ब्राह्मण को आता देखकर उठकर खड़ा नहीं होता वह सात जन्मों तक ब्रह्महत्या के पाप का भागी हो जाता है। शिवद्वेषी तथा देवल (मन्दिर के पुजारी) ७ जन्मों तक कुक्कुट योनि में रहते हैं।।१८०-१८३।।

पितृदेवार्चनं हन्ति वेदोक्तं ज्ञानदुर्बलः।
स याति नरकं पापी वर्षाणां च सहस्त्रकम्॥१८४॥
ततश्च रौरवं भुक्त्वा तीर्थकाकस्त्रिजन्मसु।
त्रिजन्मसु शृगालश्च तीर्थे भुङ्क्ते शवं व्रज॥१८५॥
त्रिजन्मसु भवेत्सोऽपि तीर्थेषु शवरक्षकः। शवानां करमादत्ते कर्मणा कृतपातकी॥१८६॥
नित्यं सुरार्चनं कृत्वा दाम्भिको ज्ञानदुर्बलः।
गुरुं च नार्चयेद्भक्त्या तस्मै नान्नं ददाति यः॥१८७॥

स भवेद्देवलो दुःखी देवशापेन पातकी।
नित्यं सुरार्चनं कृत्वा दाम्भिको ज्ञानदुर्बलः॥१८८॥
पूजाफलं च लभते देवद्रोही स दारुणः। दीपनिर्वाणकर्ता च खद्योतः सप्तजन्मसु॥१८९॥

जो ज्ञानहीन व्यक्ति वेदोक्त पितरों तथा देवताओं की अर्चना को नष्ट कर देता है, वह १००० वर्षों हेतु नरक गमन करता है। वहां वह रौरव नरक का भोग करके तीर्थ में तीन जन्म पर्यन्त कौआ हो जाता है। वह तीन जन्म तक श्रृगाल की योनि में रहता तीर्थ में शवभक्षण करता है। हे ब्रजराज! तदनन्तर वह पातकी अपने कर्म दोष से वह तीन जन्मों तक तीर्थ में शवरक्षक होकर शवों का कर (दग्ध करने का टैक्स) ग्रहण करता है। जो अभिमानी मूढ़ व्यक्ति नित्य देवार्चन करके भी अपने गुरु की भक्तिभाव से अर्चना (सेवा) नहीं करता तथा उनको भोजन प्रदान नहीं करता, वह पापी देवता के शाप से दुःख उठाता है। देव शाप के कारण वह पातकी देवल (मन्दिर का पुजारी) होता है। वह दांभिक मन्दिर में नित्य पूजा करता है, तथापि वह अज्ञानी पूजाफल नहीं प्राप्त करता; क्योंकि वह दारुणरूप से देवद्रोही है। जो मन्दिर का दीपक बुझाता है, वह सात जन्मों तक जुगनू की योनि प्राप्त करेगा॥१८४-१८९॥

अतीव मत्स्यलुब्धश्चाप्यनैवेद्यं च खादति।
स भवेन्मत्स्यरङ्गश्च मार्जारः सप्तजन्मसु॥१९०॥
गोणीहर्ता[1] कपोतश्च मालाहर्ता विहङ्गमः।
चटको धान्यचोरश्च मांसचोरश्च कुञ्जरः॥१९१॥
कविः प्रहर्ता विदुषां माण्डूकः सप्तजन्मसु।
असत्कविर्ग्रामविप्रो नकुलः सप्तजन्मसु॥१९२॥
कुष्ठी भवेच्च जन्मैकं कृकलासस्त्रिजन्मसु।
जन्मैकं वरलश्चैव ततो वृक्षपिपीलिका॥१९३॥
ततः शूद्रश्च वैश्यश्च क्षत्रियो ब्राह्मणस्तथा।
कन्याविक्रयकारी च चतुर्वर्णो हि मानवः॥१९४॥
सद्यः प्रयाति तामिस्रं यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
ततो भवति व्याधश्च मांसविक्रयकारकः॥१९५॥

जो अत्यन्त मछली खाने का लोभी व्यक्ति देवता को बिना अर्पित किये मछली खाता है, वह सात जन्मों तक जलपक्षी मछरंगा की योनि में जन्म लेता है। तदनन्तर सात जन्मों तक बिड़ाल होता है। बोरा चोर व्यक्ति ७ जन्म कबूतर योनि मालाहर्त्ता पक्षी योनि, धान्य चोर गौरया पक्षी, मांस चोर हाथी होता है। कवि पर प्रहार करने वाला ७ जन्म पर्यन्त मंडूक योनिलाभ करेगा। तदनन्तर ७ जन्मों तक

१. क. गोणाह०।

असत् कवि, सात जन्म तक ग्राम्य पण्डित, ७ जन्म तक नेवला, एक जन्म कोढ़ी, तीन जन्म तक गिरगिट, एक जन्मपर्यन्त बर्रे तदनन्तर वृक्ष वाली चींटीं होकर जन्म लेता है। इसके पश्चात् वह शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण होता है (तब पवित्र हो जाता है)। कन्या बेचने वाले चारों वर्ण वाले जो कोई हैं, वे सद्यः तामिस्र नरक जाकर वहां सूर्य-चन्द्र की जगत् में जब तक स्थिति है, तब तक रहते हैं। तदनन्तर वे मांस विक्रेता व्याध होकर जन्म लेते हैं।।१९०-१९५।।

ततो व्याधि (धो) र्भवेत्पश्चाद्यो यथा पूर्वजन्मनि।
मन्नामविक्रयी विप्रो न हि मुक्तो भवेद्ध्रुवम्।।१९६।।
मृत्युलोके च मन्नामस्मृतिमात्रं न विद्यते।
पश्चाद्भवेत्स गोयोनौ जन्मैकं ज्ञानदुर्बलः।।१९७।।
ततश्छागस्ततो मेषो महिषः सप्तजन्मसु।
महाचक्री च कुटिलो धर्महीनस्तु मानवः।।१९८।।
जन्मैकं तैलकारश्च कुम्भकारस्तथैव च।
मिथ्याकलङ्कवक्ता च देवब्राह्मणनिन्दकः।।१९९।।
स भवेत्स्वर्णकारश्च रजकः सप्तजन्मसु।
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्राः कुत्सिताः शौचवर्जिताः।।२००।।
जन्म तेषां म्लेच्छयोनौ वर्षाणामयुतं तथा।
अतीव कामिनीलुब्धः कामुकः स्त्रीरतः सदा।।२०१।।
यक्ष्मग्रस्तो भवेत्सद्यः परत्रापि नपुंसकः।
कामतो योषितां श्रोणीस्तनास्ये यश्च पश्यति।।२०२।।
स भवेद्दृष्टिहीनश्च परत्रापि नपुंसकः। विप्रोऽभिचारकर्ता च हिंसको ज्ञानदुर्बलः।।२०३।।

इसके अनन्तर उसे पूर्वजन्म के पातक के अनुरूप व्याधि कष्ट उठाना निश्चित है। जो कोई पृथिवी पर रहते मेरा नाम विक्रय करता है, वह ब्राह्मण कदापि मुक्त नहीं हो सकता। यह निश्चित है। इस मृत्युलोक में रहने वाले जिस व्यक्ति को मेरे नाम की स्मृति नहीं रहती, वह ज्ञानहीन व्यक्ति १ जन्म हेतु गौ होकर बकरा, तदनन्तर मेष, तत्पश्चात् महिष सात जन्मों तक होकर पापफल भोगता है महाचक्री (फेरवटी), कुटिल, धर्महीन मानव एक जन्म तेली का लेकर अगले जन्म में कुम्हार होता है। जो किसी पर मिथ्या कलंक लगाकर प्रचारित करता है, देव-ब्राह्मण की निन्दा करता है, वह एक जन्म सोनार का लेने के उपरान्त ७ जन्मों तक धोबी होता है। जो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र कुत्सित तथा पवित्रता रहित हैं, वे १०००० जन्मों तक म्लेच्छ योनि में रहते हैं। जो स्त्री लोभी, सदा काम वासनाग्रस्त तथा सर्वदा नारी-परायण है, वह यक्ष्मा पीड़ित होकर अगले जन्म में क्लीव (नपुंसक) होगा। जो कामभावना ग्रस्त होकर नारी के नितम्ब, स्तन तथा मुख को (टकटकी बांध कर) देखता है, वह

दृष्टिहीन होकर तदनन्तर नपुंसक होता है। जो विप्र अज्ञानी होने के कारण अभिचारिक क्रिया करने वाला है, वह हिंसक तथा ज्ञानदुर्बल हो जाता है।।१९६-२०३।।

यात्येवमन्धतामिस्रं वर्षाणामयुतं तथा। तदा भवति दैवज्ञोऽप्यग्रदानी च दुर्मतिः।।२०४।।

ततः शूद्रो भवेद्विप्रो भोगेन कर्मणस्तथा।
शास्त्रज्ञाता च दैवज्ञो मिथ्या वदति लोभतः।।२०५।।
स भवेच्च ध्रुवं ज्येष्ठी वानरः सप्तजन्मसु।
अनेकजन्मतपसा भारते ब्राह्मणो भवेत्।।२०६।।

वह पहले अन्धा तदनन्तर अगले जन्म में क्लीव (नपुंसक) हो जाता है। तदनन्तर वह १०००० वर्ष अन्धतामिस्र नरक में रहकर ज्योतिषी, अग्रदान ग्रहीता एवं मतिहीन होकर तब शूद्र योनि भोग कर अपने कर्मभोग से विप्र होता है। वह झूठा शास्त्रज्ञ तथा दैवज्ञ लोभ से बनकर इस सम्बन्ध में झूठ बोलता है, इस पाप फल के कारण वह ७ जन्म पर्यन्त वानर प्रधान होता है। तदनन्तर वह अनेक जन्म के तपःश्चरण के फलस्वरूप ब्राह्मण जन्म भारत में ग्रहण करता है।।२०४-२०६।।

सुबुद्धिरतिधर्मिष्ठो धर्महीनश्च पातकी। स्वधर्मनिरतो विप्रः परमाच्च हुताशनात्।।२०७।।

पवित्रश्चातितेजस्वी तस्माद्भीताः सुराः सदा।
नदीषु च यथा गङ्गा तीर्थेषु पुष्करं यथा।।२०८।।
पुरीषु च यथा काशी यथा ज्ञानिषु शङ्करः।
शास्त्रेषु च तथा वेदा यथाऽश्वत्थश्च पादपे।।२०९।।

मम पूजा तपस्यासु व्रतेष्वनशनं यथा। तथा जातिषु सर्वासु ब्राह्मणः श्रेष्ठ एव च।।२१०।।

उत्तम बुद्धि वाला धर्मिष्ट कहा जाता है। धर्म रहित तो पातकी होता है। जो ब्राह्मण स्वधर्म निरत है, वह अग्नि की तुलना में उससे भी बढ़कर पावन तथा तेजवान् है। उससे तो सदा देवगण भयभीत रहते हैं। जैसे नदियों में गंगा तथा तीर्थों में पुष्कर तीर्थ प्रधान है, पुरियों में जैसे काशी, ज्ञानीगण में शंकर जैसे प्रधान हैं, जिस प्रकार शास्त्रों में वेद, वृक्षों में पीपल, तपस्या में मेरी पूजा जिस प्रकार से श्रेष्ठ है, तदनुरूप व्रतों में उपवास तथा सभी वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं।।२०७-२१०।।

विप्रपादेषु तीर्थानि पुण्यानि च व्रतानि च।
विप्रपादरजः शुद्धं पापव्याधिविमर्दनम्।।२११।।
शुभाशीर्वचनं तेषां सर्वकल्याणकारणम्।
एतत्ते कथितं तात विपाकः कर्मणामहो।।२१२।।
यथाश्रुतं यथाज्ञातं[1] तदशेषं निशामय।
श्रुत्वा धर्मविपाकं च वाचकाय सुवर्णकम्।।२१३।।

१. क. ०ज्ञानं।

विप्र के चरणद्वय में समस्त तीर्थ-पुण्य-व्रतों की स्थिति है। विप्र का चरणरज अत्यन्त शुद्ध होता है। वह पाप रूपी व्याधि का विमर्दक भी है। उनका शुभ आशीर्वाद सर्वकल्याणकारक है। हे तात! मैंने जो जाना है, जो सुना है, वह सब कर्मविपाक आपको सुना दिया। यह कर्मविपाक प्रसंग श्रवण करके इसको कहने वाले वाचक को स्वर्ण देना चाहिये।।२११-२१३।।

दद्यात्तस्मै च रौप्यं च वस्त्रं ताम्बूलमेव च।
सुवर्णशतकं दद्यात्सद्यो देही च गोकुलम्।
रौप्यं वस्त्रं च ताम्बूलं मत्प्रीत्या ब्राह्मणाय च।।२१४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० पञ्चाशीतितमोऽध्यायः।।८५।।

उनको स्वर्ण, रजत, वस्त्र, ताम्बूल प्रदान करे। जो मेरी तत्काल प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हैं, वे वाचक ब्राह्मण को १०० स्वर्ण, रजत, वस्त्र तथा ताम्बूल प्रदान करें।।२१४।।

।।८५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

केदारकन्या का वर्णन, ब्राह्मणरूपी धर्म को लक्ष्मी का अभिशाप तथा देवगण के अनुरोध से धर्म को शापमुक्त किया जाना

नन्द उवाच

केदारकन्याप्रस्तावात्कथितं कर्मकीर्तनम्। कृत्यास्त्रीणां प्रसङ्गेन तद्व्यासेन वद प्रभो।।१।।
केदारकन्या सा का वा को वा केदारभूपतिः।
कस्य वंशे च तज्जन्म तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।।२।।

नन्दराज कहते हैं—हे प्रभो! केदारकन्या के उल्लेख में प्रसंगतः कृत्या स्त्रियों के कर्म का भी आपने कहा था। साथ ही कर्मों के विपाक (परिणाम) का भी वर्णन किया। कृपया अब यह कहिये कि केदार राजा कौन थे, केदारकन्या कौन हैं? इनका जन्म किस वंश में हुआ? यह विस्तार से कहिये।।१-२।।

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा तु ब्रह्मणः पुत्रो मनुः स्वायंभुवस्तथा।
तस्य स्त्री शतरूपा च धन्या मान्या च योषिताम्॥३॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ तयोः पुत्रौ बभूवतुः। उत्तानपादपुत्रश्च ध्रुव एव महायशाः[१]॥४॥
तत्पुत्रो नन्दसावर्णिः[२] केदारश्च तदात्मजः।
सप्तद्वीपपतिः श्रीमान्केदारो वैष्णवः स्वयम्॥५॥
तस्य रक्षानिमित्तेन तत्सभायां सुदर्शनम्। गवां लक्षं नवं शुद्धं स्वर्णशृङ्गं च भूषितम्॥६॥
वह्निशुद्धानि वस्त्राणि दत्तानि वरुणेन च। सुवर्णानां तथा लक्षं सर्वसस्यां वसुन्धराम्॥७॥
मणिरत्नं च मुक्ताश्च हीरकं परमं तथा। माणिक्यमश्वरत्नानां लक्षं लक्षं च हस्तिनाम्॥८॥
रौप्यं प्रवालं मिष्ठान्नं शतधान्याचलं वरम्।
नित्यं नित्यं ब्राह्मणेभ्यो ददौ च रत्नभूषणम्॥९॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे ब्रजराज! पूर्व में सृष्टि प्रारंभ काल में ब्रह्मपुत्र स्वायम्भुव नामक एक मनु का आविर्भाव हो गया। उनकी भार्या थीं शतरूपा। ये स्त्रियों में धन्या एवं मान्या कही गयी हैं। इनके दो पुत्र थे—यथा—प्रियव्रत एवं उत्तानपाद। उत्तानपाद के पुत्र रूप में महायशा ध्रुव ने जन्म लिया था। ध्रुवपुत्र थे नन्दसावर्णि। उनके पुत्र थे केदार राजा । वे सप्तद्वीपाधिपति एवं श्रीमान् तथा वैष्णव थे। उनकी सभा में उनकी रक्षा हेतु सुदर्शन चक्र विद्यमान रहता था। ये राजा नित्यप्रति ब्राह्मणों को ९ लाख शुद्ध स्वर्णशृङ्ग मढ़ी, भूषित गौंये, अग्नि शुद्ध वस्त्र जो वरुण द्वारा प्रदत्त थे, लक्ष स्वर्णमुद्रा, सभी फसलयुक्त भूमि, मणिरत्न, मुक्ता, परमश्रेष्ठ हीरे, माणिक्यादिरत्न, एक लाख अश्व तथा एक लाख हाथी, रजत, विद्रुम, मिष्ठान्न, उत्तम धान्य के १०० पर्वत, रत्नभूषण दिया करते थे।।३-९।।

शतलक्षं ब्राह्मणानां भोजयामास नित्यशः।
जलभोजनपात्राणि सुवर्णानां ददौ नृपः॥१०॥
सुवर्णानां यज्ञसूत्रमङ्गुलीयकमुत्तमम्। आसनं स्वर्णरत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥११॥

वे नित्य १०० लाख ब्राह्मणों को भोजन कराते थे। राजा उनको स्वर्ण के जलपात्र तथा भोजनपात्र भी प्रदान कर देते थे। स्वर्ण के यज्ञसूत्र, स्वर्ण की अंगूठी, उत्तम आसन, स्वर्ण रत्नादि केदार राजा मुदित मन से ब्राह्मणों को देते थे।।१०-११।।

ब्राह्मणानां च लक्षं च सूपकारं नृपस्य च। ब्राह्मणानां द्विलक्षं च परिवेषणकारकम्॥१२॥
घृतकुल्या मधुकुल्या दधिकुल्या मनोहराः।
गुडकुल्या दुग्धकुल्या नित्यं प्रार्थनमीप्सितम्॥१३॥

१. क. ०हाशयः।
२. क. वत्स०।

प्रातरारभ्य सन्ध्यान्तं विप्राणां भोजनं तथा।
दुःखिनां भिक्षुकाणां च धनदानं यथोचितम्॥१४॥
फलमूलाशनो राजा वैष्णवश्च जितेन्द्रियः।
सर्वं मदर्पणं कृत्वाऽजपन्मां च दिवानिशम्॥१५॥

राजा की पाकशाला में एक लाख ब्राह्मण भोजन बनाते थे। दो लाख ब्राह्मणगण भोजन परोसते थे। वहां सर्वसाधारण की अभिलाषा पूर्ण करने हेतु घृत-मधु-दधि-गुड़-दुग्ध की उत्तम नहरें बहती रहती थीं। राजा प्रातः से लेकर सायंकाल तक ब्राह्मण भोजन, दुःखी भिक्षुओं को यथोचित दान करते थे। राजा केदार स्वयं फल-मूल आहार करते हुये सदा वैष्णव तथा जितेन्द्रिय थे। वे सब कुछ मुझे अर्पित करके दिन-रात मेरा नाम जप करते रहते थे।।१२-१५।।

एकदा सूपकारश्च तमुवाच नृपेश्वरम्। विप्राणां भोजनायैव दशलक्षमुपस्थितम्॥१६॥
भुञ्जते ब्राह्मणाश्चाद्य रूक्षमन्नं वद प्रभो। कुर्वन्तु भक्षणं ते वै विप्राः सूपादिना नृप॥१७॥

एक बार उनके पाचक (रसोईयां) ने कहा-"हे राजन्! भोजनार्थ दस लाख ब्राह्मण आये हैं। हे प्रभो! क्या वे रूखा भोजन करेंगे? हे राजन्! हमारी इच्छा है कि वे दाल-शाक आदि के साथ भोजन करें।।१६-१७।।

चतुर्योजनपर्यन्तमधिकारो नृपस्य च। यो राजा तच्छतगुणः स एव मण्डलेश्वरः॥१८॥
तत्तद्दशगुणो राजा राजेन्द्रः परिकीर्तितः। राजेन्द्राणां पञ्चलक्षं नित्यं केदारसंसदि॥१९॥
अमूल्यरत्नमाणिक्यं मुक्ताहीरं[1] मणीश्वरम्। गजरत्नमश्वरत्नं केदाराय करं ददौ॥२०॥

राजा का अधिकार १६ क्रोश पर्यन्त होता है। इससे सौ गुना अधिकार वाला मण्डलेश्वर कहा जाता है। मण्डलेश्वर से दस गुणित अधिकार वाला राजेन्द्र होता है। राजा केदार की सभा में ऐसे पांच लाख राजेन्द्र नित्य रहते थे। ये सभी राजेन्द्र लोग केदार को नित्य कर स्वरूप अमूल्य रत्न, माणिक्य, मुक्ताहार, श्रेष्ठतम मणियां, हाथी, अश्व आदि प्रदान किया करते थे।।१८-२०।।

कमलाकलया जाता यज्ञकुण्डसमुद्भवा। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता॥२१॥
कामुकी कामिनीश्रेष्ठा कन्या कमललोचना।
कन्याऽस्मि ते महाराजेत्युवाच नृपतिं च सा॥२२॥
राजा सम्पूज्य तां भक्त्या तस्थौ पत्नीं समर्प्य च।
सा विज्ञाय प्रसूं तातं कृत्वा च विनयं मुदा॥२३॥
ययौ पुण्यवनं रम्यं तपसे यमुनान्तिकम्।
तत्तपस्यावनं यस्मात्तस्माद्वृन्दावनं स्मृतम्॥२४॥

१. ख. ०हारं।

केदार राजा के यज्ञकुण्ड से लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न एक कन्या प्रकट हो गई। वह अपने उद्भवकाल में अग्निशुद्ध वस्त्र धारिणी तथा उसका सर्वाङ्ग रत्नभूषणा भूषिता था। उस कामिनीप्रवरा कमल नयना कामुकी कन्या ने यज्ञकुण्ड से उद्भूत होकर केदार राजा से कहा-"हे राजन्! मैं आपकी पुत्री हूं।" तब राजा ने उसका भक्ति से पूजनादि सत्कार किया और उसे अपनी पत्नी को समर्पित कर दिया। हे तात नन्दराज! तदनन्तर वे राजा वहां खड़े हो गये। तभी उस कन्या ने मुदित होकर विनय पूर्वक माता-पिता से विनय पूर्वक प्रार्थना किया कि तप करने जाऊंगी। तदनन्तर उसने यमुना के किनारे स्थित रम्य तपोवन में तप करने हेतु वहां से प्रस्थान कर दिया। वहां उस कन्या ने तपस्या किया, जिसके कारण वह तपोवन वृन्दावन कहा गया।।२१-२४।।

तपसा वरयायास मां वरं च वरं वरम्। ब्रह्मा ददौ वरं तस्यै पश्चात्कृष्णं लभिष्यसि॥२५॥

उसने तपःश्चरण करके मुझे ही पतिरूपेण प्राप्त करने हेतु श्रेष्ठ वर की याचना किया। ब्रह्मदेव ने उसे यह वर दिया कि तुम पश्चात् काल में कृष्ण को पतिरूपेण प्राप्त कर सकोगी।।२५।।

स चैकदा नदीतीरे वसन्ते सस्मिता सती। शयाना पुष्पशय्यायां रत्नाभरणभूषिता॥२६॥
ब्रह्मा परीक्षितुं यातः साध्वीं च सुमनोहराम्। ददर्श कन्या रहसि युवानं पुरुषं परम्॥२७॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्। सस्मितं कामुकं रम्यं रमणीनां च वाञ्छितम्॥२८॥
यथा षोहशीवर्षीयं कुमारं कनकप्रभम्। कोटिकन्दर्पलीलाभं पीताम्बरधरं वरम्॥२९॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पद्मसुलोचनम्।
दृष्ट्वा तं च समुत्थाय वासयामास सन्निधौ॥३०॥
पूजां चकार भक्त्या च फलं मूलं ददौ मुदा।
सुवासितं जलं दत्त्वा प्रणनाम मुदाऽन्विता॥३१॥

पूजां गृहीत्वा मुदितः सादरं तामुवाच ह। विप्ररूपी च भगवान्प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा।
कामुकीनां च काम्यं च सतीनां दुष्करं व्रज॥३२॥

एक बार यही कन्या वसन्तकाल में रत्नाभरणभूषिता होकर यमुना तट पर मुस्कराती हुई लेटी थी। तभी ब्रह्मदेव ने इस सुमनोहरा साध्वी की परीक्षा हेतु धर्मदेव को वहां मनोहर वेशभूषा में भेजा। केदारकन्या ने इस विजन वन में एक ऐसे युवक को समागत देखा जिसका सर्वाङ्ग चन्दन से चर्चित तथा रत्नभूषणों से विभूषित था। उसे देखकर यह लगता था कि यह कामुक १६ वर्षीय कुमार है। उसका लावण्य करोड़ों कामदेव के समान था। उसने पीतवर्ण के वस्त्रों को धारण किया था। उसका मुखमण्डल शारदीय चन्द्रमा के सामन मनोहर था तथा नेत्रद्वय शरत्कालीन कमल के समान सुन्दर थे। इस केदार कन्या वृन्दा ने जब उसे देखा, वह उठकर खड़ी हो गई। वृन्दा ने इस युवक को अपने निकट बैठाया तथा उसका सत्कार करके उसे आनन्द पूर्वक फल-मूल-सुवासित जल प्रदान करके भक्तिभाव से प्रणाम निवेदित किया। हे ब्रजराज! उस समय ब्रह्मतेज से प्रज्वलित ब्राह्मण युवक रूपधारी भगवान्

धर्म-देव ने वृन्दा प्रदत्त सत्कार तथा पूजा स्वीकार करके सादर वृन्दा से ऐसे वाक्य कहे जो कामुकी नारी के लिये मनोरम लगने वाला, परन्तु साध्वी सती नारी हेतु असहनीय लगने वाले थे।।२६-३२।।

धर्म उवाच

भवती कस्य कन्या वा किं ते नाम मनोहरे। किं करोषि रहस्येव तन्मे कथितुमर्हसि॥३३॥
कस्य हेतोस्तपस्या ते किं वा वाञ्छसि सुन्दरि।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम्॥३४॥

धर्मदेव कहते हैं–हे मनोहरे! तुम किसकी कन्या हो? तुम्हारा क्या नाम है? तुम इस निर्जन वन में क्या कर रही हो? तुम्हारी इस तपस्या का क्या उद्देश्य है? तुम क्या कामना कर रही हो? तुम्हारा मंगल हो। यह सब उत्तर प्रदान करो। तुम्हारी जो कामना हो, वह वर मुझसे मांगो।।३३-३४।।

वृन्दोवाच

विप्र केदारकन्याऽहं वृन्दा वृन्दावने स्थिता।
तपः करोमि रहसि चिन्तयामि हरिं पतिम्॥३५॥
यदि दातुं समर्थोऽसि देहि मे वाञ्छितं वरम्।
असमर्थोऽसि चेद्गच्छ किं ते प्रश्नेन ब्राह्मण॥३६॥

वृन्दा कहती है–हे विप्र! मैं केदार राजा की कन्या हूं। मेरा नाम वृन्दा है। मैं हरि को पतिरूप से पाने के लिये तप कर रही हूं। यदि आप इस इच्छित वर को दे सकते हैं, तब प्रदान करिये। यदि यह वर देने में असमर्थ हैं, तब यहां से आप जायें। इन प्रश्नों का क्या प्रयोजन?।।३५-३६।।

धर्म उवाच

निरीहमवितर्क्यं च परमात्मानमीश्वरम्। निर्गुणं च निराकारं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥३७॥
का क्षमा तं पतिं कर्तुं विना लक्ष्मीं सरस्वतीम्।
चतुर्भुजस्य द्वे भार्ये हरेर्वैकुण्ठशायिनः॥३८॥
गोलोके द्विभुजस्यापि श्रीवंशीवदनस्य च। किशोरगोपवेषस्य परिपूर्णतमस्य च॥३९॥

धर्मदेव कहते हैं–हे सुन्दरी! जो हरि निरीह (कामना शून्य), सभी तर्क से अतीत, परमात्मा, ईश्वर, निर्गुण, निराकार, भक्तों पर कृपापरवश होकर देहधारण करने वाले हैं, ऐसे प्रभु को लक्ष्मी, सरस्वती के अतिरिक्त अन्य कौन नारी पति बना सकती है? इन वैकुण्ठशायी हरि की दो पत्नी हैं। वे चतुर्भुज हैं। ये प्रभु गोलोक में द्विभुज हैं, वहां वे मुख से श्रीवंशी को लगाये रहते हैं। वे परिपूर्णतम प्रभु किशोर गोपवेशधारी हैं।।३७-३९।।

तस्य भार्या स्वयंराधा महालक्ष्मीः परात्परा। ब्रह्मस्वरूपा परमा परमात्मानमीश्वरम्॥४०॥
भजते सततं शान्तं सुरम्यं श्यामसुन्दरम्। कोटिकन्दर्पसौन्दर्यनिन्दितं सुकलेवरम्॥४१॥

अमूल्यरत्नाभरणं सत्यं च नित्यविग्रहम्। पीताम्बरधरं रम्यं दातारं सर्वसम्पदाम्॥४२॥

वहां उनकी भार्या स्वयं परात्परा महालक्ष्मी राधा हैं। ये परम ब्रह्मस्वरूपा राधिका स्वयमेव निरन्तर इन शान्त, सुरम्य, श्यामसुन्दर, परमात्मा, परमेश्वर की सेवा में निरत रहती हैं। श्यामसुन्दर अत्यन्त शान्त, रम्य, पीताम्बरधारी, कोटि कामदेव के सौन्दर्य को भी लजाने वाले, सुन्दर कलेवर, अमूल्य रत्नों के आभूषणों को धारण किये हुये, सत्यरूप नित्यविग्रह हैं। ये सर्वसम्पदा प्रदाता हैं।।४०-४२।।

श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम्॥४३॥

यन्निमेषो भवेद्वृन्दे ब्रह्मणः पततेन च। पञ्चविंशत्सहस्त्रेण युगेनेन्द्रस्य पातनम्॥४४॥
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नकालेन ब्रह्मणो दिनम्। तावतीति निशा तस्य विधातुर्जगतामपि॥४५॥
एवं त्रिंशद्दिनैर्मासं द्विषट्के मासि वर्षकम्। एवं शतायुस्तस्यैव निबोध बोधतत्परम्॥४६॥

श्रीकृष्ण के दो रूप हैं, द्विभुज तथा चतुर्भुज। इनका चतुर्भुज रूप वैकुण्ठ में है। ये स्वयं द्विभुजरूपी होकर गोलोक में स्थित हैं। जितना ब्रह्मा का पूर्ण आयुकाल है, वह श्रीकृष्ण का मात्र एक निमेष ही है (निमेष=जितने समय में पलक झपकती है)। २५००० युग व्यतीत होने पर इन्द्र की आयु समाप्त हो जाती है। ऐसे १४ इन्द्र का पतन होने पर जगद्विधाता ब्रह्मदेव का एक दिन तथा १४ इन्द्र का पतन काल ही उनकी एक रात्रि होती है। ऐसे इसी परिमाण के ३० दिनों का ब्रह्मा का एक मास तथा ऐसे परिमाण वाले १२ मास का ब्रह्मा का एक वर्ष कहा गया है। इस प्रकार के १०० वर्ष की ब्रह्मा की आयु का परिमाण वर्णित है।।४३-४६।।

यावज्जीवनपर्यन्तं सेवन्ते सनकादयः।
कल्पानां कोटिकोटिं च तन्न साध्यश्च यो विभुः॥४७॥
सहस्त्रवक्त्रः शेषश्च सेवते च जपन्सदा।
दिवानिशं च यं भक्त्या कल्पकोटिशतं शतम्॥४८॥

तन्न साध्यो हितकरा दुराराध्यः परात्परः। ब्रह्मा ब्रह्मस्वरूपं तं भजेज्जन्मनि जन्मनि॥४९॥

वक्त्रैश्चतुर्भिः सततं स्तौति नित्यं सनातनम्।
वेदेऽनिर्वचनीयश्च वेदानां जनको विधिः॥५०॥
विधाता फलदाता च दाता च सर्वसम्पदाम्।
तन्न साध्यो हि भगवान्कालकालान्तकान्तकः॥५१॥

इस कालमान वाले ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु जिनका मात्र एक निमेष है, जिनकी सेवा यावत् जीवन सनकादि मुनि करते रहते हैं, वे प्रभु कोटि-कोटि कल्पों पर्यन्त प्रयत्न से भी साध्य नहीं होते! सहस्त्रशीर्ष शेषनाग उनकी सेवा अहर्निश परमभक्ति के साथ सैकड़ों कोटि कल्प पर्यन्त नाम जप के

साथ करते रहते हैं। ये सर्वहितकारी दुराराध्य परात्पर प्रभु तब भी साध्य नहीं हो पाते। ब्रह्मा इन ब्रह्म-स्वरूप श्रीकृष्ण की उपासना अपने प्रत्येक जन्मों में करते रहते हैं। वे अपने चारों मुख द्वारा नित्य इन सनातन देव की स्तुति करते रहते हैं। ये ब्रह्मा वेदों के जनक हैं, तथापि वे वेदों के लिये अनिर्वचनीय इन प्रभु की स्तुति करते रहते हैं, जबकि विधाता ब्रह्मा स्वयं फलदाता एवं सभी सम्पदा को प्रदान करने वाले हैं, तथापि वे इन काल के काल, अन्तक के भी अन्तक प्रभु को कभी भी सिद्ध नहीं कर सके। ये देव उन ब्रह्मा द्वारा भी साध्य नहीं हैं।।४७-५१।।

संहारकर्त्ता जगतां कलया रुद्ररूपतः।
स स्तौति पञ्चवक्त्रेण कोऽन्योऽन्यस्यापि का कथा।।५२।।
तत्परश्च प्रियो नास्ति वृन्दे भगवतः शृणु। सर्वशक्तिस्वरूपा सा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।।५३।।
ब्रह्मस्वरूपा परमा मूलप्रकृतिरीश्वरी। नारायणी विष्णुमाया वैष्णवी सा सनातनी।।५४।।
यन्मायया जगद्भ्रान्तमनित्ये भ्रमते सदा।
सा स्तौति भक्त्या यं देवं वृन्देऽप्यङ्के दिवानिशम्।।५५।।

ये प्रभु अपनी ही कला से रुद्ररूप धारण करके जगत् के संहारक हो जाते हैं। ये रुद्र अपने पंचमुख से इन प्रभु की स्तुति करते हैं। इन शिव से बढ़कर भगवान् को कोई प्रिय नहीं है। जब नारायण श्रीकृष्ण इनसे साध्य नहीं होते तब अन्य की तो बात ही क्या? दुर्गा सर्वशक्तिरूपा, सबकी दुर्गति का नाश करने वाली, परमब्रह्मस्वरूपा, मूल प्रकृति ईश्वरी हैं। ये विष्णुमाया सनातनी, नारायणी, वैष्णवी कहलाती हैं, जिनकी माया से भ्रान्त यह अनित्य जगत् निरन्तर भ्रमण करता है, हे वृन्दा! स्वयं ऐसी भगवती भी अहर्निश भक्तिभाव से इन देव का स्तवन करती रहती हैं।।५२-५५।।

स्तौति भक्त्या स्वशक्त्या च गजवक्त्रः षडाननः।
ध्यायते यं गणेशश्च सर्वादौ यस्य पूजनम्।।५६।।
भगवान्सर्वदेवेशो ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः। सिद्धेन्द्रेषु च देवेन्द्रे योगीन्द्रे ज्ञानिनां गुरौ।।५७।।
न गणेशात्परो विद्वान्गणेशश्च सुराधिपः सरस्वती च यं स्तोतुमशक्ता परमेश्वरी।।५८।।
दिवानिशं पादपद्मं भक्त्या पद्मा निषेवते। यत्कटाक्षाज्जगत्सर्वं परिपूर्णतमं शिवम्।।५९।।

जिनकी स्तुति अपनी शक्ति के अनुरूप गजमुख गणेश तथा षडानन स्कन्द करते हैं, जिनका ध्यान करने से गणेश सबसे आदि में पूज्य हो गये, उन गणपति से बड़ा सिद्ध, योगी कोई नहीं है। वे सर्वदेव प्रधान ईश्वर तथा ज्ञानीगण के गुरु हैं, जो गणों के स्वामी तथा देवाधिपति हैं, वे गणेश भी उन प्रभु का निरन्तर ध्यान करते रहते हैं। सरस्वती परमेश्वरी होकर भी उन प्रभु की स्तुति करने में अशक्त हैं। भगवती कमला भी भक्तिभाव से दिन-रात उनके चरणों की सेवा में लीन रहती हैं। उन प्रभु के कटाक्षमात्र से यह जगत् परिपूर्णतम मंगलमय हो जाता है।।५६-५९।।

यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति जन्तुषु।।६०।।

पृथिवी सेवया यस्य सर्वाधारा वसुन्धरा।
समुद्रा निश्चलाः शैला यस्य भीताश्च सुन्दरि॥६१॥
तीर्थसारा च सा गङ्गा पवित्रा मुक्तिदायिनी।
जगतां पावनी देवी यस्य पादाब्जसेवया॥६२॥

उनके ही भय से पवनदेव प्रवहमान रहते है, सूर्य उनके ही भय से तप्त होते हैं तथा इन्द्र वर्षण करते हैं। अग्नि उनके ही भय से दग्ध कर देते हैं, मृत्यु भी उन देवदेव के भय से प्राणीगण में विचरता रहता है। उनके ही भय के कारण वसुन्धरा सबका आधार हो गयी है। उनसे ही भयभीत समुद्र तथा शैल निश्चल बने रहते हैं। उनके चरणकमलों की सेवा करने के कारण पवित्र हो गई गंगा तीर्थों में सार स्वरूप तथा मुक्तिप्रदा हो सकी है।।६०-६२।।

पवित्रा तुलसी देवी स्मरणाद्यस्य सेवनात्।
नवग्रहाश्च दिक्पाला भीता यस्य प्रतापतः॥६३॥
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः।
अन्ये ये ये सुरेशाश्च शेषाद्या मुनयस्तथा॥६४॥
केचित्कलास्वरूपश्चाप्यंशरूपाश्च केचन।
केचित्कलांशाः कृष्णस्य केचिच्च परमात्मनः॥६५॥
पतिमिच्छसि कल्याणि प्रकृतेः मरमीश्वरम्।
गोलोके राधिका साध्यो नान्येषां च कदाचन॥६६॥

उन परमेश्वर का स्मरण करने के कारण तथा सेवा करने से तुलसी ऐसी पवित्र मानी गयी हैं। नवग्रह एवं दिक्पालगण उनके प्रताप से सदा भयभीत रहते हैं (स्वकर्म में निरत रहते हैं)। समग्र ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर तथा अनन्तादि देवता तथा सभी सुरेश्वरगण हैं। उनमें से कोई-कोई तो परमात्मा श्रीकृष्ण की कला के अनुरूप हैं। कोई उनके अंश के अनुरूप हैं। कोई-कोई उनके कलांश के अनुरूप हैं। हे कल्याणी! तुमने ऐसे श्रीकृष्ण परमेश्वर को पतिरूप से पाने की इच्छा किया है, जो प्रकृति से भी परे हैं। वे प्रभु गोलोकस्थ राधा द्वारा ही साध्य हैं। वे कदापि अन्य के द्वारा साध्य नहीं हो सकते।।६३-६६।।

मां भजस्व महाभागे नृपाणामीश्वरं पतिम्। बलवन्तं च देवेभ्यो दैत्येभ्यश्च वरानने॥६७॥
सुखानि यानि कल्याणि त्रिषु लोकेषु सन्ति वै।
भुङ्क्ष्व तान्येव सर्वाणि मत्प्रसादान्न संशयः॥६८॥

हे महाभागे! इस कारण तुम मेरा वरण करो। मुझे अपना पति स्वीकार करो। मैं राजाओं का अधिपति बलवान तथा देवगण तथा दैत्यगण से भी कहीं अधिक समर्थ हूं। हे वरानने! त्रैलोक्यस्थ समस्त सुख मेरी कृपा से तुम मेरे साथ रहकर उपभोग कर सकोगी। यह निःसंशय है।।६७-६८।।

सप्तसागरपारे च काञ्चनी रुचिरा वरे। देवानां क्रीडनार्थाय विधात्रा निर्मिता पुरी॥६९॥
तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह। महेन्द्रस्य प्रियवनं पुष्पोद्यानसमन्वितम्॥७०॥
गच्छ स्वर्णमयीं लङ्कां नानारत्नविभूषिताम्। तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह॥७१॥
विस्पन्दकं सुवसनं नन्दकं पुष्पभद्रकम्। तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह॥७२॥
सुमेरुगह्वरं वाऽपि क्षीरोदं वा मनोहरम्। तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह॥७३॥
सत्यलोकं ब्रह्मलोकं रम्यं सद्म रहःस्थलम्। तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह॥७४॥

सप्तसागर के परपार देवगण की क्रीड़ा हेतु विधाता ने रुचिर तथा श्रेष्ठ पुरी का निर्माण किया है। वह स्वर्णमयी पुरी है। हे भद्रे! तुम वहीं चलो तथा मेरे साथ वहां रमण करना अथवा महेन्द्र का प्रिय वन पुष्पोद्यान से भी समन्वित है। तुम वहां भी चल सकती हो। अथवा नानारत्नभूषित स्वर्णमयी लंकापुरी में चलो। हे भद्रे! वहां चलकर मेरे साथ रमण करना। अथवा विस्पन्दक, सुवसन, नन्दक किंवा पुष्पभद्रक, इनमें से किसी उपवन में मेरे साथ चलकर रमण करना। हे सुन्दरी! सुमेरु पर्वतस्थ गुफाओं में, मनोहर क्षीरसागर के तट पर चल कर मेरे साथ तुम रमण करो। किंवा सत्यलोक, ब्रह्मलोक अथवा अन्य रम्य तथा निर्जन स्थल पर चलकर मेरे साथ रमण करना॥६९-७४॥

मलये निलयं रम्यं [1]रत्नेन्द्रसारनिर्मितम्। सुगन्धियुक्तं सततं शुद्धं चन्दनवायुना॥७५॥
मालती यूथिका रम्या केतकी माधवी तथा।
चारुचम्पकपुष्पाणां गन्धेन सुमनोहरम्॥७६॥
पिकानां भ्रमराणां च मधुरध्वनिसंयुतम्। तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह॥७७॥

हे रामे! मलयपर्वत पर उत्कृष्ट रत्नसार निर्मित मेरा स्थान है। वह चन्दन स्पर्शित वायु से निरन्तर सुगन्धित रहता है। वहां मालती, यूथिका, केतकी तथा उत्तम चम्पा पुष्प की सुगन्ध सर्वत्र उस स्थल को आमोदित करती रहती है। वहां कोयल एवं भ्रमरों के झुण्ड निरन्तर मधुर ध्वनि से उस स्थान को शब्दायमान करते रहते हैं। हम वहां चलकर विहार करें॥७५-७७॥

इन्द्रस्य वरुणस्यैव वायोरपि यमस्य च। धनेश्वरस्य वह्नेश्च धर्मस्य शशिनस्तथा॥७८॥
सुरम्यं लोकमेतेषां मध्ये देवि यथेच्छसि। तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह॥७९॥
रत्नद्वीपं मणिद्वीपं रम्यं चन्द्रसरोवरम्। तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह॥८०॥

हे देवी! इन्द्र वरुण, वायु, यम, कुबेर, अग्नि, धर्म, चन्द्र के इन सुरम्य लोकों में से जहां तुम चलना चाहो, वहां चलकर मेरे साथ रमण करो। तुम्हारा मंगल होगा। तुम रत्नद्वीप, मणिद्वीप, रमणीक चन्द्रसरोवर चलकर वहां मेरे साथ रमण करो॥७८-८०॥

इत्येवमुक्त्वा संभोक्तुं गच्छन्तं तं छलेन च।
न वास्तवपरीक्षार्थं सतीत्वं बोधितुं व्रज॥८१॥

---
१. ख. महेन्द्र०।

उवाच सा नृपसुता कोपवक्त्रास्यलोचना।
हितं सत्यं योगयुक्तं[१] धर्मार्थं च यशस्करम्॥८२॥

यह कहकर ब्राह्मण वेशधारी धर्मदेव सम्भोगार्थ छल से इच्छा प्रकट करते हुये वृन्दा के पास गये। यद्यपि धर्म की ऐसी कोई इच्छा नहीं थी। वे मात्र वृन्दा के सतीत्व की परीक्षा हेतु ऐसा कर रहे थे, तथापि धर्म का यह कृत्य देखकर केदारराज की पुत्री का मुखमंडल तथा दोनों नेत्र क्रोध से लाल हो उठे। उस समय वृन्दा वेदानुरूप, धर्मार्थपूर्ण, यशदायक, सत्यमय, हितकर वाक्य धर्मदेव से कहने लगी!॥८१-८२॥

वृन्दोवाच

धैर्यं कुरु महाभाग श्रेष्ठो जातिषु ब्राह्मणः। ब्राह्मणानां तपो मूलं सत्यं वेदव्रतं धृतिः॥८३॥
परस्त्रीसहसंभोगः स्वभावश्चाप्यधर्मिणाम्। अधर्मेणैव हे विप्र दुष्टोऽभद्राणि पश्यति॥८४॥
ततः सपत्ने जयति समूलस्थो विनश्यति। पतिव्रतानां गमने बलात्कारेण निश्चितम्॥८५॥
मातृगामी भवेत्सद्यो ब्रह्महत्याशतं भवेत्।
कुम्भीपाके पच्यते च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥८६॥
प्रदग्धस्तैतप्तेषु न मृतः सूक्ष्मदेहतः। ताडितो यमदूतैश्च लोहदण्डेन मूर्धनि॥८७॥

वृन्दा कहती है-हे महाभाग! धैर्य धारण करो। तुम सर्वजाति श्रेष्ठ ब्राह्मण हो। ब्राह्मणों को तप रूपी अनुष्ठान, वेदाध्ययन, सत्य के प्रति नैष्ठिकता, व्रताचरण, धैर्य धारण करना उचित है। यही उनका वास्तविक धर्म है। हे विप्रप्रवर! नीच स्वभाव वाले अधर्म तत्पर लोग ही परस्त्री सम्भोग की कामना करते हैं। हे विप्र! अधर्माचरण करने से ही दुष्ट का अमंगल होता है। ब्राह्मण ने धर्म बल से सभी शत्रु मूलतः विजित हो जाते हैं। अधर्माचरणकारी समूलतः नष्ट होता है। पतिव्रता के साथ बलात्कार तो मातृगामी पातक है। इससे तत्काल सैकड़ों ब्रह्महत्या का पाप लगता है। वह चन्द्र-सूर्य की स्थिति तक कुंभीपाक नरक में पकाया जाता है जहां उसे खौलते तेल में पकाया जाता है। वह पातकी सूक्ष्मदेहधारी होने के कारण वहां नाना यमदूत ताड़ना से, शिर लौह दण्ड के सतत् प्रहार से भी मृत नहीं होता॥८३-८७॥

क्षणं सुखं चिरं दुःखं सर्वनाशस्य कारणम्।
आगम्यागमनं दुःखं धर्मिष्ठो नैव वाञ्छति॥८८॥

इस बलात्कार कृत्य में तो क्षणिक सुख भले ही हो, तथापि चिरकाल का दुःख इस कुकृत्य से कारण भोगना ही होगा। इसे सर्वनाश का कारण कहते हैं। अगम्यागमन जनित दुःख को धार्मिक कभी भोगना नहीं चाहते॥८८॥

---
१. क. वेद०।

क्षमस्व गच्छ भद्रं ते ब्राह्मण ज्ञानदुर्बल।
यथा दीपशिखां दृष्ट्वा कीटः पतति निश्चितम्॥८९॥
मिष्टं दृष्ट्वा बडीशाग्रे लुब्धमीनो मृगो यथा।
यथा विषाक्तं भक्ष्यं च भुङ्क्ते भोक्ता बुभुक्षितः॥९०॥
गृह्णाति दुष्टो दुष्टं च विषकुम्भं पयोमुखम्। तथा दृष्ट्वा परस्त्रीणां मुखपद्मं मनोहरम्॥९१॥
विनाशबीजं मोहेन भ्रान्तो भवति लम्पटः।
मुखं च रुचिरं स्त्रीणां श्रोणियुग्मं स्तनौ तथा॥९२॥
कामाधारं नाशबीजमधर्मस्थलमेव च। भगं नरककुण्डं च लालामूत्रसमन्वितम्॥९३॥

हे ज्ञानदुर्बल ब्राह्मण! मुझे क्षमा करो। हे भद्र! तुम चले जाओ। जैसे दीपशिखा को देखकर कीड़ा उस पर आकर मृत हो जाता है, जैसे लोभी मत्स्य तथा मृग कांटें के आगे लगे मिष्ठान्न को देखकर उसकी लालच में फंस जाता है, भूखा मनुष्य लालच में पड़कर विषभरा भोजन करके मृत हो जाता है, दुष्ट व्यक्ति ऊपर तक भरे दुग्ध घट को जिसमें विष मिला है, पीकर नष्ट हो जाता है, तदनुरूप परनारी का मनोहर मुखकमल विनाश का बीज है। लम्पट इससे मोहित एवं भ्रान्त हो जाता है। नारी का रुचिर लगने वाला मुख, नितम्ब, स्तन को कामभाव का आधार कहा गया है। यह अधर्मस्थल तथा नाश का बीज है। उसका मुख लार से युक्त है। भगद्वार नरककुण्ड एवं मूत्र युक्त है।।८९-९३।।

दुर्गन्धियुक्तं पापं च यमदण्डस्य कारणम्।
यथा लिङ्गं विशत्येव पापयोनौ च योषिताम्॥९४॥
तथा पुमान्विशत्येव रौरवे च युगे युगे।
रहस्यं चाऽऽपदं दृष्ट्वा मां त्वं घर्षितुमिच्छसि॥९५॥
अत्रैव सर्वदेवाश्च लोकपालाश्च ब्राह्मण।
जाज्वल्यमानो धर्मश्च साक्षी शास्ता च कर्मणाम्॥९६॥
यमश्च दण्डकर्ता च स्थापितो हरिणा स्वयम्।
स्वयं कृष्णश्च धर्मात्मा[1] ज्ञानरूपो महेश्वरः॥९७॥

यह पापमय भगद्वार दुर्गन्धित तथा यमदण्ड का कारण है। जैसे पुरुष का लिङ्ग पापमयी योनि में प्रविष्ट होता है, तदनुरूप पुरुषगण युग-युगान्तर से रौरवनरकगामी होकर उसमें प्रवेश करते हैं। हे ब्राह्मण! यह स्थान निर्जन है तथा आपदा पूर्ण है। यह देखकर तुम मेरा उपभोग यहां बलात् करने पर उद्यत हो! परन्तु जान लो यहां समस्त देवता, लोकपाल, विद्यमान हैं। यहां समस्त कर्म के साक्षी सर्वनियन्ता, यम को भी दण्ड देने वाले, जाज्वल्यमान धर्म को स्वयं हरि ने यहां स्थापित कर रखा है। वे स्वयं धर्मात्मा, ज्ञानरूप, महेश्वर, धर्मरूप कृष्ण यही हैं।।९४-९७।।

१. क. सर्वात्मा॰।

दुर्गा बुद्धिर्मनो ब्रह्मा चेन्द्रियाणि सुरास्तथा।
सर्वप्राणिषु तिष्ठन्ति साक्षिणः कर्मणां द्विज॥९८॥
क्व गुप्तं क्व रहस्यं वा ब्राह्मण ज्ञानदुर्बल।
क्षमस्व गच्छ भद्रं ते अवध्याश्च द्विजातयः॥९९॥
शक्ताऽहं भस्मसात्कर्तं गच्छ वत्स यथासुखम्।
तपस्यासु मम गतमष्टोत्तरशतं युगम्॥१००॥
नास्ति गोत्रं मत्पितुश्च न माता न पिता मम।
सर्वान्तरात्मा भगवान्कृष्णो रक्षति मां द्विज॥१०१॥

यहीं पर दुर्गा बुद्धिरूपेण, ब्रह्मा मनरूपेण तथा देवता इन्द्रियरूपेण विराजमान हैं। ये सभी प्राणीगण के सभी कर्मों के साक्षीरूप से विराजित रहते हैं। हे अज्ञानी ज्ञानदुर्बल ब्राह्मण! इस कारण यह बताओ कि कौन स्थान गुप्त रहा और कौन स्थान रहस्यमय है? हे भद्र! द्विज अवध्य होते हैं। मुझे क्षमा करो तथा यहां से जाओ। हे वत्स! मैं तुमको भस्मसात् करने में सक्षम हूं। तुम यथा सुख चले जाओ। मुझे यहां तप करते १०८ युग गत हो गये। अतः मेरा न तो नाम-गोत्र बचा है, न मेरे माता-पिता ही रह गये। हे द्विज! सर्वान्तरात्मा कृष्ण ही मेरे रक्षक हैं।।९८-१०१।।

कृष्णेन स्थापितो धर्मो मां च रक्षति नित्यशः।
आदित्यश्च तथा चन्द्रः पवनश्च हुताशनः॥१०२॥
ब्रह्मा शम्भुर्भगवती दुर्गा रक्षति मां सदा।
येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरिताः कृताः॥१०३॥
मयूराश्चित्रिता येन स मे रक्षां करिष्यति। अनाथबालवृद्धानां रक्षकाः सर्वदेवताः॥१०४॥
नारीबुद्ध्या न मां धर्मस्त्यक्त्वा गच्छेद्धि सर्वदा।
मां मातरं परित्यज्य गच्छ वत्स यथासुखम्॥१०५॥

श्रीकृष्ण द्वारा स्थापित धर्म मेरा नित्य रक्षक है। आदित्य, चन्द्र पवन, अग्नि, ब्रह्मा, शंभु, भगवती दुर्गा सदा मेरी रक्षा करती हैं। जिन्होंने हंस को श्वेत, शुक को हरा, मयूर को विचित्र वर्ण वाला बनाया है, वे मेरी रक्षा करते हैं। अनाथ, बाल, वृद्ध की रक्षा सभी देवता करते हैं। धर्म कदापि मुझे नारी समझ कर छोड़कर नहीं जा सकते। हे वत्स! मुझ माता को यहीं छोड़कर तुम सुख पूर्वक चले जाओ।।१०२-१०५।।

इत्येवमुक्त्वा देवी सा तस्थौ तत्र धरा यथा।
आगच्छन्तं च संभोक्तुं मा यान्तं बोधनेन च॥१०६॥
शशापेति च सा कोपाद्ब्रह्मबन्धो क्षयो भव।
क्षयो भव दुराचार हे पापिष्ठ क्षयो भव॥१०७॥

पुनः शप्तं स्वयं सूर्यो वारयामास यत्नतः। एतस्मिन्नन्तरे तात तत्रैव जगदीश्वराः॥१०८॥
आजग्मुरतिसंत्रस्ता ब्रह्मविष्णुशिवादयः। धर्मं दृष्ट्वा कलारूपं रुरुदुस्त्रिदशेश्वराः॥१०९॥

यह कहकर देवी वृन्दा वहां पृथिवी की तरह अचलता से स्थिर हो गई। इतना समझाने पर भी जब वह ब्राह्मण नहीं माना तथा संभोग की इच्छा से वृन्दा की ओर आने लगा तब कोप पूर्वक वृन्दा ने उसे शाप दिया–"हे ब्राह्मण! तुम्हारा क्षय हो जाये! हे पापी! तुम्हारा क्षय हो! हे दुराचारी! तुम्हारा क्षय हो।" यह कहकर वृन्दा ब्राह्मण को और अधिक शाप देने हेतु उद्यत थी, तथापि उसे देवदेव भास्कर ने शाप देने से रोक दिया। तभी वहां संत्रस्त होकर जगदीश्वर ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि आ गये। वहां शाप के कारण जब सबने धर्म को कला मात्र ही बचा देखा, तब सभी देवता रुदन करने लगे॥१०६-१०९।

कृत्वा क्रोडेऽतीव कृशं कुह्वा भीतं यथा विधुम्।
निश्चेष्टं मलिनं दग्धं सतीकोपाग्निना व्रज॥११०॥

हे व्रजराज! धर्म शाप के कारण चतुर्दशी से युक्त अमावस्या आगमन से भयभीत चन्द्रमा के समान अत्यन्त दुर्बल हो गये। धर्म को ब्रह्मा ने अपनी गोद में बैठाया, जो पतिव्रता के शाप से दग्ध, स्तब्ध एवं मलिन लग रहे थे॥११०॥

श्रीभगवानुवाच

क्षमस्व वृन्दे मद्भक्ते जन्ममृत्युजराहरे। धर्मं जीवय मद्भक्तं रक्ष धर्मं पतिव्रते॥१११॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे वृन्दा! तुम जन्म-मृत्यु-जरा रहित मेरी भक्त हो। धर्मदेव के अपराध को क्षमा करो। हे पतिव्रते! मेरे भक्त धर्म को जीवनदान देकर इसकी रक्षा करो॥१११॥

ब्रह्मोवाच

ध्वान्तपूर्णं जगत्सर्वं विना धर्मं बभूव ह।
कम्पितौ चन्द्रसूर्यौ च शेषश्चापि वसुंधरा॥११२॥

ब्रह्मा कहते हैं–धर्म के अभाव में समस्त संसार गाढ़ अन्धकार से समाच्छन्न हो गया है। चन्द्र-सूर्य-शेष-वसुन्धरा आदि सब कम्पित हो रहे हैं॥११२॥

महादेव उवाच

प्रनष्टं च जगत्सर्वं विना धर्मेण सुन्दरि। धर्मं जीवय भद्रं ते स्वस्ति तेऽस्तु वरानने॥११३॥

महादेव कहते हैं–हे सुन्दरी! धर्म के अभाव में समस्त जगत् प्रनष्ट है। हे वरानने! धर्म को जीवन प्रदान करो। तुम्हारा मंगल होगा॥११३॥

सूर्य उवाच

वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम्। धर्मं जीवय भद्रं ते रक्ष सृष्टिं पतिव्रते॥११४॥

सूर्य कहते हैं–हे भद्रे! पतिव्रते! तुम मनोवांछित वर मांगो। धर्म को जीवन देकर सृष्टि रक्षा करो।।११४।।

अनन्त उवाच

धर्मं करोषि तपसा कथं धर्मं विहंसि च। धर्मं जीवय भद्रं ते सर्वधर्मो भवेत्तव।।११५।।

अनन्त कहते हैं–तुम तप के द्वारा धर्म करती हो, तब इन धर्म की हिंसा क्यों करती हो। तुम धर्म को जीवन प्रदान करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा तथा समस्त धर्म साधित हो जायेगा।।११५।।

चन्द्र उवाच

द्विजरूपधरो धर्मस्त्वां परीक्षितुमागतः। ब्रह्मणा प्रेरितश्चैव निर्दोषश्च विहिंसितः।।११६।।

चन्द्रदेव कहते हैं–ये ब्राह्मणरूपी धर्म ब्रह्मा से प्रेरित होकर तुम्हारी परीक्षा के लिये आये थे। यह बिना दोष हिंसाग्रस्त हो गया।।११६।।

महेन्द्र उवाच

तपसोपार्जितो धर्मो धर्मेण च फलं नृणाम्।
कथं फलं च तपसां यदि धर्मः क्षयं गतः।।११७।।

महेन्द्र कहते हैं–धर्म का अर्जन तप द्वारा होता है। धर्म से ही मनुष्यों को उचित फललाभ होता है। जब धर्म ही क्षयीभूत हो गये, तब तप का फल कैसे मिलेगा।।११७।।

वरुण उवाच

धर्मं जीवय धर्मिष्ठे धर्मं रक्ष सनातनम्।
निष्फलं कर्मिणां कर्मं विना धर्मेण धार्मिके।।११८।।

वरुण कहते हैं–हे धर्मिष्ठे! तुम धर्म को जीवित करके सनातन धर्म रक्षा करो। हे धार्मिके! धर्म के बिना कर्मीगण का सभी कर्म निष्फल होगा।।११८।।

पवन उवाच

जगत्पूतं कुरु शुभे धर्मं जीवय साम्प्रतम्। धर्मे प्रनष्टे तपसां तवापूर्वं विनङ्क्ष्यति।।११९।।

पवन कहते हैं–हे शुभे! सम्प्रति तुम धर्म को जीवित करके जगत् कों पावन करो। धर्म नष्ट होने पर तुम्हारे अपूर्व तपःफल का भी नाश होगा।।११९।।

वह्निरुवाच

स्वधर्मोपार्जनं कर्तुमागताऽसि च भारतम्। विहंसि धर्ममज्ञात्वा पुनर्जीवय सुन्दरि।।१२०।।

अग्निदेव कहते हैं–हे सुन्दरी! तुम स्वधर्म उपार्जनार्थ भारत में आई। तुमने बिना जाने धर्म की हिंसा कर दिया। उनको पुनजीर्वित करो।।१२०।।

यम उवाच

वेदोक्तकर्मकर्तृणामहं विश्वे[1] वरानने। धर्मानुसारात्फलदो धर्मं जीवय सत्वरम्॥१२१॥

यमराज कहते हैं–हे वरानने! मुझे कर्मीगण के सभी कर्मों का ज्ञान है। मैं धर्म के अनुसार ही उसका फल देता हूं। अतः तुम धर्म को शीघ्र जीवित करो॥१२१॥

देवानां वचनं श्रुत्वा समुत्थाय पतिव्रता। नमस्कृत्य सुरेशांश्च तानुवाच तपस्विनी॥१२२॥

देवताओं का कथन सुनकर पतिव्रता वृन्दा उठ गई। उस तपस्विनी ने सभी देवताओं को नमस्कार करके कहा–॥१२२॥

वृन्दोवाच

अहं देवा न जानामि धर्मं ब्राह्मणरूपिणम्।
कृतः क्षयो मया कोपान्मां परीक्षितुमागतः॥१२३॥
जीवयामि ध्रुवं धर्मं युष्माकं च प्रसादतः।
इत्येवमुक्त्वा सा वृन्दा चेत्युवाच व्रजेश्वर॥१२४॥
तपः सत्यं यदि मम सत्यं च विष्णुपूजनम्।
तेन पुण्येन सद्योऽत्र द्विजो भवतु विज्वरः॥१२५॥
यदि मे च भवेत्सत्यं व्रतं सत्यं तपः शुचि।
तेन पुण्येन सत्येन द्विजो भवतु विज्वरः॥१२६॥
यदि नारायणः सत्यः सर्वात्मा नित्यविग्रहः।
ज्ञानात्मकः शिवः सत्यो द्विजो भवतु विज्वरः॥१२७॥
ब्रह्म सत्यं च ते देवाः प्रकृतिः परमा यदि।
यज्ञः सत्यस्तपः सत्यं द्विजो भवतु विज्वरः॥१२८॥

वृन्दा कहती है–"हे देवगण! मुझे यह विदित नहीं था कि धर्म ब्राह्मणरूप में मेरी परीक्षा के लिये आये हैं। मैंने उनको क्रोध के कारण क्षयीभूत कर दिया, तथापि मैं आप लोगों की कृपा से धर्म को जीवित करूंगी।" हे व्रजेश्वर! तदनन्तर वृन्दा ने कहा–"यदि मेरी तपस्या, व्रत, सत्य है, मेरी विष्णु-पूजा सत्य है, तब उस पुण्यबल से यह ब्राह्मण विज्वर (कष्ट रहित) हो जाये। यदि सर्वात्मा नित्यविग्रह परमात्मा नारायण सत्य हैं, मेरी पवित्रता व्रत सत्य है, यदि मुझमें सत्य है, तब उस पुण्यबल से ये ब्राह्मण सन्ताप रहित हो जायें। यदि ज्ञानात्मा शिव सत्य हैं, तब ये द्विज सन्ताप रहित हो जायें। यदि ब्रह्म सत्य है, देवता-प्रकृति सत्य हैं, तब ये द्विज सन्ताप रहित हो जायें। यदि यज्ञ सत्य है, तप सत्य है, तब ये द्विज सन्ताप रहित हो जायें॥१२३-१२८॥

---

१. ख. ०श्वेश्वरानने।

इत्येवमुक्त्वा सा वृन्दा धर्मं क्रोडे चकार च।
तं दृष्ट्वा च कलारूपं रुरोद कृपया सती॥१२९॥
एतस्मिन्नन्तरे मूर्तिर्धर्मभार्या शुचाऽऽकुला।
निपत्य विष्णुपादे च शिरसा चेत्युवाच सा॥१३०॥

यह कहकर सती वृन्दा ने धर्म को गोद में ले लिया तथा उनको एक कलामात्र (१/४ भाग) ही अवशिष्ट देखकर वे सती कृपा पूर्वक (दया के कारण) रुदनरत हो गईं। तभी धर्मपत्नी मूर्त्ति अत्यन्त शोक में होकर विष्णु के चरणों पर नतमस्तक होकर गिर पड़ी तथा कहने लगीं–।।१२९-१३०।।

मूर्तिरुवाच

हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु।
तूर्णं जीवय कान्तं मे जगन्नाथ कृपामय॥१३१॥
पतिहीना च या नारी पापिनी सा भवार्णवे।
यथाऽऽस्यं चक्षुर्विरतं प्राणहीना यथा तनूः॥१३२॥
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
मितं बन्धुर्मितं माता सर्वदाता पतिः प्रभुः[1]॥१३३॥

मूर्ति कहती हैं–हे नाथ! करुणासिन्धु! दीनबन्धु! मुझ पर दया करिये। हे कृपालु जगन्नाथ! शीघ्र मेरे पति को जीवनदान दीजिये। इस भवसागर में पतिहीना नारी यथार्थतः पापिनी कही जाती है। नेत्र रहित मुख तथा प्राण रहित शरीर की तरह उसके सौन्दर्य का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। पिता, भ्राता, पुत्र, बन्धु, माता, ये सभी लोग परिमित सुख नारी को दे पाते हैं। एकमात्र पति ही पत्नी को अभिलषित सुख प्रदान कर पाते हैं।।१३१-१३३।।

इत्येवमुक्तवा सा देवी तत्र तस्थौ रुरोद च।
उवाच वृन्दां भगवान्सर्वात्मा प्रकृते परः॥१३४॥

यह कहती मूर्तिदेवी वहां रुदन करने लगीं। यह देखकर प्रकृति से परे सर्वात्मा भगवान् ने वृन्दा से कहा–।।१३४।।

श्रीभगवानुवाच

त्वयाऽऽयुस्तपसा लब्धं यावदायुश्च ब्रह्मणः।
तदेव देहि धर्माय गोलोकं गच्छ सुन्दरि॥१३५॥
तन्वाऽनया च तपसा पश्चान्मां च लभिष्यसि।
पश्चाद्गोलोकमागत्य वाराहे च वरानने॥१३६॥

१. क. स्वयम्।

वृषभानसुता त्वं च राधाच्छाया भविष्यसि।
मत्कलांशश्च रायाणस्त्वां विवाह ग्रहीष्यति॥१३७॥
मां लभिष्यसि रासे च गोपीभिः राधया सह।
राधा श्रीदामशापेन वृषभानसुता यदा॥१३८॥
सा चैव वास्तवी राधा त्वं च च्छायास्वरूपिणी।
विवाहकाले रायाणस्त्वां च च्छायां ग्रहीष्यति॥१३९॥
त्वां दत्त्वा वास्तवी राधा साऽन्तर्धाना भविष्यति।
राधैवेति विमूढाश्च विज्ञास्यन्ति च गोकुले॥१४०॥

श्रीभगवान् कहते हैं--हे सुन्दरी! तुमने तपःश्चरण करके ब्रह्मा के समान आयु प्राप्त किया है। तुम वह आयु धर्म को अर्पित करके गोलोक जाओ। तदनन्तर तुम तपस्या के फलस्वरूप मुझे प्राप्त कर लोगी। हे वरानने! उसके अनन्तर तुम वराहकल्प के समय गोलोक से गोकुलधाम में अवतीर्ण होकर राधिका की छाया के रूप में वृषभानु की कन्या के रूप में प्रकट हो जाओगी। वहां मेरे कलांश से उत्पन्न रायाण तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। वहां तुम रासमण्डल में गोपीगण तथा राधिका के साथ रासक्रीड़ा के अवसर पर मुझे प्राप्त करोगी। जब श्रीदामा के शाप के कारण वृषभानु कन्या रूप में राधा प्रकट होंगी, तब तुम भी उनकी छाया बनकर प्रकट हो जाओगी। विवाह काल में रायाण तुमको ही ग्रहण करेंगे। इस प्रकार तुमको प्रदान करके वास्तविक राधा भूमण्डल से अन्तर्ध्यान हो जायेंगी। उस समय गोकुल में सभी मूढ़ लोग तुमको ही राधा मान लेंगे।।१३५-१४०।।

स्वप्ने राधापदाम्भोजं न हि पश्यन्ति बल्लवाः।
स्वयं राधा मम क्रोडे छाया रायाणकामिनी॥१४१॥

वहां वे स्वप्न में भी राधा के चरणकमल का दर्शन नहीं पा सकेंगे। राधा तो मेरी गोद में विराजित रहती हैं। उनकी छाया होकर तुम रायाण की पत्नी हो जाओगी।।१४१।।

विष्णोश्च वचनं श्रुत्वा ददावायुश्च सुन्दरी। उत्तस्थौ पूर्ण धर्मश्च तप्तकाञ्चनसन्निभः।
पूर्वस्मात्सुन्दरः श्रीमान्प्रणनाम परात्परम्॥१४२॥

विष्णु का यह कथन सुनकर सुन्दरी वृन्दा ने अपनी आयु धर्म को प्रदान कर दिया। इस कार्य से धर्म तत्काल उठ गये। उनका तप्तस्वर्ण के समान देह का वर्ण पहले से भी अधिक सुन्दर परिलक्षित होने लगा। उन्होंने उठते ही परात्पर श्रीभगवान् को प्रणाम किया।।१४२।।

वृन्दोवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं दुर्लङ्घ्यं सावधानतः।
न हि मिथ्या भवेद्वाक्यं मदीयं च निशामय॥१४३॥

क्षयो भवेति वाक्यं च मयोक्तं कोपभीतया।
वारत्रयं पुनर्वक्तुं वारयामास भास्करः॥१४४॥
सत्ये च परिपूर्णोऽयं यथापूर्वो यथाऽधुना। त्रिपादश्चापि त्रेतायां द्वापरे द्विपदो तथा॥१४५॥

देवी वृन्दा कहती हैं–हे देवताओ! मैंने धर्म को जो शाप दिया था, वह मिथ्या नहीं हो सकता। अतएव आप लोग मेरा दुर्लङ्घ्य वाक्य श्रवण करें। मैंने क्रोधित होकर धर्म से तीन बार कहा था– "तुम्हारा क्षय हो।" जैसे ही चौथी बार यह कहने जा ही रही थी, तभी सूर्यदेव ने मुझे रोक दिया। अतः मेरा शाप इस प्रकार रहेगा। धर्म सत्ययुग में यथावत् परिपूर्ण रहेंगे। त्रेता में ये त्रिपाद (३/४) रहेंगे, द्वापर युग में ये द्विपाद (१/२) रहेंगे॥१४३-१४५॥

एकपादश्च धर्मोऽयं कलेश्च प्रथमे हरे। शेषे कलाषोडशांशः पुनः सत्ये यथा पुरा॥१४६॥
त्रिर्निर्गतं मम मुखात्क्षयस्तेन ततः क्रमात्।
पुनरुक्ते च मनसि वारयामास भास्करः॥१४७॥
तेनैव हेतुनाऽयं च कलिशेषे कलामयः। तथा शप्तः स्थितो दुर्गे कलिशेषे तथा ध्रुवम्॥१४८॥

कलियुग में इनका एक पाद (१/४) ही शेष रहेगा। यह कलि के प्रथमांश की स्थिति रहेगी। कलियुग के शेषांश में धर्म षोडशांश (१/१६) ही अवस्थित रह जायेंगे। इसका तात्पर्य यह है कि कलि के शेष में ये कलि रूपी दुर्ग में ऐसे ही शापित स्थिति में रहेंगे। यह निश्चित है॥१४६-१४८॥

एतस्मिन्नन्तरे नन्द ददृशुर्देवता रथम्। गोलोकादागतं वेगादतीव सुन्दरं शुभम्॥१४९॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं हीरहारपरिष्कृतम्। मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्वस्त्रैश्च श्वेतचामरैः॥१५०॥
विभूषितं भूषणैश्च रुचिरै रत्नदर्पणैः। नत्वा हरिं हरं वृन्दा ब्रह्माणं सर्वदेवताः॥१५१॥
समारुह्य रथं दृष्ट्वा गोलोकं च जगाम सा।
देवा जग्मुश्च स्वस्थानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१५२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० षडशीतितमोऽध्यायः॥८६॥

—❋❋❋—

हे नन्दराज! इसके अनन्तर देवगण ने गोलोक से अतीव वेगवान रथ को आते देखा जो सुन्दर, शुभ, अमूल्य रत्नों से निर्मित, हीरों के हार से सुशोभित, मणि-माणिक्य-मुक्ता-वस्त्र-श्वेत चामर-भूषण एवं रत्नमय दर्पणों से अत्यन्त रुचिर लग रहा था। वृन्दा ने विष्णु-शिव-ब्रह्मा तथा सभी देवगण को प्रणाम किया तथा रथारूढ़ होकर वह देवलोक गयी। सभी देवता अपने-अपने स्थान पर वापस चले गये। अब आप क्या सुनना चाहते हैं?॥१४९-१५२॥

॥८६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

भगवान् के यहां पुलह आदि ऋषिगण का आना, उनके साथ वार्त्तालाप, प्रभु तथा नन्द का संवाद, सनत्कुमार-मुनि संवाद वर्णन

नन्द उवाच

त्वां ज्ञातुं नहि शक्ताश्च वेदा वेदप्रभुं[1] स्वयम्। सुरा ब्रह्मेशशेषाद्या मुनिसिद्धादयस्तथा।।१।।
को भवानिति विज्ञातुं परं कौतूहलं मम। तत्सर्वं स्वात्मयाथार्थ्यं निर्जने कथय प्रभो।।२।।

नन्दराज कहते हैं–हे प्रभो! चतुर्वेद, वेदज्ञ लोग, ब्रह्मा, महादेव, अनन्तादि देवता, मुनिवृन्द, सिद्धगण–कोई भी आपको यथार्थतः नहीं जान सकता, तथापि मुझे यह अत्यन्त कुतूहल है कि आप कौन हैं? हे प्रभो! इस निर्जन स्थल में आप अपना आत्मस्वरूप कहिये।।१-२।।

नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णं द्रष्टुं मुनीश्वराः।
आजग्मुः सहसा वत्स ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा।।३।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे वत्स नारद! नन्द यह कह रहे थे इतने में वहां श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ ब्रह्मतेज से प्रज्वलित मुनीश्वरगण वहां सहसा आ गये।।३।।

पुलहश्च पुलस्त्यश्च ऋतुश्च भृगुरङ्गिराः। प्रचेताश्च वसिष्ठश्च दुर्वासाः कण्व एव च।।४।।
कात्यायनः पाणिनिश्च कणादो गौतमस्तथा। सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः।।५।।

कपिलश्चाऽऽसुरिश्चैव वायुः पञ्चशिखस्तथा।
विश्वामित्रो वाल्मीकिश्च कश्यपश्च पराशरः।।६।।
विभाण्डको मरीचिश्च शुक्रोऽत्रिश्च बृहस्पतिः।
गार्ग्यश्चापि तथा वात्स्यो व्यासश्च जैमिनिस्तथा।।७।।

मितवागृष्यशृङ्गश्च याज्ञवल्क्यः शुकस्तथा। सौभरिः शुद्धजटिलो भरद्वाजः सुभद्रकः।।८।।
मार्कण्डेयो लोमशश्च आसुरिश्च विटङ्कणः। अष्टावक्र शतानन्दो वामदेवश्च भागुरिः।।९।।

उनमें थे पुलह, पुलत्स्य, क्रतु, भृगु, अंगिरा, प्रचेता, वसिष्ठ, दुर्वासा, कण्व, कात्यायन, पाणिनि, कणाद, गौतम, सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वायु, पंचशिख, वाल्मीकि, विश्वामित्र, कश्यप, पराशर, विभाण्डक मुनि, मरीचि, शुक्र, अत्रि, बृहस्पति, गार्ग्य, वात्स्य, व्यास, जैमिनि,

---

१. क. ०दविदः प्रभो।

मितवाग्, ऋष्यशृङ्ग, याज्ञवल्क्य, शुक, सौभरि, शुद्ध, जटिल, भरद्वाज, सुभद्रक, मार्कण्डेय, लोमश, भागुरि आसुरि (यह नाम पुनः लिखा है), विटङ्कण, अष्टावक्र, शतानन्द, वामदेव।।४-९।।

संवर्तश्चाप्युतथ्यश्च नरोऽहं चापि नारद। जाबालिः पर्शुरामश्चाप्यगस्त्यः पैल एव च।।१०।।
युधामन्युर्गौरमुखोऽप्युपमन्युः श्रुतश्रवाः। मैत्रेयश्च्यवनश्चैव वररुच्यर्षिरेव च।।११।।

संवर्त्त, उतथ्य, नर, मैं नारायण ऋषि, नारद, जाबालि, परशुराम, अगत्स्य, पैल, युधामन्यु, गौरमुख, उपमन्यु, श्रुतश्रवा, मैत्रेय, च्यवन, वररुचि।।१०-११।।

तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय नमस्कृत्य पुटाञ्जलिः। सिंहासनेषु रम्येषु वासयामास सादरम्।।१२।।
पूजयामास विधिवत्कुशलप्रश्नपूर्वकम्। परस्परं च संभाष्य मध्ये कृष्ण उवास सः।।१३।।

इन महर्षियों को समागत देखकर श्रीकृष्ण ने उठकर सबको हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उनको रम्य सिंहासन पर सादर आसनीसीन कराया। उनका पूजन करके कृष्ण ने उनसे विधिवत् कुशलता पूछा तथा परस्परतः वार्त्तालाप करने के उपरान्त कृष्ण उन ऋषिगण के बीच में बैठे।।१२-१३।।

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तेजोराशिं ददर्श सः।
ददृशुस्ते च मुनयोऽप्याकाशे च समुज्ज्वलम्[1]।।१४।।
तेजसोऽभ्यन्तरे वत्स कुमारं कनकप्रभाम्। यथैव पञ्चवर्षीयं नग्नं बालकमीप्सितम्।।१५।।
आविर्बभूव सहसा सभामध्ये च नारद। उत्तिष्ठमानं सहसा तं दृष्ट्वा मुनिपुङ्गवाः।।१६।।
प्रणेमुर्मुनयः सर्वे शौरिश्च प्रणनाम तम्।
सस्मितं स्निग्धनेत्रं च कृत्वा युक्तिं च सादरम्।।१७।।

तभी श्रीकृष्ण ने आकाश से एक तेजपुंज उतरते देखा। यही दृश्य वहां समागत समस्त ऋषिगण ने भी देखा। उन सबने इस तेजोमण्डल के मध्य में स्वर्णकान्ति, पंचवर्षीय नग्न स्थित सनत्कुमार को देखा। वे सभा में सहसा आविर्भूत हो गये थे। हे नारद! उनको देखकर वहां उपस्थित सभी मुनिगण उठकर खड़े हो गये। उन महान् ऋषि को सभी मुनिगण ने प्रणाम किया। श्रीकृष्ण ने भी उन मुस्कान युक्त आनन वाले स्निग्ध दृष्टि को सादर नतशिर होकर प्रणाम किया।।१४-१७।।

स सर्वानाशिषं कृत्वा समुवास च संसदि। उवाच तांश्च शौरिं च भगवन्तं सनातनम्।।१८।।

उन बालकरूप महर्षि ने सबको आशीर्वाद प्रदान किया। तत्पश्चात् उस संसद में आसन ग्रहण करके वहां समागत ऋषियों तथा भगवान् कृष्ण को सम्बोधित करके सनत्कुमार कहने लगे।।१८।।

सनत्कुमार उवाच

भद्रं वो मुनयः शश्वत्तपसां फलमीप्सितम्।
कृष्णस्य कुशलप्रश्नं शिवबीजस्य निष्फलम्।।१९।।

---
१. क. ततोज्ज्व०।

साम्प्रतं कुशलं वश्च दर्शनं परमात्मनः। भक्तानुरोधाद्देहस्य परस्य प्रकृतेरपि॥२०॥
निर्गुणस्य निरीहस्य सर्वबीजस्य तेजसा।
भारावतरणायैव चाऽऽविर्भूतस्य साम्प्रतम्॥२१॥

सनत्कुमार कहते हैं—हे मुनिगण! आप सबकी मंगलमय कुशलता रहे। आप सब तपःश्चरण का वांछित फल लाभ करें, तथापि समस्त कल्याण के बीजस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में कुशल पूछना पूर्णतः निष्फल है। आप सभी उन परमात्मा का दर्शन प्राप्त कर रहे हैं। इसलिये आप सबकी तो सर्वत्र कुशलतापूर्ण स्थिति है। वे परमात्मा निर्गुण, निरीह सबके बीज हैं। वे इस समय अपने तेज से पृथिवी का भार उतारने हेतु प्रकट हो गये हैं॥१९-२१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शरीरधारिणश्चापि कुशलप्रश्नमीप्सितम्। तत्कथं कुशलप्रश्नं मयि विप्र न विद्यते॥२२॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे विप्र! यह नियम है कि जो शरीरधारी लोग हैं उनका कुशल प्रश्न पूछना आवश्यक है, तथापि आप लोग मेरा कुशल प्रश्न क्यों नहीं पूछ रहे हैं?॥२२॥

सनत्कुमार उवाच

शरीरे प्राकृते नाथ सन्ततं च शुभाशुभम्। नित्यदेहे क्षेमबीजे शिवप्रश्नमनर्थकम्॥२३॥

सनत्कुमार कहते हैं—हे नाथ! जिनका लौकिक (प्राकृत) शरीर होता है, उनमें निरन्तर शुभ-अशुभ घटित होते रहते हैं, तथापि नित्य देहधारी का नित्य देह तो स्वयं समस्त कुशल का बीजरूप है। उसकी कुशल पूछना तो व्यर्थ ही है॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

यो यो विग्रहधारी च स च प्राकृतिकः स्मृतः।
देहो न विद्यते विप्र तां नित्यां प्रकृतिं विना॥२४॥

श्रीभगवान् कहते हैं—जो कोई देहधारी है, वह सभी प्राकृतिक है; क्योंकि नित्य प्रकृति के बिना शरीर हो ही नहीं सकता॥२४॥

सनत्कुमार उवाच

रक्तबिन्दूद्भवा देहास्ते च प्राकृतिका स्मृताः।
कथं प्रकृतिनाथस्य बीजस्य प्राकृतं वपुः॥२५॥
सर्वबीजस्य सर्वादिर्भवांश्च भगवान्स्वयम्। सर्वेषामवताराणां प्रधानं बीजमव्ययम्॥२६॥
कृत्वा वदन्ति वेदाश्च नित्यं सत्यं सनातनम्।
ज्योतिःस्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम्॥२७॥
मायया सगुणं चैव मायेशं निर्गुणं परम्। प्रवदन्ति च वेदाङ्गास्तथा वेदविदः प्रभो॥२८॥

सनत्कुमार कहते हैं–शोणित (रजः), शुक्र (वीर्य) से उत्पन्न देह ही प्राकृतिक कही गयी है। आप तो स्वयं प्रकृति के भी स्वामी हैं। उसके भी बीज (कारण) हैं। आपका शरीर प्राकृत कैसे कहा जा सकता है? आप सबके आदिकारण, सभी कारणों के कारण, सभी अवतारों में प्रधान, सभी अव्यय बीजरूप हैं। चारों वेद आपको नित्य, सत्य तथा सनातन कहते हैं। आप परम ज्योतिरूप ईश्वर तथा परमात्मा है। आप तो माया के ईश्वर तथा परम निर्गुण होकर भी माया का वरण करके सगुण हो जाते हैं। हे प्रभो! वेदांग-वेदज्ञ लोग आपको इसी प्रकार का बतलाते हैं।।२५-२८।।

श्रीकृष्ण उवाच

साम्प्रतं वासुदेवोऽहं रक्तवीर्याश्रितं वपुः।
कथं न प्राकृतो विप्र शिवप्रश्नमभीप्सितम्।।२९।।

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे ब्राह्मण! मैं वसुदेव पुत्र वासुदेव हूं। मेरा देह रक्त-वीर्य से निर्मित है। तब मैं प्राकृतिक तथा कुशलता पूछे जाने का पात्र क्यों नहीं हूं?।।२९।।

सनत्कुमार उवाच

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु। तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इतीरितः।।३०।।
वासुदेवेति तन्नाम वेदेषु च चतुर्षु च। पुराणेष्वितिहासेषु यात्रादिषु च दृश्यते।।३१।।
रक्तवीर्याश्रितो देहः क्व ते वेदे निरूपितः। साक्षिणो मुनयश्चैव धर्मः सर्वत्र एव च।।३२।।
साक्षिणो मम वेदाश्च रविचन्द्रौ च साम्प्रतम्।।३३।।

सनत्कुमार कहते हैं–'वसु' अर्थात् जिनके रोमकूप में समस्त विश्व अवस्थान करता है, वह सबका निवास महान् विराट् पुरुष है। उसके भी परम देव हैं, वे वासुदेव कहे गये हैं। चारों वेद में, पुराण-इतिहास एवं यात्रादि में यही वासुदेव नाम परिलक्षित होता है। आपका देह शुक्र-शोणित (रजः-वीर्य) से निर्मित है, ऐसा किसी वेद में निरूपित नहीं है। इस बात के साक्षी यहां विद्यमान मुनि लोग हैं। ये लोग यहां इस बात के साक्षी हैं साथ ही चारों वेद एवं चन्द्र-सूर्य भी मेरी बात के साक्षी हैं।।३०-३३।।

भृगुरुवाच

सत्यं वदसि विप्रेन्द्र त्वमेव वैष्णवाग्रणीः।
स्वागतं कुशलं शश्वत्किंनिमित्तमिहाऽऽगतः।।३४।।

ऋषि भृगु कहते हैं–हे विप्रेन्द्र! आप वैष्णवों में अग्रणी हैं। आपने सत्य कहा है। आपका स्वागत है। आपकी कुशल पूछता हूं। आप किस प्रयोजन से यहां आये हैं?।।३४।।

सनत्कुमार उवाच

श्रूयतां मुनयः सर्वे श्रूयतां कृष्ण साम्प्रतम्।
अहो येन निमित्तेन चातिशीघ्रमिहाऽऽगतः।।३५।।

सनत्कुमार कहते हैं—हे मुनिगण तथा श्रीकृष्ण! सभी श्रवण करें। मेरे यहां शीघ्र आने का कारण सुनिये।।३५।।

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ किंनिमित्तमिहाऽऽगतः। सर्वं जानासि सर्वज्ञ त्वमेव विदुषां वरः।।३६।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे भगवन्! सर्वधर्मज्ञ! आप तो ज्ञानियों में प्रधान तथा सर्वज्ञाता हैं। आप के यहां आने का प्रयोजन क्या है, आप कहिये।।३६।।

सनत्कुमार उवाच

धन्योऽसि भगवञ्छश्वन्मान्योऽसि जगतामपि।
सर्वेश्वरेश्वरोऽसि त्वं तत्परो नास्ति विश्वतः।।३७।।

सनत्कुमार कहते हैं—हे भगवान्! आप धन्य हैं। समस्त संसार के आप मान्य प्रभु हैं। आप सर्वेश्वर हैं। इस विश्व में आपसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है।।३७।।

श्रीकृष्ण उवाच

यज्ञानां च व्रतानां च तपस्यानां द्विजेश्वर। सततं फलदाताऽहं दक्षिणाभिः सहेति च।।३८।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे द्विजेश्वर! मैं ही सभी प्रकार के यज्ञों, व्रतों तथा तपस्या का दक्षिणायुक्त यज्ञ का फल देने वाला हूं।।३८।।

इति श्रुत्वा कुमारश्च जवेन प्रययौ वने।
मत्वाऽऽश्चर्यं च वचनं वारयामास तेऽपि तम्।।३९।।

यह सुनकर सनत्कुमार अत्यन्त शीघ्रता से वन में जाने लगे, तथापि मुनिगण कृष्ण के वाक्य से चमत्कृत हो गये तथा इस वाक्य के अर्थ को जानने हेतु उन्होंने सनत्कुमार को नहीं जाने दिया।।३९।।

ऋषय ऊचुः

हे सिद्धेन्द्र महाभाग कुमार करुणामय।
का शङ्कितकथा प्रोक्ता भगवत्कृष्णसन्निधौ।।४०।।
किं पुत्र दृष्टमाश्चर्यं श्रुतं किमपि कुत्रचित्।
अतीव कृत्वा विस्तीर्णमस्माकं वक्तुमर्हसि।।४१।।

ऋषिगण कहते हैं—हे सिद्धेन्द्र! महाभाग! हे करुणासिन्धु! भगवान् कुमार! आपने कृष्ण से क्या संशयान्वित बात कह दिया? हे पुत्र! क्या कहीं आपने कुछ आश्चर्य देखा अथवा सुना? वह सब हम लोगों से विस्तार से कहिये।।४०-४१।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा पार्वत्या सह शङ्करः। अनन्तश्चापि धर्मश्च श्रीसूर्यश्च निशाकरः।।४२।।

आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पालाद्याश्च देवताः।
श्रीकृष्णः[1] सहसोत्थाय संभाव्य[2] च पृथक्पृथक्॥४३॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः।
प्रणेमुर्ऋषयः सर्वे शेषं शम्भुं विधिं शिवाम्॥४४॥
परस्परं च संभाषा बभूव द्विजदेवयोः। समुवासाऽऽसने मध्ये कुमारः कनकप्रभः।
कथां कथितुमारेभे संसदि द्विजदेवयोः॥४५॥

तभी उस स्थान पर ब्रह्मा, शंकर-पार्वती, अनन्त, धर्मदेव, श्रीसूर्य, निशाकर चन्द्र, आदित्य, वसुगण, रुद्र, दिक्पालादि देवता आये। जिनको देखकर श्रीकृष्ण ने तत्काल उठकर पृथक्-पृथक् भक्तिभाव से उनको मधुपर्कादि प्रदान करके उनकी पूजा किया तथा समस्त ऋषियों ने शेषनाग, शिव, ब्रह्मा तथा पार्वती को प्रणाम निवेदित किया। उस समय ब्राह्मणों तथा देवताओं ने आपस में बातचीत भी किया। तत्पश्चात् स्वर्णाभ सनत्कुमार ने उस संसद में देवता तथा ब्राह्मणों से कहा-।।४२-४५।।

सनत्कुमार उवाच

मया गतश्च गोलोको न दृष्टो राधिकापतिः।
ततो गतं च वैकुण्ठं तत्र नास्ति चतुर्भुजः॥४६॥
ततो गतश्च क्षीरोदस्तत्र नास्ति हरिः स्वयम्।
परिश्रान्तो विषण्णश्च स्नातं क्षीरोदधेस्तटे॥४७॥
विस्तीर्णवालुकामध्ये कच्छपः शतयोजनः।
भीतश्च कम्पितस्तत्र दृष्टो दुःखी च शुष्कितः॥४८॥
निःसारितो राघवेण मीनेन च महात्मना।
धन्योऽसीति मयोक्तश्च नाहं धन्य उवाच सः॥४९॥

सनत्कुमार कहते हैं-मैं गोलोक गया था, परन्तु वहां मैंने राधिकापति को नहीं देखा। तब मैं वैकुण्ठ गया। वहां भी चतुर्भुज विष्णु को मैंने नहीं देखा। जब क्षीरसागर जाकर देखा, वहां भी हरि नहीं थे। तदनन्तर विषन्न (खिन्न) तथा परिश्रान्त होकर मैंने क्षीरसागर में स्नान किया। तभी वहां तटस्थ विस्तीर्ण बालुका के बीच मैंने एक सौ योजन विस्तार वाला एक कच्छप देखा। वह भयभीत, दुःखित, शुष्कदेह तथा कम्पित था। एक महाकाय राघव मत्स्य ने उसे जल से बाहर कर दिया था। उसे देखकर मैंने कहा "तुम धन्य हो।" तब उस कच्छप ने कहा-"नहीं मैं धन्य नहीं हूं।।४६-४९।।

क्षीरोदः सागरो धन्यो जन्तवो यत्र मद्विधाः।
मत्तो महत्तराश्चापि ह्यसंख्याश्च महामुने॥५०॥

१. ख. ०कृष्णं।
२. क. ०भास्य।

भवान्धन्योऽस्ति क्षीरोद तेनोक्तो नाहमेव च।
धन्या वसुन्धरा देवी यत्रैव सप्तसागराः॥५१॥

(कच्छप कहने लगा)—"हे महामुनि! मैं धन्य नहीं हूं। क्षीरसागर धन्य है। इसमें मेरे समान तथा मुझसे भी अधिक बृहदाकृति असंख्य प्राणी निवास करते हैं।" यह सुनकर क्षीरसागर ने कहा—"मैं धन्य नहीं हूं। मुझसे बढ़कर पृथिवी धन्य है, जिस पर सप्तसागर विराजमान हैं।॥५०-५१॥

धन्याऽसि वसुधेत्युक्ता नाहमेवेत्युवाच सा।
धन्योऽनन्तो ममाऽऽधारःकृष्णांशो नागराड्विभुः॥५२॥
सहस्रमूर्ध्नां मध्येऽहं मूर्ध्नि शूर्पे च सर्षपः।
धन्योऽसि शेषत्युक्तोऽयं धन्यो नाहमुवाच वै॥५३॥
धन्यः कूर्मो ममाऽऽधारो गच्छ तत्रैव वै मुने।
धन्योऽसि कूर्मेत्युक्तोऽयं नाहं धन्योऽस्मिवै मनु॥५४॥
वायुना धार्यमाणोऽहं मत्तो धन्यतमश्च सः।
धन्योऽसीत्युक्तः पवनो धन्यो नाहमुवाच सः॥५५॥

तब मैंने कहा—"हे वसुन्धरे! तुम धन्या हो!" मेरे यह कहने पर वसुन्धरा ने कहा—"मैं धन्य नहीं हूं। अपितु कृष्णांश से समुद्भूत सहस्रफणमण्डलधारी अनन्तदेव धन्य हैं, जिसके मात्र एक फण पर मैं सरसों के दाने के समान अवस्थित रहती हूं।" यह सुनकर अनन्त देव शेष ने कहा—"हे मुनिवर! मैं धन्य नहीं हूं। अपितु वायु धन्य हैं, जिन्होंने मुझे धारण किया है।" तब मैंने पवनदेव से कहा—"आप धन्य हैं।" पवन देव ने कहा—"मैं कदापि धन्य नहीं हूं।।"॥५२-५५॥

धन्यश्च भगवान्ब्रह्मा विधाता जगतामपि।
धन्योऽसि तत्र धाता च धन्यो नाहमुवाच सः॥५६॥
धन्यो महेश्वरो देवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। सर्वाराध्यः सर्वपूज्यो धर्मरूपः सनातनः॥५७॥
कालकालश्च संहर्ता स्वयं मृत्युञ्जयः प्रभुः।
धन्योऽसि तत्र शंभुश्च धन्यो नाहमुवाच सः॥५८॥
सर्वादौ पूजनं यस्य ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः। धन्यो गणेश्वरो देवो देवानां प्रवरः परः॥५९॥
सिद्धेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु देवेन्द्रेषु श्रुतौ श्रुतम्। योगीन्द्रेषु च प्राज्ञेषु न गणेशात्परः पुमान्॥६०॥

"अपितु भगवान् ब्रह्मा जो जगत् विधाता हैं, वे धन्य है।" तब मैंने विधाता से कहा—"हे प्रभो! आप धन्य हैं।" विधाता ने कहा—"मैं कदापि धन्य नहीं हूं। देव महेश्वर धन्य हैं। वे योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु हैं। वे सबके आराध्य, सबके पूज्य, सनातन धर्मस्वरूप हैं। वे प्रभु काल के भी काल, संहर्त्ता तथा मृत्युञ्जय प्रभु हैं। वे धन्य हैं।" यह सुनकर भगवान् शंभु ने कहा—"मैं कदापि धन्य नहीं हूं। धन्य

तो गणेश्वर देव हैं जो देवताओं में प्रवर तथा सबसे परे हैं। वे सिद्धेन्द्र-मुनीन्द्र तथा देवेन्द्र से भी प्रवर तथा परे हैं। यह वेद में सुना गया है। योगीन्द्रों तथा प्राज्ञों में गणेश से श्रेष्ठ कोई नहीं है"।।५६-६०।।

निम्नगासु यथा गङ्गा तीर्थेषु पुष्करं यथा। वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।।६१।।

वेदो नारायणः साक्षाद्वयं पूज्या व्यवस्थया।
तस्माच्छास्त्राणि सर्वाणि पुराणानि च सन्ति वै।।६२।।

यस्मान्निरूपितो धर्मश्चेतिहासश्च संहिता। तस्माद्धन्याश्च ते वेदा वदन्त्यत्र मनीषिणः।।६३।।

जैसे नदियों में गंगा तथा तीर्थों में पुष्कर श्रेष्ठ है। उसी प्रकार पुरियों मे काशी श्रेष्ठ है। इसी प्रकार देवगण में गणेश प्रधान हैं। तब मैंने गणेश से कहा-"आप सबसे प्रधान तथा धन्य एवं मान्य हैं।" यह सुनकर गणेश ने हंसते हुये कहा-"हे मुनि! मैं धन्य नहीं हूं। चारों वेद धन्य हैं; क्योंकि वेदवाक्यानुसार समस्त कर्मकाण्ड होता है। वेद में जो विहित है, वही धर्म है। वेद के विरुद्ध किया आचरण अधर्म है। वेद नारायण रूप हैं। वह पूज्य है। उसी की व्यवस्था से हम सभी पूज्य माने जाते हैं। वेद में ही धर्म, सभी शास्त्र, पुराण सन्निहित हैं। उसी वेदों द्वारा धर्म-इतिहास, पुराण निरूपित है। तभी मनीषी लोग वेद को धन्य कहते हैं।।६१-६३।।

यूयं धन्याश्च मान्याश्चेत्युक्ता वेदा मया ततः।
ऊचुस्ते न वयं धन्या यज्ञसंघश्च साम्प्रतम्।।६४।।
वयं व्यवस्थाकर्तारो यज्ञौघः फलदः स्वयम्।
तस्माद्धन्यः स एवापि गच्छ गच्छ महामुने।।६५।।

तब मैंने जाकर वेदों से कहा-"आप धन्य"। तब वेदों ने कहा-"हम कदापि धन्य नहीं हैं। अपितु यज्ञ ही धन्य हैं। हम तो केवल व्यवस्था ही करते हैं। ये यज्ञ ही फलदाता हैं।" हे महामुनि! तभी वे धन्य हैं। आप उनके यहां जायें।।६४-६५।।

धन्योऽसि यज्ञसङ्घोऽसीत्युक्तस्तत्र मया विभो।
ऊचुस्ते न वयं धन्या धन्यं कर्म शुभं मुने।।६६।।
शुभकर्मासि धन्यं त्वं नाहं धन्यमुवाच तत्।
कर्मणां फलदाता यः कर्महेतुश्च साम्प्रतम्।।६७।।
धातुर्विधाता भगवान्सर्वादिः सर्वकारकः।
श्रीकृष्णः परमात्मा च धन्यो मान्यश्चनिश्चितम्।।६८।।

हे विभु! तब मैंने जाकर यज्ञों से कहा-"आप लोग ही धन्य हैं।" तब यज्ञों ने कहा-"हम धन्य नहीं हैं। ये शुभकर्म धन्य हैं।" तब मैंने शुभ कर्मों से कहा-"आप लोग धन्य हैं।" तब शुभकर्मों ने कहा-"हम कदापि धन्य नहीं हैं।" निश्चितरूपेण श्रीकृष्ण परमात्मा धन्य हैं। वे ही निश्चित रूप से

मान्य हैं। वे प्रभु ही विधाता ब्रह्मा के भी विधाता,कर्मफलदाता, कर्म के कारणरूप, सबके आदि, सर्वकारक हैं। यह निश्चित है। वे ही सबके प्रभु हैं।।६६-६८।।

धर्मालयं ततो गत्वा न दृष्ट्वा जगदीश्वरम्। मथुरामागतो द्रष्टुं परिपूर्णतम् प्रभुम्।।६९।।
यज्ञानां तपसां चैव व्रतानां शुभकर्मणाम्। ईश्वरं फलदातारं परमात्मानमेव च।।७०।।
कारणं कारणानां च ब्रह्मादीनां पुरःसरम्।
धन्योऽसीति मयोक्तश्च दक्षिणाभिः सहेति च।।७१।।
इत्युक्तेन[1] भगवता कथितं सर्वकारणम्। दक्षिणाभिश्च फलदो हतयज्ञो ह्यदक्षिणः।।७२।।
दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्काले तु न दीयते। एक रात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत्।।७३।।

तदनन्तर मैं वहां से धर्म के गृह में गया, परन्तु वहां भी मैंने जब जगदीश्वर को नहीं देखा, तब मैं उन परिपूर्णतम प्रभु के दर्शनार्थ मथुरा में आया। यहीं मैंने सभी यज्ञ, तप, व्रत तथा शुभकर्मफलदाता, समस्त कारणों के कारण ब्रह्मादि से भी अग्रगण्य परमात्मा परमेश्वर का दर्शन किया। तभी मैंने कहा था–"आप दक्षिणासहित धन्य हैं।" तत्पश्चात् मेरा कथन सुनकर श्रीभगवान् ने कहा–"मैं दक्षिणायुक्त यज्ञादि का फलदाता हूं।" अतः भगवान् ने सभी कारणों का वर्णन करते हुये कहा–"दक्षिणायुक्त ही यज्ञ फलकारक होता है। दक्षिणा रहित यज्ञ निष्फल तथा नष्ट कहा गया है। यह नियम है कि यदि ब्राह्मण के लिये तत्काल दक्षिणा प्रदान नहीं की गई तब एक रात व्यतीत होने पर वह बाकी दक्षिणा द्विगुणित हो जाती है।"।।६९-७३।।

मासे शतगुणं प्रोक्तं द्विमासे तु सहस्रकम्। संवत्सरे व्यतीते तु स दाता नरकं व्रजेत्।।७४।।

एक मास दक्षिणा बाकी रह जाने पर वह सौ गुनी हो जाती है। दो मास व्यतीत होने पर वह विहित दक्षिणा अब सहस्रगुण हो जाती है। यदि एक वर्ष पश्चात् भी दक्षिणा प्रदान नहीं की गई तब दाता को नरक जाना पड़ेगा।।७४।।

वर्षाणां च सहस्रं च मूत्रकुण्डे निपत्य च।
ततश्चाण्डालतां याति व्याधियुक्तश्च पातकी।।७५।।
दात्रा न दीयते दानं ग्रहीत्रा चेन्न गृह्यते। उभौ तौ नरकं प्राप्तौ वर्षाणां च सहस्रकम्।।७६।।
यजमानश्च चाण्डालो ब्रह्मणस्तत्पुरोहितः।
व्याधियुक्तावुभौ तौ च पापिनौ कर्मणः फलात्।।७७।।

वह नरक जाकर १००० वर्ष पर्यन्त मूत्रपूर्ण कुण्ड में फेंका जाता है। तदनन्तर वह चाण्डाल योनि में पापी एवं व्याधियुक्त होकर जन्म लेगा। यदि दाता ने दान नहीं दिया अथवा ग्रहीता ने नहीं लिया, तब इन दोनों को १००० वर्ष तक नरक में रहना होगा। तत्पश्चात् नरक से आकर यजमान तथा दान न लेने वाला, दोनों चाण्डल होंगे। वे दोनों पापी कर्मफल के कारण व्याधियुक्त रहेंगे।।७५-७७।।

१. क. ०त्युक्तो भगवांस्तत्र क०।

सर्वे देवाश्च मुनया जहसुर्विस्मयं ययुः। विस्मयं च ययौ नन्दस्त्याज पुत्रभावकम्॥७८॥
रुरोद च सभामध्ये लज्जाहीनः शुचाऽऽकुलः।
त्यज मोहमितीत्युक्त्वा बोधयामास पार्वती॥७९॥

यह वर्णन सुनकर देवता तथा मुनिगण विस्मय से हंसने लगे। तब नन्दराज ने भी श्रीकृष्ण के प्रति अपना पुत्रभाव तत्काल त्याग दिया। वे उस सभा में ही लज्जा त्याग कर शोक से रुदन करने लगे। तब भगवती पार्वती ने नन्दराज से यह कहकर समझाया-"मोह त्याग दो।"॥७८-७९॥

नन्द उवाच

अमूल्यरत्नं माणिक्यं यथा कुजन्मनो गृहे।
स्थितं तेन च देवेश तथाऽहं वञ्चितः प्रभो॥८०॥
ममापराधं भगवन् क्षमस्व प्रकृतेः परः। यास्यामि न पुनर्गेहं गोकुलं यमुनातटम्॥८१॥
वृन्दावनं तथाऽऽवासं क्रीडावासं गदाग्रज।
तत्सर्वं च यशोदाया गोपिकान्तिकमेव च॥८२॥
किं ब्रवीमि यशोदां च प्रेयसीं राधिकामपि।
प्रेमपात्रं च बालौघं वद भोः कथयामि किम्॥८३॥

नन्दराज कहते हैं-हे देवेश! यदि कुवणिक् के यहां अमूल्य मणि-माणिक्य रत्नादि घर में ही है, तथापि वह न जाने, तदनुरूप हे भगवान्! मैं भी वंचित (ठगा) हो गया। हे प्रभो! मेरा अपराध क्षमा करें। आप प्रकृति से परे हैं। अब मैं पुनः गृह, गोकुल, यमुनातट, वृन्दावन, निवासस्थल, क्रीड़ागृह, नहीं जाऊंगा। हे गदाग्रज! अब मेरा राधा तथा यशोदा अथवा गोपीगण के पास जाने का कोई अर्थ नहीं रह गया; क्योंकि जाकर यशोदा, कल्याणी राधा, तुम्हारे प्रेमाधार बालक मण्डली को क्या उत्तर दूंगा?॥८०-८३॥

इत्युक्त्वा च सभामध्ये मूर्च्छां सम्प्राप नारद।
क्रोडे कृत्वा जगन्नाथो बोधयामास तत्क्षणम्॥८४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥८७॥

हे नारद! यह कहकर नन्दराज सभा में मूर्च्छित हो गये। तब जगन्नाथ उनको तत्क्षण गोद में लेकर प्रबोधित करने लगे॥८४॥

॥८७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

नन्दराज को कृष्ण द्वारा प्रकृति स्तव (दुर्गा स्तोत्र) की प्राप्ति का वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

चेतनं कुरु हे तात हे तात चेतनं कुरु। जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं सचराचरम्॥१॥
त्यज मोहं महाभाग मायां स्तौहि परात्पराम्। ब्रह्मस्वरूपां परमां सर्वमोहनिकृन्तनीम्॥२॥
मुक्तिप्रदां महाभागां विष्णुमायां सनातनीम्। त्रिपुरस्य वधे घोरे महायुद्धे भयाकुले॥३॥
येन स्तोत्रेण शंभुश्च तया दैत्यं जघान सः। स्तोत्रराजं प्रदास्यामि सर्वमोहनिकृन्तनम्।
सर्ववाञ्छाप्रदं नन्द श्रूयतामत्र संसदि॥४॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे तात! चैतन्य हो जायें। हे तात! चैतन्य हो जायें। यह सचराचर संसार जल के बुदबुदे के समान है। हे महाभाग! आप मोह का त्याग करके ब्रह्मस्वरूप परमा परात्परा महादेवी का स्तव करिये। हे नन्दराज! यही महाभागा, सनातनी, विष्णुमाया, मुक्तिप्रदा तथा सर्वमोहविनाशिनी हैं। त्रिपुरासुर के संहार काल में जब घोर संग्राम उपस्थित हो गया था, तब शंकर ने भयभीत होकर महामाया के जिस स्तोत्र बल से त्रिपुरासुर का विनाश किया था, मैं इस सभा में आपके सर्वमोह के निवारण करने वाले, सर्वकामना प्रदायक इस स्तोत्र को प्रदान करता हूं, जो स्तोत्रराज है। उसे सुनिये॥१-४॥

नन्द उवाच

सर्वविघ्नविनाशाय दुःखप्रशमनाय च। विभूतये च यशसे नृणां वाञ्छितसिद्धये॥५॥
स्तोत्रमेकं महादेव्या जगन्मातुर्जगत्प्रभो। परं दुर्गतिनाशिन्या गोपनीयं सुदुर्लभम्॥६॥
देहि मह्यं विनीताय भक्ताय भक्तवत्सल। वेदानां जनकस्त्वं च निर्गुणश्च परात्परः॥७॥

नन्दराज कहते हैं—हे जगत् प्रभो! हे भक्तवत्सल। आप गुणातीत परात्पर तथा वेदों के जनक हैं। अतः मानवगण के सभी विद्वेष विनाश, दुःख की शान्ति, विभूति तथा यश की प्राप्ति कराने वाला जगन्माता महादेवी का परम दुर्लभ, दुर्गतिनाशक गोपनीय एकमात्र स्तव मुझ विनीत को दीजिये। आप परात्पर परम भक्तवत्सल हैं॥५-७॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु वक्ष्यामि वैश्येन्द्र स्तोत्रं यत्परमाद्भुतम्। सर्वविघ्नविनाशार्थं मोहपाशनिकृन्तनम्॥८॥
रणत्रस्तेन विभुना[1] शङ्करेण पुरा कृतम्। नारायणोपदेशेन प्रेरितेन च ब्रह्मणा॥९॥

१. रणेशस्त्रं परित्यज्य इति च पाठः।

शत्रुग्रस्तं शिवं दृष्ट्वा स ब्रह्माणमुवाच ह। उवाच शङ्करं ब्रह्मा रथस्थं पतितं रणे॥१०॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे वैश्येन्द्र! मैं सर्वविघ्नविनाशार्थ, मोहपाशछेदक, परमाद्भुत् स्तोत्र कहता हूं। श्रवण करिये। पूर्वकाल में शंकर ने रणभूमि में शस्त्र त्याग करके नारायण के उपदेशानुसार ब्रह्मा से प्रेरणा पाकर यह स्तोत्र पाठ किया था। शत्रुग्रस्त शिव को देखकर भगवान् नारायण ने यह ब्रह्मा से कहा था। ब्रह्मा ने रणभूमि में रथ पर गिरे शङ्कर से कहा—।।८-१०।।

सुरसंकटशान्त्यर्थं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्।
मूलप्रकृतिमाद्यां तां स्तौ (स्तु) हि ब्रह्मस्वरूपिणीम्॥११॥

हरिणा प्रेरितोऽहं च त्वां वदामि सुरेश्वर। विना शक्तिसहायेन को वा कं जेतुमीश्वरः॥१२॥

(ब्रह्मा ने शिव से कहा)—हे शङ्कर! आप अपनी शान्ति के लिये दुर्गति का नाश करने वाली ब्रह्मस्वरूपा उन आद्या मूल प्रकृति दुर्गा का स्मरण करिये। हे सुरेश्वर! मैं हरि से प्रेरित होकर आप से यही कहने आया हूं। फलस्वरूप शक्ति की सहाय के बिना कोई किसी को जय नहीं कर सकता।।११-१२।।

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा दुर्गां सस्मार शङ्करः। पुटाञ्जलिपरो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः॥१३॥

स्नातः पादौ च प्रक्षाल्य धृत्वा धौते च वाससी।
आचान्तः कुशहस्तश्च शुचिर्विष्णुं च संस्मरन्॥१४॥

ब्रह्मा का यह वचन सुनकर शंकर ने दुर्गा का स्मरण किया। वे हाथ जोड़कर भक्ति पूर्वक नत होकर भगवती का स्मरण करने लगे। तदनन्तर शंकर ने स्नान करके चरण धोया तथा उन्होंने वस्त्रद्वय धारण करने के उपरान्त हाथ में कुश लेकर आचमन किया। इस प्रकार से शंकर पवित्र होकर विष्णु का स्मरण करते कहने लगे।।१३-१४।।

महादेव उवाच

रक्ष रक्ष महादेवि दुर्गे दुर्गतिनाशिनि। मां भक्तमनुरक्तं च शत्रुग्रस्ते कृपामयि॥१५॥

विष्णुमाये महाभागे नारायणि सनातनि। ब्रह्मस्वरूपे परमे नित्यानन्दस्वरूपिणि॥१६॥

त्वं च ब्रह्मादिदेवानामम्बिके जगदम्बिके।
त्वं संहारे च गुणतो निराकारे च निर्गुणात्॥१७॥

मायया पुरुषत्वं च मायया प्रकृतिः स्वयम्। तयोः परं ब्रह्म परं त्वं बिभर्षि सनातनि॥१८॥

श्रीमहादेव कहते हैं—हे दुर्गे! दुर्गतिनाशिनि! मेरी रक्षा करो। हे महादेवी! मैं शत्रुग्रस्त हूं। मुझ पर कृपा करो। मैं तुम्हारा भक्त, तुम्हारे प्रति अनुरक्त हूं। मेरी रक्षा करो। तुम विष्णुमाया, महाभागा, सनातिनी, नारायणी, परम ब्रह्मस्वरूप तथा नित्यानन्दस्वरूपा हो। हे जगदम्बिके। तुम तो ब्रह्मादि देवगण की माता हो। तुम सगुण साकार तथा निर्गुण निराकार, ये दोनों हो। तुम ही अपनी माया द्वारा

पुरुष, अपनी माया से स्वयं ही प्रकृति हो। तुम ही इन दोनों से अतीत परब्रह्म हो। हे सनातनी! साथ ही तुम ब्रह्मरूप धारण करने वाली भी हो।।१५-१८।।

वेदानां जननी त्वं च सावित्री च परात्परा।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः सर्वसंपत्स्वरूपिणी।।१९।।

तुम ही परात्परा सावित्री तथा वेदों की जननी हो। तुम वैकुण्ठ में सर्वसम्पदास्वरूपा महालक्ष्मी भी हो।।१९।।

मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदे कामिनी शेषशायिनः।
स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं राजलक्ष्मीश्च भूतले।।२०।।
नागादिलक्ष्मीः पाताले गृहेषु गृहदेवता। सर्वसस्यस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्यविधायिनी।।२१।।

तुम ही क्षीरसागर में शेष पर शयनरत विष्णु पत्नी मर्त्यलक्ष्मी भी हो। तुम स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी तथा भूतल पर राजलक्ष्मी हो। तुम पाताल में नागों की लक्ष्मी, गृहों में गृहदेवता हो। तुम सभी सस्य (फसल) स्वरूपा तथा सर्वैश्वर्य विधात्री हो।।२०-२१।।

वागाधिष्ठातृदेवी त्वं ब्रह्मणश्च सरस्वती। प्राणानामधिदेवी त्वं कृष्णस्य परमात्मनः।।२२।।
गोलोके च स्वयं राधा श्रीकृष्णस्यैव वक्षसि।
गोलोकाधिष्ठिता देवी वृन्दा वृन्दावने वने।।२३।।
श्रीरासमण्डले रम्या वृन्दावनविनोदिनी।
शतशृङ्गाधिदेवी त्वं नाम्ना चित्रावलीति च।।२४।।
दक्षकन्या कुत्रकल्पे कुत्रकल्पे च शैलजा।
देवमाताऽदितिस्त्वं च सर्वाधारा वसुन्धरा।।२५।।

तुम ब्रह्मा की वागाधिष्ठातृदेवी सरस्वती हो। तुम ही परमात्मा कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठातृ देवी भी हो। तुम गोलोक में श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर स्थिता स्वयं राधा भी हो। तुम गोलोक की अधिष्ठातृ देवी तथा वृन्दावनस्था वृन्दा हो। तुम श्रीरासमण्डल की रम्यस्थली में वृन्दावनविनोदिनी हो। तुम गोलोकस्थ शतशृंग पर्वत की अधिष्ठातृ देवी चित्रावली नाम वाली हो। तुम ही किसी कल्प में दक्षपुत्री सती, तो किसी कल्प में शैलपुत्री पार्वती हो जाती हो। तुम ही देवमाता अदिति तथा सबकी आधारभूता वसुन्धरा हो।।२२-२५।।

त्वमेव गङ्गा तुलसी त्वं च स्वाहा स्वधा सती।
त्वदंशांशांशकलया सर्वदेवादियोषितः।।२६।।
स्त्रीरूपं चातिपुंरूपं देवि त्वं च नपुंसकम्।
वृक्षाणां वृक्षरूपा त्वं सृष्टा चाङ्कुररूपिणी।।२७।।

वह्नौ च दाहिका शक्तिर्जले शैत्यस्वरूपिणी।
सूर्ये तेजःस्वरूपा च प्रभारूपा च सन्ततम्॥२८॥
गन्धरूपा च भूमौ च आकाशे शब्दरूपिणी।
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मसंघे च निश्चितम्॥२९॥
सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा च पालने परिपालिका। महामारी च संहारे जले च जलरूपिणी॥३०॥

हे देवी! तुम ही गंगा, तुलसी, स्वाहा तथा सती स्वधा हो। तुम ही अपने अंश की अंशकलाओं द्वारा समस्त देवगण की भार्या रूप से विराजित रहा करती हो। तुम ही (जगत् में) स्त्री-पुरुष-नपुंसक स्वरूप हो जाती हो। तुम वृक्षों की बीज, सृष्टि की अंकुर, अग्नि की दाहिका शक्ति तथा जल की शीतलता हो। तुम सदा तेजःस्वरूपिणी प्रभारूप सूर्य में और शोभारूप से चन्द्रमा में तथा कमलदल में विराजित रहती हो। तुम सृष्टि में सृष्टिस्वरूप (सृर्जन स्वरूपा), पालनार्थ परिपालिका हो। तुम भूमि में गन्धरूपा, आकाश में शब्दरूपा, संहार में महामारीरूपा तथा जल में जलत्वरूपा होकर विराजमान हो॥२६-३०॥

क्षुत्त्वं दया त्वं निद्रा त्वं तृष्णा त्वं बुद्धिरूपिणी।
तुष्टिस्त्वं चापि पुष्टिस्त्वं श्रद्धास्त्वं च क्षमा स्वयम्॥३१॥
शान्तिस्त्वं च स्वयं भ्रान्तिः कान्तिस्त्वं कीर्तिरेव च।
लज्जा त्वं च तथा माया भुक्तिमुक्तिस्वरूपिणी॥३२॥
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वसम्पत्प्रदायिनी।
वेदेऽनिर्वचनीया त्वं त्वां च जानाति कश्चन॥३३॥
सहस्रवक्त्रस्त्वां स्तोतुं न च शक्तः सुरेश्वरि।
वेदा न शक्ताः को विद्वान्न च शक्ता सरस्वती॥३४॥

हे देवी! तुम क्षुधा, दया, निद्रा, तृष्णा, बुद्धिरूपा हो। तुम ही तुष्टि, पुष्टि, श्रद्धा, क्षमा, शान्ति, भ्रान्ति, कान्ति, कीर्त्ति, लज्जा, माया तथा भुक्ति-मुक्तिरूपा भी हो। हे भगवती! तुम ही सर्वशक्तिरूपिणी तथा सभी सम्पदा प्रदान करने वाली, वेदों में अनिर्वचनीया हो। तुम्हारा तत्व कोई नहीं जान सकता! हे सुरेश्वरी! सहस्रमुख शेष भी तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं। हे महेश्वरी! तुम्हारी स्तुति करने में वेद तथा सरस्वती भी सक्षम नहीं हैं। अतः कोई भी विद्वान् तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ कैसे हो सकेगा?॥३१-३४॥

स्वयं विधाता शक्तो न न च विष्णुः सनातनः।
किं स्तौमि पञ्चवक्त्रैस्तु[१] रणत्रस्तो महेश्वरि॥३५॥
कृपां कुरु महामाये मम शत्रुक्षयं कुरु। इत्युक्त्वा च सकरुणं रणस्थे पतिते रणे॥३६॥

१. क. ०वक्त्रेण।

"स्वयं विधाता तथा सनातन विष्णु तक तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं। अतः मैं युद्ध से त्रस्त तुम्हारी स्तुति कैसे कर सकता हूं? हे महामाया! मुझ पर कृपा करके मेरे शत्रुओं का नाश कर दो।" यह कहकर महेश्वर शिव उस रणभूमि में अपने रथ पर गिर गये!।।३५-३६।।

आविर्बभूव सा दुर्गा सूर्यकोटिसमप्रभा। नारायणेन कृपया प्रेरिता परमात्मना।।३७।।
शिवस्य पुरतः शीघ्रं शिवाय च जयाय च।
इत्युवाच महादेवी [१]मायाशक्त्याऽसुरं जहि।।३८।।

तभी कोटिसूर्य के समान प्रभाशालिनी दुर्गा कृपालु परमात्मा नारायण द्वारा प्रेरित होकर मंगलार्थ तथा विजय प्रदानार्थ शिव के समक्ष प्रादुर्भूत हो गईं। उन महादेवी ने शिव से कहा—"आप मायाशक्ति से असुर का विनाश करें।"।।३७-३८।।

दुर्गोवाच

वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम्।
भवान्वरः सुराणां च जयं तुभ्यं ददाम्यहम्।।३९।।

देवी दुर्गा कहती हैं—हे भद्र! आप मनोवांछित वर मांगिये। आप देवगण में श्रेष्ठ हैं। मैं आपको जय प्रदान करती हूं।।३९।।

महादेव उवाच

क्षयो भवतु दैत्यस्य इति मे परमीश्वरि। देहीति वाञ्छितं दुर्गे परमाद्ये सनातनि।।४०।।

महादेव कहते हैं—हे परमेश्वरी! परमाद्ये सनातनी दुर्गे! यह दैत्य क्षयीभूत हो जाये, वह वांछित वर प्रदान करो।।४०।।

भगवत्युवाच

हरिं स्मर महाभाग जय दैत्यं जगद्गुरुः।
स्वयं विधाता भगवांस्त्वमेव [२]ज्योतिरीश्वरः।।४१।।

भगवती कहती हैं—हे जगद्गुरु! आप श्रीहरि का स्मरण करके इस दैत्य पर विजय लाभ करिये। हे महाभाग! आप तो स्वयं भगवान् विधाता तथा ज्योतिरूप ईश्वर हैं।।४१।।

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्वृषरूपो बभूव ह। दधार कलया मूर्ध्ना शूलपाणे रथं विभुः।।४२।।
ऊर्ध्वचक्रमथोग्रं च प्रकृतिं च चकार सः। शस्त्रं ददौ मन्त्रपूतमुद्दधार ततो रथम्।।४३।।
शिवःशस्त्रं गृहीत्वा च ध्यात्वा विष्णुं महेश्वरीम्।
जघान त्रिपुरं शीघ्रं च पपात महीतले।।४४।।

१. क. मया श.।
२. स एव इति क्वचित्।

भगवती के यह कहते ही वहां विष्णु ने अपनी कलामात्र से वृषरूप धारण करके अपने मस्तक द्वारा शूलपाणि शिव का रथ ऊपर उठा लिया। पहले यह रथ उलट गया था तथा उसका पहिया आकाश की ओर उठ गया था। अब वह यथास्थान सीधा हो गया। तभी हरि ने शिव को एक मन्त्रपूत शस्त्र भी प्रदान किया। यह शस्त्र लेकर महादेव ने नारायण तथा सुरेश्वरी-दुर्गा का ध्यान किया तथा तत्काल त्रिपुर वध कर दिया। उस शस्त्र का आघात होते ही त्रिपुर भूमि पर गिर गया!।।४२-४४।।

तुष्टुवुः शङ्करं देवाश्चक्रुश्च पुष्पवर्षणम्। दुर्गा तस्मै ददौ शूलं पिनाकं विष्णुरेव च॥४५॥
ब्रह्मा शुभाशिषं चैव मुनयश्चापि हर्षिताः। ननृतुर्देवताः सर्वा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः॥४६॥

इस अवसर पर देवगण शिव की स्तुति करके उन पर पुष्प वर्षा भी करने लगे। उस अवसर पर दुर्गा ने शिव को त्रिशूल और विष्णु ने पिनाक धनुष प्रदान किया। ब्रह्मा ने शिव को शुभ आशीर्वाद दिया। मुनिगण आनन्दित हो उठे। इस अवसर पर सभी देवगण नृत्यरत हो गये तथा गन्धर्व-किन्नर गायन करने लगे।।४५-४६।।

एतस्मिन्नन्तरे तात स्तवराजमनुत्तमम्। विघ्नविघ्नकरं शीघ्रं शत्रुसंहारकारणम्॥४७॥
परमैश्वर्यजनकं सुखदं परमं शुभम्। निर्वाणमोक्षदं चैव हरिभक्तिप्रदं ध्रुवम्॥४८॥
गोलोकवासदं चैव सर्वसिद्धिप्रदं वरम्। स्तोत्रराजप्रपठनात्प्रसन्ना पार्वती सदा॥४९॥
लोभमोहकामक्रोधकर्ममूलनिकृन्तनम्। बलबुद्धिकरं चैव जन्ममृत्युविनाशनम्॥५०॥
धनपुत्रप्रियाभूमिसर्वसम्पत्प्रदं नृणाम्। शोकदुःखहरं चैव सर्वासिद्धिप्रदं वरम्॥५१॥
स्तोत्रराजप्रपठनान्महावन्ध्या प्रसूयते।
बन्धनान्मुच्यते दुःखी[1] भयान्मुच्येत निश्चितम्॥५२॥

हे तात नन्दराज! यह मैंने आपसे शीघ्र शत्रु संहारकारक विघ्ननाशक अत्युत्तम स्तवराज का वर्णन कर दिया। यह परम ऐश्वर्यप्रद, परमसुखद, शुभ, निर्वाण-मोक्ष प्रदायक, हरिभक्तिप्रद है। यह बात निश्चित जाने। यह गोलोक निवास प्रदाता, श्रेष्ठ एवं सर्वप्रकार की सिद्धि देने वाला है। इस स्तवराज का पाठ करने वाले पर देवी पार्वती सदा सुप्रसन्ना हो जाती हैं। यह स्तोत्रराज लोभ-मोह-काम-क्रोध का तथा कर्म की जड़ का नाशक है। यह मनुष्यों के जन्म-मृत्युरूपी आवागमन चक्रनाशक, धन-पुत्र-भार्या-भूमि-सर्वसम्पति प्रदाता है। यह मनुष्यों के लिये शोक-दुःख का नाश करने वाला सर्वसिद्धिप्रद है। इस स्तोत्रराज का पाठ करने से महावन्ध्या नारी भी सन्तान प्रसव करती है। इसके पाठ से निश्चित रूप से बद्धव्यक्ति बन्धनमुक्त तथा दुःखी भययुक्त हो जाता है।।४७-५२।।

रोगाद्विमुच्यते रोगी दरिद्रश्च धनी भवेत्। दावाग्निमध्ये न मृतो भग्नः पोतो महार्णवे॥५३॥
दस्युग्रस्तो रिपुग्रस्तो हिंस्रजन्तुसमन्वितः।
स्तोत्रेणानेन वैश्येन्द्र कल्याणं लभते नरः॥५४॥

१. क. दुःखात्।

तैजसानां यथा रत्नमाश्रमाणां द्विजो यथा।
नदीनां च यथा गङ्गा मन्त्राणां प्रणवो यथा॥५५॥
तुलसी सर्वपत्राणां धराणां च वसुन्धरा। पुष्पाणां पारिजातं च काष्ठानां चन्दनं यथा॥५६॥
विष्णुपूजा च तपसां व्रतेष्वेकादशी यथा।
ज्ञानिनां च यथा शम्भुःसिद्धानां च गणेश्वरः॥५७॥
देवानां च यथा विष्णुर्वेदाः शास्त्रेषु तन्त्रतः।
देवीनां च यथा दुर्गा शान्तानां कमला यथा॥५८॥
सरस्वती च विदुषां राधिका सुन्दरीषु च। तथा स्तोत्रेष्विदं स्तोत्रं नातः परतरं व्रज॥५९॥

इसके पाठ से रोगी रोग से, दरिद्र निर्धनता से मुक्त होता है। हे वैश्येन्द्र! वह दावाग्नि में भी मृत नहीं होगा। महान् समुद्र में जहाज नष्ट हो जाने पर, दस्यु से आक्रान्त होने पर, हिंस्र जन्तु से सामना होने पर इस स्तोत्र पाठ से मनुष्य कल्याण लाभ करेगा। जैसे तैजसों में रत्न प्रधान है, चारों वर्णाश्रम में ब्राह्मण प्रधान है, जैसे पुष्पों में पारिजात, काष्ठ में चन्दन, तपों में विष्णुपूजा, आधारप्रदा में पृथिवी, सभी पत्तों में तुलसीपत्र, नदियों में गंगा, मन्त्रों में प्रणव, व्रतों में एकादशीव्रत, ज्ञानीगण में शंभु, सिद्धों में गणेश, देवगण में विष्णु, शास्त्रों में वेद, देवीगण में दुर्गा, शान्त मूर्ति में कमला, विद्वानों में सरस्वती, सुन्दरियों में राधिका प्रधान हैं, हे व्रजराज! उसी प्रकार से इस स्तोत्र से बढ़कर कोई भी स्तोत्र नहीं है।।५३-५९।।

पुरा दत्तं ब्रह्मणे च पुष्करे सूर्यपर्वणि। दैत्यग्रस्ताय भीताय सर्वदुर्गहरं परम्॥६०॥
शिवाय शत्रुग्रस्ताय ददौ ब्रह्मा मदाज्ञया। शिवश्च सनकादिभ्यः पुरा दुर्वाससे ददौ॥६१॥
सनत्कुमारो भगवान्कृपया गौतमाय च। पुलहाय पुलस्त्याय ददौ चाङ्गिरसे मुदा॥६२॥
तथा चन्द्राय सूर्याय सूर्यश्चापि यमाय च। यमश्च चित्रगुप्ताय कृपया च पुरा ददौ॥६३॥

पूर्वकाल में मैंने दैत्यों से ग्रस्त, भयभीत ब्रह्मा को सूर्यग्रहण के अवसर पर समस्त दुर्गति का हरण करने वाला यह स्तव पुष्कर तीर्थ में ब्रह्मा को दिया था। मेरी ही आज्ञा से शत्रुग्रस्त शिव को यह स्तव ब्रह्मा ने प्रदान किया। इस स्तव को पूर्वकाल में शंकर ने इस स्तोत्र को सनकादि मुनिगण एवं ऋषि दुर्वासा को प्रदान किया। तदनन्तर भगवान् सनत्कुमार ने कृपापरवश होकर यही स्तोत्रराज गौतम, पुलह, पुलत्स्य, अंगीरा, चन्द्र तथा सूर्य को दिया था। सूर्य ने यम को, यम ने चित्रगुप्त को यह स्तवराज प्रदान किया था।।६०-६३।।

नित्यं पठिष्यसि स्तोत्रं गोलोकगमनाय वै।
साक्षात्पश्यसि भो तात तामेव पार्वतीमिह॥६४॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं पापिने गोपनं कुरु।
नारायणस्य भक्ताय शान्ताय विदुषे तथा॥६५॥

सर्वज्ञाय च विप्राय दातव्यं च प्रयत्नतः। विप्राय वृषवाहाय वृषलीपतये तथा॥६६॥
शूद्राणां सूपकाराय शूद्रश्राद्धान्नभोजिने।कन्याविक्रयिणे चैव ब्राह्मणाय विशेषतः॥६७॥
सर्वसिद्धिं च लभते सिद्धस्तोत्रे भवेद्यदि। दशायुतजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः॥६८॥

जो इस स्तोत्र का नित्य पाठ करेगा, उसे गोलोक प्राप्ति होगी। इसी स्तोत्र के प्रभाव से यहां साक्षात् भगवती पार्वती का दर्शन लाभ हो रहा है। यह स्तोत्र कदापि जिस-किसी को प्रदान न करे। पातकी को तो कदापि नहीं देना चाहिये। यह स्तव केवल शान्त, बुद्धिमान् नारायण भक्त को, सर्वज्ञ ब्राह्मण को ही प्रदान करें। इसे शूद्रा के पति ब्राह्मण को, जो बैल की पीठ पर सामान ढोकर जीविका चलाये उस ब्राह्मण को कदापि यह स्तोत्र प्रदान न करे। जो विप्र शूद्रों का भोजन बनाये, शूद्र के श्राद्धान्न का भक्षण करे, कन्या विक्रय करे ऐसे ब्राह्मण को यह स्तोत्र नहीं देना चाहिये। जो मनुष्य इस स्तोत्र को सिद्ध कर लेगा, उसे सभी सिद्धियां प्राप्त होंगी। यह स्तोत्र सौ लाख बार जप से सिद्ध होता है।।६४-६८।।

अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं मृत्स्तम्भं मनसस्तथा।
अश्वमेधसहस्राच्च पृथिव्याश्च प्रदक्षिणात्॥६९॥
स्नानाच्च सर्वतीर्थानां स्तोत्रमेतच्च पुण्यदम्।
दत्तं तुभ्यं मया तात मम प्राणसमं व्रज॥७०॥

(यह स्तोत्र सिद्ध हो जाने पर) इसके द्वारा अग्नि स्तम्भन, जल स्तम्भन, मिट्टी का स्तम्भन एवं मन स्तम्भन होता है। १००० अश्वमेध यज्ञ, पृथिवी प्रदक्षिणा, सर्वतीर्थ स्नान का जो फल है, उससे अधिक फल इस स्तवपाठ से होगा। हे तात! मैंने यह अपने प्राण के समान स्तव आपको प्रदान कर दिया।।६९-७०।।

स्तवन कुरु पार्वत्याश्चेदानीं मम संसदि।
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा नन्दस्तुष्टाव पार्वतीम्॥७१॥
स्तोत्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वसम्पत्प्रदायिनीम्।
वरं तस्मै ददौ दुर्गा गोलोकवासमीप्सितम्॥७२॥

दुर्लभं परमं ज्ञानं वेदे यन्न श्रुतं मुने। राजेद्रत्वं गोकुले च कृष्णभक्तिं सुदुर्लभाम्॥७३॥
तद्दास्यं चापि[१] परतो महत्त्वं सिद्धमेव च। वरं दत्त्वा ययौ दुर्गा संभाष्य शंभुना सह॥७४॥

"अब आप इस मेरी सभा में इसके द्वारा देवी पार्वती की स्तुति करें।" श्रीकृष्ण का वचन सुनकर नन्दराज इस स्तोत्र से पार्वती की स्तुति करने लगे। हे विप्रवर! श्रीकृष्ण की आज्ञा सुनकर नन्दराज ने जब पार्वती का यह स्तव किया, तब उन्होंने नन्दराज पर प्रसन्न होकर उनको वर प्रदान

---

१. ख. चाऽऽप प०।

किया। हे मुनिप्रवर! उन्होंने नन्द को वांछित गोलोक में निवास, वेदों में भी दुर्लभ परम ज्ञान, गोकुल का राजत्व, दुर्लभ हरिभक्ति, हरिदास्य, महत्ता, सर्वसिद्धि का वर प्रदान किया। यह बातचीत करके दुर्गा शिव के साथ चली गईं।।७१-७४।।

जग्मुर्देवाश्च मुनयः स्तुत्वा च नन्दनन्दनम्।
उवाच नन्दं श्रीकृष्णो व्रज नन्द व्रजान्वितः।
प्रहृष्टस्त्यक्तमोहश्च बोधेन दुर्लभेन च।।७५।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० अष्टाशीतितमोऽध्यायः।।८८।।

तदनन्तर सभी देवता, मुनिगण, नन्दनन्दन श्रीकृष्ण का स्तव करके अपने-अपने स्थान चले गये। इधर श्रीकृष्ण ने नन्दराज से कहा कि आप अब दुर्लभ ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। अब आप प्रसन्न मन से इन ब्रजवासियों को लेकर ब्रजधाम चले जायें।।७५।।

।।८८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ नवाशीतितमोऽध्यायः

नन्दराज से भगवान् श्रीकृष्ण का वार्त्तालाप, नन्द से ब्रज वापस जाने हेतु प्रार्थना करना तथा नन्द को श्रीकृष्ण द्वारा वरदान देना

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छ गच्छ गृहं गच्छ व्रजराज व्रजं व्रज। सर्वं तत्त्वं त्वया ज्ञातं दृष्टाश्च मुनयः सुराः।।१।।
श्रुतं मे धन्यमाख्यानं नानाख्यानं सुदुर्लभम्।
दुर्गायाः स्तोत्रराजं च जन्मपाशनिकृन्तनम्।।२।।

श्रीकृष्ण कहते हैं-हे ब्रजराज! आप अपने गृह ब्रज चले जाईये। अब आपको कोई तत्व अविदित नहीं है। आपने मुनियों तथा देवताओं का दर्शन भी प्राप्त कर लिया। आपने मुझसे सभी धर्मप्रद दुर्लभ एवं धन्यतम आख्यानों को भी सुन लिया। जन्ममरण के आवागमनरूपी पाश को काटने वाला दुर्गा स्तोत्रराज भी आपने मुझसे प्राप्त कर लिया।।१-२।।

स्थितं तत्ते निगदितं हर्षेण च सुखेन च। यत्कृतं बालभावेन चापराद्धं च तत्क्षणम्॥३॥
यत्सुखं न कृतं तात पित्रोश्च नृपमन्दिरे। कृतं सुखं तत्परं च स्वर्गादपि सुदुर्लभम्॥४॥
मदीयं प्रियवाक्यं च प्रह्वत्वं विनयं नयम्। परिहासं बहुतरं यशोदां गोपिकागणम्॥५॥
बालकानां समूहं च राधां चापि विशेषतः। एकत्र च स्थितं तेषु बन्धुवर्गेषु कर्मणा॥६॥

इहैवापि सुखं भुक्त्वा गच्छ गोलोकमुत्तमम्[१]।
सार्धं यशोदया तात रोहिण्या गोपिकागणैः॥७॥
गोपानां बालकैः सार्धं वृषभानेन गोपकैः।
राधामाता कलावत्या राधया सह यास्यसि॥८॥

हे तात! जो कुछ सामने आवश्यक था, वह सब मैंने हर्ष एवं सुख के साथ आपसे कह दिया। मैंने गोकुल तथा ब्रज में आपके साथ बालभाव के कारण जो कोई अपराध किया हो, उसे आप क्षमा कर दीजिये। राजगृह में, अपने माता-पिता से जो सुख मुझे नहीं मिला आपके यहां रहकर उस स्वर्गदुर्लभ सुख से अधिक मैं सुख पा चुका हूं। मेरा यथोचित विनय पूर्वक शुभ एवं प्रिय संभाषण, अनेक परिहास और माता यशोदा तथा गोपिकाओं और बन्धुवर्ग के साथ विशेष करके राधा भी यहां स्थित हैं। अभी आप अपने कर्मानुरूप इहलोक के साथ यहां सुख भोग करें। तदनन्तर आप, यशोदा, रोहिणी, गोपियां, गोपबालक, वृषभानु, राधा की माता कलावती तथा राधा इन सबको यह पार्थिव देह त्याग कर गोलोकधाम प्राप्त होगा॥३-८॥

रथानां शतलक्षं च गोलोकादागतं पितः। अमूल्यरत्ननिर्माणं हीरहारपरिष्कृतम्॥९॥

मणिमाणिक्यमुक्तानां मालाजालविभूषितम्।
वह्निशुद्धांशुकै रम्यैराच्छन्नं पीतवर्णकैः॥१०॥

पार्षदप्रवरै रम्यैर्वेष्टितं श्वेतचामरैः। सद्रत्नदर्पणै रम्यैर्गोपिकाभिश्च गोपकैः॥११॥

हे पिता नन्दराज! उस समय गोलोक से सौ लाख रथ आयेंगे। वे अमूल्य रत्नों से निर्मित तथा हीरक हारों से सजे, मणि-माणिक-मोती की मालाओं के बन्दनवार से भूषित होंगे। वे अग्निशुद्ध रम्य पीतवर्ण वस्त्रों से आच्छन्न होंगे। पीताम्बरधारी श्रेष्ठ पार्षदों से वे रथ घिरे होंगे। श्वेतचामर, रत्नमय दर्पण तथा गोप-गोपीगण से वे रथ शोभायमान रहेंगे!॥९-११॥

वेष्टितं च तदारुह्य कौतुकाद्यास्यसि ध्रुवम्।
त्यक्त्वा च पार्थिवं देहं दिव्यदेहं विधाय च॥१२॥
अयोनिसंभवा राधा राधामाता कलावती।
यास्यत्येव हि तेनैव नित्यदेहेन निश्चितम्॥१३॥

---

१. क. ०कमन्ततः।

पितॄणां मानसी कन्या धन्या मान्या कलावती।
धन्या च सीतामाता च दुर्गामाता च मेनका॥१४॥
अयोनिसंभवा दुर्गा तारा सीता च सुन्दरी।
अयोनिसंभवास्ताश्च धन्या मेना कलावती॥१५॥
इत्येव कथितं तात गोपनीयं सुदुर्लभम्। वरोऽहं दत्तस्तुभ्यं च मया च दुर्गया तथा॥१६॥

आप ऐसे रथ पर बैठकर जो इस प्रकार से गोप-गोपिकाओं से तथा हरि पार्षदों से घिरा होगा, कुतुहल के साथ गोलोक अवश्य जायेंगे। उस समय आप सब यह पार्थिवदेव त्यागकर, दिव्यदेहधारी होकर गोलोक गमन करेंगे। राधा तथा कलावती अयोनिजा हैं। कलावती पितृगण की मानसी कन्या हैं। ये दोनों अपने नित्य देह से गोलोक गमन करेंगी। पार्वती, उनकी माता मेनका, दुर्गा, तारा तथा सीता की माता एवं सुन्दरी देवी सीता, अयोनिजा कही गई हैं। ये सब तथा मेना एवं कलावती सदा धन्य हैं। हे तात! यह मैंने अत्यन्त गुप्त दुर्लभ प्रसंग कह दिया। दुर्गा तथा मैंने आपको वरदान भी दे दिया है।।१२-१६।।

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच व्रजेश्वरः।
पुनरेव जगन्नाथं तद्भक्तो भक्तवत्सलम्॥१७॥

श्रीकृष्ण का वचन सुनकर उनके परमभक्त ब्रजेश्वर नन्दराज ने भक्तवत्सल भगवान् से यह उत्तर प्रदान किया।।१७।।

नन्द उवाच

युगानां च चतुर्णां च यं यं धर्मं सनातनम्।
क्रमेण कृष्णाविस्तीर्णं कृत्वा मां कथय प्रभो॥१८॥
कलिशेषे भवेद्यद्यद्गुणदोषं कलेस्तथा। का गतिर्वा पृथिव्याश्च धर्मस्य प्राणिनां तथा॥१९॥

नन्दराज कहते हैं-हे प्रभो! आप कृपा पूर्वक यह बताने की कृपा करें कि चारों युगों में सनातन धर्म क्या-क्या है? यह विस्तार से कहें कि कलिकाल के क्या गुण तथा दोष अनुभूत होंगे? तब पृथिवी, धर्म तथा प्राणीगण की क्या गति होगी?।।१८-१९।।

नन्दस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टः कमललोचनः। कथां कथितुमारेभे विचित्रां मधुरान्विताम्॥२०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० एकोननवतितमोऽध्यायः।।८९।।

—❀❀❀—

नन्दराज का कथन सुनकर कमललोचन श्रीकृष्ण हर्षित हो गये। तब उन्होंने विचित्र तथा मधुर कथा कहना प्रारम्भ किया।।२०।।

।।८९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ नवतितमोऽध्यायः

चतुर्युग निरूपण

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि सानन्दं मानसं यथा। कथां रम्यां सुमधुरां पुराणेषु परिष्कृताम्[1]।।१।।
परिपूर्णतमो धर्मो धार्मिकाश्च कृते युगे। परिपूर्णतमं सत्यं परिपूर्णतमा दया।।२।।
अतीव प्रज्वलद्रूपा वेदाश्चत्वार एव च।
वेदाङ्गाश्चापि विविधासाश्चेतिहासा च संहिताः।।३।।
पुराणानि सुरम्याणि पञ्चरात्राणि पञ्च च। रुचिराणि सुभद्राणि धर्मशास्त्राणि यानि च।।४।।
विप्रा वेदविदः सर्वे पुण्यवन्तस्तपस्विनः। नारायणं ते ध्यायन्ति तन्मन्त्रं च जपन्ति च।।५।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे नन्दराज! आप से मैं यह रम्यकथा जिसे पुराणों में अत्यन्त परिष्कृत रूप से कहा गया है तथा जो अत्यन्त मधुर है, वह कहता हूं। श्रवण करिये। सत्ययुग में धर्म परिपूर्णतम होता है। सभी मानव धर्मात्मा होते हैं। सब में दया तथा सत्य पूर्णता से स्थित रहता है। उस समय सभी वेद-वेदांग, नाना इतिहास, संहिता, सुरम्य पुराणों का, पांच-पांचरात्र ग्रन्थ एवं कल्याणमय मनोहर धर्मतत्वकथा का अत्यन्त प्रचार रहता है। उस समय ४ वेद अत्यन्त प्रज्वलित रूप से रहते हैं। सभी कल्याणमय धर्मशास्त्र भी विद्यमान रहते हैं। सभी विप्र वेदज्ञ पुण्यात्मा एवं तपःशील होते हैं। वे नारायण का ध्यान तथा उनका मन्त्रजप करते रहते हैं।।१-५।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्चतुर्वर्णाश्च वैष्णवाः।
शूद्रा ब्राह्मणभृत्याश्च सत्यधर्मपरायणाः।।६।।
राजानो धार्मिकाश्चैव प्रजापालनतत्पराः। गृह्णन्त्येव प्रजानां च षोडशांशकरान्नृपाः।।७।।
करशून्याश्च विप्राश्च पूज्याः स्वच्छन्दगामिनः।
सन्ततं सर्वसस्याढ्या रत्नाधारा वसुन्धरा।।८।।
गुरुभक्ताश्च शिष्याश्च पितृभक्ताः सुतास्तथा। योषितः पतिभक्ताश्च पतिव्रतपरायणाः।।९।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि चतुर्वर्ण वाले सभी वैष्णव रहते हैं। शूद्रगण ब्राह्मणों के भृत्य रूप तथा सत्य एवं स्वधर्म परायण रहते हैं। सभी राजा धर्मात्मा एवं प्रजापालन तत्पर होते हैं। वे केवल प्रजा की आय का १/१६ भाग ही कर ग्रहण करते हैं। ब्राह्मण से कर नहीं लिया जाता। वे पूज्य एवं स्वतन्त्र होते हैं। यह धरती उस समय रत्नपूर्णा तथा सदा अनुकूल फसलों से परिपूर्ण रहा करती है। सभी शिष्य गुरुभक्त, सन्तान पितृभक्त, स्त्रियां पतिभक्त एवं पतिव्रतपरायणा होती हैं।।६-९।।

---

१. क. परिश्रुताम्।

ऋतौ संभोगिनः सर्वे न स्त्रीलुब्धा न लम्पटाः।
न भयं दस्युचौर्याणां न तत्र पारदारिकाः॥१०॥
तरवः पूर्णफलिनः पूर्णक्षीराश्च धेनवः। बलवन्तो जना सर्वे दीर्घाः सौन्दर्यसंयुताः॥११॥
लक्षवर्षायुषः केचित्पुण्यवन्तो ह्यरोगिणः।
यथा विप्रा विष्णुभक्तास्त्रिवर्णा विष्णुसेविनः॥१२॥
जलपूर्णा नदी नद्यः सन्ततं कन्दरास्तथा। तीर्थपूताश्चतुर्वर्णास्तपः पूता द्विजातयः॥१३॥
मनःपूताश्च निखिलाः खलहीनं जगत्त्रयम्।
सत्कीर्तिपरिपूर्णं च यशस्यं मङ्गलान्वितम्॥१४॥

लोग केवल ऋतुकाल में पत्नी समागम करने वाले रहते हैं। वे स्त्री लोभी किंवा लम्पट नहीं रहती। उस समय दस्यु-चोर का प्रजा को भय नहीं रहता। परस्त्रीगामिता भी नहीं रहती। वृक्ष पूर्ण फल देते हैं। गौयें पूर्ण दुग्ध देती हैं। सभी पुरुष-स्त्री बली होते हैं। सभी दीर्घकाय एवं सौन्दर्यशाली भी रहते हैं। कतिपय पुण्यवान लोगों की आयु तब एक लाख वर्ष होती है। लोग रोग रहित रहते हैं। जैसे उस समय ब्राह्मण विष्णुभक्त होते हैं, तदनुरूप तीनों वर्ण के मनुष्य विष्णुसेवक रहते हैं। सभी नदियां जलपूर्ण तथा कंदरायें सुन्दर बनी रहती हैं। चारों वर्ण के लोग तीर्थों में पवित्र होते रहते हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य स्वयं को तप द्वारा शुद्ध रखते हैं। उस सत्ययुग में सभी का मन शुद्ध होता है। तीनों लोक दुष्ट रहित रहता है। त्रैलोक्य दुष्टों से रहित रहता है। चतुर्दिक् सत्कीर्त्ति से पूर्ण तथा यश से मंगलान्वित लोग रहते हैं।।१०-१४।।

पितःसर्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः। सर्वकालेष्वतिथयः पूजिताश्च गृहे गृहे॥१५॥
त्रिवर्णा विप्रभक्ताश्च विप्रभोजतत्पराः। ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रमनूषरमकण्टकम्॥१६॥
नारायणोत्कीर्तनेन हर्षयुक्तास्तदुत्सवे। न शत्रवो जनानां च सर्वे सर्वहितैषिणः॥१७॥
नाऽऽत्मप्रशंसकाः केचित्सर्वे परगुणोत्सुकाः।
देवानां द्विजानां च विदुषां तत्र निन्दकाः॥१८॥
पुरुषा योषितश्चापि न हि मूर्खाश्च पण्डिताः।
न दुःखिनो जनाः सत्ये सर्वेषां रत्नमन्दिरम्॥१९॥

इस सत्ययुग में प्रतिगृह में पर्वों में पितर, तिथिकाल में देवता तथा सर्वकाल में अतिथियों की पूजा होती रहती है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य इन तीन वर्ण के मनुष्य विप्रभक्त होते हैं। वे विप्रों को भोजन कराने में तत्पर रहते हैं। ब्राह्मण के मुख को ही ऊसरविहीन तथा कंटक रहित क्षेत्र माना गया है। अर्थात् ब्राह्मण को अन्न भोजन कराने से समस्त वांछित फलों की उत्पत्ति होती है। सत्ययुग में लोग हरि कीर्त्तन तथा हरि महोत्सव अत्यन्त आह्लादित होकर करते हैं। सत्ययुग में नारायण के नामकीर्त्तन एवं हरि सम्बन्धित उत्सवों से सभी लोग हर्षित हो जाते हैं। सत्ययुग में कोई भी देवता, ब्राह्मण तथा विद्वान् की

निन्दा नहीं करता। तब अपनी प्रशंसा कोई भी नहीं करता। सभी अन्य के गुणों की प्रशंसा करने के लिये उत्सुक रहते हैं। तब लोगों का कोई शत्रु ही नहीं होता सब एक-दूसरे के हितैषी होते हैं। उस युग में पुरुष-स्त्री कोई भी मूर्ख नहीं होता। सभी पण्डित होते हैं। सत्ययुग में कोई दुःखी नहीं रहता। सबके रत्नमय भवन होते हैं।।१५-१९।।

मणिमाणिक्यरत्नौघरत्नस्वर्णसमन्वितम्। न भिक्षुका न रोगार्ताः शोकहीनाश्च हर्षिताः॥२०॥
न हि भूषणहीनाश्च नरा नार्यश्च केचन। न पापिनो न धूर्ताश्च न क्षुधार्ता न कुत्सिताः॥२१॥

जराहीनाः प्राणिनश्च शश्वद्यौवनसंस्थिताः।
आधिव्याधिविहीनाश्च[1] निर्विकाराश्च देहिनः॥२२॥
यदुक्तो वै सत्ययुगे धर्मः सत्यं दयादिकम्[2]।
पादहीनश्च त्रेतायां सत्यार्धं द्वापरेऽपि च॥२३॥

धर्मैकपाच्च प्रथमे कलेश्चातिकृशोऽबलः। दुष्टानां दस्युचौर्याणामङ्कुरः प्रभवेद्व्रज॥२४॥

अधर्मनिरताः केचिद्भीताः सङ्गोपिनस्तथा।
भीता गुप्ताश्च पुंश्चल्यौ भीताश्च पारदारिकाः॥२५॥

उस युग में नर-नारी कोई भी भूषण रहित नहीं होता। कोई भी पापी, धूर्त्त, क्षुधार्त्त, कुत्सित नहीं होता। सभी प्राणी जरावस्था रहित होते हैं। सभी सदा यौवनसम्पन्न रहते हैं। त्रेता में धर्म एकपाद रहित (१/४ भाग रहित) होता है। द्वापर में यह सत्य का आधा (१/२ भाग) रहता है। कलि के प्रारम्भ में (प्रथम भाग में) धर्म मात्र एक पाद (१/४) ही शेष रह जाता है। वह अत्यन्त कृश एवं बलहीन हो जाता है। उस काल में दुष्ट-दस्यु-चोर आदि का अंकुर निकल आता है। (ये सब बढ़ जाते हैं।) हे व्रजराज! कुछ व्यक्ति इस समय सदा अधार्मिक रहते हैं। कुछ भयभीत होकर छिपाकर अधर्म करते हैं। कुलटा स्त्रियां ऊपर से भयभीत रहकर छिपा कर पापरत रहती हैं। परस्त्रीगामी लोग भी भीत होकर छिपकर यह पाप करते हैं।।२०-२५।।

धर्मिष्ठानां भयं शश्वदधर्मिष्ठाश्च कम्पिताः।
स्वल्पधर्मरता भूपाः स्वल्पवेदरता द्विजाः॥२६॥
व्रतधर्मरताः केचित्सर्वे स्वच्छन्दगामिनः।
यावत्तिष्ठन्ति तीर्थानि यावत्तिष्ठन्ति साधवः[3]॥२७॥
यावत्तिष्ठन्ति ग्रामाणां देवाः शास्त्राणि पूजनम्।
तावत्किंचित्तपः सत्यं स्वर्गधर्मांश एव च॥२८॥

---

१. आधिक्य हानिहीनाश्चेति पाठान्तरं क्वचित्।
२. क. याधिकम्।
३. माधवः इति पाठान्तरम्।

इस प्रारम्भिक कलिकाल में धार्मिक लोग तथा अधार्मिक भी सतत् भय से कांपते रहते हैं। द्विजगण आंशिक रूप से ही वेदपाठ करते हैं (अथवा यह भी अर्थ हो सकता है कि कुछ ही ब्राह्मण वेदपाठ करते हैं)। राजा लोग भी स्वल्प रूप से धर्म का पालन करते हैं। कुछ ही लोग व्रत-धर्म का पालन करते हैं। अधिकतर लोग इस सम्बन्ध में स्वेच्छाचारी होते हैं। जब तक धरती पर तीर्थों का अस्तित्व रहेगा, तभी तक यहां साधु, ग्रामदेवता तथा शास्त्र की स्थिति रहेगी, पूजा होती रहेगी, तब तक यहां किञ्चित् स्वर्ग प्रदायक धर्म का, किञ्चित् तप एवं सत्य का अंश रहेगा।।२६-२८।।

कलेर्दोषनिधेस्तात गुण एको महानपि। मानसं संभवेत्पुण्यं सुकृतं न हि दुष्कृतम्।।२९।।
तीर्थादिके गते तात नष्टो धर्मांश एव च। कलारूपश्च धर्मश्च यथा कुह्वां निशाकरः।।३०।।

हे तात! वैसे तो कलि में अनेक दोष हैं, तथापि इसमें एक महान् गुण यह है कि कलिकाल में मानस पुण्य सम्भूत होता है, परन्तु मानस दुष्कृत नहीं होता (तुलसी ने भी कहा है कि-"मानस पुण्य होई नहिं पापा")। हे तात! जब कलिकाल में तीर्थादि नष्ट हो जायेंगे, तब यह धर्मांश भी नष्ट होगा। जैसे अमावस्या के दिन चन्द्रमा कलामात्र बच जाता है, उसी प्रकार धर्म भी तब कलामात्र ही बचा रह जायेगा।।२९-३०।।

नन्द उवाच

तीर्थान्येतानि सर्वाणि तिष्ठन्त्येव कियद्दिनम्।
साधवो ग्राम्यदेवाश्च शास्त्राण्येतानि वत्सक।।३१।।

नन्दराज कहते हैं-हे वत्स! ये समस्त तीर्थ, साधु, ग्रामदेव, शास्त्र कलिकाल में कब तक रह पायेंगे?।।३१।।

श्रीकृष्ण उवाच

कलौ दशसहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदिनीम्।
देवानां प्रतिमा पूज्या शास्त्राणि च पुराणकम्।।३२।।
तदर्धमपि तीर्थानि गङ्गादीनि सुनिश्चितम्। तदर्धं ग्रामदेवाश्च वेदाश्च विदुषामपि।।३३।।
अधर्मः परिपूर्णश्च तदन्ते च कलौ पितः। एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च।।३४।।

श्रीकृष्ण कहते हैं-कलिकाल में श्रीहरि १०००० वर्षों तक ही धरा पर रहते हैं। उससे आधे समय तक (५००० वर्षों तक) ही गंगा आदि तीर्थ यहां रहेंगे। तभी तक (१०००० वर्षों तक) ही यहां देवप्रतिमा, शास्त्र, पुराण पूजित रहेंगे। गंगा आदि के अवस्थान काल (५००० वर्ष) से आधे समय तक (२५०० वर्ष तक मतातन्तर से श्रीहरि के अवस्थान काल से आधे समय तक (५००० वर्ष तक) ही ग्रामदेवता तथा विद्वत्वर्ग के वेद स्थित रह सकेंगे। हे पिता! कलिकाल के अन्तिमचरण में तो सर्वत्र अधर्म ही अधर्म रहेगा। चारों वर्ण वाले लोग एक ही वर्ण के रह जायेंगे।।३२-३४।।

न मन्त्रपूतोद्वाहाश्च न हि सत्यं न च क्षमा। स्त्रीस्वीकाररतो नित्यं ग्राम्यधर्मप्रधानतः।।३५।।

न यज्ञसूत्रं तिलकं ब्राह्मणानां च नित्यशः।
सन्ध्याशास्त्रविहीनाश्च विप्रवंशाः श्रुता अपि॥३६॥

उस घोरकाल में मन्त्रों से पवित्र विवाह नहीं होंगे। सत्य, क्षमा का अस्तित्व नहीं रहेगा। ग्राम्यधर्म की प्रधानता सर्वत्र हो जाने के कारण विवाह नारी के स्वीकृति से ही होगा। ब्राह्मणगण नित्य-प्रति तिलक-यज्ञोपवीत रहित हो जायेंगे। विप्रवंशीय लोग सन्ध्यावन्दन रहित तथा श्रुति रहित (वेदाध्ययन रहित) हो जायेंगे!॥३५-३६॥

सर्वैः सार्धं च सर्वेषां भक्षणं नियमच्युतम्।
अभक्ष्यभक्षा लोकाश्च चतुर्वर्णाश्च लम्पटाः॥३७॥
नारीषु न सती काचित्पुंश्चली च गृहे गृहे।
करोति तर्जनं कान्तं भृत्यतुल्यं च कम्पितम्॥३८॥
जाराय दत्त्वा मिष्टान्नं ताम्बूलं वस्त्रचन्दनम्।
न ददात्येव चाऽऽहारं स्वामिने दुःखिने पितः॥३९॥
पुत्रेण भर्त्सितस्तातः शिष्येण भर्त्सितो गुरुः।
प्रजाभिस्ताडितो भूपो भूपेन पीडिताः प्रजाः॥४०॥

सभी लोग सभी वर्ण वालों के साथ भोजन करेंगे। इसमें कोई नियम पालन नहीं होगा। चारों वर्ण वाले लम्पटता वरण करके अभक्ष्य भक्षणार्थ उतावले रहेंगे। नारीगण में तो सतीत्व रहेगा ही नहीं। कुलटा नारी घर-घर में रहेंगी। वे पति पर बराबर वाक्बाण का प्रहार करती तर्जन करेंगी। पति तो नौकर की तरह कांपता रहेगा। हे तात! स्त्रियां अपने जार उपपति को मिष्ठान्न-ताम्बूल-वस्त्र-चन्दनादि लेप प्रदान करेंगी। वे अपने स्वामी को आहार तक नहीं प्रदान करेंगी। वह दुःखी रहेगा। हे तात! उस काल में पुत्र पिता की भर्त्सना करेगा। शिष्य गुरु की भर्त्सना करेगा। प्रजा राजा को ही प्रपीड़ित करेगी। बदले में राजा भी प्रजा को पीड़ा प्रदान करता रहेगा॥३७-४०॥

दस्युचोरैश्च दुष्टैश्च शिष्टाश्च परिपीडिताः। सस्यहीना च वसुधा क्षीरहीनाश्च धेनवः॥४१॥
स्वल्पक्षीरे घृतं नास्ति नवनीतं च नित्यशः।
सत्यहीना जनाः सर्वे नित्यं मिथ्या वदन्ति च॥४२॥
शौचसन्ध्याशास्त्रहीना ब्राह्मणा वृषवाहकाः।
सूपकाराश्च शूद्राणां शूद्राणां शवदाहकाः॥४३॥
शूद्रस्त्रीनिरताः शश्वच्छूद्रा विप्रवधूरताः।
खादन्ति यस्य विप्रस्य भक्ष्यं च परिपाचकाः॥४४॥
मातुः परां तस्य पत्नीं शूद्रा गृह्णन्ति लम्पटाः।
भृत्यश्च हत्वा राजानं स्वयं राजा भविष्यति॥४५॥

नारी हत्वा पतिं कामाद्व्रजेज्जारं च कौतुकात्।
पुत्रश्च पितरं हत्वा स्वयं भूपो भविष्यति॥४६॥

शिष्ट जन दस्यु, चोर, दुष्ट लोगों से पीड़ित होते रहेंगे। धरती फसल रहित रहेगी। धेनु (गौयें) क्षीर रहित हो जायेंगी। दुग्ध में ऐसी अल्पता (कमी) रहेगी कि उसमें से घृत तथा मक्खन निकलना दुर्लभ हो जायेगा। सभी लोग सत्य रहित होकर सदा मिथ्याभाषी हो जायेंगे। ब्राह्मण बैल पर सामान ढोयेंगे। वे पवित्रता, सन्ध्या एवं आचार तथा शास्त्र से रहित, शूद्रों का भोजन बनाने वाले, शूद्रों का शव ढोने वाले, शूद्रा स्त्री से समागम करने वाले होंगे। शूद्रगण ब्राह्मण नारी में अनुरक्त रहेंगे। वे शूद्र जिस ब्राह्मण का अन्य भोजन करेंगे, उस घर की नारी जो मातृतुल्य उस सेवक के लिये होती है, उस पर अधिकार कर लेंगे। सेवक राजा का वध करेगा तथा स्वयं राजसिंहासन पर अधिकार कर लेगा। नारी काम के वश में होकर पति की हत्या करेगी तथा उपपति जार के साथ काम-क्रीड़ा हेतु उसका वरण करेगी। पुत्र भी पिता का वध करके स्वयं स्वामी, अधिपति हो जायेगा।।४१-४६।।

सर्वे स्वच्छन्दनिरताः शिश्नोदरपरायणाः। वङ्कुरा व्याधियुक्ताश्च कुत्सिताश्च कुचैलकाः॥४७॥
विक्षुण्णमन्त्रलिप्ताश्च[1] मिथ्यामन्त्रप्रचारकाः।
जातिहीनाश्च गुरवो वयोहीनाश्च निन्दकाः॥४८॥
राजानश्चापि म्लेच्छाश्च यवना धर्मनिन्दकाः। सत्कीर्तिमपि साधूनां कुर्वन्त्युन्मूलनं मुदा॥४९॥
पितृदेवद्विजातीनामतिथीनां च नित्यशः। पूजा नास्ति गुरूणां च पित्रोश्च पूजनं स्त्रियाः॥५०॥
स्त्रीबन्धूनां गौरवं च स्त्रीणां च सततं पितः। चोरः सत्कुलजातिश्च ब्रह्मदेवस्वहारकः॥५१॥

सभी लोग स्वेच्छाचारी, लिङ्गपरायण (कामुक) तथा अपना ही पेट भरने में लगे रहेंगे। अतः सभी कुत्सित, मलिन, गन्दे वस्त्रधारी, रोगी, असम्पूर्ण मन्त्र ग्रहण करने वाले, झूठे होंगे। मन्त्र के प्रचारक गुरु जातिहीन, अल्पायु तथा निन्दा करने वाले ही होंगे। राजा लोग म्लेच्छ जाति के होंगे। गुरु शिष्य से आयु में कनिष्ठ होंगे। राजा यवन एवं धर्म की निन्दा करने वाले होंगे। ये राजा धर्मनिन्दक तथा साधुओं की सत्कीर्त्ति का उन्मूलन (नाश) करने वाले होंगे। इस समय के पुरुष केवल स्त्री की ही (कामिनी की ही) सेवा करेंगे। अतः वे पितर, देवता, द्विज, अतिथि, गुरु की पूजा नहीं करेंगे। पितृपूजन भी नहीं होगा। केवल उसकी स्त्री, उसके बन्धु-बान्धव का ही गौरव उसके (पुरुष के) मन में बढ़ेगा। हे पिता! दोष के भंडार कलिकाल के प्रभाव से उत्तम कुलोत्पन्न लोग चौरवृत्ति अपनायेंगे। वे ब्राह्मण की वृत्ति (धनादि-सम्पत्ति-जीविका) का हरण तथा देवोत्तर सम्पत्ति का हरण करेंगे!।।४७-५१।।

मानं वहन्ति लोभेन युगधर्मेण कौतुकात्। देवायतनहीनं च जगत्सर्वं भयाकुलम्॥५२॥
अराजकं च दुर्नीतं सन्ततं कलिदोषतः।
बुभुक्षिताः कुचैलाश्च दरिद्रा व्याधिनो नराः॥५३॥

१. क. ०न्त्रक्षिप्ता०।

कपर्दकघटाध्यक्षो राजेन्द्रो हि घटेश्वरः।
वृद्धाङ्गुष्ठसमा लोका वृक्षाः शाकसमास्तथा॥५४॥

तालानां नारिकेलाणां पनसानां तथैव च। फलानि सर्षपाण्येव तत्क्षुद्रं च ततः परम्॥५५॥

इस कलिकाल में व्यक्ति कौतुक के कारण युगधर्म के प्रभाव से यही सब मार्ग लोभ के कारण अपना लेंगे। समस्त जगत् देवालय रहित तथा भयाकुल हो जायेगा। कलिदोष के कारण अराजकता, दुर्नीति की वृद्धि होगी। लोग मलिन विकृत वस्त्रधारी, भूखे, दरिद्र, व्याधिग्रस्त रहेंगे। जो कौड़ियों से भरा घट रखेगा व घटाध्यक्ष कहलायेगा। अनेक घटों का स्वामी राजा कहा जायेगा (इसका अर्थ स्पष्ट नहीं हो रहा है)। वृक्ष शाक के पौधे के बराबर तथा लोग अंगूठे के बराबर ही होंगे। यहां तक कि ताल,नारियल, कटहल के फल सरसों के दाने जैसे छोटे हो जायेंगे।।५२-५५।।

जलभाजनपात्रेण सस्येन वाससा तथा। विहीनं मन्दिरं सर्वं गृहाणामपरिष्कृतम्॥५६॥

गन्धकेन परिवृतं दीपहीनं तमोयुतम्। हिंस्रजन्तुभयाद्भीता जनाः सर्वे च पापिनः॥५७॥

सर्वे च कलहाविष्टा[1] पुंश्चल्यः कलहप्रियाः।
रूपवत्यो न कामिन्यो नराश्चापि न रूपिणः॥५८॥

नद्यो नदाः कन्दराश्च तडागाश्च सरोवराः। जलपद्मविहीनाश्च जलहीना घनास्तथा॥५९॥

इस घोर कलिकाल में गृहों में जलपात्र, भोजनपात्र, धान्य, वस्त्र की अत्यन्त अल्पता रहेगी। इन सबसे घर वंचित रहेंगे। सभी गृह गन्दे, दुर्गन्धपूर्ण, दीपशिखा रहित अन्धकारमय रहेंगे। ये सभी पातकी कलिकाल के लोग हिंस्र जन्तुओं से भयभीत रहेंगे। सभी पुरुष कलही होंगे। व्यभिचारिणी नारियां भी कलहप्रिय रहेंगी। नर-नारी रूपवान् नहीं होंगे। कलिकाल में नदी, नद, कन्दरा, सरोवर, तालाब सभी जल तथा कमल शून्य रहेंगे। यहां तक कि मेघ में भी जल नहीं रहेगा!।।५६-५९।।

अपत्यहीना नार्यश्च कामुक्यो जारसंयुताः। अश्वत्थच्छेदिनः सर्वे वृक्षहीना वसुन्धरा॥६०॥

फलहीनाश्च तरवः शाखाः स्कन्धविहीनकाः।
फलानि स्वादुहीनानि चान्नानि च जलानि च॥६१॥

मानवाः कटुवक्तारो निर्दया धर्मवर्जिताः। तदन्ते द्वादशादित्याः संहरिष्यन्ति मानवान्॥६२॥

सर्वाञ्जन्तूंश्च तापेन बहुवृष्ट्या व्रजेश्वर। अवशिष्टा च पृथिवी कथामात्रावशेषिता॥६३॥

स्त्रियां निःसन्तान तथा कामुकी एवं जार उपपति के साथ रहेंगी। लोग पीपल वृक्ष काटेंगे। वसुन्धरा वृक्ष रहित हो जायेगी। वृक्ष फलहीन तथा शाखा-स्कन्ध रहित रहेंगे। फल-अन्न-जल में स्वाद नहीं रहेगा। मनुष्य कटुवचन बोलने वाले, दयाहीन, धर्म रहित होंगे। अन्त में बारहों आदित्य उदित होकर इन मानवों का संहार करेंगे। हे व्रजेश्वर! ताप एवं महावृष्टि के द्वारा क्रमशः सभी मानवों एवं प्राणियों का संहार हो जायेगा। तब इस धरती की कथा ही बाकी बच जायेगी।।६०-६३।।

१. ख. फललोभिष्ठाः।

कलौ गते च पृथिवी क्षेत्रं वर्षागते तथा। पुनः सत्यप्रवृत्तिश्च भविष्यति क्रमेण वै॥६४॥

इत्येवं कथितं सर्वं गच्छ तात व्रजं सुखम्।
अहं दुग्धमुखो बालः पुत्रस्ते कथयामि किम्॥६५॥

नवनीतं घृतं दुग्धं दधि तक्रं परिष्कृतम्। स्वस्तिकं शुभकर्माहँ मिष्टान्नं च सुधोपमम्॥६६॥
मिष्टद्रव्यं च यत्किंचित्पितृदेवनिमित्तकम्। भुक्तं बलाच्च सत्सर्वं बालानां रोदनं बलम्॥६७॥

तदनन्तर उसी प्रकार कलि का अवसान होगा जैसे वर्षा व्यतीत होने पर खेत जल रहित हो जाते हैं। तदनन्तर पुनः क्रमशः सत्ययुग प्रवृत्त होगा। हे तात! यह सब वृत्तान्त मैंने कहा। अब आप सुख के साथ ब्रज जाईये। मैं आपका दुधमुंहा शिशु हूं। मैं और अधिक आपसे क्या कहूं? ब्रज में रहते समय मैंने रो-रोकर मांग क़र नवनीत, घृत, दुग्ध, मट्ठा, जलेबी (स्वस्तिक) का आहार शुभकर्मा होने के कारण किया है। मैंने अमृततुल्य मिष्ठान्न भी वहां खाया है। इसी प्रकार पितृगण एवं देवगण के उद्देश्य से बने मिष्ठान्नों को बालक के बल रोने से हस्तगत करके उनका आहार किया है।।६४-६७।।

तत्क्षमस्वापराधं मे बालदोषः पदे पदे। त्वं पिता तव पुत्रोऽहं यशोदा जननी मम॥६८॥

मदीयं परिहासं च यशोदां रोहिणीं वद।
कुमारास्याच्छ्रुतं सर्वं सोऽहमित्येवमीप्सितम्॥६९॥
कीर्तयिष्यसि तत्सर्वं सर्वं गोकुलवासिनम्।
कालः करोति संसर्गं बन्धूनां बन्धुभिः सह॥७०॥
कालः करोति विच्छेदं विरोधं प्रीतिमेव च।
कालः सृष्टिं च कुरुते कालश्च परिपालनम्॥७१॥

हे तात! मैंने यह सब बाल्यावस्था जनित दोष के कारण जो-जो अपराध किया है, उसे क्षमा करिये। आप मेरे पिता हैं। यशोदा मेरी जननी हैं। मेरा यह परिहास (जो उपदेश मैंने दिया है) आप यशोदा तथा रोहिणी से कहकर यह भी बतलाने की कृपा करियेगा कि मैंने यह सब कुमार बालक कृष्ण से ही सुना है। तत्पश्चात् वह सब प्रसंग आप गोकुल निवासी लोगों से भी कहियेगा। बन्धुगण से मिलन तथा वियोग, यह सब काल ही कराता है। काल ही विधि, प्रीति तथा विछोह कराने वाला है। काल ही सृष्टि करने वाला है। वही पालन भी करता है।।६८-७१।।

कालः करोति सानन्दं कालः संहरते प्रजाः।
सुखं दुःखं भयं शोकं जरां मृत्युं च जन्म च॥७२॥

सर्वं कर्मानुरोधेन काल एव करोति च। सर्वं कालकृतं तात विस्मयं न व्रजं व्रज॥७३॥

कुतस्त्वं गोकुले वैश्यो नन्दो वैश्याधिपो नृपः।
वसुदेवसुतोऽहं च मथुरायामहो कुतः॥७४॥

पिता मे कंसभीतेन त्वद्गृहे च समर्पितः। पितुः परः पिता त्वं च माता मातुः पराऽपि वा॥७५॥
मया दत्तेन ज्ञानेन पार्वत्या च व्रजेश्वर। त्यज मोहं महाभाग गच्छ तात सुखं गृहम्॥७६॥

काल ही आनन्द प्रदाता है। वही प्रजावर्ग का संहारक भी है। संसार में जो भी सुख-दुःख, भय-शोक, जरा-मृत्यु-जन्म है, सबका करने वाला काल है। वह कर्म के अनुसार यह सब प्रदान करता है। हे तात! सब कुछ काल द्वारा कृत है। हे ब्रजराज! इसलिये आप विस्मय न करें तथा ब्रजधाम जायें। इस सम्बन्ध में यह कहना है कि कहां आप गोकुल में वैश्यों के अधिपति गोपेश्वर नन्द, कहां मैं मथुरा के वसुदेव का पुत्र! पिता वसुदेव ने कंस के भय से मुझे लाकर आपके यहां समर्पित कर दिया। अतः आप मेरे लिये पिता से भी बढ़कर माननीय हैं। यशोदा मेरी माता से बढ़कर अधिक स्नेहपूर्ण माता हैं। हे ब्रजपति! मैंने तथा देवी पार्वती ने आपको जो ज्ञान प्रदान किया है, उस ज्ञान के द्वारा आप मोह त्याग करिये। हे तात! आप सब सुख से ब्रज जाईये!॥७२-७६॥

नन्द उवाच

स्मर वृन्दावनं तात रम्यं पुण्यं महोत्सवम्। गोकुलं गोकुलं रम्यं सुन्दरं यमुनातटम्॥७७॥
रमणीनां सुरम्यं च त्वत्प्रियं रासमण्डलम्। गोपालिका गोपबालान्यशोदां रोहिणीं प्रियाम्॥७८॥
प्राणाधिकां राधिकां न कथं स्मरसि पुत्रक।
वारमेकं स्वल्पदिनं गोकुलं गच्छ वत्सक॥७९॥

नन्दराज कहते हैं—हे तात! तुम रम्य वृन्दावन तथा वहां के पुण्य महोत्सव, रम्य गोकुल, गोष्ठ, सुन्दर यमुना तट, रमणीय सुन्दर अपने प्रिय रासमण्डल का स्मरण करो। वहां की गोपियों, गोपबालकों का, माता यशोदा तथा रोहिणी का स्मरण तो तुमको है न? हे वत्स कृष्ण! मेरा कहना है कि तुम अल्पकाल हेतु गोकुल चलो॥७७-७९॥

इत्येवमुक्त्वा नन्दश्च क्रोडे कृष्णं चकार सः। नेत्राश्रुणा च पूर्णेन तं सिषेच शुचाऽन्वितः॥८०॥
चुचुम्ब तद्गण्डयुगं कृत्वा वक्षसि मोहतः। सानन्दः परमानन्दो भगवांस्तमुवाच सः॥८१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० नवतितमोऽध्यायः॥९०॥

—✻✻✻—

यह कहने के उपरान्त नन्दराज ने अपनी गोद में कृष्ण को बैठा लिया। उस समय नन्दराज के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। मानो वे अपने अश्रुजल से गोविन्द को सिंचित कर रहे थे। वे अत्यन्त मोह के कारण उन प्रभु की कनपटी का चुम्बन कर रहे थे तथा उन्होंने कृष्ण को अपने वक्ष से लगा लिया था। तब उन भगवान् माधव ने परमानन्द मगन होकर नन्दराज से कहा—॥८०-८१॥

॥९०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथैकनवतितमोऽध्यायः

नन्द तथा श्रीकृष्ण से देवकी तथा वसुदेव का कथनोपकथन

श्रीभगवानुवाच

निषेकेन परिष्वङ्गो विभेदस्तेन वा भवेत्। क्षणेन दर्शनं तेन निषेकः केन वार्यते॥१॥
गमनागमनार्थं चाप्युद्धवः कथयिष्यति। प्रस्थापयामि तं शीघ्रं विज्ञास्यसि ततः पितः॥२॥
यशोदां रोहिणीं चैव गोपिकां गोपबालकान्।
प्राणाधिकां राधिकां तां गत्वा सम्बोधयिष्यति॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसुदेवश्च देवकी। बलदेवश्चोद्धवश्च तथाऽक्रूरश्च सत्वरम्॥४॥

श्रीभगवान् कहते हैं–"व्यक्ति का मिलन तथा वियोग यह सब उसके कर्मानुसार ही हो पाता है। कर्मफल से ही किसी का दर्शन क्षणकाल के लिये हो जाता है। अतः कर्मफल का निवारण कौन कर सकता है? हे पिता! मेरे गमन-आगमन का समस्त वृत्तान्त शीघ्र उद्धव आकर आपसे बतलायेंगे। मैं उनको शीघ्र यहां भेजूंगा। वे ब्रज में आकर यशोदा, रोहिणी, गोपीगण, बालकगण तथा प्राणाधिका राधिका को यहीं पर सम्बोधित करेंगे।" यह बात हो रही थी तभी वहां वसुदेव, देवकी, बलदेव, अक्रूर का आगमन हो गया!॥१-४॥

वसुदेव उवाच

नन्द त्वं बलवाञ्ज्ञानी सद्बन्धुश्च सखा मम।
त्यज मोहं गृहं गच्छ वत्सस्तेऽयं यथा मम॥५॥
दूरीभूता[1] गोकुलाच्च मथुरा नास्ति बान्धव। महोत्सवे सदानन्दे नन्द द्रक्ष्यसि पुत्रकम्॥६॥

वसुदेव कहते हैं–हे नन्दराज! आप इतना शोकाभिभूत क्यों हो रहे हैं? आपके समान महाज्ञानी सद्बन्धु मेरे सखा हैं। आप मोह त्याग करके गृह गमन करिये। यह जैसे आपका बालक है, तदनुरूप मेरा भी है। हे बन्धु! गोकुल से मथुरा की दूरी अधिक कहां है? वहां जब भी कोई आनन्दोत्सव होगा, तब आप आकर इन पुत्रों को देख सकते हैं।॥५-६॥

देवक्युवाच

यथाऽयमावयोः पुत्रस्तथैव भवतो ध्रुवम्। सालसः केन हे नन्द शुचा देहो हि लक्ष्यते॥७॥
एकादशाब्दं सबलः स्थित्वा मे मन्दिरे सुखम्।
कथं स्वकल्पदिनेनैव शोकग्रस्तो भविष्यसि॥८॥
तिष्ठ पुत्रेण सार्धं च मथुरायां कियद्दिनम्। पूर्णचन्द्राननं पश्य जन्म त्वं सफलं कुरु॥९॥

---
१. ख. द्वारभू०।

देवकी कहती हैं–हे नन्द! ये कृष्ण जैसे हम दोनों पति-पत्नी के पुत्र हैं, तदनुरूप आपके भी हैं। हे नन्द! तब क्या कारण है कि आप मुझे अलस भावापन्न तथा म्लानमुख परिलक्षित हो रहे हैं? इन्होंने यहीं एकादश वर्ष पर्यन्त आपके गृह में सुख पूर्वक कालयापन किया है। ये कुछ ही काल से ही मथुरा में विराजमान हैं। तब आप क्यों शोकातुर हो रहे हैं। उचित यह है कि आप इस पुत्र के साथ कुछ दिन मथुरा में व्यतीत करें। इनका पूर्णिमा के चन्द्र के समान मुखकमल देखकर अपना जन्म सफल करें।।७-९।।

श्रीभगवानुवाच

गच्छोद्धव सुखं भद्रं भविष्यति तव प्रियम्।
प्रहर्षं गोकुलं गत्वा यशोदां रोहिणीं प्रसूम्।।१०।।
गोपबालसमूहं च राधिकां गोपिकागणम्।
प्रबोधयाऽऽध्यात्मिकेन मद्दत्तेन शुचश्छिदा।।११।।
नन्दस्तिष्ठतु सानन्दं मन्मातुराज्ञया शुचा। नन्दस्थितिं मद्विनयं यशोदां कथयिष्यसि।।१२।।

श्रीभगवान् कहते हैं–हे उद्धव! आप सहर्ष गोकुल गमन करें। वहां आपका कल्याण होगा। आप हर्ष पूर्वक गोकुल जायें तथा वहां माता यशोदा, रोहिणी, गोप-बालकों, राधिका, गोपिकाओं को उस आध्यात्मिक ज्ञान से प्रबोधित करिये जो मेरे द्वारा कहा गया तथा शोकादि नाशक है। मेरी माता की आज्ञा के अनुरूप नन्दराज कुछ दिन यहीं सानन्द मथुरा में विराजित रहेंगे।।१०-१२।।

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः पित्रा मात्रा बलेन च।
अक्रूरेण समं तूर्णं ययावभ्यन्तरं गृहम्।।१३।।
उद्धवो रजनीं स्थित्वा मथुरायां च नारद। प्रभाते प्रययौ शीघ्रं रम्यं वृन्दावनं वनम्।।१४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० एकनवतितमोऽध्यायः।।९१।।

—※※※—

यह कहने के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण पिता, माता, बलदेव तथा अक्रूर को लेकर गृह में चले गये। हे नारद! उस रात अक्रूर ने रात्रि मथुरा में व्यतीत किया। वे प्रभात काल में शीघ्रता के साथ रमणीय वृन्दावन चले गये।।१३-१४।।

।।९१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

भगवान् द्वारा भेजे गये उद्धव का वृन्दावन जाना, उनके द्वारा वृन्दावन दर्शन, उद्धवकृत राधिका-स्तोत्र का वर्णन

नारायण उवाच

श्रीकृष्णप्रेरितो हृष्टः प्रणम्य च गणेश्वरम्। स्मरन्नारायणं शंभुं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम्॥१॥
गङ्गां च मनसि ध्यात्वा दिगीशं तं महेश्वरम्। प्रजगामोद्धवश्चैव दृष्ट्वा मङ्गलसूचकम्॥२॥
शुश्राव दुन्दुभिं घण्टानादं शङ्खध्वनिं तथा। हरिशब्दं च सङ्गीतं शुश्राव मङ्गलध्वनिम्॥३॥
पतिपुत्रवतीं साध्वीं प्रदीपं माल्यदर्पणम्। परिपूर्णतमं कुम्भं दधिलाजफलानि च॥४॥
दूर्वाङ्कुरं शुक्लधान्यं रजतं काञ्चनं मधु। ब्राह्मणानां समूहं च कृष्णसारं वृषं घृतम्॥५॥
सद्योमांसं गजेन्द्रं च नृपेन्द्रं श्वेतघोटकम्। पताकां नकुलं चाषं शुक्लं पुष्पं च चन्दनम्॥६॥
दृष्ट्वैवं पथि कल्याणं प्राप वृन्दावनं वनम्। ददर्श पुरतो वृक्षं भाण्डीरे वटमक्षयम्॥७॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गये उद्धव दूत रूप से ब्रजधाम गये। यात्रा के प्रारम्भ में उन्होंने सर्वप्रथम गणपति को प्रणाम किया। तदनन्तर नारायण, शंभु, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, दिक्पाल तथा महादेव का स्मरण करके उन्होंने समस्त मंगलसूचक शकुनों को देखा। तत्पश्चात् वे वृन्दावन की यात्रा हेतु चल पड़े। उद्धव ने मार्ग में दुन्दुभिध्वनि, घंटानाद, शंखध्वनि, हरि कीर्त्तन, ब्राह्मणादि का शुभ आशीर्वाद भी श्रवण किया। कुछ दूर जाने पर उन्होंने मार्ग में पतिपुत्रवती साध्वी स्त्री, प्रदीप, माला, दर्पण, जलभरा कुंभ, दधि, लावा, फल, दूर्वाङ्कुर, श्वेतधान्य, रजत, स्वर्ण, मधु, ब्राह्मणसमूह, कृष्णसारमृग, वृष घृत, ताजा मांस, गजेन्द्र, राजा, श्वेत अश्व, पताका, नेवला, नीलकंठपक्षी, श्वेतपुष्प, चन्दन देखा। इस प्रकार मार्ग में कल्याणप्रद शुभसूचक द्रव्यादि तथा जन्तु आदि को देखते वे वृन्दावन पहुंच गये। वहां सामने उद्धव ने भाण्डीर वनस्थ अक्षयवट देखा॥१-७॥

स्निग्धपर्णं रक्तवर्णं पुण्यदं तीर्थमीप्सितम्। सुवेषान्बालकांश्चैव रत्नभूषणभूषितान्॥८॥
वदतो बालकृष्णेति रुदतश्च शुचाऽन्वितान्। तानाश्वास्य ययौ दूरं प्रविश्य नगरं मुदा॥९॥
ददर्श नन्दशिविरं रचितं विश्वकर्मणा। मणिरत्नविनिर्माणं मुक्तामाणिक्यहीरकैः॥१०॥
परिच्छन्नं मनोरम्यं सद्रत्नकलशान्वितम्।
द्वारं चित्रं विचित्राढ्यं दृष्ट्वा च प्रविवेश सः॥११॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं तस्थौ तत्प्राङ्गणे मुदा। यशोदा रोहिणी शीघ्रं पप्रच्छ कुशलं परम्॥१२॥

उस महावृक्ष के पत्ते स्निग्ध, रक्तवर्ण, पुण्यदायक थे। वह स्थान सबका वांछित तीर्थ था। वहां सुन्दर वेशधारी रत्नभूषणभूषित बालक बालकृष्ण कह-कह कर शोक से रुदन कर रहे थे। उद्धव ने

उनको आश्वासन प्रदान किया तदनन्तर उन्होंने नगर में प्रवेश किया। उस समय मुदित होकर उद्धव ने विश्वकर्मा निर्मित नन्दराज का शिविर देखा। वह मणि-रत्न निर्मित तथा मुक्ता, माणिक हीरा से चतुर्दिक् परिशोभित था। उनमें बीच-बीच में शुद्ध रत्नों से बने मनोरम कलश शोभायमान थे। उसका चित्र-विचित्र द्वार देखकर तथा उस नगर के द्वार से नगर में प्रविष्ट उद्धव रथ से उतरे। वे उस प्रांगण में अवस्थान करने लगे। तब यशोदा तथा रोहिणी ने वहां आकर उनका कुशल-क्षेम पूछा।।८-१२।।

आसनं च जलं गां च मधुपर्कं ददौ मुदा।
क्व नन्दः क्व बलः कृष्णः सत्यं तत्कथयोद्धव।।१३।।
उद्धवः कथयामास सर्वं भद्रं क्रमेण च।
सार्धं च बलकृष्णाभ्यां नन्दः सानन्दपूर्वकम्।।१४।।
आयास्यति विलम्बेन कृष्णोपनयनावधि। युष्माकं कुशलं तत्त्वं विज्ञाय विधिपूर्वकम्।।१५।।
अहं यास्यामि मथुरां यशोदे शृणु साम्प्रतम्।
श्रुत्वा मङ्गलवार्तां च यशोदा रोहिणी मुदा।।१६।।

तत्पश्चात् यशोदा-रोहिणी ने उद्धव को आसन, जल, गौ, मधुपर्कादि प्रदान करके पूछा-"हे उद्धव! नन्दराज, बलराम तथा कृष्ण कहां हैं? यह वृत्तान्त सत्यपूर्ण रूप से कहना।" यह सुनकर उद्धव ने क्रमशः सभी मंगलमय घटनाचक्र उनसे कह दिया। उद्धव ने कहा-"हे यशोदा! नन्दराज इन बालक कृष्ण, बलराम के साथ मथुरा में आनन्दित हैं। श्रीकृष्ण का उपनयन होने पर कुछ विलम्ब से यहां आयेंगे। मैं आप लोगों का कुशल समाचार ज्ञात करने यहां आया हूं।" वह सब वृत्तान्तज्ञात करके तथा कृष्ण का वृत्तान्त यहां बतलाकर मैं यथाशीघ्र मथुरा गमन करूंगा। हे यशोदा! यही संक्षेप में कहना है। कृष्ण का मङ्गल समाचार जानकर रोहिणी तथा यशोदा मुदित हो गयीं।।१३-१६।।

ब्राह्मणाय ददौ रत्नं सुवर्णं वस्त्रमीप्सितम्। उद्धवं भोजयामास मिष्टान्नं च सुधोपमम्।।१७।।
मणिश्रेष्ठं च रत्नं च ददौ तस्मै च हीरकम्। वाद्यं च वादयामास भद्रं नानाविधं तथा।।१८।।

उन्होंने ब्राह्मणों को उत्तम रत्न सुवर्ण तथा इच्छित वस्त्र दिया। इसके पश्चात् उन्होंने उद्धव को नाना प्रकार का अमृतवत् मधुरतम मिष्ठान्न, भोजन कराया। मणियों में श्रेष्ठ, रत्नों को तथा हीरक को इस व्यक्ति ने ब्राह्मणों को उपहारार्थ प्रदान किया। इसके पश्चात् यशोदा ने उत्तममणि, रत्न, हीरक को उपहार में देकर नाना मंगल वाद्यों का वादन कराया।।१७-१८।।

ब्राह्मणान्भोजयामास कारयामास मङ्गलम्। वेदांश्च पाठयामास परमानन्दपूर्वकम्।।१९।।
शङ्करं पूजयामास विप्रद्वारा परं विभुम्। नानोपहारैर्नैवेद्यैः पुष्पधूपप्रदीपकैः।।२०।।
चन्दनैर्वस्त्रताम्बूलैर्मधुगव्यघृतादिभिः। भवानीं पूजयामास श्रीवृन्दारण्यदेवताम्।।२१।।
षोडशोपचारैर्द्रव्यैर्बलिभिर्विविधैर्मुने। महिषाणां शतं शुद्धं छागलानां सहस्रकम्।।२२।।
मेषाणामयुतं शुद्धं युक्तमादाय पञ्चकम्। ब्राह्मणेभ्यः स्वर्णशतं धेनुनां च शतं तथा।।२३।।

प्रददौ दक्षिणां तूर्णं कृष्णाकल्याणहेतवे। उद्धवं पूजयामास सादरं च पुनः पुनः॥२४॥

यशोदा ने तत्पश्चात् ब्राह्मण भोजन, मंगलोत्सव, परमानन्द पूर्ण वेदपाठ कराकर ब्राह्मणगण से नाना उपहार, नैवेद्य, पुष्प, धूप, दीपादि शंकर को प्रदान कराते हुये उनका पूजन सम्पन्न कराया। चन्दन, वस्त्र, ताम्बूल, मधु, गव्य पदार्थ, प्रभृति षोडशोपचार द्रव्य तथा विविध बलि भी वहां प्रदान किया। यथा–सौ महिष तथा १ हजार बकरे तथा दस हजार भेड़ की बलि प्रदान किया गया। उन्होंने कृष्ण के कल्याणार्थ ब्राह्मणों को १०० गौयें तथा सौ मुद्रा देकर शीघ्रता के साथ दक्षिणा भी दिया। तदनन्तर उन्होंने बारम्बार पूजित किया।।१९-२४।।

समाश्वास्य यशोदां च रोहिणीं गोपबालकान्।
वृद्धान्गोपालिकाः सर्वाः प्रययू रासमण्डलम्॥२५॥

ददर्श रासं रुचिरं चन्द्रमण्डलवर्तुलम्। श्रीरामकदलीस्तम्भशतकैरुपशोभितम्॥२६॥
युक्तैश्च स्निग्धवसनैश्चन्दनानां च पल्लवैः। पट्टसूत्रनिबद्धैश्च श्रीयुक्तमाल्यजालकैः॥२७॥
दधिलाजफलैः पट्टैः पुष्पैर्दूर्वाङ्कुरैरपि। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैः परिसंस्कृतम्॥२८॥

तत्पश्चात् उद्धव ने यशोदा, रोहिणी, गोपगण, वृद्धों तथा वहां की समस्त गोपियों को आश्वस्त किया और वहां से रासमण्डल गये। उन्होंने वहां चन्द्रमण्डलवत् वर्त्तुल रुचिर रासस्थल का दर्शन किया। वह पट्टसूत्रों से आबद्ध, स्निग्ध रसाल एवं चन्दन पल्लवों से युक्त शोभासम्पन्न मनोहर मालाओं के बंदनवार से सज्जित था। वह श्रीरामकदली स्तम्भों से भी शोभायमान हो रहा था। यह रासमण्डलभूमि सर्वत्र दधि, लावा, फल, पट्टवस्त्र, पुष्प, दूर्वांकुर, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुंकुम से सुसंस्कृत था।।२५-२८।।

वेष्टितं रक्षितं यत्नाद्गोपिकानां त्रिकोटिभिः।
त्रिलक्षैः सुन्दरै रम्यैः संसक्तं रतिमन्दिरैः॥२९॥

लक्षगोपैः परिवृतं कृष्णागमनशङ्कितैः। यमुनां दक्षिणां कृत्वा प्रययौ मालतीवनम्॥३०॥

चन्दनानां चम्पकानां यूथिकानां तथैव च।
केतकीमाधवीनां च वनं कृत्वा प्रदक्षिणम्॥३१॥
बकुलानां वञ्जुलानामशोकानां च काननम्।
मल्लिकानां पलाशानां शिरीषाणां तथैव च॥३२॥
धात्रीणां काञ्चनानां च कर्णिकानां वनं तथा।
नागेश्वराणां विपिनं लवङ्गानां तथैव च॥३३॥
वनं च शालतालानां हिन्तालानां वनं तथा।
पनसानां रसालानां लाङ्गलीनां मनोहरम्॥३४॥

मन्दारकाननं रम्यं वामं कृत्वा च सत्वरम्।
दृष्ट्वा कुन्दवनं रम्यं सम्प्राप्य मधुकाननम्॥३५॥

वह रासमण्डल ऐसा था, जिसे तीन कोटि सुन्दरी गोपियां चारों ओर से घेरकर उसकी यत्नतः रक्षा कर रही थीं। उसमें तीन लाख संख्यक रतिमन्दिर बने थे। वहां लाखों-लाख गोपगण कृष्ण के आगमन की सदा प्रतीक्षा कर रहे थे। यह सब देखते हुये तथा यमुना को अपने दाहिनी ओर छोड़ते उद्धव मालतीवन पहुंचे। वहां के चन्दनवन, चम्पकवन, जूहीवन, केतकीवन, माधवीवन की प्रदक्षिणा करते हुये-उद्धव बकुलवन, वञ्जुलवन, अशोकवन, मल्लिकावन, पलाशवन, शिरीषवन, धात्रीवन, काञ्चनवन, कर्णिकावन, नागेश्वरवन, लवंगवन, शालतालवन, हिन्तालवन, कटहल के वन, आम्रवन, मनोहर लगने वाले लांगलीवन, मन्दारवन, इन रम्य वनों को अपनी बायीं ओर छोड़ते हुये उन्होंने शीघ्र रम्यरूप कुन्दवन को देखा। तदनन्तर वे मधुवन में पहुंचे।।२९-३५।।

पुंस्कोकिलानां शब्देन मधुरेण समन्वितम्। मधुव्रतसमूहानां मधुरध्वनिपूरितम्॥३६॥
वन्यवृक्षैः परिवृतं माध्वीकाधारमीप्सितम्। वातेन वन्यपुष्पाणां परितः सुरभीकृतम्॥३७॥

तद्दृष्ट्वा राजमार्गेण यशोदोक्तेन साम्प्रतम्।
ययौ शीघ्रं निरुद्विग्निं रहस्यं बदरीवनम्॥३८॥
श्रीफलानां च निम्बानां नारिङ्गाणां वनं तथा।
पद्मानां करवीराणां तुलसीनां च काननम्॥३९॥

वह मधुवन नरकोकिल के मधुर शब्द से शब्दायमान था। वह भ्रमरों की मधुर गुंजार से चतुर्दिक् व्याप्त था। वह वनैले वृक्षों से घिरा, माध्वीक का आधाररूप था। वह वन्य पुष्पों की सुरभित वायु से सुगन्धमय था। उद्धव यह सब देखते हुये यथोक्त राजमार्ग से निरुद्विग्न चलते-चलते रमणीय रहस्यमय बदरीवन पहुंचे। उसे देखकर वे क्रमशः श्रीफलवन, नीम के वन, नारंगी के वन गये। वहां से वे कमलवन, कनेरवन से होते हुये तुलसी कानन में आये।।३६-३९।।

दृष्ट्वा रक्तिमवर्णं च सुपक्वफलमीप्सितम्।
तदेव वामतः कृत्वा विवेश कदलीवनम्॥४०॥

अतीव निर्जने रम्ये ददर्श राधिकाश्रमम्। मणीन्द्राणां च प्राकारं परिखादुर्गवेष्टितम्॥४१॥

वहां उन्होंने रक्तवर्ण के वांछित पके फलों को देखा। उस वन को अपनी बायीं ओर छोड़ते उद्धव ने कदली वन में प्रवेश किया। वहां स्थित अतीव रमणीय राधिका के आश्रम को उद्धव ने देखा जो निर्जन स्थान में था। उसकी दीवार उत्तम मणियों की थी, वह खाई तथा दुर्ग से घिरा था।।४०-४१।।

अत्यगम्यं रिपूणां च मित्राणां सुगमं सुखम्।
गोप्यं सङ्केतमार्गं च रक्षकैः परिरक्षितम्॥४२॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा।
मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारोज्ज्वलं परम्॥४३॥

रत्नेन्द्रसाररचितं रत्नस्तम्भैः सुशोभितम्। रत्नसोपानसंसक्तमन्दिरेण मनोहरम्॥४४॥

वह आश्रम शत्रुभाव वालों के लिये अत्यन्त अगम्य था तथा मित्रों के लिये सुखप्रद एवं सुगम था। वह गोपनीय तथा अनेक संकेत से युक्त मार्ग वाला था। (जो उन संकेत का रहस्य जान सके वही उसमें प्रवेश पा सकता था)। वह रक्षकों से परिरक्षित था। उसे विश्वकर्मा ने नाना विचित्र-चित्रों से सजाकर बनाया था। उसने मणीन्द्र, मुक्तामाला, माणिक्य हीरे के उत्तम उज्वल हार जड़े थे। वह उत्तम रत्नों के सारभाग से निर्मित तथा रत्न के स्तम्भों से शोभायमान था। वह रत्नसोपानयुक्त मन्दिर (निवास) अत्यन्त मनोहर था॥४२-४४॥

अमूल्यरत्नखचितं कलशैः परिशोभितम्।
वह्निशुद्धांशुकाभिश्च पताकाभिः परिष्कृतम्॥४५॥

सद्रत्नदर्पणोत्कृष्टं चर्चितं श्वेतचामरैः। ददर्श सिंहद्वारं च युक्तं रत्नकपाटकैः॥४६॥
द्वारोपरि विचित्रं च रम्यं वृन्दावनं वनम्। कदम्बकाननं रम्यं तद्वस्त्रहरणादिकम्॥४७॥
विश्वकर्माविरचितं सुरम्यं रासमण्डलम्। नानारत्नकुटीरं च गोपगोपीसमन्वितम्॥४८॥
रक्षितं गोपिकालक्षैर्वेत्रहस्तैर्मनोहरैः। स्वच्छन्दाचरणैः शश्वदमितैर्बलिभिर्मुदा॥४९॥

उसमें अमूल्य रत्न जड़े कलश शोभायमान थे। वहां अत्यन्त परिष्कृत अग्निशुद्ध वस्त्रों की पताकायें शोभायमान थीं। वहां पर उत्तमरत्नों के बने उत्कृष्ट दर्पण तथा श्वेत चामर रखे थे। उद्धव ने वहां का सिंहद्वार उत्तम रत्नों के बने कपाट से युक्त देखा। द्वार के ऊपर विचित्र वृन्दावन, रम्य कदम्बवन, चीरहरण का दृश्य तथा अतीव रम्य रासमण्डल को विश्वकर्मा ने चित्रित कर दिया था। वहां पर नाना रत्न कुटीर निर्मित थे। वे सब गोपगोपी समन्वित थे। इसकी रक्षा १ लाख गोपिकायें करती थीं, जो अत्यन्त मनोहर तथा हाथों में बेत धारण किये थीं। वे सभी स्वच्छन्द विचरती रहती थीं। उन्होंने हाथों में अनेक उपहार ले रखा था। वे सदा मुदित रहा करती थीं॥४५-४९॥

तद्द्वारं पुरतो दृष्ट्वा विलङ्घ्य च जगाम सः।
द्वितीयं द्वारमुल्लङ्घ्य तस्मादुत्तममीप्सितम्॥५०॥

द्वारं चतुर्थं सम्प्राप्य सर्वस्माच्च विलक्षणम्। तत्पश्चात्पञ्चमं द्वारं ददर्श चित्रमुत्तमम्॥५१॥
द्वारषट्कं च प्रययौ सर्वत्र रुचिरं परम्। रामरावणयोर्युद्धं भित्तिचित्रं मनोहरम्॥५२॥

इस द्वार को पार करके उद्धव ने सामने द्वितीय द्वार को देखा तथा इसे पार करके उद्धव ने तीसरे को भी पार किया तथा इन सबसे विचक्षण चतुर्थ द्वार पर वे पहुंचे। तत्पश्चात् उद्धव ने पंचम द्वार के उत्तम चित्रों को देखते हुये इसे पार किया तथा अब तक के सभी द्वारों से रुचिर छठे द्वार पर पहुंचे जहां की दीवार पर देवशिल्पी विश्वकर्मा ने राम-रावण युद्ध का मनोहर चित्र अंकित किया था॥५०-५२॥

दशावतारं विष्णोश्च कृत्रिमं रासमण्डलम्। यमुनाजलकेलिं च रचितां विश्वकर्मणा॥५३॥
गोपिकानां सहस्त्रेण षष्ठं द्वारं च रक्षितम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माण भूषणैर्भूषितेन च॥५४॥

सद्रत्नदण्डहस्तेन हीरकैर्भूषितेन च। मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारान्वितेन[१] च॥५५॥
माधवी तत्प्रधाना सा पप्रच्छ साम्प्रतं शिवम्।
ददौ प्रत्युत्तरं सर्वं क्रमेण च स उद्धवः॥५६॥

वहां विष्णु के दशावतार के चित्र-चित्रित थे। उन दीवारों पर विश्वकर्मा ने कृत्रिम रासमण्डल तथा यमुना में जल केलि का भी जीवन्त चित्रण किया था। इस छठे द्वार की रक्षा एक हजार गोपीगण कर रही थीं। वे सभी रत्नों के सारभाग से निर्मित आभूषणों से भूषिता थीं। वे हीरे के आभूषणों से भी भूषित थीं। उनके आभूषण मणीन्द्रों, मुक्ता, माणिक्य के थे तथा हीरों के हार को भी उन्होंने पहन रखा था। उन सबके हाथों में उत्तम रत्नदण्ड थे। उनमें से प्रधाना माधवी नामक गोपी ने सबसे पहले उद्धव से उनकी कुशलता को पूछा। उद्धव ने माधवी को क्रमशः सभी बातों का उत्तर भी प्रदान किया॥५३-५६॥

गत्वा विज्ञापयामास राधाप्रियसखीगणम्।
सा माधवी महाहृष्टा तत्र संस्थाप्य तं मुदा॥५७॥
श्रुत्वा मङ्गलवार्तां च राधाप्रियसखीगणैः। कृत्वा शङ्खध्वनिं घण्टामृदङ्गपटहस्वनम्॥५८॥
कृत्वा निर्मञ्छनं शीघ्रमुद्धवं प्रियमागतम्[२]। हृष्टा प्रवेशयामास राधाभ्यन्तरमुत्तमम्॥५९॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं गत्वा मन्दिरमुत्तमम्। ददर्श पुरतो राधां कुह्वा चन्द्रकलोपमाम्॥६०॥
सुपक्वपद्मनेत्रां च शयानां शोकमूर्च्छिताम्।
रुदतीं रक्तवदनां क्लिष्टां च त्यक्तभूषणाम्॥६१॥
निश्चेष्टां च निराहारां सुवर्णवर्णकुन्तलाम्।
शुष्किताधरकण्ठां च किञ्चिन्निःश्वाससंयुताम्॥६२॥
प्रणनाम च तां दृष्ट्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्त्या भक्तः स उद्धवः॥६३॥

इस समय माधवी ने उद्धव को वहीं ठहराया तथा अत्यन्त आह्लाद के साथ राधिका की सखियों को समस्त संवाद प्रदान किया। उस समय राधिका की प्रिय सखियों ने यह मंगल समाचार सुनकर आनन्द के साथ शंख-घंटा-मृदंग-पणवादि वाद्यों का वादन किया तथा हर्ष पूर्वक उद्धव को उस भवन के अन्दर राधा के उत्तम गृह में प्रवेश कराया। उस समय उद्धव ने वहां उपस्थित होकर देखा कि वह गृह तो अत्यन्त सुन्दर अमूल्य रत्नों से बना है। वहां चन्द्रकला की तरह रूपवती राधा को उद्धव ने अपने समक्ष देखा। वे खिले हुये कमल के समान नेत्रों वाली शोकमूर्च्छिता होकर पर्यङ्क पर लेटी थीं। उन्होंने अपने समस्त आभूषणों को उतार दिया था। अत्यन्त रुदनरत रहने के

१. क. ०सार०।
२. क. ०मीप्सितम्।

कारण उनका मुखमण्डल रक्तिम हो गया था। शरीर शीर्ण हो गया था। वे उपवासी-निराहार-निश्चेष्टभाव से शय्या पर पड़ी थीं! उनके ओष्ठ एवं अधर शुष्क थे केश तक स्वर्ण वर्ण हो गये थे तथा श्वास अत्यन्त मन्दगति से चल रही थी! राधा की ऐसी दीन अवस्था देखकर अत्यन्त भक्ति के कारण भक्त उद्धव का शरीर रोमांचित हो उठा। उन्होंने नत होकर राधिका को प्रणाम किया तथा राधा की स्तुति करने लगे।।५७-६३।।

उद्धव उवाच

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम्। यत्कीर्तिः कीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम्।।६४।।

नमो गोकुलवासिन्यै राधिकायै नमो नमः।
शतशृङ्गनिवासिन्यै चन्द्रावत्यै नमो नमः।।६५।।

तुलसीवनवासिन्यै वृन्दारण्यै नमो नमः। रासमण्डलवासिन्यै रासेश्वर्यै नमो नमः।।६६।।

विरजातीरवासिन्यै वृन्दायै च नमो नमः।
वृन्दावनविलासिन्यै कृष्णायै च नमो नमः।।६७।।

उद्धव कहते हैं-ब्रह्मादि देवगण जिनकी सतत् वन्दना करते रहते हैं, जिनके गुण कीर्त्तन से त्रैलोक्य पवित्र हो जाता है, मैं उन राधा के चरणों की वन्दना करता हूं। मैं गोलोकवासिनी देवी राधा को प्रणाम करता हूं! हे देवी! आप शतशृङ्गपर्वत (गोलोकस्थ पर्वत) पर निवास करने वाली रासेश्वरी हैं। आपको करवद्ध प्रणाम करता हूं! हे देवी! आप ही विरजा नदी के तट पर स्थिता देवी वृन्दा हैं। मैं आपको सादर प्रणाम करता हूं! हे देवी! आप वृन्दावन निवासिनी कृष्णा को मैं नमस्कार करता हूं।।६४-६७।।

नमः कृष्णप्रियायै च शान्तायै च नमो नमः।
कृष्णवक्षःस्थितायै च तत्प्रियायै नमो नमः।।६८।।
नमो वैकुण्ठवासिन्यै महालक्ष्म्यै नमो नमः।
विद्याधिष्ठातृदेव्यै च सरस्वत्यै नमो नमः।।६९।।

सर्वैश्वर्याधिदेव्यै च कमलायै नमो नमः। पद्मनाभप्रियायै च पद्मायै च नमो नमः।।७०।।

महाविष्णोश्च मात्रे च पराद्यायै नमो नमः।
नमः सिन्धुसुतायै च मर्त्यलक्ष्म्यै नमो नमः।।७१।।
नारायणप्रियायै च नारायण्यै नमो नमः।
नमोऽस्तु विष्णुमायायै वैष्णव्यै च नमो नमः।।७२।।

आप कृष्णप्रिया, शान्त को प्रणाम! आप कृष्ण के वक्षस्थल पर स्थित उनकी प्रिया हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूं! आप ही वैकुण्ठ निवासिनी महालक्ष्मी तथा विद्या की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती हैं।

मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप सभी ऐश्वर्यों की अधिष्ठातृदेवी तथा कमला हैं। आप ही पद्मनाभ प्रभु की प्रिया पद्मा हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! हे देवी! आप ही महाविष्णु की माता, परा आद्याशक्ति हैं। आपको बारम्बार प्रणाम! आप सिन्धुसुता तथा मृत्युलोक की लक्ष्मी हैं। आपको बारम्बार प्रणाम! आप ही वैष्णवी हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूं!।।६८-७२।।

महामायास्वरूपायै सम्पदायै नमो नमः।
नमः कल्याणरूपिण्यै शुभायै च नमो नमः।।७३।।
मात्रे चतुर्णां वेदानां सावित्र्यै च नमो नमः।
नमोऽस्तु बुद्धिरूपायै ज्ञानदायै नमो नमः।।७४।।

नमो दुर्गविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः। तेजःसु सर्वदेवानां पुरा कृतयुगे मुदा।।७५।।

आप महामायास्वरूपा, सर्वसम्पदारूपा, कल्याणरूपा तथा शुभा हैं। आपको बारम्बार प्रणाम! आप चतुर्वेदों की माता सावित्री हैं, आप बुद्धिरूपा तथा ज्ञानप्रदा भी हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप ही दुर्गनाशिनी दुर्गादेवी भी हैं। आपका ही पूर्व सत्ययुग में देवताओं में तेजरूपेण स्थिता हैं।।७३-७५।।

अधिष्ठानकृतायै च प्रकृत्यै च नमो नमः। नमस्त्रिपुरहारिण्यै त्रिपुरायै नमो नमः।।७६।।
सुन्दरीषु च रम्यायै निर्गुणायै नमो नमः। नमो निद्रास्वरूपायै निर्गुणायै नमो नमः।।७७।।
नमा दक्षसुतायै च नमः सत्यै नमो नमः। नमः शैलसुतायै च पार्वत्यै च नमो नमः।।७८।।
नमो नमस्तपस्विन्यै ह्युमायै च नमो नमः। निराहारस्वरूपायै ह्यपर्णायै नमो नमः।।७९।।

आप ही प्रकृति की अधिष्ठान स्वरूपा हैं। आप त्रिपुर का नाश करने वाली त्रिपुरा हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप सुन्दरियों के बीच अत्यन्त रम्य सुन्दरी हैं। मैं आप निर्गुणा को प्रणाम करता हूं! आप निद्रास्वरूपा तथा निर्गुणा को बारम्बार प्रणाम! आप दक्षसुता सती हैं। आप ही शैलसुता पार्वती भी हैं। आपको बारम्बार प्रणाम करता हूं! हे तपस्विनी उमा! निराहारस्वरूपा अपर्णा! आपको बारम्बार प्रणाम!।।७६-७९।।

गौरीलोकविलासिन्यै नमो गौर्यै नमो नमः।
नमः कैलासवासिन्यै माहेश्वर्यैः नमो नमः।।८०।।
निद्रायै च दयायै च श्रद्धायै च नमो नमः।
नमो धृत्यै क्षमायै च लज्जायै च नमो नमः।।८१।।
तृष्णायै क्षुत्स्वरूपायै स्थितिकर्त्र्यै नमो नमः।
नमः संहाररूपिण्यै महामायै नमो नमः।।८२।।
भयायै चाभयायै च मुक्तिदायै नमो नमः।
नमः स्वधायै स्वाहायै शान्त्यै कान्त्यै नमो नमः।।८३।।

नमस्तुष्ट्यै च पुष्ट्यै च दयायै च नमो नमः।
नमो निद्रास्वरूपायै श्रद्धायै च नमो नमः॥८४॥
क्षुत्पिपासास्वरूपायै लज्जायै च नमो नमः।
नमो धृत्यै क्षमायै च चेतनायै नमो नमः॥८५॥

हे देवी! आप गौरीलोक में विलास करने वाली गौरी हैं। आप ही कैलास निवासिनी माहेश्वरी हैं। मैं आपको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं! आप निद्रा, दया, श्रद्धा, धृति, क्षमा, लज्जा, तृष्णा, क्षुधास्वरूपा, स्थितिकारिणी, संहाररूपा, महामाया, भयरूपा-अभयरूपा, मुक्तिप्रदा, स्वधा, स्वाहा, शान्ता, कान्ता, तुष्टि-पुष्टि, दयारूपा हैं। आपको बारम्बार मेरा प्रणाम! आप ही निद्रा, श्रद्धा, क्षुधा-पिपासा, लज्जा, धृति, क्षमा, चेतना हैं।।८०-८५।।

सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै सर्वमात्रे नमो नमः। अग्नौ दाहस्वरूपायै भद्रायै च नमो नमः॥८६॥

शोभायै पूर्णचन्द्रे च शरत्पद्म नमो नमः।
नास्ति भेदो यथा देवि दुग्धधावल्ययोः सदा॥८७॥

यथैव गन्धभूम्योश्च यथैव जलशैत्ययोः। यथैव शब्दनभसोर्ज्योतिः सूर्यकयोर्यथा॥८८॥
लोके वेदे पुराणे च राधामाधवयोस्तथा। चेतनं कुरु कल्याणि देहि मामुत्तरं सति॥८९॥

हे देवी! आप ही सर्वशक्तिस्वरूपा, सबकी माता हैं। आप ही अग्नि में दाहिका तथा भद्रा भी हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं! आप ही पूर्णचन्द्ररूपा शोभामयी तथा शरत्कालीन पद्म की शोभारूपा हैं। हे देवी! दूध में तथा उसकी धवलता में कोई भी भेद नहीं है। तदनुरूप गन्ध एवं भूमि के बीच, जल तथा शीतलता के बीच, आकाश और शब्द के बीच, सूर्य तथा ज्योति के बीच कोई भी भेद ही नहीं है। इसी प्रकार वेद तथा पुराणों में, यहां तक कि लोक व्यवहार में भी राधा-कृष्ण के बीच कोई भेद नहीं है! हे सती! आप अब चैतन्य होकर मुझे उत्तर दीजिये।।८६-८९।।

इत्युक्त्वा चोद्धवस्तत्र प्रणनाम पुनः पुनः।
इत्युद्धवकृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिपूर्वकम्॥९०॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते हरिमन्दिरम्।
न भवेद्बन्धुविच्छेदो रोगः शोकः सुदारुणः॥९१॥
प्रोषिता स्त्री लभेत्कान्तं भार्याभेदी लभेत्प्रियाम्।
अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो लभते धनम्॥९२॥
निर्भूमिर्लभते भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाम्।
रोगाद्विमुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥९३॥

यह कहकर उद्धव ने देवी राधा को बारम्बार प्रणाम किया। इस उद्धवकृत स्तोत्र का पाठ जो

भक्ति पूर्वक करता है, वह इहलोक में सुख भोगकर हरिधाम गमन करता है। उसे कभी भी बन्धुजनित विच्छेद, रोग तथा दारुण शोक नहीं होता। ऐसी स्त्री पुनः अपने पति को प्राप्त हो जाती है, जिसका पति दीर्घकाल से विदेश चला गया होता है। जो व्यक्ति पत्नी रहित है, उसे पत्नीलाभ, पुत्र रहित को पुत्र प्राप्ति, निर्धन को धन, भूमिहीन को भूमि, प्रजाहीन को प्रजा की प्राप्ति हो जाती है। रोगी रोग रहित तथा बन्धन में पड़ा व्यक्ति बन्धन रहित हो जाता है।।९०-९३।।

भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येताऽऽपन्नआपदः।
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः।।९४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधास्तोत्रं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः।।९२।।
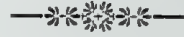
भयभीत व्यक्ति इस स्तव के पाठ से भय रहित होता है। आपत्तिग्रस्त को आपत्ति से छुटकारा मिल जाता है। जिसकी कीर्त्ति नहीं है, वह यशस्वी तथा मूर्ख विद्वान् पण्डित हो जाता है।।९४।।

।।९२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

राधा एवं उद्धव का वार्त्तालाप

नारायण उवाच

उद्धवस्तवनं श्रुत्वा चेतनां प्राप्य राधिका।
विलोक्य कृष्णाकारं च तमुवाच शुचाऽन्विता।।१।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—उद्धव का यह स्तोत्र सुनकर राधा चैतन्य हो गईं। उस समय उन्होंने जब कृष्ण के ही आकार वाले उद्धव को देखा, तब वे शोकार्त्त मन से कहने लगीं—।।१।।

राधिकोवाच

किन्नाम भवतो वत्स केन वा प्रेरितो भवान्। आगतो वा कुत इति ब्रूहि मां केन हेतुना।।२।।

श्रीराधा कहती हैं—हे वत्स! तुम्हारा नाम क्या है? तुमको किसने भेजा है? तुम कहां से आये हो? तुम्हारे आने का उद्देश्य क्या है? यह सब कहो।।२।।

कृष्णाकृतिस्त्वं सर्वाङ्गैर्मन्ये त्वां कृष्णपार्षदम्।
कृष्णस्य कुशलं ब्रूहि बलदेवस्य साम्प्रतम्॥३॥

नन्दस्तिष्ठति तत्रैव हेतुना केन तद्वद। समायास्यति गोविन्दो रम्यं वृन्दावनं वनम्॥४॥
पुनर्द्रक्ष्यामि तस्यैव पूर्णचन्द्रमुखं शुभम्। पुनः क्रीडां करिष्यामि तेनाहं रासमण्डले॥५॥
जले च विहरिष्यामि पुनर्वा सखिभिः सह। श्रीनन्दनन्दनाङ्गे च पुनर्दास्यामि चन्दनम्॥६॥

तुम कृष्ण की आकृति वाले हो। तुम्हारा सभी अंग कृष्ण जैसा है। अतः तुम कृष्ण के पार्षद ही हो। तुम कृष्ण का तथा बलदेव का कुशल समाचार कहो। यह भी बतलाओ कि नन्दराज वहीं क्यों रुके हैं? गोविन्द इस रम्य वृन्दावन में कब आगमन करेंगे? मैं कब उनका शुभ चन्द्रमुख देख सकूंगी? कब इस रासमण्डल में मैं उनके साथ क्रीड़ारत हो सकूंगी? पुनः सखियों के साथ कब मैं उनके साथ जलविहार कर पाऊंगी? मैं अब कब उन नन्दनन्दन के श्रीअंगों में चन्दन लेप लगा सकूंगी?॥३-६॥

उद्धव उवाच

उद्धवेत्यभिधानं मे क्षत्रियोऽहं वरानने। प्रेषितः शुभवार्तार्थं कृष्णेन परमात्मना॥७॥
तवान्तिकं समायातः पार्षदोऽहं हरेरपि। कृष्णस्य बलदेवस्य शिवं नन्दस्य साम्प्रतम्॥८॥

उद्धव कहते हैं—हे वरानने! मेरा नाम उद्धव है तथा मैं क्षत्रिय जाति हूं। परमात्मा कृष्ण ने आपके साथ शुभवार्त्ता हेतु मुझे भेजा है। मैं कृष्ण प्रभु का पार्षद होने के कारण आपके पास आया हूं। इस समय मथुरा में कृष्ण-बलदेव तथा नन्दराज सकुशल हैं।।७-८।।

राधिकोवाच

अस्ति तद्यमुनाकूलं सुगन्धिपवनोऽस्ति सः।
तस्य केलिकदम्बानां मूलमस्त्येव साम्प्रतम्॥९॥
पुण्यं वृन्दावनं रम्यं तद्विद्यमानमीप्सितम्।
पुस्कोकिलानां विरुतं तल्पं चन्दनचर्चितम्॥१०॥
चतुर्विधं च भोज्यं च मधुपानं च सुन्दरम्।
दुरन्तो दुःखदोऽप्यस्ति पापिष्ठो मन्मथस्तथा॥११॥

ते च रत्नप्रदीपाश्च ज्वलन्ति रासमण्डले। मणीन्द्रसारनिर्माणमस्त्येव रतिमन्दिरम्॥१२॥

देवी राधा कहती हैं—हे वत्स उद्धव! यह यमुनातट, यह सगुन्धित पवन, यह केलि कदम्बमूल (केलिक्रीड़ा हेतु कदम्ब वृक्ष की छाया), यह रम्य वृन्दावन जो परम पावन है। यह कोकिलों का कूजन तथा उनका विचरण, मनोहर मधु (शहद) पान भी यहां उपलब्ध है। यहां पर तो दुर्द्धर्ष तथा विरहीजन को दुःख देने वाला पापी कामदेव, उत्तम चन्दन चर्चित शय्या, चारों प्रकार के भोजनीय पदार्थ भी उपलब्ध हैं। यहां रासमण्डल में रत्नों के दीप उद्भासित रहते हैं। यहां का रति मन्दिर मणियों के सारभाग से निर्मित है।।९-१२।।

गोपाङ्गनागणोऽस्त्येव पूर्णचन्द्रोऽस्ति शोभितः। सुगन्धिपुष्परचितं तल्पं चन्दनचर्चितम्॥१३॥
ताम्बूलं रतिभोगार्हं कर्पूरादिसुसंस्कृतम्। सुगन्धिमालतीमाल्यं श्वेतचामरदर्पणम्॥१४॥
मुक्तामाणिक्यसंसक्तहीरहारमनोहरम्। कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च पात्रपूर्णं च चन्दनम्॥१५॥
नानोपकाननं रम्यं रम्यक्रीडासरोवरम्। सुगन्धिपुष्पोद्यानं च पद्मश्रेणीमनोहरम्॥१६॥
अस्त्येवं सर्वविभवः प्राणनाथः कुतो मम।
हा कृष्ण हा रमानाथ क्वासि मे प्राणवल्लभ॥१७॥

यहां गोपियां, पूर्णिमा का चन्द्र विद्यमान है। यहां सुगन्धित पुष्पों से रचित चन्दन चर्चित शय्या भी है। यह रतिभोगार्थ प्रस्तुत कर्पूर से सुसंस्कृत ताम्बूल, सुगन्धित मालती माला, श्वेत चामर, मुक्ता-मणि-हीरा आदि से युक्त मनोहर दर्पण, कस्तूरी-कुंकुम युक्त चन्दन जो पात्र में भरा है, यहां उपलब्ध है। यहां अनेक उपवन, रम्य क्रीड़ा सरोवर, सुगन्धित पुष्पों के उद्यान, मनोहर कमलों की श्रेणी, इत्यादि सभी वैभव तो यहां विद्यमान हैं, तथापि हमारे प्राणनाथ कहां हैं? हा कृष्ण! हा रमानाथ! हा प्राणवल्लभ! तुम कहां हो?॥१३-१७॥

क्व वाऽपराधो दास्याश्च दासीदोषः पदे पदे।
इत्येवमुक्त्वा सा देवी पुनर्मूर्च्छामवाप सा॥१८॥
चेतनां कारयामास पुनरेव स उद्धवः। तां दृष्ट्वा परमाश्चर्यं मेने क्षत्रियपुङ्गवः॥१९॥

"मुझ दासी ने क्या अपराध किया?, तथापि दासी का अपराध तो प्रति पग पर होता है!" यह कहकर राधा मूर्च्छित हो गईं, तथापि उद्धव ने प्रयत्न पूर्वक राधा को पुनः चैतन्य किया। राधा की यह (विरहपूर्ण) स्थिति देखकर वे क्षत्रियप्रवर उद्धव अत्यन्त विस्मित हो गये॥१८-१९॥

सखीभिः सप्तभिः शश्वत्सेवितां श्वेतचामरैः।
गोपीनां च त्रिलक्षैश्च सुप्रियैः प्रियसेविताम्॥२०॥
दिवानिशं वेष्टितां च गोपीनां शतकोटिभिः।
काचित्कज्जलहस्ता च काचिन्माल्यधराऽपरा॥२१॥
काचित्सिन्दूरहस्ता च काचिद् गोरोचनाकरा।
काचिच्चन्दनपात्रं च हस्ते कृत्वा च तिष्ठति॥२२॥

उस समय सात सखियां अनवरत राधा को श्वेत चामर झलने लगीं। तीन लाख गोपियां राधा की सेवा करती जा रही थीं। सैकड़ों-करोड़ गोपियां राधा को दिन-रात घेरे हुये थीं। किसी ने हाथों में काजल लिया था, किसी के हाथ में पात्र में भरा चन्दन था। किसी ने हाथ में माला लिया था। कोई सिन्दूर, कोई गोरोचन, लिये वहां खड़ी थी॥२०-२२॥

काचिद्दर्पणहस्ता च काचित्कुङ्कुमवाहिका। कस्तूरीपात्रमिष्टं च काचिद्वहति तत्र वै॥२३॥

काचिच्चम्पकपात्रं च करे धृत्वा च तिष्ठति।
मधुभिर्मधुरैः पूर्णं पात्रं धृत्वा शुचाऽन्विता॥२४॥
काचित्सुगन्धितैलं च गृहीत्वा परितिष्ठति।
काचिद्वहति ताम्बूलं कर्पूरादिसुवासितम्॥२५॥
काचिद्वासितमच्छं च जलं धृत्वा च तिष्ठति।
क्रीडापुत्तलिकां काचिच्चित्राढ्यां परिरक्षति॥२६॥

किसी ने दर्पण, किसी ने कुंकुम की डिब्बी, किसी ने वांछित कस्तूरी पात्र हाथों में लिया था। किसी ने चम्पा का पात्र लिया था तथा वहां खड़ी थी। कोई दुःखी होकर मधुर मधु से पूर्ण पात्र लिये वहीं पर स्थित थी। कोई सुगन्धित तैल, कोई सुगन्धित ताम्बूल, तो कोई स्वच्छ जल लिये वहां खड़ी थी। कोई वहां चित्रमयी क्रीड़ा पुतली लिये विराजित थी।।२३-२६।।

काचिद्वहति कन्दूकं काचिच्च रत्नभूषण। वह्निशुद्धांशुकं काचिदमूल्यं परिरक्षति॥२७॥
काचिद्भक्ष्योपहारं च गृहीत्वा परिवर्तते।
काचिच्च केशवेशार्थं करोति माल्यमीप्सितम्॥२८॥
काचित्कङ्कतिकां धृत्वा पुरतः परितिष्ठति।
काचिद्यावकहस्ता च काचिद्धात्रीरसं मुदा॥२९॥
दूरतोऽपि वहत्येवं भीता च परितिष्ठति।
काचिद्भीता भिया स्तौति काचिद्रोदिति शोकतः॥३०॥
काचित्तां बोधयेत्येवं विदग्धा विरहातुराम्।
काचिदुत्तापतप्ता च स्निग्धतल्पे मनोहरे॥३१॥
स्थापयेद्दाहदूरार्थं स्निग्धपद्मदले शुभे[1]। एवंभूतां च तां दृष्ट्वा चोवाच पुनरुद्धवः।
सुप्रियं कर्णपीयूषं विनयेन च भीतिवत्॥३२॥

किसी ने हाथों में गेंद लिया था। कोई सखी अमूल्य अग्नि शुद्ध वस्त्र लेकर तो कोई भक्ष्य सम्बन्धित उपहार लिये हुये वहां खड़ी थी। कोई सखी वहां केश सज्जा हेतु उत्तममाला, गूंथ रही थी। कोई सखी राधा के सामने कंघी लेकर, कोई आलता लेकर, कोई आमला का रस लेकर वहां से कुछ फासले पर भयभीत-सी खड़ी हो गईं। कुछ भयभीत-सी राधा की स्तुति कर रही थीं। कुछ शोक से रो रही थीं। कोई बुद्धिशाली गोपी राधा को प्रबोधित कर रही थी। कोई विरहिणी राधा के विरहजनित सन्ताप से स्वयं सन्तप्त हो गईं। वे राधा के इस सन्ताप को दूर करने के लिये उनको कोमल शुभ पद्मदलों की शय्या पर लिटाने लगीं। उनकी यह स्थिति देखकर पुनः उद्धव ने प्रिय कर्ण मधुर वाक्य डरते-डरते विनय से कहा-।।२७-३२।।

१. क. मुने।

उद्धव उवाच

जाने त्वां देवदेवीशां सुस्निग्धां सिद्धयोगिनीम्।
सर्वशक्तिस्वरूपां च मूलप्रकृतिमीश्वरीम्॥३३॥
श्रीदामशापाद्धरणीं प्राप्तां गोलोककामिनीम्।
कृष्णप्राणाधिकां देवीं तद्वक्षःस्थलवासिनीम्॥३४॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शुभवार्तामभीप्सिताम्।
सुस्थिरं सखिभिः सार्धं हृदयस्निग्धकारिणीम्॥३५॥
दुःखदावाग्निदग्धायाः सुधावर्षणरूपिणीम्।
विरहव्याधियुक्ताया रसायनसमां शुभाम्॥३६॥

उद्धव कहते हैं—हे देवी! आप देव-देवी की अधिष्ठात्री, अत्यन्त कोमल सिद्धयोगिनी हैं। आप सर्वशक्तिस्वरूपा मूलप्रकृति ईश्वरी हैं। आप कृष्ण की प्राणाधिका प्रिया देवी हैं तथा उनके वक्षस्थल पर विराजित रहती हैं। आप तो गोलोक की कामिनी हैं जो श्रीदाम के शाप के कारण धरणी पर आई हैं। हे देवी! मैं ईप्सित (वांछित) शुभ बात कहता हूं। मैं ऐसी हृदय को स्निग्ध करने वाली बात कहने वाला हूं, जिसे आप अपनी सखियों के साथ श्रवण करिये। वह दुःखरूपी दावाग्नि में जो दग्ध हो रहा है, उसके लिये अमृतवर्षारूप है। वह विरहव्याधि से पीड़ित के लिये रसायन औषधि के समान कल्याणकारी भी है।।३३-३६।।

तत्र तिष्ठति नन्दोऽयं सानन्दो मुदितः सदा। निमन्त्रितश्च वसुना कृष्णोपनयनावधि॥३७॥
गृहीत्वा सबलं कृष्णं साङ्गे मङ्गलकर्मणि।
स नन्दः परमानन्दो मुदाऽऽयास्यति गोकुलम्॥३८॥
आगत्य कृष्णो मुदितः प्रणम्य मातरं पुनः
नक्तमायास्यति मुदा पुण्यं वृन्दावनं वनम्॥३९॥

हे देवी! वहां पर नन्दराज आनन्द पूर्वक मुदित मन से रुके हैं। वसुदेव ने उनको वहां पर कृष्ण के उपनयन पर्यन्त के लिये रोक लिया है। नन्दराज बलदेव तथा कृष्ण का यह मंगल संस्कार सम्पन्न हो जाने पर परम मुदित होकर गोकुल प्रत्यावर्त्तित होंगे। तत्पश्चात् प्रसन्नता के साथ श्रीकृष्ण गोकुल आकर प्रसन्न मन से माता को प्रणाम करेंगे। वे रात्रिकाल में हर्ष के साथ इस पुण्यमय वृन्दावन में आगमन करेंगे।।३७-३९।।

अचिराद्द्रक्ष्यसि सति श्रीकृष्णमुखपङ्कजम्।
सर्वं विरहदुःखं च संत्यक्ष्यसि च साम्प्रतम्॥४०॥
सुस्थिरा भव मातस्त्वं त्यज शोकं सुदारुणम्।
वह्निशुद्धांशुकं रम्यं परिधाय प्रहर्षिता॥४१॥

अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणग्रहणं कुरु। गृहाण चन्दनं स्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्॥४२॥

आप यथाशीघ्र श्रीकृष्ण के मुखकमल का दर्शन करेंगी। तभी आपका समस्त विरहजनित दुःख दूर हो जायेगा। हे माता! आप इस दारुण शोक का त्याग कर दीजिये। आप हंसते हुये अग्निशुद्ध रम्य वस्त्रों को धारण करके, अमूल्य रत्नों से बने भूषणों को धारण करिये। आप उत्तम चन्दन-कुंकुम-कस्तूरी युक्त लेप को अपने अंगों पर लगायें।।४०-४२।।

कुरुष्व केशसंस्कारं मालतीमाल्यभूषितम्।
सुवेषं कुरु कल्याणि गण्डे च चित्रपत्रकम्॥४३॥
सिन्दूरबिन्दुं सीमन्ते कस्तूरीचन्दनान्वितम्।
अलक्तकाक्तं चरणं युक्तं यावकभूषणैः॥४४॥

कुरुष्व तिष्ठ चोत्तिष्ठ रत्नसिंहासने वरे। सपङ्कपङ्कजं तल्पं त्यज सार्धं शुचा सति॥४५॥

भृङ्क्ष्व कृष्णेन मनसा विशुद्धं मधुरं मधु।
संस्कृतं भासितं तोयं ताम्बूलं च सुवासितम्॥४६॥

आप केशों का संस्कार करके उसे मालती माला से भूषित करें। हे कल्याणी! आप गण्डस्थल पर (कनपटी के कुछ नीचे तक गण्डस्थल होता है) उत्तम चित्र-पत्रक बनवाये। मांग को सिन्दूर-बिन्दु तथा कस्तूरी चन्दन से युक्त करिये। आप चरणों को आलता रंग तथा बिछिया आदि आभूषणों से भूषित करिये। अब आप उठिये। उठकर उत्तम रत्नसिंहासनसीन हो जायें। इस पंकिल पंकजशय्या का तथा शोक का त्याग करके कृष्ण को मन अर्पित करिये। विशुद्ध सुमधुर मधु का पान करके संस्कृत स्वच्छ जल एवं सुगन्धित ताम्बूल का सेवन करिये।।४३-४६।।

रत्नेन्द्रसारनिर्माणपर्यङ्के सुमनोहरे। वह्निशुद्धांशुकाक्ते च मालतीमाल्यभूषिते॥४७॥
सुगन्धियुक्ते कस्तूरीजातीचम्पकचन्दनैः। परितो मालतीमाल्यहीरहारविभूषिते॥४८॥
मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यसुन्दरैश्च परिष्कृते। पुष्पमाल्योपधाने च मङ्गलार्हे मुदाऽन्विता॥४९॥

उत्तम रत्नों के सार से निर्मित मनोहर शय्या पर शयन करिये। वह अग्निशुद्ध वस्त्रों से आवरित मालती माला से सजी है। वह कस्तूरी-चमेली-चम्पा-चन्दन से सर्वत्र सुगन्धित है। वह शय्या मालती मालाओं हीरक हारों से भूषित है। वह मणीन्द्र-मुक्ता-माणिक्य लगे होने के कारण अत्यन्त उज्वल लग रही है। वह मांगलकि पुष्पमाला तथा तोशक-तकियों से शोभित है।।४७-४९।।

शयनं कुरु देवेशि गोपीभिः सेविता सदा। करोतु सेवनं शश्वत्प्रियालिः श्वेतचामरैः॥५०॥
पदारविन्दसेवां च गोपीभक्ता मनोहरे। सद्रत्नसारनिर्माणपर्यङ्के सुमनोहरे॥५१॥

हे देवी! आप इस पर गोपियों से सदा सेविता होकर शयन करिये। वे प्रिय सखीगण आपकी श्वेत चामर झल कर सतत् सेवा करती रहें। आप इस उत्तम रत्नसार निर्मित मनोहर पलंग पर विराजमान हो जायें। वहां ये भक्त गोपियां आपके चरणारविन्द की सेवा करती रहें।।५०-५१।।

इत्येवमुक्त्वा स मुने पुनस्तूष्णीं बभूव ह। प्रणम्य पादपद्मं च ब्रह्मादिसुरवन्दितम्॥५२॥

हे मुनिवर! नारद! यह कहकर उद्धव मौन हो गये। तब उन्होंने ब्रह्मादि देवगण वन्दित राधा के चरणों में प्रणाम किया।।५२।।

उद्धवस्य वचः श्रुत्वा सस्मिता राधिका सती।
कौतुकं च ददौ तस्मैरत्नसाराङ्गुलीयकम्॥५३॥

अमूल्यं सुन्दरं रम्यं विश्वकर्मविनिर्मितम्। मुखदृश्यं[1] पीतवर्णं सुदीप्तं सुप्रदीपवत्॥५४॥
कृष्णाय वह्निना दत्तमपूर्वं रासमण्डले। मणिकुण्डलयुग्मं चामूल्यरत्नविनिर्मितम्॥५५॥

उद्धव का यह कथन सुनकर सती राधा मुस्कराने लगीं। उन्होंने उद्धव को रत्नसार से निर्मित अंगूठी भेंट में प्रदान किया, जो उत्तम रत्नों के सारभाग से बनी थी। वह अमूल्य अंगूठी अत्यन्त रमणीय थी, जिसे विश्वकर्मा ने निर्मित किया था। तदनन्तर पीतवर्ण के उत्तम प्रदीपवत् आभा वाले दो मणिकुण्डल भी राधा ने उद्धव को प्रदान किया। ये कुण्डल अमूल्य रत्नों से निर्मित थे, जिसे पूर्वकाल में रासमण्डल में अग्निदेव ने राधा को दिया था। इसमें मुख तक प्रतिच्छवित होता था।।५३-५५।।

अमूल्यरत्ननिर्माणं सर्वभूषणमीप्सितम्। वह्निशुद्धांशुकयुगं रत्ननिर्माणनायकम्॥५६॥
हीरहारविनिर्माणं हारं च सुमनोहरम्। पुरा दत्तं च सुप्रीत्या कृष्णाय वरुणेन च॥५७॥

श्रीसूर्येण च यद्दत्तं श्रीकृष्णाय स्यमन्तकम्।
प्रदत्तं कौ (यौ) तुकं तस्मै यद्दत्तं हरिणा पुरा॥५८॥

यद्दत्तं च महेन्द्रेण रत्नसिंहासनं वरम्। तत्प्रदत्तं मुदा देव्या तस्मै प्रीत्या च राधया॥५९॥
मणीन्द्रसारनिर्माणं छत्ररत्नं मनोहरम्। मुक्तामाणिक्यसारेण हीरहारसमन्वितम्॥६०॥
विचित्ररत्नपद्मेन विचित्रं वारुणं[2] सदा। शोभितं परितश्चान्यै रत्ननिर्माणदर्पणैः॥६१॥
यद्दत्तं ब्रह्मणा प्रीत्या हरये रासमण्डले। सुप्रीत्या राधया तत्र प्रदत्तमुद्धवाय च॥६२॥

तदनन्तर भगवती राधा ने उद्धव को अमूल्य रत्नों से निर्मित तथा वांछित आभूषण प्रदान किया। उन्होंने अग्नि शुद्ध दो वस्त्र प्रदान किया, जिसे कुबेर ने पूर्वकाल में परमात्मा श्रीकृष्ण को प्रदान किया था। तदनन्तर हीरों का दो मनोहर हार दिया। जिसे परमप्रेम के साथ पूर्वकाल में वरुण ने श्रीकृष्ण को दिया था। सूर्य ने जिस स्यमन्तक मणि को कृष्ण को प्रदान किया था तथा श्रीकृष्ण ने राधा को दिया था, वह भी राधा ने उद्धव को दे दिया। महेन्द्र ने कृष्ण को जो रत्नमय श्रेष्ठ सिंहासन प्रदान किया, वह भी परमप्रेम के साथ राधा ने उद्धव को दे दिया! तदनन्तर राधा ने वह मणीन्द्रों के सार से निर्मित मनोहर छत्र भी परम प्रीति पूर्वक उद्धव को दे दिया, जो मुक्ता-माणिक्य के सार से बना तथा हीरक हार से युक्त था तथा जिसमें रत्न के कमल बने थे। वह छत्र चतुर्दिक् रत्नभूषित था। इसे पूर्वकाल में ब्रह्मा ने रासमण्डल में प्रेम के साथ श्रीकृष्ण को प्रदान किया था।।५६-६२।।

---

१. ख. ०शोभं।
२. क. चारुणा।

मणिसारविनिर्माणं मणिराजविराजितम्। जपामाल्यं संस्कृतं च यद्दत्तं शंभुना पुरा॥६३॥
तदेव दत्तं तस्मै चाप्यमूल्यं पुण्यदं शुभम्। जन्ममृत्युजराव्याधिहरं चातिमनोहरम्॥६४॥
चन्द्रकान्तमणिं रम्यं चन्द्रदत्तं परिष्कृतम्।
चन्द्रावलीं ददौ तस्मै सुदीप्तं पूर्ण चन्द्रवत्॥६५॥

तदनन्तर राधा ने शंभु द्वारा कृष्ण को पूर्वकाल में प्रदत्त की गई संस्कृत, अमूल्य, पुण्यप्रद, शुभ, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिहारी-अत्यन्त मनोहर जपमाला भी उद्धव को दे दिया। चन्द्र द्वारा श्रीकृष्ण को अर्पित अत्यन्त परिष्कृत, रम्य चन्द्रकान्त मणि भी राधा ने उद्धव को दे दिया। इसकी चन्द्रावली सुदीप्त तथा पूर्णिमा के चन्द्र के समान लगती थी॥६३-६५॥

विशुद्धं मधुपूर्णं च मधुपात्रं यदक्षयम्। धर्मेण यत्प्रदत्तं च तद्दत्तं प्रियया हरेः॥६६॥
जलभोजनपात्रं च शुद्धं स्वर्णविनिर्मितम्।
मिष्टान्नं परमान्नं च ददौ सुस्वादुमिष्टकम्[1]॥६७॥
भोजनं कारयित्वा च कर्पूरादिसुवासितम्।
ताम्बूलं च ददौ शीघ्रं माल्यं सुस्निग्धचन्दनम्॥६८॥

धर्म द्वारा श्रीहरि को प्रदत्त अक्षय तथा विशुद्ध मधुपूर्ण वह पात्र भी कृष्णप्रिया राधा ने उद्धव को दे दिया। साथ ही राधा ने स्वर्णपात्र में शुद्ध भोजन तथा जल पात्र में रखकर उद्धव को प्रदान किया तथा राधा द्वारा उद्धव को उत्तम मिष्ठान्नादि परमान्नयुक्त स्वादु अन्न भोजन कराकर कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल भी प्रदान किया। राधा ने उनको माला एवं स्निग्ध चन्दन भी दिया था॥६६-६८॥

शुभाशिषं च प्रददौ वाञ्छितं प्रवरं वरम्। ज्ञानं कृष्णेन यद्दत्तं गोलोके रासमण्डले॥६९॥
पुरुषाणां शतं यावन्निश्चलां कमलां ददौ।
विद्यां यशस्करीं शुद्धां यशः कीर्तिं सुनिर्मलाम्॥७०॥
सर्वसिद्धिं हरेर्दास्यं हरिभक्तिं च निश्चलाम्। पार्षदप्रवरत्वं च पार्षदं च हरेरिति॥७१॥
वरं प्रसादं दत्त्वा च समुत्थाय मुदाऽन्वितम्।
वह्निशुद्धांशुके धृत्वा चामूल्यं रत्नभूषणम्॥७२॥
हीरहारं रत्नमालां परिधाय मनोहराम्। सिन्दूरं कज्जलं पुष्पमाल्यं सुस्निग्धचन्दनम्॥७३॥

तत्पश्चात् राधा ने उद्धव को शुभाशीर्वाद तथा श्रेष्ठ वांछित वर भी दिया। साथ ही गोलोक धाम में श्रीकृष्ण ने राधा को जो श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान किया था, उन्होंने वह ज्ञान भी उद्धव को देकर उनकी सौ पीढ़ी में अचला लक्ष्मी रहने का वरदान भी दे दिया। तदनन्तर राधा ने उद्धव को यशस्करी शुद्ध विद्या, निर्मल यश तथा कीर्त्ति, सर्वसिद्धि, हरि का दासत्व, निश्चला हरिभक्ति तथा श्रीहरि का श्रेष्ठ पार्षद होने

---
१. ख. ०पिष्ठ०।

का वर प्रदान किया। भगवती राधा इस प्रकार उद्धव को अपनी प्रसन्नता के साथ अनेक वस्तु तथा अनेक वर प्रदान करने के अनन्तर उठीं। उन्होंने तब स्वयं अग्नि-शुद्धवस्त्र, अमूल्यरत्नाभूषण, हीरकहार, उत्तम रत्नमाला धारण किया। भगवती ने सिन्दूर-कज्जल, पुष्पमाला तथा अतिस्निग्ध चन्दन धारण किया।।६९-७३।।

रत्नसिंहासनस्थं तं पूजिता पूजितं मुदा। वेष्टिता हर्षनिरतं गोपीनां शतकोटिभिः।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा।।७४।।

उस समय वे सौ कोटि गोपीगण से घिरी थीं। वे रत्नों के सिंहासन पर विराजमान हो गयीं। ये सखियां (गोपियां) उस समय राधा की पूजा मुदित मन से कर रही थीं। उनका वर्ण तप्तकांचन वर्ण के समान था। वे भगवती सैकड़ों चन्द्रमा के समान प्रभावान् थीं।।७४।।

राधिकोवाच

सत्यमायास्यति हरिः सत्यं निष्कपटं वद।
वद तथ्यं भयं त्यक्त्वा सत्यं ब्रूहि सुसंसदि।।७५।।
वरं कूपशताद्वापी वरं वापीशतात्क्रतुः। वरं क्रतुशतात्पुत्रः सत्यं पुत्रशतात्किल।।७६।।
न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।।७७।।

श्रीराधा कहती हैं–हे उद्धव! क्या श्रीहरि वस्तुतः यहां शीघ्र आगमन करेंगे? तुम कपटता त्यागकर सत्यरूप से कहो! जो सत्य है, उसे भय त्याग कर इस सभा में कहो। सौ कूप से श्रेष्ठ एक बावली कही गई है। १०० बावली की तुलना में एक यज्ञ श्रेष्ठ है। सौ यज्ञों से एक पुत्र श्रेष्ठ है। सौ पुत्रों की तुलना में सत्य श्रेष्ठ है। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है तथा असत्य से बड़ा कोई पातक नहीं है।।७५-७७।।

उद्धव उवाच

सत्यमायास्यति हरिः सत्यं द्रक्ष्यसि सुन्दरि।
ध्रुवं त्यक्ष्यसि सन्तापं दृष्ट्वा चन्द्रमुखं हरेः।।७८।।
मद्दर्शनान्महाभागे गतस्ते विरहज्वरः।
नानाभोगसुखं भुक्त्वा त्यज चिन्तां दुरत्ययाम्।।७९।।
अहं प्रस्थापयास्यामि गत्वा मधुपुरीं हरिम्।
विधाय तत्प्रबोधं च कार्यमन्यत्करिष्यति।।८०।।
विदायं कुरु मे मातर्यास्यामि हरिसन्निधिम्।
सर्वं तं कथयिष्यामि त्वद्वृत्तान्तं यथोचितम्।।८१।।

उद्धव कहते हैं–हे सुन्दरी! श्रीहरि आयेंगे यह सत्य है। आप वस्तुतः उनका दर्शन करेंगीं तथा

उनका चन्द्रमुख देखकर आप का सन्ताप नष्ट होगा। यह निश्चित है। हे महाभागे! वैसे तो मुझे देखकर ही आप की विरहज्वाला कुछ विगत हो गई। आप इस दुःखदायक चिन्ता का त्याग करिये। नाना भोगसुख भोगकर आनन्द करिये। मैं अब मधुपुरी (मथुरा)-श्रीहरि के पास जाकर उनको प्रबोधित करूंगा तथा यहां भेजने का कार्य करूंगा। बाकी कार्य श्रीहरि पूर्ण करेंगे। हे माता! आप मुझे विदा करिये। मैं हरि के पास जाकर आपका समस्त वृत्तान्त यथोचित रूप से कह दूंगा।।७८-८१।।

राधिकोवाच

गमिष्यसि यदा वत्स मथुरा सुमनोहराम्।
श्रृणु दुःखकथां कांचित्तिष्ठ वत्स स्थिरो भव।।८२।।
मां विस्मृतो न भवसि विरहज्वरकातराम्।
कथयिष्यसि मत्कान्तं ध्रुवं प्रस्थापयिष्यसि।।८३।।

श्रीराधा कहती हैं–हे वत्स! तुम तो सुमनोहर मथुरा नगरी जा रहे हो, तथापि कुछ समय स्थिर बैठो। हे पुत्र! तुम यहां बैठकर मेरी दुःखभरी कथा कुछ सुनो। मैं अपने कान्त श्रीकृष्ण की विरह व्यथा से अत्यन्त कातर हो रही हूं। तुम मथुरा जाकर मेरी व्यथा को विस्मृत मत कर देना। तुम यह व्यथा-कथा श्रीकृष्ण से अवश्यमेव कहकर उनको यहां भेजना।।८२-८३।।

नारीणां मनसो वार्तां को वा जानाति पण्डितः।
किञ्चिच्छास्त्रानुसारेण प्रकरोति निरूपणम्।।८४।।
वेदा वक्तुं न शक्ताश्च शास्त्राणि किं वदन्ति च।
कथयिष्यामि त्वां सर्वं पुत्र कृष्णं च वक्ष्यसि।।८५।।
गेहे वने न भेदो मे पश्वादिषु तथा नृषु।
किं वा जलं किमु स्वप्नमज्ञानं च दिवानिशम्।।८६।।
आत्मानं च न जानामि चोदयं चन्द्रसूर्ययोः। क्षणं प्राप्य हरेर्वार्ता चेतनं मे बभूव ह।।८७।।
कृष्णाकृतिं च पश्यामि श्रृणोमि मुरलीध्वनिम्।
कुलं लज्जां भयं त्यक्त्वा चिन्तयामि हरेः पदम्।।८८।।
सम्प्राप्य सर्वजगतामीश्वरं प्रकृतेः परम्। न ज्ञानं[१] मायया तस्य ज्ञात्वा गोपपतेर्मम।।८९।।
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं वेदा ब्रह्मादयः सुराः।
स भर्त्सितो मया कोपाद्धृदि शल्यमिदं मम।।९०।।

हे उद्धव! नारीगण के अन्तर्मन की बात कौन पण्डित जान सकता है? तथापि वह शास्त्र के आधार पर किंचित् आभास पा सकता है। उसका तनिक निरूपण ही कर सकता है! वेद भी उसे नहीं

१. क. ज्ञातं मायया यस्य ज्ञात्वा गोपपतिर्म०।

कह पाते, तब शास्त्र क्या कह सकते हैं? हे पुत्र! तथापि वह सब मैं तुमसे कहती हूं जिसे जाकर तुम श्रीकृष्ण से कह देना। हे उद्धव! तुम मेरे पुत्रवत् हो। श्रीकृष्ण के विरह के कारण मुझे दिन-रात, गृह-वन, पशु-मानव, जल-थल, स्वप्न-जाग्रत आदि में कोई भी भेद अनुगत नहीं हो रहा है! मुझे अपना तक भान नहीं हो रहा है। मुझे चन्द्र-सूर्य का भी उदयास्त ज्ञात नहीं हो पा रहा है। तुमसे श्रीहरि का समाचार सुनकर मुझे कुछ क्षण हेतु चेतना लाभ हो सका है। मैं सतत् कृष्ण की आकृति देखती रहती हूं। उनकी मुरली ध्वनि मेरे कानों में श्रुतिगोचर होती रहती है। मैं कुल, लज्जा, भय आदि को त्यागकर सतत् हरि के चरणकमलों का चिन्तन करती रहती हूं। वे प्रभु श्रीकृष्ण तो समस्त जगत् के अधीश्वर, प्रकृति से परे प्रभु हैं। उनकी माया के कारण मैं उनके यथार्थ स्वरूप को न जानकर उनको मात्र गोपों का स्वामी ही समझती थी! जिनके चरण कमलों का ध्यान वेद, ब्रह्मादि देवता करते रहते हैं, मैंने उनकी क्रोध से भर्त्सना भी किया है। यह बात मेरे हृदय में कांटे की तरह चुभ रही है!।।८४-९०।।

तत्पदाम्भोजसेवाभिर्गुणप्रस्तावतोऽपि वा।
तद्भक्त्या यत्क्षणो नीतो ध्यातो ध्यानेन पूजया॥९१॥

तत्रापि मङ्गलं सर्वं हर्षमायुर्व्यवस्थितम्। विघ्नं च हृदि संतापस्तद्विच्छेदे सदोद्धव॥९२॥
क्रीडाप्रीतिर्न भविता तादृशीष्टा पुनर्मम। तादृशं प्रेमसौभाग्यं निर्जने न[1] च सङ्गमः॥९३॥
वृन्दावनं न यास्यामि तत्सङ्गे पुनरुद्धव। चन्दनं वा न दास्यामि नन्दनन्दनवक्षसि॥९४॥

मालां तस्मै न दास्यामि न द्रक्ष्यामि मुखाम्बुजम्।
मालतीनां केतकीनां चम्पकानां च काननम्॥९५॥

पुनरेव न यास्यामि सुन्दरं रासमण्डलम्। हरिसङ्गे न यास्यामि रम्यं चन्दनकाननम्॥९६॥

हे उद्धव! मैं जो समय उनके चरणकमलों की सेवा में, उनके गुण-कीर्त्तन में, उनकी भक्ति-पूजा-ध्यान में व्यतीत करती हूं, वही समय सभी प्रकार से मंगलमय है। उसी में मेरा हर्ष तथा मेरा यह आयुकाल सन्निहित है। अब उन प्रभु के विरह में मेरे हृदय में सदैव सन्तान रूपी विघ्न विद्यमान रहता है। (यह व्यथा रहती है कि) अब उन देव के साथ मैं क्रीड़ा, प्रेम तथा सौभाग्यपूर्ण मिलन नहीं कर सकती। हे उद्धव! अब पुनः उनके साथ वृन्दावन भी नहीं जा सकूंगी? अब पहले जैसा प्रेम सौभाग्य पूर्ण क्षण उन प्रभु के साथ एकान्त में प्राप्त ही नहीं हो सकेगा! अब मैं नन्दनन्दन के वक्षस्थल पर चन्दन लेप नहीं लगा सकूंगी! उनका मुखकमल नहीं देख सकूंगी! उनको माला नहीं पहना सकूंगी! उनके साथ मालतीवन, केतकीवन, चम्पकवन में नहीं जा सकूंगी! पुनः उन प्रभु के साथ सुन्दर रासमण्डल में तथा रम्य चन्दनवन में नहीं जा सकूंगी!।।९१-९६।।

पुनरेव न यास्यामि मलयं रत्नमन्दिरम्। माधवीनां वनं रम्यं रहस्यं मधुकाननम्॥९७॥
श्रीखण्डकाननं रम्यं स्वच्छं चन्द्रसरोवरम्। विस्पन्दकं सुरवनं नन्दनं पुष्पभद्रकम्॥९८॥

१. क. नवसं।

भद्रकं हरिणां सार्धं न यास्यामि पुनः पुनः।
क्व सा रम्या विकसिता माधवे माधवीलता॥९९॥
क्व गता माधवी रात्रिः क्व मधुः क्वापि माधवः।
इत्येवमुक्त्वा सा राधा ध्यात्वा श्रीकृष्णपदाम्बुजम्।
पुनर्मूर्च्छां च सम्प्राप्य रुदती पुलकान्विता॥१००॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधोद्धवसं० त्रिनवतितमोऽध्यायः॥९३॥

अब मैं पुनः मलयपर्वत के रत्नमन्दिर में, रमणीय श्रीखण्ड-कानन में तथा स्वच्छ चन्द्रसरोवर में नहीं जा सकूंगी। मैं अब विस्पन्दक, देववन, नन्दनकानन, पुष्पभद्रक, भद्रकवन में हरि के साथ पुनः नहीं जा सकूंगी! मधुमास में विकसित होने वाली रम्या माधवी लता अब कहां है? अब वसन्त की वह रात्रि कहां गई? वह वसन्त ऋतु कहां गया? वे माधव कहां चले गये? राधा यह कहकर कृष्ण के चरणकमल का ध्यान करते, रोमांचित होकर रुदन करती, पुनः मूर्च्छित हो गयीं॥९७-१००॥

॥९३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

राधा की सखियों की कृष्ण के सम्बन्ध में अनेक उक्ति, उद्धव-माधवी संवाद, कलावती द्वारा सनत्कुमार शाप का वर्णन

नारायण उवाच

उद्धवो विस्मयं प्राप्य भयं च विपुलं मुने। चेतनं कारयामास तामुवाच मृतामिव॥१॥
तद्भक्तिं समभिज्ञाय स्वात्मानं भक्तसंख्यकम्।
तुच्छं मेने जगत्सर्वं दृष्ट्वा भाग्यवतीं[1] सतीम्॥२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे मुनि! राधा को पुनः मूर्च्छित देखकर उद्धव को विस्मय तथा भय हो गया। उन्होंने यत्न से राधा को पुनः चैतन्य करके तब मन ही मन कहा कि राधा की ऐसी भक्ति

१. क. भागव.।

है! सती राधा अत्यन्त भाग्यवती हैं। तब उद्धव ने भक्तों की तुलना में स्वयं को तथा समस्त जगत् को तुच्छ समझा।।१-२।।

उद्धव उवाच

चेतनं कुरु कल्याणि जगन्मार्तनमोऽस्तु ते।
त्वमेव प्राक्तनं सर्वं कृष्णं द्रक्ष्यसि साम्प्रतम्।।३।।
त्वत्तो विश्वं पवित्रं च त्वत्पादरजसा मही। सुपवित्रं त्वद्वदनं पुण्यवत्यश्च गोपिकाः।।४।।
लोकास्त्वामेव गायन्ति सङ्गीतैर्मङ्गलस्तवैः।
त्वत्सुकीर्तिं च देवाश्च[1] सनकाद्याश्च सन्ततम्।।५।।
कृतपापहरां पुण्यां तीर्थपूजां च निर्मलाम्। हरिभक्तिप्रदां भद्रां सर्वविघ्नविनाशिनीम्।।६।।

उद्धव कहते हैं–हे जगन्माता! आपके चरणों में मैं प्रणाम करता हूं! आप चैतन्य हो जायें। जो कुछ घटित हुआ है, वह सब आप ही घटित कराने वाली हैं। यह सब प्राक्तनकर्म (पूर्वघटित प्रंसग) आप ही हैं। अब आप कृष्णदर्शन लाभ करेगी। आपके ही कारण विश्व पवित्र होता है। आपकी चरणरज से पृथिवी पवित्र होती है। आपका मुखकमल अत्यन्त पावन है। आपके (संस्पर्श से ही) ही कारण गोपीगण पवित्र हो गयी हैं। इस जगत् में मांगलिक सभी संगीत द्वारा लोग आपका ही गुणानुवाद गायन करते हैं। आपकी ही उत्तम कीर्त्ति का वर्णन वेद, देवता तथा सनकादि सतत् करते रहते हैं। आपकी कीर्त्ति पापनाशिनी है। वह सभी तीर्थों को पवित्र करती रहती है। हे देवी! आप की विमल कीर्त्ति कृत पातकों का हरण करने वाली, पुण्यमयी, तीर्थपूजा के समान पावन तथा निर्मल है। यह हरिभक्ति देने वाली, मङ्गलकारिणी तथा सर्वविघ्ननाशिनी है।।३-६।।

त्वमेव राधा त्वं कृष्णस्त्वं पुमान्प्रकृतिः परा। राधामाधवयोर्भेदो न पुराणे श्रुतौ तथा।।७।।

आप ही राधा, कृष्ण, पुरुष, परा प्रकृति हैं। पुराणों में राधा-माधव का कोई भेद नहीं सुना गया है।।७।।

राधिकां मूर्च्छितां दृष्ट्वा पश्चात्कृत्वा तमुद्धवम्।
उवाच माधवी गोपी राधायाः पुरतः स्थिता।।८।।

राधिका को मूर्च्छित देखकर राधा के समक्ष स्थिता गोपिका माधवी ने उद्धव को पीछे किया तथा वह कहने लगी।।८।।

माधव्युवाच

किं वा चोरस्य कृष्णस्य रूपं वा वेषमुत्तमम्।
किं सुखं विभवं किं वा गौरवं चाप्यनुत्तमम्।।९।।

१. क. वेदाश्च सनकश्चापि सं०।

किं वा तद्वीयैमैश्वर्यं शौर्यं वा दुरतिक्रमम्।
किं वा सिद्धं प्रसिद्धं वा किं वा तुल्यं गुणोत्तमम्॥१०॥
इतो वा कुत आयातः पुनरेव कुतो गतः।
बालको गोपवेषश्च नहि राजात्मजः पुमान्॥११॥
त्वं किं स्मरसि कल्याणि गोपालं नन्दनन्दनम्।
आत्मानं रक्ष यत्नेन कः प्रियः स्वात्मनः परः॥१२॥

माधवी गोपी कहती हैं–हे सखी! उन चोर कृष्ण का रूप, उत्तम वेष, सुख, वैभव, अत्युत्तम गौरव, उनका वीर्यविक्रम, शौर्य, पराक्रम, ऐश्वर्य सिद्धि-प्रसिद्धि तुम्हारी तुलना में क्या है? कौन-सा उत्तमगुण कृष्ण में तुम्हारे गुणों के समान हैं? पता नहीं, वे कहां से गोकुल में आये, पुनः कहां चले गये? वह तो गोपवेशधारी बालक हैं। कोई राजकुमार तो नहीं हैं! हे कल्याणी! उन नन्दनन्दन को याद क्यों कर रही हो? आत्मा (अपने से) से श्रेष्ठ कौन होता है? अतः तुम अपनी प्रिय आत्मा की यत्नतः रक्षा करो!॥९-१२॥

धिक्त्वां राधेऽतिनिर्लज्जां तवैव जीवनं वृथा।
जगतो युवतीनां च करोषि सुयशःक्षयम्॥१३॥
नारीणां गोपनं कार्यं सुव्यक्ते स्वयशःक्षयम्।
यत्नेन चक्षुषो वाऽर्हं सखि सञ्चरणं कुरु॥१४॥
अन्तरे पतिभावं च सङ्गोप्य भावनं कुरु। न वै जातिश्च शत्रूणां मित्राणां च सुरेश्वरि॥१५॥
शत्रुः कार्यवशेनैव मित्रं च कर्मणा भवेत्। स्वकार्यमुद्धरेत्प्राज्ञः कार्थध्वंसेन मूर्खता॥१६॥

मालावती गोपी कहती हैं–हे राधा! मैं तुम्हारी निर्लज्जता को धिक्कारती हूं। निर्लज्जा का जीवन धारण व्यर्थ है। तुम तो संसार में युवतियों के सुयश को लुप्त कर रही हो। नारी को अपना मनोभाव गुप्त रखना चाहिये। उसे व्यक्त करने से उनका यश-क्षय हो जाता है। हे सखी! तुम यत्नतः नेत्र जल रोको। अपने अन्तर्मन में स्थित पतिभाव को गुप्त रखकर इसकी भावना मन में करो। (बाहर व्यक्त मत करो)। हे सुरेश्वरी! शत्रु तथा मित्र की कोई अलग जाति नहीं होती; क्योंकि कार्यवशात् ही शत्रुता तथा मित्रता पनपती है। प्राज्ञ लोग अपने कार्य को सम्पन्न कर लेते हैं। कार्य ध्वंसता मूर्खता ही है।॥१३-१६॥

कः कस्य वल्लभो राधे कः कस्याप्रिय एव च।
कार्यं च समयं ज्ञात्वा सन्तः कुर्वन्ति संततम्॥१७॥
शत्रुर्धनापहारी च प्राणहर्ता ततः परः। कटुवक्ता दुःखदाता शत्रूणां लक्षणं शृणु॥१८॥

हे राधा! इस जगत् में कौन किसका प्रिय है–वल्लभ है तथा कौन किसका अप्रिय है? केवल

सज्जन लोग ही कार्य तथा समय के अनुकूल सभी कार्य करते हैं। शत्रुगण वे हैं जो धन एवं प्राण हरण करने वाले हैं। शत्रु का लक्षण है कि वह कटुवक्ता, दुःख देने वाले होते हैं।।१७-१८।।

स्वकुलात्त्वां बहिष्कृत्य विसृज्य शोकसागरे।
गृहीत्वा चेतनं प्राणान्निष्ठुरो दारुणो गतः॥१९॥
किं किं स्मरसि मूढे[1] हि त्यज शोकं सुदारुणम्।
आत्मानं रक्ष यत्नेन कः प्रियः स्वात्मनः परः॥२०॥

तुम स्वयं विचार करो कि उस निर्दयी ने तुमको तुम्हारे कुल से बहिष्कृत करा दिया तथा उसने तुमको विरह-सागर में असहाय-सा छोड़ दिया। ऐसे कृष्ण तुम्हारी चेतना, प्राण लेकर चले गये। ये कृष्ण तो इस प्रकार के निर्दयी तथा अत्यन्त कठोर हैं। हे मूढ़! तुम बारंबार उनको ही याद क्यों कर रही हो। हे सखी! अब इस शोक का त्याग करके यत्नतः अपनी रक्षा करो। स्वात्मा से अधिक प्रिय कौन होता है?।।१९-२०।।

पद्मावत्युवाच

भवता कथितं पूर्णं यमुनाजलसन्निधौ। अरसस्य रतिर्दूरं नारीणां न सुखं प्रिये॥२१॥
विद्युज्ज्वाला जले रेखा खलानां प्रीतिरेव च।
न नीतिर्नीतिशास्त्रेषु सुविश्वासः खलेषु च॥२२॥
यदा त्वं यमुनाकुले मुखं वीक्ष्य हरेरहो।
सस्मितं सकटाक्षं च पुनः कृत्वाऽस्य गोपनम्॥२३॥
पुनः पुनस्त्वं संवीक्ष्य त्वया त्यक्तं च चेतनम्।
गृहं[2] त्यक्त्वा गुरुभयं सखीनां वचनं शुभम्॥२४॥

पद्मावती कहती है-हे प्रिये! हे सखी! तुमने उस दिन यमुना जल के पास यही कहा था कि अरसिक व्यक्ति के मन से प्रेम-रति अत्यन्त दूर रहती है। उससे नारी को कोई सुख ही नहीं मिलता। ऐसी प्रीति उसी प्रकार से क्षणिक होती है, जैसे आकाशीय विद्युत् की द्युति तथा जल में खींची गई रेखा! एवंविध खल की प्रीति को भी जानें। तभी नीतिशास्त्रों में यह कहा गया है कि खल व्यक्ति का विश्वास उचित नहीं है। आश्चर्य की बात तो यह है कि जब तुमने यमुनातट पर कटाक्षपात से (बांकी चितवन से) तथा मन्द मुस्कान के साथ हरि का मुख देखा तथा इस बात को गोपनीय रख लिया, तथापि बारम्बार हरि को देखते हुये तुम अपनी चेतना खो बैठी! तुमने उस समय गुरुजनों का भय, सखियों का शुभवचन सब त्याग दिया था। तुमने गृह तक त्याग दिया!।।।२१-२४।।

सन्ततं ध्यायसे कृष्णं नाऽऽहारं जीवनं तथा।
क्व कृष्णो मथुरायां च क्वापि त्वं कदलीवने॥२५॥

---

१. मूढव इत्यपि पाठः क्वचित्।
२. क. ॰हं कार्यं गु॰।

त्वं यदि त्यजसि प्राणान्नाऽऽविर्भवति सोऽधुना।
काले द्रक्ष्यसि स्वात्मानं यदि रक्षसि सुन्दरि॥२६॥

तुमको तो तभी से आहार एवं अपने जीवन की भी सुध नहीं रहती! तुम सतत् कृष्ण का ध्यान करती रहती हो। कहां तुम कदलीवन में हो, उधर कृष्ण मथुरा में हैं। यदि तुम उनके विछोह में अपना प्राण विसर्जित भी कर दो, तब भी अभी वे यहां आविर्भूत नहीं हो सकेंगे। तभी हे सुन्दरी! अपने प्राणों की रक्षा करके तुम कालान्तर में उनको देख सकोगी!।।२५-२६।।

चन्द्रमुख्युवाच

प्राक्तनेन शुभं सर्वं सुखं च विभवश्चिरम्।
दुःखं शोको प्राक्तनेन विपत्संपच्च साम्प्रतम्॥२७॥
भारते पुण्यभूमौ च सर्वेषामीप्सिते वरे। लभेत्पतिं हरिं कान्तं तपसा प्रकृतेः परम्॥२८॥
तथाऽपि प्रदहेद्गात्रं कामबाणेन साम्प्रतम्।
अस्याः शत्रुः कथं चन्द्रो मधुर्वा मधुमाधवौ॥२९॥
शङ्करेण प्रदग्धोऽभूत्पुनरेव स मन्मथः। चन्द्रं भक्षतु राहुश्च पुनश्चोद्वमनं तथा॥३०॥
मधुश्च मित्रशोकेन प्राणांस्त्यक्त्वा ययौ[१] यमम्।
सुधासिन्धुश्च चेन्दुर्यो विषसिन्धुश्च मां प्रति॥३१॥

सखी चन्दमुखी गोपी कहती हैं–सुख-दुःख, शुभ-अशुभ, विभव, सम्पदा-विपत्ति सब पूर्वकर्म के कारण भोग किया जाता है। यह भारतभूमि सबके लिये वांछित है और अत्यन्त पावन भी है। इसी भूमि में प्रियसखी राधा ने प्रकृति से पृथक्भूत श्रीहरि को पतिरूपेण प्राप्त करोगी। यह निश्चित है। तब कामबाण से अपने शरीर को दग्ध क्यों किये जा रही हो? राहु ने चन्द्रमा को ग्रसकर पुनः उगल दिया। इसी प्रकार शिव ने काम को जला दिया था। उधर वसन्त ने भी मित्र कामदेव के दग्ध हो जाने के शोक में प्राण त्यागा तथा यम के यहां गया। अतः वे काम-चन्द्र तथा वसन्त (जो कामोद्दीपक हैं) राधा के शत्रु कैसे हो गये? सुधासिन्धु नाम से प्रख्यात चन्द्र तो मेरे लिये विषसागर हो गया है। अर्थात् वह सखी राधा हेतु विषसिन्धु के समान प्रतीत हो रहा है।।२७-३१।।

सुवेषः स्याज्ज्वलद्वह्निश्चन्दनं तद् घृताहुतिः।
सन्ततं प्रदहेद्गात्रं सुगन्धिश्च समीरणः॥३२॥

मनोहर वेषसज्जा, अब ज्वलन्त अग्नि के समान लग रही हैं। देह में जो सुगन्धित चन्दन लगा है, वह अग्नि में पड़ने वाली घृत की आहुति प्रतीत हो रही है। सुगन्धित समीरण (वायु) का प्रवाह तो हमारे सभी अंग दग्ध कर रहा है!।।३२।।

---

१. ख. ०वनम्।

त्यक्ताहारा मम सखी पश्य श्वसिति जीवति।
प्रशंसां कुरु कृष्णस्य मुखेन कुरुनन्दन॥३३॥
तन्नामस्मृतिमात्रेण तद्गुणश्रवणेन च। तद्वार्तया च शुभया सहसा चेतनं भवेत्॥३४॥

हमारी प्रिय सखी राधा इस विरह दुःख के कारण आहार, निद्रा तो त्याग चुकी है। यह केवल श्वास-प्रश्वास मात्र से जीवन धारण कर रही है। हे मूढ़े! इस समय कृष्ण की सतत् प्रशंसा करो। कदापि उनकी निन्दा मत करो। उनके नाम को सुनकर तथा उनकी शुभवार्त्ता को सुनकर (उनका प्रसंग सुनकर) ही मेरी सखी सहसा मूर्च्छा रहित होकर चैतन्य स्थिति प्राप्त कर सकेगी! हे कुरुनन्दन! उद्धव! कृष्ण की प्रशंसा करो।।३३-३४।।

शशिकलोवाच

त्वं किं माधवि जानासि कृष्णमात्मानमीश्वरम्।
यं तं ब्रह्मादयो देवा वेदाश्चत्वार एव च॥३५॥
ध्यायन्ति संततं सन्तः पादपद्मं सुरेप्सितम्।
पद्मा सरस्वती दुर्गा सोऽनन्तोऽपि महेश्वरः॥३६॥
यं न जानन्ति सिद्धेन्द्र मुनीन्द्रा मनवस्तथा।
सर्वात्मनः कुतो रूपं निर्गुणस्य कुतो गुणाः॥३७॥
सत्यमुक्तं च सत्यस्य यत्तदेव यथोचितम्। धत्ते भारावतरणे पृथिव्याश्च मनोहरम्॥३८॥
सुखमाह्लादकं रम्यं भक्तानुग्रहविग्रहम्। किमनिर्वचनीयं च रूपं जनमनोहरम्॥३९॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम शुभाश्रयम्। यत्पादपद्ममधुरं मधु मन्दाकिनीजलम्॥४०॥
दध्रे शिरसि भक्त्या च सर्वेशः शंकरः परः।
शश्वत्करोति वैरागी तीर्थकीर्तेश्च कीर्तनम्॥४१॥
क्षणं नृतयति भक्त्या च पञ्चवक्त्रेण गायति।
आहारं भूषणं वस्त्रं परित्यज्य दिगम्बरः॥४२॥
ब्रह्म ज्योतिःस्वरूपं च ध्यात्वा शुभ्रं सुनिर्मलम्।
ब्रह्मा च तपसा जन्म नयत्येव हि सेवया।
शेष सनत्कुमारश्च सिद्धसंघश्च योगवित्॥४३॥

शशिकला गोपी कहती हैं–हे माधवी! तुम क्या जानोगी? कृष्ण तो परमात्मा, ईश्वर हैं। ब्रह्मा आदि देवता तथा चारों वेद सतत् उनका ध्यान करते रहते हैं। साधुगण भी निरन्तर उनके चरणकमलों के ध्यान में निरत रहा करते हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, अनन्त, महेश्वर, सिद्धेन्द्र, मुनिगण भी जिनको जान नहीं पाते, उनको तुम क्या जानोगी? वे सर्वात्मा, निर्गुण हैं। अतः उनका रूप-गुण है ही कहां?

सत्यस्वरूप भगवान् का जो स्वरूप है, यहां उसका सत्य-सत्य वर्णन किया गया है। उन्होंने केवल पृथिवी के भार का हरण करने के लिये इन आह्लादकारी भक्तों पर अनुग्रह परायण सर्वजन-मनोहर रमणीय अनिर्वचनीय रूप को धारण किया है। इस प्रकार वे करोड़ों कामदेव के समान लावण्य वाले, लीलाधाम, शुभाश्रय प्रभु हैं। उनके चरणकमल का मधुर मधु स्वरूप यह मन्दाकिनी जल है। सर्वेश्वर शंकर इस मन्दाकिनी जल को भक्ति के साथ अपने शिर पर धारण करते हैं। वे इस प्रकार से संसार से वैराग्य लेकर अपने पांचों मुख से उन श्रीकृष्ण की कीर्त्ति का गायन करते रहते हैं तथा उसी में विभोर होकर नृत्यरत रहते हैं। वे इसमें इतने तल्लीन हो गये हैं कि अपना आहार, आभूषण, वस्त्रादि त्याग कर दिगम्बर हो गये! ब्रह्मा, शेष, सनत्कुमार आदि योगज्ञ सिद्ध समूह इन शुभ्र तथा सुनिर्मल ब्रह्मज्योतिरूप का नित्य ध्यान करते रहते हैं।।३५-४३।।

सुशीलोवाच

निर्मञ्छनार्हं न भवेत्तस्य कामशतं शतम्। चन्द्रोऽश्वनीकुमारो वा रूपेषु केन गण्यते।।४४।।

असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
मुनयो मनवः सिद्धा भक्ताः सन्तश्च संततम्।।४५।।
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं निर्गुणस्याऽऽत्मनश्च वै।
वेदाः स्तोतुं न शक्ताश्च यमीशं च सरस्वती।।४६।।
जडीभूता च भीता च स्तवनेन क्षमापयेत्।
सहस्त्रवस्क्त्रः स्तवने कम्पितश्च निरन्तरम्।।४७।।
वेदानां जनको ब्रह्मा स्तोत्रेण तस्य हीश्वरः।
तं सत्यं नित्यमीशं च माधवी परिनिन्दति।।४८।।
अपवित्रा सभा भूता गोपीनां जीवनं वृथा।
तासु पुण्यवती राधा ध्यायते यं दिवानिशम्।।४९।।
यन्नामस्मृतिमात्रेण कोटिजन्मार्जितं सखि।
कृतपापभयं शोकः प्रणश्यति न संशयः।।५०।।

सुशीला गोपी कहती हैं–हे सखी! सैकड़ों कामदेव भी इस लायक नहीं हैं कि उनसे कृष्ण के सौन्दर्य की तुलना की जाय। तब अश्विनीकुमारद्वय के रूप की क्या गणना? असंख्य ब्रह्माण्डों में वहां-वहां के ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मुनिगण, मनुगण, सिद्धगण, भक्त एवं साधु लोग नित्य उन निर्गुण परमात्मा का ध्यान करते हैं। जिन परमात्मा की स्तुति कर सकने में वेद तक समर्थ ही नहीं हैं, जिनका स्तव करने की असमर्थता देखकर सरस्वती भयभीत हो जाती हैं, सहस्त्र मुख वाले शेष जिनका स्तव करने में कांपने लगते हैं, ब्रह्मा स्वयं वेदकर्त्ता होकर भी जिनका स्तव कर सकने में स्वयं को अक्षम पाते हैं उन सत्यस्वरूप नित्य सनातन प्रभु की निन्दा माधवी ने किया है। इससे यह सभा अपवित्र हो गई। ऐसी

गोपियों का तो जीवन व्यर्थ है। सबसे पुण्यवती तो राधा हैं जो रात-दिन उन प्रभु का ध्यान करती रहती हैं। हे सखी! उनके नाम के स्मरण मात्र से कोटि जन्मार्जित पातक नष्ट हो जाते हैं। पापभय तथा शोक का भी नाश हो जाता है। यह निःसन्देह है।।४४-५०।।

रत्नमालोवाच

दधार वामहस्तेन शैलं गोवर्धनं हरिः। ततः किं तद्यशः शौर्यं जगतां जनकस्य च॥५१॥
शैलानां च सहस्त्रं यो भेत्तुं शक्तश्च दैत्यराट्।
लीलामात्रेण तेषां च लक्षं हन्तुं क्षमो हरिः॥५२॥
यदंशकलया जातः सूकरो विष्णुरीश्वरः। वसुधां दशनाग्रेण चोद्दधार च लीलया॥५३॥
शैलानां च सहस्त्राणि यत्र सन्ति महीतले।
दैत्याश्च वाऽप्यसंख्याश्च वीराः शूरास्तथैव च॥५४॥
तेनैव कर्मणा तस्य न शौर्यं न च पौरुषम्।
न यशश्च प्रशंसा वा सखि सर्वात्मनाऽऽत्मना॥५५॥

रत्नमाला कहती हैं-उन हरि ने बायें हाथ पर गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया था। इस कृत्य को करने से उन संसार के पिता का क्या यश बढ़ा? वे तो ऐसे हजारों पर्वतों को उठाने ऐसे लाखों दैत्यराजों का वध लीलामात्र में करने में समर्थ हैं जो दैत्यगण ऐसे पर्वतों को चूर्ण करने में सक्षम हैं। इन प्रभु के ही अंश से उत्पन्न शूकर रूपधारी विष्णु ने आविर्भूत होकर अपनी दाढ़ से ही लीला से वसुन्धरा का उद्धार किया था। तब इस वसुधातल में हजारों-हजार पर्वत तथा प्रचुर विक्रमशाली असंख्य दैत्यपतियों का निवास था। हे सखी! इस कार्य के करने पर भी उनके शौर्य, पौरुष, यश की प्रशंसा नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि वे सर्वात्मा रूप हैं।।५१-५५।।

पारिजातोवाच

सप्तद्वीपा च वसुधा सशैलवनसागरा। काञ्चनीभूमिसहिता सर्वाधारा मनोहरा॥५६॥
सप्त स्वर्गाश्च विविधा ब्रह्मलोकावधि प्रिये।
विचित्राः सुन्दराश्चैव पातालानां च सप्त च॥५७॥
एतैः परिमितं विश्वं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम्। महद्विष्णोर्लोमकूपे तदेवं चाणुवत्स्थितम्॥५८॥
तस्य यावन्ति लोमानि तानि विश्वानि सन्ति च।
स एव षोडशांशश्च कृष्णस्य परमात्मनः॥५०॥
तस्यैव किं यशः शौर्यं महिमामनूपमम्।
घस्मरी गोपकन्या च किं वा जानाति माधवी॥६०॥

पारिजात गोपी कहती हैं-हे सखी! इस सप्तद्वीपवती पृथिवी में असंख्य पर्वत, सागर, कांचनी

भूमि, सप्तस्वर्ग, ब्रह्मलोक तक विद्यमान हैं। यह वसुन्धरा सबकी आधारभूता मनोहरा है। इसमें विचित्र सुन्दर सप्त पाताल भी हैं। यह सब सम्मिलित होने पर एक ब्रह्माण्ड कहा गया है। इसका निर्माण ब्रह्मा करते हैं। यह एक ब्रह्माण्ड महाविष्णु के एक रोम के छिद्र में विद्यमान रहता है। उस छिद्र में यह एक ब्रह्माण्ड तो एक अणु के समान स्थित रहता है। उन महाविष्णु के जितने रोम हैं, उतने ही विश्व (ब्रह्माण्ड) हैं। ये महाविष्णु भी परमात्मा कृष्ण के १६वां भाग (१/१६) मात्र हैं। इन श्रीहरि का यश, शौर्य, महिमा अनुपम है। यह माधवी गोपी एक उदर परायणा है। वह पेटू उन प्रभु की महिमा क्या जान सकती है?।।५६-६०।।

माधव्युवाच

मया यदुक्तं च ज्ञात्वा मूढा जल्पन्ति गोपिकाः।
उद्धव शृणु मे वाक्यं यन्मया कथितं शुभम्।।६१।।
स्वेच्छया सगुणो विष्णुः स्वेच्छया निर्गुणो भवेत्।
भुवो भारावतरणे गोपवेषः शिशुर्विभुः।।६२।।
यदि वेदा पुराणानि सिद्धाः सन्तश्च सन्ततम्।
ब्रह्मेशशेषभक्ताश्च न जानन्ति यमीश्वरम्।।६३।।
तं किं जानामि मूढाऽहं घस्मरी गोपकन्यका।
तथाऽपि मद्वचः सत्यं श्रूयतां वत्स तत्क्षणम्।।६४।।

माधवी गोपी कहती हैं–हे उद्धव! मैं जो शुभ बात कह रही हूं, उसे कृपया सुनिये। मैंने जो कहा, उसे ये मूढ गोपीगण समझ ही नहीं सकीं। वे तो निरर्थक विवाद कर रही हैं। ये विष्णु अपनी इच्छा से सगुण तथा अपनी इच्छा से ही निर्गुण हो जाते हैं। वे धरती का भार उतारने के उद्देश्य से ही यहां गोप शिशु बने हैं जबकि वे विभु हैं। वेद-पुराण-सिद्ध-संतजन, ब्रह्मा, महेश, भक्त भी उन ईश्वर को नहीं जान पाते! ऐसी स्थिति में मैं मूढ़ उदर परायण (पेटू) नारी गोपी उनको कैसे जान सकती हूं? हे वत्स! तथापि इसी क्षण में मेरा सत्यवचन श्रवण करिये!।।६१-६४।।

किमनिर्वचनीयं च रूपं शौर्यं यशो बलम्।
वीर्यं वेषं च सिद्धिं चाप्यन्यो वा यो गुणो हरेः।।६५।।
स्वेच्छामयस्य तस्यैव सगुणस्य च साम्प्रतम्।
किमनिर्वचनीयं च वर्तते तद्विशेषणम्।।६६।।
निर्गुणस्य च विष्णोश्च देहहीनस्य स्वात्मनः।
वर्तते च किमाख्येयं तस्य रूपादिकं च किम्।।६७।।

उन प्रभु का जो रूप, शौर्य, यश, बल, वेष, वीर्य, सिद्धि आदि विशेष गुण है, वह यदि

अनिर्वचनीय है, तब उन गुणों से अतीत, देहहीन विष्णु की उपाधि क्या है? (उपाधि=नाम)। उनका रूप आदि भी क्या है? (अर्थात् उन गुणातीत, देहहीन का नाम-रूप कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि जो देहहीन हैं, उसका रूप तथा नाम कैसे कहा जा सकता है? रूप-नाम तो देह का ही होता है। श्रीकृष्ण देह रहित तथा अनिर्वचनीय कहे गये हैं)।।६५-६७।।

मां निन्दति महामूढा न वृद्धा वचनं मम।
एषा जानाति किं मूढा तं सत्यं प्रकृतेः परम्।।६८।।
ज्योतिः स्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम्। तमनिर्वचनीयं च भक्तानुग्रहविग्रहम्।।६९।।
यत्पादपद्मं पद्मा सा त्रैलोक्यजननी परा।
सेवते कम्पिता भीता दासीवत्सततं भिया।।७०।।
विष्णुमाया च प्रकृतिर्मूलरूपा सनातनी। ब्रह्मस्वरूपा परमा भीता दक्षिणपार्श्वतः।।७१।।
सरस्वती जडीभूता भीता च परमेश्वरी।
स्तोतुं न शक्ता वेदाः किं स्तुवन्ति परमेश्वरम्।।७२।।

ये सभी गोपियां मेरे कथन का तात्पर्यार्थ नहीं जान सकीं। तभी वे महामूढ़ गोपियां मेरी निन्दा में रत हैं। ये प्रभु सत्यमय, प्रकृति से अतीत, परम ज्योतिरूप परमात्मा तथा ईश्वर हैं। ये अनिर्वचनीय हैं। इन्होंने भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु ही देह धारण किया है। इनके चरण-कमल की सेवा दासी की तरह त्रैलोक्य जननी पद्मा इनके भय से कम्पित होकर करती रहती हैं। सनातनी, ब्रह्मस्वरूपा, मूल-प्रकृति, परमेश्वरी सरस्वती जिनकी दाहिनी ओर स्थित रहती हैं। वे परम भयभीत तथा जड़ीभूत होकर जिनका स्तव करने में असमर्थ हैं, उन परमेश्वर का स्तवन चारों वेद कैसे कर सकते हैं?।।६८-७२।।

तासां तद्वचनं श्रुत्वा चोद्धवो भक्तिविह्वलः। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो रुरोद च पपात च।।७३।।

गोपीगण का इस प्रकार का भावभरा कथन सुनकर उद्धव भक्ति से विह्वल हो उठे। उनका सर्वाङ्ग रोमांचित हो उठा वे रोते हुये भूमि पर गिर पड़े।।७३।।

मूर्च्छां सम्प्राप्य भक्त्या च ध्यात्वा तं परमेश्वरम्।
तुच्छं मेने स चाऽऽत्मानं गोपीं भक्त्याऽप्युवाच सः।।७४।।

उद्धव अपनी सुध-बुध खोकर मूर्च्छित-से हो गये थे। तदनन्तर चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने भक्ति के साथ परमेश्वर का ध्यान किया। अब उद्धव गोपियों की भक्ति के सामने स्वयं को अत्यन्त तुच्छ मानने लगे। उन्होंने अन्ततः भक्तिभाव से गोपियों से कहा-।।७४।।

धन्यं यशस्यं द्वीपानां जम्बुद्वीपं मनोहरम्। यत्र भारतवर्षं च पुण्यदं शुभदं तथा।।७५।।
वणिजां च पुण्यकृतां वाणिज्यस्थलमीप्सितम्।
अत्र कृत्वा सुपुण्यं च भुङ्क्तेऽन्यत्र शुभं फलम्।।७६।।
धन्यं भारतवर्षं तु पुण्यदं शुभदं वरम्। गापीपादाब्जरजसा पूतं परमनिर्मलम्।।७७।।

ततोऽपि गोपिका धन्या मान्या योषित्सु भारते।
नित्यं पश्यन्ति राधायाः पादपद्मं सुपुण्यदम्॥७८॥

षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं च ब्रह्मणा। राधिकापादपद्मस्य रेणूनामुपलब्धये॥७९॥

उद्धव कहते हैं—समस्त द्वीपसमूह में जम्बूद्वीप अत्यन्त मनोरम तथा प्रशंसनीय एवं धन्य है। इसका कारण यह है कि इस जम्बूद्वीप में शुभदायक तथा पुण्यदायक भारतवर्ष विद्यमान है। यह पुराणज्ञ लोगों के लिये अत्यन्त ईप्सित वाणिज्यस्थल (कर्मस्थल) है। यहां पुण्य करने से परलोक में उसका शुभ फल मिलता है। भारतवर्ष अत्यन्त धन्य, पुण्यमय तथा शुभ है। यह भारतवर्ष गोपियों के चरणस्पर्श के कारण परम पावन तथा निर्मल हो गया है। इस भारत में जितनी स्त्रियां हैं, उन सब में से गोपिकायें धन्या तथा माननीया हैं। इसका कारण यह है कि वे नित्य श्रीराधा के पुण्यप्रद चरणकमल का दर्शन करती रहती हैं। ब्रह्मा ने राधा के चरणकमल की मात्रा एक रेणु को पाने के लिये ६०००० वर्ष पर्यन्त तपःश्चरण किया था॥७५-७९॥

गोलोकवासिनी राधा कृष्णप्राणाधिका परा। तत्र श्रीदामशापेन वृषभानसुताऽधुना॥८०॥

ये ये भक्ताश्च कृष्णस्य देवा ब्रह्मादयस्तथा।
राधायाश्चापि गोपीनां कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥८१॥
कृष्णभक्तिं विजानाति योगीन्द्रश्च महेश्वरः।
राधा गोप्यश्च गोपाश्च गोलोकवासिनश्च ये॥८२॥

देवी राधा गोलोकवासिनी हैं। वे कृष्ण की प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। वे पराप्रकृति हैं। सम्प्रति श्रीदामा के शाप से राधा वृषभानुसुता के रूप से पृथिवी पर आविर्भूत हो गयी हैं। ब्रह्मादि देवगण में से जो-जो भी कृष्ण के भक्त देवता हैं, वे राधा तथा गोपियों के १६वें अंश (१/१६ अंश) का एक अंश भी नहीं हैं। वास्तव में कृष्णभक्ति क्या है? इसे योगीन्द्र, महेश्वर, राधा, गोपियां तथा वृन्दावन निवासी गोप ही जानते हैं। साथ ही गोलोकवासी भी जानते हैं॥८०-८२॥

किञ्चित्सनत्कुमारश्च ब्रह्मा चेद्विषयी तथा।
किञ्चिदेव विजानन्ति सिद्धा भक्ताश्च निश्चितम्॥८३॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहमागतो गोकुलं यतः।
गोपिकाभ्यो गुरुभ्यश्च हरिभक्तिं लभेऽचलाम्॥८४॥
मथुरां च न यास्यामि तीर्थकीर्तेश्च कीर्तनम्।
श्रोष्यामि किङ्करो भूत्वा गोपीनां जन्मजन्मनि॥८५॥
न गोपीभ्यः परो भक्तो हरेश्च परमात्मनः।
यादृशीं लेभिरे गोप्यो भक्तिं नान्ये च तादृशीम्॥८६॥

इसके अतिरिक्त विषयी ब्रह्मा, सनत्कुमार, सिद्ध तथा भक्तों को भक्ति के सम्बन्ध कुछ ज्ञात है। सम्प्रति मैं भी धन्य हूं। मैं कृतार्थ हूं; क्योंकि मैं गोलोकधाम आया तथा गुरुतुल्य गोपियों से अचला हरिभक्ति लाभ किया। अब मैं मथुरा नहीं जाऊंगा। मैं जन्म-जन्मान्तर तक ब्रजनारीगण का दास होकर नित्य कृष्ण गुणगान इनसे सुनता रहूंगा। परमात्मा श्रीहरि का गोपीगण से बढ़कर भक्त अन्य कोई भी नहीं है। इन गोपियों को जिस प्रकार की भक्ति प्राप्त हो सकी है, वैसी भक्ति अन्य किसी को भी प्राप्त नहीं है।।८३-८६।।

कलावत्युवाच

पितॄणां मानसी कन्या धन्या मेना कलावती।
वयं तिस्रो भगिन्यश्च भ्रमामः पृथिवीतले।।८७।।
धन्या जनकपत्नी नः सीतामाता पतिव्रता।
अयोनिसंभवा राधा अहं चायोनिसंभवा।।८८।।
राधा श्रीदामशापेन वृषभानसुता भुवि। सनत्कुमार शापेन वयमेव महीतले।।८९।।

कलावती कहती हैं—मैं कलावती, धन्या, मेना पितरों की तीन मानस कन्या हैं। हम तीनों बहनें स्वेच्छा पूर्वक समग्र पृथिवी पर भ्रमण करती हैं। पतिव्रता धन्या राजा जनक की भार्या तथा देवी सीता की माता हैं। मैं तथा राधा भी अयोनिसंभवा हैं। राधा श्रीदाम गोप के शाप से पृथिवी पर वृषभानु की पुत्री होकर जन्मी हैं। महर्षि सनत्कुमार के शाप के कारण हम तीनों को पृथिवी पर अवतीर्ण होना पड़ा।।८७-८९।।

क्षीरोदसागरं रम्यं श्वेतद्वीपं मनोहरम्।
तिस्रो भगिन्यो भक्त्या च विष्णुं द्रष्टुं गता वयम्।।९०।।
अभ्युत्थानादि न कृतं कोपादस्माञ्छशाप ह।
सनत्कुमारो भगवान्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।।९१।।

एक बार की घटना है हम तीनों बहनें विष्णु के दर्शनार्थ क्षीरसागर के रम्य श्वेतद्वीप में गयीं। तभी वहां योगीन्द्रगण के गुरुओं के गुरु भगवान् सनत्कुमार भी आ गये, तथापि उनके आगमन पर हमारे द्वारा उनके स्वागतार्थ न उठने पर उन्होंने कोप पूर्वक हमें शाप दे दिया।।९०-९१।।

सनत्कुमार उवाच

मूढास्तिष्ठत भूमौ च पुनः स्वर्गं च यास्यथ।
मर्त्यप्राणिप्रिया भूत्वा चाहंकारेण हेतुना।।९२।।
पुनर्वरं च प्रत्येकं ददौ तुष्टो द्विजेश्वरः। विष्णोर्वंशस्य शैलस्य हिमाधारस्य कामिनी।।९३।।
ज्येष्ठा भवतु त्वत्कन्या भविष्यत्येव पार्वती।
धन्या प्रिया तु भवतु योगिनो जनकस्य च।।९४।।

तस्य कन्या महालक्ष्मीः सीतादेवी भविष्यति।
वृषभानस्य वैश्यस्य योगिनां प्रवरस्य च॥९५॥
दुर्वाससश्च शिष्यस्य कनिष्ठा च कलावती।
भविष्यति प्रिया साध्वी द्वापरान्ते च गोकुले॥९६॥

कलावतीसुता राधा देवी गोलोकवासिनी। श्रीदामगोपशापेन भविष्यति न संशयः॥९७॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं–हे मेना! तुम ज्येष्ठा हो! तुम धरती पर जन्म लेकर विष्णु के अंश से उत्पन्न हिमाचल की पत्नी हो जाओ। पार्वती तुम्हारी ज्येष्ठा कन्या होगी। हे धन्या! तुम धरती पर जन्म लेकर योगी राजा जनक की पत्नी होगी। महालक्ष्मी सीता देवी तुम्हारे गर्भ से कन्या होकर जन्म ग्रहण करेंगी। हे कलावती! तुम कनिष्ठा हो। अतः तुम योगीप्रवर दुर्वासा के प्रियशिष्य वैश्यप्रवर वृषभानु की साध्वी प्रियतमा पत्नी होगी। तुम्हारा जन्म द्वापर के अन्त में गोकुल में होगा। कलावती की कन्या गोलोकवासिनी राधा देवी होंगी। ये श्रीदाम के शाप से पृथिवी पर जन्म लेगीं। इसमें संशय नहीं है॥९२-९७॥

ईशो ब्रह्मेशशेषाणां भारावतरणेन च। आगमिष्यति पृथ्वीं च पुण्यक्षेत्रं च भारतम्॥९८॥

कलावती वृषभानः कौतुकात् कन्यया सह।
जीवन्मुक्तश्च गोलोकं गमिष्यति न संशयः॥९९॥
धन्या च सीतया सार्धं वैकुण्ठं च गमिष्यति।
मेनका योगिनी सिद्धा पार्वत्याश्च[1] वरेण च॥१००॥
कल्पान्ते विष्णुलोके च लक्ष्मीवन्मोदते चिरम्।
विना विपत्त्या महिमा केषां कुत्र भविष्यति॥१०१॥
कर्मणा च गते दुःखे प्रभवेद्दुर्लभं सुखम्।
पुरा पितॄणां कन्याश्च स्वर्गभोगविलासिकाः॥१०२॥

लक्ष्मीसमा वरेणापि विप्रस्य विष्णुदर्शनात्। कर्मक्षयं चाप्यस्माकं बभूव विष्णुदर्शनात्॥१०३॥
पुण्येन येन तीव्रेण कुमारस्यापि दर्शनम्। श्रुतं तत्र कुमारास्याज्ज्ञानं परमदुर्लभम्॥१०४॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सिद्धानां जगतामपि।
ईश्वरः परमात्मा च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
निर्गुणश्च निरीहश्च परः स्वेच्छामयो वरः॥१०५॥

ब्रह्मा, महेश्वर तथा शेष के ईश्वर पृथिवी का भार उतारने के उद्देश्य से पृथिवी पर पुण्यक्षेत्र भारत में आगमन करेंगे। कलावती तथा वृषभानु अपनी कन्या राधा के साथ जीवन्मुक्त रूप में पृथिवी

१. पार्वत्या च इति पाठान्तरम्।

पर रहकर अन्ततः गोलोक गमन करेंगे। इसमें संशय नहीं है। देवी धन्या अपनी पुत्री सीता के साथ वैकुण्ठ जायेंगी। यह मेनका भी पार्वती का वर पाकर सिद्धा हो जायेगी। यह कल्पान्त में विष्णुलोक जाकर लक्ष्मी के समान चिरकाल पर्यन्त मुदित रहेगी। बिना विपत्ति पाये किसे महिमा मिली है? यह नियम है कि व्यक्ति अपने कर्मानुसार दुःखभोग के उपरान्त दुर्लभ सुख प्राप्त करता है। हम तीनों पितरों की मानसी कन्या थीं। पूर्वकाल में हम स्वर्गीय भोग-विलास में निरत रहा करती थीं। तदनन्तर श्वेतद्वीप विष्णु दर्शनार्थ जाते समय प्रथमतः मुनि का शाप मिला। तदनन्तर उनके वर तथा भगवान् विष्णु का दर्शन करने से हमारा कर्मक्षय हो गया। उस तीव्र पुण्य से हमें कुमार (सनत्कुमार) का दर्शन मिला। वहां हमने कुमार से परम दुर्लभ ज्ञान लाभ किया। वह ज्ञान यह है कि प्रभु श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि के, सिद्धों के तथा जगत् के ईश्वर, परमात्मा हैं। वे प्रकृति से परे हैं। वे प्रभु निर्गुण, निरीह, सबसे श्रेष्ठ तथा स्वेच्छामय हैं।।९८-१०५।।

तुलस्युवाच

सर्वप्राणिषु देवाश्च तिष्ठन्त्येव पृथक्पृथक्।
प्राणो विष्णुश्च विषयी मनो ब्रह्मा च चेतना।।१०६।।
प्रकृतिर्बुद्धिरूपा च सर्वशक्त्यधिदेवता। ज्ञानस्वरूपः शंभुश्च स्वयं धर्मश्च पूरुषः।।१०७।।
निर्गुणः परमात्मा च तद्ब्रह्म प्रकृतेः परम्।
स एव कृष्णः साक्षी च कर्मणां जीविनामपि।।१०८।।
भोक्ता च सुखदुःखानां जीवस्तत्प्रतिबिम्बकः।
चक्षुषोश्चन्द्रसूर्यौ च जिह्वायां च सरस्वती।।१०९।।
वसुंधरा त्वचि सदा बाह्वोस्ते लोकपालकाः।
आत्मनश्चापि ते सर्वे परिचारकरूपिणः।।११०।।
आत्मन्येव प्रियास्ते च सर्वे गच्छन्ति जीविनः।
यथा संसदि संसारे नरदेह (व) मिवानुगाः।।१११।।
तस्मात्सर्वात्मनाऽऽत्मानं भजन्ति संततं सदा।
सन्तश्च परया भक्त्या ध्यायन्ते योगिनो मुदा।।११२।।
कर्मिणां कर्मणां साक्षी कुतः कर्म च गोपनम्।
अन्तर्यामी च कृष्णश्च प्रचारं कुरुते मुदा।।११३।।

देवी तुलसी कहती हैं-हे सखी! सभी प्राणीगण में देवता पृथक्तया स्थित रहते हैं। विष्णु हमारे प्राण हैं। विषयी विष्णु हमारे मन हैं। ब्रह्मा चेतना हैं। प्रकृति बुद्धिरूपा है। वही सभी शक्तियों की अधिष्ठातृ देवी हैं। शंभु ज्ञानरूप हैं। स्वयं धर्म पुरुष रूपी हैं। कृष्ण निर्गुण परमात्मा तथा प्रकृति से श्रेष्ठ ब्रह्मस्वरूप हैं। वे सभी प्राणीगण के कर्मों के साक्षी भी हैं। उनका ही प्रतिबिम्ब जीव सुख-दुःख का

भोक्ता है। नेत्रों में चन्द्र-सूर्य तथा जिह्वा में सरस्वती, त्वक् में वसुन्धरा, बाहुद्वय में लोकपाल स्थित हैं। ये सभी आत्मा के परिचारक हैं। जिस प्रकार से सभी देवता शिव का अनुगमन करते हैं, तदनुरूप जीव परमात्मा का आश्रय लेकर आत्मा का अनुगमन करते हैं। जैसे संसार में सभी लोग राजा के पास जाते हैं, उसी प्रकार जीवगण परमात्मा का आश्रय लेते हैं। योगीगण मुदित मन से परमभक्ति पूर्वक सतत् इन प्रभु का ध्यान करते हैं। जो कर्मीगण के साक्षी स्वरूप हैं, उनसे किसका कर्म गोपनीय रह सकता है? अन्तर्यामी कृष्ण उसका प्रचार मुदित होकर करते हैं।।१०६-११३।।

कालिकोवाच

नरा बालाश्च वृद्धाश्च युवानस्त्रिविधास्तथा।
देवादयश्च ये सिद्धाः सर्वे जानन्ति तं परम्।।११४।।
साम्प्रतं मूर्च्छितां राधां युक्तो बोधयितुं बुधः।
अत्र युक्तिः प्रधाना त्वं तां प्रबोधय चोद्धव।।११५।।

कालिका कहती हैं—वृद्ध, बालक, युवा प्रभृति सभी मनुष्य, देवता एवं सिद्ध, सभी कृष्ण को जानते हैं। अतः हे उद्धव! अभी तो मूर्च्छित पड़ी राधा को बोधित करना उचित है। हे उद्धव! इनको प्रबोधित करने की युक्ति करो।।११४-११५।।

उद्धव उवाच

चेतनं कुरु कल्याणि जगन्मातर्निबोध माम्।
उद्धव कृष्णभक्तस्य किङ्करस्यापि किङ्करम्।।११६।।
प्रसादं कुरु मातर्मां यास्यामि मथुरां पुनः।
न स्वतन्त्रः पराधीनो योषा दारुमयी यथा।।११७।।
यथा वृषो वशीभूतो वृषवाहस्य सन्ततम्।
तथा मातर्जगत्सर्वं जगन्नाथस्य निश्चितम्।।११८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधोद्धवसं० चतुर्नवतितमोऽध्यायः।।९४।।

उद्धव कहते हैं—हे कल्याणी! जगन्माता! आप चेतना लाभ करिये। मैं उद्धव कृष्णभक्तों के दासों का दास हूं। हे मातः! आप मेरे ऊपर कृपा करिये। मैं पुनः मथुरा जाऊंगा। मैं स्वतन्त्र नहीं, अपितु पराधीन हूं, जैसे लकड़ी की कटपुतली होती है। जैसे वृष तो गाड़ीवान के वश में सदैव रहता है, वही मेरी स्थिति है। हे माता! यह समस्त जगत् तथा मैं जगन्नाथ के अधीन हैं।।११६-११८।।

।।९४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

राधिका का खेद तथा उद्धव को मथुरागमन की आज्ञा देना

नारायण उवाच

उद्धवस्य वचः श्रुत्वा चेतनं प्राप्य राधिका। सा चोवाच समुत्थाय रत्नसिंहासने वरे॥१॥
उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता। गोपीभिः सप्तभिर्भक्त्या सेविता श्वेतचामरैः॥२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—उद्धव का कथन सुनकर राधा चैतन्य हो गईं। वे उठकर रत्नसिंहासनासीन हो गईं, तब दुःख भरे हृदय से जब उद्धव से मधुर वचन कहा उस समय सात गोपियां राधा को श्वेत चामर झल रही थीं॥१-२॥

राधिकोवाच

मथुरां गच्छ वत्स त्वं मां च (न) विस्मर सम्पदा।
अतोऽप्यधर्मो नास्त्येव भवतो भवसागरे॥३॥
मदीयं वचनं सर्वं गत्वा कथय साम्प्रतम्। श्रीकृष्णं परमानन्दं शीघ्रमानय मत्प्रभुम्॥४॥
योषिज्जन्मनि योषित्सु सम्प्राप्य तादृशं पतिम्।
भेदो बभूव कस्या वा मदन्या काऽपि दुःखिनी[1]॥५॥

राधा कहती हैं—हे वत्स! तुम मथुरा प्रस्थान करो, तथापि वहां के सम्पदा सुख में पड़कर मुझे विस्मृत मत कर देना। तुम्हारे लिये मुझे भूल जाने से अधिक अन्य कोई अधर्म नहीं होगा। तुम वहां जाकर मेरा समस्त वृत्तान्त श्रीकृष्ण से कहना। तदनन्तर उन परमानन्दमय प्रभु को शीघ्र मेरे पास ले आने का प्रयत्न करना जो मेरे स्वामी हैं। मैंने स्त्री होकर जन्म लिया तथा ऐसा पति प्राप्त किया। तत्पश्चात् उनसे इस प्रकार का विछोह हो गया! मुझसे बढ़कर दुःखिया इस जगत् में कौन है?॥३-५॥

किं ददासि प्रबोधं मे नास्ति मे बोधनोचितम्[2]।
निष्फलो देहिनां देहो विनाऽऽत्मानं सहोद्धव॥६॥
सम्प्रीत्या सह सौभाग्यं गौरवं नित्यनूतनम्। अतीव दुर्लभं प्रेम रहस्यं नवसङ्गमम्॥७॥
स्मरामि मनसा शश्वन्नान्यो मनसि वर्तते। रात्रौ निद्रां परित्यज्य स्मरणं शोकवर्धनम्॥८॥
मामुद्धर ध्रुवं वत्स निमग्नां शोकसागरे। जीवाभयप्रदानेन तीर्थे स्नानफलं नृणाम्॥९॥
प्रबोधितुं न शक्नोमि दुर्निवारं च मानसम्।
चिन्तये चरणाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः॥१०॥

---

१. क. ॰खिता।
२. ख. ॰धमौंचि॰।

तद्गुणं महिमानं च प्रीतिं च प्रेमसागरम्।
स्मारं स्मारं च सौभाग्यं मनो मे न स्थिरं चलम्॥११॥

हे उद्धव! तुम मुझे इस प्रकार क्या प्रबोध दे रहे हो (समझा रहे हो)? मुझे प्रबोधित करना कदापि उचित नहीं है। देहधारी का शरीर उसकी आत्मा के अभाव में व्यर्थ है। हे उद्धव! मेरे मन में अन्य किसी भी विषय का उद्भव नहीं हो रहा है। केवल वह नित्य नूतन प्रीति, सौभाग्य, नवगौरव, अति दुर्लभ प्रेम, एकान्त भाषण तथा गोपनीय नव संगम प्रभृति सभी सर्वदा मेरे मन में जागरूक बने रहते हैं। रात में मुझे इसी कारण निद्रा नहीं आती। मैं निद्रा त्याग की स्थिति में यह सब याद करती रहती हूं। इससे मेरा शोकवेग द्विगुणित हो जाता है। हे वत्स! मैं शोकसागर में डूबती जा रही हूं। मेरा उद्धार करो! मनुष्य के लिये प्राणी को अभयदान देना तो तीर्थ स्नान से भी बढ़कर फलदायक है। मेरा मन अत्यन्त दुर्निवार्य है। उसे किसी प्रकार से भी समझाया नहीं जा सकता। मैं उन परमात्मा कृष्ण के चरणकमलों का सतत् चिन्तन करती रहती हूं। यद्यपि मैं निरन्तर उनके गुणों की महिमा, उनकी प्रीति तथा उनके प्रेम के सागर और अपने सौभाग्य का चिन्तन करती रहती हूं, तथापि इतने पर भी मेरा मन स्थिर न रहकर चंचल रहता है॥६-११॥

जगतां युवतीनां च कासां वा दुःखमीदृशम्।
श्रीकृष्णभेददुःखं च का वा जानाति मां विना॥१२॥
किञ्चिज्जानाति सीता साऽप्यहं च विधिबोधितम्।
मत्परा दुःखिनी नास्ति कामिनीषु जगत्त्रये॥१३॥
का वा याति प्रतीतिं मे श्रुत्वा च मानसीं व्यथाम्।
कासां वा मत्समं दुःखं युवतीनां सुतोद्धव॥१४॥
राधिकासदृशी स्त्रीषु न भूता न भविष्यति।
दुःखिनी विरहातप्ता सुखसौभाग्यवर्जिता॥१५॥
सम्प्राप्य कल्पवृक्षं च पतिं च जगतां पतिम्।
वञ्चिताऽहं विधात्रा च निर्दयेन च पापिना[1]॥१६॥
जीवनं सफल जन्म सुस्निग्धं चक्षुषी मनः। तत्पादपद्मवक्त्रेन्दुरूपवेषप्रदर्शनात्॥१७॥

इस जगत् की युवतियों में से ऐसी दुःखभागिनी कौन हो सकती है? मेरे अतिरिक्त श्रीकृष्ण विरह की यातना कौन जान सकती है? (सीता कुछ परिमाण में पति विरह जानती हैं), राधा के समान दुःखतप्ता सुखसौभाग्य वर्जिता स्त्री न तो कभी थी, न होगी। मैंने जगत्पति तथा कल्पवृक्ष के समान पति को प्राप्त तो किया, तथापि मैं अतीव अभागी हूं; क्योंकि विधाता इतना निर्दयी तथा पापी है कि

१. क. ०पिनी।

उसने पति से वंचित कर दिया। उन प्रभु के चरणकमल, मुखचन्द्र तथा रूप तथा वेष को देखकर मेरा जन्म सफल हो गया था। नेत्र स्निग्ध हो गये थे। मन तृप्त हो गया था।।१२-१७।।

यन्नामश्रुतिमात्रेण पञ्च प्राणाः प्रहर्षिताः।
स्मृतिमात्रात्प्रफुल्लयन्त आत्मा सुस्निग्ध एव च।।१८।।
यश्च स्पर्श सुरतौ यशस्त्रिभुवनष्वपि। कया वा सम्पदा वत्स विस्मरामि तमीश्वरम्।।१९।।
त्रैलोक्यविजयं रूपं गुणमेव बिभर्ति यः।
न निर्मितो यो विधिना तेनैव निर्मितो विधिः।।२०।।
तं विधेश्च विधातारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
कल्पवृक्षात्परं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम्।।२१।।
सर्वेशं सर्वबीजं च परमात्मानमीश्वरम्।
कया वा सम्पदा तात विस्मरामि च तं पतिम्।।२२।।

जिनके नाम को सुनने मात्र से पञ्चप्राण प्रहर्षित हो उठते हैं, जिनकी स्मृति मात्र से आत्मा प्रफुल्लित तथा स्निग्ध हो जाती है, जिनका स्पर्श रतिकाल में मिलने मात्र से मैं त्रिभुवन में यशस्वी हो गई, हे वत्स! कौन-सी ऐसी सम्पदा है, जिसे पाकर मैं उन ईश्वर को भूल जाऊंगी? जो प्रभु त्रैलोक्यविजयी रूप-गुण धारण करते हैं जो ब्रह्मा द्वारा निर्मित नहीं हैं, अपितु जिनके द्वारा ब्रह्मा रचे गये हैं, जो समस्त सम्पदा प्रदान करने वाले, कल्पवृक्ष से भी श्रेष्ठ, शान्त, मनोहर, लक्ष्मीकान्त, सर्वेश्वर, सर्वबीज, परमात्मा, ईश्वर हैं। मैं कौन-सी सम्पदा पाकर ऐसे पति को विस्मृत कर सकूंगी? (अर्थात् कदापि उनको भूल ही नहीं सकती)।।१८-२२।।

यस्य निर्मञ्छनार्हश्च च चन्द्रो न च मन्मथः।
नैवाश्विनीकुमारश्च गुणसाम्यं न विश्वतः।।२३।।
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः।
कया वा सम्पदा तात विस्मरामि च तं प्रभुम्।।२४।।
स्वप्ने पश्यन्ति ये रूपमतुलं च मनोहरम्।
तेऽपि सर्वं परित्यज्य ध्यायन्ते तमहर्निशम्।।२५।।

हे तात! चन्द्रमा, कामदेव, अश्विनीकुमार प्रभृति भी जिनकी सुन्दरता से तुलना करने योग्य नहीं है, जिनके समान गुणी समस्त जगत् में अन्य कोई भी नहीं है, जिनके चरणकमलों का ध्यान ब्रह्मा-शिव, अनन्त नित्य करते हैं, मैं उन प्रभु को किस सम्पत्ति के बदले भूल सकती हूं? हे पुत्र! जिसने स्वप्न में एक बार भी कृष्ण की मनोहर अतुलनीय रूपराशि का दर्शन किया है, वे तो संसार के सभी विषयों का त्याग करके अहर्निश उनका ही ध्यान-चिन्तन करते रहते हैं।।२३-२५।।

गुणेन शैलः सलिलं[1] शुष्ककाष्ठं द्रवेदिति।
मृतवृक्षो मुकुलितः स्तम्भितश्च समीरणः॥२६॥
सूर्यश्च जलधिश्चैव स्थगितो भक्तिभावतः।
कया वा सम्पदा पुत्र विस्मरामि च तं प्रियम्॥२७॥

जिन प्रभु के गुण से पर्वत भी जल हो जाता है, शुष्क काष्ठ द्रवीभूत हो जाता है, मृतवृक्ष तक मुकुलित, पल्लवित हो जाता है, वायु स्तम्भित हो जाता है, सूर्य तथा जलधि भी भक्तिभाव के कारण रुक जाते हैं, हे पुत्र! मैं ऐसे प्रिय को किस सम्पदा के बदले भूल सकूंगी?।।२६-२७।।

यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति जन्तुषु॥२८॥
यद्भयात्फलिनो वृक्षाः पुष्पिताः समयेऽपि च।
समुद्राः स्वात्मविषये ग्रहाश्च मुनयः सुराः॥२९॥
कालस्य कालः संहर्तुः संहर्ता स्त्रष्टुरीश्वरः। स्वाधीनश्च स्वतन्त्रश्च स्वयमेवाऽऽत्मसंज्ञकः॥३०॥
कया वा सम्पदा भक्त विस्मरामि च तं प्रभुम्।
प्रबोधो नास्ति तद्भेदे येन मां बोधयेद्बुधः॥३१॥

जिनके भय से वायु प्रवाहित होती है, जिनके भय से सूर्य तप्त होते हैं, जिनके भय से भीत होकर इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि दग्ध करते हैं तथा मृत्यु जिनके भय से प्राणीगण में विचरता रहता है, जिनके भय से वृक्ष समय पर पुष्पित होते हैं, समुद्र-ग्रह-देवता तथा मुनि अपने-अपने कार्य में लगे रहते हैं, जो काल के भी कालरूप, संहर्त्ता का भी (शिव का भी) संहार करने वाले तथा सृष्टिकर्त्ता तक के स्वामी हैं, जो सदा स्वाधीन-स्वतन्त्र हैं, स्वयं ही आत्मा नाम वाले हैं, हे भक्त उद्धव! मैं कौन-सी सम्पदा पाकर उनको विस्मृत कर सकती हूं?।।२८-३१।।

मां च बोधयितुं शक्ता न सावित्री सरस्वती।
न वेदा न च वेदाङ्गाः के वा सन्तश्च के सुराः॥३२॥
सहस्त्रवक्त्रोऽनन्तश्च वेदानां जनको विधिः।
न शंभुर्न गणेशश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥३३॥
स्थितेर्गतिश्चिन्तनीया मार्गशून्ये कुतो गतिः।
कालसाध्यं च सर्वं च सुखं दुःखं शुभाशुभम्॥३४॥

हे उद्धव! मुझे प्रबोधित कर सकने में कौन सक्षम है? ऐसा कोई प्रबोध ही जगत् में नहीं है, जो मुझ कृष्ण विरहिणी को प्रबोधित कर सके? अतः वेद, वेदांग, सावित्री, सरस्वती, सन्त-महात्मागण, देवता, सहस्त्रशीर्षा शेष, वेदजनक ब्रह्मा, योगीन्द्रगण के गुरुओं के भी गुरु शिव तथा गणेश भी मुझे प्रबोधित नहीं कर सकते। जो कहीं स्थित हैं, उसकी गति का विचार किया जा सकता है, परन्तु जिसके

१. गुणेन चैव सलिलमिति पाठं क्वचित्।

लिये कोई मार्ग ही नहीं बचा है, उसकी गति कहां होगी? क्योंकि गति तो मार्ग पर ही विचार्य है। सुख-दुःख, शुभ-अशुभ, यह सब काल साध्य है।।३२-३४।।

दुर्निवारः स कालश्च कालसाध्यं जगत्सु च।
उत्तिष्ठ मथुरां गच्छ सुखं वत्स मनोहरम्।। ३५।।
व्रजवासं परित्यज्य भवांश्च [1]गमनोत्सुकः।
सुचिरं कृष्णविच्छेदो दुःखाय न सुखाय च।।३६।।

सभी कुछ काल साध्य है (वशीभूत है) सभी पदार्थ काल के वश में हैं। लेकिन काल तो दुर्निवार्य है (उसका निवारण संभव नहीं है)। हे वत्स! उद्धव! उठो तुम सुख पूर्वक मनोहर मथुरा नगरी जाओ। तुम तो व्रज छोड़कर वहां जाने के लिये उत्सुक हो। दीर्घकालीन कृष्ण विछोह ही दुःख का कारण है। यह विछोह कदापि सुखदायक नहीं है।।३५-३६।।

पश्य चन्द्रमुखं तस्य जन्मृत्युजरापहम्। राधिकावचनं श्रुत्वा रुरोद भृशमुद्धवः।
रुदतीं राधिकां दृष्ट्वा बन्धुविच्छेदकातराम्।।३७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधोद्धवसं० पञ्चनवतितमोऽध्यायः।।९५।।

"वहां जाकर उन प्रभु के चन्द्रवदन का दर्शन करो, जो जन्म-मृत्यु-जरा विनाशक है।" राधा का वचन सुनकर उद्धव अत्यन्त रुदनरत हो गये। राधिका को भी बन्धु विछोह से कातर देखकर उद्धव और अधिक रोने लगे।।३७।।

।।९५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

उद्धव को राधा द्वारा उपदेश देना, कालगति का वर्णन

नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्मरणं कृत्वा गमनोन्मुखमुद्धवम्। नतं राधापदाम्भोजे शिरसा पुलकाञ्चितम्।।१।।
उवाच माधवी गोपी रुदती प्रेमविह्वला। भक्तं रुदन्तमुच्चैश्च राधाविच्छेदकातरम्।।२।।

१. क. ०नोन्मुखः।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–राधा का आदेश पाकर उद्धव श्रीकृष्ण का स्मरण करके मथुरा गमनार्थ उद्यत हो गये। जैसे ही उन्होंने राधा के चरणकमल पर शिर रखकर प्रणाम किया, वे रोमांचित हो उठे। वे राधा के विछोह के कारण अत्यन्त कातर होकर उच्चस्वर से रो रहे थे। तभी माधवी गोपी ने जब भक्त को रोते देखा, तब वे भी प्रेमविह्वल होकर विलाप करती कहने लगीं–।।१-२।।

माधव्युवाच

उद्धव शृणु वक्ष्यामि क्षणं तिष्ठ यथोचितम्। निगूढं परमं ज्ञानं यत्ते मनसि वाञ्छितम्।।३।।
सुदुर्लभं पुराणेषु वेदेषु गोपनीयकम्। प्रश्नं कुरु महाभाग राधिकां त्रिजगत्प्रसूम्।।४।।

माधवी गोपी कहती हैं–हे उद्धव! क्षणपर्यन्त रुक जाओ। तुम मनोवांछित निगूढ़ परम ज्ञान के सम्बन्ध में जो मैं कहती हूं, उसे श्रवण करो। हे महाभाग! मेरा यह कथन है कि ये राधा त्रैलोक्य जननी हैं। तुम इनसे वह पूछो जो वेद-पुराण में अत्यन्त गोपनीय हैं।।३-४।।

इत्युक्त्वा सा च गोपीशा समुवास सुसंसदि।
उवाच मधुरं शान्तामुद्धवश्चापि राधिकाम्।।५।।

यह कहकर वे प्रधान गोपी माधवी उस उत्तम सभा में आसनासीन हो गईं। तब उद्धव ने शान्त बैठी राधा से विनीत होकर प्रश्न किया।।५।।

उद्धव उवाच

एकाकी भवमायाति यात्येकाकी पुनः पुनः।
प्राणी कर्मानुरोधेन स्वकर्मफलभुक्पुमान्।।६।।
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते। सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैवाभिपद्यते।।७।।
जन्तुर्भोगावशेषेण भोगं भुङ्क्ते भवेषु च। पुनश्च कर्मणो भोगात्समायाति च याति च।।८।।
रत्नादिकं च यत्किंचिन्मह्यं दत्तं त्वया सति।
मया सार्धं न यात्येव तेन मे किं प्रयोजनम्।।९।।
भवाब्धितारणे देवि भवती तरणिर्वरा[1]। कर्णधारः स्वयं कृष्णः सर्वेषां पारकारकः।।१०।।
किञ्चिद्यानं देहि मह्यं भवाब्धिपारकारणम्।
प्राप्य प्रसादं यास्यामि मथुरां कृष्णमूलकम्।।११।।
यां यां कालगतिं मातः सुराणां च नृणामपि।
पितृणां ब्रह्मलोकस्य तदूर्ध्वस्य च तां वद।।१२।।

उद्धव कहते हैं–प्राणीगण कर्मनुसार एकाकी बारम्बार संसार में आता है तथा वह एकाकी ही चला जाता है। तभी जीव (पुरुष) को स्वकर्म फलभागी कहा गया है। वह कर्म से ही जन्म लेता है।

१. क. रमणी।

कर्म से ही विलीन (मृत) हो जाता है। प्राणी वचे हुये कर्म को संसार में पुनः आकर भोगता है। कर्मभोग के कारण उसका जगत् में आना-जाना लगा रहता है। हे पतिव्रता राधिके! आपने मुझे जो नाना रत्नादि द्रव्य प्रदान किया है, वे कुछ भी मेरे साथ नहीं जा सकते। तब उनकी क्या आवश्यकता है? हे देवी! इस भवसागर से पार उतारने हेतु आप श्रेष्ठ नौका हैं। उस नौका के कर्णधार भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं हैं। वे सबको पार कर देते हैं। अब आप ऐसी कुछ वस्तु प्रदान करिये जो संसार-सागर पार करने का कारण बनें। मैं आपसे वह प्रसाद प्राप्त करके तब श्रीकृष्ण के निकट मथुरा जा सकूंगा। हे माता! आप देवताओं, मनुष्यों, पितरों के लोक की तथा ब्रह्मलोक के भी ऊर्ध्व तक की कालगति बतलाने की महती कृपा करिये।।६-१२।।

तामेव दुस्तरां घोरां तीर्त्वा याम हरेः पदम्। एवंभूतमुपायं च देहि मे कमलालये॥१३॥

दूरतो यत्पदाम्भोजं ध्यायन्ते च दिवानिशम्।
देवा ब्रह्मेशशेषाद्यास्त्वं तद्वक्षःस्थलस्थिता॥१४॥

जिसे जानकर मैं घोर दुस्तर कालगति को पार करके श्रीहरि के चरणकमलों को प्राप्त कर सकूं। हे कमलालये! ब्रह्मा-महेश-शेष प्रभृति देवता अत्यन्त दूर से ही उन प्रभु का अहर्निश ध्यान करते रहते हैं। आप ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर विराजमान रहती हैं।।१३-१४।।

उद्धवस्य वचः श्रुत्वा जहास कमलालया। वाससा नेत्रनीरं च संभार्ज्य तमुवाच सा॥१५॥

उद्धव का यह कथन सुनकर कमलालया राधा हंसने लगी। उन्होंने अपने आंचल से नयनों में भरे अश्रु को पोंछ कर कहा-।।१५।।

राधोवाच

माधवीवचनेनैव करोषि प्रश्नमुद्धव। स्त्रीजातिरबला लोके किं वा ज्ञानं ददामि ते॥१६॥

शुद्धां कालगतिं वत्स जानात भगवान्हरिः। ब्रह्मा महेशः शेषश्च वेदाश्चत्वार एव च॥१७॥

किञ्चिद्वेदानुसारेण सन्तो जानन्ति पुत्रक।
श्रूयतां कृष्णवक्त्रेण गोलोके रासमण्डले॥१८॥

गोलोके चापि वैकुण्ठे ब्रह्मलोके च साम्प्रतम्।
या च दृष्टा कालगतिस्तामेव कथयामि ते॥१९॥

श्रीराधा कहती हैं-हे उद्धव! तुमने माधवी गोपी के कथनानुसार यह प्रश्न किया है। हे वत्स! मैं तो अबला नारी अत्यन्त चंचल स्वभाव वाली हूं। अतः मैं तुमको कैसे ज्ञान प्रदान कर सकूंगी? हे वत्स! शुद्ध कालगति को तो भगवान् हरि, ब्रह्मा, महेश, शेष तथा वेद जानते हैं। हे पुत्र! वेद का अनुसरण करके कुछ सन्तगण भी इस गति को जान लेते हैं। मैंने गोलोकस्थ रासमण्डल में श्रीकृष्ण से यह प्रसंग सुना था तथा मैंने गोलोक, वैकुण्ठ तथा ब्रह्मलोक में जो कालगति देखा है, उसे कहती हूं।।१६-१९।।

नृणां पितॄणां देवानां ब्रह्मलोकादिकस्य च।
बहिर्लोकस्य ब्रह्माण्डात्पातालानां च निश्चितम्॥२०॥
दुरत्ययां कालगतिं येनोपायेन पण्डिताः। निस्तरन्ति बुधश्रेष्ठ कथयामि निशामय॥२१॥
भजन्ति जगतां नाथं कालकालं जगद्गुरुम्।
निर्गुणं च निरीहं च परमात्मानमीश्वरम्॥२२॥
सद्यः पतति देहोऽयं विना येन सदात्मना। तं निषेव्य कालगतिं तरत्येव हि केवलम्॥२३॥
आयुर्हरति सर्वेषां प्राणिनां रविरेव च। श्रीहरेः शुद्धभक्तानां सतां पुण्यवतां विना॥२४॥

अब मैं वह प्रसंग कह रही हूं कि मनुष्य, पितृगण, ब्रह्मलोकवासी, पातालवासी इस बाहरी लोकों की कालगति को, इस दुष्पार कालगति को पण्डितजन किस उपाय से उत्तीर्ण कर पाते हैं! वह प्रसंग तुम श्रवण करो। जो जगन्नाथ काल के भी काल, जगद्गुरु, निर्गुण, निरीह परमात्मा ईश्वर का भजन करते हैं, जिन परमात्मा के बिना यह शरीर तत्काल नष्ट हो जाता है, मात्र उनकी सेवा से ही कालगति पार हो सकती है। समस्त प्राणीगण की आयु का हरण करने वाले सूर्य हैं। वे श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्तों को जो पुण्यात्मा सज्जन हैं, छोड़कर समस्त प्राणीगण की आयु का हरण कर लेते हैं।।२०-२४।।

विधेर्मानसिकान्पुत्रांश्चतुरः पश्य पुत्रक। सनकादीन्भागवतान्येषां च सुस्थिरं वयः॥२५॥
रुद्राद्यान्वयसा नित्याञ्ज्ञातिनां च गुरोर्गुरून्। बालाननुपनीतांश्च पञ्चवर्षशिशून्यथा॥२६॥
अभ्यन्तरे महास्फीतान्सस्मितांश्च दिगम्बरान्।
श्रीकृष्णध्यानपूतांश्च तीर्थपूतांश्च वैष्णवान्॥२७॥
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां चिन्ताहीनान्प्रफुल्लितान्।
भक्त्या दिवानिशं शश्वद्धरिभावेन तत्परान्॥२८॥
बाह्यपूजाविहीनांश्च [१]पूतान्मानसिकांस्तथा। मृत्युञ्जयान्महाभागान्कालव्यालजितस्तथा॥२९॥
सनकं च सनन्दं च तृतीयं च सनातनम्। परं सनत्कुमारं च ये समरन्ति च सर्वशः॥३०॥
तीर्थस्नानफलं लब्ध्वा मुच्यते कृतपातकात्।
हरिभक्तिर्भवेत्तेषां हरिदास्यं लभन्ति च॥३१॥

हे पुत्र! स्थिर वय वाले सनकादि ब्रह्मा के पुत्रों की स्थिति का स्मरण करो वे सदा यज्ञोपवीत संस्कार रहित पंचवर्षीय शिशु के वय वाले सदैव रहते हैं। इसी पंचवर्षीय आयु वाला लगने पर भी सनकादि मुनि तो रुद्रादि ज्ञानीगण के गुरुओं के भी गुरु हैं। उनका अन्तर्मन अत्युच्च भावापन्न है। उनका मुख मुस्कानयुक्त रहता है। वे सदा दिगम्बर रहते हैं। ये सदा कृष्ण ध्यानरत रहने के कारण परमपवित्र हो गये हैं। इन वैष्णवों के कारण तो तीर्थ भी (इनके स्पर्श से) पावन हो जाते हैं। ये वेद-वेदांग-शास्त्रज्ञ, चिन्ता रहित, प्रफुल्लित रहते हैं। ये भक्ति पूर्वक अहर्निश हरिभाव में निरत रहा करते हैं। ये

१. क. पूजामा०।

बाह्यपूजा रहित हैं। मानसिक पूजन से ये लोग परिपूत हो गये हैं। ये मृत्युजयी महाभाग कालरूपी सर्प को जीत चुके हैं। सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार का जो व्यक्ति नित्य स्मरण करता है, वह सर्वपाप रहित होकर तीर्थस्नान का फल लाभ करता है। वह हरि भक्ति तथा प्रभु के दास्यपद को प्राप्त कर लेता है।।२५-३१।।

मृकण्डुबालकं पश्य कर्मणा च द्विजोत्तमम्। दशवर्षायुषं तीव्रं ज्वन्तं ब्रह्मतेजसा।।३२।।
हरिसेवनतः पश्चात्सप्तकल्पान्तजीविनम्।
वोढुं पञ्चशिखं पश्य लोमशं चाऽऽसुरिं तथा।।३३।।
सर्वकर्मविहीनं च हरिसेवनतत्परम्। शतकल्पायुषं चैव ध्यायमानं हरेः पदम्।।३४।।
जमदग्नेः सुतं पश्य रामं तं चिरजीविनम्। हनुमन्तं बलिं व्यासमश्वत्थामानमेव च।।३५।।
विभीषणं कृपं विप्रं जाम्बवन्तं च भल्लुकम्।
हरिभावनया चैते शुद्धाः सुचिरजीविनः।।३६।।

अब द्विजप्रवर मृकण्डु पुत्र मार्कण्डेय के सम्बन्ध में विचार करो। इन्होंने कर्म द्वारा उत्तम द्विजोत्तमत्व प्राप्त किया। इनको पहले मात्र १० वर्ष की आयु प्राप्त थी। ये (कर्म द्वारा) तीव्र तप से जाज्वल्यमान हो गये। तदनन्तर हरिसेवा के प्रभाव से इनको ७ कल्प की आयु मिल गई। इसी प्रकार ऋषि वोढु, पंचशिख, लोमश तथा आसुरि का उदाहरण है। ये सर्वकर्म रहित होकर हरिसेवा निरत हो गये। हरि के चरणों का ध्यान करने से इन सबको सौ कल्प की आयु मिल गई। हे उद्धव! जमदग्नि के पुत्र परशुराम का प्रंसग देखो। वे भी चिरजीवी हैं। हनुमान, बलि, व्यास, अश्वत्थामा, विभीषण, कृपाचार्य विप्र, जाम्बवान् भालू को देखो। ये सभी हरि के ध्यान से शुद्ध तथा चिरजीवी हो गये।।३२-३६।।

सिद्धेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु नरेष्वन्येषु चोद्धव। हरिभावनशुद्धाश्च सर्वे ते चिरजीविनः।।३७।।
प्रह्लादं पश्य दैत्येषु हिरण्यकशिपोः सुतम्। हरिद्विषो दुरन्तस्य हरिभावनतत्परम्।।३८।।
चिरायुषं कालजितं पश्यान्यं चाप्यसंख्यकम्।
अनेकजन्मतपसा लब्ध्वा जन्म च भारते।।३९।।
ये हरिं तं न सेवन्ते ते मूढाः कृतपापिनः। वासुदेवं परित्यज्य विषये निरतो जनः।।४०।।

हे उद्धव! इसी प्रकार अनेक सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, नरेन्द्र हरि के ध्यान से शुद्ध होकर चिरजीवी हो गये। हिरण्यकशिपु के पुत्र दैत्य प्रह्लाद का उदाहरण देखो। हिरण्यकशिपु तो भगवान् से परम द्वेष रखता था। वे प्रह्लाद सतत् हरिध्यान में मग्न रहने के कारण चिरजीवी एवं कालजित् हो गये। ऐसे असंख्य उदाहरण मिलते हैं। हे उद्धव! अनेक जन्म के तपःफल से भारत में जन्म प्राप्त हो पाता है। तब भी यहां जन्म लेकर जो हरिसेवा नहीं करते, वे मूढ़ तो पापकर्मा ही हैं। वे लोग वासुदेव का भजन त्यागकर सतत् विषय निरत रहते हैं।।३७-४०।।

त्यक्त्वाऽमृतं महामूढो विषं भुङ्क्ते निजेच्छया।
कस्य स्त्री कस्य वा पुत्रः कस्य वा बान्धवास्तथा॥४१॥
कः कस्य बन्धुर्विपदि श्रीकृष्णेन बिना भुवि।
तत्समात्सन्तः सदा कृष्णं भजन्त्येव दिवानिशम्॥४२॥

वे मूढ़ अपनी इच्छा से अमृत त्याग कर विष भोजन करते हैं। यहां कौन किसकी पत्नी है, कौन किसका पुत्र है और कौन किसका बान्धव है? इस संसार में विपदा आ पड़ने पर श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कौन बन्धु है? वे ही विपदा में एकमात्र बन्धु हैं। तभी सत्पुरुष लोग सदा दिन-रात कृष्ण का भजन करते हैं।।४१-४२।।

जन्ममृत्युजराव्याधिहरं सर्वहरं परम्। कालस्य तरणोपायं भजनं परमात्मनः॥४३॥
आनन्दनन्दनस्यैव परिपूर्णतमस्य च। शृणु कालगतिं वत्स मदीयज्ञानगोचराम्॥४४॥
नराणां च पितृणां च सराणां चापि ब्रह्मणः।
नागानां राक्षसादीनां तत्परेषां च पुत्रक॥४५॥

वे प्रभु श्रीकृष्ण परात्पर भगवान् का भजन करते रहते हैं, जो जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि नाश करने वाले हैं। हे वत्स उद्धव! इसीलिये नन्दनन्दन परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्ण का भजन ही इस दुस्तर काल से तरने का, पार उतरने का एकमात्र उपाय है। हे पुत्र उद्धव! अब तुम मनुष्य, पितृगण, देवगण, ब्रह्मा, नाग, राक्षस तथा अन्य की भी मेरे ज्ञान के अनुसार जो मुझे प्राप्त है, श्रवण करो।।४३-४५।।

कथयामि निगूढार्थं[१] सावधानं निशामय।
सर्वास्माच्च परं स्थानं सर्वाधारो महान्विराट्॥४६॥
यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च तानि च।
सर्वस्माच्च परं सूक्ष्मं परमाणुं निशामय॥४७॥
कालारम्भात्मकं सर्वमनूहं[२] परमीप्सितम्। चरमः[३] सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा॥४८॥

मैं उस अत्यन्त गूढ़ अर्थ का वर्णन कर रही हूं। उसे सावधानी पूर्वक सुनो। जिनके रोमकूपों में असंख्य विश्व विराजित हैं (१ रोमकूप में एक ब्रह्माण्ड है), वे सर्वाधार महाविराट् सबसे स्थूलतम हैं। सभी वस्तु की तुलना में अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु सभी काल का प्रारंभक (आरम्भ करने वाला) तथा अनूह है। (अनूह=अतर्क्य)। यह सबको वांछित, चरम है। यह सभी विशेष की चरम सीमा है। यह अनेक तथा सदा संयुक्त रहने वाला है।।४६-४८।।

परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः। परमाणुद्वयेनाणुस्त्रसरेणुस्तु ते त्रयः॥४९॥

१. निश्चितार्थान् इति पाठः क्वचित्।
२. क. ०स्यानू०।
३. ख. पर०।

त्रसरेणुत्रिकेणापि त्रुटिरुक्ता मनीषिभिः। वेधस्त्रुटिशतेनैव त्रिवेधेन लवस्तथा॥५०॥
त्रिलवेन निमेषश्च त्रिनिमेषेण च क्षणः। काण्ठा पञ्चक्षणेनैव लघुश्च दशकाष्ठया॥५१॥
लघुपञ्चदशं दण्डस्तत्प्रमाणं निशामय। द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः॥५२॥

स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम्।
दण्डद्वये मुहूर्तः स्यात्षष्टिदण्डात्मिका तिथिः॥५३॥

तदष्टभागः प्रहरः प्रमाणं च निरूपणम्। चतुर्भिः प्रहरै रात्रिश्चतुर्भिर्दिनमुच्यते॥५४॥
तिथिपञ्चदशेनैव पक्षमानं प्रकीर्तितम्। पक्षद्वयेन मासः स्याच्छुक्लकृष्णाभिधेन च॥५५॥
ऋतुर्मासद्वयेनैव तत्षट्केनैव वत्सरः। वसन्तग्रीष्मवर्षाश्च शरद्धेमन्तशीतकाः॥५६॥

अर्थात् दो परम अणु मिलकर द्वयणुक, तीन अणु मिलकर त्रसरेणु, तीन त्रसरेणु मिलकर १ त्रुटि कही गई है। यह विद्वानों का कथन है। १०० त्रुटि=१ वेध, ३ वेध=१ लव, ३ लव=एक निमेष, ३ निमेष=१ क्षण कहा गया है। ५ क्षण=१ काष्ठा, १० काष्ठा=१ लघु, १५ लघु=१ दण्ड। इस दण्ड का प्रमाण श्रवण करो। १ पात्र में १ सेर जल रखें। इसमें छह पल का एक पात्र छोड़े। चार स्वर्ण मासे वाले ४ अङ्गुल के स्वर्णतार से यह छेद हो। जितने काल में वह छह अंगुल का पात्र इस छेद से पानी भरने के कारण डूबे, वह काल एक दण्ड है। दो दण्ड=१ मुहूर्त्त, ६ दण्ड=१ तिथि। तिथि का अष्टम भाग एक प्रहर कहा गया। ४ प्रहर का दिन तथा ४ प्रहर की रात कही गयी है। शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष मिलित होकर १ माह कहा जाता है। २ मास=१ ऋतु। छह ऋतु=१ वर्ष। ये षड्ऋतु हैं वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त तथा शिशिर।।४९-५६।।

वर्षाः पञ्चविधा ज्ञेयाः कालविद्भिर्निरूपिताः। संवत्सरः प्रवत्सर इलावत्सर एव च॥५७॥

अनुवत्सरो वत्सरोऽयमिति कालविदो विदुः।
अब्दो द्विषट्कमासैश्च तन्नाम शृणु चोद्धव॥५८॥
वैशाखो ज्येष्ठ आषाढः श्रावणो भाद्र एव च।
आश्विनः कार्तिको मार्गः पौषो माघस्तु फाल्गुनः॥५९॥

चैत्रस्तु चरमो ज्ञेयो वर्षशेषो निरूपितः। वसन्तश्चैत्रवैशाखमासयुग्मेन कीर्तितः॥६०॥
ज्येष्ठाषाढद्वयेनैव ग्रीष्मस्तु परिकीर्तितः। वर्षा श्रावणभद्रे च ह्याश्विने कार्तिके शरत्॥६१॥
मार्गे पौषे च हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुने। अब्दस्तु चायने द्वे वै चोत्तरे दक्षिणायने॥६२॥
माघादिषड्विनिमित्तमुत्तरायणमीप्सितम्। श्रावणादिमासषट्कं दक्षिणायनमेव च॥६३॥

कालज्ञों ने वर्ष ५ प्रकार के कहे हैं। यथा-संवत्सर, प्रवत्सर, इलावत्सर, अनुवत्सर, सर्वान्त में वत्सर। इन नामों को कालज्ञ जानते हैं। हे उद्धव! वर्ष १२ मासों का होता है। उन मासों के नाम ये हैं-वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन तथा चैत्र। चैत्र माह वर्ष का शेष द्योतित कराता है। चैत्र-वैशाख=वसन्त ऋतु। ज्येष्ठ-आषाढ़=ग्रीष्म ऋतु।

श्रावण-भाद्रपद=वर्षा ऋतु। आश्विन-कार्तिक=शरद् ऋतु। अगहन तथा पौष=हेमन्त ऋतु। माघ-फाल्गुन=शिशिर ऋतु। दो अयन हैं–दक्षिणायन, उत्तरायण। माघ मास से लगाकर आषाढ़ मास तक उत्तरायण। श्रावण से पौषमासपर्यन्त दक्षिणायन कहा गया।।५७-६३।।

माघादाषाढपर्यन्तं दिनं वृद्धं क्रमेण वै। नक्तं वृद्धं श्रावणाश्च पौषपर्यन्तमेव च।।६४।।

प्रतिपत्पूर्णिमान्तश्च शुक्लपक्षः प्रकीर्तितः।

पूर्णिमायाः प्रतिपदश्चामावास्यान्त एव च।।६५।।

कृष्णपक्षस्तु विज्ञेयो वेदविद्भिर्निरूपितः।

द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा।।६६।।

षष्ठी च सप्तमी चैव ह्यष्टमी नवमी तथा। दशम्येकादशी चापि द्वादशी च त्रयोदशी।।६७।।

चतुर्दशी कुहूर्यावद्दिनं तु गणनं स्मृतम्।

अश्विनी भरणी चापि कृत्तिका रोहिणी तथा।।६८।।

मृगशिरस्तथाऽऽर्द्रा च नक्षत्रे द्वे पुनर्वसू। पुष्याश्लेषे मघा चैव पूर्वा चोत्तरफाल्गुनी।।६९।।

हस्तचित्रे तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका।

ज्येष्ठा मूलं तथा ज्ञेया पूर्वाषाढोत्तरा तथा।।७०।।

श्रवणाभिजिती चैव धनिष्ठा च प्रकीर्तिता। ततः शतभिषा ज्ञेया पूर्वाभाद्रपदा तथा।।७१।।

तथोत्तरा तु विज्ञेया रेवती चरमा स्मृता। अष्टाविंशति नक्षत्रं कलत्रं शशिनस्तथा।।७२।।

क्रमेण ताभिः सार्धं च चन्द्रस्तिष्ठति नित्यशः।

सप्तविंशति नक्षत्रं कलत्रं च श्रुतौ श्रुतम्।।७३।।

अभिजिच्छ्रवणच्छाया तेनाष्टाविंशतिः स्मृता।

एकदा च मधौ चन्द्रो रोहिण्या वामया सह।।७४।।

श्रावण से पौष पर्यन्त क्रमशः रात्रि बड़ी होती है। वेदज्ञ लोग प्रतिपदा से पूर्णिमा तिथि तक शुक्लपक्ष तथा प्रतिपदा से अमावस्या पर्यन्त को कृष्णपक्ष कहते हैं। प्रतिपदा से लगाकर अमावस्या–यह तिथिगणना का क्रम है। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, अभिजित्, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा-भाद्रपदा तथा रेवती। ये २८ नक्षत्र चन्द्रमा की पत्नियां कही गयी हैं। इनके साथ (एक-के-बाद एक में) क्रमशः चन्द्रमा रहते हैं। वेद में २७ नक्षत्र ही चन्द्र पत्नी रूपी हैं, तथापि श्रवण नक्षत्र की जो छाया है, वही अभिजित् नक्षत्र है। अतः सब २८ नक्षत्र कहे गये। एक समय चैत्रमास में चन्द्रमा रोहिणी के साथ थे।।६४-७४।।

रेमे दिवानिशं नित्यं श्रवणा च चुकोप सा।

छायां च दत्त्वा चन्द्राय ययौ तातान्तिकं भिया।।७५।।

वे दिन-रात रोहिणी के साथ ही रमणरत रह गये। इससे श्रवणा कुपित हो गई। उसने अपनी छाया-चन्द्रमा के यहां रख दिया तथा पिता के पास भय के कारण (दक्ष प्रजापति के पास) चली गई।।७५।।

ततः पितरमादाय सा चक्रे च विभागकम्। बभूव तेन नक्षत्रमभिजिन्नामकं पुरा।।७६।।

एतच्छ्रुत्वा कृष्णमुखाच्छतशृङ्गे च पर्वते।
नक्षत्रं कथितं वत्स तिथ्या भ्रमति नित्यशः।।७७।।
योगं च करणं चैव मद्वक्त्रेण[१] निशामय।
विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनस्तथा।।७८।।
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च।
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा।।७९।।
वज्रं सिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान्परिघः शिवः।
सिद्धिः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मेन्द्रो वैधृतिस्तथा।।८०।।

कीर्तितस्ते योगगणः करणं श्रूयतामिति। बवश्च बालवश्चैव कौलवस्तैतिलस्तथा।।८१।।

गरश्च वणिजश्चापि बिष्टिश्च शकुनिस्तथा।
चतुष्पाच्चापि नागश्च किंस्तुघ्न इति कीर्तितम्।।८२।।

उस समय पिता ने सभी नक्षत्रों को समय का विभाग कर दिया। यही कारण है कि पूर्वकाल में यह अभिजित् नक्षत्र भी विद्यमान है। मैंने शतशृङ्ग पर्वत पर श्रीकृष्ण से यह सुना है कि ये तिथियों सहित नित्य भ्रमण करते हैं। अब योग तथा करण का वृत्तान्त मुझसे श्रवण करो। ये योग हैं—विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघि, शिव, सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्मेन्द्र, वैधृति। करण के नाम हैं—बव, बालव, कौलव, तैत्तिल, गर, वणिज्, विष्टि, शकुनि, चतुष्पाद, नाग, किंस्तुघ्न।।७६-८२।।

नराणां चापि मासेन पितृणां च दिवानिशम्।
शुक्ले चापि दिनं तेषां कृष्णे नक्तं प्रकीर्तितम्।।८३।।

वत्सरेण नराणां च सुराणां च दिवानिशम्। दिनं तेषामुत्तरे च नक्तं च दक्षिणायने।।८४।।

मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः।
मनोरायुः परिमितं शक्रस्याऽऽयुः प्रकीर्तितम्।।८५।।

पञ्चविंशत्सहस्रं च तथा पञ्चशतं परम्। तत्र सूर्यगतिर्नास्ति शक्रपातानुसारतः।।८६।।

१. मदेकत्र इति क्वचित् पाठः।

दिवानिशं च जानन्ति ब्रह्मलोकनिवासिनः। दण्डद्वयं नरपलं शक्रपातेन तत्पलम्॥८७॥
एवं त्रिंशद्दिनेनैव धातुर्मासः प्रकीर्तितः। अब्दो द्वादशभिर्मासैरेवं तस्य शतायुषः॥८८॥
ब्रह्मणः पतनेनैव निमेषाच्छ्रीहरेरपि। धातुः पातानुसारेण वैकुण्ठे च दिवानिशम्॥८९॥

तत्र सूर्यगतिर्नास्ति चैवं गोलोकतः स्मृतम्।
वैकुण्ठवासिनः सर्वे न वै जानन्त्यहर्निशम्॥९०॥
चन्द्रस्यापि ग्रहाणां च गतिर्नास्ति च तत्र वै।
चक्रं नैव भ्रमत्येव राशीनामिच्छया हरेः॥९१॥

दिंन च तेजसा दीप्तं कृष्णस्य परमात्मनः। नक्तं तेजोविहीनं च हरौ च मन्दिरं गते॥९२॥

मनुष्यों का जो मास है, वह पितृगण का एक दिन-एक रात (अहोरात्र) है। मनुष्यों का शुक्लपक्ष पितृगण का दिन है तथा मनुष्यों का कृष्णपक्ष उनकी रात है। (यहां मतान्तर है। अन्यत्र मनुष्यों का शुक्लपक्ष पितरों की रात तथा कृष्णपक्ष पितरों का दिन कहा गया है)। मनुष्यगण का एक वर्ष देवगण का अहोरात्र होता है। उत्तरायण देवताओं का दिन है। दक्षिणायन देवगण की रात्रि है। ७१ दिव्ययुग=१ मन्वन्तर। मनु एवं इन्द्र की आयु समान ही है। यह २५५०० युगों की कही जाती है। ब्रह्मलोक में सूर्य की गति नहीं है। वहां इन्द्र के पतन के अनुसार उतने काल का दिन-रात होता है। इन्द्र का पतनकाल (१ मन्वन्तर) ब्रह्मा का दिन है तथा एक मन्वन्तर की ही उनकी रात्रि होती हैं। जैसे मनुष्य के कालमान में पल होता है, तदनुरूप ब्राह्म कालमान में भी तदनुरूप पल होता है। उनके कालमान से दो पल का उनका एक दण्ड होता है। इन्द्र के पतनकाल के अनुरूप उनका दिन तथा उतने ही कालमान की ब्रह्मा की रात्रि होती है। ऐसे तीस दिनों का ब्रह्मा का एक मास तथा उस कालमान की गणना के अनुसार काल वाला उनका १२ मासीय वर्ष होता है। इस ब्राह्मवर्ष के अनुसार १०० वर्ष की ब्रह्मा की आयु होती है। जितनी ब्रह्मा की पूर्ण आयु है, वह श्रीकृष्ण का एक निमेष है। ब्रह्मा के कालमानानुसार वैकुण्ठ एवं गोलोक में दिन-रात की स्थिति है ही नहीं। वहां सूर्य गति नहीं है। इन दोनों लोक के लोग रात्रि-दिवस जानते ही नहीं। वहां चान्द्रगति एवं ग्रहगति है ही नहीं। भगवत् इच्छा के कारण वहां राशिचक्र चक्रमण ही नहीं कर पाता। परमात्मा कृष्ण के तेज के कारण गोलोक दीप्त रहता है। जब श्रीहरि महल में चले जाते हैं, तब तेज रहित स्थिति वहां हो जाती है। यही गोलोक की रात है।॥८३-९२॥

एवं कालगतिस्तत्र विष्णुलोकेऽस्ति संततम्।
कालस्वरूपो भगवान्परमात्मा निराकृतिः॥९३॥

चन्द्रसूर्यगतिर्नास्ति पातालेषु च सप्तषु। तद्वासिनश्च जानन्ति शङ्कन्ते न दिवानिशम्॥९४॥

हे उद्धव! कुछ ऐसा ही कालगति विष्णुलोक (वैकुण्ठ) में भी है। ये निराकार परमात्मा ही कालरूप हैं। सप्तपाताल में भी चन्द्र-सूर्य की गति नहीं है। वहां के निवासीगण यह तथ्य जानते हैं।

तभी वे संकेत से दिवा-रात्रि जान लेते हैं। उनको दिन-रात के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका ही नहीं होती।।९३-९४।।

दिने च मूर्ध्नि नागानां मणिर्ज्वलति नित्यशः।
सन्ध्यायां दीप्तमग्निश्च रात्रिश्च तमसाऽऽवृता।।९५।।
कालं ताम्रीप्रमाणेन जानन्ति तन्निवासिनः।
यथा भुवि तथा तत्र परिमाणं प्रकीर्तितम्।।९६।।

पाताल लोक दिन में नागों की शिरोमणियों से दीप्त रहता है। सन्ध्याकाल वहां अग्नि की दीप्ति रहती है। रात्रि वहां पर तमसाच्छन्न रहती है। वहां पर रहने वाले घटी यन्त्र से काल-व्यवस्था को जानते हैं। पृथिवी पर जो काल परिमाण है, वही काल परिमाण पाताल में भी निरूपित होता है।।९५-९६।।

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्। दिव्यैर्द्वादशसाहस्त्रैर्वत्सरैश्चापि तन्मितम्।।९७।।
अष्टौ शतान्यप्यधिकं सहस्त्राणां चतुष्टयम्। दिव्यैर्वर्षैः कृतयुगं कालविद्भिर्निरूपितम्।।९८।।
अष्टाविंशत्सहस्त्राण्यप्यधिकं परिमाणकम्। लक्षाणां च सप्तदशं नृमानं परिकीर्तितम्।।९९।।

अधिकं षट्शतान्येव सहस्त्राणां त्रयं[1] तथा।
दिव्यैर्वर्षैश्च त्रेतेति वत्स कालविदो विदुः।।१००।।
षण्णवतिसहस्त्राणि लक्षैर्द्वादशभिः सह।
नृणां वर्षैश्च त्रेतेति कालविद्भिः प्रकीर्तितः।।१०१।।
चतुष्टयं शतानां चाप्यधिकं द्विसहस्त्रकम्।
वर्षं दिव्यं द्वापरं च कालज्ञैः परिकीर्तितम्।।१०२।।

चतुःषष्टिसहस्त्राणि लक्षैरष्टभिरेव च। नृणां वर्षैर्द्वापरं च कालज्ञैः परिकीर्तितम्।।१०३।।
अधिकं द्विशतं चैव दिव्यं वर्षसहस्त्रकम्। एवंमितं कलियुगं वत्स प्राज्ञैर्निरूपितम्।।१०४।।

द्वात्रिंशच्च सहस्त्रं च चतुर्लक्षं नृमानकम्।
वर्षं चेति कलियुगे चकार कालकोविदः।।१०५।।

लक्षैर्द्विचत्वारिंशद्भिः सह विंशत्सहस्त्रकैः। नृमानवर्षैः कालज्ञैर्व्यक्तमेव चतुर्युगम्।।१०६।।

इति ते कथितं वत्स कालसंख्यानिरूपणम्।
यथाश्रुतं यथाज्ञानं गच्छ वत्स हरेः पुरम्।।१०७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधोद्धवसं०
कालनिरूपणं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः।।९६।।

---

१. ख. शतं।

युग चार हैं। यथा कृतयुग, त्रेता, द्वापर, कलिकाल। ये सभी १२ हजार दिव्य वर्षों के होते हैं (१ दिव्य वर्ष=३६० मानव वर्ष)। कृतयुग को दिव्यमान से ४८०० वर्षों का काल वेत्तागण ने बतलाया है। इसका मानव वर्ष है १७ लाख २८ हजार वर्ष। दिव्य परिमाण से त्रेतायुग का परिमाण ३६०० वर्ष है। मनुष्य वर्ष के अनुसार त्रेतायुग १२ लाख छानवें हजार वर्ष का होता है। इसी प्रकार कालज्ञ विद्वानों ने द्वापरयुग का परिमाण दिव्य वर्ष की गणना से २४०० वर्ष कहा है। यह मानव वर्ष की गणना से ८ लाख चौसठ हजार वर्ष होगा। कलियुग का दिव्य वर्ष से मान १२०० वर्ष होगा। जो मानव वर्ष के अनुसार चार लाख बत्तीस हजार वर्ष कहा गया है। इस प्रकार मनुष्य वर्ष के अनुसार एक चतुर्युग (सत्य-त्रेता-द्वापर-कलि=१ चतुर्युग) तैतालीस लाख बीस हजार वर्ष कहा गया है। हे वत्स! जिस प्रकार मैंने सुना था तथा जो मेरा ज्ञान था, वह कालसंख्या निरूपण मैंने किया है। हे वत्स! तुम अब हरि की नगरी मथुरा गमन करो।।९७-१०७।।

।।९६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

राधा तथा उद्धव का संवाद

नारायण उवाच

गच्छन्तमुद्धवं दृष्ट्वा संत्रस्ता श्रीहरेः प्रिया। समुत्थायाऽऽसनाच्छीघ्रं हृदयेन विदूयता।।१।।

गोपीभिः सहिता शीघ्रं समुद्विग्ना महासती।
ददौ शुभाशिषं तस्मै तस्य मूर्ध्नि करं तथा।।२।।
स्निग्धदूर्वाक्षतं शुक्लधान्यं पुष्पं च मङ्गलम्।
प्रेरयामास लाजांश्च फलं पर्णं तथा दधि।।३।।

दर्पणं दर्शयामास पूर्णकुम्भं सपल्लवम्। सफलं गन्धसिन्दूरकस्तूरीचन्दनान्वितम्।।४।।
पुष्पमाल्यं प्रदीपं च रत्नं गन्धं द्विजोत्तम। पतिपुत्रवती साध्वी काञ्चनं रजतं तथा।।५।।
तमुवाच महासाध्वो हितं सत्यं च मङ्गलम्। सङ्गोप्य साश्रुनेत्रं च पतितं दुःखिता हृदि।।६।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! श्रीहरि की प्रिया राधा ने जब उद्धव को जाने के लिये उद्यम करते देखा तभी वे दुःख विह्वला होकर अपने आसन से उठ गईं। सती राधा ने अत्यन्त उत्कंठित होकर गोपियों के साथ उद्धव के मस्तक पर हाथ रखकर उनको आशीर्वाद प्रदान किया।

तदनन्तर कोमलदूर्वा-अक्षत-श्वेत धान्य एवं मंगलप्रद पुष्पों को भी उद्धव के मस्तक पर रक्खा। तत्पश्चात् फल, लावा और दधि, दर्पण, पल्लवयुक्त कलश, गन्ध-सिन्दूर-कस्तूरी-चन्दन युक्त माला, प्रदीप, रत्न, गन्ध, पति पुत्रवती साध्वी नारी, स्वर्ण तथा रजत जैसी मांगलिक वस्तु का उनको दर्शन कराया। हे द्विजोत्तम नारद! तत्पश्चात् महासाध्वी राधा ने अपने नेत्रों से उमड़ते अश्रुओं को छिपाकर अपने चरणकमलों पर पड़े उद्धव से दुःख हृदय से अत्यन्त हितप्रद, सत्य एवं मङ्गलकारी वचनों को कहा-॥१-६॥

राधिकोवाच

शुभं भवतु मार्गस्ते कल्याणमस्तु सन्ततम्।
ज्ञानं लभ हरेः स्थानात्कृष्णस्य सुप्रियो भव॥७॥

कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम्। श्रेष्ठा पञ्चविधा मुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी॥८॥
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि। अमृतात्सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम्॥९॥

देवी राधा कहती हैं-हे उद्धव! मार्ग में भी तुम्हारा मङ्गल हो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम श्रीहरि से उनके पास जाकर ज्ञानलाभ करो। तुम कृष्ण के प्रिय पात्र बनो। तुमको श्रेष्ठ वर के रूप में कृष्णभक्ति, कृष्ण का दासत्व यह मिले। पंचविध मुक्ति में से श्रेष्ठ हरिभक्ति ही सबसे गुरुतर मुक्ति है। ब्रह्मत्व, देवत्व, इन्द्रत्व, अमरत्व, सिद्धिलाभ, इन सबकी तुलना में हरि का दासत्व दुर्लभ है॥७-९॥

अनेकजन्मतपसा संभूय भारते द्विजः। हरिभक्तिं यदि लभेत्तस्य जन्म सुदुर्लभम्॥१०॥
सफलं जीवनं तस्य कुर्वतः कर्मणः क्षयम्। पितॄणां च सहस्राणि स्वस्य मातुश्च निश्चितम्॥११॥

मातामहानां पुंसां च शतानां सोदरस्य च।
बान्धवस्यापि पत्न्याश्च गुरूणां शिष्यभृत्ययोः॥१२॥
तत्कर्म शोभनं वत्स यच्च कृष्णे समर्पणम्।
तत्कर्म शोभनं शुद्धं कृष्णसन्तोषणं यतः॥१३॥

सङ्कल्पसाधनं कर्म सम्प्रीतिविधिपूर्वकम्। तदेव मङ्गलं धन्यं परिणामसुखावहम्॥१४॥

हे उद्धव! अनेक जन्मों के तपःश्चरण से जो द्विज भारत में जन्म लेकर हरिभक्ति प्राप्त करता है, उसके जन्म को अत्यन्त दुर्लभ कहते हैं। ऐसे ही व्यक्ति का जन्म लेना सफल है; क्योंकि वह अपने पूर्वकृत कर्मों का इस प्रकार क्षय कर देता है। ऐसे व्यक्ति तो अपने पितृगण की सहस्रों पीढ़ी, माता, मातामही के कुल को, पूर्वजों को, सहोदर भ्राता, बन्धु, पत्नी, गुरुजन, शिष्य एवं सेवकों का भी जीवन सफल करते हैं। (वे सब भी उत्तम गतिलाभ कर लेते हैं)। हे वत्स! व्यक्ति जो कर्म कृष्ण को अर्पित कर देता है, वही शोभन कर्म है। जिस कर्म से श्रीकृष्ण सन्तुष्ट हों, वही कर्म शोभन तथा शुद्ध हैं। जो कर्म प्रीति (भक्ति पूर्वक) पूर्वक तथा सविधि किया गया और संकल्प सिद्ध करने वाला है, वही कर्म मंगलमय, धन्य तथा सुखप्रद परिणामप्रद है॥१०-१४॥

तद्व्रतं तत्तपः सत्यं तद्भक्तिः पूजनं तथा। तदुद्देश्यमनशनं केवलं दास्यकारणम्॥१५॥
समस्तपृथिवीदानं प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा। समस्ततीर्थस्नानं च समस्तं च व्रतं तपः॥१६॥
समस्तयज्ञकरणं सर्वदानफलं तथा। समस्तवेदवेदाङ्गपठनं पाठनं तथा॥१७॥
भीतस्थं रक्षणं चैव ज्ञानदानं सुदुर्लभम्। अतिथीनां पूजनं च शरणागतरक्षणम्॥१८॥
सर्वदेवार्चनं चैव वन्दनं जपनं मनोः। भोजनं विप्रदेवानां पुरश्चरणपूर्वकम्॥१९॥
गुरुशुश्रूषणं चैव पित्रोर्भक्तिश्च पोषणम्।
सर्वं श्रीकृष्णदास्यस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥२०॥
तस्मादुद्धव यत्नेन भज कृष्णं परात्परम्। निर्गुणं च निरीहं च परमात्मानमीश्वरम्॥२१॥

श्रीकृष्ण के लिये जो व्रत, तप, सत्यपालन, भक्तिमय पूजन, व्रत किया जाता है, वही केवल श्रीहरि की दासत्व प्राप्ति का कारण होता है। समस्त पृथिवी दान, पृथिवी की प्रदक्षिणा, सर्वतीर्थस्नान, सभी व्रत तथा तप, समस्त यज्ञानुष्ठान, सर्वदानफल, समस्त वेद-वेदांग पाठ, इनका अध्यापन, भयभीत की रक्षा करना, दुर्लभ ज्ञानदान, अतिथिपूजा, शरणागतरक्षा, सभी देवों की अर्चना, उनकी वन्दना, मन्त्रजप, विप्र तथा देवगण को भोजनार्पण, पुरश्चरण, गुरु सेवा, माता-पिता की भक्ति तथा उनका पोषण, ये सब पुण्यकर्म कृष्णभक्ति की तुलना में १/१६ भाग भी नहीं हैं। हे उद्धव! इसलिये तुम यत्न पूर्वक परातपर प्रभु कृष्ण का भजन करो। वे निर्गुण, निरीह (वांछा रहित), परमात्मा ईश्वर हैं।।१५-२१।।

नित्यं सत्यं परं ब्रह्म प्रकृतेः परमीश्वरम्[1]। परिपूर्णतमं शुद्धं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥२२॥
कर्मिणां कर्मणां साक्ष्यप्रदं निर्लिप्तमेव च।
ज्योतिःस्वरूपं परमं कारणानां च कारणम्॥२३॥
सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वसम्पत्प्रदं शुभम्। भक्तिदं दास्यदं स्वस्य निजसंपत्पदप्रदम्॥२४॥
विसृज्य ज्ञातिबुद्धिं च मात्सर्यमशुभप्रदम्। भज तं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम्॥२५॥

वे नित्य, सत्यमय, परमब्रह्म, प्रकृति से परे, ईश्वर, परिपूर्णतम, शुद्ध, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर (मूर्त्ति) धारी हैं। वे सत्कर्मागण के तथा सभी के कर्मों से साक्षी, तथापि सबसे निर्लिप्त, ज्योतिस्वरूप, समस्त कारणों के भी परमकारण, सर्वस्वरूप, सर्वेश, सर्वसम्पदाप्रदाता, शुभ, भक्तिदाता, दास्यदाता, अपनी सम्पदा भी देने वाले हैं। तुम मात्सर्यप्रद ज्ञातिबुद्धि त्याग करो। उन परमानन्दप्रद नन्दनन्दन का आनन्द के साथ भजन करो।।२२-२५।।

वेदे कौथुमिशाखायां तस्य नाम्नां सहस्त्रकम्।
नन्दनन्दननामोक्तं कृतौ विघ्नं सुदुर्लभम्॥२६॥

१. क. ०मीप्सितम्।

हे उद्धव! वेद की कौथुमीशाखा में उनके सहस्रनाम अंकित हैं। ये ही नन्दनन्दन के सहस्रनाम कहे जाते हैं। उसका पाठ करने से विघ्न दुर्लभ हो जाता है। (अर्थात् विघ्न दिखलाई ही नहीं पड़ता)।।२६।।

उद्धवः सर्वमाकर्ण्य परमं विस्मयं ययौ। ज्ञानं सम्प्राप्य सम्पूर्णं परिपूर्णो बभूव ह।।२७।।
स्ववस्त्रं च गले बद्ध्वा दण्डवत्प्रणनाम ताम्।
मूर्ध्नः केशैश्च तत्पादं निबध्य च पुनः पुनः।।२८।।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रश्च भक्तितः। तद्विच्छेदशुचा प्रेम्णा रुरोदोच्चैश्च नारद।।२९।।

उद्धव यह सब उपदेश सुनकर अत्यन्त विस्मित हो गये। वे सम्पूर्ण ज्ञान पाकर परिपूर्ण हो गये। उन्होंने अपने वस्त्र का आंचल अपने कण्ठ में लपेटा तथा उन देवी को दण्डवत् होकर प्रणाम किया। वे अपने शिर के केश भगवती राधा के चरणों में रखकर बारम्बार उनको दण्डवत् लेटकर प्रणाम करने लगे। उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। भक्ति के कारण उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। हे नारद! अब उद्धव राधा से विछोह हो जाने के कारण अत्यन्त प्रेम उमड़ने के फलस्वरूप उच्चस्वर से रुदन करने लगे।।२७-२९।।

रुरोद राधा तत्प्रेम्णा रुरोद बल्लवीगणः।
उद्धवस्य गलं धृत्वा स्थापयामास लोभतः।।३०।।
उद्धवं मूर्च्छितं दृष्ट्वा जृम्भितं त्यक्तचेतनम्।
शीघ्रमुत्थापयामास राधिका कृष्णमानसम्।।३१।।
चेतनं कारयामास जलं दत्त्वा मुखाम्बुजे। शुभाशिषं च प्रददौ वत्स जीवेति नारद।।३२।।
उद्धवश्चेतनां प्राप्य तमुवाच सुसंसदि। रुदतीनां च गोपीनां पुरतः परमार्थदम्।।३३।।

उधर राधा एवं गोपियां भी रुदन करने लगीं। तदनन्तर राधा ने उद्धव को गले से पकड़कर उठा कर बैठाया, तथापि राधा के अश्रुओं की धारा से उद्धव का वस्त्र सिक्त हो चला। राधा ने देखा कि जंभाई लेकर उद्धव अपनी चेतना खोकर मूर्च्छित हो गये हैं! तब कृष्णगत् प्राण उद्धव को राधा ने उठाकर उनके मुख में जल छोड़कर उनको चैतन्य किया। हे नारद! तब राधा ने "हे वत्स! चिरकाल जीवित रहो।" कहकर आशीर्वाद भी दिया। जब इस प्रकार उद्धव चेतनायुक्त हो गये तब उन्होंने उस उत्तम संसद में रुदन कर रही गोपियों से परमार्थप्रद वाक्य कहा-।।३०-३३।।

उद्धव उवाच

धन्यो यशस्यो द्वीपानां जम्बुद्वीपः सुदुर्लभः। यत्र भारतवर्षं तु सर्वेषामीप्सितं वरम्।।३४।।
अहो भारतवर्षे तु पुण्यं वृन्दावनं वनम्। राधापादाब्जसंस्पर्शरजः पूतं सुरेप्सितम्।।३५।।

उद्धव कहते हैं-सभी द्वीपों में से यह जम्बूद्वीप प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। यह धन्यतम,

यशपूर्ण तथा सबको वांछित एवं श्रेष्ठ है। अहो! इस भारतवर्ष में भी वृन्दावन एक पुण्यमय वन है। वह राधा के चरण कमलों की रज के संस्पर्श से पूर्ण पवित्र हो गया, जिसकी कामना देवता भी करते हैं।।३४-३५।।

धन्या मान्या च पृथिवी त्रिषु लोकेषु पूजिता।
राधायास्तीर्थपूतायाः पादाब्जरजसा वरा।।३६।।
षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यानि पुष्करे पुरा। ब्रह्मणा च तपस्तप्तं वेदोक्तं भक्तिपूर्वकम्।।३७।।
गोलोके राधिकाकृष्णदर्शनार्थं मनोरथात्।
गोलोके राधिकाकृष्णो न दृष्टः स्वप्नतस्तदा।।३८।।
श्रुता तेनाऽऽकाशवाणी सत्यरूपा च लीलया।
वाराहे भारते वर्षे पुण्ये वृन्दावने वने।।३९।।
रासोत्सवे महाराम्ये तत्रैव रासमण्डले। द्रक्ष्यसीति च देवानां मध्ये सुस्थो न संशयः।।४०।।

इसी कारण यह वसुन्धरा भी त्रैलोक्य में धन्य हो गई। यह सबके द्वारा मान्य एवं त्रैलोक्य पूजिता है। यह धरती राधा के चरणों के रजकणों के संस्पर्श के कारण अत्यन्त श्रेष्ठ हो गई; क्योंकि राधा के चरणरजकण के स्पर्श से तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने वेदोक्त तपःश्चरण पुष्कर तीर्थ में दिव्यमान वाले ६०००० वर्षों तक भक्ति के साथ किया था। यह तप ब्रह्मा ने गोलोक में राधा-कृष्ण के दर्शन की कामना से किया था, परन्तु इस दीर्घकालीन दुष्कर तप करने पर भी ब्रह्मा राधा-कृष्ण का दर्शन प्राप्त नहीं कर सके! उनको तो गोलोकस्थ राधाकृष्ण का दर्शन स्वप्न में भी नहीं मिला! तभी उन्होंने वहां नित्यरूपा अशरीरी आकाशवाणी का श्रवण किया। इस सत्यरूपा वाणी ने लीला पूर्वक कहा–वाराह कल्प में भारतवर्षस्थ पुण्यमय वृन्दावन के महारम्य रासमण्डल में (राधा-कृष्ण का) रासोत्सव होगा। वहां देवगण के मध्य तुमको सुखासीन राधाकृष्ण का दर्शन अवश्य होगा। यह निःसंशय जानो।।३६-४०।।

श्रुत्वा च विरतो ब्रह्मा तपसः स्वगृहं गतः। कृष्णो दृष्टश्च हृष्टश्च परिपूर्णमनोरथः।।४१।।
गोपानां गोपिकानां च सफलं जन्म जीवनम्।
नित्यं पश्यन्ति ते पादपद्मं ब्रह्मादिदुर्लभम्।।४२।।
मानिनीं राधिकां सन्तः सदा सेवन्ति नित्यशः।
योगीन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा वैष्णवास्तथा।।४३।।
सतीं पुण्यां तीर्थपूतां स्वतः शुद्धां सुदुर्लभाम्।
सुलभं यत्पदाम्भोजं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम्।।४४।।
यत्पादपद्मनखरं कृतं यावकचिह्नितम्। सर्वेश्वरेश्वरेणैव कृष्णेन परमात्मना।।४५।।

चकार यस्याः पूजां च स्तोत्रराजं सुदुर्लभम्।
शतशृङ्गे स्वयं कृष्णो गोलोके रासमण्डले॥४६॥

यह आकाशवाणी सुनकर ब्रह्मा तप से विरत होकर अपने गृह चले गये। तत्पश्चात् उचित समय पर वे कृष्ण का दर्शन करके पूर्ण मनोरथ हो गये। इन गोपीगण तथा गोपों का तो जीवन-जन्म सफल है; क्योंकि ये नित्य-ब्रह्मादि को भी दुर्लभ चरणकमलों का नित्य दर्शन करते हैं। ये सभी सन्त-योगीन्द्रगण-मुनीन्द्र-सिद्धेन्द्र, वैष्णव सदा मानिनी राधा की नित्य सेवा करते हैं जो सती राधा पुण्यमयी, तीर्थों को भी पवित्र करने वाली, स्वतः सिद्धा तथा सुदुर्लभा हैं। इनको ब्रह्मादि के लिये भी दुर्लभ यह चरणकमल सुलभ हो जाता है। सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण, परमात्मा श्रीकृष्ण ने इन राधा के चरणकमल के नखों को आलता लगाकर चिह्नांकित किया था। इन चरणों की पूजा गोलोकस्थ शतशृङ्ग पर्वतस्थ रासमण्डल में श्रीकृष्ण ने दुर्लभ स्तोत्रराज से किया था।।४१-४६।।

पारिजातप्रसूनानामञ्जलिं गन्धचन्दनम्। ददौ दूर्वाक्षतं स्निग्धं यस्याः पादारविन्दयोः॥४७॥

त्रिंशत्सहस्रकोटीनां गोपीनामीश्वरी च या।
तत्षट्त्रिंशत्सखीनां च ईश्वरी राधिकाभिधा॥४८॥
ये वा द्विषन्ति निन्दन्ति पापिनश्च हसन्ति च।
कृष्णप्राणाधिकादेवदेवीं च राधिकां वराम्॥४९॥

ब्रह्महत्याशतं ते च लभन्ते नात्र संशयः। तत्पापेन च पच्यन्ते कुम्भीपाके च रौरवे॥५०॥

तप्ततैले महाघोरे ध्वान्ते कोटे च यन्त्रके।
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं पितृभिः सप्तभिः सह॥५१॥

ततः परं च जायन्ते जन्मैकं लोकजन्मतः। दिव्यं वर्षसहस्रं च विष्ठाकीटाश्च पापतः॥५२॥
पुंश्चलीनां योनिकीटास्तद्रक्तमलभक्षकाः। मलकीटाश्च तन्मानवर्षं च पूयभक्षकाः॥५३॥

इन चरणकमलों पर कृष्ण ने पारिजात पुष्पों की पुष्पाञ्जलि गन्ध-चन्दन-दूर्वा-अक्षत-युक्त प्रदान किया था। ये राधिका ३६ सखियों की तथा ३६ सहस्र कोटि संख्यक गोपियों की ईश्वरी हैं। ये कृष्णप्रिया कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं तथा देवताओं की भी पूज्या हैं, जो इनसे द्वेष करता है अथवा इनका उपहास करता है, वह पापी सौ ब्रह्महत्या के पातक से ग्रस्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है। इस पातक के फलस्वरूप वह पातकी कुम्भीपाक तथा रौरवनरक में पकाया जाता है। उसे तपाये तैल के कुण्ड में, महाघोर अन्धकार में, कोल्हूयन्त्र में अपनी सात पूर्व पीढ़ियों के साथ १४ इन्द्रों के अधिकार काल तक कष्ट दिया जाता है। तत्पश्चात् वह उस पाप के कारण १ सहस्र दिव्यवर्ष कालपर्यन्त मल का कीड़ा होकर रहता है। तत्पश्चात् वह इतने ही काल पर्यन्त कुलटा नारियों की योनि का कीट होकर योनिरक्त तथा योनि से निर्गत मल का भक्षण करता है। वह मवाद भी भक्षण करता है।।४७-५३।।

वेदे च काण्वशाखायामित्याह कमलोद्भवः।
इत्युक्तवन्तं तं यान्तमुवाच राधिका पुनः।
रुदन्तं च रुदन्ती सा कृष्णविच्छेदकातरा॥५४॥

यही वेद की काण्वशाखा में स्वयं विधाता ब्रह्मा ने यही कहा है। यह कहने के उपरान्त कृष्ण वियोग कातरा राधा ने विलाप करते हुये उन मथुरा गमनोद्यत उद्धव से कहा जो रो रहे थे।।५४।।

राधिकोवाच

गच्छ वत्स मधुपुरीं सर्वं बोधय माधवम्। यथा पश्यामि गोविन्दं प्रयत्नेन तथा कुरु॥५५॥

निष्फलं च गतं जन्म गच्छ मिथ्यादुराशया।
आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्॥५६॥
पश्चाद्विचिन्त्य गोविन्दं जीवन्मुक्ता बभूव सा।
इत्युक्त्वा राधिका तत्र रुरोद च भृशं पुनः॥५७॥

श्रीराधा कहती हैं–"हे उद्धव! तुम सुख पूर्वक मधुरा सभी संवाद माधव से कहना तथा ऐसा प्रयत्न करना जिससे मैं पुनः गोविन्द का दर्शन पा सकूं। हे वत्स! तुम शीघ्र जाओ! मेरा जन्म केवल मिथ्या दुराशा में रहकर निष्फल हो गया। आशा तो परम दुःख की खान है। निराशा ही परमसुख है। वारांगना पिंगला दुराशा रखकर जब निष्फल निराश हो गई तब गोविन्द की चिन्तना करके जीवन्मुक्त हो गयी थी।" यह कहकर राधिका फूट-फूट कर रुदन करने लगीं।।५५-५७।।

प्रणम्य तां रुदन्तीं च यशोदाभवनं ययौ। अथोद्धवे गते राधा मूर्च्छां सम्प्राप नारद॥५८॥

उन रुदनरत राधा को प्रणाम करके उद्धव यशोदा के भवन की ओर चले गये। हे नारद! उद्धव के चले जाते ही राधा मूर्च्छाग्रस्त हो गयीं।।५८।।

तत्याज चेतनां शश्वद्बभूव ध्यानतत्परा। पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले शयने मुने॥५९॥

गोप्यस्तां स्थापयामासुः साश्रुनेत्रोत्पला वराः।
तत्स्पर्शमात्राच्छयनं भस्मीभूतं बभूव ह॥६०॥
पुनः स्निग्धस्थले स्निग्धनिचोले चन्दनाङ्किते।
पुनस्तां स्थापयामासुर्विरहज्वरकातराम्॥६१॥

सहसा शुष्कतां प्राप सुगन्धि चन्दनोदकम्। निमेषेण शतयुगं तद् बभूवोद्धवं विना॥६२॥

वे अचेतनावस्था में ही उस समय ध्यान तत्पर हो गयीं। हे मुनि! गोपीगण ने उनको उस समय सजल पंकजदल (कमलदल) की शय्या पर शयन कराया। उस समय गोपियों ने जब राधा को उस शय्या पर लिटाया, तब उनके नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा विगलित होने लगी। गोपियों के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। परन्तु राधिका के शरीर के स्पर्शमात्र से (उनकी विरहाग्नि के कारण) वह शय्या

दग्ध हो गयी! (सभी सजल कमलपत्र दग्ध हो गये) यह देखकर गोपीगण ने अब राधा को स्निग्ध स्थल पर शयन कराया, जो अत्यन्त स्निग्ध था तथा उस पर चन्दन जल सिंचित वस्त्र (चादर) बिछी थी, परन्तु राधा को उस पर लिटाते ही वह चादर जो चन्दन जल से आर्द्र थी, राधा के कृष्णविरह ज्वर के ताप से सहसा शुष्क हो गयी! उद्धव के अभाव में राधा को एक-एक पल का समय भी सौ युगों के समान प्रतीत हो रहा था।।५९-६२।।

हा होद्धवोद्धव हरिं शीघ्रं गत्वा वदेति च। समानय हरिं शीघ्रं मत्प्राणेश्वरमित्यपि।।६३।।
इत्युक्तवचनां[1] दीनां संतापहृतचेतनाम्। रुरुदुर्गोपिकाः सर्वा राधां कृत्वा स्ववक्षसि।
चेतनां कारयामासुर्बोधयामासुरीप्सितम्।।६४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधोद्धवसं० सप्तनवतितमोऽध्यायः।।९७।।

—***—

वे सहसा दुःखपूर्ण स्वर में कहने लगीं–"हा उद्धव! तुम शीघ्र जाकर मेरी पीड़ा का वर्णन प्राणेश्वर कृष्ण से कहो! उनको शीघ्र मेरे पास ले आओ।" यह कहकर राधा पुनः चेतना शून्य हो गईं। यह देखकर गोपियां उनको वक्ष से लगाकर उच्चस्वर से रुदनरत हो गईं। इसके पश्चात् गोपियां उनको चैतन्य करके उनको अभीष्ट, वांछित प्रबोधन वाक्य कहते आश्वस्त करने लगीं।।६३-६४।।

।।९७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

उद्धव का मथुरा आगमन तथा भगवान् से वृन्दावन का वृत्तान्त कथन

नारायण उवाच

अथोद्धवो यशोदां च प्रणम्य त्वरया मुदा। खर्जूरकाननं वामे कृत्वा च यमुनां ययौ।।१।।
स्नात्वा भुक्त्वा च तत्रैव जगाम मथुरां पुनः। ददर्श वटमूले च गोविन्दं रहसि स्थितम्।।२।।
प्रफुल्लोऽप्युद्धवं दृष्ट्वा सस्मितं तमुवाच सः।
रुदन्तं शोकदग्धं च साश्रुनेत्रं च कातरम्।।३।।

---
१. क. ०वन्ती सहसा सततं ह०।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! तदनन्तर उद्धव ने यशोदा के यहां जाकर उनको मुदित मन से प्रणाम किया तथा वे वृन्दावन से आगे बढ़े। उन्होंने खजूर वन को अपने बायें करके यमुना की ओर प्रस्थान किया। यमुना तट पर पहुंचकर उद्धव स्नान, भोजन करके मथुरा पहुंचे। वहां उद्धव ने देखा कि श्रीकृष्ण अत्यन्त निर्जन स्थल में वटवृक्ष के नीचे आसीन हैं। उस समय श्रीकृष्ण ने शोकाकुल साश्रुनयन भयभीत उद्धव को देखकर कहा–।।१-३।।

श्रीभगवानुवाच

आगच्छोद्धव कल्याणं राधा जीवति जीवति।
कल्याणयुक्ता गोप्यश्च जीवन्ति विरहज्वरात्।।४।।
शुभं गोपशिशूनां च वत्सानां च गवामपि। माता मे पुत्रविरहाद्यशोदा कीदृशी[1] च सा।।५।।
वद बन्धो यथार्थं तत्त्वां दृष्ट्वा किमुवाच सा।
त्वयोक्ता जननी किं वा पुनः सा किमुवाच माम्।।६।।

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे उद्धव! आओ! सब कुछ कल्याणमय तो है न? राधा जीवित हैं? विरहज्वरदग्ध कल्याणयुता गोपियां जीवित तो हैं न? गौओं के बछड़े, गोपशिशु सभी कुशल तथा शुभयुक्त तो हैं? पुत्रविरह से दुःखी मेरी माता यशोदा का क्या हाल है? हे बन्धु! उन्होंने तुमको देखकर क्या कहा था? तुमने उनसे क्या कहा? तथा तुम्हारा कथन सुन कर माता ने मेरे निमित्त तब क्या कहा?।।४-६।।

दृष्टं तद्यमुनाकूलं पुण्यं वृन्दावनं वनम्। निर्जनोपवनोघैश्च सुरम्यं रासमण्डलम्।।७।।
रम्यं कुञ्जकुटीरौघै रम्यं क्रीडासरोवरम्। पुष्पोद्यानं विकसितं संकुलं च मधुव्रतैः।।८।।
भाण्डीरे च वटो दृष्टः सुस्निग्धो बालकान्वितः।
दृष्टो गोष्ठो गवां दृष्टं गोकुलं गोकुलव्रजम्।।९।।

वहां जाकर क्या तुमने वहां यमुना तट, पुण्यमय वृन्दावन, निर्जन उपवन समूह, सुरम्य रासमण्डल, रम्य कुंज कुटीर समूह, क्रीड़ा सरोवर, भ्रमर गुंजार से गूंजती मधुवन की पुष्पित वाटिका, भाण्डीरवन में शीतल छाया वाले वटवृक्ष के तले क्रीड़ारत बालक वृन्द, गौओं का गोष्ठ, गोकुल तथा गौओं के झुण्ड को देखा?।।७-९।।

यदि जीवति राधा सा दृष्ट्वा त्वां किमुवाच माम्।
तत्सर्वं वद हे बन्धो चाऽऽन्दोलयति मे मनः।।१०।।
किमूचुर्गोपिकाः सर्वाः किमुचुर्गोपबालकाः।
गोपाश्च वृद्धाः किंवोचुर्वयस्या जनकस्य मे।।११।।

---

१. क. ०शी वरा।

बलदेवस्य जननी किमूचे रोहिणी सती। किमुचूरपरास्तात बन्धुवल्लभवल्लवाः॥१२॥
किं भुक्तं किमपूर्वं वा दत्तं मात्रा च राधया।
कीदृग्वाक्यं सुमधुरं संभाषा कीदृशीति च॥१३॥
गोपानां गोपिकानां च शिशूनां मातुरेव च।
राधायाश्चापि कीदृग्वा मयि प्रेमोद्धवाधिकम्॥१४॥
मां च स्मरति माता मे मां च स्मरति रोहिणी।
मां च स्मरति सा राधा मत्प्रेमविरहाकुला॥१५॥

यदि राधा जीवित बची हैं, तब उन्होंने तुमको देखकर क्या कहा? हे बन्धु! वह सब कुछ कहो। सुनने हेतु मेरा मन आन्दोलित हो रहा है! गोपियां, गोपबालकों, गोपों, वृद्धजनों ने तथा मेरे पिता के समवयस्क लोगों ने तुमसे क्या कहा? सती रोहिणी जो बलदेव की माता हैं, उन्होंने तुमसे क्या कहा? वहां अन्य बन्धुजन की पत्नियों ने तुमसे क्या कहा था? तुमने वहां क्या भोजन किया? राधा ने तुमको वहां क्या प्रदान किया? उन्होंने तुमसे किस प्रकार के भाव से वार्त्ता किया? उनके वचन-वाक्य कैसे सुमधुर थे? गोपियों, गोपगण, शिशु, उनकी माताओं तथा राधा का मेरे प्रति प्रेम कैसा है? क्या वह प्रेम पूर्वकाल से अधिक है? क्या माता यशोदा तथा माता रोहिणी मेरा स्मरण करती हैं? क्या मेरे प्रेम तथा विरह से व्याकुलित राधा मेरा स्मरण करती हैं?॥९-१५॥

मां च स्मरन्ति गोप्यश्च गोपाश्च गोपबालकाः।
भाण्डीरे वटमूले च बालाः क्रीडन्ति मां विना॥१६॥
दत्तमन्नं ब्राह्मणीभिर्यत्र भुक्तं सुधोपमम्। प्रमदाबालकैःसार्धं तद्दृष्टं पदमीप्सितम्॥१७॥
इन्द्रयागस्थलं दृष्टं दृष्टो गोवर्धनो वरः। ब्रह्मणा च हृता गावो यत्र तद्दृष्टमुत्तमम्॥१८॥

क्या गोपी-गोप-गोपबालक मेरा स्मरण करते हैं? क्या मेरे बिना भाण्डीर वन के वटवृक्ष के नीचे बालक क्रीड़ा करते हैं? जहां ब्राह्मणी स्त्रियों द्वारा प्रदत्त अमृत जैसे अन्न को मैंने स्त्रियों, बालकों के साथ ग्रहण किया था, क्या उस स्थान को तुमने देखा? इन्द्रयागस्थल, श्रेष्ठ गोवर्द्धन पर्वत, जहां से ब्रह्मा ने गौओं का हरण किया था, क्या उन उत्तम श्रेष्ठ स्थानों को तुमने देखा?॥१६-१८॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा शोकोक्तं मधुरान्वितम्।
उद्धवः समुवाचेदं भगवन्तं सनातनम्॥१९॥

श्रीकृष्ण का मधुर, परन्तु शोकमय वचन सुनकर उद्धव उन सनातन भगवान् से कहने लगे॥१९॥

उद्धव उवाच

यद्यदुक्तं त्वया नाथ सर्वं दृष्टं यथेप्सितम्। सफलं जीवनं जन्म कृतमत्रैव भारते॥२०॥

दृष्टं भारतसारं च पुण्यं वृन्दावनं वनम्। तत्सारं व्रजभूमौ च सुरम्यं रासमण्डलम्॥२१॥

तत्सारभूता गोलोकवासिन्यो गोपिकाः वराः।
दृष्टा तत्सारभूता च राधा रासेश्वरी परा॥२२॥

कदलीवनमध्ये च निर्जने सुहृदस्थले। पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले चन्दनार्चिते॥२३॥

शयनेऽतिविषण्णा सा रत्नभूषणवर्जिता।
अतीव मलिना क्षीणाऽऽच्छादिता शुक्लवाससा॥२४॥

सेविता सखिभिस्तत्र सततं श्वेतचामरैः। कृशोदरी निराहारा क्षणं श्वसिति च क्षणम्॥२५॥

क्षणं जीवति किं वा सा विरहज्वरपीडिता।
किं वा जलं स्थलं किं वा नक्तं किं वा दिनं हरे॥२६॥

उद्धव कहते हैं–हे नाथ! आपने जिन स्थानों के सम्बन्ध में कहा है, वह सब मैंने देख लिया। इससे मेरा भारत में उत्पन्न जीवन तथा जन्म सफल हो गया। मैंने भारत का सारभूत वृन्दावन, उसके साररूप व्रजभूमि में स्थित रासमण्डल का दर्शन कर लिया। उसकी भी सारभूत गोलोकवासिनी गोपकन्याओं को, उनकी भी साररूपा रासेश्वरी राधा को मैंने देख लिया। परा देवी राधा कदलीवन के बीच अत्यन्त निर्जन सुहृदस्थल में चन्दनाक्त (चंदन लिप्त आर्द्र) चंदन पंकयुक्त शय्या पर अपने रत्नाभूषण आदि उतारे अत्यन्त खिन्न दशा में पड़ी थीं। उन्होंने अत्यन्त मलिन क्षीण श्वेतवस्त्र से स्वयं को ढांक लिया था। सखियां उनकी सेवा श्वेत चामर झलकर कर रही थीं। निराहार रहने के कारण उनका उदर कृश हो गया है। क्षण में कभी उनकी श्वास बहती है, कभी नहीं बहती। कभी प्रतीत होता है कि वे पुनरुज्जीवित हो गईं, तो कभी लगता है, वे विरहज्वर से अत्यन्त कातर होकर पड़ गई हैं? क्या ऐसी स्थिति में वे जीवित रह सकेंगी? हे हरि! उनको यह भी भान नहीं है कि कहां जल है, कहां स्थल है, कब रात है, तो कब दिवाकाल!॥२०-२६॥

नरं पशुं न जानाति किं परं किमु बान्धवम्। बाह्यज्ञानविरहिता ध्यायमाना पदं तव॥२७॥

त्रैलोक्ये यशसा भाति तन्मृत्युर्यशसंभवः।
स्त्रीहत्यां नैव वाञ्छन्ति ज्ञान हीनाश्च दस्यवः॥२८॥

वे यह भी नहीं पहचान पातीं कि कौन मनुष्य है, कौन पशु? कौन पराया है, कौन बान्धव है? वे बाह्यज्ञान से रहित होकर सतत् आपके चरणों के ध्यान में निरत हैं। त्रैलोक्य में उनका यश प्रकाशित है। अतः उनकी मृत्यु भी यशपूर्ण ही रहेगी। (तथापि यह आपके लिये अपयश होगा; क्योंकि आप ही उनकी मृत्यु के कारण होंगे)! ज्ञानहीन दस्युगण भी स्त्री हत्या करना नहीं चाहते।॥२७-२८॥

गच्छ शीघ्रं जगन्नाथ कदलीवनमीप्सितम्।
बहिर्भूता न जगतां सा राधा त्वत्परायणा॥२९॥

अतीव भक्ता न त्याज्या प्रभुणा रक्षिता सदा। न हि राधापरा भक्ता न भूतो न भविष्यति॥३०॥

मन्मथः शङ्कराद्भीतो भवांश्च तत्पुरःसुरः। भवद्विधं पतिं प्राप्य कामदग्धा च राधिका॥३१॥

हे नाथ! आप अपने उस कदलीवन में शीघ्र जायें। हे जगत्पति! समस्त जगत् आपका दर्शन करना चाहता है। ये राधा जगत् से अलग नहीं हैं। वे सदा आपमें तन्मय रहती हैं। वे आपकी अतीव भक्त हैं। वे त्याज्य नहीं हैं, वे आपके द्वारा रक्षा करने योग्य हैं। राधा से श्रेष्ठ भक्त न तो थी न तो कभी होगी। कामदेव शंकर से भयभीत रहते हैं, जब की आप कामदेव से पूजित हैं! आप तो शंकर के भी परे हैं। आप जैसा पति पाकर भी राधा कामदग्धा हो रही हैं!॥२९-३१॥

तस्मात्सर्वपरं कर्म तन्न केनापि वार्यते। मधुर्दहति चन्द्रश्च सततं किरणेन च॥३२॥

शश्वत्सुगन्धिवायुश्चाप्यनाथा सर्वपीडिता।
तप्त काञ्चनवर्णाभा साऽधुना कज्जलोपमा॥३३॥

जगत् में कर्म सबसे बढ़कर है। उसका निवारण कोई भी नहीं कर सकता। वसन्त ऋतु (मधुमास) तथा चन्द्र की शीतल किरणें भी उन विरहज्वाला से दग्ध हो रही राधा को शीतलता प्रदान न करके उनको दग्ध कर रही हैं। अर्थात् चन्द्र की शीतलता भी राधा को ज्वालावत् प्रतीत हो रही है। सुगन्धित वायु भी उन अनाथा को पीड़ा पहुंचा रही है। इस प्रकार राधा सभी तरह से पीड़िता हैं। जिनका देह वर्ण तप्त कांचन के समान उज्वल था, वह अब कज्जलवत् श्याम हो रहा है॥३२-३३॥

सुवर्णवर्णकेशी च वासोवेषविवर्जिता।
स्वयं विधाता त्वद्भक्तः सुराणां प्रवरो विभुः॥३४॥
त्वद्भक्तः शङ्करो देवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।
सनत्कुमारस्त्वद्भक्तो गणेशो ज्ञानिनां वरः[१]॥३५॥
मुनीन्द्राश्च कतिविधास्त्वद्भक्ता धरणीतले।
त्वद्भक्ता यादृशी राधा न भक्तादृशोऽपरः॥३६॥

उनके केशपाश स्वर्णवर्ण के हो गये हैं। वे वेषभूषा तथा वस्त्र सज्जा से रहित हैं। देवप्रवर तथा जगत्प्रभु ब्रह्मा तक आपके भक्त हैं, योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु शंकर आपके भक्त हैं। सनत्कुमार तथा ज्ञानीगण में प्रधान गणेश आपके भक्त हैं। वसुधा पर रहने वाले अनेक-अनेक श्रेष्ठ मुनिप्रवर भी आपके भक्त हैं, तथापि इन सब भक्तों की तुलना राधा से की जाने पर तो राधा के समान भक्त कोई भी नहीं ठहरता!॥३४-३६॥

ध्यायते यादृशी राधा स्वयं लक्ष्मीर्न तादृशी।
हरिरायाति चेत्येवं राधाग्रे स्वीकृतं मया॥३७॥

शीघ्रं गच्छ महाभाग तदेव सार्थकं कुरु। उद्धवस्य वचः श्रुत्वा जहासोवाच माधवः।

वेदोक्तं कथयामास सहितं सत्यसुव्रतम्॥३८॥

१. क. गुरुः।

"भगवती राधा जितनी तन्मयता से आपका ध्यान करती हैं, वैसा आपका ध्यान स्वयं लक्ष्मी भी नहीं कर सकतीं। मैंने राधा को यह स्वीकृति दिया है कि कृष्ण गोकुल आयेंगे। हे महाभाग! आप शीघ्र वहां चलकर मेरा वचन सार्थक करिये।" उद्धव का यह निवेदन सुनकर श्रीकृष्ण ने हंसते हुये वेदोक्त उत्तम सत्यव्रत का वर्णन करते हुये उनसे कहा–।।३७-३८।।

श्रीभगवानुवाच

स्त्रीषु धर्मविवाहेषु वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे। गवामर्थे ब्राह्मणार्थे नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्।।३९।।
तत्स्वीकारविहीनेन कुतस्त्वं नरकः कुतः। गोलोकं याति मद्भक्तो नरकं न हि पश्यति।।४०।।
त्वङ्गीकारसाफल्यं करिष्यामि तथाऽपि च।
यास्यामि स्वप्ने तन्मूलं गोपीनां मातुरेव च।।४१।।
इत्याकर्ण्य ययौ गेहमुद्धवश्च महायशाः। हरिर्जगाम स्वप्ने च गोकुलं विरहाकुलम्।।४२।।
स्वप्ने राधां सामाश्वास्य दत्त्वा ज्ञानं सुदुर्लभम्।
संतोष्य क्रीडया तां च गोपिकाश्च यथोचितम्।।४३।।

श्रीभगवान् कहते हैं–"नारीगण से, धर्मविवाह में तथा क्रीड़ास्थल में, जीविका हेतु, प्राण संकट होने पर, गौ, ब्राह्मण की रक्षा के लिये असत्य कहना निन्दनीय नहीं माना गया है। अतः तुमने जो राधा को स्वीकृति दिया है, वह यद्यपि सार्थक सफल नहीं हो सकी, तथापि इससे तुमको नरक नहीं मिलेगा। तुम मेरे भक्त हो। मेरे भक्तगण सदा गोलोक ही जाते हैं। उनको नरक तो दृष्टिगोचर ही नहीं होता, तथापि तुमने जो स्वीकृति राधा को दिया है, वह मैं सफल करता हूं।" यह सुनकर महायशस्वी उद्धव अपने गृह लौट गये। श्रीहरि विरही गोकुलवासीगण के स्वप्नलोक में गोकुल गये। उन्होंने स्वप्न में राधा को आश्वस्त करके उनको दुर्लभ ज्ञान प्रदान किया। उन्होंने स्वप्नजगत् में ही नाना क्रीड़ा द्वारा राधा तथा गोपीगण को यथोचित सन्तुष्ट किया।।३९-४३।।

बोधयित्वा यशोदां च स्तनं पीत्वा च निद्रिताम्।
गोपान्गोपशिशूंश्चैव बोधयित्वा ययौ पुनः।।४४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधोद्धवसं० अष्टनवतितमोऽध्यायः।।९८।।

—※※※—

तदनन्तर निद्रित यशोदा को उनके स्वप्न में नाना प्रकार से आश्वस्त करके उनका स्तनपान भी कृष्ण ने किया। इसी समय उन्होंने गोपगण तथा गोपबालकों को भी पुनः आश्वासन देकर प्रबोधित कर दिया। तत्पश्चात् वे मथुरा (स्वप्न से) चले गये।।४४।।

।।९८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ नवनवतितमोऽध्यायः

वसुदेव के यहां गर्गमुनि का आगमन, राम-कृष्ण के यज्ञोपवीत संस्कार का प्रस्ताव, वहां अन्य ऋषियों का आगमन, वसुदेव द्वारा प्रकृति के वृत्तान्त का कथन

नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे गर्गो वसुदेवाश्रमं ययौ। दण्डी छत्री च जटिलो दीप्तश्च ब्रह्मतेजसा॥१॥

शुक्लयज्ञोपवीती च तपस्वी संयतः सदा।
शुक्लदन्तः शुक्लवासा यदोः कुलपुरोहितः॥२॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देवकीं प्रणनाम च। वसुदेवश्च भक्त्या च रत्नसिंहासनं ददौ॥३॥

मधुपर्कं कामधेनुं वह्निशुद्धांशुकं तथा। दत्त्वा गन्धं पुष्पमाल्यं पूजयामास भक्तितः॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–इसी समय शुक्लवर्ण यज्ञोपवीत धारण किये, सदा-संयतमन वाले तपस्वी भगवान् गर्गाचार्य उस वसुदेवगृह में आये। उनके हाथ में दण्ड-छत्र था। मस्तक जटाभार से विलम्बित था (जटा लटक रही थी)। वे ब्रह्मतेज से अत्यन्त प्रदीप्त थे। उनकी दन्तपंक्ति श्वेत थी। उन्होंने श्वेतवस्त्र धारण किया था। वे यदुकुल के पुरोहित थे। देवकी ने उनको देखते ही उठकर प्रणाम किया। वसुदेव ने भक्ति के साथ उनको बैठने हेतु रत्न का सिंहासन प्रदान किया। उनको मधुपर्क, गौ, अग्निविशुद्ध वस्त्र, गन्ध, पुष्पमाला प्रभृति देकर प्रणाम किया तथा भक्तिभाव से गर्गमुनि की पूजा भी किया।॥१-४॥

मिष्टान्नं परमान्नं च पिष्टकं मधुरं मधु। भोजयामास यत्नेन ताम्बूलं वासितं ददौ॥५॥

प्रणम्य कृष्णं मनसा सबलं तं विलोक्य च। उवाच वसुदेवं च देवकीं च पतिव्रताम्॥६॥

मिष्टान्न, परमान्न, पिष्टक, मधुर मधु का ऋषिगर्ग को भोजन कराने के उपरान्त उनको कर्पूर से सुवासित ताम्बूल भी प्रदान किया। तदनन्तर गर्गाचार्य ने अपने मन की सम्पूर्ण भावना से उनको प्रणाम करने के अनन्तर बलराम ने जब कृष्ण को वहीं देखा, तब उन्होंने वसुदेव तथा पतिव्रता देवकी से कहा!॥५-६॥

गर्ग उवाच

वसुदेव निबोधेनं सबलं पश्य पुत्रकम्। उपनीतोचितं शुद्धं वयसा साम्प्रतं वरम्॥७॥

गर्गाचार्य कहते हैं–हे वसुदेव! बलदेव तथा कृष्ण को देख कर विचार करो कि इनकी आयु अब उपनयन संस्कार योग्य हो गई।॥७॥

वसुदेव उवाच

शुभक्षणं कुरु गुरो यदूनां पूज्यदैवत। उपनीतोचितं शुद्धं प्रशंस्यं च सतामपि॥८॥

वसुदेव कहते हैं–हे गुरुदेव! आप तो यदुकुल के पूजनीय देवता हैं। उपनयन के लिये उपयुक्त ऐसा शुद्ध एवं उत्तम मुहूर्त्त निश्चित करिये जो साधुगण द्वारा प्रशंसित हो।।८।।

सर्वेभ्यो बान्धवेभ्योऽपि देह्यामन्त्रणपत्रिकाम्। संभारं कुरु यत्नेन वसुदेव वसूपम॥९॥
परश्वः शुभमेवास्ति चोपेनतुमिहार्हसि। दिनं सतामपि मतं विशुद्धं चन्द्रतारयोः॥१०॥

गर्गाचार्य कहते हैं–हे वसुदेव! तुम सभी बन्धुगण को निमन्त्रण पत्रिका भेजो। यत्नतः यज्ञोपवीत संस्कारार्थ उपयोगी सामग्री एकत्र करो। परसों ही शुभकाल है। उस दिन चन्द्र-तारा भी विशुद्ध तथा शुभ है।।९-१०।।

गर्गस्य वचनं श्रुत्वा वसुदेवो वसूपमः। प्रस्थापयामास सर्वान्बन्धून्मङ्गलपत्रिकाम्॥११॥
घृतकुल्यां दुग्धकुल्यां दधिकुल्यां मनोहराम्।
मधुकुल्यां गुडकुल्यां प्रचकार समन्वितः॥१२॥
राशिं नानोपहाराणां मणिरत्नं सुवर्णकम्। नानालङ्कारवस्त्रं च मुक्तामाणिक्यहीरकम्॥१३॥
श्रीकृष्णो देववर्गांश्च मुनीन्द्रसिद्धपुङ्गवान्। सस्मार मनसा भक्त्या भक्तांश्च भक्तवत्सलः॥१४॥
शुभे दिने च सम्प्राप्ते ते च सर्वे समाययुः। मुनीन्द्रा बान्धवा देवा राजानो बहुशस्तथा॥१५॥
देवकन्या नागकन्या राजकन्याश्च सर्वशः। विद्याधर्यश्च गन्धर्वाश्चाऽऽययुर्वाद्यभाण्डकाः॥१६॥

गर्ग का वचन सुनकर वसुतुल्य वसुदेव ने बन्धुगण के पास कृष्ण-बलराम के उपनयन की मंगलपत्रिका भेजा। तत्पश्चात् घृत, दुग्ध, दधि, मधु, गुड़, प्रभृति की कृत्रिम नदी एवं मणि-रत्न-स्वर्ण-मुक्ता-माणिक्य-हीरा आदि नाना द्रव्यों के ढेर, अलंकार-वस्त्र प्रभृति प्रचुर परिमाण में एकत्र कर लिया। तभी भक्त वत्सल श्रीकृष्ण ने देवताओं, मुनीन्द्रों, सिद्धों तथा भक्तों को यत्नतः स्मरण किया। तत्पश्चात् शुभ तिथि उपस्थित होने पर वसुदेव के भवन में मुनीन्द्रगण, बन्धुवर्ग, देवतावृन्द तथा अनेक राजाओं का समागम हो गया। उस अवसर पर वहां देवकन्यायें, नागकन्यायें, राजकन्यायें, विद्याधरगण, गन्धर्वगण तथा वाद्यभाण्डक प्रभृति बहुसंख्यक लोग वहां आये।।११-१६।।

ब्राह्मणा भिक्षुका भट्टा यतयो ब्रह्मचारिणः। संन्यासिनश्चावधूता योगिनश्च समाययुः॥१७॥
स्त्रीबान्धवाः स्वबन्धूनां वर्गा मातामहस्य च।
बन्धूनां बान्धवाः सर्वे स्वाययुः शुभकर्मणि॥१८॥

वहां उस अवसर पर ब्राह्मण, भिक्षुक, भट्ट, यति, ब्रह्मचारी, संन्यासी, अवधूत तथा योगीगण भी आ गये। उस शुभ यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर वहां स्त्रीगण के बन्धुवर्ग वाले, अपने कुल के बन्धुगण, नाना के कुल वाले तथा बन्धुओं के भी बन्धु का समागम हो गया।।१७-१८।।

भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्चाप्यश्वत्थामा कृपो द्विजः।
सुपुत्रो धृतराष्ट्रश्च सभार्यश्च समाययौ॥१९॥
कुन्ती सपुत्रा विधवा हर्षशोकसमाप्लुता।
नानादेशोद्भवा योग्या राजानो राजपुत्रकाः॥२०॥
अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनो भरद्वाजो महातपाः।
याज्ञवल्क्यश्च भीमश्च गार्ग्यो गर्गो महातपाः॥२१॥

उस मंगलमय अवसर पर वहां भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, द्विज कृपाचार्य, धृतराष्ट्र के पुत्रगण अपनी पत्नियों सहित आये। विधवा कुन्ती अपने पुत्रों के साथ हर्षशोकान्वित होकर आईं। नाना देश के योग्य राजा, राजपुत्र, अत्रि-वसिष्ठ-भरद्वाजादि महातपा ऋषिगण, याज्ञवल्क्य, ऋषिभीम, गार्ग्य, गर्ग भी वहां उपस्थित थे।।।१९-२१।।

वत्सः सपुत्रश्च धर्मो जैगीषव्यः पराशरः।
पुलहश्च पुलस्त्यश्चाप्यगस्त्यश्चापि सौभरिः॥२२॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवान्वोढुः पञ्चशिखस्तथा॥२३॥
दुर्वासाश्चाङ्गिरा व्यासा व्यासपुत्रः शुकस्तथा।
कुशिकः कौशिको राम ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः॥२४॥
शृङ्गी च वामदेवश्च गौतमश्च गुणार्णवः।
क्रतुर्यतिश्चाऽऽरुणिश्च शुक्राचार्यो बृहस्पतिः॥२५॥
अष्टावक्रो वामनश्च वाल्मीकिः पारिभद्रकः। पैलो वैशंपायनश्च प्रचेताः पुरुजित्तथा॥२६॥
भृगुर्मरीचिर्मधुजित्कश्यपश्च प्रजापतिः। अदितिर्देवमाता च दितिर्दैत्यप्रसूस्तथा॥२७॥
सुमन्तुश्च सुभानुश्च कण्वः कात्यायनस्तथा।
मार्कण्डेयो लोमशश्च कपिलश्च पराशरः॥२८॥
पाणिनिः पारियात्रश्च पारिभद्रश्च पुङ्गवः। संवर्तश्चाप्युतथ्यश्च नरोऽहं चापि नारद॥२९॥
विश्वामित्रः शतानन्दो जाबालिस्तैतिलस्तथा[1]।
सांदीपनिश्च ब्रह्मांशो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः॥३०॥
उपमन्युर्गौरमुखो मैत्रेयश्च श्रुतश्रवाः। कठः कचश्च करखो भरद्वाजश्च धर्मवित्॥३१॥
सशिष्या मुनयः सर्वे वसुदेवाश्रमं ययुः। वसुदेवश्च तान्दृष्ट्वा ववन्दे दण्डवद्भुवि॥३२॥

पुत्रसहित वत्स, धर्म, जैगीषव्य, पराशर, पुलह, पुलत्स्य, अगत्स्य, सौभरि, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, वोढु, पञ्चशिख, दुर्वासा, अङ्गीरा, व्यास, व्यासनन्दन शुक, कुशिक, कौशिक,

१. क. ०तिलि०।

परशुराम, शृङ्गी, विभाण्डक, वामदेव, गुणसागर गौतम, क्रतु, यति, आरुणि, शुक्र, बृहस्पति, अष्टावक्र, वामन, वाल्मीकि, पारिभद्रक, पैल, वैशम्पायन, प्रचेता, पुरुजित्, भृगु, मरीचि, मधुजित्, कश्यप प्रजापति, देवमाता अदिति, दैत्यमाता दिति, सुमन्तु, सुभानु, कण्व, कात्यायन, मार्कण्डेय, लोमश, कपिल, पराशर, पाणिनि, पारियात्र, पारिभद्र, पुंगव, संवर्त्त, उतथ्य, नर तथा मैं नारायण ऋषि स्वयं, विश्वामित्र, शतानन्द, जाबालि, तैतिल, योगीगण तथा ज्ञानीगण के गुरु ब्रह्मर्षि सांदीपनि, उपमन्यु, गौरमुख, मैत्रेय, श्रुतश्रवा, कठ, कच, करख, धर्मज्ञ भरद्वाज तथा अन्य मुनिगण शिष्य मण्डली लेकर वसुदेव गृह आये। इन ऋषिगण को समागत देखकर वसुदेव ने सबको भूमि पर दण्डवत् होकर प्रणाम किया।।२२-३२।।

अथास्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सस्मितो हंसवाहनः। रत्ननिर्माणयानेन पार्वत्या सह शङ्करः।।३३।।
नन्दी स्वयं महाकालो वीरभद्रः सुभद्रकः। मणिभद्रः पारिभद्रः कार्तिकेयो गणेश्वरः।।३४।।
गजेन्द्रेण महेन्द्रश्च धर्मश्चन्द्रो रविस्तथा। कुबेरो वरुणश्चैव पवनो वह्निरेव च।।३५।।
यमः संयमिनीनाथो जयन्तो नलकूबरः। सर्वे ग्रहाश्च वसवो रुद्राश्च सगणस्तथा।।३६।।
आदित्याश्च तथा शेषो नानादेवाः समाययुः।
वसुदेवश्च भक्त्या च ववन्दे शिरसा भुवि।।३७।।
तुष्टाव परया भक्त्या देवेन्द्रांश्च तथा सुरान्।
भक्तिनम्रात्ममूर्धा च पुलकाञ्चितविग्रहः।।३८।।

तभी हर्षित ब्रह्मा हंसारूढ होकर आ गये। रत्नमय विमान पर आसीन शिव-पार्वती, नन्दीश्वर, महाकाल, वीरभद्र, सुभद्रक, मणिभद्र, पारिभद्र, कार्त्तिकेय, गणेश्वर भी आये। ऐरावतारूढ़ महेन्द्र, धर्म, चन्द्र, सूर्य, कुबेर, यम, वायुदेव, अग्निदेव, संयमिनीपति यम, इन्द्रपुत्र जयन्त, कुबेरनन्दन नल-कूबर, सभी ग्रह, वसुगण, गणों के साथ रुद्र, बारह आदित्य, शेष तथा अनेक देवगण वहां आ गये। यह देखकर वसुदेव ने भूमि पर शिर नत करके सभी को प्रणाम किया। उन्होंने समस्त देवेन्द्रवर्ग की अत्यन्त भक्ति के साथ स्तुति भी किया। उस समय भक्ति से उनका शिर झुका था तथा समस्त शरीर हर्ष से पुलकित था।।३३-३८।।

वसुदेव उवाच

परं ब्रह्म परं धाम परमेशः परात्परः। स्वयं विधाता मद्गेहे जगतां परिपालकः।।३९।।
वेदानां जनकः भ्रष्टा सृष्टिहेतुः सनातनः।
सुराणां च मुनीन्द्राणां सिद्धेन्द्राणां गुरोर्गुरुः।।४०।।
स्वप्ने यत्पादपद्मं च क्षणं द्रष्टुं सुदुर्लभम्। शिवस्मरणमात्रेण सर्वानिष्टाः पलायिताः।।४१।।
सर्वसंकटमुत्तीर्य कल्याणं लभते नरः। सर्वाग्रे पूजनं यस्य देवानामग्रणीः परः।।४२।।

घटेषु मङ्गलं मन्त्रैर्भक्त्या चाऽऽवाहनेन च।
स्वयं गणेशो भगवान् साक्षाद्विघ्नविनाशकः॥४३॥

वसुदेव कहते हैं–आज परंब्रह्म, परमधाम, परमेश, परात्पर स्वयं जगत्परिपालक, वेदों के जनक, स्त्रष्टा, सृष्टि के कारण सनातन, देवता–मुनिगण–सिद्धेन्द्रगण के गुरुओं के गुरु आज यहां आये हैं। स्वप्न में भी जिनके चरणों का क्षणिक दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, जिन शिव के स्मरण से ही सभी अनिष्ट पलायन कर जाते हैं, वे यहां आये हैं तथा सभी संकटों को पार करके मनुष्य कल्याण प्राप्त कर लेता है, जो सर्वाग्र पूज्य तथा देवगण के अग्रणी हैं, जलपूर्ण कलश में भक्तिभाव से मन्त्रों से जिन देव के मङ्गलस्वरूप का आवाहन किया जाता है, वे साक्षात् विघ्ननाश करने वाले भगवान् गणेश भी यहां आ गये हैं॥३९–४३॥

कार्तिकेयश्च भगवान्देवादीनां च पूजितः। देवानां प्रवरा पूज्या महालक्ष्मीः परात्परा॥४४॥
मद्गेहे पार्वती माता जगतामादिरूपिणी। सर्वशक्तिस्वरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी॥४५॥
परापराणां परमा परब्रह्मस्वरूपिणी। यस्याः पादौ समाराध्य वाञ्छितं लभते नरः॥४६॥

शरत्काले च भक्त्या च सा साक्षान्मम मन्दिरे।
सर्वदेवैश्च सहिता सगणा भक्तवत्सला॥४७॥
कृपामयी च कृपया चाऽऽविर्भूता च भारते।
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम॥४८॥

आगताऽसि यतो दुर्गे परमाद्या च मद्गृहे। एवं सर्वांश्च तुष्टाव क्रमेण च परस्परम्॥४९॥

देवादि से पूजित भगवान् कार्त्तिकेय, देवगण की प्रवरा परात्परा महालक्ष्मी का भी आगमन हो गया। मेरे गृह में जगत् की आदिरूपा परात्परों में भी परमा, परब्रह्मरूपा, सर्वशक्तिस्वरूपा, मूलप्रकृति, ईश्वरी पार्वती माता का भी आगमन हो गया, जिनके चरणों की आराधना करने वाला व्यक्ति वांछित कामना प्राप्त कर लेता है। जो परमाद्या, कृपामयी, कृपा परवश होकर भारत में आविर्भूत हो गईं। ऐसी भक्तों पर वात्सल्य रखने वाली माता पार्वती इस शरत्काल में सभी गणों तथा देवताओं के साथ मेरे गृह में आ गईं। हे दुर्गे! आपके यहां आगमन से आज मैं धन्य, कृतार्थ हूं। मेरा जीवन आज सफल हो गया! इस प्रकार उन्होंने क्रमशः सब की स्तुति किया॥४४–४९॥

सर्वान्मुनीन्द्रान्विप्रांश्च गले बद्ध्वांऽशुकं मुदा।
प्रत्येकं वासयामास रत्नसिंहासने वरे॥५०॥

पूजयामास विधिवत्क्रमेण च पृथक्पृथक्। प्रत्येकं वरयामास ब्रह्मादींश्च सुरानपि॥५१॥

मुनिवर्गान्ब्राह्मणांश्च भक्त्या गर्गं पुरोहितम्।
रत्नैः प्रवालैर्मणिभिर्मुक्तामाणिक्यहीरकैः॥५२॥

भूषणैर्वसनैश्चैव माल्यैश्च गन्धचन्दनैः। रत्नसिंहासने रम्ये सर्वेषां मध्यदेशतः॥५३॥

गणेशं वासयामास पूजार्थं शुभकर्मणि। सप्ततीर्थोदकेनैव सुवर्णकलशेन च॥५४॥
पुष्पचन्दनयुक्तेन शीतेन वासितेन च। स्वर्गगङ्गाजलेनैव पुष्करोदकपुण्यतः॥५५॥
पञ्चामृतेन शुद्धेन पञ्चगव्येन भक्तितः। हेरम्बं स्नापयामास समुद्रोदेन मन्त्रतः॥५६॥

इस प्रकार वसुदेव ने गले में वस्त्र बांधकर तथा प्रसन्नता के साथ सभी मुनीन्द्रों एवं विप्रों आदि की स्तुति करके प्रत्येक को श्रेष्ठ रत्न सिंहासनों पर बैठाया। उन्होंने सविधि क्रमशः पृथक्-पृथक् ब्रह्मादि देवगण की पूजा करके भक्तिभाव सहित रत्न, प्रवाल, मणिसमूह, माणिक्य तथा मुक्ता एवं हीरों के साथ नाना आभूषण, वस्त्र, माला, गन्ध चन्दनादि से ब्रह्मा आदि देवगण-मुनिगण-ब्राह्मण तथा पुरोहित वर्ग का वरण किया। उन्होंने सबके बीच रम्य रत्नसिंहासन पर शुभकर पूजा हेतु गणेश को स्थापित किया। पुष्प-चन्दनादि से सुवासित सुशीतल, स्वर्णकलश में भरे सात तीर्थ के जल, स्वर्गगङ्गा के जल, पवित्र पुष्कर जल, शुद्ध पंचामृत, पंचगव्य तथा समुद्रजल से मन्त्रोच्चार के साथ पूर्ण भक्तिभाव से गणेश पूजन सम्पन्न किया।।५०-५६।।

वरयामास माल्येन पारिजातस्य नारद। रत्नेन्द्रभूषणेनैव वह्निशुद्धेन वाससा॥५७॥
गन्धचन्दनपुष्पैश्च रत्नमाल्याङ्गुलीयकम्। तुष्टाव पार्वतीपुत्रं सर्वदेवाधिपं शुभम्॥
विघ्ननिघ्नकरं शान्तं भगवन्तं सनातनम्॥५८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवदुपनयने गणेशाभिषेको नाम नवनवतितमोऽध्यायः॥९९॥

हे नारद! पारिजात पुष्पमाला, रत्नेन्द्र निर्मित आभूषण, अग्निविशुद्धवस्त्र, गन्ध-चन्दन-पुष्प-रत्नमाला तथा अंगूठी गणेश को अर्पित किया। तदनन्तर परमशुभप्रद देवाधीश्वर शुभरूप विघ्नहर्त्ता शान्त सनातन प्रभु पार्वती नन्दन गणेश की स्तुति भी उन्होंने किया।।५७-५८।।

।।९९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ शततमोऽध्यायः

देवीगण का वसुदेव के यहां आगमन, अदिति आदि द्वारा पार्वती का सत्कार

नारायण उवाच

अथादितिर्दितिश्चैव देवकी रोहिणी रतिः। सरस्वती च सावित्री यशोदा च पतिव्रता॥१॥

लोपामुद्राऽरुन्धती च अहल्या तारका तथा। ययुस्ताः पार्वतीं दृष्ट्वा वेगेन मन्दिरादपि॥२॥
परस्परं च संभाष्य समाश्लिष्य पुनः पुनः। प्रणम्य वेशयामासुर्मन्दिरं रत्ननिर्मितम्[1]॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—तदनन्तर अदिति, दिति, देवकी, रोहिणी, रति, सरस्वती, सावित्री, पतिव्रता यशोदा, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या एवं तारा आदि देवियां पार्वती के दर्शनार्थ अपने गृहों से वहां शीघ्र आईं। वहां आकर उन्होंने उनसे संभाषण, प्रणाम तथा आलिङ्गनादि यथोचित व्यवहार करने के पश्चात् उनको रत्न से बने भवन में प्रवेश कराया॥१-३॥

रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम्। वरयामासुर्माल्येन वाससा रत्नभूषणैः॥४॥
पारिजातस्य पुष्पं च शक्रानीतं मनोहरम्। ददौ तत्पादपद्मे च देवकी भक्तिपूर्वकम्॥५॥
सिन्दूरबिन्दुं सीमन्ते भाले चन्दनबिन्दुकम्। कस्तूरीकुङ्कुमादींश्च प्रददौ परितस्तयोः॥६॥
मिष्टान्नं भोजयामास शीततोयं सुवासितं। ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥७॥

उन लोगों ने सुरेश्वरी पार्वती को रम्य रत्नसिंहासन पर आसीन कराया। तदनन्तर सभी ने देवी पार्वती को माला, वस्त्र, रत्न के आभूषणों से उनका वरण किया। देवकी ने इन्द्र द्वारा लाये गये अतिशय मनोहर पारिजात पुष्प को भक्ति के साथ देवी पार्वती के चरणकमलों पर अर्पित कर दिया। देवकी ने पार्वती की मांग में सिन्दूर की बिन्दी तथा कपोल पर चन्दनबिन्दु लगाया। इन दोनों बिन्दियों के मध्य में देवकी ने कस्तूरी एवं कुंकुम से चन्द्रमा बनाया तथा अनेक प्रकार के मिष्ठान्न, शीतल सुवासित जल का भोजन देवी पार्वती को कराने के पश्चात् मुखशुद्धि के लिये कर्पूरादि से सुवासित रमणीय ताम्बूल भी उनको अर्पित किया॥४-७॥

अलक्तकं च प्रददौ नखेषु पादपद्मयोः। कुङ्कुमस्यापि रागं च सिषेवे श्वेतचामरैः॥८॥
सम्पूज्य पार्वतीं देवीं मुनिपत्नी क्रमेण च। पूजयामास विधिवत्पतिपुत्रवतीः सतीः॥९॥

राजकन्या देवकन्या नागकन्या मनोहराः।
मुनिकन्या बन्धुकन्याः पूजयामास सुव्रता॥१०॥
वाद्य नानाविधं रम्यं वादयामास कौतुकात्।
मङ्गलं कारयामास भोजयामास ब्राह्मणान्॥११॥

पार्वती के चरणकमल के नखों पर उन्होंने आलता लगाकर कुंकुम भी लगाया तदनन्तर भगवती को श्वेत चामर झलकर उनकी सेवा किया। इस प्रकार जब उन्होंने पूजा कर लिया, तब उत्तम व्रत वाली मुनिपत्नियों, पति-पुत्र युक्त सती नारीगण ने, राजकन्याओं, देवकन्याओं, मनोहर नागकन्याओं, मुनिकन्याओं तथा भातृगण-बन्धुगण की कन्याओं की पूजा किया। देवकी ने वहां कौतुकपूर्ण अनेक रम्य वाद्यवादन कराया। इस प्रकार मांगलिक क्रिया सम्पन्न कराकर ब्राह्मणों को भोजन कराया॥८-११॥

१. क. ०रत्नशोभितम्।

भैरवीं पूजयामास मथुराग्रामदेवताम्। उपचारैः षोडशभिः षष्ठीं मङ्गलचण्डिकाम्॥१२॥

पुण्यं स्वस्त्ययनं शुद्धं कारयामास मङ्गलम्।
वेदांश्च पाठयामास वसुदेवस्य वल्लभा॥१३॥

स्वर्गगङ्गासुजलेनैव सुवर्णकलशेन च। स्नापयामास सबलं श्रीकृष्णं पुत्रवत्सला॥१४॥
वस्त्रचन्दनमाल्यैश्च तयोर्वेषं चकार सा। रत्नेन्द्रसारनिर्माणभूषणैश्च मनोहरैः॥१५॥

तदनुसार उन्होंने मथुरा की ग्रामदेवता, देवी भैरवी की पूजा करके षष्ठी देवी की पूजा १६ उपचारों से कराया। ये षष्ठी ही मंगलचण्डिका हैं। पुण्यमय स्वस्त्ययन तथा शुद्ध मङ्गलध्वनि, वेदपाठ भी वसुदेव की वल्लभा देवकी ने वहां कराया। पुत्रवत्सला देवकी ने स्वर्णगंगा के उत्तम जल द्वारा जो स्वर्णकलश में भरा था, उससे बलदेव तथा श्रीकृष्ण को स्नान कराया। इसके पश्चात् वस्त्र-चन्दन-माला आदि से, रत्नेन्द्रसार से निर्मित मनोहर आभूषणों द्वारा उन दोनों की वेष सज्जा भी किया।।१२-१५।।

मातृभूषणभूषाढ्यः सबलः कृष्ण एव च।
आययौ च सभां देवमुनीन्द्राणां च नारद॥१६॥
दृष्ट्वा तं जगतां नाथमुत्तस्थौ प्रजवेन च।
स्वयं विधाता शंभुश्च शेषो धर्मश्च भास्करः॥१७॥

देवाश्च मुनयश्चैव कार्तिकेयो गणेश्वरः। पृथक्पृथक् क्रमेणैव तुष्टाव परमेश्वरम्॥१८॥

हे नारद! अब बलभद्र तथा श्रीकृष्ण माता द्वारा सज्जित एवं सुभूषित होकर देवता तथा मुनिगण की सभा में पहुंचे। इन जगन्नाथ को सभा में समागत देखकर स्वयं विधाता ब्रह्मा, शंभु, शेष, धर्मदेव, भास्कर उठकर खड़े हो गये। तदनन्तर सभी देवता, मुनिगण, स्वामीकार्तिक, गणेशादि देवताओं ने पृथक्-पृथक् परमेश्वर श्रीकृष्ण की स्तुति भी किया।।१६-१८।।

ब्रह्मोवाच

नाथानिर्वचनीयोऽसि भक्तानुग्रहविग्रहः। वेदानिर्वचनीयं च कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नाथ! आप अनिर्वचनीय हैं। आप भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु शरीर धारण करते हैं। आपकी स्तुति कर सकने में कौन समर्थ हो सकता है?।।१९।।

महादेव उवाच

देहेषु देहिनां शश्वत्स्थितं निर्लिप्तमेव च।
कर्मिणां कर्मणां शुद्धं साक्षिणं साक्षतं विभुम्।
किं स्तौमि रूपशून्यं च गुणशून्यं च निर्गुणम्॥२०॥

महादेव कहते हैं—आप प्राणीगण के देह में सदा स्थित रहते हैं, तथापि पूर्णतः निर्लिप्त भाव से

अवस्थान करते हैं। आप कर्म करने वालों के कर्म के शुद्ध साक्षी हैं। आप सर्वसाक्षी परमेश्वर हैं। आप तो अविनश्वर विभु हैं। आप निराकार, निर्गुण तथा त्रिगुणशून्य हैं। आपकी स्तुति क्या करूं?।।२०।।

अनन्त उवाच

किंवा जानाम्यहं नाथ त्वामज्ञोऽनन्तमीश्वरम्। अनन्तकोटिब्रह्माण्डकारणं दुःखतारणम्॥२१॥

महाविष्णोश्च लोम्नां च विवरेषु जलेषु च।
सन्ति विश्वान्यसंख्यानि चित्राणि कृत्रिमाणि च॥२२॥
सन्ति सन्तश्च देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः।
त्वदंशाः प्रतिबिम्बेषु तीर्थानि भारतं तथा॥२३॥

अनन्तदेव कहते हैं—हे नाथ! सर्वेश्वर! अनन्तपुरुष! मैं आप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के कारणस्वरूप आपको कैसे जान सकता हूं? आप दुःखों से पार उतारने वाले हैं। महाविष्णु के रोमकूपों के जल में असंख्य विचित्र कृत्रिम विश्व अवस्थित हैं। उन सभी रोमकूपस्थ विश्वों में आपके पवित्र अंशरूप, साधुगण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर प्रभृति देवता, पवित्र तीर्थ तथा उत्तम भारतवर्ष का अधिष्ठान रहता है।।२१-२३।।

ब्रह्माण्डैकस्थितोऽहं च सूक्ष्मनागस्वरूपकः।
स्थापितश्च त्वया कूर्मे गजेन्द्रे मशको यथा॥२४॥
परमाणुपरं सूक्ष्मं विश्वेषु नास्ति कुत्रचित्।
महाविष्णोः परं स्थूलं समो नास्ति च कुत्रचित्॥२५॥
महाविष्णोः परस्त्वं च त्वत्परो नास्ति कश्चन।
स्थलात्स्थूलतरो देवः सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमो महान्॥२६॥

मैं सूक्ष्म नागस्वरूपी होकर एक ब्रह्माण्ड में स्थित रहता हूं। आपके द्वारा मैं कूर्म पर उसी प्रकार स्थापित रहता हूं जिस प्रकार हाथी पर मच्छर! विश्व में परमाणु से सूक्ष्म कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार महाविष्णु से बढ़कर स्थूल कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। उन महाविष्णु से भी परे आप हैं। आपसे परे (महान्) कुछ भी नहीं है। हे देव! आप तो स्थूल से भी स्थूल तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं। आप ही सर्वत्र महान् हैं।।२४-२६।।

आधारश्च महाविष्णो जलरूपो भवान्स्वयम्।
जलाधारो हि गोलोकस्त्वं च स्थावररूपधृक्॥२७॥

सर्वाधारो महान्वायुः श्वासनिःश्वासरूपकः। भक्तानुग्रहदेहस्य नित्यस्य भवतो विभो॥२८॥
वक्त्रैर्बहुतरैर्वाऽथ त्वया दत्तैः पुरैव च। स्तोतुमिच्छामि त्वद्योगं न दत्तं ज्ञानमैश्वरम्॥२९॥

जलरूप में आप स्वयं ही महाविष्णु के भी आधार हैं। आप ही स्थावर गोलोकरूप से उस जल

के भी आधाार हैं। श्वासनिःश्वासरूप महावायु होकर सबके आधारस्वरूप हैं। हे नाथ! आपने कृपा पूर्वक मुझे सहस्रमुख प्रदान किया है। उनसे आपका स्तव करने की मेरी इच्छा तो है, परन्तु वैसा ज्ञान आपने मुझे नहीं प्रदान किया है!।।२७-२९।।

देवा ऊचुः

त्वामनन्तं यदि स्तोतुं देवोऽनन्तो न हीश्वरः।
न हि स्वयं विधाता च न हि ज्ञानात्मकः शिवः।
सरस्वती जडीभूता किं कुर्मः स्तवनं वयम्॥३०॥

देवगण कहते हैं—हे अनन्तस्वरूप! अनन्तदेव! स्वयं ब्रह्मदेव, ज्ञानात्मा शिव भी आपका स्तव कर सकने में अक्षम हो गये हैं। अधिक क्या कहूं वागीश्वरी सरस्वती भी जिनका स्तव करने में अक्षम हैं तथा जड़वत् हो जाती हैं, उनकी स्तुति हम किस स्तव से करें?।।३०।।

मुनीन्द्रा ऊचुः

वेदा न शक्ताः स्तोतुं चेत्त्वां चैव ज्ञातुमीश्वरम्।
वयं वेदविदः सन्तः किं कुर्मः स्तवनं तव॥३१॥

मुनीन्द्रगण कहते हैं—आप ईश्वर का रहस्य जान सकने तथा स्तुति कर सकने में वेद भी अशक्त हैं। हम सब वेदवेत्ता होने पर भी आपकी स्तुति किस प्रकार से कर सकते हैं?।।३१।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं देवैश्च मुनिभिः कृतम्।
यः पठेत्संयतः शुद्धः पूजाकाले च भक्तितः॥३२॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा लब्ध्वा ज्ञानं निरञ्जनम्।
रत्नयानं समारुह्य गोलोकं स च गच्छति॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवदुपनयने शततमोऽध्यायः।।१००।।

—❋❋❋—

यह सभी स्तोत्र महापुण्यमय है, जिसे देवगण एवं मुनिगण ने किया है। जो इन स्तोत्रों को भक्तिभाव से पूजाकाल में पढ़ता है, वह इहलोक में सुख पाकर निरंजन ज्ञान लाभ कर लेता है। वह रत्नयान पर बैठकर गोलोक जाता है!।।३२-३३।।

।।१००वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

बलराम-कृष्ण का उपनयन संस्कार सम्पन्न होना, इस अवसर पर समागत देवगण तथा मुनियों आदि का स्वस्थान गमन वर्णन

नारायण उवाच

संस्तूय देवा मुनयो विरेमुर्नहि मानसे। ददृशुः प्राङ्गणे कृष्णं शोभितं पीतवाससा॥१॥
यथा सौदामिनीयुक्तं नवीनजलदं मुने। बकपङ्क्तियुतं चैव मालतीमालया तथा॥२॥
कपाले मण्डलाकारकस्तूरीयुक्तचन्दनम्। सकलङ्कं मृगाङ्कं च शोभितं जलदे तथा॥३॥
द्विभुजं श्यामलङ्क्रान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! देवता तथा मुनिगण ने यह स्तुति मन ही मन किया। जैसे ही उन्होंने स्तुति समाप्त करके विराम लिया तभी उनको आंगन में पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त हो गया! जैसे नवमेघ विद्युत्वल्लरी तथा श्वेत बगुलों की पंक्ति से सुशोभित लगता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी पीतवस्त्र तथा श्वेत माला से विभूषित थे। उनके ललाट पर कस्तूरीयुक्त मण्डलाकार श्वेत चन्दन उसी प्रकार शोभायमान हो रहा था। जिस प्रकार मेघ के मध्य में अपने कलंकचिह्नयुक्त चन्द्रमा शोभित होते हैं। द्विभुज, शान्तमूर्त्ति, मनोहर, श्यामल, श्रीराधाकान्त का मुखमण्डल मन्द मुस्कान से अत्यन्त शोभायमान लग रहा था। इन प्रभु ने केवल भक्तों पर कृपा करके ही देह धारण किया था!॥१-४॥

रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम्। रुदन्तं पितुरुत्सङ्गे बलेन सहितं परम्॥५॥
अथ मङ्गलकाले च शुभलग्ने मनोरमे। संवीक्षिते ग्रहैः सौम्यैर्जाग्रल्लग्नाधिपे स्थिते॥६॥
असद्ग्रहैरदृष्टे च सद्ग्रहेक्षित एव च। शुभकर्मसमारम्भं स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥७॥

वे प्रभु महामूल्यवान् रत्ननिर्मित बाजूबन्द, वलय तथा मंजीर आदि से शोभायमान थे। उस समय वे अपने अग्रज बलदेव के साथ पिता की गोद में बैठे हुये थे। तत्पश्चात् शान्तग्रहों द्वारा दृष्ट, लग्नपति से अधिष्ठित, असत् ग्रहों द्वारा अदृष्ट (न देखे जा रहे), सुन्दर ग्रहों से युक्त मनोरम शुभलग्नयुक्त मंगल काल में देवगण तथा ब्राह्मणगण की आज्ञा शिराधार्य करके वसुदेव ने स्वस्तिवाचन कराकर शुभकर्म प्रारम्भ किया।५-७॥

चकार वसुदेवश्चाप्याज्ञया सुरविप्रयोः। दत्त्वा सुवर्णशतकं ब्राह्मणाय च सादरम्॥८॥
देवेन्द्रांश्च मुनीन्द्रांश्च नमस्कृत्य पुरोहितम्। गणेशं च दिनेशं च वह्निं च शङ्करं शिवाम्॥९॥
सम्पूज्य देवषट्कं च साक्षतैर्देवसंसदि। उपचारैः षोडशभिः संयतो भक्तिपूर्वकम्॥१०॥

पुत्राधिवासनं चक्रे वेदमन्त्रेण संसदि। सम्पूज्य नानादेवांश्च दिक्पालांश्च नवग्रहान्॥११॥
दत्त्वा पञ्चोपचारांश्च भक्त्या षोडशमातृकाः।
दत्त्वा च वसुधारां च सप्तवारान्घृतेन च॥१२॥

वसुदेव ने ब्राह्मणगण को सादर १०० स्वर्णमुद्रा समर्पित करके देवगण तथा मुनिगण और आचार्य गर्ग को प्रणाम किया। इसके पश्चात् उन्होंने गणेश, सूर्य, विष्णु, अग्नि, शिव, पार्वती की अक्षत तथा षोडशोपचार से उस देवसभा में भक्तिभाव सहित पूजा किया। तत्पश्चात् वसुदेव ने दोनों पुत्रों का हरिद्राकर्म सुगन्धित पदार्थ लेप रूप अधिवासन वेदमन्त्रों के उच्चारण सहित किया। तत्पश्चात् उन्होंने नाना देवताओं, दिक्पालों, नवग्रहों का सविधि पूजन सम्पन्न करने के उपरान्त पञ्चोपचार द्वारा १६ मातृकाओं की भी पूजा किया। तदनन्तर उन्होंने गोघृत द्वारा सात बार वसुधारा भी प्रदान किया।।८-१२।।

चेदिराजं वसुं नत्वा सम्पूज्य प्रययौ पुनः।
बृद्धिश्राद्धं सुनिर्वाप्य यत्किंचिद्दैविकं तथा॥१३॥
यज्ञं कृत्वा तु वेदोक्तं यज्ञसूत्रं ददौ मुदा। बलदेवाग्रजायैव कृष्णाय परमात्मने॥१४॥
गायत्री च ददौ ताभ्यां मुनिः सांदीपनिस्तथा।
भिक्षां ददौ च प्रथमं पार्वती परमादरात्॥१५॥
अमूल्यरत्नपात्रस्थं मुक्तामाणिक्यहीरकम्। हीरसारविनिर्माणं पित्रा दत्तं च हारकम्॥१६॥
शुभाशिषं च प्रददौ शुक्लपुष्पेण दूर्वया। ततोऽदितिर्दितिश्चैव मुनिपत्न्यश्च देवकी॥१७॥
यशोदा रोहिणी हृष्टा सावित्री च सरस्वती। प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां मणिकाञ्चनभूषिताम्॥१८॥

चेदिराज वसु को पूजान्त में नमस्कार करके वसुदेव ने आगे बढ़ने के पश्चात् अभ्युदयिक वृद्धिश्राद्ध को सम्पन्न किया तथा बाकी देवताओं सम्बन्धित कार्य को भी पूर्ण किया। तदनन्तर वेदोक्त यज्ञ करने के पश्चात् सान्दीपनि मुनि ने बलदेव एवं भगवान् श्रीकृष्ण को यज्ञोपवीत प्रदान कर दिया। उन्होंने दोनों बालक बटुकों को गायत्री मन्त्र भी प्रदान किया। श्रीकृष्ण तथा बलदेव के भिक्षापात्र में सर्वप्रथम सती पार्वती ने सादर अमूल्य रत्नपात्र, मुक्ता, माणिक्य तथा हीरा प्रदान किया। वसुदेव ने हीरक हार प्रदान किया। उन्होंने श्वेतपुष्प तथा दूर्वा देकर दोनों बटुकों को शुभाशीष भी दिया! तदनन्तर देवी अदिति, दिति, देवकी, रोहिणी, यशोदा, सावित्री, सरस्वती प्रभृति ने भी मणि-सुवर्णादि युक्त भिक्षा श्रीकृष्ण, बलदेव को प्रदान कर दिया!।।१३-१८।।

देवकन्या नागकन्या राजकन्या पतिव्रताः।
कामिन्यो बान्धवानां च सस्मिताः स्निग्धलोचनाः॥१९॥
इन्द्राणी वरुणानी च पवनानी च रोहिणी।
कुबेरपत्नीं स्वाहा च रतिः कामस्य कामिनी॥२०॥

प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां रत्नभूषणभूषिताम्।
भिक्षां गृहीत्वा भगवान्सबलो भक्तिपूर्वकम्॥२१॥

इसके अनन्तर देवकन्या, नागकन्या, राजकन्या, पतिव्रता स्त्रियों, बन्धुवर्ग की रूपवती नारीगण ने स्नेहपूर्ण नेत्र से देखते तथा मुस्कानयुक्त होकर इन दोनों के भिक्षापात्र में भिक्षा प्रदान किया। तदनन्तर कुबेर पत्नी, इन्द्राणी, चन्द्रपत्नी रोहिणी, वरुणपत्नी, पवनपत्नी, कामपत्नी रति, अग्निपत्नी स्वाहा ने भी दोनों बालकों के भिक्षापात्रों में रत्नभूषणयुक्त भिक्षा प्रदान किया था। भगवान् श्रीकृष्ण ने भ्राता बलदेव के साथ भक्ति पूर्वक इस भिक्षा को ग्रहण किया।।१९-२१।।

किञ्चिद्ददौ च गर्गाय किञ्चित्स्वगुरवे तथा।
वैदिकं कर्म निर्वाप्य गर्गाय दक्षिणां ददौ॥२२॥
देवांश्च भोजयामास ब्राह्मणांश्चापि सादरम्।
ये ये समाययुर्यज्ञे ते च दत्त्वा शुभाशिषम्॥२३॥
कृष्णाय बलदेवाय प्रहृष्टा प्रययुर्गृहम्। नन्दः सभार्यो निर्वाप्य शुभकर्म सुतस्य वै॥२४॥
क्रोडे कृत्वा बलं कृष्णं चुचुम्ब वदनं तयोः। उच्चै रुरोद नन्दश्च यशोदा च पतिव्रता।
श्रीकृष्णस्तं समाश्वास्य बोधयामास प्रत्नतः॥२५॥

इन दोनों बालकों ने कुछ भिक्षांश गर्गाचार्य को तथा कुछ गुरु सान्दीपनी को अर्पित कर दिया। तदनन्तर वैदिक कर्म सम्पन्न करके वसुदेव ने गर्गाचार्य को दक्षिणा देकर देवगण एवं ब्राह्मणगण को भोजन कराया। वहां यज्ञ में सभी समागत लोगों ने दोनों बटु कृष्ण-बलदेव को शुभाशीर्वाद प्रदान किया तथा अपने-अपने गृह प्रसन्नता पूर्वक चले गये। उधर नन्दराज ने तथा उनकी पत्नी ने इस शुभकर्म को सम्पन्न करने के पश्चात् बलदेव तथा कृष्ण को गोद में लेकर उनका मुख चुम्बन किया। तत्पश्चात् नन्द एवं यशोदा उच्चस्वर में रुदन करने लगे। यह देखकर श्रीकृष्ण ने उनको आश्वासन दिया एवं उनको प्रबोधित करते कहने लगे।।२२-२५।।

श्रीकृष्ण उवाच

सानन्दं गच्छ हे मातर्यशोदे तात सत्वरम्।
त्वमेव माता पोष्ट्री त्वं पिता च परमार्थतः॥२६॥

श्रीकृष्ण कहते हैं-हे माता यशोदा! अब आप आनन्द के साथ शीघ्र गृह जाईये। आप मेरा पालन-पोषण करने वाली माता हैं। पिता नन्दराज भी परमार्थतः मेरे पिता हैं।।२६।।

अवन्तिनगरं तात यास्यामि सबलोऽधुना।
मुनेः सांदीपनेः स्थानं वेदपाठार्थमीप्सितम्॥२७॥
तत आगत्य सुचिरं काले भवति दर्शनम्।
कामः करोति कलनं स च भेदं करोति च॥२८॥

सर्वं कालकृतं मातर्भेदं सम्मीलनं नृणाम्।
सुखं दुःखं च हर्षं च शोकं च मङ्गलालयम्॥२९॥
मया दत्तं च तत्त्वं च योगिनामपि दुर्लभम्।
सर्वं नन्दश्च सानन्दं त्वामेव कथयिष्यति॥३०॥

हे तात! अब मैं बलदेव के साथ अवन्तिपुरी जा रहा हूं। वहां मुनि सान्दीपनि के आश्रम में हम दोनों वेदाध्ययन करेंगे। अभी वही हमें ईप्सित है। शीघ्र वहां से वापस आकर आपका दर्शन मिलेगा। काल ही परस्परतः मिलन तथा विच्छेद कार्य कराता है। हे माता! मनुष्यों का मिलन-विच्छेद, सुख-दुःख, हर्ष-शोक, मंगल आदि का कर्त्ता काल ही है। मैंने नन्दराज को योगीगण के लिये भी दुर्लभ तत्व पहले ही बतला दिया है। वे ही आनन्द पूर्वक वह तत्व आपसे कह देंगे।।२७-३०।।

इत्युक्त्वा जगतां नाथो वसुदेवसभां ययौ। तदाज्ञया क्षणं प्राप्य ययौ सांदीपनेर्गृहम्॥३१॥
वसुदेवं देवकीं च संभाष्य विनयेन च। नन्दः सभार्यः प्रययौ हृदयेन विदूयता॥३२॥

जगन्नाथ श्रीकृष्ण यह कहकर वसुदेव की सभा में चले गये। वे क्षणमात्र में उनकी आज्ञा पाकर बलदेव के साथ सान्दीपनि मुनि के आश्रम चले गये। यह देखकर हृदय से अत्यन्त दुःखी नन्द-यशोदा भी विनय पूर्वक वसुदेव-देवकी से वार्त्ता करके ब्रजधाम जाने हेतु उद्यत हो गये थे।।३१-३२।।

मुक्तामणिं सुवर्णं च माणिक्यं हीरकं तथा। वह्निशुद्धांशुकं रत्नं नन्दाय देवकी ददौ॥३३॥
श्वेताश्वं च गजेन्द्रं च सुवर्णरथमुत्तमम्। नन्दाय कृष्णः प्रददौ वसुदेवश्च सादरम्॥३४॥
तयोरनुव्रजन्विप्रा देवकीप्रमुखाः स्त्रियः। वसुदेवस्तथाऽक्रूरोऽप्युद्धवश्च ययौ मुदा॥३५॥
कालिन्दीनिकटं गत्वा ते सर्वे रुरुदुः शुचा।
परस्परं च संभाष्य ते सर्वे स्वालयं ययुः॥३६॥

गमनोद्यत नन्द-देवकी को यशोदा ने मुक्ता-मणि-स्वर्ण-माणिक्य-हीरक-अग्निशुद्ध वस्त्र प्रदान किया। वसुदेव ने तथा कृष्ण ने नन्दराज को आदर पूर्वक श्वेत अश्व, गजराज, उत्तमस्वर्णरथ भी प्रदान किया। जब नन्द-यशोदा प्रस्थान करने लगे तब उनके सम्मान के लिये सभी ब्राह्मण, देवकी आदि प्रधान स्त्रियां, वसुदेव, अक्रूर एवं उद्धव ने प्रसन्नता पूर्वक उनका अनुगमन किया। यमुनातट तक पहुंचाकर सभी लोग सद्यः होने वाले विछोह जनित दुःख से रुदनरत हो गये। नन्द-यशोदा से तदनन्तर परस्पर विदा लेकर ये लोग वापस मथुरा आ गये।।३३-३६।।

कुन्ती सुपुत्रा विधवा वसुदेवाज्ञया मुने। नानारत्नमणिं प्राप्य प्रययौ स्वालयं मुदा॥३७॥
वसुदेवो देवकी च पुत्रकल्याणहेतवे। नानारत्नमणिं वस्त्रं सुवर्णं रजतं तथा॥३८॥
मुक्तामाणिक्यहारं च मिष्टान्नं च सुधोपमम्।
भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रददौ सादरं मुदा॥३९॥

हे मुनिवर! तत्पश्चात् विधवा कुन्ती देवी वासुदेव की आज्ञा पाकर तथा वसुदेव-देवकी से नाना

रत्न एवं मणियों को पाकर मुदित मन से अपने गृह चली गयीं। उधर वसुदेव-देवकी ने अपने पुत्रों के कल्याणार्थ नाना रत्न, मणि, वस्त्र, स्वर्ण, चांदी, मुक्ता-माणिक्य के हार, अमृत तुल्य मिष्ठान्न सादर मुदित मन से भट्टगण तथा ब्राह्मणगण को सादर प्रदान किया।।३७-३९।।

महोत्सवं वेदपाठं हरेर्नामैकमङ्गलम्। विप्राणां भोजनं चैव कारयामास यत्नतः।।४०।।
ज्ञातीनां बान्धवानां च पुरस्कारं यथोचितम्।
चकर मणिमाणिक्यमुक्तावस्त्रैर्मनोहरैः।।४१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवदुपनयन० नामैकाधिकशततमोऽध्यायः।।१०१।।

—※※※—

तत्पश्चात् उन्होंने वहां महान् उत्सव, वेदपाठ, हरि का मंगलमय नाम, विप्रों को भोजन यत्न पूर्वक कराया। उन्होंने अपने जाति-बिरादरी के बन्धुजन को मणि, माणिक, मोती तथा मनोहर वस्त्रों को उपहार प्रदान दिया!।।४०-४१।।

।।१०१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

बलदेव तथा श्रीकृष्ण का सान्दीपनि आश्रम में विद्याभ्यास सम्पन्न करना, मुनिपत्नीकृत श्रीकृष्णस्तव, बलदेव तथा श्रीकृष्ण द्वारा गुरु को दक्षिणा देना

नारायण उवाच

कृष्णः सांदीपनेर्गेहं गत्वा च सबलो मुदा। नमश्चकार स्वगुरुं गुरुपत्नीं पतिव्रताम्।।१।।
शुभाशिषं गृहीत्वा च दत्त्वा रत्नमणिं हरिः। गुरवे तस्य भार्यायै तमुवाच यथोचितम्।।२।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–जब कृष्ण तथा बलदेव सान्दीपनि ऋषि के गृह गये तब उन्होंने आनन्दित होकर पतिव्रता गुरुपत्नी तथा गुरुदेव को प्रणाम किया। श्रीकृष्ण ने गुरुदेव का आशीर्वाद पाकर अपने घर से लाये गये रत्न तथा मणि आदि को गुरु एवं गुरुपत्नी को अर्पित किया। तदनन्तर उन्होंने श्रीगुरु से कहा–।।१-२।।

श्रीकृष्ण उवाच

त्वत्तो विद्यां लभिष्यामि वाञ्छितां वाञ्छितं मम।
कृत्वा शुभक्षणं विप्र मां पाठय यथोचितम्।।३।।

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे विप्र! मैं चाहता हूं कि अपनी वांछित विद्या आप से प्राप्त करूं। हे गुरुदेव! कृपया शुभक्षण आने पर मुझे यथोचित अध्ययन करायें।।३।।

ओमित्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठः पूजयामास तं मुदा। मधुपर्कप्राशनेन गवा वस्त्रेण चन्दनैः।।४।।
मिष्टान्नं भोजयामास ताम्बूलं च सुवासितं। सुप्रियं कथयामास तुष्टाव परमेश्वरम्।।५।।

मुनि ने 'ॐ' का उच्चारण करके स्वीकृति दे दिया तथा उन्होंने मुदित होकर मधुपर्क प्राशन कृष्ण-बलदेव को कराया तथा गौ, वस्त्र, चन्दन, मिष्ठान्न का भोजन कराकर उनको (कर्पूर से) सुवासित ताम्बूल प्रदान करने के पश्चात् प्रियवाक्यों से श्रीकृष्ण से वार्त्ता किया। तदनन्तर सान्दीपनि ऋषि परमेश्वर की स्तुति करने लगे।।४-५।।

सान्दीपनिरुवाच

परं ब्रह्म परं धाम परमीश परात्पर। स्वेच्छामयं स्वयंज्योतिर्निर्लिप्तैको निरङ्कुशः।।६।।
भक्तैकनाथ भक्तेष्ट भक्तानुग्रहविग्रह। भक्तवाञ्छाकल्पतरो भक्तानां प्राणवल्लभ।।७।।
मायया बालरूपोऽसि ब्रह्मेशशेषवन्दितः। मायया भुवि भूपाल भुवो भारक्षयाय च।।८।।

श्रीसन्दीपनि ऋषि कहते हैं–हे परात्पर! आप परब्रह्म, परमधाम, परमेश्वर, स्वेच्छामय, स्वयं ज्योतिरूप, निर्लिप्त निरंकुश प्रभु हैं। आप भक्तों के एकमात्र स्वामी, भक्तों के इष्ट, भक्तों पर अनुग्रहार्थ देह धारण करने वाले, अपनी माया से बालरूपधारी, ब्रह्मा तथा ईश, शेष से वन्दित हैं। आप भूमि का भार हरण करने के लिये माया से पृथिवी के भूपाल बने हैं।।६-८।।

यागिनो यं विदन्त्येवं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
ध्यायन्ते भक्तनिवहा ज्योतिरभ्यन्तरे मुदा।।९।।
द्विभुजं मुरलीहस्तं सुन्दरं[1] श्यामरूपकम्।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं भक्तवत्सलम्।।१०।।

पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम्। लीलापाङ्गतरङ्गैश्च निन्दितानङ्गमूर्च्छितम्।।११।।
अलक्तभवनं तद्वत्पादपद्मं सुशोभनम्। कौस्तुभोद्भासिताङ्गं च दिव्यमूर्ति मनोहरम्।।१२।।
ईषद्धास्यप्रसन्नं च सुवेषं प्रस्तुतं सुरैः। देवदेवं जगन्नाथं त्रैलोक्यमोहनं परम्।।१३।।
कोटिकन्दर्पलीलाभं कमनीयमनीश्वरम्। अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणौधेन भूषितम्।।१४।।

योगीगण आपको ब्रह्मज्योति, सनातन कहते हैं। भक्तजन अत्यन्त मुदित मन से जिस आभ्यन्तरिक

१. क. सादरं।

ज्योति का ध्यान करते हैं, वह आप ही हैं। आप द्विभुज, हाथों में मुरली धारण किये हुये, सुन्दर, श्यामरूप, चन्दन चर्चित अंगों वाले, स्मित हास्ययुक्त, भक्तवत्सल, पीताम्बरधारी, वनमालाभूषित देव हैं। आप अपनी बांकी चंचल चितवन से अनंग कामदेव को भी लज्जित तथा मूर्च्छित कर देने वाले हैं। आपके चरणकमल आलता से रंजित होने के कारण सुशोभित हैं। आप की मनोहर दिव्यमूर्त्ति कौस्तुभमणि की प्रभा से उद्भासित हो रही है। आपका मुखमण्डल मन्दमुस्कान से सुशोभित है। आपकी वेशभूषा अत्यन्त उत्तम है। देवगण सतत् आपकी स्तुति करते रहते हैं। हे देवदेव! जगन्नाथ! आप त्रैलोक्य को मोहित करने वाले, परम, कोटिकन्दर्प जैसी सुन्दरता वाले, कमनीय शरीरधारी, अमूल्यरत्नों से निर्मित आभूषणों से भूषित हैं।।९-१४।।

वरं वरेण्यं वरदं वरदानामभीप्सितम्। चतुर्णामपि वेदानां कारणानां च कारणम्।।१५।।
पाठार्थं मत्प्रियस्थानमागतोऽसि च मायया। पाठं ते लोकशिक्षार्थं रमणं गमनं रणम्।
स्वात्मारामस्य च विभोः परिपूर्णतमस्य च।।१६।।

आप श्रेष्ठतम, वरेण्य, वरप्रद, वरदाताओं के लिये भी आप ही वांछित हैं। आप चारों वेदों के कारण के भी कारण हैं। आप अपनी मायावश ही यहां पढ़ने पधारे हैं। आप तो आत्मा में ही रमण करने वाले, विभु, परिपूर्णतम है। आपका यहां पढ़ने आना, आपके द्वारा युद्ध किया जाना—यह सब मात्र लोकशिक्षार्थ है।।१५-१६।।

गुरुपत्न्युवाच

अद्य मे सफलं जन्म सफलं जीवनं मम। पातिव्रत्यं च सफलं सफलं च तपोवनम्।।१७।।
मद्दक्षहस्तः सफलो दत्तं येनान्नमीप्सितम्। तदाश्रमं तीर्थपरं तीर्थपादपदाङ्कितम्।।१८।।
त्वत्पादरजसा पूता गृहाः प्राङ्गणमुत्तमम्।
त्वत्पादपद्मं दृष्ट्वा चैवाऽऽवयोर्जन्मखण्डनम्।।१९।।

गुरुपत्नी कहती हैं—आज मेरा जन्म तथा जीवन सफल हो गया। मेरा पातिव्रत धर्म तथा यह तपोवन सफल हो गया। मैंने आपको अपने दाहिने हाथों से अन्न बनाकर परोसा है। अतः वह सफल हो गया। आपके तीर्थ के समान पदचिह्नों से अंकित यह आश्रम तो आज तीर्थ से भी बढ़कर हो गया है। आपकी चरणरज से यह गृह पवित्र हो गया। मेरा आंगन तक सर्वोत्तम स्थल हो गया। आपके चरणकमल का दर्शन करने मात्र से हम दम्पति के जन्म-मरण रूपी चक्र का खण्डन हो गया।।१७-१९।।

तावद्दुःखं च शोकश्च तावद्भोगश्च रोगकः।
तावज्जन्मानि कर्माणि क्षुत्पिपासादिकानि च।।२०।।
यावात्त्वपादपद्मस्य भजनं नास्ति दर्शनम्। हे कालकाल भगवन्स्त्रष्टुः संहर्तुरीश्वर।।२१।।

कृपां कुरु कृपानाथ मायामोहनिकृन्तन।
इत्युक्त्वा साश्रुनेत्रा सा क्रोडे कृत्वा हरिं पुनः।
स्वस्तनं पाययामास प्रेम्णा च देवकी यथा॥२२॥

जब तक आपके चरणकमलों का दर्शन नहीं मिल जाता, तभी तक दुःख-शोक, भोग, रोग, जन्म-कर्म, क्षुधा-पिपासा का कष्ट रहता है! हे प्रभो! आप ही काल के भी कालरूप हैं। जगत्स्रष्टा तथा संहारकर्त्ता के भी आप ही ईश्वर हैं। हे कृपानाथ! मुझ पर कृपा करें। इस माया-मोह जाल को काटने वाले! मुझ पर कृपा करें। यह कहकर गुरुपत्नी ने अश्रुपूर्ण नेत्र की स्थिति में हरि को गोद में लिया तथा माता देवकी की ही तरह श्रीकृष्ण को स्तनपान कराने लगीं।।२०-२२।।

श्रीकृष्ण उवाच

मातस्त्वं मां कथं स्तौषि बालं दुग्धमुखं सुतम्।
गच्छ गोलोकमिष्टं च स्वामिना सह साम्प्रतम्॥२३॥
त्यक्त्वा प्राकृतिकं मिथ्या नश्वरं च कलेवरम्।
विधाय निर्मलं देहं जन्ममृत्युजराहरम्॥२४॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे माता! आप मुझ स्तनपायी शिशु का किस लिये स्तव कर रही हैं? आप स्वामी सहित अभीष्ट गोलोक जाइये। आप दोनों इस प्राकृतिक मिथ्या कलेवर को त्यागकर जरामृत्यु हरणकारी निर्मल देह धारण करिये।।२३-२४।।

इत्युक्त्वा चतुरो वेदान्पठित्वा मुनिपुङ्गवात्।
मासेन परया भक्त्या दत्त्वा पुत्रं मृतं पुरा॥२५॥
रत्नानां च त्रिलक्षं च मणीनां पञ्चलक्षकम्।
हीरकाणां चतुर्लक्षं मुक्तानां पञ्चलक्षकम्॥२६॥
माणिक्यानां द्विलक्षं च वस्त्रं त्रैलोक्यदुर्लभम्।
हारं च दुर्गया दत्तं हस्तरत्नाङ्गुलीयकम्॥२७॥
दशकोटिं सुवर्णानां गुरवे दक्षिणां ददौ। अमूल्यरत्ननिर्माणं नारीसर्वाङ्गभूषणम्॥२८॥
गुरुप्रियायै प्रददौ वह्निशुद्धांशुकं वरम्। मुनिर्दत्त्वा च पुत्राय तत्सर्वं प्रियया सह॥२९॥
सद्रत्नरथमारुह्य ययौ गोलोकमुत्तमम्। तमद्भुतं हरिं दृष्ट्वा प्रययौ स्वालयं मुदा॥३०॥

श्रीकृष्ण ने यह कहकर एक मास में ही सान्दीपनि मुनि से चारों वेदों का पाठ कर लिया। अध्ययन के अन्त में श्रीकृष्ण ने पूर्वमृत गुरुपुत्र को वापस लाकर गुरु को प्रदान किया तथा तीन लाख रत्न, ५ लाख मणियां, चार लाख हार, पांच लाख मुद्रा, दो लाख माणिक्य, त्रैलोक्य-दुर्लभ वस्त्र, देवी दुर्गा प्रदत्त हार, हाथों की मुद्रिका, १० कोटि स्वर्ण मुद्रा दक्षिणारूपेण गुरु को प्रदान किया। उन्होंने

गुरुपत्नी हेतु अमूल्य रत्न से बने स्त्री के सभी अंगों के आभूषण, अग्निशुद्ध उत्तम वस्त्र भी उनको प्रदान किया। तदनन्तर यह सब वस्तु सान्दीपनि ऋषि ने अपने पुत्र को दिया तथा स्वयं सपत्नीक उत्तम रत्न निर्मित रथ पर आरूढ़ होकर सर्वोत्तम गोलोक चले गये। यह अद्भुत् दृश्य देखकर प्रसन्न मन से श्रीहरि (तथा बलदेव) अपने घर चले आये।।२५-३०।।

एवं ब्रह्मण्यदेवस्य चरित्रं शृणु नारद। इदं स्तोत्रं महापुण्यं यः पठेद्भक्तिपूर्वकम्।।३१।।
श्रीकृष्णे निश्चलां भक्तिं लभते नात्र संशयः।
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः।।३२।।
इह लोके सुखं प्राप्य यात्यन्ते श्रीहरेः पदम्। तत्र नित्यं हरेर्दास्यं लभते नात्र संशयः।।३३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० मुनिपत्नीस्तोत्रं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः।।१०२।।

—※※※—

हे नारद! एवंविध उन ब्रह्मण्यदेव के अन्य चरित का भी श्रवण करो। इस महापुण्यमय स्तोत्र का पाठ जो भक्ति के साथ करेगा उसे निःसंशय रूप से श्रीकृष्ण की निश्चला भक्ति का लाभ होगा। जिनकी कीर्त्ति नहीं है, वे उत्तम यश प्राप्त करेंगे। इसके पाठ से मूर्ख भी पण्डित हो जायेगा। उसे इस लोक में अपूर्व सुख मिलेगा। तदनन्तर उसे श्रीहरिपद की प्राप्ति होगी वहां वह नित्य हरि का दासत्व प्राप्त करेगा। इसमें संशय नहीं है।।३१-३३।।

।।१०१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण द्वारा विश्वकर्मा से द्वारका निर्माण का आदेश प्रदान करना तथा इसी के अन्तर्गत् शुभाशुभ निर्माणादि का उपदेश विश्वकर्मा को देने का वर्णन

नारायण उवाच

अथाऽऽगत्य मधुपुरीं प्रणम्य पितरं विभुः[१]। सबलो वटमूले च सस्मार गरुडं हरिः।।१।।
सादरं लवणोदं च विश्वकर्माणमीप्सितम्। तत्याज गोपवेषं च नृपवेषं दधार सः।।२।।

१. क. प्रसूम।

एतस्मिन्नन्तरे चक्रमाजगाम हरिं स्वयम्। परं सुदर्शनं नाम सूर्यकोटिसमप्रभम्॥३॥
तेजसा हरिणा तुल्यं परं वैरिविमर्दनम्। अव्यर्थमस्त्रमस्त्राणां प्रवरं परमं परम्॥४॥
रत्नयानं पुरः कृत्वा गरुडो हरिसन्निधिम्।
विश्वकर्मा सशिष्यश्च जलधिः कम्पितस्तथा॥५॥
हरिं प्रणेमुस्ते सर्वे मूर्ध्ना च भक्तिपूर्वकम्। सस्मितः सादरं यत्नात्तानुवाच क्रमाद्विभुः॥६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–तदनन्तर श्रीकृष्ण बलदेव के साथ मथुरा आये तथा पिता-माता की चरण वन्दना करके उन्होंने वटवृक्ष के नीचे बैठकर गरुड़ का स्मरण किया। तदनन्तर उन्होंने सादर लवणसागर, विश्वकर्मा का, अभिलषित सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, पाञ्चजन्य शंख एव वांछित वैकुण्ठ धाम का भी स्मरण किया। उन्होंने अब अपना गोपवेश त्याग कर राजवेश धारण किया। इस बीच कोटिसूर्य के समान कान्तिमान् हरि सदृश तेजस्वी शत्रुविमर्दन, अव्यर्थ अस्त्रराज परात्पर सुदर्शन चक्र श्रीकृष्ण के समक्ष उपस्थित हो गया। गरुड़ भी रत्नमय रथ को आगे करके वहां आये। शिष्यों सहित देवशिल्पी विश्वकर्मा तथा कम्पित कलेवर सागर ने भी वहां आकर भगवान् को प्रणाम किया। इन सभी समागत लोगों ने भी श्रीकृष्ण प्रभु को प्रणाम किया। तत्पश्चात् विभु श्रीकृष्ण मुस्कराते हुये उनसे क्रमशः कहने लगे॥१-६॥

श्रीकृष्ण उवाच

हे समुद्र महाभाग स्थलं च शतयोजनम्। देहि मे नगरार्थं च पश्चाद्दास्यामि निश्चितम्॥७॥
नगरं कुरु हे कारो त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। रमणीयं च सर्वेषां कमनीयं च योषिताम्॥८॥
वाञ्छितं चापि भक्तानां वैकुण्ठसदृशं परम्। सर्वेषामपि स्वर्गाणां परं पारमभीप्सितम्॥९॥
दिवानिशं खगश्रेष्ठ सन्निधौ विश्वकर्मणः।
स्थितिं कुरु महाभाग यावन्निर्माति द्वारकाम्॥१०॥
दिवानिशं च मत्पार्श्वे चक्रश्रेष्ठ स्थितिं कुरु।
ओमित्युक्त्वा तु प्रययुः सर्वे चक्रं विना मुने॥११॥
कंसस्य पितरं भद्रमुग्रसेनं महाबलम्। नृपं चकार नगरे क्षत्रियाणां सतामपि॥१२॥
विजित्य च जरासंधं निहत्य यवनं तथा। उपायेन महाभाग निर्माणक्रममीश्वरः॥१३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–"हे महाभाग समुद्र! मुझे नगर निर्माणार्थ १०० योजन भूमि प्रदान करो। कालान्तर में वह भूमि तुमको वापस कर दूंगा। हे विश्वकर्मा! तुम शिल्पी हो। तुम उस भूमि पर त्रैलोक्य दुर्लभ, रम्य नगर बनाओ। वह स्त्रियों को सुन्दर लगे। वह भक्तों को वैकुण्ठ के समान प्रतीत हो। वह सभी स्वर्गों से श्रेष्ठ तथा सबके लिये अभीप्सित हो। हे गरुड़! खगश्रेष्ठ! जितने समय तक विश्वकर्मा उस नगरी द्वारका के निर्माण में लगे हों, तुम उनकी सन्निधि में रहना। हे चक्रश्रेष्ठ! तुम दिवा-रात्रि सभी

काल मेरे साथ स्थित रहो।" इन सबने भगवान् का आदेश सुनकर 'ॐ' कहकर स्वीकृति प्रदान किया। सभी लोगों के चले जाने पर भी चक्र श्रीकृष्ण के पास ही था। हे मुनिवर! इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने मथुरा का राज्य कंस के पिता अत्यन्त भद्र व्यक्ति उग्रसेन को दिया, जो महाबली थे। उनको श्रीकृष्ण ने मथुरा में सज्जन क्षत्रियों का राज्य प्रदान किया। तदनन्तर उन्होंने जरासंध को जीतकर कालयवन का कौशल पूर्वक वध किया। उन महाभाग ने तब नगर निर्माण का क्रम प्रारम्भ कराया।।७-१३।।

श्रीभगवानुवाच

शतयोजनपर्यन्तं नगरं सुमनोहरम्। पद्मरागैर्मरकतैरिन्द्रनीलैरनुत्तमैः।।१४।।
रुचकैः पारिभद्रैश्च पलङ्कैश्च[1] स्यमन्तकैः। गन्धकैर्गालिमैश्चैव चन्द्रकान्तादिभिस्तथा।।१५।।
सूर्यकान्तादिभिश्चैव पुत्रैश्च स्फटिकाकृतैः। हरिद्वर्णैश्च मणिभिः श्यामैर्गौरमुखैश्चषैः।।१६।।
गोरोचनाभिः पीतैश्च दाडिमीबीजरूपकैः। पद्मबीजनिभैश्चैव नीलैः कमलवर्णकैः।।१७।।
मणिभिः कज्जलाकारैरुज्ज्वलैश्च परिष्कृतैः। श्वेतचम्पकवर्णाभैस्तप्तकाञ्चनसन्निभैः।।१८।।
स्वर्णमूल्यशतगुणैरीषद्रक्तैः सुशोभनैः। गरिष्ठैश्च वरिष्ठैश्च मणिश्रेष्ठैश्च पूजितैः।।१९।।
यथाविधानं यद्योगं यत्र यन्मुक्तमीप्सितम्।
मणीनां हरणं चैव यक्षसंघा हिमालयात्।।२०।।
दिवानिशं करिष्यन्ति यावन्निर्माणपूर्वकम्[2]। यक्षैश्च सप्तभिर्लक्षैः कुबेरप्रेरितैरपि।।२१।।

श्रीभगवान् कहते हैं–हे विश्वकर्मा! तुम १०० योजन का मनोहर नगर निर्माण करो। वह पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, पारिभद्र, पलङ्क, स्यमन्तक, गन्धक, गालिम, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्तादि से स्फटिक की पुतलियों से हरी मणियों से, श्याम, गौर मणियों से, अनार की बीज के समान पीतवर्ण गोरोचन से, कमल के बीज के समान, नीले कमल वर्ण से, काजलकार उज्वल परिष्कृत मणियों से, श्वेत चम्पा के वर्णकान्ति वाली, तप्तस्वर्ण जैसी चमकदार, स्वर्ण के मूल्य से भी सौगुनी कीमती, तनिक लाल आभावाली, सुशोभन, गरिष्ठ, श्रेष्ठ, मणियों से इसे बनाना। वास्तुशास्त्र विधान से यथायोग जो उचित हो उस प्रकार से बनाओ। जब तक यह नगर निर्मित करते रहोगे, हिमवान् पर्वत से यक्षगण इन मणियों को वहां ले आते ही रहेंगे। ये सात लाख यक्ष कुबेर द्वारा इस काम के लिये भेजे जायेंगे।।१७-२१।।

वेताललक्षैः कूष्माण्डलक्षैः शङ्करयोजितैः। दानवैर्ब्रह्मरक्षोभिः शैलकन्यानियोजितैः।।२२।।
कुरु दिव्यं च पत्नीनां सहस्राणां च षोडश।
अन्यपत्नीजनस्यापि चाष्टाधिकशतस्य च।।२३।।
शिबिरं परिखायुक्तमुच्चैःप्राकारवेष्टितम्। युक्तद्वादशशालं च सिंहद्वारपरिष्कृतम्।।२४।।

१. क. पलकैः।
२. निर्माणपूरकमिति पाठान्तरम्।

युक्तं चित्रैर्विचित्रैश्च कृत्रिमैश्च कपाटकैः। निषिद्धवृक्षरहितं प्रसिद्धैश्च परिष्कृतम्॥२५॥
सुलक्षणं चन्द्रवेधं प्राङ्गणं च तथैव च। यदूनामाश्रमं दिव्यं किङ्कराणां तथैव च॥२६॥
सर्वत्र सिद्धं निलययुग्रसेनस्य भूभृतः। आश्रमं सर्वतोभद्रं वसुदेवस्य मत्पितुः॥२७॥

एक लाख वेताल, एक लाख कूष्माण्ड शिव द्वारा इस कार्य हेतु भेजे जायेंगे। शैलकन्या देवी पार्वती इस काम के लिये दानवों तथा ब्रह्मराक्षसों को नियोजित करेगी। तुम वहां मेरी होने वाली १६१०८ पत्नियों हेतु भी दिव्य महलों को बनाना। ये सभी महल जलपूर्ण खाई से घिरे रहेंगे। महलों के चारों ओर ऊंची दीवार बनाना। यहां का सिंहद्वार प्राचीर से घिरा होगा तथा १२ संख्यक उपद्वारयुक्त चित्र-विचित्र नाना प्रकार के शिल्पों से बने कपाट युक्त ये होंगे। यहां निन्दित वृक्षों से रहित तथा उत्तम वृक्षयुक्त शिविर का निर्माण करना। प्रत्येक भवन उत्तम लक्षणान्वित तथा प्रांगण चन्द्रवेधी हों। इसी प्रकार यदुवंशियों तथा उनके सेवकों के लिये भी दिव्य गृह बनाना। राजाधिराज उग्रसेन का गृह सभी प्रकार से उत्तम सुखकर तथा प्रसिद्ध बने। मेरे पिता वसुदेव का गृह सर्वप्रकार से उत्तम सर्वतोभद्र हो॥२२-२७॥

विश्वकर्मोवाच

के ते वृक्षाः प्रशस्ताश्च निषिद्धाश्चापि केचन।
भद्राभद्रप्रदाश्चापि तान्वदस्व जगद्गुरो॥२८॥
केषामस्थिनियुक्तं च शिबिरं च शुभाशुभम्। दिशि कुत्र जलं भद्रमभद्रं च वद प्रभो॥२९॥
भद्रप्रदश्च को वृक्षो दिशि कुत्र प्रवर्तते। किं प्रमाणं गृहाणां च प्राङ्गणानां सुरेश्वर[1]॥३०॥
मङ्गलं कुसुमोद्यानं दिशि कुत्र तरोस्तथा। प्राकाराणां किं प्रमाणं परिखाणां सुरेश्वर॥३१॥
द्वाराणां च गृहाणां च प्राकाराणां प्रमाणकम्।
कस्य कस्य तरोः काष्ठं प्रशस्तं शिबिरे प्रभो॥३२॥
अमङ्गलं वा केषां च सर्वं मां वक्तुमर्हसि॥३३॥

विश्वकर्मा कहते हैं—हे जगद्गुरु! कौन-सा वृक्ष निषिद्ध तथा कौन प्रशस्त प्रसिद्ध होता है? कौन वृक्ष मंगलप्रद तथा कौन-सा वृक्ष अमंगलकारी कहा गया है? आपका उपदेश मिलने पर तदनुरूप गृह निर्माण करूंगा। किसकी अस्थि नींव में पड़ने से भवन शुभ तथा किसकी अस्थि से अशुभ होता है? शिविर की किस दिशा में जल होना मंगलमय है, किस दिशा में वह अमंगल प्रदान करता है? दीवार (परकोटा), गृह, प्रांगण, खाई का माप तथा प्रमाण क्या हो? हे सुरेश्वर! कौन-सा वृक्ष किस दिशा में लगायें। मंगलमय कुसुम के उद्यान की तथा वृक्षों की दिशा क्या हो? द्वार तथा प्राकार का माप क्या हो? हे प्रभो! शिविर हेतु किस वृक्ष का काष्ठ प्रशस्त होता है? किस वृक्ष की लकड़ी अमंगलकारी कही जाती है, कृपा पूर्वक यह सब कहिये॥२८-३३॥

१. क. जगद्गुरो।

श्रीभगवानुवाच

आश्रमे नारिकेलश्च गृहिणां च धनप्रदः। शिबिरस्य यदीशाने पूर्वे पुत्रप्रदस्तरुः॥३४॥
सर्वत्र मङ्गलार्हश्च तरुराजो मनोहरः। रसालवृक्षः पूर्वस्मिन्नृणां सम्पत्प्रदस्तथा॥३५॥
शुभप्रदश्च सर्वत्र सुरकारो निशामय। बिल्वश्च पनसश्चैव जम्बीरो बदरी तथा॥३६॥
प्रजाप्रदश्च पूर्वस्मिन्दक्षिणे धनदस्तथा। सम्पत्प्रदश्च सर्वत्र यतो हि वर्धते गृही॥३७॥

श्रीभगवान् कहते हैं–आश्रम में नारिकेल वृक्ष गृही के लिये धनप्रद होता है। जो वृक्ष गृह के ईशानकोण में तथा पूर्वदिक् में लगाया जाये, वह सन्तानप्रद होगा। पूर्वदिक् में लगा आम्रतरु मनुष्यों हेतु सम्पत्तिप्रदा होगा। मनोहर तरुराज सभी दिशा में मंगलप्रद है। वह सर्वत्र शुभप्रद है। हे देवशिल्पी (सुरकार)! बिल्व, कटहल, जम्बीरी नीबू, बेर–ये पूर्वदिशा में लगाने से सन्तानप्रद, दक्षिण में लगाने से धनप्रद तथा सर्वत्र सम्पदाप्रद होते हैं। ये गृहस्थ की वृद्धि करते हैं।।३४-३७।।

जम्बूवृक्षश्च दाडिम्बः कदल्याम्रातकस्तथा। बन्धुप्रदश्च पूर्वस्मिन्दक्षिणे मित्रदस्तथा॥३८॥
सर्वत्र शुभदश्चैव धनपुत्रशुभप्रदः। हर्षप्रदो गुवाकश्च दक्षिणे पश्चिमे तथा॥३९॥
ईशाने सुखदश्चैव सर्वत्रैव निशामय। सर्वत्र चम्पकः शुद्धो भुवि भद्रप्रदस्तथा॥४०॥

अलाबुश्चापि कूष्माण्डमायाम्बुश्च सकिंशुकः।
खर्जूरी कर्कटी चापि शिबिरे मङ्गलप्रदा॥४१॥
वास्तूककारबिल्वश्च वार्ताकश्च शुभप्रदः।
लताफलं च शुभदं सर्वं सर्वत्र निश्चितम्॥४२॥
प्रशस्तं कथितं कारो निषिद्धं च निशामय।
वन्यवृक्षो निषिद्धश्च शिबिरे नगरेऽपि च॥४३॥

वटो निषिद्ध शिबिरे नित्यं चोरभयं यतः। नगरेषु प्रसिद्धश्च दर्शनात्पुण्यदस्तथा॥४४॥

जामुन का वृक्ष, अनार का वृक्ष, केला, अमला का वृक्ष पूर्वदिक् में लगाने पर बन्धुप्रद होते हैं ये ही दक्षिण दिशा में लगाये जाने पर मित्रप्रद होते हैं। ये सर्वत्र शुभ होते हैं तथा धन-पुत्र प्रदायक भी होते हैं। सुपारी का वृक्ष दक्षिण-पश्चिम में हर्षदायक होता है। ईशान कोण में तथा सर्वत्र सुख देता है। भूतल पर लगा चम्पक वृक्ष शुद्ध होता है, मंगलप्रद होता है। लौकी-कोहड़ा-आयाम्बु-पलाश-खजूर-कर्कटी के वृक्ष शिविर में मंगलप्रद होते हैं। बथुआ, बिल्व, बैंगन के पादप सुखप्रद कहे गये हैं। यह मैंने प्रशस्त वृक्षों का वर्णन कर दिया। अब जो वर्जित निषिद्ध वृक्ष हैं, उनको सुनो! शिविर तथा नगर, दोनों स्थान पर वन्यवृक्ष लगाना वर्जित है। वटवृक्ष गृह में न लगाये। ये चोरभय देते हैं, तथापि नगर में लगाना पुण्यदायक हैं तथा इनका दर्शन पुण्यप्रद है।।३८-४४।।

निषिद्धः शाल्मलिश्चैव शिबिरे नगरे पुरे। दुःखप्रदश्च सततं भूपालानां सदाऽपि च॥४५॥

न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च। विद्यामतिनिषिद्धस्तु सततं दुःखदस्तदा॥४६॥

हे कारो तिन्तिडीवृक्षो यत्नात्तं परिवर्जयेत्।
शतेन धनहानिः स्यात्प्रजाहानिर्भवेद्ध्रुवम्॥४७॥

शिबिरेऽतिनिषिद्धश्च नगरे किञ्चिदेव च। न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च॥४८॥
विद्यामतिनिषिद्धश्च[1] प्राज्ञस्तं परिवर्जयेत्। खर्जूरश्च गहुश्चैव[2] निषिद्धः शिबिरे तथा॥४९॥
न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च। वृक्षश्च चणकादीनां धान्यं च मङ्गलप्रदम्॥५०॥
ग्रामेषु नगरे चापि शिबिरे च तथैव च। इक्षुवृक्षश्च शुभदः सन्ततं शुभदस्तथा॥५१॥

अशोकश्च शिरीषश्च कदम्बश्च शुभप्रदः।
कच्चिद्धरिद्रा शुभदा शुभदश्चाऽऽर्द्रकस्तथा[3]॥५२॥

हरीतकी च शुभदा ग्रामेषु नगरेषु च। न वाद्या भद्रदा नित्यं चाऽऽमलकी ध्रुवम्॥५३॥

शिविर, नगर, पुर में सेमल का वृक्ष लगाना निषिद्ध है। यह राजाओं के लिये सतत् दुःखदायक है, तथापि ग्राम किंवा नगर में उक्त वृक्ष न तो विशेषतया निषिद्ध है न तो प्रशस्त है, तथापि गृह में यह वृक्ष अतिशय निषिद्ध माना गया है। यह निरन्तर दुःख देता है। हे शिल्पी! तिन्तिड़ी (इमली) वृक्ष अत्यन्त निषिद्ध है। इसका वर्जन यत्नतः करे। शाल वृक्ष लगाने से धन हानि एवं प्रजा हानि होती है। नगर में में उक्त वृक्ष उत्पन्न होने से ऐसी क्षति नहीं होती, तथापि नगर में कपास वृक्ष तथा मसूर एवं सरसों का पौधा निषिद्ध माना गया है। नगर किंवा शिविर में उगाया गया गेहूं, जौ, चना तथा धान्य का पौधा मंगलप्रद होता है। यदि ग्राम-नगर किंवा शिविरादि स्थान में यदि गन्ना का वृक्ष उत्पन्न होता है, तब यह सर्वत्र सभी विषय में मङ्गल एवं सुख देता है। अशोक, शिरीष, कदम्ब शुभ है। ग्राम तथा नगर के लिये हल्दी, अदरख, हर्रे तथा आमलकी के वृक्ष शुभ एवं कल्याणप्रद हैं। खजूर तथा कांटा वाले वृक्ष शिविर में रहने पर विद्या-बुद्धि का नाश होता है। मनुष्य इनसे दूर रहे॥४५-५३॥

गजानामस्थि शुभदमश्वानां च तथैव च।
कल्याणमुच्चैःश्रवसां वास्तौ स्थापनकारिणाम्॥५४॥

न शुभप्रदमन्येषामुच्छिन्नकारणं परम्। वानराणां नराणां च गर्दभानां गवामपि॥५५॥

कुक्कुराणां[4] शृगालानां मार्जाराणामभद्रकम्।
भेटकानां सूकराणां सर्वेषां च शुभप्रदम्॥५६॥

वास्तु भूमि में गाड़ने से हाथी की अस्थि शुभप्रदा होती है। उत्कृष्ट उच्चैश्रवा वंशोत्पन्न अश्वों

१. क. वाद्या॰।
२. क. गूढश्चै॰।
३. क. ॰श्चरक॰।
४. क. क्कुटानां।

की अस्थि भी इस कार्य में कल्याणप्रदा होती है। अन्य प्राणी की अस्थि समूलनाश करने वाली होती है। वानर, मनुष्य, गर्दभ, गौ, श्वान, शृगाल, बिड़ाल की अस्थि अमंगलकारी कही जाती है। परन्तु भेड़ एवं शूकर की अस्थि सबके लिये शुभप्रद है। अर्थात् वास्तु भूमि में गाड़ने हेतु शुभप्रद मानी गयी है॥५४-५६॥

ईशाने चापि पूर्वस्मिन्पश्चिमे च तथोत्तरे। शिबिरस्य जलं भद्रमन्यत्राशुभमेव च॥५७॥
दीर्घे प्रस्थे समानं च न कुर्यान्मन्दिरे बुधः। चतुरस्त्रे गृहे कारो गृहिणां धननाशनम्॥५८॥
दीर्घप्रस्थः परिमितो नेत्राङ्केनापि संहृतम्।
शून्येन रहितं भद्रं शून्यं शून्यप्रदं नृणाम्॥५९॥
प्रस्थे हस्तद्वयात्पूर्वं दीर्घे हस्तत्रयं तथा। गृहाणां शुभदं द्वारं प्राकारस्य गृहस्य च॥६०॥
न मध्यदेशे कर्तव्यं किञ्चिन्न्यूनाधिके शुभम्। चतुरस्त्रं चन्द्रवेधं शिबिरं मङ्गलप्रदम्॥६१॥
अभद्रदं सूर्यवेधं शिबिरं मङ्गलप्रदम्। अभद्रदं सूर्यवेधं प्राङ्गणं च तथैव च॥६२॥

शिविरादि के ईशान विदिक् में (कोण में), पूर्व-पश्चिम-उत्तर में जल रहना उत्तम है। अन्यत्र उत्तम नहीं है। अशुभप्रद होगा। हे देवशिल्पी विश्वकर्मा! बुद्धिमान व्यक्ति गृह की भूमि की लम्बाई तथा चौड़ाई समान न रखे। चतुष्कोण गृह बनाने से गृही का धन नाश होना निश्चित है। घर की लम्बाई नापे। तदनन्तर चौड़ाई नापे। इन दोनों माप में अलग-अलग २ का भाग दे। यदि शेष शून्य न हो, तब शुभ, परन्तु शेष शून्य होना शून्यप्रद होगा (उचित नहीं होगा)। घर का अथवा परकोटे का द्वारा गृह की चौड़ाई में पश्चिम से दो हाथ पूर्व तथा लम्बाई में दक्षिण से तीन हाथ हटकर बनाये। गृह के मध्य में द्वार बनाना अनुचित है। मध्य से कुछ हटाकर द्वार रखे, यही शुभ होगा। चतुष्कोण गृह चन्द्रवेध हो, तब मंगलदायक है। सूर्यवेध होने पर अमंगल कारक होगा। आंगन भी सूर्यवेध न होकर चन्द्रवेध हो। नियम है कि सर्वमंगलप्रद गृह सूर्यवेध होने पर अमंगलकारी होगा॥५७-६२॥

शिबिराभ्यन्तरे भद्रा स्थापिता तुलसी नृणाम्।
धनपुत्रप्रदात्री च पुण्यदा हरिभक्तिदा॥६३॥
प्रभाते तुलसीं दृष्ट्वा स्वर्णदानफलं लभेत्।
मालती यूथिका कुन्दं माधवी केतकी तथा॥६४॥
नागेश्वरं मल्लिकां च काञ्चनं बकुलं शुभम्।
अपराजिता च शुभदा तेषामुद्यानमीप्सितम्॥६५॥
पूर्वे च दक्षिणे चैव शुभदं नात्र संशयः। ऊर्ध्वं षोडशहस्तेभ्यो नैव कुर्याद्गृहं गृही॥६६॥

तुलसी पादप गृही हेतु कल्याणप्रद, धन-पुत्रप्रद, पुण्यदायक हरिभक्तिप्रदायक होता है। जो प्रातःकाल तुलसी दर्शन करेगा, उसे स्वर्णदान फल मिलेगा। गृह के पूर्व एवं दक्षिण दिक्भाग में मालती, जूही, कुन्द, माधती, केतकी, नागेश्वर, बेला, श्यामधतूरा, मौलश्री, शुभप्रदा अपराजिता

लगाये। इससे भूमि शुभप्रदा होगी। इसमें संशय नहीं है। यह उद्यान में लगाये। १६ हाथ से उच्च गृह कदापि न बनाये।।६३-६६।।

ऊर्ध्वं विंशतिहस्तेभ्यः प्राकारं च शुभप्रदम्। सूत्रधारं तैलकारं स्वर्णकारं च हीरकम्।।६७।।

वाटीमूले ग्राममध्ये च कुर्यात्स्थापनं बुध।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं सच्छूद्रं गणकं शुभम्।।६८।।

भट्टं वैद्यं पुष्पकारं स्थापयेच्छिबिरान्तिके। प्रस्थे च परिखामानं शतहस्तं प्रशस्तकम्।।६९।।

परितः शिबिराणां च गम्भीरं दशहस्तकम्[1]। सङ्केतपूर्वकं चैव परिखाद्वारमीप्सितम्।।७०।।

शत्रोरगम्यं मित्रस्य गम्यमेव सुखेन च।
शाल्मलीनां तिन्तिडीनां हिन्तालानां तथैव च।।७१।।
निम्बाणां सिन्धुवाराणां[2] बदरीणामभद्रकम्।
धत्तूराणां वटानां चाप्येरण्डानामवाञ्छितम्।।७२।।

एतेषामतिरिक्तानां शिबिरे काष्ठमीप्सितम्। वृक्षं च वज्रहस्तं च भूधरो वर्जयेदधः।।७३।।

पुत्रदारधनं हन्यादित्याह कमलोद्भवः। कथितं लोकशिक्षार्थं कुरु काष्ठं विना पुरीम्।।७४।।

बीस हाथ से ऊंची दीवार कदापि (परकोटा) गृही के लिये शुभदायक नहीं है। गृह के समीप बुद्धिशाली व्यक्ति कभी बढ़ई, तेली, स्वर्णकार को न बसने दे। ग्राम मध्य में भी ये न रहें। गृह के पड़ोस में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सत्शूद्र, ज्योतिषी, भाट, वैद्य तथा माली रहें। शिविर के चारों ओर सौ हाथ लम्बी तथा १० हाथ गहरी खाई उत्तम कही गयी है। ऐसी खाई का द्वार संकेतयुक्त हो (?)। यह ऐसा हो जिसमें मित्रगण तो अनायास आ सकें, परन्तु शत्रुगण कदापि प्रवेश न कर सकें। भवन अथवा शिविर निर्माणार्थ सेमल, इमली, जंगली खजूर, नीम, सिन्धुआर, गूलर, धतूरा, वट तथा रेंड़ का काष्ठ उपयोग न करें। अन्य वृक्ष का काष्ठ मंगलप्रद है। पण्डितगण आकाशीय बिजली गिरने से नष्ट वृक्ष की लकड़ी का निषेध करते हैं। ब्रह्मा ने कहा है कि ऐसे वृक्ष का काष्ठ उपयोग करने से पुत्र, धन, स्त्री का नाश हो जाता है। हे वत्स! यह सब मैं लोकशिक्षार्थ कह रहा हूं। तुम तो द्वारिकापुरी का निर्माण बिना काष्ठ करो!।।६७-७४।।

शुभक्षणं चाप्यधुना गच्छ वत्स यथासुखम्।
विश्वकर्मा हरिं नत्वा जगाम पक्षिणा सह।।७५।।

समुद्रस्य समीपं च वटमूलं मनोहरम्। सुष्वाप तत्र नक्तं च कारुश्च पक्षिणा सह।।७६।।

स्वप्ने द्वारवतीं रम्यां ददर्श गरुडस्तथा।
यत्किंचित्कथितं कारुं कृष्णेन परमात्मना।।७७।।

१. शतहस्तकमित्यपि पाठः।
२. ख. ०राणामुम्बराणा०।

तदेव लक्षणं सर्वं ददर्श नगरे मुने। कारुं हसन्ति स्वप्ने च सर्वे ते शिल्पकारिणः।।७८।।
गरुडं गरुडाश्चान्ये बलवन्तश्च पक्षिणः। बुद्धो ददर्श गरुडो विश्वकर्मा च लज्जितः।।७९।।

अतीव द्वारकां रम्यां शतयोजनविस्तृताम्।
ब्रह्मादीनां च नगरं विजित्य च विराजिताम्।
तेजसाऽऽच्छादितां सूर्यं रत्नानां च परिष्कृताम्।।८०।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० द्वारकानिर्माणारम्भे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः।।१०३।।

—❊❊❊—

"यही उस कार्य के लिये शुभक्षण है। हे वत्स! तुम अब सुख के साथ जाओ।" यह सुनकर विश्वकर्मा ने हरि को प्रणाम किया तथा वे गरुड़ के साथ समुद्र के निकट आकर वट वृक्ष के नीचे रात्रि में सो गये। गरुड़ ने वहीं स्वप्नावस्था में मनोहर द्वारिका नगरी का दर्शन किया। जो कुछ भी परमात्मा कृष्ण ने विश्वकर्मा से कहा था, हे मुनिवर! गरुड़ ने उस नगर में वही लक्षण देखा। स्वप्न में ये सभी कारीगर विश्वकर्मा की हंसी उड़ाने लगे। अन्य गरुड़ जातीय पक्षी तथा बलवान पक्षी हरिवाहन गरुड़ का मजाक उड़ाने लगे। जब सब लोग निद्रा से जागे, तब उस पुरी को देखकर गरुड़ तथा विश्वकर्मा तक लज्जित हो उठे। वह विस्तृत द्वारकापुरी अत्यन्त रमणीय एवं १०० योजन विस्तार वाली थीं। यह नगरी अपनी कान्ति द्वारा ब्रह्मलोक को भी अभिभूत कर रही थीं। वह अपनी रत्नराशि की कारीगरी के कारण उत्पन्न तेज से सूर्य को भी आच्छादित कर रही थीं।।७५-८०।।

।।१०३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मा आदि देवताओं तथा सनत्कुमार आदि ऋषियों का श्रीकृष्ण के यहां आना, श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश, उनका उग्रसेन आदि के साथ वार्त्तालाप

नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भवान्या च भवः स्वयम्।
अनन्तश्चापि धर्मश्च भास्करश्च हुताशनः।।१।।

कुबेरो वरुणश्चैव पवनश्च यमस्तथा। महेन्द्रश्चापि चन्द्रश्च रुद्राश्चैकादशैव ते॥२॥
अन्ये देवाश्च मुनयो वसवः सप्त एव च।
आदित्याश्चापि दैत्याश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तथा॥३॥
आययुर्द्वारकां द्रष्टुं श्रीकृष्णं च बलं तथा। आगच्छन्तं च सहसा वटमूलं मनोहरम्॥४॥
दृष्ट्वा च देवताः सर्वास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्।
आकाशाच्च विमानैश्च सम्प्राप्य वटमूलकम्॥५॥
ददृशुर्द्वारकां रम्यामतीव सुमनोहराम्। मुक्तामाणिक्यहीरेण रत्नराजिविराजिताम्॥६॥
परितश्चतुरस्त्रां च शतयोजनसम्मिताम्। सप्तभिः परिखाभिश्च गम्भीराभिश्च वेष्टिताम्॥७॥
प्राकारैर्नवभिर्युक्तां लक्षैः क्रीडासरोवरैः। मनोहरैः सपद्मैश्च सहितैश्च मधुव्रतैः॥८॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–इसी बीच ब्रह्मा, हर–पार्वती, अनन्त, धर्मदेव, सूर्य, अग्नि, कुबेर, वरुण, पवन, यम, महेन्द्र, चन्द्रमा, एकादशरुद्र, अन्य देवता, वसुगण, १२ आदित्य, दैत्य, गन्धर्व तथा किन्नर आदि सभी उस वटवृक्ष के नीचे द्वारका दर्शनार्थ आये। उन्होंने वहां बलदेव के साथ श्रीकृष्ण का आगमन होते देखा। तभी वे सभी पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का स्तव करने लगे। इसी समय आकाशवासी लोग भी आकाशमण्डल में विमानारूढ़ होकर अतिशय मनोरम द्वारकापुरी का दर्शन करने लगे। उन्होंने देखा कि द्वारका नगरी मुक्ता, माणिक्य, हीरा तथा अनेक प्रकार के रत्नों द्वारा निर्मित है। वह इन रत्नों की पंक्ति से शोभित है। वह चतुर्दिक् से १०० योजन लम्बाई–चौड़ाई वाली सात खाईयों से घिरी है। वह नौ दीवारों से युक्त है। वह एक लाख क्रीड़ा सरोवरों से शोभायमान है, जो मनोहारी कमलपुष्पों से भरी है तथा जिन पर भ्रमर मंडरा रहे हैं।।१-८।।

शोभितां सर्वतोभद्रैः पुष्पोद्यानत्रिलक्षकैः। प्रफुल्लपुष्पैः पवनैः सर्वत्र सुरभीकृताम्॥९॥
आमोदितां च शीतेन मन्दचन्दनवायुना। तरुभिर्नारिकेलाणां शोभितां शतकोटिभिः॥१०॥
गुवाकानां च वृक्षंश्च भूषितां तच्चतुर्गुणैः। चतुर्गुणैर्गुवाकानां युक्तामाम्रमहीरुहैः॥११॥
परीतां पनसानां च वृक्षैराम्रसमैर्मुने। सुशोभितां च तालानां द्रुमैराम्रसमैर्मुने॥१२॥
अश्वत्थैर्बदरीभिश्च बिल्वैराम्रातकैर्वटैः। शाल्मलीभिश्च जम्बूभिः कदम्बैश्चापि शोभिताम्॥१३॥

यह पुरी तीन लाख सब ओर से मंगलमय पुष्पोद्यानों से युक्त थी। इससे वह पुरी अत्यन्त शोभायमान हो रही थी। यह पुरी सभी ओर से खिले हुये मनोहर पुष्पों की गन्ध से आमोदित थी। साथ ही वह पुरी चन्दन की गंधयुक्त वायु द्वारा अत्यन्त सुगन्धित हो रही थी। सौ करोड़ नारिकेल वृक्षों तथा चार सौ करोड़ सुपाड़ी के वृक्षों से वह नगर घिरा था। उसके तदनन्तर सुपाड़ी के चतुर्गुण आमवृक्ष थे। चतुर्दिक् आम वृक्षों इतनी ही संख्या के कटहल के वृक्ष भी शोभायमान थे। इतने ही तालवृक्ष भी थे। पीपल, बेर, आमला, बिल्व, आंवला, वट, सेमल, जामुन तथा कदम्ब वृक्षों से द्वारका पुरी शोभायमान थी।।९-१३।।

वंशैश्च तिन्तिडीभिश्च चम्पकैर्बकुलैस्तथा। नागेश्वरैर्नागरङ्गैर्जम्बीरैर्दाडिमैर्युताम्॥१४॥
खर्जुरैरर्जुनैः पिष्टैरिक्षुभिः काञ्चनरपि। हरीतकीभिर्धात्रीभिरिन्दुभिः परितः प्लुताम्॥१५॥
शालैः प्रियालैर्हिन्तालैः शिरीषैः सप्तपर्णकैः। अन्यैर्नानाद्रुमैरिष्टैरिष्टां युक्तां परिप्लुताम्॥१६॥
असंख्यैर्मन्दिरं रम्यैरत्युच्चैरपि संस्कृताम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्मुक्तामाणिक्यभूषितैः॥१७॥
माणिक्यहीरकैश्चित्रै सद्रत्नकलशान्वितैः। मणिभिर्निर्मितैरिष्टैः सोपाननिकरैर्वरैः॥१८॥
कपाटैः कठिनैर्दिव्यैरर्गलाकीलकैर्युताम्। हरिन्मणीनां स्तम्भानां कदम्बैरपि संयुतैः॥१९॥

नानाचित्रैर्विचित्रैश्च सुचित्रैश्च[1] परिष्कृतैः।
दर्पणैः सूक्ष्मवस्त्रैश्च शोभितैः श्वेतचामरैः॥२०॥

प्राङ्गणैः पद्मरागाद्यैरिन्द्रनीलपरिष्कृताम्। वीथीभी रत्नखचितै राजमार्गैः समन्विताम्॥२१॥

बांस, इमली, चम्पा, मौलश्री, नागकेशर, नारंगी, जम्बीरी नीबू, अनार, खजूर, अर्जुन, पिष्टक, ईख, कचनार, हर्रे, आंवला प्रभृति वृक्षों से वह पुरी भरी हुई थी। शाल, प्रियाल, जंगली खजूर, शिरीष, छतिवन तथा अनेक नाना प्रकार के उपयोगी वृक्ष वहां भरे पड़े थे। वह नगरी अत्यन्त उच्च, रम्य असंख्य गृहों से सज्जित थी। इनका उत्तम रत्नों के सार से निर्माण किया गया था। इन गृहों में मुक्ता, मणि, हीरक जड़े गये थे। ये भवन उत्तम कलशों से युक्त थे। वहां मणि के सोपान बने थे। वहां के कपाट अत्यन्त दृढ़ थे। वे किवाड़ अर्गला, कील तथा मरकत स्तम्भों से बने थे। रत्नचित्रित विचित्र परिष्कृत चित्रयुक्त, श्वेतचामर, सूक्ष्म वस्त्र तथा दर्पणों से विभूषित यह नगरी इन्द्रनीलमणि से चित्रित, पद्मराग मणियों से रचित प्रांगण से सुशोभित थी। यहां की गलियां रत्न जड़ित थीं। वहां राजमार्ग भी शोभायमान था॥१४-२१॥

ग्रीष्ममध्याह्नसूर्याभां ज्वलितां रत्नतेजसा। गवाक्षलक्षैः संयुक्ता वाजिशालापरिष्कृताम्॥२२॥
दृष्ट्वा च द्वारकां रम्यां ते देवा विस्मयं ययुः। प्रसन्नवदनो देवो लाङ्गली भगवानजः॥२३॥
सस्मार यदुवंशानां समूहमुग्रसेनकम्। वसुदेवं देवकीं च पाण्डवांश्च समातृकान्॥२४॥
नन्दं यशोदां गोपालान्राजेन्द्रमुनिपुङ्गवाम्। गन्धर्वान्किन्नरांश्चैव सहितो यदुपुङ्गवैः॥२५॥

नन्दो यशोदा गोपाश्च जनन्या सह पाण्डवाः।
गन्धर्वाः किन्नराश्चैव विद्याधर्यश्च नारद॥२६॥
किन्नर्यश्चापि नर्तक्यो गायका वाद्यभाण्डकाः।
भिक्षुका भाण्डकाश्चैव भट्टाश्च गणकास्तथा॥२७॥
नानादेशोद्भवा भूपा वैद्याश्चान्ये च मानवाः।
संन्यासिनश्च यतयोऽवधूता ब्रह्मचारिणः॥२८॥

---

१. क. रत्नचित्रैः।

आययुर्मुनयः सर्वे सशिष्याः सिद्धपुङ्गवाः। सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः॥२९॥
सनत्कुमारो भगवाञ्ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः। शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्धं पञ्चवर्षो दिगम्बरः॥३०॥

वह नगरी ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्य के समान की प्रभायुक्त रत्नप्रभा से (रत्नों की चमक से) जगमगा रही थी। लाखों गवाक्षों से युक्त तथा अश्वशाला समन्वित रम्य द्वारका का अवलोकन करके देवता भी विस्मय से चकित हो गये। तभी प्रसन्न मुख वाले लांगली देव (बलदेव जो हलधर हैं) एवं भगवान् अज (श्रीकृष्ण) ने यदुकुल के मान्य लोगों, यदुवंशी लोगों, उग्रसेन, वसुदेव, देवकी, माता के साथ पाण्डवों, नन्द-यशोदा, गोपगण, श्रेष्ठ राजा, मुनिगण, गन्धर्वों एवं किन्नरों का स्मरण किया। हे नारद! नर्त्तकियों, गायकों, वाद्यवादक, भिक्षुक, भांड़, भाट, गणक, नाना देशों में जन्मे राजा, वैद्य, अनेक मनुष्य, संन्यासी, यति, अवधूत, ब्रह्मचारीगण, शिष्य सहित मुनिगण, सिद्धगण, सनक, सनन्दन, सनातन तथा सदा पंचवर्षीय रहने वाले ज्ञानीगण के गुरु के गुरु सदा दिगम्बर भी अपने तीन कोटि शिष्यों सहित वहां आ गये॥२२-३०॥

शिष्यैस्त्रिलक्षैः सहितो दुर्वासा भगवानजः।
लक्षशिष्यैः कश्यपश्च वाल्मीकिश्च त्रिलक्षकैः॥३१॥
लक्षशिष्यैर्गौतमश्च कोटिभिश्च बृहस्पतिः। शुक्रस्त्रिकोटिभिः सार्धं भरद्वाजश्च लक्षकैः॥३२॥
शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्धमङ्गिरा भगवानजः।
वसिष्ठः कोटिभिः शिष्यैः प्रचेताः कोटिभिस्तथा॥३३॥
त्रिलक्षैश्च पुलस्त्यश्चाप्यगस्त्यः कोटिभिः सह। पुलहो लक्षशिष्यैश्च क्रतुर्लक्षैस्तथैव च॥३४॥

अज भगवान् दुर्वासा वहां तीन लाख शिष्यों सहित आये। वहां गौतम एक लाख शिष्यों के साथ, बृहस्पति एक कोटि शिष्यों के साथ, शुक्राचार्य तीन कोटि शिष्यों के साथ, भरद्वाज तीन लाख शिष्यों के साथ, अज भगवान् अंगिरा तीन कोटि शिष्यों के साथ, भगवान् प्रचेता एक कोटि शिष्यों के साथ, पुलत्स्य तीन लाख शिष्यों के साथ, अगत्स्य एक कोटि शिष्यों के साथ, पुलह एक लाख शिष्यों के साथ, क्रतु भी एक लाख शिष्यों के साथ वहां आये॥३१-३४॥

अत्रिस्त्रिकोटिभिः शिष्यैर्भृगुश्च पञ्चकोटिभिः। त्रिकोटिभिर्मरीचिश्च शतानन्दः सहस्रकैः॥३५॥
सार्धं त्रिकोटिभिः शिष्यैर्ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः।
पाणिनिः कोटिभिः शिष्यैर्लक्षैः कात्यायनस्तथा॥३६॥

अत्रि ३ कोटि शिष्यों सहित, भृगु पांचकोटि शिष्यों सहित, मरीचि तीनकोटि शिष्यों सहित, शतानन्द सहस्र शिष्यों सहित, साढ़े तीन कोटि शिष्यों सहित विभाण्डक, ऋष्यशृङ्ग १ कोटि शिष्यों सहित पाणिनि तथा लक्ष-लक्ष शिष्यों सहित कात्यायन आये॥३५-३६॥

याज्ञवल्क्यः सहस्रैश्च व्यासः शिष्यत्रिकोटिभिः।
शिष्यैर्लक्षैश्च सहितो गर्गः कुलपुरोहितः॥३७॥

गालवश्च सहस्रैश्च सहस्रैः सौभरिस्तथा। त्रिकोटिभिर्लोमशश्च मार्कण्डेयस्त्रिकोटिभिः॥३८॥
कोटिभिर्वामदेवश्च जैगीषव्यस्त्रिकोटिभिः। सांदीपनिर्देवलश्च सच्छिष्यैश्च त्रिकोटिभिः॥३९॥

वोढुः शिष्यैः कोटिभिश्च लक्षैः पञ्चशिखस्तथा।
अहं नारायणश्चैव नरा मम सहोदरः॥४०॥
शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्धं विश्वामित्रश्च कोटिभिः।
त्रिकोटिभिर्जरत्कारुरास्तीकश्च त्रिकोटिभिः॥४१॥
त्रिकोटिभिः पर्शुरामो बत्सो लक्षैश्च शिष्यकैः।
दक्षस्त्रिलक्षै शिष्यैश्च कपिलः पञ्चकोटिभिः॥४२॥

संवर्तश्च त्रिलक्षैश्चाप्युतथ्यश्च तथैव च। सहस्रैर्जैमिनिश्चैव पैलो लक्षैस्तथैव च॥४३॥

सहस्रों शिष्यों के साथ याज्ञवल्क्य, तीन कोटि शिष्यों के साथ व्यास, लक्ष-लक्ष शिष्यों सहित कुलपरोहित गर्गाचार्य, हजारों शिष्यों के साथ गालव, हजारों शिष्यों सहित सौभरि, तीन कोटि शिष्य सहित लोमश, इतने ही शिष्यों के साथ मार्कण्डेय मुनि, कोटि शिष्यों सहित वामदेव, तीन कोटि शिष्यों सहित जैगीषव्य, तीन कोटि श्रेष्ठ शिष्यों सहित सांदीपनि, तीन कोटि शिष्यों सहित देवता, कोटि-कोटि शिष्यों सहित वोढु, लाखों शिष्यों के साथ पंचशिख, मैं नारायणमुनि तीन कोटि शिष्यों के साथ, सहोदर नर भी इतने शिष्यों के साथ, कोटि शिष्यों सहित विश्वामित्र, तीन-तीन कोटि शिष्यों के साथ जरत्कारु, आस्तीक एवं परशुराम लाखों शिष्यों सहित वत्स, तीन लाख शिष्यों सहित दक्ष, पांच कोटि शिष्यों सहित कपिल, तीन-तीन लाख शिष्यों के साथ (प्रत्येक) संवर्त्त, उतथ्य, सहस्र शिष्यों सहित जैमिनि, लाखों शिष्यों सहित महर्षि पैल आये।।३७-४३।।

सुवर्णश्च सहस्रैश्च वैशम्पायन एव च। शिष्यैर्लक्षैः समेतश्च व्यासशिष्यः पुरोगमः॥४४॥

लक्षैः शिष्यैस्तथा शृङ्गी चोपमन्युस्तथैव च।
सहस्रैश्च गौरमुखः कचो लक्षैर्गुरोः सुतः॥४५॥
अश्वत्थामा तथा द्रोणः कृपाचार्यः सशिष्यकः।
भीष्मः कर्णश्च शकुनी राजा दुर्योधनस्तथा।
नृपस्य भ्रातरः सर्वे चान्ये भूपा जगद्गुरुम्॥४६॥

हजारों शिष्यों के साथ सुवर्ण मुनि, लाखों शिष्यों सहित व्यास जी के प्रधान शिष्य वैशम्पायन, एक-एक लाख शिष्यों के साथ शृंगी तथा उपमन्यु आये। हजारों शिष्यों के साथ ऋषि गौरमुख तथा लाखों शिष्यों के साथ बृहस्पति के पुत्र कच भी आये। अश्वत्थामा, द्रोणाचार्य, शिष्यसहित आचार्य कृप, भीष्म-कर्ण, शकुनि, दुर्योधन तथा इनके ९९ भ्राता यहां जगद्गुरु श्रीकृष्ण के पास वहां आये।।४४-४६।।

श्रीभगवानुवाच

शुभकर्मणि निष्पन्ने यास्यन्ति ये समागताः। शिवब्रह्मादयो देवा मुनयश्च यथाऽपरे॥४७॥

भवांश्च यादवैः सार्धं प्रविश द्वारकां पुरीम्।
मत्पित्रा मातृभिः सार्धं माहेन्द्रे च क्षणे नृप॥४८॥
अपरे यदवोऽन्ये च यास्यन्ति मथुरां पुरीम्।
श्रुत्वेति विरसो राजा तमुवाच भयाकुलः॥४९॥

श्रीभगवान् कहते हैं–"जो यहां समागत लोग हैं, वे यह माहेन्द्र योग के शुभकर्म सम्पन्न हो जाने पर ही यहां से जायें। शिव-ब्रह्मादि देवता तथा मुनिगण भी तभी जायें। हे राजन्! (उग्रसेन) आप माहेन्द्र मुहूर्त्त में यादवों के साथ द्वारका में प्रवेश करिये। आप मेरे माता-पिता को लेकर द्वारका में प्रवेश करें। शेष यदुवंशी मथुरा जायें।" यह सुनकर राजा उग्रसेन विरस एवं भयभीत होकर श्रीकृष्ण से कहने लगे॥४७-४९॥

उग्रसेन उवाच

वासुदेव न यास्यामि भूमिं तां पैतृकीं पुनः। सर्वतीर्थपरां शुद्धां दैवे कर्मणि पैतृके॥५०॥
पावके भूमिदेशे च पितृणां निर्वपेत्तु यः।
तद्भूमिः[1] स्वामिपितृभिः श्राद्धकर्मणि हन्यते॥५१॥
पितृणां निष्फलं श्राद्धं देवानामपि पूजनम्।
किञ्चित्फलप्रदं चैव सम्पूर्णे पैतृके स्थले॥५२॥
पुत्रपौत्रकलत्रेभ्यः प्राणेभ्यः प्रेयसी सदा। दुर्लभा पैतृकी भूमिः पितुर्मातुर्गरीयसी॥५३॥

राजा उग्रसेन कहते हैं–हे वासुदेव! सर्वतीर्थमयी तथा दैव एवं पितृकर्म हेतु पवित्ररूपा पैतृकी मधुपुरी छोड़कर मैं अन्य स्थान में नहीं रहूंगा। देवकर्म तथा पितृकर्म हेतु पैतृक भूमि ही सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है। अग्नि में तथा अन्य भूमि पर पितृगण को पिण्ड देता है, वहां का भूस्वामी द्वारा पितृदेवों का श्राद्धकर्म विनष्ट हो जाता है। ऐसा पितृश्राद्ध एवं देवपूजन फलहीन किंवा तनिक ही फलप्रद हो पाता है, तथापि पैतृक स्थान में कृत पितृगण का श्राद्ध एवं देवपूजन पूर्णफलप्रद होता है। मनुष्य को पैतृक भूमि पुत्र-पौत्र-भार्या तथा अपने प्राणों से भी प्रिय होती है। पैतृक भूमि को माता-पिता से भी बढ़कर माना गया है॥५०-५३॥

तत्सत्यं च पवित्रं च दैवे कर्मणि पैतृके। क्रीडां च दत्ते दानं च परदत्तमशुद्धकम्॥५४॥
म्रियते पैतृकीभूम्यां तीर्थतुल्यफलं लभेत्। गङ्गाजलसमं पूतं पितृखातोदकं हरे॥५५॥
तत्र स्नात्वा जले पूते गङ्गास्नानफलं लभेत्। पितृणां तर्पणं तत्र पवित्रं देवपूजनम्॥५६॥
पैतृकी जन्मभूमिश्चेद्द्विगुणं तत्फलं लभेत्।
पैतृकीभूमितुल्या च दानभूमिः सतामपि॥५७॥

---

१. ख. म०।

देव एवं पैतृक (पितर सम्बन्धित कर्म हेतु) कर्म के लिये पैतृक स्थान इतना पवित्र एवं सत्य स्थान अन्य नहीं है। यहां खेल-खेल में भी, क्रीड़ा में भी जो दे दिया जाता है, वही दान हो जाता है। इसके विपरीत अन्य स्थान पर दान करना अशुद्ध कहा गया है। अपनी पैतृक भूमि पर मृत होने वाला तीर्थवत् फललाभ करता है। हे हरि! पितृभूमि पर निर्मित गर्त्त का जल भी गंगाजलवत् पवित्र माना जाता है। वहां उस पवित्र जल में स्नान का फल गंगास्नान के ही समान है। वहां पर उस जल से पितरों का तर्पण एवं देवपूजन भी पवित्र कहते हैं। यदि पैतृक भूमि ही उस व्यक्ति की जन्मभूमि हो, तब उसे वहां तर्पणादि का द्विगुणफल मिलेगा। सत् लोग जहां दान देते हैं, वह भूमि भी पैतृकभूमि के समान मानी जाती है।।५४-५७।।

वासुदेव उवाच

भोगास्ते वचनं किं वा निषेकः केन वार्यते।
पैतृकी तीर्थतुल्या सा किं[१] तीर्थं द्वारकापरम्।।५८।।
सर्वतीर्थपरा श्रेष्ठा द्वारका बहुपुण्यदा। यस्याः प्रवेशमात्रेण नराणां जन्मखण्डनम्।।५९।।
दानं च द्वारकायां च श्राद्धं च देवपूजनम्।
चतुर्गुणं च तीर्थानां गङ्गादीनां च भूमिप।।६०।।
गच्छ ब्रह्मादिभिः सार्धं मुनिभिर्यादवैः सह। राजेन्द्रभवनं तत्र गृहाणां[२] सादरं पुनः।।६१।।
करोति शश्वन्न्यक्कारं महेन्द्रस्यामरावतीम्। निवस त्वं सुधर्मायां माहेन्द्रे च क्षणे नृप।।६२।।
जम्बुद्वीपस्थिता भूपा राजेन्द्रमण्डलेश्वराः।
करं दास्यन्ति तुभ्यं च महेन्द्राय सुरा यथा।।६३।।

वासुदेव श्रीकृष्ण कहते हैं—आपका कहना सत्य है। जिसका जन्म जहां होना विधाता ने निश्चित किया है, उनका जन्म वहीं होगा। इसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता। पैतृकी भूमि तीर्थतुल्य मानी गई है, परन्तु कौन-सा तीर्थ द्वारका से बढ़कर है? द्वारकापुरी परमपुण्यप्रदा तथा सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है। इसमें प्रवेश करने मात्र से मनुष्यों का आवागमन चक्र, जन्म आदि खण्डित हो जाता है। हे राजन्! द्वारकापुरी में दिया दान, यहां सम्पन्न किया गया श्राद्ध तथा देवपूजन गंगा प्रभृति तीर्थ की तुलना को चौगुना फलदायक है। आप ब्रह्मादि देवता, मुनियों तथा यादवों सहित द्वारका के राजभवन में सादर गमन करिये। यह पुरी तो अपने प्रभाव आदि के सामने इन्द्र की अमरावती को भी निरन्तर तिरस्कृत (लज्जित) कर रही है। हे नृप! आप माहेन्द्र क्षण में द्वारका राजभवन स्थित सुधर्मा सभा में जायें। वहां जाने पर जैसे देवता इन्द्रदेव को कर प्रदान करते हैं, उसी प्रकार जम्बूद्वीपवासी राजेन्द्र तथा मण्डलेश्वर भी आपको उसी प्रकार कर प्रदान करेंगे।।५८-६३।।

१. क. श्रुत्वा।
२. क. ०हाण।

भूयाज्जितः कुबेरश्च धनेन धनसम्पदा। तेजसा भास्करश्चापि महेन्द्रः सम्पदः तथा॥६४॥
देवा जिता रणेनैव पुण्येन मुनयो जिताः। तपस्विनश्च तपसा व्रतिनश्च व्रतेन च॥६५॥
उग्रसेनसमो राजा न भूतो न भविष्यति। सभायां यस्य भगवान्बलदेवो महाबलः॥६६॥
विश्वं च यस्य शिरसां सहस्राणां नरेश्वर। एकस्मिंशिरसि न्यस्तं शूर्पे च सर्षपो यथा॥६७॥

आप अपनी धन-सम्पदा से कुबेर को भी मात करें। तेज में सूर्य को, सम्पत्ति में इन्द्र को, युद्ध में देवगण को, पुण्य में मुनिगण को, तप में तपस्वीगण को, व्रत में व्रतियों को भी पीछे छोड़ दें। उग्रसेन के समान राजा भूतकाल में नहीं था, न भविष्य में ही होगा। उग्रसेन की सभा में भगवान् महाबली बलदेव स्थित रहते हैं। उनके सहस्रफणों में से मात्र एक पर सूप पर रखे सरसों के दाने के समान यह समग्र विश्व विराजित रहता है!॥६४-६७॥

न ह्यनन्तसमो देवो बलेन बलवत्तरः। यद्गुणानां च नास्त्यन्तस्तेनानन्तं जगुर्बुधाः॥६८॥
वसवोऽष्टौ महाभागा रुद्राश्च शङ्करं विना। बलिनो द्वादशादित्या महेन्द्रश्च सुरैः समः॥६९॥
न समर्था ध्रुवं जेतुमुग्रसेनं नृपेश्वरम्। कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नवदनो नृपः॥७०॥

"इन अनन्त देव के समान बली अन्य कोई नहीं है। इन बलदेव के गुणों का कोई अन्त न मिलने के कारण विद्वान् लोग इनको अनन्त कहते हैं। इन राजा उग्रसेन पर विजय पा सकने में आठों वसु, शंकर को छोड़कर सभी रुद्र, बली द्वादश आदित्य, समस्त देवगण सहित इन्द्र भी सक्षम नहीं हैं। यह निश्चित है।" कृष्ण का यह वचन सुनकर उग्रसेन प्रसन्न हो गये॥६८-७०॥

प्रययौ यादवैः सार्धं महेन्द्रभवनात्परम्। स्वालयं द्वारकामध्ये ज्वलन्तं मणितेजसा॥७१॥
सहस्रैर्द्वारपालैश्च शूलिभिर्दण्डहस्तकैः। नियुक्तै रक्षितं द्वारं ददर्श मानवेश्वरः॥७२॥
अभ्यन्तरे च शिबिरं द्वारेभ्यः षड्भ्य एव च।
मन्दिराणां च शतकै रत्नानां परिभूषणम्॥७३॥

तब उग्रसेन ने यादवों सहित राजभवन के लिये प्रस्थान किया। उन्होंने द्वारका के मध्य में स्थित महामूल्य मणिसूमह के तेज से जाज्वल्यमान इन्द्र के महल की तुलना में उससे भी उत्तम अपने भवन की ओर गमन किया। शूलधारी, दण्डधारी भैरव द्वारा नियुक्त किये गये हजारों-हजार द्वारपाल उस गृहद्वार की रक्षा कर रहे थे। ऐसे छह द्वारों के अंदर की ओर शिविर बना था। वहां सैकड़ों प्रासाद निर्मित थे, जो रत्नों से भूषित थे!॥७१-७३॥

कोटिं मत्तगजेन्द्राणां ददर्श गजमन्दिरे। चतुर्युगं गजौघं च गजानां षड्गुणं तथा॥७४॥
महाबलांश्च तुरगान्सूर्याश्वं च हसन्ति ये। गजेन्द्रराजं सर्वेषां वाहनानामपीश्वरम्॥७५॥
हसत्यैरावतं शश्वन्महेन्द्रस्य च नारद। अत्युच्चैरुच्चैःश्रवसां ददर्श कोटिमीप्सितम्॥७६॥

उन्होंने हाथीशाला (गजशाला) में एक कोटि मत्त गजेन्द्रों को देखा। सामान्य हाथियों की संख्या ४ कोटि थी। इससे छह गुनी संख्या में वहां महाबली अश्व थे। ये अश्व सूर्य के अश्वों को भी

लज्जित कर रहे थे। अर्थात् सूर्य के अश्वों का उपहास उड़ा रहे थे! हे नारद! वहां स्थित गजेन्द्रों का समूह समस्त वाहनों के प्रभु इन्द्र के ऐरावत गज का उपहास उड़ा रहा था! तभी उग्रसेन ने उच्चैश्रवा अश्व के ही समान अत्यन्त ऊंचे वांछित कोटि अश्वों को भी वहां देखा।।७४-७६।।

खराणां दशकोटिं च पादातं षड्गुणं तथा।
निर्माणं रत्नसाराणां रथानां पञ्चलक्षकम्।।७७।।

पञ्चलक्षं सारथीनां तत्राश्वं षड्गुणं तथा। अश्ववाटं तत्समं च सुधर्मां च सभामपि।।७८।।
ददर्शाभ्यन्तरे रम्ये देवौघमुनिसंयुताम्। वह्निशुद्धांशुकै रम्यैर्भूषितां रक्तकम्बलैः।।७९।।
रत्नसिंहासनै रम्यैर्भूषितां रक्तपिङ्गलैः। अमूल्यरत्ननिर्माणवीथीनां तेजसोज्ज्वलाम्।।८०।।

वहां १० कोटि गर्दभ, ६० कोटि पैदल सैनिक, उत्तम रत्नों के सार से बनें ५ लाख रथ, पांच लाख सारथी, तीस लाख अश्व तथा घुड़सवार, सुधर्मा सभा भी राजा ने देखा। उसके मध्य के रम्य स्थल पर देवता तथा मुनियों का समूह विराजमान था। वह सभा रेशमी अग्नि शुद्ध वस्त्रों से रक्तवर्ण कम्बलों से तथा पिंगल वर्ण वाले रत्ननिर्मित सिंहासनों से विभूषित थी। वहां अमूल्य रत्ननिर्मित वीथियां (पंक्तियां) भी थी, जिनके तेज से वह सभा उज्वल लग रही थी।।७७-८०।।

वेष्टितां च महाभीतैः किङ्करैः शतकोटिभिः।
प्रविवेश सभां रम्यां श्रुत्वा शङ्खध्वनिं शुभम्।।८१।।

वाद्यं च दुन्दुभीनां च मुनीनां वेदमन्त्रकम्। दृष्ट्वा नृपं समुत्तस्थौ वेगेन सबलो हरिः।।८२।।

वह सभा सौ कोटि आज्ञापालक किंकरों (सेवकों) से घिरी थी। उग्रसेन ने जैसे ही सभा में प्रवेश किया तभी उन्होंने वहां पावन शंख निनाद, दुन्दुभि का शब्द तथा मुनिगणकृत वेदमन्त्रोच्चार सुना। उग्रसेन को सभा में प्रविष्ट होते देखकर बलदेव के साथ श्रीकृष्ण भी तत्काल उठकर खड़े हो गये।।८१-८२।।

ब्रह्मा महेश्वरश्चैव शेषश्च देवपुङ्गवाः। समुत्तस्थुः सुराः सर्वे मुनयश्च महाव्रताः।।८३।।
राजेन्द्राश्चापि सिद्धेन्द्रा वसुदेवपुरोगमाः। रत्नसिंहासने रम्ये चोग्रसेनो महाबलः।।८४।।
समुवास महेन्द्रस्य मुनीनामाज्ञया हरेः। देवानां च गुरूणां च गर्गस्यापि तथैव च।।८५।।
सप्ततीर्थोदकेनैव पूर्णकुम्भेन नारद। चकार वेदमन्त्रैश्च नृपस्याप्यभिषेचनम्।।८६।।
तस्मै वस्त्रयुगं दत्तं वह्निशुद्धं मनोहरम्। वरुणेन पुरा दत्तं कृष्णाय परमात्मने।।८७।।
माल्यं च पारिजातानां चन्दनं रत्नभूषणम्। रत्नच्छत्रं ददौ तस्मै बलदेवो महाबलः।।८८।।
ब्रह्मा कमण्डलुं चैव शूलं चापि महेश्वरः। पार्वती रत्नमाल्यं च हारं च मालती सती।।८९।।

अन्ये देवाश्च मुनयो राजेन्द्राः सिद्धपुङ्गवाः।
यौतकं च ददौ तस्मै क्रमण च पृथक्पृथक्।।९०।।

ब्रह्मा, शिव, अनन्तनाग, प्रधान देवता, परमव्रती मुनिवृन्द, सामान्य देवता भी उस सभा में उग्रसेन को समागत देखकर खड़े हो गये। वसुदेव को अपने आगे रखकर वहां समागत सभी राजेन्द्रगण एवं सिद्धवृन्द भी तत्काल खड़े हो गये। तदनन्तर महाबली राजा उग्रसेन ने महेन्द्र, मुनिसमूह, श्रीकृष्ण, देवगण, गुरुजन तथा गर्गाचार्य के आदेश से रत्ननिर्मित रम्य रत्नसिंहासन पर आसन ग्रहण किया। हे नारद! उस समय राजा उग्रसेन का अभिषेक सप्ततीर्थजल पूर्णघट से वेदमन्त्रोच्चार के साथ-साथ किया गया। तदनन्तर वरुण ने पूर्वकाल में जो दो अग्नि विशुद्ध वस्त्र श्रीकृष्ण को प्रदान किया था, वह राजा उग्रसेन को वहां दिया गया। महाबलवान् बलदेव ने रजा को रत्नछत्र, ब्रह्मदेव ने कमण्डल, शंकर ने त्रिशूल, पार्वती ने रत्नमाला, सती मालती ने हार प्रदान किया। उस समय अन्य देवता, मुनिगण, राजेन्द्रगण, सिद्धपुंगववृन्द ने क्रम से अलग-अलग उपहार राजा उग्रसेन को प्रदान किया।।८३-९०।।

वसुदेवो ददौ तस्मै शुभदं श्वेतचामरम्। पवनेन पुरा दत्तं कृष्णाय परमात्मने।।९१।।
नन्दो ददौ च सुरभिं कामधेनुं च पूजिताम्। यशोदा देवकी तस्मै रत्नश्रेष्ठं ददौ मुदा।।९२।।

सप्तभिः किङ्करैश्चापि सेवितः श्वेतचामरैः।
दधार च्छत्रमक्रूरो भक्त्या चैवाऽऽज्ञया हरेः।।९३।।

रत्नसिंहासने रम्ये ददर्श रत्नदर्पणम्। अतीव पुण्यावाप्यं च हरिणा च पुरस्कृतः।।९४।।

वसुदेव ने उग्रसेन राजा को श्वेत चामर दिया, जो शुभप्रद था। यह श्वेत चामर पूर्वकाल में वायुदेव ने कृष्ण को दिया था। नन्द ने पूज्य कामधेनु गौ तथा देवकी-यशोदा ने प्रसन्न मन से श्रेष्ठरत्न उग्रसेन को प्रदान किया। उस समय उग्रसेन राजा की सेवा सात भृत्यगण श्वेतचामर झलकर करने लगे। उस समय अक्रूर ने भक्ति पूर्वक उग्रसेन का छत्र धारण किया। यह श्रीकृष्ण की आज्ञा थी। उस समय रत्नसिंहासनासीन उग्रसेन ने अत्यन्त पुण्य से प्राप्त होने वाले रत्न दर्पण में अपना मुख देखा। यह सब सम्मान श्रीकृष्ण ने उनको पुरस्कार में प्रदान किया था।।९१-९४।।

चक्रुः स्तुतिं च भट्टाश्च भिक्षुका ब्राह्मणास्तथा।
ददुः शुभाशिषं तस्मै देवाश्च मुनयस्तथा।।९५।।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा रत्नकोटिं च भक्तितः।
भट्टेभ्यो रत्नशतकं भिक्षुकेभ्यस्तथैव च।।९६।।

उस समय भट्टों, भिक्षुकों, ब्राह्मणों ने उग्रसेन की अनेक स्तुति किया और देवता एवं मुनियों ने उग्रसेन को अनेक शुभाशीर्वाद भी प्रदान किया। राजा उग्रसेन ने ब्राह्मणगण को भक्ति पूर्वक एक कोटि रत्नों की दक्षिणा प्रदान किया। तदनन्तर राजा ने भाटवृन्द तथा भिक्षुकवृन्द को सैकड़ों रत्नों को भी प्रदान किया।।९५-९६।।

अभिषिच्य नृपेन्द्रं च देवांश्च मुनिपुङ्गवान्।
सम्पूज्य ब्राह्मणांश्चापि भट्टान्भिक्षुं द्विजं गुरुम्।।९७।।

स्वालयं च ययुः सर्वे यादवाश्च मुदाऽन्विताः।
ये ये हरेः पार्षदाश्च ते सर्वे स्वालयं ययुः॥९८॥
प्रभाते चाऽऽययुः सर्वे सुधर्मां च सभां हरेः।
नमस्कृत्य नृपेन्द्रं च चोषुः सर्वे च संसदि॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० द्वारकाप्रवेश उग्रसेनाभिषेको नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥१०४॥
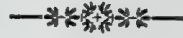
तभी समस्त यादवों ने भी राजा का अभिषेक सम्पन्न कर दिया। तदनन्तर वे सभी देवताओं, मुनियों, ब्राह्मणों, भाटों, भिक्षुकों, द्विजों तथा गुरुगण का पूजन करके स्वगृह चले गये। सभी कृष्ण पार्षद भी अपने गृह चले गये। प्रातः होने पर श्रीकृष्ण ने पुनः सुधर्मा सभा में आगमन किया। वे राजा उग्रसेन को नमस्कार करके सभा में आसीन हो गये॥९७-९९॥

॥१०४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिणी के विवाह प्रसंग में भीष्मक राजा से शतानन्द द्वारा जो कहा गया था, उसे सुनकर रुक्मी का रुष्ट होकर वार्त्ता करना

नारायण उवाच

अथ वैदर्भराजेन्द्रो महाबलपराक्रम। विदर्भदेशे पुण्याश्च सत्यशीलश्च भीष्मकः॥१॥
राजा नारायणांशश्च दाता च सर्वसम्पदाम्। धर्मिष्ठश्च गरीयांश्च वरिष्ठश्चापि पूजितः॥२॥
तस्य कन्या महालक्ष्मी रुक्मिणी योषितां वरा।
अतीव सुन्दरी रम्या रमा रामासु पूजिता॥३॥
नवयौवनसम्पन्ना रत्नाभरणभूषिता। तप्तकाञ्चनवर्णाभा तेजसोज्ज्वलिता सती॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–विदर्भ राज भीष्मक महाबली तथा पराक्रमी, पुण्यात्मा, सत्यशील, सर्वसम्पत्ति प्रदाता, धार्मिक, श्रेष्ठ, पूजित थे। वे नारायण के अंश से उत्पन्न थे। उनकी पुत्री रुक्मिणी

नारीगण में श्रेष्ठ तथा महालक्ष्मी स्वरूपा थीं। वे अतीव सुन्दरी रमणीया तथा स्त्रियों में पूजिता थीं। वे नौवयौवना, रत्नाभरण भूषिता, तप्त स्वर्ण की आभावाली, सती तथा तेज से अत्यन्त उज्ज्वल थीं।।१-४।।

शुद्धसत्त्वस्वरूपा सा सत्यशीला पतिव्रता।
शान्ता दान्ता नितान्ता चाप्यनन्तगुणशालिनी।।५।।
इन्द्राणी वरुणानी च चन्द्रनारी च रोहिणी।
कुबेरपत्नी सूर्यस्त्री स्वाहा शान्ता कलावती।।६।।
अन्यासु रमणीयासु श्रेष्ठा च सुमनोहरा।
रुक्मिण्या भीष्मकन्यायाः कलां नार्हति षोडशीम्।।७।।
तां दृष्ट्वा राजराजेन्द्रो बालक्रीडारतं पराम्।
बालां सुशोभां कुर्वन्तीं यथाऽभ्रेषु विधोः कलाम्।।८।।
शरत्पूर्णेन्दुशोभाढ्यां शरत्कमललोचनाम्।
विवाहयोग्यां युवतीं लज्जानम्रानना शुभाम्।।९।।

वे शुद्ध सत्वरूपा, सत्यशीला, पतिव्रता, शान्त, दान्त, अनन्त गुणवती थीं। इन्द्राणी, वरुणपत्नी, चन्द्रपत्नी रोहिणी, कुबेर की भार्या, सूर्यपत्नी, अग्निपत्नी स्वाहा, शान्ता, कलावती रति तथा अन्य मनोरमा नारियां सौन्दर्य में भीष्मकनन्दिनी रुक्मिणी के सामने १६वां अंश (१/१६) भी नहीं थी। एक दिन राजा भीष्मक ने क्रीड़ारत बाला रुक्मिणी को बालोचित क्रीड़ा करते देखा। उस समय कन्या रुक्मिणी बादलों में चन्द्रकला के समान शोभायमान लग रही थीं। वे शरत्कालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसी लग रहीं थी। उनके नेत्र शरतत्कालीन कमल जैसे थे। रुक्मिणी विवाहयोग्य हो गई थीं। वे सलज्ज, नतमुख तथा शुभ थीं।।५-९।।

सहसा चिन्तितो धर्मो धर्मशीलश्च सुव्रतः।
सुतां पप्रच्छ पुत्रांश्च ब्राह्मणांश्च पुरोहितान्।।१०।।

यह देखकर वे धार्मिक, धर्मशील, सुव्रती राजा चिन्तित से हो गये। तदनन्तर पुत्रों, ब्राह्मणों एवं पुरोहित से उन्होंने पूछा–।।१०।।

भीष्मक उवाच

कं वृणोमि सुतार्धं च वराहं प्रवरं वरम्। मुनिपुत्रं देवपुत्रं राजेन्द्रसुतमीप्सितम्।।११।।
विवाहयोग्या कन्या मे वर्धमाना मनोहरा।
शीघ्रं पश्य वरं योग्यं नवयौवनसंस्थितम्।।१२।।
धर्मशीलं सत्यसंधं नारायणपरायणम्। वेदवेदाङ्गविज्ञं च पण्डितं सुन्दरं शुभम्।।१३।।

शान्तं दान्तं क्षमाशीलं गुणिनं चिरजीविनम्। महाकुलप्रसूतं च सर्वत्रैव प्रतिष्ठितम्॥१४॥
करोषि राजपुत्रं चेद्रणशास्त्रविशारदम्। महारथं प्रतापार्हं रणमूर्ध्नि च सुस्थिरम्॥१५॥

राजा भीष्मक कहते हैं–मैं कन्या हेतु वरणयोग्य प्रवर, मुनिपुत्र अथवा देवपुत्र किंवा अभीप्सित राजपुत्रों में से किसे वरण करूं? मेरी मनोहरा कन्या दिनों-दिन वृद्धि प्राप्त कर रही है। अतः इसका विवाह करना उचित है। शीघ्र नवयौवनयुक्त उत्तम वर का आप लोग अन्वेषण करिये। यदि वह वर मुनिपुत्र हो, तब धार्मिक, स्थिरप्रतिज्ञ, नारायण-परायण, वेद-वेदांगज्ञाता, पण्डित, सुरूप, शमदमयुक्त, गुणी, दीर्घजीवी, सत्कुलोत्पन्न, सर्वत्र प्रतिष्ठा प्राप्त हो। यदि राजपुत्र से विवाह हो, तब वह रणशास्त्र विशारद, महारथी, प्रतापी, युद्ध में स्थिर रहने वाला होना चाहिये। ऐसा वर खोजिये।।११-१५।।

करोषि देवपुत्रं चेद्देवं गुणयुतं तथा। करोषि मुनिपुत्रं चेच्चतुर्वेदविशारदम्॥१६॥
वावदूकं विचारज्ञं सिद्धान्तेषु नितान्तकम्। नृपेन्द्रवचनं श्रुत्वा तमुवाच मुनेः सुतः॥१७॥
गौतमस्य शतानन्दो वेदवेदाङ्गपारगः। आप्तः प्रवक्ता विज्ञश्च धर्मी कुलपुरोहितः।
पृथिव्यां सर्वतत्त्वज्ञो निष्णातः सर्वकर्मसु॥१८॥

"यदि आप लोग देवपुत्र का इस विवाहार्थ चयन करते हैं, तब वह गुणी हो, यदि मुनिपुत्र का चयन करते हैं, तब वह चतुर्वेदज्ञ, उत्तम वक्ता, विचारवान्, सिद्धान्तज्ञ तथा सिद्धान्तों का पालन करने वाला हो।" राजा का कथन सुनकर गौतमपुत्र वेदवेदान्त-पारंगत उत्तम वक्ता, धर्म ज्ञाता, कुलपुरोहित, पृथिवी के समस्त तत्त्वों को जानने वाले, सर्वकर्म प्रवीण ऋषि शतानन्द ने कहा–।।१६-१८।।

शतानन्द उवाच

राजेन्द्र त्वं च धर्मज्ञो धर्मशास्त्रविशारदः।
पूर्वाख्यानं च वेदोक्तं कथयामि निशामय॥१९॥
भुवो भारावतरणे स्वयं नारायणो भुवि। वसुदेवसुतः श्रीमान्परिपूर्णतमः प्रभुः॥२०॥

ऋषि शतानन्द कहते हैं–हे राजेन्द्र! आप धर्मज्ञाता तथा धर्मशास्त्रविशारद हैं। मैं आपसे वेदोक्त प्राचीन आख्यान का वर्णन करता हूं। धरती का भार उतारने हेतु प्रभु नारायण स्वयं अवतरित हो गये हैं। वे परिपूर्णतम विभु पृथिवी पर वसुदेव के पुत्ररूप से अवतीर्ण हैं।।१९-२०।।

विधातुश्च विधाता च ब्रह्मेशशेषवन्दितः। ज्योतिःस्वरूपः परमो भक्तानुग्रहविग्रहः॥२१॥
परमात्मा च सर्वेषां प्राणिनां प्रकृतेः परः।
निर्लिप्तश्च निरीहश्च साक्षी च सर्वकर्मणाम्॥२२॥
राजेन्द्र तस्मै कन्यां च परिपूर्णतमाय च।
दत्त्वा यास्यसि गोलोकं पितॄणां शतकैः सह॥२३॥
लभ सारूप्यमुक्तिं च कन्यां दत्त्वा परत्र च। इहैव सर्वपूज्यश्च भव विश्वगुरोर्गुरुः॥२४॥

वे विधाता के भी विधाता हैं। वे ब्रह्मा, महेश्वर तथा शेष से भी वन्दित, ज्योतिःरूप, परमश्रेष्ठ, भक्तों पर कृपा करने के लिये देहधारण करते हैं। वे सभी प्राणीगण के परमात्मा, प्रकृति के परे, निर्लिप्त, निरीह तथा सर्वकर्म साक्षी हैं। हे राजेन्द्र! आप उन परिपूर्णतम विभु को कन्या दीजिये। इससे आप अपनी १०० पीढ़ी के साथ गोलोक गमन करेंगे। इनको कन्या प्रदान करके आप परलोक में सारूप्य मुक्ति लाभ करेंगे। इस लोक में भी आप विश्वगुरु के भी गुरुरूप होंगे।।२१-२४।।

सर्वस्वं दक्षिणां दत्त्वा महालक्ष्मीं च रुक्मिणीम्।
समर्पणं कुरु विभो कुरुष्व जन्मखण्डनम्।।२५।।
विधाता लिखितो राजन्सम्बन्धः सर्वसम्मतः।
द्वारकानगरे कृष्णं शीघ्रं प्रस्थापय द्विजम्।।२६।।
कृत्वा शुभक्षणं तूर्णं सर्वेषामपि सम्मतम्। आनीय परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम्।।२७।।

आप अपना सर्वस्व इस विवाह में दक्षिणारूप से उनको देकर उन महालक्ष्मी रुक्मिणी कृष्ण को अर्पित करिये। तदनन्तर आपका पुनर्जन्म ही नहीं होगा। इस रुक्मिणी-कृष्ण विवाह सम्बन्ध को तो विधाता ने ही लिखा है। यह सर्वसम्मत भी है। आप उन परमात्मा को बुलायें जो भक्तों पर कृपा करने हेतु देह धारण करते हैं।।२५-२७।।

ध्यानानुरोधहेतुं च नित्यदेहमनुत्तमम्। दृष्टिमात्रात्कुरु नृप स्वजन्मकर्मखण्डनम्।।२८।।
यं न जानन्ति चत्वारो वेदाः सन्तश्च देवताः।
सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च देवा ब्रह्मादयस्तथा।।२९।।
ध्यायन्ते ध्यानपूताश्च योगिनो न विदन्ति यम्।
सरस्वती जडीभूता वेदाः शास्त्राणि यानि च।।३०।।
सहस्रवक्त्रः शेषश्च पञ्चवक्त्रः सदाशिवः।
चतुर्मुखो जगद्धाता कुमारः कार्तिकस्तथा।।३१।।
ऋषयो मुनयश्चैव भक्ताः परमवैष्णवाः।
अक्षमाः स्तवने यस्य ध्यानासाध्यश्च योगिनाम्।।३२।।
बालकोऽहं महाराज तद्गुणं कथयामि किम्।
शतानन्दवचः श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृपः।।३३।।

"भक्तगण उनका ध्यान कर सके इसलिये उन्होंने देह धारण किया है। उन नित्य देहयुक्त परमात्मा को आप बुलाकर उनका दर्शन प्राप्त करने मात्र से अपने जन्म तथा कर्मजाल का खण्डन कर दीजिये। उन परमात्मा को चारों वेद, सन्तजन, देवगण, सिद्धेन्द्रगण, मुनीन्द्रगण, देवता, ब्रह्मादि प्रधान देवता भी जान नहीं पाते। ध्यान से पवित्र योगीगण भी उनको नहीं जानते। उनकी स्तुति करने में सरस्वती जड़ीभूत, अक्षम हो जाती हैं। वेद-शास्त्र, सहस्रशिर अनन्त नाग, पंचमुख सदाशिव, जगद्धाता

चतुर्मुख ब्रह्मा, स्कन्दकुमार, ऋषि, मुनि, भक्त, परम वैष्णव तक उनका स्तव कर सकने में असमर्थ-अक्षम हैं। उनको योगीगण भी ध्यान से नहीं प्राप्त कर पाते, तब मैं एक अज्ञ बालक उनका गुणगान कैसे कर सकता हूं।" शतानन्द का वचन सुनकर राजा प्रफुल्ल हो गये।।२८-३३।।

आलिङ्गनं ददौ तस्मै समुत्थाय जवेन च। नानारत्नं सुवर्णं च वस्त्रं च रत्नभूषणम्।।३४।।
ददौ तस्मै प्रदानं च प्रसादसुमुखो नृपः। गजेन्द्र तुरगं श्रेष्ठं रथं च मणिनिर्मितम्।।३५।।
रत्नसिंहासनं रम्यं धनं च विपुलं तथा।
भूमिं च सर्वसस्याढ्यां शश्वद्वृष्टिकरीं शुभाम्।।३६।।
अकृष्टसाध्यां पूज्यां च ग्रामं सर्वप्रशंसितम्। एतस्मिन्नन्तरे रुक्मिश्चुकोप नृपनन्दनः।।३७।।
कम्पितोऽधर्मयुक्तश्च रक्तास्यो रक्तलोचनः। उवाच पितरं विप्रं सभायामस्थिरस्तदा।।३८।।
उत्थाय तिष्ठन्पुरतः सर्वेषां च सभासदाम्।।३९।।

तदनन्तर राजा भीष्मक अपने आसन से सहसा उठे तथा उन्होंने शतानन्द का आलिंगन करके उनको नानारत्न, स्वर्ण, रत्नमय वस्त्र, उत्तम हाथी, अश्व, मणियों से बने रथ, प्रभूत धन तथा ऐसी पुण्यभूमि भी प्रदान किया, जो निरन्तर वृत्ति देने वाली थी, जिससे विना परिश्रम फसल प्राप्त हो सके। साथ ही उत्तम ग्राम भी शतानन्द को प्रदान कर दिया। यह देख राजपुत्र रुक्मी क्रोधित हो गया। क्रोध से उसकी देह कांपने लगी तथा उसके देह से पसीना बहने लगा। वह अतीव अधार्मिक था। उसका नेत्र-मुख रक्तवर्ण हो गया। वह पूर्णतः अस्थिर चंचल होकर सभी सदस्यों को देखते-देखते खड़ा हो गया। तब उसने वहां पिता तथा ब्राह्मणों से कहा-।।३४-३९।।

रुक्मिरुवाच

शृणु राजेन्द्र वचनं हितं तथ्यं प्रशंसितम्।
त्यज वाक्यं भिक्षुकाणां लोभिनां क्रोधिनामहो।।४०।।
नर्तकानां च वैश्यानां भट्टानामर्थिनामपि।
कायस्थानां च भिक्षूणामसत्यं वचनं सदा।।४१।।
घटकानां नाटकानां स्त्रीलुब्धाना च कामिनाम्।
दरिद्राणां च मूर्खाणां स्तुतिपूर्वं वचः सदा।।४२।।

रक्मी कहता है-हे राजेन्द्र! आप मुझसे प्रशंसित हितकर तथा सत्यवाक्य श्रवण करिये। क्या आश्चर्य है? भिक्षुक ब्राह्मण कितने लोभी होते हैं? इनके वाक्य का कभी विश्वास न करे। नर्तक, वेश्या, भाट, याचक, कायस्थ एवं भिक्षुक, ये मिथ्या कहकर मनुष्यों को ठगते हैं। दरिद्र, घटक, नट, अभिनेता, लम्पट, कामुक, दरिद्र तथा मूर्ख व्यक्ति निरन्तर मिथ्या बड़ाई करते हैं। हे महाराज! ये चापलूस होते हैं।।४०-४२।।

निहत्य कालयवनं राजेन्द्रं दूरतो[१] भिया। उपायेन महाबाहो लब्धं कृष्णेन तद्धनम्॥४३॥
द्वारकायां धनी कृष्णो यवनस्य धनेन च। जरासंधभयेनैव समुद्राभ्यन्तरे गृही॥४४॥
जरासंधशतं चैव क्षणेनैव च लीलया।
क्षमोऽहं हन्तुमेकाकी राज्ञश्चान्यस्य का कथा॥४५॥

हे महाबाहु! हे राजेन्द्र! इस कृष्ण ने भय के कारण अत्यन्त दूर से युक्ति का प्रयोग करके कालयवन का वध-कराकर उसका धन हड़प लिया। द्वारका में यह कृष्ण कालयवन के ही धन से धनी कहा जाता है। जरासंध के भय से ही इसने समुद्र में गृह निर्माण कराया है तथा उसी में रहता है। हे राजन्! एकाकी मैं तो सैकड़ों जरासंध को क्षणमात्र में अनायास मार सकता हूं। अन्य राजाओं की क्या बिसात!॥४३-४५॥

दुर्वाससश्च शिष्योऽहं रणशास्त्रविशारदः। ध्रुवं भीष्मक तेनैव विश्वं संहर्तुमीश्वरः॥४६॥
मत्समः पर्शुरामश्च शिशुपालश्च मत्समः।
सखा च बालवाञ्छूरः स्वर्गं जेतुं स च क्षमः॥४७॥
महेन्द्रं सगणं जेतुमहमीशः क्षणेन च। जित्वा युद्धे जरासंधं दुर्बलं योगिनं नृप॥४८॥
अहंकारयुतः कृष्णो वीरं स्व मन्यते[२] धिया।
यद्यायास्यति मद्ग्रामं विवाहं कर्तुमीप्सितम्॥४९॥
ध्रुवं प्रस्थापयिष्यामि क्षणेन यममन्दिरम्।
अहो नन्दस्य वैश्यस्य तस्मै गोरक्षकाय च॥५०॥
साक्षाज्जाराय गोपीनां गोपालोच्छिष्टभोजिने।
करोषि कन्यास्वीकारं देवयोग्यां च रुक्मिणीम्॥५१॥

मैं दुर्वासा ऋषि का शिष्य तथा रणशास्त्र विशारद हूं। हे भीष्मक! मैं तो विश्वसंहारक ईश्वर जैसा हूं। मेरे समान तो परशुराम तथा शिशुपाल हैं। मेरा प्रिय सखा बली शूर शिशुपाल स्वर्ग भी जीतने में सक्षम है। मैं तो क्षणमात्र में अनुचरों सहित इन्द्र को जीत सकता हूं। हे महाराज! क्या आप नहीं जानते! हे राजन्! युद्धस्थल दुर्बल योगी जरासंध को जीतकर कृष्ण स्वयं को वीर मानने लगा है! यदि वह इस इच्छित विवाह हेतु मेरे ग्राम में आता है, तब यह निश्चित है कि मैं क्षणमात्र में उसे यमलोक भेज दूंगा। आप नन्दवैश्य के गोरक्षक, गोपीगण के उपपति जार, गोपालकों का जूठन खाने वाले व्यक्ति को अपनी कन्या के लिये वरण करना चाहते हैं? रुक्मिणी तो देवगण के योग्य कन्या है।॥४६-५१॥

दातुमिच्छसि वाक्येन भिक्षुकस्य द्विजस्य च।
राजेन्द्र बुद्धिहीनोऽसि वचनाद्बदग(दुर्ब)लस्य च॥५२॥

---

१. क. पुर०।
२. त्वं मित्यपि पाठः।

मा राजपुत्रो मा शूरो मा कुलीनश्च मा शुचिः।
मा दाता मा धनाढ्यश्च मा योग्यो मा जितेन्द्रियः॥५३॥
कन्यां देहि सुपुत्राय शिशुपालाय भूमिप। बलेन रुद्रतुष्टाय राजेन्द्रतनयाय च॥५४॥
निमन्त्रणं कुरु नृप नानादेशभवान्नृपान्। बान्धवांश्च मुनीन्द्रांश्च पत्रद्वारा त्वरान्वितः॥५५॥
अङ्गं कलिङ्गं मगधं सौराष्ट्रं वल्कलं वरम्। राटं[1] वरेन्द्रं वङ्गं च गुर्जराटिं च पेठरम्॥५६॥
महाराष्ट्रं विराटं च मुद्गलं[2] च मुरङ्गकम्।
भलल्कं गल्लकं खर्वं दुर्गं प्रस्थापय द्विजम्॥५७॥

कृष्ण न तो राजा का पुत्र है, न शूर है, कुलीन तथा पवित्र भी नहीं है। वह न तो दाता है, न धनी है। वह किसी प्रकार से रुक्मिणी के योग्य नहीं है। वह इन्द्रियजित् भी नहीं है। आप अपनी कन्या महाराजा के सुपुत्र शिशुपाल को प्रदान करिये। उसने बल द्वारा रुद्रदेव को सन्तुष्ट किया था। आप नाना देश के राजाओं को, बान्धवों, मुनीन्द्रों को पत्र द्वारा शीघ्र निमन्त्रण भेजिये। अंग, कलिंग, सौराष्ट्र, उत्तम वल्कल देश, राठ, वरेन्द्र, वंग, मगध, गुर्जर, पेठर देश, महाराष्ट्र, विराट, मुद्गल, मुरंगक, भल्लक, गल्लक, खर्वदेश, दुर्गदेश में अपने यहां से ब्राह्मणों को भेजिये॥५२-५७॥

घृतकुल्यासहस्रं च मधुकुल्यासहस्रकम्।
दधिकुल्यासहस्रं च दुग्धकुल्यासहस्रकम्॥५८॥
तैलकुल्यापञ्चशतं गुडकुल्याद्विलक्षकम्। शर्कराणां राशिशतं मिष्टान्नानां चतुर्गुणम्॥५९॥
यवगोधूमचूर्णानां पिष्टराशिशतं शतम्। पृथुकानां राशिलक्षमन्नानां च चतुर्गुणम्॥६०॥
गवां लक्षं छेदनं च हरिणानां द्विलक्षकम्।
चतुर्लक्षं शशानां च कूर्माणां च तथा कुरु॥६१॥
दशलक्षं छागलानां भेटानां तच्चतुर्गुणम्।
पर्वणि ग्रामदेव्यै च बलिं देहि च भक्तितः॥६२॥
एतेषां पक्वमांसं च भोजनार्थं च कारय। परिपूर्णं व्यञ्जनानां सामग्रीं कुरु भूमिप॥६३॥

एक सहस्र घृत की, १ हजार मधु की, १ हजार दधि की, १ हजार दुग्ध की, ५०० तैल की, दो लाख गुड़ की, पांच सौ चीनी की नहरें बनवायें। मिष्ठान्न के २००० ढेर, जौ-गेहूं के चूर्ण के सौ-सौ ढेर, चिवड़ा के ४ लाख ढेर, अन्य अन्न के चार लाख ढेर, १ लाख गौ, २ लाख हरिण, ४ लाख खरगोश, ४ लाख कच्छप, १० लाख बकरे, चालीस लाख भेड़, इनकी बलि पर्वकाल में ग्रामदेवी के समक्ष भक्ति से प्रदान करें। इनका पक्वमांस भोजनार्थ पाक करायें। हे राजन! सभी व्यंजन परिपूर्ण रहें। हे राजन! यह सब साम्रगी एकत्र करायें॥५८-६३॥

१. क. ०राठं।
२. मङ्गलञ्चेति पाठान्तरम्।

अथ श्रुत्वा च तद्वाक्यं राजेन्द्रः सपुरोहितः।
चकार[1] मन्त्रणं तूर्णं निर्जने[2] मन्त्रिणा सह॥६४॥
द्विजं प्रस्थापयामास द्वारकां योग्यमीप्सितम्।
कृत्वा च शुभलग्नं च सर्वेषामभिवाञ्छितम्॥६५॥

राजा संभृतसंभारो बभूव सत्वरं मुदा। निमन्त्रणं च सर्वत्र चकार च सुताज्ञया॥६६॥
विप्रः सुधर्मां सम्प्राप्य नृपैर्देवैश्च वेष्टिताम्। प्रददौ पत्रिकां भद्रामुग्रसेनाय भूभृते॥६७॥

राजा ने अपने पुरोहित सहित यह वाक्य सुनकर पुरोहित तथा मन्त्री से एकान्त में मन्त्रणा किया। तब राजा ने एक योग्य तथा उत्तम ब्राह्मण को द्वारका भेजा। सबकी सहमति से शुभ मंगल लग्न तय करके बृहद् समारोह की व्यवस्था में लग गये। पुत्र की आज्ञा के अनुरूप सभी जगह निमन्त्रण पत्रिका भी भेजा। वह ब्राह्मण द्वारका आया तथा राजाओं एवं देवगण से पूर्ण सुधर्मा सभा में आकर उग्रसेन नृप को वह लग्न पत्रिका प्रदान किया॥६४-६७॥

प्रफुल्लवदनो राजा श्रुत्वा पत्रं सुमङ्गलम्। सुवर्णानां सहस्रं च ब्राह्मणेभ्या ददौ मुदा॥६८॥
दुन्दुभिं वादयामास द्वारकायां च सर्वतः। देवान्मुनीन्नृपांश्चैव ज्ञातिवर्गांश्च बान्धवान्॥६९॥
भट्टांश्च भिक्षुकांश्चैव भोजयामास सादरम्।
श्रीकृष्णस्य सुवेषं च कारयामास भूपतिः॥७०॥

प्रफुल्ल होकर राजा ने वह मंगल पत्रिका श्रवण किया। उन्होंने उस ब्राह्मण को मुदित मन से १००० स्वर्णमुद्रा भी अर्पित कर दिया। तब द्वारका में सर्वत्र दुन्दुभि वादन कराया गया। राजा ने द्वारकापुरी में देवगण, मुनिवृन्द, राजाओं, सभी सम्बन्धी वर्ग, बन्धुगण, भाट समूह तथा भिक्षुओं को सादर भोजन कराकर श्रीकृष्ण को उत्तम वेश-भूषा से सज्जित किया॥६८-७०॥

अतीव रम्यमतुलं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। यात्रां च कारयामास जगतां प्रवरं वरम्॥७१॥
वेदमन्त्रेण रम्येण माहेन्द्रे सुमनोहरे। आदौ ब्रह्मा रथस्थश्च सावित्र्या सहितो ययौ॥७२॥
रथस्थश्च महाहृष्टो भवान्या च भवः स्वयम्।
शेषश्चापि दिनेशश्च गणेशश्चापि कार्तिकः॥७३॥
महेन्द्रश्च तथा चन्द्रो वरुणः पवनस्तथा। कुबेरश्च यमो वह्निरीशानोऽपि ययौ मुदा॥७४॥
देवानां च त्रिकोट्यश्च मुनीनां षष्टिकोटयः।
राजेन्द्राणां त्रिलक्षं च श्वेतच्छत्रं त्रिलक्षकम्॥७५॥

कृष्ण की वह वेषसज्जा अतीव रम्य अतुलित तथा त्रैलोक्य दुर्लभ थी। यह उत्तम महेन्द्र योग में वेदमन्त्र उच्चारण के साथ प्रारम्भ की गई। सर्वाग्र में लोकस्रष्टा ब्रह्मा सावित्री के साथ रथारूढ़ होकर

१. ख. ०काराऽऽम०।
२. ख. निजेन।

चले। अत्यन्त हर्षित होकर भवानी पार्वती भवदेव शिव के साथ चलीं, शेषनाग, सूर्य, गणपति, कार्त्तिकेय स्कन्द, इन्द्र, चन्द्र, वरुण, वायु, कुबेर, यम, अग्नि, ईशान, तीन कोटि देवगण, छह कोटि मुनिगण, तीन लाख राजेन्द्र तथा तीन लाख श्वेत छत्रधारी भी उस विवाह यात्रा में चले।।७१-७५।।

उग्रसेनो बभौ राजा नक्षत्रेषु यथा शशी। ययौ प्रसन्नवदनः कुण्डिनाभिमुखो बली।।७६।।
रत्ननिर्माणयानेन बलदेवो महाबलः। वसुदेवश्चोद्धवश्च नन्दोऽक्रूरश्च सात्यकिः।।७७।।

गोपाला यादवेन्द्राश्च चन्द्रवंश्याश्च ते ययुः।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः।।७८।।
युधिष्ठिरस्तथा भीमः फाल्गुनो नकुलस्तथा।
सहदेवश्च यानैश्च प्रययुः पञ्च पाण्डवाः।।७९।।
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्चाप्यश्वत्थामा महाबलः।
कृपाचार्यश्च शकुनिः शल्यश्च प्रययौ मुदा।।८०।।

इन सबके मध्य में राजा उग्रसेन नक्षत्रों के मध्य में स्थित चन्द्रमा जैसे शोभायमान थे। वे महाबली प्रसन्न मुद्रा में कुण्डिनपुर की ओर बढ़ने लगे। रत्नमय वाहन पर आसीन महाबली बलदेव, वसुदेव, उद्धव, नन्द, अक्रूर, सात्यकि, गोपवृन्द, यादवगण, चन्द्रवंशी राजागण, दुर्योधन आदि सभी धृतराष्ट्र के पुत्र भी चल पड़े। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव भी वाहनारूढ़ होकर इस यात्रा में चल रहे थे। भीष्म, द्रोण, महाबली अश्वत्थामा, कर्ण, कृपाचार्य, शकुनि तथा राजा शल्य भी प्रसन्नता से चले जा रहे थे।।७९-८०।।

भटानां च त्रिकोट्यश्च विप्राणां शतकोटयः।
संन्यासिनां सहस्त्रं च यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।।८१।।
द्विसहस्त्रं जितक्रोधाश्चावधूतास्तथैव च।
उत्पलानां सहस्त्रं च सहस्त्रं पुष्पकारिणाम्[1]।।८२।।
नानाशिल्पकराश्चैव विचित्रं चित्रमेव च।
लक्षं च वाद्यभाण्डानां नर्तकानां च लक्षकम्।।८३।।

गन्धर्वाणां गायकानां लक्षमेव तु नारद। तत्र कल्पे भवत्येव गन्धर्वश्चोपबर्हणः।।८४।।

तीन कोटि भट, सौ करोड़ विप्र, एक सहस्र संन्यासी, यती, ब्रह्मचारी भी यात्रा में चल रहे थे। २ हजार क्रोध पर विजय पाने वाले मुनि, अवधूतगण भी चल पड़े। एक सहस्र कमल पुष्पवाहक, एक सहस्र अन्य पुष्पवाहक, नाना चित्रकर्त्ता चित्रकार भी साथ इस विवाहयात्रा में जा रहे थे। एक लाख वाद्ययन्त्र, एक लाख नर्त्तक, एक लाख गन्धर्व एवं गायक भी इस वैवाहिक यात्रा में जा रहे थे।।८१-८४।।

१. ०ष्पधारिणाम्।

पञ्चाशत्कामिनीभिश्च त्वमेव तेषु मध्यगः। विद्याधरीणां लक्षं च लक्षमप्सरसां तथा॥८५॥
किन्नराणां त्रिलक्षं च गन्धर्वाणां त्रिलक्षकम्॥८६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० रुक्मिण्युद्वाहे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥१०५॥

—❊❊❊—

हे नारद! उस कल्प में उस समय तुम उपबर्हण गन्धर्व थे। तुम भी ५० भार्याओं बीच में उस विवाह में जा रहे थे। उस विवाहयात्रा में तीन लाख किन्नर तथा तीन लाख गन्धर्व भी थे॥८५-८६॥

॥१०५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

रेवती-बलराम विवाह वर्णन

नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे राजा ककुद्मी च महाबलः। वरार्थं कन्यकायाश्च ब्रह्मलोकात्समागतः॥१॥
प्रददौ रेवतीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्। अमूल्यरत्नभूषाढ्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम्॥२॥
बलाय बलदेवाय सम्प्रदानेन कौतुकात्। वयो यस्या गतं सत्ये युगानां सप्तविंशतिः॥३॥
दत्त्वा कन्यां विधानेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि। गजेन्द्राणां त्रिलक्षं च जामात्रे यौतुकं ददौ॥४॥
दशलक्षं तुरङ्गाणां रथानां लक्षमेव च। रत्नालङ्कारयुक्तानां दासीनां चापि लक्षकम्॥५॥
मणिलक्षं रत्नलक्षं स्वर्णकोटिं च सादरम्। वह्निशुद्धांशुकं रम्यं मुक्तामाणिक्यहीरकम्॥६॥
दत्त्वा कन्यां च राजेन्द्रो बलाय बलशालिने। रत्नेन्द्रसारयानेन तैः सार्धं कुण्डिनं ययौ॥७॥
अथान्तरे च निर्बन्धे साङ्गे मङ्गलकर्मणि। रेवतीं वेशयामास योषितां कमलाकलाम्॥८॥
देवकी रोहिणी चैव यशोदा नन्दगेहिनी।
अदितिश्च दितिः शान्तिर्जयं कृत्वा च मन्दिरम्॥९॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—इसी समय महाबली ककुद्मी नामक राजा अपनी कन्या के लिये उपयुक्त वर का चयन करने के निमित्त वहां आये। निरन्तर स्थिर यौवना, बहुमूल्य रत्नराशि से बने भूषणों से भूषिता-त्रैलोक्य रमणीया रेवती नामक पुत्री हेतु बलभद्र का वर रूप से वरण करके राजा ककुद्मी ने उनको अनेक उपहार प्रदान किया तथा रेवती को भी बलभद्र को प्रदान कर दिया। सत्ययुग

में जन्मी रेवती की अवस्था इस समय २७ युगों की थी। मुनि, देवता तथा इन्द्र की सभा में कन्या प्रदान करके राजा ने बलभद्र को तीन लाख गज, एक लाख रथ, रत्नाभूषणभूषित एक लाख दासी, एक लाख मणि, उतने रत्न, एक कोटि स्वर्ण सादर प्रदान किया। उन्होंने अग्निशुद्ध वस्त्र, रम्य मुक्ता, माणिक्य हीरे के उपहार में बलभद्र को प्रदान किया। राजेन्द्र ककुद्मी ने बलराम को कन्या प्रदान किया। वे अब उत्तम रत्ननिर्मित वाहन पर आसीन होकर इस बारात में सबके साथ कुण्डिनपुर की ओर चल पड़े। मांगलिक कृत्य सुसम्पन्न हो गया देखकर देवकी, रोहिणी, यशोदा, अदिति, दिति, शान्ति ने उस लक्ष्मी की कलारूपा रेवती को जय-जयकार के बीच गृहप्रवेश कराया।।१-९।।

ब्राह्मणान्भोजयामास ददौ तेभ्यो धनं मुदा। मङ्गलं कारयामास वसुदेवस्य वल्लभा।।१०।।
अथ देवाश्च मुनयो राजेन्द्रः कटकैः सह। सम्प्रापुर्लीलात्रेण कुण्डिनं नगरं मुदा।।११।।
ददृशुर्नगरं सर्वे ह्यतीव सुमनोहरम्। सप्तभिः परिखाभिश्च गभीराभिश्च वेष्टितम्।।१२।।
प्राकारैः सप्तभिर्युक्तं द्वाराणां शतकैस्तथा। नानारत्नैश्च मणिभिर्निर्मितं विश्वकर्मणा।।१३।।
नगरस्य बहिर्द्वारं ददृशुर्वरयात्रिणः। रक्षितं रक्षकैः सार्धं चतुर्भिश्च महारथैः।।१४।।

रुक्मिश्च शिशुपालश्च दन्तवक्त्रो महाबली।
शाल्वो मायाविनां श्रेष्ठो युद्धशास्त्रविशारदः।।१५।।
नानाशास्त्रैस्तथाऽस्त्रैश्च रथस्थश्च रणोन्मुखः।
विलोक्य कृष्णसैन्यं च चुकोप नृपनन्दनः।।१६।।

उवाच निष्ठुरं वाक्यं श्रुतितीक्ष्णं सुदुष्करम्। उपहास्य मुनीन्द्रांश्च देवांश्च मुनिपुङ्गवान्।।१७।।

वसुदेव पत्नी ने वहां ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करके प्रसन्न मन से उनको धन देकर मंगल पाठ कराया। उधर देवगण-मुनिगण-राजेन्द्रगण सैन्य के साथ अनायास प्रसन्न मन से कुण्डनिपुर पहुंच गये। उन सभी ने उस अतीव सुमनोहर पुरी को देखा। वह सात गहरी खाईयों से चारों ओर से घिरी हुई नगरी थी। वहां सात प्राकार (चहारदिवार) तथा सौ द्वार निर्मित थे। उस नगरी का सिंहद्वार विश्वकर्मा द्वारा नाना रत्नों तथा मणियों से बना था। उस सबका उस बारात में आये लोगों ने अवलोकन किया। इस सिंहद्वार पर अनेक रक्षक थे तथा चार महारथी उस द्वार पर पहरा भी दे रहे थे। ये चार महारथी थे रुक्मी, शिशुपाल, महान् बलवान् दन्तवक्त्र, मायावी प्रवर युद्धविद्या पारङ्गत शाल्व। वहां रुक्मी अनेक शस्त्रास्त्र से सज्जित होकर युद्ध के लिये सन्नद्ध था। रुक्मी ने जब कृष्ण सैन्य को देखा वह कुपित हो गया। उसने सुनने में तीष्ण तथा निष्ठुर वाक्यों का प्रयोग करके मुनीन्द्रों, देवताओं तथा श्रेष्ठ मुनिगण का उपहास किया।।१०-१७।।

रुक्मिरुवाच

अहो कालकृतं कर्म दैवं च केन वार्यते।
किंवाऽहं कथयिष्यामि देवेन्द्राणां च संसदि।।१८।।

ग्रहीतुं रुक्मिणीं कन्यां देवयोग्यां मनोहराम्।
आयाति देवैर्मुनिभिर्नन्दस्य पशुरक्षकः॥१९॥
साक्षाज्जारश्च गोपीनां गोपोच्छिष्टान्नभोजनः[1]।
जातेश्च निर्णयो नास्ति भक्ष्यमैथुनयोस्तथा॥२०॥

रुक्मी कहता है–क्या आश्चर्य है? काल का कैसा माहात्म्य है? अथवा दैव को कौन रोक सकता है? मैं इन देवेन्द्रों के संसद में क्या कहूं? यह कन्या रुक्मिणी देवताओं के योग्य तथा मनोहर हैं, परन्तु इसे ग्रहण करने के लिये नन्द का पशुरक्षक आया है। यह गोपियों का जार (उपपति) तथा गोपियों के जूठन का आहार करने वाला है। इसकी जाति का पता नहीं है। इसके भोजन का कोई पता नहीं है, न मैथुन का (अर्थात् जहां कहीं भी खा लेता है। जहां कहीं भी मैथुन कर लेता है)!॥१८-२०॥

किं नु राजेन्द्रपुत्रश्च किं नु वा मुनिपुत्रकः। वसुदेवः क्षत्रियश्च भक्षणं वैश्यमन्दिरे॥२१॥
शिशुकाले च स्त्रीहत्या कृताऽनेन दुरात्मना।
कुब्जा मृता च संभोगाद्वाससा रजको मृतः॥२२॥
राजेन्द्रस्य वधे दुष्टो ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम्।
मथुरायां च धर्मिष्ठः सद्यः कंसो निपातितः॥२३॥

क्या यह राजाओं का पुत्र है अथवा मुनिपुत्र है। वसुदेव तो क्षत्रिय हैं, जबकि यह तो वैश्य नन्द के यहां भोजन करता है। इस दुरात्मा ने शिशुकाल में स्त्रीहत्या (पूतना की हत्या) किया था। इसके साथ संभोग करने से कुब्जा दासी मर गई। वस्त्र हेतु इसने धोबी को मार दिया। राजा (कंस का) वध करने से ब्रह्महत्या पातक लगता है। वह इसे अवश्य मिलेगी। इस दुष्ट ने धार्मिक कंस का वध जो कर दिया।॥२१-२३॥

शाल्व उवाच

यदुक्तं रुक्मिणा देवाः किमसत्यं च तत्र वै।
को वाऽयं रुक्मिणीभर्ता नन्दस्य पशुरक्षकः॥२४॥

शाल्व कहता है–हे देवताओ! रुक्मी के कथन में झूठ क्या है? (अर्थात् सत्य है) यह नन्द का पशुरक्षक रुक्मिणी का पति कैसे हो सकता है?॥२४॥

शिशुपाल उवाच

अहो भुवि किमाश्चर्यं देवा ब्रह्मादयस्तथा। मुनीन्द्रा ब्रह्मणः पुत्राश्चाऽऽययुर्मानवाज्ञया॥२५॥

शिशुपाल कहता है–यह तो संसार का महान् आश्चर्य है, यहां ब्रह्मा आदि देवता ब्रह्मपुत्र मुनिलोग मनुष्य की आज्ञा से आ गये हैं?॥२५॥

---

१. गोपालोच्छिष्टभोजकः इत्यपि क्वचित् पाठः।

दन्तवक्त्र उवाच

सन्ततं ब्राह्मणा लुब्धा देवाश्च भक्तवत्सलाः।
आययुर्ब्रह्मपुत्राश्च नन्दपुत्राज्ञया कथम्॥२६॥

दन्तवक्त्र कहता है–ये ब्राह्मण तो सदा के लोभी हैं। देवता भक्तवत्सल होते हैं, तथापि ब्रह्मा के पुत्र मुनिगण क्यों इस नन्दपुत्र कृष्ण की आज्ञा से आ गये?॥२६॥

तेषां च वचनं श्रुत्वा चुकोप देवसंघकः। मुनिराजेन्द्रसंघश्च लाङ्गलीत्यादयस्तथा॥२७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० रुक्मिण्युद्वाहे षडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥

दन्तवक्त्र का कथन सुनकर देवमण्डली क्रुद्ध हो गई। मुनिगण, राजाओं की मण्डली तथा लांगल (हलधारी) धारी बलदेव भी कुपित हो गये॥२७॥

॥१०६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

बलराम से रुक्मी आदि की पराजय, श्रीकृष्ण का अधिवासन, विवाह-प्रांगण में आगमन, भीष्मक का श्रीकृष्ण स्तोत्र, शाल्व आदि का मर्दन

नारायण उवाच

अथ कोपपरीतश्च बलदेवो महाबलः। हलेन रुक्मियानं च बभञ्ज मुनिपुङ्गव॥१॥
घोटकान्सारथिं चैव निहत्य जगतीपतिः। भूमिष्ठं चापि पापिष्ठं रुक्मिं हन्तुं जगाम सः॥२॥
रुक्मी च शरजालेन वारयामास लीलया। नागास्त्रं योजयामास बद्धुं हलिनमीश्वरम्॥३॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–तदनन्तर अत्यन्त कुपित होकर महाबली बलभद्र ने अपने हलास्त्र से रुक्मी के रथ को भग्न कर दिया। हे मुनिप्रवर! जगत्पति बलदेव ने रुक्मी के रथ के अश्व तथा सारथि का वध कर दिया। तब वे भूमि पर खड़े पापी रुक्मी को मारने के लिये उद्यत हो गये, तथापि रुक्मी ने बाणों की वर्षा करके शरजाल से बलभद्र को अनायास रोक दिया। तब उसने हलधारी ईश्वर को बांधने हेतु नागास्त्र का प्रयोग किया॥१-३॥

नागास्त्रं गारुडेनैव सञ्जहार हली स्वयम्। जग्राह कोपाद्रुक्मी च परं पाशुपतं मुने॥४॥
अव्यर्थं वैरिमर्दं च शतसूर्यसमप्रभम्। अभितो हलिना रुक्मी जृम्भणास्त्रेण जृम्भितः॥५॥
भूमिष्ठः स्थाणुमद्रुक्मी निद्रास्त्रेणैव निद्रितः।
शाल्वस्तं निद्रितं दृष्ट्वा शतबाणान्मुमोच तम्॥६॥
शैलवृष्टिं शिलावृष्टिं जलवृष्टिं चकार सः। ज्वलदङ्गारवृष्टिं च शरवृष्टिं चकार ह॥७॥
बलाच्चास्त्रेण सर्वाणि वारयामास लाङ्गली। हलेन तद्रथं चूर्णं चकार रणमध्यतः॥८॥
घोटकान्सारथिं चैव जघान चैव लीलया। कोपाद्बलेन तं हन्तुं वाग्बभूवाशरीरिणी॥९॥

भगवान् हलधर बलभद्र ने स्वयं गारुड़ास्त्र को छोड़कर उस नागास्त्र को व्यर्थ कर दिया। तब रुक्मी ने अव्यर्थ शत्रुमर्दक, शतसूर्यसमप्रभ पाशुपतास्त्र को क्रोध के साथ उठाया, तथापि तभी प्रभु हलधर ने रुक्मी को जृम्भणास्त्र का प्रयोग करके जृम्भित कर दिया। वह इस निद्रास्त्र के प्रयोग से निद्रित होकर अचल रूप से भूमि पर गिर गया। उस समय जब शाल्व ने रुक्मी को भूपतित कटे पेड़ की तरह भूपतित देखा, तब उसने बलभद्र पर १०० बाणों का प्रहार किया। उसने बलभद्र पर शैलवर्षा, शिलावर्षा, जलवर्षा, जलते कोयलों की वर्षा तथा बाणवर्षा भी किया। लेकिन हलधर बलभद्र ने अपने अस्त्रों से इन सबको बलात् रोक दिया। उन्होंने शाल्व का रथ उसी रणभूमि में चूर-चूर कर दिया। बलभद्र ने उसके घोड़ों तथा रथ के साथी का वध अनायास कर दिया। जब बलभद्र क्रोध के साथ मारने जा रही रहे थे, तब अशरीरीवाणी उन्होंने सुना॥४-९॥

त्यज शाल्वं कृष्णावध्यं तव किं पौरुषं रणे।
यस्म मूर्ध्नि च ब्रह्माण्डं शूर्पे च सर्षपं यथा॥१०॥

आकाशवाणी ने कहा--आपका पौरुष युद्ध में अकथनीय है। आपके मस्तक पर ब्रह्माण्ड सूप पर रखी रसों के दाने के समान स्थित रहता है, परन्तु शाल्व तो कृष्ण का वध्य है। इसे आप छोड़ दीजिये॥१०॥

तच्छ्रुत्वा बलदेवश्च हलेन तस्य मस्तकम्। चकार चूर्णं व्यथितः पपात रणमूर्धनि॥११॥
शाल्वस्य पतनं दृष्ट्वा शिशुपालो महाबली। चकार शरवृष्टिं च जलवृष्टिं यथा भुवि॥१२॥
हली तस्य रथं चूर्णं चकार लाङ्गलेन च। अर्धचन्द्रेण तद्बाणान्वारयामास लीलया॥१३॥

यह अशरीरीवाणी सुनकर बलभद्र ने शाल्व का वध न करके उसे छोड़ दिया, तथापि हल के प्रहार से उसका शिर चूर्ण कर दिया। वह इससे व्यथित होकर रणस्थल के अग्रभाग में भूपतित हो गया। शाल्व को गिरा देखकर महाबली शिशुपाल ने उस प्रकार बलभद्र पर शंखवर्षण प्रारम्भ किया मानो धरती पर जलवर्षा हो रही हो! तब हलधारी बलदेव ने अपने हल से उसके रथ को चूर्ण कर दिया तथा अपने अर्धचन्द्र बाण द्वारा उसे अनायास रोक दिया॥११-१३॥

तं हन्तुं शङ्करः साक्षान्निषेधं च चकार तम्। कृष्णवध्यं त्यज बल पार्षदप्रवरं हरेः॥१४॥

तभी स्वयं शंकर ने भगवान् हली को रोकते कहा–"हे बलभद्र! आप विष्णु के उत्तम पार्षद शिशुपाल का वध मत करिये। इसका वध कृष्ण द्वारा होने का विधान है।।१४।।

दन्तवक्त्रस्य दन्तं च बभञ्ज स हलेन च। सुप्रवृत्तस्य युद्धेन ते सर्वे जहसुश्च तम्।।१५।।

बलस्य विक्रमं दृष्ट्वा सर्वे वीराः पलायिताः।

चक्रुः प्रवेशनं सर्वे कुण्डिनं वरयात्रिकाः।।१६।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शतानन्दो महामुनिः। कोटिभिर्मुनिभिः सार्धमाजगाम हरेः पुरः।।१७।।

उस युद्ध में बलभद्र ने दन्तवक्त्र के दांतों को हल से तोड़ दिया। उस युद्ध में दन्तवक्त्र बलभद्र का उपहास कर रहा था। बलभद्र का पराक्रम देखकर सभी विपक्षी वीर वहां से पलायन कर गये। अब कृष्ण की बरात के सभी बरातियों ने कुण्डनीपुर में प्रवेश किया। तभी मुनि शतानन्द कोटि-कोटि मुनिगण के साथ वहां कृष्ण के पास आ गये।।१५-१७।।

पुरं प्रवेशयामास शतद्वारं च दुर्गमम्। अगम्यं चापि शत्रूणां मित्राणां च सुखप्रदम्।।१८।।

देवकन्या नागकन्या राजकन्यास्तथैव च। मुनिकन्या वरं द्रष्टुं सस्मिताश्च समाययुः।।१९।।

ददृशुर्योषितः सर्वा निमेषरहितेन च। प्रसन्नं कारयामास सस्मितश्चन्द्रशेखरः।।२०।।

रत्नेन्द्रसारनिर्माणरथस्थं परमेश्वरम्। सर्वेषां परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम्।।२१।।

नवीनजलदश्यामं शोभितं पीतवाससा। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वनमालाविभूषितम्।।२२।।

उन्होंने उन दुर्गम १०० द्वारवाले दुर्गम नगर में सबको प्रवेश कराया। वह पुरी शत्रुगण के लिये अगम्य होकर भी मित्रों के लिये सुखदायक थी। तभी वहां रुक्मिणी के वर का दर्शन करने की इच्छा से देवकन्या, नागकन्या, मुनिकन्या, राजकन्या, वहां प्रसन्नतार्पूक मुस्कराते हुये आई थीं। इसके पश्चात्त् इन सभी स्त्रियों ने बिना पलक झपकाये रुक्मिणी के वर को देखा। उधर प्रसन्न होकर भगवान् चन्द्रशेखर ने परमेश्वर को प्रसन्न किया। वे श्रीकृष्ण प्रभु रत्नों के सारभाग से निर्मित रथ पर आसीन थे। वे सबके परमात्मा, भक्तों पर कृपा करने के लिये देह धारण करने वाले, नवमेघ के समान श्याम वर्ण तथा पीतवस्त्र से शोभायमान थे। उनका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित तथा वनमाला भूषित था।।१८-२२।।

रत्नकेयूरवलयरत्नमालाकुलोज्ज्वलम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम्।।२३।।

उन्होंने रत्न केयूर बाहों में धारण किया था। साथ ही हाथों में कड़े तथा गले में रत्नमाला धारण करने के कारण उज्वल थे। उनकी कनपटी पर रत्नमय कुण्डल की जोड़ी विलम्बित थी।।२३।।

रत्नेन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। सस्मितं मुरलीहस्तं पश्यन्तं रत्नदर्पणम्।।२४।।

सप्तभिः पार्षदैर्गोपैः सेवितं श्वेतचामरैः। नवयौवनसम्पन्नं शरत्कमललोचनम्।।२५।।

शरत्पूर्णेन्दुतुल्यास्यं[1] भक्तानुग्रहकारकम्। कोटिकन्दर्पसौन्दर्यं सत्यं नित्यं सनातनम्।।२६।।

---

१. क. ॰निन्दास्यं।

तीर्थपूतं कीर्तिपूतं ब्रह्मेशशेषवन्दितम्। परमाह्लादकं रूपं कोटिचन्द्रसमप्रभम्॥२७॥

उनके चरणयुगल में बहुमूल्य रत्ननिर्मित नूपुर शोभित थे, जो मधुर शब्द कर रहे थे। वे मुरलीधारी तनिक मुस्कराते हुये रत्नदर्पण का अवलोकन कर रहे थे। सात पार्षद उन प्रभु श्रीकृष्ण को श्वेत चामर झलते हुये उनका श्रम दूर कर रहे थे। वे नूतन यौवनयुक्त थे। उनके नयनद्वय शरत्कालीन कमलों के समान कमनीय लग रहे थे। उनका मुखमण्डल शरत्कालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान था। वे भक्तों पर अनुग्रहकारी प्रभु करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर नित्य सत्य तथा सनातन हैं। उनकी कीर्त्ति अत्यन्त पवित्र है तथा वे तीर्थों को भी परिपूत करने वाले हैं। श्रीकृष्ण प्रभु ब्रह्मा, ईश्वर महादेव तथा शेष द्वारा भी वन्दित हैं। उनका कोटिचन्द्र के समानरूप परम आह्लादक है।।२४-२७।।

ध्यानासाध्यं दुराराध्यं परमं प्रकृतेः परम्। दूर्वया पट्टसूत्रं च रत्नेन्द्रसारदर्पणम्॥२८॥
दधानं कर्तकासार्ध[1] कदल्याः स्फुटमञ्जरीम्। चूडां त्रिविक्रमाकारां मालतीमाल्यभूषिताम्॥२९॥
पुष्पं नारीप्रदत्तं च मुकुटं मस्तकोज्ज्वलम्।
दृष्ट्वा वरं युवत्यश्च मूर्च्छां सम्प्रापुरीश्वरम्॥३०॥

ये प्रभु ध्यानसाध्य, दुराराध्य, परम, प्रकृति से भी परे, दुर्वायुक्त, पट्टसूत्रधारी, बहुमूल्य रत्नों से निर्मित दर्पण, कदली वृक्ष की विकसित मंजरी तथा एक कैंची धारण किये हुये थे। इन्होंने मालती माला गुंथा त्रिविक्रमाकार जूड़ा भी धारण किया था। (जूड़ा=केशपाश)। उन्होंने नारीप्रदत्त पुष्प तथा मुकुट भी मस्तक पर धारण किया था, जिससे प्रभु का मस्तक उज्वल लग रहा था। इन वर को देखकर युवतियां अपनी सुध-बुध खो बैठीं।।२८-३०।।

रुक्मिणीजीवनं धन्यं श्लाघ्यमित्यूचुरीप्सितम्।
जामातरं सा ददर्श राज्ञी भीष्मककामिनी॥३१॥
निमेषरहिता तुष्टा प्रसन्नवदनेक्षणा। राजा प्रसन्नवदनः सामात्यः सपुरोहितः॥३२॥
समागत्य सुरान्विप्रान्भूपांश्च प्रणनाम सः।
ददौ योग्याश्रमं तेभ्यो भक्ष्यपूर्णं सुधोपमम्॥३३॥

वहां की युवतियां कहने लगीं कि रुक्मिणी का जीवन धन्य है। प्रशंसायोग्य तथा वैसा सौभाग्यमय जीवन सबके लिये वांछित है। भीष्मक की पत्नी ने जब अपने जामाता को देखा, वे उनको एकटक देखती ही रह गयीं। महारानी के नेत्र तथा मुख पर प्रफुल्लता छा गयी। राजा भीष्मक अपने आमात्य तथा पुरोहित के साथ आनन्दित होकर आये तथा उन्होंने देवगण, मुनिगण तथा राजाओं को प्रणाम किया। उन्होंने इन सभी को उनके योग्य ऐसा निवास दिया, जो अमृततुल्य भोज्य वस्तुओं से पूर्ण था।।३१-३३।।

दिवानिशं चाप्युवाच दीयतां दीयतामिति। सुखं निनाय रजनीं देवैश्च बान्धवैः सह॥३४॥

१. साध्वं।

वसुदेवः प्रभाते च प्रातःकृत्यं चकार सः।
स्नात्वा सन्ध्यादिकं कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी॥३५॥
चकार वेदमन्त्रेण शुभाधिवासनं हरेः। सम्पूज्य मातृकाः सर्वाः साक्षाच्च सर्वदेवताः॥३६॥
प्रदाय वसुधारां च वृद्धिश्राद्धादिकं तथा।
ब्राह्मणान्भोजयामास देवांश्च बान्धवांस्तथा॥३७॥

वहां रात-दिन "अभिलषित वस्तु प्रदान करो" यही शब्द सुनाई पड़ता रहता था। वसुदेव तथा श्रीकृष्ण आदि ने वह रात्रि वहां देवताओं तथा बन्धु-बान्धवों के साथ सुख पूर्वक व्यतीत किया। तदनन्तर प्रातःकाल सभी ने प्रातः कृत्य से निवृत्त होकर स्नान-सन्ध्यादि सम्पन्न किया और सबने धुले वस्त्रद्वय धारण किया। तत्पश्चात् वहां वेदमन्त्रों से हरि का शुभ अधिवासन (आवाहनादि पूजन), मातृकाओं तथा देवगण का पूजन करके वहां वसुधारा अर्थात् गोघृत की धारा प्रदान किया गया। तदनन्तर वृद्धिश्राद्ध (नान्दीश्राद्ध) सम्पन्न करके ब्राह्मण भोजन, देवताओं को भोजन कराने के उपरान्त बन्धुओं को भोजन कराया॥३४-३७॥

वाद्यं च वादयामास कारयामास मङ्गलम्। सुवेषं कारयामास वरस्यापि[१] प्रशंसितम्॥३८॥
सज्जं च कारयामास नरयानं[२] सुशोभनम्।
एवं राजा भीष्मकश्च विवाहार्हं च मङ्गलम्॥३९॥
पुरोहितैर्वेदमन्त्रैः सर्वं कर्म चकार सः। मणिरत्नं धनं चापि मुक्तामाणिक्यहीरकम्॥४०॥
भक्ष्यद्रव्यं च वस्त्रं चाप्युपहारमनुत्तमम्।
भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि भिक्षुकेभ्यो ददौ मुदा॥४१॥

वहां पर राजा भीष्मक द्वारा वाद्य-वादन कराया गया तथा मांगलिक कृत्य भी सम्पन्न कराया गया। तदनन्तर वर श्रीकृष्ण को सुन्दर वेष-भूषा द्वारा सजाया गया। वहां उत्तम पालकी लायी गई जो सुसज्जित थी। इस प्रकार विवाहोचित समस्त कृत्य तथा मांगलिक कृत्य राजा भीष्मक ने सम्पन्न किया। पुरोहित मंडली ने यह सभी कार्य वेदमन्त्रों से किया था। भीष्मक ने इस अवसर पर मणि-रत्न-धन-मुक्ता, माणिक्य, हीरा, भोजन सामग्री, सुन्दर वस्त्र आदि भाटों, ब्राह्मणमण्डली तथा भिक्षुक समूह को सहर्ष प्रदान किया॥३८-४१॥

वाद्यं च वादयामास कारयामास मङ्गलम्।
सुवेषं कारयामास रुक्मिण्याश्च मनोहरम्॥४२॥
राज्ञीभिर्मुनिपत्नीभिर्विधानं च यथोचितम्। ततः शुभे क्षणे प्राप्ते माहेन्द्रे परमोदये॥४३॥
विवाहोचितलग्ने च लग्नाधिपतिसंयुते। सद्ग्रहेक्षणशुद्धे चाप्यसतां दृष्टिवर्जिते॥४४॥

१. ख. स्याप्रतिमस्य च।
२. क. वर०।

शुभक्षणे शुभर्क्षे च विशुद्धे चन्द्रतारयोः। वेधदोषादिरहिते शलाकादिविवर्जिते॥४५॥
दम्पत्योः शर्मयोग्ये च परिणामसुखप्रदे। एवंभूते च समये भीष्मकप्राङ्गणं हरिः॥४६॥

तत्पश्चात् वहां वाद्यवादन, मांगलिक पाठ, मांगलिककृत्य के साथ रुक्मिणी को स्त्रियों ने मनोहर वेष से सज्जित किया। रानी तथा मुनि पत्नियों द्वारा सभी विधान यथोचित रूप से सम्पन्न किया गया। तदनन्तर माहेन्द्र योग में, जो परम वृद्धिप्रदायक होता है, विवाहोचित लग्नविशिष्ट शुभ क्षण आ गया। यह लग्नपति अधिष्ठित शुभग्रहों के दर्शन के कारण शुद्ध काल था, जो असत् ग्रहों की दृष्टि से अदृष्ट था (नहीं देखा जा रहा था), नक्षत्र भी शुद्ध था। चन्द्र-तारक शुद्ध थे। वेध दोष तथा शलाका आदि से रहित समय था, जो दम्पति के लिये सुखदायक एवं कल्याप्रद योग कहा गया है। ऐसे शुभ काल में श्रीकृष्ण भीष्मक के आंगन में आ गये।।४२-४६।।

आजगाम सुरैः सार्धं मुनिविप्रपुरोहितैः।
ज्ञातिभिर्बान्धवैः सार्धं पित्रा मात्रा नृपैस्तथा॥४७॥
गोपालकैः पार्षदैश्च वयस्यैश्च मनोहरैः। भट्टैश्च गणकैर्ज्योतिःशास्त्रज्ञानविशारदैः॥४८॥
वाद्यैर्नानाविधैश्चैव नर्तकैर्गायनैस्तथा। नानाशिल्पकरैश्चैव मालाकारैस्तथाऽपरैः॥४९॥
विद्याधर्यप्सरोभिश्च किन्नरीभिश्च सत्वरम्। स्थलं च ददृशुर्देवा मुनयश्च नृपेश्वराः॥५०॥
सर्वे समागता ये च विवाहदर्शनोत्सुकाः। रम्भास्तम्भसहस्त्रैश्च पट्टसूत्रपरिष्कृतैः॥५१॥

श्रीकृष्ण के साथ वहां देवता, मुनिगण, विप्रगण, पुरोहित, सगोत्रीय सम्बन्धी, माता-पिता (वसुदेव-देवकी), अन्य राजा, गोपगण, पार्षदगण, मित्रबन्धु, भाट, ज्योतिषमर्मज्ञ ज्योतिषी भी आये। वाद्यवादक, नर्त्तक, शिल्पकार, मालाकार, अन्य लोग, विद्याधारी, अप्सरायें तथा किन्नरीगण का भी वहां आगमन हो गया। देवगण, मुनिगण, राजाओं की मण्डली ने तथा अन्य ने वहां आगमन किया, जो विवाह देखने को उत्सुक थे। वह सहस्त्रों केले के खंभे रेशमी सूत्र से शोभायमान करके लगाये गये थे।।४७-५१।।

चम्पकानां चन्दनानां रसालानां च पल्लवैः।
माल्यैर्नानाविधैश्चैव पीतरक्तसितान्वितैः॥५२॥
परितो मङ्गलघटैः फलपल्लवसंयुतैः। कस्तूरीचन्दनाक्तैश्च कङ्कुमेन विराजितैः॥५३॥
पर्णैर्लाजैः फलैः पुष्पैर्दूर्वाभिरुपशोभितैः। मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव राजेन्द्रैरपि वेष्टितम्॥५४॥

उस विवाह स्थल पर चम्पा, चन्दन तथा आम्र पल्लवों के बन्दनवार, लाल, पीत, श्वेत मालायें जो उज्वल प्रतीत हो रहीं थीं, लगाई गयी थीं। चतुर्दिक् दूर्वा-फल-पुष्प पल्लवान्वित मंगल कलश थे, जो कस्तूरी-चन्दन युक्त केसर-पल्लवयुक्त थे। उस विवाह स्थल को चतुर्दिक् से मुनि, ब्राह्मण, राजेन्द्रगण घेरे हुये थे।।५२-५४।।

रत्नेन्द्रसारनिर्माणवेदीयुक्तं मनोहरम्। चर्चितं चन्दनस्निग्धैः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितैः॥५५॥

सुगन्धिशीतमन्दैश्च पवनैः सुरभीकृतम्। रत्नानां च सहस्रैश्च ज्वलितं ज्वलदीप्तकैः॥५६॥
नानाप्रकारधूपैश्च गन्धद्रव्यैः सुवासितम्।
चित्रैर्विचित्रैर्विविधैः शिल्पिनां पुण्यकारिणाम्[1]॥५७॥
परितः परितश्चैव शोभनार्हैः सुशोभनैः गन्धर्वाणां च सङ्गीतैर्मधुरैर्मधुरीकृतम्॥५८॥
विद्याधरीणां नृत्यैश्च नर्तकीनां च शिल्पिनाम्।
तत्र निश्चेष्टचित्रैश्च जनराजिविराजितम्॥५९॥
गुप्तद्वारैर्गवाक्षैश्च युवतीभिश्च वीक्षितम्। मङ्गलेन घटेनैव विदुषा च पुरोधसा॥६०॥
कुशहस्तेन भूपेन दानेन दानवस्तुना। दृष्ट्वा च प्राङ्गणं राज्ञो देवा ब्रह्मादयस्तथा॥६१॥

वहां श्रेष्ठ रत्नों के सार भाग से बनी वेदी स्थापित की गई थी। उस चन्दन-चर्चित, स्निग्ध, कस्तूरी पुष्पयुक्त स्थल में सुगन्धित शीतल मन्द-मन्द वायु बहती उसे आमोदित कर रही थी। वहां रत्ननिर्मित जाज्वल्यमान हजारों प्रदीप प्रज्वलित हो गये थे। नाना प्रकार की धूपों के धूम्र की सुगन्ध से वह स्थल सुवासित था। वह सभास्थल उत्तम शिल्पियों द्वारा नाना प्रकार के विचित्र चित्रों से चित्रित किया गया था। वहां मनोहर गन्धर्व लोग नाना प्रकार का मधुर गायन कर रहे थे तथा विद्याधरियां, नर्त्तक तथा शिल्पी लोगों द्वारा अपनी-अपनी विद्यापारदर्शिता का प्रदर्शन किया जा रहा था। यह देखने हेतु वहां सभी लोग निश्चल बैठे थे। इस सभा के दृश्य को युवतियां गूढ़ (गुप्त) द्वार तथा खिड़कियों-झरोखों से देख रही थीं। यहां के मंगलघट, विद्वान् पुरोहित वृन्द, दान दी जाने वाली वस्तुओं के ढेर तथा हाथ में कुश धारण करके विराजित राजा भीष्मक, इन सबसे इस सभा की शोभा और भी बढ़ रही थीं। राजा के इस प्रांगण को ब्रह्मादि देवगण ने भी देखा॥५५-६१॥

अवरुह्य रथात्तूर्णं तिष्ठन्ति प्राङ्गणे मुदा। राजेन्द्रा दानवेन्द्राश्च मुनयः सनकादयः॥६२॥
श्रीकृष्णश्चापि भगवान्पार्षदप्रवरैः सह। तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय जवेन भीष्मकस्तथा॥६३॥

अब अन्य सभी लोग अपने-अपने रथ (वाहन) से नीचे उतरे तथा हर्ष पूर्वक उस आंगन में आ गये। सभी राजेन्द्र, दानवेन्द्र, सनकादि, मुनिगण भी वहां उपस्थित हो गये। प्रभु श्रीकृष्ण भी अपने श्रेष्ठ पार्षदों के साथ आये जिनको देखकर भीष्मक सहसा उठकर खड़े हो गये॥६२-६३॥

मूर्ध्ना ववन्दे देवांश्च मुनीन्द्रांश्च नृपांस्तथा। रत्नसिंहासनेष्वेव सुरम्येषु पृथक्पृथक्॥६४॥
क्रमतो वासयामास सम्पूज्य सादरेण च।
राजा तुष्टाव भक्त्या च तान्सर्वान्भक्तिपूर्वकम्।
वसुदेवं वासुदेवं साश्रुनेत्रः पुटाञ्जलिः॥६५॥

राजा भीष्मक ने उठते ही शिर नत करके देवगण, मुनिवृन्द, राजेन्द्रों को प्रणाम किया तथा सबको

१. क. पुरिका०।

उत्तम रत्नसिंहासनों पर पृथक्तः बैठा दिया। उन्होंने उनको उनके-उनके (वरिष्ठता) क्रमेण आसीन कराया तथा सादर सत्कार किया। उन्होंने सबकी सादर स्तुति किया। तदनन्तर राजा भीष्मक भक्तिभाव के साथ अश्रु विगलित नेत्र के साथ वसुदेव तथा वासुदेव कृष्ण की स्तुति करने लगे।।६४-६५।।

भीष्मक उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।
बभूव जन्मकोटीनां कर्ममूलनिकृन्तनम्।।६६।।

स्वयं विधाता जगतां प्रदाता सर्वसम्पदाम्। स्वप्ने यत्पादपद्मं च द्रष्टुं नैव क्षमः प्रभो।।६७।।
तपसां फलदाता च संस्त्रष्टा प्राङ्गणे मम। स्वात्मारामेषु पूर्णेषु शुभप्रश्नमभीप्सितम्।।६८।।

राजा भीष्मक कहते हैं—आज मेरा जन्म तथा जीवन सफल हो गया। मेरे पूर्वकृत् कोटिजन्मार्जित कर्म समूह भी छिन्न हो गये! हे प्रभो! जो स्वयं जगत्स्त्रष्टा तथा सर्वसम्पदा देने वाले हैं, जिनके चरणकमलों का दर्शन भी मेरे जैसे व्यक्ति हेतु स्वप्न में भी दुर्लभ हैं, जो समस्त तप के फलदाता हैं, वे परमेश्वर आज मेरे प्रांगण में उपस्थित हैं। ऐसे आत्माराम परिपूर्ण प्रभु से तो कुशलप्रश्न पूछना समुचित नहीं है।।६६-६८।।

योगीन्द्रैरपि सिद्धेन्द्रैः सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रकैः।
ध्यानादृष्टश्च यो देवः स शिवः प्राङ्गणे मम।।६९।।
कालस्य कालो भगवान्मृत्योर्मृत्युश्च यः प्रभुः।
मृत्युञ्जयश्च सर्वेशो नराणां दृष्टिगोचरः।।७०।।

जिन महेश्वर शंकर को योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र, सुरेन्द्र इन्द्र तथा मुनीन्द्र तक ध्यान में भी दर्शन नहीं कर पाते, वे शिव आज मेरे प्रांगण में हैं। वे मृत्युञ्जय, सर्वेश्वर, काल के भी काल, मृत्यु के भी मृत्युरूप शिवशंकर प्रभु वे यहां हम मनुष्यों को दृष्टिगोचर हैं!।।६९-७०।।

यस्य मूर्ध्ना सहस्त्रेषु मूर्ध्नि विश्वं चराचरम्।
नास्त्यन्तः सर्ववेदेषु सोऽयं च मम प्राङ्गणे।।७१।।

जो सहस्रमस्तक (फण) धारी हैं, जिनके मस्तक पर यह चराचर विश्व विराजमान है, जिनका अन्त वेदों में वर्णित ही नहीं है, वे अनन्तदेव मेरे प्रांगण में विराजमान हैं!।।७१।।

सर्वकामप्रणेयो हि सर्वाग्रे यस्य पूजनम्। श्रेष्ठो देवगणानां च स गणेशो ममाङ्गणे।।७२।।

जो सर्वकामनापूरक, सर्वाग्र पूजित, देवताओं में श्रेष्ठ देव गणेश हैं, वे भी मेरे आंगन में आज उपस्थित हैं।।७२।।

मुनीनां वैष्णवानां च प्रवरो ज्ञानिनां गुरुः। सनत्कुमारो भगवान्प्रत्यक्षः प्राङ्गणे मम।।७३।।

जो वैष्णवों तथा मुनिगण में सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानीगण के गुरु हैं, वे भगवान् सनत्कुमार भी सबके समक्ष प्रत्यक्ष होकर मेरे आंगन में विराजमान हैं!।।७३।।

ब्रह्मपुत्राश्च पौत्राश्च प्रपौत्राश्चापि वंशजाः। ते सर्वे मदगहेऽद्यैव ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा॥७४॥

अहो कल्पान्तपर्यन्तं तीर्थीभूतो ममाऽऽश्रमः।
येषां पादोदकैस्तीर्थं विशुद्धं तद्गृहे मम॥७५॥

ब्रह्मदेव के पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र तथा उनके अन्य वंशज जो ब्रह्मतेज से दीप्त ज्वलन्तरूप हैं, वे भी मेरे गृह में आज आये हैं। अतः मेरा यह गृह तो कल्पान्त पर्यन्त के लिये तीर्थ हो गया। जिनके चरण जल से तीर्थ भी पावन हो जाते हैं, ऐसे सभी लोग आज मेरे गृह में आये हैं!॥७४-७५॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे।
सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च॥७६॥

विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्पुष्करपत्रेषु[1] पिबन्ति पितरो जलम्॥७७॥

विप्रपादोदकं भुक्त्वा दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम्।
स्नानानां सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति निश्चितम्॥७८॥

निकृन्तनं च विपदां व्याधिनिर्मूलकारणम्। सुखदं शुभदं सारं विप्रपादोदकं नृणाम्॥७९॥

पृथिवी स्थित सभी तीर्थ समुद्र में भी हैं, समुद्रस्थ सभी तीर्थ ब्राह्मण के चरणों में हैं। जहां तक ब्राह्मण के चरणामृत से पृथिवी आर्द्र रहती हैं, वहीं तक का कमल के पत्तों के दोने में पितृगण जलपान करते हैं। ब्राह्मण का चरणामृत पान करके ब्राह्मण को दक्षिणा देने वाला सर्वतीर्थ स्नानफल अवश्य प्राप्त कर लेता है। विप्र चरणजल विपत्तिनाशक, व्याधि निर्मूल करने का कारणरूप, सुखद, शुभप्रद, साररूप कहा गया है॥७६-७९॥

त गङ्गासदृशं तीर्थं न देवो माधवात्परः। सनत्कुमाराद्भक्तो न न हि कल्पतरोस्तरुः॥८०॥

न पुष्पं पारिजाताच्च न व्रतं हरिवासरात्। पूजने न हि पूज्यं न च पत्रं तुलसीपरम्॥८१॥

न देवी प्रकृतेश्चापि नाऽऽधारः पवनात्परः।
न हि स्थूलो महाविष्णोर्न सूक्ष्मं परमाणुतः॥८२॥
न ब्राह्मणात्परः पूतो नाऽश्रमश्च न तीर्थकम्।
न देवो न परः कोऽपि चेत्याह कमलोद्भवः॥८३॥

गंगा के समान अन्य तीर्थ नहीं है। माधव से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। सनत्कुमार से बढ़कर कोई भक्त नहीं है। कल्पवृक्ष के समान कोई वृक्ष नहीं है। पारिजात के समान कोई पुष्प नहीं होता। एकादशी व्रत से बढ़कर कोई व्रत नहीं है। पूजार्थ तुलसीपत्र से श्रेष्ठ कोई पत्र नहीं है। प्रकृति से श्रेष्ठ कोई देवी नहीं है। पवन से बढ़कर कोई आधार नहीं है। महाविष्णु से बढ़कर कोई स्थूल नहीं है। परमाणु से अधिक सूक्ष्म कुछ भी नहीं है। ब्राह्मण से श्रेष्ठ कोई आश्रम किंवा तीर्थ ही नहीं है। उससे (ब्राह्मण) से बढ़कर कोई देवता भी नहीं है। यह ब्रह्मा का वचन है॥८०-८३॥

---

१. क. पात्रेण।

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रकृतेश्च परः प्रभुः।
ध्यानासाध्यो दुराराध्यो योगिनामपि निश्चितम्॥८४॥
निर्गुणश्च निराकारो भक्तानुग्रहविग्रहः। स एव चक्षुषो नृणां साक्षाद्देवश्च मद्गृहे॥८५॥
देवैर्ब्रह्मेशशेषैश्च ध्यातं यत्पादपङ्कजम्। धनेशेन गणेशेन दिनेशेनापि दुर्लभम्॥८६॥

जो प्रभु ब्रह्मा-विष्णु-शिव-प्रकृति तक से परे, ध्यान से असाध्य, अत्यन्त कठोर परिश्रम से भी जिनकी आराधना करना दुःसाध्य है, जो निर्गुण, निराकार होकर भी भक्तों पर कृपालु होकर देहधारण करते हैं, वे मेरे गृह में मनुष्यों को अनायास दृष्टिगोचर हो रहे हैं! जिनके चरणकमलों का ध्यान ब्रह्मा, महेश्वर, शिव, अनन्त, धनाधीश कुबेर, गणेश, सूर्य को भी दुर्लभ है, (वे आज मेरे आंगन में आये हैं)॥८४-८६॥

इत्युक्त्वा भीष्मकः कृष्णं समानीय स्वयं पुरः।
तुष्टाव समावेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम्॥८७॥

यह कहकर भीष्मक स्वयं जाकर कृष्ण को लाये तथा सामवेदोक्त मन्त्र से श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे॥८७॥

भीष्मक उवाच

सर्वान्तरात्मा सर्वेषां साक्षी निर्लिप्त एव च।
कर्मिणां कर्मणामेव कारणानां च कारणम्॥८८॥
केचिद्वदन्ति त्वामेकं ज्योतीरूपं सनातनम्।
केचिच्च परमात्मानं जीवो यत्प्रतिबिम्बकः॥८९॥
केचित्प्राकृतिकं जीवं सगुणं भ्रान्तबुद्धयः।
केचिन्नित्यशरीरं च बुद्धा (धा) श्च सूक्ष्मबुद्धयः॥९०॥
ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यं देहरूपं सनातनम्। कस्मात्तेजः प्रभवति साकारमीश्वरं विना॥९१॥

राजा भीष्मक कहते हैं—हे सर्वान्तरात्मा! आप किसी भी विषय में लिप्त नहीं हैं। अथच सबके साक्षी हैं। आप कर्मीगण के, कर्म के कारणों के भी कारण हैं। कोई कहते हैं कि आप अद्वितीय, ज्योतिरूप, सनातन हैं। कोई आपको परमात्मा कहते हैं, जिनका प्रतिबिम्ब जीव है। (जीवात्मा है)। जो लोग भ्रान्तमति वाले हैं, वे आपको सगुण तथा प्रकृतिजनित जीव कहते हैं। कोई सूक्ष्म बुद्धि लोग आपको नित्य शरीरधारी कहते हैं। कोई आपको ज्योति के अभ्यन्तस्थ नित्यदेहरूप सनातन कहते हैं। उनका कहना है कि साकार ईश्वर के अभाव में तेज उत्पन्न कैसे होगा?॥८८-९१॥

एवं स्तुत्वा स चाऽऽचान्तःस्मरन्विष्णुं च नारद।
पाद्यं पद्मार्चिते पादपद्मे चायं ददौ मुदा॥९२॥

अर्घ्यं च प्रददौ तत्र दुर्वापुष्पजलान्वितम्। मधुपर्कं च सुरभिं सर्वाङ्गे गन्धचन्दनम्॥९३॥

हे नारद! यह स्तुति करके राजा ने आचमन करके विष्णु स्मरण किया। उन्होंने श्रीकृष्ण को पाद्य देकर उनके चरणकमल की पूजा किया, जो भगवती लक्ष्मी द्वारा सदा अर्चित है। उन्होंने दूर्वा-पुष्पजल युक्त पाद्य प्रदान किया। उनको मधुपर्क अर्पित करके उनके अंगों पर सुगन्धित चन्दन लगाया॥९२-९३॥

यत्प्रदत्तं महेन्द्रेण शुभकर्मणि यौतुकम्। पारिजातस्य माल्यं च जामातुश्च गले ददौ॥९४॥
कुबेरेण च यदत्तममूल्यरत्नभूषणम्। चकार वरणं तस्य स राजा भक्तिपूर्वकम्॥९५॥
वह्निशुद्धांशुकयुगं यद्दत्तं वह्निना पुरा। ददौ तदेव कृष्णाय परिपूर्णतमाय च॥९६॥

राजा भीष्मक ने वरण में भक्ति पूर्वक इन्द्र द्वारा पूर्वकाल में प्रदत्त पारिजात माला को उपहार स्वरूप जामाता कृष्ण के कण्ठ में पहना दिया। पूर्वकाल में भीष्मक को जो अमूल्य रत्नाभूषण कुबेर ने प्रदान किया था भीष्मक राजा ने वह सब वरण में भक्ति के साथ कृष्ण को अर्पित कर दिया। भीष्मक को पूर्वकाल में अग्नि ने जो अग्निशुद्ध वस्त्र का जोड़ा दिया था, वह वस्त्रद्वय भीष्मक ने उन परिपूर्णतम श्रीकृष्ण को प्रदान कर दिया॥९४-९६॥

ज्वलितं रत्नमुकुटं यद्दत्तं विश्वकर्मणा। ददौ तन्मस्तके राजा कृष्णस्य परमात्मनः॥९७॥
धूपं रत्नप्रदीपं च नैवेद्यं सुमनोहरम्। नानाप्रकारपुष्पं च रत्नसिंहासनं ददौ॥९८॥
सप्ततीर्थोदकं चैव पुनराचमनीयकम्। ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥९९॥

तेज पुंज जाज्वल्यमान जो मुकुट पूर्वकाल में विश्वकर्मा ने राजा को प्रदान किया था, वह मुकुट भी भीष्मक ने जामाता कृष्ण को अर्पित कर दिया। तदनन्तर भीष्मक ने धूप-रत्नदीप, अतीव मनोहर नैवेद्य, नाना प्रकार के पुष्प तथा रत्न सिंहासन भी श्रीकृष्ण को प्रदान किया। उन्होंने सात तीर्थों का पावन जल, पुनराचमनीय, ताम्बूल जो उत्तम रूप से लगाया गया तथा रम्य कर्पूरादि सुगन्ध से सुवासित था, श्रीकृष्ण को प्रदान किया॥९७-९९॥

शय्यां रतिकरीं रम्यां पानार्थं वासितं जलम्।
कृत्वा च वरणं राजा परिहारं चकार तम्॥१००॥
कृताञ्जलिपुटा राजा तस्मै पुष्पाञ्जलिं ददौ॥१०१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० रुक्मिण्युद्वाहे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥१०७॥

—※※※—

भीष्मक ने उत्तम रतिकाल में सन्तोष देने वाली शय्या, सुवासित जल, आदि से श्रीकृष्ण की पूजा करके उनका वरण किया तथा सर्वान्त में क्षमा-प्रार्थना भी किया। तदनन्तर राजा ने हाथ जोड़कर उनको पुष्पाञ्जलि भी प्रदान कर दिया॥१००-१०१॥

॥१०७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

राजा भीष्मक द्वारा श्रीकृष्ण को रुक्मिणी अर्पित करना

नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे देवी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी। आजगाम सभामध्ये मुनिदेवादिभिर्युते॥१॥
रत्नसिंहासनस्था च रत्नालङ्कारभूषिता। वह्निशुद्धांशुकाधाना कबरीभारभूषिता॥२॥
पश्यन्ती सस्मिता साध्वी ह्यमूल्यरत्नदर्पणम्। कस्तूरीबिन्दुभिर्युक्ता स्निग्धचन्दनचर्चिता॥३॥
सिन्दूरबिन्दुना शश्वद्भालमध्यस्थलोज्ज्वला। तप्तकाञ्चनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा॥४॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा मालतीमाल्यशोभिता। सप्तभिर्नृपपुत्रैश्च समानीता च बालकैः॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–उसी समय महालक्ष्मी अंश सम्भूता रुक्मिणी देवी मुनिगण एवं देवतायुक्त उस सभा में आ गईं। वे रत्नसिंहासन पर विराजित हो गईं। देवी रुक्मिणी उस समय रत्नों के अलंकार से भूषिता, अग्नि शुद्ध वस्त्रधारिणी, केशपाश के भार से विभूषिता थीं। साध्वी रुक्मिणी मुस्कराते हुये अमूल्य रत्नदर्पण में अपनी छवि देख रही थीं। उन्होंने कस्तूरी की बिन्दी अपने ललाट पर लगाया था। जो उनके ललाट के मध्य में सिन्दूर की बिन्दी के नीचे लगी थी। इससे उनका भालप्रदेश उज्वल लग रहा था। देवी का ललाट स्निग्ध चन्दन से चर्चित था। उनका देहवर्ण तप्त स्वर्ण के समान तथा सैकड़ों चन्द्रमा की प्रभा से दीप्त था। उनका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित एवं मालती माला से शोभायमान था। सात बालक राजपुत्र उनको सभा में लाये थे।।१-५।।

देवेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा नृपपुङ्गवाः। ददृशू रुक्मिणीं देवीं महालक्ष्मीं पतिव्रताम्॥६॥
सप्तप्रदक्षिणाः कृत्वा प्रणम्य स्वपतिं सती। सिषेच शीततोयेन स्निग्धचन्दनपल्लवैः॥७॥
तां सिषेच जगत्कान्तः कान्तां शान्तां च सस्मिताम्।
ददर्श कान्तः कान्तां च कान्तं कान्ता शुभे क्षणे॥८॥

उस समय देवेन्द्रों, मुनीन्द्रों, सिद्धेन्द्रों तथा राजाओं ने उन पतिव्रता रुक्मिणी देवी का दर्शन किया, जो साक्षात् महालक्ष्मी रूपा थीं। उन सती देवी रुक्मिणी ने पहले सात परिक्रमा करके अपने पति को प्रणाम किया था। उन्होंने शीतल जल से तनिक भींगे चन्दन के पत्ते से जल श्रीकृष्ण पर छिड़का। तदनन्तर जगत्स्वामी श्रीकृष्ण ने भी मुस्कराते हुये उन शान्ता तथा मधुर मुस्कान युता अपनी प्रिया का सिंचन जल से उसी प्रकार किया। तभी शुभ क्षण में पति श्रीकृष्ण ने अपनी पत्नी रुक्मिणी को तथा रुक्मिणी ने अपने पति श्रीकृष्ण की ओर देखा।।६-८।।

अथ देवी पितुः क्रोडे समुवास शुभानना। लज्जया नम्रवदना ज्वलन्ती च स्वतेजसा॥९॥
राजा देवेश्वरीं तस्मै परिपूर्णतमाय च। प्रददौ सम्प्रदानेन वेदमन्त्रेण नारद॥१०॥

इसके पश्चात् अपने तेज से दीप्त एवं जाज्वल्यमान शुभानना देवी रुक्मिणी लज्जा से नतशिर होकर पिता की गोद में बैठ गयीं। हे देवर्षि नारद! उसी समय राजा ने अपनी देवेश्वरी कन्या वेदमन्त्रोच्चार के साथ परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्ण को प्रदान कर दिया।।९-१०।।

वसुदेवाज्ञया कृष्णः स्वस्तीत्युक्त्वा स्थितो मुदा।
जग्राह देवीं देवश्च भवानीं च भवो यथा॥११॥

तदनन्तर पिता वसुदेव की आज्ञा सें श्रीकृष्ण 'स्वस्ति' कहकर आनन्दित चित्त से सिंहासनासीन हो गये। जिस प्रकार से महादेव ने पार्वती को ग्रहण किया था, उसी प्रकार देव श्रीकृष्ण ने देवी रुक्मिणी को ग्रहण कर लिया!।।११।।

सुवर्णानां पञ्चलक्षं कृष्णाय परमात्मने। दक्षिणां तां ददौ राजा परिपूर्णतमाय च॥१२॥
शुभकर्मणि निष्पन्ने कृत्वा कन्यां च वक्षसि। रुरोद राजा मोहेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि॥१३॥
परिहारेण वचसा कृत्वा तस्मै समर्पणम्। सिषेच कन्यां धन्यां च नेत्रयुग्मजलेन च॥१४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० रुक्मिण्युद्वाहेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः।।१०८।।

राजा भीष्मक ने परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्ण को दक्षिणास्वरूप पांच लाख स्वर्णमुद्रा प्रदान किया था। यह शुभकर्म निष्पन्न होते ही राजा उस मुनियों तथा देवताओं की सभा में कन्या को वक्ष से लगाकर पुत्री मोह से रोने लगे। तत्पश्चात् राजा ने श्रीकृष्ण से क्षमा प्रार्थना कहकर कन्या कृष्ण को समर्पित कर दिया। उस समय राजा के दोनों नेत्रों से हो रही अश्रुवर्षा से कन्या का वस्त्र आर्द्र हो गया!।।१२-१४।।

।।१०८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण के साथ अरुन्धती आदि का कथनोपकथन, बारातियों के साथ वर-वधु का द्वारका प्रवेश

नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी रुक्मिणीजननी शुभा। पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिः सहिता मुदा॥१॥
आगत्य मङ्गलं कृत्वा तत्र निर्मञ्छनादिकम्। दंपती वेशयामास रत्ननिर्माणमन्दिरम्॥२॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं हीरहारेण भूषितम्। मुक्तामाणिक्यरत्नेन सुदीप्तं दर्पणेन च॥३॥

ददर्श कृष्णस्तत्रैव दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्। सरस्वतीं च सावित्रीं रतिं च रोहिणीं सतीम्॥४॥
देवपत्नीं राजपत्नीं मुनिपत्नीं पतिव्रताम्। रत्नसिंहानस्थां च रत्नभूषणभूषिताम्॥५॥
उत्तस्थुराराद्दृष्ट्वा च श्रीकृष्णं जगतीपतिम्। रत्नसिंहासने रम्ये वारयामास तां मुदा॥६॥

स्तुतिं चक्रुश्च देवाश्च मुनिपत्न्यश्च माधवम्।
पुटाञ्जलियुतास्तत्र क्रमेण च पृथक्पृथक्॥७॥

भोजयामास राज्ञो च वरेण सह कन्यकाम्। सकर्पूरं सताम्बूलं प्रददौ वासितं जलम्॥८॥
दुर्गा कृष्णाय प्रददौ तत्र मङ्गलपत्रिकाम्। सर्वासामाज्ञया देवी पठेति तमुवाच सा॥९॥

पपाठ पत्रिकां कृष्णो देवीसंसदि सस्मितः।
लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका सती॥१०॥
तुलसी पृथिवी गङ्गाऽरुन्धती यमुनाऽदितिः।
शतरूपा च सीता च देवहूतिश्च मेनका॥११॥

देव्यश्चैताश्च दम्पत्योः कुर्वन्तु मङ्गलं परम्। पपाठ चेति कृष्णश्च शुश्रुवुर्जहसुश्च ताः॥१२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–उस समय कल्याणवती रानी रुक्मिणी की माता ने पतिपुत्रवती, पतिव्रता स्त्रियों के साथ वहां आनन्दित होकर आगमन किया तथा निर्मच्छनादि मंगलकर्म वहीं सम्पन्न कराकर नाना प्रकार के चित्र-विचित्र हीरा के हार से भूषित मुक्ता-माणिक्य और दर्पणादि से दीप्तशाली कक्ष में वर-वधु को बैठाया। यहीं पर श्रीकृष्ण ने रत्नसिंहासनासीना, रत्नभूषणभूषिता, दुर्गतिनाशिनी दुर्गा, सरस्वती, सावित्री, रति तथा पतिव्रता रोहिणी का दर्शन किया। वे सभी भी जगत्पति श्रीकृष्ण का दर्शन करके उठी तथा आनन्दित होकर श्रीकृष्ण को रत्नमय सिंहासन पर सादर आसीन कराया। तब देवपत्नी एवं मुनिपत्नीगण ने करवद्ध होकर उनकी पृथक्-पृथक् स्तुति किया। उस समय रुक्मिणी की माता ने वर-कन्या को भोजन प्रदान किया तथा उनको उत्तम सुवासित जल एवं ताम्बूल प्रदान किया। तत्पश्चात् दुर्गा देवी ने कृष्ण को मंगल पत्रिका भी दे दिया। तदनन्तर देवी दुर्गा ने सबकी आज्ञा लेकर कृष्ण से मङ्गल-पत्रिका पाठ करने को दिया। तब उन देवीगण की सभा में मुस्कान के साथ कृष्ण ने पढ़ा–"देवी लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, सती, राधा, तुलसी, पृथिवी, गंगा, अरुन्धती, यमुना, अदिति, शतरूपा, सीता, देवहूति, मेनका दम्पति का परम मंगल करें।" जब कृष्ण ने यह मंगल पाठ पढ़ा तब वे सभी देवी यह श्रवण करके हंसने लगीं!॥१-१२॥

पार्वत्युवाच

रुक्मिणीं रुक्मिणोकान्त त्वां पश्यन्तीं च सस्मिताम्।
पश्य प्रौढां रूपवतीं सुन्दरीं नवयौवनाम्॥१३॥

देवी पार्वती कहती हैं–हे रुक्मिणी कान्त! रुक्मिणी मुस्कराती हुई आपको देख रही है। आप भी नवयौवना, प्रौढ़ा, रूपवती अपनी सुन्दरी पत्नी की ओर देखिये॥१३॥

शच्युवाच

तव योग्या च युवती रत्नभूषणभूषिता। त्वां प्रार्थयन्ती सुचिरमवमन्यान्यमीश्वरम्॥१४॥

देवी शची कहती हैं–इस नवयौवना रत्नभूषणभूषिता तुम्हारी सुन्दरी सुशोभना पत्नी रुक्मिणी बहुत दिनों से अन्य सभी प्रभुसत्तासम्पन्न लोगों की अवहेलना करके आप को ही चाहती रही हैं। यह सर्वथा आपके योग्य है।।१४।।

सावित्र्युवाच

यथा वरस्तथा कन्या विधिना योजिता पुरा।
विदग्धाया विदग्धेन सर्वत्र सङ्गमः शुभः॥१५॥

देवी सावित्री कहती हैं–जैसा गुणी वर है, उसी प्रकार की गुणवती कन्या का योग विधाता ने किया है। योग्य के साथ योग्य का संगम सदा मंगलमय होता है।।१५।।

रत्युवाच

ईश्वरेण परीहासं का वा कर्तुं क्षमा भुवि। ध्यानासाध्यो दुराराध्यश्चावमन्यान्यमीश्वरम्॥१६॥

देवी रति कहती हैं–हे जगदीश्वरी! कौन नारी ईश्वर से परिहास कर सकती है?।।१६।।

गायत्र्युवाच

यथा वरस्तथा कन्या च क्षुब्धे[१] भैष्मके गृहे॥१७॥

देवी गायत्री कहती हैं–इस भरे-पूरे भीष्कम के गृह में जैसा वर है, कन्या भी वैसी ही है।।१७।।

रोहिण्युवाच

सत्यं ब्रूहि जगन्नाथ कामिनीनां च संसदि।
कीदृशी राधिका रम्या रुक्मिणी चापि कीदृशी॥१८॥

देवी रोहिणी कहती हैं–हे जगन्नाथ! आप सत्य उत्तर दीजिये। इस स्त्री संसद में सत्य कहिये कि आपको राधा रम्या लगती हैं अथवा रुक्मिणी?।।१८।।

सरस्वत्युवाच

राधायां यादृशी प्रीती रुक्मिण्यां चैव तादृशी।
सा सङ्गिनी पूर्वकाले सर्वक्रीडासु वर्धिनी[२]॥१९॥

प्राणाधिष्ठातृदेवी सा पञ्चप्राणाधिका सती। रुक्मिणी कमला साक्षात्सम्पदामधिदेवता॥२०॥

सर्वशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः। बुद्धेरप्यधिदेवी च दुर्गा नारायणी परा॥२१॥

---

१. क. ०क्षुब्धो भीष्मको।

२. रङ्गिनीति पाठान्तरम्।

देवाधिष्ठातृदेवी त्वं सावित्री वेदमातृका।
विद्याधिदेवताऽहं च ततोऽन्याश्च कलाकलाः॥२२॥
न ब्रह्मणि शिवे शेषे गणेशे च दिनेश्वरे। न भक्तेषु च पद्मायां न शिवायां च मय्यपि॥२३॥
प्रसादो यादृशस्तस्यामन्येषु[1] च न तादृशः।
त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या सुपुण्यं भारतं यतः॥२४॥
तत्र वृन्दावनं धन्यं राधापादाब्जचिह्नितम्।
सर्वासामपि देवीनां राधा पुण्यवती सती॥२५॥

देवी सरस्वती कहती हैं—श्रीकृष्ण की राधा से जैसी प्रीति है, वैसी रुक्मिणी से नहीं है। ये क्रीड़ारस कुशला राधा तो पूर्वकाल से इनकी संगिनी हैं। ये कृष्ण की पंचप्राणरूपा तथा इन प्राणों से भी अधिक प्रिय कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठातृ देवी हैं। रुक्मिणी साक्षात् लक्ष्मी (कमला हैं) एवं सम्पत्ति की अधिदेवता हैं। परमेश्वरी रुक्मिणी श्रीकृष्ण की सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। परमेश्वरी नारायणी दुर्गा देवी बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं। ये वेदमाता सावित्री वेदों की अधिष्ठातृ देवी हैं। ये विद्या की अधिष्ठातृ देवता भी हैं। मैं सरस्वती तथा अन्य देवीगण तो राधा की कला का कलांश हैं। जैसी कृपा श्रीकृष्ण राधा के प्रति करते हैं, वैसी कृपा वे ब्रह्मा, शिव, अनन्तनाग, गणेश, सूर्य, लक्ष्मी, पार्वती, भक्तों पर तथा मुझ पर एवं अन्य पर भी नहीं करते! इस त्रैलोक्य में पृथिवी धन्या है। उसमें भी भारतभूमि धन्य है। उसमें भी वृंदावन धन्य है, जो राधा के चरणकमलों के चिह्न से अंकित है। समस्त देवियों में राधा सबसे अधिक पुण्यवती तथा सती हैं।।१९-२५।।

राधापादाब्जनखरे ददौ स्निग्धमलक्तकम्। अयमेवमिति श्रुत्वा जहसुः सर्वयोषितः॥२६॥

"राधा के चरणों की उंगलियों के नखों में इन श्रीकृष्ण ने ही आलता लगाया है!" यह सुनकर वहां सभी देवियां हंस पड़ीं!।।।२६।।

ध्यायन्ते दूरतः सर्वा राधा वक्षःस्थलस्थिता।
तस्माद्राधां नमस्कृत्य तुलनां मन्यते किल॥२७॥
सरस्वतीवचः श्रुत्वा सावित्री पार्वती सती।
अन्याश्च योषितः सर्वा साध्वित्यूचुश्च संसदि॥२८॥

समस्त नारीगण दूर से ही जिन कृष्ण का ध्यान करती हैं, उन कृष्ण के वक्षस्थल पर राधा सदा विराजित हैं। तभी राधा को प्रणाम करना चाहिये, तब उनकी तुलना करें। (यहां कुछ विद्वानों ने यह अर्थ किया है कि रुक्मिणी पहले राधा को प्रणाम करने पर ही राधिका का तनिक सादृश्य लाभ कर सकेंगी)। सती सावित्री, पार्वती तथा अन्य नारियों ने सरस्वती का यह वचन सुनकर उनको साधुवाद दिया तथा उनके इस कथन का अनुमोदन भी किया।।२७-२८।।

१. क. ०मेतेषु।

लोपामुद्राऽनसूया चाप्यहल्याऽरुन्धती तथा।
सर्वास्ता मुनिपत्न्यश्च रभसं चक्रुरीश्वरम्॥२९॥
अथ देवांश्च भूपांश्च मुनीन्द्रांश्चापि भीष्मकः।
पूजयामास विधिना भोजयामास सादरम्॥३०॥
खाद्यतां खाद्यतां लोका दीयतां दीयतामिति। शब्दो बभूव नगरे वाद्यसङ्गीतमङ्गलैः॥३१॥
अथ प्रभाते ब्रह्मेशशेषास्त्रिदशास्तथा। यानमारोहणं भूपाश्चक्रिरे च त्वरान्विताः॥३२॥
राजा महोग्रसेनश्च वसुदेवस्त्वरान्वितः।
कारयामास यात्रां च श्रीकृष्णं रुक्मिणीं सतीम्॥३३॥
सुभद्रा रुक्मिणीमाता कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि।
रुरोदोच्चैस्तत्सखीभिर्बान्धवैरित्युवाच सा॥३४॥

तत्पश्चात् लोपामुद्रा, अनुसूया, अहल्या, अरुन्धती आदि सभी मुनि पत्नियां कृष्ण को बधाई देने लगीं। तदनन्तर राजा भीष्मक ने देवेन्द्रों, मुनियों तथा राजाओं की यथाविधि पूजा किया तथा सबको अनेक उपहार देकर भोजन कराया। "अभिलाषानुरूप वस्तु दो, भोजन प्रदान करो" यह सब कोलाहल परस्परतः होने लगा। इस कोलाहल के साथ मांगलिक वाद्यों तथा संगीतों का स्वर मिल जाने से नगर में तुमुल शब्द हो रहा था। प्रातः होते ही ब्रह्मा-महादेव-अनन्त शेषनाग तथा अन्य देवता एवं वसुदेव शीघ्रता से अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होने लगे। तब राजा उग्रसेन एवं वसुदेव ने तत्काल श्रीकृष्ण एवं सती रुक्मिणी की यात्रा हेतु व्यवस्था कराया। तभी रुक्मिणी की माता सुभद्रा कन्या को हृदय से लगाकर बन्धुगण तथा सखियों के साथ उच्च स्वर में रुदन करने लगीं। तदनन्तर उन्होंने कहा-।।२९-३४।।

सुभद्रोवाच

क्व यासि मां परित्यज्य वत्से मातरमीश्वरीम्।
कथं जीवामि त्वां त्यक्त्वा कथं त्वं वाऽपि जीवसि॥३५॥
महालक्ष्मीर्मम गृहात्कन्यारूपा च मायया। वसुदेवालयं यासि वासुदेवप्रिया सतीः॥३६॥
इत्युक्त्वा कन्यकां शोकात्सिषेव नेत्रजैर्जलैः।
भीष्मकः साश्रुनेत्रश्च कन्यां कृष्णे समर्प्य च॥३७॥
तं च कृत्वा परीहारं रुरोदोच्चैरतीव सः।
रुरोद रुक्मिणी देवी श्रीकृष्णश्चापि मायया॥३८॥

देवी सुभद्रा कहती हैं-"हे वत्से! हे ईश्वरी! जननी को छोड़कर कहां जा रही हो। तुमको देखे बिना कैसे जीवनधारण कर पाऊंगी? तुम भी मेरे अभाव में कैसे जीवित रहोगी? तुम तो माया से कन्या बनी महालक्ष्मी हो जो वासुदेव प्रिया पतिव्रता हो। तुम अब मेरे गृह से वसुदेव के यहां जा रही हो।"

यह कहते हुये सुभद्रा के आसुओं से कन्या रुक्मिणी के वस्त्र आर्द्र हो गये। तभी भीष्मक अश्रुपूर्ण नेत्र हो गये। उन्होंने कृष्ण को कन्या प्रदान कर दिया तथा अपनी त्रुटियों के लिये क्षमाप्रार्थना करके उच्च स्वर से रुदन करने लगे। यह देखकर रुक्मिणी भी रुदन करने लगीं तथा इस माया के कारण कृष्ण भी रुदन करने लगे।।३५-३८।।

रथमारोपयामास वसुदेवः सुतं वधूम्। एतस्मिन्नन्तरे राजा जामात्रे यौतुकं ददौ।।३९।।

गजेन्द्राणां सहस्रं च षड्गुणं च तुरङ्गमम्।
दासीनां च सहस्रं च किङ्कराणां शतं शतम्।।४०।।
रत्नानां च सहस्रं चैवामूल्यरत्नभूषणम्।
स्वर्णानां परिशुद्धानां पञ्चलक्षं च सादरम्।।४१।।

तोयभोजनपात्राणि कृतानि विश्वकर्मणा। सौवर्णानि च रम्याणि सुरभीः प्रददौ मुदा।।४२।।

दुग्धवतीनां धेनूनां सवत्सानां सहस्रकम्।
अमूल्यानि च रम्याणि वह्निशुद्धांशुकानि च।।४३।।

वसुदेवश्चोग्रसेनो देवैश्च मुनिभिः सह। प्रहृष्टवदनः शीघ्रं द्वारकाभिमुखं ययौ।।४४।।

तभी वसुदेव ने अपने पुत्र तथा पुत्रवधु को रथारूढ़ कराया। राजा ने इसी अवसर पर जामाता कृष्ण को १००० गज, छह हजार अश्व, १००० दासियां, सौ-सौ भृत्य, १००० रत्न, बहुमूल्यरत्नाभरण आदर सहित प्रदान किया। उन्होंने ५००० स्वर्ण, विश्वकर्मा निर्मित जलपात्र, भोजन हेतु रम्य स्वर्णपात्र देकर हर्ष पूर्वक गौओं को भी दिया। ये सभी सवत्सा, दुग्धवती १००० गौयें थीं। साथ ही अग्निशुद्ध प्रभूत वस्त्र भी प्रदान किया। इसके पश्चात् वसुदेव तथा राजा उग्रसेन सभी देवगण तथा मुनिगण सहित प्रसन्नता से तथा शीघ्रता पूर्वक द्वारका की ओर प्रस्थान करके पहुंच गये।।३९-४४।।

प्रविश्य स्वपुरीं रम्यां कारयामास मङ्गलम्।
वाद्यं च वादयामास सुन्दरं सुमनोहरम्।।४५।।

देवकी रोहिणी रम्या यशोदा नन्दगेहिनी। अदितिश्च दितिश्चैव तथा च वरकामिनी।।४६।।

श्रीकृष्णं रुक्मिणीं रम्यां विलोक्य च पुनः पुनः।
गृहं प्रवेशयामास कारयामास मङ्गलम्।।४७।।

चतुर्विधं भोजयित्वा देवांश्च मुनिपुङ्गवान्। नृपांश्च बान्धवांश्चैव परीहारं चकार च।।४८।।

अपनी रम्य नगरी द्वारिका में आकर मंगलगान तथा सुन्दर मनोहर वाद्यों का वादन कराया गया। वहां पर देवकी, सुन्दरी रोहिणी, यशोदा, अदिति, दिति, सभी श्रेष्ठ स्त्रियां बारम्बार रुक्मिणी तथा श्रीकृष्ण का मुख देख-देखकर मंगलकृत्य सम्पन्न कराने लगीं। वसुदेव तथा उग्रसेन ने सभी देवों, मुनियों, राजाओं तथा बन्धुगण को चारों प्रकार का भोजन कराया। सर्वान्त में गलतियों के लिये क्षमा याचना भी किया।।४५-४८।।

भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि ददौ रत्नादिकं मुदा।
तांश्चापि भोजयामास पारितुष्टांश्च[1] सस्मितान्।।४९।।
एवं भुक्त्वा धनं लब्ध्वा ययुः सर्वे गृहं मुदा।
मङ्गलं कारयामास वसुदेवस्य बल्लभा।।५०।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० रुक्मिण्युद्वाहो नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः।।१०९।।

—❋❋❋—

इसके अनन्तर राजा उग्रसेन तथा वसुदेव ने भाटगण एवं ब्राह्मण को हर्ष पूर्वक रत्नादि प्रदान किया। उन सन्तुष्ट तथा मुस्कराते लोगों को भोजन कराया गया। धनादि लेकर तथा भोजनादि से निवृत्त होकर सभी समागत लोग प्रसन्नता से स्वगृह चले गये। सर्वान्त में वसुदेव की पत्नी देवकी ने मङ्गलाचार्य भी सम्पन्न कराया।।४९-५०।।

।।१०९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

नन्द तथा यशोदा का कदलीवन जाना तथा राधा एवं यशोदा का वार्त्तालाप आरम्भ

नारायण उवाच

आगतेषु गतेष्वेवं साङ्गे मङ्गलकर्मणि। नन्दो यशोदया सार्धं पुत्राभ्याशं समाययौ।।१।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—जब समागत देवादि सभी लोग अपने-अपने गृह चले गये तब नन्द तथा यशोदा कृष्ण-बलराम के पास आये।।१।।

यशोदोवाच

ज्ञानं च भवता दत्तं पित्रे नन्दाय माधव। मां चापि मातरं वत्स कृपां कुरु कृपानिधे।।२।।
मामुद्धर महाभाग धरोद्धारणकारण। भवाब्धितरणे भीमे भीतां च पतितामपि।।३।।
मायामयी सा प्रकृतिर्भवाब्धितरणे तरिः। त्वमेव कर्णधारश्च भक्तोत्तीर्णे कृपामय।।४।।

यशोदा कहती हैं—हे माधव! तुमने पिता नन्द पर कृपा करके उनको निर्मल ज्ञान दे दिया। हे

---

१. क. ०तुष्टान्प्रशंसितान्।

वत्स! मैं भी तुम्हारी माता हूं। हे कृपालु! मुझ पर भी तुम दया करो। तुमने वराह रूप से पृथिवी का उद्धार किया था। मैं इस भयंकर भवसागर में भयभीत हूं। इससे पार कराओ तथा मुझ पतिता का उद्धार करो। हे कृपामय! तुम कर्णधार हो तथा मायामयी प्रकृति ही भवतारिणी नौका है।।२-४।।

यशोदावचनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः। उवाच मातरं भक्त्या ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः।।५।।

यशोदा का वचन सुनकर श्रीकृष्ण हंस पड़े। उन ज्ञानीगण के गुरुओं के भी गुरु पुरुषोत्तम ने भक्ति पूर्वक माता से कहा-।।५।।

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं योगात्मकं मातर्ज्ञानं[1] च विषयात्मकम्।
ज्ञानं भक्त्यात्मकं श्रेष्ठं मद्दास्यकारणं शुभम्।।६।।
ज्ञानं पञ्चविधं प्रोक्तं सर्ववेदेषु सम्मतम्। भक्त्यात्मकं सर्वपरं तेषां च लक्षणं शृणु।।७।।
क्षुत्पिपासादिकानां च खण्डनं स्वान्तशोधनम्।
नाडीनां शोधनं चैव चक्राणामपि भेदनम्।।८।।
शक्तिकुण्डलिनीयुक्तमीश्वरं चिन्तयेत्ततः। इन्द्रियाणां च दमनं लोभादीनां च वर्जनम्।।९।।

श्रीभगवान् कहते हैं-हे माता! योगात्मक, विषयात्मक, सिद्धात्मक तथा दास्यात्मक, यह चार प्रकार का ज्ञान सभी वेद सम्मत है। पंचम ज्ञान है भक्त्यात्मक। यह सर्वोत्तम है। अब प्रत्येक का लक्षण श्रवण करो। क्षुधा-पिपासादि दैहिक धर्म का नाश, चित्तशुद्धि, इड़ा आदि नाड़ियों की शुद्धि, षट्चक्र भेद द्वारा विशुद्धान्तःकरण होकर कुण्डलिनी शक्ति विशिष्ट ईश्वर का चिन्तन करे। वह साधक इन्द्रियों का दमन करे। लोभादि का त्याग कर दे।।६-९।।

मूलाधारं स्वधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम्।
विशुद्धं च तथा ज्ञाख्यं चक्रषट्कं प्रकीर्तितम्।।१०।।
नारीणामपि दुर्बोधं मूर्खाणां च विशेषतः।
ज्ञानं योगात्मकं साध्वि सिद्धानां साध्यमीप्सितम्।।११।।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा-ये षट्चक्र कहे गये हैं। यह षट्चक्र स्त्रियों तथा भूखों हेतु तो अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। योगात्मक ज्ञान केवल सिद्धों का ही अभीष्ट है तथा उनके द्वारा ही साध्य है। यही योगात्मक ज्ञान है।।१०-११।।

जन्तूनामपि सर्वेषां ज्ञानं स्वविषये तथा।
सन्तः सर्वे विजानन्ति स्वेच्छया च मदीयया।।१२।।
सिद्ध्यात्मकं च सिद्धानां नियुक्तं सर्वकर्मसु।
चतुस्त्रिंशत्सु सिद्धानां साधनं बोधनं तथा।।१३।।

१. क. सिद्धियो०।

ज्ञानं मोक्षात्मकं सिद्धं परं निर्वाणकारणम्।
निवृत्तिमार्गमारूढं भक्तस्तत्रैव वाञ्छति॥१४॥
भक्त्यात्मकं च यज्ज्ञानं तुभ्यं राधा प्रदास्यति।
तस्यां च मानवं भावं त्यक्त्वा ज्ञानं करिष्यति॥१५॥
नन्दाय दत्तं यज्ज्ञानं तच्च तुभ्यं प्रदास्यति। गच्छ नन्दव्रजं मातर्नन्देन सह सादरम्॥१६॥

मेरी इच्छा क्रम से सभी मानव जिस ज्ञान द्वारा प्राणीगण में व्याप्त आत्मविषयक ज्ञान लाभ करते हैं, वही **विषयात्मक ज्ञान** है। सिद्धों के सभी कर्म में नियुक्त तथा सुसिद्धगण के साधन के उद्‌बोधक ३४ प्रकार के ज्ञान को ही **सिद्धात्मक ज्ञान** कहते हैं। परम कैवल्य का ज्ञान निवृत्तिमार्ग पर आरूढ़ होता है। भक्तगण ऐसा ज्ञान कदापि नहीं चाहते। **भक्त्यात्मक ज्ञान** आपको राधा प्रदान करेंगी। आप उनके प्रति मनुष्यभाव त्यागने के पश्चात् करके वह ज्ञान लाभ करेंगी। हे माता! मैंने नन्द को जो ज्ञान दिया है, वही ज्ञान आपको राधा से मिलेगा। हे माता! अब आप नन्दराज के साथ सादर ब्रजधाम जायें॥१२-१६॥

इत्युक्त्वा विनयं कृत्वा जगामाभ्यन्तरं हरिः।
नन्दो यशोदया सार्धं प्रययौ कदलीवनम्॥१७॥
ददर्श राधां तत्रैव निद्रितां त्यक्तभूषणाम्।
दधानां शुक्लवस्त्रं च निराहारां कृशोदरीम्॥१८॥
पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले चन्दनार्चिते।
शयानां शुष्कितौष्ठीं च साश्रुनेत्रां च मूर्च्छिताम्॥१९॥
ध्यायमानां पदाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः। बाह्यज्ञानपरित्यक्तां तन्निविष्टैकमानसाम्॥२०॥

श्रीहरि विनययुक्त इन वाक्यों से माता को सान्त्वना देकर अन्तःपुर में चले गये। नन्द ने भी यशोदा के साथ कदलीवन की ओर प्रस्थान किया। वहां उन दोनों ने राधा को देखा जो अपने आभूषण त्याग कर निद्रित पड़ी थीं। उन्होंने शुक्लवस्त्र धारण किया था। निराहार रहते-रहते उनका उदर कृश हो चुका था। उनके ओष्ठ शुष्क थे। नेत्रों में अश्रु भरा था। उनको अपनी सुध-बुध तक नहीं थी। वे कृष्ण के चरणकमल का ध्यान कर रही थीं। इस परमात्मध्यान ने निरत रहने के कारण उनको कोई भी बाह्य ज्ञान नहीं रह गया था॥१७-२०॥

पश्यन्तीं सस्मितं कान्तं पश्यन्तीं तन्मुखाम्बुजम्।
हसन्तीं च रुदन्तीं च स्वप्ने कान्तसमीपतः॥२१॥
सखीभिः परितः शश्वत्सेवितां श्वेतचामरैः।
दिवानिशं रक्षितां च गोपीभिः शतकोटिभिः॥२२॥
सावधानपराभिश्च वेत्रहस्ताभिरीश्वरीम्। सप्तद्वारेषु युक्ताभिः परितः प्राङ्गणेषु च॥२३॥

तां दृष्ट्वा विस्मयं प्राप्य सभार्यो नन्द एव च।
ननाम परया भक्त्या दण्डवत्प्रणिपत्य च॥२४॥

वे उस ध्यान में मुस्कराती हुई अपने कान्त श्रीकृष्ण का मुखकमल देख रही थीं। उसमें वे स्वप्न में अपने कान्त के पास कभी रोती, तो कभी हंसती जाती थीं। उनकी सखियां इस कदलीवन में उनकी सेवा सतत् श्वेत चामर झलती कर रही थीं। वे शतकोटि संख्यक गोपियां उनकी रक्षा अहर्निश करती रहती थीं। वे सावधान होकर हाथों में बेत लेकर वहां की रक्षा तथा देखभाल करती रहती थीं। सातों द्वार तथा प्रांगण में वे अधिष्ठान करके श्रीराधा की परिचर्या करती थीं। नन्दराज राधा की यह अवस्था देखकर अपनी भार्या सहित विस्मित हो उठे। उन्होंने परम भक्ति के साथ राधा को नमस्कार किया तथा दण्डवत् प्रणाम किया॥२१-२४॥

निद्रां त्यक्त्वा च सहसा बुबुधे सेश्वरेच्छया। क्षणेन चेतनां प्राप विषयज्ञानवर्जिताम्॥२५॥
पुरतो दंपती दृष्ट्वा पप्रच्छ सादरं सती। उवाच मधुरं चैवं तथैव सखिसंसदि॥२६॥

राधा सहसा ईश्वर की इच्छा से अचानक निद्रा त्याग कर प्रबुद्ध होकर उठ गईं तथा उन्होंने क्षणमात्र में विषयज्ञान रहित चेतना लाभ कर लिया। अपने सामने नंददम्पति को खड़ा देखकर राधा ने उस सखियों की सभा में सादर मधुर वाणी में कहा-॥२५-२६॥

राधिकोवाच

कस्त्वं चात्र समायातो ब्रूहि वा किं प्रयोजनम्।
न च मे विषयज्ञानं न जानामि नरं पशुम्॥२७॥
किं जलं वा स्थलं किंवा किंवा नक्तं दिनं शृणु।
स्त्रियं पुमांसं क्लीवं वा नाहं जानामि भेदकम्॥२८॥

श्रीराधा कहती हैं-आप लोग कौन हैं? अपने आने का प्रयोजन कहिये, तथापि मुझे किसी भी बात का विषयज्ञान नहीं हो रहा कि मैं मनुष्य तथा पशु का भी भेद नहीं जान पा रही हूं। यह भी पता नहीं चल रहा है कि क्या जल है क्या थल है? अभी दिन है अथवा रात्रि। मुझे तो स्त्री-पुरुष-नपुंसक का भी भेद नहीं ज्ञात हो पा रहा है॥२७-२८॥

राधिकावचनं श्रुत्वा नन्दश्च विस्मयं ययौ।
भीता यशोदा निकटं गोपीसंभाषिता ययौ॥२९॥
उवास निकटे तस्याः समुवाच प्रियं वचः। उवास तत्र नन्दश्च गोपीदत्तासनेन च॥३०॥

राधिका का यह वचन सुनकर नन्द विस्मित हो गये। यशोदा अत्यन्त भयभीत होकर उन गोपी राधा के निकट बैठकर उनसे प्रिय वचन कहने लगीं। नन्दराज भी वहां गोपियों द्वारा प्रदत्त आसन पर बैठ गये थे॥२९-३०॥

यशोदोवाच

चेतनं कुरु राधे त्वमात्मानं रक्ष यत्नतः। द्रक्ष्यसि प्राणनाथं च सम्प्राप्ते मङ्गले दिने॥३१॥
त्वत्तो विश्वं पवित्रं च स्वकुलं च सुरेश्वरि।
गोप्यश्च पुण्यवत्यश्च त्वत्पादाम्बुजसेवया॥३२॥
लोका गायन्ति त्वत्कीर्तिं तीर्थपूतां सुमङ्गलाम्।
सन्तो वेदाश्च चत्वारः पुराणानि पुरातनीम्॥३३॥
अहं यशोदा नन्दोऽयं बुद्धिरूपे निबोध माम्।
वृषभानसुता त्वं च मां निशामय सुव्रते॥३४॥
द्वारकानगराद्भद्रे श्रीकृष्णसन्निधानतः। तवान्तिकमागताऽहं प्रेरिता हरिणा सति॥३५॥
शृणु मङ्गलवार्तां च मङ्गलं च गदाभृतः। आराद्द्रक्ष्यसि कृष्णं तं हे देवि चेतनं कुरु॥३६॥
भक्त्यात्मकं परिज्ञानं देहि मह्यं च साम्प्रतम्। त्वद्भर्तुरुपदेशेन त्वत्समीपं समागतौ॥३७॥
पश्चदायास्यति हरिस्त्वां मुहूर्तं वरानने। भविष्यत्यचिरेणैव श्रीदाम्नः शापमोचनम्॥३८॥

देवी यशोदा कहती हैं—हे राधिका! तुम चैतन्य हो जाओ। यत्न पूर्वक अपनी रक्षा करो। मंगल दिन आते ही तुम अपने प्राणनाथ का दर्शन प्राप्त करोगी। हे सुरेश्वरी! तुमने तो अपने सम्पूर्ण कुल को ही नहीं विश्व को भी पवित्र कर दिया। ये सभी गोपी भी तुम्हारे चरणकमलों की सेवा द्वारा पुण्यवती हो गयीं। भविष्य में तुम तो तीर्थों को पवित्र करने वाली, मंगलों की जननी हो। तुम्हारी कीर्त्ति का लोग गायन करेंगे। साधुजन द्वारा तथा चारों वेद तथा सभी पुराणों में भी तुम्हारी मंगल कीर्त्ति का गायन होगा। हे बुद्धिरूपिणी! तुमको क्यों बुद्धिभ्रम हो रहा है? मैं यशोदा हूं। ये महाराज नन्दराज हैं। हे सुव्रते! तुम तो वृषभानु की कन्या हो। अपनी स्मृति जाग्रत करो। हे भद्रे! साध्वी! मैं श्रीहरि द्वारा भेजी जाकर द्वारकापुरी से तुम्हारे पास आ गई हूं। हे देवी! तुम श्रीकृष्ण की मंगलवार्त्ता का श्रवण करो। तुमको शीघ्र श्रीकृष्ण का दर्शन मिलेगा। तुम चेतना लाभ करो। अभी तुम मुझे भक्तियुक्त ज्ञान का उपदेश दो। हम दोनों तुम्हारे पति जगत्पति कृष्ण की आज्ञा से यहां आये हैं। हे वरानने! तदनन्तर मुहूर्त्त काल के लिये तुम्हारे पास श्रीकृष्ण आगमन करेंगे। तब तुमको शीघ्र श्रीदाम के शाप से मुक्ति मिलेगी।।३१-३८।।

यशोदावचनं श्रुत्वा वार्तां प्राप्य गदाभृतः। श्रीकृष्णनामस्मरणाद्दूरीभूतममङ्गलम्॥३९॥
सम्प्राप चेतनं राधा संभाव्य कृष्णमातरम्।
उवाच मधुरं शान्ता लौकिकीं भक्तिमुत्तमाम्॥४०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधायशोदासं० दशाधिकशततमोऽध्यायः।।११०।।

—※※※—

यशोदा का वचन सुनकर तथा गदाधारी कृष्ण का समाचार पाकर राधा द्वारा कृष्ण के

नामस्मरण के फलस्वरूप उनका समस्त अमंगल दूर हो गया। राधा ने तब चेतना लाभ करके कृष्ण-माता से वार्त्ता किया। उन्होंने मधुर शान्त वाक्यों में उत्तम लौकिकी भक्ति का वर्णन यशोदा से किया।।३९-४०।।

।।११०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

राधा द्वारा यशोदा को भक्तिज्ञान का उपदेश तथा इसी प्रसंग में रामादि के नाम तथा कृष्णनाम की व्युत्पत्ति का कथन

राधिकोवाच

ज्ञानात्मकश्च परमो ब्रह्मेशशेषपूजितः। ज्ञानं च न ददौ तुभ्यं मन्मूलं प्रेषिता सति॥१॥

तेनैव च्छद्मना तुभ्यं[1] भावार्थं बोधयामि किम्।

वेदाः सन्तश्च भावार्थं नैव जानन्ति तस्य च॥२॥

स्त्रीजातिरबला मूढा वस्तुतोऽज्ञानतत्परा। ततस्तद्विरहेणैव सन्ततं हतचेतना॥३॥

राधिका कहती हैं–ब्रह्मा, महेश तथा अनन्तादि देवताओं द्वारा वन्दनीय ज्ञानात्मक परमेश्वर ने आपको ज्ञान प्रदान नहीं किया, यद्यपि आप उनके पास गई थीं, तथापि मैं तुमसे उस भक्ति का भावार्थ कैसे कहूं? वेद तथा सन्त भी उसका भावार्थ नहीं जानते। मैं तो अबला मूढा अज्ञान से आवृता हूं तथा उन प्रभु के विछोह से मैं सतत् हतचेतन हो गई हूं!।।१-३।।

किं वाऽहं कथयिष्यामि ज्ञानं पञ्चविधेषु च।

भक्त्यात्मकं सर्वपरं निबोध कथयामि ते॥४॥

श्रीकृष्णस्य वरेणापि न[2] साधो निर्भयो भव।

गोलोके चापि पतनं संभवेच्च कुयोगिनः॥५॥

तस्मात्सर्वं परित्यज्य भजस्व परमेश्वरम्। पुत्रबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मरूपं निशामय॥६॥

---

१. ख. नेतुं।

२. ख. त्वं।

ऐसी स्थिति में मैं उस पंचविध ज्ञान को कैसे कहूं?, तथापि इनमें से भक्त्यात्मक सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का वर्णन मैं कर रही हूं। हे साधो! श्रीकृष्ण का वर पाकर ही किसी को निर्भय नहीं हो जाना चाहिये। जो कुयोगी हैं, कष्टपूर्ण यत्न से गोलोकधाम पाकर भी वहां से उनका पतन हो जाता है। अतः सब कुछ त्याग कर परमेश्वर की उपासना करिये। आप लोग श्रीकृष्ण के प्रति पुत्रबुद्धि त्याग कर उनके ब्रह्मरूप का चिन्तन करिये।।४-६।।

यशोदे भवती सर्वे परित्यज्य न नश्वरम्। गत्वा वृन्दावनं रम्यं[1] पुण्यक्षेत्रं च भारतम्।।७।।
कृत्वा त्रिकालस्नानं च निर्मले यमुनाजले। कृत्वाऽष्टदलपद्मं च स्निग्धेन चन्दनेन च।।८।।
ध्यानेन गर्गदत्तेन शुद्धेन मनसा सति। सम्पूज्य परमानन्दं सानन्दं व्रज तत्पदम्।।९।।
कृत्वा निकृन्तनं कर्म पितृभिः शतकैः सह।
वैष्णवेन सहाऽऽलापं कुरुष्व सततं सति।।१०।।

हे यशोदा! आप सब नश्वर पदार्थों का त्याग करके पुण्य क्षेत्र भारत में स्थित पुण्यमय वृन्दावन में जाकर वहां पवित्र यमुना जल में त्रिसन्ध्या स्नान करके स्निग्ध चन्दन द्वारा अष्टदल पद्म का निर्माण करिये। हे साध्वी! इस पद्म में गर्गाचार्य द्वारा प्रदत्त शुद्ध महामन्त्र का ध्यान करते हुये उन परमानन्दमय पुरुष की पूजा करके उनके स्थान गोलोक में गमन करिये। हे साध्वी! कर्मसमूह जब समूल छिन्न हो जाता है, तब उस व्यक्ति के १०० पीढ़ी के पितृगण भी उसी धाम को प्राप्त कर लेते हैं। वह व्यक्ति वहां पर निरन्तर वैष्णवों के साथ वार्त्तालाप करता है। आप भी यही करिये।।७-१०।।

वरं हुतवहज्वालां भक्तो वाञ्छति पञ्जरम्। वरं च कण्टके वासं वरं च विषभक्षणम्।।११।।
हरिभक्तिविहीनानां न सङ्गं नाशकारणम्।
स्वयं नष्टो भक्तिहीनो बुद्धिभेदं करोति च।।१२।।
अङ्कुरो भक्तिवृक्षस्य भक्तसङ्गेन वर्धते। परं हरिकथालापपीयूषासेचनेन च।।१३।।
अभक्तालापदीपाग्निज्वालायाः कलयापि च।
अङ्कुरः शुष्कतां याति पुनः सेकेन वर्धते।।१४।।

जो भक्त हैं, वे अग्निज्वाला सहन करना, पिंजरबद्ध होना, कंटकों पर रहना तथा विष पीना भले ही स्वीकार कर लें, तथापि वे इससे भयभीत नहीं होते। परन्तु वे लोग हरिभक्ति रहित नाशकारण लोगों का संग करने हेतु तनिक भी इच्छा नहीं रखते। जो स्वयं भक्तिहीन होकर नष्ट हो गया, वह तो भक्तों की भी बुद्धि में (भक्ति के प्रति) भेद उत्पन्न कर देता है। भक्तिरूपी वृक्ष का अंकुर साधुसंग से ही वर्द्धित होता है। वह भक्ति का वृक्ष तो साधुसंगरूपी अमृत सिंचन से बढ़ता हुआ सर्वोत्कृष्ट हो जाता है। भक्तिहीनों के साथ वार्त्तालाप तो दीप की ज्वाला के समान है। ऐसी ज्वाला के एक अंश का भी

---
१. क. शुद्धं।

स्पर्श हो जाने से वह भक्ति अंकुर सूख जाता है। पुनः भक्तिमान साधुजन के संसर्ग रूप सिंचन से वह पुनरेव बढ़ने लगता है।।११-१४।।

तस्मादभक्तसङ्गं च सावधानः परित्यज। यथा दृष्ट्वा कालसर्पं नरो भीत्वा पलायते।।१५।।

अतः अभक्तों का साथ सावधानी से त्यागे। उसी प्रकार उनसे भयभीत होकर भाग जाये जैसे कालसर्प देखते ही व्यक्ति तत्काल पलायन कर जाते हैं।।१५।।

यशोदे च प्रयत्नेन स्वात्मनः पुत्रमीश्वरम्। राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन।।१६।।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन। इत्येकादश नामानि पठेद्वा पाठयेदिति।।१७।।
जन्मकोटिसहस्त्राणां पातकादेव मुच्यते। राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः।।१८।।
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः। रमते रमया सार्धं तेन रामं विदुर्बुधाः।।१९।।
रमाया रमणस्थानं रामं रामविदो विदुः। राश्चेति लक्ष्मीवचनो मश्चापीश्वरवाचकः।।२०।।
लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः।
नाम्नां सहस्त्रं दिव्यानां स्मरणे यत्फलं लभेत्।।२१।।
तत्फलं लभते नूनं रामोच्चारणमात्रतः। सारूप्यमुक्तिवचनो नारेति च विदुर्बुधाः।।२२।।
यो देवोऽप्ययनं तस्य स च नारायणः स्मृतः।
नाराश्च कृतपापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम्।।२३।।
यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः।
सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान्कल्पशतत्रयम्।।२४।।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्।
नारं च मोक्षणं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम्।।२५।।
तयोर्ज्ञानं भवेद्यस्मात्सोऽयं नारायणः प्रभुः।
नास्त्यन्तो यस्य वेदेषु पुराणेषु चतुर्षु च।।२६।।

ये यशोदा! आप अपने पुत्र कृष्ण की परमात्मा परमेश्वर जगदीश्वर रूप से एकान्त मन द्वारा भक्ति पूर्वक आराधना करें। जो व्यक्ति राम, नारायण, अनन्त, मुकुन्द, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, कंसारि, हरि, वैकुण्ठ, वामन–इन प्रभु के ११ नामों से पतिपाद्य परमेश्वर हरि के निमित्त स्वयं पाठ करता है, किंवा किसी के द्वारा पाठ कराता है,वह सहस्त्रकोटि जन्मार्जित पापों से छुटकारा पा लेता है। "रा" शब्द विश्ववाचक है। "म" ईश्वर वाचक है। जो समग्र विश्व के ईश्वर हैं, वे ही **राम** कहे गये हैं। वे रमा के साथ रमण करते हैं, तभी बुद्धिमान लोग उनको राम कहते हैं। जो 'रमा' के रमण स्थान हैं, रामतत्वज्ञ लोग उनको राम कहते हैं। 'रा' शब्द लक्ष्मीवाचक है। 'म' शब्द ईश्वर वाचक है। तभी जो लक्ष्मी के पति ईश्वर हैं, वे ही राम हैं। जो फल १००० दिव्य नामों के स्मरण से मिलता है, वही फल मात्र रामनाम

स्मरण से ही मिल जाता है। पण्डितगण ''नार' शब्द को उनके सारूप्य मुक्ति के अर्थ में अभिहित करते हैं। जो मुक्ति तथा सारूप्य के 'अयन' हैं उनके नामोच्चारण से पातकी भी उस धाम में गमन करते हैं। वे ही नारायण शब्द के अभिधेय हैं। अन्य मत से कृत पाप को 'नार' तथा गमन को 'अयन' कहते हैं। जिससे पापों का गमन हो जाये, वे ही **नारायण** हैं। एक बार भी नारायण उच्चारण करने वाला व्यक्ति ३०० कल्पों तक गंगा आदि सभी तीर्थों में स्नान का फल भागी होता है। यह निश्चित है। 'नार' का अर्थ है मोक्ष, अयन का अर्थ है अभिलषित पुण्यमय ज्ञान। जिससे इन दोनों का ज्ञान होता है, वे प्रभु नारायण नाम से अभिहित होते हैं। जिनका अन्त चारों वेद तथा पुराणों में नहीं मिलता।।२५-२६।।

शास्त्रेष्वन्येषु योगेषु तेनानन्तं विदुर्बुधाः। मुकुमध्ययमानं च निर्वाणं मोक्षवाचकम्।।२७।।
तद्ददाति च यो देवो मुकुन्दस्तेन कीर्तितः। मुकुं भक्तिरसप्रेमवचनं वेदसम्मतम्।।२८।।
यस्तं ददाति भक्तेभ्यो मुकुंदस्तेन कीर्तितः। सूदनं मधुदैत्यस्य यस्मात्स मधुसूदनः।।२९।।
इति सन्तो वदन्तीशं वेदे भिन्नार्थमीप्सितम्।
मधु क्लीवं च माध्वीके कृतकर्मशुभाशुभे।।३०।।
भक्तानां कर्मणां चैव सूदनं मधुसूदनः। परिणामाशुभं कर्म भ्रान्तानां मधुरं मधु।।३१।।
करोति सूदनं यो हि स एव मधुसूदन;। कृषिरुत्कृष्टवचनो णश्च सद्भक्तिवाचकः।।३२।।
अश्चापि दातृवचनः कृष्णं तेन विदुर्बुधाः। कृषिश्च परमानन्दे णश्च तद्दास्यकर्मणि।।३३।।
तयोर्दाता च यो देवस्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः।
कोटिजन्मार्जिते[1] पापे कृषिःक्लेशे च वर्तते।।३४।।
भक्तानां णश्च निर्वाणे तेन कृष्णः प्रकीर्तितः।
नाम्नां सहस्त्रं दिव्यानां त्रिरावृत्त्या चयत्फलम्।।३५।।

तभी शास्त्र तथा योगग्रन्थों में इनको बुद्धिमान लोग **अनन्त** कहते हैं। 'मुकुम्' यह मकारन्त अव्यय है तथा निर्वाण एवं मोक्ष अर्थ में अभिहित है। 'मुकुम्' अध्ययमान भी है। जो यह प्रदान करे, वह **मुकुन्द** कहा गया। 'मुकु' का अन्य अर्थ भी है। इसका अर्थ वेद में भक्ति तथा प्रेमरस कहा गया है। जो भक्तों को भक्ति एवं प्रेमरस देते हैं, वे ही मुकुन्द कहे गये हैं। जिन्होंने मधुकैटभ दैत्यगण का नाश किया था, वे ही **मधुसूदन** हैं। सन्तगण वेद में इसके अनेक अर्थ का उल्लेख पाते हैं। तदनुसार मधु तो नपुंसक लिंग है। यह कृत शुभाशुभ कर्मों का वाचक है तथा माध्वीक अर्थात् महुये से निर्मित मदिरा का भी वाचक है। जो भक्तों के कर्म का नाश (सूदन) करें, वे हैं **मधुसूदन**। जो कृत कर्म अन्ततः अशुभ परिणाम दाता है, तथापि भ्रान्त लोगों को मधुर लगता है, वह मधु है। उसका जो नाश करे, वह है **मधुसूदन**। 'कृषि' का अर्थ उत्कृष्ट वाचक है। 'ण' सद्भक्ति वाचक कथा अन्त का 'अ' (जो मात्र उच्चारण है) वह दातृवाचक है। (कृष्+ण+अ=कृष्ण) तभी इनको विद्वान् कृष्ण कह गये हैं।

१. पूर्वजन्मार्जिते इत्यपि पाठः।

अन्य मत से कृषि=परमानन्दवाचक, ण=दास्यकर्मवाचक। अतः जो परमानन्दप्रद दास्यकर्म देते हैं, वे कृष्ण हैं। मतान्तर से कृष्=कोटिजन्मार्जित पातक एवं क्लेश तथा ण=निर्वाण, अ=देने वाला। कोटि जन्मार्जित पातकों से निर्वाण देने वाला=कृष्ण! सहस्र दिव्य कृष्ण के नामों का तीन बार पाठ का जो फल है–।।२७-३५।।

एकावृत्त्या तु कृष्णस्य तत्फलं लभते नरः।
कृष्णनाम्नः परं नाम न भूतं न भविष्यति।।३६।।

वह फल मात्र एक बार 'कृष्ण' के उच्चारण से मिलता है। कृष्ण नाम से श्रेष्ठ नाम न पहले था न भविष्य में होगा।।३६।।

सर्वेभ्यश्च परं नाम कृष्णेति वैदिका विदुः।
कृष्ण कृष्णेति हे गोपी यस्तं स्मरति नित्यशः।।३७।।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धरेच्च[1] सः।
कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते।।३८।।

भस्मीभवन्ति सद्यस्तु महापातककोटयः। अश्वमेधसहस्रेभ्यः फलं कृष्णजपस्य च।।३९।।

वैदिकों का कथन है कि कृष्णनाम सबसे प्रधान है। हे गोपी! जो व्यक्ति नित्य कृष्ण-कृष्ण का उच्चारण करता उन प्रभु का स्मरण करता है, श्रीकृष्ण उसका अनायास उसी प्रकार उद्धार करते हैं जैसे जल को भेंदकर अनायास कमल खिल उठता है। यह नाम कृष्ण मंगलमय है। यह जिसकी वाणी में प्रवर्त्तित होता रहता है, उसका नरक से उद्धार होता है। उसके करोड़ों महापातक नष्ट हो जाते हैं। कृष्ण नाम जप के द्वारा एक सहस्र अश्वमेध यज्ञफल मिल जाता है।।३७-३९।।

वरं तेभ्यः पुनर्जन्म नातो भक्तपुनर्भवः। सर्वेषामपि यज्ञानां लक्षाणि च व्रतानि च।।४०।।

तीर्थस्नानानि सर्वाणि तपांस्यनशनानि च।
वेदपाठसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवः शतम्।।४१।।
कृष्णनामजपस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
तेषां लोभाद्भवेत्स्वर्गफलं च सुचिरं नृणाम्।।४२।।

स्वर्गादवश्यं पुंसश्च जपकर्तुर्हरेः पदम्। के जले सर्वदेहेऽपि शयनं यस्य चाऽऽत्मनः।।४३।।
वदन्ति वैदिकाः सर्वे तं देवं केशवं परम्। कंसश्च पातके विघ्ने रोगे शोके च दानवे।।४४।।
तेषामरिर्निहन्ता च स कंसारिः प्रकीर्तितः। रुद्ररूपेण संहर्ता विश्वानामपि नित्यशः।।४५।।

अश्वमेध यज्ञ का फल स्वर्ग में भोगने के उपरान्त पुनः जन्म लेना पड़ता है, परन्तु कृष्णनाम जपने वाला संसार में आवागमन से मुक्त हो जाता है। सभी यज्ञ, लाखों-लाख व्रत, समस्त तीर्थों में

---

१. क. ०द्धराम्यहम्।

स्नान, तप, उपवास, हजारों बार वेदपाठ, सौ बार पृथिवी प्रदक्षिणा, ये सब मिलाकर कृष्णनाम जप का १/१६वां भाग भी नहीं है। बाकी सभी कर्मों के लोभ के फलस्वरूप व्यक्ति दीर्घकाल तक स्वर्ग प्राप्त करता है, जहां से फलभोग समाप्त होने पर पुनः पतन हो जाता है। जप करने वाला हरिपद लाभ करता है। क = जल। इसमें एवं सभी देह में जो आत्मा शयनरत है, वही वेदवित् लोगों द्वारा **केशव** कहा गया है। कंस = पातक, विघ्न, रोग, शोक तथा दानवार्थक है। उसका 'अरि' वधकर्त्ता वही **कंसारि** है। जो रुद्र रूप से नित्य विश्व संहार करते हैं।।४०-४५।।

भक्तानां पातकानां च हरिस्तेन प्रकीर्तितः। मा च ब्रह्मस्वरूपा या मूलप्रकृतिरीश्वरी।।४६।।
नारायणीति विख्याता विष्णुमाया सनातनी। महालक्ष्मीस्वरूपा च वेदमाता सरस्वती।
राधा वसुंधरा गङ्गा तासां स्वामी च माधवः।४७।।

जो रुद्ररूपेण विश्वमण्डल का संहार करते हैं तथा भक्तों के पातकों का नित्य हरण करते हैं, वे ही **हरि** कहे गये हैं। 'मा'=ब्रह्मस्वरूपा मूल प्रकृति, ईश्वरी, नारायणी, सनातनी, विष्णु माया, महालक्ष्मीस्वरूपा, वेदमाता सरस्वती, राधा, वसुन्धरा गंगा। यह 'मा' का अर्थ है। उसके जो स्वामी हैं, वे ही **माधव** हैं।।४६-४७।।

ब्रह्मेशशेषादिभवैश्च वन्द्यं ध्यानैर्न किञ्चित्सनकादिभिश्च।
वेदैः पुराणैर्न निरूपितं च भजस्व भवत्या नवनीतचोरम्।।४८।।
क्व चापि दुग्धं क्व दधि घृतं वा नवोद्धतं वा क्व च तक्रमीप्सितम्।
तेषां क्व चोरो भवति क्व चापि क्व बन्धनं[1] ते भवमूलमध्ये।।४९।।
न योगिभिः सिद्धगणैर्मुनीन्द्रैर्न भक्तसङ्घैर्भवपद्मशेषैः।
योगैर्न बद्धो न हि रक्षितुं क्षमैः कथं स वद्धस्तव मूलमध्यतः।।५०।।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, अनन्तदेव जिनकी वन्दना करते हैं, सनकादि ऋषिगण जिनका ध्यान करके भी अन्त नहीं पाते (रहस्य से अवगत नहीं हो पाते), वेद-पुराणादि भी जिनके यथार्थ तत्व को निरूपित नहीं कर पाते, आप भक्तिभाव के साथ उन माखन चोर का भजन करिये। यहां दुग्ध, दधि, घृत, अभिलषित ताजा मट्ठा कहां है? उनका हरण करने वाला (श्रीकृष्ण) कहां है? वृक्ष के तने में आपके द्वारा बाधा गया बन्धन कहां है? (अर्थात् आपने इस संसार वृक्ष के मूल में जिन श्रीकृष्ण को रज्जु से बांधा था, वे कहां हैं?)। जिन श्रीकृष्ण को योगी, सिद्ध, मुनीन्द्र, भक्त, महेश्वर, ब्रह्मा तथा शेष भी अपने मानसमन्दिर में बांध नहीं सके, योगद्वारा भी जिनको वे बद्ध नहीं कर सके, उनको आपने ओखली में कैसे बांध दिया?।।४८-५०।।

प्रेम्णा नु भक्त्या स्तवनेन पूजया भजस्व पुत्रं तरसा च भारते।
हृत्पद्ममध्ये स्थितमीश्वरं परं ध्यानेन यत्नेन च सन्ततं सति।।५१।।

१. क. ०न भवमूलं च मध्ये।

वरं वृणुष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम्। सर्वं दास्यामि जगति देवानामपि दुर्लभम्।।५२।।

हे सती! प्रेम, भक्ति, स्तवन, पूजन, तप तथा ध्यान से यत्नतः हृदयकमल स्थित परमेश्वर का भजन आप निरन्तर करिये। आपका मंगल हो। आपको जो मनोवांछित वर की कामना हो, वह मांगिये। मैं आपको देव दुर्लभ वर भी प्रदान करूंगी।।५१-५२।।

यशोदोवाच

हरौ च निश्चला भक्तिस्तद्दास्यं वाञ्छितं मम।
तव नाम्नश्च व्युत्पत्तिः का वा तद्वक्तुमर्हसि।।५३।।

देवी यशोदा कहती हैं—हे राधिके! मुझे हरि की निश्चला भक्ति तथा उनका दास्य ही अभिलषित है। तुम्हारे नाम की क्या व्युत्पत्ति है, यह भी मुझे बतलाओ।।५३।।

राधिकोवाच

भवेद्भक्तिर्निश्चला ते हरेर्दास्यं च दुर्लभम्। लभस्व मद्वरेणापि कथयामि सुनिर्णयम्।।५४।।
पुरा नन्देन दृष्टाऽहं भाण्डीरे वटमूलके। मया च कथितो नन्दो निषिद्धश्च प्रजेश्वरः।।५५।।
अहमेव स्वयं राधा छाया रायणकामिनी। रायणः श्रीहरेरंशः पार्षदप्रवरो महान्।।५६।।
राशब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु।
विश्वप्राणिषु विश्वेषु धा धात्री मातृवाचकः।।५७।।
धात्री माताऽहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी। तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः।।५८।।

देवी राधा कहती हैं—मेरे वर द्वारा आपको श्रीहरि के प्रति निश्चला भक्ति तथा दुर्लभ हरिदास्य प्राप्त हो। अब मैं उत्तम निर्णय (स्वरूप निर्णय) कहती हूं। श्रवण करो। पूर्व में मैं भाण्डीरवनस्थ वटवृक्ष के मूल में बैठी थी। तभी ज्ञानी नन्दराज ने मुझे वहां देखा। उस समय मैंने व्रजेश्वर नन्द को रोक कर कहा—"मैं स्वयं तो राधा हूं। परन्तु छायारूप से रायण की पत्नी हूं। रायण श्रीहरि के अंश से उत्पन्न उनके प्रधान पार्षद हैं। 'रा' यह शब्द महाविष्णु वाचक है, जिनके प्रत्येक रोम-कूप में एक-एक विश्व विराजमान है। 'धा' शब्द धात्री, मातृवाचक है। विश्व के प्राणी तथा समग्र विश्व 'रा' शब्द से जाने। 'धा' शब्द से उसकी माता धात्री मूलप्रकृति ईश्वरी मैं ही हूं। तभी पूर्वकाल में श्रीहरि तथा बुधजन ने मेरा नाम राधा रखा।।५४-५८।।

अहं सुदामशापेन वृषभानसुताऽधुना। शतवर्षं च विच्छेदो हरिणा सह साम्प्रतम्।।५९।।
वृषभानश्च कृष्णस्य पार्षदप्रवरो महान्। पितृणां मानसी कन्या मम माता कलावती।।६०।।
अयोनिसंभवाऽहं च मम माता च भारते।
पुनः सार्धं च युष्माभिर्यास्यामि श्रीहरेः पदम्।।६१।।
इति ते कथितं सर्वं व्रजं व्रज व्रजेश्वरि। व्रजेश्वरेण सहिता स्वामिना ज्ञानिना सति।।६२।।

ममाधुना च भवती ध्यानस्य व्यवधानिका। ध्यानभङ्गे महादोषो नराणामपि सुन्दरि॥६३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधायशोदासं० एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥१११॥

—※※※—

हे सुन्दरी! सती! इस समय मैं श्रीदाम के शाप से वृषभानु पुत्री हो गई। सम्प्रति हरि के साथ मेरा १०० वर्ष का वियोग होगा। मेरी माता पितरों की मानसी कन्या कलावती हैं। भारत में मेरी माता तथा मैं, ये दोनों अयोनिजा हैं। मैं पुनः आप सबको साथ लेकर हरिलोक में जाऊंगी। हे ब्रजेश्वरी यशोदा! यह सब मैंने तुमसे कह दिया। अब आप अपने स्वामी के साथ व्रज जायें। आपके कारण मेरे श्रीकृष्ण ध्यान में बाधा हो रही है। ध्यानभंग कराने वाले मनुष्य महादोष भागी होते हैं।।५९-६३।।

।।१११वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिणी के गर्भ से कामदेव (प्रद्युम्न) का जन्म, शम्बर वध के पश्चात् रति तथा काम का द्वारका आना, श्रीकृष्ण की १६००० रानियों के पुत्रों की संख्या, दुर्वासा को श्रीकृष्ण का कन्यादान, दुर्वासाकृत श्रीकृष्ण स्तव

नारायण उवाच

वासुदेवो द्वारकायां वसुदेवाज्ञया मुने। प्रययौ रत्नरुचिरं रुक्मिणीमन्दिरं वरम्॥१॥
शुद्धस्फटिकसंकाशममूल्यरत्ननिर्मितम्। पुरतः परितो रम्यं नानाचित्रेण चित्रितम्॥२॥
अमूल्यरत्नकलशं श्वेतचामरदर्पणैः। वह्निशुद्धांशुकैः शुद्धैः परितः परिशोभितम्॥३॥
ददर्श रुक्मिणीं देवीमतीव नवयौवनाम्। रत्नपर्यङ्कमारुह्य शयानां सस्मितां मुदा॥४॥
अप्रौढां च नवोढां तां नवसङ्गमलज्जिताम्। अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणेन विभूषिताम्॥५॥

सुचारुकबरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम्।
दृष्ट्वा कृष्णं भीष्मकन्या सहसा प्रणनाम सा॥६॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनिवर! वसुदेव की आज्ञा से वासुदेव श्रीकृष्ण ने द्वारका आकर रत्ननिर्मित उत्कृष्ट रुक्मिणी भवन में प्रवेश किया। अमूल्य रत्न निर्मित इस गृह की आभा विशुद्ध स्फटिक के समान दीप्यमान थी। इसका अग्रभाग अत्यन्त रमणीय था तथा चारों ओर नाना चित्र-चित्रित थे। स्थान-स्थान पर अमूल्य रत्नकलश लगे थे। यह श्वेत चामर, दर्पण तथा अग्निशुद्ध रेशमी वस्त्रों से चतुर्दिक् शोभायमान था। श्रीकृष्ण ने वहां अतीव नवयौवना रुक्मिणी देवी को देखा जो अमूल्य रत्नाभरणों से भूषिता थीं। उनका केशपाश (जूड़ा) उत्तम मालती माला से भूषिता था। वे रत्नमयी पलंग पर मुदित तथा मुस्कराती हुई शयन कर रही थीं। उन भीष्मक कन्या ने कृष्ण को देखकर सहसा उनको प्रणाम किया।।१-६।।

तां सम्प्राप्य जगन्नाथो रत्नतल्पे उवास सः। शुभक्षणे च शुभया च रेमे रामया सह।।७।।
सुखसंभोगमात्रेण मूर्च्छामाप मुदा सती। तस्यां जज्ञे कामदेवो भस्मीभूतश्च शंभुना।८।।
स शम्बरं निहत्यैव तत्र प्राप रतिं सतीम्। रतिर्मायावतीनाम्ना सङ्केतेन सुरस्य च।
छायां दत्त्वा च शयने गृहिणी शम्बरालये।।९।।

रुक्मिणी को प्राप्त करके जगत्पति श्रीकृष्ण उस रत्नमयी शय्या पर आसीन हो गये। शुभक्षण आसन्न होने पर वे उन शुभ पवित्र नारी से रमण करने लगे। सती रुक्मिणी सुख-संभोग मात्र से आनन्दित होकर अपनी सुध-बुध खो बैठीं। इस संभोग से शंकर द्वारा भस्मीकृत कामदेव की उत्पत्ति हो गई थी। इन कामदेव (प्रद्युम्न) ने उस शंबर दैत्य का वध करके पतिव्रता रति को पुनः प्राप्त किया। रति देवता के निर्देश से शंबर के गृह में मायावती के नाम से रहती थीं। वे शम्बर के पास अपनी छाया को ही भेजती रहती थीं।।७-९।।

नारद उवाच

जहार शम्बरं कामो दैत्यं केन प्रकारतः। कथयस्व महाभाग विस्तरेण शुभां कथाम्।।१०।।

देवर्षि नारद कहते हैं–शम्बर दैत्य को कामदेव ने कैसे निहत किया? हे महाभाग! इस शुभ-कथा को विस्तार से कहें।।१०।।

नारायण उवाच

समतीते च सप्ताहे रुक्मिणीसूतिकागृहात्।
गृहीत्वा बालकं दैत्यो जगाम स्वालयं जवात्।।११।।
अपुत्रकश्च दैत्येशः पुत्रं प्राप्य प्रहर्षितः। मायावत्यै ददौ हृष्टो हृष्टा मायावती सती।।१२।।
अतीव पालनेनैव वर्धयामास बालकम्। सरस्वती तां रहसि कथयामास निर्जने।।१३।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–जब रुक्मिणी का शिशु एक सप्ताह का हो गया, तब शम्बर दैत्य ने रुक्मिणी के सूतिका गृह से नवजात बालक का हरण किया तथा अपने गृह ले गया। दैत्यराज

पुत्रहीन था। उसने उस पुत्र को पत्नी को दे दिया। सती मायावती ने प्रसन्न होकर उस शिशु का अत्यन्त पालन किया, जिससे बालक वर्द्धित हो गया। एक दिन निर्जन स्थान में देवी सरस्वती ने मायावती से कहा–।।११-१३।।

सरस्वत्युवाच

शिवकोपानले पूर्वं भस्मीभूतः पतिस्तव। स चायं रुक्मिणीपुत्रो दैत्येनैव समाहृतः।।१४।।

माययाऽपि च मायेशो रुक्मिणीसूतिकागृहात्।
समानीय ददौ तुभ्यं पतिस्तेऽयं न चाऽऽत्मजः।।१५।।

कामं च कथयामास जगन्माता च सा सती। तव पत्नी रतिश्चेयं रमस्व रामया सह।।१६।।

त्वमेव रुक्मिणीपुत्रो नान्यदैत्यस्य मन्मथः।
कुररीव सती नित्यं रोदिति स्म त्वया विना।।१७।।

देवी सरस्वती कहती हैं–" पूर्वकाल में तुम्हारा पति कामदेव शिव की कोपाग्नि में भस्मीभूत हो गया था। वही कामदेव यह रुक्मिणी का पुत्र है, जो दैत्य द्वारा हरण करके यहां लाया गया है। मायावी शम्बर ने अपनी माया द्वारा रुक्मिणी के सूतिका गृह से इस कुमार को लाकर तुमको दिया है। यह कुमार तुम्हारा पति है। पुत्र नहीं है!" तदनन्तर जगन्माता सरस्वती ने कामदेव (कुमार) से कहा–यह तुम्हारी भार्या रति है। तुम इसके साथ रमण करो। हे काम! तुम रुक्मिणी के पुत्र हो। दैत्य पुत्र नहीं हो। यह सती तुम्हारे बिना कुररी पक्षी की तरह नित्य रुदन करती थी।।१४-१७।।

इत्युक्त्वा च ययौ वाणी ब्रह्माणी ब्रह्मणः पदम्।
स रेमे निर्जने नित्यं रामया सह सुन्दरः।।१८।।

एकदा मन्मथं दैत्यो ददर्श रहसि स्थितम्। शृङ्गारं रामया सार्धं कुर्वन्तं कौतुकेन च।।१९।।

यह कहकर ब्रह्माणी ब्रह्मलोक प्रस्थान कर गयीं। तब कामदेव जो अत्यन्त सुन्दर रूप प्रद्युम्न थे, निर्जन में नित्य रति के साथ रमण रत रहने लगे। एक बार दैत्य शम्बर ने एकान्त में कामदेव को रति के साथ श्रृंगारपूर्ण समागम करते कौतुक पूर्वक देख लिया!।।१८-१९।।

सस्मितं सस्मितायाश्च मध्यवक्षःस्थलस्थितम्।
रतिं ददर्श कामेन मूर्च्छितां सुरतोत्सुकाम्।।२०।।
दृष्ट्वा चुकोप दैत्यश्च जग्राह खड्गमुत्तमम्।
उवाच खड्गहस्तश्च कामदेवं रतिं सतीम्।।२१।।

उसने मायावती के वक्षस्थल पर आरूढ़ मुस्कराते हुये समागम रत कामदेव को देखा। काम द्वारा सुरतोत्सुक रति को सुध-बुध खो बैठे देखकर शम्बर ने कुपित होकर खड्ग उठाया तथा कामदेव एवं रति से कहने लगा।।२०-२१।।

शाम्बर उवाच

धिक् त्वां महाकामुकं च मूर्खं पण्डितमानिनम्।
महापातकिनां श्रेष्ठं प्रमत्तं मातृगामिनम्॥२२॥
धिक् त्वां च पुंश्चलीं मत्तां कामुकीं हतचेतनाम्।
पुत्रं गृहीत्वा रहसि करोषि सुरतिं सति॥२३॥

शम्बर दैत्य कहता है—हे मूर्ख कामुकाधम! तुमको धिक्कार है। तुम स्वयं को पण्डित मानते हो और तुम्हारे जैसा महापातकी अन्य कोई नहीं है। तुम तो इतना उन्मत्त हो गये कि माता के साथ रमण किया है। हे पुंश्चली मायावती! तुमको धिक्कार है। तुम कामुकी तथा इतनी उन्मत्ता हो? इतनी ज्ञानशून्य हो कि पुत्र के साथ निर्जन में रमण कर रही हो!॥२२-२३॥

इत्येवमुक्त्वा खड्गं च तामेव हन्तुमुद्यतः। जिघांसन्तं रतिं दैत्यं प्रेरयामास मन्मथः॥२४॥
पपात दूरतो ब्रह्मन्मूर्च्छितः स्वाङ्गपीडितः। पुनश्च चेतनां प्राप्य कोपेन प्रज्वलन्निव॥२५॥
शिवदत्तं च शूलं च जग्राह निर्भरेण च। शतसूर्यप्रभं शूलं प्रलयाग्निसमं मुने॥२६॥

दृष्ट्वाऽऽजग्मुश्च देवाश्च ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः।
पवनः कथयामास कर्णे कामस्य यत्नतः॥२७॥
स्मर स्मर महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्।
पवनस्य वचः श्रुत्वा दुर्गां सस्मार मन्मथः॥२८॥

यह कहकर वह खड्ग उठाकर रति को मारने को उद्यत हो गया। यह देखकर कामदेव ने दैत्य को दूर फेंक दिया। हे ब्रह्मन्! इस आघात से अंगों में पीड़ा के कारण दैत्य मूर्च्छित हो गया। पुनः चेतना प्राप्त होने पर वह दैत्य क्रोध से जल उठा तथा उसने शिवप्रदत्त शूल को पकड़ लिया। हे मुनिवर! वह शूल सैकड़ों सूर्य के समान प्रभावान् तथा प्रलयाग्नि के समान था। यह देखकर वहां ब्रह्मा, महेश तथा शेष आ गये। तब पवनदेव ने काम (प्रद्युम्न) के कानों में यत्नतः कहा कि तुम महामाया दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का स्मरण करो। मन्मथ (प्रद्युम्न) ने पवनदेव का कथन सुनकर तत्काल भगवती दुर्गा का स्मरण किया!॥२४-२८॥

शूलं बभूव तस्याङ्गे रम्यं माल्यं मनोहरम्।
ब्रह्मास्त्रेण च तं दैत्यं जघान मन्मथो मुदा॥२९॥
रतिं गृहीत्वा यानेन जगाम द्वारकां पुरीम्।
प्रययुर्देवताः सर्वा स्तुत्वा च पार्वतीं स्वयम्॥३०॥

देवी दुर्गा का स्मरण करते ही वह शूल रमणीय मनोहर माला के समान हो गया। रतिपति काम ने अत्यन्त आनन्द के साथ ब्रह्मास्त्र के प्रहार से दैत्य शम्बर का वध कर दिया। अब कामदेव

(प्रद्युम्न) रति के साथ द्वारकापुरी पहुंच गये। देवगण भी वहां पार्वती की स्तुति करके देवगण चले गये।।२९-३०।।

रुक्मिणी मङ्गलं कृत्वा प्रजग्राह रतिं सुतम्। उत्सवं कारयामास परं स्वस्त्ययनं हरिः।।३१।।

ब्राह्मणान्भोजयामास पूजयामास पार्वतीम्।
अथ कृष्णः क्रमणैव वेदोक्ते मङ्गले दिने।।३२।।
सप्तानां रमणीनां च पाणिग्राहं चकार ह।
कालिन्दीं सत्यभामां च सत्यां नाग्निजितीं सतीम्।।३३।।
जाम्बवतीं लक्ष्मणां च समुद्वाहं चकार सः।
ताभिः सार्धं क्रमेणैव पुत्रोत्पत्तिं[1] चकार ह।।३४।।

तदनन्तर रुक्मिणी ने वहां मङ्गलाचार सम्पन्न करके रति तथा पुत्र प्रद्युम्न को ग्रहण करके उत्सव मनाया। कृष्ण ने स्वस्त्ययन तथा महोत्सव सम्पन्न किया। उन्होंने पार्वती की पूजा तथा ब्राह्मणों को भोजन भी कराया इसके अनन्तर कृष्ण ने वेदोक्त मंगलमय तिथियों पर एक के बाद एक करके ७ स्त्रियों से विवाह किया। उनके नाम हैं–सती कालिन्दी, सत्यभामा, सत्या, नाग्निजिति, जाम्बवती, लक्ष्मणा। इन सबसे कृष्ण ने क्रमशः पुत्रोत्पत्ति किया।।३१-३४।।

एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च। निहत्य नरकं दैत्यं सपुत्रं[2] च नृपेश्वरम्।।३५।।
बलवन्तं मुरं दैत्यं जघान रणमूर्धनि। ददर्श कन्यास्तत्रस्थाः सहस्राणां च षोडश।।३६।।
शताधिका वयस्याश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनाः। प्रफुल्लवदनाः सर्वा रत्नभूषणभूषिताः।।३७।।

शुभक्षणे च तासां च पाणिं जग्राह माधवः।
ताभिः सार्धं स रेमे च क्रमेण च शुभक्षणे।।३८।।

एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च। हरेरेतान्यपत्यानि बभूवुश्च पृथक्पृथक्।।३९।।

एक-एक पत्नी से १० पुत्र तथा १ कन्या जन्मी। कृष्ण ने दैत्यराज नरक का पुत्रसहित वध किया। उन्होंने रणभूमि के अग्रभाग में महाबली मुरदैत्य का भी वध करके उन्होंने वहां १६००० कन्याओं को देखा। उनमें से शताधिक स्त्रियां स्थिरयौवना तथा समवयस्का सखी थीं। वे सभी रत्नमयभूषण भूषिता तथा प्रफुल्लवदना थीं। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने शुभ मुहूर्त्त में उनके साथ पाणिग्रहण कर लिया। शुभक्षण में श्रीकृष्ण ने उनके साथ यथाक्रमेण रमण किया तथा सभी स्त्रियों के गर्भ से क्रमशः १०-१० पुत्र तथा १-१ कन्या उत्पन्न किया।।३५-३९।।

एकदा द्वारकां रम्यां दुर्वासा मुनिपुङ्गवः।
शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्धमाजगामावलीलया।।४०।।

---

१. क. स रेमे च पृथक्पृथक्।
२. क. ०पुरं।

राजा महोग्रसेनश्च सपुत्रः सपुरोहितः। वसुदेवो वासुदेवोऽप्यक्रूरश्चोद्धवस्तथा॥४१॥
नीत्वा षोडशोपचारं प्रणेमुर्मुनिपुङ्गवम्।
शुभाशिषं च प्रददौ तेभ्यो ब्रह्मन्पृथक्पृथक्॥४२॥
एकानंशां च कन्यां तां ददौ तस्मै शुभक्षणे।
मुक्तामाणिक्यहीरांश्च रत्नं च यौतकं ददौ॥४३॥

एक बार महामुनि दुर्वासा रम्या द्वारिकापुरी में अपने तीन कोटि शिष्यों सहित लीला पूर्वक पहुंचे। हे ब्रह्मन्! राजा उग्रसेन तथा पुरोहित, वसुदेव, अक्रूर, उद्धव, आदि ने षोडशोपचार द्वारा दुर्वासा का पूजन करके उनको प्रणाम किया। हे ब्रह्मन्! दुर्वासा ने भी इन सभी को अलग-अलग शुभ आशीर्वाद प्रदान किया। वसुदेव ने एक शुभक्षण में अपनी कन्या एकानंशा मुनिप्रवर दुर्वासा को प्रदान कर दिया। इसी के साथ वसुदेव ने दहेज में मुक्ता, हीरा, माणिक्य तथा अनेक प्रकार के रत्नसमूह प्रदान किया था।।४०-४३।।

स रेमे रामया सार्धं माहेन्द्रे रत्नमन्दिरे। रत्नेन्द्रसारनिर्माणं ददौ तस्मै शुभाश्रमम्॥४४॥
एकदा च मुनिश्रेष्ठः समालोच्य स्वचेतसा। शयानं कुत्रचिद्रम्यपर्यङ्के रत्ननिर्मिते॥४५॥
श्रुतवन्तं पुराणं च श्रद्धया कुत्रचिद्विभुम्।
महोत्सवे नियुक्तं च कुत्रचित्प्राङ्गणे शुभे॥४६॥
ताम्बूलं भुक्तवन्तं च भक्त्या दत्तं च सत्यया।
कुत्रचित्सेवितं तल्पे रुक्मिण्या श्वेतचामरैः॥४७॥
कालिन्दीसेवितपदं शयानं कुत्रचिन्मुदा। सर्वत्र समसंभाषां चकार भगवान्मुनिम्॥४८॥
विस्मयं प्रययौ विप्रो दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम्। तुष्टाव जगतीनाथं रुक्मिणीमन्दिरे पुनः।
वसन्तं च सुधर्मायां सतां संसदि सुन्दरम्॥४९॥

मुनि दुर्वासा ने महेन्द्र पर्वत पर जाकर वहां के रत्नभवन में रूपवती एकानंशा के साथ रमण किया। वसुदेव ने इन महर्षि को उत्तम रत्ननिर्मित पावन आश्रम भी प्रदान किया। एक बार इन मुनिपुंगव ने अपने मन में विचार किया कि (दिव्य दृष्टि से देखा कि) भगवान् कृष्ण तो एक साथ कहीं रम्य रत्न निर्मित शय्या पर शयन कर रहे हैं, कहीं वे सश्रद्धभाव से पुराण श्रवण कर रहे हैं, कहीं शुभ पवित्र प्रांगण में महोत्सव में निरत हैं, कहीं सत्यभामा द्वारा भक्ति के साथ प्रदत्त ताम्बूल चर्वण कर रहे हैं। कहीं शय्या पर उनको रुक्मिणी श्वेत चामर झल रही हैं। कहीं वे मुदित होकर लेटे हैं तथा कालिन्दी उनकी चरण सेवा कर रही हैं। प्रत्येक स्थान पर एक साथ मुनि के साथ कृष्ण ने वार्त्ता भी किया। विप्र दुर्वासा इस परम अद्भुत दृश्य को देखकर विस्मित हो गये। तदनन्तर एक साथ जगन्नाथ कृष्ण को रुक्मिणी के गृह में, सुधर्मा सभा में, सज्जनों की गोष्ठी में स्थित श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे।।४४-४९।।

दुर्वासा उवाच

जय जय जगतां नाथ जितसर्व जनार्दन सर्वात्मक सर्वेश सर्वबीज पुरातन निर्गुण निरीह॥५०॥
निर्लिप्त निरञ्जन निराकार भक्तानुग्रहविग्रह सत्यस्वरूपसनातन [१]निःस्वरूप नित्यनूतन॥५१॥
ब्रह्मेशशेषधनेशवन्दित पद्मया सेवितपादपद्म ब्रह्मज्योतिरनिर्वचनीय वेदाविदितगुणरूप।
महाकाशसम्माननीय परमात्मन्नमोऽस्तु ते॥५२॥

ऋषि दुर्वासा कहते हैं–हे जगन्नाथ! जनार्दन! आपकी जय हो, आपकी जय हो। आपने सब कुछ जय किया है। हे सर्वेश! आप एकमात्र सबके प्रयोजनीय तथा सबके कारण हैं। हे पुरातन! आप निर्गुण, निरीह, निर्लिप्त, निरंजन, निराकार, भक्तों पर अनुग्रह को करने हेतु ही देह धारण करने वाले! आप सत्यरूप हैं। हे सनातन! आप नित्य तथा नूतन हैं। ब्रह्मा, महेश, अनन्तदेव आपके चरणों की वन्दना करते हैं। आप ब्रह्मज्योति अनिर्वचनीय, वेदातीत हैं। हे परमात्मन्! आपको नमस्कार!।।५०–५२।।

इत्येवमुक्त्वा मनसा हरेरनुमतेन च। प्रणम्य तस्थौ विप्रेन्द्रस्तत्रैव पुरतो हरेः॥५३॥
तमुवाच जगन्नाथो हितं सत्यं पुरातनम्। ज्ञानं च वेदविहितं सर्वेषां च सतां मतम्॥५४॥

विप्र प्रवर ने एवंविध स्तव करने के उपरान्त श्रीकृष्ण को प्रणाम किया और उनकी अनुमति लेकर वहीं खड़े हो गये। तब जगत्पति हरि ने हितप्रद, सत्य, पुरातन ज्ञानमय वेदोक्त तथा समस्त साधुजन का अभिमत यह वाक्य दुर्वासा से कहा–।।५३–५४।।

मा भैर्विप्र शिवांशस्त्वं किं न जानासि ज्ञानतः।
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते॥५५॥
अहमात्मा च सर्वेषां शवाः सर्वा मया विना।
प्राणिदेहान्मयि गते यान्त्येव सर्वशक्तयः॥५६॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे विप्र! भय मत करिये। आप शिवांश हैं। आप अपने ज्ञान द्वारा यह नहीं जानते कि मैं सबका उत्पत्ति स्थान हूं। मुझसे ही समस्त सृष्टि प्रवर्तित होती है। मैं सबकी आत्मा हूं। मेरे बिना सब शवाकार ही हैं। जब प्राणियों के देह से आत्मा बहिर्गत् हो जाता है, तब उसकी सर्वशक्ति चली जाती है।।।५५–५६।।

जातावप्येक एवाहं व्यक्तावेव पृथक्पृथक्।
यो भुङ्क्ते तस्य तृप्तिः स्यान्नान्येषां च कदाचन॥५७॥
पृथग्जीवादिसर्वेषां प्रतिमानं च प्राणिनाम्।
परिपूर्णतमोऽहं च गोलोके रासमण्डले॥५८॥

---

१. क. नित्यस्व०।

श्रीदामशापाद्राधा सा मां द्रष्टुमक्षमाऽधुना।
सर्वे चैवांशरूपेण कलया च तदंशतः॥५९॥
रुक्मिणीमन्दिरे चांशोऽप्यन्यासां मन्दिरे कलाः।
ममापि कुत्रचिच्चांशं कुत्रचिच्च कलाकलाः॥६०॥
कलाकलांशाः कुत्रापि प्रतिमासु च देहिषु।
इत्युक्त्वा जगतां नाथो गृहस्याभ्यन्तरं ययौ।
दुर्वासाश्च प्रियां त्यक्त्वा श्रीहरेस्तपसे गतः॥६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० मुनिकृष्णसं० द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः॥११२॥

मैं जातिरूपेण तथा व्यक्तिगंतरूपेण पृथक्तः व्यक्त होता रहता हूं। जो व्यक्ति भोजन करता है, उसी से उसकी तृप्ति होती है। अन्य की उस भोजन से तृप्ति नहीं होती। जीवों की तथा प्राणीगण की प्रतिमा भिन्न-भिन्न होती है। (प्रतिमा=आकृति) मैं गोलोकस्थ रासमण्डल में परिपूर्णतम रहता हूं।

(अर्थात् श्रीकृष्ण जीवों में अवस्थित रहते हैं, तब पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं। वे रासमण्डल में एक-अद्वितीय रहते हैं) श्रीदाम के शाप के कारण प्रेममयी राधा इस समय मुझे देखने में असमर्थ हैं। सभी स्थानों में मैं अंशतः विद्यमान रहता हूं। कहीं-कहीं मेरा अंश है। कहीं-कहीं मेरे अंश का भी अंश है। कहीं कला की कला है। कोई कला का कलांश है। सभी नारी राधा के अंश तथा कलांश से उत्पन्न हैं। रुक्मिणी के भवन में राधा का अंश है। अन्य पत्नियों के भवन में राधा की कलाये हैं।" यह कहकर श्रीकृष्ण गृह में चले गये। दुर्वासा भी पत्नी को त्याग कर तपःश्चरण हेतु चले गये।॥५७-६१॥

॥११२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

पार्वती के उपदेश से दुर्वासा का कैलास से द्वारका आना, संक्षेप में महाभारत का वर्णन, श्रीकृष्ण द्वारा जरासंध तथा शाल्ववध, शिशुपाल तथा दन्तवक्त्र वध, देवकी को मृतपुत्र को प्रदान करना, पारिजातहरण तथा सत्य-भामा का पुण्यक व्रतानुष्ठान

नारायण उवाच

सशिष्यश्चापि दुर्वासास्त्यक्त्वा च द्वारकां पुरीम्।
कैलासं प्रययौ भक्त्या शङ्करं द्रष्टुमीश्वरम्॥१॥
गत्वा मुनिश्च कैलासं प्रणनाम शिवं शिवाम्।
तुष्टाव परया भक्त्या सशिष्यः प्रणतः शुचिः॥२॥
तत्सर्वं कथयामास वृत्तान्तं श्रीहरेरपि। आत्मनस्तपसस्तत्त्वं स्ववैराग्यं च चेतसः॥३॥
मुनेश्च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य पार्वती सती। तमुवाच हितं सत्यं साक्षाच्छंकरसन्निधौ॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–तीन कोटि शिष्यों से घिरे दुर्वासा ने द्वारकापुरी का त्याग कर दिया तथा शंकर के दर्शनार्थ कैलास गये। कैलास जाकर दुर्वासा मुनि ने शिव तथा दुर्गा को प्रणाम किया। वहां दुर्वासा ने शिष्यसहित दुर्गा को प्रणाम किया और परमभक्ति के साथ प्रणतभाव से शिष्यों सहित पवित्र होकर उनका स्तव किया। तत्पश्चात् दुर्वासा ने श्रीहरि का समस्त वृत्तान्त और अपनी तपस्या की प्रवृत्ति का वर्णन किया। पतिव्रता पार्वती मुनि का वृत्तान्त सुनकर हंसने लगी तथा उन्होंने हंसते हुये शिव के सामने ही परम हितकारी एवं सत्यवचन ऋषि दुर्वासा से कहा–॥१–४॥

पार्वत्युवाच

धर्मतत्त्वं न जानासि धर्मिष्ठं मन्यसे स्वयम्[1]।
अनपत्यां परित्यज्य क्व यासि तपसे मुने॥५॥
अनपत्यां च युवतीं कुलजां च पतिव्रताम्।
त्यक्त्वा भवेयुः संन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा॥६॥
वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः।
तीर्थे वा तपसे वाऽपि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम्॥७॥

---
१. ख. स्वकम्।

न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम्। अभिशापेन भार्याया नरकं च परत्र च॥८॥

देवी पार्वती कहती हैं–हे मुनिवर! तुम धर्म का तत्व तो जानते नहीं उलटे स्वयं को धार्मिक मानते हो? जो व्यक्ति अपनी सुकुलोत्पन्ना सन्तान रहित पतिव्रता नारी को छोड़कर संन्यासी, ब्रह्मचारी, किंवा यती हो जाता है अथवा जो व्यक्ति इस स्थिति में पत्नी को छोड़कर वाणिज्य के लिये अथवा अन्य प्रयोजन से चिरकाल के लिये दूर देश चला जाता है, उसे मोक्षलाभ नहीं होता। ऐसे व्यक्ति को जो अपने जन्म-मरण-चक्र को समाप्त करने हेतु तीर्थयात्री, तपस्वी जीवन अपना लेता है, उसे तो मोक्ष मिलना दूर की बात है, वह धर्म से च्युत होता है। यह निश्चित जाने। पत्नी के अभिशाप के कारण मृत्यु के पश्चात् उसे नरक मिलेगा॥५-८॥

इहैव च यशोनाश इत्याह कमलोद्भवः। द्वारकां गच्छ हे विप्र स्वधर्मं रक्ष साम्प्रतम्॥९॥
एकानंशां मदंशां च धर्मतः परिपालय। पादपद्मार्जितं[1] पादपद्मं सर्वसुदुर्लभम्॥१०॥
सन्ततं शंभुना गीतं मुनीन्द्रैः सनकादिभिः। परित्यज सुरतरोः कृष्णस्य परमात्मनः॥११॥

क्व यासि तपसे वत्स सुधां त्यक्त्वा मनोहराम्।
श्रीकृष्णपादपद्मं च स्वप्ने जपति यो मुने॥१२॥
शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।
यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्धके यच्च यौवने॥१३॥
कामतोऽकामतो वाऽपि भस्मीभूतं च पातकम्।
साक्षाद्यो भारते वर्षे श्रीकृष्णचरणाम्बुजम्॥१४॥
दृष्ट्वा सद्यो भवेत्पूज्यो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्।
कोटिजन्मार्जितात्सद्यः कृतपापाद्विमुच्यते॥१५॥

उसका तो इहलोक में भी यश नष्ट हो जाता है। ऐसा ब्रह्मा का कथन है। हे विप्र दुर्वासा! आप द्वारका जाकर अभी अपने धर्म की रक्षा करिये। मेरे अंश से जन्मी एकानंशा का धर्मतः पालन करें। ब्रह्मा तथा लक्ष्मी निरन्तर जिनके चरणकमल की अर्चना करती हैं, जो पादपद्म सर्वदुर्लभ है, जिनका सनकादि मुनिगण तथा भगवान् शंकर तक ध्यान करते हैं, उन सुरगुरु परमात्मा के चरणों का त्याग करके आप तपस्यार्थ कहां जा रहे हैं? हे मुनिवर! श्रीकृष्ण के चरणकमल का जप स्वप्न में भी करने वाला शतजन्मार्जित पातकों से मुक्त हो जाता है। यह निःसंदिग्ध बात है। उस व्यक्ति ने अपनी बाल्यावस्था, कौमारावस्था में अथवा युवावस्था किंवा वृद्धावस्था में जो कुछ भी पातक ज्ञानतः-अज्ञानतः किया होगा, वे सब भस्मीभूत हो जाते हैं। भारतवर्ष में श्रीकृष्ण के चरणों का साक्षात् दर्शन करने वाला तत्काल पूज्य, जीवन्मुक्त होगा, यह निश्चित है। वह करोड़ों जन्मों में किये पातकों तक से मुक्त हो जाता है॥९-१५॥

१. क. ०दपाद्यर्चितं।

सर्वाण्येव हि तीर्थानि यतः पूतानि नित्यशः।
तद्व्रतं तत्तपः सत्यं तत्पुण्यं तच्च पूजनम्॥१६॥
सफलं कृष्णसम्बन्धि स्वजन्मखण्डनं यतः।
कृष्णभक्तिविहीनश्च ब्राह्मणो वेदपारगः॥१७॥
तत्सङ्गाच्च तदालापाद्भक्तभक्तिः प्रणश्यति।
कृष्णस्योच्छिष्टभोजी यः कृष्णभक्तश्च ब्राह्मणः॥१८॥

जिससे समस्त तीर्थ पावन हो जाते हैं उन चरणकमलों का दर्शन ही व्रत है, उनका दर्शन ही तपस्या है। उन चरणकमलों का दर्शन ही सत्य, पुण्यमय तथा पूजन स्वरूप है। इससे जन्मादिरूप आवागमन का खण्डन हो जाता है। जो ब्राह्मण कृष्ण भक्ति से रहित है भले ही वह वेद पारंगत क्यों न हो, उसकी संगति से तथा उसके साथ वार्त्तालाप से व्यक्ति की भक्ति का नाश हो जाता है। जो ब्राह्मण कृष्ण का उच्छिष्ट भोजी है, (जो कृष्ण का प्रसाद नैवेद्य भक्षण करता है), कृष्ण भक्त है।।१६-१८।।

आवह्निपवनात्पूतः पूतं कर्तुं जगत्क्षमः।
श्रीकृष्णं च परित्यज्य क्व यासि तपसे द्विज॥१९॥
तपसां फलमाप्नोति श्रीकृष्णस्मरणेन च।
यतो भक्तिर्न च भवेच्छ्रीकृष्णे परमात्मनि॥२०॥
स गुरुः परमो वैरी करोति जन्म निष्फलम्। पार्वतीवचनं श्रुत्वा शङ्करः प्रेमविह्वलः॥२१॥

वह इतना पवित्र है कि वह अग्नि, जल, वायु को भी पवित्र करता है। यहां तक कि संसार को पावन कर देता है। हे द्विज! ऐसे कृष्ण को छोड़कर आप कहां तप करने जा रहे हैं? जिस गुरु द्वारा परमात्मा श्रीकृष्ण की भक्ति का उपदेश शिष्य को प्राप्त न हो, वह गुरु तो शिष्य का परमशत्रु है। उसने तो शिष्य का जन्म व्यर्थ कर दिया। पार्वती का यह वचन सुनकर भगवान् शंकर तक प्रेम से विह्वल हो गये।।१९-२१।।

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तुष्टाव परमेश्वरीम्। दुर्वासाः प्रणतिं कृत्वा शिवदुर्गापदाम्बुजे॥२२॥
स्मारं स्मारं कृष्णपदं पुनश्च द्वारकां ययौ। तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा तुष्टाव [1]परमेश्वरम्॥२३॥
एकानंशालयं गत्वा स च रेमे तया सह। कृष्णो युधिष्ठिरध्यानात्प्रययौ हस्तिनापुरम्॥२४॥

उस समय शंकर का शरीर तक रोमांचित हो उठा। उन्होंने परमेश्वरी पार्वती की उसी समय स्तुति किया। तब दुर्वासा ने शिव एवं दुर्गा (पार्वती) के चरण कमलों पर प्रणाम किया तथा श्रीकृष्ण के चरणकमल का बारम्बार स्मरण करते-करते पुनः द्वारका चले गये। वहां जाकर उन्होंने परमेश्वर श्रीकृष्ण का दर्शन पाकर उनकी स्तुति भी किया। तत्पश्चात् वे एकानंशा के गृह में गये तथा उससे

१. क. पुरुषोत्तमम्।

रमण करने लगे। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर द्वारा ध्यान किये जाने के कारण हस्तिनापुर चले गये।।२२-२४।।

कुन्तीं संभाष्य भूपं च भ्रातृंश्च प्रमुदाऽन्वितः।
उपायेन जरासन्धं निहत्य शालवमेव च।।२५।।
कारयामास यज्ञं च विधिबोधितदक्षिणाम्। मुनीन्द्रैश्च नृपेन्द्रैश्च राजसूयमभीप्सितम्।।२६।।
शिशुपालं दन्तवक्त्रं तत्र यज्ञे जघान सः। अतीव निन्दां कुर्वन्तं सभायां सुरभूपयोः।।२७।।
पपात तच्छरीरं च जीवो गत्वा हरेः पदम्।
न दृष्ट्वा तत्र सर्वेशं तुष्टावाऽऽगत्य माधवम्।।२८।।

वहां जाकर श्रीकृष्ण ने कुन्ती तथा युधिष्ठिर आदि भ्रातागण से प्रसन्नता पूर्वक वार्त्तालाप किया तथा युक्ति पूर्वक जरासन्ध और शाल्वराज का वध किया। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण ने (पाण्डवों द्वारा) नियमानुरूप दक्षिणा द्वारा सम्पन्न होने वाला यज्ञ मुनीन्द्रगण तथा राजेन्द्रगण की उपस्थिति में कराया। उस यज्ञ में जब शिशुपाल एवं दन्तवक्त्र ने देवगण एवं राजाओं की सभा में श्रीकृष्ण की अत्यधिक निन्दा किया, तब श्रीकृष्ण ने इन दोनों का वध किया। शिशुपाल का जीव वध होते ही वैकुण्ठ पहुंचा। जब वैकुण्ठ में उसने सर्वेश्वर विष्णु को नहीं देखा, तब वह उन माधव की स्तुति करने लगा।।२५-२८।।

शिशुपाल उवाच

वेदानां जनकोऽसि त्वं वेदाङ्गानां च माधव।
सुराणामसुराणां च प्राकृतानां च देहिनाम्।।२९।।
सूक्ष्मां विधाय सृष्टिं च कल्पभेदं करोषि च।
मायया च स्वयं ब्रह्मा शङ्करः शेष एव च।।३०।।
मनवो मुनयश्चैव देवाश्च सृष्टिपालकाः। कलांशेनापि कलया दिक्पालाश्च ग्रहादयः।।३१।।
स्वयं पुमान्स्वयं स्त्री च स्वयमेव नपुंसकः।
कारणं च स्वयं कार्यं जन्यश्च जनकः स्वयम्।।३२।।

शिशुपाल कहता है—हे माधव! आप ही वेद, वेदांगों के जनक हैं। आप ही देवता, असुर एवं प्राकृत देहधारी लोगों के भी जनक हैं। आप ही कल्पभेदानुरूप सूक्ष्म सृष्टि करने में तब माया का अवलम्बन लेते हैं और ब्रह्मा, महेश्वर तथा अनन्तरूपधारी होकर सृष्टि कार्य सम्पन्न करते हैं। १४ मनु, सप्तर्षि, चारों वेद, सृष्टिपालक देवतागण, दिक्पाल, ग्रहादि में से कुछ तो आपके साक्षात् अंश हैं, कुछ अंशों के भी अंश हैं। आप ही पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक हैं। आप स्वयं ही कारण तथा कार्य हैं। आप ही स्वयं जनक तथा जन्य भी हैं। (उत्पाद्य-उत्पादक उभय आप ही हैं)।।२९-३२।।

यन्त्रस्य च गुणो दोषो यन्त्रिणश्च श्रुतौ श्रुतम्।
सर्वे यन्त्रा भवान्यन्त्री त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्॥३३॥
मम क्षमस्वापराधं मूढस्य द्वारिणस्तव। ब्रह्मशापात्कुबुद्धेश्च रक्ष रक्ष जगद्गुरो॥३४॥

यदि यन्त्र में कोई दोष है, तब उसका उत्तरदायित्व यन्त्र बनाने वाले यन्त्री का है। यह वेद ने कहा है। जगत् में सब कुछ यन्त्र ही है। आप यन्त्र बनाने वाले हैं। यह सब आप में ही प्रतिष्ठित है। मैं आपका दुर्बुद्धि मूढ़ द्वारपाल रहा हूं। मेरा अपराध क्षमा करिये। ब्राह्मण के शाप से मुझमें कुबुद्धि आ गई। हे जगद्गुरु! मेरी रक्षा करिये॥३३-३४॥

इत्येवमुक्त्वा क्रमतो जयो विजय एव च।
मुदा तौ ययतुः शीघ्रं वैकुण्ठद्वारमीप्सितम्॥३५॥
शिशुपालस्य स्तोत्रेण सर्वे ते विस्मयं ययुः। परिपूर्णतमं कृत्वा मेनिरे कृष्णमीश्वरम्॥३६॥

यह स्तुति करके दन्तवक्त्र तथा शिशुपाल जो पूर्व-पूर्व जन्म में जय-विजय थे, पुनः वैकुण्ठ के द्वारपाल वहां पहुंचकर हो गये। शिशुपाल के जीव की इस स्तुति को सुनकर सभी लोगों को विस्मय हो उठा। सभी ने तब श्रीकृष्ण को परिपूर्णतम ईश्वर मान लिया॥३५-३६॥

कारयित्वा राजसूयं भोजयामास ब्राह्मणान्।
कुरुपाण्डवयुद्धं च कारयामास भेदतः॥३७॥
भुवो भारावतरणं चकार स कृपानिधिः। पुनर्ययौ द्वारकां च चिरं स्थित्वा नृपाज्ञया॥३८॥

पाण्डवों से राजसूय यज्ञ सम्पन्न कराने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों को भोजन कराया। कुछ काल के अनन्तर उन्होंने कौरव-पाण्डवों में भेद (फूट) हो जाने के कारण उनके बीच युद्ध कराया। इस प्रकार कृपानिधि ने पृथिवी का भार उतारा तथा द्वारका वापस आ गये। वहीं पर उग्रसेन की आज्ञा से श्रीकृष्ण ने चिरकाल तक निवास किया॥३७-३८॥

विप्राया मृतवत्साया जीवयामास पुत्रकान्।
मृतस्थानात्समानीय तन्मात्रे प्रददौ सुतान्॥३९॥
तद्दृष्ट्वा देवकी तुष्टा ययाचे मृतपुत्रकान्।
मृतस्थानात्समानीय ददौ मात्रे सहोदरान्॥४०॥

वहां उन्होंने ब्राह्मणी के मृत हो गये पुत्रों को पुनः जीवित किया। उन पुत्रों को श्रीकृष्ण ने मृतस्थान से लाकर उनकी माता को प्रदान कर दिया। यह देखकर देवकी ने श्रीकृष्ण की स्तुति करके (कंस द्वारा मारे गये) अपने मृतपुत्रों की याचना किया। श्रीकृष्ण ने मृतस्थान से लाकर अपने उन सगे भाईयों को देवकी माता को दे दिया॥३९-४०॥

सद्यो जहार दारिद्र्यं सुदाम्नो ब्राह्मणस्य च।
समागतस्य स्वगृहाद्द्वारका शरणार्थिनः॥४१॥

तस्मै ददौ राजलक्ष्मीं निश्चलां सप्तपौरुषीम्।
पृथुकानां कणं भुक्त्वा भक्तस्य भक्तवत्सलः॥४२॥
बभूव तस्य राज्यं च यथेन्द्रस्यामरावती। यथा धनेश्वरो देवा धनाढ्यः स बभूव ह॥४३॥
निश्चलां हरिभक्तिं च ददौ दास्यं सुदुर्लभम्।
अविनाशिनि गोलोके यथेष्टं पदमुत्तमम्॥४४॥

श्रीकृष्ण ने अपने घर से द्वारका समागत शरणार्थी भक्त सुदामा की दरिद्रता को तत्काल दूर कर दिया था। भक्तवत्सल भगवान् ने भक्त सुदामा ब्राह्मण द्वारा लाये चिवड़ा के कणों को ही खाकर उनको सात पीढ़ी पर्यन्त अचल रहने वाली राज्यलक्ष्मी प्रदान करके ऐसा राज्य दिया, जो इन्द्रपुरी अमरावती के समान था। वह ब्राह्मण सुदामा कुबेर के समान धनी इहलोक में हो गया। साथ ही उसे अचला हरिभक्ति, दुर्लभ-हरिदासत्व तथा अविनश्वर गोलोकधाम में अत्युत्तम स्थान पाने का वर भी प्रदान किया।।४०-४४।।

जहार पारिजातं च शक्राहङ्कारमेव च। सत्यां च कारयामास पुण्यकं व्रतमीप्सितम्॥४५॥
वर्धयामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने। तत्र व्रते कुमाराय स्वात्मानं दक्षिणां ददौ॥४६॥
ब्राह्मणान्भोजयामास तेभ्यो रत्नं ददौ मुदा।
सत्यभामातिमानं च वर्धयामास सर्वतः॥४७॥

इन्द्र के अहंकार का नाश करने के लिये श्रीकृष्ण ने स्वर्ग से पारिजात वृक्ष का हरण किया। देवी सत्यभामा से श्रीकृष्ण ने वांछित पुण्यक व्रत भी सम्पन्न कराया। हे मुनिवर! भगवान् ने सर्वत्र नित्य-नैमित्तिक कर्म पालन में वृद्धि कराया। इस पुण्यक व्रत में श्रीकृष्ण ने सनत्कुमार को दक्षिणा के रूप में स्वयं को दे दिया। उन्होंने ब्राह्मणों को मुदित मन से भोजन कराकर रत्न प्रदान किया। इस प्रकार भगवान् ने सत्यभामा का सम्मान सर्वत्र बढ़ा दिया।।४५-४७।।

रुक्मिण्या [१]अतिसौभाग्यमन्यासां च नवं नवम्।
वैष्णवानां सुराणां च विप्राणामपि पूजनम्॥४८॥
वर्धयामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने। परमाध्यात्मिकं ज्ञानमुद्धवाय ददौ प्रभुः॥४९॥
अर्जुनं कथयामास गीतां च रणमूर्धनि।
कृत्वा निष्कण्टकं चैव कृपया च कृपानिधिः॥५०॥
युधिष्ठिराय पृथिवीराज्यलक्ष्मीं ददौ प्रभुः।
दुर्गां च पूजयामास[२] वैष्णवीं ग्रामदेवताम्॥५१॥

उन्होंने रुक्मिणी आदि अपनी भार्याओं के सौभाग्य की अत्यन्त तथा नवीन-नवीन वृद्धि किया।

१. क. अपि।
२. क. कारयामास।

साथ ही वैष्णवों, देवताओं, ब्राह्मणों के पूजन की भी अभिवृद्धि सर्वत्र किया। हे मुनिवर! उन्होंने उद्धव को परम आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान किया। उन्होंने रणभूमि के अग्रभाग में अर्जुन से गीता का परमज्ञान कहा। उन कृपानिधि ने युधिष्ठिर को पृथिवी की निष्कण्टक राज्यलक्ष्मी प्रदान किया। श्रीकृष्ण ने वैष्णवी ग्रामदेवता के रूप में दुर्गा पूजा की प्रतिष्ठा किया।।४८-५१।।

यज्ञं च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम्। नानाप्रकारनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः।।५२।।
ब्राह्मणान्भोजयामास पार्वतीप्रीतये तथा। रैवते पर्वते रम्ये चामूल्यरत्नमन्दिरे।।५३।।
गणेशं पूजयामास देवानामीश्वरं परम्। लड्डुकानां तिलानां च सुस्वादु सुमनोहरम्[1]।।५४।।
परिपुष्टं पञ्चलक्षं नैवेद्यं च ददौ मुदा। लड्डुकं स्वस्तिकानां च सप्तलक्षं सुधोपमम्।।५५।।
गणेश्वराय प्रददौ शर्कराशतराशिकम्। पक्वरम्भाफलानां च दशलक्षमपूपकम्।।५६।।
मिष्टान्नं पायसं रम्यं स्वादु स्वस्तिकपिष्टकम्।
घृतं च नवनीतं च दधि दुग्धं सुधोपमम्।।५७।।
धूपं दीपं पारिजातपुष्पमाल्यमभीप्सितम्। सुगन्धि चन्दनं गन्धं वह्निशुद्धांशुके ददौ।।५८।।

उन्होंने एक करोड़ आहुति वाला शुभयज्ञ सम्पन्न कराया। उसमें प्रभूत ब्राह्मण भोजन भी कराया। पार्वती की प्रसन्नता लिये रैवत पर्वत पर रत्नमन्दिर बनवाकर जो अमूल्य रत्नों से युक्त था, देव देवेश्वर गणपति की वहां पूजा कराकर उनको पांच लाख स्वादिष्ट, मनोहर, परिपुष्ट तिल लड्डू परमानन्द पूर्वक नैवेद्यरूप में अर्पित करके सुस्वादु स्वस्तिक पिष्टक, उत्तम पायस, मिष्ठान्न, घृत, नवनीत, दधि, अमृतवत् दुग्ध, धूप-दीप, पारिजात पुष्प की माला, गन्ध चन्दन, अग्नि शुद्ध वस्त्रादि अर्पित किया। उस पूजन में श्रीकृष्ण ने ७ लाख अमृततुल्य स्वास्तिक मिष्ठान्न, १०० ढेर शर्करा, पके केले, १० लाख मालपूआ भी प्रदान किया था।।५२-५८।।

यज्ञं च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम्।
ब्राह्मणान्भोजयामास तुष्टाव स गणेश्वरम्।।५९।।
वाद्यं दशविधं चैव वादयामास तत्र वै।
सूर्यं च पूजयामास साम्बः कुष्ठक्षयाय च।।६०।।
हविष्यं कारयामास तं च साम्बं समातरम्। परिपूर्णं वत्सरं चाप्युपहारैरनुत्तमैः।
वरं ददौ च साम्बाय स्तोत्रं च भास्करः स्वयम्।।६१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० गणेशपूजा नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११३।।

तदनन्तर कोटि आहुतियुक्त शुभयज्ञ कराकर उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा गणपति

१. ख. ०हराम्। परितुष्टिं।

की स्तुति भी किया। वहां पर १० प्रकार के वाद्य बजाये गये। अपने कुष्ठ रोग की निवृत्ति हेतु साम्ब ने सूर्यपूजन किया। अपनी माता जाम्बवती के साथ साम्ब ने एक वर्षपर्यन्त हविष्यान्न भोजी रहकर उत्तमोत्तम उपहार अर्पित करते सूर्य पूजन किया था। इससे सन्तुष्ट होकर सूर्यदेव ने साम्ब को वर तथा स्तोत्र स्वयं प्रदान किया।।५९-६१।।

।।११३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

ऊषा-अनिरुद्ध का स्वप्न में समागम, चित्रलेखा का द्वारका से अनिरुद्ध का हरण, ऊषा तथा अनिरुद्ध का गान्धर्व विवाह

नारायण उवाच

कृष्णपुत्रश्च प्रद्युम्नो महाबलपराक्रमः। तत्पुत्रोऽप्यनिरुद्धश्च विधातुरंश एव च।।१।।
एकदाऽसावनिरुद्धो नवयौवनसंयुतः। सुप्तो रहसि पर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते।।२।।
स्वप्ने ददर्श युवतीं पुष्पोद्याने सुपुष्पिते। सुगन्धिपुष्पतल्पे च स्निग्धचन्दनचर्चिते।।३।।
शयानां सुस्मितां रम्यां नवयौवनसंयुताम्। अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणेन विभूषिताम्।।४।।
चारुकेयूरवलयशङ्खकङ्कणशोभिताम्। मणिकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम्।।५।।
अतीव सूक्ष्मवसनां क्वणन्मञ्जीररञ्जिताम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च शरत्कमललोचनाम्।।६।।
शरत्पद्मप्रभामुष्टकोटीन्दुनिन्दिताननाम्। मुक्तापङ्क्तिसमासाद्यदन्तपङ्क्तिमनोहराम्।।७।।
त्रिवक्रकबरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम्। कस्तूरीकुङ्कुमालक्तस्निग्धचन्दनकज्जलैः।।८।।
पत्रावलीविरचितसुकपोलस्थलोज्ज्वलाम्। दाडिमीकुसुमाकारसिन्दूरबिन्दुभूषिताम्।।९।।
श्रीरामकदलीस्तम्भनिन्दितोरुस्थलोज्ज्वलाम्। अत्युच्चैर्वर्तुलाकारस्तनयुग्मविभूषिताम्।।१०।।
नितम्बभारनम्रां च कामबाणप्रपीडिताम्। कामुकीं कमनीयां च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा।।११।।
कुङ्कुमालक्तरक्ताक्तपादपद्मविराजिताम्। वायुप्रेरणवस्त्रेण व्यक्तगुप्तस्थलोज्ज्वलाम्।।१२।।
तां दृष्ट्वा कामपुत्रश्च कामोन्मथितमानसः। उवाच मधुरं रम्यं[1] काममत्तां सुकोमलाम्।।१३।।

१. ख. मत्तः।

चारुचम्पकवर्णाभां कामेन पुलकान्विताम्। अतिप्रौढां नवोढां च शृङ्गारेच्छासुचञ्चलाम्॥१४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—कृष्ण के पुत्र महाबली, पराक्रमी प्रद्युम्न थे। उनके पुत्र थे विधाता ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न अनिरुद्ध। एक बार नवयुवक अनिरुद्ध निर्जन में चन्दन चर्चित पलंग पर निद्रित थे। स्वप्नावस्था में उन्होंने पुष्पित उद्यान में स्निग्ध चन्दन लिप्त सुगन्धित पुष्पमय शय्या पर निद्रित, तनिक मुस्कानयुक्त नवयौवना रम्य एक युवती को उन्होंने देखा। उनका सभी अंग अमूल्य रत्नभूषण भूषित था। उन्होंने बाहु में मनोहर केयूर, कंकण, वलय, शंख धारण किया था। उनके कानों में मणिमय कुण्डल कनपटी के नीचे तक लटक रहे थे। उन्होंने अत्यन्त महीन वस्त्र धारण किया था। चरणों में झनकार करते नूपुर कन्या ने पहन रखा था। उनके ओष्ठद्वय (ओष्ठ तथा अधर) पके बिम्बफल जैसे लाल थे। उसके नेत्रद्वय शरत्कालीन कमल के समान थे। ललाट पर लगी सिन्दूर की बिन्दी अनार के फूल के समान शोभायमान थी। उसकी दोनों जांघें कदली स्तम्भ को भी लज्जित करने वाली थीं। दोनों स्तन अत्यन्त उच्च अत्यन्त कठिन थे। कामबाण से उस कन्या का शरीर पीड़ित लग रहा था। स्थूल नितम्बों के भार से उसकी कमर कुछ झुकी थी। उसका शरीर अत्यन्त कोमल था। वह बांकी चितवन से देखती हुई अपने कामभाव का संकेत दे रही थी। उसके चरणकमल कुंकुम तथा आलता के रंग से रंजित थे। उसका मुखकमल शरत्कालीन कमल की प्रभा को भी लज्जित करने वाला तथा कोटिचन्द्रछवि को भी निन्दित करता प्रतीत हो रहा था। उसकी मनोहर दन्तपंक्ति मुक्तापंक्ति जैसी लग रही थी। उसका केशपाश तीन स्थान से टेढ़ा तथा मालती माला से गुंथा था। उसका शरीर कस्तूरी, कुंकुम, आलता तथा सरस चन्दन से युक्त था। नेत्रों में काजल लगा था। वायु के झकोरों से उसका वस्त्र हट गया था। अतः उसके गुप्त अंग दिखलाई पड़ रहे थे। उस कामोन्मत्त, सुकोमल, चम्पापुष्पवत् वर्ण वाली, कामभाव से पुलकिता, अतिप्रौढ़ा, नवोढ़ा तथा शृंगार (पुरुष मिलन) की इच्छा से अतीव चंचल प्रतीत हो रही उस युवती को देखकर कामपुत्र (प्रद्युम्नपुत्र) अनिरुद्ध भी कामविह्वल हो गये। उन्होंने अत्यन्त मधुर तथा रमणीय वाक्यों द्वारा उस कामिनी से कहा—॥१-१४॥

अनिरुद्ध उवाच

किं देवी किं च गान्धर्वी का त्वं कामिनि कानने।
कस्य स्त्री कस्य कन्या वा कं वा वाञ्छसि सुन्दरि॥१५॥
त्रैलोक्यातुलसौन्दर्या मुनिमानसमोहिनी।
न बिभेषि कथं ब्रूहि स्वयमेकाकिनी च माम्॥१६॥

अहं त्रैलोक्यनाथस्य पौत्रः कामात्मजोऽधुना। कान्तेऽहमनिरुद्धश्च नवीनयौवनाहतः॥१७॥
कमनीयश्च कामी च कामशास्त्रविशारदः। कामुकीकामनां पूर्णां कर्तुमेवेश्वरः स्वयम्॥१८॥
मां भजस्व सुशीले त्वं सुवेषं च सुशीलकम्। रतिशूरं रतिरसप्राज्ञं रतिरसप्रियम्॥१९॥
रतिपुत्रं रतिरसं प्रमत्तं रसिकं प्रिये। युवानं व्याधिहीनं च कामुकं कामुकीच्छति॥२०॥

विदग्धासु[१] विदग्धं च कान्तमायाति कामतः।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान्भवेत्॥२१॥

अनिरुद्ध कहते हैं–हे कामिनी! क्या तुम देवी, गान्धर्वी अथवा वनदेवी हो, किंवा गान्धर्वी हो? तुम किसकी स्त्री, किसकी कन्या हो? हे सुन्दरी! तुम किसकी कामना कर रही हो? अपने सौन्दर्य द्वारा तुम इस त्रैलोक्य में मुनिगण के भी मन को मोहित कर सकती हो। तुम यहां एकाकी होकर भी क्यों मुझसे भयभीत नहीं हो रही हो? मैं त्रैलोक्यपति श्रीकृष्ण का पौत्र तथा कामदेव (प्रद्युम्न) का पुत्र हूं। मेरा नाम अनिरुद्ध है। हे कान्ते! मैं नवयौवन से (काम) पीड़ित, कमनीय, कामयुक्त, कामशास्त्र विशारद, कामुकी नारियों की कामना पूरी कर सकने में पूर्ण समर्थ हूं। हे सुशीले! तुम मुझ सुवेषधारी, सुशील, रतिकुशल, रतिरस ज्ञाता, रतिरसप्रिय, रतिपुत्र, रतिरसप्रमत्त, रसिक से प्रेम करो। हे प्रिये! एक कामुकी कामिनी कामुक व्याधिहीन युवक की ही कामना करती है। काम चतुर नारी काम चतुर के साथ ही संभोग करना चाहती है। गुणी नारी का गुणीपुरुष से ही संगम करना गुणयुक्त होता है।।१५-२१।।

प्रच्छाद्य लोचनास्यं च नवसङ्गमलज्जिता।
विलोकयन्ती वक्राक्षिकोणेन तमुवाच सा॥२२॥

नव संगम से लज्जित वह कामिनी नेत्रों को तथा मुख को आंचल से ढककर वक्रदृष्टि से देखती कहने लगी।।२२।।

कामिन्युवाच

कामुकः कामपुत्रोऽसि कामेन व्याकुलोऽधुना।
भवांश्चेत्कामुकीयोग्यो च कामश्चिन्तितः कथम्॥२३॥
पौत्रस्त्रैलोक्यनाथस्य स्वतः संभावितस्य च।
स्वयं योग्यो योग्यपुत्रो विवाहं न कथं (व्यधाः) चन॥२४॥

कामिनी कहती है–यदि आप काम के पुत्र हैं तथा कामभाव से व्याकुलित हैं, तब यदि आप नारी के योग्य हैं, तब आप कामदेव का चिन्तन क्यों नहीं करते? यदि त्रैलोक्यपति श्रीहरि के पौत्र तथा सम्मानित प्रद्युम्न के योग्य पुत्र हैं, तब आपने अपने योग्य नारी से विवाह क्यों नहीं किया? आपके पिता ने आपके समान योग्य सन्तान का विवाह क्यों नहीं किया।।२३-२४।।

विवाहिता यज्ञपत्नी सा च पुण्यव्रता सती।
निश्चला सततं साध्या वर्धिनी सङ्गिनी सदा॥२५॥
भयप्रीतिदानसाध्या गुप्तपत्नी त्वनिश्चला।
नैमित्तिका न नित्या सा सा च वेदविवर्जिता॥२६॥

१. अत्र विदग्धातु इति पाठः समीचीनः।

परं नरकसोपाना परत्रेहायशस्करा। साधुस्तत्र न हि रतो वंशजो वैष्णवो यदि॥२७॥

विवाहिता पत्नी ही यज्ञ (अग्नि की साक्षी में विवाहित) पत्नी होती है। वे सती, पुण्यवती, निरन्तर निश्चल अनुराग करने वाली सर्वदा संगिनी एवं सदा वंश वृद्धि करने वाली जीवन साथी होती है। गुप्त पत्नी भय-प्रीति तथा धनादि लेकर वशीभूत रहने वाली तथा निश्चला नहीं होती। (चंचला होती है)। इस प्रकार की पत्नी को नैमित्तिका पत्नी कहते हैं। वह नित्या जीवनसंगिनी नहीं होती। उसे वेदवर्जिता कहा गया है। नैमित्तिका पत्नी नरक की सोपानरूपा, इहलोक तथा परलोक में अपयशदातृ कही गयी है। जो उत्तमकुल का वैष्णव व्यक्ति है साधु कुलवंशज है, वह नैमित्तिका पत्नी में कदापि निरत नहीं होता।।२५-२७।।

यदि पूर्वं भवेद्भ्रान्तो निवृत्तः साधुसङ्गतः। प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥२८॥

प्रायश्चित्ती पुनर्लिप्तो निवृत्तः पातकी यदि।
उपहास्यो भुवि भवेत्सर्वं कुञ्जरशौचवत्॥२९॥

यदि वह पहले भ्रान्त होकर ऐसी नैमित्तिका पत्नी में निरत हो गया हो, तब वह साधु संग से निवृत्त हो जाता है। प्राणीगण की ऐसी नैमित्तिका पत्नी में प्रवृत्त होना स्वाभाविक है, तथापि यदि असत् कर्म में प्रवृत्ति हो गई हो, तब उससे छुटकारा पाना फलप्रद होगा। यदि कोई इस पातक का प्रायश्चित्त करके पुनः पापलिप्त हो जाये, तब वह उपहास का ही पात्र होगा। यह उसके लिये कुंजर शौचवत् होगा। जैसे हाथी स्नान करके पुनः कीचड़ में लोट लगाता है, यह भी वैसी ही प्रक्रिया कही जायेगी।।२८-२९।।

सुशीला सुन्दरी शान्ता धर्मपत्नी प्रशंसिता। पतिव्रता सुसाध्या सा शश्वत्सुप्रियवादिनी॥३०॥

कोमलाङ्गी विदग्धा च श्यामा रतिसुखप्रदा।
एवंभूतां परित्यज्य वैष्णवस्तपसे व्रजेत्॥३१॥
सा चेत्परिणता साध्वी शान्ता पुत्रवती यदा।
अन्यथा च वृथा सर्वं तपसः स्खलनं भवेत्॥३२॥

अपनी सुशीला, सुन्दरी, शान्त, प्रशंसित, पतिव्रता, वशीभूता, प्रियवादिनी, कोमलांगी, दक्ष, युवा, रतिसुखप्रदा भार्या को त्याग कर तपस्यार्थ तभी जाये जब वह सती नारी पुत्रवती, अधिक वयवाली तथा शान्त मन हो जाये। अन्यथा व्यक्ति का समस्त तप नष्ट हो जायेगा।।३०-३२।।

असाधुश्च कुवंशश्चेत्परनारीं प्रयाति चेत्। स याति नरकं घोरं पितृभिः सप्तभिःसह॥३३॥

अहमूषा बाणकन्या बाणः शङ्करकिङ्करः।
बाणस्त्रैलोक्यविजयी शङ्करो जगतां पतिः॥३४॥
न स्वतन्त्रा पराधीना त्रिषु कालेषु कामिनी।
पुंश्चली या स्वतन्त्रा साऽप्यसद्वंशप्रसूतिका॥३५॥

पिता ददाति कन्यां तां सुयोग्याय वराय च। कन्या वरं न याचेत धर्मं एष सनातनः॥३६॥

यदि नीचकुलोत्पन्न असाधु व्यक्ति परनारी का साथ करता है, वह अपने पूर्व की सात पीढ़ी के पितृगण के साथ घोर नरकगामी होता है। मैं बाण की कन्या हूं। बाणासुर शिव के किंकर हैं। मेरा नाम ऊषा है। शंकर जगत्पति हैं तथा बाणासुर त्रैलोक्य विजयी हैं। कुलीन कामिनी तीनों काल में पराधीना रहती हैं। वह कदापि स्वतन्त्र नहीं होती। असद्वंश में उत्पन्न कुलटा स्वतन्त्र होती है। पिता कन्या को योग्य वर को प्रदान करते हैं। कन्या स्वयं वर से याचना नहीं करे, यही सनातन धर्म कहा गया है।।३३-३६।।

त्वं च योग्योऽसि योग्याऽहं मामिच्छसि यदि प्रभो।
बाणं प्रार्थय शंभुं वाऽप्यथवा पार्वतीं सतीम्॥३७॥
इत्युक्त्वा सुन्दरीं साध्वी सान्तर्धाना बभूव ह।
निद्रांतत्याज सहसाकामी कामात्मजोमुनः॥३८॥

"हे प्रभो! तुम योग्य हो तथा मैं योग्या हूं। यदि आप मुझे चाहते हैं, तब पिता बाणासुर से अथवा शंकर किंवा सती से मेरे लिये याचना करिये।" यह कहकर स्वप्न में ही वह सुन्दरी अन्तर्ध्यान हो गई। हे मुनिवर! इसी समय कामी कामपुत्र अनिरुद्ध की सहसा निद्रा टूट गई।।३७-३८।।

बुद्धवा स्वप्नं स विज्ञाय कामेन व्यथितान्तरः।
बभूव व्याकुलोऽशान्तो न दृष्ट्वा प्राणवल्लभाम्॥३९॥

त्यक्त्वाऽऽहारमनिद्रश्च प्रमत्तश्च कृशोदरः। क्षणं तिष्ठति शेते च क्षणं रहसि रोदिति॥४०॥

पुत्रं दृष्ट्वा तु क्रन्दन्तं देवकी रुक्मिणी रतिः।
अन्याश्च योषितः सर्वाः कथयामासुरीश्वरम्॥४१॥

तासां च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः। उवाच सर्वतत्त्वज्ञः कृष्णश्च पूर्णमानसः॥४२॥

इस सम्पूर्ण घटना को स्वप्न जानकर अनिरुद्ध का अन्तर्मन कामभाव से व्यथित हो उठा। जब उसने अपने सामने उस प्राणप्रिया को नहीं देखा, तब वे अशान्त एवं व्याकुल हो गये। वे प्रमत्त हो गये तथा उन्होंने आहार निद्रा तक त्याग दिया। उनका शरीर क्षीण होने लगा। कभी वे उठते, कभी लेट जाते, कभी एकान्त में रोने लगते। पुत्र को रुदन करते देखकर देवकी, रुक्मिणी तथा प्रद्युम्न पत्नी रति एवं अन्य स्त्रियों ने यह स्थिति भगवान् कृष्ण ने कहा। सर्वतत्वज्ञ भगवान् मधुसूदन कृष्ण उनका कथन सुनकर मानों पूर्ण मनोरथ हो गये। वे हंसते हुये उन स्त्रियों से कहने लगे।।३९-४२।।

श्रीभगवानुवाच

कामातुरा बाणकन्या रतिं दृष्ट्वा शिवेशयोः।
वरं सम्प्राप दुर्गाया व्याकुला मदनास्त्रतः॥४३॥

स्वप्नं च दर्शयामास साऽनिरुद्धं च पार्वती। मम पौत्रं प्रमत्तं न चकार कौतुकेन च॥४४॥

तत्पुत्रीं च प्रमत्तां तां करोमि स्वप्नतोऽधुना।
स्वच्छन्दं तिष्ठ च चिरं नास्ति चिन्ता मनोव्यथा॥४५॥

श्रीभगवान् कहते हैं– पूर्वकाल में बाणकन्या ऊषा शिव-पार्वती की रति देखकर कामातुरा व्याकुलित हो गई। उस समय उसने मदनाक्रान्त होकर दुर्गा से वरलाभ किया। इसी कारण देवी पार्वती ने अनिरुद्ध को एक स्वप्न दिखाया तथा कौतुक पूर्वक मेरे पौत्र को प्रमत्त कर दिया। अब मैं अभी स्वप्न में ही ऊषा को प्रमत्त कर देता हूं। तुम लोग स्वच्छन्द रहो; क्योंकि तुम लोगों की यह मनोव्यथा अधिक काल तक नहीं रहेगी।।४३-४५।।

इति कृष्णः समाश्वास्य सर्वात्मा सर्वसिद्धिवित्।
स्वप्नं च दर्शयामास बाणपुत्रीं च कामुकीम्॥४६॥

सुप्ता सुतल्पे बाला सा पुष्पचन्दनचर्चिते। नवयौवनसंयुक्ता रत्नभूषणभूषिता॥४७॥
शयाना रत्नपर्यङ्के ददर्श स्वप्नमीप्सितम्। अतीव निर्जने देशे रत्ननिर्माणमन्दिरे॥४८॥
नवनीरदश्यामतीव नवयौवनम्। कोटिकन्दर्पलीलाभं सस्मितं सुमनोहरम्॥४९॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम्॥५०॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससा। सुचारुमालतीमाल्यवक्षः स्थलसमुज्ज्वलम्॥५१॥
शयानं रत्नपर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते। तं दृष्ट्वा सहसा साध्वी तन्मूलं प्रययौ मुदा॥५२॥
उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता। कामात्मजप्रिया कान्ता कामबाणप्रपीडिता॥५३॥

सर्वात्मा तथा सर्वसिद्धिविद् श्रीकृष्ण प्रभु ने कामुकी ऊषा को एक स्वप्न दिखलाया। वह बाला उत्तम पुष्प चन्दन चर्चित पलंग पर सुप्त थी। वह नवयौवना तथा रत्नों के आभूषण से भूषिता थी। उसने रत्नमय शय्या पर निद्रितावस्था में अभिलषित स्वप्न देखा। उसने अत्यन्त निर्जन स्थल में निर्मित रत्न भवन में नीलमेघ के समान श्यामवर्ण, नवयुवक, कोटिकन्दर्प के समान सुन्दर, मुस्कान युक्त मनोहर छवि वाले, रत्न केयूर, वलय, रत्नमंजीर से सुशोभित, कनपटी पर विराजमान रत्न कुण्डल द्वय से युक्त, चन्दन से चर्चित सर्वाङ्ग वाले, पीतवस्त्र से भूषित अनिरुद्ध को देखा। उत्तम मालती माला उनके वक्ष पर उज्वल आभा प्रदान कर रही थी। वे रत्नमय पुष्प चन्दनयुक्त शैय्या पर शयनरत थे। उनको देखकर साध्वी ऊषा उनके समक्ष आ गई। कामबाण से तप्त हृदय वाली सुन्दरी साध्वी मदनपुत्र अनिरुद्ध की प्रिया उनसे मधुर वाणी में कहने लगी।।४६-५३।।

ऊषोवाच

कस्त्वं कामुक भद्रं ते मां भजस्व स्मरातुराम्।
अतिप्रौढां नवोढां च नवसङ्गमलालसाम्॥५४॥

तवानुरक्तां भक्तां च गान्धर्वेण समुद्वह। विवाहाष्टप्रकारेषु गान्धर्वः सुलभो नृणाम्॥५५॥

अनुरक्तां प्रियां प्राप्य त्यजेद्यः कपटी पुमान्।
तस्माद्याति महालक्ष्मीः शापं दत्त्वा सुदारुणम्॥५६॥

ऊषा कहती है–हे कामुक! तु कौन हो? तुम्हारा मंगल हो। मैं कामातुरा हूं। अतः तुम मेरा उपभोग करो। मैं अति प्रौढ़ा, नवोढ़ा तथा नवसमागम की लालसा से युक्त हूं। मैं तुम पर अनुरक्ता तथा भक्त हूं। तुम मुझसे गान्धर्व विवाह करो। आठ प्रकार के विवाह में गान्धर्व विवाह सभी लोगों के लिये सुलभ है। जो कपटी मनुष्य अनुरक्त हो गई नारी का त्याग करता है, महालक्ष्मी उसे दारुण शाप देकर अन्यत्र चली जाती हैं॥५४-५६॥

पुमानुवाच

अहं कृष्णस्य पौत्रश्च कामदेवात्मजः स्वयम्।
कथं गृह्णामि त्वां कान्ते तयोरनुमतिं विना॥५७॥
इत्येवमुक्त्वा स पुमानन्तर्धानं चकार सः।
कामेन व्याकुला कान्ता च दृष्ट्वा कान्तमीप्सितम्॥५८॥
निद्रां त्यक्त्वा समुत्थाय तल्पादेव मनोहरात्।
विषसाद सखीमध्ये प्रमत्ता रुदतीं भृशम्॥५९॥
पप्रच्छ तां वराऽऽलीनां किं किमित्येव निश्चितम्।
उवाच बोधयामास चित्रलेखा सुयोगिनी॥६०॥

पुरुष (अनिरुद्ध) कहते हैं–"मैं स्वयं कृष्ण का पौत्र तथा कामदेव (प्रद्युम्न) का पौत्र हूं। हे सुन्दरी! उनकी आज्ञा लिये बिना मैं तुमको कैसे ग्रहण करूं?" यह कहकर पुरुष अनिरुद्ध अन्तर्ध्यान हो गये। जब अभिलषित कान्त को काम से व्याकुल ऊषा ने स्वप्न में नहीं देखा, तब वह उस मनोहर शय्या से निद्रा त्यागकर उठ गयी। वह प्रमत्तावस्था में सखियों से रोकर विषाद करने लगी। तब श्रेष्ठतम सखी योगिनी चित्रलेखा ने ऊषा से प्रश्न किया–"क्या घटित हो गया?" तब सब सुनने हेतु चित्रलेखा उसे प्रबोधित करने लगी॥५७-६०॥

चित्रलेखोवाच

चेतनं कुरु कल्याणि कस्मात्ते भीतिरुल्बणा।
स्वयं शंभुः शिवा साक्षाद्दुर्लङ्घ्ये नगरे सति॥६१॥

शिवस्मरणमात्रेण सर्वारिष्टं पलायते। शिवं भवति सर्वत्र शिव एव शिवालयः॥६२॥
ध्यानाद्दुर्गतिनाशिन्याः सर्वं दुर्गं विनश्यति। ददाति मङ्गलं तस्मै सर्वमङ्गलमङ्गला॥६३॥

चित्रलेखा कहती है–हे शुभे! कल्याणी! चेतन हो जाओ। तुमको किससे इतना भय हो गया?

यहां तो शिव एवं साक्षात् भगवती पार्वती स्वयं हैं। यह नगर दुर्लङ्घ्य है। शिव के स्मरण मात्र से सभी अरिष्ट भाग जाते हैं। कल्याण होता है। शिव एवं शिवालय सर्वत्र हैं। दुर्गतिनाशिनी दुर्गा के ध्यान मात्र से सभी क्लेशों का नाश हो जाता है। वे सर्वमंगलमंगला मंगल प्रदान करती हैं।।६१-६३।।

चित्रलेखावचः श्रुत्वा किञ्चिन्नोवाच सुन्दरी।
त्यक्त्वाऽऽहारं च निद्रां च पुरुषं चिन्तयेत्सदा।।६४।।
चित्रलेखा सखी गत्वा बाणमाह च तत्प्रियाम्।
दुर्गां च शङ्करं स्कन्दं गणेशं योगिनां गुरुम्।।६५।।
चित्रलेखावचः श्रुत्वा रुरोदोच्चैर्भृशं सती। बाणश्च शङ्कराभ्याशे विषसाद प्रमुर्च्छितः।
जहास शङ्करो दुर्गा कार्तिकेयो गणेश्वरः।।६६।।

चित्रलेखा का कथन सुनकर ऊषा ने कुछ नहीं कहा। वह ऊषा आहार निद्रा त्याग कर सदा उसी पुरुष का चिन्तन करती रहती थी। यह देखकर सखी चित्रलेखा ने बाण, बाण की पत्नी, दुर्गा-शंकर, योगीगण के गुरु गणेश से ऊषा की हालत का वर्णन कर दिया। चित्रलेखा का कथन सुनकर बाणासुर की पत्नी उच्चस्वर से रुदन करने लगी। बाणासुर यह सब सुनकर शंकर से दुःख कहते हुये अगले क्षण मूर्च्छित हो उठा। यह दृश्य देखकर शंकर, दुर्गा, गणेश, कार्त्तिकेय आदि हंस रहे थे।।६४-६६।।

गणेश्वर उवाच

यो ददाति ध्रुवं दुःखमन्यस्मै दम्भमोहितः। सूक्ष्मधर्मविचारेण स विन्दसि चतुर्गुणम्।।६७।।
शिवेशयोश्च क्रीडां च दृष्ट्वा या काममोहिता। वरं तस्यै ददौ दुर्गा वरमेव सुदुर्लभम्।।६८।।
स्वप्ने गत्वा स्वयं देवी मत्तं कृत्वा स्मरात्मजम्।
अधुना वामपार्श्वे च शंभोस्तिष्ठति मूकवत्।।६९।।
सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो भगवान्हरिरीश्वरः। स्वप्ने सुवेषं पुरुषं दर्शयामास कन्यकाम्।।७०।।
सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा युवानं युवती सती। परमेच्छा भवेत्तस्या धर्मभीत्या निवर्तते।।७१।।

गणेश्वर कहते हैं—जो व्यक्ति दम्भ से मोहित होकर अन्य को दुःख देता है, वह धर्म की दृष्टि से उससे चौगुना दुःख भोग स्वयं करता है। तुम्हारी पुत्री ऊषा जो शिव-पार्वती की क्रीड़ा देखकर विमोहिता हो गई थी, उसे देवी दुर्गा ने देव दुर्लभ पति प्राप्त होने का वर दिया था। वे देवी अब स्वयं स्वप्नावस्था में कामपुत्र अनिरुद्ध को मत्त करके अब शंभु के बायीं बगल में बैठी हैं। सर्वज्ञ सर्वसमर्थ भगवान् हरि ने समस्त प्रसंग जानकर स्वप्नावस्था में तुम्हारी कन्या को उस सुवेष पुरुष को दिखला दिया। उत्तम पुरुष को देखकर सती नारी भी परम अभिलाषामयी होने पर भी धर्म भय से इस अभिलाषा को त्याग देती है।।६७-७१।।

सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा पुंश्चली पापवंशजा। त्यजेन्निद्रां च स्वाहारं पतिं पुत्रं धनं गृहम्॥७२॥

चेतनं गृहकार्यं च कुललज्जा कुलद्वयम्।
युवानं रतिशूरं चाप्यतिनीचं[1] न हि त्यजेत्॥७३॥
त्यजेज्जतिं च धर्मं च प्राणांश्च परिणामतः।
तस्मात्प्राज्ञः प्रयत्नेन प्राणेभ्यो युवतीं सदा॥७४॥

परिरक्षेच्च सततं मायायुक्तां न विश्वसेत्। हृदयं क्षुरधाराभं नारीणां मधुरं वचः॥७५॥

परन्तु पापमय वंश में उत्पन्न कुलटा नारी सुवेष पुरुष को देखकर पति-पुत्र-धर्म-गृह-निद्रा आहार-अपनी चेतना-गृहकार्य, लज्जा, पतिकुल-पितृकुल, जाति, धर्म तथा प्राण तक त्याग देती हैं, तथापि रतिकुशल नीच युवक का त्याग नहीं करती। अतः प्राज्ञ व्यक्ति सुन्दरी युवा पत्नी की सदा प्राणपण रक्षा करे, तथापि मायायुक्ता नारी का विश्वास न करें। ऐसी नारी मीठी वाणी ऊपर-ऊपर बोलती तो हैं, परन्तु उनका हृदय तो छूरे की धारा जैसा होता है।।७२-७५।।

तासां मनो न जानन्ति सन्तो वेदाश्च वैदिका।
प्रयातु द्वारकां सद्यश्चित्रलेखा सुयोगिनी॥७६॥

अनिरुद्धं समाहर्तुं प्रमत्तमवलीलया। इति श्रुत्वा महादेवो गणेशं तमुवाच ह॥७७॥

न शृणोति यथा बाणः शुभकार्यं तथा कुरु। चित्रलेखा ययौ तूर्णं द्वारकाभवनं हरेः॥७८॥

"साधु, देवता, वेदज्ञ व्यक्ति भी इनके मन में क्या है. यह नहीं जान पाते। यह श्रेष्ठ योगिनी चित्रलेखा उन प्रमत्त अनिरुद्ध को यहां लाने हेतु यथाशीघ्र द्वारका जाये।", तथापि गणेश का यह वाक्य सुनकर महादेव ने उनसे कहा–"यह शुभकर्म इस प्रकार करो कि इसे बाणासुर न जानें।" तब चित्रलेखा द्वारका हरि के भवन चली गई।।७६-७८।।

सर्वेषामपि दुर्लङ्घ्यं लीलया प्रविवेश सा। निद्रितं चानिरुद्धं च समाहृत्य च योगतः॥७९॥

रथमारोहयामास निद्रितं बालकं मुदा। सा मनोयायिनी भद्रा गृहीत्वा बालकं मुने॥८०॥

मुहूर्ताच्छोणितपुरं कृत्वा शङ्खध्वनिं ययौ। अथाऽऽश्रमाभ्यन्तरे च रुरुदुः सर्वयोषितः॥८१॥

अहो बाणहरो वत्सः क्वगतः प्राणवल्लभः। कृष्णस्ताश्च समाश्वास्य सर्वज्ञः सर्वतत्त्ववित्॥८२॥

साम्बकामबलैः सार्धं कृष्णः सात्यकिना तथा।
गृहीत्वा गरुडं वीरं रथमारुह्य सत्वरः॥८३॥

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं पद्मं कौमोदकीं गदाम्। पश्चाद्यास्यतिदिवेशो नगरं शोणितं तथा॥८४॥

सगणैःशङ्करेणैव पार्वत्या परिरक्षितम्।
अथ सा योगिनी धन्या पुण्या मान्या च योषिताम्॥८५॥

---

१. क. ०प्यनीतिं च न।

शिष्या दुर्वाससः शान्ता सिद्धयोगेन सिद्धिदा।
बालकं बोधयामास रुदन्तं मातरं स्मरन्॥८६॥

जो भवन सबके लिये अगम्य था। वहां चित्रलेखा (योगबल से) अलक्ष्य रूप से चली गई। उस भवन में उसने योग द्वारा अनिरुद्ध का हरण करके अपने रथ पर रख दिया। हे मुनिवर! वह मनोगति से (मन के समान वेग से) बालक अनिरुद्ध को शंखध्वनि के साथ बाणासुर की पुरी शोणितपुर ले आई। उधर कृष्ण के भवन में अनिरुद्ध को न पाकर सभी स्त्रियां यह कहती रुदन करने लगीं--"हे वत्स! प्राणवल्लभ! तुम कहां गये? क्या बाणासुर ने तुम्हारा हरण कर लिया?" तब कृष्ण ने सब स्त्रियों को आश्वस्त किया। वे सर्वज्ञ, सर्वतत्ववेत्ता प्रभु श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र, पांचजन्य शंख, पद्म, कौमोदकी गदा लेकर रथारूढ़ हो गये। उन्होंने गरुड़, साम्ब प्रद्युम्न, महती सेना तथा सात्यकी को साथ लिया। वे इस प्रकार शोणितपुर आये। वह नगर शिव-पार्वती तथा शिवगणों से रक्षित किया गया था। उधर योगिनी स्त्रियों में धन्या, पुण्यवती, माननीया सिद्ध योग में सिद्धि प्राप्त दुर्वासा की शिष्या चित्रलेखा ने बालक अनिरुद्ध को आश्वासन दिया, जो माता का स्मरण करके रो रहे थे।।७९-८६।।

स्नापयित्वा ददौ तस्मै माल्यचन्दनभूषणम्।
कृत्वा सुवेषं बालस्य कन्यान्तः पुरमीप्सितम्॥८७॥
चक्रे प्रवेशं योगेन रक्षकैश्चापि रक्षितम्। तामूषां निद्रितां दृष्ट्वा निराहारां कृशोदरीम्॥८८॥
शीघ्रं च बोधयामास सखीभिः परिरक्षिताम्।
ऊषां कृत्वा च सुस्नातां वस्त्रभूषणभूषिताम्॥८९॥
वस्त्रैर्माल्यैश्चन्दनैश्च सिन्दूरपत्रकैः शुभैः। द्वयोः संभाषणं तत्र माहेन्द्रे च शुभक्षणे॥९०॥
कारयामास गुप्त्या च सखीनां सम्मतेन च।
पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा सा रेमे विगतज्वरा॥९१॥

चित्रलेखा ने अनिरुद्ध को उत्तमरूप में स्नान कराया। उन्हें चन्दन माला आदि से सुसज्जित करके बालक की वेषभूषा सुन्दर बनाया तथा रक्षकगण-रक्षित कन्या ऊषा के अन्तःपुर में योगबल से अनिरुद्ध सहित प्रवेश किया। उन्होंने वहां जाकर निराहारा, कृश शरीर, तथापि सखियों से सुरक्षित ऊषा को जगाकर स्नान कराया। उसे वस्त्राभूषण, माला-चन्दन, उत्तम शुभ सिन्दूर पत्रकों से सुसज्जित करके सखियों की सहमति लेकर ऊषा अनिरुद्ध का वार्त्तालाप गुप्तरूप से सम्पन्न कराया। पतिव्रता ऊषा पति को देखकर दुःख रहित हो गई। यह वार्त्तालाप चित्रलेखा ने शुभ माहेन्द्र क्षण में कराया था।।८७-९१।।

गान्धर्वेण विवाहेन तामुवाह स्मरात्मजः। रतिर्बभूव सुचिरमुभयोः सुखकारणम्॥९२॥
दिवानिशं न बुबुधे स्मरपुत्रः स्मरातुरः।
ऊषा कामातुरा प्रौढा नवोढा नवसङ्गमात्॥९३॥

मूर्च्छां सम्प्राप पुंसश्च स्पर्शमात्रेण कामुकी। एवं नित्यं च रहसि सङ्गमः सुमनोहरः।
बभूव सुचिरं विप्र राजा शुश्राव रक्षकात्॥९४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० ऊषानिरुद्धयोः सङ्गमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११४॥
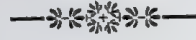
उस समय चित्रलेखा ने कामदेव के पुत्र अनिरुद्ध का गुप्त गान्धर्व विवाह ऊषा से कराया। तदनन्तर कन्दर्पपुत्र अनिरुद्ध ने दीर्घकाल तक ऊषा के साथ सुखप्रद समागम क्रीड़ा भी किया। अनिरुद्ध को इस कामक्रीड़ा के कारण दिन-रात का भान ही नहीं था। उधर नवसंगम के कारण कामातुरा प्रौढ़ा नवोढ़ा ऊषा पुरुष के स्पर्शमात्र से अपनी सुध-बुध खो बैठी। इस प्रकार एकान्त में दीर्घकाल तक इन दोनों का सुख संगम होता रहा। हे विप्र! तदनन्तर रक्षक को जब इस घटना का ज्ञान हो गया, तब उससे राजा बाण ने भी यह प्रसंग जान लिया!॥९२-९४॥

॥११४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

रक्षकों से ऊषा का यह प्रेमप्रसंग सुनकर बाणासुर का क्रोधित होना, महादेव द्वारा हितजनक उपदेश किया जाना, तथापि बाणासुर की युद्धयात्रा, बाणासुर-अनिरुद्ध संवाद

नारायण उवाच

अथ भीता रक्षकास्ते समूचुर्बाणमीश्वरम्। स्कन्दं गणेशं दुर्गां च दण्डवत्प्रणिपत्य च॥१॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—तदनन्तर रक्षकगण ने भयभीत होकर स्कन्द, गणेश, दुर्गा को दण्डवत् प्रणाम करके अपने स्वामी बाणासुर से कहा—॥१॥

रक्षका ऊचुः

अहो दुष्टश्च कालोऽयमतीव दुरतिक्रमः।
स्वतन्त्रा बालिका प्रौढा पतिमिच्छति साम्प्रतम्॥२॥

असङ्गसङ्गमं नाथ साधूनां दुःखकारणम्। संसर्गजा गुणा दोषा भवन्ति संततं नृणाम्॥३॥
चित्रलेखा स्वयं दूती समानीय परं वरम्। रणशूरं महावीरं नृपेन्द्रं च महारथम्॥४॥

युवानं व्याधिहीनं च कन्दर्पादपि सुन्दरम्। संभोगं कारयामास बुबुधे न दिवानिशम्॥५॥
साम्प्रतं तव कन्या साऽप्यूषा गर्भवती सती। कुलजा कुलयोश्चैव तप्ताङ्गारस्वरूपिणी॥६॥

रक्षक कहते हैं–अहा! कितने कष्ट की बात है। काल अत्यन्त दुरतिक्रम है। आपकी प्रौढ़ा कन्या ऊषा स्वतन्त्र होकर पति की इच्छा कर रही है। हे प्रभो! असत्संग साधुगण के लिये दुःखप्रद होता है। मनुष्यों में संसर्गजनित गुण-दोष का संक्रमण सतत् होता रहता है। चित्रलेखा स्वयं दूती बनकर रणवीर, वीरेन्द्र, नृपेन्द्र, उत्कृष्ट महारथी को लाकर ऊषा से संभोग करा रही है। यह वर कामदेव से भी सुन्दर, निरोग, युवा है। दिन-रात कैसे व्यतीत हो रहे हैं, इसका भान उसे नहीं है। बोध होता है कि आपकी कन्या ऊषा गर्भवती हो गई। वह कुलीन है, तथापि वह दोनों कुल हेतु तप्त अंगार के समान हो गई!॥२-६॥

दौहित्रो वाऽपि दौहित्री बभूव साम्प्रतं तव।
कन्यां पश्य महाप्रौढां नगरीं नागरान्विताम्॥७॥
नखविक्षतसर्वाङ्गीं वराधीनां च चञ्चलाम्। पुंसश्च सङ्गिनीं शश्वद्रहस्ये रतिसङ्गिनीम्॥८॥
सस्मितां सकटाक्षां च चञ्चलेक्षणवीक्षिताम्।
एवं श्रुत्वा लज्जितश्च बाणस्तत्र चुकोप ह॥९॥

"वह अपने वर पुरुष के अधीन है, चंचल है। उसका सभी अंग उस पुरुष द्वारा किये नखक्षत से भरा है। वह उसकी एकान्त में सतत् रतिसंगिनी हो गई है। वह कटाक्षयुता तथा मुस्कान युता होकर उसे देखती है।" रक्षकों का यह कथन सुनकर बाणासुर लज्जित तथा कुपित हो गया॥७-९॥

युद्धाय च मतिं चक्रे वारितः शम्भुना भृशम्।
वारितश्च गणेशेन स्कन्देन शिवया तथा॥१०॥
भैरव्या भद्रकाल्या च योगिनीभिश्च सन्ततम्। अष्टभिर्भैरवैश्चैव रुद्रैरेकादशात्मकैः॥११॥
भूतैः प्रेतैश्च कूष्माण्डैर्वेतालैर्ब्रह्मराक्षसैः। योगीन्द्रैरपि सिद्धेन्द्रै रुद्रैश्चण्डादिभिस्तथा॥१२॥
[1]कोटर्या ग्रामदेव्या च यथा मात्रा हिताय च। उवाच शङ्करो बाणं मूढं पण्डितमानिनम्।
हितं सत्यं नीतिशास्त्रं परिणामसुखावहम्॥१३॥

तब उसने युद्ध हेतु दृढ़ निश्चय कर लिया, तथापि वह शंकर द्वारा रोक लिया गया। अतः गणेश, स्कन्द, पार्वती, भैरव, भद्रकाली, योगिनी, अष्टभैरव, एकादश रुद्र, भूत-प्रेत-कूष्माण्ड-वेताल-ब्रह्मराक्षस, योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र, चण्डादि रुद्रगण, ग्रामदेवी कोटरी, माता तथा शंकर ने मूर्ख बाण से अनेक हितकारी, नीतिशास्त्रानुमोदित, परिणाम में सुखप्रद बातें कहकर समझाया। (अन्ततः) महादेव कहते हैं॥१०-१३॥

---

१. क. संप्रोच्य प्रा।

महादेव उवाच

श्रृणु बाण प्रवक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम्। भुवो भारावतरणे भारते स्वयमीश्वरः॥१४॥
निहत्य सर्वान्राजेन्द्रान्द्वारकायां विराजते।
यस्य लोमसु विश्वानि तस्य वासः सदीश्वरः॥१५॥
वासुदेव इति ख्यातः कथ्यते तेन कोविदैः।
धातुर्विधाता भगवांश्चक्रपाणिः स्वयं भुवि॥१६॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः। निर्गुणश्च निरीहश्च भक्तानुग्रहविग्रहः॥१७॥

श्रीमहादेव कहते हैं–हे बाण! मैं तुमसे पुरातनी कथा कहता हूं। श्रवण करो। पृथिवी का भार उतारने हेतु स्वयं ईश्वर यहां आये हैं। वे वासुदेव नाम से प्रसिद्ध हैं। वे सभी राजेन्द्रों का वध करके द्वारका में विराजमान हैं। जिनके प्रत्येक रोम में विश्वों का निवास है, वे सदीश्वर हैं। तभी कविगण उनको वासुदेव कहते हैं। वे विधाता, विष्णु तथा शिव आदि के भी स्वामी, प्रकृति से परे, निर्गुण, निरीह, भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु देह धारण करने वाले हैं।।१४-१७।।

परं ब्रह्म परं धाम परमात्मा च देहिनः। यस्मिन्गते शवो जीवो संग्रामस्तेन संभवेत्॥१८॥
शस्त्रविद्धो महाकाशो[1] यथा मूढ दिशस्तथा।
तथाऽऽत्मा च निराकारो देही च ध्यानहेतुना॥१९॥
तस्य पुत्रोऽनिरुद्धश्च महाबलपराक्रमः। त्रैलोक्यमपि संहर्तुं क्षणेन च क्षमः स्वयम्॥२०॥
सर्वे देवाश्च दैत्याश्च बलवन्तो महारथाः।
ते सर्वे चानिरुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥२१॥
ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं बलम्। तयोर्विवाहो[2] मैत्री च न तु पुष्टविपुष्टयोः॥२२॥

वे परंब्रह्म, परंधाम, परमात्मा हैं, जिनके चले जाने पर देह शववत् हो जाता है। उनसे संग्राम कैसे संभव है? शस्त्रों (बाणों) से आवरित आकाश में दिशाज्ञान नहीं हो पाता, तदनुरूप मनुष्य कदापि ध्यान से उन निराकार को नहीं देख सकता। ये अनिरुद्ध उनके पौत्र हैं। पुत्र प्रद्युम्न हैं जो दोनों महाबली-पराक्रमी तथा त्रैलोक्य का नाश क्षणमात्र में करने में समर्थ हैं। समस्त देवगण, दैत्य समूह, सभी बली महारथी मिल कर भी अनिरुद्ध के सोलहवें भाग (१/१६) के भी समान नहीं ठहरते। यदि दोनों पक्ष के पास समान धन किंवा समान बल हो, उन दोनों में विवाह सम्बन्ध किंवा मित्रता शोभा प्रदान करती है, तथापि बली-निर्बल का सम्बन्ध कदापि उचित नहीं माना जाता।।१८-२२।।

बलिः पिता ते दैत्यानां सारभूतो महारथः। क्षणेन येन नीतश्च सुतलं स हरेः कला॥२३॥

---

१. क. कालो।
२. क. वादो।

सर्वे चांशकलाः पुंसः परिपूर्णतमस्य च। वृन्दावनेश्वरस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः॥२४॥

जो हरि की कला, दैत्य शिरोमणि तथा महारथी थे, उन तुम्हारे पिता बलिराज को जिन्होंने क्षण में सुतल भेज दिया, समस्त प्राणीगण वृन्दावनेश्वर परमात्मा श्रीकृष्ण की ही अंश कलायें हैं।।२३-२४।।

पार्वत्युवाच

ध्यायते ध्यानिष्ठश्च हृत्पद्मे च दिवानिशम्। ब्रह्मा महेशः शेषश्च भगवन्तं सनातनम्॥२५॥

दिनेशश्च गणेशश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। ध्यायते परमात्मानं भगवन्तं सनातनम्॥२६॥

सनत्कुमारः कपिलो नरो नारायणस्तथा। ध्यायते हृदयाम्भोजे भगवन्तं सनातनम्॥२७॥

मनवश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा योगिनां वराः।
ध्यानासाध्यं च ध्यायन्ते भगवन्तं सनातनम्॥२८॥

सर्वादिं सर्वबीजं च सर्वेशं च परात्परम्। ध्यायन्ते ज्ञानिनः सर्वे भगवन्तं सनातनम्॥२९॥

देवी पार्वती कहती हैं–ब्रह्मा, महेश, शेष, ये ध्याननिष्ठ लोग हृदय कमल में इन सनातन भगवान् का रात-दिन ध्यान करते हैं, सूर्यदेव तथा योगीन्द्र-गण के गुरु गणपति भी इन सनातन प्रभु का सतत् ध्यान करते रहते हैं। इन भगवान् का ध्यान सनत्कुमार, कपिल, नर-नारायण ऋषि अपने हृदय कमल में सतत् ध्यान करते रहते हैं। सभी मनु, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्रगण, श्रेष्ठयोगी भी इन ध्यानातीत प्रभु का सतत् ध्यान करते हैं। ये परमेश्वर सबके आदि, सबके बीजरूप, सर्वेश, परात्पर हैं। सभी ज्ञानीजन इन सनातन भगवान् के ध्यान में निरत रहा करते हैं।।२५-२९।।

गणेश उवाच

अभाग्यं च बलेश्चापि वैष्णवस्य महात्मनः।
मूढोऽयमीदृशः पुत्रः प्रह्लादस्य च धीमतः॥३०॥

श्रीगणेश कहते हैं–यह वैष्णव महात्मा बलि तथा श्रीमान् प्रह्लाद का अभाग्य है, जो उनके वंश में ऐसा मूढ़ पुत्र जन्मा।।३०।।

स्कन्द उवाच

अये भ्रातर्न श्रुता न हिरण्यकशिपोः कथा।
हिरण्याक्षस्य च मधोः कैटभस्य महात्मनः॥३१॥
पूर्वजास्तेऽपि ते दैत्या महाबलपराक्रमाः।
क्रमेण विष्णुना नीता लीलया यमसादनम्॥३२॥
भगवान्यस्य संहर्ता स्वयं नारायणः प्रभुः।
तस्य को रक्षिता भ्रातर्निवर्तस्व शुभाय च॥३३॥

स्कन्ददेव कहते हैं–हे भ्राता! क्या आपने महात्मा हिरण्यकशिपु, मधु-कैटभ का प्रसंग क्या

नहीं सुना है? ये सभी महाबली-पराक्रमी दैत्य आपके पूर्वज थे, जिनको भगवान् विष्णु ने लीलामात्र से यमालय भेज दिया। हे भाई बाणासुर! जिसके संहारक स्वयं नारायण देव हैं, उसकी रक्षा कौन कर सकता है? अतएव हे भाई! अपने शुभ के लिये युद्ध से निवृत्त हो जाओ।।३१-३३।।

तेषां च वचनं श्रुत्वा तानुवाचासुरेश्वरः। कोपरक्तास्यनयनो धनुष्पाणिर्यथाऽन्तकः।।३४।।

स्कन्ददेव तथा अन्य देवगण का यह कथन सुनकर क्रोधारक्त नेत्र वाले धनुर्धारी यम जैसे लगने वाले बाणासुर ने कहा—।।३४।।

बाण उवाच

शृणु मातः प्रवक्ष्यामि शृणु तात महेश्वर। शृणु भ्रातर्गणपते शृणु भ्रातश्च कार्तिक।।३५।।

शुभाशुभं प्राक्तनेन प्राणिनां कर्मिणां तथा।
कृतकर्मातिरिक्तं च कार्यं केषां च वर्तते।।३६।।
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि।
तृणाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति।।३७।।
यस्माच्च यस्य निर्वाणं विधात्रा लिखितं पुरा।
तदेव नित्यं सत्यं च निषेकः केन वार्यते।।३८।।

बाणासुर कहता है—मां दुर्गा, पिता महेश्वर! भ्राता गणेश तथा भ्राता कार्त्तिकेय! मैं जो कहता हूं, श्रवण करिये। मनुष्य का मंगल-अमंगल उसके प्राक्तन कर्मानुरूप होता है। प्राणीमात्र कर्म के अधीन है। जो कर्म किया है, उससे अतिरिक्त फल किसे प्राप्त हो सकेगा? जब तक व्यक्ति का काल नहीं आया, वह सैकड़ों बाणों से विद्ध होकर भी मृत नहीं हो सकता और समय आने पर तृण के अग्रभाग का स्पर्श हो जाने पर ही वह जीवित नहीं रह पाता। पूर्वकाल में विधाता ने जिसका जब निहत होना लिख दिया, वही यथार्थ एवं सत्य है। जो होनी है, उसे कौन रोक सकेगा?।।३५-३८।।

संग्रामे कातरो यो हि निष्फलं तस्य जीवनम्।
जयी यशश्च लभते मृतः स्वर्गं च गच्छति।।३९।।

प्रविश्य कन्यां गृह्णाति नगरं शिवरक्षितम्। पार्वत्या च गणेशेन युद्धेन बलिना तथा।।४०।।

को वा गृह्णाति कन्यां च कस्य वा जीवितस्य च।
सगर्भा तव कन्येति सभायां रक्षको वदेत्।।४१।।
इति मे वज्रतुल्यं च श्रुतिकौटं परं वचः।
[१]अतोऽनिरुद्धं हत्वा च घातयिष्यामि कन्यकाम्।
अन्यथा ज्वलदग्नौ च त्यक्ष्यामि च कलेवरम्।।४२।।

१. क. रणेऽ—।

जो संग्राम से डर कर कातर हो जाये, उसका जीना व्यर्थ है। युद्ध में जय होने पर यश तथा मृत होने पर स्वर्ग मिलता है। अनिरुद्ध ने शंकर-पार्वती-गणेश रक्षित नगर में प्रवेश करके कन्या पर अधिकार कर लिया, यह तो बलवान् व्यक्ति युद्ध से करते हैं। जो जीवित है, उसकी कन्या को कोई ग्रहण कर लेगा? रक्षकगण ने कहा कि कन्या गर्भवती है। यह वाक्य मेरे कानों में बराबर वज्रतुल्य प्रहार कर रहा है। मैं युद्ध में अनिरुद्ध का वध करूंगा, किंवा प्राणत्याग करूंगा! मैं अनिरुद्ध का वध करके कन्या का भी वध करूंगा, यदि ऐसा नहीं कर सका तब प्रज्वलित अग्नि में देहत्याग दूंगा।।३९-४२।।

कोटर्युवाच

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि माताऽहं तेऽपि धर्मतः। दुरन्तेनापि पुत्रेण पित्रोर्दुःखं पदे पदे।।४३।।

कन्या परगृहीता साऽप्यन्यस्मै दातुमक्षमा।
श्रीकृष्णस्यापि पौत्राय प्रद्युम्नस्य सुताय च।।४४।।
अनिरुद्धाय महते स्वेच्छया देहि कन्यकाम्।
पूतोऽसि भारते वर्षे सप्तभिः पितृभिः सह।।४५।।

देवी कोटरी कहती हैं–हे वत्स! धर्मतः मैं तुम्हारी माता हूं। जो कहती हूं, श्रवण करो। दुष्ट सन्तान से माता-पिता पग-पग पर दुःख झेलते हैं। यह कन्या अन्य के द्वारा हरण कर ली गई। अब यह किसी और को देने योग्य नहीं रह गयी। अतः श्रीकृष्ण के पौत्र तथा प्रद्युम्न के पुत्र इस अनिरुद्ध को स्वेच्छा पूर्वक कन्या प्रदान करो। भारत में तुम्हारे ७ पूर्व पुरुष इससे पवित्र हो जायेंगे तथा तुम भी पवित्र हो जाओगे।।४३-४५।।

यौतुकं देहि सर्वस्वं यशसे महसे[१] भुवि। अन्यथा रणमध्ये च त्वां हनिष्यति माधवः।।४६।।
सुदर्शनेन चक्रेण को वा त्वां रक्षितुं क्षमः। कोटरीवचनं श्रुत्वा चुकोप दैत्यपुङ्गवः।।४७।।
प्रययौ रथमारुह्य यत्र पौत्रो हरेर्मुने। स्कन्दः सेनापतिर्भूत्वा प्रययौ शङ्कराज्ञया।।४८।।

बाणः स्वस्त्ययनं चक्रे गणेशश्च शिवः स्वयम्।
बाणं शुभाशिषं चक्रे पार्वती कोटरी तथा।।४९।।

अष्टौ च भैरवाश्चैव रुद्राश्चैकादशैव ते। सर्वे युद्धाय हन्तारो बभूवुः शस्त्रपाणयः।।५०।।
एतस्मिन्नन्तरे दूतोऽप्यनिरुद्धमुवाच ह। पार्वत्या प्रेरितश्चैव बाणपन्त्या च सत्वरम्।।५१।।

"तुम इसे अपना सर्वस्व उपहार में प्रदान करो। इससे भूमण्डल में तुम्हारा महान् यश होगा। अन्यथा रणभूमि में माधव तुम्हारा वध कर देंगे। सुदर्शन चक्र से रक्षा कौन कर सकेगा?" देवी कोटरी का कथन सुनकर दैत्यप्रवर बाण क्रोधित हो गया। हे मुनिवर! वह रथारूढ़ होकर वहां गया जहां श्रीहरि

---

१. ख. हुते।

के पौत्र थे। उधर शंकर की आज्ञा से स्कन्द भी सेनापति होकर प्रस्थान कर गये। बाणासुर ने तब स्वस्तिवाचन कराया। उसे गणेश, साक्षात् देवदेवशिव, देवी पार्वती तथा देवी कोटरी ने भी आशीर्वाद प्रदान किया। बाणासुर की ओर से अष्टभैरव तथा एकादश रुद्र भी युद्धार्थ संहारक हो गये। तभी पार्वती एवं बाणासुर की पत्नी के भेजे दूत ने शीघ्र अनिरुद्ध से जाकर कहा–।।४६–५१।।

दूत उवाच

अनिरुद्धोत्तिष्ठ भद्रं पार्वतीवचनं शृणु। भव सान्नाहिको वत्स कुरु युद्धं बहिर्भव॥५२॥

दूत कहता है–"हे भद्र! अनिरुद्ध! उठ जाओ। पार्वती का वचन सुनो। उन्होंने कहा है–"हे वत्स! कवच धारण करो तथा बहिर्गत् होकर युद्ध करो।"।।५२।।

भीतोषा रुदती त्रस्ता सस्मार पार्वतीं सतीम्। रक्ष रक्ष महामाये मत्प्राणेश्वरमीप्सितम्॥५३॥
अभयेऽप्यभयं देहि संग्रामे घोरदारुणे। त्वमेव जगतां माता स्नेहस्ते सर्वतः समः॥५४॥

यह सुनकर भयभीत होकर रुदन करती त्रस्ता ऊषा ने सती पार्वती का चिन्तन करके कहा– "हे महामाया! मेरे अभिलषित प्राणेश्वर की रक्षा करिये। इस घोर दारुण युद्ध में इनको अभय प्रदान करिये। आप संसार की माता हैं। सब पर आपकी समान स्नेहवर्षा होती है।"।।५३–५४।।

अथानिरुद्धः सन्नाही शस्त्रपाणिर्वभूव ह। ऊषादत्तं रथं प्राप्य चकाराऽऽरोहणं मुदा॥५५॥

बहिः सम्भूय शिबिराद्ददर्श बाणमीश्वरः।
सान्नाहिकं शस्त्रपाणिं रक्तास्यलोचनं परम्॥५६॥
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं बाणश्च तमुवाच रुषाऽन्वितः।
घोरसंग्राममध्ये च विषोक्तिं प्रज्वलन्निव॥५७॥

तत्पश्चात् अनिरुद्ध ने कवच धारण किया तथा शस्त्र लेकर ऊषा प्रदत्त रथ पर सहर्ष बैठ गये। अनिरुद्ध ने शिविर से बहिर्गत् होते ही कवचधारी, शस्त्रपाणि आरक्त नेत्र बाणासुर को देखा। वह असुर अनिरुद्ध को देखते ही क्रोधान्वित हो गया। उस आसन्न घोर संग्राम में उसने प्रज्वलित विष भरे वचन कहे।।५५–५७।।

बाण उवाच

अये वीर महादुष्ट नीतिशास्त्रविवर्जित। चन्द्रवंशकुलाङ्गार पुण्यक्षेत्रेऽयशस्कर॥५८॥

पिता ते शम्बरं हत्वा जग्राह तस्य कामिनीम्।
ततो जातो भवानेव निरोधं स्वकुलक्षमम्॥५९॥

पितामहो वासुदेवो मथुरायां च क्षत्रियः। गोकुले वैश्यपुत्रश्च नाम्ना च नन्दनन्दनः॥६०॥
वृन्दावने च गोपस्य नन्दस्य पशुरक्षकः। साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टः परमलम्पटः॥६१॥

बाणासुर कहता है–हे महादुष्ट वीर! नीतिशास्त्र रहित! चन्द्रवंश के कुलांगार! पुण्यक्षेत्र भारत

में यश विरुद्ध अपयशपूर्ण कार्य करने वाले! तुम्हारे पिता प्रद्युम्न ने शम्बरासुर का वध करके उसकी पत्नी को ले लिया, उससे तुम उत्पन्न हो गये। तुम अपने कुल के इस कुलाचार को सुनो! तुम्हारा पितामह वासुदेव कृष्ण मथुरा में तो क्षत्रिय हैं, परन्तु गोकुल में वैश्य हैं। वहां उनका नाम नन्दनन्दन है। तुम्हारे पितामह वृन्दावन में नन्दगोप के पशुरक्षक हैं। वे परमलम्पट दुष्ट गोपियों के उपपति (जार) हैं।।५८-६१।।

जघान पूतनां सद्यो नारीघाती ह्यधार्मिकः। आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च॥६२॥
दुर्बलं नरकं हत्वा स्त्रीसमूहं मनोहरम्। जग्राह योनिलुब्धश्च स्वपुत्रमतिनिष्ठुरः॥६३॥

भीष्मकं मानवं जित्वा तत्पुत्रं चापि दुर्बलम्।
जग्राह कन्यकां तस्य देवयोग्यां च रुक्मिणीम्॥६४॥
सत्राजितःसूर्यभृत्यो देवात्प्राप मणीश्वरम्।
घातयित्वा ह्यु पायेन जग्राह मणिकन्यकाम्॥६५॥
कुरुपाण्डवयुद्धं च कारयित्वा च दारुणम्।
युधिष्ठिरस्य यज्ञे च शिशुपालं जघान सः॥६६॥

उसने तत्काल पूतना का वध कर दिया। वह नारी का घातक तथा अधार्मिक है। उसने मथुरा आकर कुब्जा के साथ मैथुन किया, जिससे वह मृत हो गई! तुम्हारा पितामह अत्यन्त निर्दयी तथा योनिक्रीड़ा का लालची है। उसने अपने पुत्र दुर्बल नरकासुर का वध करके उसके मनोहर स्त्रीसमूह का हरण कर लिया। (नरकासुर विष्णु के वराह अवतार में पृथिवी तथा वराहदेव के समागम से जन्मा था)। उसने मनुष्य भीष्मक तथा उसके पुत्र को जीत लिया, जो अत्यन्त दुर्बल थे। तदनन्तर उनकी रुक्मिणी नामक कन्या को ग्रहण कर लिया, जो देवताओं के योग्य थी। सूर्यपुत्र सत्याजित् ने सूर्यदेव से भाग्यतः महामणि लाभ किया था। उपाय से सत्याजित् का वध कराने के पश्चात् कृष्ण ने उनकी कन्या तथा उस मणि को ग्रहण कर लिया। उसने अत्यन्त दारुण कौरव-पाण्डव युद्ध कराया। युधिष्ठिर के यज्ञ में उसने शिशुपाल का वध कर दिया।।६२-६६।।

दन्तवक्त्रं च शाल्वं च जरासन्धं च दारुणः। सञ्जहार भुवो भूपसमूहमतिदारुणम्॥६७॥
उपायान्नरकं हत्वा सर्वस्वं तज्जहार सः। दुर्बलो राजभीतश्चसमुद्रं शरणं गतः॥६८॥

उसने दन्तवक्त्र, शाल्व, जरासंध तथा राजाओं का संहार किया। उसने उपाय से नरक का वध करके उसका सर्वस्व हर लिया। तदनन्तर वह राजा से भयग्रस्त होकर तथा उससे अपने को दुर्बल पाकर समुद्र की शरण में गया (समुद्र से कृष्ण ने १०० योजन भूखण्ड मांगा तथा द्वारकापुरी बसाया)।।६७-६८।।

जित्वा च भ्रातरं शक्रं भार्याया वचनेन च।
जग्राह पारिजातं च पुष्पं च स्वर्गदुर्लभम्॥६९॥

कंसं निहत्याधर्मिष्ठो भ्रातरं मातुरेव च। जग्राह तस्य सर्वस्वं परं किं कथयामि ते॥७०॥

पत्नी के कहने को मानकर उसने भाई इन्द्र पर विजय प्राप्त किया (विष्णु का एक नाम उपेन्द्र है। वे इन्द्र के भ्राता उपेन्द्र कहे गये हैं)। तब स्वर्ग का दुर्लभ पारिजात वृक्ष वहां से द्वारका ले आया। उसने अपने मामा धार्मिक कंस का वध करके उसका सर्वस्व हड़प लिया। उसका कर्म और अधिक क्या कहूं?॥६९-७०॥

जित्वा च भल्लुकं युद्धे जग्राह तस्य कन्यकाम्।
तत्पितुभगिनी कुन्ती चतुर्णां कामिनी भुवि॥७१॥
द्रौपदी भ्रातृपत्नी च पञ्चानां कामिनी तथा।
गोष्ठीनो[1] योनिलुब्धश्च शश्वत्परमलम्पटः॥७२॥
तज्ज्येष्ठो बलदेवश्च शश्वत्पिबति वारुणीम्।
यमुनां भ्रातृपत्नीं च करोत्याह्वानमीप्सितम्॥७३॥

जहार भगिनीं तस्य कौन्तेयः शक्रनन्दनः। सुभद्रां मातुलसुतां सन्निबोध कुलक्रमम्॥७४॥

उसने भालू जाम्बवन्त को जीतकर उसकी कन्या ले लिया। उसके पिता की बहन चार पुरुषों की स्त्री बनी (सूर्य, वायु, इन्द्र तथा पाण्डु)। उसके भाई युधिष्ठिर की पत्नी पांच पुरुषों की कामिनी बनी। कृष्ण गोशाला में रहने वाला, योनिक्रीड़ा लोभी तथा अत्यधिक लम्पट है। उसका बड़ा भाई बलदेव सदा वारुणी पीता रहता है तथा अभिलाषा होने पर भाई कृष्ण की पत्नी यमुना को बुलाता रहता है। इन्द्र तथा कुन्तीपुत्र अर्जुन द्वारा उसकी बहन तथा अपने मामा की पुत्री सुभद्रा हरी गई है। यह तुम्हारी वंश परम्परा की कथा है।॥७१-७४॥

बाणस्य वचनं श्रुत्वा चुकोप कामनन्दनः। उवाच परमार्थं च योग्यं प्रत्युत्तरं मुने॥७५॥

हे मुनि! कामनन्दन अनिरुद्ध बाण का वचन सुनकर कुपित हो गये। तब उन्होंने परमार्थपूर्ण योग्य उत्तर बाण को दिया।॥७५॥

अनिरुद्ध उवाच

पिता मे कामदेवश्च ब्रह्मपुत्रः पुरा शुचिः। यस्यास्त्रेण वशीभूतं त्रैलोक्यं सततं शृणु॥७६॥
शिवकोपानलेनैव भस्मीभूतः स्वकर्मतः। कृष्णस्य पुत्रोऽप्यधुना सर्वेषां परमात्मनः॥७७॥
पतिव्रता रतिर्माता पतिशोकेन साम्प्रतम्। शम्बरस्य गृहे तस्थौ हृता तेन बलेन च॥७८॥
छायां मायावतीं दत्त्वा मायया शयनेन च। रतिं स्वधर्मं संरक्ष्य धर्मसाक्षी च तद्गृहे॥७९॥

अनिरुद्ध कहते हैं—हे बाण! मेरे पिता कामदेव परमपावन ब्रह्मपुत्र थे। उनके अस्त्र से त्रैलोक्य उनके वशीभूत रहता है। वे अपने कर्म से शिव कोपाग्नि में दग्ध हो गये। इस समय वे परमात्मा कृष्ण

---

१. क. ०ष्टी ते।

के पुत्र हैं। मेरी माता पतिव्रता रति हैं। वे पतिशोक सन्तप्त होकर शम्बर के यहां रहीं। शम्बर ने उनको बलात् हर लिया था। तब उन्होंने अपनी छाया मायावती को वहां स्थापित करके अपनी रक्षा किया। उस गृह में धर्मदेव इसके साक्षी हैं।।७६-७९।।

निहत्य शम्बरं शत्रुं गृहीत्वा स्वप्रियां सतीम्।
आजगाम द्वारकां च चन्द्रसूर्यो च साक्षिणौ॥८०॥
पितामहं वासुदेवं त्वं किं जानासि मूढवत्।
यं च सन्तो न जानन्ति वेदाश्चत्वार एव च॥८१॥

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु। तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इति स्मृतः॥८२॥

शङ्करं पृच्छ साक्षाच्च यस्य भृत्योऽधुना भवान्।
कृष्णभृत्यस्य च बलेः पुत्रोऽसि किङ्करात्मजः॥८३॥

शत्रु शम्बर को मारकर पिता प्रद्युम्न अपनी पतिव्रता भार्या सती रति को लेकर द्वारका आ गये। इसके साक्षी चन्द्रमा-सूर्य हैं। हे मूढ़! तुम मूर्ख की तरह मेरे पितामह वासुदेव को क्या जानो? उनको सन्तजन एवं चतुर्वेद भी नहीं जानते। सबका जो निवास है, वह वासु है। उनके रोमकूपों में समस्त विश्व एक-एक करके रहते हैं। उस विश्वों के देव ही परब्रह्म वासुदेव हैं। यह सब शंकर से पूछो। जिसके तुम सेवक हो। कृष्ण के भृत्य बलिराज हैं। तुम बलिराज के पुत्र होने के कारण मेरे पितामह के दासपुत्र हो।।८०-८३।।

गोकुले वैश्यपुत्रत्वं ब्रूहि त्वं ज्ञानदुर्बल। भोजनं वेदविहितं शश्वत्क्षत्रियवैश्ययोः॥८४॥
द्रोणः प्रजापतिः श्रेष्ठा धरा तस्य प्रिया सती। पुत्रं च तपसा लेभे परमात्मानमीश्वरम्॥८५॥

द्रोणो नन्दो वैश्यराजो यशोदा सा धरा सती।
वृषभानसुता राधा सुदाम्नः शापकारणात्॥८६॥
त्रिंशत्कोटिं च गोपीनां गृहीत्वा भर्तुराज्ञया।
पुण्यं च भारतं क्षेत्रं गोलोकादाजगाम सा॥८७॥
ताभिः सार्धं स रेमे च स्वपत्नीभिर्मुदाऽन्वितः।
पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः॥८८॥

हे ज्ञानदुर्बल! तुमने कृष्ण को गोकुल का वैश्यपुत्र कहा! क्षत्रिय तथा वैश्य के बीच भोजन सम्बन्ध वेदोक्त है। प्रजापति द्रोण की पतिव्रता भार्या श्रेष्ठा धरा थी। उन्होंने ही परमात्मा ईश्वर को पुत्ररूपेण प्राप्त करने का तपस्या द्वारा वर प्राप्त किया था। सती धरा ही यशोदा तथा प्रजापति द्रोण ही नन्दराज हो गये। राधा श्रीदाम पार्षद के शाप से वृषभानुसुता हो गईं। राधा ही स्वामी श्रीकृष्ण की आज्ञा से अपनी तीस करोड़ गोपियों के साथ गोलोक से पुण्य क्षेत्र भारत के वृन्दावन आई हैं। वे सभी भगवान् की भार्या हैं। तभी भगवान् ने उन सबसे प्रसन्नता पूर्वक रमण किया। उन्होंने राधा से पाणिग्रहण किया, जिसमें ब्रह्मा पुरोहित थे।।८४-८८।।

गोपकोटिश्च गोलोकादाजगाम मुदाऽन्विता। तेजसा हरितुल्यारते पार्षदप्रवरा हरेः॥८९॥
गोरक्षणं हरेरेव गोपवेषस्य चाऽऽत्मनः।
गोपानां शिशुशिक्षार्थं मायेशस्यापि मायया॥९०॥

एक कोटि संख्यक गोपगण जो गोलोक से हर्ष पूर्वक भारत पुण्य क्षेत्र में स्थित वृन्दावन आये, वे सभी हरि के श्रेष्ठ पार्षद तथा उनके समान ही तेजयुक्त थे। परमात्मारूप हरि गोपवेश में जो गोधन रक्षण कार्य कर रहे थे, वह मायापति कृष्ण के मायाविजृम्भित गोपशिशुगण की शिक्षा हेतु ही था। वह अन्य कुछ नहीं था॥८९-९०॥

पूतना बलिकन्या च भगिनी च तवासुर।
दृष्ट्वा च वामनं विन्ध्या चकार पुत्रमानसम्॥९१॥
एवंभूतो यदि मम पुत्रो भवति साम्प्रतम्। स्तनं ददामि तनयं कृत्वा वक्षसि सुन्दरम्॥९२॥

हे असुर! तुम्हारी बहन बलि कन्या पूतना ही पूर्वजन्म में विन्ध्या थी। पूर्वजन्म में विन्ध्या ने वामन मूर्त्ति देखकर मन में पुत्र कामना के साथ यह इच्छा किया कि मेरा ऐसा पुत्र हो, तब उस सुरूप बालक को अपने वक्ष पर रखकर स्तनपान कराती॥९१-९२॥

तस्याः पूर्णं मानसं च चकार भगवान्प्रभुः।
स्तनं दत्त्वा च गोलोकं ययौ सा रत्नयानतः॥९३॥
कुब्जा सा भगिनी पूर्वं रावणस्य दुरात्मनः।
श्रीरामं चकमे कामान्नाम्ना शूर्पणखा सती॥९४॥
नासां चिच्छेद तस्याश्च लक्ष्मणो धार्मिकेश्वरः।
तपसा च वरं लेभे ब्रह्मणः प्रियमीश्वरम्॥९५॥
तेन पुण्येन तं लब्ध्वा गोलोकं सा जगाम ह।
गोपी बभूव गोलोके कृष्णस्याऽऽलिङ्गनेन च॥९६॥

उसकी यही कामना भगवान् प्रभु कृष्ण ने पूर्ण किया। वह श्रीकृष्ण के मुख में स्तनपान कराने के पश्चात् रत्नों से निर्मित विमान द्वारा गोलोक गयी। पूर्वजन्म में दुष्ट रावण की भगिनी शूर्पणखा थी। उसने कामभाव से श्रीराम की कामना किया। तब धार्मिक प्रवर लक्ष्मण ने उसकी नाक काट लिया। अन्ततः उसने तप द्वारा ब्रह्मा से जो वर लाभ किया, उस पुण्यफल से वह कृष्ण को पतिरूपेण पाकर तथा मृत होकर गोलोकगामी हो गई। कृष्ण का आलिंगन करने के प्रभाव से वह गोलोक में गोपी हो गई॥९३-९६॥

नरको हरिवध्यश्च स्वपूर्वप्राक्तनेन च।
पाणिं जग्राह कन्यानां साक्षिणौ शशिभास्करौ॥९७॥

भीष्मकन्या महालक्ष्मीः श्रीकृष्णस्य प्रिया सती।
वैकुण्ठादागता साध्वी ब्रह्मणोऽनुमतेन च॥९८॥
सत्राजितस्य कन्या सा सत्यभामा वसुन्धरा।
ददौ कृष्णाय राजा स तं मणिं यौतुकेन च॥९९॥
भुवो भारावतरणहेतुना गमनं हरेः। सञ्जहार भुवो भारं कुरुपाण्डवयुद्धतः॥१००॥
शिशुपालो दन्तवक्त्रो जयो विजय एव च।
द्वारिणौ द्वारषट्के च वैकुण्ठे श्रीहरेरपि॥१०१॥
कुमारशापात्पतितौ प्राप्य जन्मत्रयं ध्रुवम्। हिरण्यकशिपुश्चैव तवैव पूर्वपूरुषः॥१०२॥
तस्य भ्राता हिरण्याक्षस्तेनैव वरुणो जितः। हरिर्नृसिंहरूपेण तं जघानावलीलया॥१०३॥
सूकरेण हतोऽन्यश्च पूर्वजन्मकथां शृणु। द्वितीये जन्मनि पुरा रावणः कुम्भकर्णकः॥१०४॥
श्रीरामेण हतौ तौ द्वौ शेषजन्म कलौ तयोः।
श्रीकृष्णेन हतौ तौ द्वौ धर्मपुत्रावुभौ तथा॥१०५॥

नरकासुर अपने प्राक्तन कर्म के फलस्वरूप श्रीहरि द्वारा निहत किया गया था। वहां से प्राप्त सभी कन्या से कृष्ण ने पाणिग्रहण किया था। इसके साक्षी सूर्य-चन्द्र हैं। भीष्मक की पुत्री महालक्ष्मी ब्रह्मा की आज्ञा से धरती पर जन्मी थी। वह श्रीकृष्ण की पतिव्रता भार्या हो गई। साक्षात् देवी वसुन्धरा ही सत्राजित् की पुत्री सत्यभामा के रूप में उत्पन्न हुई थीं। राजा सत्राजित् ने श्रीकृष्ण को स्यमन्तक मणि उपहार में दिया था। श्रीकृष्ण ने कुरु-पाण्डव युद्ध द्वारा भूभार हरण किया था। शिशुपाल एव दन्तवक्त्र विष्णु के द्वारपाल जय-विजय थे। सनत्कुमार द्वारा शापित किये जाकर वे वहां से पदच्युत हो गये। उन्होंने पृथिवी पर तीन बार जन्म लिया था। यह निश्चित है। तुम्हारे ही पूर्वपुरुष हिरण्यकशिपु तथा देवी के भ्राता वरुणजेता हिरण्याक्ष, यह जय, विजय का प्रथम था। हरि ने नृसिंह रूप से हिरण्यकशिपु का वध किया था। अन्य भ्राता हिरण्याक्ष का वध वराह अवतार लेकर किया। अब अन्य पूर्वजन्म का प्रसंग सुनो। द्वितीय जन्म में ये रावण, कुम्भकर्ण हो गये। ये दोनों श्रीराम द्वारा मारे गये। अब शेष जन्म का वर्णन सुनो। ये दोनों धर्मपुत्र हुये। जिनको कलिकाल में श्रीकृष्ण ने मार दिया।।९७-१०५।।

जरासंधश्च शाल्वश्च दुरात्मा कंस एव च।
प्राक्तनात्तस्य वध्यास्ते भुवो भारजिहीर्षया॥१०६॥
मान्धातुः सुतमध्ये च यवनश्चापि प्राक्तनात्।
लक्ष्मीश्वरस्य कृष्णस्य धनेन किं प्रयोजनम्॥१०७॥

जरासन्ध, शाल्व तथा दुरात्मा कंस भी अपने प्राक्तन कर्म के कारण निहत हो गये। ये कार्य उन्होंने भूभारहरणार्थ किया था। मान्धाता के पुत्रों में से मुचुकुन्द द्वारा कालयवन अपने पूर्वकृत कर्म के कारण मारा गया था। लक्ष्मीश्वर कृष्ण को धन का क्या प्रयोजन?।।१०७-१०७।।

प्रतिज्ञया च सत्यायाः पुण्यकव्रतकारणात्।
पारिजातं समानीय चकार स्वात्मनो व्रतम्॥१०८॥
स्वयं जाम्बवती देवी दुर्गांशा भल्लुकात्मजा।
पाणिं जग्राह तस्याश्च तपसा भारते हरिः॥१०९॥

सत्यभामा के पुण्यक व्रत में सहयोग की प्रतिज्ञा पूर्वकाल में श्रीकृष्ण ने किया था। अतः पारिजात वृक्ष लाकर वहां सत्या को दिया गया था। देवी जाम्बवती दुर्गांश से उत्पन्न हैं। भल्लुक की पुत्री थीं साध्वी जाम्बवती। वे देवी भालू की पुत्री हैं। उन्होंने दुर्गा के अंश से जन्म ग्रहण किया है। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर हरि ने भारत में उनसे विवाह किया।।१०८-१०९।।

कुन्त्याश्च क्षेत्रजाः पुत्राः केवलं भर्तुराज्ञया।
कलौ निषिद्धं त्रियुगे प्रसिद्धं पलपैतृकम्॥११०॥
युधिष्ठिरो धर्मपुत्रो भीमश्च पवनात्मजः।
महेन्द्रपुत्रो धर्मिष्ठः फाल्गुनो विजयी भुवि॥१११॥
यस्मै पाशुपतं शंभुः प्रददौ च स्वयं पुरा।
अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्॥११२॥
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्।
द्रौपद्याः पञ्च भर्तारः शङ्करस्य वरेण च॥११३॥

पति पाण्डु की आज्ञा से कुन्ती ने क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न किये। यद्यपि कलियुग में यह विहित नहीं है, तथापि क्षेत्रजपुत्रोत्पत्ति सत्य, त्रेता तथा द्वापर में प्रसिद्ध तथा विहित है। युधिष्ठिर धर्मदेव के, भीम वायुदेव के, अर्जुन इन्द्र के पुत्र हैं। अर्जुन ने पृथिवी पर विजय लाभ किया है तथा शिव ने स्वयं उनको पशुपतास्त्र प्रदान किया था। कलिकाल में अश्वमेध तथा गोमेध यज्ञ करना, संन्यास लेना, क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न करना तथा देव से पुत्र उत्पन्न करना, ये पांच कार्य वर्जित हैं। द्रौपदी ने पांच पति शंकर के वरदान से प्राप्त किया था।।११०-११३।।

बलदेवः पुष्पमधु पूतं पिबति नित्यशः।
चकार यमुनाह्वानं स्नानार्थं धार्मिकः शुचिः॥११४॥
सुभद्रां च ददौ कृष्णः फाल्गुनाय महात्मने।
कन्यकां मातुलानां च दाक्षिणात्यः परिग्रहः॥११५॥
देशेष्वन्येषु दोषोऽयमित्याह कमलोद्भवः॥११६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणानिरुद्धसं० पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११५।।

बलदेव नित्य पुष्प का मधु पान करते हैं। वे अत्यन्त पवित्र हैं। उन्होंने स्नानार्थ यमुना का आवाहन किया था। दक्षिण देश में मामा की पुत्री से लोग विवाह कर सकते हैं, तथापि अन्य देश में यह दोष कहा गया है। यह ब्रह्मा का वचन है। कृष्ण ने स्वयं अर्जुन को सुभद्रा प्रदान किया था।।११४-११६।।

।।११५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

अनिरुद्ध द्वारा द्रौपदी के पांच पति होने के कारण का वर्णन, रतिहरण वृत्तान्त, अनिरुद्ध से बाणासुर की पराजय

बाण उवाच

अनिरुद्ध बुधोऽसि त्व त्वयोक्तं सत्यमेव च।
शम्भुना चैवमुक्तं च सर्वं बुद्धं स्वचेतसा[१]।।१।।
त्वयोक्तं शङ्करवरात्पञ्चानां स्वामिनां प्रिया।
द्रौपदी च महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।।२।।
शम्बरेण हृता पूर्वं तव माता कथं रतिः। देवैरपि कथं दत्ता देवास्तेन जिता कथम्।।३।।

बाणासुर कहता है–हे अनिरुद्ध! तुम बुद्धिमान हो। तुमने जो कुछ कहा वह सत्य है। यही महादेव ने भी मुझसे कहा था। मैंने मन ही मन सब जान लिया। तुमने अभी जो यह कहा कि महाभागा द्रौपदी ने शिव के प्रदत्त वरदान के प्रभाव से पांच पति प्राप्त किया था, उसका विस्तृत विवरण प्रकट करो। तुम्हारी जननी रति को शम्बर ने किस प्रकार हरा था? देवगण ने उसे शम्बर को कैसे प्रदान कर दिया? शम्बर ने देवगण को कैसे जीत लिया?।।१-३।।

अनिरुद्ध उवाच

एकदा रघुनाथश्च सीतया लक्ष्मणेन च। स्नातः सरसि तत्रस्थो रम्ये पञ्चवटीतटे।।४।।
उवाच सीता हेमन्ते जलं सुस्वादु निर्मलम्।
तथाऽन्नं व्यञ्जनं रम्यं सर्वं वस्तु सुशीतलम्।।५।।

---

१. क. ०तेजसा।

फलावचयनं चक्रे सीतायै प्रददौ मुदा। ततो ददौ लक्ष्मणाय पश्चाद्भुङ्क्ते स्वयं प्रभुः॥६॥
लक्ष्मणस्तद्गृहीत्वा च नैव भुङ्क्ते फलं जलम्।
मेघनादवधार्थं च सीतोद्धारणकारणात्॥७॥

अनिरुद्ध कहते हैं–एक बार रघुनाथ ने सीता तथा लक्ष्मण के साथ रम्य पंचवटी वन में सरोवर में स्नान किया। वहां पर उनसे सीता ने कहा–"हेमन्त में जल निर्मल तथा स्वादिष्ट होता है। अन्न व्यंजन रमणीय तथा सभी वस्तु शीतल रहती हैं।" तदनन्तर राम ने फल एकत्र किया तथा अत्यन्त प्रसन्नता से सीता को तथा तत्पश्चात् लक्ष्मण को देकर स्वयं फल का भोजन किया। परन्तु लक्ष्मण ने फल-जल लेकर भी उसका भोजन नहीं किया। यह उन्होंने भविष्य में सीता के उद्धारार्थ तथा मेघनाथ के वधार्थ किया॥४-७॥

निद्रां न याति नो भुङ्क्ते वर्षाणां च चतुर्दश। य एवं पुरुषो योगी तद्वध्यो रावणात्मजः॥८॥
एतस्मिन्नन्तरे रामं द्रष्टुं कमललोचनम्। वह्निस्तत्र समायातो द्विजरूपी कृपानिधिः।
भविष्यत्कथयामास श्रुतिकौटपरं वचः॥९॥

जो योगीपुरुष १४ वर्ष निद्रा रहित रहे तथा अनाहार रहे, वही मेघनाथ का वध करने में सक्षम हो सकेगा। इसी कारण लक्ष्मण ने फल का आहार ग्रहण नहीं किया। इसी अवसर पर कमलनयन राम का दर्शन करने अग्नि विप्ररूप में वहां आये और उन्होंने भविष्यत् का राम से कथन किया, जो सुनने में अत्यन्त कर्ण कटु था॥८-९॥

वह्निरुवाच

शृणु राम महाभाग सीतासङ्गोपनं कुरु। सप्ताहाभ्यन्तरे चैव रावणो दुष्टराक्षसः॥१०॥
दुर्निवार्यः प्राक्तनेन जानकीं च हरिष्यति। विधात्रा लिखितं कर्म प्राक्तनं केन वार्यते॥११॥
वेदैश्चतुर्भिःकथितं न च दैवात्परं वरम्॥१२॥

अग्निदेव कहते हैं–हे महाभाग राम! आप सीता को कहीं गोपनीयता से रखिये। एक सप्ताह के भीतर दुष्ट राक्षस रावण आयेगा। वह सीता का हरण कर लेगा। पूर्वजन्म के कर्म को कोई निवारित नहीं कर सकता। विधाता द्वारा लिखित प्राक्तन कर्म का निवारण कौन कर सकता है? चारों वेद का कथन है कि दैव से बढ़कर कुछ भी नहीं है!॥१०-१२॥

राम उवाच

सीतां गृहीत्वा त्वं गच्छ च्छायाऽत्रैव तु तिष्ठतु।
कलत्रवर्जनं कर्म सर्वेषां च जुगुप्सितम्॥१३॥

श्रीराम कहते हैं–हे अग्नि! आप सीता को लेकर जायें। सीता की छाया मेरे पास रहे। पत्नी त्याग करना निन्दित कार्य है॥१३॥

सीतां गृहीत्वा प्रययौ रुदतीं च हुताशनः।
सीतया सदृशी छाया तस्थौ श्रीरामसन्निधौ॥१४॥
सा च च्छाया हृता पूर्वं रावणेनावलीलया।
समुद्दधार तां रामो निहत्य तं सबान्धवम्॥१५॥
वह्नौ परीक्षाकाले च च्छाया वह्नौ विवेश सा।
अग्निश्छायां च संरक्ष्य ददौ रामाय जानकीम्॥१६॥
रामस्तां च गृहीत्वा च प्रययौ स्वाश्रमं मुदा। छाया तस्थौ दह्निपार्श्वे हृदयेन विदूयता॥१७॥
सा च च्छाया तपश्चक्रे नारायणसरोवरे। तपश्चकार दिव्यं च शतवर्षं च शूलिनः॥१८॥

तब अग्निदेव (वास्तविक) सीता को लेकर चले गये। जाते समय सीता रुदन करने लगीं। सीता की तरह उनकी यथार्थ छाया श्रीराम के यहां रह गयी। सीता की छाया का ही रावण ने लीला पूर्वक हरण किया था। राम ने बन्धु-बान्धवों सहित रावण का वध करके छाया सीता का उद्धार किया। जब राम ने सीता की अग्नि परीक्षा लिया, तब छाया सीता को अग्नि ने ग्रहण कर लिया। अग्नि ने सीता की छाया को रक्षित करके यथार्थ सीता राम को दे दिया। राम उन सीता के साथ मुदित होकर स्वगृह चले गये। जो छाया सीता थी, वह हृदय से दुःखी होकर अग्नि के निकट अवस्थान करने लगी। उस छाया सीता ने नारायण सरोवर पर तप किया वह तप दिव्य १०० वर्ष पर्यन्त छाया सीता ने किया। शंकर के निमित्त किये इस तप से वे प्रसन्न हो गये।।१४-१८।।

वरं वृणुष्व भद्रे त्वमुवाच शङ्करश्च ताम्।
उवाच सा शिवं व्यग्रा भर्तुर्दुःखेन दुःखिता॥१९॥
पतिं देहि पञ्चधा सा वरं वव्रे त्रिलोचनम्। सर्वसम्पत्प्रदस्तुष्टस्तस्यै शर्वो वरं ददौ॥२०॥

शंकर ने छाया सीता से कहा-"हे कल्याणी! वर मांगो!" उस समय छाया सीता पति के विछोह दुःख से दुःखित थी उसने व्यग्रता के साथ पांच बार कहा-"मुझे पति दीजिये।" यह सुनकर सर्वसम्पदा देने वाले शिव ने उसके प्रति प्रसन्न होकर वर देते हुये कहा-।।१९-२०।।

महादेव उवाच

साध्वि त्वं पञ्चधा ब्रूहि पतिं देहीति व्याकुला।
पञ्चेन्द्राश्च हरेरंशा भविष्यन्ति प्रियास्तव॥२१॥
ते च सर्वे च पञ्चेन्द्राश्चाधुना पञ्च पाण्डवाः।
सा च च्छाया द्रौपदी च यज्ञकुण्डसमुद्भवा॥२२॥
कृतयुगे वेदवती त्रेतायां जनकात्मजा। द्वापरे द्रौपदी छाया तेन कृष्णा त्रिहायणी॥२३॥
वैष्णवी कृष्णभक्ता च तेन कृष्णा प्रकीर्तिता। स्वर्गलक्ष्मीर्महेन्द्राणां सा च पश्चाद्भविष्यति॥२४॥

"महादेव कहते हैं–हे साध्वी! तुमने व्याकुल होकर ५ बार यह कहा कि पति दीजिये। अतः हरि के अंश रूप तुम्हारे ५ पति होंगे।" वे सभी पांच इन्द्र ही वर्त्तमान काल में पांच पाण्डव हैं। वही छाया सीता ही इस समय यज्ञकुण्ड से उत्पन्न द्रौपदी हैं। वे सत्ययुग में वेदवती, त्रेता में छाया सीता तथा द्वापर में द्रौपदी होती हैं। वे वैष्णवी तथा कृष्ण की भक्त हैं। अतः वे कृष्णा कही जाती हैं। ये ही भविष्य में इन्द्रों की स्वर्गलक्ष्मी कहलायेंगी।।२१-२४।।

राजा ददौ फाल्गुनाय कन्यायाश्च स्वयंवरे।
पप्रच्छ मातरं वीरो वस्तु प्राप्तं मयाऽधुना॥२५॥
तमुवाच स्वयं माता गृहाण भ्रातृभिः सह। शंभोर्वरेण पूर्वं च परत्र मातुराज्ञया॥२६॥
द्रौपद्याः स्वामिनस्तेन हेतुना पञ्च पाण्डवाः।
चतुर्दशानामिन्द्राणां पञ्चेन्द्राः पञ्च पाण्डवाः॥२७॥

राजा द्रुपद ने उस द्रौपदी को स्वयंवर में अर्जुन को प्रदान किया। आश्रम आकर अर्जुन के कहा–"माता! मैंने आज एक वस्तु प्राप्त किया है।" तब माता ने कहा–उसे भाईयों के साथ बांट कर ग्रहण करो। अतः द्रौपदी के पांच पति होने में शिव का वरदान तथा माता का आदेश है। ये पांच पाण्डव ही चतुर्दश इन्द्रों में से ५ इन्द्र हैं।।२५-२७।।

शङ्करेणाभिसंशप्ता सा मात्रा भर्त्सितेन च।
भर्ता ते भस्मसाद्भूतो हरकोपानलेन च॥२८॥
हे रति त्वं मया शप्ता दैत्यग्रस्ता भवाधुना।
विजित्य देवान्सेन्द्रांश्च शम्बरस्त्वां हरिष्यति॥२९॥

पूर्वकाल में शंकर की क्रोधाग्नि में मेरे पिता कामदेव भस्मीभूत हो गये। तब शंकर के इस शाप के कारण मेरी माता रति ने शंकर की भर्त्सना किया था। इस पर शंकर ने मेरी माता रति से कहा– "तुम मेरे शाप के कारण दैत्य की अधीनता में रहोगी; क्योंकि शम्बरासुर देवगण को विजित करके तुम्हारा हरण करेगा।"।।२८-२९।।

पुनरुक्तं वरं प्रादात्सतीत्वं ते न यास्यति।
छायां दत्त्वा तिष्ठ गेहे यावज्जीवति ते पतिः॥३०॥

तत्पश्चात् कृपालु शंकर ने रति को यह वर दिया कि "तुम्हारा सतीत्व वहां भी अक्षुण्ण रहेगा। नष्ट नहीं होगा। जब तक तुम्हारा पति जीवित नहीं होता, तब तक तुम्हारी छाया वहां रहे।"।।३०।।

इति ते कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम्। देवानां गुप्तचरितं शृणु दैत्येन्द्र साम्प्रतम्॥३१॥

हे बाण! मैंने यह पुरातन इतिहास कहा। अब तुम देवगण का गुप्त चरित्र श्रवण करो।।३१।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुभद्रश्च महाबलः। कुम्भाण्डभ्राता बलवान्बाणसेनापतीश्वरः॥३२॥

निर्भर्त्स्य बाणं समरे शस्त्रपाणिर्महारथः।
श्रीकृष्णपौत्रं शूलं च चिक्षेप प्रलयाग्निवत्॥३३॥
अर्धचन्द्रेण तच्छूलं चिच्छेद कामपुत्रकः। शक्तिं चिक्षेप भद्रश्च शतसूर्यसमप्रभाम्॥३४॥
वैष्णवास्त्रेण चिच्छेद तां शक्तिं कामपुत्रकः।
नारायणास्त्रं चिक्षेप सुभद्रो रणमूर्धनि॥३५॥

अनिरुद्ध यह प्रसंग कहने ही जा रहे थे कि तभी वहां महाबली सुभद्र आ पहुंचा जो कुम्भाण्ड का भ्राता तथा बाण का बली सेनापति था। उसने अनिरुद्ध से बातें करने के लिये बाणासुर की भर्त्सना किया। उस शस्त्रधारी महारथी ने श्रीकृष्ण के पौत्र को लक्ष्य करके प्रलयाग्नि के समान त्रिशूल फेंका। लेकिन कामदेव के पुत्र ने अर्धचन्द्राकार बाणों से उस त्रिशूल को खण्डित कर दिया। तभी सुभद्र दैत्य ने अनिरुद्ध पर शतसूर्यसमप्रभ शक्ति अस्त्र का संधान किया, तथापि उन कामपुत्र ने उस शक्ति को वैष्णवास्त्र से छिन्न कर दिया। तब उस संग्राम में सुभद्र ने नारायणास्त्र का प्रहार अनिरुद्ध पर किया।।३२-३५।।

प्रणम्य शेते निर्भीतो मदनस्य सुतो बली। ऊर्ध्वमस्त्रं च बभ्राम शतसूर्यसमप्रभम्॥३६॥
प्रलीनमस्त्रमाकाशे विश्वसंहारकारणम्। अस्त्रे गते सोऽनिरुद्धो गृहीत्वा च महानसिम्॥३७॥

कामपुत्र ने तत्काल उस महास्त्र को प्रणाम किया तथा वहीं लेट गये। इससे वह अस्त्र जो समग्र विश्व का संहार करने में सक्षम था तथा सैकड़ों सूर्य के समान प्रभायुक्त था, ऊर्ध्व आकाश में विलीन हो गया। जब वह महान् विश्वसंहारक अस्त्र विलीन हो गया, तब अनिरुद्ध ने अपना महान् खंग उठाया।।३६-३७।।

प्रबभञ्ज भद्ररथं जघानाश्वांश्च सारथिम्। जघान तं सुभद्रं च लीलया रणमूर्धनि॥३८॥
हते सुभद्रे बाणश्च महाबलपराक्रमः। बाणानां शतकं चापि चिक्षेप रणमूर्धनि॥३९॥
कामात्मजोऽग्निबाणेन बाणौघं प्रददाह सः। बाणश्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं सृष्टिसंहारकारणम्॥४०॥

उस खंग के प्रहार से अनिरुद्ध ने सुभद्र के सारथी का वध करके रथ टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तदनन्तर उस रणभूमि में खेल-खेल में सुभद्र का वध कर दिया। जब सुभद्र का वध हो गया, तब महाबली, पराक्रमी बाण ने उस युद्ध के अवसर पर १०० बाणों को अनिरुद्ध पर छोड़ा। यह देखकर प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध ने अपने द्वारा छोड़े गये अग्निबाण से उन १०० बाणों को दग्ध कर दिया। यह देखकर बाणासुर ने सृष्टि का विनाश तक करने में सक्षम ब्रह्मास्त्र का प्रयोग अनिरुद्ध पर किया।।३८-४०।।

दृष्ट्वा कामात्मजः शीघ्रं सबीजं मन्त्रपूर्वकम्। ब्रह्मास्त्रेणैव सहसा सञ्जहारावलीलया॥४१॥
बाणः पाशुपतं क्षेप्तुं समारेभे च कोपतः। निषिद्धश्च गणेशेन स्कन्देन शंभुना तथा॥४२॥

यह देखकर कामनन्दन अनिरुद्ध ने मन्त्र-बीज समन्वित ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके बाणासुर

द्वारा प्रक्षिप्त ब्रह्मास्त्र का संहार अनायास कर दिया। इसके अनन्तर क्रोधयुक्त बाणासुर ने अनिरुद्ध पर पाशुपतास्त्र का प्रयोग जैसे ही करना चाहा, तभी शिव, गणपति एवं कार्तिक ने आकर बाणासुर को रोक दिया।।४१-४२।।

तद्दृष्ट्वा सोऽनिरुद्धस्तं धनुर्बाणौघसंयुतम्।
मुमोच[1] जृम्भणे युद्धे शीघ्रं तं च महारथम्।।४३।।

जडो बभूव बाणश्च निश्चेष्टो रणमूर्धनि। पुनश्चिक्षेप निद्रास्यं निद्रितं तं चकार सः।।४४।।

यह देखकर अब अनिरुद्ध ने बाणों को इस प्रकार जृम्भणास्त्र के मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसका प्रयोग बाणासुर पर किया। इससे बाणासुर आलस्यपूर्ण जंभाई लेने लगा। उस रणभूमि में वह रथाग्र भाग में निश्चेष्ट-सा पड़ गया। तदनन्तर अनिरुद्ध ने उस पर निद्रास्त्र का प्रयोग किया। इस अस्त्र के प्रभाव से बाण निद्रामग्न हो गया।।४३-४४।।

बाणं तं निद्रितं दृष्ट्वा गृहीत्वा खड्गमुत्तमम्।
बाणं हन्तुं समुद्यन्तं वारयामास कार्तिकः।।४५।।

स्कन्दश्च शतबाणैश्च वारयामास लीलया। अनिरुद्धं महाभागं बलवन्तं धनुर्धरम्।।४६।।
अनिरुद्धश्च सहसा तथा शक्त्या दुरत्यया। बभञ्ज कार्तिकरथं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम्।।४७।।
गदया कार्तिकः क्रुद्धोऽप्यनिरुद्धरथं मुदा। बभञ्ज लीलया तत्र क्षणेन रणमूर्धनि।।४८।।

अनिरुद्धोऽर्धचन्द्रेण क्षुरधारेण लीलया।
चिच्छेद कार्तिकधनुर्भल्लास्त्रेण नियोजितम्।।४९।।

जघान कार्तिकस्तं च गदया च दुरन्तया। गदां जग्राह तद्धस्ताज्जवेन मदनात्मजः।।५०।।
शूलं गृहीत्वा स्कन्दं च तमेव हन्तुमुद्यतम्। अनिरुद्धश्च कोपेन प्रेरयामास दूरतः।।५१।।
कार्तिकः पुनरागत्य गृहीत्वा कामपुत्रकम्। गृहीत्वा च करेणैव पातयामास भूतले।।५२।।

बाण को निद्रित देखकर अनिरुद्ध ने उत्तमखड्ग उठाकर उसका वध जैसे ही करना चाहा, उनको कार्त्तिकेय ने रोक दिया। इन देवसेनानी ने १०० बाणों के प्रयोग से महाभाग बली धनुर्धर अनिरुद्ध को आगे बढ़ने से रोक दिया। इससे क्षुब्ध होकर अनिरुद्ध ने ऐसी शक्ति का प्रयोग किया, जो कदापि नष्ट होने योग्य नहीं थी और उस दुर्दमनीय शक्ति द्वारा अनिरुद्ध ने उत्तम रत्नों के सार से निर्मित कार्त्तिकेय के रथ को क्षण मे ही खण्ड-खण्ड कर दिया। उस रणभूमि के अग्रभाग में अनिरुद्ध ने क्षुरप्र के समान अर्द्धचन्द्राकृति बाण के प्रहार से कार्त्तिकेय के धनुष को खण्डित कर दिया। साथ ही कार्त्तिकेय पर भल्लास्त्र का प्रहार किया। परन्तु कार्त्तिकेय ने अपनी दुर्दमनीय गदा के प्रहार से उस भल्लास्त्र को विनष्ट कर दिया। तदनन्तर मदनपुत्र अनिरुद्ध ने कार्त्तिकेय द्वारा अपने ऊपर फेंकी गयी गदा को बीच में पकड़ लिया। यह देखकर जैसे ही कार्त्तिकेय मदननन्दन पर शूल का प्रहार को उद्यत

१. क. चकार।

थे, उन्होंने वही गदा उठाकर कार्त्तिक की ओर फेंक दिया। इससे कुपित कार्त्तिकेय अनिरुद्ध के पास आये तथा अपने हाथों से अनिरुद्ध को उठाकर भूमि पर पटक दिया।।४५-५२।।

अनिरुद्धो गृहीत्वाऽसिं प्रभुस्तस्थौ महाबलः। तयोर्विरोधं दूरं च प्रचकार गणेश्वरः।।५३।।
कार्तिकः प्रययौ गेहमूषागेहं स्मरात्मजः। सर्वं निवेदितुं शंभुं प्रययौ स गणेश्वरः।।५४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणा यु० षोडशाधिकशततमोऽध्यायः।।११६।।

अनिरुद्ध ने तत्काल उठकर अपना खड्ग उठाया ही था तभी वहां गणपति देव आये और उन्होंने दोनों के युद्ध को रोक दिया। इससे कार्त्तिकेय अपने गृह लौट गये तथा अनिरुद्ध भी ऊषा के पास चले गये। उधर गणपति भी देवाधिदेव शंकर को समस्त वृत्तान्त से अवगत कराने के लिये उनके यहां चले गये।।५३-५४।।

।।११६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

महादेव द्वारा गणेश से अनिरुद्ध के पराक्रम का वर्णन

नारायण उवाच

गणेशस्तु शिवस्थानं गत्वा नत्वा महेश्वरम्। सर्वं विज्ञापयामास क्रमेण च पृथक्पृथक्।।१।।
बाणानिरुद्धयोर्युद्धं सुभद्रनिधनं तथा। स्कन्दानिरुद्धयोर्युद्धमनिरुद्धस्य विक्रमम्।।२।।
गणेशवचनं श्रुत्वा प्रहस्य भगवान्भवः।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सुगुप्तं वेदसम्मतम्।।३।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–उस समय गणपति ने शंकरालय में जाकर शंकर का प्रणाम किया तथा क्रमशः पृथक्-पृथक् सब घटनाक्रम कहा। बाण-अनिरुद्ध युद्ध, सुभद्रवध, स्कन्द-अनिरुद्ध युद्ध, अनिरुद्ध का विक्रम आदि सब समाचार गणेश ने शंकर से कहा। भगवान् भव यह सब सुनकर हंसे तथा उन्होंने मधुर वाणी में गुप्त-वेदसम्मत वाक्य गणेश से कहा–।।१-३।।

महादेव उवाच

गणेश्वर महाभाग श्रूयतां वचनं मम। हितं तथ्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम्।।४।।

असंख्यविश्वसंघं च सर्वं कृष्णात्मजं सुतम्।
कृष्णं जानीहि यत्कार्यं कारणानां च कारणम्॥५॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं जगत्सर्वं गणेश्वर। निबोध सत्यं कृष्णं च भगवन्तं सनातनम्॥६॥
गोलोके द्विभुजं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। शिशुरूपं गोपवेषं परिपूर्णतमं प्रभुम्॥७॥
गोपीभिर्गोपनिकरैः सहितं कामधेनुभिः। पुण्ये वृन्दावने रम्ये सुन्दरे रासमण्डले॥८॥
चरन्तं मुरलीहस्तं ब्रह्मेशशेषवन्दितम्। शतशृङ्गे च शैलेशे वटमूले निराकुले॥९॥
गोष्ठे भाण्डीरनिकटे निर्मले विरजातटे। नवीननीरदश्यामं शोभितं पीतवाससा॥१०॥

महादेव कहते हैं–हे गणेश्वर! महाभाग! मेरा वचन श्रवण करो। यह हितप्रद नीति का सार तथा परिणाम में सुखदायक है। हे पुत्र! यह असंख्य विश्व ब्रह्माण्ड सभी कृष्णमय है। कृष्णपुत्र प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं सभी कार्यों के तथा कारणों के भी कारण–यह श्रीकृष्ण ही हैं। हे गणेश! यह ब्रह्मा से तृण पर्यन्त समस्त जगत् सनातन भगवान् श्रीकृष्ण को ही जानो। वे प्रभु गोलोक में द्विभुज, शान्त, राधा के पति, मनोहर शिशुरूप, गोपवेशधारी परिपूर्णतम हैं। वे वहां गोपी-गोपों कामधेनुओं से परिवृत रहा करते हैं। वे वहां पवित्ररम्य वृन्दावन में सुन्दर रासमण्डल में मुरलीधारी होकर विचरते हैं। वे ब्रह्मा, शिव, शेष से वंदित प्रभु हैं। वे वहां शतशृंग पर्वतस्थ वटवृक्ष की शान्त छाया में तथा वहां भाण्डीर वनस्थ विरजा के निर्मल तट पर गौओं के झुण्ड में विहार करते हैं। उनका देहवर्ण नवजलधर की तरह श्याम है तथा वे पीतवस्त्रधारी हैं।।४-१०।।

यथा नवं घनौघं च सौदामिन्या विराजितम्।
आविर्भावश्च तेषां वै गोलोके रासमण्डले॥११॥
तावन्तो गोकुले रम्ये पुण्ये वृन्दावने वने।
सर्वे चांशकलाः पुंसःकृष्णास्तु भगवान्स्वयम्॥१२॥

जैसे नवमेघ घटा सौदामिनी (विद्युत्वल्लरी) से शोभित होती है, उसी तरह प्रभु के श्यामवर्ण पर इस पीतवस्त्रों की शोभा अलौकिक प्रतीत होती है। जिस प्रकार गोलोक के रासमण्डल में भगवान् आविर्भूत होते हैं, उसी प्रकार गोकुल के रम्य पुण्य वृन्दावन के सभी प्राणी उन परमपुरुष की अंशकला है, कृष्ण तो स्वयमेव भगवान् हैं।।११-१२।।

परिपूर्णतमः कामो ब्रह्मशापत्स्वविस्मृतः। तस्य पुत्रोऽनिरुद्धश्च महाबलपराक्रमः॥१३॥
मया प्रस्थापितः स्कन्दो महायुद्धे सुदारुणे।
मृतो बाणश्च संग्रामे तेन स्कन्देन रक्षितः॥१४॥

परिपूर्णतम काम (प्रद्युम्न) ब्रह्मशाप के कारण अपने यथार्थ कामदेव स्वरूप को भूल गये हैं। उनका पुत्र अनिरुद्ध तो महाबली पराक्रमी है। मैंने उस दारुण महासंग्राम में कार्त्तिकेय को भेजा था। युद्ध में बाणासुर एक प्रकार से मृत ही हो चुका था, परन्तु कार्त्तिकेय ने उसकी रक्षा कर लिया।।१३-१४।।

स्कन्दानिरुद्धयोर्युद्धे समत्वं तु गणेश्वर। अष्टौ च भैरवाः सर्वे रुद्राश्चैकादशैव ते॥१५॥
अष्टौ च वसवश्चैते देवाः शक्रादयस्तथा। तथैव द्वादशादित्याः सर्वे दैत्येश्वरास्तथा॥१६॥
देवानामग्रणीः स्कन्दो बाणश्च सगणस्तथा।
सर्वे ते चानिरुद्धं च संग्रामे जेतुमक्षमाः॥१७॥
अनिरुद्धः स्वयं ब्रह्मा प्रद्युम्नः काम एव च। बलदेवः स्वयं शेषः कृष्णश्च प्रकृतेः परः॥१८॥

हे गणेश्वर! युद्ध में अनिरुद्ध एवं स्कन्द (कार्त्तिकेय) समान हैं। अष्टभैरव, एकादशरुद्र, अष्टवसु, इन्द्रादि देव, द्वादशसूर्य, सभी दैत्येश्वर, देवाग्रणी स्कन्द तथा अपने गणों सहित बाणासुर ये सब मिलकर भी संग्राम में अनिरुद्ध को नहीं जीत सकते। अनिरुद्ध स्वयं ब्रह्मा हैं। प्रद्युम्न कामदेव हैं। बलदेव स्वयं अनन्त शेष हैं। कृष्ण तो प्रकृति से परे है।।१५-१८।।

एतत्ते कथितं सर्वं बाणं रक्ष गणेश्वर। भवाञ्शुभस्वरूपश्च विघ्नखण्डनकारकः॥१९॥
आरादायास्यति हरिर्गृहीत्वा च सुदर्शनम्। अव्यर्थमस्त्रप्रवरं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥२०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणयु० शिवलम्बोदरसं०
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११७।।

हे गणेश्वर! यह सब तत्व मैंने तुमसे कह दिया। अब तुम बाण की रक्षा करो। तुम कल्याणरूप तथा विघ्नों का खण्डन करने वाले हो। श्रीहरि अपना सुदर्शन चक्र लेकर शीघ्र यहां आगमन करेंगे, जिनका यह चक्र अव्यर्थ (अमोघ) तथा सभी अस्त्रों में श्रेष्ठ और कोटि सूर्य के समान प्रभाशाली हैं।।१९-२०।।

।।११७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

दूत द्वारा श्रीकृष्ण का आगमन सुनकर शिव-पार्वती का वार्त्तालाप तथा मन्त्रणा करना

नारायण उवाच

गणेशं बोधयित्वा तु शंभुरभ्यन्तरं ययौ। तत्र सिंहासने रम्ये दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥१॥
भैरवी भद्रकाली च उग्रचण्डा च कोटरी। ताः समुत्थाय सहसा प्रणेमुर्जगदीश्वरम्॥२॥

तत्राऽऽययौ गणेशश्च कार्तिकेयश्च वीर्यवान्।
बाणश्च वीरभद्रश्च स्वयं नन्दी सुनन्दकः॥३॥

महाकालो महामन्त्री ह्यथाष्टौ भैरवास्तथा। सिद्धेन्द्राश्चापि योगीन्द्रा रुद्राश्चैकादशैव ते॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मणिभद्रः समाययौ। सिंहद्वारे स्वयं द्वारी तमीश्वरमुवाच सः॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–इस प्रकार शंकर गणेश को प्रबोधित करके अन्तःपुर में चले गये। वहां पर दुर्गतिनाशिनी दुर्गा, भैरवी, भद्रकाली, उग्रचण्डा, कोटरी देवियां रत्नसिंहासन से तत्क्षण उठीं तथा उन्होंने जगदीश्वर को प्रणाम किया। उस समय गणेश, महाबली कार्त्तिकेय, बाणासुर, वीरभद्र, नन्दी, नंदक, महामंत्री महाकाल तथा अष्टभैरव भी वहां आ गये। सिद्धेन्द्र तथा योगीन्द्र एवं एकादशरुद्र भी वहां उपस्थित हो गये। तभी सिंहद्वार का द्वारपाल मणिभद्र वहां आया। वह ईश्वर से कहने लगा॥१–५॥

मणिभद्र उवाच

असंख्यानि च सैन्यानि यादवानां महेश्वर। बलदेवश्च प्रद्युम्नः साम्बश्च सात्यकिस्तथा॥६॥
राजा महोग्रसेनश्च भीमश्च स्वयमर्जुनः। अक्रूरश्चोद्धवश्चैव जयन्तः शक्रनन्दनः॥७॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणरथेन्द्रे सुमनोहरे। विधेर्विधाता भगवाञ्छ्रीकृष्णः परमेश्वरः॥८॥

मणिभद्र द्वारपाल कहता हैं–हे महेश्वर! यादवों की असंख्य सैन्य, जिसमें बलदेव, प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकि, राजा उग्रसेन, भीम, अर्जुन, अक्रूर, उद्धव, इन्द्रपुत्र जयन्त तथा उत्तम रत्नों के सार से निर्मित अत्यन्त उत्तम, सुन्दर सिंहासनासीन होकर स्वयं विधाता के भी विधाता परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण यहां आये हैं॥६–८॥

सप्तभिः पार्षदैर्गोपैः सेवितः श्वेतचामरैः। कन्दर्पकोटिलीलाभो वनमालाविभूषितः॥९॥
दधार चक्रमतुलं कोटिसूर्यसमप्रभम्। गदां कौमोदकीं शूलमव्यर्थं सन्निधाय च॥१०॥
रथमध्ये महाशङ्खं विश्वसंहारकारणम्। महारथानां लक्षैश्च रथानां च त्रिकोटिभिः॥११॥

त्रिकोटिभिर्गजेन्द्राणां मल्लानां च त्रिकोटिभिः।
शतकोटिभिरश्वानां चर्मिणां तच्चतुर्गुणैः॥१२॥
खड्गिनां तत्सप्तगुणैर्द्विगुणैस्तद्धनुष्मताम्।
एभिः सार्धं च त्वरितमाययौ शोणितं पुरम्॥१३॥

परितो वेष्टयामास लङ्कां दाशरथिर्यथा। सहस्रतालमानां च ज्वलदग्निशिखोज्ज्वलाम्॥१४॥
ऊर्ध्वे च परिखायुक्तां दुर्लङ्घ्यामसुरैः सुरैः। स्वर्गगङ्गाम्बुराशीनां समूहैर्वृष्टिभिस्तथा॥१५॥

पक्षीन्द्रो गरुडः साक्षान्निर्वाणं च चकार सः।
मणीन्द्रसारनिर्माणं प्राकाराभ्रलिहं पुरम्॥१६॥

सात गोपपार्षद उनको श्वेत चामर झलकर उनकी सेवा में निरत हैं। कोई कन्दर्प शोभा के समान उनका रूप है। वे वनमाला भूषित हैं। उन्होंने कोटिसूर्य समप्रभ द्युति वाला अतुलनीय चक्र धारण किया है। रथ मध्य में कौमोदकी गदा, अव्यर्थ त्रिशूल, विश्वसंहारकारणरूप महान् पाञ्चजन्य शंख भी है। एक लाख महान् रथ, तीन कोटि सामान्य रथ, तीन कोटि गजेन्द्र तीन कोटि मल्ल, शतकोटि अश्व, चार सौ कोटि कवचधारी, अट्ठाईस कोटि खड्गधारी, उससे सात गुना धनुर्द्धारी के साथ वे शोणितपुर आये हैं। दशरथनन्दन राम ने जिस प्रकार से लंका को चारों ओर से घेर लिया था, उसी प्रकार यादव सैन्य ने भी शोणितपुर को घेर लिया है। एक हजार ताल के पेड़ के समान उच्च, सुरासुरगण भी जिसका लंघन नहीं कर सकते, ऐसी ज्वलन्त अग्निशिखामयी तथा अग्नि के जलने से उज्वल खाईयों की अग्नि को गरुड़ ने स्वर्ग मन्दाकिनी जल की वर्षा करके बुझा दिया। उन्होंने उत्तम मणियों के सार से निर्मित चाहरदीवारी को पूरी तरह नष्ट कर दिया।।९-१६।।

बभञ्ज लक्षं मल्लानां बलदेवश्च लाङ्गलैः। उद्यानानां त्रिलक्षं च चकारोत्पाटनं प्रभो।।१७।।
प्रविवेश महाद्वारं द्वारपालान्निपत्य च। एवं श्रुत्वा महादेवश्चोवाच सुरसंसदि।।१८।।
पार्वती भद्रकाली च स्कन्दं गणपतिं तथा। अष्टौ च भैरवांश्चैव रुद्रांश्च वीरभद्रकम्।
कहाकालं नन्दिनं च सर्वान्सेनापतीन्नव।।१९।।

"महाबली बलदेव ने हल के प्रहार से लाखों मल्लों का वध कर दिया तथा हे प्रभो! उन्होंने तीन लाख उद्यानों को पूर्णतया उखाड़ फेंका है। उन्होंने द्वारपालों का वध कर दिया तथा नगर के महाद्वार से भीतर चले आये।" द्वारपाल का यह वचन सुनकर महादेव ने उस सभा में पार्वती, भद्रकाली, कार्त्तिकेय, गणपति, अष्टभैरवों, एकादश रुद्रों, वीरभद्र, महाकाल, नन्दीश्वर एवं समस्त ९ सेनापतियों से कहा-।।१७-१९।।

महादेव उवाच

गोलोकनाथो भगवांश्चक्रपाणिः समागतः।
विश्वौघं भक्तुमीशो यः क्षणेन नगरं च किम्।।२०।।
सर्वोपायैश्च सर्वे ते बाणं रक्षन्तु यत्नतः।
बाणो गच्छतु संग्रामं स्मृत्वा लम्बोदरं परम्।।२१।।
बाणस्य दक्षिणे स्कन्दः पुरतश्च गणेश्वरः। वामे च भैरवा रुद्राः स्वयं नन्दी महारथः।।२२।।
महाकालो वीरभद्रो ये चान्ये सैनिकास्तथा।
ऊर्ध्वे दुर्गा भद्रकाली ह्युग्रचण्डा च कोटरी।।२३।।

श्रीमहादेव कहते हैं-यहां गोलोकनाथ भगवान् चक्रपाणि आ गये। वे तो क्षणमात्र में विश्वमण्डल को नष्ट करने में समर्थ हैं। उनके लिये यह नगरी क्या अर्थ रखती है? सभी लोग यत्नतः बाणासुर की रक्षा करें। बाणासुर परमश्रेष्ठ लम्बोदर का स्मरण करता युद्धार्थ जाये। बाणासुर के दाहिनी ओर स्कन्द

कुमार रहें। अग्रभाग में गणेश रहे। वामभाग में सभी भैरव, रुद्र (११ रुद्र) तथा महारथी नन्दी रहे। पीछे की ओर महाकाल, वीरभद्र तथा अन्य सेना रहे। ऊर्ध्व में दुर्गा, भद्रकाली, उग्रचण्डा तथा देवी कोटरी रहें।।२०-२३।।

बाणं रक्ष महाभागे दुर्गे दुर्गतिनाशिनि। कृष्णास्य भवती शक्तिस्तेन नारायणी स्मृता।।२४।।
विष्णुमाये जगन्मातः सर्वमङ्गलमङ्गले। अव्यर्थाच्चक्रसाराच्च रक्ष बाणं सुदर्शनात्।।२५।।
बाणः प्रियो मे सर्वेभ्यो गणेशात्कार्तिकादपि।
बाणमूर्ध्नि करं देहि पादाब्जरजसा सह।।२६।।
शिवस्य वचनं श्रुत्वा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी। प्रहस्योवाच मधुरं याथार्थ्यं समयोचितम्।।२७।।

हे महाभाग! दुर्गतिनाशिनी दुर्गा! तुम बाण की रक्षा करो। तुम श्रीकृष्ण की शक्ति होने के कारण नारायणी कही जाती हो। तुम बाण की रक्षा करो। तुम जगज्जननी, सर्वमंगला, विष्णुमाया हो। तुम अमोघ सुदर्शन चक्र से बाणासुर की रक्षा करना। बाणासुर तो मुझे कार्तिक तथा गणेश से भी बढ़कर प्रिय है। हे दुर्गे! तुम बाण को अपने चरणों की धूलि दो तथा उसके शिर पर अपना हाथ रखो।।२४-२७।।

पार्वत्युवाच

मणिरत्नादिकं यद्यन्मुक्तामाणिक्यहीरकम्। सर्वस्वं कन्यकामूषां रत्नभूषणभूषिताम्।।२८।।
रत्नभूषणभूषाढ्यमनिरुद्धं परं वरम्। पुरस्कृत्य देहि बाण कृष्णाय परिमात्मने।
राज्यं कुरुष्व निर्विघ्नं किं युद्धमात्मना सह।।२९।।

पार्वती (दुर्गा) कहती हैं—हे बाण! जामाता अनिरुद्ध को रत्नाभूषण से भूषित करो। उसे आगे करके मुक्ता, माणिक्य, हीरा, मणिरत्नादि जो कुछ है, उससे अपनी कन्या को भूषित करो। तदनन्तर उसे परमात्मा कृष्ण को अर्पित करो। तदनन्तर निष्कण्टक राज्य करो। आत्मा के साथ यह कैसा युद्ध?।।२८-२९।।

यस्मिन्गते गताः प्राणाः स जीवश्चैन्द्रियैः सह।
शक्तिश्चाहं मनो ब्रह्मा स्वयं ज्ञानात्मकं शिवः।।३०।।
सद्यः पतति देहश्च शिवं त्यक्त्वा शवो भवेत्।
को वा तिष्ठति संग्रामे चक्रस्य तेजसा शिव।।३१।।
नाऽऽत्माऽऽकाशो वाणविद्धो युद्धं किं स्वात्मना सह।
परमात्मा च सर्वेषां भक्तानुग्रहविग्रहः।।३२।।
नित्यः सत्यो हि कृष्णश्च परिपूर्णतमः प्रभुः।
गणेशः कार्तिकेयश्च भवानपि तयोः परः।।३३।।

किङ्करेषु प्रियो बाणो न हि कृष्णात्परः प्रियः।
वैकुण्ठेऽहं महालक्ष्मीर्गोलोके राधिका स्वयम्।।३४।।
शिवाऽहं शिवलोकेऽपि ब्रह्मलोके सरस्वती।
अहं निहत्य दैत्यांश्च दक्षकन्या सती पुरा।।३५।।
त्वन्निन्दया त्यक्तदेहा सा चाहं शैलकन्यका।
रक्तबीजस्य युद्धे च काली च मूर्तिभेदतः।।३६।।

जो देह से चला जाता है, तब प्राण एवं इन्द्रियां नष्ट हो जाते हैं, उसे ही जीव कहा है। मैं हूं शक्ति, ब्रह्मा हैं मन, ज्ञान हैं शिव। शिवरूप ज्ञान न रहते ही देह शव हो जाता है। ऐसे परमात्मा के साथ युद्ध कैसा? (तदनन्तर देवी शिव से कहती हैं)–हे शिव! सुदर्शन चक्र तेज के सामने कौन युद्धभूमि में टिक सकेगा? आत्मा अथवा आकाश को कोई बाण से भेद नहीं सकता। तब आत्मा से युद्ध कैसे? हे बाण! तुम तो मुझे गणेश से भी तथा कार्त्तिक से भी अधिक प्रिय हो। सेवकों में से हे बाण! तुम सर्वाधिक प्रिय हो, तथापि श्रीकृष्ण से अधिक प्रिय मुझे कोई नहीं है। मैं ही वैकुण्ठस्थ महालक्ष्मी, गोलोक में राधिका हूं। मैं ही शिवलोक में शिवा, ब्रह्मलोक में सरस्वती हूं। मैंने ही पूर्वकाल में दैत्यों का विनाश किया तथा दक्षकन्या सती के रूप में आविर्भूत हो गई। मैंने ही शिव निन्दा सुनकर सती देह का त्याग किया तथा पर्वत पुत्री के रूप में मैंने जन्म लिया है। रक्तबीज के साथ युद्ध काल में मैंने जिस मूर्त्ति को धारण किया, वे ही काली हैं। यह मेरा ही मूर्त्तिभेद है।।३०-३६।।

सावित्री वेदमाताऽहं सीता जनककन्यका।
रुक्मिणी द्वारवत्यां च भारते भीष्मकन्यका।।३७।।
सुदाम्नः शापतो दैवाद्वृष भानसुताऽधुना।
धर्मपत्नी च कृष्णस्य पुण्ये वृन्दावने वने।।३८।।
भगवन्तं च सर्वज्ञं त्वां शिवं च सनातनम्।
किं वाऽहं कथयामीति कर्त्तव्यं समयोचितम्।।३९।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणयुद्धेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः।।११८।।

—***—

मैं ही वेदमाता सावित्री तथा जनककन्या सीता हूं। मैं ही द्वारका में रुक्मिणी हूं जो भारत में भीष्मक कन्या के रूप में जन्मी थी। मैं दैवात् श्रीदाम के शाप के कारण वृषभानुसुता होकर पुण्यमय वृन्दावन में कृष्ण की धर्मपत्नी हो गई। हे भगवान्! आप सर्वज्ञ तथा सनातन शिव हैं। आपको क्या समयोचित कर्त्तव्य करना है, इस विषय में क्या कहूं?।।३७-३९।।

।।११८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

बाण की सभा में बलिराज का आना, शिव-बलि संवाद, महादेव द्वारा वैष्णव प्रशंसा, श्रीहरि-बलि संवाद, बलिराज कृत श्रीकृष्ण स्तव, बलि को श्रीकृष्ण द्वारा अभयदान प्रदान करना

नारायण उवाच

पार्वतीवचनं श्रुत्वा गणेशश्च शिवः स्वयम्।
कार्तिकेयश्च काली च तां प्रशंसां चकार ह॥१॥
उवाच भगवाञ्शुभुर्जगतां मातरं पराम्। ज्योतिः स्वरूपां परमां मूलप्रकृतिमीश्वरीम्॥२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–पार्वती का कथन सुनकर स्वयं शिव, गणेश, कार्त्तिकेय, काली ने उनकी प्रशंसा किया। प्रभु शिव ने तब जगन्माता, परात्परा, ज्योतिरूपा, परमा मूलप्रकृति ईश्वरी पार्वती से कहा–॥१-२॥

महादेव उवाच

त्वया यदुक्तं देवेशि सर्वं वेदोक्तमीप्सितम्। अयुक्तमुपहास्यं च समरं परमात्मना॥३॥
बाणो ददातु कन्यां तां स्वर्णभूषणभूषिताम्। सामञ्जस्यं यशस्यं च शुभदं सर्वकर्मसु॥४॥
न ददाति यदा बाणो हिण्यकशिपो प्रजा। युद्धे पराङ्मुखो भीतो भगवत्ययशस्करः॥५॥
बाणो गच्छतु सन्नाही रणशास्त्रविशारदः।
पश्चाच्चा[१]ऽऽगमनं कुर्मो वयं सान्नाहिकाः शिवे॥६॥

महादेव कहते हैं–हे देवेशी! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब यथार्थ हितप्रद तथा वेदसम्मत है। परमात्मा के साथ युद्ध नितान्त अनुचित एवं उपहासास्पद कार्य है। बाणासुर अपनी कन्या ऊषा को विविध भूषण भूषित करके (अनिरुद्ध को) प्रदान करे। इसी से सभी कार्य में सामंजस्य होगा, यश की रक्षा होगी तथा मंगल होगा। यदि बाण कन्यादान नहीं करेगा, तब हिरण्यकशिपु के वंश में उत्पन्न उसका युद्ध से पलायन निश्चित है। उसके लिये इस अपयश देने वाली स्थिति में समरशास्त्र विशारद बाण कवच पहने और पहले युद्ध में जाये। हम लोग उसके पीछे-पीछे सज्जित होकर जायेंगे॥३-६॥

उवाच बाणं तां दातुं स च न स्वीचकार ह। दुर्गा तं बोधयामास न बुबोध च सद्वचः॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे तां च सभामेव मनोरमाम्। आजगाम महाधर्मी बलिश्च वैष्णवाग्रणीः॥८॥

१. क. ०श्च ग०।

रथं रत्नेन्द्रनिर्माणं समारुह्य महाबलः। प्रतप्तैः सप्तभिर्दैत्यैः सेवितः श्वेतचामरैः॥९॥

दैत्येन्द्राणां सप्तलक्षैरावृतः परमास्त्रवित्।
अवरुह्य रथात्तूर्णं गणेशं च शिवां शिवम्॥१०॥

प्रणम्य कार्तिकेयं च स उवास च संसदि। उत्तस्थुराराात्तं दृष्ट्वा ते सर्वे शङ्करं विना।

तमुवाच महादेवः संभाष्य प्रियभाषणम्॥११॥

तब इस मन्त्रणा के उपरान्त सभी ने बाण से कन्या देने हेतु कहा, परन्तु उसने इस बात को अस्वीकार कर दिया। यहां तक कि दुर्गा (पार्वती) ने भी समझाया, तथापि उसने दुर्गा की उत्तम बातों को भी नहीं माना। तभी उस मनोरम सभा में महाधार्मिक तथा वैष्णवों में अग्रणी बलिराज वहां आ गये। वे उत्तम रत्नों के भार से निर्मित रथ पर आरूढ़ होकर आये थे। उस समय ७ प्रतप्त (प्रतापी) दैत्य श्वेत चामर झलकर उसकी सेवा कर रहे थे। सात लाख दैत्य बलिराज को घेरे हुये थे। वे महान् अस्त्र-ज्ञाता शीघ्र रथ से नीचे उतरे तथा उन्होंने गणेश, पार्वती, शिव तथा कार्तिक को प्रणाम किया तथा वे सभा में आसनासीन हो गये। बलि को देखकर केवल शंकर के सिवाय सभी लोग उठकर खड़े हो गये। उस समय शंकर ने प्रियभाषण (कुशल मंगल पूछकर) करके उनसे कहा–॥७-११॥

महादेव उवाच

भगवंश्चतुरस्त्वं च प्रदाता सर्वसम्पदाम्। अयं हि परमो लाभो वैष्णवानां समागमः॥१२॥

तीर्थान्यपि च पूतानि वैष्णवस्पर्शमात्रतः।
सर्वेषामाश्रमाणां च पूजितो ब्राह्मणः शुचिः॥१३॥
ततोऽधिकः पूजितोऽपि ब्राह्मणो यदि वैष्णवः।
न हि पूतं च पश्यामि वैष्णवब्राह्मणात्परम्॥१४॥
स पूतः पवनादेव च पूतश्च हुताशनात्।
तीर्थेभ्योऽपि च सर्वेभ्यो बिभेति च ततः सुरः॥१५॥
न हि पापानि तद्देहे वह्नौ शुष्कतृणादिवत्॥१६॥

महादेव कहते हैं–तुम चतुर तथा सर्वसम्पदाप्रदाता हो। वैष्णव का समागम परम लाभप्रद होता है। उससे अधिक पूज्य कुछ नहीं है। वैष्णव का स्पर्श तीर्थों को भी पावन करने वाला है। चारों आश्रमों में से पवित्र ब्राह्मण पूजित है। यदि वही ब्राह्मण वैष्णव हो, तब तो और अधिक पूज्य है। वैष्णव ब्राह्मण से बढ़कर पूज्य मैं कुछ भी नहीं देखता। वह तो तुलनात्मक रूप से पवन, अग्नि तथा तीर्थों से भी अधिक पूज्य है। देवगण तक ऐसे ब्राह्मण से भयभीत रहते हैं। जिस प्रकार अग्नि में शुष्क तृण नहीं रह पाते दग्ध हो जाते हैं, तदनुरूप ऐसे वैष्णव ब्राह्मण के देह में पातक भी दग्ध हो जाते हैं॥१२-१६॥

बलिरुवाच

कथं स्तौषि जगन्नाथ भृत्यमस्तव्यमीश्वरः। प्रदत्तं परमैश्वर्यं त्वया नाथ सुदुर्लभम्॥१७॥
अधुना [१]स्थापितो दैवात्सर्गाधः सुतलेऽपि च। इन्द्राय दत्तमैश्वर्यं मत्तो भक्तात्सुरेश्वर॥१८॥
त्वया वामनरूपेण सर्वरूपोऽसि सर्वतः। बाणं बोधय भद्रं च मम प्राणात्मजं परम्॥१९॥
आत्मना सह युद्धं च देवेष्वपि विगर्हितम्।
इत्युक्त्वा च शिवं नत्वा शिरसा प्रणनाम तम्॥२०॥
सामवेदोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम्। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिविह्वलः॥२१॥
ध्यायमानश्च नित्यं यो हृत्पद्मे सुमनोहरे।
शुक्रेण दत्तं मन्त्रं च जप्त्वा चैकादशाक्षरम्॥२२॥

बलिराज कहते हैं–"हे जगन्नाथ! मैं स्तव (प्रशंसा) करने हेतु अयोग्य हूं। मेरी प्रशंसा न करें। मैं तो आपका सेवक मात्र हूं। आप मेरा स्तव क्यों कर रहे हैं? हे नाथ! मेरा जो कुछ दुर्लभ ऐश्वर्य है, वह सब आपके द्वारा ही प्रदत्त है। (तदनन्तर बलि ने श्रीकृष्ण से कहा) आपने दैववशात् सर्वरूप तथा सर्वव्याप्त होकर भी मुझे सुतल में स्थान दिया है। आपने ही मुझसे ऐश्वर्य लेकर इन्द्र को दे दिया था। आप कृपा पूर्वक मेरे पुत्र बाण को उसका हित समझा दीजिये। आत्मा के साथ युद्ध करना वेद विरुद्ध है। यह देवगण के लिये भी निन्दनीय ही है।" यह कहकर बलिराज ने श्रीकृष्ण को नतशिर होकर प्रणाम किया। तदनन्तर उसने सामवेदोक्त स्तोत्र से परमेश्वर श्रीकृष्ण की स्तुति किया। उस समय वह विह्वल हो उठा। उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये तथा उसके सभी अंग रोमांचित हो गये। उसने हृदय कमल में भगवान् का ध्यान किया तथा शुक्रप्रदत्त एकादशाक्षर मन्त्र जपा॥१७-२२॥

बलिरुवाच

अदित्याः प्रार्थनेनैव मातुर्देव्या व्रतेन च। पुरा वामनरूपेण त्वयाऽहं वञ्चितः प्रभो॥२३॥
संपद्रूपा महालक्ष्मीर्दत्ता भक्ताय भक्तितः।
शक्राय मत्तो भक्ताय भ्रात्रे पुण्यवते ध्रुवम्॥२४॥
अधुना मम पुत्रोऽयं बाणः शङ्करकिङ्करः।
आराच्च रक्षितः सोऽपि तेनैव भक्तबन्धुना॥२५॥
परिपुष्टश्च पार्वत्या यथा मात्रा सुतस्तथा। गृहीतवांश्च तत्कन्यां बलेन युवतीं सतीम्॥२६॥
समुद्यतश्च तं हन्तुं कार्तिकेनापि वारितः। आगतोऽसि पुनर्हन्तुं पौत्रस्य दमने क्षमः॥२७॥

बलिराज कहते हैं–हे देव! पूर्वकाल में आपने माता अदिति की प्रार्थना तथा व्रताचरण से प्रसन्न होकर वामन रूप धारण किया था। तब आपने मुझे वंचित करके सम्पदारूपी महालक्ष्मी भक्ति पूर्वक

१. क. ०पिता दैत्याः स०।

मुझ भक्त से लेकर इन्द्र को दे दिया, जो आपके भाई भक्त तथा पुण्यात्मा हैं। मेरा पुत्र बाण शिव का दास है। भक्तबन्धु शंकर ने उसे पास में रखा तथा उसकी रक्षा किया। माता पार्वती पुत्रवत् उसका पालन करती हैं। सम्प्रति आपके पौत्र अनिरुद्ध ने उसकी युवती सती कन्या का हरण बलात् कर लिया। वह बाण का वध तक करने को उद्यत हो गया था, जिसे कार्त्तिकेय ने रोक दिया। अपने अपराधी पौत्र का दमन न करके मेरे पुत्र का ही वध करने आप आ गये?॥२३-२७॥

सर्वात्मनश्च सर्वत्र समभावः श्रुतौ श्रुतः। करोषि जगतां नाथ कथमेवं व्यतिक्रमः॥२८॥

त्वया च निहतो यो हि तस्य को रक्षिता भुवि।
सुदर्शनस्य तेजो हि सूर्यकोटिनिभं परम्॥२९॥

केषां सुराणामस्त्रेण तदेव च निवारितम्। यथा सुदर्शनं चैवमस्त्राणां प्रवरं वरम्[१]॥३०॥

आप सर्वात्मा हैं। वेदों में सुना गया है कि आपका सर्वत्र समान भाव रहता है। तब आप उससे विपरीत व्यवहार क्यों कर रहे हैं? हे जगन्नाथ! ऐसा व्यतिक्रम क्यों? आप जिसका वध करना चाहें, उसकी जगत् में कौन रक्षा कर सकेगा? आपके सुदर्शन चक्र का तेज ही करोड़ों सूर्य के समान है। किस देवता के अस्त्र में यह क्षमता है, जो उसका निवारण कर सके? सुदर्शन सभी अस्त्रों की तुलना में जिस प्रकार श्रेष्ठ है, तदनुरूप आप भी समस्त देवगण में श्रेष्ठ हैं॥२८-३०॥

तथा भवांश्च देवानां सर्वेषामीश्वरः परः।
यथा भवांस्तथा कृष्णो विधाता वेधसामपि॥३१॥
विष्णुः सत्त्वगुणाधारः शिवः सत्त्वश्रयस्तथा।
स्वयं विधाता रजसः सृष्टिकर्ता पितामहः॥३२॥
कालाग्निरुद्रो भगवान्विश्वचसंहारकारकः।
तमसश्चाऽऽश्रयः सोऽपि रुद्राणां प्रवरो महान्॥३३॥

स एव शङ्करांशश्चाप्यन्ये रुद्राश्च तत्कलाः। भवांश्च निर्गुणस्तेषां प्रकृतेश्च परस्तथा॥३४॥

(अब बलिराज शिव से कहते हैं)—हे प्रभो! आप ही के समान विधाता ब्रह्मा के भी विधाता श्रीकृष्ण हैं। आप शिव सत्व के आश्रय स्थान, विष्णु सत्व गुण के आधार रूप हैं। आप ही सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा होकर रजोगुण के विधाता हैं। आप ही तमोगुणाश्रय विश्व संहारक महान् कालाग्निरुद्र हैं। वे कालाग्नि रुद्र आप के ही अंश हैं। अन्य रुद्रगण आपकी कला हैं। आप सबमें गुण रहित निर्गुण तथा प्रकृति से अतीत हैं॥३१-३४॥

सर्वेषां परमात्मा वै प्राणा विष्णुस्वरूपिणः।
मानसं च स्वयं ब्रह्मा स्वयं ज्ञानात्मकःशिवः॥३५॥

---

१. क. परम्।

प्रवरा सर्वशक्तीनां बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी। स्वात्मनः प्रतिबिम्बस्ते जीवः सर्वेषु देहिषु॥३६॥

(बलिराज अब श्रीकृष्ण से कहते हैं)–हे प्रभो! आप सबके परमात्मा हैं। सबका प्राण विष्णु का ही स्वरूप है। ब्रह्मा सबके मनःरूप हैं। शिव ज्ञानात्मक हैं। सभी शक्तियों में प्रवर ईश्वरी प्रकृति को ही बुद्धि जानें। समस्त प्राणीगण के देह में स्थित जीवात्मा (जीव) वह आपकी स्वात्मा का प्रतिबिम्ब ही है॥३५-३६॥

जीवः स्वकर्मणां भोगी स्वयं साक्षी भवांस्तथा।
सर्वे यान्ति त्वयि गते नरदेवे यथाऽनुगाः॥३७॥
सद्यः पतति देहश्च शवोऽस्पृश्यस्त्वया विना।
बुद्धाः सन्तो न जानन्ति वञ्चितास्तव मायया॥३८॥
त्वां भजन्त्येव ये सन्तो मायामेतां तरन्ति ते।
त्रिगुणा प्रकृतिर्दुर्गा वैष्णवी च सनातनी॥३९॥

कर्मी जीवगण स्वकृत कर्म का फलभोग करते हैं। आप केवल कर्मों के साक्षीस्वरूप स्थित रहते हैं। जैसे राजा के कहीं जाते समय उसके अनुचर उनके पीछे जाते हैं, तदनुरूप जब आप देहत्याग करके चले जाते हैं, तब पूर्वोक्त प्राण-मन-ज्ञान-बुद्धि आदि सब कुछ आपका अनुगमन करते हैं। आप के बहिर्गत् होते ही देह भूपतित होकर अस्पृश्य शव रूप हो जाता है, तथापि आपकी माया से ठगे गये प्रबुद्ध सन्त भी यह रहस्य नहीं जान पाते। जो सन्तजन आपका भजन करते रहते हैं, वे माया से तर जाते हैं। ये त्रिगुणात्मिका प्रकृति दुर्गा वैष्णवी तथा सनातनी हैं॥३७-३९॥

परा नारायणीशानी तव माया दुरत्यया। त्वदंशाः प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः॥४०॥

सर्वेषामपि विश्वेषामाश्रयो यो महान्विराट्।
स शेते च जले योगाद्विश्वेशो गोकुले यथा॥४१॥
स एव वासुर्भगवांस्तस्य देवो भवान्परः।
वासुदेव इति ख्यातः पुराविद्भिः प्रकीर्तितः॥४२॥

आपके भजन में निरत सन्तजन ही इस माया को पार कर पाते हैं अन्यथा आपकी माया अत्यन्त दुरत्यया है, जिसे पार कर पाना अत्यन्त दुष्कर है। यह माया नारायणी ईश्वरी है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के जो पृथक्-पृथक् ब्रह्मा-विष्णु-शिव नामक त्रिदेव हैं, वे आपके ही अंश हैं। समस्त विश्व के आश्रयभूत महाविराट् (महाविष्णु) वे योगनिद्रा का अवलम्बन लेकर ब्रह्माण्डगोलकस्थ जल में शयनरत रहते हैं। वे भगवान् वासु कहे गये हैं। आप तो उन महाविराट् महाविष्णु वासु के भी देवता हैं। तभी पुराणज्ञ लोग आपको वासुदेव कहते हैं॥४०-४२॥

त्वमेव कलया सूर्यस्त्वमेव कलया शशी।
कलया च हुताशश्च कलया पवनः स्वयम्॥४३॥

कलया वरुणश्चैव कुबेरश्च यमस्तथा। कलया त्वं महेन्द्रश्च कलया धर्म एव च॥४४॥
त्वमेव कलया शेष ईशानो नैर्ऋतिस्तथा। मुनयो मनवश्चैव ग्रहाश्च फलदायकः॥४५॥
कलाकलायाश्चांशेन सर्वे जीवाश्चराचराः।
त्वं ब्रह्म परमं ज्योतिर्ध्यायन्ते योगिनः सदा॥४६॥

आप ही अपनी कला से सूर्य हैं, कला से ही चन्द्र, अग्नि तथा पवन हैं। आप ही अपनी कला से वरुण, कुबेर, यम, मुनि, महेन्द्र, धर्मदेव, शेष, ईशान, नैर्ऋति, मनु तथा फलप्रद ग्रहादि हैं। आप ही अपनी कला के कलांश से सचराचर जीव हैं। आप ही ब्रह्म एवं परमज्योति हैं, जिनका ध्यान सतत् योगी करते हैं।।४३-४६।।

तं त्वाऽऽद्रियन्ते भक्तास्ते ध्यायन्ते च तदन्तरे। नवीननीरदश्यामं पीतकौशेयवाससम्॥४७॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं द्विभुजं मुरलीधरम्॥४८॥
मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यभूषितम्। अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरवलयान्वितम्॥४९॥
मणिकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम्। रत्नसाराङ्गुलीयं च क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्॥५०॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं शरत्कमललोचनम्। शरत्पूर्णेन्दुनिन्दास्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥५१॥
वीक्षितं सस्मिाभिश्च गोपीनां कोटिकोटिभिः[1]। वयस्यैः पार्षदैर्गोपैः सेवितं श्वेतचामरैः॥५२॥

आपके भक्तगण आदर के साथ उस परमज्योति में आपके नवमेघ के समान श्यामलवर्ण, पीतकौषेय वस्त्रधारी, मुस्कराते मुखमण्डल वाले, भक्तवत्सल, द्विभुज, वंशीधारी, जिनके वक्षस्थल पर राधा स्थित हैं ऐसी भक्तेश्वर कृष्णमूर्त्ति की चिन्तना करते रहते हैं। आपका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित है। आपके केश-पाश में मयूर की पूंछ शोभायमान है, गले में मालतीमाला, हाथों में अमूल्य रत्नों का बना बाजूबन्द, बाहु में केयूर शोभायमान है। कानों में मणिमय कुण्डलों का जोड़ा गालों तक लटकता रहता है। आपकी उंगलियों में उत्तम रत्नमय अंगूठी, चरणों में शब्दमय मंजीर सुशोभित है। आपकी सुन्दरता करोड़ों कामदेव के समान है। आपके नेत्रयुगल तो शारदीय कमलों की भी शोभा को लज्जित कर रहे हैं। शरत्कालीन करोड़ों पूर्णचन्द्र को भी शोभा म्लान कर देने वाला आपका जो मुखमण्डल है, उसे कोटि-कोटि गोपियां मुस्कराती देखती रहती हैं। आपके समवयस्क लगने वाले गोपगण श्वेत चामर झलते आपकी सेवा में सतत् निरत रहते हैं।।४७-५२।।

गोपबालकवेषं च राधावक्षःस्थलस्थितम्। ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मेशशेषवन्दितम्॥५३॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च योगीन्द्रैः प्रणतं स्तुतम्।
वेदानिर्वचनीयं च परं स्वेच्छामयं विभुम्॥५४॥
स्थूलस्थूलतमं रूपं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमं परम्। सत्यं नित्यं प्रशस्तं च प्रकृतेः परमीश्वरम्॥५५॥

---

१. क. ०टिभिः सह।

निर्लिप्तं च निरीहं च भगवन्तं सनातनम्।
एवं ध्यात्वा च ते पूजाः स्निग्धदूर्वाक्षता जलम्॥५६॥
पद्मापद्मार्चिते पादपद्मे च दातुमुत्सुकाः। वेदाः स्तोतुमशक्तास्त्वामशक्ता सा सरस्वती॥५७॥

आप गोपबालक वेषधारी प्रभु सदा राधा के वक्षस्थल पर स्थित रहते हैं। आप ध्यान से भी असाध्य तथा दुराराध्य हैं। (आपकी आराधना कर सकना अत्यन्त कठिन है)। आप ब्रह्मा-शिव तथा अनन्तदेव से सदा वन्दनीय हैं। सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र प्रणत होकर सदा आपका स्तव करते रहते हैं। आप वेदों तक में अनिर्वाच्य, स्वेच्छामय परम प्रभु हैं। आप परमप्रभु हैं। आपका रूप स्थूल से भी स्थूल तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। आप सत्य, नित्य, प्रशस्त, प्रकृति से भी परे, ईश्वर, निर्लिप्त निरीह हैं। (अर्थात् आपका नाश तथा उत्पत्ति है ही नहीं, आप सबसे श्रेष्ठ हैं, आप प्रकृति से अतीत हैं, आप चेष्टा रहित (निरीह) हैं। आप कहीं लिप्त नहीं होते। आप अनन्त कालव्यापी हैं। आप भगवान् हैं)। इन सनातन प्रभु का ऐसे ध्यान करने वाले पवित्रतम हो जाते हैं। वे तो लक्ष्मी देवी द्वारा सतत् सेव्यमान आपके चरणकमलों में स्निग्ध दूर्वादल-अक्षत-जल चढ़ाने हेतु व्यग्र हो जाते हैं। आपकी स्तुति करने में वेद तथा सरस्वती तक असमर्थ रह जाती हैं।।५३-५७।।

शेषः स्तोतुमशक्तश्च स्वयंभूः शंभुरीश्वरः। गणेशश्च दिनेशश्च महेन्द्रश्चन्द्र एव च॥५८॥
स्तोतुं नालं धनेशश्च किमन्ये जड़बुद्धयः।
गुणातीतमनीहं च किं स्तौमि निर्गुणं परम्॥५९॥

अनन्त शेष, स्वयम्भु ब्रह्मा, ईश्वर शंभु, गणेश, सूर्य, इन्द्र, चन्द्र, कुबेर तक आपकी स्तुति कर सकने की क्षमता नहीं रखते तब मुझ जैसे जड़बुद्धि की तो बात ही क्या? आप सत्व-रजः-तमः रूप गुणों से परे हैं। आपका निश्चय कोई तर्क से नहीं कर सकता। आप निर्गुण, सर्वश्रेष्ठ हैं मैं आपकी स्तुति कैसे करूं?।।५८-५९।।

अपण्डितोऽयमसुरो न सुरः क्षन्तुमर्हसि। बलेस्तद्वचनं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः।
परिपूर्णतमः श्रीमान्भक्तं च भक्तवत्सलः॥६०॥

"यह असुर बाण मूर्ख है। यह देवता नहीं है। इसे क्षमा करें।" बलिराज का यह वचन सुनकर श्रीमान् भक्तवत्सल परिपूर्णतम जगत्पति ने कहा-।।६०।।

श्रीभगवानुवाच

मा भैर्वत्स गृहं गच्छ सुतलं रक्षितं मया। मद्वरेण प्रसादेन त्वत्पुत्रोऽप्यजरामरः॥६१॥
दर्पहानिं करिष्यामि तस्य मूर्खस्य दर्पिणः। प्रह्लादाय वरो दत्तो भक्ताय च तपस्विने॥६२॥
ममावध्यश्च त्वद्वंशश्चेति प्रीतेन चेतसा। तव पुत्राय दास्यामि ज्ञानं मृत्युञ्जयं परम्॥६३॥

श्रीभगवान् कहते हैं-हे वत्स! भय मत करो। अपने गृह जाओ। मैं तुम्हारे सुतल लोक की सदा

रक्षा करता हूं। मेरे वर द्वारा तुम्हारा पुत्र बाणासुर अजर-अमर होगा। उस मूर्ख अभिमानी का मैं केवल दर्पनाश करूंगा। मैंने भक्त तपस्वी प्रह्लाद को यह वर प्रसन्नचित्त से दिया था कि तुम्हारे वंशज मेरे द्वारा अवध्य रहेंगे। मैं तुम्हारे पुत्र बाण को परम ज्ञानमय मृत्युञ्जय ज्ञान प्रदान करूंगा।।६१-६३।।

त्वया कृतिमिदं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीप्सितम्। पुरा सनत्कुमाराय प्रदत्तं ब्रह्मणा तथा।।६४।।
सिद्धाश्रमे पुण्यतमे[1] प्रशस्ते सूर्यपर्वणि। गौतमाय प्रदत्तं च गौर्या मन्दाकिनीतटे।।६५।।
शङ्करेण च शिष्याय भक्ताय च दयालुना। ब्रह्मणे च मया दत्तं शिवाय विरजातटे।।६६।।
भृगवे च पुरा दत्तं कुमारेण च धीमता।
त्वं च दास्यसि बाणाय बाणः स्तोष्यत्यनेन माम्।।६७।।

तुमने जो सामवेदोक्त स्तुति से मेरा स्तव किया है, उसे पूर्वकाल में पुण्यतम सिद्धाश्रम स्थल में ब्रह्मा द्वारा सूर्यपर्व पर सनत्कुमार को दिया गया था। भगवती गौरी ने यही स्तुति मन्दाकिनी तट पर गौतम मुनि को प्रदान किया था। दयामय शंकर ने अपने भक्तशिष्य ब्रह्मा को इसका उपदेश दिया था। मैंने विरजा तट पर (गोलोक में) इसका उपदेश शिव को दिया था। इसे ही पूर्वकाल में देवर्षि सनत्कुमार ने महर्षि भृगु को प्रदान किया था। अब तुम यह स्तोत्र बाण को देना। बाण इसके द्वारा मेरी स्तुति करेगा।।६४-६७।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यमुपदिश्य गुरोर्मुखात्। वृतस्य पूजितस्यापि वस्त्रभूषणचन्दनैः।।६८।।
सुस्नातो यः पठेन्नित्यं पूजाकाले च भक्तितः।
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।।६९।।

इस महापुण्यमय स्तोत्र का उपदेश गुरुमुख से पाये। उन गुरु की पूजा वस्त्राभूषण-चन्दनादि से किया गया हो। जो उत्तम स्नान करके नित्य पूजाकाल में इसका पाठ भक्तिभाव से करेगा, उसके कोटि जन्मार्जित पातक नष्ट होंगे, इसमें संशय न करे।।६८-६९।।

विपदां खण्डनं स्तोत्रं कारणं सर्वसम्पदाम्।
वारणं दुःखशोकानां भवाब्धिघोरतारणम्।।७०।।
खण्डनं गर्भवासानां जरामृत्युहरं परम्।
बन्धनानां च रोगाणां खण्डनं भक्तमण्डनम्।।७१।।

यह स्तोत्र विपत्ति नाशक तथा सर्वसम्पदा प्रदायक है। यह दुःख-शोक निवारक तथा घोर संसार-सागर से पार उतारने वाला है। यह गर्भवास समाप्त करके जरामृत्यु का नाश करने वाला, बन्धन तथा रोग का नाश करने वाला है। इससे भक्तिरूपी आभूषण की प्राप्ति हो जाती है। यह स्तोत्र भक्तों का आभूषण है।।७०-७१।।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। व्रती व्रतेषु सर्वेषु तपस्वी च तपःसु च।।७२।।

---

१. क. ०तीर्थे।

स सत्यं सर्वदानानां फलं च लभते ध्रुवम्।
लक्षधा स्तोत्रपाठेन स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्।।७३।।
सर्वसिद्धिं च लभते सिद्धिस्तोत्रो भवेद्यदि।
इहलोके देवतुल्योऽप्यन्ते याति हरेः पदम्।।७४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणयुद्धे बलिकृतश्रीकृष्णस्तोत्रं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।११९।।

—※—

इस स्तोत्र का पाठ करने वाला सर्वतीर्थ स्नान, समस्त व्रताचरण, समस्त तपःश्चरण, समस्त वस्तुदान का फल निश्चित रूप से प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्र का एक लाख पाठ करने वाले को यह सिद्ध हो जाता है। वह इहलोक में देवता के समान होकर सर्वान्त में परलोक में श्रीहरिपद को प्राप्त करता है।।७२-७४।।

।।११९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

यादव सैन्य से असुरसैन्य का युद्ध, वैष्णव ज्वरोत्पत्ति, श्रीकृष्ण द्वारा बाणासुर की पराजय

नारायण उवाच

अथ कृष्णश्च भगवानुद्धवेन बलेन च। दूतं प्रस्थापयामास विधाय मन्त्रणं शुभम्।।१।।
शिवो गणपतिर्यत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनी। कार्तिकेयो भद्रकाली चोग्रचण्डा च कोटरी।।२।।
आगत्य नत्वा दूतश्च गणेशं च शिवं शिवाम्।
मानवांश्चापि पूज्यांश्च समुवाच यथोचितम्।।३।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—तदनन्तर श्रीकृष्ण ने उद्धव एवं बलदेव से शुभ मन्त्रणा किया तथा उन्होंने अपना दूत वहां भेजा, जहां शिव, गणपति, दुर्गतिनाशिनी पार्वती, कार्त्तिकेय, भद्रकाली, उग्रचण्डा तथा कोटरी देवी थीं। वहां जाकर दूत ने गणेश, शिव, शिवा तथा पूज्य मानवों को प्रणाम करके यथोचित वाक्य कहा—।।१-३।।

दूत उवाच

बाणमाह्वयते कृष्णः संग्रामार्थं महेश्वर। किं वाऽनिरुद्धमूषां च गृहीत्वा शरणं व्रज॥४॥
रणे निमन्त्रितो यो हि न याति भयकारतः। परत्र नरकं याति सप्तभिः पितृभिः सह॥५॥

दूत कहता है–हे महेश्वर! श्रीकृष्ण ने युद्ध के निमित्त बाण राजा का आवाहन किया है। अन्यथा आप अनिरुद्ध तथा ऊषा के साथ शरणागत हो जायें। जो व्यक्ति युद्धार्थ बुलाये जाने पर कातरता पूर्वक रणस्थल में नहीं आता वह अपनी सात पूर्व पीढ़ी सहित नरकगामी हो जाता है।।४-५।।

दूतस्य वचनं श्रुत्वा सभामध्ये यथोचितम्। उवाच पार्वती देवी स्वयं शङ्करसन्निधौ॥६॥

जब देवी पार्वती ने दूत का यह यथोचित कथन सुना तब शंकर के सन्निधि में ही पार्वती ने यह यथायोग्य बात कहा–।।६।।

पार्वत्युवाच

गच्छ बाण महाभाग गृहीत्वा तव कन्यकाम्।
सर्वस्वं यौतकं दत्त्वा श्रीकृष्णं शरणं व्रज॥७॥
सर्वेषामीश्वरं बीजं दातारं सर्वसम्पदाम्। वरं वरेण्यं शरणं कृपालुं भक्तवत्सलम्॥८॥

पार्वती कहती हैं–हे महाभाग बाण! तुम कन्या तथा यथोचित उपहार (दहेज) लेकर शीघ्र कृष्ण की शरण ग्रहण करो। वे सबके ईश्वर, सबके कारण, सर्व सम्पदाप्रदाता, वरदाता, वरेण्य, श्रेष्ठ, शरणप्रद, कृपालु तथा भक्तवत्सल हैं।।७-८।।

पार्वतीवचनं श्रुत्वा तमूचुस्ते सुरेश्वराः। प्रशसंसुःसभामध्ये धन्यधन्येति सर्वदा॥९॥
कोपाविष्टश्च बाणोऽयमुत्तस्थौ सहसाऽसुरः।
सान्नाहिको धनुष्पाणिः प्रणम्य शङ्करं ययौ॥१०॥
सर्वैर्निषिध्यमानश्च कम्पितो रक्तलोचनः।
सान्नाहिकश्च दैत्यानां त्रिकोट्या च महाबलः॥११॥

पार्वती का वचन सुनकर सभी देवगण ने धन्य-धन्य कहते हुये उन भगवती की प्रशंसा किया, परन्तु बाणासुर अत्यन्त रुष्ट हो गया। वह तत्काल उठा और अपना धनुष तथा कवच धारण करके सबके रोकने पर भी शंकर को प्रणाम करके वहां से चला गया। उसके नेत्र क्रोध से लाल थे। रोष के कारण उसका शरीर कांप रहा था। उसने महाबली तीन कोटि दैत्य सेना को साथ ले लिया।।९-११।।

कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च निकुम्भः कुम्भ[१] एव च।
सेनापतीश्वरश्चैते ययुः सान्नाहिकास्तथा॥१२॥

१. क. सम।

उन्मत्तभैरवश्चैव संहारभैरवस्तथा। असिताङ्गो भैरवश्च रुरुभैरव एव च॥१३॥
महाभैरवसंज्ञश्च कालभैरव एव च। प्रचण्डभैरवश्चैव क्रोधभैरश्चैव एव च॥१४॥

प्रययुः शक्तिभिः सार्धं सर्वे सान्नाहिकाश्च ते।
कालाग्निरुद्रो भगवान्रुद्रैः सान्नाहिको ययौ॥१५॥

उसका अनुसरण करते कुम्भाण्ड, कूपकर्ण, शुंभ, निशुंभ सेनापति ईश्वर भी कवचधारी होकर चल पड़े। तदनन्तर उन्मत्त भैरव, संहार भैरव, असितांग भैरव, रुरु भैरव, महाभैरव नामक काल भैरव, प्रचण्ड भैरव, क्रोधभैरव भी अपनी-अपनी शक्तियों के साथ कवचधारी होकर चल पड़े। कालाग्नि रुद्र ने भी कवचधारी होकर अन्य रुद्रों के साथ गमन किया।।१२-१५।।

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डिका चण्डिनायिका।
चण्डेश्वरी च चामुण्डा चण्डी चण्डकपालिका॥१६॥
अष्टौ च नायिकाः सर्वाः प्रययुः खर्परान्विताः।
कोटरी रत्नयानस्था शोणितग्रामदेवता॥१७॥
प्रययौ सा प्रफुल्लास्या खड्गखर्परधारिणी।
इन्द्राणी वैष्णवी शान्ता ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी॥१८॥

कौमारी नारसिंही च वाराही विकटाकृतिः। माहेश्वरी महामाया भैरवी भीमरूपिणी॥१९॥
अष्टौ च शक्तयः सर्वा रथस्थाः प्रययुर्मुदा। रत्नेन्द्रसारयानस्था प्रययौ भद्रकालिका॥२०॥

उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डिका, चण्डिनायिका, चण्डेश्वरी, चामुण्डा, चण्डी, चण्डकपालिका नामक अष्ट नायिकायें भी खप्पर लेकर भैरवों के साथ चल पड़ीं। कोटरी जो शोणितपुर की ग्राम देवी थीं, उन्होंने रत्नमय रथ पर आरूढ़ होकर रणस्थल में गमन किया। वे प्रफुल्ल मुद्रायुक्त एवं खड्ग-खप्पर धारिणी थीं। साथ में इन्द्राणी, शान्तरूपा वैष्णवी, ब्रह्मवादिनी ब्रह्माणी, कौमारी, नारसिंही, विकटाकारा, वाराही, माहेश्वरी, महामाया, भीमरूपा भैरवी ये आठ शक्तियां भी रथारूढ़ा होकर मुदित मन से चल पड़ीं। रत्नसार रूप उत्तमरत्न निर्मित यान पर भद्रकाली रण में गयीं।।१६-२०।।

रक्तवर्णा त्रिनयना जिह्वाललनभीषणा। शूलशक्तिगदाहस्ता खड्गखर्परधारिणी॥२१॥
प्रययौ शूलहस्तश्च वृषभस्थो महेश्वरः। स्कन्दश्च शिखियानस्थः शस्त्रपाणिर्धनुर्धरः॥२२॥
एवं च प्रययुः सर्वे गणेशं पार्वतीं विना। एभिर्युक्तं महादेवं दृष्ट्वा च भद्रकालिकाम्॥२३॥

प्रचक्रे चक्रपाणिश्च संभाषां च यथोचिताम्।
बाणः शङ्खध्वनिं कृत्वा प्रणम्य पार्वतीश्वरम्॥२४॥

वे रक्तवर्णा, त्रिनेत्रा थीं। उनकी भीषण जिह्वा लपलपा रही थी। वे हाथों में शूल-शक्ति-गदा-खड्ग-खर्पर धारण किये थीं। वृषभारूढ़ शूलपाणि महेश्वर भी यादवों से युद्ध करने चल पड़े। उनके

साथ स्कन्द मयूर यान पर धनुषादि शस्त्र लिये चले। केवल शंकर एवं गणपति युद्ध में नहीं गये। बाकी सभी युद्धार्थ चल पड़े। इस प्रकार महादेव एवं भद्रकाली को युद्धाभिलाषा से आया देखकर चक्रपाणि श्रीहरि ने उनसे यथोचित संभाषण (वार्त्ता) भी किया। उस समय बाणासुर ने शंख बजाकर पार्वतीश्वर शिव को प्रणाम निवेदित किया।।२१-२४।।

धनुर्दधार सगुणं दिव्यास्त्रेण नियोजितम्। बाणं समुद्यतं दृष्ट्वा सात्यकिः परवीरहा।।२५।।
निषिध्यमानस्तैः सर्वैः सन्नाही प्रययौ मुदा। बाणश्चिक्षेप दिव्यास्त्रमञ्जनं नाम नारद।।२६।।

तब बाणासुर ने अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर उस पर दिव्यास्त्र योजित किया। यह देखकर लोगों द्वारा रोके जाने पर शत्रु हन्ता सात्यकि कवच धारण करके युद्धार्थ बढ़ा। हे नारद! तब बाणासुर ने उस पर अंजन नामक दिव्य अस्त्र को छोड़ा।।२५-२६।।

अव्यर्थं ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डाभं सुतीक्ष्णकम्।
दृष्ट्वाऽस्त्रं सात्यकिः साक्षात्किंचिन्नम्रो बभूव सः।।२७।।
किं वा न दग्धः प्रययौ नभोमध्यं सुदारुणम्।
वह्निं चिक्षेप बाणश्च सात्यकिर्वारुणेन च।।२८।।

वह दिव्यास्त्र अमोघ, ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्य की आभा वाला तथा तीक्ष्णतम था। जैसे ही उस अस्त्र को सात्यकि ने अपनी ओर आते देखा वह किंचित् झुक गया। अतः सात्यकि दग्ध होने से बच गया तथा वह अस्त्र आकाश में लीन हो गया। इससे क्रोधित बाण ने आग्नेयास्त्र छोड़ा जिसे सात्यकि ने वारुणास्त्र से शान्त कर दिया।।२७-२८।।

प्रज्वलन्तं तालमानं निर्वाणं च चकार सः।
चिच्छेद वारुणं घोरं प्रचण्डं भीममुल्बणम्।।२९।।
चिच्छेद सात्यकिश्चैव पार्जन्येनावलीलया।
चिक्षेप पवनं बाणः प्रचण्डं भीममुल्बणम्।।३०।।

चिच्छेद सात्यकिश्चैव पर्वतास्त्रेण लीलया। नारायणास्त्रं चिक्षेप बाणश्च रणमूर्धनि।।३१।।

उस वारुणास्त्र ने आग्नेयास्त्र की उन लपटों को बुझा दिया, जो तालवृक्ष इतनी उच्च थीं। तदनन्तर बाण ने भयानक प्रचण्ड वायु को चलाया (वायव्यास्त्र चलाया)। सात्यकि ने उसे अनायास पर्वतास्त्र से काट दिया। तदनन्तर रणाग्र में बाणासुर ने नारायणास्त्र को सात्यकि पर छोड़ा।।२९-३१।।

सात्यकिर्दण्डवद्भूमौ पपातार्जुनशिक्षया। माहेश्वरं प्रचिक्षेप बाणः शस्त्रविदां वरः।।३२।।

सात्यकिर्वैष्णवास्त्रेण प्रविच्छेदावलीलया।
ब्रह्मास्त्रं चापि चिक्षेप बाणश्च रणमूर्धनि।।३३।।
क्षणं चकार निर्वाणं ब्रह्मास्त्रेण च सात्यकिः।
नागास्त्रं चापि चिक्षेप बाणो रणविशारदः।।३४।।

सात्यकिर्गारुडेनैव सञ्जहार क्षणेन च। जग्राह शूलमव्यर्थं शङ्करस्य सुदारुणम्॥३५॥

अर्जुन से शिक्षित सात्यकि नारायणास्त्र को आते देखते ही भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करता लेट गया। (इससे वह अस्त्र व्यर्थ हो गया)। तदनन्तर शस्त्रज्ञाताओं में प्रधान बाण ने माहेश्वर अस्त्र को संधान सात्यकि पर किया, तथापि सात्यकि ने उसे अनायास वैष्णवास्त्र से छिन्न कर दिया। तब रणभूमि में सात्यकि के विरुद्ध बाण ने ब्रह्मास्त्र का प्रहार किया, तथापि उस ब्रह्मास्त्र को क्षणमात्र में सात्यकि ने स्वयं द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र से निवृत्त कर दिया। तदनन्तर रणविशारद बाण ने सात्यकि पर नागास्त्र छोड़ा जिसे सात्यकि ने क्षणमात्र में गारुड़ास्त्र से नष्ट कर दिया। तब बाण ने शंकर का दारुण अमोघ त्रिशूल उठाया॥३२-३५॥

तुष्टाव सात्यकिर्दुर्गां गले माल्यं बभूव ह। जग्राह धनुषा बाणो बाणं पाशुपतं तथा॥३६॥

बाणं सबाणं जृम्भं च सात्यकिश्च चकार ह।
बाणं तं जृम्भितं दृष्ट्वा कार्तिकेयो महाबलः॥३७॥

अर्धचन्द्रं च चिक्षेप कामश्चिच्छेद लीलया। गदां चिक्षेप च स्कन्दः प्रातःसूर्यसमप्रभाम्॥३८॥

वैष्णवास्त्रेण कामश्च निर्वाणं च चकार सः।
नारायणास्त्रं स्कन्दश्च प्राक्षिपच्च त्वरान्वितः॥३९॥
पपात दण्डवद्भूमौ प्रद्युम्नः कृष्णशिक्षया।
स्कन्दः शक्तिं च चिक्षेप प्रलयाग्निसमप्रभाम्॥४०॥

उस समय सात्यकि ने भगवती दुर्गा की स्तुति किया। अब वह त्रिशूल सात्यकि के कण्ठ की मालारूप हो गया। इसके पश्चात् बाणासुर ने धनुष पर पाशुपतास्त्र बाण योजित किया तभी सात्यकि ने इस अस्त्र तथा बाणासुर दोनों को (जृम्भास्त्र से) जिम्भृत (जंभाई युक्त) कर दिया। इस बाण तथा बाणासुर को जृम्भित देखते ही महाबली कार्त्तिकदेव ने अर्धचन्द्र बाण जैसे ही छोड़ा उसे कामदेव (प्रद्युम्न) ने काट दिया। इस पर कार्त्तिकेय ने प्रातःसूर्य सन्निभ कान्तिमती गदा का प्रहार प्रद्युम्न पर किया। जिसे कामदेव प्रद्युम्न ने वैष्णवास्त्र से शान्त किया। तदनन्तर त्वरित रूप से स्कन्द ने नारायणास्त्र का प्रयोग प्रद्युम्न के विरुद्ध किया, तथापि कृष्ण द्वारा शिक्षित प्रद्युम्न धरती पर दण्डवत् लेट गये। (इससे नारायणास्त्र शान्त हो गया)। तदनन्तर स्कन्ददेव ने प्रलयाग्नि तुल्य कान्तिमान शक्ति को छोड़ा॥३६-४०॥

कामो नारायणास्त्रेण निर्वाणं च चकार ताम्।
ब्रह्मास्त्रं च प्रचिक्षेप कार्तिको रणमूर्धनि॥४१॥
ब्रह्मास्त्रेणापि कामश्च निर्वाणं च चकार सः।
जग्राह कार्तिकं कोपाद्दिव्यं पाशुपतं तदा॥४२॥

तथापि कामदेव (प्रद्युम्न) ने उसे नारायणास्त्र से निवृत्त कर दिया। तब रणभूमि में कार्त्तिकेय

ने प्रद्युम्न के ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड़ा, तथापि प्रद्युम्न ने उसे अपने ब्रह्मास्त्र से शान्त कर दिया। तब कुपित स्कन्दकार्त्तिक ने पाशुपत नामक दिव्य अस्त्र उठाया।।४१-४२।।

निद्रास्त्रेणापि मदनो निद्रितं च चकार तुम्।
कार्तिकं निद्रितं दृष्ट्वा बाणं च जृम्भितं तथा।।४३।।
कोपात्कामं च सरथं जग्राह भद्रकालिका।
क्रोडे कृत्वा च बाणं च स्कन्दं च जगतां प्रसूः।।४४।।
रणस्थलाच्च प्रययौ यत्रैव पार्वती सती।
कार्तिकं बोधयामास बाणं सुस्थं चकार सा।।४५।।

सहसा सरथः कामो नासारन्ध्रेण वर्त्मना। बहिर्बभूव संत्रस्तः प्रययौ च रणस्थलम्।।४६।।

लेकिन काम (प्रद्युम्न ने) ने उसी समय निद्रास्त्र के प्रयोग से कार्त्तिकेय को निद्रित कर दिया। तब बाणासुर को जंभाई से आक्रान्त तथा कार्त्तिक को निद्रित देखकर भद्रकाली देवी कुपित हो गईं। उन्होंने कुपित होकर कामदेव को रथ के साथ (निगल) पकड़ लिया। तदनन्तर वे जगन्माता बाणासुर तथा स्कन्देव को गोद में उठाकर सती पार्वती के यहां चली आई और वहां कार्त्तिकेय तथा बाण को प्रबोधित तथा स्वस्थ किया। तभी अवसर पाकर भद्रकाली के नासाछिद्र से रथ सहित कामदेव (प्रद्युम्न) बहिर्गत् हो गये। वे भयभीत स्थिति में युद्धक्षेत्र आ गये।।४३-४६।।

दृष्ट्वा कामं च सरथं जहसुर्यादवास्तदा।
सर्वे शैवाश्च तत्रस्थाः शुष्ककण्ठा भयाकुलाः।।४७।।

अथ बाणः पुनः क्रुद्धो रथमारुह्य कोपतः। कार्तिकेयश्च भगवान्युद्धाय पुनरागतः।।४८।।

वहां रथारूढ़ काम को वापस पाकर यादवगण मुदित होकर हंसने लगे। इसे देखकर वहां स्थित समस्त शिवगणों का कण्ठ शुष्क हो गया। वे सभी भयभीत थे। इसी समय बाणासुर पुनः कुपित होकर रथारूढ़ होकर रणभूमि में आया। साथ ही रथारूढ़ भगवान् कार्त्तिकेय भी युद्धार्थ आ गये।।४७-४८।।

बाणः पञ्च शरांश्चैव चिक्षेप रणमूर्धनि। अर्धचन्द्रेण चिच्छेद बलदेवो महाबलः।।४९।।
रथं बभञ्ज बाणस्य लाङ्गलेन च लाङ्गली। जघान सूतमश्वांश्च मुसलेनावलीलया।।५०।।

तदनन्तर बाण ने उस रणभूमि में पहले पांच बाणों का प्रयोग किया। परन्तु महाबली बलदेव ने उन पांचों बाणों को अपने अर्द्धचन्द्र बाणों से काट दिया। तदनन्तर हलधर देव ने अपने हल द्वारा बाण के रथ को भग्न कर दिया। तब उन्होंने अपने मूसल से बाण के सारथि तथा अश्वों का अनायास वध कर दिया।।४९-५०।।

कुर्वन्तमुद्यमं छेत्तुं हलिनं च महाबलः। कालाग्निरुद्रो भगवान्वारयामास लीलया।।५१।।
रथं कालाग्निरुद्रस्य बभञ्ज लाङ्गली रुषा। हलेन सूतमश्वांश्च जघान रणमूर्धनि।।५२।।

कालाग्निरुद्रः कोपेन चिक्षेप ज्वरमुल्वणम्।
बभूवुर्यादवाः सर्वे ज्वराक्रान्ता हरिं विना॥५३॥
तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः ससर्ज वैष्णवं ज्वरम्। तं चिक्षेप ज्वरं हन्तुं माहेशं रणमूर्धनि॥५४॥
बभूव ज्वरयोर्युद्धं मुहूर्तमतिदारुणम्। वैष्णवज्वरनिष्क्रान्तो रणमूर्ध्नि पपात सः।
परं बभव निश्चेष्टस्तुष्टाव माधवं पुनः॥५५॥

उस समय बाण का वध करने हेतु सन्नद्ध बलदेव को उन महाबली भगवान् कालाग्नि रुद्र ने तत्काल रोका। इससे क्रोधित बलभद्र देव ने क्रोध पूर्वक कालाग्नि रुद्र के रथ को भग्न कर दिया। तदनन्तर उस रथ के सारथि तथा अश्वों का भी वध कर दिया। इस पर क्रोध पूर्वक कालाग्नि रुद्रदेव ने भयानक ज्वरास्त्र छोड़ा इससे हरि को छोड़कर समस्त यादव सैन्य ज्वराक्रान्त हो गई। इस स्थिति को देख भगवान् कृष्ण ने वैष्णव ज्वर का सृजन किया तथा माहेश्वर ज्वर को नष्ट करने के उद्देश्य से उस पर वैष्णव ज्वरास्त्र चलाया। तदनन्तर मुहूर्त्त पर्यन्त दोनों ज्वरों में घोर संग्राम होने लगा। उस रणभूमि में वैष्णवज्वर से अभिभूत होकर माहेश्वर ज्वर रणभूमि में गिर गया। तदनन्तर वह एक बार निश्चेष्ट हो गया। तत्पश्चात् वह माधव की स्तुति करने लगा।।५१-५५।।

ज्वर उवाच

प्राणानक्ष जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह। त्वमात्मा पुरुषः पूर्णः सर्वत्र समता तव॥५६॥

माहेश्वर ज्वर कहता है—हे जगन्नाथ! आप मेरे प्राणों की रक्षा करिये। आप भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये देह धारण करते हैं। आप सर्वात्मा, परमपुरुष है। आप सर्वत्र समता रखते हैं।।५६।।

ज्वरस्य वचनं श्रुत्वा सञ्जहार स्वकं ज्वरम्।
माहेश्वरो ज्वरो भीतो रणादेव हि निर्ययौ॥५७॥
बाणश्च पुनरागत्य बाणानां च सहस्रकम्। चिक्षेप मन्त्रपूतं च प्रलयाग्निशिखोपमम्॥५८॥
फाल्गुनः शरजालेन वारयामास लीलया। चिक्षेप शक्तिं बाणश्च ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम्॥५९॥
चिच्छेद लीलया तां च सव्यसाची महाबलः। स जग्राह पाशुपतं शतसूर्यसमप्रभम्॥६०॥
अत्यर्थमतिघोरं च विश्वसंहारकारकम्।
तद्दृष्ट्वा चक्रपाणिश्च चक्रं चिक्षेप दारुणम्॥६१॥

माहेश्वर ज्वर का कथन सुनकर श्रीकृष्ण ने वैष्णव ज्वर को वापस कर दिया। वह माहेश्वर ज्वर भयग्रस्त होकर रणांगण से पलायित हो गया। तदनन्तर बाणासुर रण में आकर प्रलयाग्नि ज्वालावत् महाकान्तिमान मन्त्रपूत हजारों बाण चलाने लगा, तथापि धनञ्जय अर्जुन ने उन सब बाणों को अवरुद्ध कर दिया। यह देखकर बाणासुर ने शतसूर्यवत् अमोघ, प्रभाशाली, महाभयानक, विश्वसंहारक पाशुपतास्त्र ग्रहण किया। यह देखकर चक्रपाणि माधव ने दारुण सुदर्शन चक्र छोड़ा।।५७-६१।।

हस्तानां च सहस्रं च सपाशुपतमुल्बणम्। चिच्छेद रणमध्ये च पपाताचलसिंहवत्॥६२॥

शस्त्रं पाशुपतं चैव ययौ पशुपतेः करम्।
अव्यर्थं दारुणं लोके प्रलयाग्निशिखोपमम्॥६३॥

बाणरक्तसमूहेन बभूव च महानदः। बाणः पपात निश्चेष्टो व्यथितो हतचेतनः॥६४॥

उस चक्र ने बाणासुर की सहस्त्रों बाहु का छेदन कर दिया। उसके हाथ से वह भयानक पशुपतास्त्र उस प्रकार भूपतित हो गया, मानो पर्वत शृङ्ग पृथिवी पर गिर गया हो। तदनन्तर वह अमोघ, अतीव दारुण, प्रलयाग्निवत् पाशुपतास्त्र शिव के हाथों में चला गया। उस समय बाणासुर रक्त का एक महानद जैसा बन गया। वह चेतना खोकर व्यथित चेष्टा रहित हो कर धरती पर गिर गया।।६२-६४।।

तत्राऽऽजगाम भगवान्महादेवो जगद्‌गुरुः।
रुरोदाऽऽगत्य मोहेन बाणं कृत्वा स्ववक्षसि॥६५॥

[1]शिवाश्रुपतनेनैव संबभूव सरोवरम्। चेतनं कारयामास करुणासागरः प्रभुः॥६६॥

बाणं गृहीत्वा प्रययौ यत्र देवो जनार्दनः। [2]चक्रे पद्मार्चिते पादपद्मे [3]बाणसमर्पणम्॥६७॥

तदनन्तर वहां जगद्‌गुरु भगवान् महेश्वर आ गये। उन्होंने मोहग्रस्त होकर बाण को वक्ष से लगाया तथा रुदनरत हो गये। महेश्वर के अश्रुपात से वहां एक सरोवर-सा बन गया। उन करुणासागर प्रभु ने बाण को चैतन्य किया। तत्पश्चात् वे बाणासुर को लेकर भगवान् जनार्दन के पास गये। महादेव ने वहां जाकर श्रीकृष्ण के लक्ष्मीपूजित चरणकमलों पर बाण का समर्पण कर दिया।।६५-६७।।

तुष्टाव जगतां नाथं भक्तेशं चन्द्रशेखरः। बलिना च स्तुतं येन वेदोक्तेन च तेन च॥६८॥

हरिर्मृत्युञ्जयं ज्ञानं ददौ बाणाय धीमते। करपद्मं ददौ गात्रे तं चकाराजरामरम्॥६९॥

भगवान् चन्द्रशेखर भक्तों के ईश्वर जगन्नाथ की उसी स्तोत्र से स्तुति करने लगे जिससे बलि ने स्तुति किया था। उस समय श्रीहरि ने बाण को मृत्युञ्जय महाज्ञान प्रदान किया। उन्होंने बाण के शरीर पर अपना कर कमल रखा तथा बाण को अजर-अमर बना दिया।।६८-६९।।

बाणः स्तोत्रेण तुष्टाव भक्त्या बलिकृतेन च।
वरां कन्यां समानीय रत्नभूषणभूषिताम्॥७०॥

प्रददौ हरये भक्त्या तत्रैव देवसंसदि। गजेन्द्राणां पञ्चलक्षमश्वानां तच्चतुर्गुणम्॥७१॥

उस समय बाणासुर ने भी उसी स्तोत्र से भक्ति के साथ श्रीकृष्ण की स्तुति किया, जिससे बलि ने स्तुति किया था। तदनन्तर वे अपनी श्रेष्ठ कन्या ऊषा को रत्नाभूषणभूषित करके लाये तथा उसे हरि

---

१. क. शिवं पाशुपतेनै०।
२. क. पद्मं।
३. क. बाणं समर्प्य च।

को (अनिरुद्ध के लिये) भक्ति पूर्वक देवसभा में अर्पित किया। इन्होंने उपहार में ५ लाख गजेन्द्र तथा बीस लाख अश्व भी अर्पित किया।।७०-७१।।

दासीनां च सहस्त्रं च रत्नभूषणभूषितम्। सहस्त्रं कामधेनूनां वत्सयुक्तं च सर्वदम्।।७२।।

माणिक्यानां च मुक्तानां रत्नानां शतलक्षकम्।
मणीन्द्राणां हीरकाणां शतलक्षं मनोहरम्।।७३।।

जलभाजनपात्राणि सुवर्णनिर्मितानि च। सहस्त्राणि ददौ तस्मै भक्तिनम्रात्मकंधरः।।७४।।

उन्होंने एक सहस्र रत्नभूषणभूषित दासी, १००० बछड़े युक्त कामधेनु (गौ) भी प्रदान किया। सौ लाख माणिक्य एवं मुक्तारत्न, मनोहर मणीन्द्र तथा हीरक सौ लक्ष, जल एवं भोजनपात्र जो स्वर्ण से निर्मित सहस्त्रों की संख्या में भक्ति पूर्वक नतशिर होकर दिया।।७२-७४।।

वराणि सूक्ष्मवस्त्राणि वह्निशुद्धांशुकानि च। ददौ[1] बाणश्च सर्वाणि स्वभक्त्या शङ्कराज्ञया।।७५।।

ताम्बूलानां[2] मधूनां च पूर्णपात्राणि नारद।
सहस्त्राणि ददौ भक्त्या वराणि विविधानि च।।७६।।

कन्यां समर्पयामास पादपद्मे हरेरपि। रुरोदोच्चैः स्वभक्त्या च परिहारं चकार सः।।७७।।

प्रचुर अग्निशुद्ध महीन वस्त्र भी बाणासुर ने शंकर की आज्ञा से श्रीकृष्ण को प्रदान किया। हे नारद! बाणासुर ने विविध ताम्बूल भरे तथा मधु से भरे उत्तम पूर्णपात्र सहस्त्रों की संख्या में प्रदान किया। तत्पश्चात् बाण ने अपनी कन्या हरि के चरण कमलों में अर्पित कर दिया। इसके पश्चात् बाणासुर क्षमा याचना करते हुये उच्च स्वर में रुदन करने लगा। तब श्रीहरि ने उसके दोष का निवारण कर दिया।।७५-७७।।

कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा वेदोक्तं च शुभाशिषम्। शङ्करानुमतेनैव प्रययौ द्वारकां पुरीम्।।७८।।

गत्वा कन्यां नवोढां तां बाणस्यापि महात्मनः।
रुक्मिण्यै प्रददौ शीघ्रं देवक्यै च हरिःस्वयम्।।७९।।

तब श्रीकृष्ण ने बाण को वर प्रदान करके वेदोक्त शुभ आशीर्वाद प्रदान किया। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने शंकर से आज्ञा लेकर द्वारका प्रस्थान कर दिया। द्वारका आकर बाण ने उस नवविवाहित महात्मा बाण की कन्या को शीघ्र देवकी एवं रुक्मिणी को स्वयं अर्पित कर दिया।।७८-७९।।

महोत्सवं मङ्गलं च कारयामास यत्नतः।
ब्राह्मणान्भोजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ।।८०।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणयुद्धं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२०।।

---

१. क. तस्मै सुवर्णं च स्व।
२. ख. ०नां च चूर्णानां।

इसके अनन्तर द्वारका में यत्नतः मंगलोत्सव, ब्राह्मण भोजन कराया गया। सर्वान्त में ब्राह्मणों को धन भी दिया गया।।८०।।

।।१२०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रृगालोपाख्यान

नारायण उवाच

अथ कृष्णः सुधर्मायां निवसन्सगणस्तथा। तत्राऽऽजगाम विप्रश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा।।१।।

आगत्य दृष्ट्वा तुष्टाव भक्त्या च पुरुषोत्तमम्।
उवाच मधुरं शान्तो भीतो विनयपूर्वकम्।।२।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—तत्पश्चात् एक समय श्रीकृष्ण बन्धु-बान्धवों के साथ सुधर्मा सभा में आसीन थे। तभी वहां ब्रह्मतेज से उज्वल एक ब्राह्मण आये। उन्होंने पुरुषोत्तम माधव का दर्शन करके भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति किया। तत्पश्चात् वे शान्त, तथापि भयभीत भाव से विनय पूर्वक कहने लगे।।१-२।।

ब्राह्मण उवाच

श्रृगालो वासुदेवश्च राजेशो मण्डलेश्वरः। त्वामुवाच स यद्वाक्यं सावधानं निशामय।।३।।

ब्राह्मण कहते हैं—एक श्रृगाल नामक स्वयं को श्रीकृष्ण कहने वाला वासुदेव राजेश्वर तथा मण्डलेश्वर है। उसने जो कुछ आपके लिये कहा है, उसे सावधानी से श्रवण करिये।।३।।

श्रृगाल उवाच

वैकुण्ठे वासुदेवोऽहं देवेशश्च चतुर्भुजः। लक्ष्मीपतिश्च जगतां धाता धातुश्च पालकः।।४।।
ब्रह्मणा प्रार्थितोऽहं च भारावतरणाय च। भुवो भारतवर्षं च तदर्थं गमनं मम।।५।।
वसुदेवसुतो[1] वैश्यः क्षत्रियश्चाप्यहंकृतः। आत्मानं भक्तविष्णुश्च मायावी च प्रतारकः।।६।।
जनं[2] जनेन निर्जित्य दुर्बलं बलिना सह। योधयित्वा महाधूर्तो घातयामास भूपतीन्।।७।।

---

१. क. ०सुतः कृष्णः।
२. क. जल जलेन।

दुर्योधनं जरासंधं भूपमन्यं च दुर्बलम्। भीमेन घातयामास बलिनाऽल्पेन भूतले॥८॥
द्रोणं भीष्मं च कर्णं च यं यमन्यं च भूतले। बलीयसाऽर्जुनेनैव घातयामास मायया।[1]।९॥
यं यमन्यं दुर्बलं च प्रसिद्धमप्रसिद्धकम्। प्रसिद्धेन बलवता घातयामास मायया॥१०॥

श्रृगाल ने कहा है—मैं ही वैकुण्ठधाम में वासुदेव, देवेश्वर, चतुर्भुज, लक्ष्मीपति, जगत् विधाता, ब्रह्मा का भी पालनकर्त्ता प्रभु हूं। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने ही मुझसे पृथिवी का भार उतारने हेतु प्रार्थना किया था। तभी मैं भारतवर्ष आया हूं। वसुदेव का पुत्र कृष्ण तो वैश्य जाति है। वह अहंकारी क्षत्रिय भी है। वह तो विष्णु को भी अपना भक्त कहता है। अतः मायावी एवं ठग है। वह एक व्यक्ति से दूसरे को विजित कराता है। बलवान का युद्ध दुर्बल से कराता है। तब दुर्बल राजा को हराकर उसे नष्ट करता है। उस कृष्ण ने दुर्योधन, जरासंध तथा अन्य दुर्बलों का वध भीमसेन से कराया। द्रोण, भीष्म, कर्ण तथा पृथिवी के अन्य राजाओं को अर्जुन द्वारा माया से निहत करा दिया। उसने दुर्बलों, प्रसिद्ध लोगों तथा अप्रसिद्धों से कपटता किया तथा उनको प्रसिद्ध लोगों द्वारा निहत करा दिया!।।४-१०।।

शिशुपालं दन्तवक्त्रं कंसं च चिररोगिणम्। मत्पुत्रं नरकं चैव दुर्बलं केशिनं मुरम्॥११॥
स्वयं जघान सङ्केताच्छलेन सहसा वत।
न धर्मयुद्धे कपटी स च बालो[2] ह्यधार्मिकः॥१२॥
जघान पूतनां कुब्जां स्त्रीघाती वस्त्रहेतुना। जघान रजकं शिष्टमशिष्टश्च प्रतारकः॥१३॥
हिरण्यकशिपुं दैत्यं हिरण्याक्षं महाबलम्। मधुं च कैटभं चैव हत्वाऽहं सृष्टिरक्षकः॥१४॥
अहमेव स्वयं ब्रह्मा ह्यहमेव स्वयं शिवः। अहं विष्णुश्च जगतां पाता दुष्टापहारकः॥१५॥

उसने शिशुपाल, दन्तवक्त्र, चिररोगी कंस, मेरे पुत्र नरक, दुर्बल केशी तथा मुरदैत्य का छल पूर्वक हठात् वध कर दिया। उसने स्वयं छलपूर्ण संकेतों से उनका वध किया। धर्मयुद्ध में कपट पूर्णतः वर्जित है। वह बालक अधार्मिक है। उसने पूतना तथा कुब्जा जैसी स्त्रियों का वध किया है। उसने वस्त्र की लालसा में धोबी का मथुरा में वध किया। मैंने तो महाबली पराक्रमी हिरण्यकशिपु तथा मधु-कैटभ दैत्य का वध करके सृष्टि की रक्षा किया था। मैं स्वयं ब्रह्मा, मैं ही स्वयं शिव तथा मैं ही विष्णु हूं जो जगत् का पालन करते तथा दुष्टों का नाश करते हैं।।११-१५।।

अंशेन कलया सर्वे मनवो मुनयस्तथा।
स्वयं नारायणोऽहं च निर्गुणः प्रकृतेः परः॥१६॥
लज्जया कृपया चैव मित्रबुद्ध्या क्षमा कृता यद्गतं तद्गतं भद्र युद्धं कुरु मया सह॥१७॥
श्रृणोमि दूतद्वारेण ह्यतीवोच्चैरहंकृतम्। उचितं दमनं तस्याप्युन्नतानां निपातनम्॥१८॥

१. ख. लीलया।
२. क. बालादधा०।

राज्ञश्च परमो धर्मोऽप्यहं शास्ता भुवोऽधुना।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं गृहीत्वाऽहं चतुर्भुजः॥१९॥
द्वारकां तां गमिष्यामि युद्धाय सगणः स्वयं।
युद्धं कुरु यदीच्छाऽस्ति मा मां च शरणं व्रज॥२०॥

मेरी ही अंश तथा कला से सभी मनुगण तथा मुनिगण की उत्पत्ति होती है। मैं ही प्रकृति से परे निर्गुण नारायण हूं। हे भद्र! अभी तक तो मैं लज्जा के कारण तथा दया परवश होकर मित्रबुद्धि से तुमको क्षमा करता आया। जो हो गया, वह व्यतीत हो गया! अब मेरा कथन है कि मुझसे युद्ध करो। तुम्हारा अहंकार अत्यन्त वर्द्धित हो चुका है। यह मैंने दूतों से सुना। उस गर्व का दमन आवश्यक है। उद्धत हो गये का दमन उचित है। यह राजा का कर्त्तव्य जो है। अब मैं तुम पर शासन करूंगा। मैंने स्वयं चतुर्भुज रूप धारण करके अपना शंख-चक्र-गदा-पद्म लेकर ससैन्य युद्धार्थ द्वारका आगमन करूंगा। यदि चाहो तो युद्ध करो अथवा मेरी शरण ग्रहण करो।।१६-२०।।

यदि मा यास्यति मम शरणं शरणागतः भस्मीभूतां करिष्यामि द्वारकां च क्षणेन च॥२१॥

सबलं च सपुत्रं त्वां सगणं च सबान्धवम्।
क्षणेन दग्धुं [1]शक्तोऽहमसहायेन लीलया॥२२॥
तपस्विनं च वृद्धं च जित्वा युद्धे च शङ्करम्।
शक्रं भगाङ्गं जित्वा च रोगिणं ब्रह्मशापतः॥२३॥
मत्तोऽसि वीरमात्मानं मन्यमानस्त्वमेव च।
स्त्रीज़ितो हि वृथार्थं च पारिजातस्य हेतुना॥२४॥

यदि तुम शरणागत होकर शरण में नहीं आते, तब मैं तुम्हारी द्वारका क्षणमात्र में भस्म कर दूंगा। मैं एकाकी ही तुम्हारी सैन्य, पुत्रों, गणों तथा बन्धु-बान्धवों सहित अनायास क्षणमात्र में दग्ध कर सकता हूं। अभी तक तुम असहाय तपस्वी, वृद्ध शंकर पर विजय पाकर तथा ब्राह्मण के शाप से रोगी हो गये, भगचिह्न वाले इन्द्र पर विजय पाकर मत्त हो गये तथा स्वयं को वीर मानने लगे! पारिजात वृक्ष हेतु तुमने अपनी स्त्री से हार माना। (तथा स्त्री द्वारा जीते जाकर उसके हठ को रखने के लिये स्वर्ग से पारिजात लाये।)।।२१-२४।।

लम्पटो योनिलुब्धश्च राधाधीनश्च गोकुले।
अधुना किङ्करसमः सत्यादीनां च योषिताम्॥२५॥

तुम लम्पट, योनिलोलुप, गोकुल में राधा के अधीन रहने वाले हो अब तुम सत्यभामा आदि स्त्रियों के किंकर हो गये।।२५।।

---

१. क. शक्राय सह यानेन।

इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च तूष्णींभूय स्थितो मुने।
श्रीकृष्णः सगणः श्रुत्वा भृशमुच्चैर्जहास सः॥२६॥
भोजयित्वा च सम्पूज्य ब्राह्मणं च चतुर्विधम्।
निनाय रजनीं दुःखाद्वाक्शल्यमान ज्वरात्॥२७॥

हे मुनि! यह कहकर वे विप्र मौन हो गये। यह संवाद सुनकर श्रीकृष्ण अपने गणों के साथ उच्च स्वर में हंसने लगे। उन्होंने उन ब्राह्मण को भक्ष्य, भोज्य, लेह्य तथा चोष्य वस्तुओं का भोजन उनको पूजित करके कराया। वह रात्रि श्रीकृष्ण ने श्रृगाल के कांटे के समान चुभने वाले संदेश के ताप के कारण दुःख कष्ट से व्यतीत किया।।२६-२७।।

प्रभाते रथमारुह्य सगणः सत्वरं मुदा। लीलामात्रेण प्रययौ श्रृगालो नृपतिर्यतः॥२८॥
श्रुत्वा श्रृगालो वार्तां तां कृत्रिमश्च चतुर्भुजः।
आजगाम हरेः स्थानं युद्धाय सगणः स्वयम्॥२९॥
कृष्णश्चक्रे च संभाषां मित्रबुद्ध्या च लौकिकीम्।
आश्लेषं मधुरालापं स्निग्धनेत्रश्च सस्मितः॥३०॥
राजा निमन्त्रणं चक्रे कृष्णो न स्वीचकार तत्।
उवाच कृष्णभीतश्च [१]त्यक्त्वा दम्भं च दर्शनात्॥३१॥

प्रातः होते ही श्रीकृष्ण रथ पर मुदित मन से शीघ्र बैठे तथा अपने गणों के साथ वहां आये जहां नृपति श्रृगाल था। श्रीकृष्ण के आने का समाचार पाकर वह बनावटी चार भुजा लगाये श्रृगाल ने अपने गणों के साथ वहां युद्धार्थ आगमन किया। उस समय कृष्ण ने लोकाचार से अनुसार मित्रबुद्धि से तथा स्नेहपूर्ण दृष्टि से उसे देखते मन्द मुस्कान के साथ उस श्रृगाल का आलिंगन किया तथा उससे मधुर वाक्यों के साथ वार्त्ता भी किया। राजा ने कृष्ण को निमन्त्रित किया, तथापि कृष्ण ने स्वीकार नहीं किया। तब कृष्ण से भयभीत श्रृगाल ने दम्भ त्याग कर कृष्णदर्शन करके उनसे कहा-।।२८-३१।।

श्रृगाल उवाच

चक्रेण मच्छिरश्छित्त्वा सुशीघ्रं द्वारकां व्रज[२]।
पापः पततु [३]देहोऽयमनित्यो नश्वरस्तथा॥३२॥
अहं सुभद्रस्ते द्वारि जयश्च विजयो यथा।
सर्वं जानासि[४] सर्वज्ञ मा विलम्बं कुरु प्रभो॥३३॥

---

१. ल. त्यज।
२. ल. त्यज।
३. क. ०द्य मानिनो न०।
४. क. ०मि।

लक्ष्मीशापेन भ्रष्टोऽहं कालः पूर्णो बभूव मे।
शतवर्षेण शापान्ते यास्यामि भवनं तव॥३४॥

राजा शृगाल कहता है–हे अखिल ब्रह्माण्ड के ईश्वर! आप चक्र से मेरा शिर काटकर शीघ्र द्वारका चले जायें। जैसे जय-विजय आपके पार्षद हैं, उसी प्रकार मैं सुभद्र नामक आपका द्वारपाल था। आप मेरी इस पापदेह को नष्ट करिये। हे सर्वज्ञ प्रभो! आप सब जानते हैं। विलम्ब मत करिये। मेरी यह दशा लक्ष्मी के शाप के कारण है। मेरा कालपूर्ण हो गया। सौ वर्ष पूर्ण होने के कारण शापान्त हो गया। मैं अब आपके भवन गोलोक जाऊंगा।।३२-३४।।

श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वं मां मित्र प्रहर पश्चाद्युद्धं करोम्यहम्।
सर्वं जानामि वैकुण्ठं गच्छ वत्स यथासुखम्॥३५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे मित्र! पहले मुझ पर तुम प्रहार करो। तब मैं युद्ध करूंगा। हे वत्स! मुझे सब विदित है। तुम यथासुख वैकुण्ठ जाना।।३५।।

शृगालो दशबाणांश्च चिक्षेप माधवं प्रति।
ते प्रणम्य ययुः शीघ्रमाकाशं कालरूपिणः॥३६॥
गदां चिक्षेप राजा स प्रलयाग्निशिखोपमाम्।
कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण बभञ्ज च क्षणेन च॥३७॥
शूलं चिक्षेप मुसलं शक्तिं च परशुं तथा। कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण बभञ्ज च क्षणेन च॥३८॥
धनुश्चिक्षेप खड्गं च कालरूपं सुदारुणम्। कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण बभञ्ज च क्षणेन च॥३९॥
दृष्ट्वा निरस्त्रं राजानमित्युवाच कृपानिधिः। गृहं गत्वा सुतीक्ष्णं च मित्रास्त्रमानयेति च॥४०॥

तब शृगाल ने १० बाणों को कृष्ण की ओर छोड़ा। वे सभी कालरूपी बाण श्रीकृष्ण के चरणों में प्रणाम करके शीघ्र आकाश में चले गये। तदनन्तर राजा ने प्रलयाग्नि ज्वाला के समान गदा का प्रहार श्रीकृष्ण पर किया, परन्तु वह कृष्ण का स्पर्श होते ही छिन्न-भिन्न हो गई। तदनन्तर शृगाल ने कृष्ण पर शूल, मुसल, शक्ति तथा परशु छोड़ा। परन्तु वे सभी आयुध कृष्ण का अंग स्पर्श करते ही क्षण में चूर्ण हो गये। धनुष-खंग तक सभी कालरूप दारुण आयुध श्रीकृष्ण का अंग स्पर्श होते ही क्षण में भग्न हो गये। यह देखकर कृपालु श्रीकृष्ण ने कहा–"हे मित्र! गृह जाओं तथा अतीव तीक्ष्ण अस्त्रों को लेकर आओ!"।।३६-४०।।

शृगाल उवाच

नाऽऽत्माऽऽकाशोऽस्त्रविद्धश्च किं युद्धमात्मना सह।
मामुद्धर भवाब्धेश्च धरोद्धारणकारण॥४१॥

भवाब्धिं विषमं नाथ विषयं च विषाधिकम्।
छिन्धि मे निगडं मायां मोहजालं स्वकर्मणः॥४२॥

राजा शृगाल कहता है–आत्मा तथा आकाश क्या शस्त्र से विद्ध हो सकते हैं? अतः आत्मा (स्वयं) से कैसे युद्ध होगा? हे प्रभो! आप पृथिवी का उद्धार करने वाले, मेरा इस संसार-सागर से उद्धार करिये। हे नाथ! यह भवसागर अत्यन्त विषम है। यहां के विषय तो विष से भी बढ़कर हैं। यह जो स्वकर्म जनित बेड़ी में मैं बंधा हूं इस माया मोहजाल को छिन्न-भिन्न कर दीजिये।।४१-४२।।

कर्मणामीश्वरस्त्वं च विधाता धातुरेव च।
दाता शुभफलानां च प्रदाता सर्वसम्पदाम्॥४३॥
कारणं प्राक्तनानां च तेषां च खण्डने क्षमः।
यामि गेहं च वैकुण्ठं तवैव द्वारसप्तमम्॥४४॥
त्यक्त्वा च नश्वरं देहं प्राकृतं पाञ्चभौतिकम्।
मित्रस्य स्तवनं श्रुत्वा वचनं च सुधोपमम्॥४५॥
रुरोद समरे तत्र कृपया च कृपानिधिः। बभूव तत्र सहसा कृष्णनेत्राश्रुबिन्दुना॥४६॥
दिव्यं बिन्दुसरो नाम तीर्थानां प्रवरं परम्। तत्तोयस्पर्शमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
सप्तजन्मार्जितत्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥४७॥

"आप ही समस्त कर्मों के ईश्वर, विधाता ब्रह्मा के भी विधाता, शुभफलों तथा समस्त सम्पदा के प्रदाता, पूर्वकृत कर्मों के कारण तथा उसका खण्डन करने में भी सक्षम हैं। आपकी कृपा से मैं यह प्राकृत पांच भौतिक नश्वर देह को त्याग कर आपके गृह वैकुण्ठ के सप्तम द्वार पर जाऊंगा (जहां का मैं द्वारपाल था)।" मित्र का यह सुधा के समान वचन सुनकर कृपासागर भगवान् श्रीकृष्ण उस युद्धभूमि में रुदन करने लगे। सहसा उनके नेत्रों से अश्रुविन्दु की धारा बहने लगी, जिससे परमश्रेष्ठ विन्दु सरोवर नामक दिव्य तीर्थ प्रकट हो गया। उसके स्पर्शमात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। वह निश्चित रूप से सात जन्मों के संचित पातकों से छुटकारा पा लेता है।।४३-४७।।

श्रीभगवानुवाच

कथमेतादृशी बुद्धिर्मित्र ते निर्मलं मनः। दूतद्वारा कथं चोक्तं निष्ठुरं दारुणं वचः॥४८॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे मित्र! तुम तो निर्मल मन हो, तथापि तुम्हारी बुद्धि कैसे ऐसी हो गई जो तुमने दूत से कठोर दारुण वचन कहलाया?।।४८।।

शृगाल उवाच

एवमुक्तो मया त्वं च तेन क्रोधादिहाऽऽगतः अन्यथा दुर्लभं नाथ स्वप्नेऽपि तव दर्शनम्॥४९॥

शृगाल कहता है–हे प्रभो! मैंने आपसे इसलिये ऐसा संदेश कहलाया था कि आप सुनते ही

क्रोध के साथ यहां आ जायेंगे। ऐसा न होने पर स्वप्न में भी लोगों के लिये आपका दर्शन दुर्लभ रहता है।।४९।।

एतस्मिन्नन्तरे योगाद्देहं त्यक्त्वा च प्राकृतम्।
दृष्ट्वा कृष्णं च यानेन वैकुण्ठं प्रययौ मुदा।।५०।।
सप्ततालप्रमाणं च ज्योतिस्तत्र महोल्बणम्।
पद्मैः पद्मार्चितं पादपद्मं नत्वा जगाम ह।।५१।।

यह कहकर शृगाल ने योगावलम्बन द्वारा इस पांच भौतिक प्राकृत देह का त्याग किया तथा कृष्ण को देखकर यान द्वारा प्रसन्नमुद्रा में वैकुण्ठधाम चला गया। उस समय शृगाल के देह से ७ ताल इतनी उच्च एक महाज्योति निकली। उसने कमला द्वारा अर्चित प्रभु के चरणकमलों पर प्रणाम किया तथा वहां से चली गईं।।५०-५१।।

गत्वा च द्वारकां कृष्णो नत्वा च पितरं प्रसूम्।
श्रीकृष्णः सगणः शीघ्रं दृष्ट्वा च परमाद्भुतम्।।५२।।
प्रफुल्लवदनः श्रीमान्द्वारकाभिमुखं ययौ।
जगाम रुक्मिणीगेहं पुष्पचन्दनवासितम्।।५३।।
पुष्पचन्दनतल्पे च नक्तं रेमे तया सह।
मूर्च्छां सम्प्राप स भैष्मी कृष्णं कृत्वा स्ववक्षसि।।५४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० शृगालवासुदेवमोक्षणं नौमकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२१।।

—※※※—

श्रीकृष्ण ने अपने गणों के साथ इस अद्भुत व्यापार को देखा तथा प्रफुल्लित होकर द्वारका चले गये। श्रीकृष्ण ने द्वारका आकार माता-पिता को प्रणाम किया। तदनन्तर वे रुक्मिणी के पुष्प-चन्दन चर्चित गृह में जाकर उनके साथ पुष्प शय्या पर शयन करके रात्रि व्यतीत किया। भीष्मककन्या रुक्मिणी भी कृष्ण को वक्षस्थल पर स्थापित करके अपनी सुध खो बैठीं।।५२-५४।।

।।१२१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

स्यमन्तक मणि का प्रसंग वर्णन

नारद उवाच

सर्वासां रमणीनां च कृष्णेन परमात्मना। समुद्वाहश्च कथितस्त्वया भगवता मुदा॥१॥
स्यमन्तकस्य च मणेरुपाख्यानमभीप्सितम्। तन्न श्रुतं महाभाग तन्मां व्याख्यातुमर्हसि॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे महाभाग! परमात्मा कृष्ण के साथ सभी रमणीगण का विवाह प्रसंग आपने सहर्ष वर्णन किया, परन्तु स्यमन्तक मणि के उपाख्यान को सुनने की मेरी अभिलाषा रहने पर भी अब तक उसे श्रवण नहीं कर सका। अतः यह उपाख्यान मुझसे कहिये।।१–२।।

नारायण उवाच

भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां च तारकां हृतवाञ्छशी। तां तत्याज स कृष्णायां गुरुस्तां च गृहीतवान्॥३॥
गुरुणा भर्त्सिता तारा सगर्भा लज्जिता सती। शशाप लज्जया कोपाच्चन्द्रं कामातुरं पुरा॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं– पूर्वकाल में चन्द्रमा ने भाद्रमासीय शुक्ला चतुर्थी को गुरु पत्नी तारा का हरण किया था। तदनन्तर कृष्ण पक्षीय चतुर्थी को उनको छोड़ा। तदनन्तर गर्भवती तारा की गुरु ने भर्त्सना किया। इससे लज्जित देवी तारा ने क्रोध पूर्वक चन्द्रमा को शाप दिया।।३–४।।

तारोवाच

भव शापकलङ्की त्वं यस्त्वां पश्यति देहभृत्।
पापं दृष्ट्वा स पापी च कलङ्की च भविष्यति॥५॥

इति श्रुत्वा च चन्द्रश्च नारायणसरोवरे। नारायणतपस्तप्त्वा मुमोच कृतपातकात्॥६॥

तारा ने कहा–मेरे शाप से कलंकी हो जाओगे। जो भी देहधारी तुमको देखेगा, उसे कलंक लगेगा। यह शाप सुनकर चन्द्रमा ने नारायण सरोवर जाकर भगवान् नारायण की आराधना किया तथा वे अपने कृत पातक से मुक्त हो गये।।५–६।।

तपःक्लिष्टं च तं दृष्ट्वा भगवान्पुरुषोत्तमः। तमुवाच महाभीतं कृपया च कृपानिधिः॥७॥

जब भगवान् नारायण ने चन्द्रमा को अत्यन्त तपःक्लिष्ट तथा दुर्बल देखा, तब कृपानिधि भगवान् पुरुषोत्तम ने महाभयभीत चन्द्रमा से कृपा करके कहा–।।७।।

श्रीभगवानुवाच

मुक्तो भव कलङ्की त्वं सर्वकालं कलानिधे।
शापस्थानं तारकाया भाद्रे मासि सितासिते॥८॥

चतुर्थ्यामुदितं चन्द्रं यस्तु पश्यति कामतः।
तं याति तत्कलङ्कश्च स कलङ्की भविष्यति॥९॥

हरिणा दीयते ताले भाद्रे मासि सितासिते। चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो नेक्षितव्यः कदाचन॥१०॥

स्वयं दृष्ट्वा स्ववाक्यं च पालनं कर्तुमर्हति।
भाद्रे चन्द्रं चतुर्थ्यां तु स कलङ्की बभूव ह॥११॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे कलानिधि! तुम सर्वकाल कलंकी रहने से मुक्त हो जाओ। तारा का शाप वहीं प्रभावी होगा जो भाद्रपद शुक्लाचतुर्थी को तथा उस माह की कृष्णाचतुर्थी को उदित चन्द्रमा को देखेगा। उसे ही कलंक प्राप्त होगा। भाद्रपद मास के दोनों पक्षों हेतु श्रीहरि कहते हैं कि चन्द्रदर्शन कोई न करें। यह बात वे ताली बजाकर (सबको सुनाकर) कह गये हैं। अतः उन्होंने स्वयं ऐसे वर्जित काल में चन्द्रदर्शन करके अपने वाक्य का पालन किया था। वे भाद्र मासीय चतुर्थी को चन्द्रदर्शन द्वारा कलंकी हो गये थे।।८-११।।

कलङ्की येन रूपेण तद्वक्ष्यामि निशामय। स मुमोच कलङ्काच्च लोकशिक्षार्थमीश्वरः॥१२॥

सत्राजितः सूर्यभक्तस्तपस्तप्त्वा च पुष्करे। स्यमन्तकं मणिश्रेष्ठं सम्प्राप भास्करादपि॥१३॥

अष्टौ भारान्सुवर्णानां प्रसूते नित्यमेव च। विष्णोर्मणावधिष्ठानं महापूते च पुण्यदे॥१४॥

सत्राजितःसत्यभामां दत्त्वा कृष्णाय भक्तितः।
यौतुकार्थे मणिं दातुमुद्यतो महते महान्॥१५॥

तं निषिध्य प्रसेनश्च दुर्मतिः कालपीडितः।
मणिं गृहीत्वा प्रययौ पुण्यां वाराणसीं पुरीम्॥१६॥

निहत्य तं पथि बलात्सिंहः सबल एव च। मणिं जग्राह रुचिरं सूत्रबद्धं गले दधौ॥१७॥

श्रीकृष्ण को जिस प्रकार कलंक लगा था तथा कैसे कलंक मुक्त हो सके, वह सब लोकशिक्षार्थ श्रवण करिये। सत्राजित नामक सूर्यभक्त ने पुष्करतीर्थ में तप करके भास्कर देव से स्यमन्तक नामक उत्तम मणि प्राप्त किया। वह मणि नित्य आठ भार स्वर्ण प्रदान करती थी। उस अत्यन्त पवित्र पुण्यप्रद मणि में विष्णु अधिष्ठित रहते हैं। धार्मिक प्रवर सत्राजित अपनी कन्या सत्यभामा कृष्ण को प्रदान करके उनको उपहार स्वरूप यह मणि देना चाहते थे इसी बीच कालग्रस्त दुष्टबुद्धि प्रसेन ने सत्राजित को मणि देने से रोक दिया तथा वह मणि लेकर वाराणसी पुरी जाने लगा। वन के मार्ग में सिंह ने बल पूर्वक प्रसेन का वध कर दिया। उस सिंह ने सूत्र में बांधकर यह मणि गले में पहन लिया।।१२-१७।।

कलिङ्गराजपुत्रश्च ब्रह्मशापात्सुदारुणात्। विप्रेणाभ्युदितस्तेन पशुयोनिं जगाम सः॥१८॥

निहत्य सिंहं गहने भल्लूको जाम्बवान्बली।
मणिं गृहीत्वा प्रययौ स्वपुरं रत्ननिर्मितम्॥१९॥

वह सिंह कलिंग के राजा की सन्तान था। दारुण ब्रह्मशाप से वह ग्रस्त था, परन्तु ब्राह्मण की कृपा से उसे पशुयोनि मिली। वह सिंह वन में महाबली भालू जाम्बवान् द्वारा रत्ननिर्मित पुरी में आ गया।।१८-१९।।

ऊचुः सर्वे द्वारकायां मणिं जग्राह माधवः।
तस्य बुद्धिं न जानीमः केनोपायेन वेति च॥२०॥

इति श्रुत्वा तु भगवात्कलङ्ककृन्तनाय च। प्रययौ काननं घोरं चौरचिह्नेन वर्त्मना॥२१॥

मृतं प्रसेनं दृष्ट्वा च दुःखी सिंहं ददर्श सः।
मणिशून्यं च तं दृष्ट्वा विषसाद च माधवः॥२२॥

द्वारका में सब कृष्ण पर आरोप लगाने लगे कि "उनके द्वारा मणि ग्रहण कर ली गई। उनकी बुद्धि की कोई थाह नहीं है। अतः किस उपाय से उन्होंने मणि लिया, कोई नहीं कह सका।" श्रीभगवान् यह सुनकर स्वयं कलंक रहित होने के लिये उन्होंने जिस मार्ग से मणिचोर प्रसेन ने वन से गमन किया था, उसी चोर के पदचिह्नों का अनुसरण करते वे आगे बढ़े। दुःखी माधव ने देखा कि वन में प्रसेन तथा सिंह मृत पड़े हैं, तथापि दोनों के पास में मणि नहीं थीं। वे अत्यन्त विषण्ण हो गये।।२०-२२।।

सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो भल्लूकभवनं ययौ। रुदन्तं बालकं तत्र धात्रीक्रोडे ददर्श सः॥२३॥

बालकं बोधयामास सा धात्री करुणान्विता।
मणिं गृहाण बालेति तव ह्येष स्यमन्तकः॥२४॥

सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥२५॥

तब सर्वज्ञ कृष्ण सब रहस्य जानकर भालू जाम्बवान् के भवन में गये। वहां एक रोते बालक को उन्होंने धाय की गोद में देखा। वह करुणामयी धाय रुदनरत बालक को बहलाती कह रही थी-"हे बालक! यह मणि रखो। यह तुम्हारी ही है। सिंह ने प्रसेन का वध किया तथा मणि ले लिया। उस सिंह का वध जाम्बवान् ने करके मणि लिया है। अब यह स्यमतंक मणि तुम्हारी है।"।।२३-२५।।

इति धात्र्युक्तसुश्लोकं यश्च स्मृत्वा जलं पिबेत्। दैवदृष्टनष्टचन्द्रदोषादेव प्रमुच्यते॥२६॥

यह धातृ द्वारा कहा श्लोक पढ़कर जो कोई जल पी लेगा, वह दैवात् भाद्रपक्षीय चतुर्थी को दृष्ट चन्द्रदर्शन दोष से मुक्त हो जायेगा।।२६।।

कामतो यदि पश्यन्ति दाम्भिका वेदनिन्दकाः। कलङ्किनो भवन्त्येवमित्याह कमलोद्भवः॥२७॥

कृष्णो धात्रीवचः श्रुत्वा मणिं जग्राह बालकात्।
धात्री गत्वा भल्लूकं कथयामास कोपतः॥२८॥
जाम्बवांश्च समागत्य तुष्टाव प्रणिपत्य सः।
कन्यां जाम्बवतीं तस्मै यौतुकार्थं मणिं ददौ॥२९॥

जो दंभी वेदनिन्दक जान-बूझकर उस तिथि पर चन्द्रमा का दर्शन करेगा, वह निश्चित कलंकग्रस्त होगा, यह ब्रह्मा का वचन है। जब कृष्ण ने धाय का श्लोक सुना तब उन्होंने बालक से मणि ले लिया। धाय ने यह संवाद क्रोधित होकर जाम्बवान् भालू से कह दिया। जाम्बवान् ने वहां आकर कृष्ण को प्रणाम करके उनकी स्तुति किया। उसने अपनी कन्या जाम्बवती कृष्ण को देकर उपहार में स्यमन्तक मणि उनको दे दिया।।२७-२९।।

द्वारकां मणिमानीय दर्शयामास यादवान्।
प्रभुश्च सर्वतः शुद्धो निष्कलङ्को बभूव सः।।३०।।

एतत्ते कथितं वत्स मणेराख्यानमुत्तमम्। अध्यायश्रवणादेव निष्कलङ्को भवेन्नरः।।३१।।

यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेणः तदुक्तं च यथागमम्।
सुदुर्लभमुपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।३२।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० स्यमन्तकमणिहरणं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२२।।

कृष्ण ने द्वारका आकर यादवों को वह मणि दिखलाया। इस प्रकार प्रभु सभी प्रकार से शुद्ध एवं निष्कलंक हो गये। हे वत्स! मैंने यह उत्तम आख्यान जो उस मणि से सम्बन्धित है तुमसे कहा। इस अध्याय का श्रवण करने वाला मनुष्य कलंक रहित हो जाता है। मैंने इसे पिता धर्मदेव से जैसे सुना था, तदनुरूप तुमसे कहा। यह दुर्लभ उपाख्यान है। अब और क्या सुनने की इच्छा है?।।३०-३२।।

।।१२२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धाश्रम में राधा द्वारा गणेश पूजा वर्णन

नारद उवाच

गणेशपूजनाख्यानं पुराणेषु च दुर्लभम्। श्रुतं तद्ब्रह्मणो वक्त्रात्सामान्यं च समासतः।।१।।
महिमानं गणपतेः सर्वपूज्येश्वरस्य च। व्यासेन श्रोतुमिच्छामि योगीन्द्राणां गुरोर्गुरोः।।२।।
सिद्धाश्रमे महापूजा [1]त्रैलोक्यस्थैः कृता पुरा। राधामाधवयोस्तत्र पुनः सम्मीलनं पुरा।।३।।

१. ख. दिवौकोभिः।

देवर्षि नारद कहते हैं–पुराणशास्त्र में गणेश पूजा का उपाख्यान अतीव दुर्लभ है। वह उपाख्यान ब्रह्मा से संक्षेप में सामान्यरूप से सुना था। इस समय सबके पूज्य, सबके ईश्वर, योगीन्द्रों के गुरु के गुरु गणपति की महिमा विस्तार से सुनने की इच्छा करता हूं। पूर्वकाल में जब सिद्धाश्रम में राधा-कृष्ण का पुनः मिलन हुआ था, त्रैलोक्यवासी लोगों ने वहां पर गणपति की महापूजा किया था।।१-३।।

अतीते वर्षशतके श्रीदाम्नः शापमोक्षणे। आदौ चकार पूजां च सा च राधा कथं मुने।।४।।
स्थितेषु च सुरेन्द्रेषु ब्रह्मविष्णुशिवादिषु। नागेन्द्रे च स्थिते शेषे नागेषु च महत्सु च।।५।।
राजेन्द्रेषु च भूमौ च बलिष्ठेष्वसुरेषु च। गन्धर्वेषु च रक्षःसु चान्येषु बलवत्सु च।।६।।
विस्तरेण महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।।७।।

हे मुनिवर! जब १०० वर्ष व्यतीत होने पर राधा श्रीदाम के शाप से मुक्त हो गईं, तब देवगण प्रधान ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नागेन्द्र, शेषनाग, अन्य महान् नागगण, राजागण, बली असुरगण गन्धर्वगण तथा अन्य बली राजागण के समक्ष गणेश पूजन कैसे सम्पन्न हो सका? यह विस्तृत रूप से बतायें।।४-७।।

नारायण उवाच

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या मान्या पुण्यवती सती। तत्र भारतवर्षं च कर्मणां फलदं शुभम्।।८।।
धन्यं यशस्यं पूज्यं च पुण्यक्षेत्रे च भारते। सिद्धाश्रमं महापुण्यक्षेत्रं मोक्षप्रदं शुभम्।।९।।
सनत्कुमारो भगवांस्तत्र सिद्धो बभूव ह।
स्वयं विधाता तत्रैव तप्त्वा सिद्धो बभूव ह।।१०।।
योगीन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः।
शतक्रन्तून्महेन्द्रश्च तत्र कृत्वा बभूव ह।।११।।
तेन सिद्धाश्रमं नाम सर्वेषामपि दुर्लभम्। अधिष्ठानं गणेशस्य तत्रैव सततं मुने।।१२।।
अमूल्यरत्ननिर्माणगणेशप्रतिमां शुभाम्।
वैशाख्यां पूर्णिमायां च पूजां कुर्वन्ति देवताः।।१३।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–त्रैलोक्य में यह पृथिवी धन्या है। यह सर्वमान्या तथा अत्यन्त पावन हैं। इस पृथिवी में भारतवर्ष कर्मफल प्रदान करता है। अतः यह धन्य, यशवर्द्धक, मंगलप्रद तथा सर्वपूज्य है। इस पुण्यभूमि भारत में सिद्धाश्रम महापावन स्थल है। यह मोक्ष तक प्रदान कर देता है। इसी सिद्धाश्रम में भगवान् सनत्कुमार, योगीन्द्र वृन्द्र, मुनीन्द्रगण कपिल आदि सिद्ध लोगों ने ही नहीं स्वयं विधाता ब्रह्मा ने भी यहां तपःश्चरण द्वारा सिद्धिलाभ किया था। यहीं महेन्द्र ने भी १०० यज्ञ करके इन्द्रत्व लाभ किया। यह तभी से सिद्धाश्रम कहलाया, जो सभी के लिये दुर्लभ है। हे मुनि! यहां पर गणेश सदा अधिष्ठित रहते हैं। यहां अमूल्य रत्न से निर्मित एक मनोहर गणपति प्रतिमा भी है। उसकी पूजा वैशाखी पूर्णिमा को देवता करते हैं।।८-१३।।

नागाश्च मानवाश्चैव दैत्या गन्धर्वराक्षसाः।
सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च योगीन्द्राः सनकादयाः॥१४॥
तत्राऽऽजगाम शंभुश्च पार्वत्या सह शङ्करः।
सगणः कार्तिकेयश्च स्वयं ब्रह्मा प्रजापतिः॥१५॥

उनकी पूजा नागगण, मानव, दैत्य, गन्धर्वगण, राक्षसगण, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र तथा सनकादि करते हैं। उस समय वहां पार्वती, शंकर, गणों सहित कार्त्तिकेय तथा ब्रह्मा प्रजापति वहां स्वयं आये।।१४-१५।।

तत्राऽऽजगाम शेषश्च नागेन्द्रैः सह सत्वरम्।
तत्राऽऽजग्मुः सुराः सर्वे मनवो मुनयस्तथा॥१६॥
आजग्मुस्ते नृपाः सर्वे पूजार्थं हृष्टमानसाः।
आययौ भगवान्कृष्णो द्वारकावासिभिः सह॥१७॥
आजगाम तथा नन्दः सार्धं गोकुलवासिभिः।
गोपीत्रिशतकोटीभिर्गोलोकवासिभिः सह॥१८॥

अनन्त देव भी अन्य नागेन्द्रों के साथ वहां शीघ्र आये। तदनन्तर वहां सभी देवता, मनुगण तथा मुनिगण भी आये। वहां पूजार्थ सभी राजा प्रसन्नचित्त होकर आये। तदनन्तर वहां भगवान् कृष्ण द्वारकावासी लोगों के साथ आ गये। वहां गोकुलवासीगण के साथ नन्दराज भी आये। वहां गोलोकवासिनी करोड़ों गोपियां भी आ गईं।।१६-१८।।

गजेन्द्रकोटितुल्याभिर्बलिष्ठाभिः सहाऽऽलिभिः।
आययौ सुन्दरी राधा कृष्णप्राणाधिदेवता॥१९॥
रासेश्वरी सुरसिका शतवर्षे गते सति। सुस्नाता [1]मुदती शुद्धा धृत्वा धौते च वाससी॥२०॥
संयता सा निराहारा गत्वा च मणिमण्डपम्।
सुप्रक्षालितपादाब्जा कान्ता भुवनपावनी॥२१॥

जब राधा का श्रीदाम द्वारा प्रदत्त १०० वर्ष विछोह जनित शापकाल समाप्त हो गया, तब अपनी गजराज के समान बलिष्ठ इन करोड़ों गोपियों के साथ आईं, जो सैकड़ों-करोड़ थीं। वे सुदन्ती रासेश्वरी राधा ने सम्यक् स्नान के उपरान्त शुद्ध घुले २ वस्त्र धारण करके संयत भाव से अपने चरणकमलों का प्रक्षालन किया। तदनन्तर वे निराहार स्थिति में इन्द्रिय निग्रह करके मणिमण्डप में पहुंच गयीं।।१९-२१।।

श्रीकृष्णप्रीतिकामाऽथ सुसङ्कल्पं विधाय च।
गङ्गोदकेन हेरम्बं स्नापयामास भक्तितः॥२२॥

---
१. क. सुन्दरी।

ध्यानं च सामवेदोक्तं चकार शुक्लपुष्पतः।
माता चतुर्णां वेदानां वसोश्च जगतामपि॥२३॥
बुद्धिरूपा भगवती ज्ञानिनां जननी परा। ध्यानात्मकं स्वपुत्रं तं परं ध्यानं चकार सा॥२४॥

उस मणिमण्डप में आकर राधा ने श्रीकृष्ण को पाने का उत्तम संकल्प किया तथा गंगाजल से भक्तिभाव सहित सविधि गणपति को स्नान कराया। इसके पश्चात् चारों वेदों की माता, विश्व जगत् की माता, बुद्धिरूपा ज्ञानीगण की जननी परा, भगवती ने अपने ध्यानात्मक स्वपुत्र का परम ध्यान किया। उन भगवती ने अंजलि में श्वेत पुष्प लिया तथा सामवेदोक्त गणेश ध्यानरत हो गयीं।।२२-२४।।

खर्वं लम्बोदरं स्थूलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। गजवक्त्रं वह्निवर्णमेकदन्तमनन्तकम्॥२५॥
सिद्धानां योगिनामेव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम्। ध्यानं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैर्ब्रह्मेशशेषसंज्ञकैः॥२६॥
सिद्धेन्द्रैर्मुनिभिः सद्भिर्भगवन्तं सनातनम्। ब्रह्मस्वरूपं परमं मङ्गलं मङ्गलालयम्॥२७॥
सर्वविघ्नहरं शान्तं दातारं सर्वसम्पदाम्। भवाब्धिमायापोतेन कर्णधारं च कर्मिणाम्॥२८॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणम्। ध्यायेद्ध्यानात्मकं साध्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम्॥२९॥

ध्यान–वे खर्व (कम ऊंचाई वाले शरीर युक्त), लम्बोदर, स्थूल, ब्रह्मतेज से प्रदीप्त, गजमुख, अग्निवर्ण एकदन्त तथा अनन्त असीम हैं। वे सिद्धों, योगियों तथा ज्ञानियों के गुरु के भी गुरु हैं। जिनका ध्यान मुनीन्द्र, देवेन्द्र, ब्रह्मा, शिव, शेष आदि प्रधान देवता तक करते हैं, सिद्धेन्द्र, मुनिवृन्द तथा सन्तजन भी जिनका ध्यान करते हैं, वे भगवान् सनातन, ब्रह्मस्वरूप, परममंगल, मंगलधाम, सभी विघ्नों का हरण करने वाले, शान्त, सर्वसम्पदाप्रदाता, इस भवसागर को पार कराने के लिये कर्मीजन के लिये मायापोत (जहाज) कर्णधार स्वरूप हैं। वे शरणागत दीन तथा आर्त्तजन के परित्राणार्थ सदा सन्नद्ध रहते हैं। उन ध्यानात्मक, ध्यानसाध्य, भक्तों के ईश्वर तथा भक्तवत्सल गणेश का ध्यान करें।।२५-२९।।

इति ध्यात्वा स्वशिरसि दत्त्वा पुष्पं पुनः सती।
सर्वाङ्गशोधनं न्यासं वेदोक्तं च चकार सा॥३०॥
पुनश्च ध्यात्वा ध्यानेन तेनैव शुभदायिना। ददौ पुष्पं पादपद्मे राधा लम्बोदरस्य च॥३१॥
सप्ततीर्थोदकेनैव शीतेन वासितेन च। ददौ पाद्यं पादपद्मे तैः पद्मादिभिरर्चिते॥३२॥
दूर्वाक्षतैः शुक्लपुष्पैः सुगन्धिचन्दनोदकैः।
अर्घ्यं ददौ तच्छिरसि स्वयं गोलोकवासिनी॥३३॥
सचन्दनं स्निग्धमाल्यं पारिजातस्य सुन्दरम्। ददौ गले गणेशस्य स्वयं रासेश्वरी मुदा॥३४॥

यह ध्यान करने के उपरान्त साध्वी राधा ने वह अंजलि में रखा पुष्प अपने शिर पर रखा तथा वेदोक्त सर्वांग शोधन न्यास सम्पन्न किया। तदनन्तर उन्होंने पूर्वोक्त इस मंगलप्रद ध्यान से पुनः गणपति का ध्यान किया तथा लम्बोदर गजानन के चरण-कमल पर पुष्प चढ़ाया। तदनन्तर गोलोकवासिनी

राधा ने सुगन्धित शीतल सर्वतीर्थोदक में दूर्वा, अक्षत, श्वेत पुष्प, सुगन्धचन्दन रखकर तथा यह अर्घ्य बनाकर गजानन के मस्तक पर अर्पित किया। तदनन्तर रासेश्वरी राधा ने गणेश के गले में स्निग्ध सुन्दर पारिजात पुष्पों की चन्दनयुक्त माला अर्पित किया।।३०-३४।।

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धि स्निग्धचन्दनम्।
सर्वाङ्गे प्रददौ तस्य वृन्दावनविनोदिनी।।३५।।
सुगन्धि शुक्लं पुष्पं च सुगन्धि चन्दनार्चितम्।
ददौ तस्य पदाम्भोजे महापद्मलया सती।।३६।।

तदनन्तर वृन्दावन विनोदिनी राधा ने गणपति के सर्वांग पर कस्तूरी-कुंकुमयुक्त शीतल चन्दन भी अर्पित किया। महापद्मालया सती राधा ने गणपति के चरणकमल पर सुगन्धित चन्दनयुक्त श्वेतपुष्प भी प्रदान किया।।३५-३६।।

सुगन्धियुक्तं धूपं च पूतैर्वस्तुभिरन्वितम्। ददौ कृष्णप्रिया तस्मै जगतामीश्वराय च।।३७।।
दीपं घृतप्रदीप्तं च ध्वान्तविध्वंसकारणम्। ददौ तस्मै सुरेशाय परमाद्या सनातनी।।३८।।
नैवेद्य विविधं रम्यं सुस्वादु सुमनोहरम्। चोष्यं चर्व्यं लेह्यपेये सुधातुल्यं चतुर्विधम्।।३९।।

फलानि च सुपक्वानि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च।
मधुराणि च मूलानि ग्राम्यारण्यानि नारद।।४०।।
तानि त्वन्यान्यसंख्यानि तिलानां लड्डुकानि च।
लड्डुकानि सुपक्वानि स्वादूनि सुरसानि च।।४१।।
यवगोधूमचूर्णानां पक्वानि पिष्टकानि च।
घृताक्तानि च रम्याणि शर्करासहितानि च।।४२।।
स्वस्तिकानां लड्डुकानि स्थूलानि सुन्दराणि च।
भृष्टद्रव्यं च विविधमक्षतं शर्करान्वितम्।।४३।।
घृतकुल्यां दुग्धकुल्यां मधुकुल्यां मनोहराम्।
गुडस्य दघ्नः कुल्यां च पायसानां तथैव च।।४४।।
पिष्टकानां स्वस्तिकानां रम्भाणां राशिरेव च।
मिष्टव्यञ्जनयुक्तानि शाल्यन्नानि शुभानि च।।४५।।

ददौ तस्मै सुरेशाय कृष्णप्राणाधिदेवता। अमूल्यरत्ननिर्माणं रम्यं सिंहासनं वरम्।।४६।।
ददौ विघ्नविनाशाय विरजातटवासिनी। सूक्ष्मवस्त्रयुगं रम्यममूल्यं वह्निशुद्धकम्।।४७।।
ददौ शैलात्मजायैव[1] शतशृङ्गनिवासिनी। विशुद्धसर्पिषा युक्तं निर्मलं मधुरं. मधु।।४८।।

१. क. ०त्मका०।

मधुपर्कं ददौ तस्मै वृन्दावननिवासिनी। ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥४९॥

कृष्णप्रिया राधा ने इसके पश्चात् त्रैलोकेश्वर गणपति के निमित्त समस्त पवित्र वस्तुओं से निर्मित उत्तम गन्धमय धूप प्रदान किया। आद्या प्रकृति सनातनी राधा ने इन सुरेश्वर गजानन के निमित्त वहां गाढ़ अन्धकार नाशक प्रदीप्त घृतप्रदीप प्रदान किया। हे नारद! तदनन्तर कृष्ण के प्राणों की अधिदेवता राधा ने गणपति को मनोहर स्वादिष्ट रम्य नाना प्रकार के नैवेद्य, चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, अमृत तुल्य चार प्रकार के अन्न, त्रैलोक्य दुर्लभ ग्राम में तथा वन में उत्पन्न बृहदाकृति फल जो पक्व थे, असंख्य तिल के लड्डू, स्वादिष्ट अच्छी तरह पकाये गये अन्य प्रकार के लड्डू, घृत-शर्करा मिश्रित रम्य गेहूं के चूर्ण का पिष्टक, सुन्दर बृहदाकृति स्वस्तिक, शर्करायुक्त नाना प्रकार के भूंजे गये द्रव्य, शर्करा, उत्तमघृत धारा, दुग्ध धारा, मधु धारा, गुड़-दधि धारा, खीर, पिष्टक, स्वस्तिक, केले के ढेर, मिष्ठान्न तथा व्यंजन, शुभ शाल्यान्न देवदेव गणपति को प्रदान किया। उन्होंने अमूल्य रत्नों से निर्मित श्रेष्ठ सिंहासन भी दिया, उन विरजातट निवासिनी राधा ने अग्निशुद्ध-रम्य-अमूल्य दो सूक्ष्म वस्त्र भी प्रदान किया। उन विघ्न विनाश करने वाले गजानन को शतशृंग पर्वत पर निवास करने वाली राधा ने उन शिवा देवी के पुत्र गणेश को विशुद्ध घृत युक्त, निर्मल मधु युक्त मधुपर्क भी प्रदान किया। उनको कर्पूरादि से सुवासित श्रेष्ठ रम्य ताम्बूल भी प्रदान किया।।३७-४९।।

सर्वसम्पत्प्रदात्रे च वृषभानसुता ददौ। सप्ततीर्थोदकं शुद्धं सुसितं च सुवासितम्॥५०॥
पानार्थं च जलं तस्मै ददौ गोपीश्वरी मुदा। अमूल्यं दुर्लभं चैव विशुद्धं श्वेतचामरम्॥५१॥
ददौ तस्मै परेशाय मूलप्रकृतिरीश्वरी। अमूल्यरत्ननिर्माणं मुक्तामाणिक्यहीरकैः॥५२॥
परिष्कृतं सुतल्पं च पुष्पचन्दनचर्चितम्। सितसूक्ष्मांशुकेनैव परितश्च परिष्कृतम्॥५३॥
ददौ शिवात्मजायैव कृष्णवक्षःस्थलस्थिता।
दत्त्वा च कामधेनुं च सवत्सां वाञ्छितप्रदाम्॥५४॥

यह सब सर्वसम्पदा प्रदाता गणपति को वृषभानु की पुत्री राधा ने प्रदान किया। उन्होंने सहर्ष अति पवित्र शीतल जल तथा सातों तीर्थों के जल को जो सुवासित था पीने के लिये गणेश को अर्पित किया। मूलप्रकृति ईश्वरी राधा ने परमेश्वर गणपति के उद्देश्य से अमूल्य, दुर्लभतम श्वेत चामर भी प्रदान किया। कृष्ण के वक्षस्थल पर निवास करने वाली राधिका ने अमूल्य रत्नों से बनी मुक्ता, माणिक्य-हीरक द्वारा सज्जित पुष्प चन्दनयुक्त तथा चारों ओर से सूक्ष्म श्वेत चादर बिछाई गयी शय्या शिवात्मज गजानन को प्रदान किया। तदनन्तर अभिलषित पदार्थ प्रदान करने वाली वत्सयुता कामधेनु भी विघ्नेश्वर को राधा ने अर्पित किया।।५०-५४।।

कृत्वाऽतीव परीहारं वृन्दा पुष्पाञ्जलिं ददौ। दिव्येन मूलमनुना सबीजेनोज्ज्वलेन च॥५५॥
ददौ षोडशोपचारं कालिन्दीकूलवासिनी।
ॐ गं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा॥५६॥

इत्येवमेव मन्त्रं च गणेशं षोडशाक्षरम्। सा जजाप सहस्त्रं च परं कल्पतरुं वरम्॥५७॥
तुष्टाव परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकंधरा।
साश्रुनेत्रा पुलकिता स्तोत्रेण कौथुमेन च॥५८॥

तदनन्तर क्षमायाचना करके वृन्दादेवी (राधा) ने पुष्पांजलि प्रदान किया। तत्पश्चात् सबीज, दिव्य, उज्वल मूलमन्त्र से उन कालिन्दी तटवासिनी राधा ने गणपति को षोडशोपचार भी निवेदित किया। गणेश का षोडशाक्षर मन्त्र है "ॐ गं गौं गणपतेये विघ्नविनाशिने स्वाहा।" इस कल्पतरु के समान मन्त्र का राधा ने वहां १००० जप किया था। इसके पश्चात् परमभक्ति के कारण नत शिर होकर पुलकित शरीर तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली राधा ने परमभक्ति के साथ सामवेद की कौथुमशाखा में उक्त इस स्तोत्र से गणपति की स्तुति किया॥५५-५८॥

राधिकोवाच

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमेश्वरम्। विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम्॥५९॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम्।
सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम्[1]॥६०॥

देवी राधा कहती हैं—आप परमब्रह्म, परमधाम, परेश परमेश्वर, विघ्ननाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर, अनन्त हैं। देवता, देवेन्द्र, सिद्धेन्द्रगण आप परात्पर की स्तुति करते हैं। आप देवरूपी कमलों के लिये सूर्य हैं तथा मंगलधाम गणेश हैं। मैं आपकी स्तुति करती हूं॥५९-६०॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम्। य पठेत्प्रातरुत्थाय सर्वविघ्नात्प्रमुच्यते॥६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२३॥

—❊❊❊—

यह उत्तम श्लोक महापुण्यमय, विघ्नशोकहारी है। इसे जो प्रातः उठकर पढ़ता है, वह सभी विघ्नों से मुक्त हो जाता है॥६१॥

॥१२३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❖❖❖

---

१. क. ०लयम्।

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

राधिका से गणेश का प्रशंसा कथन, पार्वती द्वारा वर प्राप्त करना, पार्वती की आज्ञा से सखियों द्वारा राधा की वेष-सज्जा किया जाना, राधा के पास देवगण का आगमन, ब्रह्माकृत राधिका स्तव

नारायण उवाच

राधा सम्पूज्य विधिना स्तुत्वा लम्बोदरं सती। अमूल्यरत्ननिर्माणं सर्वाङ्गभूषणं ददौ॥१॥

राधायाः स्तवनं श्रुत्वा पूजां दृष्ट्वा च वस्तु च।
उवाच मधुरं शान्तः शान्तां त्रैलोक्यमातरम्॥२॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—पतिव्रता राधिका ने लम्बोदर का यथाविधि स्तव करके उनके सर्वाङ्ग पर रत्ननिर्मित अलंकार धारण कराया। तब शान्त प्रकृति गजानन ने राधा का स्तव सुनकर राधा की पूजा तथा उनके द्वारा प्रदत्त सभी सामग्री का अवलोकन किया। इसके पश्चात् वे त्रैलोक्यजननी शान्त प्रकृति राधिका से मधुर वाक्य कहने लगे॥१-२॥

गणेश उवाच

तव पूजा जगन्मातर्लोकशिक्षाकरी शुभे। ब्रह्मस्वरूपा भवती कृष्णवक्षःस्थलस्थिता॥३॥
यत्पादपद्ममतुलं ध्यायन्ते ते सुदुर्लभम्। सुरा ब्रह्मेशशेषाद्या मुनीन्द्राः सनकादयः॥४॥

जीवन्मुक्ताश्च भक्ताश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः।
तस्य प्राणाधिदेवी त्वं प्रिया प्राणाधिका परा॥५॥

वामाङ्गनिर्मिता राधा दक्षिणाङ्गश्च माधवः। महालक्ष्मीर्जगन्माता तव वामाङ्गनिर्मिता॥६॥
वसोः सर्वनिवासस्य प्रसूस्त्वं परमेश्वरी। वेदानां जगतामेव मूलप्रकृतिरीश्वरी॥७॥

श्रीगणेश कहते हैं—हे जगन्माता! शुभे! आप ब्रह्मरूपा हैं। आप श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर सदा अवस्थान करती हैं। आपने जो मेरी पूजा किया है, वह केवल लोकशिक्षार्थ ही है। देवतागण ब्रह्मा, महेश्वर, अनन्तदेव, सनकादि, मुनीन्द्रगण, जीवन्मुक्तगण, भक्तगण तथा कपिल आदि सिद्धेन्द्र लोग जिन श्रीकृष्ण के अतुलनीय चरणकमलों का चिन्तन करते हैं, आप ऐसे श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठातृ देवता हैं तथा उनको प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। श्रीकृष्ण के दक्षिणाङ्ग माधव हैं। राधा (आप) वामांग हैं। जगन्माता महालक्ष्मी आपके वामांग से उत्पन्ना हैं। आप समस्त जगत् की आश्रयभूता महाविराट् की जननी, परमेश्वरी, चारों वेदों तथा त्रैलोक्य की माता हैं। आप ही मूल प्रकृति ईश्वरी हैं॥३-७॥

सर्वाः प्राकृतिका मातः सृष्ट्यां[1] च त्वद्विभूतयः।
विश्वानि कार्यरूपाणि त्वं च कारणरूपिणी॥८॥
प्रलये ब्रह्मणः पाते तन्निमेषो हरेरपि। आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं परात्परम्॥९॥
स एव पण्डितो योगी गोलोकं[2] याति लीलया।
व्यतिक्रमे महापापी ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१०॥

हे माता! आप सृष्टि की आदिभूता हैं। संसार की समस्त स्त्रियां आपके ही विभूति रूपा हैं। आप विश्व की प्रत्येक कारण रूपा हैं। समस्त विश्व आपका ही कार्य है। ब्रह्मा के उदय से लेकर उनके प्रलयकालीन अवसान पर्यन्त का काल आपका तथा श्रीहरि का एक निमेष मात्र ही है। जो पहले राधा का नाम लेकर अन्त में कृष्ण का नाम लेता है, वही व्यक्ति ही यथार्थतः पण्डित है। वही योगी है। उसे अनायास गोलोक की प्राप्ति होती है। परन्तु जो पहले कृष्ण कहकर तब राधा कहता है, व्रह महापातकी तथा ब्रह्महत्यापातक का भागी होता है।।८-१०।।

जगतां भवती माता परमात्मा पिता हरिः[3]। पितुरेव गुरुर्माता पूज्या वन्द्या परात्परा॥११॥
भजते देवमन्यं वा कृष्णं वा सर्वकारणम्।
पुण्यक्षेत्रे महामूढो यदि निन्दति राधिकाम्॥१२॥
वंशहानिर्भवेत्तस्य दुःखशोकमिहैव च। पच्यते निरये घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥१३॥

आप जगत् की माता हैं। परत्मात्मा पिता श्रीहरि हैं। लेकिन पिता से बढ़कर माता ही गुरु है। वह परात्परा है। वह अधिक वन्दनीया है। यदि कोई महामूर्ख पुण्यस्थली में अन्य देवता की किंवा कृष्ण की उपासना करता है, तथापि भगवती राधा का निन्दा करता है, वह दुःख-शोक से ग्रस्त होगा तथा उसके वंश की हानि होगी। मृत्यु के उपरान्त उसे तब तक नरकगामी होना पड़ेगा जब तक संसार में सूर्य-चन्द्र की स्थिति है।।११-१३।।

गुरुश्च ज्ञानोद्गिरणाज्ज्ञानं स्यान्मन्त्रतन्त्रयोः।
स च मन्त्रश्च तत्तन्त्रं भक्तिः स्याद्ध्रुवयोर्यतः॥१४॥
निषेव्य मन्त्रं देवानां जीवा जन्मनि जन्मनि।
भक्ता भवन्ति दुर्गायाः पादपद्मे सुदुर्लभे॥१५॥
निषेव्य मन्त्रं शंभोश्च[4] जगतां कारणस्य च।
तदा प्राप्नोति युवयोः पादपद्मं सुदुर्लभम्॥१६॥

---

१. क. सृष्ट्वाऽन्यास्तद्वि०।
२. क. लोकं पाति च ली०।
३. क. ०महः।
४. क. तश्याश्च।

गुरुगण शिष्य में ज्ञानोत्पत्ति कर देते हैं तभी वे गुरु हैं। मन्त्र तथा तन्त्र रूप उभय के ज्ञान को ही यथार्थ ज्ञान कहा जाता है। जिस मन्त्र-तन्त्र से राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति का उदय हो, वही यथार्थ मन्त्रतन्त्र है। जिन्होंने जन्म-जन्मान्तर में अन्य देवगण के मन्त्रों की उपासना किया है, उनकी भक्ति दुर्गा के दुर्लभ चरणकमल के प्रति हो जाती है। जिसने जन्म-जन्मान्तर में भक्ति पूर्वक दुर्गामन्त्र का सेवन किया है, उसे महादेव के सनातन ज्ञानानन्द मन्त्र की प्राप्ति होती है। जिसने (जन्म-जन्मान्तर में) जगत्प्रभु शंकर के मन्त्र की सेवा किया है, उसे राधा-कृष्ण के सुदुर्लभ चरणकमलों की प्राप्ति हो जाती है।।१-१६।।

युवयोः पादपद्मं च दुर्लभं प्राप्य पुण्यवान्।
क्षणार्धं षोडशांशं च नहि मुञ्चति दैवतः॥१७॥
भक्त्या च युवयोर्मन्त्रं गृहीत्वा वैष्णवादपि।
स्तवं वा कवचं वाऽपि कर्ममूलनिकृन्तनम्॥१८॥
योजयेत्परया भक्त्या पुण्यक्षेत्रे च भारते।
पुरुषाणां सहस्रं च स्वात्मना सार्धमुद्धरेत्॥१९॥

जिस पुण्यात्मा ने आप तथा कृष्ण के दुर्लभ चरणकमल को प्राप्त कर लिया, वह दैवात् अर्द्ध निमेष तक के लिये भी उन चरणों का त्याग नहीं करता! वह तो क्षणार्द्ध के १/१६ भाग के लिये भी उन चरणों का चिन्तन नहीं छोड़ता। जो व्यक्ति भारतवर्ष में अपने पुण्य से विष्णुभक्त से आप दोनों के मन्त्र को ग्रहण कर लेता है, आपका स्तव किंवा कवच पाठ करता है, उसे कर्मजन्य भोग नहीं करना पड़ता, जो मनुष्य पुण्यभूमि भारतवर्ष में परम भक्तिभाव से राधाकृष्ण मन्त्र का जप करता है, वह अपना ही नहीं, अपनी १००० पूर्व पीढ़ी के पितरों का भी उद्धारक होगा।।१७-१९।।

गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः। कवचं धारयेद्यो हि विष्णुतुल्यो भवेद्ध्रुवम्॥२०॥
यद्दत्तं वस्तु मे मातस्तत्सर्वं सार्थकं कुरु।
देहि विप्राय मत्प्रीत्या तदा भोक्ष्यामि साम्प्रतम्॥२१॥
देवे देयानि दानानि देवे देया च दक्षिणा। तत्सर्वं ब्राह्मणे दद्यात्तदानन्त्याय कल्पते॥२२॥
ब्राह्मणानां मुखं राधे देवानां मुखमुख्यकम्।
विप्रभुक्तं च यद्द्रव्यं प्राप्नुवन्त्येव देवताः॥२३॥

जो व्यक्ति गुरु की सविधि पूजा करके उनको वस्त्र-अलंकारादि देकर उनसे प्राप्त कवच को धारण करेगा, वह निश्चय विष्णुतुल्य होगा। हे माता! आपने जो कुछ वस्तु मुझे प्रदान किया है, उसे आप ब्राह्मण को प्रदान करिये। इसी के द्वारा मैं उन वस्तुओं का तत्काल भोग कर लूंगा। इसका आपको अनन्त फल मिलेगा। हे राधिके! ब्राह्मणों का मुख ही देवता का प्रधान मुख है। ब्राह्मण जो कुछ द्रव्य भोजन करते हैं, वह सब देवता प्राप्त कर लेते हैं।।२०-२३।।

विप्रांश्च भोजयामास तत्सर्वं राधिका सती। बभूव तत्क्षणादेव प्रीतो लम्बोदरो मुने॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः। आययुर्व मूलं च देवपूजार्थमेव च॥२५॥
तत्र गत्वा शिवचरो देवान्देवीरुवाच सः।
श्रीकृष्णं शुष्ककण्ठश्च भयभीतश्च रक्षकः॥२६॥

तदनन्तर सती राधा ने सभी वस्तु ब्राह्मणों को भोजन करा दिया। हे मुनिवर! इसे लम्बोदर गजानन तत्क्षण सन्तुष्ट हो गये। तदनन्तर ब्रह्मा, शिव, शेष नामक देवता देवता पूजनार्थ उस वटवृक्ष के मूल पर आये। तभी वहां एक शिवदूत रक्षक आया। उसका कण्ठ शुष्क हो गया था। वह अत्यन्त भयभीत स्थिति में देवगण, देवियों तथा श्रीकृष्ण प्रभु से कहने लगा।।२४-२६।।

रक्षक उवाच

गणेशं पूजयामास सर्वादौ च शुभक्षणे। वृषभानसुता राधा प्रकृत्य स्वस्तिवाचनम्॥२७॥
सहिता सा बलवती गोपीत्रिशतकोटिभिः।
वारितोऽहं बलिष्ठाभिर्युष्मांश्च कथयामि तत्॥२८॥
सर्वादौ पूजयेद्यो हि सोऽनन्तं फलमालभेत्।
मध्ये मध्यविधं पुण्यं शेष स्वल्पमिति स्मृतम्॥२९॥
देवेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु देवस्त्रीषु स्थितासु च।
गोपीभिश्च सह तया राधया पूजितः परः॥३०॥

रक्षक कहता है–तीन सौ क़रोड़ बलवती गोपियों से घिरी वृषभानुपुत्री राधा ने शुभ समय में सबसे पहले स्वस्तिवाचन के साथ गणपति पूजन किया। उन महाबली गोपियों ने हमें वहां से भगा दिया। जो सब देवगण के पहले गणेश पूजन करता है, उसे अनन्तफल प्राप्त होगा। मध्य पूजन से मध्यम फल तथा अन्त में पूजन से स्वल्पतम फल मिलता है। वहां देवताओं, मुनियों तथा देवियों के उपस्थित रहने पर भी पहले उसकी पूजा न करके गोपियों के साथ राधा ने सबसे पहले गणेश की पूजा ही किया।।२७-३०।।

दूतवाक्यं समाकर्ण्य जहसुः सर्वदेवताः। मुनयो मनवश्चैव राजानो देवयोषितः॥३१॥
रुक्मिण्याद्या रमण्यश्च सा देव्यो विस्मयं ययुः।
सरस्वती च सावित्री पार्वती परमेश्वरी॥३२॥
रोहिणी च सती संज्ञा स्वाहाद्या देवयोषितः।
मुदिताः प्रययुः सर्वा मुनिपत्न्यः पतिव्रताः॥३३॥
मुनयो मनवः सर्वे देवाश्चापि नरास्तथा।
श्रीकृष्णः स गणैः सार्धं ये चान्ये प्रययुर्मुदा॥३४॥

ते सर्वे विविधैर्द्रव्यैः पूजां चक्रुः शुभक्षणे।
बलिष्ठा दुर्बलाश्चैव क्रमेण च पृथक्पृथक्॥३५॥

इस दूत का कथन सुनकर सभी देवता हंसने लगे। वहां उपस्थित मुनि, मनुगण, राजाओं, देवस्त्रियों, रुक्मिणी आदि स्त्रियां तथा देवियां विस्मित हो गईं। तभी वहां सरस्वती, सावित्री, परमेश्वरी पार्वती, रोहिणी, सती संज्ञा, स्वाहा आदि देवियां, सभी मुनि पत्नियां मुदित होकर आ गईं। वहां मुनिवृन्द, मनुगण, देवता, मनुष्य तथा अपने परिकरों के साथ श्रीकृष्ण एवं अन्य लोग भी हर्षित होकर आ गये। इन सबने शुभतम मुहूर्त्त में वहां गणपति पूजन किया। बलिष्ठों तथा दुर्बलों ने भी क्रमशः अलग-अलग पूजा किया।।३१-३५।।

लड्डुकानां च राशीनां शतकोटिर्बभूव ह।
शर्कराणां तदर्धं च स्वस्तिकानां तथैव च॥३६॥
अन्नानां भव्यवस्तूनां शतकोटिर्बभूव ह।
असंख्यानि फलान्येव स्वादूनि मधुराणि च॥३७॥
मधुकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या घृतस्य च।
बभूवुः शतसंख्याश्च त्रैलोक्यानां च पूजने॥३८॥
पूजां कृत्वा तु ते सर्वे समूषुश्च सुखासने। पर्वती परमप्रीत्या राधास्थानं समाययौ॥३९॥
सा राधा पार्वतीं दृष्ट्वा समुत्थाय जवेन च।
यथायोग्यां च संभाषां चकार सादरं मुदा॥४०॥

इस पूजनोत्सव के कारण वहां पर शतकोटि लड्डुओं के ढेर, उससे आधा शर्करा का ढेर, स्वस्तिक के ढेर, अन्न तथा भूंजे अन्न के ढेर तथा असंख्य स्वादु फलों के ढेर लग गये। इतनी अधिक मधु, दुग्ध, दधि, घृत की सैकड़ों नहरें बन गईं। जिनके द्वारा तो तीनों लोक की पूजा की जा सकती थी। पूजा के उपरान्त सभी लोग सुखप्रद आसनों पर आसीन हो गये। उस समय देवी पार्वती परमप्रेम के साथ राधा के पास आईं। पार्वती को समागत देखकर राधा तत्काल खड़ी हो गईं। वे हर्षित होकर पार्वती से आदर पूर्वक यथोक्त वार्त्तालाप करने लगीं।।३६-४०।।

आश्लेषणं चुम्बनं च बभूव च परस्परम्। उवाच मधुरं दुर्गा राधां कृत्वा स्ववक्षसि॥४१॥

उन्होंने एक-दूसरे का आलिंगन तथा चुम्बन किया। तब भगवती दुर्गा पार्वती ने राधा को अपने वक्ष से लगाकर मधुर वाक्य उनसे कहा-।।४१।।

पार्वत्युवाच

किंवा प्रश्नं करिष्यामि त्वां राधा मङ्गलालयाम्।
गता ते विरहज्वाला श्रीदाम्नः शापमोक्षणे॥४२॥

सततं मन्मनः प्राणास्त्वय्येव मयि ते तथा। न ह्येवमावयोर्भेदः शक्तिपूरुषयोस्तथा॥४३॥

देवी पार्वती कहती हैं–हे राधिका! तुम तो मंगल का आलयरूप हो। मैं तुमसे क्या प्रश्न करूं? अब श्रीदामा के शाप से तुम्हारी मुक्ति हो गयी। अब तुम्हारी विरहज्वाला भी शान्त है। मेरा प्राण तथा मन तुम्हारे साथ लगा रहता है, उसी प्रकार तुम्हारा मन-प्राण मुझमें सतत् लगा रहता है। जिस प्रकार शक्ति तथा पुरुष में कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार तुममें तथा मुझमें कोई भेद नहीं है।।४२-४३।।

ये त्वां निन्दन्ति मद्भक्तास्त्वद्भक्ताश्चापि मामपि।
कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥४४॥

राधामाधवयोर्भेदं ये कुर्वन्ति नराधमः। वंशहानिर्भवेत्तेषां पच्यन्ते नरके चिरम्॥४५॥

यदि मेरा भक्त तुम्हारी निन्दा करे अथवा तुम्हारा भक्त मेरी निन्दा करे, ये दोनों ही सूर्य-चन्द्र जब तक विश्व में हैं, तब तक के लिये नरकगामी बने रहेंगे। जो नराधम राधा तथा माधव में भेद दर्शन करते हैं, वे चिरकाल पर्यन्त नरक में पड़े रहते हैं तथा उनकी वंशहानि हो जाती है।।४४-४५।।

यान्ति सूकरयोनिं च पितृभिः शतकैः सह। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां कृमयस्तथा॥४६॥

त्वयैव पूजितः पुत्रो न मया च गणेश्वरः। सर्वादौ सर्वपूज्योऽयं यथा तव तथा मम॥४७॥

तदनन्तर वे अपने पूर्व की सौ पीढ़ी के पितरों के साथ ६०००० वर्ष पर्यन्त शूकर योनि प्राप्त करते हैं। तदनन्तर वे ६०००० वर्षों तक मल के कीट होते हैं। तुमने सर्वप्रथम गणेश की पूजा किया। मैंने उसकी पूजा नहीं किया। वह सर्वपूज्य है। वह गणेश जैसे तुम्हारे लिये है, उसी प्रकार मेरे लिये भी है।।४६-४७।।

यावज्जीनपर्यन्तं न विच्छेदो भविष्यति। राधामाधवयोर्देवि दुग्धधावल्ययोर्यथा॥४८॥

सिद्धाश्रमे महातीर्थे पुण्यक्षेत्रे च भारते।
निर्विघ्नं लभ गोविन्दं सम्पूज्य विघ्नखण्डनम्॥४९॥
रासेश्वरी त्वं रसिका श्रीकृष्णो रसिकेश्वरः।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान्भवेत्॥५०॥

हे देवी! जैसे दुग्ध तथा उसकी धवलता (श्वेत वर्ण) पृथक् नहीं है, उसी प्रकार हे देवी! राधा-माधव में कोई पार्थक्य नहीं है। तुम्हारा तथा माधव का यावत्जीवन विच्छेद ही नहीं होगा। तुमने पुण्यक्षेत्र भारत स्थित सिद्धाश्रम में गणपति पूजन के फलस्वरूप निर्विघ्न रूप से गोविन्द को प्राप्त करो। तुम रासेश्वरी रसिका हो, जबकि कृष्ण रसिकेश्वर हैं। प्रबुद्ध के साथ प्रबुद्ध का संगम गुणमय होता है।।४८-५०।।

श्रीदाम्नः शापनिर्मुक्ता शतवर्षान्तरं सति। कुरुष्व मद्वरेणाद्य कृष्णेन सह सङ्गमम्॥५१॥

ममाऽऽज्ञया दुर्लभया सुवेषं कुरु सुन्दरि। सुदुर्लभः कामिनीनां सत्पुंसा सह सङ्गमः॥५२॥

हे सती! तुम सौ वर्षों के पश्चात् श्रीदामा के शाप से मुक्त हो गई हो। मेरा वरदान है कि तुम

कृष्ण से मिलन करो। हे सुन्दरी! मेरी आज्ञा दुर्लभ होती है। तदनुसार तुम सुवेश धारण करो। कामिनी के लिये सत्पुरुष वर से संगम दुर्लभ होता है॥५१-५२॥

चक्रुः सुवेषं राधायाः प्रियाल्यश्च शिवाज्ञया।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम्॥५३॥

पुरतो रत्नमाला सा रत्नमालां गले ददौ। राधाया दक्षिणे हस्ते क्रीडापद्मं मनोहरम्॥५४॥
ददौ पद्ममुखी पादपद्मयुग्मेऽप्यलक्तकम्। प्रददौ सुन्दरी गोपी सिन्दूरं सुन्दरं वरम्॥५५॥

देवी पार्वती की आज्ञा के अनुसार राधा की प्रिय सखियां उनकी उत्तम वेष रचना करने लगीं। उन्होंने ईश्वरी राधा को उत्तम रत्नसिंहासनासीन कराया। उनकी सखी रत्नमाला ने राधा के कण्ठ में रत्नमाला धारण कराया। सखी पद्मा ने राधा को अपने मुखकमल अवलोकनार्थ रत्नमय दर्पण प्रदान किया। सखी पद्ममुखी ने राधा के दाहिने हाथ में मनोहर क्रीड़ाकमल तथा दोनों चरणकमलों में आलता लगाया। गोपी सुन्दरी ने राधा की मांग के नीचे चन्दन चर्चित उत्तम सिन्दूर की बिन्दी लगाई॥५३-५५॥

चन्दनेन समायुतं सीमन्ताधः स्थलोज्ज्वलम्।
सुचारुकबरीं रम्यां चकार मालती सती॥५६॥

मनोहरां मुनीनां च मालतीमाल्यभूषिताम्। कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च चारुचन्दनपत्रकम्॥५७॥
स्तनयुग्मे सुकठिने चकार चन्दना सती। चारुचम्पकपुष्पाणां मालां गन्धमनोहराम्॥५८॥
मालावती ददौ तस्यै प्रफुल्लां नवमल्लिकाम्। रतीषु रसिका गोपी रत्नभूषणभूषिताम्॥५९॥
तां चकारातिरसिकां वरां रतिरसोत्सुकाम्। शरत्पद्म दलाभं च लोचनं कज्जलोज्ज्वलम्॥६०॥

उसने राधा की मांग के नीच के स्थान को चन्दन की बिन्दी लगाकर उज्वल कर दिया। सती मालती नामक सखी ने राधा का सुन्दर रम्य केशपाश (जूड़ा) बना दिया। मालती माला से गुंथा यह जूड़ा मुनिगण के भी मन को मुग्ध कर देने वाला तथा मनोहर था। चन्दना नामक गोपी सखी ने अत्यन्त सुकठिन स्तनद्वय पर कस्तूरी तथा कुंकुम मिलाकर सुन्दर चन्दन के पत्ते बनाये। सखी मालावती ने मनोहर गंधवाली उत्तम चम्पा पुष्पों की माला तथा विकसित नवमल्लिका का पुष्प राधा को प्रदान किया। रति रसिका गोपी ने राधा को रत्नभूषणों से भूषित कर दिया। उनकी सज्जा ऐसे कर दिया, जिससे राधा रति हेतु उत्सुक तथा अतीव रसिक प्रतीत हो रही थी। ललिता सखी ने शरत्कालीन कमलदल के समान राधा के नेत्रों में कज्जल लगाकर उसे उज्वलता प्रदान किया है॥५६-६०॥

कृत्वा ददौ सुललितं वस्त्रं च ललिता सती। महेन्द्रेण प्रदत्तं च पारिजातप्रसूनकम्॥६१॥

सुगन्धियुक्तं तस्याश्च पारिजातं करे ददौ।
सुशीलं मधुरोक्तं च भर्तुः पार्श्वे यथोचितम्॥६२॥
शिक्षां चकार नीतिं च सुशीला गोपिका सती।
स्त्रीणां च षोडशकलां विपत्तौ विस्मृतां तयोः॥६३॥

स्मरणं कारयामास राधामाता कलावती। शृङ्गारविषयोक्तं च वचनं च सुधोपमम्॥६४॥
स्मरणं कारयामास भगिनी च सुधामुखी। कमलानां चम्पकानां दले चन्दनचर्चिते॥६५॥
चकार रतितल्पं च कमला चाऽऽशु कोमलम्।
चारुचम्पकपुष्पं च कृष्णार्थं पुटकस्थितम्॥६६॥
चकार चन्दनाक्तं च स्वयं च पार्वती सती।
पुष्पं केलिकदम्बानां स्तबकं च मनोहरम्॥६७॥
कदम्बमालां कृष्णार्थं विद्यमानां चकार सा। ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥६८॥
कृष्णप्रिया च कृष्णार्थं चकार वासितं जलम्। एतस्मिन्नन्तरे सर्वमाश्रमं सजलस्थलम्॥६९॥
साक्षाद्गोरोचनाभं च ददृशुर्मुनयः सुराः। ते सर्वे विस्मयं गत्वा पप्रच्छुः कृष्णमीश्वरम्॥७०॥
उवाच भगवांस्तांश्च सर्वज्ञः सर्वकारणा॥७१॥

उसी सखी ने राधा को सुन्दर वस्त्र धारण कराया। सखी पारिजाता ने उनके हाथों में इन्द्र द्वारा प्रदत्त पारिजात के सुगन्धित पुष्प प्रदान किया। गोपी सखी सुशीला ने राधा को यह शिक्षा दिया कि स्वामी के साथ सत्स्वभावपूर्ण मधुर वचन कैसे बोला जाये तथा उसने राधा को इस सम्बन्ध में नीतिमयी शिक्षा भी प्रदान किया। राधा ने १०० वर्षीय विरहजनित विपत्ति काल में जो सब विस्मरण कर दिया था उस विस्मृत १६ कलाओं का पुनः स्मरण राधा की जननी कलावती ने राधा को कराया। राधा की बहन सुधामुखी ने राधा का ध्यान शृङ्गारोपयोगी विषयों की ओर सुधा के समान वचनों से आकर्षित कराया। सखी कमला ने तत्काल कमल तथा चम्पा के चन्दन लिप्त पत्तों से कोमल रतिशय्या को सज्जित किया, जो अत्यन्त कोमल थी। सती चम्पावती सखी ने श्रीकृष्ण के लिये उत्तम चम्पा के पुष्पों को चन्दन लिप्त करके श्रीकृष्ण के उभय पार्श्व में रख दिया। तदनन्तर उसने श्रीकृष्ण की प्रीति हेतु केलिकदम्ब पुष्प, मनोहारी गुलदस्ता तथा कदम्बपुष्प की माला वहां रखा। कर्पूरादि से सुवासित सुन्दर ताम्बूल कृष्णप्रिया ने वहां रखकर सुगन्धित जलपात्र वहां रखा। इस समय सभी देवताओं तथा मुनिगण ने वहां की भूमि तथा वहां का जलाशय सभी गोरोचन वर्णाभ हो गया देखा। तदनन्तर सभी ने विस्मित होकर परमेश्वर कृष्ण से इसका कारण पूछा। तब सर्वज्ञ तथा सर्वकारणरूप भगवान् कहने लगे।।६१-७१।।

श्रीभगवानुवाच

अभिशप्ता च श्रीदाम्ना भ्रष्टशोभा राधिका। सर्वं ज्ञानं विसस्मार मद्विच्छेदज्वरातुरा॥७२॥
विमुक्ते वर्षशतके ज्ञानं सस्मार सा सती। सिद्धाश्रमं च पीताभं रासेश्वर्याश्च तेजसा॥७३॥
परमाह्लादकं तेजश्चन्द्रकोटिसमप्रभम्। सुखदृश्यं च सुखदं चक्षुषां प्राणिनामपि॥७४॥

श्रीभगवान् कहते हैं—राधा श्रीदामा के शाप के कारण श्रीभ्रष्टा तथा मेरे विरह से कातरा होकर

सभी ज्ञान को भूल गई थीं। इन साध्वी का १०० वर्षों के उपरान्त शापमोचन होने पर वह ज्ञान स्मृतिपथ पर आ गया। अतः इन रासेश्वरी राधा के तेज से यह सिद्धाश्रम पीतवर्ण हो गया। यह तेज करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभाशाली, परम आह्लादप्रद, देखने में मनोहर तथा प्राणियों के नेत्रों को सुखप्रद लगने वाला है।।७२-७४।।

तच्छुत्वा परमाश्चर्यं मुनयो मनवस्तथा। देव्यश्च सर्वदेवास्ते ब्रह्मेशानादयस्तथा।।७५।।

जवेन गत्वा तत्स्थानं भक्तिनम्रात्मकंधरा।
सर्वे जनास्ते ददृशुस्त्रैलोक्यस्थाश्च राधिकाम्।।७६।।

यह सुनकर परमाश्चर्य चकित मुनिगण, मनुगण, देवता, सभी देवियां, ब्रह्मा, शिव आदि प्रधान देवता वहां शीघ्रता से गये तथा वहां जाकर उन्होंने भक्तिभाव से शिर नत कर लिया। वहां सभी त्रैलोक्यवासी लोगों ने राधा का दर्शन लाभ किया। उन देवी की देहकान्ति श्वेतचम्पा के वर्ण की आभा के समान मनोहर थी। उन त्रैलोक्यवासिनी श्रीराधा का दर्शन उन सबने वहां प्राप्त किया।।७५-७६।।

श्वेतचम्पकवर्णाभामतुलां सुमनोहराम्। मोहिनीं मानसानां च मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।।७७।।

सुकेशीं सुन्दरीं श्यामां न्यग्रोधपरिमण्डलाम्।
नितम्बकठिनश्रोणीं स्तनयुग्मोन्नताननाम्।।७८।।
कोटीन्दुनिन्दितास्यां तां सस्मितां सुदतीं सतीम्।
कज्जलोज्ज्वलरूपां च शरत्कमललोचनाम्।।७९।।

महालक्ष्मीं बीजरूपां परमाद्यां सनातनीम्। परमात्मस्वरूपस्य प्राणाधिष्ठातृदेवताम्।।८०।।

उन देवी की देहकान्ति श्वेत चम्पा के समान अत्यन्त सुमनोहर तथा अतुलनीय थी। यह रूपराशि तो ऊर्ध्वरेता मुनिगण के भी मन को मोहने वाली थी। वे सुकेशी, सुन्दरी, श्यामा तथा न्यग्रोध परिमण्डला थीं। अर्थात् वे भारी नितम्ब, कठिन उन्नतस्थूल स्तनों तथा क्षीण मध्यभाग (पतली कमर) वाली थीं। उनकी मुखप्रभा सैकड़ों चन्द्रमा को भी लज्जित कर देने वाली थी। वे मुस्कानयुक्त तथा सुन्दर दन्तपंक्ति वाली थीं। उनके दीर्घ नेत्र शारदीय कमलदल के समान तथा कज्जल से शोभायमान रहने वाले थे। वे महालक्ष्मी, बीजरूपा, परमाद्या सनातनी हैं। वे परमात्मस्वरूपा तथा कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठातृ देवता भी हैं।।७७-८०।।

स्तुतां च पूजितां चैव परां च परमात्मने।
ब्रह्मस्वरूपां निर्लिप्तां नित्यरूपां च निर्गुणाम्।।८१।।

विश्वानुरोधात्प्रकृतिं भक्तानुग्रहविग्रहाम्। सत्यस्वरूपां शुद्धां च पूतां पतितपावनीम्।।८२।।
सुतीर्थपूतां सत्कीर्तिं विधात्रीं वेधसामपि। महत्प्रियां च महतीं महाविष्णोश्च मातरम्।।८३।।
रासेश्वरेश्वरीं रम्यां रसिकां रसिकेश्वरीम्। वह्निशुद्धांशुकाधामां स्वेच्छारूपां शुभालयाम्।।८४।।

इनकी पूजा-स्तुति लोग परमात्मा की प्राप्ति के उद्देश्य से करते हैं। ये ब्रह्मस्वरूपा, परा,

निर्लिप्ता, नित्यरूपा, निर्गुणा, विश्वव्याप्ता प्रकृति, भक्तों पर दया करके देहधारिणी, सत्यस्वरूपा, शुद्धा, पवित्रतमा, पतितपावनी तथा तीर्थों को पावन करने वाली सत्कीर्त्ति, ब्रह्मा की भी सृष्टिकारिणी, महत् प्रिया, महती, महाविष्णु की भी माता, रासेश्वर की भी ईश्वरी, रम्या, रसिका, रसिकेश्वरी हैं। ये देवी अग्नि शुद्ध वस्त्रधारिणी, स्वेच्छारूपा, शुभ का आश्रय हैं।।८१-८४।।

गोपीभिः सप्तभिः शश्वत्सेवितां श्वेतचामरैः। चतसृभिः प्रियालीभिः पादपद्मोपसेविताम्।।८५।।
अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणोच्चैर्विभूषिताम्। चारुकुण्डलयुग्मेन श्रुतिगण्डस्थलोज्ज्वलाम्।।८६।।
सुनासां गजमुक्ताहा खगेन्द्रचञ्चुनिन्दिताम्। कुङ्कुमालक्तकस्तूरीस्निग्धचन्दनचर्चिताम्।।८७।।
दधानां सुकपोलं च कोमलाङ्गीं सुकामुकीम्।
गजेन्द्रगामिनीं रामां कमनीयां सुकामिनीम्।।८८।।

इनको सात गोपियां नित्य श्वेत चामर झलती रहती हैं। इनके चरणकमलों की सेवा सतत् ४ प्रिय गोपियां करती रहती हैं। ये अमूल्यरत्ननिर्मित आभूषणों से भूषिता हैं। इनके कान तथा कपोल सुन्दर कुण्डलों की जोड़ी से समुज्वल रहते हैं। इनकी सुन्दर नासिका गरुड़ की चोंच को भी निन्दित करने वाली है, जो गजमुक्ता की नथ से शोभायमान है। देवी का सर्वाङ्ग कुंकुम-कस्तूरी युक्त सुगन्धित चन्दन से लिप्त है। इनके कपोल अत्युत्तम हैं। देवी के अंग कोमल हैं। ये भगवती कामुकी, मत्त गजराज जैसी चाल वाली, कमनीया सुकामिनी हैं।।८५-८८।।

कामास्त्रजयरूपां च कामकाम्यालयां वराम्। क्रीडाकमलमम्लानं पारिजातप्रसूनकम्।।८९।।
अमूल्यरत्ननिर्माणं दधानां दर्पणोज्ज्वलम्। नानारत्नविचित्राढ्यरत्नसिंहासनस्थिताम्।।९०।।
पद्मैः पद्मार्चितं पादपद्मं च मङ्गलालयम्। हृत्पद्मे ध्यायमानं च कृष्णस्य परमात्मनः।।९१।।

ये देवी काम का जयास्त्र (विजयास्त्र) लगती हैं। ये कामालया तथा अति श्रेष्ठ है। इन देवी के करकमल में विकसित क्रीड़ाकमल, पारिजात का सुगन्धपुष्प तथा अमूल्य रत्नमय दर्पण विराजित है। ये देवी नाना अमूल्य रत्नों से चित्रित रत्नसिंहासनासीन हैं। ये श्रीकृष्ण परमात्मा के महालक्ष्मी सेवित अर्चित चरणकमल का हृदय में सतत् ध्यान करती हैं।।८९-९१।।

कर्मणा मनसा वाचा स्वप्ने जागरणेऽपि च।
तत्प्रीतिं प्रेम सौभाग्यं स्मरन्तीं नित्यनूतनम्।।९२।।
भावानुरक्तसंसक्तां शुद्धभक्तां पतिव्रताम्।
धन्यां मान्यां गौरवर्णां शश्वद्वक्षःस्थलस्थिताम्।।९३।।
प्रियासु प्रियभक्तेषु सुप्रियां प्रियवादिनीम्। कृष्णवामाङ्गसम्भूतामभेदां गुणरूपयोः।।९४।।
गोलोकवासिनीं देवदेवीं सर्वोपरिस्थिताम्।
वृषभानुसुताख्यां तां पुण्यक्षेत्रे च भारते।।९५।।

गोपीश्वरीं गुप्तरूपां सिद्धिदां सिद्धिरूपिणीम्।
ध्यानासाध्यां दुराराध्यां वन्दे सद्भक्तवन्दिताम्॥९६॥

देवी राधा कर्मणा, मनसा, वाचा, सोते-जागते-स्वप्न देखते, सर्वकाल में उन प्रभु के नित्य, नूतन प्रेम, सौभाग्य तथा प्रीति का स्मरण करती रहती हैं। वे कृष्णभाव में पूर्णतः अनुरक्ता, शुद्ध भक्तिमयी तथा पतिव्रता हैं। वे धन्या, मान्या, गौरवर्णा, सतत् कृष्ण के वक्षस्थल में स्थिता हैं। वे भगवती ही भारतवर्ष में वृषभानुसुता रूपेण प्रसिद्ध हैं। वे भक्तों को तथा भगवत प्रियागण में परमप्रिय, प्रियवक्ता, श्रीकृष्ण के वामभाग से आविर्भूत, गुण-रूप में कृष्ण के समान हैं। ये भगवती गोलोक में निवास करने वाली, देवाधिदेवी, सर्वोपरि स्थिता, गोपेश्वरी, गुप्तरूप से सिद्धिप्रदा, सिद्धिरूपा हैं। ये ध्यान से भी असाध्या, दुराराध्या हैं। मैं सद्भक्तों द्वारा वन्दिता राधा की वन्दना करता हूं।॥९२-९६॥

ध्याने ध्यानेन राधाया ध्यायन्ते ध्यानतत्पराः।
इहैव जीवन्मुक्तास्ते परत्र कृष्णपार्षदाः॥९७॥
दृष्ट्वा ब्रह्मा च सर्वादौ तुष्टाव परमेश्वरीम्। स्वयं विधाता जगतां मातरं वेधसामपि॥९८॥

जो ध्यानतत्पर होकर इस ध्यानविधि से राधा का ध्यान करते हैं, वे इहलोक में जीवन्मुक्त होकर परलोक में कृष्ण के पार्षद हो जाते हैं। जगत् विधाता ब्रह्मा ने इन विधाता जननी परमेश्वरी का दर्शन पाकर सर्वाग्र में स्वयं उनकी स्तुति किया॥९७-९८॥

ब्रह्मोवाच

षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यानि परमेश्वरि। पुष्करे च तपस्तप्तं पुण्यक्षेत्रे च भारते॥९९॥
त्वत्पादपद्ममधुरमधुलुब्धेन चेतसा। मधुव्रतेन लोलेन प्रेरितेन मया सति॥१००॥
तथाऽपि न मया लब्धं त्वत्पादपद्ममीप्सितम्।
न दृष्टमपि स्वप्नेऽपि जाता वागशरीरिणी॥१०१॥
वाराहे भारते वर्षे पुण्ये वृन्दावने वने। सिद्धाश्रमे गणेशस्य पादपद्मं च द्रक्ष्यसि॥१०२॥
राधामाधवयोर्दास्यं कुतो विषयिणस्तव। निवर्तस्व महाभाग परमेतत्सुदुर्लभम्॥१०३॥
इति श्रुत्वा निवृत्तोऽहं तपसे भग्नमानसः।
परिपूर्णं तदधुना वाञ्छितं तपसः फलम्॥१०४॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे परमेश्वरी! पूर्वकाल में मैंने देवगण के (दिव्य) वर्ष से ६०००० वर्ष पर्यन्त पुण्यक्षेत्र भारत के पुष्कर तीर्थ में आप का तपानुष्ठान किया था, तथापि मुझे आपके चरणों की प्राप्ति नहीं हो सकी। स्वप्न तक में मुझे उनका दर्शनलाभ नहीं हो सका। तभी मैंने आकाशवाणी सुना "तुम वराहकल्प में पावन भारतवर्ष के वृन्दावनस्थ सिद्धाश्रम में गणेश के चरणकमलों का दर्शनलाभ

१. ख. लोभेन।

करोगे। तुम्हारे समान व्यक्ति को, जो विषयी है, कदापि राधा-माधव का दासत्व नहीं मिल सकता। हे महाभाग! तप से निवृत्त हो जाओ।" यह सुनते ही मेरी आशा भग्न हो गई, तथापि उसी तप के फल से मेरी अभिलाषा आज पूर्ण हो गयी।।९८-१०४।।

महादेव उवाच

पद्मैः पद्मार्चितं पादपद्मं यस्य सुदुर्लभम्।
ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाश्च शश्वद्ब्रह्मादयः सुराः॥१०५॥
मुनयो मनवश्चैव सिद्धाः सन्तश्च योगिनः।
द्रष्टुं नैव क्षमाः स्वप्ने भवती तस्य वक्षसि॥१०६॥

श्रीमहादेव कहते हैं–ब्रह्मादि देवता तत्पर होकर जिनके दुर्लभ चरणकमल के ध्यान में सतत् व्यापृत रहा करते हैं, मुनि-मनु-सिद्ध-साधु-योगीगण जिनके चरणकमलों का दर्शन स्वप्न तक में नहीं पाते, उन श्रीकृष्ण के वक्षस्थल में आपका निवास है।।१०५-१०६।।

अनन्त उवाच

वेदाश्च वेदमाता च पुराणानि च सुव्रते।
अहं सरस्वती सन्तः स्तोतुं नालं च संततम्॥१०७॥
अस्माकं स्तवने यस्य भ्रूभङ्गं च सुदुर्लभम्।
तवैव भर्त्सने भीताश्चावयोरन्तरं हरेः॥१०८॥

अनन्त देव कहते हैं–हे सुव्रते! आपकी तो वेद, वेदमाता, सभी पुराण, मैं अनन्त, सरस्वती तथा सन्तगण भी स्तुति करने में असमर्थ हैं। हमारे स्तव से जिनका भ्रूभंग अत्यन्त दुर्लभ है, वे हरि आपकी भर्त्सना के भय से भीत रहकर स्थित रहते हैं। यही हमारे तथा आपके बीच का अन्तर है।।१०७-१०८।।

एवं देवाश्च देव्यश्चाप्यन्ते ये च समागताः।
प्रणतास्तुष्टुवुः सर्वे मुनिमन्वादयस्तथा॥१०९॥
लज्जया नम्रवक्त्राश्च रुक्मिण्याद्याश्च योषितः।
मलीमसं च चक्रुस्ताः श्वासेन रत्नदर्पणम्॥११०॥
मृततुल्या सत्यभामा निराहारा कृशोदरी। मनसोऽप्यभिमानं च सर्वं तत्याज नारद॥१११॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० सिद्धाश्रमतीर्थयात्राप्रसङ्गे गणेशपूजनं ब्रह्मेशशेषादिकृतराधिकास्तोत्रं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२४।।

—❀❀❀—

इस प्रकार देवी-देवता तथा अन्य जो वहां आये थे, मुनि तथा मनुगण ने भी भगवती की स्तुति

किया। सभी ने प्रणाम करके भगवती की स्तुति किया। यह देखकर रुक्मिणी आदि सबका मुख लज्जा से नत हो गया। उनके दीर्घनिःश्वास से उन सबके अपने-अपने दर्पण श्वास की भाप से मलिन हो गये। हे नारद! अब भोजन रहित उपवासी क्षीणकटि वाली सत्यभामा ने (राधा का यह गौरव देखकर) मृतवत् अपना अभिमान त्याग दिया।।१०९-१११।।

।।१२४वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

महादेव द्वारा वसुदेव को उपदेश, वसुदेव द्वारा राजसूय यज्ञानुष्ठान

नारद उवाच

गणेशपूजनादेव राधास्तोत्रात्परं विभो। बभूव किं रहस्यं वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं–वहां पर गणेशपूजन तथा राधास्तोत्र के उपरान्त जो रहस्यमय घटना घटित हो गई, कृपया उसे कहिये।।१।।

नारायण उवाच

गणेशपूजने तीर्थे ये देवाश्च समाययुः। मुनयश्चापि योगीन्द्रा वसन्तो वटमूलके ।।२।।
वसुदेवो देवकी च परमादरपूर्वकम्। पप्रच्छ शंभुं ब्रह्माणमनन्तं मुनिपुङ्गवान्।।३।।
भवेद्भवाब्धितरणमावयोरुत्तमा गतिः। शीघ्रं ब्रूत महाभागा दीनयोर्दीनबान्धवाः।।४।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–इस तीर्थ में गणेश की पूजा में अलक्ष्य रूप में जो सभी देवता, मुनि, योगीन्द्र आये थे, वे सभी लोग उस वटवृक्ष के नीचे निवास कर रहे थे। उस समय वसुदेव तथा देवकी ने परम आदर के साथ श्रीशंभु, अनन्त, ब्रह्मा तथा मुनिपुंगवगण से पूछा–"हे महाभाग! देववृन्द! मुनिसत्तमगण! हम दोनों दीनभाव से आप दीनबन्धु लोगों से पूछते हैं कि हमारी उत्तम गति कैसे हो? हम इस संसार-सागर से कैसे उत्तीर्ण हो सकेंगे? कृपा पूर्वक शीघ्र कहें।।२-४।।

भवाब्धितरणे तर्या तत्र यूयं च नाविकाः।
न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।।५।।

यज्ञरूपाणि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च। तपांसि नानादानानि विप्रदेवार्चनानि च।।६।।

चिरं पुनन्ति सर्वाणि दर्शनादेव वैष्णवाः। सतां च विष्णुभक्तानां रजसां स्पर्शमात्रतः॥७॥ पूतानां पादपद्मानां सद्यः पूता वसुंधरा। तीर्थानि च पवित्राणि समुद्राः पर्वतस्तथा॥८॥ सुरा दर्शनमिच्छन्ति पातकेन्धनपावकम्। सोऽज्ञानि नैव बुबुधे ज्ञानं च ज्ञानिना सह॥९॥ परमं स्वादुरूपं च दधिदुग्धरसं यथा। यथा कृष्णस्य तातोऽहं सङ्गी सुचिरमेव च॥१०॥ तथैव देवकी माता ज्ञानिनां च गुरोर्गुरोः। वसुदेववचः श्रुत्वा प्रहस्य शङ्करः स्वयम्।
चतुर्णामपि वेदानामुवाच जनको गुरुः॥११॥

आप लोग भवसागर पार कराने वाली नौका के नाविक हैं। तीर्थ जल का ही नाम नहीं है। देवता भी मृत्तिका तथा शिलामय ही होते। यज्ञादि पुण्यकर्म, उपवासादि व्रतानुष्ठान,तप, अनेक प्रकार के दान, विप्र-ब्राह्मणसेवा, ये भी पुण्यकर्म दीर्घ काल तक सम्यक् अनुष्ठान द्वारा कर्त्ता को पावन कर पाते हैं, तथापि वैष्णव के दर्शन मात्र से व्यक्ति पवित्र हो जाता है। साधु वैष्णवों के पवित्र चरणकमलों की धूल के स्पर्शमात्र से धरती पावन हो जाती है तथा तीर्थ, समुद्र, पर्वत तक पवित्र हो जाते हैं। यहां तक की देवता भी ऐसे वैष्णवों के दर्शन की कामना करते रहते हैं जो पापरूपी काष्ठ का दहन करने वाले अग्नि के समान हैं। जो व्यक्ति ज्ञानी का साथ करके भी ज्ञान को नहीं जान सका, वह अज्ञानी है। जैसे दधि तथा दुग्ध स्वादिष्ट है, उसी प्रकार ज्ञान भी परम स्वादु है। हे ज्ञानीगण के गुरुओं के भी गुरु! मैं श्रीकृष्ण का पिता तथा दीर्घकाल से कृष्ण के साथ हूं (तथापि उन महाज्ञानी कृष्ण के साथ रहकर भी मैं तथा देवकी ज्ञान को नहीं जान सकीं)। इसी प्रकार देवकी कृष्ण की माता है।" वसुदेव का वचन सुनकर चारों वेदों के जनक तथा गुरुरूप शंकर ने हंसते हुये कहा-।।५-११।।

महादेव उवाच

सन्निकर्षो ज्ञानिनां चाप्यनादरणकारणम्।
यान्ति गङ्गाम्भसा पूतास्तीर्थान्यन्यानि सिद्धये॥१२॥
वासुदेवस्य तातोऽयं वसुदेवश्च पण्डितः।
ज्ञानिनः कश्यपस्यांशो वसोस्तातस्य चाऽऽत्मनः॥१३॥
पृच्छति ज्ञानमस्मांश्च कृष्णाज्ज्ञान्पुत्रबुद्धितः।
अहो दुर्गा महामाया ज्ञानिनामपि मोहिनी॥१४॥
विष्णुमाया दुराराध्या न साध्या जगतामपि।
वयं च मोहिताः शश्वद्वेदानां जनकस्तथा॥१५॥
ब्रह्मा कृष्णं परीक्षेत मोहितस्तस्य मायया।
ध्यायते यत्पदाम्भोजं तपसा जीवनावधि॥१६॥

इन्द्रेषु दशलक्षेष्वप्यधिकाष्टशतेषु च। पातेषु ब्रह्मणः पाते निमेषो माधवस्य च॥१७॥

श्रीमहादेव कहते हैं–ज्ञानियों का सन्निकर्ष होना भी ज्ञान के अनादर का कारण है; (क्योंकि अधिक समीप रहने वाले के प्रति लोग आदर नहीं करते)। जिस प्रकार गंगा जल से पवित्र हो गये लोग शुद्धि हेतु अन्य तीर्थ जाते हैं। परमात्मा वासुदेव के पिता विद्वान् हैं। इनका जन्म वसुरूप ज्ञानी से कश्यप के अंश से जन्मे वसु से हुआ है। इनकी कृष्ण के प्रति पुत्रबुद्धि है। तभी वसुदेव कृष्ण को न जानकर हम लोगों से ज्ञानोपदेश पूछ रहे हैं। अहो! मोहवती माया ज्ञानियों में भी मोह उत्पन्न करती है। इसे पार नहीं किया जा सकता। भगवती विष्णुमाया जगत् में असाध्य हैं। हम सभी देवताओं के भी जनक हैं, तथापि इस विष्णुमाया से मुग्ध हो जाते हैं। ब्रह्मा जो वेदों के जनक हैं, जीवनपर्यन्त तपःश्चरण से जिन श्रीकृष्ण के चरणकमल का वे ध्यान करते हैं उन्होंने भी माया मोहित होकर कृष्ण की परीक्षा लिया था! जब १० लाख आठ सौ इन्द्रों का क्रमशः जीवन समाप्त हो जाता है, उतनी ब्रह्मा की आयु है। ब्रह्मा का पूर्ण आयुकाल माधव का एक निमेष मात्र है।।१२-१७।।

सह [1]तेनेन्द्रयुद्धं च पारिजातस्य हेतुना। पारिजाततरुं दत्त्वा मया शक्रश्च रक्षितः॥१८॥

यज्ज्ञानं[2] न गिरामेव तत्त्वं वा विषयात्मकम्।
नहि किञ्चित्तदज्ञानां तस्माद्ध्यानं सदैव हि॥१९॥

ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के साथ इन्द्र ने पारिजात वृक्ष हेतु युद्ध किया। तब मैंने पारिजात वृक्ष श्रीकृष्ण को देकर इन्द्र की रक्षा किया। ज्ञानतत्व ऐसा विषय है, जो वाणी से परे है। वाणी से कहने पर वह अज्ञ लोगों को समझ में ही नहीं आयेगा। अतः व्यक्ति सदा ध्यान ही करे।।१८-१९।।

प्राणिनामात्मनो ज्ञानमस्माकं ज्ञानमस्ति च।
तदूर्ध्वं तत्समं नैव कृष्णं पृच्छ शुभाशुभम्॥२०॥
ब्रह्मणश्च चतुर्यामं कल्पं कल्पविदो विदुः।
सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयो महामुनिः॥२१॥

अष्टानवतिशक्रेषु पातेषु पतनं मुनेः। [3]ततः प्राप्तं हरेर्दास्यं मुनिना तपसः फलात्॥२२॥

प्रलये ब्रह्मणः पाते पतनं लोमशस्य च।
दिक्पालानां ग्रहाणां च तदायुश्चिरजीविनाम्॥२३॥
अन्येषामपि देवानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
तदेवाऽऽयुश्च रुद्राणां मां च मृत्युञ्जयं विना॥२४॥
प्रलये च विधेः पाते शिवलोकेऽप्यहं शिवः।
ब्रह्मभालोद्भवः शंभुः सर्वादिः[4] गर्गभाषणः॥२५॥

---

१. ख. देवेन्द्र०।
२. ०ज्ञानात्साध्यानां च।
३. क. तपः।
४. क. ०दिगंर्भभाषणम्।

मुझे प्राणीगण की आत्मा ज्ञान है। लेकिन उससे ऊर्ध्व का तथा श्रीकृष्ण के समान ज्ञान मुझे नहीं है। अतः समस्त शुभाशुभ श्रीकृष्ण से पूछिये। ब्रह्मा का चार प्रहर एक कल्प होता है। ऐसे ७ कल्प का जीवन महामुनि मार्कण्डेय का है। ९८ इन्द्रों का आयुशेष काल ही मार्कण्डेय की आयु है। इन मुनि ने तपःश्चरण द्वारा कृष्ण का दासत्व लाभ किया था। जब महाप्रलयकाल में ब्रह्मा की आयु समाप्त हो जाती है, तब लोमश ऋषि की आयु समाप्त होती है। दिक्पालों तथा ग्रहों का भी पतन होता है। उनके बराबर ही आयु चिरजीवी लोगों की कही गयी है। अन्य मुनिगणों की तथा ऊर्ध्वरेता मुनियों की तथा मुझे छोड़कर शेष रुद्रों की भी वही आयु है। जब महाप्रलय में ब्रह्मा का पतन हो जाता है, तब मैं शिवलोक जाता हूं। मैं शिव ब्रह्मा के ललाट से उत्पन्न होता हूं। शिव ही सबके आदि कहे गये हैं। यह ऋषि गर्ग का वचन है।।२०-२५।।

कृष्णवामाङ्गसम्भूता यथा राधा तथैव च।
तथैव दुर्गा लक्ष्मीश्च सावित्री च सरस्वती॥२६॥
आदित्योऽप्यदितेः पुत्रः कायव्यूहेन द्वादश। तथैव च महेन्द्रश्च कायव्यहाच्चतुर्दश॥२७॥
तथैव वसवश्चाष्टौ रुद्राश्चैकादशैव ते। मनुपाते चेन्द्रपातो विषयात्पतनं भवेत्॥२८॥
समाययौ च सर्वेषां निधनं प्रलयेऽपि च। प्रलये दर्शयामा ब्रह्माण्डं च जलप्लुतम्॥२९॥
ब्रह्माणं च स्वलोकं च स्वात्मानं शक्तिभिश्च माम्।
सर्वेषां मूलरूपश्च सर्वेशः कृष्ण एव च॥३०॥

इसी प्रकार राधा कृष्ण के वामभाग से उत्पन्न हैं। तदनुरूप दुर्गा-लक्ष्मी-सावित्री-सरस्वती भी उत्पन्न हैं। कायव्यूंह भेद के कारण अदिति पुत्र आदित्य १२ हो गये। इन्द्र भी कायव्यूह भेद से चतुर्दश कहे गये। इसी कायव्यूह भेद द्वारा अष्टवसु तथा एकादशरुद्र हो गये। मनु का समय समाप्त होने पर उस काल के इन्द्र का भी पतन होता है। पतन शब्द का तात्पर्य है अधिकार से च्युत होना। अन्यथा सबकी आयु समान है। इनका प्रलय में एक साथ निधन होता है। प्रलयकाल में भगवान् ने समस्त ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा, स्वलोक, स्वयं को, शक्तियों को तथा मुझ महादेव को जल से आप्लावित करके प्रत्यक्ष दिखाया। कृष्ण ही सबके मूल तथा सर्वेश हैं।।२६-३०।।

भजं पुत्रं राजसूये यज्ञेशं यज्ञकारणम्। विधिवद्दक्षिणां दत्त्वां भवाब्धिं तर यादव॥३१॥
मुक्तिस्ते नास्ति निर्वाणा विषयी कश्यपो भवान्।
न ते दास्यं भक्तधनमदितिर्देवकी तथा॥३२॥
व्रज स्वर्गं भोगबीजं स्वस्थानममरालयम्। शिवस्य वचनं श्रुत्वा संयतश्च शुभक्षणे॥३३॥
तत्र संभृतसंभारो राजसूयं चकार सः। वसुदेवस्य हव्यं च साक्षाच्च जगृहुः सुराः॥३४॥
यत्र साक्षाच्च यज्ञेशो यज्ञोऽयं दक्षिणा सह। पूर्णाहुतिं दत्तवन्तं वसुदेवमुवाच सः।
सनत्कुमारो भगवान्वासुदेवाज्ञया मुने॥३५॥

"हे वत्स! इस कारण राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करके इन यज्ञेश्वर तथा यज्ञबीज अपने पुत्र कृष्ण का भजन करो। हे यादव! यज्ञान्त में सविधि दक्षिणा देकर भवसागर से पार हो जाओ। आपको निर्वाण मोक्ष नहीं मिलेगा; क्योंकि आप विषयी कश्यप हैं। भक्त का परमधन दास्य आपको प्राप्त नहीं होगा। ये देवी देवकी ही देवमाता अदिति हैं। अतः आपको तथा देवकी को भोगबीज स्वर्गलाभ होगा। वही आपका स्वस्थान है। वह देवताओं का आलयस्थान है।" शिव का उपदेश सुनकर संयत वसुदेव ने शुभक्षण में विपुल संभार सामग्री के साथ राजसूय यज्ञ किया। इस यज्ञ में वसुदेव प्रदत्त हव्य देवगण ने साक्षात् प्रकट होकर ग्रहण किया। वहां साक्षात् यज्ञेश थे तथा दक्षिणा सहित यज्ञ सम्पन्न हुआ। जब पूर्णाहुति दे दी गई तब सनत्कुमार ने श्रीकृष्ण की आज्ञानुरूप वचन वसुदेव से कहा–।।३१-३५।।

सनत्कुमार उवाच

सर्वस्वं दक्षिणां देहि तूर्णं लक्ष्मीपतेः पितः। सार्थकं कुरु कर्मेदं वेदोक्तं वचनं शृणु।।३६।।

दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य तत्कालं चेन्न दीयते।
मुहूर्ते तु व्यतीते सा दक्षिणा द्विगुणा भवेत्।।३७।।

वासरे च बहिर्भूते भवेत्साऽपि चतुर्गुणा। त्रिरात्रे समतीते षड्गुणा दक्षिणा भवेत्।।३८।।

पक्षान्ते तु शतगुणा मासान्ते तु चतुर्गुणा।
षण्मासेऽप्यधिके न्यूने च साहस्रगुणा तथा।।३९।।

वर्षान्ते सा लक्षगुणा ब्रह्मणोक्तं च यादव। उभौ च नरकं यान्तः कर्मकर्तृपुरोहितौ।।४०।।

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं–हे लक्ष्मीपति कृष्ण के पिता! आप सबको तत्काल दक्षिणा देकर अपना यज्ञ सार्थक करें। अब वेदोक्त वचन सुनिये। ब्राह्मण के उद्देश्य से दक्षिणा तत्काल प्रदान करें। एकमुहूर्त्त बीतते ही दक्षिणा दूनी हो जाती है। एक दिन व्यतीत होने पर चतुर्गुण, तीन रात्रि व्यतीत होने पर षड्गुण, एक पक्ष बीतने पर शतगुण, १ मास व्यतीत होने पर चतुःशतगुणित वह दक्षिणा बढ़कर हो जाती है। छह मास तक व्यतीत होने पर वह सहस्रगुणित तथा १ वर्ष व्यतीत होने पर लक्षगुणित हो जाती है। इससे अधिक समय व्यतीत होने पर कर्म कर्त्ता तथा पुरोहित नरकगामी होते हैं। यह ब्रह्मा का वचन है।।३६-४०।।

वासुदेवश्च तच्छ्रुत्वा सर्वस्वमुत्ससर्ज सः। अधिकारांश्च साह्लादो वासुदेवाज्ञया तथा।।४१।।

अमूल्यानां च रत्नानां दशकोटिमनुत्तमाम्।
ददौ गर्गाय सर्वादौ स्वयं लक्ष्मीपतेः पिता।।४२।।

शतकोटिं मणीन्द्राणां स्वर्णानां तच्चतुर्गुणम्।
माणिक्यानां च मुक्तानां हीरकाणां तथैव च।।४३।।

रौप्यं प्रवालं परमं स्वर्णपात्राणि यानि च। स्वस्त्रीणां स्ववधूनां चाप्यमूल्यरत्नभूषणम्।।४४।।

श्वेतचामरलक्षं च लक्षं च रत्नदर्पणम्। कामधेनुगणं सर्वं शतकोटिं गजानपि॥४५॥
शतकोटिं गजेन्द्राणामश्वानां तच्चतुर्गुणम्। यद्धनं यादवानां च राज्ञो राजानुमोदनात्॥४६॥

ग्रामाणां शतलक्षं च ससस्यं फलितं तरुम्।
धान्याचलानां लक्षं च शाल्यन्नानां तथैव च॥४७॥
पायसं पिष्टकं चैव मिष्टान्नं च सुधोपमम्।
स्वस्तिकानां तिलानां च रम्याणि लड्डुकानि च॥४८॥
दध्नां मधूनां दुग्धानां गुडानां हविषामपि।
कुल्यानां शतकं दत्त्वा परिहारं चकार सः॥४९॥

सनत्कुमार का उपदेश सुनकर वसुदेव ने कृष्ण के आदेश से सहसा प्रसन्नता पूर्वक अपना सर्वस्व प्रदान किया। वसुदेव ने सर्वप्रथम मुनिवर गर्ग को अत्युत्तम १० करोड़ रत्न, सौ करोड़ उत्तम मणि, उसका चौगुना स्वर्ण, माणिक्य, मुक्ता, हीरा, चांदी, प्रवाल, सभी प्रकार के स्वर्ण पात्र, अपनी स्त्रियों तथा पुत्र-वधुओं के अमूल्य रत्नाभरण, एक लाख श्वेत चामर, इतने ही संख्या में रत्न दर्पण, कामधेनु का झुण्ड, सौ कोटि गज, चार सौ कोटि अश्व, यादवों का धन, राजा उग्रसेन की स्वीकृति से उनका धन, समस्त धान्य, सौ लक्ष ग्राम, फलित वृक्ष, १ लक्ष धान्य पर्वत, उतनी संख्या में कोमल अन्न पर्वत क्षीर, अमृतवत् मिष्ठान्न, स्वस्तिक, तिलयुक्त लड्डू, दधि-मधु-दुग्ध-गुड़-घी की सैकड़ों सरितायें प्रदान करके क्षमा प्रार्थना किया।।४१-४९।।

सकर्पूरं च ताम्बूलं सुशीतं वासितं जलम्।
सुगन्धि चन्दनं चैव पारिजातस्य मालिकाम्॥५०॥
आसनानि च रम्याणि वह्निशुद्धांशुकानि च।
रत्ननिर्माणतल्पानि पुष्पाणि च फलानि च॥५१॥

प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च प्रफुल्लवदनेक्षणः। देवांश्च भोजयामास ब्राह्मणानां मुखैः शुभैः॥५२॥

कर्पूरयुक्त सुवासित ताम्बूल, शीतल सुगन्धित जल, सुगन्धित चन्दन, पारिजात पुष्पों की माला, रम्य आसन, अग्निशुद्ध वस्त्र, रत्ननिर्मित शय्या, पुष्प, फल ब्राह्मणों को प्रसन्नता पूर्वक प्रदान किया। उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन कराया, जिनके शुभ मुख से देवगण को प्राप्त हो गया॥५०-५२॥

देवाश्च मुनयो रात्रौ स्वरामाभिश्च रेमिरे। प्रभाते प्रययुः सर्वे श्रीकृष्णानुमतेन च॥५३॥

यादवाः प्रययुः सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम्।
अमूल्यरत्नपूर्णां च रुक्मिणीदर्शनेन च॥५४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२५॥

—✻✻✻—

रात्रि में देवताओं, मुनियों ने अपनी-अपनी पत्नी के साथ रतिक्रीड़ा किया। प्रातः श्रीकृष्ण से आज्ञा लेकर सब लोग वहां से स्वस्थान चले गये। रुक्मिणी (लक्ष्मी) की दृष्टि पड़ने से अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण तथा कृष्णरक्षित द्वारिकापुरी की ओर सभी यदुवंशी लोगों ने प्रयाण किया।।५३-५४।।

।।१२५वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

राधाकृष्ण का पुनर्मिलन, राधाकृत् कृष्णस्तव, श्रीकृष्ण से राधिका का प्रश्न, कृष्ण द्वारा राधा को ज्ञानोपदेश

नारायण उवाच

गणेशपूजनं कृत्वा माधवो यादवैः सह। देवैर्मुनिभिरन्यैश्च देवीभिः सह नारद॥१॥
अंशेन देवो देवीभी रुक्मिण्याद्याभिरेव च। प्रययौ द्वारकां रम्यां तस्थौ सिद्धाश्रमे स्वयम्॥२॥

कृत्वा सुप्रीतिसंभाषां सार्धं गोकुलवासिभिः।
गोपैः सुहृद्भिर्नन्देन मात्रा गोप्या यशोदया॥३॥
उवाच मातरं तातं सुनीतं च यथोचितम्।
गोपांश्च गोकुलस्थांश्च बन्धुवर्गांश्च साम्प्रतम्॥४॥

नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! इस प्रकार श्रीकृष्ण ने यादवों, देवताओं, मुनिगण तथा अन्य व्यक्तियों सहित गणपति पूजन सम्पन्न किया। वे अपने एक अंश से ही रुक्मिणी आदि के साथ रमणीय द्वारका चले गये, परन्तु वे स्वयं साक्षात् रूप से सिद्धाश्रम ही ठहरे थे। उस समय उन्होंने वहां गोकुलवासी गोप-गोपीगण से नन्दराज तथा माता यशोदा के साथ प्रेममय वार्त्तालाप किया। तदनन्तर उन्होंने माता-पिता, गोकुल के गोपों तथा बन्धुगण से यथोचित वचन कहा-।।१-४।।

श्रीभगवानुवाच

गच्छ नन्दव्रजं नन्द हे तात प्राणवल्लभ। मातर्यशोदे त्वमपि परमार्ये[1] यशस्विनि॥५॥

भुक्त्वा कालावशेषं च गच्छ गोलोकमुत्तम[2]।
सालोक्यमुक्तिं दास्यामि सार्धं गोकुलवासिभिः॥६॥

१. क. ०मार्थे०।
२. ख. गोकुलमु०।

श्रीभगवान् कहते हैं–हे नन्दराज! हे तात प्राणवल्लभ! अब आप व्रजधाम जायें। हे परमार्या यशस्विनी माता यशोदा! आप भी वहां जायें। वहां शेष–आयु का भोग करके आपको समस्त गोकुल वासीगण के साथ सालोक्य मुक्ति मिलेगी तथा आप लोग गोलोक जायेंगे।।५–६।।

इत्युक्त्वा भगवान्कृष्णः पित्रोरनुमतेन च। जगाम राधिकास्थानं नन्दश्च गोकुलं तथा।।७।।
ददर्श राधां रुचिरां मुक्ताहारां च सस्मिताम्। यथा द्वादशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।।८।।
रत्नोच्चै रासनस्थां च गोपीत्रिशतकोटिभिः।
आवृतां वेत्रहस्ताभिः सस्मिताभिश्च साम्प्रतम्।।९।।

यह कहकर श्रीकृष्ण माता–पिता की आज्ञा से राधिका के यहां चले गये और नन्दराज सबके साथ गोकुल गये। राधिका के यहां पहुंचकर श्रीकृष्ण ने वहां मुक्ताहारधारिणी, मन्दमुस्कान युक्त स्थिर यौवना सुन्दरी राधा को देखा जो सदा द्वादशवर्षीया लगती है। वे उच्च रत्नासन पर आसीन थीं। वे असंख्य गोपियों से घिरी थी, जो सभी मन्द मुस्कानयुक्त तथा हाथों में बेंत लिये थीं।।७–९।।

दृष्ट्वा च दूरतो राधा श्रीकृष्णं प्राणवल्लभम्।
शिशुवेषं सुवेषं[1] च सुन्दरेशं च सस्मितम्।।१०।।
नवीनजलदश्यामं पीतकौशेयवाससम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्।।११।।
मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यशोभितम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहविग्रहम्।।१२।।

देवी राधा ने दूर से आते प्राणवल्लभ कृष्ण को देखा। उनका वर्ण नवजलधर श्याम था। वे परमसुन्दर, शिशुवेषधारी, हंसते हुये मुख वाले, पीत कौशेय पहने हुये थे। उनका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित था। वे रत्नभूषण भूषित थे। उनको मयूरपुच्छ से शोभित जूड़ा मालती माला से गुंथा था। वे मन्द मुस्कान युक्त प्रसन्न मुख थे। वे भक्तों पर कृपा करने के लिये शरीरधारी होते हैं।।१०–१२।।

क्रीडाकमलमम्लानं धृतवन्तं मनोहरम्। मुरलीहस्तविन्यस्तं सुप्रशस्तं च दर्पणम्।।१३।।
जवेन च समुत्थाय गोपीभिः सह सादरम्।
प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टाव परमेश्वरम्।।१४।।

उन्होंने कभी न मुरझाने वाला मनोहर क्रीड़ाकमल हाथों में लिया था। उनके हाथों में मुरली थी तथा उत्तम दर्पण हाथों में था। उनको समागत देखते ही राधा सभी गोपीगण के साथ उठ गईं। वे परमभक्ति के साथ परमात्मा कृष्ण को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगीं।।१३–१४।।

राधिकोवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।
यद्दृष्ट्वा मुखचन्द्रं ते सुस्निग्धं लोचनं मनः।।१५।।

१. क. च सुलभं।

राधिका कहती हैं–आज मेरा जीवन तथा जन्म सफल हो गया; क्योंकि आज मैंने आपके मुखचन्द्र का दर्शन पा लिया तथा मेरे नेत्र अत्यन्त हर्षित हो गये।।१५।।

पञ्च प्राणाश्च स्निग्धाश्च परमात्मा च सुप्रियः। उभयोर्हर्षबीजं च दुर्लभं बन्धुदर्शनम्॥१६॥
शोकार्णवे निमग्नाऽहं प्रदग्धा विरहानलैः।
त्वद्दृष्ट्याऽमृतवृष्ट्या च सुसिक्ताऽद्य सुशीतला॥१७॥
शिवा शिवप्रदाऽहं च शिवबीजा त्वया सह।
शि (श) व स्वरूपा निश्चेष्टाऽप्यदृश्या च त्वया विना॥१८॥
त्वयि तिष्ठति देहे च देही श्रीमाञ्छुचिः स्वयम्।
सर्वशक्तिस्वरूपा च शिवरूपा गते त्वयि॥१९॥

मेरे पंचप्राण स्निग्ध हो गये। परमात्मा शीतल हो गये (?)। इन दोनों को (प्राण तथा नेत्र को) आनन्द देने वाले आप श्रीकृष्ण आनन्दधाम बन्धु का साक्षात्कार अतीव दुर्लभ है। मैं वियोगाग्नि में दग्ध तथा शोक सागर में निमग्न थी। परन्तु आज आपकी अमृत वर्षिणी दृष्टि के कारण सिक्त होकर सुशीतल हो गई। हे मंगलनिधान! आपके साथ से ही मैं कल्याणमयी तथा मंगलप्रदा हो जाती हूं। आपका संग रहित होते ही मैं चेष्टा रहित, शव के समान तथा अस्पृश्या हो जाती हूं। जब आप शरीर में (आत्मा रूप से) विद्यमान रहते हैं, तभी देहधारी श्रीमान् तथा पवित्र होता है। जब आप सर्वशक्तिमान् देह से निकल जाते हैं, तब देही शवरूप हो जाता है।।१६-१९।।

स्त्रीपुंसोर्विरहो नाथ सामान्यश्च सुदारुणः।
यान्त्येव शक्तिभिः प्राणा विच्छेदात्परमात्मनः॥२०॥
इत्युक्त्वा राधिका देवी परमात्मानमीश्वरम्।
स्वासने वासयामास कृत्वा पादार्चनं मुदा॥२१॥
रत्नसिंहासने श्रीमानुवास राधया सह। गोपीभिः सप्तभिः शश्वत्सेवितः श्वेतचामरैः॥२२॥

हे नाथ! स्त्री-पुरुष का सामान्य विरह अत्यन्त दारुण प्रतीत होता है, तथापि जब देहस्थ परमात्मा का वियोग होता है, तब समस्त शक्ति तथा देहस्थित प्राण भी चले जाते हैं। देवी राधा ने तब परमात्मा परमेश्वर का यह स्तव करके आनन्द पूर्वक परमेश्वर कृष्ण के चरणकमल की पूजा करके अपने आसन पर उनको बैठा लिया। श्रीमान् कृष्ण राधिका के साथ उस रत्नसिंहासन पर बैठ गये। सातों गोपियां श्वेत चामर झलती निरन्तर उनकी सेवा में निरत थीं।।२०-२२।।

चन्दना सा ददौ गात्रे सुगन्धि चन्दनं हरेः।
सस्मिता रत्नमाला सा रत्नमालां गले ददौ॥२३॥
पद्मैः पद्मार्चिते पादपद्मे पादपद्मे पद्मावती सती।
अर्घ्यं ददौ सा सजलं दूर्वां पुष्पं च चन्दनम्॥२४॥

मालती मालतीमाल्यं चूडायां च हरेर्ददौ। चम्पापुष्पस्य पुटकं ददौ चम्पावती सती॥२५॥

श्रीहरि के शरीर में सुगन्ध चन्दन सखी चन्दना ने लिप्त किया। रत्नमाला सखी ने मन्द मुस्कान के साथ कृष्ण के कण्ठ में रत्नों की माला पहना दिया। सती पद्मावती सखी ने कमल से भगवान् के दोनों चरणकमल की अर्चना किया। उसने जल-दूर्वा-पुष्प-चन्दन से श्रीकृष्ण को अर्घ्य भी प्रदान किया। सखी मालती ने कृष्ण के केशपाश में मालती की माला लगा दिया। सती चम्पावती सखी ने चम्पा पुष्पों का गुलदस्ता श्रीकृष्ण को अर्पित किया।।२३-२५।।

पारिजाता च हरये पारिजातं ददौ मुदा। सकर्पूरं च ताम्बूलं वासितं शीतलं जलम्॥२६॥

ददौ कदम्बमाला सा कदम्बमालिकां शुभाम्।
क्रीडाकमलमम्लानममूल्यं रत्नदर्पणम्॥२७॥

ददौ हस्ते हरेरेव कमला सा सुकोमला। वरुणेन पुरा दत्तं वस्त्रयुग्मं च सुन्दरम्॥२८॥
साक्षाद्गोरोचनाभं च सुन्दरी हरये ददौ। मधुपात्रं मधुस्तस्मै मधुरं मधुपूर्णकम्॥२९॥

सखी पारिजाता ने हरि को मुदिन मन से पारिजात पुष्प अर्पित किया। उसने कर्पूरयुक्त ताम्बूल तथा सुवासित शीतल जल भी प्रदान किया। कदम्बमालिका सखी ने शुभ कदम्बमाला श्रीकृष्ण को अर्पित किया। सुकोमला सखी कमला ने अम्लान क्रीड़ा कमल तथा अमूल्य रत्नदर्पण श्रीकृष्ण को भेंट किया। सुन्दरी नामक सखी ने कृष्ण को सुन्दर वस्त्रों का वह जोड़ा प्रदान किया, जो साक्षात् गोरोचन की आभावाला तथा पूर्वकाल में वरुण द्वारा दिया गया था। मधु नामक सखी ने मधुपात्र को मधुर मधु से भरकर श्रीहरि को प्रदान किया।।२६-२९।।

सुधापूर्णं सुधापात्रं ददौ भक्त्या सुधामुखी।
चकार पुष्पशय्यां च गोपी चन्दनचर्चिताम्॥३०॥

अम्लानमालतीपुष्पमालाजालविभूषिताम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माणमन्दिरे सुमनोहरे॥३१॥

सखी सुधामुखी ने सुधापूर्ण सुधापात्र भक्ति पूर्वक श्रीकृष्ण को देकर एक गोपी ने वहां चन्दन चर्चित पुष्पशैय्या का निर्माण किया। वह शय्या खिले हुये मालती पुष्पों की मालाओं से सज्जित थी। वह शय्या रत्नेन्द्र सार से बने मनोहर भवन में रखी गयी।।३०-३१।।

मुनीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारविभूषिते। कस्तूरीकुङ्कमाक्तेन वायुना सुरभीकृते॥३२॥
रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्भिश्च सुदीपिते। धूपिते सततं धूपैर्नानावस्तुसमन्वितैः॥३३॥

कृत्वा शय्यां रतिकरीं ययुर्गोप्यश्च सस्मिताः।
दृष्ट्वा रहसि तल्पं च सुरम्यं सुमनोहरम्॥३४॥

वह भवन मणीन्द्रों, मुक्ताओं-माणिक्य तथा हीरक हार से भूषित था। वह भवन कस्तूरी तथा कुंकुम से सुरभित वायु से सुगन्धित था। वहां रत्नमय सैकड़ों दीप सुदीपित रहते थे नाना वस्तु से युक्त धूप से वह भवन सतत् धूपित किया जाता था। वहां सुन्दर रतिप्रदा रखकर गोपियां वहां से

मुस्कराते हुये चली गईं। तदनन्तर माधव ने वहां एकान्त में रखी गयी रम्य तथा मनोहर शय्या को देखा।।३२-३४।।

माधवो राधया सार्धं विवेश रतिमन्दिरम्। नानाप्रकारहास्यं च परिहासं स्मरोचितम्।।३५।।
द्वयोर्बभूव तल्पे च मदनातुरयोस्तथा।
माल्यं ददौ च कृष्णाय ताम्बूलं च सुवासितम्।।३६।।

उस समय माधव ने राधा के साथ उस रतिमंदिर में प्रवेश किया। माधव तथा राधा नाना प्रकार का हास-परिहास करते हुये जो कामप्रसंगोचित था मदनातुर होकर उस शय्या पर बैठ गये। राधा ने श्रीकृष्ण को सुवासित ताम्बूल तथा माला प्रदान किया।।३५-३६।।

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च चन्दनं श्यामवक्षसि। चारु चम्पकपुष्पं च चूडायां प्रददौ सती।।३७।।
सहस्रदलससंक्तक्रीडापद्मं करे ददौ। प्रक्षिप्य मुरलीं हस्तात्प्रददौ रत्नदर्पणम्।।३८।।
पारिजातस्य कुसुममम्लानंपुरतो ददौ। उवाच मधुरं राधा रहस्ये मधुरं वचः।
सस्मिता सस्मितं शान्तं कान्तं कान्ता मनोहरम्।।३९।।

सती राधा ने कस्तूरी-कुंकुम मिश्रित चन्दन श्याम के वक्षस्थल पर लगाकर उत्तम चम्पक पुष्पों को उनके केश-पाश में लगाया। राधा ने सहस्रदल क्रीड़ापद्म उनके एक हाथ में देकर उनके दूसरे हाथ स्थित उनकी मुरली फेंककर उसमें रत्नदर्पण दे दिया। उनके सामने अम्लान पारिजात पुष्प रख दिया। उस समय हंसती हुई प्रेयसी राधिका अपने सुमधुर शान्त प्रकृति, हंसमुख, सुन्दर प्रिय माधव से हास्यमय बातें कहने लगीं। उन्होंने प्रियतम से मधुर वाक्य कहे।।३७-३९।।

राधिकोवाच

निष्फलं मङ्गलप्रश्नं मङ्गले मङ्गलालये। सर्वमङ्गलबीजे च माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे।।४०।।
तथाऽपि कुशलप्रश्ने साम्प्रतं समयोचितम्।
लौकिको व्यवहारोऽपि वेदेभ्यो बलवांस्तथा।।४१।।
कुशलं रुक्मिणीकान्त सत्यभामेश साम्प्रतम्।
महेन्द्रेण समं युद्धं लीलया च यदाज्ञया।।४२।।
पारिजाततरुं स्वर्गादुत्पाट्य चामरावतीम्।
गत्वा विजित्य देवांश्च तस्यै दत्तमिति श्रुतम्।।४३।।

देवी राधिका कहती हैं—आप मंगल के आश्रय स्थल हैं। आप तो समस्त मंगल के कारणरूप बीजरूप हैं। आप स्वयं मंगलरूप तथा मंगलप्रद हैं। आप से मंगल (कुशल) प्रश्न करना तो व्यर्थ है, तथापि समयोचित कुशलप्रश्न (लोकव्यवहारार्थ) करती हूं। लौकिक व्यवहार वैदिक व्यवहार से भी बली माना गया है। हे रुक्मिणीकान्त! सत्यभामा के पति! इस समय आप कुशल पूर्वक तो हैं। आपने

सत्यभामा की आज्ञा से अनायास इन्द्र से युद्ध किया तथा अमरावती में देवताओं पर विजय पाया था। उस समय आप वहां से पारिजात वृक्ष उखाड़ कर लाये तथा उसे सत्यभामा को प्रदान कर दिया, यह मैंने सुना है।।४०-४३।।

पुण्यकं च कृतं तेन पारिजातेन सुव्रतम्।
त्वामेव साध्यं कान्तं च सम्पूर्णे दक्षिणां ददौ॥४४॥
ब्रह्मेशशेषासाध्यस्त्वं तया साध्यः कृतः कथम्।
सर्वाभ्यः कामिनीभ्यश्च सत्यभामां बिभेषि च॥४५॥

उस पारिजात से सत्यभामा ने पुण्यक नामक उत्तम व्रत सम्पन्न किया तदनन्तर दक्षिणा रूप से अपने आराध्य पति आपको ही दे दिया! आप तो ब्रह्मा-शिव एवं अनन्तदेव के भी आराध्य हैं। आप सत्यभामा के साध्य, वशीभूत कैसे हो गये? आप सभी भार्याओं में से सत्यभामा से अधिक भयभीत क्यों रहते हैं?।।४४-४५।।

रुक्मिण्यां प्रेमसौभाग्यमतिरिक्तं च गौरवम्।
भयं मान्यं च धन्यायां सत्यायां सततं श्रुतम्॥४६॥
सत्यं जाम्बवतीकान्त वद मां च सुनिश्चितम्।
तासु सर्वासु कान्तासु कस्यास्ते प्रेम चाधिकम्॥४७॥
शृङ्गारे सर्वभावे वा तासु का रसिका परा।
त्वयि स्निग्धा विदग्धा का तासु धन्याऽतिसुव्रता॥४८॥
सा स्त्री भावानुरक्ता या भार्यां पाति पतिश्च सः।
प्रेमातिरिक्तं स्त्रीपुंसोस्त्रैलोक्येषु सुदुर्लभम्॥४९॥

रुक्मिणी के प्रति आपका प्रेम सौभाग्य तथा गौरव अत्यधिक हैं (वे अधिक सौभाग्यमयी तथा गौरवसम्पन्न हैं), तथापि इस धन्या सत्यभामा के प्रति आपका भय तथा आपकी मान्यता भी सतत् सुनी जाती है। हे जाम्बवती पति! यह आप सुनिश्चित बतलायें कि सभी भार्याओं में से आपका प्रेम किसके प्रति सर्वाधिक है? सभी प्रकार की शृंगारमयी क्रीड़ा (रति क्रीड़ा) में कौन भार्या अधिक रसिक है? उन सबमें से वह चतुरा, आपके प्रति स्नेहमयी धन्या, सुव्रता कौन भार्या है? जो स्वामी के प्रति सर्वतोभावेन अनुरक्ता है, वही यथार्थ पत्नी है। जो अपनी स्त्री के प्रति भावानुरक्त तथा स्त्री का पालन करने वाला है, वही यथार्थ पति है। इस प्रकार का प्रेमातिरेक पति-पत्नी में रहना त्रैलोक्य दुर्लभ है।।४६-४९।।

रसिका स्त्री विजानाति सती गुणवती पतिम्।
गुणज्ञं रसिकं शूरं सुशीलं सुरतौ सदा॥५०॥
दूराद्धावति पद्मार्थं मधुलोभान्मधुव्रतः।
भेकस्तत्र हि जानाति तन्मूर्ध्नि पादमुत्सृजेत्॥५१॥

मुस्कराते हुये चली गईं। तदनन्तर माधव ने वहां एकान्त में रखी गयी रम्य तथा मनोहर शय्या को देखा।।३२-३४।।

माधवो राधया सार्धं विवेश रतिमन्दिरम्। नानाप्रकारहास्यं च परिहासं स्मरोचितम्।।३५।।
द्वयोर्बभूव तल्पे च मदनातुरयोस्तथा।
माल्यं ददौ च कृष्णाय ताम्बूलं च सुवासितम्।।३६।।

उस समय माधव ने राधा के साथ उस रतिमंदिर में प्रवेश किया। माधव तथा राधा नाना प्रकार का हास-परिहास करते हुये जो कामप्रसंगोचित था मदनातुर होकर उस शय्या पर बैठ गये। राधा ने श्रीकृष्ण को सुवासित ताम्बूल तथा माला प्रदान किया।।३५-३६।।

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च चन्दनं श्यामवक्षसि। चारु चम्पकपुष्पं च चूडायां प्रददौ सती।।३७।।
सहस्त्रदलससंक्तक्रीडापद्मं करे ददौ। प्रक्षिप्य मुरलीं हस्तात्प्रददौ रत्नदर्पणम्।।३८।।
पारिजातस्य कुसुमम्लानंपुरतो ददौ। उवाच मधुरं राधा रहस्ये मधुरं वचः।
सस्मिता सस्मितं शान्तं कान्तं कान्ता मनोहरम्।।३९।।

सती राधा ने कस्तूरी-कुंकुम मिश्रित चन्दन श्याम के वक्षस्थल पर लगाकर उत्तम चम्पक पुष्पों को उनके केश-पाश में लगाया। राधा ने सहस्त्रदल क्रीड़ापद्म उनके एक हाथ में देकर उनके दूसरे हाथ स्थित उनकी मुरली फेंककर उसमें रत्नदर्पण दे दिया। उनके सामने अम्लान पारिजात पुष्प रख दिया। उस समय हंसती हुई प्रेयसी राधिका अपने सुमधुर शान्त प्रकृति, हंसमुख, सुन्दर प्रिय माधव से हास्यमय बातें कहने लगीं। उन्होंने प्रियतम से मधुर वाक्य कहे।।३७-३९।।

राधिकोवाच

निष्फलं मङ्गलप्रश्नं मङ्गले मङ्गलालये। सर्वमङ्गलबीजे च माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे।।४०।।
तथाऽपि कुशलप्रश्ने साम्प्रतं समयोचितम्।
लौकिको व्यवहारोऽपि वेदेभ्यो बलवांस्तथा।।४१।।
कुशलं रुक्मिणीकान्त सत्यभामेश साम्प्रतम्।
महेन्द्रेण समं युद्धं लीलया च यदाज्ञया।।४२।।
पारिजाततरुं स्वर्गादुत्पाट्य चामरावतीम्।
गत्वा विजित्य देवांश्च तस्यै दत्तमिति श्रुतम्।।४३।।

देवी राधिका कहती हैं—आप मंगल के आश्रय स्थल हैं। आप तो समस्त मंगल के कारणरूप बीजरूप हैं। आप स्वयं मंगलरूप तथा मंगलप्रद हैं। आप से मंगल (कुशल) प्रश्न करना तो व्यर्थ है, तथापि समयोचित कुशलप्रश्न (लोकव्यवहारार्थ) करती हूं। लौकिक व्यवहार वैदिक व्यवहार से भी बली माना गया है। हे रुक्मिणीकान्त! सत्यभामा के पति! इस समय आप कुशल पूर्वक तो हैं। आपने

सत्यभामा की आज्ञा से अनायास इन्द्र से युद्ध किया तथा अमरावती में देवताओं पर विजय पाया था। उस समय आप वहां से पारिजात वृक्ष उखाड़ कर लाये तथा उसे सत्यभामा को प्रदान कर दिया, यह मैंने सुना है।।४०-४३।।

पुण्यकं च कृतं तेन पारिजातेन सुव्रतम्।
त्वामेव साध्यं कान्तं च सम्पूर्णे दक्षिणां ददौ।।४४।।
ब्रह्मेशशेषासाध्यस्त्वं तया साध्यः कृतः कथम्।
सर्वाभ्यः कामिनीभ्यश्च सत्यभामां बिभेषि च।।४५।।

उस पारिजात से सत्यभामा ने पुण्यक नामक उत्तम व्रत सम्पन्न किया तदनन्तर दक्षिणा रूप से अपने आराध्य पति आपको ही दे दिया! आप तो ब्रह्मा-शिव एवं अनन्तदेव के भी आराध्य हैं। आप सत्यभामा के साध्य, वशीभूत कैसे हो गये? आप सभी भार्याओं में से सत्यभामा से अधिक भयभीत क्यों रहते हैं?।।४४-४५।।

रुक्मिण्यां प्रेमसौभाग्यमतिरिक्तं च गौरवम्।
भयं मान्यं च धन्यायां सत्यायां सततं श्रुतम्।।४६।।
सत्यं जाम्बवतीकान्त वद मां च सुनिश्चितम्।
तासु सर्वासु कान्तासु कस्यास्ते प्रेम चाधिकम्।।४७।।
शृङ्गारे सर्वभावे वा तासु का रसिका परा।
त्वयि स्निग्धा विदग्धा का तासु धन्याऽतिसुव्रता।।४८।।
सा स्त्री भावानुरक्ता या भार्या पाति पतिश्च सः।
प्रेमातिरिक्तं स्त्रीपुंसोस्त्रैलोक्येषु सुदुर्लभम्।।४९।।

रुक्मिणी के प्रति आपका प्रेम सौभाग्य तथा गौरव अत्यधिक हैं (वे अधिक सौभाग्यमयी तथा गौरवसम्पन्न हैं), तथापि इस धन्या सत्यभामा के प्रति आपका भय तथा आपकी मान्यता भी सतत् सुनी जाती है। हे जाम्बवती पति! यह आप सुनिश्चित बतलायें कि सभी भार्याओं में से आपका प्रेम किसके प्रति सर्वाधिक है? सभी प्रकार की शृंगारमयी क्रीड़ा (रति क्रीड़ा) में कौन भार्या अधिक रसिक है? उन सबमें से वह चतुरा, आपके प्रति स्नेहमयी धन्या, सुव्रता कौन भार्या है? जो स्वामी के प्रति सर्वतोभावेन अनुरक्ता है, वही यथार्थ पत्नी है। जो अपनी स्त्री के प्रति भावानुरक्त तथा स्त्री का पालन करने वाला है, वही यथार्थ पति है। इस प्रकार का प्रेमातिरेक पति-पत्नी में रहना त्रैलोक्य दुर्लभ है।।४६-४९।।

रसिका स्त्री विजानाति सती गुणवती पतिम्।
गुणज्ञं रसिकं शूरं सुशीलं सुरतौ सदा।।५०।।
दूराद्धावति पद्मार्थं मधुलोभान्मधुव्रतः।
भेकस्तत्र हि जानाति तन्मूर्ध्नि पादमुत्सृजेत्।।५१।।

साध्वी, गुणी, रसिका, कामिनी, गुणज्ञ, शूर, सुशील रसिक पति की सदा कामना सुरत काल में करती है। भ्रमर मधुपान के लोभ से दूर से कमलपुष्प के पास भाग कर आ जाता है (क्योंकि वह कमल के गुण को जानता है), तथापि मेढक जल में रहकर भी जल में विकसित कमल के गुण को नहीं जान पाता। वह उस पर बैठ जाता है। उस पर अपने पैर रख देता है।।५०-५१।।

यन्त्री जानाति सङ्गीतरसं यन्त्रं च नैव च।
दुग्धास्वादं विदग्धश्च न दर्वी नैव भाजनम्।।५२।।
परिपक्वफलास्वादं जानन्ति भोगिनः सुखम्।
एकत्रावस्थिताः शश्वन्नकिंचित्फलिनो यथा।।५३।।
सुशीलजलास्वादं विजानन्ति [1]तृषालवः। न च वापी न घटश्चैकत्रावस्थितो यथा।।५४।।

यन्त्री (वादक) ही वाद्ययन्त्र से निकले संगीत रस को जानता है, परन्तु वह वाद्ययन्त्र अपने संगीत रस को नहीं जानता। दुग्ध का स्वाद तो जानकार व्यक्ति ही जानते हैं। कलछुल तथा दूध की कड़ाही उस स्वाद को नहीं जानती। फल को खाने वाला पके फल के स्वाद को अनायास जान लेता है, तथापि फल के साथ एकत्र रहने वाले वृक्ष भी फल के स्वाद को तनिक नहीं जान पाते। प्यासा व्यक्ति सुशील उत्तम जल का स्वाद पाता है, परन्तु सरोवर तथा घट जल के स्वाद को तनिक भी नहीं जान पाते!।।५२-५४।।

भोगिनो हि विजानन्ति शालिस्वादुरसं परम्।
एकत्रावस्थितं चेत्तु न क्षेत्रं भाजनं यथा।।५५।।
बुबुधे चन्दनाघ्राणं चन्दनार्थी च भोगवित्।
न गर्दभो भारवाही न तस्य पात्रिका यथा।।५६।।
यं न जानन्ति वेदाश्च ब्रह्मेशानादयस्तथा।
योगिनो मुनयः सिद्धास्तं किं जानन्ति योषितः।।५७।।

शालिधान्य को पकाकर खाने वाला ही उसका स्वाद जानता है, परन्तु धान्य के साथ रहने वाला खेत तथा उसे पकाये जाने वाला पात्र उसका स्वाद नहीं जान पाता। चन्दनकामी तथा उसका उपभोग करने वाले लोग चन्दन की गन्ध जान लेते हैं, तथापि उसे ढोकर लाने वाला गधा तथा चन्दन रखे जाने वाला पात्र उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। जिसे वेद, ब्रह्मा, शिव, योगी, मुनिगण, सिद्ध तक नहीं जान पाते, उसे स्त्रियां कैसे जान सकती हैं?।।५५-५७।।

सौभाग्यं गौरवं प्रेम दुर्लभं नित्यनूतनम्।
योषितां च परं नैवं[2] चूर्णीभूतं क्षणेन च।।५८।।

१. ख. कृषीबलाः।
२. मत्शरं नैव इति पाठान्तरम्।

अत्युच्छ्रितो निपतनं प्राप्नोत्येव ध्रुवं प्रभो।
आराद्विपत्तिबीजं च वैष्णवानां विहिंसनम्॥५९॥

स्त्रियों का सौभाग्य गौरव, नित्य-नूतन दुर्लभप्रेम दुर्लभ होता है, परन्तु वे स्वयं इसे क्षण में चूर्ण-चूर्ण कर देती हैं। अर्थात् जो अत्यन्त उच्चता के शिखर पर चढ़ जाता है, उसका उतनी ऊंचाई से पतन होना निश्चित है। वैष्णव के प्रति द्रोह, उनके प्रति हिंसा की भावना आपत्ति का बीज बन जाती है॥५८-५९॥

श्रीदामा च मया शप्तस्त्वद्भक्तो भक्तवत्सलः।
एतादृशी विपत्तिर्मे पुत्रश्रीदामशापतः॥६०॥
ईश्वरः कस्य वा बन्धुः प्रियो वा विप्रियस्तथा।
सततं भक्तिसाध्यश्च यो भक्तश्च तदीश्वरः॥६१॥
वेदाश्च वैदिकाः सन्तः पुराणानि वदन्ति च।
राधाया माधवः साध्यो भगवानिति[1] निष्फलम्॥६२॥

हे भक्तवत्सल! मैंने ही आपके भक्त वैष्णव श्रीदाम को शाप दे दिया, तभी पुत्र श्रीदामा के शाप से मुझ पर आप से शतवर्षीय विछोह जैसी महाविपत्ति आ पड़ी। ईश्वर न तो किसी के बन्धु हैं, न शत्रु। वे किसी के प्रिय-अप्रिय नहीं हैं। वे सदा परमाभक्ति के वश में रहने वाले तथा भक्तों के ईश्वर हैं। वेद, वेदज्ञ, सन्त, पुराण भले ही कहें कि श्रीकृष्ण राधा के वश में रहते हैं, यह निष्फल कथन है॥६०-६२॥

जित्वा च सगणं शंभुं बाणस्य भुजकृन्तनम्।
कृत्वा च रुक्मिणीपौत्रः समानीतः सभार्यकः॥६३॥
अहो त्वयि समायाते रुक्मिणी किमुवाच ह।
प्रेम स्थितं समानं ते किं विवृद्धं च गौरवम्॥६४॥
कुरुपाण्डवयुद्धेन कुरवो निहतास्त्वया।
पाण्डवार्थे तथा भूपाः क्व साम्यं परमात्मनः॥६५॥
साक्षान्महेन्द्रजातस्य कौन्तेयस्यार्जुनस्य च।
राजमण्डलमध्यस्थो भवानेव हि सारथिः॥६६॥
तेन भक्तेन शुद्धेन भीष्मेण च महात्मना। लज्जितेन किमुक्तं ते महतीषु सभासु च॥६७॥
देवैरपि कथं दृष्टो ब्रह्मेशशेषसंज्ञकैः। भक्तसिंहैर्भुतैः सर्वैर्न चोक्तं किञ्चिदेव सः॥६८॥
यश्चानिर्वचनीयश्च वेदेषु च चतुर्षु च। पुराणेष्वितिहासेषु प्रकृतेः पर ईश्वरः॥६९॥

१. भवानेव हि इति क्वचित् पाठः।

निर्गुणश्च निरीहश्च निर्लिप्तः सर्वकर्मणाम्। कर्मणां साक्षिरूपश्च भक्तानुग्रहविग्रहः॥७०॥
परं ब्रह्म परं ज्योतिः परमेशः परात्परः। परमात्मा च सर्वेषां सूतो नररथस्थितः॥७१॥
त्वया कुब्जा च संभुक्ता वृद्धा क्षत्रियकामिनी।
अपुत्रिणी चाधिकाङ्गी [1]यूनाऽस्पृश्या च प्राक्तनात्॥७२॥

आपने शंकर को उनके गणों के साथ जीत लिया, बाणासुर की भुजाओं को काटा, पत्नीसहित रुक्मिणी पौत्र अनिरुद्ध को द्वारका ले आये, तब रुक्मिणी ने क्या कहा? इस रुक्मिणी के प्रति क्या आपका प्रेम सभी भार्याओं इतना है अथवा उसके प्रति आप में गौरववृद्धि हो गई? कौरव-पाण्डव युद्ध में आपने कौरवों का वध पाण्डवों के हितार्थ कराया, कौरवों तथा अनेक राजाओं का वध कराया, तब आप परमात्मा की समदृष्टि को क्या हो गया? आपने इन्द्र से उत्पन्न कुन्तीपुत्र अर्जुन के सारथि का कार्य किया? आपके शुद्ध भक्त महात्मा भीष्म ने महती सभा में लज्जाभिभूत होकर आपसे क्या कहा था? ब्रह्मा-शेष-ईश्वर महादेव ने आपको किस रूप में तब देखा? तब उन्होंने क्या कहा? जो प्रकृति से पृथक्, चारों वेदों, पुराणों, इतिहास में अनिर्वचनीय माने गये हैं, जो निर्गुण, निरीह, सर्वकर्म से लिप्त नहीं होने वाले, सुकर्मीगण के कर्मसाक्षी तथा भक्तों के प्रति अनुग्रहार्थ देहधारी, परब्रह्म, परमज्योतिस्वरूप, परमेश, परात्पर, सबके परमात्मा हैं, वे सारथी की तरह रथ पर बैठे हैं? आपने वृद्धा, अधिकांगी कुब्जा, अपुत्रकी, युवकगण जिसका स्पर्श भी नहीं करते ऐसी क्षत्रिय नारी कुब्जा के पूर्व जन्मार्जित पुण्य के कारण उसका भोग आपने किया!॥६३-७२॥

त्वया च निहतः कंसो मातुलः केन हेतुना। आयास्यतीति कृत्वा च गतं न पुनरागतम्॥७३॥
निहत्य यादवान्सर्वान्विभज्य द्वारकां पुरीम्।
त्वां निबध्य समानेतुमीश्वरी वारिता जनैः॥७४॥

आपने किस कारण अपने मामा कंस का वध किया? उस समय आप ब्रज में पुनः वापस आने के लिये कहकर गये, परन्तु लौट कर नहीं आये! आपने द्वारका के सभी यादवों का संहार कर दिया। द्वारका को (समुद्र में) विभक्त कर दिया। जब ईश्वरी ने आपको बांधकर लाने की आज्ञा दिया, तब लोगों ने उनको रोक दिया (यह कौन-सा प्रसंग है स्पष्ट नहीं हो रहा है)॥७३-७४॥

इत्युक्त्वा राधिका देवी भृशमुच्चै रुरोद सा।
मूर्च्छां सम्प्राप सहसा निनिःश्वासा बभूव ह॥७५॥
गोप्यो गवाक्षजालस्थाः शुश्रुवुर्ददृशुस्तथा।
दृष्ट्वा तमाययुः सर्वा ऊचू राधा मृतेति च॥७६॥
उच्चैस्ता रुरुदुः सर्वाः क्रोडे कृत्वा च राधिकाम्।
ऊचुस्ता रक्ष रक्षेति हरे नरहरे प्रभो॥७७॥

१. क. मूलास्पर्शा।

यह कहकर देवी राधा उच्च स्वर में रुदन करने लगीं। वे मूर्च्छित होकर श्वास रहित हो गईं। खिड़की पर बैठी गोपियों को यह दिखलाई तथा सुनाई पड़ा। वे सभी वहां आकर कहने लगीं कि यह राधा मृत हो गई। वे सभी राधा को गोद में लेकर रोने लगीं। सभी ने कहा—"हे नरहरि! प्रभो! श्रीहरि! रक्षा करिये! रक्षा करिये!"॥७५-७७॥

गोप्य ऊचुः

किं कृतं किं कृतं कृष्ण त्वया राधा मृता च नः।
राधां जीवय भद्रं ते यास्यामः काननं वयम्॥७८॥
अन्यथा स्त्रीवधं तुभ्यं दास्यामः सर्वयोषितः।
गोपीनां वचनं श्रुत्वा राधिकायाश्च माधवः॥७९॥

गोपियां कहती हैं—"हे कृष्ण! यह क्या किया? आपने यह क्या किया? राधा मृत हो गईं। हे भद्र! आप राधा को जीवित करिये। तब हम सभी वन में चली जायेंगी। यदि आप राधा को जीवित नहीं करते तब हम सभी स्त्रियां आपको नारी वध का दोषी मानेगीं।" गोपियों का यह वचन माधव ने सुना॥७८-७९॥

उवाच जीवयामास सुधादृष्ट्या च नारद।
उत्तस्थौ राधिका देवी रुदती मानिनी सती॥८०॥
गोप्यस्तां बोधयामासुः क्रोडे कृत्वा पुनः पुनः॥८१॥

हे नारद! तदनन्तर उन्होंने सभी नारियों से कहा यही हो तथा उन्होंने अपनी सुधावर्षिणी दृष्टि द्वारा राधा को जीवित कर दिया। रुदन करती मानिनी राधा तत्काल उठ गईं। तब सभी गोपियां उनको अपने अंक में लेकर बारम्बार प्रबोधित करने लगीं॥८०-८१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राधे प्रवक्ष्यामि ज्ञानमाध्यात्मिकं परम्।
यच्छ्रुत्वा हालिको मूर्खः सद्यो भवति पण्डितः॥८२॥
जात्याऽहं जगतां स्वामी किं रुक्मिण्यादियोषिताम्।
कार्यकारणरूपोऽहं व्यक्तो राधे पृथक्-पृथक्॥८३॥
एकात्माऽहं च विश्वेषां जात्या ज्योतिर्मयः स्वयम्।
सर्वप्राणिषु व्यक्त्या चाप्याब्रह्मादितृणादिषु॥८४॥
एकस्मिंश्च भुक्तवति न तुष्टोऽन्यो जनस्तथा।
मय्यात्मनि गतेऽप्येको मृतोऽप्यन्यः सुजीवति॥८५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे राधिका। तुम मुझसे परम आध्यात्मिक ज्ञान श्रवण करो। इसे सुनने वाला

मूर्ख हल चलाने वाला भी सद्यः पण्डित हो जाता है। हे राधिके! मैं तो जन्मतः जगत्स्वामी ही हूं। रुक्मिणी आदि का भी स्वामी हूं, इसमें आश्चर्य की क्या बात! मैं कार्य-कारण रूप से पृथक्तः व्यक्त होता हूं। मैं विश्व की एक आत्मा हूं। स्वरूपतः ज्यातिर्मय हूं। ब्रह्मा से लगाकर तृणपर्यन्त सभी में मैं पूर्णतः व्याप्त रहता हूं। जगत् में एक के भोजन करने से दूसरा तृप्त नहीं हो सकता। मैं आत्मरूप एक देह से जब चला जाता हूं तब वह मृत हो जाता है, तथापि दूसरा जीवित रहता है।।८२-८५।।

जात्याऽहं कृष्णरूपश्च परिपूर्णतमः स्वयम्।
गोलोके गोकुले [1]पुण्ये क्षेत्रे वृन्दावने वने॥८६॥
द्विभुजो गोपवेषश्च [2]स्वयं राधापतिः शिशुः।
गोपालैर्गोपिकाभिश्च सहितः कामधेनुभिः॥८७॥
चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे द्विधारूपः सनातनः। लक्ष्मीसरस्वतीकान्तः सततं शान्तविग्रहः॥८८॥
यन्मानसी सिन्धुकन्या मर्त्यलक्ष्मीपतिर्भुवि।
श्वेतद्वीपे च क्षीरोदे तत्रापि च चतुर्भुजः॥८९॥

मैं कृष्णरूपेण परिपूर्णतम होकर ही जन्मा हूं। मैं ही गोलोक में, गोकुल में, पवित्र वृन्दावन में राधापति, द्विभुज, गोपवेशधारी, शिशुरूपेण क्रीड़ारत रहता हूं। उस समय ग्वाल-बाल, गोपीगण, गौगण मेरी सहायता करती हैं। मैं वैकुण्ठ में चतुर्भुज रूप से स्थित रहकर वहां पर लक्ष्मी-सरस्वती का प्रियतम एवं सदैव शान्त रूप रहता हूं। पृथिवी पर स्थित श्वेतद्वीप तथा क्षीरसागर में मैं ही मानसी, सिन्धुकन्या मर्त्यलक्ष्मी का पति हूं। वहां भी मेरा चतुर्भुज रूप ही है।।८६-८९।।

अहं नारायणर्षिश्च नरो धर्मः सनातनः। धर्मवक्ता च धर्मिष्ठो धर्मवर्त्मप्रवर्तकः॥९०॥
शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपा च धर्मिष्ठा च पतिव्रता।
अत्र तस्याः पतिरहं पुण्यक्षेत्रे च भारते॥९१॥
सिद्धेशः सिद्धिदः साक्षात्कपिलोऽहं सतीपतिः।
नानारूपधरोऽहं च व्यक्तिभेदेन सुन्दरि॥९२॥
अहं चतुर्भुजः[3] शश्वद्द्वारवत्यां रुक्मिणीपतिः।
अहं क्षीरोदशायी च सत्यभामागृहे शुभे॥९३॥

मैं ही नर-नारायण ऋषि, धर्मवक्ता, धर्ममार्ग प्रवर्त्तक सनातन धर्मरूप हूं। मैं ही पुण्यक्षेत्र भारत में धर्मिष्ठा पतिव्रता लक्ष्मीस्वरूपा शान्ति का पति हूं। हे सुन्दरी! मैं ही सिद्धिप्रद सिद्धेश्वर कपिल हूं। मैं ही सतीपति हूं। हे सुन्दरी! मैं ही व्यक्ति भेद से नानारूप धारण करता हूं। मैं चतुर्भुजरूपधारी ही

१. क. रम्ये।
२. क. त्वया।
३. ०जांशश्च द्वा०।

सदैव रुक्मिणी का पति होता हूं। मैं क्षीरसागर में शयन करने वाला सत्यभामा के शुभगृह में रहता हूं।।९०-९३।।

अन्यासां मन्दिरेऽहं च कायव्यूहात्पृथक् पृथक्।
अहं नारायणर्षिश्च फाल्गुनस्यास्य सारथिः॥९४॥
स नरर्षिर्धर्मपुत्रो मदंशो बलवान्भुवि। तपसाऽऽराधितस्तेन सारथ्येऽहं च पुष्करे॥९५॥

मैं ही कायव्यूह में अधिष्ठान करके अन्य नारियों के गृह में अलग-अलग अवस्थान करता हूं। मैं ही नारायण ऋषि हूं तथा अर्जुन का सारथि होकर हूं। अर्जुन ही नरऋषि हैं। ये नरऋषि धर्म के पुत्र हैं। बलवान अर्जुन मेरे अंश से धरती पर उत्पन्न हुआ है। ऋषि नर के अवतार अर्जुन ने पुष्कर क्षेत्र में मेरी आराधना इसलिये किया था कि मैं उसका सारथि बनूं।।९४-९५।।

यथा त्वं राधिका देवि गोलोके गोकुले तथा।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती॥९६॥
भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया। धर्मपुत्रवधूस्त्वं च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी॥९७॥
कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते [1]भवती सती।
त्वं सीता मिथिलायां च त्वच्छाया द्रौपदी सती॥९८॥
द्वारवत्यां महालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती।
पञ्चानां पाण्डवानां च भवती कलया प्रिया॥९९॥

हे राधिके! जिस प्रकार से तुम गोलोक में राधा हो तदनुरूप तुम गोकुल में भी राधा हो। तुम ही वैकुण्ठ में महालक्ष्मी तथा सरस्वती भी हो। तुम मुझ क्षीरसागर में शयन करने वाले की प्रिया मर्त्यलक्ष्मी हो। तुम ही धर्मपुत्र की भार्या लक्ष्मीरूप शान्ति हो। हे कान्ते! तुम ही भारत में कपिल की प्रिया सती तथा द्वारका में महालक्ष्मी हो। तुम ही साध्वी सीता रूप से मिथिला में विख्यात हो। यह सती द्रौपदी तुम्हारी छायारूपा है। द्वारका की महालक्ष्मी के अंश से उत्पन्न तुम ही सती रुक्मिणीरूपा हो। पांचों पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी तुम्हारी ही कलारूपा हैं।।९६-९९।।

रावणेन हृता त्वं च त्वं च रामस्य[2] कामिनी।
नानारूपा यथा त्वं च च्छायया कलया सती॥१००॥
नानारूपस्तथाऽहं च श्चांशेन कलया तथा। परिपूर्णतमोऽहं च परमात्मा परात्परः॥१०१॥
इति ते कथितं सर्वमाध्यात्मिकमिदं सति। राधे सर्वापराधं मे क्षमस्व परमेश्वरि॥१०२॥

तुम राम की प्रिया सीता हो जिसे रावण ने हर लिया था। हे सती! जिस प्रकार तुमने अपनी कला तथा छाया द्वारा अनेक रूप प्रकट किया, तदनुरूप में भी अपनी कला तथा अंश से नानारूपेण

१. ख. भारती।
२. क. ॰रायणका॰।

अभिव्यक्त होता रहता हूं, तथापि तत्त्वतः मैं ही परिपूर्णतम परमात्मा तथा परात्पर हूं। हे सती! इस प्रकार मैंने तुमसे समस्त आध्यात्मिक तत्व कहा। हे परमेश्वरी राधिका! मेरा सभी अपराध क्षमा करो!।।१००-१०२।।

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा परितुष्टा च राधिका। परितुष्टाश्च गोप्यश्च प्रणेमुः परमेश्वरम्।।१०३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२६।।

श्रीकृष्ण का कथन सुनकर राधा तथा गोपियां परितुष्ट हो गईं। उन्होंने परमेश्वर श्रीकृष्ण को प्रणाम किया।।१०३।।

।।१२६वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

राधाकृष्ण का विहार तथा यशोदा का आनन्दित होना

नारायण उवाच

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा प्रहृष्टा गोपिका मुदा। मन्दिरं प्रययुः सर्वाः प्रणम्य राधिकां प्रभुम्।।१।।
राधाशृङ्गारभावं च कलाषोडशपूर्वकम्। चकार सस्मिता साध्वी वक्रचञ्चललोचना।।२।।
दत्त्वा च चन्दनं माल्यं स्वामिने पुनरेव च। रहस्यं च परीहास्यं पुनरेव चकार सः।।३।।

आकृष्य राधिकां कृष्णः समानीय स्ववक्षसि।
ओष्ठाधरं कपोलं च गण्डयुग्मं चुचुम्ब च।।४।।
राधा चुचुम्ब कृष्णस्य मुखचन्द्रं मनोहरम्।
चकार कृष्णं प्राणेशं बाहुभ्यां च स्ववक्षसि।।५।।

शृङ्गारं षोडशविधं कामशास्त्रोक्तमीप्सितम्। स्त्रीपुंसोस्तोषजनकं चकार भगवान्प्रभुः।।६।।
नखविक्षतसर्वाङ्गा दशनेनाधरक्षता। पुलकाञ्चितदेहा च तन्द्रिता वामनस्तनी।।७।।
मूर्च्छिता सुखसंभोगाद्विलग्ना हतचेतना। श्वासमात्रावशेषा च निद्रामुद्रितलोचना।।८।।

राधा तथा गोपियां श्रीकृष्ण का कथन सुनकर आनन्दित हो गईं। तत्पश्चात् सभी गोपियां राधिका के नायक श्रीकृष्ण को प्रणाम करके स्वगृह चली गयीं। उस समय साध्वी राधा मुस्कराते हुये

तथा बांकी चितवन से १६ कलामय श्रृंगार का भाव प्रकट करने लगीं। उन्होंने स्वामी को चन्दन तथा माला प्रदान करके रहस्य के साथ क्षमा प्रार्थना किया। श्रीकृष्ण भी राधा को अपनी ओर खींचकर उनके अधर, ओष्ठ, कपोल, कनपटी का चुम्बन करने लगे। राधिका ने भी श्रीकृष्ण के सुन्दर मुखचन्द्र का चुम्बन करते हुये उनको अपनी दोनों बाहु से पकड़ कर उनका आलिङ्गन किया। उस समय प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण भी कामशास्त्रोक्त स्त्री-पुरुष में प्रीति उत्पन्न करने वाली १६ प्रकार की कामचेष्टा करने लगे। राधिका का सर्वाङ्ग कृष्णकृत नखक्षत-दन्तक्षत से भर गया। उनका शरीर पुलकित हो उठा तथा वे स्वयं आलस्य से भर गईं। वे उस सुखसंभोग के कारण वस्त्र रहिता, चैतन्य रहिता हो गयीं। निद्रा से उनके नेत्र बंद हो गये। जीवन चिह्न रूप में केवल श्वास ही शेष रह गयी।।१-८।।

रतिशूरा कोमलाङ्गी कान्तवक्षःस्थलस्थिता।
शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे सा सुखशीतला।।९।।
श्रृङ्गारकाले सुखदा सान्द्रश्रोणिपयोधरा। नितम्बभारानम्रा च प्रसङ्गे सुखदायिका।।१०।।
विदग्धा रसिका श्रेष्ठा कामुकी च वराङ्गना।
सहसा चेतनं प्राप्य शुश्राव कोकिलध्वनिम्।।११।।
श्रुत्वा परमभीता सा दीना दीनविशङ्कया। उवाच परमा सा च परमेशं परात्परम्।
बाहुश्रोणियुगाभ्यां च निबध्य च पुनः पुनः।।१२।।

वे रतिशूरा, कोमल अंगों वाली, प्रियतम के वक्षस्थल पर स्थित, शीतकाल में जिनके अंग सुखप्रद उष्णता वाले रहते हैं, जो ग्रीष्म काल में शीतल देह हो जाती हैं, जिनके नितम्ब तथा स्तनद्वय स्थूल हैं, जो नितम्ब भार से कुछ नत-सी हो गई हैं, जो रति प्रंसग में कृष्ण को सुख प्रदान करती हैं, उन विदग्धा (चतुरा), रसिका, उत्तम कामुकी, उत्तम अंगों वाली राधा ने सहसा चेतना प्राप्त होते ही कोकिल की ध्वनि सुना, जिससे सुनकर वो अत्यन्त भयभीत, दीन एवं शंकित होकर परमेश परात्पर श्रीकृष्ण को अपनी जांघों तथा बाहु से जकड़ कर पुनः-पुनः कहा-।।९-१२।।

राधिकोवाच

रासं गच्छ महाभाग पुण्यं वृन्दावनं वनम्।
तत्र क्रीडां करिष्यामि जलेन च स्थलेन च।।१३।।
पुनर्यास्यामि मलयं सुन्दरं मणिमन्दिरम्। अपरं यद्रहस्यं वा जन्मना न श्रुतं मया।।१४।।
तत्र यामि त्वया सार्धमिति मे लालसा परा। परस्परैकालापेन प्रययौ रजनी शुभा।।१५।।
अरुणोदयकालेऽपि न त्यजेन्माधवं सती।
माधवः प्रीतिवचसा बोधयामास साधनात्।।१६।।
प्रातः कृत्यं ततः कृत्वा स्वारुरोह रथं हरिः।
गापीभी राधया सार्धं शरत्कमललोचनः।।१७।।

योजनायतविस्तीर्णं गृहैस्त्रिशतकोटिभिः। मणीन्द्रसारनिर्माणैर्ज्वलद्भिरुपशोभितम्॥१८॥

देवी राधा कहती हैं–"हे महाभाग! यहां से तत्काल पावन वृन्दावन चलिये। वहीं मैं जलीय एवं स्थलीय क्रीड़ा करूंगी। तत्पश्चात् आपके साथ मलयपर्वत पर, सुन्दर मणि मन्दिर जाऊंगी, जिसके सम्बन्ध में आज तक नहीं जाना है। यह मेरी प्रबल कामना है।" इस प्रकार से कथनोपकथन करते वह शुभ रजनी व्यतीत हो गई। अरुणोदय होने पर भी राधा ने कृष्ण को बाहुबन्धन से नहीं छोड़ा। माधव के कई बार प्रेम पूर्वक कहने पर तब कहीं उनको छोड़ा। इस पर शरत्कालीन कमल के समान नेत्रों वाले श्रीहरि अपना प्रातःकृत्य समाप्त करके राधा तथा गोपीगण सहित आरूढ़ हो गये। वह रथ एक योजन विस्तीर्ण था, जो तीन सौ कक्षों से युक्त मणियों के सार भाग से निर्मित तथा ज्वलत्रूप से सुशोभित था॥१३-१८॥

गोलोकादागतं तत्र मनोयायि मनोहरम्। सहस्रचक्रसंयुक्तं सहस्राश्वैः[१] प्रचालितम्॥१९॥
मणिस्तम्भैस्त्रिकोटीभी रत्नराजिविराजितम्। मुक्तामाणिक्यपरमैर्हीरहारैः सुशोभितम्॥२०॥
नानाचित्रैर्विचित्रैश्च श्वेतचामरदर्पणैः। वह्निशुद्धांशुकैर्दीप्तैर्मालाजालैर्विभूषितम्॥२१॥
रत्ननिर्माणतल्पैश्च पुष्पचन्दनचर्चितम्। समानरूपवेषैश्च गोपीलक्षैः समावृतम्॥२२॥

उस मनोवेगशाली रथ के सहस्रों पहिये लगे थे। वह रथ गोलोक से आया था। उसे सहस्रों अश्व चला रहे थे। वह रथ तीन कोटि मणिस्तम्भ तथा बन्दनवारों से विशेषतया शोभायमान था। वह रथ मुक्ता-माणिक्य-उत्तम हीरक हारों से शोभित था। वह रथ नाना विचित्र चित्रों, श्वेत चामर, दर्पण, अग्निशुद्ध वस्त्रों से दीप्त, माला आदि से शोभित था। वहां उसमें रत्न निर्मित शय्या लगी थीं जो पुष्प-चन्दन चर्चित थीं। वह रथ समान रूपधारी तथा समान वेशधारी लक्ष-लक्ष गोपीगण से समावृत था॥१९-२२॥

रथेन तेन भगवान्पुनर्वृन्दावनं ययौ। तत्र गत्वा निशाकाले विजहार जले स्थले॥२३॥
शृङ्गारं सुचिरं कृत्वा वनेषूपवनेषु च। राधिकां दर्शयामास यथासर्वं च नूतनम्॥२४॥
विस्पन्दके सुरसने माहेन्द्रे नन्दने वने। सुमेरुशिखरे रम्ये पर्वते गन्धमादने॥२५॥
शैले शैले सुन्दरे च कन्दरे कन्दरे वने। पुष्पोद्याने सुरहसि नद्यां नद्यां नदे नदे॥२६॥
समुद्रपुलिने रम्ये पारिजातवने वने। सुभद्रे पुष्पभद्रे च नारायणसरोवरे॥२७॥
पवनस्यैव निलये मलये च सुरालये त्रिकूटे भद्रकूटे च पञ्चकूटे सुकूटके॥२८॥
देवानां कमनीयायां काञ्चन्यां च तथैव च। समुद्रे च समुद्रे च द्वीपे द्वीपे मनोहरे॥२९॥
खर्वटे प्रवरे रम्ये पुण्यचन्द्रसरोवरे। सुपार्श्वे मुनिपार्श्वे च स रेमे राधया सह॥३०॥
शीघ्रं च पुनरागत्य जम्बूद्वीपं च पुण्यदम्। द्वारकां दर्शयामास पर्वतं रैवतं तथा॥३१॥

१. क. ०क्षैः।

उसी रथ से भगवान् पुनः वृन्दावन गये तथा वहां रात्रिकाल में राधा के साथ जल-स्थल पर विहार किया। तदनन्तर उन्होंने रुचिर शृंगार करके वहां के वन-उपवन में घूमते हुये राधा को वहां सब कुछ नूतन प्रकार का प्रदर्शित किया। तदनन्तर उन्होंने विस्पन्दक, सुरसन, महेन्द्र, नन्दनवन, सुमेरु शिखर, रम्य गन्धमादन पर्वत पर, उत्तम पर्वत कन्दराओं में, वनों में, सुभद्र-पुष्पभद्र तथा नारायण नामक सरोवरों में, गुप्त पुष्पोद्यानों में, नाना नद-नदियों के जल में, समुद्र के किनारे मनोहर पारिजात वन में, पवन के आवास में, कमनीय खर्वर, देवभूमि मलयाचल, चित्रकूट-भद्रकूट-पंचकूट- सुकूट पर, देवगण की कमनीय काञ्चन भूमि पर, समुद्रों में मनोहर द्वीपों में, प्रवर रम्य पुण्यमय चन्द्रसरोवर, मुनिगण के आश्रमों में राधा के साथ रमण किया। वे पुनः शीघ्र पुण्यदायक जम्बूद्वीप वापस आ गये। उन्होंने राधा को द्वारका तथा रैवत पर्वत का अवलोकन कराया। तदनन्तर वे गोप-गोकुल संकुल में पुनः आकर उन्होंने वहां भाण्डीरवन को देखकर पुण्य वृन्दावन गये।।२३-३१।।

गोकुलं पुनरागत्य गोपगोकुलसंकुलम्। तत्र दृष्ट्वा च भाण्डीरं पुण्यं वृन्दावनं ययौ॥३२॥

श्रीकृष्णागमनं श्रुत्वा यशोदा नन्द एव च।
गोपा गोप्यश्च वृद्धाश्चाप्यश्रुनेत्रा निराकुलाः॥३३॥

वारणेन्द्र पुरस्कृत्य वेश्यां च नटनर्तकाः। पतिपुत्रवतीं साध्वीं ब्राह्मणीं ब्राह्मणं तथा॥३४॥

यथा देवाश्च वह्निं च दृष्ट्वा नन्दं च मातरम्।
आययुर्बालकृष्णश्च राधया सह माधवः॥३५॥

तदनन्तर वे गौ-गोपयुक्त पुण्य वृन्दावन में गये। वहां नन्द, यशोदा तथा वृद्धगोप, गोपीगण कृष्ण के आगमन का समाचार सुनकर गोप-गोपियां प्रसन्न हो गये। उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। तब सभी गोकुलवासियों ने गजराज, वेश्याओं, नटों, नर्त्तकों, पतिपुत्रवती ब्राह्मण-ब्राह्मणी को आगे किया, जिस प्रकार देवता अग्नि का स्वागत करके उसे आगे करते हैं। तभी राधा के साथ माधव अपना बालरूप धारण करके नन्द-माता यशोदा के पास आये।।३२-३५।।

मातुः क्रोडमारुरोह प्रहस्य मधुसूदनः। नन्दो यशोदया सार्धं चुचुम्ब मुखपङ्कजम्॥३६॥

आश्लिश्य भृशमुच्चैश्च सिषेच नेत्रजैर्जलैः।
स्वयं च भगवान्कृष्णो यशोदायाः स्तनं पपौ॥३७॥

उस समय मधुसूदन हंसते हुये मातृक्रोड़ में बैठ गये। उस समय यशोदा-नन्दराज उनका मुखकमल चुम्बन करने लगे। उन्होंने श्रीकृष्ण का गाढ़ आलिंगन किया तथा उनको अपने नेत्राश्रु से सिंचन कर दिया। उस समय स्वयं भगवान् कृष्ण यशोदा का स्तनपान करने लगे।।३६-३७।।

तादृशं ददृशुः सर्वे यादृशो मथुरां ययौ। मुरलीहस्तविन्यस्तं रत्नभूषणभूषितम्॥३८॥
यथैकादशवर्षीयं शोभितं पीतवाससा। मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यमण्डितम्॥३९॥
मन्दिरं वेशयामास राधया सह माधवम्। यशोदा मङ्गलं कृत्वा भोजयामास ब्राह्मणान्॥४०॥

पूजां चकार गोपीनां मुनीनां च यथा जनः। मणिरत्नं प्रवालं च सुवर्णं परमं तथा॥४१॥
मुक्तामाणिक्यहीरं च ब्राह्मणभ्यो ददौ मुदा। गजरत्नं गवां रत्नमश्वरत्नं मनोहरम्॥४२॥

आसनानि च पात्राणि भूषणानि तथैव च।
धान्यान्यपि च सस्यानि वस्त्राणि च तथा ददौ॥४३॥

उस समय श्रीकृष्ण का उन लोगों ने अवलोकन उसी प्रकार किया, जिस रूप में वे मथुरा चले गये थे। वे मुरलीधारी रूप में शोभायमान थे। वे रत्नाभूषण भूषित थे। मथुरागमन काल में उनकी अवस्था ११ वर्ष थी। वे किशोरवय वाले पीताम्बरधारी थे। उनकी शिखा मयूरपुच्छ से अत्यन्त शोभायमान थी। वह मालती माला से गुंथी थी। तदनन्तर यशोदा राधा तथा माधव को गृह में ले गईं। यशोदा ने वहां मंगलमय कार्य सम्पन्न करके ब्राह्मणगण को भोजन कराया। गोपियों का वहां पर पूजन मुनियों के ही समान किया। उन्होंने सभी ब्राह्मणों को मुदित मन से मणि, रत्न, विद्रुम, उत्तम स्वर्ण, मुक्ता, माणिक्य, हीरक, मनोहर अश्व-गौ-गज प्रदान किया। उन्होंने आसन, पात्र, आभूषण, धान्य, सस्य, अन्न, वस्त्रादि भी ब्राह्मणों को प्रदान किया।।३८-४३।।

अपूर्वं दर्शयामास राधया सह माधवम्।
गोपीगणं च मिष्ठान्नं सादरेणापि नारद॥४४॥
दुन्दुभीन्वादयामास कारयामास मङ्गलम्।
देवांश्च भोजयामास सानन्दं च मनोहरम्॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२७।।

हे नारद! नन्दराज ने राधा के साथ माधव को वहां का अपूर्व दृश्य दर्शन कराया। हे नारद! तदनन्तर नन्दराज तथा यशोदा ने गोपीगण को सादर मिष्ठान्न भोजन कराया। वहां दुन्दुभिवादन, मंगलाचार कराया। सर्वान्त में देवगण को सानन्द मनोहर भोज्यपदार्थ अर्पित किया गया।।४४-४५।।

।।१२७वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नन्दराज को श्रीकृष्ण द्वारा युगधर्मोपदेश, गोकुलवासियों के साथ राधा का गोलोकगमन

नारायण उवाच

श्रीकृष्णश्च समाह्वानं गोपांश्चापि चकार सः। भाण्डीरे वटमूले च तत्र स्वयमुवास ह॥१॥
पुराऽन्नं च ददौ तस्मै यत्रैव ब्राह्मणीगणः। उवास राधिका देवी वामपार्श्वे हरेरपि॥२॥
दक्षिणे नन्दगोपश्च यशोदासहितस्तथा। तद्दक्षिणे वृषभानस्तद्वामे सा कलावती॥३॥
अन्ये गोपाश्च गोप्यश्च बान्धवाः सुहृदस्तथा।
तानुवाच स गोविन्दो यथार्थ्यं समयोचितम्॥४॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं–तब श्रीकृष्ण गोपगण को बुलाकर भाण्डीर वनस्थ वटवृक्ष के मूल में स्वयं बैठे। यहां पूर्व में ब्राह्मणीगण ने कृष्ण को अन्न प्रदान किया था। उनके बायीं ओर देवी राधिका, दक्षिण में यशोदा नन्द, उनके दक्षिण में वृषभानु तथा उनके वाम भाग में कलावती तथा अन्य गोपगोपी उनके सुहृद बन्धु सभी आसीन हो गये। तब गोविन्द ने उनसे समयोचित वाक्य कहा–॥१-४॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं समयोचितम्।
सत्यं च परमार्थं च परलोकसुखावहम्॥५॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं भ्रमं सर्वं निशामय। विद्युद्दीप्तिर्जले रेषा यथा तोयस्य बुद्‌बुदम्॥६॥
मथुरायां सर्वमुक्तं नावशेषं च किंचन। यशोदां बोधयामास राधिका कदलीवने॥७॥
तदेव सत्यं परमं भ्रमध्वान्तप्रदीपकम्। विहाय मिथ्यामायां च स्मर तत्परमं पदम्॥८॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरं हर्षकरं परम्। शोकसंतापहरणं कर्ममूलनिकृन्तनम्॥९॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे नन्दराज! श्रवण करिये। मैं समयोचित वाक्य कह रहा हूं। वह सब सत्यपूर्ण, परमार्थमय तथा परलोक में सुखप्रद है। विद्युत् वल्लरी, जल की रेखा, जल के बुलबुले जैसे क्षणभंगुर होते हैं, तदनुरूप तृण से लगाकर ब्रह्मा तक सभी भ्रम हैं। मैंने आपसे मथुरा में सभी ज्ञान कह दिया था। कुछ भी शेष नहीं है। राधिका ने भी जो कुछ यशोदा से (ज्ञान) कहा था, वह सभी सत्य था। वह तो भ्रमरूपी अन्धकार का नाशक प्रदीपरूप था। अतः आप सभी वृथा माया का त्याग करके जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-शोक-संताप नाशक और कर्म के मूल को उच्छिन्न करने वाले परमानन्दप्रद परमपद का स्मरण करिये॥५-९॥

मामेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्।
ध्यायं ध्यायं पुत्रबुद्धिं त्यक्त्वा लभ परं पदम्॥१०॥
गोलोकं गच्च शीघ्रं त्वं सार्धं गोकुलवासिभिः। आरात्कलेरागमनं कर्ममूलनिकृन्तनम्॥११॥
स्त्रीपुंसोर्नियमो नास्ति जातीनां च तथैव च।
विप्रे सन्ध्यादिकं नास्ति चिह्नं यज्ञोपवीतकम्॥१२॥

मैं ही परमब्रह्म, सनातन भगवान् हूं। आप लोग मेरे प्रति पुत्रभावना का त्याग करिये मेरा बारम्बार परब्रह्मरूप ध्यान करके परमपद लाभ करिये। आप लोग सभी गोकुलवासी लोगों के साथ शीघ्र गोलोक जायें। कर्म की जड़ को काट देने वाला (सत्कर्म का मूल काटने वाला) कलियुग अब आसन्न है। कलि में स्त्री-पुरुष का नियम नहीं रहता। जाति नियम भी नहीं रहता। ब्राह्मण सन्ध्यादि नहीं करते। उनमें यज्ञोपवीत चिह्न भी नहीं रहता॥१०-१२॥

यज्ञसूत्रं च तिलकं शेषं लुप्तं सुनिश्चितम्। दिवाव्यवायनिरतं विरतं धर्मकर्मणि॥१३॥
यज्ञानां च व्रतानां च तपसां लुप्तमेव च।
केदारकन्याशापेन धर्मो नास्त्येव केवलम्॥१४॥
स्वच्छन्दगामिनीस्त्रीणां पतिश्च सततं वशे।
ताडयेत्सततं तं च भर्त्सयेच्च दिवानिशम्॥१५॥
प्राधान्यं स्त्रीकुटुम्बानां स्त्रीणां च सततं व्रज।
स्वामी च भक्तस्तासां च पराभूतो निरन्तरम्॥१६॥

ब्राह्मण यज्ञोपवीत तथा तिलक मात्र (दिखावटी) धारण करेंगे। शेष सब लुप्त होगा। कलि में मनुष्य दिवा मैथुन करेगा। धर्मकर्म से रहित होगा। उस समय यज्ञ, व्रत, तपस्यादि सबका लोप होगा। केदार कन्या के पूर्वप्रदत्त शाप के कारण जो उन्होंने धर्म को दिया था धर्म तनिक भी अवशिष्ट नहीं रहेगा। स्त्रियां स्वच्छन्द विचरण करेंगी। पति उनके ही वश में रहेंगे। वे रात-दिन (पति का) उनका ताड़ना करेंगी तथा उसकी निरन्तर भर्त्सना करेंगीं। स्त्री के कुटुम्ब की तथा स्त्रियों की प्रधानता रहेगी। हे व्रजराज! पत्नी से सदा हारा हुआ पति सदा पत्नी के वश में रहेगा। उसी का भक्त बना रहेगा॥१३-१६॥

कलौ च योषितः सर्वा जारसेवासु तत्पराः। शतपुत्रसमः स्नेहस्तासां जारे भविष्यति॥१७॥
ददाति तस्मै भक्ष्यं च यथा भृत्याय कोपतः।
सस्मिता सकटाक्षा साऽमृतदृष्ट्या निरन्तरम्॥१८॥
जारं पश्यति कामेन विषदृष्ट्या पतिं सदा। सततं गौरवं तासां स्नेहं च जारबान्धवे॥१९॥
पत्यौ करप्रहारं च नित्यं नित्यं करोति च।
मिष्टान्नं श्रद्धया भक्त्या जाराय प्रददाति च॥२०॥

कलि में सभी स्त्रियां जार सेवा (उपपतिगमन) तत्पर रहा करेंगी। वे उस जार के प्रति सौ पुत्रों के समान प्रेमरत रहेगीं। स्त्रियां पति को क्रोध से नौकर के समान भोजन प्रदान करेंगी। वे सदा पति को विषदृष्टि से, परन्तु उपपति जार को प्रेम पूर्वक देखेंगी। वे स्त्रियां उपपति जार के बन्धुगण से सदा स्नेह रखेंगी तथा उनको ही गौरव प्रदान करेंगी। वे पति की ताड़ना हाथों से नित्य करेंगी, तथापि जार के प्रति स्नेह दिखाती उसे मिठाई खिलाया करेंगी।।१९-२०।।

वेषयुक्ता च सततं जारसेवनतत्परा।
प्राणा बन्धुर्गतिश्चाऽऽत्मा कलौ जारश्च योषिताम्।।२१।।

लुप्ता चातिथिसेवा च प्रलुप्तं विष्णुसेवनम्। पितृणामर्चनं चैव देवानां च तथैव च।।२२।।
विष्णुवैष्णवयोर्द्वेषी सततं च नरो भवेत्। वाममन्त्रोपासकाश्च चतुर्वर्णाश्च तत्पराः।।२३।।

शालग्रामं च तुलसीं कुशं गङ्गोदकं तथा।
न स्पृशेन्मानवो धूर्तो म्लेच्छाचाररतः सदा।।२४।।

कारणं कारणानां च सर्वेषां सर्वबीजकम्। सुखदं मोक्षदं शश्वद्दातारं सर्वसम्पदाम्।।२५।।

कलिकाल में अतिथि सेवा तथा विष्णु सेवा क्रम लुप्त होगा। पितरों तथा देवगण की अर्चना का भी यही हाल होगा। कलि में मनुष्य सदा विष्णु एवं वैष्णवों से द्रोह करेगा। सभी चारों वर्ण के लोग वामाचार मार्गीय मन्त्रों के उपासक होंगे। कलिकाल के धूर्त्त म्लेच्छाचारी लोग शालग्राम, तुलसी, कुश, गंगाजल का स्पर्श तक नहीं करेंगे। कलि के ब्राह्मण भी सभी कारणों के कारण, सर्वबीजरूप, सुख-मोक्ष प्रदाता, समस्त सम्पतियों के नित्य दाता को त्याग कर परमभक्ति के साथ छुद्र सम्पदा देने वाले, वेद का नाश करने वाले होकर वाममन्त्र का जय मायावश करेंगे।।२१-२५।।

त्यक्त्वा मां परया भक्त्या क्षुद्रसम्पत्प्रदायिनम्।
वेदनिघ्नं[१] वाममन्त्रं जपेद्विप्रश्च मायया।।२६।।

सनातनी विष्णुमाया वञ्चितं तं करिष्यति। ममाऽऽज्ञया भगवती जगतां च दुरत्यया।।२७।।
कलेर्दशसहस्त्राणि मदर्चा भुवि तिष्ठति। तदर्धानि च वर्षाणि गङ्गा भुवनपावनी।।२८।।

तुलसी विष्णुभक्ताश्च यावद्गङ्गा च कीर्तनम्।
पुराणानि च स्वल्पानि तावदेव महीतले।।२९।।
मम चोत्कीर्तनं नास्ति एतदन्ते कलौ व्रज।
एकवर्णा भविष्यन्ति किराता बलिनः शठाः।।३०।।

सनातनी, दुरत्यया विष्णुमाया जगत् में दुस्तर है। वही मेरी आज्ञा द्वारा ब्राह्मणों को वंचित कर देती है। (वे लोग वेदाचार विहीन हो जाते हैं)। कलिकाल में १०००० वर्ष तक ही मेरी पूजा होगी।

---

१. क. ०निन्दां।

कलिकाल में ५००० वर्ष तक ही गंगा रहेगी। गंगा के अवस्थान काल तक ही पृथिवी पर विष्णुभक्तगण, तुलसी, कीर्त्तन तथा कुछ स्वल्प पुराण रहेंगे (अपूर्ण पुराण रहेंगे)। हे व्रजराज! जब कलियुगान्त होगा तब कोई भी मेरा कीर्त्तन नहीं करेगा। किरात, बली तथा शठ सभी एक ही वर्णात्मक लोग रह जायेंगे।।२७-३०।।

पित्रोः सेवा गुरोः सेवा सेवा च देवविप्रयोः।
विविर्जिता नराः सर्वे चातिथीनां तथैव च।।३१।।
सस्यहीना भवेत्पृथ्वी साऽनावृष्ट्या निरन्तरम्।
फलहीनोऽपि वृक्षश्च जलहीना सरित्तथा।।३२।।
वेदहीनो ब्राह्मणश्च बलहीनश्च भूपतिः।
जातिहीना जनाः सर्वे म्लेच्छो भूपो भविष्यति।।३३।।
भृत्यवत्ताडयेत्तातं पुत्रः शिष्यस्तथा गुरुम्।
कान्तं च ताडयेत्कान्ता लुब्धकुक्कुटवद्गृही।।३४।।
नश्यन्ति सकला लोकाः कलौ शेषे च पापिनः।
सूर्याणामातपात्केचिज्जलौघेनापि केचन।।३५।।

कोई भी माता-पिता-गुरु-देवता-पितर सेवा/पूजन नहीं करेगा। अतिथि सेवा भी नहीं की जायेगी। सतत् अनावृष्टि के कारण पृथिवी फसल से रहित होगी। वृक्ष फल रहित तथा नदी जल रहित होगी। ब्राह्मण वेद रहित होंगे। राजा बलहीन होंगे। सभी लोग जातिहीन हो जायेंगे। म्लेच्छ ही राजा होंगे। पुत्र ही पिता ताड़न नौकर जैसा करेगा। शिष्यगण गुरु की ताड़ना करेंगे। स्त्री पति की ताड़ना करेगी। वह उससे लोभी मुर्गे जैसा व्यवहार करेगी। कलि के अन्त में सभी पातकी लोगों का नाश हो जायेगा। कतिपय लोग सूर्यताप से, तो कुछ जलराशि द्वारा नष्ट हो जायेंगे।।३१-३५।।

हे वैश्येन्द्र प्रतिकलौ[1] न नश्यति वसुंधरा।
पुनः सृष्टौ[2] भवेत्सत्यं सत्यबीजं निरन्तरम्।।३६।।

एतस्मिन्नन्तरे विप्र रथमेव मनोहरम्। चतुर्योजनविस्तीर्णमूर्ध्वे च पञ्चयोजनम्।।३७।।
शुद्धस्फटिकसंकाशं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम्। अम्लानपारिजातानां मालाजालविराजितम्।।३८।।
मणीनां कौस्तुभानां च भूषणेन विभूषितम्। अमूल्यरत्नकलशं हीरहारविलम्बितम्।।३९।।

"हे वैश्यराज! प्रत्येक कलिकाल में पृथिवी का नाश नहीं होता। पुनः सृष्टि होती है। निरन्तर समस्त सत्यबीज सत्य होने लगता है।" तभी वहां एक रथ आ गया। वह पांच योजन लम्बाई वाला तथा चौड़ाई में चार योजन था। वह शुद्ध स्फटिक के समान तथा कान्तिमान तथा रत्न के सारभाग से

१. ख. सति।
२. ख. सृष्टिर्भ०।

निर्मित था। उसमें अम्लान पारिजात पुष्पों का जाल बना था। इससे उसकी शोभा वर्द्धित हो रही थी। वह कौस्तुभ मणि आदि के अनेक भूषणों से भूषित था। उसमें अमूल्य रत्न कलश रखे थे तथा हीरों के हार लटक रहे थे।।३६-३९।।

मनोहरैः परिष्वक्तं सहस्रकोटिमन्दिरैः। सहस्रद्वयचक्रं च सहस्रद्वयघोटकम्॥४०॥
सूक्ष्मवस्त्राच्छादितं च गोपीकोटीभिरावृतम्। गोलोकादागतं तूर्णं ददृशुः सहसा व्रजे॥४१॥
कृष्णाज्ञया तमारुह्य ययुर्गोलोकमुत्तमम्। राधा कलावती देवी धन्या चायोनिसंभवा॥४२॥
गोलोकादागता गोप्यश्चायोनिसंभवाश्च ताः। श्रुतिपत्न्यश्च ताः सर्वाः स्वशरीरेण नारद॥४३॥
सर्वे त्यक्त्वा शरीराणि नश्वराणि सुनिश्चितम्।
गोलोकं च ययौ राधा सार्धं गोकुलवासिभिः॥४४॥

उसमें मनोहर सहस्रकोटि मंदिर बने थे। वह दो हजार चक्र एवं दो सहस्र घोड़ों से जुता था। वह सूक्ष्म वस्त्रों से आच्छादित तथा एक करोड़ गोपियों से घिरा था। वह गोलोक से सहसा ब्रजधाम में आया था। सभी लोग कृष्ण की आज्ञा पाते ही उस पर बैठकर परमोत्तम गोलोक धाम चले गये। हे नारद! उन सभी ने नश्वर जीवन त्याग किया तथा गोलोक चले गये। राधा भी उन सबके साथ गोलोक चली गईं। वे कृष्ण की आज्ञा से विमान पर आसीन होकर गोलोक धाम शीघ्रता से गईं। राधा तथा देवी कलावती अयोनिजा थीं। वे गर्भ से उत्पन्न नहीं थीं। अन्य सभी अपना पांच भौतिक नश्वर देह त्याग कर ही गोलोक को गये थे।।४०-४४।।

ददर्श विरजातीरं नानारत्नविभूषितम्। तदुत्तीर्य ययौ विप्र शतशृङ्गं च पर्वतम्॥४५॥
नानामणिगणाकीर्णं रासमण्डलमण्डितम्।
तयो ययौ कियद्दूरं पुण्यं वृन्दावनं वनम्॥४६॥
सा ददर्शाक्षयवटमूर्ध्वे त्रिशतयोजनम्। शतयोजनविस्तीर्णं शाखाकोटिसमावृतम्॥४७॥
रक्तवर्णैः फलौघैश्च स्थूलैरपि विभूषितम्। गोपीकोटिसहस्रैश्च सार्धं वृन्दा मनोहरा॥४८॥

हे ब्रह्मन्! उन्होंने मार्ग में विरजा नदी का तट देखा। वह तट नानारत्न भूषित था। उसे पार करके राधा शतशृंग पर्वत पर गयीं तथा वहां नाना मणिसमूह से युक्त रासमण्डल को देखा। तनिक आगे जाने पर उन्होंने पुण्यमय वृन्दावन क्षेत्र को देखा। वहां उन्होंने तीन सौ योजन उच्च, सौ योजन विस्तृत एवं कोटि शाखायुक्त वटवृक्ष देखा। उस वृक्ष में लाल रंग के विशाल फलसमूह उस वृक्ष की शोभा का वर्द्धन कर रहे थे। उस वृक्ष के नीचे सुन्दरी वृन्दा हजारों कोटि गोपीगण के साथ विराजित थीं।।४५-४८।।

अनुव्रजं सादरं च सस्मिता सा समाययौ। अवरुह्य रथात्तूर्णं राधां सा प्रणनाम च॥४९॥
रासेश्वरीं तां संभाष्य प्रविवेश स्वमालयम्। रत्नसिंहासने रम्ये हीरहारसमन्विते॥५०॥
वृन्दा तां वासयामास पादसेवनतत्परा। सप्तभिश्च सखीभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः॥५१॥

वृन्दा को देखते ही राधा रथ से नीचे उतरकर उसके पास सादर मुस्कराती हुई गईं। तब वृन्दा ने राधा को प्रणाम किया। वृन्दा ने राधा से वार्त्तालाप किया तथा उनको भवन में ले जाकर वृन्दा ने राधा को हीरक हार युक्त रम्य रत्न सिंहासन पर बैठाया तथा राधा की चरण सेवा में तत्पर हो गईं। उस समय सात सखियां राधा की सेवा श्वेत चामर झलती कर रही थीं।।४९-५१।।

आययुर्गोपिकाः सर्वा द्रष्टुं तां परमेश्वरीम्।
नन्दादिकं प्रकल्प्यैतद्राधा वासं पृथक्पृथक्॥५२॥
परमानन्दरूपा सा परमानन्दपूर्वकम्। स्ववेश्मनि महारम्ये प्रतस्थे गोपिका सह॥५३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२८।।
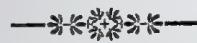
इसी समय परमेश्वरी राधा के दर्शनार्थ समस्त गोपियों का समूह आ गया। वहां गोलोक में राधा ने नन्द आदि के लिये पृथक्तः आवास की व्यवस्था किया। तत्पश्चात् परमानन्दरूपा श्रीराधा परमानन्द पूर्वक अपनें महारम्य गृह में गोपियों के साथ चली गईं।।५२-५३।।

।।१२८वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भाण्डीर वन में आये ब्रह्मा आदि द्वारा श्रीकृष्ण स्तोत्र का कथन, यदुकुलध्वंस, पाण्डवों का स्वर्गगमन, भागीरथी को भगवान् का वर प्रदान तथा श्रीकृष्ण का गोलोकगमन

नारायण उवाच

श्रीकृष्णो भगवांस्तत्र परिपूर्णतमः प्रभुः।
दृष्ट्वा सालोक्यमोक्षं च सद्यो गोकुलवासिनाम्॥१॥
उवास पञ्चभिर्गोपैर्भाण्डीरे वटमूलके। ददर्श गोकुलं सर्वं गोकुलं व्याकुलं तथा॥२॥
अरक्षकं च व्यस्तं च शून्यं वृन्दावनं वनम्।
योगेनामृतदृष्ट्या च कृपया च कृपानिधिः॥३॥
गोपीभिश्च तथा गोपैः परिपूर्णं चाकर सः। तथा वृन्दावनं चैव सुरम्यं च मनोहरम्॥४॥

गोकुलस्थांश्च गोपांश्च समाश्वासं चकार सः।
उवाच मधुरं वाक्यं हितं नीतं च दुर्लभम्॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—उस समय पूर्णतम विभु प्रभु श्रीकृष्ण ने गोलोक गमन करते ब्रजवासियों की सद्यःमुक्ति तथा सालोक्य प्राप्ति को पांच गोपों के साथ वटमूल के नीचे बैठकर देखा। तदनन्तर समस्त गोकुल एवं गोपसमूह व्याकुल लग रहा था। वहां की गौयें भी व्याकुल थीं। उन्हें वृन्दावन भी रक्षक रहित अस्त-व्यस्त ध्वस्त तथा शून्य लगा। तभी कृपानिधि श्रीकृष्ण ने कृपा पूर्वक योग से अमृत दृष्टि से शून्य वृंदावन तथा गोकुल को गोपीवृन्द तथा गोपियों से पूर्ण कर दिया। उन्होंने पुनः वृन्दावन को अत्यन्त रम्य एवं मनोहर कर दिया। गोकुलस्थ गोपगण को आश्वस्त करके श्रीकृष्ण ने उन गोपों से मधुर हितप्रद दुर्लभ एवं नीतिपूर्ण वाक्य कहा—॥१-५॥

श्रीभगवानुवाच

हे गोपगण हे बन्धो सुखं तिष्ठ स्थिरो भव। रमणं प्रियया सार्ध सुरम्यं रासमण्डलम्॥६॥
तावत्प्रभृति कृष्णस्य पुण्ये वृन्दावने वने। अधिष्ठानं च सततं यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥७॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे गोपो! हे बन्धुगण! सुख से बैठो। स्थिर हो जाओ। तुम सभी स्थिर यौवन होकर सुख पूर्वक काल व्यतीत करो। यहां रम्य रासमण्डल में मैं पुनः प्रिया राधा के साथ रमण करूंगा। मैं श्रीकृष्ण तब तक पुण्यमय वृन्दावन में रहूंगा, जब तक संसार में चन्द्र तथा सूर्य रहेंगे।॥६-७॥

तथा जगाम भाण्डीरं विधाता जगतामपि।
स्वयं शेषश्च धर्मश्च भवान्या च भवः स्वयम्॥८॥
सूर्यश्चापि महेन्द्रश्च चन्द्रश्चापि हुताशनः। कुबेरो वरुणश्चैव पवनश्च यमस्तथा॥९॥
ईशानश्चापि देवाश्च वसवोऽष्टौ तथैव च। सर्वे ग्रहाश्च रुद्राश्च मुनयो मनवस्तथा॥१०॥
त्वरिताश्चाऽऽययुः सर्वे यत्राऽऽस्ते भगवान्प्रभुः।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तमुवाच विधिः स्वयम्॥११॥

यह कहकर त्रैलोक्य विधाता माधव भाण्डीर वन में चले गये। जहां श्रीकृष्ण प्रभु विराजित थे, वहां शेषनाग, धर्मदेव, भवानी-शिव, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, अग्नि, कुबेर, वायुदेव, यमराज, ईशान, अष्ट वसु, सभी ग्रह, मुनिगण एवं मनुवृन्द भी यथाशीघ्र आ गये। उस समय साक्षात् ब्रह्मा ने धरती पर दण्डवत् प्रणामोपरान्त प्रभु से कहा—॥८-११॥

ब्रह्मोवाच

परिपूर्णतम ब्रह्मस्वरूप नित्यविग्रह। ज्योतिःस्वरूप परम नमोऽस्तु प्रकृतेः पर॥१२॥
सुनिर्लिप्त निराकार साकार ध्यानहेतुना। स्वेच्छामय परं धाम परमात्मन्नमोऽस्तु ते॥१३॥

सर्वकार्यस्वरूपेश कारणानां च कारणा। ब्रह्मेशशेषदेवेश सर्वेश ते नमोऽस्तु ते॥१४॥
सरस्वतीश पद्मेश पार्वतीश परात्पर। हे सावित्रीश राधेश रासेश्वर नमोऽस्तु ते॥१५॥
सर्वेषामादिभूतस्त्वं सर्वं सर्वेश्वरस्तथा। सर्वपाता च संहर्ता सृष्टिरूप नमोऽस्तु ते॥१६॥
त्वत्पादपद्मरजसा धन्या पूता वसुंधरा। शून्यरूपा त्वयि गते हे नाथ परमं पदम्॥१७॥

यत्पञ्चविंशत्यधिकं वर्षाणां शतकं गतम्।
त्यक्त्वेमां स्वपदं यासि रुदतीं विरहातुराम्॥१८॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे प्रभो! आप परिपूर्णतम ब्रह्मरूप हैं। आप अविनाशी देहवाले, ज्योतिर्मय, प्रकृति से परे, परमपदार्थ हैं। आपको नमस्कार! हे निर्लिप्त! निराकार! आप भक्तों पर कृपालु होकर देह धारण करते हैं, ताकि वे आपका साकार ध्यान कर सकें। हे स्वेच्छामय! परधाम! परमात्मन्! आपको प्रणाम! हे ब्रह्मन्! आप सर्वकार्य स्वरूप, ईश्वर, कारणों के भी कारण, ब्रह्मा, ईश्वर शिव, शेष तथा देवगण के भी ईश्वर हैं। आपको प्रणाम! हे सरस्वती के स्वामी! लक्ष्मी के प्रभु! पार्वती के प्रभु! आप परात्पर हैं। हे सावित्री के ईश्वर! राधा के ईश्वर! रास के ईश्वर! आपको प्रणाम! आप सबके आदिभूत हैं, आप सर्व हैं तथा सर्वेश्वर हैं। आप सबके रक्षक, सबके संहर्त्ता, सृष्टिरूप हैं। आपको प्रणाम! आपके चरणकमलों की रज के स्पर्श से पृथिवी पवित्र हो जाती हैं। हे नाथ! आपके परमपद चले जाने पर यह वसुन्धरा शून्य हो जायेगी। यहां १२५ वर्ष आपको व्यतीत हो गये। इसको त्याग कर जब आप परमपदगामी हो जायेंगे, तभी यह आपके विरह के कारण आतुर होकर रो रही हैं।।१२-१८।।

महादेव उवाच

ब्रह्मणा प्रार्थितस्त्वं च समागत्य वसुन्धराम्।
भूभारहरणं कृत्वा प्रयासि स्वपदं विभो॥१९॥
त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या सद्यः पूता पदाङ्किता।
वयं च मुनयो धन्याः साक्षाद्दृष्ट्वा पदाम्बुजम्॥२०॥
ध्यानासाध्यो दुराराध्यो मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
अस्माकमपि[1] यश्चेशः सोऽधुना चाक्षुषो भुवि॥२१॥

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु। देवस्तस्य महाविष्णुर्वासुदेवो महीतले॥२२॥
सुचिरं तपसा लब्धं सिद्धेन्द्राणां सुदुर्लभम्। यत्पादपद्ममतुलं चाक्षुषं सर्वजीविनाम्॥२३॥

महादेव कहते हैं–हे विभु! आपने ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर पृथिवी पर आकर भूभार का हरण किया, तब अपने स्थान पर वापस जा रहे हैं। त्रैलोक्य में पृथिवी ही आपके चरण से अंकिता होकर सद्यः पवित्र तथा धन्या हो गई। मैं तथा मुनिगण साक्षात् आपके पादपद्म का दर्शन करके धन्य हो गये

---

१. ख. ०मनधश्चे०।

हैं। जो ईश्वर ऊर्ध्वरेता मुनिगण के भी ध्यान के अतीत तथा दुराराध्य हैं, वे आज पृथिवी पर हमें नेत्रगोचर हो रहे हैं। जो वासु (विश्व) के तथा सभी के निवास स्थान हैं, जिनके एक-एक रोम में एक-एक विश्व अवस्थित है, वे महाविष्णु देवता वासुदेव भूतल पर हैं। जिनके अनुपम चरणकमल दीर्घकाल तपस्या से प्राप्त होता है, जो चरणकमल श्रेष्ठ सिद्धों के लिये भी दुर्लभ है, वह आज सभी प्राणीगण के समक्ष प्रत्यक्ष हैं।।१९-२३।।

अनन्त उवाच

त्वमनन्तो हि भगवन्नाहमेव कलांशकः। विश्वैकस्थे क्षुद्रकूर्मे मशकोऽहं गजे यथा।।२४।।
असंख्यशेषाः कूर्माश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः।
असंख्यानि च विश्वानि तेषामीशः स्वयं भवान्।।२५।।
अस्माकमीदृशं नाथ सुदिनं क्व भविष्यति।
स्वप्नादृष्टश्च यश्चेशः स दृष्टः सर्वजीविनाम्।।२६।।
नाथ प्रयासि गोलोकं पूतां कृत्वा वसुन्धराम्।
तामनाथां रुदन्तीं च निमग्नां शोकसागरे।।२७।।

अनन्त देव कहते हैं—हे भगवान्! आप ही अनन्त हैं। मैं तो मात्र आपकी कला का अंश भी नहीं हूं। मैं तो विश्व में एक स्थान स्थित पर छुद्र कूर्म पर वैसे ही रहा करता हूं, जैसे हाथी के ऊपर एक मच्छर रहता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शेष, कूर्म असंख्य हैं। असंख्य विश्व हैं तथा उसके ईश्वर आप ही हैं। जो प्रभु स्वप्न तक में दृष्टिगोचर नहीं होते, वे आज सभी प्राणीगण को दृष्टिगोचर हो रहे हैं। हे नाथ! आप आज धरती को पावन करके गोलोक गमन कर रहे हैं, उधर यह पृथिवी आपके आसन्न विरह का स्मरण करके शोक-सागर मग्न होकर रुदन कर रही है।।२४-२७।।

देवा ऊचुः

वेदाःस्तोतुं न शक्ता यं ब्रह्मेशानादयस्तथा।
तमेव स्तवनं किं वा वयं कुर्मो नमोऽस्तु ते।।२८।।

देवगण कहते हैं—ब्रह्मा तथा महेश्वर आदि देवता तथा चारों वेद जिनका स्तव करने में समर्थ नहीं हैं, हम उनका स्तव कैसे कर सकते हैं? आपको नमस्कार!।।२८।।

इत्येवमुक्त्वा देवास्ते प्रययुर्द्वारकां पुरीम्।
तत्रस्थं भगवन्तं च द्रष्टुं शीघ्रं मुदाऽन्विताः।।२९।।
अथ तेषां च गोपाला ययुर्गोलोकमुत्तमम्।
पृथिवी कम्पिता भीता चलन्तः सप्तसागराः।।३०।।

यह कहकर वे देवगण द्वारका प्रस्थान कर गये। वहां उन्होंने भगवान् को देखा तथा शीघ्र

अत्यन्त मुदित हो गये। तदनन्तर उनके गोपाल उत्तम गोलोक चले गये। उस समय धरती कांपने लगी। सप्तसागर तक चलायमान हो गये।।२९-३०।।

हतश्रियं द्वारकां च त्यक्त्वा च ब्रह्मशापतः।
मूर्तिं कदम्बमूलस्थां विवेश राधिकेश्वरः।।३१।।
ते सर्वे चैरकायुद्धे निपेतुर्यादवास्तथा। चितामारुह्य देव्यश्च प्रययुः स्वामिभिः सह।।३२।।
अर्जुनः स्वपुरं गत्वा समुवाच युधिष्ठिरम्।
स राजा भ्रातृभिः सार्धं ययौ स्वर्गं च भार्यया।।३३।।

हे मुनि! उस समय द्वारका ब्रह्मशाप से हतश्री(श्रीरहित) हो गई। द्वारका का त्याग करके राधिकेश्वर कृष्ण कदम्बमूल में स्थित मूर्त्ति में प्रविष्ट हो गये। समस्त यादव गण का ऐरका घास को अस्त्र बनाकर जो युद्ध हुआ था उसमें समस्त यादव परस्परतः युद्ध करके नष्ट हो गये। स्त्रियां अपने स्वामी की चिता पर आरूढ़ होकर परलोक चली गयीं। अर्जुन ने अपनी नगरी जाकर यह समाचार युधिष्ठिर से कहा। वे युधिष्ठिर द्रौपदी तथा भ्रातागण के साथ स्वर्ग चले गये।।३१-३३।।

दृष्ट्वा कदम्बमूलस्थं तिष्ठन्तं परमेश्वरम्। देवा ब्रह्मादयस्ते च प्रणेमुर्भक्तिपूर्वकम्।।३४।।
तुष्टुवुः परमात्मानं देवं नारायणं प्रभुम्। श्यामं किशोरवयसं भूषितं रत्नभूषणैः।।३५।।
वह्निशुद्धांशुकाधानं शोभितं वनमालया।
अतीव सुन्दरं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम्।।३६।।
व्याधास्त्रसंयुतं पादपद्मं पद्मादिवन्दितम्। दृष्ट्वा ब्रह्मादिदेवांस्तानभयं सस्मितं ददौ।।३७।।
पृथिवीं तां समाश्वास्य रुदतीं प्रेमविह्वलाम्। व्याधं प्रस्थापयामास परं स्वपदमुत्तमम्।।३८।।

इधर ब्रह्मादि देवगण ने कदम्ब मूलस्थ परमेश्वर का दर्शन करके उनको भक्तिभाव से प्रणाम किया। वे रत्नभूषणभूषित वनमाला से शोभायमान, अग्निशुद्ध सूक्ष्म परिधानधारी, किशोरवय वाले, अति सुन्दर लक्ष्मीकान्त, मनोहर, शान्त, श्यामवर्ण, जिनका तलवा व्याध के बाण से विद्ध था, जो लक्ष्मी आदि देवी द्वारा वन्दित चरण-कमल वाले हैं उन श्रीकृष्ण ने ब्रह्मादि देवगण को देखकर उनको मुस्कराते हुये अभयदान दिया। उन्होंने प्रेमविह्वला वसुन्धरा को रोते हुये देखकर उसे आश्वस्त किया तथा व्याध को उत्तम पद प्रदान किया।।३४-३८।।

बलस्य तेजः शेषे च विवेश परमाद्भुतम्।
प्रद्युम्नस्य च कामे[1] वै वाऽनिरुद्धस्य ब्रह्मणि।।३९।।
अयोनिसंभवा देवी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी। वैकुण्ठं प्रययौ साक्षात्स्वशरीरेण नारद।।४०।।
सत्यभामा पृथिव्यां च विवेश कमलालया।
स्वयं जाम्बवती देवी पार्वत्यां विश्वमातरि।।४१।।

१. क. कामकै०।

या या देव्यश्च यासां चाप्यंशरूपाश्च भूतले।
तस्यां तस्यां प्रविविशुस्ता एव च पृथक्पृथक्॥४२॥

हे नारद! बलदेव का अत्यन्त अद्भुत तेज वहां से शेषनाग में प्रविष्ट हो गया। इसी प्रकार प्रद्युम्न का तेज कामदेव में, अनिरुद्ध का ब्रह्मा में अयोनिसंभूता रुक्मिणी महालक्ष्मी साक्षात् अपने शरीर से ही वैकुण्ठ चली गई। लक्ष्मी की अंशरूपा सत्यभामा वसुन्धरा में लीन हो गयीं। देवी जाम्बवती विश्वमाता पार्वती में प्रवेश कर गईं। जो स्त्री जिन-जिन देवी के अंश से जन्मी थीं, वे अलग-अलग उन-उन देवी में लीन हो गईं।।३९-४२।।

साम्बस्य तेजः स्कन्दे च विवेश परमाद्भुतम्।
कश्यपे वसुदेवश्चाप्यदिव्यां देवकी तथा॥४३॥
रुक्मिणीमन्दिरं त्यक्त्वा समस्तां द्वारकां पुरीम्। स जग्राह समुद्रश्च प्रफुल्लवदनेक्षणः॥४४॥
लवणोदः समागत्य तुष्टाव पुरुषोत्तमम्। रुरोद तद्वियोगेन साश्रुनेत्रश्च विह्वलः॥४५॥

जाम्बवती नन्दन साम्ब का परम अद्भुत तेज स्कन्ददेव में लीन हो गया। महर्षि कश्यप में वसुदेव का तेज समा गया। देवकी का तेज माता अदिति में लीन हो गया। उसी समय प्रसन्नमुख तथा हर्षित नेत्र वाले सागर ने रुक्मिणी के गृह को छोड़कर सम्पूर्ण द्वारका को स्वयं में लीन कर लिया। तदनन्तर सागर ने वहां आकर पुरुषोत्तम कृष्ण की स्तुति किया। वे अश्रुपूर्ण नेत्र होकर श्रीकृष्ण के वियोग के कारण रुदनरत हो गये। वे परम विह्वल होकर रोने लगे!।।४३-४५।।

गङ्गा सरस्वती पद्मावती च यमुना तथा। गोदावरी स्वर्णरेखा कावेरी नर्मदा मुने॥४६॥
शरावती बाहुदा च कृतमाला च पुण्यदा।
समाययुश्च ताः सर्वाः प्रणेमुः परमेश्वरम्॥४७॥
उवाच जाह्नवी देवी रुदती परमेश्वरम्। साश्रुनेत्राऽतिदीना सा विरहज्वरकातरा॥४८॥

हे मुनिवर! उस समय गंगा, सरस्वती, पद्मावती, यमुना, गोदावरी, स्वर्णरेखा, कावेरी, नर्मदा, शरावती, बाहुदा, पुण्यमयी कृतमाला आदि सभी नदियां वहां आईं। सभी ने परमेश्वर को प्रणाम किया। तभी देवी जाह्नवी के नेत्रों में अश्रु भर गये; वे अति दीन तथा विरह कातर होकर रुदन करते कहने लगीं।।४६-४८।।

जाह्नव्युवाच

हे नाथ रमणश्रेष्ठ यासि गोलोकमुत्तमम्।
अस्माकं का गतिश्चात्र भविष्यति कलौ युगे॥४९॥

देवी जाह्नवी कहती हैं–हे नाथ! रमणश्रेष्ठ! आप तो अत्युत्तम गोलोक जा रहे हैं! इस कलिकाल में मेरी क्या गति होगी?।।४९।।

श्रीभगवानुवाच

कलेः पञ्चसहस्राणि वर्षाणि तिष्ठ भूतले।
पापानि पापिनो यानि तुभ्यं दास्यन्ति स्नानतः॥५०॥
मन्मन्त्रोपासकस्पर्शाद्भस्मीभूतानि तत्क्षणात्।
भविष्यन्ति दर्शनाच्च स्नानादेव हि जाह्नवि॥५१॥
हरेर्नामानि यत्रैव पुराणानि भवन्ति हि।
तत्र गत्वा सावधानमाभिः सार्धं च श्रोष्यसि॥५२॥
पुराणश्रवणाच्चैव हरेर्नामानुकीर्तनात्। भस्मीभूतानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च॥५३॥
भस्मीभूतानि तान्येव वैष्णवालिङ्गनेन च।
तृणानि शुष्ककाष्ठानि दहन्ति पावका यथा॥५४॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे जाह्नवी! तुम कलिकाल में ५००० वर्ष तक ही पृथिवी पर रहोगी। पापीगण तुममें स्नान करके जो कुछ पाप प्रदान करेंगे, वह सब मेरे मन्त्रोपासकों के स्पर्श से तत्काल दग्ध हो जायेगा। जहां कहीं भी हरिनाम कीर्त्तन, पुराणपाठ होगा, वहां इन नदियों के साथ जाकर उसे सावधानी से सुनना। पुराणश्रवण तथा हरिनाम कीर्त्तन से सभी पातक क्षणकाल में भस्मीभूत होंगे। ब्रह्महत्यादि सभी पातक विष्णुभक्त के आलिंगन-स्पर्श से दूरीभूत हो जाते हैं। भस्म तक हो जाते हैं। जैसे अग्नि में शुष्क काष्ठ तथा तृण भस्म हो जाता है, तदनुरूप हरिभक्त व्यक्ति के साथ आलाप करने वाले पापी लोगों का भी पातक दग्ध हो जाता है।।५०-५४।।

तथाऽपि वैष्णवा लोके पापानि पापिनामपि।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यपि च जाह्नवि॥५५॥
मद्भक्तानां शरीरेषु सन्ति पूतेषु सन्ततम्। मद्भक्तपादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा॥५६॥
सद्यः पूतानि तीर्थानि सद्यः पूतं जगत्तथा।
मन्मन्त्रोपासका विप्रा ये मदुच्छिष्टभोजिनः॥५७॥
मामेव नित्यं ध्यायन्ते ते मत्प्राणाधिकाः प्रियाः।
तदुपस्पर्शमात्रेण पूतो वायुश्च पावकः॥५८॥

ये यमुने! धरती पर जितने भी पावन तीर्थ हैं, वे सभी मेरे भक्तों के शरीर में सदा स्थित रहते हैं। मेरे भक्तों की चरणधूलि से पृथिवी तत्काल शुद्ध हो जाती है। समस्ततीर्थ तथा जगत् भी पवित्र हो जाता है। जो ब्राह्मण मेरे मन्त्रों के उपासक हैं, मेरे प्रसाद का भक्षण करने वाले, नित्य मेरे ध्यान में निरत हैं, वे मुझे प्राणाधिक प्रिय हैं। उनके स्पर्शमात्र से पवन तथा अग्नि तक पवित्रता लाभ करते हैं।।५५-५८।।

कलेर्दशसहस्त्राणि मद्भक्ताः सन्ति भूतले। एकवर्णा भविष्यन्ति मद्भक्तेषु गतेषु च॥५९॥
मद्भक्तशून्या पृथिवी कलिग्रस्ता भविष्यति। एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णदेहाद्विनिर्गतः॥६०॥
चतुर्भुजश्च पुरुषः शतचन्द्रसमप्रभः। शङ्खचक्रगदापद्मधरः श्रीवत्सलाञ्छनः॥६१॥
सुन्दरं रथमारुह्य क्षीरोदं स जगाम ह। सिन्धुकन्या च प्रययौ स्वयं मूर्तिमती सती॥६२॥
श्रीकृष्णमनसा जाता मर्त्यलक्ष्मीर्मनोहरा। श्वेतद्वीपं गते विष्णौ जगत्पालनकर्तरि॥६३॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपे च द्विधारूपो बभूव सः। दक्षिणांशश्च द्विभुजो गोपबालकरूपकः॥६४॥
नवीन जलदश्यामः शोभितः पीतवाससा। श्रीवंशवदनः श्रीमान्सस्मितः पद्मलोचनः॥६५॥
शतकोटीन्दुसौन्दर्यं शतकोटिस्मरप्रभाम्। दधानः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः॥६६॥
परं धाम परं ब्रह्मस्वरूपो निर्गुणः स्वयम्। परमात्मा च सर्वेषां भक्तानुग्रविग्रहः॥६७॥
नित्यदेहश्च भगवानीश्वरः प्रकृतेः परः। योगिनो यं वदन्त्येवं ज्योतीरूपं सनातनम्॥६८॥

"कलिकाल के १०००० वर्ष तक ही मेरे भक्त भूतल पर रहेंगे। तब मेरे भक्तों के चले जाने पर यहां सभी एक ही वर्ण वाले हो जायेंगे। मेरे भक्तों से सर्वथा रहित वसुन्धरा तब कलिग्रस्ता होगी।" जब श्रीकृष्ण यह कह ही रहे थे, उसी समय वहीं श्रीकृष्ण के शरीर से सैकड़ों चन्द्र के समान द्युतिपूर्ण शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, श्रीवत्सांकित चतुर्भुज पुरुष निर्गत हो गये। वे सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर क्षीर सागर चले गये। श्रीकृष्ण के मन से उत्पन्न सिन्धुसुता मनोहरा मर्त्यलक्ष्मी ने मूर्त्तिमयी होकर उन चतुर्भुज पुरुष का अनुगमन किया। विशुद्ध सत्वमय जगत्पालक विष्णु जब श्वेतद्वीप चले गये तब श्रीकृष्ण द्विविध रूप में हो गये। दक्षिण भाग से दो भुजा वाले गोप बालक रूपी नव जलधर के श्याम वर्ण से शोभित, पीताम्बरधारी, सहास्यमुख, मुरली वादन करने वाले, श्रीसम्पन्न, परमानन्द से परिप्लुत, परिपूर्णतम, परमधाम, परमब्रह्म, निर्गुण परमात्मा होकर भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये शरीर धारण करने वाले, नित्यदेह, वे प्रभु भगवान् प्रकृति से परे हैं। योगी लोग उनको ज्योतिरूप सनातन कहते हैं॥५९-६८॥

ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यरूपं भक्ता विदन्ति यम्।
वेदा वदन्ति सत्यं यं नित्यमाद्यं विचक्षणाः॥६९॥
यं वदन्ति सुराः सर्वे परं स्वेच्छामयं प्रभुम्।
सिद्धेन्द्रा मुनयः सर्वे सर्वरूपं वदन्ति यम्॥७०॥
यमनिर्वचनीयं च योगीन्द्रः शङ्करो वदेत्।
स्वयं विधाता प्रवदेत्कारणानां च कारणम्॥७१॥

शेषो वदेदनन्तं यं नवधारूपमीश्वरम्। तर्काणामेव षष्णां च षड्विधं रूपमीप्सितम्॥७२॥
वैष्णवानामेकरूपं वेदानामेकमेव च। पुराणानामेकरूपं तस्मान्नवविधं स्मृतम्॥७३॥

न्यायोऽनिर्वचनीयं च यं मतं शङ्करो वदेत्।
नित्यं वैशेषिकाश्चाऽऽद्यं तं वदन्ति विचक्षणाः॥७४॥
सांख्या वदन्ति तं देवं ज्योतीरूपं सनातनम्।
मीमांसा सर्वरूपं च वेदान्तः सर्वकारणम्॥७५॥
पातञ्जलोऽप्यनन्तं च वेदाः सत्यस्वरूपकम्।
स्वेच्छामयं पुराणं च भक्ताश्च नित्यविग्रहम्॥७६॥
सोऽयं गोलोकनाथश्च राधेशो नन्दनन्दनः। गोकुले गोपवेषश्च पुण्ये वृन्दावने वने॥७७॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे महालक्ष्मीपतिः स्वयम्।
नारायणश्च भगवान्यन्नाम मुक्तिकारणम्॥७८॥

भक्तगण उनका ज्योतिः के अभ्यन्तर में स्थित नित्यरूपी कहते हैं। चारों वेद उनको सत्यस्वरूप तथा विद्वान् लोग उनको आदिभूत नित्य पदार्थ कहते हैं। सभी देवगण उनको स्वेच्छामय परम प्रभु कहते हैं। सिद्धप्रवरगण उन प्रभु को सर्वरूप कहते हैं। योगीप्रवर शिव उनको ही अनिर्वचनीय तथा विधाता ब्रह्मा उनको सर्वकारणों का भी कारण कहते हैं। शेषनाग उन नवधारूपधारी प्रभु को अनन्त कह गये हैं। षड्दर्शन इन प्रभु को ६ प्रकार का, वैष्णवगण अभीष्ट एक ही प्रकार का, वेद एक रूप, पुराण एक प्रकार का कहे गये हैं। इस कारण इनके रूप ९ प्रकार के हैं। न्याय तथा शंकर प्रभु इनको अनिर्वचनीय कहते हैं। वैशेषिकगण इनको नित्य कहते हैं। विद्वान् लोग इनको आदिभूत कहते हैं। सांख्यशास्त्र इनको ज्योतिरूपी सनातन कहता है। मीमांसा में सर्वरूप तथा वेदान्त इनको सर्वकारण कहा गया है। पातंजल के अनुसार ये प्रभु अनन्त हैं, चतुर्वेदानुसार सत्यरूप हैं, पुराण के अनुसार स्वेच्छामय हैं, भक्तों की दृष्टि में ये देव ही नित्य विग्रह हैं। ये स्वयं ही गोलोकपति राधा के नाथ हैं। ये ही नन्दनन्दन हैं। ये ही गोकुल में और पुण्यमय वृन्दावन में गोपवेश धारण कर लेते हैं! इनका वामांश ही चतुर्भुज महालक्ष्मीपति भगवान् नारायण है। जो मुक्तिकारण कहे जाते हैं।।६९-७८।।

सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान्कल्पशतत्रयम्। गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति नारद॥७९॥

हे नारद! जो एक बार भी 'नारायण' नाम का उच्चारण कर लेता है, उसने तो ३०० कल्प पर्यन्त गंगादि सभी तीर्थों में स्नान कर लिया।।७९।।

सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैः परिवारितः। शङ्खचक्रगदापद्मधरः श्रीवत्सलाञ्छनः॥८०॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण भूषितो वनमालया। देवैः[1] स्तुतश्च यानेन वैकुण्ठं स्वपदं ययौ॥८१॥
गते वैकुण्ठनाथे च राधेशश्च स्वयं प्रभुः। चकार वंशीशब्दं च त्रैलोक्यमोहनं परम्॥८२॥
मूर्च्छांप्रापुर्देवगणा मुनयश्चापि नारद। अचेतना बभूवुश्च मायया पार्वतीं विना॥८३॥

---

१. ख. वेदैः।

उवाच पार्वती देवी भगवन्तं सनातनम्। विष्णुमाया भगवती सर्वरूपा सनातनी॥८४॥
परब्रह्मस्वरूपा या परमात्मस्वरूपिणी।
सगुणा निर्गुणा सा च परा स्वेच्छामयी सती॥८५॥

इसके पश्चात् कौस्तुभमणि-वनमालाभूषित शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीवत्सचिह्नांकित (उनके ही स्वरूप वाले) सुनन्द, नन्द, कुमुदादि पार्षदों से घिरे तथा देवताओं से स्तुत नारायण ने वैकुण्ठ गमन किया। वैकुण्ठनाथ के चले जाने पर प्रभु राधानाथ श्रीकृष्ण ने त्रैलोक्य को मुग्ध करने वाला परमवंशी शब्द किया। हे नारद! उस शब्द के श्रवण मात्र से देवता एवं मुनिगण माया से अपनी सुध-बुध खोकर मूर्च्छित हो गये। केवल भगवती पार्वती ही चैतन्ययुक्त थीं। उस समय विष्णुमाया, सर्वरूपा, सनातनी, परब्रह्मरूपा, परमात्मस्वरूपिणी, सगुणा-निर्गुणा, स्वेच्छामयी सती देवी पार्वती ने उन सनातन भगवान् से पूछा।।८०-८५।।

पार्वत्युवाच

एकाऽहं राधिकारूपा गोलोके रासमण्डले। रासशून्यं च गोलोकं परिपूर्णं कुरु प्रभो॥८६॥
गच्छ त्वं रथमारुह्य मुक्तामाणिक्यभूषितम्।
परिपूर्णतमाऽहं च तव वक्षःस्थलस्थिता॥८७॥
तवाऽऽज्ञया महालक्ष्मीरहं वैकुण्ठगामिनी। सरस्वती च तत्रैव वामे[1] पार्श्वे हरेरपि॥८८॥
तवाहं मनसा जाता सिन्धुकन्या तवाऽऽज्ञया।
सावित्री वेदमाताऽहं कलया विधिसन्निधौ॥८९॥
तेजःसु सर्वदेवानां पुरा सत्ये तवाऽऽज्ञया। अधिष्ठानं कृत तत्र धृतं देव्या शरीरकम्॥९०॥
शुम्भादयश्च दैत्याश्च निहताश्चावलीलया। दुर्गं निहत्य दुर्गाऽहं त्रिपुरा त्रिपुरे वधे॥९१॥
निहत्य रक्तबीजं च रक्तबीजविनाशिनी।
तवाऽऽज्ञया दक्षकन्या सती सत्यस्वरूपिणी॥९२॥

देवी पार्वती कहती हैं–अब तक मैं एकाकी राधारूप से गोलोकस्थ रासमण्डल में विराजमान थीं। अतएव अब आप रास से शून्य गोलोक को रास से पूर्ण करें। आप वहां मुक्तामाणिक्य से निर्मित रथ पर बैठकर वहां चलें। मैं आपके वक्षस्थल पर रहकर परिपूर्णा हूं। मैं आपकी आज्ञा से वैकुण्ठ निवासिनी महालक्ष्मी रूपा तथा वहीं पर हरि के वामपार्श्वस्थ सरस्वती हूं। मैं ही आपके मन से उत्पन्न सिन्धुकन्या हूं। आप ही के आदेश से मैं ही वेदमाता सावित्री भी हूं। मैं ही अपने अंश रूप से ब्रह्मा के निकट रहती हूं। पूर्व के सत्ययुग में मैंने आपके आदेश से समस्त देवगण के सम्मिलित तेज से अधिष्ठित होकर दिव्य देह धारण किया था तथा उस देह से अनायास ही मैंने शुंभ आदि दैत्यों का वध

१. समा।

किया। मैंने दुर्गदैत्य का नाश करके दुर्गा तथा त्रिपुरासुर का वध करके त्रिपुरा नाम धारण किया था। मैंने आपके ही आदेश से रक्तबीज दैत्य का वध किया और रक्तबीज विनाशिनी का नाम धारण किया था। मैं आपके ही आदेश से सत्यरूपा दक्षकन्या सती कहलाई!।।८६-९२।।

योगेन त्यक्त्वा देहं च शैलजाऽहं तवाऽऽज्ञया।
त्वया दत्त्वा (त्ता) शङ्कराय गोलोके रासमण्डले।।९३।।
विष्णुभक्तिरहं तेन विष्णुमाया च वैष्णवी।
नारायणस्य मायाऽहं तेन नारायणी स्मृता।।९४।।
कृष्णप्राणाधिकाऽहं च प्राणाधिष्ठातृदेवता।
महाविष्णोश्च वासोश्च जननी राधिका स्वयम्।।९५।।
तवाऽऽज्ञया पञ्चधाऽहं पञ्चप्रकृतिरूपिणी।
कलाकलांशयाऽहं च देवपत्न्यो गृहे गृहे।।९६।।

उस समय मैंने आपकी आज्ञा से योग द्वारा देह त्याग किया तथा शैलपुत्री कही गई। आपने मुझ शैलपुत्री को गोलोकस्थ रासमण्डल में शिव को प्रदान भी किया था। मैं ही विष्णु भक्त होने के कारण विष्णुमाया वैष्णवी हूं। मैं ही नारायण की माया होने के कारण नारायणी कही गई। मैं ही कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठातृ देवी होने के कारण प्राणों से भी प्रिया, महाविष्णु तथा वासु की जननी तथा राधा हूं। मैं ही आपकी आज्ञा से पंचप्रकृतिरूपेण पंचधा विभक्त हो गई तथा अंश के अंश और उसके भी अंश रूप से देवगण के घर-घर में उन-उन देवता की पत्नी हो गई।।९३-९६।।

शीघ्रं गच्छ महाभाग तत्राऽहं विरहातुरा। गोपीभिः सहिता रासं भ्रमन्ती परितः सदा।।९७।।

हे प्रभो! मैं गोलोक में राधारूप से विरहातुरा हूं। आप शीघ्र जायें। मैं सतत् वहां रासमण्डल के चतुर्दिक् गोपियों के साथ चक्रमण करती रहती हूं।।९७।।

पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः। रत्नयानं समारुह्य ययौ गोलोकमुत्तमम्।।९८।।

पार्वती का वचन सुनकर रसिकेश्वर श्रीकृष्ण हंस पड़े तथा वे रत्नयान पर बैठकर उत्तम गोलोक चले गये।।९८।।

पार्वती बोधयामास स्वयं देवगणं तथा। मायावंशीरवाच्छन्नं विष्णुमाया सनातनी।।९९।।
कृत्वा ते हरिशब्दं च स्वगृहं विस्मयं ययुः।
शिवेन सार्धं दुर्गा सा प्रहृष्टा स्वपुरं ययौ।।१००।।

तब सनातनी विष्णुमाया पार्वती ने माया रूपी वंशी के निनाद से मूर्च्छित देवगण को स्वयं प्रबुद्ध तथा चैतन्य किया। वे सभी देवता हरि-हरि कहते विस्मय पूर्वक स्वगृह चले गये। शिव के साथ दुर्गा भी हर्षित होकर स्वगृह चली गयीं।।९९-१००।।

अथ कृष्णं समायान्तं राधा गोपीगणैः सह।
अनुव्रजं ययौ हृष्टा सर्वज्ञा प्राण वल्लभम्॥१०१॥

दृष्ट्वा समीपमायान्तमवरुह्य रथात्सती। प्रणनाम जगन्नाथं शिरसा सखिभिः सह॥१०२॥

जिन सर्वज्ञा राधा ने भी गोपीगण के साथ व्रजधाम त्याग कर प्राणवल्लभ माधव का ही अनुसरण किया था, भगवान् को निकट आते देखकर उन श्रीराधादेवी तथा उनकी सभी सखी गोपीगण ने अपने रथ से नीचे उतरकर भगवान् के चरणों में नतशिर होकर प्रणाम किया।।१०१-१०२।।

गोपा गोप्यश्च मुदिताः प्रफुल्लवदनेक्षणाः। दुन्दुभिं वादवामासुरीश्वरागमनोत्सुकाः॥१०३॥
विरजां च समुत्तीर्य दृष्ट्वा राधां जगत्पतिः। अवरुह्य रथात्तूर्णं गृहीत्वा राधिकाकरम्॥१०४॥

उस समय सभी गोप-गोपियां प्रफुल्ल थे। उनके नेत्र हर्ष से खिल गये। वे प्रभु के गोलोक आगमन से प्रसन्न होकर दुंदुभि-वादन करने लगे। जब श्रीकृष्ण ने विरजा नदी पार किया, तब जगन्नाथ ने श्रीराधा पर दृष्टिपात होते ही रथ से तत्काल उतर कर राधा के हाथों को पकड़ लिया।।१०३-१०४।।

शतशृङ्गं च बभ्राम सुरम्यं रासमण्डलम्।
दृष्टवाऽक्षयवटं पुण्यं पुण्यं वृन्दावनं ययौ॥१०५॥

तुलसीकाननं दृष्ट्वा प्रययौ मालतीवनम्। वामे कृत्वा कुन्दवनं माधवीकाननं तथा॥१०६॥

चकार दक्षिणे कृष्णश्चम्पकारण्यमीप्सितम्।
चकार पश्चात्तूर्णं च चारुचन्दनकाननम्॥१०७॥

ददर्श पुरतो रम्यं राधिकाभवनं परम्। उवास राधया सार्धं रत्नसिंहासने वरे॥१०८॥

वे तत्काल राधा के साथ शतशृङ्ग पर्वत पर स्थित सुरम्य रासमण्डल गये। वहां भ्रमण करके उन्होंने पुण्यमय वटवृक्ष का दर्शन किया तदनन्तर वे गोलोकस्थ वृन्दावन की पुण्यभूमि पर चले गये। उन्होंने वहां तुलसी वन को देखकर मालती वन गमन किया। उन्होंने माधवी वन एवं कुन्दवन को बायें छोड़कर आगे गमन किया। तब मार्ग में उन्होंने शीघ्रता के कारण चम्पकारण्य एवं मनोहर चम्पक वन को भी छोड़ दिया तदनन्तर वे परमरम्य राधिका भवन गये जहां वे उत्तम रत्नसिंहासन पर श्रीराधिका सहित रहने लगे।।१०५-१०८।।

सकर्पूरं च ताम्बूलं बुभुजे वासितं जलम्।
सुष्वाप पुष्पतल्पे च सुगन्धिचन्दनार्चिते॥१०९॥

स रेमे रामया सार्धं निमग्नो रससागरे। इत्येवं कथितं सर्वं धर्मवक्त्राच्च यच्छ्रुतम्॥११०॥
गोलोकारोहणं रम्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१११॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० गोलोकारोहणं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१२९।।

वहां उन्होंने गन्धमय कर्पूर युक्त ताम्बूल तथा शीतल सुगन्धित जल का उपभोग करते चन्दन चर्चित पुष्पमय पर्यंक पर राधा सहित शयन करके रससमुद्र में निमज्जित होते प्रिया राधा के साथ रमणरत हो गये। यह मैंने धर्मदेव से जिस प्रकार श्रवण किया था, तदनुरूप श्रीकृष्ण के गोलोकारोहण का रम्य प्रसंग तुमसे कह दिया। अब और क्या श्रवण करने की इच्छा है?।।१०९-१११।।

।।१२९वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवर्षि नारद का बदरिकाश्रम से ब्रह्मलोक गमन, नारद का विवाह तथा पत्नी के साथ विहार, सनत्कुमार के उपदेश से नारद का तपस्यार्थ जाना, नारद को महादेव का उपदेश, नारद की मुक्ति

नारद उवाच

सर्वं श्रुतं महाभाग नावशेषमभीप्सितम्। किमपूर्वं पुराणं च ब्रह्मवैवर्तमिष्टदम्।।१।।
अधुना किं करिष्यामि तन्मां ब्रूहि जगद्गुरो।
आज्ञां कुरु तपस्यां च कर्तुं यामि हिमालयम्।।२।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाभाग! मैंने अपना अभिलषित सभी विषय आप से सुन लिया। कुछ भी सुनना अब बाकी नहीं है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण अत्यन्त अभीष्टप्रद है। हे जगद्गुरु! अब क्या करूं, वह आदेश दीजिये। आप आज्ञा दीजिये। मैं तपस्या करने हिमालय जाना चाहता हूं।।१-२।।

नारायण उवाच

उपबर्हणगन्धर्वः पञ्चाशत्कामिनीपतिः। जन्मान्तरे भवानासीदधुना ब्रह्मपुत्रकः।।३।।
तास्वेका च सती रम्या तपसा शङ्करं परम्। आराध्यं च वरं लेभे वाञ्छितं नारदं पतिम्।।४।।
सा च सृञ्जयकन्या च स्वर्णष्ठीवीसहोदरा। तां विवाहं कुरुष्वेति शङ्कराज्ञा कथं वृथा।।५।।
सुन्दरी सुन्दरीष्वेवं कोमलां कमलाकलाम्। पतिव्रतां महाभागां रम्यां सुप्रियवादिनीम्।।६।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—तुम पूर्वजन्म में ५० स्त्रियों के पति उपबर्हण गन्धर्व थे। अब ब्रह्मपुत्र हो। उन पचास में से एक नारी अत्यन्त सुन्दरी थी। उसने शंकर का परम तप किया तथा यह

वर लाभ किया कि वह तुमको पतिरूपेण प्राप्त करेगी। अब वह सृंजय की पुत्री तथा स्वर्णष्ठीवी की सहोदर भगिनी है। तुमको उससे विवाह करना है; क्योंकि शंकर की आज्ञा कैसे व्यर्थ जा सकती है? वह रूपवतियों में अत्यन्त रूपवती, कोमलांगियों में अति कोमल, पतिव्रता, महाभागा, मनोहरा तथा प्रियवादिनी है।।३-६।।

कामुकीं कमनीयां च शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
विधात्रा लिखितं कर्म प्राक्तनं केन वार्यते।।७।।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।८।।

विधाता द्वारा लिखा गया, जो कर्मफल है, कोई भी उसका निवारण नहीं कर सकता। पूर्वकृत कर्म का जब तक भोग नहीं कर लिया जाता वह शतकोटि कल्पों में भी नष्ट नहीं होता। किये हुये शुभ-अशुभ कर्म का फल भोगना ही पड़ जाता है।।७-८।।

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा हृदयेन विदूयता। प्रणम्य प्रययौ शीघ्रं नारदः सृञ्जयालयम्।।९।।

सूत जी कहते हैं-ऋषि नारायण का वचन सुनकर नारद हार्दिक रूप से दुःखी हो गये। वे शीघ्रता से सृंजय के घर चले गये।।९।।

शौनक उवाच

अहो सूत महाभाग श्रुतं किं परमाद्भुतम्। किमपूर्वं रहस्यं च सरसं च पुरातनम्।।१०।।
अधुना श्रोतुमिच्छामि विवाहं नारदस्य च।
अतीन्द्रियस्य च मुनेर्ब्रह्मपुत्रस्य साम्प्रतम्।।११।।

ऋषि शौनक कहते हैं-हे महाभाग सूत! अहो! आपसे हमने कितना रहस्यमय अपूर्व सरस आश्चर्यप्रद पुरातन वृत्तान्त सुना। अब आप अतीन्द्रिय ब्रह्मपुत्र मुनिवर नारद का विवाह प्रंसग कहिये।।१०-११।।

सूत उवाच

नारदो मू (गु) ढरूपश्च दृष्ट्वा सृञ्जयकन्यकाम्।
तपस्विनीं महाभागां विष्णुव्रतपरायणाम्।।१२।।
ययौ ब्रह्मसभां रम्यां सर्वदेवैः समावृताम्।
प्रणम्य पितरं शान्तः सर्वं तत्त्वमुवाच तम्।।१३।।
ब्रह्मा प्रहृष्टवदनः श्रुत्वा वार्तां शुभावहाम्।
तपस्विनं च पुत्रं च सम्प्राप्य[१] जगतां पतिः।।१४।।

१. ख. संभाष्य।

रत्ननिर्माणयानेन सार्धं देवैः शुभे क्षणे। पुत्रं कृत्वा च पुरतो ययौ सृञ्जयमन्दिरम्॥१५॥

तच्छ्रुत्वा सृञ्जयो राजा रत्नभूषणभूषिताम्।
गृहीत्वा कन्यकां रम्यां नारदाय ददौ मुदा॥१६॥
सर्वस्वं दक्षिणां दत्त्वा मणिमुक्तादिकं तथा।
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा परिहारं चकार सः॥१७॥

सूत जी कहते हैं–देवर्षि नारद ने अलक्षित रूप से (गुप्त रूप से) तपस्विनी, महाभागा, विष्णुव्रततत्परा सृंजय कन्या को वहां देखा। उसको देखने के उपरान्त नारद सभी देवगण से समावृत रम्या ब्रह्मसभा में गये तथा वहां अपने पिता ब्रह्मा को प्रणाम किया और तत्पश्चात् समस्त प्रसंग उनसे निवेदित किया। तब सत्यवक्ता जगदीश्वर ब्रह्मा अपने पुत्र की शुभवार्त्ता सुनकर तथा तपोनिधि पुत्र को देखकर प्रसन्न हो गये। वे प्रसन्नचित्त से रत्नमय विमान पर देवगण के साथ बैठे तथा पुत्र नारद को आगे करके सृंजय के गृह में गये। यह सुनकर राजा सृंजय ने अपनी रत्नभूषणभूषिता सुन्दरी कन्या को वहां लाकर कन्या नारद को प्रदान किया। उन्होंने मणिमुक्तादि तथा सर्वस्व दक्षिणा देकर हाथ जोड़ा तथा क्षमा प्रार्थना किया (दोषों के लिये यदि कोई हो गया हो)।।१२-१७।।

कन्यां समर्प्य ब्रह्माणं राजा च योगिनां वरः[1]।
रुरोद भृशमुच्चैश्च वत्से वत्से इतीरितम्॥१८॥

योगीप्रवर राजा सृंजय ब्रह्मदेव को कन्या अर्पित करके "बेटी-बेटी" कहकर रोने लगे।।१८।।

क्व यासि त्यक्त्वा मद्गेहं[2] शून्यं कमललोचने।
अहं यामि वनं घोरं त्वां त्यक्त्वा जीवितो मृतः॥१९॥

राजा ने रोते हुये कहा–"हे पुत्री! कमललोचने! तुम मेरे गृह को शून्य करके कहां जा रही हो? तुम्हारे बिना मैं जीते जी मृत हो गया। अब मैं घोर वन में जा रहा हूं।"।।१९।।

प्रणम्य पितरं कन्या रुदन्तं मातरं तथा। रुदतीं तां रुदन्ती साऽप्यारुरोह रथं विधेः॥२०॥

गृहीत्वा च सभार्यं च पुत्रं धाता मुदाऽन्वितः।
प्रययौ ब्रह्मलोकं च देवन्द्रैर्मुनिभिः सह॥२१॥

कन्या भी रोते हुये माता-पिता को प्रणाम करके रुदन करती हुई स्वयं ब्रह्मा के रथ पर बैठ गई। ब्रह्मा भी पुत्र तथा पुत्रवधु को लेकर प्रसन्नचित्त हो गये। वे श्रेष्ठ देवगण तथा मुनियों के साथ ब्रह्मलोक चले गये।।१९-२१।।

ब्राह्मणान्भोजयामास साङ्गे मङ्गलकर्मणि।
देवानपि च सिद्धांश्च वादयामास दुन्दुभिम्॥२२॥

---

१. क. वरम्।
२. क. माहेन्द्रं।

नारदस्तु मुनिश्रेष्ठो बाधितः[१] पूर्वकर्मणा। यस्य यत्प्राक्तनं विप्र दुर्लङ्घ्य केन वार्यते॥२३॥

उन्होंने वहां सभी अंगों सहित मंगल कर्म सम्पन्न करके ब्राह्मणों को भोजन करांने के उपरान्त देवगण तथा सिद्धगण को भी भोजन कराया। तत्पश्चात् वहां दुन्दुभिवादन भी कराया। मुनिप्रवर नारद अपने पूर्वजन्म के कर्म से बाधित थे। हे विप्र! जो प्राक्तन कर्म होता है, उसका लंघन कोई भी नहीं कर सकता। उसका निवारण करने की शक्ति किसमें है?।।२२-२३।।

सुरम्ये पुष्पतल्पे च सुगन्धिचन्दनार्चिते। स रेमे रामया सार्धं बुबुधे च दिवानिशम्॥२४॥
एवं कृत्वा विवाहं च विरतो मुनिसत्तमः। उवास ब्रह्मलोकेषु वटमूले मनोहरे॥२५॥

तत्राऽऽजगाम नग्नश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा।
सनत्कुमारो भगवान्साक्षाच्च बालको यथा॥२६॥

सृष्टेः पूर्वश्च वयसा यथैव पञ्चहायनः। अचूडोऽनुपनीतश्च वेदसन्ध्याविहीनकः॥२७॥

कृष्णेति मन्त्रं जपति यस्य नारायणो गुरुः।
अनन्तकालकल्पं च भ्रातृभिश्च त्रिभिः सह॥२८॥
वैष्णवानामग्रणीशो ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः।
आराद्दृष्ट्वा नारदस्तं भ्रातरं च सतां वरम्॥२९॥

सहसा शिरसा भूमौ दण्डवत्प्रणनाम तम्। उवाच नारदं बालः प्रहस्य परमार्थकम्॥३०॥

अब नारद सुन्दर पुष्पमयी सुगन्धित चन्दन चर्चित शय्या पर पत्नी के साथ रमणरत हो गये। उनको तो अब दिन-रात का भान नहीं रह गया। एवंविध विवाह द्वारा नारद (तपस्या से) विरत हो गये। एक बार वे ब्रह्मलोक के मनोहर वटवृक्ष के नीचे आसीन थे। तभी वहां नग्न, ब्रह्म तेज से उद्भासित बालकवत् भगवान् सनत्कुमार आये। वे यद्यपि सृष्टि के आदिकाल में आविर्भूत हो गये थे, तथापि उनकी आयु पंचवर्षीय बालक जैसी थी। उन्होंने चूड़ाकरण, उपनयन नहीं किया था। वे वैदिक सन्ध्या से भी रहित थे। उनके गुरु हैं नारायण। वे सदा कृष्णमन्त्र जपते रहते हैं। वे यह कार्य अनन्त कल्पों से अपने तीन भाईयों के साथ करते हैं। ये महर्षि वैष्णवों में अग्रणी तथा ज्ञानीगण के गुरुओं के भी गुरु हैं। जब सज्जनों में प्रधान इन भ्राताओं को देखकर नारद ने सहसा उनको धरती पर दण्डवत् होकर प्रणाम किया। तब वे बालक मुनि हंसते हुये नारद से परमार्थपूर्ण वाक्य कहने लगे।।२४-३०।।

सनत्कुमार उवाच

अये भ्रातः किं करोषि कुशलं युवतीपतेः। स्त्रीपुंसोर्वर्धते प्रेम नित्यं तन्नित्यनूतनम्॥३१॥
अर्गलं ज्ञानमार्गस्य भक्तिद्वारकपाटकम्। मोक्षमार्गव्यवहितं चिरं बन्धनकारणम्॥३२॥
गर्भवासस्य बीजं च परं नरककारणम्। पीयूषबुद्ध्या गरलं भुङ्क्ते पापी नराधमः॥३३॥

१. क. राधितः पुण्यक०।

परं नारायणं त्यक्त्वा यस्याऽऽस्ते विषये मनः।
स वञ्चितो मायया चामृतं त्यक्त्वा विषं भजेत्॥३४॥

सनत्कुमार कहते हैं–हे भाई! यह क्या कर रहे हो? हे युवतीपति! सब कुशल तो हैं। तुम स्त्री-पुरुष का पारस्परिक नूतन प्रेम नित्य वर्द्धित तो हो रहा है? यह तुम्हारा कृत्य ज्ञानमार्ग के लिये अर्गलारूप है। (बेड़ी रूप है)। यह मोक्षमार्ग का बाधक और चिरकाल हेतु बन्धनप्रद है। यह गर्भवास का बीजरूप तथा नरक का परमकारण है। इस विष को ही पातकी लोग सुधासम मानकर वे नराधम इसका पान अमृत मान कर करते हैं। जो अपना मन नारायण में न लगाकर विषयों में लगाते हैं, वे माया से ठगे गये हैं। उन्होंने तो अमृत त्याग कर विष को अपना लिया!॥३१-३४॥

सर्वेषां कर्मभोगोऽस्ति[1] कर्मिणामीश्वरं विना।
वयं विधातुः पुत्राश्च सा बुद्धिरिति देहिनाम्॥३५॥
यदि ते नास्ति भोगश्च कथं गन्धर्वजन्म च।
कथं दासीसुतस्त्वं च मुक्तश्च भक्तसङ्गतः॥३६॥
निर्गच्छ तपसे भ्रातस्त्यज मायामयीं प्रियाम्।
सुपुण्ये भारते वर्षे तपसा भज माधवम्॥३७॥

जिसका मन नारायण चिन्तन त्याग कर विषयों में निरत हो जाता है, वह माया से ठगा जाकर अमृत त्याग देता है और विष सेवन करता है। सभी कर्मीगण को कर्मभोग करना ही है। केवल ईश्वर कर्मभोग नहीं करते। हम सभी ब्रह्मा के पुत्र है। हम देहधारी हैं। हमें भी कर्मभोग है। यदि तुम्हारे लिये कर्मभोग का नियम नहीं था, तब तुम्हारा जन्म गन्धर्व योनि में क्यों हो गया? क्यों इसके पश्चात् दासीपुत्र हो गये? हे भाई! इस मायामयी पत्नी का त्याग करके तपस्या करो। पवित्र भारतवर्ष में तपस्या द्वारा माधव का भजन करो॥३५-३७॥

स्थिते नारायणे स्वेशे[2] परे स्वपददातरि।
विषयी विषयान्धश्च वञ्चितो मायया ध्रुवम्॥३८॥
गृहाण मम मन्त्रं च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्। सर्वेषामेव मन्त्राणां सारात्सारं परात्परम्॥३९॥

भगवान् नारायण सभी के ईश्वर हैं। वे सभी को अपना पद प्रदान करने के लिये उद्यत रहते हैं। लेकिन उनकी माया से व्यक्ति विषयों के कारण अन्धवत् बना रहता है। (उसे श्रेयमार्ग नहीं सूझता तभी अन्धा कहा गया) वह तो माया के कारण ठगा जाता है। सभी मन्त्रों के सार का भी साररूप जो परात्पर मन्त्र है, वह मुझसे ग्रहण करो। वह द्वयक्षर मन्त्र है–कृष्ण॥३८-३९॥

सर्वेषु च पुराणेषु वेदेषु च चतुर्षु च। धर्मशास्त्रेषु तन्त्रेषु नास्त्येवास्मात्परो मनुः॥४०॥

---

१. ख. कामभो।
२. क. स्वांशे।

नारायणेन दत्तो मे पुष्करे सूर्यपर्वणि। असंख्यकल्पं जप्त्वाऽहं भ्रमामि सर्वपूजितः॥४१॥

"समस्त पुराण, चारों वेद, अन्य धर्मशास्त्रों में भी कृष्ण से बढ़कर कोई मन्त्र है ही नहीं। सूर्यग्रहण काल में, पुष्कर क्षेत्र में नारायण ऋषि द्वारा यह मन्त्र मुझे प्रदान किया गया था। मैं इस मन्त्र का जप असंख्य कल्पों तक करने के कारण सर्वत्र पूज्य होकर घूमता रहता हूं।"॥४०-४१॥

इत्युक्त्वा स्नापयित्वा तं ददौ तस्मै परं मनुम्।
दिवानिशं स जपति पूतया मणिमालया॥४२॥
तस्मै शुभाशिषं दत्त्वा मन्त्रं च वैष्णवाग्रणीः।
गोलोकं प्रययौ द्रष्टुं भगवन्तं सनातनम्॥४३॥

यह कहकर सनत्कुमार ने नारद को सविधि स्नान कराने के उपरान्त यह महामन्त्र प्रदान किया। वे देवर्षि नारद इस मन्त्र का पावन मणियों की माला से दिवा-रात्रि जप करते रहते हैं। वैष्णवाग्रणी सनत्कुमार ने यह मन्त्र प्रदान करके शुभ आशीर्वाद दिया। तदनन्तर वे सनातन भगवान् के दर्शनार्थ गोलोक चले गये॥४२-४३॥

नारदस्तु मनुं प्राप्य सर्वसिद्धिप्रदं वरम्। श्रीकृष्णे निश्चलां भक्तिं पूर्वकर्मनिकृन्तनीम्॥४४॥
त्यक्त्वा मायामयीं भार्यां भारतं तपसे ययौ। कृतमालानदीतीरे ददर्श शङ्करं परम्॥४५॥

दृष्ट्वा च सहसा मूर्ध्ना प्रणनाम शिवं मुनिः।
तमुवाच जगन्नाथो भक्तं च भक्तवत्सलः॥४६॥

देवर्षि नारद ने इस सर्वसिद्धिदायक उत्तम मन्त्र को पाकर श्रीकृष्ण के प्रति निश्चला भक्ति लाभ किया तथा अपने पूर्व कर्मों को छेदन करने वाली इस भक्ति से सभी कर्मों का उच्छेद कर दिया। वे अपनी मायामयी पत्नी का त्याग करके भारत जाकर तप करने लगे। इससे उनको कृतमाला नदी के तट पर परमदेव शंकर का दर्शन भी मिला। मुनि नारद ने सहसा महादेव का दर्शन पाते ही उनको नतशिर होकर प्रणाम किया। तब भक्तवत्सल जगन्नाथ शंकर उनसे कहने लगे॥४४-४६॥

महादेव उवाच

अहो नारद दृष्ट्वा त्वां प्रसन्नोऽहं स्वतेजसा।
भक्तानां दर्शनं यत्र सुदिनं तच्छरीरिणाम्॥४७॥
अयं हि परमो लाभो देहिनां भक्तसङ्गमः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु यो ददर्श च वैष्णवम्॥४८॥
अपि प्राप्तो महामन्त्रः सर्वतन्त्रसुदुर्लभः।
मया दत्तो गणेशाय स्कन्दाय स्वात्मजाय च॥४९॥

श्रीमहादेव कहते हैं–हे नारद! मैं तुमको स्वतेजयुक्त देखकर अत्यन्त प्रसन्न हूं। जिस दिन भक्त का दर्शन हो जाये, वही उत्तम दिन होता है। जिसने वैष्णव का दर्शन पा लिया, उसने तो समस्त तीर्थों

का दर्शन ही कर लिया। मैंने अपने पुत्रद्वय गणेश तथा स्कन्द को जो मन्त्र दिया था, वह सर्वतन्त्रदुर्लभ मन्त्र तुमने भी प्राप्त कर लिया।।४७-४९।।

मह्यं दत्तश्च कृष्णेन गोलोके रासमण्डले। ब्रह्मणे चापि धर्माय धर्मो नारायणाय च।।५०।।
ब्रह्मा सनत्कुमाराय तुभ्यं दत्तश्च तेन वै। मन्त्रग्रहणमात्रेण जनो नारायणो भवेत्।।५१।।

गोलोकस्थ रासमण्डल में यह मन्त्र भगवान् कृष्ण ने मुझे, ब्रह्मा तथा धर्मदेव को प्रदान किया था। इसे ब्रह्मा ने सनत्कुमार को दिया तथा उन्होंने तुमको प्रदान किया। धर्मदेव ने यह मन्त्र अपने पुत्र नारायण ऋषि को दिया था। इस मन्त्र को ग्रहण करने वाला नारायण हो जाता है।।५०-५१।।

विचारणं च नास्त्यत्र कालाकालं शुभाशुभम्। पञ्चलक्षजपेनैव पुरश्चरणमस्य च।।५२।।
ध्यानं च सामवेदोक्तं तेन ध्यायेच्च वैष्णवः।
ध्यानं च पापदहनं कर्ममूलनिकृन्तनम्।।५३।।
कृष्णं नवघनश्यामं किशोरं पीतवाससम्। शतकोटीन्दुसौन्दर्यं दधानमतुलं परम्।।५४।।

इस मन्त्र ग्रहणार्थ शुभ-अशुभ, काल-अकाल का विचार नहीं होता। इसको ५ लक्ष जप से पुरश्चरण कहा गया है। सामवेदोक्त वैष्णव ध्यान से ध्यान करे। यह ध्यान पापदहनकारी तथा कर्ममूल को उच्छिन्न कर देने वाला है। **ध्यान**—कृष्ण नवमेघ के समान श्यामवर्ण, किशोर, पीतवस्त्रधारी हैं। वे परम-अतुलित सौन्दर्ययुक्त है, जो शतकोटि चन्द्र के समान है।।५२-५४।।

भूषितं भूषणौधैस्तैरमूल्यरत्ननिर्मितैः। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम्।।५५।।
मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यमण्डितम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं नित्योपास्यं शिवादिभिः।।५६।।

उन्होंने अमूल्य रत्नों के बने आभूषणों को धारण किया है। उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि विराजमान है। उनके अंग चन्दन चर्चित हैं। उनका जूड़ा मयूरपुच्छ से शोभित है। वे मालतीमाला से मंडित हैं। उनका मुखमण्डल मन्द मुस्कान से शोभायमान है। ये प्रभु शिवादि देवताओं के नित्य उपास्य भी हैं।।५५-५६।।

ध्यानासाध्यं दुराराध्यं निर्गुणं प्रकृतेःपरम्। सर्वेषां परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम्।।५७।।
वेदानिर्वचनीयं तं वरं सर्वेश्वरं भजे। ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा भगवन्तं सनातनम्।।५८।।
भज तं परमानन्दं सत्यं नित्यं परात्परम्। इत्युक्त्वा स्वपदं शंभुर्जगाम परमेश्वरः।।५९।।

"ये ध्यान से असाध्य हैं। ये दुराराध्य, निर्गुण, प्रकृति से परे, सबके परमात्मरूप, भक्तों पर कृपा करने हेतु देहधारी हो जाते हैं। मैं वेदों से अनिर्वाच्य, श्रेष्ठ, सर्वेश्वर प्रभु का भजन करता हूं।" इस प्रकार इन सनातन भगवान् का ध्यान ध्यानयोग से करना चाहिये। इस प्रकार इन परमानन्द, सत्य, नित्य परात्पर प्रभु का नित्य भजन करो।" यह कहकर शंभु अपने धाम चले गये।।५७-५९।।

तं प्रणम्य जगन्नाथं नारदस्तपसे ययौ। नारदः श्रीहरिं स्मृत्वा योगात्त्यक्त्वा कलेवरम्।
निलीनः पादपद्मे च पाद (पद्मा) पद्मार्चिते हरेः॥६०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० नारदविवाहादिप्रकरणं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३०॥

इन जगन्नाथ को प्रणाम करके नारद तपार्थ चले गये। वहां नारद ने श्रीहरि का स्मरण करते अपना शरीर त्याग दिया। वे कमला द्वारा अर्चित हरि के चरणकमलों में लीन हो गये।।६०।।

।।१३०वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अग्नि का सुवर्ण की उतपत्ति का वर्णन

शौनक उवाच

अत्यपूर्वमुपाख्यानं श्रुतं परममद्भुतम्। सुगोप्यं च सुगोप्यं रम्यं रम्यं नवं नवम्॥१॥
किमनिर्वचनीयं च कमनीयं मनोहरम्। सुदुर्लभा कथा प्रोक्ता पुराणेषु पुरातनी॥२॥
एवंभूतं च सुदिनं कदाऽस्माकं भविष्यति। तज्जन्म सफलं धन्यं यत्र वैष्णवसङ्गमः॥३॥
गर्भवासोच्छेदनं च कर्ममूलनिकृन्तनम्। हरिदास्यप्रदं शुद्धं भक्तानां भक्तिवर्धनम्॥४॥
असाधुसङ्गदुर्बुद्धिपापोन्मलनकारणम्। गणेशजन्मोपाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम्॥५॥
तुलसीराधिकाख्यानं किमपूर्व श्रुतं परम्।
अन्यद्यद्यद्गोपनीयं[1] व्यक्तमव्यक्तमीप्सितम्॥६॥
सर्वं श्रुतं महाभाग परिपूर्णं मनोहरम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि वह्नेरुत्पत्तिमीप्सिताम्।
स्वर्णस्य च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥७॥

शौनक ऋषि कहते हैं–आपके द्वारा हमने अत्यन्त अपूर्व, आश्चर्यमय, अतिगोपनीय, नित्य नवीन, रम्य, कमनीय अनिर्वचनीय उपाख्यान श्रवण किया। आपने पुरातन से भी पुरातन यह अति दुर्लभ कथा कही है। उनका ही जन्म सफल है तथा धन्य है, जिन्होंने वैष्णव समागम का लाभ किया है। अब कब हमारा ऐसा शुभदिन आयेगा। जिससे गर्भवास तथा कर्मबीज का उच्छेद होता है, जो हरि

१. ख. नवं यद्यं।

का दास्य प्रदायक है, भक्ति का उद्दीपक है, जो असाधु संग से उत्पन्न दुर्बुद्धि तथा पातकों का उन्मूलक है, ऐसा गणेश जन्म उपाख्यान हमने आप से सुन लिया। आपके द्वारा हमने अन्य अभिलषित प्रकट तथा गुप्त रहस्यों को भी सुना। हे महाभाग! हमारी मानसिक इच्छा पूर्ण हो गईं। हे महाभाग! अब हम अग्नि तथा स्वर्ण की उत्पत्ति कथा सुनना चाहते हैं। कृपया उसे कहिये।।१-७।।

सूत उवाच

सामग्रीकरणं सृष्टेर्जलमेव हुताशनः। तथैव प्रकृतर्नित्या महानेव तथैव च॥८॥
यथा दिशो महाकाशो यथैव सृष्टिगोलकम्। प्रकृतेर्महतश्च स्याद्यथाऽहङ्कार एव च॥९॥
यथैव शब्दस्तन्मात्रं तथैव च हुताशनः। तथाऽपि तत्समुत्पत्तिं कथयामि निशामय॥१०॥

सूत जी कहते हैं–जिस प्रकार नित्या प्रकृति तथा महतत्व सृष्टि की सामग्री के कारण है, उसी प्रकार अग्नि तथा जल, दिशायें, महाकाश, सृष्टिगोलक है। यह अहंकार प्रकृति तथा महत् से ही उद्भूत होता है। जिस प्रकार शब्द तथा तन्मात्रा है, वैसे ही अग्नि भी है, तथापि उसकी उत्पत्ति कैसे होती है, यह सुनिये।।८-१०।।

एकदा सृष्टिकाले च ब्रह्मानन्तमहेश्वराः। श्वेतद्वीपं ययुः सर्वे द्रष्टुं विष्णुं जगत्पतिम्॥११॥
परस्परं च संभाषां कृत्वा सिंहासनेषु च। ऊचुः सर्वे सभामध्ये सुरम्ये पुरतो विभोः॥१२॥

एक बार सृष्टिकाल में ब्रह्मा, अनन्त, महेश्वर विष्णु जगत्पति के दर्शनार्थ श्वेतद्वीप गये। वे परस्पर बातचीत करके वहां सभा में विभु विष्णु के समक्ष सिंहासन पर बैठे। उस सभा में विष्णु के अंगों से उत्पन्न कमला की कला से आविर्भूत कामिनियां विष्णु की गाथा उत्तम स्वर से गायन करती नृत्यरत रहा करती हैं।।११-१२।।

विष्णुगात्रोद्भवास्तत्र कामिन्यः कमलाकलाः।
तत्र नृत्यन्ति गायन्ति विष्णुगाथाश्च सुस्वरम्॥१३॥
तासां च कठिनां श्रोणिं कठिनं स्तनमण्डलम्।
सस्मितं मुखपद्मं च दृष्ट्वा ब्रह्मा सुकामुकः॥१४॥
मनोनिवारणं कर्तुं न शशाक पितामहः।
वीर्यं पपात चच्छाद लज्जया वाससा विभुः॥१५॥
तद्वीर्यं वस्त्रसहितं प्रतप्तं कामतापतः। क्षीरोदे प्रेरयामास सङ्गीते विरते द्विज॥१६॥

उनका कठोर स्तनमण्डल तथा कठोर जंघा एवं मुस्कान युक्त मुखमण्डल देखकर ब्रह्मा पूर्णतः काम के अधीन हो गये। हे द्विज! पितामह उस समय मन का निग्रह नहीं कर सके। उनका वीर्य स्खलित हो गया। उसे लज्जा के कारण वस्त्र से ढांक लिया। तदनन्तर संगीत बन्द होने पर ब्रह्मा ने काम के ताप से प्रतप्त उस वीर्य को उस वस्त्र के सहित क्षीरसागर में बहा दिया।।१३-१६।।

जलादुत्थाय पुरुषः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। उवाच ब्रह्मणः क्रोडे लज्जितस्य च संसदि॥१७॥

उस वीर्य से एक पुरुष निकला जो ब्रह्मतेज से प्रज्वलन्त हो रहा था। वह सभा में आकर लज्जावनत ब्रह्मा की गोद में बैठ गया।।१७।।

एतस्मिन्नन्तरे रुष्टो जलादुत्थाय सत्वरः। प्रणम्य वरुणो देवान्बालं नेतुं समुद्यतः॥१८॥

बालो दधार ब्रह्माणं बाहुभ्यां च भयाद्रुदन्।
किञ्चिन्नोवाच जगतां विधाता लज्जया द्विज॥१९॥
बालकस्य करे धृत्वा चकारऽऽकर्षणं रुषा।
वरुणश्च सभामध्ये तं चिक्षेप प्रजापतिः॥२०॥

पपात दूरतो देवो वरुणो दुर्बलस्ततः। मूर्च्छां सम्प्राप मृतवत्कोपदृष्ट्या विधेरहो॥२१॥
चेतनं कारयामासामृतदृष्ट्या च शङ्करः। संप्राप्य चेतनं तत्र समुवाच जलेश्वरः॥२२॥

तभी शीघ्र वरुणदेव रुष्ट स्थिति जल से बाहर आये तथा वे देवताओं को प्रणाम करने के उपरान्त उस बालक को साथ ले जाने के लिये उद्यत हो गये। इससे भयभीत बालक (पुरुष) ने रुदन करते हुये अपने दोनों बाहु से ब्रह्मा को पकड़ लिया। हे द्विज! ब्रह्मा इतने लज्जित थे कि उस समय कुछ भी नहीं कह सके। उधर वरुणदेव रोष पूर्वक बालक को हाथों से पकड़कर खींचे जा रहे थे। तभी प्रजापति ब्रह्मा ने उसी सभा में वरुण को दूर फेंक दिया। वे वरुण देव दुर्बलता के कारण दूर में जाकर गिरे। विधाता वरुण को क्रोध पूर्वक देख रहे थे। इस कारण वे मृतवत् मूर्च्छित हो गये। तभी शंकर ने अपनी अमृतदृष्टि से वरुण को देखकर चेतनायुक्त कर दिया। तब शंकर से जलेश्वर वरुण ने कहा—।।१८-२२।।

वरुण उवाच

बालो जले समुद्भूतो मम पुत्रोऽयमीप्सितः।
अहं गृहीत्वा यास्यामि ब्रह्मा तां ताडयेत्कथम्॥२३॥

वरुणदेव कहते हैं—यह बालक जल में उत्पन्न होने के कारण मेरा वांछित पुत्र है। मैं इसे ले जाऊंगा। ब्रह्मा मेरा ताड़न क्यों करेंगे?।।२३।।

ब्रह्मोवाच

बालकः शरणापन्नो मयि विष्णो महेश्वर। कथं दास्यामि भीतं च रुदन्तं शरणागतम्॥२४॥
शरणागतदीनार्तं यो न रक्षेदपण्डितः। पच्यते निरये तावद्यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे महेश्वर! यह बालक मेरा शरणापन्न है। इस रोते शरणागत तथा भयभीत बालक को मैं किस प्रकार से प्रदान करूं? जो अपण्डित (मूर्ख) दीन-आर्त्त शरणागत की रक्षा नहीं करता, वह तो चन्द्र-सूर्य के स्थिति काल पर्यन्त नरकगामी रहता है।।२४-२५।।

उभयोर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः। उवाच तत्र सर्वज्ञः सर्वेशश्च यथोचितम्॥२६॥

इन दोनों देवगण का कथन सुनकर सर्वज्ञ मधुसूदन ने हंसते हुये यथोचित बात कहा-॥२६॥

श्रीभगवानुवाच

दृष्ट्वा तु कामिनीश्रोणिं वीर्यं धातुः पपात तत्।
लज्जया प्रेरयामास क्षीरोदे निर्मले जले॥२७॥

ततो बभूव बालश्च धर्मतो विधिपुत्रकः। क्षेत्रज्ञश्च सुतः शास्त्रे वरुणस्यापि गौणतः॥२८॥

श्रीभगवान् कहते हैं-कामिनियों का नितम्ब देखकर ब्रह्मा को जो वीर्यपात हो गया था, उसे ब्रह्मा ने लज्जा के कारण क्षीरसागर के निर्मल जल में फेंक दिया। इससे यह बालक (पुरुष) उत्पन्न हो गया, जो धर्मतः ब्रह्मा का पुत्र है, तथापि यह शास्त्र में वर्णित नियम से क्षेत्रज्ञ पुत्र वरुण का भी है॥२७-२८॥

महादेव उवाच

यो विद्यायोनिसम्बन्धो वेदेषु च निरूपितः।
शिष्ये पुत्रे च समता चेति वेदविदो विदुः॥२९॥
मन्त्रं ददातु वरुणो विद्यां च बालकाय च।
पुत्रो विधातुर्वह्निश्च शिष्यश्च वरुणस्य च॥३०॥
विष्णुर्ददातु बालाय दाहिकां शक्तिमुज्ज्वलाम्।
सर्वदग्धो हुताशश्च निर्वाणो वरुणेन च॥३१॥

श्रीमहादेव कहते हैं-वेदों में जो विद्या तथा योनि सम्बन्ध कहा गया है, उसमें पुत्र एवं शिष्य समान माने गये हैं। यह वेदज्ञ विद्वानों का कथन है। इस कारण वरुण इस बालक को मन्त्र तथा विद्या प्रदान करें। अतः यह बालक विधाता का पुत्र वह्नि नाम से विख्यात होगा तथा वरुण का शिष्य कहा जायेगा। विष्णु इस बालक को उज्वल दाहिकाशक्ति प्रदान करें। यह हुताशन सबको दग्ध करे। वरुण इसे बुझायें॥२९-३१॥

विष्णुश्च दाहिकां शक्तिं ददौ तस्मै शिवाज्ञया।
मन्त्रं विद्यां च वरुणो रत्नमालां मनोहराम्॥३२॥
क्रोडे कृत्वा च तं बालं चुचुम्ब मायया सुरः।
ब्रह्मणे च ददौ साक्षाद्विष्णुशङ्करयोरपि॥३३॥
प्रणम्य विष्णुं ब्रह्मा च ययौ शंभुः स्वमन्दिरम्।
अग्न्युत्पत्तिश्च कथिता स्वर्णोत्पत्तिं निशामय॥३४॥

तत्पश्चात् शिव की आज्ञा से विष्णु ने बालक को दाहिकाशक्ति प्रदान किया। वरुण ने उस

बालक को मनोहरा रत्नमाला विद्या दे दिया। तत्पश्चात् वरुणदेव ने बालक को गोद में लेकर उसका मुख चुम्बन किया। तदनन्तर वरुण ने विष्णु तथा महादेव के सामने ही वह बालक ब्रह्मा को दे दिया। तदनन्तर ब्रह्मा एवं शंकर ने विष्णु को प्रणाम किया तथा अपने-अपने स्थान चले गये। हे महर्षि! मैंने अग्नि का उत्पत्ति प्रसंग कह दिया। अब स्वर्ण की उत्पत्ति का वर्णन करूंगा। श्रवण करिये।।३२-३४।।

एकदा सर्वदेवाश्च समूषुः स्वर्गसंसदि। तत्र कृत्वा च नृत्यं च गायन्त्यप्सरसां गणाः।।३५।।

विलोक्य रम्भां सुश्रोणिं सकामो वह्निरेव च।
पपात वीर्यं चच्छाद लज्जया वाससा तथा।।३६।।

एक बार सभी देवगण स्वर्ग की सभा में आसीन थे। अप्सरायें वहां नृत्य तथा गायन कर रही थीं। तभी अग्निदेव उत्तम जंघा वाली अप्सरा रम्भा को देखकर कामासक्त हो गये। उनको वहीं वीर्यपात हो गया। उसे लज्जा के कारण अग्नि ने वस्त्र से छिपा लिया।।३५-३६।।

उत्तस्थौ स्वर्णपुञ्जश्च वस्त्रं क्षिप्त्वा ज्वलत्प्रभः। क्षणेन वर्धयामास स सुमेरुर्बभूव ह।।३७।।
हिरण्यरेतसं वह्निं प्रवदन्ति मनीषिणः। इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।३८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० वह्निसुवर्णोत्पत्तिनामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३१।।

उस वीर्य से उत्पन्न तेजराशि ही अत्यन्त भास्वर स्वर्णराशि थी उस तेज ने उस वस्त्र को अपने ऊपर से क्षणमात्र में फेंक दिया। वह तेज क्षणमात्र में बढ़कर स्वर्ण पर्वतरूपी हो गया। तभी पण्डितगण अग्नि को हिरण्यरेता कहते हैं। यह मैंने तुमसे अग्नि तथा स्वर्णोत्पत्ति कह दिया। अब क्या श्रवण करना चाहते हो?।।३७-३८।।

।।१३१वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मादि चार शब्दों का अर्थ वर्णन, कथा का संक्षेप

शौनक उवाच

श्रुतं सर्वं नावशेषं धर्मेश ब्राह्मणं च माम्। कथयस्व महाभाग पुराणं पुनरेव हि।।१।।

एवंविधं पुराणं च जन्मनैव न हि श्रुतम्।
न दृष्टं न श्रुतं ताता ता (त्वा) दृशं वाचकं तथा।।२।।

शौनक ऋषि कहते हैं–हे धर्मेश! मैंने सब कुछ श्रवण कर लिया। कुछ भी सुनना बाकी नहीं है। अब आप मुझ ब्राह्मण से पुनः पुराण कहें। हे महाभाग! जब से मेरा जन्म हुआ मैंने एवंविध कभी भी पुराण श्रवण नहीं किया। हे तात! आपके समान पुराण वाचक न तो देखा न कभी सुना!।।१-२।।

सूत उवाच

श्रूयतां भो महाभाग सावधानं च संयतम्। अध्यायश्रवणेनैव पुराणफलमालभेत्।।३।।
ब्रह्मखण्डं च कथितं परं ब्रह्मनिरूपणम्। तदनिर्वचनीयं च येषामपि यथागमम्।।४।।
साकारं च निराकारं सगुणं निर्गुणं पृथक्। येषामपि यथा शक्तिस्तथैव ध्यानमेव च।।५।।
गोलोकादेर्वर्णनं च क्रमेण च पृथक्पृथक्। तत्रोपयुक्तोपाख्यानं यद्यत्प्रासङ्गिकं द्विज।।६।।
जातीनां निर्णयश्चैव संकराणां तथैव च। यद्यद्विशिष्टोपाख्यानं तत्तत्प्रश्नानुरोधतः।।७।।
राधामाधवयोः क्रीडा महाविष्णोः समुद्भवः। निरूपणं च विश्वेषां समासेन द्विजोत्तम।।८।।
ब्रह्मनारदयोश्चैव संवादः परमार्थतः। विवेको नारदस्यैव मुनीन्द्रस्य तथैव च।।९।।
आज्ञया ब्रह्मणश्चैव नरनारायणाश्रमम्। गमनं नारदस्यैव तेन सार्धं च दर्शनम्।।१०।।
तयोः संभाषणं चैव नारदाद्य (य) निवेदनम्।
तत्र देव ब्रह्मखण्डं क्रमेणोक्तं द्विजोत्तम।।११।।

सूत जी कहते हैं–हे महाभाग! सावधान होकर संयत भाव से श्रवण करिये। ब्रह्मखण्ड में साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण, अनिर्वचनीय परब्रह्म का निरूपण किया गया है। उसे उन-उन प्रतिपादक श्रुति के अनुरूप पृथक्तया वर्णित किया गया है। उनके ध्यान का तथा गोलोक आदि विषयों का भी यथाशक्ति क्रमानुसार वर्णन किया गया है। वह परब्रह्मतत्त्व साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण है। जिज्ञासु के प्रश्नानुसार जाति तथा संकर निर्णय भी इसमें वर्णित है। साथ ही अन्य उपयोगी प्रासंगिक उपाख्यान का भी इसमें वर्णन है। राधामाधव की क्रीड़ा, महाविष्णु की उत्पत्ति, संक्षिप्त ब्रह्माण्ड वर्णन, ब्रह्मा-नारद संवाद, नारद का परमार्थ ज्ञान, ब्रह्मा के आदेश से नारद का नारायण ऋषि के आश्रम में जाना, उनका नारद के साथ साक्षात्कार, उनसे नारद का अपने अभिप्राय (जिज्ञासा) का निवेदन करना, यह सब ब्रह्मखण्ड का विषय है, जो यथाक्रमेण वर्णित है।।३-११।।

श्रूयतां प्रकृतेः खण्डं सुधाखण्डसमं मुने। प्रकृतेर्लक्षणं प्रोक्तं प्रकृतीनां च वर्णनम्।।१२।।
उपाख्यानं च तासां च वर्णनं पूजनादिकम्।
लक्ष्मीः सस्वती दुर्गा सावित्री राधिका तथा।।१३।।
एतासां चरितं चैवमन्यासां च पृथक्पृथक्।
उपाख्यानं महालक्ष्म्याः सरस्वत्यास्तथैव च।।१४।।
अपूर्वं राधिकाख्यानं सावित्र्याश्च तथैव च। संवादो यमसावित्र्योः सत्यवज्जीवदानकम्।।१५।।

कुण्डानां वर्णनं प्रोक्तं तेषां च लक्षणं तथा। जीविकर्मविपाकश्च भोगनिर्णय एव च॥१६॥
अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुगोप्यकम्। सुयज्ञस्य नृपेन्द्रस्य चरितं परमाद्भुतम्॥१७॥

अब आप अमृततुल्य **प्रकृतिखण्ड** का विषय सुनिये। इस खण्ड में प्रकृति का लक्षण तथा प्रकृति वर्णन, सम्बन्धित उपाख्यान का वर्णन, पूजा आदि का प्रसंग, लक्ष्मी-सरस्वती-दुर्गा-सावित्री-राधा अन्य प्रकृति भेद का अलग-अलग वर्णन है। इसमें महालक्ष्मी तथा सरस्वती का भी उपाख्यान है तथा राधिका एवं सावित्री का भी अपूर्वतम आख्यान वर्णित है। यम-सावित्री संवाद तथा सत्यवान् के जीवन दान का प्रसंग, कुण्ड वर्णन तथा उनके लक्षण, जीव का कर्म-विपाक, भोगनिर्णय भी कहा गया है। जो राधा का आख्यान पुराणों तक में गोपनीय है, उसका तथा राजा सुयज्ञ के अपूर्व चरित का भी यहां वर्णन किया गया है॥१२-१७॥

प्रोक्तं तुलस्युपाख्यानं परमाद्भुतमेव च। महायुद्धं च संवादे महेशशङ्खचूडयोः॥१८॥

तुलसीकृष्णसंवादस्तयोः संभोग एव च।
निधनं शङ्खचूडस्य श्रीदाम्नः शापमोक्षणम्॥१९॥
पदप्राप्तिः सुराणां च विपदां खण्डनं तथा।
जीविनां मोक्षबीजं च गङ्गोपाख्यानमीप्सितम्॥२०॥

तथैव मनसाख्यानं परं हर्षविवर्धनम्। स्वाहास्वधाख्यानमेवमन्यासां च निरूपणम्॥२१॥

यद्यत्प्रासङ्गिकाख्यानं वक्तुः प्रश्नानुरोधतः।
प्रोक्तं तत्प्रकृतेः खण्डं खण्डं गणपतेः शृणु॥२२॥

इसी खण्ड में परम अद्भुद् तुलसी का उपाख्यान, महेश-शंखचूड़ संवाद तथा उनका परम महायुद्ध, तुलसी-कृष्ण संवाद, उनका संभोग, शंखचूड़ वध, श्रीदामा का शाप मोक्ष भी कहा गया। देवगण की विपत्ति का खण्डन तथा उनकी पुनः पद प्राप्ति, प्राणीगण के मोक्षबीजरूप गंगा का उपाख्यान, परमहर्षवर्धक मनसा देवी का उपाख्यान, स्वाहा-स्वधा प्रसंग, अन्य देवीगण का प्रसंग इसमें कहा गया है। इसी प्रकार इस खण्ड में प्रसंग के अनुरूप अनेक उपाख्यान इस खण्ड में कहे गये हैं। अब **गणपति खण्ड** का विषय श्रवण करिये॥१८-२२॥

अतीव मधुरं रम्यं स्वादु स्वादु पदे पदे। सुगोप्यं तत्पुराणेषु रम्यं रम्यं नवं नवम्॥२३॥
सुदुर्लभमुपाख्यानं श्रोतृप्रीतिकरं परम्। प्रोक्ता क्रीडा च परमा पार्वतीपरमेशयोः॥२४॥

यह खण्ड सभी पुराणों में गुप्त, अत्यन्त रम्य तथा पूर्णतया नवीन प्रसंगों वाला है। यह अतीव दुर्लभ तथा सुनने वाले श्रोतागण के लिये परम प्रीतिदायक है। इसमें पार्वती-परमेश्वर की क्रीड़ा का वर्णन है॥२३-२४॥

स्कन्दोत्पत्तिः प्रथमतः क्रीडाभङ्गस्तयोस्तथा। पार्वतीतोषणं चैवमभिमानविमोक्षणम्॥२५॥
पुण्यकं च व्रतं विष्णोर्देव्याश्चरितमुत्तमम्। वरदानं हरेरेव सुव्रतां पार्वतीं प्रति॥२६॥

हरेश्च दर्शनं चैव ब्राह्मणातिथिरूपिणः। आविर्भावो गणेशस्य कृपया शिवमन्दिरे॥२७॥
दर्शनं पुत्रवक्त्रस्य पार्वतीपरमेशयोः। परमानन्दरूपं च शिवगेहे महोत्सवम्॥२८॥

इस खण्ड में सर्वप्रथम पार्वती-परमेश्वर की सुरतक्रीड़ा का भंग तथा स्कन्द के जन्म का वर्णन करके पार्वती को सन्तुष्ट करने का तथा उनके अभिमान के मोक्ष का वर्णन है। इसमें पुण्यक व्रत, देवी द्वारा इस उत्तम व्रत का पालन, इस व्रत में तत्पर पार्वती को विष्णु द्वारा वरदान लाभ, ब्राह्मण अभ्यागत रूपेण हरिदर्शन, शिवगृह में कृपा पूर्वक गणेश जन्म का भी इसमें वर्णन है।।२५-२८।।

देवाद्या ददृशुः सर्वे बालं नित्यमजं विभुम्। सत्यस्वरूपं परमं परब्रह्मस्वरूपिणम्॥२९॥
सर्वविघ्नहरं शान्तं दातारं सर्वसम्पदाम्। तपसां जपयज्ञानां व्रतानां फलदं विभुम्॥३०॥
अतीव कमनीयं च रमणीयं च योषिताम्। प्राणाधिकं प्रियतमं पार्वतीपरमेशयोः॥३१॥
परमात्मस्वरूपं च भगवन्तं सनातनम्। सर्वेशं सर्वबीजं च साक्षान्नारायणात्मकम्॥३२॥

तदनन्तर इसी खण्ड में देवगण द्वारा नित्य, अजन्मा, विभु, सत्यरूप परब्रह्मस्वरूप बालक गणपति के दर्शन का प्रसंग है, जो शिशु सर्वविघ्नहारी, सर्वसम्पदाप्रदाता, तप-जप-यज्ञ-व्रत फलदाता, विभु, अत्यन्त कोमल, नारीगण को रम्य लगने वाले, पार्वती-परमेश्वर को प्राणों से भी बढ़कर प्रिय, परमात्मरूप, सनातन भगवान्, सर्वेश, सबके बीज (कारण), साक्षात् नारायणात्मक हैं।।२९-३२।।

यद्दर्शनाच्च स्तवनात्प्रणामात्पूजनात्तथा। ध्यानासाध्यं दुराराध्यं जन्मकोट्यघनाशनम्॥३३॥

इनके दर्शन, स्तवन, पूजन से करोड़ों जन्मों के पातक का नाश हो जाता है। ये प्रभु गणेश ध्यान द्वारा असाध्य एवं दुराराध्य कहे गये हैं।।३३।।

कार्तिकोद्धरणं प्रोक्तं तस्याभिषेक एव च। गणेशपूजनं चैव सर्वविघ्नविनाशनम्॥३४॥
जमदग्नेश्च युद्धं च कार्तवीर्यार्जुनेन च। सुरभीहरणं चैव निधनं च मुनेस्तथा॥३५॥
पतिव्रतारेणुकायाश्चितारोहणमेव च। प्रतिज्ञातं भृगोश्चैव दारुणं च सुदारुणम्॥३६॥
निःक्षत्रीकरणं चैवमेकविंशतिकं द्विज। संवादो ज्ञानलाभश्च गणेशपर्शुरामयोः॥३७॥
तयोर्युद्धं दारुणं च हेरम्बदन्तभञ्जनम्। दुर्गायाश्च विलापश्चाभिशापो भार्गवं प्रति॥३८॥
स्मरणे पर्शुरामस्याप्याविर्भावो हरेरपि। पार्वतीं बोधयामास स्वयं नारायणः प्रभुः॥३९॥
वर्णनं शिवलोकस्य परमाश्चर्यमीप्सितम्। प्रदत्तं पर्शुरामाय महास्त्रं शङ्करेण च॥४०॥
मन्त्रं च कवचं चैव कृष्णस्य परमात्मनः। वरदानं चाभयं च प्रदानं सर्वसम्पदाम्॥४१॥

त्रिःसप्तकृत्वो भूपानां निधनं च चकार सः।
बभूव भृगुणा विप्र भुवश्च भारमीक्षणम्॥४२॥

प्रश्नानुरोधक्रमतः पूर्वोपाख्यानमेव च। प्रोक्तं गणपतेः खण्डं समासेन द्विजोत्तम॥४३॥

इसी खण्ड में कार्त्तिकोद्धार, उनका अभिषेक, सर्वविघ्ननाशक गणेश पूजा, कार्त्तवीर्य अर्जुन के

साथ गणेश युद्ध, सुरभी गौ का कार्त्तवीर्य द्वारा हरण, जमदग्नि वध, पतिव्रता रेणुका का चितारोहण, परशुराम द्वारा २१ बार धरती को क्षत्रिय रहित करने की दारुण प्रतिज्ञा, गणेश-परशुराम संवाद, गणेश-परशुराम युद्ध, गणेश का दांत टूटना, दुर्गा का विलाप, दुर्गा द्वारा परशुराम को शाप देना, परशुराम के स्मरण से नारायणाविर्भाव, नारायणदेव द्वारा पार्वती को सान्त्वना-प्रबोध देना, परमाश्चर्यमय अभिलषित शिवलोक वर्णन, परशुराम को सर्वसम्पदाप्रदाता शंकर द्वारा महान् अस्त्र प्रदान करना, परमात्मा कृष्ण के मन्त्र-कवच तथा अभय को देना, परशुराम द्वारा २१ बार धरती पर क्षत्रियवंश का नाश, उनके द्वारा पृथिवीभारहरण, प्रश्नों के अनुरूप अपूर्वतम उपाख्यान आदि घटनावली से पूर्ण गणेशखण्ड की विषय वस्तु को मैंने संक्षेप में कह दिया।।३४-४३।।

श्रीकृष्णजन्मखण्डं च श्रूयतां सावधानतः। जन्ममृत्युजराव्याधिहरं मोक्षकरं परम्।।४४।।
हरिदास्यप्रदं शुद्धं सुश्राव्यं च सुधोपमम्। अत्यपूर्वमुपाख्यानं रम्यं रम्यं नवं नवम्।।४५।।
न श्रुतं जन्मना यद्यत्स्वादु स्वादु पदे पदे। प्रदीपं सर्वसत्त्वानां[1] भवाब्धितारणं परम्।।४६।।

अब हे द्विजश्रेष्ठ! सावधानी से **श्रीकृष्ण जन्मखण्ड** का श्रवण करिये। यह जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि नाशक तथा परम मोक्षदायक है। यह हरिदास्य देने वाला, शुद्ध, अमृततुल्य, सुनने में उत्तम लगने वाला है। यह खण्ड पुरातन पूर्व उपाख्यानों वाला, अत्यन्त रम्य, पूर्णतः नवीन प्रतीत होने वाला, पग-पग पर अत्यन्त सुस्वादु है। इसे न सुनने वाले का जीवन अर्थहीन है। यह सभी तत्त्वों के दिग्दर्शनार्थ प्रदीपरूप है तथा भवसागर पार करने हेतु उत्तम पथरूप है।।४४-४६।।

कर्मोपभोगरोगाणां मर्दनं च रसायनम्। श्रीकृष्णचरणाम्भोजप्राप्तिसोपानकारणम्।।४७।।
श्रीदामराधाकलहवर्णनं दारुणं द्विज। तयोः शापप्रकथनं ततस्तेषां विसर्जनम्।।४८।।
ब्रह्मणा प्रार्थितस्यैव हरेर्जन्म महीतले। प्रोक्तं च जन्मखण्डे च परमाद्भुतमेव च।।४९।।
आविर्भावो हरेरेव वसुदेवस्य मन्दिरे। कंसासुरभयेनैव गोकुले गमनं हरेः।।५०।।
वृषभानसुता राधा श्रीदाम्नः शापहेतुना। बालक्रीडावर्णनं च गोकुले परमात्मनः।।५१।।
दैत्यादिनिधनं चैव कीर्तितं हरिणा तथा। गर्गस्याऽऽगमनं प्रोक्तं शुभान्नप्राशनं हरेः।।५२।।

यह कर्मोपभोग रूपी रोग के नाशार्थ रसायनमयी औषधि है। यह श्रीकृष्ण के चरणकमलों को पाने हेतु सोपानरूपी साधन कहा गया है। इसमें हे द्विज! श्रीदामा से राधा के बीच के दारुण कलह का वर्णन, शाप कथन तथा गोलोक से धरती पर गमन का वर्णन है। यह जन्मखण्ड परम अद्भुत् है। इसमें वसुदेव गृह में हरि का आविर्भाव ब्रह्मा की प्रार्थना से होना वर्णित है। हरि का कंस नामक असुर भय से गोकुल आगमन, श्रीदामा के शाप से राधा का वृषभानु के गृह में जन्म, परमात्मा कृष्ण की गोकुल में बालक्रीड़ा, हरि द्वारा दैत्यों का वध, गर्ग का आकर हरि का शुभ अन्नप्राशन संस्कार कराना इसमें कहा गया है।।४६-५२।।

---

१. क. तत्त्वा०।

निधनं पूतनायाश्च सद्यः शकटभञ्जनम्। श्रीकृष्णबन्धमोक्षं च यमलार्जुनभञ्जनम्॥५३॥
त्रैलोक्यदर्शनं वक्त्रे गोवत्साहरणं तथा। कृत्वा गोवत्सनिर्माणं ब्रह्मणः स्तवनं हरेः॥५४॥

सहसा गोकुलं त्यक्त्वा पुण्यं वृन्दावनं वनम्।
भयाज्जगाम नन्दश्च सार्धं च नन्दनेन च॥५५॥

इस खण्ड में पूतना का तत्काल वध, शकटासुर वध, ब्रह्मा द्वारा गौओं, गोवत्सों का हरण, हरि द्वारा माया गोवत्स निर्माण, ब्रह्माकृत कृष्णस्तव, नंद का नाना उत्पातों के भय से गोकुल त्याग पुण्य वृन्दावन आगमन इस खण्ड में कहा गया है।।५३-५५।।

वृन्दावनस्य निर्माणं प्रोक्तं च परमाद्भुतम्।
सार्धं च बालकैः सार्धं तत्र संक्रीडनं हरेः॥५६॥

सदन्नं ब्राह्मणीनां च भोजनं कथितं हरेः। वरदानं च तासां वै प्राक्तनेन निरूपणम्॥५७॥
क्रतूनां वर्णनं चैव वस्त्रापहरणं तथा। वरदानं च गोपीनां कृष्णेनैव कृतं द्विजः॥५८॥
कात्यायनीव्रतं प्रोक्तं श्रीदुर्गापूजनं तथा। पार्वत्या च वरो दत्तो गोपीभ्यो यमुनातटे॥५९॥
तालानां भक्षणं प्रोक्तं शक्रयागविमर्दनम्। राधया सह कृष्णस्य विरहो मेलनं तथा॥६०॥

इस खण्ड में परम अद्भुत वृन्दावन का निर्माण, बालकों के साथ वहां कृष्ण की क्रीड़ा, हरि द्वारा ब्राह्मणियों के उत्तम अन्न का भोजन, उनको वरदान देना पूर्व में ही वर्णित है। ऋतु वर्णन, गोपियों का चीरहरण, गोपियों को कृष्ण द्वारा वरदान देना भी इस खण्ड में वर्णित है। हे द्विज! इस खण्ड में कात्यायनीं व्रत, दुर्गा पूजन, यमुना तट पर गोपीगण को पार्वती का वरदान, तालवन के फलों का भक्षण, इन्द्रयाग को भंग करना, राधा-कृष्ण का विरह, तदनन्तर पुनः मिलन भी इस खण्ड में कहा गया।।५६-६०।।

गोपीक्रीडा च सम्प्रोक्ता कृष्णक्रोडे च राधिका।
छाया रायणगेहे च सम्प्रोक्ता मायया हरेः॥६१॥

शृङ्गारं षोडशविधं कृत्वा तु रासमण्डले। अन्तर्धानं हरेरेव राधया सह कानने॥६२॥
मलयागमनं चैव तया सार्धं द्विजोत्तम। राधामाधवयोश्चैव संवादस्तत्र निर्जने॥६३॥
[1]कैवल्यमपि गोपीनां प्रोक्तं नानाविधं मुने। पुनरागमनं चैव पुण्यं वृन्दावनं वनम्॥६४॥

श्रीकृष्णदर्शनं चैव गोपीनां हर्षवर्धनम्।
नानाप्रकारक्रीडा च प्रोक्ता तस्य जले स्थले॥६५॥
गोपीनामपि सौभाग्यं राधायाश्च विशेषतः।
प्रोक्तं व्यासेन सौन्दर्यं रम्यं रम्यं नवं नवम्॥६६॥

१. क. वैकल्य०।

इस खण्ड में गोपी क्रीड़ा, कृष्ण की गोद में राधा का बैठना, हरि की माया द्वारा रायण के गृह में राधा का छाया रूपी होकर निवास, षोडश शृंगार के साथ रासमण्डल में राधा की उपस्थिति, राधा के साथ कृष्ण का अन्तर्ध्यान होना, राधासहित मलयपर्वत पर आगमन, वहां एकान्त में राधा-कृष्ण का परस्पर संवाद भी इसमें कहा गया है। नाना प्रकार से गोपीगण को कैवल्य लाभ, पुनः वृन्दावन आना, श्रीकृष्ण का दर्शन पाकर गोपीगण की हर्षवृद्धि, श्रीकृष्ण की जल तथा स्थल पर नाना क्रीड़ा, गोपीगण के तथा राधा सौभाग्य का विशेष वर्णन, उनके नित्य नवीन रम्य सौन्दर्य का वर्णन इस खण्ड में व्यासजी ने किया है।।६१-६६।।

नभःस्थितानां देवानां दर्शनं प्रोक्तमेव च। मनसः स्खलनं चैव देवीनां रासमण्डले।।६७।।
अंशेन लेभिरे जन्म देव्यश्चोक्तमिदं द्विज। अक्रूरागमनं चैव गोपीनां च विलापनम्।।६८।।
प्रोक्तं सर्वं क्रमेणैव चाक्रूरभर्त्सनं तथा।
मथुरागमनं विष्णोः शोकं गोकुलवासिनाम्।।६९।।
राधिकाविरहज्वालाजालं प्रोक्तं यथोचितम्। स्वमूर्तिदर्शनं चैवमक्रूरं यमुनातटे।।७०।।

इसमें आकाशस्थ देवगण का दर्शन वर्णित है। रासमण्डल में देवीगण का मनस्खलन भी कहा गया। हे ब्राह्मण! यह पहले कहा गया कि देवीगण ने राधा के अंश से ही जन्म लिया था। अक्रूरागमन, गोपीगण का विलाप, अक्रूर की भर्त्सना, हरि का मथुरा आना, गोकुलवासीगण का विरह जनित शोक, साथ ही राधा की कृष्ण विरह जनित महाविरहज्वाला भी इस खण्ड में कही गयी है। यमुना तट पर कृष्ण द्वारा अक्रूर को अपनी नाना मूर्त्ति का दर्शन देना भी इस खण्ड में वर्णित है।।६७-७०।।

मथुरावेशनं प्रोक्तं निधनं रजकस्य च। कुब्जया सह संभोगस्तस्या मोक्षणमेव च।।७१।।
प्रसादनं कुविन्दस्य मालाकारस्य मोक्षणम्।
धनुषो भञ्जनं शंभोर्हस्तिनो निधनं तथा।।७२।।
सभाप्रवेशनं प्रोक्तं नानारूपप्रदर्शनम्। कंसस्य निधनं प्रोक्तं तद्बन्धूनां विलापनम्।।७३।।

श्रीकृष्ण का मथुरापुरी में प्रवेश, धोबी का वध, कुब्जा के साथ श्रीकृष्ण का रमण तथा उसको मोक्ष प्रदान, कुविन्द (जुलाहा) को प्रसन्नता प्रदान, माली को मोक्ष दान, शंभु धनुभंजन, कुलयापीड़ हाथी का वध, कंस सभा में जाकर नानारूप दिखलाना, (जिसकी जैसी भावना थी, उसने कृष्ण का वही रूप देखा) कंस वध, कंस के बन्धुगण का विलाप।।७१-७३।।

संस्कारं तस्य विधिवद्राजत्वं तत्पितुस्तथा।
विलापनं च नन्दस्य स्तवनं परमाद्भुतम्।।७४।।
प्रोक्तस्तयोश्च संवादो निर्जने तातपुत्रयोः।
परमाध्यात्मिकं ज्ञानं नन्दाय च[1] ददौ विभुः।।७५।।

१. ख. जगतामपि।

मुनीनां गमनं चैव धन्योपाख्यानमेव च। कथितं च कुमारेण प्रोक्तमेव सुदुर्लभम्॥७६॥

कंस का सविधि अंतिम संस्कार, पिता उग्रसेन का पुनः राज्यारोहण, नंद का विलाप, कृष्ण का नंदकृत अद्भुत् स्तव, एकान्त में नंद-कृष्ण-संवाद, नंद को प्रभु द्वारा परम आध्यात्मिक ज्ञान देना, मुनिगण का प्रस्थान, धान्या आख्यान, यह सब वर्णन सनत्कुमार ने किया। ये सभी दुर्लभ कथा मैं आप लोगों से कह चुका॥७४-७६॥

उद्धवागमनं प्रोक्तं राधास्थानं च निर्जनम्।
ज्ञानं तयोश्च संवादे प्रोक्तमेव शुभावहम्॥७७॥

यज्ञोपवीतं कृष्णस्य विद्यादानं गुरोर्गृहे। मृतपुत्रप्रदानं च प्रोक्तं तद्गुरवे पुरा॥७८॥
जरासंधस्य दमनं निधनं यवनस्य च। द्वारकायाश्च निर्माणं विश्वकारोद्यमं तथा॥७९॥
द्वारकावेशनं प्रोक्तमुग्रसेनविलापनम्। रुक्मिणीहरणं चैव नृपाणां दमनं तथा॥८०॥
सर्वासां कामिनीनां च प्रोक्तमुद्वाहनं तथा। मायावतीमोक्षणं च निधनं शम्बरस्य च॥८१॥

धर्मपुत्रराजसूये शिशुपालस्य मोक्षणम्।
दन्तवक्त्रस्य च मुनेः शाल्वस्य निधनं तथा॥८२॥

मणेश्च हरणं चैव पारिजातस्य स्वर्गतः। कुरुपाण्डवयुद्धे च भुवश्च भारमोक्षणम्॥८३॥

ऊषाया हरणं प्रोक्तं बाणस्य भुजकृन्तनम्।
बलेश्च स्तवनं प्रोक्तमनिरुद्धस्य विक्रमः॥८४॥
राधायशोदासंवादः प्रोक्तः परमदुर्लभः।
मोक्षणं च शृगालस्य प्रोक्तं च परमाद्भुतम्॥८५॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गणेशपूजनं तथा। दर्शनं राधिकासार्धं कृष्णस्य परमात्मनः॥८६॥
राधाया दर्शनं देव्या राधातेजःप्रकाशनम्। राधया रमणं तीर्थे भ्रमणं रहसि स्मृतम्॥८७॥

इसमें निर्जन राधिका गृह में उद्धव का आगमन, उनका कथनोपकथन, शुभ ज्ञानोपदेश, श्रीकृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार, गुरु के यहां विद्याभ्यास, गुरु को उनके मृतपुत्र प्रदान करना, जरासंध का दमन, कालयवन का वध, द्वारका निर्माण, विश्वकर्मा का अहंकार दमन, द्वारका में श्रीकृष्ण का प्रवेश, उग्रसेन का विलाप, रुक्मिणीहरण, स्वर्ग से पारिजात हरण कहा गया है। हे मुनि! इसमें इन सभी कामिनियों का विवाह, नायावती की शंबर से मुक्ति तथा शंबर वध वर्णित है। इसमें धर्मराज का राजसूययज्ञ दन्तवक्त्र तथा शिशुपाल की मुक्ति तथा शाल्ववध वर्णित है। इसमें कौरव-पाण्डव युद्ध, पृथिवी का भारहरण, ऊषा का हरण, बाणासुर की भुजाओं को काटना, बलिद्वारा कृष्णस्तव, अनिरुद्ध का पराक्रम, राधा-यशोदा वृत्तशन्त, राजा शृगाल की आश्चर्यप्रद मुक्ति, तीर्थयात्रा प्रसंग में गणपति पूजा, राधा के साथ राधानाथ का एकान्त में रमण तथा तीर्थभ्रमण कहा गया है।॥७७-८७॥

निधनं यदुवंशानां ब्रह्मशापेन शौनक। मोक्षणं पाण्डवानाञ्च स्वपदं गमनं हरेः॥८८॥
विवाहो नारदस्यैवोत्पत्तिर्वह्निसुवर्णयोः। प्रोक्तं सर्वं महाभाग पुनरेव समासतः॥८९॥
चतुःखण्डैः पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्त्तमेव च। अतः परं मुनिश्रेष्ठ किंभूयः श्रोतुमिच्छसि॥९०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्तमहापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मादिखण्डचष्ठयानक्रमणिकं नाम द्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः।।

हे शौनक! इस खण्ड में ब्रह्मशाप से यदुवंश नाश, पाण्डवों का मोक्ष, हरि का स्वधाम-गमन, नारद विवाह, अग्नि तथा सुवर्ण की उत्पत्ति कही गयी है। हे महाभाग! उसकी सूची पुनः संक्षेप में मैंने कहा। यह ब्रह्मवैवर्त्तपुराण चारखण्डों वाली है। हे मुनिप्रवर! अब आप क्या सुनना चाहते हैं?।।८८-९०।।

।।१३२वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महापुराण-उपपुराण लक्षण वर्णन, सभी महापुराणों की श्लोक संख्या, सभी उपपुराणों का नाम वर्णन, ब्रह्मवैवर्त्त नाम का तात्पर्य, इस पुराण का माहात्म्य कथन, यथाक्रम श्रवण का फलकथन

शौनक उवाच

अद्य मे सकलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम्। यत्फलं ब्रह्मवैवर्त्तं निर्विघ्नं मोक्षकारणम्॥१॥
अभयं देहि मे वत्स हे तात मह्यमेव च। तदा निवेदनं किञ्चिदस्तौति च करोम्यहम्॥२॥

शौनक ऋषि कहते हैं—आज मेरा जीवन सफल हो गया। यह दुर्लभ मानव जीवन भी सुन्दर लग रहा है। मैंने मोक्षदायक ब्रह्मवैवर्त्त रूपी पुराण फल का सेवन निर्विघ्न कर लिया। हे वत्स! हे तात! मुझे अभय दीजिये। अब मैं अपना कुछ जिज्ञास्य विषय निवेदित करता हूं।।१-२।।

सूत उवाच

त्यज भीतिं महाभाग प्रश्नं कुरु यदिच्छसि। सर्वं ते कथयिष्यामि यद्यद्गोऽयं मनोहरम्॥३॥

सूत जी कहते हैं–हे महाभाग! भय त्यागें। आप वांछित प्रश्न करें। जो कुछ मनोहर तथा गोपनीय है, वह भी मैं कहूंगा।।३।।

शौनक उवाच

अधुना श्रोतुमिच्छामि पुराणानाञ्च लक्षणम्। संख्यानपि तेषाञ्च फलमस्यैव पुत्रक।।४।।

शौनक कहते हैं–हे पुत्र! मैं पुराणों का लक्षण, संख्या तथा उनका फल सुनना चाहता हूं।।४।।

सूत उवाच

विस्तराणि पुराणानि चेतिहासश्च शौनक। संहितापञ्चरात्राणि कथयामि यथागमम्।।५।।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं विप्र पुराणां पञ्चलक्षणम्।।६।।
एतदुपपुराणानां लक्षणञ्च विदुर्बुधाः। महताञ्च पुराणानां लक्षणं कथयामि ते।।७।।
सृष्टिश्चापि विस्टष्टिश्च स्थितिस्तासाञ्च पालनम्।
कर्मणां वासना वार्त्ता मनुनाञ्च क्रमेण च।।८।।
वर्णनं प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरुपणम्। उत्कीर्त्तनं हरेरेव देवानाञ्च पृथक् पृथक्।।९।।
लक्षणञ्च दशविधं महतां परिकीर्त्तनम्। संख्यानञ्च पुराणानां निबोध कथयामि ते।।१०।।
परं ब्रह्मपुराणञ्च सहस्राणां दशैव तु। पञ्चोनषष्टिसाहस्रं पाद्ममेव प्रकीर्त्तितम्।।११।।
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवञ्च विदुर्बुधाः। चतुर्विंशतिसाहस्रं शैवमेव निरूपितम्।।१२।।
ग्रन्थाष्टशदशसाहस्रं श्रीमद्भागवतं विदुः। पञ्चविंशतिसाहस्रं नारदीयं प्रकीर्त्तितम्।।१३।।
मार्कण्डं नवसाहस्रं पुराणं पण्डिता विदुः। चतुःशताधिकं पञ्चदशसाहस्रमेव च।।१४।।
परमग्निपुराणञ्च रुचिरं परिकीर्त्तितम्। चतुर्दशसहस्राणि परं पञ्चशताधिकम्।
पुराणप्रवरञ्चैव भविष्यं परिकीर्त्तितम्।।१५।।

सूत जी कहते हैं–हे महात्मन! विस्तृत पुराणसमूह, इतिहास संहिता, पाञ्चरात्र आदि शास्त्रों के अनुसार यह वर्णन करता हूं। सृष्टि, प्रलय, वंशक्रम, १४ मनुओं के अधिकार काल का वर्णन, चन्द्र-सूर्यादि राजाओं का वंशवर्द्धन, ये ५ लक्षण पुराणों के हैं। पण्डितगण उपपुराणों का भी यही लक्षण कहते हैं। सम्प्रति महापुराणों के विशेष लक्षण कहता हूं। महापुराणों में सृष्टि, स्थिति, प्रलय, पालन, कर्म, वासना का वर्णन, १४ मनुओं के नाम आदि का कीर्त्तन, प्रलयवर्णन, मोक्ष निरूपण, हरिगुणकथन, पृथक्तया देवताओं के गुणों का कीर्त्तन, ये १० लक्षण महापुराण के हैं। अब पुराणसमूह की संख्या श्रवण करें। ब्रह्मपुराण के दस हजार, पद्मपुराण में पचास हजार तथा विष्णुपुराण में विद्वान् लोग तेरह हजार श्लोक कहते हैं। शिवपुराण में चौबीस हजार, श्रीमद्भागवत में अठारह हजार, नारदपुराण में पचीस हजार, मार्कण्डेय पुराण में नौ हजार, अग्नि पुराण में पन्द्रह हजार चार सौ, भविष्य पुराण में चौदह हजार पांच सौ श्लोक कहे गये हैं।।५-१५।।

अष्टादशसहस्रञ्च ब्रह्मवैवर्त्तमीप्सितम्। सर्वेषाञ्च पुराणानां सारमेव विदुर्बुधाः॥१६॥
एकदशसहस्रञ्च परं लिङ्गपुराणकम्। चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परिकीर्त्तितम्॥१७॥
एकाशीतिसहस्रञ्च परमेव शताधिकम्। वरं स्कन्दपुराणञ्च सद्भिरेव निरूपितम्॥१८॥
वामनं दशसाहस्रं कौर्मं सप्तदशैव तु। मात्स्यं चतुर्दशं प्रोक्तं पुराणं पण्डितैस्तथा॥१९॥
उनविंशतिसाहस्रं गारुड़ं परिकीर्त्तितम्। परं द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं परिकीर्त्तितम्॥२०॥
एवं पुराणसंख्यानं चतुर्लक्षमुदाहृतम्। अष्टादशपुराणानां नामचैतद्विदुर्बुधाः॥२१॥

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में अठारह हजार, लिंग पुराण में ग्यारह हजार, वराहपुराण में चौबीस हजार श्लोकों की संख्या है। इक्यासी हजार एक सौ श्लोकों का श्रेष्ठ स्कन्दपुराण में होना ज्ञानियों ने कहा है। दस हजार श्लोक वामनपुराण में, सत्रह हजार श्लोक कूर्मपुराण में, चौदह हजार श्लोक मत्स्य पुराण में पण्डितों ने कहा है। गरुड़ पुराण में उनतीस हजार श्लोक हैं। ब्रह्माण्डपुराण में बारह लाख श्लोक कहे गये। इस प्रकार सभी १८ पुराणों में मिलाकर कुल चार लाख श्लोक हैं। यही अठारह पुराणों का नाम विद्वानों ने कहा है।।१६-२१।।

एवञ्चोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्त्तितः। इतिहासो भारतञ्च वाल्मीकिकाव्यमेव च॥२२॥

पञ्चकं पञ्चरात्राणां कृष्णमाहात्म्य पूर्वकम्।
वाशिष्ठं नारदीयञ्च कापिलं गौतमीयकम्॥२३॥

परं सनत्कुमारीयं पञ्चरात्रञ्च पञ्चकम्। पञ्चमीसंहितानाञ्च कृष्णभक्तिसमन्विता॥२४॥
ब्रह्मणश्च शिवस्यापि प्रह्लादस्य तथैव च। गौतमस्य कुमारस्य संहिताः परिकीर्त्तिताः॥२५॥

इति ते कथितं सर्वं क्रमेण च पृथक् पृथक्।
अन्येवं विपुलं शास्त्रं ममापि च यथागमम्॥२६॥
उवाचेदं पुराणञ्च गोलोके रासमण्डले।
श्रीकृष्णो भगवान् साक्षाद् ब्रह्मणाञ्च स्वभक्तकम्॥२७॥
ब्रह्मा धर्मञ्च धर्मिष्ठं धर्मो नारायणं मुनिम्।
नारायणो नारदञ्च नारदो माञ्च भक्तकम्॥२८॥

पुराण के ही समान अठारह उपपुराण भी हैं। इतिहास, महाभारत, वाल्मीकि प्रणीत काव्य (रामायण) इनमें है। श्रीकृष्ण माहात्म्य पूर्ण पांच पांचरात्र, वसिष्ठ, नारद, कपिल, गौतम तथा सनत्कुमार, इन पांचों से रचित हैं। ब्रह्मा, शिव, प्रह्लाद, गौतम, सनत्कुमार रचित कृष्णभक्ति समन्वित पांच संहितायें भी वर्णित हैं। यह सब यथाक्रमेण आपसे अलग-अलग नाम कह दिया। इस प्रकार के प्रभूत धर्मशास्त्र है। उनका वर्णन मैंने यथाज्ञान कर दिया। साक्षात् प्रभु श्रीकृष्ण ने गोलोकस्थ रासमण्डल में अपने भक्त ब्रह्मा से इस पुराण को कहा था। ब्रह्मा ने इसे धर्म से कहा, धर्मिष्ठ धर्म ने इनको अपने पुत्र नारायण

ऋषि से कहा था। नारायण ऋषि ने इसे नारद से कहा। नारद ने मुझे अपना भक्त जानकर यह पुराण मुझसे कह दिया था।।२२-२८।।

अहं त्वाञ्च मुनिश्रेष्ठं वरिष्ठं कथयामि तत्। सुदुर्लभं पुराणाञ्चब्रह्मवैवर्त्तमीप्सितम्।।२९।।

प्रोक्तं तत्र च विश्वौघं जीविनां परमात्मकम्।
तद्ब्रह्म साक्षिरूपञ्च कर्मिणामेव कर्मणाम्।।३०।।

तद्ब्रह्म विवृतं यत्र तद्विभूतिरनुत्तमा। तेनेदं ब्रह्मवैवर्त्त मित्येवञ्च विदुर्बुधाः।।३१।।

सुपुण्यदं पुराणञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रभम्। सुगोप्यञ्च रहस्यञ्च यत्र रम्यं नवं नवम्।।३२।।

हरिभकक्तिप्रदञ्चैव दुर्लभं हरिदास्यदम्। सुखदं मोक्षणं सारं शोकसन्तापनाशनम्।।३३।।

सरित्सु च यथा गङ्गा सद्योमुक्तिप्रदा शुभा।
तीर्थानां पुष्करं शुद्धं यथा काशी पुरीषु च।।३४।।

वर्षेषु भारतं वर्षं सद्योमुक्तिप्रदं शुभम्। यथा सुमेरुः शैलेषु पारिजातश्च पुष्पतः।।३५।।

पत्रेषु तुलसीपत्रं व्रतेष्वेकादशी व्रतम्। वृक्षेषु कल्पवृक्षश्च श्रीकृष्णश्च सुरेश्वरः।।३६।।

ज्ञानीन्द्रेषु महायोगी योगीन्द्रेषु गणेश्वरः।
सिद्धेन्द्रेष्वेव कपिलः सूर्यतेजस्विनां यथा।।३७।।

सनत्कुमारो भगवान् वैष्णवेषु यथाग्रणीः।
नृपेषु च यथा रामो लक्ष्मणश्च धनुष्मताम्।। ३८।।

देवीषु च यथा दुर्गा महापुण्यवती सती।
प्राणाधिका यथा राधा कृष्णास्य प्रेयसीषु च।।३९।।

आप मुनियों में प्रधान हैं, तभी मैंने आपसे यह श्रेष्ठ पुराण कह दिया। यह अभिलषित ब्रह्मवैवर्त्तपुराण अतएव दुर्लभ है। इस पुराण में समस्त विश्व वर्णित है। इसमें प्राणीगण के परमात्मस्वरूप का, कर्मनिरत लोगों के कर्म का, साक्षीस्वरूप स्थित परब्रह्म का उल्लेख है। इस पुराण में परब्रह्म का तथा उनके उत्कृष्ट ऐश्वर्य का निरूपण भी है। इसी कारण से पण्डितगण इसे ब्रह्मवैवर्त्त कहते हैं। यह अत्यन्त पुण्यप्रद, मंगलस्वरूप तथा मंगलदायक है। इसमें अत्यन्त गुप्त रहस्य जो सुरम्य हैं तथा हरि की दासता जो हरिभक्ति दायक है, सुख एवं मोक्षप्रद हैं, शोकसन्तापनाशक हैं, वह तथा नवीनतम सारगर्भित विषय भी वर्णित है। जिस प्रकार नदियों में गंगा मुक्तिप्रदा है, पुष्करतीर्थ सभी तीर्थों में जिस प्रकार पवित्र है, जैसे पुरियों में काशी श्रेष्ठ है, जिस प्रकार से वर्ष समूह में भारत मंगलमय है और सद्यः मुक्तिदायक है, पर्वतों में जैसे सुमेरु, पुष्पों में पारिजात, पत्रों में तुलसीपत्र, व्रतों में एकादशी व्रत, वृक्षों में कल्पवृक्ष, देवगण में सुरेश्वर कृष्ण, ज्ञानीन्द्रों में महायोगी शंकर, योगीन्द्रों में गणपति, सिद्धों में कपिल, तेजस्वियों में सूर्य श्रेष्ठ हैं, विष्णु-परायणों में जिस प्रकार

सनत्कुमार अग्रणी हैं, राजाओं में रामचन्द्र, धनुर्धारियों में लक्ष्मण तथा कृष्ण प्रेमिकाओं में जैसे राधा उनकी प्राणाधिका हैं।।२९-३९।।

ईश्वरीषु यथा लक्ष्मीः पण्डितेषु सरस्वती। तथा सर्वपुराणेषु ब्रह्मवैवर्त्तमेव च।।४०।।

इसी प्रकार जैसे ईश्वरियों में लक्ष्मी श्रेष्ठ हैं, पण्डितों में सरस्वती प्रधान हैं, तदनुरूप सभी पुराणों में ब्रह्मवैवर्त्त श्रेष्ठ है।।४०।।

ततोविशिष्टं सुखदं सुप्रदं सर्वसम्पदाम्। सन्देहभञ्जनञ्चैव पुराणं परिकीर्त्तितम्।।४१।।
इहलोके च सुखदं सुप्रदं सर्वसम्पदाम्। शुभदं पुण्यदञ्चैव विघ्ननिघ्नकरं परम्।।४२।।
हरिदास्यप्रदञ्चैव परलोके प्रहर्षणम्। यज्ञानामपि तीर्थानां व्रतानां तपसां तथा।।४३।।

गुरुप्रदक्षिणस्यापि फलं नास्य समानकम्।
चतुर्णामपि वेदानां पाठादपि वरं फलम्।।४४।।

श्रृणेतीदं पुराणञ्च संयतंश्चेदपुत्रकः। गुणवन्तञ्च विद्वांसं वैष्णवं पुत्रभालभेत्।।४५।।

श्रृणोति दुर्भगा चेत्तु सौभाग्यं स्वामिनो लभेत्।
मृतवत्सा काकवन्ध्या महावन्ध्या च पापिनी।
पुराणश्रवणाल्लेभे पुत्रञ्च चिरजीविनम्।।४६।।
अस्पष्ट कीर्त्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः।
रोगार्त्तो मुच्यते रोगोद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्।।४७।।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः।
अरण्ये प्रान्तरे भीतो दावाग्नौ मुच्यते ध्रुवम्।।४८।।
आन्ध्यं कुष्ठञ्च दारिद्र्यं रोगं शोकञ्च दारुणम्।
पुराण श्रवणादेव नैव जानाति पुण्यवान्।।४९।।
श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा यः श्रृणोति सुसंयतः।
गोलक्षदानपुण्यञ्च लभते नात्र संशयः।।५०।।
चतुखण्डं पुराणञ्च शुद्धकाले जितेन्द्रियः।
सङ्कल्पतो यः श्रृणोति भक्त्या दत्वा च दक्षिणाम्।।५१।।
यद्बाल्य यच्च कौमारं वार्द्धक्यं यच्च यौवने।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः।।५२।।
रत्ननिर्माणयानेन धृत्वा श्रीकृष्णरूपकम्।
नित्यं गत्वा च गोलोकं कृष्णदास्यं लभेद्ध्रुवं।।५३।।

असंख्य ब्रह्मपातेन न भवेत् तस्य पाततम्।
सामीप्यपार्श्वगो भूत्वा सेवाञ्च कुरुते चिरम्॥५४॥

अतएव यह उत्कृष्ट, सुखप्रद, मधुर, पुण्यप्रद तथा संदेहभंजनकारी पुराण कहा गया है। यह पुराण सुखदायक, सभी सम्प्रदा प्रदाता शुभ, पुण्यदायक, विघ्नहारी, श्रेष्ठ, हरिदास्य प्रदाता तथा परलोक में भी हर्ष देने वाली है। यज्ञानुष्ठान, तीर्थसेवा, व्रतपालन, तप, गुरुप्रदक्षिणा का भी फल इस पुराण पाठ के समान नहीं है। यह पुराण चतुर्वेद पाठ से भी अधिक फलदायक है। यदि अपुत्रक मनुष्य इसका पाठ सन्तान लाभ की कामना से करता है, उसे गुणी, विद्वान्, वैष्णव सन्तान की प्राप्ति होती है। दुर्भगा नारी इसे पढ़कर अपना सौभाग्य तथा पति पुनः प्राप्त कर लेती है। मृतवत्सा, काकवन्ध्या, पापिनी महावन्ध्या नारी, इस पुराण का श्रवण करने मात्र से चिरंजीवी पुत्रलाभ करती हैं। जो कीर्त्ति रहित हैं, वे सुन्दर यश लाभ करते हैं। मूर्ख भी इसके श्रवण से विद्वान् हो जाता है। रोगी रोग से, बन्धनबद्ध बन्धन से मुक्त हो जाता है। भयभीत को भय से मुक्ति मिलती है, आपदाग्रस्त आपत्ति से मुक्त होता है। मनुष्य इसके श्रवण फल से अरण्य में, प्रान्तर में तथा दावाग्नि के संकट में सभी संकटों से मुक्त हो जाते हैं। इस पुराण के श्रवणमात्र से जो पुण्य संचित होता है, उसके प्रभाव से व्यक्ति को अन्धता, कुष्ठ, दरिद्रता, दारुण रोग-शोक का अनुभव भी नहीं होता। जो मनुष्य संयत भाव से इस पुराण के आधे श्लोक, चौथाई श्लोक का भी श्रवण करता है, उसे एक लाख गोदान फल मिल जायेगा। यह पुराण चार खण्डों में है। जो व्यक्ति शुद्धकाल में सङ्कल्प करके तथा संयम पूर्वक भक्ति के साथ वाचक को दक्षिणा देकर इस सम्पूर्ण पुराण का पाठ करता है, उसकी बाल्यावस्था के, कौमारावस्था के, युवावस्था के कोटिजन्मार्जित पापों से उसे मुक्ति मिलती है, इसमें सन्देह नहीं है। वह श्रीकृष्ण के स्वरूप को धारण करके रत्नयान पर आरोहण करके नित्यरूप गोलोकधाम में गमन करके कृष्ण का दासत्व लाभ कर लेता है। असंख्य ब्रह्मा का (क्रमशः एक के बाद) जीवन समाप्त हो जाने पर भी उस असंख्य कालमान में भी उसका गोलोक से पतन नहीं होता। वह मानव सामीप्य मुक्ति पाकर श्रीकृष्ण का पार्श्वचर होकर चिरकाल तक कृष्ण सेवा करता है॥५१-५४॥

श्रुत्वा च ब्रह्मखण्डञ्च सुस्नातः संयतः शुचिः। पायसं पिष्टकञ्चैव फलं ताम्बूलमेव च॥५५॥
भोजयित्वा वाचकञ्च तस्मै दद्यात् सुवर्णकम्। चन्दनं शुभ्रमालाञ्च सूक्ष्मवस्त्रं मनोहरम्॥५६॥

श्रुत्वा च प्रकृतेः खण्डं सुश्राव्यञ्च मनोहरम्।
भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चनम्॥५७॥
श्रुत्वा गणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय संयतः।
स्वर्ण यज्ञोपवीतञ्च श्वेताश्वच्छत्र माल्यकम्॥५८॥

प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललड्डुकम्। परिपक्वफलान्येव कलिन्दे शोद्भवानि च॥५९॥

श्रीकृष्ण जन्मखण्डञ्च श्रुत्वा भक्तश्च भक्तितः। वाचकाय प्रदद्याच्च वरं रत्नाङ्गुलीयकम्।
सूक्ष्मवस्त्रञ्च माल्यञ्च स्वर्णकुण्डलमुत्तमम्॥६०॥
सर्वस्वं दक्षिणां दत्वा स्तवनं कुरुते ध्रुवम्। शतकं ब्राह्मणानाञ्च भोजयेत् परमादरात्॥६१॥
श्रीकृष्णाभक्तियुक्तश्च पुराणं यः शृणोति च। भक्तिं कृष्णे च लभते हन्ति पापं पुराकृतम्॥६२॥
एतत् ते कथितं सर्वं यच्छ्रुतं गुरुवक्त्रतः। विदायं देहि विप्रेन्द्र यामि नारायणाश्रमम्॥६३॥

मानव अच्छी तरह स्नान करके, संयत एवं शुद्ध होकर इस ग्रन्थ का ब्रह्मखण्ड सुने। वह कथावाचक को पायस, पिष्टक, फल, ताम्बूल भोजन कराये तदनन्तर स्वर्ण दक्षिणा प्रदान करे। चन्दन, शुभ्रमाला, सूक्ष्म मनोहर वस्त्र प्रदान करे। मनोहर प्रकृति खण्ड को सम्यक् रूप से सुनकर ब्राह्मण को दधियुक्त अन्न खिलाये तथा उसे दक्षिणा में स्वर्ण प्रदान करे।

ब्रह्मखण्ड का श्रवण अच्छी तरह स्नान करके संयत एवं शुद्ध होकर करे। इसके श्रवणोपरान्त वाचक ब्राह्मण को पायस, पिष्टक, फल, ताम्बूल खिलाकर स्वर्ण दक्षिणा प्रदान करे। चन्दन, शुभ्रमाला, मनोहर महीन वस्त्र श्रीकृष्ण को अर्पित करके कथावाचक ब्राह्मण को देनी चाहिये। उत्तम रूप से सुने जाने योग्य सुखप्रद प्रकृतिखण्ड का श्रवण करके मानव पाठक को दधियुक्त अन्न भोजन कराये। उसे सवत्सा रम्या गौदान करे। संयतभाव से गणपतिखण्ड श्रवण करके कथावाचक को श्रोता व्यक्ति स्वर्ण, यज्ञोपवीत, श्वेत अश्व, श्वेत छात्र, श्वेतमाला, स्वस्तिक, मिष्ठान्न, तिल का लड्डु, ऋतुकालीन फल अर्पित करे। भक्त मनुष्य भक्ति के साथ श्रीकृष्णजन्मखण्ड श्रवण करके कथावाचक को रत्न की अंगूठी, महीन वस्त्र, माला, उत्तम स्वर्णकुण्डल तथा सर्वस्व दक्षिणा प्रदान करे। तदनन्तर स्तव करके प्रणामोपरान्त १०० ब्राह्मणों को भोजन कराये। जो व्यक्ति श्रीकृष्ण की भक्ति से युक्त होकर यह पुराण पढ़ता है, वह कृष्णभक्तिलाभ करके पूर्व पातक रहित हो जाता है। हे विप्रेन्द्र! मैंने गुरु से जो सुना था, वह सब आपसे कह दिया। अब मुझे विदा दीजिये, मैं नारायणाश्रम जाऊंगा।।५५-६३।।

दृष्ट्वा विप्रसमूहञ्च नमस्कर्त्तुं समासतः। कथितं ब्रह्मवैवर्त्तं भवतामाज्ञया परम्॥६४॥
कायेन मनसा वाचा परं भक्त्या दिवनिशम्। भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात् परम्॥६५॥
नमोऽस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च कृष्णाय परमात्मने। शिवाय ब्रह्मणे नित्यं गणेशाय नमो नमः॥६६॥
नमो दैव्यै सरस्वत्यै पुराणगुरुवे नमः। सर्वविघ्नविनाशिन्यै दुर्गदेव्यै नमो नमः॥६७॥
युष्माकं पादपद्मानि दृष्ट्वा पुण्यानि शौनक। अथ सिद्धाश्रमं यामि यत्र देवो गणेश्वरः॥६८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे त्र्यस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।

—✼✼✼—

।।इति श्रीकृष्णजन्मखण्डं समाप्तम्।।

।।समाप्तश्चेदं ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्।।

◆◆◆

मैं यहां की ब्राह्मणमण्डली का दर्शन करने तथा आपको नमस्कार करने आया था। तदनन्तर आप सबकी आज्ञा से मैंने यह ब्रह्मवैवर्त्त पुराण कहा। इन राधावल्लभ त्रिगुणातीत सत्यनय परब्रह्म प्रभु का मन-वाणी-शरीर से दिन-रात भजन करिये। मेरा ब्राह्मणों को, परमात्मा कृष्ण को, शिव-ब्रह्मा-गणपति को नित्य बारम्बार नमस्कार! सरस्वती को नमस्कार! पुराणगुरु वेदव्यास को नमस्कार! सर्वविघ्ननाशिनी देवी दुर्गा को बारम्बार नमस्कार! हे शौनक! आप सबके पावन चरणों का दर्शन करके अब मैं गणेशाधिष्ठित सिद्धाश्रम जाता हूं।।६४-६८।।

।।१३३वां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।

❖❖❖

।।ब्रह्मवैवर्णपुराण समाप्त।।

❖❖❖

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

कालिकापुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार - एस. एन. खण्डेलवाल

कालिकापुराण एक महत्त्वपूर्ण उपपुराण है। यह एक शाक्त उपपुराण है। यह पुराण शक्ति साधनापरक उपपुराणों में सर्वमान्य उपपुराण है। शक्तिपूजा का आश्रय लेकर लिखे गये पुराणों में इसका अप्रतिम स्थान है। इस पुराण में ९० अध्याय हैं। ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में देवी-चरित की प्रधानता है तो उसके उत्तरार्द्ध में कामाख्या माहात्म्य तथा तान्त्रिक पूजा-विधानों का वर्णन है। पूर्वार्द्ध में तप की प्रधानता है तो उत्तरार्द्ध में पूजन एवं बलिदान की। समग्र पुराण भगवान शिव एवं उनके परिवार से सम्बन्धित बातों का ही चरित-चित्रण है, पूर्वार्द्ध में सती (कालिका) चरित है, जबकि उत्तरार्द्ध में कालिका की संततियों का ही वर्णन है। इस प्रकार यह पुराण सती और शिव से सम्बद्ध एक महान उपपुराण है।

प्रारम्भिक सात अध्यायों में सती के जन्म से सम्बन्धित विवरण हैं। आठवें अध्याय में दक्ष को देवी का वरदान वर्णित है। नवम अध्याय से त्रयोदश अध्याय तक सती-विवाह का वर्णन है, चौदहवें एवं पन्द्रहवें अध्याय में शिव-विहार वर्णित है। सोलहवें अध्याय में शिव के अपमान से क्षुब्ध सती का देहत्याग, सत्रहवें अध्याय में दक्ष यज्ञ विध्वंस, अठारहवें अध्याय में शिव का रुदन, उन्नीसवें अध्याय में शिप्रा नदी की उत्पत्ति का विवरण, बीसवें एवं इक्कीसवें में चन्द्र शाप मोक्ष, २२वें एवं २३वें अध्याय में अरुन्धती जन्म एवं वसिष्ठ-अरुन्धती विवाह से सम्बन्धित वर्णन है। २४वें से ४०वें अध्याय तक शिव का तप, वाराह के पुत्रों तथा नरकासुर का चरित्र वर्णित है, ४१वें से ९०वें अध्यायों में नारद का आगमन, पार्वती चरित, मदन दहन, शिव-पार्वती विवाह, वेताल एवं भैरव के जन्म की चर्चा, काली और उनके विविध रूपों से सम्बन्धित पूजा विधियों एवं पूजोपचारों का विशद वर्णन, महिषासुर के अनेक जन्मों तथा दुर्गोत्सव का वर्णन है। कामाख्या देवी के माहात्म्य, पूजन आदि का विधान वर्णित है। अनेक ग्रन्थों के हिन्दी टीकाकार एवं सम्पादक श्री एस. एन. खण्डेलवाल जी की भाषा शैली ने इस पुराण की हिन्दी टीका में चार चाँद लगा दिया है, जिस कारण यह ग्रन्थ प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ने की जिज्ञासा पैदा होती है।

₹ 1350.00

ISBN : 978-81-218-0410-3 (Vol. II), 978-81-218-0411-0 (Set)

₹ [illegible]0.00